आरोग्य-अङ्क

७५वें वर्षके कल्याण-विशेषाङ्कका

संवर्धित संस्करण

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'
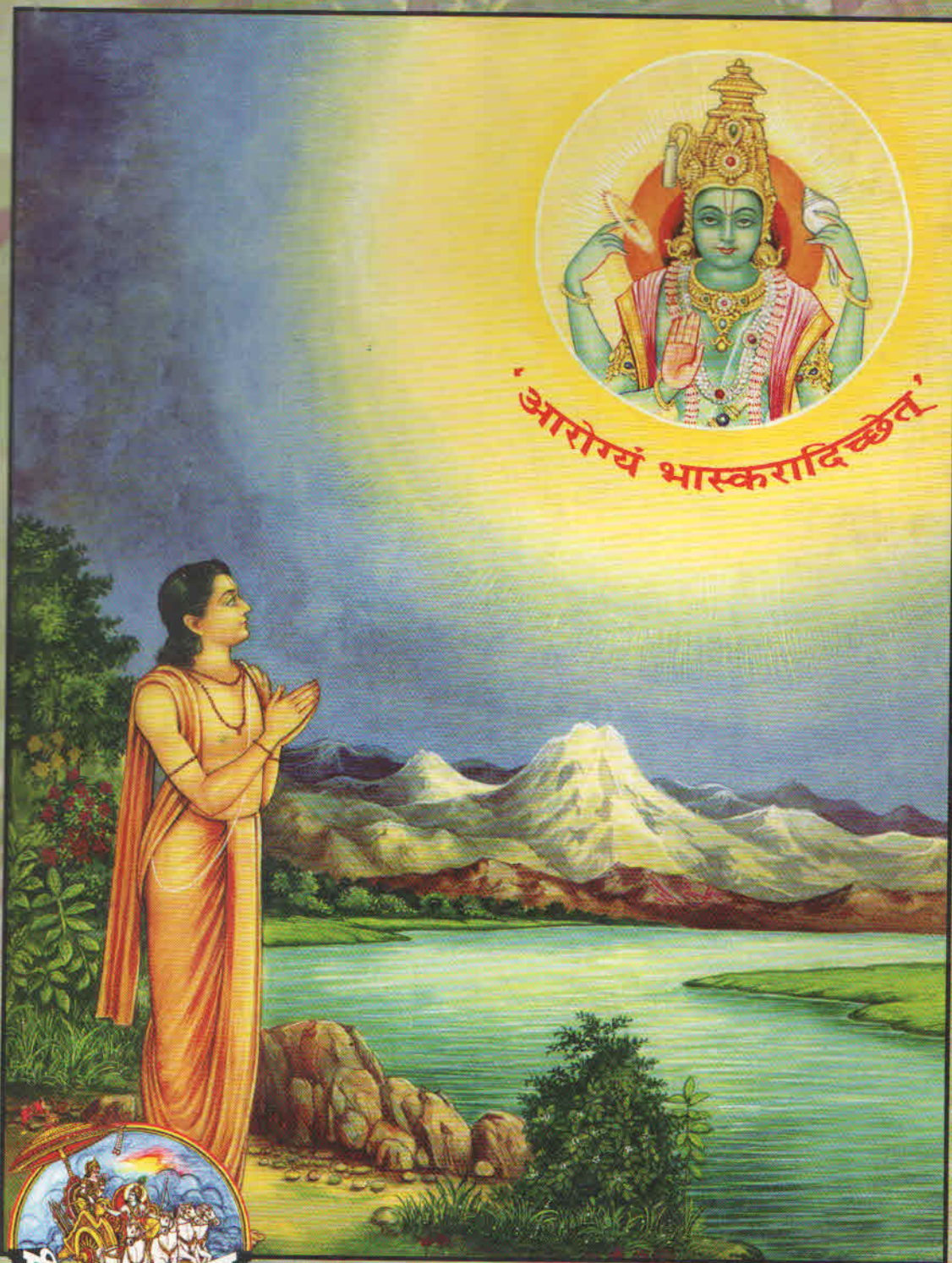
गीताप्रेस, गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR

ode 1592

आरोग्य-अङ्क

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

सं० २०७१ बाईसवाँ पुनर्मुद्रण ५,०००
कुल मुद्रण १,४८,५००

❖ मूल्य—₹ २००
(दो सौ रुपये)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका, आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

e-mail : **booksales@gitapress.org** | website : **www.gitapress.org** | ✆ (0551) 2334721, 2331250

॥ श्रीहरिः ॥

नवीन संस्करणका निवेदन

सं० २०५७ में 'कल्याण' के ७५ वर्ष पूरे हुए, इस वर्ष 'कल्याण' का ७५वाँ विशेषाङ्क 'आरोग्याङ्क' के रूपमें प्रकाशित हुआ, जिसमें ऋषि-महर्षियोंद्वारा प्रतिपादित विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियोंका निरूपण, आयुतत्त्व-मीमांसा, आहार-विहार, रहन-सहन, स्वाभाविक और संयमित जीवनका स्वरूप, शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित यम-नियम, आचार-विचार एवं यौगिक क्रियाओंका अनुपालन, प्राचीन विधाओंसे लेकर अर्वाचीन चिकित्सा-पद्धतियों तथा उनके हानि-लाभका विवेचन, नीरोग रहनेके घरेलू नुस्खे तथा अनुभूत प्रयोग, विभिन्न भारतीय चिकित्सा-पद्धतियोंके महानुभावोंका चरित्रावलोकन तथा भगवान् धन्वतरिद्वारा प्रवर्तित आयुर्वेदशास्त्र, इसके साथ ही प्रकृतिके कुछ सरल एवं स्वाभाविक नियमों तथा स्वस्थ जीवनके मूलभूत सिद्धान्तोंको सरल और सुगमरूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया।

संत-महात्माओं और मनीषी लेखकोंकी 'कल्याण' के प्रति जो आस्था और श्रद्धा है, उसे शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता। देशके विभिन्न भागोंसे संतों, भारतके गण्यमान्य आरोग्यविद् आचार्यों, विद्वान् लेखकों एवं चिकित्साशास्त्रियोंने कृपापूर्वक आरोग्यसे सम्बन्धित विशिष्ट सामग्री इस अङ्कके लिये भेजी, उन लेखक महानुभावोंने स्वास्थ्यसे सम्बन्धित अपने अनुभूत प्रयोग तथा नीरोग रहनेकी विभिन्न सामग्रियाँ भेजनेका कष्ट किया। हम इन सम्पूर्ण उपयोगी सामग्रियोंको विशेषाङ्कमें सँजोना चाहते थे, परंतु विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्याकी परिधि सीमित होनेके कारण सम्पूर्ण सामग्रीको विशेषाङ्कमें समाहित कर पाना सम्भव नहीं हो सका। यहाँतक कि 'आरोग्याङ्क'में प्रकाशनके लिये स्वीकृत की गयी सामग्रीमेंसे छपाईके अन्तिम समयमें पृष्ठ-संख्या अधिक हो जानेके कारण लगभग २०० पृष्ठकी सामग्री कम करनी पड़ गयी। इस प्रकार 'आरोग्याङ्क' की सम्पूर्ण सामग्री विशेषाङ्कमें समायोजित कर पाना सम्भव न हो सका।

इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी हमें यह बताते हुए प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है कि इस आरोग्याङ्कके प्रकाशनसे सर्वसाधारणको चिकित्साके क्षेत्रमें नवजागृति और सत्प्रेरणा प्राप्त करने तथा विभिन्न व्याधियोंसे मुक्त होने और स्वस्थ जीवनके वास्तविक स्वरूपसे परिचित हो सकनेका सुअवसर प्राप्त हो सका, जिसके फलस्वरूप 'आरोग्याङ्क' की बृहद् माँग सर्वसाधारणमें हुई। 'कल्याण' की ग्राहक-संख्या भी इस वर्ष आशातीत रूपमें बढ़ी और यह माँग अबतक अनवरत रूपमें चल रही है।

'कल्याण' का वर्ष पूरा हो जानेपर 'कल्याण' का नया विशेषाङ्क आना स्वाभाविक है, परंतु आरोग्याङ्कके लिये जनता-जनार्दनकी माँगको देखते हुए मनमें यह विचार आया कि इस अङ्कको सर्वसाधारणके लिये संवर्धितरूपमें प्रकाशित किया जाय और विद्वान् लेखकोंद्वारा भेजी हुई विशिष्ट सामग्री, स्वास्थ्यसे सम्बन्धित अनुभूत प्रयोग जो कि विशेषाङ्कमें नहीं छप सके थे, उन्हें भी इस अङ्कमें समायोजित कर दिया जाय। इसके साथ ही 'कल्याण' के पूर्व अङ्कोंमें स्वास्थ्यसम्बन्धी अनुभूत प्रयोगोंका संकलन भी इसमें समाहित किया गया है। इसके कारण इस अङ्कका आकार वर्ष ७५ (सन् २००१ ई०)-में प्रकाशित आरोग्याङ्कसे स्वाभाविक रूपमें बृहद् हो गया और लगभग चार सौ पृष्ठोंकी सामग्री इसमें अधिक हो गयी है।

इस प्रकार 'आरोग्याङ्क' का यह संवर्द्धित संस्करण आप महानुभावोंके समक्ष प्रस्तुत है। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरिः ॥

'आरोग्याङ्क' [संवर्धित संस्करण]-की विषय-सूची

चिकित्साजगत्के प्रमुख आचार्य

विषय	पृष्ठ-संख्या

विविध रोगोंकी चिकित्सा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०५७, श्रीकृष्ण-सं० ५२२६, जनवरी २००१ ई०

पूर्ण संख्या ८९०

भगवान् शिवकी शरणागतिसे परम कल्याणकी प्राप्ति

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥
यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

'जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शङ्करकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगिजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।'

वैदिक शुभाशंसा

[रोगनिवारण-सूक्त]

[अथर्ववेदके चतुर्थ काण्डका १३वाँ सूक्त तथा ऋग्वेदके दशम मण्डलका १३७वाँ सूक्त 'रोगनिवारण-सूक्त'-के नामसे प्रसिद्ध हैं। अथर्ववेदमें अनुष्टुप् छन्दके इस सूक्तके ऋषि शंताति तथा देवता चन्द्रमा एवं विश्वेदेवा हैं। जब कि ऋग्वेदमें प्रथम मन्त्रके ऋषि भरद्वाज, द्वितीयके कश्यप, तृतीयके गौतम, चतुर्थके अत्रि, पञ्चमके विश्वामित्र, षष्ठके जमदग्नि तथा सप्तम मन्त्रके ऋषि वसिष्ठजी हैं और देवता विश्वेदेवा हैं। इस सूक्तके जप-पाठसे रोगोंसे मुक्ति अर्थात् आरोग्यता प्राप्त होती है। ऋषिने रोगमुक्तिके लिये ही देवोंसे प्रार्थना की है—]

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥ १॥

हे देवो! हे देवो! आप नीचे गिरे हुएको फिर निश्चयपूर्वक ऊपर उठाएँ। हे देवो! हे देवो! और पाप करनेवालेको भी फिर जीवित करें, जीवित करें।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः॥ २॥

ये दो वायु हैं। समुद्रसे आनेवाला पहला वायु है और दूर भूमिपरसे आनेवाला दूसरा वायु है। इनमेंसे एक वायु तेरे पास बल ले आये और दूसरा वायु जो दोष है, उसे दूर करे।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ ३॥

हे वायु! ओषधि यहाँ ले आ! हे वायु! जो दोष है, वह दूर कर। हे सम्पूर्ण ओषधियोंको साथ रखनेवाले वायु! निःसंदेह तू देवोंका दूत-जैसा होकर चलता है, जाता है, प्रवाहित है।

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्॥ ४॥

हे देवो! इस रोगीकी रक्षा करें। हे मरुतोंके समूहो! रक्षा करें। सब प्राणी रक्षा करें। जिससे यह रोगी रोग-दोषरहित हो जाये।

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥ ५॥

आपके पास शान्ति फैलानेवाले तथा अविनाशी साधनोंके साथ आया हूँ। तेरे लिये प्रचण्ड बल भर देता हूँ। तेरे रोगको दूर कर भगा देता हूँ।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः *॥ ६॥

मेरा यह हाथ भाग्यवान् है। मेरा यह हाथ अधिक भाग्यशाली है। मेरा यह हाथ सब ओषधियोंसे युक्त है और मेरा यह हाथ शुभ-स्पर्श देनेवाला है।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि॥ ७॥

दस शाखावाले दोनों हाथोंके साथ वाणीको आगे प्रेरणा करनेवाली मेरी जीभ है। उन नीरोग करनेवाले दोनों हाथोंसे तुझे हम स्पर्श करते हैं।

---

* ऋग्वेदमें 'अयं मे हस्तो०' के स्थानपर यह दूसरा मन्त्र उल्लिखित है—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥

जल ही निःसंदेह ओषधि है। जल रोग दूर करनेवाला है। जल सब रोगोंकी ओषधि है। वह जल तेरे लिये ओषधि बनाये।

ओषधि-सूक्त

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥ १॥

जो देवोंके पूर्व (अर्थात् उनकी) तीन पीढ़ियोंके पहले ही उत्पन्न हुईं, उन (पुरातन) पीतवर्णा ओषधियोंके एक सौ सात सामर्थ्योंका मैं मनन करता हूँ।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥ २॥

हे माताओ! तुम्हारी शक्तियाँ सैकड़ों हैं एवं तुम्हारी वृद्धि भी सहस्र (प्रकारोंकी) है। हे शत-सामर्थ्य धारण करनेवाली ओषधियो! तुम मेरे इस (रुग्ण) पुरुषको निश्चय ही रोगमुक्त करो।

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः॥ ३॥

हे ओषधियो! (मेरी संगतिमें) आनन्द मानो। तुम खिलनेवाली और फलप्रसवा हो। जोड़ीसे (स्पर्धा या युद्ध) जीतनेवाली घोड़ियोंकी तरह ये लताएँ (आपत्तिके) पार पहुँचानेवाली हैं।

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष॥ ४॥

हे ओषधियो, माताओ, देवियो! मैं तुम्हारे पास इस प्रकार याचना करता हूँ कि अश्व, गाय तथा वस्त्र—ये (मेरी दक्षिणाके रूपमें) मुझे मिलें और हे (व्याधिग्रस्त) पुरुष! तुम्हारा आत्मा भी (रोगोंके पंजेसे छूटकर) मेरे वशमें हो जाय।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम्॥ ५॥

हे ओषधियो! तुम्हारा विश्रामस्थान अश्वत्थवृक्षपर है और तुम्हारे निवासकी योजना पर्णवृक्षपर की गयी है। अगर तुम इस व्याधिपीडित पुरुषको (व्याधियोंके पाशसे मुक्त कर मेरे पास फिर) लाकर दोगी तो (पुरस्काररूपमें) तुम्हें अनेक गायोंकी प्राप्ति होगी।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः॥ ६॥

राजा लोग जिस प्रकार राजसभामें सम्मिलित होते हैं, उसी तरह जिस विप्र (-की सङ्गति)-में सभी ओषधियाँ एक साथ निवास करती हैं, उसे लोग 'भिषक्' कहते हैं। वह राक्षसोंका विनाश करके व्याधियोंको भगा देता है।

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये॥ ७॥

इस (व्याधिग्रस्त) पुरुषके सभी दुःख नष्ट करनेके उद्देश्यसे अश्व प्राप्त करा देनेवाली, सोम-सम्बद्ध, ऊर्जा बढ़ानेवाली तथा ओजस्विनी ऐसी सभी ओषधियाँ मैंने प्राप्त कर ली हैं।

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥ ८॥

धनलाभकी इच्छा करनेवाली और तुम्हारे (व्याधिग्रस्त) आत्माको अपने वशमें लानेवाली इन ओषधियोंकी ये सभी शक्तियाँ हे रुग्णपुरुष! उसी प्रकार मेरे पाससे बाहर निकल रही हैं जिस प्रकार गोष्ठमेंसे गायें।

इष्कृतिर्नाम वो माता ऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ॥ ९॥

(स्वस्थ अवयवोंको अच्छी प्रकार समृद्ध करनेवाली हे ओषधियो!) इष्कृति नामक तुम्हारी माता है और तुम स्वयं निष्कृति (दूषित अवयवोंका निःसारण करनेवाली) हो। तुम बहनेवाली होकर भी तुम्हारे पंख हैं। (रोगीके शरीरमें) रोग-निर्माण करनेवाली जो-जो बातें हैं, उन्हें तुम बाहर निकाल देती हो।

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तन्वो३ रपः॥ १०॥

सभी प्रतिबन्धकोंको तुच्छ मानकर जिस प्रकार (कुशल) चोर गायोंके गोष्ठमें प्रवेश करके (गायोंको भगा देता है), उसी प्रकार हमारी इन ओषधियोंने (रोगीके शरीरमें) प्रवेश किया है और उसके शरीरमें जो कुछ पीडा थी उसे (पूर्णतया) बाहर निकाल दिया है।

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥ ११॥

जिस समय ओषधियोंको शक्तिसम्पन्न बनाता हुआ मैं उन्हें अपने हाथमें धारण करता हूँ, उसी समय (व्याघ्रद्वारा) जीवन्त पकड़े जानेके पूर्व ही जिस

प्रकार मृगादिक (प्राण बचाकर) भाग जाते हैं, उस प्रकार व्याधियोंका आत्मा ही विनष्ट हो जाता है।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव॥ १२॥

हे ओषधियो! जिस व्याधिपीडित पुरुषके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें और सभी सन्धियोंमें तुम प्रसृत हो जाती हो, उसके उन अङ्ग और सन्धियोंसे अपने शिकारोंके मध्यमें पड़े रहनेवाले उग्र हिंस्र श्वापदकी तरह तुम उस व्याधिको दूर कर देती हो।

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया॥ १३॥

हे यक्ष्मा! चाष अथवा किकिदीविन् इन पक्षियोंके साथ तुम दूर उड़ जाओ अथवा वातके अंधड़ एवं कुहरेके साथ विनष्ट हो जाओ।

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः॥ १४॥

तुम परस्पर एक-दूसरेकी सहायता करो। तुम आपसमें वार्तालाप करो (और फिर), सभी एकमत होकर मेरी उस प्रतिज्ञाकी रक्षा करो।

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १५॥

जिनमें फल लगते हैं और जिनमें नहीं लगते; जिनमें फूल प्रकट होते हैं और जिनमें नहीं प्रकट होते, वे सभी ओषधियाँ बृहस्पतिकी आज्ञा होनेपर हमें इस आपत्तिसे मुक्त करें।

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद्देवकिल्बिषात्॥ १६॥

(शत्रुओंकी) शपथोंसे निर्मित या वरुणद्वारा पीछे लगायी गयी आपत्तिसे वे मुझे मुक्त करें। उसी प्रकार यमके पाशबन्धनसे और देवोंके विरुद्ध किये गये अपराधोंसे भी (वे मुझे) मुक्त करें।

अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः॥ १७॥

स्वर्गलोकसे इधर-उधर नीचे पृथ्वीपर अवतरण करती हुई ओषधियोंने प्रतिज्ञा की कि जिस पुरुषको उसके जीवनकी अवधिमें हम स्वीकार करेंगी, वह कभी विनष्ट नहीं होगा।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे॥ १८॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो बहुसंख्यक होकर शत प्रकारोंकी निपुणताओंसे परिपूर्ण हैं, उन सभी ओषधियोंमें तुम्हीं श्रेष्ठ हो और हमारी अभिलाषा सफल करने तथा हमारे हृदयको आनन्द देनेमें भी समर्थ हो।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ १९॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो ओषधियाँ पृथिवीके पृष्ठभागपर इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं तथा तुम सभी बृहस्पतिकी आज्ञा हो जानेपर इस (मेरे हाथमें ली गयी) ओषधिको अपना-अपना वीर्य समर्पित करो।

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम्॥ २०॥

(भूमिके उदरमेंसे) तुम्हें खोदकर निकालनेवाला मैं और जिसके लिये तुम्हें खोदकर निकालता हूँ वह रुग्ण पुरुष—इन दोनोंको किसी प्रकारका उपद्रव न होने दो। उसी प्रकार हमारे द्विपाद तथा चतुष्पाद प्राणी और अन्य जीव—ये सभी तुम्हारी कृपासे नीरोग रहें।

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः।
सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ २१॥

हे ओषधिलताओ! तुममेंसे जो मेरा यह वचन सुन रही हैं और जो यहाँसे दूर अन्तरपर (अपने-अपने कार्यके निमित्त) गयीं हैं, वे सभी और तुम एकत्र सम्मिलित होकर (मेरे हाथमें ली हुई) ओषधिको अपना-अपना वीर्य समर्पित करो।

ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि॥ २२॥

अपना राजा जो सोम, उसके पास सभी ओषधियाँ सहमत होकर प्रतिज्ञा करती हैं कि हे राजन्! जिसके लिये यह ब्राह्मण (कविराज) हमें अभिमन्त्रित करता है, उसे हम (व्याधियोंसे) पार करा देती हैं।

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति॥ २३॥

हे ओषधि! तुम सर्वश्रेष्ठ हो। सभी वृक्ष तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक हैं। (वैसे ही) जो हमें कष्ट देना चाहता है, वह हमारी आज्ञाका वशवर्ती (दास) बनकर रहे।

आरोग्य-सुभाषित-मुक्तावली

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्॥

सुख-दुःखका कर्ता व्यक्ति स्वयं ही होता है, ऐसा समझकर कल्याणकारी मार्गका ही अवलम्बन लेना चाहिये, फिर भयभीत होनेकी कोई बात नहीं।

हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः॥

परीक्षक—विवेकीजन (सारासारविचारद्वारा) ठीक-ठीक परीक्षा करके हितकर मार्गका सेवन करते हैं, परंतु रजोगुण और तमोगुणसे आवृत बुद्धिवाले लौकिक मनुष्य (हिताहितका विचार न करके तत्काल) प्रिय (मालूम होनेवाले आचार आदि)-का सेवन करते हैं (इसीलिये दुःखी होते हैं)।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

सम्पूर्ण प्राणियोंकी सभी चेष्टाएँ सुख-प्राप्त करनेके लिये ही होती हैं और वह सुख बिना धर्माचरणके प्राप्त हो नहीं सकता, अतः धर्ममें परायण रहना चाहिये।

अवृत्तिव्याधिशोकार्ताननुवर्तेत शक्तितः।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्॥

जो आजीविकारहित हैं, रोगोंसे ग्रस्त हैं और शोकसे पीडित हैं—ऐसे मनुष्योंकी यथाशक्ति सेवा-सहायता करनी चाहिये। कीड़े-मकोड़े और चींटी आदि सभी प्राणियोंको सदा अपने ही समान देखे अर्थात् सबमें आत्मबुद्धि रखे।

अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन्।
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्॥
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ।

देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध (वयोवृद्ध, शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध), वैद्य, राजा और अतिथि—इनका यथायोग्य सम्मान करे। याचकोंको विमुख न जाने दे। कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार न करे। अपकारपरायण शत्रुके साथ भी उपकार ही करे।

काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम्।
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः॥

प्रसंग आनेपर हितकारी, थोड़े, कानोंको प्रिय और मीठे लगनेवाले तथा वाद-विवादरहित वचनोंको बोलना चाहिये। अपने पास आनेवालोंके साथ प्रथम स्वयं ही बोलना चाहिये, उनके बोलनेकी अपेक्षा न करे। सदा हँसमुख रहे। शील-विनयसे सम्पन्न, दयावान् और कोमल चित्तवाला रहे।

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि॥

अरे मूर्ख (मनुष्य)! क्या तुम मृत्युसे डर रहे हो? डरे हुएको क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको कालका ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसीको नहीं पकड़ती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत्॥
वृत्त्युपायान्निषेवेत ये स्युर्धर्माविरोधिनः।
शममध्ययनं चैव सुखमेवं समश्नुते॥

जैसे नगरका स्वामी नगरकी रक्षामें और सारथी रथकी रक्षामें तत्पर रहता है, वैसे ही बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह शरीरकी रक्षाके कार्योंमें तत्पर रहे। अपनी जीविकाको चलानेके लिये उन्हीं कर्मोंको करे, जो धर्मके विरुद्ध न हों। जो मनुष्य शान्त रहते हुए सद्ग्रन्थोंका अध्ययन और उनमें बताये गये सत्कर्मोंको करता है, वह सुख प्राप्त करता है।

इमांस्तु धारयेद्वेगान् हितार्थी प्रेत्य चेह च।
साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणाम्॥
लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्।
नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान्॥
परुषस्यातिमात्रस्य सूचकस्यानृतस्य च।
वाक्यस्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम्॥
देहप्रवृत्तिर्या काचिद्विद्यते परपीडया।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत्॥
पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्कायकर्मणाम्।

धर्मार्थकामान् पुरुषः सुखी भुङ्क्ते चिनोति च॥

इस लोक और परलोकमें हित चाहनेवाले लोगोंको अप्रशस्त अर्थात् निन्दित तथा जल्दबाजीके कार्योंको मन, वचन तथा कर्मसे भी नहीं करना चाहिये। प्रत्येक कार्य धर्मानुकूल तथा सोच-विचारकर करना चाहिये। लोभ, शोक, भय, क्रोध, अहङ्कार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, वासनामय प्रेम, दूसरेके धनको हड़पनेकी इच्छा आदि मानसिक वेगोंको रोकना चाहिये। अत्यन्त कठोर वचन, चुगली, झूठ और असमयपर बोलना—इन वचनके वेगोंको रोकना चाहिये। किसीको पीडा पहुँचानेवाले कर्म, परस्त्रीमें रति, चोरी तथा हिंसा—इन शारीरिक वेगोंको रोकना चाहिये।

इस प्रकार (शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक—) इन तीनों वेगोंके रोकनेसे मनुष्य मन, वचन और कर्मसे होनेवाले पापोंसे बचता है, पुण्य प्राप्त करता है और धर्म, अर्थ तथा कामके फलोंका सुखसे उपभोग करता है।

त्यागः प्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपशमः स्मृतिः।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम्॥
आगन्तूनामनुत्पत्तावेष मार्गो निदर्शितः।
प्राज्ञः प्रागेव तत् कुर्याद्धितं विद्याद्यदात्मनः॥

प्रज्ञापराध (जानबूझकर की जानेवाली गलतियों)-को त्यागना, इन्द्रियोंका संयम रखना, ठीक-ठीक ध्यान रखना, देश, काल और अपने-आपको समझना तथा सदाचारसे चलना आदि—ये सब आगन्तुक रोगोंसे बचनेके मार्ग हैं। बुद्धिमान् मनुष्यको रोगोत्पत्तिके पूर्व ही ऐसे कार्य करने चाहिये, जिनसे कि रोगोंकी उत्पत्ति ही न हो और अपना स्वास्थ्य बना रहे।

बुद्धिविद्यावयःशीलधैर्यस्मृतिसमाधिभिः।
वृद्धोपसेविनो वृद्धाः स्वभावज्ञा गतव्यथाः॥
सुमुखाः सर्वभूतानां प्रशान्ताः संशितव्रताः।
सेव्याः सन्मार्गवक्तारः पुण्यश्रवणदर्शनाः॥

जो पुरुष बुद्धि, विद्या, अवस्था, शील, धैर्य, स्मरणशक्ति और ठीक-ठीक ध्यान रखनेवाले, वृद्धोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले, लोगोंके स्वभावको शीघ्र समझनेवाले, मानसिक और शारीरिक कष्टोंसे मुक्त रहनेवाले, सुन्दर, सब जीवोंपर दयादृष्टि रखनेवाले, सत्परामर्श देनेवाले हों तथा जिनकी गाथा सुननेसे और जिनका दर्शन करनेसे पुण्य होता हो, ऐसे महापुरुषोंका साथ करना चाहिये।

उपधा हि परो हेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः।
त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः॥
कोषकारो यथा ह्यंशूनुपादत्ते वधप्रदान्।
उपादत्ते तथार्थेभ्यस्तृष्णामज्ञः सदाऽऽतुरः॥

उपधा (तृष्णा) ही समस्त रोगों या दुःखोंका कारण है। अतः सब प्रकारकी उपधाओं (तृष्णाओं)-का त्याग करना ही सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करना है। जिस प्रकारसे रेशमका कीड़ा अपनी मृत्युके कारणस्वरूप रेशमके जालका स्वयं निर्माण करता है और अन्तमें दुःखको प्राप्त करता है, उसी तरह मूर्ख लोग स्वयं तृष्णा करते हैं और दुःख भोगते हैं।

नरो हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥
मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं
सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

हितकारी आहार और विहारका सेवन करनेवाला, विचारपूर्वक काम करनेवाला, काम-क्रोधादि विषयोंमें आसक्त न रहनेवाला, सभी प्राणियोंपर समदृष्टि रखनेवाला, सत्य बोलनेमें तत्पर रहनेवाला, सहनशील और आप्तपुरुषोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य अरोग (रोगरहित) रहता है। सुख देनेवाली मति, सुखकारक वचन और सुखकारक कर्म, अपने अधीन मन तथा शुद्ध पापरहित बुद्धि जिसके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने और योग सिद्ध करनेमें तत्पर रहता है, उसे शारीरिक और मानसिक कोई भी रोग नहीं होते (वह सदा स्वस्थ और दीर्घायु बना रहता है)।

स्वस्थ रहनेकी रामबाण दवा

चौरासी लाख योनियोंसे भटकता हुआ प्राणी भगवत्कृपासे मनुष्ययोनि प्राप्त करता है। मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—अपना कल्याण करना अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना। मनुष्य-योनिके अतिरिक्त सभी योनियोंमें जीव अपने कर्मानुसार केवल भोग भोगता है। मात्र मनुष्यको ही विवेक और कर्म करनेकी सामर्थ्य ईश्वरकृपासे प्राप्त है। पर यह सामर्थ्य भी पूरी तरह सफल तभी होता है, जब शरीर और मन—दोनों पूर्ण स्वस्थ होते हैं। इसके लिये व्यक्तिको सावधान रहनेकी आवश्यकता है। शरीरकी प्रकृति तो स्वस्थ रहनेकी ही है, हम अपनी असावधानीके कारण अस्वस्थ हो जाते हैं। कभी-कभी प्रारब्धवशात् अपने पूर्वकृत पापोंके कारण भी व्यक्ति आकस्मिक रूपमें किसी-न-किसी रोगसे ग्रस्त हो जाता है।

अपने शास्त्रोंमें ऋषि-महर्षियोंद्वारा सदाचार और शौचाचारके अन्तर्गत मानवमात्रके लिये जीवनचर्या और दिनचर्या प्रस्तुत की गयी है, जिसका पालन कर्तव्यबुद्धिसे करनेपर लोक-परलोक दोनों सुधर सकते हैं अर्थात् लोकमें तो व्यक्ति स्वस्थ रहकर सुखी हो सकता है और परलोकमें पुण्यकी प्राप्ति कर अपने कल्याणपथका पथिक बन सकता है। वास्तवमें अपने शास्त्रोंमें कर्तव्याकर्तव्यके जो विधान हैं, वे भगवदाज्ञा होनेके कारण विश्वासपूर्वक आस्थाके साथ पालन करनेपर लोकमें स्वास्थ्य आदिके लिये परम उपयोगी होते हुए मनुष्यको भगवत्प्राप्तिकी सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

'आचारः परमो धर्मः'—आचार-विचार परम धर्म है। सदाचारमें लगे मनुष्यका शरीर स्वस्थ, मन शान्त और बुद्धि निर्मल होती है एवं उसका अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है। शुद्ध अन्तःकरण ही वस्तुतः भगवान्‌के चिन्तन और ध्यानके योग्य होता है, उसीमें भगवान्‌का स्थिर आसन लगता है। इसलिये मनुष्यको शास्त्रोक्त आचार जानना चाहिये और उसका पालन करना चाहिये। मनु महाराज कहते हैं—

'श्रुति और स्मृतिमें कथित अपने नित्यकर्मोंके अङ्गभूत धर्मका मूल—सदाचारका सावधानीपूर्वक सेवन करना चाहिये। आचार-धर्मका पालन करनेसे मनुष्य आयु, इच्छानुरूप संतति और अक्षय धनको प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, सदाचारसे अल्पमृत्यु आदिका भी नाश होता है। जो पुरुष दुराचारी है, उसकी लोकमें निन्दा होती है, वह सदा दुःख भोगता रहता है तथा रोगी और अल्पायु (कम उम्रवाला) होता है। विद्या आदि सब गुणोंसे हीन पुरुष भी यदि सदाचारी और श्रद्धावान् तथा ईर्ष्यारहित होता है तो वह भी सौ वर्षोंतक जीता है।[१]'

यहाँ श्रुति-स्मृति, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों और वैद्यक-सिद्धान्तोंके आधारपर तथा वर्तमान आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर शास्त्रोक्त जीवनचर्या तथा दिनचर्या प्रस्तुत है। जिसका पालन करनेपर स्वास्थ्य आदि भौतिक लाभके साथ-साथ आध्यात्मिक और पारमार्थिक लाभकी प्राप्ति भी हो सकेगी।

प्रातः-जागरण—पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये कल्याणकामी व्यक्तिको प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् सूर्योदयसे (तीन घंटेसे डेढ़ घंटेतक) पूर्व शय्यात्याग करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तकी बड़ी महिमा है। इस समय उठनेवालेका स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है। जो सूर्य उगनेके समय सोता है, उसकी उम्र और शक्ति घटती है तथा वह नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार होता है।

---

१. श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु । धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥
(मनु० ४। १५५—१५८)

प्रात:काल उठते ही शयनशय्यापर सर्वप्रथम करतल (दोनों हाथकी हथेलियों)-के दर्शनका विधान है। करतलका दर्शन करते हुए निम्नलिखित श्लोक पढ़ना चाहिये—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

इस श्लोकमें धनकी अधिष्ठात्री लक्ष्मी तथा विद्याकी अधिष्ठात्री सरस्वती और कर्मक्षेत्रके अधिष्ठाता ब्रह्माकी स्तुति की गयी है। इस मन्त्रका आशय है कि 'मेरे कर (हाथ)-के अग्रभागमें भगवती लक्ष्मीका निवास है, कर (हाथ)-के मध्यभागमें सरस्वती तथा कर (हाथ)-के मूलभागमें ब्रह्मा निवास करते हैं।' प्रभातकालमें मैं अपनी हथेलियोंमें इनका दर्शन करता हूँ। इससे धन तथा विद्याकी प्राप्तिके साथ-साथ कर्तव्यकर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् वेदव्यासने करोपलब्धिको मानवका परम लाभ माना है। इस विधानका आशय यह भी है कि प्रात:काल उठते ही सर्वप्रथम दृष्टि और कहीं न जाकर अपने करतलमें ही देव-दर्शन करे, जिससे मनकी वृत्तियाँ भगवच्चिन्तनकी ओर प्रवृत्त हों। यथासाध्य उस समय भगवान्‌का स्मरण और ध्यान भी करना चाहिये तथा भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि दिनभर मेरेमें सुबुद्धि बनी रहे। शरीर तथा मनसे शुद्ध सात्त्विक कार्य हों, भगवान्‌का चिन्तन कभी न छूटे। इसके लिये भगवान्‌से बल माँगे और आत्माद्वारा यह निश्चय करे कि आज दिनभर मैं कोई भी बुरा कार्य नहीं करूँगा। भगवान्‌को याद रखते हुए भले कार्योंको ही करूँगा।

शय्यासे भूमिपर पाँव रखनेके पूर्व निम्नलिखित श्लोकके द्वारा पृथ्वीमाताकी प्रार्थना करनी चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

इस श्लोकमें धरा (धरती माता)-को भगवान् विष्णुकी पत्नीके रूपमें सम्बोधित किया गया है तथा पादस्पर्शके लिये उनसे क्षमाप्रार्थना की गयी है।

उषःपान—प्रात:काल सूर्योदयके पूर्व मल-मूत्रके त्याग करनेसे पहले जल पीनेकी भी विधि है। रात्रिमें ताम्रपात्रमें ढककर रखा हुआ जल, प्रात:काल कम-से-कम आधा लीटर तथा सम्भव हो तो सवा लीटरतक पीना चाहिये, इसे 'उषःपान' कहा जाता है। इससे कफ, वायु एवं पित्त—त्रिदोषका नाश होता है तथा व्यक्ति बलशाली एवं दीर्घायु हो जाता है। दस्त साफ होता है, पेटके विकार दूर होते हैं। बवासीर, प्रमेह, मस्तकवेदना, शोथ और पागलपन आदि रोग मिट जाते हैं, बल, बुद्धि और ओज बढ़ता है।

मल-मूत्र-त्याग—इसके बाद मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग करते समय सिरको कपड़ेसे ढक लेना चाहिये तथा ऊपर-नीचेके दाँतोंको जोरसे सटाकर रखना चाहिये। इससे दाँत बहुत मजबूत होते हैं और बहुत दिनोंतक चलते हैं। दाँतोंकी कोई बीमारी नहीं होने पाती। मल-मूत्रका त्याग करते समय मौन रहना चाहिये। चोटी (शिखा) खुली रखनी चाहिये एवं ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिये। यदि क़ब्ज़ अधिक हो तो क़ब्ज़ दूर करनेके उपचार, आहार आदिके द्वारा अथवा सामान्य ओषधिके द्वारा कर लेना चाहिये। सामान्यतः पेशाब करके पानीसे मूत्रेन्द्रियको जरूर धोना चाहिये। मल-त्यागके बाद मिट्टीसे गुदा-लिङ्ग आदि जरूर धो ले, इससे बवासीरकी बीमारी नहीं होती। लिङ्गको एक बार, गुदाको कम-से-कम तीन बार मिट्टी लगाकर धो लेना चाहिये। बायें हाथको दस बार और दोनों हाथोंको मिलाकर सात बार मिट्टी लगाकर अच्छी तरह धोये तथा पैर भी धोने चाहिये। शौचके बाद बारह कुल्ले तथा लघुशंकाके बाद चार कुल्ले करनेका विधान है। यह क्रिया शौचाचारके अन्तर्गत आती है।

मनुष्यको किन वेगोंको रोकना चाहिये तथा किन वेगोंको नहीं रोकना चाहिये—इस सम्बन्धमें आयुर्वेदमें कहा गया है कि लोभ, शोक, भय, क्रोध, अहंकार, निर्लज्जता, अतिराग, दूसरेका धन लेनेकी इच्छा आदि मानसवेगोंको रोकना चाहिये, किंतु मल-मूत्रादिके वेगको

रोकना स्वास्थ्यके लिये हानिकर है।[१]

दन्तधावन—शौचनिवृत्तिके पश्चात् व्यक्तिको दातौन तथा मंजनसे दाँतोंको साफ करना चाहिये। आजकल दाँतोंको साफ करनेके लिये ब्रशका प्रयोग लोग अधिक करते हैं। परंतु नीम तथा बबूल आदिकी दातौन दाँतोंकी सुरक्षाके लिये अधिक लाभप्रद है। रविवार, एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, व्रत और श्राद्धादि दिनोंमें दातौन करनेका निषेध है। अतः इन दिनोंमें केवल शुद्ध मंजनसे ही दाँत साफ करना श्रेयस्कर है। दाँत साफ करनेके बाद जीभीसे जीभ भी साफ करनी चाहिये।

व्यायाम तथा वायुसेवन—शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये, कार्य करनेकी सामर्थ्य बनाये रखनेके लिये, पाचनक्रिया तथा जठराग्निको ठीक रखनेके लिये शरीरको सुगठित, सुदृढ़ और सुडौल बनानेकी दृष्टिसे, अपने आयु, बल, देश और कालके अनुरूप नियमितरूपसे योगासन अथवा व्यायाम अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्यक्ति सामान्यतः बीमार नहीं होते और उन्हें औषधिसेवनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती।[२]

सुबह और शामको नित्य खुली, ताजी और शुद्ध हवामें अपनी शक्तिके अनुसार थकान न मालूम होनेतक साधारण चालसे घूमना चाहिये। नियमपूर्वक कम-से-कम दो-तीन किलोमीटरतक घूमना चाहिये। प्रौढ़ावस्थामें टहलना भी एक प्रकारका व्यायाम है। नियमपूर्वक घूमनेके व्यायामसे और शुद्ध वायुसेवनसे शरीरको बहुत लाभ पहुँचता है।

अभ्यङ्ग (तेल-मालिश)—जरा, श्रम तथा वातके विनाशार्थ और शरीरकी दृढ़ता, पुष्टि, दृष्टिवृद्धिके लिये नित्य तेलकी मालिश करनी चाहिये। सिर, कान तथा पाँवके तलवोंमें तेलकी मालिशका विशेष लाभ है।[३] कानमें तेल डालनेसे कानके रोग, ऊँचा सुनना, बहरापन आदि विकार नहीं होते। सिरकी मालिशसे कानोंको और कानोंकी मालिशसे पाँवोंको लाभ पहुँचता है तथा पाँवोंकी मालिशसे नेत्ररोगोंका तथा नेत्रोंके अभ्यङ्गसे दन्तरोगोंका शमन होता है।[४]

रोज सारे बदनमें तेल लगानेपर बड़ा लाभ होता है। गलेके नीचेतक सरसोंका तथा मस्तकपर तिल आदिका तेल लगावे। सिरका ठंडा रहना और पैरका गरम रहना अच्छा है। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या, सूर्यकी संक्रान्ति, व्रत तथा श्राद्धादिके दिन तेल न लगावे।

क्षौर-क्रिया—एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्यसंक्रान्ति, शनिवार, मंगलवार, बृहस्पतिवार, व्रत तथा श्राद्धादि दिनोंको छोड़कर किसी भी दिन क्षौर, दाढ़ी, नखच्छेदन आदि कराया जा सकता है। सामान्यतः सोमवार, बुधवार और शुक्रवार क्षौरकर्मके लिये विशेषरूपसे प्रशस्त हैं। परंतु एक संतानवाले व्यक्तिको सोमवारको क्षौर नहीं कराना चाहिये।

स्नान—व्यक्तिको प्रतिदिन मन्त्रपूत स्वच्छ जलसे स्नान करना चाहिये। तभी वह मन्त्रजप, संध्यावन्दन, स्तोत्र आदि पाठ तथा भगवद्दर्शन, चरणामृत ग्रहण करनेका

---

१. लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत् । नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान्॥
न वेगान् धारयेद्धीमाञ्जातान् मूत्रपुरीषयोः । न रेतसो न वातस्य न छर्द्याः क्षवथोर्न च॥
नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः । न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेण च॥
(चरक० सू० ७। २७, ३-४)

२.(क) लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः। विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥ (अ०हृ०सू०२। १०)
(ख) वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च॥ समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्। (सु०चि० २४। ४८-४९)

३. अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा। दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुःस्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्॥
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्। (अ०हृ०सू० २। ८-९)

४. न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसंग्रहः। नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात्॥ (च०सू० ५। ८४)
मूर्ध्नोऽभ्यंगात् कर्णयोः शीतमायुः कर्णाभ्यंगात् पादयोरेवमेव।
पादाभ्यंगान्नेत्ररोगान् हरेच्च नेत्राभ्यंगाद् दन्तरोगाश्च नश्येत्॥

अधिकारी बनता है।[१] गङ्गा आदि पवित्र नदियोंमें, बहते हुए नद अथवा निर्मल तालाबमें स्नान करना उत्तम पक्ष है।

शरीरको अँगोछे और हाथसे मल-मलकर खूब नहाना चाहिये। नहाते समय ऐसा निश्चय करे कि मेरे शरीरके मैलके साथ ही मनका मैल भी धुल रहा है और इस समय भगवान्का नामोच्चारण अवश्य करते रहना चाहिये। स्नान करते समय पहले मस्तकपर जल डालना चाहिये। ज्वर, अतिसार आदि रोगोंमें, पसीनेमें, दौड़कर आनेपर तथा भोजनके तुरंत बाद नहीं नहाना चाहिये। प्रात:काल सूर्योदयसे पूर्व स्नान करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। स्नानसे जठराग्नि बढ़ती है। आयु, बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है। खुजली, मल, पसीना तथा प्यास, दाह, दु:स्वप्न आदि नष्ट हो जाते हैं। रूप, कान्ति, तेज आदिकी वृद्धि होती है।[२]

स्नान करके अङ्ग पोंछनेके बाद धोया हुआ शुद्ध सफेद कपड़ा पहने। पूजाके समय ऊनी तथा जिसमें हिंसा न होती हो, ऐसा वस्त्र पहनना उत्तम है। दूसरेका पहना हुआ कपड़ा नहीं पहनना चाहिये। लुंगी (बिना लाँगका वस्त्र) नहीं पहनना चाहिये। '**मुक्तकक्षो महाधमः**', बल्कि धोती धारणकर संध्या-पूजन आदि कर्म करने चाहिये।

नहानेके बाद सिरके केशोंको कंघीसे ठीक कर ले, जिसमें कोई जीव-जन्तु या कूड़ेका कण सिरपर न रहने पाये। सिरपर कंघी करनेसे बुद्धिका विकास होता है।

नित्य अभिवादन—घरमें माता-पिता, गुरु, बड़े भाई आदि जो भी अपनेसे बड़े हों, उनको नित्य नियमपूर्वक प्रणाम करे। नित्य बड़ोंको प्रणाम करनेसे आयु, विद्या, यश और बलकी वृद्धि होती है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनुस्मृति २। १२१)

शिखा (चोटी) और सूत्र (जनेऊ)-के बिना जो देव-कार्य किये जाते हैं, वे सदा निष्फल होते हैं—'**विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्**'।

तिलकधारण—संध्या-वन्दन तथा पूजन आदिके पूर्व मस्तकपर भस्म, चन्दन या कुंकुमसे अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार त्रिपुण्ड्र अथवा ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि तिलक करना चाहिये। तिलक धारण करनेकी बड़ी महिमा है। तिलकके न करनेपर स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण—ये सभी कर्म निष्फल होते हैं—'**भस्मी भवति तत्सर्वम्**'।

संध्या, तर्पण एवं इष्टदेवका पूजन—द्विजको यथासाध्य त्रिकाल (प्रात:, मध्याह्न तथा सायं)-संध्या करनी चाहिये। कम-से-कम दो कालकी संध्या तो अवश्य करनी ही चाहिये। जो द्विज प्रतिदिन प्रमादवश संध्या नहीं करता, वह महान् पापी माना जाता है और उसे भयानक नरकयातना भोगनी पड़ती है। संध्याके बाद कम-से-कम एक माला 'गायत्रीमन्त्र'का जप करना चाहिये। देवता, ऋषि और पितरोंकी तृप्तिके लिये प्रतिदिन तर्पण करे। नित्य अपने इष्टदेवकी (मानस एवं बाह्य) पूजा तथा स्तोत्रपाठ आदि करने चाहिये। जिनको संध्या, गायत्री करनेका अधिकार नहीं है, ऐसे लोग नित्य नियमपूर्वक अपने-अपने इष्टदेवकी पूजा-प्रार्थना अवश्य करें। पूजाकी पूर्णता चित्तकी एकाग्रतापर निर्भर होती है। अत: मनको सब तरफसे हटाकर एकाग्रचित्त हो प्रभुमें लगाना चाहिये।

पञ्चमहायज्ञ[३]—शास्त्रोंमें प्रत्येक व्यक्तिके लिये प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करनेका विधान है। इसके अन्तर्गत स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ), तर्पण (पितृयज्ञ), हवन (देवयज्ञ), पञ्चबलि (भौमयज्ञ) तथा अतिथिपूजन (नृयज्ञ)—ये पञ्चयज्ञ आते हैं। बलिवैश्वदेव तथा पञ्चबलिमें ही ये समाहित हैं। अत: इसे प्रतिदिन करना चाहिये।[४]

---

१. स्नानं प्रतिदिनं कुर्यान्मन्त्रपूतेन वारिणा। प्रात:स्नानेन योग्य: स्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु॥

२. प्रात:स्नानमलं च पापहरणं दु:स्वप्नविध्वंसनं
शौचस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसाम्।
रूपद्योतकरं शरीरसुखदं कामाग्निसन्दीपनं
स्त्रीणां मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नानं दशैते गुणा:॥

३. संध्या-वन्दन-तर्पण एवं बलिवैश्वदेव आदिकी सम्पूर्ण विधि गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' में देखी जा सकती है।

४. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ: पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
यज्ञश्रेष्ठं वैश्वदेवं प्रत्यहं तु समाचरेत्॥

चरणामृत-ग्रहण—पूजन आदिसे निवृत्त होकर तुलसीदलसे युक्त प्रभुका चरणामृत ग्रहण करना चाहिये। तुलसीदल-चरणामृतकी बड़ी महिमा है। भगवान्का चरणामृत भक्तोंके सभी प्रकारके आर्तों (दु:ख और रोग)-का नाश करता है और सम्पूर्ण पापोंका शमन करता है।[1] निम्न श्लोक पढ़ते हुए चरणोदक पान करनेका विधान है—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

पूजन, भोजन तथा आचमन आदि कृत्योंमें तुलसीदलका विशेष महत्त्व माना गया है।

भोजन—भोजन तैयार हो जानेपर सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव तथा भगवान्का भोग लगाना चाहिये। भगवान्के भोगमें तुलसीदल छोड़नेका विधान है। तुलसीदलका विशेष महत्त्व बताया गया है। इसका वैज्ञानिक रहस्य यह है कि भोजनमें तुलसीदल डालनेसे न्यूनातिन्यून परिमाणमें विद्यमान अन्नकी विषाक्तता तुलसीके प्रभावसे शमित हो जाती है—'**तुलसीदलसम्पर्कादन्नं भवति निर्विषम्**'। अत: जब भी भोजन करे तो पहले भगवान्को निवेदन करके प्रसादरूपसे ही ग्रहण करे। पैरोंको धोकर, भलीभाँति कुल्ला करके, हाथ-मुँह धोकर भोजन करना चाहिये। भोजन करनेसे पूर्व घरपर आये अतिथिका सत्कार करे। फिर अपने घरमें आयी विवाहिता कन्या, गर्भिणी स्त्री, दु:खिया, वृद्ध और बालकोंको भोजन कराकर अन्तमें स्वयं भोजन करना चाहिये। इन सबको भोजन कराये बिना जो स्वयं भोजन करता है, वह पापमय भोजन करता है।

जिस प्रकार संध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि प्रात:-सायं दो बार करनेकी विधि है, उसी प्रकार भोजन भी गृहस्थको प्रात:-सायं दो बार ही करना चाहिये। भोजनसे पूर्व भोजनपात्रका परिषेचन (चारों ओर जलका मण्डल) करना चाहिये, जिससे कीट आदि भोजनकी थालीसे दूर रहें।[2] भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व लवणरहित तीन ग्रास '**ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा**'—इन तीन मन्त्रोंसे थालीसे बाहर दायीं ओर निकालकर रखना चाहिये तथा इन्हीं मन्त्रोंसे जल भी छोड़ना चाहिये। इन तीन ग्रासोंमें पृथ्वी, भुवनमण्डल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको तृप्त करनेकी भावना है। तदनन्तर भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व लवणरहित पाँच छोटे-छोटे ग्रासोंको— '**ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा**'—इन पाँच मन्त्रोंसे मुँहमें लेना चाहिये। इन पाँच ग्रासोंके द्वारा आत्मस्वरूप ब्रह्मके प्रीत्यर्थ जठराग्निमें आहुति प्रदान करनेका भाव है। भोजनके पूर्व '**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा**' इस मन्त्रसे आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने भोजनको अमृतरूपी बिछावन (आधार) प्रदान करता हूँ। इसके बाद मौन होकर प्रसन्नमनसे खूब चबा-चबाकर भोजन करे। आयुर्वेदके अनुसार एक ग्रासको लगभग बत्तीस बार चबाना चाहिये। जो अन्नको चबाकर नहीं खाता, उसके दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा दाँतोंके बदले उसकी अँतड़ियोंको काम करना पड़ता है, जिससे अग्नि मंद हो जाती है। कहा गया है कि अन्नके दो भाग, जल और वायुके एक-एक भागद्वारा उदरकी पूर्ति करनी चाहिये। भोजन करते समय जल न पीना स्वास्थ्यके लिये लाभदायक है। आवश्यकतानुसार जल पीना हो तो भोजनके मध्यमें थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये। भोजनके अन्तमें जल पीना उचित नहीं है। भोजनके कम-से-कम एक घंटे बाद इच्छानुसार जल पीना चाहिये। भोजनके अन्तमें '**ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा**' मन्त्र बोलकर आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने भोजनप्रसादको अमृतसे आच्छादित करता हूँ।

अप्रसन्न मनसे, बिना रुचिके, भूखसे अधिक और अधिक मसालोंवाला चटपटा भोजन शरीरके लिये हानिकारक होता है। भोजन न तो इतना कम होना चाहिये जिससे शरीरकी शक्ति घट जाय और न इतना अधिक होना चाहिये कि जिसे पेट पचा ही न सके।

बहुत प्यास लगी हो, पेटमें दर्द हो, शौचकी हाजत हो अथवा बीमार हो—ऐसे समय भोजन न करे,

१. कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामार्तिनाशनम्। सर्वपापप्रशमनं पादोदकं प्रयच्छ मे॥
२. सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम्। नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधि:॥
भोजनादौ सदा विप्रैर्विधेयं परिषेचनम्। तेन कीटादय: सर्वे दूरं यान्ति न संशय:॥

अपवित्र स्थानमें, संध्याकालमें, गंदी जगह, फूटी थाली आदिमें भोजन न करे। भोजन बनाने और परोसनेवाला मनुष्य दुराचारी, व्यभिचारी, चुगलखोर, छूतका रोगी, कोढ़ और खाज-खुजलीका रोगी, क्रोधी, वैरी और शोकसे ग्रस्त नहीं होना चाहिये। जिस आसनपर भोजन करने बैठे, उसे पहले झाड़ लेना चाहिये और सुखासनसे बैठकर भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय गुस्सा न हो, कटु वचन न कहे। भोजनमें दोष न बतलावे, रोवे नहीं। शोक न करे, जोरसे न बोले। किसी दूसरेको न छुवे, वाणीका संयम करके अनिषिद्ध अन्नका भोजन करे। अन्नकी निन्दा न करे। बहुत गरम तथा बहुत ठंडी चीज दाँतोंसे चबाकर न खाये। अधिक तीखा, अधिक कड़वा, अधिक नमकीन, अधिक गरम, अधिक रूखा, अधिक तेज भोजन राजसी है और अधकच्चा, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी और जूठा अन्न तामसी है। राजसी, तामसी अन्नका, मांस-मद्यका तथा शास्त्रनिषिद्ध अन्नका त्याग करना चाहिये। भोजनके आदिमें अदरकको कतरकर उसके साथ थोड़ा नमक मिलाकर खाना अच्छा है। जीभके स्वादवश अधिक खा लेना उचित नहीं है।

एक थालीमें दो आदमी न खायँ। इसी प्रकार एक कटोरे या गिलासमें दूध या पानी न पियें। सोये हुए न खायें। दूसरेके हाथसे न खायँ। दूसरेके आसन अथवा गोदमें लेकर अन्न न खायें।

ताँबेके बरतनमें दूध न रखें। जिस दूधमें नमक गिर गया हो उसे कभी न पियें। पीतलके बरतनमें खट्टी चीज रखकर न खायँ। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि दिनोंको व्रत रखना चाहिये। व्रतके दिन निराहार रहे या परिमित आहार करे, केवल जल पीना अच्छा है।

रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ, कुत्तेका छुआ हुआ, गायका सूँघा हुआ, कीड़ा, लार, थूक आदि पड़ा हुआ, अपमानसे मिला हुआ तथा वेश्या, कलाल, कृतघ्नी, कसाई और राजाका अन्न नहीं खाना चाहिये।

भोजनमें चौकेकी व्यवस्था—धूल और दुर्गन्धरहित, प्रकाशयुक्त, शुद्ध हवादार स्थानमें भोजन बनाना चाहिये। चारों ओरसे घिरी हुई जगहमें बैठकर भोजन करना चाहिये। प्राचीन कालसे ही अपने यहाँ चौकेकी व्यवस्थापर बहुत ध्यान दिया जाता रहा है। चौकेके भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे आजकल लोग भूलते जा रहे हैं। चौका चार प्रकारकी शुद्धियोंका समुच्चय है और भोजनमें इन चारों प्रकारकी शुद्धियोंकी आवश्यकता है। इससे किया गया भोजन हमारे शरीरको स्वस्थ तथा मनको पवित्र बनाता है। ये चार शुद्धियाँ हैं—(१) क्षेत्रशुद्धि, (२) द्रव्यशुद्धि, (३) कालशुद्धि और (४) भावशुद्धि।

(१) क्षेत्रशुद्धि—भोजन करते समय हमें क्षेत्र या स्थानकी शुद्धिपर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है; क्योंकि प्रत्येक स्थानका वायुमण्डल, वातावरण, पर्यावरण हमारे मन तथा तनको जब प्रभावित करता है तो हमारे भोजनको भी प्रभावित करेगा ही। यदि किसी व्यक्तिको मरघट या श्मशानभूमि अर्थात् किसी अपवित्र स्थानमें भोजन कराया जाय और उसी व्यक्तिको उपवन आदि किसी पवित्र स्थानपर भोजन कराया जाय तो इन दोनों स्थानोंके भोजन, पाचनमें पर्याप्त अन्तरका अनुभव होगा। इसी प्रकार बाजारोंमें, गलियों आदिके आस-पास, कूड़ा-कचरा और उनपर भिनभिनाती मक्खियाँ, मच्छर तथा खाद्यपदार्थोंपर जहाँ धूल जमी हो, ऐसे दूषित स्थानोंपर जब व्यक्ति चाट, पकौड़ी, मिष्टान्न आदि खाता-पीता है तो कदाचित् वह भूल जाता है कि ऐसे स्थानोंका पर्यावरण पर्याप्त दूषित है। ऐसे वातावरणमें बैक्टीरिया, कीटाणु, भोजनके साथ शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, जो शरीरमें रुग्णता पैदा करते हैं। चौकेकी व्यवस्थाके अन्तर्गत यह क्षेत्रशुद्धि स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त वैज्ञानिक और लाभदायक है। प्राचीन परम्पराके अनुसार चौकेमें अनधिकृत व्यक्तिका प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल अधिकृत व्यक्ति ही भोजन छूनेके अधिकारी होते थे।

(२) द्रव्यशुद्धि—द्रव्य भी हमारे भोजनपर बड़ा असर डालता है। अनीति, अनाचार और बेईमानी आदि अधर्मके साधनोंके धनसे बनाया गया भोजन हमारे तन तथा मनको प्रभावित करता है। ऐसा भोजन हमारे परिणामोंको सात्त्विक कभी भी नहीं बना सकता।

(३) कालशुद्धि—काल या समयका भी भोजनपर प्रभाव पड़ता है। जो लोग समयपर भोजन नहीं करते, वे अक्सर उदरसम्बन्धी व्याधियोंसे सदा पीडित रहते हैं। भूख लगनेपर भोजन करना भोजनका सर्वोत्तम समय है

तथा नियमित समयसे भोजन करना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है। गृहस्थके लिये सूर्य रहते दिनमें भोजन करना चाहिये तथा दूसरे समयका भोजन सूर्यास्तके बाद करनेकी विधि है। मानवको हितकर भोजन उचित मात्रामें उचित समयपर करना चाहिये—'**हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः**'। (चरक)

(४) **भावशुद्धि**—भोजनपर भावनाओंका भी गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको नीरोग रहनेके लिये भोजन शुद्धभावसे करना चाहिये। क्रोध, ईर्ष्या, उत्तेजना, चिन्ता, मानसिक तनाव, भय आदिकी स्थितिमें किया गया भोजन शरीरके अंदर दूषित रसायन पैदा करता है। जिसके फलस्वरूप शरीर विभिन्न रोगोंसे घिर जाता है। शुद्ध चित्तसे प्रसन्नतापूर्वक किया गया आहार शरीरको पुष्ट करता है, कुत्सित विचारों एवं भावोंके साथ किये गये भोजनसे व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। इसके साथ ही भोजन बनानेवाले व्यक्तिके भी भाव शुद्ध होने चाहिये। उसे भी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदिसे ग्रस्त नहीं होना चाहिये।

इस प्रकार इन चारों शुद्धियोंके साथ यदि भोजन करेंगे तो निश्चितरूपसे हमारा मन भी निर्मल रहेगा और शरीर भी नीरोगी रहेगा।

भोजनसामग्रीकी शुद्धता—भोजनसामग्रीकी शुद्धता और पवित्रतापर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। भोजनके कच्चे सामान आटा, दाल, घी, मसाला आदि स्वच्छ और साफ बरतनोंमें ढककर रखे जायँ। बिना ढके बरतनोंमें चूहे घुस जाते हैं और वे वहाँ मल-मूत्रका त्याग कर देते हैं। चूहोंके मल-मूत्रमें भयानक विष होता है। खुले बरतनोंमें दूसरे जानवर भी घुसकर सामानको गंदा कर देते हैं। चौकेमें भोजन बनाकर जिन बरतनोंमें रखा हो, उन्हें ढककर रखना चाहिये। दूध, दही, मिठाई आदि पदार्थ ऐसे स्थानोंपर रखने चाहिये, जिनसे उनपर मक्खी-मच्छर न बैठ पायें। पंगतमें भोजन करने बैठे तो सबके साथ उठना चाहिये।

भोजनके बादके कृत्य—भोजन करनेके अनन्तर दाँतोंको खूब अच्छी तरह साफ करना चाहिये, ताकि उनमें अन्नका एक भी कण न रह जाय। अन्नकण दाँतोंमें रह जानेपर दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा उससे पायरियाका रोग भी हो जाता है। दाँतोंके बीचमें यदि फाँक हो गयी हो तो उन्हें नीम आदिके तिनकेसे निकालकर अच्छी तरह धो लेना चाहिये। अपने शास्त्रोंमें भोजनके अनन्तर सोलह कुल्ले करनेका विधान है। कुल्ला करते समय मुँहमें पानी रखकर दस-पंद्रह बार आँखोंको जलके छींटे देकर धोना चाहिये। दिनमें जितनी बार मुँहमें पानी ले उतनी बार यदि यह क्रिया की जाय तो आँखोंमें बड़ा लाभ होता है। भोजनके उपरान्त लघुशंका भी तुरंत करनी चाहिये। यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है, इससे मूत्रसम्बन्धी बीमारीका बचाव होता है।

भोजनके बाद दौड़ना, कसरत करना, तैरना, नहाना, घुड़सवारी करना, मैथुन करना और तुरंत ही बैठकर काम करने लगना स्वास्थ्यके लिये बहुत हानिकर है।

भोजनके बाद लगभग सौ कदम चलना चाहिये तथा चलनेके बाद लगभग १० मिनट दोनों घुटने पीछे मोड़कर वज्रासनमें बैठना चाहिये, तदनन्तर विश्रामकी मुद्रामें सीधे लेटकर ८ श्वास तथा दाहिनी करवटमें १६ श्वास और बायीं करवट लेटकर ३२ श्वास लेनेकी विधि है। इससे पाचनक्रिया ठीक रहती है तथा यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त लाभप्रद है।

शयन—रातमें भोजन करनेके तुरंत बाद सोना नहीं चाहिये। सोनेसे पूर्व सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय और भगवान्का स्मरण अवश्य करना चाहिये। सोनेके पूर्व लघुशंका आदिसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोकर उन्हें भलीभाँति पोंछकर स्वच्छ बिछावनपर पूर्व या दक्षिणकी ओर सिर करके सोना चाहिये। हवादार घर जिसमें भगवान्के चित्र टँगे हों, शयनके लिये उत्तम स्थान माना गया है। भगवान्का ध्यान करके बायीं करवट सोना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है। सामान्यतः ६-७ घंटे सोनेपर नींद पूरी हो जाती है। अभ्यास कर लेनेपर छः घंटेसे कम भी सोया जा सकता है।

सोनेके समय मुँह ढककर या मोजा पहनकर नहीं सोना चाहिये। रातमें जल्दी सोना तथा प्रातःकाल जल्दी उठना स्वास्थ्यके लिये विशेष लाभप्रद है। शयनका

स्थान हवादार, स्वच्छ तथा साफ होना चाहिये।

स्वास्थ्यरक्षाके मूल आधार

स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे शास्त्रोक्त दिनचर्या ऊपर प्रस्तुत की गयी है, वस्तुतः स्वास्थ्यरक्षाके पाँच मूल आधार हैं—(१) आहार, (२) श्रम, (३) विश्राम, (४) मानसिक सन्तुलन और (५) पञ्चमहाभूतोंका सेवन।

(१) आहार—आहारके सम्बन्धमें ऊपर विस्तारसे वर्णन किया जा चुका है। आयुर्वेदमें तीन प्रकारके भोजनोंका उल्लेख मिलता है—(१) शमन करनेवाला भोजन, (२) कुपित करनेवाला भोजन तथा (३) सन्तुलन रखनेवाला भोजन। वात-पित्त और कफ—इन तीनोंके असन्तुलनसे रोगका जन्म होता है। ये तीनों रोगके प्रमुख कारण हैं। जो भोज्यपदार्थ इन तीनोंका शमन करते हैं वे शमनकारी और जो इन तीनोंको कुपित करते हैं वे कुपितकारी तथा जो इन तीनोंको सन्तुलित किये रहते हैं उन्हें सन्तुलनकारी भोजन कहा जाता है। इन तीनोंका स्वभावसे गहरा सम्बन्ध रहता है। इसलिये स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार भोजन करनेकी अनुमति दी जाती है। शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और उसका प्रकार जो होगा वह मानसिक श्रमशील व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और प्रकारसे भिन्न होगा।

आहारका सर्वोपरि सिद्धान्त तो यह है कि भूख लगनेपर आवश्यकतानुसार भूखसे कम मात्रामें भोजन करना चाहिये।

(२) श्रम—जीवनमें भोजनके साथ श्रमका कम महत्त्व नहीं है। आजकल श्रमके अभावमें आलस्य और प्रमादके कारण विभिन्न प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति हो रही है। ऐसे बहुत लोग हैं, जिन्हें जीवनमें कभी भी सच्ची भूखकी अनुभूति नहीं होती।

स्वस्थ रहनेके लिये दैनिक जीवनक्रममें कुछ घंटे ऐसे बिताने चाहिये जिससे सहज श्रम हो जाय। जो लोग स्वाभाविक रूपसे शारीरिक श्रम नहीं कर सकते, उन्हें व्यायाम, योगासन और भ्रमणके द्वारा श्रमशील होना चाहिये।

आजकल सिनेमा, होटल तथा क्लबोंमें जानेके लिये और टी.वी. आदि देखनेके लिये तो सरलतासे समय मिलता है, किंतु व्यायामके लिये समयके अभावकी शिकायत बनी रहती है। जो व्यक्ति श्रम या व्यायाम नियमितरूपसे करते हैं, उन्हें सामान्यतः दवा लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, वे स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ रहते हैं।

(३) विश्राम—आहार तथा श्रमकी तरह विश्राम भी शरीरकी अनिवार्य आवश्यकता है। अत्यधिक परिश्रमसे थके व्यक्तिमें विश्रामके पश्चात् नवजीवनका संचार होता है। रातकी गहरी नींदसे शरीरमें पुनः नयी शक्ति तथा मनमें नयी उमंगका प्रादुर्भाव होता है। विश्रामके बाद श्रम और श्रमके बाद विश्राम—दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं।

प्रायः लोग शरीरको तो विश्राम देते हैं, किंतु मनको विश्राम नहीं देते। शरीर एक स्थानपर पड़ा रहता है, किंतु मन इधर-उधर भटकता रहता है। नींदके समय शरीर शान्त रहता है, किंतु मन स्वप्नमें फँसा रहता है। ध्यान तथा भगवन्नाम-स्मरणसे मनको विश्राम मिल सकता है। इसी प्रकार जीवनमें संयम-नियमका पालन करनेसे मनको शान्त रखनेमें सहायता मिलती है। निद्रा भी विश्रामका सर्वोत्तम साधन है। शरीर तथा मन—दोनोंको विश्राम मिलनेपर ही पूर्ण विश्रामकी स्थिति बनती है।

(४) मानसिक संतुलन—मानसिक विश्रामके बाद शारीरिक क्रिया होती है। शरीर सदा मनका अनुगामी होता है। मनमें संकल्प उठता है इसके बाद ही शरीरद्वारा क्रिया आरम्भ होती है। शुद्ध चित्तमें पवित्र संकल्प या विचार आते हैं और अशुद्ध चित्तमें बुरे संकल्प या विचार आते हैं। मन शरीररूपी यन्त्रका संचालक है। मन या चित्तको शुद्ध रखनेपर वही सही मार्गपर चलेगा। इसलिये शरीरशुद्धिकी अपेक्षा चित्तशुद्धिका महत्त्व अधिक है। चित्तशुद्धिके बाद शारीरिक स्वास्थ्यका सुधार स्वतः स्वाभाविक रूपसे हो जायगा।

मनके शान्त तथा प्रसन्न रहनेपर सामान्यतः शरीर

है। जिससे प्राणी मुक्तभावसे उनका उपयोग करके नीरोग और स्वस्थ रह सके।

कल्याणकामी मनुष्यके लिये आयुर्वेदशास्त्रके अन्तमें कुछ उपदेश प्रदान किये गये हैं—

मानवको सभी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। हितैषी मित्रोंको समझना तथा वञ्चक मित्रोंसे दूर रहना चाहिये। अभावग्रस्त, रुग्ण एवं दीनजनोंकी सहायता करनी चाहिये। क्षुद्रातिक्षुद्र (चींटी) आदि प्राणियोंको अपने समान समझना चाहिये। देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथिका सतत सत्कार करना चाहिये। याचकोंको विमुख नहीं जाने देना चाहिये और कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। अपकार करनेवालेका भी निरन्तर उपकार करनेकी ही भावना रखनी चाहिये। फलकी कामनासे निरपेक्ष रहकर सम्पत्ति और विपत्तिमें सदा समबुद्धि रखनी चाहिये।[१] उचित समयपर अति संक्षेपमें किसीसे भी हितकर बात कहनी चाहिये—**'काले हितं मितं ब्रूयात्'**। मनुष्यको करुणार्द्र, कोमल, सुशील तथा संशयरहित होना चाहिये तथा किसीपर अत्यन्त विश्वास भी नहीं करना चाहिये। किसीको अपना शत्रु मानना तथा किसीसे शत्रुता करना दोनों अच्छे नहीं हैं।[२] सदैव सबसे विनम्र व्यवहार करना चाहिये। व्यर्थमें हाथ-पैर हिलाना, लगातार सूर्यकी ओर देखना तथा सिरपर भार ढोना आदि कार्य न करे, अत्यन्त चमकीली वस्तुओंकी ओर देरतक नहीं देखना चाहिये, इससे अन्धत्व आनेका भय होता है। सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय सोना, भोजन तथा स्त्रीगमन आदि कार्य करना निषिद्ध है। हानिप्रद पेय नहीं पीना चाहिये। किसी भी कार्यमें अति नहीं करनी चाहिये—**'अति सर्वत्र वर्जयेत्'**।

बुद्धिमान् व्यक्तिको दूसरोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव तथा सत्पात्रको दान देनेकी भावना रखनी चाहिये। हिंसा, चोरी, पिशुनता, कठोरता, झूठ, दुर्भावना, ईर्ष्या, द्वेष आदि पापोंसे तथा शरीर, मन और प्राणीके द्वारा किसी भी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। अन्यथा व्याधिरूपमें उनका दण्ड भोगना पड़ता है।

संक्षेपमें निष्कर्ष यह है कि जीवनके उत्कर्षके लिये तथा अपने कल्याणके लिये आचारधर्म अर्थात् सदाचारका पालन ही मनुष्यका मुख्य धर्म है—**'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः'** (विष्णुसहस्रनाम श्लोक १३७)। जिसका अनुशीलन कर व्यक्ति अनेकानेक आपदाओं, रोगों, अभिचारोंसे सुरक्षित रहकर पूर्ण आरोग्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभीको प्राप्त करनेमें सक्षम हो जाता है।

जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार-विहारका सेवन करता है, सोच-समझकर कार्य करता है, विषयोंमें आसक्त नहीं होता, जो दानशील, समत्व बुद्धिसे युक्त, सत्यपरायण, क्षमावान्, वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला है, वह नीरोग होता है—

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(चरक)

मन, बुद्धि और चित्त जिसका स्थिर है, ऐसा प्रसन्नात्मा व्यक्ति ही स्वस्थ है—

'प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामो स्थिरधीः स्वस्थमुच्यते'।

ये सभी बातें अथवा विशेषताएँ आचारधर्मके पालनसे ही सम्भव है और यही स्वस्थ रहनेकी रामबाण दवा है।

—राधेश्याम खेमका

१- आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्॥
अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् । विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्॥
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ। संपद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्ष्येत्फले न तु॥ (अ०हृ०सू० २। २३—२५)

२- न कञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्॥ (अ०हृ०सू० २। २७)

आयुर्वेदके आविर्भावक पितामह ब्रह्मा

पितामहका वात्सल्य—ब्रह्माजी पिताओंके पिता हैं। इसलिये हम लोग इन्हें पितामह कहा करते हैं। कहा जाता है कि संततिपर पितासे भी बढ़कर पितामहका स्नेह होता है। यह कहावत अपने पितामह ब्रह्माजीपर ठीक-ठीक चरितार्थ होती है। ये अपना स्नेह हमपर अनवरत बरसाते ही रहते हैं। यदि कभी हम अपने पथसे विचलित होने लगते हैं तो इनके हृदयको ठेस पहुँचती है और ये किसी-न-किसी रूपमें हमें सावधान कर देते हैं।

एक बार पिप्पल नामके एक तपस्वीने दशारण्यमें कठिन तपस्या की। उन्होंने तीन हजार वर्ष केवल वायु पीकर व्यतीत किये। वह तपस्या बहुत ही कठोर थी। उससे देवता प्रसन्न हो गये। देवताओंने उनसे वर माँगनेको कहा। पिप्पलने पहला वर यह माँगा कि सम्पूर्ण संसार मेरे वशमें हो जाय। देवताओंने उन्हें वह वर दे दिया। इस वरकी उन्होंने परीक्षा की। परीक्षा सफल हुई। तपस्वी पिप्पल जिसे-जिसे चाहते, वह-वह उनके वशमें हो जाता। इस सिद्धिसे तपस्वी पिप्पलमें अहंकारका अंकुर फूटने लगा। वे सोचने लगे—'विश्वमें मेरे समान कोई नहीं है।' पितामह ब्रह्मा उनके तपोमय जीवनसे बहुत प्रसन्न थे। किंतु जब उन्होंने देखा कि उनकी यह संतति विनाशकी ओर बढ़ रही है तो उनके हृदयमें वात्सल्यभरी घबड़ाहट उत्पन्न हो गयी। वे झट सारसका रूप धारण कर तपस्वी पिप्पलके पास आ पहुँचे और बोले—'अबतक तो तुम ठीक रास्तेसे जा रहे थे, किंतु अब तुम अहंकारके वशमें क्यों हो रहे हो? इससे तुम्हारी बहुत बड़ी क्षति होगी। सच पूछा जाय तो तुम्हारा यह अहंकार भी झूठा है; क्योंकि तुमसे भी बड़ी सिद्धि पानेवाले लोग पृथ्वीपर विद्यमान हैं। तुम तो ब्रह्मके केवल अर्वाचीन रूपको ही जान पाये हो। उनके प्राचीन तत्त्वके सम्बन्धमें तुम कुछ नहीं जानते। अतः तुम्हारा अहंकार व्यर्थ है। इन दोनों तत्त्वोंका सच्चा ज्ञाता तो केवल पितृभक्त सुकर्मा है। अवस्थाकी दृष्टिसे वह निरा बालक है और तुम उससे हजारों वर्ष बड़े हो, किंतु पितृभक्तिसे सम्पूर्ण विश्व जितना उसके वशमें है, उतना तुम्हारे वशमें नहीं। तुम सुकर्मासे मिलो।'

ब्रह्माजीकी ऐसी चेतावनीसे पिप्पलका अगला जीवन प्रकाशपूर्ण हो गया।

इसी तरह जब हमपर कोई ऐसी विपत्ति आती है, जो हमारे कर्मके परिणामरूपमें प्रकट होती है और जिसे हमारे पितामह ब्रह्मा भी नहीं टाल पाते, तब हमारी सफलताके लिये वे भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं। ऐसी घटनाओंसे इतिहास भरा हुआ है। ये सब उदाहरण पितामह ब्रह्माके हमारे प्रति वात्सल्यके नमूने हैं।

यदि हम पितामहकी जीवनीके पिछले पन्ने पलटते हैं तो देखते हैं कि हमारे स्नेहमें आकर हमारे लिये उन्होंने कठोर-से-कठोर तप किये हैं—बड़े-बड़े कष्ट झेले हैं। पहले पृष्ठपर हम देखते हैं कि ये कमल (ब्रह्माण्ड)-की कर्णिकापर बैठे हैं और चिन्तामें निमग्न हैं। वह चिन्ता, जो इन्हें सता रही थी, अपने लिये नहीं थी, अपितु हम लोगोंके लिये ही थी। वे हमें उत्पन्न करना तथा हमारे खान-पानकी व्यवस्था करना चाहते थे और चाह रहे थे कि हम कैसे स्वस्थ रहें। यही उनकी चिन्ता थी—'**सिसृक्षयैक्षत**' (श्रीमद्भा० २।९।५)। फिर वे चारों तरफ देखने लगे कि सृष्टि-रचनाके लिये कौन-से साधन विद्यमान हैं। तब उन्हें केवल पाँच वस्तुएँ ही दीख पड़ीं—कमल (ब्रह्माण्ड), जल, आकाश, वायु और अपना शरीर (श्रीमद्भा० ३।८।३२)। इनके अतिरिक्त उन्हें और कुछ न दीखा। अब उनके सामने यह समस्या थी कि सृष्टि किससे करें और कैसे करें? उन्हें कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। तब भगवान्‌ने उनको तपस्या करनेकी आज्ञा दी। आदेश पाकर ब्रह्माजी तप करने बैठ गये। इस तपस्याका फल यह हुआ कि भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिया और फिर तप करनेके लिये आदेश दिया। तपस्या जब पूर्णतापर पहुँचनेको हुई तो वेदके अर्थ, जो पुराण हैं, उन्हें याद आ गये। जैसे पुनर्जन्मकी स्मृति होनेपर पहले जन्मके माता-पिता, गाँव, घर, भाई आदि याद आने लगते हैं, वैसे ही पितामह ब्रह्माको पुराकल्पके इतिहासके साथ-साथ ऐतिहासिक पदार्थोंके स्वरूप, नाम और सम्बन्ध आदि याद आ गये। उन्होंने किस-किस वस्तुको बनाना है

और उसका स्वरूप क्या है, उसका नाम क्या है—इस समस्याको सुलझा लिया। इस तरह हमारे खाने-पीने, पहनने और स्वास्थ्यमें उपयोग आनेवाले पदार्थ उनको याद आ गये, किंतु इनको बनानेकी क्षमता अभी उनमें नहीं आयी थी; क्योंकि किसी पदार्थको बनानेकी क्षमता वेदके शब्दोंमें होती है[१] न कि उनके अर्थोंमें और ब्रह्माजीको अभीतक केवल वेदके अर्थ याद आये थे शब्द नहीं सुनायी पड़े थे—**'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्'** (मत्स्यपुराण ३।४)।

इस तरह हम ब्रह्माके मनमें तो उपस्थित हो चुके थे, किंतु जगत्में उत्पन्न नहीं हुए थे; क्योंकि किसी वस्तुको केवल वेदके शब्द ही उत्पन्न कर सकते हैं, अर्थ नहीं।

हमारी उत्पत्तिके लिये ब्रह्माजीको फिर तप बढ़ाना पड़ा। इस प्रकार ब्रह्माजी हमारे लिये कष्ट-पर-कष्ट झेलते रहे। जब तप पूर्णतापर पहुँचा, तब भगवान्के द्वारा प्रसारित वेद नित्य स्वर, नित्य शब्द और नित्य अर्थोंके साथ ब्रह्माको सुनायी पड़ा। ब्रह्मा श्रुतधर थे, इसलिये आनुपूर्वी और उदात्त आदि स्वरोंके उच्चारणके साथ वेद उन्हें सुनते ही याद हो गया। अब हमारे पितामह ब्रह्माके पास वह शक्ति आ गयी थी कि वेदके शब्दोंके द्वारा किसी पदार्थका निर्माण कर सकें।

सृष्टिकी उत्पत्तिके पहले उन्होंने वेदके अर्थोंको, जो कि उनको स्मृत हुए थे, अपने शब्दोंमें बाँध लिया। इस ग्रन्थका नाम पुराण पड़ा। उसमें एक लाख श्लोक थे। इसके बाद जब उदात्त आदि स्वरोंके साथ उनके चारों मुखोंसे चारों वेद निकले, तब उन श्रुत शब्दों और स्मृत अर्थोंकी सहायतासे उन्होंने आयुर्वेदका ग्रन्थ बनाया। उसमें भी उन्होंने एक लाख ही श्लोक बनाये थे। आचार्य सुश्रुतने इस तथ्यको स्पष्ट किया है—

'इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः'

(सु०सं०सू० १।६)

अर्थात् ब्रह्माजीने अथर्ववेदके उपाङ्गस्वरूप आयुर्वेदको एक लाख श्लोकोंमें ग्रथित किया था, जिसमें एक हजार अध्याय थे।

इस तरह सृष्टिकी उत्पत्तिके पहले ही ब्रह्माजीने हमें नीरोग रखनेके लिये शाश्वत आयुर्वेदको अपने शब्दोंमें ग्रथित कर लिया था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पितामह ब्रह्मा आयुर्वेदके आदि आविर्भावक थे।

परम्पराका निर्माण

जीवनके साथ आयुर्वेदका गहरा सम्बन्ध होनेके कारण पितामह ब्रह्माने आयुर्वेदके पठन-पाठनकी परम्परा स्थापित की। ब्रह्माजीने इस चिकित्सा-शास्त्रको अपने मानसपुत्र दक्षको और दक्षने अश्विनीकुमारोंको तथा अश्विनीकुमारोंने देवराज इन्द्रको पढ़ाया। इस तरह यह परम्परा आजतक चलती चली आ रही है।

ब्रह्माद्वारा औषधका प्रयोग

यद्यपि आयुर्वेदके मूल आविर्भावक और प्रथम ग्रन्थकार पितामह ब्रह्मा हैं, फिर भी इन्होंने इसको अपने जीवनमें प्रयोगरूपमें नहीं आने दिया। इसके प्रयोगका पूरा भार अश्विनीकुमारोंपर डाल दिया तथापि इनके अन्तरङ्ग जीवनमें एक ऐसी घटना घटी कि इनको भी औषधका प्रयोग करना पड़ा—

ब्रह्माजीकी एक पुत्रीका नाम सीतासावित्री था। पितामहकी यह लाडली कन्या थी। वे चाहते थे कि इसका विवाह सोमसे हो, किंतु सोमका आकर्षण सीतासावित्रीपर न था। इधर पिताकी तरह पुत्री भी सोमको ही चाहती थी। परंतु अपने ऊपर सोमका आकर्षण न देखकर बेचारी चिन्तित रहने लगी। अन्तमें उसने पितासे इसके लिये सहायता माँगी। तब ब्रह्माने अपने औषध-ज्ञानका उपयोग किया। **'स्थागर'** नामक वनस्पतिका उपयोग उन्होंने इस कार्यमें किया। यह ओषधि बहुत ही सुगन्धित और आकर्षक भी होती है। इसमें वशीकरणकी छिपी हुई बहुत बड़ी शक्ति है। पिताने इस 'स्थागर' वनस्पतिको घिसकर और अभिमन्त्रितकर[२] पुत्रीको टीकाकी तरह लगा दिया।

---

१. (क) तत्र तत्र शब्दपूर्विका सृष्टि श्राव्यते। (ब्रह्मसूत्र १।३।२८ शाङ्करभाष्य)
(ख) ते हि शब्दपूर्वां सृष्टिं दर्शयतः। (ब्रह्मसूत्र १।३।२८ शाङ्करभाष्य)

२. वेदने ओषधियोंमें अधिदेवत्व स्वीकार किया है। उसने ओषधियोंसे प्रार्थना की है कि 'हे ओषधियो! तुम मेरे रोगको दूर करो' (यजु० १६।५)। अभिमन्त्रित करके ही औषधका प्रयोग करना चाहिये।
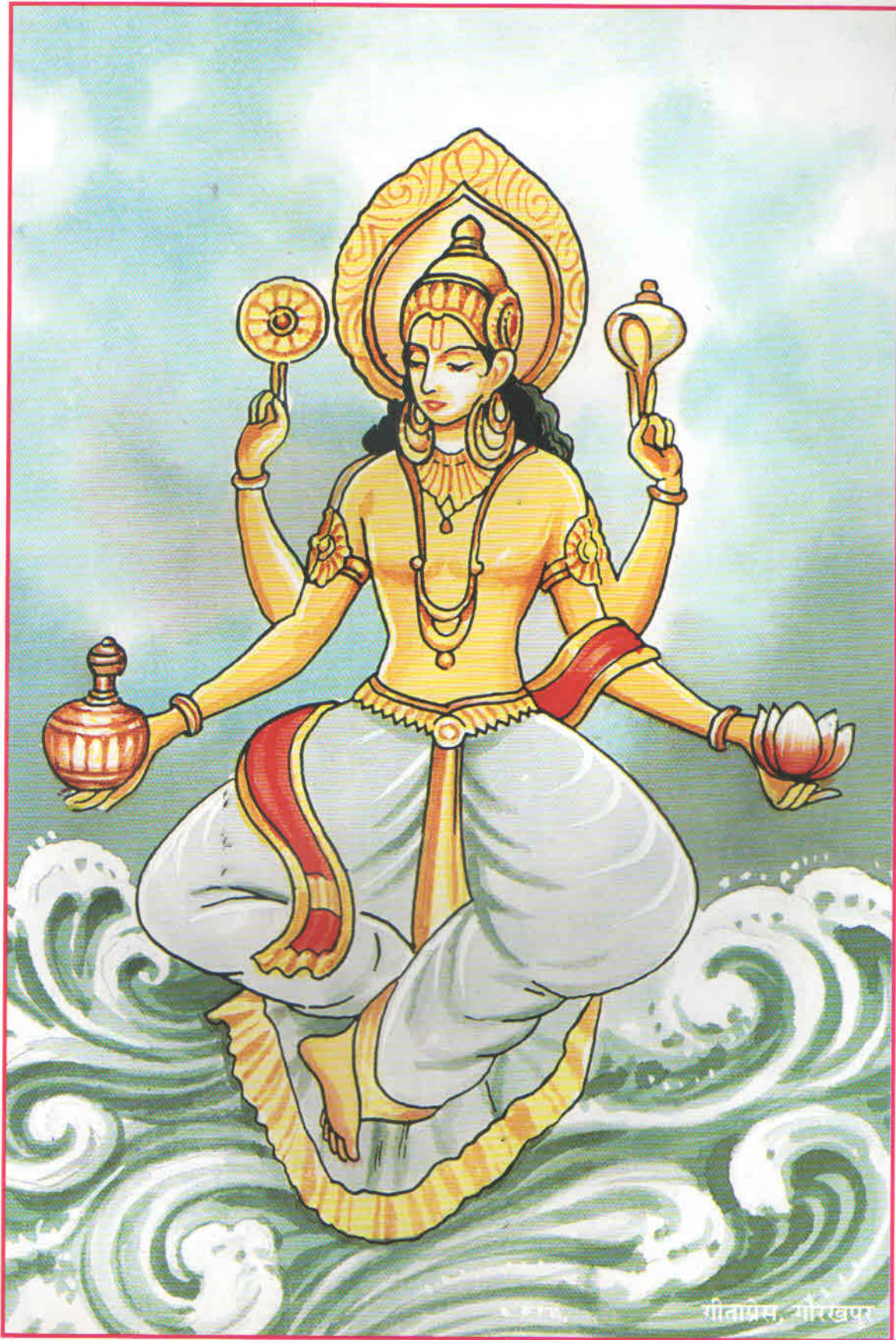
आयुर्वेदके प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि

महर्षि चरक

महर्षि सुश्रुत
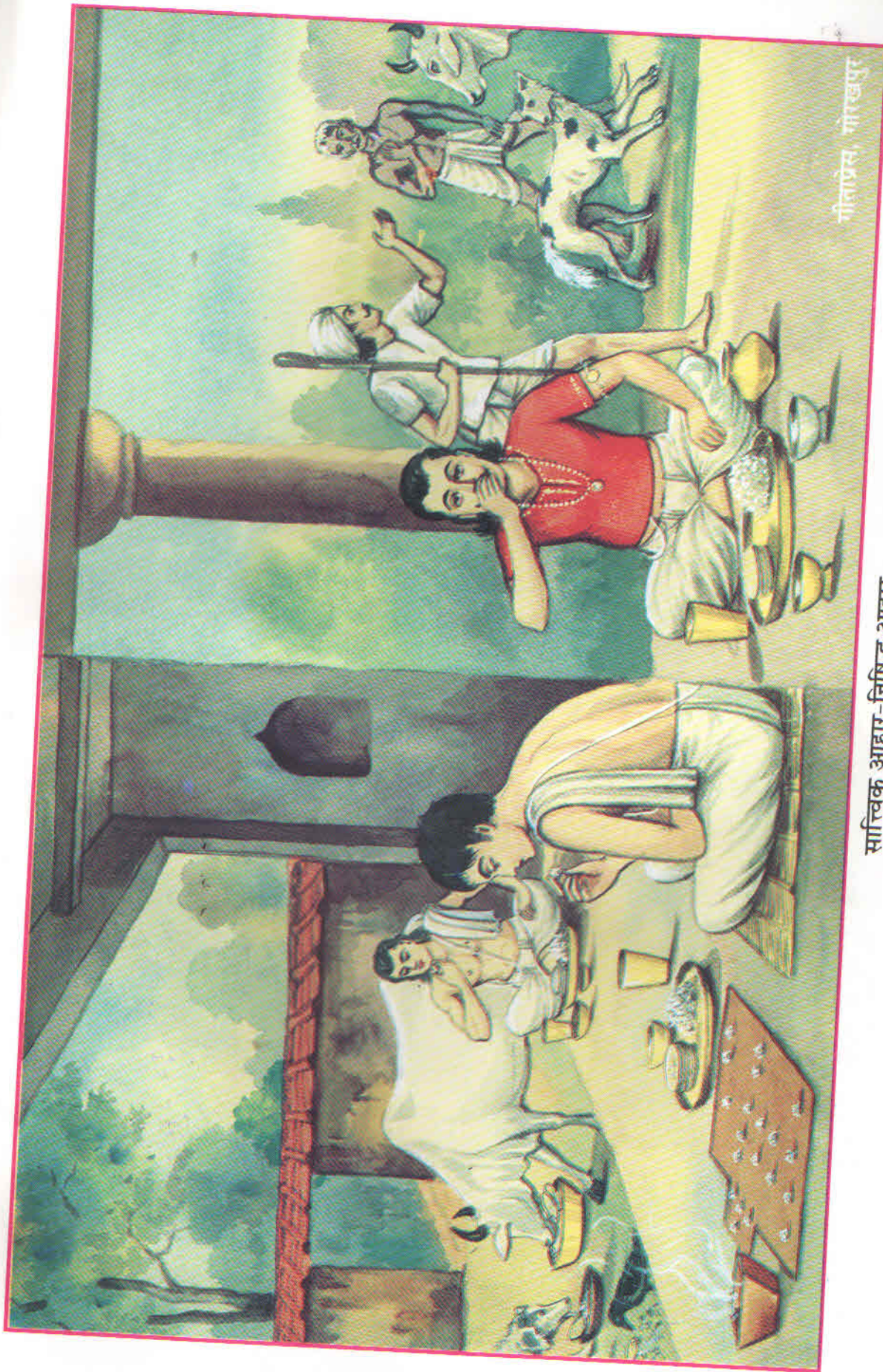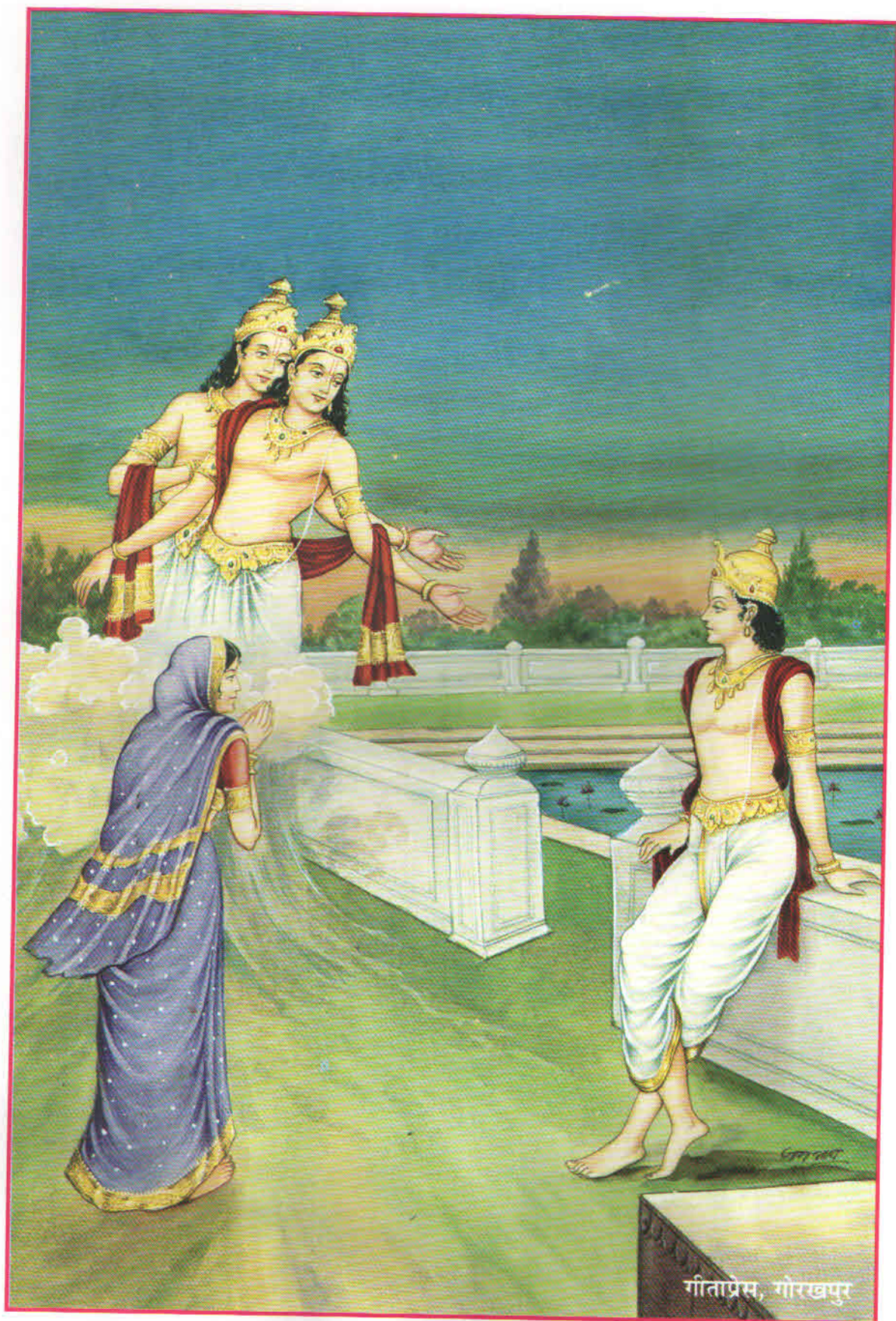
सात्त्विक आहार-निषिद्ध आहार

देववैद्य अश्विनीकुमारोंद्वारा महर्षि च्यवनको युवावस्थाकी प्राप्ति
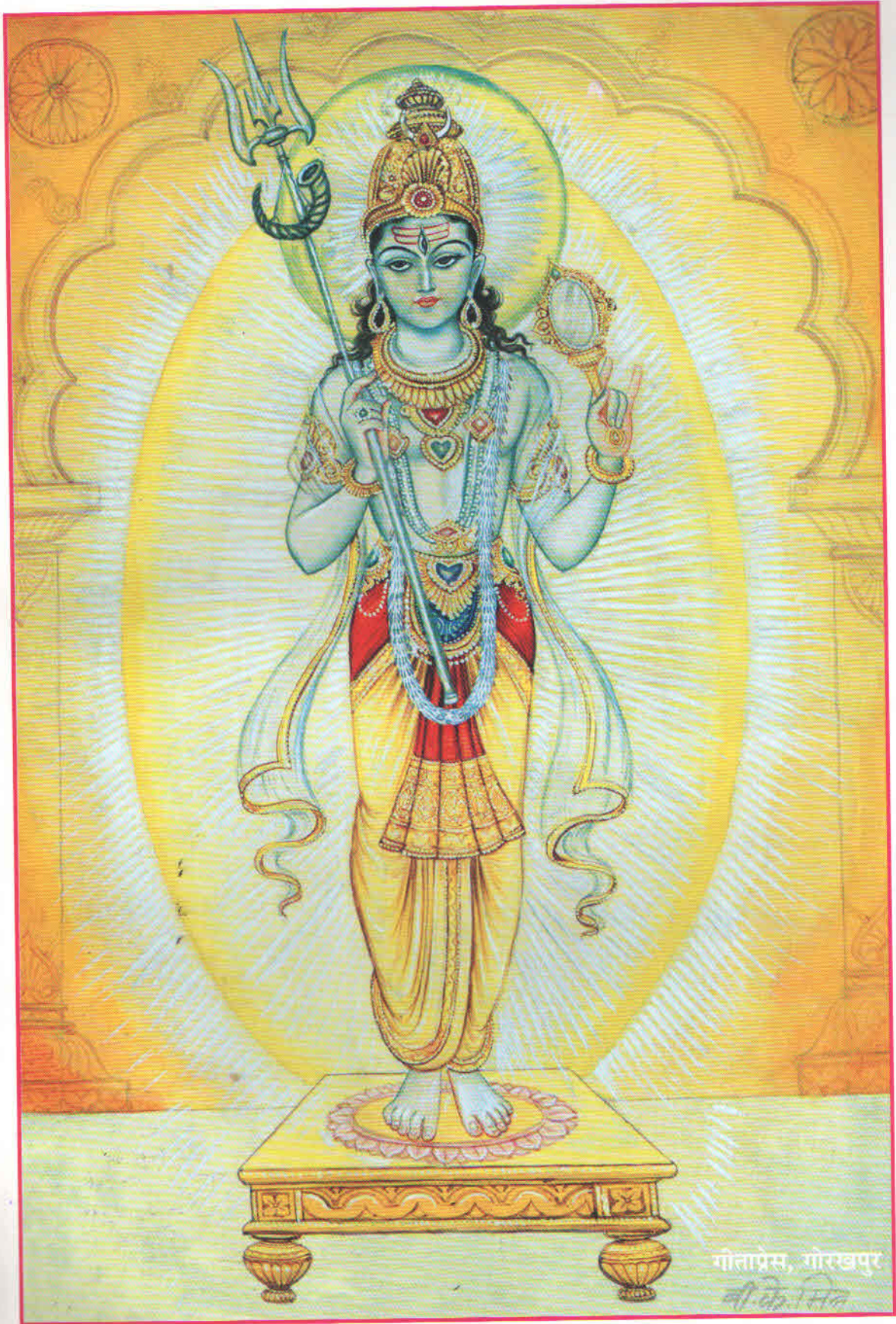
आयुर्वेदमूर्ति भगवान् सदाशिव

सूर्योपासनासे आरोग्यकी प्राप्ति
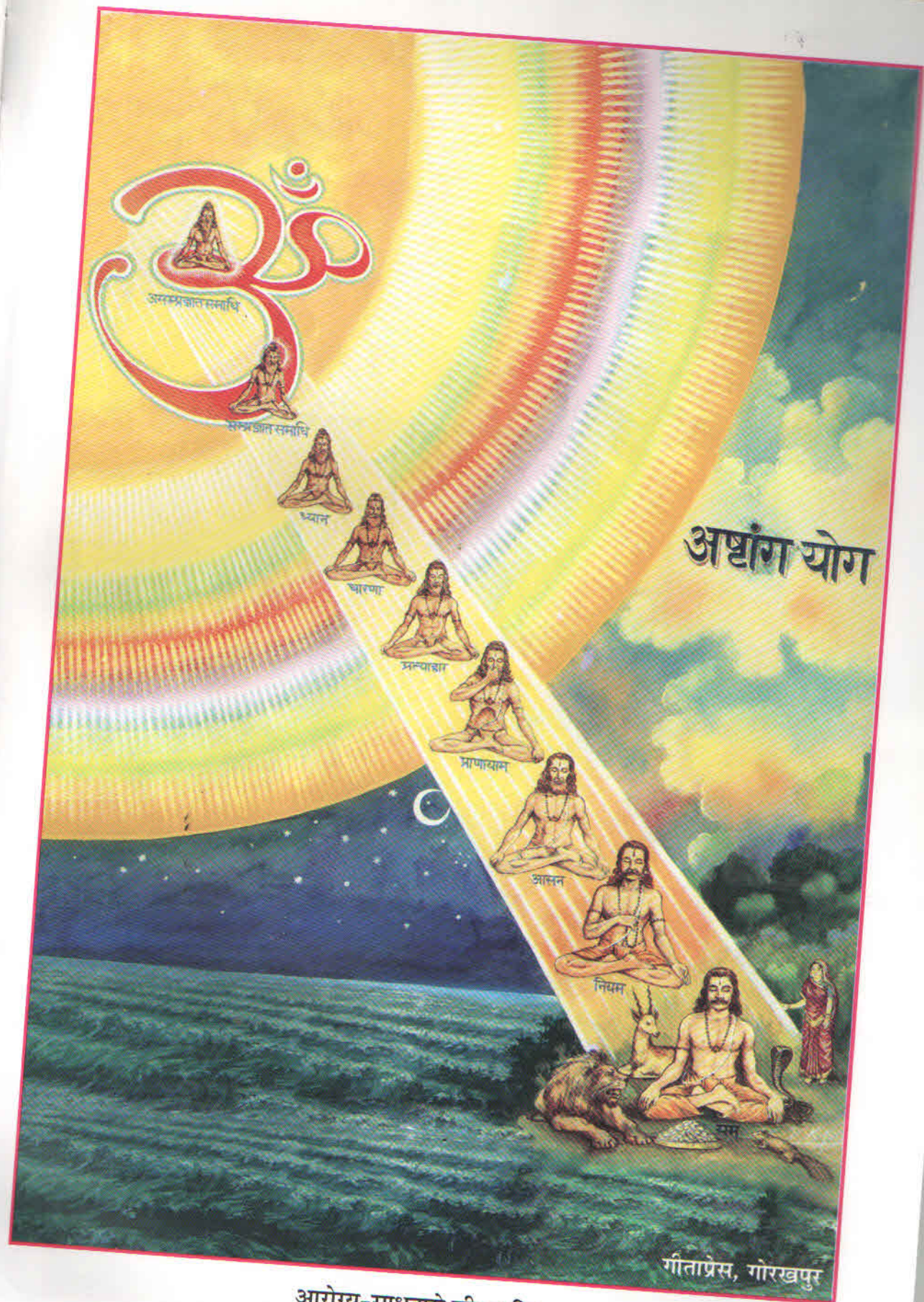
अष्टांग योग
असम्प्रज्ञात समाधि
सम्प्रज्ञात समाधि
ध्यान
धारणा
प्रत्याहार
प्राणायाम
आसन
नियम
यम
गीताप्रेस, गोरखपुर

आरोग्यदानसे अपार ऐश्वर्यकी प्राप्ति

इसके बाद पुत्रीको सोमके पास भेज दिया।

वनस्पतिने अपना अद्भुत चमत्कार दिखाया। सोम, जो सीतासावित्रीसे खिंचा-खिंचा रहता था, इसपर न्योछावर हो गया। इसे जीवनसंगिनी बनानेके लिये उसने आकाश-पाताल एक कर दिया।

ब्रह्माजी यही चाहते थे। 'स्थागर' वनस्पतिने उनकी और उनकी पुत्रीकी सारी चिन्ता मिटा दी।

(तैत्तिरीय आरण्यक)

अग्निका अजीर्ण

यह तो पितामह ब्रह्माजीके द्वारा वनस्पतिके प्रयोगकी बात हुई, पितामह कभी-कभी किसी दवाका प्रयोग न कर रोगके नाशका उपाय भी बता दिया करते थे।

एक बार अग्निदेवको अजीर्ण-रोग हो गया, किसीका हविष्य ग्रहण करनेकी उनकी इच्छा ही नहीं होती थी। शरीरमें विवर्णता आ गयी, कान्ति फीकी पड़ गयी। पहलेकी तरह वे प्रकाशित भी नहीं हो रहे थे। धीरे-धीरे उनके मनपर ग्लानिने अधिकार जमा लिया। अग्निदेव समझ गये कि हमें रोग लग गया है, इसकी चिकित्सा होनी चाहिये। चिकित्साके लिये वे ब्रह्माजीके पास पहुँचे। अग्निदेवने पितामह ब्रह्मासे अपनी अरुचि-रोग होनेकी बात बतायी। पितामह ब्रह्माने सबसे पहले निदान करते हुए बताया—'महाभाग! तुमने बारह वर्षोंतक वसुधाराकी आहुतिके रूपमें प्राप्त हुए घृतका निरन्तर उपयोग किया है, इसीसे तुम्हें यह अरुचि-रोग हो गया है। तुम चिन्ता न करो, स्वस्थ हो जाओगे। मैं तुम्हारी अरुचि नष्ट कर दूँगा—**'अरुचिं नाशयिष्येऽहम्'** (महा० आदि० २२२।७४)। तुम खाण्डववनको जलाओ, वहाँ कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं, जो तुम्हारे लिये ओषधि बन जायँगी और तुम स्वस्थ हो जाओगे।'

पितामह ब्रह्माका बताया हुआ औषध पूर्णतया सफल रहा और अग्निदेव पूर्ण स्वस्थ हो गये।

आयुर्वेद सभी प्राणियोंके लिये

ब्रह्माजीने जिन प्राणियोंकी सृष्टि की, उन्हें चार श्रेणियोंमें बाँटा गया है—(१) उद्भिज्ज, (२) स्वेदज, (३) अण्डज और (४) जरायुज। इन चार श्रेणियोंके प्राणियोंके उपयोगमें आनेवाले औषधोंका ब्रह्माजीने अपने आयुर्वेद-ग्रन्थमें वर्णन किया। वनस्पतियोंके लिये वृक्षायुर्वेद, जन्तुओंके लिये तिर्यगायुर्वेद, पशुओंके लिये गवायुर्वेद, अश्वायुर्वेद, हस्त्यायुर्वेद आदि तथा मनुष्यों और देवता आदिके लिये आयुर्वेद बनाया।

इस तरह प्राणियोंके खाने-पीने और स्वस्थ रहनेके लिये उनकी उत्पत्तिके पहले ही लोकपितामह ब्रह्माने व्यवस्था कर दी थी।

तीनों देव वैद्य

एक ही तत्त्व उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन रूपोंमें आया है। इस दृष्टिसे ब्रह्माको जब आयुर्वेदका आविर्भावक माना जाता है, तो रुद्र और विष्णुको भी आयुर्वेदका आविर्भावक मानना ही पड़ता है। सृष्टिके आदिमें एक ऐसी घटना घटी, जिससे इस सिद्धान्तका पूरा समर्थन होता है।

इस घटनाका श्रीमद्भागवत (४।१)-में उल्लेख है। ब्रह्माजीने अपने मानसपुत्र अत्रिको सृष्टि बढ़ानेके लिये आज्ञा दी। श्रेष्ठ महर्षि अत्रि अच्छी संतति हो, इस उद्देश्यसे अपनी पत्नीके साथ तप करनेके लिये ऋक्ष नामक पर्वतपर गये। वहाँ सौ वर्षोंतक केवल वायु पीकर एक ही पैरपर खड़े होकर भगवान्‌की उपासना करने लगे। वे मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना कर रहे थे कि 'जो सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर—जगदीश्वर हैं, मैं उनकी शरणमें हूँ, वे अपने समान ही मुझे पुत्र प्रदान करें।'

तपस्या जब सीमापर पहुँच गयी, तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देव अत्रिके आश्रमपर पधारे। अत्रिने पृथ्वीपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया, फिर अर्घ्य-पुष्पादिसे उनकी पूजा की। इस पूजासे वे तीनों देव बहुत प्रसन्न हुए, उनकी आँखोंसे कृपाकी वर्षा होने लगी। वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे, उनके तेजसे महर्षि अत्रिकी आँखें मुँद गयीं और हृदयमें हर्षका सागर लहरा गया। उन्होंने तीनों देवताओंकी स्तुति की। अन्तमें पूछा—'मैं जिन जगदीश्वरको बुला रहा था, आप तीनोंमेंसे वे कौन हैं? क्योंकि मैंने एक ही जगदीश्वरका चिन्तन किया था, फिर आप तीनोंने यहाँ पधारनेकी कृपा कैसे की? इस रहस्यको मैं जानना चाहता हूँ।'

इस प्रश्नको सुनकर तीनों देव हँस पड़े और

बोले—'मुनिराज! तुम सत्यसंकल्प हो, अतः तुम्हारे संकल्पके विपरीत कैसे हो सकता है? तुम जिन जगदीश्वरका ध्यान कर रहे थे, उन्हीं जगदीश्वरकी हम तीन विभूतियाँ हैं। हम तीनों ही जगदीश्वर हैं।

इस घटनासे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशमें कोई अन्तर नहीं है। इस तरह ये तीनों देवता चिकित्साशास्त्रके प्रवर्तक माने जाते हैं। फिर भी वेद और पुराणने भगवान् शंकरको वैद्योंका वैद्य कहा है।

(ला०बि०मि०)

चिकित्सकोंके चिकित्सक भगवान् शिव

[प्रथमो दैव्यो भिषक्]

भगवान् रुद्रने ओषधियोंका निर्माण करके जगत्का इतना कल्याण किया है कि वेदने भी भगवान् शङ्करके सम्पूर्ण शरीरको ही भेषज मान लिया है। कहा है कि—

या ते रुद्र शिवा तनू शिवा विश्वस्य भेषजी।
शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥

(तै०सं०रु० २)

सचमुच आयुर्वेद भगवान् शिवके रूपमें ही अभिव्यक्त हुआ था, इसलिये भगवान् शङ्करके पास मृतसंजीवनी नामकी ऐसी विद्या थी, जो और किसीके पास नहीं थी। इस विद्यासे मरे हुए प्राणियोंको जीवित किया जा सकता है। इस विद्याको भगवान् शङ्करने शुक्राचार्यको दिया था।

सर्वविदित है कि अंगिरा और भृगु—ये दोनों प्रख्यात ऋषि हैं। इनके विषयमें प्रसिद्धि है कि इन दोनोंके एक-एक पुत्र हुए। अंगिराके पुत्रका नाम था जीव और भृगुके पुत्रका नाम था कवि। जब दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया, तब दोनों ऋषियोंने आगेका कर्तव्य निश्चित किया। उसमें यह निर्णय हुआ कि हम दोनोंमेंसे कोई एक इन दोनोंको पढ़ायेगा और दूसरा अन्य कार्य करेगा। अंगिराने कहा—'कविको भी मैं अपने पुत्रके साथ पढ़ाऊँगा।'

भृगुने यह सुनकर कवि (शुक्र)-को अंगिराकी सेवाके लिये सौंप दिया। किंतु अंगिरा गुरुके पथसे डिग गये। वे अपने पुत्र जीव (बृहस्पति)-को शुक्रसे अधिक विद्वान् बनानेके लिये एकान्तमें पढ़ाने लगे। शुक्रको यह भेद-भाव अच्छा न लगा। शुक्रने गुरुके चरणोंको पकड़कर क्षमा-याचना करते हुए कहा—'गुरुजी! आप अपने कर्तव्यसे डिग गये हैं। किसी भी गुरुको पुत्र और शिष्यमें भेदभाव नहीं रखना चाहिये, किंतु उस भेदभावको आप कर रहे हैं, इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप मुझे अपनी सेवासे मुक्त कर दें। मैं किसी और गुरुके यहाँ जाऊँगा।'

शुक्र मेधावी बालक थे। उन्होंने सोचा कि विद्या-ग्रहण करनेके पहले पिताजीके पास चलना ठीक नहीं है। पिताजीको प्रसन्नता तब होगी, जब योग्य बनकर ही उनके पास पहुँचूँ। वे अच्छी-से-अच्छी विद्या प्राप्त करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि हे भगवन्! ऐसे किसी महापुरुषका दर्शन कराइये, जो मुझे सत्-पथका निर्देश कर सके। संयोगसे महर्षि गौतम मिल गये। शुक्रने उनसे पूछा—'श्रीमन्! आप मुझे ऐसा गुरु बताइये, जिसके पास ऐसी विद्या हो जो और किसीके पास न हो। मैं उसी विद्याको पढ़ना चाहता हूँ।' महर्षि गौतमने शुक्रको भगवान् शङ्करके पास भेजा। गौतमी गङ्गा (गोदावरी)-में स्नान करके शुक्रने भगवान् शङ्करकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तन्मय होकर प्रार्थना की। भगवान् शङ्कर उनके प्रेमसे आर्द्र हो गये और वर माँगनेको कहा। शुक्रने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! जो विद्या ब्रह्मा आदि देवताओंको भी न प्राप्त हो, उस विद्याको आप हमें दें।'*

शुक्रकी उत्कट तपस्यासे भगवान् आशुतोष बहुत

* बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचंद्रधर प्रभो। नाहं जानामि ते किंचित्स्तुतिकर्तुं नमोऽस्तु ते॥
परित्यक्तस्य गुरुणा न ममास्ति सुहृत्सखा। त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाथ नमोऽस्तु ते॥

ही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'वत्स! मैं तुम्हें ऐसी विद्या दे रहा हूँ, जिसका ज्ञान मेरे अतिरिक्त और किसीको नहीं है। मैंने इस निर्मल विद्याका निर्माण महान् तपस्याके बलपर किया है। इसका नाम 'मृतसंजीवनी' है—

मृतसंजीवनी नाम विद्या या मम निर्मला।
तपोबलेन महता मयैव परिनिर्मिता॥

(शि०रु०सं० युद्ध० ५०।४१)

इसे मैंने ब्रह्मा तथा विष्णुसे भी छिपा रखा है—'**हरेर्हिरण्यगर्भाच्च प्रायशोऽहं जुगोप यम्**'

(शि०रु०सं० युद्ध० ५०।४०)

इस अवसरपर एक प्रश्नका उठना स्वाभाविक है कि सम्पूर्ण वेदके आविर्भावक जब ब्रह्मा हैं तो उनको इस मृतसंजीवनी-विद्याका ज्ञान कैसे नहीं रहा? बात यह है कि वेद अनन्त हैं—'**अनन्ता वै वेदाः**' (तैत्ति० ब्रा०)। जिस ब्रह्माको तपस्याके बलसे वेदकी जितनी शाखाएँ सुन पड़ती हैं, उतनी ही शाखाओंके वे जानकार हो पाते हैं। जैसे वर्तमान ब्रह्माका दूसरा परार्ध चल रहा है, इससे पचास वर्ष पहले जब इन्होंने कमलपर तपस्या की थी तो इनको उन अनन्त वेदोंमेंसे केवल ११२१ शाखाएँ सुनायी पड़ी थीं (महाभाष्य)। इसके पहले किसी ब्रह्माको ११८१ शाखाएँ सुनायी पड़ी थीं। भगवान् शङ्करने स्वयं कहा है कि मैंने मृतसंजीवनी-विद्याका निर्माण बहुत बड़ी कठिन तपस्याके बलपर किया है, इससे अनुमान होता है कि भगवान् शङ्करकी तपस्या ब्रह्माजीकी तपस्यासे बढ़कर थी। इसलिये वेदका मृतसंजीवनीवाला अंश भी उन्हें सुनायी पड़ा।

इस तरह ब्रह्मा भिषक्तर और भगवान् शङ्कर भिषक्तम हैं।

भगवान् शङ्कर दयालुओंमें दयालु और चिकित्सकोंमें सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं—'**भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि**' (ऋक्० २।३३।४)। उन्होंने ऐसी विद्या निर्मित की, जिससे हजारों मरे हुए लोग एक क्षणमें जी जायँ (ब्रह्मपुराण अ० ९५)।

इस तरह भगवान् शिव चिकित्सकोंमें सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं। इसलिये इनके भेषज अतिशय सुखकर होते हैं। यजमान वेद-मन्त्रोंके द्वारा उन भिषजोंकी याचना करते हैं—

'**त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।**'

(ऋक्० २।३३।२)

'हे रुद्र! आप मुझे जो औषधि देंगे, उससे हम सैकड़ों वर्ष सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे। यजमान अपने लिये ही नहीं, अपितु अपने पुत्रोंके लिये भी उन औषधियोंकी माँग करते हैं—'**उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि।**' (ऋक्० २।३३।४) वाजसनेयि-संहिताने भी '**प्रथमो दैव्यो भिषक्**' कहकर इन्हें देवचिकित्सकोंमें सबसे बड़ा चिकित्सक माना है।

बकरेका सिर जोड़ना

ब्रह्माके दाहिने चरणके अँगूठेसे दक्षकी उत्पत्ति और बायें चरणके अँगूठेसे उनकी पत्नीकी उत्पत्ति हुई थी। इस धर्मभार्यासे दक्षकी अनेक संततियाँ हुईं, उन्हीं संततियोंमें सती भी थीं। सतीका विवाह भगवान् शङ्करसे हुआ था। इस तरह भगवान् शङ्कर दक्षके जामाता हैं। जब प्रजापतियोंमें दक्ष सबसे ऊँचे पदपर चुन लिये गये, तब उनमें गर्वका अङ्कुर फूट आया और वे शङ्करको भगवान् न समझकर अपनेसे छोटे केवल जामाताके रूपमें देखने लगे। धीरे-धीरे उनके संहारकृत्यसे ये अप्रसन्न भी रहने लगे। फल यह हुआ कि जब उन्होंने एक महान् यज्ञ किया तो उसमें भगवान् शङ्करको निमन्त्रित नहीं किया। सती भगवान् शङ्करके ब्रह्मरूपको अच्छी तरह जानती थीं। उनसे अपने पिताके द्वारा अपने पतिका अपमान सहा नहीं गया और अपने शरीरको योगाग्निमें यह कहकर उन्होंने भस्म कर दिया कि जो पिता भगवान्‌का अपमान करता है, उसीका दिया हुआ मेरा यह शरीर है, अतः इस शरीरका रहना अच्छा नहीं है।

भगवान् शङ्कर भी सतीका अपमान सह नहीं सके और उन्होंने वीरभद्रको भेजकर दक्षयज्ञका विध्वंस करा दिया। वीरभद्रने बहुतसे देवताओंका अङ्ग-भङ्ग कर दिया और दक्षके सिरको काटकर दक्षिणाग्निमें डाल दिया। इस तरह वे यज्ञका विध्वंस कर लौट गये। यज्ञ अधूरा रह गया।

गुरुर्गुरुमतां देव महतां च महानसि। अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते॥
विद्यार्थं हि सुरेशान नाहं वेद्मि भवद्गतिम्। मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षिन्नमोऽस्तु ते॥ (ब्रह्मपुराण ९५।१८—२१)

विश्वके कल्याण-हेतु देवताओंने यज्ञकी पूर्तिको आवश्यक समझा और ब्रह्माको आगे करके भगवान् शङ्करके पास पहुँचे। उन लोगोंने भगवान् शङ्करसे प्रार्थना की—'भगवन्! यज्ञकी पूर्ति तो होनी ही चाहिये और वह आपके आशीर्वादसे ही सम्भव है।' भगवान् शङ्करने कहा कि दक्ष-जैसे नासमझोंके अपराधकी न तो मैं चर्चा करता हूँ और न ही स्मरण। मैंने तो केवल सावधान करनेके लिये ही दक्षको दण्ड दिया था। इसके बाद भगवान् शङ्करने देवताओंकी प्रार्थनापर कृपा करके बकरेके सिरको दक्षके शरीरमें जोड़ दिया और दक्ष फिर जीवित हो गये। यदि दक्षका पहला सिर जल न गया होता तो उसीके सिरको वे धड़में जोड़ देते, इसलिये बकरेके सिरका प्रयोग हुआ।

इस घटनासे सूचित होता है कि भगवान् शङ्करने केवल अपनी आध्यात्मिक शक्तिका ही नहीं, अपितु कुछ ओषधियोंका उपयोग भी अवश्य किया होगा। आध्यात्मिक शक्तिसे तो वे दक्षका पहला सिर भी ज्यों-का-त्यों बना सकते थे, जो शल्यक्रियासे सम्बन्ध रखता है।

परम्परा—भगवान् शङ्करने शुक्राचार्यको पढ़ाकर इस मृतसंजीवनी-विद्याकी परम्पराको चालू रखा।

आयुर्वेदस्वरूप भगवान् श्रीविष्णु

प्रत्येक ईश्वरवादी ईश्वरको सत् मानता है अर्थात् ईश्वरका अस्तित्व उसके लिये सदा बना रहता है। प्राणियोंकी तरह ईश्वर मरा नहीं करता। इसी तरह ईश्वरको वह 'प्रेमानन्द'-रूप मानता है, अर्थात् प्राणियोंकी तरह ईश्वरमें सुख-दुःख नहीं होता। इसी तरह ईश्वरको चित्स्वरूप भी माना जाता है। चित्का अर्थ होता है ज्ञान अर्थात् ईश्वर पूर्ण ज्ञानमय होता है। ईश्वर नित्य ज्ञानरूप होता है। इसमें कभी अज्ञता नहीं होती। इसी ज्ञानको वेद कहा जाता है। ज्ञानमें सदा शब्दका अनुवेध रहता है। अतः वेदके शब्द, अर्थ और सम्बन्ध—ये तीनों ही नित्य होते हैं। शंकराचार्यजीने लिखा है—'**नियतरचनावतो विद्यमानस्यैव वेद**' (बृहदा० उप० शा०भा० २।४।१०)। इस तरह वेद ईश्वरके स्वरूपभूत हो गया। अतः भगवान् विष्णुको हम वेद-स्वरूप कहते हैं। यहाँ विष्णुको आयुर्वेद-स्वरूप कहा गया है, वह इसलिये कि आयुर्वेद वेदका ही उपाङ्ग है। इसीसे आयुर्वेदकी महत्ता प्रकट हो जाती है, अर्थात् आयुर्वेद भगवान् श्रीविष्णुका रूप ही है।

ऊपर भगवान् विष्णुको हम सत्, चित् और आनन्द कह आये हैं, अर्थात् सत्-चित्-आनन्द ही भगवान् होता है। आनन्दका ही उल्लसित रूप होता है प्रेम। इसलिये वेदने भगवान् विष्णुको प्रेमानन्द-रूप कहा है। प्रेमका स्वभाव होता है कि वह अपने प्रेमास्पदके साथ कोई-न-कोई खेल खेलता ही रहता है। अतः भगवान् यह खेल हम प्रेमास्पदोंके साथ खेलते ही रहते हैं। जाग्रत्-अवस्था और स्वप्नावस्थामें हम भगवान्के साथ प्रेमका खेल खेलते हुए थक जाते हैं, तब वह महान् चिकित्सक हमें संज्ञा-हरणका इंजेक्शन दे देता है और सुषुप्ति-अवस्थामें पहुँचा देता है। इस अवस्थामें न तो हमें प्राकृतिक सुखकी प्रतीति होती है और न प्राकृतिक दुःखका थपेड़ा ही सहना पड़ता है। भगवान् अपने आनन्दरूपमें हमको लीन कर देते हैं। इनके आनन्दांशको पाकर हम चिर प्रफुल्लित हो उठते हैं और अच्छी तरह संज्ञाके लौट आनेपर अनुभव करते हैं कि मैं सुखपूर्वक सोया—'**सुखमहमस्वाप्सम्।**'

लीलाओंमें प्रेमलीला सबसे उत्तम होती है। सच पूछिये तो हमारे साथ प्रेमकी लीला करनेके लिये ही भगवान् लीलास्थली बनाते हैं। हमें नाम और रूप देकर हमारे साथ प्रेमकी ही लीला करते हैं। किंतु हममेंसे कुछ लोग भटककर भगवान्के साथ प्रेम न करके उनकी बहिरङ्गासक्तिके फेरमें पड़कर भगवान्को ठुकराकर किसी औरसे प्रेम करने लगते हैं। जैसे शिशुपाल और कंस भी हमारी तरह भगवान्के अंश थे। परंतु वे भगवान्से प्रेम न कर प्रकृतिसे प्रेम और भगवान्से ईर्ष्या-द्वेष करने लगे। यह भगवान्के हम प्रेमास्पदोंकी गलती है; किंतु भगवान् इतने दयालु और प्रेमातुर हैं कि वे कंस और शिशुपालके भी स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म

शरीरके साथ भी अपनी ओरसे प्रेमलीला करते ही रहते हैं और फिर ऐसे प्रतिकूल लोगोंको भी संज्ञा-हरणकी सुई लगाकर उन्हें दुःख आदिके थपेड़ोंसे हुई थकानको मिटानेके लिये सुषुप्ति-अवस्थामें—अपनेमें लीन कर लेते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक दिन चिकित्सककी तरह प्रत्येक प्राणीको संज्ञा-हरणकी सुई उसके अङ्गमें चुभोते नहीं हैं; क्योंकि वे चिकित्सकोंके भी चिकित्सक हैं—आयुर्वेदके स्वरूप हैं, इसलिये संज्ञा-हरणकी स्वयंचालित (Automatic) व्यवस्था करते हैं।

हम जीवोंमें सब लोग आण्डाल, मीरा और चैतन्य महाप्रभुकी तरह न तो भगवान्से मधुर लीला कर पाते हैं और न दशरथ-कौसल्या एवं यशोदाकी तरह वात्सल्य-प्रेम ही। अपितु मायाके चक्करमें पड़कर उनके विरुद्ध ही लीला करने लग जाते हैं। इस तरह जब हम प्रकृतिके थपेड़ोंसे अच्छी तरह प्रताड़ित हो जाते हैं और मारे थकानके निढाल हो जाते हैं, तब वे आयुर्वेद-स्वरूप भगवान् संज्ञा-हरणकी वह प्रभावक सुई लगा देते हैं, जिससे हम अरबों वर्षोंतक उनमें लीन होकर आनन्दभोगी बने रहते हैं। इसी संज्ञा-हरणकी सुई लगनेसे उत्पन्न होनेवाली अवस्थाको महाप्रलय कहा जाता है। अर्थात् इस अवस्थामें हम, बहुत दिनोंतक भगवान्में अच्छी तरहसे लीन रहते हैं और लीन रहकर उनके आनन्दांशसे भरपूर हो जाते हैं। किंतु यह महा संज्ञा-हरणकी क्रिया उनकी स्वयंचालित (Automatic) ही होती है। यही तो भगवान्के चिकित्सक-रूपकी विशेषता है।

जब भगवान् देखते हैं कि हमारे प्रेमास्पदोंमें प्रकृतिके थपेड़ोंका असर समाप्त हो गया है और मेरा आनन्दांश इनमें भर गया है तो उनका मन फिर प्रेमका खेल खेलनेके लिये मचल उठता है; क्योंकि प्रेमका स्वभाव ही होता है कि वह अपने प्रेमास्पदके साथ कोई-न-कोई खेल खेला करे। अकेले उनका मन लग नहीं रहा था, इसलिये '**नारमतैकः**' (मैत्रा०उप० २।६)। प्रेमका स्वभाव ही होता है कि वह प्रेमास्पदोंको अपनी आँखोंसे देखे, उसका स्पर्श पाये। इसलिये भगवान् अपने प्रेमास्पदोंको चाहने लगे—'**स आत्मानमभिध्यायत्**' (मैत्रा०उप० २।६)।

इस खेलके लिये प्रेमास्पदोंको लिङ्गशरीर और कारणशरीर भी देना था और लीलाके लिये लीलास्थली भी बनानी थी।

भगवान्ने पाद-विभूतिमें लीलाकी आयोजिका प्रकृतिपर एक दृष्टि डाली। दृष्टि पड़ते ही प्रकृतिमें गति आ गयी और वह महत्-तत्त्वसे प्रारम्भकर पञ्चमहाभूततक तेईस तत्त्वोंके रूपमें परिणत होती चली गयी। इस तरह चौबीस तत्त्व बन तो गये, किंतु ये चौबीस तत्त्व लीलास्थली (ब्रह्माण्ड)-को न बना सके; क्योंकि ये सब-के-सब जड़ हैं और जड़ गणित नहीं कर सकता। तब महान् गणितज्ञने पञ्चीकरणकी पद्धतिसे सब तत्त्वोंको परस्पर मिला दिया और एक अण्डके रूपमें गोल लीलास्थली बन गयी। एक हजार दिव्य वर्षतक यह लीलास्थली (ब्रह्माण्ड) गतिहीन ही पड़ी रही, तब भगवान्ने इसमें प्रवेशकर इसे सजीव कर दिया। फिर स्वयं इसे फोड़कर विराट् पुरुषके रूपमें ब्रह्माण्डके बाहर आये। पुरुषसूक्तमें इन्हीं पुरुषका वर्णन है। इनके अनन्त चरण, मुख, नेत्र तथा नाभि आदि हैं (श्रीमद्भा० २।६।४१)। इस स्फोटके कारण वे इन्हीं अनन्त नाभियोंसे अनन्त क्षुद्र ब्रह्माण्ड (लीलास्थली) बने। यही क्षुद्र ब्रह्माण्ड उनकी नाभियोंसे निकले कमल हैं (श्रीमद्भा० २।८।८)।

उस कमलरूपी क्षुद्र ब्रह्माण्डकी कर्णिकापर पितामह ब्रह्माजी अपनेको अकेले बैठे हुए पाते हैं। इन ब्रह्माको भगवान् इसलिये उत्पन्न करते हैं कि ये देवता, असुर, उद्भिज्ज, अण्डज और पिण्डज प्राणियोंका निर्माण करके ब्रह्माण्डको सजा सकें। उत्पन्न होनेके साथ ही पितामह ब्रह्मामें सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। तब भगवान् उनसे तपस्या कराते हैं फिर दर्शन देकर समझाते हैं कि इन सबका निर्माण वेदके शब्दोंसे होगा और उस वेदको तुम तपस्या करके ही प्राप्त कर सकते हो। इसलिये फिर तपस्या करो। पितामह ब्रह्माने घोर तप प्रारम्भ कर दिया। जब तपस्या पूर्णतापर पहुँचने लगी, तब उनको पहले पुराण याद आ गये। पुराण नित्य-वेदके नित्य-अंश हैं। अतः आयुर्वेद भी याद आ गया। इस पुराणको पितामह ब्रह्माने एक लाख श्लोकोंमें ग्रथित किया, उसी तरह आयुर्वेदको भी एक लाख श्लोकोंमें ग्रथित कर लिया।

आयुर्वेद और पुराण—ये दोनों शाश्वत वेदके अर्थ हैं, अतः दोनों ही शाश्वत हैं। इसी अभिप्रायसे चरकने कहा है—'**ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः**' इस तरह ब्रह्माद्वारा स्मरण (उच्चारण) करनेके बाद उनके शब्दोंमें ग्रथित ग्रन्थ जो पुराण और आयुर्वेद हैं—सब-के-सब ब्रह्माद्वारा श्रुत हैं, स्मृत नहीं। ब्रह्मासे ही हमें दोनों एक-एक लाख श्लोकवाले ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं और ब्रह्माके द्वारा ही हमें वेद प्राप्त हुआ है।

फिर भी दोनोंमें भेद इसलिये है कि स्मृत ग्रन्थके शब्द नित्य नहीं हैं; क्योंकि ब्रह्माद्वारा निर्मित नहीं हैं, अतः अपौरुषेय हैं और वेदमें ब्रह्माका किसी प्रकारका कृतित्व नहीं है, न वेदका उच्चारण उनका कृत है, न अर्थ-कृत है, न शब्द-कृत है। इस प्रकार वेद ब्रह्मरूप ठहरता है और वेदाङ्ग आयुर्वेद भी भगवान् श्रीविष्णुका स्वरूप ही है।

दौर्भाग्यसे पाश्चात्त्य विद्वानोंके मस्तिष्कमें वेदकी इस अपौरुषेयताका तथ्य उतर नहीं पाया। एक साधारण दृष्टान्तसे हम इस तथ्यको बुद्धिमें उतार सकते हैं। जैसे किसी श्रुतधर व्यक्तिने रेडियो सुना। उससे किसी गानेका प्रसारण हो रहा था। श्रुतधर व्यक्तिने उस गानेके शब्द और अर्थके साथ-साथ उसके उच्चारणको भी याद कर लिया और गा-गाकर सुनाने लगा। यहाँ विचारणीय यह है कि श्रुतधर जिस ध्वनिको सुना रहा है, वह उसके द्वारा निर्मित है क्या? इसी प्रकार उस गानेके शब्दोंको जो सुना रहा है, वे शब्द उसके द्वारा निर्मित हैं क्या? तथा उस गानेके जो अर्थ हैं, वे भी उसके द्वारा निर्मित हैं क्या? इस प्रश्नके उत्तरमें सभी लोग एकमतसे कहेंगे कि उस सुने हुए गानेमें उस श्रुतधर व्यक्तिका कोई कृतित्व नहीं है; क्योंकि गानेके शब्द-अर्थ आदि सभी वस्तुओंको रेडियोसे सुनकर वह सुना रहा है, इसमें उसका कोई कृतित्व नहीं है। इसी तरह इस श्रुतधरकी भाँति ब्रह्माने अपने मुखसे उच्चरित शब्दोंको सुना। अर्थ और उच्चारण भी सुनकर ही उन्होंने विश्वको वेद प्रदान किया। इसलिये श्रुतधर व्यक्तिकी तरह ब्रह्माका भी वेदके शब्द-अर्थ तथा उच्चारणमें कोई कृतित्व नहीं है। ईश्वर नित्य है और उसका स्वरूपभूत वेद भी नित्य है, वह सदा उच्चरित हो ही रहा है। भले ही हमारे कान उसे न सुन सकते हों। ब्रह्माने बहुत तपस्या करनेके बाद उसे सुना। बहुतसे ऋषियोंने तपस्या करके ब्रह्माकी तरह वेदको सुना है। इस तरह वेद शाश्वत है और ईश्वरका स्वरूप है। वेद आयुर्वेद है, इसलिये आयुर्वेद भी शाश्वत है। इसीलिये आचार्य चरकने ईश्वरकी तरह अपौरुषेय होनेके कारण आयुर्वेदको शाश्वत कहा है—

सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च।

(चरक० सूत्र० ३०। २७)

पाश्चात्त्य विपश्चितोंने वेदोंमें श्रम किया है, किंतु वे वेदके अपौरुषेय-स्वरूपको समझ नहीं सके। इसीलिये जब आयुर्वेदको शाश्वत कहा जाता है तो शाश्वत शब्द और नित्य शब्दमें अन्तर समझने लगते हैं और समझते हैं कि मनुष्यमें जब बुद्धिका विकास हुआ तब आयुर्वेद बना। सच पूछा जाय तो शास्त्रने शाश्वत और नित्यको पर्यायवाची माना है।*

भगवान् विष्णु इस प्रकार वेद या आयुर्वेदस्वरूप ठहरते हैं।

भगवान् विष्णुद्वारा आयुर्वेदका प्रयोग

प्रारम्भिक कुछ मन्वन्तरोंके बाद चाक्षुष मन्वन्तर आनेपर भगवान् विष्णुको ऐसा औषधरत्न प्रकट करना पड़ा जो न ब्रह्माके पास था, न उनके शिष्य दक्ष प्रजापतिके पास, न उनके शिष्य इन्द्रके पास और न चमत्कारी देववैद्य अश्विनीकुमारोंके पास ही था।

घटना इस प्रकारकी है—छठे मनुका नाम था चाक्षुष। उन दिनों दुर्वासाके शापसे देवराज इन्द्रके साथ-साथ सारे देवता भी श्रीहीन हो गये थे। दैत्योंने देवताओंको भगाकर दर-दरका भिखारी बना दिया था। निराश होनेपर सब देवता मिलकर अपने पितामह ब्रह्माके पास पहुँचे। ब्रह्माजीने जब देखा कि इन्द्र, वायु आदि सभी देवता अत्यन्त श्रीहीन और शक्तिहीन हो गये हैं तथा ये विकट परिस्थितिमें पड़ गये हैं, तब वे

* (क) शश्वद्भवः शाश्वतः=नित्यो धर्मः (गीता शांकरभाष्य ११। १८)
(ख) शाश्वतम्=नित्यम् (गीता शां०भा०)

भी चिन्तित हो गये। उन्होंने भगवान्का स्मरण किया। इस स्मरणसे उन्हें बल मिला। शङ्कर आदि सभी देवताओंको साथ लेकर वे भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें गये। किंतु उन्हें वहाँ कुछ दिखायी न पड़ा। दर्शनके लिये ब्रह्माजीने लम्बी स्तुति की। इससे भगवान् उनके बीच प्रकट हो गये। किंतु भगवान्की इस छविको केवल भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी ही देख सके। ब्रह्मा और देवताओंने अपनी दुःखद परिस्थिति उनके सामने रख दी। भगवान्ने देवताओंको राय दी कि स्थिर लाभके लिये तुम लोग दैत्योंसे संधि कर लो ताकि समुद्र मथा जा सके। उस मन्थनसे हमें अमृतरूप औषध निकालना है। यह कार्य अकेले तुम लोगोंसे नहीं हो सकेगा, उस दिव्य रसके उपयोगसे तुम भी बल-वीर्यसे सम्पन्न हो जाओगे और मरकर भी फिर जी उठोगे। तब दैत्य स्वयं तुमपर आक्रमण करनेसे कतराने लगेंगे। इसलिये तुम लोग दैत्योंके साथ सम्पूर्ण औषधियाँ लाकर अमृतके लिये क्षीरसागरमें डालो। इस मन्थनसे औषधियोंका सारभूत अमृत आदि लोकोपकारक वस्तुएँ निकल सकेंगी। इस मन्थनमें मन्दराचलको मथानी बनाया जायगा और वासुकि नागको नेति। इन सब उपकरणोंको शीघ्र ही जुटाओ (विष्णुपु० १।९।७६—८०)। देवताओं और दानवोंने नाना प्रकारकी औषधियाँ लाकर क्षीरसागरमें डालीं और मन्थन प्रारम्भ हुआ।

उस अमृतरूप औषधतत्त्वको प्राप्त करना इतना कठिन था कि केवल इतने ही साधनोंसे वह उपलब्ध नहीं हो सका। इसलिये भगवान्ने स्वयं कूर्मरूप धारण करके मन्दराचलके आधारभूत और अदृश्यरूपसे एक अन्य विशाल रूप धारणकर उस पर्वतको ऊपरसे दबा रखा था। भगवान्ने देखा कि केवल देवताओं और असुरोंकी शक्तिसे अमृतका निकलना कठिन है तो स्वयं दैत्यका रूप बनाकर दैत्योंके दलमें और देवताका रूप बनाकर देवताओंके दलमें जाकर मन्थन-क्रियाको सम्पन्न कराया (विष्णुपु० १।९।८८—९१)।

औषधियोंके मन्थनसे जो रस तैयार होगा, उस अनुपातके संतुलित मिश्रणके लिये अपने अंशांशसे धन्वन्तरिके रूपमें अवतीर्ण होकर समुद्रमें अदृष्ट-रूपसे वे प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने औषधियोंमें रसका उचित अनुपातमें मिश्रणकर उसे अमृतका रूप प्रदान किया। उस सम्मिश्रणमें वे इतने दत्तचित्त हुए कि जब अमृतमय कलश लेकर बाहर प्रकट हुए तो उनके मुखसे भगवान् विष्णुके नामोंका जप और आरोग्यके साधक औषधोंके नामका भी उच्चारण हो रहा था। इतनी तन्मयतासे धन्वन्तरिने उस दिव्य औषधको निकाला।

किंतु दैत्य तो दैत्य ही होते हैं। उन्होंने अमृतके उस कलशको हथिया लिया। देवता विषादसे भर गये और फिर उन्होंने भगवान्की शरण ली। फिर भगवान्ने अपनी मायासे दैत्योंको मोहितकर देवताओंको अमृत पिला दिया और स्वयं वैकुण्ठधाम चले गये।

इस प्रकार देवताओंके सबल हो जानेपर सूर्य-ग्रह-नक्षत्रादि आकाशके गोलकोंने अपनी गतिमें नियमितता पा ली। संसार फिर सुखी-सम्पन्न होकर उल्लाससे भर गया।

औषधका प्रयोग फिर जनताके महान् पालक अश्विनीकुमारोंके हाथमें आ गया। बहुत काल बाद मनुष्यलोकमें जब रोगोंने अपने पाँव फैलाये और पृथ्वीके प्राणी फिर दीन-दुःखी होने लगे, तब भगवान् नारायण श्रीविष्णुने अंशांशरूपमें जो अपना अवतार धन्वन्तरिरूपमें लिया था, उस धन्वन्तरिरूपसे राजा धन्वके यहाँ पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए; क्योंकि राजा धन्वने इन्हीं अब्ज धन्वन्तरिको पुत्ररूपसे पानेके लिये तप किया था। गर्भावस्थामें ही इन्हें अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं। विष्णुके अंशांशरूपमें अवतीर्ण भगवान् धन्वन्तरिने आयुर्वेदको आठ अङ्गोंमें बाँट दिया। वे आठ अङ्ग इस प्रकार हैं—(१) कायचिकित्सा, (२) बालचिकित्सा, (३) ग्रहचिकित्सा, (४) ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, (५) शल्यचिकित्सा, (६) दंष्ट्रचिकित्सा, (७) जराचिकित्सा तथा (८) वृषचिकित्सा।

परम्पराकी स्थापना—जिस तरह पितामह ब्रह्माने दक्ष प्रजापतिको, भगवान् शङ्करने शुक्राचार्यको आयुर्वेद पढ़ाकर परम्पराकी स्थापना की थी, उसी प्रकार भगवान् श्रीविष्णुने गरुडजीको आयुर्वेद पढ़ाकर परम्परा चलायी।

इस तरह आयुर्वेदस्वरूप भगवान् विष्णुने आवश्यकता पड़नेपर आयुर्वेदसे प्राणियोंको सुखी-सम्पन्न बनाया।

(ला०बि०मि०)

आयुर्वेदके प्रथम अध्येता दक्ष प्रजापति

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये त्रिदेव मूर्तिमान् आयुर्वेद ही हैं, किंतु इन्होंने आयुर्वेदको जो प्रयोगात्मक रूप प्रदान नहीं किया, उसका कारण यह है कि सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और इसे विश्राम प्रदान करना—ये तीनों ही कार्य बहुत ही उलझनसे भरे हैं। यही कारण है कि एक ही तत्त्व सृष्टिकार्य सँभालनेके लिये ब्रह्मा बन गया, स्थितिके लिये विष्णु बन गया और क्रियाको विश्राम देनेके लिये उसीने शङ्करका रूप ले लिया। जब इन तीनों कार्योंके लिये एक ही तत्त्वको तीन रूप पृथक्-पृथक् धारण करने पड़े, तब आयुर्वेदके प्रयोगात्मक कार्यको वे कैसे कर पाते? क्योंकि इसका उद्देश्य चौबीसों घंटे प्राणियोंकी सेवा करना है। इसलिये आयुर्वेदके मूर्तिरूप तीनों देवोंने जैसे यह भार अश्विनीकुमारोंपर छोड़ा, वैसे ही प्रजापति दक्षने भी यही मार्ग अपनाया।

दक्षप्रजापतिके सामने भी कार्यका अम्बार लगा हुआ था। वे सभी प्रजापतियोंके प्रधान चुन लिये गये, इसलिये उनका कार्य और बढ़ गया था। फिर वे अपने जीवनमें आयुर्वेदको प्रयोगरूपमें कैसे लाते? फिर भी त्रिदेवोंकी तरह दक्ष प्रजापतिके जीवनमें भी कुछ ऐसा अवसर आ गया कि उन्हें उसे प्रयोगात्मक रूप देना ही पड़ा।

औषधका प्रयोग दो रूपोंमें होता है—रोगियोंके रोग-निवारणके लिये और विवशोंकी विवशता दूर करनेके लिये। ऐसी स्थितिमें उनमें रोगको उत्पन्न कर देना आवश्यक हो जाता है।

प्रजापति दक्षने सृष्टि बढ़ानेके लिये बहुत संतानें उत्पन्न कीं। उनमेंसे सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ कर दिया। वे सभी अत्यन्त सुन्दर थीं। उनके रूपकी समता करनेवाली पृथ्वीपर कोई स्त्री न थी। उन सत्ताईसोंमें रोहिणी सौन्दर्यमें सबसे बढ़ी हुई थी। उसके सौन्दर्यने चन्द्रमाको आकृष्ट कर लिया था। वे निरन्तर उसीके साथ रहने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य छब्बीस दक्ष-कन्याओंकी उपेक्षा हो गयी। उन्हें क्रोध आना स्वाभाविक था; क्योंकि विषमता अच्छी नहीं होती, यह शास्त्र-विरुद्ध भी है। अप्रसन्न होकर वे छब्बीसों बहनें अपने पिता दक्ष प्रजापतिके पास पहुँचीं और बोलीं कि चन्द्रमा कभी हम लोगोंके पास नहीं आते। अतः हम सभी चाहती हैं कि नियम लेकर आपके पास रहकर तपस्या करें।

दक्षको चन्द्रमाका यह अधर्मपूर्ण व्यवहार अच्छा न लगा, उन्होंने चन्द्रमाको समझाया—तुम सभी पत्नियोंके प्रति सम भाव रखो, नहीं तो तुम्हें पाप लगेगा। यह तुम स्वयं जानते ही हो। इसके बाद दक्षने अपनी कन्याओंको चन्द्रमाके पास भेज दिया। पिताका आदेश पालन कर छब्बीसों बहनें चन्द्रमाके पास पहुँचीं, किंतु चन्द्रमा रोहिणीमें इतने आसक्त थे कि उन्होंने फिर सबकी उपेक्षा कर दी। इस तरह तीन बार सभी बहनोंको पिताके पास लौटकर पुराने अभियोगको सुनाना पड़ा।

आसक्ति इतनी क्रूर होती है कि यह अपने चंगुलमें फँसे व्यक्तिकी आँखें ही फोड़ देती है और कान भी बुत कर देती है, जिससे वह आसक्त व्यक्ति अपनेसे होती हुई भयानक-से-भयानक हत्याओंको न तो देख पाता है और न उनसे उपजी कराहोंको सुन ही पाता है। चन्द्रमा इसी घोर आसक्तिमें फँस गये थे। अपनी छब्बीस पत्नियोंकी हत्याओंको न तो वे देख पाते थे और न उनकी तड़पती हुई कराहोंको ही सुन पाते थे।

दक्ष भी सोमको प्यार-भरे शब्दोंमें समझाते-समझाते थक गये थे। उन्होंने राजयक्ष्मा नामक रोगकी सृष्टि कर दी—

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथ्वीपते॥
ससर्ग शेषात् सोमाय स चोडुपतिमाविशत्।

(महाभारत शल्य० ३५। ६१-६२)

यह रोग चन्द्रमाको हो गया। इसकी भयानकताके कारण चन्द्रमा दिनोंदिन क्षीण होते चले गये। इस रोगसे छूटनेके लिये उन्होंने बहुत यज्ञ किये, किंतु मुक्त न हो सके। क्षीण होते-होते उनका प्रकाश लुप्त-सा हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक तो अन्न आदि ओषधियोंकी उत्पत्ति रुक गयी दूसरे उनके स्वाद, रस और प्रभाव भी नष्ट हो गये। संसार विनाशके कगारपर आ खड़ा हुआ। देवताओंसे चन्द्रमाकी यह दुर्दशा देखी

नहीं गयी। जब वे जान गये कि दक्षने इनके लिये एक यक्ष्मा नामक रोगकी सृष्टि कर रखी है, तब वे दक्ष प्रजापतिके पास जाकर बोले कि 'चन्द्रमापर प्रसन्न होइये, उनके रोगके कारण संसार ही विनष्ट होनेको तैयार है।' तब दक्ष प्रजापतिने इस रोगको हटानेके लिये चन्द्रमाको सरस्वती नदीमें गोता लगानेको कहा। सरस्वती एक तो स्वयं देवी हैं, दूसरे उनके जलमें इस रोगको हटानेकी शक्ति भी है। दौर्भाग्यसे आज सरस्वती नदीका दर्शन नहीं होता।

आयुर्वेदमें इतनी क्षमता है कि रोगोंको समूल नाश कर दे और उनकी सृष्टि भी कर दे। दक्षकी तरह चिकित्सकोंके चिकित्सक भगवान् शङ्करने बाणासुरके युद्धमें ज्वरकी ही सृष्टि कर डाली थी। इसी प्रकार आजसे दो हजार वर्ष पहले मगध-सम्राट्को सिरदर्द रहता था, ठीक निदान न हो सकनेसे लाख चिकित्सा करनेपर भी वह दर्द गया नहीं। उस समय तक्षशिलाके स्नातक जीवककी तूती बोल रही थी। जीवकके पास दो ऐसी लकड़ियाँ थीं, जो 'एक्स-रे'का काम करती थीं। उन लकड़ियोंसे जीवकको यह स्पष्ट ज्ञान हो गया कि कोई कनखजूरा कभी उनके नाकमें घुस गया होगा, जो वहाँ चिपक गया और वहाँका रस पी रहा है। इस समय अङ्ग-प्रत्यङ्ग बढ़नेसे उसने भीषण रूप ले लिया। निदान हो जानेपर रोगको हटाना कठिन काम नहीं होता, लेकिन जीवक जान रहा था कि जो भी दवा इनके नाकमें दी जायगी, उससे कनखजूरा तो मर जायगा, किंतु राजाको इतनी असह्य पीडा होगी कि वह वैद्यपर ही क्रुद्ध होकर उसे दण्ड दे सकता है। इसलिये वैद्यने एक चाल चली। राजासे कहा—'आप अपने यहाँके सबसे तेज घोड़ेको दे दीजिये, उससे हमें किसी आवश्यक कार्यके लिये एक घंटेके लिये बाहर जाना है, तबतक आप दवाके प्रयोगसे स्वस्थ हो जायँगे। एक दवा मैं दिये जा रहा हूँ, इसे थोड़ी देर बाद नाकमें डालियेगा। एक घंटे बाद मैं वापस आऊँगा। राजाने घोड़ेकी व्यवस्था कर दी। जीवक घोड़ेपर बैठकर बहुत तेजीसे भागा और अपने अभिलषित स्थानपर पहुँच घोड़ेको बाँधकर बैठ गया। उसने एक सेबके कई टुकड़े किये, एक टुकड़ेमें रोगोत्पादक दवा मिलायी और दूसरे टुकड़ेमें रोगशामक तथा स्वयं कई टुकड़े काटकर धीरे-धीरे खाने लगा। वह देखता जाता था कि हमारे पीछे हमको पकड़नेके लिये कोई आ रहा है कि नहीं। थोड़ी देर बाद सेनापति आ पहुँचा। उसका रुख बहुत कठोर था—डाँटता हुआ बोला—'सम्राट्को तुमने कौन-सा जहर दिया? वे इतने छटपटा रहे हैं कि जिसका ठिकाना नहीं है। चलो, तुम्हें फाँसी लगायी जायगी।'

जीवकने कहा—'सेनापतिजी! जल्दी क्या है? आप भी थोड़ा फल खा लीजिये, थक गये होंगे। खाकर चले चलेंगे।' सेनापतिको उसकी राय पसंद आ गयी। उसने कहा—अच्छा दे दो। जीवकने रोगोत्पादक दवा-मिश्रित सेबका टुकड़ा सेनापतिको खानेके लिये दे दिया। उस टुकड़ेको मुँहमें रखते ही बेचारे सेनापतिके हाथ-पाँव स्तब्ध हो गये, बोली बंद हो गयी, वह निढाल होकर पड़ गया। बेचारेकी आँखोंसे आँसूका प्रवाह बह चला। जीवकने शान्ति और प्रेमसे समझाया 'सेनापतिजी! हमने आपको कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है, आप बहुत तैशमें आये थे, हमको मारते-पीटते ले चलते और पीछे इससे आपको भी बहुत पश्चात्ताप होता। आप पाँच मिनट विश्राम कीजिये। हम जो कह रहे हैं, उसका प्रमाण अभी मिल जायगा। आपके आनेके बाद सम्राट् स्वस्थ हो गये हैं और हमारे स्वागतके लिये उन्होंने बड़े-बड़े राजपुरुषोंको भेजा है, जो शान्तिपाठ करते हुए मुझे ले चलेंगे, यह देखकर आपको अपनी अशिष्टताके लिये तकलीफ होती। आपको यह तकलीफ न हो, इसीलिये हमने थोड़ी देरके लिये ऐसे रोगकी सृष्टि कर दी है, ताकि आप कुछ अशिष्टता न कर सकें।'

इतनेमें सचमुच जीवकके स्वागतके लिये एक बहुत बड़ा समूह आ पहुँचा। एक सम्राट्की तरह उसका स्वागत किया गया। तब जीवकने सेबका वह टुकड़ा सेनापतिके मुँहमें लगाया, जिसमें रोगशमन करनेकी शक्ति थी। रोगशामक दवा-मिश्रित टुकड़ेको मुँहमें लगाते ही सेनापति भला-चंगा हो गया।

जीवकके इन दोनों प्रयोगोंसे सेनापतिको शारीरिक और मानसिक विश्राम ही मिला था। कोई कष्ट नहीं हुआ था। इस प्रकार वैद्योंमें आवश्यकतानुसार रोगकी सृष्टि और रोगके शमन करनेकी शक्ति होती है।

परम्परा—दक्ष प्रजापतिने समग्र आयुर्वेद अश्विनीकुमारोंको दिया और इस परम्पराको बनाये रखा। (ला०बि०मि०)

देववैद्य अश्विनीकुमार

त्वष्टाने अपनी कन्या संज्ञाका विवाह भगवान् भास्करसे किया था। संज्ञाका अर्थ होता है सम्यक् ज्ञानवाली। संज्ञामें अपने नामके अनुरूप ही सम्यक् ज्ञानका गुण विद्यमान था। वह अपने पतिकी सेवामें निरन्तर लगी रहती थी; क्योंकि पत्नीके लिये यही सम्यक् ज्ञान है। इस सेवामें भगवान् भास्करका प्रचण्ड तेज उसे विघ्न पहुँचाता था, क्योंकि भगवान्का वह प्रचण्ड तेज उसे सहन नहीं हो पाता था। वह उस तेजको जी कड़ा करके सहा करती और पतिको यह नहीं समझने देती थी कि उनसे उसको कोई कष्ट हो रहा है। वह सोचती थी कि धीरे-धीरे सहनशक्ति आ जायगी। किंतु मनु, यम और यमुना—इन संतानोंके हो जानेके बाद भी पतिका तेज उसके लिये असह्य रहा। उसने तपस्याकी शरण ली। किंतु पतिकी सेवा छोड़कर पत्नीके लिये तपस्या करना भी धर्म नहीं माना जाता। इसलिये उसने एक उपाय निकाला। उसने अपनी छायाको पतिकी सेवाके लिये नियुक्त कर दिया और स्वयं अपने सतीत्वकी सुरक्षाके लिये वह अश्वाका रूप धारण करके उत्तरकुरुमें तपस्या करने लगी।

जब भगवान् सूर्यको इस रहस्यका पता चला, तब वे अपनी पत्नीके प्रति दयार्द्र हो गये और अश्वरूप धारणकर उससे मिले। इस प्रकार संज्ञासे जुड़वाँ संतानें उत्पन्न हुईं, इसमें एकका नाम दस्र और दूसरेका नासत्य है। माताके नामपर इनका संयुक्त नाम अश्विनीकुमार है। (महा०अनु० १५०। १७-१८)

इनका सौन्दर्य बहुत आकर्षक है (ऋ० ६। ६२। ५)। इनके देहसे सुनहरी ज्योति छिटकती रहती है (ऋ० ८। ८। २)। ये दोनों देवता जितने सुन्दर हैं, उतने ही सुन्दर उनके पावन कर्म हैं। स्मरण करते ही वे उपासकोंके पास पहुँच जाते हैं और उनके संकटको तुरंत दूर कर देते हैं (ऋ० १। ११२। ३)। शयु नामक एक ऋषि थे। इनकी गाय वन्ध्या थी, अश्विनीकुमारोंने गायके थनोंको इतना सशक्त कर दिया कि उनसे दूधकी धारा बहने लगी (ऋ० १। ११२। ३)। दुर्दान्त असुरोंने रेभ नामक ऋषिके हाथ-पैर बाँधकर उन्हें जलमें डुबा दिया था। अश्विनीकुमारोंने उनको बाल-बाल बचा लिया। असुरोंने यही दुर्गति वन्दन ऋषिकी भी की। अश्विनीकुमारोंने उन्हें भी शीघ्र ही बचा लिया (ऋ० १। ११२। ५)। राजर्षि अन्तकको बाँधकर असुरोंने अथाह जलमें फेंक दिया था। यही अत्याचार राजर्षि भुज्युके साथ भी किये जानेपर अश्विनीकुमारोंने उन्हें भी बचा लिया (तैत्ति० ब्राह्मण ३। १)।

चमत्कारी चिकित्सक

देवताओंने इन दयालु अश्विनीकुमारोंके ऊपर चिकित्साका पूरा भार सौंप रखा था। '**अथ भूतदयां प्रति**' यह आयुर्वेदका सिद्धान्त इनके जीवनमें स्वभाव बनकर उतरा हुआ था। ये हर प्राणीको ढूँढ़-ढूँढ़कर उसकी मानसिक और शारीरिक बाधा दूर किया करते थे।

(१) शल्य-कर्म

(क) कटे हुए सिरको जोड़ना—एक बार देवराज इन्द्रने दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिपर रोक लगा दी थी कि वे मधुविद्याका उपदेश किसीको न करें। नहीं तो जिस समय वे पढ़ाने लगेंगे, उसी समय उनका सिर काट दिया जायगा। इस तरहकी रोक लग जानेसे इस आत्मविद्याका विनाश ही हो जाता। अश्विनीकुमार अन्य प्राणियोंकी तरह इस अध्यात्मविद्यापर भी पसीज गये। ये दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिसे उस विद्याको पढ़ने गये। दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि महान् औपनिषद पुरुष थे। वे भी चाहते थे कि ब्रह्मविद्याका प्रसार रुके नहीं। किंतु उनके सामने विवशता थी, उन्होंने अश्विनीकुमारोंसे अपनी विवशता बताते हुए देवराज इन्द्रकी कही हुई चेतावनी सुनायी कि 'तुम इस ब्रह्मविद्याको किसीको मत पढ़ाना, यदि पढ़ाओगे तो तुम्हारा मस्तक उसी समय काट डालूँगा'—

स होवाचेन्द्रेण वा उक्तोऽस्म्येतच्चेदन्यस्मा अनुब्रूयास्तत एव ते शिरश्छिन्द्यामिति।

(बृहदा०शा०भा० २। ५। १६)

इसके बाद अपने वाक्यका उपसंहार करते हुए ऋषिने कहा—'बीचहीमें सिर कट जायगा तो विद्या अधूरी ही रह जायगी। मैं पूरी विद्याका उपदेश कैसे कर सकता हूँ?' इसपर अश्विनीकुमारोंने कहा—'हम दोनोंने एक उपाय ढूँढ़ निकाला है। आपके पढ़ानेके पहले हम आपका मस्तक काटकर कहीं सुरक्षित रख देंगे, इसके बाद अश्वका सिर काटकर आपके सिरमें जोड़ देंगे। इस प्रकार पहले अश्वके सिरसे उपदेश देकर फिर निजी

मस्तकसे आप विद्याका पूरा प्रवचन कर सकेंगे।'

ऋषि महान् थे। वे अश्विनीकुमारोंको इस विद्याका अधिकारी समझ चुके थे और अधिकारीको विद्या-प्रदान एक आवश्यक कर्तव्य होता है, दूसरे विद्याका बचाव भी हो रहा था। इसलिये महान् ऋषिने अश्विनीकुमारोंको अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने अपना मस्तक कटवाकर घोड़ेका सिर लगवा लिया और उसी मस्तकसे विद्याके पूर्वाङ्गका उपदेश दिया। इसी समय इन्द्रने आकर इनका सिर काट डाला। इसके बाद सिद्धहस्त अश्विनीकुमारोंने उनके निजी सिरको धड़में फिरसे जोड़ दिया। इस सिरसे अवशिष्ट समग्र मधुविद्याका उपदेश अश्विनीकुमारोंके प्रति इन्होंने किया। (बृहदा०शा०भा० २।५।१६)

(ख) दीर्घतमाका कटा सिर जोड़ा गया— दीर्घतमा सूक्तद्रष्टा ऋषि थे। ये ममताके पुत्र थे। एक तो ये जन्मान्ध थे, दूसरे जर्जर वृद्ध हो चुके थे। दास लोग इनकी सेवा करते-करते ऊब चुके थे। वे चाहते थे कि इनका शरीर न रहे तो हमें छुटकारा मिल जाय। सभीने मिलकर असहाय दीर्घतमाको आगमें झोंक दिया। ऋषिने अश्विनीकुमारोंका स्मरण किया। इन दोनों देववैद्योंने ऋषिको बाल-बाल बचा लिया। जलनेका शरीरपर और मनपर कोई खराब असर न पड़ने दिया। दास तो इनको मारनेपर तुले ही थे। अवसर मिलते ही उन लोगोंने ऋषिके हाथ-पैर बाँधकर अथाह जलमें डाल दिया। ऋषिने पुनः अश्विनीकुमारोंकी शरण ली। इस बार भी उनका बाल बाँका न हुआ। दास बहुत उद्विग्न हुए। त्रैतत् तो आपेसे बाहर हो गया और उसने तलवारका ऐसा हाथ जमाया कि सिर कटकर दूर छिटक गया। ऋषिको इस क्रियाकी सुगबुगाहट मिल गयी थी, इसलिये उन्होंने तुरंत अश्विनीकुमारोंको याद करना शुरू कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि दयालु अश्विनीकुमार आये और दूर पड़े हुए सिरको जोड़कर उन्हें भला-चंगा बना दिया। (ऋ० १।१५८)

(ग) शरीरके तीन कटे टुकड़ोंको जोड़ना— शत्रुओंने श्याव ऋषिके शरीरको काटकर तीन टुकड़े कर दिये थे। अश्विनीकुमारोंने तीनों टुकड़ोंको जोड़कर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। (ऋ० १।११७)

(घ) कटी जाँघके स्थानपर लोहेकी जाँघ लगाना—

खेल नामक एक सुयोग्य राजा थे। अगस्त्यजी उनके पुरोहित थे। उनकी पत्नी विश्पला थी। वह युद्धमें कुशल थी, संग्राममें लड़ने जाया करती थी, एक दिन युद्धमें शत्रुओंने उसकी एक जाँघ काटकर अलग कर दी। अगस्त्यजीने अश्विनीकुमारोंकी स्तुति की। अश्विनीकुमार आ गये और विश्पलाको लोहेकी जाँघ लगा दी तथा तुरंत ही इस योग्य बना दिया कि वह चलने-फिरने लगी और छिपे हुए धनको दूसरी जगह ले गयी। (ऋ० १।११६।१५)

(२) वृद्धसे युवा बनाना

(क) च्यवन ऋषिको यौवन प्रदान— च्यवन मुनि महर्षि भृगुके पुत्र थे। जन्मसे ही तेजस्वी और तपस्याके प्रेमी थे। एक बार उन्होंने वैदूर्य पर्वतके निकट नर्मदाके तटपर तपस्या आरम्भ की। एकाग्र होनेसे वे ठूँठे काठके समान जान पड़ते थे। धीरे-धीरे दीमकोंने उनको मिट्टीसे ढक दिया। लताएँ उनपर चढ़ गयीं। किंतु तपस्यामें लीन च्यवनको इन सबका भान नहीं था। उन्हीं दिनों राजा शर्याति इस सरोवरके तटपर अपने पूरे लाव-लश्करके साथ आये। राजा शर्याति आदर्श प्रजापालक थे और जनताके प्रिय थे। सब सुख होनेके बावजूद संतानके नामपर केवल एक सुन्दर पुत्री थी, जिसका नाम था सुकन्या। सुकन्याको वह वनस्थली बहुत भायी। वह सखियोंके साथ वनमें इधर-उधर घूमने लगी। घूमते-घामते वह च्यवनकी उस बाँबीके पास जा पहुँची। वहाँकी भूमि बहुत ही सुहावनी थी। उन लोगोंकी चहलकदमीसे ऋषिका ध्यान टूट गया। संयोगसे कन्या अकेली ही बाँबीके पास जा पहुँची। उसकी सुन्दरता देख च्यवनको बहुत आह्लाद हुआ। उन्होंने सुकन्याको पुकारा, किंतु वह आवाज इतनी क्षीण थी कि सुकन्या उसे सुन न सकी। वह आवाज प्रेमसिक्त थी। वातावरणमें मादकता लाती हुई, फूलने-फलने लगी। इधर जब सुकन्याने उस बाँबीमें चमकती हुई दो चीजें देखी, तब उसे बहुत कौतूहल हुआ। इतना कौतूहल हुआ कि उस रहस्यको जाननेके लिये उन्हें काँटेसे बेध दिया। ऋषि च्यवनमें सभी गुण थे, किंतु उनमें क्रोध नामका बहुत बड़ा दुर्गुण घर किये बैठा था। आँखें बींध जानेसे वह क्रोधसे लाल हो गये और उन्होंने शर्यातिकी सेनाके मल-मूत्र बंद कर दिये। राजा शर्यातिकी सेना अनुशासित थी, किंतु मल-मूत्रावरोधसे वह छटपटाने लगी। जो जहाँ था वह वहीं कराहने लगा।

राजा समझ गये कि यहाँ जो च्यवन ऋषि कहीं तप कर रहे हैं, उनकी हमारी ओरसे कोई अवज्ञा अवश्य हो गयी है। उन्होंने सबसे पूछा—यहाँ च्यवन ऋषि तपस्या कर रहे हैं, वे स्वभावतः क्रोधी हैं, उनका किसीने अपराध

तो नहीं किया? शीघ्र बता दें। सुकन्याने आपबीती सुना दी। यह सुनकर शर्याति शीघ्र ही बाँबीके पास गये, उन्होंने बाँबीसे ढके वयोवृद्ध महात्मा च्यवनको देखा और उनसे अपने सैनिकोंका कष्ट-निवारण करनेके लिये प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'मेरी पुत्रीसे अज्ञानवश आपका अपराध हो गया है, आप उस अपराधको क्षमा करें।'

वृद्ध ऋषि सुकन्यापर पहले ही आसक्त हो गये थे। उन्होंने कहा—'मैं इस अपराधको तभी क्षमा कर सकता हूँ, जब तुम्हारी कन्या पतिरूपमें मुझे वरण कर ले।'

राजा निरुपाय थे। उन्हें अपनी महान् हृदयवाली पुत्रीपर विश्वास था कि वह प्रजाके हितके लिये अपना बलिदान स्वीकार कर लेगी। उन्होंने महात्मा च्यवनको अपनी पुत्री दे दी। च्यवन मुनिके प्रसन्न होते ही सभी संकट टल गये। खुशी-खुशी लोग राजधानी लौट आये।

सुकन्याका ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह तप और नियमका पालन करती थी। प्रेमपूर्वक पतिकी सेवा करने लगी। च्यवनकी जिस क्षीण आवाजको वह पहले नहीं सुन सकी थी, उसे अब वह कण-कणमें गूँजती हुई सुन रही थी। शरीर बूढ़ा होता है, किंतु प्रेम निरन्तर तरुण ही बना रहता है। पतिप्रेम ही पत्नीके लिये धर्म है और उस धर्ममें च्यवनकी वह क्षीण आवाज प्राणका संचार कर रही थी। उन्हीं दिनों रुग्ण मानवोंकी खोज[१] में दोनों अश्विनीकुमार पृथ्वीपर विचरण कर रहे थे। संयोगसे वे च्यवनके आश्रमकी ओरसे कहीं जा रहे थे। उस समय सुकन्या स्नान करके अपने आश्रमकी ओर लौट रही थी। उसे देखकर अश्विनीकुमारोंको बहुत विस्मय हुआ। उन्होंने उससे पूछा—'तुम किसकी पुत्री और किसकी पत्नी हो?' सुकन्याने अपने पिता और पतिका नाम बताया, फिर अपना नाम भी बता दिया। अन्तमें कहा कि 'मैं अपने पतिदेवके प्रति निष्ठा रखती हूँ।'

अश्विनीकुमारोंने परीक्षाकी दृष्टिसे कहा—'सुकन्ये! तुम अप्रतिम रूपवती हो, तुम्हारी तुलना किसीसे नहीं की जा सकती। ऐसी स्थितिमें उस वृद्ध पतिकी उपासना कैसे करती हो, जो काम-भोगसे शून्य है? अतः च्यवनको छोड़कर हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति चुन लो।'

सुकन्याने नम्रतासे कहा—'महानुभावो! आप मेरे विषयमें अनुचित आशंका न करें, मैं अपने पतिमें पूर्ण अनुराग रखती हूँ। प्रेम आदान नहीं, प्रदान चाहता है। पतिका सुख ही मेरा सुख है।'

सुकन्या परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुकी थी। दोनों देववैद्योंको इससे बहुत संतोष हुआ। वे बोले—'हम दोनों देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य हैं—**'आवां देवभिषग्वरौ'** (महा० वन० १२३। १२)। तुम्हारे पतिको हम अपने-जैसा तरुण और सुन्दर बना देंगे, उस स्थितिमें तुम हम तीनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लेना। यदि यह शर्त तुझे स्वीकार हो तो तुम अपने पतिको बुला लो।'

सुकन्याने जब च्यवनसे इस घटनाको सुनाया तो सुन्दरता और यौवन पानेके लिये वे ललचा उठे। वे अश्विनीकुमारोंके अद्भुत चमत्कारसे अवगत थे, अतः सुकन्याके साथ वे अश्विनीकुमारोंके पास पहुँचे।

अश्विनीकुमारोंने पहले तो च्यवन ऋषिको जलमें उतारा। थोड़ी देर बाद वे स्वयं भी उसी जलमें प्रवेश कर गये। एक मुहूर्ततक जलके अंदर अश्विनीकुमारोंने च्यवनकी चिकित्सा की।[२] इसके बाद वे तीनों जब जलसे बाहर निकले तीनोंका रूप-रंग एवं अवस्था एक ही-जैसी थी। उन तीनोंने सुकन्यासे एक साथ ही कहा—'हम तीनोंमेंसे किसी एकको अपनी रुचिके अनुसार अपना पति बना लो।'
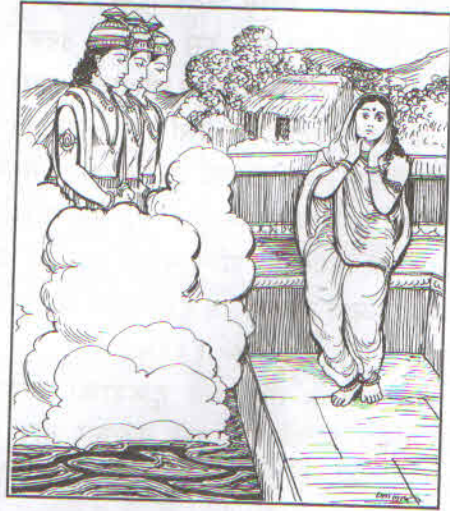
१. एतस्मिन् समये भुवं विचरन्तौ भिषज्यन्तौ (श०ब्रा० ४।१।५।८ व्याख्या)।

२. ऋग्वेदने स्पष्ट लिखा है कि देववैद्य अश्विनीकुमारोंने औषध-प्रयोगके द्वारा ही बूढ़े च्यवन ऋषिको युवा बनाया था—युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः। (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो! (युवं) तुम दोनोंने (शचीभिः आत्मीयैर्भैषज्यलक्षणैः कर्मभिः) (सायण) भैषज्यरूप कार्यके द्वारा (जरन्तं च्यवानम्) बूढ़े च्यवन ऋषिको (युवानम्) फिरसे जवान (चक्रथुः) किया था। (ऋक्० १।११७।१३)

प्रारम्भमें तो सुकन्या ठगी-सी खड़ी रह गयी। उन तीनोंमेंसे उसका पति कौन है, वह समझ नहीं पाती थी। अन्तमें उसके पातिव्रत्य धर्मने उसका साथ दिया। वह पतिको पहचान गयी और उसने च्यवनको पतिके रूपमें चुन लिया। सुकन्या इस बार भी परीक्षामें खरी उतरी।

च्यवन मुनिने तरुण अवस्था, मनोवाञ्छित रूप और पतिव्रता पत्नीको पाकर बहुत ही हर्षका अनुभव किया। वे देववैद्य अश्विनीकुमारोंका आभार मानने लगे। उन्होंने प्रसन्न होकर दोनों देवोंसे कहा—'आप दोनोंने मुझे उपकारके बोझसे लाद दिया है, यह तभी हलका होगा, जब मैं आप दोनोंको यज्ञमें देवराज इन्द्रके सामने ही सोमपानका अधिकारी बना दूँगा—

कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन् भार्यां च प्राप्तवानिमाम्।
तस्माद् युवां करिष्यामि प्रीत्याहं सोमपीथिनौ।
मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद् ब्रवीमि वाम्॥

(महाभारत वन० १२३। २३)

जर्जर बूढ़ेका जवान हो जाना और देवताओंमें सबसे सुन्दर अश्विनीकुमारोंकी सुन्दरताका उस शरीरमें उतर जाना—ये दोनों बातें ऐसी विलक्षण थीं कि बात-ही-बातमें सारी दुनियामें फैल गयीं। राजा शर्यातिने जब यह शुभ समाचार सुना तो उन्हें वह सुख मिला, जो सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य मिल जानेसे ही हो सकता है। सुकन्याकी माता तो प्रसन्नतासे रो पड़ी। राजा पत्नी और सेनाके साथ महर्षि च्यवनके आश्रमपर आये। वहाँ च्यवन और सुकन्याकी जोड़ीको सुखी देखकर पत्नीसहित शर्यातिको इतना हर्ष हुआ कि वह रोमावलियोंसे फूट पड़ा। च्यवन ऋषिने आये हुए लोगोंका अत्यधिक आदर किया। राजा और रानीके समीप बैठकर सुन्दर-सुन्दर कथाएँ सुनायीं। अन्तमें च्यवनने कहा—'राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा, आप तैयारी करें।' महर्षि च्यवनके इस प्रस्तावसे राजा शर्याति बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके कथनका बहुत सम्मान किया।

समयसे यज्ञ प्रारम्भ हो गया। महर्षि च्यवनने दोनों अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये हाथमें सोमरस लिया। देवराज इन्द्र वहीं बैठे थे, उन्होंने मुनिको मना किया। उन्होंने कहा कि मेरा मत यह है कि वैद्यवृत्तिके कारण इन्हें यज्ञमें सोमपानका अधिकार नहीं रह गया है—

उभावेतौ न सोमार्हौ नासत्याविति मे मतिः।
भिषजौ दिवि देवानां कर्मणा तेन नार्हतः॥

(महाभारत वन० १२४। ९)

च्यवनने कहा—'देवराज! ये अश्विनीकुमार भी देवता ही हैं, इनमें उत्साह और बुद्धिमत्ता—ये दोनों भरे हुए हैं। रूपमें सब देवताओंसे ये बढ़-चढ़कर हैं। इन्होंने मुझे देवताओंके समान दिव्य रूपसे युक्त और अजर बनाया है। फिर इन्हें यज्ञमें सोमरसका अधिकार कैसे नहीं?'

इन्द्रने उत्तर देते हुए कहा—'ये दोनों चिकित्साका कार्य करते हैं और मनमाना रूप धारण करके मनुष्य-लोकमें भी विचरण करते हैं, ऐसी स्थितिमें इन्हें सोमपानका अधिकार कैसे रह सकता है?'

इन्द्र इस बातको बार-बार दोहराने लगे। तब समर्थ महर्षि च्यवनने इन्द्रकी बातोंकी अवहेलना करके अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये सोमरस उठा लिया। 'महर्षि च्यवन! यदि तुम इन्हें सोमरस दोगे तो मैं तुमपर वज्रसे प्रहार करूँगा।' इसके जवाबमें महर्षि मुसकराये और अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये सोमरस हाथमें ले लिया। देवराज इन्द्रने प्रहार करनेके लिये वज्र उठा लिया। तब महर्षि च्यवनने उनकी भुजाको ही स्तम्भित कर दिया और मन्त्रोंका उच्चारण कर अश्विनीकुमारोंके लिये अग्निमें सोमरसकी आहुति दे दी।

इसके बाद इन्द्रको मारनेके लिये च्यवन ऋषिने अपने तपोबलसे एक कृत्या प्रकट कर दी। वह कृत्या बहुत ही भयानक थी। उसका नीचेका ओठ धरतीपर लगा हुआ था और दूसरा स्वर्गलोकतक पहुँच गया था। भयंकर गर्जना कर वह कृत्या इन्द्रको खानेके लिये दौड़ी, इन्द्र घबड़ा गये। उन्होंने महर्षि च्यवनसे कहा—'आप मुझपर प्रसन्न हों, ये दोनों अश्विनीकुमार आजसे सोमपानके अधिकारी होंगे। इस कृत्याको आप हटा दें। मैंने तो यह कार्य इस उद्देश्यसे किया है, जिससे आपकी शक्ति अधिक-से-अधिक प्रकाशमें आये तथा विश्वमें सुकन्या और उसके पिताकी कीर्तिका विस्तार हो।' यह सुनकर महर्षि च्यवनका क्रोध शान्त हो गया, उन्होंने देवेन्द्रके सब कष्टोंको हटा लिया।

(ख) वन्दन ऋषिको यौवन प्रदान—वन्दन ऋषि अश्विनीकुमारोंपर बहुत भरोसा रखते थे। उनकी कारुणिकतापर उन्हें गहरा विश्वास था और वे प्रतिदिन अश्विनीकुमारोंकी स्तुति किया करते थे। अश्विनीकुमारोंपर श्रद्धाके साथ-साथ इनकी उम्र भी बढ़ती चली गयी। बुढ़ापा आ गया। धीरे-धीरे बुढ़ापेका असर इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गपर लक्षित होने लगा। चलना-फिरना कठिन होने लगा। तब इन्होंने अश्विनीकुमारोंसे प्रार्थना की कि वे इनके बुढ़ापेको हटा दें। परम दयालु अश्विनीकुमारोंने इनकी प्रार्थना सुन ली और शीघ्र ही इनके पास आ गये। फिर उन्होंने इनके शरीरके शिथिल अङ्गोंको वैसे ही नया बना दिया जैसे कोई शिल्पी किसी पुराने रथको उसके अवयवोंको इधर-उधर घटा-बढ़ाकर नया बना देता है (ऋ० १। ११९। ७)। अश्विनीकुमार अत्यन्त दयालु हैं। उन्होंने नवयौवन तो प्रदान किया ही साथ ही इनकी याचनासे भी आगे बढ़कर उन्होंने इनकी आयुको भी बढ़ा दिया। अश्विनीकुमारोंकी कृपामयी दृष्टिसे इनके जीवनमें जो भी विघ्न आते थे, उसे वे टालते जाते थे। एक बार वन्दन ऋषि कुँएमें गिर गये। अश्विनीद्वयने इनको कुँएसे भी बाहर निकाल दिया। कुँएमें गिर जानेसे इनकी पत्नी बहुत रो-धो रही थीं, उन्हें भी आश्वस्त कर दिया (ऋ० १। ११६। ६)।

(ग) घोषाको युवावस्था प्रदान—घोषा कक्षीवान् ऋषिकी कन्या थी। वह कुष्ठरोगसे ग्रसित हो गयी थी। विवाह न होनेसे पिताके घरमें ही रहती थी। तपश्चर्याको उसने अपने जीवनका अङ्ग बना लिया था। उम्र ढल जानेपर उसके मनमें संताप हुआ कि एक स्त्रीके लिये उसका पति ही सब कुछ होता है, पतिकी सेवासे बढ़कर स्त्रीके लिये और कोई कर्तव्य नहीं रहता। पति नहीं रहनेसे पुत्र भी न होगा और परलोकके लिये पुत्र आधार होता है। अतः पुत्रका होना भी एक स्त्रीके लिये आवश्यक होता है, किंतु मैं दोनोंसे शून्य हूँ। इस चिन्ताने धीरे-धीरे उसपर अधिकार जमा लिया।

आतस्थे महती चिन्ता न पुत्रो न पतिर्मम॥

(बृहद्देवता ७। ४३)

पीछे उसे याद आया कि मेरे पिताके सामने भी यह बुढ़ापा एक समस्या बनकर खड़ी हो गयी थी, तब पिताजीने दोनों अश्विनीकुमारोंका सहारा लिया था और उनको प्रसन्न करके जवानी प्राप्त कर ली थी, जवानीके साथ लम्बी आयु, आरोग्य एवं ऐश्वर्य भी प्राप्त कर लिये थे। दोनों अश्विनीकुमार बहुत दयालु हैं, उन्होंने पिताजीको '**सर्वभूतहन्**' विष भी दिया था, जिससे सभी उपद्रवोंका हनन होता था।

इससे घोषामें आत्मविश्वास जाग उठा। वह सोचने लगी कि मैं उन्हींकी पुत्री हूँ। मैं भी पिताकी तरह जवानी, रूप और सौभाग्य प्राप्त कर सकती हूँ। मुझे भी अश्विनीकुमारोंको संतुष्ट करना चाहिये। परंतु उसे दुःख हुआ कि अश्विनीकुमारोंके संतुष्ट करने लायक उसके पास कोई मन्त्र नहीं है। इस चिन्ताको उसके तपने दूर कर दिया। तपस्याके प्रभावसे दो सूक्तों (ऋ० १०। ३९-४०)- का उसे दर्शन हो गया। इन दो सूक्तोंके गानसे अश्विनीद्वय प्रसन्न हो गये। अश्विनीकुमारोंने घोषाको भी जवान बना दिया, रोगसे रहित कर दिया और सुन्दर भी बना दिया। अश्विनीकुमार इतने दयालु हैं कि उन्होंने घोषाके लिये पतिकी भी व्यवस्था कर दी और पुत्रके रूपमें ऋषि सुहस्त्यको प्रदान किया (बृहद्देवता)।

(घ) श्याव ऋषिका कुष्ठ हटाकर उन्हें जवान बनाया—घोषाकी तरह श्याव ऋषिके कुष्ठको भी अश्विनीकुमारोंने ठीक कर दिया था और उन्हें इस योग्य बना दिया कि वे विवाह भी कर सकें। विवाह करा भी दिया (ऋ० १। ७८)।

श्याव ऋषिके एक ओरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कुष्ठरोगसे गल गये, अश्विनीकुमारोंने उन्हें भी शीघ्र ही भला-चंगा कर दिया (ऋ० १। ११७। २४)।

(३) अंधोंको आँखें दीं

(क) एक बार उपमन्युने आकके पत्ते खाये, पत्तोंने पेटके अंदर आगकी ज्वाला उठा दी। जिससे आँखोंकी ज्योति नष्ट हो गयी, बेचारा अंधा हो गया। अंधा होनेके कारण कुँएमें गिर पड़ा। जब शामको उपमन्यु अपने गुरु आयोद धौम्यके पास नहीं पहुँचा, तब उपाध्याय उसे खोजनेके लिये स्वयं जंगलमें चले गये और आवाज लगायी—'उपमन्यु! कहाँ हो? चले आओ।' उपमन्युने कुँएमेंसे ही आवाज लगायी—'गुरुजी! मैं कुँएमें गिर पड़ा हूँ। निकल नहीं सकता।' जब उपाध्यायको पता चला कि आकके पत्ते खानेसे इसकी आँखें खराब हो गयी हैं, तब उन्होंने उपमन्युसे कहा—'बेटा! अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, तुम उनकी स्तुति करो, वे तुम्हारी आँखें ठीक कर देंगे।' उपमन्युने गुरुकी आज्ञा पाकर अश्विनीकुमारोंकी ऋग्वेदके मन्त्रोंद्वारा स्तुति प्रारम्भ की। दयालु अश्विनीकुमार रमणीक स्तुति सुनकर झट वहाँ आ गये और प्यारभरे शब्दोंमें बोले—'उपमन्यो! यह पुआ है, इसे खा लो।' उपमन्युने नम्रतासे कहा—'भगवन्! मैं

ब्रह्मचारी हूँ। बिना गुरुके निवेदन किये* इस पुएको नहीं खा सकता हूँ। अश्विनीकुमारोंने कहा—'ऐसा ही करो। तुम्हारी इस गुरुभक्तिसे हम प्रसन्न हैं, इससे तुम्हारी आँखें तो ठीक हो ही जायँगी, तुम्हारे दाँत भी सोनेके बन जायँगे। इतना ही नहीं, तुम्हारी बुद्धिमें सम्पूर्ण वेद तथा सभी धर्मशास्त्र स्वतः स्फुरित हो जायँगे।' (महा० आदिपर्व अ० ३)

(ख) इसी प्रकार ऋजाश्वके दोनों नेत्र नष्ट हो गये थे। वे कुछ भी देख नहीं पाते थे, चिकित्साके द्वारा अश्विनीकुमारोंने ऋजाश्वकी आँखें भी ठीक कर दीं (ऋग्वेद १।११६।१६)।

(ग) असुरोंने कण्व ऋषिकी आँखोंको आगसे झुलसा दिया था। वे कुछ भी नहीं देख पाते थे। अश्विनीकुमारोंने उनकी भी आँखें ठीक कर दीं (ऋग्वेद १।११८।७)।

(घ) कवि भी आँखोंके न रहनेसे चल-फिर नहीं सकते थे। अश्विनीकुमारोंने उन्हें आँखें दीं (ऋ० १। ११७।८)।

वध्रिमती नामकी एक सती महिला थी, पुत्रके बिना बहुत दुःखी रहती थी, उसने भी अश्विनीकुमारोंकी शरण ली। दोनों वैद्योंने उसे 'हिरण्यहस्त' नामक बहुत सुन्दर और योग्य पुत्र प्रदान किया (ऋग्वेद १।११७।२४)।

इस प्रकार वेद और पुराणने अश्विनीकुमारोंको प्राणियोंपर दया करनेवाले दक्ष वैद्यके रूपमें हमारे सामने उपस्थित किया है। अन्तमें उनकी प्रशंसामें कहा है—

'हे अश्विनीकुमारो! रोगग्रस्त पुरुषको जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हों, उन्हें स्वस्थ कर दो। आप अङ्ग-प्रत्यङ्गको जोड़कर पहले-जैसा ठीक बना देते हैं।'

अत्रिके अपत्य पौर ऋषिके शब्दोंमें—'हे अश्विनीकुमारो! हमारे पिता अत्रि असुरोंद्वारा अग्निमें झोंक दिये गये थे, तब आपके स्तवनसे उन्हें कोई ताप नहीं हुआ था (ऋ० ५।७३।६)। ऋषिने पुनः कहा—हे अश्विनीकुमारो! पुरातत्त्वके जाननेवाले विद्वान् जो आपको 'सुखदाता' कहते हैं, वह निश्चय ही सत्य है (ऋ० ५।७३।९)। (ला०बि०मि०)

---

* आयुर्वेदने शिष्योंको आदेश दिया है कि तुम पहले गुरुको अर्पण करो, उसके बाद उसका उपयोग करो—पूर्वं गुर्वर्थोपाहरणे यथाशक्ति प्रयतितव्यम् (चरक वि० अ० ८।१३)।

देवराज इन्द्रका शल्यकर्म

[जिनका अध्यापन भूतलपर आयुर्वेदके रूपमें अवतीर्ण हुआ]

देवराज इन्द्रने अश्विनीकुमारोंसे आयुर्वेदको प्राप्त किया। इस शाश्वत विद्याको अश्विनीकुमारोंने दक्ष प्रजापतिसे और दक्ष प्रजापतिने ब्रह्माजीसे प्राप्त किया था। त्रिदेवोंकी तरह देवराज इन्द्रने भी आयुर्वेदका प्रयोगात्मक रूप अश्विनीकुमारोंके ऊपर ही छोड़ रखा था; क्योंकि इन्द्रके ऊपर तीनों लोकोंके पालनका विपुल भार था (महा० आदि० ३।१४८-१४९)। फिर अन्य देवोंकी तरह अन्तरङ्ग अवसर आनेपर इन्द्रने भी आयुर्वेदको प्रयोगात्मक रूप दिया है। जैसे—(१) अपालाके चर्मरोग तथा उसके पिताके खालित्यका निवारण एवं (२) परावृज ऋषिके अंधापन और पङ्गुरोगका निवारण।

(१) अपाला अत्रिकी पुत्री थी, वह चर्मरोगसे पीडित थी। इसलिये उसके पतिने दुर्भगा कहकर उसे त्याग दिया था। वह पिताके घरमें रहने लगी और त्वचाके इस रोगको दूर करनेके लिये इन्द्रकी उपासना करने लगी। आगे चलकर उपासनाने कठोर तपका रूप ले लिया। एक बार अपालाके मनमें आया कि देवराज इन्द्रको सोमका रस बहुत भाता है, क्यों न उन्हें सोमपान करा दूँ! वह सोमकी खोजमें नदीके तटपर पहुँची। नहाकर जब लौट रही थी, तो सोमलता उसे प्राप्त हो गयी। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने एक ऋचा **'कन्यावा०'** (ऋक्० ८।९१।१)-से सोमकी स्तुति की (बृहद्देवता ६।१०१)। उसने सोमको चबाया और चबाकर **'असौ य एषि०'** (ऋक्० ८।९१।२) इस ऋचासे इन्द्रका आवाहन किया (बृहद्देवता ६।१०२)।

देवता अपने भक्तोंकी अभिलाषा जानते हैं। इन्द्रने भी समझ लिया कि अपाला हमें सोमरस पिलाना चाहती है। वे तुरंत उसके सामने आ पहुँचे। अपाला उन्हें पहचान न सकी। सोमलता चबाते समय दाँतोंके घर्षणसे मीठी ध्वनि आ रही थी, उसको लक्ष्यकर इन्द्रने पूछा—'क्या पत्थरोंसे सोम पीसा जा रहा है?' अपालाने उत्तर दिया 'नहीं'; इस उत्तरको सुनकर इन्द्र लौटने लगे। अपाला पहचान नहीं रही थी। संदेहमें पड़कर बोली—'आप लौट क्यों रहे हैं? आप तो सोम पीनेके लिये घर-घर पहुँचा करते हैं, आप मेरे घर चलिये, आपका अधिक सम्मान करूँगी, वहाँ सोम पिलाऊँगी तथा भूजा हुआ जौ, गुड़ और अपूप भी दूँगी।' जब इन्द्र अपालाके घर पहुँचे तो उसने इन्द्रको पहचान लिया। उसने अपने मुखमें रखे हुए सोमसे कहा—'हे सोम! तुम आये हुए इन्द्रके लिये शीघ्र ही निचुड़ जाओ।' देवता भक्तवत्सल होते हैं। इन्द्रने अपालाकी इच्छा पूर्ण कर दी और उसका दिया सोम पी लिया। प्रसन्न होकर बोले—'अपाले! बोलो, तुम क्या चाहती हो? मैं तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण करूँगा।' अपालाने प्रथम वर यह माँगा—'पिताजीका सिर गंजा हो गया है, आप उनका खालित्य मिटा दें।' उसने द्वितीय वर माँगा—'पिताजीका खेत ऊसर हो गया है, वह हरा-भरा और फलोंसे लद जाय।'

इन्द्रने अत्रिके खालित्यदोषको हटा दिया और उनके ऊसर खेतको हरा-भरा भी बना दिया। उसके बाद इन्द्रने अपालाके चर्म रोगको हटानेके लिये शल्य-क्रियाका प्रयोग किया। यहाँ शल्यका काम उन्होंने अपने रथके जुएके बीचके छिद्रसे लिया। अपालाको जुएके बीचके छिद्रमें डालकर बाहर खींचा। ऐसा उन्होंने तीन बार किया; उसकी त्वचा पहली बारके छिलनेसे शल्यक (शाही), दूसरी बार गोधा तथा तीसरी बार कृकलास बन गयी। इस प्रकार त्वचाके तीन आवरण निकालकर उसके नीचेकी त्वचाको उन्होंने बिलकुल सूर्यकी तरह चमका दिया (ऋक्० ८।९१।७)।

इन्द्रका हस्तलाघव—अपालाकी त्वचा गिरगिट (कृकलास) और मगरमच्छ (गोधा)-की तरह घिनौनी एवं शाही (शल्यक)-की तरह कँटीली थी। इन्द्रने पहली बारकी शल्यक्रियासे कँटीला भाग छीलकर हटा दिया। दूसरी बार घड़ियाल-जैसी चमड़ीको छीलकर उसके देहसे अलग कर दिया और तीसरी बार गिरगिट-जैसी रूखी चमड़ीको छीलकर अलग कर दिया। इसके बाद उसकी बची हुई त्वचामें सूर्यके तेज-जैसी चमक ला दी। ये सब कृत्य हुए, किंतु इसका दुःखदायी प्रभाव अपालापर न पड़ा। ऐसी चिकित्सा विस्मापक होती है। अपालाको इन क्रियाओंसे वैसे ही कोई कष्ट नहीं हुआ, जैसे दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिके सिरको काटने और जोड़नेमें

उनपर उसका कोई असर नहीं हुआ था। सिर कटते और जुड़ते गये, किंतु उनका अध्यापनका कर्म चलता ही रहा, जैसे कुछ हुआ ही न हो। अश्विनीकुमारोंका वह हस्तलाघव इनके शिष्य इन्द्रमें भी ज्यों-का-त्यों आ गया था, तभी अपालाको इस शल्यक्रियासे न वर्तमानमें कष्टदायक अनुभूति हुई और न भविष्यमें।

(२) परावृज ऋषिका अंधापन और लँगड़ापन हटाना—परावृज अंधे और लँगड़े हो गये। देवराज इन्द्रने उनका अंधापन मिटा दिया। आकृति भी सुन्दर बना दी और लँगड़ापन हटाकर चलने-फिरनेके योग्य बना दिया।

(ला०बि०मि०)

भूतलपर आयुर्वेदके प्रकाशक महर्षि भरद्वाज

अथ भूतदयां प्रति—जिस प्रकार पितामह ब्रह्माने अपनी संततियोंपर दयार्द्र होकर आयुर्वेद-ग्रन्थका निर्माण किया, उसी प्रकार प्रत्येक ऋषि प्राणियोंपर करुणा करनेके लिये ही आयुर्वेदके प्रति आकृष्ट हुए हैं। हिमालय प्रदेशमें जो बहुतसे ऋषि इकट्ठे हुए थे, उसका उद्देश्य ही रोगोंसे पीडितोंको बचानेका था—

किं करोमि क्व गच्छामि कथं लोका निरामयाः।
भवन्ति सामयानेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम्॥

(भावप्रकाश पूर्वखण्ड १। १९)

अर्थात् मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ कि संसारके प्राणी रोगसे रहित हो जायँ। मैं किसी व्यक्तिको रोगसे ग्रसित देखनेमें समर्थ नहीं हूँ। यह आवाज केवल आत्रेय ऋषिकी ही नहीं, अपितु प्रत्येक ऋषिकी थी। इसीलिये बिना बुलाये सभी हिमालय प्रदेशमें एकत्रित हो गये।

भरद्वाजकी परदुःखकातरता—भरद्वाज मुनि बचपनसे ही जनताके सुखमें ही अपना सुख देखने लगे थे। वे देवगुरु बृहस्पतिके पुत्र थे। वहाँके वातावरणने उन्हें समझा रखा था कि प्रत्येक मानवका कल्याण वेदसे ही सम्भव है, अतः उन्होंने समग्र वेदकी प्राप्तिका संकल्प ले लिया। वे वेदाध्ययनमें दिन-रात लगे रहते। वेदके मन्त्र-पर-मन्त्र आते-जाते और उनकी समाप्ति कहीं दीखती न थी। इस तरह वेदाध्ययनमें उनका एक सौ वर्ष बीत गया, किंतु वेदका कोई ओर-छोर नहीं दिखायी दे रहा था। वे समझ गये कि केवल अध्ययनसे समग्र वेदकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसलिये देवराज इन्द्रकी सहायता लेनी चाहिये और इस प्रकार अपने श्रमसाध्य तपसे उन्होंने देवराजको प्रसन्न कर लिया। देवराजने उनकी आयुके तीन सौ वर्ष और बढ़ा दिये। अथक श्रममें वे तीन सौ वर्ष भी समाप्त हो गये, किंतु वेदके छोरका कोई पता नहीं लग सका। उनके अध्ययन-रूपी तपस्यासे देवराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दर्शन देकर ऋषि भरद्वाजको कृतार्थ कर दिया तथा कहा कि वेद अनन्त होते हैं—'**अनन्ता वै वेदाः**' (तैत्ति० ब्रा०)। वेदका कोई अन्त नहीं होता। तुम अध्ययनसे समग्र वेद नहीं पढ़ सकोगे, इसलिये '**सावित्राग्निचयन**' नामक यज्ञ कर डालो, जिससे तुम्हें समग्र वेदका ज्ञान स्वतः हो जायगा।

द्रष्टा होनेसे समग्र वेदका दर्शन—इस यज्ञसे सूर्य-भगवान् प्रसन्न हो गये और उन्होंने भरद्वाजको मन्त्र-द्रष्टा बना दिया (तैत्ति० ब्रा०)। ऋषि द्रष्टा होनेके बाद जिस अंशको चाहते थे, वेदका वह अंश उनकी आँखोंके सामने वैसे ही लिखा हुआ दिखायी पड़ता, जैसे हम अपनी आँखोंसे पुस्तकोंमें देखते हैं। डॉ० पॉलब्रन्टनने महमूदवेकी घटनामें बताया है कि महमूदवेमें कुछ ऐसी गुप्तशक्ति थी, जिसके बलपर वह किसीके मनकी बातको वैसे ही जान लेता था, जैसे हम किसी किताबमें देखकर पढ़ लेते हैं। डॉ० पॉलब्रन्टनकी पुस्तकका अनुवाद 'गुप्त भारतकी खोज' के नामसे प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने बताया है कि अध्यात्मविद्याकी खोजमें ये भारत आये, संयोगसे उसी होटलमें ठहरे थे, जिस होटलमें मिस्रका तान्त्रिक महमूदवे ठहरा हुआ था। सबेरे उठकर डॉ० पॉलब्रन्टनने देखा कि उसके बगलवाली कोठरीमें लोग बड़े अदबके साथ क्रमबद्ध आ रहे हैं और किसीसे मिल-जुलकर लौट रहे हैं। इन्हें पता चला कि इसमें मिस्रके तान्त्रिक महमूदवे ठहरे हैं और मनकी बात बताते हैं। पॉलब्रन्टनको बड़ी प्रसन्नता हुई कि भारतकी धरतीपर पैर रखते ही एक गुप्तशक्तिके स्वामीसे उनकी भेंट हुई। वे भी अवसर पाकर महमूदवेसे मिले। औपचारिक बातचीतके बाद इन्होंने प्रश्न किया कि हमने सुना है कि आप किसीके भी मनकी बात जान जाते हैं, यह कहाँतक सत्य है? महमूदवेने मुस्कराकर कहा—हाँ, यह सत्य है; आप

कुछ मनमें रखिये, प्रश्न कीजिये और मैं बता दूँगा। तरीका यह है कि आप अपने मनकी बात एक कागजपर लिख लीजिये, मैं दूर बैठा हूँ। लिखते समय आप परीक्षा करते रहें कि मैं आपकी लिखावटको देख न सकूँ। इतना कहकर वह दूसरी ओर मुँह करके सड़ककी ओर निहारने लगा। फिर बोला—'अगर लिखना समाप्त हो गया हो तो उस कागजको मोड़कर हाथमें रख लो और लिखनेकी पेन्सिल भी उसी हाथमें रख लेना।' डॉ० पॉलब्रन्टनने कहा—'हाँ, मैंने पेन्सिल-कागजको हाथमें रख लिया है।' तब वह डॉक्टरके पास आकर बैठा और उसने कहा कि 'आपने जो पूछा, वह प्रश्न यह है—मैं तीन वर्ष पहले किस पत्रका सम्पादक था—और उस पत्रका नाम अपने हाथके कागजको खोलकर पढ़ लीजिये।' पॉलब्रन्टनने बड़े आश्चर्यसे देखा कि तीन वर्ष पहले जिस पत्रका वह सम्पादक था, उसका नाम हाथके कागजमें लिखा हुआ था।

लंबी कथा है, हमें इस घटनासे यही देखना है कि उसके मनकी बातको उस तान्त्रिकने कैसे पढ़ लिया? पूछनेपर तान्त्रिकने रहस्य बताया कि मैंने कुछ प्रेतात्माओंको वशमें कर लिया है, उसमें मेरा मरा हुआ भाई भी है, उसका काम यह है कि दूसरेके मनकी बात पढ़कर मेरी आँखोंके सामने लिख देता है, मैं उसे बता देता हूँ।

जिस तरह महमूदवे प्रेतात्माके द्वारा लिखी हुई आनुपूर्वीको पढ़ लेता था, उसी तरह ऋषि लोगोंकी आँखोंके सामने भी वेदकी आनुपूर्वी दिखायी दे जाती है।

जैसे ऋषि बन जानेके बाद ब्रह्माका हृदय रेडियो-जैसा प्रतिफलनमें सक्षम हो गया था, वैसे ही ऋषि भरद्वाजका हृदय भी रेडियो बनकर नित्य प्रसारित होनेवाले वेदको मुखसे प्रकट कर देता था और उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा प्रचय—इन चारों स्वरोंके साथ ऋषिको वह मन्त्र सुनायी भी पड़ जाता था।

इस प्रकार वेदका जितना अंश वे चाहते थे, उतना उनको प्रत्यक्ष दिखायी दे जाता था। इस प्रकार समग्र वेदको अध्ययनसे नहीं पाया जा सकता, तपस्यासे जाना जा सकता है।

समग्र वेदके दर्शन और श्रवणसे समग्र आयुर्वेद भी ऋषि भरद्वाजके हस्तगत हो गया, किंतु आयुर्वेद क्रियात्मक होता है। क्रियात्मक रूप ऋषिके पास नहीं था और रोगी रोगसे पीडित होकर बिलबिला रहे थे। यह समस्या सभी ऋषियोंके सामने थी कि रोगी रोगकी पीडासे परेशान थे और क्रियात्मक रूप न जाननेके कारण हिमालयके एक प्रदेशमें इकट्ठे हो गये। उसमें प्रायः शीर्षस्थानीय सभी ऋषि थे। वहाँ बैठकर ऋषिगण जनताके रोगोंको दूर करनेके लिये उपाय ढूँढ़ने लगे। अन्तमें सभी ऋषियोंने एकमतसे ऋषि भरद्वाजको चुना कि ये देवलोक जाकर इन्द्रसे आयुर्वेद प्राप्त करें। इन्द्रसे प्राप्त किया जो आयुर्वेद होगा, उसे हम लोग क्रमसे पढ़कर रोगसम्बन्धी भयसे मुक्त हो सकेंगे—

त्वं योग्यो भगवन् सहस्रनयनं याचस्व लब्धं क्रमादायुर्वेदमधीत्य यं गदभयान्मुक्ता भवामो वयम्॥

(भावप्रकाश पूर्व० १। ४६)

भूतलपर आयुर्वेदका अवतरण—ऋषियोंकी प्रेरणासे महर्षि भरद्वाज स्वर्गलोक गये, वहाँ इन्द्रसे अङ्गोंसहित आयुर्वेदको पढ़कर पृथ्वीपर लौट आये और आयुर्वेदसे पृथिवीकी जनताको रोगसे मुक्त कर दिया। अन्य ऋषियोंने भी भरद्वाजका साथ दिया और वे दुनियासे रोगकी आर्तिको हटाकर ही संतुष्ट हुए।

शिष्य-परम्पराकी स्थापना—शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा आयुर्वेदके उपयोगी तत्त्वसे प्रत्येक प्राणीको लाभ पहुँचानेके लिये भरद्वाजजीने शिष्योंको पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। उनमेंसे एक महान् शिष्य धन्वन्तरि (अब्ज) थे। ये वही धन्वन्तरि हैं, जो भगवान् विष्णुके अंशावतार हैं और जिन्होंने समुद्रके भीतर मथे हुए औषधियोंके कणोंका उचित संयोजनकर अमृत-जैसा दिव्य औषध तैयार किया था। काशिराज धन्वने इन्हीं धन्वन्तरिको पुत्ररूपमें प्राप्तिके लिये घोर तप किया था। धन्वन्तरिने उनको वरदान दिया कि हम तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण होंगे। महर्षि भरद्वाजने इन्हीं धन्वन्तरिको सविधि आयुर्वेद प्रदान किया। धन्वन्तरि तो धन्वन्तरि ही ठहरे, उन्होंने महर्षि भरद्वाजसे पढ़कर आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त कर दिया—

आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्तेर्भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥

(महा०)

इसी तथ्यको ब्रह्माण्डपुराणने भी लिखा है।

(ला०बि०मि०)

महर्षि वाल्मीकिके आरोग्य-साधन

[रामायणकालीन भारतमें चिकित्सा-व्यवस्था]

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका स्वाध्याय करनेपर सर्वसाधन-सम्पन्न, सर्वथा स्वस्थ अतएव एक परम प्रसन्न समाजका चित्र बरबस हमारी आँखोंके सामने उभरकर आता है। चक्रवर्ती साम्राज्यकी तत्कालीन राजधानी अयोध्यामें विविध रोगोंके उपचारके लिये आवश्यक औषधियोंसे भरपूर तथा रोगियोंकी देखभालके लिये नितान्त उपयोगी अन्य समस्त सुविधाओंसे सम्पन्न चिकित्सालयोंकी व्यवस्था थी, जहाँ रोगोंके निदान किंवा उपचारमें परम कुशल सुयोग्य वैद्य सर्वदा सुलभ रहते थे। उनकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर समय-समयपर सम्राट् उन्हें विविध रूपोंमें पुरस्कार प्रदान करके सम्मानित किया करते थे—

कच्चिद् वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान् मुख्यांश्च राघव।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे॥

(वा० रा० २।१००।६०)

भगवान् श्रीराम चित्रकूटमें भरतजीसे अन्य समाचारोंके साथ-साथ अयोध्याके वैद्योंका भी कुशल-क्षेम पूछते हैं। वैद्योंको समुचित रूपसे सम्मानित करनेमें भरत कभी प्रमाद तो नहीं करते हैं? यह जिज्ञासा भी प्रकट करते हैं (वा० रा०, २।१००।४२)। इतना ही नहीं, भरतजीके साथ चित्रकूट आये हुए वैद्योंसे भी श्रीराम बड़ी तत्परताके साथ मिलते हैं (वा० रा० २।८३।१४)।

कोपभवनमें निश्चेष्ट-अवस्थामें पड़ी हुई कैकेयीको देखकर महाराज दशरथ उन्हें व्याधिग्रस्त समझ बैठते हैं और घबराकर वैद्योंको बुलानेमें व्यग्र हो उठते हैं। कैकेयीको आश्वासन भी देते हैं कि तुम अपनी बीमारी बताओ तो सही, मेरे पास ऐसे कुशल वैद्य हैं जो तुम्हें तुरंत रोगमुक्त कर देंगे—

सन्ति मे कुशला वैद्यास्त्वभितुष्टाश्च सर्वशः॥
सुखितां त्वां करिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व भामिनि।

(वा०रा० २।१०।३०-३१)

चिकित्सा-पद्धति

रामायणमें अनेक प्रकारकी चिकित्सा-पद्धतियोंका उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद-विज्ञानके पारङ्गत वैद्य अपनी-अपनी रसायनशालाओंमें औषधियोंका निर्माण कराया करते थे। एतदर्थ नाना प्रकारके रोगोंके उपशमनके लिये औषधियोंके निर्माणमें उपयोगी लताओं, गुल्मों, पौधों, पत्तों, जड़ों, फूलों, जटाओं किंवा छालोंके अन्वेषणके लिये बड़ी संख्यामें सहायक वैद्योंका समूह घने जंगलोंमें, पर्वतोंपर तथा पर्वत-कन्दराओंमें नियमित रूपसे विचरण किया करता था; क्योंकि मूर्च्छा, श्वासावरोध, जलोदर, मूत्रावरोध, रक्त-प्रवाह-जैसे अनेक घातक रोगोंपर अनेक वानस्पत्य औषधियाँ जादूकी तरह तत्काल प्रभावकारी सिद्ध होती हैं। राम-रावण-युद्धके समय लक्ष्मणजीके मूर्च्छित हो जानेपर वैद्यराज सुषेण संजीवकरणी (संजीवनी) नामक वानस्पत्यौषधि लानेके लिये श्रीहनुमान्‌जीको हिमालय पर्वतपर भेजते हैं। वहाँ संजीवकरणीके साथ-साथ तीन और औषधियोंका भी वर्णन किया गया है—

दक्षिणे शिखरे जाता महौषधिमिहानय॥
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा।
संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम्॥

(वा०रा० ६।१०१।३१-३२)

अर्थात् हे वीर! तुम हिमालय पर्वतके दक्षिण शिखरपर उत्पन्न होनेवाली विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और संधानी नामक महौषधियाँ जाकर ले आओ।

इन चारों औषधियोंमेंसे मूर्च्छामें संजीवकरणी, बाण या भालेके प्रहारसे घाव हो जानेपर विशल्यकरणी, घावोंके निशान भी न रहने पायें, इसके लिये सावर्ण्यकरणी और टूटी हुई हड्डियोंको जोड़नेके लिये संधानी नामक औषधिका प्रयोग प्रभावकारी सिद्ध हुआ करता था।

महेन्द्र पर्वतपर अपने फणोंपर स्वस्तिकका चिह्न धारण करनेवाले महाभयंकर विषधर सर्प निवास करते थे। उनके प्राणघातक विषको भी समाप्त कर देनेकी क्षमता रखनेवाली अनेक वनौषधियाँ वहाँ पुष्कल मात्रामें उत्पन्न हुआ करती थीं (वा० रा० ५।१।१९)।

वनस्पतियोंसे प्राप्त होनेवाली औषधियोंका प्रयोग तो रोगोंके उपशमनके लिये किया ही जाता था, परंतु

युद्धमें शस्त्र-प्रहारसे कटे हुए अङ्गोंको पुनः जोड़नेके लिये तथा गले-सड़े किसी अङ्गको काटकर शरीरसे अलग कर देनेके लिये आधुनिक शल्यक्रिया (Surgery)-का भी उपयोग किया जाता था। परंतु शल्यक्रियाको प्राथमिकता नहीं दी जाती थी। शस्त्र-प्रहारसे होनेवाले घावोंको तो वनौषधियोंसे भरा ही जाता था, घावोंके कारण होनेवाली भयानक शारीरिक वेदनाको भी जड़ी-बूटियोंसे ही दूर किया जाता था। श्रीलक्ष्मणजीने अपने प्रबल शस्त्र-प्रहारद्वारा देवताओंको भी विस्मित कर डालनेवाले अपूर्व युद्ध-कौशलसे मेघनादको समाप्त तो कर दिया था, परंतु उसके बाण-प्रहारोंसे उनके शरीरमें भी असह्य पीडा देनेवाले अगणित घाव हो गये थे, जिनके कारण उन्हें श्वासतक लेनेमें कठिनाई हो रही थी। उनकी यह करुण दशा देखकर श्रीराम शोक-विह्वल हो उठे। तब वैद्यराज सुषेणने लक्ष्मणजीकी नाकमें एक विशिष्ट औषधि सुँघायी, जिससे उनके शरीरसे बाण निकल गये और वे क्षणभरमें पीडामुक्त हो गये—

लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम्॥
स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत।
तदा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च॥

(वा० रा० ६। ९१। २४-२५)

परंतु पूर्णगर्भा महिलाओंके असावधानीवश फिसलकर गिर जानें अथवा किसी अन्य कारणसे यदि उनका गर्भस्थ शिशु उलट जाता और स्वाभाविक प्रसवके द्वारा उसका बाहर आ पाना सम्भव नहीं हो पाता तो ऐसी गम्भीर परिस्थितिमें वैद्य शल्यक्रियाका ही मार्ग अपनाया करते थे तथा तीक्ष्ण औजारोंके द्वारा आवश्यक चीर-फाड़ करके गर्भस्थ बालकको सफलतापूर्वक बाहर ले आया करते थे।

अशोकवाटिकामें रावण जब जानकीजीको डराते हुए कहता है कि तुमने यदि दो महीनोंके भीतर मेरी बात नहीं मानी तो मेरे रसोइये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे—

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां""सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥

(वा० रा० ५। २२। ९)

तब जानकीजी अपने सम्भावित अङ्गच्छेदको गर्भस्थ बालकके लिये की जानेवाली शल्यक्रियाकी तरह महान् कष्टदायक मानकर व्याकुल हो उठती हैं—

तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे
गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः
शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः॥

(वा० रा० ५। २८। ६)

अर्थात् लोकनायक श्रीराम यदि समयसे यहाँ नहीं पहुँच पाये तो यह दुष्ट रावण मेरे अङ्गोंको वैसे ही काट डालेगा, जैसे गर्भस्थ शिशुकी (सुख-प्रसवके लिये) शल्यक्रिया करनेवाला वैद्य।

ऐसा प्रतीत होता है कि शल्यक्रियाके समय वैद्योंके सहायकरूपमें नापित भी उपस्थित रहा करते थे और छोटी-मोटी चीर-फाड़ तो वे ही कर डालते थे; क्योंकि उक्त श्लोककी टीकामें वाल्मीकीय रामायणके प्रामाणिक टीकाकार श्रीगोविन्दराज महोदय '**शल्यकृन्तः**' का अर्थ '**नापित**' करते हैं। जो भी हो, महर्षि वाल्मीकि श्रीरामके राज्यकी विशेषताओंमें तीन बातें मुख्यतया बताते हैं—

१-सामान्य जनता नीरोग रहती थी।

२-बूढ़े भी स्वस्थ होनेके कारण शीघ्र नहीं मरते थे।

३-महिलाएँ भी स्वस्थ शरीरवाली होनेके कारण 'अरोगप्रसवा' थीं।

इस वर्णनसे संकेत मिलता है कि तत्कालीन भारतकी चिकित्सा-व्यवस्था नितान्त सफल एवं सर्वाङ्गीण थी। यथा—

अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम्॥
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव।
अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः॥

(वा० रा० ७। ४१। १८-१९)

[भरतजी श्रीरामजीसे कहते हैं कि हे राघव!] आपके राज्यमें अभिषिक्त हुए एक माससे अधिक हो गया, तबसे सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं। बूढ़े प्राणियोंके पास भी मृत्यु नहीं फटकती है। स्त्रियाँ बिना कष्टके प्रसव करती हैं। सभी मनुष्योंके शरीर हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते हैं।

इतना ही नहीं, समुचित और उच्च चिकित्साव्यवस्था होनेके कारण लोगोंको रोगका भय ही नहीं रह गया था—

न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति।

(वा० रा० ६। १२८। ९८)

हमारे पूर्वजन्मोंके पाप ही रोग बनकर प्रकट होते हैं, जो औषधिके साथ-साथ दान, हवन, व्रत और देवार्चनसे दूर होते हैं, यह श्रीधन्वन्तरिका कथन है—

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैः जपहोमसुरार्चनैः ॥

इस तथ्यपर भी तत्कालीन समाजका दृढ विश्वास था। तभी उस समयके स्त्री-पुरुष दान, पुण्य, व्रत किंवा भगवदाराधना-जैसे आध्यात्मिक क्रिया-कलाप रोगमुक्तिके लिये भी किया करते थे। श्रीहनुमान्‌जीके आविर्भावके समय वायुदेवताके प्रकुपित हो जानेपर जब मूत्रावरोध-जैसा भयंकर रोग फैल गया, तब स्त्री-पुरुषोंने सम्मिलित रूपसे वायुदेवताकी ही आराधना की और उनके कृपा-प्रसादसे रोगमुक्त हुए (वा०रा० ७। ३५-३६)।

शासकीय प्रणालीकी असफलतासे किंवा राष्ट्राध्यक्ष आदिके प्रमादसे ही जनपदोंमें रोग फैलते हैं, जिससे अकालमृत्यु-जैसी त्रासद घटनाएँ घटती हैं, यह भावना उस समय समाजमें बद्धमूल थी। इसलिये शासकीय व्यक्ति अपने आचरण एवं चिकित्सा-व्यवस्थापर भरपूर ध्यान दिया करते थे।

(शास्त्रार्थ-पञ्चानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

महर्षि वेदव्यासजीका आरोग्य-विषयक अवदान

महर्षि वेदव्यास भगवान् नारायणके अवतार हैं—**'व्यासो नारायणः स्वयम्', 'व्यासाय विष्णुरूपाय'**। वे अजर-अमर हैं तथा सभी आधि-व्याधियोंसे मुक्त हैं। महर्षि वेदव्यास सात चिरजीवियोंमेंसे एक हैं—**'अश्वत्थामा बलिर्व्यासः०'**।[1] सभी प्रकारकी आधि-व्याधियों तथा रोग-दोषोंसे मुक्तिके लिये और दीर्घ आयु एवं आरोग्यकी प्राप्तिके लिये पुण्यश्लोक भगवान् वेदव्यासजीका नित्य प्रातः स्मरण करना चाहिये। वेदव्यासजी परम भागवत हैं[2], जगत्‌पर इनका महान् उपकार है। सच्चे भक्तोंको ये आज भी दर्शन देते हैं और उनके कष्टोंका निवारण करके उन्हें भगवत्-पथका पथिक बना देते हैं।

महर्षि वेदव्यास वसिष्ठजीके प्रपौत्र, शक्ति ऋषिके पौत्र, पराशरजीके पुत्र तथा महाभागवत शुकदेवजीके पिता हैं। वे परम गुरु हैं। पुराणोंमें प्रसिद्धि है कि यमुनाके द्वीपमें उनका प्राकट्य हुआ, इसलिये वे द्वैपायन, श्याम (कृष्ण) वर्णके थे, इसलिये कृष्ण द्वैपायन और वेद-संहिताका उन्होंने विभाजन किया, इसलिये व्यास किंवा वेदव्यास कहलाते हैं। वे प्रकट होते ही युवा हो गये और वेदोंका उच्चारण करने लगे। भगवान् वेदव्यासकी कृपासे ही हमें ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि इस रूपमें प्राप्त हुए। अठारह पुराण तथा उपपुराण हमें उनके अनुग्रहसे ही प्राप्त हुए हैं। इतिहास (महाभारत), ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन), व्यासस्मृति तथा योगदर्शन (व्यासभाष्य) आदि सब वेदव्यासजीके द्वारा ही हमें प्राप्त हुए हैं। आजके विश्वका सारा ज्ञान-विज्ञान तथा सम्पूर्ण आरोग्यशास्त्र महर्षि वेदव्यासजीका उच्छिष्ट है—**'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'**। **'यन्न भारते तन्न भारते'** के अनुसार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदिके विषयमें जो उनके द्वारा कहा गया है, उसका ही अनुसरण अन्यत्र भी हुआ है, जो उन्होंने नहीं कहा, वह अन्यत्र भी नहीं मिलता।[3] उन्हींकी कृपासे श्रीमद्भगवद्गीता-जैसा ग्रन्थरत्न विश्वको प्राप्त हो सका है—**'व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्'** (गीता १८। ७५)। वे महाशाल शौनक आदि कुलपतियों, शंकराचार्य, गोविन्दाचार्य आदि विभूतियोंके भी परम गुरु हैं। उनकी सबपर समान रूपसे कृपा-दृष्टि है।

अपने अध्यात्म, तपोबल, ज्ञान-विज्ञान एवं आरोग्यदानके माध्यमसे उन्होंने प्राणिजगत्‌की जो सेवा की है, जो उपकार किया है, वह चिरस्मरणीय है। संसारके प्राणियोंके दुःख-दर्द, रोग-कष्टोंको देखकर आर्द्रहृदय महर्षि वेदव्यासजी सदा उनके व्याधिहरणका ही उपाय सोचा करते हैं। वेद-संहिताओंमें जो आरोग्यके मूल बीज सन्निहित थे, उन्हें उन्होंने सबके कल्याणके

---

१. अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

२. प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्। रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन् पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥

३. धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥

लिये पुराणोंमें विस्तृतरूपसे प्रकाशित कर दिया— **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्।'** उन्होंने वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र), श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें जहाँ अध्यात्म-चिकित्सा और भवरोगसे मुक्तिके उपायोंका निदर्शन किया है, वहीं कई पुराणों—गरुडपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्त तथा बृहद्धर्मपुराण आदिमें युक्तिव्यपाश्रय-चिकित्साके अवलम्बनसे पथ्यापथ्य-विचारपूर्वक औषध-सेवन तथा संयम-नियमके अनुपालनद्वारा सदा नीरोग रहनेकी जीवन-पद्धति भी निर्दिष्ट की है।

भगवान् वेदव्यासने शरीरमें स्थित कुपित दोषको सभी रोगोंका मूल कारण माना है और दोषके प्रकुपित होनेका कारण अनेक प्रकारके अहित पदार्थोंका सेवन भी बताया है। उन्होंने चार प्रकारके रोग बताये हैं—(१) शारीर, (२) मानस, (३) आगन्तुक तथा (४) सहज। ज्वर, कुष्ठ आदि शारीर रोग हैं, क्रोध आदि मानस रोग हैं, चोट आदिसे उत्पन्न रोग आगन्तुक हैं और भूख-बुढ़ापा आदि सहज रोग हैं—

शारीरमानसागन्तुसहजा व्याधयो मताः।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः॥
आगन्तवो विघातोत्थाः सहजाः क्षुज्जरादयः।

(अग्नि० २८०। १-२)

ओषधियोंमें अमोघ शक्ति होती है और उनमें देवताओंका निवास होता है। सोम (चन्द्रमा) ओषधियोंके अधिष्ठातृ देवता हैं। इसलिये ओषधियोंके चयन, उत्पाटन आदिमें जहाँ इनकी प्रार्थना आदि की जाती है, वहीं चिकित्सा करनेसे पूर्व औषध प्रदान करते समय तथा ओषधि-सेवन करते समय देवताओंसे दीर्घ आयु-आरोग्यप्राप्तिकी प्रार्थना करनी चाहिये, ऐसा महर्षि व्यासजी निर्देश देते हैं—

हरिगोद्विजचन्द्रार्कसुरादीन् प्रतिपूज्य च।
.. भेषजारम्भमाचरेत्॥

(अग्नि० २८०। १२)

अर्थात् भगवान् विष्णु, गोमाता, ब्राह्मण, चन्द्रमा, आरोग्यके अधिष्ठाता भगवान् सूर्य आदि देवताओंका पूजन करके चिकित्सा-कर्म किंवा औषध प्रारम्भ करे।

भगवान् वेदव्यासजी यह निर्देश करते हैं कि रोगीकी आरोग्य-प्राप्तिकी कामनासे औषध-कर्ममें निम्न प्रार्थना करनी चाहिये, ऐसा करनेसे औषधमें देवत्वकी प्रतिष्ठा हो जाती है, फलतः रोग दूर हो जाता है और आनन्दकी प्राप्ति होती है, मन्त्र इस प्रकार है—

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः।
ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु ते॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते॥

(अग्नि० २८०। १३-१४)

अर्थात् ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, भूमि, चन्द्रमा, सूर्य, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), ऋषि, ओषधिसमूह तथा भूतसमुदाय—ये तुम्हारी रक्षा करें। जैसे ऋषियोंके लिये रसायन, देवताओंके लिये अमृत तथा श्रेष्ठ नागोंके लिये सुधा ही उत्तम एवं गुणकारी है, वैसे ही यह औषध तुम्हारे लिये आरोग्यकारक एवं प्राणरक्षक हो।

गरुड, अग्नि आदि पुराणोंमें वेदव्यासजीने समग्र अष्टाङ्ग आयुर्वेदका वर्णन किया है। उन्होंने रोगोंके निदान, उनके उपचार, ओषधियों तथा सिद्धयोगोंके वर्णनके साथ ही रसायनशास्त्र, ऋतुचर्या, दिनचर्या, पथ्यापथ्य-विवेक, संयम, नियम, ग्रहदोष, अगदतन्त्र, बालग्रहदोष, स्त्रीचिकित्सा तथा मृत्युञ्जय-योग आदि बताये हैं। इसी प्रकार अश्वायुर्वेद, गजायुर्वेद, गवायुर्वेद तथा वृक्षायुर्वेद आदिका भी वर्णन किया है।

व्यासजी बताते हैं कि सामान्यतया ओषधियोंके निर्माणकी पाँच विधियाँ होती हैं, यथा—रस, कल्क, क्वाथ, शीतकषाय तथा फाण्ट। औषधोंको निचोड़नेसे रस होता है, मन्थनसे कल्क बनता है, औटानेसे क्वाथ होता है, रात्रिभर रखनेसे शीतकषाय तथा जलमें कुछ गरम करके छान लेनेसे फाण्ट होता है, यथा—

ओषधीनां पञ्चविधा तथा भवति कल्पना।
रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्च मनुजोत्तम॥
रसश्च पीडको ज्ञेयः कल्क आलोडिताद्भवेत्।
क्वथितश्च शृतो ज्ञेयः शीतः पर्युषितो निशाम्॥
सद्योभिशृतपूतं यत् तत् फाण्टमभिधीयते।

(अग्नि० २८१। २१-२३)

यह तो सामान्यतः स्थावर ओषधियोंद्वारा आरोग्य-प्राप्तिकी बात हुई। इसीके साथ ही वेदव्यासजी यह भी बताते हैं कि मन्त्रोंके जप, देवाराधन आदिद्वारा भी प्रारब्धजन्य रोगोंकी चिकित्सा होती है। उन्होंने मन्त्रोंको आयु और आरोग्यका कर्ता बताया है—**'आयुरारोग्यकर्तारम्'** (अग्नि० २८४। १)। वे बताते हैं कि **'ॐ हूं विष्णवे**

नमः' यह मन्त्र उत्तम औषध है। इसका जप करनेसे देवता और असुर श्रीसम्पन्न तथा नीरोग हो गये थे—

ॐ हूं नमो विष्णवे मन्त्रोऽयं चौषधं परम्॥
अनेन देवा ह्यसुराः सश्रियो नीरुजोऽभवन्।

(अग्नि० २८४।३-४)

इसी प्रकार सर्वोत्तम औषध क्या है? इसके विषयमें वे कहते हैं—

सर्वरोगप्रशान्त्यै स्याद्विष्णोर्ध्यानं च पूजनम्॥

(अग्नि० २८०।४८)

अर्थात् सब रोगोंकी शान्तिके लिये भगवान् विष्णुका ध्यान एवं पूजन सर्वोत्तम औषध है।

भगवान् व्यासदेव एक विलक्षण बात बतलाते हुए कहते हैं कि यदि मानव जगत्के सब प्राणियोंमें भगवद्बुद्धि या आत्मबुद्धि या परमात्म-बुद्धिकी भावना करते हुए सबके उपकारका व्रत ले ले और सदैव धर्माचरण करे तो वह सदाके लिये रोगोंसे मुक्त हो जायगा और भवरोगसे भी छुटकारा प्राप्त कर लेगा। इसे उन्होंने महौषध (महान् औषध) बताया है—

'भूतानामुपकारश्च तथा धर्मो महौषधम्।'

(अग्नि० २८४।४)

व्यासजीकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका स्मरण करनेसे उनकी कृपाद्वारा उत्तम स्वास्थ्य एवं अखण्ड भक्ति—दोनों प्राप्त होती है, कलिका कोई प्रभाव नहीं होने पाता, ऐसे भगवान् व्यासको नमस्कार है—

व्यासं व्यासकरं वन्दे मुनिं नारायणं स्वयम्।
यतः प्राप्तकृपालोकाल्लोका मुक्ताः कलेर्ग्रहात्॥

श्रीमद्भगवद्गीतामें आरोग्य-उक्ति

तनरोग, मनोरोग और भवरोगसे मुक्त रहना सच्चा आरोग्ययुक्त होना है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें 'युक्त' के ग्रहण और 'अति' के त्यागद्वारा तनरोगसे, आन्तरिक विकारोंके त्यागद्वारा मनोरोगसे और भगवच्छरणापन्न होकर भवरोगसे छुटकारा पानेकी युक्ति बतायी है।

जड़-चेतन सभीको नीरोगी होना जरूरी है। पौधे और वृक्ष भी यदि रुग्ण रहें तो शुद्ध फूल और फल नहीं हो सकते। इसलिये नीरोगिता सबके लिये अनिवार्य वस्तु है। चेतन प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ मनुष्यके लिये तो कहना ही नहीं है। व्याधिग्रस्त तन-मनवाले व्यक्तिसे कुछ नहीं बन सकता। स्वस्थ मन और नीरोग शरीरवाला मनुष्य ही मानव-जीवनके उद्देश्यको सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। शरीरकी भी अपेक्षा मनका नीरोग रहना अत्यावश्यक है; क्योंकि शरीरकी व्याधि असाध्य होकर अन्तिम स्थितिमें पहुँचनेपर इस वर्तमान स्थूल शरीरका अन्त हो जाता है—

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २।२२)

अर्थात् जीर्ण हुए शरीरोंको त्यागकर जीवात्मा दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।

जीर्ण शरीरसे जीव निकल जानेपर इस वर्तमान स्थूल शरीरसे तो छुटकारा मिल जाता है, पर मन व्याधिग्रस्त रहनेपर जन्म-जन्मान्तर बिगड़ जाता है। व्याधिग्रस्त मन जीवको अधोगतिमें ले जाता है, यह निश्चित है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्णने नीरोग—ज्वररहित मनसे संतापरहित होकर कर्म करनेको कहा है—

युध्यस्व विगतज्वरः

(गीता ३।३०)

व्यग्रता, आसक्ति, ममता, चिन्ता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अहंकार, असहिष्णुता, अधैर्य और दर्प आदि मनकी व्याधियाँ हैं। इनके वशीभूत होना मानसिक व्याधिग्रस्त होना है। इन्हीं व्याधियोंको भगवान् श्रीकृष्णने 'ज्वर' कहा है। जो इन व्याधियोंसे मुक्त रहता है यानी काम, क्रोधादिके वेगोंको सहन-दमन कर सकता है, वही व्यक्ति सुखी रह सकता है—वही योगी हो सकता है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(गीता ५।२३)

इन व्याधियोंसे युक्त रहनेवाला मन ही मानवका शत्रु है और इनसे विपरीत यानी इनके वशमें न होकर स्वस्थ रहनेवाला मन ही मानवका मित्र है—

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

(गीता ६।६)

अर्थात् जिस जीवात्माद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उसका तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें वर्तता है।

ऐसे मित्ररूप मनका सहारा लेकर परमपदकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहना ही मनुष्यमात्रका कर्तव्य है—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥

(गीता १५।४)

उस (आसक्ति आदिसे रहित होने)-के पश्चात् उस परमपद (परमात्मा)-को ढूँढ़ना चाहिये, जिसमें पहुँच जानेपर (जिसको पा जानेपर) फिर लौटकर (संसारमें) नहीं आना पड़ता। मैं उन्हीं आदिपुरुषकी शरणमें पहुँचूँ, जिनसे अनादिकालसे चली आयी सृष्टि विस्तारको प्राप्त हुई है।

इस मानव-शरीरकी प्राप्ति बहुत दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद भगवान्की अहैतुकी कृपासे यह योनि मिल पाती है। ऐसी पवित्र और दुर्लभ योनिको पाकर भी इन्द्रियोंके भोगोंमें ही सुख मानकर आयुको गँवाना बुद्धिमानी नहीं है। भगवान् श्रीराम अपने प्रजाजनोंको सम्बोधित करते हैं—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

× × ×

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। ....॥

(रा०च०मा० ७।४३।७-८, ४३; ४४।१-२, ४—७)

अज्ञानवश आसक्त होकर जीव जबतक कर्म करता रहेगा, तबतक विषयोंमें उसकी लिप्सा रहेगी। लिप्साके कारण वह कर्म करेगा और उससे शुभ तथा अशुभ कर्म बनता रहेगा। इन्द्रियोंके अधोगामी होनेके कारण उनसे प्रायः अशुभ कर्म यानी अधर्म ही बनते हैं। अधर्मका फल बुरा ही होता है। जब वे कर्मके फलस्वरूप अनेक कष्ट भोगते हैं, तब वे ईश्वरको दोषी मानकर चिल्लाते—रोते रहते हैं और कहते हैं—ईश्वरने मुझे ऐसा कष्ट दिया। वे अपने दूषित कर्मोंके फलस्वरूप भोगनेको मिला हुआ दुःख नहीं मानते। यदि उनसे कुछ पुण्य हो भी गया तो भी उस पुण्यके प्रभावसे जो स्वर्गादि भोग या इस लोकमें ऐश्वर्य अथवा इच्छित वस्तुकी प्राप्ति हो भी जाय तो वह सुख-भोग सदा रहनेवाला नहीं होगा और भोग भोगते-भोगते बीती आयुकी सुध भी नहीं रहेगी। परिणाम यह होता है कि उस भोगसे उसे तृप्ति भी नहीं होती। महाराज ययाति हजारों-हजार वर्षोंतक सशक्त इन्द्रियोंसे सुख भोगते रहे, पर उस भोगसे उनकी तृप्ति नहीं हो सकी और उन भोगोंसे ऊबकर उन्होंने अन्तमें कहा—

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत्।
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते॥

(श्रीमद्भा० ९।१९।१३-१४, १८)

अर्थात् पृथ्वीमें जितने भी धन-धान्य, (हाथी, घोड़े और गाय आदि) पशु और स्त्रियाँ आदि वस्तुएँ हैं, कोई भी उस पुरुषके मनको तृप्त नहीं कर सकता, जिसका मन कामवासनासे हरण हो चुका हो। विषयानुरागियोंकी कामनाएँ भोगोंके भोगनेसे कभी शान्त नहीं हो सकतीं। जैसे प्रज्वलित अग्निमें घी डालनेसे आग नहीं बुझती, वरन् और अधिक भभक उठती है। पूरे एक हजार वर्ष विषयोंको भोगते-भोगते मैंने बिताया, इतनेपर भी मेरी तृप्ति होना तो दूर भोग भोगनेकी तृष्णा बढ़ती ही जा रही है।

इस प्रकार क्षणिक सुख एवं दीर्घ दुःखसे होनेवाली मनकी हर्ष और विषादकी दशा बने रहना ही मानसिक

व्याधि है। इस व्याधिको मिटानेकी औषधि है—धैर्य और श्रद्धाको अपनाते हुए विषयोंकी अनित्यता तथा दुःखरूपताको[1] समझते हुए भगवान्‌की शरणमें जाना—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥[2]

(गीता ९।३३)

भगवान्‌को सम्पूर्ण लोकोंका महान् ईश्वर, सम्पूर्ण यज्ञ और तपस्याओंका स्वामी, सभी प्राणियोंका अहैतुकी स्नेहदाता समझकर मनको उन्हींकी ओर लगानेका प्रयास करते रहना चाहिये—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५।२९)

हमारा मन जितना-जितना परमात्माकी ओर झुकता जायगा, उतनी-उतनी मनमें शान्ति आती जायगी। जहाँ शान्ति आयी, मन प्रसन्न हो जायगा। प्रसन्नता आनेपर मनका उद्वेग मिट जाता है। मनका उद्वेग मिटना ही दुःखोंकी परिसमाप्ति है—'**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते**' (गीता २।६५)। दुःखका अन्त होना ही आरोग्यकी सच्ची प्राप्ति है। इस तरहकी आरोग्यता प्राप्त करना ही मानव-जीवनका पुरुषार्थ है।

इस आन्तरिक आरोग्यकी प्राप्तिके लिये स्थूल शरीरका स्वस्थ रहना जरूरी है। शारीरिक रोगजनित कष्टके रहते साधनमें सधैर्य जुटे रह सकनेकी शक्ति किसी बिरले संतमें ही हो सकती है। इसलिये कहा है—

'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' यानी शारीरिक स्वस्थताके लिये जीवन संयमी होना चाहिये। कोई असंयमी व्यक्ति नीरोगतारूपी सिद्धि नहीं पा सकता—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(गीता ६।१६-१७)

'अधिक खानेवाला या बिलकुल कम खानेवाला, अधिक सोनेवाला या अधिक जागनेवाला व्यक्ति (मनको वशमें करनेवाली सिद्धिरूप-) योगको नहीं पा सकता। इस दुःखको मिटानेवाले योगको तो ठीक-ठीक खाने-सोनेवाला, ठीक-ठीक कर्म करनेवाला और उचित मात्रामें चलने-फिरनेवाला व्यक्ति ही सिद्ध कर सकता है।'

जीभको मीठी लगनेवाली वस्तु मिली, ठूँस-ठूँसकर खाया; मनोवाञ्छित चीज न मिली, दिनभर भूखे रहा; सिनेमा-नाटक देखने गया, रात-रातभर जागता रहा; कभी आलसमें दस-दस घंटे सोता रहा—ऐसा व्यक्ति कभी मनकी शान्ति—नीरोगत्व पानेके साधनमें सिद्ध नहीं हो सकता। शरीरके साथ मनके आरोग्य-लाभके इच्छुकको तो खान-पान, सोने-जागने और काम करनेमें संयमसे रहना जरूरी है। प्रकृतिके अनुकूल नपा-तुला और (न्यायपूर्वक उपार्जित) शुद्ध भोजनसे शरीर स्वस्थ तथा बुद्धि निर्मल होती है—'**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः**' (छान्दोग्य० ७।२६।२)। स्वस्थ शरीरके लिये उपर्युक्त सावधानीके साथ-साथ चलना-फिरना तथा टहलना भी आवश्यक है। टहलनेके अतिरिक्त व्यायाम भी कर सकते हैं। पर व्यायाम भी सोच-समझकर पूरी जानकारी प्राप्त करके ही करना चाहिये, जो शरीरके उपयुक्त और अनुकूल हो। इससे अधिक और बिना जानकारीके किये गये व्यायामसे लाभकी जगह हानि हो सकती है। कहावत भी है—***'देखादेखी साधै जोग, छीजै काया बाढ़ै रोग।'***

आहारके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने '**अश्नतः**' और '**आहारः**'—ये दो शब्द कहे हैं। आहार वह वस्तु है, जिसे ग्रहण करनेसे मन-प्राण और शरीर चल पाते हैं। अब यह जान लेना आवश्यक है कि वह आहार क्या है और कौन वस्तु किसको अच्छी लगती है, उसे प्रयोग करनेवालेकी प्रकृति कैसी है तथा उसके प्रयोगसे कैसा फल मिलता है? इस विषयको भगवान्‌ने गीताके सत्रहवें अध्यायमें स्पष्ट किया है। सृष्टि त्रिगुणात्मिका होनेसे आहारको उपभोगमें लानेवाले भी तीन प्रकारके होते हैं—सत्त्व, रज और तमोगुणी स्वभाववाले। अपनी-

१. ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (गीता ५।२२)

इन्द्रियोंका विषयोंके साथ मेल हो जानेपर जो सुख भासते हैं, वे दुःखके ही कारण हैं। दीखनेवाला अनित्य है। ज्ञानीजन उनमें लिप्त नहीं होते।

२. अनित्य (सदा न रहनेवाला) तथा सुखसे रहित इस लोकको पाकर मेरा (परमात्मप्रभुका) भजन करो।

अपनी प्रकृति (स्वभाव)-के अनुसार ही मानवोंको आहार अच्छा लगता है और उन वस्तुओंके सेवनके परिणाम भी अलग-अलग होते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

आयु:सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना:।
रस्या: स्निग्धा: स्थिरा हृद्या आहारा: सात्त्विकप्रिया:॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिन:।
आहारा राजसस्येष्टा दु:खशोकामयप्रदा:॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

(गीता १७।८—१०)

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, स्निग्ध (चिकने) एवं मनको स्वभावसे ही प्रिय लगनेवाले तथा स्थायी—चिर (अधिक कालतक) प्रभाववाले भोजन सात्त्विक स्वभाववालोंको रुचिकर लगते हैं।

अति कड़ुवा (तिक्त और चरपरा), खट्टा, नमकीन, अत्यधिक उष्ण, तीखा, रूखा, दाहकारक, दु:ख-पीडा और रोग पैदा करनेवाला भोजन राजसी है। ऐसा भोजन राजसी स्वभाववालोंको अच्छा लगता है।

अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और जूठन (खानेसे बचा हुआ) आहार तामसी होता है, तामसी स्वभाववालोंको ऐसा भोजन अच्छा लगता है।

इस प्रकार गीतोक्त युक्त आहार-विहार आदिके सेवनसे तथा मानसिक कटुताका त्याग कर भगवच्छरणका अवलम्ब लेकर चला जाय तो तनरोग, मनोरोग और भवरोग सदाके लिये समाप्त हो जायँगे तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आरोग्य सदा बना रहेगा।

[श्रीनारायणप्रसादजी श्रेष्ठ]

गोस्वामी तुलसीदासजीकी आरोग्य-साधना

पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति मानव-जीवनका लक्ष्य है और उसकी प्राप्तिका माध्यम है—स्वस्थ शरीर। यथा—'**धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्**' (च०सं०सू० १। १५)। स्वस्थ शरीर ही साधन-भजन, चिन्तन-मनन, निदिध्यासन आदि करनेमें समर्थ होता है। इसीलिये सद्ग्रन्थोंमें स्वस्थ जीवनकी चर्चा प्राय: किसी-न-किसी रूपमें मिल जाती है। तुलसी-साहित्यमें भी यह चर्चा यथास्थान उपलब्ध है। शरीर और मन दोनोंके स्वस्थ रहनेकी अपेक्षा है, इसीलिये तुलसीरचित काव्योंमें दोनोंकी चर्चा यथास्थान संनिहित है। धर्म-साधनके लिये शरीरकी अनिवार्य आवश्यकता है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

शरीर विकारग्रस्त होता रहता है। इससे यह क्षीण और दुर्बल हो जाता है। यह विकार मिथ्या आहार-विहारजनित है। शरीरके क्षीण होनेसे आनन्दकी स्थिति बिगड़ जाती है और तब मनुष्य आनन्द खोकर कष्टका अनुभव करता है। इन सारी बातोंका विशद विवेचन तुलसी-साहित्यमें यथास्थान उपलब्ध है। सर्वप्रथम हम शरीरके आरोग्यकी बात सोचें। इस शरीर-रोगके तीन भेद बताये गये हैं—दैहिक, दैविक और भौतिक। दैहिक रोगका सम्बन्ध व्रण तथा ज्वर आदिसे है। दैविकका सम्बन्ध किसी देवताके कोपजनित शापादिसे है। इसके निराकरणके उपाय भी बताये गये हैं। तुलसीदासजी स्वयं एक बार बाहु-पीडासे ग्रस्त हो गये थे। अपनी रचना हनुमानबाहुकमें उन्होंने इस पीडाका बड़ा ही सजीव चित्रण किया है—

पायँपीर पेटपीर बाँहपीर मुँहपीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है।

(हनुमानबाहुक ३८)

इस रोगके निवारणके लिये उन्होंने हनुमान्‌जीसे प्रार्थना की। उनके विश्वासके अनुसार यह रोग इन्हीं कारणोंसे हुआ है—

आपने ही पापतें त्रितापतें कि सापतें,
बढ़ी है बाँहबेदन कही न सहि जाति है।

(हनुमानबाहुक ३०)

इसके निवारणार्थ अनेक उपचार किये गये—

औषध अनेक जंत्र-मंत्र-टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है॥

(हनुमानबाहुक ३०)

सबसे हार मानकर अन्तमें उन्होंने हनुमान्‌जीकी

शरण ली और कहा—

बाँह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये॥

(हनुमानबाहुक २०)

फिर उन्होंने अपने इष्ट श्रीरामसे यही विनय की—

बाँहकी बेदन बाँहपगार
पुकारत आरत आनँद भूलो।
श्रीरघुबीर निवारिये पीर
रहौं दरबार परो लटि लूलो॥

(हनुमानबाहुक ३६)

इस रोगका कोई निराकरण न देख क्षुब्ध होकर उन्होंने मान लिया कि यह इस जन्मके या विगत जन्मके किसी अपराधका फल है और यह कर्म-फल भोगना ही है—

तुम्हतें कहा न होय हाहा सो बुझैये मोहि,
हौं हूँ रहों मौन ही बयो सो जानि लुनिये॥

(हनुमानबाहुक ४४)

प्राय: छोटे-छोटे बच्चोंको जब किसीकी भी नजर लग जाती है और वे अत्यन्त कष्टमें हो जाते हैं, तब न तो माँका दूध लेते हैं और न ही चैनसे रह पाते हैं। उनकी शान्तिके लिये मन्त्रोंका प्रयोग और टोटकाका भी प्रयोग किया जाता है। गीतावलीमें भगवान् रामकी यही दशा हो गयी है। इसके निवारणके लिये गुरु वसिष्ठजी आते हैं। उस समय भी बालक रामकी वही अवस्था रहती है—

आजु अनरसे हैं भोरके, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावत हू, रोवत राम मेरो
सो सोच सबहीके॥

× × ×

बेगि बोलि कुलगुर, छुऔ माथे हाथ अमीके।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े, जो
जो सुमिरत भय भीके॥

(गीता० बालकाण्ड १२)

आरोग्य रहनेके लिये तुलसी-काव्यमें आहार और विहारपर विशेष विचार किया गया है। आहार-विहारकी उपेक्षा शारीरिक रोगके कारण हैं। भोजन क्या और कितना करना चाहिये, इसके सम्बन्धमें यह द्रष्टव्य है—

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥

(रा०च०मा० ७। ११९। ९)

भोजन केवल स्वादके लिये नहीं, प्रत्युत आरोग्य-वृद्धिके लिये ही होना चाहिये।

सरुज सरीर बादि बहु भोगा।

(रा०च०मा० २। १७८। ५)

प्रभुका अवतार पथभ्रष्ट लोगोंको सन्मार्गपर लानेके लिये ही होता है। अपने इष्ट रामके जीवनमें तुलसीदासजीने सदाचार और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले व्यवहारोंका दिग्दर्शन कराया है, जिनका अनुसरण कर हम सच्चरित्र एवं नीरोग रह सकते हैं। श्रीरामके उठने-बैठने, खाने-पीने तथा खेलने आदिके सम्बन्धमें चर्चा करके तुलसीदासजीने प्रेरणा लेनेकी बात बतायी है। कितना उदात्त चरित्र है भगवान् श्रीरामका! यथासमय सोने, जागने और नित्यक्रियासे निवृत्त होनेका कितना अच्छा वर्णन मानसमें मिलता है! भोजनके बाद गुरुसेवा और तब शयन। पहले गुरु सोते हैं, फिर राम; और राम लक्ष्मणसे सोनेके लिये कहते हैं। साँझ होती है, दोनों भाई संध्या-वन्दनके लिये चले जाते हैं—

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

(रा०च०मा० १। २२६। १—३, ६)

पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता।

(रा०च०मा० १। २२६। ८)

जगनेका भी यही क्रम है।

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

(रा०च०मा० १। २२६)

और तब—

सकल सौच करि जाइ नहाए।

(रा०च०मा० १। २२७। १)

—ये हैं स्वास्थ्यके नियम। इनका पालन करनेसे

आरोग्य-लाभ होता है। इस प्रकारके अनेक उदाहरण तुलसीकाव्यमें उपलब्ध हैं, जिनका अनुसरण आरोग्यदायक है। शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये संयम आवश्यक है और रोगग्रस्त होनेपर उपयुक्त औषध भी। उपचारकी भी आवश्यकता कम नहीं है। लक्ष्मणको जब शक्तिबाण लगा था और उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी तब हनुमान्‌जी श्रीरामकी आज्ञासे वैद्यको बुला लाये और ओषधि लायी गयी। इस कथाका उल्लेख मानसमें है।

तुलसीदासजीने पापको रोगोंकी जड़ माना है। कृतघ्नताको सबसे बड़ा पाप कहा है। ये पाप रोगके रूपमें प्रकट होते हैं—

तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिंधु आपने सुभायको॥
नीच यहि बीच पति पाइ भरुहाइगो,
बिहाइ प्रभु-भजन बचन मन कायको।
तातें तनु पोषियत घोर बरतोर मिस,
फूटि फूटि निकसत लोन रामरायको॥

(हनुमानबाहुक ४१)

मानस-रोगकी चर्चा काकभुशुण्डि-गरुड-प्रसंगमें मिलती है। भुशुण्डिने गरुडके पूछनेपर कहा था—

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। ७)

इस क्रममें भुशुण्डिजीने कुछ मानस-रोगोंका उल्लेख किया है, वे हैं—काम, लोभ, क्रोध, मनोरथ, ममता, दुष्टता, अहंकार, तृष्णा, मत्सर आदि। जिन्हें ये रोग लगते हैं, उनकी दशा खिन्न-सी हो जाती है। मोह तो सम्पूर्ण व्याधियोंकी जड़ है—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। २८—३१)

विषय तथा मनोरथ आदि अनेक रोग हैं, इनका वर्णन कहाँतक किया जाय? मनुष्यके मरनेके लिये एक ही व्याधि पर्याप्त है और जिनके पास इतनी व्याधियाँ हैं, उनका क्या कहना?

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

(रा०च०मा० ७। १२१ क)

इस संदर्भमें एक और प्रसंग उल्लेखनीय है और वह है—रामवनगमनके बाद भरतजीके राज्याभिषेकसे सम्बन्धित विचारका। भरतजी शोकाकुल हैं। गुरु, माता, मन्त्री, प्रजा और पुरजन—सभीकी राय इन्हें राजतिलक देनेकी है। इतनी बड़ी सभाको भरतजी क्या उत्तर दें—यह सोचकर उनका मन उद्विग्न हो रहा है। भरतजी चिन्ताकुल हो रहे हैं।

माता कौसल्याने स्पष्ट कर दिया है—

'गुर बिबेक सागर जगु जाना।'

(रा०च०मा० २। १८२। १)

और इसलिये—

'पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥'

(रा०च०मा० २। १७६। १)

परंतु भरतजीके मनको परितोष नहीं है। उनका हृदय दग्ध हो रहा है—

एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥

(रा०च०मा० २। १८२। ६)

और इसी कारण वे रामका दर्शन चाहते हैं। उनका विश्वास है—

देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥

(रा०च०मा० २। १८२)

और इस प्रकार चित्रकूटमें जाकर रामके दर्शनसे श्रीभरतको संतोष मिलता है, परितोष होता है और बहुत हदतक इस मानस-रोगकी निवृत्ति हो जाती है। अत: भगवत्-शरण एक ऐसी ओषधि है, जो हर प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोगोंसे मनुष्यको छुटकारा दिला सकती है।

[डॉ० श्रीशुकदेवजी राय एम्०ए०,
पी-एच्०डी, साहित्यरत्न]

आयुर्वेदकी आचार्य-परम्परा और आरोग्य-साधना *

समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गलकारी बीजस्वरूप सनातन परमेश्वरने मङ्गलके आधारभूत चार वेदोंको प्रकट किया। उनके नाम हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व। उन वेदोंको देखकर और उनके अर्थका विचार करके प्रजापतिने आयुर्वेदका संकलन किया। इस प्रकार पञ्चम वेदका निर्माण करके भगवान्ने उसे सूर्यदेवके हाथमें दे दिया। उससे सूर्यदेवने एक स्वतन्त्र संहिता बनायी। फिर उन्होंने अपने शिष्योंको अपनी वह 'आयुर्वेदसंहिता' दी और पढ़ायी। तत्पश्चात् उन शिष्योंने भी अनेक संहिताओंका निर्माण किया। उन विद्वानोंके नाम और उनके द्वारा रचे हुए तन्त्रोंके नाम, जो रोगनाशके बीजरूप हैं इस प्रकार है—

धन्वन्तरि, काशिराज, दिवोदास, दोनों अश्विनीकुमार, नकुल, सहदेव, सूर्यपुत्र यम, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, करथ और अगस्त्य।

ये सभी विद्वान् वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता तथा रोगोंके नाशक (वैद्य) हैं। सबसे पहले भगवान् धन्वन्तरिने **'चिकित्सा-तत्त्वविज्ञान'** नामक एक मनोहर तन्त्रका निर्माण किया। काशिराजने **'दिव्य चिकित्सा-कौमुदी'** का प्रणयन किया। दिवोदासने **'चिकित्सा-दर्पण'** नामक ग्रन्थ रचा। दोनों अश्विनीकुमारोंने **'चिकित्सा-सारतन्त्र'** की रचना की, जो भ्रमका निवारण करनेवाला है। नकुलने **'वैद्यकसर्वस्व'** नामक तन्त्र तथा सहदेवने **'व्याधिसिन्धुविमर्दन'** नामक ग्रन्थ तैयार किया। यमराजने **'ज्ञानार्णव'** नामक महातन्त्रकी रचना की और भगवान् च्यवन मुनिने **'जीवदान'** नामक ग्रन्थ निर्मित किया। योगी जनकने **'वैद्यसंदेहभञ्जन'** नामक ग्रन्थ लिखा। चन्द्रकुमार बुधने **'सर्वसार'**, जाबालने **'तन्त्रसार'** और जाजलि मुनिने **'वेदाङ्ग-सार'** नामक तन्त्रकी रचना की। पैलने **'निदान-तन्त्र'**, करथने उत्तम **'सर्वधर-तन्त्र'** तथा अगस्त्यजीने **'द्वैधनिर्णय'** तन्त्रका निर्माण किया।

ये सोलह तन्त्र चिकित्सा-शास्त्रके बीज हैं, रोग-नाशके कारण हैं तथा शरीरमें बलका आधान करनेवाले हैं। आयुर्वेदके समुद्रको ज्ञानरूपी मथानीसे मथकर विद्वानोंने उससे नवनीत-स्वरूप ये तन्त्र-ग्रन्थ प्रकट किये हैं। आयुर्वेदके अनुसार रोगोंका परिज्ञान करके वेदनाको रोक देना—इतना ही वैद्यका वैद्यत्व है। वैद्य आयुका स्वामी नहीं है—वह उसे घटा अथवा बढ़ा नहीं सकता। चिकित्सक आयुर्वेदका ज्ञाता, चिकित्साकी क्रियाको यथार्थरूपसे जाननेवाला धर्मनिष्ठ और दयालु होता है; इसलिये उसे 'वैद्य' कहा गया है।

दारुण ज्वर समस्त रोगोंका जनक है। उसे रोकना कठिन होता है। वह शिवका भक्त और योगी है। उसका स्वभाव निष्ठुर और आकृति विकृत (विकराल) है। उसके तीन पैर, तीन सिर, छः हाथ और नौ नेत्र हैं। वह भयंकर ज्वर काल, अन्तक और यमके समान विनाशकारी है। भस्म ही उसका अस्त्र है तथा रुद्र उसके देवता हैं। मन्दाग्नि उसका जनक है। मन्दाग्निके जनक तीन हैं—वात, पित्त और कफ। ये ही प्राणियोंको दुःख देनेवाले हैं। वातज, पित्तज और कफज—ये ज्वरके तीन भेद हैं। एक चौथा ज्वर भी होता है, जिसे त्रिदोषज भी कहते हैं। पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूलक, ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, खाँसी, व्रण (फोड़ा), हलीमक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार या रक्तदोषसे उत्पन्न होनेवाला गुल्म, विषमेह, कुब्ज, गोद, गलगण्ड (घेघा), भ्रमरी, संनिपात, विषूचिका (हैजा) और दारुणी आदि अनेक रोग हैं। इन्हींके भेद और प्रभेदोंको लेकर चौंसठ रोग माने गये हैं। ये चौंसठ रोग मृत्युकन्याके पुत्र हैं और जरा उसकी पुत्री है। जरा अपने भाइयोंके साथ सदा भूतलपर भ्रमण किया करती है।

नीरोग कौन रहता है? तथा किसे वृद्धावस्था नहीं आती?

रोग उस मनुष्यके पास नहीं जाते, जो इनके

* ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वैद्यकसंहिताका वर्णन, आयुर्वेदकी आचार्य-परम्परा, उसके प्रमुख सोलह विद्वानों तथा उनके द्वारा रचित प्रमुख तन्त्रोंके नामका निर्देशन, ज्वर आदि चौंसठ रोग, उनके हेतुभूत वात, पित्त तथा कफकी उत्पत्तिके कारण और उनके निवारणके उपायोंका विवेचन हुआ है, जो यहाँ प्रस्तुत है।

निवारणका उपाय जानता है और संयमसे रहता है। उसे देखकर रोग उसी तरह भागते हैं, जैसे गरुड़को देखकर साँप। नेत्रोंको जलसे धोना, प्रतिदिन व्यायाम करना, पैरोंके तलवोंमें तेल मलना, दोनों कानोंमें तेल डालना और मस्तकपर भी तेल रखना—यह प्रयोग जरा और व्याधिका नाश करनेवाला है। जो वसन्त-ऋतुमें भ्रमण, स्वल्पमात्रामें अग्निसेवन तथा नयी अवस्थावाली भार्याका यथासमय उपभोग करता है, उसके पास जरा अवस्था नहीं जाती। ग्रीष्म-ऋतुमें जो तालाब या पोखरेके शीतल जलमें स्नान करता, घिसा हुआ चन्दन लगाता और वायुसेवन करता है, उसके निकट जरा अवस्था नहीं जाती। वर्षा-ऋतुमें जो गरम जलसे नहाता, वर्षाके जलका सेवन नहीं करता और ठीक समयपर परिमित भोजन करता है, उसे वृद्धावस्था नहीं प्राप्त होती। जो शरद्-ऋतुकी प्रचण्ड धूपका सेवन नहीं करता, उसमें घूमना-फिरना छोड़ देता है तथा कुएँ, बावड़ी या तालाबके जलमें नहाता है और परिमित भोजन करता है, उसके पास वृद्धावस्था नहीं फटक पाती। जो हेमन्त-ऋतुमें प्रातःकाल अथवा पोखरे आदिके जलमें स्नान करता, यथासमय आग तापता, तुरंतकी तैयार की हुई गरम-गरम रसोई खाता है, उसके पास जरा-अवस्था नहीं जाती। जो शिशिर-ऋतुमें गरम कपड़े, प्रज्वलित अग्नि और नये बने हुए गरम-गरम अन्नका सेवन करता है तथा गरम जलसे ही स्नान करता है, उसके समीप वृद्धावस्थाकी पहुँच नहीं हो पाती।

जो तुरंतके बने हुए ताजे अन्नका, खीर और घृतका उचित सेवन करता है, वृद्धावस्था उसके निकट नहीं जाती। जो भूख लगनेपर ही उत्तम अन्न खाता तथा प्यास लगनेपर ठंडा जल पीता है, उसके पास वृद्धावस्था नहीं पहुँच पाती। जो प्रतिदिन दही, ताजा मक्खन और गुड़ खाता तथा संयमसे रहता है, उसके समीप जरावस्था नहीं जा पाती।

जो मांस, वृद्धा स्त्री, नवोदित सूर्य तथा तरुण दधि (पाँच दिनके रखे हुए दही)-का सेवन करता है, उसपर जरावस्था अपने भाइयोंके साथ हर्षपूर्वक आक्रमण करती है। जो रातको दही खाते हैं, कुलटा एवं रजस्वला स्त्रीका सेवन करते हैं, उनके पास भाइयोंसहित जरावस्था बड़े हर्षके साथ आती है। रजस्वला, कुलटा, विधवा, जारदूती, शूद्रके पुरोहितकी पत्नी तथा ऋतुहीना जो स्त्रियाँ हैं, उनका अन्न ग्रहण करनेवाले लोगोंको बड़ा पाप लगता है। उस पापके साथ ही जरावस्था उनके पास आती है। रोगोंके साथ पापोंकी सदा अटूट मैत्री होती है। पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकारके विघ्नोंका बीज है। पापसे रोग होता है, पापसे बुढ़ापा आता है और पापसे ही दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोककी उत्पत्ति होती है। वह महान् वैर उत्पन्न करनेवाला, दोषोंका बीज और अमङ्गलकारी होता है। इसलिये भारतके संत पुरुष सदा भयातुर हो कभी पापका आचरण नहीं करते—

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयङ्करः॥
तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम्।
भारते संततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः॥

(ब्रह्मखण्ड १६। ५१-५२)

जो अपने धर्मके आचरणमें लगा हुआ है, भगवान्‌के मन्त्रकी दीक्षा ले चुका है, श्रीहरिकी समाराधनामें संलग्न है, गुरु, देवता और अतिथियोंका भक्त है, तपस्यामें आसक्त है, व्रत और उपवासमें लगा रहता है और सदा तीर्थसेवन करता है, ऐसे पुरुषोंके पास जरा-अवस्था नहीं जाती है और न दुर्जय रोगसमूह ही उसपर आक्रमण करते हैं।

त्रिदोष

वात, पित्त और कफ—ये तीन ज्वरके जनक हैं। जब भूखकी आग प्रज्वलित हो रही हो और उस समय आहार न मिले तो प्राणियोंके शरीरमें मणिपूरक* चक्रमें पित्तका प्रकोप होता है। ताड़ और बेलका फल खाकर तत्काल जल पी लिया जाय तो वही सद्यः प्राणनाशक पित्त हो जाता है। जो दैवका मारा हुआ पुरुष शरद्-

* तन्त्रके अनुसार छः चक्रोंमेंसे तीसरा चक्र, जिसकी स्थिति नाभिके पास मानी जाती है। यह तेजोमय और विद्युत्‌के समान आभावाला है। इसका रंग नीला है। इसमें दस दल होते हैं और उन दलोंपर 'ड'से लेकर 'फ' तकके अक्षर अङ्कित हैं। वह चक्र शिवका निवासस्थान माना जाता है। उसपर ध्यान लगानेसे सब विषयोंका ज्ञान हो जाता है।

ऋतुमें गरम पानी पीता और भाद्रपदमासमें तिक्त भोजन करता है, उसका पित्त बढ़ जाता है। धनिया पीसकर उसे शक्करके साथ ठंडे जलमें घोल दिया जाय तो उसको पीनेसे पित्तकी शान्ति होती है। चना, सब प्रकारका गव्य पदार्थ, तक्ररहित दही, पके हुए बेल और ताड़के फल, ईखके रससे बनी हुई सब वस्तुएँ, अदरक, मूँगकी दालका जूस तथा शर्करामिश्रित तिलका चूर्ण—ये सब पित्तका नाश करनेवाली ओषधियाँ हैं, जो तत्काल बल और पुष्टि प्रदान करती हैं। भोजनके बाद तुरंत स्नान करना, बिना प्यासके जल पीना, सारे शरीरमें तिलका तेल मलना, स्निग्ध तैल तथा स्निग्ध आँवलेके द्रवका सेवन, बासी अन्नका भोजन, तक्रपान, केलेका पका हुआ फल, दही, वर्षाका जल, शक्करका शर्बत, अत्यन्त चिकनाईसे युक्त जलका सेवन, नारियलका जल, बासी पानीसे रूखा स्नान (बिना तेल लगाये नहाना), तरबूजके पके फल खाना, ककड़ीके अधिक पके हुए फलका सेवन करना, वर्षा-ऋतुमें तालाबमें नहाना और मूली खाना—इन सबसे कफकी वृद्धि होती है। वह कफ ब्रह्मरन्ध्रमें उत्पन्न होता है, जो महान् वीर्यनाशक माना गया है। आग तापकर शरीरसे पसीना निकालना, पकाये हुए तेल-विशेषको काममें लाना, घूमना, सूखे पदार्थ खाना, सूखी पकी हर्रेका सेवन करना, कच्चा पिण्डारक[१] (पिण्डारा), कच्चा केला, बेसवार (पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला), सिन्धुवार (सिन्दुवार या निर्गुण्डी), अनाहार (उपवास), अपानक (पानी न पीना), घृतमिश्रित रोचना-चूर्ण, घी मिलाया हुआ सूखा शक्कर, काली मिर्च, पिप्पल, सूखा अदरक, जीवक[२] (अष्टवर्गान्तर्गत औषध-विशेष) तथा मधु—ये द्रव्य तत्काल कफको दूर करनेवाले तथा बल और पुष्टि देनेवाले हैं।

भोजनके बाद तुरंत पैदल यात्रा करना और दौड़ना तथा आग तापना, सदा घूमना और मैथुन करना, वृद्धा स्त्रीके साथ सहवास करना, मनमें निरन्तर संताप रहना, अत्यन्त रूखा खाना, उपवास करना, किसीके साथ जूझना, कलह करना, कटु वचन बोलना, भय और शोकसे अभिभूत होना—ये सब केवल वायुकी उत्पत्तिके कारण हैं। आज्ञा नामक चक्रमें वायुकी उत्पत्ति होती है।

केलेका पका हुआ फल, बिजौरा नीबूके फलके साथ चीनीका शर्बत, नारियलका जल, तुरंतका तैयार किया हुआ तक्र, उत्तम पिट्ठी (पूआ, कचौरी आदि), भैंसका केवल मीठा दही या उसमें शक्कर मिला हो, तुरंतका बासी अन्न, सौवीर (जौकी काँजी), ठंडा पानी, पकाया हुआ तेल-विशेष अथवा केवल तिलका तेल, नारियल, ताड़, खजूर, आँवलेका बना हुआ उष्ण द्रव-पदार्थ, ठंडे और गरम जलका स्नान, सुस्निग्ध चन्दनका द्रव, चिकने कमलपत्रकी शय्या और स्निग्ध व्यञ्जन—ये सब वस्तुएँ तत्काल ही वायुदोषका नाश करनेवाली हैं। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

भगवन्नाम-संकीर्तनसे वास्तविक आरोग्यकी प्राप्ति

आत्यन्तिकं व्याधिहरं जनानां चिकित्सिकं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

वेदवेत्ताओंका कहना है कि गोविन्द, दामोदर और माधव—ये नाम मनुष्योंके समस्त रोगोंको समूल उन्मूलन करनेवाले भेषज हैं और संसारके (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन) त्रिविध तापोंका नाश करनेके लिये बीजमन्त्रके समान हैं।

---

१. एक प्रकारका फल-शाक।

२. एक जड़ीका पौधा। 'भावप्रकाश' के अनुसार यह पौधा हिमालयके शिखरोंपर होता है। इसका कन्द लहसुनके कन्दके समान और इसकी पत्तियाँ महीन सारहीन होती हैं। इसकी टहनियोंमें बारीक काँटे होते हैं और दूध निकलता है। यह अष्टवर्ग औषधके अन्तर्गत है और इसका कन्द मधुर, बलकारक तथा कामोद्दीपक होता है। ऋषभ और जीवक दोनों एक ही जातिके गुल्म हैं, भेद केवल इतना ही है कि ऋषभकी आकृति बैलके सींगकी तरह होती है और जीवककी झाड़ूकी-सी।

स्वस्थ रहनेके लिये संकल्पबलकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

संकल्प, विचार या भावनाका महत्त्व संसारके सभी विद्वानोंको मान्य है। संसारके सभी बलोंसे संकल्पका बल श्रेष्ठ है। वेदादि शास्त्रोंका तो कहना है कि परमात्माके संकल्पसे ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड बनकर तैयार होता है। वैसे तो किसी भी कार्यके मूलमें संकल्प होना आवश्यक है। स्थूल-सूक्ष्म किसी प्रकारका संकल्प-विचार हुए बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। देह, इन्द्रिय आदि किसीकी भी हलचलमें मनकी हलचल आवश्यक है। अतएव यह भी कहा जा सकता है कि संसारकी सभी गति अथवा उन्नतिका मूल संकल्प ही है, परंतु साधारण स्थानोंमें संकल्पके पश्चात् अन्यान्य सामग्रियों और प्रयत्नोंकी भी अपेक्षा हुआ करती है। जैसे—कुलाल (कुम्भकार) घट-निर्माणका विचार करता है। तत्पश्चात् मृत्तिका, दण्ड, चक्र, चीवरादि सामग्रियोंका सञ्चय करता है, फिर हस्त आदि व्यापारसे घटको बनाता है। परंतु परमात्मा किसी भी सामग्रीकी अपेक्षा न करके अपने संकल्पमात्रसे ही विश्वका उत्पादन, पालन और संहार करता है।

वेदान्तके सिद्धान्तानुसार यह जगत् जड़ परमाणुओंके एकत्रित हो जानेमात्रसे नहीं बना, साथ ही विद्युत्-कणों या प्रकृतिकी हलचलसे भी नहीं बना; किंतु अनिर्वचनीय, माया-शक्तिविशिष्ट वस्तुतः सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य परमात्मासे ही यह संसार बना है, वही इसके उपादानकारण तथा निमित्तकारण भी हैं। नैयायिक, वैशेषिक, योगी आदिके मतानुसार भी विश्वप्रपञ्च जड़ कार्य नहीं हो सकता। जब संसारके कोई भी प्राचीन विलक्षण कार्य एवं आधुनिक रेल, तार, मोटर, वायुयान आदि विविध कल-पुर्जे बिना किसी बुद्धिमान् चेतनके अपने-आप नहीं बन जाते, परमाणुओं, विद्युत्-कणों या प्रकृतिसे इनका निर्माण बतलानेवाला अश्रद्धेय समझा जाता है, तब विलक्षण संसार और तदन्तर्गत विभिन्न यन्त्रोंके आविष्कारक वैज्ञानिकोंके मन-बुद्धि (मस्तिष्क, दिमाग) आदिके बनानेवालेको जड़ कैसे कहा जाय? जब साधारणसे चित्र-ड्राइंग भी परमाणुओंके एकत्रित हो जानेमात्रसे नहीं बनते तो विश्व कैसे बन सकता है? भेद यही है कि इन मतोंमें परमाणु प्रकृति आदिका नियामक परमेश्वर माना जाता है; परमाणु, प्रकृति समवायिकारण या उपादान माने जाते हैं, परमात्मा निमित्त कारण माना जाता है, परंतु वेदान्त सिद्धान्तमें परमात्मा ही उपादान और निमित्त—दोनों ही तरहका कारण है। वह अपने संकल्पसे अपने-आपको ही प्रपञ्चरूपमें प्रकट करता है।

वाचस्पति मिश्रने कहा है कि 'भगवान्के स्वाभाविक सहज निःश्वाससे अनन्त विद्याओंके उद्गम-स्थान वेदोंका प्रादुर्भाव होता है, उनके अवलोकन (निहारने)-से ही ब्रह्माण्डोंके उपादानभूत पञ्चमहाभूत—आकाश, वायु, तेज आदिकी उत्पत्ति होती है और भगवान्के मन्दहास (मुस्कराहट)-से ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड बनकर तैयार हो जाते हैं। उनके सोनेसे—आँख मीच लेनेसे ही विश्वका प्रलय हो जाता है।' यहाँ भी रूपकके द्वारा परमात्माके संकल्पसे ही साक्षात् एवं परम्परासे विश्वकी उत्पत्ति आदिका वर्णन किया गया है। यहाँ पूर्व-पूर्व कार्योंमें बुद्धि एवं प्रयत्नकी निरपेक्षता उत्तरोत्तर कार्योंमें कुछ सापेक्षता कही गयी है।

सारांश यह है कि भगवान् अपने संकल्पसे ही सम्पूर्ण संसारको बनाते हैं। भगवान्का ही अंश जीवात्मा है और भगवान्की मायाका ही अंश जीवका मन है। अतः भगवान् और मायाकी शक्ति वैसे ही जीवात्मा और मनमें रहती है, जैसे महाकाशकी अवकाशप्रदत्त शक्ति घटाकाशमें रहती है, जलकी शीतलता, मधुरता उसके अंश तरंगमें हुआ करती है, अग्निका दहन, प्रकाशन-सामर्थ्य उसके अंश विस्फुल्लिङ्ग (चिनगारी)-में रहा करता है। इस दृष्टिसे भगवान्की सभी शक्तियाँ जीवात्मामें होती हैं। मायाकी शक्तियाँ मनमें रहती हैं। इसीलिये शास्त्रोंने कहा है कि जीवात्मा अपने संकल्प-विचारोंसे बहुत कुछ कार्य कर सकता है। हाँ, अत्याचार, अनाचार, पापाचार एवं व्यभिचार आदिसे संकल्पकी शक्ति कमजोर हो जाती है। सदाचार, सद्विचार, सद्धर्म तथा तपस्या आदिसे संकल्पकी शक्तियाँ दृढ़ (जोरदार) हो जाती हैं।

परमेश्वरकी आराधनासे जीवात्मामें स्वाभाविक

परमात्म-सम्बन्धी ऐश्वर्य प्रकट होते हैं, अन्यथा छिपे रहते हैं। सिद्ध योगीन्द्र और मुनीन्द्र अपने संकल्पसे ही घटको पट और पटको घट बना सकते हैं। लौकिक महर्षियोंका वचन अर्थानुसारी हुआ करता है अर्थात् जैसा अर्थ होता है उनका वैसा ही वचन होता है, परंतु सिद्ध प्राचीन महर्षियोंके वचनोंका अनुसरण तो अर्थको ही करना पड़ता है। अर्थात् वे अर्थको जैसा देखते हैं उसे वैसा ही बनना पड़ता है। इसीलिये अगस्त्यके वचनसे नहुषको अजगर बनना पड़ा था। संकल्पसे ही विश्वामित्रने बहुत-से नक्षत्रों और वस्तुओंको बनाया था। वचनके साथ भी संकल्प रहता है। अतएव, वचनके प्रभावके साथ संकल्पका प्रभाव रहता है।

सुना जाता है कि अमेरिका आदिमें बहुत-से मनोविज्ञानके अभ्यासी संकल्प या विचारसे ही गुलाबके फूलोंको घटाने या बढ़ानेमें सफल हो जाते हैं। एलोपैथिक एवं होम्योपैथिक आदि चिकित्साओंसे निराश रोगियोंको मनोविज्ञानकी महिमासे लाभान्वित करते हैं। एक मनोविज्ञानके पंडितने जीवनसे निराश किसी लड़कीको कई दिनोंतक बर्फके भीतर रखकर मनोविज्ञानके बलसे आराम पहुँचाया था। इसी प्रकार मनसे ही बहुत रोगोंसे आराम हो रहे हैं। वैसे हर एकके मनमें भी संकल्पकी प्रधानता रहती है, कारण सभी काम पहले मन या बुद्धिके साहाय्यकी अपेक्षा रखते हैं, पश्चात् किसी अन्यकी सफलतामें बुद्धि या सूझका बड़ा हाथ रहता है। अच्छी सूझसे ही व्यापारमें लाभ होता है। संग्राम जीतनेमें भी मन्त्रियों तथा सेनापतियोंकी उत्तम सूझ ही लाभदायक होती है। कितने स्थलोंमें नीति-निर्धारणकी ही बुद्धिमानी या गलतीसे व्यक्ति या समाज ही नहीं, किंतु राष्ट्र-का-राष्ट्र उन्नत या अवनत हो जाता है। विचारकी गलतीसे ही कहीं-कहीं बड़े-बड़े विजयी लोग एकदम पतनके गर्तमें चले जाते हैं। विचारकी ही अच्छाईसे कितने पथभ्रष्ट व्यक्तियोंका अतर्कित कायापलट देखा जाता है। इसीलिये मानना पड़ता है कि स्थूल जगत् किसी सूक्ष्म जगत्के नियन्त्रणमें रहते हैं। ऊपरसे देखनेमें स्थूल जगत् ही सब कुछ है, परंतु जब देखते हैं कि चींटी, चिड़िया, उष्ट्र, हाथी आदिके छोटे-बड़े देह सूक्ष्म विचारपर ही उठते, चलते, फिरते, बैठते हैं, तब यह कहनेमें कोई भी संकोच नहीं रह जाता कि ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त सभी प्राणियोंकी जो भी हलचलें हैं और उन हलचलोंसे जो भी कार्य सम्पन्न होते हैं, सब सूक्ष्म विचार मन या बुद्धिके ही कार्य हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु आदिके भी हलचलका कारण सूक्ष्म विचार ही हो सकता है। वह विचार अपनेसे भी सूक्ष्म चेतनाभास या अखण्ड बोधकी अपेक्षा रखता है। इसीलिये कहा जाता है कि अचेतनोंकी प्रवृत्ति तभी होती है, जब चेतनसे अधिष्ठित होता है। जैसे अश्व, सारथी आदिसे अधिष्ठित होनेपर ही रथ चलता है, अन्यथा नहीं; वैसे ही विचार या चेतनासे अधिष्ठित होनेपर ही सम्पूर्ण जड़ जगत् चेतन होता है। इसी न्यायसे यह भी कहा जाता है कि दृश्य जगत्का नियन्त्रण अदृश्य जगत्से होता है। इसी प्रकार आधिदैविक जगत्से आधिभौतिक जगत्का नियन्त्रण समझना चाहिये। विशेषकर जीवोंका उत्थान-पतन बहुत कुछ विचारोंपर ही अवलम्बित है।

शास्त्र कहते हैं कि पुरुष क्रतुमय है। अतएव **'यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म कुरुते तदभिनिष्पद्यते।'** पुरुष जैसा संकल्प करने लगता है वैसा ही कर्म करता है, जैसा कर्म करता है वैसा ही बन जाता है। जिन बातोंका प्राणी बार-बार विचार करता है, धीरे-धीरे वैसी ही इच्छा हो जाती है, इच्छानुसारी कर्म और कर्मानुसारिणी गति होती है। अत: स्पष्ट है कि अच्छे कर्म करनेके लिये अच्छे विचारोंको लाना चाहिये। बुरे कर्मोंको त्यागनेके पहले बुरे विचारोंको त्यागना चाहिये। जो बुरे विचारोंका त्याग नहीं करता, वह कोटि-कोटि प्रयत्नोंसे भी बुरे कर्मोंसे छुटकारा नहीं पा सकता। कितने प्राणी दुराचार, दुर्विचारजन्य दुर्व्यसन आदिको छोड़ना चाहते हैं। मद्यपायी वेश्यागामी व्यसनके कारण दु:खी होता है और रोगी बनता है, व्यसनको छोड़ना चाहता है, उपाय भी ढूँढ़ता है, महात्माओंके पास रोता भी है, छोड़नेकी प्रतिज्ञा भी कर लेता है; परंतु जो सावधानीसे मद्यपान, वेश्यागमन आदि दुराचारोंके बराबर चिन्तन और मननका परित्याग करता है, उनका स्मरण ही नहीं होने देता, विचार आते ही उसे विचारान्तरोंसे काट देता है, वह तो छुटकारा पा जाता है, परंतु जो बुरे विचारोंको न छोड़कर उनका रस लेता रहता है, वह कभी बुरे कर्मोंसे छुटकारा नहीं पा सकता, वह बार-बार भग्नप्रतिज्ञ होकर रोता है। विचारोंके समय असावधान रहता है। विचारसे क्या होता है? बुरा कर्म नहीं करूँगा, उसीके त्यागकी मैंने प्रतिज्ञा की है, इस तरह अपनेको

धोखा देकर विचारके रसका अनुभव करता है। वह कभी भी व्यसनसे आत्मत्राण नहीं कर सकता है। इसीलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह किसी तरह बुरे विचारोंको हटाये।

जिस समय बुरे विचार आने लगें, उस समय अन्यमनस्क होनेका प्रयत्न करे। भगवद्ध्यानसे, मन्त्र-जपसे, श्रवणसे, सत्सङ्गसे बुरे विचारोंकी धारा तोड़ देनी चाहिये। भले ही उपन्यासों, नाटकों, समाचार-पत्रोंको पढ़ना पड़े, परंतु बुरे विचारोंकी धारा अवश्य तोड़नी चाहिये। इसी प्रकार अच्छे कर्मोंके लिये तथा स्वस्थ होनेके लिये पहले अच्छे विचारोंको लाना चाहिये। अच्छे शास्त्रोंका अभ्यास, अच्छे पुरुषोंका सङ्ग करने और पवित्र वातावरणमें रहनेसे अच्छे विचार बनते हैं, बुरे विचार और बुरे कर्म छूट जाते हैं। एकाएक मनका संकल्प-विकल्पसे रहित होना असम्भव है, अतः तदर्थ प्रयत्न व्यर्थ है। जैसे भाद्रपदमें सिंधु, शतद्रु, गङ्गा आदि नदियोंका वेग रोककर उनके उद्गम स्थानमें लौटाकर उन्हें सुखा देना असम्भव है, परंतु उनकी धाराओंका मुँह फेरकर उन्हें छिन्न-भिन्नकर सुखाना सम्भव है; वैसे ही मनके संकल्पोंको एकदम रोक देना असम्भव है, परंतु बुरे विचारोंको रोककर सात्त्विक विचारोंकी धाराओंको चलाकर सात्त्विक वृत्तियोंसे तामसिक वृत्तियोंको काटकर, शनैः-शनैः अन्तरङ्ग सूक्ष्म सात्त्विक वृत्तियोंसे स्थूल बहिरङ्ग सात्त्विक वृत्तियोंको भी काटकर निवृत्तिकता सम्पादित की जा सकती है। वैदिक शास्त्रोंमें बालकोंके विचारोंको सँभालनेका बड़ा ध्यान रखा गया है। स्त्रियों और बालकोंके निर्मल-कोमल, पवित्र अन्तःकरणोंमें पहलेसे ही जो बातें अङ्कित हो जाती हैं, वे ही सदा काम आती हैं। चित्त या अन्तःकरण यदि अद्धुत लाक्षा (लाख)-के समान कठोर होता है तो उसमें किसी भी आचरण या उपदेशका प्रभाव नहीं पड़ता और जब वह द्रुत लाक्षाके समान कोमल रहता है, तब लाक्षापर मुहरके अक्षरोंके समान निर्मल-कोमल पवित्र अन्तःकरण उत्तम आचरणों एवं उपदेशोंसे प्रभावित होता है। पहलेसे ही बुरे सङ्गों और ग्रन्थोंसे बालकोंके हृदयमें कूड़ा-करकटका भरा जाना अत्यन्त हानिकारक है। इसीलिये अच्छे पुरुषोंका सङ्ग तथा सच्छास्त्रोंके अभ्यासमें ही उन्हें लगाना अच्छा है। प्रत्येक दृष्टिसे स्वस्थ रहनेका यही अमोघ उपाय है—

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चैव सेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः॥

अर्थात् जैसे लोगोंका सहवास होता है और जैसे लोगोंका सेवन होता है तथा जैसा होनेकी उत्कट वाञ्छा होती है, प्राणी वैसा ही हो जाता है।

जीवन और मृत्युका रहस्य

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

जीवन और मृत्यु—दोनों ही शब्द संस्कृत भाषाके हैं तथा परस्पर विरोधी हैं। '**जीव प्राणधारणे**'—धातुसे 'जीवन' शब्द और '**मृड प्राणत्यागे**'से 'मृत्यु' शब्दकी व्युत्पत्ति होती है। प्राणधारणसे प्राणत्याग बिलकुल विपरीतार्थक है। इसका सीधा-सा अभिप्राय यह है कि जबतक प्राण-वायुका संचार नासिकारन्ध्रद्वारा होता रहता है, तबतक 'जीवन' और जब प्राण-वायुका नासिकारन्ध्रोंसे गतागत समाप्त हो जाता है, तब 'मृत्यु' शब्दका प्रयोग होने लगता है। इस प्राण-वायुके धारण और परित्यागद्वारा जो जीवन और मरण—ये दो अवस्थाएँ बनीं, ये शरीरकी हैं या शरीरके अभ्यन्तर निवास करनेवाले जीवकी अथवा केवल वायुकी?

जीवन और मृत्युका व्यपदेश शरीरसे सम्बन्ध रखता है। अर्थात् जबतक शरीरमें प्राण-वायुका संचार रहता है, तबतक नेत्रोंसे अंधा, कानोंसे वधिर और वाणीसे गूँगा भी 'जीवित' ही कहा जाता है। जब प्राण-वायुका सम्बन्ध शरीरसे हट जाता है, तब सभी इन्द्रियोंसे सम्पृक्त होता हुआ भी वह 'मृत' माना जाता है। इसलिये प्राणको सबसे उत्तम माना गया। **यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च॥** (छान्दोग्य० ५।१।१) इसी अध्यायमें प्राणको सबसे श्रेष्ठ बताया गया है—'**ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठः॥**' (छान्दोग्य० ५।१।७) 'प्रजापतिके पास जाकर समस्त इन्द्रियोंसहित प्राणोंने कहा—'भगवन्! हम सबमें कौन

बड़ा है?' प्रजापति भगवान्ने सीधा उत्तर दिया कि 'जिसके निकल जानेपर यह शरीर अत्यन्त हेय समझा जाय वही सबसे बड़ा है।' प्रजापतिकी इस बातपर विश्वास न कर सबसे पहले वागिन्द्रियने शरीरका परित्याग किया; पर शरीरकी केवल वक्तृत्व शक्तिको छोड़कर और कुछ हानि नहीं हुई। पूर्वकी भाँति सुनना, देखना और समझना बना रहा। इसी प्रकार क्रम-क्रमसे एक-एक कर सब इन्द्रियोंने शरीरका परित्याग करते हुए यह परीक्षा की कि क्या हमारे शरीरमें न रहनेसे यह उसी प्रकार कार्य-क्षम (जीवित) रहेगा या नहीं? पर इन्द्रियोंके निकल जानेपर प्राण-वायुके रहते-रहते शरीरकी 'जीवित' संज्ञा ही रही 'मृत' नहीं। अत: इसी क्रममें शरीरका त्याग कर प्राणोंके निकलनेका समय आया। सभी इन्द्रियाँ बेचैन हो गयीं और प्रार्थना करने लगीं—'**भगवन्नेधि त्वं न: श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति।**' (५।१।१२) इस प्रकार प्राणका स्थान शरीरमें सबसे ऊँचा है।

अब विचार यह करना है कि 'क्या प्राण-परित्यागसे शरीरकी मृत्यु और प्राणके रहते-रहते जीवन, बस, इतना ही सत्य और तत्त्व है या जीवन-मरण-व्यपदेशमें अन्य भी कोई तथ्य है?' इस सम्बन्धमें नास्तिक और आस्तिक दो सम्प्रदाय सामने आते हैं। 'नास्तिक' का कहना है कि 'पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके स्व-स्व मात्राके अनुसार मिल जानेपर एक शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे शरीरमें चैतन्यता आ जाती है। इन पाँचों तत्त्वोंका आंशिक अथवा सर्वांश विघटन ही मृत्यु है। अतएव शरीरसे पूर्व कोई चैतन्य तत्त्व (जीव) नामकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होगी तथा न मृत्युके पश्चात् उस शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला तत्त्व किसी लोक-लोकान्तर या किसी भी रूपान्तरमें अवशेष रहता है, जो शरीरद्वारा किये गये बुरे-भले कर्मोंका फल भोग करे, इसलिये आनन्दपूर्वक इस शरीररूपी आत्माका किन्हीं भी सदसत् उपायोंद्वारा आप्यायन करते रहो और आनन्दसे जीवन बिताओ—'**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:**', '**ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।**' इत्यादि उनका घण्टा-घोष है। इस स्थितिके अनुसार शरीरकी उत्पत्ति भी कामासक्त स्त्री-पुरुषोंके परस्पर देह-संघर्षके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस प्रकारके विचारवादियोंके लिये काम-तृप्ति सर्वत्र समान है।

अब 'आस्तिक' सम्प्रदाय आता है। वह नास्तिककी उपर्युक्त आंशिक युक्तियोंकी धज्जी उड़ा देता है यह कहते हुए कि 'यदि शरीरकी उत्पत्ति (जीवन) और विनाश (मृत्यु)-का कोई परोक्ष कारण नहीं है तो सभी मनुष्य समान रूप, समान शरीर, समान आयु और समान भोगवाले होने चाहिये थे। विषमताका क्या कारण है?' समान रूपादिके सम्बन्धमें नास्तिक यह कहकर कपड़े छुड़ाना चाहता है कि 'किसी देशकी जलवायु, खान-पान और आर्थिक व्यवस्थाके ढाँचेके अनुसार रूप, आयु और अवस्था निर्भर करती है।' पर हम पूछते हैं कि जन्मसे अंधे, जन्मसे गूँगे और जन्मसे बहरे क्यों उत्पन्न होते हैं? यदि यह कहो कि इसमें माता-पिताका दूषित शुक्र और शोणित ही कारण है तो पूछना होगा कि इससे पहलेके और बादके बच्चोंमें इस प्रकारका ऐन्द्रिय-दोष न होनेसे शुक्र-शोणितका दूषण कहाँ गया? अत: यह अवश्य मानना होगा कि हमारे जीवन-मृत्युके साथ न केवल प्राणका संसर्ग है, अपितु और भी कोई इस प्रकारके तत्त्व अवश्य हैं, जो प्राणके सहचारी या प्राणानुगामी हैं। वह तत्त्व सम्भूय होकर जैसे इस शरीरको धारण करता है, ठीक वैसे ही शरीरान्तर-धारणकी क्षमता भी रखता है। जैसे इस भूलोकमें इस शरीरद्वारा रहता है, वैसे ही इस लोकमें देहान्तर और लोकान्तरमें शरीरान्तर प्राप्त करनेकी क्षमता भी रखता है। इसलिये—

चैतन्यं यदधिष्ठानं लिङ्गदेहश्च य: पुन:।
चिच्छाया लिङ्गदेहस्था तत्संघो जीव उच्यते॥

(पञ्चदशी-द्वैत ११)

—के अनुसार लिङ्गशरीरकी कल्पनाका आधारभूत चैतन्य-अधिष्ठान, लिङ्गशरीर—पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन और बुद्धि—ये सत्रह तत्त्व तथा इन सत्रह तत्त्वोंमें पड़ा हुआ चिदाभास—यह 'जीव' शब्दसे लिया जाता है। अतएव यह सत्रह तत्त्ववाला जीव कर्मानुसार शरीरान्तरमें गतागत करता रहता है। इस प्रकार अधिष्ठानचैतन्य, लिङ्गदेह और चिदाभास—इनकी कभी मृत्यु नहीं होती और न इनका कभी जीवन होता है। इनसे युक्त शरीरका ग्रहण 'जन्म' और उस शरीरका त्याग ही 'मृत्यु' मानी जाती है। अतएव गीतामें—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(२।२२)

—कहा गया है अर्थात् 'जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।' पुराने वस्त्रके त्याग और ग्रहणमें भी कुछ निमित्त होता है। कोई उत्सव या अन्य हेतु होनेपर ही वस्त्रान्तर धारण किये जाते हैं। ठीक उसी प्रकार कर्मनिमित्तक ही देहान्तरके धारण करनेका कारण होता है। इसीलिये छान्दोग्योपनिषद् (६।८।४)-में '**सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः**' कहकर सिद्ध किया गया है कि 'हे सौम्य! इस समस्त संसारका मूल सत्तत्त्व है और इस सब प्रजाका एकमात्र सदधिष्ठान है तथा सब प्रजा सत्तत्वमें ही स्थित है।' इस प्रकार शरीरसे भिन्न, प्राणसे भिन्न तथा इन्द्रियग्रामसे भिन्न एक तत्त्व है, जो शरीरान्तरोंमें गतागत करता है और उसकी जीवन तथा मृत्यु—ये दो गतियाँ हैं।

यह तो एक अत्यन्त सामान्य और साधारण-सी बात है। पर इससे भी आगे बहुत ही विचारणीय बात यह है कि आखिर वह तत्त्व, जो पूर्वोक्त तीन वस्तुओंका संघ है, वह कैसे मनुष्य और स्त्रीके शुक्र-शोणितमें पहुँचा, कहाँसे गया, कैसे गया इत्यादि? यह एक गम्भीर प्रश्न है। इसी प्रसङ्गको दृष्टिमें रखते हुए श्वेताश्वतरोपनिषद् (१। १)-में लिखते हैं—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥

इसका उत्तर देते हुए आगे लिखा है—'काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत प्रभृति आत्म-संयोगसे शरीरके कारण होते हैं, केवल आत्मा इस सम्बन्धमें कारण नहीं माना जाता।' जिस प्रकार उत्पत्स्यमान अङ्कुरके प्रति न केवल बीज, न केवल भूमि और न केवल कृषक कारण है—बीज, भूमि, कृषक, जल, वायु सभी समुदित होकर अङ्कुरके कारण बनते हैं, ठीक उसी प्रकार अन्नादि मेघद्वारा और शुक्र-शोणित अन्नद्वारा बननेपर जीव भी उन-उन पदार्थोंके द्वारा उन्हींमें ओतप्रोत हुआ जीवन-मरणके चक्करमें पड़ा रहता है। इस महाचक्रसे छुटकारा पानेके लिये जप, तप, ध्यान और समाधिका विधान शास्त्रोंमें बताया गया है। वह एक देव आत्मा या ब्रह्मपदवाच्य ऊर्णनाभि (मकड़ी)-की भाँति अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे ही अपनेको बाँध लेता है। ठीक उसी प्रकार यह आत्मारूपी दिव्य प्रकाशवाला देव अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे अपनेको ही बाँध लेता है। यथा—

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम्॥

(श्वेताश्वतर० ६।१०)

इसी बातको और स्पष्ट करते हुए कौषीतकि-ब्राह्मणोपनिषद्में लिखा है कि 'लोग इस संसारको छोड़कर परलोकमें जाते समय पहले चन्द्रमामें पहुँचते हैं। यदि उन जीवोंके कर्म तुरंत जन्म लेनेके योग्य होते हैं तो वे वर्षाद्वारा भूमिपर आ जाते हैं और जिन शरीरोंके उपयोगी उनके कर्म होते हैं, उन शरीरोंमें वे पहुँच जाते हैं। कोई कीड़े, पतंगे, पक्षी, सिंह; कोई मनुष्य, देव, गन्धर्व इत्यादि शरीरोंमें जन्म ग्रहण कर लेते हैं।'

इस प्रकार जीवन-मृत्युका शास्त्रोंमें बहुत विवेचन है। पर वस्तुस्थिति यह है कि वही एक तत्त्व ब्रह्म या आत्मा सर्वत्र है। कर्मानुसार उसीका देहान्तरमें प्रवेश-निवेश होता है। यह सब सत्-असत् कर्म-कलापका परिणाम है। वास्तवमें यदि आत्म-तत्त्वको ठीक समझ लिया जाय—मनन और निदिध्यासनद्वारा पूर्ण निष्ठा हो जाय तो जन्म देनेवाले कर्मोंकी समाप्ति हो जाती है। जब जन्म देनेवाले कर्म नहीं, तब मृत्यु कहाँसे? इसीलिये वेदान्तियोंका यह डिण्डिम घोष है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

(आत्मोपनिषद् ३१)

अर्थात् न तो आत्माकी कभी उत्पत्ति होती है और न कहीं यह अवरुद्ध किया जा सकता है; न आत्मा कभी बन्धनमें पड़ता है और न ही कभी इसे साधना करनेकी आवश्यकता पड़ती है; न तो इसे कभी मोक्षके लिये प्रयत्न करना पड़ता है और न यह कभी मुक्त ही होता है; क्योंकि यह पहलेसे ही मुक्त है। वास्तवमें यही पारमार्थिक स्थिति है।

आयुर्वेद भगवान्‌की देन

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

महर्षि चरक, सुश्रुत एवं वाग्भटके अनुसार आयुर्वेदके मूल प्रवर्तक साक्षात् भगवान् हैं। भगवान्‌के द्वारा इन्द्रको, इन्द्रसे भरद्वाजको और भरद्वाजसे अन्य ऋषियोंको आयुर्वेदकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार आयुर्वेद अपने-आपमें सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण ईश्वरीय विज्ञान है। आयुर्वेदके प्रवर्तक धन्वन्तरि चौबीस अवतारोंमेंसे एक अवतार हैं। उनके द्वारा प्रदत्त आयुर्वेदमें किसी प्रकारकी कमी नहीं है। इसीलिये कल्प-कल्पान्तर, युग-युगान्तरके बाद भी आयुर्वेदिक औषधियाँ पूर्ण सावधानीसे और विधि-विधानके अनुसार नहीं बननेपर भी लाभ ही करती हैं। यदि उन्हें आयुर्वेदशास्त्रमें निर्दिष्ट विधिके अनुसार उपयुक्त भूमि एवं उपयुक्त मुहूर्तमें पूर्ण सम्मानके साथ पैदा किया जाय, मन्त्रादिके प्रयोगसे उनकी रक्षा की जाय, फिर शास्त्रीय विधिसे सम्मानपूर्वक पूजन करके निमन्त्रण देकर लाया जाय और शास्त्रीय विधिसे उनका निर्माण किया जाय, निदानपूर्वक रोगका निश्चय करके रोगीकी अवस्था, शक्ति, क्षमता आदिका विचार करके प्रयोग किया जाय तो वे कभी भी हानि नहीं करेंगी तथा सर्वथा लाभदायक हीं होंगी।

अंग्रेजी दवाइयाँ अनेक यन्त्रोंमें छान-छानकर तैयार की जाती हैं, फिर भी उनकी विपरीत प्रतिक्रिया (रिऐक्शन) होनेपर भयंकर हानि होती है। इसके विपरीत देशी दवाइयाँ विधिपूर्वक न बननेपर भी लाभ भले न करें, पर हानिकारक तो होतीं ही नहीं।

यह कहते हुए कष्ट होता है कि बहुत कम वैद्य ऐसे हैं, जो आदिसे अन्ततक अपनी देख-रेखमें औषधका निर्माण कराके उसका उपयोग करते हैं। देखा तो यह जाता है कि वैद्यराज महोदयके यहाँ काम करनेवाले वैद्यक विद्यासे सर्वथा अनभिज्ञ सेवक लम्बी-चौड़ी लिस्ट लेकर पंसारीकी दूकान जाते हैं। पंसारी समझता है कि स्टॉकमें रखा कूड़ा-करकट निकालनेका अवसर आ गया। वह पुड़िया बँधवाकर ले जाता है, कूट-छानकर औषधि बना लेता है। यह भगवान्‌की ही देन है कि इस प्रकारकी भी औषधि रोगीको लाभदायक भले ही न हो, नुकसान कभी नहीं करती। आयुर्वेदिक औषधियोंमें यह बड़ी विशेषता है कि वे धीरे-धीरे लाभ करती हैं, किंतु उनका प्रभाव स्थायी होता है; जब कि अंग्रेजी दवाइयाँ शीघ्र लाभ करती हैं, किंतु उनका प्रभाव स्थायी नहीं होता। यह भी दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आजकलके नये वैद्य पाश्चात्त्य ढंगसे बन-ठनकर अपने-आपको डॉक्टर कहलानेमें गौरव समझते हैं। जब कि शास्त्रोंके अनुसार वैद्योंको अनुल्वण—सौम्य वेष धारण करना चाहिये। आयुर्वेदका अध्ययन भी आचार्योंके आज्ञानुसार उपनयनपूर्वक होना चाहिये। स्पष्ट है कि उपनयनके अधिकारी ही आयुर्वेद-विद्या पढ़नेके अधिकारी हैं।

यहाँ महापुरुषोंसे प्राप्त कुछ अनुभूत योग दिये जाते हैं। उनको चिकित्सकके निर्देशानुसार काममें लाना चाहिये—

आधाशीशी (आधा सिर दुखना)

शुद्ध देशी घी एवं चीनीमें बनी हुई जलेबी रातको काँसेके बर्तनमें दूधमें भिगोना चाहिये। रातभर उसे छतपर रखना चाहिये जिससे चन्द्रमाकी किरणें उसपर पड़ें। प्रातः स्नान कर अधिकारानुसार संध्या-पूजाके पश्चात् भगवान्‌को निवेदन करके जितनी वह हजम हो सके खाना चाहिये।

सब प्रकारके उदर-रोगों (संग्रहणी)-के लिये

एक रत्ती शङ्खभस्म, एक रत्ती सिद्धप्राणेश्वर, एक रत्ती रामबाण-रस, आधी रत्ती स्वर्णपर्पटी, आधा रत्ती मकरध्वज—इन सबको मिलाकर दो पुड़िया बनानी चाहिये। एक सुबह और एक शामको भुने हुए जीरेके चूर्ण और शहदके साथ लेना चाहिये।

पुरानी संग्रहणी

संग्रहणीमें प्रातः-सायं रामबाण-रस सादे पानीके साथ और मध्याह्नमें दो रत्ती सिद्धप्राणेश्वर चावलके पानीके साथ लेना चाहिये।

पथ्य—प्रातःकाल पुराने चावल और मूँगकी

खिचड़ी खाये और सायंकाल भूख लगे तो थोड़ा शुद्ध घी और चीनीका हलवा खा ले।

ब्लड-शुगर या यूरिन-शुगर खून, पेशाबकी चीनी

इस रोगमें दूध-दहीसे बचना चाहिये। इसमें न अधिक बैठना चाहिये और न अधिक लेटे रहना चाहिये। अधिक नींद भी नहीं लेनी चाहिये। अधिक-से-अधिक पुट अभ्रकभस्म शहदके साथ लेना चाहिये। रात्रिमें सोते समय एक तोला त्रिफला सादे जलके साथ लेना चाहिये।.

बिना दवाईके भी शुगर-रोग गर्मीके दिनोंमें चैत्रसे भाद्रपदतक जौकी रोटी खानेसे और आश्विनसे फाल्गुनतक बाजरेकी रोटी, मूँगकी दाल, मेथी, पालक, बथुआ एवं चौलाईका शाक खानेसे मिट सकती है।

तमक श्वास (स्त्रोफीलिया) दमा

इसमें कर्पूररस और अभ्रक एक-एक रत्ती लेना चाहिये। सूर्यास्तके बाद भोजन नहीं करना चाहिये। घी या तेलमें तली हुई वस्तुएँ नहीं खानी चाहिये। भारी वस्तु भी नहीं लेनी चाहिये।

एग्ज़िमा

कर्पूर एवं नारियलका तेल तथा नीबूका रस समान मात्रामें खरल करके मलहम बना ले। इसका दिनमें दो बार प्रयोग करना चाहिये।

आँखकी दवा

सभी प्रकारके आँखके रोगोंमें नीबूके रसको मिश्रीकी एक तारकी चासनीमें डालकर ठंडा करके, सादे काँचकी शीशीमें भर ले। इसे काजलकी तरह दिनमें दो बार आँखमें लगाये। [प्रेषक—ब्रह्मचारी सर्वेश्वर चैतन्य]

ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

१. जिस देश, जाति और वंशके लोग चाहते हों कि हमारी संतान-परम्परामें ब्रह्मचारी उत्पन्न हों, उन्हें ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मचारीका विशेष आदर करना चाहिये और स्वयं शास्त्रोक्त आश्रमोचित ब्रह्मचर्यके नियमोंका यथाविधि पालन करना चाहिये। वंशपरम्परा और माता-पिताके भावका ब्रह्मचर्यपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अनैतिक रीतिसे उत्पन्न संतानसे ब्रह्मचर्यकी आशा रखना उपहासास्पद है। यदि माता-पिताका संयोग केवल उद्दाम भोगलालसाकी तृप्तिके लिये ही होता है तो भावी संतान वासनापूर्ति-परायण हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है? भावी शिशुके शरीरगत सारे ही उपादान माता-पिताके मन और धातुओंसे ही संघटित होते हैं। यदि मूलमें ही दोष रहा तो कार्य निर्दोष कैसे हो सकता है? इसलिये माता-पिताको धर्मबुद्धिसे ऋतुकालमें शास्त्रोक्त रीतिसे संयोग करके संतानोत्पादन करना चाहिये। माता-पिताके मनमें आदर्श ब्रह्मचारी संतान ही उत्पन्न करनेका संकल्प होना चाहिये। जबतक शिशु गर्भमें रहे, माता-पिताको वासनारहित जीवन व्यतीत करना चाहिये। माता-पिताके भाव-बीज ही संतानमें अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होते हैं।

२. जबतक शिशु माताका दूध पीता है, तबतक माताके शरीरसे और भावसे भी कामकी वृत्तिका स्पर्श न होना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि मनमें कामावेश होनेपर शरीरके प्रत्येक अवयव एवं परमाणुमें उसकी व्याप्ति हो जाती है। इससे बच्चोंके मनमें भोगसम्बन्धी संस्कार तो पड़ते ही हैं, स्नायुओंमें उत्तेजना भी होने लगती है। छोटे-छोटे बच्चोंके मस्तिष्क और शरीरके अवयव बहुत ही कोमल एवं स्निग्ध होते हैं। शैशवमें ही उनपर जैसी छाप पड़ जाती है, वही जीवनभर प्रकाशित होती रहती है। जो लोग अपनी संतानको ब्रह्मचारी बनाना चाहते हैं, उनके लिये यह आवश्यक है कि जबतक वह दूध पीता रहे, तबतक अपनी वासनाको शान्त रखें।

३. माता-पिताको शिशुके सम्मुख ऐसी कोई चेष्टा कभी नहीं करनी चाहिये, जिसको देखकर उसके जीवनमें भी बुरी आदतें उतर आयें। खट्टा, चरपरा, चाट, मिठाई न तो स्वयं खाना चाहिये और न बच्चोंको ही खिलाना चाहिये। शरीरकी चरम धातु (वीर्य) रग-रगमें अनुस्यूत रहती है। बचपनमें भी उत्तेजक पदार्थोंके सेवनसे उसका पृथक्करण होने लगता है। इसीसे छोटे-छोटे बच्चोंको भी प्रमेह, धातुक्षय हो जाते हैं। बचपनसे

ही आहार-शुद्धि ब्रह्मचर्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है। आहार-शुद्धिके सम्बन्धमें चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये—

(अ) आहार स्वभावसे ही उत्तेजक न हो। मांस, शराब, प्याज, लहसुन आदि जन्मसे ही उत्तेजक हैं।

(आ) भोज्य पदार्थमें कोई ऐसी वस्तु न मिली हो, जिससे वह वीर्यक्षरणका हेतु बन जाय—जैसे अमचूर, राई, गरम मसाले, लाल मिर्च इत्यादि। धूम्रपान ब्रह्मचर्यका महान् शत्रु है।

(इ) भोजनकी वस्तु रजस्वला एवं प्रबल काम-वासनावाली स्त्रीके द्वारा स्पर्श की हुई या बनायी हुई न हो। कुत्ते और गीध आदिकी दृष्टि भोजनपर नहीं पड़नी चाहिये। भोजनपर भावका बहुत प्रभाव पड़ता है। रोती हुई स्त्रीके हाथका भोजन करनेसे रोना पड़ता है।

(ई) भोज्य पदार्थपर अपना न्यायसंगत स्वत्व होना भी आवश्यक है। दूसरेका हक मनको बाहर खींचता है। गृहस्थको बिना परिश्रम अथवा बिना मूल्यका भोजन नहीं करना चाहिये। इससे विकारोंकी वृद्धि होकर गृहस्थोचित ब्रह्मचर्य भङ्ग हो जाता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीका भिक्षापर न्यायोचित स्वत्व है; परंतु यदि वे आश्रमोचित कर्मानुष्ठान न करें, केवल भिक्षाजीवी बन जायँ तो उनका पतन हो जाता है। ब्रह्मचारीके लिये श्रम अपेक्षित है, चाहे वह किसी भी आश्रममें क्यों न रहता हो। श्रमसे ही शुक्रका पाचन होता है।

४. जब बालक थोड़ा बड़ा हो जाय, तब उसे भोगमय वातावरणसे अलग रखना चाहिये। प्राचीन कालमें इसके लिये गुरुकुल अथवा ऋषिकुलकी प्रणाली थी। इससे अनेक लाभ हैं—

(क) अध्ययनकी निश्चिन्त सुविधा।

(ख) आदर्श आचार्यसे आचरणसम्बन्धी व्यावहारिक शिक्षा।

(ग) आचार्य एवं आश्रमकी सेवासे स्वार्थत्याग एवं सार्वजनिक हितका अभ्यास।

(घ) एक विशेष परिवारमें ही मोह-ममताकी शिथिलता।

(ङ) भोगमय जीवनसे पृथक् रहकर अपने लिये प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमार्गमेंसे कोई एक चुननेके लिये संतुलित बुद्धिद्वारा विचार।

(च) संग्रह-परिग्रहके आडम्बरके बिना भी सुखी रहनेकी आदत पड़ जानेसे अर्थासक्ति और भोगलिप्साकी निवृत्ति तथा भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार आदिसे स्वयं घृणा होना।

(छ) शान्तचित्तसे आत्मस्वरूप एवं परमात्मस्वरूपका विवेचन होनेसे तत्त्वसाक्षात्कार होकर परमानन्दस्वरूप ब्रह्ममें स्वाभाविक स्थिति।

(ज) विश्व, राष्ट्र, सम्प्रदाय, समाज, परिवार एवं व्यक्तिकी सेवाकी योग्यता प्राप्त होना।

५. माता-पिता एकसे अधिक पुत्र उत्पन्न न करें तो सर्वोत्तम है। यदि अधिक पुत्र उत्पन्न करना ही हो तो बालकको ब्रह्मचर्याश्रममें निश्चितरूपसे भेज दें, जिससे बालकके स्वाभाविक ब्रह्मचर्यके भावपर कोई ठेस न पहुँचे और वह आदर्श आचार्यकी शरणमें रहकर सत्य, अहिंसा आदि सद्‌गुणोंको सीख सके एवं ज्ञानोपार्जन भी कर सके।

६. आचार्यका आदर्श होना परम आवश्यक है। वह भी ब्रह्मचारी हो तो सर्वोत्तम। यदि गृहस्थ हो तो अपनी स्त्रीको आश्रमसे सर्वथा पृथक् रखे। स्वयं संध्या-वन्दन, बलिवैश्वदेव आदि नित्यकर्मका अनुष्ठान करे। सत्य, अहिंसा आदि नियमोंका पालन करे। स्वाध्यायशील और परिश्रमी हो। उद्धत वेश-भूषा धारण न करे। शौकीनी न करे। सादगीसे रहे। ब्रह्मचारियोंको अपने पुत्रके ही समान समझे। अपने आचरणके द्वारा उनके हृदयपर स्वार्थत्याग, विश्वसेवा, श्रद्धा, अभय आदि दैवीसम्पत्तिके भाव अङ्कित करे। आचार्यके गुण ही ब्रह्मचारीमें उतरते हैं। आचार्यको आलस्य, प्रमाद, परनिन्दा आदि दोष भूलकर भी नहीं अपनाने चाहिये। काशीके एक विद्वान् आचार्य एक बार अपने पुत्रके सामने संध्या-वन्दनमें किञ्चित् प्रमाद कर बैठे थे, जिससे उनके पुत्रने संध्या-वन्दन करना ही छोड़ दिया।

७. ब्रह्मचारियोंके जीवनकी आधार-शिला श्रद्धा और विश्वास ही है। बाल्यावस्थामें उनके विचार, ज्ञान और अनुभवकी मात्रा अत्यन्त स्वल्प होती है। इसलिये ब्रह्मचर्य-आश्रममें ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे

ब्रह्मचारियोंके अन्त:करणमें शास्त्रके प्रति महत्त्व-बुद्धि, धर्ममें निष्ठा और ईश्वरमें विश्वासकी वृद्धि हो। प्राथमिक शिक्षामें खण्डन-मण्डनवाले ग्रन्थोंको स्थान नहीं देना चाहिये। एक समाजके प्रति राग और दूसरेके प्रति द्वेष उत्पन्न करनेवाली शिक्षा अनर्थकी जननी है। इसीसे व्यापक वैमनस्य, संघर्ष, कलह एवं गृहयुद्धोंकी उत्पत्ति होती है। शिक्षा सर्वतोमुखी होनी चाहिये। उसमें साधारण उठने-बैठने, खाने-पीने, बोलने आदिकी शिष्ट रीति बतानेके साथ-ही-साथ घरेलू काम-धंधे, चिकित्सा, व्यापार आदिकी बातें भी बतानी चाहिये। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, शासन-प्रणाली, संविधान, देश-विदेशकी संस्कृति, अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्ध आदिका प्रशिक्षण भी आवश्यक है। पाठनकी रीति ऐसी होनी चाहिये, जिससे केवल किताबी ज्ञान न होकर रचनात्मक और अनुभवात्मक ज्ञान प्राप्त हो। कूपमण्डूकवत् सङ्कीर्ण प्रवृत्तियों और भावनाओंका अन्त कर देना चाहिये। यदि अन्त:करणमें ईश्वर और धर्मपर विश्वासकी स्थापना नहीं की गयी तो संसारकी कोई भी शिक्षा मनुष्यको ईमानदार और चरित्रवान् बनानेमें सफल नहीं हो सकती। कोई भी शासन, विधान, पुलिस, सेना एवं अस्त्र-शस्त्र मनुष्यके हृदयको नहीं गढ़ सकता। श्रद्धा, भावना, विचार और आचरणके द्वारा ही उसका निर्माण हो सकता है।

८. ब्रह्मचारियोंको अपने आचार्यके प्रति निश्छल, नम्र एवं अत्यन्त श्रद्धालु होना चाहिये। उनके प्रत्यक्ष और परोक्षमें भी बड़ी सभ्यता, समझदारी, विनय और मर्यादासे बर्ताव करना चाहिये। आचार्यसे पीछे सोना और पहले उठना चाहिये। स्नान, संध्या-वन्दन, हवन, व्यायाम और स्वाध्यायसे शरीर एवं बुद्धिका पोषण होता है। उपासनाके बिना चित्तमें एकाग्रता और सूक्ष्मता नहीं आती। आसनके अभ्यासके साथ-साथ थोड़ा प्राणायाम भी लाभकारी है। इससे शास्त्रका तात्पर्य ग्रहण करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारीको क़ब्ज़ कभी नहीं होने देना चाहिये। उससे ही आलस्य, प्रमाद और आगे चलकर स्वप्नदोषकी सृष्टि होती है। पेटकी खराबीसे मनमें विकार आने लगते हैं। इसके लिये भोजनपर नियन्त्रण रखना अनिवार्य है। अत्याहार और अनाहार दोनों ही क़ब्ज़के कारण बनते हैं। सात्त्विक भोजन भी मात्रासे अधिक लेनेपर विष हो जाता है। इसलिये भोजनमें मात्राका परिमित होना बहुत ही जरूरी है। आजके संसारमें भोजन न मिलनेसे उतने मनुष्य रुग्ण एवं काल-कवलित नहीं होते, जितने अधिक भोजन करनेके कारण होते हैं। अपनी उन्नति, अन्तर्मुखता और संयमका लेखा-जोखा रखना चाहिये। जीवनको आत्मबल, उत्साह और आशासे पूर्ण कर देना चाहिये। ब्रह्मचारीका संकल्प दृढ़ एवं अविचल हो।

९. ब्रह्मचर्याश्रमके संचालकोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि ब्रह्मचारी भीतर कुछ और तथा बाहर कुछ और न होने पावे। ब्रह्मचारीके जो दोष-दुर्गुण निवृत्त करने हों, उनके प्रति पहले उनमें दोषबुद्धि उदय करानी चाहिये और जो काम कराना हो उसके प्रति महत्त्वबुद्धि, जिससे उनकी वर्धिष्णु विचार-शक्तिपर कोई आघात न लगे। विशेष दबाव डालकर जो नियम पालन कराये जाते हैं, उनका प्रभाव प्रतिक्रियात्मक पड़ता है। ब्रह्मचारीकी बुद्धि ज्यों-ज्यों विकसित होती जाय, त्यों-त्यों उनके आचारसम्बन्धी विज्ञानमें भी वृद्धि होनी चाहिये। अन्यथा ब्रह्मचर्याश्रमसे निकलते ही वे एकाएक समस्त नियमोंको तोड़ डालते हैं और जिस जीवन-निर्माणके लिये उनसे तपस्या करायी जाती है, वह नहीं हो पाता। एक बात और भी ध्यानमें रखनेकी है। ब्रह्मचारियोंके द्वारा जो उनकी विद्या-बुद्धिके सार्वजनिक प्रदर्शन कराये जाते हैं, वे सच्चे हों। उनमें दम्भकी मात्रा बिलकुल नहीं होनी चाहिये। ब्रह्मचारी छात्रको जिस विषयका ज्ञान नहीं है, यदि वह दूसरेसे उधार लेकर, रटकर, नकल करके या अन्य किसी अनुचित रीतिसे जनसमाजमें उसका प्रदर्शन करता है तो थोड़ी देरके लिये संचालकों, आचार्यों एवं ब्रह्मचारियोंको तात्कालिक वाहवाही और प्रशंसा प्राप्त हो जाती है। कुछ आर्थिक लाभ होना भी सम्भव है; परंतु इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव प्रतिकूल पड़ता है। झूठे अभिमान और दम्भसे बढ़कर कोई पतनका स्थान नहीं है। अपनी कमजोरियोंको जानना, अज्ञानको पहचानना, सतत आत्मनिरीक्षण करना सबसे बड़ी शिक्षा है।

१०. अध्ययन-अध्यापनमें एक हदतक भाषा

और व्याकरणका ज्ञान आवश्यक है; परंतु वही सब कुछ नहीं है। वस्तुके ठोस ज्ञानपर ही मुख्य दृष्टि रखनी चाहिये। केवल 'गौ' शब्द, उसके धेनु, सुरभि, वृषभ आदि पर्याय एवं उन शब्दोंके भिन्न-भिन्न प्रयोगोंकी रीति जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। कोष, व्याकरण, साहित्य, यमक-अनुप्रास आदिकी अच्छी जानकारी होनेपर भी यदि गायसे परिचय नहीं है तो सब व्यर्थ है। इसी प्रकार जिस विषयका अध्ययन हो, उसका क्रियात्मक, रचनात्मक, प्रयोगात्मक और व्यावहारिक अनुभव भी होना चाहिये। किसीको झाड़ुओंके बहुतसे नाम और आकृतियाँ मालूम हों, परंतु झाड़ू लगाना न आता हो तो उस ज्ञानका क्या महत्त्व है? इसी प्रकार धर्म, ब्रह्म, प्रेम आदि पदार्थोंका भी साक्षात्कार होना चाहिये। केवल पदवाक्य और प्रमाणके ज्ञानसे ही अपनेको कृतकृत्य नहीं मान लेना चाहिये। सारे अध्ययन, अध्यापन, संयम, नियम, जप, तप, धारणा, ध्यान आदि साधन सत्य वस्तुके साक्षात्कारके लिये हैं। यदि इस जीवनमें सत्यका साक्षात्कार नहीं हो पाया तो बहुत बड़ी भूल—जीवनका विनाश समझना चाहिये।

११. ब्रह्मचर्य-रक्षाके लिये छान्दोग्योपनिषद्में छ: बातोंपर विशेष बल दिया गया है—

(१) इष्ट अर्थात् अग्निहोत्र, शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपस्या, वेदोंका स्वाध्याय, वेदोक्त आचरणका अनुष्ठान, अतिथि-सेवा और बलिवैश्वदेव।

(२) यज्ञ अर्थात् देवाराधन, अपने हककी वस्तुओंको औरोंके प्रति वितरण, पञ्चभूतोंकी शुद्धि, समष्टिकी सेवा।

(३) मौन—मनमें वासनाओंका स्फुरण न होना, मनोराज्य न होना। आवश्यकतासे अधिक भाषण न करना।

(४) अरण्यायन—शान्त, एकान्त, पवित्र, निर्जन वनमें वास करना।

(५) सत्रायण—सत्संगमें निवास करना।

(६) अनाशकायन—भोजनके सम्बन्धमें एक निश्चित शैली रखना।

१२. शतपथ-ब्राह्मणमें ब्रह्मचारीकी चार शक्तियोंका उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) अग्निके समान तेजस्विता।

(२) मृत्युके समान दोषों—दुर्गुणोंके मारणकी शक्तिका होना।

(३) आचार्यके समान दूसरोंको शिक्षा देनेकी शक्तिका विद्यमान रहना।

(४) संसारके किसी भी स्थान, वस्तु, व्यक्ति आदिकी अपेक्षा रखे बिना आत्माराम होकर रहना।

१३. गोपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों, धर्मसूत्रों, गृह्यसूत्रों एवं मन्वादि धर्मसंहिताओंमें सर्वत्र ही ब्रह्मचारियोंके लिये नृत्य, वाद्य, संगीत, नाट्य आदिका निषेध प्राप्त होता है। ललित कलाएँ अन्तस्तलकी सुषुप्त वासनाओंको धीरे-धीरे कुरेदती हैं और उन्हें उकसाती तथा भड़काती हैं। भगवद्विषयक ललित कलाएँ उतनी बाधक नहीं हैं। फिर भी ब्रह्मचारियोंको शृङ्गारसम्बन्धी अभिनय और भावभङ्गिमासे सर्वथा पृथक् रहना चाहिये। रासलीलाके श्रवण-श्रावणके द्वारा कामविजयकी प्रणाली भी शृङ्गार-रसाकृष्ट व्यक्तियोंके लिये ही है। ब्रह्मचारियोंके लिये वह हानिकारक है। ऐसी अवस्थामें नाटक, सिनेमा आदि विकारवर्धक एवं उद्दीपक प्रसंगोंसे पृथक् रहनेमें ही ब्रह्मचारियोंका कल्याण है।

१४. समावर्तन-संस्कारके पूर्व अपने स्वभाव, रुचि, महत्त्वाकांक्षा, योग्यता, स्वहित, परहित आदिका गम्भीर विवेचन कर लेना चाहिये। पूरी सचाईसे इस बातका अनुशीलन करना चाहिये कि हम सांसारिक भोग्य पदार्थोंकी प्राप्तिसे सुखी होते हैं, हमें सुन्दर वस्त्र-आभूषण, भोजन, मान-प्रतिष्ठा, बड़ाई और धन आदिकी प्राप्तिसे सुख होता है अथवा इनके त्यागसे। यदि किञ्चित् भी लौकिक वासना अन्त:करणमें शेष हो तो त्यागमय आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा धारण न करके नि:संकोच गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और तदनुकूल ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। गृहस्थोचित ब्रह्मचर्यमें निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिये—

(१) गृहस्थाश्रम भोग भोगनेके लिये नहीं है अपितु भोगवासनाओंको नियन्त्रित करके उन्हें नाश करनेके लिये है। ब्रह्मचर्यमें जैसा शक्तिसंचय, ज्ञानका

प्रकाश, तपस्याकी वृद्धि, लौकिक सुख एवं पारमार्थिक सुखकी प्राप्ति है भोगमें उसका लक्षांश भी नहीं है। जैसे फोड़ा होनेपर उसका मवाद निकलते समय एक प्रकारका सुख होता है, वैसे ही मनमें विकार या मन्थनकी पीडा होनेपर वीर्यपातसे एक प्रकारका हलकापन अथवा आभासमात्र सुखका अनुभव होता है। जैसे भाँगका नशा उतर जानेपर सुस्ती, कमजोरी और उदासी मालूम पड़ती है, वैसे ही कामावेश शान्त हो जानेपर स्त्री-पुरुषका पारस्परिक संग कोई सुख, स्वाद, विलास नहीं दे पाता है। यह एक प्रकारका रोग, विवशता, पराधीनता और दुःखका मूल है। इसका न होना ही अच्छा है। संयमपर दृष्टि रखते हुए ही भोग करना चाहिये।

(२) एक पुरुषका एक स्त्रीसे और एक स्त्रीका एक ही पुरुषसे संयोग होना चाहिये। मनमें विकार आ जानेसे भी शील, संयम और व्रत भङ्ग हो जाता है और इस प्रकार मनोवैज्ञानिक पतन हो जानेसे जीवन अनियमित, उच्छृङ्खल एवं अधोगामी हो जाता है।

(३) स्त्री-पुरुषके संयोगके सम्बन्धमें अवस्था, शक्ति, समय, स्थान आदिका भी ध्यान रखना चाहिये।

(४) व्यभिचारको प्रोत्साहन देनेवाली गर्भ-निरोधकी प्रणालियोंको कभी काममें नहीं लाना चाहिये। संयम अवश्य रखना चाहिये।

(५) पति-पत्नीको अलग-अलग शयन करना चाहिये।

(६) सम्भव हो तो एक पुत्र उत्पन्न होनेके बाद इस शक्ति-क्षयकारिणी क्रियासे विरत हो जाना चाहिये और वैराग्य हो तो वानप्रस्थ अथवा संन्यास-आश्रममें प्रवेश कर लेना चाहिये अथवा विश्वसेवाके कार्यमें लग जाना चाहिये। यह विश्व ही परमात्माका मूर्तरूप है।

(७) गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी यथाशक्ति स्वार्थत्याग करके विश्वसेवाके आदर्शको पूर्ण करना चाहिये।

१५. आजीवन त्यागमय ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करना अथवा ब्रह्मचर्याश्रमके बाद संन्यासाश्रममें प्रवेश करना आपत्तिकी बात नहीं है; किंतु इसके पूर्व अपने अधिकार (योग्यता और शक्ति)-का भलीभाँति विचार कर लेना आवश्यक है। केवल तात्कालिक आकांक्षा, रुचि और आवेशसे प्रेरित होकर ऐसा करना बुद्धिमानीकी बात नहीं है। लक्ष्य-प्राप्तिके लिये पूर्ण निश्चय और वज्रकठोर दृढ़ताकी आवश्यकता है। जिसमें इन्द्रियदमन, मनपर विजय, तपस्या, द्वन्द्व-तितिक्षा एवं कष्टसहनमें ही सुखका भाव है, वही त्यागमय जीवनका अधिकारी है। बिना वैराग्य एवं त्यागकी तीव्र भावना हुए आजीवन ब्रह्मचर्यका संकल्प निष्फल ही नहीं, पतनका हेतु भी है। ईश्वर, आचार्य, शास्त्र एवं आत्मदेवकी कृपाका संबल लेकर ही इस मार्गपर अग्रसर होना चाहिये।

१६. आजीवन ब्रह्मचारीके लिये सबसे पहली बात यह है कि वह अपनी एक निष्ठाका निर्णय—निश्चय कर ले। उसे चार निष्ठाओंमेंसे अपने लिये कोई एक चुन लेना चाहिये—

(१) **कर्म**—यज्ञ-यागादि, वेदोक्त कर्मकाण्ड, अशिक्षा-निवारण, रोग-निवारण, स्वच्छताका प्रचार, लोगोंमें नैतिक जीवनकी ओर रुचि उत्पन्न करना।

(२) **उपासना**—गायत्री-जप, नाम-जप, देवाराधन, सङ्कीर्तन, कथा-श्रवण, भक्तिके विभिन्न अङ्गोंका अनुष्ठान।

(३) **योग**—आसन, प्राणायाम आदिके द्वारा चित्तवृत्तियोंके निरोधका अभ्यास।

(४) **ज्ञान**—श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा आत्मसाक्षात्कारके लिये प्रयत्न।

इन चारोंमेंसे किसी एकको प्रधान और शेषको गौण-रूपसे धारण करना चाहिये। सभी निष्ठाओंमें इन्द्रियसंयम, मनोनिरोध एवं सदाचारयुक्त मृदु व्यवहारकी अपेक्षा है। किसी एक निष्ठाको स्वीकार किये बिना अकर्मण्यता—बेकारी आनेका भय रहता है, जिससे मनमें विकारोंके आ जानेकी सम्भावना रहती है। निकम्मे आदमीका जीवन प्रमादका घर होता है।

१७. ब्रह्मचारीको कामविजयके साथ-ही-साथ अत्यन्त सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टिसे अन्य दोषोंपर भी ध्यान रखना चाहिये। काम बड़ा मायावी है। वह तरह-तरहके रूप धारण करके आक्रमण करता रहता है; जैसे—

(क) **मोह-ममता**—यह मेरा प्रिय व्यक्ति अथवा प्रिय वस्तु है, पहले इस प्रकार सम्बन्ध जोड़कर पीछे

भोगबुद्धि उत्पन्न करा देता है।

(ख) लोभ—पहले साधनाकी सुविधा और आवश्यक सामग्रीके छलसे द्रव्य इकट्ठा करा लेता है और पीछे वासनापूर्तिके लिये उसका उपयोग कराता है।

(ग) क्रोध—पहले अपने आलोचक अथवा निन्दकको अपने मार्गसे हटा देता है और फिर इच्छापूर्तिकी छूट दे देता है।

(घ) मान-प्रतिष्ठा—पहले लोगोंके चित्तपर अपनी धाक जमाकर फिर मनमानी कराता है।

(ङ) मिथ्या अभिमान—अब मेरा चित्त निर्विकार हो चुका है, मैं योगी हूँ, ज्ञानी हूँ, भक्त हूँ, सिद्ध हूँ—ऐसी अन्धता उत्पन्न करके फिर भोगके गढ़ेमें डाल देता है, इत्यादि।

कामके इन मायावी रूपोंसे बचनेके लिये सतत सावधानीकी आवश्यकता है। इसके लिये इन उपायोंपर चलना चाहिये—

(१) किसीसे विशेष हेल-मेल न बढ़ाना, सम्बन्धी एवं परिचितोंके देशमें न रहना और न आना-जाना।

(२) पैसे एवं वस्तुओंका संग्रह न करना।

(३) आलोचकों एवं निन्दकोंको अपना हितैषी समझना और उनकी आलोचनाका आत्मनिरीक्षणमें सदुपयोग करना। कभी-कभी निन्दकोंके द्वारा अपने ऐसे छिपे दोषोंका पता चल जाता है, जिनका ज्ञान स्वयं साधकको भी नहीं रहता है।

(४) अपने ऊपर लोगोंकी विशेष श्रद्धा कभी न कराये। मान-प्रतिष्ठाका अत्यन्त निषेध भी न करे; क्योंकि वह निषेधसे ही बढ़ती है। जहाँतक हो सके स्वयं उससे बचना चाहिये।

(५) किसी प्रकारका अभिमान धारण न करे। अभिमान ही कामका आश्रय है। अभिमानके सहारे ही वह फूलता-फलता है। परिपूर्णतम परब्रह्म परमात्मामें द्वैत नामकी कोई वस्तु ही नहीं है, फिर कौन किसका अभिमान करे!

१८. प्राकृत पदार्थोंके सेवनसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा होती है, विकृत पदार्थोंके सेवनसे नहीं; जैसे पीली एवं सोंधी, ठंडी मिट्टीका शरीरमें लेप करनेसे और गन्ध सूँघनेसे जितना लाभ होता है, तेल-फुलेल-इत्र आदिसे उसका शतांश भी नहीं होता। पेड़ूपर ठंडी मिट्टीकी पट्टी बाँधनेसे स्वप्नदोष नहीं होता। गङ्गा आदि नदी, समुद्र एवं वर्षाका जल भी पान-स्नानके द्वारा ब्रह्मचर्यके लिये हितकारी है, सोडावाटर, नल इत्यादिका नहीं। अग्नि एवं सूर्यका सेवन—उपस्थान-नमस्कार आदि वीर्यको पचाता है। हवन और सूर्योपस्थानका यह भी एक प्रयोजन है। बिजलीकी रोशनीसे ब्रह्मचर्यमें कोई सहायता नहीं मिलती। खुली हवा एवं अनाहत नाद जितने उपयोगी हैं, उनके सामने पंखेकी हवा और आहत शब्दकी कोई गिनती ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारीको कृत्रिम पदार्थोंसे दूर ही रहना चाहिये। फल, शाक, दूध, कच्चे और अङ्कुरित अन्न ब्रह्मचर्य-रक्षामें बड़े सहायक हैं। घी, दही लाभकारी नहीं हैं। घीसे मेदोवृद्धि, अपच और पाचनयन्त्रोंपर भारका आधिक्य होता है। दहीकी अम्लता धातुको क्षीण करती है। जहाँतक हो सके स्वाभाविक, स्वच्छ और अन्तर्मुख करनेवाले प्रदेशमें रहना चाहिये और वैसी ही वस्तुओंका सेवन भी करना चाहिये।

१९. रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। रसना जो रस ग्रहण करती है, वही शुद्ध और पक्व होकर वीर्यके रूपमें परिणत होता है। यदि रसपर काबू नहीं है तो वीर्यपर भी नहीं रह सकता। कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियका ही पूरक अस्त्र है। रसना यदि रस ग्रहण करेगी तो ठीक पाचन न होनेपर उसका क्षरण अनिवार्य है। इसलिये रसनाकी रसासक्तिपर कड़ी नजर रखनी चाहिये—

(१) भोजनमें स्वादपर दृष्टि नहीं रखना। केवल जीनेभरके लिये हितकारी वस्तुओंसे उदरपूर्तिमात्र कर लेना। शौकसे खट्टी, मीठी, चरपरी वस्तु नहीं खानी चाहिये। न स्वादके लिये ही खानी चाहिये।

(२) स्वयंपाकी हो तब तो नमक, मीठे, खट्टे, मसालेका प्रयोग ही नहीं करना चाहिये। शुद्ध सात्त्विक एवं परिमित अल्प भोजन समयपर ही करना चाहिये। अनेक बार भोजन नहीं करना चाहिये।

(३) यदि किसी समुदाय या आश्रममें रहना हो

तो जो कुछ वहाँ स्वाभाविक एवं अविरुद्ध भोजन बनता हो वही खाना चाहिये। अपनी व्यक्तिगत इच्छा प्रकट नहीं करनी चाहिये। अलगसे माँगकर, खरीदकर जिह्वा-तृप्ति नहीं करनी चाहिये।

(४) यदि भिक्षा करते हों तो जो विरुद्ध वस्तु भिक्षामें आवे उसको त्याग दें; परंतु अनुकूल वस्तु माँगें नहीं। बड़ोंकी अधीनता, श्रद्धा, सेवा, श्रम और व्यर्थ समय न खोना—ये ऐसे उपाय हैं जिनसे हम क्या खायँगे, इसपर ध्यान ही नहीं जाता।

(५) आवश्यक भोजन एक बार ही परोसवा लें, बार-बार न लें। ठंडे-गरमका विचार न करें। दूसरा क्या खा रहा है यह देखे बिना मौन होकर भोजन करें। सम्भव हो तो वस्तुओंकी और ग्रासोंकी गिनती निश्चित कर लें।

(६) भोजनके प्रारम्भमें भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये। इससे स्वत:प्राप्त स्वादिष्ट भोजनके प्रति स्वादवासनाका दोष मिट जाता है।

(७) भोजनके पहले पाँच ग्रास प्राणोंको आहुतिके रूपमें देने चाहिये, '**प्राणाय स्वाहा**', '**अपानाय स्वाहा**' इत्यादि। इससे 'मैं भोक्ता हूँ अथवा स्वाद ले रहा हूँ', यह भ्रान्ति छूट जाती है।

(८) 'मैं नहीं खा रहा हूँ, मेरे नाभिचक्रमें वैश्वानर अग्निके रूपमें बैठे हुए स्वयं भगवान् ही भोजन कर रहे हैं'—इस भावसे भोजन करनेपर स्वादकी वृत्ति चली जाती है।

स्वयंपाकी ब्रह्मचारीको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि वह अपने लिये ही भोजन न बनाये और किसीको खिला करके ही खाय '**केवलाघो भवति यः केवलादी**।'

२०. किसी व्यक्तिका सौन्दर्य अथवा उसके द्वारा निर्मित वस्तुका सौन्दर्य देखनेकी वासना अन्ततोगत्वा भोगमें परिणत हो जाती है। इस नेत्रवासनाने बड़े-बड़ोंको विकारके अग्निकुण्डमें झोंक दिया है। नेत्रवासनाने केवल पतिंगेको ही भस्म नहीं किया, बड़े-बड़े विद्वानों, योगियों और सदाचारियोंको भी पतनके गर्तमें ढकेलकर सर्वनाशतक पहुँचा दिया। बिल्वमङ्गलने अपनी आँखें फोड़कर इससे पिण्ड छुड़ाया। इसपर विजय प्राप्त करनेके लिये बहुत जागरूक रहना चाहिये—

(१) मन-ही-मन चामका पर्दा हटाकर तब व्यक्तियोंको देखना चाहिये।

(२) जगज्जननी जगदम्बाको ही सर्वत्र देखना चाहिये। परमहंस रामकृष्णके सम्बन्धियोंने उन्हें गृहस्थ-जीवनसे उदासीन देखकर एक वेश्याकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न किया। जब वेश्या अपने हाव-भाव-कटाक्षसे उन्हें आकृष्ट करनेका प्रयत्न करने लगी, तब परमहंसजी तीन बार 'मा! मा!! मा!!!' कहकर समाधिस्थ हो गये। वे जगज्जननीके उपासक थे।

(३) अपने इष्टदेवकी अनुपम रूप-माधुरीका प्रेमसे चिन्तन करना चाहिये। एक बार श्रीरामानुजाचार्यने श्रीरङ्गक्षेत्रमें वेश्याके रूप-सौन्दर्यपर आसक्त व्यक्तिको देखा। वह वेश्याके सामने उसकी ओर मुँह करके छाता लगाये हुए था और पीछेकी ओर चलता था। आचार्यचरणने उसके ऊपर कृपा की और अपने निवास-स्थानपर बुलाकर अपने आराध्यदेवके ऐसे अलौकिक सौन्दर्यका दर्शन करा दिया, जिसपर उसने अपना जीवन, अपना सर्वस्व ही न्योछावर कर दिया और प्रभु-चरणोंका सेवक बन गया।

(४) चलते समय चार हाथसे अधिक दूरतक न देखना। इधर-उधर न देखना। तिरछी और चुभती हुई नजरसे किसीको न निहारना। दृष्टि पक्की करनेका अभ्यास करना।

(५) रंगोंके उभार और आकृतियोंके आड़े-तिरछेपनमें कभी महत्त्वबुद्धि न करना।

(६) अन्त:सौन्दर्यकी अनुभूति, ईश्वरीय सौन्दर्यका अनुसन्धान और प्राकृत सौन्दर्यके निरीक्षणसे व्यक्तिगत सौन्दर्यका आकर्षण एवं प्रलोभन नहीं रह जाता।

(७) सौन्दर्यका सच्चा स्वरूप निर्विकारता है, यह बात ध्यानमें रहनी चाहिये।

२१. वैसे तो सभी सांसारिक सुख स्पर्शजन्य ही हैं। कानकी झिल्लियोंसे जो स्पर्श होता है, उसे शब्द कहते हैं और आँखकी किरणें जिससे टकराती हैं, उसको रूप; परंतु इस प्रसंगमें स्पर्शका अभिप्राय त्वचा

इन्द्रियके कार्यसे है। दाद खुजलानेसे जैसा सुख होता है, कामसम्बन्धी सुख भी प्रायः वैसा ही है। स्पर्श भोगका अवश्यम्भावी पूर्वरूप है। इसीलिये ब्रह्मचारीको स्पर्शसे बचना चाहिये। यह बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों एवं योगियोंको भी बेसुध करके बन्धन-स्थानपर पहुँचा देता है।

स्पर्शके सम्बन्धमें ये सावधानियाँ रखनी चाहिये—

(१) स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्रीका स्पर्श कभी न करे।

(२) लड़कियों और लड़कोंका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। एक बड़े अनुभवी, ईमानदार एवं सच्चे बाल-ब्रह्मचारीने मुझे बताया कि वे थोड़ी आयुके बालक और बालिकाओंको अपनी गोदमें बैठाकर प्यारसे उनके कपोल आदिका स्पर्श कर लिया करते थे। उनके मनमें अपनी निर्विकारताका अभिमान था। धीरे-धीरे भक्त शिष्योंकी बालक-बालिकाएँ वयस्क हुईं। स्पर्शकी क्रिया पूर्ववत् चलती रही। अब बुढ़ौतीमें उन युवतियोंके स्पर्शसे मनमें विकार आने लगा है। उन्होंने अब स्पर्श न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली, यद्यपि पंद्रह वर्ष पूर्व वे मना करनेवालोंकी खिल्ली उड़ाया करते थे।

(३) कोमल शय्या, वस्त्र, चन्दन तथा पुष्पमाला आदि भक्तोंके आग्रहपर भी स्वीकार नहीं करने चाहिये।

(४) साबुन, क्रीम आदिके द्वारा अपने शरीरको मुलायम नहीं बनाना चाहिये।

(५) अपने ही शरीरके कपोल, गुह्याङ्ग आदिका बार-बार स्पर्श करना भी ब्रह्मचर्यका घातक है।

(६) गायत्री-जप, शरीरके प्रत्येक अवयवमें न्यास, ध्यान, त्रिकालस्नान, हाथोंमें कुश-मुष्टि, दण्ड आदिका धारण, वल्कल-वसन, भस्मधारण आदिके द्वारा जन-साधारणसे अपनेमें एक प्रकारकी पृथक्ता एवं अपनी पवित्रता तथा दिव्यताकी भावना जाग्रत् करनी चाहिये। इससे दूसरोंके एवं अपने गुह्याङ्गोंके स्पर्शसे रक्षा हो जाती है।

(७) ईश्वर, गुरु एवं अन्तरात्माको साक्षी बनाकर यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि ब्रह्मचर्यव्रतके विपरीत स्पर्श होनेपर मरणान्त प्रायश्चित्त करूँगा। मेरे पास एक एम्०ए०, डी० लिट्० महाशय आया करते थे। उनमें रूपवती युवतियोंकी ओर घूरने तथा चलते-फिरते उन्हें छू देनेका दोष था। उन्होंने मेरे सामने यह प्रतिज्ञा की कि बुरी नीयतसे स्पर्श होनेपर गङ्गाजीमें कूदकर प्राण दे दूँगा। थोड़े ही दिनोंमें उनकी घूरनेकी आदत छूट गयी। जिस रास्तेपर जाना ही नहीं है, उसके मीलके पत्थरोंकी गिनती मालूम करनेसे क्या लाभ है?

(८) ऐसे ग्रन्थोंका अनुसन्धान करना चाहिये, जिनमें अस्पर्श-व्रतकी महिमाका उल्लेख है; जैसे वाल्मीकिकृत रामायणके सुन्दरकाण्डमें सतीशिरोमणि श्रीजानकीजीकी कथा है। उन्होंने अपने पुत्रवत् परम भक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीहनुमान्‌जीको भी स्पर्श करनेसे मना कर दिया था।

एक बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये। रूप, स्पर्श, आदिकी वासनाएँ मनकी कमजोरी हैं। दृढ़ प्रतिज्ञा, निश्चय और सावधानीसे ही इनपर विजय प्राप्त की जा सकती है।

२२. यद्यपि शास्त्रोंमें केवल जननेन्द्रियके संयमको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं, तथापि समस्त इन्द्रियोंका संयम हुए बिना ब्रह्मचर्यकी रक्षा सम्भव नहीं। जब किसी इन्द्रियके द्वारसे मनको बाहर निकलनेका अवकाश नहीं मिलता, तब उसमें एकाग्रता और निरोध-दशाका उदय होने लगता है। यह बड़े-बड़े खेल खेलता है। विक्षेपप्रिय होनेके कारण एकाग्रता इसे जेलके समान मालूम पड़ती है। निरोध तो मानो कालकोठरी ही हो। एक इन्द्रियका संयम करो तो यह दूसरी इन्द्रियसे भाग निकलनेकी कोशिश करता है। वाणीको बंद करते ही हाथसे लिखनेकी कलासे मोहित कर लेता है। यदि ब्रह्मचारीने समस्त इन्द्रियोंके निग्रह और संयमका कौशल प्राप्त करनेमें कुछ निपुणता प्राप्त कर ली तो शरीरमें हनुमान्‌का-सा बल, भीष्मकी-सी इच्छा-मृत्यु-शक्ति, सनकादिके समान नित्य शैशव आदि प्राप्त करानेकी लालसाका रूप धारण करके चमत्कारोंके चक्करमें डाल देता है अथवा प्रचारकी तीव्र वासनाको प्रोत्साहित करता है। परमार्थ-पथके पथिकोंको इनसे परहेज करना चाहिये। उन महापुरुषोंमें वे सिद्धियाँ

स्वाभाविक थीं, उन्होंने ब्रह्मचर्यसे उन्हें खरीदा नहीं था। साधारण साधकका मन निरोधके भयसे ही उनकी इच्छा उपस्थित करता है।

२३. यदि चमत्कारोंके चक्कर और प्रचारकी वासनासे बचकर मन और इन्द्रियगोलकोंका सम्बन्ध रोक दिया गया, इन्द्रियाँ शान्त और स्थिर हो गयीं तो स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि विषय और इन्द्रियोंमें कोई भेद नहीं है। एक ही जड सत्ता दो रूप धारण किये हुए है। वही विषय है और वही इन्द्रिय है। विषयगत रूप और नेत्रगत रूपमें कोई भेद नहीं है। ऐसी अवस्थामें मन स्वतन्त्र विषयोंकी सृष्टि करने लगता है। साधारणतः अनुभूयमान प्रपञ्चसे विलक्षण गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्दकी संवित् होने लगती है। अनेकों प्रकारके दिव्य दृश्य, चित्र-विचित्र अनुभूतियाँ, देवता, दानव, स्वर्ग-ब्रह्मलोक आदिके दर्शन होने लगते हैं। यह सब मनके ही आकार-विशेष हैं। शास्त्र, सम्प्रदाय, मत, पन्थ, व्यक्तिगत जानकारी, मान्यता एवं भावनाएँ जो बुद्धिमें संस्काररूपसे निहित रहती हैं, उदय हो-होकर एक जाल-सा बिछा देती हैं और साधकको उन्हींमें नित्यबुद्धि, सत्यबुद्धि उत्पन्न कराकर फँसा देती हैं। इस अवस्थामें साधक ऐसा समझने लगता है कि अब मेरा प्रवेश दिव्य राज्यमें हो गया है और मैं भागवत-सत्ता एवं भगवल्लीलाका अनुभव कर रहा हूँ। यह भी भ्रम है। जहाँतक नाम और आकृतियोंका भेद है, वहाँतक वास्तविक सत्ताका अनुभव नहीं है। इसका भी निरोध आवश्यक है। तत्पश्चात् एक अपूर्व आनन्दका, इस आनन्दका भोग भी ब्रह्मचर्यका विघ्न ही है। जब आनन्दकी वृत्ति भी शान्त हो जाती है, तब अस्मितामात्र शेष रह जाती है। इस अवस्थामें ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि अस्मितासे लेकर विषयपर्यन्त एक ही प्रकृतिका, जड सत्ताका विलास है। मैं तो केवल द्रष्टामात्र हूँ। मैं अकर्ता, अभोक्ता अर्थात् नित्य ब्रह्मचारी हूँ।

२४. यह अनुभूति भी वास्तविक नहीं है। इसमें भी संस्कारशेष विद्यमान रहते हैं। विषयगत भेदके संस्कार ईश्वरके सम्बन्धमें अन्यत्वकी कल्पना और द्रष्टाके अनेक होनेकी भ्रान्ति इस अवस्थामें भी विद्यमान होते हैं। कोई भी अभ्यासजन्य समाधि, चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न रख लिया जाय, अज्ञानकी निवृत्ति करनेमें समर्थ नहीं है। उनकी निवृत्ति तो **तत्त्वमस्यादि** महावाक्यजन्य वृत्तिज्ञानसे ही होती है। समाधिके द्वारा अन्तःकरणके समस्त संस्कार अथवा अशुद्धियोंके धुल जानेपर स्वतःसिद्ध निरुपद्रव पूर्णबोधात्मक अखण्ड चिति ही शेष रह जाती है और वही आत्माका, ईश्वरका और जगत्का भी सच्चा स्वरूप है। ब्रह्मचर्यका भी वास्तविक स्वरूप वही है। इस पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति, समस्त साधन, वेद-शास्त्र आदिका लक्ष्य है। इसीका अनुभव, साक्षात्कार अथवा बोधात्मक उपलब्धि होनेसे मनुष्य-जीवन, जीव-जीवन सफल-चरितार्थ होता है।

२५. पूर्ण ब्रह्मचर्यमें बाधात्मक स्थिति होनेपर ये शुभ सद्गुण जीवनमें स्वाभाविक ही रहने लगते हैं—व्यवहारशुद्धि, अन्तःकरणकी निर्मलता और सहज स्थिति। साधन-कालमें इनके लिये प्रयास करना पड़ता है और सिद्धिकालमें बिना प्रयत्नके स्वतःसिद्ध हो जाते हैं—

(१) व्यवहारशुद्धि—संयम, सरलता, सादगी, समता, सत्यता, सदाचार आदि सद्गुण स्वाभाविक ही जीवनमें उतर आते हैं। बाह्य वस्तुओंमें सुखबुद्धि न रहनेके कारण अन्यायसे संग्रह-परिग्रहका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भोगलिप्सासे उत्पन्न होनेवाली हिंसा स्वतः निवृत्त हो जाती है। किसी वस्तुके नाशका भय नहीं रहता। छोटे-से-छोटे कार्यमें भी दैवी सम्पत्तिके महान् गुणोंका प्राकट्य होने लगता है। जाति, पन्थ और भाषाका दुराग्रह मिट जाता है। वह समाज, जाति, राष्ट्र, मानवता, विश्व एवं विश्वात्माका सच्चा सेवक होता है। उसके शरीरके कण-कण, रोम-रोम, रग-रग विश्वहित, भगवत्प्रेम और आत्मज्ञानसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनकी ऐसी रश्मियाँ एवं धाराएँ बिखरती रहती हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व प्रेमसे परिप्लुत हो जाय।

(२) अन्तःकरणकी निर्मलता—अन्तःकरणके अच्युततत्त्वमें स्थित हो जानेसे विषयसम्बन्धी सारे विकार स्वयं ही दूर हो जाते हैं। निर्विकार अन्तःकरणकी जो अपने सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन-आश्रयसे अभिन्न स्थिति है, वही शुद्धि है; क्योंकि उसमें वृत्ति

और विषयका मिश्रण नहीं है। मिश्रण ही अशुद्धि है। चित्तमें जितने भी दोष, दुर्गुण, अशुद्धि, विकार होते हैं, उनमें कोई-न-कोई विषय वृत्तिके गर्भमें विद्यमान रहता है; यथा काममें कामिनी, क्रोधमें शत्रु, लोभमें धन इत्यादि। परंतु सत्य, अहिंसा, निष्कामता, निर्लोभता आदि सद्‌गुणोंमें अन्तःकरण सर्वथा निर्मल एवं निर्विषय रहता है। उस समय वृत्ति अपने शान्त आश्रयसे भिन्न करके अपनेको नहीं दिखाती। सत्य, अहिंसा, निष्कामता आदि किसीके प्रति यह प्रश्न ही नहीं उठता। वृत्तिकी सत्तामात्र स्थिति ही सद्‌गुण है। इसपर यह प्रश्न होता है कि ऐसी अवस्थामें सद्‌गुण अनेक क्यों? इसका उत्तर यह है कि एक ही शान्त स्थितिरूप सद्‌गुणोंको हिंसा, लोभ, काम आदि भिन्न-भिन्न दुर्गुणोंकी निवृत्ति करनेके कारण विभिन्न नामोंसे व्यवहार करते हैं। दुर्गुण अनेक हैं, इसीसे उनकी व्यावर्तक वृत्तिमें भी अनेकताका व्यवहार होता है। जैसे कामका विषय कामिनी है, वैसे ब्रह्मचर्यका कुछ विषय नहीं है। यह तो चित्तकी शान्ति ही है। काम केवल जाग्रत्, स्वप्नमें रह सकता है और समाधिमें नहीं। ब्रह्मचर्य जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि आदि सभी अवस्थाओंमें एकरस रहता है, इसलिये यह अखण्ड सत्य है। अतएव अखण्ड ब्रह्मचर्यमें स्थिति ही अन्तःकरणकी सच्ची शुद्धि है।

(३) **सहज स्थिति**—समाधि हो चाहे विशेष ब्रह्मचारीकी सहज स्थिति भंग नहीं होती। उसके लिये प्रवृत्ति और निवृत्ति सम है। उसके अपने स्वरूपसे भिन्न द्रष्टा, दर्शन, दृश्य कुछ भी नहीं है। वह सहजभावसे रहता है। अपने जीवनमें किसी प्रकारकी विशेषताका आरोप नहीं करता। उसका व्यवहार सम है, वृत्ति सम है, स्वरूप सम है और विषमता भी सम है। वह जीवन्मुक्त है, उसकी स्थिति सहज है।

स्वस्थ तन एवं स्वस्थ मन

(ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजीके अमृत वचन)

मनको प्रसन्न एवं स्वस्थ रखनेका पहला उपाय है—शरीरको स्वस्थ रखना। शरीर वह रथ है, जिसपर बैठकर जीवनकी यात्रा करनी होती है। शरीर एक चलता-फिरता देव-मन्दिर है, जिसमें स्वयं भगवान् अपनी विभूतियोंके साथ विराजते हैं। अतः मनकी निर्मलता और बुद्धिकी शुद्धताका साधन शरीरसे प्रारम्भ होता है। शरीर तो एक साधनमात्र है, जिसकी सहायतासे परम साध्यको प्राप्त करनेके लिये योग, तप, जप आदि किया जाता है। इस साधनरूपी शरीरको स्वस्थ और पवित्र रखनेसे ही योगकी शुरुआत होती है।

मांसाहार, शराब, धूम्रपान आदि—ये सभी रोगोंकी जड़ हैं। सात्त्विक भोजनसे रक्त शुद्ध रहता है। तामसी भोजनसे शरीर आलसी और रोगी रहता है। सात्त्विक भोजनसे गरीबी भी दूर रहती है तथा जीवनमें संतोष और प्रसन्नता आती है। अमीर आदमी यदि व्यसनोंमें फँसा रहे, तामसी वृत्ति रखे तो दरिद्रता सहज आयेगी। अपनी वृत्तियोंकी संतुष्टिके लिये वह पाप करेगा, धोखा देगा और फलस्वरूप दुःखका भागी होगा। दुःख नाना प्रकारके रोगोंके रूपमें भी कष्ट देता है। प्रकृतिके निकट रहो। शुद्ध मिट्टीमें भी औषधिके गुण हैं। बच्चोंका शुद्ध मिट्टीमें खेलना बुरा नहीं है। नेत्र-ज्योतिकी रक्षाके लिये सबेरे नंगे पाँव घासपर टहलो। दर्दके स्थानपर किसीके दाहिने पैरका अँगूठा लगवाओ तो आराम पहुँचेगा। दाहिने पाँवके अँगूठेसे विद्युत्-तरङ्गें विशेष रूपसे प्रवाहित होती हैं। इसलिये महान् पुरुषोंका चरणामृत लिया जाता है। आसनोंकी सिद्धिसे शरीर नीरोग रहता है। बद्धपद्मासन स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद है।

सूर्यकी किरणोंमें औषधिके प्रचुर गुण हैं। पहले समयमें कुएँ चौड़े होते थे, जिससे सूर्य तथा चन्द्रमाकी किरणें पानीतक पहुँच सकें। जिस पानी या भोजनपर सूर्य अथवा चन्द्रमाकी किरणें पड़ेंगी, वह अपेक्षाकृत अधिक स्वादिष्ट तथा मीठा होगा।

भोजन या दूध-दही तब सेवन करे, जब दायाँ स्वर चल रहा हो। जल-ग्रहण करनेके समय बायाँ स्वर

चलना चाहिये। इसके विपरीत आचरणसे काया रोगी होती है—

दहिने स्वर भोजन करै, बाँयें पीवै नीर।
ऐसा संयम जब करै, सुखी रहै शरीर॥
बाँयें स्वर भोजन करै, दहिने पीवै नीर।
दस दिन भूला यों करै, पावै रोग शरीर॥

सात्त्विक भोजन-पानसे और सादे वस्त्र धारण करनेसे बुद्धि शुद्ध रहती है। सात्त्विक जीवनसे शान्ति मिलती है। तामसिक जीवनसे बेचैनी रहती है, उद्वेग रहता है तथा जलन और ईर्ष्या होती है। इसी कारण बीड़ी-सिगरेट आदि मादक वस्तुओंका उपयोग नहीं करना चाहिये। इनसे वृत्तियाँ तामसिक होती हैं। इनके सेवनसे बुरी आदतें पड़ जाती हैं। तंबाकू खाने-पीनेसे तेज नष्ट हो जाता है। कहा गया है कि युद्धमें कामधेनुके कान कटनेसे जहाँ रक्त गिरा वहीं तंबाकू उगा और पनपा। अतः मादक द्रव्योंके सेवनसे आरोग्यकामी मनुष्यको सदा बचना चाहिये। स्वस्थ विचार स्वस्थ मनसे उत्पन्न होता है, स्वस्थ मन स्वस्थ शरीरमें रहता है और उसीका शरीर स्वस्थ रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ अपने वशमें हैं। इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिये प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर परमात्माका एक घंटा नियमसे ध्यान किया जाय तो कल्याण अवश्य होगा। [प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा]

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

जबतक मैंने आयुर्वेदके ग्रन्थोंका अध्ययन नहीं किया था, तबतक मैं यही समझता था कि उनमें रोगोंका निदान तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रा, बहेड़ा, आमलादि ओषधियाँ ही लिखी होंगी। किंतु जब मैंने आर्ष आयुर्वेदिक ग्रन्थोंका अध्ययन किया, तब मुझे पता चला कि यह तो मोक्ष-मार्गका शासन करनेवाला, शिक्षा देनेवाला शास्त्र है। इसका एकमात्र उद्देश्य रोगोंसे छुटकारा करना ही नहीं है, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य तो मोक्ष प्राप्त करनेका साधन बताना है। शास्त्रका अर्थ ही है—(**'शिष्यते अनेन इति शास्त्रम्'**) जो हमें मोक्ष-मार्ग सिखाये। जैसे सांख्यशास्त्र कहता है, प्रकृति-पुरुषके विवेकसे मोक्ष होता है। योगशास्त्र कहता है, योगद्वारा समाधि प्राप्त करनेसे मोक्ष मिलता है। वेदान्तशास्त्र कहता है—ब्रह्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार आयुर्वेदशास्त्र कहता है—**'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'** —धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्तिमें श्रेष्ठ मूलकारण शरीरका नीरोग होना ही है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन रहता है, तभी ब्रह्मका चिन्तन सम्भव है। जैसे पैरमें यदि काँटा गड़ जाय तो सब समय उसीमें मन लगा रहता है, वैसे ही रोगग्रस्त शरीरका मन रोगकी चिन्तामें लगा रहता है। वह ब्रह्म-चिन्तन कैसे करेगा? चरकने दार्शनिक ढंगसे प्रकृति-पुरुषका बड़ा विचार किया है और प्रायः वे सांख्य-शास्त्रके ही सिद्धान्तके पोषक हैं। हमारे यहाँ रोगोंका नाश केवल विषयोंके भोगके ही लिये नहीं है। विषयोंका भलीभाँति भोग भी स्वस्थ पुरुष ही कर सकता है। आयुर्वेद तो स्वास्थ्य-लाभ इसीलिये कराना चाहता है, जिससे हम भलीभाँति मोक्षमार्गका चिन्तन कर सकें। इसके लिये सबसे पहले शरीर स्वस्थ होना चाहिये। स्वस्थ काया होनेपर ही अन्तःकरण विशुद्ध बन सकता है।

यह शरीर व्याधियोंका घर है—**'शरीरं व्याधिमन्दिरम्।'** व्याधि होती है पूर्वजन्मोंके पापोंके कारण—**'पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।'** पूर्वजन्मके पाप ही रोग बनकर मनुष्योंको पीडा देते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता ऋषिगण पापरहित—निष्कल्मष होते थे, वे जरा, रोग तथा मृत्युसे रहित होते थे।

रोगोंके भेद—

शास्त्रोंमें रोग चार प्रकारके बताये गये हैं—१-स्वाभाविक, २-आगन्तुक, ३-मानसिक और ४-कायिक।

१-स्वाभाविक रोग वे कहलाते हैं, जो शरीरमें स्वभावसे ही होते हैं, जैसे प्यास, भूख भी एक प्रकारके रोग ही हैं। शरीरधारियोंको भूख, प्यास, निद्रा, जागना, मृत्यु—ये स्वाभाविक होते हैं। इनकी औषधि भी है। भूखकी औषधि भोजन है, प्यासकी औषधि पानी या

पेय पदार्थ है, निद्राकी औषधि सोना है और मृत्युकी कोई औषधि नहीं है।

एक स्वाभाविक रोग और है, जैसे कोई जन्मसे ही अन्धा उत्पन्न होता है, किसीका कोई अङ्ग विकृत होकर उत्पन्न होता है, ये सब स्वाभाविक रोगोंके अन्तर्गत आते हैं।

२-दूसरे हैं आगन्तुक रोग, जैसे किसी बैलने सींग मार दिया, किसी पशुने लात मार दी, किसी विषैले कीड़ेने काट लिया अथवा किसी रोगसे आँख फूट गयी या किसी बाहरी कारणसे अङ्ग-भङ्ग हो गया—ये सब आगन्तुक रोग हैं।

३-तीसरा है मानसिक रोग, जो मनके द्वारा शरीरको क्लेश देता है। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, भय, अहंकार, दीनता, पिशुनता, विवाद तथा इसी प्रकार मनमें उठनेवाले अन्य विकार—ये सब मानसिक रोग ही हैं। कोई-कोई उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, भ्रम और तम आदि रोगोंकी गणना भी मानस रोगोंमें ही करते हैं।

४-कायिक रोग वह है जो त्रिदोषोंके न्यूनाधिक्यसे होता है, जैसे ज्वर, पाण्डुरोग आदि-आदि।

आप यथेच्छाचार करेंगे, मिथ्या आहार-विहार करेंगे तो धातुओंमें विषमता आ जायगी। आमाशयमें दोष एकत्रित हो जायँगे, वे अनेक रोगोंको उत्पन्न करेंगे और आपकी अकाल-मृत्यु हो जायगी। रसायनके सेवनसे बृहद् विवर मुखसे लेकर गुदातक विशुद्ध बन जायगा, इससे आप पूरी आयु सौ वर्षोंतक जीवित रह सकेंगे। शरीरमें जब वात, पित्तादि दोष बढ़ जाते हैं, तब स्नायुओंमें—नसोंमें मल भर जाता है, इससे सम्मोहन हो जाता है, स्मृति नष्ट हो जाती है। रसायन-सेवनसे नाडियोंकी शुद्धि हो जाती है, इससे स्मृति-भ्रंश नहीं होता। वृद्धावस्थामें, यहाँतक कि मरणावस्थामें भी स्मृति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

रसायन-सेवन किस अवस्थामें करना चाहिये—साठ वर्षकी अवस्थाके पश्चात् रसायन-सेवनसे विशेष लाभ नहीं मिलता। कारण यह है कि वात-पित्तादि दोष अन्य धातुसे मिलकर आँतोंमें अपना स्थायी घर बना लेते हैं। उन्हें गलाना कठिन हो जाता है। इसलिये रसायन-सेवन या तो युवावस्थाके आरम्भ होनेपर अथवा युवावस्थाके मध्यमें चालीस वर्षकी अवस्थामें करना चाहिये; क्योंकि चालीस-पचास वर्षके पश्चात् धातुओंका क्षय होना आरम्भ हो जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र रसायन-सेवन अर्थात् औषधि-चिकित्सापर विशेष बल देता है।

आयुर्वेदशास्त्र क्या है?

पहले आयु शब्दपर ही विचार करें। इस शरीररूपी यन्त्रको सुचारुरूपसे रखते हुए कौन सञ्चालन करता है? उस शक्तिको प्राणशक्ति कहते हैं। इसीलिये उपनिषदोंमें प्राणको ब्रह्म कहा है। प्राण शरीरके कण-कणमें व्याप्त है, शरीरके कर्णेन्द्रियादि तो सो भी जाते हैं, विश्राम कर लेते हैं, किंतु यह प्राणशक्ति कभी भी न तो सोती है न विश्राम ही करती है। रात-दिन अनवरतरूपमें कार्य करती ही रहती है, चलती ही रहती है—'**चरैवेति चरैवेति**' यही इसका मूल मन्त्र है। जबतक प्राणशक्ति चलती रहती है, तभीतक प्राणियोंकी आयु रहती है। ज़ब यह इस शरीरमें काम करना बंद कर देती है, तब आयु समाप्त हो जाती है। प्राण जबतक कार्य करते रहते हैं तभीतक जीवन है, प्राणी तभीतक जीवित कहलाता है; प्राणशक्तिके कार्य बंद करनेपर वह मृतक कहलाने लगता है। इसलिये आयुको—प्राण-शक्तिको जो यथावत् रखनेका ज्ञान कराये वही आयुर्वेद है। शरीरमें प्राण ही तो सब कुछ हैं, प्राण ही शरीरकी रक्षा करते हैं, उसे आधि-व्याधियोंसे बचाये रखनेका प्रयत्न करते हैं। प्राणोंको स्वस्थ कैसे रखा जाय, इसीकी शिक्षा आयुर्वेद देता है। प्राणोंका हरण करनेवाले, उन्हें क्षति पहुँचानेवाले रोग हैं। रोगोंकी उत्पत्ति रागसे, अश्रुओंसे, शोकसे हुई है। अतः रोग शोकको उत्पन्न करनेवाले हैं, अन्तःकरणके शोकको आधि कहते हैं, काया—देहके दुःख-शोकको व्याधि कहते हैं। आधि और व्याधि दोनों ही प्राणोंको हानि पहुँचानेवाले हैं, अतः आयुर्वेद दोनोंकी चिकित्सा करके शरीरको स्वस्थ रखनेका उपाय बताता है।

स्वस्थ किसे कहते हैं

स्वका अर्थ है आत्मा। आत्मा शब्द देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, जीवात्मा तथा परमात्मा—इन सबके लिये प्रयुक्त होता है। जब हम किसी व्याधिसे ग्रस्त रहते हैं तो व्याधिग्रस्त या रोगग्रस्त कहलाते हैं। उस समय हम स्वस्थ नहीं रहते। स्वस्थका अर्थ है नीरोग। जो अपने-आपमें—सुखस्वरूप आत्मामें स्थित रहे वही स्वस्थ कहलाता है। ('**स्वस्मिन् तिष्ठतीति स्वस्थः**') कैसे जाने कि ये स्वस्थ हैं? जिसके वात, पित्त और कफ—ये दोष सम हों इनमें विषमता न आ जाय। आवश्यकतासे अधिक

वायु, पित्त, कफ न बढ़ जाय। यदि एक अधिक कुपित होकर बढ़ जाता है तो शेष दो घट जाते हैं, जैसे शरीरमें कफ बढ़ जाय तो वात और पित्त घट जायँगे। इसी प्रकार पित्त बढ़नेपर वात और कफ घट जायँगे। अतः स्वस्थताके लिये तीनोंका सम होना आवश्यक है। तीनों ही दोष कुपित हो जायँ तो त्रिदोष हो जाता है, वह प्राणी फिर बच नहीं सकता। अतः तीनों दोष सम होने चाहिये। अग्नि भी तीन प्रकारकी होती है। मन्दाग्नि, तीव्राग्नि और समाग्नि—एक चौथी हविषाग्नि भी होती है। उसमें भूख कभी शान्त ही नहीं होती चाहे जितना खाते जाओ। मन्दाग्निमें भूख नहीं लगती, तीव्राग्निमें आवश्यकतासे अधिक भूख लगती है। अतः अग्नि सम होनी चाहिये। धातु भी सम रहनी चाहिये। रस, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, मेद और शुक्र—इनमेंसे कोई भी आवश्यकतासे अधिक बढ़ जायँगे तो रोग पैदा करेंगे। अधिक क्षय हो जायँगे तो भी रोग उत्पन्न करेंगे। अतः धातुएँ भी सम होनी चाहिये। मलकी क्रिया भी सम होनी चाहिये। अधिक मल निकलेगा या कम निकलेगा तो भी रोग होंगे। प्राण विशेषकर रक्तमें, वीर्यमें और मलमें रहते हैं। इन तीनोंके क्षयका ही नाम राजयक्ष्मा है। इन्द्रिय और मन प्रफुल्लित तथा प्रसन्न रहें तो ऐसे प्राणीको ही स्वस्थ कहते हैं।[1]

स्वस्थ पुरुषकी छः पहिचान है—(१) खूब खुलकर भूख लगे, (२) जो खाय वह भली प्रकार पच जाय, (३) समयपर बँधा हुआ चिकना एक बारमें मल निकल जाय, पेट हलका हो जाय, (४) शुद्ध डकार आवे, (५) अपानवायु शब्द तथा दुर्गन्धरहित सरलतासे निकल जाय और (६) मन प्रसन्न रहे, निश्चिन्त रहे। ये छः लक्षण स्वस्थताके हैं। आयुर्वेदशास्त्रका उद्देश्य रोगोंको शान्त करना नहीं है। उसका मुख्य उद्देश्य तो अन्तःकरणको शुद्ध बनाकर मोक्ष प्रदान करना है। शुद्धान्तःकरण शुद्ध शरीरमें—नीरोग कायामें ही रह सकता है, अतः रोगोंका निदान और उनकी चिकित्सा मोक्षके साधनमात्र हैं। इसीलिये कहा है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' —धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके लिये शरीरको नीरोग रखना यह मुख्य कारण है। नीरोग शरीरसे ही सभी पुरुषार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।[2]

भवरोगसे मुक्तिका उपाय

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

१. आत्म-निरीक्षण करना अर्थात् प्राप्त विवेकके प्रकाशमें अपने दोषोंको देखना।

२. की हुई भूलको पुनः न दोहरानेका व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक भगवान्से प्रार्थना करना।

३. विचारका प्रयोग अपनेपर और विश्वासका दूसरोंपर करना अर्थात् न्याय अपनेपर और प्रेम तथा क्षमा अन्यपर करना।

४. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन और सत्यकी खोजद्वारा अपना निर्माण।

५. दूसरोंके कर्तव्यको अपना अधिकार, दूसरोंकी उदारताको अपना गुण और दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल न मानना।

६. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावनाके अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्मकी भिन्नता होनेपर भी स्नेहकी एकता बनाये रखना।

७. निकटवर्ती जन-समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक रूपसे सेवा करना।

८. शारीरिक हितकी दृष्टिसे आहार-विहारमें संयम तथा दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन रखना।

९. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहंको अभिमान-शून्य करके अपनेको सुन्दर बनाना।

१०. सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक तथा विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व देना।

११. व्यर्थ चिन्तनके त्याग तथा वर्तमानके सदुपयोगद्वारा भविष्यको उज्ज्वल बनाना।

[प्रेषक—एक साधक]

१-समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

२-संकीर्तन भवन, झूसी (प्रयाग)-से प्रकाशित 'कायाकल्प और कल्प-चिकित्सा' से संकलित।

ब्रह्मचर्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

ब्रह्मचर्यका यौगिक अर्थ है ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये वेदोंका अध्ययन करना। प्राचीन कालमें छात्रगण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये गुरुके यहाँ रहकर सावधानीके साथ वीर्यकी रक्षा करते हुए वेदाध्ययन करते थे। इसलिये धीरे-धीरे 'ब्रह्मचर्य' शब्द वीर्यरक्षाके अर्थमें रूढ़ हो गया। आज हमें इसी वीर्यरक्षाके सम्बन्धमें कुछ विचार करना है। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यका नाश ही मृत्यु है। वीर्यरक्षाके प्रभावसे ही प्राचीन कालके लोग दीर्घजीवी, नीरोग, हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, बुद्धिमान्, तेजस्वी, शूरवीर और दृढ़संकल्प होते थे। वीर्यरक्षाके कारण ही वे शीत, आतप, वर्षा आदिको सहकर नाना प्रकारके तप करनेमें समर्थ होते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे ही वे प्राणवायुको रोककर शरीर और मनकी शुद्धिके द्वारा नाना प्रकारके योग-साधनोंमें सफलता प्राप्त करते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे ही वे थोड़े ही समयमें नाना प्रकारकी विद्याओंको सीखकर अपने ज्ञानके द्वारा अपना और जगत्का लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रकारका कल्याण करनेमें समर्थ होते थे। शरीरमें सार वस्तु वीर्य ही है। इसीके नाशसे आज हमारा देश रसातलको पहुँच गया है। ब्रह्मचर्यके नाशके कारण ही आज हमलोग नाना प्रकारकी बीमारियोंके शिकार हो रहे हैं, थोड़ी ही अवस्थामें कालके गालमें जा रहे हैं। इसीके कारण आज हमलोग अपने बल, तेज, वीरता और आत्मसम्मानको खोकर पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़े हुए हैं और जो हमारा देश किसी समय विश्वका सिरमौर और सभ्यताका उद्गमस्थान बना हुआ था, वही आज दूसरोंके द्वारा लाञ्छित और पददलित हो रहा है। विद्या-बुद्धि, बल-वीर्य, कला-कौशल—सबमें आज हम पिछड़े हुए हैं। इसीके कारण आज हम चरित्रसे भी गिर गये हैं। सारांश यह है कि किसी भी बातको लेकर आज हम संसारके सामने अपना मस्तक ऊँचा नहीं कर सकते। वीर्यका नाश ही हमारी इस गिरी हुई दशाका प्रधान कारण मालूम होता है। वीर्यके नाशसे शरीर, बल, तेज, बुद्धि, धन, मान, लोक, परलोक—सबकी हानि होती है। परमात्माकी प्राप्ति तो वीर्यकी रक्षा न करनेवालेसे कोसों दूर रहती है।

ब्रह्मचर्यके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। रोगसे मुक्त होनेके लिये, स्वास्थ्य-लाभके लिये, बल-बुद्धिके विकासके लिये, विद्याभ्यासके लिये तथा योगाभ्यासके लिये तो ब्रह्मचर्यकी बड़ी भारी आवश्यकता है। उत्तम संतानकी प्राप्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, सिद्धियोंकी प्राप्ति, अन्तःकरणकी शुद्धि तथा परमात्माकी प्राप्ति—ब्रह्मचर्यसे सब कुछ सम्भव है और ब्रह्मचर्यके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। सांख्ययोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग—सभी साधनोंमें ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता होती है। अतः लोक-परलोकमें अपना हित चाहनेवालेको बड़ी सावधानी एवं तत्परताके साथ वीर्यरक्षाके लिये चेष्टा करनी चाहिये।

सब प्रकारके मैथुनके त्यागका नाम ही ब्रह्मचर्य है। मैथुनके निम्नलिखित प्रकार शास्त्रोंमें कहे गये हैं—

(१) **स्मरण**—किसी सुन्दर युवती स्त्रीके रूप-लावण्य अथवा हाव, भाव, कटाक्ष एवं शृङ्गारका स्मरण करना, कुत्सित पुरुषोंकी कुत्सित क्रियाओंका स्मरण करना, अपने द्वारा पूर्वमें घटी हुई मैथुन आदि क्रियाका स्मरण करना, भविष्यमें किसी स्त्रीके साथ मैथुन करनेका संकल्प अथवा भावना करना, माला, चन्दन, इत्र, फुलेल, लवेंडर आदि कामोद्दीपक एवं शृङ्गारके पदार्थोंका स्मरण करना, पूर्वमें देखे हुए किसी सुन्दर स्त्री अथवा बालकके चित्रका या अश्लील चित्रका स्मरण करना—ये सभी मानसिक मैथुनके अन्तर्गत हैं। इनसे वीर्यका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपमें नाश होता है और मनपर तो बुरा प्रभाव पड़ता ही है। मन खराब होनेसे आगे चलकर वैसी क्रिया भी घट सकती है। इसलिये सर्वाङ्गमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको चाहिये कि वह उक्त सभी प्रकारके मानसिक मैथुनका त्याग कर दे, जिससे मनमें कामोद्दीपन हो ऐसा कोई संकल्प ही न करे और यदि हो जाय तो उसका तत्काल विवेक एवं विचारके द्वारा त्याग कर दे।

(२) **श्रवण**—गंदे तथा कामोद्दीपक एवं शृङ्गार-रसके गानोंको सुनना, शृङ्गार-रसका गद्य-पद्यात्मक वर्णन सुनना, स्त्रियोंके रूप-लावण्य तथा अङ्गोंका वर्णन सुनना, उनके हाव, भाव, कटाक्षका वर्णन सुनना, कामविषयक बातें सुनना आदि—ये सभी श्रवणरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह उक्त सभी प्रकारके श्रवणका त्याग कर दे।

(३) **कीर्तन**—अश्लील बातोंका कथन, शृङ्गार-रसका वर्णन, स्त्रियोंके रूप-लावण्य, यौवन एवं शृङ्गारकी प्रशंसा तथा उनके हाव, भाव, कटाक्ष आदिका वर्णन, विलासिताका वर्णन, कामोद्दीपक अथवा गंदे गीत गाना तथा ऐसे साहित्यको स्वयं पढ़ना और दूसरोंको सुनाना एवं कथा आदिमें ऐसे प्रसङ्गोंको विस्तारके साथ कहना—ये सभी कीर्तनरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह इन सबका त्याग कर दे।

(४) **प्रेक्षण**—स्त्रियोंके रूप-लावण्य, शृङ्गार तथा उनके अङ्गोंकी रचनाको देखना, किसी सुन्दरी स्त्री अथवा सुन्दर बालकके रूप या चित्रको देखना, नाटक-सिनेमा देखना, कामोद्दीपक वस्तुओं तथा सजावटके सामानको देखना, दर्पण आदिमें अपना रूप तथा शृङ्गार देखना—यह सभी प्रेक्षणरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह जान-बूझकर तो इन वस्तुओंको देखे ही नहीं; यदि भूलसे इनपर दृष्टि पड़ जाय तो इन्हें स्वप्नवत्, मायामय, नाशवान् एवं दुःखरूप समझकर तुरंत इनपरसे दृष्टिको हटा ले, दृष्टिको इनपर ठहरने न दे।

(५) **केलि**—स्त्रियोंके साथ हँसी-मजाक करना, नाचना-गाना, आमोद-प्रमोदके लिये क्लब वगैरहमें जाना, जलविहार करना, फाग खेलना, गंदी चेष्टाएँ करना, स्त्रीसङ्ग करना आदि—ये सभी केलिरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको इन सबका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

(६) **शृङ्गार**—अपनेको सुन्दर दिखलानेके लिये बाल सँवारना, कंघी करना, काकुल रखना, शरीरको वस्त्राभूषणादिसे सजाना, इत्र, फुलेल, लवेंडर आदिका व्यवहार करना, फूलोंकी माला धारण करना, अङ्गराग एवं सुरमा लगाना, उबटन करना, साबुन-तेल, पाउडर लगाना, दाँतोंमें मिस्सी लगाना, दाँतोंमें सोना जड़वाना, शौकके लिये बिना आवश्यकताके चश्मा लगाना, होठ लाल करनेके लिये पान खाना—यह सभी शृङ्गारके अन्तर्गत हैं। दूसरोंके चित्तको आकर्षण करनेके उद्देश्यसे किया हुआ यह सभी शृङ्गार कामोद्दीपक, अतएव मैथुनका अङ्ग होनेके कारण ब्रह्मचारीके लिये सर्वथा त्याज्य है। कुमारी कन्याओं, बालकों, विधवाओं, संन्यासियों एवं वानप्रस्थोंको तो उक्त सभी प्रकारके शृङ्गारसे सर्वथा बचना चाहिये। विवाहित स्त्री-पुरुषोंको भी ऋतुकालमें सहवासके समयके अतिरिक्त और समयमें इन सभी शृङ्गारोंसे यथासम्भव बचना चाहिये।

(७) **गुह्यभाषण**—स्त्रियोंके साथ एकान्तमें अश्लील बातें करना, उनके रूप-लावण्य, यौवन एवं शृङ्गारकी प्रशंसा करना, हँसी-मजाक करना—यह सभी गुह्यभाषणरूप मैथुनके अन्तर्गत है, अतएव ब्रह्मचारीके लिये सर्वथा त्याज्य है।

(८) **स्पर्श**—कामबुद्धिसे किसी स्त्री अथवा बालकका स्पर्श, चुम्बन तथा आलिङ्गन करना, कामोद्दीपक पदार्थोंका स्पर्श करना आदि यह सभी स्पर्शरूप मैथुनके अन्तर्गत है, अतएव ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवालेके लिये त्याज्य है।

उपर्युक्त बातें पुरुषोंको लक्ष्यमें रखकर ही कही गयी हैं। स्त्रियोंको भी पुरुषोंके सम्बन्धमें यही बात समझनी चाहिये। पुरुषोंको परस्त्रीके साथ और स्त्रियोंको परपुरुषके साथ तो इन आठों प्रकारके मैथुनका त्याग हर हालतमें करना ही चाहिये। ऐसा न करनेवाले महान् पापके भागी होते हैं और इस लोक तथा परलोकमें महान् दुःख भोगते हैं। गृहस्थोंको अपनी विवाहिता पत्नीके साथ भी ऋतुकालकी अनिन्दित रात्रियोंको छोड़कर शेष समयमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनसे बचना चाहिये। ऐसा करनेवाले गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी हैं। बाकी तीन आश्रमवालों तथा विधवा स्त्रियोंके लिये तो सभी अवस्थाओंमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनका त्याग सर्वथा अनिवार्य है।

परमात्मप्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये उपर्युक्त ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है, यह बात भगवान् श्रीकृष्णने गीताके आठवें अध्यायके ११वें

श्लोकमें कही है। भगवान् कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

'वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपमें कहूँगा।'

कठोपनिषद्में भी इस श्लोकसे मिलता-जुलता मन्त्र आया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(१।२।१५)

'सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं,समस्त तपोंको जिसकी प्राप्तिका साधन बतलाते हैं तथा जिसकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुम्हें संक्षेपसे बताता हूँ—'ओम्' यही वह पद है।'

उक्त दोनों ही मन्त्रोंमें परमपदकी इच्छासे ब्रह्मचर्यके पालनकी बात आयी है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है। क्षत्रियकुल-चूडामणि वीरवर भीष्मकी जो इतनी महिमा है, वह उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतको लेकर ही है। इसीके कारण उनका 'भीष्म' नाम पड़ा और इसीके प्रतापसे उन्हें अपने पिता शान्तनुसे इच्छामृत्युका वरदान मिला, जिसके कारण वे संसारमें अजेय हो गये। यही कारण था कि वे सहस्रबाहु-जैसे अप्रतिम योद्धाकी भुजाओंका छेदन करनेवाले तथा इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर देनेवाले महाप्रतापी परशुरामसे भी नहीं हारे। इतना ही नहीं, परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको भी इनके कारण महाभारतयुद्धमें शस्त्र ग्रहण करना पड़ा। उनकी यह सब महिमा ब्रह्मचर्यके ही कारण थी। वे भगवान्के अनन्य भक्त, आदर्श पितृभक्त तथा महान् ज्ञानी एवं शास्त्रोंके ज्ञाता भी थे; परंतु उनकी महिमाका प्रधान कारण उनका आदर्श ब्रह्मचर्य ही था। इसीके कारण वे अपने अस्त्रविद्याके गुरु भगवान् परशुरामके कोपभाजन हुए, परंतु विवाह न करनेका अपना हठ नहीं छोड़ा। धन्य ब्रह्मचर्य! भक्तश्रेष्ठ हनुमान्, सनकादि मुनीश्वर,महामुनि शुकदेव तथा बालखिल्यादि ऋषि भी अपने ब्रह्मचर्यके लिये प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे लाभ और उसके नाशसे हानि

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे शरीरमें बल, तेज, उत्साह एवं ओजकी वृद्धि होती है, शीत, उष्ण, पीडा आदि सहन करनेकी शक्ति आती है, अधिक परिश्रम करनेपर भी थकावट कम आती है, प्राणवायुको रोकनेकी शक्ति आती है, शरीरमें फुर्ती एवं चेतनता रहती है, आलस्य तथा तन्द्रा कम आती है, बीमारियोंके आक्रमणको रोकनेकी शक्ति आती है, मन प्रसन्न रहता है, कार्य करनेकी क्षमता प्रचुरमात्रामें रहती है, दूसरेके मनपर प्रभाव डालनेकी शक्ति आती है, संतान दीर्घायु, बलिष्ठ एवं स्वस्थ होती है, इन्द्रियाँ सबल रहती हैं, शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुदृढ़ रहते हैं, आयु बढ़ती है, वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती, शरीर स्वस्थ एवं हलका रहता है, स्मरणशक्ति बढ़ती है, बुद्धि तीव्र होती है, मन बलवान् होता है, कायरता नहीं आती, कर्तव्यकर्म करनेमें अनुत्साह नहीं होता, बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी धैर्य नहीं छूटता, कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओंका वीरतापूर्वक सामना करनेकी शक्ति आती है, धर्मपर दृढ़ आस्था होती है, अन्तःकरण शुद्ध रहता है, आत्मसम्मानका भाव बढ़ता है, दुर्बलोंको सतानेकी प्रवृत्ति कम होती है, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदिके भाव कम होते हैं, क्षमाका भाव बढ़ता है, दूसरोंके प्रति सहिष्णुता तथा सहानुभूति बढ़ती है, दूसरोंका कष्ट दूर करने तथा दीन-दुःखियोंकी सेवा करनेका भाव बढ़ता है, सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, वीर्यमें अमोघता आती है, परस्त्रीके प्रति मातृभाव जाग्रत् होता है, नास्तिकता तथा निराशाके भाव कम होते हैं; असफलतामें भी विषाद नहीं होता, सबके प्रति प्रेम एवं सद्भाव रहता है तथा सबसे बढ़कर भगवत्प्राप्तिकी

योग्यता आती है, जो मनुष्य-जीवनका चरम फल है, जिसके लिये यह मनुष्यदेह हमें मिला है।

इसके विपरीत ब्रह्मचर्यके नाशसे मनुष्य नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार हो जाता है, शरीर खोखला हो जाता है, थोड़ा-सा भी परिश्रम अथवा कष्ट सहन नहीं होता, शीत, उष्ण आदिका प्रभाव शरीरपर बहुत जल्दी होता है, स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है, संतान उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है, संतान होती भी है तो दुर्बल एवं अल्पायु होती है, मन अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, संकल्पशक्ति कमजोर हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, जरा भी प्रतिकूलता सहन नहीं होती, आत्मविश्वास कम हो जाता है, काम करनेमें उत्साह नहीं रहता, शरीरमें आलस्य छाया रहता है, चित्त सदा सशंकित रहता है, मनमें विषाद छाया रहता है, कोई भी नया काम हाथमें लेनेमें भय मालूम होता है, थोड़े-से भी मानसिक परिश्रमसे दिमागमें थकान आ जाती है, बुद्धि मन्द हो जाती है, अधिक सोचनेकी शक्ति नहीं रहती, असमयमें ही वृद्धावस्था आ घेरती है और थोड़ी ही अवस्थामें मनुष्य कालके गालमें चला जाता है, चित्त स्थिर नहीं हो पाता, मन और इन्द्रियाँ वशमें नहीं हो पातीं और मनुष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गसे कोसों दूर हट जाता है। वह न इस लोकमें सुखी रहता है और न परलोकमें ही। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे वीर्यकी रक्षा करे। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है, इस बातको सदा स्मरण रखे। गृहस्थाश्रममें भी केवल संतानोत्पादनके उद्देश्यसे ऋतुकालमें अधिक-से-अधिक महीनेमें दो बार स्त्रीसङ्ग करे।

ब्रह्मचर्यरक्षाके उपाय

उपर्युक्त प्रकारके मैथुनके त्यागके अतिरिक्त निम्नलिखित साधन भी ब्रह्मचर्यकी रक्षामें सहायक हो सकते हैं—

(१) भोजनमें उत्तेजक पदार्थोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मिर्च, राई, गरम मसाले, अचार, खटाई, अधिक मीठा और अधिक गरम चीजें नहीं खानी चाहिये। भोजन खूब चबाकर करना चाहिये। भोजन सदा सादा, ताजा और नियमित समयपर करना चाहिये। मांस, लहसुन, प्याज आदि अभक्ष्य पदार्थ और मद्य, गाँजा, भाँग आदि अन्य नशीली वस्तुएँ तथा केशर, कस्तूरी एवं मकरध्वज आदि वाजीकरण औषधोंका भी सेवन नहीं करना चाहिये।

(२) यथासाध्य नित्य खुली हवामें सबेरे और सायंकाल पैदल घूमना चाहिये।

(३) रातको जल्दी सोकर सबेरे ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् पहरभर रात रहे अथवा सूर्योदयसे कम-से-कम घंटेभर पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिये। सोते समय पेशाब करके, हाथ-पैर धोकर तथा कुल्ला करके भगवान्‌का स्मरण करते हुए सोना चाहिये।

(४) कुसङ्गका सर्वथा त्याग कर यथासाध्य सदाचारी, वैराग्यवान्, भगवद्भक्त पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये, जिससे मलिन वासनाएँ नष्ट होकर हृदयमें अच्छे भावोंका संग्रह हो।

(५) पति-पत्नीको छोड़कर अन्य स्त्री-पुरुष अकेलेमें कभी न बैठें और न एकान्तमें बातचीत ही करें।

(६) भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत आदि उत्तम ग्रन्थोंका नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये। इससे बुद्धि शुद्ध होती है और मनमें गंदे विचार नहीं आते।

(७) ऐश, आराम, भोग, आलस्य, प्रमाद और पापमें समय नहीं बिताना चाहिये। मनको सदा किसी-न-किसी अच्छे काममें लगाये रखना चाहिये।

(८) मूत्रत्याग और मलत्यागके बाद इन्द्रियको ठंढे जलसे धोना चाहिये और मल-मूत्रकी हाजतको कभी नहीं रोकना चाहिये।

(९) यथासाध्य ठंढे जलसे नित्य स्नान करना चाहिये।

(१०) नित्य नियमितरूपसे किसी प्रकारका व्यायाम करना चाहिये। हो सके तो नित्यप्रति कुछ आसन एवं प्राणायामका भी अभ्यास करना चाहिये।

(११) लँगोटा या कौपीन रखना चाहिये।

(१२) नित्य नियमितरूपसे कुछ समयतक परमात्माका ध्यान अवश्य करना चाहिये।

(१३) यथाशक्ति भगवान्‌के किसी भी नामका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक जप तथा कीर्तन करना चाहिये। कामवासना जाग्रत् हो तो नाम-जपकी धुन लगा देनी चाहिये अथवा

जोर-जोरसे कीर्तन करने लगना चाहिये। कामवासना नाम-जप और कीर्तनके सामने कभी ठहर नहीं सकती।

(१४) जगत्में वैराग्यकी भावना करनी चाहिये। संसारकी अनित्यताका बार-बार स्मरण करना चाहिये। मृत्युको सदा याद रखना चाहिये।

(१५) पुरुषोंको स्त्रीके शरीरमें और स्त्रियोंको पुरुषके शरीरमें मलिनत्व-बुद्धि करनी चाहिये। ऐसा समझना चाहिये कि जिस आकृतिको हम सुन्दर समझते हैं, वह वास्तवमें चमड़ेमें लपेटा हुआ मांस, अस्थि, रुधिर, मज्जा, मल, मूत्र, कफ आदि मलिन एवं अपवित्र पदार्थोंका एक घृणित पिण्डमात्र है।

(१६) महीनेमें कम-से-कम दो दिन अर्थात् प्रत्येक एकादशीको उपवास करना चाहिये और अमावास्या तथा पूर्णिमाको केवल एक ही समय अर्थात् दिनमें भोजन करना चाहिये।

(१७) भगवान्की लीलाओं तथा महापुरुषों एवं वीर ब्रह्मचारियोंके चरित्रोंका मनन करना चाहिये।

(१८) यथासाध्य सबमें परमात्मभावना करनी चाहिये।

(१९) नित्य-निरन्तर भगवान्को स्मरण रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

ऊपर जितने साधन बताये गये हैं, उनमें अन्तिम साधना सबसे उत्तम तथा सबसे अधिक कारगर है। यदि नित्य-निरन्तर अन्त:करणको भगवद्भावसे भरते रहनेकी चेष्टा की जाय तो मनमें गंदे भाव कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकते। किसी कविने क्या ही सुन्दर कहा है—

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
सपनेहुँ कबहुँक रहि सकैं, रबि रजनी इक ठाम॥

जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर रात्रिके घोर अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी तरह जिस हृदयमें भगवान् अपना डेरा जमा लेते हैं अर्थात् नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण होता है, वहाँ कामका उदय भी नहीं हो सकता। भगवद्भक्तिके प्रभावसे हृदयमें विवेक एवं वैराग्यका अपने-आप उदय हो जाता है। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें ज्ञान और वैराग्यको भक्तिके पुत्ररूपमें वर्णन किया गया है। अत: ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेके लिये नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण करते रहना चाहिये। भगवत्स्मरणके प्रभावसे अन्त:करण सर्वथा शुद्ध होकर बहुत शीघ्र भगवान्की प्राप्ति हो जाती है, जो मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य और ब्रह्मचर्यका अन्तिम फल है। भगवान्ने स्वयं गीतामें कहा है—

अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:॥

(८।१४)

आरोग्य-सम्बन्धी दोहे

१-शीतल जलमें डालकर सौंफ गलाओ आप।
मिश्रीके सँग पान कर मिटे दाह-संताप॥
२-फटे बिमाई या मुँह फटे, त्वचा खुरदुरी होय।
नीबू-मिश्रित आँवला सेवनसे सुख होय॥
३-सौंफ इलायची गर्मीमें, लौंग सर्दीमें खाय।
त्रिफला सदाबहार है, रोग सदैव हर जाय॥
४-वात-पित्त जब-जब बढ़े, पहुँचावे अति कष्ट।
सौंठ, आँवला, दाख सँग खावे पीड़ा नष्ट॥
५-नीबूके छिलके सुखा, बना लीजिये राख।
मिटै वमन मधु संग ले, बढ़ै वैद्यकी साख॥
६-लौंग इलायची चाबिये, रोजाना दस पाँच।
हटै श्लेष्मा कण्ठका, रहो स्वस्थ है साँच॥
७-स्याह नौन हरड़े मिला इसे खाइये रोज।
कब्ज गैस क्षणमें मिटै सीधी-सी है खोज॥
८-पत्ते नागरबेलके हरे चबाये कोय।
कण्ठ साफ-सुथरा रहे, रोग भला क्यों होय॥
९-खाँसी जब-जब भी करे, तुमको अति बेचैन।
सिकीं हींग अरु लौंगसे मिले सहज ही चैन॥
१०-छल-प्रपंचसे दूर हो, जन-मङ्गलकी चाह।
आत्मनिरोगी जन वही गहे सत्यकी राह॥

(श्रीधीरजकुमारजी खरया)

आरोग्य-साधन

(महात्मा गांधी)

साधारणतः लोग उस मनुष्यको नीरोग समझते हैं, जो मजेमें खाता-पीता है, चलता-फिरता है और वैद्यको नहीं बुलाता। पर सोचनेसे मालूम होगा कि लोग इसमें भूलते हैं। ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है कि खाते-पीते और चलते-फिरते मनुष्य भी रोगी हैं; परंतु बीमारीकी परवा न करनेके कारण अपनेको नीरोग मान बैठे हैं। बिलकुल नीरोग मनुष्य दुनियामें बहुत ही थोड़े मिलेंगे।

एक अंग्रेज लेखकका कथन है कि नीरोग उन्हीं मनुष्योंको कहना चाहिये, जिनके शुद्ध शरीरमें शुद्ध मनका वास हो। मनुष्य केवल शरीर ही तो नहीं है। शरीर तो उसके रहनेकी जगह है। शरीर, मन और इन्द्रियोंका ऐसा घना सम्बन्ध है कि इनमें किसी एकके बिगड़नेपर बाकीके बिगड़नेमें जरा भी देर नहीं लगती। शरीरकी उपमा गुलाबके फूलके साथ दी गयी है। गुलाबके फूलका ऊपरी भाग तो उसका शरीर है और सुगन्धि उसकी आत्मा। कागजके गुलाबको कोई पसंद नहीं करता। सूँघनेसे उसमें गुलाबकी सुगन्धि नहीं आयेगी, असली गुलाबकी परख वास ही है। जैसे गुलाबके समान दिखलायी पड़नेवाले गन्धहीन फूलको लोग फेंक देते हैं, वैसे ही ऐसे शरीरपर किसीका प्रेम नहीं हो सकता जो ऊपरसे देखनेमें तो अच्छा लगता है, पर उसके अंदर रहनेवाले आत्माके व्यवहार ठीक नहीं होते। बुरे चरित्रके लोग नीरोग नहीं गिने जाते। शरीर और आत्माका ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि जिसका शरीर नीरोग होगा, उसका मन अवश्य ही शुद्ध होगा। पाश्चात्त्य देशोंमें इस मतका एक पंथ ही है कि जिसका मन शुद्ध होता है, उसके शरीरमें रोग होते ही नहीं और हुए भी तो वह शुद्ध मनके जोरसे अपना शरीर नीरोग कर सकता है। सार यह है कि आरोग्यका दृढ़ साधन हमारा मन ही है, मनकी शुद्धिसे ही आरोग्य प्राप्त होता है।

तामसिकता, आलस्य तथा बहरापन—ये सारे बीमारीके ही चिह्न हैं। कितने डॉक्टर तो चोरी आदि दुर्गुणोंको भी बीमारी ही मानते हैं। विलायतमें कितनी ही धनी स्त्रियाँ दूकानोंसे बहुत मामूली-मामूली चीजें चुराती देखी गयी हैं। वहाँ डॉक्टर इसे 'क्लेप्टेमेनिया' की बीमारी कहते हैं। कुछ मनुष्योंको खूनखराबी किये बिना कल नहीं पड़ती। यह भी एक तरहका रोग है।

हम कह सकते हैं कि जिनका शरीर अखण्ड है, शरीरमें किसी तरहकी कमी नहीं, दाँत ठीक हैं तथा कान-आँख इत्यादि मौजूद हैं; नाक नहीं बहती, चमड़ेसे पसीना बहता है और बसाता नहीं, पैर नहीं बसाते, मुँहसे बू नहीं निकलती, हाथ-पैर साधारण काम कर सकते हैं, जो विषयोंमें नहीं फँसे रहते, न बहुत मोटे हैं न पतले, जिनकी इन्द्रियाँ, मन सदा वशमें रहता है, वे ही नीरोग हैं। आरोग्य प्राप्त करके उसे भोगना आसान काम नहीं है। हमें ऐसा आरोग्य न मिलनेका कारण यह है कि हमारे माता-पिताको ऐसा आरोग्य प्राप्त नहीं। एक बहुत बड़े लेखकने लिखा है कि माता-पिता हर तरहसे योग्य हों तो उनकी संतति उनसे बढ़ी-चढ़ी होनी चाहिये। विकासवादी भी इसे मानते हैं। बिलकुल नीरोग मनुष्यको मौतका डर नहीं रहता। हमारा मौतसे बहुत डरना साबित करता है कि हम नीरोग नहीं हैं। मौत हमारे लिये एक बड़ा-सा फेरफार है, सृष्टिके नियमानुसार यह फेरफार सुखदायी होना चाहिये। ऊपर बताये हुए उच्च आरोग्यको पानेका यत्न करना हमारा कर्तव्य है।

× × ×

आरोग्यकी आवश्यकता क्या है? हमारा व्यवहार देखनेसे तो यही जान पड़ता है कि हम आरोग्यकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझते। यह निर्विवाद है कि ऐश-आराम करना, शरीरहीको सारी चीजोंसे श्रेष्ठ समझना, उसकी दृढ़तापर गर्व करना आदि बातें यदि आरोग्य-रक्षाका उद्देश्य समझी जायँ तो ऐसे आरोग्यसे तो शरीरमें दूषित पित्तादिका भरा रहना ही उत्तम है।

सारे धर्मोंने इस शरीरको ईश्वरसे मिलने और उनके पहिचाननेका मन्दिर ठहराया है। यह मन्दिर हमें किरायेपर मिला है। मालिककी स्तुति और पूजाके रूपमें किराया चुकता है। किरायेदारका दूसरा कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह घरका दुरुपयोग न करे और उसे भीतर एवं बाहरसे

साफ रखते हुए नियत समयमें मालिकको ऐसी स्थितिमें सौंप दे, जिस स्थितिमें उनसे मिला था। किरायेदार यदि भाड़ेकी सभी शर्तोंका पालन करता है तो गृहस्वामी किरायेकी अवधि पूरी होनेपर उसे इनाम देता तथा अपना वारिस भी बना लेता है।

जीवमात्र देहधारी है और सबके शरीरकी आकृति प्राय: एक-सी ही है—सुनने, देखने, सूँघने और भोग भोगनेके लिये सभी साधन-सम्पन्न हैं, इन सब बातोंमें समता होनेपर भी मनुष्य-शरीरको चिन्तामणि कहा गया है। चिन्तामणिका अर्थ यह है कि उसके द्वारा हम जो चीज चाहें पा सकते हैं। पशु-शरीरद्वारा जीव ज्ञानपूर्वक ईश्वरकी भक्ति नहीं कर सकता और इसमें संदेह नहीं कि जहाँ ज्ञानपूर्वक भक्ति नहीं, वहाँ मुक्ति नहीं और जहाँ मुक्ति नहीं, वहाँ न तो सच्चा सुख मिल सकता है और न दु:खोंका नाश ही हो सकता है। जब शरीरका सदुपयोग हो अर्थात् उसे ईश्वरका घर समझा जाय, तभी वह कामका है, अन्यथा वह हाड़-मांस और खूनसे भरा एक गंदा बरतन है और उसमेंसे निकलकर बाहर आनेवाला पानी तथा साँस दोनों जहरीली चीजें हैं। शरीरके असंख्य छोटे-बड़े छेदोंमेंसे निकलनेवाली चीजें इस योग्य नहीं कि हम उनको इकट्ठीकर रखना चाहें। उन्हें विचारने, देखने और छू जानेपर हम कै कर देते हैं। बड़े परिश्रम करनेपर हम कहीं इस योग्य हो सकते हैं कि उन बाहर निकली हुई चीजोंमें कीड़े न पड़ने दें—उनको बचा लें। ऐसी दशामें कितनी लज्जाकी बात है कि हम ऐसे शरीरके लिये बेईमानी, दगाबाजी, स्वेच्छाचारिता, कपट, चोरी, व्यभिचार इत्यादि लाखों न करने योग्य काम करें। क्या हम इन्हीं कामोंके लिये ऐसे शरीरको नित्य बड़े यत्नसे सँभाला करते हैं, जो सब प्रकारकी सँभाल होते हुए भी ठोकरकी अपेक्षा आघात सहनेकी शक्ति रखता है?

यह शरीरकी वास्तविक दशा है। जिस चीजका अच्छे-से-अच्छा उपयोग हो सकता है, उस वस्तुका दुरुपयोग होनेकी सत्ता उसीमें होती है। न हो तो उसका मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। सूर्यके तेजकी परीक्षा हम इसलिये कर सकते हैं कि उसके अभावमें अँधेरेकी स्थितिका हमें प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। यही क्यों, जिन सूर्यके बिना हम घड़ीभर भी नहीं जी सकते, उन्हीं सूर्यमें हमको जलाकर राख कर डालनेकी भी शक्ति मौजूद है। राजाके सम्बन्धमें लीजिये—वह बहुत अच्छा हो सकता है और बहुत अधम भी बन सकता है।

शरीरको अपने वशमें रखनेके लिये एक ओर तो अन्तरात्माका प्रयत्न जारी रहता है, दूसरी ओर पापपुरुष शैतान अपने अनवरत उद्योगसे उसे अपनी मुट्ठीमें कर रखना चाहता है। जब शरीर अन्तरात्माके अधीन रहता है, तब वह रत्नके समान है और शैतानका अधिकार जम जानेपर साक्षात् नरककी खानि हो जाता है। जो शरीर विषयासक्त है, जिसमें तमाम दिन सब प्रकारकी सड़ने या सड़ानेवाली खुराक भरी जाती है, जिसमेंसे दुर्गन्धि निकला करती है, जिसके हाथ-पैर चोरीके काममें और जिसकी जीभ अभक्ष्य-भक्षण और अयोग्य-भाषणमें ही निरत रहती है, जिसकी आँख न देखने योग्य चीजोंके देखने, जिसके कान न सुनने योग्य बातोंके सुनने, जिसकी नाक न सूँघने योग्य चीजोंके सूँघनेमें व्यवहृत होते हैं, वह तो नरकसे भी गया-गुजरा है। नरकको तो सब नरकरूपमें ही देखते हैं, किंतु विचित्रता यह है कि शरीरको नरकके समान बनाते हुए भी हम उसे स्वर्गरूपमें गिनते चले जाते हैं। शरीरके सम्बन्धमें यह नारकीय दम्भ और राक्षसी ढोंग चल रहा है। पाखानेको पाखाना समझकर ही उपयोगमें लाना चाहिये और महलका उपयोग महलकी भाँति ही किया जाना चाहिये। जो लोग इनका विरुद्ध उपयोग करते हैं, वे वैसा ही फल भी भोगते हैं। ठीक यही बात शरीरपर घटती है। शैतानके कब्जेमें रहनेवाले अपने अन्तरात्माके वशमें न रहनेवाले शरीरसे आरोग्य चाहनेके बदले उसका नाश चाहना अधिक सुखकर है।

ईश्वरीय नियम पालनेसे ही शरीर नीरोग रह सकता है—शैतानी नियम पालनेसे नहीं। जहाँ सच्चा आरोग्य है, वहीं सच्चा सुख है और सच्चा आरोग्य प्राप्त करनेके लिये हमें स्वादेन्द्रिय जीभको जीतना ही जरूरी है। अन्यान्य विषयेन्द्रियाँ अपने-आप वश हो जाती हैं और जो इन्द्रियोंको वश कर लेता है, वह सारे संसारको वश कर लेता है, कारण यह कि वह मनुष्य ईश्वरका अधिकारी, उसका अंश बन जाता है।

स्वस्थ जीवनके लिये धारण करने योग्य ५१ बातें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

१—रोज प्रात:काल सूर्योदयसे पहले उठो। उठते ही भगवान्‌को प्रणाम करो, फिर हाथ-मुँह धोकर उष:पान करो। ठंडे जलसे आँखें धोओ।

२—पेशाब-पाखानेकी हाजतको कभी न रोको। पेटमें मल जमा न होने दो।

३—रोज दतुअन करो; भोजन करके हाथ, मुँह, दाँत अवश्य धोओ।

४—प्रतिदिन प्रात:काल स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दो।

५—दोनों समय (प्रात: और संध्या) नियमपूर्वक श्रद्धाके साथ भगवत्प्रार्थना या संध्या करो।

६—हो सके तो प्रात:काल शुद्ध वायुका सेवन अवश्य करो।

७—भूखसे अधिक न खाओ, जीभके स्वादके वशमें न होओ; पवित्रतासे बना हुआ—पवित्र कमाईका अन्न खाओ; किसीका भी जूठा कभी न खाओ, न किसीको अपना जूठा खिलाओ, मांस-मद्यका सेवन कभी न करो।

८—भोजनके समय जल न पीओ या बहुत थोड़ा पीओ।

९—पान, तंबाकू, सिगरेट, बीड़ी, चाय, काफी, भाँग, अफीम, गाँजा, चरस, ताश, चौपड़, शतरंज आदिका व्यसन न डालो; दवा अधिक सेवन न करो। पथ्य, परहेज, संयम, युक्ताहार-विहारका अधिक ध्यान रखो।

१०—दिनमें न सोओ, रातमें अधिक न जागो, छ: घंटेसे अधिक न सोओ।

११—नियमितरूपसे धर्मग्रन्थोंका कुछ स्वाध्याय अवश्य करो।

१२—रोज नियमितरूपसे कम-से-कम २५,००० भगवान्‌के नामोंका जप अवश्य करो।

१३—संतोंके चरित्र और उनकी दिव्य वाणीका अध्ययन करो।

१४—जूआ कभी न खेलो, बाजी न लगाओ, होड़ न बदो।

१५—सिनेमा, स्त्रियोंका नाच आदि न देखो।

१६—कपड़े सादे पहनो और साफ रखो, मैले न होने दो; परंतु फैशनका खयाल बिलकुल न रखो। कपड़े बिगाड़कर भी न पहनो, बहुत कीमती कपड़े न पहनो।

१७—हजामत और नख न बढ़ने दो, परंतु शौकसे दिनमें दो बार बनाओ भी नहीं।

१८—अपने शरीरको सुन्दर दिखलानेका प्रयत्न न करो।

१९—किसी भी हालतमें यथासाध्य उधार न लो, उधार लेकर खर्च करनेसे आदत बिगड़ जाती है; जबतक उधार मिलता है, खर्च बढ़ता ही जाता है; पीछे बड़ी कठिनाई और बेइज्जती होती है।

२०—तकलीफ सहकर भी आमदनीसे कम खर्च करो, अधिक खर्च करनेवालों या अमीरोंको आदर्श न मानकर मितव्ययी पुरुषों और गरीबोंकी ओर ध्यान दो। मितव्ययी पुरुष आमदनीमेंसे कुछ बचाकर अपनी ताकतके अनुसार दु:खियोंकी सेवा कर सकता है, चाहे एक पैसेसे ही हो; खरी कमाईसे बचे हुए एक पैसेके द्वारा भी की हुई दीन-सेवा बहुत महत्त्वकी होती है। मितव्ययी पुरुषके बचाये हुए पैसे उसके आड़े वक्तपर काम आते हैं। जो अधिक खर्च करता है, उसकी आदत इतनी बिगड़ जाती है कि वह बहुत अधिक आमदनी होनेपर भी एक पैसा बचाकर दीनोंकी सेवा नहीं कर सकता। वह अपने खर्चसे ही परेशान रहता है और आमदनी न होने या कम होनेकी सूरतमें उसपर कष्टोंका पहाड़ टूट पड़ता है। मितव्ययी और अच्छी आदतवाले पुरुष ऐसी अवस्थामें दु:खी नहीं हुआ करते।

२१—नौकरोंसे दुर्व्यवहार न करो, दु:खमें उनकी सेवा-सहायता करो। उनका तिरस्कार-अपमान कभी न करो। उनकी आवश्यकताओंका खयाल रखो और अपनी परिस्थितिके अनुसार उन्हें पूरा करनेकी चेष्टा करो।

२२—अपरिचित मनुष्यसे दवा न लो, जादू-टोना किसीसे भी न करवाओ।

२३—नोट दूना बनानेवाले, आँकड़ा बतानेवाले, सोना बनानेवाले, सट्टा बतलानेवाले लोगोंसे सावधान रहो; ऐसा करनेवाले प्राय: ठग होते हैं।

२४—किसी अनजानेको पेटकी बात न कहो,

जाने हुए भी सबसे न कहो; परंतु अपने सच्चे हितैषी बन्धुसे छिपाओ भी नहीं।

२५—जहाँ भी रहो किसी वयोवृद्ध अनुभवी पुरुषको अपना हितैषी जरूर बना लो। विपत्तिके समय उसकी सलाह बहुत काम देगी।

२६—प्रेम सबसे रखो, परंतु बहुत ज्यादा सम्बन्ध स्थापित न करो। अनावश्यक दावतोंमें न जाओ और न दावत देनेकी ही आदत डालो।

२७—जो कुछ काम करो, अच्छी तरहसे करो। बिगाड़कर जल्दी और ज्यादा करनेकी अपेक्षा सुधारकर थोड़ा करना भी अच्छा है, परंतु आलस्य-प्रमादको समीप न आने दो।

२८—जोशमें आकर कोई काम न करो।

२९—किसीसे विवाद या तर्क न करो, शास्त्रार्थ न करो। अपनेको सदा विद्यार्थी ही समझो। समझदारीका अभिमान न करो। सीखनेकी धुन रखो।

३०—मीठा बोलो, ताना न मारो, कड़वी जबान न कहो; बीचमें न बोलो, बिना पूछे सलाह न दो; सच बोलो, अधिक न बोलो, बिलकुल मौन भी न रहो; हँसी-मजाक न करो; निन्दा-चुगली न सुनो; गाली न दो, शाप-वरदान न दो।

३१—नम्र और विनयशील रहो, झूठी चापलूसी न करो, ऐंठो नहीं, मान दो, पर मान न चाहो।

३२—दूसरेके द्वारा अच्छा बर्ताव होनेपर ही मैं उसके साथ अच्छा करूँगा, ऐसी कल्पना न करो। अपनी ओरसे पहलेसे ही सबसे अच्छा बर्ताव करो, जो अपनी बुराई करे उसके साथ भी।

३३—गरीबोंके साथ सहानुभूति रखो।

३४—किसी फर्ममें, संस्थामें या किसी व्यक्तिके लिये काम करो—नौकरी करो तो पूरी वफादारीसे करो। सदा तन-मन-वचनसे उसका हित-चिन्तन ही करते रहो।

३५—जहाँ रहो अपनी ईमानदारी, वफादारी, होशियारी, कार्य-कुशलता, मीठे वचन, परिश्रम और सचाईसे अपनी जरूरत पैदा कर दो। अपना स्थान स्वयं बना लो।

३६—प्रत्यक्ष लाभ दीखनेपर भी अनुचित लोभ न करो। अपनी ईमानदारीको हर हालतमें बचाये रखो। दूसरेका हक किसी तरह भी स्वीकार न करो। ईमान न बिगाड़ो।

३७—आचरणोंको—चरित्रको सदा पवित्र बनाये रखनेकी कोशिश करो।

३८—बिना ही कारण मान-बड़ाईके लिये न तरसो। गरीबीसे न डरो, बेईमानी और बुरी आदतोंसे अवश्य भय करो।

३९—परायी स्त्रीको जलती हुई आग या सिंहसे भी अधिक भयानक समझो। स्त्री-सम्बन्धी चर्चा न करो, स्त्री-चिन्तन न करो, स्त्रियोंके चित्र न देखो, स्त्रियोंके सम्बन्धकी पुस्तकें न पढ़ो। यथासाध्य स्त्री-सहवास अपनी स्त्रीसे भी कम करो। यही बात स्त्रीके लिये पर-पुरुषके सम्बन्धमें है।

४०—सदा अशुभ भावनाओंसे अपनेको न घिरा रहने दो। उनको दूर भगाये रखो।

४१—विपत्तिमें धैर्य और सत्यको न छोड़ो, दूसरेपर दोष न दो।

४२—जहाँतक हो क्रोध न आने दो। क्रोध आ जाय तो उसका कुछ प्रायश्चित्त करो।

४३—दूसरोंके दोष न देखो, अपने देखो। किसीको छोटा न समझो। अपना दोष स्वीकार करनेको सदा तैयार रहो।

४४—अपने दोषोंकी डायरी रखो; रातको उसे रोज देखो और कल ये दोष नहीं होंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय करो।

४५—वासना-कामनाओंको जीतनेकी चेष्टा करो। कामनापूर्तिकी अपेक्षा कामनाओंको जीतनेमें ही सुख है।

४६—अहिंसा, सत्य और दयाको विशेष बढ़ाओ।

४७—जीवनका प्रधान लक्ष्य एक ही है, यह दृढ़ निश्चय कर लो। वह लक्ष्य है—'भगवान्‌की उपलब्धि।'

४८—विषयचिन्तन, अशुभचिन्तनका त्याग करके यथासाध्य भगवच्चिन्तनका अभ्यास करो।

४९—भगवान् जो कुछ दें, उसीको आनन्दपूर्वक ग्रहण करनेका अभ्यास करो।

५०—इज्जत, मान और नामका मोह न करो।

५१—भगवान्‌की कृपामें विश्वास करो।

परिवार-नियोजनमें संयमकी आवश्यकता

(संत विनोबा भावे)

परिवार-नियोजनमें मैं अपने देशका कल्याण नहीं देखता, प्रत्युत इसमें आध्यात्मिक और नैतिक मूल्योंकी हार है, ऐसा मैं मानता हूँ। इसके कई पहलू हैं—आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक। यह चीज ही ऐसी है कि बिलकुल जीवनके केन्द्रमें खड़ी है। इसलिये यों ही सहज-भावसे कह देना कि 'हाँ भाई! जन-संख्या बढ़ रही है तो करो नियमन,' यह मुझे जँचता नहीं।

पृथ्वीको पापका भार है, संख्याका नहीं

मैंने एक सूत्र बनाया है—'पृथ्वीको पापका भार है, संख्याका नहीं।' संतान पापसे बढ़ सकती है, पुण्यसे भी बढ़ सकती है और पापसे घट सकती है, पुण्यसे भी घट सकती है। पुण्य-मार्गसे संतान बढ़ेगी तो पृथ्वीको बोझ नहीं होगा। पुण्य-मार्गसे संतान घटेगी तो नुकसान नहीं होगा। पाप-मार्गसे संतान बढ़ेगी तो पृथ्वीको भार होगा और पाप-मार्गसे घटेगी तो नुकसान होगा। यह मेरा अपना एक विचार है। इसलिये संतति-निरोधके जो कृत्रिम उपाय चलते हैं, उन्हें मैं मातृत्वकी विडम्बना कहता हूँ।

युद्धसे भी भयानक

आज मानव-समाजमें सेक्सका ऊधम मचाया जा रहा है। मुझे इसमें युद्धसे भी ज्यादा भय मालूम होता है। अहिंसाको हिंसाका जितना भय है, उससे अधिक काम-वासनाका है। हर जगह विज्ञानकी सहायता ली जा रही है, जिसके कारण सेक्समें भी साईंटिफिक ऑट्टिट्यूड (वैज्ञानिक वृत्ति)-की आवश्यकता पैदा हुई है।

वैज्ञानिक दृष्टि और संयम

परिवार-नियोजनका तात्पर्य है—आत्मसंयम—अपनेपर नियन्त्रण रखना। यह चीज नामुमकिन नहीं। विज्ञानके ज़मानेमें पहलेसे ज्यादा आसान होनी चाहिये। उस विषयका स्वरूप क्या है, परिवारका उद्देश्य क्या है, ब्रह्मचर्यकी साधना क्या होती है, उसमें कौन-सी शक्ति भरी है, इन बातोंका आज विज्ञानके समयमें प्रजाको पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ ज्ञान होगा। हममें एक ऐसी शक्ति है जिसे ऊपर उठाया जा सकता है। जैसे दीपक या लालटेनकी प्रभा होती है, उसे नीचेसे तेलकी शक्ति प्राप्त होती है, तभी उसकी प्रभा, बत्ती, ज्योति अच्छी तरह चमकती है। मनुष्यके लिये 'ब्रह्मचर्य' तेल है और प्रज्ञा प्रभा, उसकी बुद्धिमत्ता उसका प्रकाश है। ब्रह्मचर्यके तेलकी शक्ति उसे सतत मिलती रहे तो बुद्धिमत्ता तेजस्वी होती है। वह न रही तो बुद्धि ही निर्बल हो जाती है, बुद्धिकी प्रतिभा कम होती है।

देश तेजोहीन होगा

कृत्रिम उपायोंके अवलम्बसे केवल संतान ही नहीं, बुद्धिमत्ता भी रुकेगी। यह जो क्रिएटिव एनर्जी (सर्जक शक्ति) है, जिसे हम 'वीर्य' कहते हैं, उसीसे वाल्मीकि-जैसे महाकवि पैदा हुए, महावीर हनुमान्-जैसे उसीसे हुए। प्रतिभावान् पुरुष और तत्त्वज्ञानी उसीसे निकले। उस निर्माण-शक्तिका मनुष्य दुरुपयोग करता है अर्थात् संख्या-नियमन करके संतानको रोक लिया और उस शक्तिका दूसरी तरफ जो उपयोग हो सकता था, उसे विषयोपभोगमें लगा दिया। विषय-वासनापर जो अंकुश रहता था, वह नहीं रहा। पति-पत्नी संतान उत्पन्न न हो, ऐसी व्यवस्था करके विषय-वासनामें व्यस्त रहेंगे तो उनके दिमागका कोई संतुलन नहीं रहेगा। ऐसी स्थितिमें देश तेजोहीन बनेगा। संतान कम होगी तो लाभ होगा, यह मानकर ये लोग उसे उत्तेजन देंगे। परंतु केवल संतान ही कम नहीं होगी, ज्ञानतन्तु भी क्षीण होंगे, प्रभा कम होगी, प्रज्ञा कम पड़ेगी, तेजस्विता कम होगी।

पुरुषार्थ बढ़ायें

दुनियाका अनुभव है कि जब जीवनमें पुरुषार्थ बढ़ता है, तब विषय-वासना कम होती है। सबको अच्छी तरह पुरुषार्थ करनेका अवसर मिलेगा तो स्वभावतः विषय-वासनापर नियन्त्रण हो जायगा। साथ

ही हिंदुस्तानका पुरुषार्थ जितना बढ़ेगा, उतना ही पोषणका प्रबन्धन भी बढ़ेगा। जहाँ पोषण अच्छा नहीं मिलता, वहाँ भोग-वासना बढ़ती है। जानवरोंमें भी यह देखा गया है। शेरके बच्चे कम होते हैं, बकरीके ज्यादा। बलवान् जानवरोंमें विषय-वासना कम होती है और निर्बलमें ज्यादा। फिर कमजोरोंकी जो संतान पैदा होती है, वह भी निर्वीर्य या निकम्मी होती है। इसलिये मैं कहता हूँ कि यह विषय सामाजिक और आध्यात्मिक है, उससे खिलवाड़ न किया जाय। ऐसे वातावरणका निर्माण किया जाय, जो संयमके अनुकूल हो। समाजमें पुरुषार्थ बढ़ायें, साहित्य सुधारें और गंदे साहित्य-सिनेमा आदिपर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगायें।

चार आश्रमोंकी योजना

शास्त्रोंके अध्ययन-मननसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि हमारे पूर्वजोंने ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रमकी जो योजना बनायी थी, वह ठीक है। यदि ऐसी मर्यादा हम बनाते हैं तो उससे हमें लाभ होगा। गृहस्थाश्रमका पैमाना २५ सालकी आयुसे ४५ वर्षतक हो तो संतानका भी थोड़ा-बहुत नियमन होना चाहिये। वह होगा तो लाभ-ही-लाभ मिलेगा और आध्यात्मिक शक्तियाँ भी मिलेंगी।

हमारे सामने एक आदर्श होना चाहिये कि इतने वर्षोंके बाद हम गृहस्थाश्रमसे निवृत्त होंगे। जैसे विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं, वैसे ही विधिपूर्वक गृहस्थाश्रमका विसर्जन भी होना चाहिये। इससे हम विषय-वासनासे मुक्त होते हैं।

'विषय-वासनासे मुक्ति सहज ही मिलेगी'—ऐसे भ्रममें जो रहता है, वह स्वयं अपनी कब्र खोदता है'—ऐसा महाराज ययातिने कहा है। वे बूढ़े हो गये थे, परंतु उन्हें वासना-तृप्ति नहीं हुई थी, इसलिये उन्होंने अपने बच्चोंसे जवानी माँगी। बच्चोंने दे दी। जवान होकर दुबारा भोग भोगा, परंतु फिर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। फिर महाराज ययातिने अपना अनुभव श्रीमद्भागवतमें बता दिया—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

(९।१९।१४)

अर्थात् 'कामके उपभोगसे काम-पिपासा कम नहीं होती। घीसे जैसे अग्नि बढ़ती है, वैसे ही वह बढ़ती चली जाती है।' चाहे शक्ति घट जाय, इच्छा तो बढ़ती ही रहती है। इसलिये उसको तोड़ना ही होता है। स्वायम्भुव मनुकी कथा तुलसीदासजीने रामायणमें दी है ***'होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन'***—बुढ़ापा आया, परंतु विषय-वासना नहीं मिटी। मनुको बड़ा दुःख हुआ कि ***'जनम गयउ हरिभगति बिनु।'*** तब उन्होंने क्या किया?' ***'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा।'***—जबर्दस्ती राज्य अपने पुत्रको सौंप दिया और ***'नारि समेत गवन बन कीन्हा।'***—पत्नीके साथ वनमें प्रवेश किया।' ये तुलसी-रामायणके शब्द हैं। इस तरह अपनेपर, अपनी इन्द्रियोंपर, मनपर जबर्दस्ती करनेका अधिकार पुरुषको होता है। उसका उपयोग उन्होंने किया और वनमें चले गये। सारांश यह कि विषय-वासना ऐसे ही टूटेगी। उसमेंसे हम छूटेंगे, ऐसा मानना बिलकुल गलत है।

विषय-वासनाकी एक मर्यादा होनी चाहिये। जब लोकमत होता है, तभी यह सम्भव होती है। जिन्होंने यह वानप्रस्थाश्रमकी कल्पना निकाली, उन्होंने इस विषयमें लोकमत बनाया था। परंतु वह लोकमत आज टूट गया, वानप्रस्थाश्रम समाप्त हो गया। गृहस्थाश्रमकी प्रतिष्ठा गयी। ऐसी स्थितिमें जो समाज रहता है, वह कैसे आगे बढ़ेगा? यह शोचनीय बात है। इसलिये वानप्रस्थकी बात करनी चाहिये।

जिस दिन चार आश्रमोंकी स्थापनाकी आशा मैं छोड़ूँगा, उस दिन हिंदू होनेका दावा भी छोड़ दूँगा और कहना पड़ेगा कि यह केवल हिंदुओंकी वस्तु नहीं है। मुहम्मदने भी लिखा है कि '४० सालके बाद मनुष्यका ध्यान भगवान्की ओर जाना चाहिये' और जाता है। उन्होंने ४० की मर्यादा मानी, जिसमें मनुष्यको विषय-वासनासे अलग होना चाहिये।

आरोग्य और भोजन-विज्ञान

(स्वामी श्रीदयानन्दजी)

आर्यशास्त्रमें अन्यान्य यज्ञोंकी तरह भोजन-व्यापारको भी एक नित्ययज्ञ कहा गया है। इस नित्ययज्ञके यज्ञेश्वर भगवान् वैश्वानर कहे गये हैं, यथा—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

(गीता १५। १४)

श्रीभगवान् वैश्वानर (जठराग्नि)-रूपसे प्रत्येक प्राणीमें बैठकर प्राण और अपान-वायुकी सहकारितासे चर्व्य, चोष्य, लेह्य तथा पेय—इन चार प्रकारके भोज्य अन्नोंको भक्षण करते हैं। अन्ततः आर्यभोजनसे केवल उदरपूर्ति ही नहीं होती, अपितु श्रीभगवान्‌की पूजा भी होती है; इसीसे हमारे शास्त्रोंमें भोजनकी पवित्रतापर विशेष विचार किया गया है। इस सम्बन्धमें सबसे पहले स्थानका विचार करना चाहिये; अर्थात् चाहे जिस स्थानमें बैठकर या खड़े-खड़े भोजन करना ठीक नहीं; क्योंकि अशुचि स्थानमें पूजा करनेसे कोई फल नहीं होता, भगवान् असंतुष्ट होते हैं। भोजनका स्थान पवित्र, एकान्त और गोमय तथा जल आदिसे शुद्ध किया हुआ होना चाहिये। दूसरे स्वयं पवित्र होकर भोजन करना चाहिये; क्योंकि अपवित्र शरीर और अशुचि मनसे भगवत्पूजा करनेसे कोई फल नहीं होता। तीसरे जिस वस्तुसे पूजा करनी हो, वह पवित्र और सात्त्विक होनी चाहिये; क्योंकि अशुद्ध और तामसिक वस्तुओंसे भगवान्‌की पूजा नहीं की जाती। उससे शरीर, मन, बुद्धि और आत्माका कलुषित होना सम्भव है। अन्ततः खाद्य द्रव्य शुद्ध और सात्त्विक होना आवश्यक है। चौथे पूजाकी वस्तु जिसमें संग्रह की जाय, वह पात्र स्वच्छ और परिष्कृत होना चाहिये। वह किसी अपवित्र व्यक्ति अथवा जीवसे स्पर्श किया हुआ नहीं होना चाहिये; क्योंकि पूजाके फूल, नैवेद्य आदि नीच जीव या पापियोंसे छुए जानेपर पूजाके योग्य नहीं रहते; इसीसे पापी या नीच जीवोंका अन्न ग्रहण करना निषिद्ध है। यही नहीं, उनका छुआ अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। इसी कारण हमारे प्राचीन ऋषियोंने आहारपर बहुत विचार करके आहार-सम्बन्धी नाना प्रकारके आचारोंका निर्णय किया है।

भोजनके विषयमें भगवान् मनुने लिखा है—

'आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः'।

आयु चाहनेवालेको पूर्वमुख और यश चाहनेवालेको दक्षिणमुख भोजन करना चाहिये।

पूर्वदिशासे प्राण और शक्तिका उदय होता है। प्राणस्वरूप सूर्यदेव पूर्वसे ही उदित होते हैं, इस कारण पूर्वाभिमुख होकर भोजन करनेसे आयुका बढ़ना स्वाभाविक है। इस विषयमें पश्चिमी पण्डितोंने भी अन्वेषण किया है। यथा—

Dr. George Starr White of the New York Medical College discovered that a healthy Person had a slight difference in sound over each organ when faced east than he had when he faced north and he deduced that the reason for this is that when a person faces north the magnetic lines of force cut through a larger surface of the sympathetic nervous chain.

डॉ० जार्जका सिद्धान्त है कि उत्तरकी ओर मुँह करके खानेसे वैद्युतिक प्रवाह नसोंके द्वारा अधिक वेग तथा विस्तारके साथ चलता है, इसलिये वह उतना आयुर्वृद्धिकर नहीं है जितना कि पूर्वाभिमुख भोजन। इसी प्रकार यश देनेवाले पितरोंका सम्बन्ध दक्षिण दिशाके साथ रहनेके कारण दक्षिणाभिमुख भोजनसे यशोलाभ होता है। स्नान तथा पूजादिसे शरीर और मनकी पवित्रता बढ़ती है, इसलिये शास्त्रमें कहा है—

'अस्नात्वाशी मलं भुङ्क्ते अजपी पूयशोणितम्'।

नीरोग शरीर होनेपर बिना स्नान किये खानेसे मल-भोजन और बिना जप-पूजा किये खानेसे पूय-शोणित-भोजनका दोष होता है। इसलिये स्नान करनेके बाद भोजन करना चाहिये। शास्त्रोंमें लिखा है—

पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः।
हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषा पञ्चार्द्रता मता॥

'दोनों हाथ, दोनों पाँव और मुँह धोकर, पूर्वाभिमुख

हो, मौन अवलम्बनकर भोजन करे।' योगशास्त्रमें मनुष्यके स्वाभाविक श्वासकी गति बारह अङ्गुल, किंतु भोजनकालमें बीस अङ्गुल बतायी गयी है। श्वासकी गति अधिक होनेपर आयु घटती और कम होनेपर बढ़ती है। लोभसे भोजन करनेमें तथा हाथ-पाँव न धोकर भोजन करनेमें श्वासगति बढ़ती है। इसी कारण भगवान्‌को भोग लगाकर प्रसादरूपसे तथा हाथ-पाँव धोकर खानेकी विधि है। मनुने कहा है—

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥

भींगे-पैर भोजन करे, परंतु शयन न करे। भींगे-पैर भोजन करनेसे आयु बढ़ती है और शयन करनेसे घटती है। मौन होकर भोजन करनेको इसलिये कहा है कि भोजन करते समय बोलते रहनेसे लार कम उत्पन्न होगी, फलतः मुँह सूख जानेसे बीच-बीचमें पानी पीना पड़ेगा। लार कम उत्पन्न होने और मुँह सूखनेके कारण पानी पीनेसे पाचनक्रियामें बाधा उत्पन्न होगी। महाभारतमें लिखा है—'**एकवस्त्रो न भुञ्जीत**' केवल एक वस्त्र धारण करके भोजन न करे। भोजन करते समय एक उत्तरीय (दुपट्टा) ओढ़ लेना चाहिये; वह रेशमी हो तो अधिक अच्छा है। भोजन करते हुए शरीरयन्त्रकी जो क्रियाएँ होती हैं, उनमें बाहरी वायु बाधा न पहुँचा सके, इसीलिये यह व्यवस्था है। रेशमी वस्त्र इस कारण अच्छा समझा गया है कि रेशम भीतरी शक्तिको सुरक्षित रखकर बाहरी शक्तिका उसपर परिणाम नहीं होने देता। इस प्रकार पवित्र भावसे भोजन करना चाहिये। स्नान करनेके पश्चात् ही भोजन करना उचित है, क्योंकि भगवत्पूजा बिना स्नान किये नहीं की जाती और पूजा किये बिना भोजन करना निषिद्ध है। शरीर अस्वस्थ रहनेपर गीले कपड़ेसे शरीर पोंछकर वस्त्र बदल दे और भस्मस्नान अथवा मानसिक स्नान कर ले। मानसिक स्नान, श्रीविष्णुभगवान्‌का स्मरण करके 'स्वर्गसे गङ्गाकी धारा आयी और उसमें स्नानकर मैं पवित्र हुआ' ऐसी दृढ़ भावना करनेसे होता है। भस्मस्नान शिवमन्त्रसे अग्निहोत्रकी विभूतिको अभिमन्त्रित कर देहमें लगानेसे होता है।

भोजनके पहले भोज्य पदार्थोंका भगवान्‌को नैवेद्य दिखाकर तब प्रसाद समझकर भोजन करे। प्रसादरूपसे भोज्य पदार्थोंका सेवन करनेसे अन्नमें अनुचित आसक्ति न रहेगी। जबकि संसारकी सब वस्तुएँ भगवान्‌की उत्पन्न की हुई हैं, तब उन्हें पकाकर भगवान्‌को बिना अर्पण किये खानेसे निस्संदेह पाप होगा। गीता (३।१२)-में कहा है—

'**तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः**'॥

देवताकी दी हुई वस्तु उन्हें बिना समर्पण किये जो खाता है, वह चोर है, अतः भगवान्‌को समर्पण करके ही अन्न ग्रहण करना चाहिये।

खाद्य वस्तुएँ पवित्र और सात्त्विक होनी चाहिये। इसका कारण छान्दोग्योपनिषद्‌में बताया गया है। यथा—

'**अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मा॰सं योऽणिष्ठस्तन्मनः॥**'

'**दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत् सर्पिर्भवति॥ एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति॥**'

(६।५।१; ६।६।१-२)

और भी—

'**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।**'

खाया हुआ अन्न तीन भागोंमें विभक्त हो जाता है—स्थूल असार अंशसे मल बनता है, मध्यम अंशसे मांस बनता है और सूक्ष्म अंशसे मनकी पुष्टि होती है। जिस प्रकार दधिके मथनेपर उसका सूक्ष्म अंश ऊपर आकर घृत बनता है, उसी प्रकार अन्नके सूक्ष्मांशसे मन बनता है। मन अन्नमय ही है। आहारशुद्धिसे सत्त्वशुद्धि, सत्त्वशुद्धिसे ध्रुवा स्मृति और स्मृतिशुद्धिसे सभी ग्रन्थियोंका मोचन होता है। अतः सिद्ध हुआ कि अन्नके सात्त्विकादि गुणानुसार मन भी सात्त्विकादि भावापन्न होगा। साधारणतः देखा जाता है कि अन्न न खानेसे मन दुर्बल हो जाता है, चिन्तन-शक्ति नष्ट होने लगती है। अन्न खानेसे मन सबल होता है तथा चिन्तन-शक्ति बढ़ने लगती है। अतः यही अन्न यदि तामसिक होगा तो मन, बुद्धि, प्राण और शरीर तामसिक होंगे; जिससे ब्रह्मचर्यधारण और साधना आदि असम्भव हो जायँगे। इसी तरह राजसिक अन्नसे भी मन और बुद्धि चञ्चल होते हैं, अतः पवित्र और सात्त्विक अन्न ही ग्रहण करना चाहिये। खाद्याखाद्यके सम्बन्धमें पश्चिमी देशोंमें जिस प्रणालीसे विचार किया गया है, वह सर्वाङ्गदृष्ट्या पूर्ण नहीं है। उन्होंने केवल इतना ही विचार किया है कि किस

वस्तुमें कौन-सा रासायनिक द्रव्य कितना है। कैलशियम, प्रोटीन तथा विटामिन आदि जिसमें न्यून हो वह अखाद्य और जिसमें अधिक हो वह खाद्य है—इतना ही मोटा सिद्धान्त उन्होंने बना लिया है। कौन-सी वस्तु किस ऋतुमें, किस प्रकारके शरीरके लिये, किस प्रकारसे सेवन की जाय, जिससे शरीर और मनका स्वास्थ्य परिवर्धित हो, इसकी विधि पश्चिमी चिकित्साशास्त्रकी पोथियोंमें नहीं मिलती। उन देशोंमें शीत अधिक है, अतः एक-सी ही वस्तुओंके बारहों मास सेवन करनेसे तद्देशवासियोंका काम बन जाता है; परंतु इस देशमें छहों ऋतु एक-से ही बलवान् हैं। ऋतुभेदसे वात, पित्त और कफकी न्यूनाधिकता होनेके कारण शारीरिक तथा मानसिक अवस्थामें कितना परिवर्तन होता है, यह जाननेकी वे अबतक चेष्टा नहीं करते। दूसरे, पश्चिमी देशोंकी यह निर्णयविधि बड़ी ही जटिल है। वहाँके प्रसिद्ध विद्वान् भी खाद्याखाद्यके सम्बन्धमें अभी एकमत नहीं हैं। तीसरे, उदरमें जाकर इन सब खाद्य-द्रव्योंका किस प्रकार विश्लेषण होता है और उससे शरीर-पोषणकारी कौन-से गुण उत्पन्न होते हैं, साधारण रासायनिक विश्लेषणद्वारा उसका निरूपण नहीं हो सकता। चौथे, इस देशके खाद्य-द्रव्योंके साथ उस देशके खाद्य-द्रव्योंके गुणागुणका निर्णय नहीं हो सकता। सबसे बढ़कर बात यह है कि खाद्य-द्रव्योंके साथ मनका क्या सम्बन्ध है, सो पश्चिमी लोग नहीं जानते। अतः हमारे देशके खाद्याखाद्यका विचार हमारी शास्त्रीय विधियोंके अनुसार ही होना चाहिये। उसमें किसी खाद्यवस्तुमें चाहे कितना ही विटामिन हो यदि उसके परिणामद्वारा शरीरमें या मनमें विषयभाव, तमोगुण आदि बढ़ेंगे तो वह अवश्य ही वर्जित मानी जायगी। भगवान् श्रीकृष्णने सात्त्विक, राजसिक और तामसिक-भेदसे खाद्य-द्रव्योंको तीन भागोंमें विभक्त किया है। यथा—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

(गीता १७। ८—१०)

सरस, स्निग्ध, सारवान् और हृदयग्राही आहार सात्त्विक होता है। अधिक कटु, अम्ल, लवण, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और विदाही (जलन उत्पन्न करनेवाला, चरपरा) आहार राजसिक है और बासी, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, जूठा और अपवित्र आहार तामसिक है। सात्त्विक आहारसे आयु, बल, उत्साह, आरोग्य, सुख और प्रीतिकी वृद्धि होती है और चित्तमें सत्त्वगुणकी वृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। राजसिक आहारसे दुःख, शोक और रोग उत्पन्न होते हैं और तामसिक आहारसे जड़ता, अज्ञान, कुरोग और पशुभाव बढ़ता है। अतः राजसिक और तामसिक खाद्य-द्रव्योंका परित्याग कर सात्त्विक आहार करना चाहिये। इसी कारण आर्यशास्त्रमें प्याज तथा लहसुन आदि राजसिक और तामसिक वस्तुओंका भोजन करना निषिद्ध है, यथा—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥

(मनु० ५। ५)

लहसुन, गाजर, प्याज, कवक (कुकुरमुत्ता) (तथा विष्ठादि अपवित्र वस्तुसे उत्पन्न शाकादि) द्विजातियोंके लिये सर्वथा अभक्ष्य हैं। इन वस्तुओंके खानेसे मन, बुद्धि, शरीर, प्राण, आत्मा—सभी मलिन हो जाते हैं और ब्रह्मचर्यनाश, पशुभाववृद्धि, कामवृद्धि, चित्तचाञ्चल्य आदि उत्पन्न होकर आध्यात्मिक उन्नतिका मार्ग एकाएक बंद हो जाता है।

यह डॉक्टरी विज्ञान-सम्मत है कि स्पर्शसे एकके शरीरसे दूसरेके शरीरमें रोग संक्रमित होते हैं।

Miss Helen M. Mathews of the University of British Columbia demonstrated that bacili were readily transferred from one to another by even hand-shaking or shakehand.

अर्थात् मिस हेलेनने यन्त्रके द्वारा स्पष्ट प्रमाणित कर दिखाया है कि हाथके साथ हाथका स्पर्श होनेपर भी रोगके बीज एक दूसरेमें चले जाते हैं। केवल रोग ही नहीं, स्पर्शसे शारीरिक और मानसिक वृत्तियोंमें हेर-फेर भी हो जाता है। प्रत्येक मनुष्यमें एक प्रकारकी विद्युत्-शक्ति रहती है, जो मनुष्यकी प्रकृति और चरित्रके भेदसे प्रत्येकमें विभिन्न जातीय होकर स्थित है। तामसिकोंमें तमोमयी, राजसिकोंमें रजोमयी और सात्त्विकोंमें सत्त्वमयी विद्युत् विराजमान है। अन्ततः जिस वृत्तिके लोगोंके साथ रहा जाय, जिस वृत्तिके

लोगोंका छुआ या दिया अन्न सेवन किया जाय; उसी प्रकारकी वृत्ति सहवासियों अथवा अन्न ग्रहण करनेवालोंमें संक्रमित होगी। भिन्न-भिन्न प्रकारकी विद्युत्का प्रकृतिपरिणाम एक दूसरेपर हुए बिना न रहेगा। अतः चाहे जिसका भी हो, छुआ या दिया हुआ अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। हिन्दूशास्त्रोंमें नीच, अपवित्र, पापी और चाण्डाल आदिका छुआ अन्न ग्रहण करनेका जो निषेध है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको अलग-अलग पंक्तियोंमें बैठकर भोजन करनेकी जो आज्ञा है, इसका कारण भी यही है कि प्रत्येक वर्णकी विद्युत् (प्रकृति) जन्मसे ही विभिन्न प्रकारकी होती है और उसका अन्य प्रकृतिमें संक्रमण होना स्वाभाविक है। अपनेसे निम्न श्रेणीके लोगोंके साथ बैठकर भोजन करनेसे अपनी उच्चगुणविशिष्ट विद्युत् मलिन हो जाती है अथवा नाना जातिकी बिजलीके विपरीत संघर्षसे किसीका भी भोजन परिपक्व नहीं हो पाता।

भोजनके समय इन नियमोंका पालन करना आवश्यक है। एक वर्णमें पंक्तिभोजनके समय यह भी नियम अवश्य रखना चाहिये कि जितने व्यक्ति एक साथ बैठें, सभी भोजनका प्रारम्भ तथा समाप्ति एक ही साथ करें; क्योंकि पंक्तिमें भोजनके समय सबके शारीरिक यन्त्रमें क्रियाविशेष होनेसे तथा एक साथ बैठनेके कारण सभीके भीतर एक वैद्युतिक शृंखला (Electric line or circle) बन जाती है। उसीमेंसे जो आगे उठ जायगा, वह यदि दुर्बल है तो उसकी वैद्युतिक शक्तिको बाकी बैठनेवाले खींच लेंगे, जिससे उस पहले उठनेवालेके पेटमें भोजन पचेगा नहीं और वह दुर्बल हो जायगा। दूसरे उठनेवाला यदि अधिक शक्तिशाली है तो सारे बैठनेवालोंकी विद्युत्-शक्तिको वह खींचकर उठेगा, जिससे बाकी सभीके पेटमें विकार हो सकता है। अतः पंक्तिभोजनमें साथ ही बैठने-उठनेका नियम अवश्य रखना चाहिये। और यदि किसीसे अन्न लेना हो तो सत्पात्र देखकर उससे लेना चाहिये, क्योंकि पापियोंका अन्न ग्रहण करनेसे उसका पाप अपनेमें भी संक्रमित होगा। भीष्मपितामहने दुर्योधनका पापान्न ग्रहण किया था, इसीसे उनका ज्ञान लुप्त हो गया था और द्रौपदीके वस्त्रहरणके समय वे द्रौपदीकी रक्षा नहीं कर सके थे। जब इतने बड़े महात्माकी भी पापान्नके ग्रहण करनेसे बुद्धि पलटती है तो साधारण जीवोंकी तो बात ही क्या है? सारांश यह है कि सत्पात्रके यहाँका भोजनार्थ निमन्त्रण स्वीकार करना और सत्पात्रका ही अन्न ग्रहण करना चाहिये।

भोजनमें स्पर्शदोषकी तरह दृष्टिदोषके गुणका भी विचार आर्यशास्त्रमें किया गया है। केवल आर्यशास्त्रमें ही नहीं पश्चिमी विद्वानोंने भी स्पर्शदोषके साथ दृष्टिदोषके विषयमें बहुत कुछ विचार किया है। प्रसिद्ध विज्ञानवित् फ्लामेरियन (Flammarion) साहब कहते हैं—

What is this mysterious force, this something which flows through the nerves of the hand, to the finger tips? This mysterious force by some scientists called 'Ethereal Fluid', by others 'Fluid Force' starts from the brain, unites itself with the impulses, thoughts and acts, flows through the nerves, the same as the nervous fluid to each one of its three centres of radiation viz the hand, the eyes and the soles of the feet. From each one of these respective centres, this invisible recorder registers its particular results, but it is through the hand, where this emotional wireless, reveals its greatest power.

(The mysterious power which operates through the hand—Kalpaka)

वह कौन शक्ति है जो हाथकी नसोंके द्वारा अँगुलियोंके अन्ततक चली जाती है? इसीको वैज्ञानिकगण 'आकाशी शक्ति' कहते हैं। वह मस्तिष्कसे प्रारम्भ होती है, मनोवृत्तियोंके साथ जा मिलती है और स्नायुपथसे प्रवाहित होकर हाथ, आँख और पाँवकी एड़ीतक पहुँचती है। इन तीनोंके ही द्वारा दूसरोंपर यह अपना प्रभाव दिखाती है, किंतु इसका सबसे अधिक प्रभाव हाथकी अँगुलियोंद्वारा ही प्रकट होता है। अब आर्यशास्त्रीय विचार कहते हैं। यथा—

पितृमातृसुहृद्वैद्यपुण्यकृद्धंसबर्हिणाम्।
सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा॥

पिता, माता, सुहृद्, वैद्य, पुण्यात्मा, हंस, मयूर, सारस और चकवेकी दृष्टि भोजनमें उत्तम है। इनकी दृष्टि पड़नेसे अन्नका दोष दूर हो जाता है। चकवेके विषयमें मत्स्यपुराणमें लिखा है कि '**चकोरस्य विरज्येते नयने विषदर्शनात्।**' अन्नमें विष आदि दोष रहनेपर

चकवे आँखें मूँद लेते हैं जिससे विषाक्त अन्नका पता लग जाता है। दृष्टिदोषके विषयमें लिखा है—

हीनदीनक्षुधार्त्तानां पाषण्डस्त्रैणरोगिणाम्।
कुक्कुटाहिशुनां दृष्टिर्भोजने नैव शोभना॥

नीच, दरिद्र, भूखे, पाषण्ड, स्त्रैण, रोगी, मुर्गे, सर्प और कुत्तेकी दृष्टि भोजनमें ठीक नहीं होती है। उनकी विषदृष्टि अन्नमें संक्रमित होनेसे अजीर्ण रोग उत्पन्न होते हैं। अच्छी या बुरी दृष्टिमें कितनी शक्ति है सो आजकल मेस्मेरिज्म, हिप्नटिज्म आदि विद्याओंके द्वारा स्पष्ट प्रमाणित हो चुका है। यदि कभी इनमेंसे किसीकी दृष्टि अन्नपर पड़ जाय तो निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर उसके अर्थका चिन्तन करते-करते भोजन करना चाहिये। यथा—

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।
इति संचिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते॥
अञ्जनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।
दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥

अन्न ब्रह्माका रूप है और अन्नका रस विष्णुरूप है तथा भोक्ता महेश्वर हैं, इस प्रकार चिन्तन करते-करते भोजन करनेपर दृष्टिदोष नहीं होता। अञ्जनीकुमार ब्रह्मचारी हनुमान्‌को दृष्टिदोषनाशार्थ मैं स्मरण करता हूँ, ये ही सब भोजनके विषयमें नियम हैं।

दिनमें एक ही बार भोजन करना चाहिये। 'आपस्तम्ब' में लिखा है कि '**दिवा पुनर्न भुञ्जीत नान्यत्र फलमूलयोः**' तात्पर्य यह कि दिनमें एक ही बार भोजन करना चाहिये; परंतु क्षुधाबोध होनेपर फल-मूल आदिका आहार कर सकते हैं।

किसी वस्तुसे माथा लपेट कर और जूता पहनकर भोजन करना उचित नहीं—

यो भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यश्च भुङ्क्ते विदिङ्मुखः।
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥

किसी वस्तुसे माथा लपेट कर तथा शास्त्रनिषिद्ध दिशाकी ओर मुख करके और जूता पहनकर, खाना आसुरी प्रकृतिका लक्षण है। रात्रिमें हलका भोजन करना चाहिये। क्योंकि निद्रावस्थामें स्नायुशक्ति दुर्बल रहती है, उस समय गम्भीर भोजनका परिपाक ठीक नहीं होता। दिन या रात्रिका भोजन ऐसा न हो, जिसमें खूब चरपरे मसाले पड़े हों और जो आसानीसे पच न सके, न पचनेवाले भोजन करनेसे शरीर और मन दोनों बिगड़ते हैं। अतः सहजमें पचनेवाले हलके पदार्थ ही खाये जायँ। संध्याके समय भोजन न करे; क्योंकि संध्याके समय भूत-प्रेतोंकी दृष्टि अन्नपर रहती है। उनकी अन्नपर आसक्ति रहनेसे उस समय अन्न ग्रहण करनेवालोंके अन्नपरिपाकमें संदेह रहता है। इसी तरह अधिक रात बीत जानेपर भी भोजन न करे; क्योंकि भोजनोत्तर कम-से-कम दो घंटे जागकर तब सोना चाहिये। ऐसा न करनेसे अन्न नहीं पचेगा। अन्नके न पचनेसे गाढ़ निद्रा नहीं लगेगी। अच्छी नींद न आनेसे नाना प्रकारके स्वप्न दीख पड़ेंगे और निद्राभङ्ग होगा; जिससे स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा। भोजन कर लेनेके कुछ समय पश्चात् जल पीना चाहिये। वह स्वच्छ, लघु, शीतल, सुगन्धित, स्वयं स्वादहीन, हृद्य और तृष्णानिवारक हो। जलके विषयमें महर्षि यमने कहा है—

दिवार्करश्मिसंस्पृष्टं रात्रौ नक्षत्रमासितैः।
संध्ययोश्च तथोभाभ्यां पवित्रं जलमुच्यते॥

दिनमें सूर्यकिरण, रात्रिको चन्द्र-किरण और सन्ध्याओंमें दोनों किरणोंसे संस्पृष्ट जल ही उत्तम है। जिस जलपर सूर्यकिरण नहीं पड़ते अथवा जिस जलको वायु नहीं सोखती, वह अति स्वच्छ रहनेपर भी कफ उत्पन्न करता है। उस जलको गरम करके ठंडा होनेपर पिये। ऐसा जल काश, श्वास, ज्वर, कफ, वात, आम और अजीर्णका नाश करता है। नारियलका जल मधुर, पाचक और पित्तशामक होता है। लाल नारियलके जलमें केवल पित्तशमनका ही गुण है। सोडावाटर, लेमनेड आदि क्षारयुक्त जल इस देशके आहार-विहार और जलवायुके लिये सर्वथा अनुपयुक्त और अपथ्यकर है।

जल पीनेके विषयमें भावप्रकाशमें लिखा है—

अत्यम्बुपानाच्च विपच्यतेऽन्न-
मनम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय
मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥

अर्थात् बहुत जल पीनेसे तथा बिलकुल ही न पीनेसे अन्नका परिपाक नहीं होता। इसलिये पाकाग्निके बढ़ानेके लिये बार-बार थोड़ा-थोड़ा जल पीना चाहिये।

आर्यशास्त्रमें मिताहारकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। मिताहारके लक्षणके विषयमें लिखा है—

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीयं वारि पूरयेत्।
वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥

उदरका दो भाग भोज्य-पदार्थोंसे तथा तीसरा भाग

जलसे पूर्ण किया जाय और चौथा भाग वायु संचारके लिये खाली रखा जाय, यही मिताहारका लक्षण है। इससे आयु बढ़ती है, रोगका नाश होता है तथा बल और सुखका लाभ होता है।

भुक्त्वा पाणितलं धृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति॥
स्वर्यातिश्च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ।
भोजनान्ते स्मरेद् यस्तु तस्य चक्षुर्न हीयते॥

भोजनके बाद मुखप्रक्षालन करना चाहिये, जिससे मुखमें उच्छिष्ट न रहे। तदनन्तर '**स्वर्याति**' आदि मन्त्रपाठ करते हुए आर्द्र हस्तद्वय घर्षणपूर्वक दोनों चक्षुओंमें तीन बार लगानेपर दृष्टिशक्ति अच्छी होती है। तदनन्तर क्या करना चाहिये, उसके लिये लिखा है—

भुक्त्वा राजवदासीत यावन्न विकृतिं गतः।
ततः शतपदं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्॥
एवं चाधोगतश्चान्नं सुखं तिष्ठति जीर्यति॥

भोजनके बाद पहले वीरासनमें बैठना चाहिये, पश्चात् शतपद घूमकर वामपार्श्वमें सोना चाहिये। भावप्रकाशमें लिखा है कि—

वामदिशायामनलो नाभेरूर्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम्।
तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्तप्रपाकार्थम्॥

नाभिके ऊपर वामपार्श्वमें अग्नि रहती है, इसलिये वामपार्श्वमें सोनेपर अन्नका परिपाक अच्छा होता है।

भोजनके बाद कठिन परिश्रम कदापि नहीं करना चाहिये, उससे रक्त-संचालन अधिक होनेपर पाकक्रियामें बाधा होती है। इसलिये लिखा है—

अनायासप्रदायीनि कुर्यात् कर्माण्यतन्द्रितः।

जिससे परिश्रम न हो, इस प्रकारके हलके काम कर सकते हैं वैद्यकशास्त्रमें और भी लिखा है—

भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता।
आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः॥

भोजनके बाद बैठे रहनेसे शरीरमें भारीपन और इन्द्रियोंमें शिथिलता आने लगती है, सोये रहनेसे शरीर पुष्ट होता है, थोड़ी देर पादचारण करनेसे आयु बढ़ती है और खाते ही दौड़नेसे मृत्यु भी पीछे-पीछे जाती है। ये सब आहारके नियम हैं। इनका पालन करना चाहिये।

भगवद्भजनसे रोगोंका नाश

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

'**भोगापवर्गार्थं प्रकृतेरात्मा**' इस सूत्रके अनुसार यह शरीर भोग और मोक्ष दोनोंके लिये है। इसलिये शरीरकी रक्षा सदैव करनी चाहिये, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

श्रीअष्टावक्रजी महाराज श्रीजनकसे कहते हैं—'हे जनक! श्रमका नाम ही दुःख है। जिसमें थकान लगे उसका नाम श्रम है और जिसमें श्रम न हो उसका नाम है सुख। श्रम शारीरिक और मानसिक दो प्रकारका होता है। शारीरिक श्रमकी अपेक्षा मानसिक श्रम अधिक हानिकारक है। परमाणु कम होनेसे जो शरीरपर प्रभाव पड़ता है, उसीका नाम श्रम है। मनके परमाणु कम होनेसे—क्षीण होनेसे उनकी पूर्ति विलम्बसे होती है, इससे वह विशेष दुःखदायी होता है। शरीरके परमाणु कम होनेसे उनके स्थानपर नये परमाणु शीघ्र आ जाते हैं—अतः दुःख कम होता है। यही है शरीर और श्रमका सिद्धान्त। इसलिये जैसे भी शरीर और मनको थकान न लगे वैसा ही काम करना चाहिये। परमाणु घिसनेसे लेकर नये परमाणु आनेतक बीचमें जो घिसनेकी और पूर्तिकी क्रिया होती है, उसीको रोग अथवा ज्वर आदि नामसे पुकारा जाता है। इससे छुटकारा पानेके लिये मानसिक चिन्ता और श्रमका त्याग करके विश्राम करना चाहिये। इसके लिये आनन्द और प्रसन्नता बहुत ही उत्तम औषधि है। इसलिये शान्ति और आनन्दके साथ जीवन व्यतीत हो, वैसी ही व्यवस्था करनी चाहिये।'

यह शरीर पञ्चतत्त्वोंका बना है—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। निचले तत्त्वसे ऊपरका तत्त्व दूषित होता है, जैसे जलमें पृथ्वी (मिट्टी) मिले तो जल कीचड़युक्त हो जाता है। तेज (अग्नि)-में जल डाले तो धुआँ पैदा होता है। यही बात जगत्के सभी पदार्थोंके विषयमें समझनी चाहिये। नीचेका तत्त्व ऊपरके तत्त्वसे शुद्ध होता है, जैसे गंदा जल उबालनेसे शुद्ध होता है, तेज वायुसे शुद्ध होता है अर्थात् अग्नि बिना वायुके नहीं जलती। उसी प्रकार वायु आकाशसे शुद्ध होता है अर्थात् बंद स्थानका वायु दूषित और खुले आकाशका वायु

शुद्ध होता है। इन बातोंपर अच्छी तरह विचार करके साधकको इन्हें अपने जीवनमें लाना चाहिये। श्रम करनेसे शरीरके जो परमाणु घिसकर नष्ट होते हैं, वे मलके रूपमें बाहर आते हैं। उन परमाणुओंकी पूर्तिके लिये शरीरके अंदरसे जो आवाज आती है उसीका नाम है भूख। इसीलिये शरीरको जीवित रखनेके लिये आहारकी आवश्यकता होती है। शरीरके परमाणु तो आहारसे मिल जाते हैं, परंतु उससे थकान नहीं मिटती है। यदि ऐसा सम्भव होता तो मनुष्य खाता रहता और रात-दिन काम भी करता रहता, परंतु ऐसा होता नहीं है। थकान तो निद्रासे ही दूर होती है। निद्राका अर्थ है मनको आराम—मनकी निश्चिन्तता। तात्पर्य मनुष्यको काम करके विश्राम करना चाहिये। विश्राम भी दो प्रकारका होता है—१-जाग्रद् विश्राम और २-निद्रित विश्राम। निद्रामें विश्राम तो सभी लेते हैं, परंतु जाग्रद् विश्राम तो इस जमानेमें विरले ही जानते हैं। मन भी पाँच सूक्ष्म भूतोंका बना है, उनमेंसे आकाश थकान दूर करता है तथा उसके दूसरे नम्बरपर है वायु। इसीलिये दिनमें काम करनेके पश्चात् खुले आकाशमें शुद्ध वायुमें शान्तिपूर्वक बैठना चाहिये। खेल, मनोरंजन अथवा बातचीतसे पूर्ण आराम नहीं मिलता। शान्तिपूर्वक प्राकृतिक सौन्दर्यको देखते हुए निर्विचार अवस्थामें अथवा आत्म-विचारमें बैठनेसे पूर्ण विश्राम मिलता है।

बहुतसे लोग कहते हैं कि हम अमुक काम करनेसे बहुत थक जाते हैं, अतः अब वह काम नहीं करेंगे। परंतु सत्य बात तो यह है कि मनुष्य कामसे कम थकता है, परंतु चिन्ता करने, बहुत बोलने और क्रोध करने—इन तीन बातोंसे बहुत थकता है। इसे एक उदाहरणसे समझें—एक मनुष्य एक घंटा भगवन्नाम लिखनेसे उतना नहीं थकता, जितना एक घंटा बोलनेसे थकता है। इसलिये मनुष्यको आवश्यक होनेपर भी बहुत कम बोलनेका अभ्यास करना चाहिये और अपने सभी काम नियमित करने चाहिये। दिनमें करनेवाले कार्योंकी एक सूची प्रातःकालमें तैयार कर लेनी चाहिये और सायंकाल उनका निरीक्षण करना चाहिये। जो काम हो गये हों, उन्हें चिह्नित कर देना चाहिये।

रोग, दुःख और दर्द पापके फल हैं—वे पुण्य और भगवद्भजनके बिना समाप्त नहीं हो सकते, इसलिये अधिक-से-अधिक भजन करना चाहिये। भगवन्नाम-जपसे दुःख मिटता है, यह मेरे अनुभवकी बात है। जप और भजनसे ही मेरे बहुत-से दर्द मिटे हैं। मुझे दमा हो गया था, मेरे एक मित्रने कहा कि अब यह शरीरके साथ ही समाप्त होगा। जो दमा मुझे वर्षोंसे पीड़ा दे रहा था, भगवद्भजन करनेसे वह एक रातमें ही न जाने कहाँ छूमन्तर हो गया। एक बार मैं बहुत बीमार पड़ा, डॉक्टर भी निराश हो गये, परंतु प्रणवके जपसे मैं ठीक हो गया। एक समय अचानक ही मेरे सिर और कानमें बहुत तेज दर्द प्रारम्भ हुआ, परंतु वह भी एक घंटेमें समाप्त हो गया। यह सब भगवान्की दयाका प्रताप है। मनुष्यको बहुत दयालु होना चाहिये—अन्तःकरणमें दया होना और मन एवं शरीरसे ईश्वरका भजन करना चाहिये। किसीका अपमान तो कभी न करे, परंतु किसीकी भलाई करनेका अवसर हाथसे न जाने दे। अभिमान न करे, अपने दोष देखते रहे, सबके प्रति कपटरहित सरल वाणी बोले। इतना करे तो दुःख और दर्दमें परमात्मा शीघ्र आराम करते हैं।

ईश्वरका भजन करनेवाले व्यक्तिके जीवनमें विघ्न और दुःख आते तो हैं, परंतु थोड़े समयमें ही चले जाते हैं। जिस दुःख-दर्दमें भगवद्भजन न हो उसे बहुत बड़ा विघ्न समझना चाहिये। निष्काम कर्मका एक यही फल है कि भगवान्का भजन अधिक-से-अधिक हो। रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये दवा और ईश्वर-भजन—ये ही दो उपाय हैं। जहाँ दवा नहीं काम करती, वहाँ ईश्वर-भजन काम करता है—*'हारे को हरि नाम।'*

भगवन्नाम-जप समस्त रोगोंको मिटानेका अमोघ साधन है। इसलिये दुःख और रोगमें मनुष्यको दवाके साथ भगवद्भजन भी करना चाहिये।

रोग मात्र पापका फल है और सुख पुण्योंका फल है। दुःख, रोग और पापोंका नाश करनेमें निष्काम कर्म-जैसा कोई अन्य उपाय नहीं है। परमात्माकी निष्काम सेवासे सभी दुःख और रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रभु भोग और मोक्ष दोनोंके दाता हैं—इससे भगवान्का भजन निष्कामभावसे करना चाहिये। **'हरिः ॐ तत्सत्!'**

[प्रे०—रजनीकान्त शर्मा]

आरोग्य—प्राथमिक आवश्यकता

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृङ्गेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

श्रीभगवत्पाद शंकराचार्यजीने कहा है कि 'पुत्र-मित्र-कलत्र आदिका सुख जन्म-जन्ममें प्राप्त हो सकता है; परंतु मनुष्यत्व, पुरुषत्व और विवेककी प्राप्ति नहीं होती'—

पुत्रमित्रकलत्रादिसुखं जन्मनि जन्मनि।
मर्त्यत्वं पुरुषत्वं च विवेकश्च न लभ्यते॥

ऋषियों और मनीषियोंका मानना है कि मनुष्यका जन्म, जन्मान्तरोंमें किये गये पुण्यका परिणाम होता है। पूर्वकृत सुकृतके बिना मर्त्यत्व अर्थात् मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता। नाना योनियोंमें भ्रमण करनेवाला जीव पत्नी, पुत्र और मित्र आदिसे प्राप्त होनेवाले सुखका सम्भागी बन सकता है। नाना कष्ट भोगनेकी स्थितिवाली योनिमें रहकर भी ऐसे सुखको वह प्राप्त कर सकता है; परंतु कष्टोंसे वह मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् नाना योनियोंमें स्वकर्मके अनुसार उसे भ्रमण करना ही पड़ता है; वह जन्म-मरणके दुर्धर चक्रसे बच नहीं सकता।

मनुष्य-जन्मकी सर्वश्रेष्ठताके विषयमें आध्यात्मिक या पारमार्थिक विश्वास रखनेवाले लोगोंमें ही नहीं, तद्भिन्न प्रकृतिवाले लोगोंमें भी कोई संदेह नहीं है। सब लोग यह स्वीकार करते हैं कि अन्य सभी जीव-जन्तुओंसे मानव सर्वथा उच्च है और वह सब प्रकारसे अपनी उन्नति कर सकता है। वह अपनी बुद्धिशक्तिका उपयोग करके अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकता है।

लौकिक दृष्टिसे हो या आध्यात्मिक दृष्टिसे अपने लक्ष्यकी साधनाके लिये अथवा गन्तव्यतक पहुँचनेके लिये मनुष्यको स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीरकी नितान्त आवश्यकता है। मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य अनेक संदर्भोंमें एक-दूसरेके पूरक होते हैं। अतएव जिस भाँति मनको अपने वशमें रखना अवश्यम्भावी होता है, उसी भाँति शरीरको भी नियन्त्रित रखना आवश्यक होता है।

यह माना गया है कि मनुष्यका यह जन्म यथानिर्दिष्ट धर्म-परिपालनके द्वारा परमात्मा किंवा परमपदको प्राप्त करनेके लिये है। धर्मके अनुसार चलनेसे इहलोक तथा परलोकमें सुखकी स्थिति होगी। धर्मकी अवहेलना करनेसे कष्ट भोगना पड़ेगा। धर्मका साधन शरीर है। **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'**—यह उक्ति तो सुपरिचित है।

तात्पर्य यह है कि पुरुषार्थचतुष्टय (धर्मार्थकाममोक्ष)-की सिद्धि तभी होती है, जब मनुष्य अपने शरीरको स्वस्थ और शुचि रखकर सही पथपर अग्रसर होता है। चार पुरुषार्थ जो बताये गये हैं, उनमें वास्तविक पुरुषार्थ मोक्ष है। दुर्लभ मनुष्य-जन्मकी प्राप्ति होनेसे मोक्षकी साधनामें लगे रहना चाहिये, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवत्पादजीने कहा है—

यावन्नाश्रयते रोगो यावन्नाश्रयते जरा।
यावन्न धीर्विपर्येति यावन्मृत्युं न पश्यति॥
तावदेव नरः स्वस्थः सारग्रहणतत्परः।
विवेकी प्रयतेताशु भवबन्धविमुक्तये॥

अर्थात् मनुष्य कबतक स्वस्थ है? जबतक रोग उसके पास नहीं पहुँचते, जबतक वृद्धावस्थाका उसपर आक्रमण नहीं होता और जबतक वह मृत्युको नहीं देखता। अतएव उसे विवेकी और सारग्रहण-तत्पर होना चाहिये तथा भवबन्धनसे विमुक्ति पानेके लिये शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये।

आरोग्यके अभावमें लौकिक दृष्टिसे भी मनुष्य वाञ्छित सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव आरोग्यकी रक्षा हमारी प्राथमिक आवश्यकता है। मनुष्य अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करते हुए अपने जीवनको सुखमय बनाये, इस दृष्टिसे ही आयुर्वेदका प्रणयन हुआ है। भगवान्ने धन्वन्तरिके अवताररूपमें इस जगत्का कल्याण किया है और देवलोकमें देवताओंके कल्याणार्थ अश्विनीकुमार हैं।

यज्ञ, दान, जप-तप आदि क्रियाएँ सुचारुरूपसे सम्पन्न करनेके लिये दैहिक स्वास्थ्य या नीरोगताकी अपेक्षा सब लोग करते हैं। देहपर ममता नहीं होनी चाहिये, यह बात ठीक है। पर अस्वस्थताकी अवस्थामें कोई कार्य सम्पन्न भी नहीं हो सकता। इसलिये हमारे

पूर्वजोंने सदाचारकी शिक्षा दी है। धर्मशास्त्रादि ग्रन्थोंमें ऐसी अनेक बातें बतायी गयी हैं, जिनके अनुसार चलनेसे मनुष्य शारीरिक दृष्टिसे स्वस्थ रह सकता है, बौद्धिक दृष्टिसे प्रगति कर सकता है तथा आध्यात्मिक पथपर अग्रसर होकर पुरुषार्थकी साधना कर सकता है।

ब्राह्ममुहूर्तमें उठ करके शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करनेसे, संध्योपासना और भगवदर्चना या पूजा-पाठ करनेसे शरीरको नवोन्मेष मिलता है तथा आगेके दैनिक कार्यक्रम सुगमतासे करनेका उत्साह प्रवृद्ध होता है। यह केवल आचारकी ही बात नहीं है, लौकिक कार्योंमें सफलता पानेके लिये भी इस प्रकारका अभ्यास अनावश्यक नहीं कहा जा सकता। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी सूर्योदयके पूर्व उठकर दैनिक कार्योंमें लग जाना सही मार्ग ही माना जाता है। मानव-शरीरमें एक सद्गुण यह है कि आप जिस तरहसे अभ्यास करेंगे, उसी तरहसे वह अपना दायित्व निभायेगा। आहार-सेवनके विषयमें भी यह बात सही कही जा सकती है।

बुद्धिमान् व्यक्तिको ज्ञात है कि हम जिस प्रकारका भोजन करते हैं, उस प्रकार हमारा जीवन चलता है और शरीरका स्वास्थ्य भी तदनुसार होता है। बात तो यह है कि हम भोजनके लिये जीवित नहीं, जीवित हैं इसलिये भोजन करते हैं। सात्त्विक आहारके सेवनसे सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्यकी भी रक्षा होती है। ऐसा व्यक्ति लौकिक और पारलौकिक साधनामें सफल हो सकता है। भगवान्ने गीता (६। १७)-में कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति भोजनादिके विषयमें नियन्त्रित मनवाला होता है, उसमें सात्त्विक प्रवृत्तिके कारण विवेकका जागरण होता है। कोई यह प्रश्न कर सकता है कि क्या सात्त्विक प्रवृत्तिके व्यक्तिको रोग नहीं होता? उत्तर यह है कि वह यौगिक चिकित्सासे अपने रोगको दूर करनेका यत्न करता है। संसारमें प्रायः कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो जीवनभर पूर्णतः रोगमुक्त रहा हो। बड़े-बड़े लोगोंको भी, महात्माओंको भी कभी कोई-न-कोई रोग हो जाता है। मनुष्यको शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है—'**अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**'। रोगके दो कारण माने गये हैं—(१) पूर्व-कर्मका परिणाम, जिसको प्रारब्ध कहा जाता है और (२) आहारादि-दोष अथवा कुपथ्य। कहा भी गया है—'**जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते**'। अतएव प्रथम कारणका निराकरण नहीं किया जा सकता। भोगसे ही प्रारब्धका क्षय होता है। दूसरा कारण जो बताया गया है उसका निवारण सम्भव है। इसीलिये तो आयुर्वेदादि चिकित्सा-पद्धतियाँ हैं। नीरोगताके लिये शारीरिक व्यायाम, शुद्ध जल-हवा आदिकी भी आवश्यकता है।

शरीरको व्याधिग्रस्त नहीं होने देना चाहिये। पथ्य और औषधसेवन यथोचित रीतिसे करने चाहिये। कहा भी गया है कि ऋणशेष, अग्निशेष और व्याधिशेषको नहीं रहने देना चाहिये; क्योंकि शेष रहनेसे उनकी वृद्धि होती है, जिससे वे हमारे लिये हानिकर होती हैं—

ऋणशेषं चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत्॥

सत्संकल्प और ईश्वरप्रणिधानादिसे भी आरोग्यलाभ होता है। जब हम किसी भी शुभ कार्यका आरम्भ करते हैं तब संकल्पमें 'आयुरारोग्यादि' की सिद्धिकी बात करते हैं। आरोग्य तो सर्वथा वाञ्छित है। नवधा भक्तिमें पादसेवन, अर्चन, वन्दन और दास्यके जो प्रकार बताये गये हैं, उनसे हमको दोहरे लाभ होते हैं। ये शारीरिक क्रियासे सम्बन्धित होनेके कारण इनसे शारीरिक व्यायाम होता है और इष्टदेवकी करुणाके हम पात्र बन जाते हैं। हमारे परमगुरु श्रीजगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन चन्द्रशेखर भारती महाराजजी कहा करते थे कि भगवान्के मन्दिरमें प्रदक्षिणा करनेसे शारीरिक व्यायाम तथा पारमार्थिक प्रयोजन दोनोंकी सिद्धि सम्भव है।

यह देखा गया है और अनुभवसिद्ध बात है कि केवल औषधियोंसे ही आरोग्यलाभ नहीं होता। चिकित्सकके प्रयत्नके साथ ईश्वरानुग्रह भी रहे तो शीघ्र ही सफलता मिलती है। सच तो यह है कि ईश्वरानुग्रहके बिना कोई भी कार्य सफल नहीं होता। श्रद्धालु भक्तोंकी दृष्टिमें गङ्गाजल ही औषध है और नारायण ही वैद्य हैं। कहा गया है—

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

संसारमें बार-बार जन्म लेना, अनेक कष्टोंको भोगना, नाना रोगोंका शिकार बनना—ये सब तो वात्याचक्र हैं। इनसे बचनेका एकमात्र उपाय है परमार्थके पथपर अग्रसर होना। अतः परमेश्वरकी शरणमें जाना चाहिये। कहा गया है कि परमेश्वर भवरोगके वैद्य हैं। श्रीरुद्राध्यायमें उनको 'भिषक्' कहा है—'**अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्**'। इसलिये उनसे हम प्रार्थना करते हैं कि 'हे त्र्यम्बक वेदरूप पुण्यदाता परमेश्वर! मृत्युके पाशसे हमको बचाओ, जन्म-मरणसे हमको मुक्त करो और हमको 'अमृत' बनाओ।'

भगवान्‌के नाममें महत्तर शक्ति है। श्रद्धा-भक्तिसमन्वित चित्तसे हरि, शिव ऐसे दो अक्षर भी कहें तो भवबन्धनसे मुक्त हो सकते हैं। 'स्कन्दपुराण' में कहा गया है—

शिवेति द्व्यक्षरं नाम त्रायते महतो भयात्।

'शिव' शब्द तो वेदसार है। शंकरसंहितामें कहा गया है—

सर्वासामपि विद्यानामुत्कृष्टा श्रुतिरुच्यते।
चतुर्णामपि वेदानां यजुर्वेदो विशिष्यते॥
यजुर्वेदे चतुष्काण्डः श्रीरुद्रस्तत्र तत्र च।
नमः सोमाय चेत्यत्र वरा पञ्चाक्षरी मता॥
तन्मध्ये जीवरत्नं स्याच्छिव इत्यक्षरद्वयम्॥

इस सारतत्त्वको ग्रहणकर लोग आरोग्यकी रक्षा करते हुए तथा धर्मका भी अनुसरण करते हुए परम पुरुषार्थको प्राप्त कर धन्य होवें।

आयुर्वेदके प्रवर्तक आचार्य तथा आयुर्वेद-परम्परामें चरक

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतीय सनातन वैदिक परम्परा मूलतः आध्यात्मिक रही है, किंतु वह एक ओर जहाँ अपनी अखण्ड तथा परमपूत साधनाके द्वारा साध्यभूत मोक्षमूलक पारमार्थिक किंवा आमुष्मिक सत्यताका सतत अनुसंधान करती रही है, वहीं यह साधनपक्षके प्रति भी गम्भीर रही है। कहीं भी साध्यकी अपेक्षा साधनकी उपेक्षा नहीं की गयी है। यहाँ आदिकालसे ही साध्य एवं साधन—दोनोंमें पूर्ण संतुलन बना रहा है। इसीलिये सर्वधर्म तथा सर्वविद्याधिष्ठान वेदोंका प्राधान्य स्वीकार करते हुए भी वेदाङ्गों और उपवेदोंको भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। यहाँ धनुर्वेद हो या स्थापत्यवेद, गान्धर्ववेद हो या आयुर्वेद—सभी समान महत्त्वके हैं। फिर भी ऐहिक किंवा पारलौकिक फलोंके प्राप्त्यर्थ करणीय प्रयत्नोंके साधनभूत मानव-शरीर, जिसके बिना कोई भी धर्म, नियम निभने असम्भव हैं, की रक्षाका एकमात्र साधन आयुर्वेद है, जिसपर वेदोंके संहिता-कालसे ही गम्भीर विचार होते आये हैं; क्योंकि ये आयुर्वेदिक सिद्धान्त वेदमूलक हैं। इनके द्वारा प्राणिजगत्‌की आयुरक्षा, वृद्धि एवं सुखकी प्राप्ति होती है।

आयुर्वेद नामसे विख्यात यह जीवन-रक्षा-शास्त्र पुरुषार्थचतुष्टयसे साक्षात् सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत अधिकारी, विषय, सम्बन्ध एवं प्रयोजन-प्रभृतिका सम्यक् विधान भी है। अतः लौकिक और अलौकिक—इन उभयविध मान्यताओंके संधिबिन्दुपर विद्यमान आयुर्वेदशास्त्र त्रिकालाबाधित, व्यावहारिक तथा जीवन्त भारतीय दर्शन है, जिसके बिनो मानव-जीवन और उसके लक्ष्य अधूरे हैं। यह भारतीय भावभूमिसे सीधे सम्बद्ध भारतीय मनीषाकी अप्रतिमताका जाज्वल्यमान प्रमाण है, जिसके अन्तर्गत न केवल मानव, अपितु समूचे जड-चेतनात्मक विश्वकी प्रकृति, स्थिति, उसके आचार, उपयोग, परिवर्तन और परिणाम-सम्बन्धी नियमों—सिद्धान्तोंका चूडान्त निदर्शन है। यह ऐतिहासिकताके अखण्ड काल-प्रवाहके निकषपर खरीसिद्ध, सर्वथा लाभकारी विश्वकी सर्वप्राचीन चिन्तन-पद्धति है, जिसके तपःपूत चिन्तक ऋषियोंकी एक पावन परम्परा है।

अथर्ववेदके उपाङ्गभूत आयुर्वेदके आचार्यों तथा ग्रन्थोंकी संख्या-सूची इतनी सुदीर्घ है कि उसकी गणना कर पाना एक कठिन कार्य है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि आचार्य चरक एवं उनकी संहिता आयुर्वेदिक चिन्तन-शृङ्खलाके मुकुटमणि हैं। तदनुसार आयुर्वेदिक सिद्धान्तोंका उपदेश ब्रह्माने प्रजापतिको, प्रजापतिने अश्विनीकुमारोंको, अश्विनीकुमारोंने इन्द्रको

और इन्द्रने भरद्वाजको दिया, जिसे ऋषिप्रवर भरद्वाजने अङ्गिराप्रभृति अन्य ऋषियोंको अक्षरशः सुना दिया। यथा—

ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥
अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्।
ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत्॥
तेनायुरमितं लेभे भरद्वाजः सुखान्वितम्।
ऋषिभ्योऽनधिकं तच्च शशंसानवशेषयन्॥

(च० सं० सूत्र १।४-५, २६)

कुछ लोगोंके मतमें भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप आदि ऋषियोंने स्वयं इन्द्रके पास जाकर आयुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की[1] तथा काश्यपसंहिताके अनुसार अत्रिने इन्द्रसे ज्ञान प्राप्त कर उसे अपने पुत्रों एवं शिष्योंको दिया—'**इन्द्रः ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः कश्यपवसिष्ठात्र्यङ्गिरोभृगुभ्यः ते पुत्रेभ्यः शिष्येभ्यश्च प्रददुः।**' (काश्यपसंहिता पृ० ६१) जिससे आयुर्वेदकी यह परम्परा आत्रेयपर्यन्त आ सकी।

आयुर्वेदकी ज्ञान-शृंखलामें अनेक आत्रेयोंका उल्लेख होनेके बावजूद पुनर्वसु आत्रेय, जो शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणोंमें उल्लिखित गान्धारनरेश नग्नजित्के राजवैद्य थे, का समय काफी प्राचीन है। कुछ लोग इन्हें ई०पू० ३००० वर्ष और कुछ लोग ई०पू० ८०० वर्ष मानते हैं।

चरकसंहिताके अन्तर्गत अग्निवेशप्रभृति छः ऋषियोंको महर्षि आत्रेयका शिष्य बताया गया है; जो पाणिनिसे पूर्ववर्ती थे। किंतु जहाँतक चरकका प्रश्न है, इनके संदर्भमें बहुत मतभेद है। कुछ लोग इन्हें शेषावतार मानते हुए महाभाष्यकार और योगसूत्रकार पतञ्जलिका दूसरा रूप मानते हैं; यथा—

पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतै-
र्मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥

(चक्रपाणि)

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां
पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

(विज्ञानभिक्षु, योगवार्तिक)

सूत्राणि योगशास्त्रे वैद्यकशास्त्रे च वार्तिकानि ततः।
कृत्वा पतञ्जलिमुनिः प्रचारयामास जगदिदं त्रातुम्॥

(रामभद्रदीक्षित, पतञ्जलिचरितम्)

अर्थात् भगवान् पतञ्जलिने ही समय-समयपर चरक आदिका विभिन्न रूप धारण करके व्याकरण, वैद्यक एवं योगको लोकमें प्रचारित किया, जिससे लोगोंके मन, वाक् और शरीरके दोष दूर हो सकें। इसी प्रकार वाक्यपदीयकार भर्तृहरिने ब्रह्मकाण्डमें तथा भोजने अपने ग्रन्थके अन्तर्गत इसी आशयके श्लोक दिये हैं, यथा—

कायवाग्बुद्धिविषया ये मलाः पर्यवस्थिताः।
चिकित्सालक्षणाध्यात्मयोगैस्तेषां विशुद्धयः॥[2]

(ब्रह्मकाण्ड)

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत-
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः॥

(भोज)

जो कुछ भी हो, किंतु आचार्य चरकने विश्वके हितहेतु जो अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं, वे त्रिकालाबाधित हैं और रहेंगे। उनकी संहिता आयुर्वेद-ग्रन्थ-मणिमालाका सुमेरु है। इसके अन्तर्गत न केवल पूर्ववर्ती चिन्तकोंके अमूल्य चिन्तनोंका समन्वय है, अपितु यह परवर्ती कृतियोंका प्रेरणास्रोत भी है। इसमें आठ स्थान, एक सौ बीस अध्याय एवं बारह हजार श्लोक हैं। सूत्रस्थानमें तीस अध्याय हैं, जिसमें चार-चार अध्यायोंके एक-एक चतुष्क बनाये गये हैं, जिन्हें क्रमशः—भेषज, स्वस्थ, निर्देश, कल्पना, रोग, योजना और अन्नपान कहा गया है।

इनका ग्रन्थ मात्र औषधियोंकी सूची ही नहीं, अपितु यह पूर्ण तथा प्रकाण्ड व्यवहारशास्त्र है, जिसमें आयुर्वेदकी परिभाषा, प्रवृत्ति, आयुके लक्षण, व्यक्तिकी

१-आयुर्वेदसमुत्थानीय रसायनपाद (चरक चिकि० १।४।३)
२-चरकसंहिताकी भूमिका पृ० २५।

आदर्श अहोरात्रि-चर्या, रोगोत्पत्तिके कारण, दोष, पञ्चकर्म और द्रव्योंके गुणधर्मप्रभृति तत्त्वोंपर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार निदान तथा विमान स्थानोंके आठ-आठ अध्यायोंमें ओषधि-संग्रह, जनपदोध्वंस, वैद्यहेतु शास्त्रपरीक्षा, गुरुपरीक्षा, अध्ययन-अध्यापन-विधि, सम्भाषा-परिषद् तथा चिकित्सा एवं उसके उद्देश्य आदि विविध विषयोंपर गम्भीरतया विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थके कालजयित्व, उपयोगित्व एवं लोकप्रियत्वका अनुमानमात्र इससे किया जा सकता है कि सम्प्रति इसपर भट्टारहरिश्चन्द्रकृत न्यास, जेज्जटप्रणीत पदव्याख्या, चक्रपाणिरचित आयुर्वेददीपिका, शिवदास-सेनप्रसूत तत्त्वप्रदीपिका, कविराज गङ्गाधरकृत जल्पकल्पतरु तथा योगीन्द्रनाथसेनाविर्भूत चरकोपस्कार-व्याख्या नामकी परम प्रख्यात टीकाएँ प्राप्त हैं। एतदतिरिक्त अनेक प्रामाणिक हिन्दी व्याख्याएँ भी सुलभ हैं। चरकसंहिताविहित सिद्धान्तोंके अनुरूप चर्याशील व्यक्ति कभी अस्वस्थ नहीं हो सकता; क्योंकि यहाँ रोगविमुक्तिके लक्षण, रोगके प्रकृतिज्ञापक लक्षण, सार-संहनन, प्रमाण तथा सात्म्य-सत्त्व-वय आदिके वर्गीकरण इत्यादिके विपुल विधान हैं।

इनके अनुसार वात, पित्त और कफके कुपित होनेके फलको ही रोग कहते हैं, किंतु इनमेंसे किसीका कोप तभी होता है, जब व्यक्ति विषम तथा अनुचित अन्नपानानुपान, अशास्त्रीय आचार एवं जीवनकी गतिविधियोंमें असावधानी करता है। इसके अतिरिक्त इनके यहाँ शुभाशुभ लक्षणोंके आधारपर शिशुका भविष्य-ज्ञान, धात्रीके गुण-दोष, कुमार-चिकित्सा, स्त्रीकी विविध अवस्थाओंमें चिकित्सा, मानवके वमन, रेचन तथा शरीरके विभिन्न अङ्गों तथा स्थितियोंके अनुरूप ओषधियोंके असंख्य विधान देखे जा सकते हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थको विविध ओषधियों, निदानों, रसों, रसायनों, शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं विश्वहितके उपायोंका विश्वकोश कहा जा सकता है। यदि इसकी सूक्ष्मतया मीमांसा की जाय तो यह पर्यावरण-सुधारके लिये भी उपयोगी रत्नकोष है; क्योंकि इनके मतमें पर्यावरण दो प्रकारका है—१-आभ्यन्तर और २-बाह्य।

आज लोकमें प्राय: जिस पर्यावरणकी चर्चा है, जिसमें समागत प्रदूषणोंको दूर करनेके उपाय बहुचर्चित बने हुए हैं, वे सभी बाह्य हैं। सम्प्रति ऐसे-ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं, जिनके कारणों तथा उपचारोंका ज्ञान चिकित्सकोंको नहीं है; क्योंकि पर्यावरणकी विकृतिको लेकर आज वायु, अन्न, जल, भूमि और ओषधियाँ—ये सभी प्रदूषित हो रहे हैं। आजका भोज्यमान अन्न रासायनिक तत्त्वों, नदियों—जलाशयों, फैक्ट्रियोंके गंदे नालों, भूमि-विस्फोटकों तथा उपयोगी ओषधियोंमें विकृति आनेके कारण सत्त्वरेण प्रदूषित हो रहा है। गायके चारेमें यूरियाका मिश्रण दूधको प्रभावित करता है। गोवंशका विनाश हो रहा है। खादके लिये पर्याप्त गोबर नहीं मिल पा रहा है। बीज-वपनसे लेकर अन्नके घर आनेतक उसमें अनेक जहरीले पाउडर निक्षिप्त किये जाते हैं। वह रस-रक्तक्रमेण माता-पिताद्वारा बालकको विरासतमें प्राप्त होता है। इस प्रकार जहाँ बीज ही दोषपूर्ण है, वहाँ भला फल कैसे निर्दुष्ट हो सकता है। ठीक इसी प्रकार उच्छेदसे वृक्षरक्षा, गङ्गा बचाओ अभियान, परमाणु-अस्त्र-निरस्त्रीकरण तथा जनरक्षाहेतु सुरक्षा-व्यवस्था आदि उपाय भौतिक किंवा बाह्य पर्यावरण-प्रदूषण-निवारणके अन्तर्गत माने जाते हैं, किंतु वस्तुतः बाह्यरीतिसे पर्यावरण-प्रदूषणका नियन्त्रण सम्भव नहीं है, जितना आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक अर्थात् आभ्यन्तरीय रीतिसे सम्भावित है।

आचार्य चरकके अनुसार वायु, जल, देश और कालके विकृत होनेपर समूची ओषधियाँ भी विकृत हो जाती हैं। इसलिये ऐसा होनेपर समूची सृष्टि रोगापन्न हो जाती है, किंतु उनसे मुक्तिके लिये ओषधिसेवन इत्यादिके अतिरिक्त चरकसंहितामें जिन उपायोंकी गणना करायी गयी है, उनमें सत्य बोलना, जीवमात्रपर दया करना, दान, बलिवैश्वदेव, देवपूजा, सद्वृत्तपालन, शान्ति, आत्मरक्षा, कल्याणकारी गाँवों तथा नगरोंका सेवन, ब्रह्मचर्यपालन, ब्रह्मचारियोंकी सेवा, धर्मकथा, जितेन्द्रिय महर्षियोंकी सेवा, सात्त्विक, धार्मिक और वृद्धोंद्वारा प्रशंसित लोगोंकी संगति आदिका महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिनसे जीवनके भयंकर कालमें भी मनुष्यकी

रक्षा हो सकती है; यथा—

सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्।
सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः॥
हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥
संकथा धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम्।
धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसंमतैः॥
इत्येतद् भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्।
येषामनियतो मृत्युस्तस्मिन् काले सुदारुणे॥

(चरकसंहिता विमान ३। १६—१९)

चरकसंहिताके अन्तर्गत अग्निवेशकी शंकाओंका समाधान करते हुए भगवान् आत्रेयने कहा है कि वायु आदिकी विकृतिका मूल अधर्म होता है या उसका मूल कारण पूर्वजन्मकृत अपराध होता है, जिन्हें प्रज्ञापराध कहा जाता है। कहना न होगा कि इसी अधर्म—प्रज्ञापराधको आभ्यन्तर प्रदूषण कहते हैं और इसी प्रदूषणका नियन्त्रण वास्तविक पर्यावरण-प्रदूषण-निरोध कहा जायगा; क्योंकि एवंविध नियमनके अभावमें प्रदूषणकी वृद्धिको रोकना सम्भव नहीं है। संहिताकारका मत है कि गाँव, नगर, प्रान्त अथवा देशके प्रधान पुरुषोंद्वारा कृत अधर्म सामान्यजनानुकरणीय होता है, जिससे अधर्म बढ़ता जाता है और उसके प्रभाववश धर्म तिरोहित-सा हो जाता है। बादमें लुप्तधर्मियों एवं अधार्मिकोंका साथ देवगण भी छोड़ देते हैं। फलतः उन जनपदोंकी ऋतुएँ बिगड़ जाती हैं, वर्षा समयसे नहीं होती। वायु और पृथ्वी भी विकृत हो जाते हैं, जल सूख जाता है और ओषधियाँ अपने स्वाभाविक गुण छोड़ देती हैं।*

इसी प्रकार आगे भी सर्वविध भूतादि आक्रमण, युद्धमें मृत्यु एवं शापादिको प्रज्ञापराधके ही परिणाम बताते हुए महर्षि चरकने कहा है कि धर्मरहित जन गुरु, वृद्ध, ऋषि, सिद्ध और पूज्योंका तिरस्कार कर अनुचित आचरण करते हैं, जिससे पूज्योंके शापवश वे नष्ट हो जाते हैं। अधर्म वह तत्त्व है, जो श्रान्ति, आलस्य, संचय, परिग्रह और लोभका जनक है— **'लोभः पापस्य कारणम्'**।

प्राचीन कालमें प्रज्ञापराध न होनेके कारण जनता सुखी तथा शान्त थी, किंतु कालक्रमसे अधर्मके वृद्धिवश लोभसे द्रोह, द्रोहसे झूठ, झूठसे काम-क्रोध, अहंकार, द्वेष, कटुता, अभिघात, भय, ताप, शोक, चिन्ता और उद्वेगकी प्रवृत्ति बढ़ती गयी। परिणामतः पञ्चमहाभूतोंके गुण नष्ट होने लगे और वायु, जल, देश एवं काल विकृत होकर व्याधिका सर्जन करने लगे।

ध्यातव्य है कि मनुष्यकी निश्चित तथा अनिश्चित आयुके लिये महर्षि आत्रेयने दैव और पुरुषकार (कर्तव्य)-को ही आधार माना है—

इहाग्निवेशभूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते।
दैवे पुरुषकारे च स्थितं ह्यस्य बलाबलम्॥

(चरकसंहिता विमान ३। ३०)

दैव और पुरुषकारका निर्धारण करते हुए उनका कहना है कि—

दैवमात्मकृतं विद्यात् कर्म यत् पौर्वदैहिकम्।
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहापरम्॥

(चरकसंहिता विमान ३। ३१)

अर्थात् पूर्व जन्ममें कृत कर्म दैव और वर्तमान जन्ममें अपने द्वारा कृत कर्म पुरुषकार या पुरुषार्थ समझना चाहिये। आगे भी कहा गया है—

तयोरुदारयोर्युक्तिर्दीर्घस्य च सुखस्य च।
नियतस्यायुषो हेतुर्विपरीतस्य चेतरा॥

(चरकसंहिता विमान ३। ३३)

अर्थात् दैव और पुरुषार्थ—इन दोनोंका संयोग सुख और दीर्घ आयुको प्रदान करनेवाला तथा हीन संयोग अल्पसुख, अल्पायुका विधायक होता है।

विचारणीय है कि **'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'** के अनुसार जो स्थिति व्यक्तिके लिये होती है, वही समष्टिके लिये भी होती है। अतः यदि अधर्मका विनाश अर्थात् प्रज्ञापराधका त्याग एवं धर्मका पालन किया जाय तो व्यक्ति, प्रान्त, देश किंवा विश्व सुखी हो जायगा तथा यह समूची सृष्टि अनन्त कालतक अमर रहेगी, अन्यथा

*चरकसंहिता विमानस्थान (३। २०)।

विनष्ट हो जायगी।

इन सारे तथ्योंपर ध्यान देते हुए चरकसंहिताकार कहीं लंघन, पाचन और दोषावसेचनसे लाभका विधान करते हैं तो कहीं अचिकित्स्य पुरुषके लक्षण तथा वैद्यका कर्तव्य बताते हैं एवं साथ-साथ निवास-योग्य देशके लक्षणोंका निर्देश भी करते हैं। इनके अनुसार अहितकारी, कटुभाषी, निन्दक, अधर्मी, क्रोधी और परछिद्रान्वेषी व्यक्तिकी दवा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह दैव और पुरुषकार—दोनों दृष्टियोंसे अपराधी है। वह अधर्मके परिणामस्वरूप रोगी है और आज भी अधर्ममें लिप्त है। इसी प्रकार जांगल, अनूप और साधारण देशोंका वर्गीकरण भी आचार्यने किया है, जिसमें पर्यावरणका विशेष ध्यान रखा गया है। जल, वनस्पति, वात, भूमि और ऋतु आदिको अधिक महत्त्व दिया गया है, जिससे चरकसंहिताकी महत्ता तथा लोकप्रियता अनुदिन बढ़ती जा रही है।

इस प्रकार निष्कर्षरूपमें कहा जा सकता है कि ऋषिवर्य चरक अद्भुत प्रतिभाके धनी थे ही, साथ ही वे प्रकाण्ड वैयाकरण, सफल पर्यावरणशास्त्री, निष्णात दैवज्ञ, विलक्षण राष्ट्रप्रेमी, अभूतपूर्व प्रकृतिप्रेमी, अद्वितीय लोकहितचिन्तक तथा ऋतम्भरा प्रज्ञाके परम धनाढ्य महापुरुष थे। वे विश्वकी रक्षाके लिये प्रभुद्वारा प्रदत्त वरदान थे और थे धन्वन्तरीय सिद्धान्तोंके ध्वजवाहक विद्वद्धुरीण आचार्य। यह सृष्टि **'यावच्चन्द्रदिवाकरौ'** क्रान्तदर्शी ऋषि चरकके प्रति कृतज्ञ रहेगी। अतः मैं भी महामुनि चरकको प्रणाम करते हुए और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ—**'महामुनिं तं चरकं नमामि।'**

आयुर्वेदिक चिकित्सापद्धतिकी दार्शनिक आधारशिला

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

१-आयुर्वेद—श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धके अनुसार श्रीमन्नारायण परब्रह्मस्वरूप हैं। उनके नाभिकमलसे स्फुरित स्वयम्भू ब्रह्माजी शब्दब्रह्मात्मक हैं। ब्रह्माजीके पूर्वमुखसे ऋग्वेद और आयुर्वेदकी अभिव्यक्ति मान्य है। अतएव आयुर्वेदको ऋग्वेदीय उपवेद माना गया है। पुष्टिकर्मान्तर्गत आयुर्वेद होनेसे आयुर्वेदजगत्‌में आयुर्वेदको अथर्ववेदीय माननेकी प्रथा प्रसिद्ध है। **'भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति'** (मनुस्मृति १२।९७)-के अनुसार जो कुछ त्रिकालगर्भित वेद्य है, वह वेदप्रतिपाद्य है। आयुके स्वरूप, आयुकी रक्षा और वृद्धि एवं स्वस्थ जीवनसे सम्बद्ध वेदविज्ञान 'आयुर्वेद' है। जो आयुका वेद हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं **'आयुषो वेदः आयुर्वेदः'**। आयु, धारि, जीवित, नित्यग और अनुबन्ध पर्यायवाची शब्द हैं। शरीर, इन्द्रिय, प्राणान्तःकरण और आत्माके संयोग (सहस्थिति)-को आयु कहते हैं—

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥

(च० सं० सूत्र० १।४२)

वेदोंका अर्थ वेदमूलक, विज्ञान, विचार, तदर्थ और उपलब्धि है। **'विद् विचारणे-विन्ते, विद्-सत्तायाम्-विद्यते, विद्लृलाभे-विन्दति विन्दते वा।'** जिसमें आयुके स्वरूप, अन्त-हेतुपर विचार किया गया है तथा जो आयुके अपघातक रोगोंका निवारक तथा सर्वहितप्रद सुखद जीवनका आधायक है, वह आयुर्वेद है—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

(च० सं० सूत्र० १।४१)

योगी आयु और भोगपर संयमके द्वारा अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

२-आयुःप्रभेद— दर्शनशास्त्रोंमें आयुके स्वरूपभूत और कर्मफलभूत दो प्रकार हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा अमृतस्वरूप मृत्युञ्जयस्वभाव होनेसे अक्षय आयु है। योगदर्शनके अनुसार जाति, आयु और भोग—ये प्रारब्धके तीन फल हैं। **जाति**का अर्थ मनुष्यादिशरीरोपलब्धिरूप जन्म है। **आयु**का अर्थ श्वास-प्रश्वासकी शरीरमें स्थिति और अवधि है। **भोग**का अर्थ भोग्य सामग्रीकी समुपलब्धि

और सुखदु:खानुभूति है। इस प्रकार द्वितीय प्रभेदके अनुसार जन्मोत्तर जीवन और नाश **'आयुः'** शब्दका अर्थ है।

उक्त रीतिसे यद्यपि प्रारब्धाधीन होनेसे आयुरक्षण और वृद्धि आदिमें पुरुषप्रयत्न निरर्थक ही है, तथापि मनुष्य-जीवनमें तरु-लता-गुल्मादि एवं पश्वादितुल्य प्रारब्धकी दासता चरितार्थ न होनेसे आयुरक्षण और वृद्धि आदिमें पुरुषप्रयत्न सार्थक ही है।

३-युगानुरूप आयुका निर्धारण—महर्षि चरकके अनुसार जिस युगमें मनुष्यकी जो आयु निश्चित की गयी है, उसे युगके प्रारम्भकी आयु समझनी चाहिये। युगायुके प्रति सौवें अंशमें मनुष्यकी सामान्य आयुमेंसे एक वर्षकी आयु क्षीण होती है। कलियुगके मनुष्योंकी आयु (सामान्य) १०० वर्ष और परमायु युगायु दिव्य वर्ष १२००÷१०=१२० वर्ष है। कलियुगकी पूर्णायु ४३२००० वर्ष है। ४३२०००÷१००=४३२० वर्ष कलिके समाप्त होनेपर मनुष्यकी आयु १००-१=९९ वर्ष रह जाती है। इसी क्रमसे आयुका ह्रास मान्य है—

संवत्सरशते पूर्णे याति संवत्सरः क्षयम्।
देहिनामायुषः काले यत्र यन्मानमिष्यते॥

(च० सं० वि० स्था० ३। २६)

४-आयुर्हेतु—अक्षय आयुकी समुपलब्धि मृत्युञ्जयस्वरूप अमृताक्षर आत्माके बोधसे सम्भव है। स्वस्थ-सुखद आयुके लिये युक्त (सात्त्विक, संतुलित) आहार, युक्त विहार, युक्त कर्म, युक्त निद्रा और युक्त अवबोधरूप संयमित जीवन एवं देवाराधन अपेक्षित है।

५-आयुर्वेदिक चिकित्सा और चिकित्सक—वेदोंकी प्रामाणिकतासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देहान्तरंग आत्माकी मान्यतासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देहनाशसे आत्माके अनाशकी भावनासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देहीके अविद्या—काम, कर्ममूलक जन्मादिकी प्रस्थापनासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देवाराधन और ईश्वरोपासनाकी उद्भावनासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। अतएव आस्तिक प्रस्थापनकी चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है।

रोगकी निवृत्ति और स्वास्थ्यकी अभिव्यक्तिमें हेतुभूत द्रव्यादिका योग औषधि है और स्वास्थ्याभिव्यञ्जक व्यक्ति ही चिकित्सक है। सभी कर्मोंकी सिद्धिमें सम्यक् प्रयोग ही कारण होता है। चिकित्सामें सफलता चिकित्सकके सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त होनेकी सूचना देती है। अभिप्राय यह है कि द्रव्यादिका समुचित प्रयोग चिकित्सामें सफलताका द्योतक है और औषधिका समुचित प्रयोग चिकित्सककी श्रेष्ठताका द्योतक है।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्॥
सम्यक्प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम्।
सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम्॥

(च०सं० सूत्र १। १३४-१३५)

औषधिसंरचनामें प्रयुक्त द्रव्योंके नाम, रूप, गुण, मिश्रण, अनुपात, प्रमाण, देश, काल, आतुरकी आयु-प्रकृतिके अनुरूप मात्रा, अनुपान, सेवनकाल और संख्या, प्रयोगावधि, आतुरकी आर्थिक स्थिति आदिका जानकार हितैषी और तत्पर चिकित्सक धन्वन्तरिके समान पूज्य है। ऐसे चिकित्सक ही भिषज् कहने योग्य हैं। **'बिभेत्यस्माद् रोगः'** जिससे रोग भयभीत हों, वह चिकित्सक भिषज् है।

सभी औषधियोंकी युक्ति (योजना, सम्मिश्रण) औषधिमात्रा और कालादिपर निर्भर करती है। सिद्धि युक्तिमें संनिहित है। यही कारण है कि द्रव्योंके गुण-धर्मादिके मर्मज्ञ चिकित्सकसे भी युक्तिज्ञ (युक्तिका जानकार) चिकित्सक सदैव श्रेष्ठ होता है—

मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा॥

(च०सं० सूत्र० २। १६)

जो चिकित्सक प्रत्येक आतुरकी परीक्षा करके देश, कालके अनुसार इन औषधियोंके योग (मिश्रण)-को जानता है, उसे उत्तम चिकित्सक कहा जाता है—

योगमासां तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स ज्ञेयो भिषगुत्तमः॥

(च०सं० सूत्र० १। १२३)

६-आयुर्वेद-प्रयोजन—'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्, आतुरस्य विकारप्रशमनं च'—स्वस्थके स्वास्थ्यकी रक्षा

और रोगीके विकारका प्रशमन चिकित्साशास्त्रके द्विविध प्रयोजन हैं।

७-आहारमीमांसा—अतिभोजन और अधिक अनशन जीवनका घातक है। इसी अभिप्रायसे भगवद्गीताका वचन है—'**नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः**'। (६।१६)। भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय—षड्विध आहार हैं। चर्व्यका भक्ष्यमें अन्तर्भाव कर लेनेपर पञ्चविध आहार होते हैं। पेयका भोज्यमें अन्तर्भाव कर लेनेपर चतुर्विध आहार होते हैं। भात-दाल आदि भोज्य हैं। लड्डू, पूरी, रोटी आदि भक्ष्य हैं। चूड़ा, चना आदि चर्व्य हैं। चटनी आदि लेह्य हैं। आम, ईख आदि चोष्य हैं। शर्बत, शिकंजी, दूध आदि पेय हैं। इन सबका सम्मिलित नाम **आहार** है।

उक्त चतुर्विध, पञ्चविध और षड्विध आहारमें पार्थिव, जलीय और तैजस अंशका समावेश है। पार्थिव भोजन भूख-निवारक और बलाधायक है। अदाहप्रद और तैजसप्राय उष्णभोजन अग्निवर्धक तथा बलप्रदायक है। अग्निमान्द्यमें अविनियुक्त जलीय भोजन और जलका सेवन तृप्तिकारक एवं प्राणपोषक है। भूखनिवृत्ति, पुष्टि और तुष्टि भोजनके ये तीन प्रयोजन हैं।

पार्थिव और अग्निवर्धक उष्ण है, अतएव आग्नेय भोजनके द्वारा उदरका आधा भाग, जल और पेय पदार्थोंके द्वारा उदरका चौथाई भाग भरना चाहिये। शेष चौथाई भाग वायुके लिये रिक्त छोड़ देना चाहिये।

तैत्तिरीयोपनिषत्-सम्मत पञ्चीकरणप्रक्रिया और छान्दोग्योपनिषत्-सम्मत त्रिवृत्करणप्रक्रियाका शास्त्रसम्मत सामञ्जस्य इस प्रकार है। पैङ्गलोपनिषत् और त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्के अनुसार '**वाक्**' आकाशीय है। अपञ्चीकृत आकाशके चौथाई रजोंऽशसे वाक् नामक कर्मेन्द्रियकी अभिव्यक्ति होती है। वाक्से शब्दोच्चारण भी वाक्को शब्दगुणक आकाशीय सिद्ध करता है। परंतु '**तेजोमयी वाक्**' (छा०उ० ६।५।४) इस छान्दोग्यश्रुतिसे वाक्की तेजोमयता भी सिद्ध है। वाक्के अधिदैव पैङ्गलोपनिषदादिने अग्निको स्वीकार किया है। इस दृष्टिसे वाक्की तेजोमयता भी सिद्ध है। आकाशीय भोजनका अभाव होनेसे भी आहार-प्रसंगमें वाक्की तेजोमयता सिद्ध है। तैजस सुवर्णभस्मादि और तैजसप्राय दुग्धादिके सेवनसे वाक्की बलवत्ता अनुभवसिद्ध है।

प्राणकी वायुरूपता स्पर्शगुणयुक्तताके कारण है। यह तथ्य श्रुति-स्मृतिसिद्ध है। आहारप्रसंगमें '**आपोमयः प्राणः**' (छा०उ० ६।५।४) कहकर श्रुतिने प्राणकी आपोमयताका प्रतिपादन किया है। इस प्रकार वायुका अन्तर्भाव जलमें श्रुतियोंको अभीष्ट है।

उक्त रीतिसे पार्थिव भोजनके द्वारा कर्मेन्द्रियोंमें पार्थिव गुदा, ज्ञानेन्द्रियोंमें पार्थिव घ्राण, अन्तःकरणमें पार्थिव अहंकार, प्राणोंमें पार्थिव प्राणका पोषण होता है। मलकी निष्पत्ति भी पार्थिव भोजनसे होती है। इसके अतिरिक्त सप्तधातुओंमें मांस और मेदका पार्थिव भोजनसे पोषण होता है। जलपान और जलीय भोजनके द्वारा कर्मेन्द्रियोंमें वायव्य हाथ और जलीय उपस्थ, ज्ञानेन्द्रियोंमें वायव्य त्वक् और जलीय रसना, अन्तःकरणोंमें वायव्य मन और जलीय चित्त तथा प्राणोंमें वायव्य व्यान और जलीय अपानका पोषण होता है, साथ ही मूत्रादिकी निष्पत्ति होती है। सप्तधातुओंमें जलपान और जलीय भोजनसे रस और रक्तका पोषण होता है। तैजस और तैजसप्राय भोजन करनेपर कर्मेन्द्रियोंमें आकाशीय वाक्, आग्नेय पाद (पाँव)-का, ज्ञानेन्द्रियोंमें आकाशीय श्रोत्र और आग्नेय नेत्रका, अन्तःकरणोंमें आकाशीय ज्ञातृत्व और आग्नेयी बुद्धिका तथा प्राणोंमें आकाशीय समान और आग्नेय उदानका पोषण होता है। तैजस और तैजसप्राय भोजनसे सप्तधातुओंमें मज्जा और अस्थिका पोषण होता है। पार्थिव, जलीय और तैजस—तीनों प्रकारके आहार शुक्र नामक सप्तम धातुके उत्पादक और पोषक हैं।

निसर्गसिद्ध जन्मलब्ध योग्यताके बलपर मरुस्थल, समुद्र और भूतलके विविध प्राणी बिना जलके प्राणयुक्त, बिना अन्नके मनोयुक्त और बिना तैजस आहारके वाग्युक्त दृष्टिगोचर होते हैं। त्रिवृत्करणकी प्रक्रियाके अनुसार एकके सेवनसे शेषकी पूर्ति निसर्गसिद्ध योग्यताके बलपर सिद्ध है—

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्॥

(च० सं० सूत्र० ५।१३)

'जिस पदार्थके सेवनसे स्वास्थ्यकी अनुवृत्ति हो अर्थात् स्वास्थ्य बना रहे और जो आहार-विहार अजात (अनुत्पन्न) विकारोंको न होने दे, उनका नित्य सेवन करना चाहिये।'

भौतिक जगत्में पृथ्वी, जल, तेज एक-दूसरेसे संश्लिष्ट हैं। किसी भी वस्तुका स्थूल विभाग पृथ्वीकी प्रधानतासे सम्भव है। किसी भी वस्तुका सूक्ष्म विभाग जलकी प्रधानतासे सम्भव है। किसी भी वस्तुका अति-सूक्ष्म विभाग तेजकी प्रधानतासे सम्भव है। पञ्चीकरणकी प्रक्रियामें किसी भी वस्तुके स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम और कारणसंज्ञक पञ्चविभाग अभीष्ट हैं।

जो अग्नि है, वह पृथ्वी है। जो द्रव है, वह ज़ल है। जो उष्ण है, वह तेज है। जो संचारयुक्त है, वह वायु है। जो सुषिर (सच्छिद्र) है, वह आकाश है। धारण पृथ्वीका कार्य है। पिण्डीकरण जलका कार्य है। प्रकाशन तेजका कार्य है। अवकाशप्रदान आकाशका कार्य है।

सेवित आहारसे मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय नामक षड्विध रस निष्पन्न होते हैं। रससे 'शोणित', शोणितसे 'मांस' और मांससे 'मेद' बनता है। मेदसे 'स्नायु'की उत्पत्ति होती है। स्नायुसे 'अस्थि'का उद्भव होता है। अस्थिसे 'मज्जा'की उत्पत्ति होती है। मज्जासे 'शुक्र'का उद्भव होता है। स्त्रीनिष्ठ द्वितीय धातु शोणित और पुरुषनिष्ठ सप्तम धातु शुक्रके साहचर्यसे संतानोत्पत्ति सम्भव है।

आहारसारसर्वस्व शुक्र है। अपने उस शुक्रकी रक्षा करनी चाहिये। कारण यह है कि शुक्रक्षयसे विविध रोगोंकी अथवा मरणकी भी सम्प्राप्ति सम्भव है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान्मरणं वा नियच्छति॥

(च०सं० नि० ६।९)

८-चिकित्सा और चिकित्सक-कर्म— शरीरमें विषम हुए सप्तधातुओंकी समता-सम्पादक विविध क्रिया चिकित्सा है। विविध धातुओंको सम करना चिकित्सकोंका कर्म है—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्॥

(च० सं० सूत्र० १६।३४)

शरीरमें धातुओंकी विषमता न होने देना और सप्तधातुओंका शरीरानुबन्ध (देहसम्बन्ध) बनाये रखना चिकित्साकर्मका उद्देश्य है—

कथं शरीरे धातूनां वैषम्यं न भवेदिति।
समानां चानुबन्धः स्यादित्यर्थं क्रियते क्रिया॥

(च०सं० सूत्र० १६।३५)

धातुवैषम्यके कारणोंको रोकना और धातुसाम्य-सम्पादक पदार्थोंका सेवन करना स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है—

त्यागाद् विषमहेतूनां समानां चोपसेवनात्।
विषमा नानुबध्नन्ति जायन्ते धातवः समाः॥

(च०सं० सूत्र० १६।३६)

जिन कारणोंसे धातु विषम होते हों उनका त्याग करनेसे और जिनसे धातु सम होते हों उनके निरन्तर सेवन करनेसे विषम धातुओंकी निरन्तर उत्पत्तिका नाश हो जाता है। फलतः शरीरमें सभी धातुएँ संतुलित मात्रारूप समावस्थामें विद्यमान होती हैं।

देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, अग्निविरुद्ध, मात्राविरुद्ध (समानमात्रामें मधु और घृत), सात्म्य (स्वभावके अनुकूल)-विरुद्ध, वातादिविरुद्ध, संस्कारविरुद्ध, शीत-उष्णवीर्य-विरुद्ध, कोष्ठविरुद्ध, अवस्थाविरुद्ध, क्रमविरुद्ध (अत्यन्त भूख लगनेपर भोजन, मलमूत्र विसर्जनके बिना भोजन), परिहारविरुद्ध (गरिष्ठ आहारके बाद उष्णवीर्य पदार्थका सेवन), उपचारविरुद्ध (घृतादि स्निग्ध वस्तुके सेवनके अनन्तर शीतल जलसेवन), पाकविरुद्ध (अपक्व, अतिपक्व, दुष्ट दारुसे पकाया भोजन), संयोगविरुद्ध (दुग्धके साथ अम्लरसका सेवन), हृदयविरुद्ध (अरुचिकर), सम्पद्विरुद्ध (विकृत, अपूर्ण, शुष्करस) और विधिविरुद्ध (दोषदृष्टियुक्त व्यक्तियोंके सम्मुख आहार) अहितकर होनेसे त्याज्य होते हैं—

यच्चापि देशकालाग्निमात्रासात्म्यानिलादिभिः।

संस्कारतो वीर्यतश्च कोष्ठावस्थाक्रमैरपि॥
परिहारोपचाराभ्यां पाकात् संयोगतोऽपि च।
विरुद्धं तच्च न हितं हृत्सम्पद्विधिभिश्च यत्॥

(च० सं० सू० २६। ८६-८७)

उत्तम चिकित्सक देशकालादिविरुद्ध आहारसे रोगीको दूर रखते हैं। स्वास्थ्यलाभकी इच्छावाले स्वयं ही देशकालादिविरुद्ध आहारका सेवन नहीं करते।

९-चिकित्साके चार चरण—सभी प्रकारके विकारों (रोगों)-की शान्तिके लिये गुणवान् चिकित्सक, गुणयुक्त औषधयुक्त द्रव्य, गुणसम्पन्न उपस्थाता (परिचायक) एवं गुणवान् रोगीका होना परमावश्यक है—

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।
गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये॥

(च० सं० सू० ९। ३)

१०-चिकित्सा—धातुओंके विकृत अर्थात् व्यक्तिके रोगी हो जानेपर प्रशस्त वैद्य (गुणवान् वैद्य) आदि चारों पादों (वैद्य, द्रव्य, परिचारक और रोगी)-की धातुओंको समान करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसे चिकित्सा कहते हैं—

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते॥

(च० सं० सू० ९। ५)

वात, पित्त, कफ तथा रस, रक्त आदि सप्तधातुओंकी विकृति (विषम अवस्थामें स्थिति)-को विकार कहते हैं। वातादि त्रिविध दोषों तथा रसादि सप्तधातुओंकी समावस्थाको प्रकृति कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें आरोग्य (नीरोगता)-की सुख और विकृति (विकार)-की दुःख संज्ञा है—

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥

(च० सं० सू० ९। ४)

११-शुद्ध चिकित्सा—वाग्भटके अनुसार जो चिकित्सा दोषका शमनकर उसे साम्यावस्थामें ले आये अर्थात् रोगका शमन कर दे तथा अन्य रोग और दोषको उत्पन्न न करे वह शुद्ध चिकित्सा है—

प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥

(अष्टाङ्गहृदय सूत्र० १३। १६)

जो प्राप्त रोग-दोषका निवारण न कर सके और विविध रोग-दोषोंको उत्पन्न भी कर दे, वह तो चिकित्साके नामपर प्राणघातक प्रयोग ही है।

१२-चिकित्सकके चार गुण—शास्त्रका सर्वतोमुखी ज्ञान, चिकित्सा-कर्मका बार-बार प्रत्यक्ष परिज्ञान, दक्षता और पवित्रता—ये चिकित्सकके चार गुण हैं—

श्रुते पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मता।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम्॥

(च० सं० सू० ९। ६)

उत्तम चिकित्सक बननेके इच्छुक व्यक्तिको चिकित्सा तथा तत्सम्बन्धित शास्त्रोंमें, उसके अर्थ भलीभाँति समझनेमें, शास्त्रीय विधियोंकी प्रवृत्तिमें और औषधि-निर्माण, पञ्चकर्मादि, प्रयोगादिरूप चार विधियोंमें प्रवृत्त वैद्यको 'प्राणाभिसर' कहते हैं—

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने।
भिषक् चतुष्टये युक्तः प्राणाभिसर उच्यते॥

(च० सं० सू० ९। १८)

निदानरूप हेतुमें, लक्षणरूप लिङ्गमें, रोगोंको शान्त करनेमें और पुनः उत्पन्न न होने देनेमें जो पूर्ण बोध रखता है, वह सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक ही 'राजवैद्य' कहा जाता है—

हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगाणामपुनर्भवे।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्हो भिषक्तमः॥

(च० सं० सू० ९। १९)

१३-स्वस्थके लक्षण—जिसके जीवनमें दोष, अग्नि, धातु, मलक्रिया सम हों तथा जो निर्मल शरीर, प्रसन्न इन्द्रिय और मनसे सम्पन्न हो, वह स्वस्थ है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सु० सं० सू० १५। ४०)

१४-स्वास्थ्यप्रद उत्तम वैद्यके लक्षण—शस्त्र, शास्त्र और सलिल (जल) अपने गुण और दोषकी प्रवृत्तिके

लिये पात्र (प्रयोक्ता और बरतन)-की अपेक्षा रखते हैं। अतः चिकित्साकर्ममें प्रवृत्त होनेके पूर्व चिकित्सक अपनी प्रज्ञाको प्रशस्त रखे—

शस्त्रं शास्त्राणि सलिलं गुणदोषप्रवृत्तये।
पात्रापेक्षीण्यतः प्रज्ञां चिकित्सार्थं विशोधयेत्॥

(च० सं० सू० ९। २०)

विद्या (अपने विषयका ज्ञान), वितर्क, विज्ञान (प्रयोगविधिकी जानकारी), स्मृति, तत्परता और चिकित्सारूप क्रिया—ये छः गुण जिस चिकित्सकमें होते हैं, वह सभी साध्य रोगोंकी चिकित्सामें सफल होता है—

विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य न साध्यमतिवर्तते॥

(च० सं० सू० ९। २१)

विद्या, मति, कर्मदृष्टि (चिकित्साकर्मके प्रति एकाग्रता), अभ्यास, सिद्धि (चिकित्सामें सफलतादि) और विशेषज्ञका समाश्रय—इन छः गुणोंमेंसे प्रत्येक गुण मनुष्यको योग्य वैद्य बनानेके लिये पर्याप्त है, यानी समर्थ है—

विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तावलमेकैकमप्यतः ॥

(च० सं० सू० ९। २२)

जिसमें उक्त विद्यादि सभी शुभ गुण होते हैं, वह वैद्य शब्दकी योग्यताका निर्वाह करता हुआ प्राणिमात्रको सुख देनेवाला होता है—

यस्य त्वेते गुणाः सर्वे सन्ति विद्यादयः शुभाः।
स वैद्यशब्दं सद्भूतमर्हन् प्राणिसुखप्रदः॥

(च० सं० सू० ९। २३)

वस्तुमात्रको प्रकाशित करनेके लिये शास्त्र ज्योतिःस्वरूप है और अपनी शुद्ध बुद्धि दृष्टि (नेत्र)-रूप है। शास्त्र और बुद्धिसे सम्पन्न वैद्य चिकित्सा करता हुआ अपराध (भूल) नहीं कर सकता—

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः।
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन् नापराध्यति॥

(च० सं० सू० ९। २४)

मैत्री, रोगीके प्रति कारुण्य, साध्य और संयमी रोगीमें प्रीति, असाध्य और असंयमी रोगीकी उपेक्षा—ये चतुर्विध वैद्यवृत्तियाँ हैं—

मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा॥

(च० सं० सू० ९। २६)

उत्तम चिकित्सक प्रज्ञा और प्राणशक्तिसे सम्पन्न होते हैं तथा प्राणशक्ति और प्रज्ञाके विशेषज्ञ होते हैं। यही कारण है कि चिकित्सकको वैद्य, कविराज और प्राणाचार्य कहा जाता है। उन्हें सप्तधातुमय शरीरका और शरीरान्तर्गत नाडियोंका भी सम्यक्-ज्ञान होता है। स्थूल शरीरमें सूक्ष्म शरीरकी और सूक्ष्म शरीरमें कारण शरीरकी अभिव्यञ्जकता बनी रहे, कारण शरीर जीवका अभिव्यञ्जक बना रहे, जीव शिवसंज्ञक सर्वेश्वरसे तादात्म्यापत्ति लाभ कर सके, इन तथ्योंके जानकार वैद्य ब्रह्मातुल्य पूज्य हैं।

स्थूलदेहगत वात, पित्त और कफके स्वरूप, स्वभाव, प्रभाव तथा इनके शमनके उपायोंका मर्मज्ञ वैद्यको होना चाहिये। सप्तधातुकी विकृति, संस्कृति आदिका विज्ञान भी वैद्यके लिये आवश्यक है। पृथ्वी और पार्थिव द्रव्योंका, जल और जलीय पदार्थोंका, तेज और तैजस तत्त्वोंका तथा वायु और वायव्य वस्तुओंका परिज्ञाता एवं इनके साधर्म्य-वैधर्म्यके विज्ञाता उत्तम वैद्य हैं।

१५-चिकित्साकी दार्शनिक आधारशिला—रोग और स्वास्थ्यका आश्रय स्थूल, सूक्ष्म, कारण—त्रिविध शरीरोंसे युक्त जीवसंज्ञक आत्मा है। कार्यकारणसंघातरूप शरीर, कर्ता-भोक्ता जीव, कारणात्मक सूक्ष्म शरीर, कारणगत विविध चेष्टा तथा प्रारब्ध या अनुग्राहक देवरूप दैव—ये रोग और स्वास्थ्यके पञ्चविध हेतु हैं। आत्मा निर्विकार है। शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणके आध्यासिक योगसे उसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व है। '**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः**' (कठोपनिषद् १। ३। ४)।

वात, पित्त, कफजन्य शरीर-रोगोंकी प्राप्ति होती है। रजोगुण और तमोगुणके कारण काम, क्रोध और लोभादिसंज्ञक मानस रोगोंकी प्राप्ति होती है—

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च॥

(चरक० सू० १। ५७)

वायु स्वयं देव हैं अथवा वायुके देव सूर्य हैं। पित्तके देव अग्नि हैं। कफके देव सोम हैं। सूर्य, अग्नि और सोमके कुपित होनेसे रोगोंकी और प्रसन्न होनेसे स्वास्थ्यकी सिद्धि सम्भव है। चोट लगनेसे जो व्रण-वेदनादिकी प्राप्ति होती है, वह आघातज रोग है। आघातज रोग त्वगादि स्थूल शरीरान्तर्गत धातुओंको दोषयुक्त बनाता है। पञ्चभूतोंमें आकाश पृथिव्यादि भूतचतुष्टयका धारक है। पृथ्वी और जलके योगसे कफ बनता है। तेजके योगसे पित्त बनता है। वायु स्वयं वात है। पञ्चभूत और पञ्चीकरणकी प्रक्रिया तैत्तिरीयोपनिषत्के अनुसार है। छान्दोग्योपनिषत्के अनुसार अन्न (पृथ्वी), अप् (जल) और तेजोरूप त्रिभूतसे त्रिवृत्करणकी प्रक्रिया सधती है। अन्नमें आकाशका अन्तर्भाव होता है। पृथ्वी और आकाश दोनों धारक हैं। जलमें सोम और वायुका अन्तर्भाव होता है। सोम और जल दोनों ही शीतल हैं। जलका तरङ्गायित रहना, प्रवाहयुक्त रहना वायुयोगसे सम्भव है। लोकमें जलवायुका युगवत् प्रयोग भी उक्त तथ्यको सिद्ध करता है। तेजमें अग्नि और सूर्यका अन्तर्भाव है। इस प्रकार कफ, वात और पित्त—अन्न, जल और तेज:क्रमसे सिद्ध हैं।

बार-बार भीगते रहनेपर वायुरोगकी प्राप्ति भी जल और वायुकी तादात्म्यापत्तिको सिद्ध करती है। वायुरोगकी घनता व्यक्तिको अजगर-सरीखा अन्न (पृथ्वी)-वत् जडप्राय बना देती है। इस प्रकार जलवायु और पृथ्वीकी एकरूपता भी कालक्रमसे सध जाती है।

छान्दोग्योपनिषत्के छठे अध्यायमें अन्नको कृष्ण, जलको श्वेत और तेजको रक्तवर्ण माना गया है। वायुरोगकी घनता व्यक्तिको अन्नसंज्ञक पृथ्वीतुल्य कृष्ण बना देती है। कफ श्वेत और पित्त रक्तवर्णका होता है।

दर्शनप्रस्थानमें सत्त्व, रजस् और तमस् त्रिगुण हैं। त्रिगुणकी साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृतिकार्य आकाशादि कार्यप्रपञ्च विकृति है। चिकित्साप्रस्थानमें वात, पित्त, कफरूप त्रिधातुकी साम्यावस्था तथा तत्सम्भव स्वास्थ्य और सुख प्रकृति है। त्रिधातुकी विषमावस्था एवं तत्सम्भव रोग और दु:ख विकृति है।

दोनों प्रस्थानोंमें सामञ्जस्य इस प्रकार है—

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी पञ्चभूत हैं। शरीर पाञ्चभौतिक है। आकाश और तेज सत्त्वप्रधान है। वायु और जल रज:प्रधान है। पृथ्वी तम:प्रधाना है। वायुके योगसे वात, तेजके योगसे पित्त और जल तथा पृथ्वीके योगसे कफकी सिद्धि सम्भव है।

विकारः प्रकृतिश्चैव द्वयं सर्वं समासतः।
तद्धेतुवशगं　　हेतोरभावान्नानुवर्तते॥

(च० सं० नि० ८।४१)

चरकसंहिताने निज, आगन्तुक और मानस—त्रिविध रोग माना है। वातज, पित्तज और कफज रोगोंको निज कहा गया है। अग्निदाह, आघात, विषाक्त भोजनादिसेवन और भूतावेशादिक आगन्तुक माने गये हैं। इष्टकी अप्राप्ति और इष्टनिवृत्ति तथा अनिष्टसम्प्राप्तिसम्भव वेदनाको मानस माना गया है। चन्दनमें सुगन्धि स्वाभाविक है। मलिन द्रव्यके संसर्गसे दुर्गन्धि है। आगन्तुक दुर्गन्धिका निवारण कर देनेपर स्वभावसिद्ध सुगन्धि अभिव्यक्त हो जाती है। इसी प्रकार स्वास्थ्य आत्मपरम्परा सिद्ध होनेसे स्वाभाविक है। रोग अविद्या, काम, कर्मपरम्परा सिद्ध होनेसे आगन्तुक है। आगन्तुक रोगकी निवृत्तिसे स्वत:सिद्ध स्वास्थ्यकी अभिव्यक्ति सम्भव है।

वेदान्तप्रस्थानमें स्थूल, सूक्ष्म शरीर और संसारकी पाञ्चभौतिकता सिद्ध है। आकाश, वायु, तेज, बल और पृथ्वीके क्रमश: शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण हैं। मनसे संकल्प, बुद्धिसे निश्चय, चित्तसे स्मरण, अहंसे गर्व और अन्त:करणसे ज्ञातृत्व निष्पन्न होता है।

उत्तम चिकित्सक उपयुक्त पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, उपयुक्त गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द तथा उपयुक्त संकल्प, निश्चय, स्मरण, गर्व और ज्ञातृत्वसे विविध रोगोंका निवारण करते हैं।

परो भूतदया धर्म इति मत्वा चिकित्सया।
वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते॥

(चरक सं० चिकित्सा० १।४।६२)

'प्राणिमात्रपर दया करना ही सर्वोत्तम धर्म है।' ऐसा सोचकर जो वैद्य चिकित्सा-क्षेत्रमें प्रवृत्त होता है, वही सिद्धार्थ है, वही वास्तविक सुख और सुयशको प्राप्त करता है।

आयुर्वेदमें धर्म और दर्शन-संदर्भ

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

१. षड्दर्शनका आयुर्वेदमें महत्त्वपूर्ण स्थान— वेदोंका तात्पर्य धर्म और ब्रह्ममें संनिहित है। 'धर्म' यज्ञादिरूप होनेसे भाव अर्थात् अनुष्ठेय है। 'ब्रह्म' सच्चिदानन्दस्वरूप होनेसे भूत अर्थात् सिद्ध है। आयुर्वेद उपवेद होनेसे धर्म और ब्रह्ममूलक चिकित्सा-पद्धति है। यह जीवोंके पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, उत्क्रमण और अधोगतिको स्वीकार करनेवाली तथा वेदोंको प्रमाण माननेवाली और ईश्वरभक्तिका प्रतिपादन करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है। यह वैशेषिकोंके द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायरूप षड्विध भावपदार्थोंको और नैयायिकोंके प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमानरूप चतुर्विध प्रमाणोंको तथा वादके चौवालीस प्रभेदोंको (च० सं० वि० ८) एवं सांख्योंके त्रिगुणात्मक प्रधान (अव्यक्त, प्रकृति) और महत्, अहम्, मन, दशविध इन्द्रिय तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसंज्ञक पञ्चतन्मात्राओंको एवं आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वीसंज्ञक पञ्चमहाभूतरूप चतुर्विंशति अचित्-अनात्म-वस्तुओंको और अविक्रिय विज्ञानात्मा पुरुषसंज्ञक चिद्वस्तुको स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है—

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।
ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु॥

(च० सं० सूत्र० १।४४)

अर्थात् सदा सभी भावोंकी वृद्धि करनेवाला सामान्य होता है और ह्रास (कम करनेवाले)-का कारण विशेष होता है। इस शास्त्रमें दोनोंकी प्रवृत्ति की जाती है अर्थात् इन दोनोंकी प्रवृत्ति (क्रिया)-से दोष, धातु एवं मलोंकी वृद्धि और ह्रास किया जाता है।

पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः।
मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुकी॥

(च० सं० शारीरस्थान १।१७)

निरन्तरं नावयवः कश्चित् सूक्ष्मस्य चात्मनः॥

(च० सं० सूत्र० ११।१०)

अर्थात् पुरुष धातुभेदसे २४ तत्त्वोंका माना जाता है। ये २४ तत्त्व हैं—मन, दस इन्द्रियाँ; अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध और आठ धातुएँ—(१) अव्यक्त, (२) महान्, (३) अहंकार, (४) आकाश, (५) वायु, (६) अग्नि, (७) जल तथा (८) पृथिवी तन्मात्राएँ इनसे युक्त प्रकृति।

निष्क्रियं च स्वतन्त्रं च वशिनं सर्वगं विभुम्।
वदन्त्यात्मानमात्मज्ञाः क्षेत्रज्ञं साक्षिणं तथा॥

(च० सं० शारीरस्थान १।५)

आत्माको जाननेवाले ज्ञानी पुरुष आत्माको (क्रियाशून्य) स्वतन्त्र, वशी (जितेन्द्रिय), सर्वत्र जानेवाला, व्यापक, क्षेत्रज्ञ (शरीरको भलीभाँति समझनेवाला), साक्षी (संसारमें उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंको देखनेवाला) है, ऐसा कहते हैं। यहाँ 'तथा' शब्दसे आत्माको निर्विकार भी माना जाता है।

योगियोंके अष्टाङ्गयोग और अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशसंज्ञक पञ्चविध क्लेश, शुक्ल-कृष्ण-मिश्रसंज्ञक त्रिविध कर्म, सुख-दुःख-मोहसंज्ञक त्रिविध विपाक और अन्तःकरणनिष्ठ संस्कारसंज्ञक आशयसे अपरामृष्ट (नित्यमुक्त) पुरुषविशेषरूप सर्वेश्वरको स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद है।

आयुर्वेद वेदान्तशैलीमें देवताओंको विग्रहयुक्त तथा सर्वेश्वरको धन्वन्तरि-शिवादिरूपोंमें अवतारयुक्त माननेवाली एवं आत्माकी ब्रह्मरूपता और सर्वरूपताको स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है। आयुर्वेद वैदिक प्रस्थानके अनुरूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयको माननेवाली चिकित्सा-पद्धति है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।

(च० सं० सूत्र० १।१५-१६)

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका आरोग्य ही प्रधान कारण है। रोग उस सुखमय श्रेय और जीवनका अपहर्ता है।

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥
आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां संनिकर्षात् प्रवर्तते।
सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे॥
निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते।
सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः॥
आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया।
दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्॥

इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम्।
शुद्धसत्त्वसमाधानात् तत् सर्वमुपजायते॥

(च० सं० शारीरस्थान १। १३७—१४१)

—इनका भाव यह है कि योग और मोक्षमें सभी प्रकारकी वेदनाओंकी निवृत्ति हो जाती है। मोक्ष होनेपर वेदनाओंका समूल विनाश हो जाता है और योगद्वारा मानव मोक्षमार्गमें प्रवृत्त होता है। अतएव योगको मोक्षका प्रवर्तक कहा गया है। आत्माका मनसे, मनका इन्द्रियोंसे और इन्द्रियोंका अपने-अपने शब्द, स्पर्शादि विषयोंसे जब संयोग होता है, तब सुख तथा दुःखकी प्राप्ति होती है। इसके विपरीत जब आत्मामें मन स्थिरभावसे रहता है, तब सुख-दुःखकी प्रतीति नहीं हो पाती। अतएव सुख-दुःखकी निवृत्ति हो जाती है तथा शरीरधारी पुरुष वशी हो जाता है। योगको जाननेवाले महर्षि इस स्थितिको 'योग' नामसे जानते हैं। दूसरेके शरीरमें प्रवेश कर जाना, दूसरेके मनकी बात जान लेना, सभी प्रकारके विषयोंको जान लेनेकी शक्ति, किसी भी कार्यमें स्वच्छन्द होकर प्रवृत्त होनेकी क्षमता, दृष्टिकी विशेष शक्ति, श्रवणकी विशेष शक्ति आदि—इस प्रकार योगियोंमें होनेवाले बलके आठ भेद होते हैं। इनकी समुपलब्धि शुद्ध सत्त्वकी सुस्थिर प्रतिष्ठासे सम्भव है।

मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते॥

(च० सं० शारीरस्थान १। १४२)

अर्थात् रजोगुण और तमोगुणके अभाव हो जानेसे तथा पुनर्भवमें हेतुभूत कर्मोंका क्षय हो जानेसे और दुःख एवं दुःखहेतुओंके सर्वविध संयोगोंका वियोग मोक्षसंज्ञक अपुनर्भवरूप योग कहा जाता है।

शुद्धसत्त्वस्य या शुद्धा सत्या बुद्धिः प्रवर्तते।
यया भिनत्त्यतिबलं महामोहमयं तमः॥
सर्वभावस्वभावज्ञो यया भवति निःस्पृहः।
योगं यया साधयते सांख्यः सम्पद्यते यया॥
यया नोपैत्यहङ्कारं नोपास्ते कारणं यया।
यया नालम्बते किञ्चित् सर्वं संन्यस्यते यया॥
याति ब्रह्म यया नित्यमजरं शान्तमव्ययम्।
विद्या सिद्धिर्मतिर्मेधा प्रज्ञा ज्ञानं च सा मता॥
लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यतः।
परावरदृशः शान्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति॥
पश्यतः सर्वभावान् हि सर्वावस्थासु सर्वदा।
ब्रह्मभूतस्य संयोगो न शुद्धस्योपपद्यते॥
नात्मनः करणाभावाल्लिङ्गमप्युपलभ्यते।
स सर्वकरणायोगान्मुक्त इत्यभिधीयते॥
विपापं विरजः शान्तं परमक्षरमव्ययम्।
अमृतं ब्रह्म निर्वाणं पर्यायैः शान्तिरुच्यते॥

(च० सं० शारीरस्थान ५। १६—२३)

भाव यह है कि जिससे वह सर्वभावोंके स्वभावको जानता है, जिससे निःस्पृह रहता है, जिससे वह योगकी सिद्धि करता है, जिससे वह सांख्यतत्त्वका ज्ञानी हो जाता है, जिससे वह अहंकारको प्राप्त नहीं करता, जिससे वह जन्म-मरणरूप कारणोंकी उपासना नहीं करता, जिससे वह राग-द्वेषादि किसीका आश्रय नहीं लेता, जिससे वह सभी सांसारिक वस्तुओंका परित्याग कर देता है, जिससे नित्य-अजर-शान्त तथा अक्षरब्रह्मको प्राप्त किया जा सकता है, उसी सत्या बुद्धिको सिद्धि, मति, मेधा, प्रज्ञा और ज्ञान माना गया है। सम्पूर्ण संसारमें आत्माको विस्तृत और सम्पूर्ण संसारको अपनेमें देखनेवाले तत्त्वज्ञकी ज्ञानमूला शान्ति नष्ट नहीं होती। सदैव सब अवस्थाओंमें सभी शरीरगत भावोंको समानरूपसे देखते हुए ब्रह्मभूत जीवन्मुक्त अतएव शुद्धचित्त महापुरुषका देहेन्द्रियादिके साथ सम्बन्ध नहीं होता। अविक्रिय विज्ञानघनताके बोधसे लिङ्गविमुक्त 'जीवन्मुक्त' ऐसा कहा जाता है। विपाप, विरजस्, शान्त, पर, अक्षर, अव्यय, अमृत, ब्रह्म, निर्वाण और शान्ति—इन पर्यायोंद्वारा मोक्षका परिचय दिया जाता है।

२. आयुर्वेदमें पञ्चभूत, त्रिगुण और त्रिदोषका वेदान्तसम्मत प्रतिपादन—चरकने **'सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकम्'** (च० सं०) **'महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा'** (च० सं० शारीरस्थान १। २७) आदि वचनोंके अनुसार सभी द्रव्योंकी त्रिगुणमयता और पाञ्चभौतिकताका प्रतिपादन कर वात, पित्त, कफरूप त्रिधातुसंज्ञक त्रिदोषके साम्य और शमनका पथ प्रशस्त किया है।

वेदान्तप्रस्थानके अनुरूप ही चरकसंहिताने सूत्रस्थानान्तर्गत इन्द्रियोपक्रमणीयाध्याय ८ में इन्द्रियोंकी भौतिकता और मनकी इन्द्रियपरताका प्रतिपादन किया है। **'खं श्रोत्रे'** (च० सं० सूत्र० ८। १४) आदि वचनोंके अनुसार **'श्रोत्र'** (कान) आकाशीय है, शब्दगुणग्राहक है, अतएव शब्दज्ञानमें हेतु है। **'त्वक्'** वायव्य है,

स्पर्शगुणग्राहक है, अतएव स्पर्शज्ञानमें हेतु है। '**नेत्र**' तैजस हैं, रूपगुणग्राहक हैं, अतएव रूपज्ञानमें हेतु हैं। '**रसना**' जलीय है, रसगुणकी ग्राहिका है, अतएव रसज्ञानमें हेतु है। '**घ्राण**' पार्थिव है, गन्धगुणग्राहक है, अतएव गन्धज्ञानमें हेतु है।

उक्त रीतिसे श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और घ्राण (नासिका) सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ हैं। 'ग्राह्य-ग्राहकभाव साजात्यमें होता है, वैजात्यमें नहीं।' इस नियमके अनुसार आकाशीय गोत्रसे आकाशीय शब्दग्रहण आदि उपयुक्त है। सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पाँव), उपस्थ (लिङ्ग) और वायु (गुदा) नामक पञ्चकर्मेन्द्रियाँ हैं। वाक्से आकाशीय शब्दका विसर्जन होता है। पाणिसे वायव्य स्पर्शका विसर्जनरूप प्रदान होता है। पादसे तैजस विसर्जनरूप गन्तव्यतक गमन होता है। उपस्थसे वारुणरस विसर्जनरूप रतिसम्पादन होता है। गुदासे पार्थिव गन्ध एवं गन्धयुक्त मलका विसर्जन होता है।

सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानसंज्ञक पञ्चप्राण प्रतिष्ठित हैं। मुख-नासिकाके मध्य तथा हृदय-नाभिमण्डल और पादाङ्गुष्ठ-**प्राण** स्थान हैं। गुदा-मेढ्र-ऊरु और जानु-**अपान** स्थान हैं। सर्वशरीरमें **समान**की स्थिति है। सर्वसंधियोंमें तथा पाँव-हाथमें **उदान**की स्थिति है। श्रोत्र, ऊरु, कटि, गुल्फ, स्कन्ध और गलामें **व्यान**की स्थिति है। प्राणसे उच्छ्वास, अपानसे श्रवण, समानसे समीकरण, उदानसे ग्रहण और व्यानसे उन्नयन सम्भव है। प्राणसे उच्छ्वास और समीकृत रसादिका पृथक्करण मान्य है। अपानसे श्रवण और मूत्रादि-विसर्जन मान्य है। उदानसे उद्गिरण और उन्नयन सम्भव है। समानसे शरीर-पोषण और समीकरण सम्भव है। व्यानसे प्राण-अपानादि चेष्टारूप ग्रहण सम्भव है।

नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जयसंज्ञक पञ्च उपप्राण हैं। उद्गारादि क्रिया-सम्पादन नागसे होता है। अक्ष्यादि-निमीलन कूर्मसे होता है। भूख-प्यास-सम्पादन कृकरसे सम्भव है। निद्रादिसम्पादन देवदत्तसे सम्भव है। मृत गात्रकी शोभादि धनञ्जयसे सम्भव है।

सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत अन्तःकरण (ज्ञातृत्व), मन, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप प्रत्यक्-करणोंके पञ्चप्रभेद त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्को मान्य हैं। अन्तःकरणसे ज्ञान, मनसे संकल्प, बुद्धिसे निश्चय, चित्तसे अनुसंधान और अहंकारसे अभिमानका सम्पादन सम्भव है। ज्ञातृत्व (अन्तःकरण), समानवायु, श्रोत्रेन्द्रिय, वागिन्द्रिय और शब्दगुणकी आकाशमें स्थिति है अर्थात् ये आकाशीय हैं। मन, व्यानवायु, त्वक्, हस्तेन्द्रिय तथा स्पर्शकी वायुमें स्थिति है अर्थात् ये वायव्य हैं। बुद्धि, उदानवायु, चक्षु और पाद तथा रूप अग्निमें स्थित हैं अर्थात् ये तैजस हैं। चित्त, अपानवायु, जिह्वा, उपस्थ तथा रसकी जलमें स्थिति है अर्थात् ये वारुण हैं। अहंकार, प्राणवायु, घ्राण, गुदा और गन्धगुण पृथिवीमें स्थित हैं अर्थात् ये पार्थिव हैं। आकाशीय समानवायुके अन्तर्गत कृकर नामक उपप्राण मान्य है। वायव्य व्यानान्तर्गत धनञ्जय नामक उपप्राण मान्य है। तैजस उदानमें देवदत्त नामक उपप्राणका अन्तर्भाव है। जलीय अपानमें कूर्म नामक उपप्राणका अन्तर्भाव है। पार्थिव प्राणान्तर्गत नाग नामक उपप्राण मान्य है।

इस प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चभूत हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पञ्च-विषय हैं। ज्ञातृत्व, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—ये पञ्चविध अन्तःकरण हैं। ज्ञान, संकल्प, निश्चय, अनुसंधान और अभिमान—ये अन्तःकरण पञ्चकके पञ्चविध विषय हैं।

सुषुम्णा, इडा, पिङ्गला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, पयस्विनी, अलम्बुषा और कौशिकी आदि कन्दसमुद्भूता प्रमुख दस नाडियाँ हैं। गुदाके पृष्ठभागमें कन्दमध्यस्थ मूर्धापर्यन्त पद्मसूत्रसदृश वीणा-दण्डतुल्य ऋजु-विद्युद्वर्ण **सुषुम्णा** है। सुषुम्णाके वामभागमें वामनासापुटपर्यन्त **इडा** नामकी चन्द्रनाडी है। सुषुम्णाके दक्षिणभागमें दक्षिण नासापुटपर्यन्त **पिङ्गला** नामकी सूर्यनाडी है। चन्द्र और सूर्य कालके धारक हैं। सुषुम्णा कालभोक्त्री है। इडाके पृष्ठभागसे सव्य (वाम) नेत्रपर्यन्त **गान्धारी** है। वामपादाङ्गुष्ठपर्यन्त **हस्तिजिह्वा** है। पिङ्गलाके पृष्ठभागमें स्थित दक्षिण श्रोत्र और नेत्रपर्यन्त **पूषा** है। गान्धारी और सरस्वतीके मध्य पादाङ्गुष्ठसे याम्य (दक्षिण) कर्णान्त **पयस्विनी** है। पायुमूलसे नीचे और श्रोत्रपर्यन्त **अलम्बुषा** है। कन्दसे पादाङ्गुष्ठपर्यन्त **कौशिकी** है।

उक्त रीतिसे पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च प्राण, पञ्च उपप्राण और अन्तःकरण—इस पञ्चकका समुदाय सूक्ष्म शरीर है। काम और कर्मकी स्थिति सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत है।

पञ्चभूतोंमें पृथिवी और जलके योगसे कफकी निष्पत्ति होती है। तेजसे पित्तकी अभिव्यक्ति होती है। वायुकी विकृतिसे वायुरोगकी अभिव्यक्ति होती है। भूतचतुष्टयका आश्रय होनेसे देहगत आकाश कफ, पित्त और वात—इन तीनोंका आश्रय है। कफ और लोभका, पित्त और क्रोधका तथा वात और कामका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कारणशरीर अज्ञानात्मक है। आत्मबोधसे अज्ञाननिवृत्ति और स्वत:सिद्ध अक्षय आयुरूप आत्माकी निरावरण स्फूर्ति सम्भव है। धर्मानुष्ठान और देवाराधनके द्वारा सूक्ष्म शरीरगत काम-क्रोधादि आधिकी निवृत्ति सम्भव है। स्थूल शरीरगत कफ, पित्त और वातज व्याधियोंका शमन शुद्ध पृथ्वी, जल, तेज और वायुके सेवनसे सम्भव है।

३. कर्मसिद्धान्त और पुनर्जन्मादिका आयुर्वेदमें युक्तियुक्त प्रतिपादन—आयुर्वेदके अनुसार ऋतम्भरा-प्रज्ञासम्पन्न महर्षियोंने ऋगादि वेदोंका अनुशीलन करके स्मृतियों तथा पुराण-महाभारतादि शास्त्रोंकी संरचना की है। प्रज्ञापराधके कारण वेदादि शास्त्रोंमें अनास्थाके वशीभूत व्यक्ति उनकी अवहेलना करके असत्कर्ममूलक अधर्माचरणमें संलिप्त रहता है। प्रज्ञापराध, असत्कर्म और अधर्माचरणके कारण वायु, जल, देश और कालमें विकृति सम्भव है। वायु तथा जलादिकी विकृति, रुग्णता, अराजकता, राष्ट्रकी विपन्नता, विखण्डता और सर्वनाशमें हेतु है। भ्रम, प्रमाद, आलस्य, काम, क्रोध, लोभ, भय तथा छल आदिके कारण सम्प्राप्त विवेकमें अनास्थादि दोषोंसे समाच्छादित बुद्धि प्रज्ञापराधका मूल है। ध्यान रहे; जरायुज, देव, नर, पश्वादि तथा अण्डजादि पक्षी आदिके माता-पिता होते हैं; परंतु स्वेदज और उद्भिज्जोंके माता-पिता नहीं होते। अतएव माता-पिताके आत्मतत्त्वका संतानमें संचार मानना उपयुक्त नहीं। यही कारण है कि स्वलक्षण पञ्चभूतात्मक जड शरीर और चेतन आत्माके संयोग और वियोगमें जीवोंका कर्म ही हेतु है। आत्मा अनादि और चिद्रूप होनेसे नित्य है। अतएव उसकी परनिर्मिति (किसी अन्यसे संरचना) असम्भव है। हाँ, अज्ञ जीवोंके कर्मानुरूप चेतनविशिष्ट संघातरूप परमात्माद्वारा निर्मिति (परनिर्मिति) अभीष्ट ही है—

आत्मा मातुः पितुर्वा यः सोऽपत्यं यदि संचरेत्।
द्विविधं संचरेदात्मा सर्वो वाऽवयवेन वा॥
सर्वश्चेत् संचरेन्मातुः पितुर्वा मरणं भवेत्।
निरन्तरं नावयवः कश्चित् सूक्ष्मस्य चात्मनः॥
बुद्धिर्मनश्च निर्णीते यथैवात्मा तथैव ते।
येषां चैषा मतिस्तेषां योनिर्नास्ति चतुर्विधा॥
विद्यात् स्वाभाविकं षण्णां धातूनां यत् स्वलक्षणम्।
संयोगे च वियोगे च तेषां कर्मैव कारणम्॥
अनादेश्चेतनाधातोर्नेष्यते परनिर्मितिः।
पर आत्मा स चेद्धेतुरिष्टोऽस्तु परनिर्मितिः॥

(च०सं० सूत्र० ११।९—१३)

शरीर, वाक्, मन:प्रवृत्तिका नाम कर्म है—**कर्म वाङ्मनःशरीरप्रवृत्तिः।** (च० सूत्र० ११।३९)। इनका अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग रुग्णतामें तथा सम्यग्योग स्वास्थ्यमें हेतु है। विषयलोलुपताके वशीभूत होकर विषयोंका अतिसेवनरूप अतियोग पुष्टप्रज्ञा और प्राणशक्तिसे सम्पन्न पुष्टशरीररूप स्वास्थ्यका प्रत्यक्ष ही घातक है। वागादि इन्द्रियोंका काष्ठमौनादि अप्रयोगरूप अयोगमूकादि होनेमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही सिद्ध है। भोजन, शयन, दर्शन, स्पर्शन, रसनादिका अयुक्त प्रयोगरूप मिथ्यायोग प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिसम्पन्न शरीरका प्रत्यक्ष ही घातक है।

पूर्वकर्म, कर्मगत वैचित्र्य, दुग्धपानादिमें नवजात शिशुकी प्रवृत्ति आदि युक्तियोंसे आयुर्वेदने पुनर्जन्म सिद्ध किया है।

ध्यान रहे—

पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्कायकर्मणाम्।
धर्मार्थकामान् पुरुषः सुखी भुङ्क्ते चिनोति च॥

(च० सं० सूत्र० ७।३०)

अर्थात् 'मानसिक, वाचिक और कायिक कर्मोंद्वारा निष्पाप पुरुष पुण्यवान् कहा जाता है। इस लोकमें सुखी रहता हुआ धर्म, अर्थ तथा कामरूप त्रिवर्गका उपयोग करता है और जन्मान्तरके लिये पुण्योंका चयन करता है।'

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात् तस्माद् धर्मपरो भवेत्॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० अ० २।२०)

'सभी प्राणियोंकी सभी प्रवृत्तियाँ सुखके लिये होती हैं। सुख बिना धर्मके नहीं होता, इसलिये धर्मपरायण होना चाहिये।'

रोग और भैषज्य

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिके लिये सर्वतोभावेन शरीरका स्वस्थ तथा नीरोग होना नितान्त आवश्यक होता है। रोगोंसे आक्रान्त शरीरके द्वारा कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं किया जा सकता, यह निश्चित है। अभिप्राय यह है कि स्वस्थ शरीरके द्वारा ही धर्म-कर्मोंका अनुष्ठान किया जा सकता है। धर्मपूर्वक या न्यायपूर्वक ही अर्थोपार्जन किया जाता है, धर्मपूर्वक ही अपनी विवाहिता धर्मपत्नीसे पुत्रोत्पन्न किया जाता है और धर्मपूर्वक अर्थात् धर्मका आचरण करते हुए ही योगादि—आध्यात्मिक मोक्ष-साधनाओंके द्वारा कैवल्य मोक्ष प्राप्त किया जाता है, जिसे अन्तिम पुरुषार्थ माना जाता है।

परंतु शास्त्रकारोंने हमारे इस शरीरको रोग-व्याधियोंका एक बड़ा भण्डारघर भी कहा है—**'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'**। बात भी सत्य है; क्योंकि मानव-शरीरके जन्मके साथ ही रोग और मृत्यु भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे पैदा हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारे शरीरके जो उपादान कारण हैं, वे ही विकारी तथा अनित्य हैं। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच भूतों (तत्त्वों)-से बना है और माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। इसलिये उन सब तत्त्वोंके गुण-धर्म आदिका शरीरमें होना स्वाभाविक है और उनके कार्योंमें व्यतिक्रम हो जानेपर शरीरमें विकार यानी रोग उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है। परंतु केवल मनुष्य-शरीर ही रोगी बनते हों, ऐसी बात नहीं है, पशु-पक्षी आदि सभीके शरीर रोगी बनते हैं।

परंतु एक बात यह है कि पशु आदि जीव बीमार पड़ जानेपर मनुष्यकी तरह इलाज कराने नहीं जाते, किंतु आहार ग्रहण करना छोड़ देते हैं, पूर्णतया उपवास करते हैं और सूर्यकी धूपमें पड़े रहते हैं। इससे वे शीघ्र स्वस्थ बन जाते हैं। इससे पता चलता है कि वे अज्ञात रूपसे मानो प्राकृतिक चिकित्सा ही कर लेते हैं। रोग-निवारण-हेतु आज विभिन्न प्रकारकी चिकित्सा-पद्धतियाँ हैं, जैसे एलोपैथी, होम्योपैथी, साइकोपैथी, यूनानी चिकित्सा, चुम्बक-चिकित्सा, नैचुरोपैथी तथा योग-चिकित्सा आदि-आदि। इन चिकित्सा-प्रणालियोंके द्वारा रोग-पीडित असंख्य नर-नारी यथासम्भव आरोग्य-लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं। भारतीय आर्ष आयुर्वेदिक पद्धतिकी सर्वातिशायिता, गुणवत्ता, महत्ता तथा आरोग्य-शक्तिसे सारा विश्व लाभान्वित होता रहा है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है।

भारतीय चिकित्सा-शास्त्र—आयुर्वेद प्राचीनसे प्राचीनतम है और वह वेदके साथ सम्बन्धित है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन चारों वेदोंके चार उपवेद भी हैं। जैसे—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्वश्चेति ते त्रयः।
स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विधः ॥

आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और स्थापत्यवेद—ये चार उपाङ्ग यानी उपवेद हैं। इनमेंसे ऋग्वेदका उपवेद स्थापत्यवेद, यजुर्वेदका धनुर्वेद, सामवेदका गन्धर्ववेद और अथर्ववेदका आयुर्वेद है। आयुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है इस बातका प्रमाण भी है। जैसे सुश्रुतसंहितामें कहा गया है—**'इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।'** (सुश्रुत० सू० अ० १। ३)। आयुका ज्ञान ही आयुर्वेद है अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन तथा आत्माका योग ही आयु है और इस आयु-सम्बन्धी प्रत्येक ज्ञेयविषयक ज्ञानको आयुर्वेद कहते हैं—**'आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वाऽऽयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः'**। आयुर्वेद मनुष्यको कैसे प्राप्त हुआ है, इस बातको चरकसंहितामें कहा गया है—

ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥
अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्।
ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत्॥

(सूत्र० १। ४-५)

अर्थात् जिस प्रकार सम्पूर्ण आयुर्वेदका उपदेश ब्रह्माजीने किया था, उसको उसी रूपमें ठीक-ठीक सर्वप्रथम दक्षप्रजापतिने ग्रहण किया। इसके पश्चात् दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने, अश्विनीकुमारोंसे इन्द्रने और इन्द्रसे ऋषियोंके कहनेपर भरद्वाज मुनिने सम्पूर्ण आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त किया। तबसे भरद्वाज मुनिके द्वारा अन्य ऋषि-मुनियोंको आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त हुआ है। अतः आयुर्वेदकी चिकित्सा-प्रणाली लाखों-लाख वर्षोंकी

अनुभूतिपर आधृत है।

स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्राप्त करनेके लिये आयुर्वेदिक औषधि ही अनुकूल रहती है। एलोपैथी औषधिमें एक दोष यह है कि मियाद पूर्ण हो जानेपर यह खराब हो जाती है और दूसरा मुख्य दोष यह है कि इसका शरीरपर प्रतिकूल प्रभाव (साइड इफैक्ट) भी पड़नेकी सम्भावना रहती है, परंतु आयुर्वेदिक औषधिमें ये दोष नहीं हैं। युक्त आहार-विहार और पथ्यसेवनसे आयुर्वेदिक औषधि न केवल रोग ही ठीक करती है, अपितु उत्तम स्वास्थ्यको स्थिर रखती है तथा मानसिक विकारोंको भी ठीक कर देती है। आयुर्वेदिक औषध-भण्डार इतना विशाल है कि इससे सभी प्रकारके रोगोंकी चिकित्सा की जा सकती है, परंतु जिस मात्रामें और जिस रूपमें आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणालीका विकास होना चाहिये था, ऐसा नहीं हो पाया है। एलोपैथी चिकित्सा-प्रणालीका प्रभाव आज विश्वव्यापी-सा हो गया है। इससे त्वरित लाभ होता देख अधिक महँगी होनेपर भी लोगोंमें अंग्रेजी औषधके प्रति ही आस्था देखी जाती है। वस्तुतः त्वरित लाभ चाहनेवालेके लिये वह भले ही अनुकूल जान पड़ती हो, परंतु भारत-जैसे देशकी जलवायु (Climate)-में रहनेवालोंके लिये आयुर्वेदिक औषधि ही अधिक अनुकूल रहती है।

बात पुरानी है। एक दिन जैमिनि मुनि अपने आश्रमके एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। उसी वृक्षकी शाखापर बैठा एक पक्षी अचानक बोल पड़ा कि '**कोऽरुक्**' अर्थात् नीरोग कौन है? जैमिनि मुनि पक्षीकी वाणी समझते थे, इसलिये उत्तरमें कहा कि '**हितभुक्**'। जो हितकर, पुष्टिकर तथा अनुकूल आहार ग्रहण करता है। पक्षी पुनः बोल पड़ा कि '**कोऽरुक्**'? मुनिने पुनः उत्तरमें कहा कि '**मितभुक्**' जो परिमित आहार ग्रहण करनेवाला है। पक्षी पुनः बोल उठा कि '**कोऽरुक्**'? जैमिनि मुनिने पुनः उसके उत्तरमें कहा—जो '**हितभुक्**' और '**मितभुक्**' है, वही स्वस्थ शरीरका आनन्द प्राप्त करता है अर्थात् जो व्यक्ति अपनी प्रकृतिके अनुकूल भोजन ग्रहण करता है और यथासमय परिमित भोजन करता है, वही स्वस्थ रहकर आनन्दमय दीर्घ जीवन व्यतीत कर सकता है।

हृदयरोग

दिलका दौरा पड़ना ही हृदयरोग है। हृदयरोग (Heart Disease) एक घातक रोग है, जो आज व्यापक रूपमें फैलता जा रहा है। इस रोगसे बचनेके लिये कुछ विशेष उपाय इस संदर्भमें प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

हमारा हृदय मांसपेशियोंसे निर्मित एक खोखला यन्त्र है। हृदयका अधिकांश भाग वक्षके वामभागमें अवस्थित रहता है। हृदय रसका स्थान है अतः दूषित रसके सम्पर्कसे हृदय या उसके अवयवोंमें विकृति होनेसे हृदयमें रोग उत्पन्न होते हैं। शरीरके दूषित रक्तको लेकर फेफड़ेमें भेजना तथा वहाँ शोधित रक्तको फिर शरीरमें सर्वत्र प्रेषित करना हृदयका कार्य है। इस यन्त्रमें विकृतिके उत्पन्न होनेको ही हृदयरोग कहा जाता है। हमारे शरीरके अन्यान्य यन्त्रोंके समान हार्टकी मांसपेशियाँ भी शरीरके रक्त-स्रोतसे ही पुष्टि प्राप्त करती हैं। किसी कारणसे जब वही रक्त-स्रोत दूषित हो जाता है, तब हार्ट भी रोगग्रस्त बन जाता है। सामान्य रूपसे इसे हृदयरोग कहते हैं।

देशवासियो! आचार्य सुश्रुतका कहना है—

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
कुर्वन्ति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥

(सुश्रुत० उ० ४३।४)

अर्थात् अपने कारणोंसे कुपित हुए वात आदि दोष रसको दूषित करके (उसके आधार) हृदयमें उपस्थित होकर हृदयमें विकार उत्पन्न कर देते हैं, इसे हृद्रोग कहते हैं।

हृदयरोग होनेके अनेक कारण

हृदयरोग कई कारणोंसे होता है, जैसे बिलकुल परिश्रम न करना, मशीनकी तरह अत्यधिक परिश्रम करना, अधिक मात्रामें तीक्ष्ण भोजन करना, शक्तिसे अधिक दौड़ना तथा भय, चिन्ता, त्रास, विरेचन, अधिक वमन, अधिक मद्यपान एवं धूम्रपान करना, हृदयमें चोट लगना एवं सब समय मानसिक तनावमें रहना आदि। इनके अतिरिक्त जब हमारे शरीरके भीतर अत्यधिक दूषित पदार्थोंका संचय हो जाता है और उनके द्वारा हृदय आक्रान्त हो जाता है, तब हृदयरोग उत्पन्न हो जाता है।[1]

हृदयरोगके लक्षण

चरकसंहितामें[2] तीन प्रकारका हृदयरोग बताया

१-व्यायामतीक्ष्णातिविरेकबस्तिचिन्ताभयत्रासगदातिचाराः। छर्द्यामसन्धारणकर्षणानि हृद्रोगकर्तॄणि तथाऽभिघातः॥ (चरक० चि० २६।७६)

२-सूत्रस्थान १७।३०—४०, चिकित्सास्थान २६।७८—८०

गया है—वातज, पित्तज और कफज। इन तीनोंका पृथक्-पृथक् लक्षण भी बताया गया है। इनका वर्णन आगे किया जा रहा है—

(१) वातज हृदयरोगका लक्षण—वायुसे होनेवाले हृदयरोगमें विशेषकर हृदयमें शून्यताका हो जाना, द्रवता तथा शुष्कता आदिका अनुभव होना, हृदयमें पीडाका होना, स्तम्भ और मोहका अनुभव होना वातज हृदयरोगका लक्षण है।

(२) पित्तज हृदयरोगका लक्षण—पित्तजन्य होनेवाले हृदयरोगमें आँखोंके सामने अन्धकार छा जाना, शरीरमें दाहका अनुभव होना—विशेषकर हृदयमें। मोह, त्रास तथा तापकी वृद्धि, ज्वर होना और शरीर पीला पड़ जाना आदि इसके लक्षण हैं।

(३) कफज हृदयरोगका लक्षण—कफसे होनेवाले हृदयरोगमें हृदय जकड़ा हुआ-सा, भारी तथा स्तिमित प्रतीत होता है। कण्ठकी नलीमें कफका जमा होना तथा ज्वर, कास और तन्द्रा आदिका होना इसका लक्षण है।

यदि उक्त सभी लक्षण एक साथ पाये जाते हों तो उसे **'संनिपातज हृद्रोग'** कहा जाता है और यदि हृदय-देशमें कण्डू और तीव्र वेदना हो तो उसे **'कृमिजन्य हृद्रोग'** कहा जाता है।

हृदयरोग-निवारण

चरकने हृदयरोग-निवारणके लिये पूर्वकथित वातज, पित्तज और कफज—इन तीनोंके पृथक्-पृथक् औषध-प्रयोगका विधान बताया है। केवल इतना ही नहीं, अपितु एक-एक रोगकी अनेकों औषधियाँ बतायी हैं। परंतु इस प्रसंगमें सबसे सरल और एक-एक औषधिका प्रयोग ही बतलाया जा रहा है—

(१) वातज हृदयरोगका निवारण—पुष्कर-मूल, बिजौरा नीबूका मूल, सोंठ, कचूर तथा हरड़—इन पाँचों द्रव्योंको समान भागमें लेकर कल्क बनाये। उस कल्कमें यवक्षार-जल या खट्टे अनारका रस, गोघृत और सेंधा नमक मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे वातज हृदयरोग तथा विकर्तिकरोग दूर होते हैं।[1]

(२) पित्तज हृदयरोगका निवारण—कशेरू, सेवार, अदरक, पुण्डरिया-काठ, मूलेठी, कमल-डण्डीकी गाँठ—इन द्रव्योंका सम्मिलित कल्क, गोदुग्ध और घृतको एकमें मिलाकर पाक करे और मधुके साथ इस कशेरुकादि घृतका सेवन करनेसे पित्तज हृदयरोग नष्ट हो जाता है।[2]

(३) कफज हृदयरोगका निवारण—इस रोगके निवारणके लिये शिलाजीतका प्रयोग किया जाता है। परंतु शिलाजीतकी सेवन-विधि **'चरकसंहिता'** के रसायनकल्पमें कथित नियमके अनुसार ही होनी चाहिये। क्योंकि ताम्र-शिलाजीत ही कफज हृदयरोगमें लाभकारी होता है। इसके अतिरिक्त च्यवनप्राश, अगस्त्य-हरीतकी लेह, ब्राह्मी रसायन और आमलकी रसायन जो अच्छे वैद्यके द्वारा निर्मित हों, उनका सेवन करना चाहिये।[3] इससे कफज तथा अन्य हृदयरोग भी समूल नष्ट हो जाते हैं।

परंतु ऐसा भी देखा गया है कि हार्टपर प्रभाव-विस्तारके लिये यौगिक आसनसे बढ़कर ऐसा कोई दूसरा उपाय नहीं है। अतः किसी दक्षयोगीसे हृदयरोग-सम्बन्धी यौगिक आसनोंको विधिपूर्वक सीख लेना चाहिये। परंतु यौगिक आसन स्वस्थ दशामें ही करना चाहिये। रोगकी प्रबल अवस्थामें नहीं; क्योंकि रोगकी उस अवस्थामें तो विश्राम ही एकमात्र उपाय है। स्वस्थ अवस्थामें हलका-हलका यौगिक आसन तथा सायं-प्रातः भ्रमण इस रोगके रोगीके लिये अनुकूल रहता है। इससे हार्ट क्रमशः सबल होता जाता है और उसका नया गठन होता है। रोगी अपनेको स्वस्थ अनुभव करने लगता है। कभी-कभी जलवायुका परिवर्तन करना भी इस रोगके रोगीके लिये हितकर रहता है। पर तीन हजार फीटसे अधिक ऊँचाईवाले स्थान रोगीके लिये अनुकूल नहीं हैं; क्योंकि इससे श्वास फूलने लगता है और श्वास लेनेमें कष्ट होता है। हृदयरोगके रोगीको अपना मानसिक संतुलन बनाये रखना चाहिये और धैर्य, शान्ति तथा आत्मविश्वासको भी सतत बनाये रखना चाहिये। इससे हृदयरोगसे छुटकारा मिल जाता है।

१-सपुष्कराह्वं फलपूरमूलं महौषधं शुंठ्यभया च कल्काः। क्षाराम्लसर्पिर्लवणैर्विमिश्राः स्युर्वातहृद्रोगविकर्तिकाघ्नाः॥ (चरक० चि० २६। ८३)

२-कशेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकं मधुकं बिसस्य। ग्रन्थिश्च सर्पिः पयसा पचेत्तैः क्षौद्रान्वितं पित्तहृदामयघ्नम्॥ (चरक० चि० २६। ९३)

३-शिलाह्वयं वा भिषगप्रमत्तः प्रयोजयेत् कल्पविधानदृष्टम्। प्राशं तथागस्त्यमथापि लेहं रसायनं ब्राह्ममथामलक्याः॥ (चरक० चि० २६। ९८)

महारोग और उससे मुक्ति

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपाल वैष्णवपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

देवक्या पालितो गर्भे लालितोऽङ्के यशोदया।
राधयाऽऽराधितो देवो गोपालो मे प्रसीदतु॥

अखिल ब्रह्माण्डनायक, भक्तजन-सुखदायक, सच्चिदानन्दमय, जगदीश, जगन्मय, परब्रह्म गोपाल श्रीकृष्णने निज क्रीडाके लिये जगत्‌की रचना की है। त्रैलोक्यमें सप्तद्वीपवती पृथ्वीमें जम्बूद्वीपके नव खण्डोंमें भरतखण्ड पुण्यमय है; क्योंकि इसमें नानारूपसे भगवान् अवतीर्ण हुए हैं तथा ऋषि-मुनियोंने जप, तप, स्वाध्याय, योग और समाधिद्वारा अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त करके आत्मोन्नति करते हुए परम पदकी प्राप्ति की है।

सभी श्रेयोंका साधक मानव-शरीर ही है तथा भगवत्प्रिय भी है। **'तासां मे पौरुषी प्रिया'** (भागवत०)। इस नर-तनको पानेके लिये देवता भी लालायित रहते हैं। ऐसा सुदुर्लभ मनुष्य-जन्म अनेकों जन्म बीत जानेके बाद अन्तिम जन्ममें प्राप्त होता है। यह मानव-कलेवर अनित्य होकर भी पुरुषार्थोंका साधक होनेसे अन्य योनियोंसे श्रेष्ठ है। भगवान्‌की उपासना भी नर-तन-साध्य है। सात्त्विक, राजस तथा तामस कर्मोंकी विचित्रतासे ही देव, तिर्यक्, मनुष्य-योनिमें जन्म होता है। सत्त्वसे देव, सत्त्व एवं रजसे मनुष्य और तमोगुणसे तिर्यक्-योनिमें जन्म होता है। भगवत्प्राप्तिके लिये सत्कर्म मनुष्य-योनिमें उपयुक्त है।

इस मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर वर्णाश्रमानुकूल कर्मोंके करनेसे चित्त-शुद्धिद्वारा भागवतधर्मोंमें रुचि उत्पन्न होती है और तभी मानव आत्म-कल्याण करनेमें समर्थ होता है। इस मानव-शरीरकी स्थितिके लिये तीन वस्तुएँ अपेक्षित होती हैं—अन्न, जल तथा औषधि। अन्न एवं जल प्राणका आहार है। मिताहारी रहनेसे शरीर रोगग्रस्त नहीं होता। उदरके दो भाग अन्नसे, एक भाग जलसे तथा एक भाग वायुके संचरणसे पूर्ति करनेसे रोग पैदा नहीं होते। अधिक भोग भोगनेसे शरीर रुग्ण हो जाता है; क्योंकि रोग भोगपूर्वक होता है। बुद्धि भी अन्नपर आधारित है। सदन्न-सेवनसे सद्‌बुद्धि उत्पन्न होती है और सद्‌बुद्धिद्वारा सत्कर्म करनेसे सद्गतिकी प्राप्ति होती है। कदन्नके उपभोगसे कुबुद्धि उत्पन्न होती है और कुबुद्धिद्वारा कुकर्म करनेसे कुगतिकी प्राप्ति होती है। अत: सात्त्विक आहार करना ही अभीष्ट है। दु:ख, शोक तथा रोगसे बचनेके लिये सदन्न ही उपादेय है। अन्न एवं जलकी गड़बड़ीसे उत्पन्न रोगोंका निदान करनेके लिये औषधि-सेवनका विधान है। जिस देशका जो जन्तु है, उसके लिये उसी देशकी औषधि गुणकारी होती है। यह आयुर्वेदाचार्य महर्षि सुश्रुतका मत है। इस घोर कलिकालमें आयुर्वेदिक औषधियाँ लुप्त-गुप्त-सी होती जा रही हैं, यह नितान्त खेदकी बात है। आयुर्वेदमें नाडी-विज्ञान प्रमुख है, उसके बिना—रोगोंका कारण जाने बिना चिकित्सा अधूरी होती है। आजकल भौतिकवादका प्रबल प्रचार होता जा रहा है। इसलिये जड़ी-बूटी प्रभृति औषधियोंकी पहचान करना और भी आवश्यक हो गया है ताकि रासायनिक औषधि, आसव, अवलेह, चूर्ण तथा वटी आदिका आविष्कार—निर्माण होता रहे। हमारे यहाँ आर्षशास्त्रोंमें जप-पूजा-हवन आदि रोग-निवारक उपाय भी निर्दिष्ट हैं। आज विडम्बना है कि हजारों-लाखों रुपया इलाजमें व्यय हो जाता है, पर आरोग्य-लाभ अत्यल्प ही है। एक रोगके नष्ट कर देनेपर दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है।

उष्ण देशकी औषधि शीत देशमें और शीत देशकी औषधि उष्ण देशमें गुणकारी नहीं हो सकती। अत: भारतवासियोंके लिये भारतीय औषधिका सेवन करना ही अभीष्ट है।

सूर्य प्रत्यक्ष देव हैं, उनकी उपासनासे भी आरोग्य प्राप्त हो सकता है। **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** (मत्स्य०पु०)। जबतक ओज, इन्द्रिय-शक्ति, मानसिक सामर्थ्य बल, शारीरिक शक्ति विद्यमान है, तबतक आत्मकल्याणके लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। कहावत है—***'फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत'।*** अत: मनुष्य-जन्म पाकर अपना कल्याण करना अत्यावश्यक है। सम्पूर्ण रोगोंमें जन्म-मरण महारोग है, उसकी निवृत्तिके लिये भगवच्चरण-गमनके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। अत: हरिकी शरणमें जाकर भजन करो।

'हरि: शं ते करिष्यति।'

वास्तविक आरोग्य

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

वास्तविक आरोग्य परमात्मप्राप्तिमें ही है। इसलिये गीतामें परमात्माको 'अनामय' कहा गया है—'**जन्मबन्ध-विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्**' (२।५१)। 'आमय' नाम रोगका है। जिसमें किंचिन्मात्र भी किसी प्रकारका रोग अथवा विकार न हो, उसको '**अनामय**' अर्थात् निर्विकार कहते हैं। जन्म-मरण ही सबसे बड़ा रोग है—'**को दीर्घरोगो भव एव साधो**' (प्रश्नोत्तरी ७)। अनामय-पदकी प्राप्ति होनेपर इन जन्म-मरणरूप रोगका सदाके लिये नाश हो जाता है। इसलिये जो महापुरुष परमात्मतत्त्वको प्राप्त हो चुके हैं, वही असली नीरोग हैं। उपनिषद्में आया है—

आत्मानं चेद् विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

(बृहदारण्यक० ४।४।१२)

'यदि पुरुष आत्माको 'मैं यह हूँ' इस प्रकार विशेषरूपसे जान जाय तो फिर क्या इच्छा करता हुआ और किस कामनासे शरीरके तापसे अनुतप्त हो?'

तात्पर्य है कि आत्मा और परमात्मा—दोनों नीरोग (अनामय) हैं। रोग केवल शरीरमें ही आता है। इसलिये कहा गया है—'**शरीरं व्याधिमन्दिरम्**'। शरीरमें रोग दो प्रकारसे आते हैं—प्रारब्धसे और कुपथ्यसे। पुराने पापोंका फल भुगतानेके लिये शरीरमें जो रोग पैदा होते हैं, वे 'प्रारब्धजन्य' कहलाते हैं। जो रोग निषिद्ध खान-पान, आहार-विहार आदिसे पैदा होते हैं, वे 'कुपथ्यजन्य' कहलाते हैं। अतः पथ्यका सेवन करनेसे, संयमपूर्वक रहनेसे और दवाई लेनेसे भी जो रोग मिटता नहीं, उसको 'प्रारब्धजन्य' जानना चाहिये। दवाई और पथ्यका सेवन करनेसे जो रोग मिट जाता है, उसको 'कुपथ्यजन्य' जानना चाहिये।

कुपथ्यजन्य रोग चार प्रकारके होते हैं—**१. साध्य**—जो रोग दवाई लेनेसे मिट जाते हैं। **२. कृच्छ्रसाध्य**—जो रोग कई दिनतक दवाई और पथ्यका विशेषतासे सेवन करनेपर मिटते हैं। **३. याप्य**—जो पथ्य आदिका सेवन करनेसे दबे रहते हैं, जड़से नहीं मिटते। **४. असाध्य**—जो रोग दवाई आदिका सेवन करनेपर भी नहीं मिटते। प्रारब्धसे होनेवाला रोग तो असाध्य होता ही है, कुपथ्यसे होनेवाला रोग भी ज्यादा दिन रहनेसे कभी-कभी असाध्य हो जाता है। ऐसे असाध्य रोग प्रायः दवाइयोंसे दूर नहीं होते। किसी संतके आशीर्वादसे, मन्त्रोंके प्रबल अनुष्ठानसे अथवा विशेष पुण्यकर्म करनेसे ऐसे रोग दूर हो सकते हैं।

कुपथ्यजन्य रोगीके असाध्य होनेमें कई कारण हो सकते हैं; जैसे—१. रोग बहुत पुराना हो जाय, २. रोगी कुपथ्यका सेवन कर ले, ३. जिन जड़ी-बूटियोंसे दवाइयाँ बनी हों, वे पुरानी हों, ४. रोगीका वैद्यपर और औषधपर विश्वास न हो, ५. रोगीका खान-पान, आहार-विहार आदिमें संयम न हो, आदि-आदि।

जो रोगी बार-बार तरह-तरहकी दवाइयाँ लेता रहता है, दवाइयोंका अधिक मात्रामें सेवन करता है, उसको दवाइयोंसे विशेष लाभ नहीं होता; क्योंकि दवाइयाँ उसके लिये आहाररूप हो जाती हैं। गाँवोंमें रहनेवाले प्रायः दवाई नहीं लेते, पर कभी वे दवाई लें तो उनपर दवाई बहुत जल्दी असर करती है। जो लोग मदिरा, चाय आदि नशीली वस्तुओंका सेवन करते हैं, उनकी आँतें खराब हो जाती हैं, जिससे उनके शरीरपर दवाइयाँ असर नहीं करतीं। जो व्यक्ति धर्मशास्त्र और आयुर्वेदशास्त्रके विरुद्ध खान-पान, आहार-विहार करता है, उसका कुपथ्यजन्य रोग दवाइयोंका सेवन करनेपर भी दूर नहीं होता।

अधिकतर रोग कुपथ्यसे पैदा होते हैं। कुपथ्यजन्य रोगसे शरीरकी ज्यादा क्षति होती है। कुपथ्यका त्याग और पथ्यका सेवन दवाइयोंसे भी बढ़कर रोग दूर करनेवाला है। इसलिये कहा गया है—

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

(वैद्यजीवनम् १०)

'पथ्यसे रहनेपर रोगी व्यक्तिको औषधके सेवनसे क्या प्रयोजन? और पथ्यसे न रहनेपर रोगी व्यक्तिको

औषधके सेवनसे क्या प्रयोजन?' तात्पर्य है कि पथ्यसे रहनेपर रोगी व्यक्तिका रोग बिना औषध लिये मिट जाता है और पथ्यसे न रहनेपर उसका रोग औषध लेनेपर भी मिटता नहीं।

रोगीके साथ खाने-पीनेसे, रोगीके पात्रमें भोजन करनेसे, रोगीके आसनपर बैठनेसे, रोगीके वस्त्र आदिको काममें लेनेसे तथा व्यभिचार आदिसे ऐसे संकर (मिश्रित) रोग हो जाते हैं, जिनकी पहचान करना बड़ा कठिन हो जाता है। जब रोगकी पहचान ही नहीं होगी तो फिर वैद्यकी दवाई क्या काम करेगी?

युगके प्रभावसे जड़ी-बूटियोंकी शक्ति क्षीण हो गयी है। कई दिव्य जड़ी-बूटियाँ लुप्त हो गयी हैं। दवाइयाँ बनानेवाले ठीक ढंगसे दवाइयाँ नहीं बनाते और पैसोंके लोभमें आकर जिस दवाईमें जो चीज मिलानी चाहिये, उसको न मिलाकर दूसरी सस्ती चीज मिला देते हैं। अतः वह दवाई वैसी गुणकारी नहीं होती।

जो रोगोंके कारण दुःखी रहता है, उसपर रोग ज्यादा असर करते हैं। परंतु जो भजन-स्मरण करता है, संयमसे रहता है, प्रसन्न रहता है, उसपर रोग ज्यादा असर नहीं करते। चित्तकी प्रसन्नतासे उसके रोग नष्ट हो जाते हैं।

प्रारब्धजन्य रोगके मिटनेमें दवाई तो केवल निमित्तमात्र बनती है। मूलमें तो प्रारब्धकर्म समाप्त होनेसे ही रोग मिटता है। जिन कर्मोंके कारण रोग हुआ है, उन कर्मोंसे बढ़कर कोई पुण्यकर्म, प्रायश्चित्त, मन्त्र आदिका अनुष्ठान किया जाय तो प्रारब्धजन्य रोग मिट जाता है। परंतु इसमें प्रारब्धके बलाबलका प्रभाव पड़ता है अर्थात् प्रारब्धकी अपेक्षा अनुष्ठान प्रबल हो तो रोग मिट जाता है और अनुष्ठानकी अपेक्षा प्रारब्ध प्रबल हो तो रोग नहीं मिटता अथवा थोड़ा ही लाभ होता है।

लोगोंकी ऐसी धारणा बन गयी है कि दवाईके रूपमें मांस, अण्डा, मदिरा आदिका सेवन करना बुरा नहीं है। वास्तवमें यह महान् पतन करनेवाली बात है! ऐसा माननेवाले वे ही लोग होते हैं, जिनका केवल शरीरको ठीक रखनेका, सुख-आरामका ही उद्देश्य है, जिनको धर्मकी अथवा अपना कल्याण करनेकी परवाह नहीं है। अशुद्ध चीज लेनेसे शरीर ठीक हो जायगा—यह नियम नहीं है, उल्टे नये रोग पैदा हो जायँगे। पशुओंके रोग उनका मांस खानेवालोंमें भी आ जाते हैं। अशुद्ध चीज लेनेसे जो पाप होगा, उसका दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा। अतः दवाईके रूपमें भी अशुद्ध चीज नहीं खानी चाहिये। जिसका शरीरमें राग नहीं है, जिसका उद्देश्य अपना कल्याण करना है, वह नाशवान् शरीरके लिये अशुद्ध चीजोंका सेवन करके पाप क्यों करेगा?

अन्न और जल—इन दोनोंके सिवाय मनुष्यमें अन्य किसी चीजका व्यसन नहीं होना चाहिये। जीवित रहनेके लिये अन्न और जल लेना ही पड़ता है, पर चाय, काफी, बीड़ी, सिगरेट, जर्दा, पान-मसाला, तम्बाकू, अफीम, चिलम आदि न ले तो मनुष्य मर नहीं जाता। इन चीजोंको लेनेसे आदत खराब होती है, समय खराब होता है, पैसा खराब होता है, शरीर खराब होता है! दुर्व्यसनोंकी आदत पड़ जाय तो फिर उनको छोड़ना बड़ा कठिन होता है और मनुष्य उनके अधीन हो जाता है। पराधीनको स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता—***'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं'*** (मानस, बाल० १०२। ३)।

गीतामें भगवान्ने **'आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः'** पदोंसे सात्त्विक भोजनका फल पहले बताया और बादमें भोजनके पदार्थोंका वर्णन किया। इससे सिद्ध होता है कि सात्त्विक मनुष्य भोजन करनेसे पहले उसके परिणामपर विचार करता है।[1] परंतु राजस मनुष्यकी दृष्टि सबसे पहले भोजनकी तरफ जाती है, उसके परिणामकी तरफ नहीं, इसलिये भगवान्ने पहले राजस भोजनके पदार्थोंका वर्णन किया और बादमें **'दुःखशोकामयप्रदाः'** पदसे उसका फल बताया।[2] अगर मनुष्य आरम्भमें ही भोजनके परिणामपर विचार करे तो फिर उसको राजस भोजन करनेमें हिचकिचाहट होगी; क्योंकि कोई भी मनुष्य परिणाममें दुःख, शोक और रोगको नहीं चाहता। परंतु भोजनमें आसक्ति होनेके कारण राजस मनुष्यकी बुद्धि परिणामकी तरफ जाती ही नहीं। तामस मनुष्यमें मूढ़ता रहती है; अतः मोहपूर्वक भोजन

१-आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः । रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ (गीता १७। ८)

२-कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः । आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ (गीता १७। ९)

करनेके कारण वह परिणामको देखता ही नहीं। इसलिये भगवान्ने तामस भोजनका फल बताया ही नहीं।* भोजन न्याययुक्त है या नहीं, उसपर मेरा हक लगता है या नहीं, वह शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार है या नहीं, उसका परिणाम अच्छा है या नहीं—इन बातोंपर कुछ भी विचार न करके तामस मनुष्य पशुकी तरह खानेमें प्रवृत्त हो जाता है।

सात्त्विक मनुष्य तो श्रेष्ठ है ही, उससे भी श्रेष्ठ वह भगवद्भक्त है, जो भोजनके पदार्थोंको पहले भगवान्के अर्पण करके फिर उनको प्रसादरूपसे ग्रहण करता है। इसलिये गीतामें भगवान् कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(९। २७-२८)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।'

'इस प्रकार मेरे अर्पण करनेसे तू कर्मबन्धनसे और शुभ (विहित) तथा अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंसे मुक्त हो जायगा। ऐसे अपनेसहित सब कुछ मेरे अर्पण करनेवाला और सबसे सर्वथा मुक्त हुआ तू मुझे प्राप्त हो जायगा।'

सब कुछ भगवान्के अर्पण करनेका परिणाम यह होगा कि मनुष्यका जन्म-मरणरूप महान् रोग मिट जायगा। जन्म-मरणरूप रोग मिटनेसे ही मनुष्यको वास्तविक आरोग्यकी प्राप्ति होगी। इस आरोग्यका प्राप्त करना ही मानव-जीवनका लक्ष्य है।

हठयोग-साधना—स्वरूप एवं उपयोगिता

(श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

हठयोग-साधना—नाथ-सम्प्रदायकी योग-साधना जगत्के लिये एक अनुपम, विशिष्ट और मौलिक देन है। यह विद्या शिवकथित है। योगिराज श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी साधनामें तथा महायोगी गोरखनाथकृत गोरक्षसंहिता, सिद्धसिद्धान्तपद्धति, विवेकमार्तण्ड, योगबीज आदि संस्कृत-ग्रन्थों और 'गोरखबानी'में हठयोग-साधनाकी ही अमृतमयी सारगर्भित व्याख्या उपलब्ध होती है। नाथसिद्ध चौरंगीनाथ, भर्तृहरिनाथ, गोपीचन्द, जालन्धरनाथ आदिकी बानियोंमें भी इस साधनाका प्रक्रियात्मक विश्लेषण प्राप्त होता है। हठयोग-साधनाके सम्बन्धमें भगवान् शिवका कथन है—

इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम्॥

(शिवसंहिता)

यह शिवद्वारा परिभाषित हठयोग-साधना परम गोप्य है। योगशास्त्रोंमें इस साधनाको अधिकारीके प्रति ही निरूपित करनेका आदेश है। हठयोग-साधना प्राण-साधना है। हठयोगके सम्बन्धमें महायोगी गोरखनाथजी कहते हैं—

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते॥

हठयोग तनको स्वस्थ, मनको स्थिर और आत्माको परमपदमें प्रतिष्ठित करने अथवा अमृतत्वको प्राप्त करनेका अमोघ साधन तथा महाज्ञान है। हठयोग-साधना मानवीय जीवनको सहज और नैसर्गिक—प्राकृतिक वातावरणके अनुकूल संयोजित करनेका शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रयोग है। इसमें शरीर-शुद्धिके साधन इस प्रकार बताये गये हैं—

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्थं सप्तसाधनम्॥
षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढम्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता॥
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः॥

(घेरण्डसंहिता १। ९—११)

* यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ (गीता १७। १०)

शरीरकी शुद्धिके लिये शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्त—ये सप्तसाधन हैं। षट्कर्मद्वारा शोधन, आसनोंसे दृढ़ता, मुद्राओंसे स्थिरता, प्रत्याहारसे धीरता, प्राणायामसे लाघव, ध्यानसे ध्येयका प्रत्यक्ष दर्शन तथा समाधिद्वारा निर्लिप्त-अनासक्तिका विधान है। इस क्रमसे हठयोग-साधना करनेपर मुक्ति—स्वरूपावस्थानकी प्राप्ति होती है।

हठयोगकी साधनामें लगे साधकको इस बातका ज्ञान होना आवश्यक है कि जो कुछ ब्रह्माण्डमें है, वह सब हमारे शरीरमें भी है। हठयोगकी अन्तरङ्ग-साधनामें इस जानकारीकी महती उपयोगिता है। पिण्डमें ही ब्रह्माण्ड-दर्शन अथवा सर्वात्मबोध हठयोगका मूल तत्त्व है। महायोगी श्रीगोरखनाथजीका स्वयं कथन है कि षट्चक्र, द्विलक्ष्य, पञ्चव्योम, स्तम्भ, नवद्वार, पञ्चाधिदैवकी अपने शरीरमें ही विद्यमानताका जिन्हें ज्ञान नहीं है, वे किस हठयोगकी साधनामें सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। यह शरीर ब्रह्माण्ड कहा जाता है। यद्यपि श्रीगोरखनाथजीने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में नवचक्रोंका वर्णन किया है तथापि छः चक्रोंपर ही हठयोगकी साधना आधारित है। उन्हींके भेदनसे साधक सहस्रारमें शिवका साक्षात्कार करता है। वे षट्चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र नामवाले हैं। इसी तरह सोलह आधार और हैं—पादाङ्गुष्ठ, मूलाधार, गुदा, मेढ्राधार, उड्डीयानबन्धाधार, नाभि-आधार, हृदयाधार, कण्ठाधार, घण्टिकाधार, तालु-आधार, जिह्वा-आधार, भ्रूमध्य-आधार, नासाधार, नासिकामूलाधार, ललाट-आधार और ब्रह्मरन्ध्र-आधार। बाह्य और आभ्यन्तर दो लक्ष्य हैं। तीसरा लक्ष्य मध्य भी कहा जाता है। आत्माके स्वरूपकी अभिव्यक्तिके लिये पञ्चाकाशमें आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाशके महत्त्वपर बल दिया जाता है। मुख, दो नेत्र, दो कान, दो नासारन्ध्र, एक उपस्थ और एक गुदा—ये शरीरके नौ दरवाजे हैं। पाँच अधिदेवताका अभिप्राय आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीसे है। ये देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव हैं। हठयोगमें इन तत्त्वोंका ज्ञान होना आवश्यक है।

हठयोगमें कायशोधन अथवा घटशोधन या शरीरकी शुद्धि आवश्यक साधन-तत्त्व है। इसमें षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्धकी क्रियाका ही महत्त्व स्वीकृत है। इनके द्वारा शरीर योगाग्निमें शुद्ध होकर पक्वदेह कहलाता है। षट्कर्मके अङ्ग हैं—धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति। इनके द्वारा कफ-पित्त-वातके दोष नष्ट होते हैं। शरीरमें ताजगी आती है। दीर्घायु और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। शरीरके मलका शोधन होता है। नाडियोंके निर्दोष होनेपर प्राणवायुका शरीरमें सञ्चार होता है। वायुकी यथेष्ट धारणा, जठराग्निका प्रदीपन, नादकी अभिव्यक्ति और आरोग्य आदि शरीरकी नाडियोंके मलशोधनके ही परिणाम हैं। हठयोगकी साधनामें आसनोंको बड़ा महत्त्व दिया है। गोरक्षसंहितामें सिद्धासन और पद्मासनके अभ्यासपर बल दिया गया है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में गोरखनाथजीने '**आसनमिति स्वरूपसमानता**' कहा है। 'हठयोगप्रदीपिका' में आसनको हठयोगका प्रथम अङ्ग बताया है। आसनोंसे शारीरिक और मानसिक रोग तथा प्राणायामसे पाप नष्ट होते हैं। 'गोरक्षसंहिता' के दूसरे शतकमें कहा गया है—

'आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।'

वायुका अभ्यास ही प्राणायाम है। मलसे भरी नाडियोंके चक्रका शोधन प्राणायामसे ही होता है। हठयोगके साधकको बद्ध पद्मासनमें स्थित होकर चन्द्रनाडी—इडासे प्राणको भीतर भरना 'पूरक' कहलाता है। प्राणको रोकना 'कुम्भक' कहलाता है, इसके बाद सूर्यनाडी—पिङ्गलासे वायुको बाहर करना चाहिये, यह 'रेचक' है। प्राणायामके समय अमृतस्वरूप चन्द्रमाका ध्यान करनेसे प्राणी सुखी होता है। इसी तरह दायें नासारन्ध्रसे श्वास खींचकर थोड़ी देर भीतर रोककर वामनासारन्ध्र—चन्द्रनाडीसे बाहर निकालना चाहिये। वायुको भीतर स्थिर रखनेके समय नाभिमण्डलमें सूर्यका ध्यान करनेसे साधक सुखी होता है। प्राणसाधनासे नाडियोंके शुद्ध होनेपर साधक नाद-श्रवणद्वारा परमात्मचिन्तनमें तत्पर हो जाता है। गोरखनाथजीने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के दूसरे उपदेशमें कहा है कि—प्राणायाम करनेसे प्राण स्थिर होता है—'**प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता।**'

पाँचों इन्द्रियोंको अपने विषयसे पृथक् कर लेना ही प्रत्याहार है। योगी प्रत्याहारके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर आत्माभिमुखी कर देता है। ऐसे तो हठयोगके परमाचार्य श्रीगोरखनाथजीने 'गोरक्षसंहिता' के दूसरे शतकमें कहा है कि चन्द्रमाकी अमृतमयी

धाराको मूलाधारमें स्थित सूर्य ग्रस्त कर लेता है, उसे सूर्यके मुखमें न पड़ने देकर योगी स्वयं ग्रस्त कर लेता है। यह प्रत्याहार है। हृदयमें मनकी निश्चलताके साथ पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशका धारण करना ही धारणा है। इससे पाँचों तत्त्वोंपर योगी विजय प्राप्त करता है। अपने चित्तमें आत्मतत्त्वका चिन्तन करना हठयोगकी साधनामें ध्यान कहा जाता है। आत्मध्यानसे अमरत्वकी प्राप्ति होती है, चक्रभेदन करते हुए ध्यानद्वारा कुण्डलिनीको जाग्रत् करनेसे जीवात्मा परम शिवका साक्षात्कार कर लेता है। समाधिमें आत्माके यथार्थ स्वरूपका अनुभव होता है। ध्याता, ध्येय और ध्यान—तीनों एक हो जाते हैं। आत्मा और मनकी एकता ही समाधि है।

हठयोगकी चरम परिणति कुण्डलिनी-जागरणद्वारा षट्चक्रभेदन कर सहस्रारमें शिवका साक्षात्कार है, यह 'उन्मनी' अवस्थाकी परमसिद्धि है। हठयोगमें मुद्रा और बन्धके द्वारा नादानुसन्धान तथा कुण्डलिनी-जागरणमें विशिष्ट सहायता मिलती है। यद्यपि नादानुसन्धान प्राणायामकी सिद्धिका परिणाम है तथापि मुद्रा और अभ्याससे योगसाधक नाद सुनता है और नादकी सम्पूर्ण लयावस्थामें कुण्डलिनी-जागरणके फलस्वरूप वह शून्य अलख निरञ्जनरूपी तत्त्वमें समाहित हो जाता है। हठयोगमें नाद-श्रवणका भी बड़ा महत्त्व है। अनाहत ध्वनिरूपी नादके श्रवणसे सहज समाधि लग जाती है। नाद-श्रवणके लिये योगीको मुक्तासनमें स्थित होकर शाम्भवी मुद्राके द्वारा एकाग्रचित्तसे कर्ण, नेत्र और नासाके रन्ध्रों तथा मुखके द्वार हाथकी अँगुलियोंसे बंद करनेपर सुषुम्णा-मार्गसे स्फुट नादका श्रवण होता है। नादके अनुसन्धानसे सञ्चित पापोंका क्षय होता है। नादके चित्तकी तात्त्विक लय-अवस्थामें सर्वथा विलीन हो जानेपर योगी उन्मनी-अवस्था अथवा निर्विकल्पके भी परे सहज शून्यपद या कैवल्यमें स्वस्थ हो जाता है। मुद्रासे शरीर और मनकी स्थिरता सिद्ध होती है। हठयोगके आचार्य महर्षि घेरण्डने '**मुद्रया स्थिरता**' का प्रतिपादन किया है। महायोगी गोरखनाथका कथन है कि महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध और मूलबन्धके अभ्यासमें जो योगी कुशल होता है, वह मुक्तिका पात्र होता है—

महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानं जालन्धरम्।
मूलबन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनः॥

(गोरक्षसंहिता)

हृदयमें ठोड़ीको लगाकर दायें पैरकी एड़ीको योनिस्थानपर दबाकर बायें पैरको लम्बा करे और दोनों हाथोंसे पैरको मध्यसे पकड़े। भीतर प्राण भरे, कुछ देर रोककर निकाल दे। इससे सारे रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अभ्याससे सुप्त कुण्डलिनी सहज जाग जाती है। इसके बाद नभोमुद्रा और खेचरी मुद्राका विधान है। योगी जीभ ऊपर करके कुम्भककी विधिसे प्राण भीतर रोके। इसके अभ्याससे रोग, मृत्यु, क्षुधा, निद्रा, तृष्णा, मूर्च्छापर विजय प्राप्त कर लेता है। खेचरीके अभ्याससे वीर्य स्थिर होता है। उड्डीयानबन्धमें पेटको पीठकी ओर सिकोड़ा जाता है, इससे वायुकी शुद्धि होती है, जठराग्नि बढ़ती है। कण्ठको संकुचित करके ठोड़ीको हृदयसे लगाना 'जालन्धरबन्ध' है, यह बन्ध चन्द्रामृतरूपी जलको कपाल-कुहरके नीचे नहीं गिरने देता। मूलाधारमें स्थित सूर्य इस अमृतको नहीं सोख पाता। अपानवायुको ऊपरकी ओर खींच करके प्राणवायुसे मिलाना और पैरकी एड़ीसे सीवनी दबाकर गुदा-द्वारको सिकोड़ना मूलबन्ध है। विपरीतकरणी मुद्राके अभ्याससे योगी चन्द्रामृतका स्वयं पान करता है। चन्द्रमा तालुमूलमें—विशुद्धचक्रमें स्थिर होकर सुधाका स्राव करता है, जिसे नाभिमण्डलमें स्थित सूर्य अथवा अग्निसे बचाकर योगी स्वयं पी लेता है। इस मुद्राकी सिद्धिमें शीर्षासनका योगदान महत्त्वपूर्ण है।

हठयोगका परम लक्ष्य कुण्डलिनी-जागरणद्वारा षट्चक्रभेदन तथा कैवल्यकी प्राप्ति है। कुण्डलिनी हमारे मूलाधारमें अप्रबुद्ध और प्रबुद्ध-रूपमें स्थित है। यद्यपि देहमें स्थित कुण्डलिनी स्वभावसे चेतन है तथापि प्रबुद्ध न होनेकी अवस्थातक जीवात्माको सांसारिक द्वन्द्वोंमें विमोहित करनेके कारण बन्धनकारिणी है। जबतक वह सुप्त है, तबतक जन्म-मरणका फल देती है और जागनेपर सहस्रदलतक सञ्चार करती हुई योगियोंको उनके शुद्ध व्यापक आत्माके स्वरूपका ज्ञान करा देती है। गुदासे दो अङ्गुल ऊपर और लिङ्गसे दो अङ्गुल नीचे मूलाधारचक्रके बीच त्रिकोणके आधारके योनिकामपीठके मध्य शिवलिङ्गको साढ़े तीन वलयोंमें

लपेटकर नीचेकी ओर मुख करके विद्युत् प्रभाके समान चमकती हुई सुषुम्णाके मार्गको रोककर कुण्डलिनी स्थित है। अपानवायुके निकुञ्चनसे उसका उत्थान किया जाता है, वह सुषुम्णाके द्वारको छोड़ देती है। इसका उत्थान मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध और जालन्धरबन्धके अभ्याससे किया जाता है। वह ऊर्ध्वमुखी होकर षट्चक्रभेदन करती हुई सहस्रारमें पहुँच जाती है। मूलाधारमें ब्रह्मचक्र है। इसमें अग्निके समान दीप्ति-शक्तिका ध्यान करनेसे कुण्डलिनी जाग जाती है। इसके बाद स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्रका भेदन करती हुई सहस्रारमें पहुँच जाती है। सहस्रारसे स्रावित चन्द्रामृतका पान करनेमें योगी इसी समय प्रवृत्त होता है। ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचकर कुण्डलिनी शिवसे मिल जाती है अर्थात् अन्तर्भूत हो जाती है। चन्द्रमाके द्वारपर सूर्यका स्थित होना, जीवात्माका शिव-पदमें अभिन्न होना हठयोगका परम लक्ष्य है। यही हठयोगकी सिद्धि है, जिसे राजयोग-समाधिका सहज फल स्वीकार किया जाता है। यही उन्मनी सहजावस्था है, अमनस्कताके धरातलपर जीवात्मा और परमात्माकी अभेदता है।

आज सारे संसारके मानव शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक निश्चिन्त-अवस्थाकी प्राप्तिके लिये उद्विग्न हैं। वे शारीरिक समस्याको सुलझानेके लिये भारतकी योगसाधना-पद्धतिसे प्रेरणा ग्रहण करनेके लिये समुत्सुक हैं। हठयोगकी साधना सर्वाङ्गपूर्ण योगसाधना है। यह निर्विवाद है कि हठयोगके विभिन्न अङ्गोंकी साधनाके द्वारा जगत्के लोग स्वास्थ्य-समस्याका समाधान प्राप्त कर सकते हैं। ये अपने शरीरको नीरोग और मनको शान्त तथा स्थिर करनेके लिये भगवान् शिवद्वारा उपदिष्ट तथा महर्षि पतञ्जलिद्वारा अनुशासित और महायोगी गोरखनाथ तथा उनके अनुवर्ती नाथसिद्धोंद्वारा आचरित और उपदिष्ट योग—विशेषतया हठयोगको ग्रहण करके लोककल्याण तथा आत्मोद्धारके प्रयत्नमें सफल हो सकते हैं। हठयोगके शास्त्र-वर्णित साधना-क्रमसे अभ्यास करनेसे आजके जगत्में योगके सम्बन्धमें प्रचलित गलत धारणाओं और मनमानी मिथ्या विचारोंका निराकरण हो सकता है। मानवके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक जागरणमें हठयोगकी महनीयता पूर्णरूपसे स्पष्ट है।

'संसारव्याधिभेषजम्'

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

अपामीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम्।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः॥

(ऋग्वेद ८। १८। १०)

'हे दृढव्रती देवगणो (**'आदित्यासः'**)! हमारे रोगोंका निवारण कीजिये। हमारी दुर्मति तथा पापोंको दूर हटा दीजिये।'

आदित्य—सूर्यकी आराधनासे अखण्ड प्राकृतिक नियम-पालनकी प्रेरणा मिलती है। नियम-पालनसे स्वास्थ्य स्थिर रहता है। स्थिर स्वास्थ्यसे बुद्धि परिष्कृत होती है और सुसंस्कृत बुद्धि प्रभुस्मरण-जैसे जीवनके शाश्वत सिद्धान्तोंकी ओर मानवको उन्मुख करती है।

वेदोंकी अनेक सूक्तियाँ स्वस्थ जीवनकी उपादेयताका प्रतिपादन करती हैं। **'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्'** (यजुर्वेद १६। ४८)। ग्रामके सभी प्राणी रोगरहित और हृष्ट-पुष्ट हों।

अथर्ववेदीय पैप्पलादशाखाके मन्त्रद्रष्टा ऋषि दीर्घायुष्य-सूक्तके माध्यमसे देवों, ऋषियों, गन्धर्वों, दिशाओं, औषधियों तथा सरिता-सागर आदिसे दीर्घ आयुकी कामना करते हैं—**'दीर्घमायुः कृणोतु मे।'**

अथर्ववेदके चतुर्थकाण्डका १३वाँ तथा ऋग्वेदके दशम मण्डलका १३७ वाँ सूक्त रोगनिवारण-सूक्तके नामसे प्रसिद्ध है।

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्॥

(अथर्व० ४। १३)

'हे देवो! इस रोगीकी रक्षा कीजिये। हे मरुतोंके समूहो! रक्षा करो। सब प्राणी रक्षा करें। जिससे यह रोगी नीरोग—पूर्ण स्वस्थ हो जाय।'

वेद इस मानव-शरीरका अति पल्लवित वर्णन करता है—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥ (यजु० ३४।५५)

भावार्थ है कि 'सातों ऋषि अहर्निश इस शरीररूपी पवित्र आश्रमका संरक्षण कर रहे हैं।'

'यह शरीर सप्त सरिताओंका पवित्र तीर्थस्थल है, जो जाग्रदवस्थामें बाहर जाता है और सुप्तावस्थामें वापस आता है। यह शरीर पवित्र यज्ञशाला है, जिसके लिये दो देव दिन-रात सन्नद्ध हैं।'

साथ ही यह शरीर देवालय है, यहाँ सूर्य चक्षुओंमें ज्योति बनकर, वायु छातीमें प्राण बनकर, अग्नि मुखमें वाणीरूप बनकर तथा उदरमें जठराग्नि बनकर एवं तैंतीस देवता अंशरूपमें आकर निवास करते हैं। पञ्चभूतोंसे एक पुरुषाकृतिका निर्माण कर ईश्वरने उसे क्षुधा-पिपासासे अभिभूत कर दिया, तब इन्द्रियाभिमानी देवताओंने परमेश्वरसे कहा कि हमारे योग्य स्थान बतायें, जिसमें बैठकर हम अपने भोज्य-पदार्थ अन्नका भक्षण कर सकें। देवताओंके इस आग्रहपर जलसे गौ और अश्वके आकारयुक्त एक पिण्ड बाहर आया। पर देवताओंने यह कहकर ठुकरा दिया कि यह हमारे आश्रयके अनुरूप नहीं है। अन्तमें जब मानव-शरीर आया तब सभी देव प्रसन्न हो गये। परमेश्वरने कहा—'**ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति**' अपने योग्य, आश्रय स्थानोंमें तुम लोग प्रवेश करो। इसपर '**अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्**'॥

(ऐतरेयोपनिषद् १। २।४)

अग्नि वाणी होकर मुखमें, वायु प्राण होकर नासिका-छिद्रमें, सूर्य प्रकाश बनकर नेत्रोंमें, दिशाएँ श्रोत्रेन्द्रिय बनकर कानोंमें, औषधियाँ और वनस्पति लोम होकर त्वचामें, चन्द्रमा मन होकर हृदयमें, मृत्यु अपान होकर नाभिमें और जल देवता वीर्य होकर शिश्नेन्द्रियमें प्रविष्ट हुए।

उपनिषद्का उक्त कथानक मानव-शरीरको देवालय होनेकी पुष्टि करता है। सम्भवतः इस कथानकको भौतिकवादी ऐहिक कौशलमें कुशल दम्भी-मस्तिष्क एकमात्र कपोल-कल्पना ही समझें, पर यह अति परिष्कृत वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, विषयान्तर न हो इसीलिये मात्र एक उदाहरण 'चन्द्रमा मन होकर हृदयमें प्रविष्ट हुए हैं' इसीको संक्षेपमें विवृत किया जा रहा है—चन्द्रमाका गर्भकी वृद्धिपर विशेष परिणाम होता है। वैदिक मन्त्रोंमें भी इसका संकेत मिलता है। चन्द्रमामें मातृवृत्ति है। फिर कलावान् तो वे हैं ही, इसलिये सूर्यकी ज्ञानमय प्रखर किरणोंको पचाकर और उन्हें भावनामय सौम्य रूप देकर माताके हृदयमें रहनेवाले कोमल गर्भतक उस जीवनामृतको पहुँचानेका प्रेमल और कुशल कार्य निरन्तर करते रहते हैं। इतना ही नहीं ओषधियोंका जो अमृतत्व है, वह सोमसे ही प्राप्त होता है। वे ओषधियोंके अधिपति कहे गये हैं।

सामान्य रूपसे यह मानव-शरीर दो भागोंमें विभक्त है—आभ्यन्तर और बाह्य। '*नर तन सम नहिं कवनिउ देही*'। कहे जानेवाले देव-दुर्लभ शरीरकी उपेक्षा निःसंदेह अविवेकपूर्ण है, रोगोंका उपचार स्वस्थ जीवनहेतु अनिवार्य है, परंतु केवल बाह्य शरीरके रक्षार्थ किया गया उद्योग एकाङ्गी होगा। सर्वाङ्गीण परिश्रम ही संस्कृत बुद्धिकी पहचान है। अतः मानसिक रोगका उपचार किये बिना शारीरिक रोग दूर नहीं होंगे।

यह अतार्किक सिद्धान्त है कि जगत्-नियन्ता प्रत्येक सत्कर्मपर पुरस्कार और दुष्कर्मपर दण्ड देता है तथा मानसिक अशुभ कर्मका दण्ड शरीरको भोगना पड़ता है।

शतशः श्रुतियाँ इस सिद्धान्तको घोषित कर रही हैं कि सृष्टिका मूलतत्त्व रसरूपता '**रसो वै सः**' या आनन्दरूपता है। शास्त्रोंमें आनन्दके दो स्वरूप वर्णित हैं—१-शान्त्यानन्द और २-समृद्ध्यानन्द। प्रथमका सम्बन्ध अन्तर्मनसे है और दूसरेका बाह्य शरीरसे। मूल विषय मनका उपचार है। संत तुकारामने कहा है—'*मन कर प्रसन्न सर्व सिद्धिचे कारण*' मनको प्रसन्न रखो वही सब सिद्धियोंका मूल है। सुश्रुतसंहिता भी इस बातका प्रतिपादक है।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(१५।४१)

त्रिदोषों, त्रयोदश अग्नियों और धातु-प्रक्रियाकी समता तथा आत्मा, इन्द्रिय और मनकी प्रसन्नता स्वास्थ्यका द्योतक है। मानसिक रोग जो विश्वका संक्रामक रोग बन गया है, उसका उपचार ही शारीरिक स्वस्थताकी प्रमुख शर्त है। मानसिक रोगकी सर्वश्रेष्ठ ओषधि है—'भगवन्नाम-

स्मरण।'

श्वेताश्वतरोपनिषद् कहता है—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

(६।२०)

अर्थात् यदि मानव (विज्ञान) व्यापक अमूर्त आकाशको चमड़ेकी भाँति लपेटनेमें भी समर्थ हो जाय (जो असम्भव है) तो भी परमात्मतत्त्वके ज्ञानके बिना उसके कष्टोंका अन्त असम्भव है।

मानस-रोगोंके वर्णनके पश्चात् गोस्वामीजी कहते हैं—*'भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥'* अतः *'बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥'* (रा०च०मा० ७।१२१ (ख), १२२ (क))

शास्त्रीय भाषामें पञ्चभूतात्मक योग-गुणोंका अनुभव (भगवन्नाम-जपद्वारा आत्मानुभूति) जिसे हो जाता है, उसे न रोग सताता है, न वृद्धावस्था और न असमय मृत्यु।

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेता०उप० २।१२)

'गोविन्ददामोदरस्तोत्र'के रचयिता श्रीबिल्वमङ्गलाचार्यने त्रयताप-निवारणहेतु (दैहिक, दैविक, भौतिक) वेदवेत्ता विद्वानोंद्वारा निर्दिष्ट इसी नाम-रूपी चिकित्सककी ओर ध्यान आकृष्ट किया है—

आत्यन्तिकव्याधिहरं जनानां चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

हे कृष्ण! हिलते हुए पत्तेकी नोकपर अटकी हुई बूँदके समान क्षणभंगुर यह शरीर इसी समय आपके चरणरूपी पिंजरोंमें राजहंसकी तरह प्रविष्ट हो जाय; क्योंकि मरते समय वात, पित्त और कफद्वारा कण्ठावरोध हो जानेसे नाम-स्मरण भी असम्भव हो जायगा—

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

(प्रपन्नगीता ५३)

कृष्ण-मिलनकी विरहजन्य पीडासे अधीर होकर मीराके मानसिक रोगका चिकित्सक भी तो साँवरिया ही था न! *'मीरा की मन पीर मिटे जब वैद संवरिया होय'*।

सूरकी इस चेतावनीकी अनदेखी कहीं सिर धुननेको विवश न कर दे?

कहा भयो अबके मन सोचे पहिले नाहि कमायो।
सूरदास हरिनाम-भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछतायो॥

गुरु नानकदेव प्रभु-नाम-श्रवणसे कष्ट दूर होनेकी घोषणा करते हैं—

सुणिऐ ईसरु बरमा इन्दु। सुणिऐ मुखि सालाहण मन्दु।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

(श्रीजपुजी साहब ९)

अगर व्यक्ति नियमित भगवत्-नाम-स्मरण कर रहा है और देहावसानके अन्तिम क्षणोंमें भगवत्-चिन्तनमें असमर्थ हो जाता है तब भी भगवान्की असीम अपरिमेय अनुकम्पा देखिये—

स्थिरे मनसि सुखस्थे शरीरे सति यो नरः।
धातुसाम्ये स्थिते स्मर्ता विश्वरूपं च मां भजन्॥
ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसंनिभम्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

(वराहपुराणका खिलांश)

भगवती वसुन्धराके पूछनेपर भगवान् वराह कहते हैं—'जो मेरा भक्त स्वस्थावस्थामें निरन्तर मेरा स्मरण करता रहता है, उसे मरते समय जब चेतना नहीं रहती और वह सूखे काष्ठ-पाषाणकी भाँति पड़ा रहकर मेरा चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है तो मैं उसका स्मरण करता हूँ और उसे परमगति—मुक्तिकी ओर ले जाता हूँ।'

मानसिक और शारीरिक रोगोंसे ग्रस्त हो जानेपर नैराश्यपूर्ण भावनाका परित्याग कर आजहीसे उस **'आयुष्यमारोग्यकरं कल्पकोट्यघनाशनम्'** वैद्यकी शरण ग्रहण कर संसाररूप रोगके लिये सिद्ध औषधका सेवन कीजिये और इहलोकमें स्वस्थ रहकर परलोकके लिये पाथेय भी साथ ले जाइये। ये पाथेय हैं दो अक्षर 'हरि'—

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
दुःखक्लेशपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

'जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका'

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज रामायणी)

जगद्वन्द्य सूक्ष्म द्रष्टा महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने सच्छास्त्रोंके अनेक अङ्गोंका स्पर्श किया है। जीवनकी अनेक समस्याओंका समाधान किया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका यह स्पर्श, यह समाधान कहीं विस्तारसे है तो कहीं संक्षेपसे, रोगोंका अत्यन्त संक्षिप्त परंतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वर्णन श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें है।

श्रीकाकभुशुण्डिजी श्रीरामभक्तिचिन्तामणिका निरूपण करते हुए कहते हैं कि यह मणि जिस भाग्यवान्के हृदयमें निवास करती है, उसे प्रबल मानसरोग नहीं व्याप्त होते—

ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥

(७। १२०। ८)

श्रीकाकभुशुण्डिजीके इस उपदेशको हृदयङ्गम करनेके लिये श्रीगरुड़जी प्रश्न करते हैं—हे सर्वज्ञ! हे कृपालो! मानसरोग विलक्षण रोग है। अन्य प्राकृत रोगोंका परिज्ञान तो बाह्य लक्षणोंसे भी सम्भव है; परंतु मानसरोगका परिज्ञान बाह्य लक्षणोंसे कथमपि सम्भव नहीं है। रोगका लक्षण और उसके स्वरूपका विशेष ज्ञान परमावश्यक है, अन्यथा रोग-चिकित्सा सम्भव नहीं है। रोगकी चिकित्सा होनी ही चाहिये। इसलिये श्रीगरुड़जी श्रीकाकभुशुण्डिजीसे कहते हैं कि आप अत्यन्त सूक्ष्म मानसरोगोंको समझाकर कहिये—उसका भलीभाँति परिज्ञान कराइये—

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। ७)

विनतानन्दन श्रीगरुड़के अत्यन्त प्रष्टव्य प्रश्नका उत्तर श्रीकाकभुशुण्डिजीने चौबीस पंक्तियोंमें दिया है। अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर है; परंतु सर्वाङ्गपरिपूर्ण है। उसका एक-एक शब्द मननीय है—

सुनहु तात अब मानस रोगा। ......बिषय आस दुर्बलता गई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। २७, १२२। १०)

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं कि प्राकृत रोगोंसे—कायिक रोगोंसे प्रत्येक प्राणी पीडित नहीं होते हैं, उन रोगोंके रोगी सब नहीं होते हैं; परंतु मानसरोगके रोगी तो प्रायः सभी होते हैं। यह मानसरोग इतना प्रबल है कि इसने सभीको आक्रान्त कर लिया है। ***'जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा'*** और ***'एहि बिधि सकल जीव जग रोगी'***।

इन चौबीस पंक्तियोंमेंसे मात्र आधी पंक्तिकी संक्षिप्त व्याख्या यथामति यथासमय प्रस्तुत की जा रही है। इसी निदर्शन—उदाहरणसे समस्त पंक्तियोंकी गम्भीरता सुधीजन समझें।

'जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका' भौतिक ज्वरकी भाँति आध्यात्मिक ज्वर भी अनेक प्रकारके हैं, जैसे यौवन-ज्वर, काम-ज्वर, लोभ-ज्वर और मोह-ज्वर आदि।

'ज्वर' शब्दका अर्थ है—**'ज्वरति जीर्णो भवत्यनेनेति ज्वरः'** संतापार्थक 'ज्वर' धातुसे करणमें किंवा भावमें 'घञ्' प्रत्यय करनेसे 'ज्वर' शब्द निष्पन्न होता है। ज्वरके सामान्य लक्षण हैं—शरीरमें ईषत्कम्प, अङ्ग-शैथिल्य, मुखका परिशुष्क होना, शरीरका रोमाञ्चकण्टकित होना, शक्तिकी क्षीणता, स्वेदावरोध और देहमें दाह—जलनका होना—ये समस्त लक्षण प्रायः युगपत्—एक साथ शरीरमें प्रकट होते हैं—

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद् यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते॥

महाभारतके युद्धारम्भमें जब श्रीअर्जुन मोहग्रस्त हो जाते हैं, तब उनके शरीरमें उपर्युक्त समस्त लक्षण युगपत् प्रकट हो जाते हैं—

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥

(गीता १। २९, ३०)

अपने परम हितैषी सखा व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे श्रीअर्जुन कहते हैं—हे केशव!

इस कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें जो लोग समवेत हैं, उन सबको मैंने भलीभाँति देख लिया है। ये सब लोग तो मेरे स्वजन ही हैं। यद्यपि ये समस्त लोग युद्ध करनेके लिये ही समराङ्गणमें उपस्थित हैं; परंतु मेरा इनसे युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध होना कहाँतक उचित है? मेरा मन और बुद्धि—ये दोनों ही चकराने लगे हैं। हे माधव! मेरा शरीर थर-थर काँप रहा है, मेरा मुख परिशुष्क हो रहा है और मेरी देह मानो गली-सी जा रही है। मेरा समस्त अङ्ग रोमाञ्चकण्टकित हो रहा है, मेरे अन्तःकरणमें महती व्यथा हो रही है, एतावता गाण्डीव धनुष धारण करनेवाली मेरी मुट्ठी शिथिल हो रही है। हे श्रीकृष्णचन्द्र! यह गाण्डीव मेरे हाथसे छूट भी गया। यह मेरा वज्रादपि कठोर गाण्डीव, असह्य और भयंकर है; परंतु इस बन्धु-स्नेहजन्य मोहकी अद्भुत शक्ति, उस प्रचण्ड गाण्डीवकी शक्तिसे भी बढ़कर सिद्ध हो गयी है।

जिन वीरपुङ्गव श्रीअर्जुनने समराङ्गणमें किरातवेषधारी महाभयंकर प्रलयङ्कर श्रीशङ्करको भी युद्धमें प्रसन्न करके उनसे पाशुपतास्त्रकी उपलब्धि की थी, उन्हीं गाण्डीवधारी अर्जुनको इस मोहज्वर नामक मानसरोगने देखते-देखते अधिकृत कर लिया—जीत लिया। श्रीअर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—हे करुणामय! मेरी त्वचा जल रही है। मैं खड़ा रहनेमें भी स्वयंको असमर्थ पा रहा हूँ। मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है।

अपने अनन्य भक्त श्रीअर्जुनके ऊपर अपार करुणा करके महान् मानसरोग—मोहज्वरके निवारण करनेमें परम समर्थ वैद्य गीताचार्य श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीगीताजीके सत्रह अध्यायोंके उपदेशका महौषध पान कराया और अन्तमें प्रश्न किया—हे पृथानन्दन! आपने मेरे द्वारा उपदिष्ट उपदेशको क्या समाहितचित्तसे श्रवण किया है? हे धनञ्जय! क्या इस महान् उपदेशामृत महौषधसे आपका अज्ञानजन्य मोहज्वर विनष्ट हो गया है?

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥

(गीता १८।७२)

करुणामय ठाकुरजीके इस करुणामय प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीअर्जुनजी कहते हैं—हे अच्युत! आपके महान् उपदेशरूप महौषधने मेरे मोहज्वरका विनाश कर दिया है। हे स्वामिन्! आपकी मङ्गलमयी कृपासे यथार्थ तत्त्वज्ञानरूपी स्मृति भी मैंने उपलब्ध कर ली है अर्थात् सम्मोहज्वरके द्वारा क्षीणशक्तिको भी मैंने पुनः सञ्चित कर लिया है। एतावता सम्प्रति बन्धुस्नेहकारुण्य प्रवृद्ध सम्पूर्ण शोकसे विमुक्त होकर मैं सर्वथा असन्दिग्ध होकर स्वस्थभावमें स्थित हूँ। हे करुणामय! अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा—युद्धादि कर्म करूँगा।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(गीता १८।७३)

इस प्रकार सम्मोहज्वरकी भाँति अनेक ज्वर—आध्यात्मिक ज्वर शास्त्रोंमें वर्णित हैं। उनमें भी श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि 'मत्सरज्वर' और 'अविवेकज्वर' अतिशय प्रबल हैं।

मत्सरज्वर—दूसरोंकी सम्पत्तिको किंवा सम्मानको देखकर मनमें जो जलन होती है, उसे ही 'मत्सर' कहते हैं। **'असह्यपरसम्पत्तिः मत्सरः'**। ज्वरकी भाँति इसमें भी मनमें दाह होता है। 'पद्मपुराण'के अनुसार **'आत्मधिक्कार-विशेषः मत्सरः'** है अर्थात् दूसरोंकी वृद्धि देखकर अपनेको धिक्कृत करना ही, हीनभावनासे ग्रस्त होनेका नाम ही 'मत्सर' है—

निन्दति मां सदा लोका धिगस्तु मम जीवनम्।
इत्यात्मनि भवेद् यस्तु धिक्कारः स च मत्सरः॥

(पद्मपु० क्रिया० अ० १६)

अविवेकज्वर—नीतिकार कहते हैं—यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व और अविवेकिता—इन चारोंमें एक-एक अवगुण अनर्थकारी हैं। फिर यदि ये चारों ही युगपत्—एक साथ समवेत होकर एक ही पुरुषमें आ जायँ तो क्या कहना है?

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

(हितोपदेश)

शास्त्रोंमें विवेककी अनेक प्रकारकी परिभाषाएँ हैं— (१) आपसमें मिलकर एक ही वस्तु-विषयका अनेक प्रकारसे विचार करके उस वस्तु-विषयके स्वरूपका निश्चय करना विवेक है। **'परस्परव्यावृत्त्या वस्तुस्वरूपनिश्चयः विवेकः'**। (२) प्रकृति और पुरुषका

सम्यक् प्रकारेण विवेचन करके उनका परिज्ञान करना ही विवेक है। '**प्रकृतिपुरुषयोर्विभागेन ज्ञानं विवेकः**'। (३) नित्यानित्य वस्तुका परिज्ञान करना अर्थात् पूर्णब्रह्म परमात्मा ही नित्य वस्तु है। ब्रह्मव्यतिरिक्त अन्य समस्त वस्तु अनित्य है। यह निश्चय करना भी विवेक है। (४) आत्मानात्मका विवेक करना भी विवेक है। (५) सत् और असत् पदार्थका बुद्धिपूर्वक निर्धारण करना भी विवेक है। (६) सारासारतत्त्वका परिज्ञान भी विवेक है। (७) विवेककी महत्त्वपूर्ण परिभाषा है—'**हिताहितविवेक**'। कौन हमारा हितैषी है और कौन नहीं है, इसे भलीभाँति जान लेना ही विवेक है।

श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें दो प्रसंग हैं। पहला देवर्षि श्रीनारदजीका और दूसरा राजा प्रतापभानुका। इन दोनों ही प्रसंगोंमें क्रमशः उत्थान और पतनका कारण हितैषीका पहचानना और न पहचानना ही है।

श्रीनारदजीने अपने हितैषीके परखनेमें, जाननेमें, पहचाननेमें भूल नहीं की। उन्होंने अत्यन्त स्नेहिल शब्दोंमें—आत्मविश्वासपूर्ण शब्दोंमें अपनी भावनाकी अभिव्यक्ति की है।

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

(१।१३२।२)

परिणामस्वरूप श्रीनारदका सर्वविध अमङ्गल नष्ट हो गया और उनका सब प्रकारसे मङ्गल सम्पन्न हो गया। श्रीहरिने उनके परमहितका आश्वासन स्वयं श्रीमुखसे दिया—

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

(१।१३२)

इसके विपरीत राजा प्रतापभानुने कपटी मुनिको अपने हितू—हितैषीके रूपमें वरण कर लिया—

तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउँ कोउ॥

(रा०च०मा० १।१६६)

परिणामस्वरूप राजा प्रतापभानुका सब प्रकारसे प्रशस्त जीवन नष्ट हो गया। '***सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा***'।

इस प्रकार हिताहितका परिज्ञान ही विवेक है। उपर्युक्त सभी प्रकारके भावोंका ग्रहण 'विवेक' शब्दमें समाहित है। विवेकका न होना ही 'अविवेक' है। '**न विवेको यस्य सः**'।

यह अविवेक ही ज्वर है और मत्सर भी ज्वर है। इन दोनों प्रकारके ज्वरोंका तथा अन्य सभी प्रकारके मानस-रोगोंका विनाश दशरथनन्दन कौसल्यानन्दसंवर्द्धन रघुनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रकी अहैतुकी कृपाके द्वारा ही सम्भव है। इसलिये प्राणिमात्रको अशरणशरण अकारणकरुण करुणासागर श्रीरामजीकी करुणाका अवलम्बन लेना चाहिये—भजन करना चाहिये।

मानसायुर्वेद-परिचय

(आचार्य श्रीकिशोरजी व्यास)

महाराष्ट्रके संत श्रीगुलाबराव महाराज एक अलौकिक विभूति रहे। ई० सन् १८८१—१९१५ तक उनका जीवन-काल रहा। विदर्भके सामान्य किसान-परिवारमें जनमे इस बालान्ध प्रज्ञाचक्षु संतने अपनी चौंतीस वर्षकी जीवनावधिमें जो लीलाएँ कीं तथा जिस अपूर्व रीतिसे पारमार्थिक मार्गदर्शन किया, वह तो विशाल ग्रन्थका विषय तथा धार्मिक जगत्के लिये एक अनोखी धरोहर है। उनका सारा जीवन ही लोकोत्तर चमत्कारोंसे भरा हुआ है, जिसे पढ़कर वैदिक सनातन-धर्मके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके प्रति साधकोंकी आस्था दृढ़ हो जाती है। उनके जीवन-कालमें घटित प्रसंगोंको दूर रखकर उनके द्वारा निर्मित साहित्यका भी विचार किया जाय तो मन आश्चर्यमें डूब जाता है। संत श्रीज्ञानेश्वरजी महाराजसे कृपा-प्राप्त इन महात्माने जो उपदेश किया, उसमेंसे केवल एक-तिहाई अंश ही उस समय लिपिबद्ध हो पाया और यह एक तृतीयांश साहित्य भी एक सौ तीस ग्रन्थोंसे अधिक है तथा वेदोंसे लेकर आधुनिकतम विज्ञानतक लगभग सभी विषयोंका गहन प्रतिपादन तथा बेजोड़ समीक्षा उसमें उपलब्ध होती है। आर्य ऋषियोंके समस्त सिद्धान्त सर्वथा सत्य हैं—इसे बुद्धिनिष्ठ तर्कोंसे

प्रमाणित किया जाय, यही श्रीमहाराजके सम्पूर्ण वाङ्मय-निर्माणकी एकमात्र प्रेरणा तथा प्रतिज्ञा है।

योग, वेदान्त, दर्शनशास्त्र, भक्तिशास्त्र तथा संगीत आदि अनेक विषयोंके समान श्रीमहाराजने आयुर्वेदमें भी मौलिक लेखनका सूत्रपात किया है। उनके मानसायुर्वेद, भिषगीन्द्रशचीप्रभा, वैद्यनन्दिनी, वैद्यवृन्दावन, भिषक्पाटव-जैसे लघु ग्रन्थोंसे इस विषयके गहन ज्ञानका अनुमान किया जा सकता है। दैववशात् ये ग्रन्थ पूर्ण नहीं हो पाये, किंतु सम्प्रति जो उपलब्ध हैं वे भी आरोग्यप्राप्ति तथा रोग-चिकित्सामें सर्वथा नूतन दृष्टि प्रदान करनेमें समर्थ हैं। श्रीमहाराजके संस्कृत और मराठी भाषामें किये गये आयुर्वेदविषयक मार्गदर्शनका सार प्रस्तुत करनेका यहाँ प्रयास किया गया है—

श्रीमहाराजकी आयुर्वेदविषयक ग्रन्थ-रचना केवल व्याधि ठीक करनेके लिये ही नहीं, अपितु पामर-विषयी-मुमुक्षु तथा सिद्ध—इन सभीको स्वास्थ्य लाभ होकर यथाक्रम चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति हो सके—यह दृष्टि रखते हुए हुई है। पारमार्थिक साधकके लिये भी शरीर नीरोग तथा मन स्वस्थ रखना आवश्यक है। उत्तम स्वास्थ्य परमार्थ-साधनाका भी महत्त्वपूर्ण सोपान है, इसलिये यह विषय धार्मिक लोगोंके लिये भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आयुर्वेदके अनुसार व्याधि-चिकित्साके दो अङ्ग हैं—'रोगानुत्पादनीय' अर्थात् व्याधि हो ही नहीं इसलिये प्रयास किया जाय और 'रोगनिवर्तनीय' अर्थात् व्याधि उत्पन्न होनेपर उसे दूर करनेका प्रयास किया जाय। इनमें आयुर्वेदकी दृष्टिसे प्रथम अङ्गका महत्त्व अधिक है। दैनन्दिन जीवन-व्यवहारकी रचना ही ऐसी हो कि रोग हो ही नहीं। इस अङ्गकी ओर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है। रोगका प्रादुर्भाव हो ही नहीं, इसलिये यह जानना आवश्यक है कि रोगोंका मूल कारण क्या है?

श्रीमहाराजने प्राचीन ग्रन्थोंका प्रमाण देते हुए प्रतिपादन किया है कि रोगोंका मूल कारण चित्त-विकार अथवा अशुद्ध चित्त है। अशुद्ध चित्तके तीव्र संवेगसे दोष प्रादुर्भूत होते हैं और दूषित चित्त रोगोंका मूल कारण है—

तीव्ररागाद् भवेद् वातो द्वेषात् पित्तं प्रजायते।
कफः संजायते मोहात् तमसोऽपि जडः स्मृतः॥
अतश्चित्तमशुद्धं हि तीव्रं चेद् दोषतामियात्।
रागादिदूषितं चित्तं गदजालं तनोति हि॥

(मानसायुर्वेद)

अर्थात् आसक्तिके तीव्र संवेगसे वात, द्वेषके तीव्र संवेगसे पित्त और मोहके तीव्र संवेगसे कफ दूषित हो जाता है। तमके तीव्र संवेगसे जडताका उत्पन्न होना बतलाया गया है। जब जडता उत्पन्न हो जाती है, तब चित्तमें अशुद्धि आ जाती है। राग आदिसे दूषित चित्त अनेक रोगोंका कारण बन जाता है।

'**कामशोकभयाद् वायुः क्रोधात् पित्तम्०**' ऐसा कहकर माधवनिदानकार भी इसीका प्रतिपादन करते हैं।

रोग तीन प्रकारके होते हैं—कर्मज, दोषज तथा उभयज। कर्मज वे हैं जो अयोग्य कर्मसे उत्पन्न होते हैं। दोषज वे हैं जो त्रिदोषोंसे उत्पन्न होते हैं और दोनोंसे उत्पन्न उभयज कहलाते हैं। कर्मज रोग औषधिसे नहीं, जप-तप-अनुष्ठानादि कर्मोंसे दूर होते हैं। दोषज रोग औषधिसे ठीक होते हैं और उभयज रोग औषधिसे दबते हैं, किंतु फिर प्रादुर्भूत होते हैं तथा औषधिके साथ-साथ जप-तप-दान आदिसे नष्ट होते हैं।

जिससे पीडा होती है, वे सभी रोग कहे जा सकते हैं। इन रोगोंके फिर चार प्रकार होते हैं—(१) शारीरिक, (२) मानसिक, (३) आगन्तुक तथा (४) स्वाभाविक। शरीरको होनेवाले शारीरिक, मनको होनेवाले मानसोन्माद (हिस्टीरिया) तथा काम, क्रोध और शोक आदि मानसिक कहे जाते हैं। आगन्तुक यानी दैवी दुर्घटना—जैसे बिजली गिरना आदि है। भूख-प्यास आदि जन्मसे ही रोज अनुभूत पीडाएँ स्वाभाविक हैं। शरीर-रोग औषधिसे दूर होते हैं। मानसरोग धैर्यसे अथवा उत्तम धर्मपालनसे दूर होते हैं। आगन्तुक रोग दैवी शान्ति तथा औषधिसे दूर होते हैं।

आयुर्वेदमें त्रिदोषका विचार है। वह महत्त्वपूर्ण भी है, किंतु आयुर्वेदने प्रायः बहुतसे रोगोंका कारण त्रिदोष है ऐसा कहनेपर भी सभी रोगोंका कारण त्रिदोष नहीं कहा है। मुख्यतया मनोविकृतिको सभी रोगोंका कारण कहा है। दोष कर्मोंसे नियन्त्रित होते हैं तथा गलत कर्मका कारण प्रज्ञापराध है—ऐसा वृद्ध वाग्भटके

भूतोन्माद प्रकरणमें कहा गया है। चरकाचार्यजीने जनपदोध्वंसनीय नामक तृतीयाध्यायमें यही संकेत किया है। मनोविकारोंसे ही त्रिदोषोत्पत्ति कही है। त्रिदोषोंसे मनोविकारोंका प्रादुर्भाव नहीं कहा है।

कामशोकभयाद् वायुः क्रोधात् पित्तं त्रयो मलाः।

ऐसा माधवनिदानकारने स्पष्ट कहा है। वाग्भटने भी—

रागादिरोगान् सततानुषक्ता-
नशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदाञ्झघान
योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै॥

—इस अपने मङ्गलाचरणमें सभी रोगोंका कारण मनोविकार ही है, यह स्पष्टरूपसे मान्य किया है।

श्रीमहाराजकी दृष्टिसे आयुर्वेदने रोगोंका मूल कारण जन्तु (कीटाणु) नहीं माना है, अपितु मनोविकारोंके कारण रोगके कीटाणुओंका प्रादुर्भाव माना है। कीटाणु रोगका कारण नहीं, लक्षण हैं। मुख्यतया पहले विभिन्न सूक्ष्म मनोविकारोंके कारण इन कीटाणुओंका निर्माण होता है और वे रोगके सहकारी कारण बनकर व्याधिको प्रकट तथा वृद्धिंगत करते रहते हैं। सभी रोगोंका मूल कारण तो अशुद्ध चित्त ही है।

इसीलिये व्याधि-चिकित्सामें सर्वप्रथम व्याधिका निर्माण ही न हो इसलिये चित्तको शुद्ध रखना सर्वाधिक आवश्यक है। चित्त काम-क्रोध-भय-शोक तथा मत्सर आदि विकारोंसे सर्वथा मुक्त रहे तो व्याधिका प्रादुर्भाव ही न हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीवन यदि धार्मिक, सदाचार-सम्पन्न होगा तो आरोग्य तथा दीर्घ आयुका लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

इसीलिये महाराज अपनी मानसायुर्वेद-संहितामें कहते हैं—

सर्वेषामेव रोगाणामधर्मं कारणं महत्।
आरोग्यकारको धर्मो वैद्यशास्त्रेऽपि बोधितः॥

तथा—

प्रसन्नचेतसः सौख्यमारोग्यं च भवेत् सदा।
अप्रसन्नस्य चित्तस्य रोगाः सर्वे भवन्ति हि॥

सदाचारसम्पन्न शान्त मन ही सभी ज्वरोंके नाश करनेका सही उपाय है यही वाग्भटाचार्य कहते हैं—

करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम्।

(अष्टाङ्गहृदय चिकित्सा-स्थान)

रोग-चिकित्सामें औषधियोंका लाभ भी इसी कारणसे होता है कि औषधियोंमें चन्द्रमासे रस आता है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥

और चन्द्रमाका आविर्भाव भी समष्टि मनसे ही हुआ है—

चन्द्रमा मनसो जातः।

(पुरुषसूक्त)

तात्पर्य यह कि समष्टि मनसे उद्भूत चन्द्रमासे प्राप्त रस ओषधियोंमें आकर औषधिके माध्यमसे व्यष्टि मनपर अनुकूल परिणाम करके सूक्ष्म मनोदोषोंका निवारण करते हुए ही स्थूल रोगका निवारण करता है। सत्त्वगुणसम्पन्न मनमेंसे यह सोमप्रवाह रोगीको अमृतमय करके रोगमुक्त करता है। इसी कारण वाग्भटने जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, सत्यवादी धार्मिक पुरुषको 'रसायन' यानी सभी व्याधियोंका निवारणकर्ता कहा है—

सत्यवादिनमक्रोधमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।
सद्वृत्तनिरतं शान्तं विद्यान्नित्यं रसायनम्॥

स्पष्ट है कि धर्मसम्पन्न सदाचारी जीवन तथा संत-संगतिसे व्याधियोंका समूल नाश होना सम्भव है।

ये सभी विचार इसलिये महत्त्वपूर्ण हैं कि भौतिकताकी चकाचौंधमें विषयोंके पीछे पागल होकर सुख चाहनेवालोंका भ्रम मिट जाय और धर्माचरण, भगवद्भक्ति तथा सत्संगतिकी महत्ताका आकलन हो जाय तो सभीका परम कल्याण होगा। आर्य वैद्यकशास्त्र ईश्वरनिष्ठा तथा आध्यात्मिक नींवपर खड़ा है और इसीके स्वीकारसे सभीका ऐहिक तथा पारमार्थिक पूर्ण हित होना सम्भव है। एक महत्त्वपूर्ण विषयका यह स्वल्प परिचयमात्र है।

आयुष्कालका रहस्य या आयुकी अभिवृद्धि

(डॉ० श्रीत्रिभोवनदास दामोदरदासजी सेठ)

दुर्लभ मनुष्यदेह बार-बार नहीं मिलता। इसलिये हृदयमें हरि-नामसे प्रेम धारण करनेका प्रयत्न करो। यदि एक बार दृढ़ निश्चय कर लो कि प्रभु-प्राप्ति करके ही रहूँगा तो फिर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हें प्रभु-प्राप्तिके मार्गसे हटा दे। भगवत्साक्षात्कार करके मानवजीवनको धन्य तथा सफल बनाना है। इसके लिये आयुवृद्धि और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये प्रयत्नशील रहना अपना कर्तव्य है—

आचार्य कहते हैं—**'इदं शरीरं खलु धर्मसाधनम्।'** तथा—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम्॥

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये नीरोग तथा स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है। इसलिये शरीरकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये।' वेदमें भी दीर्घ जीवनकी प्राप्तिके लिये बार-बार कहा गया है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ (अथर्ववेद १९।७१।१)

'ब्राह्मणोंको पवित्र करनेवाली, वरदान देनेवाली वेदमाता गायत्रीकी हम स्तुति करते हैं। वे हमें आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करके ब्रह्मलोकमें जायें।'

इस मन्त्रमें सबसे प्रथम आयुका उल्लेख किया गया है। आयुके बिना प्रजा, कीर्ति, धन आदिका कुछ भी मूल्य नहीं है। आत्माके बिना देहका कोई मूल्य नहीं। यही बात आयुके विषयमें है। सौ वर्षकी आयुके लिये अनेक प्रार्थनाएँ देखनेमें आती हैं।

दीर्घ जीवनके लिये अथवा मृत्युको दूर करनेके लिये छः बातें आवश्यक हैं—(१) ब्रह्मचर्य, (२) प्राणायाम, (३) प्रणव-जप, (४) सिद्ध पुरुषकी कृपा, (५) ओषधि तथा रसायन-सेवन और (६) मिताहार। आयुकी रक्षा और वृद्धिके ये छः स्तम्भ हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवभ्यः स्वराभरत्॥

(अथर्ववेद ११।५।१९)

'ब्रह्मचर्यरूपी तपसे विद्वानोंने मृत्युको दूर हटा दिया। इन्द्रने भी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे देवताओंको सुख और तेज प्रदान किया।' यह मन्त्र आज्ञा देता है कि मृत्युको दूर करनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करो। ब्रह्मचर्यकी महिमाको मनुष्यने जबसे भुलाया, तभीसे उसका अधःपतन आरम्भ हो गया। जीवनमें उबाल, मेधाकी अप्रतिम शक्ति, जीवनकी मस्ती, यौवनका सात्त्विक उल्लास, आकृतिका ओजस्, वाणीकी दृढ़ता, कार्यकी दृढ़ता, सच्चे साहसकी स्वाभाविकता, जीवनमें चापल्य और चाञ्चल्य—ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्यके चिह्न हैं।

वैज्ञानिकोंने यह निश्चय किया है कि ८० पाउंड भोजनसे ८० तोला खून बनता है और ८० तोला खूनसे दो तोला वीर्य बनता है। एक मासकी कमाई डेढ़ तोला वीर्य है। एक बार ब्रह्मचर्य-भङ्ग होनेसे लगभग डेढ़ तोला वीर्य निकलता है। इससे आयु घटती जाती है। कठिन परिश्रमसे प्राप्त की हुई शक्तिको एक बारमें नष्ट कर देना कैसी मूर्खता है। यही वीर्य यदि नष्ट न हो, तो ओजस् बनकर सारे शरीरको तेजस्वी बना देता है। इसी कारण कहा है—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।'

'वीर्यका नाश मृत्यु है और वीर्यकी रक्षा जीवन है।'

गुरुके सांनिध्यमें रहकर प्राणायाम करना सीखना चाहिये और फिर उसका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। स्वरोदयके अनुसार एक दिनमें अर्थात् चौबीस घंटेमें मनुष्यके औसत इक्कीस हजार छः सौ श्वास चलते हैं। उनमें जितनी कमी की जाय उतनी ही आयु बढ़ जाती है तथा जितने ही श्वास बढ़ते हैं, उतनी ही आयु घट जाती है।

मैथुनक्रिया, क्रोध, उत्तेजना, हिंसा, आवेश, अतिहर्ष, दौड़ना आदिमें श्वास जल्दी-जल्दी चलकर बढ़ जाते हैं, जिससे आयु घटती है और प्राणायाम, ध्यान, शान्ति, क्षमा, ब्रह्मचर्य, नम्रता, धीरे-धीरे चलना आदिमें श्वास

धीमी गतिसे चलते हैं, अतः आयु बढ़ती है। आयुकी अवधि श्वासोंपर निर्धारित है, कालपर नहीं। आयुके घटने-बढ़नेका यह रहस्य निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। मनुष्यको जहाँतक हो सके, जल्दी-जल्दी और लघु श्वास नहीं लेना चाहिये, प्रत्युत ऐसी आदत डालनी चाहिये कि श्वास लंबा हो और धीरे-धीरे चले। प्राणायाम इसका एक मुख्य साधन है। परंतु प्रत्येक मनुष्य प्राणायाम नहीं कर सकता, इसलिये दीर्घ श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नीचे लिखे अनुसार करनेसे उद्देश्यकी सिद्धि हो सकती है।

प्रत्येक मनुष्यको प्रातः सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग करके स्नान करे। तत्पश्चात् पृथिवीपर कम्बल या दरी बिछाकर सिरके नीचे बिना कोई तकिया रखे लेट जाय। हाथ-पैरको ढीला रखे। कमरका बन्धन ढीला करे और मुँह बंद करके नाकसे श्वास ले। श्वास इस प्रकार ले कि नाभिके साथ-साथ पेट फूलता जाय। इस प्रकार पेट भर जानेपर मुँह बंद रखते हुए नाकके द्वारा यों श्वास छोड़े कि धीरे-धीरे पेट बैठता चला जाय। नाकसे श्वास लेने और छोड़नेका समय एक-सा होना चाहिये। परंतु यह समय घड़ीसे मापना ठीक नहीं। प्रभुकी प्रार्थनासे एक चरण-पद लेकर मनमें एक बार जबतक पाठ होता रहे, तबतक श्वास ले; और पश्चात् वही पाठ एक बार होता रहे, तबतक श्वास छोड़े। पश्चात् जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाय, वैसे-वैसे प्रार्थनाके पाठकी मात्रा बढ़ाता जाय। उसका दूसरा चरण ले ले (अथवा प्रार्थनाके स्थानमें भगवान्के नामका जप करता रहे)। अर्थात् जितने समयमें चौबीस अक्षरका उच्चारण हो, उतने समयतक श्वास लेने और उतने ही समयतक श्वास छोड़नेका अभ्यास करे। इस प्रकार कम-से-कम सात बार और अधिक-से-अधिक इक्कीस बार श्वास लेने-छोड़नेका नियमित अभ्यास करे। यह विशेष रूपसे याद रखे कि श्वास लेनेमें वायु नाभिपर्यन्त पहुँचता है या नहीं और श्वास छोड़ते समय नाभि खाली हो जाती है या नहीं। इस प्रकार क्रिया करनेके बाद दिन-रात यह ध्यान रखे कि श्वास छोटा तो नहीं हो रहा है। इसकी परीक्षा स्वयं ही की जा सकती है।

यदि यह क्रिया बराबर होती रहेगी तो इसे करनेवालेका मल साफ उतरेगा, पेशाब ठंडा होगा, भूख खूब लगेगी। खाया हुआ भोजन अधिक पचेगा, आँखका तेज बढ़ेगा। सिरमें आनेवाला चक्कर और दिमागकी गरमी शान्त होगी। शरीरमें शक्ति बढ़ने लगेगी।

किंतु यह क्रिया ठीक न होती होगी तो श्वास लेनेकी अपेक्षा छोड़नेमें समय कम लगेगा। ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त गुणोंकी अपेक्षा विरुद्ध परिणाम निकलेगा। यदि कभी आवश्यक कार्यवश अधिक श्रम होनेके कारण श्वास जोर-जोरसे चलने लगे तो घबराकर मुँहसे श्वास न ले। अपितु मुँह बंद रखकर नाकसे श्वास लेते रहनेसे थोड़ी ही देरमें श्वास नियमित हो जायगा और थकावट दूर हो जायगी।

जैसे-जैसे नाभिसे श्वास निकालकर बाहर हवामें फेंका जायगा और बाहर हवामें शुद्ध हुए श्वासको नाकके द्वारा नाभिपर्यन्त पहुँचाया जायगा, वैसे-वैसे विष्णुपादामृतकी प्राप्ति अधिकाधिक होती जायगी; इस प्रकार दीर्घ जीवन प्राप्त करनेमें सफलता मिलेगी।

प्रणव-मन्त्रके जपसे आयु बढ़ती है। तैलधारावत् इस मन्त्रका जप श्वास-श्वासमें चलना चाहिये। नाडीके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे बहुत शीघ्र प्रगति होती है। श्वास-प्रश्वासकी गति तालबद्ध बनती है। धातु और रसायनके विशेष योगसे विद्युत्-शक्ति प्रकट होती है। इसी प्रकार श्वास-प्रश्वासके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे अमोघ शक्ति उत्पन्न होती है। अखण्ड गतिसे जप करनेसे मन उसमें स्थिर हो जाता है। जैसे चुंबकके सामने लोहा रखनेसे तुरंत ही वह लोहेको खींच लेता है, केवल चुंबककी शक्तिके पास लोहा आना चाहिये; इसी प्रकार अखण्ड प्रणव-मन्त्रका जप चुंबकके समान है, चित्तवृत्तियाँ लोहेके समान हैं। ये दोनों समीप आ जायँ तो प्रणव-मन्त्रका जप वृत्तियोंको खींच लेता है और वृत्तियाँ प्रणवमय बन जाती हैं। इस प्रकार दीर्घ जीवन और प्रभु-प्राप्तिकी साधना—दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हैं और जीवनका ध्येय सफल हो जाता है।

सिद्ध पुरुषकी कृपा भी इसमें विशेषरूपसे सहायक होती है। यदि ऐसे पुरुषकी कृपा हो तो दीर्घ जीवन और प्रभु-प्राप्ति दोनों ही सत्वर प्राप्त होते हैं।

मुमुक्षु आत्मसाक्षात्कार तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। परंतु इसका साधन भी शरीर

ही है। यदि बीचमें ही शरीरका पतन हो जाय तो अन्तिम लक्ष्य-स्थानतक पहुँचनेमें दीर्घ कालतक समय बिताना पड़ता है। बार-बार जन्म लेने और देह-त्याग करनेमें बहुत समय नष्ट होता है। अतएव किसी भी उपायसे शरीर सशक्त और स्वस्थ बना रहे तथा दीर्घ कालतक टिका रहे तो प्रभुकी प्राप्तिमें सहायक हो सकता है। शरीरको बलवान् बनानेमें शास्त्रोक्त औषध और रसायनका सेवन भी बहुत काम करता है। कायाकल्पके प्रयोगसे शरीरको फिर तरुण-जैसा बलवान् बनाया जा सकता है। अमृत पीनेसे यह देह अमर हो जाता है। बहुतसे योगियोंका मत है कि हमारे परम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि आज भी अपने असली शरीरसे विद्यमान हैं। अश्वत्थामाके विषयमें भी यही बात कही जाती है। अतएव औषध और रसायनका सेवन करनेसे अपने ध्येयमें पर्याप्त सहायता मिलती है।

मिताहार शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मिताहारका अर्थ है—पेटमें दो भाग भोजनसे, एक भाग जलसे भरे और एक भाग हवाके लिये खाली रखे। खाना तभी चाहिये जब भूख लगे।

आयुकी वृद्धि एवं जीवनके परम लक्ष्य प्रभुकी प्राप्तिके उपर्युक्त छः उपायोंका श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक पालन करके जीवनको सफल बनाना चाहिये।

प्राणवायु और आयुका सम्बन्ध

(आचार्य पं० श्रीचन्द्रभूषणजी ओझा)

अनन्त ब्रह्माण्डमें प्राण-तत्त्व ही चेतना-समुद्रकी तरह हिलोरा ले रहा है। ब्रह्म चेतनाकी ऊर्जा अर्थात् विश्वव्यापी शक्ति चेतना ही 'प्राण' है। 'प्राण' मात्र श्वास नहीं है, प्रत्युत वह तत्त्व है, जिससे श्वास-प्रश्वास आदि समस्त क्रियाएँ एक जीवित शरीरमें होती हैं।

प्राण ही ब्रह्म तथा विराट् है, वही सबका प्रेरक है। इसीसे सभी उसकी उपासना करते हैं। प्राण ही सूर्य है, चन्द्रमा है और वही प्रजापति है।

सृष्टिके आरम्भमें पाँचों स्थूल भूतों, लोक-लोकान्तर और सम्पूर्ण जङ्गम तथा स्थावर पदार्थ अपने उपादानकारण आकाशसे प्राण-शक्तिद्वारा उत्पन्न होते हैं, इसी प्राण-शक्तिद्वारा आश्रय पाकर जीवित रहते हैं और प्रलयके समय इसीका आश्रय न पाकर कार्यरूपसे नष्ट होकर अपने कारणरूप आकाशमें मिल जाते हैं। ये सभी भूत प्राणमें लीन होते हैं और प्राणसे प्रादुर्भूत होते हैं। देवता, मनुष्य तथा पशु आदि भी प्राणके सहारे ही साँस लेते हैं। इसीलिये प्राण ही सभी जन्तुओंकी आयु है, यही कारण है कि इसको 'सर्वायुष्' कहा जाता है। शरीररूपी पुरीमें निवास करनेसे तथा उसका स्वामी होनेके कारण 'प्राण' ही पुरुष कहा जाता है। जबतक इस शरीरमें प्राण है तभीतक जीवन है।

श्रुतिमें प्राणको प्रत्यक्ष मानकर उसका अभिनन्दन किया गया है—**वायो त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि** (ऋग्वेद)। अर्थात् प्राणवायु! आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। प्राण ही जगत्का कारण-ब्रह्म है। मन्त्रज्ञान तथा पञ्चकोश प्राणपर ही आधारित हैं। प्राणको ही ऋषि माना गया है। मन्त्र-द्रष्टा ऋषियोंको उनके शरीरके आधारपर नहीं वरन् प्राणके ही आधारपर 'ऋषित्व' प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि विभिन्न ऋषियोंके नामसे उसका ही उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ इन्द्रियोंके नियन्त्रणको '**गृत्स**' और कामदेवको '**मद**' कहते हैं, ये दोनों ही कार्य प्राणशक्तिके द्वारा सम्पन्न होते हैं, इसलिये उन ऋषिको '**गृत्समद**' कहते हैं। '**विश्वं मित्रं यस्य असौ विश्वामित्रम्**' तात्पर्य यह कि प्राणका अवलम्बन होनेसे यह समस्त विश्व मित्र है, इसलिये विश्वामित्र कहा गया। इसी प्रकार वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ आदि प्राणके अनेक नाम ऋषि-बोधक हैं।

काया-नगरीमें प्राणवायु ही राजा है—'**कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः**।' अर्थात् देवता, मनुष्य, पशु और समस्त प्राणी प्राणसे ही अनुप्राणित हैं। प्राण ही जीवन है। इस प्राण-शक्तिका एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। योग-साधनासे इस विज्ञानको प्रत्यक्ष अनुभूत किया जाता है। जिसने अपने सोते हुए प्राणको जगा लिया, उसके लिये सब ओर जाग्रत्-ऊर्जाका स्रोत प्रवाहित होने लगा।

मानव-शरीरमें वृत्तिके कार्यभेदसे इस प्राणवायुको मुख्यतया दस भिन्न-भिन्न नामोंसे विभक्त किया गया है—

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजयः॥

(गोरक्षसंहिता)

अर्थात् प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय—ये दस प्रकारके प्राण-वायु हैं।

श्वासको अंदर ले जाना और बाहर निकालना, मुख और नासिकाद्वारा उसे गतिशील करना, भुक्त अन्न-जलको पचाना और अलग करना, अन्नको पुरीष तथा पानीको पसीना और मूत्र तथा रसादिको वीर्य बनाना **प्राणवायु**का ही कार्य है। यह हृदयसे लेकर नासिकापर्यन्त शरीरके ऊपरी भागमें वर्तमान है। ऊपरकी इन्द्रियोंका काम इसके आश्रित है। **अपानवायु**का कार्य गुदासे मल, उपस्थसे मूत्र और अण्डकोशसे वीर्य निकालना तथा गर्भ आदिको नीचे ले जाना एवं कमर, घुटने और जाँघका कार्य करना है। **समानवायु** देहके मध्य भागमें नाभिसे हृदयतक वर्तमान है। पचे हुए रस आदिको सब अङ्गों और नाडियोंमें बराबर बाँटना इसका कार्य है। कण्ठमें रहता हुआ **उदानवायु** सिरपर्यन्त गति करनेवाला है। शरीरको उठाये रखना इसका काम है। इसके द्वारा शरीरके व्यष्टि प्राणका समष्टि प्राणसे सम्बन्ध होता है। उदानद्वारा ही मृत्युके समय सूक्ष्म शरीरको स्थूल शरीरसे बाहर निकालना तथा सूक्ष्म शरीरके कर्म, गुण, वासनाओं और संस्कारोंके अनुसार गर्भमें प्रवेश होना है। योगिजन इसीके द्वारा स्थूल शरीरसे निकलकर लोकलोकान्तरमें घूम सकते हैं। **व्यान**का मुख्य स्थान उपस्थ-मूलसे ऊपर है। सम्पूर्ण स्थूल और सूक्ष्म नाडियोंमें गति करता हुआ यह शरीरके सभी अङ्गोंमें रुधिरका संचार करता है। **नागवायु** उद्गार (छींकना) आदि, **कूर्मवायु** संकोचन, **कृकरवायु** क्षुधा-तृष्णादि, **देवदत्तवायु** निद्रा-तन्द्रा आदि और **धनंजयवायु** पोषण आदिका कार्य करता है।

प्राणोंको अपने अधिकारमें चलानेवाले मनुष्यका अधिकार उसके शरीर, इन्द्रियों तथा मनपर हो जाता है। प्राणोंको अपने वशमें करनेका नाम 'प्राणायाम' है। प्राणायामसे मनुष्य स्वस्थ एवं नीरोग तथा दीर्घायु रहकर मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर सकता है। मनका प्राणसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनको रोकना अति कठिन है, पर प्राणके निरोधसे मनका निरोध सुगम हो जाता है। इसीलिये प्राणायामका मनुष्य-जीवनमें आत्यन्तिक महत्त्व है।

सूक्ष्म प्राण—मनुष्यके शरीरमें प्राणप्रवाहिनी नाडियाँ असंख्य हैं, इनमें पंद्रह प्रमुख हैं—(१) सुषुम्णा, (२) इडा, (३) पिंगला, (४) गांधारी, (५) हस्तिजिह्वा, (६) पूषा, (७) यशस्विनी, (८) शूरा, (९) कुहू, (१०) सरस्वती, (११) वारुणी, (१२) अलम्बुषा, (१३) विश्वोदरी, (१४) शङ्खिनी और (१५) चित्रा।

'सुषुम्णा, इडा, पिंगला'—ये तीन नाडियाँ प्रधान हैं। इन तीनोंमें सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है। यह नाडी अति सूक्ष्म नलीके सदृश है, जो गुदाके निकटसे मेरुदण्डके भीतरसे होती हुई मस्तिष्कके ऊपर चली गयी है। इसी स्थानसे इसके वामभागसे इडा और दक्षिणभागसे पिंगला नासिकाके मूलपर्यन्त चली गयी है। वहाँ भ्रूमध्यमें ये तीनों नाडियाँ परस्पर मिल जाती हैं। सुषुम्णाको सरस्वती, इडाको गङ्गा और पिंगलाको यमुना भी कहते हैं। गुदाके समीप जहाँ ये तीनों नाडियाँ पृथक् होती हैं, उनको 'मुक्त-त्रिवेणी' और भ्रूमध्यमें जहाँ ये तीनों पुनः मिल गयी हैं, उनको 'युक्त-त्रिवेणी' कहते हैं।

इडाको चन्द्रनाडी और पिंगलाको सूर्यनाडी कहते हैं। जब बायें नथुनेसे श्वास अधिक वेगसे निकले या चलता रहे तो उसे इडा या चन्द्रस्वर कहते हैं और जब दायेंसे अधिक वेगसे निकले तो उसे पिंगला या सूर्यस्वर कहते हैं। जब दोनों नथुनोंसे श्वास समान गतिसे अथवा एक क्षण एक नथुनेसे दूसरे क्षण दूसरे नथुनेसे निःसृत हो तो उसे सुषुम्णास्वर कहते हैं।

स्वस्थ मनुष्यका स्वर प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयके समयसे ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे क्रमशः एक-एक नथुनेसे चला करता है। इस प्रकार एक दिन-रातमें बारह बार बायें और बारह बार ही दायें नथुनेसे क्रमानुसार श्वास चलता है। शारीरिक विकार एवं रोगकी अवस्थामें स्वर अनियमित चलने लगते हैं। जुकामकी अवस्थामें अपने प्रयत्नद्वारा स्वरको बदलनेसे रोग-निवृत्तिमें बड़ी सहायता मिलती है।

जब इडा अर्थात् चन्द्र वामस्वर चल रहा हो तो स्थायी कार्य करना चाहिये। इसमें अल्प श्रम और प्रबन्धकी आवश्यकता हो तथा दूध-जल आदि तरल पदार्थोंके पीने,

पेशाब करने, यात्रा और भजन-साधन आदि शान्तिके कार्य करने चाहिये। पिंगला अर्थात् सूर्य दायें स्वर चलनेके समय अधिक कठिन कार्य करने चाहिये, जिसमें अधिक परिश्रम अपेक्षित हो तथा कठिन यात्रा, परिश्रमके कार्य, भोजन, शौच, स्नान और शयन आदि करने चाहिये।

जब दोनों स्वर सम अथवा एक-एक क्षणमें बदलते हुए चल रहे हों तो इस स्थितिमें योग-साधन तथा सात्त्विक धर्मार्थकार्य करने चाहिये। यदि सुषुम्णास्वर नहीं चल रहा हो तो ध्यानादिसे पूर्व प्राणायाम अवश्य करना चाहिये।

सामान्यतया प्राणायाम श्वासोच्छ्वासकी एक व्यायाम-पद्धति है, जिससे फेफड़े बलिष्ठ होते हैं, रक्त-संचारकी व्यवस्था सुधरनेसे समग्र आरोग्य एवं दीर्घ आयुका लाभ मिलता है। शरीर-विज्ञानके अनुसार मानवके दोनों फेफड़े साँसको अपने भीतर भरनेके लिये वे यन्त्र हैं जिनमें भरी हुई वायु समस्त शरीरमें पहुँचकर ओषजन अर्थात् आक्सिजन प्रदान करती है और विभिन्न अवयवोंसे उत्पन्न हुई मलिनता (कार्बोनिक गैस)-को निकालकर बाहर करती है। यह क्रिया ठीक तरह होती रहनेसे फेफड़े मजबूत होते हैं और रक्त-शोधनका कार्य चलता रहता है।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि अधिकांश व्यक्ति गहरी साँस लेनेके अभ्यस्त नहीं होते हैं, वे उथली साँस ही लेते हैं, जिससे फेफड़ोंका लगभग एक चौथाई भाग ही कार्य करता है, शेष तीन चौथाई भाग लगभग निष्क्रिय पड़ा रहता है। शहदकी मक्खीके छत्तेकी तरह फेफड़ोंमें प्राय: सात करोड़ तीस लाख 'स्पंज' जैसे कोष्ठक होते हैं। साधारण हलकी साँस लेनेपर उनमेंसे लगभग दो करोड़ छिद्रोंमें ही प्राणवायुका संचार होता है, शेष पाँच करोड़ तीस लाख छिद्रोंमें प्राणवायु न पहुँचनेसे ये निष्क्रिय पड़े रहते हैं। परिणामत: इनमें जड़ता और गंदगी जमने लगती है, जिससे क्षय (टी०बी०), खाँसी, ब्रौंकाइटिस आदि भयंकर रोगोंसे व्यक्ति आक्रान्त हो जाता है।

इस प्रकार फेफड़ोंकी कार्य-पद्धतिका अधूरापन रक्त-शुद्धिपर प्रभाव डालता है। हृदय कमजोर पड़ता है और परिणामत: अकालमृत्यु नित्य ही उपस्थित रहती है, इस स्थितिमें प्राणायामकी महत्ता व्यक्तिकी दीर्घ आयुके लिये अत्यधिक हो जाती है। विभिन्न रोगोंका निवारण प्राण-वायुका प्राणायामके द्वारा नियमन करनेसे आसानीसे किया जा सकता है। इस विज्ञान अर्थात् प्राणवायुके विज्ञानकी जानकारीसे मानव स्वयं तथा दूसरोंके स्वास्थ्यको सुव्यवस्थित करके सुखी एवं आनन्दपूर्ण जीवनका पूर्ण लाभ लेता हुआ अपनी आयुको बढ़ा सकता है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्म-कार्यमें, शुभकार्यमें तथा संध्या-वन्दनके नित्य-कर्ममें 'प्राणायाम' को एक आवश्यक धर्मकृत्यके रूपमें सम्मिलित किया गया है।

उद्वेग, चिन्ता, क्रोध, निराशा, भय और कामुकता आदि मनोविकारोंका समाधान 'प्राणायाम' द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इतना ही नहीं, मस्तिष्कको क्षमता बढ़ानेमें स्मरण-शक्ति, कुशाग्रता, सूझ-बूझ, दूरदर्शिता, सूक्ष्म निरीक्षण, धारणा, प्रज्ञा, मेधा आदि मानसिक विशेषताओंका अभिवर्धन करके 'प्राणायाम'द्वारा दीर्घजीवी बनकर जीवनका वास्तविक आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

'प्राणायाम' मात्र साँस खींचना और छोड़ना ही नहीं है। यह तो उसकी प्रारम्भिक परिपाटी है। अनेक प्राणायाम ऐसे विलक्षण हैं, जिनमें साँस खींचने-छोड़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। उनमें 'प्राणवायु' का आकर्षण एवं विकर्षण ही प्रधान रहता है। 'प्राणवायु' का संचय होनेसे 'समाधि' लगती है। परिणामत: मानव कालको वशमें करके मनचाही अवधितक जीवित रह सकता है और प्राण-त्याग भी उसी सरलतासे कर सकता है।

शरीर और मन 'प्राणशक्ति' से ही चलते हैं। प्राणवायुपर नियन्त्रण करनेकी विधिको जाननेवाला अपने शरीर और मनकी प्रत्येक क्रियापर नियन्त्रण रख सकनेकी क्षमतासे सुसम्पन्न हो जाता है। इस प्रकारके सभी विधि-विधान 'प्राणायाम' विद्याके अन्तर्गत आते हैं। प्राणायामकी महिमाका वर्णन शास्त्रकारोंने इस प्रकार किया है—

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥

अर्थात् सम्यक् प्राणायामसे शारीरिक दोष दूर होते हैं, कुम्भकसे शरीर और मन—ये दोनों मलरहित होते हैं, धारणासे पाप नष्ट होते हैं, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंका संसर्ग छूटता है और ध्यानसे अनीश्वर यानी जिसके ऊपर कोई शासक नहीं है, ऐसे उस परमात्माका ज्ञान प्राप्त होता है।

प्राणतत्त्व

(आचार्य श्रीमुरलीधरजी पाण्डेय, एम०ए०)

परमात्माकी चर एवं अचर-सृष्टिमें जो क्रियात्मिका शक्ति अथवा जो गत्यात्मिका शक्ति है, उसको प्राणशक्ति कहते हैं। प्राणशक्तिके कारण ही मानव, पशु-पक्षी, कीट-पतंग और वृक्ष, लता-गुल्म एवं पर्वत आदिके अवयवोंमें उपचय तथा अपचयकी वृद्धि एवं ह्रास होते हैं। प्राणशक्तिके कारण ही मनुष्य, पशु, वृक्ष एवं पाषाणके अवयव या अङ्ग विकसित होते हैं। जब इनमें प्राणशक्ति नहीं रह जाती, तब ये सूखने या सड़ने लगते हैं। चर-जगत् यानी मनुष्य तथा पशु आदिमें तो प्राणवियोगके लक्षण सद्यः प्रतीत होने लगते हैं, परंतु वृक्ष आदिमें कुछ विलम्बसे और पाषाण आदिमें तो बहुत ही विलम्बसे प्रतीत होते हैं। भारतमें लोग विन्ध्य-पर्वतको मृत पर्वत अर्थात् प्राणहीन पर्वत कहते हैं और हिमालयको सजीव या सप्राण कहते हैं। कहा जाता है कि हिमालय आज भी बढ़ रहा है। मनुष्य आदिके शरीरमें जो रक्तसंचार है, वह प्राणशक्तिकी ही क्रिया है। वृक्षोंमें जो रसका संचार हो रहा है, वह भी प्राणक्रियासे ही हो रहा है। जीवकी सत्ता तो सर्वत्र है, इसलिये जीव व्यापक है, पर प्राणके संयोग एवं वियोगसे ही शरीरमें जीवकी सत्ता और असत्ताका अनुमान करते हैं। इस तथ्यको अथर्ववेदके इन दो मन्त्रोंमें इस प्रकार कहा गया है—

यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।

× × ×

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।

(११।४—६)

छान्दोग्योपनिषद्में यह और भी स्पष्ट कहा गया है—
सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते।

(१।११।५)

प्राणके इस क्रिया-रूप, शक्ति-रूप और सर्वस्थितिकारक रूपको देखकर भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजीने ब्रह्मसूत्रके प्राणाधिकरण सूत्रमें '**अत एव प्राणः**' (१।१।२३)-के भाष्यमें प्राणको ब्रह्मतक कह डाला है—

तस्मात् सिद्धं प्रस्तावदेवतायाः प्राणस्य ब्रह्मत्वम्।

इसी प्रकार—

प्रतर्दनाधिकरणसूत्रमें—'**प्राणस्तथानुगमात्**' (१।१।२८)-के भाष्य '**अतः उपपन्नः संशयः। तत्र प्रसिद्धेर्वायुः प्राण इति प्राप्ते उच्यते—प्राणशब्दं ब्रह्म विज्ञेयम्। कुतः तथानुगमात्।**'—में भी प्राणको ब्रह्म कहा है।

यद्यपि इन दोनों स्थलोंपर प्रकरणवशात् प्राणका अर्थ ब्रह्म करना पड़ा है; किंतु इतना तो मानना ही पड़ता है कि ब्रह्मसे कुछ सादृश्य होनेसे ही प्राणको ब्रह्म कहा गया है।

शरीरस्थित इस शक्तिपर विचार करते हुए आचार्योंने कहा है कि महत्तत्त्वके दो रूप हैं—(१) क्रियाशक्ति तथा (२) ज्ञानशक्ति। इस क्रियाशक्तिको प्राण कहते हैं और इस ज्ञानशक्तिको बुद्धि कहते हैं। इस तथ्यको आचार्योंने कई स्थलोंपर कहा है। जैसे बृहदारण्यकोपनिषद् (१।६।३)-के शाङ्करभाष्यमें—

'**कार्यात्मके शरीरावस्थे क्रियात्मकस्तु प्राणः।**'

यहीं २।२।१ के शां०भा० में—

प्राणः स्थूणा अन्नपानजनिताशक्तिः प्राणो बलमिति पर्यायः। यही बात २।१।१५ के शां०भा०में भी कही गयी है। इस तथ्यको श्रीविज्ञानभिक्षु ब्रह्मसूत्र—**अणुश्च** (२।४।१३)-के अपने विज्ञानभाष्यमें और भी स्पष्टरूपसे लिखते हैं—

'**महत् तत्त्वस्य रूपद्वयम्—एका क्रियात्मिका शक्तिः प्राणः अपरा अध्यवसायात्मिका शक्तिः बुद्धिः**'।

प्राण ही बुद्धि है इस बातको श्रीअप्पयदीक्षितने अपने सिद्धान्तलेशसंग्रहमें इस प्रकार स्वीकारा है—

प्राणाख्यबुद्ध्युत्क्रान्तेः (२ परि० जीवाणुत्वनिरास)-की व्याख्यामें कहा गया है कि—'**यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या प्रज्ञा स प्राण इति श्रुतेः**'।

सांख्यकारिका (२९)-की तथा पातञ्जलयोगसूत्र (३।३९)-की अपनी व्याख्यामें श्रीवाचस्पति मिश्रने भी यही कहा है।

देवीभागवतमें शक्तिरूप इस प्राणकी बड़ी अच्छी स्तुति की गयी है—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
शूलं कोदण्डभिक्षूद्भवमगुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।
बिभ्राणाऽसृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः॥

(११।८।१९)

इस प्राणकी उत्पत्तिके विषयमें शास्त्रोंमें अनेक प्रकार मिलते हैं। वेदान्तपरिभाषामें लिखा है कि परमात्माके ईक्षणसे पञ्चमहाभूत व्यक्त होते हैं। इन्हीं रजोगुणप्रधानभूत पञ्चमहाभूतोंसे प्राणकी उत्पत्ति होती है। जैसे—

रजोगुणोपेतैः पञ्चभूतैरेव मिलितैः पञ्च वायवः प्राणापानव्यानोदानसमानाख्या जायन्ते।

(वै०प०वि०परि०)

यही बात विद्यारण्य स्वामीने पञ्चदशी ग्रन्थमें लिखी है—

तैः सर्वैः सहितैः प्राणो वृत्तिभेदात् स पञ्चधा।
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च ते पुनः॥

(प० त० विवेक० १।२२)

बृहदारण्यकोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् और प्रश्नोपनिषद्में तो साक्षात् परमात्मासे ही प्राणकी उत्पत्ति वर्णित है—

अस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः……सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति।

(बृहदारण्यक उप० २।१।२०)

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥

(मु०उप० २।१।३)

'स प्राणमसृजत।' (प्र०उ० ६।४)

ब्रह्मसूत्रमें प्राणोत्पत्त्यधिकरण (२।४।२—४)-के सूत्रोंमें प्राणकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत विचार किया गया है। अन्तमें कहा है कि—**'तस्मादपि प्राणानां ब्रह्मविकारत्वसिद्धिः'**। सांख्यसिद्धान्तके सृष्टि-प्रक्रियामें स्पर्शतन्मात्रासे वायुकी उत्पत्ति मानी गयी है और गतिके सामान्य होनेसे वायुके साथ प्राण शब्दका व्यवहार किया गया है। जैसे—**'सामान्यकरणवृत्तिप्राणाद्या वायवः पञ्च।'** (सां०का० २९)। यही बात पातञ्जल-योगसूत्र (३।३९)-में भी कही गयी है। न्यायवैशेषिकाचार्योंने नौ द्रव्योंके अन्तर्गत वायुद्रव्यमें ही प्राणका अन्तर्भाव कर दिया है। उनका कहना है कि शरीरगत स्थानभेदसे एक ही वायु प्राण, अपान आदि नामोंसे व्यवहृत होता है। जैसे हृदयस्थानीय वायु प्राण है, गुदस्थानीय वायु अपान है। सम्पूर्ण शरीरमें घूमनेवाला वायु व्यान है। कण्ठस्थानीय वायु उदान है और नाभिस्थानीय वायु समान है।

इस प्रकार इन आचार्योंने वायुको प्राण कहा है। पर इनका तात्पर्य वायुको प्राण कहनेमें नहीं है। वस्तुतः प्राण गत्यात्मक है। वह साक्षात् ब्रह्मसे अथवा प्रकृतिरूपा मायासे उत्पन्न है। इस प्राणकी गत्यात्मकता सदागतिक वायुमें पायी जाती है। अतः गौणी वृत्तिसे वायुको प्राण कह देते हैं। इसमें भी शरीरके प्रधान अङ्ग हृदय या नासिकामें रहनेवाले वायुको विशेषरूपसे प्राणवायु कह देते हैं।

इसी प्रकार प्राणकी संख्याके विषयमें भी मतभेद है। कहीं प्राण एक है ऐसा कहा है, कहीं पाँच कहा है, कहीं सात, कहीं नौ, कहीं दस, कहीं ग्यारह और कहीं बारह। जैसे **'अणुश्च'** (ब्र०सू० २।४।१३)-के विज्ञानभाष्यमें कहा है कि महत्तत्त्वके दो रूप हैं—एक क्रियात्मिका शक्ति और दूसरी अध्यवसायात्मिका शक्ति। यहाँ क्रियात्मिका शक्ति प्राणको माना गया है जो एक है। पाँच प्राण तो प्रसिद्ध ही हैं। जैसे वेदान्त परिभाषाके विषय-प्रकरणमें कहा है—**'पञ्च प्राणमनोबुद्धि…'** इत्यादि इसीको पञ्चदशीकारने कहा है कि प्राण एक ही है। पर वृत्तिभेदसे पाँच प्रकारका हो जाता है—**'तैः सर्वैः सहितैः प्राणो वृत्तिभेदाच्च पञ्चधा'** (प०द०त०वि० १।२२) **'सप्त गतेर्विशेषितत्वाच्च'** (ब्र०सू० २।४।५)-के शाङ्करभाष्यमें कहा है—**'क्वचित् सप्त प्राणाः संकीर्त्यन्ते। सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्'** (मुण्ड० २।१।८) इति। **'क्वचिच्चाष्टौ प्राणा ग्रहत्वेन गुणेन संकीर्त्यन्ते—अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः'** (बृ० ३।२।१) इति। **'क्वचिच्च—सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ** (तै०सं० ५।१।७।१) इति। **क्वचिद्दशनव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी इति। क्वचिदेकाश—दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः'** (बृ० ३।९।४) इति। **'क्वचिद्द्वादश—सर्वेषां स्पर्शानां त्वगेकायनम्'** (बृ० २।४।११)। **'क्वचित् त्रयोदश चक्षुश्च द्रष्टव्यं च'**। **'एवं हि विप्रतिपन्नाः प्रामेयत्तां प्रतिश्रुतयः'** (ब्र०सू० २।४ ।५ शां०भा०)। इस शांकरभाष्यकी अपनी भामती व्याख्यामें श्रीवाचस्पति मिश्रने इस प्रकार स्पष्ट किया है— **सात प्राण** हैं —चक्षु, घ्राण, रसना, वाक्, श्रोत्र, मन और त्वक्। **आठ प्राण** हैं —घ्राण, रसना, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन, हस्त और त्वक्। **नव प्राण** हैं —दो श्रोत्र, दो आँख, दो घ्राण, एक वाणी, पायु

और उपस्थ अथवा बुद्धि तथा मन। **दस प्राण** हैं —नव-दो श्रोत्र आदि और एक नाभि। **ग्यारह प्राण** हैं —पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय तथा मन। **बारह प्राण** हैं —पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन और बारहवाँ हृदय। **तेरह प्राण** हैं —हृदय और मनके साथ पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा अहंकार। यहाँ २।४।५ सूत्रसे लेकर २।४।१९ सूत्रतक प्राणपर बहुत विचार किया गया है। सप्त प्राणके पक्षमें भगवत्पादका अधिक झुकाव है। फिर अन्तमें निर्णय देते समय '**हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम्**' इस ब्रह्मसूत्र (२।४।६)-के भाष्यमें लिखते हैं—'**तस्मादेकादशैव प्राणाः शब्दतः अर्थतश्चेति सिद्धम्**' अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि शब्दतः और अर्थतः ग्यारह प्राण हैं। इसके बाद फिर '**न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्**' (ब्र०सू० २।४।९) इस सूत्रमें कहते हैं कि प्राण न तो वायु है और न तो क्रिया है। किंतु वायु ही अध्यात्मरूप प्राप्त कर पञ्चव्यूह होकर प्राण नामसे कहा जाता है। जैसे—

'**तस्मादन्यो वायुक्रियाभ्यां प्राणः। कथं तर्हीयं श्रुतिः यः प्राणः स वायुरिति। उच्यते वायुरेवायमध्यात्ममापन्नः पञ्चव्यूहो विशेषात्मनाऽवतिष्ठमानः प्राणो नाम भण्यते। न तत्त्वान्तरं नापि वायुमात्रम्। अतश्चोभे अपि भेदाभेदश्रुती न विरुध्येते।**'

इस प्रकार निर्णय दिया गया कि वायु महाभूत नहीं अपितु वायु जो देवतारूप है वही अपना पञ्चव्यूहरूप प्राण, अपान आदि रूपमें शरीरमें रहते हैं। अतः प्राण वायुदेवता है और प्राण, अपान आदि उनके व्यूह हैं। जैसे पाञ्चरात्र आगममें परमात्माके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि व्यूह माने गये हैं।

छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चम अध्यायमें एक प्राणविद्या वर्णित है। वहाँ यह दिखाया गया है कि एक बार प्राणके साथ चक्षुरादि इन्द्रियोंकी स्पर्धा हुई कि हम लोगोंमें कौन ज्येष्ठ है और कौन श्रेष्ठ है। महत्ता प्रदर्शित करनेके क्रममें चक्षुरिन्द्रिय चली गयी। चक्षुरिन्द्रियके चले जानेपर प्राणी अन्धा बनकर जीवित रहा। उस प्राणीको देखकर चक्षुरिन्द्रिय लज्जित हुई और अपनेको पराजित मानकर पुनः वापस आकर शरीरमें स्थित हो गयी। इसी प्रकार क्रमशः श्रोत्र, घ्राण, रसना तथा त्वक् आदि इन्द्रियाँ भी शरीर छोड़कर चली गयीं और वह व्यक्ति बधिर तथा मूक आदिके रूपमें जीवित रहा। अन्तमें प्राणकी पारी आयी। प्राण जाने लगा। प्राणके निकलते समय सभी इन्द्रियाँ शिथिल होने लगीं, निस्तेज होने लगीं और निष्क्रिय होने लगीं। तब सभी इन्द्रियोंने प्राणको रोका और प्राणसे शरीरमें रहनेके लिये अभ्यर्थना की। सभी इन्द्रियोंने प्राणसे न जानेके लिये कहा—'**अभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति**' (छान्दोग्य० ५।१।१२)। अन्तमें स्वीकारा गया कि आँख, श्रोत्र आदि जो कहे जाते हैं वे सब प्राण ही हैं—

'**न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति।**'

(छान्दोग्य० ५।१।१५)

इस स्थलपर इन्द्रियोंके साथ स्पर्धा होनेसे शंका होती है कि प्राण भी इन्द्रिय है क्या? पर वस्तुतः यह बात नहीं है। यथार्थतः प्राण सभी इन्द्रियोंका प्रेरक तथा उज्जीवक एवं शक्ति और बल है।

इस बातको भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यने बृहदारण्यकोपनिषद् (२।२।१)-के भाष्यमें इस प्रकार कहा है—

'**प्राणः स्थूणा अन्नपानजनिताशक्तिः प्राणो बलमिति पर्यायः**'।

प्राणशक्तिके बिना सभी इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं— मृततुल्य हो जाती हैं। इन्द्रियोंमें कार्यक्षमता प्राणसे ही प्राप्त होती है। यहाँतक कि मनको रोकनेके लिये योगाचार्योंने प्राणको रोकनेका विधान किया है। प्राणको रोकनेपर मन भी रुक जाता है; इसीलिये प्राणायाम-विधिकी इतनी महत्ता है।

इन विवेचनोंसे स्पष्ट हो जाता है कि प्राण वायुदेवताका अध्यात्मरूप है और वह विशेषरूपसे पञ्चव्यूहात्मक बनकर प्राण-अपान आदि पाँच उपाधियाँ प्राप्त करता है। प्रकारान्तरसे यह प्रकृति अर्थात् परमात्माकी मायाशक्तिका एक रूप है। गत्यात्मक होनेके कारण वायुसे तुलना करके वायुरूप कह दिया जाता है। चर-अचर—ये सभी सृष्टिके उपचय तथा अपचयके कारण हैं। सभी प्रकारके शरीरोंमें स्थित जीवनसत्ताके अनुमापक हैं। प्राणशक्ति एक है। स्थानभेद तथा क्रियाभेदसे प्राणको एक, पाँच, सात, नौ, दस, ग्यारह तथा तेरहतक कह देते हैं। '**तस्माद् भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः**'। इति शम्।

भैषज्य-विज्ञानका मूल स्रोत—अथर्ववेद

(डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र)

'भैषज्य' शब्द भेषज शब्दसे स्वार्थमें '**अनन्तावसथेतिह-भेषजाञ्ञ्यः**' (५।४।२३) इस सूत्रसे 'ञ्य' प्रत्यय करनेपर सिद्ध होता है। 'वैद्यक-रत्नमाला' के '**भैषज्यं भेषजं चायुर्द्रव्यमगदमौषधम्**' इस वचनसे ज्ञात होता है कि 'भैषज्य' एवं 'भेषज'—ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। 'भेषज' शब्दकी व्युत्पत्ति दो प्रकारसे की जाती है—१-'**भिषक् वैद्यस्तस्येदम्**' इस अर्थमें 'अण्' प्रत्यय लगाकर व्युत्पादित भेषज शब्द सिद्ध होता है। वैद्यसे सम्बद्ध क्रिया एवं द्रव्य 'भैषज्य' तथा 'भेषज' कहे जाते हैं और २-'**भेषो रोगस्तं जयति**' अर्थात् रोगको पराजित करनेका उपाय भेषज है।

इस संदर्भमें 'भिषक्' शब्द भी विचारणीय है। भिषक् शब्दकी व्युत्पत्ति है—'**बिभेति रोगो यस्मात्।**' 'भी' धातुसे 'षुक्' प्रत्यय तथा ह्रस्व करनेपर 'भिषक्' शब्दकी निष्पत्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि 'भेषज' अथवा 'भैषज्य' एवं 'भिषक्' शब्दोंसे प्राणीके रोग-शमनका उपाय तथा उसका कर्ता विवक्षित है।

अथर्ववेदमें पर्याप्त रूपमें भैषज्य-विज्ञानका मूल प्राप्त होता है। इसी कारण आयुर्वेदके संहिताकारोंने अथर्ववेदसे अपना सम्बन्ध बताया है।* आचार्य चरककी उक्ति है—

'**तत्र चेत् प्रष्टारः स्युश्चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानां कं वेदमुपदिशन्त्यायुर्वेदविदः''' तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या'''।**'

(सूत्रस्थान ३०।१९-२०)

अर्थात् कोई प्रश्नकर्ता वैद्यसे यह प्रश्न करे कि ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद—इन चारों वेदोंमें आयुर्वेदविद् किस वेदका उपदेश करता है तो वैद्यको चाहिये कि वह अथर्ववेदमें अपनी भक्ति दिखलाये।

भैषज्य-विज्ञानका विस्तृत उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेदमें ही है। इस कारण अथर्ववेदको 'भिषग्वेद' भी कहा जाता है। अथर्वसंहिताके इस मन्त्र—

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥

(११।६।१४)

—में इसे भिषग्वेदके रूपमें अभिहित किया गया है। अथर्ववेदका एक दूसरा नाम 'अथर्वाङ्गिरस' वेद भी है। यह संज्ञा भी अथर्ववेदके भैषज्य-विज्ञानको संकेतित करती है। अथर्वाङ्गिरसमें अथर्व+आङ्गिरस—ये दो शब्द हैं। 'अथर्व' शब्द हिंसार्थक थुर्वी धातु (पा० ५७१)-से निष्पन्न है। जिस भैषज्य-प्रक्रियामें किसी प्रकारकी हिंसाकी सम्भावना नहीं होती वह 'अथर्व' कही गयी है और रोगीके अङ्गों (शरीरावयवों)-में सप्तधातुमय जो रस प्रवहमान है, उसके आधारपर किया जानेवाला भैषज्य आङ्गिरस है।

तात्पर्य यह है कि 'अथर्व' शब्दसे अभिहित भैषज्य-प्रक्रियामें किसी प्रकारका उपचार किये बिना मन्त्र एवं तपकी शक्तिसे रोगका नाश किया जाता था। अतः इस प्रक्रियामें रोगीके शरीरपर किसी प्रकारके प्रतिकूल प्रभाव (Reaction)-द्वारा हिंसा (हानि)-की सम्भावना नहीं रहती थी, किंतु इसके विपरीत आङ्गिरसी चिकित्सा-पद्धतिमें रोगीके शरीरसे सम्बद्ध विभिन्न उपचार किये जाते थे। इन दोनों प्रकारकी चिकित्सा-पद्धतियोंका समावेश अथर्ववेदमें होनेके कारण इसे 'अथर्वाङ्गिरस' वेद कहा गया है। 'पञ्चविंशब्राह्मण' में अथर्वाने भेषजकी प्रक्रियाको दैवी ओषधियोंकी भाँति गुणकारी बतलाया है—

भेषजं वै देवानामाथर्वणो भैषज्यायारिष्ट्यै।

(१६।१०।१०)

अथर्ववेदमें प्रतिपादित भैषज्य-विज्ञानका पूर्ण एवं विस्तृत विवरण 'कौशिक गृह्यसूत्र' में प्राप्त होता है। अथर्ववेदसे सम्बद्ध इस गृह्यसूत्रमें भैषज्यके लिये एक पृथक् अध्याय है। कौशिक गृह्यसूत्रमें भैषज्यका लक्षण करते हुए सूत्रकारने कहा है—'**लिङ्ग्युपतापो भैषज्यम्॥**' (२५।२)

रोगको लिङ्ग अर्थात् चिह्नोंद्वारा ज्ञात होनेके कारण लिङ्गी कहा जाता है। शरीरमें होनेवाले ज्वर, भ्रम, पीडा आदि रोगजनित विकार ही रोगके चिह्न हैं। निदानद्वारा रोगके उप यानी अत्यन्त समीप जाकर मन्त्र एवं ओषधि

---

* आयुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्य (सुश्रुत० १।१।६)।
अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं च लब्धवान् (भावप्रकाश पू० खं० १।५८) आदि।

आदि उपचारोंसे रोग (ताप)-का विनाश करना 'उपताप' या 'भैषज्य' कहा जाता है।

रोग दो प्रकारके हो सकते हैं—पापजनित तथा आहारादिजनित। यद्यपि दोनों प्रकारके रोगोंके चिह्न समान ही ज्ञात होते हैं, तथापि जिन रोगोंकी उत्पत्ति आहारादिकी विकृतिद्वारा ज्ञात न हो सके तथा जिनपर आहारजनित रोगोंकी औषधियाँ सफल न हों, उन रोगोंको पापजनित मानकर आथर्वणिक भैषज्य-प्रक्रियाद्वारा उनका विनाश करना चाहिये। आहारादिजनित व्याधियोंपर आङ्गिरसी प्रक्रियाद्वारा विजय प्राप्त करनी चाहिये। कौशिक गृह्यकर्ताने यह अभिमत '**वचनादन्यत्**' (२५। ३) सूत्रद्वारा प्रकट किया है।

आयुर्वेदशास्त्रके प्राचीन आचार्योंने भी अथर्ववैदिक भैषज्य-प्रक्रियाके उपर्युक्त सिद्धान्तको प्रायः यथावत् स्वीकार किया है। इस सम्बन्धमें चरकसंहिताका निम्नाङ्कित अंश उल्लेखनीय है—

'तद् द्विविधं व्यपाश्रयभेदात्, दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं चेति। तत्र दैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासदानस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि। युक्तिव्यपाश्रयं संशोधनोपशमने चेष्टाश्च दृष्टफलाः।'

(विमान० ८। ७४)

अर्थात् भेषज आश्रयभेदसे दो प्रकारका होता है—१-दैवव्यपाश्रय तथा २-युक्तिव्यपाश्रय। इनमें मन्त्र, औषधि, मणिधारण, मङ्गलपाठ, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, दान, स्वस्त्ययनपाठ, प्रणिपात (देवताओंको नम्रतापूर्वक नमस्कार), गमन (तीर्थयात्रा) आदि क्रियाओंद्वारा जो चिकित्सा होती है, उसे 'दैवव्यपाश्रय भेषज' कहते हैं। संशोधन (वमन, विरेचन आदि), उपशमन और प्रत्यक्ष फल देनेवाली सभी क्रियाओंको 'युक्तिव्यपाश्रय भेषज' कहते हैं।

अथर्ववैदिक ओषधि-प्रक्रियाएँ

अथर्ववेदसंहिताके एकादश काण्डके चतुर्थ सूक्तका सोलहवाँ मन्त्र है—

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥

इस मन्त्रसे यह संकेत प्राप्त होता है कि अथर्ववेदके अनुसार भैषज्य-कर्मके लिये कई प्रकारकी ओषधियाँ प्रयुक्त की जाती थीं, जिन्हें प्रयोगके अनुसार चार मुख्य विभागोंमें विभाजित किया गया है—१-आथर्वणी, २-आङ्गिरसी, ३-दैवी तथा ४-मनुष्यजा। सायण आदि सभी व्याख्याकारोंने इस मन्त्रका जो अर्थ किया है, उनके अनुसार अथर्वा नामक ऋषिद्वारा सृष्ट ओषधियाँ 'आथर्वणी' तथा अङ्गिरा ऋषिद्वारा प्रवर्तित ओषधियाँ 'आङ्गिरसी' और देवोंद्वारा सृष्ट ओषधियाँ 'दैवी' एवं मनुष्योंद्वारा प्रवर्तित ओषधियाँ 'मनुष्यजा' हैं। इस मन्त्रमें एक विशिष्ट भाव और निहित है, जो इस प्रकार है—

आथर्वणी ओषधि-प्रक्रियाएँ वे हैं, जो अथर्ववेदोक्त मन्त्र आदिके प्रयोगोंद्वारा रोगका शमन करनेमें समर्थ होती हैं। इसमें रोगीके शरीरका संयोग अपेक्षित नहीं है। दूसरी आङ्गिरसी ओषधियाँ रोगीके शरीरावयवोंमें प्रवाहित सप्तधातुमय रससे संयुक्त होकर रोगका शमन करती हैं। इनका प्रयोग रोगीके शरीरके आन्तरिक एवं बाह्य संयोगसे ही हो सकता है। तीसरी दैवी ओषधि-प्रक्रियाएँ वे हैं, जो रोगसे साक्षात् सम्बद्ध न होते हुए भी रोगके कारणभूत दैव या दुर्दृष्टके निवारणार्थ की जाती हैं। इस प्रकारकी प्रक्रियाएँ भी अथर्ववेदमें शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंके प्रयोगके रूपमें वर्णित हैं। शान्तिक एवं पौष्टिक विधानोंके प्रयोगसे रोगीका दुर्दैव अर्थात् पाप विनष्ट होता है तथा इससे रोगकी मुक्तिमें सहायता मिलती है। अतः इसे 'दैवी' कहा गया है।

चौथे प्रकारकी ओषधि-प्रक्रिया मनुष्यजा है। इसमें रोगीके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभके लिये अन्य ओषधियोंके अतिरिक्त स्वच्छ वातावरण, सौमनस्य एवं अच्छी शुश्रूषाकी परम आवश्यकता होती है। यह सब मनुष्योंद्वारा ही सम्यक् रूपसे किया जा सकता है। अतः इसको 'मनुष्यजा' कहा गया है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानने भी शीघ्र स्वास्थ्य-लाभके लिये स्वच्छता, शुश्रूषा तथा सद्व्यवहारका महत्त्व स्वीकार किया है। अथर्ववैदिक चिकित्सा-विज्ञानमें इस प्रणालीको मनुष्यजा शब्दसे व्यवहृत करते हुए इसकी महत्ता स्वीकार की गयी है।

अथर्ववैदिक चिकित्सा-पद्धतिमें इन चारों प्रकारकी अथवा अपेक्षानुसार तीन या दो प्रकारकी ओषधियोंका एक साथ प्रयोग किया जाता था। इसके उदाहरणार्थ हम श्वित्रके निवारण-हेतु किये जानेवाले प्रयोगको ले सकते हैं। इस सम्बन्धमें कौशिक गृह्यसूत्रमें इस प्रकार निर्दिष्ट है—

नक्तं जाता सुपर्णो जात इति मन्त्रोक्तं शकृदा लोहितं प्रघृष्यालिम्पति॥

(२६।२२)

श्वित्रके उपचारके लिये भृङ्गराज, हरिद्रा, इन्द्रवारुणी आदि ओषधियोंको पीसकर '**नक्तं जाता०**' (अथर्व० १।२३।१) तथा '**सुपर्णो जातः०**' (१।२४।१) सूक्तोंसे उनका अभिमन्त्रण करना चाहिये। यह आथर्वण प्रक्रिया है। तदनन्तर श्वित्रके स्थानपर उनका लेप करना चाहिये, यह क्रिया आङ्गिरसी है। कौशिक गृह्यसूत्र—'**मारुतान्यपिहितः**' (२६।२४)-के विधानानुसार दैवी ओषधि-प्रक्रियाके रूपमें मारुत-कर्मों (वृष्टिकर्मों)-को भी श्वित्रके निवारणहेतु करना चाहिये। यद्यपि मारुतकर्म भैषज्याध्यायके अन्तर्गत नहीं है तथापि रोगीके पूर्व दुर्दृष्टके निवारणार्थ इसका विधान किया गया है, यह स्पष्ट होता है। मनुष्यजा ओषधि-प्रक्रियाके रूपमें रोगीकी शुश्रूषा आदिकी आवश्यकता तो स्वभावतः सिद्ध है। इस प्रकार उक्त मन्त्रद्वारा रोगोंकी चिकित्साहेतु अथर्ववेदमें चारों प्रकारकी प्रक्रियाओंका एक साथ अथवा आवश्यकतानुसार दो या तीनका प्रयोग प्रतिपादित किया गया है।

अथर्ववेद (१।१।१)-के भाष्यमें आचार्य सायणने भी रुद्रभाष्यकारका मत उद्धृत करते हुए स्पष्ट किया है कि संहिताके जो सूक्त आथर्वणिक चिकित्सा-पद्धतिमें विनियुक्त हैं, उनके द्वारा आज्य आदि त्रयोदश द्रव्योंका होम तथा उपस्थापन भी चिकित्सकीय क्रियाके साथ किया जाना चाहिये। आयुर्वेद अथवा अन्य लौकिक उपचारोंमें रोगोंके शमनार्थ जिन ओषधियोंका उपयोग प्रचलित है, उनका तदनुसार उपयोग करते हुए भी अथर्वसंहिताके तत्सम्बन्धी मन्त्रोंका वाचन आथर्वणी चिकित्साके रूपमें करना चाहिये, यह कौशिकका अभिमत है। कौशिक गृह्यसूत्रका वचन इस प्रकार है—

ओषधिवनस्पतीनामनूक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम्॥

(३२।२६)

अभिप्राय यह है कि जिन रोगोंके शमनार्थ किसी प्रकारकी ओषधि—वनस्पतिका प्रयोग नहीं प्राप्त होता, उनमें भी अन्य चिकित्सा-प्रयोगोंके साथ भैषज्यके अथर्ववेदीय मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। इससे ओषधियोंका प्रभाव अधिक हो जाता है।

अथर्ववेदमें अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका मूल

भारतीय दृष्टिसे सम्पूर्ण भैषज्य-विज्ञान आठ भागोंमें विभक्त किया जाता है—१-शल्य, २-शालाक्य, ३-कायचिकित्सा, ४-भूतविद्या, ५-कौमारभृत्य, ६-अगदतन्त्र, ७-रसायनतन्त्र तथा ८-वाजीकरण। भैषज्य-विज्ञानके ये सभी अङ्ग अथर्ववेदमें उपलब्ध होते हैं यथा—

१-शल्य—शल्यतन्त्रका आधुनिक रूप ही शल्यविज्ञान है। अथर्ववेदमें मूत्र एवं पुरीषका निरोध होनेपर '**विषितं तेऽस्ति बिलम्०**' आदि मन्त्रोंसे चर्मशलाका या लौहशलाकाद्वारा शल्यक्रिया करनेका उल्लेख है। (कौशिक गृह्य० २५।१५ **वस्तिं विष्यति॥**) पशुओंकी कृमिचिकित्सामें भी शल्यक्रियाका प्रयोग अथर्ववेदमें उल्लिखित है—'**उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु**' आदि मन्त्रोंद्वारा कृमियुक्त स्थानकी दर्भसे शल्यक्रिया की जाती है '**दर्भैरभ्यस्यति**' (कौ०गृ० २७।२३)। इसी प्रकार अन्य शल्यक्रियाओंका भी उल्लेख है। गण्डमालाके भैषज्य-प्रसंगमें उदकरक्षिका एवं मशक नामक जीवोंद्वारा दूषित रक्त निकालनेका भी विधान किया गया है। यथा—

उदकरक्षिकामशकादिभ्यां दंशयति॥

(कौशिक गृह्य० ३०।१६)

२-शालाक्य—ग्रीवासे ऊपरी भागकी आन्तरिक चिकित्सा शालाक्यके अन्तर्गत आती है। अथर्ववेदमें शिरोरोगके लिये विभिन्न प्रकारके उपचार प्राप्त होते हैं। शिरोवेदनाकी निवृत्तिके लिये '**जरायुजः०**' (१।१२।१) आदि मन्त्रोंद्वारा नासिकामें घृतस्रावणका उल्लेख कौशिक गृह्यसूत्रमें किया गया है, यथा—'**घृतं नस्तः**' (२६।८)। अक्षिरोगोंके प्रशमनार्थ सर्षपक्षुपके मूल क्षीरलेहको '**आबयो अनाबयः०**' (अथर्व० ६।१६।१) आदि मन्त्रोंसे आँखोंमें अञ्जन करना चाहिये, यथा—'**क्षीरलेहमाङ्क्ते**' (कौ०गृ० ३०।५)। इसी प्रकार कर्ण, नासिका एवं मुख आदिसे सम्बन्धित रोगोंके लिये भी अथर्ववेदमें उपचार वर्णित हैं। केशोंकी वृद्धि, उन्हें काला तथा सुन्दर रखना एवं गंजेपनके निवारण आदिके लिये भी ओषधियोंका निर्देश अथर्वसंहितामें प्राप्त होता है।

३-कायचिकित्सा—कायचिकित्साके अन्तर्गत उदर एवं शरीरसे सम्बद्ध ज्वर, यक्ष्मा, पक्षाघात, स्राव, जलोदर, उदरशूल, वात-पित्त-कफके अनेकविध रोग

आते हैं। कायसम्बन्धी चिकित्साका उल्लेख अथर्ववेदके भैषज्यप्रकरणमें सर्वाधिक एवं विस्तृत रूपमें प्राप्त होता है। ज्वरको अथर्वसंहितामें 'तक्मन्' संज्ञा दी गयी है तथा इसके कई प्रभेद भी निर्दिष्ट किये गये हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके ज्वरोंके लिये ओषधियाँ, क्वाथ एवं अन्य उपचार वर्णित हैं। यक्ष्माके भी क्षेत्रिय, राजयक्ष्मा आदि अनेक भेद एवं उपचार बतलाये गये हैं। रक्तस्रावके उपचारार्थ पृश्निपर्णीका लेपन (कौ०गृ० २६।३६) तथा मूत्र-पुरीषस्रावके लिये फाण्ट* पिलाने (कौ०गृ० २५।१८)-का विधान किया गया है। पक्षाघातमें चङ्क्रममृत्तिकासे मर्दन एवं धूपनद्वारा चिकित्सा की जाती है (कौ०गृ० ३१।१८-१९)। जलोदरके उपचारमें उदश्वित् (अर्धजलमिश्रित मथित दधि)-में दूध एवं मधु मिलाकर पिलाया जाता है (कौ० गृ० ३१।२३-२४)। श्लेष्म, वात, पित्त-विकारोंके लिये घृत एवं मधु-तेल आदिका भक्षण निर्दिष्ट किया गया है (कौ०गृ० २६।१)। इनके अतिरिक्त कुष्ठ, हृद्रोग, पाण्डुरोग, अत्यन्त तृषा, उदरशूल आदि अनेक रोगोंकी भैषज्य-प्रक्रिया कायचिकित्साके रूपमें अथर्ववेदमें वर्णित है।

४-भूतविद्या—इसके अन्तर्गत यक्ष, पिशाच, असुर, नाग आदिके आवेशसे दूषित चित्तवाले एवं उन्मत्त व्यक्तियोंकी चिकित्सा आती है। इससे सम्बद्ध उपचार भी अथर्ववेदमें वर्णित हैं। भयभीत व्यक्तिको सदम्पुष्पा-मणिके बन्धनद्वारा भयमुक्त किया जाता है (कौ०गृ० २८।७)। सर्वौषधिका लेपन आदि भी एतदर्थ उल्लिखित है (कौ०गृ० २६।२९)।

५-कौमारभृत्य—बालरोगोंकी चिकित्साको 'कौमारभृत्य' कहा गया है। समस्त स्त्रीरोग तथा प्रसूतितन्त्र भी इसमें अन्तर्भूत किये जा सकते हैं। बालरोगोंकी निवृत्तिके लिये **'यस्ते स्तनः०'** (अथर्व० ७।१०।१) ऋचासे स्तनपानका विधान है (कौ०गृ० ३२।१)। बालकृमियोंके निवारणार्थ बालकको नवनीतप्राशन कराना चाहिये (कौ०गृ० ३२।१) तथा तप्त मुसलद्वारा बालकके तालुको सेंकना चाहिये (कौ०गृ० २९।२२)। प्रसूति एवं स्त्री-सम्बन्धी रोगोंके भैषज्य भी अथर्ववेदमें विशद रूपसे प्राप्त होते हैं। गर्भस्रावके निवारणार्थ एवं गर्भसंधारण आदिके लिये विभिन्न चिकित्साओंका उल्लेख है। सुखपूर्वक प्रसवके लिये भी अथर्वसंहितामें कई विधान प्राप्त होते हैं।

६-अगदतन्त्र—विषतन्त्रका ही पर्याय अगदतन्त्र है। विभिन्न प्रकारके विषैले जीवोंसे रक्षा एवं विषोंके प्रतिकार आदिके लिये चिकित्सा अगदतन्त्रके अन्तर्गत आती है। अथर्ववेदमें स्कन्द नामक विशेष विषकी निवृत्तिके लिये **'वारिदं वारयातै०'** (अथर्व० ४।७।१) आदि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलका पान विषग्रस्त व्यक्तिको कराया जाता है (कौ०गृ० २८।१)। मलद्वारा विष निकालनेके लिये मदन (धतूरे)-के फलोंको खिलाया जाता है (कौ०गृ० २८।४)। हरिद्राके साथ घृत पिलाकर भी विषका उपचार किया जाता है। दष्ट शरीरावयवको वस्त्रद्वारा बाँधे जानेका तथा विषग्रस्त व्यक्तिकी शिखाको भी बाँधे जानेका विधान किया है (कौ०गृ० २९।२—४)। दष्ट अवयवको तृण जलाकर प्रतप्त किया जाता है। विषके प्रभावका निराकरण करनेहेतु मधुमक्षिकाके नीडको भक्षण करानेका विधान भी उल्लिखित है (कौ०गृ० २९।२८)। इस प्रकार विषनिर्हरणके नाना उपाय अथर्ववेदसे ज्ञात होते हैं।

७-रसायनतन्त्र—अथर्वसंहितामें रसायनतन्त्रसे सम्बन्धित अधिक मन्त्र तो नहीं प्राप्त होते, किंतु कतिपय पौष्टिक कर्मोंके अन्तर्गत धातुओंके निर्माण एवं उपयोगकी प्रक्रियाका संकेत प्राप्त होता है। अथर्ववेद (१९।२६।३)-के अनुसार हिरण्यमणिधारणसे आयुष्य एवं वर्चस्की वृद्धि होती है। लोहे, चाँदी एवं सोनेके सम्मिश्रणसे निर्मित नवशालाकमणिके संधारणसे प्राणशक्तिकी वृद्धि होती है (अथर्व० ५।२८।१)। सीस नामक एक विशिष्ट धातुकी प्रशंसामें तो एक सम्पूर्ण सूक्त ही कहा गया है (अथर्व० १।१६।१)। इस धातुके प्रयोगसे समस्त शत्रुओंकी पराजय होती है। इस प्रकार अथर्ववेदमें रसायनतन्त्रका भी स्पष्ट प्रतिपादन है।

८-वाजीकरण—वीर्य एवं शक्ति-प्राप्त्यर्थ की

* यह एक तरहका काढ़ा है, जो औषध-चूर्णको गरम पानीमें भिगोकर छान लेनेसे बनता है। औषध-चूर्णकी जानकारी विज्ञ वैद्यसे कर लेनी चाहिये।

जानेवाली चिकित्सा वाजीकरण है। शक्तिहीन पुरुषोंको शक्तिशाली बनाना इसका उद्देश्य है। इस चिकित्सासे सम्बन्धित मन्त्र भी अथर्ववेदमें प्राप्त होते हैं। वीर्यहीनताको कौशिकने 'ग्राम्य व्याधि' माना है। इन्द्रिय-पुष्टिके लिये सर्वसुरभिचूर्णका लेपन '**निर्दुरर्मण्य०**' (अथर्व० १६। २। १) आदि मन्त्रोंसे किया जाता है। स्त्रियोंके वन्ध्यात्वहरणकी चिकित्सा भी वाजीकरणके अन्तर्गत आती है। स्त्रियोंसे सम्बद्ध इस प्रकारके अनेक विधान अथर्ववेदके सूक्तोंमें उपलब्ध हैं।

इस विवेचनसे स्पष्ट है कि भैषज्य-विज्ञानके समस्त अङ्गोंका उल्लेख अथर्ववेदमें प्राप्त होता है। अथर्ववेदकी चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त उन्नत स्तरपर रही है। विभिन्न रोगोंके शमनमें उपयोगी—अजशृङ्गी, अपामार्ग, अरुन्धती, आञ्जन, उदुम्बर, उपजीका, ऋतावरी, कुष्ठ, गुग्गुल, चीपद्रु, जङ्गिड, दर्भ, नितत्नी, पाटा, पिप्पली, पृश्निपर्णी, मधुला, रेवती, रोहणी, लाक्षा, विषाणका, शतवार, सदम्पुष्पा, सहस्रपर्णी, सोम आदि वनस्पतियोंका उल्लेख अथर्वसंहिताके मन्त्रोंमें प्राप्त होता है। स्वास्थ्य-लाभके लिये अस्तृत, जङ्गिड, दर्भ, पर्ण, वरण, शतवार, शङ्ख, त्रिवृत्, अर्क, परिहस्त, दशवृक्ष आदि मणियोंके धारणका विधान भी अथर्ववेदमें उल्लिखित है।

सम्प्रति अथर्ववेदोक्त बनस्पतियाँ एवं मणियाँ किस रूपमें उपलब्ध हैं तथा अथर्ववेदकी प्रक्रियाके अनुसार इनका उपयोग अब भी कितना लाभकारी है, इस क्षेत्रमें प्रायोगिक अनुसंधान करना अत्यन्त उपादेय होगा। अथर्ववेदकी विलुप्त भैषज्य-परम्परापर शोधके माध्यमसे प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धतिके निगूढ महत्त्वपूर्ण तथ्य अवश्य उपलब्ध किये जा सकते हैं।

प्रकृति-प्रदत्त आठ चिकित्सक

(डॉ० श्रीविद्यानन्दजी 'ब्रह्मचारी' एम्०ए०, पी-एच्०डी०, विद्यावाचस्पति)

प्रकृति और मानव-शरीरमें जन्मजात साहचर्य रहा है। यह एक सर्वमान्य बात है कि मानव प्रकृतिकी शस्य-श्यामल-गोदमें जन्म लेता, पलता और उसीके विस्तृत प्रांगणमें क्रीडा कर अन्तर्धान हो जाता है।

इस शरीरका निर्माण भी धरती (मिट्टी), जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच प्राकृतिक तत्त्वोंसे हुआ है। ये पाँचों तत्त्व मानव-जीवनके लिये प्रत्येक क्षण कल्याणप्रद हैं। प्रकृतिका यह विचित्र विधान है कि जिन तत्त्वोंसे प्राणीके शरीरका निर्माण हुआ, पुनः उन्हीं तत्त्वोंसे उसकी प्राकृतिक चिकित्साएँ (Natural Treatments) भी होती हैं।

प्रकृतिद्वारा प्रदत्त आठ ऐसे चिकित्सक हमें प्राप्त हैं, जिनके सहयोग तथा उचित सेवनसे हम यथासम्भव आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। वे चिकित्सक हैं—१-वायु, २-आहार, ३-जल, ४-उपवास, ५-सूर्य, ६-व्यायाम, ७-विचार और ८-निद्रा। यहाँ संक्षेपमें इनकी चर्चा की जा रही है—

१-वायु—प्रसिद्धि है कि मानव-जीवनमें वायुका स्थान जलसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वेदमें कहा गया है कि वायु अमृत है, वायु ही प्राणरूपमें स्थित है। प्रातःकाल वायु-सेवन करनेसे देहकी धातुएँ और उपधातुएँ शुद्ध और पुष्ट होती हैं, मनुष्य बुद्धिमान् और बलवान् बनता है, नेत्र और श्रवणेन्द्रियकी शक्ति बढ़ती है तथा इन्द्रिय-निग्रह होता है एवं शान्ति मिलती है। प्रातःकालीन शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु पुष्पोंके सौरभको लेकर अपने पथमें सर्वत्र विकीर्ण करता है, अतः उस समय वायु-सेवन करनेसे मन प्रफुल्लित और प्रसन्न रहता है, साथ ही आनन्दकी अनुभूति भी होती है।

शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भूमि, शुद्ध प्रकाश एवं शुद्ध अन्न यह 'पञ्चामृत' कहलाता है। प्रातःकालीन वायु-सेवन तथा भ्रमण सहस्रों रोगोंकी एक रामबाण औषधि है। शरीर, मन, प्राण, ब्रह्मचर्य, पवित्रता, प्रसन्नता, ओज, तेज, बल, सामर्थ्य, चिर-यौवन और चिर-उल्लास बनाये रखनेके लिये शुद्ध वायु-सेवन तथा प्रातःकालीन भ्रमण अति आवश्यक है। प्रातःकालका वायु-सेवन 'ब्राह्मवेलाका अमृतपान' कहा गया है।

२-आहार—शरीर और भोजनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक व्यक्तिको सात्त्विक भोजन करना

चाहिये; क्योंकि सात्त्विक आहारसे शरीरकी सब धातुओंको लाभ पहुँचता है।

एक समय ईरानके एक बादशाहने अपने यहाँके एक श्रेष्ठ हकीमसे प्रश्न किया कि 'दिन-रातमें मनुष्यको कितना खाना चाहिये?' उत्तर मिला 'छः दिरम' अर्थात् ३९ तोला। फिर पूछा, 'इतनेसे क्या होगा?' हकीमने कहा—'शरीर-पोषणके लिये इससे अधिक नहीं खाना चाहिये। इसके उपरान्त जो कुछ खाया जाता है, वह केवल बोझ ढोना और उम्र खोना है।'

मनुष्यको स्वल्प आहार करना चाहिये—**'स्वल्पाहारः सुखावहः।'** थोड़ा आहार करना स्वास्थ्यके लिये उपयोगी होता है। आहार उतना ही करना चाहिये, जितना कि सुगमतासे पच सके।

शुद्ध एवं सात्त्विक आहार शरीरका पोषण करनेवाला, शीघ्र बल देनेवाला, तृप्तिकारक, आयुष्य और तेजोवर्धक, साहस तथा मानसिक शक्ति और पाचनशक्तिको बढ़ानेवाला है। आहारसे ही शरीरमें सप्त धातुएँ बनती हैं। आयुर्वेदाचार्य महर्षि चरकने भी लिखा है कि **'देहो ह्याहारसम्भवः'**—शरीर आहारसे ही बनता है। 'उपनिषद्'में भी आहारके विषयमें कहा गया है कि **'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।'** (छान्दोग्योपनिषद् ७।२६।२) अर्थात् आहारकी शुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है, सत्त्वशुद्धिसे बुद्धि निर्मल और निश्चयी बन जाती है। फिर पवित्र एवं निश्चयी बुद्धिसे मुक्ति भी सुगमतासे प्राप्त होती है।

गरिष्ठ भोजन अधिक हानिप्रद होता है। सच्ची भूख लगनेपर ही भोजन करना चाहिये। इससे यथेष्ट लाभ मिलता है। भोजन शान्तिपूर्वक करना चाहिये।

३-जल—स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जलका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सोकर उठते ही स्वच्छ जल पीना स्वास्थ्यके लिये बड़ा ही हितकर कहा गया है। लिखा है कि—

सवितुः समुदयकाले प्रसृतीः सलिलस्य पिबेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो जीवेद् वत्सरशतं साग्रम्॥

अर्थात् सूर्योदयके समय (सूर्योदयसे पहले) आठ घूँट जल पीनेवाला मनुष्य रोग और वृद्धावस्थासे मुक्त होकर सौ वर्षसे भी अधिक जीवित रहता है। कुएँका ताजा जल अथवा ताम्रपात्रमें रखा हुआ जल पीनेके लिये अधिक अच्छा है। खानेसे एक घंटा पूर्व अथवा खानेके दो घंटे बाद जल पीना चाहिये। एक व्यक्तिको एक दिनमें कम-से-कम ढाई सेर जल पीना चाहिये, इससे रक्तसंचार सुचारु रूपसे होता है।

४-उपवास—धर्मशास्त्रोंमें उपवासका बहुत महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। उपवाससे शरीर, मन और आत्मा सभीकी उन्नति होती है। उपवाससे शरीरके त्रिदोष नष्ट हो जाते हैं। आँतोंको अवशिष्ट भोजनके पचानेमें सुविधा मिलती है तथा शरीर स्वस्थ और हलका-सा प्रतीत होता है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपवास बहुत ही आवश्यक है। उपवास करनेसे मनुष्यकी आत्मिक शक्ति बढ़ती है। कहते हैं कि यदि महीनेमें दोनों एकादशियोंके निराहार-व्रतका विधिवत् पालन किया जाय तो प्रकृति पूर्ण सात्त्विक हो जाती है। जिन्हें उपवास करनेका अभ्यास नहीं है, उन्हें चाहिये कि वे सप्ताहमें एक दिन एक बार ही भोजन करें और धीरे-धीरे आगे चलकर सम्पूर्ण दिवस उपवास रखनेका व्रत लें।

उपवासका दिन भगवद्भजन, सत्साहित्यके स्वाध्याय आदि शुभ कर्मोंमें व्यतीत करना चाहिये। उपवास करनेवालोंको चाहिये कि वे अपने मनको चारों ओरसे खींचकर आत्मचिन्तनमें लगायें, धार्मिक विषयोंकी चर्चा करें और संत-महात्माओंके पास बैठकर उपदेश ग्रहण करें। इस प्रकारके उपवाससे शारीरिक और मानसिक आरोग्य प्राप्त होता है।

५-सूर्य—जीवनकी रक्षा करनेवाली सभी शक्तियोंका मूल स्रोत सूर्य है। **'सूर्यो हि भूतानामायुः।'** समस्त चराचर भूतोंका जीवनाधार सूर्य है। यदि सूर्य न होते तो हम लोग एक क्षण भी जीवित न रह पाते। जीवनमें सूर्य-रश्मियोंका महत्त्व बहुत अधिक है। सूर्यकी किरणें शरीरके ऊपर पड़नेसे हमारे शरीरके अनेक रोग-कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यके प्रकाशसे रोगोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है। सूर्यसे आरोग्य-प्राप्तिके विषयमें अथर्ववेदमें लिखा है—

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥

(५।३०।१५)

अर्थात् हे जीव! तेरा प्राण विनाशको न प्राप्त हो और तेरा अपान भी कभी न रुके अर्थात् तेरे शरीरके श्वास-प्रश्वासकी क्रिया कभी बंद न हो। सबका स्वामी सूर्य—सबका प्रेरक परमात्मा तुझे अपनी व्यापक बलकारिणी किरणोंसे ऊँचा उठाये रखे—तेरे शरीरको और जीवनी-शक्तिको गिरने न दें।

सूर्यका प्रभाव मनुष्यके शरीर एवं मनपर बहुत गहरा पड़ता है। चिकित्सकोंका मत है कि सूर्य-रश्मि (Sun-beams)-के सेवनसे प्रत्येक प्रकारके रोग शान्त किये जा सकते हैं। यजुर्वेदमें कहा गया है कि चराचर प्राणी और समस्त पदार्थोंकी आत्मा तथा प्रकाश होनेसे परमेश्वरका नाम 'सूर्य' है **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**—अतएव इन्हें वेदमें 'जीवनदाता' कहा गया है।

६-व्यायाम—आयुर्वेदका मत है कि व्यायाम करनेसे शरीरका विकास होता है, शरीरके अङ्गोंकी थकावट नष्ट हो जाती है, निद्रा खूब आती है और मनकी चञ्चलता दूर होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा आलस्य मिट जाता है। शारीरिक सौन्दर्यकी वृद्धि होती है और मुखकी कान्तिमें निखार आता है।

आयुर्वेदके मर्मज्ञ आचार्य वाग्भटने लिखा है—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥

(अष्टाङ्गहृदय सूत्र० २।१०)

तात्पर्य यह है कि व्यायामसे शरीरमें स्फूर्ति आती है, कार्य करनेकी शक्ति बढ़ती है, जठराग्नि प्रज्वलित होती है, मोटापा नहीं रहता तथा शरीरके सब अङ्ग पुष्ट होते हैं। साथ ही यथोचित व्यायामसे प्रकृतिके विरुद्ध गरिष्ठ भोजन भी शीघ्र पच जाता है तथा शरीरमें शिथिलता जल्दी नहीं आ पाती। जीवनमें प्रसन्नता, स्वास्थ्य एवं सौन्दर्यके लिये व्यायाम नितान्त आवश्यक है। सदाचार और व्यायामके बलपर पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन सम्भव हो सकता है।

७-विचार—विचारशक्तिमें एक महान् उद्देश्य छिपा रहता है। इसलिये हमें अपने विचारोंको सदा-सर्वदा शुद्ध एवं पवित्र रखना चाहिये। विचारोंका प्रभाव सीधे स्वास्थ्यपर पड़ता है। सांकल्पिक दृढता तथा सात्त्विक चिन्तन-मनन रोगोंकी निर्मूलताके लिये बहुत आवश्यक है। दूषित विचारोंसे न केवल मन विकृत होकर रुग्ण होता है, अपितु शरीर भी अनारोग्य हो जाता है। सम्यक् सत्-चिन्तन एवं सम्यक् सद्विचार एक जीवनी-शक्ति है। अतः आरोग्य-लाभके लिये मनुष्यको विचार-शक्तिका आश्रय लेना चाहिये।

८-निद्रा—जिस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षाके लिये शुद्ध वायु, जल, सूर्य और भोजन आदिकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार यथोचित निद्रा भी परमावश्यक है। एक स्थलपर कहा गया है—

निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतन्द्रिताम्।
पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं वह्निदीप्तिं करोति हि॥

अर्थात् रात्रिमें ठीक समयपर सोनेसे धातुएँ साम्य-अवस्थामें रहती हैं और आलस्य दूर होता है। पुष्टि, कान्ति, बल और उत्साह बढ़ता है तथा अग्नि दीप्त होती है। स्वास्थ्यके लिये प्रगाढ निद्रा आवश्यक है। रात्रिमें सत्-विचारोंका स्मरण करते हुए शान्तिपूर्वक सोना चाहिये। सोते समय शरीरका वस्त्र ढीला होना चाहिये। उत्तम स्वास्थ्यके लिये सात्त्विक निद्रा आवश्यक है। दिनमें सोनेसे विविध प्रकारकी व्याधियाँ आ घेरती हैं।

यथाकाल निद्रासे निम्नलिखित लाभ होते हैं—१-नियमपूर्वक सोनेसे सारी श्रान्ति दूर हो जाती है। २-नये काम करनेकी नयी शक्ति प्राप्त होती है। ३-आयुर्बल बढ़ता है। ४-स्वप्नदोष, धातुदौर्बल्य, सिरके रोग, आलस्य, अल्पमूत्र और रक्तविकार आदिसे रक्षा होती है। ५-मन तथा इन्द्रियोंको विश्राम मिलता है।

सोनेसे पहले मनको समस्त शोक, चिन्ता और भयसे रहित कर लेना चाहिये तथा प्रसन्नता, संतोष और धैर्यके साथ सफलताकी कामना करनी चाहिये। इससे आप प्रातःकाल अपनेमें महान् परिवर्तन पायेंगे।

उपर्युक्त प्रकृति-प्रदत्त आठ चिकित्सकोंके समुचित सेवनसे मनुष्य-जीवन स्वस्थ, समृद्ध, सुख-सम्पत्ति तथा आनन्दसे परिपूर्ण और आयुष्मान् होता है।

आयुष्टे शरदः शतम्

(काशीपीठाधीश्वर श्रीरामशरणाचार्यजी)

श्रीमद्भागवतपुराण (२। ७। २१)-में बादरायण श्रीकृष्ण-द्वैपायन वेदव्यासजीने भगवान् धन्वन्तरिकी स्तुतिमें बड़ी सुन्दर बात कही है—

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्ति-
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध
आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके॥

अर्थात् इस लोकमें अवतार लेकर आयुर्वेद शास्त्रका अनुशासन करनेवाले स्वनामधन्य भगवान् धन्वन्तरिके नामस्मरणसे ही बड़े-बड़े रोगियोंके रोग नष्ट हो जाते हैं और यह कोई मात्र अर्थवाद नहीं है, '**विश्वासः फलदायकः।**' हमारे धर्मशास्त्र विश्वासकी धुरीपर टिके हैं, वे कहते हैं—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

अर्थात् मन्त्रमें, तीर्थमें, ब्राह्मणमें, देवतामें, दैवज्ञमें, औषधिमें तथा गुरुमें जो जैसी भावना (निष्ठा) रखता है, उसे फल भी तदनुरूप ही मिलता है।

चिकित्सा-शास्त्र, ज्योतिष तथा तन्त्र-मन्त्रके ग्रन्थ प्रत्यक्ष शास्त्रोंमें आते हैं, क्योंकि चिकित्सा-शास्त्रोंमें उल्लिखित औषधिका रोगानुसार सेवन करते ही रोगका नष्ट होना उसकी सत्यताका प्रत्यक्षीकरण करा देता है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्रानुसार वर्षों पूर्व यह घोषणा कर दी जाती है कि अमुक दिन अमुक समयपर सूर्य या चन्द्र-ग्रहण होगा और ठीक उसी समयपर ग्रहण दिखायी भी देता है। यह हमारी प्राच्य भारतीय विद्याके लिये गौरवका विषय है। अन्यथा विज्ञानके लिये तो आज भी यह चुनौतीका विषय है कि किस समय, कौन-सा ग्रह कहाँ होगा? कौन किसको आच्छादित करेगा, उसकी ठीक गति क्या है? इत्यादि विराट् ब्रह्माण्डमें यह आज भी पाश्चात्त्य विज्ञानके लिये चुनौती है। तन्त्र-मन्त्रका प्रत्यक्षीकरण तो प्रसिद्ध ही है। मन्त्रोंसे साँप तथा बिच्छूके विषको शान्त करना तो साधारण बात है।

इसके अतिरिक्त अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंकी तुलनामें आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्रकी विशेषता यह भी है कि '**मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता**' के सिद्धान्तानुसार बड़ी बातको संक्षिप्त—सूत्र-रूपमें ही कह देनेकी उसकी अपनी विशेषता है। जैसा कि देखें, कफ-वात-पित्त आदिकी चिकित्साके बारेमें संक्षेपमें ही कितनी सुन्दर बात कह दी गयी है—

वमनं कफनाशाय वातनाशाय मर्दनम्।
शयनं पित्तनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम्॥

अर्थात् कफनाश करनेके लिये वमन (उलटी), वातरोगमें मर्दन (मालिश), पित्तरोगमें शयन तथा ज्वरमें लंघन (उपवास) करना चाहिये। आयुर्वेद शास्त्र केवल रोगीकी चिकित्सा करनेमें ही विश्वास नहीं करता, अपितु उसका तो सिद्धान्त है—'रोगी होकर चिकित्सा करनेसे अच्छा है कि बीमार ही न पड़ा जाय।' इसके लिये आयुर्वेद शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर ऐसी बातें भरी पड़ी हैं, जिसके अनुपालनसे वैद्यकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती। जैसे—

दिनान्ते च पिबेद् दुग्धं निशान्ते च जलं पिबेत्।
भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वैद्यस्य किं प्रयोजनम्॥

तात्पर्य यह कि यदि रात्रिको शयनसे पूर्व दुग्ध, प्रातःकाल उठकर जल और भोजनके बाद तक्र (मट्ठा) पिये तो जीवनमें वैद्यकी आवश्यकता ही क्यों पड़े? इस प्रकारके सूत्रोंके आधारपर ग्राम्य जीवनमें बारहों मासके उपयोगी खाद्योंका सुन्दर संकेत इस प्रकार कर दिया गया है, जिनका सेवन अवश्य करना चाहिये—

सावन हर्रे भादौं चीत, क्वार मास गुड़ खाये मीत।
कातिक मूली अगहन तेल, पूषे करै दूधसे मेल॥
माघे घी व खीचड़ खाय, फागुन उठि कै प्रात नहाय।
चैत मासमें नीम व्यसवनि, भर बैसाखे खाये अगहनि॥
जेठ मास दुपहरिया सोवै, ताकर दुख अषाढ़में रोवै॥

बारहों मासके इन विधि-खाद्योंके अतिरिक्त निषेध-खाद्य भी हैं, जिन्हें भूलकर भी ग्रहण न करे। जैसे—

चैते गुड़ बैसाखे तेल, जेठे पथ आषाढ़े बेल।
सावन साग न भादों दही, क्वार करैला कातिक मही॥
अगहन जीरा न पूषे धना, माघे मिश्री फागुन चना।

इन बारहसे बचे जो भाई, ता घर कबहूँ वैद न जाई॥

आयुर्वेदका सिद्धान्त है कि—'**भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छायायां हि शनैः शनैः।**' भोजन करनेके बाद छायामें सौ पग धीरे-धीरे चलना चाहिये। शयनसे कम-से-कम २-३ घंटे पहले ही भोजन कर लेना चाहिये, अन्यथा क़ब्ज़ रहेगी। इसके अतिरिक्त दीर्घायुके लिये भी एक जगह बड़ा सुन्दर संकेत कर दिया गया है कि—

वामशायी द्विभुञ्जानो षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्पमैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति॥

अर्थात् बायीं करवट सोनेवाला, दिनमें दो बार भोजन करनेवाला, कम-से-कम छः बार लघुशंका, दो बार शौच जानेवाला, [गृहस्थमें आवश्यक होनेपर] स्वल्प-मैथुनकारी व्यक्ति सौ वर्षतक जीता है।

आयुर्वेद शास्त्र ही नहीं अपितु अथर्ववेदीय भगवती श्रुति भी ऐसी ही कामना करती हैं—

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्॥

(२।१३।४)

अर्थात् सभी देवता तुम्हारी आयु सौ वर्षकी करें। परंतु आगे ही एक बात अवश्य कह दी है कि—

प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा।

अर्थात् संयोगसे बीमार पड़ जानेपर औषधि अवश्य ले लेनी चाहिये। इसमें प्रमाद करनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि—'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' स्वस्थ शरीर ही धर्म-साधनका माध्यम है। संत कहते हैं—

पहला सुख निरोगी काया। दूजा सुख घर में हो माया।
तीजा सुख सुत दारा वश में। चौथा सुख जस खूब कमाया॥

अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे भिन्न आयुर्वेद शास्त्र स्वास्थ्यका उपयोग धर्म-साधन ही स्वीकार करता है। इस बातका वह स्थान-स्थानपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे संकेत करता रहता है। इसीके अनुसार नारायण-तैलके उपयोगको बताते समय यह भी संकेत कर देता है कि वास्तवमें इन रोगोंका उपशमन नारायण (भगवान्)-के हाथमें है—

नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता
नारायणं भजत रे पवनेन युक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता
नारायणात् परतरं नहि किञ्चिदस्ति॥

अर्थात् हे जठराग्निसे पीड़ित मनुष्यो! तुम नारायणका भजन करो, हे वातव्याधिसे दुःखी मनुष्यो! तुम नारायणका भजन करो, हे संसाररूपी महाव्याधिसे डरे हुए मनुष्यो! तुम नारायणका ही भजन करो; क्योंकि इन कष्टोंसे उबारनेवाला नारायणसे अतिरिक्त और कोई दूसरा है ही नहीं।

यह भारतीयोंके लिये एक गौरवका विषय है कि पारेसे स्वर्ण बना देनेवाले रसायनाचार्य यहाँतक डिण्डिम घोष कर देते हैं कि रस सिद्ध कर देनेपर इसके द्वारा दैहिक रोगकी बात ही क्या दुनिया भरके दारिद्र्य-रोगको मिटाया जा सकता है—

सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत्॥

इस प्रकारके असंख्यों संकेत-सूत्र हमारे शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं जिनपर व्यवस्थित रूपसे यदि सम्यक् अनुसन्धान किया जाय तो भारतवर्ष न केवल अपने प्राचीन गुरुत्वकी प्रतिष्ठाको पा जायगा, अपितु शीघ्र ही आजका भारत प्राचीन स्वर्ण-भारतमें भी बदल सकता है।

विभिन्न व्याधियोंके तारतम्यपर अनुसन्धान करनेसे एक बात सामने आती है कि जिन लोगोंका जन्म शीतकालमें होता है, उनको शीतकी बीमारियाँ ही अधिक होती हैं। जिनका जन्म ग्रीष्म-ऋतुमें होता है, उनको गर्मीकी ही बीमारियाँ अधिक होंगी तथा गर्मी भी असह्य होगी। इस प्रकारके अनुसन्धानोंमें जहाँ मानव-जातिका बहुत बड़ा कल्याण होगा, वहीं आधुनिक युगमें भी शास्त्रोंकी प्रामाणिकतापर रुचि बढ़ेगी।

चिकित्साके विषयमें वर्तमान स्थितिमें यह अवश्य चिन्तनीय बात है कि आजका तथाकथित चिकित्सक अनुसन्धान तथा स्वाध्याय-अनुगमके अभावमें रोगीपर खिलौनेकी तरह चिकित्साकी आड़में मात्र प्रयोग करता जाता है—

यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि पेष्टितम्।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति॥

अर्थात् जिस-किसी जड़ीको जिस-किसी भी प्रकार पीसकर जिस-किसी भी तरह जिस-किसी भी रोगीको दे दो। कुछ-न-कुछ तो प्रतिक्रिया होगी ही और होता वही है कि अन्तमें प्रयोग करते-करते रोगी

स्वर्ग ही सिधार जाता है। ऐसे चिकित्सकोंके बारेमें ठीक ही कहा गया है—

वैद्यराज नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानव।
त्वयि विन्यस्तभारोऽयं कृतान्तः सुखमेधते॥

(सुभाषितावली २३। १९)

इस प्रमादमें आजकलके कुछ चिकित्सकोंकी अर्थबुद्धि भी कम कारण नहीं है, क्योंकि '**अर्थबुद्धिर्न धर्मवित्**' अर्थात् जिसकी बुद्धि अर्थमें लगी हो वह धर्माचरण नहीं कर सकता। जो लोग मरणासन्न व्यक्तिसे भी कुछ-न-कुछ धनागमकी कामना रखते हैं, वे चिकित्सा-सेवा कैसे कर पायँगे?

इसमें कोई संदेह नहीं कि आयुर्वेद शास्त्र औषधिसे भी अधिक महत्त्व पथ्यको देता है—

विनापि भेषजं व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्यविहीनोऽयं भेषजानां शतैरपि।

पथ्यसेवनसे व्याधि बिना औषधिके भी नष्ट हो जाती है, परंतु जो पथ्यसेवन नहीं करता, युक्ताहार-विहार नहीं रखता, वह चाहे सैकड़ों औषधियाँ ले ले, पर उसका वह रोग दूर नहीं होता। अतः आरोग्य-लाभार्थ संयमित जीवन जीनेकी आवश्यकता है।

आरोग्य-साधन

(पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्योतिषाचार्य)

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्……। (मत्स्यपुराण)

अन्तश्चरति रोचना ऽस्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम्॥ (ऋग्वेद १०। १८९। २)

ऊपरके इस वेदमन्त्र '**अन्तश्चरति०**'-में स्पष्ट कहा है कि भगवान् सूर्यकी रोचमाना दीप्ति अर्थात् सुन्दर प्रभा शरीरके मध्यमें मुख्य प्राणरूप होकर रहती है। इससे सिद्ध है कि शरीरका स्वस्थ, नीरोग, दीर्घजीवी होना भगवान् सूर्यकी कृपापर निर्भर है; क्योंकि सूर्य-किरणोंके द्वारा ही सारे जगत्में प्राणतत्त्वका संचार होता है। प्रश्नोपनिषद्में लिखा है—

यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।

(१। ६)

अर्थात् जब आदित्य प्रकाशमान होता है, तब वह समस्त प्राणोंको अपनी किरणोंमें रखता है।

इसमें भी एक रहस्य है। वह यह कि प्रातःकालकी सूर्य-किरणोंमें अस्वस्थताका नाश करनेकी जो अद्भुत शक्ति है, वह मध्याह्न तथा सायाह्नकी सूर्य-रश्मियोंमें नहीं है।

उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः०।

(अथर्व० ९। ८। २२)

वेदभगवान् कहते हैं कि प्रातःकालकी आदित्य-किरणोंसे अनेक व्याधियोंका नाश होता है। सूर्य-रश्मियोंमें विष दूर करनेकी भी शक्ति है। स्वस्थ शरीरसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**'। एतदर्थ आरोग्यके इच्छुक साधकोंको भगवान् सूर्यकी शरणमें रहना अत्यावश्यक है। सूर्यकी किरणोंमें व्याप्त प्राणोंको पोषण प्रदान करनेवाली महती शक्तिका निम्नलिखित सहज साधनसे आकर्षण करके साधक स्वस्थ, नीरोग और दीर्घजीवी होकर अन्तमें दिव्य प्रकाशको प्राप्त करके परमपदको भी प्राप्त कर सकता है। आलस्य या अविश्वासवश इस साधनको न करना एक प्रकारसे आत्मोन्नतिसे विमुख रहना है।

साधन—प्रातःकाल संध्या-वन्दनादिसे निवृत्त होकर प्रथम प्रहरमें, जबतक सूर्यकी धूप विशेष तेज न हो, तबतक एकान्तमें केवल एक वस्त्र पहनकर और मस्तक, हृदय, उदर आदि प्रायः सभी अङ्ग खुले रखकर पूर्वाभिमुख भगवान् सूर्यके प्रकाशमें खड़ा हो जाय। तदनन्तर हाथ—जोड़, नेत्र बंद करके जगच्चक्षु भगवान् भास्करका ध्यान इस प्रकार करे—

पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः
पद्मद्युतिः सप्ततुरङ्गवाहनः।
दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी
मयि प्रसादं विदधातु देवः॥

यदि किसी साधकको नेत्रमान्द्यादि दोष हो तो वह ध्यानके बाद नेत्रोपनिषद्का पाठ भी कर ले। तदनन्तर वाल्मीकिरामायणोक्त आर्ष आदित्यहृदयका पाठ तथा '**ॐ ह्रीं हंसः०**' इस बीजसमन्वित मन्त्रका कम-से-कम पाँच माला जप करके मनमें दृढ़ धारणा करे कि जो सूर्य-किरणें हमारे शरीरपर पड़ रही हैं और जो हमारे चारों ओर फैल रही हैं, उन सबमें रहनेवाली आरोग्यदा प्राणशक्ति मेरे शरीरके रोम-रोममें प्रवेश कर रही है। नित्य नियमपूर्वक दस मिनटसे बीस मिनटतक इस प्रकार करे। साथ ही घंटा-रव-रणत्-स्वरसे ॐकारका उच्चारण ब्रह्मरन्ध्रतक पहुँचाना चाहिये। ऐसा करनेसे अनोखा आमन्द तथा दिव्य स्फूर्तियुक्त तेज मिलेगा। यदि किसी श्रद्धालु साधकको कष्टसाध्य अथवा असाध्य ऊरुक्षत, राजयक्ष्मा अथवा कुष्ठादि रोग अत्यन्त कष्ट दे रहे हों तो वह उपर्युक्त साधनके साथ-साथ निम्नलिखित काम्य रविव्रत भी करे। मेरा विश्वास है कि ऐसा करनेपर निश्चय ही इच्छानुसार लाभ होगा। यह व्रत गुरु-शुक्रास्तादि दोषसे रहित मार्गशीर्ष शुक्लपक्षसे प्रारम्भ करना चाहिये।

व्रती साधकको चाहिये कि रविवारको सूर्योदयसे ५ घड़ी (२ घंटे) पूर्व उठकर शौचशुद्धिके बाद ताजे या भिगोये हुए अपामार्ग (ओंगा-पुठकंडा)-की दातौनसे मुखशुद्धि करे। तदनन्तर स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उपर्युक्त साधन करके भगवान् सूर्यके सम्मुख (चान्द्रमानसे) मार्गशीर्ष हो तो पहले दिनके तोड़े हुए और भगवान्को समर्पण किये हुए केवल तुलसीजीके तीन पत्र, पौषमें ३ पल गोघृत, माघमें ३ मुट्ठी तिल, फाल्गुनमें ३ पल गौका दही, चैत्रमें ३ पल गौका दूध, वैशाखमें सवत्सा गौका गोबर बदरीफल प्रमाणमें (बेर-जितना), ज्येष्ठमें ३ अञ्जलि गङ्गाजल (अभावमें भगवान्का चरणामृत), आषाढ़में ३ दाना काली मिर्च, श्रावणमें ३ पल जौका सत्तू, भाद्रपदमें सवत्सा गौका मूत्र ३ चुल्लू, आश्विनमें चीनी ३ पल तथा कार्तिकमें हविष्य ३ पल* भक्षण करे।

ऊपर जो द्वादश मासोंके रविवारोंकी भक्ष्य वस्तुएँ लिखी हैं, उनके अतिरिक्त अन्य वस्तु उस दिन मुखमें न डाले। भक्ष्य पदार्थके भक्षण करनेके अनन्तर आचमन करके मुखशुद्धि अवश्य करे। जहाँ केवल जलमात्रका ही वचन है, वहाँ आचमनकी आवश्यकता नहीं है। व्रती साधक उस दिन मौनधारणपूर्वक मनमें पहले बताये गये बीजमन्त्रका स्मरण करता हुआ एकान्तसेवन करे और प्रातः, मध्याह्न तथा सायंके समय रोली, पुष्प और चावलोंसे युक्त जलका अर्घ्य भी अवश्य दे। रात्रिको पवित्रतापूर्वक जमीनपर या काठके तख्ते अथवा चौकीपर पूर्वकी ओर सिर करके सोये।

साधको! इस रविव्रतसे स्वास्थ्यमें जो वर्णनातीत लाभ होते देखा गया है, वह किसी भी मानवीय औषधसे शतांशमें भी नहीं होता—ऐसा मेरा अनुभव है। यदि कोई साधक इस व्रतको बारह सालतक विश्वासपूर्वक करे तो वह पूर्णकाम होकर ब्रह्मरूप हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। यहाँ तो केवल दृढ़ श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकता है। कहाँतक लिखा जाय, कुछ समयतक विधिवत् इस साधनके करनेसे भगवान् भास्करकी कृपाका अद्भुत फल अपने-आप ही प्रत्यक्ष हो जायगा।

स्मरण रहे कि सूर्यके सामने मल-मूत्रका त्याग करना सभीके लिये, खास करके सूर्योपासकके लिये तो सर्वथा निषिद्ध है। रविवारको तैल, स्त्री-संसर्ग तथा नमकीन पदार्थका त्याग करना साधारण रविव्रत कहलाता है।

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥

हरिनाम संकीर्तन सभी रोगोंका उपशमन करनेवाला, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाला और समस्त अरिष्टोंकी शान्ति करनेवाला है।

---

* एक पल ३ तोले ४ माशेका होता है।

वास्तुशास्त्र और आरोग्य

(श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

'वास्तु' शब्दका अर्थ है—निवास करना। जिस भूमिपर मनुष्य निवास करते हैं, उसे 'वास्तु' कहा जाता है। वास्तुशास्त्रमें गृह-निर्माण-सम्बन्धी विविध नियमोंका प्रतिपादन किया गया है। उनका पालन करनेसे मनुष्यको अन्य कई प्रकारके लाभोंके साथ-साथ आरोग्यलाभ भी होता है। वास्तुशास्त्रका विशेषज्ञ किसी मकानको देखकर यह बता सकता है कि इसमें निवास करनेवालेको क्या-क्या रोग हो सकते हैं। इस लेखमें संक्षिप्त रूपसे ऐसी बातोंका उल्लेख करनेकी चेष्टा की जाती है, जिनसे पाठकोंको इस बातका दिग्दर्शन हो जाय कि गृह-निर्माणमें किन दोषोंके कारण रोगोंकी उत्पत्ति होना सम्भव है।

१. भूमि-परीक्षा—भूमिके मध्यमें एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदे। खोदनेके बाद निकाली हुई सारी मिट्टी पुनः उसी गड्ढेमें भर दे। यदि गड्ढा भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो वह उत्तम भूमि है। यदि मिट्टी गड्ढेके बराबर निकलती है तो वह मध्यम भूमि है और यदि गड्ढेसे कम निकलती है तो वह अधम भूमि है।

दूसरी विधि—उपर्युक्त प्रकारसे गड्ढा खोदकर उसमें पानी भर दे और उत्तर दिशाकी ओर सौ कदम चले, फिर लौटकर देखे। यदि गड्ढेमें पानी उतना ही रहे तो वह उत्तम भूमि है। यदि पानी कम (आधा) रहे तो वह मध्यम भूमि है और यदि बहुत कम रह जाय तो वह अधम भूमि है। अधम भूमिमें निवास करनेसे स्वास्थ्य और सुखकी हानि होती है।

ऊसर, चूहोंके बिलवाली, बाँबीवाली, फटी हुई, ऊबड़-खाबड़, गड्ढोंवाली और टीलोंवाली भूमिका त्याग कर देना चाहिये।

जिस भूमिमें गड्ढा खोदनेपर कोयला, भस्म, हड्डी, भूसा आदि निकले, उस भूमिपर मकान बनाकर रहनेसे रोग होते हैं तथा आयुका ह्रास होता है।

२. भूमिकी सतह—पूर्व, उत्तर और ईशान दिशामें नीची भूमि सब दृष्टियोंसे लाभप्रद होती है। आग्नेय, *दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य और मध्यमें नीची भूमि रोगोंको उत्पन्न करनेवाली होती है।*

दक्षिण तथा आग्नेयके मध्य नीची और उत्तर एवं वायव्यके मध्य ऊँची भूमिका नाम 'रोगकर वास्तु' है, जो रोग उत्पन्न करती है।

३. गृहारम्भ—वैशाख, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष और फाल्गुनमासमें करना चाहिये। इससे आरोग्य तथा धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।

नींव खोदते समय यदि भूमिके भीतरसे पत्थर या ईंट निकले तो आयुकी वृद्धि होती है। यदि राख, कोयला, भूसी, हड्डी, कपास, लोहा आदि निकले तो रोग तथा दुःखकी प्राप्ति होती है।

४. वास्तुपुरुषके मर्म-स्थान—सिर, मुख, हृदय, दोनों स्तन और लिङ्ग—ये वास्तुपुरुषके मर्म-स्थान हैं। वास्तुपुरुषका सिर 'शिखी'में, मुख 'आप'में, हृदय 'ब्रह्मा'में, दोनों स्तन 'पृथ्वीधर' तथा 'अर्यमा'में और लिङ्ग 'इन्द्र' तथा 'जय'में है (देखें—वास्तुपुरुषका चार्ट)। वास्तुपुरुषके जिस मर्म-स्थानमें कील, खम्भा आदि गाड़ा जायगा, गृहस्वामीके उसी अङ्गमें पीडा या रोग उत्पन्न हो जायगा।

वास्तुपुरुषका हृदय (मध्यका ब्रह्म-स्थान) अतिमर्मस्थान है। इस जगह किसी दीवार, खम्भा आदिका निर्माण नहीं करना चाहिये। इस जगह जूठे बर्तन, अपवित्र पदार्थ भी नहीं रखने चाहिये। ऐसा करनेपर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

५. गृहका आकार—चौकोर तथा आयताकार मकान उत्तम होता है। आयताकार मकानमें चौड़ाईकी दुगुनीसे अधिक लम्बाई नहीं होनी चाहिये। कछुएके आकारवाला घर पीडादायक है। कुम्भके आकारवाला घर कुष्ठरोग-प्रदायक है। तीन तथा छः कोनवाला घर आयुका क्षयकारक है। पाँच कोनवाला घर संतानको कष्ट देनेवाला है। आठ कोनवाला घर रोग उत्पन्न करता है।

घरको किसी एक दिशामें आगे नहीं बढ़ाना चाहिये। यदि बढ़ाना ही हो तो सभी दिशाओंमें

समानरूपसे बढ़ाना चाहिये। यदि घर वायव्य दिशामें आगे बढ़ाया जाय तो वात-व्याधि होती है। यदि वह दक्षिण दिशामें बढ़ाया जाय तो मृत्यु-भय होता है। उत्तर दिशामें बढ़ानेपर रोगोंकी वृद्धि होती है।

वास्तुचक्र

ईशान — पूर्व — आग्नेय

उत्तर (बायाँ) — दक्षिण (दायाँ)

शिखी सिर	**पर्जन्य** नेत्र	**जयन्त** कान	**इन्द्र** कन्धा	**सूर्य** भुजा	**सत्य** भुजा	**भृश** भुजा	**अन्तरिक्ष** भुजा	**अनिल** भुजा
दिति नेत्र	**आप** मुख						**सावित्र** हाथ	**पूषा** मणिबन्ध
अदिति कान		**आपवत्स** छाती		**अर्यमा** स्तन		**सविता** हाथ		**वितथ** बगल
भुजग कन्धा								**बृहत्क्षत** बगल
सोम भुजा		**पृथ्वीधर** स्तन		**ब्रह्मा** हृदय		**विवस्वान्** पेट		**यम** ऊरु
भल्लाट भुजा								**गन्धर्व** घुटना
मुख्य भुजा		**राजयक्ष्मा** हाथ		**मित्र** पेट		**इन्द्र** लिङ्ग		**भृंगराज** जंघा
नाग भुजा	**रुद्र** हाथ						**जय** लिङ्ग	**मृग** नितम्ब
रोग भुजा	**पापयक्ष्मा** मणिबन्ध	**शोष** बगल	**असुर** बगल	**वरुण** ऊरु	**पुष्पदन्त** घुटना	**सुग्रीव** जंघा	**दौवारिक** नितम्ब	**पिता** पैर

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

६. **गृहनिर्माणकी सामग्री**—ईंट, लोहा, पत्थर, मिट्टी और लकड़ी—ये नये मकानमें नये ही लगाने चाहिये। एक मकानमें उपयोग की गयी लकड़ी दूसरे मकानमें लगानेसे गृहस्वामीका नाश होता है।

मन्दिर, राजमहल और मठमें पत्थर लगाना शुभ है, पर घरमें पत्थर लगाना शुभ नहीं है।

पीपल, कदम्ब, नीम, बहेड़ा, आम, पाकर, गूलर, रीठा, वट, इमली, बबूल और सेमलके वृक्षकी लकड़ी घरके काममें नहीं लेनी चाहिये।

७. **गृहके समीपस्थ वृक्ष**—आग्नेय दिशामें वट, पीपल, सेमल, पाकर तथा गूलरका वृक्ष होनेसे पीडा और मृत्यु होती है। दक्षिणमें पाकर-वृक्ष रोग उत्पन्न करता है। उत्तरमें गूलर होनेसे नेत्ररोग होता है। बेर, केला, अनार, पीपल और नीबू—ये जिस घरमें होते हैं, उस घरकी वृद्धि नहीं होती।

घरके पास काँटेवाले, दूधवाले और फलवाले वृक्ष हानिप्रद हैं।

पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा, पीपल, कपित्थ, बेर, निर्गुण्डी, इमली, कदम्ब, बेल तथा खजूर—ये सभी वृक्ष घरके समीप अशुभ हैं।

८. **गृहके समीपस्थ अशुभ वस्तुएँ**—देवमन्दिर, धूर्तका घर, सचिवका घर अथवा चौराहेके समीप घर बनानेसे

दुःख, शोक तथा भय बना रहता है।

९. मुख्य द्वार—जिस दिशामें द्वार बनाना हो, उस ओर मकानकी लम्बाईको बराबर नौ भागोंमें बाँटकर पाँच भाग दायें और तीन भाग बायें छोड़कर शेष (बायीं ओरसे चौथे) भागमें द्वार बनाना चाहिये। दायाँ और बायाँ भाग उसको माने, जो घरसे बाहर निकलते समय हो।

पूर्व अथवा उत्तरमें स्थित द्वार सुख-समृद्धि देनेवाला होता है। दक्षिणमें स्थित द्वार विशेषरूपसे स्त्रियोंके लिये दुःखदायी होता है।

द्वारका अपने-आप खुलना या बंद होना अशुभ है। द्वारके अपने-आप खुलनेसे उन्माद-रोग होता है और अपने-आप बंद होनेसे दुःख होता है।

१०. द्वार-वेध—मुख्य द्वारके सामने मार्ग या वृक्ष होनेसे गृहस्वामीको अनेक रोग होते हैं। कुआँ होनेसे मृगी तथा अतिसाररोग होता है। खम्भा एवं चबूतरा होनेसे मृत्यु होती है। बावड़ी होनेसे अतिसार एवं संनिपातरोग होता है। कुम्हारका चक्र होनेसे हृदयरोग होता है। शिला होनेसे पथरीरोग होता है। भस्म होनेसे बवासीररोग होता है।

यदि घरकी ऊँचाईसे दुगुनी जमीन छोड़कर वेध-वस्तु हो तो उसका दोष नहीं लगता।

११. गृहमें जल-स्थान—कुआँ या भूमिगत टंकी पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा ईशान दिशामें होनी चाहिये। जलाशय या ऊर्ध्व टंकी उत्तर या ईशान दिशामें होनी चाहिये।

यदि घरके दक्षिण दिशामें कुआँ हो तो अद्भुत रोग होता है। नैर्ऋत्य दिशामें कुआँ होनेसे आयुका क्षय होता है।

१२. घरमें कमरोंकी स्थिति—यदि एक कमरा पश्चिममें और एक कमरा उत्तरमें हो तो वह गृहस्वामीके लिये मृत्युदायक होता है। इसी तरह पूर्व और उत्तर दिशामें कमरा हो तो आयुका ह्रास होता है। पूर्व और दक्षिण दिशामें कमरा हो तो वातरोग होता है। यदि पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशामें कमरा हो, पर दक्षिणमें कमरा न हो तो सब प्रकारके रोग होते हैं।

१३. गृहके आन्तरिक कक्ष—स्नानघर 'पूर्व'में, रसोई 'आग्नेय'में, शयनकक्ष 'दक्षिण'में, शस्त्रागार, सूतिकागृह, गृह-सामग्री और बड़े भाई या पिताका कक्ष 'नैर्ऋत्य'में, शौचालय 'नैर्ऋत्य', 'वायव्य' या 'दक्षिण-नैर्ऋत्य'में, भोजन करनेका स्थान 'पश्चिम'में, अन्न-भण्डार तथा पशु-गृह 'वायव्य'में, पूजागृह 'उत्तर' या 'ईशान'में, जल रखनेका स्थान 'उत्तर' या 'ईशान'में, धनका संग्रह 'उत्तर'में और नृत्यशाला 'पूर्व, पश्चिम, वायव्य या आग्नेय'में होनी चाहिये। घरका भारी सामान नैर्ऋत्य दिशामें रखना चाहिये।

१४. जानने योग्य आवश्यक बातें—ईशान दिशामें पति-पत्नी शयन करें तो रोग होना अवश्यम्भावी है।

सदा पूर्व या दक्षिणकी तरफ सिर करके सोना चाहिये। उत्तर या पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे शरीरमें रोग होते हैं तथा आयु क्षीण होती है।

दिनमें उत्तरकी ओर तथा रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। दिनमें पूर्वकी ओर तथा रात्रिमें पश्चिमकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करनेसे आधासीसीरोग होता है।

दिनके दूसरे और तीसरे पहर यदि किसी वृक्ष, मन्दिर आदिकी छाया मकानपर पड़े तो वह रोग उत्पन्न करती है।

एक दीवारसे मिले हुए दो मकान यमराजके समान गृहस्वामीका नाश करनेवाले होते हैं।

किसी मार्ग या गलीका अन्तिम मकान कष्टदायी होता है।

घरकी सीढ़ियाँ (पग), खम्भे, खिड़कियाँ, दरवाजे आदिकी 'इन्द्र-काल-राजा'—इस क्रमसे गणना करे। यदि अन्तमें 'काल' आये तो अशुभ समझना चाहिये।

दीपक (बल्ब आदि)-का मुख पूर्व अथवा उत्तरकी ओर रहना चाहिये।

दन्तधावन (दातुन), भोजन और क्षौरकर्म सदा पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके ही करने चाहिये।

जीवका गर्भवास और देहरचना

(वैद्य पं० श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल', एम्०ए०, साहित्यायुर्वेदाचार्य, साहित्यायुर्वेदरत्न)

अखिल विश्वमें हमारा भारत ही एक ऐसा देश है जो पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें पूर्ण विश्वास ही नहीं रखता, अपितु समय-समयपर त्रिकालदर्शी योगियोंद्वारा इस प्रकारके उदाहरण प्रत्यक्षरूपसे प्रस्तुत करनेमें समर्थ रहा है। अणिमा आदि अष्टसिद्धियोंको प्राप्त महापुरुष तो परकाया-प्रवेशतक करके ऐसा दिखाते आये हैं।

इससे यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि आत्मा अजर और अमर है तथा वह अपने प्रारब्ध (पूर्वसंचित कर्मफल)-के अनुसार सम्बन्धित मानव, पशु, कीट आदि योनियोंमें जन्म लेता है। श्रीमद्भागवत तथा गरुडपुराण (सारोद्धार) आदिमें इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है—

जीवका गर्भप्रवेश

'जीव प्रारब्ध-कर्मवश देह-प्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्य-कणके आश्रित होकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट[1] होता है।'

आयुर्वेदके विभिन्न ग्रन्थोंके आधारपर जीवके पूर्वकर्मानुसार गर्भप्रवेशका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—'यह आत्मा जैसे शुभाशुभ कर्म पूर्वजन्ममें संचित करता है, उन्हींके आधारपर इसका पुनर्जन्म होता है और पूर्वदेहमें संस्कारित गुणोंका प्रादुर्भाव[2] इस जन्ममें होता है।'

जैसा कि योगिराज श्रीकृष्णने गीताके छठे अध्यायमें इस बातकी पुष्टि—**'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्'**—इस वाक्यसे की है। इसी कारण हम संसारमें किसीको कुरूप, किसीको सुन्दर, किसीको लँगड़ा, किसीको लूला, किसीको मूक और किसीको कुबड़ा तो किसीको अंधा और किसीको काना देखते हैं। इसी प्रकार कोई जीव किसी महापुरुषके घर जन्म लेता है तो कोई किसी अधमके घर। कोई ऐश्वर्यशालीके घरमें जन्म लेता है तो कोई अकिंचन कुटीरमें पलता है। यह सम्पूर्ण विविधता पूर्वकृत कर्मके अनुसार होती है, जिसे कि हम 'दैव' भी कहते हैं—

'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।'

चरक-संहिताके शारीरस्थानके चतुर्थ अध्यायमें भी इस बातकी पुष्टि इस प्रकार है—'सबसे पूर्व मनरूपी कारणके साथ संयुक्त हुआ आत्मा धातुगुणके ग्रहण करनेके लिये प्रवृत्त होता है अर्थात् अपने कर्मके अनुसार सत्त्व, रज तथा तम—इन गुणोंके ग्रहणके लिये अथवा महाभूतोंके ग्रहणके लिये प्रवृत्त होता है। आत्माका जैसा कर्म होता है और जैसा मन उसके साथ है, वैसा ही शरीर बनता है, वैसे ही पृथिवी आदि भूत होते हैं तथा अपने कर्मद्वारा प्रेरित किये हुए मनरूपी साधनके साथ स्थूल शरीरको उत्पन्न करनेके लिये उपादानभूत भूतोंको ग्रहण करता है। वह आत्मा हेतु, कारण, निमित्त, कर्ता, मन्ता, बोधयिता, बोद्धा, द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, पुरुषप्रभव, अव्यय, नित्यगुणी, भूतोंका ग्रहण करनेवाला प्रधान, अव्यक्त, जीवज्ञ, प्रकुल, चेतनावान्, प्रभु, भूतात्मा, इन्द्रियात्मा और अन्तरात्मा कहलाता[3] है।'

'वह जीव गर्भाशयमें अनुप्रविष्ट होकर शुक्र और शोणितसे मिलकर अपनेसे अपनेको गर्भरूपमें उत्पन्न करता है। अतएव गर्भमें इसकी आत्मसंज्ञा[4] होती है।'

'क्षेत्रज्ञ, वेदयिता, स्प्रष्टा, घ्राता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुषस्रष्टा, गन्ता, साक्षी, धाता, वक्ता इत्यादि पर्यायवाची नामोंसे, जो ऋषियोंद्वारा पुकारा जाता है, वह क्षेत्रज्ञ (स्वयं अक्षय, अचिन्त्य और अव्यय होते हुए भी) दैवके संगसे सूक्ष्म भूत-तत्त्व, सत्त्व, रज, तम, दैव, आसुर या अन्य भावसे युक्त वायुसे प्रेरित हुआ गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर (शुक्र-आर्तवके संयोग होते

१-कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये। स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥ (श्रीमद्भा० ३।३१।१; ग०पु०सा० ६।५)

२-कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे। अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान्॥ (सुश्रुत० शा० २।५५)

३-तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय पुनः प्रवर्तते। स हि हेतुः कारणं निमित्तमक्षरं कर्ता मन्ता बोधता बोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रभवोऽव्ययो नित्यो गुणी ग्रहणं प्राधानमव्यक्तं जीवो ज्ञः प्रकुलश्चेतनावान् प्रभुश्च भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति। (च०शा० ४।४)

४-स (आत्मा) गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्यां संयोगमेत्य गर्भत्वेन जनयत्यात्मनात्मानम्, आत्मसंज्ञा हि गर्भे। (च०शा० ३।१२)

ही) तत्काल उस संयोगमें अवस्थान[1] करता है।'

जीवका गर्भ-वृद्धिक्रम

गर्भमें प्रविष्ट होनेके बाद यह आत्मा पाञ्चभौतिक शरीरको धारण करने लगता है। इस शरीरकी वृद्धि गर्भमें क्रमशः नौ मासतक होनेका वर्णन विभिन्न ग्रन्थोंमें इस प्रकार मिलता है—

'डिम्बाणुके साथ मिले हुए शुक्राणुकी वृद्धि एक रात्रिमें कलल, पाँच रात्रिमें बुद्बुद, दस रात्रिमें कर्कन्धू (बेर)-के समान मांस-पिण्डके रूपमें होती है एवं अन्य मानवेतर योनियोंमें अंडेके रूपमें होती है। उसके बाद दो माहमें सिर और बाहु आदि अङ्गका विग्रह (विभाग) होता है। तीन माहमें नख, रोम, हड्डी, चर्म और लिङ्ग आदि छिद्र होते हैं। चार महीनेमें सातों धातु बनते हैं, पाँच महीनेमें क्षुधा तथा तृषाकी उत्पत्ति होती है एवं छः महीनेमें जरायु (झिल्ली)-में लिपटा हुआ दक्षिणकुक्षिमें भ्रमण करता है। सातवें महीनेमें सचेत होकर प्रसूतिवायुसे कम्पित होता हुआ विष्ठासे उत्पन्न सहोदर कृमिके समान चलता[2] रहता है।'

आयुर्वेदके प्रधान ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके आधारपर गर्भ-वृद्धिक्रम इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—

'शुक्र और शोणितके संयोगसे प्रथम मासमें गर्भ कलल अर्थात् बुद्बुदाकार होता है। द्वितीय मासमें शीत (श्लेष्मा), उष्म (पित्त) और अनिल (वात)—इनसे पञ्चमहाभूतोंका समूह गाढ़ा बनता है। यदि वह समूह पिण्डाकृति हो तो पुत्र और पेशी (दीर्घाकृति) हो तो कन्या तथा अर्बुद गोला (Tumour)-के परिमाणका हो तो नपुंसक होता है। तृतीय मासमें दो हाथ, दो पैर और सिर ऐसे पाँच अवयवोंके पिण्ड होते हैं एवं गला, छाती, पीठ तथा पेट—ये अङ्ग और ठोड़ी, नासिका, कान, अँगुली, एड़ी इत्यादि प्रत्यङ्गोंका विभाग अस्पष्टतया ज्ञात होता है। चतुर्थ मासमें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गके विभाग खूब स्पष्ट हो जाते हैं तथा गर्भका हृदय स्पष्ट होनेसे चेतना-धातु व्यक्त होता है; क्योंकि हृदय चेतना-धातुका स्थान (आश्रय) है। इसलिये इन्द्रियार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी अभिलाषा चतुर्थ मासमें होती है।'

'पञ्चम मासमें मन अधिक प्रबुद्ध एवं सचेत होता है। षष्ठ मासमें बुद्धि प्राप्त होती है। सप्तममें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी अभिव्यक्ति भलीभाँति होती है अर्थात् सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग—ग्रीवा-मूर्धा आदि स्पष्ट हो जाते हैं। अष्टम मासमें ओज चञ्चल रहता है। इस मासमें बालक पैदा होनेपर नैर्ऋत भागके कारण तथा ओजधातु क्षीण रहनेसे जीता नहीं। नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासमें उत्पन्न बालक जीवित रहता है। इसके बाद यदि प्रसव न हो तो वह विकारी गर्भ समझा जाता है[3]।

जीवका गर्भवास

गरुडपुराण (सारोद्धार) तथा श्रीमद्भागवतमहापुराणमें जीवके गर्भवासका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है—

'माताद्वारा भुक्त अन्न-पानादिसे बढ़ा है रस, रक्त आदि धातु जिसका, ऐसा प्राणी असम्मत अर्थात् जिससे दुर्गन्ध आती है, जिसमें जीवकी सम्भूति है ऐसे विष्ठा

१-क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्ता यः कोऽसावित्येवमादिभिः पर्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्त्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते।

(सुश्रुत, शा० ३। ३)

२-कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्। दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥
मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः। नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः। षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥
आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः। नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥

(श्रीमद्भा० ३। ३१। २—४, १०; ग० पु० सा० ६। ६—८, १५)

३-तत्र प्रथमे मासि कललं जायते; द्वितीये शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः सञ्जायते; यदि पिण्डः पुमान्, स्त्री चेत् पेशी, नपुंसकं चेदर्बुदमिति। तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्च पिण्डका निर्वर्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति, चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति, गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति; कस्मात्? तत्स्थानत्वात्। तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति।

पञ्चमे मनः प्रबुद्धतरं भवति, षष्ठे बुद्धिः, सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरः, अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजः, तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वा-न्नैर्ऋतभागत्वाच्च, × × × नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोऽन्यथा विकारी भवति।

(सुश्रुत० शा० ३। १८, ३०)

और मूत्रके गर्तमें सोता है। सुकुमार होनेके कारण वह गर्तमें होनेवाले भूखे कीड़ोंके काटे जानेपर प्रतिक्षण उस क्लेशसे पीडित हो मूर्च्छित हो जाता है। मातासे खाये हुए कड़ुए, तीक्ष्ण, नमकीन (चटपटे), रूखे और खट्टे आदि उल्बण पदार्थसे छुए जानेपर जीवके अङ्गोंमें वेदना होती है तथा जरायु और आँतके बन्धनमें पड़कर पीठ और ग्रीवाके लचकनेसे काँखमें सिर करके पिंजरेके पक्षीके समान वह अङ्गोंके चलानेमें असमर्थ हो जाता है। वहाँ दैवयोगसे सौ जन्मकी बात स्मरणकर दीर्घ श्वास लेता है। अतः कुछ भी उसे सुख नहीं मिलता। संतप्त और भयभीत जीव धातुरूप सात बन्धनोंमें पड़कर तथा हाथ जोड़कर, जिसने इस उदरमें डाला है, उसकी दीन वचनोंसे स्तुति करता[1] है।'

'हे लक्ष्मीपते! हे जगत्के आधार, अशुभके नाशकर्ता, शरणागत-वत्सल श्रीविष्णु! मैं आपकी शरण हूँ। आपकी मायासे मोहित होकर देहमें 'मैं' तथा पुत्र-स्त्रीमें 'मेरा' अभिमान करके हे नाथ! मैं संसारको प्राप्त हुआ हूँ। मैंने कुटुम्बके लिये शुभ-अशुभ कर्म किया है, परंतु उस कर्मसे मैं अकेला ही दग्ध हो रहा हूँ और ये कुटुम्बी फलके भागी हुए। यदि इस योनिसे मेरा छुटकारा हुआ तो मैं आपके चरणोंका स्मरण करूँगा, जिससे संसारसे मुक्त हो जाऊँ। विष्ठा और मूत्रके कूपमें गिरा हुआ मैं बाहर निकलनेकी इच्छा करता हुआ जठराग्निसे दग्ध हो रहा हूँ, मुझे आप कब बाहर निकालेंगे[2]?'

जीवके इस करुण विलापको सुनकर सर्वान्तर्यामी प्रभु उसपर अपनी अहैतुकी कृपा करके उसे उस नारकीय स्थानसे बाहर निकाल देते हैं और ज्यों ही वह कर्म भोगकर बाहर आता है, त्यों ही वैष्णवी माया उस जीवको मोहित कर लेती है तथा वह मायासे लिप्त होकर परवश हुआ कुछ नहीं बोल पाता और संसारचक्रमें पुनः घूमने लगता है; किंतु पूर्वजन्मके प्रबल संस्कारसे यदि वह भगवद्भक्तिके सुमार्गपर लग जाता है तो इस जन्ममें अपना उद्धार कर सकता है। अतः माता-पिताको चाहिये कि अपने बालकोंमें प्रारम्भसे ही इस प्रकारके जीवनोद्धारक संस्कार डालें, जिससे जीवका सर्वथा कल्याण हो सके।

उपर्युक्त गर्भवासका वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें प्रकारान्तरसे इस प्रकार उपलब्ध होता है—

'गर्भकी स्वकीय प्यास और भूख नहीं होती। उसका जीवन पराधीन होता है अर्थात् माताके अधीन होता है। वह सत् और असत् (सूक्ष्म) अङ्गावयववाला गर्भ मातापर आश्रित रहता हुआ उपस्नेह (रिसकर आये रस) और उपस्वेद (उष्मा)-से जीवित रहता है। जब अङ्गके अवयव व्यक्त हो जाते हैं—स्थूलरूपमें आ जाते हैं, तब कुछ तो लोमकूपके मार्गसे उपस्नेह होता है और कुछ नाभिनालके मार्गसे। गर्भकी नाभिपर नाडी लगी रहती है। नाडीके साथ अपरा जुड़ी रहती है और अपराका सम्बन्ध माताके हृदयके साथ रहता है। गर्भको माताका हृदय स्पन्दमान (बहती हुई) सिराओंद्वारा उस अपराको रस या रक्तसे भरपूर किये रहता है। वह रस गर्भको वर्ण एवं बल देनेवाला होता है। सब रसोंसे युक्त आहाररस

१- मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते । शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे॥
कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम्। मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥
कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः । मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः॥
उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः । आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः॥
अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे।
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्म जन्मशतोद्भवम्। स्मरन् दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते॥
नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः । स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥
(गरुडपुराण सारोद्धार ६।९—१४; श्रीमद्भा० ३।३१।५—९, ११)

२- श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम्। व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्॥
त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके। अहंममाभिमानेन गतोऽहं नाथ संसृतिम्॥
कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभागिनः॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्स्मरिष्ये पदं तव। तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥
विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना। इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः॥
(गरुडपुराण सारोद्धार ६।१६—२०)

गर्भिणी स्त्रीमें तीन भागोंमें बँट जाता है। एक भाग उसके अपने शरीरकी पुष्टिके लिये और दूसरा भाग क्षीरोत्पत्तिके लिये तथा तीसरा भाग गर्भवृद्धिके लिये होता है। इस प्रकार वह गर्भ इस आहारसे परिपालित होकर गर्भाशयमें जीवित रहता है।' (चरक० शारीरस्थानम् ६।१५)

'माताके निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ तथा स्वप्नसे उत्पन्न हुए निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ और स्वप्नोंको गर्भ प्राप्त करता है; अर्थात् जबतक बालक माताके गर्भमें रहता है, वह माताके शरीरके अङ्गके समान होता है और माताके प्रत्येक भले-बुरे कर्मका परिणाम जैसे उसके शरीरपर होता है, वैसे ही गर्भके ऊपर भी होता है। माता जब श्वासोच्छ्वास करती है, तब उसके रक्तकी शुद्धि होती है; साथ-ही-साथ गर्भके रक्तकी भी शुद्धि होती है। माता जब सोती है तो उसके साथ-ही-साथ गर्भको आराम मिलता है। माता जब भोजन करती है, तब उसके शरीरके पोषणके साथ गर्भका भी पोषण होता है। माता जब संक्षुब्ध होती है, तब उसके शरीरपर जो परिणाम होता है, वही परिणाम गर्भपर भी होता है। संक्षेपमें माताके प्रत्येक कर्मके साथ-साथ गर्भ भी वही कर्म करता जान पड़ता है। वास्तवमें न गर्भ श्वास लेता है, न सोता है, न भोजन करता है, न क्रुद्ध होता है और न मल-मूत्रका त्याग ही स्वतन्त्रवृत्तिसे करता है।' (सु०शा० २।५२)

गर्भ पूर्णरूपसे मातृवृत्तिपर आश्रित रहता है। अतः माताको यह आदेश दिया गया है कि वह अच्छे प्रकारका भोजन (लवणीय, कड़ुए, तीक्ष्ण, खट्टे, उल्बण आदि पदार्थोंसे रहित) करे। शारीरिक परिश्रम अधिक न करे। मनको कष्ट देनेवाली बातोंका चिन्तन न करके आराम करे। मलिन वस्त्र धारण न करे। ग्राम्य धर्म (मैथुन), गाड़ीकी सवारी आदि त्याग दे। शुद्ध सात्त्विक विचार करे, सात्त्विक वस्तु देखे, सात्त्विक बातें—कथाएँ सुने; तामसका सर्वथा त्याग कर दे। यह सब आदेश इसीलिये दिया गया है कि गर्भस्थ शिशुको किसी प्रकारकी पीडा न हो और वह शुद्ध-जीवन बने।

'गर्भकी नाभिमें लगी नाडीके द्वारा माताके आहाररससे गर्भका पोषण 'केदारकुल्या' न्यायसे होता है। जिस प्रकार सिंचाई करते समय कृषक विभिन्न आलबालों (क्यारियों)-में बोये पौधोंकी सिंचाई करता है, ठीक उसी तरह नाभि-नाडीकी एक ही मूलनालीसे जाते हुए आहाररसके द्वारा विभिन्न धातुओंका पोषण होता है।'

(अष्टाङ्गहृदय, शा० १।५६)

जन्मान्तरीय पापोंसे रोगोंकी उत्पत्ति

(धर्मशास्त्रादि सप्त आचार्य विद्यावाचस्पति डॉ०श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, काव्यतीर्थ, एम्०ए०(हिन्दी-संस्कृत), साहित्यरत्न, पी एच०डी०, डी०लिट्०)

समस्त प्राणियोंमें मानव श्रेष्ठ है; क्योंकि इसने शारीरिक उन्नतिके साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नतिके शास्त्र रचे तथा ईश्वरीय प्रेरणा एवं साधनासे गहन अध्ययन किया और शास्त्रोंके सारको ग्रहणकर सुखी रहनेके उपाय ढूँढ़े, आरोग्यकी महत्ता समझी और जहाँ ये उपाय रुक गये तथा रोग-मुक्तिके उपाय न दीखे तो रोग क्यों होता है, इसकी खोज की और जितना हो सका आयुर्वेदसे लाभ लिया, शेष धर्मशास्त्रोंसे भी लाभ लिया है। यहाँ आयुर्वेदकी अपेक्षा विभिन्न धर्मशास्त्रों (स्मृतियों)-में रोग उत्पन्न होनेके जो लक्षण दिये गये हैं और जन्मान्तरीय किस निन्दित कर्मसे वर्तमानमें कौन-सा रोग हुआ है, इसका संक्षेपमें विचार किया गया है।

पूर्वजन्ममें किये पापोंसे रोग होते हैं और फिर रोगजनित चिह्न भी प्रकट होते हैं, पर जप आदि दैवव्यपाश्रयसे उनकी शान्ति भी हो जाती है अर्थात् रोग ठीक हो जाते हैं—

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः॥

(शाता० स्मृति १।५)

धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट कर्मविपाकका संक्षेपमें यहाँ वर्णन किया जा रहा है—

(१) क्षयरोग—इसके सम्बन्धमें कहा गया है कि यह रोग तेल, घी तथा चिकनी वस्तु चुरानेके कारण होता है। त्वचामें पड़नेवाले चकत्ते भी इसी दुष्कर्मसे होते हैं। इतना ही नहीं, इस निन्दित कर्मसे कर्ताको पतित योनियोंका भोग भी भोगना पड़ता है। (गौतमस्मृति २०।१)

(२) मृगी—**'प्रतिहन्ता गुरोरपस्मारी'** (गौतमस्मृति २०।१) गुरुकी ताड़ना करनेपर उसे मारनेवाला शिष्य दूसरे जन्ममें मृगीका रोगी होता है तथा गोदानसे उसकी शान्ति होती है।

(३) जन्मान्ध—'गोघ्नो जात्यन्धः' (गौतमस्मृति २०।१)। गोवध करनेवाला जन्मसे अन्धा होता है।

(४) मांसका गोला—नक्षत्रसे जीविका चलानेवाला मांसपिण्डका रोगी होता है। यह पिण्ड उदरमें हो या कन्धेपर।

(५) गण्डरोगी—निन्दित मार्गमें चलनेवाला गण्ड-रोगसे ग्रस्त होता है।

(६) खल्वाट—सिरपर बाल न होवे, उसे खल्वाट कहते हैं। दुराचार करनेवालेको यह रोग होता है।

(७) मधुमेह—अंग्रेजीमें इसे 'डायबिटीज' कहते हैं। धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे अनियमित और स्वच्छन्द यौनाचारसे यह रोग होता है। इसका प्रायश्चित्त करनेसे शान्ति मिलती है।

(८) हाथीपाँव-रोग—यह रोग अपने गोत्रकी स्त्रीसे गमन करनेपर होता है।

'सगोत्रसमयस्त्र्यभिगामी श्लीपदी।'

(९) अजीर्णरोग—भोजनमें विघ्न करनेवालेको अजीर्ण हो जाता है। इसकी शान्ति गायत्रीमन्त्रद्वारा एक लाख आहुति देनेसे हो जाती है।

(१०) कृमिलोदर रोग—रजस्वला या अन्त्यज-दृष्टि-दोषसे दूषित अन्नके भक्षणसे पेटमें कीड़े होते हैं। इसकी शुद्धि गोमूत्रपानसे होती है।

(११) श्वास-कास—पीठ-पीछे निन्दा करनेवालेको नरक भोगनेके बाद श्वासरोग होता है।

(१२) शूलरोग—दूसरोंको दुःख देनेवाला शूलरोगी होता है। उसे अन्नदान और रुद्रजप करना चाहिये—

शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमोचने।
सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरः॥

(शाता० स्मृति ३।१२)

(१३) रक्तातिसाररोग—यह रोग वनमें आग लगानेवालेको होता है। उसे चाहिये कि वह पानीका प्याऊ लगाये।

दावाग्निदायकश्चैव रक्तातिसारवान् भवेत्।

(शाता० स्मृति ३।१३)

(१४) भगन्दर, बवासीर—ये दारुण रोग देव-मन्दिरमें या पुण्य-जलमें एक बार भी मूत्र-विष्ठा त्यागनेसे होते हैं—

सुरालये जले वापि शकृण्मूत्रं करोति यः।
गुदरोगो भवेत् तस्य पापरूपः सुदारुणः॥

(शाता० स्मृति ३।१४)

(१५) जलोदर-प्लीहा—स्त्रीके गर्भ गिरानेवालेको 'यकृत् प्लीहा' से सम्बद्ध और जलरोग होते हैं।

(१६) लकवा—सभामें पक्षपात करनेवालेको पक्षाघात होता है। उसे चाहिये कि वह सात्त्विक ब्राह्मणको बारह भर (तोला) स्वर्णदान देकर प्रायश्चित्त करे—

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान्।
निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात् सत्यवर्तिनाम्॥

(शाता० स्मृति ३।२२)

(१७) नेत्ररोग—यह रोग राँगा चुरानेवालेको होता है। वह एक दिन उपवास करके चार सौ भर राँगा दान करे। मधु चुरानेवालेको भी नेत्ररोग होता है, वह मधुधेनुका दान करे।

(१८) खुजली—यह रोग तेल चुरानेसे होता है—

तैलचौरस्तु पुरुषो भवेत् कण्ड्वादिपीडितः।

(शाता० स्मृति ४।१३)

इसकी शान्ति एक दिन उपवास करने तथा दो घड़े तेल दान करनेसे बतायी गयी है।

(१९) संग्रहणी—यह रोग नाना प्रकारके द्रव्य चुरानेसे होता है। प्रायः अन्न, जल, वस्त्र, सोना दान करनेसे लाभ होता है।

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहिणीयुतः।

(शाता० स्मृति ४।३२)

(२०) पथरी—यह रोग सौतेली मातासे गमन करनेसे होता है।

मातुः सपत्निगमने जायते चाश्मरीगदः। (शाता० स्मृति ५।२६)

इसकी शान्तिके लिये मधुधेनु और सौ द्रोण तिल दान करे।

(२१) कुबड़ा—पापी व्यक्ति अगम्यागमनसे दूसरे जन्ममें कुबड़ा होता है। वह काले मृगचर्मका दान करे।

(२२) प्रमेहरोग—यह रोग तपस्विनीके साथ गमन करनेसे होता है। इसकी शान्ति एक मासतक 'रुद्राष्टाध्यायी-पाठ' तथा सुवर्ण-दानसे होती है।

(२३) हृदयव्रण—यह रोग अपनी गोत्र-जातिकी स्त्रीसे गमन करनेसे उत्पन्न होता है।

स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी।

(शाता० स्मृति ५।३६)

प्राय: दो प्राजापत्यव्रत करनेसे हृदयरोगमें लाभ होता है।

(२४) **मूत्राघात**—यह रोग पशु-सम्भोगसे होता है। इसकी शान्तिके लिये तिलसे भरे दो पात्रोंका दान करे।

(२५) **जिह्वारोग**—यह रोग पका हुआ अन्न चुरानेवालेको होता है। इसकी शान्तिके लिये एक लाख गायत्री-जप और दशांश हवन करे।

(२६) **गूँगा**—विद्याकी पुस्तक चुरानेवाला गूँगा होता है। न्याय और इतिहासकी पुस्तक दान करे।

(२७) **आधासीसी**—यह रोग औषध चुरानेसे होता है। इसकी शान्तिका उपाय—सूर्यको अर्घ्य दे और एक माशा सोना दान करे।

औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते।
सूर्यायार्घः प्रदातव्यो मासं देयं च काञ्चनम्॥

(शाता० स्मृति ४। २६)

(२८) **अंगुलिमें घाव**—यह रोग फल चुरानेसे होता है। इसकी शान्तिके लिये दस हजार फल दान करे।

(२९) **ज्वर**—देव-द्रव्य चुरानेवालेको चार प्रकारके ज्वर होते हैं—ज्वर, महाज्वर, रौद्रज्वर और वैष्णवज्वर। इसकी शान्ति यथासंख्यक रुद्रीका पाठ करानेसे होती है।

धर्मशास्त्रोंमें जन्मान्तरीय रोगोंकी शान्तिके उपाय भी बतलाये गये हैं और पूर्वजन्मकृत पापोंके चिह्न इस जन्ममें रोगरूपमें प्रकट होते हैं, जिन्हें स्मृतिग्रन्थों तथा कर्म-विपाकमें देखा जा सकता है। यहाँ दिग्दर्शनमात्र है, श्रद्धा-विश्वास रखनेसे इन उपायोंसे लाभ अवश्य होगा।

सर्वरोगमूल—भवरोग

(श्रीश्यामलालजी हकीम)

इसमें संदेह क्या है कि शेष-अशेष रोगोंकी मूल जड़ है भवरोग, जो अति भयावह, विकराल है! संसारमें बार-बार जन्म लेना ही शारीरिक, मानसिक रोगोंकी पृष्ठभूमि है। यदि संसारमें आवागमन ही मिट जाय तो रोग कैसा? किंतु अनादि कालकी बहिर्मुखता संसारमें आनेपर ही दूर होती है। परम स्वतन्त्र श्रीभगवान्का अंश होनेसे जीवमें अणुस्वातन्त्र्य है। अनादि कालसे वह उसका प्रयोग कर भगवद्बहिर्मुख होकर मायाकी सेवा करनेमें अनुरक्त है। मायाबद्ध होनेसे अनेक प्रकारकी कामनाओंके वशीभूत होकर अनेक प्रकारके कर्म करता है। कर्मफल भोगे बिना उसकी निवृत्ति असम्भव है। कर्मफल-भोगके लिये भोगायतन शरीरकी अपरिहार्यता है। प्राकृत संसारमें ही भोगायतन शरीरकी प्राप्ति होनेपर भोगोंके उपयुक्त सुख-दु:खप्रद पदार्थ उपलब्ध होते हैं। अत: संसारमें आवागमन तबतक नहीं मिट सकता, जबतक मायाका सम्बन्ध है। भगवदंश जीव जबतक अपने शुद्ध स्वरूप भगवत्-दासत्वमें अवस्थित नहीं होता, तबतक माया इसे नहीं छोड़ती। माया तभी छोड़ती है जब जीव मायापति भगवान् श्रीकृष्णके शरणापन्न हो जाता है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

भगवत्-शरणापन्न होनेपर फिर जीवको संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता, जन्म ही नहीं तो मरण भी नहीं—

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(गीता ८। १६)

तथा—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु:खालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

(गीता ८। १५)

श्रीभगवान्के शरणापन्न होनेपर दु:खोंके कारणभूत क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको अर्थात् संसारको महापुरुष प्राप्त नहीं होते। परम सिद्धि अर्थात् भगवत्-लोकको प्राप्त कर लेते हैं। वहाँसे फिर संसारमें आना ही नहीं होता।

अत: भवरोगसे निष्कृति या शाश्वत आरोग्य प्राप्त करनेके लिये एकमात्र अनुभूत रसायन है श्रीभगवान्की शरणापत्ति। शरणागत मनुष्य श्रीभगवान्के श्रीअच्युत, श्रीअनन्त, श्रीगोविन्द आदि नामोंका '**सततं कीर्तयन्तः**—निरन्तर नाम-संकीर्तन करता हुआ अपना सर्वस्व भगवान् श्रीकृष्णके अर्पण करके सदाके लिये शारीरिक, मानसिक रोग तथा भयावह भवरोग—सभी प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पाकर वास्तविक आरोग्यकी उपलब्धि करता है।

स्वस्थ तनमें स्वस्थ मन

(मुनि श्रीकिशनलालजी)

स्वामी विवेकानन्दजीका स्वास्थ्यके विषयमें यह कथन संक्षिप्तमें सारभूत सत्यको प्रकट करता है कि 'स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मनका निवास होता है।' जब स्थूल शरीर ही स्वस्थ नहीं होगा तो मन स्वस्थ कैसे रहेगा? शरीर एवं मन एक-दूसरेको प्रभावित करते हैं। मनके स्वस्थ होनेसे शरीर स्वस्थ होता है। शरीर यदि स्वस्थ है तो मन स्वस्थ होगा, ऐसी लोकोक्ति है। जब शरीर दुर्बल और अस्वस्थ होता है तब व्यक्तिका मन भी दुर्बल और अस्वस्थ हो जाता है। इसी भाँति जब मनकी स्थिति बिगड़ती है तब शरीर भी दुर्बल और अस्वस्थ हो जाता है। इस सत्यको आयुर्वेदाचार्योंने बड़े सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित किया है—

शरीराज्जायते व्याधिर्मानसो नैव संशयः।
मानसाज्जायते व्याधिः शारीरो नैव संशयः॥

अर्थात् शरीरमें व्याधि उत्पन्न होती है तब मनमें भी व्याधि होगी, इसी प्रकार मनमें व्याधि उत्पन्न होनेपर शरीरमें भी व्याधि होगी, इसमें संशय नहीं है।

अतः यदि मनको स्वस्थ बनाना चाहते हैं तो शरीरको भी स्वस्थ बनाना आवश्यक है।

स्वास्थ्य क्या है? यह कठिन प्रश्न है। सामान्यतः रोग उत्पन्न न होनेको स्वास्थ्य माना जाता है जबकि यह यथार्थ नहीं है। रोग होना अस्वास्थ्य है किंतु रोग नहीं होना स्वास्थ्य नहीं हो सकता। रोगका अभाव स्वास्थ्यका प्रतीक कैसे हो सकता है? स्वास्थ्य यथार्थ है, विधायक स्थिति है, उसे निषेधसे कैसे जानेंगे? स्वास्थ्यका अपना अस्तित्व है, उसे कैसे अनुभव किया जाय? जो अङ्ग रुग्ण (बीमार) होता है, उस अङ्गका बार-बार स्मरण होता है और जो अङ्ग स्वस्थ है उसकी स्मृति होती ही नहीं। इससे यह सत्य उद्घाटित होता है कि स्वास्थ्य किसी निषेधका अस्तित्व नहीं है। आँग्लभाषामें 'हेल्थ' को स्वास्थ्य कहा गया है, किंतु इससे यथार्थकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। स्वस्थकी परिभाषामें कहा गया है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात् 'जिस व्यक्तिके त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) सम हैं, जिसकी अग्नि और धातु सम हैं, मल और क्रिया सम हैं, जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न (निर्मल) हैं वह स्वस्थ है।' मानसिक स्वास्थ्यको परिभाषित करते हुए कहा गया है—'जो सुख-दुःखमें सम है, लौह और स्वर्णमें समान दृष्टिवाला है, प्रिय-अप्रियमें धीर है, निन्दा-संस्तुतिमें बराबर है; वही पूर्ण स्वस्थ हो सकता है।'

स्वास्थ्य और पथ्य—शरीरका विकास भोजन, पानी, मिट्टी, हवा, धूप आदिसे होता है। जैसा भोजन, पानी मिलता है, वैसा ही शरीर निर्मित होता है। व्यक्तिके शरीरपर स्वयंके कर्म-संस्कारोंका जहाँ प्रभाव पड़ता है, वहीं माता-पितासे प्राप्त संस्कारोंका भी अपना प्रभाव रहता है।

स्वास्थ्यके लिये भोजन, पानी आदि खाद्य पदार्थोंका विवेक अत्यन्त आवश्यक है। युवावस्थामें पाचन-तन्त्र शक्तिशाली होता है। इच्छित भोजन करके व्यक्ति अपनी इन्द्रियोंको संतुष्ट करता है। पाचन-तन्त्रका सम्यक् समायोजन न होनेपर वह रुग्ण और दुर्बल हो जाता है। निर्बल पाचन-तन्त्रसे पाचन-क्रिया सही नहीं रहती, जिससे व्यक्ति दुर्बल और बीमार होने लगता है।

उचित पथ्यका सेवन करनेवाला व्यक्ति बीमार नहीं होता। जो खाद्य है, शरीर एवं आँतोंके लिये अनुकूल है उसका विवेक रखना, जिन वस्तुओंका उपयोग स्वास्थ्यके लिये हितकर नहीं है उनसे परहेज करना ही उचित है। इसका परिणाम यह होता है कि पाचन-तन्त्र बिगड़ता नहीं। उचित पथ्यका सेवन करनेवालेके पास वैद्य आकर क्या करेगा? औषधिकी उसे अपेक्षा ही नहीं रहेगी।

अपथ्य-सेवनके द्वारा विकार उत्पन्न होते ही शरीर-तन्त्र दुर्बल बन जाता है। दुर्बल शरीरमें नाना प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसी स्थितिमें एक रोग ठीक होता है तो दूसरा पैदा हो जाता है। इसलिये एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि शरीरका ताना-बाना, प्रतिरोधात्मक शक्ति (इम्यून-सिस्टम)-को मज़बूत बनाना आवश्यक है। जिस व्यक्तिका शरीर

शक्तिसम्पन्न होता है और जो उचित पथ्यका सेवन करता है, उसके लिये रोगकी कोई समस्या नहीं। किंतु प्रश्न तब भी यह रह जाता है कि दुर्बल शरीरको शक्तिशाली या स्वस्थ कैसे बनाया जाय?

चिकित्सा और औषधि—रोगी चिकित्सासे स्वस्थ होना चाहता है, यह उसकी मूल मनोवृत्ति है। कोई भी रोगी किसी चिकित्सासे स्वस्थ हो जाय उसका यह प्रयत्न रहता है। जो शरीरसे दुर्बल होता है उसका मानना रहता है कि वह शक्तिशाली और स्वस्थ बने। दुर्बलता सामान्यत: कोई बीमारी नहीं, किंतु दुर्बल शरीरमें रोगके प्रतिकारकी क्षमता कम होती है। इसलिये रोग आसानीसे उत्पन्न हो जाते हैं। औषधिके द्वारा रोगके प्रतिकारकी क्षमताको बल मिलता है अथवा रोगको नष्ट करनेके लिये औषधिका उपयोग किया जाता है।

भिन्न-भिन्न चिकित्सा-पद्धतियोंके अपने-अपने सिद्धान्त और दृष्टियाँ हैं। **एलोपैथी** का अपना चिन्तन है कि मलेरिया आदि रोग कीटाणुओंसे उत्पन्न होते हैं। कीटाणुओंके संयोगसे रोगकी उत्पत्ति होती है। वे कीटाणु नष्ट कर दिये जायँ तो व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये जिन औषधियोंका प्रयोग किया जाता है, उससे कीटाणु तो नष्ट हो जाते हैं, किंतु उस औषधिसे कुछ अन्य सहचर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

होम्योपैथीमें रोग-निदानका अपना तरीका है। जिस औषधिसे जो लक्षण प्रकट होते हैं उनको देखकर, वैसी औषधिका प्रयोग किया जाता है—'**विषस्य विषमौषधम्**' विष देनेसे जैसे शरीरपर जो लक्षण पैदा होते हैं, उस विषसे बनी औषधिसे शरीरपर उत्पन्न होनेवाले लक्षण दूर हो जाते हैं।

आयुर्वेद-पद्धतिमें रोगीके रोगका निदान नाडी अथवा अन्य लक्षणोंसे होता है। मुख्यत: चिकित्सा-पद्धतिका यह आधार बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। ऋषि कहते हैं कि मुझे ऐसी पद्धति चाहिये, जिससे व्यक्ति रोगसे सदा मुक्त ही नहीं हो, अपितु स्वस्थ बने। आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धतिकी यह विचारधारा महत्त्वपूर्ण है कि जब औषधि शरीरको स्वस्थ बनाती है तब रोगके दोष अपने-आप दूर हो जाते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार शरीर विजातीय पदार्थको शरीरसे बाहर निकालनेकी कोशिश करता है—संयोगसे विजातीय तत्त्व अथवा दोषको शरीरसे बाहर फेंकनेकी कोशिश करता है। जब दोष बाहर निकल जाता है, तब व्यक्ति स्वास्थ्य-लाभका अनुभव करता है।

प्रेक्षाध्यान -पद्धतिने **आधि, व्याधि** और **उपाधि**को रोगकी उत्पत्तिका कारण माना है। आधि मनके असंतुलनसे उत्पन्न होनेवाला रोग है। व्याधि शारीरिक दोषसे उत्पन्न होनेवाला दोष है। उपाधि भावनात्मक रोग है। शरीर, मन और भावोंके असंतुलनसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका समाधान कैसे हो? क्या रोगके प्रतिकारके लिये औषधिकी आवश्यकता है? अथवा कोई दूसरा विकल्प भी हो सकता है? वह विकल्प प्रेक्षाध्यानके द्वारा 'अमृत-पिटक'के रूपमें प्रस्तुत किया गया है। आचार्य महाप्राज्ञके अनुसार औषधि विवशतामें ग्रहण की जाती है। उत्तेजक औषधिका प्रयोग अर्थका नुकसान तो करता ही है, साथ ही उससे हमेशाके लिये कुछ शारीरिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं।

चिकित्सा-पद्धति कोई भी क्यों न हो, व्यवस्थित होनी चाहिये। जिससे रोगीका चित्त समाहित रह सके। चिकित्सा एवं औषधिके परिणाम निकल सकें। आधि, व्याधि और उपाधि—ये तीनों व्यक्तिको पीडित करती हैं। पीडासे उद्वेलित व्यक्ति इन सबसे मुक्त होना चाहता है। '**अमृत-पिटक**' में औषधिके बिना स्वास्थ्य-उपलब्धिकी विधियोंका विश्लेषण है।

स्वास्थ्य-उपलब्धिका मार्ग—

स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिये आसन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग एवं प्रेक्षा-अनुप्रेक्षाका प्रयोग रोगीके लिये हितकर है। इनसे व्यक्ति रोग-मुक्त होकर शक्तिशाली बनता है। शरीरकी दुर्बलताको शक्तिमें बदलनेके लिये '**अमृत-पिटक**' ने आसन-प्राणायामके माध्यमसे, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा, जप, तप आदिसे समाधान किया है। शारीरिक दुर्बलताको दूर करनेके लिये आसन आदिके प्रयोग जो निर्धारित हैं, वे निम्न हैं—

आसन—उत्तानपादासन, मकरासन, वज्रासन, ताड़ासन।

प्राणायाम—लयबद्ध दीर्घ श्वास।

प्रेक्षा—प्राणसंचारका प्रयोग। सर्वाङ्गशरीरप्रेक्षा-ध्यान।

अनुप्रेक्षा—शक्तिकी अनुप्रेक्षा।

जप—आरोग्य बोहिलाभं, समाहि वरमुत्तमं दिन्त।

तप—गरिष्ठ एवं तली हुई वस्तुओंका परिष्कार।

उपर्युक्त विधियोंको चिकित्सा न कहकर उन्हें स्वास्थ्य प्राप्त करानेवाली विधियाँ अथवा दृष्टि कहें तो अधिक उचित होगा।

स्वास्थ्य-लाभके लिये कुछ उपाय निम्नाङ्कित हैं—

आसन—शरीरको केंवल मोड़ना, टेढ़ा-मेढ़ा करना ही आसन नहीं है। आसन केवल आकृतिमें आना नहीं है। आसन बाहरसे आकृतिरूपमें अवश्य दिखायी देता है, किंतु बाह्य आकार भीतरके भावोंको रूपान्तरित करता है। *'जैसी मुद्रा, वैसा भाव'* तथा *'जैसा भाव, वैसी मुद्रा।'* भावको बदलनेके लिये मुद्रा और आसनका उपयोग होता है। दुर्बल शरीरको शक्तिशाली एवं स्वस्थ बनानेके लिये '**अमृत-पिटक**' में चार आसनोंका निर्देश दिया गया है। आसनोंके साथ उनके विधि-विशेषको भी जानना आवश्यक है। प्राणायाम, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा, जप और तपके प्रयोगोंकी विधियोंके अनुसार जीवनचर्या अपनानेपर व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है।

प्राणायाम—लयबद्ध दीर्घ श्वास—श्वास-प्रश्वासको गहरा और लम्बा करे। धीरे-धीरे श्वास ले, धीरे-धीरे श्वास छोड़े। अपने चित्तको कण्ठकूपके श्वास-नलीमें केन्द्रित करे। श्वास लेते समय श्वास-नलीको स्पर्श करते हुए भीतर जाये और छोड़ते समय भी उसी प्रकार स्पर्श करते हुए बाहर आये। इससे श्वास गहरा और दीर्घ होता है। श्वासको ग्रहण करते समय पेट फूले और छोड़ते समय पेट सिकुड़े। धीरे-धीरे लम्बा गहरा और लयबद्ध श्वास ले।

जितने समयमें लम्बा गहरा और धीमी गतिसे श्वास ले, उतने ही समयमें धीमी गतिसे धीरे-धीरे श्वासको बाहर छोड़े। यही क्रिया लगातार करे। लयबद्ध श्वास मनको एकाग्र और शरीरको स्वस्थ बनाता है।

प्राणायाम करते समय प्रत्येक श्वास लयबद्धरूपमें ५ सेकंड ले और ५ सेकंड छोड़े।

सर्वाङ्ग-शरीरप्रेक्षा—शरीरप्रेक्षामें हमें शरीरको देखना है। खुली आँखोंसे नहीं, बल्कि चित्तसे। आँखें बंद रहेंगी। चित्तको शरीरके प्रत्येक अवयवपर ले जाकर वहाँपर होनेवाले परिणमन, स्पन्दन, प्रकम्पन या संवेदन आदिको द्रष्टाभावसे देखना है। कपड़ेका स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द आदि जो कुछ भी अनुभव हो, उसे देखना है, केवल देखना है, उसका अनुभव करना है।

चित्तमें यह क्षमता है कि वह एक बिन्दुपर केन्द्रित हो सकता है और एक साथ पूरे शरीरपर फैल सकता है। चित्तको पैरके दोनों अँगूठोंपर केन्द्रित करे। पूरे शरीरके आकारमें फैलते हुए पैरसे सिरतक शीघ्रतासे ले जाय। उसी गतिसे सिरसे पैरतक ले आये। बीच-बीचमें श्वास-संयमके साथ शरीर-प्रेक्षाका प्रयोग करे। शरीरके कण-कणका स्पर्श करे। शरीरका कण-कण चेतना और प्राणके स्पर्शसे झंकृत हो उठे। अनुभव करे, जैसे पूरे शरीरमें बिजलीकी धारा दौड़ रही है। कपड़ेका स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द, स्पन्दन जो कुछ हो रहा है, उसका तटस्थ भावसे अनुभव करे। अब धीमी गतिसे चित्तकी यात्रा करे। कहीं पीडा, अवरोध हो उसपर कुछ क्षणोंके लिये रुके। केवल जाने। पूर्ण समभाव रहे।

अनुप्रेक्षाका प्रयोग करनेके लिये सर्वप्रथम महाप्राण ध्वनिका प्रयोग किया जाता है। कायोत्सर्ग, भावना और संकल्पसे अनुप्रेक्षाका अभ्यास, अनुचिन्तन कर महाप्राण ध्वनिके तीन बार उच्चारणसे प्रयोग सम्पन्न किया जाता है।

शक्तिकी अनुप्रेक्षा—१-महाप्राण ध्वनि, २-कायोत्सर्ग—अरुण रंगका श्वास ले। अनुभव करे कि चारों तरफ अरुण रंगके परमाणु फैले हुए हैं। अरुण रंगके परमाणु श्वासके साथ भीतर प्रवेश कर रहे हैं। पाँच मिनट तैजस केन्द्रपर चित्तको केन्द्रितकर अनुप्रेक्षा करे कि शक्तिका विकास हो रहा है। शरीरके कण-कणमें शक्तिका संचार हो रहा है।

अनुचिन्तन—विश्वमें शक्तिकी पूजा होती है। शक्तिशाली व्यक्ति ही जीवनमें सफल होता है ऐसा अनुचिन्तन करे।

महाप्राण ध्वनि—मन्त्रके अर्थ तथा मन्त्रके प्रभावी शब्दोंका भावनापूर्वक तीन बार जप करे। इसमें जिस विषयका जप करना है, उसको पुनः-पुनः दोहराना होता है। उससे शक्ति प्राप्त होती है और रोग दूर होते हैं।

तप—तपका अर्थ है संयम और तितिक्षा। अपनी इन्द्रियों और मनको संयत रखना सबसे बड़ा तप है। उससे जैसा चाहे वैसा परिणाम निकलता है।

स्वास्थ्यपर संगीतके स्वरोंका प्रभाव

(डॉ० श्रीप्रेमप्रकाशजी लक्कड़ एम्०ए०, पी-एच्०डी०, एल्-एल्०बी०, कमिश्नर)

गान्धर्ववेद (संगीतशास्त्र)-में स्वर सात बतलाये गये हैं। इन्हीं सात स्वरोंके मिश्रणसे सभी राग-रागिनियोंका स्वरूप निर्धारित हुआ है। स्वर-साधना एवं नादानुसंधानके विविध प्रयोग निर्दिष्ट हैं। इनसे शरीर, स्वास्थ्यको भी बल मिलता है।

इन सात स्वरोंके नाम हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

सा (षड्ज)—नासिका, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा और दाँत—इन छः स्थानोंके सहयोगसे उत्पन्न होनेके कारण इसे षड्ज कहते हैं। अन्य छः स्वरोंकी उत्पत्तिका आधार होनेके कारण भी इसे षड्ज कहा जाता है।

इसका स्वभाव ठंडा, रंग गुलाबी और स्थान नाभि-प्रदेश है। इसका देवता अग्नि है। यह स्वर पित्तज रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—मोरका स्वर षड्ज होता है।

रे (ऋषभ)—नाभिसे उठता हुआ वायु जब कण्ठ और शीर्षसे टकराकर ध्वनि करता है तो उस स्वरको रे (ऋषभ) कहते हैं।

इसकी प्रकृति शीतल तथा शुष्क, रंग हरा एवं पीला मिला हुआ और स्थान हृदय-प्रदेश है। इसका देवता ब्रह्मा है। यह स्वर कफ एवं पित्तप्रधान रोगोंका शमन करता है।

उदाहरण—पपीहाका स्वर ऋषभ होता है।

ग (गन्धार)—नाभिसे उठता हुआ वायु जब कण्ठ और शीर्षसे टकराकर नासिकाकी गन्धसे युक्त होकर निकलता है, तब उसे गन्धार कहते हैं। इसका स्वभाव ठंडा, रंग नारंगी और स्थान फेफड़ोंमें है। इसका देवता सरस्वती है। यह पित्तज रोगोंका शमन करता है।

उदाहरण—बकरेका स्वर गन्धार होता है।

म (मध्यम)—नाभिसे उठा हुआ वायु जब उर-प्रदेश और हृदयसे टकराकर मध्यभागमें नाद करता है, तब उसे मध्यम स्वर कहते हैं। इसका स्वभाव शुष्क, रंग गुलाबी और पीला मिश्रित तथा स्थान कण्ठ है। इसकी प्रकृति चंचल है। इस स्वरके देवता महादेव हैं।

यह वात और कफ-रोगोंका शमन करता है।

उदाहरण—कौआ मध्यम स्वरमें बोलता है।

प (पंचम)—नाभि, उर, हृदय, कण्ठ और शीर्ष—इन पाँच स्थानोंका स्पर्श करनेके कारण इस स्वरको पंचम कहते हैं। सात स्वरोंकी शृंखलामें पाँचवें स्थानपर होनेसे भी यह पंचम कहा जाता है।

इसकी प्रकृति उत्साहपूर्ण, रंग लाल और स्थान मुख है। इसका देवता लक्ष्मी कहा गया है। यह कफ-प्रधान रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—कोयलका स्वर।

ध (धैवत)—पूर्वके पाँच स्वरोंका अनुसंधान करनेवाले इस स्वरकी प्रकृति चित्तको प्रसन्न और उदासीन दोनों बनाती है। इसका स्थान तालु है और देवता गणेश हैं।

यह पित्तज रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—मेढकका स्वर।

नि (निषाद)—यह स्वर अपनी तीव्रतासे सभी स्वरोंको दबा देता है, अतः निषाद कहा गया है। इसका स्वभाव ठंडा-शुष्क, रंग काला और स्थान नासिका है। इसकी प्रकृति जोशीली और आह्लादकारी है। इसके देवता सूर्य हैं। यह वातज रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—हाथीका स्वर।

असाध्य रोग और आयुर्वेद

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

रोगोंकी कोई संख्या नहीं है। कितने रोग हो चुके हैं, कितने रोग हैं और कितने रोग होंगे; इसकी कोई इयत्ता नहीं है। महर्षि चरकने बताया है कि चिकित्सकोंके सामने यदि कोई ऐसा रोग आ जाय जिससे वे परिचित नहीं हों, तो वे उस रोगके सामने नतमस्तक न हो जायँ, यह न सोचें कि मैं इस रोगको जानता नहीं तो इसकी चिकित्सा कैसे करूँ? आजतक किसी चिकित्सापद्धतिमें न तो ऐसी कोई पुस्तक है और न हो सकती है कि जिसमें भूत, भविष्य एवं वर्तमानके समस्त रोगोंका नाम लिखा गया हो। आयुर्वेदने बताया है कि रोग भले असंख्य हैं, किंतु उनके निदान संक्षिप्त और सूत्रबद्ध हैं। इसलिये उस रोगसे लड़ा जा सकता है और उसे समाप्त भी किया जा सकता है। अत: चिकित्सकको किसी नये रोगसे न घबड़ाकर उसकी चिकित्साके लिये दत्तचित्त हो जाना चाहिये। यह महर्षि चरकका आदेश है—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन।
न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥

(चरक० सू० १८। ४४)

इसी आधारपर आज भी दुनियामें असाध्य माने गये कुछ रोगोंकी चिकित्सा सफल रही है। यहाँ इनमेंसे कुछ रोगोंका संक्षेपमें उल्लेख इसलिये किया जा रहा है कि इनपर जो अनुसंधान करनेवाले हैं वे अनुसंधान करें और जो इस रोगसे ग्रस्त हैं, वे इससे लाभ उठायें—

(१) बिना नामका रोग

एक रोगीको देखा गया कि उसके दाहिने हाथकी कलाईके तीन हिस्से सूख गये हैं, एक हिस्सा बचा है। उसके उसी हाथकी दो अँगुलियाँ कंधेसे लग गयी हैं, उस हाथको हिलाना या इधर-उधर करना सम्भव न था। वह रुग्ण हाथ केवल बेकार ही नहीं हुआ था, अपितु तकलीफ भी देता रहता था। रोगीका सोना भी कठिन हो रहा था, इस विलक्षण रोगको देखकर हतप्रभ होना पड़ा। उससे पहला प्रश्न था—यह रोग तो पुराना दीखता है, इसकी चिकित्सा क्यों नहीं करायी? रोगीने कहा—तीन वर्षोंसे दवा करा रहा हूँ, किंतु दिनोदिन रोग बढ़ता ही जा रहा है। मैंने कहा—इस रोगका मैं न तो नाम जानता हूँ और न चिकित्सा ही। यह नया रोग है, मेरे लिये अनजान है, आप विज्ञानकी शरणमें जायँ। छ: महीनेके बाद रोगी लौटा। उसने कहा कि छ: महीनोंतक तरह-तरहकी जाँच हुई, अंतमें यह कहा गया कि इस रोगकी दवा अभी निकली नहीं है। इस सिलसिलेमें भारतके चोटीके चिकित्सास्थानोंमें वह रोगी दौड़ चुका था। रोगी जब छ: महीनेके बाद फिर लौटा तो चरकके आदेशसे बाध्य होना पड़ा। सहानुभूतिका तकाजा अलग था।

यह तो साधारणतया समझमें आ ही गया था कि हृदयसे जिन रक्तवाहिनियोंके द्वारा रक्तका जो संचार होता है, उनमेंसे किसीमें अवरोध आ गया है, इस अवरोधको रसराज आदि औषध दूर कर सकता है। फिर प्रकृति और वात, पित्त तथा कफका सामञ्जस्य बैठाकर दवा की गयी। उस दवासे वह रोगी रोगमुक्त हो गया। हाथके सूखे हुए भाग फिर पहलेकी आकारमें आ गये और अँगुलियोंने लिखने-पढ़नेका काम भी सँभाल लिया। धीरे-धीरे वजन उठानेकी आदत डाली गयी। अब वह बीस किलो वजनकी चीज उठा लेता है और उसको लेकर चल भी सकता है। उसे निम्नाङ्कित दवाएँ दी गयीं—

(१) रसराजरस- १$\frac{१}{२}$ ग्राम, (२) स्वर्णभस्म-२० मिलीग्राम, (३) महाशङ्खवटी-२ ग्राम, (४) कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, (५) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (६) पुनर्नवामंडूर-३ ग्राम, (७) चन्द्रप्रभावटी-३ ग्राम, (८) सीतोपलादि-२५ ग्राम। कुल=२१ पुड़िया।

लाभ कम दीखनेपर रसराजकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाकर ३ ग्रामतक ली जा सकती है।

(१) सुबह-शाम एक-एक पुड़िया शहदसे लेकर एकपुटिया लहसुन काटकर खाना चाहिये। शीत-ऋतुमें यह एकपुटिया लहसुन पाँच-पाँच नगतक लिये जा सकते हैं।

(२) पचास ग्राम साधारण लहसुनको दो चम्मच तिल्ली या सरसोंके तेलमें पीसकर उबटन बनाना चाहिये। बहुत महीन नहीं पीसे। फिर घायल हाथमें ऊपरसे नीचेतक उबटन लगाये।

सावधानी—उबटन लगाते समय लहसुनको घायल हाथपर धीरे-धीरे रगड़ें। इसे आधे मिनटके लिये भी छोड़ दिया जाय तो त्वचा जल जायगी।

(३) १० ग्राम ईसबगोलकी भूसी दूध या पानीसे लेकर कैस्टर ऑयल १ से ४ चम्मचतक ले। कैस्टर ऑयल लेनेका प्रकार यह है कि पावभर दूधमें चीनी मिला ले। आठ चम्मच दूध निकाल ले। उसमें एकसे चार चम्मचतक कैस्टर ऑयल सुविधाके अनुसार मिलाये। इतना मिलाये जितनेसे एक बारमें पेट साफ हो जाय।

विशेष सूचना—जाड़ेके दिनोंमें आधा अगहन बीत जानेपर एकपुटिया लहसुनका कल्प कर लें। नीरोग रहनेके लिये स्वस्थ व्यक्ति भी कल्प कर सकता है।

उपर्युक्त रोगमें तो प्रत्येक जाड़ेमें इस कल्पका सेवन आवश्यक होता है। २५० ग्राम मलाई निकाला हुआ दूध कड़ाहीमें डालकर उसी दूधमें २५० ग्राम पानी मिला दें। इस पानीमिले दूधमें एकपुटिया लहसुन कुचलकर पहले दिन एक, दूसरे दिन दो—इस तरह एक-एक बढ़ाते हुए पंद्रहवें दिन पंद्रह लहसुन डालें। आधा फाल्गुनतक पंद्रह-पंद्रह डालते रहें। उसके बाद चौदह, तेरह, बारह इस क्रमसे एक-एक कम करते हुए ज्येष्ठ आनेके पहलेतक दो-दो डालते रहें। प्रतिदिन वायविडंगका दरदरा चूर्ण १० ग्राम, अर्जुनकी छालका दरदरा चूर्ण ५ ग्राम, १० ग्राम शतावरका चूर्ण, ३ ग्राम असगंधका दरदरा चूर्ण दूध-पानीमें डालकर धीमी आँचमें पकावें। पानी जल जानेपर अर्थात् दूध शेष रहनेपर छानकर सबको फेंक दें। इस दूधमें तीन छोटी इलायचीका चूर्ण और इच्छाके अनुसार चीनी मिलाकर दूधको पी लें।

(२) स्क्लेरोडर्मा (Scleroderma)

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें इस रोगके सम्बन्धमें कोई जानकारी दी गयी है, यह ढूँढ़ा न जा सका, किंतु आयुर्वेदने बताया है कि प्रकृति, वात, पित्त, कफ और उपसर्गके द्वारा सभी रोगोंको समझा जा सकता है और उसकी चिकित्सा भी की जा सकती है। इसी आधारपर रोगीको रोगसे मुक्त करनेमें सफलता मिल जाती है।

विज्ञानद्वारा इसका परिचय—आजके चिकित्सा-विज्ञानने इस रोगके सम्बन्धमें जानकारियाँ प्राप्त कर ली हैं। विज्ञानका मानना है कि यह एक संयोजी ऊतकों (Connective Tissue)-के विकारसे उत्पन्न होनेवाला रोग है। यह रोग, रोगप्रतिरोधी क्षमताकी कमीसे उत्पन्न होता है। इस रोगमें छोटी रक्तवाहिकाओंका भीतरी स्तर मोटा हो जाता है। यह रोग प्रायः ३० से ६० वर्षकी अवस्थामें उत्पन्न होते देखा गया है। कम रक्तप्रवाहके कारण प्रायः अँगुलियाँ पीली पड़ जाती हैं। धीरे-धीरे मुर्दा-सी हो जाती हैं।

कुछ लक्षण—(१) अँगुलियोंका सड़ना, (२) अँगुलियोंको घुमानेमें कठिनाई होना, (३) त्वचाकी ऊपरी सतहका एकदम पीला होना, (४) मुँहको फैलानेमें असमर्थताका अनुभव होना, (५) अस्थियोंपर पायी जानेवाली त्वचामें कसाव परिलक्षित होना।

रोग जब विकसित हो जाता है तब पाचनतन्त्रमें विकार, मांसपेशीका क्षय और वेदनाकी अनुभूति होती है।

रोगोंके निदानमें आजके विज्ञानने अत्यधिक सफलता प्राप्त कर ली है। इस रोगके भी परीक्षणसे प्रायः ५०% व्यक्तियोंमें Antinuclear antibody +ve (धनात्मक) पाया जाता है।

इस तरह रोगके निदानमें तो सफलता मिल गयी है, किंतु अभीतक यह रोग विज्ञानके लिये असाध्य है; क्योंकि कोई भी कारगर दवा अभी नहीं निकली है। प्रडिनसोलोन (Prednisolone)-से तात्कालिक लाभ पहुँचाया जाता है।

सफल चिकित्सा न होनेके कारण इस रोगसे प्रायः ७०% रोगी ही पाँच वर्षतक जीवित रह पाते हैं।

आयुर्वेदके द्वारा साध्य—आयुर्वेदमें रसराज नामका एक औषध है, उसका काम है रक्तवाहिनियोंका प्रसारण करना। इस औषधसे रक्तवाहिनीमें जितने विकार आ जाते हैं, उनका भी सफाया हो जाता है और उचित स्थानोंपर रक्तका सञ्चार प्रारम्भ हो जाता है। इस दृष्टिकोणसे स्क्लेरोडर्मा रोगमें यह औषध सफल हो जाता है। दवाका संयोजन निम्न प्रकारसे किया जाय—

(१) रसराजरस-१ ग्राम, (२) स्वर्णभस्म-३० मिलीग्राम, (३) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (४) चन्द्रप्रभावटी-३ ग्राम, (५) कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, (६) सीतोपलादि-२५ ग्राम, (७) मोतीपिष्टी-१ ग्राम। कुल ३१ पुड़िया बनाकर एक-एक पुड़िया शहदसे तीन बार (सुबह-दोपहर एवं शाम) लेना चाहिये।

जो लोग लहसुन खाते हों, वे एकपुटिया लहसुन (बलानुसार एक-एक बढ़ायें) काटकर दवाकी खुराक लेनेके बाद पानी अथवा ५० ग्राम दूधसे ले लें।

सूचना—यदि ब्लडप्रेशर न हो तो १० दिनके बाद उपर्युक्त योगमें रसराजकी मात्राको दो ग्राम कर दें। फिर २१ वें दिनसे ३-३ ग्राम कर दें। पेट साफ न होता हो तो रातको छोटी हर्रेका प्रयोग करें।

पथ्यका पालन करना आवश्यक है। बिना चुपड़ी रोटी, मूँग या चनेकी दाल, नेनुवा, लौकी, परवल, पपीता, भिंडी, करेला, सहजन आदि लें। बथुआ छोड़कर पत्तीका और कोई शाक न लें। खोआ और तली-भुनी चीजें न खायें।

(३) हिपेटाइटिस-बी

ऑस्ट्रेलियाई वायरसके द्वारा 'हिपेटाइटिस-बी' रोग हो जाता है। यह रोग होने न पाये, इसका उपाय आजके विज्ञानने सोच लिया है। महीने-महीनेपर एक सुई लगायी जाती है, जिससे कहा जाता है कि इस सुईको लगवानेवाले व्यक्तिको हिपेटाइटिस-बी नहीं हो सकेगा। किंतु हिपेटाइटिस-बी रोग जब हो जाता है तब आजके विज्ञानके पास ऐसी कोई दवा नहीं है, जिससे रोगीको मृत्युके मुखसे बचाया जा सके। शत-प्रतिशत मृत्यु हो जाती है।

रोगका कारण—इस रोगमें ऑस्ट्रेलियाई वायरस खान-पानके द्वारा मुखमार्गसे शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं और यकृत् (लीवर)-में अड्डा जमा लेते हैं। जब इनका पूरा परिवार विकसित हो जाता है, तब यकृत्की पित्तस्रावक्रियामें अवरोध हो जाता है और यकृत् फूलकर पेटमें फैल जाता है जिसको छूकर हम प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इसके बाद असह्य पीडा होने लगती है, हाथ-पैर ठंडे होने लग जाते हैं और रोगीका प्राणान्त हो जाता है।

आयुर्वेद प्राचीनकालसे यकृत्-सम्बन्धी व्याधियोंकी चिकित्सा सफलतापूर्वक करता आ रहा है। आज भी यकृत्की सारी व्याधियोंकी चिकित्सा (कैंसर छोड़कर) आयुर्वेदसे हो जाती है।

हिपेटाइटिसका सामान्य अर्थ पीलिया होता है। इस रोगमें गदहपूर्णा (पुनर्नवा)-जड़का स्वरस ५०-५० ग्राम सुबह, दोपहर, शाम—तीन बार दिया जाता है। मूलीका रस सबेरे और ईखका रस कई बार प्रयोग किया जाता है। आजकल ईखके रसकी जगह ग्लूकोज दे दिया जाता है। ग्लूकोज बड़ी मात्रामें (सौ-सौ ग्राम) तीन-चार बार पिलाते रहना चाहिये। इस तरह हिपेटाइटिस-बीका मुख्य औषध तो गदहपूर्णाका रस है। अन्य ओषधियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) पुनर्नवामण्डूर-३ ग्राम, (२) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (३) रससिन्दूर-२ ग्राम, (४) सितोपलादि-५० ग्राम—इन सबोंकी ३१ पुड़िया बनायें। एक-एक पुड़िया सुबह-दोपहर-शाम खाकर ग्लूकोज मिला हुआ गदहपूर्णाका रस लेते जायँ। शौचशुद्धिके लिये छोटी हर्रेका उपयोग करें। आँवलेका रस भी हितकारी है। इस रोगमें हल्दी घोर अपथ्य है।

आधुनिक परीक्षण कराते रहें। औषध डेढ़-दो महीने चलाना चाहिये।

(४) कैंसर

जिन असाध्य रोगोंकी चर्चा यहाँ की जा रही है, उनमें कैंसर आज भी साध्य नहीं माना जाता। क्योंकि अभीतक इसमें कोई ठोस परिणाम उपलब्ध नहीं हो सके हैं। किंतु आजके विज्ञानने बहुत-से रोगोंको प्रत्यक्ष-सा कर लिया है। इस तरह निदानक्षेत्रमें इसे बहुत ही सफलता मिली है। कैंसर रोग जब प्रमाणित हो जाय तो निम्न चिकित्सासे सफलता मिली है।

इस निबन्धमें किसी भी रोगका पूरा-पूरा निदान न लिखकर इससे स्वास्थ्य प्राप्त करनेका तरीका ही लिखा जा रहा है; क्योंकि प्रत्यक्ष निदान तो विज्ञानसे ही सम्भव है। फिर भी इस रोगसे बचावके लिये कुछ जानकारी अपेक्षित है, यथा—

(१) शरीरमें पड़े तिल, मस्से आदिके वर्ण एवं आकारमें परिवर्तन होना, (२) घावका न भरना, (३) स्तन, ओष्ठ आदि किसी अङ्गपर गाँठका बनना, (४) मलकी अतिप्रवृत्ति या क़ब्ज़का होना, (५) वजन कम होना, (६) अकारण थकावट महसूस होना।

इन लक्षणोंके होनेपर चिकित्सकोंसे अपना परीक्षण कराना आवश्यक है।

कैंसरमें किसी अङ्गके ऊतकको केशिकाओंमें असीम रूपसे विभाजन होने लगता है, जिससे यह व्याधि निरन्तर बढ़ती रहती है। केशिकाएँ पोषक

तत्त्वोंको चूसकर अन्य अङ्गोंको अस्वस्थ कर देती हैं।

अनुभूत औषध—यहाँ अनुभूत औषध दिये जा रहे हैं, जिनसे कैंसर रोगकी रोकथाम तो होती ही है, हो जानेपर उसे निर्मूल भी किया जा सकता है। फेफड़ेके कैंसर भी अच्छे हो गये हैं। लीवरकैंसरपर इसका उपयोग सन्देहास्पद रहा है।

सेमिनोवा कैंसरको तो निश्चित और शीघ्र ही ठीक किया जा सकता है। हाँ, कार्सिनोवा कैंसरमें देर लगती है। किंतु जो दवा लिखी जा रही है, उससे लाभ-ही-लाभ होना है। कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

(१) सिद्धमकरध्वज-१ ग्राम, (२) स्वर्णभस्म-३० मिलीग्राम, (३) नवरत्नरस-३ ग्राम, (४) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (५) कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, (६) बृहद्योगराजगुग्गुल-३ ग्राम, (७) सितोपलादि-५० ग्राम, (८) अम्बर-१/४ ग्राम, (९) पुनर्नवामण्डूर-३ ग्राम, (१०) तृणकान्तमणिपिष्टि-३ ग्राम।

खून आनेकी स्थितिमें बीच-बीचमें एक कप दूब (दूर्वा)-का रस भी ले लेना चाहिये। इसे दवाके साथ ही लेना कोई आवश्यक नहीं है।

सेवन विधि—सभी दवाओंको अच्छी तरह घोंटकर ४१ पुड़िया बनाये। सुबह एक पुड़िया शहदसे चाटकर ताजा गोमूत्र पीये। बछियाका गोमूत्र ज्यादा अच्छा माना जाता है। उसके अभावमें स्वस्थ गाय जो गर्भवती न हो, उसका मूत्र भी लिया जा सकता है। गोमूत्र सारक (दस्तावर) होता है इसलिये सबको एक तरहसे नहीं पचता है। इसे आधी छटाकसे शुरू कर २०० ग्रामतक बढ़ाना चाहिये।

दूसरी खुराक ९ बजे दिनमें तथा तीसरी तीन बजे शामको गेहूँके पौधेके रससे लेनी चाहिये। गेहूँके पौधेका रस भी आधी छटाकसे शुरू कर २००-२०० ग्रामतक होना चाहिये। देशी खाद डालकर गेहूँका पौधा लगा देना चाहिये। दूसरे दिन दूसरी जगह लगाना चाहिये। इसी तरह प्रतिदिन १० दिनतक अलग-अलग स्थानोंपर गेहूँ बोना चाहिये। दसवें दिनका पौधा काटकर, धोकर, पीसकर उसका रस लेना चाहिये। काटनेके बाद उसी दिन फिर गेहूँ बो देना चाहिये। इस तरह प्रतिदिन काटना-बोना चाहिये।

जबतक गेहूँ तैयार न हो और गेहूँके पौधेका रस न मिले तबतक दूसरी और तीसरी पुड़ियाको तीन ग्राम कच्ची हल्दीका रस—लगभग दो चम्मच (कच्ची हल्दी न मिलनेपर सूखी हल्दीका चूर्ण १ चम्मच) और दो चम्मच तुलसीका रस मिलाकर दवा लेनी चाहिये।

हरिद्राखण्ड (हरिद्राखण्ड नामका चूर्ण प्रत्येक औषधनिर्माता बनाते हैं)-को मुँहमें रखकर बार-बार चूसते रहना चाहिये। चूसनेके पहले गरम पानी और नमकसे दाँतोंको सेंकना चाहिये।

यदि गले या स्तन आदिमें कहीं गाँठ हो गयी हो तो उसको गोमूत्रमें हल्दीका चूर्ण मिलाकर गरमकर साफ रूईसे सेंकना चाहिये और इसीकी पट्टी लगानी चाहिये।

यदि घाव हो गया हो तो नीमके गरम पानीसे सेंककर मन:शिलादि मलहम लगाना चाहिये।

सावधानी—यह मलहम जहर होता है, इसलिये मुखवाले (घाव) रोगमें इसे न लगायें। अपितु कभी-कभी रूईको गोमूत्रमें भिगाकर उस स्थानपर रख दें या कच्ची हल्दीका रस या सूखी हल्दीके चूर्णके रसको रूईद्वारा इस स्थानपर रख दें। सुबह-शाम दो बार नीमके पानीसे सेंकना आवश्यक है। मलहम लगाकर हाथोंको राखसे खूब साफ करना चाहिये। छ: बारतक गरम चाय पीयें और हरिद्राखण्ड चूसते ही रहें।

इस रोगमें हरी पत्तीकी चाय बहुत उपकार करती है। चौबीस घंटेमें हरी पत्तीवाली चायकी मात्रा ५ ग्राम ही होनी चाहिये। इसीको दूध मिलाकर चाय बनाकर बार-बार पीते रहना चाहिये। इससे ताकत बनी रहती है और रोग बढ़ने नहीं पाता।

(५) प्लास्टिक एक्जिमा

प्लास्टिक एग्जिमाके रोगका निर्णय हो जानेपर निम्नलिखित दवाका सेवन करें—

पुनर्नवामण्डूर-४ ग्राम, स्वर्णभस्म-३० मि०ग्राम, मोतीपिष्टी-१ ग्राम, प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, सिद्धमकरध्वज-१ ग्राम, चन्द्रप्रभावटी-४ ग्राम, सितोपलादि-२५ ग्राम, कासीसभस्म-२ ग्राम। कुल ४१ पुड़िया। गोमूत्रसे ९ बजे दिन तथा ३ बजे दिनमें तथा शामको गेहूँके पौधेके रसके साथ एक पुड़िया शहदसे चाट लें।

विशेष सूचना—उपर्युक्त सभी अनुपानोंमें ३-३

चम्मच लीवोसिन या लिवोकल्प मिला लें तो उत्तम लाभ हो।

(६) पथरी

पथरीका रोग आज आम बात हो गयी है। साठ-सत्तर वर्ष पहले भोजनमें कुलथीकी दाल खायी जाती थी। बाजारमें मिलती थी। किंतु इधर लोगोंने उसको खाना बंद कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज पथरीका रोग वेगसे बढ़ रहा है। यदि कुलथीका पानी भी पिया जाय तब इस रोगको या तो निकाला जा सकता है या गलाया जा सकता है। मूत्रवहा नाडीका पत्थर शीघ्र ही निकल जाता है। यदि यह वृक्कमें हो जाता है तो देर लगती है; क्योंकि वहाँसे निकाला नहीं जा सकता। हाँ, गलाया जा सकता है। दोनों स्थितियोंमें शल्यकर्मकी आवश्यकता नहीं रहती। कुलथी अपने प्रभावसे उस रोगको जड़मूलसे साफ कर देती है। औषध एवं उसके सेवनकी विधि इस प्रकार है—

(१) हजरल जहूर भस्म-३ ग्राम, (२) श्वेतपर्पटी-३ ग्राम, (३) पाषाणभेद-३ ग्राम, (४) चन्द्रप्रभावटी-४ ग्राम।

इन सबकी २१ पुड़िया बनायें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया निम्नलिखित काढ़ेसे लें—

काढ़ा—(१) कुलथी (या दाल)-१०० ग्राम, (२) वरुण (वरुणा)-की छाल-१५ ग्राम, (३) गदहपूर्णाकी जड़-१० ग्राम, (४) छोटी गोखरू-६ ग्राम, (५) बड़ी गोखरू-६ ग्राम, (६) भिंडीका बीज-३ ग्राम, (७) पानी-५०० ग्राम (आधा किलो)।

इन सबको जौकूट (जौके बराबर) चूर्ण कर लें। काढ़ेकी दवाओंको बहुत महीन न करें। जौकूट-चूर्णको आधा किलो पानीमें रातमें भिगो दें। सबेरे धीमी आँचपर काढ़ा बनायें। शेष १०० ग्राम रहनेपर उतार लें। ५० ग्राम काढ़ा सुबह एक पुड़िया खाकर पी लें।

पथ्य—नेनुवा, लौकी, परवल, पपीता, करेला आदि सब्जियोंको हल्के तेलमें जीरेसे छौंककर धनिया, हल्दी, काली मिर्च—इन मसालोंको खाया जा सकता है। गरम मसाला न लें।

अपथ्य—कैल्सियमकी वस्तुएँ जैसे दूध और रत्नोंका भस्म एवं टमाटर न लें।

सूचना—यदि यूरेटरमें बड़ा पत्थर होता है तो इन दवाओंसे निकलते समय दर्द महसूस होता है, इस दर्दको शुभ लक्षण समझना चाहिये। क्योंकि पत्थर अपने स्थानसे हटकर पेशाबके रास्ते निकलना चाह रहा है। ऐसी स्थितिमें बार-बार खूब पानी पीना चाहिये। इससे उसके निकलनेमें सुविधा होती है। यदि पथरी छोटी होती है तो तकलीफ नहीं होती, आसानीसे निकल जाती है। बड़ी पथरी निकलनेके बाद देखनेमें मांसका टुकड़ा लगता है; क्योंकि मांसको काटते हुए बाहर निकलता है, उसे रख दिया जाय तो बारह घंटे बाद वह पत्थर नजर आने लगता है। इस पत्थरका रंग हजरल जहूर पत्थरकी तरह नीलाभ होता है।

(७) प्रोस्टेड ग्लैंड (पौरुषग्रंथि)

पौरुषग्रंथिका रोग केवल पुरुषोंको ही होता है; क्योंकि पुरुषोंमें ही यह ग्रंथि पायी जाती है। पाँच वर्ष पहलेतक शल्यकर्म बार-बार करनेसे भी प्रायः यह रोग नहीं जाता था, किंतु आयुर्वेदिक औषधके सेवनसे यह रोग समूल नष्ट किया जा सकता है।

औषध—(१) काञ्चनार गुग्गुल-२५ ग्राम, (२) चन्द्रप्रभावटी-५ ग्राम, (३) चतुर्मुख रस १/४ ग्राम, (४) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (५) ताम्रभस्म-१/८ ग्राम—इन सबकी २१ पुड़िया बनायें। एक पुड़िया दवा खाकर निम्नलिखित काढ़ेमें ८ बूँद शिलाजीत और २ ग्राम शीतल चीनी चूर्ण मिलाकर पी लें। सुबह-शाम लें। अपने संतोषके लिये दो-दो महीनेपर जाँच करायें। छः महीनेमें रोग समाप्त हो जायगा।

काढ़ा—(१) वरुण (वरुणा)-की छाल-१५ ग्राम, (२) गदहपूर्णाकी जड़-१० ग्राम, (३) छोटी गोखरू-६ ग्राम, (४) बड़ी गोखरू-६ ग्राम, (५) पञ्चतृणमूल अर्थात् (क) ईखकी जड़-३ ग्राम, (ख) कासकी जड़-३ ग्राम, (ग) साठी धानकी जड़-३ ग्राम, (घ) कुशकी जड़-३ ग्राम। (ङ) सरकण्डेकी जड़-३ ग्राम, (६) सहजनकी छाल-१० ग्राम।

आधा किलो पानीमें काढ़ा बनायें। १०० ग्राम शेष रहनेपर ५० ग्राम सुबह तथा ५० ग्राम शाम दवाके साथ लें।

विशेष—यदि मूत्रमें दाह हो तो तीन बूँद चन्दनका तेल तथा तीन ग्राम शीतल चीनीका चूर्ण काढ़ेमें मिला लें।

परहेज—पूर्वकी तरह।

(८) मायोपैथी

यह मांसपेशियोंका रोग है। विज्ञानकी जाँचसे जब यह रोग ज्ञात हो जाय, तब इसकी चिकित्सा प्रारम्भ करे। वैसे यह रोग असाध्य है। किसी पैथीमें इस रोगको हटानेकी क्षमता नहीं है। आयुर्वेदसे इस रोगमें कितना प्रतिशत लाभ होता है, ठीकसे नहीं कहा जा सकता। हाँ, एक रोगी, जिसने आजसे आठ-दस वर्ष पहले आयुर्वेदकी दवा की थी, वह आज भी स्वस्थ है। इसी आधारपर इस रोगकी दवा लिखी जाती है। जब रोगीने इस दवाको प्रारम्भ किया था तब उसकी अवस्था बारह वर्षकी थी।

विशेष—जो दवा लिखी जा रही है, वह प्रारम्भमें बहुत ही लाभ पहुँचाती है। रोगीको लगता है कि वह पाँच-छः महीनेमें ठीक हो जायगा; किंतु पीछे चलकर यह दवा सात्म्य (प्रभाव-विहीन-सी) होने लग जाती है और रोगीको अनुभव होता है कि अब मुझे लाभ नहीं हो रहा है, वैसी स्थितिमें दवाकी मात्रा बढ़ानी पड़ती है। इस रोगकी यह बड़ी विशेषता है। रोगीको घबड़ाना नहीं चाहिये।

इस रोगकी दूसरी विशेषता यह है कि इस रोगमें एक खुराक निरूढ़ वस्तिसे देना आवश्यक हो जाता है। इसके बिना केवल खानेसे लाभ नहीं पहुँचता।

दवाका क्रम—

(१) रसराजरस-डेढ़ ग्राम, (२) वृहद्वातचिन्तामणिरस-आधा ग्राम, (३) मल्लसिन्दूर-डेढ़ ग्राम, (४) प्रवालपञ्चामृत-तीन ग्राम, (५) कृमिमुद्गररस-तीन ग्राम, (६) गिलोयसत-पचीस ग्राम—इन सबकी इकतीस पुड़िया बना लें।

सेवनविधि—एक पुड़िया सुबह एक पुड़िया शामको शहदके साथ लें। जो लोग लहसुन खाते हैं, वे एकपुटिया लहसुन एकसे तीनतक काटकर निगल लें। तीसरी पुड़िया निरूढ़ वस्तिसे लेनी है। वस्तिको एनिमा कहते हैं। आयुर्वेदने तीन प्रकारकी वस्तियाँ मानी हैं। इनमें दो तरहकी वस्तियाँ तो सभी पैथियोंने अपना ली हैं, किंतु निरूढ़वस्तिका प्रचलन किसी पैथीमें नहीं है। जो दवा मुखसे लेनेपर उतना कारगर नहीं होती, वह निरूढ़वस्तिसे अधिक लाभप्रद हो जाती है। प्रस्तुत रोगमें निरूढ़वस्तिके बिना दवा लाभप्रद नहीं हो पाती। इस रोगकी यह विशेषता है।

सावधानी—उपर्युक्त दवाकी पुनः इक्कीस पुड़िया बनाकर अलग रख लें। जब पहली दवाका प्रभाव कम पड़ता दीख पड़े तो इक्कीस पुड़ियोंमेंसे आधी पुड़िया सुबहकी दवामें तथा आधी पुड़िया शामकी दवामें मिला लें। यदि इसका भी प्रभाव कम पड़ने लगे तो एक-एक पुड़िया पहलीवाली दवामें मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे सेवन करें।

विशेष—(१) इस रोगमें बीस मिनटतक भस्त्रिका-प्राणायाम करना चाहिये। भस्त्रिका-प्राणायामके बहुत भेद हैं। यहाँ निम्नलिखित प्रकारका भस्त्रिका-प्राणायाम करे—

'भस्त्रिका' का अर्थ है 'भाथी'। भाथी इस गहराईसे वायु खींचती है कि जिससे उसके प्रत्येक अवयवतक वायु पहुँच जाती है और वह पूरी फूल उठती है तथा यह इस भाँति वायु फेंकती है कि उसका प्रत्येक अवयव भलीभाँति सिकुड़ जाता है। इसी तरह भस्त्रिका-प्राणायाममें वायुको इस तरह खींचा जाता है कि फेफड़ेके प्रत्येक कणिकातक वह पहुँच जाय और छोड़ते समय प्रत्येक कणिकासे वह निकल जाय।

प्रातः खाली पेट शवासनसे लेट जाय। मेरुदण्ड सीधा होना चाहिये। इसलिये चौकी या जमीनपर लेट जाय, फिर मुँह बंद करके नाकसे धीरे-धीरे श्वास खींचे। जब खींचना बंद हो जाय, तब मुँहसे फूँकते हुए धीरे-धीरे छोड़े, रोके नहीं। यह प्रयोग बीस मिनटसे कम न हो। खाली पेट करे। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि श्वासका लेना और छोड़ना अत्यन्त धीरे-धीरे हो। इतना धीरे-धीरे कि नाकके पास हाथमें रखा हुआ सत्तू भी उड़ न सके—

न प्राणेनाप्यपानेन वेगाद् वायुं समुच्छ्वसेत्।
येन सक्तून् करस्थांश्च निःश्वासो नैव चालयेत्॥

(२) जैसे-जैसे ताकत मिलती जाय वैसे-वैसे घर्षण स्नान करे।

विधि—पानीमें भिगोकर मोटे तौलियेसे पहले एक पैरको खूब रगड़े फिर दूसरे पैरको, फिर दोनों हाथोंको और फिर सारे शरीरको रगड़े।

सूचना—एक बार फिर पेटका साफ होना आवश्यक है। यदि शौच शुद्ध न हो तो भुने हुए हर्रेके चूर्णका सेवन करें।

वे रोग, जिन्हें यन्त्र नहीं देख पाते

आयुर्वेदमें कुछ रोगोंके विस्तृत विवरण मिल जाते हैं, जिन्हें आजके यन्त्र देख नहीं पाते। इन रोगोंमेंसे दो-चार रोगोंका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) परिणामशूल

इस रोगका 'परिणामशूल' यह नाम इसलिये पड़ा है कि छोटी आँतोंमें भोजनके पाक हो जानेके बाद जब किट्टका भाग बड़ी आँतोंमें पहुँचने लगता है तो उदरभागमें असह्य वेदना उत्पन्न होने लगती है। इसलिये इस वेदना (शूल)-का नाम परिणामशूल है। परिणामका अर्थ होता है पक जाना; क्योंकि भोजनके पक जानेके बाद यह शूल होता है, इसलिये इसका परिणामशूल नाम सार्थक है।

एक रोगिणी, जिसकी अवस्था ३०-३२ वर्षकी होगी, इस रोगसे पाँच वर्ष पीडित रही। तीन बजे दिनको उसके उदरमें वेदना प्रारम्भ होती थी, जो छटपटाहटमें परिणत हो जाती थी। इस छटपटाहटको वेदना-निवारक (पेनकिलर) दवासे कम कर दिया जाता था। प्रत्येक चिकित्सक अपने हाथमें आनेपर इस रोगका सर्वविध यान्त्रिक जाँच करवाते रहे, किंतु जाँचसे कोई रोग स्पष्ट नहीं होता था। ३-४ वर्ष बीत जानेके बाद वेदना-निवारक सभी औषध भी बेअसर हो गये। दर्दके मारे कराहते-कराहते रोगिणी बेहोश होने लगी। प्रत्येक दिन तीन बजे दर्द उठता और रोग बेहोशीमें परिणत हो जाता, फिर तीन-चार घंटेके बाद पीडा कम होने लगती।

लक्षण—रोगके नामसे ही इस रोगका लक्षण स्पष्ट हो जाता है। बात यह है कि बड़ी आँतोंकी दीवारमें मलका किट्टभाग जमकर ठोस परतका रूप ले लेता है। जब भोजन पक जानेके बाद, बड़ी आँतोंमें भोजनका यह निस्सार भाग फिर पहुँचने लगता है, तब पुरस्सरणक क्रियाके द्वारा उत्तरोत्तर पुराने परतनुमा किट्टभागके टकरावसे यह वेदना शुरू होती है और बढ़ती चली जाती है। इस तरह भोजनके ३-४ घंटे बाद होनेवाले दर्दको परिणामशूल कहते हैं।

बड़ी आँतका कुछ हिस्सा लीवर और प्लीहाके बीचमें फेफड़ोंके नीचे, आँतके स्पर्शसे ज्ञात हो जाता है। उक्त रोगिणीके आँतका यह भाग बहुत सूजकर गुठली-सा बाहर दिखने लगा था। उसके इस गाँठको देखकर बहुतोंने इसे हृदयरोग समझ लिया, किंतु यह हृदयरोग नहीं था।

चिकित्सा—चिकित्साकी सफलता यह है कि वह मूलरोगके कारणका निवारण कर दे। कैस्टर ऑयल (एरण्डका तेल) पीनेसे धीरे-धीरे आँतोंमें चिपके मलका किट्टभाग फूलकर बाहर निकलने लगता है। इसलिये मशीनमें जैसे तेलकी जरूरत होती है, उसी तरह इस रोगमें स्नेहन (ऑयलिंग)-की आवश्यकता होती है।

रातको मूँगकी खिचड़ी घीके साथ खाये और सोते समय एकसे चार चम्मचतक शुद्ध कैस्टर ऑयलको थोड़े दूधमें मिलाकर पी लेना चाहिये। उसके बाद मीठा दूध ऊपरसे पी ले। पेट सबका अलग-अलग होता है। इसलिये किसीका आधे चम्मचसे काम चलता है और किसीको चार चम्मच लेना पड़ता है। रोगीको ध्यान देना पड़ेगा कि कितने चम्मच कैस्टर ऑयलसे उसका एक बारमें पेट साफ हो जाता है। एक बार पेट साफ अवश्य होना चाहिये। कैस्टर ऑयल पीनेसे पहले १० ग्राम ईसबगोलकी भूसी लेना आवश्यक है।

इसमें दूसरी सावधानी यह बरतनी पड़ती है कि पेट दो घंटेके बाद खाली न रहे। अर्थात् हर दो-ढाई घंटेपर ५० ग्राम दूधमें एक चम्मच घरका बना चनेका सत्तू मिलाकर पी लिया जाय। जो लोग बिस्कुट खाते हों, वे सत्तूकी जगहपर प्रत्येक दो घंटेके बाद आरारोटका बिस्कुट खाकर दूध या पानी पी सकते हैं।

औषध—(क) (१) शूलवज्रिणीवटी-४ ग्राम, (२) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (३) कृमिमुद्गर-३ ग्राम, (४) महाशंखवटी-२ ग्राम, (५) सीतोपलादि-२५ ग्राम, (६) टंकणभस्म-३ ग्राम, (७) महाशङ्खभस्म-३ ग्राम और (८) कपर्दक भस्म-३ ग्राम।

इन सबकी २१ पुड़िया बना लें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया शहदसे लेकर ऊपरसे एक छटाक दूध पी लें।

(ख) इस रोगमें पेट खाली नहीं रहना चाहिये।

इसलिये २५० ग्राम दूधको चार भाग करके एक भागको घरके बने चनेके सत्तूके साथ लेते रहें। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

(ग) रातको मूँगकी खिचड़ी खाकर सोते समय १० ग्राम ईसबगोलकी भूसी लेकर कैस्टर ऑयल ले लें। खिचड़ीमें घी मिला लें। रोटी भी ली जा सकती है। किंतु खिचड़ी ज्यादा हितकर है। सोते समय एक-से-चार चम्मच कैस्टर ऑयल थोड़े-से दूधमें मिलाकर ले लें। बादमें मीठा दूध पी लें। तीन दिनके बाद इस तकलीफसे मुक्ति मिल जायगी। धीरे-धीरे एक किलोसे कम कैंस्टर ऑयल नहीं पीना चाहिये। डेढ़ किलोतक पीना ज्यादा हितकर है।

विशेष—हिंग्वष्टक चूर्ण ३-३ ग्राम भोजनके पहले कौरमें सानकर खा लें।

पेटमें दर्द हो तब अग्नितुंडीवटी-२ गोली तोड़कर निगल जायँ और हिंग्वष्टक चूर्ण-५ ग्राम गरम पानीसे ले लें।

(२) सूर्यावर्त (Migraine)

आवर्तका अर्थ होता है चारों ओर चक्कर लगाना। इस प्रकार सूर्यावर्तका अभिप्राय यह होता है कि सूर्यका उदित होकर पृथ्वीका चक्कर लगाकर फिर उसका पूर्व दिशामें लौट आना। सूर्यके इस आवर्तनसे जो रोग उत्पन्न होता है, उसे भी लक्षणासे सूर्यावर्त ही कहा जाता है। इस तरह सूर्यावर्त शब्दसे रोगका पूरा परिचय मिल जाता है।

पूर्व दिशामें सूर्यका यह उदय भारतसे दो-तीन घंटा पहले ही हो जाता है। भारतसे एक घंटा पहले जापानमें सूर्योदय होता है और जापानसे एक घंटा पहले प्रशान्तमहासागरमें। इस तरह सूर्यका दर्शन भारतमें दो घंटे बाद ही होता है। सूर्यके इस आवर्तन (उदय)-के साथ ही सूर्यावर्तका रोग भारतवासी रोगियोंको होने लगता है; क्योंकि सूर्य अग्निका पिण्ड है और अग्नि ही शरीरमें पित्तरूपसे प्रतिष्ठित है। अतः सूर्यसे पित्तका गहरा सम्बन्ध है। प्रशान्तमहासागरमें जब सूर्यका आवर्तन हो जाता है तब रोगीके शरीरमें स्थित पित्त भी प्रभावित होने लगता है। यह पित्त रोगीके ललाट आदिमें स्थित कफको धीरे-धीरे सुखाने लगता है। जैसे-जैसे कफ सूखता जाता है, वैसे-वैसे रोगीका सिरदर्द (शिरोवेदना) बढ़ता जाता है। दोपहरमें २ बजेके बाद यह वेदना कम होती जाती है; क्योंकि पित्तका वेग भी कम होने लग जाता है और रोगी फिर सिरमें केवल भारीपन महसूस करता है। उसकी बेचैनी हट जाती है। जीर्ण होनेपर यह रोग ललाटमें परतकी तरह जम जाता है और उसको तेज यन्त्रसे खरोंचकर निकाला जा सकता है।

इस तरह यह रोग बहुत ही कष्टप्रद है। किंतु जितना यह कष्टप्रद है, उतनी ही आयुर्वेदने इसकी चिकित्सा सरल बना दी है। क्योंकि आयुर्वेदने इसके कारणका पता लगा लिया है और उस कारणके उत्पन्न होनेसे पहले ही दवाका सेवन करा देता है। इसलिये एक-दो दिनमें ही इस रोगसे मुक्ति मिल जाती है। औषध कुछ दिन चलाते रहना चाहिये।

औषध—आयुर्वेद कारणका पता लगाकर, उस कारणको प्रभावहीन करनेके लिये प्रशान्तमहासागरमें सूर्योदय होनेसे पहले ही अर्थात् भारतमें सूर्योदय होनेसे लगभग २-३ घंटे पहले ही औषधका सेवन करा देता है। विधि यह है—

एक छटाक जलेबीको रातको ही दूधमें भिगोकर सुरक्षित रख दें। लगभग तीन बजे गोदन्ती भस्म-१ ग्राम एवं शोधित नरसारचूर्ण-आधा ग्राम फाँककर इस दूध-जलेबीको खाकर भरपेट पानी पी लेना चाहिये। औषधके इस सेवनसे, सूर्यावर्तनसे जो पित्त प्रकुपित होता था, वह नहीं हो पायेगा और कफ पिघलकर तीन-चार दिनोंमें नाकसे निकल जायगा। कभी-कभी खून भी निकलता है, उसे देखकर रोगी घबराये नहीं; क्योंकि वह दूषित अवरुद्ध खून है, इसका निकलना ही श्रेयस्कर है। कम-से-कम ४१ दिनतक यह औषध चलाना चाहिये। ४१ दिनके बाद कुछ दिनोंतक आधा किलो पानी, चीनी मिलाकर हलका-हलका गरम, पीते रहना चाहिये। इस विधिसे यह रोग ४-५ दिनोंके बाद ही प्रभावहीन तो हो जाता है, किंतु लेयर (परत)-की तरह ललाटमें चिपके हुए कफको निकालनेके लिये आवश्यकतानुसार २१ या ४१ दिनोंतक दूध-जलेबीका सेवन करना चाहिये। रोगीको फिर कभी यदि जुकाम हो जाय तो रातको तीन बजे पानीमें चीनी डालकर भरपेट पी लेना चाहिये, ताकि वह पित्त फिर जाग न जाय।

यदि षड्विन्दु तेलको नाकमें छः-छः बूँद डालें तब इस रोगसे जीवन-भरके लिये छुटकारा मिल जाता है। यह तेल इतना उत्तम है कि नाकमें डालने और सिरमें लगानेसे कंठके ऊपरके सम्पूर्ण रोग समाप्त हो जाते हैं। स्वस्थ व्यक्ति भी इसलिये इस तेलका सेवन कर सकता है। कान, आँख, नाकके एवं सिरके बाल गिरना तथा सफेद होना आदि उपद्रवोंसे यह बचाकर रखता है। साइनसके रोगियोंको ४ वर्षोंतक नाकमें इसको अवश्य डालते रहना चाहिये। यह साइनसरोग भी आज असाध्य ही है। शल्यकर्मके बाद भी नहीं जाता। बार-बार शल्यकर्म कबतक कोई करायेगा?

(३) वातगुल्म

प्रकृति हमारी माता है। हमारे स्वास्थ्यके विरोधी कोई तत्त्व अगर हमारे शरीरमें पनपने लगते हैं तो प्रकृति माता उनको दूर करनेके लिये भरसक प्रयत्न करती है। आँव भी एक ऐसा रोग है, जो शरीरमें सेन्द्रिय विष तैयार करता है। इसलिये प्रकृति माता उस विषको निकालनेके लिये बार-बार शौचकी संख्या बढ़ा देती है। किसी भी चिकित्सकका प्रकृतिके इस कार्यमें सहयोग करना ही कर्तव्य है, उसके विरुद्ध जाना नहीं। जब आँवके दस्त लगते हैं तब रोगीको एक तो बार-बार शौच जाना पड़ता है और उसको मरोड़ भी बहुत होता है। वह चाहता है कि इन दोनों कष्टोंसे बचे और चिकित्सकके पास दौड़ता है। इस स्थितिमें आयुर्वेद रोगीके कष्टकी निवृत्तिके लिये बेलके मुरब्बे आदिका सेवन कराता है और परहेज कराता है। औषधकी योजना ऐसी बताता है कि प्रकृतिके कार्यमें कोई बाधा न पड़े और रोगीका कष्ट दूर हो जाय। किंतु आजकल कुछ ऐसी औषधियाँ निकल गयी हैं, जिनके खिला देनेके बाद रोगीको तत्काल कष्टसे छुटकारा हो जाता है और वह समझता है कि हम शीघ्र ही अच्छे हो गये। शायद चिकित्सक भी समझता होगा कि हमने रोगीको ठीक कर दिया। किंतु होता है उलटा। प्रकृति जिस विषको आँवके माध्यमसे निकालना चाहती थी, वह आँव पेटमें ही रह गया। तब वह दो रूपोंमें परिणत हो जाता है। एक तो वह आँव आँतोंकी दीवारमें चिपककर परतकी तरह बन जाता है। दूसरे उसी आँवके ऊपर कुछ मांस भी चारों तरफसे बढ़ने लगता है, जो कई किलो भारतक हो जाता है। किंतु इसे किसी यन्त्रसे नहीं देखा जा सकता।

इसीका नाम वातगुल्म है। आयुर्वेदके अनुसार गुल्म दो प्रकारके होते हैं—(१) वातगुल्म और (२) रक्तगुल्म।

रक्तगुल्म तो गर्भाशयका रोग है और वातगुल्म पेटका रोग है। इसे देखनेके दो उपाय हैं—

(१) रोगीको चित लिटाकर उसके दोनों पैरोंको मोड़कर उसकी नाभिके चारों ओर अँगुलियोंसे टटोला जाय और उसकी सीमा देख ली जाय। हाथका स्पर्श बता देता है कि पेटमें एक गाँठ है और वह कितनी बड़ी है।

(२) दूसरा उपाय यह है कि पेट खोलकर देखे तो आँखें साफ देख लेती हैं कि पेटमें बहुत बड़ी गाँठ है। एक रोगीका पेट खोला गया, उसके पेटमें गुल्मकी पाँच गाँठें थीं। सबका ऑपरेशन एक साथ सम्भव न था, इसलिये वह सी दिया गया। प्रायः एक ही ऑपरेशनमें मृत्यु हो जाती है, बहुत सावधानी बरतनेपर कई ऑपरेशन सम्भव हैं।

औषध—[१] महाशंखवटी-२ ग्राम, कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, कामदुघारस-४ ग्राम, साधारण सूतशेखररस-३ ग्राम, अम्बर-१/६ ग्राम, सिद्धमकरध्वज-१ ग्राम, सितोपलादि-२५ ग्राम—इन औषधोंकी २१ पुड़िया बनायें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया खाली पेट शहदके साथ लें।

[२] कुबेराक्षादिवटी-दो गोली, लहसुनादिवटी-दो गोली—चारों गोलियाँ निगलकर मीठा कुमार्यासव चार ढक्कन पानी मिलाकर पी लें। इसे भोजनके आधे घंटे बाद दोनों समय लें।

यदि लहसुनका परहेज हो तो लहसुनादिवटीके स्थानपर कपीलुहिंग्वादिवटी १ या २ गोली लें।

[३] रातको सोते समय १० ग्राम ईसबगोलकी भूसीके साथ त्रिफलाचूर्ण पानी या दूधसे लें। दूधमें चीनी मिलायी जा सकती है। पेटको साफ रखना आवश्यक है। ईसबगोलकी भूसी परतकी तरह आँतोंमें चिपके आँवको फुलाता है और त्रिफला उसे निकालता

है। इसलिये औषधसेवन करनेपर यदि शौचमें चिकनाहट मालूम पड़े तो रोगी घबराये नहीं, वह समझे कि आँव निकल रहा है।

इस रोगमें प्राय: अम्लपित्त भी हो जाता है, ऐसी स्थितिमें अविपत्तिकरचूर्ण ५-५ ग्राम भोजनसे १० मिनट पहले पानीसे ले लें। एक महीनेके लिये हर खट्टे फलका सेवन निषिद्ध है। इस अवसरपर मलाई निकाले हुए पावभर दूधको फ्रिजमें रख दें। यदि फ्रिज न हो तो मिट्टीके बरतनमें पानी डाल दें, उसीमें दूधके बरतनको रख दें ताकि वह ठंडा बना रहे। प्रत्येक दो घंटेपर पचास ग्राम दूध घरके चनेके सत्तूके साथ लेते रहें।

इस रोगमें परहेज बहुत जरूरी है।

(४) गर्भाशयके ट्यूबोंका जाम होना

गर्भाशयमें दो ट्यूब होते हैं। संतानके लिये इन ट्यूबोंका अत्यधिक महत्त्व है। यदि दोनों ट्यूब जाम हो जायँ तो संतान हो नहीं सकती।

ऐसी स्थितिमें निम्नलिखित औषधका सेवन लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। पहले ट्यूबोंकी जाँच करा लें। फिर छ: महीने बाद सफलता मिल जाती है।

औषध—[१] रसराजरस-२ ग्राम, गुल्मकुठाररस-२ ग्राम, टंकणभस्म-२ ग्राम, काले तिलका चूर्ण-३० ग्राम, पुनर्नवामण्डूर-३ ग्राम—इन औषधियोंकी २१ पुड़िया बना लें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया शहदसे लें या पचास ग्राम चीनी मिले दूधसे लें।

[२] ४०० मिलीग्राम मीठे कुमार्यासवमें १४ मिलीग्राम शंखद्राव मिला लें। भोजनके आधे घंटेके बाद बोतलको अच्छी तरह हिलाकर ४ ढक्कन दवा ६ ढक्कन पानी मिलाकर पी लें। पेट साफ करनेके लिये हर्रे आदि लें। (ला०बि०मि०)

आयुर्वेदका प्रयोजन

(आचार्य श्रीप्रियव्रतजी शर्मा, भू०पू० निदेशक एवं डीन चिकित्सा-विज्ञान-संकाय, का०हि०वि० विद्यालय)

'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च' (च०सू० ३०।२६)— आचार्य चरकके इस वचनके अनुसार आयुर्वेदका प्रयोजन है—स्वस्थ पुरुषके स्वास्थ्यकी रक्षा करना तथा रोगी पुरुषके विकारका शमन करना। पूर्वकालमें आयुर्वेदका अवतरण इसी उद्देश्यसे हुआ।

जो 'स्व' में रहे वह 'स्वस्थ' कहलाता है। प्रत्येक व्यक्तिका प्रतिनियत स्वभाव होता है, जिसके अनुसार उसका 'स्वधर्म' और 'स्वकर्म' संचालित होता है। संक्षेपमें इसे प्रकृति कह सकते हैं। इस प्रकार अपनी प्रकृतिमें स्थित रहनेवाला स्वस्थ तथा प्राकृत भाव स्वास्थ्य है। इसके विपरीत वैकृत भाव रोग है। 'साम्य' और 'वैषम्य'से इन्हीं अवस्थाओंका अभिधान किया गया है। सुश्रुतके अनुसार स्वस्थका लक्षण इस प्रकार है—जिसके दोष, धातु, मल तथा अग्नि सम (प्राकृत स्थितिमें) हों तथा आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हों। प्रसन्नतासे ही दोष आदिके साम्यका अनुमान होता है। अत: प्रसन्नता (प्रसाद) इसका मुख्य लक्षण है— **'प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।'** इस स्थितिकी रक्षा अर्थात् सर्वतोभावेन इसे बनाये रखना, बिगड़ने न देना, आयुर्वेदका प्रथम एवं प्रमुख प्रयोजन है। अतएव चरकने इसका उल्लेख प्रथमत: किया है। **'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'** इस न्यायसे भी यही समीचीन है।

इसके लिये आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें दिनचर्या, ऋतुचर्या और सद्वृत्तका विधान किया गया है। दिनचर्यामें दन्तधावन, स्नान आदि शौचकर्म, व्यायाम, आहार और विश्राम उल्लेखनीय हैं। स्नान आदिसे शारीरिक शुद्धि तथा पूजा और ध्यान आदिसे चित्तकी शुद्धि होती है। प्राणायामसे दोनोंका शोधन होता है। इसका पालन न करनेसे अनेक शारीरिक तथा मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। स्नानमें शीत या उष्ण जलके उपयोगमें प्रकृति, देश, काल आदिका विचार करना चाहिये। व्यायामसे शरीर बलवान् होता है और उसमें स्फूर्ति आती है। व्यायाम न करनेसे स्थौल्य, प्रमेह आदि रोग होते हैं। अति व्यायाम करना भी रोगका कारण है। आहार शरीरके

पोषणके लिये आवश्यक है। इसका ग्रहण प्रकृति तथा अग्निबलके अनुसार मात्रापूर्वक करना श्रेयस्कर है। रात्रिमें निद्रासे शरीर और मनको विश्राम मिलता है। स्त्रीसंयोगका संयमित सेवन हितकर है। आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य—ये तीन शरीरके उपस्तम्भ (धारण करनेवाले) कहे गये हैं—**'त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति'** (च० सू० ११।३५)।

उपर्युक्त विधान वैयक्तिक स्वस्थवृत्त है, जब कि सद्वृत्त (शिष्टाचार) वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों स्तरोंपर स्वास्थ्यकी रक्षा करता है। पुरुषके लिये केवल वैयक्तिक स्वास्थ्य ही अपेक्षित नहीं है, अपितु सामाजिक स्वास्थ्य भी अभीष्ट है। इन्हीं दोनोंको दृष्टिमें रखकर चरकने हित-अहित आयु तथा सुख-दुःख आयुका प्रतिपादन किया है। हित-अहित सामाजिक स्वास्थ्य तथा सुख-दुःख वैयक्तिक स्वास्थ्यका निष्कर्ष है।

स्वास्थ्यरक्षामें रसायन और वाजीकरणका भी महत्त्व है। रसायनसे सभी धातु पुष्ट होते हैं, जिससे ओज दृढ़ होता है, जो रोगक्षमताका मूल है। जब कि वाजीकरण शुक्रको प्रशस्त बनाता है, जिससे संतान गुणसम्पन्न होती है। रसायन तारुण्यको बचाये रखता है, अतः इसे 'व्रयःस्थापन' भी कहते हैं। सामान्यतः लोग रसायनसे ओषधियोंका ग्रहण करते हैं, किंतु आहारमें ग्राह्य द्रव्य भी नित्य-रसायन हैं। काम्य-रसायनके रूपमें विभिन्न ओषधियोंका सेवन विहित है। सुश्रुतने शीतोदक, दुग्ध, घृत और मधुका पृथक्-पृथक् या मिश्रित कर 'वयःस्थापन' के रूपमें विधान किया है (सु०चि० ३७।६)। इनका प्रयोग प्रकृतिके अनुसार करना चाहिये। इन द्रव्योंके साथ-साथ आचारका पालन भी मानसिक शान्तिके लिये आवश्यक है। यह 'आचार-रसायन' कहलाता है, बिना इसके रसायनका फल नहीं मिलता—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम्।
शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्॥
(च०चि० १।४।३०—३४)

अर्थात् सत्य बोलनेवाले, क्रोध न करनेवाले, मद्य-सेवन और मैथुनसे दूर रहनेवाले, हिंसा न करनेवाले, श्रम न करनेवाले तथा शान्त, प्रियवादी, जप और पवित्रतामें तत्पर, धीर, सदा दान देनेवाले, तपस्वी, देवता, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु एवं वृद्धजनोंकी पूजा करनेमें तत्पर, क्रूरतासे दूर रहनेवाले, सर्वदा दयासे पूर्ण, उचित समयसे निद्रा त्यागने और शयन करनेवाले, सदा दूध और घृतका सेवन करनेवाले, देश, काल तथा मात्राको जाननेवाले, युक्तिको जाननेवाले, अहंकार न करनेवाले, उत्तम आचार-विचारवाले, संकीर्ण विचारसे शून्य, अध्यात्मविषयोंमें अपनी इन्द्रियोंको लगानेवाले, आस्तिक, जितात्मा, वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करनेवाले तथा धर्मशास्त्रको पढ़नेवाले मनुष्य सदा रसायनयुक्त होते हैं।

इस प्रकार आहार, आचार और विहारका संतुलित प्रयोग स्वास्थ्य-रक्षाके लिये आवश्यक है। यदि कदाचित् मिथ्या आहार-विहारके कारण रोग उत्पन्न हो जायँ तो उनका शमन करके पुरुषको प्राकृत भावमें स्थापित करना आयुर्वेदका द्वितीय प्रयोजन है। इसी कारण चिकित्साको 'प्रकृतिस्थापन' कहा गया है। इसके लिये औषध, आहार (पथ्य) और विहारकी त्रिपुटीका समन्वित प्रयोग किया जाता है। चिकित्सामें दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय और सत्त्वावजय—इन तीनों उपायोंका प्रयोग विहित है, जिससे दोषोंका सर्वाङ्गीण शोधन और शमन हो सके। प्रथम दोषोंका संशोधन कर फिर संशमनका विधान है। संशोधनमें पञ्चकर्म महत्त्वपूर्ण है।

उपसंहार—इस प्रकार आयुर्वेदका प्रयोजन पुरुषको सर्वथा समर्थ रखना और बनाना है, जिससे वह पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-की प्राप्ति कर सके। इसी कारण आरोग्यको इनका मूल कहा गया है। अतः आरोग्यप्रदाता आयुर्वेद सर्वविध सेवनीय है—**'आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥'**
(अष्टाङ्गहृदय सू० १।२)

आयुर्वेद शब्दका अर्थ, परिभाषा एवं प्रयोजन

(डॉ० श्रीसीतारामजी जायसवाल, फिजीशियन एण्ड सर्जन)

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते॥

जिस शास्त्रके द्वारा आयु (सुखी आयु तथा दुःखी आयु, हितकर आयु तथा अहितकर आयु)-का, हित (लाभदायक) एवं अहित (हानिकारक) आहार-विहार (स्वस्थवृत्त)-का, व्याधि (रोग)-निदान तथा शमन (चिकित्सा)-का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उस (शास्त्र)-का नाम 'आयुर्वेद' है।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

(च०सू० १।४१)

अर्थात् जिस शास्त्रमें हितकर आयु तथा अहितकर आयु, सुखी आयु एवं दुःखी आयुका वर्णन हो तथा आयुके लिये हित एवं अहित आहार-विहार एवं औषधका वर्णन हो और आयुका मान बतलाया गया हो तथा आयुका वर्णन हो वह 'आयुर्वेद' कहलाता है। जितने समयपर्यन्त शरीर एवं आत्माका संयोग रहता है, उतने समयका नाम 'आयु' है। इसी समयमें प्राणी धर्मादिकी सिद्धि कर सकता है।

मानव आयुर्वेदशास्त्रद्वारा आयुके विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है, अतः इसका नाम 'आयुर्वेद' है—

'आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽऽयुर्विन्दन्ति इत्यायुर्वेदः।'

(सु० सू० १।१५)

शरीर एवं जीवका योग 'जीवन' कहलाता है, उससे युक्त कालका नाम 'आयु' है। आयुर्वेदद्वारा व्यक्ति आयुके विषयमें हित-अहित द्रव्य तथा गुण एवं कर्मको जानकर और उनका सेवन तथा परित्याग करके आरोग्ययुक्त—स्वास्थ्यलाभपूर्वक आयुको प्राप्त करता है और दूसरोंकी आयुका भी ज्ञान प्राप्त करता है।

आयुर्वेदका प्रयोजन

'व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणं च।' (सु०सू० १।१४) इसके द्वारा रोगियोंको रोगसे मुक्ति मिलती है और स्वस्थ व्यक्तियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा होती है।

आचार्य चरकका उद्घोष है—**'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च'** (सूत्र० ३०।२६)। अर्थात् आयुर्वेदशास्त्रका प्रयोजन है—स्वस्थ पुरुषके स्वास्थ्यकी रक्षा करना और रोगी व्यक्तिके रोगको दूर करना।

धर्म, अर्थ एवं सुखादिका साधन आयु है। अतः आयुकी कामना करनेवालोंको आयुर्वेदके उपदेशोंमें परम आदर करना चाहिये।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० १।२)

आयुर्वेदके उपदेशों (विधि एवं निषेधों)-का आदर (पालन) करनेसे आयुका लाभ होता है और उससे धर्म आदिकी सिद्धि होती है।

आयुर्वेद—संक्षिप्त परिचय

(डॉ० श्रीप्रदीपकुमारजी सचान, प्रवक्ता, रा० आयु० का० झाँसी)

इतिहास—आयुर्वेदके इतिहासका अवलोकन करनेसे ज्ञात होता है कि इसके ग्रंथोंमें आयुर्वेदकी उत्पत्तिको ब्रह्माद्वारा सृष्टि-उत्पत्तिके पूर्व माना गया है। ब्रह्माद्वारा प्रणीत ब्रह्मसंहिता, जिसमें दस लाख श्लोक एवं एक हजार अध्याय थे, आज उपलब्ध नहीं है। देवलोकसे मर्त्यलोकमें आयुर्वेदको अवतरित करनेका श्रेय महर्षि भरद्वाजको है। वेदोंको प्राचीनतम वाङ्मय माना जाता है। ये समस्त ज्ञानके आदि स्रोत कहे जाते हैं, जिससे आयुर्वेदके आद्य स्रोत भी ये ही हैं। आयुर्वेदकी विषयवस्तु चतुर्विध वेदोंमें प्राप्त होती है, परंतु सर्वाधिक साम्यता अथर्ववेदसे होनेके कारण आचार्य सुश्रुतने आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपाङ्ग (सु०सू० १।६) एवं वाग्भटने अथर्ववेदका उपवेद (अ०हृ०सू० ८।९) कहा है। आचार्य चरकने भी इसकी सर्वाधिक घनिष्ठता अथर्ववेदसे बतायी है एवं इसे पुण्यतम वेद कहा है (च०सू० १।४३)। ऋग्वेद प्राचीनतम

होनेके कारण प्राचीनताकी दृष्टिसे चरणव्यूहमें आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद कहा गया है। महाभारत (सभापर्व ११।३३ पर नीलकण्ठकी व्याख्या)-में भी आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद कहा गया है। काश्यपसंहिता (आयुर्वेदका बालरोगसे सम्बन्धित ग्रंथ) एवं ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आयुर्वेदको पञ्चम वेद कहा गया है। आयुर्वेद शब्द नामतः वैदिक साहित्यमें कहींपर भी परिलक्षित नहीं होता है। आयुर्वेदोत्तर ग्रंथोंमें सर्वप्रथम इसका नाम पाणिनिकृत अष्टाध्यायी (क्रतूक्थादि-सूत्रान्ताट्ठक् ४।२।६०) आदिमें प्राप्त होता है।

चरकसंहिता एवं सुश्रुतसंहिता आद्य संहिताएँ हैं, जो कि पूर्णतः उपलब्ध हैं। अन्य काश्यपसंहिता, हारीतसंहिता आदि खण्डित अवस्थामें हैं। बादकी संहिताएँ अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्गहृदय, माधवनिदान आदि चरक एवं सुश्रुतसंहिताको आधार मानकर सृजित की गयीं।

आयुर्वेदीय संहिताओंमें निम्नानुसार अवतरण-सम्बन्धी परम्परा प्राप्त होती है—

आयुर्वेदावतरण
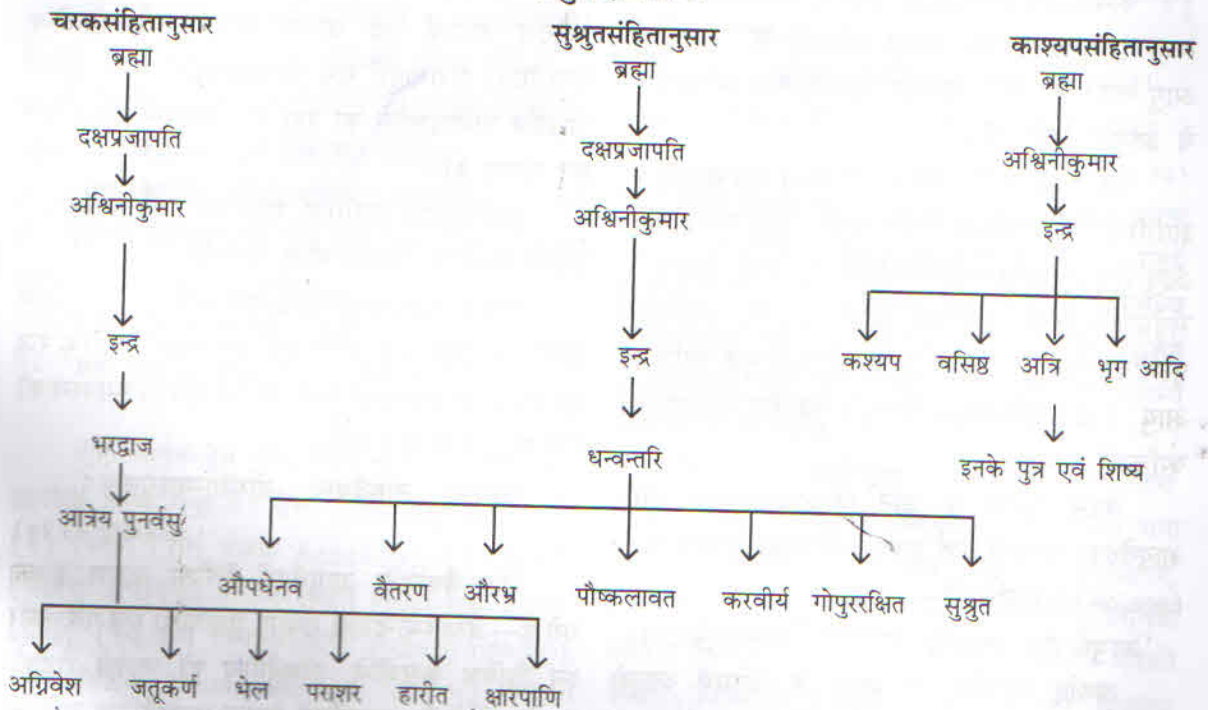
संहितोक्त आयुर्वेद 'अष्टाङ्ग-आयुर्वेद' कहा गया है; क्योंकि इसके आठ अङ्ग हैं, यथा—

(१) शल्य (Surgery), (२) शालाक्य (Ophthalmology, Otology, Rhinology, Dentistry, Orophary-ngology etc.), (३) कायचिकित्सा (Medicine), (४) अगदतंत्र (Toxicology, Medical Jurisprudence), (५) भूतविद्या (Psychiatry, Microbiology), (६) कौमारभृत्य (Paediatrics), (७) रसायन (Science of Rejuvenation, Immunology) एवं (८) वाजीकरण (Science of Aphrodisiac)।

इस अष्टाङ्ग-आयुर्वेदके जनक काशिराज दिवोदास धन्वन्तरिको माना जाता है। प्रारम्भिक आयुर्वेद मुख्यतः काष्ठौषधियोंपर निर्भर था, परंतु कालान्तरमें इसमें धातुओंका भी भस्मादिके रूपमें प्रयोग होने लगा। इस हेतु रसशास्त्र नामक शाखाका उदय हुआ।

आयुर्वेद शब्दका अर्थ— आयुर्वेद शब्द आयु एवं वेद—इन दो शब्दोंके मेलसे बना है। आयुका अर्थ इस प्रकार है—

(१) **'एति गच्छति इति आयुः'** अर्थात् जो निरन्तर गतिमान् रहती है, उसे आयु कहते हैं।

(२) **'आयुर्जीवितकालः'** (अमरकोष २।८।१२०) जीवितकालको आयु कहते हैं।

(३) **'चैतन्यानुवर्तनमायुः'** (च०सू० ३०। २२) अर्थात् जन्मसे लेकर चेतनाके बने रहनेतकके कालको आयु कहते हैं।

(४) **'शरीरजीवयोर्योगो जीवनम्, तेनावच्छिन्नः काल आयुः'** अर्थात् शरीर एवं जीवके संयोगको जीवन कहते हैं तथा जीवनसे संयुक्त कालको आयु कहते हैं।

(५) **शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।**
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥

(च० सू० १। ४२)

अर्थात् शरीर (Physical Body), इन्द्रिय (Senses), सत्त्व (Psyche) एवं आत्मा (Soul)-के संयोगको आयु कहते हैं। धारि, जीवित, नित्यग तथा अनुबन्ध—ये आयुके पर्याय हैं।

यह आयु चतुर्विध कही गयी है—(१) **सुखायु**—शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे सर्वथा मुक्त व्यक्तियोंकी आयु, (२) **दुःखायु**—रोगावस्थाकी आयु, (३) **हितायु**—सर्वप्राणी-हितैषी, सदाचारी, दानी, तपस्वी, आदरणीय पुरुषोंका आदर करनेवाले आदि लक्षणोंसे युक्त व्यक्तिकी आयु, (४) **अहितायु**—हितायुके विपरीत लक्षणोंवाले व्यक्तिकी आयु।

वेदसे तात्पर्य है ज्ञान (Knowledge)। अतः आयुर्वेदका सामान्य अर्थ हुआ—जीवनका विज्ञान (Science of life) संक्षेपमें—

'आयुषो वेदः आयुर्वेदः' या **'आयुर्वेदयत्यायुर्वेदः'।**

अर्थात् आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिसमें आयुसे सम्बन्धित सर्वाङ्गीण ज्ञानका वर्णन किया गया हो। दूसरे शब्दोंमें महर्षि चरकने आयुर्वेदकी परिभाषा निम्नवत् दी है—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

(च०सू० १। ४१)

अर्थात् आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिसमें हितायु, अहितायु, दुःखायु एवं सुखायु—इन चतुर्विध आयुओंके लिये क्या हित है, क्या अहित है, आयुका मान क्या है एवं इसका स्वरूप क्या है आदिका वर्णन किया गया हो।

आयुर्वेदका प्रयोजन—आरोग्यावस्था बनाये रखना ही आयुर्वेदका लक्ष्य है। इस हेतु इसके दो प्रयोजन बताये गये हैं—

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च। (च०सू० ३०। २६)

(१) स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा करना।

(२) रोगीके रोगोंका शमन करना।

स्वस्थ व्यक्तिकी परिभाषा आचार्य सुश्रुतने निम्न प्रकारसे दी है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सु०सू० १५। ४१)

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति वह है, जिसमें वातादि दोष, त्रयोदश अग्नियाँ (७ धात्वग्नियाँ+५ महाभूताग्नियाँ+१ जठराग्नि), सप्तधातुएँ सम अवस्थामें हों, मल-मूत्रका विसर्जन निर्बाधरूपसे हो रहा हो, आत्मा, इन्द्रिय एवं मन प्रसन्न हो।

दूसरे शब्दोंमें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिसे व्यक्तिको स्वस्थ होना चाहिये।

रोग-आरोग्य—परिभाषा एवं कारण—आयुर्वेदमें दोषों (शारीरिक वात, पित्त एवं कफ तथा मानसिक रज एवं तम)-की साम्यावस्थाको आरोग्य एवं विषमावस्थाको रोग कहा गया है। यथा—

'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता।'

(अ०हृ०सू० १। २०)

दोष-वैषम्यके आयुर्वेदमें त्रिविध कारण बताये गये हैं—असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध एवं परिणाम। इन त्रिविध कारणोंसे, दोषवैषम्य हो जानेसे रोगकी उत्पत्ति होती है। आयुर्वेदमें केवल पाञ्चभौतिक शरीरके रोगोंको ही रोग नहीं कहा जाता, अपितु शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्माको होनेवाले दुःखोंको भी रोग कहते हैं।

'तद्दुःखसंयोगा व्याधय उच्यन्ते'

(सु०सू० १। २३)

'सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।'

(च०सू० ९। ४)

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोगसे तात्पर्य है, ज्ञानेन्द्रियोंका अपने विषयोंसे अतियोग, हीनयोग एवं मिथ्यायोग। प्रज्ञापराधसे अर्थ है बुद्धि (धी, धृति, स्मृति)-के विभ्रमसे मनसा-वाचा-कर्मणा अहित विहार। परिणामसे तात्पर्य है—ऋतुओंका अतियोग, हीनयोग एवं मिथ्यायोग।

रोगाधिष्ठान एवं व्याधि-भेद—आयुर्वेदमें व्याधिके अधिष्ठान शरीर एवं मन माने गये हैं। आत्माको निर्विकार कहा गया है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक त्रिविध दु:ख (व्याधि) कहे गये हैं।

आयुर्वेदमें क्षुधा, पिपासा, जरा, मृत्यु आदिको भी रोग कहा गया है। व्याधि एवं चिकित्साका वास्तविक क्षेत्र पाञ्चभौतिक शरीर (मनसहित) एवं आत्माका समुदायरूप चिकित्स्य पुरुष माना गया है।

पञ्चमहाभूतशरीरिसमवाय: पुरुष: इति, स एव कर्म पुरुष: चिकित्साधिकृत:। (सु०शा०)

ऐसा इसलिये माना गया क्योंकि आत्मा निर्विकार है एवं शरीर तथा मन जब आत्मासे रहित होते हैं तो उनमें व्याधि उत्पत्ति नहीं होती है या उनकी चिकित्सा नहीं की जाती है जैसा कि मृत शरीर।

रोग-निदान—त्रिविध कारणों (आयतनों)-से उत्पन्न व्याधियोंकी चिकित्साके पूर्व सर्वप्रथम रोग-निदानको प्रमुखता दी गयी है। यथा—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
तत: कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥

(च०सू० २०।२०)

रोग-निदान-हेतु रोग-रोगी-परीक्षाका विस्तारसे उल्लेख किया गया है। रोग-परीक्षा-हेतु पञ्चनिदान—(१) निदान (रोग-कारण Actiology), (२) पूर्वरूप (व्याधि-उत्पत्तिपूर्व उत्पन्न लक्षण Prodromal symptoms), (३) रूप (व्याधिलक्षण Signs symptoms), (४) उपशय (Therapeutic test) एवं (५) सम्प्राप्ति (व्याधि-उत्पत्ति-प्रक्रिया Pathogenesis)-का वर्णन मिलता है। रोगी-परीक्षाके लिये त्रिविध (दर्शन, स्पर्शन एवं प्रश्न), पञ्चविध (पञ्चज्ञानेन्द्रिय-परीक्षा), षड्विध परीक्षा (पञ्चज्ञानेन्द्रिय+प्रश्न) तथा अष्टविध परीक्षा (नाडी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श, दृक्, आकृति)-का उल्लेख क्रमश: चरक, सुश्रुत एवं योगरत्नाकरने किया है। चरकने दशविध परीक्षा—(१) प्रकृति (Constitution), (२) विकृति (Pathology), (३) सार (Tissuequality), (४) संहनन (Compactness of body), (५) प्रमाण (Proportionate Relation of Body parts), (६) सात्म्य (Homologation), (७) सत्त्व (Psyche Nature), (८) आहार-शक्ति (Power of intake of food & Digestion), (९) व्यायाम-शक्ति (Body Power) एवं (१०) वय (Age)-का भी उल्लेख किया है।

चिकित्सा—आयुर्वेदमें स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा करनेपर विशेष बल दिया गया है। इस हेतु सद्वृत्त, ऋतुचर्या, दिनचर्या आदिका विस्तृत उल्लेख किया गया है।

दोषवैषम्यसे उत्पन्न रोगोंकी निवृत्ति-हेतु चिकित्साका विधान है। श्रेष्ठ चिकित्सा उसीको कहा गया है, जिससे एक रोग शान्त हो जाय, परंतु दूसरे किसी रोगकी उत्पत्ति न हो। यथा—

प्रयोग: शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्ध: शुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥

(च०नि० ८।२३)

दोष-वैषम्यको दूरकर दोष-साम्य स्थापित करना ही चिकित्साका उद्देश्य कहा गया है। इसके लिये सामान्य एवं विशेष सिद्धान्त कहा गया है। सामान्य सिद्धान्तद्वारा घटे हुए दोषोंको बढ़ाकर एवं विशेष सिद्धान्तद्वारा बढ़े हुए दोषोंको घटाकर दोष-साम्य स्थापित किया जाता है।

चिकित्साके लिये त्रिविध विधियाँ—दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय तथा सत्त्वावजयका उल्लेख किया गया है। दैवव्यपाश्रयविधिमें तन्त्र, मन्त्र, मणिधारण, मङ्गलकर्मादिद्वारा; युक्तिव्यपाश्रयविधिमें युक्तिपूर्वक औषध-द्रव्योंद्वारा तथा सत्त्वावजय-चिकित्सामें मनको अहित विषयोंसे हटाकर, उसके बलको बढ़ाकर चिकित्सा की जाती है। युक्तिव्यपाश्रय-चिकित्साके अन्तर्गत संशोधन तथा संशमन-चिकित्सा आती है। संशोधन-चिकित्सामें शरीरमें बढ़े हुए दोषोंको बाहर निकाला जाता है। इसके अन्तर्गत पञ्चकर्म—वमन, विरेचन, वस्ति (आस्थापन एवं अनुवासन), रक्तमोक्षण तथा नस्यकर्म आते हैं। संशमन-चिकित्सामें बढ़े हुए दोषोंको शरीरके अंदर ही नष्ट किया जाता है। शस्त्रसाध्य रोगोंके लिये अष्टविध शस्त्रकर्म—(१) छेदन (Excision), (२) भेदन (Incision & Draingee), (३) ऐषण (Probing), (४) वेधन (Puncturing), (५) लेखन (Scrapping), (६) आहरण (Extraction), (७) विस्रावण (Drainge) एवं (८) सीवन (Suturing)-

का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त दो विशिष्ट चिकित्सा-विधियाँ रसायन एवं वाजीकरण कही गयी हैं। रसायनद्वारा आयु, मेधा, बल, व्याधिक्षमत्व उत्पन्न किया जाता है एवं वाजीकरणद्वारा शुक्र तथा व्यवाय-सम्बन्धी दोषोंको दूरकर संतान-प्राप्ति करायी जाती है।

अन्य चिकित्सा-प्रणालियोंके विपरीत आयुर्वेदमें मृत्युको भी व्याधि कहा गया है। साथ ही जीवन-मरणके चक्रसे मुक्तिका वर्णन भी किया गया है।

चरकने उपधाको दु:ख (रोग) और दु:खके आश्रयभूत शरीरकी उत्पत्तिका मूल कहा है। सभी प्रकारकी उपधाओंका त्याग सम्पूर्ण दु:खोंका नाशक माना है। वस्तुतः रजस् एवं तमस् गुणका मन एवं आत्मासे सम्बन्ध रखना ही उपधा है। इस रजस् (राग) और तमस् (द्वेष)-के कारण ही दु:ख और पुनर्जन्म होता है। यदि इनसे निवृत्ति मिल जाय तो सभी दु:ख दूर होकर जीवन-मरणके चक्रसे मुक्ति मिल सकती है, जिसे मोक्ष कहते हैं। आयुर्वेदमें मोक्ष-प्राप्तिके साधनोंका भी उल्लेख किया गया है।

चरकने उपधारहित चिकित्साको नैष्ठिकी चिकित्सा कहा है। दूसरे शब्दोंमें नैष्ठिकी चिकित्साद्वारा रज एवं तम दोषोंपर विजय पाकर दु:खों (रोगों)-से आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव है।

उपसंहार—आयुर्वेद प्राचीनतम एवं दैवीय चिकित्सा-शास्त्र है। इसे अथर्ववेद या ऋग्वेदका उपवेद या पञ्चम वेद अथवा पुण्यतम वेद कहा गया है। यह चिकित्साशास्त्रके साथ-साथ दर्शनशास्त्र भी है। इसमें आयुसे सम्बन्धित समस्त ज्ञान होनेके कारण इसे आयुर्वेद—जीवनका विज्ञान (Science of Life) कहना अधिक युक्तिसंगत है। यह शाश्वत (अनादि एवं अनन्त) विज्ञान है। इसके द्वारा इहलौकिक एवं पारलौकिक दु:खोंकी निवृत्ति तथा समस्त प्राणियोंका कल्याण सम्भव है। अतः इसका आदर करना समस्त व्यक्तियोंका कर्तव्य है—

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः। (अष्टाङ्गहृदय सू० १।२)

आयुर्वेदकी वेदमूलकता

(डॉ०श्रीज्योतिर्मित्रजी, राष्ट्रिय आचार्य, भू०पू०प्रो० एवं अध्यक्ष चि० विज्ञान सं०, का०हि०वि० विद्यालय)

भारतीय परम्पराके अनुसार वेद ज्ञान-विज्ञानके भण्डार हैं और विश्वमें इनसे प्राचीन कोई साहित्य नहीं है। यह आयुर्वेद-विज्ञान, जो कि अनादिकालसे चलता चला आ रहा है[1] वेदका ही उपवेद[2] या उपाङ्ग है।

चरक एवं सुश्रुतकी संहिताएँ आयुर्वेदके आकरग्रन्थके रूपमें समावृत हैं। यहाँ आयुर्वेदीय संहिताओंमें उपन्यस्त वैदिक विचारोंके स्रोतोंको अन्वेषित कर विद्वज्जगत्के समक्ष प्रस्तुत करनेका प्रयास किया जा रहा है—

मूल स्रोत-अवगाहनसे पूर्व यह आवश्यक है कि हम वैदिक संहिताओंका सामान्य परिचय पा लें। वैदिक वाङ्मयके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदाङ्ग-साहित्यकी गणना है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद—ये चारों चार संहिताओंके रूपमें उपन्यस्त हैं। वेदचतुष्टयीके रूपमें इनकी गणना है। ये संहिताएँ अनेक शाखाओंसे युक्त होनेके कारण विपुल थीं, पर आज वे सभी उपलब्ध नहीं हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि[3] के अनुसार ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १००, सामवेदकी १००० एवं अथर्ववेदकी

१. (अ) सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च। (च० सू० ३०।२७)
(आ) सुश्रुत, सूत्र १।६

२. चरणव्यूह (३६, प्रस्थानभेद ४) एवं महाभारत (सभापर्व ११।३३ पर व्याख्याकार श्रीनीलकण्ठजीके अनुसार) आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद मानते हैं। अथर्व-परिशिष्ट (चरणव्यूह ४९)-में 'ब्रह्मवेदस्यायुर्वेदोपवेदः' इस प्रकार कहकर आयुर्वेदकी गणना अथर्ववेदके उपवेदरूपमें है। चरक (तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। चरक सूत्र ३०।२१) एवं उत्तरकालीन आयुर्वेदके ग्रन्थ (अष्टाङ्गहृदय, सूत्र० ८।९)-में आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपाङ्ग माना गया है। काश्यपसंहिता (विमान १, ताड़पत्रपर लिखित पुस्तकके अन्तर्गत ७६ वाँ पत्र) एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण (१।१६।९-१०)-में तो आयुर्वेदको एक पञ्चम वेद ही मान लिया गया है।

३. चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाथर्वणो वेदः।
—महाभाष्य

९ शाखाएँ थीं। अथर्वपरिशिष्टके चरणव्यूहके अनुसार ऋग्वेदकी शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन एवं माण्डूकायन—ये पाँच प्रमुख शाखाएँ हैं, जिनमें सम्प्रति एकमात्र 'शाकल शाखा' उपलब्ध एवं प्रचलित है। यजुर्वेद शुक्ल एवं कृष्ण इन दो भागोंमें विभक्त है। शुक्ल यजुर्वेदकी प्रधान शाखाएँ माध्यन्दिन तथा काण्व हैं। काण्वशाखा प्राय: दक्षिणमें तथा माध्यन्दिनशाखा उत्तर भारतमें अधिक प्रचलित है। माध्यन्दिन-संहिता ही 'वाजसनेयी संहिता' कहलाती है। चरणव्यूहके अनुसार कृष्ण यजुर्वेदकी ८५ शाखाएँ थीं, जिनमें केवल आज तैत्तिरीय, मैत्रायणीय, कठ एवं कपिष्ठल-कठ—ये चार शाखाएँ उपलब्ध हैं और इसीके अनुसार चरक शाखाके ही अन्तर्गत कठ [प्राच्य] एवं कपिष्ठल-कठका समावेश है। अथर्ववेदकी नामभेदसे पिप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श तथा चारणवैद्य—ये नौ शाखाएँ हैं। सम्प्रति शौनक शाखाका प्रचार है। अथर्ववेदकी अन्तिम शाखा चारणवैद्य आयुर्वेदसे अधिक सम्बद्ध है, पर यह उपलब्ध नहीं है। अथर्ववेदकी शौनक शाखामें २० काण्ड हैं।

अथर्ववेदके विविध नाम—विभिन्न ग्रन्थोंमें अथर्ववेदके ९ नाम उपलब्ध होते हैं। यथा—(१) अथर्ववेद, (२) अथर्वाङ्गिरसवेद, (३) आङ्गिरसवेद, (४) ब्रह्मवेद, (५) भृग्वङ्गिरोवेद, (६) छन्दोवेद, (७) महीवेद, (८) क्षत्रवेद तथा (९) भैषज्यवेद।

अथर्ववेदका विषय-विवेचन—अथर्ववेदके २० काण्डोंके विषयोंका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—**पहले काण्डमें** विविध रोगोंकी निवृत्ति, पाशमोचन, रक्षोनाशन, गर्भप्राप्ति और दीर्घायुकी प्राप्ति आदिके मन्त्र हैं। **दूसरे काण्डमें** विविध रोगनाशन, शत्रुनाशन, कृमिनाशन, दीर्घायुष्य आदिके मन्त्र हैं। **तीसरे काण्डमें** शत्रु-सेना-सम्मोहन, राजाका निर्वाचन, शाला-निर्माण, कृषि, पशुपालन, रोगनाशन आदिका वर्णन है। **चौथे काण्डमें** ब्रह्मविद्या, विषनाशन, राज्याभिषेक, वृष्टि, पापमोचन, ब्रह्मोदन आदिका वर्णन है। **पाँचवें काण्डमें** ब्रह्मविद्या, लाक्षा, शत्रुनाशन, विषनाशन, रोगनाशन, ब्रह्मगवी, कृत्या-परिहार आदिका वर्णन है। **छठे काण्डमें** शत्रुनाशन, रोगनाशन, दु:स्वप्ननाशन, बल-प्राप्ति, अन्न-समृद्धि आदिका वर्णन है। **सातवें काण्डमें** आत्मा, अंजन, पूर्णिमा, अमावास्या, शत्रुनाशन, पापनाशन आदिका वर्णन है। **आठवें काण्डमें** दीर्घायु-प्राप्ति, शत्रुनाशन, प्रतिसर-मणि और विराट् आदिका वर्णन है। **नवें काण्डमें** मधुविद्या, काम, शाला, पञ्चोदन, अतिथि-सत्कार, गोमहिमा, यक्ष-नाशन, आत्मा आदिका वर्णन है। **दसवें काण्डमें** कृत्यानिवारण, ब्रह्मविद्या, वरण-मणि, सर्पविषनाशन, विजय-प्राप्ति, मणिबन्धन, ज्येष्ठब्रह्म आदिका वर्णन है। **ग्यारहवें काण्डमें** ब्रह्मोदन, रुद्र, प्राण, ब्रह्मचर्य, पाप-मोचन, ब्रह्म और शत्रुनाशन आदिका वर्णन है। **बारहवें काण्डमें** भूमिसूक्त, ब्रह्मगवी, स्वर्गोदन, वशा गौ आदिका वर्णन है। **तेरहवें काण्डमें** अध्यात्मका वर्णन है। **चौदहवें काण्डमें** विवाह-संस्कारका वर्णन है। **पंद्रहवें काण्डमें** व्रात्य तथा ब्रह्मका वर्णन है। **सोलहवें काण्डमें** दु:खमोचनका वर्णन है। **सतरहवें काण्डमें** अभ्युदयार्थ प्रार्थना है। **अठारहवें काण्डमें** पितृमेधका वर्णन है। **उन्नीसवें काण्डमें** यज्ञ, पुरुष, सूक्त, नक्षत्र, विविध मणियाँ, छन्द, अथर्ववेदका विभाजन, काम-काल आदिका वर्णन है और **बीसवें काण्डमें** सोमयागका वर्णन है।

कौशिक सूत्रके अनुसार वर्ण्य विषय—कौशिक गृह्यसूत्रको ही कौशिक सूत्र भी कहा जाता है। अथर्ववेदके वर्ण्य विषयोंके ज्ञानके लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गृह्यसूत्र है। इसमें १६ संस्कारोंके अतिरिक्त अथर्ववेदके सभी सूक्तोंका विनियोग वर्णित है। तथा यातुविद्या अर्थात् विभिन्न मन्त्रोंद्वारा जादूके प्रयोगकी विस्तृत प्रक्रिया भी दी गयी है।

आयुर्वेदके अष्टाङ्ग-विभाग और अथर्ववेद

चरक आदि संहिता ग्रन्थोंमें आयुर्वेदके अष्टाङ्ग-विभागानुसार वर्णन देखनेको मिलते हैं, परंतु इसके बहुत पूर्व वेदोंमें तीन प्रकारके कष्टों या दु:खोंके उपचारके लिये तीन ही प्रकारके प्रतिकार या उपाय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) किये जाते थे। अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका सर्वप्रथम नामकरण किसने किया, यह कहना दुष्कर है। प्राक्कालमें या संहिताकालमें अष्टाङ्ग-आयुर्वेदके पृथक्-पृथक् अङ्गके विशेषज्ञोंका बाहुल्य था। जैसे महर्षि काश्यप कौमारभृत्य और अगदतन्त्रके विशिष्ट आचार्य थे, इसी प्रकार शल्यतन्त्रके भासुकि, कायचिकित्साके भारद्वाज और गार्ग्य, गालव, जनक, निमि आदि शालाक्य-तन्त्रके ज्ञाता थे। ऋक्, यजु

और सामवेदके अतिरिक्त अथर्ववेदमें अष्टाङ्ग-आयुर्वेदकी सामग्री प्रचुररूपमें पायी जाती है। अथर्ववेदके अभिचार-मन्त्रोंमें आगत सामग्रीका विशद वर्णन छान्दोग्योपनिषद् (७।१।२)-के अनुसार भूतविद्याप्रसंगमें मिलता है। अथर्ववेदमें अष्टाङ्गके विषय यत्र-तत्र बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सुश्रुतसंहिताके अनुसार निम्न पंक्तियोंमें आयुर्वेदके आठ अङ्गोंका स्पष्टीकरण किया गया है, जैसे—

(१) शल्य—विभिन्न प्रकारके तृण, प्रस्तर, अस्थि आदि, दूषित व्रण, अन्तःशल्य, गर्भशल्य आदिके निष्कासनहेतु यन्त्र-शस्त्र, क्षार और अग्निके प्रयोग एवं व्रणके विनिश्चयके लिये जो कर्म किये जाते हैं, वे शल्यकर्म हैं।

(२) शालाक्य—ऊर्ध्वजत्रु रोग—सिर, नेत्र, नासा, कर्ण आदिमें होनेवाले रोगोंकी शान्तिके लिये तथा नेत्र-रोगमें शलाकाद्वारा किये जानेवाले कर्मको 'शालाक्य' कहते हैं।

(३) काय-चिकित्सा—ज्वर, अपस्मार, कुष्ठ आदि रोगोंकी शान्तिके लिये किये जानेवाले उपायको 'काय-चिकित्सा' के नामसे पुकारते हैं।

(४) भूत-विद्या—देव-गन्धर्व आदिके आवेशको शान्त करनेके लिये किये जानेवाले कर्मको 'भूत-विद्या' कहते हैं।

(५) कौमारभृत्य—बालकोंके भरण-पोषण, धात्रीकी परीक्षा आदिका विधान जिसमें वर्णित हो, उसे 'कौमारभृत्य' कहते हैं।

(६) अगद-तन्त्र—सर्प, कीट आदिके दंशसे उत्पन्न विष तथा नानाविध स्थावर-विषोंकी शान्तिहेतु जिसमें उपाय बताये गये हों, वह 'अगद-तन्त्र' है।

(७) रसायन—वयःस्थापन, आयुष्य, बल और ओजकी वृद्धिके लिये तथा व्याधिसमुदायको दूर करने-हेतु जिसमें उपाय बताया गया हो वह 'रसायन' है।

(८) वाजीकरण—क्षीण-वीर्य-दोषको दूर करने, शुक्रसंशोधन, वृद्धावस्था दूर करने, अश्वसदृश पौरुष-शक्ति उत्पन्न करने एवं व्यवायमें अतिहर्षके निमित्तका जिसमें वर्णन किया गया हो वह 'वाजीकरण' के अङ्गमें परिगणित है।

अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका विवेचनात्मक पर्यालोचन

(१) अथर्ववेद एवं अथर्वसाहित्यमें शल्यतन्त्र—यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि प्राचीन शल्यविशारदोंकी तुलनामें अर्वाचीन शल्यशास्त्री अभी बहुत कुछ पीछे हैं। साधारण व्रणकी चिकित्सा तथा अति दुष्कर शल्य-कर्ममें प्राचीन आथर्वण वैद्य या शल्यशास्त्री आश्चर्यकारक कर्म करते थे। अथर्ववेद[1]में शरीरसे पृथक् हुई अस्थियोंको रथके विभिन्न अङ्गोंके सदृश जोड़कर रथकी ही तरह मनुष्यको स्वस्थ बना देनेवाला आदेश दिया गया है। मूत्राघात[2] रोगमें शर तथा शलाका आदिद्वारा मूत्रको निकालने या भेदन करनेका आदेश दिया गया है। दुःख[3]-प्रसव तथा विकृत-प्रसवके लिये योनि-भेदन करनेका वर्णन मिलता है। कष्टसाध्य[4] लोहिनी और कृष्णा नामक अपचीको किसी विशेष शरसे भेदन करनेके लिये उल्लेख प्राप्त होता है। अपची[5]को पंकानेके लिये लवणका उपचार आदि शल्य-प्रक्रियाओंका वर्णन भी किया गया है। ऋग्वेद[6]में अश्विनीकुमारोंद्वारा नाना चमत्काररूप भैषज्य विषय देखे जाते हैं, जैसे—दासोंद्वारा अग्नि और जलमें फेंकनेपर, पुनः सिर एवं वक्षःस्थलके टुकड़े-टुकड़े करनेपर भी जीवित दीर्घतमा ऋषिको अश्विनीकुमारोंने स्वस्थ कर दिया। कौशिक सूत्रमें अथर्ववेदीय मन्त्रोंके विनियोगके प्रदर्शनमें अथर्ववेदके विभिन्न मन्त्रोंकी महिमाको दर्शाते हुए चौथे अध्यायमें '**अथ भेषजानि**' से प्रारम्भ करके रोगोंके प्रतिकारके

१. यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान । ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत्परुषा परुः ॥ (अथर्व० ४।१२।७)
२. विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं हिष्टे अस्तु बालिति॥ (अथर्व० १।३।१)
३. वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः। सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ॥ (अथर्व० १।११।१)
४. अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम । मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम्॥ (अथर्व० ७।७४।१)
५. आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः। सेहोररसतरा लवणाद्विक्लेदीयसीः॥ (अथर्व० ७।७६।१)
६. उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्। मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम्॥ (ऋ० १।१५८।४

लिये विभिन्न मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित करके जल, औषधि आदि पिलाना तथा मार्जन, हवन आदि अनेक उपाय दिये हैं।

(२) **शालाक्य-तन्त्र**—इस तन्त्रमें ऊर्ध्वजत्रुकी व्याधियाँ जैसे—सिर, नेत्र, नासिका, गला आदिके रोगोंका वर्णन आता है। अथर्ववेदमें सम्पूर्ण सिरके रोगों तथा कानके रोगोंको दूर करनेका आदेश मिलता है। इन मन्त्रोंमें शीर्षक्ति, शीर्षामय और शीर्षण्य—सिरके इन तीन रोगोंका नामकरण मिलता है, जो पृथक्-पृथक् व्याधियाँ मालूम होती हैं। कुष्ठ नामक औषधिको शीर्षामय तथा नेत्ररोगनाशक कहा गया है। नेत्रके रोगोंके सम्बन्धमें अथर्ववेदमें विभिन्न साधनोंपर चिकित्साका वर्णन है, कहीं जल-चिकित्सा, कहीं आजनमणि तो कहीं जङ्गिडमणिके प्रयोगसे तथा कहीं कुष्ठ औषधि तो कहीं दिव्य सुवर्णके उपचार मिलते हैं।

(३) **काय-चिकित्सा**—आयुर्वेदके अष्टाङ्गोंमें काय-चिकित्साका वर्णन अथर्ववेदमें प्रचुररूपेण देखनेको मिलता है तथा इसके विनियोग कौशिक सूत्रमें स्थान-स्थानपर ओषधिके रूपमें एवं उपचाररूपमें देखे जाते हैं। अथर्ववेदमें लगभग ज्ञात और अज्ञात तथा छोटी-बड़ी सौ व्याधियोंका वर्णन मिलता है। अथर्ववेदके नवम काण्डके ८वें सूक्तमें व्याधियोंके नामकरणकी एक सूची मिलती है, जिसके प्रथम चार मन्त्रोंमें सिरके रोगोंका वर्णन है। ५ से लेकर ९ तकके मन्त्रोंमें प्रचलित व्याधियोंका वर्णन किया गया है। हृदय और उदरकी व्याधियोंका वर्णन दससे लेकर १४ मन्त्रोंमें स्पष्ट वर्णित है। १५ से लेकर १७ तकके मन्त्रमें पार्श्वास्थि तथा गुदास्थिका वर्णन है। १८ से २१ तकके मन्त्रोंमें विशल्यक, विद्रधि आदि रोगोंके नामके साथ पाद, जानु एवं श्रोणिका वर्णन मिलता है। अथर्ववेदमें कुछ ऐसे रोगोंका वर्णन और चिकित्सा भी मिलती है, जो नीरोग होनेमें कालापेक्षी है तथा कुछ ऐसी व्याधियोंका उल्लेख मिलता है, जो अल्पकालापेक्षी तथा अस्पष्ट हैं।

विशिष्ट एवं कालापेक्षी व्याधियोंके नाम—तक्मन्, आस्राव, मूत्रावरोध, नाडीव्रण, जलोदर, शीर्षक्ति, कास, किलास, क्षेत्रियरोग, जायान्य (क्षय), अपचित, श्लेष्म, बलास, हरीमा और हृदयामय आदि।

क्षुद्र एवं अल्पकालिक व्याधियाँ—पलित, पापयक्ष्मा, अज्ञातयक्ष्मा, अक्षत, विसर, पृष्ठयामय, आश्रीक, विश्रीक, विशल्यक, विद्रधि, क्षिप्त, हृद्योत, जलजि, शूल, पामा, पक्षाघात, अरिष्ठ, तृष्णा, अस्थिभङ्ग, जम्भ, संहनु, अङ्गभेद, अङ्गज्वर, लोहित, शमोलुनकेश, रुधिरास्राव, काहाबाह, कर्णशूल, विषूचिका तथा अप्वा आदि।

अथर्ववेदीय साहित्यमें व्याधियोंके वर्गीकरण या काय-चिकित्सात्मक निदानादि दृष्टिकोणसे विभाग नहीं देखे जाते, जैसा कि चरक, सुश्रुत आदि संहिताओंमें वर्गीकरण देखे जाते हैं। निज और आगन्तुक व्याधियोंका पृथक्करण सूत्ररूपेण अथर्ववेदमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, परंतु अथर्ववेदके स्त्रीकर्माणि प्रकरण तथा कौशिक सूत्रके कण्डिका ३२ के २८ से २९ सूत्रमें मानस-रोगोंका दिग्दर्शन अत्यन्त स्पष्ट है।

४-**भूत-विद्या**—अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका एक अङ्ग भूत-विद्या भी है, जिसमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, ग्रह आदिके आवेशसे दूषित शरीर एवं मनकी शान्तिके लिये कुछ कर्म जैसे—दान, पूजा आदि किये जाते हैं, यह भूत-विद्या है। इसका आदि स्रोत अथर्ववेद है। चरक, सुश्रुत तथा काश्यप आदि संहिता-ग्रन्थोंमें पूतना या स्कन्द आदि ग्रहोंको बालरोगका कारण माना गया है। आयुर्वेदने उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक एवं शारीरिक व्याधियोंके कारणोंमें भूत, प्रेत, पिशाच तथा गन्धर्वको भी एक कारण माना है।

(५) **कौमारभृत्य**—आयुर्वेदके अष्टाङ्ग-विभागोंमें कौमारभृत्य भी एक अङ्ग है। गर्भाधान[3], गर्भकी पुष्टि, गर्भकी[4] रक्षा, सुखप्रसव[5] एवं जन्मकालके अमाङ्गलिक क्षणोंमें हानिकर प्रभावको दूर करनेके लिये अनेक

१. शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ (अथर्व० ९।८।१)
२. जङ्गिडमणि (अथर्व० १९।३५।३), कुष्ठ औषधि (अथर्व० ५।४।१०), दिव्य सुपर्ण ओषधि (अथर्व० ५।४।२)
३. (अथर्व० ५।२५।१—३) (अथर्व० ६।८१।१—३), ४. (अथर्व० ६।१७।१—४), ५. (अथर्व० १।११।१—६)
६. (अथर्व० ६।११०।१—३)

मन्त्र अथर्ववेदमें मिलते हैं। अथर्ववेदमें कुछ ऐसे भी मन्त्र हैं जिनमें औषधि, मन्त्र एवं रक्षायन्त्र (ताबीज, कवच)-का प्रयोग निर्दिष्ट है[१] और सुखप्रसवके[२] लिये भी मन्त्रोंका बाहुल्य वहाँ उपलब्ध होता है।

कौशिक सूत्रकी[३] ३५वीं कण्डिकामें पुंसवन-संस्कारके लिये उपाय बताये गये हैं।

(६) अगद-तन्त्र—अथर्ववेदमें अगद-तन्त्रसे सम्बन्धित विषय जैसे—स्थावर और जङ्गम-विष, सर्प, वृश्चिक, विषाक्त कीटाणु तथा विषाक्त बाण इत्यादिके विषयमें अनेक मन्त्र[४] मिलते हैं। ऋग्वेदमें[५] भी सर्पविष, वृश्चिकविष तथा विषाक्त कीटोंसे सम्बन्धित मन्त्र पाये जाते हैं। अथर्ववेदके एक मन्त्रके[६] अनुसार सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, वनस्पति तथा कन्दमें यदि विष है तो उसे नष्ट करने या दूर करनेका आदेश दिया गया है। अथर्ववेदमें अनेक विषाक्त सर्पोंके नाम उपलब्ध होते हैं। विषको नष्ट करनेके लिये कुछ वनस्पतियोंसे[७] सम्बन्धित मन्त्र भी मिलते हैं। अथर्ववेदके चौथे काण्डमें विषाक्त[८] घातक विषको नष्ट करनेके लिये स्पष्ट वर्णन मिलता है। अथर्ववेदके छठें[९] काण्डमें सर्पविषकी चिकित्साके लिये जलको महत्त्वपूर्ण बताया गया है। चरकमें भी चिकित्सास्थान (२३, २५)-में जलसे परिषेचन और अवगाहन बताया गया है। दसवें[१०] काण्ड्में पैत्व (श्वेत आक), तौदी और धृताची वनस्पतिका सर्पविषहरके लिये उल्लेख है।

कौशिक सूत्रमें[११] सब प्रकारके विषस्तम्भके लिये उपाय दिये गये हैं। वृश्चिकविषको नष्ट करनेका भी उल्लेख है। जैसे—अथर्ववेदके ७वें काण्डके ५६वें सूक्त (१—८)- का जप करते हुए ज्येष्ठीमधु (जेठी मधु)-को पीसकर तथा निर्दिष्ट मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर रोगीको पान कराना चाहिये और क्षेत्रकी बल्मीक मिट्टीको पशु-चर्ममें बाँधकर कवचकी तरह धारण करना चाहिये।[१२]

(७) रसायन-तन्त्र—जो औषधि रसादि धातुओंमें क्षीणता न आने दे तथा व्याधियोंको विनष्ट कर स्वस्थ रखे, वही रसायन है। अथर्ववेदमें ऐसे अनेक सूक्त[१३] हैं, जिनमें जल तथा इसके गुणोंकी प्रशंसा की गयी है तथा जलको वृद्धावस्था और व्याधि दूर करने एवं अनश्वरता पैदा करनेवाला द्रव्य बताया गया है। कुछ मन्त्रोंमें[१४] बताया गया है कि जल विभिन्न प्रकारके रोगोंका औषध है तथा यह शारीरिक दोषोंको दूर करके शरीर एवं त्वचाको सुस्थिर तथा स्वस्थ बनाता है। अथर्ववेद जलको रस मानता है तथा जलसे अक्षय बल[१५] और प्राणकी याचना करता है।

(८) वाजीकरण—अथर्ववेदमें पुरुषत्वके विकास या वृद्धिके लिये अनेक मन्त्रोंका उल्लेख मिलता है। कुछ मन्त्रोंमें अश्व, हस्ति, गर्दभ और वृषभ-सदृश पुरुषत्व[१६] शक्तिके अर्जनके लिये प्रार्थना की गयी है।

उपसंहार—वेदोंमें विशेषकर अथर्ववेदमें आयुर्वेदके विषय यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहनेके कारण अष्टाङ्ग-आयुर्वेदके विभागरूपेण वर्गीकरणका अभाव प्ररिलक्षित होता है, पर जो भी सामग्री सूत्ररूपमें उपलब्ध है, उसीका उपबृंहण होता चला गया। चरक आदि संहिता-ग्रन्थोंमें इसका परिष्कृत रूप दिखलायी देता है। अथर्ववेदके सूत्र-ग्रन्थ कौशिक सूत्रमें अथर्ववेदीय भैषज्यसामग्रीका विनियोग स्पष्टरूपसे प्राप्त होता है। इस प्रकार आयुर्वेदकी वेदमूलकता सर्वथा स्पष्ट है।

---

१. (अथर्व० १।८१।१—३), २. (अथर्व० १।११।१—६), ३. कौ०सू० ३५।५
४. अथर्व० ४।६।१—८, ४।७।१—७, ७।८८।१,
५. ऋग्वेद ७।५०, १।१९१, ६. अथर्व० १०।४।२२, ७. अथर्व० २।२७।२,
८. अथर्व० ४।६।५, ९. अथर्व० ६।१२।३, १०. अथर्व० १०।४।५—७, १०।३।२४,
११. कौ०सू० २९।२।८, अथर्व० ५।१३।२ १२. कौ०सू० ३२।५—७ (केशव टीका),
१३. अथर्व० ३।७।५, ६।२४।२,
१४. अथर्व० ३।७।५—७, ४।३३, ६।२२—२४,
१५. अथर्व० ३।१३।५, १६. अथर्व० ४।४।८

आयुर्वेदके मूल सिद्धान्त एवं उनकी उपादेयता

(डॉ० श्रीलक्ष्मीधरजी द्विवेदी, पूर्वविभागाध्यक्ष, आयुर्वेद संहिता, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

किसी भी शास्त्रके कुछ मूलभूत सिद्धान्त होते हैं, जिनके आधारपर ही उस शास्त्र-विशेषका अस्तित्व बना रहता है। शास्त्रके मूलभूत सिद्धान्त यदि देश, काल एवं प्रकृतिके अपरिहार्य नियमोंकी निकषशिला (कसौटी)-पर अच्छी प्रकारसे जाँच-परखकर स्थिर किये गये हैं तो वह शास्त्र-विशेष निश्चय ही अपने सुदृढ़ सिद्धान्तोंके बलपर चिरकालतक अपने स्वरूप तथा उपादेयताको बनाये रखता है।

उपर्युक्त भूमिकाके परिप्रेक्ष्यमें यदि विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद जो कि मानवके समग्र जीवनका एक सर्वाङ्गीण दर्शन एवं विज्ञान है, वह भी अनेक मूलभूत सिद्धान्तोंके आश्रयभूत होकर प्राचीन कालसे अद्यावधिपर्यन्त अक्षुण्णरूपसे मानव-समाजके आरोग्यकी रक्षा करता हुआ तथा अद्यतन चिकित्सा-विज्ञानकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाजनित आविष्कारोंकी चुनौतियोंका मौनभावसे सामना करता हुआ देश, काल, सम्प्रदाय एवं जाति-निरपेक्ष भावसे मानवमात्रके लिये उपादेय बना हुआ है।

वस्तुतः यदि निष्पक्षरूपसे विचार किया जाय तो यह एक निर्विवाद तथ्य है कि आयुर्वेद ही विश्वमें एकमात्र जीवन-विज्ञान है, जो ईसासे कई सहस्राब्दियों पूर्व अपने सर्वाङ्गीण स्वरूपमें विकसित हो चुका था। इस तथ्यको इतिहासविद् भी स्वीकार करते हैं। आखिरकार आयुर्वेदमें वह कौन-सी विशेषता है कि विश्वके अन्य समुन्नत चिकित्सा-विज्ञान; यथा—ग्रीक, रोमन तथा मिस्रदेशीय चिकित्सा-प्रणालियाँ जहाँ इतिहासकी कुक्षिमें समा गयीं, वहीं यह आज भी अत्यन्त प्राचीन कालसे ही दुरतिक्रम-कालके विकराल आघातोंको सहता हुआ विश्व-क्षितिजपर अपने जाज्वल्यमान प्रकाशको बिखेर रहा है? अनवरत अभिनव अनुसन्धानका दम्भ करनेवाला पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञान भी प्रकृतिके महान् रहस्यकी गुत्थियोंको सुलझानेमें प्रकारान्तरसे आयुर्वेदका ही अनुसरण कर रहा है। उदाहरणार्थ कुछेक तथ्योंका इस संदर्भमें उल्लेख अपेक्षित है, यथा—कुछ दशाब्दिपूर्व पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञान स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोगोपचारमें मन तथा शरीरके अविच्छिन्न सम्बन्धकी महत्ताको स्वीकार नहीं करता था, किंतु सम्प्रति इसमें मनोदैहिक चिकित्सा (Psycosomatic therapy) नामक स्वतन्त्र शाखाका समावेश हो चुका है। आयुर्वेदके मनीषी आचार्योंने इस तथ्यको हजारों वर्ष पहले ही जान लिया था और निम्न—

सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

(च०सू० १।४६)

—आप्त-वाक्यमें प्रतिपादित किया गया है कि मन, आत्मा और शरीर—ये ही जीवनके तीन पाये हैं और इन्हींके संयोगपर समग्र प्राणिजगत् आश्रित है तथा इन्हींमें सभी कुछ प्रतिष्ठित है। अभी भी पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञान आत्मतत्त्वको नहीं स्वीकार करता, किंतु कुछ कालके पश्चात् उसे आत्मतत्त्वको भी स्वीकार करना पड़ेगा तभी वह एक समग्र जीवन-विज्ञानके रूपमें प्रतिष्ठापित हो पायेगा।

इसी प्रकार पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञान आयुर्वेदाभिमत आमदोषजनित रोगोंको नहीं जानता था, किंतु अब प्रकारान्तरसे इस तथ्यको भी 'Autogenous diseases'-के रूपमें स्वीकार करने लगा है तथा इसका एक स्वतन्त्र शाखाके रूपमें विकास कर रहा है।

आयुर्वेदके पुरुष-विचय-सिद्धान्तको भी पाश्चात्त्य जगत् अब प्रकारान्तरसे 'पर्यावरण और पारिस्थितिकी' (Ecology and environment)-के रूपमें प्राणिजगत्के स्वास्थ्यके लिये एक महत्त्वपूर्ण तथ्य स्वीकार करने लगा है। इन दिनों इस तथ्यपर अत्यधिक ध्यान देते हुए सभी विकसित तथा विकासशील देश इसे एक स्वतन्त्र विभागके रूपमें विकसित करके तदनुरूप

इसके अनुपालनकी यथासम्भव व्यवस्था कर रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आयुर्वेदमें प्रतिपादित अनेक सिद्धान्त अभिनव पाश्चात्त्य विज्ञानवादियोंको भी आकर्षित कर रहे हैं तथा उन्हें प्रकारान्तरसे अपने विज्ञानसम्मत ज्ञानमें समाविष्ट होनेके लिये बाध्य कर रहे हैं।

आयुर्वेदके मूल सिद्धान्त—'मूल सिद्धान्त'—इस संज्ञासे स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार मूलके आधारपर ही सम्पूर्ण वृक्षका कलेवर आश्रित रहता है, उसी प्रकार समग्र आयुर्वेद-वाङ्मय भी इसके मूल सिद्धान्तोंपर ही आश्रित है। सिद्धान्तको परिभाषित करते हुए आचार्य चरकने कहा है कि—

'**सिद्धान्तो नाम स यः परीक्षकैर्बहुविधं परीक्ष्य हेतुभिश्च साधयित्वा स्थाप्यते निर्णयः।**' (च०वि० ८। ३७) अर्थात् जिस तथ्यको अनेक परीक्षकोंके द्वारा अनेकविध परीक्षा करके उसका तर्कसंगत निर्णय स्थापित किया जाता है, वह सिद्धान्त कहा जाता है।

उपर्युक्त सिद्धान्तके लक्षणसे यह सहज ही ज्ञात होता है कि प्राचीन आयुर्वेदज्ञोंने किसी भी सिद्धान्तकी स्थापना यों ही—केवल अपनी कल्पना-शक्तिके आधारपर ही नहीं की है, प्रत्युत किसी तथ्यकी अनेक परीक्षकोंद्वारा अनेक प्रकारकी परीक्षा करके तदनुसार उसके व्यवहार-पक्षका अनेकविध जाँच-परखकी कसौटीपर निरीक्षण करके तर्कसंगत निष्कर्षको निष्पादित किया है। यदि आजकी वैज्ञानिक पद्धतिसे परीक्षणकी प्रक्रियासे स्थापित किसी तथ्यसे प्राचीन आचार्योंके द्वारा स्थापित सिद्धान्तकी तुलना करें तो प्राचीनोंद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही सार्वकालिक, सार्वभौमिक तथा शाश्वतिक सिद्ध होते हैं; क्योंकि वैज्ञानिक परीक्षणोंसे प्रतिपादित सिद्धान्त तर्कसंगत कारण-कार्यहेतुसे घटित नहीं होते, जब कि प्राचीनोंके सिद्धान्त अनेकविध परीक्षणोंके पश्चात् तर्कसंगत कारण-कार्य-हेतुसे भी घटित करके ही प्रतिपादित किये गये हैं। अतः प्राचीनोंके सिद्धान्तमें परिवर्तन या त्रुटिकी कोई सम्भावना नहीं होती। उपर्युक्त तथ्यके आलोकमें विचार करनेसे यह सहज ही स्पष्ट होता है कि आधुनिक वैज्ञानिकोंका आयुर्वेदके सिद्धान्तोंके प्रति अवैज्ञानिकताका आक्षेप निराधार ही है। यद्यपि इस तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता कि प्राचीन कालमें आजकी तरह सर्वसुविधा-सम्पन्न प्रयोगशालाएँ नहीं थीं और न आजके सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओंके अवलोकनार्थ उपकरण, तथापि प्राचीन आयुर्वेदके मनीषियोंने प्रकृतिकी विशाल प्रयोगशालामें अपने विविध युक्ति-कौशल तथा गहन चिन्तनसे जो भी सिद्धान्त स्थापित किये, वे आज भी सार्थक तथा उपादेय हैं।

यों तो आचार्य चरकने चार प्रकारके सिद्धान्तोंका उल्लेख किया है जो कि आयुर्वेद वाङ्मयमें यथावश्यक तथा यथास्थानपर अपनी उपादेयताके निमित्त प्रयुक्त किये गये हैं और ये चार प्रकारके सिद्धान्त हैं—(१) सर्वतन्त्र सिद्धान्त, (२) प्रतितन्त्र सिद्धान्त, (३) अधिकरण सिद्धान्त और (४) अभ्युपगम सिद्धान्त; किंतु विस्तारभयसे यहाँ केवल 'सर्वतन्त्र सिद्धान्त'का ही उल्लेख किया गया है जो कि आयुर्वेदके मूल सिद्धान्तके रूपमें प्रतिष्ठापित है। सर्वतन्त्र सिद्धान्तको परिभाषित करते हुए आचार्य चरकने कहा है—'**तत्र सर्वतन्त्रसिद्धान्तो नाम तस्मिंस्तस्मिन् सर्वस्मिंस्तन्त्रे तत्तत् प्रसिद्धम्**' (च०वि० ८। ३७) अर्थात् जो सिद्धान्त एक शास्त्रमें प्रसिद्ध होते हुए भी सभी शास्त्रोंमें प्रसिद्ध तथा व्यवहृत हो वह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। उदाहरणार्थ—रोगके कारण हैं, रोग हैं, साध्य रोगोंके उपचारके उपाय हैं इत्यादि। कोई भी चिकित्सा-प्रणाली उपर्युक्त तथ्योंको नकार नहीं सकती कि रोगके कारण नहीं हैं, रोग नहीं हैं तथा साध्य रोगोंके उपचारके उपाय नहीं हैं।

यों तो आयुर्वेदके मूल सिद्धान्त बहुसंख्यक हैं, तथापि कुछ सिद्धान्त जो कि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय हैं, उनका विवरण यहाँ प्रतिपादित किया जायगा; जिससे कि पाठकोंको आयुर्वेदके मूल सिद्धान्तोंकी महत्ता तथा उपादेयताका अवबोध हो सके। कुछ सिद्धान्त जो कि आयुर्वेदमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा व्यापक हैं, उनका विवरण निम्न अवतरणोंमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

पञ्चभूत सिद्धान्त—आयुर्वेदके आचार्योंकी मान्यता है कि विश्वके सभी स्थावर-जंगम द्रव्य तथा प्राणी पञ्चभूतों—पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाशसे निर्मित हैं। पञ्चभूत सिद्धान्त सभी भारतीय दर्शनोंके अनुसार एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है जो कि द्रव्योंके विभिन्न गुण, कर्म, स्वभाव एवं अवस्था आदिको देखकर सृष्टि-विकासकी स्वभाव-सिद्ध परम्पराका सतत निरीक्षण कर, भारतके पुराकालीन मनीषियोंद्वारा प्रतिपादित किया गया है।

संसारके विविध पदार्थ चाहे वे चेतन हों अथवा अचेतन—सभी पञ्चभूतोंसे ही निर्मित होते हैं। जगत्के चेतन या अचेतन सभी स्थूल पदार्थों अथवा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रचनाओंका कलेवर पञ्चीकृत (पञ्चभूतोंकी समष्टि) भूतोंका बना होता है, क्योंकि उनमें हम सर्वत्र पञ्चभूतोंके शब्द आदि वैशेषिक एवं गुरु आदि सामान्य गुणोंको विद्यमान पाते हैं। आत्मा-सम्बन्धसे जहाँ हम इन्द्रिय-व्यापार देखते हैं, उसे चेतन पदार्थ तथा जहाँ इन्द्रिय-व्यापार नहीं है, उसे जड़ पदार्थ कहते हैं। इसी तथ्यको इङ्गित करते हुए आचार्य चरकने कहा है—

'सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे तच्चेतनावदचेतनं च। तस्य गुणाः शब्दादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ताः'॥

(च०सू० २६।१०)

सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्॥

(च०सू० १।४८)

जड-चेतनके भेद-प्रतिपादक आधुनिक विज्ञानके समस्त लक्षण आचार्य चरकके उपर्युक्त सेन्द्रिय तथा निरिन्द्रिय पदमें स्वतः समाविष्ट हो जाते हैं।

उदाहरणार्थ घट जड पदार्थ है, इसका निर्माण पृथ्वी (मृत्तिका), जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश—इन सभीके संयोगसे सम्भव है। इसी प्रकार बीजसे अङ्कुरोत्पत्तिकी क्रियामें मिट्टी, जल, ऊष्मा (गरमी) अथवा प्रकाश, प्राणभूत वायु और अवकाशरूप सुषिरता (अत्यन्त सूक्ष्मों—छिद्रोंकी उपस्थिति)-कारक आकाशका कारणरूपमें महत्त्व जन-साधारणसे भी छिपा नहीं है। मानव-गर्भके निर्माण तथा विकासमें भी यही प्रक्रिया देखी जाती है। आचार्य सुश्रुतने इस तथ्यकी ओर संकेत करते हुए निम्नोक्त उद्धरणमें कहा है कि—

'तं चेतनावस्थितं वायुर्विभजति, तेज एनं पचति, आपः क्लेदयन्ति, पृथिवी संहन्ति, आकाशं विवर्धयति।'

(सुश्रुत शा० ५।३)

अर्थात् चेतनावस्थित शुक्र-शोणितके संयोगभावमें विभजन-क्रिया वायुसे, पाक-क्रिया तेजसे, क्लेदन (आर्द्र स्थितिमें रहनेकी)-क्रिया जलसे, संहनन (ठोस स्थितिमें बरतनेकी)-क्रिया पृथ्वीसे और संवर्धन (बढ़नेकी)-क्रिया आकाशसे होती है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच इन्द्रिय-ग्राह्य गुण क्रमशः आकाश, वायु, तेज (अग्नि), जल तथा पृथ्वीभूतके हैं। गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, सान्द्र, द्रव, मन्द, तीक्ष्ण, विशद, पिच्छिल, श्लक्ष्ण, खर, स्थूल, सूक्ष्म, चल, स्थिर, मृदु और कठिन—ये बीस सामान्य गुण भी पाञ्चभौतिक द्रव्योंमें प्राप्त होते हैं। आयुर्वेदका मौलिक पञ्चभूत सिद्धान्त ऐसी सुदृढ़ और तर्कसंगत आधारभूमिपर प्रतिष्ठापित किया गया है कि विश्वके सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थ भी पाञ्चभौतिक सिद्ध होते हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण—परमाणु भी पाञ्चभौतिक ही सिद्ध होता है। परमाणुगत भार पृथ्वीभूतके कारण, परमाणुगत विभिन्न कणोंकी रचना-विशेषकी संयोजन-स्थितिका स्थायित्व जलभूतके कारण, परमाणुगत ऊर्जा अग्निभूतके कारण, परमाणुगत विभिन्न कणोंकी गति वायुभूतके कारण तथा तद्गत अवकाश (रिक्त स्थान) आकाशभूतके कारण होता है। इस प्रकार हम देखते हैं पुराकालीन मनीषी ऋषियोंद्वारा स्थापित पञ्चभूत सिद्धान्त कितना महत्त्वपूर्ण तथा व्यापक है। विश्वके समस्त जड-चेतन पदार्थोंको केवल पाँच ही मौलिक तत्त्वोंमें वर्गीकृत कर देनेसे पञ्चभूत सिद्धान्त जन-साधारणके लिये भी बोधगम्य और व्यवहार्य है। इसके विपरीत आधुनिक वैज्ञानिकोंद्वारा प्रतिपादित मौलिक तत्त्वोंकी संख्या अबतक एक सौ बारहसे भी अधिक हो गयी है तथा भविष्यमें इसकी संख्या और भी बढ़ सकती है; क्योंकि कुछ दशाब्दि पहले मौलिक तत्त्वोंकी संख्या बानबे थी, बादमें बढ़कर यह एक सौ

आठ हुई और पुनः एक सौ बारह हो गयी।

पञ्चभूत-सिद्धान्तकी उपादेयता—पञ्चभूत-सिद्धान्तपर ही आयुर्वेदके सभी प्रमुख सिद्धान्त; यथा—कार्य-द्रव्योंका पार्थिवादि भेद, शरीरके विभिन्न धातुओंका पाञ्चभौतिक संघटन, ज्ञानेन्द्रियोंकी पाञ्चभौतिकता, मर्मोंका पञ्चभूतोंके आधारपर विकल्प, वैशिष्ट्य अथवा भेद, त्रिदोष-सिद्धान्तमें पञ्चभूतोंका सम्बन्ध, पञ्चभूतोंके न्यूनाधिक परिमाणसे मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय—इन छः रसोंकी अभिव्यक्ति, पाञ्चभौतिक षड्रसोंसे दोष-प्रकोपकता तथा दोष-प्रशामकता, पञ्चभूतोंका पञ्चभूताग्नियोंसे सम्बन्ध, भ्रूण (गर्भ)-विकासमें पञ्चभूतोंका योगदान, चिकित्साके प्रमुख सिद्धान्तोंमें पञ्चभूतोंकी कार्यकारिता आदि आधारित हैं। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि पञ्चभूत-सिद्धान्त कितना महत्त्वपूर्ण, व्यापक तथा उपादेय है। यदि केवल पञ्चभूत-सिद्धान्तका ही व्यापक, विवेकपूर्ण तथा गहन चिन्तन-युक्त विवेचन एवं तदनुसार उसका व्यवहार्य-स्वरूप जान लिया जाय तो किसी अन्य सिद्धान्तकी आयुर्वेदमें जाननेकी अपेक्षा ही नहीं रहेगी और उपनिषद्का वचन '**एकेन ज्ञातेन सर्वमिदं ज्ञातं भवति**' अर्थात् एक ही आत्मतत्त्वको जाननेसे सभी कुछ ज्ञात हो जाता है यह उक्ति पञ्चभूत-जैसे आयुर्वेदके मूल सिद्धान्तपर भी पूर्णतः चरितार्थ होती है।

त्रिदोष-सिद्धान्त—पञ्चभूत-सिद्धान्तका व्यवहार्यरूप ही पुराकालीन मनीषी आचार्योंद्वारा त्रिदोष-सिद्धान्तके रूपमें प्रतिष्ठापित किया गया है। पञ्चभूतोंमें तीन भूतों—वायु, अग्नि और जलकी क्रियाशीलताको देखकर आचार्योंने त्रिदोष-सिद्धान्तकी अवधारणा प्रतिपादित की है। यद्यपि त्रिदोष—वात, पित्त तथा कफ भी पाञ्चभौतिक ही हैं तथापि व्यवहारसौकर्यके निमित्त एवं वायु, अग्नि और जलभूतकी इनमें क्रमशः प्रधानता होनेके कारण तीन ही दोष माने गये। वात-दोषमें वायु तथा आकाशभूतकी प्रधानता है। पित्त-दोषमें अग्निभूतकी प्रधानता है तथा कफ-दोषमें जलतत्त्व और पृथ्वीभूतकी प्रधानता है। शरीर-संघटनमें जहाँ पञ्चभूतोंकी प्रधानता है, वहीं शारीरिक क्रियाओंका निष्पादन त्रिदोषके द्वारा होता है। पञ्चभूत जहाँ शरीरको भौतिक आधार प्रदान करते हैं, वहीं त्रिदोष शरीरके जैविक क्रियाओंको सम्पादित करते हैं। दूसरे शब्दोंमें पञ्चभूत शरीरके भौतिक संघटक (Physical entity) तथा त्रिदोष शरीरके जैविक संघटक (Biological entity) हैं।

त्रिदोष-सिद्धान्तके आधारपर ही आयुर्वेदकी समस्त चिकित्सा-प्रणाली आधारित है। त्रिदोषकी विषमता ही रोगोत्पत्तिका कारण है। त्रिदोषका समभावमें रहना ही आरोग्य है। आचार्य चरकका यह वचन—'**रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता**' अर्थात् दोषोंकी विषमता ही रोग है तथा दोषोंका साम्य आरोग्य है, यह उक्ति आयुर्वेदके चिकित्सकोंके लिये प्रकाश-पुञ्जके सदृश है। जिसके आलोकमें स्वस्थकी स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोगाक्रान्तका रोगोपचार चिकित्सकोंद्वारा पुराकालसे अद्यावधिपर्यन्त सुचारुरूपसे सम्पादित किया जा रहा है। आचार्य चरकने चिकित्साको परिभाषित करते हुए कहा है कि—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्॥

(च०सू० १६। ३४)

अर्थात् जिन क्रियाओंद्वारा शरीरमें दोषोंकी समता उत्पन्न हो, वही चिकित्सा है तथा चिकित्सकोंका कर्तव्य भी यही है। स्वास्थ्य-रक्षाकी दृष्टिसे भी दोषोंकी विषमता न होने पाये तथा दोषोंकी समता बनी रहे, चिकित्सकोंके लिये यही प्रयत्न अपेक्षित है, जैसा कि आचार्य चरकके निम्नोद्धृत वचनसे स्पष्ट होता है—

कथं शरीरे धातूनां वैषम्यं न भवेदिति।
समानां चानुबन्धः स्यादित्यर्थं क्रियते क्रिया॥

(च०सू० १६। ३५)

अर्थात् शरीरमें दोषोंकी विषमता किसी प्रकार न होने पाये तथा दोषोंकी समता बराबर बनी रहे, चिकित्सकोंद्वारा इसी निमित्त क्रिया की जाती है। इस प्रकार हमें यह ज्ञात होता है कि त्रिदोष-सिद्धान्तका स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोगोपचारकी दृष्टिसे कितना महत्त्व है? त्रिदोष-सिद्धान्तकी उपादेयता आयुर्वेदके द्विविध प्रयोजन (स्वस्थकी स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोगाक्रान्तका रोगोपचार)-की सार्थकता ही है।

सामान्य-विशेष सिद्धान्त—आयुर्वेदका समान (सामान्य) तथा विशेष सिद्धान्त भी मूल सिद्धान्तके रूपमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय है। इस सिद्धान्तके अनुसार समान द्रव्य, समान गुण तथा समान कर्मसे दोषोंकी वृद्धि होती है एवं द्रव्य-विशेष (भिन्नता), गुण-विशेष तथा कर्म-विशेषसे दोषोंकी क्षीणता होती है।

इस सिद्धान्तके विषयमें आचार्य चरकका निम्नोद्धृत वचन द्रष्टव्य है—

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।
ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु॥
(च०सू० १।४४)

अर्थात् सभी भावोंकी समानता (द्रव्य-सामान्य, गुण-सामान्य तथा कर्म-सामान्य) वृद्धिका कारण है और सभी भावोंकी विशेषता (भिन्नता) यथा—द्रव्य-विशेष, गुण-विशेष तथा कर्म-विशेष ह्रास (क्षीणता)-का कारण है। सामान्य और विशेषकी यह प्रवृत्ति (कार्य) शरीरके सम्बन्धसे होती है। शरीरसे असम्बद्ध होनेपर सामान्य-विशेष वृद्धि या ह्रासके कारण नहीं होते। सामान्य-विशेषकी यह प्रवृत्ति यदि उचित होती है तो शरीरमें धातुसाम्य बना रहता है। यदि केवल सामान्य भावोंका ही सेवन किया जाय तो धातु (दोष)-की वृद्धि होनेसे धातु-वैषम्य हो जाता है जो कि रोगका कारण होता है। उसी प्रकार यदि केवल विशेष (असमान) भावोंका सेवन किया जाय तो धातुक्षय (दोषक्षय)-से भी धातु-वैषम्य हो जाता है ज़ो कि रोगका कारण होता है।

द्रव्य-सामान्यसे अभिप्राय है द्रव्यके सदृश समानता, यथा—मांसकी समानता मांससे है।

गुण-सामान्यसे अभिप्राय है गुणोंमें समानता, यथा—दूध और शुक्र (धातु) भिन्न-भिन्न जातिके होते हुए भी दोनोंमें मधुर आदि गुणोंकी समानताके कारण दुग्ध-सेवनसे शुक्रकी वृद्धि होती है। इस प्रकारकी वृद्धिका कारण गुण-सामान्य होता है।

कर्म-सामान्यसे अभिप्राय है तत्तद् दोषोंके स्वरूपके अनुरूप समान कर्म होनेसे तत्तद् दोषोंकी वृद्धि। यथा—आस्यासुख (सुखपूर्वक आराम करना)—कर्म कफदोषके समान नहीं है, तथापि आरामसे सुखपूर्वक अन्न-पानादिका सेवन कफके क्रियाकारित्व-लक्षणके अनुरूप होनेसे कफदोषकी वृद्धि होती है। अतः कर्म-सामान्य भी सामान्य लक्षणवाला होनेसे तत्तद् द्रव्योंमें वृद्धिका कारण होता है।

द्रव्य-विशेष ह्रास (क्षीणता)-का कारण होता है। यथा—गवेधुक (तृण-विशेष) मांसके प्रति विशेष (भिन्न) है। अतः इसके सेवनसे मांसकी क्षीणता होती है। मांसमें गवेधुकत्व नहीं होता, अतः गवेधुक मांसके लिये असमानका विशेष होता है। इसी कारण गवेधुकका सेवन मांसकी क्षीणतामें कारण होता है।

गुण-विशेषके लक्षणका संकेत आचार्य चरकने **'विशेषश्च पृथक्त्वकृत्'** इस वचनसे किया है अर्थात् पृथक्त्व-भाववाले द्रव्य गुण-विशेषके कारण अपचय (क्षीणता)-के कारण होते हैं। यथा—शुण्ठी, पिप्पली आदि द्रव्य अपने उष्ण गुणके कारण कफको क्षीण करते हैं। मधुर तथा स्निग्ध द्रव्य वातदोषके विरुद्ध गुण होनेके कारण वातदोषको क्षीण करते हैं।

इसी प्रकार कर्म-विशेषके लक्षणका संकेत आचार्य चरकने—**'विशेषस्तु विपर्ययः'** इस वचनसे किया है अर्थात् विपरीत कर्म धातु-विशेष या दोष-विशेषके कर्मसे विपरीत होनेके कारण अपचय या ह्रासके कारण होते हैं। यथा—दिवास्वप्न (दिनमें शयन)-से बढ़े कफका क्षय रात्रि-जागरणसे क्षय होता है तथा रात्रि-जागरणसे बढ़े वातका क्षय दिवास्वप्नसे होता है।

सामान्य-विशेष सिद्धान्तकी उपादेयता—आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन स्वस्थ व्यक्तिका स्वास्थ्य-रक्षण तथा रोगाक्रान्तका रोग-निवारण है। इस उद्देश्यकी प्राप्तिके निमित्त शरीरमें धातुसाम्यका होना आवश्यक है, क्योंकि धातु-वैषम्य ही रोगका कारण है और धातुसाम्य ही आरोग्य है; जैसा कि आचार्य चरकके निम्नोक्त वचनसे स्पष्ट होता है—

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥
(च०सू० ९।४)

अर्थात् धातु-वैषम्य ही विकार (रोग) दुःख है तथा धातुसाम्य ही सुखसंज्ञक आरोग्य है। आरोग्यकी प्राप्ति तथा रोगसे निवृत्तिके लिये 'सामान्य-विशेष सिद्धान्त व्यवहार'की महती अनिवार्यता है। धातु-वैषम्यमें किसी धातुकी वृद्धि अथवा ह्रास होता है। इस दृष्टिसे क्षीण धातुओंकी वृद्धिके लिये सामान्य सिद्धान्तके अनुसार धातुके समान गुण तथा भूयिष्ठ द्रव्योंका सेवन अपेक्षित होता है। उसी प्रकार वृद्धि-प्राप्त धातुको क्षीण करनेके लिये विशेष सिद्धान्तका उपयोग आवश्यक होता है। चिकित्सा-सिद्धान्तका उल्लेख करते हुए आचार्य वाग्भट कहते हैं कि—

'क्षीणा वर्धयितव्याः, वृद्धा ह्रासयितव्याः, समाः पालयितव्याः।' (अष्टाङ्गसंग्रह सू० २०)

अर्थात् क्षीण धातुओंको बढ़ाना, बढ़े हुए धातुओंको क्षीण करना चाहिये तथा सम धातुओंको साम्यावस्थामें बनाये रखना चाहिये। धातु-साम्यकी अवस्थामें दोष-धातुओंको समभावमें रखनेके लिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि उनकी साम्यावस्था बनी रहे। इस सम्बन्धमें एक जिज्ञासा होती है कि दोष-धातुओंकी सामान्य-विशेष-सिद्धान्तके अनुसार वृद्धि तथा ह्रास किस परिमाणमें करना चाहिये जिससे स्वास्थ्यकी प्राप्ति हो सके। इसी जिज्ञासाको दृष्टिगत रखते हुए आचार्य सुश्रुतने निम्नाङ्कित उद्धरणमें कहा है कि—

स्वस्थस्य रक्षणं कुर्यादस्वस्थस्य तु बुद्धिमान्।
क्षपयेद् बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान् भिषक्।
तावद्यावदरोगः स्यादेतत् साम्यस्य लक्षणम्॥

(सु०सू० १५। ४०)

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट होता है कि स्वस्थ व्यक्तिकी स्वास्थ्य-रक्षा एवं अस्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्य-लाभके लिये बुद्धिमान् चिकित्सक बढ़े हुए दोष-धातु एवं मलोंका ह्रास एवं क्षीण हुए दोष-धातु एवं मलोंकी वृद्धि करे। यह ह्रास या वृद्धि उस अवधितक करना चाहिये जबतक कि व्यक्ति नीरोग नहीं हो जाय। यही दोष-धातु एवं मलोंके साम्यका लक्षण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चिकित्साके मूलमें 'सामान्य-विशेष सिद्धान्त'की मुख्य भूमिका है। रोगोत्पत्तिमें भी रोगोत्पादक कारणके समान हेतुसे ही रोग उत्पन्न होते हैं, अतः आयुर्वेदज्ञोंने रोगोपचार-क्रममें प्रथम मुख्य कर्तव्यके रूपमें निदान—परिवर्जन (रोगोत्पादक कारणोंका त्याग) प्रतिपादित किया है, जैसा कि—**'संक्षेपतः क्रियायोगो निदानं परिवर्जनम्'** इस वचनसे प्रमाणित होता है। सामान्य सिद्धान्तकी उपादेयताको दृष्टिगत रखते हुए ही उपर्युक्त चिकित्सा-सूत्रको आयुर्वेदज्ञोंने आयुर्वेदमें महत्त्व दिया है।

इसी प्रकार आयुर्वेदके अनेक मूल सिद्धान्त यथा—त्रिदण्ड-सिद्धान्त, सप्तविधगुणवाद, षड्रसवाद, पञ्च-पञ्चक-सिद्धान्त, आदान-विसर्गवाद, आत्म-निर्विकारवाद, सद्वृत्तानुष्ठान, अग्निबलापेक्षी आहारमात्रा, धारणीयाधारणीय-वेगवाद, पञ्चकर्म-सिद्धान्त, दोषसाम निरामवाद, पञ्चनिदान-सिद्धान्त, षडुपक्रमवाद, दशविध-परीक्ष्यवाद, आकर-परीक्ष्य-दशभाव-वाद आदि अति-महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय हैं, जिनका ज्ञान आयुर्वेद-अनुयायियोंके लिये अत्यन्त आवश्यक है, जिससे आयुर्वेदके द्विविध प्रयोजनकी उपलब्धि हो सके।

ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद—उद्भव एवं इतिहास

(दण्डी स्वामी श्रीमद् दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

'वेद' लौकिक एवं अलौकिक ज्ञानका साधन है। भगवान् मनु कहते हैं कि **'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः'** अर्थात् वेदोंको ही 'श्रुति' कहते हैं। यद्यपि **'अनन्ता वै वेदाः'** ज्ञान अनन्त है, अतः वेद भी अनन्त हैं, ऐसा कहा गया है तथापि मुण्डकोपनिषद् चार वेद—१-ऋग्वेद, २-यजुर्वेद, ३-सामवेद और ४-अथर्ववेदको ही मान्यता प्रदान करता है—**'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।'**— इन चारों वेदोंके चार उपवेद भी हैं जो इस प्रकार हैं—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः।
स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विधः ॥

जिस प्रकार 'अथर्ववेद'का उपवेद 'अर्थवेद' (स्थापत्यशिल्पशास्त्र) है और उसके निर्माता विश्वकर्मा

हैं (शिल्पशास्त्रके ज्ञाताको 'मयासुर' भी माना गया है), 'सामवेद' का उपवेद 'गान्धर्ववेद' (संगीतशास्त्र) है और उसके कर्ता नारदमुनि हैं, 'यजुर्वेद'का उपवेद 'धनुर्वेद' (युद्धशास्त्र) है और उसके कर्ता विश्वामित्र हैं; उसी प्रकार 'ऋग्वेद'का उपवेद 'आयुर्वेद' (वैद्यकशास्त्र) है* और उसके उपदेष्टा धन्वन्तरि हैं।

जैसे छिद्रविहीन नौकासे ही नदीको पार करना सम्भव है, उसी प्रकार बिना रोगोंवाले स्वस्थ देहसे ही भवसरितासे पार होना शक्य है। इसीलिये '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' कहा गया है। 'अवधूत-गीता' में कायासिद्ध भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय' शिवसुत 'कार्तिकस्वामी' को उपदेश करते हैं कि—

चित्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीरं
नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं
स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति॥
(८। २७)

इस श्लोकका सारांश यह है कि स्वस्थ देह रहनेपर ही क्रमशः स्वस्थ प्राण, स्वस्थ चित्त और स्वस्थ बुद्धि होना सम्भव है; फलतः 'स्व-स्वरूपबोध' सम्भव (शक्य) है। अतः 'देह' (शरीर)-का स्वस्थ (नीरोग) होना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वस्थ देह रखनेके लिये हमारे प्राचीन कृपालु ऋषियोंने प्राचीनतम 'ऋग्वेद'का स्वानुभवपूर्ण उपवेद 'आयुर्वेद' हमें प्रदान किया है। इस 'आयुर्वेद'के 'अष्टाङ्ग' (आठ अङ्ग) इस प्रकार बताये हैं—

१-काय, २- शल्य, ३-शालाक्य, ४-बाल, ५-ग्रह, ६-विष, ७-रसायन और ८-वाजीकरण।

महर्षि चरकरचित बृहद्ग्रन्थ 'चरकसंहिता' के सूत्रस्थान (३०। २३)-में आयुर्वेद शब्दकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है '**तदायुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः**··· **यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः**।' अर्थात् जो 'आयुष्य' का ज्ञान कराता है वह 'आयुर्वेद' है··· तथा जो 'आयुष्य'के हितप्रद और हानिकारक द्रव्य-गुण-कर्मको समझाकर कहता है, वह 'आयुर्वेद' कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि आयुर्वेद मनुष्यका दीर्घायुष्य-सम्बन्धी विचारकर्ता उपवेद है।

'काश्यपसंहिता' में आयुर्वेदका इतिहास इस प्रकार वर्णित है—'**स्वयम्भूर्ब्रह्मा प्रजाः सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थमायुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत्**।' अर्थात् 'प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाले ब्रह्माने प्रजाके परिपालन-हेतु प्रथम आयुर्वेदका ही निर्माण किया था।' ब्रह्माने एक लाख श्लोकोंकी 'आयुर्वेदसंहिता' की रचना की थी और इसका नाम 'ब्रह्मसंहिता' रखा था। इस समय वह अनुपम सम्पूर्ण ग्रन्थरत्न उपलब्ध नहीं है, परंतु उस ग्रन्थके सोलहसे भी अधिक 'योग' आयुर्वेद-ग्रन्थमें प्राप्त हैं। उनमेंसे तीन योग इस प्रकार हैं—१-चन्द्रप्रभावटी, २-ब्राह्मीतेल और ३-ब्राह्मरसायन।

ब्रह्माने अपनी इस आयुर्वेद-विद्याको दक्षप्रजापति तथा भास्करको प्रदान किया। दक्षप्रजापतिकी परम्परामें सिद्धान्तका तथा भास्करकी परम्परामें चिकित्सा-पद्धतिका प्राधान्य था।

दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने आयुर्वेदका पूर्ण अध्ययन किया था। वायुपुराण (४९) कहता है कि 'अश्विनीकुमारोंने क्षीरसागर-स्थित 'चन्द्रपर्वत' (मानसरोवर-समीपस्थ 'गुर्ला-मान्धाता' पर्वत)-पर उत्तम प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न करनेका तथा यथासमयमें उनका उपयोग करनेका शुभ कार्य किया था।' पुराणोंमें वह कथा प्रसिद्ध है कि जिसमें वयोवृद्ध च्यवन ऋषिको अश्विनीकुमारोंने अपनी अद्भुत आयुर्वेदिक चिकित्साद्वारा 'तारुण्य' (यौवन) प्राप्त करवा दिया था। अश्विनीकुमारोंका वह आयुर्वेद-ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है, किंतु 'आश्विनसंहिता', 'चिकित्सा-सार-तन्त्र', 'अश्विनीकुमारसंहिता' इत्यादि

* दूसरे मतसे आयुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है—'तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या।' (चरक० सूत्र० ३०। २१) तथा 'इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्य०' (सुश्रुत० सू० १। ६)

ग्रन्थोंका उल्लेख अन्य ग्रन्थोंमें मिलता है।

अश्विनीकुमारोंने ही देवराज इन्द्रको आयुर्वेदका ज्ञान प्रदान किया था। स्वयं इन्द्रने 'ऐन्द्रियरसायन', 'सर्वतोभद्र', 'दशमूलादि तेल', 'हरितक्यवलेह' इत्यादि योगोंका निर्माण किया था।

देवराज इन्द्रने आयुर्वेदका अद्भुत ज्ञान महर्षि भृगु, महर्षि अंगिरा, महर्षि अत्रि, महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अगस्त्य, महर्षि पुलस्त्य, मुनि वामदेव, मुनि गौतम, मुनि असित आदि दस महापुरुषोंको प्रदान किया था। इनमें महर्षि भृगु तो चिकित्सा-प्रवीण थे। महर्षि अत्रिको महा-आयुर्वेद अर्थात् आयुर्वेदका महान् ज्ञाता कहा गया है। महर्षि कश्यपरचित आयुर्वेदिक संहिता 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' नामसे प्रसिद्ध है। महर्षि अगस्त्यका ग्रन्थ 'द्वैधनिर्णय-तन्त्र' और मुनि वामदेवका 'आयुर्वेद-संहिता' नामक ग्रन्थरत्न प्रसिद्ध है। 'चरकसंहिता' में ऐसी कथा है कि 'ऋषिगणोंने लोककल्याणके लिये ऋषि भारद्वाजको अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर देवराज इन्द्रके पास (स्वर्गमें) आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भेजा था। इन्द्रने भारद्वाजको वह सम्पूर्ण ज्ञान दे दिया। भारद्वाजने [पृथ्वीपर] वापस आकर वह ज्ञान अन्य ऋषि-मुनियोंको दिया था।'

भावप्रकाश नामक ग्रन्थ (१। १५)-में ऐसा कहा गया है कि 'देवराज इन्द्रसे प्राप्त आयुर्वेदका ज्ञान ऋषि भारद्वाजने तन्त्रग्रन्थके रूपमें आबद्ध किया था [ऐसा पता चला है कि चेन्नई—मद्रासके एक ग्रन्थालयमें हस्तलिखित तमिल-भाषामें 'भारद्वाजीय प्रकरण' और 'भेषज-कल्प' नामक ग्रन्थ विद्यमान है]।'

भारद्वाज ऋषिका एक शिष्य द्वितीय धन्वन्तरि नामसे था। उस बुद्धिमान् शिष्यने भिषक्-क्रियासहित आयुर्वेदका पूर्ण ज्ञान गुरुकृपासे प्राप्त किया था। उसने उस ज्ञानको आठ अङ्गोंमें विभक्त कर अपने शिष्योंको सिखाया था। ऐसे विद्वान् द्वितीय धन्वन्तरिको ऋषियोंने दो उपाधियाँ प्रदान की थीं—१-सर्वरोगप्रणाशन और २-आयुर्वेदप्रवर्तक। द्वितीय धन्वन्तरिने 'शल्यशास्त्र' का बहुत प्रचार किया। उनके ग्रन्थोंमें संनिपात-कलिका, धातुकल्प, रोगनिदान, वैद्य-चिन्तामणि, धन्वन्तरि-निघण्टु इत्यादि बहुत प्रसिद्ध थे।

भारद्वाज ऋषिका दूसरा शिष्य पुनर्वसु-आत्रेय नामका था। 'चरकसंहिता' में कहा गया है कि वह शिष्य बड़ा जिज्ञासु वृत्तिका था। वह अपने साथ आयुर्वेद-निष्णात ऋषि-मुनियोंको लेकर हिमालयमें शक्तिशाली अद्भुत औषधियों एवं वनस्पतियोंके शोधके लिये परिभ्रमण करता रहता था। वह काय-चिकित्सा-निष्णात था। उसे लोग 'चलता-फिरता (जंगम) औषधालय' कहते थे। तत्कालीन ऋषियोंद्वारा वह 'भिषग्विद्याप्रवर्तक' की उपाधिसे सम्मानित था।

द्वितीय धन्वन्तरिने शल्य-तन्त्रमें प्रावीण्य और उसके मित्र पुनर्वसु-आत्रेयने भिषग्विद्यामें प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसके छः शिष्य थे—१-अग्निवेश, २-भेल, ३-जतूकर्ण, ४-पराशर, ५-हारीत और ६-क्षारपाणि। प्रत्येक शिष्योंने अपने-अपने नामसे आयुर्वेदके अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंकी रचना की है, जैसे—१-अग्निवेश-तन्त्र, २-भेल-संहिता, ३-पराशर-संहिता, ४-जतूकर्ण-काय-चिकित्सा, ५-हारीत-आयुर्वेद-संहिता और ६-क्षारपाणि-काय-चिकित्सा-तन्त्र।

देवराज इन्द्रके शिष्य निमिने शालाक्य-तन्त्र नामक एक ग्रन्थकी रचना की। इस निमिके शिष्य करालने स्वयं कराल-तन्त्रमें नेत्ररोगके छानबे प्रकार वर्णित किये हैं। करालका उल्लेख चरकसंहिताके 'अक्षिरोग-प्रकरण'-में है।

मुनि शौनक रचित शालाक्य-तन्त्र आयुर्वेदीय ग्रन्थरत्न था। कुछ लोगोंकी ऐसी मान्यता है कि इस ग्रन्थका रचयिता भद्रशौनक था।

बाह्लिक देश (अफगानिस्तान)-का प्रसिद्ध शालाक्य-तन्त्रज्ञ कांकायन था, जिसके असंख्य शिष्य थे। गार्ग्य, गालव, सात्यकी आदिने धन्वन्तरिसे 'शल्य-शास्त्र' का ज्ञान प्राप्तकर 'शालाक्य-तन्त्र' नामसे प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी रचना की थी। कई विद्वान् इस धन्वन्तरिको दिवोदास-धन्वन्तरि कहते हैं। उसने 'शल्य-चिकित्सा' का अच्छा प्रचार-प्रसार किया था। उसके सात विद्वान्

शिष्य थे, जिनमेंसे एक था विश्वामित्रसुत सुश्रुत। ऐसा मत 'सुश्रुतसंहिता' (चि० २।३)-का है। 'शालिहोत्रसंहिता'-का मत है कि सुश्रुत विश्वामित्रका पुत्र नहीं, अपितु मुनि शालिहोत्रका पुत्र था। 'सुश्रुतसंहिता' के तीन पाठ इस प्रकार हैं—१-सुश्रुतसंहिता, २-वृद्ध-सुश्रुतसंहिता और ३-लघु-सुश्रुतसंहिता।

धन्वन्तरिके अन्य विद्वान् भिषक्-शिष्योंमें औपधेनव, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुररक्षित, वैतरण, भोज, भालुकी, दारुक आदिने आयुर्वेदके ग्रन्थोंकी रचना की है।

काश्यपसंहितामें कहा गया है कि भृगु-वंशके ऋषि ऋचीकके पुत्र वृद्धजीवकने कश्यपसे आयुर्वेदके 'कुमार-तन्त्र' का ज्ञान प्राप्त किया था। वृद्धजीवकका ग्रन्थ 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' नामसे जाना जाता है। एक और कुमारभृत्याचार्य (रावण) हो गया है, जिसने 'बाल-चिकित्सा', 'नाडी-परीक्षा', 'अर्क-प्रकाश' तथा 'उदेश-तन्त्र' इत्यादि प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी रचना की है।

विविध प्रकारके विषोंके शमनके लिये उपाय बतानेवाले तन्त्रको 'अगद-तन्त्र' कहते हैं। कश्यप, उशना और बृहस्पति—ये तीनों 'अगद-तन्त्र' के आचार्य माने गये हैं।

आयुर्वेदका सबसे प्रभावी अङ्ग 'रस-तन्त्र' है। सुश्रुतसंहिता (सूत्र० १। ७)-में कहा गया है कि '**रसायनतन्त्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणसमर्थं च।**' अर्थात् रसायन-तन्त्र शतायुदायक, बल-बुद्धिवर्धक और रोगोंका अपहारक है। असंख्य ऋषि-मुनि-योगी योगबल एवं रसायनबलके प्रभावसे दीर्घायु हुए हैं। इस 'रसायन-तन्त्र' के प्रधानाचार्य भगवान् शिव हैं।

भृगु, अगस्त्य और वसिष्ठ—ये महर्षि रसतन्त्राचार्य माने गये हैं। ऋषि माण्डव्य, व्याडि, पतञ्जलि मुनि एवं आचार्य नागार्जुन आदि रसतन्त्रकार कहे गये हैं।

तन्त्रग्रन्थोंमें ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि नागार्जुनने 'श्रीशैलम्' (आन्ध्र-प्रदेश)-में घोर तपस्या की थी, फलतः रसेश्वर भगवान् दत्तात्रेयने प्रसन्न होकर उन्हें रसविद्याका गुह्यतम ज्ञान प्रदान किया था। तबसे उनका नाम सिद्ध-नागार्जुन प्रचलित हुआ। 'सिद्ध-नागार्जुन' ने केवल भारतकी ही नहीं, अपितु समग्र जगत्‌की गरीबी दूर करनेके लिये घोषणा की थी कि '**रसे सिद्धे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत्।**' अर्थात् 'मैं रसविद्याके सामर्थ्यसे सुवर्णका निर्माण कर सम्पूर्ण जगत्‌को निर्धनतासे मुक्त करा दूँगा।'

सिद्ध-नागार्जुनद्वारा रचित ग्रन्थोंमें 'रसरत्नाकर', 'कक्षपुटम्', 'आरोग्य-मञ्जरी', 'रसेन्द्र-मङ्गल', 'सिद्ध-नागार्जुनीय' आदि हैं।

'अष्टाङ्गहृदय' नामक ग्रन्थके रचयिता वाग्भट, 'अष्टाङ्गसंग्रह' के निमित्त वृद्ध-वाग्भट, 'माधवनिदान' के कर्ता माधवकर तथा चक्रपाणिदत्त, बंगसेन, मिल्हण, बोपदेव, लोलिंबराज, मोरेश्वर आदि विद्वानोंने उपवेद आयुर्वेदके मूल्यवान् ग्रन्थोंकी रचना की है।

जिस क्रियाके योगसे देह (शरीर)-में धातुसाम्यका प्रस्थापन होता है, उस क्रियाका नाम 'चिकित्सा' है और वही शुभ कर्म वैद्यराजका है—'**साम्यं प्रकृतिरुच्यते।**'

आयुर्वेद कहता है कि 'यदि धातुसाम्य तथा समप्रकृति रखना आ जाय तो देह नीरोग रहता है। संसारमें सभी जीव त्रिगुण (सत्त्व, रजस् और तमस्) और त्रिदोष (वात, पित्त और कफ)-से बद्ध हैं। अतः त्रिगुण एवं त्रिदोषकी समानता रखना अत्यन्त आवश्यक है।'

सुश्रुतसंहिताका कहना है कि 'जब त्रिदोष (वात, पित्त और कफ), सप्तधातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र) तथा मल सम होते हैं, तब देह स्वस्थ, रोग-रहित—नीरोग होता है।

अष्टाङ्गहृदयमें वाग्भट लिखते हैं कि 'सभी प्रकारके रोग-दोषोंका निवारण करुणा, दया, क्षमा तथा द्वेषहीन शुद्ध मनद्वारा किया जा सकता है। '**करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम्॥**' (चिकित्सित० १।१७३) आधुनिक 'चिकित्सा-विज्ञान' भी इस सत्यको अब मानने लगा है।'

'आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः'

(वैद्य श्रीदयारामजी अवस्थी शास्त्री, एम०ए०, आयुर्वेदाचार्य, बी०आई० एम०एम०)

सर्वप्रथम हमें यह समझना उपयुक्त होगा कि आयुर्वेद है क्या, जिसके उपदेशोंको हम स्वास्थ्य-हेतु परम श्रद्धासे स्वीकार करें।

आयुर्वेद शब्द आयु और वेद—इन दो शब्दोंसे बना है।

आयु शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—**एति—गच्छति इति 'आयुः'।'इण्'** धातुसे **एतेर्णिच्च** (उ० २। २८३) सूत्रद्वारा **'उसि'** प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है। आयुका अर्थ होता है जीवितकाल और उसके पर्यायवाची हैं धारि, जीवित, नित्यग एवं अनुबन्ध। यह आयु शरीर, इन्द्रिय, सत्त्व और आत्माका संयोगरूप है। आचार्य चरकने कहा है—

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥

(च० सू० १। ४२)

जिस शास्त्रमें शरीर तथा इन्द्रिय आदिका वर्णन हो अथवा आयुके विषयमें जिससे जानकारी प्राप्त हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं—

आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दन्ति इत्यायुर्वेदः।

(सु० सूत्र० १। १५)

और भी—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

(च० सू० १। ४१)

संक्षेपमें यह आयु चार प्रकारकी होती है—(१) हितायु, (२) अहितायु, (३) सुखायु और (४) दुःखायु। इन चारों प्रकारकी आयुके लिये प्रमाण और अप्रमाण आयुर्वेदशास्त्रमें वर्णित हैं। आयुका मान चेतना-निवृत्ति (गर्भसे मरणपर्यन्त चेतनाका रहना) है।

आयुर्वेदके उपदेशोंका पालन करनेपर आयु हितायु और सुखायु होती है अन्यथा अहितायु और दुःखायु होती है।

हित और सुख-आयु ही धर्म, अर्थ और सुखको दे सकती है। इसलिये वाग्भट-संहितामें कहा है—

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

(अष्टाङ्गहृदय सूत्र० १। २)

चरकसंहितामें भी कहा गया है कि आरोग्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चतुर्विध पुरुषार्थका उत्तम (प्रधान) मूल है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥

(च०सू० १। १५)

धर्म-अर्थ-सुख (काम और मोक्ष) तभी सम्भव है, जब यह आयु ठीक हो और इसके ठीक रहनेके लिये तथा दीर्घ जीवनके लिये इस शरीरको स्वस्थ रखे। इसलिये आवश्यक है आयुर्वेदके उपदेशोंके अनुसार सत्-आहार-विहार आदिका पालन करना; क्योंकि आयुर्वेदका प्रयोजन है—स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यका रक्षण और रुग्ण व्यक्तिके रोगका निवारण—

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च॥

चरक, सुश्रुत, वाग्भट तथा अन्य आयुर्वेदज्ञ ऋषि-महर्षियोंने इसे ही आयुर्वेदका प्रयोजन बताया है।*

आयुर्वेदके उपदेशोंको अपने जीवनमें ढालकर ऋषि-महर्षियोंने अमित सुखायु प्राप्त की थी।

दिनचर्या क्या है? रात्रिचर्या क्या है? ऋतुएँ क्या हैं? उनकी चर्या क्या है? कौन-कौनसे रोग किस कालमें होते हैं? वात-पित्त-कफादि दोष किन कारणोंसे प्रकुपित होते हैं, उनका शमन कैसे किया जाय? रोगोंको समूल नष्ट करनेके लिये संशोधनात्मक चिकित्सा (पञ्चकर्मका विधान), नित्य नये रूपमें आने (उभरने)-वाले रोग, जिनके लक्षण ज्ञात नहीं हैं उनका वर्णन तथा चिकित्सा आदि सब कुछ आयुर्वेद (भारतीय चिकित्सा-विज्ञान)-में उल्लिखित है।

इसलिये यह कहा जा सकता है कि विश्वकी

* (क) धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्॥ (च० सू० १। ५३)
(ख) व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणं च। (सु० सू० १। १४)

समस्त चिकित्सा-प्रणालियाँ, जिनका 'प्राणिमात्र अस्वस्थ हों ही नहीं और स्वस्थकी रक्षा हो, यदि आतुर हो जाय तो उसे रोगसे छुटकारा दिलाया जाय'—यह उद्देश्य है, वह सब आयुर्वेद ही है।

भारतीय चिकित्सा-शास्त्रमें प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेसे लेकर रात्रिमें शयनपर्यन्त किस प्रकार समय व्यतीत करना चाहिये जिससे पदार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति हो, उसका वर्णन दिनचर्याके रूपमें यों किया गया है—

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० २।१)

अर्थात् स्वस्थ प्राणीको प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें भगवन्नाम-स्मरणपूर्वक उठकर शरीर-चिन्ता यानी स्वास्थ्यकी रक्षाके विषयमें विचार करनेके पश्चात् शौच आदि क्रियाके विधानको सम्पन्न करनेके बाद अगले दिनके लिये कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। इस प्रकार आयुर्वेदमें समस्त विषयोंका स्पष्ट वर्णन है।

पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये एक सूत्र है—

'हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।'

अर्थात् हितकर भोजन करे, यथोचित मात्रामें भोजन करे, नियत समयपर भोजन करे और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करे।

वैद्यकीय आचारसंहिता

(वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य)

संसारकी समस्त मानव-जातिको त्रिविध तापोंसे पीडित, अनेक शारीरिक और मानसिक रोगोंसे ग्रस्त तथा विविध बाधाओंके कारण उनके इहलोक और परलोकके हितसाधनमें निरन्तर व्यवधान डालनेवाले कष्टोंको देखकर प्राचीन कालमें तपस्वी, त्रिकालदर्शी, विद्वान् एवं आर्तत्राण-परायण महर्षियोंने अत्यन्त करुणावश होकर इन कष्टोंके निवारणहेतु समग्र जीवन-दर्शनके रूपमें जिस आरोग्यशास्त्रका प्रतिपादन और तत्त्वोपदेश किया, वही अमृत-तत्त्व आयुर्वेदके नामसे जाना जाता है। इसे पूर्ण मानव-धर्म ही कहना चाहिये, क्योंकि आयुर्वेदमें केवल रोगोंके कारण एवं उनकी चिकित्सामात्रका ही वर्णन नहीं है, प्रत्युत धर्मके समस्त सिद्धान्तोंका तथा काम-क्रोध, मोह-लोभ, ईर्ष्या-द्वेष आदि एवं इनके कारण होनेवाली शारीरिक और मानसिक व्याधियोंका तथा उनके निवारणार्थ सत्य, अहिंसा, असूया आदि धर्मके सभी अङ्गोंका भी विस्तारसे विवेचन हुआ है, इसीलिये इस शास्त्रके ज्ञानद्वारा मानव अपनी समस्त आधि-व्याधियोंसे मुक्त होकर स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्राप्त करते हुए अपने दोनों लोकों (इहलोक तथा परलोक)-का कल्याण एवं चतुर्विध पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष)-का सम्पादन कर सकता है।

आयुर्वेदशास्त्रका प्रादुर्भाव प्राणिमात्रके कल्याणकी पवित्र भावनासे ही हुआ है, इस शास्त्रकी प्राचीन अध्ययन-व्यवस्थाके अनुसार जो व्यक्ति इस शास्त्रका सम्यक् रीतिसे सम्पूर्ण अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त कर लेता था, वह 'विद ज्ञाने' इस धात्वर्थके अनुसार 'वैद्य' की पदवी प्राप्त करता था तथा इसका दीर्घ कालतक मनन करते हुए इसके समग्र अध्ययन एवं अध्यापन-कार्यको सम्पादित करनेकी जो उच्च योग्यता प्राप्त कर लेता था, उसे आयुर्वेदमें 'आचार्य' की पदवी प्रदान की जाती थी और इसी प्रकार 'प्राणाचार्य'*, भिषगाचार्य आदि उपाधियाँ भी चिकित्सककी कार्यकुशलता एवं योग्यताके आधारपर प्रदान की जाती थीं, किंतु उक्त सभी कोटिके चिकित्सकोंको उनके कार्यक्षेत्रमें कार्य करनेकी अनुशंसा या अनुमति प्रदान करनेसे पूर्व महर्षियोंद्वारा जिस दायित्वपूर्ण सदाचारका उन्हें पाठ

---

* शीलवान् मतिमान् युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः। प्राणिभिर्गुरुवत् पूज्यः प्राणाचार्यः स हि स्मृतः॥

(चरक० चि० १।४।५१)

जो चिकित्सक अच्छे स्वभाववाला हो, बुद्धिमान् हो, अपने चिकित्सा-कार्यमें सदा तत्पर हो, द्विजाति हो, आयुर्वेद-शास्त्रका भलीभाँति अध्ययन किया हो, ऐसे वैद्यको प्राणाचार्य कहते हैं, वह प्राणियोंके लिये गुरुके समान पूज्य है।

पढ़ाया जाता था, वही उन चिकित्सकोंकी आचारसंहिता कही जाती है।

इस आचारसंहिताका आयुर्वेदमें अनेक स्थानों एवं संदर्भोंमें—जैसे अध्ययनसे पूर्व योग्य शास्त्रका चयन, इस विषयके ज्ञानदाता आचार्योंकी योग्यता एवं कुशलताका परीक्षण, योग्य शिष्योंका चयन करते समय उनके बौद्धिक एवं चारित्रिक गुणोंके स्तरका भी पूर्ण परीक्षण आदि—विस्तारसे वर्णन हुआ है। यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओंपर ही प्रकाश डालना अभीष्ट है—

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इस पवित्र चिकित्सा-कार्यका मूल उद्देश्य विश्वकल्याण एवं पीडित मानवकी सेवा करना ही रहा है, अतः महर्षि चरक अपने स्नातकोंको स्पष्ट निर्देश देते हैं कि—

नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति।
वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥

(चरक० चि० १।४।५८)

अर्थात् जो चिकित्सक अपने स्वार्थ एवं काम्य वस्तुओंकी प्राप्ति (इच्छित वस्तुओंकी प्राप्ति)-की परवाह न करते हुए केवल प्राणियोंके कल्याणकी भावनासे ही चिकित्सा-कार्य करते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक कहलानेके योग्य हैं। इसके विपरीत जो चिकित्सक केवल व्यावसायिक बुद्धिसे चिकित्सा-कार्यमें प्रवृत्त होते हैं उन्हें अधम कोटिका चिकित्सक माना जाता है। उनके लिये आचार्य चरकका कहना है—

कुर्वते ये तु वृत्त्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयम्।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते॥

(चरक० चि० १।४।५९)

अर्थात् जो मूर्ख चिकित्सक इस ईश्वरीय ज्ञानका उपयोग अपनी वृत्ति अर्थात् पेट भरनेके लिये, क्रय-विक्रय या सौदेबाजीसे करता है, वह सोनेके ढेरोंको छोड़कर अपने लिये केवल धूलके कणोंके ढेर ही बटोरता है, क्योंकि यह तो जीवन देनेवाला विज्ञान है, अतः परदुःखकातर होकर मनुष्यके जीवनकी रक्षापर ही प्रथम ध्यान देना चाहिये; क्योंकि जीवनदानसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ दान ही नहीं है। अतः इस पवित्र कार्यको कैसी उत्कृष्ट भावनासे करना चाहिये इसके लिये वे निर्देशित करते हैं—

भिषगप्यातुरान् सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान्।
आबाधेभ्यो हि संरक्षेदिच्छन् धर्ममनुत्तमम्॥

(चरक० चि० १।४।५६)

अर्थात् समस्त आतुरों-व्याधिपीडितोंको अपने पुत्रोंकी भाँति मानते हुए अपने मानव-धर्मके पालन करनेकी इच्छा रखनेवाले चिकित्सकको उन्हें रोगोंसे मुक्त करनेका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। तो फिर उस चिकित्सककी आजीविकाका क्या होगा? इस चिन्ताका समाधान तथा चिकित्सकको आश्वस्त करते हुए कहा गया है—

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चैषा चिकित्सा नास्ति निष्फला॥

अर्थात् इस कार्यमें कहींसे धन, कहींसे मित्रता, कहींसे धर्म (पुण्य), कहींसे यश (कीर्ति या प्रतिष्ठा) और कहींसे कर्माभ्यास, ऐसे उनको कुछ-न-कुछ तो मिलता ही है; क्योंकि चिकित्सा-कार्य सर्वथा निष्फल हो ही नहीं सकता। अतः चिकित्सकको इन चार वृत्तियोंका पालन करते हुए अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये। ये चार वृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा॥

(चरक० सू० ९।२६)

अर्थात् पीडित या दुःखी मनुष्योंके साथ मैत्रीभाव, समर्थ व्यक्तियों (साध्य व्याधिवालों)-से प्रीतिका भाव, दयनीय मनुष्योंके प्रति दयाका भाव एवं असाध्य रोगमें उपेक्षाका भाव रखना चाहिये। चिकित्सककी आजीविका-हेतु उसे और भी आश्वस्त किया गया है—

न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः।
ततः सर्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः॥

अर्थात् कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ मनुष्योंका निवास न हो और उन्हें कोई रोग न होता हो, अतएव चिकित्सकके जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था तो सब जगह सुलभ ही है। रोगीके लिये सर्वाधिक विश्वासपात्र व्यक्ति चिकित्सक ही होता है। अतः रोगीके इस विश्वासको सदैव कायम रखना चाहिये, क्योंकि—

मातरि पितरि पुत्रान् बान्धवानपि चतुरः।
अथैतानपि शंकेत वैद्ये विश्वासमेति च॥

अर्थात् रोगी कदाचित् अपने माता-पिता, पुत्र एवं बान्धवोंके प्रति सशंकित रह भी सकता है, किंतु चिकित्सकके प्रति तो इतना विश्वस्त होता है कि उसे वह अपना जीवन ही सौंप देता है, चिकित्सकको सदैव पक्षपातरहित होकर सत्यनिष्ठासे कार्य करना चाहिये।

यह एक विचारणीय विषय है कि कर्तव्यनिष्ठ, सेवाभावी एवं करुणापूर्ण चिकित्सकोंका निर्माण सहजमें ही नहीं हो सकता है, इसके लिये उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षाके साथ ही उत्तम चरित्र एवं संस्कारोंसे शिक्षित करना होता है; किंतु आजकल तो प्रत्येक क्षेत्रमें इन संस्कारोंका अभाव ही हो गया है। इनके लिये हमारी वर्तमान शिक्षापद्धति भी दोषी है।

आयुर्वेद-चिकित्साका मुख्य प्रयोजन विश्वकल्याण एवं उसके द्वारा पीडित मानवकी सेवा करना ही है, इसी प्रकार अन्य सभी पद्धतियोंका भी यही पवित्र लक्ष्य निश्चित है।

किंतु आजकल चिकित्साके इस पवित्र क्षेत्रमें—चिकित्सा-जैसे जनकल्याणके पुनीत क्षेत्रमें इतनी नैतिकताका पतन अवश्य ही अत्यन्त लज्जाजनक है। इस समय अवश्य ही इस क्षेत्रमें कर्तव्यनिष्ठ, दयालु एवं परोपकारी चिकित्सकोंकी उपस्थिति है, किंतु वह नगण्य-सी ही है। इतना होनेपर भी महर्षियोंद्वारा उपदिष्ट आयुर्वेदशास्त्रके वचनोंपर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये। उनका परम सम्मान करना चाहिये—

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।

(अष्टाङ्गहृदय सू० १।२)

वेदोंमें आयुर्वेदका तत्त्वानुसन्धान आवश्यक

(गोलोकवासी प्रो०डॉ० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र, भूतपूर्व वेदविभागाध्यक्ष वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय)

आयुर्वेद जनहितकारी प्रत्यक्ष भारतीय शास्त्र है। भारतीय वाङ्मयके वर्गीकरणके अनुसार आयुर्वेदकी गणना उपवेदोंमें है। वेदोंके मन्त्र और उनसे प्रतिपादित यज्ञ-यागादि क्रियाओंकी विधि अलौकिक है, इसलिये अपरिवर्तनीय है। आयुर्वेद भी वेद है, इसके भी निर्देश जो द्रव्य, ऋतु, समय, मानव-प्रकृति आदिके हैं, वे अलौकिक तथा सामान्यतया अपरिवर्तनीय हैं। अलौकिक शब्दका अभिप्राय मानव-रचनासे परे है। प्राकृतिक औषधियोंमें गुण, ऋतु और समयका प्रभाव तथा मानवका वात, पित्त, कफादि प्रकृति-रचना मानव-रचनाकी परिधिमें नहीं है। मानव-रचनासे बहिर्भूत होनेपर भी इसमें आयुर्वेदचिकित्सा-शास्त्रद्वारा निर्दिष्ट साधनों, उपायों, विधियोंसे परिवर्तन सम्भव नहीं, बहुत अंशोंतक निश्चित कर सकता है। मूलभित्तिका अपरिवर्तन रखते हुए उसका साधनोंकी सहायतासे इच्छानुकूल प्रदर्शन—कला, स्फूर्ति या अभ्यास है। अलौकिकमें कला, स्फूर्ति या अभ्यासका संनिवेश ही आयुर्वेदको उपवेद बना देता है। प्रकृतिसिद्ध पदार्थोंमें तत्त्व, विवेक, प्रयोगजनित उपायोंसे स्वाभाविकताका परिवर्तन कर देना मानव-बुद्धिका सहयोग है। यह वेदोक्त यज्ञ-यागादि क्रियाओंमें सम्भव नहीं है। इसलिये ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व—ये चार वेद हैं और आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद एवं अर्थवेद उपवेद हैं; क्योंकि इनमें मानवका आन्तरिक विकास या स्फूर्तिका प्रयोग-परिवर्तन करनेकी क्षमता है। फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि पदार्थोंमें प्राकृतिक या सहज शक्ति मानव-रचनासे असम्बद्ध है। इस अंशके कारण ही इस चिकित्सा-शास्त्रमें वेद शब्दको प्राचीनोंने अपनाया है।

चारों वेदोंके विषयमें मानवताकी मर्यादाके सर्वप्रथम उपदेष्टा मनुने बतलाया है—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥
बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।

(१२।९४, ९९)

पितृगण, देवता तथा मनुष्योंकी शाश्वत दृष्टि (सनातन नेत्र) वेद ही है। यह मानव या किसी भी सृष्टिके जीवद्वारा रचनामें अशक्य और अप्रतिम है। वेद समस्त प्राणियों—मानव, पशु-पक्षी आदिका पालन-

पोषण करता है। यतः आयुर्वेद भी वेद शब्दसे सम्बन्धित है, अतः इसकी शाश्वतता, सामान्य मानवकी शक्तिसे अतीतता और अप्रतिमता अपरिहार्य है। आयुर्वेदका मूल वेद है। वेदोंमें नीरोग रहनेकी प्रार्थना प्रमुख है। प्रार्थना या यज्ञक्रियाके सम्बन्धसे रोग एवं उनके निराकरणके उपायोंका भी वेदोंमें संकेत है। इन संकेतोंको कतिपय दिव्यदृष्टि महर्षियोंने स्पष्ट समझकर रोगनिवृत्तिके विचार बताये हैं। अथर्ववेदमें रोग एवं उनके निवारणके उपाय अधिक स्पष्ट है, इसलिये अथर्ववेद श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्रके उपदेशक तत्त्वज्ञ ऋषियोंने अपने सूत्र-ग्रन्थोंमें स्पष्ट प्रयोग लिखे हैं। वैदिक ग्रन्थोंके संकेत ही मनीषी आचार्योंके अनुभवसे विकसित होकर आयुर्वेदशास्त्ररूपसे परिणत हैं।

आज भी आयुर्वेद जाग्रत् है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके आदेश, प्रयोग सफल हैं। आवश्यकता है ग्राहक दृष्टिकी। यह दृष्टि सहज तथा उपेय और विधेय—तीन प्रकारसे विभक्त की जा सकती है। सहज दृष्टि पूर्वजन्मके संस्कार, गुरुसेवा, देवाराधन तथा महापुरुषोंके आशीर्वादसे ही प्रकट होती है। इसमें कार्य-कारण-भावकी कल्पना अकिंचित्कर है। उपेय दृष्टि शास्त्राभ्यास, सत्संग एवं अनुभवसे प्राप्य है। विधेय दृष्टिसे अनुसन्धान साध्य है। इस दृष्टिसे यहाँ अभिप्राय यह है कि जिन वैदिक या आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विधानोंका प्रयोग अज्ञात है, उनमें आत्मविवेकका संनिवेश करते हुए कमी-बेशीके फलके द्वारा प्रयोगशैली निश्चित करना। विधेय दृष्टि अनुसन्धानमूलक है। वेदके मूल मन्त्रों—ब्राह्मणों, सूत्रग्रन्थोंमें जो निर्देश हैं, वे अज्ञात एवं अव्यवहृत हैं। उनके साम्प्रदायिक ज्ञाता छिपे हुए या दुर्लभ हैं।

आज यह आवश्यकता है कि उपलब्ध एवं कृच्छ्रोपलब्ध वैदिक ग्रन्थोंको समझनेके लिये विचारक्षम साम्प्रदायिक अध्येताओंको ढूँढ़कर उनके सहयोगसे विधेय दृष्टिके उन्मेषके लिये भी यथोचित प्रयास किया जाय। जिससे आयुर्वेदका वेदत्व स्पष्टतया परिस्फुट, विलुप्त परम्पराका पुनरुज्जीवन हो सके और उत्तम आरोग्य-प्राप्तिकी लुप्त पद्धतियोंका प्रकाश हो सके।

'जीवेम शरदः शतम्'

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, आयुर्वेद-वाचस्पति)

मनुष्यकी आकाङ्क्षा वार्धक्यसे दूर रहकर दीर्घायु प्राप्त करनेकी आदिकालसे बलवती रही है। शतायु बननेकी कामना वेदोंमें निम्नलिखितरूपसे की गयी है—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (यजुर्वेद ३६। २४)

अर्थात् 'हम सौ वर्षोंतक देखें, सौ वर्षोंतक जीयें, सौ वर्षोंतक सुनें, सौ वर्षोंतक हमारी वाक्-शक्ति बनी रहे, सौ वर्षोंतक हम स्वावलम्बी बने रहें अर्थात् किसीके आश्रित न होकर जीवित रहें।'

भारतीय दर्शनमें जीवनके चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये मनुष्यका स्वस्थ एवं दीर्घायु होना आवश्यक माना गया है। इसी कारण चरकसंहिताका प्रारम्भ भी दीर्घजीवितीय नामक अध्यायसे किया गया है।

आचार्य सुश्रुतने सत्तर वर्षके बादकी अवस्थाको वृद्धावस्था माना है। उनका कहना है कि सत्तर वर्षकी उम्रके उपरान्त मानवके धातु, इन्द्रिय-बल तथा वीर्य (पराक्रम) दिन-प्रतिदिन क्षीण होने लगते हैं। मुखपर झुर्रियोंके आने, सिरके बालोंके पकने, श्वास-कास आदि रोग तथा शारीरिक क्रियाओंमें असमर्थता होनेसे बुढ़ापा परिलक्षित होने लगता है। यद्यपि भूख, प्यास, मृत्यु और नींदकी तरह जरा स्वाभाविक विकार है, पर समयसे पहले आनेवाला बुढ़ापा शतायु होनेमें सबसे बड़ा बाधक है। आयुर्वेदीय संहिताओंमें असामयिक बुढ़ापा आनेके कारणोंमें ऋतु, काल, प्रकृति तथा शास्त्रविरुद्ध भोजन, लगातार अत्यधिक परिश्रम, दिनमें अधिक शयन, विषय-भोगका अति सेवन, नशीले पदार्थोंका उपयोग, पचनेके पूर्व फिर भोजन, रात्रिमें भूखे पेट शयन, अधिक पैदल चलना, अति जागरण, अति भाषण, असंयम तथा चिंता,

पोषण करता है। यतः आयुर्वेद भी वेद शब्दसे सम्बन्धित है, अतः इसकी शाश्वतता, सामान्य मानवकी शक्तिसे अतीतता और अप्रतिमता अपरिहार्य है। आयुर्वेदका मूल वेद है। वेदोंमें नीरोग रहनेकी प्रार्थना प्रमुख है। प्रार्थना या यज्ञक्रियाके सम्बन्धसे रोग एवं उनके निराकरणके उपायोंका भी वेदोंमें संकेत है। इन संकेतोंको कतिपय दिव्यदृष्टि महर्षियोंने स्पष्ट समझकर रोगनिवृत्तिके विचार बताये हैं। अथर्ववेदमें रोग एवं उनके निवारणके उपाय अधिक स्पष्ट है, इसलिये अथर्ववेद श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्रके उपदेशक तत्त्वज्ञ ऋषियोंने अपने सूत्र-ग्रन्थोंमें स्पष्ट प्रयोग लिखे हैं। वैदिक ग्रन्थोंके संकेत ही मनीषी आचार्योंके अनुभवसे विकसित होकर आयुर्वेदशास्त्ररूपसे परिणत हैं।

आज भी आयुर्वेद जाग्रत् है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके आदेश, प्रयोग सफल हैं। आवश्यकता है ग्राहक दृष्टिकी। यह दृष्टि सहज तथा उपेय और विधेय—तीन प्रकारसे विभक्त की जा सकती है। सहज दृष्टि पूर्वजन्मके संस्कार, गुरुसेवा, देवाराधन तथा महापुरुषोंके आशीर्वादसे ही प्रकट होती है। इसमें कार्य-कारण-भावकी कल्पना अकिंचित्कर है। उपेय दृष्टि शास्त्राभ्यास, सत्संग एवं अनुभवसे प्राप्य है। विधेय दृष्टिसे अनुसन्धान साध्य है। इस दृष्टिसे यहाँ अभिप्राय यह है कि जिन वैदिक या आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विधानोंका प्रयोग अज्ञात है, उनमें आत्मविवेकका संनिवेश करते हुए कमी-बेशीके फलके द्वारा प्रयोगशैली निश्चित करना। विधेय दृष्टि अनुसन्धानमूलक है। वेदके मूल मन्त्रों—ब्राह्मणों, सूत्रग्रन्थोंमें जो निर्देश हैं, वे अज्ञात एवं अव्यवहृत हैं। उनके साम्प्रदायिक ज्ञाता छिपे हुए या दुर्लभ हैं।

आज यह आवश्यकता है कि उपलब्ध एवं कृच्छ्रोपलब्ध वैदिक ग्रन्थोंको समझनेके लिये विचारक्षम साम्प्रदायिक अध्येताओंको ढूँढ़कर उनके सहयोगसे विधेय दृष्टिके उन्मेषके लिये भी यथोचित प्रयास किया जाय। जिससे आयुर्वेदका वेदत्व स्पष्टतया परिस्फुट, विलुप्त परम्पराका पुनरुज्जीवन हो सके और उत्तम आरोग्य-प्राप्तिकी लुप्त पद्धतियोंका प्रकाश हो सके।

'जीवेम शरदः शतम्'

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, आयुर्वेद-वाचस्पति)

मनुष्यकी आकाङ्क्षा वार्धक्यसे दूर रहकर दीर्घायु प्राप्त करनेकी आदिकालसे बलवती रही है। शतायु बननेकी कामना वेदोंमें निम्नलिखितरूपसे की गयी है—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (यजुर्वेद ३६।२४)

अर्थात् 'हम सौ वर्षोंतक देखें, सौ वर्षोंतक जीयें, सौ वर्षोंतक सुनें, सौ वर्षोंतक हमारी वाक्-शक्ति बनी रहे, सौ वर्षोंतक हम स्वावलम्बी बने रहें अर्थात् किसीके आश्रित न होकर जीवित रहें।'

भारतीय दर्शनमें जीवनके चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये मनुष्यका स्वस्थ एवं दीर्घायु होना आवश्यक माना गया है। इसी कारण चरकसंहिताका प्रारम्भ भी दीर्घजीवितीय नामक अध्यायसे किया गया है।

आचार्य सुश्रुतने सत्तर वर्षके बादकी अवस्थाको वृद्धावस्था माना है। उनका कहना है कि सत्तर वर्षकी उम्रके उपरान्त मानवके धातु, इन्द्रिय-बल तथा वीर्य (पराक्रम) दिन-प्रतिदिन क्षीण होने लगते हैं। मुखपर झुर्रियोंके आने, सिरके बालोंके पकने, श्वास-कास आदि रोग तथा शारीरिक क्रियाओंमें असमर्थता होनेसे बुढ़ापा परिलक्षित होने लगता है। यद्यपि भूख, प्यास, मृत्यु और नींदकी तरह जरा स्वाभाविक विकार है, पर समयसे पहले आनेवाला बुढ़ापा शतायु होनेमें सबसे बड़ा बाधक है। आयुर्वेदीय संहिताओंमें असामयिक बुढ़ापा आनेके कारणोंमें ऋतु, काल, प्रकृति तथा शास्त्रविरुद्ध भोजन, लगातार अत्यधिक परिश्रम, दिनमें अधिक शयन, विषय-भोगका अति सेवन, नशीले पदार्थोंका उपयोग, पचनेके पूर्व फिर भोजन, रात्रिमें भूखे पेट शयन, अधिक पैदल चलना, अति जागरण, अति भाषण, असंयम तथा चिंता,

भय, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्याका उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त उच्च रक्तचाप, मधुमेह, कैंसर, हृदयरोग, मोटापा, गठिया, श्वासरोग तथा मानसिक विकार बुढ़ापेको शीघ्र लानेके कारण बनते हैं।

वृद्धावस्थाको रोककर शतायु होनेका वर्णन आर्षग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर मिलता है। अमृत, सुधा, सोम तथा रसायन—ये सभी वैदिक ऋषियोंके आविष्कार हैं। देव-वैद्यों (अश्विनीकुमारों)-द्वारा च्यवन तथा कलि और काकशिवम्को वृद्धसे युवा बनाकर उनके मन और शरीरमें नयी चेतनाका संचार किये जानेका प्रमाण प्राप्त होता है। दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये आयुर्वेदके रसायन-तन्त्रमें कुटी-प्रावेशिक (अन्तरङ्ग) तथा वातातपिक (बहिरङ्ग) ये दो पद्धतियाँ बतलायी गयी हैं। रसायनका सेवन करनेसे मनुष्य दीर्घ आयु, स्मरण-शक्ति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, कान्ति, सुन्दर वर्ण, उत्तम स्वर, देहसौष्ठव, नम्रता, वाक्-सिद्धि तथा सौन्दर्य आदि गुणोंको प्राप्त करता है। रसायन-सेवनके पूर्व पञ्चकर्मद्वारा शरीरका शोधन करना आवश्यक है। स्नेहन तथा स्वेदनके उपरान्त वमन, विरेचन, अनुवासन, आस्थापन और नस्य-क्रियाओंवाले पञ्चकर्मको बुढ़ापा टालनेके लिये बहुत कारगर पाया गया है। इससे निश्चित आयुकी तुलनामें जैविक आयु काफी कम हो जाती है। पचास वर्षके व्यक्तिको पञ्चकर्मके अभ्याससे तीस वर्षके स्वस्थ व्यक्तिकी-सी शक्ति तथा स्फूर्तिका अनुभव होता है। पञ्चकर्मसे सम्पूर्ण शरीरका निर्मलीकरण हो जाता है। आयुर्वेदमें वर्णित रसायन औषधियोंमें सामान्यतया आँवला, हरड़, पीपल, तुलसी, ब्राह्मी, अश्वगन्धा, शतावरी, मुलेठी, भिलावा, वचा, गिलोय, पुनर्नवा, सफेद मुसली, सोंठ, शंखपुष्पी, ज्योतिष्मती, रास्ना, जीवन्ती, मण्डूकपर्णी, दालचीनी तथा अष्टवर्ग प्रमुख हैं। धातुओंमें सोना, चाँदी, लोहा, पारा, अभ्रक आदि भस्म दीर्घायु प्राप्त करनेमें उपयोगी रहते हैं।

कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि स्तनधारी प्राणी जिस आयुमें शरीरकी पूर्ण वृद्धि प्राप्त करता है, उससे सात गुना अवधितक वह जीवित रह सकता है। प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक डोनर डकलाके अनुसार मानव-मस्तिष्कके न्यूरोन १५० से २०० वर्षोंतक जीवित रह सकते हैं। मस्तिष्कमें १० अरबसे अधिक न्यूरोन होते हैं। प्रत्येकका अपना विद्युत् आवेग होता है। यदि मनुष्यके शरीरको क्षीण करनेवाले कारणोंको रोक लिया जाय तो यौवनको अधिक कालतक बनाये रखकर आयु बढ़ायी जा सकती है। मस्तिष्कमें स्थित पिट्यूटरी ग्रन्थि भी एक ऐसा हारमोन तैयार करती है, जिससे प्रभावित होकर शरीर प्राणवायुके उपयोगको कम करने लगता है, फलस्वरूप अनेक कोशिकाएँ मरने लगती हैं। इसे 'मृत्युहारमोन' भी कहते हैं। इस विशेष हारमोनके निर्माणपर अंकुश लगाकर जीवनकालको बढ़ाया जा सकता है।

छोटे प्राणियोंकी हृदयगति बहुत अधिक होनेसे वे कुछ ही समयतक जीवित रहते हैं, जबकि धीमी गतिवाले प्राणियोंकी आयु ज्यादा होती है। प्रयोगोंद्वारा ज्ञात हुआ है कि हृदयकी धड़कन-संख्या घटा देनेपर प्राणीकी आयु बढ़ जाती है। इसके लिये प्राणायाम और अन्य यौगिक क्रियाएँ सार्थक पायी गयी हैं।

सदाचारयुक्त जीवनका लम्बी आयुसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। आयुर्वेदमें वर्णित आचार और रसायन-सेवनसे शरीर तथा मानसिक भावोंकी शुद्धि होती है। आचार-रसायनके अनुसार सत्य बोलने, क्रोध न करने, मद्यपान और विषय-भोगसे दूर रहने, प्रिय बोलने, शान्त रहने, पवित्रता रखने, हिंसा न करने, तपस्वी जीवन व्यतीत करने, पूज्योंकी सेवा करनेवाले तथा धैर्यवान् और दानशील व्यक्ति दीर्घायु प्राप्त करते हैं। संतुलित नींद लेनेवाला, दयाभाव रखनेवाला, देश-कालके अनुसार दिनचर्या रखनेवाला, अहंकाररहित, जितेन्द्रिय और धर्मपरायण मनुष्य सदैव बुढ़ापेसे दूर रहकर पूर्णायु प्राप्त करता है।

सौ वर्षकी आयु प्राप्त करनेके लिये आयुर्वेदमें निम्न सूत्रका वर्णन किया गया है—

वामशायी द्विभुञ्जानः षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्पमैथुनकारी च शतवर्षाणि जीवति॥

अर्थात् बायीं करवट सोनेवाला, दो बार (२४ घंटेमें) भोजन करनेवाला, दिन-रातमें छः बार मूत्रत्याग तथा दो बार मलत्याग करनेवाला और आवश्यक होनेपर अल्पमात्रामें विषयोंका सेवन करनेवाला व्यक्ति सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। आचार्य चरकके अनुसार—

षट्त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः।
जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा सम्मतः सताम्॥

(चरक० सू० २७। ३४८)

अर्थात् हितकारी आहार-विहार करनेवाले, जितेन्द्रिय पुरुष सज्जनोंसे प्रशंसा प्राप्त करते हुए रोगरहित होकर ३६ हजार रात्रि (दिन)-तक अर्थात् सौ वर्षोंतक जीवित रहते हैं।

शतायु होनेमें आहारकी प्रमुख भूमिका है। हितकारी, सात्त्विक तथा नियन्त्रित आहार दीर्घ जीवन प्रदान करता है। पोषक तत्त्वोंसे भरपूर, कम परिमाणमें भोजन करना गुणकारी है। अमरीकाकी 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजिंग' के अनुसार भोजनमें तीससे सत्तर प्रतिशततककी ली गयी भी खाद्य वस्तु उत्तम स्वास्थ्य और आयुवर्धनमें सहायक है। फलाहार कोशिकाओंकी धातु-पाक-क्रियामें वृद्धि करते हुए शरीरको घातक रोगोंसे बचाकर आयुमें बढ़ोत्तरी करता है। अनेक खोजोंके अनुसार बुढ़ापेमें विटामिन-सी तथा 'ई' का सेवन शरीरमें रोगके प्रतिरोधकी क्षमता उत्पन्न कर दीर्घायु प्रदान करता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालयके वैज्ञानिक एल० वालफोर्डके अनुसार—भोजनपर नियन्त्रण रखकर कम कैलोरीका प्रयोग करके हम अधिक समयतक युवा रह सकते हैं। नियत समयपर किया गया भोजन आरोग्यवर्धक तथा सर्वोत्तम माना गया है। युक्तिपूर्वक किया गया भोजन आयुवर्धक तथा अयुक्तिपूर्वक किया गया भोजन आयुनाशक होता है।

रोगोंसे बचकर चिरजीवी होनेके लिये व्यायाम उत्तम साधन है। खुली हवामें किया गया व्यायाम पेशी तथा नाडी-तन्त्रको मजबूत करके तनावमुक्त करनेमें सहायक है। विश्व-स्वास्थ्य-संगठनकी रिपोर्टके अनुसार इस समय व्यायाम और परिश्रम करनेवाले जापानियोंकी औसत आयु विश्वमें सर्वाधिक है। नियत परिमाणमें नित्य किया जानेवाला व्यायाम हमारे रक्तमें सुरक्षा-तन्त्रकी कोशिकाओंके बलमें अपार वृद्धि करता है। वैज्ञानिकोंके अनुसार हमारे खूनमें कैंसर-कोशिकाएँ बनती-बिगड़ती रहती हैं तथा रोगोत्पत्तिका स्थान तलाश करती हैं। व्यायामसे हमारी सुरक्षा-प्रणाली सक्रिय होकर कैंसर-कोशिकाओंपर नियन्त्रण कर लेती हैं। व्यायाम सर्दी, गर्मी और प्रतिकूल वातावरणसे भी शरीरकी रक्षा करता है।

आयुर्वेदमें मनके प्रतिकूल परिस्थितियोंको शीघ्र बुढ़ापा लानेका कारण माना गया है। मानसिक तनाव उच्च-रक्तचाप, हृदयरोग, सिरदर्द, संधिशूल, उदररोग, अवसाद आदि बहुत-सी व्याधियोंको जन्म देता है। क्रोध तथा तनावमें एड्रीनल ग्रन्थिसे एड्रीनलीनके साथ-साथ स्रवित होनेवाले हारमोन ग्लूको कार्टिकोइड्स स्मरण-शक्तिको दुर्बल करते हैं तथा बुढ़ापा आनेकी प्रक्रियाको तेज कर देते हैं। शाकाहारके सेवनसे, सात्त्विक विचारवाले ग्रन्थोंकेअध्ययनसे तथा भगवच्चिन्तन-ध्यान करनेसे मनुष्य तनावमुक्त रह सकता है। डॉक्टर वालेसके अनुसार 'भावातीत ध्यान' से आठ घंटेमें प्राप्त होनेवाला विश्राम मात्र बीस मिनटमें ही प्राप्त हो जाता है। यह ध्यान हृदयकी गति तथा मानसिक तनावको भी कम करता है। डॉक्टर जोविंगके मतानुसार योगसाधनासे प्लाज्मा कोर्टिसोल तथा प्लाज्मा प्रोलेक्टिनकी मात्रा घटायी जा सकती है, जिससे बुढ़ापा दूर रहता है। तनावमुक्त और विनोदपूर्ण जीवन बूढ़ोंको भी जवान बनाये रखता है।

आचार्य चरकने **'आमलकं वयःस्थापनानां श्रेष्ठम्'** कहकर यौवनको स्थिर रखनेवाले पदार्थोंमें आँवलेको सर्वोत्तम माना है। यह हृदय तथा नाडी-संस्थानके लिये पौष्टिक फल है। इसमें स्थित भरपूर विटामिन-सी दिलके दौरोंसे शरीरकी रक्षा करता है। आँवलेके नित्य सेवनसे धमनियोंमें कठोरता नहीं आती, फलस्वरूप व्यक्तिकी आयु लम्बी होती है। आँवलेसे निर्मित च्यवनप्राशका सेवन करके वृद्ध महर्षि च्यवन युवा बन गये थे। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें दीर्घ आयु प्रदान करनेवाली सैकड़ों वनस्पतियों तथा कल्पों और रसायन-विधियोंका विस्तृत वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त शुद्ध वायु, शुद्ध जल, नित्य स्नान, स्वच्छता, उपवास, प्राणायाम और विनम्रताको अपनाकर जीवन व्यतीत करनेवाला यथार्थवादी व्यक्ति दीर्घजीवी होता है। इतना ही नहीं, उसका अन्तःकरण भी निर्मल रहता है और उसका जीवन सत्साधनामय हो जाता है।

आयुर्वेद और मृत्यु-विचार

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

प्रसिद्ध प्राचीन आयुर्वेद-ग्रन्थ 'भावप्रकाश'के प्रणेता आचार्य भावमिश्रने ग्रन्थके आरम्भमें ही आयुर्वेदके उत्पत्तिक्रम एवं उसके प्रवक्ताओंका वर्णन करते हुए लिखा है कि सर्वप्रथम विश्वविधाता ब्रह्माने अथर्ववेदके सर्वस्व-स्वरूप आयुर्वेदतन्त्रको प्रकाशित किया और अपने नामसे अतिशय सरल एक लाख श्लोकोंकी 'ब्रह्मसंहिता' नामक आयुर्वेदशास्त्रकी रचना की। तदनन्तर उन्होंने इस आयुर्वेदशास्त्रकी शिक्षा दक्ष प्रजापतिको दी। पुन: दक्षने इसे स्वर्गके वैद्यके रूपमें प्रतिष्ठित दोनों अश्विनीकुमारोंको सिखाया। दक्षसे आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त कर अश्विनीकुमारोंने स्वतन्त्र 'आयुर्वेदसंहिता' की रचना की और फिर उसकी शिक्षा उन्होंने इन्द्रको प्रदान की। इन्द्रने अश्विनीकुमारोंसे आयुर्वेदशास्त्रका अध्ययन कर उसका ज्ञान आत्रेय आदि अनेक मुनियोंको कराया।

मुनि आत्रेय आयुर्वेद पढ़ने स्वयं इन्द्रके पास गये थे। इन्द्रसे उन्होंने साङ्गोपाङ्ग आयुर्वेदका अध्ययन किया था। तत्पश्चात् उन्होंने 'आत्रेयसंहिता' नामसे स्वतन्त्र आयुर्वेद-ग्रन्थका प्रणयन किया। तदनन्तर क्रमश:—अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि और हारीतको आयुर्वेदतन्त्रकी शिक्षा दी। इन मुनियोंमें अग्निवेश आयुर्वेदतन्त्रके प्रथम कर्ता और प्रवक्ताके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। उसके बाद भेल आदि मुनियोंने भी अपने-अपने आयुर्वेदतन्त्रकी रचना की और उसे अपने गुरु आत्रेय मुनिको सुनाया। वे अपने शिष्योंद्वारा रचित आयुर्वेदतन्त्रको सुनकर हर्षित हुए। अन्य मुनियों और देवताओंने भी उनके आयुर्वेदतन्त्रकी प्रशंसा की।

एक बार हिमालयके पास भरद्वाज आदि अनेक मुनि पधारे। पधारनेवालोंमें भरद्वाज मुनि सर्वप्रथम थे। सबके परामर्शानुसार रोगजनित मृत्युके भयसे मुक्तिका उपाय जाननेके लिये भरद्वाज इन्द्रके पास गये। उनसे उन्होंने साङ्गोपाङ्ग आयुर्वेदका अध्ययन किया। तदनन्तर उन्होंने सभी देहधारियोंको हजार वर्ष नीरोग जीवन जीनेकी विधि बतायी।

इन्द्रके अंशभूत शेष नामके मुनि पृथिवीवासियोंके कुशल-क्षेमकी जिज्ञासा और अनामयपृच्छाके निमित्त चरकी तरह गुप्तरूपसे धरतीपर आये, जहाँ उन्होंने रोगसे मरते हुए लोगोंको देखा। तब रोगोंके उपशमनके लिये आत्रेय मुनिके अग्निवेश आदि शिष्योंद्वारा रचित आयुर्वेदतन्त्रका संस्कार करके एक स्वतन्त्र आयुर्वेद-ग्रन्थकी रचना की, जो 'चरकसंहिता' नामसे प्रसिद्ध हुई। शेष नामक मुनि चरकी भाँति धरतीपर आये थे, इसलिये वे आचार्य चरकके नामसे विख्यात हुए।

एक बार इन्द्रकी दृष्टि धरतीपर पड़ी, जहाँ उन्होंने व्याधि-पीडित और मृत्युभयसे आक्रान्त लोगोंको देखा। दयासे द्रवित होकर उन्होंने आयुर्वेदके आदिदेवके रूपमें लोकपूजित धन्वन्तरिको पृथ्वीपर भेजा। इन्द्रकी आज्ञासे धन्वन्तरि काशीके दिवोदास राजाके रूपमें अवतीर्ण हुए, जिन्होंने इन्द्रसे आयुर्वेद पढ़कर उसे लोकजीवोंके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये धरतीपर प्रकट किया। काशिराज नामसे प्रसिद्ध धन्वन्तरिने अपने नामसे 'धन्वन्तरिसंहिता' का निर्माण किया और उसकी शिक्षा लोगोंको दी।

विश्वामित्रने अपने पुत्र सुश्रुतको काशिराजके पास आयुर्वेद पढ़नेके लिये भेजा। सुश्रुतने काशिराजसे निवेदन किया कि रोगसे पीडित लोगोंको रोते और मरते देखकर मैं व्यथित हूँ, इसलिये आप मुझे आयुर्वेद पढ़ाइये। काशिराजने यत्नपूर्वक सुश्रुतको आयुर्वेदका ज्ञान प्रदान किया। अध्ययनके बाद सुश्रुतने भी स्वतन्त्ररूपसे आयुर्वेद-ग्रन्थकी रचना की, जो 'सुश्रुतसंहिता' नामसे प्रसिद्ध हुई। सुश्रुतके अतिरिक्त उनके सहाध्यायी मित्रोंने भी अपने-अपने नामसे आयुर्वेदतन्त्रका प्रणयन किया।

आयुर्वेदके प्रवर्तकों और प्रवक्ताओंके इस विवरणसे यह स्पष्ट है कि रोगसे होनेवाली मृत्युसे बचनेके लिये ही आयुर्वेदशास्त्रकी सृष्टि की गयी। भावमिश्रने रोगोंके अनिष्टकारी कार्योंका आकलन करते हुए उन्हें प्राणहारी कहा है। मूल श्लोक इस प्रकार है—

रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहरा
दुष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः।

धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बलात्
प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम्॥

(भावप्रकाश—आयुर्वेदप्रवक्तृ-प्रादुर्भावप्रकरण, श्लोक ४५)

अर्थात् रोग शरीरको कृश करते हैं, बलका क्षय करते हैं, देहकी सक्रियताका हरण करते हैं, दोषयुक्त वे रोग इन्द्रियोंकी शक्तिका भी विनाश करते हैं और सारे अङ्गोंको पीडा देते हैं। सबसे बढ़कर तो यह कि रोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंकी प्राप्तिमें महाविघ्न-स्वरूप हैं और शीघ्र ही बलपूर्वक प्राण हर लेते हैं। यदि इस प्रकारके रोग शरीरमें विद्यमान हैं तो फिर प्राणियोंका कल्याण कैसे सम्भव है?

भावमिश्रने आयुर्वेदके लक्षणोंका निर्देश करते हुए लिखा है—

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते॥

(भावप्रकाश—आयुर्वेदप्रवक्तृप्रादुर्भावप्रकरण, श्लोक ३)

अर्थात् आयुकी रक्षाके लिये हितकारी एवं अहितकारी तत्त्वोंके ज्ञानके साथ रोगोंका निदान और उनका शमन जिस तन्त्र या शास्त्रसे विद्वानोंद्वारा जाना जाता है, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

पुनः 'आयुर्वेद' शब्दकी निरुक्तिके संदर्भमें भावमिश्र लिखते हैं—

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः॥

(भावप्रकाश—आयुर्वेदप्रवक्तृप्रादुर्भावप्रकरण, श्लोक ४)

अर्थात् जिस शास्त्रसे पुरुष आयु-लाभ करता है और आयुके बारेमें भी जानता है, उसे ही मुनिवरोंने आयुर्वेद कहा है।

वैद्यकर्मका निर्देश करते हुए भावमिश्रने लिखा है—

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥

(भावप्रकाश—मिश्रप्रकरण, मिश्रवर्ग, श्लोक ५३)

अर्थात् रोगोंका तत्त्व-परिज्ञान करना यानी सम्यक् परिचय प्राप्त करना और रोगजनित वेदनाका शमन करना ही वैद्यका वैद्यत्व है, वैद्य आयुका स्वामी नहीं है। तात्पर्य यह कि वैद्य रोगीकी पीडा दूर कर सकता है, आयुकी रक्षा नहीं कर सकता।

इस अर्थके अनुसार वैद्य जब आयुकी रक्षा नहीं कर सकता, तब समग्र आयुर्वेदशास्त्रकी ही व्यर्थता सिद्ध हो जायगी और '**अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति**' यह निरुक्ति भी निरर्थक हो जायगी। इसलिये इस संदर्भके सही अर्थके निमित्त वैद्यकर्म-निर्देशविषयक उक्त श्लोकके चतुर्थ चरणमें प्रयुक्त '**न**' का अन्वय इस प्रकार होगा—'**एतदेव वैद्यस्य वैद्यत्वं न, किंतु वैद्य आयुषोऽपि प्रभुः।**' अर्थात् वैद्यका वैद्यत्व यही नहीं है, अपितु वैद्य आयुका भी स्वामी है।

इसपर यह प्रश्न उठता है कि यदि वैद्य आयुका स्वामी हो जायगा, तब तो मनुष्य मरेगा ही नहीं, वह अमर हो जायगा, जब कि मनुष्यकी अमरता मृत्युलोकके नियमके विपरीत है। इसका समाधान करते हुए 'सुश्रुतसंहिता'में धन्वन्तरि कहते हैं—

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः॥

(भावप्रकाश—विवृतिश्लोक संग्रह ६ में 'सुश्रुतसंहिता' से उद्धृत)

अर्थात् अथर्ववेदोक्त आयुर्वेदके तत्त्वज्ञाता पुरुषके कथनानुसार मृत्युकी संख्या एक सौ एक है। इनमें एक मृत्यु कालमृत्यु है शेष सौ मृत्युएँ आगन्तुक हैं।

चिकित्सा करनेवाला वैद्य चिकित्साद्वारा इन्हीं सौ प्रकारकी आगन्तुक मृत्युओंसे मनुष्यको बचाता है।

आयुके अन्तमें शरीरका जो संहारकर्ता होता है, उसे ही काल कहते हैं। कालमृत्युको किसी भी उपायसे टाला नहीं जा सकता। श्लोक-प्रयुक्त '**कालसंयुक्तः**' का अर्थ है—कालके द्वारा संहारके लिये नियुक्त। इसलिये कालमृत्यु अवश्यम्भावी है। शेष सौ मृत्युएँ चूँकि आगन्तुक हैं, इसलिये इनके निवारणमें आयुर्वेद समर्थ है और इसी हेतु आयुर्वेदशास्त्रकी सृष्टि हुई।

आयुर्वेदमें आगन्तुक मृत्युके जो कारण बताये गये हैं, उनमें प्रमुख हैं—विषभक्षण करना और अजीर्ण जो पच न सके यानी अधिक भोजन करना तथा दूषित स्थानोंका जल पीना, अपनेसे अधिक बलशाली जीव-जन्तुओंसे लड़ना, विषैले जन्तुओं—साँप, बिच्छू आदिसे खेलना, ऊँचे पेड़ोंकी फुनगीपर चढ़ना, बड़ी-बड़ी नदियोंको तैरकर पार करना, रातमें अकेले राह चलना

या किलेमें घूमना इत्यादि।

ज्ञातव्य है, आयु रहनेपर भी आगन्तुक मृत्यु दुर्निमित्त एवं होनीकी प्रबलताके कारण मनुष्यको मार डालती है। जैसे तेल-बत्ती और लौके रहनेपर भी आँधी दीपकको बुझा देती है।

वैद्य मृत्युके आगन्तुक कारणोंका निवारण कर सकता है, इसलिये रस-रसायनके ज्ञाता वैद्य और मन्त्रवेत्ता पुरोहित यत्नपूर्वक आगन्तुक दोषोंके कारणोंसे राजाकी रक्षा करें। ऐसा 'सुश्रुतसंहिता'में धन्वन्तरिका वचन है—

दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमन्त्रविशारदौ।
रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ॥

निष्कर्ष यह कि आयुर्वेदका अधीती वैद्य या कोई भी चिकित्सक आगन्तुक मृत्युको ही रोक सकता है, कालमृत्युको नहीं। 'माधवनिदान'के अनुसार जो वैद्य 'संनिपातज्वर'की चिकित्सा करता है, वह मृत्युसे लड़ता है। इस संदर्भमें यह पंक्ति स्मरणीय है—

'मृत्युना सह योद्धव्यं संनिपातं चिकित्सता।'

सचमुच रोगकी चिकित्सा करते समय चिकित्सक मृत्युसे जूझता है। यहाँ मृत्युसे तात्पर्य आगन्तुक मृत्युसे ही है।

भावमिश्रने इसी संदर्भमें वैद्योंको निर्देश किया है कि वे चिकित्सा करनेके पूर्व रोगीके दीर्घायु और स्वल्पायु होनेके लक्षणोंका प्रयत्नपूर्वक परीक्षण करें। उसके बाद ही उसकी चिकित्सा करना स्वीकार करें। अन्यथा उनका चिकित्सा-कार्य सफल नहीं हो सकेगा। मूल श्लोक इस प्रकार है—

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः।
तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत्॥

(भावप्रकाश—मिश्रप्रकरण, मिश्रवर्ग, श्लोक ५४)

अर्थात् वैद्य पहले प्रयत्नपूर्वक रोगीकी आयुका परीक्षण करे। आयु बड़ी रहनेपर ही चिकित्सा सफल हो सकती है।

आयुर्वेद मूलतः आयुर्विज्ञान है, जिसका सीधा सम्बन्ध शरीरसे है। शरीर ही जीता और मरता है। इसलिये आयुर्वेदशास्त्रमें आयु और मृत्युका विचार शरीराश्रित है।

आयुर्वेदीय निदानकी अनूठी पद्धति—नाडी-परीक्षा

(वैद्य श्रीगोविन्दप्रसादजी उपाध्याय, विभागाध्यक्ष रोगनिदान विज्ञान विभाग, आयुर्वेद महाविद्यालय, नागपुर)

आयुर्वेदमें व्याधि-निदानको बहुत महत्त्व दिया गया है। आचार्योंका स्पष्ट निर्देश है कि पहले रोगका ज्ञान करे, तदनन्तर अपने पास उपलब्ध औषधिका ज्ञान करे, तब उपचार प्रारम्भ करना चाहिये—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥

(चरकसंहिता)

आयुर्वेदशास्त्रमें रोगनिदानके लिये रोगकी परीक्षा है और रोग-परीक्षणके माध्यमसे अनेक साधन बताये गये हैं, जिनमें अन्यतम है नाडी-परीक्षा।

विश्वकी सभी चिकित्सा-पद्धतियोंमें रोगीकी परीक्षाके क्रममें नाडीकी परीक्षाका विधान है, किंतु जितना व्यापक विचार नाडी-परीक्षाके संदर्भमें आयुर्वेदने किया है, उतना अन्य किसी भी चिकित्सा-पद्धतिमें नहीं किया गया है। आयुर्वेदमें नाडी-परीक्षा रोगनिदानकी पर्याय बन चुकी है। किसी वैद्यके पास रोगी आता है तो बिना अधिक चर्चा किये वह नाडीकी परीक्षा-हेतु अपना हाथ आगे बढ़ा देता है और अपेक्षा रखता है कि वैद्यजी नाडी-परीक्षा करके मेरा सम्पूर्ण निदान कर दें। कुछ ऐसे नाडी-वैद्य भी हुए हैं जो मात्र नाडीकी परीक्षा करके रोगीके लक्षण, व्याधि, परिणाम और आहार-विहारका सत्य-सत्य वर्णन कर देते थे।

वस्तुतः रोगीकी परीक्षाका विधान आयुर्वेदमें अति प्राचीन है और उन परीक्षणोंमें स्पर्श-परीक्षा एक स्वतन्त्र विज्ञान है। स्पर्श-परीक्षाके अन्तर्गत गतिमान् या स्फुरण करनेवाले अङ्गोंका स्पर्श कर परीक्षा करनेका स्पष्ट निर्देश है। इसी क्रममें नाडी-परीक्षा आती है। नाडी-परीक्षाकी व्यापक उपादेयताके कारण यह विज्ञान क्रमशः विकसित होता गया और इसके उपबृंहणमें प्राचीन योगशास्त्र एवं तन्त्र-विज्ञानका भरपूर सहयोग मिला है। रावण तथा कणाद आदि महर्षियोंने नाडीशास्त्रपर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं एवं योगरत्नाकर, शार्ङ्गधर आदिने

सामग्री प्रस्तुत की है। रोगीका शरीर व्याधिका आश्रय होता है। रुग्णावस्थामें शरीरके कुछ अङ्गोंमें अनुपेक्षणीय परिवर्तन आते हैं, जिनसे व्याधि-निदान-सम्बन्धी निश्चित संकेत मिलते हैं। आचार्योंने ऐसे आठ स्थानों (भावों)-में नाडी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श, नेत्र एवं आकृतिका वर्णन किया है, जहाँ ये परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं व्यापक स्वरूपके होते हैं—

रोगाक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाडी मूत्रं मलं जिह्वां शब्दस्पर्शदृगाकृती:॥

(योगरत्नाकर)

वैद्यको रोगग्रस्त व्यक्तिके इन आठ अङ्गोंकी परीक्षा करनी चाहिये। इनमें भी नाडी-परीक्षाको प्रथम और अनिवार्यरूपसे प्रत्येक आचार्योंने परिगणित किया है। आयुर्वेदकी परम्पराके अनुसार जो प्रधान होता है, उसका प्रथम उल्लेख किया जाता है। इस आधारपर इन परीक्षाओंमें नाडी-परीक्षा प्रमुख है। अन्य अङ्गोंकी परीक्षा स्थानिक विकृतियों या सीमितरूपसे सर्वाङ्गविकृतियोंको प्रकट करती है, परंतु नाडी-परीक्षाकी उपादेयता बहुत व्यापक है। नाडीके ज्ञानसे यह जान लिया जाता है कि शरीरमें प्राण है या नहीं। हाथके अँगूठेके मूलके नीचे जो नाडी है वह जीवके साक्षी-स्वरूप है। यथा—

करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः॥

(शार्ङ्गधर पूर्वखण्ड ३।१)

नाडीकी परीक्षा-विधि

(Methods of Pulse Examination)

नाडी-परीक्षा एक तान्त्रिक विज्ञान है, अतः उसकी परीक्षाके कुछ सुनिश्चित विधि-विधान हैं, कुछ निषेध हैं। नाडी-परीक्षा-सम्बन्धी साहित्यके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि नाडी-परीक्षा-विधानके तीन पक्ष हैं—(१) चिकित्सक-सम्बन्धी, (२) रोगी-सम्बन्धी और (३) परीक्षा-सम्बन्धी।

चिकित्सक-सम्बन्धी[१] —

(१) चिकित्सकको स्थिरचित्तसे तन्मयताके साथ नाडी-परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् मन तथा बुद्धिकी एकाग्रताके साथ नाडीकी परीक्षा करे।

(२) नाडी-परीक्षा करते समय चिकित्सक सुखासनसे पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर परीक्षण करे।

(३) चिकित्सकद्वारा मद्य-जैसे किसी भी मादक द्रव्यका सेवन करके नाडी-परीक्षा करना निषिद्ध है।

(४) नाडी-परीक्षा करते समय मल-मूत्र आदिका वेग नहीं रहना चाहिये अन्यथा एकाग्रता नहीं बनती है।

(५) धनके लोभी, कामुक चिकित्सक नाडी-परीक्षाद्वारा निदान करनेमें असमर्थ रहते हैं अर्थात् लोभ तथा काम-वासनासे रहित होकर नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

(६) चिकित्सकको अपने दायें हाथकी तीन अँगुलियोंद्वारा नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

(७) नाडी-परीक्षामें उतावलापन उचित नहीं है। कम-से-कम दो मिनट नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

रोगी-सम्बन्धी[२] —

(१) रोगीने मल-मूत्र-विसर्जन कर लिया हो अर्थात् मलोंका वेग-विधारण नहीं होना चाहिये।

(२) जब रोगी सुखासनसे बैठा हो, हाथ जानुके अंदर हो या आरामसे लेटा हो, तब परीक्षा करे।

(३) वह भूख-प्याससे पीडित न हो।

(४) तत्काल भोजन नहीं किया हो, सोया न हो, धूपसे न आया हो।

(५) व्यायाम तथा स्नान करनेके तत्काल बाद नाडी-परीक्षा न करे।

(६) व्यवाय (मैथुन) किया हुआ न हो एवं भूखे पेट न हो, मद्यपानरहित हो। उपवास न किया हो और शरीर थका न हो।

(७) काम, क्रोध, शोक, भयग्रस्त, उद्विग्न, चञ्चल-मनवाले रोगीकी नाडी-परीक्षा न करे अथवा

---

१. स्थिरचित्तो निरोगश्च सुखासीनः प्रसन्नधीः। नाडीज्ञानसमर्थः स्यादित्याहुः परमर्षयः॥
पीतमद्यश्चञ्चलात्मा मलमूत्रादिवेगयुत्। नाडीज्ञानेऽसमर्थः स्याल्लोभाक्रान्तश्च कामुकः॥ (नाडीज्ञानतरंगिणी)

२. सद्यःस्नातस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णातपशीलिनः। व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यङ्नाडी न बुध्यते॥ (भावप्रकाश)
भुक्तस्य सद्यःस्नातस्य निद्रितस्योपवासिनः। व्यवायश्रान्तदेहस्य भूतावेशिनि रोदने॥
सुन्दरीणां च संयोगे मद्यपाने मतिभ्रमे। अपस्मारश्रान्तदेहे सम्यङ्नाडी न बुध्यते॥ (वसवराजीयम्)
त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः। अन्तर्जानुकरस्थो हि नाडी सम्यक् परीक्षयेत्॥ (नाडीज्ञानतरंगिणी)

उन मनोभावोंको शान्त कर परीक्षा करनी चाहिये।

इन कारणोंसे नाडीकी प्राकृत गतिका यथोचित ज्ञान नहीं हो पाता। '**सम्यङ्नाडी न बुध्यते**' से यही तात्पर्य है कि इन आहार-विहार, मनोभावोंके प्रभावसे नाडीकी स्वाभाविक गतिमें परिवर्तन आ जाता है और शरीर-दोष एवं रोग-सम्बन्धी वास्तविक गतिका ज्ञान नहीं हो पाता।

परीक्षा-सम्बन्धी*—

(१) प्रातः खाली पेट नाडी-परीक्षा करनेकी परम्परा है।

(२) रोगीको आरामसे लिटाकर या बैठाकर नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

(३) बैठे हुए रोगीका कुहनीसे आगेका हाथ वैद्य अपने बायें हाथपर रखे। ऊर्ध्वमुख-मुद्रामें, फिर मणिबन्ध-संधिमें अङ्गुष्ठ-मूलसे एक अंगुल नीचे, तीन अँगुलियोंसे बहिः-प्रकोष्ठीया धमनीका परीक्षण करे। बायें हाथके सहारेके कारण हाथ शिथिल रहता है और नाडीकी गति स्पष्ट मिलती है।

(४) रोगीकी अँगुलियोंको अंदरकी ओर थोड़ा मोड़कर केलेके समान आकार देकर रखना चाहिये।

(५) स्त्रियोंकी बायें हाथकी, पुरुषोंकी दायें हाथकी नाडी देखनेका विधान है। उत्तम तो यह है कि स्त्रियों तथा पुरुषों दोनोंहीकी नाडी दोनों हाथोंमें देखनी चाहिये। अनेक बार दोनों हाथोंकी गतियोंमें परस्पर भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। पुरुषकी पहले दायीं फिर बायीं तथा स्त्रीकी पहले बाँयी फिर दायीं नाडीकी परीक्षा करनी चाहिये।

(६) वैद्यको अपनी तर्जनी, मध्यमा, अनामिका—तीनों अँगुलियोंसे नाडीकी परीक्षा करनी चाहिये। एक-एक अँगुली उठाकर फिर थोड़ा दबाव डालकर गति देखनी चाहिये।

(७) मणिबन्धकी नाडी-गतिमें भ्रम या अस्पष्टता-सी स्थिति हो तो अन्य स्थानकी नाडी देखनी चाहिये और उनका परस्पर समन्वय करके देखना चाहिये।

(८) परीक्षण-हेतु रखी अँगुलियोंको उठाकर पुनः नाडीपर थोड़ा दबाव डालते हुए तीन बार परीक्षा करनी चाहिये। अब अंशांश दोष-विकृतिका या व्याधिका विनिश्चय करना चाहिये।

दोषानुसार नाडीकी गति—

आयुर्वेदने स्वास्थ्य एवं रोग—इन दोनोंके लिये क्रमशः दोषोंकी साम्यता एवं वैषम्यको उत्तरदायी माना है। दोषोंकी तीन अवस्थाएँ हैं—(१) वृद्धि, (२) क्षय एवं (३) साम्यता या समावस्था। इनमें समावस्था स्वास्थ्यके लिये और वृद्धि तथा क्षय-अवस्थाएँ रोगके लिये कारणीभूत होती हैं। अन्य शारीरिक क्रियाओंके साथ-साथ नाडीगतिमें भी इन दोषोंकी अवस्थाओंका प्रभाव पड़ता है—

दोषाः प्रवृद्धाः स्वं लिङ्गं दर्शयन्ति यथाबलम्।
क्षीणा जहति स्वं लिङ्गं समाः स्वं कर्म कुर्वते॥

अर्थात् प्रवृद्ध दोष अपने कार्योंको, गुणोंको प्रवृद्ध करते हैं तथा क्षीण हुए दोष अपने कार्यों, गुणोंको कम करते हैं, घटाते हैं तथा सममात्रामें रहनेपर वे अपने निर्धारित कार्योंको सम्पन्न करते हैं। ठीक इसी प्रकार नाडीमें इन दोषोंकी स्थितियाँ मिलती हैं अर्थात् प्रवृद्ध दोष नाडीमें अपनी प्रव्यक्तता और भी अधिक व्यक्त करते हैं तथा क्षीण दोष अपने स्थान, प्रव्यक्तता एवं गतिमें—ह्रास (कमी) प्रकट करते हैं। जब कि समावस्थामें दोष अपनी निर्धारित गति एवं स्थानपर उपलब्ध होते हैं। जैसा कि शास्त्रोंने उल्लिखित किया है कि तर्जनीके नीचे वायु, मध्यमाके नीचे पित्त और अनामिकाके नीचे कफकी नाडी प्रव्यक्त होती है—

वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले।
पित्ते व्यक्ताऽथ मध्यायां तृतीयाङ्गुलिका कफे॥

प्रव्यक्ततासे तात्पर्य है कि बिना अधिक दबाव किये नाडीका स्पन्दन किस अँगुली-विशेषके नीचे अधिक उछालके साथ प्रतीत होता है। इस परीक्षामें अँगुलियोंकी स्थिति तथा दबावका विशेष ध्यान रखना चाहिये अर्थात् अँगुली अपने स्थानपर स्थित हो, ऊपर या नीचे न रहे तथा अत्यन्त अल्प दबाव देनेकी अपेक्षा रहती है। अधिक दबाव देनेपर प्रव्यक्तता समझनेमें भ्रम

---

* ईषद्विनम्रकृतकूर्परवामभागे हस्ते प्रसारितसदङ्गुलिसंधिके च।
अङ्गुष्ठमूलपरिपश्चिमभागमध्ये नाडी प्रभातसमये प्रहरं परीक्ष्या॥ (योगरत्नाकर)
एकाङ्गुलं परित्यज्य मणिबन्धे परीक्षयेत्। अधःकरेण निष्पीड्य त्रिभिरङ्गुलिभिर्मुदः॥
लघुवामेन हस्तेन चालम्ब्यातुरकूर्परम्। स्फुरणं नाडिकायास्तु शास्त्रेणानुभवैर्निजैः॥ (नाडी-परीक्षा)
वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमोचयेत्। विमृश्य बहुधा बुद्ध्या रोगव्यक्तिं विनिर्दिशेत्॥ (योगरत्नाकर)

हो सकता है।

गतिके अनुसार दोष-ज्ञान—दोषोंके अनुसार कुछ विशिष्ट गतियोंका वर्णन बड़ी प्रधानताके साथ आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें किया गया है। गति-संख्याकी दृष्टिसे वात-नाडी विषम अर्थात् कभी अल्प, कभी तीव्र तथा कभी मन्द गति मिलती है। पित्तके कारण चपला अर्थात् तीव्र गति एवं कफके कारण स्थिरा या स्तब्धा अर्थात् मन्द गति मिलती है—

वाते वक्रगतिर्नाडी चपला पित्तवाहिनी।
स्थिरा श्लेष्मवती प्रोक्ता सर्वलिङ्गा च सर्वगा॥

(नाडी-परीक्षा)

विशिष्ट नाडी-गतिके सम्बन्धमें विभिन्न प्राणियोंकी गतियोंका उदाहरण देते हुए सभी आचार्योंने दोषानुसार विशिष्ट नाडी-गति स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। उदाहरणोंसे ज्ञात होता है कि ये विशिष्ट नाडी-गतियाँ कितनी सूक्ष्म अनुभूतिपरक हैं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि प्रत्येक व्यक्तिकी अनुभूतियाँ एक-सी होते हुए भी उनकी अभिव्यक्त करनेकी शैली भिन्न होती है, अतएव आचार्योंने बाह्य जगत्के पशु-पक्षियोंके उदाहरण दिये हैं। जिससे जिज्ञासुको बिना किसी भ्रमके उन गतियोंका स्थायी ज्ञान हो सके और सभीकी समझ एक-सी रहे—

वातोद्रेके गतिं कुर्याज्जलौकासर्पयोरिव।
पित्तोद्रेके तु सा नाडी काकमण्डूकयोर्गतिम्।
हंसस्येव कफोद्रेके गतिं पारावतस्य वा॥

(नाडी-परीक्षा)

वायुके अनुसार नाडीकी गति—वायुके विशेषणोंमें वक्रा या वक्रगतिका—ये दो सर्वाधिक उल्लिखित हैं। वक्रा विशिष्टगति अर्थात् रक्तवाहिनीमें अति वक्र विशिष्ट स्वभावकी गति (लहर)-से है। नाडी-परीक्षा करते समय वैद्य अपनी तीनों अँगुलियोंको एक रेखामें रखे। अँगुलियोंके मध्यमें स्थित केन्द्रक जो सर्वाधिक संज्ञावाही होता है, उसे नाडीके बीचोबीच रखना चाहिये और फिर ध्यानपूर्वक देखे कि नाडी-संवहन एक सीधी रेखामें आ रहा है अथवा कभी दायें, कभी बायें अंदरकी ओर या बाहरकी ओर स्पर्श करता हुआ आ रहा है। जैसे सर्पकी गति होती है, यही वक्रता है। दूसरे प्रकारकी वक्रता स्फुरणकी उच्चताके आधारपर हो सकती है, जैसा कि जलौकाकी गतिमें मिलता है।

पित्तानुसार नाडीकी गति—चपला, चपलगा, तीव्रा आदि विशेषण पित्त-प्रभावसे प्रवृद्ध नाडीकी गति-संख्याको सूचित करते हैं अर्थात् पित्त-प्रकोपके सर्वसामान्य परिवर्तनोंमें प्रति मिनट नाडीकी गति-संख्यामें वृद्धि अवश्यम्भावी है, जब कि स्फुलिङ्ग, काक-मण्डूक आदि जीवोंकी गतिके उदाहरण विशिष्ट स्वभाववाली गतियोंके लिये है। ये सभी जन्तु उछल-उछल कर चलते हैं अर्थात् इनका एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेके मध्य अन्तराल रहता है। इस प्रकार पित्तकी नाडी तय करनेके लिये दो प्रमुख आधार बनते हैं—(१) स्पन्दनकी उच्चता और (२) एक स्पन्दनसे दूसरे स्पन्दनके बीचमें निर्मित होनेवाला अन्तराल। इन आधारोंपर कह सकते हैं कि पित्तकी नाडी तीव्रगति, उच्चस्पन्दनयुक्त एवं अन्तरालके साथ उछलती हुई चलती है।

कफके अनुसार नाडीकी गति—स्थिरा, स्तिमितता, स्तब्धा, प्रसन्ना आदि विशेषण कफ-नाडीके संदर्भमें मिलते हैं। स्थिरा तथा स्तब्धासे तात्पर्य नाडीकी गति-संख्याकी कमी तथा नियमितता है। स्तिमितता या चिपचिपापन कफके अतिरिक्त आम, अजीर्ण-जैसी अन्य अवस्थाओंमें भी मिलता है। प्रसन्नासे तात्पर्य यह है कि नाडी पूर्ण और एक-सी गतिसे चलती हुई मिलती है।

विशिष्ट गतियोंके संदर्भमें हंस, कबूतर तथा हाथीकी गतियोंका उदाहरण दिया जाता है। ये सभी आरामसे बिना उतावलेपनके चलते हैं। कफके प्रभावसे भी नाडी बिना अकुलाहटके आरामसे चलती है।

रोगोंके अनुसार नाडीकी गति—रोगोंका ज्ञान होना नाडीकी परीक्षाका प्रमुख उद्देश्य है। विभिन्न नाडी-परीक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थोंमें अनेक विशिष्ट रोगोंकी विशिष्ट नाडी-गतियाँ वर्णित हैं। व्यवहारमें भी अनेक वैद्यराज नाडी-परीक्षाद्वारा सटीक रोग-निदान करते हैं।

व्याधि-विशेषमें या व्याधिकी विशिष्ट अवस्थाके अनुसार विशिष्ट नाडी-गतियाँ मिलती हैं। जिज्ञासुजन नाडी-ग्रन्थोंका अध्ययन करके इस संदर्भमें ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

असाध्यतासूचक नाडीकी गति—आयुर्वेदके आचार्योंने व्याधिकी साध्यासाध्यतापर विशेष विचार किया है। रोगका चिकित्साक्रम-निर्धारण एवं परिणाम-ज्ञानके साथ-साथ चिकित्सकके यशकी रक्षा भी प्रमुख उद्देश्य है। असाध्यता एवं अरिष्टसूचक नाडीकी गतियोंका प्रचुर वर्णन नाडी-ग्रन्थोंमें मिलता है।

अनेक प्रकारसे काल-मर्यादाके साथ नाडीकी असाध्यता शास्त्रमें वर्णित है। यथा—प्रहर, ज्वालावधि, सद्योमारक, सार्धप्रहर, एकरात्रि, अहोरात्र, त्रिदिवस, सप्तरात्रि, पक्ष या मास आदि। इनके पीछे ऋषियोंके अलौकिक ज्ञानकी भूमिका रही है। अनेक वैद्योंकी इस प्रकार कालावधिके साथ मृत्यु-घोषणा करने-हेतु ख्याति रही है। साधारणसे दीखते इन लक्षणोंका संयोग और उन्हें पकड़ लेनेका अभ्यास तथा उत्तम नाडी-ज्ञान ही इस प्रकारकी घोषणा करनेकी शक्ति दे सकता है।

यदि नाडी स्पर्शमें बहुत सूक्ष्म (पतली) हो, भिन्न-भिन्न गतियोंके साथ जल्दी-जल्दी चल रही हो, भारसे दबी हुई-सी चले, स्पर्शमें गीली-सी लगे, बार-बार स्पर्श अलभ्य हो जाय अर्थात् रह-रहकर स्पन्दनरहित होती हो तो उसे असाध्यतासूचक मानना चाहिये—

अतिसूक्ष्मा पृथक् शीघ्रा सवेगाभारिताऽर्द्रिका।
भूत्वा भूत्वा म्रियेतैव तदा विद्यादसाध्यताम्।

(नाडी-परीक्षा)

मृत्युसूचक नाडीकी गति—मणिबन्धसंधिके अपने स्थानसे च्युत नाडी निश्चितरूपसे मृत्युसूचक होती है—

'हन्ति स्थानविच्युता'। (नाडी-परीक्षा)

कुछ आचार्योंके मतसे स्थानच्युत नाडियाँ सद्यः मृत्युसूचक होती हैं अर्थात् शीघ्र ही मृत्यु होगी, यह संकेत देती हैं—

'स्थानच्युतिश्च नाडीनां सद्यो मरणहेतवः'॥

नाडीमें बार-बार कम्पन हो रहा हो, पतले धागेके समान सूक्ष्म स्पन्दन मिल रहा हो तथा अँगुलीको स्पर्श करता स्पन्दन अत्यन्त हल्का (अल्प बल) हो तो निश्चित मृत्युसूचक है।

जब शरीरका ताप अधिक हो एवं नाडी स्पर्शमें ठंडी हो और यदि शरीर ठंडा हो, किंतु नाडी स्पर्शमें उष्ण हो तथा अनेक प्रकारकी गतियोंके साथ चलती हो अर्थात् बार-बार जल्दी-जल्दी गति-परिवर्तन हो रहा हो तो वह भी मृत्युसूचक है—

महातापेऽपि शीतत्वं शीतत्वे तापिता सिरा।
नानाविधिगतिर्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः॥

(नाडी-विज्ञान)

इस प्रकार आयुर्वेदीय साहित्यमें नाडी-परीक्षाके संदर्भमें बहुत विस्तारसे उपयोगी वर्णन प्राप्त होते हैं।

नाडी-विज्ञान

(वैद्य श्रीमदनगोपालजी शर्मा, भिषगाचार्य, पूर्व निदेशक, विभागाध्यक्ष-कायचिकित्सा, मौलिक सिद्धान्त राष्ट्रिय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर)

आयुर्वेद अनादि, शाश्वत एवं आयुका विज्ञान है। इसकी उत्पत्ति सृष्टिकी रचनाके साथ हुई। जिन तत्त्वोंसे सृष्टिकी रचना हुई, उन्हीं तत्त्वोंसे ही इसकी उत्पत्ति हुई। रचना एवं क्रियाका सम्पादन शरीरकी प्राकृत एवं विकृत अवस्थापर सम्भव है। ब्रह्माण्डमें स्थित तत्त्वोंसे पञ्चभूतोंद्वारा सारी सृष्टि प्राणिमात्र—जड-चेतन, स्थावर-जङ्गम, खनिज-वनस्पति यावन्मात्र समस्त वस्तुजातिकी रचना हुई है।

आयुर्वेदके मूल स्तम्भ पञ्चमहाभूत ही हैं। शरीरमें वात, पित्त एवं कफके भी इन पाँच भेदोंके आधारपर प्रत्येक दोषके पाँच-पाँच भेद किये गये हैं तथा उनके आधारपर शरीरमें स्थान, गुण एवं कर्मका वर्णन कर इनके प्राकृत कर्म बताये हैं, यही प्राकृत कर्म जब सम रहते हैं तो प्राकृतावस्था अर्थात् स्वस्थता रहती है और इनके विकृत हो जानेपर अप्राकृतावस्था अथवा अस्वस्थता हो जाती है। चिकित्सा-सिद्धान्तमें भी पञ्चमहाभूतोंकी प्रधानता होनेसे जो मूलभूत चिकित्सा है, उसमें क्षीण हुए दोष एवं महाभूतोंकी वृद्धि करना और जो बढ़े हुए हैं उनका ह्रास करना तथा समका पालन करना ही चिकित्सा है।

वात

शरीरस्थ वायु-दोषके शरीरके उत्तमाङ्गसे मूलाधारतक क्रमशः पाँच भेद किये हैं, जो इस प्रकार हैं—

प्राण—मूर्धामें। **उदान**—उर-प्रदेशमें। **समान**—कोष्ठमें। **व्यान**—सर्वशरीरमें। **अपान**—मूलाधारमें।

—इनमें महाभूतोंकी अधिकताको यदि लें तो प्राणवायु आकाश महाभूत-प्रधान, उदान अप् महाभूत-प्रधान, समान तैजस महाभूत-प्रधान, व्यान वायु महाभूत-प्रधान तथा अपान पृथ्वी महाभूत-प्रधान हैं।

पित्त

शरीरके उत्तमाङ्गसे अधोभागतक महाभूतोंकी प्रधानतासे पाँच भेद किये गये हैं, जैसे—

आलोचक—नेत्र, तैजस महाभूत-प्रधान।
साधक—हृदय, आकाश महाभूत-प्रधान।
पाचक—कोष्ठ, पृथ्वी तत्त्व-प्रधान।
रंजक—यकृत्, प्लीहा, अप् महाभूत-प्रधान।

भ्राजक—सर्वशरीरगत त्वक् वायु महाभूत-प्रधान।

कफ

इसी प्रकार कफके भी पाँच रूप-भेद हैं—

बोधक—जिह्वामें, तैजस महाभूत-प्रधान।

क्लेदक—आमाशयमें, अप् महाभूत-प्रधान।

अवलम्बक—हृदयमें, पृथ्वी महाभूत-प्रधान।

तर्पक—इन्द्रियोंमें, आकाश महाभूत-प्रधान।

श्लेषक—संधियोंमें, वायु महाभूत-प्रधान।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीरमें सबके स्थान नियत हैं और प्रत्येकके कर्म भी शास्त्रमें वर्णित हैं। नाडी-परीक्षणसे पूर्व इनका ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि नाडी-ज्ञान इनके बिना सम्भव नहीं।

नाडी-ज्ञान-प्रक्रिया
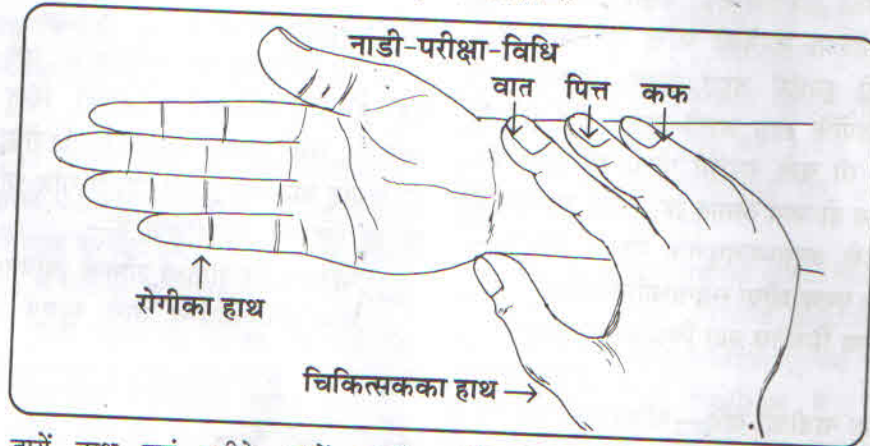
पुरुषके दायें हाथ एवं स्त्रीके बायें हाथके अङ्गुष्ठमूलसे कुछ दूरीपर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका अँगुलियोंको क्रमशः रखकर कूर्पर-संधिको आश्रित न रखते हुए ९० डिग्रीके कोणपर चिकित्सक ध्यानस्थ हो हृदयसे आनेवाले स्पन्दनका अनुभव करे। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिकाके स्पन्दनोंको तरतम-विधिसे ज्ञात करके प्रत्येक अँगुलीके नीचे पाँचों भेदोंको, तर्जनीके नीचे पाँचों वायु, मध्यमाके नीचे पाँचों पित्त तथा अनामिकाके नीचे पाँचों कफका ज्ञान प्राप्त करे और उनके स्थान एवं कर्मका ज्ञान होनेपर उनसे होनेवाले कर्मोंके लक्षणवाली व्याधिका होना सुनिश्चित करे। किसी कर्मको प्रश्नके रूपमें पूछनेपर उसकी यथार्थताका ज्ञान करे। दोष-भेदसे भी नाडी-परीक्षा की जाती है। दोषोंके अंशांशकी वृद्धि (भेद-स्वरूप) तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिकाके स्पर्शमें स्पष्ट तरङ्गित होती है।

नाडी एवं नाडी-ज्ञानद्वारा रोगका ज्ञान प्राप्त करना एक असाधारण कार्य है। इसके लिये विपुल समय, ज्ञान एवं विपुल अनुभवकी अपेक्षा है। यहाँ अत्यन्त सूक्ष्म रूपमें दिशा-निर्देश किया गया है।

बालीमें आयुर्वेद-ग्रन्थके लेखक—श्रीगणेशजी

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

बालीमें मैं उस समय आश्चर्यचकित रह गया जब वहाँके एक ब्राह्मणश्रेष्ठसे, जो केन्द्रीय संसद्में वहाँका प्रतिनिधित्व करते थे, यह पता चला कि इस द्वीपमें ऐसी मान्यता है कि आयुर्वेदीय जड़ी-बूटियोंसे सम्बन्धी ग्रन्थके रचयिता स्वयं श्रीगणेशजी हैं। उन्होंने अपने धार्मिक ग्रन्थोंका उल्लेख करते हुए बताया कि एक बार भगवान् शिव बीमार पड़े तो उन्होंने नवग्रहों या नवदेवोंको बुलाकर अपनी चिकित्सा करनेके लिये कहा, किंतु वे सभी असफल रहे। तब उन्होंने संसारकी सभी जड़ी-बूटियोंको बुलाया और पूछा कि तुम सबमें गुण क्या हैं। सभीने बारी-बारीसे इसका बखान किया। जब यह क्रम चल रहा था तो एक ओर विराजमान श्रीगणेशजी महाराज उसे लिपिबद्ध कर रहे थे, जो अन्तमें एक विशाल ग्रन्थ बन गया, जिसका नाम '**प्रमानतरु**' पड़ा। यहाँके वैद्य

यह पुस्तक अपने पास रखते हैं। यहाँके वैद्योंको प्रायः ज्योतिषका भी ज्ञान रहता है। इन ब्राह्मणश्रेष्ठने मुझे अपने अनुजसे मिलवाया, जो एक वैद्य थे।

इसके अतिरिक्त चीन, थाईलैंड, तिब्बत आदिमें आयुर्वेद अथवा देशी चिकित्सा-पद्धति बहुत लोकप्रिय है। थाईलैंडमें आयुर्वेदका अच्छा महत्त्व है और कुछ अच्छे वैद्य भी लोकप्रिय हैं। थाईलैंड, कम्बोडिया, मलेशिया, इंडोनेशिया आदिमें चिकित्साकी चीन देशकी पद्धति भी बहुत लोकप्रिय है। इसका कारण बड़ी संख्यामें वहाँ चीनियोंका निवासी होना भी है। मुझे चीन तथा थाईलैंड, सिंगापुर, मलेशिया आदिमें यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि वहाँ चीन-वैद्योंके माध्यमसे चीनी चिकित्सा-पद्धति बहुत लोकप्रिय है। जिस तरहसे भारतके बड़े शहरोंके साथ छोटे शहरोंमें भी आयुर्वेदिक दवाओंके बिक्री-केन्द्र कम हुए हैं या आयुर्वेदिक औषधियों, जड़ी-बूटियोंकी दूकानें नाममात्रको रह गयी हैं, वहाँ दूसरी ओर इन देशोंमें चीनियोंकी बड़ी-बड़ी दूकानें अनेक सड़कों और मोहल्लोंमें देखी जा सकती हैं। यहाँ बड़ी मात्रामें जड़ी-बूटियाँ, वन-औषधियों और उनसे बनी दवाइयोंकी बिक्री होती है। इसका अर्थ है कि वहाँके लोगोंका एलोपैथीके प्रचार-प्रसारके बावजूद भी देशी चिकित्सा-पद्धतिके प्रति अत्यधिक लगाव बना हुआ है और वे अनेक छोटे-बड़े रोगोंके लिये उनका सेवन करते हैं।

इधरके कुछ वर्षोंमें भारतीय जड़ी-बूटियों और उनसे बनी दवाओंकी लोकप्रियता बढ़ रही है—यहाँतक कि पश्चिमी देशोंकी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ भी इधर उन्मुख हुई हैं। इसका सबसे बड़ा कारण भारतीय जड़ी-बूटियों और वन-औषधियोंकी कालातीत गुणवत्ता तो है ही, साथ ही एलोपैथीकी तेज दवाओंका जो बुरा प्रभाव मानव-शरीरपर दिखायी पड़ने लगा है, उससे भी उद्विग्न होकर लोग अब सम्पूर्ण आरोग्यकी प्राप्तिके लिये आयुर्वेदीय चिकित्साकी ओर फिरसे मुड़ने लगे हैं। आवश्यकता है आयुर्वेदिक वैद्योंमें अपनी देशी पद्धतिके विषयमें निष्ठा और आस्थाकी तथा साथ ही नित नये अनुसंधानोंकी।

आयुर्वेदका त्रिदोष-सिद्धान्त

(साधु श्रीनवलरामजी रामस्नेही, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम्०ए०)

प्राणी भगवत्प्राप्ति मानव-शरीरसे ही कर सकता है, जिससे दुःखोंका नितान्त अभाव हो जाता है तथा सदाके लिये वह सुखी हो जाता है। मानव-शरीर और सृष्टिकी रचना समान-तत्त्वोंसे हुई है।

सृष्टि-क्रम-प्रयुक्त तत्त्व—इसमें सच्चिदानन्द परमात्मतत्त्व, प्रकृति (जड़), महत्तत्त्व, अहंकार, सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण है।

सत्त्वगुण और रजोगुण तथा अहंकारसे दस इन्द्रियोंकी और मनकी उत्पत्ति हुई। इन्द्रियाँ दस हैं—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा। इनके साथ मनकी भी उत्पत्ति हुई, इस प्रकार ग्यारह हैं। इन इन्द्रियोंमें पूर्वकी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा बादकी पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

सत्त्वगुण अहंकार तथा तमोगुण अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ बनती हैं—१-शब्दतन्मात्रा, २-स्पर्शतन्मात्रा, ३-रूपतन्मात्रा, ४-रसतन्मात्रा तथा ५-गन्धतन्मात्रा।

पञ्चतन्मात्राओंसे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई। पञ्चमहाभूत हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। मानव-शरीर पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित है। पाँच तत्त्वों एवं त्रिदोष (वात, पित्त, कफ)-के सम-अवस्थामें रहनेसे ही शरीर स्वस्थ रहता है।

त्रिदोष—

पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

अर्थात् पित्त पंगु (परतन्त्र) है, कफ पंगु है, मल और धातु भी पंगु हैं। इनको वायु जहाँ ले जाता है, वहीं ये बादलके समान चले जाते हैं। ये वायुके अधीन हैं।

तीनों दोषोंमें वात (वायु) ही बलवान् है, क्योंकि वह शरीरके सभी अवयवोंका विभाग करता है। वह रजोगुण-युक्त है, सूक्ष्म, शीत, रूक्ष, लघु (हल्का) है और चल (गतिशील) है। वह मलाशय, अग्न्याशय,

हृदय, कण्ठ [निकटता होनेसे फुफ्फुसतकमें] तथा समस्त शरीरमें विचरता रहता है। अतएव वायुके पाँच भेद माने जाते हैं और इन स्थानोंमें विचरनेवाले होनेके कारण वायुके क्रमशः पाँच नाम हैं—१-प्राण, २-अपान, ३-समान, ४-उदान और ५-व्यान। यदि ये पाँचों वायु अपनी स्वाभाविक अवस्थामें रहें और अपने-अपने स्थानमें वर्तमान रहें तो अपने-अपने कार्योंको सम्पन्न करते हैं और इन पाँचोंके द्वारा रोगरहित इस शरीरका धारण होता है।

पाँचों प्राणोंके स्थान और कार्य—

१-प्राण—प्राणवायुके स्थान हैं—मस्तक, छाती, कण्ठ, जीभ, मुख, नाक। अपने अवयवोंमें रहकर यह इन्हें अपने कार्योंमें लगाता है। मूर्धामें रहनेवाला वायु मनका नियन्ता तथा प्रणेता है। मनका कार्य-क्षेत्र मस्तिष्क होता है। अतः वहाँ रहनेवाला वात उसपर अपना कार्य करता है। हर्ष और उत्साहका कारण होता है। प्राणवायु मनके ऊपर नियमन करता है और सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने-अपने काममें लगाता है—यह कार्य मनका है। यदि प्राणवायु निकल जाय तो शरीर प्राणशून्य हो जाता है। प्राणवायुसे अन्न शरीरमें जाता है। यह वायु प्राणोंको धारण करता है। नाभिसे चलकर हृदयका स्पर्श करते हुए फुफ्फुस (फेफड़े)-में जाकर जो नाभिसे उठकर श्वास मुखमें आता है, उसे प्राणवायु कहते हैं।

२-अपान—दोनों अण्डकोष, मूत्राशय, मूत्रेन्द्रिय, नाभि, ऊरु, वंक्षण तथा गुदा—ये अपानवायुके स्थान हैं। आँतमें रहनेवाला अपानवायु शुक्र, मूत्र, मल तथा आर्तव और गर्भको बाहर निकालता है, कुपित हुआ अपानवायु शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न करता है। जैसे—आध्मान (अफारा), शूल, मूत्रकृच्छ्र आदि।

३-समान—स्वेद-दोष तथा जल-वहन करनेवाले स्रोतोंमें रहनेवाला और जठराग्निके पार्श्वमें इसका स्थान है। यह समानवायु अग्निके बलको बढ़ानेवाला होता है।

४-उदान—उदानवायुका स्थान नाभि, वक्षःप्रदेश और कण्ठ है। वाणीको निकालना, प्रत्येक कार्यमें यत्न करना, उत्साह बढ़ाना, बल और वर्ण आदिको समुचित रूपमें रखना उदानवायुका कार्य है।

५-व्यान—शीघ्र गमन करनेवाला व्यानवायु मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहता है और इस व्यानवायुका कार्य सर्वदा शरीरमें गति उत्पन्न करना, अङ्गोंको फैलाना, अङ्गोंमें आक्षेपण (खिंचाव)-को उत्पन्न करना, निमेष—पलकोंका खोलना, बंद करना आदि है।

वातके लक्षण (गुण)—

रूक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः।
विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुतः सम्प्रशाम्यति॥

वात रूक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल (चञ्चल), विशद और खर (खुरदरापन)—इन भौतिक गुणोंसे युक्त होता है।

प्राकृतिक वायुके गुणोंके विपरीत—स्निग्ध, उष्ण, गुरु, स्थूल, स्थिर, पिच्छिल (चिपचिपा) और श्लक्ष्ण गुणोंवाले द्रव्योंसे प्रकुपित वायुका शमन होता है। जैसे—घृत-तेल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), पीपलामूल, आँवला, गुग्गुल, सेंधा नमक, मेथी, शिलाजीत, च्यवनप्राश, शतावर, मुलेठी, अष्टवर्ग, मुनक्का, अजवायन, एरंडका तेल आदि।

योगी लोग योग-प्रक्रिया एवं आसन तथा प्राणायामके द्वारा वायुका शमन एवं वात-चिकित्सा करते हैं—

पित्तके गुण, स्थान तथा नाम—

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम्।
कटुतिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत्॥

पित्त उष्ण (गर्म), द्रव (पतला या तरल), पीला, नीला, सत्त्वगुण प्रधान, चरपरा और कड़ुवा है। पित्त जब विकृत हो जाता है तो खट्टा हो जाता है। पित्त पाँच प्रकारका होता है—१-पाचक, २-भ्राजक, ३-रंजक, ४-आलोचक, ५-साधक।

१-पाचक—अग्न्याशयमें जो पित्त है, वह अग्निरूप है और तिलपरिमित है। यह भोजन पचानेका काम करता है।

२-भ्राजक—त्वचामें जो पित्त है, वह शरीरकी कान्तिका उत्पादक, लेप और अभ्यङ्ग (मालिश)-का पाचक या शोषक है।

३-रंजक—यकृत्में जो पित्त है, वह वमनमें दिखलायी पड़ता है एवं रसको रक्त बनाता है।

४-आलोचक—जो पित्त दोनों आँखोंमें है, वह रूपका दर्शन कराता है।

५-साधक—जो पित्त हृदयमें रहता है, वह मेधा (बुद्धि) तथा प्रज्ञा (सोचने-विचारनेकी शक्ति)-का हेतु है।

पित्तके विपरीत गुणोंवाले द्रव्योंके प्रयोगसे इसका शमन होता है। पित्तके विपरीत गुण हैं—पूर्ण स्निग्ध,

शीत, मृदु, सान्द्र, स्थिर, मधुर, तिक्त और कषाय ऐसे द्रव्योंसे पित्तका शमन होता है। आँवला, मुलेठी, द्राक्षा, गन्नेका रस, मिस्री, अनार, चन्दन, कमल, खस तृण, पित्तपापड़ा, परवल, नागकेशर, जामुन, उशीर, नागरमोथा, धनिया, सुगन्धबाला, शतावर, दूर्वारस, नीम, चिरायता, कुटकी, प्रवाल-पिष्टी, मोती-पिष्टी, चाँदी-भस्म, गो-दुग्ध, गुलाब-पुष्प आदि द्रव्य पित्त-शामक हैं।

कफके गुण, स्थान तथा नाम—

कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा।
तमोगुणाधिकः स्वादु विदग्धो लवणो भवेत्॥

कफ स्निग्ध, गुरु, श्वेत, पिच्छिल (चिपचिपा), शीतल, तमोगुणी और मीठा है। जब यह दूषित होता है तो नमकीन हो जाता है। यह पाँच प्रकारका होता है—१-क्लेदन, २-स्नेहन, ३-रसन, ४-अवलम्बन, ५-श्लेष्मक।

कफ आमाशयमें क्लेदन-रूप, सिरके भीतर स्नेहन-रूप, कण्ठमें रसन-रूप तथा हृदयमें अवलम्बन-रूप है। शरीरकी सम्पूर्ण संधियोंमें रहता हुआ यह शरीरमें स्थिरता तथा सामर्थ्य प्रदान करता है। इसका रूप श्लेष्मक है।

कफके विपरीत गुणोंवाले द्रव्योंसे कफका शमन होता है। जैसे लघु, उष्ण, कठिन, रूक्ष, कटु, चल, विशद। यथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, जीरा, सेंधा नमक, काकड़ासिंगी, पुष्कर मूल, जवासा, हरिद्रा (हल्दी), इलायची, अजवायन, गोजिह्वा आदि द्रव्य।

पञ्चकर्म—स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा वस्ति—इन पाँचोंके द्वारा त्रिदोषोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

द्रव्योंके छः रसों (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त)-के द्वारा त्रिदोषोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

उत्पन्न रस	रसोंके उत्पादक महाभूत	शमन होनेवाले दोष	कुपित होने-वाले दोष
१-मधुर	जल, पृथ्वी	वात, पित्त	कफ
२-अम्ल	पृथ्वी, अग्नि	वात	पित्त कफ
३-लवण	जल, अग्नि	वात	पित्त कफ
४-कटु	वायु, अग्नि	कफ	पित्त वात
५-कषाय	वायु, पृथ्वी	पित्त कफ	वात
६-तिक्त	वायु, आकाश	पित्त कफ	वात

स्वस्थकी परिभाषा

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सुश्रुत सू० १५। ४०)

जिस प्राणीके दोष (अर्थात् पाँच प्रकारके वात, पाँच प्रकारके पित्त तथा पाँच प्रकारके कफ) सम हों, अग्नि (जठराग्नि या पाचनशक्ति) सम हो तथा धातु (रसादि सातों धातुएँ), मल (मल, मूत्र तथा स्वेद आदि) तथा क्रिया (सोना, जागना आदि) सम हों, आत्मा, सभी इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न हों, वह स्वस्थ कहा जाता है।

मनुष्य स्वस्थ रहनेपर ही चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी प्राप्ति कर सकता है।

दोषसाम्यमरोगता

(आचार्य श्रीविष्णुदत्तजी अग्रवाल, प्रिन्सिपल ऋषिकुल स्टेट आयुर्वेदिक कॉलेज, हरद्वार)

जीवन-विज्ञानके रूपमें प्रतिष्ठित आयुर्वेदका सिद्धान्त है—'**रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता**' (अष्टा०सू० १। २०) अर्थात् दोषोंका शरीरमें विषमावस्थामें रहना रोग एवं दोषोंकी साम्यावस्थामें स्थित रहना ही आरोग्य है। जो द्रव्य शरीरको दूषित करते हैं, वे दोष कहे जाते हैं। वात-पित्त तथा कफ—ये शारीरिक दोष हैं। इसी प्रकार मनको दूषित करनेवाले दो मानस दोष हैं—रज एवं तम—

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च॥

(च०सू० १। ५७)

शरीररूपी भवनको टिकाये रखनेवाले तीन महास्तम्भोंके रूपमें मानव-देहमें बाल्यावस्थासे वृद्धावस्थापर्यन्त समस्त उपयोगी क्रियाएँ दोषोंके अधीन हैं—'**दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्**' (सु०सू० १५। ३)। इस प्रकार दोष और धातु एवं मलमेंसे दोष ही

क्रियाशील तत्त्व है।

दोष एवं व्याधिका सम्बन्ध—इन दोषोंका व्याधियोंके साथ कार्यकारण-भावसे सम्बन्ध होता है, रोग कार्य है तथा दोष उसका कारण। जिसमें देहकी स्वाभाविक क्रियाएँ कराने एवं इनपर नियन्त्रण रखनेका सामर्थ्य हो, प्रकृति-निर्माणकी क्षमता हो और जिसमें स्वतन्त्रतापूर्वक देहको दूषित करनेकी प्रवृत्ति हो, उसीको दोष कहा जा सकता है। आरोग्यकी अवस्थामें ये दोष प्राकृतरूपमें या संतुलित अवस्थामें रहते हैं और ये तीनों परस्पर विरोधी गुण रखते हुए भी एक-दूसरेके घातक नहीं होते—

विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम्।
दोषाः सहजसात्म्यत्वाद् विषं घोरमहीनिव॥

(च०चि० २६। २९०)

असात्म्य आहार, ऋतुओंमें परिवर्तन, असामान्य आचरण एवं जनपदोद्ध्वंसके कारण दोष कुपित होकर रोगोंको उत्पन्न करते हैं। रोगकी स्थितिमें जो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, वे दो प्रकारके होते हैं*—(१) प्रकृति-समसमवायजन्य एवं (२) विकृति-विषमसमवायजन्य।

प्रकृति-समसमवायकी स्थितिमें रोगोत्पादक दोषके लक्षणोंके तुल्य ही रोगमें लक्षण होते हैं, जैसे वात-व्याधिमें व्यथा, शूल, संकोच, चक्कर आना, कम्पन, मुखवैरस्य, मुखशोष, चञ्चलता आदि। पित्तज व्याधियोंमें उष्णता, दाह, स्वेदाधिक्य, स्राव, लालिमा आदि। कफज व्याधियोंमें शरीरमें भारीपन, श्वेतता (रक्ताल्पता), अजीर्ण, वमन एवं अङ्गोंमें जकड़न आदि लक्षण होते हैं।

विकृति-विषमसमवायकी स्थितिमें रोगोत्पत्ति होना विकृत दोषोंकी संसर्गता धातुओंके साथ होनेका परिणाम है। ऐसी अवस्थामें कुछ लक्षण-दोष एवं धातुओंके सम्मूर्च्छन (जैव रासायनिक संयोग)-के फलस्वरूप होते हैं, जैसे—रोमाञ्च, रोमहर्ष, निद्रानाश, मूर्च्छा, अन्धकार छाना आदि।

महर्षि चरकने रोगोत्पत्ति (च०विमान० अ० ३)-के वर्णनमें यह स्पष्ट किया है कि रोगकी उत्पत्तिका मूल कारण परिग्रह है। संचयकी प्रवृत्तिसे लोभ तत्पश्चात् अभिद्रोहकी उत्पत्ति हुई। अभिद्रोहसे असत्य-भाषण एवं इससे काम, क्रोध, अहंकार, द्वेष, कठोरता, अभिघात, भय, संताप, शोक, चिन्ता, उद्वेग आदिकी प्रवृत्तिके परिणामस्वरूप आहार-विहारके सम्यक् पालनका ह्रास होनेकी प्रवृत्तिसे अग्नि एवं वायुके विकारोंसे ग्रस्त होकर प्राणियोंमें ज्वरादि रोगोंका प्रवेश हुआ और प्राणियोंकी आयुका ह्रास होने लगा।

वात-दोषका प्राधान्य—भारतीय दार्शनिक विचारधाराके अनुसार वायु-तत्त्वको समस्त विश्वकी उत्पत्ति एवं विनाशका मूल हेतु माना गया है।

महर्षि चरकने वायुको जीवन धारण करनेवाला स्वीकार किया है। आकाश महाभूत-प्रधान होनेके कारण इसको सर्वगत एवं स्वयम्भू कहा है। सुश्रुतने वायुको '**सर्वचेष्टासमूहः सर्वशरीरस्पन्दनम्**' कहकर स्पष्ट किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तीनों दोषोंमें प्रधान दोष वायु ही है। कफ एवं पित्त-दोष भी वायुकी गतिसे ही गतिशील होते हैं और प्राकृत एवं विकृतावस्थामें शरीर-धारण एवं रोगके कारण होते हैं—

पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

(शार्ङ्ग० पू० ५। २५)

वात अचिन्त्यवीर्य है अर्थात् इसके द्वारा महाप्राणता उत्पन्न हो जानेपर मनुष्य अलौकिक कार्य सम्पन्न कर सकता है।

विकृत हो जानेपर रोग भी इसके द्वारा सबसे अधिक उत्पन्न होते हैं। प्राकृत वातके प्रभावसे दोष, धातु, अग्नि—इन सबमें सामञ्जस्य बना रहता है। सब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंको ठीकसे ग्रहण करती हैं एवं देहमें होनेवाली सभी प्रकारकी गतियाँ एवं क्रियाएँ अनुकूलरूपमें सम्पन्न होती हैं। '**स्वयंभूरेष**...**करोत्यकुपितोऽनिलः**' (सु०नि० १। ५—१०)

प्राकृत पित्त शरीरमें उष्ण, तीक्ष्ण आदि गुणोंसे युक्त रसरंजन, पाचन, दर्शन, विचारजनन, तेज-उत्पादन, उष्मोत्पत्ति आदि आग्नेय कर्मोंका सम्पादन करता है तथा शौर्य, साहस, अमर्ष, तेज आदि मानस विशेषताओंको जन्म देता है।

प्राकृत श्लेष्मा शरीरमें उपचय या वृद्धिकारक है। शरीरमें प्रत्येक मूर्तिमान् या आकृतियुक्त भावका यह उपादान द्रव्य है एवं उसका संवर्धक है। यह ह्यधातु-

---

* प्रकृतिसमसमवायविकृतिविषमसमवाययोश्चायमर्थः—प्रकृत्या हेतुभूतया समः कारणानुरूपः समवायः कार्यकारणभावसम्बन्धः प्रकृतिसमसमवायः। कारणानुरूपं कार्यमित्यर्थः। विकृत्या हेतुभूतया विषमः कारणाननुरूपः समवायो विकृतिविषमसमवायः। (मा०नि०ज्वर १४ मधुकोष व्याख्या)

पुष्टिके साथ-साथ उसे जीवन-तत्त्व भी प्रदान करता है। रससे शुक्रपर्यन्त प्रायः प्रत्येक देह-धातुका पोषक एवं संवर्धक है, प्रत्येक धातुका मूल जनक—जन्मदाता एवं सारभूत अंश है। इसी अंशको ओज कहा गया है, जो शरीरमें विशेष प्रकारका बल—रोगप्रतिरोधक-क्षमताको जन्म देता है।

दोष एवं क्रिया-काल—क्रिया-कालका अर्थ है चिकित्सा-काल। दोष-वैषम्य एवं रोगोत्पत्तिके मध्य छः अवस्थाओंका वर्णन आयुर्वेदमनीषी सुश्रुतद्वारा किया गया है। यदि दोष-वैषम्यकी स्थितिको रोगोत्पत्तिसे पूर्व पहचान लिया जाय तो समुचित आहार-विहारसे ही रोगोत्पत्तिसे बचा जा सकता है। इसलिये रोगोत्पत्तिसे पूर्वकी दोष-वैषम्यकी स्थितियोंको ही चिकित्सा-कालके रूपमें स्वीकार किया है। ये छः क्रिया-काल इस प्रकार हैं—१-संचय, २-प्रकोप, ३-प्रसर, ४-स्थान-संश्रय, ५-व्यक्त और ६-भेद।

१-संचय—दोष-वैषम्यके तीन कारण हैं—(१) असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग (२) प्रज्ञापराध एवं (३) परिणाम। इन्द्रियोंका अपने विषयोंसे हीनयोग, अतियोग एवं मिथ्यायोगको असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियोंका विषयोंसे समावस्थामें संयोग होनेसे रोग उत्पन्न नहीं होते। धी (बुद्धि), धृति (धारण एवं नियमन-शक्ति) एवं स्मृतिके भ्रंश होनेसे मनुष्य जो अशुभ कर्म करता है, उसे प्रज्ञापराध कहते हैं एवं ऋतुओंके परिवर्तनके परिणामस्वरूप दोष-वैषम्यको परिणाम कहा जाता है। उपर्युक्त कारणोंसे प्रथमतः दोष अपने स्थानमें संचित होते हैं, जैसे श्रोणि एवं गुदामें वात-संचय एवं आमाशय तथा पक्वाशयके मध्य क्षुद्रान्त्रमें पित्त-संचय और आमाशयमें कफ-संचय होता है। इस अवस्थामें वात-संचयसे स्तब्धपूर्ण कोष्ठता अर्थात् उदरमें भारीपन, अधोवायु एवं उद्गारका निग्रह; पित्त-संचयसे मन्दोष्णता तथा पीतावभासता अर्थात् भोजनका पाचन न होना तथा शरीरमें दुर्बलता प्रतीत होना एवं कफ-संचयसे अङ्गोंमें भारीपन, आलस्य तथा विपरीत गुणोंवाले खान-पानके सेवनकी इच्छा होना आदि लक्षण होते हैं। इस स्थितिमें उष्ण जल-सेवन, पाचन एवं लंघन आदि क्रियाओंसे रोगकी अवस्थातक पहुँचनेसे रोका जा सकता है। आगे दोषोंकी गतियाँ बलवान् होनेसे इनका नियमन कठिन होता जाता है—

ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः (सु०सू० २१।३७)।

२-प्रकोप—प्रकोपकी अवस्थामें दोष अपने स्थानसे बाहर निकलकर अन्य धातुओंको दूषित करते हैं। यह प्रकोप विलपनरूपा-वृद्धि है। इस अवस्थामें वात-प्रकोपसे कोष्ठ-तोद-संचरण अर्थात् उदरमें पीडा तथा उदरका फूलना और पित्त-प्रकोपसे अम्लिका, पिपासा, परिदाह अर्थात् खट्टी डकारें, बार-बार प्यास लगना, सारे शरीरमें जलनकी प्रतीति तथा कफ-प्रकोपसे अन्न-द्वेष एवं हृदयोत्क्लेद अर्थात् भोजनमें अरुचि एवं वमन होनेकी प्रतीति आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें साधारण औषधियों—जैसे हींग, अदरक, अजवायन, आमलकी, नीबू, अनार आदि द्रव्योंके सेवनसे ही रोगोंके आगे बढ़नेकी अवस्थाको रोका जा सकता है।

३-प्रसर—ऋतुओंमें परिवर्तन होनेसे दोषोंका संचय एवं प्रकोप होता है। परंतु अनुकूल ऋतुके अनुसार उक्त दोष स्वतः ही प्रशमकी अवस्थामें आ जाते हैं। दोषोंका संचय, प्रकोप, प्रशम—बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, दिन-रात्रि एवं भोजनकी अवस्थाओंपर निर्भर करता है। परंतु प्रकोपकी अवस्थामें अनुचित आहार-विहार-सेवनसे दोष प्रसरावस्थाकी ओर चले जाते हैं। प्रसर वायुके द्वारा होता है एवं इसमें दोष अपने स्थानसे अन्य स्रोतोंमें प्रवेश कर जाते हैं। इसमें दोषोंके साथ स्रोतस्-विकारके लक्षण भी दृष्टिगोचर होते हैं। अनुकूल अवस्था न मिलनेपर ये दोष काफी समयतक स्रोतसोंमें पड़े रह सकते हैं एवं स्रोतसोंमें विकारकी अन्य स्थितियाँ मिलनेपर ये रोग उत्पन्न करते हैं। आहार-विहार एवं औषधि-सेवनके उपरान्त क्षीण होनेपर भी ये दोष स्रोतसोंमें काफी समयतक पड़े रह सकते हैं एवं विकृतिके कारण उत्पन्न होनेपर पुनः व्याधि उत्पन्न कर देते हैं।

४-स्थान-संश्रय—दोषोंकी धातुओंमें स्थितिसे दोष-धातु सम्मूर्छन होकर स्थानसंश्रयावस्था उत्पन्न होती है, जो चौथी क्रिया-कालकी अवस्था है। इसमें शारीरिक धातुओंमें जैव रासायनिक परिवर्तन होते हैं एवं शरीरमें एकसे अनेक क्रियाएँ बाधित होने लगती हैं।

५-व्यक्त—व्यक्तावस्था या पञ्चम क्रिया-काल रोगकी अवस्था है। इसमें रोगके लक्षण प्रकट होते हैं। इनकी चिकित्सा उचित निदान-पद्धति अपनानेके पश्चात् ही की जाती है।

६-भेद—अन्तिम क्रिया-काल रोगोंकी उत्तरोत्तर

जटिल अवस्था है। इसमें औषधियोंके साथ शल्य-चिकित्सा, पञ्चकर्म-चिकित्सा एवं विशिष्ट चिकित्सा-पद्धतियोंका भी सहारा लेना आवश्यक है।

दोष-साम्य ही आयुर्वेदका उद्देश्य है। महर्षि चरकने ग्रन्थके प्रारम्भमें उद्धृत किया है—'**धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्**।' (सू० १।५३) अर्थात् विषम दोषोंको साम्यावस्थामें लाना एवं उनके द्वारा विकृत धातुओंको समावस्थामें लाना ही आयुर्वेदका प्रयोजन है। दोष-साम्यकी स्थितिको बनाये रखनेके लिये आयुर्वेदने आहार-विहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृत्त, योग, आचार-रसायन आदि अनेक विधाओंका वर्णन किया है, जिससे रोगकी रोकथाममें सहायता प्राप्त हो। दोष-वैषम्यकी अवस्थाको समावस्थामें लाने-हेतु ही चिकित्सा-ग्रन्थोंकी रचना की गयी है—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्॥

(च०सू० १६।३४)

अर्थात् जिस-किसी क्रियासे विकृतिगत दोषोंकी एवं धातुओंकी समावस्थाको प्राप्त किया जा सके, वे सभी चिकित्सा हैं, केवल औषधि-प्रयोग ही चिकित्सा नहीं है। चिकित्साकी सभी विधाएँ दोष-साम्यकी स्थितिको प्राप्त करनेके लिये ही उपदिष्ट हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार आयुर्वेदका अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे एवं अन्य पद्धतिमें व्यवहृत औषधियोंसे कोई विरोध नहीं हो सकता। दोष-साम्य ही चिकित्सा-कर्मका मूल उद्देश्य है, जिससे आरोग्यकी प्राप्ति सम्भव है। रोगरहित शरीर ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी स्थितिको प्राप्त करता है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

(च०सू० १।१५)

व्याधियाँ सात प्रकारकी होती हैं—(१) आदिबलप्रवृत्त (Genetic), (२) जन्मबलप्रवृत्त (Congenital), (३) दोषबलप्रवृत्त (Disturbance in Homeostatsis), (४) संघातबलप्रवृत्त (Traumatic), (५) कालबलप्रवृत्त (Seasonal), (६) दैवबलप्रवृत्त (Spritual) एवं (७) स्वभावबलप्रवृत्त (Natural)। इनमें रोगी एवं रोग-बलकी परीक्षा करके ही चिकित्साकी विवेचना प्रस्तुत की जाती है। विभिन्न व्याधियोंमें दोष-साम्यकी स्थितिको उत्पन्न करना ही चिकित्साका मुख्य उद्देश्य है। व्याधियोंके उपर्युक्त प्रकारके साथ चिकित्सा-विधियाँ भी तीन प्रकारकी होती हैं—

(१) **दैवव्यपाश्रय**—इसमें मन्त्र-बलि, मङ्गलकर्म, स्वस्तिवाचन, मणिधारण तथा हवन आदि हैं।

(२) **युक्तिव्यपाश्रय**—इसमें औषधि, आहार-विहार-सेवन एवं संशोधन या पञ्चकर्म-चिकित्साका समावेश है।

(३) **सत्त्वावजय**—इसमें अहित अर्थोंकी ओरसे मनोनिग्रहके उपाय हैं। दोष-साम्य ही उक्त चिकित्सा-पद्धतिका एकमात्र उद्देश्य है।

दिनचर्या, ऋतुचर्या आदि दोषपरक ही हैं—

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा॥

(सु०सू० २१।८)

सूर्य-चन्द्रमा एवं वायुकी गतियोंसे विसर्गकाल एवं आदानकालका विक्षेप होता है। विसर्गकाल (दक्षिणायन)-में तीन ऋतुएँ—वर्षा, शरत् एवं हेमन्त तथा आदानकाल (उत्तरायण)-में तीन ऋतुएँ—शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म होती हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य एवं वायुकी गति जगत्का धारण, पोषण एवं नियमन करती है, उसी प्रकार शरीरमें क्रमशः कफ, पित्त और वायुके द्वारा शरीरका धारण, पोषण एवं नियमन किया जाता है। उक्त गतियोंके आधारपर त्रिदोष-विज्ञानके द्वारा दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्याके विभिन्न आयामोंका विवरण आयुर्वेदमें वर्णित है। दिवास्वप्न, रात्रि-जागरण, ऋतुओंमें विपरीत भोजन, शीत वायुका सेवन आदि विभिन्न रोगोंके कारण बताये गये हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवनकालको दोषोंकी गतियोंके परिप्रेक्ष्यमें आयुर्वेदीय दृष्टिकोणसे आहार-विहार एवं चर्याके द्वारा '**दोषसाम्यमरोगता**' के सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है।

मानसिक दोष, साम्यावस्था एवं मोक्ष—रज एवं तम मानस-दोष कहे गये हैं। रज एवं तमके संयोगसे पुरुषकी व्यक्तावस्था एवं सत्त्वगुणके बढ़ जानेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। महर्षि चरकका मत है—

रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयमनन्तवान्।
ताभ्यां निराकृताभ्यां तु सत्त्ववृद्ध्या निवर्तते॥

(च०शा० १।३६)

अव्यक्ताद्व्यक्ततां याति व्यक्तादव्यक्ततां पुनः।
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवत् परिवर्तते॥

(च०शा० १।६८)

इस प्रकार स्पष्ट है कि रज एवं तम गुणके संयोगसे ही चौबीस तत्त्वोंसे युक्त राशि-पुरुषकी उत्पत्ति होती है एवं कर्म-बन्धनमें बँधा हुआ पुरुष चक्रवत् व्यक्तसे अव्यक्त एवं पुनः व्यक्तावस्थाको प्राप्त होता है। रज एवं तम गुणका मन एवं आत्मासे सम्बन्ध रखना ही उपधा कहा जाता है। इन रज (राग) और तम (द्वेष)-के कारण ही दुःख और शरीर-धारण अर्थात् पुनर्जन्म होता है। फलतः पुनर्जन्मकी परम्परा होनेसे राग-द्वेष बना रहता है, जिससे दुःखकी उत्पत्ति होती रहती है। यदि रज एवं तमका मनसे सम्बन्ध छूट जाता है तो सभी दुःख दूर होकर आत्यन्तिक सुख या मोक्षकी प्राप्ति होती है—

मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते॥

(च०शा० १।१४२)

मोक्ष-प्राप्ति तथा दुःखोंसे निःशेष निवृत्तिके उपाय क्या हैं, इसपर चरकने योगके मार्गको स्पष्ट किया है—

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥

(च०शा० १।१३७)

आत्माका परम तत्त्व या परमात्मासे संयोग ही योग है। वस्तुतः सर्वोत्कृष्ट मानस-स्वास्थ्य ही मोक्ष है। इसकी प्राप्ति-हेतु महर्षि पतञ्जलिद्वारा अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया गया है। यह भी माना जाता है कि महर्षि पतञ्जलिद्वारा ही चरकसंहिताकी रचना शारीरिक दोष दूर करने-हेतु एवं योग-विद्याकी रचना मानस दोष-निराकरण-हेतु की गयी। इस प्रकारकी मोक्षदायिनी चिकित्सा-विद्याको चरकने नैष्ठिकी चिकित्साके नामसे निरूपित किया है। उपधारहित चिकित्साको ही नैष्ठिकी चिकित्सा कहा गया है—

'चिकित्सा तु नैष्ठिकी या विनोपधाम्।'

(च०शा० १।९४)

उपधा ही रोग एवं दुःखके आश्रयभूत शरीरकी उत्पत्तिमें कारण है अर्थात् जीवनके कर्म-क्षेत्रमें तृष्णा या आसक्तिका होना संयोग या दुःख है। अनासक्ति तृष्णारहित जीवनका उपभोग मुक्ति है। इस प्रकार आयुर्वेदमें शारीरिक दोषोंकी साम्यताके साथ मानस-दोषोंसे निवृत्तिके उपायोंका वर्णन सम्पूर्ण आरोग्यकी प्राप्तिका लक्ष्यरूप है।

समस्त सृष्टि एवं ब्रह्माण्डमें चेतन-तत्त्व व्याप्त है एवं परम चैतन्यके लीलास्वरूप ही जीव पाञ्चभौतिक शरीर धारण करता है, जो विभिन्न शारीरिक दोषोंकी दृष्टिसे शारीरिक व्याधियों एवं मानस-दोषोंके द्वारा मानसिक व्याधियोंसे आवृत रहता है। सृष्टिके चक्रमें आवेष्टित जीवको मोक्षकी प्राप्ति-हेतु नाना जन्मोंके अनेकानेक रूपोंके अनुभवोंसे गुजरना होता है, जो परम चैतन्यकी महान् लीलाका सूक्ष्म अङ्ग है। मानवका कर्तव्य है कि वह जीवनको हितकर पदार्थोंके सेवन, हितकर आहार-विहार एवं आचार-विचारोंकी ओर ही प्रेरित करे और परमब्रह्मकी सत्ताका स्पन्दन अन्तरात्मामें सदैव अनुभव करता रहे।

जनपदोंके उद्ध्वंस होनेके कारण तथा उनसे बचनेके सूत्र

(आचार्य डॉ० श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, काव्यपुराण दर्शनतीर्थ, आयुर्वेदशिरोमणि)

जब स्वभावतः शुद्ध वायु, जल, देश तथा काल विकृत हो जाते हैं, तब विभिन्न प्रकृतिके मानवोंका देह, आहार, बल, मन, अवस्था समान होनेपर भी एक साथ एक ही समय एक ही रोगसे नगरों और जनपदोंका देखते-देखते विनाश हो जाता है।

प्रदूषित वायुके लक्षण—ऋतु-विपरीत, अत्यन्त निश्चल, अत्यन्त वेगसे चलनेवाला, अति कर्कश, शीतल, रुक्षतर, भयानक शब्द करनेवाला, कष्टकारी, रेत, धूल और धुआँसे भरे हुए वायुको रोग पैदा करनेवाला जानना चाहिये, इससे जनपदमें आधि—मानसिक पीडा—रोग पैदा होते हैं।

वातमेवंविधमनारोग्यकरं विद्यात्।

(चरक वि० ३।६।१)

प्रदूषित जलके लक्षण—जो जल अत्यन्त विकृत हो गया हो यानी जिसका गन्ध और रंग बिगड़ गया हो—स्पर्श करने योग्य न रह गया हो, उसका जलीय गुण नष्ट हो गया हो, पीनेके योग्य न हो, जिन जलाशयोंका जल सूख करके कम रह गया हो, पक्षी अन्यत्र चले गये हों, ऐसे जलको विकृत समझना चाहिये; इसके सेवनसे जनपद ध्वंस हो जाते हैं।

प्रदूषित देशके लक्षण—जिस देश या स्थानके वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श विकृत हो गये हों, जिस स्थानसे सड़ाँध आती हो तथा साँप आदि हिंसक जन्तु और मच्छर, मक्खी, चूहा, गिद्ध आदि पक्षियोंकी प्रचुरता हो और गीदड़ आदि जन्तुओंसे युक्त जहाँ लताएँ बहुत हों, जहाँका वायु धुआँसे युक्त हो तथा जहाँ कुत्ते रोते हों, पक्षी विशेषकर उड़ते हों, जहाँ मनुष्योंमें धर्म, सत्य, लज्जा, आचार, शील आदि गुणोंका अभाव हो, जहाँ सरोवर सूख गये हों, जहाँ बिजली, भूकम्प, भूस्खलनकी अधिकता हो, जहाँ सूर्य-चन्द्रमाकी आकृति मलिन हो गयी हो, जहाँ मनुष्य रोते हुए दिखायी दें, जहाँ अन्धकारकी विशेषता हो ऐसा देश दूषित समझना चाहिये। इससे जपनदमें प्रदूषण उत्पन्न हो जाता है।

प्रदूषित कालके लक्षण—ऋतुके लक्षणोंके विपरीत काल हो—ग्रीष्म-ऋतुमें शीत और शीत-ऋतुमें ग्रीष्मका अनुभव हो अथवा अधिक ग्रीष्म अर्थात् जहाँ मनुष्य जला-सा जाता हो। इसी प्रकार अन्य ऋतुओंमें भी विपरीतता आ जाती हो—यह दूषित कालका लक्षण है, इससे जनपदमें संत्रस्तता आ जाती है।

विकृत वायु, जल, देश और कालमें काल-तत्त्व प्रमुख है। यद्यपि वायुके अनारोग्य होनेके लक्षणोंके कारण यह दुष्परिहार्य है तथापि वातहीन स्थानपर रहा जाय तो इससे बचा जा सकता है। जीवन-धारणके लिये जल आवश्यक है। परंतु दूषित जलकी शुद्धि यन्त्रोंद्वारा सम्भव है। देश-त्याग करके जाना बहुत कठिन है, परंतु प्राणकी रक्षाके लिये अन्यत्र जाना पड़ता है। पर काल सर्वप्रमुख होनेके कारण दुष्परिहार्य होनेपर भी गुणप्रद औषधियोंके प्रयोगसे आरोग्यप्रद चिकित्सा की जा सकती है। किंतु जिन मानवोंका पूर्वकृत कर्म और दैव विपरीत है, उन्हें काल-व्यालके आक्रमणसे बचाया नहीं जा सकता।

वायु आदिकी विगुणताका मुख्य कारण अधर्म है। पूर्वकृत गर्हित कर्म तथा अधर्मका उद्भव प्रज्ञापराध है। जिस प्रकार नगर या जनपदका प्रधान अधिकारी जब धर्मकी उपेक्षा करके अधर्मका आश्रय लेता है, तब स्वाभाविक रूपसे उसके अनुगत जन भी इस अधर्मको बढ़ानेमें कृतसंकल्प होते हैं। प्रवञ्चना, असत्य आदिकी प्रबलता बढ़ जाती है और यह प्रबलता बढ़कर धर्मको आच्छादित कर देती है। जब धर्म लुप्त हो जाता है तब देवता भी उन अधार्मिक पुरुषोंका परित्याग कर देते हैं। धर्मके लुप्त होनेपर अधर्मकी वृद्धि होती है। जब दैवी गुणोंसे परित्यक्त उन देश और जनपदोंकी ऋतुमें विकृति आ जाती है, प्रचुर वर्षा नहीं होती अथवा वर्षाका अभाव एवं विकृत वर्षा होती है, वायु उचित रूपसे प्रवाहित नहीं होता, पृथ्वी विकृत हो जाती है, जल सूखकर विकृत हो जाता है, औषधियाँ अपने स्वभावगत गुणोंको छोड़कर विकृत हो जाती हैं, तब उनके स्पर्श तथा सेवनसे नगर एवं जनपदोंका विनाश हो जाता है। उसी प्रकार शस्त्रजात युद्धोंसे भीषण नरसंहार होता है। मानवोंमें लोभ, क्रोध, मोह, अहंकार विशेषरूपसे परिलक्षित होता है। अल्पसैन्यशक्तिसम्पन्न परमाणुविहीन राष्ट्रोंपर प्रबल सैन्यशक्तिसम्पन्न राष्ट्र आक्रमण करके उन्हें परास्त करनेमें लग जाते हैं। इससे भी विनाश हो जाता है। इसका भी मूल कारण अधर्म है। अधर्मके आचरणसे देवता भी भूत आदिजन्य उपायोंसे मानवोंको नष्ट करते हैं। अभिशाप (अस्वच्छता)-से उत्पन्न होनेवाले जनपदोंके उद्ध्वंसका भी कारण अधर्म है। जो धर्मसे रहित हैं वे जब गुरु, वृद्ध, सिद्ध, आचार्य—इनकी अवज्ञा करके अहित कर्म करते हैं, तब वे अपमानित गुरुजन उन पुरुषोंके कुलके नाशके लिये उन्हें शाप देते हैं, जिसके द्वारा वे शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। यह भी जनपदके उद्ध्वंसका एक कारण है। इस जनपदोद्ध्वंसके आक्रमणसे बचनेके लिये सदाचरण ही प्रशस्त औषधि है। आचार्य चरकका कहना है—

सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्।
सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः॥
हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥
संकथा धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम्।
धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसम्मतैः॥
इत्येतद्भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्।

(चरक० विमान० ३। १५—१८)

तात्पर्य यह कि सत्य बोलना तथा मन-वचन-कर्मसे प्राणियोंपर दया करना, उचित पात्रको दान देना, देवताकी पूजा करना, नैवेद्य निवेदन करना, शास्त्रानुकूल उनको चढ़ावा चढ़ाना, सत्पुरुषोंके आचारका अनुपालन,

अपनी रक्षा तथा कल्याणकारक जनपदों—बस्तियोंका सेवन हितकर है। निरन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, ब्रह्मचारियोंका संग करना चाहिये। धर्मशास्त्रोंकी कथा तथा जितेन्द्रिय महर्षियोंके साथ वार्तालाप, वृद्ध पुरुषोंद्वारा प्रशंसित धार्मिक एवं सात्त्विक पुरुषोंके साथ बैठना लाभकर है। ऋषियोंने प्राणियोंके उस दारुण कालसे बचने-हेतु उनकी आयुका परिपालन करनेवाले ये आरोग्यप्रद भेषज-सूत्र प्रतिपादित किये हैं।

आयुर्वेदमें शल्य एवं शालाक्य-चिकित्सा तथा यन्त्र-विवरण

(डॉ० श्रीकमलप्रकाशजी अग्रवाल)

आयुर्वेदकी रचना मानवकी उत्पत्तिसे पूर्व हो चुकी थी। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने 'ब्रह्मसंहिता' नामक एक त्रिसूत्रीय आयुर्वेदिक ग्रन्थकी रचना की। यह ग्रन्थ सहस्राध्यायी तथा एक लाख श्लोकोंसे युक्त था। कालान्तरमें जीवोंके अल्पायु तथा अल्पमेधावीपनको देखते हुए इस बृहत्-संहिताको स्वल्प आकार देते हुए आठ अङ्गोंमें विभक्त कर उन्होंने आयुर्वेदकी शिक्षा अपने शिष्य महेश्वर, भास्कर और प्रजापति दक्ष आदिको दी। प्रजापति दक्षने अश्विनीकुमारद्वयको तथा अश्विनीकुमारोंने इन्द्रको इस आयुर्वेदकी शिक्षा दी। यह वैद्योंकी देव-परम्परा थी।

तदनन्तर महर्षियोंद्वारा निवेदित किये जानेपर महर्षि भरद्वाज इन्द्रलोकमें गये और वे देवराज इन्द्रसे आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त कर पुनः भारतभूमिपर पधारे एवं हिमवान् पर्वतपर उन्होंने सभी महर्षियोंको आयुर्वेदका ज्ञान दिया। यह सब कार्य प्रजाजनोंको दुःखी जानकर तथा समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखकर उनके हितके लिये किया गया। महर्षि भरद्वाजने आयुर्वेदके आठों अङ्गोंका ज्ञान सभी उपस्थित महर्षियोंको दिया, उनमें शल्य तथा शालाक्य-तन्त्र भी शामिल थे। ज्ञानप्राप्त उन महर्षियोंने स्थान-स्थानपर जाकर आयुर्वेदद्वारा प्राणियोंकी सेवा की।

आयुर्वेदके आठ विभाग इस प्रकार हैं* —

१-शल्य—इसमें शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) और प्रसूतिकर्मका वर्णन है।

२-शालाक्य—इसमें जत्रु (ग्रीवामूल)-से ऊपरके अङ्गों जैसे—नाक, कान, आँख, गला आदिके रोगोंका अध्ययन किया जाता है।

३-काय-चिकित्सा—इसमें शरीरके रोगोंकी चिकित्साका वर्णन है।

४-भूतविद्या—इसमें शान्तिकर्मके द्वारा रोगोंकी चिकित्सा बतलायी गयी है।

५-कौमारभृत्य—इसमें शिशु-चिकित्साका वर्णन है।

६-अगदतन्त्र—इसमें विष-चिकित्साका वर्णन है।

७-रसायनतन्त्र—इसमें अवस्था, आयुष्य, मेधा और बलको बढ़ानेवाले पौष्टिक रसायनोंका वर्णन है।

८-वाजीकरणतन्त्र—इसमें वीर्यवर्धक औषधियोंका वर्णन है।

आचार्य चरकके अनुसार आयुर्वेदका अध्ययन-स्थल आठ भागोंमें 'स्थान' नामसे इस प्रकार किया गया है—सूत्र, निदान, विमान, शारीर, इन्द्रिय, चिकित्सित, कल्प और सिद्धि। इनका परिचय क्रमशः निम्न है—

१-सूत्रस्थान—इसमें चिकित्सा, पथ्य और वैद्यके कर्तव्योंका वर्णन है।

२-निदानस्थान—इसमें मुख्य रोगोंका वर्णन है।

३-विमानस्थान—इसमें दोष आदिके मानका ज्ञान, आयुर्वेदीय विवेचन और आयुर्वेदके अध्येताके कर्तव्योंका उल्लेख है।

४-शारीरस्थान—इसमें शल्य-चिकित्सा और गर्भ-विज्ञानका वर्णन है।

५-इन्द्रियस्थान—इसमें अरिष्टजन्य रोगोंके निदानोंका वर्णन है।

६-चिकित्सितस्थान—इसमें मुख्य चिकित्साओंका वर्णन है।

७-कल्पस्थान—इसमें शरीरके पुनर्निर्माण एवं शरीरको किशोर-जैसा सुन्दर एवं आरोग्यमय बनानेका वर्णन है।

८-सिद्धिस्थान—इसमें वमन, विरेचन आदि पञ्चकर्मोंद्वारा सामान्य चिकित्साका वर्णन है।

सुश्रुतसंहिताके लेखक सुश्रुत हैं। यह आयुर्वेदका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें चिकित्सापर बल दिया गया है और शल्यके औजारोंका वर्णन है। सर्प-चिकित्सा और

* सुश्रुत सू० १। ७

त्रिदोष-चिकित्सा-सिद्धान्तसे सिद्ध होता है कि आयुर्वेदने किसीका अनुकरण नहीं किया, बल्कि आयुर्वेदका अनुकरण यूनानी चिकित्सा-पद्धतिमें किया गया है। आयुर्वेद-पद्धतिका अनुकरण अरब तथा फारस-निवासियोंके द्वारा यूनानी चिकित्सा-पद्धतिमें किया गया है।

रत्न-विज्ञान और ज्योतिष, हस्तरेखा, तन्त्रशास्त्र तथा कामशास्त्र भी आयुर्वेदके अङ्ग हैं। आयुर्वेदमें वृक्षों और पशु-चिकित्सापर भी ग्रन्थ हैं।

महाराज दिवोदास धन्वन्तरिने भी आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने शल्य-शालाक्य (Surgery)-में विशेष योग्यता प्राप्त करके इस ज्ञानका प्रचार चिकित्सक महर्षियोंमें किया। परिणाम यह हुआ कि आधुनिक युगकी तरह काय-चिकित्सकों तथा शल्य-चिकित्सकोंके दो समुदाय आयुर्वेदमें कार्य करने लगे। कालान्तरमें शल्य-चिकित्सकोंके भी दो भाग हो गये—१-शल्य-चिकित्सक धान्वन्तरीय तथा २-शालाक्य-चिकित्सक या ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्सक। शालाक्य-चिकित्सकोंका कार्य-क्षेत्र नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्त, मुख, तालु, ओष्ठ, गल-चिकित्सा एवं कपाल तथा मस्तिष्क-चिकित्सा आदि था।

शालाक्य-चिकित्साके स्रोत देवराज इन्द्र ही थे और पृथ्वीपर भरद्वाज एवं धन्वन्तरि थे। कांकायन, विदेह, निमि, गार्ग्य, गालव, भद्र, शौनक, कृष्णात्रेय, कराल, सात्यकि आदिने इस परम्पराको आगे बढ़ाया। सभी महर्षियोंने इस विषयपर अपने-अपने तन्त्र-ग्रन्थ लिखे। वे मूल रूपसे आज उपलब्ध नहीं हैं। उन तन्त्र-ग्रन्थोंके नाम हैं—१-विदेह-तन्त्र, २-कांकायन-तन्त्र, ३-निमि-तन्त्र, ४-गार्ग्य-तन्त्र, ५-गालव-तन्त्र, ६-सात्यकि-तन्त्र, ७-शौनक-तन्त्र, ८-कराल-तन्त्र, ९-चाक्षुष्य-तन्त्र और १०-कृष्णात्रेय-तन्त्र।

इन तन्त्र-ग्रन्थोंमें जत्रुसे ऊपर (ऊर्ध्व-जत्रु)-के रोगोंका वर्णन विशेषरूपसे किया गया है। ऊर्ध्व-जत्रुसे तात्पर्य है धड़के ऊपरका रोग अर्थात् कण्ठ और वक्षःस्थलका संयोग-स्थल। इसे जत्रु कहा गया है।

शालाक्य-तन्त्रका वर्णन आजके उपलब्ध ग्रन्थोंमें संक्षिप्तरूपसे चरक तथा कुछ विस्तारसे सुश्रुतमें पाया जाता है। सुश्रुतके उत्तर-तन्त्रमें अध्याय १—१९ तक नेत्र-रोगोंका, २०-२१वें अध्यायोंमें कर्ण-रोगोंका, २२—२४ वें अध्यायोंमें नासा-रोगोंका, २५-२६वें अध्यायोंमें शिरोरोगोंका वर्णन तथा चिकित्साका वर्णन है, इसी प्रकार चिकित्सास्थानके अध्याय २२ में तथा निदानस्थानके १६ एवं चरक-चिकित्सास्थानके २६वें अध्यायमें ऊर्ध्वाङ्ग-रोगोंके निदान तथा उनकी चिकित्साका विवरण उपलब्ध है।

शलाका-यन्त्रोंका संक्षिप्त परिचय

शालाक्य-तन्त्रका मुख्य प्रयोजन है शलाका-यन्त्रका प्रयोग। आचार्य सुश्रुत तथा वाग्भट (अष्टाङ्ग-संग्रहकार)—ये दोनों इन यन्त्रोंके प्रयोगसे पूर्ण परिचित थे। महर्षि वाग्भटके अनुसार शलाका-यन्त्र नाना प्रकारकी आकृतिवाले होते हैं और अनेक कार्योंमें प्रयुक्त होते हैं। ये यथायोग्य लम्बे तथा मोटे होते हैं।

आचार्य सुश्रुतने शल्य-चिकित्सा (सर्जरी)-के लिये जिन यन्त्रों—औजारोंका विधान बतलाया, वे इतने अधिक किस्मोंके थे कि आज भी समस्त विश्वके शल्य-चिकित्सक एवं विद्वान् जानकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। प्राचीनतम शल्य-चिकित्सक विभिन्न प्रकारकी शल्य-चिकित्साके लिये सवा सौसे भी अधिक किस्मके औजारोंका प्रयोग करते थे, जिनमें भाँति-भाँतिकी कैंची, चाकू, आरी, सूई, ट्यूब, सिरिंज, जमूर, स्पेकुला, लीवर, हुक, सलाई, जलोदर-रोगमें शरीरसे पानी निकालनेवाला यन्त्र तथा शलाका आदि मुख्य थे। यन्त्रोंके मुख कंक, सिंह, उलूक तथा काक आदि पशु-पक्षियोंके मुखके सदृश बनते थे और तदनुसार नाम भी होता था, जैसे—कंकमुख, सिंहास्य, काकमुख आदि। इनमेंसे कुछ-एक औजार आजके शल्य-चिकित्सा-औजारोंके आधार बने।

मनुष्यके सिरके आधे बालाग्रके बराबर पतली धारवाले '**वृद्धिपत्र**' नामक यन्त्रसे रसौली (भौंहोंके पास आँखके ऊपर होनेवाली गिल्टी) निकाली जाती थी। **मंडलाग्र** से घावोंको साफ किया जाता था। नाडी-यन्त्रसे दवाएँ शरीरके अंदर पहुँचायी जाती थीं। **त्रिकुरचक्रम** से ऊतकोंको चीरकर उनमेंसे अवाञ्छित पदार्थ निकाले जाते थे। **संदंश** से मांसमें चुभे काँटे आदि निकाले जाते थे। **तालयन्त्र** से नाक, कानकी सफाई की जाती थी। दन्त-शङ्कुसे दाँत निकाले जाते थे। **कारपत्रम** से हड्डियाँ काटी जाती थीं। **ऐशानी** से शरीरमें 'पस' का पता लगाया जाता था। **मुद्रिका-शस्त्र** अँगूठीके आकारका एक विशेष प्रकारका चाकू था तथा **उत्तरावास्त्री** से नारी एवं पुरुषोंके शरीरमें एकत्र पेशाब बाहर निकाला जाता था। केवल जमूरे ही २४ किस्मके बताये गये हैं।

सुश्रुतने इन उपकरणोंको धारदार तथा भोथरी (कुंद-धारवाले) दो श्रेणियोंमें विभाजित कर रखा था और इनके आकार-प्रकार, स्वरूप, उपयोगिता, इन्हें पानी चढ़ाने, रोगाणुरहित करने तथा प्रयोगमें लानेकी विधियों एवं इनकी सँभालके सम्बन्धमें पूर्ण योजनाबद्ध अध्ययन किया था। भोथरी-श्रेणीमें १०६ किस्मके शल्य-चिकित्सा-उपकरण थे। लोहेसे निर्मित उपकरण योग्य लोहारोंद्वारा चिकित्सकोंके निर्देशनमें बनाये जाते थे। इनका नाम उन जानवरों तथा पत्तों आदिके नामपर रखा जाता था, जिनसे मिलती-जुलती इनकी शक्ल होती थी। आचार्य सुश्रुतने आकृति-भेदसे छः प्रकारके यन्त्रभेद बताये हैं—१-स्वस्तिकयन्त्र, २-संदंशयन्त्र, ३-तालयन्त्र, ४-नाडीयन्त्र, ५-शलाकायन्त्र, ६-उपयन्त्र*। इन सभीके भेदोपभेद भी बताये हैं।

प्रमुख शालाक्य-यन्त्रोंका परिचय

१-गंडुपद-मुख शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। इसका मुख केंचुएके समान होता है। यह नाडी-व्रणकी गतिके एषण (ढूँढ़ने)-के लिये प्रयुक्त होता है।

२-मसूरदल-मुख शलाका-यन्त्र—यह भी दो प्रकारका होता है। इसके द्वारा नासादि श्रोत्रगत शल्य निकाला जाता है। इसकी लम्बाई आठसे नौ अंगुलतक होती है। इसका मुख मसूरकी दाल या पत्रके सदृश होता है, अग्रभाग कुछ झुका-सा रहता है।

३-शंकुशलाका-यन्त्र—यह छः प्रकारका होता है। इसमें दो यन्त्र सर्पफणाकार होते हैं। इसका प्रयोग व्यूहन-कर्म (कटे हुए मांस, सिरा आदिको यथास्थान स्थापित करने)-में होता है। यह बारह और सोलह अंगुलतक लम्बा होता है।

४-शरपुंख-मुख शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। इसका प्रयोग शल्यको चलाने तथा हिलानेमें होता है। इसकी लम्बाई दस अंगुलसे बारह अंगुल होती है। इसका मुख शरपुंखाके समान होता है।

५-बडिशमुख-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। इसका प्रयोग शरीरके किसी अवयवांशको खींचनेमें होता है। इसकी लम्बाई दससे बारह अंगुल होती है।

६-गर्भांकुश-शलाका-यन्त्र—यह एक ही आकारका शंकु-जैसा होता है। यह आठ अंगुल लम्बा, परंतु कुछ झुका हुआ होता है। यह मूढ-गर्भ खींचनेके काममें आता है।

७-सर्पफण-शलाका-यन्त्र—यह एक ही आकृतिका सर्पके फणकी तरह होता है। इसका प्रयोग अश्मरीको खींचनेमें किया जाता है।

८-दन्तनिर्घातन-यन्त्र—यह एक प्रकारका आठ अंगुल लम्बा होता है और दाँत निकालनेके काममें आता है।

९-प्रमार्जनी शलाका-यन्त्र—यह छः प्रकारका होता है जैसे—

(क) इस प्रमार्जनी शलाका-यन्त्रके अग्रभागपर प्रमार्जनके समय रूई लपेट ली जाती है। इसका प्रयोग अनेक प्रकारके व्रणोंका क्लेद साफ करनेके लिये तथा अर्श आदिपर लगाया गया क्षार साफ करनेके लिये किया जाता है। इसमें दो घ्राण शलाकाएँ होती हैं, जो छःसे सात अंगुल लम्बी होती हैं। यह नासापुटोंको साफ करनेके लिये प्रयुक्त होती है।

(ख) कर्ण-शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। यह आठसे नौ अंगुलतक लम्बा होता है और कान साफ करनेके काममें आता है।

(ग) वायु-शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। यह दससे बारह अंगुल लम्बा होता है। इससे गुदा-नाडियोंका व्रण साफ किया जाता है। इसीके द्वारा भग-व्रण भी साफ होता है। मूत्र-मार्गको साफ करनेके लिये भी अलग यन्त्र होते हैं।

(घ) कर्ण-शोधन-यन्त्र—अग्रभागसे यह चम्मच-सा होता है तथा पीछे शलाका होती है।

(ङ) अञ्जनार्थ-शलाका-यन्त्र—यह शलाका रोगानुसार विभिन्न धातुओंकी होती है और नेत्रमें अञ्जन लगानेके काममें आती है।

(च) अन्य शलाका-यन्त्र—क्षारकर्म, अग्निकर्म आदिके लिये अन्यान्य शलाकाएँ होती हैं, जो विभिन्न आकारकी छोटी, मोटी एवं पतली होती हैं। तन्त्र-वृद्धिमें प्रयुक्त होनेवाली शलाका अर्धचन्द्राकार (चतुर्थी) होती है।

उपर्युक्त सभी यन्त्रोंका ज्ञान आचार्य चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट आदिने आजसे हजारों-हजार वर्ष पूर्व करा दिया था।

विडम्बना है कि आज आयुर्वेदीय शल्य-शालाक्य-तन्त्रका ज्ञान उस प्रकार रह नहीं गया है जैसा पहले था, परंतु इसकी महत्ता तो आज भी वैसी ही है।

* तानि षट् प्रकाराणि तद्यथा—स्वस्तिकयन्त्राणि, संदंशयन्त्राणि,तालयन्त्राणि, नाडीयन्त्राणि, शलाकायन्त्राणि, उपयन्त्राणि चेति। (सुश्रुत० सूत्र० ७।५)

आयुर्वेद और होम्योपैथी—एक विवेचन

(श्रीरामगोपालजी पालड़ीवाल)

प्राचीन कालसे ज्ञान-विज्ञानके सभी क्षेत्रोंमें भारतीय मनीषाका अवदान सर्वोत्कृष्ट रहा है। व्याधिग्रस्त प्राणियोंके पीडा-निवारण-हेतु आर्यमनीषाने सर्वाङ्गपूर्ण चिकित्साशास्त्र 'आयुर्वेदका' सृजन किया। इसमें मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणियोंकी व्याधि दूर करनेके लिये उत्तमोत्तम दिशा-निर्देश दिये गये हैं। जिनपर रीझकर वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति एलोपैथीके पुरोधा भी इसकी उपयोगिताको स्वीकार कर रहे हैं।

अधुना बहु प्रचलित होम्योपैथीके मूल सिद्धान्त भी हमें आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। जैसे—ओषधि-निर्माणके लिये आयुर्वेद कहता है—'**मर्दनं गुणवर्धनम्**'। होम्योपैथी इसी सिद्धान्तके बलपर अपनी ओषधियोंको शक्तिकृत करके चमत्कार दिखाती है।

भारतीय रसायनशास्त्री 'नागार्जुन' जिन्होंने हीन धातुओंको सुवर्ण, रजत, महारजत-जैसी मूल्यवान् धातुओंमें परिणत करनेका चमत्कार हजारों वर्ष पहले करके दिखा दिया था, उनका सिद्धान्त वाक्य है—'**स्वल्पमात्रं बहुगुणसम्पन्नं योग्यभेषजम्**'। अर्थात् रोग-निवारणके लिये दवाका चुनाव यदि सही हुआ हो तो दवाकी मात्रा बहुत अर्थ नहीं रखती। यही बात तो होम्योपैथीमें होती है। दवाका नम्बर जितना ऊँचा होता जाता है, उसका प्रभाव तो बढ़ता जाता है पर उसमें मूल दवाकी मात्रा उतनी ही सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होती जाती है। फिर भी दवाका चमत्कार प्रत्यक्ष देखा जाता है। इससे यह धारणा स्वाभाविक ही हो जाती है कि आरोग्यता प्रदान करनेवाली प्रकृतिप्रदत्त कोई अन्य शक्ति है, जिसको जीवनी-शक्ति या रोग-प्रतिषेधक शक्ति (Immunity) कहा जाता है। दवाका कार्य केवल उस शक्तिको प्रबुद्ध करके सही दिशा प्रदान करनामात्र है, शेष सारा कार्य प्रकृति स्वयं करती है। दुश्चिकित्स्य अथवा असाध्य माने जानेवाले कैंसर-रोगकी ओषधि खोजनेवाले विद्वानोंकी भी अनेक प्रयोग-परीक्षणोंके बाद यही धारणा बनी है कि शरीरमें प्रकृतिप्रदत्त रोग-निवारणकी शक्तिको परिपुष्ट कर दिया जाय तो रोग स्वयं निवृत्त हो जाता है। आयुर्वेदमें भी एक-एक औषध योगमें पचासों घटक द्रव्य होते हैं और दवाकी मात्रा एक रत्ती, आधी रत्तीकी दी जाती है। अब सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस अल्प-सी मात्रामें पचासों ओषधियोंकी मात्राका अनुपात क्या होता है? इससे अवगत होता है कि मनीषी नागार्जुनका दिया हुआ सिद्धान्त कितना सार्थक है।

इस संदर्भमें यह विचारणीय हो जाता है कि जब साधारण समझी जानेवाली वनौषधियों तथा अन्य वस्तुओंको सूक्ष्मतम मात्रामें प्रयोगकर एक होम्योपैथ रोग-निवारणका चमत्कार दिखाता है तो आयुर्वेदके अत्यन्त वीर्यवान् सिद्ध औषधोंका सूक्ष्मतम मात्रामें प्रयोग करके स्वल्प व्ययमें ही आर्तनारायणको रोगमुक्त करनेका शास्त्रसम्मत प्रयास युक्तिसंगत ही तो समझा जायगा।

अपने सीमित दायरेमें इस प्रयासका सुफल प्राप्त हो रहा है। त्रिदोषोंपर अधिकार रखनेवाली 'वज्र-भस्म' आयुर्वेदकी सर्वाधिक मूल्यवान् ओषधि है। इसमें शरीरके जीर्ण-अक्षम कोषों (Cells)-को नष्टकर नये कोषोंकी वृद्धि करनेकी अपूर्व शक्ति है। अपने इस गुणके कारण वर्तमानमें महामारीका रूप लेनेवाले कैंसर तथा एड्स (AIDS) नामसे प्रसिद्ध असाध्य रोगोंपर भी इसका आरोग्यजनक प्रभाव परिलक्षित हुआ है। अवश्य ही इसके साथ-साथ पथ्य-परहेज तथा सहायक अन्य औषधोंका प्रयोग भी होना चाहिये।

इसके द्वारा शरीरके भीतर-बाहर अनेक स्थानोंपर होनेवाले अर्बुद, रक्त-कैंसर, एलर्जी आदि रोगोंमें भी बहुत उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं। आयुर्वेदके उत्साही चिकित्सकोंके सामने प्रयोग-परीक्षणका एक सर्वथा नवीन एवं विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है। इसका लाभ उठाना चाहिये।

आयुर्वेदमें दिव्य औषधियाँ

(पद्मश्री वैद्य श्रीसुरेशजी चतुर्वेदी, आयुर्वेदाचार्य)

भारत ही नहीं, अपितु समस्त विश्वमें रोगोंके बढ़ते हुए स्वरूपको देखकर मनमें दुःख होना स्वाभाविक ही है। वास्तवमें काल, इन्द्रियार्थ और कर्मका हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोग रोगके कारण होते हैं। उक्त क्रियाओंसे पञ्चतत्त्वोंमें विषमता आ जाती है। यह विषमता प्रकृतिमें भी विकृति लाती है और हमारे शारीरिक तत्त्वोंको भी विकृत करके रोगका कारण सिद्ध होती है।

आज संसारके प्राणियोंकी जैसी स्थिति है, वैसी स्थितिका वर्णन हमें आयुर्वेदमें मिलता है। एक बार संसारके प्राणियोंके दुःखसे दुःखी हो ऋषि-महर्षि उनके कल्याणकी कामनासे औषधियोंके आकर हिमालयपर आये। सहस्रचक्षु देवराज इन्द्रने इन सभी ऋषि-महर्षियोंको देव-भूमिमें आया देखकर उनका स्वागत किया और उनके आगमनका प्रयोजन पूछा। इसपर ऋषियोंने कहा कि देवराज! संसारमें मनुष्य बहुत ही शारीरिक एवं मानसिक कष्ट पा रहे हैं। क्या उनके कल्याणका कोई मार्ग नहीं है। चिन्तित देवराज इन्द्रने उत्तर देते हुए स्पष्ट किया कि सर्वप्रथम ब्रह्माने प्रजापतिको आयुर्वेदका ज्ञान कराया। तदनन्तर प्रजापतिने अश्विनीकुमारोंको और अश्विनीकुमारोंने मुझे जनकल्याणार्थ आयुर्वेदका उपदेश किया था। आयुर्वेदप्रोक्त उन्हीं दिव्य महौषधियोंके विषयमें मैं आप सबको बताऊँगा। आप सब ध्यान देकर सुनें—महर्षियो! इस हिमालयप्रदेशमें अगम्य स्थानोंपर कठिनतासे प्राप्त होनेवाली ऐसी अनेक औषधियाँ हैं, जो कि देवताओंको प्रिय हैं और जिनके प्रभाव भी दिव्य ही होते हैं। इनमें अनेक औषधियाँ तो साधारण मनुष्योंको दिख भी नहीं पातीं, इनकी प्राप्तिके लिये पूर्ण तपोमय जीवन, त्याग तथा सात्त्विक भावना, ब्रह्मचर्यजीवन और लोक-कल्याणकारी विचार होना परम आवश्यक होता है। आप-जैसे महानुभावोंको उनका ज्ञान कराते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं हो रहा है। असंख्य दिव्य औषधियोंमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—ऐन्द्री, पयस्या, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, श्रावणी, महाश्रावणी, शतावर, विदारीकन्द, जीवन्ती, पुनर्नवा, नागबाला, स्थिरा, बचा, क्षत्रा, अतिक्षत्रा, मेदा, महामेदा, काकोली, जीवक, ऋषभक, मधुयष्टी, मुद्‌गपर्णी तथा माषपर्णी आदि। इन औषधियोंकी जब आप आवश्यकताका अनुभव करें तो सर्वप्रथम शुभ मुहूर्तमें पवित्र होकर शुभ भावनासे इनके समक्ष जाकर इन्हें सम्बोधित करते हुए लोककल्याणका अपना उद्देश्य बतायें, वनस्पतियोंमें प्राण होते हैं। तदनन्तर 'मैं आपको ग्रहण करना चाहता हूँ', ऐसा विचार प्रकट कर शुभ दिन, शुभ कालका निमन्त्रण दें। फिर पवित्र होकर उस शुभ दिन, शुभ कालमें मन्त्रोंसे इन्हें अभिमन्त्रित करते हुए औषधियोंको किसी भी प्रकारका क्लेश न हो, इसका ध्यान रखते हुए इनका उत्पाटन करें अर्थात् उखाड़ें। इस विधिसे ग्रहण की हुई औषधियोंका सेवन दुःखी प्राणियोंको विधिपूर्वक गायके दूधके साथ कराना चाहिये।

देवराजके मुखसे दिव्य औषधियोंके नाम तथा विधि जानकर सभी ऋषि-महर्षि गद्‌गद हो गये। पुनः उन्होंने प्रश्न किया कि हे देवताओंके देव! कृपया हमें यह भी निर्देश करें कि इन औषधियोंका विशेषरूपसे प्राणियोंपर क्या प्रभाव होता है?

इन्द्र बोले—'इन दिव्य औषधियोंके सेवनसे मनुष्योंकी आयु तरुण रहेगी। आरोग्यको प्राप्त होकर शरीरका वर्ण भी सुन्दर होगा, आवाज भी सुन्दर होगी और शरीर पुष्ट होकर बुद्धि-स्मृति भी पुष्ट होगी। परिणामस्वरूप बेलकी वृद्धि होकर सभी आकाङ्क्षाएँ पूर्ण होती हैं।' तदनन्तर देवराज इन्द्र बोले कि मेरी इच्छा है कि आप सब जनकल्याणके हेतु इन दिव्य औषधियोंकी जानकारी मनुष्योंको करायें।

देवराज इन्द्रके ये वचन सुनकर सभी ऋषि बोले कि हे देवेश! हम आपकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन करेंगे।

तदनन्तर देवराजकी आज्ञा लेकर सारे ऋषि-समुदायने अपने-अपने आश्रमोंकी ओर प्रसन्नमुद्रामें प्रस्थान किया।

देवराज इन्द्रसे भारद्वाज ऋषिने दिव्य औषधियोंका वर्णन सुनकर यथावत् पुनर्वसु आत्रेयको सुनाया। महर्षि आत्रेयने उसे अपने छः शिष्योंको समझाया। शिष्योंने भलीभाँति समझकर अपने-अपने ग्रन्थ रचे, जिनमें कि इन औषधियोंका वर्णन मिलता है। इन्हीं दिव्य औषधियोंका यहाँ संक्षिप्तरूपमें वर्णन किया जा रहा है—

ऐन्द्री (इन्द्रायण)—यह औषधि दो प्रकारकी होती है—सफेद पुष्पवाली और लाल पुष्पवाली। कहीं-कहीं पीले पुष्पवाली ऐन्द्रीको इन्द्रावारुणी, गवादनी, मृगादनी, विषाध्वनि, गवाक्षी तथा सूर्या नामसे सम्बोधित किया जाता है।

१. लाल इन्द्रायण—इसे विशाला, महाफला, चित्रफला, त्रयूसी, रम्यादिहीवल्ली, महेन्द्र वारुणी—इन नामोंसे सम्बोधित किया गया है।

२. श्वेतपुष्पी—अर्थात् बड़ी इन्द्रायणीको मृगाक्षी, नागदन्ती, वारुणी, गर्जचिभटा—इन नामोंसे जाना जाता है।

इन औषधियोंकी लता होती है जो कि भारतमें सर्वत्र देखी जाती है। इसका स्वाद दो प्रकारका होता है कड़वा एवं मीठा। औषधियोंमें कड़वी इन्द्रायणीका ही प्रयोग होता है। इसकी बेल जमीनपर फैलती है। बेलके पत्ते कई कोणवाले होते हैं। बेलमें फल एवं फूल भी लगते हैं।

उपयोग—इसका प्रयोग पेटकी शुद्धिके लिये होता है। मूढगर्भको निकालनेके लिये भी इसका सफल प्रयोग होता है। उदर-संस्थानके सभी रोगोंपर इसका हितकारी प्रभाव होता है। पित्तकी विकृतिमें भी यह बड़ी लाभदायक होती है।

ब्राह्मी—यह औषधि हिमालयपर विशेष प्रकारसे प्राप्त होती है। सभी स्थानोंपर जो ब्राह्मी मिलती है, वह वास्तवमें ब्राह्मीका भेद मण्डूकपर्णी नामक औषधि है। असली ब्राह्मी हिमालय एवं पंजाबके पर्वतीय भागोंमें मिलती है। इसे संस्कृतमें कपोतबंका, सरस्वती, सोमवल्ली—इन नामोंसे जाना जाता है। इस वनस्पतिके छोटे-छोटे गोल पत्ते होते हैं, जो कि पृथक्-पृथक् तनेसे सम्बन्धित होते हैं। यह जलयुक्त एवं जलके निकटवर्ती भागोंमें उत्पन्न होती है। इसमें फूल भी लगते हैं।

उपयोग—ब्राह्मीका उपयोग विशेषकर मस्तिष्क-रोग एवं वातनाडीकी विकृतिपर होता है। यह अपस्मार, उन्माद तथा हृदयके लिये हितकारी है। यह शीतल होती है और परम रसायन मानी गयी है। ब्राह्मी कुष्ठ, प्रमेह, रक्तविकार, पाण्डु तथा शोथके लिये विशेष हितकारी होती है।

शङ्खपुष्पी—यह औषधि हिमालयकी चार हजार फुटकी ऊँचाईतक प्राप्त होती है। यह सीलोन, बर्मा तथा अफ्रीकाके कुछ भागोंमें भी प्राप्त होती है। इसे प्राचीन ग्रन्थोंमें शंखहवा, शंखा, मांगलय, कुसमा—इन नामोंसे सम्बोधित किया गया है। इसके क्षुप (छोटे तने या झाड़) जलासन्न भूमिमें पैदा होते हैं। यह एक हाथतक ऊँचा होता है। इसमें अनेक शाखाएँ होती हैं। पत्ते पतले और लम्बे शङ्खकी तरह आवर्तित होते हैं। इसके पुष्प श्वेत, रक्त एवं नील वर्णके होते हैं। परंतु व्यवहारमें आनेवाली शंखपुष्पी श्वेतपुष्पी ही श्रेष्ठ एवं उपयोगी होती है। यह उष्णवीर्य एवं रसायन होती है। मेधाके लिये अत्यन्त लाभकारी है। मानसिक विकारोंको तथा अपस्मारको नष्ट करती है। स्वर एवं कान्ति तथा निद्रा लानेके लिये परम उपयोगी है।

जीवन्ती—इसे संस्कृतमें मधुश्रवा भी कहते हैं। यह एक प्रकारकी बेल होती है जो काफी ऊँची बढ़ जाती है। यह औषधि हिमालयके अधिक ऊँचाईवाले क्षेत्रमें प्राप्त होती है और तोड़नेपर छः महीनेतक नहीं सूखती। यह वायु, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको नष्ट करनेवाली होती है। यह परम रसायन, बलकारी, नेत्रोंके लिये हितकारी, दस्त बाँधनेवाली और शीतवीर्य औषधि है। यह वीर्यवर्धक होती है। सभी महर्षियोंने इसका प्रयोग शाकमें श्रेष्ठ माना है। इसकी जड़का चूर्ण तीन ग्रामकी मात्रामें दूधके साथ सेवन करना चाहिये। जो व्यक्ति किसी भी प्रकारके विषसे ग्रसित हों, जिन्हें रातको कम दिखायी देता हो, ऐसे व्यक्तियोंके लिये यह परम हितकारी है।

ब्रह्मदण्डी—इसे अजदण्डी भी कहते हैं। इसका एक प्रकारका क्षुप (तना) होता है जो एक फुटसे चार फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते एकसे तीन इंच लम्बे होते हैं।

ब्रह्मदण्डी उष्णवीर्य होती है। यह वायु एवं कफको नष्ट करती है। इसका विशेष प्रयोग स्मृतिवर्धनादि तथा श्वेतकुष्ठ, चर्मरोग एवं कृमिनाशके लिये होता है। यह अपस्मार, उन्मादपर भी विशेष लाभकारी होती है। क्लीबता नष्ट करनेके लिये इसका सफल प्रयोग होता है। इसका ठंडईके रूपमें भी प्रयोग होता है। कुछ महर्षियोंके मतसे यह पारदको बाँधनेके लिये भी सफल सिद्ध है। ब्रह्मदण्डी हिमालयके अतिरिक्त महाबलेश्वर, मद्रास, मैसूर तथा मध्य भारतके पर्वतोंपर भी उपलब्ध होती है।

रुद्रवन्ती—इसे चणपली तथा संजीवनी भी कहते हैं। इस औषधिके छोटे-छोटे छ:से अठारह इंच ऊँचे क्षुप (तने) होते हैं, जिनमें अनेक शाखाएँ एवं अनेक छोटे-

छोटे चनेके समान पत्ते होते हैं। इसकी उत्पत्ति उष्ण प्रदेशोंमें तथा सीलोनमें होती है।

यह उष्णवीर्य, परम रसायन औषधि है तथा क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, रक्तपित्त, कृमिरोगको नष्ट करती है। इसके पत्तेका चूर्ण दोसे चार ग्रामकी मात्रामें जल या दूधके साथ सेवन करना उपयुक्त है।

उक्त नामोंसे आजकल जो औषधियाँ प्रचलित हैं, उनके सम्बन्धमें अभीतक भिन्न-भिन्न आचार्योंके मतोंकी सुनिश्चित धारणा नहीं बन पायी है। इन दिव्य औषधियोंकी वास्तवमें जानकारी तथा इनकी उपलब्धि न होनेके कारण तद्‌गुणसमा (उनके समान गुण-धर्मवाली) औषधियोंका ही प्रयोग हो रहा है।

पौराणिक कथा है कि दीर्घकालसे घोर तपस्यामें लीन महर्षि भार्गव (च्यवन)-का सम्पूर्ण शरीर मिट्टीसे ढक गया, केवल उनके नेत्र खुले रह गये थे। राजा शर्यातिकी पुत्री सुकन्याने भ्रमसे महर्षिके नेत्रोंको शलाकासे बींध दिया। फलस्वरूप उनमेंसे रक्त प्रवाहित हो उठा। शापके भयसे राजा शर्यातिने महर्षिकी सेवा-शुश्रूषाके लिये अपनी कन्याका उनसे विवाह कर दिया।

सुकन्या एक दिन सरिताके तटपर जल भरने गयी थी। वहाँ उसे अप्रतिम सौन्दर्यवाले अश्विनीकुमारोंके दर्शन हुए। सुकन्याकी परिस्थितिपर उन्हें दया आयी और उन्होंने उसे एक प्रयोग बताया। उसके फलस्वरूप महर्षिकी नेत्रज्योति लौट आयी और वे पूर्णरूपसे युवा भी हो गये। यही च्यवन ऋषिके नामसे प्रख्यात हुए। इन्होंने जिन औषधियोंका सेवन कर पुनर्जीवन प्राप्त किया था, उनके वर्णन विशेषरूपसे इन नामोंसे प्रचलित हैं—

जीवक, ऋषभ (ऋषभक), मेदा-महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्‌गपर्णी, मांसपर्णी, जीवन्ती और मुलहठी। इन औषधियोंके साथ ऋद्धि तथा वृद्धिको मिला देनेसे अष्टवर्ग बनता है।

जीवक-ऋषभक—ये दोनों औषधियाँ हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होती हैं। इनके कन्द लहसुनके समान होते हैं। भीतरसे ये कन्द खोखले होते हैं। इनके पत्र सूक्ष्म होते हैं। जीवकका आकार कूर्चा तथा ऋषभकका बैलके सींगके समान होता है।

मेदा-महामेदा—इनकी उत्पत्ति भोरंग प्रदेशमें होती है। महामेदा सूखे अदरकके समान होती है। इसकी लता पीले रंगकी होती है। मेदाका वर्ण श्वेताभ होता है। खुरचनेपर इसमेंसे मेद धातुके समान द्रव भी निकलता है।

काकोली-क्षीरकाकोली—इनकी भी उत्पत्ति भोरंग देशमें मानी जाती है। काकोली कुछ कृष्णवर्ण असगन्धके आकारकी होती है। क्षीरकाकोली श्वेतवर्णकी पीवरी असगन्धके समान होती है। इसमें गन्धयुक्त दूधका स्राव होता है।

ऋद्धि-वृद्धि—इनकी उत्पत्ति श्यामल प्रदेशमें मानी गयी है। ऋद्धिका फल कपासकी गाँठकी भाँति बायेंसे दायें तथा वृद्धिका दायेंसे बायेंकी ओर घूमा हुआ होता है।

उपर्युक्त औषधियाँ हिमालय पर्वतपर प्राप्त होती हैं। इनमें कच (काँटे) होते हैं। वैसे आजकल ये औषधियाँ दुर्लभ ही हैं। संक्षिप्तमें ये औषधियाँ धातुओंको पुष्ट करने, वीर्य बढ़ाने तथा शारीरिक और मानसिक तत्त्ववृद्धिमें अति गुणकारी होती हैं। साथ ही कफको बढ़ानेवाली, स्त्रियोंके दूधमें वृद्धि करनेवाली तथा गर्भदायक भी मानी गयी हैं। पित्तविकार, दाह, शोक, ज्वर, रक्तपित्त, प्रमेह तथा क्षयरोगोंमें भी इनका प्रयोग अति प्रभावशाली सिद्ध होता है। वृद्धावस्थाको समाप्त कर नवयौवन प्राप्त करनेमें भी ये औषधियाँ काफी लाभप्रद हो सकती हैं। इन औषधियोंकी दुर्लभता-सी है। अतः इनके गुणोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली अन्य औषधियाँ भी खोजी गयीं। चिकित्सकोंने मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोलीके स्थानपर शालम मिश्री, शकाकुल मिश्री, बहुमन सफेद तथा बहुमन सुर्खको उपयोगमें लानेकी बात कही है। आचार्य भावमिश्रने भी महामेदाके लिये शतावर, जीवक तथा ऋषभकके लिये विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोलीके लिये अश्वगन्धा, ऋद्धि और वृद्धिके लिये वाराही कन्दका उपयोग करनेके लिये कहा है।

इन चारों औषधियोंके मूल-कन्द ही उपयोगमें आते हैं। इनके गुणोंमें भी समानता पायी जाती है। ये भारी, शीतल, स्वादिष्ठ, वीर्यवर्धक तथा जीवनीय शक्तियोंको बढ़ानेवाली होती हैं। नेत्रोंकी दुर्बलताको भी नष्ट करनेमें सहायक होती हैं।

विश्वकी दृष्टि हमारी जड़ी-बूटियोंपर

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

प्रकृतिने मनुष्यके प्रादुर्भावके पहले ही विभिन्न प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ एवं वनस्पतियाँ पैदा कर दीं। इन जड़ी-बूटियोंमें वे सारी गुणवत्ताएँ स्थित हैं, जो रोगी होनेसे बचाने तथा रोगको ठीक करनेके लिये आवश्यक हैं।

मनुष्यने सबसे पहले कब और किस पौधेका उपयोग औषधिके रूपमें किया था, इसका कोई प्रामाणिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं है, पर हमारे देशमें ऋग्वेद औषधीय पौधोंके विषयमें जानकारी प्रदान करनेवाला प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ है। ऋग्वेदके द्वारा पता चलता है कि आर्य मनीषी प्राचीन कालमें 'सोम' नामक पौधेका उपयोग औषधिके रूपमें करते थे। प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धतिमें जड़ी-बूटियोंसे निर्मित औषधियोंका अधिक वर्णन मिलता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि मनुष्यने रोगग्रस्त होते ही पहले उन पौधोंका औषधिके रूपमें उपयोग किया जो उन्हें अपने नजदीक सरलतासे मिल जाते थे। यही कारण है कि वैदिक चिकित्सकों एवं ग्रन्थकारोंने यह निष्कर्ष निकाला कि रोगी अपने आस-पास उगनेवाली जड़ी-बूटियोंसे ही ठीक हो सकता है। उसे जड़ी-बूटियोंकी खोजमें व्यर्थ ही दूर देशतक भटकनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जड़ी-बूटियोंके विदेशी शोधकर्ताओंने सदासे ही जंगलमें रहकर विभिन्न प्राकृतिक औषधियोंसे चिकित्सा कर रहे व्यक्तियोंको सम्मान दिया है। एक ब्रिटिश विशेषज्ञ अपनी पुस्तकमें लिखते हैं कि यदि भारतीय जड़ी-बूटियोंके विषयमें जानकारी चाहिये तो आपको जंगलसे जुड़े लोगोंपर विश्वास करना होगा, उनके साथ रहना होगा और जड़ी-बूटियोंके अन्वेषणमें घने जंगलोंके अंदर जाना होगा तथा ऊँचे पहाड़ोंपर भी चढ़ना होगा।

विश्वमें जड़ी-बूटियोंसे निर्मित औषधियोंका प्रचलन जोरोंपर है। नवीनतम आकलनके अनुसार वर्तमानमें विश्वमें लगभग तीन लाख करोड़ रुपयेकी जड़ी-बूटीसे बनी औषधियोंकी बिक्री हो रही है। जड़ी-बूटीके क्षेत्रमें विश्वकी प्रमुख कम्पनियाँ प्राकृतिक रूपसे सम्पन्न भारतको आधार बनाना चाह रही हैं। भारतमें वैदिक कालसे ही औषधीय महत्त्व रखनेवाले पौधों, लताओं और वृक्षोंकी पहचान की गयी है। जड़ी-बूटियोंके चमत्कारिक औषधीय प्रभावको वैज्ञानिक धरातलपर जाँचा-परखा जा चुका है। आज भी आयुर्वेदिक दवाओंका प्रचलन देहातों, कस्बों और छोटे शहरोंमें अधिक है। महानगरोंका सम्पन्न वर्ग भी एलोपैथिक दवाओंके दुष्प्रभावोंसे घबड़ाकर आयुर्वेदकी ओर लौटने लगा है। एकाएक ही विश्वमें एलोपैथिक दवाओंके स्थानपर वैकल्पिक जड़ी-बूटीकी परम्परागत दवाओंकी तरफ लोगोंका झुकाव बढ़ने लगा है। अनेक कम्पनियोंने जड़ी-बूटी (हर्बल) सौन्दर्य-प्रसाधनोंके उत्पादनोंको बाजारमें उतारा है। भारतसे औषधीय पौधे, वृक्ष-उत्पादोंका निर्यात भी जोर पकड़ रहा है। वर्तमानमें चार सौ छत्तीस करोड़ रुपयोंके औषधीय पौधोंका निर्यात हो रहा है। इसके निर्यातमें सौ गुनातक वृद्धि होनेकी पूरी सम्भावना है।

महर्षि चरककी 'चरकसंहिता' में पेड़-पौधोंके औषधीय महत्त्वकी गहन विवेचना की गयी है। इसमें प्रत्येक पेड़-पौधोंकी जड़से लेकर पुष्प, पत्ते और अन्य भागोंके औषधीय गुणों और उनसे रोगोंके उपचारकी विधियाँ वर्णित हैं। आयुर्वेदके देवता धन्वन्तरिने जड़ी-बूटियोंके अलौकिक संसारसे जगत्का साक्षात्कार कराया है। पेड़-पौधोंका औषधीय महत्त्व अनेक पौराणिक आख्यानोंमें व्यक्त हुआ है। पीपलमें भगवान् विष्णुका वास बताया गया है। बीसवीं सदीमें वैज्ञानिकोंने यह खोज निकाला कि केवल पीपल ही एक ऐसा वृक्ष है, जो रात-दिन ऑक्सीजन छोड़ता है, जबकि अन्य पेड़ रातको कार्बन डाइ-आक्साइड छोड़ते हैं। घरोंमें तुलसीके पौधोंके पूजनकी सुदीर्घ परम्परा है। तुलसीके पौधेके सभी भाग यानी जड़, फूल, फल, पत्ती तथा डंठल आदिका औषधीय महत्त्व है। भारतमें वर्षोंसे जहरीले आकके पौधेसे फोड़े-फुंसीका उपचार किया जाता है। गाँवोंसे शहरोंतक नीमके औषधीय गुणोंसे कौन अपरिचित

है? चर्मरोगमें, कपड़ोंको कीड़ोंसे बचानेमें, दाँतोंको नीरोग रखनेमें तथा अनाजको घुन लगनेसे बचानेमें नीमका उपयोग सदियोंसे लोग करते आये हैं। नीम-खलीकी खाद दोहरा काम करती है—खादका तथा फसलको कीटाणुमुक्त रखनेका। चेचकके फैलनेपर नीमकी पत्तियोंको दरवाजेपर बाँधनेकी पुरानी परम्परा है। विवाहके अवसरपर कहीं-कहीं वरपक्ष जब कन्यापक्षके दरवाजेपर जाता है और तोरण मारता है तो वह भी नीमकी ही डाली रहती है।

विश्व-स्वास्थ्य-संगठनने कहा है कि अगले बीस वर्षोंमें यानी सन् २०२० ई० तक एलोपैथीकी एंटीबायटिक दवा मनुष्यके शरीरपर असर करना बंद कर देगी, यानी शरीर एंटीबायटिकके प्रति इम्यून हो जायगा। यह स्थिति आनेसे पहले ही पूरे विश्वको सचेत हो जाना होगा कि तब शरीरको एलोपैथी पद्धति कैसे नीरोग रख पायेगी। इसका एकमात्र उपाय है जड़ी-बूटियोंका अधिकाधिक उपयोग। यही कारण है कि विश्वका झुकाव जड़ी-बूटियोंके उपयोगकी ओर बढ़ा है। सारे विश्वकी निगाहें हमारे देशकी जड़ी-बूटियोंपर लगी हैं। क्यों? कारण, हमारे पास जड़ी-बूटियोंके विज्ञानका शास्त्र आयुर्वेदके रूपमें उपलब्ध है। हमारा आयुर्वेद विश्वका प्राचीनतम शास्त्र है। हमारी जड़ी-बूटियाँ भी सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न हैं। कारण, प्रखर सूर्य तथा सभी प्रकारके मौसम ही उन्हें शक्तिसम्पन्नता प्रदान करते हैं। विकसित देशोंके पास प्रखर सूर्य नहीं हैं तथा इतने मौसम भी वहाँ नहीं होते हैं। यही कारण है कि हमारी जड़ी-बूटियाँ दुनियामें सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। हमें केवल इसका प्रचार-प्रसार करके इसे विश्वव्यापी बनाना है।

आज केवल आयुर्वेदकी प्रामाणिकताके आधारपर विश्वबाजार हमारी जड़ी-बूटियोंकी ओर आकर्षित नहीं होगा। विदेशोंमें आकर्षण बढ़ाने-हेतु प्रयोगशालामें जाँच तथा क्लिनिकल ट्रायल भी आवश्यक है। विश्वके सामने जब सप्रमाण सारी गुणवत्ता रखी जायगी तो हमारे देशकी जड़ी-बूटियोंकी माँग विश्व-स्तरपर बढ़ना अवश्यम्भावी है। हमें विकसित देशोंकी आवश्यकताके अनुरूप तो निर्माण करना ही होगा, हमारे देशवासियोंमें भी जड़ी-बूटियोंसे निर्मित औषधियोंके उपयोगके प्रति भी पुनः आकर्षण पैदा करना होगा। हमारे देशमें जड़ी-बूटियाँ सर्वत्र फैली हैं। जंगल एवं पहाड़ इनसे भरे पड़े हैं। बहुत-सी दुर्लभ जड़ी-बूटियोंको सुरक्षित रखनेकी भी आवश्यकता है, ताकि उनका लोप न हो जाय। हमारी सरकारको भी जड़ी-बूटियोंके महत्त्वके प्रति सचेत होनेकी आवश्यकता है, ताकि आवश्यकताके अनुरूप प्रयोगशालाओंका निर्माण हो तथा उन्हें पूरी गुणवत्ताके साथ सुरक्षित रख सके।

यदि फ्रीज-ड्राइंगकी नयी तकनीकसे जड़ी-बूटियोंको सुखाया जाय तो सारी गुणवत्ताएँ सुरक्षित रहेंगी, जैसे रंग, स्वाद, गन्ध तथा शक्तिसम्पन्नता आदि। इन्हें कैप्सूलमें भरकर वर्षपर्यन्त सुलभ कराया जा सकता है। आयुर्वेदसम्मत जड़ी-बूटियोंको उपयोगी बनाने-हेतु प्राचीन एवं नवीनको एक साथ जुड़ना पड़ेगा। यदि आजके विज्ञानकी देन फ्रीज-ड्राइंग तकनीक न होती तो जड़ी-बूटियोंके सारे गुण-धर्म सुरक्षित रख पाना सम्भव न होता। आजकल रोगोंकी जाँचके भी काफी उपकरण विज्ञानने हमें सुलभ कराये हैं, जबकि पहले केवल नाडी-विज्ञान था। जाँच करानेमें इन विज्ञानसम्मत उपकरणोंका उपयोग हमारे लिये अत्यन्त लाभकारी है।

सरकारको जड़ी-बूटियोंके उत्पादन, संरक्षण तथा दवाके रूपमें उपयोग-हेतु फ्रीज-ड्राइंग तकनीकको विकसित करनेकी परम आवश्यकता है। चीन जड़ी-बूटियोंके निर्यातसे २२,००० करोड़ रुपये तथा थाइलैंड १०,००० करोड़ रुपयेकी विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहा है। निर्यातके इन आँकड़ोंके सामने हमारा निर्यात नगण्य है। यदि हमने ध्यान नहीं दिया तो हमारी जड़ी-बूटियाँ विदेशोंसे निर्मित होकर हमारे ही देशमें आयेंगी और हमें ऊँचे मूल्योंमें खरीदनेके लिये विवश होना पड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो यह हमारा घोर निन्दनीय अपराध होगा और भावी पीढ़ी हमें कभी क्षमा नहीं करेगी। भविष्यमें स्वस्थ रहनेका विकल्प केवल जड़ी-बूटियोंके अधिकाधिक सेवनमें ही निहित है।

सच्ची घटना—

आयुर्वेदकी अनूठी चिकित्सा

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआ)

एक रियासतके राजा अचानक गम्भीर रूपसे अस्वस्थ हो गये। भूख-प्यास पूरी तरह समाप्त हो जानेसे उनका शरीर पीला पड़ता गया और जर्जर होने लगा।

राजकुमार तथा अन्य परिवारजनोंने बड़े-बड़े चिकित्सकोंसे उनकी जाँच करायी। अन्तमें उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इनके शरीरकी ग्रन्थियोंसे निकलकर मुँहमें आनेवाला विक्षेप द्रव्य (जिसे लार कहते हैं) बनना बंद हो गया है। लार ही पाचन-क्रियाका प्रमुख साधन है। उसका बनना बंद होनेसे उन्हें भूख-प्याससे वञ्चित होना पड़ा है।

ऐलोपैथी पद्धतिके बड़े-बड़े चिकित्सकोंको बम्बई-कलकत्तातकसे बुलाया गया, कई विदेशी डॉक्टर भी बुलाये गये। सभीने अपनी-अपनी दवाएँ दीं, किंतु राजा साहबको रोगमुक्त नहीं किया जा सका। अब तो राज्यके तमाम लोग यही समझने लगे कि राजा साहबकी मृत्यु संनिकट है।

एक दिन अचानक राज्यके किसी गाँवके वयोवृद्ध आयुर्वेदाचार्य वैद्यजी नगरमें आये। उन्हें बताया गया कि हमारे राजा साहब एक भयंकर बीमारीसे ग्रस्त हैं। यह बीमारी असाध्य घोषित की जा चुकी है। कलकत्ता-बम्बई-तकके डॉक्टर उनका इलाज करनेमें असमर्थ रहे हैं।

वैद्यजी राजाके प्रधानमन्त्रीके पास पहुँचे और बोले—'मैं भी आपके राज्यका एक नागरिक हूँ। मैंने जब राजा साहबकी बीमारीके बारेमें सुना तो अपना कर्तव्य समझकर राजमहलतक आया हूँ। क्या मैं राजा साहबको देख सकता हूँ?' पहले तो प्रधानमन्त्रीने उस धोती-कुर्ता पहने, माथेपर तिलक लगाये सादे वेश-भूषावाले ग्रामीण वैद्यको देखकर उपेक्षाभाव दर्शाया, परंतु अन्तमें सोचा कि राजाको इन्हें दिखा देनेमें क्या हर्ज है। उन्हें राजाके कमरेमें ले जाया गया।

वैद्यजीने राजाकी नब्ज देखी। उनकी आँखों तथा जीभका जायजा लिया। अचानक वैद्यजीके मुखपर मुसकराहट दौड़ गयी। वे राजकुमार तथा प्रधानमन्त्रीसे बोले—'मैं रोगको समझ गया हूँ। अब यह बताओ कि इन्हें दवा खिलाकर स्वस्थ करूँ या दवा दिखाकर?'

कुछ देर चुप रहनेके बाद वैद्यजीने कहा—'आप १० युवक, १० चाकू तथा १० नीबू मँगाइये। मैं अभी इन्हें रोगमुक्त करके पूर्ण स्वस्थ बनाता हूँ।' यह सुनकर सभी आश्चर्यमें पड़ गये कि वैद्यजीका यह अनूठा नुस्खा आखिर किस तरह राजा साहबको स्वस्थ कर सकेगा। सबने कहा—'लगता है वैद्य कोई सनकी है।'

विचार-विमर्शके बाद युवकों, चाकुओं तथा नीबुओंकी व्यवस्था कर दी गयी।

वैद्यजीने दसों युवकोंको लाइनमें खड़ा कर दिया। हरेकके हाथमें एक नीबू तथा चाकू थमा दिया। उन्हें बताया कि मैं जैसे ही संकेत करूँ एक युवक राजा साहबकी शय्याके पास पहुँचे, उनके मुखके पास नीबू ले जाय—नीबूको चाकूसे काटे तथा उसके दोनों हिस्से वहाँ रखे बर्तनमें निचोड़ दे। इसके बाद दूसरा युवक भी ऐसा ही करे।

राजा साहबके कमरेमें रानी, राजकुमार, प्रधानमन्त्री आदि बैठे इस अनूठी चिकित्साके प्रयोगको देख रहे थे। वैद्यजीके संकेतपर एक युवक कमरेमें आया—उसने राजा साहबको प्रणाम किया, नीबू मुँहके पास ले जाकर चाकूसे काटा तथा उसके दोनों हिस्सोंको निचोड़ दिया।

तीन युवकोंके इस प्रयोगके बाद राजा साहबने जीभ चलायी। चौथे युवकने जैसे ही नीबू काटकर रस निचोड़ा कि राजा साहबकी आँखोंमें चमक आने लगी। नीबूके रसकी धारको देखकर नीबूका चिन्तन करके राजा साहबके मुँहमें पानी (लार) आने लगा था। उनकी ग्रन्थियोंने लार बनानी शुरू कर दी थी।

देखते-ही-देखते राजा साहबका मुँह लारसे भरने लगा। वैद्यजीने उन्हें नीबूके रसमें तुलसीपत्र तथा काली मिर्च डलवाकर पिलवायी। कुछ ही देरमें राजा साहब उठ बैठे। उनके शरीरकी लार बनानेवाली ग्रन्थियाँ अपना कार्य करने लगीं।

अब तो राजा साहबका पूरा परिवार उन ग्रामीण वैद्यजीके प्रति नतमस्तक हो उठा था। बड़े-बड़े अंग्रेजी-पद्धतिके डॉक्टर राजा साहबको नीरोगी नहीं बना पाये थे, वहीं एक साधारण वैद्यजीने अपने एक देशी नुस्खेसे राजा साहबको रोगमुक्त कर दिखाया था।

राजपरिवारके लोगोंने वैद्यजीको स्वर्णमुद्राएँ इनाममें देनी चाहीं, पर उन्होंने कहा—'मैं इस राज्यका नागरिक हूँ—क्या मेरा यह कर्तव्य नहीं है कि मैं अपने राजाके स्वास्थ्यके लिये कुछ करूँ और उन्होंने इनाम लेनेसे इनकार कर दिया।'

[प्रेषक—शिवकुमार गोयल]

विविध चिकित्सा-पद्धतियाँ

[मानवशरीर परमात्म प्रभुकी एक सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसे स्वस्थ एवं नीरोग रखना प्रत्येक मनुष्यका प्रथम कर्तव्य एवं धर्म है। वर्तमान समयमें जीवनकी जटिलताएँ इतनी बढ़ती जा रही हैं कि मनुष्य विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे आक्रान्त हो रहा है। जहाँ जनजीवनमें सामान्यतः नये-नये रोग विकसित हो रहे हैं, वहीं चिकित्सा-पद्धतियोंका भी विस्तार हो रहा है। एक रोगका उपचार दूसरे अन्य रोगोंको जन्म दे देता है और ओषधियोंकी संख्या भी बढ़ रही है।

*प्राचीन कालसे भारतमें विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, रोगोंके विस्तार होनेके कारण कुछ नयी पद्धतियाँ भी सामने आ रही हैं तथा सभी चिकित्साशास्त्रोंके पृथक्-पृथक् गुण और दोष भी हैं। कुछ पद्धतियाँ ऐसी हैं, जिनसे रोग तो शीघ्र ठीक हो जाते हैं, परंतु उनमें स्थायित्व नहीं रहता। कुछ ऐसी भी पद्धति है, जिसके उपचारसे निर्दिष्ट रोग तो ठीक हो जाता है, पर दूसरा रोग पनप जाता है, पर इसके साथ ही भारतकी प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियोंमें ऐसे भी उपचार हैं, जो रोगके गुण-दोषोंको साम्यावस्थामें लाकर स्थायी लाभ एवं आरोग्य प्रदान करते हैं। हम यहाँ जन-सामान्यकी जानकारीके लिये चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियोंको प्रस्तुत कर रहे हैं।—**सं०**]*

स्वर-विज्ञान और बिना औषध रोगनाशके उपाय

(परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत्स्वामी निगमानन्दजी सरस्वती)

विश्वपिता विधाताने मनुष्य-जन्मके समयमें ही देहके साथ एक ऐसा आश्चर्यजनक कौशलपूर्ण अपूर्व उपाय रच दिया है, जिसे जान लेनेपर सांसारिक, वैषयिक किसी भी कार्यमें असफलताका दुःख नहीं हो सकता। हम इस अपूर्व कौशलको नहीं जानते, इसी कारण हमारा कार्य असफल हो जाता है, आशा भङ्ग हो जाती है, हमें मनस्ताप और रोग भोगना पड़ता है। यह विषय जिस शास्त्रमें है, उसे स्वरोदयशास्त्र कहते हैं। यह शास्त्र जितना दुर्लभ है, उतना ही स्वरके ज्ञाता गुरुका भी अभाव है। यह शास्त्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। मुझे पद-पदपर इसका प्रत्यक्ष फल देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ा है। यद्यपि समग्र स्वरोदयशास्त्र ठीक-ठीक लिपिबद्ध करना बिलकुल असम्भव है तथापि मात्र साधकोंके कामकी कुछ बातें यहाँ संक्षेपमें दी जा रही हैं—

स्वरोदयशास्त्र सीखनेके लिये श्वास-प्रश्वासकी गतिके सम्बन्धमें सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस शास्त्रका वचन है—'**कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः।**' यानी 'देहरूपी नगरमें वायु राजाके समान है।' प्राणवायु 'निःश्वास' और 'प्रश्वास'—इन दो नामोंसे पुकारा जाता है। वायु ग्रहण करनेका नाम 'निःश्वास' और वायुके परित्याग करनेका नाम 'प्रश्वास' है। जीवके जन्मसे लेकर मृत्युके अन्तिम क्षणतक निरन्तर श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती रहती है। यह निःश्वास दोनों नासापुटों—नासिकाके दोनों छिद्रोंसे एक ही समय एक साथ समानरूपसे नहीं चला करता, कभी बायें और कभी दायें पुटसे चलता है। कभी-कभी एकाध घड़ीतक एक ही समय दोनों नासापुटोंद्वारा समानभावसे श्वास प्रवाहित होता है।

बायें नासापुटके श्वासको इडामें चलना, दाहिनी नासिकाके श्वासको पिंगलामें चलना और दोनों नासापुटोंसे एक समान चलनेपर उसे सुषुम्णामें चलना कहते हैं। एक नासापुटको दबाकर दूसरेके द्वारा श्वासको बाहर निकालनेपर यह साफ मालूम हो जाता है कि एक नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास-प्रवाह चल रहा है और दूसरा नासापुट मानो बंद है अर्थात् उससे दूसरी नासिकाकी तरह सरलतापूर्वक श्वास बाहर नहीं निकलता। जिस नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास बाहर निकलता हो, उस समय उसी नासिकाका श्वास कहना चाहिये। किस नासिकासे श्वास बाहर निकल रहा है, इसे पाठक उपर्युक्त प्रकारसे समझ सकते हैं। क्रमशः अभ्यास होनेपर बहुत आसानीसे मालूम होने लगता है कि किस नासिकासे निःश्वास प्रवाहित होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयके समयसे ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। इस प्रकार रात-दिनमें बारह बार बायीं और बारह बार दायीं नासिकासे क्रमानुसार श्वास चलता है। किस दिन किस नासिकासे पहले श्वास-क्रिया होती है, इसका एक निर्दिष्ट नियम है। यथा—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये॥

(पवनविजयस्वरोदय)

शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे चन्द्र अर्थात् बायीं नासिकासे तथा कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे सूर्यनाडी अर्थात् दायीं नासिकासे पहले श्वास प्रवाहित होता है अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा—इन नौ तिथियोंमें प्रातःकाल सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छः तिथियोंमें प्रातःकाल पहले दायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और वह ढाई घड़ीतक रहता है। उसके बाद दूसरी नासिकासे श्वास चलना प्रारम्भ होता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावास्या—इन नौ तिथियोंमें सूर्योदयके समय पहले दायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छः तिथियोंमें सूर्योदयकालमें पहले बायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और ढाई घड़ीके बाद दाहिनी नासिकासे चलने लगता है। इस प्रकार नियमपूर्वक ढाई-ढाई घड़ीतक एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। यही मनुष्य-जीवनमें श्वासकी गतिका स्वाभाविक नियम है।

वहेत् तावद् घटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत्।

(स्वरोदयशास्त्र)

प्रतिदिन रात-दिनकी साठ घड़ियोंमें ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे निर्दिष्ट क्रमसे श्वास चलनेके समय क्रमशः पञ्चतत्त्वोंका उदय होता है। इस श्वास-प्रश्वासकी गतिको समझकर कार्य करनेपर शरीर स्वस्थ रहता है और मनुष्य दीर्घजीवी होता है, फलस्वरूप सांसारिक, वैषयिक—सभी कार्योंमें सफलता मिलनेके कारण सुखपूर्वक संसार-यात्रा पूरी होती है।

बायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय इडा नाडीसे अर्थात् बायीं नासिकासे श्वास चलता हो, उस समय स्थिर कर्मोंको करना चाहिये। जैसे—अलंकार-धारण, दूरकी यात्रा, आश्रममें प्रवेश, राजमन्दिर तथा महल बनाना एवं द्रव्यादिका ग्रहण करना। तालाब, कुआँ आदि जलाशय तथा देवस्तम्भ आदिकी प्रतिष्ठा करना। इसी समय यात्रा, दान, विवाह, नवीन वस्त्रधारण, शान्तिकर्म, पौष्टिक कर्म, दिव्यौषधसेवन, रसायनकार्य, प्रभुदर्शन, मित्रता-स्थापन आदि शुभ कार्य करने चाहिये। बायीं नासिकासे श्वास चलनेके समय शुभ कार्योंमें सिद्धि मिलती है। परंतु वायु, अग्नि और आकाशतत्त्वके उदयके समय उक्त कार्य नहीं करने चाहिये।

दायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय पिंगला नाडी अर्थात् दाहिनी नासिकासे श्वास चलता हो उस समय कठिन कर्म करने चाहिये। जैसे—कठिन क्रूर-विद्याका अध्ययन और अध्यापन, स्त्रीसंसर्ग, नौकादि आरोहण, तान्त्रिकमतानुसार वीरमन्त्रादिसम्मत उपासना, शत्रु-दण्ड, शस्त्राभ्यास, गमन, पशुविक्रय, ईंट, पत्थर, काठ तथा रत्न आदिका घिसना और छीलना, संगीत-अभ्यास, यन्त्र-तन्त्र बनाना, किले और पहाड़पर चढ़ना, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदिकी सवारी सीखना, व्यायाम, षट्कर्मसाधन, यक्षिणी, बेताल तथा भूतादिसाधन, औषधसेवन, लिपिलेखन, दान, क्रय-विक्रय, युद्ध, भोग, राजदर्शन तथा स्नानाहार आदि।

सुषुम्णा नाडीका श्वासफल

दोनों नासापुटोंसे श्वास चलनेके समय किसी प्रकारका शुभ या अशुभ कार्य नहीं करना चाहिये। उस समय कोई भी काम करनेसे वह निष्फल होगा तथा योगाभ्यास और ध्यान-धारणादिके द्वारा मात्र भगवत्स्मरण करना उचित है। सुषुम्णा नाडीसे श्वास चलनेके समय किसीको भी शाप या वर-प्रदान सफल होता है।

श्वास-प्रश्वासकी गति जानकर, तत्त्वज्ञान और तिथि-नक्षत्रके अनुसार, ठीक-ठीक नियमपूर्वक सब कर्मोंको करनेपर आशाभङ्गजनित मनस्ताप नहीं भोगना पड़ता।

रोगोत्पत्तिका पूर्ण ज्ञान और उसका प्रतिकार

प्रतिपदा आदि तिथियोंको यदि निश्चित नियमके विरुद्ध श्वास चले तो निःसंदेह कुछ अमङ्गल होगा। जैसे, शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको प्रातः नींद टूटनेपर सूर्योदयके समय पहले यदि दायीं नासिकासे श्वासका

चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे पूर्णिमातकके बीच गर्मीके कारण और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिको सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे श्वासका चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे अमावास्यातकके भीतर कफ या सर्दीके कारण कोई पीडा होगी, इसमें संदेह नहीं।

दो पखवाड़ोंतक इसी प्रकार विपरीत ढंगसे सूर्योदयकालमें निःश्वास चलता रहे तो किसी आत्मीय स्वजनको भारी बीमारी होगी अथवा मृत्यु होगी या और किसी प्रकारकी विपत्ति आयेगी। तीन पखवाड़ोंसे ऊपर लगातार गड़बड़ होनेपर निश्चित रूपसे अपनी मृत्यु हो जायगी।

शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल यदि विपरीत ढंगसे निःश्वास-गतिका पता लग जाय तो उस नासिकाको कई दिनोंतक बंद रखनेसे रोगोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं रहती। उस नासिकाको इस तरह बंद रखना चाहिये जिसमें उससे निःश्वास न चले। इस प्रकार कुछ दिनोंतक दिन-रात निरन्तर (स्नान और भोजनका समय छोड़कर) नाक बंद रखनेसे उक्त तिथियोंके भीतर बिलकुल ही कोई रोग नहीं होगा।

यदि असावधानीवश निःश्वासमें गड़बड़ी होनेसे कोई रोग उत्पन्न हो जाय तो जबतक रोग दूर न हो जाय, तबतक ऐसा करना चाहिये कि जिससे शुक्लपक्षमें दायीं और कृष्णपक्षमें बायीं नासिकासे श्वास न चले। ऐसा करनेसे रोग शीघ्र दूर हो जायगा। यदि कोई भारी रोग होनेकी सम्भावना होगी तो वह बहुत सामान्य रूपमें होगा और फिर थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जायगा। ऐसा करनेसे न तो रोगजनित कष्ट भोगना पड़ेगा और न चिकित्सकको धन ही देना पड़ेगा।

नासिका बंद करनेका नियम

नाकके छिद्रमें घुस सके, इतनी-सी पुरानी साफ रूई लेकर उसकी गोल पोटली-सी बना ले और उसे साफ बारीक कपड़ेसे लपेटकर सिल ले। फिर इस पोटलीको नाकके छिद्रमें घुसाकर छिद्रको इस प्रकार बंद कर दे, जिसमें उस नाकसे श्वास-प्रश्वास-कार्य बिलकुल ही न हो। जिन लोगोंको कोई सिर-सम्बन्धी रोग है अथवा जिनका मस्तक दुर्बल हो, उन्हें रूईसे नाक बंद न कर मात्र स्वच्छ पतले वस्त्रकी पोटली बनाकर उसीसे नाक बंद करनी चाहिये।

किसी भी कारण, जितने क्षण या जितने दिन नासिका बंद रखनेकी आवश्यकता हो उतने क्षणों या उतने दिनोंतक अधिक परिश्रमका कार्य, धूम्रपान, जोरसे चिल्लाना, दौड़ना आदि नहीं करना चाहिये। जब जिस किसी कारणसे नाक बंद रखनेकी आवश्यकता हो, तभी इन नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिये। नयी अथवा बिना साफ की हुई मैली रूई कभी नाकमें नहीं डालनी चाहिये।

निःश्वास बदलनेका तरीका

कार्यभेदसे तथा अन्यान्य अनेक कारणोंसे एक नासिकासे दूसरी नासिकामें वायुकी गति बदलनेकी भी आवश्यकता हुआ करती है। कार्यके अनुकूल नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होनेतक, उसे न करके चुपचाप बैठे रहना किसीके लिये भी सम्भव नहीं। अतएव अपनी इच्छाके अनुसार श्वासकी गति बदलनेकी क्रिया सीख लेना नितान्त आवश्यक है। यह क्रिया अत्यन्त सहज है, सामान्य चेष्टासे ही श्वास-गति बदली जा सकती है।

जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उसके विपरीत दूसरी नासिकाको अँगूठेसे दबा देना चाहिये और जिससे श्वास चलता हो उसके द्वारा वायु खींचना चाहिये। फिर उसे दबाकर दूसरी नासिकासे वायुको निकालना चाहिये। कुछ देरतक इसी तरह एकसे श्वास लेकर दूसरीसे निकालते रहनेसे अवश्य श्वासकी गति बदल जायगी। जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसी करवट सोकर यह क्रिया करनेसे अति शीघ्र श्वासकी गति बदल जाती है और दूसरी नासिकासे श्वास प्रवाहित होने लगता है। इस क्रियाके बिना भी जिस नाकसे श्वास चलता है, केवल उस करवट कुछ समयतक सोये रहनेसे भी श्वासकी गति बदल जाती है।

इस लेखमें जहाँ-जहाँ निःश्वास बदलनेकी बात लिखी जायगी, वहाँ-वहाँ पाठकोंको इसी कौशलसे श्वासकी गति बदलनेकी बात समझनी चाहिये। जो अपनी इच्छाके अनुसार वायुको रोक और निकाल सकता है, वही वायुपर विजय प्राप्त कर सकता है।

बिना औषधके रोगनिवारण

अनियमित क्रियाके कारण जिस तरह मानव-

देहमें रोग उत्पन्न होते हैं, उसी तरह औषधके बिना ही भीतरी क्रियाओंके द्वारा नीरोग होनेके उपाय भगवान्‌के बनाये हुए हैं। हम लोग उस भगवत्प्रदत्त सहज कौशलको नहीं जानते, इसी कारण दीर्घ कालतक रोगजनित दुःख भोगते हैं। यहाँ रोगोंके निदानके लिये स्वरोदयशास्त्रोक्त कुछ यौगिक उपायोंका उल्लेख किया जा रहा है, जिनके प्रयोगसे विशेष लाभ हो सकता है—

ज्वर—ज्वरका आक्रमण होनेपर अथवा आक्रमणकी आशङ्का होनेपर जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उस नासिकाको बंद कर देना चाहिये। जबतक ज्वर न उतरे और शरीर स्वस्थ न हो जाय, तबतक उस नासिकाको बंद ही रखना चाहिये। ऐसा करनेसे दस-पंद्रह दिनोंमें उतरनेवाला ज्वर पाँच-सात दिनोंमें अवश्य ही उतर जायगा। ज्वरकालमें मन-ही-मन सदा चाँदीके समान श्वेत वर्णका ध्यान करनेसे अति शीघ्र लाभ होता है।

सिन्दुवारकी जड़ रोगीके हाथमें बाँध देनेसे सब प्रकारके ज्वर निश्चय ही दूर हो जाते हैं।

अँतरिया-ज्वर—श्वेत अपराजिता अथवा पलाशके कुछ पत्तोंको हाथसे मलकर, कपड़ेसे लपेटकर एक पोटली बना लेनी चाहिये और जिस दिन ज्वरकी बारी हो उस दिन सबेरेसे ही उसे सूँघते रहना चाहिये। अँतरिया-ज्वर बंद हो जायगा।

सिरदर्द—सिरदर्द होनेपर दोनों हाथोंकी केहुनीके ऊपर धोतीके किनारे अथवा रस्सीसे खूब कसकर बाँध देना चाहिये। इससे पाँच-सात मिनटमें ही सिरदर्द जाता रहेगा। ऐसा बाँधना चाहिये कि रोगीको हाथमें अत्यन्त दर्द मालूम हो। सिरदर्द अच्छा होते ही बाँहें खोल देनी चाहिये।

सिरदर्द दूसरे प्रकारका एक और होता है, जिसे साधारणतः 'अधकपाली' या 'आधासीसी' कहते हैं। कपालके मध्यसे बायीं या दायीं ओर आधे कपाल और मस्तकमें अत्यन्त पीडा मालूम होती है। प्रायः यह पीडा सूर्योदयके समय आरम्भ होती है और दिन चढ़नेके साथ-साथ यह भी बढ़ती जाती है। दोपहरके बाद घटनी प्रारम्भ होती है और सायंतक प्रायः नहीं ही रहती। इस रोगका आक्रमण होनेपर जिस तरफके कपालमें दर्द हो, ऊपर लिखे अनुसार उसी तरफकी केहुनीके ऊपर जोरसे रस्सी बाँध देनी चाहिये। थोड़ी ही देरमें दर्द शान्त हो जायगा और रोग जाता रहेगा। दूसरे दिन यदि पुनः दर्द शुरू हो और प्रतिदिन एक ही नासिकासे श्वास चलते समय हो तो सिरदर्द मालूम होते ही उस नाकको बंद कर देना चाहिये और हाथको भी बाँध रखना चाहिये। 'अधकपाली' सिरदर्दमें इस क्रियासे होनेवाले आश्चर्यजनक फलको देखकर आप चकित रह जायँगे।

सिरमें पीडा—जिस व्यक्तिके सिरमें पीडा हो उसे प्रातःकाल शय्यासे उठते ही नासापुटसे शीतल जल पीना चाहिये। इससे मस्तिष्क शीतल रहेगा, सिर भारी नहीं होगा और सर्दी नहीं लगेगी। यह क्रिया विशेष कठिन भी नहीं है। एक पात्रमें ठंडा जल भरकर उसमें नाक डुबाकर धीरे-धीरे गलेके भीतर जल खींचना चाहिये। यह क्रिया क्रमशः अभ्याससे सहज हो जायगी। सिरमें पीडा होनेपर चिकित्सक रोगीके आरोग्य होनेकी आशा छोड़ देता है, रोगीको भी भीषण कष्ट होता है; परंतु इस उपायसे निश्चय ही आशातीत लाभ पहुँचेगा।

उदरामय, अजीर्ण आदि—भोजन तथा जलपान आदि जो कुछ भी करना हो वह सब दायीं नासिकासे श्वास चलते समय करना चाहिये। प्रतिदिन इस नियमद्वारा आहार करनेसे वह बहुत आसानीसे पच जायगा और कभी अजीर्ण-रोग नहीं होगा। जो लोग इस रोगसे दुःखी हैं, वे भी यदि इस नियमके अनुसार प्रतिदिन भोजन करें तो खायी हुई चीज पच जायगी और धीरे-धीरे उनका रोग दूर हो जायगा। भोजनके बाद थोड़ी देर बायीं करवट सोना चाहिये। जिन्हें समय न हो उन्हें ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे भोजनके बाद दस-पंद्रह मिनटतक दायीं नासिकासे श्वास चले अर्थात् पूर्वोक्त नियमके अनुसार रूईद्वारा बायीं नासिका बंद कर लेनी चाहिये। गुरुपाक (भारी) भोजन करनेपर भी इस नियमसे वह शीघ्र पच जाता है।

स्थिरताके साथ बैठकर नाभिमण्डलमें अपलक (एकटक) दृष्टि जमाकर नाभिकन्दका ध्यान करनेसे एक सप्ताहमें उदरामय (उदर-सम्बन्धी) रोग दूर हो जाता है।

श्वास रोककर नाभिको खींचकर नाभिकी ग्रन्थिको एक सौ बार मेरुदण्डसे मिलानेपर आमादि उदरामयजनित सब तरहकी पीडाएँ दूर हो जाती हैं और जठराग्नि तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है।

प्लीहा—रातको बिछौनेपर सोकर और प्रातः शय्या-त्यागके समय हाथ और पैरोंको सिकोड़कर छोड़ देना चाहिये। फिर कभी बायीं और कभी दायीं करवट टेढ़ा-मेढ़ा शरीर करके समस्त शरीरको सिकोड़ना और फैलाना चाहिये। प्रतिदिन चार-पाँच मिनट ऐसा करनेसे प्लीहा-यकृत् (तिल्ली, लीवर)-रोग दूर हो जायगा। सर्वदा इसका अभ्यास करनेसे प्लीहा-यकृत्-रोगकी पीडा कभी नहीं भोगनी पड़ेगी अर्थात् निर्मूल हो जायगी।

दन्तरोग—प्रतिदिन जितनी बार मल-मूत्रका त्याग करे, उतनी बार दाँतोंकी दोनों पंक्तियोंको मिलाकर जोरसे दबाये रखे। जबतक मल या मूत्र निकलता रहे, तबतक दाँतोंसे दाँत मिलाकर दबाये रहना चाहिये। दो-चार दिन ऐसा करनेसे कमजोर दाँतोंकी जड़ मजबूत हो जायगी। नियमित अभ्यास करनेसे दन्तमूल दृढ़ हो जाता है और दाँत दीर्घ कालतक काम देते हैं तथा दाँतोंमें किसी प्रकारकी बीमारी होनेका कोई भय नहीं रहता।

स्नायविक वेदना—छाती, पीठ या बगलमें—चाहे जिस स्थानमें स्नायविक या अन्य किसी प्रकारकी वेदना हो तो वेदना प्रतीत होते ही जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसे बंद कर देनेसे दो-चार मिनटके पश्चात् अवश्य ही वेदना शान्त हो जायगी।

दमा या श्वासरोग—जब दमेका जोरका दौरा हो तब जिस नासिकासे निःश्वास चलता हो, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास चलाना चाहिये। दस-पंद्रह मिनटमें दमेका जोर कम हो जायगा। प्रतिदिन ऐसा करनेसे महीनेभरमें पीडा शान्त हो जायगी। दिनमें जितने ही अधिक समयतक यह क्रिया की जायगी, उतना ही शीघ्र यह रोग दूर होगा। दमाके समान कष्टदायक कोई रोग नहीं, दमाका जोर होनेपर इस क्रियासे बिना किसी दवाके बीमारी चली जाती है।

वात—प्रतिदिन भोजनके बाद कंघीसे सिर झाड़ना चाहिये। कंघी इस प्रकार चलानी चाहिये जिसमें उसके काँटे सिरको स्पर्श करें। उसके बाद वीरासन लगाकर अर्थात् दोनों पैर पीछेकी ओर मोड़कर उनके ऊपर पंद्रह मिनट बैठना चाहिये। प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद इस प्रकार बैठनेसे कितना भी पुराना वात क्यों न हो निश्चय ही अच्छा हो जायगा। यदि स्वस्थ आदमी इस नियमका पालन करे तो उसे वातरोग होनेकी कोई आशङ्का नहीं रहेगी।

नेत्ररोग—प्रतिदिन सबेरे बिछौनेसे उठते ही सबसे पहले मुँहमें जितना पानी भरा जा सके उतना भरकर दूसरे जलसे आँखोंको बीस बार झपटा मारकर धोना चाहिये।

प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद हाथ-मुँह धोते समय कम-से-कम सात बार आँखोंमें जलका झपटा देना चाहिये।

जितनी बार मुँहमें जल डाले, उतनी बार आँख और मुँहको धोना न भूले।

प्रतिदिन स्नान-कालमें तेल मालिश करते समय पहले दोनों पैरोंके अँगूठोंके नखोंको तेलसे भर देना चाहिये और फिर तेल लगाना चाहिये।

ये नियम नेत्रोंके लिये विशेष लाभदायक हैं। इनसे दृष्टिशक्ति तेज होती है, आँखें स्निग्ध रहती हैं और आँखोंमें कोई बीमारी होनेकी सम्भावना नहीं रहती। नेत्र मनुष्यके परमधन हैं। अतएव प्रतिदिन नियमपालनमें कभी आलस्य नहीं करना चाहिये।

कुछ उपयोगी सूचनाएँ

(१) चाहे ज्वर हो या किसी प्रकारकी वेदना, फोड़ा हो या घाव चाहे जो हो, किसी भी प्रकारकी बीमारीके लक्षण ज्यों ही मालूम हों, त्यों ही जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उस नासिकाको तुरंत बंद कर देना चाहिये। जितनी देर या जितने दिनतक शरीर स्वाभाविक स्थितिको प्राप्त न हो जाय, उतनी देर या उतने दिनोंतक उस नाकको बंद ही रखना चाहिये। इससे शरीर शीघ्र स्वस्थ हो जायगा, अधिक दिन दुःख नहीं भोगना पड़ेगा।

(२) रास्ता चलनेपर या किसी प्रकार श्रमका कार्य करनेपर जब शरीर बहुत ही थक जाय अथवा उससे धातु गर्म हो जाय तो कुछ देर दाहिने करवट सो जाना चाहिये; इससे थोड़े समयमें ही थकावट दूर हो जायगी और शरीर स्वस्थ हो जायगा।

(३) प्रतिदिन भोजन करनेके बाद हाथ-मुँह धोकर कंघीसे सिरके बाल झाड़ने चाहिये। कंघी इस तरह चलानी चाहिये कि उसके काँटे सिरमें स्पर्श करें। इससे सिर-सम्बन्धी पीडा और सिर-सम्बन्धी अन्य कोई बीमारी तथा वात-व्याधि उत्पन्न होनेका भय नहीं

रहता। ऐसी कोई पीड़ा यदि होगी तो वह बढ़ेगी नहीं, वरन् क्रमशः आराम हो जायगा। बाल शीघ्र नहीं पकेंगे।

(४) यदि कड़ी धूपमें कहीं बाहर जाना हो तो रूमाल, चादर अथवा तौलिया आदिके द्वारा दोनों कानोंको ढक लेना चाहिये। ऐसा करनेसे धूपजनित कोई दोष शरीरको स्पर्श नहीं करेगा, शरीर गर्म और दुःखी न होगा। कानोंको इस तरह ढकना चाहिये कि वे पूर्णरूपसे ढक जायँ और कानमें हवा न लगे।

(५) स्मरण-शक्ति कम हो जानेपर मस्तकपर एक काठकी कील, उसपर एक काठका टुकड़ा रखकर धीरे-धीरे उसके ऊपर आघात करना चाहिये।

(६) प्रतिदिन आधा घंटा पद्मासनसे बैठकर दाँतोंकी जड़में जीभका अग्रभाग दबाकर रखनेसे समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

(७) ललाटके ऊपर पूर्णचन्द्रके समान ज्योतिका ध्यान करना आयुवर्धक है और कुष्ठादि रोग-निवारक है। सर्वदा दृष्टिके आगे पीतवर्ण उज्ज्वल ज्योतिका ध्यान करनेसे बिना औषध सब तरहके रोग अच्छे हो जाते हैं और देह वृद्धावस्थाके लक्षणोंसे रहित हो जाती है। सिर गर्म होने या घूमनेपर मस्तकमें श्वेतवर्ण या पूर्णशरच्चन्द्रका ध्यान करनेसे पाँच-सात मिनटमें प्रत्यक्ष लाभ दिखायी देता है।

(८) प्याससे व्याकुल होनेपर ऐसा ध्यान करना चाहिये कि जीभके ऊपर कोई खट्टी चीज रखी हुई है। शरीर गर्म होनेपर ठंडी चीजका और शीतल होनेपर गर्म चीजका ध्यान सर्वोत्तम है।

(९) प्रतिदिन दोनों समय स्थिर-आसनसे बैठकर नाभिकी ओर एकटक देखते हुए नाभिमें वायुधारण और नाभिकन्दका ध्यान करनेसे अग्निमान्द्य, असाध्य अजीर्ण और प्रबल अतिसार आदि सब प्रकारके उदरामय अवश्य विनष्ट हो जाते हैं और परिपाकशक्ति तथा जठराग्नि बढ़ जाती है।

(१०) प्रातः नींद टूटनेपर जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उस ओरका हाथ मुँहपर रखकर शय्यासे उठनेपर मनोकामना सिद्ध होती है।

(११) रक्त अपामार्गकी जड़ हाथमें बाँधनेसे भूत-प्रेतादिजनित सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(१२) इमलीके पौधेको उखाड़कर उसकी जड़ गर्भिणीके सिरके बालोंमें इस तरह बाँध देनी चाहिये जिससे उस जड़की गन्ध उसकी नाकमें जा सके। ऐसा करनेसे गर्भिणी अविलम्ब ही सुखसे प्रसव करेगी। परंतु प्रसव होते ही बालोंसहित उस जड़को कैंचीसे काटकर फेंक देना चाहिये, अन्यथा प्रसूताकी नाडीतक बाहर निकल आनेकी सम्भावना रहती है। जिस समय गर्भिणीको प्रसवकी वेदनासे अत्यन्त कष्ट हो उस समय घबराहट छोड़कर इस उपायसे काम लेना चाहिये। श्वेत पुनर्नवाकी जड़का चूर्ण जननेन्द्रियके भीतर देनेसे भी गर्भिणी शीघ्र सुखपूर्वक प्रसव कर सकती है।

(१३) जो दिनमें बायीं नासिकासे और रातमें दाहिनी नासिकासे श्वास लेता है, उसके शरीरमें कोई पीडा नहीं होती, आलस्य दूर होता है और दिनों-दिन चेतना बढ़ती है। दस-पंद्रह दिन रुईद्वारा अभ्यास करनेसे पीछे अपने-आप ही इसी नियमसे श्वास चलने लगता है।

(१४) प्रातःकाल और तीसरे पहर कागजी नीबूका पत्ता सूँघनेसे पुराना और भीतरी ज्वर छूट जाता है।

(१५) प्रतिदिन एकाग्र होकर श्वेत, कृष्ण और रक्तवर्णादिका ध्यान करनेसे देहके समस्त विकार नष्ट होते हैं। इसी कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हिन्दुओंके नित्य ध्येय हैं। ब्राह्मण नियमितरूपसे त्रिकाल संध्या करनेके कारण सर्वरोगविमुक्त होकर स्वस्थ शरीरद्वारा जीवनयापन कर सकते हैं। दुःखकी बात है कि आजकल अधिकांश द्विज संध्या आदि करनेमें अपने समयका व्यय करना नहीं चाहते और जो लोग करते भी हैं वे ठीक-ठीक करना नहीं जानते। संध्याका उद्देश्य तो दूर रहा, वे संध्या-गायत्रीका अर्थतक नहीं जानते। प्राणायाम आदि भी विधिपूर्वक नहीं किये जाते। संध्याके संस्कृतवाक्योंको बस पढ़ लेना जानते हैं। इसके सिवा संध्यादिके द्वारा वे क्या कर रहे हैं, कुछ भी नहीं समझते। हमारा विश्वास है कि भाव हृदयङ्गम हुए बिना भक्ति नहीं आ सकती। संध्यामें प्राणायामकी जो विधि लिखी है, उसमें प्राणायामकी क्रिया और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके ध्यानमें क्रमशः लोहित, कृष्ण और श्वेतवर्णका ध्यान—ये दो मुख्य क्रियाएँ होती हैं। इनमेंसे प्रत्येक क्रियामें क्या-क्या गुण हैं, इसे कोई नहीं जानता। फिर त्रिकाल-संध्या करनेके समय

गायत्रीके ध्यानमें भी उन्हीं वर्णोंका ध्यान होता है। हम लोग आर्य ऋषियोंकी संध्या-पूजाका महान् उद्देश्य अपनी स्थूल बुद्धिके कारण नहीं समझ पानेपर भी अपनी सूक्ष्म बुद्धिकी मुंशियाना चालसे उन सबको पागलका प्रलाप कहकर अस्वीकार कर बैठते हैं। निश्चय जानें—हिन्दू-देवी-देवताओंकी नाना मूर्तियाँ, नाना वर्ण जो शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, व्यर्थ नहीं हैं। सब प्रकारके धर्म-साधन और तपस्याका मूल है—स्वस्थ शरीर। शरीर यदि स्वस्थ न रहा तथा दीर्घजीवी न हुए तो न धर्मसाधन होगा और न अर्थोपार्जन ही होगा। असीम ज्ञानसम्पन्न आर्य ऋषियोंने शरीर स्वस्थ रखने और परमार्थसाधन करनेके सहज उपायस्वरूप देवी-देवताओंके अनेक वर्णोंका निर्देश किया है। संध्या-उपासनाके समय श्वेत, रक्त और श्यामादि वर्णोंका ध्यान किया जाता है, जिससे वायु, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंका साम्य होता है और शरीर स्वस्थ रहता है। प्रातःकाल नींद टूटनेपर शिरःस्थित श्वेत कमलमें श्वेतवर्ण गुरुदेव और रक्तवर्ण उनकी शक्तिका ध्यान करनेकी विधि है। इससे शरीर कितना स्वस्थ रहता है इस बातको लोग क्या समझेंगे। जो हो, कोई यदि ब्रह्मा, विष्णु, शिवमूर्ति अथवा गुरु और उनकी शक्तिका ध्यान करके पौत्तलिक, जडोपासक अथवा कुसंस्काराच्छन्न होकर अन्धतमस्में गिरनेके लिये राजी न हो तो वह नयी सभ्यताके अमल-धवल आलोकमें रहकर ही कम-से-कम श्वेत, रक्त और श्यामवर्णका ध्यान करे तो वह भी आशातीत लाभ उठा सकता है।

(१६) प्रतिदिन एक तोला घीमें आठ-दस गोल मिर्च तलकर उस घीको पी लेनेसे रक्त शुद्ध और शरीर पुष्ट होता है।

चिरयौवन-प्राप्तिका उपाय

स्वरोदयशास्त्रानुसार थोड़ेसे प्रयत्नके द्वारा चिरयौवन प्राप्त किया जा सकता है। जैसे—

जिस समय जिस अङ्गसे, जिस नाडीसे श्वास चलता है उस समय उसी नाडीका रोध करना होगा। जो बार-बार श्वासका रोध और मोचन करनेमें समर्थ है, वह दीर्घजीवन और चिरयौवन प्राप्त कर सकता है।

अनाहत कमलकी कर्णिकाके अंदर अरुणवर्ण सूर्यमण्डल है। सहस्रारस्थित अमाकलासे जो अमृत झरता है, वह उस सूर्यमण्डलमें ग्रस्त हो जाता है। इसी कारण मनुष्यदेहमें वली-पलित और जरा आदि आती है। योगी विपरीतकरणी मुद्रा तथा पैर ऊपर और सिर नीचे करके कौशलसे झरते हुए अमृतकी सूर्यमण्डलमें ग्रसित होनेसे रक्षा करते हैं। इससे उनकी देह वली-पलित तथा जरा इत्यादिसे रहित और दीर्घकालतक स्थायी होती है। किंतु—

गुरूपदेशतो ज्ञेयं न च शास्त्रार्थकोटिभिः।

अर्थात् 'यह गुरुसे ही सीखे जाने योग्य है, शास्त्रार्थसे नहीं।' विपरीतकरणी मुद्राके अतिरिक्त खेचरी मुद्राद्वारा भी सहज ही उस अमृतकी रक्षा की जा सकती है। खेचरी मुद्राका नियम इस प्रकार है—

रसनां तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत्।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी॥

(घेरण्डसंहिता ३। २५)

'जीभको धीरे-धीरे तालुके अंदर प्रवेश कराना चाहिये। उसके बाद जीभको ऊपरकी ओर उलटकर कपालकुहरमें प्रवेश कराकर दोनों भौंहोंके बीचमें दृष्टि स्थिर करनेपर खेचरी मुद्रा होती है।'

खेचरी मुद्राद्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे निकलनेवाली सोमधाराका पान करनेसे अभूतपूर्व नशा होता है, सिर घूमता है, नेत्र स्वयं अधमुँदे और स्थिर रहते हैं, भूख-प्यास जाती रहती है, तब खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है। खेचरी मुद्राके साधनद्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे जो सुधा झरती है, वह साधकके सारे शरीरको प्लावित करती है। इससे साधक दृढकाय, शिथिलता, जरा इत्यादिसे रहित, कामदेवके समान सुन्दर तथा पराक्रमशाली हो जाता है। विधिपूर्वक खेचरी मुद्राका साधन करनेसे साधक छः महीनेमें सब रोगोंसे मुक्त हो जाता है।

खेचरी मुद्रा सिद्ध होनेपर नाना प्रकारके रसोंका स्वाद मिलता है। स्वाद-विशेषका फल अलग-अलग होता है। दूधका स्वाद अनुभूत होनेपर रोग नष्ट होते हैं और घीका स्वाद प्रतीत होनेपर अमरत्व प्राप्त होता है।

और भी अनेक उपाय हैं जिनसे शिथिलता, जरा आदिसे रहित होकर यौवन चिरस्थायी बनाया जा सकता है।

'नाना पन्था विद्यते'*

[चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियाँ]

(डॉ० श्रीवत्सराजजी)

रोग होनेपर उपचारकी आवश्यकता होती है और लोग अपनी-अपनी आस्था तथा पसंदके अनुसार विभिन्न उपचार-विधियाँ अपनाते हैं। प्रत्येक उपचार-विधिके निष्णात चिकित्सक हैं, सम्भव है आपकी कोई अपनी विधि हो। घरोंमें तो दादी माँकी विधि चलती है और हर परिवारके पास अनुभूत घरेलू उपचार होते हैं। इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, परिवारजन और अड़ोसी-पड़ोसी भी बिना माँगी सलाह देनेमें चूकते नहीं। हमने बड़े-बड़े प्रबुद्ध घरोंमें झाड़-फूँक होते देखी है। तकलीफ बढ़ी तो वैद्य, हकीम, होमियोपैथ डॉक्टर भी बुलाये जाते हैं। शुरू होता है सिलसिला जाँच-पड़तालका, अस्पतालमें भरती होनेका। परेशान घरवाले ज्योतिषीके यहाँ जाते हैं जन्मपत्री, समयका चौघड़िया दिखाते हैं, प्रश्न-विचारका सहारा लेते हैं। यदि ग्रहदशा बिगड़ी हो तो उसकी शान्ति होती है, पूजा-पाठ, मनौती, चढ़ावा, जप, व्रत, होम आदिका क्रम प्रारम्भ होता है। बात और बिगड़ी तो गीतापाठ, रामायणपाठ आरम्भ होता है और जब आशाकी किरण डूबने लगती है तो 'महामृत्युञ्जय' का जप आरम्भ होता है, कविराज अमोघ 'मकरध्वज' लेकर उपस्थित होते हैं, संत-महात्माकी दुआ माँगी जाती है। गोस्वामीजीने 'हनुमानचालीसा' में लिखा है—***'नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा'॥*** बाबा विश्वनाथका चरणामृत और चन्दन, संकठाजीकी रोरीकी सहायता-हेतु आते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक, आधिदैहिक सभी उपायोंका सहारा भी जब काम नहीं आता तो गङ्गाजल और तुलसीका उपचार करते हैं; क्योंकि कहा है—**'औषधिर्जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः'**।

प्राचीन भारतमें उपचारकी बात कही जाती थी—पैथियोंकी चर्चा नहीं थी, पर भला हो पश्चिमी विद्वानोंका कि उन्होंने 'पैथी' का सृजन किया। सच पूछिये तो अठारहवीं सदीतक वहाँ भी 'पैथी' नहीं थी, अनुभूत उपचार थे। यह 'पैथी' शब्द यूनानी भाषाके 'पैथास'—वेदनानुभूतिसे बना है। कालान्तरमें उपचार-विधियाँ 'पैथी' कहलाने लगीं और-तो-और आयुर्वेद, यूनानी, ऐलोपैथी भी 'पैथी' बन गये।

आप पूछेंगे कि क्या ये सब 'पैथी' नहीं हैं? नहीं, ये सभी 'चिकित्सा-शास्त्र' हैं; क्योंकि इनमें निष्णात विद्वान् मात्र उपचारकी बात नहीं सीखते, बल्कि शरीर-रचना, क्रिया, स्वस्थवृत्त, औषधिके गुण-दोष-विज्ञान, विकृति-विज्ञान, जैव रसायन, अगदतन्त्र, काय-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, स्त्रीरोग-चिकित्सा, नेत्र-चिकित्सा, बाल-चिकित्सा, मनोचिकित्सा (मनश्चिकित्सा)-का अध्ययन करते हैं। आयुर्वेदका तो पाठ्यक्रम ही 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद' का है। 'पैथियों' के साथ ऐसा नहीं है। वे एक दर्शन या दृष्टिविशेषका आधार लेकर उपचार-विधि विकसित करते हैं।

जैसे संसारमें उपासनाके अनेक सम्प्रदाय हैं, उसी प्रकार उपचारकी भी सैकड़ों पैथियाँ हैं। हम यहाँ आपकी जानकारीके लिये शताधिक पैथियोंकी सूची दे रहे हैं। इन्हें विकल्प-चिकित्सा, समानान्तर-चिकित्सा, परिधि (फिंज)-चिकित्सा आदि अनेक नामोंसे जाना जाता है। इनका विस्तृत परिचय तो एक विशाल ग्रन्थका विषय है, हम तो केवल नाम गिना रहे हैं, एक-दो पंक्तिमें परिचय भी दे रहे हैं। यदि आपकी रुचि हो तो इनके ग्रन्थ मँगा सकते हैं, इन पैथियोंके चिकित्सकोंसे मिल सकते हैं, उपचार करा सकते हैं।

एक बात यह भी जानने योग्य है कि ये सभी देशों—सीमाओंमें बँधी नहीं हैं और विश्वके अनेक देशोंमें इनका प्रचार-प्रसार है। इसके साथ ही एक बात यह भी जान लेने योग्य है कि 'पैथी' का नामकरण कब और कैसे हुआ? एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे डॉ० सैमुअल हैनीमैन (१७५५-१८४३ ई०)। उन्होंने अपनी उपचार-विधिको 'होमियोपैथी' नाम दिया और अन्य उपचार-विधियोंको ऐलोपैथी (विपरीत-चिकित्सा) कहा। इस अर्थमें यूनानी, तिब्बी, आयुर्वेद सभी ऐलोपैथी कहे जा सकते हैं। यूरोपमें उस समय 'गेलन' द्वारा निर्देशित पद्धति प्रचलित थी, जिसमें आयुर्वेदकी तरह पञ्चकर्म (प्रस्वेद, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण और वस्ति)-का प्रचलन था। बड़ी मात्रामें काष्ठ-औषधियाँ और रसायनसे बनी औषधियाँ (काढ़ा, भस्म आदि) दी जाती थीं। संखिया और बार-बार

* इस लेखमें १३५ पैथी (चिकित्सा-पद्धति) गिनायी गयी हैं, जो वर्तमान समयमें रोगीके उपचारके लिये उपलब्ध बतायी जाती हैं।

रक्त निकालने (फस्त खोलने)-के उपचारके कारण रोगी मर जाता था। इसका दर्शन था रोगकारकका शमन करनेके लिये विपरीत उपचार। हैनीमैनने इसे समझा और अत्यन्त सूक्ष्म मात्रामें औषधि देनेकी व्यवस्था की तथा एक नयी दृष्टि दी कि जिस पदार्थको लेनेसे जो भी लक्षण पैदा होते हैं, रोगमें वैसे लक्षण पैदा होनेपर उस पदार्थकी सूक्ष्म मात्रा रोगका निवारण करती है। वैज्ञानिक पुनरुत्थानके युगमें गेलनकी ऐलोपैथी शेष हो गयी (यद्यपि नाम चल रहा है) और उसका स्थान आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्साने ले लिया है। 'हिन्दू' धर्मकी भाँति जो भी तर्कसंगत है, विज्ञानसम्मत है, लाभकारी है, इसमें संयुक्त हो सकता है। इतिहासका अवलोकन करें तो एक मजेदार बात ज्ञात होगी कि उन दिनों पैथी नहीं 'नुस्खे' की चर्चा होती थी (अभी बीसवीं सदीके उत्तरार्धतक)। ये नुस्खे अपने देश या चिकित्सकके नामसे सुख्यात थे और पूरा विश्वास था कि रोग-विशेषमें ये चमत्कारी हैं, पर आज यह बात लुप्तप्राय हो गयी है। आधुनिक चिकित्सकोंके यहाँ डिस्पेंसरी नहीं रही है, वैद्यों या हकीमोंके यहाँ दवा नहीं बनती। बाजारमें सब कुछ मिलता है तो आइये आजकी प्रचलित पैथियोंसे मिलें—

'पैथियाँ'

१. अक्यूपंचर और अक्यूप्रेशर—चीनमें विगत चार हजार वर्षोंसे प्रचलित, जिसमें चीनके 'यिंग यांग' दर्शनके आधारपर सुइयाँ (बहुत छोटी) चुभोते या दबाव डालते हैं। इसीके साथ 'मोक्षाबस्टेशन'—मोक्षा बीज जलाकर दागनेकी भी चिकित्सा है।

२. अप्रत्यक्ष उपचार (एबसेन्ट हीलिंग)—रोगीका पत्र पाकर 'चर्च' में उसके आरोग्यकी प्रार्थना की जाती है। इसी प्रकारकी पैथी 'टेली मेडिसीन' या 'टेलीपैथी' भी है।

३. अरोमाथिरैपी (गन्ध-चिकित्सा)—बहुत पुराने समयमें नीमकी धुनी या मिर्चेकी बुकनीकी धुनीका प्रयोग करते थे।

४. आर्गेनोथिरैपी—शरीरके अङ्गोंका दवाके रूपमें उपयोग।

५. आर्गोनथिरैपी—डॉ० विलहेम रीखद्वारा 'आर्गोन' (जीवतत्त्व-चिकित्सा) नामक शक्तिकी खोज और उसके द्वारा चिकित्सा।

६. आचार-चिकित्सा (बिहेवियरलथिरैपी)।

७. ऑटो-सजेशन—मनको विश्वास दिलाना। दर्पणके समक्ष खड़े होकर कहना 'मैं अच्छा हूँ।'

८. आदिम चिकित्सा—विश्वभरके आदिवासी अपनी चिकित्सा-विधिसे उपचार करते हैं।

९. आध्यात्मिक चिकित्सा (स्पिरिचुअल हीलिंग)—सिद्धान्त 'कहो मत उपचार दो।'

१०. ऑस्टियोपैथी—अत्यन्त लोकप्रिय प्रचलित चिकित्सा-विधि। पीठका दर्द दूर करते-करते यह पूर्ण उपचार-विधि बन गयी। हड्डियों, जोड़ों और मांस-पेशियोंके संचालनद्वारा रोगमें आराम पहुँचाना। इनके चिकित्सक अपनेको नसोंके जानकार बताते हैं। मेरुदण्डके आकारपर इनका विशेष जोर है। इसकी शाखाएँ हैं—'क्रेनियल (कपाल) ऑस्टियोपैथी, एप्लायड काइनेसियोलॉजी (प्रयुक्त पेशी संजोयन), काइरोप्रैक्टिक' आदि।

११. ऑटिज्म।

१२. एसेंशल-ऑयलथिरैपी—सुगन्धित तेलोंसे उपचार।

१३. एंथ्रोपोसोफियल-मेडिसिन।

१४. एनकाउण्टर-चिकित्सा।

१५. औषधिविहीन उपचार—कोई औषधि न ले, आरामसे लेट जाय, प्रकृतिको चिकित्सा करने दे।

१६. कलरथिरैपी (क्रोमोपैथी)—रंग और स्वास्थ्यका सम्बन्ध है। उपचारमें रंगीन जल, रंगीन प्रकाश आदिका उपयोग होता है।

१७. कॉपरथिरैपी—ताम्रपात्रमें रखे जलको पीनेसे रोग नष्ट होते हैं।

१८. कॉस्मेटिक थिरैपी—(प्रसाधन-चिकित्सा)।

१९. कपिंग—अत्यन्त प्राचीन विधि। कटोरेमें थोड़ा-सा आसव रखकर जला देते हैं और फिर उसे रुग्णस्थानपर उलटा करके चिपका देते हैं, रिक्तताके कारण कटोरा चिपक जाता है।

२०. कनछेदन—(कर्णवेध, स्टेपल पंचर)।

२१. क्रिश्चियन साईन्स—ईसाई धार्मिक आस्थासे उपचार।

२२. काहूना हीलिंग—पोलीनीशिया द्वीपकी एक समग्र उपचार-विधि।

२३. केशोपैथी—रोगीके सिरका एक केश लेकर उसका उपचार। बिना दवा खिलाये यह उपचार होता है।

२४. कॉटरी—(तप्त किये गये लोहेसे दागकर इलाज करना) गाँवोंमें लोग आज भी बच्चोंकी तिल्ली बढ़नेपर इस विधिसे उपचार करते हैं।

२५. को-काउन्सिलिंग—सलाह-चिकित्सा।

२६. कीचोपैथी—(मडबाथ, मिट्टीस्नान) रूसके

काला सागर क्षेत्रमें प्रचलित चिकित्सा।

२७. क्रिस्टल क्योर।

२८. गर्सन न्यूट्रिशनथिरैपी—एक प्रकारकी पोषण-चिकित्सा।

२९. गिनसिंग—चीनमें पैदा होनेवाली चमत्कारी जड़ी गिनसिंग (जीवनदायिनी मूल)-से उपचार।

३०. ग्राफोलॉजी—हस्तलेख-चिकित्सा।

३१. गर्म जलका उपचार।

३२. ग्रहशान्ति।

३३. गन्ना-रस-चिकित्सा।

३४. गाजर-चिकित्सा।

३५. घास-चिकित्सा।

३६. चुम्बक-चिकित्सा (मैग्नेटोथिरैपी)—आजकल बहुत विज्ञापित है।

३७. जल-चिकित्सा—अत्यन्त प्राचीन चिकित्सा-विधि है। जलकी रोगहारी शक्तिमें अपार विश्वास। संसार-भरमें झरनों, कूपों, तालाबों, नदीके जलोंकी रोगहारी शक्तिको मान्यता। अनेक उष्ण जलके स्रोतोंमें गन्धक होता है, जो त्वचाके रोगको अच्छा करता है। हमारे यहाँ तो गङ्गाजलको '**औषधिर्जाह्नवीतोयम्**' कहा है। अभिमन्त्रित जलसे मार्जन करनेकी विधि है।

३८. ज्योतिष-चिकित्सा—एस्ट्रोलॉजी मेडिसिन।

३९. ज्वर-चिकित्सा—(पाइरेटोथिरैपी)।

४०. टेली रेडियोलॉजी एण्ड फोटोबायोलॉजी।

४१. टाई-ची-चुआन-विधि—चीनी-चिकित्सा।

४२. टोटको पैथी।

४३. ट्रांस पर्सनल साइकोलॉजी।

४४. डायानेटिक्स।

४५. डू-इन।

४६. टहलनेकी चिकित्सा।

४७. ताओ-ऑफ लविंग—प्रेम-चिकित्सा।

४८. ताजा रस (रॉ जूस)-थिरैपी।

४९. तिब्बी चिकित्सा।

५०. ध्वनि-चिकित्सा—अतिस्वन-ध्वनि (अल्ट्रा साउण्ड)-से दवा। ऐसी ही 'सोनोथिरैपी' है।

५१. ध्यान-चिकित्सा (मेडिटेशन)—ऐसी ही 'विपश्यना-विधि' भी है।

५२. नैचुरोपैथी (प्राकृतिक चिकित्सा) इस पैथीसे पूज्य बापू (महात्मा गाँधी)-का नाम जुड़ा है। इसमें प्राकृतिक ढंग और विधियोंसे उपचार करते हैं—स्नान, गीली पट्टी, मिट्टीका लेप, वस्ति, उपवास, ताजा आहार, हरी शाक-सब्जी, फल, वाष्प-स्नान आदिका उपयोग होता है। प्राकृतिक नियमोंसे रहनेवाला एक सम्प्रदाय भी बन गया है, जिसके उपनिवेश अनेक देशोंमें हैं। ये लोग नग्नावस्थामें बिना किसी प्रकारकी आधुनिक सुविधाका उपयोग किये प्रकृतिके सांनिध्यमें रहते हैं।

५३. निगेटिव आयनथिरैपी—सिल्वर आयोडाइडके आयनोंसे युक्त जलका पान कराते हैं।

५४. नस्य-चिकित्सा—सुँघनी या छिंकनीसे उपचार।

५५. निद्रा-चिकित्सा—प्राचीन युगमें यूनानमें मन्दिरमें शयनकी चिकित्सा प्रचलित थी। देवता स्वप्नमें आकर उपचार कर देते थे।

५६. नृत्य-चिकित्सा—नाचसे भी लाभ होता है। इसके अन्तर्गत बेली, डांसिंग, हूलाहूला नृत्य भी आते हैं।

५७. नोल्स-ब्रीदिंग-ट्रिटमेण्ट—श्वासोपचार।

५८. पुष्प-चिकित्सा (फ्लावर हीलिंग)—पुष्प और स्वास्थ्यका सम्बन्ध है और इस आधारपर विभिन्न पुष्पोंसे उपचार करते हैं।

५९. प्राणिक उपचार—मानव-शरीरके चारों ओर उसकी ऊर्जासे प्रभामण्डल बनता है। इस विधिका मानना है कि रोगके कारण शक्तिका ह्रास हो जाता है या कहीं अधिक शक्ति हो जाती है। वे मानते हैं कि विश्व शक्तिसे भरा है, ब्रह्माण्ड-किरणोंसे शक्ति-वर्षा होती रहती है। उपचारक शरीरकी शक्तिकी ऊर्जा घटा या बढ़ाकर रोगका शमन करता है। इस विधिने तन्त्र और योगका भी सहारा लिया है, वे मानते हैं कि ऊर्जाका नियन्त्रण चक्रोंद्वारा होता है। इसी प्रकार ऊर्जामय बननेके लिये 'ध्यान' (मेडिटेशन)-का महत्त्व माना गया है। विशेष बात यह कि उपचार करते समय रोगीका स्पर्श नहीं करते। इस विधिमें दूरसे चिकित्सा भी सम्भव है। यह विधि अपनेको अन्य उपचार-विधियोंका विरोधी न मानकर पूरक मानती है। इसमें मानसिक और आत्मिक उपचारका भी विधान है।

६०. पिरामिड थिरैपी—मिस्र देशके पिरामिड आश्चर्यके साथ ही रहस्यमय भी रहे हैं। इस विधिके उपचारक मानते हैं कि पिरामिड आकारके कक्ष या तंबूमें रोगी लेटे तो अच्छा हो जाता है।

६१. प्रीनेटल थिरैपी (गर्भावस्थामें उपचार)।

६२. पल्स्ड हाई फ्रिक्वेंसी थिरैपी।

६३. पैटर्न थिरैपी।

६४. फोटोग्राफ-चिकित्सा—उपचारक आपका फोटो ले जाता है और उसका उपचार करता है, रोग आपका अच्छा होता है। इसीका एक रूप है 'इमेजिनियरिंग' अर्थात् 'छबि अभियान्त्रिकी'।

६५. फल-चिकित्सा—फल खाइये (विशेष रोगमें विशेष फल) और स्वास्थ्य-लाभ कीजिये।

६६. फिजियो थिरैपी—शरीरका मालिश, व्यायाम आदिसे उपचार और रोग न होने देनेका उपचार। इसके अन्तर्गत सौर-चिकित्सा, फोटो थिरैपी (प्रकाश-उपचार), ताप-चिकित्सा, वैलनियो थिरैपी (खनिजयुक्त प्राकृतिक जलोंसे), विद्युत्-चिकित्सा सभी शामिल हैं।

६७. बाख रेमेडीज।

६८. बैट्स आई थिरैपी (त्राटक-चिकित्सा)।

६९. बायो एनर्जी।

७०. बायो फीडबैक।

७१. बायो रिद्म।

७२. बीज-चिकित्सा (सीड थिरैपी)।

७३. बायोकेमिक—होमियोपैथी-जैसी लोकप्रिय विधि जो रसायन—यौगिकोंका प्रयोग करती है।

७४. मैक्रोबायटिक्स—एक प्रकारकी आहार-चिकित्सा, जो चीनके यिंग-यांग सिद्धान्तपर आधारित है।

७५. मधुमक्खी डंक-चिकित्सा।

७६. मनोनाट्य उपचार—नाटकद्वारा मानसिक रोगोंकी थिरैपी। इसी प्रकार आर्ट थिरैपी—चित्रकला उपचार भी है।

७७. मैजिक मेडिसिन—जादुई-इलाज।

७८. मेटल थिरैपी—धातु-चिकित्सा।

७९. मोमियाई—एक युगमें मिस्र देशकी 'ममी' का उपचारमें प्रयोग होता था।

८०. मेगाविटामिन थिरैपी।

८१. मकड़ी उपचार (स्पाइडर थिरैपी)।

८२. योगा—वर्तमान युगमें बाजारीकरणके चलते योगमें वर्णित प्राणायाम और आसनका उपचारके लिये उपयोग होने लगा है। यम-नियमविहीन योग 'योगा' बन गया है।

८३. रत्न-चिकित्सा (जेमोपैथी)—रत्न धारण करनेसे रोग दूर हो सकते हैं, इसका अब पूरा शास्त्र बन गया है।

८४. रुद्राक्ष-चिकित्सा।

८५. रोगस्थानान्तरण-चिकित्सा—इस विधिमें लोग विश्वास करते हैं कि रोग दूसरे प्राणीको दिये जा सकते हैं और इस प्रकार रोग दूर होता है। इसमें मेढक, बत्तख आदिको रोग-ट्रान्सफर करते हैं।

८६. रेडियस्थीसिया और रेडियानिक्स—स्पन्दनको पहिचानकर भू-गर्भसे जल, तेल, खजाना खोजनेके माहिरोंके ज्ञानसे इलाज करनेका तरीका भी निकाला है। इसका उपयोग पुरातत्त्वज्ञ भी करते हैं। द्विशाख टहनी, पेण्डुलम आदिका इसमें उपयोग होता है।

८७. रिफ्लेक्सोलॉजी—भारत और चीनकी प्राचीन विद्याओंसे और 'हठयोग' से सम्बन्धित यह विधि दबाव और मालिशद्वारा उपचार करती है।

८८. रीखियन थिरैपी या रेकी—वर्तमान समयमें काफी प्रचलित विधि। शरीरमें हो रहे शक्ति-प्रवाहको स्पर्शद्वारा सन्तुलित करते हैं।

८९. रोल्फिंग—आहार-विहार तथा नियमनद्वारा चिकित्सा। इसमें हवाफेर, व्यायाम, निद्रा, गर्म जल-स्नान आदिका तथा छुट्टी, विश्राम और स्थान-परिवर्तन लाभ करते हैं।

९०. लौंग-इलायची-उपचार (कार्डमम थिरैपी)—तथा मसाला-उपचार।

९१. लहसुन-चिकित्सा—अत्यन्त पुरानी विधि।

९२. लेसर थिरैपी—लेसर किरणोंसे उपचार—विशेष रूपसे नेत्ररोगोंमें।

९३. वाइन थिरैपी—आसवसे उपचार।

९४. विश्वासोपचार (फेथ हीलिंग)।

९५. वास्तु-चिकित्सा—रोगीके बदले उसके आवासका इलाज।

९६. शियात्सु मसाज।

९७. शफूफ-चिकित्सा।

९८. शीत-चिकित्सा—(प्रशीतन-विधि), शीतनिद्रा।

९९. शॉक थिरैपी।

१००. शकुन-विचार।

१०१. शब्द-चिकित्सा (वर्ड थिरैपी)—बातचीतसे इलाज।

१०२. स्याथिरैपी—एक प्रकारकी स्नान-चिकित्सा।

१०३. सेल्फ अवेयरनेस—आत्मबोध-उपचार।

१०४. सिकन्दरी तकनीक (एलेक्जेंडरियन तकनीक)।

१०५. साइबरनेटिक्स।

१०६. साइकोथिरैपी।

१०७. स्नान-चिकित्सा, सौना बाथ।

१०८. सथिया—ग्रामके नेत्र-चिकित्सक (सचल) और कानका मैल निकालनेवाले नाऊ, जो प्राचीन युगमें

चीर-फाड़ करते थे और इसीसे आज भी सर्जनको 'बार्बर सर्जन' कहते हैं।

१०९. सैंड बैगथिरैपी।

११०. साहित्योपचार—गीता, रामचरितमानस, हनुमानचालीसा तथा सत्साहित्य आदिका पाठ।

१११. संगीत-चिकित्सा—संगीत सुननेसे रोग अच्छे होते हैं।

११२. संशोधन-चिकित्सा—(पञ्चकर्म) सिद्ध-चिकित्सा।

११३. सुरमा-उपचार (अञ्जन-चिकित्सा)।

११४. समग्र चिकित्सा—होलिस्टिक मेडिसिन तथा पोली पैथी अनेक पैथियोंका एक साथ उपयोग।

११५. सूखो पैथी—जलका निषेध।

११६. सौर-चिकित्सा—धूपसे इलाज, हीलियो थिरैपी (रंगीन प्रकारसे 'सोलेरियम' में इलाज करते हैं)।

११७. हैंड हीलिंग (स्पर्श-चिकित्सा)—यह उपचार आदिकालसे प्रचलित है। संत-महात्मा तथा राजपुरुषका स्पर्श होनेसे रोग दूर हो जाते हैं। मिस्र देशके मन्दिरोंमें स्पर्श-पुजारी होते थे। ईसा मसीहद्वारा स्पर्श करके कुष्ठरोग दूर करने, मृतकको जिलानेके चमत्कार लोकविख्यात हैं। इंग्लैण्डमें 'रायल टच' की कथा कही जाती है। भारतके महात्माओंने तो अनेक बार यह चमत्कार किया है। महान् चिकित्सक सुश्रुतने अपनी संहितामें शल्यमें काम आनेवाले उपकरणोंकी सूची दी है और इनमें प्रथम नाम 'हाथ' का है। हाथका कमाल हर जगह दीखता है।

११८. हेल्थ फार्म्स—स्वास्थ्यशालाएँ।

११९. हेल्थ फूड्स—स्वस्थ आहार।

१२०. हेब्रेक नेम चेंजिंग—विश्वव्यापी विश्वास है कि नामपर टोना किया जा सकता है। जहाँ बच्चे जन्मते ही मर जाते हैं, नवजातका नाम गोबर, भोंदू आदि देते हैं। रातमें नाम लेकर नहीं पुकारते। हेब्रू लोग नाम-परिवर्तन करके रोग भगाते थे। हमारे यहाँ भी जन्मपत्रीका गोपन नाम होता है।

१२१. हर्बलिज्म (जड़ी-बूटीसे इलाज)—आजकल हर्बलका फैशन चल रहा है। बाजारमें हर्बलके नामसे साबुन, तेल, सौन्दर्य-प्रसाधन, शैम्पू, लेप और दवाएँ बिक रही हैं। आयुर्वेदमें यह गम्भीर विषय है, वे जड़ीको आमन्त्रित एवं अभिमन्त्रित करते थे, साइत देखकर तोड़ते थे और शास्त्रानुसार उपयोग करते थे।

१२२. हाई वोल्टेज फोटो थिरैपी—आकाशीय विद्युत्की चमकने विद्वानोंको आकर्षित किया। हाई वोल्टेजके उपचारमूलक प्रभावका प्रयोग किया गया है। 'किर्लियन फोटोग्राफ' प्रभामण्डल दिखाते हैं।

१२३. होमियोपैथी—समानसे समानका उपचार, एक मान्यता कि जितना अधिक डाईल्यूशन होगा, औषधिकी शक्ति उतनी बढ़ेगी। रोगके सूक्ष्मतम लक्षणोंको नोट करनेकी परम्परा इस विधिमें चली। इस विधिके अन्वेषक हैनीमैनको आधुनिक चिकित्सा-जगत्में 'फार्मोकोलॉजीके जनक' का विरुद प्राप्त है। इसीकी शाखा 'इलेक्ट्रो होमियोपैथी' है।

१२४. हिप्नोटिज्म और मेसमेरिज्म।

१२५. हस्तयोग।

१२६. हाईकोलोनिक लवाज।

१२७. हाईब्रिडोमा।

१२८. हील (रीकास्ट) फुटवियर (पादत्राण) थिरैपी।

१२९. हास-चिकित्सा (लाफ्टर मेडिसिन)।

१३०. शिवाम्बु-चिकित्सा—स्वमूत्रपान-चिकित्सा।

१३१. स्वेडिश मसाज।

१३२. वेगन उपचार—विशुद्ध शाकाहार—दूध, घी भी वर्जित।

१३३. शाकाहार—साग-भाजी-चिकित्सा।

१३४. सायोनिक मेडिसिन—समग्र मानवकी जीवन्त शक्तियोंके नियमनद्वारा उपचार।

१३५. सायनिक सर्जरी (मनःशल्य)—बिना चीर-फाड़के मानसिक शक्तिद्वारा शल्य-क्रिया करनेकी विधि।

इसके अलावा भी उपचारकी अनेक विधियाँ हैं, जो हमारे अज्ञानवश इस सूचीमें नहीं हैं। कुछका तो नाम ही नहीं है, जैसे एक केन्द्रिय स्वास्थ्य-मन्त्रीने चार मास प्रशिक्षण और दवाकी एक पेटी देकर गाँवोंमें चिकित्सा करनेके लिये, चीनकी एक योजनाकी नकलमें चिकित्सक बनानेका उपक्रम किया था। यह 'चौमासा पैथी' चली नहीं। पुनः अनेक लोग स्वयम्भू चिकित्सक होते हैं। बाकी आप बीमार पड़े तो रिश्तेदार, मित्र, पड़ोसी सभी अनुभूत चिकित्सा और नेक सलाह देनेसे नहीं चूकते।

कहा है **'विश्वासः फलदायकः'** सो अपना उपचार स्वयं चुनें। बाकी तो वैद्य नारायण हरि हैं ही, जो भवरोगसे मुक्ति प्रदान करते हैं। उनकी कृपासे 'पन्थ' सुगम हो जाते हैं।

आधुनिक चिकित्सा-पद्धतिका विकास-क्रम

(डॉ० श्री के० त्रिपाठी, एम्० बी० बी० एस्०, एम्० डी०, डी० एम्०)

आधुनिक चिकित्साके लिये प्रचलित अंग्रेजी शब्द 'एलोपैथी' चिकित्सा-शास्त्रकी दृष्टिसे एक अवैज्ञानिक शब्द है और वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें चिकित्सा-साहित्यमें इसका कहीं भी प्रयोग नहीं होता। वस्तुतः साहित्य, कला, संस्कृति और मौलिक विज्ञानका क्रमिक विकास ही आधुनिक चिकित्साकी आधारशिला है, जिसका भौतिक, रसायन, गणित एवं प्रायोगिक मानदण्डोंपर निरन्तर परिमार्जन होता रहा है तथा इसी परिमार्जनको कुछ और परिष्कृत करनेकी निरन्तरता ही इसे सार्वभौमिक एवं लोकोपयोगी बनाये हुए है।

पुरातनकालीन भित्तिका-चित्रों और गुफाओंकी अनुकृतियोंके आधारपर इस बातकी पुष्टि होती है कि उस समय मनुष्यको शरीर-रचना और विकृत अङ्गोंका पूरा ज्ञान था। पशुओं और मनुष्योंके प्रजननसम्बन्धी रोगोंके चित्र भी इन गुफाओंके चित्रोंमें मिलते हैं। काशीक्षेत्रके पास मिर्जापुर किलेके लिखुनिया स्थित प्रपातके भित्ति-चित्रोंमें इस तरहके अनेक चित्र मिलते हैं, जो इसके प्रमाण हैं कि भारतके इस क्षेत्रमें मनुष्य संसारके अन्य भागसे अधिक विकसित थे।

यह ज्ञात होता है, ईसाके ९००० वर्षपूर्व मनुष्यने कुछ शल्य-क्रियाकी विधियोंका प्रयोग भी किया। ऐसी विधियाँ मस्तिष्कके अंदर प्रविष्ट हुई दुष्ट आत्माओंको बाहर निकालनेके लिये सम्भवतः प्रयोग की जाती थीं, जिसमें कपालकी हड्डीमें छेद करके मस्तिष्कका तनाव कम कर दिया जाता था। ग्रीकके इतिहासमें एक ही रोगीके ऊपर इस तरह कई बार की गयी शल्य-क्रियाके प्रमाण मिलते हैं। आज भी इस शल्य-क्रियाको आधुनिक तन्त्रिकाशल्यक मस्तिष्कमें ट्यूमरके बायप्सीके लिये प्रयोग करते हैं। इस ऑपरेशनका एक दूसरा भी पक्ष है और वह यह कि कुछ स्थानोंमें इस ट्रिफाइन-विधिद्वारा निकाली गयी हड्डी गलेमें बाँधकर लटकायी जाती थी, ताकि दुष्ट आत्माओंकी प्रतिच्छाया उसपर न पड़ सके।

मिस्रमें चिकित्सा-शास्त्रका विकास

मिस्रमें चिकित्सा-शास्त्रका विकास नील नदीकी संस्कृतिके उत्थान और पतनके साथ-साथ ही हुआ। भित्ति-चित्रोंसे लेखनकलाके विकासमें सम्भवतः हजारों वर्ष लगे होंगे और सुमेरियन और बेबिलोनियाके निवासियोंने इस कलाको पत्थरोंपर उत्कीर्ण करके चित्रात्मक शब्दावली तैयार की। कागजके आविष्कारके पूर्व भारतमें भोजपत्रोंपर लिखनेकी कलाका ज्ञान था। मिस्रकी आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रमें सबसे बड़ी देन है शरीर-रचनाका प्रामाणिक अध्ययन। मिस्रमें पिरामिडके अंदर मृत-शरीरको रखनेकी कला ईसाके ३५०० वर्षपूर्व ही प्रचलित हो चुकी थी। इस कलामें पारंगत लोगोंको शरीर-रचनाके बारेमें ज्ञान था और अधिकांशतः शरीरकी विकृतिके आधारपर रचनागत दोषोंका ज्ञान भी इसी आधारपर हुआ। जैसे लकवा (फालिज)-के रोगमें मस्तिष्कके विशेष भागमें दोषका होना। मिस्रकी चिकित्सा-पद्धतिकी विशिष्टता थी उसमें धर्मका समायोजन। इस परम्परामें अनेक देवताओंका आवाहन करके चिकित्सा की जाती थी, प्रमुख देवताओंमें थोभ, हरमिस, आइसिस और उसका पुत्र होरस था। मिस्रकी सभ्यतामें विद्वान् इमहोतेप (२६०० वर्ष ई०पूर्व) हुए, जिन्हें चिकित्सा-शास्त्रका पूरा ज्ञान था। चिकित्सा-विज्ञानके विकासमें दुष्ट आत्माओंद्वारा रोग फैलानेकी धारणाका एक विशेष महत्त्व है, इन दुष्ट आत्माओंसे मुक्तिके लिये रोगीको अखाद्य वस्तुएँ दी जाती थीं अथवा कटु, तिक्त, कषाय गुणवाले पदार्थोंको पीनेको दिया जाता था, ताकि रोगीके शरीरसे वमन या विरेचन हो सके। इस प्रकार रोग, कारण और औषधिके सम्बन्धकी परम्पराका विकास हुआ और भूमिके अंदर पाये जानेवाले खनिज लवण, गंधक, ताम्र और पारेका प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

शल्यक्रियाका विकास भी सम्भवतः ग्रीक चिकित्सामें खतनेकी प्रक्रियासे हुआ होगा। घावको चीरने एवं कटे अङ्गोंको सीनेकी पद्धतिका विकास भी यहींसे हुआ तथापि मस्तिष्कमें छेद करनेकी कला एवं अङ्गोंको काटनेकी कलाका विकास अबतक यहाँ नहीं हुआ था। मेसोपोटामियामें सुमेरियन कालमें लेखनकलाका विकास हुआ और राजा असुरबनिपालके यहाँ स्लेटोंपर

उत्कीर्ण पुस्तकालयके आधारपर (७०० ईसापूर्व) प्रमाण मिलते हैं कि ग्रीक और मेसोपोटामियन-चिकित्सामें काफी समानता थी।

ईसाके पूर्व २००० वर्षोंतक राजा हम्मूरबीद्वारा निर्धारित नियमोंके अन्तर्गत हर चिकित्सकको चिकित्सा करनी होती थी और उसका पालन न करनेपर कठोर राजदण्ड भुगतना पड़ता था। बेबिलोनियामें इस कालतक चिकित्सकोंके पास कम-से-कम २५० पौधे, १२० खनिज-लवणोंका ज्ञान हो चुका था। आसीरियामें रहनेवालोंको गंधकका भी प्रयोग करना आता था, जो कि आजतक औषधिके रूपमें प्रयुक्त होता है।

ग्रीसमें चिकित्सा-पद्धतिके विकासका सारा श्रेय हिप्पोक्रेट्स, अरस्तू और गैलेनको जाता है, जिन्होंने लक्षणोंके आधारपर रोग, कारण और औषधिकी व्याख्या की। ईसाके १४०० वर्षपूर्व एशिया और यूरोपके मध्यभागमें हेलेनिक और माइ-सीनियनकी संस्कृतिके विलयके कारण एक विशिष्ट प्रकारकी जातिका उदय हुआ। इसमें एसकुलेपियसका प्रमुख स्थान है, जिन्हें देवताके तुल्य माना गया है और आजतक उनके हाथमें लिये गये सर्पसे लिपटे दंडको विश्वमें चिकित्साके चिह्नकी मान्यता प्राप्त है। चिकित्साशास्त्रके पितामह माने जानेवाले हिप्पोक्रेट्सने प्रामाणिक तौरपर उस समयकी प्रचलित सभी चिकित्सा-पद्धतियोंको एक सूत्रमें पिरोकर आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रकी नींव डाली। यहाँ यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि तबतक भारतमें सुश्रुतद्वारा विकसित की गयी चिकित्सा-पद्धति अपने चरम उत्कर्षपर थी और हिप्पोक्रेट्सके लेखोंमें उसका पूरा प्रभाव है।

ग्रीस चिकित्सा-पद्धतिमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी उपजका सारा श्रेय आयोनियन और इटैलियन-ग्रीक दार्शनिकोंको जाता है, जिनका उद्भव ईसाके पूर्व छठी शताब्दीमें हुआ था। ग्रीक चिकित्सामें भिषक्-कर्मका कार्य प्रमुखतया मन्दिरोंमें रहनेवाले पुरोहितोंद्वारा किया जाता रहा।

रोग, कारण और निदानके त्रिकोण और चिकित्सा-शास्त्रमें लक्षण और कारकका विश्लेषण करनेकी परम्पराके जन्मदाता हिप्पोक्रेट्सने तार्किक दृष्टिसे इनकी अलग व्याख्या की और क्रेते नामक द्वीपमें उत्पन्न हुए इस महापुरुषने समकालीन मान्यताओं और तथ्योंके आधारपर जो चिकित्साकी परम्परा चलायी, वह आजतक यथावत् बनी हुई है, मात्र उसमें समय-समयपर वैज्ञानिक शोधोंके आधारपर थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुए हैं। आजतकके विकसित चिकित्सा-विज्ञानका शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जहाँ हिप्पोक्रेट्सकी दृष्टि न गयी हो। यहाँतक कि रोमकी संस्कृति नष्ट होनेके बाद जब यूरोपमें कला, विज्ञान और संस्कृतिका पुनरुत्थान हुआ, तब हिप्पोक्रेट्सके सिद्धान्तोंको ही पुनः स्थापित किया गया।

अरस्तूके पिता मैसिडोनियाके रहनेवाले चिकित्सक थे। अरस्तू (३८४-३२२ ईसापूर्व)-ने १७ वर्षकी आयुमें एथेन्समें प्लेटोका शिष्यत्व प्राप्त किया। प्लेटोकी मृत्युके बाद वे फिलिपके पुत्र अलेक्जेंडरके शिक्षक बने और तबतक वहाँ रहे, जबतक कि अलेक्जेंडर एशियामें युद्धके लिये नहीं चले गये। अरस्तू वापस एथेन्समें आकर पुनः चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाने लगे और ३२२ ई०पूर्वमें उनकी मृत्यु हो गयी। अरस्तू मूलतः प्रकृति-प्रेमी थे और जीवके विकासक्रमके आधारपर उन्होंने तुलनात्मक शरीररचनाके वैज्ञानिक अध्ययनका विकास किया। चित्रोंके आधारपर उन्होंने भ्रूणविज्ञान और मानवके विकासका वर्णन किया। उनके द्वारा प्रस्तुत अंडेसे जीवका विकसित होना एवं भ्रूणके विकासका क्रम तथा मानव-शरीरसे उसका तुलनात्मक अध्ययन आगे चलकर जन्मजात रोगोंको समझनेके लिये एक प्रमुख प्रायोगिक माध्यम बना। इसी कालमें अरस्तूने मन, शरीर और हृदयके भी भेदको समझाया और मन तथा हृदयके दार्शनिक पक्षको भी जोड़ा। आयुर्वेदशास्त्रमें पञ्चतत्त्वके सिद्धान्तकी तरह उसने पित्त, अग्नि, जल, रक्त और पृथ्वीके संयोगसे मानव-शरीरके रचनाकी परिकल्पना की। भारतमें यह वही काल था जब सुश्रुतकी शल्य-शास्त्रकी चिकित्सा शीर्षपर पहुँच चुकी थी।

रोममें चिकित्सा-शास्त्रका विकास ग्रीक लोगोंके प्रभावके पूर्व स्थानीय आसीरियोंकी मान्यताओं और परम्पराओंपर आधारित था और उसमें तर्क और विज्ञानका नितान्त अभाव था।

ईसाकी पहली शताब्दीके प्रारम्भकालमें सेल्सस

नामक वैज्ञानिकने रोगसे विकृत अङ्गोंके अध्ययनकी परम्परा डाली। सेल्सस, एस्क्यूलेपियसकी परम्पराके शिष्य थे और उन्होंने आन्तरिक-बाह्य लक्षणोंपर सर्वाधिक शोध किये। इस कालमें रोमके नाविकोंने समुद्री यात्राएँ प्रारम्भ कर दी थीं, अतः लम्बी यात्रामें होनेवाले रोगोंके कारण निदानका भी समावेश किया गया। शल्यक्रियामें प्रयुक्त यन्त्रोंका और परिमार्जन हुआ तथा उन कई शल्य-क्रियाओंका उल्लेख मिलता है, जो कि सुश्रुतद्वारा प्रतिपादित थीं। ईसाके १७२ वर्षोंके बाद ही शल्य-क्रियाद्वारा प्रसवकी परम्परा डाली गयी और जूलियसका जन्म हुआ, जिसे जूलियस सीजर कहा गया। सीजरके कालमें रोममें चिकित्सा-कलाका पूरा विकास हुआ। अन्य देशोंके विद्वान् चिकित्सकोंको सीजरने बसाया तथा चिकित्सा-विद्यालयोंकी स्थापना की।

प्रथम शताब्दीके प्रारम्भमें पेरागमोंन नामक स्थानमें प्रख्यात यायावर चिकित्सा-वैज्ञानिक गैलनका उदय हुआ। उन्होंने स्मिरनामें शरीर-रचनाकी शिक्षा प्राप्त की और एशियामें दूर-दूरतक यात्राएँ कीं। अन्ततः एलेक्जेन्ड्रियामें आकर यन्त्रोंका विकास किया। गैलेन मूलतः यथार्थ शरीर-रचनाके वैज्ञानिक थे और उन्होंने स्तनपायी जीवों और मनुष्योंके अंदर तुलनात्मक शरीर-रचनाशास्त्र और क्रियाकी व्याख्या की और प्रचलित मान्यताओंको वैज्ञानिक दृष्टि देकर उनका निरूपण किया। इसमें प्रमुख था हृदयकी रचना, मस्तिष्क और यकृत्का कार्य एवं श्वसन-क्रिया। गैलेनने मात्र औषधियोंका उद्धरण दिया, वे निदान और रोगकी चिकित्साके बारेमें बहुत कम ही लिख पाये।

मध्यकालमें चिकित्साका विकास
(२०० से १५०० ई० तक)

रोमसाम्राज्यके उत्थान और पतनके साथ-साथ आधुनिक चिकित्साकी परम्परा लम्बे समयतक चर्च और पादरियोंके अधिकारमें चली गयी। निराश्रित पीडित लोग भारी संख्यामें आकर चर्चमें पादरियोंके यहाँ आश्रय पाते थे और रोगमुक्तिके लिये विश्राम करते थे। चिकित्सा-क्रिया जाननेवाले संतोंमें प्रमुख थे—सेंट ल्यूक, सेंट कासमस और डामियन।

सातवीं शताब्दीमें इस्लामिक संस्कृतिका उदय हुआ और तत्काल ही पूरे मध्य एशियामें ग्रीक एवं लैटिन-चिकित्सा-पुस्तकोंका अनुवाद अरबी भाषामें होने लगा। इस कालमें तेहरान, परसियाका निवासी रहेजस (९२३ ई०) और फराज-बिन-सलीमकी लिखी हुई किताब अल-हवाई प्रमुख है जो ग्रीक-अरब-चिकित्सा-पद्धतिका विश्वकोष मानी जाती है। एविसेना और आइसक ज्यूडियसने इस मिली-जुली संस्कृतिमें वैज्ञानिक चिकित्सा-शिक्षाको पुस्तकके रूपमें लिखकर प्रसारित किया।

आइबोरीयन उपमहाद्वीपमें थोड़े समय बाद ही इस्लाम-धर्मका प्रभाव समाप्त होने लगा और आठवीं शताब्दीके बाद ही लैटिनकी उपभाषा स्पेनिश विकसित हुई। इन अनुवादों और पुस्तकोंका प्रभाव यूरोपमें तत्कालीन १२वीं-१३वीं शताब्दीपर पड़ा। समूची चिकित्सा-पद्धतिका अध्ययन मात्र पुस्तकोंपर आधारित रहा और प्रायोगिक शिक्षाकी कोई भी व्यवस्था न बन पायी। इटलीके बोलोनामें ११५६ ई०में विश्वविद्यालय-स्तरपर चिकित्सा-शिक्षामें वनस्पतिशास्त्र और भौतिकशास्त्रका समावेश नहीं हुआ था। फिर भी शरीर-रचना और शरीर-क्रियाके अध्ययनके लिये शवच्छेदनकी प्रक्रिया आवश्यक थी। इस प्रकार बोलोनामें शल्य-शिक्षा व्यवस्थित ढंगसे प्रारम्भ हुई। इस कालमें सैलीसीटोंके विलियम, सर्वियाके विशप थिओजोरिक और फ्लोरेसके थेडियस थे, जिन्होंने शल्यकी तकनीकोंका विकास किया, मवादके बाहर निकालनेके बारेमें लिखा। १३वीं शताब्दीके प्रारम्भमें बोलोनामें फ्रांससे हेनरी-डी-मॉडे विक्लेका आगमन हुआ, जिसने बोलोनाके चिकित्सा-पुस्तकोंका अनुवाद फ्रेंचभाषामें किया, इस प्रकार फ्रांसीसी लोग रोमसे शल्य-चिकित्साको लानेवाले पहले लोग हुए।

१४वीं शताब्दीसे चिकित्सा-शास्त्रमें वैज्ञानिक मूल्योंको पुनःस्थापित करनेका सारा श्रेय उन वैज्ञानिकोंको जाता है, जो वैज्ञानिकके साथ-साथ चित्रकार, साहित्यकार एवं विचारक थे। इस परम्परामें सबसे पहले लियोनार्डोदाविचींने गैलेनकी मान्यताओंको पुनः परखा और भिन्न-भिन्न जीवोंपर इसके प्रयोग किये। उन्होंने फेफड़े और हृदयकी रक्तशिराओं और धमनियोंका नामकरण

किया। चित्रोंको प्रदर्शित करके उन्होंने इस क्रियाको समझाया और हृदयके कपाटोंकी रचनाका रहस्य खोला। 'फेफड़े और हृदय मिलकर मस्तिष्कमें हवा भरते हैं' गैलेनने इस मान्यताको समाप्त किया और हृदयसे अलग मस्तिष्कको जानेवाली रक्तवाहिनियोंको चित्रद्वारा प्रदर्शित किया। ब्रूसल्सके वेसेलियस (१५१४—१५६४ ई०)-ने चिकित्सा और कलामें सृजनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए मांसपेशियोंकी क्रिया, मस्तिष्कके अंदरकी बनावट, तन्त्रिकाओं और रक्तवाहिनियोंके अलग-अलग भागोंको चित्रद्वारा बनाकर समझानेका प्रयास किया। अपने अथक परिश्रम और प्रतिभाके बलपर बेसेलियस पादुआमें शरीर-रचना और शल्य-क्रियाके प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसी कालमें यूरोपमें प्लास्टिक सर्जरी विकसित हुई, जो कि हजार वर्षपूर्व भारतमें पूर्ण विकसित हो चुकी थी।

फिलिप बाम्बस्ट वाल हैनहीम जिनका जन्म स्विट्जरलैण्डमें हुआ (१४९३—१५४१ ई०), वे ही आगे चलकर थियोफ्रास्टस पैरासेलसके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे बासल (स्विट्जरलैण्ड)-में चिकित्साशास्त्रके प्रोफेसर नियुक्त हुए। पैरासेलसने ही सर्वप्रथम (सल्फर) गंधक और पारेका प्रयोग औषधिके रूपमें किया। इस कालमें ग्रीकसाहित्यका प्रचुर मात्रामें लैटिनमें अनुवाद हुआ और १६वीं सदीके प्रारम्भ (१५१८ ई०)-में थॉमस लिनाकरेद्वारा रायल कॉलेज ऑफ फिजिशियनकी स्थापना लन्दनमें की गयी।

रोगोंके संक्रमण और संक्रामक रोगोंका सर्वप्रथम विचार इसी कालमें फ्रैकास्टोरोद्वारा प्रतिपादित किया गया। १५४६ ई०में फ्रैकास्टोरोने संक्रामक रोग और संक्रमणके बारेमें तार्किक पक्ष प्रस्तुत किये और सूक्ष्म जीवोंकी सम्भावनाओंकी व्याख्या की, जो एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिके शरीरमें स्पर्श या वायुद्वारा फैल सकते हैं। फ्रेंच वैज्ञानिक गिलाम-डी-बैलो (१५३८—१६१६ ई०) द्वारा हिप्पोक्रेटिक विचारधारावाले संक्रामक रोगोंकी संक्रामकताकी चेतनाका इसी कालमें उदय हुआ और खुजलीवाले कीड़ोंद्वारा टाइफस रोगके संक्रमणके बारेमें भी तथ्य इकट्ठे किये गये। डी-बैलोंने इसी कालमें काली खाँसी, गठिया एवं जोड़ोंके दर्दका अन्तर बताया, जो कि इसके पूर्व हिप्पोक्रेट्सके द्वारा स्थापित किया जा चुका था। रोगके लक्षणोंके आधारपर उसके अतिप्रभावकी वैज्ञानिक विवेचना सर्वप्रथम लन्दनमें थॉमस साइडैन हैम (१६२४—१६८९ ई०)-ने की। अपने परीक्षण और विश्लेषणकी कलाके कारण ही उन्हें उस कालमें 'अंग्रेजोंका हिप्पोक्रेट्स' कहा गया।

भौतिक और रासायनिक विज्ञानके आधारपर रोगोंके समझनेकी प्रक्रियामें जियोरडानो, ब्रूनो, कूपरनिकस, गिलबर्ट केपलर और गैलिलियो प्रमुख हैं, जिन्होंने १७वीं शताब्दीमें जीवविज्ञान और भौतिकशास्त्रको एक सूत्रमें पिरोकर एक सार्वभौमिक शोधकी परम्पराका सूत्रपात किया। गैलिलियोके प्रकाश और लेन्सके समायोजनकी कलाने माइक्रोस्कोपके अन्वेषणकी नींव डाली। १६३६ ई०में सैनटोहियोंने रक्तवाहिनियोंको नाडीके रूपमें परिभाषित करके उसे रेखाङ्कित करनेके यन्त्रका आविष्कार किया। गैलिलियोद्वारा अध्ययन किये गये पारेके गुणको सैक्टोरियसने नैदानकीय थर्मामीटरमें बदलकर तापक्रमको नापनेका कार्य भी प्रारम्भ किया। श्वसन और इसके अन्तर्गत होनेवाले ऊर्जाके क्षयका भी अध्ययन सैक्टोरियसने अपने-आपको एक डिब्बेमें बंद करके ऊर्जाके क्षरण और उत्पन्न होनेकी विधिका अध्ययन किया। इससे आधुनिक चयापचय (मेटाबालिज्म)-की नींव पड़ी।

१७वीं शताब्दीमें ही अंग्रेज वैज्ञानिक विलियम हार्वे (१५७८—१६५७ ई०)-ने आधुनिक हृदयपर व्याख्या की। माइक्रोस्कोपका प्रयोग भ्रूणविज्ञान और जीवनके विकासमें भी किया गया तथा रक्तमें श्वेत एवं लाल रुधिरकणिकाओंके बारेमें भी ल्यूवेन हॉकने माइक्रोस्कोपके आधारपर चित्र बनाकर दर्शाया। प्रत्येक अङ्गोंके सूक्ष्म विवेचनसे वैज्ञानिकोंकी ढेर सारी भ्रान्तियाँ जाती रहीं। १७वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें अंग्रेज वैज्ञानिक राबर्ट ब्वायल (१६२६—१६९१ ई०)-ने वायुका जीवके श्वसनकी आवश्यकताके रूपमें आविष्कार किया और जॉन मेयोके माध्यमसे श्वसनमें ऑक्सीजनकी सम्भावनाओंपर विचार किया। जासेफ ब्लैक (१७२८—१७९९ ई०)-ने आगे चलकर जल, पानी और ऑक्सीजनके वर्तमान रासायनिक सूत्रोंकी व्याख्या की और प्रीस्टलेने इसी बीच (१७३३—१८०४ ई०)-में वायुकी प्रकृतिको समझकर हाइड्रोजन गैसोंका भी आविष्कार किया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके चिकित्सकके रूपमें रहे। सर हम्फ्री डेवीने नाइट्रस ऑक्साइडको सूँघनेके बाद यह विचार बनाया कि यह हँसनेवाली गैस शल्य-क्रियामें दर्दको भुला सकती है। इसका प्रचलन ब्रिटेन और अमेरिकामें सल्फ्यूरिक ईथरके साथ होने लगा था, परंतु इसका सर्वप्रथम प्रयोग वेल्स (१८१५-१८४८ ई०)-ने दाँतको उखाड़नेके लिये किया। वेल्सने इसका सार्वजनिक प्रदर्शन १८४५ ई०में अमेरिकाके मासाचुसेटस चिकित्सालयमें किया, जहाँ दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति इस प्रक्रियामें चीख पड़ा। वेल्सके ही एक शिष्य मार्टनने १८४६ ई०में ईथरके प्रयोगसे इस सफलताको प्राप्त कर लिया। इसके उपरान्त लिस्टरमें (१७९४-१८७० ई०) प्रसवमें ईथरका प्रयोग हुआ। सिम्पसनने ही क्लोरोफार्मका उपयोग १८४७ ई०में किया। यद्यपि इसकी खोज १८३१ ई०में पेरिसमें इयूजीन सुवेरियन, अमेरिकामें सैमुएल गूथरी और लिबिग १९३४ ई०में कर चुके थे। अबतक पम्पके माध्यमसे क्लोरोफार्म, ईथर और नाइट्रस ऑक्साइडके मिश्रण और अलग-अलग प्रयोगकी विधिके यन्त्रोंका विकास हो चुका था और दर्दनाशक शल्य-क्रियाके कारण शल्य-क्रियाका विकास बड़े ही त्वराके साथ हुआ। १८८५ ई०में जेम्स कार्निग स्टुअर्ड हाल्स्टेडने कोकेनको सूईके द्वारा नसोंमें लगाकर संज्ञा-शून्यताको पैदा किया और १८७४ ई०में क्लोरल हाइड्रेटको नसोंमें लगाकर सूईद्वारा निश्चेतना पैदा करनेकी विधि निकाली गयी, जो कि १९०३ ई०के बाद बिचुरटेसकी खोजके बाद और प्रभावी हो गयी। लॉर्ड लिस्टर (१८२७-१९१२ ई०)-ने यद्यपि अपने जीवनका प्रारम्भ एक शल्य-चिकित्सकके रूपमें किया, तथापि उनकी प्रसिद्धि एण्टीसेप्टिककी खोजके कारण हुई।

लिस्टरने अबतक माइक्रोस्कोपसे घाव बनानेवाले विषाणुओंका अध्ययन कर लिया था। उन्होंने विषाणुओंसे मुक्ति पानेके लिये कार्बोलिक एसिडसे घाव धोनेकी परम्परा शुरू की तथा चिकित्साके पूर्व यन्त्रोंको भी इससे धोया जाने लगा। कार्बोलिक एसिडसे अङ्गोंमें कई बार घाव हो जाते थे, अतः हाथोंमें रबड़के दस्ताने पहननेकी भी कला इसी कालमें प्रचलित हुई। लिस्टरके पूर्व ही सोमेविलिस (१८१८-१८६५ई०) कार्बोलिक एसिडका प्रयोग कर चुके थे, परंतु दुर्भाग्यवश उनके कार्यको बहुत ख्याति न मिल सकी और उनकी मृत्यु विक्षिप्त-अवस्थामें हंगरीके पागलखानेमें हो गयी।

एटिसोप्सिस, निश्चेतनाकी कला और विषाणुओं (बैक्टीरिया और वायरस)-के ज्ञानने शल्य-चिकित्साको सहज बना दिया और १९वीं शताब्दीके उत्तरार्ध कालमें प्रत्येक चिकित्साके लिये शल्यके प्रयोग किये गये। इसमें अमेरिकामें केन्टुकी नामक स्थानपर सफलतापूर्वक चिकित्सा करनेवाले मैकडावैल (१७७१-१८३० ई०) हुए। जेम्स सिम्स (१८१३-१८८३ ई०) जिन्होंने न्यूयार्कमें स्त्रियोंके मूत्र-जननेन्द्रिय मार्गकी कठिन शल्य-चिकित्सा की। लन्दनमें सार थॉमस स्पेन्सर हुए। स्पेन्सरने शल्य-चिकित्साके साथ-साथ शल्य-यन्त्रोंका भी विकास किया। कैंसररोगमें शल्य-चिकित्सा ही उस समय सबसे उपयोगी चिकित्सा थी, क्योंकि इस समय अन्य किसी भी कैंसरकी औषधिका विकास नहीं हुआ था। इसमें सर्वाधिक ख्याति क्रिश्चियन एलबर्ट लियोडन बिलरॉय (१८२९-१८९४ ई०)-की हुई, जिन्होंने सभी अङ्गोंके कैंसरके लिये शल्य-चिकित्साकी तकनीकका विकास किया। सर विलियम मैक्सीवनने (१८२४-१९२४ ई०) हड्डी एवं अन्य अङ्गोंके प्रत्यारोपणकी शल्य-चिकित्सा प्रारम्भ की और तन्त्रिका तथा मस्तिष्ककी शल्य-क्रियाका अलगसे विकास किया। वे लिस्टरके शिष्य थे और ग्लासगोमें लिस्टरके बाद उसी पदपर ३५ वर्षोंतक अध्यापक रहे। उन्होंने मस्तिष्कमें शल्य-क्रिया करके जमे हुए रक्तको निकालनेकी तकनीकका विकास किया। रीढ़की हड्डीमें स्थित ट्यूमर एवं मस्तिष्क और सुषुम्णा नाडीके मवादको शल्य-क्रियासे भी निकालनेकी क्रिया उन्हींके द्वारा प्रारम्भ की गयी।

नैदानिक चिकित्साका विकास और एक्स-रे

रॉन्टजनने १८९५ ई० में वैक्यूम ट्यूब्ससे निकली अज्ञात किरणोंको एक्स किरणोंका नाम दिया और निदानकी एक विशिष्ट दिशा दी। ६ जनवरी १९१९ ई० को लन्दनमें विद्युत् विभागके एक इंजीनियरने इसका उपयोग टूटी हड्डीका पता लगानेके लिये किया और १८९७ ई० में डब्ल्यू०बी० कैननने बेरियम घोलके ऊपर इसकी अपारदर्शिताकी पुष्टि की, जिसके कारण

आँतके रोगोंमें इसके उपयोगकी पुष्टि हुई।

मैडम क्यूरी और उनके पति पियरे क्यूरीने संयुक्त रेडियमकी रेडियोधर्मिताके आधारपर कैंसरकी चिकित्सा शुरू की और शीघ्र ही रेडियोधर्मी तत्त्वोंकी गणनाके आधारपर अन्य रोगोंके निदान और उपचारपर अनेक शोध-पत्र प्रकाशित हुए। २०वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें जीव-वैज्ञानिकोंद्वारा जीवाणुओंका विशद अध्ययन, रसायनज्ञोंद्वारा औषधियोंका निर्माण एवं आसवनकी विधि तथा प्रतिरोधक क्षमताके आधारपर रोग-निरोधक विधियोंके अध्ययनने आधुनिक चिकित्साको बहु-आयामी बना दिया। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धमें सैनिकोंकी रक्षाके लिये शासनकी ओरसे चिकित्सकीय शोधकार्योंको अधिक महत्त्व दिया गया, जिसमें ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी और पूर्व यूरोपीय देशोंकी प्रमुखता रही। जीवाणुओंको शरीरमें नष्ट करनेकी नयी परम्परा भी इन्हीं मौलिक वैज्ञानिकोंसे शुरू हुई और अलेक्जेण्डर फ्लेमिंगने १९२८ ई० में फफूँदके जीवाणुओंको नष्ट करनेकी विधिका विकास किया तथा पेनिसिलीनका विकास हुआ, जो कि फफूँदद्वारा विकसित की गयी। १९३५ ई०तक सल्कोनामाइडका विकास हो गया। १९४०-४१ ई०में ऑक्सफोर्डके चेन और फ्लोरेने पेनिसिलीनके लिये शुद्धीकरणकी व्यवस्था की। १९५२ ई०तक आते-आते वाक्समैनने स्ट्रेपटोमाइसीनको स्थापित कर दिया।

इस तरह आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान निरन्तर देश-काल और समयके सापेक्ष प्रयोगोंपर हर बार परखा जाता रहा और तब कहीं जाकर '**सर्वे सन्तु निरामयाः**' के उद्देश्यकी पूर्ति कर पाया। यह सारे देशोंकी धरोहर है, समूची मानवताका इसमें सम्यक् योगदान है और सबने इसको अपने-अपने ज्ञानसे सींचकर वैश्वीकरणके इस शीर्षपर लाकर खड़ा किया है।

एलोपैथी चिकित्साके मूल सिद्धान्त—गुण-दोष

[ऐतिहासिक दृष्टि]

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

चलती को गाड़ी कहें, जले दूध को खोया।
रंगी को नारंगी कहें, देख कबीरा रोया॥

इस संसारका यही चलन है, जो नाम दे दिया, वही चल गया। 'एटम' का अर्थ होता है 'अखण्ड' और आज खण्ड-खण्ड हो गये परमाणुको 'एटम' ही कहते हैं। हिंदी देशके सभी वासियोंको हिंदू न कहकर, जो मुसलमान, सिख या ईसाई नहीं हैं, वे सब हिंदू कहलाते हैं और सनातन धर्मको बड़े-बड़े विद्वान् 'हिंदू-धर्म' की संज्ञा देते हैं। राजधर्म, व्यक्तिधर्म आदि होते हुए भी हमारा देश 'धर्मनिरपेक्ष' है। कुछ ऐसी ही स्थिति एलोपैथीकी है। इसका अर्थ है **विपरीत-चिकित्सा**। एलोपैथी कभी कोई चिकित्साशास्त्र रही हो, ऐसा आपको ढूँढ़े नहीं मिलेगा। फिर भी आजकी 'आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति' को हमारे देशमें सर्वत्र (सरकारद्वारा भी) 'एलोपैथी' कहा जाता है।

इस नामकी कथा समझनेके लिये दो सौ वर्ष पीछे जाना होगा। सन् १७५५ ई० में जर्मनीमें सैमुअल फ्रेडरिख क्रिस्टियान हैनीमैनका जन्म हुआ। वह लीपजिग विश्वविद्यालयमें अध्ययन करके डॉक्टर बन गया। वियनामें कार्य करनेके बाद वह पुनः लीपजिग आया और कलेनकी 'मैटीरिया मेडिका' का अनुवाद करने लगा। वह 'कुनैन' के बारेमें पढ़ रहा था, तभी उसे एक नयी दृष्टि मिली। कुनैन खानेसे जाड़ा देकर बुखार आता है और यही जड़ैया बुखार अच्छा भी करती है। उसने सिद्धान्त स्थापित किया कि 'बड़ी मात्रामें रोग-जैसे लक्षण पैदा करनेवाली औषधि, अल्पमात्रामें उस रोगको दूर करती है।' सन् १८११ ई० में उसने 'आर्गेनन' लिखा। उसने अपनी पद्धतिका नाम दिया '**होमियोपैथी**'। इस पद्धतिमें उसने यह भी स्थापित किया कि 'औषधिकी मात्रा घोलमें ज्यों-ज्यों कम होती है, त्यों-त्यों उसकी रोगहारी शक्ति बढ़ती जाती है।' उसने कहा कि तीन प्रकारके रोग होते हैं—सोरा, सिफलिस, साईकोसिस। हैनीमैनने अपनी पद्धतिसे अलग जो पद्धतियाँ थीं, उन्हें '**एलोपैथी**' कहा। हैनीमैनने दो

उपकार किये—एक तो उसने औषधि-विज्ञानके गहन अध्ययनपर बल दिया, अतः उसे '**फादर ऑफ माडर्न फार्मोकोलॉजी**' का विरुद प्राप्त है, दूसरे उस युगके चिकित्सक वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, कपिंग, दहनके साथ ही बड़ी मात्रामें और कई औषधियाँ मिलाकर काढ़ा तथा गोलियाँ खिलाते थे। जो रोगी प्रकृतिकी सहायतासे अच्छे भी हो सकते थे, वे इस बर्बर-चिकित्साके कारण मर जाते थे। सूक्ष्म मात्रामें औषधि देकर हैनीमैनने इनकी रक्षा की। तत्कालीन '**एलोपैथी**' को समझनेके लिये हमें विश्व आयुर्विज्ञानका संक्षिप्त सिंहावलोकन करना होगा।

आदिकालमें सर्वत्र मानव मानता था कि रोग देव-प्रकोप, भूत-प्रेत, जादू आदिसे होते हैं और वैसी ही चिकित्सा भी करते रहे हैं। धर्मने पापको रोगका मूल कारण बताया, अतः व्रत, पूजा, प्रायश्चित्त चिकित्साका चलन हुआ। ग्रहोंकी दशा दूर की गयी। जंतर-मंतर, ताबीज, टोना, टोटका और जादुई इलाज उपलब्ध हुए। सारे विश्वमें इनमें एकरूपता है। हाँ, ये लोग तर्कसंगत ढंगसे घावकी मरहम-पट्टी करते थे—टूटी हड्डी जोड़ते थे।

आगे सभ्यताओंका जन्म हुआ—भारत, चीन, मेसोपोटेमिया (वर्तमान ईराक, प्राचीन सुमेर, बाबुल, असुर), मिस्र, यूनान और अमेरिकाके देश। बाबुलसे कीलाक्षर लिपिमें लिखी ईंटें मिली हैं, मिस्रसे पेपिरस (भोजपत्र पोथियाँ) मिले हैं। ये सब ६००० वर्षकी कथाएँ हैं। चीनने अपना दर्शन तैयार किया था और उस आधारपर चिकित्सा-पद्धति भी चलायी थी, साथ ही उसके पास समृद्ध औषधि-भण्डार भी था। भारतने वैदिक युगमें ही उपचारके अनेक तरीके ढूँढ़े—जल, अग्नि, मन्त्र और औषधियाँ। आगे सांख्यदर्शनके साथ त्रिदोष-सिद्धान्त स्थापित हुआ। सप्त मूलधातु, पचीस तत्त्व, मर्मस्थान ढूँढ़े गये, रोग पहिचाने गये, उनके निदानमें पाँचों इन्द्रियोंके उपयोगका उल्लेख हुआ। चरक और सुश्रुत-जैसे महान् चिकित्सकोंने समृद्ध चिकित्सा-शास्त्र दिये। सुश्रुत तो विश्वके पहले प्लास्टिक सर्जन माने गये। आहारसे उपचार, जादुई और धार्मिक उपचार, ज्योतिष और प्रेतबाधाके उपचार, पञ्चकर्म उपलब्ध हुए। आयुर्वेदके पास शानदार औषधि-भण्डार था, जिसमें वनस्पति, प्राणिज और खनिज औषधियाँ थीं। स्वच्छतापर भी विशेष बल था। मुख-हस्त-प्रच्छालन, मालिश, स्नानसे शरीरको स्वस्थ रखना और आहारमें विविधताका उपयोग। शल्य-क्रियाके उत्तम औजार उपलब्ध थे। सच पूछिये तो आयुर्वेद कोई चिकित्सा-पद्धति-मात्र नहीं था, प्रत्युत समग्र जीवन जीनेका तरीका था, स्वस्थवृत्त था।

यूनानको ज्ञानोदयका देश माना जाता था, जो अब गलत सिद्ध हो चुका है। फिर भी ईसापूर्व यूनानमें महान् विचारक और विद्वान् पैदा हुए, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। ईसासे १२०० वर्षपूर्व एस्क्लीपियसको चमत्कारी उपचारका यश मिला था और रोगी मन्दिरमें शयन करके रोगमुक्त होते थे। उन दिनों आहार, स्नान, व्यायामका चिकित्सामें समावेश था। जिन दिनों भारतमें महावीर और बुद्धका आगमन हुआ, उस युगमें—ईसापूर्व ४६० में हिपोक्रेटिजका जन्म हुआ, जिसे आधुनिक चिकित्साका जन्मदाता कहते हैं। इसने निदान, इलाज और फलश्रुतिकी बात कही, रोगको सहज प्राकृतिक कारणोंसे होना बताया और कहा हर रोगका अपना स्थान और स्वभाव होता है। रुग्णतापर आहार-विहार-वृत्तिका प्रभाव होता है। उसने प्राकृतिक चिकित्सापर बल दिया। ठीकसे रोगीका विवरण लिखनेकी प्रथा चलायी और उसकी लिखी शपथ आज भी चिकित्सा-विज्ञानके स्नातक लेते हैं।

इससे रोचक बात यह है कि यूनानमें चिकित्साशास्त्रपर भारतका प्रबल प्रभाव पड़ा, साथ ही उसने बाबुल, चीन और मिस्रसे भी बहुत-सा ज्ञान लिया। पाइथागोरसने अङ्कशास्त्र दिया तो इम्पोडिकिलीजने त्रिदोषको चार दोष बना दिया—कफ, पित्त, वायुके स्थानपर अग्नि, वायु, पीला पित्त और काला पित्त (अवसाद) बना दिया।

यूनानमें तीन बड़े दार्शनिक वैज्ञानिक हुए हैं—सुकरात, अफलातून (प्लेटो) और अरस्तू। अरस्तू सिकंदरका गुरु था और सिकंदर जब भारत आया तो यहाँसे बहुत-से विद्वान् ले गया। आज भी इन विद्वानोंके

दर्शनका अध्ययन होता है। यह नहीं कि विरोधी नहीं थे, एसक्लीपियाड्सने कहा—प्रकृति कोई उपचार नहीं करती, चिकित्सकको ही त्वरासे, सुरक्षित ढंगसे और ठीकसे उपचार करना चाहिये। उसने दोष-सिद्धान्त (सांख्य)-को नकार दिया और कण-सिद्धान्त (कणाद) चलाया। उसके अनुसार ठोस कण स्पन्दन करते हैं, इनका संकोच और विस्फार रोग करता है, उपचार माने इनका संतुलन। उसका इलाज था मालिश, पुल्टिस, टॉनिक, शुद्ध वायु, उत्तम आहार और मानसिकतापर विशेष ध्यान।

ईसाके युगमें यूनानका प्रभाव अस्त हुआ और ज्ञानका केन्द्र रोम बना। यूनानी डॉक्टर रोममें जमा हुए, पर सैनिक जगत्‌में उनकी चली नहीं। सन् १६१ ई० में गालेन नामक चिकित्सक पैदा हुआ। वह अपनेको हिपोक्रेटीजका अनुयायी बताता था, पर उसके सिद्धान्तोंका (जिनमें अनेक भ्रमपूर्ण थे) रुतबा पंद्रहवीं सदीतक छाया रहा। तिसपरसे चर्चने उसके सिद्धान्तोंको धर्मसे जोड़ दिया। गालेनके विरुद्ध बोलना माने प्राण देना। सर्वीटसने कहा—रक्त फेफड़ेमें जाकर शुद्ध होता है तो उसे जिंदा जला दिया गया। शरीर-रचनाके महान् आचार्य वेजेलियसको देश छोड़कर भागना पड़ा। सैनिक-शासित रोममें व्यायामशालाएँ, स्नानागार, स्वच्छताका बोलबाला था। चर्चने अपने धार्मिक उन्मादके बीच अच्छी बात यह की कि उसने यूनानी ग्रन्थोंका संग्रह किया, उनका अनुवाद कराया, नहीं तो वही दशा होती कि यवनोंने सिकंदरियामें महान् ग्रन्थ-भरे पुस्तकालयको जलाकर भस्म कर दिया था।

फिर योरपपर इस्लामी देशोंका कब्जा हुआ। इनकी चिकित्सामें अच्छी पैठ थी। फारसके रजीने '**किताब अलहावी**' लिखी, जिसमें समग्र चिकित्सा-ज्ञान था। फिर अबूसिनाने '**अलकानून**' लिखी, जो तिब्बीका पाठ्यग्रन्थ था और सारे योरपके चिकित्सा-विद्यालयोंमें पढ़ाया जाता था। इसीके चिकित्सकोंको 'हकीम' कहते हैं। अरब देशने रसायन, कीमियाईपर बहुत काम किया और रसायनकी बहुत-सी तरकीबें—आसवन, सबलिमेशन आदि ईजाद की। बारहवीं सदीमें स्पेनके कार्डोवामें एक यहूदी चिकित्सक हुआ, जो बादमें काहिरा चला गया, उसका '**कोड ऑफ मैमुद्दीन**' बहुत प्रसिद्ध हुआ।

चौदहवीं-पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीको रेनेसां (पुनर्जागरण)-का युग कहते हैं। सोलहवीं सदीमें लियोनार्दो द विंची, विजेलियस (१५४३ ई०) और अम्ब्रोसियो पारेने पुरानी मान्यताएँ तोड़ीं। इसी युगमें एक सिद्ध पारासेल्सस हुआ, जिसने देशी भाषामें चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाना शुरू किया और विद्यालयके प्राङ्गणमें 'गालेन' और 'कानून'-जैसे ग्रन्थ जला डाले। सत्रहवीं सदीमें विलियम हार्वेने रक्त-संचार सिद्धकर हमेशाके लिये गालेनका साम्राज्य ध्वंस कर दिया। अब बात थी 'देखो, खोज करो', केवल '**बाबावाक्यं प्रमाणम्**' मत मानो। अनेक विद्वान् वाद लेकर आये, रिचर्ड वाइजमैनने कहा—चार्ल्स द्वितीय (राजा)-के स्पर्शसे रोगी अच्छे हो जाते हैं, थामस ब्राउनने कहा—रोग चुड़ैलें पैदा करती हैं, रेनेडेकार्टेसने मानव-शरीरको मशीन-जैसा माना। ल्युवेनहाकने माइक्रोस्कोपका आविष्कार किया, लेनेकने स्टेथेस्कोप बनाया तो आवबर्गरने पर्कशन (ठोक-बजाकर) रोग-निदानकी तरकीबें निकालीं। मेस्मर प्राणीमें चुम्बक-शक्ति देखते थे तो गॉल कपालकी बनावटसे रोग पहिचानते थे। 'बहुतै जोगी मठ उजाड़' की स्थिति थी। जैसा पहले कहा—पञ्चकर्म और विशेष रूपसे खून निकालनेके कारण अपार नुकसान हो रहा था। संखिया, अंजन-जैसे विष प्रयुक्त होते थे। जेनरने शीतलाका टीका निकाल दिया था और नाविकोंमें स्कर्वी नामक रोग नीबू खानेसे ठीक हो जाता है, ये लिंडकी खोज थी।

उन्नीसवीं सदी—इधर प्रयोगशालामें प्रयोग-प्रक्रिया ही चल रही थी, मोरगैग्नीने रोगोंको अङ्गोंके विकारके रूपमें देखा, आगे इन्हें तन्तु-विकारके रूपमें देखा गया। फिर फिर्खोने कहा—रोगका मूल 'कोष' का विकार है। उधर पास्चरने जीवाणुकी खोज की तो कॉखने जर्मथ्योरी स्थापित की। प्रयोगका महत्त्व बढ़ा। एक्स-रे और रेडियम आये। अनेक रोगोंका रहस्य खुला।

हमने इतिहासकी हलचलसे आपको अवगत कराया। भारतमें भी मुसलिम-शासनमें हकीमीको प्रोत्साहन मिला। यूनानसे विद्वान् फारस आये, यह तिब्बीका विस्तार

हुआ—त्रिदोष अब चार दोष बन गये—कफ, पित्त, वायु तथा खून और इनके सूखे-गीले, गरम-ठंडे होनेकी चर्चा हुई, जो आज भी लोकमें व्याप्त है। औषधियोंका लेन-देन हुआ। इस्लामके बाद अंग्रेज आये और योरपकी चिकित्सा ले आये। वे इस विद्याको देना नहीं चाहते थे, पर केवल सहायक बनाना चाहते थे, परंतु चतुर भारतीयोंने विद्या हथिया ली और विश्वके श्रेष्ठ चिकित्सकोंके स्थानपर बैठ गये।

अब यहाँ दो बातें समझ लें। हैनीमैनसे पूर्व संसारमें पद्धतियाँ तो बहुत थीं, पर सभी उपचार कहलाती थीं, नुस्खोंका बोलबाला था। पुराने चिकित्सकोंकी डायरियाँ देखें तो लिखा मिलेगा—'यह नुस्खा मुझे मिस्त्री-चिकित्सकसे मिला, बहुत कारगर है।' हैनीमैनने पैथीका श्रीगणेश किया और आज सैकड़ों पैथियाँ बन गयी हैं। दूसरी बात यह कि चिकित्सा-विज्ञान या शास्त्र केवल उपचार नहीं है, उसमें बहुत-से विषयोंका अध्ययन करना होता है। ज्यादातर पैथियाँ एक दृष्टि-विशेषके आधारपर उपचार करती हैं, जबकि केवल कुछ ही पद्धतियाँ 'शास्त्र' कहला सकती हैं। आयुर्वेद एक शास्त्र है, उसे **अष्टाङ्ग-आयुर्वेद** कहा गया। यूनानी और तिब्बी भी शास्त्र हैं और उसी प्रकार आधुनिक चिकित्सा भी शास्त्र है, इसमें शरीर-रचना, शरीर-क्रिया, जीव-रसायन, औषधि-शास्त्र, विकृति-विज्ञान, स्वास्थिकी, अगद-तन्त्र, काय-चिकित्सा, शल्य, नेत्र-चिकित्सा, स्त्री-रोग तथा मातृत्व, बच्चोंकी बीमारियाँ, वृद्धोंकी बीमारियाँ और मनोचिकित्सा शामिल है। सच पूछिये तो उपचार-विद्या इस विशाल शास्त्रका छोटा-सा अंश है और इन विषयोंका ज्ञान इतना बढ़ गया है कि एक व्यक्ति समग्र चिकित्सक नहीं हो सकता। अस्तु, विशेषज्ञताकी प्रथा चली, जो अब अपनी चरम अवस्थाको पहुँच गयी है।

दूसरे महायुद्धके बाद अनुसंधानकी गति इतनी तीव्र हो गयी है कि सभी प्रगतियोंका लेखा-जोखा पेश करना भी कठिन है। भारतीय चिन्तन संश्लेषणात्मक है, जब कि आधुनिक विज्ञान विश्लेषणात्मक है अर्थात् सूक्ष्मसे सूक्ष्मतरकी यात्रा चल रही है। फिर्खोंने रोगका केन्द्र कोषमें देखा तो दूसरेने कुछ रोगोंको दो कोषोंके बीचमें स्थित स्थानपर रख दिया। फिर कोषके अंदर देखा गया। उसके केन्द्रको परखा गया। केन्द्रमें गुण-सूत्र दिखे और गुण-सूत्रपर स्थित गुणाणु मिले और इस प्रकार चमत्कारी '**जीन थिरैपी**' मिल गयी।

आम आदमी आधुनिक-चिकित्साके बारेमें बहुत कम जानता है, इस कारण बहुत-से प्रवाद फैले हैं, जैसे लोग कहते हैं कि एलोपैथीमें सभी रोगोंका कारण जर्म होते हैं। क्या वास्तवमें ऐसा है? आइये, आधुनिक चिकित्सामें रोगके कारण क्या बताये गये हैं, यह देखें—

(१) बाह्य भौतिक कारणोंसे रुग्णता—दुर्घटना, मारपीट, गोली लगना, जलना, डूबना, दम घुटना, विद्युत्-स्पर्शाघात, लू लगना, समुद्री यात्रा, वायुयान-यात्राकी बीमारी, पहाड़की बीमारी, गहरे समुद्रमें जानेसे उत्पन्न रोग (केसियन डिजीज), फ्रास्ट बाइट (बर्फसे जलना), प्रदूषणजन्य रोग।

(२) विष—पारा, सीसा, संखिया, शराब, कोयलेकी गैस, जहरीली गैस, नींदकी दवा, भाँग, गाँजा, चरस, अफीम, कोकेन, विषाक्त आहार, सर्पदंश, बिच्छू तथा अन्य विषैले जीवोंका काटना, नशीली दवाएँ (जो आज अभिशाप बन गयी हैं)।

(३) परजीवी कृमि-रोग—केंचुआ, फीताकृमि, अंकुश-कृमि, चून्ना, फाइलेरिया आदि।

आज इन जीवोंके जीवनवृत्त समझे जा चुके हैं और इनसे बचनेके सरल उपाय भी उपलब्ध हैं—जैसे साग-सब्जी धोकर खाना, जूते पहनकर चलना, शौचालयका उपयोग आदि।

(४) चयापचयके रोग (मेटाबोलिक)—भोजनका पचना, रस बनना, उससे नया तन्तु बनना, उच्छिष्टके विसर्जन आदिमें गड़बड़ी होना। इसमें अम्लता, क्षारता, गाउट, (गठिया), मोटापा आदि रोग हैं।

(५) प्रणाली-विहीन ग्रन्थियोंके विकार—शरीरमें अनेक प्रणाली-विहीन ग्रन्थियाँ हैं, जिनके स्त्रावसे शरीरका काम चलता है। इन ग्रन्थियोंमें—

(क) पिट्यूइटरी—जिसके विकारसे आदमी फैलकर 'जायन्ट' हो जाता है या फिर बालरूप बना

है, दाद-खाजसे कौन परिचित नहीं है?

(३) जीवाणु (बैक्टीरिया)—नाना प्रकारके सूक्ष्म जीवोंने मानव-जीवनमें बहुत उपद्रव किया है। इनके कारण महामारियाँ फैली हैं। प्लेग, हैजा, डिफ्थीरिया, मियादी बुखार, पेचिशसे तो सभी परिचित हैं। ये शरीरके जिस भी अङ्गपर आक्रमण करते हैं और शरीर लड़ नहीं पाता तो बीमार हो जाता है—मेनिनजाइटिस, आँख-आना, कानका बहना, टांसिल बढ़ना, कण्ठके रोग, फेफड़े, जो विशेष रूपसे क्षयरोग-ग्रस्त होते हैं, आँतकी सूजन, अपेंडिसाटिस, पेरिटोनायटिस, हिपेटाइटिस आदि, हड्डी-जोड़ भी इनसे आक्रान्त होते हैं और मांसपेशियाँ भी। त्वचा और तन्त्रिकाके रोग भी ये पैदा करते हैं। जहाँ भी इनका आक्रमण होगा वहाँ सूजन, लाली तथा दर्द होगा। फोड़े और फुंसीकी जड़में ये ही हैं। सिफलिस, गनोरियामी इन्हींकी देन है।

(४) रिकेट्सिया—यह तथा अन्य सूक्ष्म जीव—टाइफस-जैसे रोग पैदा करते हैं।

(५) विषाणु—पुराने जमानेमें चेचक, जलातंक, मम्स, कमल-जैसे रोग होते थे, पर कारण नहीं मिलता था; क्योंकि ये इतने छोटे जीव हैं कि अत्यन्त सूक्ष्म छन्ने भी इन्हें नहीं रोक पाते थे और माइक्रोस्कोपमें ये दीखते नहीं थे। अब इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप आया तो ये दृष्ट हो गये। पहले अज्ञात कारण, मौसमी ज्वर, बाल लकवा (पोलियो), मस्तिष्कार्ति, गैस्ट्रो, कँवल, जुकाम, नेत्र-रोग, वाइरल, निमोनिया-जैसे अनेक रोग, विस्फोटक रोग—चेचक, छोटी माता, दुलारी, एकलंगी माता, मम्स आदिके कारक यही हैं।

विषाणु रोगकी चिकित्सा अभी भी आसान नहीं है, पर जीवाणुजन्य रोगोंपर काफी सफलता प्राप्त की जा चुकी है। आधुनिक जीवावसादक और जीवाणुमारक औषधि तथा प्रतिबन्ध चिकित्साके बलपर महामारियाँ-समाप्त की गयी हैं। मानवताके घोर शत्रु क्षय और कुष्ठसे भी अच्छी लड़ाई चल रही है।

(१८) गर्भावस्थाके रोग—गर्भमें स्थित भ्रूणको रोग हो सकते हैं। इन्हें **कांजेनिटल रोग** कहते हैं। मातासे शिशुको रोग लग सकते हैं। रक्तके वर्गमें अन्तर हो तो शिशुके प्राणोंपर आ बीतती है। बनावटमें गड़बड़ी हो सकती है—कटे-फटे होंठ, अङ्गविशेष न होना, बड़ा सिर, जुड़वाँ-जुड़े हुए, विरूप शिशु।

(१९) पैतृक रोग—पिता-माताके गुणाणुमें दोष हो तो बच्चेमें रोग हो सकता है—रंगान्धता, हीमोफीलिया ऐसे ही रोग हैं।

हमने यथाशक्ति रोगकारण गिनाये, अभी और भी बहुत-से कारण हैं। आज एक बड़ा कारण जो पूरे विज्ञानको बदनाम कर रहा है, वह है—

(२०) इयाट्रोजेनिक रोग—यह औषधिजन्य रोग है। इसका कारण आदमी और उसका विज्ञान है।

(२१) रेडियेशन रोग—यह नया कारण हिरोशिमापर एटम बम फूटनेपर प्रसिद्ध हुआ। चेर्नोबिल दुर्घटनामें भी विकिरणसे लोग मर गये। यह आधुनिक विज्ञानप्रदत्त एक अभिशाप है।

अन्तिम कारण और रोग इस प्रकार हैं—

(२२) मानसिक रोग—यह भी निम्न अवस्थाओंमें मिलता है—

(क) साधारण—इसमें रोगी चिन्ताग्रस्त रहता है।

(ख) हिस्टिरिया—आतंक, तनावग्रस्त।

(ग) उन्माद—इसमें रोगी असाधारण आचरण करता है, लोग उसे 'पागल' कहते हैं। इसके अनेक प्रकार हैं और आज अनेक मानसिक रोग अच्छे किये जा रहे हैं।

अन्तिम है—

(२३) जीर्णता—वृद्धावस्थाके रोगोंकी अब अलग श्रेणी बन गयी है। वृद्धोंकी संख्या बढ़ी है, अतः समस्या विकट हुई है।

अब हम आधुनिक विज्ञानके निदान-उपचारकी बात अत्यन्त संक्षेपमें कहेंगे। रोग-निदानकी अनेक विधियाँ विकसित हो गयी हैं, जैसे—ई०सी०जी०, ई०ई०जी०, अल्ट्रा साउण्ड, स्कैन तथा पैथोलॉजी प्रयोगशालाओंमें सैकड़ों परीक्षण। जीवाणु और विषाणु पहिचाने ही नहीं जाते, उनका संवर्धन करके उनपर किसी औषधिका क्या प्रभाव होगा, यह भी जाना जा सकता है। ऑपरेशनसे निकले तन्तुका परीक्षण रोगकी

सही पहिचान कराता है।

इलाजकी दृष्टिसे विगत पचास वर्षोंमें अपार प्रगति हुई है। पहले डॉक्टर डिस्पेंसरीमें मिक्सचर, पाउडर, गोली बनाते थे, मरहम-पट्टी करते थे, अब डिस्पेंसरी बंद हो गयी है। बाजारमें सब दवाएँ उपलब्ध हैं। एक भ्रम कि डॉक्टर हर रोगमें इंजेक्शन लगाते हैं, यह भी गलत है और अकारण इंजेक्शन लगाना अपराध है। ऑपरेशन या शल्य-क्रिया अब बहुत आगे बढ़ गयी है, अब बिना चीरा लगाये भी ऑपरेशन हो सकता है।

बहुत-से रोगोंका इलाज खान-पान (जैसे अङ्कुरित चना, ताजे फल, हरी सब्जियाँ, चिकने मसालेदार भोजनपर रोक) विश्राम, व्यायाम (टहलना), विशेष व्यायाम जैसे ट्रैक्शन आदि, वायु-परिवर्तन आदिसे हो जाता है।

कहते हैं आधुनिक चिकित्सा महँगी है और उससे फायदा होता ही नहीं, नुकसान ही होता है। यह भी कि इससे रोग दब जाता है, जड़से आराम नहीं होता। शायद ये आरोप ठीक हों—डॉक्टर अपने शास्त्रज्ञानके अनुसार इलाज न करें, धन कमाने बैठें तो ऐसे आरोप लगेंगे ही। दवाओंके दाम तो व्यापारी वर्ग और सरकारके हाथ है। सन् बीस-तीसमें डॉक्टरकी फीस पाँच रुपये, सिविल सर्जनकी सोलह रुपये थी—आज जब रुपयेकी कीमत एक पैसा हो गयी है तो फीस पाँच सौ रुपये होनी चाहिये, जो नहीं है। सच तो यह है कि लूट मचानेवाला डॉक्टर भी आज मध्य-वर्गका सदस्य है, जबकि अतीतमें वह उच्च-वर्गमें था। फायदेकी बात तो अस्पतालों, दवाखानोंमें भीड़ देखें, क्यों वे सस्ती, कारगर चिकित्साके पास नहीं जाते?

आधुनिक चिकित्सा विश्वव्यापी है, विश्व स्वास्थ्य-संघद्वारा निर्देशित है। विज्ञानने आज अनेक रोगोंका समूल नाश—उन्मूलन कर दिया है*, लोगोंको दीर्घ जीवन दिया है। जहाँ स्वतन्त्रतासे पूर्व हजारों बच्चों (नवजात)-में तीन सौसे पाँच सौतक मर जाते थे, वह संख्या हमारे देशमें सौसे कम हो गयी है, उन्नत देशोंमें तो यह आठ-दस मात्र है। प्रसवमें माताकी मृत्यु विज्ञान अपने लिये कलंक मानता है। रोग-उन्मूलन और सफल उपचारका दुष्परिणाम हुआ है—जनसंख्याकी वृद्धि। आज विज्ञान तुला बैठा है कि किसीको मरने नहीं देंगे—ठीक है, पर जीवनका मूल्य नहीं बढ़ पाया है, जीवन सुखी नहीं है, मन अशान्त है। यह भीड़ कैसे घटे? एक सुझाव यह है कि आधुनिक चिकित्सापर समग्र रोक लगा दी जाय। अन्य उपचार-विधियाँ सस्ती हैं, जड़से रोग दूर कर सकती हैं, उन्हें मौका दिया जाय। पाँच वर्ष बाद आधुनिक चिकित्सा चमत्कारी परिणाम देखकर स्वयं परिवर्तन कर लेगी।

आधुनिक विज्ञानकी चिकित्सा और प्राचीन आयुर्वेदकी एक बात नोट करनेलायक है और वह यह कि चिकित्सा-शास्त्री कभी अपनेको सर्वज्ञ नहीं कहते थे। वे मानते थे कि अनेक रोगोंके कारण अज्ञात हैं, अनेक रोगोंका इलाज हमें ज्ञात नहीं है। आजका चिकित्सक जब कहता है कि 'आपके रोगका कारण मुझे ज्ञात नहीं', तब वह सच बोलता है, भले इसे उसका अज्ञान और उसके शास्त्रको निरर्थक कहा जाय।

अन्तमें एक ही बात कहनी है 'हिंदू-धर्म' एक सागर है, उसमें नास्तिकसे लेकर बहुदेव-पूजकतक सब समा जाते हैं और कोई मजहब इतने सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करेगा। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान भी ऐसा ही है, इसमें सब समा सकते हैं, किसीसे विरोध नहीं। आपकी औषधि या विधि यदि कारगर है तो स्वीकार्य है। क्यों कारगर है, इसकी बहस नहीं। यह काम शोधकर्ताओंका है। हमारा तो एक ही फर्ज है—रोगीको पीडासे मुक्ति मिले, रोग दूर हो और वह सार्थक, सफल तथा सुखी जीवन जी सके।

हमारी प्रार्थना है—

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।'

---

* चिकित्सा-शास्त्रका बड़ा अङ्ग है—'प्रिवेण्टिव मेडिसिन' और इसके अधिकारी 'हेल्थ अफसर' कहलाते हैं। ये व्यक्तिकी ही नहीं पूरे समाज, नगर, राष्ट्रके स्वास्थ्यकी चिन्ता करते हैं और विश्वको रोग-मुक्त करनेके उपाय ढूँढ़नेमें लगे हैं।

एलोपैथी चिकित्सासे लाभ तथा हानि

(श्रीमती उषाकिरणजी अग्रवाल)

एलोपैथी चिकित्सा इस समय सारे संसारमें तेजीसे फैल रही है। उसके अनुसंधान भी सभी क्षेत्रोंमें हो रहे हैं, परंतु जिन परिणामोंकी इस विज्ञानको आशा थी, वे नहीं मिल पा रहे हैं।

एलोपैथीसे लाभ—एलोपैथी चिकित्सासे कुछ लाभ होना निर्विवाद है, जैसे यह मनुष्यको तुरंत राहत दिला देती है। मनुष्य यह चाहता है कि मुझे कष्टोंसे शीघ्र-से-शीघ्र राहत मिल सके। एलोपैथी चिकित्सा उसमें सफल रही है। दूसरा निर्विवाद लाभ सफल शल्यचिकित्सा है। एलोपैथीने शल्यचिकित्सामें वास्तवमें आशातीत सफलता प्राप्त की है। पहले तो परम्परागत औजारोंद्वारा शल्यचिकित्सा की जाती थी, परंतु विज्ञानके बढ़ते चरणोंने इन औजारोंका स्थान विज्ञानकी नयी तकनीकोंको दे दिया है। इसमें लेज़रका प्रयोग उल्लेखनीय है। अणु तकनीकने भी इस चिकित्सा-पद्धतिमें बहुत सहायता की है। अब तो विज्ञान निरन्तर इस ओर प्रयत्नशील है कि जहाँतक हो, शल्यचिकित्सामें चीर-फाड़ कम-से-कम करना पड़े।

एलोपैथी चिकित्सा विज्ञानके स्थापित सिद्धान्तोंपर आधारित है। इसमें नित्य नया प्रयोग होता रहता है, जो इस चिकित्सा-पद्धतिको प्रगतिकी ओर ही ले जा रहा है, परंतु इन सबके होते हुए भी इसको अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। इस पद्धतिमें 'इंजेक्शन' एक ऐसी ही प्रक्रिया है, जिसके परिणाम शीघ्र ही सामने आ जाते हैं और इसके द्वारा मनुष्यको तत्काल राहत मिलती है। इस प्रक्रियासे कई कठिन रोगोंपर अंकुश लगानेमें सहायता मिली है। वैज्ञानिक पद्धतिपर चलते हुए इस चिकित्सा-पद्धतिमें विभिन्न परीक्षणोंका विशेष महत्त्व है। यदि परीक्षणोंमें रोगके लक्षण नहीं आते तो डॉक्टर यह मानकर चलता है कि रोगीको कोई रोग नहीं है, परंतु वास्तविकता यह नहीं होती। परीक्षणोंमें कहीं-न-कहीं कुछ कमियाँ रह ही जाती हैं, जिनके लिये वे और परीक्षण करना चाहते हैं। नये-नये यन्त्र निकाले जा रहे हैं, नयी-नयी तकनीक विकसित की जा रही है, जिससे परीक्षण पूर्ण हो सके, परंतु यह कितना सफल हुआ है, यह तो भविष्य ही बता पायेगा।

एलोपैथीसे हानियाँ—एलोपैथीसे लाभ तो जो हैं, वे प्रत्यक्ष ही हैं, पर इस पद्धतिमें जो सबसे बड़ा दोष है, वह है दवाइयोंका प्रतिकूल प्रभाव (साइड इफ़ेक्ट)। एक तो दवाइयाँ रोगको दबा देती हैं, इससे रोग निर्मूल नहीं हो पाता, साथ ही वह किसी अन्य रोगको जन्म भी दे देता है। यह इस पैथीके मौलिक सिद्धान्तकी ही न्यूनता है। दूसरी बात है अधिकतर रोग डॉक्टरोंके अनुसार असाध्य भी हैं। जैसे हृदयरोग, कैंसर, एड्स, दमा, मधुमेह आदि। यहाँतक कि साधारणसे लगनेवाले रोग जुकामका भी एलोपैथीमें कोई उपचार नहीं। पेटसे सम्बन्धित जितने भी रोग हैं, वे तो अधिक डॉक्टरोंके समझमें कम ही आते हैं। उदररोगोंका परीक्षण भी कठिन होता है तथा उसके सकारात्मक परिणाम भी नहीं मिल पाते। उदररोगोंका जितना सटीक एवं सफल उपचार आयुर्वेदमें है, उतना और दूसरी चिकित्सा-पद्धतिमें देखनेमें नहीं आता। अधिकतर रोग उदरसे प्रारम्भ होते हैं, अतः यदि वहाँपर अंकुश लगाया जा सके तो कई रोगोंका निदान स्वतः हो सकता है। मनुष्य अधिकतर स्वस्थ और नीरोग रह सकता है। डॉक्टरोंके पास एक ही अस्त्र है कि वे 'एन्टीबाईटिक' दवाई देते हैं, जो लाभ कम और हानि अधिक करती है। इन दवाइयोंका उदरपर सीधा दुष्प्रभाव पड़ता है और व्यक्तिकी पाचनक्रिया उलट-पलट हो जाती है। यदि वह उस दवाईको शीघ्र ही बंद न कर दे तो दूसरी व्याधियाँ उग्र रूप ले लेती हैं। इस चिकित्सा-पद्धतिमें औषधिसे अधिक शल्यचिकित्सा सफल हो पायी है। यहाँतक कि जिन कई रोगोंका आयुर्वेद अथवा यूनानी या होम्योपैथिक चिकित्सामें औषधियोंसे उपचार हो जाता है, वहाँ भी एलोपैथी शल्यचिकित्साका सहारा लेती है। दूसरे शब्दोंमें यह पद्धति शल्यचिकित्सापर अधिक आधारित होती जा रही है। इससे यह चिकित्सा अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे महँगी भी होती जा रही है

लिपिबद्ध किया। रासायनिक एवं भौतिक विज्ञानकी उपलब्धियोंको मानवके रोग-निदान-हेतु उपयोग किया। बीसवीं शताब्दीके अन्तिम चार दशकोंमें रोग-निदान-हेतु चौंका देनेवाले ऐसे यन्त्रोंके आविष्कार हुए कि एलोपैथी चिकित्सकोंकी रोग-निदान-क्षमतापर प्रश्न-चिह्न लग गया है। वर्तमानमें किसी रुग्ण अङ्गकी स्थिति जान लेना आसान है। अभी कुछ परीक्षण अधिक मूल्यवाले अवश्य हैं, किंतु कालान्तरमें आम जनताको लाभान्वित कर सकेंगे। कैंसर एवं एड्स-जैसे रोगोंका निदान अब सम्भव हो सका है अन्यथा पूर्वमें इन्हें मौतोंको प्राकृतिक आपदाओंका नाम दिया जाता था।

चिकित्सा-पद्धतिके रोग-निवारण-घटकमें दो विधियाँ हैं—

(क) काय-चिकित्सा (मेडिसिन)

(ख) शल्य-चिकित्सा (सर्जरी)

काय-चिकित्सा तो समस्त चिकित्सा-पद्धतियोंमें उपलब्ध है, परंतु शल्य-चिकित्सा एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिकी उपलब्धि है। शल्य-चिकित्सा कुछ विशिष्ट रोगोंके निवारणमें पूर्णतया सक्षम है, अतः मानव-समाज इससे पूर्णतया लाभान्वित है।

काय-चिकित्सा-हेतु एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिका भेषज-विज्ञान पूर्णतया विकसित है। कुछ रोगोंके विरुद्ध वैक्सीनका विकास एवं बैक्टीरियाके विरुद्ध आविष्कृत पेन्सिलीन तथा दर्द-निवारक दवाएँ मानव असहजताओंको दूर करनेके लिये वरदानस्वरूप हैं।

रोग-ज्ञान, रोग-निदान एवं रोग-निवारण-हेतु काय एवं शल्य-चिकित्सा, जब एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें वरदान स्वरूप हैं, फिर इनसे हानि होनेका प्रश्न क्यों उठता है? इस चिकित्सा-पद्धतिमें हानि नहीं है, बल्कि प्रकटमें दिखनेवाली खामियाँ चिकित्सकोंद्वारा जनित हैं। हिप्पोक्रेट-शपथमें चिकित्सकोंको दिशा-ज्ञान दिया गया है कि प्रत्येक चिकित्सकका धर्म है कि वह प्रकृतिको उसका कार्य करनेमें मात्र सहायता करे और व्याधिग्रस्तसे अपनी सेवाका मूल्य न ले। यह समाजका दायित्व है कि मानव-सेवा-धर्मसे जुड़ा व्यक्ति भूखा न सोये। आज चिकित्सकवर्ग अपनी ली गयी उक्त शपथको भूल बैठा है।

मेरे अपने संज्ञानमें पिछले पचीस वर्षोंमें समाजके नैतिक मूल्योंमें जिस तेजीसे गिरावट आयी है, उसके समानान्तर कुछ चिकित्सकोंमें भी धन कमानेकी होड़ आ गयी। चिकित्सक भी समाजका एक हिस्सा है और वह अपने चारों ओरके वातावरणसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अतः भौतिकताको प्राप्त करना उसका ध्येय बन गया। अब वह प्रकृतिका सहायक नहीं, अपितु स्वयं प्रकृति बन बैठा है। पेन्सिलीनसे वह रोगको नहीं, बल्कि रोगीको ही मार रहा है। शैशवावस्थासे ही मानवको दवाओंका इतना अभ्यस्त करवा दिया जाता है कि प्रौढ़ावस्थामें वह स्वयं एक चलता-फिरता रासायनिक बम बन जाता है। मानवके अन्तः-अङ्गोंका खुला व्यापार और चिकित्सकोंका व्यापारियों-जैसा व्यवहार ही एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिपरसे व्यक्तिका विश्वास हिलानेमें सक्षम है। एक अनैतिक व्यक्ति भी रोगी होनेके पश्चात् नीतिवान् चिकित्सकका अन्वेषण करता है, किंतु क्या उसका यह प्रयत्न कभी सफल हो सकेगा?

[प्रेषक—श्रीमाताप्रसादजी खेमका]

होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान

(डॉ० श्रीशिवकुमारजी जोशी, होमियोपैथ)

आज चिकित्सा-विज्ञानमें जैसे एलोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी आदि चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, उसी प्रकार होमियोपैथी भी एक अद्भुत चिकित्सा-प्रणालीके रूपमें प्रचलित है। होमियोपैथीकी दवा साबूदाने-जैसी मीठी-मीठी गोलियोंके नामसे जानी जाती है।

होमियोपैथीके प्रणेता डॉ० हैनीमैन (१७५५-१८४३ ई०) थे, जो जर्मनीके निवासी थे। डॉ० हैनीमैन ऐलोपैथीमें एम्०डी० उपाधिप्राप्त चिकित्सक थे। उन्होंने दस वर्षोंतक एलोपैथीकी चिकित्साके दौरान यह अनुभव किया कि इस पद्धतिमें रोगको तेज दवाओंसे दबा दिया जाता है, जो आगे चलकर घातक दुष्परिणामोंके रूपमें उभरता ही रहता है। एक बीमारी हटती है तो दूसरी

उठ खड़ी होती है, फिर तीसरी और अन्तमें ऐसी जटिल बीमारी हो जाती है कि वह असाध्य रोगकी श्रेणीमें आ जाती है। इन घटनाओंसे डॉ० हैनीमैनके अन्तर्मनमें नफ़रत पैदा होते ही उन्होंने ऐलोपैथीकी चिकित्साको हमेशाके लिये छोड़ दिया और सन् १७९० ई० से दिन-रात एक करके एक निर्दोष एवं सार्थक चिकित्सा-प्रणालीकी खोजमें अपना पूरा जीवन खपा दिया, अन्तमें इन महापुरुष डॉ० हैनीमैनने पीडित मानवताकी सेवाके लिये होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान-जैसी संजीवनी विद्या खोज ही निकाली।

होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीके मुख्य सिद्धान्त

(१) मानवका जो स्थूल शरीर हमें दीखता है, वह अति सूक्ष्म तत्त्वोंसे बना है। रोगका प्रारम्भ स्थूल शरीरमें नहीं होता, पहले रोग सूक्ष्म शरीरमें आता है। यदि सूक्ष्म शरीर (जीवनी शक्ति—वाइटल फोर्स) स्वस्थ है, सबल है, रेजिस्टेन्स पावर (रोगप्रतिरोधक शक्ति) मजबूत है तो रोगका आक्रमण सूक्ष्म शरीरपर नहीं हो सकता और स्थूल शरीर स्वस्थ बना रहता है। किंतु यदि हमारी जीवनी शक्ति (सूक्ष्म शरीर—आन्तरिक शक्ति) अस्वस्थ है, निर्बल है तो रोग पहले भीतरी शक्तिपर आक्रमण कर उसे और निर्बल कर देता है, फिर स्थूल शरीरपर विभिन्न अङ्गोंमें रोगोंके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जैसे—सिर-दर्द, पेट-दर्द, सर्दी-जुकाम, खाँसी, कै-दस्त, बुखार इत्यादि।

यदि उपचारसे इस सूक्ष्म शरीर (जीवनी शक्ति)-को रोगमुक्त कर लिया जाता है तो स्थूल शरीर अपने-आप रोगमुक्त हो जाता है।

होमियोपैथीकी शक्तीकृत दवा सूक्ष्म रूपमें ही होती है। अतः सूक्ष्म तत्त्वपर सूक्ष्म तत्त्वका ही स्थायी प्रभाव पड़ता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

(२) स्वस्थ शरीरमें जो औषधि रोगके जिन लक्षणोंको उत्पन्न करती है, यदि रोगीमें वैसे ही लक्षण पाये जाते हैं तो वही औषधि होमियोपैथीके शक्तीकृत रूपमें (सूक्ष्म रूपमें) उन लक्षणोंको ठीक कर देगी, बीमारीका नाम चाहे कुछ भी क्यों न हो। इस सिद्धान्तको एक उदाहरणद्वारा नीचे स्पष्ट किया जा रहा है—

जैसे स्वस्थ शरीरमें संखिया (आर्सेनिक) बेचैनी पैदा करता है, शरीरमें जलन उत्पन्न करता है, बार-बार प्यास लगती है, इस तरहके अनेक लक्षण पैदा करता है। होमियोपैथीके सिद्धान्तके अनुरूप यदि वैसे ही लक्षण किसी रोगीमें पाये जाते हैं तो इन लक्षणोंको होमियोपैथीकी आर्सेनिक नामक शक्तीकृत दवा दूर कर देगी। उपर्युक्त लक्षण चाहे हैजेमें हों, सर्दी-जुकाम-बुखारमें हों, पेटके अल्सरमें हों, सिरदर्दमें हों या कैंसरमें हों। बीमारीके नामसे कोई मतलब नहीं—बीमारीका नाम चाहे जो हो—रोगीके ये लक्षण आर्सेनिक नामकी होमियोपैथीकी दवासे ठीक हो जायँगे और रोगी रोगमुक्त होगा।

(३) होमियोपैथीमें रोगका नहीं, रोगीका इलाज होता है। रोगीके लक्षणोंको प्रधानता दी जाती है, बीमारीके नामको नहीं।

(४) होमियोपैथीके उपचारका आधार खासतौरसे पुराने-जीर्ण (क्रानिक) तथा असाध्य कहे जानेवाले रोगोंके लिये रोगीकी केस हिस्ट्री लेते समय उनके लक्षणोंकी प्राथमिकताका क्रम इस प्रकार रहता है—

(अ) मानसिक लक्षण।

(ब) सर्वाङ्गीण लक्षण यानी व्यापक लक्षण, जो पूरे शरीरकी पीडाका बोध कराता हो।

(स) अङ्ग-विशेषके लक्षण।

(द) कोई असाधारण या विलक्षण लक्षण।

(इ) रोगीकी प्रकृति।

नये रोगियोंमें अथवा अबोध बच्चों तथा आकस्मिक असामान्य स्थितिमें मौजूदा रोगीकी स्थिति एवं मौसमके अनुरूप रोगीको तात्कालिक लाभ देने-हेतु सामयिक चिकित्सा-व्यवस्था की जाती है, ताकि रोगीको शीघ्र लाभ हो सके।

होमियोपैथिक दवाका शक्तीकरण (Potentiali-sation)—सभी पैथियोंमें औषधियाँ मूलतः सब वही होती हैं, भेद केवल इनके निर्माण एवं प्रयोगमें होता है।

होमियोपैथिक दवा बनानेकी विधि बड़ी ही विचित्र है। इस विधिमें औषधिके स्थूल रूपको इतने सूक्ष्मतम रूपमें परिवर्तित कर दिया जाता है कि दवाकी

तीसरी शक्तीकृत दवामें दवाका स्थूल अंश तो क्या, दवाके सूक्ष्म अंशका भी पता नहीं चलता।

होमियोपैथीकी किसी भी शक्तीकृत दवामें ६ शक्तिके बाद दवाके अणु-परमाणु भी नहीं देखे जा सकते, दवाकी आन्तरिक अदृश्य शक्ति जाग्रत् हो जाती है और इस तरह दवाकी आन्तरिक जीवनी शक्ति रोगीको ठीक करती है।

होमियोपैथीकी शक्तीकृत दवा ६ शक्तिके बाद ३०, २००, १०००, १०,०००, ५०,००० तथा १ लाख पावर (पोटेन्सी)-वाली होती है। इन उच्चतर शक्तीकृत दवाओंमें दवाका नामोनिशान ही नहीं रहता, जबकि ये सूक्ष्मतम अदृश्य शक्तिरूपा होमियोपैथिक दवाइयाँ पुराने, जटिल तथा असाध्य कहे जानेवाले रोगोंको जड़मूलसे स्थायी रूपसे नष्ट कर देनेका सामर्थ्य रखती हैं तथा उस रोगजन्य अन्तरङ्गको Regenerate करनेकी क्षमता भी रखती हैं।

होमियोपैथिक दवाओंका परीक्षण (Proving of Drugs)—कौन-सी औषधि स्वस्थ व्यक्तिमें क्या लक्षण पैदा करती है, डॉ० हैनीमैनने ही इसका आविष्कार किया।

होमियोपैथीकी अधिकांश दवाका डॉ० हैनीमैनने स्वयं तथा अपने कई स्वस्थ सहयोगियोंपर परीक्षण किया—उनमें जो-जो शारीरिक तथा मानसिक लक्षण उत्पन्न हुए, उनका सम्पूर्ण रेकार्ड किया गया। इस प्रकार परीक्षित होमियोपैथिक शक्तीकृत दवाओंका जो सजीव चित्रण संकलित किया गया, उस ग्रन्थका नाम **होमियोपैथिक मैटेरिया-मेडिका** रखा गया। चूँकि होमियोपैथिक दवाओंके परीक्षणका आधार स्वस्थ मानव-शरीर रहा है। अतः जबतक मानव पृथ्वीपर है, होमियोपैथीकी वे ही दवाइयाँ सदियोंतक चलती रहेंगी।

ऐलोपैथी दवा बार-बार इसलिये नयी-नयी बदलती रहती है कि उसके परीक्षणका आधार चूहे, बंदर, गिनीपीग-जैसे जानवर तथा रोगी होते हैं।

होमियोपैथी दवाके चयनका सिद्धान्त—सिद्धान्तरूपसे होमियोपैथका काम ऐसी औषधिका निर्वाचन करना है, जिसके लक्षण हूबहू रोगीके लक्षणोंसे मिलते हों। जब रोगीके लक्षणों और औषधिके लक्षणोंमें अधिक-से-अधिक साम्यता, समानता, एकरूपता पायी जाती है तो वही औषधि रोगको दूर करेगी।

औषधि और रोगीका वैयक्तिकीकरण (Individualisation) करना होमियोपैथीका सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तके आधारपर होमियोपैथ रोगीद्वारा बताये गये सम्पूर्ण लक्षणोंको ध्यानमें रखकर ही उपयुक्त औषधि एवं दवाकी पोटेन्सी (पावर)-का चयन करता है। यह चयन-प्रक्रिया होमियोपैथके अध्ययन और अनुभवपर आधारित रहती है।

होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीके बारेमें कुछ व्यावहारिक जानकारी

(१) होमियोपैथिक दवाकी कोई एक्सपायरी डेट नहीं होती है। (यदि दवाको धूप, धूल, धुँआ, तेज गन्ध तथा केमिकल्ससे बचाकर रखा जाय तो यह दवा कई वर्षोंतक चलती रहेगी।)

(२) इस दवाके कोई साइड इफ़ेक्ट (दुष्प्रभाव) नहीं होते हैं।

(३) इस दवामें कोई विशेष परहेज नहीं होता है। केवल तेज गन्धवाली वस्तुओंसे परहेज करना है।

(४) दवाको हाथ नहीं लगाना चाहिये, शीशीके ढक्कनसे या सफेद कागजके टुकड़ेपर लेकर सीधे मुँहमें डालकर चूस लेना चाहिये। साधारणतः बड़ोंको चार गोली तथा बच्चोंको दो गोली।

(५) दवा लेनेके १५-२० मिनिट पहले तथा दवा लेनेके १५-२० मिनिट बादतक मुँहमें कुछ भी नहीं डालना चाहिये। भोजनमें ३०-३० मिनिटका पहले और बादमें समयका ध्यान रखना है।

(६) चाय-काफी-तंबाकू-पान-प्याज-लहसुन—इनपर कोई बंदिश नहीं है, परंतु ध्यान रखें दवा लेनेके आधा घंटा पहले तथा दवा लेनेके आधा घंटा बादतक इनका उपयोग नहीं करें, अन्यथा तेज गन्ध दवाके पावरको कम कर सकती है।

(७) किसी भी कारणसे आवश्यकता पड़नेपर यदि कोई अन्य पद्धतिकी दवाका प्रयोग करना पड़े तो उस समयतकके लिये होमियोपैथिक दवा बंद कर देनी

चाहिये। उसके बाद दूसरे दिनसे पुनः यथावत् चालू कर सकते हैं।

(८) होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीमें रोगीके लक्षणोंके आधारपर ही उपचार किया जाता है। लक्षणोंद्वारा ही अङ्ग-विशेषके रोगग्रस्त होनेकी जानकारी हो जाती है। इसी कारण साधारणतः अकारण रोगीकी भारी-भरकम खर्चीली जाँचें नहीं करायी जाती हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति सरल है, सस्ती है और पुराने रोगोंमें स्थायी लाभ देनेका सामर्थ्य रखती है।

(९) होमियोपैथी चिकित्साके बारेमें आवश्यक जानकारीके अभावमें कुछ लोगोंमें भ्रम, भ्रान्तियाँ तथा गलत धारणाएँ फैली हुई हैं, जिसकी वजहसे वे होमियोपैथी चिकित्सा करानेमें हिचकिचाते हैं, उनके द्वारा अक्सर ऐसा कहा जाता है कि—

(अ) होमियोपैथी दवा देरसे असर करती है।

(ब) होमियोपैथीमें पहले रोगको बढ़ाया जाता है।

(स) होमियोपैथिक दवासे तात्कालिक लाभ नहीं होता है तथा दवा काफी लंबे समयतक लेनी पड़ती है।

(द) होमियोपैथी दवा समयपर बार-बार दिनमें कई बार लेनी पड़ती है।

(इ) कुछ लोगोंका यह भी मानना है कि इतने बड़े शरीरमें ४-५ साबूदाने-जैसी गोली क्या असर करेगी?

ऐसी कई भ्रान्तियों एवं गलत धारणाओंके कारण होमियोपैथीकी सही जानकारीके अभावमें रोगी तात्कालिक एवं क्षणिक लाभके लिये इधर-उधर भटकनेके उपरान्त अन्तमें स्थायी लाभके लिये होमियोपैथी चिकित्साके लिये आते हैं और जब वे इस संजीवनी चिकित्सा-विद्यासे लाभान्वित होते हैं तो फिर इसे छोड़कर दूसरी चिकित्सा-पद्धति नहीं अपनाते।

होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धति और असाध्य रोग

(डॉ० श्रीसोमनाथजी मुखर्जी एम० बी० एच० एस०, एम० बी० एच० सी०)

चिकित्सा एक साधना है, सेवा-भावसे चिकित्सा करनेपर पूर्णरूपसे सफलता मिलती है। प्रत्येक चिकित्सा-पद्धतियोंका अपना अलग-अलग महत्त्व है। कुछ रोग जैसे डिप्थीरिया, टिटनेस, एड्स तथा कुष्ठरोगके लिये ऐलोपैथीको उत्कृष्ट समझा जाता है। वातरोग, पक्षाघात आदिमें आयुर्वेदका महत्त्व है। इसी प्रकार जटिल एवं पुराने रोगोंमें होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धतिका महत्त्व ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुआ है। सभी पैथियोंमें रोगीके प्रति सहानुभूति नितान्त आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्दजीने कहा था कि जीवको शिव समझकर चिकित्सा करना ही जीवका वास्तविक धर्म है।

होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धतिकी विशेषतापर मैं एक-दो उदाहरण आपके समक्ष रखना चाहता हूँ। होमियोपैथिक औषधिके चयनमें रोगीके शारीरिक एवं मानसिक लक्षणोंपर विचार किया जाता है, इसमें पुराने इतिहासका विशेष प्रयोजन होता है, यथा—

(१) अड़सठ वर्षके एक रोगीको पूरी तरहसे स्वर-भङ्ग हो गया था। जसलोक अस्पताल (मुम्बई)-ने टंग-पैरालाइज्ड कहकर वापस भेज दिया था, उस रोगीके पुराने इतिहाससे पता चला कि उक्त रोगीको चार वर्षकी उम्रमें चेचक निकली थी जो कि उस समय उसके शरीरमें पूर्ण-रूपसे विकसित नहीं हुई थी, आज उसीके फलस्वरूप ऐसी स्थिति आयी है। होमियोपैथिक औषधि केवल दो खुराक देनेसे कुछ दिनों पश्चात् स्वर-भङ्ग ठीक हो गया और पुराना स्वर वापस आ गया।

(२) एक रोगीको अकेलेपनमें गश (मूर्च्छा) आती थी, उसका इलाज भेल्लौरसे करानेपर भी सफलता न मिलनेपर रोगीको होमियोपैथिक इलाजके लिये सलाह दी गयी। पुराने इतिहाससे पता चला कि उसका पालन-पोषण बड़े परिवारमें—शोरगुलमें हुआ था, परंतु विवाहके उपरान्त उसे अकेलेपनमें रहना पड़ा; क्योंकि उसका पति अपने कार्यपर चला जाता था। उसीके परिणामस्वरूप उसके मनमें भयसे यह रोग उत्पन्न हो गया और वह बेहोशीमें परिवर्तित हो गया। इसमें होमियोपैथिक इलाजसे ही सफलता प्राप्त हुई।

(३) एक चौदह सालकी लड़कीको जुविनाइल डाइबिटिज था, काफी चिकित्सा करानेके पश्चात् वे लोग होमियोपैथीकी शरणमें आये। रोगीके इतिहाससे ज्ञात हुआ कि जब वह माँके गर्भमें थी, तब उसकी माँका मानसिक संतुलन खराब था। फलस्वरूप पैदा होते ही बच्चीमें इस रोगकी उत्पत्ति हुई, अतः इसी आधारपर इस रोगकी चिकित्सा करनेपर रोग समाप्त हो गया।

अतः होमियोपैथिक भाइयोंसे हमारा निवेदन है कि प्रत्येक मरीजका पूर्वका इतिहास लेकर ही उसकी चिकित्सा करें, तभी रोगोंमें पूर्णरूपसे सफलता मिलेगी।

होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिद्वारा शारीरिक एवं मानसिक व्याधियोंका निवारण

(डॉ० श्रीरफीक अहमद एम०ए०, पी-एच०डी०(होमियोपैथ))

मानव एक प्राणी होनेके कारण व्याधियोंसे ग्रस्त होता रहा है। यह रुग्णता मुख्यतः दो प्रकारकी है—शारीरिक एवं मानसिक। इसके उपचार-हेतु वह आदिकालसे ही सतत प्रयत्नशील रहा है और उसका प्रयत्न निरन्तर विकासोन्मुख रहा है। यदि आज उन चिकित्सा-प्रयासोंकी ओर दृष्टिपात करें तो मुख्यतः एलोपैथिक चिकित्सा अग्रगण्य है। समस्त विश्वके राष्ट्रोंमें इसका वर्चस्व व्याप्त है। आयुर्वेदिक, यूनानी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति गौण है। आयुर्वेदिक चिकित्साका श्रीगणेश, अनुसंधान एवं विकास भारतभूमिपर हुआ है, जिसमें ऋषियों-योगियोंकी अहम् भूमिका रही है। इसका भूतपूर्व इतिहास अत्यन्त गौरवमय एवं वैभवशाली रहा है। धन्वन्तरि तथा चरक-जैसे महा मनीषियोंने इसे पुष्पित एवं पल्लवित किया है। यह पद्धति आज भी जीवित है। यूनानी अर्थात् तिबिया प्रणालियोंका प्रादुर्भाव यूनानसे हुआ है। इसलामी शासनमें लुकमान-जैसे हकीमोंने इसे पराकाष्ठापर पहुँचाया। होमियोपैथिक चिकित्सा जर्मनके एक ख्यातिप्राप्त एलोपैथिक चिकित्सक सेम्युअल हैनीमैनद्वारा आविष्कृत होनेके कारण इसका नाम होमियोपैथिक पड़ा है। यद्यपि इसका इतिहास पुराना नहीं है, फिर भी यह लोकप्रियताकी ओर अग्रसर है। इसका मुख्य सिद्धान्त स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर है। किसी ओषधिके सेवनसे जो लक्षण प्रकट हो यदि वही लक्षण किसी रोगीमें दिखायी पड़े तो उसी ओषधिका सूक्ष्मांश देनेसे लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार क्विनाइयनके सेवनसे कम्प-ज्वर पैदा होता है, तो यदि किसीको कम्प-ज्वर अर्थात् मलेरियाके लक्षण दिखायी पड़ें तो उसीका सूक्ष्मांश अर्थात् चायना-शक्तीकृत ओषधि उसे रोगमुक्त करनेमें सक्षम है। यहाँ यह प्रासंगिक होगा कि कुछ अन्य आधुनिक पद्धतियोंपर भी दृष्टिपात कर लिया जाय। जैसे चीनद्वारा प्रतिपादित एक्यूपंक्चर-पद्धति। जिसमें रोग-विशेषको निर्धारित चिह्नोंद्वारा चिह्नाङ्कित करके उसमें अतिरिक्त ऊर्जाद्वारा स्नायुमण्डलको गति प्रदान करते हुए रोगोंके निवारणकी व्यवस्था है। चुम्बक-चिकित्साके माध्यमसे भी उसमें ऋण तथा धन चुम्बकीय क्षेत्रोंको स्पर्श कराते हुए दर्दोंके निवारण तथा पक्षाघात एवं स्नायु-दौर्बल्यमें इसका प्रयोग किया जाता है। मेज्मेरिज्म अर्थात् प्रयोगकर्ताद्वारा अपनी मानसिक शक्तियोंको केन्द्रित करके भुक्तभोगीपर डालकर कुछ मनोरोग—जैसे अनिद्रा, चिन्ता, भय, शोक तथा आत्महीनतामें इस पद्धतिका प्रयोग किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त बिना किसी ओषधिके प्राकृतिक चिकित्साका भी कुछ व्याधियोंमें प्रयोग किया जा रहा है, जिसमें प्रकृतिके महाभूत, जैसे—जल, अग्नि, मिट्टी तथा वायुद्वारा इसकी चिकित्सा की जाती है, जो जनसाधारणके लिये दुस्तर तथा कठिन तो अवश्य है, परंतु पथ्य, परहेजद्वारा सहज प्राकृत जीवन व्यतीतकर गम्भीर रोगोंसे मुक्ति पायी जा सकती है। रोग-निवारणमें गोमूत्र एवं स्वमूत्र-प्रयोगद्वारा भी सहायता प्राप्त होती है।

इन सभी चिकित्सा-प्रणालियोंमें होमियोपैथी सहज-सुलभ, प्राकृत तथा सस्ती एवं दीर्घ लाभके लिये अपनी आभा विश्वमें विकीर्ण कर रही है। इस विज्ञानके

आधारपर हमारे शरीरमें रोग होनेके कारण तीन महाविष हैं। जिस प्रकार आयुर्वेदमें कफ-पित्त और वायु है, उसी प्रकार होमियोपैथीमें सोरा, सिफलिश और सायकोसिस है। नब्बे प्रतिशत रोगोंका मूल शरीरमें 'सोरा' दोषका आविर्भाव है। इसने मानवजातिका सबसे बड़ा अहित किया है। इसी दोषकी सक्रियताके कारण शरीरमें मानसिक चञ्चलता, कामुकता, एक्जिमा, खाज, खुजली, सोरायसिस, कुष्ठ, चर्मरोग तथा उदर एवं स्नायुरोग पैदा हो जाते हैं। सायकोसिस विषके सक्रिय होनेके कारण शरीरमें अतिरिक्त वृद्धि जैसे रसौली, मस्से, गाँठ, गुठलियाँ, कैंसर तथा अस्थिवृद्धि आदि हो जाती हैं और सिफलिश विषके कारण उपदंश, यौन-रोग, एड्स, जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग होते हैं। श्लैष्मिक झिल्ली, आन्त्रव्रण (अल्सर) आदि इसीके अन्तर्गत हैं। सोरादोषको निष्क्रिय करनेके लिये सल्फर तथा सिफलिशके लिये मर्कसाल और सायकोसिसके लिये थूजाका विधान है। ये तीनों मुख्य औषधियाँ इस त्रिविषके लिये मोटेरूपमें गिनायी जा सकती हैं। इसके पश्चात् रोगीके स्थूल तथा दुर्बल जीवनी-शक्तिका परीक्षण किया जाता है। उसकी मानसिक स्थितिको व्यापकरूपसे ध्यानमें रखा जाता है। उसकी इच्छाओं, अनिच्छाओं तथा रोगकी समय-विशेषमें ह्रास एवं वृद्धि, रोगग्रस्त अङ्गके लक्षण, शीतल तथा गर्मका भी वर्गीकरण करनेमें ध्यान देना आवश्यक है। साथ-साथ रोगीके भूतपूर्व रोगोंका इतिहास, वंश-परम्परासे चली आयी व्याधियाँ जैसे दमा, कैंसर आदि-आदि तथा जलवायु, मौसमविशेष और वेश आदिको भी निरखा-परखा जाना आवश्यक होता है।

रोग-विशेषमें मुख्यरूपसे प्रयुक्त होनेवाली कुछ ओषधियोंकी एक संक्षिप्त सारणी यहाँ दी जा रही है—

एकोनाइट—रोगके आरम्भमें सभी रोगोंकी उग्रता, तीव्र ज्वर, हृदयरोग, ज्वर, घबड़ाहट, बेचैनी आदिकी प्रारम्भ-अवस्थामें सेवनीय है।

आस एल्बम—इसको संखिया-विषसे शक्तीकृत करके ३ लक्षणोंपर मुख्यतासे प्रयोग किया जाता है। यह दवा पसीना, घबड़ाहट, बेचैनी, प्यास-जैसे रोगोंकी पुरानी अवस्थामें प्रयुक्त की जाती है। दमा, श्वास, कास, पुराने चर्मरोग आदिमें सेवनीय है।

एंटिमटार्ट—यह मुख्यतः बच्चोंकी दवा है। सर्दी, खाँसी, निमोनिया, छातीमें बलगमकी गड़गड़ाहट आदि इसके मुख्य लक्षण हैं।

एसिड फॉस—यह धातुरोग तथा मानसिक दुर्बलताकी प्रमुख ओषधि है।

एल्युमिना—यह वृद्धोंके कब्जमें विशेष उपयोगी है।

एनाकाडियम—यह स्मृतिहीनता तथा मानसिक भ्रम आदिमें उपयोगी है।

बेलाडोना—यह मुख्यतः बच्चोंकी ओषधि है। चेहरेका लाल हो जाना, काल्पनिक मूर्ति देखना तथा चौंकना आदि भाव दीखनेपर उपयोगी है।

ब्रायोनिया—यह ज्वर तथा वातकी मुख्य ओषधि है।

कल्कैरिया कार्ब—यह बच्चोंकी ओषधि है। मोटे, थुलथुले, पसीनेदार, मिट्टी तथा खड़िया खानेवाले बच्चों तथा पित्त पथरी, वृक्क पथरीमें—जिसमें दर्दके समय पसीना हो तो यह उसके लिये एक महान् उपकारी ओषधि है।

कास्टिकम—दाहिनी ओर पक्षाघातमें इस दवाकी उच्च शक्तिसे निश्चित लाभ होता है तथा गलनलीके रोग जैसे स्वरभंग, लकवा आदिमें इसका विधान है।

कैन्थरिस—जलनके साथ मूत्र बूँद-बूँद आनेमें यह निश्चित लाभकारी है।

कार्बोवेग—यह दिमागी अवस्था और उदर-रोगमें वायुसे पेट फूलनेमें लाभकर है।

चेली डोनियम—यह दाहिने स्कन्धास्थिमें दर्द होनेमें और यकृत् तथा कब्जमें उपयोगी है।

सीना—यह कृमि-रोगकी महोषधि है।

क्युब्रममेट—यह मानसिक मृगी—जिसमें ऐंठन होकर मुट्ठी हो जाय तथा चेहरा नीला हो जाय—की अचूक ओषधि है।

ग्रैफाइटिस—यह मोटी, गोरी, थुलथुली महिलाओंमें क़ब्ज़ तथा मासिक धर्मकी गड़बड़ीमें लाभकारी है।

हीपर सल्फर—यह एक कीटाणुनाशक ओषधि है। जिस व्रणमें गाढ़ा मवाद आता हो, उसे सुखानेके लिये यह अति उत्तम है।

हायोसियामस—यह पागलपन दूर करनेकी अचूक दवा है, इसका लक्षण वीभत्स प्रदर्शन करना होता है।

इग्नेशिया—यह मानसिक रोगोंमें, हिस्टीरिया आदिमें—जिसके मूलमें हर्ष, शोक, चिन्ता तथा प्रेमसे निराशाका इतिहास हो, उसमें उपयोगी है।

इपीकाकुआना—यह मिचली तथा वमन-रोगमें प्रथम सेवनीय है।

कालीफास—यह मानसिक दुर्बलता एवं स्नायु-दौर्बल्यमें—विचूर्ण ६ एक्स, १२ एक्स, ३० एक्स आदि— लाभकारी है।

लैकेसिस—यह सर्वविषकी ओषधि है, जो शरीरके वामभागके पक्षाघात, गाँठ, रसौली तथा कांबमल-जैसे कुसाध्य रोगमें रामबाण है।

लाइकोपोडियम—इसका प्रयोग विशेष रूपसे दुबले-पतले, यकृत्-रोगी, मूत्रावरोध, नपुंसकता, निचले उदरके दाहिनी ओरमें फूलने आदिमें किया जाता है।

मर्कसाल—यह पारद-निर्मित है। पेचिशी आँव, मुँह आना तथा चर्मरोगमें इसका सफलतापूर्वक व्यवहार किया जाता है।

नक्सवोमिका—यह होमियोपैथी-विज्ञानकी मुख्य ओषधि है। आधुनिक जगत्की व्यस्त बाधाओंकी यह एक आदर्श ओषधि है। उदररोग, मानसिक भ्रान्ति, क्रोध, क़ब्ज़ आदिमें यह एक मान्यताप्राप्त ओषधि है।

नैट्रमसल्फ—यह दमाके रोगी बच्चोंकी महत्त्वपूर्ण औषधि है।

पल्सेटिला—यदि नक्स पुरुषोंकी ओषधि है तो पल्सका स्त्री-जगत्में आदरणीय स्थान है। रोनेवाली महिलाओंके लिये तथा मानसिक रोगग्रस्त, मासिक दोषयुक्त तथा गैस, तेजाब आदिमें इसके उपकारको भुलाया नहीं जा सकता।

रसटॉक्स—भीगकर तथा ठंडसे बढ़नेवाले चर्मरोग और वातके लिये यह उपयोगी है।

सल्फर—यह सोरानाशक है तथा चर्मरोगोंको बाह्य पटलपर लानेमें अव्यर्थ भूमिका निभाती है।

ट्युबरकुलीनम—इसके उच्च शक्तिका प्रयोग क्षयरोगों तथा इसके विषको दूर करनेके लिये किया जाता है।

जिंक्ममेट—यह स्नायु टॉनिक पैरोंके हिलने, कम्पन तथा दुर्बलता आदिमें उपकारी है।

यद्यपि यह विज्ञान विशाल एवं विस्तृत है, फिर भी जनसाधारणके लाभके लिये होमियोपैथिक पद्धतिद्वारा स्वास्थ्यलाभका संक्षिप्तमें विवरण प्रस्तुत किया गया है। सत्परामर्श करके इनसे लाभ उठाना चाहिये।

बायोकैमिक चिकित्सा-प्रणाली

(डॉ० श्रीविष्णुप्रकाशजी शर्मा)

डॉ० सेम्युअल हैनीमैनद्वारा होम्योपैथीके सिद्धान्तकी प्रतिष्ठाके बाद चिकित्साक्षेत्रमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान जर्मन विद्वान् डॉ० डब्ल्यू० एच० शुस्लरका रहा, जिन्होंने सन् १८७३ ई० में जैव रसायनप्रणाली (बायोकैमिक चिकित्सा-प्रणाली)-का प्रतिपादन किया। रोगियोंकी जाँचके बाद डॉ० शुस्लरने पाया कि शारीरिक संरचनामें बारह अकार्बनिक टिस्यू लवण महत्त्वपूर्ण हैं और शरीर-निर्माणके भौतिक आधार हैं। जब जीवित कोषोंमें इन लवणोंके कणोंकी गतिविधियोंमें कोई अन्तर आता है और इनका संतुलन बिगड़ जाता है तब रोग पैदा होता है। आवश्यक लवणकी कमीको औषधि-रूपमें देनेसे रोग दूर किया जा सकता है। सामान्यरूपसे यही बायोकैमिक चिकित्सा है।

बायोकैमिक औषधियाँ होम्योपैथिक औषधियाँ ही हैं, जो डॉ० शुस्लरके जैव रसायनसिद्धान्तसे पहले भी प्रयोग होती थीं, तथापि जैव रसायन-चिकित्सा होम्योपैथिक चिकित्सासे भिन्न है। होम्योपैथीका तत्त्व है काँटेसे काँटा निकालना अर्थात् जो दवा स्वस्थ आदमीमें अधिक मात्रामें देनेपर बुरे लक्षण उत्पन्न करती है, वही दवा कम मात्रामें देनेपर वैसे ही बुरे लक्षणवाले रोगोंको दूर करती है। जब कि जैव रसायन-चिकित्सामें जिन लवणोंकी कमीसे रोग उत्पन्न हुआ है, उन्हें देनेसे रोग

अच्छा हो जाता है। होम्योपैथीमें बहुत दवाएँ प्रयोग की जाती हैं, जब कि जैव रसायनमें मात्र बारह। होम्योपैथीमें विभिन्न लक्षणोंके लिये एक दवा चुनना कठिन तथा अनिश्चित है, पर बायोकैमिकमें दवा चुनना आसान और सुनिश्चित है। ये बारह लवण निम्न हैं—

१. कैलकेरिया क्लोरिका, २. कैलकेरिया फास्फोरिका, ३. कैलकेरिया सल्फूरिका, ४. फैरम फास्फोरिकम्, ५. काली म्यूरिएटिकम्, ६. काली फास्फोरिकम्, ७. काली सल्फ्यूरिकम्, ८. मैग्नेशिया फास्फोरिकम्, ९. नेट्रम म्यूरिएटिकम्, १०. नेट्रम फास्फोरिकम्, ११. नेट्रम सल्फ्यूरिकम् और १२. साइलेशिया।

रोगीको दिया जानेवाला लवण इतना सूक्ष्म होना चाहिये कि वह शीघ्र शरीरके रेशोंमें मिल जाय। इसलिये लवणका अंश घटाकर उसे अधिक शक्तिशाली बनाते हैं। ये दवाएँ जीभपर रखकर चूसकर प्रयोगमें लायी जाती हैं। बायोकैमिक औषधियाँ आयोलाइज़ेशनके सिद्धान्तपर कार्य करती हैं, अतः गर्म पानीमें घोलकर जीभपर एक-एक चम्मच प्रयोग करनेसे अधिक प्रभावशाली होती हैं। जहाँतक सम्भव हो ये दवाएँ खाली पेट प्रयोगमें लायी जानी चाहिये। औषध किसी साफ-सुथरे कागजपर बनानी चाहिये। टिकियाका प्रयोग भी कागजपर रखकर ही करना चाहिये, हाथसे नहीं। एक खुराकमें आयुके अनुसार एकसे चार टिकिया लेनी चाहिये। पानीके साथ लेनेके लिये १/४ टिकिया १० चम्मच गर्म पानीमें घोले तथा एक खुराकमें दो चम्मच ले। रोगीकी तीव्रताके अनुसार दिनमें चार खुराकसे लेकर पाँच मिनट या उससे कम समयमें दो-दो चम्मच दवाई दी जा सकती है।

इन दवाइयोंका एक और खास गुण है कि दूसरी प्रणालीकी दवाइयोंके चलते, इनका प्रयोग रोगीको कुछ भी हानि नहीं करता। ये दवाइयाँ पूर्णरूपसे हानिरहित हैं और एक दिनके बच्चे, गर्भवती स्त्री तथा वृद्ध रोगीको बिना किसी डरके दी जा सकती हैं। ये दूसरी दवाइयोंके मुकाबले सस्ती भी हैं और बहुत कम मात्रामें प्रयोग की जाती हैं। साथ ही स्वादिष्ट होनेसे बच्चे भी आसानीसे खा सकते हैं।

कुछ नुस्खे घरेलू प्रयोगके लिये दिये जा रहे हैं, जो आपातकालीन स्थितिमें बड़े ही लाभप्रद रहेंगे—

१. चोट लगनेपर जब खून बह रहा हो— फैरम फास० १२× का पाउडर चोटपर डाले, साथ ही टिकिया जीभपर रखे, तुरंत आराम मिलेगा।

२. बर्रै, ततैया, भौंरा आदि कीड़ोंके काटनेपर— नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३× की एक टिकिया पीसकर पानीमें पतला पेस्ट बनाकर, काटनेके स्थानपर लगाये। साथ ही टिकिया जीभपर रखे। तुरंत लाभ होगा।

३. रह-रहकर होनेवाले सिरदर्द, पेटदर्द या पेटमें मरोड़ होनेपर— मैग्नेशिया फास० ३× खूब गर्म पानीमें घोलकर दो-दो चम्मच ले।

४. साधारण बुखारमें— फैरम फास० १२×, काली म्यूरि० ३× तथा नेट्रम सल्फ० ३× मिलाकर ले।

५. दिलका दौरा पड़नेपर या लो ब्लडप्रेशर होनेपर— कैलकेरिया फास० १२×, काली फास० ३× और नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३×का मिश्रण गर्म पानीमें घोलकर दो-दो चम्मच ले, शीघ्र ही आराम हो जायगा।

६. आँखकी लालीमें— फैरम फास० १२× की टिकिया पीसकर डिस्टिल्ड वाटरमें घोलकर आँखमें डाले। टिकिया भी ले।

७. मुँहमें तथा जीभपर— छाले होनेपर काली म्यूरिएटिकम् ३× और काली फास० ३× का पाउडर छालोंपर लगाये तथा इसीसे कुल्ला करे।

८. सिगरेटकी आदत छुड़ानेके लिये— कैलकेरिया फास० ३× और नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३× के मिश्रणको गर्म पानीमें घोल कर ले।

प्राचीन 'रोम' की चिकित्सा-पद्धति—'हिलियोथेरपी' एवं 'क्रोमोपैथी'

(डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम्०डी०)

इटलीकी राजधानी 'रोम' अति प्राचीन नगर माना गया है। उसकी नींव 'पेलेटाईन' नामक पहाड़ीपर रहनेवाले एक देवता 'रोमुलस' ने डाली थी। उनके नामके आधे आदि शब्द 'रोमु' को लेकर इस शहरका नाम 'रोम' पड़ा।

रोमके सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० टिलनिका मानना है कि प्राचीन रोममें प्राय: ६०० वर्षतक कोई वैद्य ही नहीं था, वैद्यकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी; क्योंकि रोमन लोग सूर्यकिरणों, विविध रंगों तथा जल, वायु और मिट्टी एवं व्यायाम इत्यादिके सही उपयोगोंद्वारा अपना उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखते थे। उन दिनों रोमन-साम्राज्य विश्वमें महान् शक्तिसम्पन्न माना जाता था।

प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० रेम्सन कहते हैं कि 'अपना स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखनेके लिये और दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये हमें प्रकृतिदेवीने असंख्य अमूल्य उपाय प्रदान किये हैं। फिर भी हम उनका सदुपयोग न कर विष-जैसी ओषधियोंका सेवन करते रहते हैं, विपुल धनराशि व्यय करते हैं और बदलेमें हानि ही प्राप्त करते हैं। क्या हमारे लिये यह शोचनीय बात नहीं है?'

रोमन भाषामें 'हिलियो' का अर्थ है 'सूर्य' और 'थेरपी' का अर्थ है 'चिकित्सा-पद्धति'। प्राचीन रोममें यह 'हिलियोथेरपी' अर्थात् सूर्य-चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय थी। इसी प्रकार सूर्य-किरणों एवं रंगोंद्वारा विविध प्रकारके रोगोंका निवारण करनेकी एक अनोखी पद्धति भी थी, जिसको क्रोमोपैथी (CHROMOPATHY) कहा गया है। 'क्रोमो' से तात्पर्य रंगसे है और 'पैथी' का तात्पर्य चिकित्सासे है।

पृथ्वीके सभी पदार्थोंमें रंग विद्यमान है। आकाशीय पदार्थ भी पृथ्वीपर रंगीन किरणें फेंकते हैं। जंगली पशु-पक्षी आदि जब बीमार पड़ जाते हैं, तब स्वास्थ्यकी प्राप्ति-हेतु वे अपने बीमार देहपर प्रात:कालके सूर्यकी किरणें पड़ने देते हैं। इस प्रकार सूर्यस्नान (SUN-BATH) करनेसे वे बिना दवाइयोंके ही पुन: स्वास्थ्य-लाभ कर लेते हैं। दु:खकी बात है कि मनुष्य इस सूर्य-चिकित्सा-पद्धति (हिलियोथेरपी)-की उपेक्षा करते हैं।

विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ वेदमें सूर्यके विषयमें अनेकों ऋचाएँ (मन्त्र) विद्यमान हैं। सूर्योपासना तो प्राचीन भारतकी धरोहर ही है। वेदोंमें निहित गायत्री-मन्त्र सूर्यप्रार्थनापरक ही है, जिसमें साधक—उपासक सवितादेवसे 'धी' (प्रज्ञा)-प्राप्तिकी महती इच्छा करता है। सविता या सावित्री तो सूर्यके ही सृजनकर्ता-रूपके शक्तिरूप हैं।

ऋग्वेद (६। ५१। २)-में कहा है कि—

'ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्॥'

अर्थात् 'सूर्य मनुष्योंके अच्छे-बुरे कृत्योंको देखते हैं।' प्राचीन कालमें सूर्यके प्रकाशमें शपथ—कसम-(OATH) ली जाती थी और लोग पाप करनेसे डरते थे।

सूर्यको वेदमें स्थावर तथा जंगम-सृष्टिका आत्मा कहा है—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'। ऋग्वेद (७। ६३। ४)-में कहा है कि '**नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।**' अर्थात् 'सभीको निद्रासे जाग्रत् करनेवाले सूर्य ही हैं, उनकी प्रेरणासे लोग अपने-अपने विविध कार्योंमें लग जाते हैं।' ऋग्वेद (१। १६४। १०)-में कहा है कि 'सृष्टिके सभी प्राणियोंका जीवन सूर्यपर अवलम्बित है, सूर्य मनुष्योंकी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक व्याधियाँ दूर करते हैं, सुस्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करते हैं। विशेषत: हृदयरोग, आँखका पीलियारोग, कुष्ठरोग, महारोग, बुद्धिमन्दता इत्यादि मिटाते हैं।'

अथर्ववेद (१३। ३। १०)-में सूर्यके सात नाम आये हैं, जो सूर्यकी सात रश्मियोंके द्योतक हैं। वेदमें सूर्यका एक नाम सप्तरश्मि भी है। वेदकालीन प्राचीन ऋषियोंने उत्कट तपस्याद्वारा सूर्यके विषयमें अन्वेषणकर विश्वके समक्ष यह सत्य प्रस्तुत किया है कि सूर्यमें सात

रंग हैं।

विज्ञानी न्यूटनने सात रंगके चक्र (Wheel of seven colours)-का जो सिद्धान्त विश्वके समक्ष प्रस्तुत किया है, वह वास्तवमें वैदिक ऋषियोंका 'सप्तरश्मि' या 'सप्ताश्व-गवेषणा' ही है। विज्ञान कहता है कि सात रंगों—V I B G Y O R (वायोलेट, इंडिगो, ब्राउन, ग्रीन, यलो, ऑरेंज और रेड)-को एक चक्रपर अङ्कित कर उस चक्रको शीघ्रतासे घुमानेसे चक्रका रंग श्वेत (White) दिखायी पड़ता है। इसी कारण हमें सूर्य शुभ्र दीखता है।

सूंर्यके ये सातों रंग हमारे स्वास्थ्यके लिये बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। यदि हम प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् नित्य संध्या-वन्दन और सूर्य-स्नान करें तो प्रातःकालीन सूर्यकी रश्मियाँ हमें शारीरिक रोग-निवारक तथा बुद्धि-बलवर्धक प्रतीत होंगी।

सूर्यकिरण-चिकित्सा (हिलियोथेरपी)-से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

१-जहाँ-जहाँ सूर्यका प्रकाश पड़ता है, वहाँ-वहाँसे रोगकी निवृत्ति होती है।

२-सूर्य-किरणें निःशुल्क प्राप्त होती हैं।

३-सूर्य-किरणें आधुनिक ओषधियों-जैसी दुष्प्रभावी तथा दुर्गन्ध-भरी नहीं होतीं, प्रत्युत उनके सेवनसे शरीरमें स्फूर्ति तथा चैतन्यता आती है और आनन्दकी अनुभूति होती है। उनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।

सूर्य-स्नान—सूर्य-किरणोंके सेवनसे हमारे देहके कौन-कौन, कैसे-कैसे रोगोंका निवारण होता है और अन्य क्या-क्या लाभ मिलते हैं, उसके विषयमें कहा गया है कि—

सूर्यतापः स्वेदवहः सर्वरोगविनाशकः।
मेदच्छेदकरश्चैव बलोत्साहविवर्धनः॥
दद्रुविस्फोटकुष्ठघ्नः कामलाशोथनाशकः।
ज्वरातिसारशूलानां हारको नात्र संशयः॥
कफपित्तोद्भवान् रोगान् वातरोगांस्तथैव च।
तत्सेवनान्नरो जित्वा जीवेच्च शरदां शतम्॥

अर्थात् सूर्यका ताप स्वेदको बढ़ानेवाला और सभी प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाला, मेदका छेदन करनेवाला, बल तथा उत्साहको बढ़ानेवाला है। यह दद्रु, विस्फोट, कुष्ठ, कामला, शोथ, ज्वर, अतिसार, शूल तथा कफ एवं वात और पित्त—इन त्रिदोषोंसे उत्पन्न रोगोंको दूर करनेवाला है। इसके सेवनसे मनुष्य रोगोंपर विजय प्राप्त करके दीर्घायु प्राप्त करता है।

सारांश यह है कि सभी प्रकारके रोगोंका निवारण सूर्य-किरणोंके सेवनसे होता है। शक्ति एवं उत्साहमें वृद्धि होती है और शतायुकी प्राप्ति होती है।

सूर्यके प्रकाशसे हमें प्राण-तत्त्व तथा उष्णता—ये दोनों प्राप्त होते हैं, जो हमारे जीवनको स्वस्थ तथा दीर्घजीवी बनाते हैं। सूर्यकिरणद्वारा 'ओजोन वायु' उत्पन्न होती है, जो हमें और हमारी पृथ्वीको सुरक्षित रखती है। यह 'ओजोन' हमारी शक्तिको बढ़ाती है तथा रक्तको विशुद्ध करती है, हृदयको शक्तिशाली बनाती है और हड्डी तथा नाडी इत्यादिको सक्षम बनाती है।

प्राचीन रोम शहरमें कई स्थानोंपर Solarium (सोलेरियम)—सूर्य-उपचारगृह थे, जहाँ जाकर रोगी निःशुल्क रोग-निवारण करवाते थे।

रोम शहरमें 'क्रोमो-हाईड्रोपैथी' के चिकित्सालय भी थे, जहाँपर रंगचिकित्साद्वारा रोगोंको दूर किया जाता था। यह पद्धति इस प्रकार है—

वर्षाका जल अथवा कूप-तडाग-निर्झरका विशुद्ध जल लाकर सप्तरंग (V I B G Y O R) -मेंसे भिन्न-भिन्न रंगकी बोतलोंमें भरे और बोतलका मुख बंद करके उसके ऊपर चिकनी मिट्टी लगा दे। इसके बाद उन रंगीन बोतलोंको 'सोलेरिया' (गच्ची)-में, सूर्य-किरणें जहाँ पड़ती हैं, वहाँपर रखे। इस प्रकार दो-चार दिनतक रखनेपर सूर्य-किरणोंके प्रभावसे रंगीन बोतलोंका जल जीवन-जल बन जाता है, उसमें रोगके निवारणकी शक्ति (Healing properties) आ जाती है। रोगीको ऐसा जल थोड़ा-थोड़ा पिलानेपर वह रोगमुक्त हो जाता है।

'क्रोमो-हाइड्रोपैथी' के निष्णात डॉ० लेविटका अभिमत है कि लाल (Red) रंगकी बोतलका जल शक्तिदायक (Tonic) है। ऐसा जल त्वचाके रोगोंको नष्ट करनेकी क्षमता रखता है। पीले (Yellow) रंगकी बोतलका जल बदहजमी (Constipation), पेशाबके दर्द इत्यादिको मिटाता है। नीले (Blue) रंगकी बोतलका जल असाध्य चर्मरोगका निवारण करता है, यह 'पोटाश

परमैंगेनेट' से भी अच्छा काम देता है। संतरा-जैसे (Orange) रंगकी बोतलका जल भूखमें वृद्धि करता है तथा संधिवात दूर करता है। हरा (Green) रंगकी बोतलका जल आँखोंके रोग, इन्फ्लुएन्जा (शीतज्वर), सिफिलिस मिटाता है। जामुनी (Purple) रंगकी बोतलका जल रक्तकी शुद्धि करता है, रक्तके रोगोंका निवारण करता है, लीवर-पित्ताशयके रोग मिटाता है। वायोलेट पुष्पके (Violet) रंगकी बोतलका जल नाडियोंके रोगको मिटाता है।

रंगद्वारा रोग-निवारण-पद्धति (Colour-Theraphy)-के विषयमें कतिपय निष्णात डॉक्टरोंका स्वानुभव इस प्रकार है—१-डॉ० फिन्सेन (कोपेनहेगन) कहते हैं कि चेचक-शीतला (Smallpox)-के मरीजको लाल रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेपर तथा लाल रंगके कमरेमें रखनेपर कुछ ही दिनोंमें वह अच्छा हो जाता है।

२-डॉ० बेविट (लंडन) कहते हैं कि पक्षाघात (पैरेलिसिस)-के मरीजको लाल रंगका जल पिलाकर और लाल रंगसे रँगे कमरेमें रखकर रोगमुक्त किया था।'

३-डॉ० लूडविकका मानना है कि तीव्र ज्वरग्रस्त मरीज (हायफिवर)-को और मन्दबुद्धिके व्यक्तिको कभी भी लाल रंगके कमरेमें नहीं रखना चाहिये। मरीज अधिक बीमार हो जायगा।

४-डॉ० हेनरी (अमेरिका)-का कहना है कि 'सर्दी-जुकामसे ग्रस्त मरीजको, लीवरके रोगीको बदहजमी (कोन्स्टीपेशन)-के मरीजको, जोंडिक्स, किडनी, ब्रेन ट्रबल, ब्रोंकाईटिस, न्यूमोनिया, आँतके रोगी आदिको पीले रंग (Yellow-colour)-की बोतलका सूर्यकिरणवाला जल पिलानेपर तथा पीले रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर मरीज रोगमुक्त हो जाते हैं।'

५-डॉ० ई०ए० वोनकोटका कहना है कि चित्तभ्रम हुए (ब्रेन रिटार्टेड) मरीजको नीले (Blue) रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेसे और नीले रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर वह कुछ ही दिनोंमें अच्छा हो जाता है।

६-चक्षु-विशेषज्ञ डॉ० मूर (लंडन)-का कहना है 'हरे रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेसे आँखोंके मरीज और ज्ञानतन्तुके कमजोर पड़नेवाले मरीज अच्छे हो जाते हैं। हरे रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर ऐसे रोगोंके मरीज शीघ्र रोग-मुक्त हो जाते हैं।'

क्रोमोपैथी अर्थात् रंग-किरण-चिकित्सा

(डॉ० श्री डी० ए० जगताप)

'क्रोमो' का अर्थ है रंग और 'पैथी' का उपचार-पद्धति। क्रोमोपैथी-पद्धतिद्वारा कई प्रकारके रंगोंसे तरह-तरहके पुराने और नये रोगोंको ठीक किया जा सकता है।

सूर्यके प्रकाशमें कई तरहके रंग होते हैं जो हवाको शुद्ध करते हैं तथा वातावरण, पानी एवं जमीनी कीटाणुओंका नाश करते हैं। यह सब नैसर्गिक रूपसे नियमित होता रहता है।

प्राचीन ऋषि-मुनियोंकी सूर्योपासना और '**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'-आदि वचनोंसे स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि सूर्यसे स्वास्थ्य-लाभ होता है। नित्य-कर्म—संध्यामें मुख्य रूपसे सवितादेव—सूर्यनारायणकी आराधना होती आयी है। यूरोपमें जहाँ कुछ दिनोंतक सूर्य-दर्शन नहीं होता है, वहाँ आकाशमें सूर्यके दिखायी देनेपर लोग जल्दी-जल्दी खुले शरीरद्वारा सूर्यका प्रकाश लेते हैं।

सूर्य-प्रकाशमें तरह-तरहके रंग होते हैं, इनका मूल रंग निम्नलिखित है—

(१) **लाल**—इसका उपयोग उष्णता और उत्तेजना देनेके लिये होता है। इस रंगमें रजोगुणका आधिक्य होता है।

(२) **पीला**—इसका उपयोग चमक देने तथा शरीरके इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेके लिये होता है। इसमें तमोगुणकी प्रधानता रहती है।

(३) **नीला**—इस रंगका मुख्य काम है शरीरको ठंडा करना। यह सत्त्वप्रधान है।

—इन तीनों प्राथमिक रंगोंको त्रिगुणात्मक—त्रिमूर्ति कहते हैं। शेष रंग—नारंगी, हरा, परपल, जामुनी, गुलाबी, सुनहरा पीला, गाढ़ा नीला, इ० दुय्यम, अल्ट्रा

व्हॉयलेट-स्वरूपके होते हैं। ये नौ रंग प्राथमिक रंगोंके मिश्रणसे बनते हैं।

रंगोंके क्रमशः गुण और धर्म

(१) **लाल**—प्रेम-भावनाका प्रतीक है।

(२) **पीला**—बुद्धिका प्रतीक है।

(३) **नीला**—सत्य तथा आशाका प्रतीक है।

मिश्रित रंगोंके गुण और धर्म

[१] **नारंगी**—आरोग्य, बुद्धि तथा दैवी महत्त्वाकांक्षाका प्रतीक है।

[२] **हरा**—आशा, समृद्धि और बुद्धिका प्रतीक है।

[३] **परपल**—यश और प्रसिद्धिका प्रतीक है।

[४] **जामुनी**—श्रद्धा, अशक्तपन तथा नम्रताका प्रतीक है।

[५] **गुलाबी**—दयाका प्रतीक है।

[६] **सुनहरा पीला**—बुद्धिका प्रतीक है।

[७] **गाढ़ा नीला**—दया तथा शान्तिका प्रतीक है।

[८] **इंडीगो**—संगीतका प्रतीक है।

[९] **अल्ट्रा व्हॉयलेट**—विविधताका, कार्यक्षमताका प्रतीक है।

—इनके अतिरिक्त काला तथा सफेद और ग्रे—ये तीन रंग और होते हैं। इन तीनों रंगोंके गुण और धर्म इस प्रकार हैं—

१-काला—अँधेरा, तिरस्कार तथा तमसाच्छन्न बुद्धिका प्रतीक है।

२-सफेद—सत्ता, शुद्धता एवं स्वच्छताका प्रतीक है।

३-ग्रे—दुःख तथा डरका प्रतीक है।

रंग-चिकित्साका कारण

लाल—तरह-तरहके रंग तरह-तरहकी बीमारियोंको ठीक कर सकते हैं, यदि उसे शरीरके खुले हुए भागोंमें लेन्ससे डाला जाय। इस दृष्टिसे लाल तथा गुलाबी आर्टरीके खूनको बढ़ाने, उष्णता-निर्माण आदिमें उपयोगी होता है।

पीला तथा नारंगी—ये नर्व्हस एक्शन बढ़ाते हैं तथा उष्णताका निर्माण करते हैं, सूजन दूर करके शक्तिका निर्माण करते हैं और यकृत् तथा अँतड़ियोंकी बीमारियोंमें अधिक उपयोगी होते हैं।

नीला तथा जामुनी—नर्व्हस—उत्तेजकता कम करते हैं, सूजन तथा बुखार और तीव्र दर्दको कम करते हैं। मस्तिष्ककी बीमारियोंमें अधिक उपयोगी होते हैं।

हरा—बुखार, स्त्री-सम्बन्धी रोग, लैंगिक तथा नीचेके मज्जातन्तु तथा नितम्ब—इनके दर्दके लिये तथा कैन्सर और अल्सर एवं जननेन्द्रियके लिये उपयुक्त होता है।

परप्रल—अशुद्ध रक्तको शुद्ध करने, जठर, यकृत्, स्प्लीन, नर्व्हस-सिस्टमके लिये उपयुक्त है।

दैनिक जीवनमें क्रोमोपैथीका उपयोग

(१) लाल तथा गुलाबी सब्जियाँ और फल उष्ण होते हैं, ये टॉनिकके रूपमें—कमजोरीमें उपयोगी पड़ते हैं।

(२) पीले तथा नारंगी रंगकी सब्जियाँ और फल बद्धकोष्ठता, वायु-संधिवात तथा मूत्ररोगमें उपयोगी हैं।

(३) नीला, इंडीगो, जामुनी तथा जामुनी सब्जियाँ और फल ठंडे होनेके कारण निद्रानाशमें, नींद न आनेमें, जुलाब और बुखार इत्यादिमें उपयोगी हैं।

(४) हरी सब्जियाँ तथा फल—ये मूत्र तथा लैंगिक बीमारियोंमें उपयोगी होते हैं।

पानी—ठंडा पानी सूर्यप्रकाशमें दो-तीन घंटा रखनेसे सर्दी, संधिवात, नर्व्हस रोग आदिमें उपयोगी होता है।

भोजन—लाल रंगमें अन्न चार्ज करनेपर यह शरीरके अशक्तपन तथा फीकापनमें उपयोगी होता है। पीले रंगसे चार्ज करनेपर बद्धकोष्ठता दूर होती है। नीले रंगसे चार्ज करनेपर वह भोजन जुलाब, नर्व्हसनेस, नींद न आनेमें उपयोगी होता है।

कपड़े—सभी ऋतुओंमें सफेद कपड़े पहननेसे शरीर नीरोग रहता है। नीली पगड़ी या टोपी पहननेपर सूर्यके उष्मासे होनेवाली तकलीफ कम होती है। अशक्त तथा ठंडे प्रकृतिके व्यक्तियोंको लाल कपड़े पहनने चाहिये। बद्धकोष्ठता तथा यकृत्‌की तकलीफ होनेपर पीला कपड़ा पहनना चाहिये। बार-बार सर्दी होनेवालोंको सफेद तथा पतले कपड़े पहनने चाहिये और धूपमें घूमना चाहिये। त्वचाकी बीमारीवाले व्यक्तियोंको काला

कपड़ा नहीं पहनना चाहिये।

तेल—लाल रंगसे तेल चार्ज करनेपर मालिश करनेसे पक्षाघात या संधिवातकी बीमारीमें लाभ होता है। पीले तथा नारंगी रंगसे चार्ज करनेपर और उसे पीनेसे जुलाब होने (पेट साफ होने), यकृत् तथा स्प्लीनकी बीमारीमें उपयोगी होता है। नीले तथा जामुनी रंगसे चार्ज करनेपर बाल झड़ने, बालोंके असमयमें पकने, जुआँ होने तथा सिरदर्द होनेमें फायदा होता है। हरे रंगसे चार्ज करनेपर त्वचाकी बीमारियों तथा गजकर्ण आदिमें लाभ होता है।

क्रोमोपैथी-उपचारकी पद्धतिसे सभी प्रकारकी पुरानी तथा नयी बीमारियाँ ठीक होती हैं, विशेषतः स्पॉन्डिलाईटिस, आर्थ्राइटिस, संधिवात, सर्दी, ब्राँकाइटिस, दमा, कानमें स्राव होना या कान दर्द करना, आँखकी विभिन्न बीमारियों, आधा शीशी-माइग्रेन, ॲसीडीटी, अल्सर, सिरदर्दके सभी प्रकार, टॉन्सील, पचनेन्द्रियोंकी बद्धकोष्ठता, जुलाब, डिसेंट्री, गजकर्ण (दाद), सोरायसीस इत्यादि त्वचाकी बीमारियाँ, नर्व्हसनेस मानसिक बीमारियों, उदासीनता, श्वेत प्रदर, अन्धत्व, स्तनके गाँठ, स्त्रियोंके मासिक धर्मकी सभी शिकायतों, छोटे बच्चोंकी सभी प्रकारकी बीमारियों आदिपर भी यह उपचार-पद्धति नियमित रूपसे लेनेपर लाभ पहुँचाती है।

क्रोमोपैथीकी उपयोगिता

क्रोमोपैथी औषधियोंका जहरीला उपयोग नहीं होता तथा इनमें रिएक्शन (दुष्प्रभाव) भी नहीं होता है।

बेहोश करनेके लिये ऐनस्थियाकी आवश्यकता नहीं पड़ती। चीर-फाड़ न होनेसे खून नहीं निकलता, उसी प्रकार जख्मका घाव भी नहीं रहता।

उपचारके समय न तो दर्द होता है और न किसी प्रकारकी तकलीफ ही होती है।

दवाकी उपाय-योजना जिस प्रकार एकदम सरल, सीधी तथा निसर्गके नियमोंके साथ रहती है, उसी प्रकार इसका लाभ भी अवश्य ही मिलता है।

एक्यूप्रेशरका इतिहास*

(डॉ० श्रीआर०के० शर्मा)

कोई भी मनुष्य अस्वस्थ रहना नहीं चाहता; किंतु मनुष्यको रोग होते ही क्यों हैं? रोग होनेके प्रमुख रूपसे दो कारण होते हैं—(१) मनुष्यकी लापरवाही, गलत रहन-सहन, अस्वस्थता, असंतुलित आहार, शरीरके लिये हानिकारक पदार्थोंका सेवन, मानसिक तनाव, भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, दैनिक व्यायाम न करना, बीड़ी-सिगरेट, शराब-गुटखा आदिका सेवन-जैसी हानिकारक आदतें तथा देर राततक टी०वी० देखना, पार्टियोंमें भाग लेना तथा प्रातःकाल देरसे उठना-जैसी आदतोंके चलते बीमारियाँ शरीरमें अपना घर बना लेती हैं। (२) व्यक्तिका स्वयंपर नियन्त्रण नहीं होता, जैसे प्रदूषण, संक्रमण, चोट लगना, अंग-भंग हो जाना, उम्रके साथ होनेवाली समस्याएँ तथा आनुवंशिक या जन्मजात रोग आदि।

इस प्रकार यह तो निश्चित है कि मानव-शरीर किसी-न-किसी प्रकार रोगोंसे घिरा रहता है। यह प्रक्रिया मानव-सभ्यताकी शुरुआतके साथ ही चली आ रही है। इसी क्रममें रोगोंको ठीक करनेके लिये, प्राचीन कालसे ही अनेक चिकित्सापद्धतियाँ अपनायी जाती रही हैं और नित्य नयी-नयी खोजें तथा अनुसंधान भी होते रहे हैं। शोधकर्ताओंका मत है कि मानवद्वारा रोगोंके निदानहेतु अपनायी जानेवाली चिकित्सापद्धतियोंमें एक्यूप्रेशर-पद्धतिका विशिष्ट स्थान है।

इस चिकित्सापद्धतिके उद्‌भवके बारेमें विद्वानोंकी दो राय है—भारतीय विद्वान् मानते हैं कि इस पद्धतिकी शुरुआत भारतवर्षमें लगभग पाँच हजार वर्षपूर्व हो गयी थी, जब कि चीनी विद्वानोंका मत है कि लगभग छः हजार वर्षपूर्व इस चिकित्सापद्धतिकी शुरुआत चीनमें हुई। यह कह पाना मुश्किल है कि यह ज्ञान भारतसे चीन गया या चीनसे भारत आया था, किंतु इस ज्ञानको वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूपतक पहुँचानेका श्रेय निस्संदेह चीनी विद्वानोंको ही है। चीनमें एक्यूप्रेशरको सर्वाधिक

---

* मनोज पाकेट बुक्ससे प्रका० 'एक्युप्रेशर-चिकित्सा'-से साभार।

मान्यता प्राप्त चिकित्सापद्धतिके रूपमें सदियोंसे अपनाया जाता रहा है। चीनके प्राचीन ग्रन्थोंमें एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चरके उल्लेख मिलते हैं। डॉ० चु० लिएनद्वारा लिखित 'चेन चियु सुएह' (अर्वाचीन एक्यूपंक्चर) नामक ग्रन्थ, चीनमें इस विषयका अधिकृत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें एक्यूप्रेशरके ६६९ बिन्दुओंकी सूची दी गयी है। कुछ अन्य चार्टोंमें १००० बिंदु दर्शाये गये हैं। किंतु दैनिक प्रयोगमें १००-१२० बिंदु ही अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। 'एक्यू' का अर्थ है बिंदु तथा 'प्रेशर' का अर्थ है दबाव अर्थात् दर्दवाले बिंदुओंपर दबाव देना ही एक्यूप्रेशर है।

छठी शताब्दीमें इस पद्धतिका ज्ञान बौद्धभिक्षुओंद्वारा चीनसे जापान पहुँचा। जापानमें इस पद्धतिको शिआत्सु (SHIATSU) कहते हैं। शिआत्सु दो अक्षरोंसे मिलकर बना शब्द है—शि (SHI) अर्थात् उँगली तथा आत्सु (ATSU) अर्थात् दबाव। इस पद्धतिमें सिर्फ हाथके अँगूठों तथा उँगलियोंके साथ दबाव दिया जाता है।

वैज्ञानिक शोधोंसे यह स्पष्ट हो गया है कि शरीरकी सतह (त्वचा)-पर मौजूद कुछ निश्चित बिंदुओंको दबानेसे शरीरके भीतरी अङ्गोंपर प्रभाव उत्पन्न कर सम्बन्धित-अङ्गका रोग दूर किया जा सकता है।

एक्यूप्रेशर प्राचीन भारतीय मालिशका ही परिष्कृत रूप है जिसका अर्थ है—पैरों, हाथों, चेहरे तथा शरीरके कुछ खास केन्द्रों (बिन्दुओं)-पर दबाव डालना। इन बिंदुओंको रिफ्लेक्स सेंटर (Reflex Centre) अर्थात् प्रतिबिम्ब-केन्द्र भी कहते हैं। इसीलिये इस विज्ञानको रिफ्लेक्सोलॉजीके नामसे भी जाना जाता है। पैर, हाथ, चेहरे या कानपर पाया जानेवाला प्रत्येक प्रतिबिम्ब-केन्द्र मटरके दानेके बराबर होता है। पीठ तथा छातीपर भी कुछ प्रतिबिम्ब-केन्द्र होते हैं।

एक्यूप्रेशर-पद्धतिका आधार दबावयुक्त गहरी मालिश ही है। शोधकर्ताओंका मानना है कि दबावके साथ मालिश करनेसे रक्तसंचार ठीक हो जाता है, जिससे शरीरकी शक्ति और स्फूर्ति बढ़ जाती है। शरीरकी शक्ति बढ़नेसे विभिन्न अङ्गोंमें जमा हुए अवाञ्छनीय तथा विषपूर्ण पदार्थ पसीना, मूत्र एवं मलद्वारा शरीरसे बाहर निकल जाते हैं और शरीर नीरोग हो जाता है।

बीसवीं शताब्दीतक एक्यूप्रेशरकी ख्याति चीनमें भी कोई अधिक नहीं थी। सत्तरके दशकके आसपास इसने चीनमें पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त की। इसके बाद धीरे-धीरे विश्वके अन्य देशोंमें भी यह विज्ञान फैलने लगा। अमेरिकाके लोग अपने-आपको वैज्ञानिक रूपसे अधिक विकसित मानते हैं, इसलिये बिना तथ्योंके कोई बात स्वीकार नहीं करते। सन् १९७० ई० तक अमेरिकाने एक्यूप्रेशरको मान्यता नहीं दी थी। सन् १९७१ ई०में तत्कालीन अमेरिकाके राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन चीनकी यात्रापर गये। उनके साथ गये पत्रकारोंके प्रतिनिधिमण्डलमें जेम्स रस्टन नामक संवाददाता भी थे। चीन पहुँचनेके कुछ घंटे बाद ही रस्टनको अपेंडिसाइटिसका दर्द उठा। अपेंडिक्सपर सूजन बढ़ने या उसके फट जानेसे अनेक विषमताएँ खड़ी हो सकती थीं, अतः तुरंत ऑपरेशन किया गया, किंतु ऑपरेशनके बाद भी दर्द दूर नहीं हुआ। तब रस्टनका उपचार एक्यूपंक्चर तथा एक्यूप्रेशरसे किया गया। (एक्यूपंक्चरमें उपचार चाँदीकी सुइयोंसे करते हैं।) इस उपचारसे कुछ मिनटोंमें ही जेम्स रस्टनको आराम हो गया। इस उपचारपद्धतिसे रस्टन ही नहीं, अमेरिकाके राष्ट्रपति निक्सन भी प्रभावित हुए। इसके बाद यह विज्ञान समस्त यूरोपमें तेजीसे फैलने लगा।

इस पद्धतिकी सफलताका प्रमुख कारण यह है कि बिना औषधि तथा ऑपरेशनके अनेकों कष्टप्रद रोग कुछ ही समयमें ठीक हो जाते हैं। इसके अलावा अनेक रोगोंको दूर रखनेमें भी यह चिकित्सा-पद्धति मदद करती है।

विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन—W.H.O)-ने एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर-चिकित्सा-पद्धतियोंकी उपयोगिताको स्वीकारते हुए निम्नलिखित रोगोंमें इस चिकित्सापद्धतिको अधिक कारगर पाया है—सर्दी, जुकाम, टान्सिलकी सूजन, साइनुसाइटिस, ब्रौंकाइटिस, दमा, आँखोंका दर्द, मोतियाबिंद, दाँतोंका दर्द, जीभ तथा मुँहके छाले, गलेकी सूजन और पीडा, पेटमें गैस बनना, एसिडिटी, माइग्रेन तथा अन्य सिरदर्द, नाडियोंका दर्द, लकवा, मिनीयर्स डिजीज, सियेटिका, पीठका दर्द, घुटनोंका दर्द, कंधोंकी अकड़न, बिस्तरमें मूत्रत्याग, आँतोंके घाव, पेचिश, क़ब्ज़ आदि।

एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चरमें अन्तर

एक्यूप्रेशर लेटिन शब्द एकस (Acus)-से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है सूई (Needle) तथा प्रेसर (Pressure)-का शाब्दिक अर्थ है दबाव। किंतु व्यावहारिक रूपसे एक्यूप्रेशरका अभिप्राय सूइयोंद्वारा किये गये उपचारसे नहीं है। सूइयोंद्वारा किये गये उपचारको एक्यूपंक्चर (Acupuncture) कहते हैं।

हालाँकि एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर दोनों ही चीनी पद्धतियाँ हैं, किंतु दोनोंमें मुख्य अन्तर यह है कि एक्यूपंक्चरमें विशेष प्रकारकी चाँदी या सोनेकी बनी सूइयाँ, एक खास ढंगसे शरीरके विभिन्न भागोंपर लगायी जाती हैं। एक्यूप्रेशरपद्धतिमें सूइयोंके स्थानपर हाथोंके अँगूठों, उँगलियों तथा विशेष उपकरणोंकी सहायतासे रोगसे सम्बन्धित केन्द्रोंपर मालिशयुक्त दबाव डाला जाता है। शरीरके हाथ-पैर, कान तथा चेहरेपर ही अधिसंख्य एक्यूबिंदु (प्रतिबिम्ब-केन्द्र) होते हैं। वैसे पेट, पीठ, छाती, कंधे तथा कूल्हों आदि अङ्गोंपर भी प्रतिबिम्ब-केन्द्र होते हैं।

एक्यूप्रेशर-पद्धतिके लाभ

एक्यूप्रेशर-पद्धति एक स्वयं चिकित्सापद्धति है, जिसकी सहायतासे आप अपने सामान्य रोगोंका सफलतापूर्वक उपचार कर सकते हैं। इस पद्धतिके प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

१-कमर, घुटने, कंधे, कोहनी तथा सिरदर्दके अलावा अन्य कहीं, किसी भी अङ्गपर दर्द होनेकी स्थितिमें इस पद्धतिकी सहायतासे दर्द दूर करनेमें सहायता मिलती है।

२-मनकी उद्विग्नता, क्रोध, बेचैनी, निराशा तथा ईर्ष्या आदिको दूर करनेमें यह पद्धति बहुत लाभप्रद है। इसे एक प्रयोगद्वारा सिद्ध भी कर सकते हैं, जैसे मनमें किसी भी प्रकारकी अशान्ति होनेपर एक्यूप्रेशर-उपचार अपनायें और ई०ई०जी (इलेक्ट्रोएनसिफेलोग्राम) करवायें। इससे ज्ञात होगा कि उसमें डेल्टा और थीटा तरंगोंकी तीव्रता तथा आवृत्ति कम हो गयी है। इसका अर्थ है कि मन शान्त हो चुका है।

३-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे स्नायुओं (नाडीतन्त्र)-को उत्तेजित करनेमें मदद मिलती है। इसके प्रभावसे पोलियो तथा लकवा-जैसे रोगोंको दूर करनेमें मदद मिलती है।

४-इससे शरीरकी प्राकृतिक रोग-निवारणशक्तिमें बढ़ोत्तरी होती है। इसके प्रभावसे हृदयकी धड़कन, श्वासक्रिया, उपापचय, रक्तचाप आदि सामान्य रहते हैं, जिससे व्यक्ति सदैव स्वस्थ तथा स्फूर्तिमान् बना रहता है।

५-एक्यूप्रेशरके उपचारसे लाल रक्तकोशिकाएँ, श्वेत-रक्तकोशिकाएँ तथा शरीरका तापमान आदि—ये सब सामान्य स्तरपर रहते हैं और शरीर नीरोगी रहता है।

६-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे संधियों और स्नायुओंको मजबूत किया जा सकता है।

७-हृदयशूल-जैसी आपातकालीन परिस्थितियोंमें चिकित्सकके आने या रोगीको अस्पतालतक पहुँचानेसे पहलेतक एक्यूप्रेशर-उपचार अपनाकर रोगीकी जानका खतरा बखूबी टाला जा सकता है।

८-इस पद्धतिद्वारा समस्त ग्रन्थियोंका कार्य नियमित हो जाता है।

९-एक्यूप्रेशरद्वारा आन्तरिक अङ्गोंके साधारण कार्यमें तेजी लायी जा सकती है।

१०-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे त्वचामें स्फूर्ति पैदा होती है।

११-एक्यूप्रेशर एक हानिरहित पद्धति है, जिसे अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंके साथ भी अपनाया जा सकता है।

एक्यूप्रेशरकी सीमाएँ

१-गुर्देकी पथरी तथा पके मोतियाबिंदमें एक्यूप्रेशरसे कोई विशेष लाभ नहीं मिलता।

२-कैंसर, हड्डीके टूटने (फ्रैक्चर) या शिजोफ्रेनिया-जैसे मानसिक रोगोंमें एक्यूप्रेशर अधिक उपयोगी नहीं रहता।

३-उपर्युक्त रोगोंके अलावा आन्त्र-अवरोध-जैसी शल्यक्रियाकी स्थितियोंमें भी एक्यूप्रेशर अधिक कारगर नहीं रहता।

एक्यूप्रेशरके सिद्धान्त

प्रत्येक विज्ञानको कसौटीपर कसनेके कुछ सिद्धान्त

होते हैं। एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धति भी कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंके आधारपर कार्य करती है।

एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धतिका प्रथम सिद्धान्त यह है कि मनुष्यको शारीरिक तथा भावात्मक रूपसे अलग-अलग नहीं, वरन् एक अभिन्न इकाई माना गया है।

इस पद्धतिका दूसरा सिद्धान्त यह है कि रक्तवाहिकाओं तथा नर्वस-सिस्टम (स्नायुसंस्थान)-की समस्त छोटी-बड़ी नाडियोंके आखिरी हिस्से हाथों तथा पैरोंमें होते हैं अर्थात् हाथों तथा पैरोंकी नाडियोंका शरीरके सारे अङ्गोंसे सम्बन्ध है। यह जानना अब कठिन नहीं रह गया है कि कौन-सी नाडी मस्तिष्कसे सम्बन्धित है और कौन-सी नाडी हृदयसे।

इस तथ्यको आसानीसे समझनेके लिये सम्पूर्ण शरीरको सिरसे लेकर पैरतक लम्बाईमें दस भागोंमें (सिरके मध्य हिस्सेसे दाहिनी तरफ पाँच भाग तथा सिरके मध्य हिस्सेसे बायीं तरफ पाँच भाग) बाँटा गया है अर्थात् पैरों तथा हाथोंकी अँगुलियोंको आधार मानकर सिरतक सारे शरीरमें दस समानान्तर रेखाएँ खींची जायँ तो यह आसानीसे पता चल जाता है कि शरीरका कौन-सा अङ्ग हाथों या पैरोंके किस भागसे सम्बन्धित है।

लम्बाईके रूपमें शरीरके तीन भाग
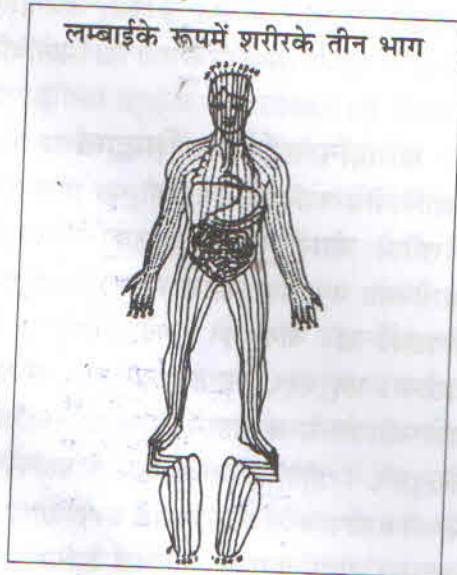
इसी प्रकार चौड़ाईमें भी शरीरको तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है। जिससे हमें रोग-प्रभावित अङ्गके हाथ या पैरपर स्थित प्रतिबिम्बकेन्द्र (एक्यूबिंदु)-का पता चल जाता है।

चौड़ाईके रूपमें शरीरके तीन भाग
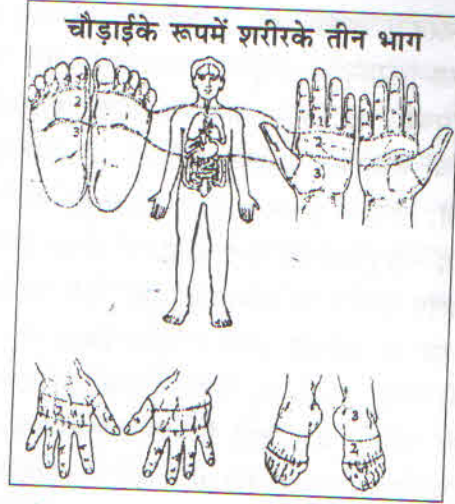
इसी प्रकार चेहरे तथा कानके रिफ्लेक्स सेंटर्सकी भी जानकारी हो जाती है।

एक्यूप्रेशर और रोगके कारण

एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धतिके अनुभवी चिकित्सकों तथा शोधकर्ताओंके अनुसार रोगोंके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमेंसे कुछ महत्त्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं—

१-मनुष्य रोगी तभी होता है जब रोगसे सम्बन्धित अङ्गविशेषमें रक्तका प्रवाह ठीक नहीं रहता या रक्तवाहिकाओंमें कोई विकृति आ जाती है अथवा रक्तवाहिकाएँ सिकुड़ जाती हैं। ऐसी अवस्थामें शरीरका वह अङ्ग ठंडा या गर्म हो जाता है। इन दोनों ही स्थितियोंमें बीमारियाँ पनपने लगती हैं। एक्यूप्रेशर-चिकित्साद्वारा सम्बन्धित अङ्गपर आवश्यक प्रेशर देनेसे रोग दूर करनेमें सहायता मिलती है।

२-नर्वस-सिस्टम (नाडीसंस्थान)-की किसी नसमें विकृति या सिकुड़न आ जानेके कारण भी रोग पनपने लगते हैं। ऐसी स्थितिमें प्रभावित अङ्गसे सम्बन्धित एक्यूबिंदुपर विधिपूर्वक दबाव देनेसे रोग दूर होने लगते हैं।

चीनी चिकित्सकोंकी मान्यताके अनुसार रोगग्रस्त होनेपर कई केन्द्रोंपर कुछ खास किस्मके विकार पैदा हो जाते हैं। ऐसेमें प्रभावित केन्द्र ठंडा या गरम होनेके स्थान चेतनाशून्य, कठोर, चिकने, दर्दयुक्त या धब्बेदार हो जाते हैं। इस प्रकार शरीरका प्राकृतिक सन्तुलन

बिगड़ जाता है और शरीर रोगग्रस्त हो जाता है।

भारतीय शास्त्रों तथा आयुर्वेदिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा-सिद्धान्तोंके अनुसार हमारा शरीर पाँच तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशसे बना है। इन पाँचों तत्त्वोंका संचालन शरीरकी अंदरूनी ऊर्जा करती है, जिसे बायो एनर्जी (Bio-Energy) कहते हैं। सुप्रसिद्ध एक्यूप्रेशर-चिकित्सक एफ० एम० होस्टनने 'द हीलिंग बेनिफिट्स ऑफ एक्यूप्रेशर' में लिखा है कि 'हाथ-पैर या शरीरके अन्य भागोंपर स्थित जो केन्द्र दबानेसे पीडा करते हैं, वहाँसे सम्बन्धित अङ्गोंकी बिजली 'लीक' कर जाती है (अर्थात् शरीरके अंदर काम करनेके स्थानपर शरीरसे बाहर निकलने लगती है), जिससे सम्बन्धित अङ्गमें किसी-न-किसी कारण विकार आ जाता है। इन प्रतिबिम्ब-केन्द्रोंपर दबाव देनेसे शरीरकी एनर्जी (शक्ति)-का प्रवाह सामान्य हो जाता है और प्रभावित अङ्गके विकार दूर होने लगते हैं।

वैज्ञानिक कसौटीपर एक्यूप्रेशर

एक्यूबिन्दुओं (प्रतिबिम्बकेन्द्रों)-को दबानेसे रोगनिवारक प्रभाव किस प्रकार उत्पन्न होता है, इस बातको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेके लिये अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। वैज्ञानिक प्रयोगोंद्वारा सिद्ध हो चुके दो सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—डॉ० फिलिक्स मॅनका 'क्यूटेनो विसरल रिफ्लेक्स सिद्धान्त' तथा डॉ० किम बांगहॉनका 'जीव विद्युत् बांगहॉन कॉर्पसल सिद्धान्त।'

क्यूटेनो विसरल रिफ्लेक्स सिद्धान्त

हमारे शरीरकी समस्त क्रियाओंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—ऐच्छिक क्रियाएँ तथा अनैच्छिक क्रियाएँ। एक तीसरे प्रकारकी क्रियाएँ और होती हैं, जिन्हें 'रिफ्लेक्स क्रियाएँ' कहते हैं।

ऐच्छिक क्रियाओंमें खाना, बात करना, सोचना आदि हैं तो अनैच्छिक क्रियाओंमें भोजनका पाचन, मल-मूत्र-निर्माण, रक्तपरिभ्रमण, हृदयका संकुचन आदि प्रमुख हैं। शरीरकी ये दोनों क्रियाएँ मस्तिष्क एवं इच्छाशक्तिका अतिक्रमण कर अपने-आप होती हैं। उदाहरणके तौरपर यदि हाथ किसी अत्यन्त गर्म वस्तुका स्पर्श कर लेता है तो वह सेकंडके सौंवे हिस्सेमें अपने-आप खिंच जाता है। यही प्रक्रिया अचानक साँपके पैर या हाथसे छू जानेपर हो सकती है। महिलाओंमें चूहे या कॉकरोचके पाससे गुजर जानेमात्रसे ये क्रियाएँ हो जाती हैं। हाथ या पैरके खिंच जानेके बाद हमें वास्तविकताका खयाल आता है। ऐसी क्रियाको प्रतिक्षिप्त-क्रिया या 'रिफ्लेक्स क्रिया' कहते हैं। यह आत्मरक्षाके लिये होनेवाली क्रिया है।

रिफ्लेक्सोलॉजीकी यह क्रिया एक्यूप्रेशरको समझनेमें बहुत मदद करती है। डॉ० फिलिक्स मॅनके मतानुसार एक्यूप्रेशर भी एक प्रकारकी 'रिफ्लेक्स क्रिया' ही है। शोधोंद्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि यदि कोई अङ्ग रोगग्रस्त हो जाता है तो तुरंत ही उसका रिफ्लेक्स असर कुछ विशेष बिंदुओंपर पड़ता है, जिन्हें रिफ्लेक्स-सेंटर कहते हैं और तुरंत ही उन बिंदुओंमें दर्द होने लगता है। दर्दयुक्त बिंदुओंको दबाने या सूईके द्वारा छेदनेसे विद्युत्-तरङ्गें उत्पन्न होती हैं। ये तरङ्गें पलभरमें ही सम्बन्धित अङ्गतक पहुँच जाती हैं और रोगको ठीक करनेकी क्रिया प्रारम्भ कर देती हैं।

इस प्रकार स्वायत्त नाडी-संस्थान (Autonomous Nervous System—ज्ञानतन्त्र) ही एक्यूप्रेशरकी प्रभावोत्पादकताका प्रमुख सिद्धान्त है। जीवनीशक्तिका तीव्र संवहन नाडी-संस्थानके द्वारा ही सम्भव है। पश्चिमी शोधकर्ताओंका भी मत है कि जीवनीशक्ति स्वायत्त नाडी-संस्थानके सिम्पेथेटिक तथा पैरा सिम्पेथिटिक मार्गोंसे बहती है।

बांगहॉन कॉर्पसल सिद्धान्त

शताब्दियोंसे कोरियाके लोगोंकी यह मान्यता रही है कि शरीरमें जीवनी शक्तिका वाहक और स्वतन्त्र कार्यप्रणालीवाला क्युंगराक नामका एक तन्त्र होता है। इस मान्यताको डॉ० बांगहॉनने अपने प्रयोगोंद्वारा सिद्ध कर दिखाया। सन् १९६३ तथा सन् १९६५ में उत्तरी कोरियाके प्योंगयांग नामक शहरमें आयोजित 'साइंटिफिक सिम्पोज़ियम' में प्रोफेसर डॉ० किम बांगहॉनने इस संदर्भमें अपना शोधपत्र भी पढ़ा, जिससे एक्यूप्रेशरपद्धतिको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेमें सफलता हासिल हुई।

त्वचाकी सतहपर स्थित एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर बिंदुओंके ठीक नीचे विशिष्ट प्रकारके कोषोंको ढूँढनेमें डॉ० बांगहॉन सफल हुए, जो कि पूर्वमें अज्ञात थे। इन

कोषोंको उन्हींके नामपर बांगहॉन-कोष नाम दिया गया है। ये कोष अत्यन्त बारीक नलिकाओंसे जुड़े रहते हैं। इन नलिकाओंका चित्र बनानेपर जो तस्वीर उभरती है, वह 'मेरीडियन'-जैसी ही होती है। शरीरकी सतहपर और शरीरके अंदरके बांगहॉन-कोष कुछ भिन्न होते हैं। इसी प्रकार अन्य ज्ञातकोषोंसे भी इन बांगहॉन कोषोंकी रचना बिलकुल भिन्न होती है। इसी प्रकार इन कोषोंको जोड़नेवाली नलिकाओंकी संरचना, अन्य ज्ञात नलिकाओंकी संरचनासे भिन्न होती है। वास्तवमें बांगहॉन कोषोंसे बननेवाली इन नलिकाओंको ही 'मेरीडियन' कहते हैं। डॉ० बांगहॉनके मुताबिक उपर्युक्त कोषों तथा नलिकाओंके माध्यमसे ही जीवनी शक्ति प्रवाहित होती है।

डॉ० बांगहॉनने बांगहॉन कोषोंसे बनी नलिकाओंके शरीरमें कुल चौदह मेरीडियन बताये हैं। दो-दो जोड़ियोंवाले बारह तथा अलग-अलग दो (कुल चौदह) मेरीडियन होते हैं। ये सभी मेरीडियन शरीरके महत्त्वपूर्ण अङ्गों और तन्त्रोंसे जुड़े होते हैं। इस सिद्धान्तसे यह भी सिद्ध होता है कि शरीरमें जो बल होता है, उसे दो भागोंमें बाँट सकते हैं—यांग-बल तथा यिन-बल। मेरीडियन भी इन्हीं बलोंके आधारपर कार्य करते हैं। यांग और यिन-बलोंमें रुकावट आनेपर ही रोग उत्पन्न होते हैं।

एक्यूप्रेशर बिन्दुओंको दबानेपर उसका सीधा प्रभाव उपर्युक्त बांगहॉन कोषोंपर पड़ता है और जीवनीशक्तिके परिभ्रमणमें आयी हुई रुकावट दूर होती है। इस प्रकार यांग तथा यिन-बलोंका संतुलन भी बना रहता है।

एक्यूप्रेशर-चिकित्सा

(डॉ० श्रीबृजेशकुमारजी साहू, एम्०एस्-सी०, पी-एच०डी०, आयुर्वेदरत्न)

एक्यूप्रेशर ऐसी चिकित्सा-पद्धति है, जिससे रोग दूर ही नहीं किये जाते, बल्कि जड़से मिटा देनेका प्रयत्न किया जाता है।

एक्यूप्रेशर—एक भारतीय पद्धति

यह पद्धति प्राचीन भारतीय पद्धतियोंमेंसे एक है, इस पद्धतिका उल्लेख सुश्रुतसंहितामें भी मिलता है तथा हमारे प्राचीन आयुर्वेदाचार्य इसके जानकार थे। हमारे ऋषि-मुनि, साधु-संत एवं गृहस्थ अपने दैनिक जीवनमें इस पद्धतिको अपनाकर अपना तथा अपने शिष्योंका सहजमें उपचार किया करते थे।

ध्यान, योग एवं विभिन्न आसनोंके परिप्रेक्ष्यमें एक्यूप्रेशर आंशिकरूपसे हमारे सम्मुख आता है। प्राचीन कालसे महिलाओंका शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें आभूषण पहनना, गृहकार्योंमें सहयोग तथा सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजोंके पीछे भी इसी पद्धतिका हाथ माना गया है। स्त्रियोंका हाथमें कड़ा पहनना, कपड़े धोना, पैरोंमें पायल पहनना, गलेमें हार, ललाटपर चमकती बिंदिया तथा दैनिक कार्यों—जैसे कुँएसे पानी खींचना, झुककर वृद्ध जनोंके चरण-स्पर्श करना, वन्दना करना आदि भी एक्यूप्रेशरकी परिधिमें आते हैं। ऐसे कार्योंसे भारतीय संस्कृतिका निर्वाह तो होता ही है, साथमें शरीरकी विभिन्न मुद्राओंसे भी हमारा शरीर स्वस्थ रहता है। भारतमें लगभग दस वर्षोंसे इस चिकित्सा-पद्धतिके प्रति व्यापक चेतना जाग्रत् हुई है।

एक्यूप्रेशर क्या है?

सामान्यरूपसे मानव-शरीरमें स्थित निश्चित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोग-निराकरण करनेकी पद्धतिको एक्यूप्रेशर-पद्धति कहा जाता है। एक्यूप्रेशर दो शब्दोंसे मिलकर बना है। 'एक्यू' का साधारण अर्थ है 'तीक्ष्ण' और 'प्रेशर' का अर्थ है 'दबाव'। शरीरके निश्चित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोगको नष्ट करनेकी इस पद्धतिके द्वारा पाँवके तलवोंमें तथा हाथकी हथेलियोंमें स्थित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोगका निदान किया जाता है। एक्यूप्रेशरमें दबावको तथा एक्यूपंक्चरमें सूइयोंको प्रयोगमें लाया जाता है।

एक्यूप्रेशरके सिद्धान्त

इस पद्धतिका पहला सिद्धान्त है कि प्रत्येक रोगका उपचार शरीरको शारीरिक एवं भावनात्मक

रूपसे संगठित (Unit) मानकर किया जाता है। एक्यूप्रेशर-पद्धति मनुष्यको शारीरिक एवं भावनात्मक रूपसे एक अभिन्न इकाई मानती है।

दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है कि सभी रक्त-संचार नाडियों, स्नायु-संस्थान एवं ग्रन्थियोंके अन्तिम सिरे हथेली अथवा पगथली (पदतल)-में स्थित होते हैं। इस पद्धतिका मुख्य उद्देश्य स्नायु-संस्थान एवं रक्त-संचारको सुव्यवस्थित करना एवं मांसपेशियोंको शक्तिशाली बनाना है। जब कोई व्यक्ति अपनी सामर्थ्यको न पहचानकर अपने शरीरके गुणधर्म एवं क्षमताकी उपेक्षा कर खान-पान, व्यायाम और निद्रा आदिके नियमोंका उल्लंघन करता है, तब उसके शरीरमें उत्पन्न द्रव्य रक्त-प्रवाहमें अवरोध पैदा करता है। यह अवरोध शरीरके आन्तरिक एवं बाह्य वातावरणके असंतुलनसे भी उत्पन्न होता है।

अङ्गोंमें रक्तकी कमीसे शिथिलता आने लगती है। फलतः कार्य-क्षमता घटने लगती है, मांसपेशियाँ मन्द पड़ जाती हैं, हाथ और पाँवमें स्थित मांसपेशियोंके ऊतक (Tissues) अपने निश्चित स्थानसे हटने लगते हैं। परिणामस्वरूप पैरोंमें स्थित छब्बीस हड्डियोंमेंसे कोई भी हड्डी अपना स्थान छोड़ने लगती है। उससे पैरोंमें स्थित रक्त एवं स्नायु-संस्थानकी नाडियोंके अन्तिम सिरेपर अधिक दबाव पड़ने लगता है और उन सम्बन्धित केन्द्रोंके अङ्गोंमें नाडी ठीकसे कार्य नहीं कर पाती। फलतः रक्त-संचार कम हो जाता है एवं रक्तकी कमीसे रासायनिक तत्त्व, अपद्रव्य (व्यर्थ-पदार्थ) इन हटे हुए जोड़ोंके आस-पास जमा होने लगते हैं। जितने अधिक विकार जमा होंगे उतना ही अधिक रोग बढ़ेगा।

जब कोई अङ्ग शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाता है, तब हाथकी हथेली और पाँवके तलवोंमें स्थित उससे सम्बन्धित सभी बिन्दुओंमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा शक्करके दानों-जैसे क्रिस्टल जमा हो जाते हैं, जिन्हें 'टॉक्सिन' क्रिस्टल भी कहते हैं। नसों (नाडी)-के छोरमें स्थित ये कण रक्त-प्रवाहको अवरुद्ध करते हैं। एक्यूप्रेशर-पद्धतिसे इन दबाव-बिन्दुओंपर प्रेशर (दबाव) दिया जाता है। इससे अवरोध बने हुए ये कण नष्ट हो जाते हैं और रक्त-प्रवाह व्यवस्थित हो जानेसे रोगग्रस्त अङ्ग नीरोग बन जाते हैं।

अधिकतर लोग तनावसे ग्रसित रहते हैं। एक्यूप्रेशर ज्ञान-तन्तुके कोशोंको कार्यरत कर मानसिक तनाव कम करता है और चेतना जाग्रत् करके मानव-शरीरमें शक्ति उत्पन्न करता है।

एक्यूप्रेशरकी तीन शाखाएँ हैं—१-मेरिडीयनोलोजी, २-जोनोलोजी तथा ३-शिआत्सु।

मेरिडीयनोलोजी—मानव-शरीर पाँच महाभूतोंसे बना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश। इन सबका संचालन हमारे शरीरमें स्थित प्राणशक्तिसे होता है। यह प्राणशक्ति चौदह मुख्य मार्गोंद्वारा शरीरमें प्रवाहित होती रहती है, जिन्हें मेरिडीयन लाईन कहते हैं। इस शक्तिके दो गुण-धर्म हैं, जिन्हें ऋणात्मक एवं धनात्मक कहा जाता है। इन दोनों गुण-धर्मोंके संतुलनसे शरीर आरोग्य एवं इनके असंतुलनसे शरीर रोगी हो जाता है। एक्यूप्रेशर इस असंतुलनको दूर करके शरीरको रोगमुक्त करता है।

जोनोलोजी—इसके अन्तर्गत शरीरको दस भागोंमें बाँटा गया है। शरीरके मध्यभागसे पाँच भाग बायीं ओर और पाँच भाग दायीं ओर होते हैं, जिनके अन्तिम सिरे हाथ और पैरकी पाँचों अँगुलियोंमें होते हैं। दाहिने भागके अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके प्रतिबिम्ब दाहिनी हथेली अथवा दाहिनी पगथली (पदतल)-में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा बायें भागके अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके प्रतिबिम्ब बायीं हथेली एवं बायीं पगथली (पदतल)-में प्रतिबिम्बित होते हैं। तात्पर्य यह है कि जो अवयव जिस जोनमें होता है, उसका प्रतिबिम्ब भी उसी जोनमें होता है। इस पद्धतिको जोनोलोजी, जोनोथैरेपी या रिफ्लोक्सोलोजी भी कहा जाता है।

शिआत्सु—शिआत्सुमें 'शि' अर्थात् अँगुली और 'आत्सु' का तात्पर्य है दबाव। शरीरमें स्थित निर्धारित दाब-बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोग-मुक्त करनेकी पद्धतिको शिआत्सु कहते हैं।

'दाब-बिन्दु' हमारे सारे शरीरपर फैले रहते हैं। किसी भी रोगसे मुक्ति दिलाने-हेतु मानव-शरीरके उस अवयवके क्षेत्र-बिन्दुओंको दबाव देकर उस रोगसे मुक्ति दिलायी जा सकती है।

मुख्य बीमारियाँ, जिनमें एक्यूप्रेशर कारगर प्रमाणित होता है

साइटिका, पुराना जुकाम, नज़ला, स्लिपडिस्क, गर्दनका दर्द, पीठका दर्द, पैरों तथा एड़ियोंका दर्द, पिण्डलियोंमें ऐंठन, ब्लड-प्रेशर, क़ब्ज़, बदहजमी, गठिया, मासिक धर्म, डिप्रेशन, अनिद्रा, स्मरण-शक्ति, माईग्रेन इत्यादि।

एक्यूप्रेशर-चिकित्सा-पद्धतिद्वारा उपचार कभी भी, कहीं भी तथा किसी भी समयपर किया जा सकता है, परंतु भोजन करनेके एक घंटा पहले तथा एक घंटा बाद ही इस पद्धतिको प्रयोगमें लाना श्रेयस्कर है तथा एक दिनमें केवल दो बार ही इसको करना चाहिये अन्यथा यह हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है।

सुजोक-चिकित्सा-पद्धति

(डॉ० सुश्री गीतांजली अग्रवाल, सुजोक थेरेपिस्ट)

'सुजोक-चिकित्सा' एक्यूप्रेशर—एक्यूपंक्चर-चिकित्सा-पद्धतिपर ही आधारित है। 'सुजोक' कोरियन भाषाका शब्द है, कोरियाकी भाषामें 'सु' का अर्थ है हाथ और 'जोक' का अर्थ है पैर। हमारे हाथ एवं पैरोंके अङ्गोंकी बनावटमें हमारे शरीरकी बनावटसे

हाथमें शरीरके अङ्ग समान संख्यामें
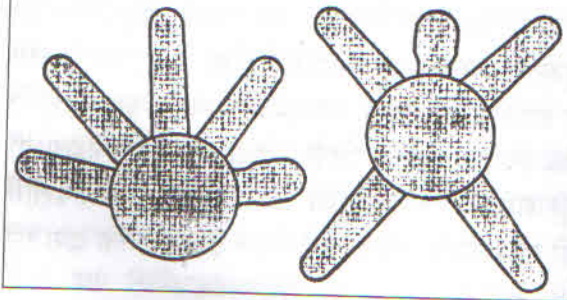
काफी समानता है। अतः हाथ तथा पैरके सूक्ष्म विन्दुओंका ज्ञान प्राप्त करके रोगोंकी चिकित्सा की जा सकती है। हमारे शरीरमें छः भाग हैं—सिर, धड़, दो हाथ तथा दो पैर। ऐसे ही हाथके पंजेके भी छः भाग हैं—अँगूठा, हथेली तथा चार उँगलियाँ।

हाथमें शरीरके अङ्ग समान स्थितिमें
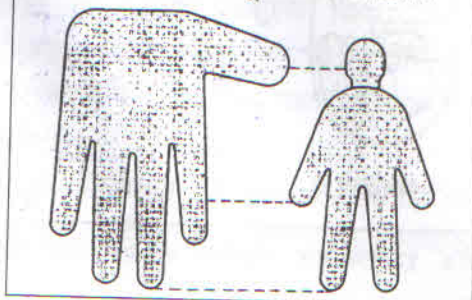
कोरियाके डॉ० पार्कने लंबी खोज एवं अनुसंधानके बाद पाया कि ईश्वरने हाथ-पैरके पंजोंमें ही ऐसी मशीन फिट कर रखी है, जिससे आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है। इसी आधारपर डॉ० पार्कने इस पद्धतिको प्रस्तुत किया है। यह चिकित्सा-पद्धति एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर चिकित्सा-पद्धतिकी ही एडवांस टेक्नालॉजी है।

एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर-पद्धतिमें सम्पूर्ण शरीरके विन्दुओंपर दबाव एवं सूई लगाकर उपचार किया जाता है। जबकि 'सुजोक-पद्धति' में हाथके पंजेके विन्दुओं एवं पैरके विन्दुओंपर उपचार किया जाता है। इतना ही नहीं हाथकी एक उँगली और उसके एक पोरपर भी उपचार किया जा सकता है। उपचार भी इतना सरल कि यदि रोगी छोटी सूई भी नहीं लगाना चाहता तो केवल गेहूँके दाने-बराबर मेगनेट, सीड एवं कलर लगाकर ही उपचार किया जा सकता है। एवं रिजल्ट भी बहुत फास्ट है।

सुजोक-पद्धतिमें जन्मसे हुई बीमारियोंके लिये विशेष रूपसे जो व्यवस्था की गयी है वह है जन्मके दिनाङ्क एवं समयके आधारपर। जैसे ज्योतिषमें कुण्डली तैयार की जाती है वैसे ही इसमें जन्म-समय आदिको ध्यानमें रखकर स्वास्थ्य-कुण्डली बनायी जाती है। जन्मके समय कौन-सी ऊर्जा प्रवाहित हो रही थी, अब कौन-सी ऊर्जा प्रवाहित हो रही है, यह जानकर उपचार किया जाता है। पञ्चतत्त्वोंका भी संतुलन बनाया जाता है, चक्रोंको भी संतुलित किया जाता है।

हमारा शरीर पञ्चतत्त्वोंसे बना हुआ है और मृत्युके

उपरान्त इन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें विलीन हो जाता है यह हम सभी जानते हैं। इन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें असंतुलन हो जानेपर शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। मोटे तौरपर रोगीके लक्षणों एवं हाथकी रेखाएँ ही देखकर पञ्चतत्त्वोंकी जानकारी मिल जाती है। इसे वैज्ञानिक रूपसे परीक्षण करने-हेतु हाथकी उँगलियोंमें ऊर्जा-बिन्दुओंको चैक कर बताया जा सकता है कि कौन-सा तत्त्व कम-ज्यादा एवं कौन-सी ऊर्जा कम-ज्यादा है, उसके अनुसार वर्तमान एवं भविष्यमें आनेवाली बीमारियोंका इलाज किया जाता है। इसे पञ्चतत्त्व-उपचार या मेटाफिजिकल ट्रीटमेन्ट कहा जाता है।

इस चिकित्सा-पद्धतिकी यह विशेषता है कि इसमें न ही कोई दवा लेनी पड़ती है और न ही कोई साइड इफेक्ट होता है। इस चिकित्सा-पद्धतिका किसी चिकित्सा-पद्धतिसे विरोध नहीं है, कोई भी चिकित्सा चलते हुए इस पद्धतिसे इलाज किया जा सकता है।

आजके व्यस्ततम समयमें हम अपने स्वास्थ्यपर ध्यान नहीं दे पाते। हमारा जीवनयापन, रहन-सहन, खान-पान सभी कुछ प्रकृतिके विपरीत हो गया है। आम आदमी ज़िंदगीकी आपाधापीमें मानसिक तनावसे ग्रस्त रहता है, जिसके कारण वह रोगग्रस्त हो जाता है। अतः हमें अपने स्वास्थ्यके प्रति विशेष सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है, यदि हमें अपना जीवन सुखमय बनाना है तो अपने खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार तथा दैनन्दिन-चर्याकी उपेक्षा न कर उसे नियमित और संतुलित बनाना होगा।*

सुजोक-चिकित्सा

भारतके ऋषि-मुनि आजसे हजारों-हजार वर्ष पहले बहुत तरहकी प्राकृतिक-चिकित्सा किया करते थे, पर उनमेंसे बहुत-सी चिकित्सा-पद्धतियाँ लुप्त हो गयीं। उन लुप्त हुई चिकित्सा-पद्धतियोंमें एक सुजोक-चिकित्सा भी थी, जिसकी खोज आज दक्षिण कोरियाके डॉ० पार्क जे०वु० ने की है। इस चिकित्सा-पद्धतिका नाम डॉ० पार्कने सुजोक-पद्धति रखा।

इसकी खोज आजसे करीब १३ साल पहले हुई। भारतमें इस चिकित्साको आये करीब आठ साल ही हुआ है। सुजोक यह कोरियाई शब्द है। सु का मतलब है हथेली तथा जोकका मतलब है पगथली। इस पद्धतिकी यह विशेषता है कि सिर्फ हथेली एवं पगथलीद्वारा ही पूरे शरीरकी चिकित्सा की जा सकती है। पूरी हथेलीमें ही पूरे शरीरके स्विच बोर्ड स्थित हैं एवं उनके द्वारा पूरे

हथेली
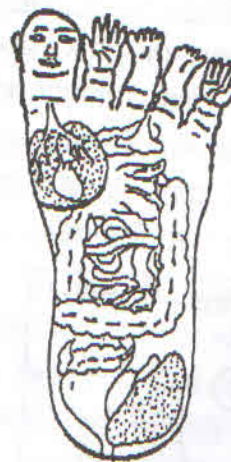
पगथली

* एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार-संस्थान, सुजोक, इलाहाबादद्वारा, एक्यूप्रेशर एवं एक्यूपंक्चर-पद्धतिसे सेवाभावसे रोगोंका उपचार किया जाता है।

सुजोक-चिकित्सा
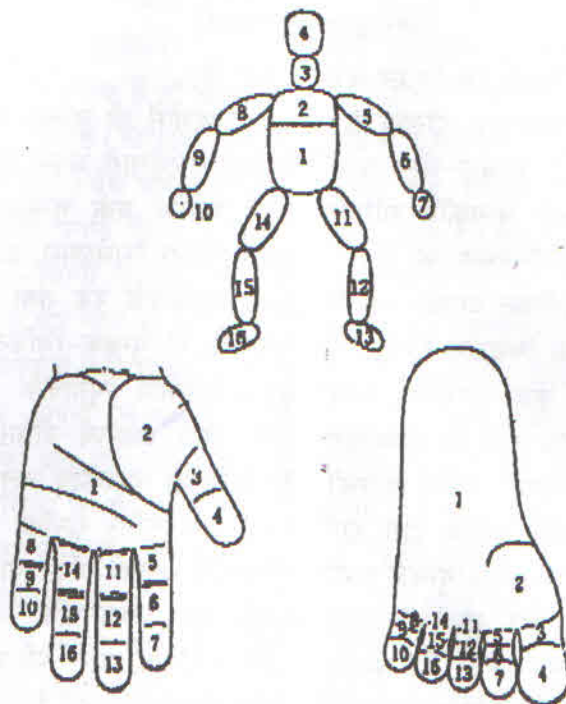
शरीरकी चिकित्सा की जा सकती है। यह पद्धति बहुत ही सरल है एवं हर कोई इसे सीख सकता है। इसे सीखनेमें समय भी ज्यादा नहीं लगता।

इसके द्वारा चिकित्सा तीन तरहसे की जा सकती है—(१) सूई चुभोकर (२) छोटे-छोटे चुम्बक लगाकर एवं (३) मेथी एवं गेहूँके दाने लगाकर।

इस चिकित्सा-पद्धतिद्वारा शरीरके किसी भी प्रकारके दर्दसे तुरंत राहत मिल जाती है।

अनेक असाध्य बीमारियाँ भी इस पद्धतिसे इलाज करके दूर की जा सकती हैं यथा—(१) हृदय-रोग (२) घुटनेका दर्द, (३) एड़ीका दर्द, (४) कमर एवं पीठका दर्द, (५) सिरका दर्द, (६) हाथका दर्द, (७) साइटिका रोग, (८) लकवा रोग तथा (९) फेफड़े-सम्बन्धी रोग इत्यादि। अनेक निःशुल्क शिविरोंमें आयोजन करके यह अनुभव किया गया है कि अभी प्रचलित वैकल्पिक चिकित्साके क्षेत्रमें यह पद्धति विशेष सफल हो रही है।

इस चिकित्सा-पद्धतिमें यह मान्यता है कि शरीरमें खूनका दौरा सही प्रकारसे चलना चाहिये। यदि कहीं रुकावट आती है तो वहीं रोग पैदा हो जाता है एवं उस रुकावटको दूर करते ही रोगी फिरसे स्वस्थ हो जाता है।

शरीरमें कुल बारह प्रकारके अवयव कार्य करते हैं एवं उनकी कार्य-प्रणालीमें असंतुलन पैदा होते ही बीमारी शुरू हो जाती है। इस पद्धतिद्वारा उस असंतुलनको संतुलित करनेसे बीमारी दूर हो जाती है एवं रोगी राहत पा जाता है। वे १२ अवयव इस प्रकार है—(१) फेफड़े, (२) मस्तिष्क, (३) हृदय, (४) जिगर, (५) तिल्ली, (६) गुर्दे, (७) छोटी आँत, (८) रीढ़की हड्डी, (९) बड़ी आँत, (१०) जठर, (११) पित्ताशय एवं (१२) मूत्रकी थैली।

इस चिकित्सा-पद्धतिमें समय भी ज्यादा नहीं लगता है एवं रोगी बहुत जल्दी अपने रोगको दूर करनेमें समर्थ हो जाता है।

मेथी एवं गेहूँको माइक्रो-सर्जरी टेपद्वारा हथेली तथा पगथलीमें लगाकर दबाया जाता है, ताकि खूनके संचारणमें जो असंतुलन हुआ है, वह वापस संतुलित हो जाय। (बाहेती जी)

चुम्बक-चिकित्सा (मैगनेट थिरेपी)

(श्रीबाबूलालजी अग्रवाल)

इस अखिल ब्रह्माण्डकी रचनामें हम विचार करें तो चुम्बकीय शक्तिका ही समावेश-सा दीखता है। धरती, सूर्य, तारे और ग्रह सभी चुम्बक-जैसा कार्य करते हैं। आधुनिक विज्ञानने भी चुम्बकीय शक्तिसे विभिन्न प्रकारके उपयोगी यन्त्रोंकी रचना की है।

चुम्बक-चिकित्साका सैद्धान्तिक आधार यह है कि हमारा शरीर मूल रूपसे एक विद्युतीय संरचना है और प्रत्येक मानवके शरीरमें कुछ चुम्बकीय तत्त्व जीवनके आरम्भसे लेकर अन्ततक रहते हैं। चुम्बकीय शक्ति रक्तसंचार-प्रणालीके माध्यमसे मानव-शरीरको प्रभावित करती है। नाडियों और नसोंके द्वारा खून शरीरके हर भागोंमें पहुँचता है। इस प्रकार चुम्बक हमारे शरीरके प्रत्येक हिस्सेको प्रभावित करनेकी शक्ति रखता है। इस सम्बन्धमें मूल बात यह है कि चुम्बक रक्तकणोंके होमोग्लोबिन तथा साइटोकेम नामक अणुओंमें निहित लौह-तत्त्वोंपर प्रभाव डालता है। इस तरह चुम्बकीय क्षेत्रके सम्पर्कमें आकर खूनके गुण और कार्यमें लाभकारी परिवर्तन आ जाता है और इससे शरीरके अनेकों रोग ठीक हो जाते हैं।

चुम्बक-चिकित्सा-पद्धतिमें न तो कोई कष्ट है और न ही किसी प्रतिक्रियाकी आशंका। अतः बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष आदि सभी रोगियोंपर इसका प्रयोग सरलता एवं सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

प्राचीन कालमें भी आकर्षणशक्ति एवं चुम्बकीय शक्तिका पूर्ण परिज्ञान एवं प्रयोग था। अथर्ववेदके प्रथम काण्ड सूक्त १७ मन्त्र ३-४ में स्त्रीरोगोंके उपचारमें आकर्षणशक्तिके प्रयोगका उल्लेख है। मृत्युके पूर्व मनुष्यका सिर उत्तर दिशा एवं पैर दक्षिण दिशाकी ओर करनेकी प्राचीन कालसे चली आ रही प्रथा भी चुम्बकीय ज्ञानपर आधारित है। ऐसा करनेसे धरती और शरीरमें चुम्बकीय क्षमता हो जानेके कारण मृत्युके समयकी पीडा—वेदना कम हो जाती है। इसी प्रकार रत्न-धारणके पीछे भी यही विज्ञान काम करता है। योगकी विभिन्न क्रियाओंसे शरीरमें जो प्रतिक्रियाएँ पैदा की जाती हैं, वे चुम्बकके प्रयोगसे भी उत्पन्न की जा सकती हैं।

विदेशोंमें भी चुम्बकीय ज्ञान प्राचीन कालमें था। मिस्रकी राजकुमारी अपनी सुन्दरता बनाये रखनेके लिये अपने माथेपर एक चुम्बक बाँधे रहती थी। स्विस विद्वान् डॉक्टर पैरासेल्सस, डॉ० मैलमैर, डॉ० गैलीलियो, डॉ० माहकैलफै रेडे तथा होम्योपैथीके जनक डॉ० हैनीमैनने भी चुम्बक-चिकित्साका सफल प्रयोग किया है। अमेरिकामें न्यूयार्कके डॉ० मैक्लीनने चुम्बकसे कैंसर-जैसी असाध्य बीमारीका सफल इलाज किया है। रूसवाले चुम्बकीय जलसे दर्द, सूजन यहाँतक कि पथरी-जैसे कठिन रोगोंका भी इलाज कर रहे हैं। वे चुम्बकीय जलको वंडर वाटर अर्थात् चमत्कारी जल कहते हैं। जापानियोंने अनेक चुम्बकीय उपकरण जैसे—बाजूबंद, हार, पेटियाँ, कुर्सियाँ, बिछौने आदि बनाये हैं और वे इनसे विभिन्न प्रकारके रोगोंका इलाज करते हैं। इंग्लैंडमें खूनके प्लाज्मा और अन्य कोशिकाओंसे रक्त-कोशिकाओंको अलग करनेमें अब चुम्बकका प्रयोग किया जाता है। इससे पहले यह काम रासायनिक पद्धतिसे होता था। डेनमार्क, नार्वे, फ्रांस, स्विटजरलैंड आदि अनेक पश्चिमी देशोंमें चिकित्साके क्षेत्रोंमें चुम्बकका प्रयोग सफलतासे किया जा रहा है।

भारतमें भी अनेक होम्योपैथिक और एलोपैथिक डॉक्टर चिकित्सामें चुम्बकीय उपकरणोंका प्रयोग सफलतासे कर रहे हैं। चुम्बकीय जलका पौधोंपर भी आश्चर्यजनक असर पड़ता है। ऐसे जलसे सींचनेपर पौधोंमें सामान्यकी अपेक्षा २० से ४० प्रतिशततक अधिक वृद्धि देखी गयी है।

इलाज-हेतु चुम्बकोंको मोटे तौरपर दो वर्गोंमें बाँटा जा सकता है। पहले वर्गमें प्राकृतिक खनिज हैं जिनमें लौह-चट्टानें प्रमुख हैं। ऐसे चुम्बकोंकी शक्तिमें आवश्यकतानुसार घटाना-बढ़ाना सम्भव नहीं होनेके कारण इनका इलाज-हेतु प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है। दूसरे वर्गमें मनुष्यद्वारा बिजलीसे चार्ज करके तैयार किये गये चुम्बक आते हैं। जिनमें आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा चुम्बकीय शक्ति समाविष्ट की जा सकती

है और जिन्हें शरीरके विभिन्न अङ्गोंपर प्रयोग-हेतु सुविधाजनक आकारोंमें तैयार किया जाता है—(१) विद्युत्-चुम्बक एवं (२) स्थायी चुम्बक।

(१) विद्युत्-चुम्बक—वे चुम्बक हैं जो बिजलीकी तरंग मिलनेपर ही काम कर सकते हैं। विद्युत्के अभावमें वे चुम्बकीय कार्य नहीं कर सकते। ऐसे चुम्बक विद्युत्-यन्त्रों एवं अनेक अन्य यन्त्रोंमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

(२) स्थायी चुम्बक—स्थायी चुम्बक बिजलीसे चार्ज किये जाते हैं, परंतु एक बार चार्ज हो जानेके बाद उन्हें विद्युत्-तरंगोंकी आवश्यकता नहीं रहती। ये लम्बे समयतक अर्थात् वर्षोंतक अपनी चुम्बकीय शक्ति बनाये रखते हैं। कुछ वर्षोंके बाद यदि शक्ति कम हो जाय तो उन्हें दुबारा चार्ज किया जा सकता है और ये फिर कई वर्षोंतक काम करते रहते हैं। सामान्य रूपसे चुम्बक-चिकित्सामें ये स्थायी चुम्बक ही काममें लाये जाते हैं। इनकी इसी प्रकृतिके कारण अन्यान्य समस्त चिकित्सा-पद्धतियोंसे चुम्बक-चिकित्सा-पद्धति सबसे सस्ती सिद्ध होती है। चुम्बक-चिकित्सामें १०० गॉससे १५०० गॉसतकके शक्तिसम्पन्न चुम्बकोंका प्रयोग प्राय: इस प्रकार किया जाता है—

१-सिरेमिकके कम शक्तिसम्पन्न चुम्बक कोमल अङ्ग जैसे—आँख, कान, नाक, गला आदिके काममें लाये जाते हैं।

२-धातुसे बने मध्यम शक्तिसम्पन्न चुम्बक बच्चों तथा दुर्बल व्यक्तियोंके लिये प्रयोगमें लाये जाते हैं।

३-धातुसे बने हाई पावर चुम्बक अन्य सभी रोगों तथा रोगियोंके लिये प्रयोगमें लाये जाते हैं।

आमतौरपर प्रतिदिन रोगीको दस मिनट ही चुम्बक लगाना पर्याप्त है, पर कुछ पुरानी तथा लम्बी अवधिकी बीमारियोंमें जैसे—गठिया, लकवा, पोलियो, साइटिका दर्द आदिमें चुम्बक लगानेकी अवधि बढ़ायी जा सकती है। चुम्बक-चिकित्साके बारेमें अन्य लाभकारी तथा कुछ विशेष बातें इस प्रकार हैं—

(१) चुम्बकीय तरंगें शरीरके भीतर जमा हो जानेवाले हानिकर तत्त्वों (कैलशियम, कोलस्ट्रोल आदि)-को साफ करके खूनको पतला और साफ बनाती हैं। इससे हृदयगति सहज बनती है, रक्तचाप नियमित रहता है और घबराहट दूर हो जाती है।

(२) चुम्बक कोशिकाओंको विकसित करके उन्हें बढ़ा देता है, स्नायुओंको नया जीवन देता है।

(३) चुम्बकके दो ध्रुव होते हैं—उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। उत्तरी ध्रुव कीटाणुओंको मारता है और फोड़ा, दाद, गठिया तथा चर्मरोगोंके लिये यह काममें लाया जाता है। दक्षिणी ध्रुव शरीरको गर्मी और शक्ति प्रदान करता है।

(४) चुम्बकका प्रयोग रोगके इलाज और उसकी रोकथाम—दोनोंके लिये किया जाता है।

(५) एक पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति भी नीरोग बने रहनेके लिये चुम्बक तथा चुम्बकीय जलका नियमित प्रयोग कर सकता है।

(६) चुम्बकके उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवोंपर जल, तेल, दूध आदि पदार्थ रखे जानेपर उनमें उसी प्रकारकी चुम्बकीय शक्तिका समावेश हो जाता है, जिसका प्रयोग विविध रोगोंके उपचारमें किया जाता है।

(७) चुम्बकीय शक्ति प्लास्टिक, कपड़े, गत्ते, शीशे, रबड़, स्टैनलेस स्टील तथा लकड़ीमेंसे भी पायी जा सकती है।

(८) प्राय: चुम्बकके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव चुम्बकके टूटनेपर भी अलग नहीं होते, किंतु चिकित्साके प्रयोग-हेतु अलग-अलग ध्रुवोंके चुम्बकोंका निर्माण किया गया है।

चुम्बक-चिकित्सा लेते समय कुछ सावधानियाँ भी बरतनी आवश्यक हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) चुम्बक लगानेके बाद एक घंटेतक कोई ठंडी चीज खानी या पीनी नहीं चाहिये।

(२) लगभग दो घंटेतक नहाना भी वर्जित है।

(३) भोजन करनेके दो घंटे बाद ही चुम्बक लगाना चाहिये तथा चुम्बक लगानेके दो घंटे बाद ही भोजन करना चाहिये।

(४) गर्भवती स्त्रियों तथा शरीरके कोमल अङ्गोंपर शक्तिशाली चुम्बकोंका प्रयोग करना वर्जित है।

(५) किसी-किसीको चुम्बककी शक्ति ग्रहण करनेकी क्षमता नहीं होती है। ऐसे रोगीको मिचली, वमन, शरीरमें झुनझुनाहट, सिर चकरानेकी प्रतिक्रिया

होने लगती है। ऐसी दशामें एक जस्तेकी प्लेटपर पाँच मिनट हाथ रखनेसे चुम्बकका प्रतिकूल प्रभाव समाप्त हो जाता है।

चुम्बक-चिकित्सा-क्षेत्रमें हुए अबतकके विकासों, प्रयोगों और अनुभवोंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि चुम्बक मनुष्यों और पशुओंके विभिन्न रोगोंके उपचारका एक अच्छा माध्यम है। चुम्बकीय चिकित्सा-पद्धतिमें कोई ओषधि नहीं दी जाती। अतः इससे केवल लाभ ही हो सकता है हानि नहीं। अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंकी औषधियाँ महँगी और कभी-कभी हानिकारक भी हो सकती हैं। भारत-जैसे देशके लिये तो यह पद्धति बहुत उपयोगी है।

स्पर्श-चिकित्सा

(बाबा श्रीश्रीमुरलीधरणजी)

आजके दौरमें दुनियामें सभी तनावग्रस्त हैं, बेचैन हैं, जिसके लिये आदमी स्वयं जिम्मेदार है। इंसान हर पल, हर दिन कुछ पानेके प्रयत्नमें लगा हुआ है। भौतिक वस्तुओंको पानेकी इच्छा ही तनावका मूल कारण है। हमें अपनी सोचको नकारात्मक नहीं सकारात्मक बनाना होगा।

नकारात्मक विचार एवं नकारात्मक कोशिकाएँ (Cells) दिव्य शक्तिद्वारा नष्ट की जा सकती हैं। यह दिव्य शक्ति ऋषिगण तपस्याके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। तपस्याके द्वारा यह शक्ति शरीरमें प्रवाह करने लगती है, जिससे विचारोंमें बदलाव आने लगता है। युग-युगसे हम सुनते आ रहे हैं कि किसी महात्माकी हथेलीके स्पर्शसे कई लोग शारीरिक रोगसे मुक्त हो गये। यह वही दिव्य शक्ति है, यह वही प्राण-शक्ति है, जिसे ऋषिगण हथेलियोंके द्वारा दूसरोंके शरीरमें प्रवाह करते रहे। आज इसीको स्पर्श-चिकित्सा कहा जाता है।

मानव-इतिहासमें सनातन कालसे प्राण-शक्तिपर आधारित चिकित्साकी विधि रही है। स्पर्श-चिकित्सा जिस ऊर्जासे होती है, यह वही शक्ति है, जो ब्रह्माण्डमें प्रत्येक जीवकी सृष्टि करती है और उसका पोषण करती है। स्पर्श-चिकित्सा हमारे देशकी अद्भुत देन है, यह हमारी धरोहर है। स्पर्श-चिकित्सा ऋग्वेदमें व्रर्णित है। धीरे-धीरे लोग इसे भूल गये और फिर जापानसे इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। यह हमारी ही संस्कृतिका एक अंश है और आज देश-देशान्तरोंमें इस 'प्राण-शक्ति' को विभिन्न नामोंसे जाना जाता है। चीनी लोग इसे '**ची**', ईसाई समाज '**प्रकाश**', रूसी वैज्ञानिक '**बायोप्लाज्मिक ऊर्जा**' और जापानी इसे '**रेकी**' कहते हैं। हमारे देशमें भी आजकल यह 'रेकी'के नामसे प्रचलित है।

आजकल इस जापानी-विद्यानुसार थोड़े दिनके प्रशिक्षणद्वारा साधारण व्यक्ति इस ऊर्जाको अपने शरीरमें प्रवाहित करनेकी प्रणाली सीख लेता है। यह ऊर्जा सहस्रार-चक्रके माध्यमसे प्रवेश करती है। वहाँसे तीसरे नेत्र अर्थात् आज्ञा-चक्रसे होते हुए नीचेकी ओर विशुद्ध-चक्र (गले)-में आती है। फिर अनाहत-चक्र यानी हृदयतक पहुँचकर पूरे शरीरमें फैल जाती है। तत्पश्चात् मनुष्यकी हथेलियोंद्वारा प्रवाहित होती है। इससे हम अपनी तथा दूसरोंकी चिकित्सा सुचारुरूपसे कर सकते हैं। स्पर्श-चिकित्साके द्वारा प्राणीकी शारीरिक, मानसिक चिकित्सा एवं आध्यात्मिक विकास होता है। यह रोगके कारणोंको निर्मूल करती है।

स्पर्श-चिकित्सासे शारीरिक आरोग्यता—स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मनका वास होता है अर्थात् यदि आपका शरीर विकार (रोग)-से युक्त है तो मनमें तरह-तरहकी आशंकाएँ उठती हैं। उसे दूर करनेके लिये पहले तनका स्वस्थ होना आवश्यक है। स्पर्श-चिकित्सासे सर्दी-जुकामसे लेकर कैंसरतकका उपचार किया जा सकता है। शुरूमें रोगीको जब स्पर्श-चिकित्सा दी जाती है तो भौतिक और भावनात्मक विकार शरीरसे निकलने शुरू होते हैं। आधुनिक औषधियोंके फलस्वरूप जो विषैले रासायनिक पदार्थ (toxins) शरीरमें घर कर लेते हैं, वे निकलने शुरू होते हैं। दो ही दिनमें रोगीको शरीर हलका प्रतीत होने लगता है। शरीरके चौबीस निर्धारित

अङ्गोंपर हाथसे स्पर्श किया जाता है। रोगीके जिस अङ्गमें जितनी ऊर्जाकी जरूरत है, उतनी ही ऊर्जा रोगी चिकित्सकके हथेलियोंसे खींचता है। कहनेका तात्पर्य है कि चिकित्सकको तो अपनी हथेलियोंसे अनुभव हो ही जाता है, पर स्वस्थ होना चिकित्सकसे ज्यादा रोगीपर निर्भर करता है। इस चिकित्सापर रोगीका यदि दृढ़ विश्वास हो तो वह बहुत शीघ्र स्वस्थ हो सकता है। कई रोग जैसे कैंसर यदि बहुत आगे बढ़ चुका हो तो हालाँकि रोगी एकदम ठीक नहीं भी हो सकता है। पर उसके बाकी जीवनमें कम-से-कम पीड़ा तो कम की ही जा सकती है। ऐसा हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है।

स्पर्श-चिकित्साकी यह विशेषता है कि इसमें सुयोग्य एवं अनुभवी चिकित्सक दूरसे भी चिकित्सा कर सकता है—स्पर्शकी आवश्यकता नहीं होती, केवल ध्यानके माध्यमसे ऊर्जा पृथ्वीके किसी भी कोनेमें रोगीतक पहुँचायी जा सकती है।

मैं अपने कुछेक अनुभवोंका संक्षिप्तमें उल्लेख करना चाहूँगा—हालहीमें एक महिला जो गत कई वर्षोंसे जोड़ोंके दर्दसे बुरी तरह ग्रस्त थी, स्पर्श-चिकित्सा सीखने आयी। दर्दके मारे उसका इतना बुरा हाल था कि दीक्षाके दौरान हलकेसे हाथ छूनेमात्रसे वह चीख उठी। पर बादमें उसका दर्द ऐसा गायब हुआ कि दो महीने हो गये, उसने किसी आधुनिक औषधिको हाथतक नहीं लगाया है। एक सज्जन कमरके दर्दसे बेचैन थे और कोई ऐसी प्रणाली उन्होंने नहीं छोड़ी, जिसे उन्होंने न आजमाया हो। स्पर्श-चिकित्सासे इक्कीस दिनोंमें ही उन्हें दर्दसे पूर्णतः मुक्ति मिल गयी। जहाँ आधुनिक चिकित्सा हार मान जाती है, वहाँ स्पर्श-चिकित्सा एकमात्र उपाय है। हालहीमें एक महिला जिसे मधुमेहकी बीमारी है, उसने स्पर्श-चिकित्सा शुरू की। चिकित्साके आरम्भमें blood sugar count २३० थी और एक महीनेकी चिकित्साके उपरान्त यह १३० आ गयी। स्पर्श-चिकित्सा जब उसने शुरू की, तब सभी आधुनिक दवाइयोंको बंद कर दिया था। पैरोंका दर्द तो गायब ही हो गया।

स्पर्श-चिकित्सा और मानसिक उत्थान

प्रत्येक मनुष्यकी अपनी एक आभा होती है और हरेक मनुष्यके तरंगोंका स्तर अलग होता है। शरीरके अंदर और बाहर जो विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रकी तरंगें हैं, उसके ऊपर हमारे आचार-विचार, रूप सभी निर्भर करते हैं। वर्तमान समयमें भौतिकताके कारण शरीरमें विद्यमान तरंगें बहुत निम्न स्तरकी हो गयी हैं, जिसकी वजहसे मनमें शंका पैदा होती है, नकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं। जब सूक्ष्म शरीरकी तरंगें बढ़ती हैं, तब नकारात्मक विचार स्वतः कम होने लगते हैं। स्पर्श-चिकित्सासे तरंगें बढ़ायी जा सकती हैं।

उदाहरणके रूपमें यदि कोई १००० (cycles/second)-के स्तरपर स्फुरण करता है तो नियमित रूपसे स्पर्श-चिकित्सा करते रहनेसे इसे २८०० से ३२०० (cycles/second)-तक उठाया जा सकता है। इससे कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् होती है और सहस्रार-चक्रपर जा मिलती है। तब वह तारोंकी दुनिया (astral plane)-में पहुँच जाता है। उस स्तरपर पहुँचनेपर मनुष्य बहुत कुछ दिव्य देख-सुन पाता है। इसी तरह वेद-पुराण ऋषियोंको श्रुतिके रूपमें प्राप्त हुए। उस स्तरपर पहुँचनेपर मनुष्यका मन शान्त हो जाता है, नकारात्मक भावनाओंसे मुक्ति मिल जाती है, वह भौतिक आकर्षणोंको नकारने लगता है। मनुष्यका मानसिक संतुलन बना रहता है, तनाव कम हो जाता है, उसका मनोबल बढ़ जाता है, वह रोगमुक्त हो जाता है, उसकी स्मरण-शक्तिका विकास होता है और व्यक्तित्वमें निखार आता है।

स्पर्श-चिकित्सा और आध्यात्मिक विकास

जैसे-जैसे शरीरकी ऊर्जा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मनुष्यका आत्मसंतुलन बढ़ता है और कर्ताका परिचय महान् आत्माओंसे होने लगता है। वह जीवनके सही पथपर स्वतः अग्रसर होने लगता है। सांसारिक कर्मोंको निभानेके लिये जिन व्यक्तियोंका सम्पर्क अनिवार्य है, वही उसके इर्द-गिर्द रह जाते हैं, बाकी सब धीरे-धीरे दूर होते चले जायँगे।

ध्यान-मग्न होनेमें स्पर्श-चिकित्सा अत्यधिक सहायक रही है। स्पर्श-चिकित्सासे आपके शरीरकी तरंगोंमें बहुत परिवर्तन आता है और आप बिना कठिनाईके ध्यान-मग्न हो पाते हैं।

यदि आपका मन किसी दूसरेके बताये पथपर अग्रसर होना नहीं चाहता और यदि स्वयं मन जानना

चाहता है कि सही क्या है, उचित मार्ग क्या है तो यह केवल ध्यानके माध्यमसे ही जाना जा सकता है और ध्यानके लिये शारीरिक ऊर्जा बढ़ाना आवश्यक है। स्पर्श-चिकित्सासे धीरे-धीरे आत्मबोध होने लगता है, आज्ञा-चक्रका विकास होता है, जिससे आप सुदूर रहनेवालोंके वातावरण एवं परिस्थितिका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

स्पर्श-चिकित्साके अन्य उपयोग

स्पर्श-चिकित्सासे किसी भी चीजकी ऊर्जा बढ़ायी जा सकती है, कोई भी शुभ कार्य निर्विघ्न पूर्ण किया जा सकता है। इससे पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधोंका भी इलाज किया जा सकता है। कई बार तो शक्तिहीन वस्तुओंपर स्पर्श-चिकित्सा काम कर जाती है। अपने व्यवसाय, नौकरी, पढ़ाई या अन्य किसी भी अच्छी भावनाको स्पर्श-चिकित्साद्वारा लाभान्वित किया जा सकता है। बुरी लत छुड़ायी जा सकती है।

स्पर्श-चिकित्सा और भारतीय सभ्यता

हजारों साल पहलेसे हमारे ऋषि-मुनि स्पर्श-चिकित्साकी पद्धति प्रयोगमें ला रहे हैं। सनातन धर्मकी पर्याय भारतीय सभ्यता और स्पर्श-चिकित्साका बहुत घनिष्ठ सम्पर्क है। सनातन धर्मका अर्थ है सत्य और आनन्दका धर्म।

पुराने समयमें जब कोई चिकित्सा-पद्धति उपलब्ध नहीं थी, तब हम गुरु या महापुरुषके आशीर्वादपर ही निर्भर थे। किसी भी महापुरुषके सम्मुख जाते ही हम सर्वप्रथम हाथ जोड़ते हैं। अतिथिका स्वागत हम हाथ जोड़कर करते हैं। हाथ जोड़नेकी सभ्यता केवल हमारे देशमें ही है। प्रत्येक हथेलीके नाडीमण्डल, अँगुलियोंके छोरपर ८००० (cycles/second)-के स्तरपर तरंगें स्फुरण करती हैं। जब हम हथेलियोंको जोड़ते हैं तो अंदरकी तरंगें १६००० (cycles/second)-पर स्फुरण करने लगती हैं। इसका असर तुरंत हमारे दिमाग, शरीर और ग्रन्थियोंपर पड़ता है। मन शान्त हो जाता है, सद् विचार आने लगते हैं और हम सबको सम्मानसे स्वीकार करते हैं। किसी भी चीजकी स्वीकृति पानेके लिये हमारे मनमें स्वीकृतिकी क्षमता होनी चाहिये। केवल सोचनेसे यह प्राप्त नहीं हो सकता है। हाथ जोड़ते ही हमारे अंदरकी शक्तिका प्रभाव १६००० (cycles/second)-पर चलने लगता है।

हाथ जोड़नेके पश्चात् हम उनका चरण-स्पर्श करते हैं, साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि शरीरके आठ अङ्गों—आज्ञा-चक्र, हृदय, मणिपूर-चक्र, स्वाधिष्ठान-चक्र, घुटने और दोनों हाथको धरतीपर स्पर्श कराते हैं। फिर बायें हाथसे बायाँ पैर और दायें हाथसे दायाँ पैर छूना चाहिये। हमारे बायें मस्तिष्कका असर दायीं ओर होता है और दायें मस्तिष्कका बायीं ओर। दायाँ मस्तिष्क आध्यात्मिक प्रवृत्तिका होता है और बायाँ मस्तिष्क सोच-विचारका कार्य करता है। दोनोंकी तरंगें अलग-अलग स्तरकी होती हैं। यदि हम दायें हाथसे बायें पैरका स्पर्श करें तो दोनों मस्तिष्क अपनी प्रवृत्तिके प्रतिकूल काम करेंगे। साष्टाङ्ग प्रणाम करते समय शरीरकी हरेक प्रक्रियाका मन विश्लेषण करता है। मन कहता है कि तुम उन महापुरुषके चरणधूलके बराबर हो। इससे अंदरके अहंकारका पतन हो जाता है। गुरु या उन महापुरुषने तपस्यासे बहुत शक्ति प्राप्त की है। उनके पैरोंके अँगूठोंसे हम उस ऊर्जाको अपने अंदर ले सकते हैं।

तत्पश्चात् महापुरुष हमें आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद लेना है तो बरतन पूरी तरहसे खाली करना होगा। आधा झुकनेसे आधा आशीर्वाद प्राप्त होता है, साष्टाङ्ग प्रणामसे पूरा आशीर्वाद। वे अन्तरिक्षसे प्राण-शक्तिको अपने अंदर लेकर, अपने विचारोंको ऊर्जामें बदलकर, अपनी हथेलियोंद्वारा हमारे सहस्रार-चक्रतक पहुँचाते हैं। यह ऊर्जा हमारे सहस्रार-चक्र और आज्ञा-चक्रसे होते हुए हमारे पूरे शरीरमें फैल जाती है और हमारी ऊर्जा बढ़ जाती है। हमें अपने अंदर परिवर्तन प्रतीत होने लगता है और मन शान्त हो जाता है एवं हम शारीरिक स्वस्थता प्राप्त कर लेते हैं।

आज हम सभी तनावग्रस्त हैं। न हम ध्यान लगा पाते हैं, न अपनी अन्तरात्माको जाग्रत् कर पाते हैं, अपना अस्तित्व नहीं जान पाते। आत्मोद्धारके लिये और जीवनको सफल बनानेके लिये शास्त्रोंमें बतायी गयी प्रक्रियाओंको अपनाना होगा। महापुरुषोंका सांनिध्य ही एकमात्र उपाय है। गुरुका आशीर्वाद, उनके हाथोंका प्रसाद और उनका चरणामृत—ये सब स्पर्श-चिकित्साके

ही अङ्ग हैं। असंख्य सकारात्मक विचारोंसे वह स्पर्श करते हैं और उनके स्पर्शका लाभ मिलता ही है।

स्पर्श-चिकित्सा सभी चिकित्सा-पद्धतिमें सबसे सरल है और कभी हानिकारक नहीं हो सकती है। नामके अनुसार केवल स्पर्शसे ही चिकित्सा होती है। इसलिये आजकल हर पद्धतिके चिकित्सक, चाहे होम्योपैथी हो या आधुनिक चिकित्सा, चाहे आयुर्वेद हो या एक्यूप्रेशर, सभी स्पर्श-चिकित्साका ज्ञान प्राप्त करके इसे सुचारुरूपसे अपनी पद्धतिके साथ जोड़कर इससे लाभ उठा सकते हैं।

स्पर्श-चिकित्सासे तन, मन और आत्मा—ये तीनों नीरोग हो जाते हैं, आध्यात्मिक विकास होता है, मानसिक संतुलन बना रहता है, विचार सकारात्मक हो जाते हैं, तब शरीर स्वतः ही रोगमुक्त हो जाता है।

'स्पर्श-चिकित्सा' बनाम 'रेकी-चिकित्सा'

(डॉ० श्रीराजकुमारजी शर्मा)

स्पर्शद्वारा ऊर्जाका शक्तिपात ही चिकित्सा-क्षेत्रमें 'रेकी-चिकित्सा'-पद्धतिके नामसे प्रसिद्ध है।

यह सरल-सुविधाजनक, सस्ती और दुष्प्रभावरहित उपचार-पद्धति है। अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंके प्रतिकूल नहीं, सहयोगी भी है। यह रोग-शोक, चिन्तासे मुक्तकर नाना दुष्प्रवृत्तियोंका समूल नाश करनेमें भी उपयोगी है। अन्तःप्रेरणा, अतीन्द्रिय श्रवण-दृष्टिकी क्षमता, बल-बुद्धिको बढ़ानेवाली और काया-कल्प कर मनको शान्ति तथा ध्यान-क्रियामें सहयोग प्रदान करनेवाली है। साथ ही संकल्प और प्रतीकोंद्वारा ऊर्जा-प्रेषणसे दूरस्थ उपचारमें भी सक्षम है।

रेकी है क्या?

'स्पर्श-चिकित्सा' बनाम 'रेकी-चिकित्सा'-पद्धतिके प्रणेता डॉ० मिकाओ उसुई हैं और उनका 'रेकी' शब्द जापानी है। 'रे' का अर्थ है 'ईश्वरीय-सृष्टि' (ब्रह्माण्ड) और 'की' का अर्थ है 'प्राण-ऊर्जा' (जीवनी-शक्ति)।

रेकी-स्रोत कहाँ?

डॉ० उसुईद्वारा प्रस्तुत 'रेकी' अर्थात् 'ऊर्जा-प्रवाह'का ज्ञान मानवको सृष्टिके आदिमें ही हो चुका था। महापुरुषोंने चाहे हृदयकी एकाग्रतामें स्वयं अनुभव किया या अन्यसे प्राप्त किया, यह है उसी ज्ञानकी पुनरावृत्ति। यह ज्ञान भारतसे तिब्बत-चीन होते हुए जापान पहुँचा और डॉ० उसुई (पूर्व ईसाई)-ने भारत-तिब्बत-यात्रा और बौद्ध धर्मके साथ इस ज्ञानकी दीक्षा ली। भारतसे जापानतककी यात्रामें इस ज्ञानका कलेवर बदल जाना स्वाभाविक है, पर इसकी मूल आत्मा वही है।

रेकी-परम्परा

डॉ० उसुईके उन्नीस शिष्योंमेंसे यद्यपि 'डॉ० वातानोव' सप्त-स्तरीय ज्ञानी थे, परंतु टोकियोमें 'रेकी-चिकित्सालय'की स्थापनासे यश मिला डॉ० चुजीरो हयाशीको। उनके देहान्त (सन् १९३९)-के पश्चात् उनकी शिष्या श्रीमती 'हवायो टकाटा' (जापानी-अमेरिकन महिला)-ने अपने बाईस शिष्योंको यह ज्ञान देकर (सन् १९८० में) इहलोकसे विदा ली। इस समय 'रेकी एलायन्स' और 'अमेरिकन अन्तर्राष्ट्रीय रेकी ऐसोसियेशन'—ये दो संस्थाएँ तथा व्यक्तिरूपसे मारीन ओ टूल, कैटनानी तथा पाला हॉरेन इसके शिक्षक हैं।

'रेकी' अर्थात् ऊर्जा-प्रवाह दिव्य शक्ति-चैतन्यस्वरूप है, जिसकी सिद्धि-हेतु आध्यात्मिक साधना, एकाग्रता एवं सतत अभ्यासकी आवश्यकता है।

रेकी-चिकित्सा-पद्धति

रोगोत्पत्तिके कारण—आत्मा-परमात्मामें विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा, दृढ़ इच्छाशक्ति, ईमानदारी, संयम, त्याग, विनम्रता, सत्साहस और माधुर्य आदि प्रवृत्तियाँ सुख-शान्ति, आरोग्य और सम्पन्नताकी हेतु हैं। इनके विपरीत छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, चिन्ता-क्रोध, लोभ-मोह, आलस्य-असंयम, अन्याय-असत्य, निन्दा एवं कटुवाणी आदि नकारात्मक दुष्प्रवृत्तियाँ और प्रदूषित वातावरण, दुर्व्यसन, अपखाद्य तथा जीवनकी जटिलताएँ शरीरकी रस-स्रावी ग्रन्थियोंको असंतुलित कर मानसिक तनाव, घबराहट, चिन्ता, सिर-दर्द, ब्लड-प्रेशर, अनिद्रा, अपच, शारीरिक दौर्बल्य, अपङ्गता, ट्यूमर और कैंसर आदि रोग-शोकको जन्म देती हैं।

उपचार-प्रक्रिया—रेकी—ऊर्जा स्थूल एवं सूक्ष्म

शरीरको[1] सशक्त माध्यम 'साधना-चक्र-प्रणाली'[2] और 'रस-स्रावी-प्रणाली' में तारतम्य बैठाकर (पुनः संतुलन स्थापित कर) शरीरको रोग-मुक्त करती है। उसुई-पद्धतिमें सूक्ष्म शरीरके चक्र स्थूल शरीरकी रस-स्रावी ग्रन्थियोंके समीप ही हैं। यथा—सूक्ष्म-शरीरमें सहस्रार-चक्रके समीप पीनियल ग्रन्थि स्थित है। यहीं ज्ञाता-ज्ञेयका—आत्मा-परमात्माका एकाकार होता है। आत्म-ज्ञान, विवेक-शक्तिके केन्द्र आज्ञाचक्रके समीप आत्मसंचालित नाडी-तन्त्र, रस-स्रावी पिट्यूटरी ग्रन्थि स्थित है, इसी प्रकार थाइराइट ग्रन्थि, थाइमस ग्रन्थि, एड्रीनल आदि ग्रन्थियाँ भी अनाहतचक्र, मणिपूरचक्र, स्वाधिष्ठानचक्रके समीप स्थित हैं। रेकी ऊर्जा-उपचारमें इन ऊर्जा-केन्द्रों और चक्रोंके संतुलनसे शरीरके भावतरंगोंमें वृद्धि होनेसे शरीरकी सभी प्रणालियोंमें संतुलन आ जाता है।

रेकीके पाँच सिद्धान्त

सफलता पानेके मार्गमें सबसे बड़ी चुनौती नकारात्मक विचारों तथा कार्योंसे छुटकारा पाना, सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना एवं बीचमें असफलताओंके रहते धैर्य धारण कर आगे बढ़ते रहनेसे मनोरथ पूरा होता है। डॉ० उसुईने अन्तःकरणको विकृत करनेवाली रोगोंकी जनक नकारात्मक प्रवृत्तियोंको सकारात्मक प्रवृत्तियोंमें बदलने-हेतु पाँच सिद्धान्तोंको निर्धारित किया। साधक इनका नित्य-प्रति संकल्प लेता है, सोनेसे पूर्व दोहराता है और दिनभरके अपने क्रिया-कलापका स्वतः द्रष्टा बनकर, मूल्याङ्कन कर, आत्मसंतोष अनुभव करता है। ये उसे दिनभरके प्रपञ्चोंसे दूर रखते हैं, दिनचर्यामें सम्मिलित हो जीवनके अङ्ग बनकर अन्तर्ज्ञान एवं विचारोंको पवित्र कर सुख-शान्तिकी नींद सुलाते हैं। मानसिक ऊर्जाओंके पुनः संतुलन-क्षमताओंकी किसीमें कमी नहीं है, पर यदि इन्हें विकसित या इनका उपयोग न किया जाय तो इन क्षमताओंका कोई लाभ नहीं—

१-केवल आज मैं क्रोध नहीं करूँगा—आवेशमें क्रोधी अनर्गल अलापद्वारा राहोंमें काँटे बिखेर अपना तथा अन्यका जीवन कण्टकमय बना देता है और वे जीवनभर चुभते रहते हैं।

२-केवल आज मैं चिन्ता नहीं करूँगा—

'चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति जीवितम्'।

'चिता तो निर्जीवको जलाती है, पर चिन्ता जीवित व्यक्तिको ही जला देती है।'

भविष्य जो आया ही नहीं, उसकी चिन्तामें रहकर वर्तमानको खोना है। जो बीत गया उसमें भी अब कुछ किया नहीं जा सकता। उसकी चिन्ता भी व्यर्थ है। अतः वर्तमानको सुधारना है।

३-केवल आज मैं उस परम सत्ताका आभार व्यक्त करूँगा—आज जो भी ज्ञान-मान-सम्मान, यश-पद-बल, धन-ऐश्वर्य मेरा है, उसे मैंने परिजन-परिश्रम, बुद्धि-चतुराई और इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त किया, पर ये संचालित तो उसी सत्तासे हैं, उसके बिना मेरी हस्ती क्या? जहाँ मैं विवश, हताश-निराश हुआ, उसीने हाथ दे सम्भाला। अतः मुझे उस परम सत्ताका आभार व्यक्त करना होगा।

४-केवल आज मैं अपना काम ईमानदारीसे करूँगा—एक झूठको पचाने-हेतु सौ झूठ बोलकर भी अन्तरात्मा बेचैन एवं तनावग्रस्त रहता है और ईमानदार रहनेसे—सत्यकी शरण लेनेसे निःसंकोच, संतुष्ट-शान्त होकर सुखकी नींद सोये।

५-केवल आज मैं सब प्राणियोंसे प्रेम एवं उनका सम्मान करूँगा—सृष्टिके समस्त मानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधोंमें उसी चैतन्यकी चेतना व्याप्त है तो फिर पराया कौन? सब अपने हैं, सभीसे प्रेम करना है, सबको सम्मान देना है।

आहार—मांस-मदिरा, धूम्रपान-तम्बाकू आदि, नशीले पेय-पदार्थ, अधिक तेल-मसालोंमें तले-भुने, चरपरे-चटपटे, गरिष्ठ पदार्थोंसे रहित, सादा सुपाच्य पोषक भोजन ले। भरपूर जल पीये, पर भोजनके समय नहीं। ताजे फलों और शाक-सब्जियोंका सेवन करे या उनका रसाहार ले। फल तथा कच्चे शाक-सब्जियोंके रसमें

१. शास्त्रोंके अनुसार हमारा शरीर पाँच कोशोंमें विभक्त है—आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय एवं अन्नमय। अन्नमय कोश—'स्थूल-शरीर', विज्ञानमय, मनोमय तथा प्राणमय कोश मिलकर 'सूक्ष्म-शरीर' तथा आनन्दमय कोश 'कारण-शरीर' है।

२. गुदाके निकटसे मेरुदण्डके भीतरसे मस्तिष्कके ऊपरतक जानेवाली सर्वश्रेष्ठ नाडी—'सुषुम्णानाडी' में सत्त्वप्रधान प्रकाशमय अद्भुत शक्तिशाली, सूक्ष्म-शरीर प्राण तथा विभिन्न नाडियोंसे मिले सूक्ष्म-शक्तियोंके अनेक केन्द्र हैं, जिन्हें पद्म-कमल तथा चक्र कहते हैं। सुषुम्णानाडीमें विद्यमान मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार-चक्र हैं।

नीबू, गाजर और सेबका रस मिलानेपर रसाहार स्वादिष्ट होकर बीस-पचीस मिनटमें पचकर नवीन रक्तकणों—कोशिकाओंका शीघ्रातिशीघ्र निर्माण कर शरीरसे विष, विजातीय पदार्थोंको निकालकर, शरीरको रोग-मुक्त कर नयी स्फूर्ति तथा शक्ति प्रदान करते हैं। इसके साथ ही आसन, प्राणायाम तथा ध्यानकी प्रक्रियाका भी अवलम्बन ले। ऊर्जा-प्रवाहकी तरंग जितनी मुक्त होती है, उसका अनुभव मनको स्वत: होता है और हम उतने ही समृद्ध-संतुष्ट और स्वयंको स्वस्थ भी अनुभव करने लगते हैं।

साधक प्राणायामद्वारा मस्तिष्कके स्नायु-जाल (मस्तिष्कसे सम्पूर्ण दूषित रक्तको निकाल और हृदयमें शुद्ध रक्त अधिकाधिक भरनेपर) तथा मनोविकारों (काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मात्सर्य, ईर्ष्या-द्वेष और घृणा-शोकादि)-को दबाकर जहाँ मानसिक समता-स्थापनमें समर्थ होता है, वहीं शरीरके अन्य स्नायुओं, ग्रन्थि-समूहों और मांस-पेशियोंको समृद्ध-सशक्त एवं पुष्ट बनाता है। श्वास लेते हुए भावना करे कि शुद्ध वायुके साथ हमारा शरीर सुन्दर, सशक्त, स्वस्थ एवं नीरोग हो रहा है और श्वास छोड़ते समय ऐसी ही भावना करे कि शरीरके सब दूषित मल-विकार आदि श्वासके साथ बाहर निकल रहे हैं।

श्वास-क्रिया स्वाभाविक होनेपर, मनके स्थिरता-हेतु दिव्य ऊर्जाके स्थूल स्वरूप-चिन्तनार्थ श्वास लेते समय भावना करे कि सूर्य-जैसा स्वर्णमय प्रकाशपुञ्ज आकाशमें स्थिर है। सारा आकाश प्रकाशमान है। श्वास छोड़ते समय भावना करे कि वह सुनहरा प्रकाशपुञ्ज (सुदर्शनचक्रकी भाँति) घूमता हुआ हमारे सिरपर धीरे-धीरे आ रहा है। गहरे श्वासकी गतिके साथ वह बैंगनी प्रकाश छोड़ते हुए सहस्रार-चक्रके भीतर प्रवेश कर रहा है। हमारे गहरे श्वासके साथ वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ क्रमश: ज्ञान-चक्रतक आते हुए नीलवर्ण, विशुद्धचक्रमें हरित-नील (फिरोजी) आभा, अनाहतमें हरितवर्ण, मणिपूरमें पीतवर्ण, स्वाधिष्ठानमें सिन्दूरी वर्ण तथा मूलाधारमें रक्तवर्णी आलोक फैलाकर जागरूक चेतना, प्रेम और समृद्धि प्रदान कर रहा है।

रेकी-आवाहन—अपने दोनों हाथोंको पुष्पाञ्जलि-अर्पणकी मुद्रामें पसारते हुए स्वयंका (अथवा अन्यका) उपचार करनेसे पूर्व रेकी-शक्तिका निम्न प्रकारसे आवाहन करे—'हे ईश्वरीय रेकी-शक्ति! मैं (अपना नाम उच्चारण कर) श्री (रोगीका नाम लेकर)-का उपचार करना चाहता हूँ, कृपया अपनी दिव्य शक्तिका मेरे शरीरमें संचार करें।' यह तीन बार कहना है। इसके पश्चात् मार्ग-दर्शक गुरुका आवाहन करे—'समस्त जाने-अनजाने रेकी मार्गदर्शक गुरुजनो! मैं (नाम) रेकी-उपचार करने-हेतु आपका आवाहन कर रहा हूँ। आप उपचारमें सहयोग करनेकी कृपा करें।'

ऊर्जा-चक्रोंका चैतन्यकरण—हथेलियोंके मध्य गहराईमें एक इंच व्यासके और अंगुलियोंके ऊपरी छोरोंके पोरोंपर नन्हे चक्र हैं। इनपर ध्यान देते हुए बारी-बारीसे पहले एक हाथकी अंगुलियोंके चक्रोंको दूसरे हाथकी हथेलीके चक्रमें, घड़ीकी सूइयोंके चलनेकी दिशामें प्रत्येकको सात-सात बार फिर दूसरी हथेलीकी अंगुलियोंको तथा दोनों हथेलियोंके चक्रोंको परस्पर इक्कीस-इक्कीस बार घुमाते हुए रगड़कर चेतन करे। अब दोनों हथेली आमने-सामने दो फीटकी दूरीपर रख धीरे-धीरे इन्हें पास लानेका प्रयास करे। ध्यान चक्रोंपर ही केन्द्रित रहे। यदि हथेलियोंमें हलकी-सी कम्पन-झनझनाहट-कसाव या तनाव आदिकी संवेदनशीलताका आभास हो तो समझ ले, चक्र चेतन हो गये हैं और आगे उपचारकी ओर बढ़े, अन्यथा इन्हें जाग्रत् करने-हेतु पुन: उक्त क्रिया दोहराये।

आभा-मण्डल-शुद्धिकरण—देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियोंके मुख-मण्डल उनके चित्रोंमें प्रखर प्रकाशयुक्त आभा-मण्डलके मध्य दर्शाये जाते हैं। ऐसा ही चुम्बकीय या प्रकाश ऊर्जा-क्षेत्र सभी निर्जीव-सजीव प्राणियों, पेड़-पौधोंका भी होता है। इसे आभा-मण्डल (ओरा) कहते हैं। शरीरसे लगभग छ:-से-आठ फीटकी दूरीतक बाह्य आभा-मण्डल और चार-से-छ: इंचकी दूरीतक आन्तरिक आभा-मण्डल फैला रहता है। रेकी-उपचार आन्तरिक आभा-मण्डलपर अवलम्बित है। रोगीको अपने सामने खड़ा कर ले अथवा लिटा ले। उपचारकर्ता अपनी हथेलियाँ कपनुमा मुद्रामें कर उसके सिरके ऊपरसे पैरोंतक शरीरसे तीन-चार इंचकी दूरी बनाये रखे और शरीरके समस्त दूषित तत्त्वोंको समेटकर अपने बायें कन्धेके ऊपरसे झिटकते हुए फेंककर

अन्तरिक्षमें प्रज्वलित तप्त अग्निकुण्डमें भस्म कर दे। ऐसी क्रिया सात बार दोहराये। मनमें भावना करे कि प्रकृतिकी ओरसे जामुनी रंगकी अग्नि जल रही है, जिसमें दूषित तत्त्व भस्म हो रहे हैं।[1] इस तरह आभा-मण्डलके शुद्धिकरणोपरान्त अपने हाथ शुद्ध[2] कर स्वतः शुद्ध जल पीये, रोगीको भी पिलाये। प्रायः सामान्य रोग तो तीन-चार दिनतक आभा-मण्डलके शुद्ध करनेपर शान्त हो जाते हैं, पर जीर्ण रोगोंके लिये रेकी-उपचार भी दे।

स्पर्श-ऊर्जा (रेकी)-उपचारकी चौबीस स्थितियाँ— चक्रों (हथेलियों)-के चेतन होनेपर अनुभव करे कि दिव्य ऊर्जा शरीरमें प्रवाहित हो रही है। अब अपनी हथेलियोंसे निम्न स्थितियोंमें कम-से-कम तीनसे पाँच मिनटतक स्पर्श दे।[3] पीडित अङ्गोंपर पंद्रहसे तीस मिनट (उदर और तलुओंका शरीरके विभिन्न अङ्गोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसपर) उपचारके अन्तमें अतिरिक्त ऊर्जा-स्पर्श देनेसे ये नीरोगी और सशक्त होंगे। उपचारकर्ता तथा रोगी (दोनों)-की श्वसन-क्रियाकी लय समान होनेपर उसकी पीडा एवं आरामकी दशाका अनुभव उपचारकर्ताको होने लगता है। हथेलीकी अंगुली परस्पर मिली रहे, सामान्य स्थितिमें बायीं हथेली बायें अङ्गोंमें और दायींको दायें अङ्गोंमें निम्न स्थितियोंमें निर्देशानुसार शरीरको स्पर्श दे। वक्ष एवं प्रजनन अङ्गोंका स्पर्श वर्जित है। तीन इंच ऊपरसे ऊर्जा स्पर्श दे। एक स्थितिसे दूसरी स्थितिमें जाते समय शरीरसे ऊर्जा-सम्पर्क न टूटे। पहले एक हाथ उठाकर वह जब दूसरी स्थितिपर पहुँच जाय तब दूसरा हाथ उठाये।

स्पर्श-चिकित्साकी चौबीस स्थितियाँ इस प्रकार हैं—(१) दोनों हथेलियाँ दोनों आँखोंपर, (२) कानोंपर, (३) जबड़ोंपर, (४) कनपटियोंपर, (५) मस्तिष्कपर (पीछे) दोनों एक साथ, (६) बायीं हथेली पाँचवीं स्थितिमें ही दायें मस्तकपर, (७) बायीं हथेली गर्दनके पीछे दायीं आगे गलेपर, (८) बायीं गलेसे नीचे वक्षपर दायीं-बायीं हथेलीके नीचे, (९) बायीं नाभिसे ऊपर तथा दायीं नाभिपर, (१०) बायीं-दायीं हथेलीके नीचे पेडूपर दायीं उसके नीचे, (११) फेफड़ोंपर, (१२) बायीं प्लीहा-हृदयपर, दायीं यकृत्पर, (१३) बायीं छोटी आँतपर, दायीं बड़ी आँतपर, (१४) दोनों हथेलियाँ नाभिसे नीचे मूत्राशय, डिम्बग्रन्थि, अण्डकोशपर, (१५) दोनों कन्धोंपर, (१६) पीछे गुर्दोंपर, (१७) गुर्दोंके नीचे पीठपर, (१८) रीढ़के अन्तिम छोरपर दोनों साथ-साथ, (१९) बायीं हथेली दायीं भुजापर, दायीं हथेली बायीं भुजापर (आलिङ्गनमुद्रामें), (२०) जंघाओंपर, (२१) घुटनोंपर, (२२) पिण्डलियोंपर, (२३) टखनोंपर और (२४) तलुओंपर।

तदनन्तर पीडित अङ्गों—उदर और तलुओंपर अतिरिक्त स्पर्श देना है तो दे, अन्यथा रेकी-उपचार पूरा हुआ। अब रेकी-मार्गदर्शक गुरुओं एवं रोगीका आभार व्यक्तकर सम्बन्ध तोड़ ले। यथा—'हे दिव्य रेकी-शक्ति! आपका एवं समस्त जाने-अनजाने मार्गदर्शक रेकी गुरुओंका इस उपचार-क्रियामें कृपा करने-हेतु मैं (नाम) आपका आभारी हूँ एवं श्री (रोगीका नाम लेकर)-ने जो अपने उपचारका दायित्व मुझे सौंपा था, उसके लिये आभार व्यक्त करता हूँ और अब आप सभीसे मैं अपना सम्बन्ध विच्छेद करता हूँ, विच्छेद करता हूँ; विच्छेद करता हूँ। इसके उपरान्त उपर्युक्त विधिसे हाथ शुद्धकर शुद्ध जल स्वयं पीये एवं रोगीको पिलाये।[4]

१-रोगीके शरीरमें कोई घाव, नासूर, फोड़ा, ट्यूमर या कैंसर आदि हो तो उपचारकर्ता मनमें भावना करे कि वह स्वयं एक सर्जन है और कल्पित रूपसे उस स्थलकी चीर-फाड़-क्रिया हाथोंसे करते हुए उसके अंदरका सब दूषित पदार्थ समेटकर भस्म कर रहा है।

२-एक चम्मच नमक एक गिलास पानीमें घोलकर हाथोंको शुद्ध करनेसे समस्त दूषित पदार्थ गल जाते हैं।

३-उपचारके समय बारम्बार समयकी अवधि एवं स्थितियोंको बदलते समय ध्यान भङ्ग न हो, पूर्वहीमें समस्त निर्देशोंको रिकार्ड कर ले।

४-इस लेखमें प्रस्तुत तथ्योंपर यदि कोई शंका हो तो उसके समाधान-हेतु निम्नलिखित पतेपर जवाबी पोस्टकार्ड भेज सकते हैं अथवा दूरभाषसे सम्पर्क कर सकते हैं— डॉ० राजकुमार शर्मा

ॐश्रीहरि: पॉलीक्लीनिक, विष्णु मार्केट-दौराला, पिन—२५०२२१, दूरभाष—(०१२१) ६४४३२१

दृष्टि-चिकित्सा और स्पर्श-चिकित्सा

(आचार्य श्रीगंगारामजी शास्त्री)

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

तन्त्रशास्त्रके अनुसार दीक्षाके तीन प्रकार बताये गये हैं—आणवी, शाक्तेयी और शाम्भवी। आणवी दीक्षाको ही मान्त्री दीक्षा कहा गया है। यहाँ प्रयोजन केवल शाम्भवी दीक्षासे है, जिसके लिये कहा गया है—

गुरोरालोकमात्रेण स्पर्शात् सम्भाषणादपि।
सद्यः संज्ञा भवेज्जन्तोर्दीक्षा सा शाम्भवी मता॥

'गुरुके केवल अवलोकनमात्रसे या बोलनेमात्रसे अथवा केवल स्पर्शसे जब शिष्यको आत्मज्ञान हो जाता है, उस दीक्षाको शाम्भवी दीक्षा कहते हैं।' स्वामी रामकृष्ण परमहंसने नरेन्द्रको स्पर्शमात्रसे आत्मज्ञान करा दिया था, जिन्होंने विवेकानन्द होकर विश्वको भारतके ज्ञानालोकसे परिचित कराया। महर्षि रमणने पॉल ब्रण्टनको केवल दृष्टिविक्षेपमात्रसे समाधिकी अवस्थामें पहुँचा दिया था। इसी प्रकार सिद्ध पुरुष जिसपर कृपा करते हैं, उसे वाणीमात्रसे कृतार्थ करनेमें समर्थ होते हैं। इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि स्पर्श और दृष्टिके प्रभावमात्रसे व्यक्तिमें असाधारण परिवर्तन घटित हो सकते हैं, होते हैं। मेरे जीवनमें इस अनुभवकी कई बातें स्मृतिपथमें हैं।

विदेशोंमें यह चिकित्सा-पद्धति बहुत समयसे प्रचलित है। कर्नल अल्काटने अपनी पुस्तक 'ओल्ड डायरी लीव्ज'—'पुरानी डायरीके पन्ने' नामक पुस्तकमें भारतमें आकर स्पर्श-चिकित्सा करनेके कई उदाहरण दिये हैं। इस चिकित्साको सामान्यतः सजेशन कहते हैं। रोगीको एक कुर्सीपर बिठा दिया जाता है, चिकित्सक उसके सामने खड़ा होकर अपने हाथ हवामें फैलाता हुआ प्राणशक्तिका आवाहन करता है। इस प्रकार हाथ हिलानेसे अंगुलियोंके सिरोंपर रक्त-प्रवाह कुछ स्थिर-सा होकर एक प्रकारकी झनझनाहट-सी प्रतीत होने लगती है। तब अपनी हथेलीको सामने खुली और अंगुलियाँ फैली हुई रखते हुए रोगीके सिरसे पैरतक ले जाते हैं। यह क्रिया दो या तीन बार की जाती है, उसके बाद अपने हाथोंको इस प्रकार फटकार देते हैं कि जैसे रोगका अंश उनमें आ गया हो, पानीसे धोना अधिक अच्छा है। रोगीको इससे कुछ आराम मिल जाता है। सिरकी पीडा, तनाव, अनिद्रा, चिड़चिड़ाहट और बेचैनीकी अवस्थामें इससे लाभ होता है। लाभकी मात्रा चिकित्सककी ऊर्जस्विता और प्राणशक्तिके आवाहनकी क्षमतापर निर्भर रहती है। इसे मेग्नेटिज्म नाम दिया गया है।

हिप्नोटिज्म और मेस्मेरिज्मके द्वारा भी उन्मादके रोगीको लाभ होते देखा गया है।

शरीरके किसी भी हिस्सेकी पीडाको दूर करनेके लिये पूर्वकी क्रियाके द्वारा हथेलियोंमें प्राणशक्तिका आवाहन करते हुए पीडित स्थानपर हथेलीको अंगुलियोंसे निर्दिष्ट करते हुए गोल सर्किलमें घुमानेसे पीडा कम होने लगती है। जलमें प्राणशक्तिका संचार करके भी चिकित्सा की जाती है। चिकित्सक एक गिलासमें शुद्ध जल लेकर उसे हिलाता और उसमें प्राणशक्तिका आवाहन करता है। इसे रोगीको पीनेके लिये दे देता है। जिससे कुछ लाभ भी होता देखा जाता है। एक बार थियॉसाफिकल सोसायटीके कुछ विदेशी सदस्य भोपाल आये। उन्होंने विज्ञापन देकर पीडित व्यक्तियोंको बुलाया और क्रमसे अनेक रोगोंके रोगियोंपर स्पर्शका प्रयोग किया। इस प्रकार सामूहिक चिकित्सामें कितने व्यक्तियोंको और किस मात्रामें लाभ होता है, कहा नहीं जा सकता।

भारतमें कुछ निःस्पृह संतोंको स्पर्श-चिकित्साका इतना अधिक अभ्यास है कि वे यदि रोगीका एक मिनटके लिये भी स्पर्श कर दें तो रोग सदाके लिये चला जाता है। वे महात्मा प्रचारसे सर्वथा दूर रहते हैं। वे तो यह भी स्वीकार नहीं करते कि उनमें कोई ऐसी शक्ति है। पर अनुभवसे पाया गया है कि अनिद्राका रोगी, जिसे नींद लानेवाली गोलियोंसे भी कोई लाभ नहीं हो रहा था, हाथके स्पर्शमात्रसे चौबीस घंटेके

लिये सो गया। दूसरी ओर एक बालिका, जो अस्पतालमें सात दिनसे बेहोश पड़ी थी, चिकित्सकोंके होशमें लानेके सभी प्रयत्न बेकार हो चुके थे, उसे अंगुली पकड़कर इस प्रकार बिठा दिया गया कि जैसे वह सामान्य नींदसे सोकर उठी हो।

आचरणकी पवित्रताके साथ यदि इच्छा-शक्तिको जाग्रत् किया जाय तो लोकहितके लिये इसे कोई भी अपना सकता है। जहाँ सामान्यतया विदेशोंमें इसे प्राणिक ऊर्जाका संचार कहा गया है वहाँ भारतीय विचारधाराके अनुसार अमृत-श्रावण-क्रिया कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। इस साधनाके लिये कुछ नियमोंका पालन करना आवश्यक होता है, जैसे—

१-सत्य बोलनेका अभ्यास करे।

२-समवेदनाकी मात्रा इतनी हो कि दूसरोंको कष्टमें देखकर यह अनुभव होने लगे कि यह पीडा मुझे ही हो रही है।

३-यश और चमत्कार-प्रदर्शनकी कामना न हो।

४-'**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'—आरोग्यकी कामना सूर्यभगवान्से करनी चाहिये। इस भावनासे यदि गायत्री-मन्त्रका चौबीस लाख पुरश्चरण कर सकें तो आपकी इच्छामात्रसे रोगी स्वस्थ हो सकता है।

अथवा—अमृतेश्वरी विद्याका मन्त्र प्रतिदिन दस माला जप करते रहनेसे और ऐसी भावना करते रहनेसे कि आपके समस्त अङ्गोंमें अमृत वर्षा हो रही है, आप स्वयं शतायु होकर भी पूर्ण स्वस्थ रहेंगे और आपकी वाणी, दृष्टि और स्पर्शमें दूसरोंको रोगमुक्त करनेकी शक्ति आ सकती है।

५-स्पर्श-चिकित्साके तुरंत पश्चात् अपने हाथ धो ले अन्यथा रोगका आक्रमण हो सकता है।

ईश्वरने कर्मफलका विधान बनाया है। कहा गया है—

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरोषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥

पूर्वजन्ममें जो पाप जाने अथवा अनजाने बन गया, उसका फल इस जन्ममें भोगना पड़ता है। जो व्याधिके रूपमें प्रकट होता है, उसकी शान्तिके लिये ओषधि-सेवन, जप, दान, हवन और देवपूजनका विधान है। दृष्टि-चिकित्सा और स्पर्श-चिकित्सामें कभी-कभी ऐसा देखनेमें आता है कि उसका भोग चिकित्सकको भोगना पड़ता है। कैंसर, एड्स, कुष्ठ, यक्ष्मा आदि रोगोंमें यह चिकित्सा न करना ही अच्छा है।

किसीकी रोगनिवृत्तिके लिये अनुष्ठान करना इस कोटिमें नहीं आता; क्योंकि उसमें अनुष्ठानकर्ता तो माध्यममात्र रहता है, रोगनिवृत्ति तो भगवान्के द्वारा होती है।

पिरामिड-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मिस्रके पिरामिड दुनियाके सात आश्चर्योंमें परिगणित हैं। दुनियाके वैज्ञानिक उसका रहस्य जाननेको उत्सुक हैं। उसकी गहन खोजमें इस प्रकार लगे हुए हैं कि हजारों साल पहलेकी लाशें (ममी) पिरामिडके नीचे रखी हुई हैं। फिर भी खराब क्यों नहीं हो रही हैं, इसका क्या कारण है? अभीतककी की हुई खोजोंसे पता चला है कि इसके नीचे तथा इसके ऊपर विद्युत्-लहरें बराबर चलती रहती हैं, जिनसे ऊर्जाका बहाव निरन्तर होता रहता है, इसी कारण लाशोंमें दुर्गन्ध (बदबू) नहीं आ रही है। कुछ और गहन खोज करनेके पश्चात् वैज्ञानिकोंने यह भी पाया है कि इस ऊर्जाद्वारा हम अपने दैनिक जीवनमें भी लाभ उठा सकते हैं। पिरामिडद्वारा विभिन्न उपयोग हो सकता है और हम दैनिक जीवनमें इसे अपनाकर अधिक लाभ उठा सकते हैं।

पिरामिडके कुछ उपयोग इस प्रकार हैं—

१-पिरामिडका व्यवहार सिरके ऊपर करनेसे मानव-मस्तिष्कपर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और हमारे विचार अच्छे हो जाते हैं।

२-बच्चोंको घरपर अध्ययन-कालमें पिरामिड पहनाकर तथा कुर्सीके नीचे रखकर उनकी बुद्धिका विकास करवा सकते हैं, उन्हें याद जल्दी हो जायगा एवं

होशियार हो जायँगे।

अध्ययन करते वक्त पिरामिडका उपयोग

३-पिरामिडको जलकी हंडीके ऊपर रख देनेसे बारह घंटेके भीतर ही जल अधिक स्वादयुक्त, मीठा तथा आरोग्यप्रद हो जाता है।

जलको आरोग्यप्रद बनानेके लिये पिरामिडका उपयोग

४-खाने-पीनेके सामान एवं अङ्कुरित खाद्य-पदार्थ पिरामिडके नीचे रखनेसे गुणयुक्त एवं स्वादयुक्त हो जाते हैं तथा लम्बे समयतक ताजे बने रहते हैं। दूध, दही, मिठाई तथा अनाज कुछ भी रख सकते हैं।

५-शरीरके जिस भागमें रोग या दर्द हो, उस भागपर पिरामिड रखनेसे रोग एवं दर्द दूर हो जाता है। पेटकी गड़बड़ीमें पिरामिड पेटपर रखनेसे पेट ठीक हो जाता है तथा पिरामिडका चार्ज किया हुआ गरम जल पीनेसे भी अच्छा लाभ होता है।

दर्दको दूर करनेके लिये पिरामिडका उपयोग
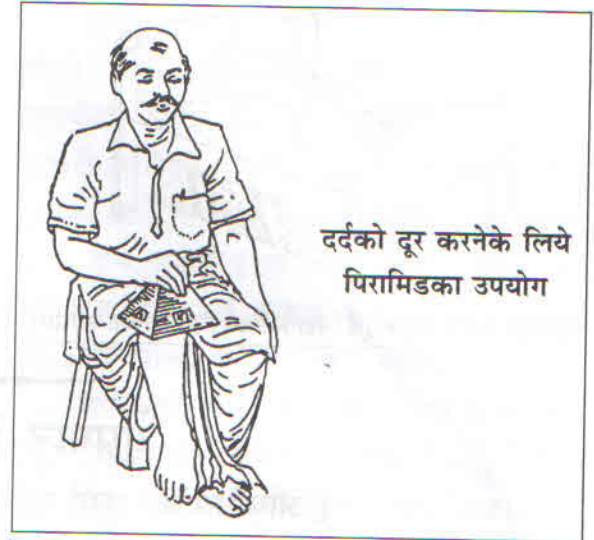
६-तरकारी तथा साग-भाजी पिरामिडके नीचे रखनेपर ताजी बनी रहती है, जल्दी खराब नहीं होती।

७-प्रतिदिन चेहरे एवं आँखोंको पिरामिडयुक्त जलद्वारा धोनेसे त्वचा चमकने लगती है, चेहरेकी कान्ति एवं आँखोंकी रोशनी बढ़ जाती है।

८-पिरामिडको हैटकी तरह प्रतिदिन प्रातः-सायं आधे घंटेतक पहन रखनेसे सिर-दर्द, आधा-सीसी, बालोंका झड़ना, साइनस, टेंशन, डिप्रेशन, अनिद्रा, सफेद बाल आदि बीमारियाँ दूर होती हैं।

९-ध्यान तथा पूजा-प्रार्थना करते समय पिरामिड पहन लेनेसे एकाग्रता मिलती है।

१०-क़ब्ज़के रोगी यदि प्रातः चार गिलास जल पीकर पेटपर पिरामिड रखें तो मल-विसर्जनमें कठिनाई नहीं होगी।

११-ऑफिसमें कुर्सीके नीचे पिरामिड रखनेसे ऊर्जा (Energy) मिलती है तथा शरीरमें फुरती आती है।

१२-टूथपेस्ट, तेल, बाम एवं दवाइयाँ पिरामिडके नीचे तीन-चार दिन रखनेसे उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

१३-बगीचोंमें पिरामिडयुक्त जलका सिंचन करनेसे फूलोंके रंग आकर्षक हो जाते हैं और वे रोगमुक्त रहते हैं।

१४-रातको सोते समय पलंगके नीचे पिरामिड रखनेसे बहुत अच्छी नींद आती है तथा नींदकी गोलियोंसे छुटकारा मिल जाता है।
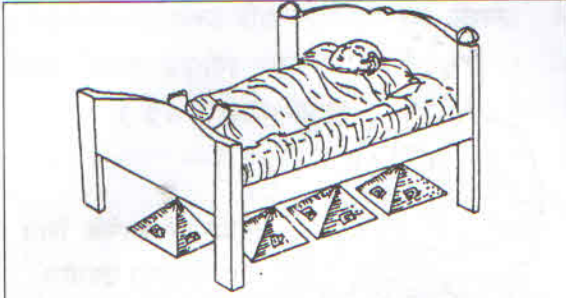
शरीरको स्वस्थ रखने एवं निद्राके लिये पिरामिडका उपयोग

१५-पिरामिड-जलसे तैयार की गयी तुलसीकी पत्ती खानेसे सर्दी, ज्वर, दर्द तथा अनेक रोगोंमें लाभ होता है।

१६-वास्तुशास्त्रमें भी पिरामिडका विशेष महत्त्व बताया गया है।

१७-अनेक पिरामिडोंसे बने यन्त्रको नित्यप्रति व्यवहारमें लानेसे शरीरके हर प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं।

धूम्रपान-चिकित्सा

[औषधियोंका धुआँ नासिका तथा मुखद्वारा लेना]

(श्रीनाथूरामजी गुप्त)

औषधियोंके धूम्रको पान करनेकी एक चिकित्सा-पद्धति भी आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें वर्णित है। यज्ञोंद्वारा अग्निकुण्डसे निकले पवित्र होतव्य द्रव्यसे उद्दीप्त वायुद्वारा सम्पूर्ण वायुमण्डलकी पवित्रता सर्वविश्रुत ही है। इस धूमसे न केवल देवता आप्यायित होते हैं, अपितु सम्पूर्ण प्राणिजगत् लाभान्वित होता है। प्राचीन कालमें नित्य हवनकी परम्परा थी। जिससे पूरा परिसर सुगन्धित रहता था। आयुर्वेदके आचार्योंने रोगोंके उपशमनके लिये विशेष प्रकारकी औषधियोंद्वारा धूम्रवर्तिकाका निर्माण करके पुनः उसे प्रज्वलित कर विधिपूर्वक धूम्रके सेवनका विधान किया है, जिससे अनेक रोग शान्त हो जाते हैं। यह धूम्रपान आजके तथाकथित पतनकारी और अनारोग्यकारक धूम्रपानसे सर्वथा भिन्न है।

इसमें यह सिद्धान्त है कि जब मादक द्रव्योंकी गन्ध अग्निके संसर्गसे तीव्र होकर शरीरको अधिक हानि पहुँचाती है तथा नये विकार उत्पन्न करती है तो रोगनाशक या पौष्टिक द्रव्य निश्चय ही अग्निके माध्यमसे विखण्डित हो, धूम्रपानद्वारा शरीरको पुष्टि तथा आरोग्य प्रदान करेंगे।

धूम्रपानके लाभके विषयमें आचार्य चरक बताते हैं—धूम्रपान करनेसे सिरका भारीपन, शिरःशूल, पीनस, अर्धाव-भेदक (Hemicrania), शूल, कास, हिचकी, दमा, गलग्रह, दाँतोंकी दुर्बलता, कान, नाक, नेत्रोंसे दोषजन्य-स्रावका होना, पूतिघ्राण (नाकसे दुर्गन्धका निकलना Ogoena), आस्यगन्ध (Foul smell of mouth), दाँतका शूल, खालित्य, केशोंका पीला होना, केशोंका गिरना (इन्द्रलुप्त), छींक आना, अधिक तन्द्रा होना, बुद्धि (ज्ञानेन्द्रियों)-का व्यामोह होना तथा अधिक निद्रा आना आदि अनेक रोग शान्त होते हैं। बाल, कपाल, इन्द्रियोंका तथा स्वरका बल अधिक बढ़ता है, जो व्यक्ति मुखसे धूम्र-सेवन करता है, उसे जत्रु (ठोढ़ी)-के ऊपरी भागमें होनेवाले रोग विशेषकर शिरोभागमें वात-कफजन्य बलवती व्याधियाँ नहीं होती हैं।[1]

यदि सिर, नाक और नेत्रगत दोष हो और धूम्र पीने योग्य पुरुष हो तो उसे नासिकासे धूम्रपान करना चाहिये और यदि कण्ठगत दोष हो तो मुखसे धूम्र पीना चाहिये। नासिकासे धूम्र पीनेके बाद धूम्रको मुखसे ही निकालना चाहिये। धूम-कवल (घूँट) मुखसे लेनेपर नासिकासे कभी न निकाले; क्योंकि विरुद्ध मार्गमें गया हुआ धूम नेत्रोंको नष्ट कर देता है।[2]

१-चरक सू० ५। २७—३३।

२-धूमयोग्यः पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये॥
घ्राणेनास्येन कण्ठस्थे मुखेन घ्राणपो वमेत्। आस्येन धूमकवलान् पिबन् घ्राणेन नोद्वमेत्॥
प्रतिलोमं गतो ह्याशु धूमो हिंस्याद्धि चक्षुषी।
(चरक सूत्र० ५। ४६—४८)

औषधिके धूम्रपानकी विधिका वर्णन करते हुए लिखा गया है कि रोगके अनुसार निर्धारित औषधियोंको कूट-छानकर एक सरकंडेके ऊपर लपेटकर जौके आकारकी (बीचमें मोटी आदि-अन्तमें पतली) अँगूठेके समान मोटी तथा आठ अंगुल लम्बी वर्ति (बत्ती) बनानी चाहिये। छायामें रखनेपर जब बत्ती सूख जाय तो सीकको निकालकर घृत, तेल आदि स्नेहसे उसे आर्द्रकर धूमनेत्र (Cigarette Holder)-में रखकर अग्निसे जलाकर इस सुखकारी प्रायोगिक धूम्रका धीरे-धीरे तीन या नौ बार सुखपूर्वक सेवन करना चाहिये। धूम्रपानहेतु योग (मिश्रणहेतु औषधियों)-का वर्णन करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं—

हरेणुकां प्रियङ्गुं च पृथ्वीकां केशरं नखम्॥
ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगेलोशीरपद्मकम्।
ध्यामकं मधुकं मांसीं गुग्गुल्वगुरुशर्करम्॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचः शुभाः।
वन्यं सर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलोत्पले॥
श्रीवेष्टकं शल्लकीं च शुकबर्हमथापि च।

(चरक सूत्र० ५। २०—२३)

अर्थात् हरेणुका, प्रियंगुफूल, पृथ्वीका (काला जीरा), केशर, नख, ह्रीवेर, सफेद चन्दन, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, खश, पद्मांक, ध्यामक, मुलहठी, जटामासी, गुग्गुल, अगर, शर्करा, बरगदकी छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, पाकड़की छाल, लोधकी छाल, वन्य, सर्जरस (राल), नागरमोथा, शैलेय, श्वेत कमलपुष्प, नीलकमल, श्रीवेष्टक, शल्लकी तथा शुकबर्ह—इन औषधियोंकी वर्तिका बनानी चाहिये।

शिरोविरेचनार्थ (सिरके भारी होनेपर छींक लेने-हेतु) निम्न धूम्रपान-योग बताया गया है—

श्वेता ज्योतिष्मती चैव हरितालं मनःशिला॥
गन्धाश्चागुरुपत्राद्या धूमं मूर्धविरेचने।

(चरक सू० ५। २६-२७)

अर्थात् अपराजिता, मालकाँगनी, हरताल, मैनसिल, अगर तथा तेजपत्र—इन औषधियोंकी वर्तिका बनाकर धूम्रपान करनेसे शिरोविरेचन होता है। यह चिकित्सा-पद्धति अब लुप्तप्राय हो गयी है, पर प्राचीन समयमें यह मुख्य आरोग्यविधि थी।

औषध-ऊर्जा प्रसारण—बाल (केश)-चिकित्सा-प्रणाली

(डॉ० श्रीअश्विनीकुमारजी)

प्रारम्भसे ही चिकित्साके क्षेत्रमें निरन्तर खोजें होती रही हैं और आध्यात्मिक चिकित्सा अति प्राचीन चिकित्साके रूपमें मान्य रहती आयी है। आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति शाश्वत चिकित्साके रूपमें सदासे प्रतिष्ठित रही है। कालक्रममें पाश्चात्त्य जगत्‌के अनुसन्धानोंने चिकित्साके क्षेत्रमें नये मानदण्डों, मूल्यों एवं मान्यताओंको स्थापित किया और उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी हुआ है।

लंबे समयतक औषधियोंका व्यवहार विभिन्न रूपोंमें किया जाता रहा है। महान् दार्शनिक 'हिप्पोक्रेट'-ने तो औषध-व्यवहारके क्षेत्रमें एक नया आयाम दिया और लोगोंको बताया कि औषधीय गुणवाले पदार्थोंका समान एवं असमान लक्षणोंके आधारपर व्यवहार किया जा सकता है। असमान लक्षणोंवाली प्रक्रिया तो लोकप्रिय होती चली गयी, परंतु समान लक्षण पैदा करनेवाले औषधका व्यवहार उतना लोकप्रिय नहीं हो पाया।

आजसे करीब दो सौ वर्ष पूर्व 'डॉ० हैनिमैन' ने असमान लक्षणोंपर औषधकी असफलताओंके आकलनके पश्चात् यह महसूस किया कि यह पद्धति पूर्ण नहीं है। तब स्थायी आरोग्यताकी खोजमें संलग्न डॉ० हैनिमैनने एक बहुत ही आश्चर्यजनक खोज कर डाली। उन्होंने मनुष्यके शरीरमें वर्तमान जीवनी-शक्तिको रोगका मूलभूत कारण माना। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक मनुष्यकी जीवनी-शक्ति उसके स्वस्थ शरीरके संचालन-हेतु उत्तरदायी है। अतः जीवनी-शक्तिके कमजोर होनेकी

स्थितिमें सम्पूर्ण शरीरमें अस्वस्थताके लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं एवं व्यक्ति बीमार पड़ने लगता है। डॉ० हैनिमैनने पाया कि जीवनी-शक्तिका स्वरूप अति सूक्ष्म एवं शक्तिशाली है। इसका संचालन स्वयं होता है एवं यह किसीपर निर्भर नहीं रहती। यह ऊर्जास्वरूप है। इसका शरीरमें होना इस बातसे तय होता है कि शरीर गतिमान् रहता है, जिसे हम जीवनके रूपमें देखते हैं। इसके अभावमें शरीर मृत हो जाता है। अत: यह जीवनी-शक्ति शक्तिशाली ऊर्जाका रूप है। डॉ० हैनिमैनने इसी ऊर्जास्वरूप जीवनी-शक्ति चिकित्साकी बात कही। तब इसकी चिकित्सा कैसे की जाय? इसपर उन्होंने बताया कि प्रकृतिमें हजारों प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ एवं औषधीय गुणवाले पदार्थ विद्यमान हैं, जिनके उपयोगका निर्धारण मनुष्य अपने ज्ञानके आधारपर करता आया है। अपने शोधके दौरान डॉ० हैनिमैनने पाया कि इन औषधीय गुणवाले पदार्थोंमें विद्यमान जीवनी-शक्तिका व्यवहार मनुष्यकी जीवनी-शक्तिकी चिकित्साके लिये किया जा सकता है। इसी खोजके क्रममें एक अद्भुत औषधिका उदय डॉ० हैनिमैनद्वारा हुआ, जिसे आज हम होमियोपैथीकी ऊर्जात्मक औषधि (पोटेन्टाइज्ड)-के रूपमें जानते हैं। होमियोपैथीकी यह रहस्यमय औषधि आज भी संदेहकी दृष्टिसे देखी जाती है, क्योंकि इन औषधियोंमें एक भी मूल औषधके अणु विद्यमान नहीं रहते हैं। परंतु दो सौ वर्षोंका अनुभव यह बताता है कि ये ऊर्जात्मक औषधियाँ कई असाध्य कहे जानेवाले रोगोंको ठीक कर चुकी हैं। इसलिये इस ऊर्जा—औषधिकी सत्ताको स्वीकार करना पड़ता है। स्वयं डॉ० हैनिमैन अपने द्वारा खोजी गयी औषधिके प्रति काफी उत्साहित एवं इनके व्यवहारके प्रति सजग थे। उन्हें आभास था कि ऊर्जा खानेकी वस्तु नहीं होती है। अत: इसके व्यवहारहेतु उन्होंने खिलाना (परम्परा), स्पर्श या सूँघना-जैसे साधनोंके व्यवहारकी बातें कहीं। यही नहीं, उन्होंने होमियो-औषधियोंके प्रभावकी तुलना मेस्मेरिज्मसे कर डाली, निश्चय ही ऊर्जा औषधिद्वारा जीवनी-शक्तिकी चिकित्सा करनेका विधान होमियोपैथ पद्धति है।

कालक्रममें आजसे करीब चालीस वर्षों पूर्व डॉ० बी० सहनीने पुन: डॉ० हैनिमैनके खोजोंमें नयी शृङ्खला स्थापित की। उन्होंने अनुभव कर यह पाया कि ऊर्जा-औषध निश्चय ही खाने योग्य वस्तु नहीं है। यह तो मात्र ऊर्जाका प्रभाव है कि जिसमें जीवनी-शक्तिको प्रभावित करनेकी क्षमता है। ऊर्जा-प्रभावमें प्रसारणका गुण होता है, अत: ऊर्जा-औषध केवल प्रसारणद्वारा ही जीवनी-शक्तिको प्रभावित करता है। डॉ० बी० सहनीकी यह महान् खोज चिकित्सा-जगत्‌की एक क्रान्तिकारी उपलब्धि है, क्योंकि परम्परागत दवा खिलानेको उन्होंने प्रसारणमें विस्थापित किया। दवाओंका प्रसारण दूरसे भी सम्भव है, केवल एक माध्यमकी आवश्यकता रहती है।

दवाओंका दूरसे प्रसारण ऊर्जा औषधियोंका एक विशिष्ट गुण है। होमियोपैथी एवं अन्य पदार्थविहीन औषधियाँ जिनमें ये गुण हैं, प्रसारित हो सकती हैं। इन्हें प्रसारण करने-हेतु केवल माध्यमकी आवश्यकता होती है।

प्रसारणके माध्यमके रूपमें शरीरके किसी भी अङ्ग या अवयवका व्यवहार किया जा सकता है। 'बाल' (केश) एक बहुत ही सुगम माध्यम है, जिसे अति सरलताके साथ प्राप्त किया जा सकता है, अत: बालद्वारा दवा-प्रसारणकी परम्परा चल पड़ी। इसे डॉ० बी० सहनीके अनुयायियोंद्वारा 'सहनी इन्फेक्ट' के नामसे जाना जाने लगा। प्रश्न उठता है कि दवाओंका प्रसारण कैसे सम्भव है? उपर्युक्त वर्णित तथ्योंको अगर देखें तो आजके वर्तमान 'रिमोट एप्लीकेशन' के समयमें इसे समझना अति सरल हो जाता है। आज हमारे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें रिमोटका व्यवहार हो रहा है। टेलीविजन, रेडियो, अन्तरिक्ष यान सभी 'रिमोट कण्ट्रोल' द्वारा संचालित हैं। वैज्ञानिक उपकरणोंमें एक निश्चित फ्रिक्वेन्सीकी वेवको प्रसारितकर कार्य सम्पादन किया जा रहा है। इसी प्रकार ऊर्जा-औषधिमें भी प्रत्येक औषधिकी अपनी वेवलेंग्थ (तरंग-दैर्घ्य) होती है, इनकी फ्रिक्वेन्सी भी निश्चित है। प्रत्येक मनुष्यकी जीवनी-शक्ति भी एक निश्चित वेवलेंग्थकी होती है। इस

प्रकार करोड़ों तरहके वेवलेंग्थ हैं, यानी प्रत्येक मनुष्यका अपना वेवलेंग्थ। इसी प्रकार सभी ऊर्जा-औषधियोंका अपना अलग वेवलेंग्थ है। ये दो जब एक-दूसरेके सम्पर्कमें आते हैं तो परस्पर प्रभावित होकर अवस्था-परिवर्तन करते हैं। इस अवस्था-परिवर्तनको हम औषधीय प्रभावके रूपमें देखते हैं। मनुष्यके शरीरके कोई भी अङ्ग या अवयव अपने अंदर वर्तमान ऊर्जाके वेवलेंग्थकी फ्रिक्वेन्सी प्राप्त करते रहते हैं, चाहे वह शरीरसे अलग क्यों न हो जाय। यही कारण है कि शरीरसे अलग बाल दवाके सम्पर्कमें आनेपर अनुनादके रूपमें रोगीके शरीरतक औषधि-ऊर्जाको प्रेषित कर देता है।

वैज्ञानिक व्याख्या कई आधार लेकर की जा सकती है। स्वयं डॉ० बी० सहनीने अपने शोध-पत्रमें 'रमन'के प्रभावको लेकर इसकी व्याख्या करनेकी कोशिश की है, परंतु अभी निश्चय ही हम इस क्षेत्रमें औषध-ऊर्जा-प्रेषणके सही स्वरूपकी पूरी कार्य-प्रणालीको नहीं जान पाये हैं। यह विज्ञानकी सीमा है। दर्शनका प्रादुर्भाव व्यवहारमें प्राप्त परिणामके आधारपर होता है तत्पश्चात् वैज्ञानिक व्याख्या।

आज इन व्याख्याओंके परे व्यावहारिक रूपसे यह देखा जा रहा है कि सैकड़ों तरहके असाध्य कहे जानेवाले रोगोंपर औषध-ऊर्जाका दूरसे तात्कालिक प्रभाव हो रहा है।

इस चिकित्सा-विधिमें निरन्तर खोज बनाये रखने-हेतु स्वयं डॉ० बी० सहनी अपने जीवनकालमें ही 'रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ सहनी ड्रग एवं होमियोपैथी'-की स्थापना सन् १९७० ई० में कर चुके थे। संस्थानका प्रधान कार्यालय शिवपुरी, पटनामें अवस्थित है। इस संस्थानमें डॉ० सहनीके कार्यपर विस्तृत अध्ययन करने-हेतु निरन्तर खोज जारी है। साथ ही इस विधिके प्रशिक्षण एवं प्रसारण-हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। संस्थानके निश्चित पाठ्यक्रमद्वारा प्रशिक्षणकी व्यवस्था है। इसके साथ ही रोगियोंकी चिकित्सा-हेतु देश-विदेशके विभिन्न स्थानोंपर चिकित्सा-केन्द्र एवं चिकित्साकी स्थापनाका प्रयास किया जा रहा है।

भविष्यमें टेले-केन्द्रके स्वरूप टेले-चिकित्साके माध्यमसे दूर-दराज बैठे रोगियोंकी चिकित्सा एवं सभी केन्द्रों एवं चिकित्सकोंका एक-दूसरेसे कम्प्यूटरद्वारा जुड़े रहना असम्भव नहीं दिखता। यह भी सम्भव है कि आनेवाले अन्तरिक्ष युगके साथ चिकित्साको जोड़ने-हेतु औषध-ऊर्जा प्रसारणकी आवश्यकता होगी और यह चिकित्सा-जगत्की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

कामकी बात

मुँहकी बदबू—मुँहकी बदबू दूर करनेके लिये अनारका छिलका सुखाकर-पीसकर चूर्ण बना लें और सुबह-शाम एक-एक ग्रामकी मात्रामें पानीसे लें। मुँहकी बदबू दूर हो जायगी। यह योग दो सप्ताह अवश्य करें।

बहरापन—मूली रेतकर उसका पानी निचोड़ लें और उसके बराबर तिलका तेल मिलाकर मंद आँचपर पकायें। जब पानी जल जाय तो उतार कर छान लें। सुबह-शाम दो-दो बूँद गरम कर कानमें टपकायें। बहरापन दूर हो जायगा। यह योग बारह सप्ताहतक करना अनिवार्य है।

दाद—शीशमकी गीली लकड़ीको आगपर जलायें तो उसके कटेवाले सिरेसे झाग निकलेगा। वह झाग दादपर तीन सप्ताहतक लेप करनेसे दाद दूर हो जाता है। पुराने दादके लिये योग छः सप्ताहतक करना जरूरी है।

रक्तप्रदर—अशोककी छाल बीस ग्राम गायके दूधमें पकाकर मिस्री मिलाकर सुबह-शाम लें। यह योग बारह सप्ताहतक अवश्य करें। रक्तप्रदर ठीक हो जायगा।—प्रेम कपाड़िया

ज्योतिष—रोग एवं उपचार

(श्रीनलिनजी पाण्डे 'तारकेश')

ज्योतिष-विज्ञान और चिकित्सा-शास्त्रका सम्बन्ध प्राचीन कालसे रहा है। पूर्वकालमें एक सुयोग्य चिकित्सकके लिये ज्योतिष-विषयका ज्ञाता होना अनिवार्य था। इससे रोग-निदानमें सरलता होती थी। यद्यपि कुछ दशक पूर्वतक विदेशी प्रभावके कारण हमारे ज्योतिष-ज्ञानपर कड़ी और भ्रामक आलोचनाओंका कोहरा छाया था तथा इसे बड़ी हेय दृष्टिसे देखा जाता था, तथापि सौभाग्यसे इधर कुछ समयसे लोगोंका विश्वास तथा आकर्षण इस विषयपर पुन: बढ़ता नजर आ रहा है।

ज्योतिष-शास्त्रके द्वारा रोगकी प्रकृति, रोगका प्रभाव-क्षेत्र, रोगका निदान और साथ ही रोगके प्रकट होनेकी अवधि तथा कारणोंका भलीभाँति विश्लेषण किया जा सकता है। यद्यपि आजकल चिकित्सा-विज्ञानने पर्याप्त उन्नति कर ली है तथा कई आधुनिक और उन्नत प्रकारके चिकित्सीय उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचान सूक्ष्मतासे हो भी जाती है, तथापि कई बार देखनेमें आता है कि जहाँ इन उन्नत उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचानका सटीक निष्कर्ष नहीं निकल पाता है, वहीं रोगीका स्वास्थ्य, धन, समय आदिका व्यर्थ-व्यय क्लेशकारक भी हो जाता है। अत: ऐसेमें जो बात रह जाती है वह है दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा। किसी विद्वान् दैवज्ञके विश्लेषण एवं उचित परामर्शद्वारा न केवल स्थिति स्पष्ट होती है, अपितु कई बार अत्यन्त सहजतासे (ग्रहदान तथा जप आदिसे) रोग दूर हो जाता है। इस दृष्टिसे एक कुशल ज्योतिषी चिकित्साविद् तथा रोगी दोनोंके लिये मार्गदर्शक बन सकता है।

ज्योतिष-शास्त्रमें द्वादश राशियों, नवग्रहों, सत्ताईस नक्षत्रों आदिके द्वारा रोगके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कालपुरुषके विभिन्न अङ्गोंको नियन्त्रित और निर्देशित करनेवाली राशियों, ग्रहों आदिकी स्थितियोंके आधारपर हम किसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं। जन्म-चक्रमें स्थित प्रत्येक राशि, ग्रह आदि शरीरके किसी-न-किसी अङ्गका प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस ग्रह आदिका दूषित प्रभाव होता है, उससे सम्बन्धित अङ्गपर रोगका प्रभाव रह सकता है। इस सम्बन्धमें चन्द्रमाके अंशादिके आधारपर निकाली गयी विंशोत्तरीदशा (या अन्य प्रकारकी दशा)-का अध्ययन महत्त्वपूर्ण रहता है।

ज्योतिष-विज्ञानमें किसी भी विषयके परिज्ञानके लिये जन्म-चक्रके तीन बिन्दुओं—लग्न, सूर्य तथा चन्द्रका अलग-अलग और परस्पर एक-दूसरेसे अन्त:सम्बन्धोंका विश्लेषण मुख्य होता है। यह अध्ययन 'ज्योतिष और रोग' के संदर्भमें और भी उपयोगी है। लग्न जहाँ बाह्य शरीरका, बाह्य व्यक्तित्वका दर्पण होता है, वहीं सूर्य आत्मिक शरीर, इच्छा-शक्ति, तेज एवं ओजका प्रतीक होता है। चन्द्रमाका सम्बन्ध हमारे मानसिक व्यक्तित्व, भावनाओं तथा संवेदनाओंसे होता है। सामान्य रूपसे यह समझा जा सकता है कि लग्न मस्तिष्कका, चन्द्र मन, उदर और इन्द्रियोंका तथा सूर्य आत्मस्वरूप एवं हृदयका प्रतिनिधित्व करता है।

सामान्य रूपमें हम राशियों और ग्रहोंके अन्त:सम्बन्धको इस तरह समझ सकते हैं कि राशियाँ जैसे अलग-अलग आकृतियोंवाले पात्र हों और ग्रह अलग-अलग प्रकृतिके पदार्थ तो जैसी प्रकृतिके पदार्थको जैसी आकृतिके पात्रमें डाला जायगा, वह तदनुरूप आचरण करेगा और वैसा ही फल भी देगा।

राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

विविध राशियों, भावोंके द्वारा हमारे किन-किन अङ्गोंका बोध होता है और किस प्रकारके रोग इनके द्वारा सम्भावित हैं, सर्वप्रथम इसपर संक्षिप्त चर्चा अग्र सारणी 'क' में वर्णित है—

सारणी 'क' राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

भाव	राशि	तत्त्व	अङ्ग	सम्भावित रोग
प्रथम	मेष	अग्नि	पिट्यूटरी ग्लैण्ड, पाइनीअल ग्लैण्ड, सिर, दिमाग, ऊपरी जबड़ा।	मस्तिष्क-रोग, विकार, सिरदर्द, मलेरिया, रक्ताघात, नेत्ररोग, पाइरिया, मुँहासे, चेचक, मसूढ़ेका दर्द, कोढ़, उन्माद, चक्कर-मिरगी आदि।
द्वितीय	वृष	पृथ्वी	थायराइड, गला, जीभ, नाक, आवाज, चेहरा, ग्रासनली तथा निचला जबड़ा।	गलगण्ड, मोटापा, कण्ठप्रदाह, डिप्थीरिया, फोड़ा-फुंसी, मद्य-सेवन, नेत्र-दोष, मुखपक्षाघात, दाँत-दर्द, मसूढ़ेकी सूजन।
तृतीय	मिथुन	वायु	स्कन्ध, फेफड़ा, ऊपरी पसली, कन्धे, कान, हाथ-बाजू, स्वरयन्त्र, श्वास-नली, कोशिकाएँ।	दमा, श्वास-नली-शोथ, मानसिक असंतुलन, मस्तिष्कज्वर, रोगभ्रमी, कंधेकी जकड़न, बाजूकी नसका दर्द, नकसीर, साइनोसाइटिस, एलर्जी, ब्रोंकाइटिस।
चतुर्थ	कर्क	जल	थाइमस ग्लैण्ड, नीचेकी पसली, फेफड़ा, स्तन, उदर।	अजीर्ण, अपच, उदर और पाचन-सम्बन्धी रोग, क्षय, कफ, गैस-विकार, जलोदर, कैंसर, वातरोग।
पञ्चम	सिंह	अग्नि	एड्रेनिल, तिल्ली, पित्ताशय, हृदय, यकृत्, पीठ, कोख, कमर, रक्त।	हृदयरोग, पीलिया, बुखार, मूर्च्छा, तीव्र-कम धड़कन, नेत्ररोग, कटिवेदना, आमवातिकज्वर, चेचक, अग्निमान्द्य, चलनविभ्रम।
षष्ठ	कन्या	पृथ्वी	नाभिचक्र, अग्न्याशय, कमर, मेखलाक्षेत्र, आँत।	आँतरोग, कोष्ठबद्धता, ऐंठन, बृहदान्त्र, शोथ, दस्त, हैजा, मूत्रकृच्छ्ररोग, आमाशयव्रण, मलद्वार-कष्ट, अर्थराईटिस।
सप्तम	तुला	वायु	गुर्दे, मूत्राशय, वस्ति, अण्डाशय, डिम्ब-ग्रन्थि, मूत्रवाहिनी, गर्भाशय नलिकाएँ।	गुर्दे-मूत्राशयरोग, कमर-दर्द, स्पाण्डलाइटिस, मधुमेह, रीढ़की हड्डीका दर्द, वृक्कशोथ, पथरी।
अष्टम	वृश्चिक	जल	मलद्वार, मलाशय, भ्रूण, लिङ्ग, योनि, अण्डकोष, गर्भाशय, प्रोस्टेट।	बवासीर, नासूर (नाड़ी-व्रण), पथरी, रतिरोग, रक्त-दूषित, विषपदार्थ, विचित्र कठिन रोग, कैंसर, हर्निया।
नवम	धनु	अग्नि	नितम्ब, जंघा।	साइटिका, रक्त-विकार, ट्यूमर, गठिया, दुर्घटना, चोट, घाव, पक्षाघात।
दशम	मकर	पृथ्वी	घुटने, जोड़, बाह्य त्वचा, बाल, नाखून, कंकाल।	घुटने, जोड़ोंका दर्द, गठिया, एक्जिमा, चमड़ीके रोग, मिरगी, ल्यूकोडर्मा, दाँत-दर्द, हाथीपाँव।
एकादश	कुम्भ	वायु	पाँव, कान, साँस, गुल्फ, एड़ी।	स्नायु-स्थानकी बीमारी, हृदयरोग, रक्त-विकार, पागलपन।
द्वादश	मीन	जल	तलवा, पाँव, दाँत।	गोखरू, लसिकातन्त्रके रोग, फोड़ा, व्रण, टी०बी०, ट्यूमर, कफदोष, पैरका लकवा, पैर, एड़ीका दर्द।

द्वादश राशियोंमें, भावोंमें कुछ अग्नि-तत्त्वका, कुछ वायु आदि तत्त्वका प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तत्त्वोंकी प्रकृतिके आधारपर भी रोगकी पहचान सरलतासे हो सकती है। यथा—

१, ५, ९ राशि/भाव—अग्नितत्त्व प्रधान होनेसे ओज, बल तथा क्रियात्मकताका प्रतिनिधित्व करता है। सामान्यतः शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अस्वस्थता थोड़े समयकी, किंतु तीव्र हो सकती है। इनमें माइग्रेन, अनिद्रा, मूर्च्छा, तीव्र सिरदर्द, मुँहासे आदि कठिनाइयाँ रह सकती हैं। इससे भूख-प्यास, निद्रा, आलस्य आदिकी अभिव्यक्ति होती है।

२, ६, १० राशि/भाव—पृथ्वीतत्त्व प्रधान होनेसे हड्डियों, मांस, त्वचा, नाखून, नाडी-रोग, केश आदिको बताता है। इनसे संधिवात, गठिया, वायु-विकार, कठिन-जटिल रोग, वजन एवं सम्बन्धित रोग, कीड़े, सर्पद्वारा काटना, वाहन-दुर्घटनाकी अभिव्यक्ति होती है।

३, ७, ११ राशि/भाव—वायुतत्त्व प्रधान होनेसे प्राण-वायुको बताता है। मानसिक विकार, निराशा, तनाव, पक्षाघात, अतिनशा (धुँआ), बुद्धि-विभ्रम, ग्रन्थियोंका कार्य,अधिक श्रमसे होनेवाले रोग होते हैं। फैलना, सिकुड़ना, चलना-फिरना, शरीरके कार्य व्यक्त होते हैं।

४, ८, १२ राशि/भाव—जलतत्त्व प्रधान होनेसे रक्त तथा जलीय पदार्थका नियन्त्रण होता है। ट्यूमर, कैंसर, कफ, इन्दरोग, हिस्टीरिया, अतिनशा (तरल), घबराहट, फोबिया-जैसे रोग सम्भावित होते हैं। ये भाव शरीरमें स्थित वीर्य, रक्त, त्वचा, मज्जा, मूत्र, लारको व्यक्त करते हैं।

नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

नवग्रहोंमें सूर्य-चन्द्र आदि तो जिस राशिमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-विचार होता है तथा राशिसे उनकी शत्रुता, मित्रताको भी देखा जाता है तथापि उनका स्वतन्त्र रूपमें जिस अङ्ग या रोग-विशेष बतलानेकी सम्भावना रहती है, वह निम्न सारणी 'ख' द्वारा समझी जा सकती है—

सारणी 'ख' नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

ग्रह	अङ्ग	रोग
सूर्य	सिर, हृदय, आँख (दायीं), मुख, तिल्ली, गला, मस्तिष्क, पित्ताशय, हड्डी, रक्त, फेफड़े, स्तन।	मस्तिष्क-रोग, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, उदर-विकार, मेननजाइटिस, मिरगी, सिरदर्द, नेत्रविकार, बुखार।
चन्द्र	छाती, लार, गर्भ, जल, रक्त, लसिका, ग्रन्थियाँ, कफ, मूत्र, मन, आँख (बायीं), उदर, डिम्बग्रन्थि, जननाङ्ग (महिला)।	नेत्ररोग, हिस्टीरिया, ठंड, कफ, उदर-रोग, अस्थमा, डायरिया, दस्त, मानसिक रोग, जननाङ्ग रोग (स्त्रियोचित), पागलपन, हैजा, ट्यूमर, ड्रॉप्सी।
मंगल	पित्त, मात्रक, मांसपेशी, स्वादेन्द्रिय, पेशीतन्त्र, तन्तु, बाह्य-जननाङ्ग, प्रोस्टेट, गुदा, रक्त, अस्थि-मज्जा, नाक, नस, ऊतक।	तीव्र ज्वर, सिरदर्द, मुँहासे, चेचक, घाव, जलन, कटना, बवासीर, नासूर, साइनस, गर्भपात, रक्ताल्पता, फोड़ा, लकवा, पक्षाघात, पोलियो, गले-गर्दनके रोग, हाइड्रोसील, हर्निया।
बुध	स्नायु-तन्त्र, जीभ, आँत, वाणी, नाक, कान, गला, फेफड़े।	मस्तिष्क-विकार, स्मृतिह्रास, पक्षाघात, हकलाहट, दौरे आना, सूँघने, सुनने अथवा बोलनेकी शक्तिका ह्रास।
बृहस्पति	यकृत्, नितम्ब, जाँघ, मांस, चर्बी, कफ, पाँव।	पीलिया, यकृत्-सम्बन्धी रोग, अपच, मोतियाबिन्द, रक्त-कैंसर, फुफ्फुसावरण, शोथ, वात, बादी, उदर-वायु, तिल्ली-कष्ट, साइटिका, गठिया, कटिवेदना, नाभि-चलना।
शुक्र	जननाङ्ग, आँख, मुख, ठुड्डी, गाल, गुर्दे, ग्लैण्ड, वीर्य।	काले-नीले धब्बे, चमड़ीके रोग, कोढ़, सफेद दाग, गुप्ताङ्ग-रोग, मधुमेह, नेत्ररोग, मोतियाबिन्द, रक्ताल्पता, एक्जिमा, मूत्ररोग। (क्रमशः)

ग्रह	अङ्ग	रोग
शनि	पाँव, घुटने, श्वास, हड्डी, बाल, नाखून, दाँत, कान।	बहरापन, दाँत-दर्द, पायरिया, ब्लडप्रेशर, कठिन उदरशूल, आर्थराइटिस, कैंसर, स्पांडलाइटिस, हाथ-पाँवकी कँपकपाहट, साइटिका, मूर्च्छा, जटिल रोग।
राहु, केतु	राहु मुख्यतः शरीरके ऊपरी हिस्से और केतु शरीरके निचले धड़को बतलाता है।	प्रायः ये दोनों ग्रह क्रमशः शनि और मंगलके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं या जिस राशि-भावमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं। राहु, केतुसे सम्बन्धित रोगकी पहचान प्रायः कठिनाईसे हो पाती है।

द्वादश राशियों, भाव और नवग्रहोंके आधारपर शरीरके अङ्गों और व्याधियोंकी जानकारीके पश्चात् हम गतिशील दशाओंके स्वामीकी सबलता या दुर्बलताको अपने अध्ययनका आधार बनाते हैं। नैसर्गिक शुभग्रह—बृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा—क्रमागत रूपमें पापग्रह—शनि, मंगल, राहु, सूर्य, केतुसे पीडित होनेपर अपनी दशावधिमें रोग देते हैं।

द्वादश लग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

प्रत्येक लग्नके लिये शुभ-अशुभ ग्रह भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः उनके आधारपर भी यह निर्णय लिया जाता है कि कौन-सा ग्रह शुभकारी है और कौन अशुभकारी। निम्न सारणी 'ग' से यह स्पष्ट किया गया है—

सारणी 'ग'—द्वादशलग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

लग्न	शुभ ग्रह	अशुभ ग्रह	मध्यम ग्रह
मेष	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र	शनि
वृष	बुध, शुक्र	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	सूर्य, शनि
मिथुन	बुध, शुक्र	मंगल, बृहस्पति	शनि
कर्क	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	सूर्य, शुक्र
सिंह	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	चन्द्र, शुक्र
कन्या	चन्द्र, बुध, शुक्र	सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि	
तुला	बुध, शुक्र, शनि	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	चन्द्र
वृश्चिक	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
धनु	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
मकर	बुध, शुक्र, शनि	मंगल, बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र
कुम्भ	शुक्र, शनि	चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति	सूर्य
मीन	चन्द्र, बृहस्पति	सूर्य, बुध, शुक्र, शनि	मंगल

गोचर, दशाफल तथा जप-दान

गोचर (दैनिक ग्रह-स्थिति)-में ग्रहोंकी स्थिति भी रोगकी अवधि और तीव्रता आदिको स्पष्ट करती है। प्रायः द्वितीय, षष्ठ और अष्टम भावमें स्थित ग्रह तथा इनके स्वामीकी दशावधिमें शारीरिक रोगकी सघनता होती है। इसके अतिरिक्त तीसरे, सातवें, बारहवें भावके स्वामी भी रोगोत्पत्तिको व्यक्त करते हैं। दशाओंके स्वामीके आधारपर ही मुख्यतः रोग-निवारणार्थ दान-जप करके स्थितियोंमें सुधार लाया जा सकता है। निम्न सारणी 'घ' में नवग्रहोंके अशुभ फलके शमनार्थ किये जानेवाले उपायोंकी जानकारीसे लाभ उठाया जा सकता है—

सारणी—'घ'—अरिष्ट-निवारणके लिये ग्रहोंका जप-दान-पूजन

ग्रह १	दान-सामग्री २	रत्न ३	व्रत-सम्बन्धित दिन ४	जड़ी-बूटी धारण ५	जप ६	जप-संख्या ७	जप-काल ८	हवन-समिधा ९	अन्य पूजन १०
सूर्य	गेहूँ, गुड़, लाल वस्त्र, घी, लाल वर्णकी गाय, माणिक, ताम्र-वस्तु, स्वर्ण, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	माणिक	रविवार	बेलपत्रकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः	७०००	सूर्योदय	आक	हरिवंशपुराण, सूर्यपूजन, सूर्य-अर्घ्य, गायत्री-जप, आदित्यहृदयस्तोत्र-पाठ।
चन्द्र	चावल, श्वेत चन्दन, शङ्ख, कपूर, दही, दूध, घी, श्वेत वस्त्र, चाँदी, कांस्य-पात्र, सफेद अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	मोती	सोमवार	खिरनीकी जड़ सफेद डोरेमें।	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः	११०००	संध्या	पलाश	शिवपूजन, सतीचन्द्रपूजन, पूर्णिमा-व्रत।
मंगल	गेहूँ, मसूर-दाल, घी, गुड़, स्वर्ण, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, ताम्र-वस्तु, दक्षिणा।	मूँगा	मंगलवार	अनन्तमूलकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः	१००००	सूर्योदय	खैर	हनुमत्पूजन, ब्रह्मचर्य-पालन, मांस-मदिरासे दूर।
बुध	मूँग, चीनी, हरा वस्त्र, हरी सब्जी, कांस्य-पात्र, अन्य हरी वस्तुएँ, दक्षिणा।	पन्ना	बुधवार	विधारकी जड़ हरे डोरेमें।	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः	९०००	सूर्योदय	अपामार्ग	दुर्गा-गणेश-पूजन, बुध-पूजन।
बृहस्पति	पीले चावल, चना-दाल, हल्दी, शहद, पीला वस्त्र, पीले फल, धर्मग्रन्थ, कांस्य-पात्र, स्वर्ण, दक्षिणा।	पुष्पराग	बृहस्पति	केलेकी जड़ पीले डोरेमें।	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः	१९०००	संध्या	पीपल	विष्णु-गुरुपूजन, गौ, द्विज-वृद्धसेवा।
शुक्र	चाँदी, चावल, मिस्री, श्वेत चन्दन, चमकीला वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, दक्षिणा।	हीरा	शुक्रवार	सरपोंखाकी जड़ चमकीले डोरेमें।	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः	१६०००	सूर्योदय	गूलर	लक्ष्मीदेवी-पूजन, शुक्र-पूजन।
शनि	उरद, काले तिल, काले चने, तेल, काला वस्त्र, लौहपात्र, काले जूते, चाकू, दक्षिणा।	नीलम	शनिवार	बिच्छूकी जड़ काले डोरेमें।	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः	२३०००	संध्या	शमी	भैरव-पूजन, शनि-पूजन।
राहु	सात अनाज, उरद, नारियल, चाकू, कम्बल, बिल्व-पत्र, कस्तूरी, तिल, खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	गोमेद	जिस राशिमें हो उसके स्वामीके अनुरूप ही रंगकी वस्तुओंका दान	सफेद चन्दन (स्वामी)-के अनुरूप डोरेमें।	ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः	१८०००	रात्रि	दूर्वा	शिव, सर्प, राहु-पूजन।
केतु	सात अनाज, तिल, नारियल, ऊनी वस्त्र, कोई हथियार (कैंची), खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	लहसुनिया	राहुके समान	असगन्धकी जड़ स्वामीके अनुरूप डोरेमें।	ॐ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः	१००००	रात्रि	कुशा	गणेश और केतु-पूजन।

नवग्रह दान-पूजन आदिसे रोगोपचारमें श्रद्धाकी महती भूमिका होती है। पूर्ण निष्ठा, उत्साह तथा संकल्पबद्धतासे किये गये कार्यकी सफलता वैसे भी सुनिश्चित होती है। रोग-पीडित व्यक्ति यदि दान-जप आदि कृत्य स्वयं करे तो यह सर्वश्रेष्ठ स्थिति है अन्यथा अन्य पारिवारिक जन या योग्य ब्राह्मणद्वारा प्रतिनिधिरूपमें यह सम्पादित किया जा सकता है। अत्यन्त मारकग्रहकी दशा हो तो 'महामृत्युञ्जय-जप' करना चाहिये। सर्वव्याधि-विनाशके लिये 'लघुमृत्युञ्जय-जप' 'ॐ जूं सः' (नाम, जिसके लिये है) **'पालय पालय सः जूं ॐ'** इस मन्त्रका ११ लाख जप तथा एक लाख दस हजार दशांशका जप करनेसे सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है। इतना न

श्रीमहामृत्युञ्जय-कवच-यन्त्र
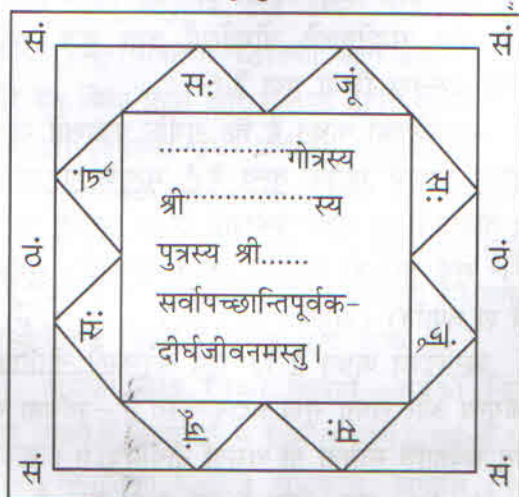
हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और साढ़े बारह हजार दशांश-जप करना चाहिये। इसके साथ ही निम्न यन्त्र भी भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर सिद्ध मुहूर्तमें गुग्गुलका धूप देकर धारण करना चाहिये। पुरुषके दाहिने तथा स्त्रीके बायें हाथमें बाँधना चाहिये। गोत्र, पिताका नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी)-का नाम यथास्थान लिख देना चाहिये। यन्त्र इस प्रकार है—

नवग्रह-यन्त्र

८ ॐ ह्रीं राहवे नमः	१ ॐ ह्रीं सूर्याय नमः	६ ॐ ह्रीं शुक्राय नमः
३ ॐ ह्रीं भौमाय नमः	५ ॐ ह्रीं गुरवे नमः	७ ॐ ह्रीं शनैश्चराय नमः
४ ॐ ह्रीं बुधाय नमः	९ ॐ ह्रीं केतवे नमः	२ ॐ ह्रीं सोमाय नमः

इसके अतिरिक्त यदि एक साथ अधिक ग्रहोंका दूषित प्रभाव रोगकी उत्पत्ति और वृद्धिका कारण हो तो नवग्रह-यन्त्रको भोजपत्रपर अष्टगन्धकी स्याहीसे किसी शुभ सिद्ध मुहूर्तमें अपने पास रखने, धारण करने तथा पूजन करनेसे भी अरिष्टका नाश होता है। यन्त्रको चाँदी, सप्त-अष्टधातुमें भी बनाया जा सकता है।

यदि उपर्युक्त प्रयोगोंके साथ या असमर्थतावश मात्र कातरभावसे ही प्रभुका स्मरण किया जाय तो रोगमुक्तिकी सहज-प्राप्ति असम्भव नहीं है। भगवत्कृपासे सभी कुछ सम्भव है।

वेदोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सा

(पद्मश्री डॉ० श्रीकपिलदेवजी द्विवेदी, निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्)

वेदोंमें प्राकृतिक चिकित्सासे सम्बद्ध सामग्री पर्याप्त मात्रामें मिलती है। इसमें विशेष उल्लेखनीय है—१-सूर्यकिरण-चिकित्सा, २-वायु-चिकित्सा या प्राणायाम-चिकित्सा, ३-अग्नि-चिकित्सा, ४-जल-चिकित्सा, ५-मृत्-चिकित्सा, ६-यज्ञ-चिकित्सा, ७-मानस-चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, ८-मन्त्र-चिकित्सा, ९-हस्तस्पर्श-चिकित्सा, १०-उपचार-चिकित्सा। यहाँ केवल सूर्यकिरण-चिकित्साका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेदोंमें सूर्यको इस स्थावर और जंगम जगत्‌की आत्मा कहा गया है—**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** (ऋक्० १।११५।१, यजु० ७।४२, अथर्व० १३।२।३५, तैत्ति० सं० १।४।४३।१)। यह मन्त्र ऋक्, यजु और अथर्व तीनों वेदोंमें आया है। प्रश्नोपनिषद्‌में भी सूर्यको **'प्राणः प्रजानाम्'** अर्थात् मनुष्यमात्रका प्राण कहा गया है। मत्स्यपुराणका कहना है कि **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** अर्थात् यदि नीरोगताकी इच्छा है तो सूर्यकी शरणमें जाओ। अतएव प्राचीन ऋषि-मुनि और आचार्योंने

सूर्योपासना तथा सूर्यनमस्कार आदिकी विधि प्रचलित की।

वेदोंमें उदित होते हुए सूर्यकी किरणोंका बहुत महत्त्व वर्णित किया गया है। अथर्ववेदके एक मन्त्रमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य मृत्युके सभी कारणों अर्थात् सभी रोगोंको नष्ट करता है।[१] उदित होते हुए सूर्यसे अवरक्त (हलकी लाल—Infrared) किरणें निकलती हैं। इन लाल किरणोंमें जीवनी शक्ति होती है और रोगोंको नष्ट करनेकी विशेष क्षमता होती है। अतएव ऋग्वेदमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य हृदयके सभी रोगोंको, पीलिया और रक्ताल्पता (Anaemia)-को दूर करता है।[२] अथर्ववेदमें भी इस बातकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि सूर्यकी अवरक्त किरणें हृदयकी बीमारियोंको तथा खूनकी कमीको दूर करती हैं।[३]

प्रातः सूर्योदयके समय पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासना और हवन करनेका यही रहस्य है कि ऐसा करनेसे सूर्यकी अवरक्त किरणें सीधे छातीपर पड़ती हैं और उनके प्रभावसे व्यक्ति सदा नीरोग रहता है।

सूर्यकिरण-चिकित्सा-हेतु रोगी उदित होते हुए सूर्यके सम्मुख खड़े होकर या बैठकर सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे पड़ने दे। ऋतुके अनुसार शरीरको खुला रखे या हलका कपड़ा पहने, जिससे किरणोंका प्रभाव पूरे शरीरपर पड़ सके। कम-से-कम पंद्रह मिनट सूर्यके सम्मुख रहे। रोग और आवश्यकताके अनुसार यह समय आधा घंटातक बढ़ा सकते हैं। इसके बाद सूर्यकी किरणें तीव्र हो जाती हैं, अतः विशेष लाभ नहीं होगा। सूर्योदयके समयकी किरणोंका जो लाभ होता है, वह अन्य समय सम्भव नहीं है।

इस विषयमें अथर्ववेदके नौवें काण्डका आठवाँ सूक्त विशेष महत्त्वका है। इसमें बाईस मन्त्रोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सासे ठीक होनेवाले रोगोंकी एक लम्बी सूची दी गयी है और कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य इन रोगोंको नष्ट करता है।[४] इस सूचीमें निर्दिष्ट प्रमुख रोग हैं—सिरदर्द, कानदर्द, रक्तकी कमी, सभी प्रकारके सिरके रोग, बहरापन, अंधापन, शरीरमें किसी प्रकारका दर्द या अकड़न, सभी प्रकारके ज्वर, पीलिया (पाण्डुरोग), जलोदर, पेटके विविध रोग, विषका प्रभाव, वातरोग, कफज रोग, मूत्ररोग, आँखकी पीडा, फेफड़ोंके रोग, हड्डी-पसलीके रोग, आँतों और योनिके रोग, यक्ष्मा (T. B.), घाव, रीढ़की हड्डी, घुटना और कूल्हेके रोग आदि। एक अन्य सूक्तमें '**सूर्यः कृणोतु भेषजम्**' सूर्य इन रोगोंको ठीक करे, कहकर अपचित् (गण्डमाला), गलने और सड़नेवाली बीमारियाँ तथा कुष्ठ आदि रोगोंका उल्लेख किया गया है।[५]

अथर्ववेदका कथन है कि सूर्यके प्रकाशमें रहना अमृतके लोकमें रहनेके तुल्य है।[६] मृत्युके बन्धनोंको यदि तोड़ना है तो सूर्यके प्रकाशसे अपना सम्पर्क बनाये रखें।[७] सूर्य शरीरको नीरोगता प्रदान करते हैं—**सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति।** (अथर्व० ८।१।५)

ऋग्वेदका कथन है कि सूर्य मनुष्यको नीरोगता, दीर्घायुष्य और समग्र सुख प्रदान करते हैं—**सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥** (ऋक्० १०।३६।१४) एक अन्य मन्त्रमें कहा गया है कि सूर्यकी किरणें मनुष्यको मृत्युसे बचाती हैं—**सूर्यस्त्वाधिपति-र्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥** (अथर्व० ५।३०।१५) सूर्यकी सात किरणोंसे सात प्रकारकी ऊर्जा प्राप्त होती है—**अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य**

१-उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्। (अथर्व० १७।१।३०)

२-उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ (ऋक्० १।५०।११)

३-अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि॥ (अथर्व० १।२२।१)

४-(क) शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ (अथर्व० ९।८।१)

(ख) सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः। उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः अङ्गभेदम् अशीशमः। (अथर्व० ९।८।२२)

५-(अ) अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव। (अथर्व० ६।८३।१)

(आ) असूतिका रामायण्य पचित् प्र पतिष्यति। ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति। (अथर्व० ६।८३।३)

६-सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके। (अथर्व० ८।१।१)

७-मृत्योः पड्वीशं अवमुञ्चमानः। मा च्छित्था··· सूर्यस्य संदृशः॥ (अथर्व० ८।१।४)

सप्त रश्मिभिः॥ (ऋक्० ८।७२।१६)

सूर्यकिरणोंद्वारा चिकित्सा—इसके अनेक नाम प्रचलित हैं, जैसे सूर्य-चिकित्सा, सूर्यकिरण-चिकित्सा, रंग-चिकित्सा (Colour-therapy, chromo-therapy, chromopathy) आदि। इस चिकित्सामें सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे लेकर रोग-निवारण या सूर्यकी किरणोंसे प्रभावित जल, चीनी, तेल, घी, ग्लिसरीन आदिका प्रयोग करके रोगोंका निवारण किया जाता है।

सूर्यकिरण-चिकित्साका प्रसार—पाश्चात्त्य जगत्‌में इस चिकित्सा-पद्धतिका आविष्कार और प्रचार जनरल पंलिझन होनने किया था। तत्पश्चात् डॉक्टर पेन स्कॉट, डॉक्टर राबर्ट बोहलेंड तथा डॉक्टर एडविन, बेबिट, आदिने इस चिकित्सा-पद्धतिको आगे बढ़ाया। धीरे-धीरे यह विद्या फ्रांस और इंग्लैण्ड आदि देशोंमें फैली। अब इस विषयपर प्रचुर साहित्य उपलब्ध हैं।

भारतवर्षमें विशेषरूपसे हिन्दीमें इस चिकित्सा-पद्धतिके प्रचार और उन्नयनका श्रेय श्रीगोविन्द बापूजी टोंगू और डॉक्टर द्वारकानाथ नारंग आदिको है। सम्प्रति हिन्दीमें इस विषयपर अनेक ग्रन्थ प्राप्य हैं।

सूर्यकी सात रंगकी किरणें—सूर्यकी किरणें सात रंगकी हैं। ऋग्वेद[१] और अथर्ववेदमें[२] सूर्यकी सात रंगकी किरणोंका उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्व (सप्त अश्व) आदि शब्दोंसे किया गया है।

इन सात रंगकी किरणोंका वैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत महत्त्व है। प्रत्येक किरणका अलग-अलग प्रभाव है। इनकी गति और प्रकृति भी भिन्न-भिन्न है। इन सात रंगोंको मिला देनेसे सफेद रंग हो जाता है। इन सात रंगकी किरणोंसे ही संसारके प्रत्येक पदार्थको रूप-रंग प्राप्त होता है। इन सात किरणोंके तीन भेद किये गये हैं—उच्च, मध्य और निम्न अर्थात् गहरा, मध्यम और हलका। इस प्रकार ७×३=२१ प्रकारकी किरणें हो जाती हैं। इनसे ही संसारके सारे रूप-रंग हैं। अथर्ववेदके प्रथम मन्त्रमें इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये २१ प्रकारकी किरणें संसारमें सर्वत्र फैली हुई हैं और ये ही सारे रूप-रंगोंको धारण करती हैं—**ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।** (अथर्व० १।१।१)

सात किरणोंके नाम और प्रभाव—इन सात किरणोंको अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—इनकी तरंग-दैर्घ्य (Wave-length) और आवृत्ति (Frequency) अलग-अलग है। अतः इनका प्रभाव भी पृथक्-पृथक् है। अपनी गति और प्रकृतिके अनुसार ये विभिन्न रोगोंको दूर करते हैं। इसकी संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है। इन किरणोंको संक्षेपमें अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—(१) V I B G Y O R. (२) बै नी आ ह पी ना ला।

नाम	संकेत	नाम	संकेत	प्रभाव
Violet	V	बैगनी	बै	शीतल, लाल कणोंका वर्धक, क्षयरोगका नाशक
Indigo	I	नीला	नी	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	आ	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, ज्वरनाशक
Green	G	हरा	ह	समशीतोष्ण, वातज रोगोंका नाशक, रक्तशोधक
Yellow	Y	पीला	पी	उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, हृदय एवं उदररोगका नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, मानसिक शक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अति उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश-हेतु

१-(क) सप्तरश्मिरधमत् तमांसि। (ऋक्० ४।५०।४)
(ख) आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः। (ऋक्० ५।४५।९)
२-(ग) यः सप्तरश्मिर्वृषभः०। (अथर्व० २०।३४।१३)

गति और प्रकृतिके आधारपर नीचेसे ऊपरवाली किरणें क्रमशः अधिक प्रभावशाली हैं। जैसे—लालसे अधिक नारंगी, उससे अधिक पीली और सबसे अधिक प्रभाववाली बैगनी है। अतः बैगनीसे अधिक शक्तिवाली किरणोंको परा-बैगनी (Ultra-violet) किरणें और लालसे कम शक्तिशाली किरणोंको अवरक्त (Infra-red) किरणें कहते हैं।

वस्तुतः मूल रंग तीन हैं—लाल, पीला और नीला। इनके मिश्रणसे ही अन्य रंग बनते हैं। जैसे—लाल और नीलेसे बैगनी, नीले और सफेदसे आसमानी, नीले और पीलेसे हरा, लाल और पीलेसे नारंगी।

सूर्यकी सात रंगकी किरणोंके तीन परिवार किये गये हैं—(१) पीला, नारंगी, लाल, (२) हरा तथा (३) बैगनी, नीला और आसमानी।

ओषधि-निर्माण-विधि—साधारणतया ओषधि-निर्माणके लिये उसी रंगकी काँचकी साफ बोतल ली जाती है। विभिन्न रंगकी बोतल न मिलनेपर उस रंगका पतला कागज सादी शीशीपर पूरा चिपका दिया जाता है, अतः वह उस रंगका काम दे देती है। सात शीशी लेनेकी जगह प्रत्येक परिवारसे एक-एक रंग लेनेपर तीन बोतलोंसे काम चल जाता है। ये तीन रंग हैं—(१) नारंगी, (२) हरा तथा (३) नीला। इनमेंसे नारंगी कफ-जन्य रोगोंके लिये तथा हरा वातज रोगोंके लिये और नीला पित्तज रोगोंके लिये है। इस प्रकार वात, पित्त और कफ—इन त्रिदोषज रोगोंकी चिकित्सा हो जाती है।

बोतलोंको अच्छी तरह साफ करनेके बाद उनमें शुद्ध जल भरा जाता है। बोतलोंको कम-से-कम तीन अंगुल खाली रखे। तत्पश्चात् उन्हें ढक्कन लगाकर बंद कर दे। शुद्ध जलसे भरी इन बोतलोंको धूपमें छःसे आठ घंटे रखनेपर दवा तैयार हो जाती है। धूपमें बोतलोंको इस प्रकार रखे कि एक बोतलकी छाया दूसरे रंगकी बोतलपर न पड़े। रात्रिमें बोतलोंको अंदर रख ले। इस प्रकार बनी हुई दवाको दिनमें तीन या चार बार पिलावे। एक बार बनी दवाको चार या पाँच दिन सेवन कर सकते हैं। पुनः दुबारा बोतलोंमें दवा बना ले।

साधारणतया नारंगी रंगकी दवा भोजनके बाद पंद्रहसे तीस मिनटके अंदर लेनी चाहिये। हरे और नीले रंगकी दवाएँ खाली पेट या भोजनसे एक घंटा पहले ले। हरे रंगकी दवा प्रातः खाली पेट छः-से आठ औंस ले सकते हैं। यह दवा विजातीय द्रव्योंको बाहर निकालकर शरीरको शुद्ध करती है। इसका विपरीत प्रभाव नहीं होता।

दवाकी मात्रा—आयुके अनुसार चायवाली चम्मचसे एक-से चार चम्मच एक बारमें ले। साधारणतया दवा दिनमें तीन या चार बार ले। तीव्र ज्वर आदिमें आवश्यकतानुसार एक-एक घंटेपर भी दवा ली जा सकती है।

विभिन्न रंगोंकी बोतलोंके पानीका उपयोग

(१) लाल (Red) **रंग**—लाल रंगकी बोतलका पानी अत्यन्त गर्म होता है, अतः इसे पीना वर्जित है। इसको पीनेसे खूनी दस्त या उलटी हो सकती है। इसका प्रयोग प्रायः मालिश करने या शरीरके बाहरी भागमें लगानेके काम आता है। यह आयोडीन (Iodine)-से अधिक गुणकारी है।

यह रक्त एवं स्नायुको उत्तेजित करता है। शरीरमें गर्मी बढ़ाता है। यह सभी प्रकारके वातरोग और कफरोगोंमें लाभ देता है।

(२) नारंगी (Orange) **रंग**—यह रक्तसंचारकी वृद्धि करता है, मांसपेशियोंको स्वस्थ रखता है और मानसिक शक्ति तथा इच्छाशक्तिको बढ़ाता है। बुद्धि और साहसको विकसित करता है। कफ-जन्य रोगोंका नाशक है।

यह कफ-जन्य रोग खाँसी, बुखार, निमोनिया, इनफ्लुएन्जा, श्वासरोग, क्षयरोग, पेटमें गैस बनना, हृदयरोग, गठिया, पक्षाघात, अजीर्ण, एनीमिया, रक्तमें लालकणोंकी कमीवाले रोगोंके लिये लाभप्रद है। माँके स्तनोंमें दूधकी वृद्धि करता है।

(३) पीला (Yellow) **रंग**—यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये अत्युत्तम है। यह हलका रेचक भी है। पाचन-संस्थानको ठीक करता है। यह हृदय एवं उदररोगोंका नाशक है। इसकी प्रकृति उष्ण है, अतः पेचिश आदिमें इसे न ले।

यह पेटदर्द, पेट फूलना, क़ब्ज़, कृमिरोग एवं मेदरोग, तिल्ली, हृदय, जिगर और फेफड़ेके रोगोंमें भी

लाभप्रद है। यह युवा पुरुषोंको तत्काल लाभ देता है। इसका पानी थोड़ी मात्रामें ही लेना चाहिये।

(४) हरा (Green) **रंग**—यह प्रकृतिका रंग है। समशीतोष्ण है। यह शरीर और मनको प्रसन्नता देता है। शरीरकी मांसपेशियोंका निर्माण करता है और उन्हें शक्ति देता है। मस्तिष्क और नाडी-संस्थानको बल देता है। रक्तशोधक है।

यह वातजन्य रोग, टाइफॉइड, मलेरिया आदि ज्वर, यकृत् और गुर्दोंकी सूजन, सभी चर्मरोग, फोड़ा-फुंसी, दाद, नेत्ररोग, मधुमेह, सूखी खाँसी, जुकाम, बवासीर, कैंसर, सिरदर्द, रक्तचाप, एक्जिमा आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(५) आसमानी (Blue) **रंग**—यह शीतल है। पित्त-जन्य रोगोंके लिये विशेष लाभकारी है। यह प्यास और आमाशयिक उत्तेजनाको शान्त करता है। यह अच्छा पोषक टॉनिक और एन्टीसेप्टिक है। सभी प्रकारके ज्वरोंके लिये रामबाण है। रक्त-प्रवाहको रोकता है। कफज रोगोंमें इसका प्रयोग न करे।

यह ज्वर, खाँसी, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, दमा, सिरदर्द, मूत्ररोग, पथरी, त्वचारोग, नासूर, फोड़े-फुंसी, मस्तिष्क आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(६) नीला, गहरा नीला (Indigo) **रंग**—यह भी शीतल है। यह जीवमात्रको जीवनीशक्ति देता है। यह शीतलता और शान्ति देता है। कुछ क़ब्ज़ करता है। शरीरपर इसकी क्रिया अतिशीघ्र होती है।

यह आमाशय, अण्डकोश-वृद्धि, प्रदर, योनिरोग आदि रोगोंमें विशेष उपयोगी है। यह गर्मीके सभी रोगोंको दूर करता है।

(७) बैगनी (Violet) **रंग**—इसके गुण प्रायः नीले रंगके तुल्य हैं। यह रक्तमें लाल कणोंकी वृद्धि करता है। खूनकी कमीको दूर करता है। क्षय-रोगमें विशेष उपयोगी है। इससे अच्छी नींद आती है।

उक्त विवेचनके आधारपर कहा जा सकता है कि सूर्य वस्तुतः चर-अचर जगत्की आत्मा है। नीरोगताके लिये सूर्यकी शरणमें जाना अत्युत्तम है।

रोगोंका यौगिक निदान एवं चिकित्सा

(श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव)

आरोग्य मनुष्य-जीवनमें प्रासव्य चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल है। योग-साधनामें भी व्याधिको योगका सर्वप्रमुख विघ्न माना गया है। अतएव लौकिक या अलौकिक पुरुषार्थके सम्पादनमें समर्थ बने रहनेके लिये आरोग्यवान्—आधि-व्याधिशून्य बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेदके अनुसार स्वस्थ पुरुषका लक्षण है आत्मा, मन एवं इन्द्रियोंके प्रसन्न रहनेके साथ-साथ शरीर-स्थित दोष—अग्नि, धातु, मल एवं क्रियाओंका सम-अवस्थामें रहना—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

समत्व ही योगका एवं सृष्टिव्यवस्थाका मूल आधार है। विषमतासे ही विकारकी उत्पत्ति होती है। सूक्ष्मदृष्टि रखनेवाले ऋषि एवं योगिगण केवल शारीरिक रोग एवं बाह्य वैषम्यपर ही नहीं; अपितु इनके उत्पादक सूक्ष्म शरीरके वैषम्यको भी दृष्टिमें रखते थे तथा उस विषमताको भी उत्पन्न करनेवाले कारणोंको दूरकर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकारके स्वास्थ्य-लाभका उपदेश देते रहे हैं। स्वास्थ्यके विकार कर्मदोष, दुर्वृत्त, प्रज्ञाविकार, रजोगुण एवं तमोगुणका प्रभाव, शरीरगत पञ्चभूतोंमेंसे किन्हींका क्षय, श्वास-प्रक्रियामें विपर्यय, वातादि दोषोंकी वृद्धि, अपथ्य-भोजन आदि कारणोंसे होते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टिसे व्यक्ति या जनपदमें होनेवाले व्याधि—दुःखका कारण प्रज्ञाविकार है। बुद्धि शरीर-सत्ताकी संचालिका है। बुद्धिमें लोभ, मोह, क्रोध, अभिमान आदिकी उत्पत्ति होनेसे व्यक्ति अधर्माचरण करने लगता है। अतः उस अधर्माचरणके फलस्वरूप नाना प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सभी व्यक्ति दुःखी होते हैं। व्यक्तिगत अधर्माचरणका फल व्यक्तिको व्याधिके रूपमें मिलता है एवं समूहरूपमें

किये गये अधर्मका फल जाति, समुदाय, ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र एवं विश्वको व्यापक व्याधियों एवं अन्य उपद्रवोंके रूपमें मिलता है।

हठयोगके अनुसार भौतिक शरीरके दोषोंको दूर करनेके लिये एवं स्वस्थ बने रहनेके लिये षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धारणा एवं ध्यानका आलम्बन लेना चाहिये। षट्कर्मका उपयोग प्रवृद्ध कफ-दोषको दूर करके वात, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको समभावमें स्थापित करनेके लिये होता है। यदि कफ-दोष बढ़ा न हो तो जिस अङ्गमें विकार या अशक्ति प्रतीत हो, उसी अङ्गको बलवान् बनाने या उस अङ्गसे विकारको दूर करनेके लिये षट्कर्मोंमेंसे यथावश्यक दो या तीन अथवा चार कर्मोंका अभ्यास करना चाहिये। धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक तथा कपालभाति—इन छः क्रियाओंको 'षट्कर्म' कहते हैं। धौति-कर्म कण्ठसे आमाशयतकके मार्गको स्वच्छ करके सभी प्रकारके कफरोगोंका नाश कर देता है। यह विशेषरूपसे कफप्रधान कास, श्वास, प्लीहा एवं कुष्ठरोगमें लाभकारी है। वस्ति-कर्मद्वारा गुदामार्ग एवं छोटी आँतके निचले हिस्सेकी सफाई हो जाती है। इससे अपानवायु एवं मलान्त्रके विकारसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका शमन हो जाता है। आँतोंकी गर्मी शान्त होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। आँतोंमें स्थित—संचित दोष नष्ट होते हैं। जठराग्निकी वृद्धि होती है। अनेक उदररोग नष्ट होते हैं। वस्ति-कर्म करनेसे वात-पित्त एवं कफसे उत्पन्न अनेक रोग तथा गुल्म, प्लीहा और जलोदर दूर होते हैं। नेति-कर्म नासिकामार्गको स्वच्छ कर कपाल-शोधनका कार्य करता है। यह विशेषरूपसे नेत्रोंको उत्तम दृष्टि प्रदान करता है और गलेसे ऊपर होनेवाले दाँत, मुख, जिह्वा, कर्ण एवं शिरोरोगोंको नष्ट करता है। त्राटक-कर्मद्वारा नेत्रोंके अनेक रोग नष्ट होते हैं एवं तन्द्रा, आलस्य आदि दोष नष्ट होते हैं। उदररोग एवं अन्य सभी दोषोंका नाश करनेके लिये नौलिक प्रमुख है। यह मन्दाग्निको नष्टकर जठराग्निकी वृद्धि करता है तथा भुक्तान्नको सुन्दर प्रकारसे पचानेकी शक्ति प्रदान करता है। इसका अभ्यास करनेसे वातादि दोषोंका शमन होनेसे चित्त सदा प्रसन्न रहता है। कपालभाति विशेषरूपसे कफ-दोषका शोषण करनेवाली है। षट्कर्मोंका अभ्यास करनेसे जब शरीरान्तर्गत कफ-दोष—मलादिक क्षीण हो जाते हैं, तब प्राणायामका अभ्यास करनेसे अधिक शीघ्र सफलता मिलती है।

जिन्हें पित्तकी अधिक शिकायत रहती है, उनके लिये गजकर्णी या कुंजल-क्रिया लाभदायक रहती है। इस क्रियामें प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होनेके बाद पर्याप्त मात्रामें नमकमिश्रित कुनकुना जल पीकर फिर वमन कर दिया जाता है। इससे आमाशयस्थ पित्तका शोधन होता है। जिन्हें मन्दाग्निकी शिकायत है या जिनका स्वास्थ्य उत्तम भोजन करनेपर भी सुधरता नहीं है, उन्हें अग्निसार नामक क्रियाका अभ्यास करना चाहिये। इस क्रियामें नाभिग्रन्थिको बार-बार मेरु-पृष्ठमें लगाना होता है। एक सौ बार लगा सकनेका अभ्यास हो जानेपर समझना चाहिये कि इस क्रियामें परिपक्वता प्राप्त हो गयी है, यह सभी प्रकारके उदररोगोंको दूर करनेमें सहायक है।

आसनका अभ्यास शरीरसे जडता, आलस्य एवं चञ्चलताको दूर करके सम्पूर्ण स्नायु-संस्थान एवं प्रत्येक अङ्गको पुष्ट बनानेके लिये होता है। इसके अभ्याससे शरीरके अङ्गोंके सभी भागोंमें एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाडियोंमें रक्त पहुँचता है, सभी ग्रन्थियाँ सुचारु रूपसे कार्य करती हैं। स्नायु-संस्थान बलवान् हो जानेपर साधक काम, क्रोध, भय आदिके आवेगोंको सहनेमें समर्थ होता है। वह मानस-रोगी नहीं बनता। शरीरका स्वास्थ्य मस्तिष्क, मेरुदण्ड, स्नायु-संस्थान, हृदय एवं फेफड़े तथा उदरके बलवान् होनेपर निर्भर है। अतः आसनोंका चुनाव इनपर पड़नेवाले प्रभावोंको दृष्टिमें रखकर करना चाहिये। जिसका जो अङ्ग कमजोर हो उसे सार्वाङ्गिक व्यायामके आसनोंका अभ्यास करनेके साथ-साथ उन दुर्बल अङ्गोंको पुष्ट करनेवाले आसनोंका अभ्यास विशेषरूपसे करना चाहिये। ध्यानके उपयोगी पद्मासन आदिको सर्वरोगनाशक इसलिये कहा जाता है कि इन आसनोंसे ध्यान या जपमें बैठनेपर शरीरमें साम्यभाव, निश्चलता, शान्ति आदि गुण आ जाते हैं, जो भौतिक स्तरपर सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेमें सहायक होते हैं। आरोग्यकी दृष्टिसे किये जानेवाले आसनोंमें पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, सर्वाङ्ग, मयूर, भुजंग, शलभ, धनु, कुक्कुट,

आकर्षणधनु एवं पद्म-आसन मुख्य हैं।

आसनोंको शनैः-शनैः किया जाय, जिससे अङ्गों एवं नाडियोंमें तनाव, स्थिरता, संतुलन, सहनशीलता एवं शिथिलता आ सके। अपनी पूर्ववत् स्थितिमें भी धीरे-धीरे ही आना चाहिये। जो अङ्ग रोगी हो, उस अङ्गपर बोझ डालनेवाले आसनोंका अभ्यास अधिक नहीं करना चाहिये। जैसे जिनके पेटमें घाव है या जो स्त्रियाँ मासिक-धर्मसे युक्त हैं, उन्हें उन दिनों पेटके आसन नहीं करने चाहिये। जिस आसनका प्रभाव जिस ग्लैंड्स या नाडी-चक्रपर पड़ता है—आसन करते समय वहीं ध्यान केन्द्रित करना चाहिये तथा गायत्री आदि मन्त्रोंका या तेज, बल, शक्ति देनेवाले मन्त्रोंका यथाशक्ति स्मरण करना चाहिये। एक आसनके बाद उसका प्रतियोगी आसन भी करना चाहिये। यथा—पश्चिमोत्तान-आसनका प्रतियोगी भुजंगासन और शलभासन है। हस्तपादासनका प्रतियोगी चक्रासन है। सर्वाङ्गासनका अभ्यास आवश्यक है। सूर्यनमस्कारको अन्य आसनोंके अभ्यासके पूर्व कर लेना लाभकारी है।

प्राणायामका अभ्यास शरीरस्थ सभी दोषोंका निराकरण कर प्राणमयकोष एवं सूक्ष्म शरीरको नीरोग तथा पुष्ट बनाता है। नाडी-शोधनका अभ्यास करनेके बाद ही कुम्भक प्राणायामोंका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामके सभी अभ्यास युक्तिपूर्वक शनैः-शनैः ही करने चाहिये तथा भस्त्रिका प्राणायामको छोड़कर सभी शेष प्राणायामोंमें रेचक एवं पूरक, दोनोंकी क्रियाएँ बहुत धीरे-धीरे करनी चाहिये। प्रत्येक कुम्भककी अपनी-अपनी दोषनाशक विशेष शक्ति है। अतः प्रवृद्ध दोषका विचार करके ही उसके दोषनाशक कुम्भकका अभ्यास करना चाहिये। सूर्यभेद प्राणायाम पित्तवर्धक, जरादोषनाशक, वातहर, कपालदोष एवं कृमिदोषको नष्ट करनेवाला है। उज्जायी कफरोग, क्रूरवायु, अजीर्ण, जलोदर, आमवात, क्षय, कास, ज्वर एवं प्लीहाको नष्ट करता है। स्वास्थ्य एवं पुष्टिकी प्राप्तिके लिये उज्जायी प्राणायामका विशेषरूपसे अभ्यास करना चाहिये। शीतली प्राणायाम अजीर्ण, कफ, पित्त, तृषा, गुल्म, प्लीहा एवं ज्वरको नष्ट करता है। भस्त्रिका प्राणायाम वात-पित्त-कफ-हर, शरीराग्निवर्धक एवं सर्वरोगहर है। व्यवहारमें संध्योपासनाके उपरान्त एवं जपसे पूर्व नाडी-शोधन, उज्जायी एवं भस्त्रिका प्राणायामका नित्य अभ्यास करनेका प्रचलन है।

रोग-निवारणके लिये स्वर-योगका आश्रय भी लिया जाता है। नीरोगताके लिये भोजन सदा दायाँ स्वर (श्वास) चलनेपर करना चाहिये। वाम स्वर शीतल एवं दक्षिणस्वर उष्ण माना जाता है। इसके अनुसार ही वात एवं कफ-प्रधान रोगोंमें दक्षिण नासिकासे श्वासको चलाया जाता है एवं पित्तप्रधान रोगमें वाम स्वरसे श्वासको चलाया जाता है। सामान्य नियम यह है कि रोगके प्रारम्भकालमें जिस नासिकासे श्वास चल रहा होता है, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास रोग-शमन होनेतक चलाया जाता है। इस स्वर-परिवर्तनसे प्रवृद्ध दोषका संशमन हो जाता है। स्वरयोगकी जानकारीके लिये 'शिवस्वरोदय' एवं 'स्वर-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

मुद्राओंके अभ्यासमें महामुद्रा, खेचरी, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध एवं विपरीतकरणी मुख्य हैं। महामुद्रा क्षय, कुष्ठ, आवर्त, गुल्म, अजीर्ण आदि रोगों एवं सभी दोषोंको नष्ट करती है। इसके अभ्याससे पाचन-शक्तिकी प्रचण्ड वृद्धि होकर विषको भी पचानेकी क्षमता प्राप्त होती है। महामुद्राके साथ महाबन्ध एवं महावेधका भी अभ्यास किया जाता है। इन तीनोंके अभ्याससे वृद्धत्व दूर होता है एवं अनेक शारीरिक सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। खेचरी मुद्राके अभ्याससे शरीरमें अमृतत्व धर्मकी वृद्धि होती है। सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। शरीरकी सोमकलाका विकास होता है तथा देह-क्षयकी प्रक्रिया रुक जाती है। उड्डीयानका अभ्यास उदर एवं नाभिसे नीचे स्थित अङ्गोंके रोगोंको दूर कर पुरुषत्वकी अभिवृद्धि करता है। जननाङ्ग एवं प्रजननाङ्गके रोगोंसे पीडित नर-नारियोंको उड्डीयानबन्धका विशेष अभ्यास करना चाहिये। जालन्धरबन्धसे कण्ठ-रोगों एवं शिरोरोगोंका नाश होता है तथा मूलबन्धका अभ्यास गुदा एवं जननेन्द्रियपर, प्राण एवं अपानपर नियन्त्रण प्रदान करता है। उड्डीयान एवं जालन्धरबन्धका अभ्यास तो प्राणायामके समय ही किया जाता है, परंतु मूलबन्धका अभ्यास सतत करना चाहिये। विपरीतकरणी मुद्राका ठीक-ठीक अभ्यास वलीपलितको दूर कर

युवावस्था प्रदान करता है।

पूर्वोक्त मुद्राओंके अतिरिक्त घेरण्डसंहिताप्रोक्त कुछ अन्य मुद्राओंका अभ्यास भी रोगनाश, वलीपलितविनाश एवं स्वास्थ्य-लाभके लिये उपयोगी है। इनमेंसे नभोमुद्रा एवं माण्डूकीमुद्रा तालुस्थित अमृतपानमें सहायक होनेके कारण सभी रोगोंका नाश करनेवाली है। आश्विनीमुद्रा गुह्यरोगोंका नाश करनेवाली, अकालमृत्युको दूर करनेवाली तथा बल एवं पुष्टि प्रदान करनेवाली है। पाशिनीमुद्रासे बल एवं पुष्टिकी प्राप्ति होती है। तड़ागीमुद्रा एवं भुजंगिनीमुद्रा—ये दोनों ही उदरके अजीर्णादि रोगोंको नष्टकर दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं।

रोगोंको दूर करनेमें ध्यान अथवा चिन्तनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यानसे शरीर, प्राण, मन, हृदय एवं बुद्धिमें शान्ति, पवित्रता एवं निर्मलता आती है। 'सदा प्राणिमात्रके कल्याणका विचार करनेसे एवं सभी सुखी हों, नीरोग हों, शान्त हों'—इस प्रकारकी भावनाओंकी तरङ्गोंको सभी दिशाओंमें प्रसारित करनेसे स्वयंको सुख तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है। व्यक्ति जैसा चिन्तन करता है, प्राय: वह वैसा बन जाता है। 'मैं नीरोग हूँ, स्वस्थ हूँ'—ऐसा चिन्तन निरन्तर दृढ़तापूर्वक करते रहनेसे आरोग्य बना रहता है। इसे आत्मसम्मोहन 'ऑटो सजेशन' की विधि कहते हैं। इसी प्रकार प्रबल संकल्पशक्तिके द्वारा अपने या दूसरेके रोगोंको भी दूर किया जाता है। रोगनिवारणके लिये प्रमुख बात यह है कि रोग होनेपर उसका चिन्तन ही न करे, उसकी परवाह ही न करे। रोगका चिन्तन करनेसे रोग बद्धमूल हो जाता है एवं व्यक्तिका मनोबल दुर्बल हो जाता है। मानसिक रोगोंका संकल्पशक्ति एवं प्रज्ञाबलसे निवारण करना चाहिये एवं शारीरिक रोगोंका औषधोंसे। इन रोगोंके उन्मूलनमें यौगिक साधनोंका अद्भुत योगदान रहा है।

शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे मुक्ति चाहनेवालोंको योग-क्रियाओंका अभ्यास करनेके साथ-साथ रोगोत्पादक सभी मूल कारणोंका त्याग करना चाहिये तथा अपने लिये अनुकूल एवं चिकित्साशास्त्रद्वारा निर्दिष्ट सात्त्विक पथ्य, सदाचार एवं सत्कर्मका सेवन करना चाहिये। यथासम्भव अनिष्ट-चिन्तनसे बचना चाहिये तथा चित्तको राग-द्वेष-मोहादि दोषोंसे दूर करना चाहिये। सम्पूर्ण दु:खोंका मूल कारण तमोगुणजनित अज्ञान, लोभ, क्रोध तथा मोह है। त्रिगुणके प्रभाव तथा अज्ञानके बन्धनसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय योग है तथा योगबलसे भी बड़ी शक्ति है भगवान्‌की अनुग्रहशक्ति।

अतएव अहंता-ममताका त्याग करके भगवच्चरणोंका एकमात्र आश्रय लेकर योगसाधना करनेसे शारीरिक व्याधिके साथ-साथ त्रिविध ताप एवं भवव्याधि भी कट जाती है और ऐसा साधक पूर्णतम आनन्दको प्राप्त करनेमें सर्वथा समर्थ हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है?

(डॉ० श्रीविमलकुमारजी मोदी, एम०डी०, एन०डी०)

जिन लोगोंने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके आधारभूत सिद्धान्तोंको नहीं समझा है, वे ऐसा कुछ समझते हैं कि यह कुछ खब्तों और वादोंका संग्रहमात्र है—कहींकी ईंट और कहींका रोड़ा लेकर भानमतीका कुनबा जोड़ा गया है और जो लोग इसके सिद्धान्तों और तथ्योंका प्रचार करते हैं, वे खब्ती हैं। कारण यह है कि वर्तमान पीढ़ीपर 'विज्ञान' शब्दका जादू इस प्रकार काम कर गया है कि लोग अपने शरीरमें निहित आरोग्यदायिनी प्राकृतिक शक्तियोंके सम्बन्धमें सरल, स्पष्ट और तर्कपूर्ण तथ्योंको सुनने तथा समझनेके लिये तैयार ही नहीं होते।

'प्रकृतिद्वारा रोगोपशमन' शब्दोंका प्रयोग उस आरोग्यदायिनी शक्तिका द्योतन करनेके लिये किया जाता है, जो प्रत्येक जीवित प्राणीके शरीरमें अन्तर्निहित है। न तो यह कुछ वादोंका संग्रहमात्र है और न ऐसा कोई खब्त ही है, जो प्रचलित हो गया है। यह तो उसी समयसे व्यवहारमें आ रहा है, जबसे इस पृथ्वीपर जीवनका आरम्भ हुआ। प्राचीन कालमें आरोग्य-प्राप्तिका एकमात्र उपचार समझकर ही इसका आश्रय लिया जाता था; पर सभ्यता और तथाकथित विज्ञानके आगमनसे इसका परित्याग कर दिया गया।

आधारभूत सिद्धान्त

आरोग्य-लाभकी प्राकृतिक प्रणालीका अर्थ भलीभाँति समझनेके लिये इसके आधारभूत सिद्धान्तोंको मनमें अच्छी तरह बैठा लेना आवश्यक है। शरीर अपनी स्वच्छता, पुनर्निर्माण और क्षति-पूर्ति-जैसी कुछ प्रक्रियाओंद्वारा प्राकृतिक रूपमें स्वास्थ्य-प्राप्तिका निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। घावोंको भरकर और टूटी हुई अस्थिको जोड़कर प्रकृति अपनी क्षति-पूर्तिकी प्रवृत्तिका परिचय स्पष्टरूपसे दे देती है। जिस शक्तिके द्वारा सब पदार्थोंका नियमन होता है, वह सर्वदा कार्यरत रहती है और उसके अभावमें जीवनका अस्तित्व क्षणभर भी स्थिर नहीं रह सकता। यह मानव-शरीरमें ही नहीं, बल्कि पृथ्वीपर विद्यमान हर एक पदार्थ और जीवधारीके अंदर कार्य करती रहती है और हम चाहे जो कुछ करें, सोचें या विश्वास रखें, यह अपना काम बराबर करती जाती है।

यह पद्धति इस बातकी असंदिग्धरूपसे शिक्षा देती है कि शरीरमें जो भी विकार या बीमारी होती है, वह वस्तुतः शरीरके प्राकृतिक रूपमें आत्म-परिष्कारका प्रयत्नमात्र है। यदि जनताका मस्तिष्क तथाकथित विज्ञान और रोगोत्पत्तिके कारणोंके मूलमें कीटाणुओंके होनेके सिद्धान्तसे, जिसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित किया जाता है और चिकित्सक तथा जनसाधारण भी अनुचितरूपमें समझे हुए हैं, अत्यधिक प्रभावित न हो गया होता तो वह प्राकृतिक प्रणालीको स्वीकार कर इससे अवश्य सहायता लेती।

कीटाणु और रोग

इस स्थलपर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली कीटाणुओंके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं करती; पर इसका कहना यह है कि वे रोगकी उत्पत्तिके कारण ही नहीं होते, जिसके लिये उनको इतना बदनाम किया जाता है। प्राकृतिक प्रणालीके अनुसार रोगके कीटाणु गंदगी और विषाक्त पदार्थके मौजूद होनेपर ही प्रकट होते हैं और बढ़ते हैं। शरीर तबतक किसी संक्रामक रोगसे आक्रान्त नहीं हो सकता, जबतक उस विशेष रोगके कीटाणुओंके बढ़ने योग्य पहलेसे क्षेत्र तैयार न हो। रोगोत्पत्तिके कारणोंके सम्बन्धमें प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीका सिद्धान्त ज्यादा गहराईतक पहुँचता है। यह इस बातकी शिक्षा देता है कि सर्दी, बुखार, सीने या किसी अङ्गमें जकड़न, सूजन अथवा जलन, ग्रन्थिशोथ आदि सभी तीव्र रोग, जिनमेंसे प्रत्येकपर प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीने एक स्वतन्त्र रोग होनेका 'लेबल' लगा रखा है, एक ही-जैसे हैं अर्थात् वे सभी शरीरमें गंदगी एकत्र होने और उसके विषाक्त होनेके स्वाभाविक परिणाम हैं। उसका यह भी कहना है कि तीव्र रोग विषको प्रभावहीन कर उसे बाहर निकालनेके प्रकृतिके प्रयत्नका प्रकट चिह्न है। यदि उसे निकालना सम्भव न हुआ तो प्रकृति उसे एक जगह अलग कर देनेका प्रयत्न करती है, जिससे वह हानिकर न हो।

प्रकृतिको सहायता

प्रकृतिके इस शक्तिके साथ मिलकर कार्य करना या उसके विरुद्ध आचरण करना बहुत कुछ हमारी इच्छापर निर्भर है; पर यदि इस विषयपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो प्रकृतिके साथ मिलकर काम करना ही हमारे लिये श्रेयस्कर होगा, इसलिये उपचारसम्बन्धी जो प्रणाली काममें लायी जाय उसका शरीर-विज्ञानके सिद्धान्तकी दृढ़ नींवपर टिकना आवश्यक है और जिसे हम शरीरका प्राकृतिक नियम समझ रहे हैं, उसके कार्यान्वित होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आनी चाहिये। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये प्राकृतिक चिकित्सक तीव्र रोगोंमें, जबकि शारीरिक क्रियाकी दृष्टिसे शरीरको पूर्ण विश्रामकी जरूरत मालूम होती है, खानेसे परहेज कराते हैं और जीर्ण रोगोंमें विकारको बाहर निकालनेके लिये प्रकृतिको सहायता देनेके विचारसे आवश्यकताके अनुसार या तो उपवास कराते हैं या केवल फल अथवा शाकका रस देकर आंशिक उपवास कराते हैं।

सबसे बड़ी प्रयोगशाला

हमें यह समझकर कि नीरोग करनेकी शक्ति उपचारमें है, कभी अपनेको भुलावेमें नहीं रखना चाहिये। आरोग्यतापर हमेशा प्रकृतिका ही विशेषाधिकार रहता है। शरीरकी निर्बलता या विकार दूर करनेमें प्रकृतिको सहायता पहुँचानेके लिये हमें बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओंमें प्रयोगात्मक अनुसंधान-केन्द्रों या दवाएँ

तैयार करनेके लिये व्यापारिक ढंगपर चलाये जानेवाले कारखानोंकी जरूरत नहीं प्रतीत होती। प्रकृतिने इस शरीरको सबसे बड़ी प्रयोगशालाके रूपमें तैयार किया है, जिसमें रासायनिक प्रक्रियाएँ इतने ऊँचे शिखरपर पहुँची हुई हैं कि हमारी दृष्टि वहाँ पहुँचनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाती है और जिसमें रक्षणात्मक क्षमताके साधन सर्वदा उचित नियन्त्रणमें रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली इस मतका प्रचार करती है कि रोगका सिर्फ एक कारण होता है। यह जीवनयापन और आरोग्य-लाभके लिये जिस ढंगका प्रतिपादन करती है, वह वैज्ञानिक होनेके साथ ही विवेकपूर्ण एवं सरल भी है और स्वास्थ्य-लाभके लिये जिसका अर्थ मस्तिष्क तथा शरीरका एक होकर या अखण्डरूपमें रहना है—स्वयं अपनेमें और प्राकृतिक शक्तियोंके साथ सामञ्जस्य होना आवश्यक बतलाती है।

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्त

(डॉ० श्रीशरदचन्द्रजी त्रिवेदी, एम०डी०)

शरीरमें दूषित, विषाक्त एवं विजातीय पदार्थोंके एकत्र होनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन पदार्थोंके एकत्र होनेका मुख्य स्थान पेट है। इसलिये यदि पेट स्वस्थ है तो हम भी स्वस्थ हैं और पेट बीमार तो हम बीमार। जो भोजन हम लेते हैं उसमें ७५ प्रतिशत क्षारतत्त्व एवं २५ प्रतिशत अम्लतत्त्व होना चाहिये। यदि भोजनमें २५ प्रतिशतसे अधिक अम्लीय आहार लिया जाता है तो रक्तमें अधिक खटाई हो जाती है, इस कारण वह दूषित हो जाता है। शरीर इस दूषित पदार्थको पसीने एवं मूत्रद्वारा अंदरसे बाहर निकालनेकी चेष्टा करता है। यदि बाहर नहीं निकलता है तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार जो आहार (भोज्य पदार्थ) पच नहीं पाता अर्थात रस-रक्तमें परिवर्तित नहीं हो पाता, वह शरीरके लिये विजातीय पदार्थ है। उसे बाहर निकाल देना चाहिये। उसका कुछ अंश भी यदि शरीरमें रह जाय तो वह रक्त-संचरणके द्वारा समस्त शरीरमें फैलकर दूषित विकार एवं रोग उत्पन्न करता है। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा इन्हीं विजातीय पदार्थोंको हटाकर शरीरको स्वस्थ किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें पञ्चमहाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाशद्वारा चिकित्सा की जाती है। बिना औषधके मिट्टी, पानी, हवा (एनिमा), सूर्य-प्रकाश, उपवास एवं फलों, सब्जियोंद्वारा चिकित्सा की जाती है। आहार, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्यापर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रकृतिके निकट रहनेका अधिकाधिक प्रयास किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें मिट्टी, जल, धूप एवं उपवासका उपयोग—

(१) मिट्टी-चिकित्साका उपयोग

इस पञ्च-भूतात्मक शरीरमें मिट्टी (पृथ्वीतत्त्व)-की प्रधानता है। मिट्टी हमारे शरीरके विषों, विकारों, विजातीय पदार्थोंको निकाल बाहर करती है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। मिट्टी विश्वकी महानतम औषधि है।

मिट्टी-चिकित्साके प्रकार—(क) मिट्टीयुक्त जमीनपर नंगे पाँव चलना—स्वच्छ धरतीपर, बालू, मिट्टी या हरी दूबपर प्रातः-सायं भ्रमण करनेसे जीवनी-शक्ति बढ़कर अनेक रोगोंसे लड़नेकी क्षमता प्रदान करती है।

(ख) मिट्टीके बिस्तरपर सोना—धरतीपर सीधे लेटकर सोनेसे शरीरपर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति शून्य हो जाती है। स्नायविक दुर्बलता, अवसाद, तनाव, अहंकारकी भावना दूर होकर नयी ऊर्जा एवं प्राण शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। इसके लिये सीधे धरतीपर या पलंगपर आठ इंचसे बारह इंचतक मोटी समतल बालू बिछाकर सोना चाहिये। प्रारम्भमें थोड़ी कठिनाई होती है, परंतु अभ्यास करनेसे धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है।

(ग) सर्वाङ्गमें गीली मिट्टीका लेप—सर्वप्रथम किसी अच्छे स्थानसे चिकनी मिट्टीको लाकर उसे कंकड़-पत्थररहित करके साफ-स्वच्छ करनेके बाद कूट-पीसकर छानकर शुद्ध जलमें बारह घंटेतक भिगो दे। उसके बाद आटेकी तरह गूँदकर मक्खन-सदृश लोई

बनाकर समस्त शरीरपर इस मुलायम मिट्टीको आधा सेमी० मोटी परतके रूपमें पेट, पैर, रीढ़, गर्दन, चेहरा, जननाङ्गों और सिरपर लेप करे। इसके बाद पौन घंटासे एक घंटातक धूप-स्नान ले। मिट्टी सूखनेसे त्वचामें खिंचाव होनेसे वहाँका व्यायाम होता है और रक्त-सञ्चार तीव्र होकर पोषण मिलता है। धूप-स्नानसे मिट्टीको पूर्णतः सुखाकर भलीभाँति स्नान करके विश्राम करे।

मिट्टीकी पट्टी तैयार करनेकी विधि—भुरभुरी चिकनी मिट्टी या काली मिट्टी किसी अच्छे स्थानसे लेकर उसे कूटकर एक-दो दिन धूपमें सुखा दे। कंकड़-पत्थर निकालकर साफ कर ले। इसे कूट-पीसकर छानकर बारह घंटेतक शुद्ध पानीमें भिगो दे। बारह घंटेके बाद लकड़ीकी करणी (पलटा)-से अच्छी तरह गूँदकर मक्खनकी तरह मुलायम कर ले। मिट्टीको इतना ही गीला रखे कि वह बहे नहीं (आटेके ढीलेपनसे थोड़ी कड़ी रखनी चाहिये)। मिट्टीकी पट्टीके लिये खादीका मोटा एवं सछिद्र कपड़ा अथवा जूटका टाट (पल्ली) काममें ले। अलग-अलग अङ्गोंके अनुसार बने साँचे (ट्रे)-में लकड़ीके पलटेसे मिट्टीको रखकर आधा इंच मोटी पट्टी बनावे। साँचा नहीं हो तो पत्थरकी शिला या लकड़ीके चौकोर पाटे (चौकी)-पर रखकर पट्टी बनावे।

इस पट्टीको पेट, रीढ़, सिर आदिपर सीधे सम्पर्कमें रखे। जिन रोगियोंको असुविधा हो तो साँचेमें नीचे खादीका सछिद्र कपड़ा या टाटकी एक तह बिछाकर उसपर मिट्टीकी पट्टी बनाकर चारों ओरसे पैक करके रखे। रोगीके अङ्गपर समतल तहवाला हिस्सा रखे। पट्टी रखनेके बाद ऊपरसे ऊनी वस्त्र या मोटे कपड़ेसे ढक दे। प्रत्येक रोगीका मिट्टी-पट्टीवाला वस्त्र अलग-अलग रखे। एक बार काममें ली हुई मिट्टीको दोबारा काममें नहीं ले। ठंडी मिट्टीकी पट्टी देनेसे पूर्व उस अङ्गको सेंकद्वारा किञ्चित् गरम कर ले। दुर्बल रोगी, श्वासरोग, दमा, जुकाम, तीव्र दर्द, साइटिका, आर्थराइटिस, गठिया, आमवात, गर्भावस्था, बच्चोंको यह प्रयोग यदि अरुचिकर एवं असुविधाजनक लगे तो नहीं करावे।

अङ्गोंके अनुसार अलग-अलग पट्टी बनाये

(अ) रीढ़की मिट्टी-पट्टी—डेढ़ फीट लम्बी एवं तीन इंच चौड़ी मिट्टीकी पट्टी बनाकर ग्रीवा-कशेरुकासे कटि-कशेरुकातक रखे।

(ब) सिरकी मिट्टी-पट्टी—८-१० इंच लम्बी, ४-६ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर सिरपर टोपीकी तरह रखे या कुछ छोटी बनाकर ललाटपर रखे।

(स) आँखकी मिट्टी-पट्टी—१० इंच लम्बी, ४ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी बनाकर आँखोंपर रखे।

(द) कानकी मिट्टी-पट्टी—कानोंमें रूई लगाकर कानपर गोलाकार मिट्टीकी पट्टी या लेप कर सकते हैं।

(य) पेटकी मिट्टी-पट्टी—एक फुट लम्बी, ६-८ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर नाभिसे लेकर नीचेतक, मध्य उदरपर रखनी चाहिये।

रीढ़, सिर तथा पेट तीनोंपर एक साथ मिट्टीकी पट्टी रखनेसे शिरःशूल (सिरदर्द), हाई ब्लडप्रेशर, तेज बुखार, मूर्च्छा, अनिद्रा, नपुंसकता, मस्तिष्क-ज्वर, स्नायु-दौर्बल्य, अवसाद, तनाव, मूत्ररोग इत्यादिमें लाभ होता है। आँखपर मिट्टी-पट्टी रखनेसे आँखोंके समस्त रोग, जलन, सूजन, दृष्टि-दोष दूर होते हैं। गलेकी सूजन, टांसिलाइटिस, स्वरयन्त्रकी सूजन (लैरिंजाइटिस) आदिमें स्थानीय वाष्प देकर गरम मिट्टीकी पुल्टिस बाँधे।

पेट, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, कमर, जननाङ्ग, गुदाद्वार, अग्न्याशय आदि अङ्गोंपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे उनसे सम्बन्धित रोगोंमें लाभ मिलता है। पेटके प्रत्येक रोगमें पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी अवश्य देनी चाहिये।

(२) जल-चिकित्साके उपयोग

जल-चिकित्साकी विधियाँ—सामान्यतः हमारे शरीरमें ५५ प्रतिशतसे ७५ प्रतिशततक जल होता है। अतः जलका महत्त्व स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत अधिक है—

(अ) गरम-ठंडा सेंक—सभी तरहके दर्द एवं सूजनमें इसके प्रयोगसे तुरंत लाभ मिलता है। सर्वप्रथम एक पात्रमें खूब गरम पानी तथा दूसरे पात्रमें खूब ठंडा (बर्फीला) पानी ले। तीन रोयेंदार तौलिये ले। गर्म पानीमें एक तौलियेके दोनों किनारे पकड़कर मध्यसे डुबोकर भिगो-निचोड़कर पीडित अङ्गपर रखे। ऊपर सूखा तौलिया ढक दे। तीन मिनटके बाद दूसरे तौलियेको ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर दो मिनटतक

पीडित अङ्गपर रखे। यह क्रम कम-से-कम पाँच बार करे। सेंक हमेशा गर्मसे प्रारम्भ करके ठंडेपर समाप्त करना चाहिये। समाप्तिके बाद सूखे तौलियेसे शुष्क घर्षण देकर स्थानीय लपेट बाँधकर आराम कराये। गर्म-ठंडे सेंकसे रक्त-वाहिनियाँ संकुचित प्रसरित होती हैं। विजातीय पदार्थ बाहर निकलते हैं। पेटके रोगोंमें गर्म-ठंडा सेंक एक मुख्य उपचार है। इससे चमत्कारिक लाभ मिलता है।

(ब) मेहन-स्नान (जननेन्द्रिय प्रक्षालन)— इस स्नानके लिये बैठनेके लिये ऐसा स्टूल हो जो सामनेकी ओरसे अर्द्धचन्द्राकारमें कटा हो ताकि उसपर बैठकर जननेन्द्रियपर पानी डालते समय नितम्ब या अन्य अङ्गपर पानीका स्पर्श नहीं हो सके। स्टूलके ठीक सामने उसकी ऊँचाईसे एक इंच नीचे ठंडे पानीसे भरा हुआ बड़ा पात्र (बेसिन) या चौड़े मुँहवाली बालटी रखनी चाहिये।

(स) कटि-स्नान—इसके लिये एक विशेष प्रकारका कुर्सीनुमा टब (लोहा, फाइबर, ग्लास या प्लास्टिक) लेकर उसमें पानी भरकर रोगीको बिठा देते हैं। रोगीके पैर टबसे बाहर एक पट्टेपर रखवा दिये जाते हैं। टबका पानी कमरसे लेकर जाँघोंके बीचवाले भागको डुबोकर रखता है। इस दौरान रोगी रोयेंदार तौलियेसे नाभि, पेड़ू, नितम्ब तथा जाँघोंको पानीके अंदर रगड़ते हुए मालिश करे।

रोगी निर्बल हो तो पैरोंको चौड़े मुँहके गर्म पानीके पात्रमें रखवाये एवं गर्दनतक कम्बल या गर्म कपड़ेसे ढक दे। ठंडे पानीका तापमान ५०° फा० से ८०° फा० तक रखना चाहिये। प्रारम्भमें सहने योग्य पानी रखे। थोड़ी देर बाद बर्फका पानी डालकर पानीका तापमान कम करते जाय। टबमें पानी उतना ही रखे कि उसमें रोगीके बैठनेपर पानी नाभितक आ जाय। कटि-स्नानसे पूर्व तथा कटि-स्नानके दौरान शरीरका कोई अन्य अङ्ग नहीं भीगना चाहिये। भोजन एवं कटि-स्नानके मध्य तथा कटि-स्नान एवं साधारण स्नानके मध्य एक घंटेका अन्तर रखना आवश्यक है। कटि-स्नान रोगीकी सहनशक्ति, स्थितिके अनुसार तीन मिनटसे प्रारम्भ करके बीस मिनटतक देना चाहिये।

कम ठंडे पानीका कटि-स्नान अधिक देरतक देनेकी अपेक्षा अधिक ठंडे पानीका कटि-स्नान थोड़ी देरतक देना ज्यादा लाभदायक होता है। ठंडे कटि-स्नानसे पूर्व तथा बादमें सूखे तौलियेसे घर्षण-स्नान करके शरीरको किञ्चित् गर्म कर लेना चाहिये, जिससे ठंडे पानीका प्रतिकूल असर नहीं पड़े। तीव्र कमर-दर्द, निमोनिया, खाँसी, अस्थमा (दमा), साइटिका, गर्भाशय-मूत्राशय-जननेन्द्रिय तथा आन्त्रकी तीव्र सूजनमें कटि-स्नान वर्जित है।

(द) वाष्प-स्नान—वाष्प-स्नानके लिये आजकल कई तरहके बने-बनाये यन्त्र मिलते हैं। सम्पूर्ण वाष्प-स्नानके लिये केबिननुमा पेटी होती है, जिसमें वाष्प निकलनेके लिये छोटे-छोटे छिद्र तथा ट्यूब लगे होते हैं। इन छिद्रोंका सम्बन्ध ताँबेकी या लोहेकी पतली पाइपद्वारा बॉयलर (वाष्प-उत्पादक यन्त्र)-से होता है। बॉयलर चलानेपर वाष्प केबिनमें या वाष्प-कक्षमें भर जाती है।

विधि—रोगीका सारा शरीर केबिनमें होता है। गर्दनके ऊपरका हिस्सा बाहर होता है। वाष्प-स्नानसे पूर्व सिर, चेहरा तथा गलेको ठंडे पानीसे धोकर सिरपर गीली तौलिया रखे। रोगीको नीबू, पानी, शहद या संतरेका रस १००-२०० मि०ली० तक पिला दे। पंद्रह-पंद्रह मिनटतक वाष्प-स्नान ले। इस दौरान अङ्ग-प्रत्यङ्गकी मालिश करनी चाहिये, जिससे विजातीय तत्त्व घुलकर त्वचासे बाहर निकलते हैं। वाष्प-स्नानके बाद ठंडे पानीसे स्नान करना चाहिये।

घरपर वाष्प-स्नान लेनेके लिये बंद कमरेमें मूँजकी चारपाईपर रोगीको लिटाकर कम्बलसे चारों ओर ढक दे तथा खाटके नीचे दो पतीलोंमें पानी भरकर उबाले। एक पात्र पैरोंकी तरफ और दूसरा पीठके नीचे रखे। रोगी करवट बदल-बदलकर सारे शरीरपर वाष्प-स्नान ले।

(य) स्थानीय वाष्प-स्नान—आजकल रेडीमेड फेशियल सोना बाथ-जैसे यन्त्र बाजारमें मिलते हैं। इसके अलावा घरपर प्रेशर-कुकरकी सीटी हटाकर उसमें सात-दस फुट लम्बी पारदर्शक रबड़की पाइप लगाये। प्रेशर-कुकरको आधा पानीसे भरकर गर्म करे। भाप बननेपर किसी कपड़ेसे पाइपके दूसरे छोरको पकड़कर अलग-

अलग अङ्गोंपर स्थानीय वाष्प दे। १०-१५ मिनटतक ही स्थानीय वाष्प ले। इसके तुरंत बाद ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर तेजीसे घर्षण-स्नान देकर सूती-ऊनी लपेट बाँधे।

(र) गर्म-पाद-स्नान—दो टब या बालटी ले। उनमें गर्म पानी भरे। फिर सिर, चेहरा, गला धोकर सिरपर गीली तौलिया रखकर स्टूलपर बैठ जाय। दोनों पैरोंको बालटीमें रखे। गर्दनसे लेकर टबतकके हिस्सेको गर्म कम्बलसे इस तरह ढक दे कि भाप बाहर नहीं निकले। जबतक रोगीको पसीना नहीं आये, तबतक गर्म-पाद-स्नान दे। पसीना नहीं आये तो गर्म पानी पिलायें। टबमें पानी घुटनोंतक रखे। १०-१५ मिनटमें पसीना आने लगता है। पसीना आनेके बाद ठंडा स्नान, ठंडा घर्षण-स्नान अथवा स्पंज बाथ देकर आराम कराये। गर्म-पाद-स्नानसे रक्तप्रवाह पैरोंकी तरफ नीचे आता है। फलतः यकृत् और गुर्दे सक्रिय होकर दूषित विषोंको तेजीसे निकालने लगते हैं।

(ल) सूखा-घर्षण—एक अच्छी किस्मका रोयेंदार सूखा तौलिया लेकर हलके हाथसे सर्वप्रथम बायें हाथपर फिर क्रमशः दायें हाथपर, दायें पैरपर, बायें पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब आदि समस्त अङ्गोंका घर्षण करे। इससे रक्त-संचरण तीव्र होकर त्वचा लाल हो जाती है। तत्पश्चात् ठंडे पानीसे स्नान कराये।

(व) ठंडा स्पंज-स्नान—बर्फका सादा पानी, ताजा पानी अथवा नीमके पत्तोंसे युक्त उबला पानी रोगीकी स्थितिके अनुसार तीन रोयेंदार तौलिये पानीमें बारी-बारीसे भिगोकर निचोड़कर घर्षण-स्नान करे। सबसे पहले बायाँ हाथ, दायाँ हाथ, दायाँ पैर, बायाँ पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब, गुदाद्वार, जननेन्द्रिय आदि अङ्गोंपर क्रमशः घर्षण-मालिश करे। पानी गंदला हो जानेपर बदलते रहे। अन्तमें सूखे तौलियेसे सारे शरीरका सूखा घर्षण करके शरीरको गर्म कर दे और विश्राम कराये।

(श) गीली चादरकी लपेट—दो कम्बल, एक सूती सफेद चादर, एक पतला कपड़ेका टुकड़ा, एक प्लास्टिककी चादर तथा दो तौलिये ले। पलंग या जमीनपर दोनों कम्बल बिछा दे। इसके ऊपर सफेद चादरको नीमके पत्तोंसे युक्त उबले पानीमें भिगो-निचोड़कर बिछाये। रोगीका सिर, चेहरा ठंडे पानीसे धो-पोंछकर एक गिलास गर्म पानी पिलाये तथा सिरपर गीली तौलिया बाँधे। लँगोट या कौपीन बाँधकर रोगीको निर्वस्त्र लिटा दे। पहले हाथोंको बाहर निकालकर सूती गीली चादरमें धड़को लपेट दे, फिर दोनों पैरोंको अच्छी तरह लपेटकर हाथों एवं गर्दनको भी लपेट दे ताकि सारा शरीर गीली चादरके सम्पर्कमें ही रहे। ऊपरसे कम्बलको भलीभाँति लपेट दे।

फिर प्लास्टिककी चादर भी लपेटकर ऊपर कम्बल लपेट सकते हैं। (यदि पसीना नहीं आ रहा हो तो) पाँचसे पंद्रह मिनटमें शरीरसे गर्मी निकलकर पसीना आने लगता है। त्वचा सक्रिय होकर रक्त-संचार तीव्र होने लगता है। इस उपचारसे यकृत्, प्लीहा, अग्न्याशय, पीलिया, पेटके रोग ठीक होते हैं। गीली चादरकी लपेट रोगीकी शारीरिक स्थितिके अनुसार १५—३० मिनटतक दे सकते हैं। गीली चादर-लपेटके बाद सामान्य स्नान कराये। लपेटके दौरान सिर-दर्द, चक्कर, मूर्च्छाके लक्षण दिखे तो उपचार बंद कर दे। पाण्डु (रक्ताल्पता), दुर्बलता, हृदय-रोग, अस्थमा, निमोनिया, गठिया आदि स्थितिमें गीली चादर-लपेट नहीं देनी चाहिये।

(ष) पेटकी लपेट—छः फुट लम्बी एवं बारह इंच चौड़ी सूती कपड़े एवं ऊनी कपड़ेकी पट्टी बनाये। ऊनी पट्टीके दूसरे सिरेपर डोरी बँधी हो। सर्वप्रथम पेटपर सेंक या स्थानीय भाप देकर उसे गर्म करे एवं सूती कपड़ेको पानीमें भिगो-निचोड़कर तीन बार पेटपर लपेट दे। सूती कपड़ेको ठंडे पानीमें भिगोये। इसके ऊपर सूखी-ऊनी लपेट इस तरहसे बाँधे कि नीचेकी सूती लपेट नहीं दिखे और वायु अवरुद्ध हो जाय। लपेटको इतना ढीला नहीं छोड़े कि वायु अंदर प्रवेश करके क्रियाहीनता उत्पन्न कर दे। इतनी बाँधें भी नहीं कि रक्तप्रवाह रुककर रोगीको बेचैनी होने लगे। पिण्डलियोंके लिये छः फुट लम्बी एवं चार इंच चौड़ी लपेट प्रयोगमें लानी चाहिये।

(३) सूर्य-स्नान (धूप-स्नान)-का उपयोग—

प्राकृतिक चिकित्सामें सूर्य-स्नानका विशेष महत्त्व है। इसके सेवनसे शरीरमें विटामिन 'डी' की प्राप्ति

होती है।

स्थानका चुनाव—सूर्य-स्नानके लिये एकान्त स्थान होना चाहिये, जैसे—मकानकी छत, दीवारकी ओट आदि।

विधि—सूर्य-स्नानके समय शरीरसे कपड़े हटा देने चाहिये ताकि सूर्यकी किरणें सीधे शरीरपर पड़ें।

सर्वप्रथम धूपमें चित लेट जाय। बादमें पेटके बल लेटकर सूर्य-स्नान लेना आरामदायक रहता है। सूर्य-स्नानके समय धूप सौम्य होनी चाहिये तथा सिरपर एक सूखा तौलिया रखे। यदि तेज धूप हो तो सिरपर गीला कपड़ा रखना आवश्यक है। धूप-स्नान लेते समय आँखें बंद रखनी चाहिये अन्यथा दृष्टि कमजोर होती है।

अवधि—सूर्य-स्नानकी समय-सीमा रोगीकी अवस्था, रोगकी तीव्रता-जीर्णता तथा ऋतुके अनुसार निश्चित करें। ग्रीष्म-ऋतुमें १०—३० मिनटतक तथा शीत-ऋतुमें २०—६० मिनटतक सूर्य-स्नान लें।

ऋतुकाल—ग्रीष्म-ऋतुमें प्रातः साढ़े सातसे आठ बजेके पूर्व सूर्य-स्नान लें एवं सायंकालमें साढ़े पाँचसे छः बजेके पश्चात् सूर्य-स्नान लेना उपयुक्त रहता है। शीत-ऋतुमें प्रातः नौसे साढ़े नौके पहले एवं सायंकालमें चार बजेसे पाँच बजेके बाद सूर्य-स्नान लेना चाहिये। इस तरहसे संक्षेपमें प्राकृतिक चिकित्साकी विधियों-प्रविधियोंके बारेमें समझाया गया है।

फिर भी सावधानीपूर्वक रोग एवं रोगीकी स्थिति, अवस्था, देश, काल, बल आदिको ध्यानमें रखते हुए चिकित्सा-लाभ लें अथवा किसी योग्य प्राकृतिक चिकित्सककी देख-रेखमें उपचार कराना चाहिये।

(४) प्राकृतिक चिकित्सामें उपवासका महत्त्व

पेटके रोगोंमें उपवास (आकाश)-चिकित्साका सर्वाधिक महत्त्व है। रोगीकी अवस्थाके अनुसार अर्ध उपवास, एकाहार रसोपवास, फल-उपवास, दुग्ध-उपवास, मट्ठा-उपवास कराया जाता है। पूर्ण उपवासमें सादे जलके अलावा कुछ नहीं दिया जाता है।

उपवास-विधि—मानसिक रूपसे स्वयंको तैयार करें तथा शारीरिक दृष्टिसे प्रारम्भमें दो दिन भोजनकी मात्रा आधी कर दें। सब्जियाँ तथा फल बढ़ा दें। एक-दो दिन एक समय केवल रोटी, सब्जी, सलाद लें तथा दूसरे समय केवल फल लें। एकसे तीन दिन फलाहार, फिर एकसे तीन दिन रसाहार, पुनः एकसे तीन दिन नीबूका पानी, शहदपर रहें। रोगीकी शारीरिक, मानसिक अवस्थाको देखते हुए दो-तीन दिनतक संतरेके रसपर रहकर सीधे उपवासपर आ जाय।

उपवासके दौरान मल सूख जाता है। उपवासके पहले अर्द्धशङ्ख-प्रक्षालन या नाशपाती, आँवला, करेलेके रससे पेटको पूर्ण साफ कर लेना चाहिये। उपवासके दौरान एनिमा, मिट्टी-पट्टी, मालिश, धूप-स्नान, टहलना, आसन, प्राणायाम, कुञ्जल आदि चिकित्सारोगके अनुसार ले। इस दौरान एक घंटेके अन्तरालपर एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर पीते रहें।

उपवास तोड़नेकी विधि—लम्बे उपवासमें एक-दो दिन कुछ परेशानी अवश्य होती है, फिर कोई कठिनाई नहीं होती। लम्बा उपवास करना जितना सरल है, तोड़ना उससे ज्यादा कठिन है। यदि वैज्ञानिक ढंगसे उपवास नहीं तोड़ा जाय तो अनिष्ट होकर मृत्यु भी हो सकती है। उपवास तोड़ते समय शीघ्र पाचक फलोंके रसमें पानी मिलाकर लें, ताकि पाचन-तन्त्र भोजन ग्रहण करनेकी आदत डाल सके। संतरेके १२५ मि०ली० रसमें १०० मि०ली० जल मिलाकर धीरे-धीरे चूसकर पियें। दो-तीन घंटेके अन्तरसे जल-मिश्रित रस लेते रहे। संतरा उपलब्ध नहीं हो तो एक नीबूका रस तथा दो चम्मच शहदमें एक गिलास पानी मिलाकर पियें अथवा बीस-तीस मुनक्का, किशमिश भिगो-मसल-छानकर पानी मिलाकर लें। दूसरे दिनसे रस या सब्जियोंके सूप (परवल, लौकी, टिण्डा, तोरई, टमाटर आदि)-की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जायँ तथा क्रमशः उबली सब्जी, फल, चपातीकी पपड़ी, पतला दलिया लें। संतरा, पपीता, अंगूर, टमाटर, सेब, केला आदि फल उत्तम हैं। जितने दिन उपवास करें कम-से-कम उतने ही दिन सामान्य आहारपर आनेमें लगना चाहिये। उपवास-काल एवं उपवास तोड़नेके समय पर्याप्त मात्रामें पानी पीना अत्यन्त आवश्यक है। पानी नहीं पीनेसे विजातीय तत्त्व बाहर नहीं निकल पाते एवं तरह-तरहके उपद्रव होने लगते हैं।

निषेध—गर्भिणी स्त्री, दुग्धावस्था (बच्चा दूध पीता हो ऐसी स्त्री), कमजोर, बालक, हृदय-रोगी,

मधुमेह, राजयक्ष्मा (टी०बी०)-का रोगी, कृश व्यक्ति, सुकोमल प्रकृतिके व्यक्तिको लम्बे उपवास नहीं करने चाहिये।

लाभ—पेटके समस्त रोग—दमा, गठिया, आमवात, संधिवात, त्वक्-विकार, चर्मरोग, मोटापा आदि जीर्ण रोगोंमें उपवास एक सर्वोत्तम निसर्गोपचार है।

दीर्घ उपवास हमेशा किसी विशेषज्ञके निर्देशनमें ही करना चाहिये।

प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान

(सुश्रीशैलकुमारीजी वर्मा)

रोगियोंके इलाजके लिये जितने प्रकारकी चिकित्सा-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, उनमेंसे प्राकृतिक चिकित्सा भी एक है। यह निसर्गोपचार चिकित्सा-पद्धति है। जितनी पद्धतियाँ प्रचलित हैं, उन सभीमें औषधद्वारा उपचार किया जाता है, वे सब औषधोपचार पद्धतियाँ हैं। उनमें दवा, इंजेक्शन, ऑपरेशन इत्यादिका सहयोग लिया जाता है, पर प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिमें बिना दवा, इंजेक्शन, ऑपरेशनके इलाज किया जाता है।

निसर्गोपचार बड़ा ही सरल, सहज और सर्वसुलभ है। व्यक्ति जहाँ रहता है, वहाँ पास-पड़ोसमें मिलनेवाले प्राकृतिक पदार्थ अथवा उपकरणोंके सहयोगसे प्राकृतिक चिकित्सा की जा सकती है।

इस चिकित्सा-प्रणालीमें शरीरकी जो प्रकृति है, उसको समझकर इलाज किया जाता है। इसलिये इसका नाम प्राकृतिक चिकित्सा पड़ा है।

इस चिकित्सा-विज्ञानमें यह माना जाता है कि रोग तो शरीर स्वयं ही ठीक करता है, चिकित्साका कार्य केवल शरीरका सहयोग करना है। उदाहरणके लिये यदि चाकूसे अंगुली कट जाय तो कटे हुए अंशको तो शरीर स्वयं ही अच्छा कर लेता है, पट्टी लगाकर हम केवल उसकी मदद करते हैं। जैसे नाखून और कटे हुए बाल अपने-आप ही बढ़ जाते हैं, वैसे ही कटा हुआ घाव भी अपने-आप ठीक हो जाता है। शरीर अपना काम करता है, हमें उसको मौका देना चाहिये कि वह अपना काम करे। अत: महत्त्व चिकित्सा करने और रोग अच्छा करनेका नहीं, अपितु रोग होने ही न देनेके ज्ञानका है। यही प्राकृतिक चिकित्सा है। स्वस्थ रहना प्राकृतिक अवस्था है और बीमार पड़ना अप्राकृतिक।

रोग हो जानेके बाद उसका इलाज करनेकी अपेक्षा रोग होने ही न देनेका उपाय करना श्रेष्ठ है। इस चिकित्सा-पद्धतिमें इलाज करनेके दौरान ही रोगीको बता दिया जाता है कि वह आगेके जीवनमें किस तरहसे अपना आहार-विहार रखे ताकि आगे बीमार ही न पड़े।

इसके साथ ही प्राकृतिक चिकित्सालयोंमें प्रार्थना, प्रवचनके बिना चिकित्साको अधूरा माना जाता है। यदि जीवन भारतीय संस्कृतिके अनुरूप बिताया जाय तो रोग होनेकी सम्भावना कम हो जाती है। यह कहा जा सकता है कि मनुष्य तो उसी दिनसे बीमार पड़ने लगा जिस दिन उसने आगका आविष्कार किया और वह भोजनमें नमकका इस्तेमाल करने लगा। आगपर पकाकर खानेकी आदतने ही आदमीको प्रकृतिसे दूर कर दिया। फिर नमकका उपयोग करके उसने अपनेको रसोंके स्वादमें फँसा लिया। वह आवश्यकताके अनुसार खानेके बदले स्वादके लिये भी खाने लगा और बीमार पड़ने लगा।

प्राकृतिक चिकित्सामें रोगके अपहरण तथा स्वस्थ रहनेके लिये पञ्चकर्म करवानेकी भी पद्धति है। पञ्चकर्ममें स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन और नस्यका विधान है। साथ ही षट्कर्म भी करवाया जाता है। धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक और कपालभाति—ये षट्कर्म कहे गये हैं।

प्राकृतिक चिकित्सामें सबसे सरल उपचार है कटिस्नान। इसके लिये एक गोल टबमें अंदाजसे ठण्डा पानी भरकर उसमें ऐसे बैठना पड़ता है कि कटि (कमर) ही डूबी रहे, शरीरका बाकी हिस्सा पानीके बाहर रहे। पैर टबके बाहर रहते हैं, वैसे ही नाभिके ऊपरका हिस्सा भी पानीके ऊपर रहता है।

कटिस्नानसे कटि-प्रदेशमें ही ठण्डक लगती है।

यह तो वैज्ञानिक तथ्य है कि ठण्डा लगनेसे कोई भी पदार्थ सिकुड़ता है। इसीसे जब आदमी ठण्डे पानीमें बैठता है तो कटिके अन्तर्गत आनेवाले भाग—गुर्दा, मलाशय, मूत्राशय तथा जननेन्द्रिय—ये सभी ठण्डसे सिकुड़ जाते हैं। मलमूत्र बाहर फेंकनेके जो अवयव हैं वे भी सिकुड़ जाते हैं और उनमेंसे वर्ज्य पदार्थ अथवा मलमूत्र बाहर फेंका जाता है।

मलमूत्र एक तरहके विजातीय द्रव्य हैं, जो शरीरमें अधिक देरतक रहनेसे रोग पैदा करते हैं। इसलिये मलमूत्रके बहिष्कारके लिये कटिस्नानका उपयोग बड़ा कारगर होता है।

यह तो सर्वविदित है कि सभी रोगोंका मूल कब्जियत है और उसी कब्जियतको दूर करनेका सरल एवं सहज उपाय है कटिस्नान।

सामान्य रूपसे कटिस्नान ठण्डे पानीसे ही कराया जाता है। यदि शरीरके तापमानसे पानीका तापमान पचीस-तीस डिग्री कम रहेगा तो अच्छा फायदा मिलेगा। इसके विपरीत यदि शरीरकी गरमी और पानीकी गरमी बराबर रहेगी तो नाममात्रका ही फायदा मिलेगा।

गरम पानीसे भी कटिस्नान करवाया जाता है पर उसकी विशेष स्थिति होती है। कटि और पेड़ूके अंदर अगर कोई विशेष कड़ापन या पथरी-जैसी बीमारी हो गयी हो तो गरम पानीका कटिस्नान करवाया जाता है, पर उसमें भी फिर तुरंत ठण्डे पानीसे कटिस्नान करवाया जाता है।

मूल रूपसे यह जल-उपचार भारतीय पद्धति है। गीले वस्त्र पहने हुए सूर्यको अर्घ्य देना, कमरतक पानीमें खड़े होकर मन्त्र-जप करना इत्यादि विधानोंके रूपमें यह आज भी विद्यमान है। पर विदेशियोंके आक्रमणने हमारी सांस्कृतिक मान्यतापर ही प्रथम कुठाराघात किया। इस कारण हम पुराने तरीकोंसे अनभिज्ञ रह गये।

पुनः जागरणकी वेलामें यह जलोपचार जर्मनीसे भारत आया। जर्मनीमें एक व्यक्ति थे लुई कूने। उन्होंने जानवरोंको देखा कि वे गरमीसे बचनेके लिये पैरतक पानीमें खड़े होते हैं। प्रिसनिज नामक एक ऑस्ट्रियन व्यक्तिने भी ऐसा ही देखा-परखा। इस तरहसे जल-चिकित्साका प्रादुर्भाव तो आधुनिक कालमें जर्मनीमें हुआ, पर वास्तवमें कटिस्नान शुद्ध भारतीय है और यह मूलरूपसे आयुर्वेदका अङ्ग है।

निसर्गोपचार-पद्धतिमें केवल रोगोंके लक्षणोंका तो इलाज होता नहीं, बल्कि पूरे शरीरका इलाज किया जाता है। इसलिये कटिस्नान एक आम उपचार है। फिर भी सिर भारी होने, सिरदर्द होने, आँखें चढ़ने, गैस बनने, मचली आने, पेटदर्द होने, वायु अवरुद्ध होने, कब्जियत, पाखाना बहुत ज्यादा या कम होने, पेशाब रुकने इत्यादि अनेक तकलीफोंमें यह चिकित्सा तुरंत लाभ पहुँचाती है और भूख तथा नींदकी कमीको भी दूर करती है।

कटिस्नानके अतिरिक्त वस्ती भी शरीर-शोधनकी एक क्रिया है। जिस प्रकार कटिस्नानसे अनेक लाभ मिलते हैं, वैसे ही वस्तीके भी अनेक लाभ हैं। वस्ति-क्रियाको वैज्ञानिक भाषामें एनिमा कहा जाता है। एनिमा देना एक ऐसी विधि है, जिससे पेटमें पड़ा हुआ, रुका हुआ, सड़ता हुआ मल बाहर निकाला जाता है। यह षट्कर्मकी एक विधि है।

एनिमा देनेके लिये एक एनिमा-सेट (डिब्बा जिसमें नीचे टोटी लगी रहती है)-की जरूरत पड़ती है। इससे केवल प्राकृतिक प्रेशरके जोरसे बड़ी आँतोंमें पानी पहुँचा दिया जाता है। पानी गुनगुना हो, उसमें नीबू-रस-जैसा सफाई करनेवाला द्रव मिला देनेसे आँतोंकी सफाई अच्छी होती है। रोगीके बलाबलको देखते हुए अंदाजसे पानी चढ़ानेके बाद स्वाभाविक ही शौच लगता है और पुराना सड़ता हुआ मल बाहर आ जाता है।

इससे तुरंत ही शरीर हलका लगता है और स्फूर्ति आती है, पेटमें कीड़े हों तो निकल जाते हैं, दुर्गन्ध खत्म हो जाती है तथा पेट हलका होनेसे आराम मालूम पड़ता है।

एनिमा एक ऐसा प्राकृतिक इलाज है, जो आवश्यकतानुसार अन्य रोगोंमें भी दिया जा सकता है।

शरीरका प्राकृतिक धर्म है कि जो खाद्य पदार्थ भोजनके रूपमें खाया जाता है उसका अधिकांश भाग शरीर आत्मसात् कर लेता है। बचा हुआ मल-पदार्थ आँतोंमें जमा हो जाता है। खाद्य पदार्थ पूरी पाचन-

प्रणालीद्वारा धीरे-धीरे आगे सरकते हुए आखिरमें बड़ी आँतमें पहुँच जाता है, जहाँसे उसका शोषण बंद हो जाता है। उसे शरीरकी प्रकृतिके अनुसार समयपर बाहर निकल जाना चाहिये। पर मनुष्यकी अप्राकृतिक जीवन-शैलीके कारण वह बाहर निकलता नहीं, वहीं जमा हुआ सूखता-सड़ता रहता है। जिस गंदे पदार्थको हम बाहर देखना भी पसंद नहीं करते, वह वहीं आँतोंमें पड़ा हुआ सड़ता रहता है। उसको बाहर निकालनेमें एनिमाद्वारा आँतोंको मदद मिलती है। आँतोंमें पानी जानेपर कड़ा मल ढीला हो जाता है और बाहर आ जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें मिट्टी-पट्टीका भी विशेष महत्त्व है। दही-जैसी शुद्ध गीली मिट्टी एक गीले कपड़ेपर फैलाकर उसको चारों तरफसे बंद कर दिया जाता है। मिट्टीकी यह पट्टी एक बित्ता लम्बी तथा छः अंगुल चौड़ी और दो अंगुल मोटी बनती है। गीली मिट्टी बहुत देरतक ठण्डी रहती है। पेड़ूपर यानी पेटपर नाभिके नीचे ऐसी पट्टी आधा घंटातक रखनेसे यह शरीरकी गरमी खींच लेती है और वह गरमी मिट्टीमें आ जाती है। इस पट्टीसे आँतोंपर सिकुड़नेकी क्रिया भी होती है, गैस बनना रुक जाता है, पेशाब और शौचकी थैली भी सिकुड़ती है तथा पेट भी साफ होता है। खासकर स्त्रियोंको जो गर्भाशयकी सूजन, गाँठें इत्यादि अनेक बीमारियाँ होती हैं, उनमें इससे बहुत फायदा मिलता है।

जैसे पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखनेका विधान है, वैसे ही मिट्टीकी पट्टी सिर और आँखोंपर भी रखी जाती है। कटे हुए, जले हुएपर भी मिट्टीकी पट्टी रखनेसे तुरंत आराम और लाभ होता है। जला-कटा हुआ भाग अच्छा हो जाता है।

यह प्रश्न हो सकता है कि क्या मिट्टीकी पट्टी लगानेसे संक्रामक रोग होनेका डर नहीं रहता? क्योंकि मिट्टीमें तो दुनियाभरके जीवाणु-कीटाणु पाये जाते हैं। उत्तरमें यह कहना है कि वास्तवमें प्रत्यक्ष तो यही दिखायी देता है, पर इसमें मिट्टीके स्तरपर विचार करना पड़ता है। मिट्टी कहनेका अर्थ केवल मिट्टी ही है, कूड़ा-कचरा नहीं। जमीनकी सतहपर मिट्टीमें अनेक प्रकारके मिश्रण होते हैं, खासकर कूड़ा-कचरेका, मानवनिर्मित चीजोंका जैसे कागज, काँच, प्लास्टिक इत्यादि। उसे मिट्टी नहीं कहा जा सकता। मिट्टीमें तो जन्तुनाशक शक्ति है। दुनियाभरकी गंदी चीजोंको मिट्टी अपनेमें आत्मसात् कर लेती है। शुद्ध मिट्टीमें कोई जीव नहीं रहता, इसलिये पट्टीके लिये मिट्टी लेते समय इसका तो ध्यान रखना ही चाहिये कि वह मिट्टी शुद्ध हो। अगर जमीनकी सतह गंदी मालूम पड़े तो एक-डेढ़ फुट गहरा खोदनेपर जो शुद्ध मिट्टी मिले उसका ही प्रयोग करना चाहिये। तालाब या नदी किनारेकी मिट्टी भी पट्टीके लिये अच्छी होती है।

चर्मरोगमें तो पूरे शरीरमें मिट्टीका लेप लगाया जाता है। उसे मृत्तिका-स्नान कहा जाता है। चिकनी, मुलायम और फुलायी हुई मिट्टीका मोटा लेप आँख छोड़कर पूरी चमड़ीकी सतहपर लगाना चाहिये। खाज, खुजली, उकवत इत्यादिमें स्नानके रूपमें मिट्टीका उपयोग किया जा सकता है। सिरपर पट्टी रखनेसे दिमाग ठण्डा और शान्त रहता है। घाव, फोड़े, फुंसीपर भी बिना हिचक पट्टी लगायी जा सकती है।

मिट्टीका लेप २०—२५ मिनटतक लगा रहे और अधसूखा होने लगे, तब किसी जलाशयमें उतरकर स्नान करना सबसे अच्छा होता है नहीं तो फौवारा (शावर)-के नीचे खड़े होकर आरामसे धीरे-धीरे मिट्टीका लेप उतारना चाहिये।

मिट्टीके प्रयोगसे बाल बहुत अच्छे और मुलायम धुल जाते हैं। चमड़ीका रंग स्वाभाविक आने लगता है। ग्रामीण जन इस रहस्यको जानते हैं और पूरे शरीरमें मिट्टीके लेपसे लाभ उठाते हैं।

शहरोंमें जहाँ भी मिट्टीके कीटाणुयुक्त होनेकी आशंका हो, उसे हलुवाकी तरह कड़ाहीमें सिझाकर पट्टी बनाना चाहिये। यह पट्टी थोड़ी गरम भी इस्तेमाल की जाय तो अच्छा ही होता है। धीरे-धीरे यह शरीरके टेम्परेचरकी हो जाती है। इससे भी वही फायदा प्राप्त किया जा सकता है, जो ठण्डी पट्टी रखनेसे होता है।

वाष्प-स्नान भी जल-चिकित्साकी एक विधि है। पानीको गरम करनेसे उसका रूपान्तर भापमें हो जाता

है। उस भापको पूरे शरीरमें लगाना ही वाष्प-स्नान है। इसमें पानीके भापको इस तरह घेरकर रखना होता है कि वह पूरे शरीरमें अच्छी तरहसे लगे। इसके लिये एक छोटा-सा केबिन बनाया जाता है। वह चारों ओरसे तथा नीचे-ऊपरसे बंद रहता है। शरीरमें भाप लगनेसे, पहले तो थोड़ी गरमीका अनुभव होता है, फिर धीरे-धीरे सामान्य-सी स्थिति हो जाती है। कुछ देर बाद पसीना निकलने लगता है। त्वचाके सभी रोमकूप खुल जाते हैं। त्वचाका तैल फूलकर छूट जाता है। बहुत आराम मालूम पड़ने लगता है। कुछ लोग तो सोने लगते हैं, पर उन्हें सोने नहीं देना चाहिये।

जब सिरपर पसीना चुहचुहाने लगे तो स्टीम-बाथ केबिनमेंसे निकलकर ठण्डे पानीसे फौवारा-स्नान करना चाहिये।

इस तरह पहले गरम और बादमें ठण्डके कारण त्वचाकी सतहका रक्ताभिसरण बढ़ जाता है। शरीर हलका हो जाता है। इससे अनेक रोगोंमें फायदा होता है, फिर भी मोटापा, स्नायु-दौर्बल्य, सुन्नपन, गठिया, ब्लडप्रेशर, डायबिटीज, सभी चर्म रोग, अनिद्रा इत्यादि तथा जीर्ण रोगोंमें यह स्नान विशेष फायदा पहुँचाता है। सर्दी, खाँसी, बुखार, थकावट, सिरदर्द इत्यादि उग्र रोगोंमें तो दो-चार बारके स्टीमबाथसे ही रोगी अच्छा हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सामें कमजोरी दूर करनेके लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। षट्कर्ममें इसे स्वेदन कहा जाता है। उपयोगिता और सुविधाको देखते हुए चिकित्सक इसे अनेक प्रकारसे प्रयोग करते हैं। सोकर, बैठकर या खड़े होकर भी स्टीमबाथ लिया जा सकता है। स्थानीय अङ्गोंमें भी लिया जा सकता है और पूरे शरीरमें भी।

स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिये उपचार करना जरूरी है, पर स्वस्थ रहनेके लिये तो प्राकृतिक आहार-विहार ही जरूरी है। इसमें भोजन, आराम और व्यायामका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। भोजनके लिये एक सूत्र है। यदि इस सूत्रको याद रखा जाय तो भोजनका बहुत-सा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। भोजनको इन पाँच कसौटियोंपर कसना चाहिये—

१-हम भोजन क्यों करते हैं? २-हम भोजन कैसे करते हैं? ३-हम भोजन कब करते हैं? ४-हम भोजन कितना करते हैं और ५-हम भोजन किसके लिये करते हैं?

इन प्रश्नोंका उत्तर स्वयं ही ढूँढ़नेसे भोजनके बारेमें ठीक जानकारी मिल जाती है।

इसी तरह आराम करने और नींद लेनेके बारेमें भी सावधान रहना चाहिये। तभी हम सहज जीवन बिताते हुए स्वस्थ रह सकते हैं।

भोजन-ग्रहणके स्वरूपको छः हिस्सोंमें बाँटा गया है। पहला है—निर्जल उपवास। इसमें केवल वायु-सेवन करके रहना पड़ता है।

दूसरा है सजल उपवास। इसमें केवल जल पीकर रहना चाहिये।

तीसरे तरहका उपवास रसाहार है, इसमें केवल रस ही लेना चाहिये। आम, जामुन, लीची, टमाटर आदि रसवाले फल हैं। ऐसे फलोंका रस लिया जा सकता है। पानीमें मधु, नीबूका रस मिलानेसे वह संतरेके रस-जैसा बन जाता है।

चौथे तरहका उपवास फलाहार है। इसमें फलको चाकूसे या दाँतसे काट-काटकर खाया जाता है। फलाहारमें आम, पपीता, शरीफा, जामुन अनन्नास, अनार आदि खाये जा सकते हैं। रोगी और नीरोगीके लिये बलाबलको देखते हुए निर्णय किया जाना चाहिये। पका हुआ कटहल, नारियल और ईखको भी इसमें शामिल किया जा सकता है।

पाँचवें तरहका उपवास शाकाहार है। इसमें सभी तरहकी साग-भाजी तरकारीको उबालकर या सीझाकर खाना चाहिये। शाकाहारमें खाद्य पदार्थको पकाकर खाया जाता है। इसमें नमक और साधारण मसाले भी डाले जा सकते हैं।

छठें तरहका उपवास सात्त्विक आहार है। इसमें एक समय भोजन लिया जाता है, दूसरे समयमें रसाहार या फलाहार लेना चाहिये। प्राकृतिक चिकित्सामें सात्त्विक

आहारका बड़ा महत्त्व है।

भोजनको एक अच्छा निदान-सूचक माना जाता है। यदि भूख ठीक लगने लगे तो रोगी स्वस्थ होता है, यदि भूख नहीं लगे तो समझना चाहिये कि रोगी ठीक नहीं हो रहा है। इन सब बातोंको प्राकृतिक चिकित्सामें बहुत महत्त्व दिया जाता है। प्राकृतिक चिकित्साका उद्देश्य है ऐसी प्राकृतिक एवं सहज जीवन-शैली अपनाना जिससे रोगको पनपनेका मौका ही न मिले।

हस्त-मुद्रा-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मानव-शरीर अनन्त रहस्योंसे भरा हुआ है। शरीरकी अपनी एक मुद्रामयी भाषा है, जिसे करनेसे शारीरिक स्वास्थ्य-लाभमें सहयोग प्राप्त होता है। यह शरीर पञ्चतत्त्वोंके योगसे बना है। पाँच तत्त्व ये हैं—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु एवं (५) आकाश। शरीरमें जब भी इन तत्त्वोंका असंतुलन होता है, रोग पैदा हो जाते हैं। यदि हम इनका संतुलन करना सीख जायँ तो बीमार हो ही नहीं सकते एवं यदि हो भी जायँ तो इन तत्त्वोंको संतुलित करके आरोग्यता वापस ला सकते हैं।

हस्त-मुद्रा-चिकित्साके अनुसार हाथ तथा हाथोंकी अँगुलियों और अँगुलियोंसे बननेवाली मुद्राओंमें आरोग्यका राज छिपा हुआ है। हाथकी अँगुलियोंमें पञ्चतत्त्व प्रतिष्ठित हैं।

ऋषि-मुनियोंने हजारों साल पहले इसकी खोज कर ली थी एवं इसे उपयोगमें बराबर प्रतिदिन लाते रहे, इसीलिये वे लोग स्वस्थ रहते थे। ये शरीरमें चैतन्यकी अभिव्यक्ति देनेवाली कुंजियाँ हैं।

मनुष्यका मस्तिष्क विकसित है, उसमें अनन्त क्षमताएँ हैं। ये क्षमताएँ आवृत हैं, उन्हें अनावृत करके हम अपने लक्ष्यको पा सकते हैं।

नृत्य करते समय भी मुद्राएँ बनायी जाती हैं, जो शरीरकी हजारों नसों एवं नाडियोंको प्रभावित करती हैं और उनका प्रभाव भी शरीरपर अच्छा पड़ता है।

हस्त-मुद्राएँ तत्काल ही असर करना शुरू कर देती हैं। जिस हाथमें ये मुद्राएँ बनाते हैं, शरीरके विपरीत भागमें उनका तुरंत असर होना शुरू हो जाता है। इन सब मुद्राओंका प्रयोग करते समय वज्रासन, पद्मासन अथवा सुखासनका प्रयोग करना चाहिये।

इन मुद्राओंको प्रतिदिन तीससे पैंतालीस मिनटतक करनेसे पूर्ण लाभ होता है। एक बारमें न कर सके तो दो-तीन बारमें भी किया जा सकता है।

किसी भी मुद्राको करते समय जिन अँगुलियोंका कोई काम न हो उन्हें सीधी रखे।

वैसे तो मुद्राएँ बहुत हैं पर कुछ मुख्य मुद्राओंका वर्णन यहाँ किया जा रहा है, जैसे—

(१) ज्ञान-मुद्रा

विधि—अँगूठेको तर्जनी अँगुलीके सिरेपर लगा दे। शेष तीनों अँगुलियाँ चित्रके अनुसार सीधी रहेंगी।

लाभ—स्मरण-शक्तिका विकास होता है और

ज्ञानकी वृद्धि होती है, पढ़नेमें मन लगता है, मस्तिष्कके स्नायु मजबूत होते हैं, सिरदर्द दूर होता है तथा अनिद्राका नाश, स्वभावमें परिवर्तन, अध्यात्म-शक्तिका विकास और क्रोधका नाश होता है।

सावधानी—खान-पान सात्त्विक रखना चाहिये, पान-पराग, सुपारी, जर्दा इत्यादिका सेवन न करे। अति उष्ण और अति शीतल पेय पदार्थोंका सेवन न करे।

(२) वायु-मुद्रा

विधि—तर्जनी अँगुलीको मोड़कर अँगूठेके मूलमें लगाकर हलका दबाये। शेष अँगुलियाँ सीधी रखे।

लाभ—वायु शान्त होती है। लकवा, साइटिका, गठिया, संधिवात, घुटनेके दर्द ठीक होते हैं। गर्दनके दर्द, रीढ़के दर्द तथा पारकिंसन्स रोगमें फायदा होता है।

विशेष—इस मुद्रासे लाभ न होनेपर प्राण-मुद्रा (संख्या १०)-के अनुसार प्रयोग करे।

सावधानी—लाभ हो जानेतक ही करे।

(३) आकाश-मुद्रा

विधि—मध्यमा अँगुलीको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये। शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहें।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि, हड्डियोंकी कमजोरी तथा हृदय-रोग ठीक होता है।

सावधानी—भोजन करते समय एवं चलते-फिरते यह मुद्रा न करे। हाथोंको सीधा रखे। लाभ हो जानेतक ही करे।

(४) शून्य-मुद्रा

विधि—मध्यमा अँगुलीको मोड़कर अँगुष्ठके मूलमें लगाये एवं अँगूठेसे दबाये।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि दूर होकर शब्द साफ सुनायी देता है, मसूढ़ेकी पकड़ मजबूत होती है तथा गलेके रोग एवं थायरायड-रोगमें फायदा होता है।

(५) पृथ्वी-मुद्रा

विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर रखे।

लाभ—शरीरमें स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है। दुर्बल व्यक्ति मोटा बन सकता है, वजन बढ़ता है, जीवनी शक्तिका विकास होता है। यह मुद्रा पाचन-क्रिया ठीक करती है, सात्त्विक गुणोंका विकास करती है, दिमागमें शान्ति लाती है तथा विटामिनकी कमीको दूर करती है।

ज्ञानकी वृद्धि होती है, पढ़नेमें मन लगता है, मस्तिष्कके स्नायु मजबूत होते हैं, सिरदर्द दूर होता है तथा अनिद्राका नाश, स्वभावमें परिवर्तन, अध्यात्म-शक्तिका विकास और क्रोधका नाश होता है।

सावधानी—खान-पान सात्त्विक रखना चाहिये, पान-पराग, सुपारी, जर्दा इत्यादिका सेवन न करे। अति उष्ण और अति शीतल पेय पदार्थोंका सेवन न करे।

(२) वायु-मुद्रा

विधि—तर्जनी अँगुलीको मोड़कर अँगूठेके मूलमें लगाकर हलका दबाये। शेष अँगुलियाँ सीधी रखे।

लाभ—वायु शान्त होती है। लकवा, साइटिका, गठिया, संधिवात, घुटनेके दर्द ठीक होते हैं। गर्दनके दर्द, रीढ़के दर्द तथा पार्किंसन्स रोगमें फायदा होता है।

विशेष—इस मुद्रासे लाभ न होनेपर प्राण-मुद्रा (संख्या १०)-के अनुसार प्रयोग करे।

सावधानी—लाभ हो जानेतक ही करे।

(३) आकाश-मुद्रा

विधि—मध्यमा अँगुलीको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये। शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहें।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि, हड्डियोंकी कमजोरी तथा हृदय-रोग ठीक होता है।

सावधानी—भोजन करते समय एवं चलते-फिरते यह मुद्रा न करे। हाथोंको सीधा रखे। लाभ हो जानेतक ही करे।

(४) शून्य-मुद्रा

विधि—मध्यमा अँगुलीको मोड़कर अँगुष्ठके मूलमें लगाये एवं अँगूठेसे दबाये।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि दूर होकर शब्द साफ सुनायी देता है, मसूढ़ेकी पकड़ मजबूत होती है तथा गलेके रोग एवं थायरायड-रोगमें फायदा होता है।

(५) पृथ्वी-मुद्रा

विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर रखे।

लाभ—शरीरमें स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है। दुर्बल व्यक्ति मोटा बन सकता है, वजन बढ़ता है, जीवनी शक्तिका विकास होता है। यह मुद्रा पाचन-क्रिया ठीक करती है, सात्त्विक गुणोंका विकास करती है, दिमागमें शान्ति लाती है तथा विटामिनकी कमीको दूर करती है।

(६) सूर्य-मुद्रा

विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेके मूलपर लगाकर अँगूठेसे दबाये।

लाभ—शरीर संतुलित होता है, वजन घटता है, मोटापा कम होता है। शरीरमें उष्णताकी वृद्धि, तनावमें कमी, शक्तिका विकास, खूनका कोलस्ट्रॉल कम होता है। यह मुद्रा मधुमेह, यकृत् (जिगर)-के दोषोंको दूर करती है।

सावधानी—दुर्बल व्यक्ति इसे न करे। गर्मीमें ज्यादा समयतक न करे।

(७) वरुण-मुद्रा

विधि—कनिष्ठा अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शरीरमें रूखापन नष्ट करके चिकनाई बढ़ाती है, चमड़ी चमकीली तथा मुलायम बनाती है। चर्मरोग, रक्त-विकार एवं जल-तत्त्वकी कमीसे उत्पन्न व्याधियोंको दूर करती है। मुँहासोंको नष्ट करती और चेहरेको सुन्दर बनाती है।

सावधानी—कफ-प्रकृतिवाले इस मुद्राका प्रयोग अधिक न करें।

(८) अपान-मुद्रा

विधि—मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—शरीर और नाडीकी शुद्धि तथा कब्ज दूर होता है। मल-दोष नष्ट होते हैं, बवासीर दूर होता है। वायु-विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दोंके दोष, दाँतोंके दोष दूर होते हैं। पेटके लिये उपयोगी है, हृदय-रोगमें फायदा होता है तथा यह पसीना लाती है।

सावधानी—इस मुद्रासे मूत्र अधिक होगा।

(९) अपानवायु या हृदय-रोग-मुद्रा

विधि—तर्जनी अँगुलीको अँगूठेके मूलमें लगाये तथा मध्यमा और अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—जिनका दिल कमजोर है, उन्हें इसे प्रतिदिन करना चाहिये। दिलका दौरा पड़ते ही यह मुद्रा करानेपर आराम होता है। पेटमें गैस होनेपर यह उसे निकाल देती है। सिरदर्द होने तथा दमेकी शिकायत होनेपर लाभ होता है। सीढ़ी चढ़नेसे पाँच-दस मिनट पहले यह मुद्रा करके चढ़े। इससे उच्च रक्तचापमें फायदा होता है।

सावधानी—हृदयका दौरा आते ही इस मुद्राका आकस्मिक तौरपर उपयोग करे।

(१०) प्राण-मुद्रा

विधि—कनिष्ठा तथा अनामिका अँगुलियोंके अग्रभागको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शारीरिक दुर्बलता दूर करती है, मनको शान्त करती है, आँखोंके दोषोंको दूर करके ज्योति बढ़ाती है, शरीरकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाती है, विटामिनोंकी कमीको दूर करती है तथा थकान दूर करके नवशक्तिका संचार करती है। लम्बे उपवास-कालके दौरान भूख-प्यास नहीं सताती तथा चेहरे और आँखों एवं शरीरको चमकदार बनाती है। अनिद्रामें इसे ज्ञान-मुद्रा (संख्या १)-के साथ करे।

(११) लिङ्ग-मुद्रा
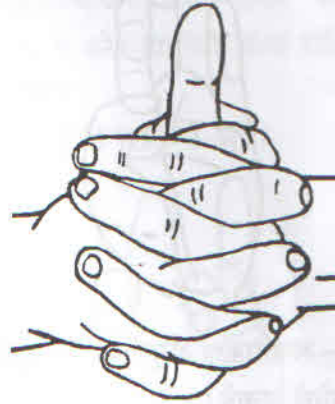
विधि—चित्रके अनुसार मुट्ठी बाँधे तथा बायें हाथके अँगूठेको खड़ा रखे, अन्य अँगुलियाँ बँधी हुई रखे।

लाभ—शरीरमें गर्मी बढ़ाती है। सर्दी, जुकाम, दमा, खाँसी, साइनस, लकवा तथा निम्न रक्तचापमें लाभप्रद है, कफको सुखाती है।

सावधानी—इस मुद्राका प्रयोग करनेपर जल, फल, फलोंका रस, घी और दूधका सेवन अधिक मात्रामें करे। इस मुद्राको अधिक लम्बे समयतक न करे।

स्वर-चिकित्सा

हमारी नाकमें श्वास लेनेके लिये दो छिद्र हैं एक दायीं तरफ तथा दूसरी बायीं तरफ। इन्हीं दो छिद्रोंद्वारा वायु शरीरमें प्रवेश करती है तथा बाहर निकलती है, इन्हें ही स्वर कहा जाता है।

स्वर तीन प्रकारके होते हैं—

(१) चन्द्रस्वर—इसमें बाँयीं नासिकाद्वारा वायु निकलती है।

(२) सूर्यस्वर—इसमें दाहिनी नासिकाद्वारा वायु निकलती है।

(३) सुषुम्णास्वर—इसमें दोनों नासिका-छिद्रद्वारा वायु निकलती है।

हमारी नासिकासे कभी चन्द्रस्वर निकलता है, कभी सूर्यस्वर निकलता है तथा बहुत कम समयके लिये सुषुम्णास्वर निकलता है। यदि हम इन्हें नियन्त्रण करना सीख लें तो अनेक रोगोंसे छुटकारा पा सकते हैं एवं स्वस्थ रह सकते हैं—

(१) सुबह उठते ही देख लें कि कौन-सा स्वर चल रहा है तथा उसी तरफकी हथेलीका दर्शन करें एवं उसी तरफके गाल, आँख तथा मुँहका स्पर्श करें और उसी तरफका पाँव पहले जमीनपर रखकर आगे बढ़ें तो दिन बहुत ही अच्छा गुजरता है।

(२) कभी भी किसी शुभ कार्यमें जायँ तो जिस तरफका नाकमें स्वर चल रहा हो उस तरफका पाँव पहले आगे बढ़ायें तो कार्य सिद्ध हो जाता है।

(३) भोजन करनेके बाद चित्त लेटकर श्वास लें, फिर दाहिने करवट लेटकर १६ श्वास लें तो भोजनका पाचन अच्छी प्रकार होता है।

(४) **दर्द दूर करनेका उपाय**—अचानक उठनेवाले दर्दको दूर करनेका सुगम उपाय यह है कि जो स्वर चल रहा है उसे बदल दें तत्काल राहत मिल जायगी।

स्वर चलानेका नियम—जिस तरफका स्वर चलाना हो, उसके उलटे करवट दो-चार मिनट लेटकर सो जानेपर इच्छित स्वर चलना शुरू हो जाता है।

स्वर-तालिका

सूर्यस्वर (दाहिने नाकका)	चन्द्रस्वर (बायें नाकका)
(१) गरम	(१) ठंडा
(२) सर्दी, जुकाम, खाँसी, दमा, निमोनिया, अपच, गठिया, जोड़ोंके दर्द, निम्न रक्तचाप, पोलियो एवं पक्षाघातमें काम आता है।	(२) गर्मी, पित्तजनित रोगोंमें, खुश्की, दिलकी धड़कन या घबराहट, मूत्रमें जलन, उच्च रक्तचाप, थकावट अथवा शरीर गर्म होने, बुखार एवं लूमें काम आता है।
(३) इसी स्वरको चलाकर भोजन करना चाहिये।	(३) जल या पेय पदार्थ इस स्वरको चलाकर पिये।
(४) दीर्घशंका (मल-विसर्जन)-के वक्त इस स्वरको चलाकर जाना चाहिये।	(४) लघुशंका (मूत्र-विसर्जन)-के वक्त इस स्वरको चलाना चाहिये।
(५) कठिन यात्रा, मेहनतके काम, व्यायाम, स्नान, शयनके वक्त इस स्वरको चला ले।	(५) यात्रा, भजन, साधनके वक्त इस स्वरको चला ले।
(६) ठंडे मौसम, बरसातमें इस स्वरको चला ले।	(६) गर्मीके मौसममें इस स्वरको चला ले।

सुषुम्णा-स्वर—योग, भजन, ध्यान, जप, प्रार्थना इत्यादि सुषम्णा-स्वरके चलते समय करने चाहिये। यानी दोनों स्वर चलते हों तभी करनेसे सिद्ध होते हैं। (डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

कायोत्सर्ग और स्वास्थ्य

(आचार्य महाप्रज्ञ)

अध्यात्मके क्षेत्रमें अनेक प्रयोग आविष्कृत हुए, उनमें कायोत्सर्ग आधारभूत प्रयोग रहा। कायोत्सर्गके होनेपर दूसरे प्रयोग सहज सिद्ध हो जाते हैं। इसके अभावमें कोई भी प्रयोग पूरा सफल नहीं बनता। इसलिये कायोत्सर्गको अध्यात्म-साधनाकी आधारशिला कहा गया है। ध्यानके सारे प्रयोग कायोत्सर्गसे प्रारम्भ होते हैं।

कायोत्सर्गका प्रयोग बहुत व्यापक है। हठयोगका शब्द है—शवासन अर्थात् मुर्देकी तरह हो जाना। कायोत्सर्ग जैनयोगका शब्द है। इसमें मुर्दा-जैसा नहीं बनना है, बल्कि कायाका उत्सर्ग करना है। कायोत्सर्गमें शारीरिक प्रवृत्तियोंका शिथिलीकरण होता है। केवल यही नहीं, चैतन्यके प्रति जागरूकता भी होती है। कायोत्सर्गका सबसे प्रधान सूत्र है—ममत्वका विसर्जन। जबतक ममत्वकी ग्रन्थि प्रबल रहती है, अध्यात्मकी साधना भी नहीं होती और शारीरिक-मानसिक बीमारियोंके लिये एक पृष्ठभूमि भी तैयार रहती है। कोई भी शरीर या मनकी बीमारी किसी ग्रन्थिकी प्रबलताके कारण ही आ सकती है, पनप सकती है और अपना डेरा जमा सकती है। सबसे बड़ी बात है ममत्वका विसर्जन। शरीरके प्रति हमारी आसक्ति न रहे तो शरीर अधिक काम देता है। उसके प्रति आसक्ति बढ़ती है तो फिर वह भी बीमारियोंका साथ देने लग जाता है।

विकसित होती है अल्फा-तरंग—भगवान् महावीरका एक वचन बहुत महत्त्वपूर्ण है—'कायोत्सर्ग सब दुःखोंका मोक्ष करनेवाला है, सब दुःखोंसे छुटकारा देनेवाला है।' यह एक छोटा-सा सूत्र है, पर इसकी मर्मस्पर्शी व्याख्या

करना बड़ी कठिन बात है। कायोत्सर्ग सब दु:खोंसे छुटकारा कैसे दे सकता है? यदि विज्ञानके संदर्भमें इसे हम समझनेका प्रयत्न करें तो बात कुछ समझमें आ सकती है। मस्तिष्ककी कई तरंगें हैं—अल्फा, बीटा, थीटा तथा गामा आदि। जब-जब अल्फा-तरंग संचरित होती है, मानसिक तनावसे मुक्ति मिलती है, शान्ति प्रस्फुटित होती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें अल्फा-तरंगको विकसित होनेका मौका मिलता है। कायोत्सर्ग किया और अल्फा-तरंगें उठने लग जायँगी, मानसिक तनाव घटना आरम्भ हो जायगा। ई०सी०जी० करनेवाला निर्देश देता है कि शरीरको बिलकुल ढीला छोड़कर सो जाओ। दाँत निकालते समय डॉक्टर सुझाव देता है कि जबड़ेको बिलकुल ढीला छोड़ दो। जबड़ा भिंचा रहा तो दाँत नहीं निकल पायेगा और दर्द भी ज्यादा होगा। दर्दको मिटाना है, दर्दको कम करना है तो कायोत्सर्ग अनिवार्य है।

तनाव और दर्द—वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे हम इसकी व्याख्या करते हैं। अभी जो नयी खोज हुई है, वह यह है कि रसायनके द्वारा हम पीडाको दूर कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्कमें, सुषुम्णामें अनेक रसायन पैदा होते हैं जो पीडाको कम कर देते हैं। जब-जब व्यक्ति गहरी भक्तिमें डूबता है, वैराग्य-भावना बढ़ती है; ध्यानकी गहरी स्थिति बनती है तो वह रोगजनित पीडाको भूल जाता है। यही प्रीडा कायोत्सर्गकी स्थितिमें शामक दशा बनती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें हर पीडा कम हो जायगी। इस संदर्भमें महावीरका यह वचन—'कायोत्सर्ग सब दु:खोंको शान्त करनेवाला है'—कितना मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है! जहाँ भी तनाव आयगा, दर्द बढ़ जायगा। तनाव और दर्दका गहरा सम्बन्ध है। जैसे ही तनाव कम होगा, पीडा कम हो जायगी। शरीरको ढीला करो, शिथिल करो, पीडा विलीन हो जायगी। जो रसायन हमारे शरीरमें पैदा होते हैं, उन्हें पैदा करनेके लिये कायोत्सर्ग सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

संजीवनी बूटी—कायोत्सर्ग-शतक इसपर बहुत अच्छा प्रकाश डालनेवाला ग्रन्थ है। इसमें कायोत्सर्गके विषयमें महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। इससे लाभ क्या है? इस सम्बन्धमें कहा गया है—'इससे देह और मतिकी जडताका शोधन होता है।' आज विज्ञानके युगमें देहयुक्त जडताको शान्त करे तो बहुत सारी नयी बातें आ जाती हैं। कायोत्सर्गके द्वारा रक्त-विकार तथा मोह शान्त हो जाता है। विकारकी जो बीमारी है, कायोत्सर्गमें वह शान्त हो जायगी। रक्तचापके लिये कायोत्सर्ग संजीवनी बूटीका काम करता है। जिन्हें रक्तचाप था, प्रेक्षाध्यान शिविर-कालमें उनसे कायोत्सर्गका प्रयोग करवाया गया। परिणाम यह हुआ कि जिनका रक्तचाप १७० था, आधे घंटेके कायोत्सर्गमें १४० पर आ गया। आधे घंटेमें इतना अन्तर आ जाता है, यदि दीर्घकालतक करे तो बहुत अन्तर आ सकता है। दीर्घकालतक कायोत्सर्गकी एक पद्धति रही है। गम्भीर मानसिक बीमारीके लिये बताया गया—पहले दिन पूरा कायोत्सर्ग, दिन-रातका कायोत्सर्ग। दूसरे दिन उससे कुछ कम। तीसरे दिन पुन: अहोरात्र कायोत्सर्ग और चौथे दिन कुछ कम। यह क्रम बराबर चले। नौ दिनका यह क्रम होता है। इस क्रमसे प्रयोग करे तो गम्भीर मानसिक बीमारी शान्त हो जायगी।

कायोत्सर्गकी एक लम्बी प्रक्रिया है। एक दिनका, दो दिनका और बारह दिनका कायोत्सर्ग। यह दीर्घकालिक कायोत्सर्ग रक्तचाप और हृदयरोगके लिये बड़ा कल्याणकारी है। हृदय, मस्तिष्क और मेरुदण्डके लिये बहुत उपयोगी है। इन तीनोंको आराम देना कायोत्सर्गका मुख्य प्रयोजन है। ये तीनों स्वस्थ हैं तो सब कुछ ठीक है। मस्तिष्क, हृदय और मेरुदण्ड ठीक काम कर रहा है तो स्वास्थ्यकी काफी सुविधा हो जाती है। मानसिक तनाव और इससे उत्पन्न विकृतिके लिये कायोत्सर्ग-जैसा कोई महत्त्वपूर्ण उपाय या चिकित्साकी दूसरी पद्धति नहीं है। मनश्चिकित्सकके पास रोगी जाता है तो चिकित्सक सबसे पहले सुझाव देता है—'तुम बिलकुल ढीले होकर सो जाओ।' मांसपेशियोंकी, मस्तिष्कीय स्नायुओंकी और पूरे शरीरकी शिथिलताकी स्थितिमें प्राणका संतुलन हो जाता है। प्राणका संतुलन कायोत्सर्गकी मुद्रामें होता है।

प्राण-संतुलनका प्रयोग—असंतुलित प्राण अनेक बीमारियोंके लिये उत्तरदायी है। प्राणके असंतुलनकी बीमारीको अभी मेडिकल साइंसने भी नहीं पकड़ा है। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा अधिक एकत्रित हो गयी, वहाँ कोई-न-कोई गड़बड़ी वह अवश्य पैदा करेगी। शरीरमें प्राण-ऊर्जा संतुलित रहनी चाहिये तथा नाडियोंमें प्राण-

ऊर्जाका प्रवाह भी संतुलित होना चाहिये। जहाँ ऊर्जा ज्यादा एकत्रित हुई, वहाँ समस्या पैदा हो गयी। मनुष्यके कामकेन्द्रमें ज्यादा इकट्ठा हुई तो काम-वासना प्रबल हो जायगी और उसे सहन करना कठिन हो जायगा। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा आवश्यकतासे अधिक होगी, वहाँ बीमारी पैदा कर देगी। नाभिमें ज्यादा हो गयी तो क्रोध आने लग जायगा, चिड़चिड़ापन बढ़ जायगा, अनेक विकृतियाँ पैदा हो जायँगी। प्राणका संतुलन रहे तो व्यक्ति अनेक विकृतियोंसे बच सकता है। प्राण-संतुलनका एक सुन्दर उपाय है—कायोत्सर्ग। जहाँ शिथिलता होती है, वहाँ प्राण-ऊर्जाका असंतुलन संतुलनमें बदल जाता है। प्राणका प्रवाह अपने-आप ठीक हो जाता है।

प्राण-संतुलनका एक उपाय है—मन्द श्वास। श्वासको मन्द करना बहुत आवश्यक है। अच्छे स्वास्थ्यके लिये एक बड़ी शर्त यह है कि श्वास कभी तेज न हो। कायोत्सर्ग करे, श्वास अपने-आप मन्द हो जायगा। इसे करनेसे पूर्व श्वासकी संख्याका माप करे और दस मिनटके बाद पुनः श्वासकी संख्याका माप करे तो पायेंगे कि श्वासकी संख्या कम—मन्द हो गयी है। प्राणका संतुलन, श्वासको मन्द करना—यह सब कायोत्सर्गकी अवस्थामें सहज प्राप्त होते हैं।

अनिद्रा, थकान और कायोत्सर्ग—अनिद्रा-रोग आज बहुत व्यापक हो रहा है। नींद नहीं आती, बड़ी समस्या रहती है। कायोत्सर्ग नींदकी सर्वोत्तम गोली है। जिन्होंने ठीकसे कायोत्सर्ग साधा है, अनिद्रा-रोग उन्हें कभी नहीं सतायेगा। थकान भी एक बड़ी समस्या है। बहुत-सी बीमारियाँ थकानके कारण पैदा होती हैं। अधिक मानसिक श्रम किया, मस्तिष्क थक गया। बहुत ज्यादा शारीरिक श्रम किया, शरीर थक गया। हृदयसे ज्यादा काम लिया, हृदय थक गया। किडनीसे ज्यादा काम लिया, किडनी थक गयी। लीवरसे ज्यादा काम लिया तो वह थक गया। शारीरिक अथवा आङ्गिक जो थकान होती है, वह बीमारीको पैदा करती है। कायोत्सर्ग थकानको मिटानेका बहुत अच्छा उपाय है। यदि आपको थकान है तो पाँच मिनट कायोत्सर्गमें चले जायँ, थकान एकदम मिट जायगी।

खिंचाव और शिथिलीकरण—योगासन-पद्धतिमें विधान किया गया है—आसन करो। आसनका काम है खिंचाव—तनाव पैदा करना। मांसपेशियोंको तनाव देना बहुत आवश्यक है। किंतु इन्हें तनाव देनेके बाद ढीला छोड़ दो। यह स्वास्थ्यका बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव दो और शिथिलीकरण करो। यह विधान रहा—सर्वाङ्ग-आसन करो, उसके बाद विपरीत-आसन—मत्स्यासन करो। उसके अन्तरालमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। भुजङ्गासन या कोई दूसरा आसन करो तो बीचमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। प्रत्येक आसनके बाद एक मिनटका कायोत्सर्ग। तनाव-ही-तनाव देते रहे तो आसन भी खराबी पैदा करेंगे। हमारा हृदय भी निरन्तर नहीं चलता है। हृदय बहुत अच्छा कायोत्सर्ग करता है। एक क्षण वह चलता है और एक क्षण बाद कायोत्सर्गमें चला जाता है। ऐसा करनेसे ही वह चौबीस घंटे धड़क पाता है। यदि कायोत्सर्ग न करे तो इतना काम नहीं कर सकता।

स्वास्थ्यका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव और शिथिलीकरण। कायोत्सर्ग विश्राम देनेवाला है। यह शरीर और मन—दोनोंको विश्राम देता है। हमारी शारीरिक और मानसिक प्रणालीको स्वस्थ रखनेका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—कायोत्सर्ग। मनपर भी कितना भार होता है! कोई गधा, बैल, ऊँट जितना भार नहीं ढोता, उससे ज्यादा भारवाहक मन है। एक छोटी-सी घटना घटी और चली गयी, किंतु उसका भार मनों-टनोंसे भी ज्यादा हो जाता है। इतना भार हमारा मन और मस्तिष्क ढोता है। वह भार कैसे मिटाया जाय? इसके लिये बहुत सुन्दर प्रयोग है—कायोत्सर्ग।

भार-विशोधन—पूछा गया—'भन्ते! कायोत्सर्गसे क्या होता है?' कहा गया—'जो भार है, उसका विशोधन होता है।' कोई ऐसा आचरण या व्यवहार हो गया, ऐसी कोई घटना हो गयी और उससे मनपर जो बोझ आ गया, उसका विशोधन होता है। प्राचीन कालमें प्रायश्चित्तविधि कायोत्सर्ग ही रही। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, आठ श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग करो। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, पंद्रह श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग, पचीस श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग अथवा क्रमशः हजार श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग एक प्रक्रिया रही है भार-विशोधनकी, प्रायश्चित्तकी। उससे आगे एक और महत्त्वपूर्ण सूचना दी गयी है—

जब चित्तकी विशुद्धि हो जाती है, तब वह बोझ उतर जाता है और हृदय पूर्ण शान्त हो जाता है। जैसे अनाजकी बोरी ढोनेवाला उसे ढोते समय बड़े भारका अनुभव करता है, किंतु जब वह उस बोरीको उतारकर विश्राम लेता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है, जैसे वह बिलकुल हलका हो गया हो। हमारे आचरणों, व्यवहारों, घटनाओं, परिस्थितियोंका जो दिमागपर मानसिक बोझ होता है, वह कायोत्सर्ग करते ही एकदम हलका हो जाता है। व्यक्ति असीम सुख-शान्तिका अनुभव करता है। शारीरिक, मानसिक तनावसे मुक्ति तथा स्वास्थ्यकी अमूल्य निष्पत्तियाँ और सूचनाएँ इसके द्वारा दी गयीं।

समाधान है संवर—कायोत्सर्गके बिना न मनकी शुद्धि हो सकती है और न दिमागकी। इसका भी एक आध्यात्मिक, तात्त्विक कारण है। आश्रव और संवर—ये दो बातें हैं। आश्रव मानसिक और भावात्मक विकृतिको भी पैदा करता है। जहाँ आश्रव है, वहाँ विकृति पैदा होगी। डॉक्टर कहते हैं—सामने कोई व्यक्ति खाँसता है तो दूसरे व्यक्तिको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। किसीको इन्फेक्शन है तो सामनेवालेको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। डॉक्टर जब ऑपरेशन करता है, नाकपर वस्त्र बाँध लेता है। कारण यही है कि बीमारीका संक्रमण न हो। नाक खुला हुआ है तो श्वासके साथ रोग-कीटाणु भीतर प्रवेश पा जायँगे। नाक बंद कर लो, संवर हो गया। नाकका संवर करना जरूरी है। आश्रव समस्याका मूल और संवर समाधान है। हमारे शरीरमें आश्रव बहुत हैं। आश्रवद्वार खुला हुआ है। शरीरके सारे दरवाजे बंद हों तो मन कुछ नहीं कर सकता। शरीरका योग न मिले तो कुछ नहीं हो सकता। मनोवर्गणाको और वचनवर्गणाको कौन ग्रहण करता है? शरीर करता है। यदि शरीरका कायोत्सर्ग हो जाय, शरीर शिथिल हो जाय तो मनका दरवाजा तथा बीमारियोंका द्वार भी बंद हो जाय। यह तात्त्विक बात हमारे लिये कितनी व्यावहारिक है! जिन भद्रगणोंने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही—चञ्चलता एक ही है और वह शरीरकी चञ्चलता है। कायाको ठीकसे साध लो तो मन सध जायगा, वाणी और सब बातें सध जायँगी—कितना महत्त्वपूर्ण सूत्र है यह! यदि हम इसका ठीक उपयोग करें, कायाको साध लें, कायसिद्धि कर लें और स्थिर रहना सीख जायँ तो अनेक समस्याओंसे मुक्ति मिल जाय।

रहस्यपूर्ण प्रयोग—कायोत्सर्गका एक प्रकार है ऊर्ध्व कायोत्सर्ग—खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करना। भगवान् महावीरने कायाके उत्सर्गके जो प्रकार बतलाये, उनमें एक है ऊर्ध्व कायोत्सर्ग। इससे एक रहस्य प्रकट होता है। ऊर्ध्व कायोत्सर्गद्वारा प्राण-ऊर्जा संतुलित बन जाती है, कहीं अधिक इकट्ठी नहीं हो पाती। ब्रह्मचर्यकी सिद्धिका यह रहस्यपूर्ण प्रयोग है। इसका रहस्य यह है कि जिसमें रागात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा बैठना नहीं चाहता। जिसमें द्वेषात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा चलना नहीं चाहता। यह ऑपन साइंसका नियम है। रागात्मक प्रवृत्तिके लिये गमनयोगका संयम अपेक्षित है। कितना रहस्यपूर्ण सूत्र है यह! यह ऊर्ध्व-स्थान ब्रह्मचर्यकी साधनाका महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बैठकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण कम हो जाता है। खड़े होकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण बहुत कम हो जाता है। जब गुरुत्वाकर्षण बढ़ जाता है, तब गुरुत्वाकर्षण भी भार पैदा करता है। कायोत्सर्गकी अवस्थामें बैठे हैं तो गुरुत्वाकर्षण कम हो जायगा। लेटकर कायोत्सर्ग करें तो भी यही स्थिति बनती है। यह सामान्य प्रकार है। कायोत्सर्गके दो प्रकार और भी हैं—वाम-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग और दक्षिण-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग। बायीं और दायीं करवट लेटकर कायोत्सर्ग करना।

इस प्रकार कायोत्सर्गकी अनेक निष्पत्तियाँ और परिणतियाँ हैं। स्वास्थ्यकी, मनके बोझको उतारनेकी, मानसिक और शारीरिक तनावको कम करनेकी दृष्टिसे विचार करें तो कायोत्सर्गके नये-नये पहलू हमारे सामने आते हैं। यदि पूछा जाय कि प्रेक्षाध्यानकी पद्धतिमें आधारभूत प्रयोग क्या है तो उत्तर होगा—कायोत्सर्ग। प्रेक्षाध्यानका प्रारम्भ-बिन्दु और अन्तिम-बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। आत्माकी साधनाका पहला और अन्तिम बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। इसलिये इसे आत्मिक स्वास्थ्यका अमोघ सूत्र भी कहा जा सकता है।

[प्रे०—श्रीरामनिवासजी अग्रवाल]

यज्ञोपवीतसे स्वास्थ्य-लाभ

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

यज्ञोपवीत भारतीय संस्कृतिका मौलिक सूत्र है। इसका सम्बन्ध हमारे आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक जीवनसे है। यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊको 'यज्ञसूत्र' तथा 'ब्रह्मसूत्र' भी कहा जाता है। बायें कन्धेपर स्थित जनेऊ देवभावकी तथा दायें कन्धेपर स्थित पितृभावकी द्योतक है। मनुष्यत्वसे देवत्व प्राप्त करने-हेतु यज्ञोपवीत सशक्त साधन है।

यज्ञोपवीतका हमारे स्वास्थ्यसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। हृदय, आँतों तथा फेफड़ोंकी क्रियाओंपर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। लंदनके 'क्वीन एलिजाबेथ चिल्ड्रेन हॉस्पिटल' के भारतीय मूलके डॉ०एस०आर० सक्सेनाके अनुसार हिन्दुओंद्वारा मल-मूत्र त्यागके समय कानपर जनेऊ लपेटनेका वैज्ञानिक आधार है। ऐसा करनेसे आँतोंकी अपकर्षण गति बढ़ती है, जिससे क़ब्ज़ दूर होता है तथा मूत्राशयकी मांसपेशियोंका संकोच वेगके साथ होता है। कानके पासकी नसें दाबनेसे बढ़े हुए रक्तचापको नियन्त्रित तथा कष्टसे होनेवाली श्वासक्रियाको सामान्य किया जा सकता है।

कानपर लपेटी गयी जनेऊ मल-मूत्र त्यागके बाद अशुद्ध हाथोंको तुरंत साफ करने-हेतु प्रेरित करती है। यज्ञोपवीत धारण करनेके बाद बार-बार हाथ-पैर तथा मुखकी सफाई करते रहनेसे बहुतसे संक्रामक रोग नहीं होते। योगशास्त्रोंमें स्मरणशक्ति तथा नेत्र-ज्योति बढ़ानेके लिये 'कर्णपीडासन' का बहुत महत्त्व है। इस आसनमें घुटनोंद्वारा कानपर दबाव डाला जाता है। कानपर कसकर जनेऊ लपेटनेसे 'कर्णपीडासन' के सभी लाभोंकी प्राप्ति होती है।

इटलीमें 'बारी विश्वविद्यालय' के न्यूरोसर्जन प्रो० एनारीका पिरांजेलीने यह सिद्ध किया है कि कानके मूलमें चारों तरफ दबाव डालनेसे हृदय मजबूत होता है। पिरांजेलीने हिन्दुओंद्वारा कानपर लपेटी गयी जनेऊको हृदयरोगोंसे बचानेवाली ढालकी संज्ञा दी है।

नैसर्गिक चिकित्सा

[रोग ऐसे भी ठीक हो जाते रहे]

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम० ए०, पी-एच० डी०)

यह बात अच्छी तरह समझमें आती है कि प्रकृति-माता अपनी गोदमें जिन वनस्पतियों, औषधियोंको स्वयं उगाती है, उनका औषधीय गुण स्वाभाविक रूपसे बना रहता है और उनकी गुणवत्ता भी विलक्षण रहती है। इसीलिये उन औषधियोंसे निर्मित औषधोंका प्रभाव भी अक्षुण्ण होता है। अपने भारत देशके लिये प्राकृतिक सम्पदाका आलय—हिमालय वरदानस्वरूप है। उसी हिमालयके एक संक्षिप्त भू-भाग कूर्माचल—कुमाऊँके पर्वतीय देशको यहाँ अध्ययनका विषय बनाया गया है और यहाँकी पुरातन आरोग्य-विधाका किञ्चित् निदर्शन करानेका प्रयास किया गया है। सम्प्रति यह भू-भाग उत्तराञ्चलकी परिसीमामें अन्तर्हित है।

प्रकृतिके सांनिध्यका कुछ ऐसा प्रभाव है कि यहाँ रोग कम पनपते हैं। यहाँका परिवेश शुद्ध एवं सत्त्वसम्पन्न है। यहाँ प्रवहमान वायुके परमाणुओंमें विचित्र स्फूर्ति एवं चैतन्य शक्ति परिव्याप्त है। देवदारु-बनीके सघन प्रदेश स्वयंमें रोगोंके प्राकृतिक निदानस्थल-से हैं। वर्षभरमें प्रायः दस माह शीतका प्रभाव रहता है। एतदर्थ बीमारियाँ कम होती हैं। अभी कुछ ही समय पहलेकी बात है, लोगोंका जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था। आहार-विहार अत्यन्त संयमित था, दिनचर्या नियमोंमें बँधी थी, कठोर परिश्रम होनेसे शारीरिक व्यायाम स्वतः सम्पन्न हो जाता था—*'भूख मीठी कि भोजन मीठा'*—यह कहावत चरितार्थ होती दिखती थी। लोग प्रकृतिके अनुकूल चलते थे, शुद्ध

जल एवं शुद्ध वायु उपलब्ध थी। घरोंको गोबरसे लीपा-पोता जाता था। आचार-विचार, खान-पानपर लोग बड़ा ध्यान देते थे, वे सदाचारपरायण थे तो फिर रोगोंको पनपनेका मौका कैसे मिलता ? जन्मान्तरीय कर्मज व्याधियोंके लिये दैवव्यपाश्रय-चिकित्साका अवलम्बन बहुतायतसे होता रहा, लोग सुखी थे, सम्पन्न थे, नीरोग थे, स्वस्थ थे एवं बलिष्ठ थे। लोगोंकी इतनी आवश्यकताएँ नहीं थीं। अतः अमन-चैन अधिक था।

यदि कुछ आधि-व्याधि आ भी गयी तो उसका भी उपाय कर लिया जाता था। घरेलू औषधोंका बोलबाला था। आजके जैसे रोग सुने नहीं जाते थे। न कहीं अस्पताल, न कहीं डॉक्टर। घरेलू इलाज काफी था। घरकी बड़ी-बूढ़ी माताएँ सब जानती थीं। खास-खास लोगोंको जड़ी-बूटियोंका ज्ञान था। जंगलमें गये, जड़ी खोद लाये, घिसकर पिला दिया, बस रोग भाग गया। यह आश्चर्य नहीं, सत्य बात है। आज भी घरके सयाने ये सब बातें बताते हैं। वे सच्चे और सीधे-साधे होते हैं, झूठ नहीं बोलेंगे।

पेट-दर्द हुआ, अजीर्ण हुआ तो लंघन कराना मुख्य कार्य था। गाँवोंमें कुछ सयाने—बूढ़े लोग थे, जो चूल्हेकी हलकी गर्म-गर्म राखको लेकर नाभिके चारों ओर धीरे-धीरे इस प्रकार मलते थे कि दर्दमें शीघ्र ही आराम मिल जाता था और अपानवायु तथा आँतोंमें जमे मलका भी निःसारण हो जाया करता था। पथ्यमें दही या मट्ठेका 'बाँट्' पिलाया जाता था। दही या मट्ठेको थोड़े पानीमें उबालकर हींग या मेथीसे छौंककर हल्दी-नमकसे युक्त बना पेय पदार्थ 'बाँट्' कहलाता है।

यहाँ सिंसुण नामक एक जहरीला काँटेदार पौधा होता है, यूँ ही छू जाय तो फफोले उठ जातें हैं, भयंकर खुजली और दर्द होता है, पर यह लाभकारी औषधि है। यह स्नायु-सम्बन्धी दोषों तथा नसोंके दर्द, कमरदर्द आदिमें उपयोगी है। जैसे कमरमें दर्द हो तो धूपमें रोगीको पेटके बल लिटाकर, किसी मोटे कपड़ेसे इस पौधेको पकड़कर, हलके कपड़ेसे ढकी कमरपर धीरे-धीरे इससे आघात किया जाता है, इसके काँटोंका असर अंदर प्रविष्ट होता है। हलकी चुभन तथा झनझनाहट मालूम पड़ती है, थोड़ी देरमें स्वतः ठीक हो जाती है, ऐसा तीन-चार दिन करनेसे दर्द जाता रहता है। यह सिंसुण गायोंके दूध बढ़ानेमें भी उपयोगी है।

अभी कुछ दिनों पहलेतक हिमालयके भोटदेशसे भोटिया तथा शौक लोग जाड़ोंकी ठंडसे बचनेके लिये नीचे उतर आते थे और अपने साथ हिमालयकी जड़ी-बूटियाँ—अतीस, कटकी, गन्ध्रायण, शिलाजीत, जम्मू आदि लाया करते थे, जो अनेक रोगोंके निवारणके लिये पर्याप्त होती थीं। यहाँका शिलाजीत बड़ा ही गुणकारी होता है। जाड़ोंमें दूधके साथ इसका सेवन आम बात थी।

शहदको यहाँकी भाषामें 'मौ' कहा जाता है, यह नाम शहदकी मक्खी 'मौन' के आधारपर पड़ा है। पहले खूब होता रहा। शुद्ध ही होता था; मिलावट होती है, ऐसा लोग जानते भी नहीं थे। 'मौ' की कई कोटियाँ सुनी जाती हैं, जिनमें 'च्यूरिया मौ' सर्वोत्तम होता था। 'च्यूरा'के वृक्षमें छोटे-छोटे भीनी गन्धवाले सफेद-पीले फूल लगते हैं, उन्हींका रस लेकर मधुमक्खियाँ यह शहद बनाती रहीं।

शक्तिवर्धन तथा मस्तिष्कविकार दूर करनेके लिये 'दूर्वा' का रस पीना आम बात थी। माताएँ बच्चोंको गोष्ठमें ले जाकर धारोष्ण दूध पिलाया करती थीं। प्रायः हर घरमें गायें थीं। दो लोगोंके मिलनेपर कुशल-क्षेम-समाचारके मध्य 'धिनालि कतुक् छ' अर्थात् 'दूध देनेवाली गायें घरमें कितनी हैं'—यह अवश्य पूछा जाता था। दूध-घीका चलन था। घरोंमें छाँस् (मट्ठा) बाँटनेका रिवाज था। जले-कटे, घाव, फोड़े-फुंसी, दाद-खाजके लिये गायका घी चुपड़ना (मलना) पर्याप्त होता था। छोटे बच्चोंको मिट्टीसे ज्यादे परहेज नहीं कराया जाता था, अतः वे सुडौल रहते थे। गर्भवती स्त्रीका विशेष ख्याल रखा जाता था। गाँवकी बड़ी-बूढ़ी औरतें उसे रहनी-करनी सिखाती थीं। टीके-इंजेक्शनोंकी तब पैदाइश ही नहीं थी। नवप्रसूताके लिये गोमूत्रका पान तथा आगका सेंक करना मुख्य दवा थी। हाँ, गर्म दूधमें घी डालकर

जरूर पिलाया जाता था। हल्दी, अजवाइन घीमें भूनकर, पानीमें उबालकर, गुड़ मिलाकर दिया जाता था। इससे प्रदर-सम्बन्धी कोई विकार नहीं होता था। शिशुके लिये माँका दूध ही सर्वोत्तम आहार रहा। दूधकी बोतलोंका जमाना तो अब आया है। जानकार माताएँ तो इन सबसे अब भी परहेज रखती हैं। आँखें लाल होने, उनसे पानी आने तथा बाहरी चोट लगनेमें माताका दूध आँखोंमें डालना अचूक औषध थी। हड्डी बिठानेवाले, नसोंका ज्ञान रखनेवाले तथा नाभिका उपचार करनेवाले आस-पासके गाँवोंसे बुला लिये जाते थे। एरंडकी पत्तियोंका सेंक दर्दनिवारक तथा शीतनिवारक होता था।

मालतीवसन्त, अभ्रक, रससिन्दूर, वंशलोचन आदिका प्रयोग होता था। दालचीनीके जंगल-के-जंगल अभी हालहीतक देखे गये हैं। ठंडके दिनोंमें इसकी मुलायम पत्तियाँ चायमें डाली जाती थीं। ठंडके दिनों कुल्थ (गहत)-से बना रस बड़े शौकसे लोग पीते थे। जाड़ा भी दूर और पथरीसे भी बचाव। वैद्यकीका भी खूब प्रचार था। कई गाँवोंमें औषधनिर्माण होता था। दाँतोंकी सफाई, पायरिया आदिके लिये 'तिमूर' नामक एक काष्ठौषधिका प्रयोग होता था। दाँतोंमें कीड़ा लगा तो कण्टकारीकी डंठलको आगमें जलाकर वह भस्म दाँतके खोहमें डाल दी, बस दर्दसे छुटकारा मिल गया। सिरमें तेल ठोंकना और शरीरमें तेल मलना अच्छा माना जाता था। ज्वर आदिमें लंघन तथा स्वेदन खूब कराया जाता था। ज्वर उतर जानेपर भी विशेष देखभाल होती थी। खुली हवा तथा ठंडसे परहेज कराया जाता था। पथ्यके रूपमें दही-चावल और पानीके संयोगसे बने तथा हलके नमक एवं हल्दीसे युक्त घी, हींग-मेथीसे छौंक लगे पक्व पदार्थ जो 'जौल्' कहलाता है, खिलाया जाता था। अड़ूसा (वासा) यहाँ खूब होता है। श्वास-कास, क्षय तथा खाँसी आदिमें इसके क्वाथके गुणोंसे लोग परिचित थे। ऐसी अनेक औषधियाँ यहाँ होती रही हैं, जिनसे सहजमें उपचार हो जाता रहा।

तब आजके जैसे इतने भयंकर रोग पैदा ही नहीं हुए थे। इन्फेक्शनसे भी लोग परिचित नहीं थे। दवा अपने प्राकृतिकरूपमें होती थी। इसलिये साइड इफेक्टकी कोई बात ही नहीं थी। दवा जाननेवालोंमें सेवाका भाव था, लोग भी उनका खूब आदर करते थे, परस्पर सद्भाव था। सब कामोंमें भगवान्‌को साक्षी रखा जाता था, अत: फायदा ही होता था। लोगोंकी आवश्यकताएँ कम थीं, मौजसे गुजारा होता था, आजके जैसी हाय-हाय न थी। अमन-चैन था, खुशहाली थी।

नये जमानेकी हवा क्या लगी कि सब उलटा-पुलटा हो गया। अब तो गाँव-गाँव स्वास्थ्य-केन्द्र खुल गये हैं, हॉस्पिटल खुलने लगे हैं, प्राइवेट क्लिनिक खुल रहे हैं, परामर्शकेन्द्रोंकी प्रतिष्ठा भी हो रही हैं, तथाकथित प्रैक्टिस चल पड़ी है, लोग भी अप-टू-डेट हो गये हैं, तो बेचारे रोग पीछे क्यों रहें? विकासकी बात है, रोगोंने भी पाँव फैलाने शुरू कर दिये हैं, वे भी विकासकी सोच रहे हैं। किसीको क्या फर्क पड़ेगा? पर गाँवकी बची-खुची वे बड़ी-बूढ़ी माताएँ और वे सयाने लोग, जो चुटकीमें सब ठीक कर दिया करते थे, यह सब देख-सुनकर बेहद परेशान हैं और बोल उठते हैं—'अभी ये हाल है, आगे क्या होगा, भगवान् ही जाने। अरे सपूतो! कुछ ऐसी रहनी-करनी बनाओ कि इन दवाओंसे पाला ही न पड़े।'

त्रिफला—हरड़, बहेड़ा, आँवलाकी समान मात्राको त्रिफला कहते हैं।

त्रिकटु—सोंठ, कालीमिर्च, पीपलकी समान मात्राको त्रिकटु कहते हैं।

त्रिमद—वायविडंग, नागरमोथा, चित्रककी समान मात्राको त्रिमद कहते हैं।

त्रिजात—दालचीनी, तेजपात एवं इलायचीकी समान मात्राको त्रिजात कहते हैं।

त्रिलवण—सेंधानमक, कालानमक और विडनमककी समान मात्राको त्रिलवण कहते हैं।

स्वस्थ जीवनके सूत्र

[देवदुर्लभ मानव-शरीरको स्वस्थ रखे बिना प्राणी अपने लक्ष्यतक पहुँच नहीं पाता। कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना और चतुर्विध पुरुषार्थके समुचित साधन स्वस्थ जीवनमें ही सम्भव हो सकते हैं। आजकल शारीरिक तथा मानसिक भोग-विलासके प्रसाधनोंकी इतनी विपुलता हो गयी है कि सामान्य मानव मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्यसे दिनों-दिन विमुख एवं वञ्चित होता जा रहा है। जीवनकी अतिव्यस्तता, विलासिता या इन्द्रिय-लोलुपताके कारण मानसिक तनाव तथा शारीरिक कष्ट (गलत रहन-सहनका कुप्रभाव) बढ़ता जा रहा है। मानवके सहज स्वाभाविक गुण—प्रेम, सहानुभूति, सेवा तथा सद्व्यवहार आदि तीव्र गतिसे समाप्त होते जा रहे हैं और इनके स्थानपर घृणा, भय, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि तेजीसे बढ़ते चले जा रहे हैं। इन परिस्थितियोंमें पाचन-तन्त्रके रोगोंकी उत्पत्ति होती है, जो सब प्रकारके रोगोंके कारण हैं। गम्भीरतासे विचार करनेपर यह ज्ञात होगा कि अन्तर्मनमें व्याप्त भय, ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, राग-द्वेषके भीतर ही समस्त रोगोंका बीज या अंकुर विद्यमान है।

आजकल लोग स्वस्थ तो रहना चाहते हैं, पर इसके लिये डॉक्टरी दवाओंका प्रयोग अधिक करनेके परिणामस्वरूप उपस्थित रोगके दब जानेपर भी अन्य कई रोगोंके बीजका सूत्रपात शरीरमें हो जानेसे निरन्तर कष्टमें पड़े रहते हैं। सामान्यतः व्यक्ति छोटी-मोटी बीमारियोंसे परेशान रहते हैं और उनके लिये उन्हें बार-बार चिकित्सकोंकी शरण लेनी पड़ती है। वास्तवमें खान-पान, आहार-विहार एवं रहन-सहनकी अनियमितता तथा असंयमके कारण ही रोग और व्याधियोंका प्रादुर्भाव होता है। संयमित और नियमित जीवनसे प्राणी रोगमुक्त हो जाता है। प्रकृतिके कुछ सरल और स्वाभाविक नियम हैं, जिनके अनुपालनका ध्यान रखनेपर व्यक्ति प्रायः अस्वस्थ नहीं होते। यदि किसी कारणवश कोई बीमारी हो जाती है तो बिना औषध-सेवन किये वे प्राकृतिक नियमोंके पालनसे स्वस्थ हो सकते हैं।

प्राचीन कालसे भारतीय परम्परामें संयमित आहार-विहारसे युक्त नियमपूर्वक जीवनयापन ही स्वस्थ जीवनका सर्वोत्तम उपाय माना जाता है। इस दृष्टिसे सर्वसाधारणके लिये उपयोगी स्वस्थ जीवनके कुछ मूलभूत सिद्धान्त एवं सूत्र यहाँ प्रस्तुत हैं। —सं०]

स्वस्थताका रहस्य

रोगोंके उपचारकी अपेक्षा रोगोंसे बचना अधिक श्रेयस्कर है। यदि हम प्रयत्न करें और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियमोंकी जानकारी प्राप्त करके उनका नियमपूर्वक पालन करें तो अनेक रोगोंसे बचकर प्रायः जीवनपर्यन्त स्वस्थ रह सकते हैं।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि स्वस्थ कौन है? वास्तवमें मनुष्यके स्वस्थ रहनेका अर्थ यह है कि उसके शरीरके सभी अङ्ग पूर्ण और अपने-अपने कार्यका निर्वाह करनेमें समर्थ हों, शरीर न अधिक स्थूल हो न अधिक दुर्बल तथा मन एवं मस्तिष्कपर पूर्ण अधिकार हो। स्वस्थ रहनेके लिये शरीर एवं मन दोनोंका स्वस्थ होना अनिवार्य है। यदि आपका शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट है, किंतु मन दुर्बल, अस्वस्थ एवं रोगी है तो ऐसी शारीरिक स्वस्थता किसी भी कार्यके लिये उपयोगी नहीं है। मनकी प्रेरणासे ही शरीरको कार्य करनेकी प्रेरणा मिलती है। अस्वस्थ मनद्वारा किया गया कार्य कभी भी सुचारुरूपसे पूर्ण नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि मन स्वस्थ है और शरीर दुर्बल तो मनद्वारा प्रेरित कार्यको शरीरकी दुर्बलता निष्क्रिय बना देगी। अतः पूर्ण स्वास्थ्यके लिये मन और तन—इन दोनोंका स्वस्थ होना अत्यावश्यक है।

स्वास्थ्यकी रक्षा—मानव-शरीर ईश्वरद्वारा निर्मित एक ऐसा जटिल तथा स्वचालित यन्त्र है, जिसमें एक ही समयमें विभिन्न अङ्ग, विभिन्न कार्योंका सम्पादन करते हैं। यदि हम इस यन्त्रके रख-रखावपर ध्यान नहीं देंगे तो क्या होगा? इसकी कार्यक्षमता व्यतीत होते हर क्षणके साथ कम होती जायगी, हमारा स्वास्थ्य हमसे छिन जायगा और शरीर रोगालय बनकर रह जायगा। अतः

आवश्यक है कि हम इसे सही ढंगसे कार्य करनेकी स्थितिमें रखनेके लिये प्रयत्न करें। नीरोग एवं स्वस्थ रहनेके लिये निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये—

१-सामर्थ्यानुसार व्यायाम करें।

२-भरपूर निद्रा लें तथा आराम करें।

३-सामयिक वस्त्रोंको धारण करें।

४-उठने-बैठनेकी उचित मुद्रा अपनायें।

५-शरीरको साफ और स्वच्छ रखें।

६-यथोचित मात्रामें पौष्टिक भोजन ग्रहण करें।

७-असत् स्वभावके अभ्याससे वञ्चित रहें।

८-तनावमुक्त रहें।

९-शरीरकी मालिश नियमित करें।

१०-सप्ताहमें एक बार उपवास अवश्य करें।

स्वास्थ्य एवं व्यायाम

शारीरिक व्यायाम हमारे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना भोजन और पानी। यदि हम स्वस्थ, बलवान्, चुस्त और फुर्तीला बनना चाहते हैं तो व्यायाम अत्यावश्यक है। किंतु आजके—आधुनिक जीवनमें हम इतने आरामपसंद तथा आलस्ययुक्त हो गये हैं कि कुछ दूर पैदल चलना भी अपनी मान-मर्यादाके प्रतिकूल समझते हैं और विशेषतया वाहनोंका ही सहारा लेते हैं। इसी आरामपरस्तीके कारण हम सामान्य रोगोंके साथ-साथ हृदय-रोगोंको आमन्त्रित करते हैं। यदि हम नियमित व्यायाम करें तो न केवल रोगोंको अपने पास आनेसे रोक सकते हैं, वरन् अनेक सामान्य रोगों—जैसे अपच, क़ब्ज़, अनिद्रा आदिको बिना औषधि-सेवनके ही दूर भगा सकते हैं। व्यायामका सर्वाधिक प्रभाव हमारी श्वास-क्रियापर पड़ता है। एक स्वस्थ व्यक्ति एक मिनटमें १५ से १८ बार श्वास लेता और छोड़ता है। श्वास लेते समय शुद्ध वायु ऑक्सीजनके रूपमें शरीरमें प्रविष्ट होता है और पूरे शरीरका भ्रमण करके कार्बन डाइऑक्साइडके रूपमें बाहर निकलता है। व्यायाम करते समय हमारी श्वास-प्रक्रिया तीव्र हो जाती है, इससे रक्तका संचार भी तेज हो जाता है तथा शरीरकी भीतरी सफाई ठीकसे होती रहती है। व्यायामद्वारा शरीरकी त्वचाके रोम-कूप खुल जाते हैं और भरपूर पसीना आने लगता है, जिससे शरीरकी अस्वच्छता बाहर निकल जाती है।

इसके अतिरिक्त व्यायामसे अन्य लाभ भी हैं, जैसे—

१-व्यायाम करनेसे अनेक रोगोंसे रक्षा होती है।

२-हृदय-संवहनी नलिकाओंको बल प्राप्त होता है।

३-दिलका दौरा (Heart Attack) पड़नेकी सम्भावना कम हो जाती है।

४-शरीरको विश्राम मिलता है, जिसके फलस्वरूप अनिद्रा, बेचैनी तथा तनाव-जैसे रोग भी दूर हो जाते हैं।

५-मानसिक एकाग्रता और सतर्कता बढ़ती है।

६-शारीरिक चुस्ती-फुर्ती और शक्ति बढ़ती है।

७-प्रसव-पीडा कम होती है।

८-अस्थमा, मधुमेह, गठिया, कमर-दर्द आदि रोग दूर हो जाते हैं।

९-मोटापा दूर होता है।

१०-पेटके रोगोंसे रक्षा होती है।

व्यायाम करनेसे पूर्व—व्यायाम प्रारम्भ करनेसे पहले यह जानना आवश्यक है कि आपका शारीरिक गठन कैसा है तथा आपका कार्यक्षेत्र क्या है? जो लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं, उन्हें अधिक कठोर व्यायामकी आवश्यकता नहीं होती, किंतु जो इसके विपरीत मानसिक कार्य अधिक करते हैं, उन्हें कठोर व्यायामकी आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार दुबले-पतले व्यक्तियोंको ऐसा व्यायाम करना चाहिये, जिससे उनके शरीरके सभी अङ्ग सक्रिय हो सकें। ऐसे व्यक्तियोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि उनकी कमजोरीका मुख्य कारण दुबलापन नहीं, बल्कि मांसपेशियोंकी दुर्बलता है। अतः उन्हें ऐसा व्यायाम करना चाहिये जिससे मांसपेशियाँ मजबूत एवं सुदृढ़ हों। इसके विपरीत जिनका शरीर काफी सुडौल एवं मांसपेशियाँ मजबूत हैं, उनके लिये तनिक कठोर व्यायाम श्रेयस्कर होते हैं। जो किसी कारण मोटे हो गये हैं, उन्हें कठोर व्यायाम न करके ऐसा व्यायाम करना चाहिये, जिसका प्रभाव शरीरकी अनावश्यक चर्बीपर पड़े तथा जो इसे कम करके मांसपेशियोंको सुदृढ़ एवं मजबूत बनाये। ऐसे व्यक्तियोंके लिये उचित होगा कि

वे किसी विशेषज्ञसे परामर्श प्राप्त करनेके पश्चात् ही अपने लिये व्यायामका चुनाव करें।

व्यायाम करते समय निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखें—

(१) ढीले वस्त्र ही धारण करें। कसे हुए वस्त्र पहनकर व्यायाम नहीं करना चाहिये।

(२) कोई भी व्यायाम करनेके पश्चात् दस-बारह बार लम्बे एवं गहरे साँस लेने चाहिये।

(३) यदि किसीको कोई संक्रामक अथवा गम्भीर रोग हो तो उसे व्यायाम करनेसे पहले चिकित्सकसे परामर्श कर लेना चाहिये अन्यथा व्यायाम हानिकर सिद्ध हो सकता है।

(४) व्यायाम ऐसे स्थानपर करना चाहिये, जहाँ स्वच्छ वायुका आवागमन हो, वातावरण स्वच्छ हो। गंदे एवं अस्वच्छ वातावरणमें व्यायाम करनेसे कोई लाभ नहीं होता है।

व्यायाम करनेके लिये सबसे उपयुक्त एवं उत्तम समय प्रातःकालका होता है, किंतु उपर्युक्त सभी नियमोंका पालन करते हुए रात्रिको सोनेसे पूर्व भी हलका व्यायाम किया जा सकता है।

व्यायामकी विधि

व्यायाम कैसे किया जाय, इस विषयमें कोई एक ही मत प्रचलित नहीं है। कुछ विशेषज्ञोंका विचार है कि व्यायामकी गति तीव्र होनी चाहिये और कुछ विशेषज्ञोंका कहना है कि गति धीमी होनी चाहिये। परंतु सर्वश्रेष्ठ व्यायाम वही है जिसमें चुस्ती-फुर्ती तथा तेजी तो हो पर यह भी नहीं कि व्यायाम करनेवाला थकानका अनुभव करे। वस्तुतः व्यायामकी गति ऐसी होनी चाहिये जिससे मांसपेशियोंमें सिकुड़न एवं फैलाव उत्पन्न हो। इसके लिये उचित यही है कि मांसपेशियोंमें कुछ क्षणोंके लिये तनाव उत्पन्न करनेके बाद उन्हें ढीला छोड़ दिया जाय जिससे रक्त-संचरण तीव्र गतिसे हो सके।

व्यायाम करनेसे शरीरमेंसे स्वाभाविक रूपसे पसीना निकलता है तथा थकान होती है। अतः थकान दूर करनेके लिये कुछ देर विश्राम करना आवश्यक है। विश्राम पसीना सूखनेतक करना चाहिये, तत्पश्चात् शीतल जलसे स्नान करना चाहिये। इससे रही-सही थकान भी दूर हो जाती है एवं शरीरकी शुद्धि भी होती है।

सबसे उत्तम व्यायाम है भ्रमण—इसके लिये प्रातःकालका समय सर्वोत्तम है, इस समय वातावरण अत्यन्त ही आनन्ददायक होता है तथा वायु भी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यवर्धक रहता है।

प्रातःकी सैर यदि हरी-हरी घासपर नंगे पाँव की जाय तो सर्वोत्तम है। इससे शरीर स्वस्थ रहता है, भूख अधिक लगती है तथा थकान भी अनुभव नहीं होती। नंगे पाँव सैर करनेसे पूर्व यह ध्यान रहे कि उस स्थानपर काँटे और गंदगी आदि न हो।

आहार एवं स्वास्थ्य

हम दिनभरमें जो कुछ भी सेवन करते अर्थात् खाते-पीते हैं, वह आहार कहलाता है। आहार एवं स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रतिदिनके आहारद्वारा शरीरको विकास तथा क्रियाओंके सम्पादन-हेतु आवश्यक ऊर्जा प्राप्त होती है। किंतु हममेंसे अधिकांश व्यक्ति यह नहीं जानते कि हमें कैसा आहार लेना चाहिये। वास्तवमें हमें ज्ञान ही नहीं है कि हमारे शरीरको किन आवश्यक तत्त्वोंकी आवश्यकता है तथा वे तत्त्व हमें किन स्रोतोंसे प्राप्त हो सकते हैं। उदाहरणके लिये अधिक शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तियोंको अधिक पौष्टिक भोजनकी आवश्यकता होती है। इसके विपरीत हलका शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तियोंको हलका तथा सुपाच्य भोजन करना चाहिये। वस्तुतः आहार ऐसा होना चाहिये जिससे शरीर स्वस्थ, पुष्ट तथा नीरोगी रहे।

आहार कैसा हो ?

विभिन्न प्रकारके खाद्य पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके पोषक तत्त्व समाहित होते हैं, जो शरीरके विभिन्न अङ्गोंको कार्यशील बनाये रखनेके लिये आवश्यक होते हैं। उदाहरणके लिये दूधमें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रामें होता है, जो शरीरके रोगोंसे रक्षा करने और अच्छी दृष्टिके लिये आवश्यक है। इसकी कमीसे शरीर रोगी तथा दृष्टि कमजोर हो सकती है। अतः हमारे भोजनमें इन पोषक तत्त्वों—जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन तथा खनिज-तत्त्वों आदिकी संतुलित मात्रा होनी चाहिये।

आहार-सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम

१-सदैव अपने कार्यके अनुसार आहार लेना चाहिये। यदि आपको कठोर शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है तो अधिक पौष्टिक आहार लेवें। यदि आप हलका शारीरिक परिश्रम करते हैं तो हलका सुपाच्य आहार लेवें।

२-प्रतिदिन निश्चित समयपर ही भोजन करना चाहिये।

३-भोजनको मुँहमें डालते ही निगलें नहीं, बल्कि खूब चबाकर खायें, इससे भोजन शीघ्र पचता है।

४-भोजन करनेमें शीघ्रता न करें और न ही बातोंमें व्यस्त रहें।

५-अधिक मिर्च-मसालोंसे युक्त तथा चटपटे और तले हुए खाद्य पदार्थ न खायें। इससे पाचन-तन्त्रके रोग—विकार उत्पन्न होते हैं।

६-आहार ग्रहण करनेके पश्चात् कुछ देर आराम अवश्य करें।

७-भोजनके मध्य अथवा तुरंत बाद पानी न पीयें। उचित तो यही है कि भोजन करनेके कुछ देर बाद पानी पिया जाय, किंतु यदि आवश्यक हो तो खानेके बाद बहुत कम मात्रामें पानी पी लेवें और इसके बाद कुछ देर ठहरकर ही पानी पीयें।

८-ध्यान रखें, कोई भी खाद्य पदार्थ बहुत गरम या बहुत ठंडा न खायें और न ही गरम खानेके साथ या बादमें ठंडा पानी पीयें।

९-आहार लेते समय अपना मन-मस्तिष्क चिन्तामुक्त रखें।

१०-भोजनके बाद पाचक चूर्ण या ऐसा ही कोई भी अन्य औषध-पदार्थ सेवन करनेकी आदत कभी न डालें। इससे पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है।

११-रात्रिको सोते समय यदि सम्भव हो तो गरम दूधका सेवन करें।

१२-भोजनोपरान्त यदि फलोंका सेवन किया जाय तो यह न केवल शक्तिवर्द्धक होता है, बल्कि इससे भोजन शीघ्र पच भी जाता है।

१३-जितनी भूख हो, उतना ही भोजन करें। स्वादिष्ठ पकवान अधिक मात्रामें खानेका लालच अन्ततः अहितकर होता है।

१४-रात्रिके समय दही या लस्सीका सेवन न करें।

स्वच्छता एवं स्वास्थ्य

हम अपने स्वास्थ्यके विषयमें चाहे दिन-रात सोचते रहें तथा आहार-सम्बन्धी नियमोंका पालन करते रहें अथवा अपने स्वास्थ्यको बनाये रखनेके लिये कितने ही पौष्टिक पदार्थोंका सेवन करते रहें, किंतु स्वच्छता एवं सफाईके बिना यह सब व्यर्थ है; क्योंकि स्वच्छतासे ही स्वास्थ्यकी रक्षा की जा सकती है।

स्वच्छतासे हमारा तात्पर्य केवल शारीरिक स्वच्छतासे नहीं वरन् अपने घर और आस-पासके वातावरणसे भी है। इस विषयमें आपको निम्न बातोंका ध्यान रखना चाहिये—

१-प्रतिदिन ताजे पानीसे स्नान करें, तत्पश्चात् त्वचाको तौलियेसे भलीभाँति रगड़कर सुखायें।

२-दिनमें कम-से-कम दो बार मुँह एवं दाँतोंकी सफाई अवश्य करें।

३-सदैव साफ-सुथरे वस्त्र धारण करें।

४-पीनेका पानी एवं अन्य खाद्य पदार्थ भी स्वच्छ होने चाहिये, क्योंकि अस्वच्छतासे रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

५-आपका घर तथा दफ्तर साफ-सुथरा, हवादार एवं प्रकाशयुक्त होना चाहिये।

६-सामान्य वस्त्रोंकी भाँति सदैव स्वच्छ अन्तर्वस्त्र ही धारण करें तथा नियमपूर्वक बदलें।

७-वस्त्रोंकी भाँति बिस्तर भी साफ होना चाहिये। बिस्तरकी चादरको प्रतिदिन बदलें और अन्य वस्त्रोंको धूपमें सुखा लेवें।

८-अपने पहननेके वस्त्र, तौलिया, कंघा आदि वस्तुओंके विषयमें भी पूरा-पूरा ध्यान रखें। ये चीजें न तो किसीको प्रयोगमें लाने दें और न ही किसी दूसरे व्यक्तिकी ऐसी चीजें प्रयोगमें लायें। इससे रोगके जीवाणु फैलते हैं।

९-ऐसे खाद्य पदार्थोंका सेवन कदापि न करें जो गंदे या बासी हों अथवा जिनपर मक्खियाँ आदि बैठ चुकी हों।

१०-किसीकी जूठी चीज या जूठे बरतनका प्रयोग

न करें और न ही किसी अन्य व्यक्तिको अपने जूठे पदार्थ अथवा बरतनका प्रयोग करने दें। अपने परिवारके सदस्योंके बीच भी इस नियमका पालन करें तथा आरम्भसे ही बच्चोंको अलग-अलग खानेकी आदत डालें।

११-रात्रिको सोनेसे पहले अपने दाँतों एवं मुँहकी अच्छी तरहसे सफाई करें और प्रातः उठनेपर भी यही काम करें।

१२-खाँसी, जुकाम आदि संक्रामक रोगोंमें खाँसते अथवा छींकते समय अपने नाक एवं मुँहके आगे रूमाल रखें, ताकि रोगके जीवाणु फैलने न पायें।

१३-यदि घरमें कोई रोगी हो अथवा आपको रोगीके पास रहना पड़े तो रोग जैसा भी हो, उससे सुरक्षित रहने तथा स्वच्छताके नियमोंका पालन करना अनिवार्य है।

१४-बहुत-से व्यक्तियोंको जगह-जगह थूकते रहनेकी आदत होती है, यह ठीक नहीं है। यदि आपमें भी यह आदत है तो इसे त्याग देवें।

१५-शारीरिक सफाई करते समय बगलों एवं गुप्तेन्द्रियोंकी सफाई करना न भूलें।

१६-हाथ-पाँवके नाखून बढ़ जानेसे इनमें गंदगी भर जाती है, इसलिये नाखून बढ़ने न दें, समय-समयपर उनका छेदन करते रहें।

१७-मुँहद्वारा नाखून काटते रहना, उँगली या अँगूठा चूसना, नाक-कानमें उँगली डालना आदि स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं। अतः इन्हें त्याग देवें।

१८-मुँहद्वारा साँस नहीं लेनी चाहिये, यथासम्भव नाकद्वारा ही साँस लेवें।

१९-रात्रिको सोते समय मुँह ढककर न सोयें।

विश्राम एवं स्वास्थ्य

विश्राम करना स्वास्थ्यके लिये उतना ही आवश्यक है, जितना काम करना। विश्रामसे हमारे शरीरको शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है। हमारे शरीरमें कई अङ्ग हैं और ये सभी अङ्ग स्वतन्त्र अथवा सम्मिलित रूपसे अपना-अपना कार्य करते हैं। इन कार्योंके सम्पादनमें ये शक्ति अर्थात् ऊर्जा व्यय करते हैं। यदि इस ऊर्जाकी पूर्ति न हो तो ये कितनी देर कार्य कर पायेंगे! इन अङ्गोंको शक्ति उपलब्ध होती है आहार आदि विभिन्न साधनोंसे, जिनमें विश्रामका भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

विश्राम करनेसे श्रमित अङ्गोंको आराम मिल जाता है तथा उनमें फिरसे काम करनेकी क्षमता आ जाती है। इसके अतिरिक्त आजके भौतिकवादी युगमें मनुष्यकी मानसिक उलझनें इतनी बढ़ गयी हैं कि यदि समयपर विश्राम न मिले तो मानसिक दबाव तथा उत्तेजनासे मिरगी, हिस्टीरिया आदि-जैसे रोग हो सकते हैं। अतः मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्यके लिये विश्राम अनिवार्य है।

विश्रामका समय— विश्रामकी दो मुख्य अवस्थाएँ होती हैं—प्रथम कुछ देर विश्राम करना और द्वितीय नींद लेना। प्रथम अवस्थामें विश्राम-हेतु कोई निश्चित नियम नहीं है। जब भी आप शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रमके फलस्वरूप थकान अनुभव करें तो शरीरको ढीला छोड़कर तथा मस्तिष्कको विचारोंसे मुक्त करके कुछ समयके लिये लेट जायँ। ऐसा करनेसे थके हुए स्नायु पुनः क्रियाशील हो जाते हैं।

इसी प्रकार दोपहरके भोजनके पश्चात् भी कुछ देर विश्राम करना आवश्यक है, किंतु ऐसा केवल ग्रीष्मकालमें करना चाहिये। शीतकालमें विश्राम करना अहितकर है।

द्वितीय अवस्था अर्थात् निद्राके विषयमें निम्न बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है—जो लोग दिनभर अधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं, उन्हें कम-से-कम आठ एवं अधिक-से-अधिक दस घंटेकी नींद लेनी चाहिये। जो लोग कम शारीरिक श्रम करते हैं, उन्हें अधिकतम आठ घंटे सोना चाहिये। इसी प्रकार मानसिक कार्य करनेवाले व्यक्तिको भी आठ घंटेसे अधिक नहीं सोना चाहिये। यहाँ यह बात तो निश्चित एवं अन्तिमरूपसे कही जा सकती है कि प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह शारीरिक श्रम करता है अथवा मानसिक, कम-से-कम छः घंटे अवश्य नींद लेनी चाहिये। नन्हे बच्चे काफी अधिक समयतक सोते रहते हैं। इनके सम्बन्धमें किसी प्रकारका कोई नियम नहीं होता।

आजकी भागती-दौड़ती जिंदगीमें अधिकांश लोग अनिद्रा-रोगके शिकार हो चले हैं। अनिद्राकी अवस्थामें नींद लानेके लिये नींदकी गोलियोंका सेवन करना

विशेष हानिप्रद है।

पूर्ण विश्राम-हेतु कुछ अन्य नियम

विश्राम करनेके लिये एकान्त होना आवश्यक है, शोर-शराबेमें अच्छी नींद नहीं आती। विश्राम करते समय किसी प्रकारका मानसिक अथवा शारीरिक तनाव नहीं होना चाहिये। यदि आप मानसिक रूपसे थकान अनुभव कर रहे हैं तो अत्यन्त आवश्यक है अपने मस्तिष्कको प्रत्येक विचारसे रिक्त कर दें तथा आँखें मूँदकर पड़े रहें। विश्रामके इन क्षणोंमें यदि आप अपनी किसी उलझन या समस्याके विषयमें सोचते रहेंगे तो आपकी थकानमें वृद्धि ही होगी। इसके विपरीत यदि मस्तिष्क खाली रहेगा तो पाँच-सात मिनट बाद ही आप अपनेको तरोताजा महसूस करने लगेंगे। गहरी एवं पूरी नींद लेनेके लिये आवश्यक है कि मनमें किसी प्रकारकी कोई चिन्ता अथवा मानसिक परेशानी न हो।

सोते समय पोशाक ढीली-ढाली होनी चाहिये; क्योंकि तंग लिबाससे विभिन्न शारीरिक अङ्गोंपर दबाव पड़ता है, जिससे इन अङ्गोंके कार्य-सम्पादनके प्राकृतिक क्रममें बाधा उत्पन्न हो जाती है और शरीरको आराम नहीं मिल पाता।

रात्रिको अधिक देरतक जागना और प्रातः देरतक सोये रहना स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है। रातको सोने तथा प्रातः उठनेका समय निश्चित करें और सामान्य परिस्थितियोंमें इसमें कोई फेरबदल न करें।

नींद लेनेके पश्चात्—प्रातःकाल नींद पूरी होनेपर बिस्तर छोड़नेसे पूर्व सभीको चाहिये कि वे बिस्तरपर अपने शरीरको पूरी तरह फैलाकर कुछ समय लेटे रहें। उसके बाद सारे शरीरपर धीरे-धीरे दोनों हाथ मालिश करनेके ढंगसे घुमाने चाहिये। इससे रक्तसंचार बढ़नेमें सहायता मिलती है। उठनेसे पहले कुछ देर व्यक्तिको बिस्तरपर पेटके बल चित लेटना चाहिये, क्योंकि रात्रिके समय व्यक्ति दायीं या बायीं करवट सोता है। पेटके बल लेटनेसे पेट खुलकर साफ होता है, शरीरको भी आराम मिलता है। रीढ़की हड्डी भी सीधी बनी रहती है।

पेटके बल लेटनेके बाद व्यक्तिको पुनः बिस्तरपर सीधे लेटकर अपने दोनों पाँव सिकोड़कर घुटने छातीतक ले जाने चाहिये और दोनों हाथसे घुटने पकड़कर धीरे-धीरे नीचेको दबाने चाहिये, इससे भी पेट साफ रहता है। बिस्तर छोड़नेसे पूर्व आवश्यक है कि हम अपने हाथ और पैर हवामें घुमाते हुए हलका व्यायाम करें। पैरोंको इस प्रकार चलायें जैसे साइकिल चला रहे हों। इन उपायोंसे शरीरमें और अधिक स्फूर्ति तथा चेतनाका संचार होगा एवं स्वस्थ रहनेमें विशेष सहायता मिलेगी।

पोशाक एवं स्वास्थ्य—पोशाक अर्थात् वस्त्र धारण करनेका अर्थ मात्र सभ्य होनेका परिचय देना नहीं वरन् शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना है। अतः वस्त्रोंका चयन करते समय यह अवश्य ध्यान रखें कि वस्त्र ऐसे हों जिन्हें पहनकर शरीरकी रक्षा हो सके। इस संदर्भमें जलवायुका ध्यान रखना आवश्यक है। नायलॉन आदि सिंथेटिक वस्त्रोंको यथासम्भव न पहनें। ऐसे वस्त्र स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हानिकारक होते हैं क्योंकि इनमें पसीना सोखनेकी क्षमता नहीं होती, जिससे त्वचामें संक्रमण होनेका भय रहता है।

चिन्ता एवं स्वास्थ्य—आपने सुना होगा 'चिन्ता चिता समान' चिन्तासे सर्वप्रथम तनाव, तत्पश्चात् शारीरिक अस्वस्थताकी उत्पत्ति होती है। अतः उत्तम स्वास्थ्यके लिये परम आवश्यक है कि हम सभी प्रकारकी चिन्ताओं, क्रोध, द्वेष और तनाव आदिसे दूर रहें।

चिन्ता त्यागकर ही हम स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं और चिन्ता त्यागना कोई कठिन काम भी नहीं है। निम्न बातोंका पालन करनेसे चिन्ता दूर हो सकती है—

१-सदैव प्रसन्न रहें। समस्याओंसे घबरायें नहीं, बल्कि उनका साहसपूर्वक सामना करें। जो लोग समस्याओंसे घबराते हैं, वे हालातके सामने न केवल हार मान लेते हैं, बल्कि अपना स्वास्थ्य भी नष्ट कर लेते हैं।

२-फलकी चिन्ता छोड़कर अपने प्रत्येक उत्तरदायित्वका पालन लगन एवं सचाईसे करें। प्रकृति स्वयं ही इसका फल देगी।

३-हालातसे कभी निराश न हों। जो व्यक्ति निराश हो जाते हैं, वे जीवनको भार मानने लगते हैं। जीवन

बोझ नहीं बल्कि एक वरदान है।

४-अपने कर्तव्योंके प्रति निष्ठावान् बनें। कर्तव्य-पालन मनको वास्तविक प्रसन्नता एवं तृप्ति प्रदान करता है।

५-अधिकांश रोगोंकी उत्पत्ति मानसिक असंतोष, चिन्ता एवं उद्विग्नताके कारण ही होती है। इनसे सदैव बचना चाहिये।

६-कभी किसी बातका वहम नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहम ही प्रत्येक रोगोत्पत्तिका कारण है और इसका कोई उपचार नहीं।

शारीरिक मुद्राएँ एवं स्वास्थ्य—हमारी शारीरिक मुद्राओंका हमारे स्वास्थ्यसे सीधा सम्बन्ध है। जब हम खड़े होते हैं या उठते-बैठते अथवा विश्राम करते हैं, तब हमारे शरीरकी विभिन्न मांसपेशियाँ तथा अङ्ग विशेषरूपसे मेरुदण्ड निरन्तर दबावमें रहते हैं। यदि ये शारीरिक क्रियाएँ त्रुटिपूर्ण शारीरिक मुद्राओंके साथ की जायँ तो कमर-दर्द और गर्दन-दर्दके साथ-साथ शरीरके अन्य अङ्गों और जोड़ोंमें भी दर्द उत्पन्न हो सकता है। अपनी त्रुटिपूर्ण शारीरिक मुद्राओंको पहचानें तथा उन्हें सुधारनेका प्रयास करें। यदि आप निम्न उपायोंको प्रयोगमें लेते हैं तो अनेक शारीरिक व्याधियोंसे सुरक्षित रहकर स्वस्थ-जीवन व्यतीत कर सकते हैं—

खड़े होनेकी सही मुद्रा—खड़े होनेकी सही शारीरिक मुद्रा वह है, जिसमें मेरुदण्डपर कम-से-कम दबाव पड़े तथा वह प्राकृतिक रूपसे 'S' के आकारमें रहे। यदि आपको अपने कार्यके प्रकृतिके अनुरूप अधिक देरतक खड़ा रहना पड़ता हो तो अपना एक पैर फर्शकी सतहसे ऊँचे स्टूलपर रखें, इससे मेरुदंडपर कम दबाव पड़ता है।

बैठनेकी सही मुद्रा—जिन लोगोंको लगातार कई-कई घंटे बैठकर काम करना होता है, उनके लिये आवश्यक है कि वह आरामदेह तथा सुविधाजनक डिजाइनकी कुर्सीका प्रयोग करें। आजकल ऐसी अनेक कुर्सियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें कमरके निचले भागके लिये हलका-सा घुमाव बना रहता है। कुर्सीकी ऊँचाई मेजके अनुरूप होनी चाहिये, ताकि कार्य करते समय आपके कंधों तथा गर्दनपर अनावश्यक दबाव न पड़े।

विश्राम करनेकी सही मुद्रा—विश्राम करनेकी सही मुद्रा आपकी व्यक्तिगत आवश्यकताओंपर निर्भर है। किसी व्यक्तिको करवटके बल लेटना अधिक भाता है तो किसीको पीठके बल लेटना। किंतु फिर भी विशेषज्ञोंकी रायमें विश्राम करनेकी सर्वश्रेष्ठ मुद्रा पीठके बल लेटनेकी है। इससे मेरुदण्डपर न्यूनतम दबाव पड़ता है।

दुर्व्यसन एवं स्वास्थ्य—धूम्रपान अथवा शराब पीना आज एक फैशन-सा बन गया है, जिसकी दौड़में महानगरोंमें रहनेवाली महिलाएँ भी पीछे नहीं हैं। घरों, उत्सवों या क्लबों इत्यादिमें अधिकांश पुरुष तथा महिलाएँ यूँ सिगरेट फूँकते अथवा शराब पीते नजर आते हैं मानो यह उनके व्यक्तित्वका प्रमुख आकर्षण हो। किंतु वे यह नहीं जानते कि इन दोनों दुर्व्यसनोंसे कैसे-कैसे भयानक रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

अमरीकाकी एक मेडिकल रिसर्च कॉउन्सिलद्वारा किये गये सर्वेक्षणके अनुसार धूम्रपान तथा शराब पीनेसे क्षयरोग, हृदयरोग, कैंसर आदि अनेक मृत्युदायक रोग हो सकते हैं। अत: यदि आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो आपको इन दोनों दुर्व्यसनोंको तुरंत त्यागना होगा। इन हानिकारक आदतोंसे न केवल स्वास्थ्यका नाश होता है, बल्कि मनुष्य समाजमें भी प्रतिष्ठा खो बैठता है। अत: दृढ़निश्चय करके इनका तुरंत बहिष्कार कर दें। प्रारम्भमें आपको कुछ कठिनाइयाँ प्रतीत होंगी, लेकिन यदि आप अपने निश्चयपर अडिग रहे तो सफलता आपको मिलकर ही रहेगी।

मालिश एवं स्वास्थ्य—मालिश सरल एवं उपयोगी व्यायाम ही नहीं बल्कि हमारे शरीरके लिये टॉनिक भी है। मालिशसे रक्त-संचार तीव्र होता है तथा विभिन्न शारीरिक अङ्गोंकी थकान दूर होती है, शरीरमें स्फूर्ति और शक्तिका संचार होता है।

सारे शरीरकी धीरे-धीरे मालिश सरसों, जैतून अथवा बादामके तेलसे करनी चाहिये। अधिक कठोरतासे या बहुत जल्दी-जल्दी मालिश न करें।

रोगग्रस्त व्यक्तियोंकी रोगकी हालतमें मालिश नहीं करनी चाहिये—विशेषकर श्वास-रोगों, पेटके विकारों आदिसे पीडित व्यक्तियोंकी।

मालिश करनेसे पहले या एकदम बाद स्नान अथवा भोजन नहीं करना चाहिये। मालिश करनेके बाद, कम-से-कम आधा घंटा विश्राम करनेके बाद स्नान करें।

स्वास्थ्यके साथ-साथ मालिश सौन्दर्यके लिये भी लाभप्रद है। मालिशसे चेहरेकी त्वचाका रंग निखर जाता है और सौन्दर्यमें वृद्धि होती है। इसी प्रकार सिरकी मालिश करनेसे मस्तिष्कको लाभ होता है तथा बाल घने, चमकीले और मजबूत बनते हैं।

उपवास एवं स्वास्थ्य—उपवास एक सरल प्राकृतिक क्रिया है, जो स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है। उपवास करनेसे शरीरको आराम मिलता है तथा शरीरकी सफाई होती है। समय-समयपर एक-दो दिनका उपवास साधारण रोगोंके साथ-साथ अनेक असाध्य रोगों—जैसे मधुमेह, बवासीर आदिमें लाभ प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त पाचन-तन्त्रके रोगों, जैसे क़ब्ज़, अपच आदिमें तो उपवास चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है।

उपवास करनेसे पूर्व यह भ्रम मनसे निकाल देना चाहिये कि इससे आप कमजोरी महसूस करेंगे। उपवाससे मन प्रसन्न रहता है तथा स्फूर्ति आती है।

उपवासके दौरान मुँहसे दुर्गन्ध-सी आती महसूस होती है और जीभका रंग सफेद पड़ जाता है। यह इस बातका लक्षण है कि आपके शरीरमें सफाईका काम आरम्भ हो गया है।

क्षय-रोग (टी०बी०) अथवा हृदयरोग-जैसे गम्भीर रोगोंमें उपवास करना अनुचित माना जाता है। इसी प्रकार स्त्रियोंको भी गर्भावस्थामें उपवास नहीं करना चाहिये।

कुछ ऐसे रोग भी हो सकते हैं, जिनमें सिर्फ उपवास करना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि अन्य उपायोंको भी ग्रहण करनेकी जरूरत होती है, इसलिये चिकित्सककी सलाह लेनी चाहिये—विशेषतः उस समय जब किसी रोगके निवारणके लिये लम्बा उपवास करना हो।

उपवास आरम्भ करनेके चौबीस घंटे पहले गरिष्ठ खाद्य पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। फलाहार करना ही उचित है।

उपवास करते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। पेटके विभिन्न अङ्ग उपवास-कालमें क्रियाशील नहीं रहते, इसलिये उपवास समाप्त करनेके तुरंत बाद ही ठोस खाद्य पदार्थोंका सेवन न करें। फलोंका रस लेना ही ठीक रहता है।

आरोग्ययुक्त शतायु-प्राप्तिकी कुंजी

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरङ्गबलीजी ब्रह्मचारी)

हविष्यान्नकी आहुति पाकर कड़ुआ धुआँ भी मीठा और सुगन्धियुक्त हो जाता है तथा संखिया-जैसा भयानक विष भी संशोधन करनेपर औषध बन जाता है और समुद्रका खारा जल भी सूर्यकी किरणोंका संस्पर्श पाकर मधुरिमामें बदल जाता है—इसी प्रकार सदाचार, सद्विचार और समता आदिके अनुपालनसे कष्ट एवं क्लेशकारक मूढ चित्तवृत्तियोंका भी शमन हो जाता है तथा आरोग्य-आयु, स्वस्थ, सशक्त, शान्त वृत्तियोंका स्फुरण और जागरण होने लगता है।

यदि हम असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर और मृत्युसे अमरत्वकी ओर बढ़ना चाहते हैं, यदि हम निर्बल-दुर्बल, हताश-निराश-उदास मानव-जीवनमें सद्यः एक नयी ज्योति, नयी जागृति, नयी उमंग, नयी तरंग लाना चाहते हैं तब तो हमको बिना ननु-नच, बिना अगर-मगर, बिना किंतु-परंतुका संदेह प्रकट किये, पूर्ण निष्ठाके साथ सदाचार-सद्विचारसे परिपूर्ण आयु-आरोग्यवर्धक खान-पान, आचार-विचार, संयम-साधना, भाषा-भाव, सभ्यता-संस्कृतिको अपनाना ही होगा।

देश-वेश, मत-पक्षकी भिन्नता होते हुए भी प्रायः सभीमें शारीरिक एवं मानसिक रोगरहित आयु, आरोग्ययुक्त दीर्घजीवन-प्राप्तिकी भावना पायी जाती है। यही कारण है कि भारतीय मनीषियों-ऋषियों और महर्षियोंने पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके माध्यमसे इस मानव-शरीरके

लिये आयु-आरोग्यसे युक्त होने तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेकी कामना की है—'**सर्वभूतहिते रताः।**'

मनीषियोंने भगवान् सूर्यनारायणकी स्तुति करते हुए सौ वर्षोंतक सबको नीरोग होकर, स्वस्थ-सशक्त बनकर जीवित रहने, देखने, सुनने, बोलने तथा अदीन अर्थात् समस्त साधनोंसे सम्पन्न होकर जीवनयापन करनेकी कामना की है। यथा—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (यजु० ३६। २४)

यद्यपि वैदिक संहिताओंमें आरोग्यके मौलिक सिद्धान्त अनुस्यूत हैं तथापि आरोग्ययुक्त आयुका विस्तृत विवेचन करनेवाला शास्त्र आयुर्वेद ही है। आयुर्वेदका उद्देश्य पुरुषार्थचतुष्टयकी निर्विघ्न एवं सम्यक् प्राप्तिके साधन शरीर और मनको रोगरहित रखना है, किंतु आत्मारहित शरीर और मन आयुर्वेदके लिये चिकित्स्य नहीं हैं। आत्मासे युक्त शरीर और मनवाला पुरुष ही आयुर्वेदके विवेचन और चिकित्साका विषय है।

रोग-आरोग्य तथा सुख-दुःखका आधार शरीर और मन ही माने गये हैं—

शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः।

(च० सू० १।५५)

जैसे मिठाईसे मिठास, खटाईसे खटास, इक्षुदण्ड (गन्ना)-से रस और दुग्धसे घृत निकल जानेपर ये सभी वस्तुएँ निःसार और तेजहीन हो जाती हैं, वैसे ही सदाचार, सद्विचार, संयम और साधनारहित जीवनमें आयु-आरोग्य टिक ही नहीं पाते हैं।

आयुर्वेदमें १०१ प्रकारकी मृत्यु बतायी गयी है, जिसमेंसे सदाचार और सद्विचारके धारण और पालन करनेपर १०० प्रकारकी आगन्तुक मृत्युओंपर सदाचारी विजय पा लेता है। शेष एक तो अनिवार्य है। यथा—

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः॥

महर्षि चरकका सिद्धान्त है कि जीवनका मूल सदाचार है—

'हितोपचारमूलं जीवितम्।'

आयु-आरोग्यकी वृद्धि और रोगोंकी आमूलचूल निवृत्ति कैसे हो? इस विषयपर आयुर्वेद और अन्य प्रकारकी अनेक देशी-विदेशी चिकित्सा-पद्धतियोंने अपने-अपने ढंगसे विषय-प्रकाशन और मार्गदर्शन किया है।

इन सभी भिन्न-भिन्न चिकित्सा-पद्धतियोंके ग्रन्थों और पन्थोंकी अपनी-अपनी मान्यताएँ हैं, अपनी-अपनी विधियाँ हैं। विधियाँ अनेक हैं। कौन-सी विधि अपनायी जाय? यह प्रश्न प्रायः सबके सामने आता है। विधि वही अच्छी होती है, जिसकी सफलताके अनेक प्रमाण उपस्थित हों, पथ वही अच्छा होता है, जिसपर अनेक पथिकोंद्वारा लगाये गये पथ-चिह्न मार्गदर्शनमें सहायक हों।

यह सदाचार-सद्विचारका पथ, जिसे आयुर्वेदसमर्थित योग और वेदान्तका पथ भी कहा जा सकता है। यह ऐसा ही पथ है, यह ऐसी ही चिकित्सा-पद्धति है, जहाँ भिन्न-भिन्न सभी मतों-पथोंका उपसंहार होता है।

यह योगमार्ग आयु-आरोग्य-वृद्धिका प्रवेशद्वार है और वेदान्तमार्गका गन्तव्य स्थान है, जो लोगोंको शाश्वत आरोग्य प्रदान करता है और रोग-दोष, जरा-मरण-जैसी आधियों-व्याधियों-उपाधियोंसे सदाके लिये मुक्त कर देता है। यथा—

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेताश्वतर० २।१२)

आचार्य वाग्भटने नीरोग और शतायु मानव-जीवनकी प्राप्तिके लिये निम्नलिखित उपाय बताये हैं—

नित्यं हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० ४।३७)

अर्थात् नित्य हित (मित) आहार-विहार करनेवाला, सोच-समझकर कार्य करनेवाला, विषयोंमें अनासक्त, दान देनेवाला, हानि-लाभमें सम रहनेवाला, सत्यपरायण, क्षमावान्, आप्तपुरुषोंकी सेवा करनेवाला पुरुष नीरोग और शतायु होता है।

आचार्य चरकने इस बातको विस्तारसे बताते हुए कहा है—

नरो हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥
मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं
सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

(च० शा० २। ४६-४७)

अर्थात् हितकारी आहार-विहारका सेवन करनेवाला, विचारपूर्वक काम करनेवाला, काम-क्रोधादि विषयोंमें आसक्त न रहनेवाला, सत्य बोलनेमें तत्पर, सहनशील और आप्त पुरुषोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य अरोग (रोगरहित) रहता है। सुख देनेवाली मति, सुखकारक वचन एवं कर्म, अपने अधीन मन और शुद्ध तथा पापरहित बुद्धि जिनके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने तथा योग सिद्ध करनेमें तत्पर रहते हैं, उन्हें शारीरिक अथवा मानसिक कोई भी रोग नहीं होता।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी इसी भावका निर्देश किया है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(६। १७)

महर्षि चरकने नीरोग और दीर्घायुका आधार विशेष रूपसे सदाचारको ही माना है—

स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।
स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते॥

(च०सू० ८। ३१)

अर्थात् जो व्यक्ति स्वस्थवृत्त (सदाचार)-का विधिपूर्वक पालन करता है, वह सौ वर्षोंकी रोगरहित आयुसे पृथक् नहीं होता अथवा सौ वर्षोंतक पूर्ण नीरोग रहता है।

इसके साथ मणि, मन्त्र-धारण, साधु, द्विज, गुरु-संतकृपा, देवपूजा, भगवन्नाम-स्मरण, जप-तप आदिसे भी रोगोंका शमन होता है, आरोग्यकी प्राप्ति होती है और सुख-शान्ति भी मिलती है। सदाचारके सम्यक् सेवन, यम-नियम-पालन, स्वाध्याय, साधना तथा धर्माचरणके नियमोंके पालनसे हमारे देशके महामनीषी कालजयी, चिरजीवी बने थे और उनके संस्मरणसे आज भी व्यक्ति सर्वव्याधिविवर्जित होकर सौ वर्षोंतक जीवित रह सकता है। यथा—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥

(आचारेन्दु)

मानसिक स्वास्थ्य और सदाचार

(डॉ० श्रीमणिभाई भा० अमीन)

प्रसिद्ध है कि 'जिस मनुष्यका मन बिगड़ता है, उसका स्वभाव भी बिगड़ जाता है।' असंयम, असत्य, अभिमान, ईर्ष्या, दम्भ, क्रोध, हिंसा और कपट आदि दुर्गुण ही बिगड़े स्वभावके लक्षण हैं। ये सूक्ष्म रोग हैं। दुःस्वभाववाला व्यक्ति इन्द्रियोंके तेज और शक्तिको खो बैठता है और शरीरको भी रोगी बना देता है। अब यहाँ किस दोषसे कौन रोग होता है, थोड़ा इसपर विचार किया जाता है—

(१) असंयम—जीभको असंयमी रखनेसे वह चाहे-जैसे स्वादमें रस लेने लगती है और चाहे-जितना खानेको आतुर रहती है। परिणामस्वरूप पेटमें अधिक अयोग्य भोजन, जल चला जाता है और वह पेट या अँतड़ियोंमें रोग उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जीभके असंयमी होनेपर यदि वह चाहे-जैसी वाणी उच्चारण करे तो जीभद्वारा सम्बन्धित मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तुओंको हानि पहुँचती हैं और कुछ समय पश्चात् जीभ कैंसर या लकवा हो जानेकी स्थितिमें पहुँच जाती है। जन्मसे उत्पन्न गूँगे बालक वाणीके दुरुपयोगका दण्ड इस नये जन्ममें पाते हैं। यह देखकर हमें भी सीखना चाहिये। इसी प्रकार शरीरकी समस्त इन्द्रियाँ भी असंयमी व्यवहारसे ही अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करती हैं।

(२) असत्य—असत्य बोलनेवाले व्यक्तिकी

जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है और वह सामान्य रोगका भी भोग बन जाता है। जीवनशक्तिका आधार 'तेज' है और वह 'तेज' असत्यसे नष्ट होता है। असत्य बोलनेवाला तेजहीन हो जाता है। साथ ही असत्य वाणी बोलनेसे हृदय और मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तुओंकी हानि होती है। कुछ समय पश्चात् वह हृदयके रोग, पागलपन, पथरी, लकवा आदि रोगोंसे भी दु:खी हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

(३) **अभिमान**—मनुष्यमें वायु, पित्त और कफ—तीनोंको एक साथ संनिपातके रूपमें उत्पन्न करनेवाला अभिमान है और इसीसे किसी कविने कहा है कि ***'पाप-मूल अभिमान'*** । यह अभिमान ही मनुष्योंके दुर्गुणोंका राजा है और सब दोषों तथा रोगोंको आकर्षित करके लानेवाला बलवान् लोहेका चुम्बक है। अभिमानी व्यक्ति वायु, पित्त और कफके छोटे-बड़े अनेक रोगोंसे दु:खी रहता है।

(४) **ईर्ष्या**—ईर्ष्या करनेवाले मनुष्यमें पित्त बढ़ जाता है, जिससे उस मनुष्यकी इन्द्रियोंकी तेजस्विता नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्यकी बुद्धि और हृदय पित्तके तेजाबमें जल जाते हैं एवं वह किसी काममें प्रगति नहीं कर पाता। ऐसे मनुष्य पित्त, पथरी, जलन, लीवर-खराबी आदि रोगोंसे दु:खित रहते हैं।

(५) **दम्भ**—दम्भी लोग *कफके परिणाममें गड़बड़ उत्पन्न करते हैं। उनके दम्भी स्वभावसे उनमें कफके समान भारीपन आ जाता है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ तेजस्विता छोड़कर स्थूल होती जाती हैं। शरीरकी बुरी बनावट, भारीपन, गैस और इसी प्रकार कफजन्य अनेक रोग दम्भके कारण ही होते हैं।

(६) **क्रोध**—बिगड़े हुए मनसे अशक्य-जैसी अनेक कामनाओंके पूर्ण न होनेसे अथवा उनमें विघ्न आनेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रुद्ध मनुष्य दूसरेकी हानि कर सकेगा या नहीं यह तो दैवाधीन है; परंतु सर्वप्रथम वह स्वयंकी भी हानि करता ही है। क्रोध करनेमें मनुष्यके मस्तिष्कको अपने बहुमूल्य एवं अधिक ओज:शक्तिका उपयोग करना पड़ता है। इस प्रकार अमूल्य ओज नष्ट हो जाता है और परिणामस्वरूप जीवनशक्ति नष्ट होती चली जाती है। तदुपरान्त क्रोधके मस्तिष्कमें आते ही ओजके विशाल एवं विकृत प्रवाहसे मस्तिष्कके ज्ञानतन्तु क्षीण हो जाते हैं। बिजलीका प्रवाह घरमें लगे हुए बल्बको पारिमाणिक मात्रामें आनेपर तो जलाता है, परंतु अधिक मात्रामें आनेपर बल्बको नष्ट कर देता है और कभी-कभी तो घरको भी हानि पहुँचाता है। इससे रक्षा पानेके लिये घरके बाहर फ्यूजकी व्यवस्था की जाती है। संयम और विवेक ही हमारे फ्यूज हैं। इन्हें त्याग देनेपर ओजका अत्यधिक प्रवाह क्रोधके रूपमें उत्पन्न हो जाता है और मस्तिष्कके कितने ही भागोंको जोखिममें डाल देता है। विशेषरूपसे क्रुद्ध मस्तिष्कको अधिक मात्रामें रक्तकी आवश्यकता पड़ती है। यह रक्तराशि मस्तिष्ककी ओर जानेवाले लघु रक्तप्रवाहको खींच लेता है। क्रोधी मनुष्यके मुख और आँखें कैसी लाल हो जाती हैं, यह सबको अनुभव होगा। हँसते समय मुँह लाल होता है, क्योंकि 'मुँह'की समग्र पेशियाँ विकसित होनेसे हृदयकी ओरसे खून खिंच आनेसे ऐसा होता है। विशेष शुद्ध खून मिलनेसे, वैसी ही पेशियाँ पुलकित होनेसे यह लालिमा लाभप्रद है और सौन्दर्यवर्धक भी है। परंतु ठीक इसके विपरीत क्रोधीकी शक्ल बिगड़ती जाती है और उसके बुद्धि, बल भी धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं।

(७) **हिंसा**—हिंसा क्रोध और अभिमानसे उत्पन्न होती है। इसमें प्रवृत्त रहनेवाले व्यक्तिका रक्त सदा खौलता एवं गर्म रहता है। हिंसामें मस्तिष्क और हृदय दोनों गंदे होते हैं। अभिमान और क्रोधसे उत्पन्न रोगोंके उपरान्त ऐसे मनुष्यमें हृदयसे उत्पन्न रोग भी होते हैं। पराया दु:ख देखकर जो हृदय एकदम नरम बनकर द्रवित होने लगता है, वही हृदय अपने दु:खोंके सामने वज्र-जैसा कठोर भी बन जाता है। यह हृदयकी सत्य और वास्तविक स्थितिका गुण है। हिंसावाले मनुष्यके हृदयके ये गुण नष्ट हो जाते हैं। वह लोगोंका दु:ख देखकर हँसता है और अपने ऊपर दु:ख पड़नेपर निम्नश्रेणीका भीरु बन जाता है। तत्पश्चात् हृदयमें और सम्पूर्ण शरीरमें गर्म रक्त भ्रमण करनेसे शरीरमें वायु, पित्त और कफ—इन तीनोंको उत्पन्न करता है, जिससे

* किंतु अथर्वपरिशिष्ट ६८ एवं 'योगरत्नाकर' आदिमें कफप्रकृतिवालोंको ही सर्वश्रेष्ठ धर्मात्मा कहा गया है।

वह महाभयंकर रोगोंका शिकार बन जाता है।

(८) **छल-कपट**—कपट करनेवाला व्यक्ति भी सूक्ष्मरूपसे हिंसा ही करता है। परंतु उसकी हिंसा करनेकी युक्ति मायामय—कपटमय होनेसे दिखायी नहीं देती। वह साधारण विष-जैसी होती है। इससे ऐसे मनुष्य भी ऊपर वर्णित हिंसावाले व्यक्तिके समान ही रोगोंका शिकार बन जाते हैं। परंतु उसे जो रोगोंका दण्ड मिलता है, वह धीरे-धीरे असर करनेवाले विषके समान ही होता है।

वेदोंमें स्वस्थ-जीवनके मौलिक सूत्र

(डॉ० श्रीभवानीलालजी भारतीय एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

मानवजीवनका लक्ष्य है, पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्तिमें आरोग्यकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कहा भी गया है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

(च० सू० १।१५)

महाकवि कालिदासने शिव-पार्वती-संवादमें एक महत्त्वपूर्ण उक्ति लिखी है—'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**'

शरीर ही धर्मकी साधनाका प्रमुख साधन है। यह तो सत्य है कि मानवशरीर पाञ्चभौतिक होनेके कारण नश्वर है, अन्ततः नष्ट होनेवाला है, तथापि वह ऐसी क्षुद्र वस्तु भी नहीं है जिसकी उपेक्षा की जाय। जब कबीरने मानवशरीरको 'पानीका बुदबुदा' बताया तो उनका भाव यही था कि सीमित कालावधिके लिये जन्म लेनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह यथाशीघ्र परमात्माको पहचाने तथा श्रेयोमार्गका पथिक बने।

वैदिकसंहिताओंमें मानवको स्वस्थ तथा नीरोग रहनेकी बार-बार प्रेरणा दी गयी है। वस्तुतः वेद मानवके हितकी विधाओं तथा विज्ञानोंका भण्डार है, भगवान् मनुके अनुसार वेद पितर, देव तथा मनुष्योंके मार्गदर्शनके लिये सनातन चक्षुओंके तुल्य हैं, जिनसे लोग अपने हित और अहितको पहचानकर कर्तव्याकर्तव्यका निर्धारण कर सकते हैं। मानव-स्वास्थ्यके लिये उपयोगी शरीरविज्ञान तथा स्वास्थ्यरक्षाका विशद निरूपण इस वाङ्मयमें उपलब्ध है। वेदोंकी दृष्टिमें यह शरीर न तो हेय है और न तिरस्कारके योग्य।

वेदोंमें मनुष्यके लिये दीर्घायुकी कामना की गयी है, जो शरीर-नीरोग होनेसे सम्भव है। '**आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताःश्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्**' (यजु० ९।२१)—आदि मन्त्रोंमें मनुष्यके दीर्घायु होने तथा स्वजीवनको लोकहित (यज्ञ)-में लगानेकी बात कही गयी है। यह तभी सम्भव है जब उसके चक्षु तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ और पञ्चप्राण पूर्ण स्वस्थ एवं बलयुक्त रहें। वेदोंमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंको बलिष्ठ, स्वस्थ तथा यशस्वी बनानेके लिये कहा गया है। '**प्राणश्च मेऽपानश्च मे**' (यजु० १८।२) मन्त्रमें प्राण, अपान तथा व्यान आदिको स्वस्थ रखनेके साथ-साथ वाक्, मन, नेत्र तथा श्रोत्र आदिको भी बलयुक्त रखनेकी बात कही गयी है।

संध्योपासनाके अन्तर्गत उपस्थान-मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि उसके नेत्र, कान तथा वाणी आदि इतने बलवान् हों, जिनसे वह सौ वर्षपर्यन्त पदार्थोंको देखता रहे, शब्दोंको सुनता रहे, वचनोंको बोलता रहे तथा स्वस्थ एवं सदाचारयुक्त-जीवन जीता रहे। केवल सौ वर्षपर्यन्त ही नहीं, उससे भी अधिक '**भूयश्च शरदः शतात्**'। वैदिक उक्तिमें शरीरको पत्थरकी भाँति सुदृढ़ बनानेकी बात कही गयी है—'**अश्मा भवतु ते तनूः**'।

आरोग्यलाभके विविध साधनों तथा उपायोंकी चर्चा भी वेदोंमें आयी है। उषःकालमें सूर्योदयसे पूर्व शय्यात्यागको स्वास्थ्यके लिये अतीव उपयोगी बताया गया है। इसलिये वेदोंमें उषाको दिव्य ज्योति प्रदान करनेवाली तथा सत्कर्मोंमें प्रेरित करनेवाली देवीके रूपमें चित्रित किया गया है। जब प्रातःकालमें संध्याके लिये बैठते हैं तो हम उपस्थान-मन्त्रोंका उच्चारण करते हैं। उसी समय हमें पूर्व दिशामें भगवान् भास्कर उदित होते दिखायी देते हैं। इस पवित्र तथा स्फूर्तिदायिनी वेलामें साधक एक ओर तो आकाशमें उदित होनेवाले मार्तण्डको देखता है, दूसरी ओर वह अपने हृदयाकाशमें प्रकाशयुक्त परमात्माके दिव्य लोकका अनुभव कर कह

उठता है—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

(यजु० २०।२१)

अर्थात् अंधकारका निवारण करनेवाला यह ज्योतिःपुञ्ज सूर्य प्राची दिशामें उदित हुआ है, यही देवोंका देव परमात्मारूपी सूर्य मेरे मानस-क्षितिजपर प्रकट हुआ है और इससे निःसृत ज्ञानरश्मियोंकी ऊष्माका मैं अपने अन्तःकरणमें अनुभव कर रहा हूँ।

यो जागार तमृचः कामयन्ते (ऋक्० ५।४४।१४) ऋग्वेदकी इस ऋचामें स्पष्ट कहा गया है कि जो जागता है, जल्दी उठकर प्रभुका स्मरण करता है, ऋचाएँ उसकी कामना पूरी करती हैं। सामादि अन्य वेदोंका ज्ञान भी उषःकालमें उठकर स्वाध्यायमें प्रवृत्त होनेवाले व्यक्तिके लिये ही सुलभ होता है। आलसी, प्रमादी, दीर्घसूत्री तथा देरतक सोते रहनेवाले लोग सौभाग्य और आरोग्यसे वञ्चित रहते हैं। जल्दी उठकर वायुसेवनके लिये भ्रमण करना चाहिये। इस सम्बन्धमें वेदका कहना है कि पर्वतोंकी उपत्यकाओंमें तथा नदियोंके संगमस्थलपर प्रकृतिकी छटा अवर्णनीय होती है। यहाँ विचरण करनेवाले अपनी बुद्धियोंका विकास करते हैं—

उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥

(ऋक्० ८।६।२८)

शरीरको स्वस्थ और नीरोग रखनेके लिये शुद्ध, पुष्टिदायक, रोगनाशक अन्न तथा जलका सेवन आवश्यक है। जलके विषयमें वेद कहता है—'**आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे**' (यजु० ११।५०)। भाव यह है कि जल हमें सुख प्रदान करनेवाला तथा ऊर्जा प्रदान करनेवाला हो।

अन्नविषयक अनेक मन्त्र वेदोंमें आये हैं। जिन पुष्टिकारक व्रीहि, गोधूम, मुद्ग आदि अन्नोंका हम सेवन करें, उनकी गणना निम्न मन्त्रमें की गयी है—'**व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्‌गाश्च मे खल्वाश्च मे···· गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्**' (यजु० १८।१२)।

भोजनमें गोदुग्धका सेवन अत्यन्त आवश्यक है। वेदोंमें गोमहिमाके अनेक मन्त्र आये हैं। गायकी महत्ताका वर्णन करते हुए उसे रुद्रसंज्ञक ब्रह्मचारियोंकी माता, वसुओंकी दुहिता तथा आदित्यसंज्ञक तेजस्वी पुरुषोंकी बहिन कहा गया है—'**माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः**' (ऋक्० ८।१०१।१५)।

अथर्ववेदके मन्त्रमें गायोंको सम्बोधित कर कहा गया है कि आप कृश तथा दुर्बल व्यक्तिको पुष्ट और स्वस्थ बना देती हैं। उसके शरीरकी सौन्दर्यवृद्धिका कारण आपका दुग्ध ही है। '**यूयं गावः**' आदि अथर्व-मन्त्र इसके प्रमाण हैं। अन्नके विषयमें वेदमें कतिपय आवश्यक निर्देश मिलते हैं। प्रथम तो यह कहा गया है कि अन्नपति परमात्मा ही हैं। वे ही हमें रोगरहित तथा बलवर्द्धक अन्न प्रदान करते हैं। वे इतने उदार तथा समदर्शी हैं कि दो पैरोंवाले मनुष्यों तथा चौपाये जानवरों—सभी प्राणियोंको अन्न प्रदान करते हैं—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

(यजु० ११।८३)

भोजनके विषयमें एक अन्य प्रसिद्ध मन्त्र निम्न है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋक्० १०।११७।६)

अर्थात् अकेला खानेवाला, अन्योंको भोजनादिसे वञ्चित रखनेवाला वास्तवमें पाप ही खाता है। ऐसा स्वार्थी व्यक्ति न तो स्वयंको ही पोषित करता है और न अपने मित्रोंको। भगवान् श्रीकृष्णने वेदकी इसी उक्तिको इस प्रकारसे बताया—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३।१३)

जो पापी अपने लिये ही पकाते हैं, वे वस्तुतः पाप ही खाते हैं। आहार और अन्नकी शुद्धताके अनेक निर्देश वेदाश्रित उपनिषदादि ग्रन्थोंमें भी मिलते हैं, वहाँ कहा गया है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः॥

(छा० उ० ७।२६।२)

अर्थात् सात्त्विक आहार-ग्रहण करनेसे मनकी शुद्धि होती है और मनके शुद्ध होनेपर अविचलित स्मृति प्राप्त होती है। उपनिषदोंमें ही अन्नकी निन्दा न करनेका उपदेश दिया गया है—'**अन्नं न निन्द्यात् तद् व्रतम्**'। भोजन आदिकी भाँति शान्त और स्थिर निद्रा भी आरोग्यके लिये आवश्यक है। ऋग्वेदीय रात्रिसूक्त (१०।१२७)-में इसका सुन्दर विवेचन हुआ है। रात्रिमें उचित समयपर सोना स्वास्थ्यके लिये जरूरी है। वेदमें रात्रिको द्युलोककी पुत्री कहा गया है। यह रात्रि वस्तुत: उष:कालमें बदलकर अन्धकारका विनाश करती है—'**ज्योतिषा बाधते तम:**' (ऋक्० १०।१२७।२)।

मनुष्यका नीरोग और स्वस्थ रहना केवल शरीररक्षणसे ही सम्भव नहीं है। इसी अभिप्रायसे उपनिषद् पञ्चकोशोंका उल्लेख करते हैं, जिनमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश तथा मनोमय कोशके बाद ही विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोशकी चर्चा हुई है। स्वस्थ प्राणशक्ति आरोग्यका प्रमुख कारण बनती है। वेदोंने तो प्राणोंको परमात्माका ही वाचक माना है—'**प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे**' (अथर्व० ११।४।१)।

इसी अभिप्रायको भगवान् बादरायणने अपने सूत्र '**अतएव प्राण:**' में कहा है। प्राण नामसे परमात्मा ही कथित हुए हैं।

आरोग्यका एक महत्त्वपूर्ण साधन है ब्रह्मचर्य। इसके पालनकी महिमाके लिये अथर्ववेदका ब्रह्मचर्य-सूक्त द्रष्टव्य है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्मचर्यरूपी तपके द्वारा विद्वान् देवगण मृत्युपर भी विजय पा लेते हैं—'**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत**' (अथर्व० ११।५।१९)।

अथर्ववेदमें रोग, रोगके कारणों, उनके निवारणके उपायों, रोगनाशक औषधियों एवं वनस्पतियों तथा रोग दूर करनेवाले वैद्यों (भिषक्) आदिकी विस्तृत चर्चा मिलती है। ये सभी प्रकरण शारीरिक स्वास्थ्यसे ही सम्बद्ध हैं। मनोवैज्ञानिक चिकित्साके संकेत भी वेदोंमें मिलते हैं। '**यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं०**' (यजु० ३४।१—६) आदि मन्त्र मनकी दिव्य शक्तियोंका उल्लेख कर उसे शिवसंकल्पवाला बनानेकी बात करते हैं। स्पर्शपूर्वक रोगनिवारणके संकेत भी अथर्ववेदके '**अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तर:**' (अथर्व ४।१३।६) आदि मन्त्रोंमें मिलते हैं, जिसमें सहानुभूतिप्रवण वैद्यका कोमल स्पर्श रोगीके लिये औषधिका काम करता है।

(प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल)

स्वास्थ्य-प्राप्तिके सात्त्विक उपाय

(प्रो० श्रीशिवानन्दजी शर्मा, एम० ए०)

सभी महापुरुष युग-युगान्तरसे सुखी जीवनके लिये शरीररक्षा एवं पुष्टिके महत्त्वपर बल डालते रहे हैं। अनेक सद्ग्रन्थ भी शरीरकी उचित संरक्षा करनेका आदेश देते हैं। महाकवि कालिदासने तो इसको धर्मका आद्य साधन ही उद्घोषित किया है—'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**'। ठीक भी है, शरीर ब्रह्मका निवासस्थान है—आवास है। शरीर मोक्ष-प्राप्तिका साधन है तथा सुखी जीवनका भी प्रथम साधन है। अत: जो इसे पापका घर बना ले वह घोर अपराधी है तथा जो इसकी उपेक्षा करके इसे विनष्ट होने दे वह भी परम निन्दनीय है। इसे साध्य मानकर इसकी सेवा-शुश्रूषामें निरन्तर संलग्न रहना अविवेक है।

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥

धर्म तो ऐहिक एवं पारलौकिक सिद्धिका साधन है।

यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:।

(कणाद)

ऐहिक सिद्धि ही पारलौकिकी सिद्धिकी सीढ़ी है तथा इस सिद्धिके लिये स्वास्थ्यरक्षा नितान्त आवश्यक है। '**नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:**'—उपनिषद्‌का प्रसिद्ध वाक्य है।

स्वास्थ्यरक्षाके लिये कुछ बातें विशेष आवश्यक हैं, जैसे चित्तशुद्धि (चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा आदि विकारोंसे मुक्ति), नियमित एवं संयमित जीवन, उचित भोजन, परिश्रम तथा व्यायाम और विश्राम।

चित्तशुद्धिका अर्थ है—चित्तको निर्विकार बना लेना। चित्तके समस्त विकारोंका मूल कारण मोह है।

सच तो यह है कि केवल सभी मनोविकार ही नहीं, अपितु प्रायः शारीरिक रोग भी मोहके कारण ही उत्पन्न होते हैं। इस तथ्यके प्रमाणस्वरूप आधुनिकतम मनोविज्ञान एवं ओषधिविज्ञान स्पष्टरूपसे साक्ष्य कर रहे हैं। लगभग चार शताब्दी पूर्व महान् द्रष्टा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने सूत्ररूपसे यही निश्चय किया था कि ***'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।'*** शारीरिक तथा मानसिक कष्टका उद्गम मोह ही है। प्रायः हम कर्तव्यभावनासे प्रेरित न होकर मोहके कारण ही अपना समस्त क्रियाकलाप करते हैं। प्राणियों तथा वस्तुओंके प्रति हमें मोह होता है। राग-द्वेष इसके दो पहलू हैं। वस्तुओंका परिग्रह-संग्रह ही मोहके कारण होता है और छोटे झगड़ों तथा महान् युद्धोंका कारण, अप्रच्छन्न अथवा प्रच्छन्न-रूपसे परिग्रह ही होता है।

किसी अन्य व्यक्तिकी किसी वस्तुके नाश होनेपर हमें कोई दुःख नहीं होता है। जिस व्यक्तिसे जितना सम्बन्ध है, उसीके अनुपातसे हमें उसके दुःखमें दुःख होता है। जब हमारी किसी वस्तुका नाश होता है, तब हमें बड़ा दुःख होता है। सैकड़ों कीमती घड़ियाँ रोज टूटती हैं, हमें ध्यान भी नहीं होता। किंतु यदि मेरी घड़ी टूट गयी है तो घोर क्लेश होता है। इसका कारण मोह ही तो है। मुझे अपनी घड़ीके प्रति मोह है। अन्य घड़ियोंके प्रति नहीं है। सैकड़ों व्यक्ति नित्यप्रति मृत्युको प्राप्त होते हैं; किंतु मेरे किसी सम्बन्धीकी मृत्यु हो तो मुझे दुःख होता है। इसका प्रधान कारण मोह है। जितनी मोहकी मात्रा हमारे मनमें किसी व्यक्ति या वस्तुके प्रति होती है, उसके सम्बन्धमें हमें उतना ही दुःख होता है। हमारी इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि हमें मोहके कारण ही विविध वस्तुओंके प्रति आकृष्ट कर देते हैं तथा विशिष्ट वस्तुओंकी सम्प्राप्ति एवं संग्रहके द्वारा हम मिथ्या तुष्टिका अनुभव करते हैं। कहीं चटपटे, गरिष्ठ भोजनसे इन्द्रियोंकी मिथ्या तृप्ति करके हम शरीरको कष्टमें डाल देते हैं तो कहीं वस्तुओंके विषयमें मेरा-तेराके झगड़ेसे मनको शोकमें तथा बुद्धिको अन्धकारमें डाल देते हैं।

निश्चय ही हमें मोहका त्याग करना चाहिये। मोह-त्यागका अर्थ यह नहीं है कि हम वस्तुओं एवं व्यक्तियोंसे घृणा करें। वस्तुओं एवं मनुष्योंमें कोई दोष नहीं है। मोहरूपी दोष तो अपने मनमें है। मोह-त्यागका अर्थ यह है कि हम वस्तुओंका त्याग नहीं, बल्कि उनकी वासना, उनके प्रति आकर्षणका त्याग करें; संसारका त्याग नहीं, प्रत्युत सांसारिकताका त्याग करें। संसार तो छोड़ दिया, वस्तुओंका परित्याग भी कर दिया, किंतु मोह अब भी सताता है तो क्या लाभ हुआ? वस्तुओंका उपभोग करें, प्रयोग करें, किंतु आवश्यकतानुसार करें, त्यागभावसे करें।

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

—त्यागपूर्वक भोग करें।

मोह सभी मनोविकारोंका सेनापति है। यदि मोहको भगा दिया तो इसकी सेना भी भाग खड़ी होगी। कटकमें भगदड़ मच जायगी। मोह मूल है।

'छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।'

—यदि हम कठोर दण्ड भी दे रहे हों तो भी ईर्ष्या, द्वेष, घृणासे प्रेरित होकर नहीं, बल्कि कर्तव्यभावनासे प्रेरित होकर दें। यह आदर्श स्थिति है। मोह त्यागकर, मनोविकारोंको छोड़कर जितना भी मन पवित्र कर लेंगे, उतना ही सुख प्राप्त कर सकेंगे। मोह-त्यागसे ही संतोषवृत्ति भी स्वयं आ जाती है।

मनको शुद्ध करनेके लिये अनेक उपाय हैं। अपने मनका निरीक्षण करना चाहिये। हम जिस प्रकार दर्पणमें अनेक बार मुखाकृति देखकर उसके दाग-धब्बे मिटाते हैं, उसी प्रकार अन्तर्मुखी दृष्टिके द्वारा अन्तर्वृत्ति-निरीक्षण (Introspection) करें और अपने दोषों, विकारोंको पहिचानकर उनको एक-एक करके, चुन-चुनकर निराकरण कर दें। शरीर-स्नानके द्वारा जैसे शरीरको शुद्ध करते हैं, मनको भी वैसे ही शुद्ध करें। सत्य सोचने, कहने एवं करनेका अभ्यास मनकी शुद्धिमें सहायक है।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।

शरीर-शुद्धि होनेपर अथवा स्वच्छ वस्त्र पहिनकर कैसा हर्ष होता है? मनको स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल करनेपर तो अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है। मानसिक स्वच्छता होनेपर अनिर्वचनीय सुखका अनुभव होता है जो कि

शरीरको पुष्ट करता है। दिनमें ऐसा एक समय निश्चित कर लें जब हम कार्यव्यस्ततासे मुक्त हों। नित्यप्रति प्रातः, सायं अथवा सोनेसे पूर्व, जब भी सुविधा हो, तब अकेले बैठकर अपने विचारोंको देखें। थोड़ी देरतक अपने साथ भी बैठना सीखें। जब हम अपने ही विचारोंके जुलूसको देखें। एक-एक करके ईर्ष्या, द्वेष, भय, घृणा, चिन्ता, विषाद, यश-लालसा, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि विकारोंको दूर करें। कर्तव्य-निष्ठासे प्रेरित होकर, साहससे परिपूर्ण होकर, इन विकारोंसे ऊपर उठकर कार्य करना सीखें। एक-एक दोषके नाशका उपाय सोचें, प्रभुके सहारेसे उसे कार्यान्वित करें और साहस तथा विश्वास रखें। नित्यप्रति आत्मचिन्तन, आत्मविश्लेषणद्वारा अपने दोषोंको मनन, विचार तथा प्रयत्नके द्वारा निर्बल कर दें। तभी मनको प्रभुमें एकाग्र कर सकेंगे, किसी भी कार्यमें पूर्ण शक्तिका प्रयोग कर सकेंगे। विकार मन तथा शरीरको निर्बल बनाते हैं, इनसे मुक्त होनेपर शक्ति अबाधित होकर उग्र हो जाती है।

जहाँ आत्मसुधारका संकल्प है, वहाँ आत्मसुधार अवश्य होगा।

अपनी तुलना दूसरे व्यक्तिसे न करके अपने विगत और वर्तमानकी तुलना करें और नित्यप्रति पहलेसे अच्छा होनेका प्रयत्न करें। विकारोंके रहनेपर तो विश्वभरकी सम्पदा, अतुल बल, महान् पद, असीम विद्या पाकर भी सुख नहीं हो सकता।

क्षीणताप्रद मोहादि दोषोंको हटाकर रिक्त मनको पोषक भावोंसे परिपूरित कर देना चाहिये। प्रभुसे प्रेम और जनतारूपी जनार्दनसे प्रेम करना सीखें। इनसे मनको बल मिलेगा। स्वार्थ छोड़कर परमार्थकी ओर बढ़ें, संकीर्णता छोड़कर व्यापकता, उदारता, सहनशीलता सीखें।

अन्तःकरणके शुद्ध होनेपर, अन्तःकरणकी ध्वनि जीवनपथमें प्रकाशपुञ्ज होकर सहायक होती है। पवित्र अन्तःकरणकी ध्वनिकी उपेक्षा करके विपरीत आचरण करनेसे मन दुर्बल होता है।

शुद्ध, स्वस्थ, सुखी मन सुन्दर स्वास्थ्यका प्रथम रहस्य है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

—मन ही मानवके दुःख-सुखका भी कारण है—**'जितं जगत् केन? मनो हि येन।'** जिसने मनपर विजय प्राप्त कर ली, उसने संसारको जीत लिया। मनको सुखी रखनेके लिये पुराने विकारोंका निराकरण, यम-नियमद्वारा नये दोषोंका प्रवेश मनमें न होने देना और सावधान रहकर प्रभु-स्मरण, जनसेवामें रत रहना आवश्यक है। यम-नियमद्वारा मनमें नये दोषोंको बिलकुल न आने दें। सावधानीसे जीवनको नियमित संयमित रखें। उदारचेता होकर प्रभुभक्ति एवं जनसेवाका भाव रखें। इससे चित्त प्रसन्न होगा।

प्रसन्नचित्त व्यक्तिके शरीरमें शक्ति, स्फूर्ति, बल, ओज और स्वस्थता होती है। चिन्ता आदि क्षीणता करनेवाले विकारोंको छोड़कर काम करना सीखें।

मन, वचन, कर्मकी एकता होनी चाहिये। अन्यथा मानव दुर्बल बन जाता है। हम भले ही किसी दूसरेको धोखा दे दें, किंतु अपने-आपको नहीं दे सकते। मन-वचन-कर्मकी एकता होनेपर मनमें तनाव (Tension) भी उत्पन्न नहीं होता है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

ऐसा होनेपर मानव निर्भय हो जाता है। निर्भीकता ही जीवन है। पुण्यकी राहपर रहनेसे मानव सबल, निर्भय रहता है।

जीवित तथा विगत संतों, महापुरुषोंकी जीवनीसे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। स्वाध्याय (सद्ग्रन्थोंका अनुशीलन) भी मानवके जीवन-पथको ज्ञानप्रभासे आलोकित करता है। प्रकृतिके सौन्दर्यका संदर्शन, भ्रमण, प्रकृति-सामीप्य भी मानवके मनको उदात्त एवं बलवान् बनाता है।

मोह-त्यागके लिये तीन उपायोंका विशेष सहारा मिल सकता है। संसारके तीन महान् धर्मोंमें मोहपर विजय प्राप्त करनेके लिये बताये हुए उपायोंमें साम्य है। हिंदू-धर्ममें व्रत, दान एवं तपका विधान है। इस्लाममें इन्हें रोज़ा, ज़कात, नमाज़ और ईसाई-धर्ममें Fasting, Charity and prayer कहते हैं।

व्रत मनको संयमित करनेमें विशेष सहायक होता है। व्रत करनेमें ध्यान रखना चाहिये कि हम केवल स्वादिष्ट भोजन-सामग्रीका ही त्याग न करें, बल्कि

उसकी इच्छापर भी संयम करें। व्रतके अन्तमें सरल, सात्त्विक भोजन करें।

दान करना भी हमारे मोह एवं धनकी वासनाकी मात्राको कम करता है। दान करनेसे धनके प्रति हमारे मोहपर नियन्त्रण होता है। हमारे धर्ममें दानका विशेष महत्त्व है। सब धन प्रभुका ही है। हमारे पास जो कुछ भी है, हम तो उसके ट्रस्टीमात्र हैं। जनता-जनार्दनकी सेवामें उसका उपयोग करना हमारा परम धर्म है। हम ऊँचा बनकर दान न करें, बल्कि कर्तव्यपूर्तिके भावसे, निरभिमान होकर, अपनी कम-से-कम आवश्यकताओंकी पूर्तिसे बचे हुए शेष धनको सेवा-कार्यमें दे दें। दानमें सेवाभाव अन्तर्निहित होता है। अपनी आवश्यकताओंको कम करते चले जायँ। त्यागपूर्वक भोग करें, जैसा कि ईशावास्योपनिषद्का उपदेश है। 'त्यागपूर्वक' का एक अर्थ दानपूर्वक भी है। स्वेच्छापूर्वक दान देकर रिक्त होना, कम-से-कम धन अपने उपयोगमें रखना, स्वेच्छागृहीत दैन्य (Voluntary poverty) है, जिसकी प्रशंसा गाँधीजी किया करते थे। यह मानो स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर बढ़ना है।

मोहपर विजय प्राप्त करनेके लिये प्रभुकी प्रार्थना परम विशेष सहायक है। मोह-निशा किसी प्रकार भी भगवत्कृपाके बिना पार नहीं हो सकती। दुर्बल मानव प्रभुकृपासे ही बलवान् होकर मोह-कटकपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। प्रार्थनाका अर्थ है—(१) प्रभुकी शरणागति ग्रहण करके आत्मसमर्पण एवं भक्तिपूर्ण आत्म-निवेदन तथा (२) पूजा और पूजाके तीन रूप हैं—कीर्तन, जप तथा तप। पहले हरिकीर्तन, फिर मानसिक जप, फिर उसमें तल्लीन हो जाना—यह क्रम है।

'राम राम रट, राम राम जप, राम राम रम, जीहा रे।'

यह तुलसीदासजीका उपदेश है। प्रभुमें लीन होना ही स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर बढ़ना है। लय होनेसे विचारशून्यता आती है। शून्यतामें आकाश उत्पन्न होता है। आकाश (Vaccum) होनेपर शक्तिका संचार होता है। उस आकाशमें प्रभुका प्रकाश चमकता है। व्रतसे अधिक दान और दानसे अधिक प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकारसे मानव-जीवनकी सफलता एवं सार्थकता प्राप्त होती है। अतएव आत्मकल्याणके द्वारा लोककल्याणकी साधना करें।

भोजन-विधिमें व्रतका अन्तिम स्थान है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों तत्त्वोंपर भोजन-विधि आधारित है। पृथ्वी-तत्त्वसे सम्बन्धित अन्न है। पृथ्वीका अंश ठोस अथवा स्थूल अन्नमें अधिक होता है। जल-तत्त्वसे सम्बन्धित दूध, सब्जी, शाक हैं; क्योंकि उनमें अन्नकी अपेक्षा जलका तत्त्व अधिक होता है। सूर्यकी किरणोंसे पकनेवाले फलोंमें अग्नि-तत्त्वकी मात्रा अधिक होती है। इसी आधारपर पालके फलोंमें अधिक शक्ति नहीं होती, चाहे उनका स्वाद अधिक हो। पत्तियों (पालक, मेथी, सलाद, मूलीकी पत्ती, तुलसी आदि)-में वायु-तत्त्व अधिक होता है; क्योंकि वृक्ष तथा पौधे अपनी पत्तियोंके द्वारा ही साँस लेते हैं। अन्तमें आकाश-तत्त्व है जो व्रत, उपवासके द्वारा उपलब्ध होता है। व्रतसे उदर खाली होता है और शून्य उत्पन्न होता है। पृथ्वीसे आकाशकी ओर ऊपर उठना चाहिये अथवा यों कहिये कि स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर आगे बढ़ना चाहिये। पृथ्वीकी अपेक्षा जल-तत्त्व, जलकी अपेक्षा अग्नि-तत्त्व, अग्निकी अपेक्षा वायु-तत्त्व और वायुकी अपेक्षा आकाश-तत्त्व अधिक बलप्रद है। रोटी-दालको धीरे-धीरे कम करके शाक, सब्जी, फलका आहार करें। ठोस भोजन कम बार करें और कम मात्रामें लें।

ठोस भोजन (अन्न)-से शरीरको बल (Strength)-की प्राप्ति हो सकती है; किंतु शक्ति (Energy) अधिक नहीं प्राप्त होती है। यह एक प्रचलित भ्रम है कि अधिक खानेसे, विशेषतः अधिक अन्न खानेसे अधिक शक्ति उत्पन्न होती है। हाँ, इससे बलका उत्पादन अवश्य होता है। बल तथा शक्तिमें भेद है, बल शक्तिकी अपेक्षा तुच्छ होता है। परम बलशाली व्यक्ति थोड़ी-सी दूर चलकर, जीनेमें चढ़कर थक जाता है। पहलवान लोग अधिक खानेपर जोर डालते हैं। अधिक खानेसे अधिक विजातीय द्रव्य (Foreign matter) उत्पन्न होते हैं। जबतक कोई पहलवान व्यायाम करता रहता है, तबतक उसे इसका अनुभव नहीं होता। सर्वविदित है कि पहलवानकी वृद्धावस्था

दुःखद होती है; क्योंकि वह तब उतना व्यायाम तथा भोजन नहीं कर पाता।

व्रत करनेसे शरीरमें दुर्बलता नहीं आती, यद्यपि ऐसा भास होता है। व्रतसे स्वस्थता, शुद्धता, शक्ति, संजीवन, स्फूर्ति आते हैं। व्रतकालमें पाचन-क्रियाके स्थानपर रेचन-क्रिया अधिक उग्र एवं प्रबल हो जाती है। शरीरसे गंदा, विजातीय द्रव्य रेचन-क्रियाके द्वारा बाहर आया करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो दुर्बलता बढ़ रही है, किंतु वास्तवमें अवाञ्छित, अनावश्यक, विषैला, हानिप्रद विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे व्रतके द्वारा मल, मूत्र, पसीना आदिके रूपमें शरीरसे निकलकर शरीरको स्वस्थ बनाता है। जो शारीरिक शक्ति पहले भोजनके पाचनमें संलग्न थी, वह व्रतकालमें विजातीय द्रव्यको इकट्ठा करके बाहर प्रक्षिप्त करनेमें व्यस्त हो जाती है। पाचन-क्रियामें अत्यधिक शक्तिका प्रयोग होता है। व्रतकालमें पाचन-क्रिया परिसमाप्त हो जानेपर साधारण रेचन-क्रिया ही शेष रहती है, जिससे शरीरकी मशीनरीको विश्राम भी मिलता है।

रेचन-क्रियामें उखाड़-पछाड़ होनेके कारण शरीरकी दुर्बलता तथा कष्टका मिथ्या आभास होता है। जिस प्रकारसे मलके ऊपर एक काईकी परत पड़ जाती है जो कि उसकी बदबू तथा गंदे स्वरूपको ढके रहती है, किंतु जरा-सा भी उस परतको छेड़ते ही बदबू उठ खड़ी होती है और उसका गंदा स्वरूप दिखायी पड़ जाता है, उसी प्रकारसे नित्यके जीवनमें तो शरीरमें स्थित गंदे द्रव्यपर मानो परत पड़ जाती है; किंतु व्रतसे वह परत फटने लगती है और शरीरमें स्थित गंदगी दिखलायी देने लगती है। पर व्रतद्वारा यह धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। जबतक यह विजातीय द्रव्य बाहर न आ जाय, तबतक विविध कष्ट अनुभव होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्रतका स्वास्थ्यके लिये उतना ही महत्त्व है, जितना कि भोजनका है। भोजनकी सहायता व्रतद्वारा होती है।

हाँ, व्रतकी भी एक विधि है, जिस प्रकारसे भोजनकी एक विधि है। व्रतमें आराम तथा नीबूके पानी, शहद आदिका सहारा लेना आवश्यक है। व्रतकी अवधिका निर्णय भी विशेषज्ञसे पूछकर करना चाहिये। यों कम-से-कम एक सप्ताहमें एक दिन तो बिलकुल निराहार रहकर नीबूके पानी आदिपर अथवा परम सात्त्विक, सरल तथा सूक्ष्म भोजनपर निर्भर रहना चाहिये। हमारे पूर्वजोंने व्रतोंका कितना अधिक माहात्म्य वर्णित किया है।

पञ्चतत्त्वोंके सिद्धान्तपर आधारित प्राकृतिक चिकित्सामें भी अन्तिम प्रमुख शाखा व्रत (उपवास) है। मानव-देह पञ्चतत्त्वोंसे विनिर्मित है। प्रकृतिमें भी मानव-देहकी सम्यक् चिकित्साके लिये पाँचों तत्त्व विद्यमान हैं। पञ्चतत्त्वरचित इस देहकी वास्तविक, नैसर्गिक, स्वाभाविक, चिकित्सा प्रकृतिके पञ्चतत्त्वोंके द्वारा ही सम्भव है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशसे क्रमशः सम्बन्धित मिट्टीसे चिकित्सा (Mud treatment etc.), जलसे चिकित्सा (Water treatment), अग्निसे चिकित्सा (Sunbath treatment, Electric treatment), वायुसे चिकित्सा (Airbath, Steambath etc.) तथा आकाशसे चिकित्सा उपवास (Fasting) है। उपवाससे शरीरमें शून्य आकाश (Vaccum) उत्पन्न होता है। शून्य ही शक्ति-केन्द्र होता है।

हम दिनमें अनेक बार कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं। लगभग पचीस वर्षतक तो शरीरका निर्माण और विकास (Building and development) चलता है। तबतक तो सुन्दर शक्तिप्रद, गरिष्ठ भोजनकी आवश्यकता है, किंतु तदनन्तर तो केवल रक्षण (Maintenance) रह जाता है। जिसके लिये उतने भोजनकी आवश्यकता नहीं रहती, तब थोड़ा खाना ही उपयुक्त रहता है। किंतु प्रायः हम पूर्ववत् ही खाते रहते हैं। यह बुरा है। कुछ परिश्रम करनेके पश्चात् ही हम भोजन करनेके अधिकारी हैं। प्रातः उठते ही चाय पीना, फिर नहा-धोकर प्रातराश नाश्ता (Breakfast) करना अनधिकार चेष्टा है, जो कि झूठी भूखको तो संतुष्ट करता है किंतु वास्तविक क्षुधाको क्षीण करता है। विशेषतः थोड़ा परिश्रम करनेवाले व्यक्तियोंको तो नाश्ता करना ही नहीं चाहिये। नाश्ता छोड़ देनेपर सफाईकी क्रिया (रेचन) बढ़ेगी, जठराग्नि तेज होगी। काम करनेके पश्चात् ही भोजन और फिर विश्राम करना चाहिये तथा सादे भोजन (मसाले आदि छोड़कर)-की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। भूखके बिना ही भोजन करना देहके प्रति अत्याचार है, बिना श्रमके भोजन करना अनधिकार चेष्टा है। भोजनके

उपरान्त कुछ विश्राम न करना भी शरीरके प्रति क्रूरता है। नियमित समयपर नियमित विधिसे नियमित भोजन करना चाहिये। प्रातः बहुत हलका भोजन तथा शामको उचित मात्रामें पर्याप्त भोजन करना चाहिये।

प्राणीको परिश्रम करनेपर ही भोजन पानेका अधिकार है। मानसिक परिश्रमके अतिरिक्त दैहिक श्रम करना अत्यन्त आवश्यक है। व्यायाम भी एक प्रकारका दैहिक श्रम है। योगियोंने मांसपेशियों (Muscles)-के व्यायाम (दंड-बैठक, मुगदर आदि)-की अपेक्षा स्नायुओं (Nerves)-के व्यायाम (यौगिक आसन, प्राणायाम आदि)-को अधिक पूर्ण तथा श्रेयस्कर समझा है। पहलवानीसे बल और योगाभ्याससे शक्तिकी वृद्धि होती है। शक्ति ही दीर्घ जीवन तथा स्फूर्ति देती है।

अन्तमें विश्रामका महत्त्व है। विश्राम ही मानवको पुनः बलशाली बना देता है। उचित समयपर पर्याप्त निद्रा प्राप्त करना श्रेष्ठ विश्राम है। देवीभागवतमें तो निद्राको कल्याणदात्री देवी और परमात्माके सदृश सुखदा माना है। '**निद्रां ब्रह्मतुल्यां**..........',

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

स्वस्थ रहनेकी आदर्श जीवनचर्या

(प्रो० श्रीवेणीमाधव अश्विनीकुमारजी शास्त्री, एम० ए०, भिषगाचार्य)

महर्षि चरकके आयुर्वेदीय जीवनसिद्धान्तमें आयुके साथ हित एवं अहित तथा सुख और दुःख—इन दो स्थितियोंको देखा गया है। इनमें हित एवं सुख-आयुका पर्याय स्वस्थ जीवन होता है तथा अहित और दुःख-आयुका पर्याय रोगग्रस्त जीवन होता है। इसी अन्वेषणपर मानव-जीवनके अध्ययनके चिकित्सापरक आयुर्वेदविज्ञानमें चिकित्साके दो उद्देश्य स्पष्ट किये गये हैं—

१-स्वस्थकी ऊर्जा-वृद्धि करके दीर्घ जीवन।

२-रोगीके रोगका शमन करके प्रकृति-स्थापनद्वारा दीर्घ जीवन।

इसीलिये चरकके चिकित्सास्थान १। ३ में महर्षि अग्निवेशने चिकित्साके पर्यायोंमें पथ्य तथा साधन—इन दो शब्दोंका प्रयोग किया है। इनमेंसे पथ्य आहार और विहार दोनोंकी पूर्तिके लिये प्रयुक्त किया गया है तथा साधनद्वारा उन उपायोंका उल्लेख किया गया है, जिनसे हमारे शरीरके घटक साम्यावस्थामें बने रहें और हम स्वस्थ रहें।

काल, अर्थ और कर्म व्याधियोंके सर्वव्यापक कारण माने जाते हैं और इनसे बचनेके लिये ही आयुर्वेदज्ञोंने स्वस्थवृत्तके विधानका उद्देश किया है। स्वास्थ्यके अनुवर्तन-हेतु तथा विकारोंकी उत्पत्तिका प्रतिबन्धन करनेके लिये नित्य प्रयोजनीय विषय निम्न प्रकारसे चरकसंहिताकारने सूत्रस्थान पाँचमें वर्णित किये हैं—

१. आहार (पोषण), २. विहार (शारीरिक चर्या) और ३. सद्वृत्त (मानसचर्या)।

१. आहार

आहारको मानव-देहका पोषक और धारक माना गया है। इसीलिये चरकसूत्र २८। ३ में आचार्यने आहारके देहधारकत्व और पोषकत्वके विषयमें लिखा है कि विधिवत् सेवित आहार शरीरका उपचय कर बल, वर्ण तथा सप्त धातुओंको ऊर्जा प्रदान करके सुख, आयुष्य और रोगप्रतिबन्धनका फल प्रदान करता है। इसीलिये चरक-सूत्रस्थान (२७। ३४९-५०)-में कहा गया है कि—

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्॥
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।

आहारका विधिपूर्वक सेवन करनेके लिये आचार्यने नियम (उपदेश) किये हैं, उनमें सर्वप्रथम आहार-मात्राका नियमन है। मात्राको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेके लिये सात्म्य और असात्म्य दो प्रकारके आहार-प्रभावको ध्यानमें रखकर व्यावहारिक पद्धतिका निर्देश किया गया है। असात्म्य आहार आयुर्वेदिक सिद्धान्तके अनुसार प्रकृतिविरुद्ध होकर वात, पित्त, कफ—इन दोषों और रस, रक्त आदि धातुओं तथा स्वेद-मूत्रादि मलों एवं उपधातुओं, त्रयोदश अग्नियों

तथा स्रोतस्-विशेषको दूषित करते हैं। इसीको दोषवैषम्य या धातुवैषम्यके नामसे रोग-सम्प्राप्तिका प्रथम सोपान माना जाता है। इसीलिये महर्षि चरकने शरीरोपयोगी आहार, नियमन और सन्तुलित लाभ प्राप्त करनेके लिये आठ प्रकारकी आहारविधि—विशेषायतन निर्धारित किये हैं—१. प्रकृति, २. करण, ३. संयोग, ४. राशि, ५. देश, ६. काल, ७. उपयोग-संस्था तथा ८. उपयोक्ता।[1]

(१) आहारका परीक्षण सर्वप्रथम प्रकृति-परीक्षणसे प्रारम्भ करना चाहिये। आहारोपयोगी द्रव्योंमें जो स्वाभाविक भिन्नता गुरु तथा लघु आदि रूपमें पायी जाती है, वह व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुसार चिकित्सकद्वारा निर्धारित की जानी चाहिये।

(२) करणपरीक्षामें स्वाभाविक द्रव्योंका संस्कार समाविष्ट होता है। संस्कारके द्वारा द्रव्यकी प्रकृतिमें गुणानुसन्धान किया जाता है। यह कार्य द्रव्यके ऊपर जल, अग्नि, मन्थन, देश, काल, वासना और भावनाके द्वारा किया जाता है।

(३) एक, दो या तीन द्रव्योंका संयोग करके सेवन करनेपर विशिष्ट गुणकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे—दूध, चावल तथा शक्कर मिला देनेपर अग्नि-संस्कारद्वारा उत्पन्न खीरका भोजन पृथक्-पृथक् दूध, शर्करा एवं चावलके गुणोंसे विशेष गुणवाला होता है।

(४) आहारकी मात्राका निर्धारण राशिके रूपमें दो प्रकारसे किया जाता है—(१) सर्वग्रह एवं (२) परिग्रह। सर्वग्रहका तात्पर्य मात्रात्मक तथा परिग्रहका तात्पर्य घटक तत्त्वोंकी मात्रामें रसोंकी तरतम मात्रासे है।

(५) देशनिर्णयमें आहारद्रव्योंकी उत्पत्ति और प्रयोगका विचार किया जाता है तथा देश-विशेषमें सात्म्यताका भी आहारनिर्णयमें विचार किया जाता है।

(६) कालसे आहारका सम्बन्ध दो प्रकारसे है—(१) नित्य व्यक्त होनेवाले अहोरात्रादि कालरूपमें तथा (२) व्यक्तिके शरीरसे सम्बन्धित आयुवर्गके रूपसे अहोरात्रादि-कालमें ऋतुचर्याका अनुशीलन तथा आवस्थिक कालसे विकासकी अवस्थाका अनुशीलन आहारनिर्णयमें करना चाहिये।

(७) इस क्रममें आहारप्रयोगका नियमपूर्वक आहारकी मात्रा जीर्ण होनेपर अपर आहारका सेवन विचारके योग्य होता है।

(८) उपयोक्तामें व्यक्तिके शरीरसे सम्बन्धित यह निर्णय व्यक्तिके अभ्यास एवं परम्परासे क्या सात्म्य है, क्या असात्म्य है इसका विचार अपेक्षित होता है।

आहारनिर्णयके उक्त बिन्दुओंके अतिरिक्त आहारकी गुणवत्ता तथा पोषकताको बढ़ानेके लिये शरीरकी दोष-धातु एवं मलकी रचनाओंको प्राकृत बनानेके लिये विभिन्न प्रकारके अभ्यास और व्यावहारिक नियम भी चरकसंहितामें निर्देशित किये गये हैं।[2] जैसे—

(१) उष्ण भोजन स्वादिष्ठ लगता है और भोजन करनेपर अग्निकी दीप्ति होती है, जिससे भोजन शीघ्र परिपाकको प्राप्त होता है, कोष्ठस्थ वायुका अनुलोमन होता है तथा कोष्ठस्थ श्लेष्माका ह्रास होकर आहार गुणवान् हो जाता है।

(२) स्निग्ध भोजनसे स्वादकी वृद्धि, भोजन करनेपर अदीप्त अग्निकी दीप्ति, शीघ्र परिपाक, कोष्ठस्थ वातानुलोमन, शरीरका उपचय, इन्द्रियोंका पोषण, बलकी वृद्धि तथा वर्णप्रसाद-उत्पत्तिका लाभ होता है।

(३) मात्रावत् आहारसेवन करनेसे कुक्षिमें स्थित वात, पित्त, कफ-दोषोंका वैषम्य नहीं होता, परिपाक यथासमय होकर सुखपूर्वक मलविसर्जन होता है। अग्निका संरक्षण होता है तथा बिना किसी कष्टके परिपाक हो जाता है।

(४) पूर्व आहार जीर्ण होनेपर (सम्यक्-रूपसे पच जानेपर) ही अपर आहारका सेवन करना चाहिये। अजीर्ण आहारके ऊपर भोजन करनेसे आम-दोषकी उत्पत्ति होकर सर्वदोषप्रकोप होनेकी सम्भावना होती है।

(५) आहारका संयोग परस्पर-विरुद्ध वीर्य-द्रव्योंके रूपमें नहीं होना चाहिये अन्यथा विरुद्ध

---

१. तत्र खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति तद्यथा—प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्त्रष्टमानि। (विमानस्थान १। २१)

२. उष्णं स्निग्धं मात्रावत्, जीर्णे वीर्याविरुद्धम्, इष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणम्, नातिद्रुतम्, नातिविलम्बितम्, अजल्पन्, अहसन् तन्मना भुञ्जीत आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्। (विमानस्थान १। २४)

वीर्यजन्य विकृतियाँ सम्भावित होती हैं, जैसे—कुष्ठ, अन्धत्व, विसर्प आदि।

(६) आहारके लिये समुचित एवं निर्धारित स्थानका ही व्यवहार होना चाहिये। जहाँ चाहे, वहाँ भोजन करना ठीक नहीं। इस नियमसे स्थानकी अशुद्धियाँ दूर होती हैं तथा वातावरणसम्बन्धी दूषित मानसिक भावोंकी मुक्ति हो जानेसे शुद्ध मनसे आहारकी गुणवृद्धि होती है। आहारके उपयोगके समय प्रयोग होनेवाले पात्र आदि उपकरणोंका पूर्णरूपसे आहारकी सुरक्षा तथा संरक्षणपर प्रभाव पड़ता है, अतः इन सभीका इष्ट और स्वच्छ होना आवश्यक है।

(७) शीघ्रतामें भोजन करनेसे भोजनका सम्यक् चर्वण न होनेके कारण क्लेदन और उसका संघातभेदन भी नहीं हो पाता, इसके साथ-साथ कभी-कभी शीघ्रतासे भोजन करनेसे भोजन अन्न-नलिकाके स्थानपर श्वास-नलिकामें भी प्रवेश कर जाता है। अतः भोजन अति द्रुतगतिसे नहीं करना चाहिये।

(८) अतिविलम्बित गतिसे भोजन करनेपर तृप्ति नहीं होती, भोजन अतिमात्रामें सेवित हो जाता है, आहार ठंडा हो जाता है, फलतः उसका परिपाक भी विकृत हो जाता है।

(९) भोजन करते समय आहार श्वास-नलिकामें प्रवेश कर सकता है। अतः ऐसी अवस्थामें बातें नहीं करनी चाहिये। आहारसेवनके समय हँसनेपर भी उपर्युक्त दोष होता है। साथ ही भोजन करनेमें मन लगाकर भोजन करना चाहिये।

(१०) व्यक्तिको आहार ग्रहण करते समय सेवित आहारके विषयमें सात्म्यता और असात्म्यताका ध्यान रखकर अपने शरीर और आयुका हित-विवेचन, चिन्तन करते हुए आहारका विधिपूर्वक सेवन करना चाहिये।

स्वास्थ्यके लिये उक्त आहार हितकारी तथा विकारोंका प्रतिबन्धन करनेवाली प्रणालीका परिपालन करनेसे न केवल शरीर स्वस्थ रहता है, अपितु शरीरके मूल घटक—वात, पित्त, कफ-दोष साम्य-अवस्थामें रहते हैं।

२. विहार

जहाँतक शरीरको स्वस्थ और व्याधि-प्रतिबन्धित रखनेके लिये बाह्य-जीवनोपयोगी कर्म-समुदायका सम्बन्ध है, वह सब आयुर्वेदमें योगारूढ संज्ञाके आधारपर विहारके नामसे जाना जाता है। इसमें दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा सद्वृत्त पालन आदिके नियमोंका समावेश होता है।

दिनचर्या—शय्यात्यागके बाद व्यक्तिको स्वयं एक क्षण विचार करके देखना चाहिये कि मेरी शारीरिक स्थिति नित्य-जैसी है या कुछ विचार करने योग्य है, यदि किसी भी प्रकारकी प्रतिकूल वेदना हो तो उसका यथाशक्य समाधान वैयक्तिक स्तरपर अथवा अपने पारिवारिक चिकित्सकके परामर्शसे अवश्य कर लेना चाहिये, ऐसा करनेसे व्याधि-सम्बन्धित आपात स्थितियोंको समाधान-योग्य बनाया जा सकता है। यदि उपेक्षा की जाय तो छोटी-से-छोटी व्याधि भी महान् कष्टदायी हो सकती है।

मलत्याग—प्रातः शय्यात्यागके उपरान्त मलविसर्जन करके मुखप्रक्षालन करना चाहिये।

मंजन और दन्तधावन—सुविधा एवं रुचिके आधारपर दातौन और मंजनका प्रयोग करना चाहिये। इससे दाँतोंमें चिपके हुए मैल तथा जीवाणु दूर हो जाते हैं। दातौनके लिये तिक्तरसके रूपमें नीमकी, कषायरसके रूपमें बबूलकी तथा मधुर रसके रूपमें महुएकी दातौन श्रेष्ठ और जीवाणुनाशक एवं शरीर-रचनाओंका पोषण करनेवाली मानी गयी है। मंजन अनेक प्रकारके अपनी परम्परा और सुविधाके अनुसार प्रयोग किये जा सकते हैं।

जिह्वा-शोधन—मुखशुद्धि और दन्तशुद्धिके बाद स्वर्ण, रजत या ताम्र अथवा लोहेसे निर्मित जीभीसे जिह्वापर संचित मैलको दूर करना चाहिये।

अंजन—नेत्रोंकी सुरक्षा और दृष्टिका प्रसाधन करनेके लिये नित्य अंजनका प्रयोग करना चाहिये। पाँच या आठ दिनके अन्तरसे रसांजनका प्रयोग करना चाहिये। अंजनके प्रयोगसे दृष्टि दर्पणकी तरह स्वच्छ और तेजोमय हो जाती है। श्लेष्मासे होनेवाली व्याधियाँ प्रतिबन्धित होती हैं तथा दृष्टि निरन्तर निर्मल बनी रहती

है। कतिपय आधुनिक नेत्रचिकित्सक यह भ्रान्ति पैदा करते हैं कि अंजन करनेसे नेत्र और दृष्टिकी हानि होती है—यह विचार स्वयंमें भ्रामक तो है ही, साथ ही बिना प्रयोग किये और फल देखे अज्ञानताका परिचायक भी है।

धूम्रवर्तिसेवन—शरीरके सबसे उपयोगी श्वासवह-संस्थानके मूल नासारन्ध्रोंको शुद्ध रखनेके लिये आयुर्वेदिक धूम्रसेवन भारतीय चिकित्सा-विज्ञानकी अतिविशिष्ट एक मौलिक विधि है। धूल, धूम, धूप, आधुनिक ठंडे पेय, चॉकलेट, फास्टफूड, आइस्क्रीम और फ्रिज आदिमें रखे गये आहारके अत्यधिक प्रयोगसे सबसे ज्यादा नशा तथा उससे सम्बन्धित अवयवोंको हानि पहुँचती है। यह हानि प्रतिश्याय, पीनस, नासार्श, शिर:शूल, तुंडिकरी तथा स्वरभेदके रूपमें उमड़ती है। इनसे बचनेके लिये धूम्रवर्तिका सेवन अत्यन्त लाभकारी उपाय है।[1]

नस्य—स्वस्थ-हित-नस्य पञ्चकर्मके अन्तर्गत परिगणित नस्य-कर्मसे पृथक् है। इसका प्रयोग वर्षा, शरद् और हेमन्त-ऋतुमें स्वच्छ आकाशवाले दिनोंमें करना चाहिये। इसके लिये आयुर्वेदकी अणुतेल-विधिका प्रयोग करना चाहिये। इस नस्यसे चक्षु, नासा, कर्ण तथा इन्द्रियोंकी रोगोंसे प्रतिरक्षा होती है तथा बालोंका पालित्य (असमयमें सफेद होना) भी नहीं होता।

मुखशुद्धि—मुखमें सुगन्ध और रसज्ञानकी उत्तमता बनाये रखनेके लिये जायफल, सुपारी, लवंग, कंकोल, छोटी इलायची तथा शुद्ध कर्पूरयुक्त पानका सेवन भोजनान्तमें करना चाहिये। इनके प्रयोगसे मुखकी दुर्गन्ध दूर होती है तथा सामान्य मुख-रोगोंका प्रतिबन्धन होता है।

तेल-गण्डूष—तिल-तेलको जलकी तरह मुखमें भरकर कुछ समयतक उसका कुल्ला करनेके रूपमें परिचालन करते हुए थूक देना चाहिये। इस प्रकारका प्रयोग रोगविशेषमें औषधिसिद्ध तेलोंसे भी किया जाता है। स्नेहगण्डूष धारण करनेसे हनु-संधिको बल मिलता है, मुखकी पुष्टि होती है, स्वर उत्तम होता है, रसज्ञान श्रेष्ठ होता है, आहारमें रुचि उत्पन्न होती है। कण्ठशोष, ओठोंका फटना, दन्तक्षय, दाँतोंका हिलना आदि तेल-गण्डूषके प्रयोगसे प्रतिबन्धित होते हैं।

शिरोऽभ्यङ्ग—नित्यप्रति सिरमें तिल अथवा नारियलका तेल या औषधिसिद्ध तेलका अभ्यङ्ग करना चाहिये। अभ्यङ्गके लिये तेलकी इतनी मात्रा होनी चाहिये, जिससे बाल पूरी तरह स्नेहाक्त हो जायँ। यह परम्परा दक्षिण भारत (केरल)-में आज भी प्रचलित है। शिरोऽभ्यङ्गसे शिर:शूल तथा पालित्यको रोका जा सकता है। चक्षु एवं कर्णेन्द्रियके रोगोंका प्रतिबन्धन होता है। मुखकी त्वचा कोमल तथा मधुर निद्राकी प्राप्ति होती है।

कर्णतर्पण—प्रतिदिन एक-एक बूँद तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेल कानोंमें डालना चाहिये, इससे वातजन्य कर्णव्याधियाँ, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह तथा बाधिर्यका प्रतिबन्धन होता है।

शरीर-अभ्यङ्ग—नित्यप्रति स्नानसे पूर्व सम्पूर्ण शरीरके ऊपर तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेलका अभ्यङ्ग करना चाहिये। इससे शरीर इस प्रकार मुलायम और स्निग्ध हो जाता है, जैसे स्नेहके द्वारा मिट्टीका घड़ा और चर्म चिकना हो जाता है। अभ्यङ्गसे दृढ़ता और परिश्रम करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। त्वचामें स्थित वातनाडियोंको श्रेष्ठ प्रकारका पोषण मिलता है। इससे विविध प्रकारके त्वचासम्बन्धी रोगोंका शमन होता है। उष्ण एवं शीतको सहन करनेकी क्षमता श्रेष्ठ हो जाती है।

पादाभ्यङ्ग—दोनों पैरोंके तलवोंमें नित्य तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेलका अभ्यङ्ग करनेसे वायुका शमन होता है। दृष्टि-सुख प्राप्त होता है। पैरोंमें स्वच्छता, खरता, स्तब्धता और श्रमका शमन होता है। पैर स्थिर एवं बलवान् होते हैं। गृध्रसी तथा पादस्फुटन, खल्लीशूल आदिका पूरी तरह प्रतिबन्धन होता है।

स्नान—अभ्यङ्ग-कर्म करनेके बाद शारीरिक शुद्धिके लिये यथा-ऋतु एवं सात्म्यताके अनुसार उष्ण या शीत जलसे स्नान करना चाहिये। स्नान करनेसे स्वेद एवं शारीरिक दुर्गन्ध दूर होती है। स्फूर्ति प्राप्त होती है। श्रम और तन्द्रा दूर होकर क्रियाशीलता बढ़ती है। अन्तराग्निका

१. इसका प्रयोग एवं विधि चरक सूत्रस्थान ५। २०—५५ में द्रष्टव्य है।

संदीपन होकर शरीरमें बलवृद्धि तथा ऊर्जावृद्धि होती है।

शुद्ध वस्त्रधारण—निर्मल वस्त्र-धारण करनेसे शरीरमें आकर्षण, आयु तथा श्रीकी वृद्धि होती है, दरिद्रताका नाश होता है।

सुगन्ध-मालाधारण—सुगन्धित पुष्पमाला धारण करनेसे वृष्य तथा आयुकी वृद्धि होती है।

आभूषणधारण—माङ्गलिक तथा हर्ष प्रदान करनेवाले, व्यक्तित्वमें प्रकाश करनेवाले और अनेक प्रकारके लाभ प्राप्त करानेवाले रत्न, आभूषणधारण भारतीय परम्परामें अङ्गभूत हैं, इनको धारण करनेसे शारीरिक तथा मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है।

मलमार्ग एवं पादशुद्धि—नित्यप्रति आवश्यकता, अनिवार्यता और अभ्यासके साथ पैरों तथा मलमार्गोंको जल अथवा मृत्तिकासहित जलसे शुद्ध करनेसे मल दूर होते हैं। पवित्रता आती है तथा अलक्ष्मी और कलिदोषका निवारण होता है।

केश, श्मश्रु, नखकर्तन—पक्षमें तीन बार केश, श्मश्रु तथा नखोंका कर्तन और प्रसादन मल दूर करनेके लिये करना चाहिये। इससे पुष्टि तथा अविकारभाव एवं व्यक्तित्वमें चमत्कार पैदा होता है।

पादत्राण—पादसुरक्षा तथा पराक्रमवृद्धि करनेके लिये सुविधानुसार यथोचित पादत्राण धारण करने चाहिये। इससे दृष्टिमें वृद्धि एवं आकस्मिक दुर्घटनासे रक्षा होती है।

छत्रधारण—आवश्यकतानुसार ऋतुसुखको ध्यानमें रखकर छत्रधारण भी मानव-शरीरकी रक्षाके लिये आवश्यक होता है। इससे धूल, धूप, वर्षा तथा वायुसे रक्षा होती है।

रात्रिचर्या—दिनभरके व्यस्त कर्मोंको करनेके बाद रात्रिमें सेवनविधिके नियमानुसार आहारका सेवन करना चाहिये और नित्य यथासमय सोनेका क्रम बनाये रखना चाहिये। सुखनिद्राके लिये शयनस्थानकी स्वच्छता, वायुका उचित आवागमन, मच्छर आदिसे सुरक्षा तथा शय्यावस्त्रोंकी स्वच्छता होनी चाहिये।

ऋतुचर्या—शारीरिक स्वास्थ्यके परिपालन तथा विकार-प्रतिबन्धनके लिये आयुर्वेदज्ञोंने नित्य जीवनका क्रम, वातावरणमें होनेवाले परिवर्तनोंका पूर्णतः अध्ययन एवं विवेचन कर व्यावहारिक रूप देनेके लिये वर्षा, ग्रीष्म तथा शीत—इन ऋतुओंके छः भेद मानकर वैज्ञानिक दृष्टिसे आहार-विहारके नियम ऋतुचर्या-विधानके नामसे विस्तारपूर्वक निरूपित किये हैं। जो चरकसंहिताके सूत्रस्थान ६ में द्रष्टव्य हैं। उनका अनुपालन करना चाहिये।

३. सद्वृत्त

पूर्वमें स्वस्थ-हित और विकारप्रतिबन्धनके लिये आहार, दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्यासम्बन्धी सामान्य नियम प्रस्तुत किये गये हैं। महर्षि चरकके अनुसार मानवका शरीर इन्द्रिय-सत्त्व एवं आत्माका संयोग है। इनमेंसे शरीरके लिये हितकर विषयोंका पूर्वमें वर्णन हुआ है। शेष मानस-क्षेत्र इन्द्रिय, मनके हितकर व्यवहारका विवरण सद्वृत्तके[1] अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है। सद्वृत्तका आचरण करनेपर एक साथ दो लाभ प्राप्त होते हैं—आरोग्य और इन्द्रियविजय। जैसे—

(१) देव, गौ, ब्राह्मण, सिद्ध, गुरु, वृद्ध तथा आचार्यकी पूजा करें।

(२) अग्निमें होम करें, प्रशस्त औषधि धारण करें, प्रातः-सायं स्नान करें।

(३) मलायनों तथा पैरोंका सम्यक् शोधन करें, पक्षमें तीन बार केश, श्मश्रु तथा नखकर्तन करें।

(४) नित्य स्वच्छ वस्त्र और सुगन्धि धारण करें, केशोंका सुन्दर विन्यास करें।

(५) सिर, कर्ण, घ्राण, पादमें नित्य स्नेहन करें तथा आयुर्वेदिक धूम्रपान करें।

(६) सभीसे पूर्व भाषण करें, प्रसन्नमुख रहें और दुर्गतिप्राप्त लोगोंकी रक्षा करें।

(७) हवन, यज्ञ, दान, बलिदान, अतिथिपूजा तथा पितरोंको पिण्ड-दान करें। समयपर हित, मित और मधुर वाणीका प्रयोग करें।

(८) स्वयंको नियन्त्रित रखें, धर्ममें आस्था रखें। निर्भीक, पवित्र, बुद्धियुक्त कार्यको उत्साहसहित आरम्भ करें। कार्यमें कुशलता, अपराधके प्रति क्षमा, नियमपूर्वक

१. द्रष्टव्य चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ८।

गुरुजनोंकी उपासना करें और छत्र, दण्ड, उपानह आदि धारण करें।

(९) मङ्गलाचरण करके कार्य आरम्भ करें।

(१०) दूषित भूमिका त्याग करें, मात्रामें व्यायाम करें। प्राणिमात्रमें बन्धुत्व रखें, क्रोधीको मनावें, भयभीतको आश्वासन दें, दीनोंको सहयोग दें, सत्यका आचरण करें, दूसरोंके कठोर वचनोंको सहें, प्रतिशोधका त्याग करें, स्वभाव शान्त रखें, राग-द्वेषके कारणोंका नियन्त्रण करें।

(११) असत्य न बोलें, परधन और परस्त्रीकी इच्छा न रखें, शीलका पालन करें, वैर न बढ़ायें, पाप न करें, पापका प्रायश्चित्त करें, स्वगुण एवं दूसरोंके दुर्गुणोंको न कहें, दूसरोंके रहस्योंको न खोलें, अधार्मिक, राजद्रोही, उन्मत्त, पतित, भ्रूणहन्ता, क्षुद्र एवं दुष्टोंकी संगति न करें।

(१२) विकृत यानपर यात्रा न करें, जानुके समान ऊँचे आसनपर न बैठें, असुखशय्यापर शयन न करें, पहाड़ोंकी चोटीपर न चलें, पेड़ोंपर न चढ़ें, नदीके प्रवाहके विरुद्ध न तैरें।

(१३) अग्निसे क्रीडा न करें, छायापर पादाघात न करें, ऊँचे शब्दोंमें न हँसें, शब्दवाले अपानवायुका त्याग न करें, खुले मुख जृम्भा (जंभाई), क्षवयु (छींक) और हास्यका प्रयोग न करें, नाकमें उँगली न डालें, दाँतोंको न घिसें, नखोंको न चबायें, अस्थियोंमें अभिघात न करें, पृथ्वीपर न लिखें, मिट्टीके ढेलेको न फोड़ें, अङ्गोंमें विकृत चेष्टा न करें, देर रात्रिमें मन्दिर आदि स्थानोंपर न जायँ, शून्य गृहमें अकेले प्रवेश न करें, अकेले जंगलमें न जायँ, पापकर्ममें लिप्त स्त्री, मित्र और सेवकोंका विश्वास न करें, श्रेष्ठ पुरुषोंका विरोध न करें, नीचोंकी संगतिमें न जायँ, कुटिल व्यक्तिसे दूर रहें, अनार्यकी संगतिमें न रहें, किसीको भयभीत न करें।

(१४) साहस, अतिबल, प्रजागरण, अतिस्नान, अतिपान, अतिअशन, न करें।

(१५) ऊर्ध्वजानु देरतक न बैठें, सर्पोंका स्पर्श न करें, सींगवाले जानवरोंसे दूर रहें, पूर्वी वायु, आतप तथा ओसका त्याग करें, समूहमें कलह न करें, नियत-चर्याके और आचार्यके बिना यज्ञ आरम्भ न करें, श्रमकी अवस्थामें अग्निसेवन न करें, अग्निके समीप संयत भाषण करें, कटिवस्त्र पहनकर ही यज्ञ करें, केशोंके अग्रभागको न खींचें, यात्रासे पूर्व रत्न, घृत, पूज्य और माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श शरीरके दक्षिण भागसे करें।

(१६) भोजन करनेके पूर्व शुद्ध वस्त्र और रत्न धारण करें, इष्ट देवताका जप करें, अग्निमें हवन, देवताओंको समर्पण, पितरोंको तर्पण और गुरु, अतिथि एवं उपाश्रितोंको यथाशक्य आहारलाभ दें। सुगन्धित स्नान तथा माला धारण करें, प्रक्षालित हस्त-पाद-बदन तथा उत्तराभिमुख हो एवं अशिष्ट, अपवित्र, बुभुक्षित सेवकोंसे परिवर्जित और पवित्र पात्रमें सुसज्जित इष्टदेश, इष्टकाल तथा इष्टभूमिपर जलसिंचनके बाद अभिमन्त्रित कर आहार ग्रहण करें। आहारकी निन्दा न करते हुए प्रसन्नमनसे भोजन ग्रहण करें।

(१७) बासी भोजन न करें तथा मांस और मसालेसे बना भोजन न करें। रात्रिमें दहीका सेवन न करें, सत्तूका सेवन न अकेले करें, न घनरूपमें तथा न रात्रिमें करें। अधारणीय वेगोंके समय कोई कार्य न करें, अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्र तथा पूज्य लोगोंके सम्मुख थूक, छींक, पुरीष तथा मूत्रका उत्सर्जन न करें, धार्मिक एवं माङ्गलिक कार्योंके समय थूकना एवं नाक छिनकना वर्जित है।

(१८) स्त्रियोंपर अति विश्वास न करें, उनकी निन्दा न करें, उन्हें गुप्त रहस्य न बतायें, उन्हें बलपूर्वक अपने अधिकारमें न रखें।

(१९) सज्जन और गुरुओंसे विवाद न करें, अधार्मिक आचरणसे पूजा न करें, समयका सर्वदा विचार करें, रात्रिमें वर्जित स्थानोंपर गमन न करें, संध्याकालमें आहार, अध्ययन, स्त्रीसेवन एवं निद्राका निषेध करें। बाल, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, रोगी और नपुंसक लोगोंसे मैत्री न करें। मद्य, जुआ और वेश्यागमनका परित्याग करें। गुप्त बात सभीको न बतायें, किसीका अपमान न करें, परनिन्दा न करें, अहंकार न करें।

(२०) अधीर न हों, स्वजनोंसे विश्वासघात न करें, सेवकको सेवाका प्रतिफल दें, अकेले सुख न भोगें, दुःखदायी आचार और उपचारोंका अभ्यास न करें, हर किसीपर विश्वास न करें, हर एकपर शंका न करें, सर्वदा विचार ही न करते रहें।

(२१) कार्यके उचित समयको न त्यागें, बिना

परीक्षाके अपना मत व्यक्त न करें, विलम्बसे कार्य करनेका त्याग करें, शोकमें न डूबें, कार्य पूर्ण होनेपर अति हर्ष और कार्य असफल होनेपर अति शोक न करें।

(२२) ब्रह्मचर्यका पालन करें तथा ज्ञान, दान, मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा और शान्तिका युक्तिपूर्वक व्यवहार करें।

वर्तमान युगमें काल, अर्थ और कर्मके हीन, मिथ्या और अतियोगोंमें जीवनयापन करनेकी व्यवस्था हमारे सामने विकराल रूपसे उपस्थित है। इसीके परिणामस्वरूप ज्ञान और विज्ञानकी नयी एवं पुरानी चिकित्साप्रणालियोंके अहर्निश कार्य करनेपर भी असाध्य व्याधियाँ तथा रोगप्रतिबन्धनका लक्ष्य पूर्ण नहीं हो पा रहा है। आयुर्वेदके स्वस्थ-हित और व्याधिप्रतिबन्धक नियमोंका हर दृष्टिसे विश्लेषण किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि प्रकृतिके अनुरूप जीवनक्रम स्वस्थ जीवनके परिपालनका मूल आधार है। प्रकृतिके बाह्य स्वरूपसे हमारा वातावरण और आहार उपलब्ध होता है तथा आभ्यन्तर स्वरूपसे शारीरिक भावोंकी साम्यता और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और यही आयुर्वेदमें प्रकृति-सुख-साम्यावस्था 'आरोग्य' कहा जाता है। अतः चरकोक्त वैयक्तिक स्वस्थवृत्तका तथा विकार-प्रतिबन्धनके लिये जीवनयापनकी सरल विधिका अनुपालन किया जाय तो निश्चय ही मनुष्यको स्वस्थ जीवन, दीर्घ जीवन तथा विकारोंका प्रतिबन्धन और सच्चा आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

प्रकृतिके अष्टरूप जगत्को आरोग्य प्रदान करते हैं

(डॉ० आचार्य श्रीरामकिशोरजी मिश्र)

जो प्राणी प्रकृतिमें रहता है, उसे प्रकृतिके आठ रूप आरोग्य प्रदान करते हैं। प्रकृतिके आठ रूप हैं—जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु। प्रकृतिके ये आठों रूप यदि स्वच्छ और निर्मल तथा प्रसन्न हैं तो इनके सहयोगसे यह जीव-जगत् सदा स्वस्थ रहता है। महाकवि कालिदासने अभिज्ञानशाकुन्तलके नान्दीपाठमें प्रकृतिके इन आठ रूपोंका भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंके रूपमें स्मरण किया है—

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् १।१)

कालिदासने प्रकृतिको शिव और प्रकृतिके अष्टरूपोंको शिवकी अष्टमूर्तियाँ माना है। इन अष्टमूर्तियोंका सीधा सम्बन्ध पृथ्वीके जीव-जगत्से है।

(१) जब विधाताने सृष्टिकी रचना की तो उन्होंने सर्वप्रथम जलकी रचना की। अतः कालिदासने सबसे पहले शिवकी जलमयी मूर्तिका स्मरण किया है—'**या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या**'—स्त्रष्टाकी आद्य सृष्टि अर्थात् जल। स्वच्छ और निर्मल जलके सेवनसे शरीर स्वस्थ हो जाता है। जल जीवन है। जलके बिना प्राण-रक्षा नहीं होती। जल अन्तर्गत होकर शरीरके विकारोंको नष्ट कर देता है। जलमें समस्त रोगोंको नष्ट कर देनेवाली औषधियोंको उत्पन्न करनेकी शक्तिका वास है, जिससे समस्त बीज जलग्रहणकर अङ्कुरित हो अपने रूपको वृद्धिङ्गत करते हैं और उनसे प्राणियोंका शरीर आरोग्य प्राप्त करता है।

(२) प्रकृति अर्थात् शिवका द्वितीय रूप 'अग्नि' है, जिसे कालिदासने '**वहति विधिहुतं या हविः**' के रूपमें स्मरण किया है, जिसका अर्थ है कि जो मूर्ति विधिपूर्वक हवन की गयी हव्य-सामग्रीको ग्रहण करती है अर्थात् अग्नि। अग्नि समस्त प्रकारके रोगोंको अपने प्रभावसे नष्ट कर देती है। इस प्रकार अग्नि प्राणीके बहुतसे रोगों—मन्दाग्नि आदिको नष्ट करके उसके शरीरको आरोग्य प्रदान कर स्वस्थ बनाती है।

(३) प्रकृतिका तृतीय रूप होता—यजमान है। सृष्टिके समस्त कर्म यज्ञ हैं और यज्ञोंका कर्ता यजमान होता है। अतः विधाता सबसे पहला यजमान था, जिसने सृष्टियज्ञ अर्थात् पृथ्वीकी रचना की। वह सृष्टिकर्म अनवरत हो रहा है। इस पृथ्वीका प्रत्येक क्रियाशील

प्राणी होता—यजमान है। यजमान स्वकृतयज्ञसे उत्पन्न धूमसे जगत्प्रदूषणको नष्ट कर प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करता है।

(४) (५) **'ये द्वे कालं विधत्त:'** कालिदासके इस वाक्यसे—जो दो मूर्तियाँ अर्थात् सूर्य और चन्द्र काल अर्थात् दिन और रात्रिका विधान करते हैं, वे प्रकृति अर्थात् शिवके चतुर्थ और पञ्चम रूप हैं, जिनका इस सृष्टिसे अटूट सम्बन्ध है।

सूर्य समस्त जगत्की आत्मा हैं। ये जगत्का नेत्र और सविता—जनक हैं। इनके बिना हम सब अन्धे हैं। यदि ये न हों तो पृथ्वीपर कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा। इन्हींके प्रतिदिन उदित होनेसे संसारकी गतिविधियाँ चलती हैं। अपनी किरणोंसे ये जीव-जगत्को आरोग्य प्रदान करते हैं। इसीलिये आरोग्यके अभिलाषीको सूर्योपासना करनेका निर्देश शास्त्रोंमें प्राप्त है—**'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** (मत्स्य पु०)।

चन्द्रमा निशापति और ओषधिपति हैं। ये औषधियोंमें रसोंका सञ्चार करते हैं और उन्हें पुष्टकर प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करते हैं। उन पुष्ट औषधियोंका सेवन प्राणी करते हैं, जिससे शरीर नीरोग होता है।

(६) प्रकृतिका छठा रूप आकाश है, जिसे **'श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्'** कहकर कालिदासने शिवकी छठी मूर्ति बताया है। इस आकाशमें अनन्त ब्रह्माण्ड और अनेक गङ्गाएँ समाहित हैं। इसका सर्वाधिक विशाल रूप है। यह समस्त जीव-जगत्को श्रवणशक्ति प्रदान करता है।

(७) प्रकृतिका सप्तम रूप पृथ्वी है, जिसे कालिदासने **'यामाहु: सर्वबीजप्रकृतिरिति'** अर्थात् जिसे समस्त बीजोंको उत्पन्न करनेवाली कहकर स्मृत किया है। पृथ्वी अन्नादि समस्त बीजोंकी जननी है। अन्नादिसे प्राणियोंकी भूख शान्त होती है और शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। अत: पृथ्वी अपनेसे उत्पन्न अन्न, वनस्पति आदिसे प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करती है।

(८) प्रकृतिका अष्टम रूप वायु है, जिसे कालिदासने **'यया प्राणिन: प्राणवन्त:'** अर्थात् जिसके द्वारा प्राणी प्राणवाले होते हैं—कहकर शिवकी अष्टमूर्तिके रूपमें स्मृत किया है। वायु सतत बहता है। इसीसे समस्त प्राणी जीवित हैं। यह अन्तरिक्ष-मार्गपर चलता हुआ क्षणभरके लिये भी नहीं रुकता। यदि यह क्षणभरके लिये भी कहीं रुक जाय तो प्राणियोंका जीवन समाप्त हो जायगा। प्राणियोंमें श्वास-स्पन्दन ही तो जीवन है और वह वायुसे सञ्चालित होता है। अत: वायु हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है।

यह अष्टरूपा प्रकृति तो निरन्तर हमारे कल्याणमें लगी रही है, किंतु आज सारा वातावरण, समस्त परिवेश, अन्न, जल, वायु—सभी कुछ दूषित होता जा रहा है तो फिर रोग बढ़ें, महामारी फैले, प्राकृतिक प्रकोप बढ़ें तो इसमें आश्चर्य कैसा, आजके दूषित समयमें सर्वथा आरोग्य रह पाना बड़ा कठिन हो गया है। प्रकृतिके साथ की जा रही छेड़छाड़को यदि हमने नहीं रोका तो वह दिन दूर नहीं, जब हम सबका सर्वनाश सुनिश्चित होगा।

पहले हमारे समस्त कर्म यज्ञद्वारा प्रकृतिके इन अष्टरूपोंमेंसे अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदिकी आराधना और उपासनाकी दृष्टिसे होते थे। यज्ञ हवन-होमादिमें निक्षिप्त घृतादि हव्य-सामग्रीसे उत्पन्न सुगन्धित धूमोंसे समस्त पर्यावरणसहित वातावरण शुद्ध तथा सुगन्धित होता रहता था, किंतु आज हमारे कर्म उद्योग तथा व्यापारकी दृष्टिसे हो रहे हैं, जिसके कारण धुआँ उगलते वाहनों और घातक विस्फोटकोंके जहरीले धुएँसे न केवल नगरोंकी अपितु ग्रामीण क्षेत्रोंका वायु भी इतना कलुषित तथा प्रदूषित हो चुका है कि उसे इन फेफड़ोंमें भरना खतरेसे खाली नहीं है। यह सब हो रहा है और हम सब ऐसा करते रहे तो प्रकृति अर्थात् शिवके इन अष्टरूपोंको विकृत (रुद्र)-रूप धारण करना ही होगा, जिससे विभिन्न घातक रोगोंकी उत्पत्ति अनिवार्य है।

दुस्तोयपानाद्विषमाशनाच्च दिवाशयाज्जागरणाच्च रात्रौ।
संरोधनान्मूत्रपुरीषयोश्च षड्भि: प्रकारै: प्रभवन्ति रोगा:॥

अर्थात् दूषित जलपान, विषम भोजन, दिनमें शयन, रात्रिमें जागरण, मूत्र और पुरीष (मल)-के रोकनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। प्रथम दो कारणोंको छोड़कर शेष चार कारणोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हें व्यक्ति अपने उस आचरणको छोड़कर रोगोंसे मुक्त हो सकता है और आरोग्य प्राप्त कर सकता है। प्रथम

दो कारणोंमें दूषित जलको उबालकर शुद्ध किये गये जलपानसे और विषम भोजन त्यागकर सम भोजन करनेसे व्यक्ति नीरोग रह सकता है।

हमारे द्वारा की गयी अनुचित छेड़छाड़के कारण आज न तो जल ही शुद्ध रहा है और न अन्न। दूषित अन्नके खानेसे न जाने कितने विषैले तत्त्वोंको हम उदरस्थ कर शारीरिक विकृतियोंको प्राप्त कर रहे हैं।

हमारे पूर्वज प्रकृतिके इन अष्टरूपोंकी आराधना और उपासना करते थे। ऋग्वेद उपासना-सूक्तोंसे भरा पड़ा है, जिनमें उष:सूक्त, अग्निसूक्त, वरुणसूक्त, सूर्यसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त आदि पठनीय हैं। सूर्यके विषयमें तो सविता, पूषा, मित्र आदि सूक्तोंमें भी वर्णन प्राप्त होता है। वरुण जलके देवता हैं। वरुणसूक्तमें जलके विषयमें वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त विष्णु, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य आदिपर उपासनासूक्त मिलते हैं, इनमें वायुके विषयमें मरुत्सूक्त है। प्रकृति पूर्वजोंकी पूज्या थी, किंतु हमारे लिये भोग्या है। इसलिये हमारे समस्त कार्य जो विकास, प्रगति और उन्नतिके नामपर हो रहे हैं, वे सब प्रकृति-विरोधी हैं। प्रकृतिका विरोध विनाश और मरणको आमन्त्रित करना है।

अब भी समय है कि हम उन कार्योंसे विरत हों, जिनके करनेसे प्रकृति कलुषित और प्रदूषित हो रही है। जब प्रकृतिके अष्टरूप पूर्ववत् स्वच्छ, निर्मल और प्रसन्न होंगे तो फिर हमें कोई रोग नहीं होगा और हम नीरोग रहेंगे। अत: हम महाकवि कालिदासके शब्दोंमें प्रकृति (शिव)-के उन प्रत्यक्ष अष्टरूपों (मूर्तियों)-की स्तुति करते हैं, वे सबको रक्षा (आरोग्य) प्रदान करें—

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।

स्वस्थ जीवनके लिये ऋतुचर्याका ज्ञान

(वैद्य श्रीअनसूयाप्रसादजी मैठानी, एम० ए०, आयुर्वेदभास्कर, वैद्याचार्य)

रोगकी चिकित्सा करनेकी अपेक्षा रोगको न होने देना ही अधिक श्रेष्ठ है और यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि चर्यात्रय अर्थात् ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा रात्रिचर्याके सम्यक् परिपालनसे रोगका निश्चय ही प्रतिरोध होता है।

श्रेष्ठ पुरुष स्वास्थ्यको ही सदा चाहते हैं, अत: वैद्यको चाहिये कि मनुष्य जिस विधिके सेवनसे सदा स्वस्थ रहे उसी विधिका सेवन कराये, आयुर्वेदशास्त्रमें ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा रात्रिचर्याकी जो विधि वर्णित की गयी है, उसका नियमपूर्वक आचरण करनेसे मनुष्य सदा स्वस्थ रह सकता है। ऋतुओंके लक्षणोंसे पूर्णरूपसे अवगत हो जानेके उपरान्त उनके अनुकूल आहार, विहारका सेवन करना चाहिये, अत: ऋतुचर्याके वर्णनसे पूर्व ऋतु-विभागका संक्षिप्त ज्ञान होना आवश्यक है।

प्रकृतिकृत शीतोष्णादि सम्पूर्ण कालको ऋषियोंने एक वर्षमें संवरण किया है, सूर्य एवं चन्द्रमाकी गति-विभेदसे वर्षके दो विभाग किये गये हैं, जिन्हें 'अयन' कहते हैं, वे अयन दो हैं—१-उत्तरायण और २-दक्षिणायन। उत्तरायणमें रात्रि छोटी तथा दिन बड़े होने एवं सूर्य-रश्मियोंके प्रखर होनेसे चराचरकी शक्तिका शोषण होता है, इसलिये इसे आदानकाल भी कहा गया है और दक्षिणायनमें दिन छोटे तथा रात्रि बड़ी होनेसे चन्द्रमाकी मरीचिकाएँ प्रबल होती हैं, जिनसे प्राणियोंको बल प्राप्त होकर पोषणका कार्य स्वाभाविक रूपसे स्वत: ही होता रहता है।

इन अयनोंमें प्रत्येकके तीन-तीन उपविभाग किये गये हैं, जिन्हें 'ऋतु' कहते हैं, स्थूल रूपसे उत्तरायणमें—शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म-ऋतुएँ और दक्षिणायनमें—वर्षा (प्रावृट् स्थानभेदसे), शरद् तथा हेमन्त-ऋतुएँ पड़ती हैं, इस भाँति पूरे वर्षमें छः ऋतुएँ होती हैं। आयुर्वेदशास्त्रमें दोषोंके संचय, प्रकोप तथा उपशमके लिये इन्हीं छः ऋतुओंको मानते हैं।

अब संक्षेपमें प्रत्येक ऋतुका काल, उसका सामान्य लक्षण तथा उस ऋतु-विशेषमें सेवनीय एवं त्याज्य पदार्थोंकी चर्चा करेंगे, इस क्रममें यह बतला देना आवश्यक होगा कि ऋतु-सन्धि-काल, प्रत्येक ऋतुके प्रथम तथा अन्तिम पक्षके दिनोंमें विगत-ऋतुके आहार-विहार, धीरे-धीरे त्यागकर आनेवाली ऋतुके आहार-

विहार शनैः-शनैः प्रारम्भ कर देने चाहिये, क्योंकि इनमें आकस्मिक परिवर्तनसे भयंकर रोगोंकी उत्पत्तिकी आशंका रहती है, यथा—'**आसात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्।**' दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि यद्यपि सभी ऋतुओंमें ऋतु-अनुकूल पृथक्-पृथक् रसोंके सेवनके लिये कहा गया है और ऋतुके अनुकूल उन रसोंका विशेष रूपसे सेवन करना भी चाहिये, फिर भी मनुष्यको चाहिये कि वह सदा सभी रसों (षड्रसों)-के सेवनका अभ्यास (अविरुद्ध भोजनके) बनाये रखे, किंतु जिस ऋतुमें जो रस-सेवनकी विधि कही गयी है, उसीके अनुकूल उन्हीं रसोंका अधिक सेवन करना चाहिये। यथा—

'**नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ**'।

वसन्त-ऋतु (चैत्र-वैशाख)

वसन्त-ऋतुमें सभी दिशाएँ रमणीय एवं नाना प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित होती हैं, इस समय शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन मलयाचलसे प्रवाहित होता है, अपनी इस अनुपम सुषमा एवं मनोहरताके कारण ही यह 'ऋतुराज' कहलाता है।

शिशिर-ऋतुमें मधुर, स्निग्ध आहार अधिक सेवनसे और कालस्वभावसे श्लेष्मा अधिकतर संचित हो जाता है तथा वसन्त-ऋतुमें सूर्यकी रश्मियोंद्वारा तप्त होकर कफ जलस्वरूप होकर जठराग्निको नष्ट (मन्द) करके अनेक रोगोंकी उत्पत्ति करता है, अतः उसे शीघ्र जीतना चाहिये। यथा—

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत्॥

(अ०हृ० सू० ऋतु० ३। १८)

इसके लिये कफ-निःसारक औषधियोंके द्वारा वमन तथा ऊर्ध्वांग शुद्ध करें, व्यायाम करना, उबटन लगाना, रूखे, कषैले, कटु, तिक्त, रस, ताम्बूल, कर्पूर, मधुके साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करें, श्वेत वस्त्र धारण करें, प्रातः-सायं भ्रमण करें—'**वसन्ते भ्रमणे पथ्ये**' भ्रमणसे कफका ह्रास एवं रक्त-संचार तीव्र गतिसे होता है। सोंठका क्वाथ तथा विजयसार चन्दनादिसे बना जल पीयें, मधुमिश्रित जल तथा नागरमोथासे बना क्वाथ पीयें। यथा—

'**शृंगबेराम्बु साराम्बु मध्वम्बु जलदाम्बु च।**'

(अ० हृ० सू० ऋतु० ३। २३)

इस ऋतुमें मधुर, अम्ल, स्निग्ध तथा गरिष्ठ (देरसे पचनेवाले) पदार्थ, शीत द्रव्य, अरवी, कचालू, उरद, ओसमें निद्रा लेना और दधि वर्जित है। इसी प्रकार उल्लेखनीय है जहाँ तरुण दधि प्राणहर होता है, वहीं न तो भोजनके अन्तमें और न रात्रिमें दही खाना चाहिये, यथा—

'**न नक्तं दधिभुञ्जीत दध्यन्तं न कदाचन 'तरुणो दधि... प्राणहराणि षट्**'।

ग्रीष्म-ऋतु (ज्येष्ठ-आषाढ़)

ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी किरणें बहुत ही तीक्ष्ण होती हैं, अतः इनसे प्राणियोंका बल एवं जगत्की आर्द्रताका शोषण होता है, इसके परिणामस्वरूप कफ क्षीण हो जाता है और शरीरमें वायु संचित होकर वृद्धिको प्राप्त होता है, जिससे विविध प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

ग्रीष्म-ऋतुमें जौ, गेहूँ, शालिचावल, मटर, अरहर, कच्चा खीरा, तरबूजा, ककड़ी, पेठा, करेले, बथुआ, चौलाई, घीया, परवल, मधुररसयुक्त लघु, स्निग्ध, शीतल, सुपाच्य पदार्थोंका सेवन करना चाहिये, मिस्रीयुक्त दूध, खाँड़युक्त दही या मट्ठा, मिस्री, मोचरस, चोचमोच, शीतल शरबत आदि स्वास्थ्यप्रद है, शीतल जलसे धुला, केवड़े आदिसे सुगन्धित, खसकी टट्टियोंसे आच्छादित घर, सघन वृक्षोंकी छाया, प्रातः शीतल जलसे स्नान तथा दिनमें निद्रा—इस ऋतुकी उग्रताको शान्त करते हैं, गुड़के साथ हरीतकीका सेवन करना चाहिये।

अधिक लवणयुक्त, कटु, अम्ल पदार्थ, अधिक व्यायाम, उष्णजलसे स्नान, उपवास, धूपमें पदयात्रा करना, अधिक परिश्रम, तिल-तेल, बैगन, उड़द, सरसों, राईका शाक, गरिष्ठ भोजन, भय, क्रोध, स्त्री-सहवास एवं उग्र वायु-सेवन स्वास्थ्यके लिये हानिप्रद है।

वर्षा-ऋतु (श्रावण-भाद्रपद)

वर्षा-ऋतुमें चारों ओर हरियाली एवं गगन मेघाच्छन्न रहता है, दूषित जल तथा वाष्पयुक्त वायुसे पाचन-प्रणालीपर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे मन्दाग्नि हो जाती है, तुषारपूर्ण शीतल वायुसे तथा '**ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्राविद् (वर्षा)-काले प्रकुप्यति**'-से शरीराभ्यन्तरीय वायु

पृथ्वीकी दूषित वाष्पसे और जलोंके अम्लपाक होने तथा जल-वायुकी मलिनतासे पित्त तथा अग्निमान्द्य होने और पशु-कीटादिके मल-मूत्रादिके संसर्गसे वर्षाका जल मलिन हो जानेसे कफ कुपित हो जाता है। इन दिनों वायु, पित्त तथा कफ आदिके पृथक्-पृथक् अथवा दो-दो या तीनों दोषोंके मिल जानेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वर्षा-ऋतुमें अग्निकी भलीभाँति रक्षा करनी चाहिये। अग्निके शान्त हो जानेसे स्वास्थ्यपर बहुत ही घातक परिणाम होता है। अग्निके विकृत होनेपर पुरुष नाना प्रकारके रोगोंसे आक्रान्त होता है। इसलिये सुन्दर स्वास्थ्यके लिये जैसे त्रिस्थूणोंका सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है, उसी भाँति अग्निकी साम्यावस्था बनाये रखना भी अपरिहार्य है, '**समदोषः समाग्निश्च''' स्वस्थ इत्यभिधीयते**'।

वर्षाकालमें अग्निवर्द्धक पदार्थोंका सेवन, वातनाशक तथा पाचक औषधियोंसे विरेचन लेना, मूँग आदिका जूस, पुराने यव, गेहूँ, शालिचावल, षड्रस, मस्तु (जल दहीका), काला नमक, पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ मिलाकर पीना चाहिये। गरम दुग्ध, करैला, तोरई, नीबू, अंजीर, खजूर, आम, खांड, छाछ, गुड़, परवल, सेंधा नमक मिली हरड़, कुएँ या वर्षाका जल अथवा उबला हुआ जल-सेवन करना चाहिये। अधिक वर्षाके दिनोंमें खट्टे, लवणयुक्त एवं स्निग्ध अन्नका प्रयोग करना चाहिये, शुष्कतामें मधुयुक्त सुपाच्य द्रव्य सेवन करें। सुगन्धित तेल आदि लगाकर स्नान करें, वस्त्रोंको इत्रादिसे सुगन्धित करके धारण करना चाहिये और उन्हें समय-समयपर धूपमें भी रखना चाहिये।

इस ऋतुमें नदीतटका वास, नदीका जल, जलयुक्त सत्तू, दिनमें निद्रा लेना, व्यायाम, अधिक परिश्रम, धूप, रूक्ष द्रव्योंका सेवन, स्त्री-सहवास आदि त्याज्य है। यथा—

उदमन्थं दिवास्वप्नमवश्यायं नदीजलम्॥
व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत्।

(च० सू० ६। ३५-३६)

शरद्-ऋतु (आश्विन-कार्तिक)

इस ऋतुमें सूर्यका वर्ण पीला और उष्ण होता है। आकाश निर्मल तथा श्वेत मेघोंसे युक्त होता है। तालाब कमलों एवं हंसोंसे युक्त होकर पृथ्वी—वरुण, सप्तपर्ण, जियापोता, कांस, विजयासारके वृक्षोंसे शोभायमान होती है, तड़ाग, सरिता आदिका जल स्वच्छ होता है, दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त एवं रातको चन्द्र-रश्मियोंसे शीत होकर, अगस्त्य ताराके उदयसे निर्विष हो जाता है जो कि न अभिष्यन्धी और न रूक्ष होकर अमृतके समान कहा गया है। यथा—

तप्त तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः।
समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥
शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम्।
नाभिष्यन्धि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम्॥

यह ऋतु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसीलिये ऋषियोंने शतायुकी कामना करते हुए सौ शरद्-ऋतुओंके जीनेकी इच्छा व्यक्त की है। यथा—'**जीवेम शरदः शतम्**'।

बरसातमें वातविकारसे बचने-हेतु जब उष्ण खान-पान अधिक किया जाता है, तब पित्त संचित होता रहता है, वह इस ऋतुमें सूर्यकी किरणोंके तीक्ष्ण होनेसे तुरंत कुपित होकर शरीरमें पित्त-प्रकोपजन्य अनेक प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न कर देता है। यथा—'**वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति**' इसलिये इस ऋतुमें तिक्त द्रव्य, घृत-सेवन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण हितकर है। मधुर तिक्त, कषाय-रस, शीतल तथा लघु आहार, मीठा दूध, मिस्री, शक्कर, मिस्रीयुक्त हरड़ अथवा आमला-चूर्ण, यव, मूँग, शालिचावल, धनिया, सैंधव लवण, मुनक्का, परवल, कमलनाल, कमलगट्टा, नारियल, नदी अथवा तालाबका जल, कर्पूर, चन्दन आदि हितकर हैं।

शरद्-ऋतु प्रायः उष्ण पित्तकारक तथा मध्यम बल करती है, इसलिये इसमें पैत्तिक पदार्थ छोड़ देने चाहिये, पिप्पली, मिर्च, सौंफ, लहसुन, तक्र, बैगन, खिचड़ी, दही, सरसोंका तेल, मद्य आदि खट्टे, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण पदार्थ, व्यायाम, गुड़, दिनका सोना, अति-मैथुन, रात्रि-जागरण, क्रोध करना, धूपमें चलना—इन आहार-विहारोंको छोड़ देना चाहिये, आश्विनमासकी धूप '**बालाऽर्क''' सद्यः प्राणहरः स्मृतेः**' कहा है।

हेमन्त-ऋतु (मार्गशीर्ष-पौष)

हेमन्त-ऋतुमें सूर्य तुषारसे प्रायः आच्छन्न रहता है,

दिशाएँ धूल-धूसरित होती हैं तथा शीतल पवन चलता है। रात्रि अन्य ऋतुओंकी अपेक्षा दीर्घ होती है। इस ऋतुमें अधिक शीत वायुके कारण रुकी हुई अग्नि देहके अंदर उसके छिद्रोंसे प्रेरित होकर अपने स्थानमें संचित होकर प्रचण्ड हो जाती है, इसलिये हेमन्तमें वायु तथा अग्निनाशक विधिका उपयोग श्रेष्ठ माना गया है। यथा—**'शीतेऽनिलानलहरोर्विधिरिष्यतेऽतः'**। यहाँ यह भी ध्यान देना जरूरी है कि क्षुधाके समय भोजन न मिलनेपर व्यक्तिके शरीरकी अग्नि उसके शरीरके अन्य धातुओंको पचाकर बलका नाश तो करती ही है, स्वयं भी बिना लकड़ीके अग्निकी तरह शान्त हो जाती है। यथा—

'आहारकाले सम्प्राप्ते यो न भुङ्क्ते बुभुक्षितः।
तस्य सीदति कायाग्निर्निरिन्धन इवानलः॥'

इस ऋतुमें मधुर, स्निग्ध, अम्ल तथा लवणयुक्त द्रव्य, गेहूँ, इक्षुरस तथा दुग्धसे बने पदार्थ सेवनीय हैं, सोंठके साथ हरड़का सेवन करना चाहिये।

प्रातःकालका भोजन, ताजा अन्न, गरम तथा नरम वस्त्र, विधिपूर्वक यथावश्यक धूप तथा अग्निका सेवन **'पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत जठरेण हुताशनम्'** कठोर श्रम, तेल-मालिश तथा केशर, कस्तूरीका लेप हितकर है।

इस ऋतुमें कषैला, कटु, तिक्त, रूक्ष अन्नसे बना भोजन, हलका तथा शीतल भोजन, सत्तू, उड़द, केला, आलू, तोरई, एकाहार, निराहार, शीतल जलमें स्नान, नदीके जलका पान, दिनमें निद्रा, ठंडे स्थानोंमें विहार तथा खुले छप्परोंमें निवास त्याग दें।

शिशिर-ऋतु (माघ-फाल्गुन)

शिशिर-ऋतुके सभी लक्षण एवं चर्या प्रायः हेमन्त-ऋतुके समान ही होते हैं। इस ऋतुमें वायु तथा वर्षासे आकाश आच्छादित रहता है। शीत भी अपेक्षाकृत अधिक रहती है, कहीं-कहीं कोहरा अधिक पड़ता है। भूमि पके हुए घासोंसे पीतवर्ण हो जाती है। पवन तथा कफके विकार उत्पन्न होते हैं।

शिशिर-ऋतुमें शौच तथा स्नान आदि हेतु निर्वात स्थान एवं उष्ण जलका सेवन, समान पिप्पली मिलाकर हरीतकी सेवन करें, सुगन्धित चटनी, जिमीकन्द, पिट्ठीकी बनी पकौड़ी, बढ़िया भोजन, अदरक आदिका अचार, हींग, सैंधव लवण, घृतयुक्त स्निग्ध भोजन, खिचड़ी आदिका सेवन शिशिर-ऋतुमें हितकर होता है।

हेमन्त-ऋतुमें जो पदार्थ वर्ज्य बताये गये हैं, उन्हें इस ऋतुमें भी त्याज्य समझना चाहिये। यथा—**'सर्वं हिमोक्तं शिशिरे'**।

मनुष्यके दीर्घजीवनका रहस्य

(श्री पी० डी० खंतवाल)

तत्त्वज्ञ मनीषियोंने मनुष्यकी आयु सौ वर्ष निर्धारित की है। श्रुति भी **'शतायुर्वै पुरुषः'** कहती है। उसका मनुष्यमात्रके लिये संदेश है कि—मनुष्य! तू बुढ़ापाके पहले मत मर—**'मा पुरा जरसो मृथाः'** (अथर्ववेद ५।३०।१७)। प्रत्येक व्यक्ति अधिक-से-अधिक समयतक जीना चाहता है। सत्य बात तो यह है कि एक बार संसारमें जन्म पाकर कोई सौ वर्षके बाद भी मरना नहीं चाहता।

विदुरजीने धृतराष्ट्रसे कहा था—'जीवोंकी जीनेकी लालसा बड़ी बलवती है—**'अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा बलीयसी।'** आचार्य कौटिल्यने भी कहा है कि 'मनुष्य इन्द्रपदके लिये भी अपना शरीर नहीं त्यागना चाहता'—**'देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रपदमपि न वाञ्छति।'** वह संसारमें ही अमर होकर रहना चाहता है। प्राचीन ऋषियोंने भी इस सत्यकी घोषणा की थी कि—**'न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन'** (ऋग्वेद); अर्थात् मैं मरनेके लिये कदापि पैदा नहीं हुआ हूँ। **'अमृतस्य पुत्राः'** की यह कामना स्वाभाविक है। परंतु प्रायः यह देखा जाता है कि शतायु एवं शतवीर्य होकर जन्मनेपर भी अधिकतर मनुष्योंकी अकाल मृत्यु होती है, उनके जीवनका पूर्ण विकास नहीं हो पाता। दीर्घजीवन सर्वसाधारणको दुर्लभ है। आजकल साधारणतया लोग निश्चित अवधिके बहुत पहले ही मर जाते हैं अथवा जीते-जी अधमरे हो जाते हैं। इसके लिये मृत्यु और बीमारीको दोषी माना जाता है, परंतु सत्य यह है कि मृत्यु या व्याधि अकारण किसीके

आयुर्बलका अपहरण नहीं करती। मनुष्य अपनी ही दुर्बलताका दण्ड भोगता है। इस सम्बन्धमें योगवासिष्ठके ब्रह्मोपाख्यानका निम्नलिखित वचन बड़े महत्त्वका है—

मृत्यो न किञ्चिच्छक्तस्त्वमेको मारयितु बलात्।
मारणीयस्य कर्माणि तत्कर्तृणीति नेतरत्॥

(योगवासिष्ठ, उत्पत्ति-प्रकरण १०)

'मृत्यु! तू स्वयं अपनी शक्तिसे किसी मनुष्यको नहीं मार सकती, मनुष्य किसी दूसरे कारणसे नहीं, अपने ही कर्मोंसे मारा जाता है।' अन्य शब्दोंमें असामयिक मृत्यु वस्तुतः आत्मकृत होती है, अतः वह एक प्रकारसे आत्मघात ही है। इस आधारपर देखा जाय तो मनुष्य संयमसे मृत्यु और व्याधिका निवारण कर अमर भी बन सकता है जो इसके जीवनकी सार्थकता है।

दीर्घजीवी होनेका उपाय क्या है? इसके उत्तरमें कुछ लोग यह कह सकते हैं कि पौष्टिक आहार—घी, दूध, मेवा, मक्खन, मलाई आदिका प्रयोग करने तथा आरामका जीवन व्यतीत करनेसे स्वास्थ्य स्थिर होता है। परंतु इस कथनमें सत्यका अंश कितना है? इसको हम उन साधन-सम्पन्न अल्पजीवी रईसोंकी दशाका आकलन कर समझ सकते हैं, जिनके पास भोग-साधनोंकी तो कमी नहीं होती, किंतु अच्छा स्वास्थ्य तथा दीर्घजीवन अनुपलब्ध रहता है। वस्तुतः श्रम और रूखा-सूखा खाकर असमयमें मरनेवालोंकी संख्या उतनी नहीं है, जितनी अत्यधिक मात्रामें स्वादिष्ठ भोजन एवं नित्य रसायन-सेवन करनेवालोंकी है। श्रमादिसे लोगोंकी शक्तिका उतना ह्रास नहीं होता, जितना आलस्य और शारीरिक सुखासक्तिसे होता है। भोजन, विश्राम तथा बाह्य उपचार एक अंशतक ही जीवन-रक्षामें सहायक होते हैं। अच्छे उत्तम टॉनिक-तत्त्वोंसे भी स्वास्थ्यका 'बीमा' नहीं हो सकता। वस्तुतः सम्पूर्ण जीवनके विकासका रहस्य कुछ और ही है।

धर्म ही जीवन-रक्षक है

धर्मपूर्वक कर्तव्य-पालनसे ही मानव-जीवनकी रक्षा तथा वृद्धि होती है। कौटिल्य कहते हैं—'मृत्यु भी धर्मनिष्ठ प्राणीकी रक्षा करती है'—'**मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति।**' यह स्मरण रखना चाहिये कि धर्म शुभाचारसे सिद्ध होता है। आचार ही सज्जनोंका धर्म है—'**आचारश्च सतां धर्मः**' (महाभारत)। मनु महाराजने कहा है कि आचारसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है—'**आचाराल्लभते ह्यायुः।**' जीवनके लिये शुभाचारकी उपयोगिताको लक्ष्य करके ही यह कहा गया है—'**यद्वै किंच मनुरवदत् तद्भेषजं भेषजतायाः**' (तैत्तिरीयसंहिता)—अर्थात् मनुने जो कुछ भी कहा है, वह ओषधि है। महाभारतके अनुशासनपर्वमें ज्ञानवृद्ध भीष्मने भी मनुष्य कैसे आयुष्मान् तथा अल्पायु होता है—इसपर अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि शुद्धाचारसे ही पुरुषकी आयु बढ़ती है। 'ऋग्वेद'में कहा गया है कि 'देवताओंके नियमको तोड़कर कोई सौ वर्ष नहीं जी सकता'—

न देवानामतिव्रतं शतात्मा च न जीवति।

देवताओंके नियम क्या हैं? धर्म, ब्रह्मचर्य, संयम, सदाचार, दैवीसम्पदाओंके संग्रह-सदुपयोग और ज्ञान-कर्म। योगवासिष्ठका भुशुण्डि-उपाख्यान भी इस प्रसङ्गमें उल्लेखनीय है। महर्षि वसिष्ठने काकभुशुण्डिसे पूछा कि 'आप इतने दीर्घकालसे इस प्रकार स्वस्थ तथा युवा कैसे बने रहते हैं?' इसपर उन्होंने कहा—'मैं सदा आत्मभावसे स्थित रहता हूँ, मनोरथोंके पीछे शक्तिका अपव्यय नहीं करता, अकारण चिन्ता और विषादमें नहीं फँसता, जरा-मृत्युके भयसे मुक्त रहता हूँ, हर्ष-शोक और सुख-दुःखसे विचलित नहीं होता। सबको अपने समान मानता हूँ, मोह-प्रमादसे दूर रहता हूँ, समर्थ होनेपर भी दूसरोंपर प्रहार नहीं करता, दूसरोंसे दुःख पानेपर भी खिन्न नहीं होता, निर्धन होनेपर भी लोभ नहीं करता, दूसरोंको सुखी देखकर सुखी और दुःखी देखकर दुःखी हो जाता हूँ, प्राणिमात्रका सुहृद् और सहायक हूँ, विपत्तिमें धैर्ययुक्त तथा सम्पत्तिमें सरल व्यवहारयुक्त रहता हूँ। अतः सदा निरामय होकर जीवित रहता हूँ।'

मन, वचन तथा कर्मसे धर्मका पालन करना मनुष्यके लिये आयुष्कर है—यही हमारे अनुभवी जीवन-शास्त्रियोंका मत है। जीवन-धारण ही धर्मका उद्देश्य है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जो लोग नियम-संयमसे रहते हैं, वे स्वस्थ रहते हैं; उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी और नित्य अभ्युदयशील होते हैं। सदाचारसे जीवनीशक्ति और दीर्घायुकी प्राप्ति होती है तथा मनुष्यको कीर्ति, लोक-प्रतिष्ठा और लोकप्रियता मिलती है। कौटिल्यके शब्दोंमें—'**आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च**'—

'आचारसे आयु तथा कीर्ति दोनों बढ़ती हैं।' कुण्डल-कवच दान करनेसे पूर्व महामनस्वी कर्णने भी सूर्यसे कहा था कि—'इस लोकमें सत्कीर्तिसे आयु बढ़ती है'—'**इहलोके विशुद्धा च कीर्तिरायुर्विवर्धिनी**' (वनपर्व)। सत्कीर्ति सत्कृतिसे ही प्राप्त होती है। इसके विपरीत लोकजीवनमें अधार्मिकता, भोगपरायणता, चरित्रहीनतासे आयुर्बल, यश आदिका प्रत्यक्ष विनाश देखनेको मिलता है। अधर्मी तथा दुराचारी बिना मारे ही मरे रहते हैं।

रामराज्यकी एक विशेषता यह मानी जाती है कि उस राज्यमें उस समय किसीको कोई पीडा नहीं थी और अकाल मृत्यु नहीं होती थी—'***अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।***' वृद्धोंको बालकोंकी प्रेतक्रिया नहीं करनी पड़ती थी, सब स्वस्थ व्याधिरहित प्रसन्नचित्त रहते थे; क्योंकि देश-समाजमें सर्वसाधारणद्वारा सदाचारका पालन होता था। त्रिकालज्ञ व्यासने कलियुगके लिये पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी कि शीलका नाश होनेसे सबकी आयु क्षीण होगी। साधारणतया लोग तीस वर्षतक ही जियेंगे; ज्यों-ज्यों अनाचार बढ़ेगा, मनुष्य निर्बल तथा अल्पायु होते जायँगे। इन बातोंसे हम समझ सकते हैं कि जीवनकी पूर्णताके लिये धर्मानुकूल आचरण कितना आवश्यक है। पारलौकिक जीवनमें उससे लाभकी बात हम छोड़ भी दें तो लौकिक जीवनमें उसका अलौकिक प्रभाव स्पष्ट दीखता है। आचार और आरोग्यके घनिष्ठ सम्बन्धको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

युक्ताहार-विहारका प्रभाव

धर्म जीवनके लिये परम रसायन है। जीवनके स्वाभाविक विकासके लिये जिन-जिन सद्गुणों तथा सद्वृत्तियोंकी आवश्यकता होती है, उन सबका संग्रह धर्ममें मिलता है। सृष्टिकी कोई भी वस्तु अमर्यादित और विकारग्रस्त होकर सुरक्षित नहीं रह सकती। मानव-जीवनको भी सुव्यवस्थित एवं विकारमुक्त होना चाहिये। धर्म या मनुष्योचित कर्मसे जीवन मर्यादित और सुसंस्कृत होकर विकसित होता है। प्रकृति उसका पोषण करने लगती है। ऐसे ही जीवनको हम योगमय जीवन कह सकते हैं। चित्तवृत्तियोंका सम्यक् निरोध योग या समाधि कहा जाता है—'**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**' (पतञ्जलि)। उपनिषद्का कथन है कि योगाग्निमय शरीरवालेको रोग, बुढ़ापा और मृत्युका भय नहीं रहता है—'**न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥**' (श्वेता० २।१२)। प्रकृतिस्थ होकर ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। सात्त्विक आहार-विहार और आचार-विचार जीवनकी प्रकृतिके अनुकूल पड़ते हैं। उनसे अनेकशः सुखी जीवनका सर्वाङ्गीण विकास होता है और कोई अङ्ग निर्जीव नहीं होने पाता।

(क) अमानुषिक अथवा अस्वाभाविक कृत्रिम उपायोंसे विकृति उत्पन्न होती है। जीवन-शक्तिका संचय और सद्व्ययसे जैसे बल बढ़ता है, वैसे ही जीवन भी। धर्म मनुष्यको ईश्वरीय व्यापारमें साझीदार बनाकर सम्पन्न बनाता है।

(ख) धर्मसे जीवनका आध्यात्मिक पक्ष प्रबल होता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि मानव-जीवनका आध्यात्मिक पक्ष उसके भौतिक पक्षसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक पाश्चात्त्य दार्शनिकके मतसे—'इस जीवनमें क्या रखा है? निर्जीव शवको आत्मा ढोती फिरती है।' आत्मतुष्टिके बिना पिण्डपुष्टि निरर्थक है। इसलिये शास्त्रकारोंने मनुष्यके लिये प्राकृत भोजनके साथ आध्यात्मिक भोजनकी व्यवस्था भी की है। प्राकृत भोजन तो वह है जो शरीरके प्राकृतिक तत्त्वोंका पोषण करता है और आध्यात्मिक भोजन वह है, जिससे आत्माको बल मिलता है। सत्सङ्गादिमें धर्मतत्त्वोंका श्रवण और मनन करना तथा उनके अनुकूल आचरण करना उसका स्वरूप एवं क्रिया है। इस आहारसे आत्माकी तुष्टि-पुष्टि होती है।

आत्मबलके उत्कर्षसे ही स्वस्थता और सजीवताकी प्राप्ति होती है। धर्मसे सत्य, न्याय, दया, करुणा, त्याग, उदारता, आशा, उत्साह, धैर्य, विश्वास, प्रेम इत्यादि उन सहजवृत्तियोंका पोषण होता है, जिनसे आत्मबल बढ़ता है। साथ ही उन आत्मनाशक वृत्तियोंका संस्कार (शुद्धिकरण) होता है, जो प्राणको निर्बल बनाती हैं। धर्म प्राणदायक रसायन है।

(ग) धर्मसे हृदयका भार हलका होता है। जब मनुष्य अकर्तव्यकर्म—अन्याय, अत्याचार करता है तो उसका हृदय भय, चिन्ता, विषाद, ग्लानिसे पीडित होकर भीतर-ही-भीतर जर्जर होने लगता है—'***बाहर घाव न दीसई भीतर चकनाचूर।***' इन दुर्भावनाओंका कुप्रभाव हृदय, स्नायुमण्डल, रक्तपर निश्चितरूपसे पड़ता है। इनसे प्राणशक्ति घट जाती है, शरीरकी स्वाभाविक

क्रियाएँ गड़बड़ा जाती हैं। घृणा, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुण रोगके बाहरी कीटाणुओंसे अधिक भयंकर होते हैं। घृणासे रक्त विषाक्त होता है, क्रोधसे मनुष्य जल-भुनकर खाक हो जाता है तथा लोभ तो रोगोंका मूल ही है। अशान्त अन्तर्द्वन्द्वसे स्वास्थ्यनाश अवश्यम्भावी है। धर्मानुसार शुद्धभावसे कर्तव्य करनेसे हृदय इन मनोव्याधियोंसे मुक्त रहता है और मनुष्यको निश्चिन्तता एवं कृतकृत्यताकी स्वानुभूति होती है।

कौटिल्य कहते हैं—जो कर्तव्य करके कृतार्थ हो जाता है, उसे मृत्युका भय नहीं रहता—'**न कृतार्थानां मरणभयम्।**' चित्तके शुद्ध हो जानेसे शरीरमें आनन्दका संचार होता है—

'आनन्दं वर्धते देहे शुद्धे चेतसि राघव'

(योगवा०)

यही प्रसन्नता जीवनशक्तिदायिनी है।

(घ) धर्मसे मनोबल दृढ़ होता है। मनोबल मनुष्यका मुख्य आत्मबल है—***'मनके हारे हार है मनके जीते जीत। पारब्रह्मको पाइये मन ही की परतीति॥'*** उसकी दृढ़तासे सम्पूर्ण जीवनमें दृढ़ता आना स्वाभाविक है। महर्षि वसिष्ठने ठीक ही कहा है कि मन सर्वस्व है, अपने भीतर मनकी चिकित्सा करनेसे सम्पूर्ण संसार ठीक हो जाता है—

मनः सर्वमिदं राम तस्मिन्नन्तश्चिकित्सते।
चिकित्सितो वै सकलो जगज्जालमयो भवेत्॥

(योगवासिष्ठ, स्थिति-प्रकरण)

स्वास्थ्यका अपव्यय रोकनेका उपाय मनोनिग्रह ही है। शारीरिक अपराध तभी होते हैं, जब मन मलिन, निर्बल और चञ्चल होता है। मानसी चिकित्सा धार्मिक सिद्धान्तोंके अनुशीलनसे होती है।

(ङ) धर्म-निर्धारित आचार-व्यवहारसे शरीरकी सुरक्षा होती है, इसे कौन नहीं मानेगा? ब्रह्मचर्य-पालन, गार्हस्थ्य-जीवनकी व्यवस्था आदि धर्मके ही अङ्ग हैं। धर्ममें ब्रह्मचर्यपर विशेषरूपसे जोर दिया जाता है। ब्रह्मचर्य ही मृत्युञ्जययोग है। व्यासके मतसे ब्रह्मचर्य ही अमृत है—'**अमृतं ब्रह्मचर्यम्**' (महाभारत)। भगवान् शिवने कहा है कि बिन्दुपात ही मृत्यु और बिन्दुधारण ही जीवन है—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्'

(हठयोगप्रदीपिका)

वास्तवमें प्राणप्रतिष्ठाका सर्वोत्तम साधन ब्रह्मचर्य ही है। वही अमृतत्वदायक है। धर्म उसी मार्गकी ओर संकेत करता है। 'परनारी-महामारी' की भावनाका संचार करके धर्म ही तो शरीरको रोग-दोषसे बचाता है। वही समाजमें दुराचारोंका प्रतिबन्धक है।

(च) धर्म-कर्म करनेसे मनुष्यकी आयु सदा बढ़ती है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जिसकी आयु उसके कर्मोंसे मापी जाती है। एक अंग्रेज विचारकने लिखा है कि 'उसी व्यक्तिको पूर्णरूपसे जीवित माना जाता है, जो सद्विचार, सद्भावना और सत्कर्मसे युक्त होता है।' चलते-फिरते शवका कोई महत्त्व नहीं है। थोड़े समयमें भी अधिक काम करनेवाला मनुष्य अपने जीवनकालको बढ़ा लेता है। आचार्य शंकरका जीवन कितना उत्तम रहा, उन्होंने छोटी-सी उम्रमें ही अधिकतम कार्य करके जीवनकी सार्थकता सिद्ध कर दी।

(छ) सदाचार और अच्छे व्यवहारसे समाजमें सहानुभूति, सहयोग एवं सद्व्यवहारका प्रचार होता है। सामाजिक वातावरणमें नैतिकताकी प्रतिष्ठा तथा शान्ति एवं पवित्रता होनेसे सर्वसाधारणके स्वास्थ्यपर उसका सुन्दर प्रभाव पड़ता है। दूषित वातावरणमें जीवनके किसी भी अङ्गका स्वाभाविक विकास नहीं हो सकता। धार्मिक आचरणसे जो लोककल्याण होता है, उसका लाभ प्रत्येक सामाजिक प्राणीको मिलता है। अपने लिये नहीं तो उस समाजके लिये, जिसके हम अङ्ग हैं—सदाचारका पालन करना हमारा जीवन-धर्म है। इससे जीवन सुरक्षित रह सकता है। इस क्षणभङ्गुर संसारमें जो व्यक्ति सचमुच दीर्घजीवी होना चाहता है, उसे इस धर्म-नीतिका पालन सावधानीपूर्वक करना चाहिये—'**वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्**' (विदुरनीति)—अर्थात् यत्नसे आचारकी रक्षा करनी चाहिये।

विधानाचार्य मनुके इस अनुभूत सत्यको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि रक्षित धर्म ही रक्षा करता है—'**धर्मो रक्षति रक्षितः।**' धर्मफलके सहारे मनुष्य मरकर भी अमर रहता है, और जीवनके पश्चात् भी उसकी जीवनी विद्यमान रहती है। दीर्घजीवनका यही मनोरम रहस्य है।

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि)

प्राचीन कालसे ही वेदादि शास्त्रोंका यह सुनिश्चित एवं सर्वमान्य मत है कि संसारके सभी प्राणियों (जीवों)-में मानव-शरीर सर्वश्रेष्ठ है। यह केवल ऐहलौकिक सुखके लिये ही नहीं, अपितु पारलौकिक साधनाके लिये भी श्रेयस्कर है। यह जीवका एक ऐसा स्वरूप है, जिससे पुरुषार्थचतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है। अतः आर्षग्रन्थोंमें—**'धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम्'** अर्थात् कलेवर—शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधनभूत—मूल (जड़) कहा गया है। इसीको स्पष्ट करते हुए महाकवि कालिदासने 'कुमारसम्भव' महाकाव्यके पार्वती-तपश्चर्याप्रकरणमें कहा है—**'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** अर्थात् निश्चितरूपसे शरीर ही धर्मका प्रथम और उत्कृष्ट साधन है। अतः महिमामण्डित इस शरीरके विषयमें विशेष जिज्ञासा करना अत्यन्त आवश्यक है—

जिस पाञ्चभौतिक शरीरसे रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श आदि पञ्चतन्मात्राएँ प्रतिक्षण क्षीयमाण होती हैं, वही शरीर है।[1]

व्याकरणके अनुसार 'शॄ' धातुसे 'ईरन्' प्रत्यय करनेपर शरीर शब्दकी व्युत्पत्ति होती है, जो उपर्युक्त अर्थको ही व्यक्त करता है। ऐसे शरीरकी रचनाके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें कहा गया है कि देहकी आकृति प्राप्त करनेके लिये यथासमय जब पुरुष-वीर्यका कण स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है, तब प्रथम रात्रिमें ही रज और वीर्य मिश्रित होकर 'कलल'—फेनाकार हो जाता है। तत्पश्चात् पाँच रात्रिमें बुद्बुद—बुलबुलेके समान तथा दस दिनोंमें बेर-फलके समान पेशियोंका अण्डाकार बन जाता है। तत्पश्चात् एक मासमें सिर, दो मासमें हाथ-पैर आदिका आकार बन जाता है। तीसरे महीनेमें नख, रोआँ, हड्डी, चमड़ा और लिङ्ग तथा उसमें छिद्र बन जाते हैं। चौथे महीनेमें त्वगादि सात प्रकारके धातु निर्मित हो जाते हैं। पाँचवें महीनेमें जीवको भूख-प्यास लगती है। छठे महीनेमें झिल्लीसे लिपटा मनुष्याकार जीव दाहिनी कुक्षिमें घूमने लगता है।

किंतु पद्मपुराणमें तो वेदव्यासजीने ही इस प्रकार कहा है कि पाँच महीनेमें कलल (द्रव—फेनाकार) हो जानेपर बुद्बुद (बुलबुला) हो जाता है, तदनन्तर मासाभ्यन्तरमें मांसकी रचना हो जाती है। तत्पश्चात् ग्रीवा (गरदन) सिर, स्कन्ध (कंधा) पीछेका भाग तथा उदर (पेट)-का आकार बन जाता है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि छः महीनेके भीतर-ही-भीतर शरीरके स्वरूपकी रचना पूर्ण हो जाती है। तदनन्तर माताके द्वारा खाये-पीये हुए अन्न-जलसे परिपुष्ट होकर नौवें अथवा दसवें महीनेमें पूर्ण शरीर बन जाता है।[2]

इस प्रकार शरीरमें त्वक् (चमड़ी), असृक् (शोणित-रक्त), मांस, मेद (चर्बी), अस्थि (हड्डी), मज्जा (अँतड़ी) और शुक्र (वीर्य)—ये सात धातुएँ उत्पन्न होती हैं और किसीके मतमें केश, रस और स्नायु (जिगर) आदिकी भी गणना करके दस धातुएँ मानी जाती हैं। नाड़ियोंकी संख्याके विषयमें भी एकमत्य न होकर विभिन्न मत हैं।

मुख्यतः शरीरमें हड्डियोंकी संख्या तीन सौ साठ कही गयी है तथा पृथ्वीपर जैसे नदियाँ बहती हैं, उसी प्रकार सर्वाङ्ग-शरीरमें नाड़ियाँ संचरण करती हैं और ये नाड़ियाँ दृश्यादृश्य रूपसे शरीरमें दिखायी देती हैं। शास्त्रीय मान्यताके अनुसार उपनिषदोंमें पृथिव्यादि पाँच महाभूतोंके समवाय (समूह)-को ही शरीर कहा गया है। शरीरमें जो कठिन (कठोर) अंश है वह तथा अस्थि, चर्म, नाड़ी, रोम और मांस—ये पृथिवीके अंश हैं। एवमेव शरीरमें जो तरल अंश है वह जल है। मूत्र, श्लेष्म, (कफ), शुक्र और स्वेद (पसीना)—ये भी जलके ही अंश हैं। इसी प्रकार शरीरमें जो उष्णता है वह तेजका अंश है। भूख, प्यास, आलस्य, मोह और मैथुन—ये अग्निके अंश हैं। शरीरमें जो संचार है, वह वायुका प्रभाव है। जो सुषिर है, वह आकाश है। इसी

१. मत्स्यपुराण ३।२ २. श्रीमद्भागवत ३।३१।१—५

प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आकाशके ही अंश हैं।

इस प्रकार सम्मिलित रूपसे निजसंचित कर्मानुसार चमड़ेसे वेष्टित शिशु आदि अवस्थाओंसे युक्त अभिमानका स्थान, अनेक दोषोंका आश्रयभूत यह स्थूल शरीर बनता है।[१] इसी क्रमका भिन्न प्रकारसे आयुर्वेदके प्रख्यात आचार्य सुश्रुतने वर्णन किया है। यथा—स्त्रीके गर्भाशयमें स्थित शुद्ध शुक्र-शोणित (रज) जो कि आत्मा, प्रकृति और विकारसे संमूर्च्छित 'गर्भ' कहा जाता है, चेतनामें स्थित उस गर्भको वायु विभक्त करता है, तेज उसे पकाता है, जल क्लेदित करता है, पृथिवी सबको मिलाती है और आकाश आकारको बढ़ाता है। इस प्रकार जब हाथ, पैर, जीभ, नाक, कान तथा नितम्ब आदि अङ्गोंसे युक्त होकर वह गर्भ बढ़ता है, तब 'शरीर' इस संज्ञाको प्राप्त करता है। इस प्रकार यह शरीर छः अङ्गोंवाला होता है। इसमें चार शाखाएँ (दो हाथ तथा दो पैर), पाँचवाँ मध्य भाग और छठा सिर माना जाता है।[२]

इस प्रकारसे निर्मित शरीरमें चेष्टाका विशेषरूपसे आश्रय होता है, इसलिये 'मुक्तावली' में **'चेष्टाश्रयत्वं शरीरम्'** यह कहा गया है। चेष्टा कहते हैं—हित और अहितकी प्राप्ति एवं परिहारकी अनुकूल क्रियाको।[३]

यह शरीर स्थूल, सूक्ष्म और कारणभेदसे तीन प्रकारका होता है।[४]

सर्वार्थसाधक शरीर—यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि बुद्धिमान् व्यक्ति इस महत्त्वपूर्ण शरीरका प्रयत्नपूर्वक पालन करे; क्योंकि यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन होता है। यह निर्देश केवल पुरुषार्थचतुष्टय-सेवियोंके लिये ही नहीं, अपितु योगमार्गका अवलम्बन करनेवालोंके लिये भी है।[५] 'पद्मपुराण' में तो शरीरको धर्मका आयतन (घर) ही कहा गया है।[६] इतना ही नहीं, शरीर-धारणके बिना भगवान् विष्णु भी उत्कृष्ट नहीं गिने गये हैं। अतएव 'स्कन्दपुराण'में कहा गया है—

सर्वस्य मूलं मानुष्यं तथा सर्वार्थसाधकम्।[७]

अर्थात् सभी वस्तुओंकी प्राप्तिका मूल कारण मनुष्य-शरीर ही है। अतः सर्वमूलभूत सर्वार्थसाधक शरीरको प्राप्तकर शारीरिक धर्मका पालन करे, यही निष्कर्ष है। इसकी पुष्टि 'शिवपुराण'से भी होती है। जैसा कि कहा गया है —

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत्।
अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किंचित् कर्तुमुत्सहेत्॥[८]

अर्थात् जबतक शारीरिक स्वास्थ्य बना हुआ है, तबतक धर्म (कर्तव्य)-का आचरण करते रहना चाहिये। जब शरीर अस्वस्थ हो जायगा, तब दूसरोंके द्वारा प्रेरित करनेपर भी कोई कर्म करनेका उत्साह नहीं रह जायगा।

इस शारीरिक स्वास्थ्यके भी तीन भेद होते हैं। जैसा कि 'पद्मपुराण'में उल्लेख मिलता है—

बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियिकं तथा।[९]

अर्थात् बुद्धिकी स्वस्थता, मनकी स्वस्थता तथा सभी इन्द्रियोंकी स्वस्थता ही शारीरिक पूर्ण स्वस्थता मानी जायगी। इन तीनों स्वस्थताओंका जो धारक है, वही पूर्ण स्वस्थ कहा जायगा और स्वस्थ शरीर ही धर्मका साधक हो सकता है, आरोग्यरहित शरीर नहीं।

शरीर-रक्षाके उपाय—ऐसे महत्त्वपूर्ण शरीरकी रक्षाके लिये मुख्यरूपसे सात्त्विक, सुपाच्य एवं सुस्वादु एवं पौष्टिक भोजनकी आवश्यकता होती है। शरीर-धारणके लिये भोजनकी आवश्यकता होती है और मुख्य भोजन अन्नका होता है, इसलिये 'बृहन्नारदीय पुराण'में कहा गया है—

---

१. शारीरकोपनिषद्, पैङ्गलोपनिषद्, द्वि०अ०, धर्मविज्ञान द्वि०ख० सृष्टि-स्थिति-प्रलयतत्त्व, पृ० ६१७।
२. सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान ५। ३
३. मुक्तावली प्रत्यक्ष-खण्ड, पृथ्वी-निरूपण।
४. शिव० विद्येश्वरसंहिता १८। ६-७
५. ब्रह्म० २२७। ४५, १३४। १२, मार्कण्डेय० ३९। ६१
६. पद्म०स्वर्ग० ५४। ३६
७. स्कन्द० माहेश्वर-खण्ड कौमारिका ख० २। ५१
८. शिव० उमा० २०। ३९
९. पद्म०उत्तर खण्ड

शरीरमन्नजं प्राहुः प्राणमन्नं प्रचक्षते।
तस्मादन्नप्रदो ज्ञेयः प्राणदः पृथिवीपते॥[१]

अर्थात् शरीर अन्नसे पालित है और अन्न ही प्राण है, अतः अन्नको प्राण देनेवाला समझना चाहिये। इतना ही नहीं, 'पद्मपुराण' में तो इससे भी अधिक अन्नमूलत्त्व कहा गया है।[२] अतः अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, ऐसा 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में वचन मिलता है।[३] यहाँ प्राणमें शरीर और शरीरमें प्राण निहित है। जैसे—अन्नाधीन शरीर अन्नके द्वारा ही रक्षित होता है, उसी प्रकार शरीरको क्षीण करनेके लिये मानसिक चिन्ता होती है, चिन्तित शरीरधारीको कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। इतना ही नहीं, चिन्तासे शारीरिक बल और तेजका भी ह्रास होता है।[४] अतः यह आवश्यक है कि चिन्तारहित होकर सदाचारसे शरीरकी रक्षा करे। शरीररक्षित होनेपर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी साधना हो सकती हैं।

शरीर-रक्षामें वेदोंका योगदान—'सामवेद'के मन्त्रोंमें अग्निदेवको बल प्रदान करनेवाला तथा शरीर-रक्षक प्रतिपादित किया गया है। यथा—'**तैजसदेवायाग्नये ऊर्जां न पात**'[५] तथा '**उत त्राता तनूनाम्**'[६] एवमेव—'**मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे। अद्या कृणुहि वीतये**'[७] इन मन्त्रोंमें मेधावी अग्निसे प्रार्थना की गयी है कि हे अग्निदेव! आप शरीर-रक्षक हैं, सबल हैं, अतः हम लोगोंके यज्ञ-आहुतिको देवोंमें अर्पण करें। इसीलिये अग्निकी एक संज्ञा '**तनूनपात्**' है। इसी प्रकार 'यजुर्वेद'के एक मन्त्रमें अग्निको पूर्णरूपसे शरीर-रक्षक, आयुष्य तथा तेजको देनेवाला कहा गया है।[८]

इस प्रकार तैजसत्व रूप अग्निका शरीरसे महान् सम्बन्ध है। उनके तेजसे शरीरमें अमृतत्व और बल प्राप्त होता है। अतः प्राचीन कालमें ऋषिगण संध्या, अग्निहोत्र करते थे। यज्ञमें अग्निसे प्रार्थना किया करते थे कि मेरे शरीरमें ओज, शरीर-स्थित प्रबल शत्रुओंको पराजित करनेके लिये बल, अपने सामर्थ्यके अनुसार उत्तम और दृढ़ शरीर, घर, सुख-सामग्री, शरीर-रक्षक कवच आदि प्रदान करें।[९]

इस प्रकार वेदोंमें शरीर-रक्षाके लिये अग्निदेवकी उपासना करनेका प्रावधान है। अग्नि और सूर्य मुख्य रूपसे शरीरकी रक्षामें अग्रणी हैं।

अतः शारीरिक स्वस्थताके लिये इन दोनोंकी उपासनाके साथ-साथ आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त एवं व्यायाम आदिका भी आश्रय लेना चाहिये।

बिना औषधि-सेवनके कैसे स्वस्थ रहें ?

(आचार्य श्रीराजकुमारजी जैन)

वर्तमानमें जीवन-यापनकी गतिमें जितनी तीव्रता आयी है, उतनी ही तीव्रतासे लोगोंने औषधि-प्रयोगको अपने दैनिक जीवनमें बढ़ाया है। यही कारण है कि अन्न, जल और वायुकी भाँति औषधि-सेवन भी उनके जीवन-यापनकी अनिवार्यता बनती जा रही है। कुछ लोग तो आज ऐसी स्थितिमें पहुँच गये हैं कि वे औषधिके बिना जी ही नहीं सकते हैं। यह विवशता या बुराई भी उसी पाश्चात्त्य संस्कृति और सभ्यताकी देन है, जिसने अन्य बुराइयोंको भारतीय जन-जीवनमें घोल दिया है। पाश्चात्त्य देशोंमें तथाकथित सुसंस्कृत और सभ्य समाजकी स्थिति यह है कि बिना औषधिके न तो उन लोगोंका खाना हजम होता है और न ही नींदकी गोली लिये बिना उन्हें सुखकी नींद आती है। अपना पेट साफ रखने या निर्बाध शौचके लिये भी नियमित रूपसे 'टेबलेट्स' लेना उनकी विवशता है। रक्तचाप तथा शरीरकी अन्य वैकारिक स्थितिसे बचनेके लिये वे नियमित रूपसे विभिन्न प्रकारकी गोलियों या अन्य औषधियोंका आश्रय लेते रहते हैं। आज यह सब पाश्चात्त्य संस्कृतिकी नियति बन गया है और उसी नियतिने भारतीय जन-जीवनमें भी प्रवेश कर लोगोंको तथाकथित 'सुसंस्कृत' और 'सभ्य' बनाना प्रारम्भ कर दिया है। उसीका परिणाम है कि भारतीय जन-जीवन

१. बृहन्नारदीय० १३। ११५
२. पद्म० सृष्टि-खण्ड १९। २२८
३. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली सप्तम अनुवाक।
४. पद्म०भूमि-खण्ड ११। ११,
५. सामवेद उत्तरार्चिक द्वि०अ० चतुर्थ खण्ड,
६. सामवेद उत्तरार्चिक १। ६। २,
७. सामवेद उत्तरार्चिक ११। १। २, ऋग्वेद १। १३। २,
८. यजुर्वेद ३। १७, ९. यजुर्वेद १८। ३

उस ओर उन्मुख हो गया है, जिस ओर कृत्रिमता जीवनको सँवारती है और प्रकृतिसे उसका नाता टूटता जाता है।

विगत लगभग चार-पाँच दशाब्दि पूर्वके भारतीय जन-जीवन, उनके रहन-सहन, आहार-विहार आदिकी ओर यदि दृष्टिपात किया जाय तो लगता है कि हम प्रकृतिके अधिक निकट थे, प्रकृतिकी सुरम्य गोदमें हमारा जीवन-यापन होता था, प्राकृतिक परिवेशमें अनुस्यूत हमारा आहार-विहार था और वही हमारी स्वास्थ्य-रक्षाका सुदृढ़ आधार था। बिना औषधि-सेवनके हम स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे। औषधिका प्रयोग केवल बीमार होनेकी स्थितिमें ही आवश्यक होता था, किंतु धीरे-धीरे स्थितिमें बदलाव आया और अब तो स्थिति बिलकुल ही बदल गयी है।

आयुर्वेद जो भारतीय संस्कृति और अन्य भारतीय विद्याओंकी भाँति एक भारतीय विद्या है, जिसमें सम्पूर्ण जीवन-विज्ञान वर्णित है, जो मनुष्योंको आचरणीय-अनाचरणीय पथ्य-अपथ्यके नियम तथा व्याधिग्रस्त होनेपर औषधोपचारकी शिक्षा देता है, उसमें प्रतिपादित सिद्धान्त और नियम आज भी उतने ही प्रासंगिक और आचरणीय हैं, जितने पहले थे। अन्तर केवल इतना है कि पहले उनसे हमारी और हमारे जीवनकी अधिक निकटता थी, जबकि आज वह निकटता न केवल दूरीमें अपितु अनभिज्ञताकी सीमातक पहुँच गयी है, इसलिये कि आज उन सभी सिद्धान्तों एवं नियमोंसे लोग अपरिचित हो गये हैं। आज भी आयुर्वेदके सिद्धान्तों एवं नियमोंका आचरण पालनकर औषध-मुक्त स्वस्थ जीवन-यापन आसानीसे किया जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ रहते हुए कष्टरहित जीवन व्यतीत करना चाहता है, अस्वस्थ या रोगी होना कोई नहीं चाहता। स्वस्थ रहनेके लिये वह यथासम्भव प्रयत्न भी करता है और तदनुसार ही वह अपने आहारको सन्तुलित या नियन्त्रित रखनेका प्रयास करता है तथा आवश्यकता पड़नेपर औषधि-सेवन भी करता है। उसके बावजूद यह देखा गया है कि न तो वह रोगमुक्त हो पाता है और न ही कष्टसे मुक्ति पाता है। बाह्य या लौकिक कारणका निराकरण होनेपर भी यदि तज्जनित रोगका उपशमन नहीं होता है तो उसमें कोई कारण अवश्य है, जिससे रोगकी स्थिति बनी हुई है। रोग चूँकि दुःखदायी होता है, अतः वह स्वयं कष्टरूप या दुःखरूप होता है। इसके विपरीत आरोग्य सुखरूप होता है, जैसा कि प्रतिपादित है—'**सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।**' सुख और दुःखको पारिभाषित करते हुए कहा गया है—'**अनुकूलवेदनीयं सुखं प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्**'—अर्थात् जिसमें अनुकूल प्रतीति होती है, वह सुखसंज्ञक है जबकि प्रतिकूल प्रतीतिवाला दुःखसंज्ञक होता है। शरीरमें उत्पन्न होनेवाला रोग प्रतिकूल-वेदना-प्रतीतिकारक होता है।

बीमारी मनुष्यके दुःख या कष्टका एक ऐसा कारण है, जो उसके शरीर, मन और मस्तिष्कको प्रत्यक्ष रूपसे प्रभावित करती है। शरीर, मन या मस्तिष्कका अस्वस्थ होना, विकारग्रस्त होना या रोगी होना प्रकृतिके विपरीत अप्राकृत-अवस्थाका द्योतक है। मनुष्यके शरीरमें बीमारी या रोग उत्पन्न होना शरीरकी प्रकृतिके असन्तुलनका परिणाम है। यानी शरीरमें बीमारी या रोग तब उत्पन्न होता है, जब शरीर या मनकी प्रकृतिका सन्तुलन बिगड़ जाता है। इसे समझनेके लिये शरीरकी संगठनात्मक एवं रचनात्मक स्थिति तथा स्वस्थता-सम्बन्धी मूलभूत बातको समझना जरूरी है।

आयुर्वेदके अनुसार मनुष्यके शारीरिक संगठन एवं रचना-प्रक्रियामें तीन दोष—वात, पित्त और कफ; सात धातुएँ—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तथा तीन मल—स्वेद, मूत्र और पुरीष—इस प्रकार ये तेरह भाव विशेष रूपसे सक्रिय रहते हैं। उपर्युक्त दोष-धातु-मल—ये तीनों भाव शरीरके मूल आधार हैं—इनसे शरीरगत विभिन्न भावों एवं द्रव्योंका निर्माण और शरीरका धारण होता है। शरीरकी समस्त आभ्यन्तरिक क्रियाएँ और बाह्य चेष्टाएँ इन्हींपर आधारित हैं। शारीरिक आरोग्य या अनारोग्य भी इन तीनों भावोंके अधीन हैं। प्रायः देखा गया है कि उपर्युक्त भावों या इनमेंसे किसी एक भावमें जब किसी प्रकारकी विकृति या वैषम्य उत्पन्न होता है तो उनका पारस्परिक सन्तुलन बिगड़ जाता है, जिसका प्रभाव शरीरके स्वास्थ्यपर पड़ता है और शरीर अस्वस्थ हो जाता है।

आयुर्वेद जो जीवन-विज्ञानशास्त्र और चिकित्साशास्त्र है, उसके अनुसार मनुष्यके स्वस्थ रहनेकी परिभाषा अत्यन्त व्यापक है। मनुष्यके स्वस्थ रहनेके लिये केवल शरीरका रोगमुक्त होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु शरीरमें ऐसी स्थिति होना भी आवश्यक है कि उसका मन और मस्तिष्क भी किसी विकारसे पीडित या प्रभावित न हो।

स्वस्थ पुरुषकी परिभाषाके संदर्भमें महर्षि सुश्रुतका निम्न वचन महत्त्वपूर्ण है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सुश्रुत)

अर्थात् जिसके वात-पित्त-कफ—ये तीनों दोष सम हों, जिसकी जठराग्नि (पाचन-क्रिया) सम हो, जिसकी धातुओं, रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्रकी क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दस इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ) तथा मन प्रसन्न (निर्मल-अविकारी) हों, वह 'स्वस्थ' कहलाता है।

यहाँपर स्वस्थ पुरुषकी जो परिभाषा बतलायी गयी है, वह अपने-आपमें पूर्ण, सार्थक और सर्वथा व्यावहारिक है। आयुर्वेदके अनुसार शरीरकी सभी प्रकारकी स्थितिमें दोष-धातु-मल ही मूल कारण हैं। जब ये तीनों सम अवस्थामें होते हैं तो शरीरका सन्तुलन बना रहता है और शरीरमें कोई रोग या विकार उत्पन्न नहीं हो पाता। सम अवस्थामें ये तीनों शरीरको धारण करते हैं और शरीरके सम्पूर्ण क्रिया-व्यापारको निर्बाधरूपसे संचालित करते हैं। जब दोष-धातु-मल इनमेंसे किसी एकमें भी विषमता आ जाती है अर्थात् किसी भी दोषकी वृद्धि अथवा क्षीणता होती है या किसी भी मलकी वृद्धि-क्षय होता है तो इस विषमताके कारण शरीरका सन्तुलन बिगड़ जाता है जिससे शरीरमें रोग या विकार उत्पन्न हो जाता है। इसी आधारपर स्वस्थ पुरुषकी उपर्युक्त व्याख्यामें दोषों, धातुओं तथा मलोंकी समावस्था बतलायी गयी है। इनमें भी दोषोंकी साम्यावस्था विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जब दोषोंमें वैषम्य होता है तब वे ही प्रथम स्वयं दूषित होकर बादमें धातुओंको दूषित कर उनमें विषमता उत्पन्न कर देते हैं। इसीलिये धातुओंको 'दूष्य' भी कहा जाता है। धातुएँ अपने-आप दूषित नहीं होतीं, अपितु दोषोंके द्वारा दूषित किये जानेपर वृद्धि या क्षयको प्राप्त होकर दूषित या विषम होती हैं। सामान्यतः हमारे द्वारा जो कुछ भी आहार ग्रहण किया जाता है, उसका जठराग्निके द्वारा पाचन होनेके बाद वह सीधा दोषोंको प्रभावित करता है। अतः मनुष्यके द्वारा जब मिथ्या या गलत आहार-विहारका सेवन किया जाता है तो उसके परिणामस्वरूप शरीरमें दोष-वैषम्य (दोषोंका क्षय या वृद्धि) होता है, जिससे धातुएँ प्रभावित होती हैं और धातुवैषम्यके कारण शरीरमें विकारोत्पत्ति होती है। हिताहार-विहार दोषोंकी सम-स्थिति बनाये रखनेमें सहायक होता है। इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार स्वस्थ व्यक्तिके लिये दोषोंकी साम्यावस्था अत्यन्त आवश्यक है।

स्वस्थ पुरुषकी उपर्युक्त परिभाषाको महर्षि कश्यपने निम्न प्रकारसे और अधिक स्पष्ट किया है—

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च।
सृष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य च लाघवम्॥
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधनम्।
बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्य समाग्निता॥
विद्यादारोग्यलिंगानि विपरीते विपर्ययम्।

अर्थात् जिस मनुष्यको यथासमय भोजनकी अभिलाषा होती हो—'भूख लगती' हो, खाये हुए आहारका परिपाक सुखपूर्वक हो जाता हो, पुरीष-मूत्र और वायुका विसर्जन यथोचित रूपसे होता हो, शरीरमें लघुताका अनुभव होता हो, इन्द्रियाँ अविकृत या निर्मलरूपसे अपना कार्य करती हों, सुखपूर्वक जिसे निद्रा आती हो, सुखपूर्वक जिसे प्रबोध होता हो, शरीरमें समुचित प्रमाणमें बलाधान हो, स्वच्छ वर्णकी प्राप्ति हो, पर्याप्त आयुका लाभ हो, मन सुप्रसन्न हो और जठराग्निद्वारा पाचन-क्रिया समुचितरूपसे होती हो तो इन सभीको आरोग्यके लक्षण जानना चाहिये। इनसे विपरीत लक्षण होनेपर विपरीत स्थिति अर्थात् अनारोग्य या अस्वस्थता होती है।

शरीरको स्वस्थ एवं नीरोग रखनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्यका आहार-विहार सम्यक् हो। हित-मित आहार-विहारका सेवन करनेसे शरीरमें स्थित दोष-धातु-मल सम अवस्थामें रहते हैं और वे अपने अविकृत प्राकृत कर्मोंके द्वारा शरीरका उपकार करते हैं।

मनुष्य इन्द्रियोंके वशीभूत होकर अहित विषयोंमें प्रवृत्त न हो, विशेषतः रसनेन्द्रियके वशीभूत होकर वह अभक्ष्य भक्षण एवं अति भक्षणमें प्रवृत्त न हो। मिथ्या आहार-विहारसे अपने शरीरकी रक्षा करते हुए मनुष्यको शुद्धता एवं सात्त्विकतापूर्वक उसे परिमित रूपमें ही विषयोंके सेवनमें प्रवृत्ति रखना अभीष्ट है। जो मनुष्य अपने आचरणकी शुद्धता और हिताहार-विहारके सेवनकी ओर विशेष ध्यान देता है वह निश्चय ही सुखी और नीरोगी जीवनका उपयोग करता है। इस विषयमें महर्षि चरकका निम्न वचन महत्त्वपूर्ण एवं सर्वथा अनुकरणीय है—

नरो हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(चरक, शारीर० २। ४६)

सदैव हितकारी आहार और विहारका सेवन करनेवाला, हिताहितविवेकपूर्वक कार्योंको करनेवाला, विषयोंके सेवनमें आसक्ति नहीं रखनेवाला, दानमें तत्पर (अपरिग्रही), सम मनोवृत्ति रखनेवाला, सत्याचरण और सत्य-भाषणके प्रति निष्ठावान्, क्षमावान्, आप्तपुरुषोंकी सेवा करनेवाला (ज्ञानवृद्ध-वयोवृद्ध, अनुभवी-सदाचारी मनुष्योंकी सेवा और उनके आदेशानुसार आचरण करनेवाला) मनुष्य नीरोग रहता है।

विभिन्न रोगोंसे शरीरकी रक्षा करनेके लिये तथा चिरकालतक शरीरको स्वस्थ, नीरोग एवं आयुष्मान् बनानेके लिये महर्षि चरकने जहाँ शरीरके लिये आहार-विहार-सम्बन्धी नियन्त्रणका निर्देश किया है, वहाँ मनोव्यापारको भी स्वास्थ्यके लिये उत्तरदायी बतलाते हुए उसकी चञ्चलवृत्तिका निग्रह करनेका भी निर्देश किया है। बुद्धिकी निर्मलता और वाणीकी शुचिता-प्रियता भी शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य-रक्षाके लिये नितान्त आवश्यक है। अतः इनका नियमपूर्वक अनुशीलन करनेवाला व्यक्ति ही पूर्ण स्वस्थ कहलानेका अधिकारी है। जो व्यक्ति नियमपूर्वक स्वास्थ्य-सम्बन्धी आचरणका पालन करता है, मानसिक रूपसे प्रसन्न और चिन्तामुक्त रहता हुआ वचन और कर्मसे संयमित रहता है, उसे कभी रोगाक्रमण नहीं होता, जिससे वह सदैव पूर्ण स्वस्थ बना रहता है। महर्षि चरकने इसे निम्न प्रकारसे प्रतिपादित किया है—

मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं
सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

(चरक, शारीर० ३। ४७)

जिसकी बुद्धि, वाणी और कर्म—ये तीनों सुखानुबन्धी अर्थात् स्वास्थ्यके अनुकूल अनुबन्ध बनाये रखनेवाले होते हैं, सत्त्व (मन) स्वायत्त और बुद्धि निर्मल होती है। जो मनुष्य ज्ञानके लिये प्रयत्नशील रहता है, तपश्चरणमें संलग्न होता है और योग-साधनामें जिसकी तत्परता होती है अर्थात् जो ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ और योगनिष्ठ होता है, उसपर रोगोंका आक्रमण नहीं होता है।

यहाँपर रोगाक्रमणसे मनुष्यकी रक्षा-हेतु योग-साधनामें तत्परताका भी निर्देश किया गया है, जो स्वास्थ्य-साधन एवं स्वास्थ्य-रक्षाकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योगशास्त्रमें अनेक प्रकारके विकारजनित दुःखोंसे मुक्ति-हेतु अन्यान्य उपायोंका निर्देश किया गया है, जिससे मनुष्य विकाररहित होकर यथेष्ट सुखायुका उपभोग करता हुआ अपने पारलौकिक जीवनको भी श्रेयस्कर बना सके। योगशास्त्रमें प्रथम दो अङ्ग यम-नियमके द्वारा मनुष्यके आचरणकी शुद्धताको लक्ष्य बनाया गया है। इन दोनों अङ्गोंका परिपालन मनुष्यके आचरणको शुद्ध बनाता हुआ उसके मनमें सात्त्विक भाव उत्पन्न करता है। सात्त्विक भावका उद्भव मनके सत्त्वगुणोत्कर्षसे होता है। सत्त्वगुणोत्कर्ष या सात्त्विक भावका उद्भव प्रत्यक्षतः मनोविकारोंके उपशमनका द्योतक है, किंतु इसका पर्याप्त प्रभाव उसके शरीरपर भी पड़ता है। सत्त्वगुण उत्तम स्वास्थ्य एवं तेजस्विताके लिये महत्त्वपूर्ण है।

इस संदर्भमें यह भी ज्ञातव्य है कि विभिन्न विकारोंके उपशमन, शरीरके स्वास्थ्य-साधन एवं स्वास्थ्य-रक्षाके लिये योगासनों एवं प्राणायामका भी विशेष महत्त्व है। प्रत्येक योगासन किसी-न-किसी प्रकारसे शरीरके बाह्य एवं आभ्यन्तरिक अवयवोंको प्रभावित करता है। जिन अवयवोंकी प्रक्रियामें कोई विकृति होती है वह उससे सम्बन्धित योगासनके निरन्तर अभ्याससे दूर होती

है। इससे तदवयवजनित या उस अवयवसे सम्बन्धित रोग भी नष्ट हो जाता है और शरीर पूर्ण स्वस्थ बन जाता है। उदाहरणार्थ, भुजंगासन नामक योगासनके सतत अभ्याससे मनुष्यके समस्त रोगोंका नाश होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। निम्न श्लोकसे यही भाव ध्वनित है—

देहाग्निर्वर्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम्।
जागर्ति भुजंगी देवी साधनाद् भुजंगासनम्॥

अर्थात् भुजंगासनका साधन (निरन्तर अभ्यास) करनेसे शरीराग्नि (जठराग्नि)-की वृद्धि होती है, सर्वरोगोंका नाश होता है और भुजंगी देवी (कुण्डलिनी) जाग्रत् होती है।

इसी प्रकार आसनके अभ्याससे अनेक रोगोंका नाश होता है और मनुष्यको आरोग्य-लाभ होता है—

प्लीहागुल्मं ज्वरं कुष्ठं कफपित्तं विनश्यति।
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिने दिने॥

अर्थात् (योगासनका सतत अभ्यास करनेसे) प्लीहा-सम्बन्धी विकार, गुल्मरोग, ज्वर, कुष्ठ तथा कफ, पित्त (कफ-पित्तजनित विकारों)-का विनाश होता है, मनुष्यको दिन-प्रतिदिन आरोग्य, बल और पुष्टि प्राप्त होती है।

इस प्रकार योगाभ्यास चाहे किसी भी दृष्टिसे किया जाय, वह शरीर और शरीरके स्वास्थ्यको अवश्य ही प्रभावित करता है। यौगिक क्रियाओंसे जहाँ शरीर स्वस्थ बनता है, वहाँ अनेक प्रकारके विकारोंका निराकरण भी होता है। यह बात दूसरी है कि योगिजनोंका चरम लक्ष्य परमात्माके साक्षात्कारपूर्वक मोक्षकी प्राप्ति है, किंतु योग-साधनासे शरीर और आरोग्यका रक्षारूपी फल उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जाता है। गृहस्थ-जीवन-यापन करते हुए शरीरके आरोग्यका ध्यान रखनेवाले लोगोंको उनके सर्वाङ्गीण विकासके लिये थोड़ा-बहुत नियमितरूपसे योगाभ्यास अवश्य करना चाहिये। यह एक ऐसा अमोघ साधन है जिसके द्वारा आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकारसे शरीरमें समस्थितिका निर्माण होता है। अनेक यौगिक क्रियाएँ शरीरगत रक्त-संचारको प्रभावित कर हृदयको स्वस्थ रखनेमें सहायक होती हैं। हृदयकी स्वस्थता और रक्त-संचारकी प्राकृत स्थिति बहुत कुछ अंशोंमें मानसिक तनावको कम करनेमें सहायक होती है, जिससे शारीरिक स्वास्थ्यकी नींव सुदृढ़ होती है और मनुष्य पूर्णतः शारीरिक तथा मानसिक आरोग्यका अनुभव करता है।

स्वस्थ और स्वास्थ्य—एक विश्लेषण

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

कहते हैं, स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ अर्थात् शान्त आत्माका निवास होता है। यद्यपि आत्मा स्वभावतः स्वस्थ और शान्त है, फिर भी अहंकार 'राजस-तामस'-वृत्तियोंसे जीवको अस्वस्थ बनानेका प्रयास करता रहता है, जिससे यह अशान्त हो जाता है।

आज विश्वके वैज्ञानिकों और चिकित्सकोंने कई वर्षोंके अनुसंधानके पश्चात् सुस्वास्थ्यके लिये विशुद्ध शाकाहारका व्यवहार आवश्यक बताया है, जो भारतमें कई हजार वर्ष-पूर्व 'गीता' में सात्त्विक आहारके रूपमें बतलाया जा चुका है*।

विविध वैज्ञानिक अन्वेषण और पौष्टिक आहारोंके निर्माण तथा उनके प्रचार-प्रसारात्मक व्यापारके बावजूद अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहा है। यह समाजमें सर्वत्र प्रत्यक्ष देखा जा रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि पूर्ण स्वस्थ होने और रहनेके लिये कुछ और अन्वेषणीय है, जिसे प्राप्त करके ही मानव स्वस्थ रह सकता है।

इस प्रसंगमें 'स्वस्थ' शब्दके अर्थपर ध्यान देना आवश्यक है—'**स्वस्मिन् तिष्ठतीति स्वस्थः।**' अर्थात् जो 'स्व' में स्थित हो उसे स्वस्थ कहते हैं। 'स्व'का अर्थ है जीवात्मा। स्वस्थ शरीरमें सात्त्विक बुद्धि और प्रसन्न

* आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ (गीता १७।८)

'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोज्य पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।'

मनकी आवश्यकता होती है। गीतामें कहा गया है—

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं०। (१४। १७)

आयुर्वेदके अनुसार कफ, वायु तथा पित्तकी समरूपता स्वस्थता है। किसी एकके वृद्धि-ह्रास होनेसे चित्त-विक्षेप, अशान्ति, मानसिक-शारीरिक असंतुलन—उपद्रव होने लगते हैं। इसलिये पूर्ण स्वस्थताके लिये शारीरिक समरूपताके साथ मानसिक समरूपता भी आवश्यक है। ऐसी स्वस्थतासे ही शान्ति मिलती है और शान्ति ही सुख या सुखका कारण है। अशान्त व्यक्तिको सुख कहाँ—

अशान्तस्य कुतः सुखम्॥ (गीता २। ६६)

अंग्रेजीमें एक प्रसिद्ध सूक्ति है—'A happy life consists in tranquility' सुखी जीवन मानसिक शान्तिसे ही होता है। सुख और दुःखको समान समझनेवाला—आत्मभावमें स्थित ही पूर्ण स्वस्थ माना जाता है—

समदुःखसुखः स्वस्थः। (गीता १४। २४)

यही स्वास्थ्य गुणातीतका प्रथम लक्षण है।

जैसे शरीर बहुत कृश—दुर्बल है तो प्राणी अस्वस्थ माना जाता है, वैसे ही बहुत मोटा है तो भी अस्वस्थ कहा जाता है। जैसे सर्वसमर्थ ईश्वर जीवकी आयुकी वृद्धि और क्षयका विधान करते हुए स्वयं अपचय और उपचय दोनोंसे रहित होनेसे ही स्वस्थ है, वैसे ही अपचय और उपचय दोनोंसे रहित शरीर स्वस्थ माना जाता है—

आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः।
उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ॥

(श्रीमद्भा० ४। ११। २१)

एक भक्त समस्त प्राणियोंके स्वास्थ्यकी प्राप्ति और उसकी रक्षाकी कामनासे देवाधिदेव भगवान् शङ्करके परम स्वस्थ रूपका वर्णन करता हुआ उनसे प्रार्थना करता है—

भीतिर्नास्ति भुजङ्गपुङ्गवविषात् प्रीतिर्न चन्द्रामृता-
न्नाशौचं हि कपालदामलुलनाच्छौचं न गङ्गाजलात्।
नोद्वेगश्चितिभस्मना न च सुखं गौरीस्तनालिङ्गना-
दात्मारामतया हिताहितसमः स्वस्थो हरः पातु वः॥

(सुभाषित० १। ५५)

'भगवन्! आपको न तो महान् भुजङ्गके विषका भय है और न सुधांशुके अमृतसे प्रीति है। वक्षःस्थलपर मुण्डमालाके धारणसे न तो किसी प्रकारकी अशुचिकी भावना है और न जटाजूटकी गङ्गासे पवित्रताकी कामना है। चिताभस्मके आलेपनसे न तो किसी प्रकारका उद्वेग है और न तो गिरिजाके आश्लेषसे कोई सुख। अतः अपने-आपमें रमण करनेवाले तथा हित और अहितमें सम रहनेवाले स्वास्थ्यके धनी आप ही प्राणियोंको स्वस्थ बनाकर उनके स्वास्थ्यकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं।'

इन प्रसंगोंसे निष्कर्ष निकलता है कि स्वस्थ होनेके लिये शारीरिक और मानसिक संयम दोनों ही समानरूपसे अपेक्षित हैं। असंयत होकर जो अधिक स्वस्थ होनेके लिये अधिक भोग करते हैं; अधिक भोगके लिये अधिक संग्रह करते हैं, अधिक संग्रहके लिये अनाचार करते हैं, वे लोक-परलोक दोनोंमें मुख दिखाने योग्य नहीं रहते। अतः लौकिक सुखके लिये भी दुःख और सुखमें सम, अपचय और उपचयमें सम तथा हित एवं अहितमें समभावरूपमें स्वस्थ रहना ही वास्तविक स्वास्थ्य प्राप्त करना है।

स्वस्थ रहनेके लिये........

(श्रीगोपालदासजी नागर)

—स्वस्थ रहनेके लिये सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीर नीरोगी रहता है और बुद्धि विकसित होती है। जागनेके साथ बिस्तरसे एकदम न उठे।

—शान्तिसे सुस्ती दूर करें और चार-पाँच बार दोनों हथेली आपसमें रगड़कर उनका दर्शन करते हुए यह श्लोक बोले—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः कर मध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते करदर्शनम्॥

—शौचके बाद कुल्ला-दातून करे। नीमकी दातून लाभकारी होती है।

—चाय-कॉफीकी जगह गायका शुद्ध दूध ले।

—सप्ताहमें कम-से-कम एक बार पूरे शरीरकी मालिश करे।

—प्रतिदिन नियमित रूपसे व्यायाम करे।

—सुबह-शाम पाँच-छ: किलोमीटर चलने या टहलनेसे भी अच्छा व्यायाम हो जाता है।

—किसी बाग, उपवन अथवा नदीके किनारे टहलना अधिक लाभदायक है।

—आधा घंटा तैरनेसे भी व्यायाम हो जाता है।

—धूप, ताजी हवा, साफ-स्वच्छ पानी और सादा-सात्त्विक भोजन स्वस्थ रहनेके लिये जरूरी है।

—खुली तथा ताजी हवासे प्राण-शक्ति बढ़ती है।

—स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन निवास करता है, इसलिये पहले शरीरको स्वस्थ रखे। नीरोगी व्यक्ति सदा सुखी रहता है। नीरोगी वही रहता है, जो सदाचारी होता है।

—तेज रोशनी आँखोंको नुकसान पहुँचाती है।

—स्वादके लिये नहीं, स्वस्थ रहनेके लिये भोजन करना चाहिये।

—जीनेके लिये खाये, खानेके लिये न जीये।

—भोजन शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे खूब चबाकर करे।

—पानी तथा दूध तेजीसे एक साथ न पीये। इन्हें भी धीरे-धीरे पीये।

—भोजनके बाद दाँतोंको साफ करे, अन्यथा वे सड़ जायँगे।

—हलका और जल्दी पचे, ऐसा ही भोजन करे।

—सड़ी-गली या बासी चीजें न खाये। इनके खानेसे रोग होता है।

—भोजनके पाँच घंटे बाद ही फिर हलका आहार ले। फिर पाँच घंटे बाद दुबारा भोजन करे।

—सुबह-शामके भोजनके बीच दस घंटेका अन्तर रखे। मध्यमें हलका सुपाच्य पदार्थ या फल आदि ले सकते हैं।

—भोजनके समय कम-से-कम पानी पीये।

—भोजनके आधे घंटे बाद ही पानी पीना चाहिये।

—खूब गरम-गरम खानेसे दाँत तथा शक्ति दोनोंकी हानि होती है।

—हमेशा शान्त और प्रसन्न रहे। कम बोलनेकी आदत डाले। जरूरी हो, उतना ही बोले।

—चिन्तासे हानि होती है, किंतु चिन्तन-मननसे बुद्धिका विकास होता है।

—वस्त्र सादे और स्वच्छ पहने।

—प्रतिदिन आँखोंमें अंजन लगानेसे आँखोंकी रोशनी बढ़ती है।

—हफ्ते-दस दिनोंमें कानोंमें सरसोंके शुद्ध तेलकी कुछ बूँदें डालनी चाहिये।

—बिस्तरके गद्दे-तकिये-चादर आदिको बीच-बीचमें धूपमें डालना चाहिये।

—नींद आनेपर ही सोना चाहिये।

—बिस्तरपर पड़े-पड़े नींदकी राह देखना रोगको आमन्त्रित करना है।

—सोनेके स्थानको साफ-सुथरा रखे।

—मच्छरोंसे दूर रहे, वे भयानक होते हैं।

—अगरबत्ती, कपूर अथवा चन्दनका धुआँ घरमें प्रतिदिन कुछ क्षणोंके लिये करे। इससे घरका वातावरण पवित्र होता है।

—जरूरतसे अधिक खानेसे अजीर्ण होता है और यही अनेक रोगोंकी जड़ है।

—प्रतिदिन चार-पाँच तुलसीकी पत्तियाँ सेवन करनेसे ज्वर आदि रोग नहीं होते।

—आलसी तथा प्रमादी व्यक्ति सदा रोगी रहते हैं। दिनमें सोनेकी आदत न डाले।

—मुँहसे श्वास न ले। इससे आयु कम होती है।

—श्वास सदा नाकसे और सहज ढंगसे ले।

—महीनेमें कम-से-कम दो दिन उपवास करना लाभप्रद है।

—उत्तम विचारोंसे मानसिक सुख तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

—अच्छा साहित्य पढ़े। अश्लील या उत्तेजक साहित्य पढ़नेसे बुद्धि भ्रष्ट होती है। दूसरोंके गुणोंको अपनाये।

—सदा संतुष्ट रहते हुए अच्छे विचारोंको अपने जीवनमें उतारे और सत्-मार्गके पथिक बनकर अपना जीवन सुधार ले।

[प्रेषक—श्रीकिशोरीलालजी गाँधी]

सर्वदा स्वस्थ रहनेके उपाय

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

(१) सुबह ब्राह्ममुहूर्तमें उठे, यह समय सूर्योदयसे लगभग ४८ मिनट पहले होता है।

(२) सुबह बासी मुँह भरपेट जल पीनेकी आदत डाले, इसे उष:पान कहते हैं। यह बहुत-से रोगोंको दूर करता है। जल हरदम बैठकर पिये, खड़े-खड़े कभी भी न पिये।

(३) सुबह नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर मैदानमें टहलनेकी आदत डाले, कम-से-कम २-३ कि०मी०तक तेज चालसे टहले।

(४) रोजाना सुबह १५—३० मिनटतक हलके व्यायाम अथवा योगासन जरूर करे।

(५) रोज सुबहके नाश्तेमें अंकुरित आहारको शामिल करे, इसे 'अमृतान्न' कहते हैं; क्योंकि ये केवल सूर्यकी रोशनीमें ही पकते हैं। इनमें चना, मूँग, गेहूँ, मूँगफली, उड़द, मेथी तथा सोयाबीन हैं। इन्हें खूब चबा-चबाकर खाये तथा दूध पिये। दूध भी धीरे-धीरे, छोटे-छोटे घूँट बनाकर पिये।

(६) नियमित समयपर खूब चबा-चबाकर भोजन करे, दाँतोंका पूर्ण उपयोग करे, दाँतोंका काम आँतोंसे न ले तथा भोजनमें लगभग २०—३० मिनटका समय लगावे। 'रोटीको पिये तथा दूधको खाये' रोटीको इतना चबाये कि वह मीठी लगने लगे। जब वह लारके साथ मिलकर पेटमें जायगी, तब सुपाच्य हो जायगी एवं अच्छी ऊर्जा देगी। इस तरहसे भोजन करनेपर आप क़ब्ज़से बचे रहेंगे।

(७) दैनिक भोजनमें सलादको जरूर शामिल करे।

(८) भूख लगे तभी खाये तथा वह भी भूखका ७०% ही खाये। ३०% पेट खाली रखे।

(९) अनावश्यक बार-बार न खाये तथा ठूँस-ठूँसकर न खाये और भोजनमें किसीसे होड़ लगाकर न खाये। पेटको कूड़ाघर न बनाये।

(१०) दोनों समय भोजन करनेके बाद यथासम्भव कुछ देर आराम करे, नींद न ले। ८ श्वास दाहिनी करवट लेटकर ले, १६ श्वास सीधी करवट तथा ३२ श्वास बायीं करवट लेटकर ले। इससे पाचन ठीक होता है तथा इसके बाद वज्रासन जरूर करे। दोनों घुटनोंके बलपर बैठकर हाथ घुटनोंपर रखे। मेरुदण्ड सीधा रहे, यह सामान्य वज्रासन है।

(११) दोनों समय भोजनके बाद मूत्र-त्याग करे, ऐसा करनेसे कमरमें दर्द नहीं होता है, पथरीकी शिकायत भी नहीं होने पाती।

(१२) दोनों भोजनके बीचमें केवल फल एवं जूस ही ले और कुछ न खाये।

(१३) दिनभरमें करीब ढाई-तीन लीटर जल जरूर पिये। भोजनके साथ जल न पिये, केवल बीच-बीचमें दो-तीन घूँट ही पिये। भोजनके लगभग एक घंटा पहले तथा एक घंटा बाद जल पिये।

(१४) चाय, कॉफी, सिगरेट, जर्दा, पानपराग, भाँग, चरस, गाँजा, शराब, बीड़ी इत्यादि मादक एवं नशीली चीजोंका कभी भी सेवन न करे। ये स्वास्थ्यके लिये जहर हैं।

(१५) शरीरके किसी वेगको न रोके; यथा—मल, मूत्र, छींक, जँभाई, डकार, अपानवायु, भूख, प्यास, नींद, आँसू इत्यादि।

(१६) हरदम लंबी-लंबी श्वास लेनेकी आदत डाले। इससे अनेक बीमारियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं।

(१७) मूत्र-त्याग करते वक्त दाँत जोरसे भींच ले तथा मूत्रको पूर्ण वेगसे न छोड़कर बीच-बीचमें रोककर करे, ऐसा करनेपर पौरुषग्रन्थिकी शिकायत नहीं होगी एवं शिकायत होनेपर कुछ हदतक ठीक हो जायगी।

(१८) नहानेके पहले मूत्र-त्याग जरूर कर ले।

(१९) रोज रातको नौ-दस बजेतक सोनेकी आदत डाले।

(२०) सोते वक्त सिर हरदम दक्षिण दिशाकी तरफ रखकर सोये।

हम बीमार क्यों होते हैं ?

सामान्यत: बीमार होनेके कारणोंको समझनेके लिये इन्हें चार भागोंमें बाँटा जा सकता है और प्रयास करें तो हम इन कारणोंको दूर भी कर सकते हैं, यथा—

(१) **भोजन**—लगभग पचीस प्रतिशत रोग भोजनकी गड़बड़ीसे सम्बद्ध रहते हैं—

(१) जरूरतसे ज्यादा भोजन करना।

(२) स्वादिष्ठ चीजोंको अधिक मात्रामें भोजन करना।

(३) तला हुआ भोजन करना।

(४) मिर्च-मसालोंका अधिक सेवन करना।

(५) सलाद, फल, शाक-भाजीका कम व्यवहार करना।

(६) चबा-चबाकर भोजनको ठीकसे नहीं करना।

(७) जल पीनेकी सही जानकारीका अभाव।

जब जल नहीं पीना चाहिये, तब हम पीते हैं एवं जब पीना चाहिये, तब नहीं पीते।

(२) **व्यायाम**—इसी प्रकार पचीस प्रतिशत रोग रोजाना व्यायाम नहीं करनेसे हो जाते हैं।

(१) प्रात: सूर्योदयसे पूर्व उठकर तेज चलना एक अच्छा व्यायाम है।

(२) योगिक कुछ आसन हमें नियमित करने चाहिये ताकि स्वस्थ रह सकें।

(३) व्यायाम एवं योगासनके पश्चात् थोड़ी देर शवासन करनेसे अनेक बीमारियाँ स्वत: ठीक हो जाती हैं।

(३) **भावनाएँ**—भावनाओं और संकल्पोंका स्वास्थ्यसे सीधा सम्बन्ध है। अच्छा स्वास्थ्य सद्भावनाओं एवं सद्विचारोंपर निर्भर करता है।

क्रोध, ईर्ष्या, निन्दा, घृणा, भय एवं अहङ्कार-जैसी नकारात्मक भावनाओंपर नियन्त्रण रखकर इनसे बचते हुए यदि रचनात्मक तथा सकारात्मक विचारोंको हम अपनाएँ तो जीवनका सही अर्थोंमें आनन्द ले सकते हैं।

(४) **प्रारब्ध—'पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते'**— अर्थात् जन्मान्तरीय पापकर्मका व्याधिरूपसे प्राकट्य होता है। सद्ग्रन्थ यह बताते हैं कि प्रारब्धरूप इस असत्-कर्मका विनाश भोग करनेसे होता है।

प्राकृतिक आपदाएँ, अनजाने रोग, वंशानुगत रोग, दुर्घटनाएँ एवं जीवनकी कुछ अनिवार्य घटनाएँ, जिन्हें हम रोक नहीं सकते; इन्हें भोगना ही पड़ता है, इनपर किसीका वश नहीं चलता। इन्हें तो धैर्यपूर्वक एवं हँसते-हँसते स्वीकार करना चाहिये।

इस तरह देखा जाय तो यदि भोजन, व्यायाम तथा भावनाओंको हम नियन्त्रित कर लें तो अधिकांश रोगोंकी रोकथाम हम स्वयं कर सकते हैं और ऐसा करना प्राय: पूरी तरहसे हमारे अधिकार-क्षेत्रमें हैं।

अत: नियमित जीवनशैलीको अपनाकर, अपने शरीरकी ऊर्जाको बढ़ाकर, उसे सकारात्मक उपयोगमें लाकर हम अपना जीवन सुखी बना सकते हैं।

तो आइये, आज ही संकल्प लें कि स्वास्थ्यके प्रति जागरूक होकर हम इस आरोग्यमय चर्याको अपने दैनन्दिन जीवनमें सही रूपसे अमलमें लायेंगे। इस संकल्पशक्तिसे हमारा यह जीवन सुखमय हो जायगा और हम साधना-पथमें सुगमतासे अग्रसर हो सकेंगे। [**बाहेती**]

सबकी सेवा करे और सबपर आत्मवत् दृष्टि रखे

आचार्य वाग्भट बड़ी सुन्दर बात बताते हुए कहते हैं कि जिनके पास आजीविकाका कोई साधन नहीं है, ऐसे दीन-हीन, अनाथ, रोगसे ग्रस्त तथा दु:ख-शोकसे पीड़ित प्राणियोंकी यथाशक्ति सेवा करे, सहायता करे, उनके दु:खोंको दूर करनेका प्रयत्न करे और कीट-पतिंगादि तथा चींटी आदि सभी प्राणियोंको अपने समान ही देखे—

अवृत्तिव्याधिशोकार्तान‌नुवर्तेत शक्तित:। आत्मवत् सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्॥

स्वस्थ शरीरके लिये जरूरी बातें

(डॉ० श्रीगणेशनारायणजी चौहान)

स्नान—सूर्योदयसे पूर्व स्नान करना अच्छा माना गया है। स्नान सदा ठंडे पानीसे करना चाहिये। गरम पानीसे स्नान करनेपर मांसपेशियाँ कमजोर होती हैं। शरीरकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता घटती है, आँखोंकी रोशनी घटती है और मस्तिष्कपर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। गरम पानीसे स्नान करनेसे रक्तकोशिकाएँ फैल जाती हैं, जिससे शारीरिक गरमीका क्षय होता है। फलस्वरूप सर्दी लगती है। इसलिये गरम पानीसे स्नान नहीं करना चाहिये। सर्दियोंमें गुनगुने पानीसे स्नान किया जा सकता है। स्नान करते समय सबसे पहले नाभिपर पानी डालना चाहिये, उसके बाद नाभिसे शरीरके निम्न स्थलोंपर, फिर शरीरके पिछले स्थलोंपर और अन्तमें सिरपर पानी डालना चाहिये। उसके बाद सम्पूर्ण स्नान करना चाहिये।

रेशा छिलका—छिलकेसहित फल तथा भोज्य पदार्थ खाना लाभदायक है। छिलका हटाकर खाना लाभ नहीं करता। छिलकेमें पोषक तत्त्व होते हैं, रेशे और तन्तु होते हैं। इससे पेट साफ होता है।

पत्तेदार सब्जियाँ—पत्तेदार सब्जियोंके गुणोंको अधिकतर लोग नहीं जानते। हरी पत्तेदार सब्जियाँ बहुत कम लोग खाते हैं। पत्तेदार सब्जियाँ जैसे पालक, मेथी, बथुआ, सरसोंका साग, चौलाई, सहिजनके पत्ते, पत्तागोभी आदि विटामिन एवं खनिजोंके भण्डार हैं। हरी पत्तेदार सब्जियोंमें रेशा अधिक होता है। रेशेदार भोज्य पदार्थ बहुत लाभदायक है।

रेशा या सेलूलोज हमारे शरीरके अवाञ्छित तत्त्वोंको धकेलकर बाहर निकालता है। लोहा और चूना शरीरके लिये आवश्यक हैं। ये तत्त्व पत्तेदार सब्जियोंमें मिलते हैं। इसलिये इन पत्तेदार सब्जियोंको खानेसे इन तत्त्वोंकी पूर्ति हो जाती है।

हृदयघात—कंधों एवं गर्दनकी तरफ बहुत ज्यादा दर्द हो तो इसके प्रति लापरवाही करना उचित नहीं है। ये लक्षण हृदयघातके भी हो सकते हैं। धमनियोंसे जानेवाला रक्त गर्दन तथा कंधोंकी तरफ दर्द देता है तो यह हृदयघातका लक्षण है। हृदयसे रक्त धमनियोंद्वारा ऊपरसे नीचेकी ओर आता है। हृदयघातके समय यह रक्त पुनः धमनियोंके ऊपर चला जाता है और मस्तिष्कसे गर्दन तथा कन्धोंकी तरफ आ जाता है।

हृदयरोगसे बचनेके लिये—बीमारियोंमें मोटापा, मधुमेह और उच्च रक्तचाप तथा कोलेस्ट्रोलपर नियन्त्रण रखे। आवश्यकतासे अधिक आराम न करे।

खानेमें गरिष्ठ भोजन न ले। नमक और चीनी कम ले। मलाईरहित दूध, दही, अङ्कुरित अन्न, सब्जियाँ और फल अधिक ले। सूखे मेवे कम-से-कम खाये। अच्छी नींद सोये।

खरबूजा—

गुर्दा—खरबूजेमें पानीका अंश अधिक होता है। यह गुर्देकी शिथिलता दूर करके मूत्र-प्रणालीको ठीक करता है, इसके सेवनसे पाचन-शक्ति ठीक रहती है।

अजवाइन—

कृमि—पिसी हुई अजवाइन एक चम्मच एवं काला नमक आधा चम्मच मिलाकर रातको सोते समय गरम पानीसे फंकी लेनेसे कृमि समाप्त हो जाते हैं।

क़ब्ज़—एक गिलास छाछमें पिसी हुई अजवाइन दो चम्मच, काला नमक स्वादके अनुसार मिलाकर पीनेसे क़ब्ज़ ठीक हो जाती है।

जुकाम—दो चम्मच सिके हुए चने और पाँच काली मिर्च नित्य प्रातः भूखे (खाली) पेट एक महीना खाये, पुराने जुकाममें लाभ होगा।

ज्वार—सफेद ज्वार श्रेष्ठ और लाभकारी है।

पेचिश—दस्तके साथ आँव आती हो तो ज्वारकी रोटीके छोटे-छोटे टुकड़े करके दहीमें डालकर पाँच मिनट भीगने दे। इसपर सिका हुआ-पिसा हुआ जीरा और नमक स्वादानुसार डाल दे और खाये। आँवयुक्त दस्तोंमें लाभ होगा।

दन्त-मंजन—ज्वारको जलाकर पीस ले। पीसते समय इसमें थोड़ा-सा नमक भी मिला ले। इससे सूजन,

गरम या ठंडा पानी लगना आदि कष्ट दूर हो जायँगे और दाँत ज्वारके समान सफेद हो जायँगे।

मुँहासे, दाग—ज्वारके आटेमें तेल (सरसोंका), हल्दी और दूध मिलाकर गाढ़ा उबटन बनाकर चेहरेपर मले और लेप करके छोड़ दे। जब लेप सूख जाय तब चेहरा धोये। इससे चेहरेके मुँहासे, दाग-धब्बे दूर हो जायँगे। यह प्रयोग कम-से-कम पंद्रह दिन करे।

अनन्नास—अनन्नास शरीरके विषैले पदार्थोंको निकालनेवाला फल है, इसका रस निकालकर पीना अधिक लाभदायक है। अनन्नास एक शक्तिवर्धक फल है, जो हृदय और पेटकी तकलीफोंमें भी हितकारी है। यह फल हृदय और पेटको गति देता है।

स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः जागरण

(डॉ० श्रीमुरारीलालजी द्विवेदी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

मानवका प्रकृतिके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। प्राकृतिक नियमोंके साथ समन्वय बनाये रखना मानवको आवश्यक है। स्वास्थ्यकी उत्तमताहेतु प्रात:काल उठना सबसे पहला नियम है। विश्वमें जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब प्रात:काल ही उठते रहे हैं।

सूर्योदयसे पूर्व उठनेकी और करावलोकन, भूमिवन्दना[1], मङ्गल-दर्शन[2], मातृ-पितृ तथा गुरु-वन्दन और प्रात:स्मरणीय मङ्गल श्लोकोंके पाठ तथा शौच-स्नान आदि कार्योंसे निवृत्त होकर गायत्री आदिकी उपासना करनेकी भारतीय सनातन संस्कृतिकी सुदीर्घ परम्परा रही है। इन सभी कार्योंको नित्य-क्रियाओंका नाम दिया गया है। यदि सूर्योदयसे पूर्व उठकर ये आवश्यक कर्म न कर लिये गये तो फिर आगे उनके लिये अवकाश कहाँ? अत: प्रात:-जागरणसे अपनेको स्वस्थ रखते हुए सत्कर्मोंको अवश्य ही करना चाहिये।

सूर्योदयके पहले चार घड़ीतक (लगभग डेढ़ घंटा पूर्व) 'ब्राह्ममुहूर्त'का समय माना जाता है। उस समय पूर्व दिशामें क्षितिजमें थोड़ी-थोड़ी लालिमा दिखायी देती है तथा दो-चार नक्षत्र भी आकाशमें दिखायी देते रहते हैं, इस समयको अमृत-वेला भी कहा जाता है, यही जागरणका उचित समय है।

प्रकृतिके नियमानुसार पशु-पक्षी आदि संसारके समस्त प्राणी प्रातः ही जगकर इस अमृत-वेलाके वास्तविक आनन्दका अनुभव करते हैं। ऐसी दशामें यदि विश्वका सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव आलस्यवश सोता हुआ प्रकृतिके इस अनमोल उपहारकी अवहेलना कर दे तो उसके लिये कितनी लज्जाकी बात है?

जो लोग सूर्योदयतक सोते रहते हैं, उनकी बुद्धि और इन्द्रियाँ मन्द पड़ जाती हैं। शरीरमें आलस्य भर जाता है तथा उनकी मुखकान्ति हीन हो जाती है। प्रातः विलम्बसे उठनेवाला मनुष्य सदा दरिद्री रहता है। देववाणीमें एक सूक्ति है—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

जिनके शरीर और वस्त्र मैले रहते हैं, दाँतोंपर मैल जमा रहता है, बहुत अधिक भोजन करते हैं, सदा कठोर वचन बोलते हैं तथा जो सूर्यके उदय और अस्तके समय सोते हैं, वे महादरिद्र होते हैं। यहाँतक

१-शय्यासे उठकर पृथ्वीपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वीमाताका अभिवादन करना चाहिये और उनपर पैर रखनेकी विवशताके लिये उनसे क्षमा माँगते हुए इस श्लोकका पाठ करना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

अर्थात् 'समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली, पर्वतरूपस्तनोंसे मण्डित भगवान् विष्णुकी पत्नी हे पृथ्वीदेवि! आप मेरे पादस्पर्शको क्षमा करें।'

२-प्रात:काल भूमिवन्दनाके अनन्तर गोरोचन, चन्दन, सुवर्ण, मृदंग, दर्पण तथा मणि आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन कर गुरु, अग्नि और सूर्यादि देवोंको नमस्कार करना चाहिये—

रोचनं चन्दनं हेमं मृदङ्गं दर्पणं मणिम्। गुरुमग्निं रविं पश्येन्नमस्येत् प्रातरेव हि॥

कि चाहे चक्रपाणि अर्थात् लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् ही क्यों न हों, परंतु उनको भी लक्ष्मी छोड़ देती हैं।

अतः सूर्योदयतक सोते रहनेका हानिकारक स्वभाव छोड़कर प्रातः-जागरणका अभ्यास करना चाहिये। यदि हम दृढ़ संकल्प करें तो ऐसा कौन-सा कार्य है जो पूरा न हो सके?

भगवान् मनु अपनी मानवसंहितामें लिखते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

(४।९२)

अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म-अर्थका चिन्तन करे। प्रथम धर्मका चिन्तन करे यानी अपने मनमें ईश्वरका ध्यान करके यह निश्चय करे कि हमारे हाथसे दिनभर समस्त कार्य धर्मपूर्वक हों। अर्थके चिन्तनसे तात्पर्य यह है कि हम दिनभर उद्योग करके ईमानदारीके साथ धनोपार्जन करें, जिससे स्वयं सुखी रहें तथा परोपकार कर सकें। शरीरके कष्ट और उनके कारणोंका चिन्तन इसलिये करे कि जिससे स्वस्थ रहे, क्योंकि आरोग्यता ही सब धर्मोंका मूल है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

प्रातः उठते ही हाथोंके दर्शन शुभ माने गये हैं। 'आचारप्रदीप' में लिखा है—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

अर्थात् हाथोंके अग्रभागमें लक्ष्मी, मध्यमें सरस्वती और मूलभागमें ब्रह्माजी निवास करते हैं, अतः प्रातः उठते ही हाथोंका दर्शन करे।

वास्तवमें प्रातःकाल प्रकृतिमें एक अलौकिक रमणीयता आ जाती है, उसका आनन्द हमें तभी प्राप्त हो सकता है, जब हम प्रकृतिके साथ समन्वय करें। इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः-जागरणको ध्यानमें रखकर हम नित्य सूर्योदयसे पूर्व ही उठनेका नियम बना लें और अपने जीवनके प्रत्येक क्षणका उपयोग अच्छे कार्योंमें ही करें।

निद्रा—स्वस्थ जीवनका आधार

(डॉ० श्रीबृजकुमारजी द्विवेदी एम०डी० (आयु०))

आयुर्वेदमें आरोग्यताको ही सुख कहा गया है। जब शरीरस्थ दोष (वात, पित्त और कफ) समभावमें रहते हैं तो शरीरस्थ अग्नियाँ समभावमें रहती हैं। जिससे धातुओंका निर्माण तथा पोषण भी सम्यक् रूपेण चलता रहता है और मल-निष्क्रमणकी क्रियाएँ भी यथावत् रूपसे होती रहती हैं। इसके परिणामस्वरूप इन्द्रियोंमें प्रसादत्व (यथोचित रूपसे अपना कार्य करनेमें समर्थता) एवं मनकी प्रसन्नता होती है, जिसे स्वस्थ कहा जाता है। यह सुखका उपलक्षण है।

आयुर्वेदमें तीन उपस्तम्भ बतलाये गये हैं—**'त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।'** (च०सू० ११।३५)

जब इन तीनों उपस्तम्भोंका युक्तिपूर्वक सेवन किया जाता है तो स्वास्थ्यलाभ होता है। जबतक ये तीन उपस्तम्भ—आहार, निद्रा तथा ब्रह्मचर्य संस्कारित रहते हैं तबतक बल तथा वर्ण एवं उपचयद्वारा मनुष्य स्वस्थ रहता है—**'एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरं बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते यावदायुःसंस्कारात्।'** (च०सू० ११।३५)

जब इन तीनों उपस्तम्भोंपर सूक्ष्म दृष्टिपात किया जाता है तो ध्यान इस तरफ आकर्षित होता है कि इन तीनोंमें आहारद्वारा शरीरका मुख्य रूपसे या प्रत्यक्षतः पोषण होता है तथा परिणामतः क्रमिक रूप (Systematic way) -में मन प्रभावित होता है। ब्रह्मचर्यके द्वारा मनमें निर्मलता और सौमनस्यता आती है तथा प्रतिलोम-क्रममें शरीरकी पुष्टि होती है। इन तीनों उपस्तम्भोंमें निद्राका स्थान अति महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि निद्राका सम्बन्ध शरीर तथा मन—इन दोनोंसे होता है—

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

(च० सू० २१।३५)

अर्थात् मन जब कार्य करते-करते थक जाता है और इन्द्रियाँ भी कार्य करनेसे थककर अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाती हैं, तब मनुष्यको निद्रा आती

है। इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार निद्रा वह अवस्था है, जिसमें मन और इन्द्रियाँ—ये दोनों अपने-अपने विषयोंसे मुक्त हो जाती हैं तथा शरीर विश्रामकी अवस्थामें रहता है अथवा मन और इन्द्रियोंके विषयमुक्त होनेके कारण शरीर चेष्टारहित होता है। इस निद्राको आचार्य सुश्रुतने वैष्णवी भी कहा है; क्योंकि जिस प्रकार विष्णु जगत्‌का धारण-पोषण करते हैं, उसी प्रकार यह निद्रा शरीरका धारण-पोषण करनेवाली होती है। यह निद्रा स्वभावतः सृष्टिके समस्त प्राणियोंको अपने वशमें करनेवाली होती है—'**सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति।**' (सु० शा० ४। ३३)

निद्राकी उत्पत्ति तमसे होती है। प्राणियोंका जीवन-व्यापार यथोचितरूपमें चलता रहे, इसके लिये जीवनके घटकों—मन, इन्द्रिय तथा शरीरको विश्रामकी आवश्यकता होती है। विश्रामकी अवस्थाविशेषको निद्रा कहा जाता है। इस निद्राको रात्रिस्वभावप्रभवा कहा गया है; क्योंकि यह स्वभावतः रात्रिकालमें मनुष्यको अपने वशमें करती है।

आयुर्वेदमें इस रात्रिस्वभावप्रभवा निद्राके अतिरिक्त अन्य निद्राप्रकारोंका भी उल्लेख किया गया है, जो स्वाभाविक निद्रा न होकर अस्वाभाविक निद्रा होती है। अस्वाभाविक या असामान्य (Abnormal) निद्राप्रकारोंकी संख्या चरक तथा सुश्रुतने क्रमशः पाँच और दो बतलायी है। इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार निद्राको निम्न रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है—

आधुनिक भौतिक वातावरणमें (Materialistic environment) आयुर्वेदोक्त असामान्य निद्राओं (Abnormal sleep)-का सेवन सामान्य निद्रारूपमें किया जा रहा है, अतः इन निद्राओंका उल्लेख संक्षिप्त रूपमें जनसामान्यके ज्ञानार्थ आवश्यक प्रतीत होता है।

सामान्य निद्रा

आयुर्वेदमें रात्रिस्वभावप्रभवाको ही सामान्य निद्रा कहा गया है। अतः मात्र रात्रिकालमें आनेवाली स्वाभाविक निद्राको ही सामान्य निद्रा समझना चाहिये; क्योंकि आयुर्वेदमें इस तथ्यको स्पष्टरूपसे उद्‌घाटित किया गया है—'**रात्रौ जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा**' (च०सू० २१। ५०)। अर्थात् रात्रिजागरण रूक्षता उत्पन्न करनेवाला है तथा दिनमें निद्रासेवनसे स्निग्धता बढ़ती है। अतः रात्रिकालमें स्वाभाविक रूपसे आनेवाली निद्राको ही सामान्य निद्रा समझना चाहिये।

इस प्रकारकी कतिपय विशिष्ट अवस्थाएँ भी होती हैं, जिनमें दिनमें सेवन की जानेवाली निद्राको भी सामान्य-निद्रा (Normal sleep) समझना चाहिये अथवा निम्न अवस्थाओंमें दिनमें भी निद्रा-सेवन किया जा सकता है—

१. जिस व्यक्तिका शरीर अति अध्ययन या अतिमात्रामें मानसिक कार्य करनेके कारण क्षीण हो गया हो।

२. जिसकी संशोधन-चिकित्सा हुई हो या जिसे वमन अथवा अतिसार हुआ हो या किसी प्रकारसे शरीरमें अप्-धातुका क्षय हुआ हो।

३. जो शारीरिक श्रम करता हो अथवा पैदल यात्रा करता हो।

४. जिसका भोजन यथोचितरूपमें पचा हो।

५. जो व्यक्ति उरःक्षत (फेफड़ेका क्षत), हिक्का, शूल (विभिन्न प्रकारकी वेदना), श्वास-रोगसे ग्रसित हो।

६. जो व्यक्ति ऊँचे स्थान या सवारी आदिसे गिर गया हो या जिसे किसी प्रकारसे चोट लग गयी हो।

७. जो पागल हो।

८. जो व्यक्ति इस प्रकारका कार्य करता हो, जिसमें रात्रिजागरण करना पड़ता हो।

९. जो व्यक्ति विभिन्न प्रकारके क्रोध, भय आदि

मनोवेगोंसे युक्त हो।

—इनके अलावा वृद्ध-बालक आदिको भी दिवाशयनका निषेध नहीं है।

यदि उपर्युक्त अवस्थावाला व्यक्ति दिनमें निद्रा-सेवन करता है तो उसे भी सामान्य निद्रा (Normal sleep)-के अन्तर्गत रखा जाता है। इन अवस्थाप्राप्त व्यक्तियोंको दिवाशयन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि जब वह व्यक्ति दिनमें निद्रा-सेवन करता है तो उसकी धातुएँ सम हो जाती हैं। शरीरमें बल अर्थात् व्याधि-क्षमत्वकी वृद्धि होती है एवं क्षीण धातुवाले व्यक्तियोंके शरीरमें धातुओंकी पुष्टि होती है। अतः स्वास्थ्यकी कामना रखनेवाले व्यक्तिको उपर्युक्त अवस्था-विशेष होनेपर ही दिनमें निद्रा-सेवन करना चाहिये—

धातुसाम्यं तथा ह्येषां बलं चाप्युपजायते।
श्लेष्मा पुष्णाति चाङ्गानि स्थैर्यं भवति चायुषः॥

(च० सू० २१।४२)

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म-ऋतुमें प्रत्येक व्यक्तिको दिनमें निद्रा-सेवन करना चाहिये; क्योंकि ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी प्रखर किरणें शरीरसे जलीयांशका शोषण करती हैं। परिणामतः शरीरमें रूक्षताके कारण वायुका संचय होने लगता है। जब मनुष्य दिनमें सोता है तो कफकी वृद्धि होती है, जिससे शरीरमें संचित वायुका शमन हो जाता है।

दिवानिद्रा-निषेध
(Contra Indications for day sleep)

निम्न अवस्थाप्राप्त व्यक्तियोंको दिनमें कदापि नहीं सोना चाहिये—

(क) मेदस्वी व्यक्ति—जो व्यक्ति अधिक वजनवाले या मोटे हों।

(ख) जो व्यक्ति नित्यप्रति अधिक दूध और घृतका सेवन करते हों।

(ग) जो व्यक्ति कफज प्रकृतिके हों।

(घ) जो कफज व्याधियोंसे ग्रसित हों।

(ङ) जो दूषी (जीर्ण) विषसे पीडित हों या अन्य विषसे पीडित हों।

(च) जो कण्ठगत रोगसे पीडित हों।

निद्राका काल—निद्राहेतु कतिपय विशिष्ट अवस्थाओंको छोड़कर सामान्य अवस्थामें रात्रिकाल ही उचित होता है। सामान्यतः एक वयस्क व्यक्तिको अहोरात्र (चौबीस घंटे)-के चतुर्थांश अर्थात् छः घंटे सोना चाहिये। निद्रासेवनहेतु रात्रिको (सूर्यास्तसे सूर्योदयतक) चार भागोंमें विभक्त करना चाहिये। इसमें प्रथम और अन्तिम चतुर्थांशमें सोना नहीं चाहिये। शेषरात्रिके आधे भाग अर्थात् दो मध्यवाले भागमें निद्राका सेवन करना चाहिये, जो लगभग छः घंटेका होता है। ग्रीष्म-ऋतुमें जितना समय अवशिष्ट हो उसे दिनमें सोकर पूरा करना चाहिये। बालकोंके लिये यह नियम नहीं है, उन्हें अत्यधिक कालतक निद्रा-सेवनकी आवश्यकता होती है। अतः उनके निद्राकालका निर्धारण उम्र तथा अवस्थाके अनुसार करना चाहिये।

असामान्य निद्रा (Abnormal sleep)

आयुर्वेदमें रातमें सेवन की जानेवाली रात्रिस्वभावप्रभवा निद्राके अतिरिक्त अन्य निद्राको असामान्य [वैकारिकी] निद्रा कहा गया है। यथा—श्लेष्मसमुद्भवा, मनःशरीरश्रमसम्भवा, आगन्तुकी, व्याध्यनुवर्तिनी तथा तमोभवा। तमोभवा या तामसिक निद्रा गम्भीर अवस्थाकी सूचक है, जो मृत्युकालमें आती है। जब मनुष्यमें संज्ञावाही स्रोत तमोगुणसे युक्त हो जाते हैं तो इस स्थितिमें कफादिसे भी स्रोत पूर्ण हो जाते हैं, जिससे मृत्युकारक निद्रा आती है। इसी प्रकार शरीरमें कफकी वृद्धि होनेसे जो निद्रा आती है, उसे असामान्य निद्रा समझना चाहिये तथा इस स्थितिमें निद्राका सेवन नहीं करना चाहिये। जब शरीर तथा मनद्वारा अतिशय कार्य किया जाता है तो थकावटके कारण निद्रा आ जाती है, इस निद्राको भी असामान्य निद्रा समझना चाहिये। आगन्तुकी निद्रा बिना किसी कारणके अरिष्टरूपमें आती है अर्थात् बिना थकावट, बिना कफ बढ़े या तमोगुणके बढ़े बिना ही किसी विशिष्ट कारणके अभावमें भी निद्रा आ जाती है। यह निद्रा अरिष्टसूचक होती है। कतिपय रोगोंसे ग्रस्त होनेपर निद्रा आ जाती है। इस निद्राको व्याध्यनुवर्तिनी निद्रा कहा जाता है। यह भी एक प्रकारकी असामान्य निद्रा है।

आजकल नींद लानेवाली औषधियोंके सेवनका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। औषधिसेवनोपरान्त आयी

निद्राको भी असामान्य निद्रा समझना चाहिये। इसके अनेक दुष्परिणाम भी सामने आते हैं। विभिन्न उपायोंद्वारा स्वाभाविक नींद लानेका प्रयत्न करना चाहिये, जिसका विस्तृत वर्णन आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें किया गया है। अतः इस सम्बन्धमें किसी विशेषज्ञ—अनुभवी वैद्यसे परामर्श करना चाहिये।

निद्राका महत्त्व

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धिरिवागता॥

(च० सू० २१। ३८)

अर्थात् यदि निद्राका सेवन उचित समयपर किया जाता है तो वह निद्रा शरीरको आयु और सुखसे युक्त करती है। जिस प्रकार सत्या बुद्धि जब योगी पुरुषके पास आ जाती है तो उसे सिद्धिसे युक्त करती है। इसी प्रकार आजीवन स्वास्थ्यहेतु निद्रा एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण घटक है। यदि यथोचितकालमें स्वाभाविक निद्राका सेवन किया जाता है तो सुख अर्थात् स्वस्थ-दीर्घ जीवनकी प्राप्ति होती है। यहाँ सत्या बुद्धिसे निद्राकी तुलना करके यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सम्यक्रूपसे सेवन की गयी निद्रासे केवल शारीरिक आरोग्यता ही नहीं, वरन् मानसिक आरोग्यताकी भी प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य द्वन्द्वभावोंसे मुक्त होकर पूर्णरूपेण सदैव स्वस्थ रहता है।

सामान्य और असामान्य (अनुचित)-रूपमें सेवन की गयी निद्राका जीवनपर प्रभाव

आयुर्वेदका लक्ष्य सुखी तथा दीर्घ जीवनकी प्राप्ति है। जीवनमें सुख-दुःखका अनुभव निद्रापर भी निर्भर करता है। आचार्य चरकने स्वाभाविक और यथोचित-रूपमें सेवन की गयी निद्रा एवं अस्वाभाविक तथा असम्यक्रूपेण सेवन की गयी निद्राका जीवनपर पड़नेवाले प्रभावोंका निम्न रूपमें वर्णन किया है—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥
अकालेऽतिप्रसङ्गाच्च न च निद्रा निषेविता।
सुखायुषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा॥

(च० सू० २१। ३६-३७)

इस प्रकार सम्यक् और असम्यक्रूपसे सेवन की गयी निद्राका प्रभाव जीवनपर निम्न रूपमें पड़ता है—

(क) सुख-दुःख—सम्यक् एवं यथोचितरूपमें सेवन की गयी निद्रा सुख प्रदान करती है। स्वाभाविक निद्रा मनुष्यके सुखी होनेकी सूचना भी देती है। इसके विपरीत अकाल या अनुचित रूपमें सेवन की हुई निद्रा अनेक प्रकारके दुःखोंका कारण बनती है। कतिपय व्यक्ति अत्यधिक निद्रा-सेवनको ही सुख मानते हैं, परंतु वास्तवमें वह दुःखोत्पादक होती है। इससे मनुष्य अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे ग्रस्त हो जाता है। यदि निद्रा यथोचितरूपमें नहीं आती है, जैसे—अल्पनिद्रा या अनिद्राकी स्थिति होती है तो इससे दुःखोत्पत्ति होती है। मानव दुःख तथा बेचैनीका अनुभव करता है। मनको विश्राम नहीं मिलनेके कारण दुःखानुभवके साथ-साथ वह अपना कार्य भी सम्यक्रूपेण नहीं कर पाता है।

(ख) पुष्टि-कार्श्य—पुष्टि-कार्श्यका तात्पर्य, यहाँ शरीरके पुष्ट होने तथा दुबला-पतला होनेसे है। जब उचितरूपेण निद्राका सेवन किया जाता है तो शरीरमें आहारादिका पाचन सम्यक्रूपसे होता है, जिससे शरीरमें रस-रक्तादिकी पुष्टि निर्बाधरूपसे निरन्तर होती रहती है परिणामतः शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुष्ट होते हैं। असम्यक् या अनुचित रूपमें निद्रा-सेवन करनेसे शरीरस्थ धातुओंका क्षय होता है, जिससे मनुष्य कृशकाय हो जाता है अर्थात् दुबला-पतला हो जाता है। यदि अतिनिद्राका या दिनमें निद्राका सेवन किया जाता है तो शरीरस्थ मार्ग कफवृद्धिके कारण अवरुद्ध हो जाता है, जिससे धातुओंका पोषण यथोचित रूपमें नहीं हो पाता। कफवृद्धिके कारण अग्निमान्द्य हो जाता है, परिणामस्वरूप आमरूप कफकी निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इन कारणोंसे जब धातुओंकी पुष्टि नहीं होती तो शरीरमें बलका क्षय हो जाता है। यदि रात्रिकालमें निद्राका सेवन नहीं किया जाता है तो शरीरमें रूक्षता बढ़ती है। रूक्ष शोषक होता है, अतः रूक्षता बढ़नेसे शरीरस्थ धातुओंका शोषण हो जाता है और मनुष्य कृशकाय भी हो जाता है।

(ग) बल-अबल—आयुर्वेदमें बलका दो अर्थ ग्रहण किया गया है—पहला शक्ति-ग्रहण तथा दूसरा विशिष्ट व्याधि-क्षमत्व एवं ओज-ग्रहण। सम्यक् निद्रा-सेवन करनेसे शरीर और मनमें रोगोंके प्रति लड़नेकी

क्षमता बढ़ती है, जिससे मनुष्य स्वस्थ रहता है। यदि निद्राका सेवन सम्यक्‌रूपसे नहीं किया जाता है तो शरीर तथा मनमें रोगोंके प्रति रक्षणशक्ति कम हो जाती है, परिणामतः मनुष्य सदैव शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे ग्रस्त रहता है।

(घ) वृषता-क्लीबता—वृषताका सामान्यतया अर्थ है वीर्यवृद्धि तथा पौरुषशक्तिकी वृद्धि और क्लीबताका अर्थ है नपुंसकता। सम्यक् निद्रा-सेवन करनेसे शरीरस्थ धातुओंकी पुष्टि होती है, जिससे शुक्रधातुकी वृद्धि होती है एवं मनुष्यमें पौरुषशक्ति विद्यमान रहती है। सम्यक् निद्रासे मानसिक प्रसन्नता होती है, जिससे मनमें संकल्पशक्ति यथोचितरूपमें विद्यमान रहती है, जो कि सर्वोत्तम वृष्यभाव माना जाता है। इसके विपरीत अनुचित रूपमें या असम्यक्‌रूपेण सेवन की गयी निद्रासे धातुएँ क्षीण होती हैं, जिससे शुक्रधातुकी पुष्टि नहीं हो पाती। परिणाम यह होता है कि व्यक्तिमें शुक्र और ओजका क्षय होता है, जिससे दौर्मनस्यता होती है। दौर्मनस्यकी स्थितिको आचार्य चरकने सर्वाधिक क्लीबकारक कहा है।

(च) ज्ञान-अज्ञान—ज्ञानाज्ञान भी निद्रापर निर्भर करता है। विषय, इन्द्रिय, मन और आत्मा—इन चारोंके संयोगसे ज्ञान होता है। जब इन्द्रियाँ तथा मन—ये दोनों कार्य करते-करते थक जाते हैं तो निद्रा आती है। विश्रामके बाद वे पुनः अपने-अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार सम्यक्‌रूपमें निद्रा-सेवन करनेसे ज्ञान-ग्रहणकी प्रक्रिया निर्बाधरूपमें निरन्तर चलती रहती है, परंतु जब सम्यक्‌रूपेण निद्रा-सेवन नहीं किया जाता है तो मन और इन्द्रियाँ—दोनों ज्ञान ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते। यदि अतिमात्रामें या दिवाशयन किया जाता है तो कफसे स्रोत पूर्ण हो जाता है, जिससे विषयका सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाता। इसी प्रकार अल्पनिद्रा या अनिद्राकी स्थितिमें भी इन्द्रियादिको विश्राम नहीं मिल पाता। अतः ज्ञानग्रहण-प्रक्रिया सम्यक्‌रूपसे नहीं हो पाती है। यदि अनुचित रूपसे या अकाल निद्राका सेवन किया जाता है तो ऐसी निद्रा कालरात्रिकी तरह सुख तथा आयुका नाश कर देती है।

अनिद्राकी स्थितिमें कतिपय आयुर्वेदोक्त चिकित्सा-निर्देश

आजकल अल्पनिद्रा या अनिद्रा एक जटिल समस्या बन गयी है तथा जनसामान्य अंधाधुंध नींद लानेवाली औषधियोंका सेवन करता जा रहा है। भारतवर्षमें भी नींद लानेवाली औषधियोंकी खपत बढ़ती जा रही है, जो कि एक भयावह स्थितिकी सूचना देती है। अतः अनिद्राकी स्थितिमें आयुर्वेदोक्त निम्न निर्देशोंका लाभ उठाया जा सकता है—

(क) अभ्यङ्ग—शरीरपर आयुर्वेदिक औषधीय तेलकी या सामान्य तेलकी मालिश करनेसे वायुका शमन होता है, जिससे स्वाभाविक नींद आती है।

(ख) उत्सादन—शरीरपर विभिन्न औषधियोंका उबटन लगाना चाहिये।

(ग) स्नान—ऋतुके अनुसार जैसे—ग्रीष्म-ऋतुमें शीतल जलसे तथा शीत-ऋतुमें उष्ण जलसे स्नान करनेपर भी नींद आती है।

(घ) नींद लानेवाले आहार—चावलका दहीके साथ सेवन करने तथा दूध, घी आदिका सेवन करनेसे अच्छी नींद आती है।

(ङ) मनोऽनुकूल विभिन्न प्रकारके सुगन्धित प्रसाधनोंका सेवन करने तथा मनके अनुकूल शब्दोंका श्रवण करनेसे नींद आती है।

(च) संवाहन—शरीरको धीरे-धीरे दबानेसे स्वाभाविक नींद आती है।

(छ) नेत्रतर्पणसे नींद आती है।

(ज) सिर तथा मुखपर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंका लेप करने (अश्वगन्धादि चूर्ण, ब्राह्मी आदि निरापद औषधियोंका सेवन इत्यादि)-से नींद आती है।

(झ) सुन्दर, स्वच्छ, पवित्र एवं आध्यात्मिक स्थल जहाँ शान्ति बनी रहती हो, ऐसे स्थानपर पवित्र आसनपर शयन करनेसे शीघ्र ही सुखपूर्वक नींद आती है। शयनसे पूर्व यथासम्भव भगवत्स्मरण करना भूलें नहीं। अच्छे विचारों, अच्छे संकल्पोंके साथ शयन कीजिये, रात्रि सुखकर होगी, प्रभात भी स्फूर्तिमय और चैतन्यतासे परिपूर्ण रहेगा।

स्वास्थ्यसूत्र

(संकलन—श्रीराजकुमारजी माखरिया)

१. नित्यप्रति सूर्योदयसे पूर्व सोकर उठे। रात्रिमें अधिक देरतक जागें नहीं।

२. प्रतिदिन नियमित रूपसे व्यायाम करे। तैरनेसे अच्छा व्यायाम हो जाता है। सप्ताहमें कम-से-कम एक बार पूरे शरीरकी मालिश करे।

३. सुबह-शाम टहलना लाभदायक है। नियमित रूपसे टहलनेसे सम्पूर्ण शरीरकी मांसपेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं, रक्तसंचार बढ़ता है, शरीरमें चुस्ती-फुर्ती आती है, धमनियोंमें रक्तके थक्के नहीं बनते। हृदयरोग, मधुमेह और ब्लडप्रेशरमें लाभ पहुँचता है।

४. धूप, ताजी हवा, साफ-स्वच्छ पानी और सादा-सात्त्विक भोजन स्वस्थ रहनेके लिये जरूरी है।

५. नित्य योगासन-प्राणायाम करनेसे रोग नहीं होते और दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है।

६. स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन निवास करता है, इसलिये शरीरको स्वस्थ रखे। सदाचारी, नीरोगी व्यक्ति सदा सुखी रहता है।

७. तेज रोशनी आँखोंको नुकसान पहुँचाती है।

८. स्नानका जल न तो अति शीतल हो और न बहुत गर्म। स्नानके बाद किसी मोटे तौलियेसे अच्छी तरह रगड़कर शरीर पोंछना चाहिये।

९. स्वादके लिये नहीं, स्वस्थ रहनेके लिये भोजन करना चाहिये।

१०. भोजन न करनेसे तथा अधिक भोजन करनेसे पाचकाग्नि दीप्त नहीं होती। भोजनके अयोग, हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोगसे भी पाचकाग्नि दीप्त नहीं होती है।

११. पानी या दूध तेजीसे न पिये। इन्हें धीरे-धीरे पिये।

१२. भोजनके बाद दाँतोंको अच्छी तरह साफ करे, अन्यथा अन्नकणोंके लगे रहनेसे उनमें सड़न पैदा होगी।

१३. हलका और जल्दी पचे, ऐसा ही भोजन करना चाहिये। सड़ी-गली या बासी चीजें खानेसे रोग होता है। खूब गरम-गरम खानेसे दाँत तथा पाचन-शक्ति दोनोंकी हानि होती है। जरूरतसे अधिक खानेसे अजीर्ण होता है और यही अनेक रोगोंकी जड़ है।

१४. प्रतिदिन चार-पाँच तुलसीकी पत्तियाँ खानेसे ज्वर आदि रोग नहीं होते।

१५. भोजनके पश्चात् दिनमें थोड़ा विश्राम तथा रातमें टहलना अच्छा रहता है।

१६. हमेशा शान्त और प्रसन्न रहे। कम बोलनेकी आदत डाले। जितना जरूरी हो उतना ही बोले।

१७. चिन्तासे हानि होती है, लेकिन तत्त्वके चिन्तन-मननसे बुद्धिका विकास होता है।

१८. प्रतिदिन आँखोंमें अञ्जन लगानेसे आँखोंकी रोशनी बढ़ती है।

१९. रातमें एक तोला त्रिफलाको एक पाव ठंडे पानीमें भिगो दे, सुबह छानकर उससे आँखें धोयें और बचे हुए जलको पी जायँ।

२०. नित्य मुख धोनेके समय ताजे ठंडे पानीसे आँखोंमें छींटे लगाये। इससे आँखें स्वस्थ रहती हैं।

२१. हफ्ते-दस दिनके अन्तरपर कानोंमें तेलकी कुछ बूँदें डालनी चाहिये।

२२. बिस्तरके गद्दे-तकिये, चादर आदिको समय-समयपर धूपमें डालना चाहिये।

२३. सोनेके स्थानको साफ-सुथरा रखे। नींद आनेपर ही सोना चाहिये। बिस्तरपर पड़े-पड़े नींदकी राह देखना रोगको आमन्त्रित करना है। दिनमें सोनेकी आदत न डाले।

२४. मच्छरोंको दूर करनेका उपाय करे। वे रोगोंको फैलानेमें सहायक होते हैं।

२५. अगरबत्ती, कपूर अथवा चन्दनका धुआँ घरमें हर रोज कुछ क्षणोंके लिये करे। इससे घरका वातावरण पवित्र होता है।

२६. श्वास सदा नाकसे और सहज ढंगसे लें। मुँहसे श्वास न ले, इससे आयु कम होती है।

२७. उत्तम विचारोंसे मानसिक सुख तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

२८. अच्छा साहित्य पढ़े। अश्लील एवं उत्तेजक

साहित्य पढ़नेसे बुद्धि भ्रष्ट होती है। दूसरोंके गुणोंको अपनाये।

२९. सुबह उठते ही आधा सेरसे एक सेरतक ठंडा पानी पीना चाहिये। यदि पानी ताँबेके बरतनमें रखा हुआ हो तो अधिक लाभप्रद होगा।

३०. कपड़छान किये नमकमें कड़ुआ तेल मिलाकर दाँत और मसूड़ोंको रगड़कर साफ करना चाहिये। इससे दाँत मजबूत होते हैं और पायरियासे भी मुक्ति मिल सकती है।

३१. धूपका सेवन अवश्य करना चाहिये। इससे शरीरको पोषकतत्त्वकी प्राप्ति होती है।

३२. मैदेकी बनी हुई और तली हुई चीजोंसे परहेज करना चाहिये।

३३. हर समय माथा और पेट ठंडा तथा पैर गरम रखना चाहिये।

३४. सप्ताहमें केवल नीबू-पानी पीकर एक दिनका उपवास करे। इससे पाचनशक्ति सशक्त होगी और स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। यदि पूरा उपवास न कर सकें तो फल खाकर या फलका रस पीकर उपवास करे।

३५. पचाससे अधिक अवस्था होनेपर दिनमें एक ही बार अन्न खाये। बाकी समय दूध और फलपर रहे।

३६. भोजनमें मौसमी फलोंका उपयोग अवश्य करे।

३७. भोजन करते समय और सोते समय किसी प्रकारकी चिन्ता, क्रोध या शोक न करे।

३८. सोनेसे पहले पैरोंको धोकर पोंछ लेने, कोई अच्छी स्वास्थ्यसम्बन्धी पुस्तक पढ़ने और अपने इष्टदेवको स्मरण करते हुए सोनेसे अच्छी नींद आती है।

३९. रात्रिका भोजन सोनेसे तीन घंटे पहले करना चाहिये। भोजनके एक घण्टा बाद फल या दूध ले।

४०. सोते समय मुँह ढककर नहीं सोये। खिड़कियाँ खोलकर सोये। सोनेका बिस्तर बहुत मुलायम न हो।

४१. तेल-मालिशके बाद स्नान करना आवश्यक है। तेलसे त्वचाके रोमकूप मैलसे भर जाते हैं, जो लाभके बदले हानि पहुँचाते हैं। यदि स्नान न करनेकी कोई बाध्यता हो तो गुनगुने पानीमें तौलिया भिगोकर अच्छी तरह शरीर पोंछ ले।

४२. सुबह-सुबह हरी दूबपर नंगे पाँव टहलना भी काफी लाभप्रद है। पैरपर दूबके दबावसे तथा पृथ्वीके सम्पर्कसे कई रोगोंकी चिकित्सा स्वतः हो जाती है।

४३. न तो इतना व्यायाम करना चाहिये और न तो इतनी देर टहलना चाहिये कि काफी थकावट आ जाय। टहलने और व्यायामके लिये सूर्योदयका समय ही सबसे उत्तम है।

४४. भोजनसे पहले हाथ-पैर पानीसे धोकर कुल्ला-गरारा करना स्वास्थ्यप्रद होता है।

४५. भोजनके प्रारम्भमें और अन्तमें अधिक मात्रामें जल न पिये। बीचमें दो-तीन घूँट पानी पी लेना चाहिये।

४६. गरम दूध तथा जल पीकर तुरंत ठंडा पानी पीनेसे दाँत कमजोर हो जाते हैं।

४७. शयन करते समय सिर उत्तर या पश्चिममें रखकर नहीं सोना चाहिये। धूपमें सोना हो तो सिर सूर्यकी ओर करके सोये और धूपमें बैठना हो तो ऐसे बैठे कि पीठपर धूप पड़े।

४८. कपड़ा, बिस्तर, कंघी, ब्रश, तौलिया, जूता-चप्पल आदि वस्तुएँ परिवारके हर व्यक्तिकी अलग-अलग होनी चाहिये। दूसरेकी वस्तु उपयोगमें न लाये।

४९. दिन और रातमें कुल मिलाकर कम-से-कम तीन लीटर पानी पीना चाहिये। इससे शरीरकी अशुद्धि मूत्रके द्वारा बाहर निकल जाती है तथा रक्तचाप आदिपर नियन्त्रण रहता है।

५०. प्रौढावस्था शुरू होते ही चावल, नमक, घी, तेल, आलू और तली-भुनी चीजें खाना कम कर देना चाहिये।

५१. केला, दूध, दही और मट्ठा एक साथ नहीं खाना चाहिये।

५२. कटहलके बाद दही और मट्ठा एक साथ नहीं खाना चाहिये।

५३. शहदके साथ उष्णवीर्य पदार्थोंका सेवन न करे।

५४. दूधके साथ इन वस्तुओंका प्रयोग हानिकारक होता है—नमक, खट्टा फल, दही, तेल, मूली और तोरई।

५५. दूधके साथ इन पदार्थोंका सेवन किया जा सकता है—आँवला, मिस्री, चीनी, परवल, अदरक, सेंधा नमक।

५६. दहीके साथ किसी भी प्रकारका उष्णवीर्य

पदार्थ—कटहल, दूध, तेल, केला आदि खानेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। रातको दही खाना निषिद्ध है। शरद् और ग्रीष्म-ऋतुमें दही खानेसे पित्तका प्रकोप होता है। रक्त, पित्त और कफसम्बन्धी रोगोंमें भी दहीका सेवन नहीं करना चाहिये।

५७. दूध और खीरके साथ खिचड़ी नहीं खानी चाहिये।

५८. काँसे और पीतलके बर्तनमें घी रखनेसे विषतुल्य हो जाता है।

५९. शहद और घी समान मात्रामें सेवन करना अत्यन्त हानिकारक होता है।

६०. पढ़ना-लिखना आदि आँखोंके द्वारा होनेवाला कार्य लगातार काफी देरतक न करे। बीच-बीचमें नेत्र बंद करके उनपर उँगलियाँ फेरे और दूरकी किसी वस्तुपर नजर जमाये।

६१. गर्मीमें धूपसे आकर तत्काल स्नान न करे और न तो हाथ-पैर या मुँह ही धोये। थोड़ा विश्राम करके, पसीना सूख जानेपर जब शरीरका तापमान सामान्य हो जाय, तभी स्नान करे।

६२. देर राततक जागना या सुबह देरतक सोते रहना आँखों और स्वास्थ्यके लिये हितकर नहीं है।

६३. अधिक वसायुक्त आहार, धूम्रपान एवं मांसाहारी भोजन हृदयके लिये नुकसानदेह होते हैं। ये रक्तमें कोलेस्ट्रॉल बढ़ाते हैं।

६४. नियमित व्यायामसे शरीरकी क्षमता बढ़ती है। शरीरमें हानिकारक तत्त्वोंकी मात्रा घटती है। नियमित योग एवं व्यायाम, कम वसायुक्त भोजन तथा नियमित दिनचर्यासे अनेक रोग स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

६५. तम्बाकू, शराब, चरस, अफीम, गाँजा आदि जहरसे भी खतरनाक हैं। नशीले पदार्थोंके सेवनसे धन और स्वास्थ्य दोनोंसे हाथ धोना पड़ता है।

६६. नियमित समयपर प्रातः जागकर शौच जानेवाला, समयपर भोजन करने और सोनेवाला व्यक्ति स्वस्थ, सम्पन्न और बुद्धिमान् होता है।

६७. भोजन करनेके बाद लघुशंका अवश्य करनी चाहिये। इससे गुर्दे स्वस्थ रहते हैं।

६८. सही मुद्रामें चलने-बैठनेका अभ्यास करना चाहिये। चलते समय पैरको घिसटते हुए, ठोड़ीको आगे निकालकर या झटका देकर कदम नहीं रखने चाहिये। बैठते समय पीठ सीधी रखकर बैठे।

६९. धूप, वर्षा और शीतकी अतिसे शरीरको बचाना चाहिये। इन तीनोंके अति सेवनसे आयु कम हो जाती है।

७०. अत्यधिक भीड़-भाड़ तथा सीलनयुक्त स्थान स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं होता।

७१. प्रगाढ़ निद्रामें सोये व्यक्तिको नहीं जगाना चाहिये।

७२. सुबह उठते ही यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि आज दिनभर न तो किसीकी निन्दा करूँगा और न ही क्रोध करके किसीको भला-बुरा कहूँगा।

आरोग्य-चिन्तन-प्रेरक-निर्देश

(श्रीराधाकृष्णजी सहारिया)

(१) स्वास्थ्यका नियम न जाननेसे व्यक्ति बार-बार रोगोंका शिकार होता रहता है। जो कुदरतके नियमोंकी अवहेलना करता है वह कुदरतका अपराधी है। इसीलिये उसे बीमारीरूपी सजा बार-बार भोगनी पड़ती है।

(२) केवल दवा और अस्पतालोंसे रोगोंका समूल नाश नहीं होता। रोगोंका समूल नाश तो इन्द्रिय-संयम और मनकी शुद्धि होनेपर होता है।

(३) भोजनकी विकृति स्वादिष्टताका प्रलोभन इतना अहितकर है कि उसका दुष्परिणाम स्वास्थ्य-नाशकी भारी कीमत चुकानेके रूपमें भुगतना पड़ता है।

(४) रोग और बुढ़ापा आदि कोई अलगसे नहीं होते। उनका सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध हमारी जीवन-पद्धतिसे होता है।

(५) महत्त्व भोजनका नहीं, पाचनशक्तिका है।

(६) रोगका सम्बन्ध केवल शरीरसे न होकर, कभी-कभी मनकी तरंगोंसे भी होता है।

(७) शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये दवाइयोंका

सहारा लेनेकी उतनी जरूरत नहीं है जितनी शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको मजबूत और स्वस्थ रखनेकी जरूरत होती है।

(८) संसारमें अनेक दवाएँ हैं, किंतु प्रार्थनारूपी महौषधसे त्रितापका सहज ही निवारण होता आया है।

(९) आपातकालमें औषधका सहारा लें, पर यह न भूलें कि रोग प्रभु-कृपासे ही जायगा।

(१०) एक साधारण रोगीकी अपेक्षा भयग्रस्त रोगी असाध्य होता है। भय एवं चिन्ता करनेसे रक्तका शुद्ध रहना असम्भव हो जाता है। मस्तिष्कको शुद्ध रक्त अवश्य प्राप्त होना चाहिये। विचारोंका प्रभाव केवल मस्तिष्कपर ही नहीं होता बल्कि शरीरके प्रत्येक अङ्गपर होता है। अत: प्रभुका आश्रय लेकर निर्भय रहना चाहिये।

(११) रोगी अपनी इच्छा-शक्तिके बलपर अपनेको निर्देशन देता रहे कि उसे कोई रोग नहीं है, वह ठीक है, बिलकुल स्वस्थ है तो हृदयमें प्रवाहित होनेवाली अपनी आस्था एवं विश्वासरूपी लहरोंसे आत्मशक्ति उसे प्राप्त होती रहेगी और धीरे-धीरे उसके स्वास्थ्यमें सुधार होता जायगा।

(१२) जीवनका स्वास्थ्य केवल भौतिक तत्त्वोंपर ही निर्भर नहीं है, हमारे विचार और क्रियाओंसे जीवन संचालित होता है। विचारों और क्रियाओंमें दोष हैं तो मन और शरीर दोनों रुग्ण हो जाते हैं। जबतक उनमें निर्मलता नहीं आती तबतक औषधि काम नहीं करेगी।

(१३) लौकिक चिकित्सा और आध्यात्मिक चिकित्साद्वारा रोग-निवारणकी साधनामें मौलिक अन्तर यह है कि लौकिक चिकित्साका आधार स्थूल भौतिक पदार्थ हैं, जबकि आध्यात्मिक चिकित्साके आश्रय पुरुषोत्तमभगवान् हैं; जो लौकिक साधनोंके भी परमाधार हैं। अत: उनकी कृपाका अवलम्बन लेना चाहिये।

(१४) जो बात दवासे न हो सके, वह दुआसे बन जाती है।

आरोग्य-साधन

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच० डी०)

हिंदू-धर्मकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मनुष्यके सर्वाङ्गीण (शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक) विकासका लक्ष्य रखा गया है। हमारे धर्म-शास्त्रोंमें नीरोग शरीर तथा स्वास्थ्य-रक्षाद्वारा पूर्ण आयु (सौ वर्षकी दीर्घायु)-की प्राप्तिके विभिन्न उपायोंपर गम्भीर विचार किया गया है।

धर्मका स्वास्थ्य और आरोग्यसे गहरा सम्बन्ध है। स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन (जो पवित्र विचारों, शुभ संकल्पोंका आधार है)-का निवास होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका प्रमुख साधन मनुष्य-शरीर ही है—*'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।'* (रा०च०मा० ७। ४३। ८)

रोगरहित शरीर धर्मका आधार है। दुर्बल स्वास्थ्यवालोंकी इन्द्रियाँ भी अपेक्षाकृत अधिक चञ्चल देखी जाती हैं; अत: शरीर-शुद्धिपर हमें विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

शरीर पूर्ण स्वस्थ, नीरोग और हलका रहना चाहिये। इससे चित्त प्रसन्न रहता है, चिन्तन-शक्ति बढ़ती है तथा मन, बुद्धि और प्राण सात्त्विक रहते हैं। नीरोग और स्वस्थ साधक दैवी सम्पत्तिका विशेष अर्जन कर सकता है। विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाले अधिकतर रोगी पाये जाते हैं तथा प्राय: आसुरी सम्पत्तिके निवास-स्थान बने रहते हैं। रोगोंके कारण मनमें भी विकार उत्पन्न होते हैं।

धर्म-प्राप्तिके निमित्त नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए पूर्ण आयु (शतायु) प्राप्त करना मनुष्यमात्रका धर्म है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समा:।

(ईशावास्योपनिषद् २)

'संसारमें मनुष्य शुभ (शास्त्रोक्त) कर्म करता हुआ ही (आलसी बनकर नहीं) सौ वर्षोंतक नीरोग जीनेकी इच्छा करे।' उत्तम स्वास्थ्य और आरोग्यके लिये हमें सक्रिय जीवन बिताना चाहिये।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतस: । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥ एतद्वै तत्॥ (कठ० २। २। १)

उस नित्य विज्ञानस्वरूप अजन्मा (आत्मा)-का (शरीररूप) पुर ग्यारह दरवाजोंवाला है। उस (आत्मा)-का ध्यान करनेपर मनुष्य शोक नहीं करता और वह (इस शरीरके रहते ही) मुक्त हो जाता है—विदेह हो जाता है। निश्चय ही यही वह ब्रह्म है।

जो साधक इस मनुष्य-शरीरको इस प्रकार ब्रह्मपुरके रूपमें देख (स्वास्थ्यके नियमोंका पालन)-कर शुद्ध, नीरोग और पवित्र रखता है, क्षुद्र वासनाओं, विषय-विकारोंके वशीभूत न होकर शरीर एवं मनकी भलीभाँति शुद्धि कर लेता है, वह सब प्रकारके सांसारिक शोकसे विमुक्त हो शरीरमें निवास करता हुआ ही इसके सब बन्धनोंसे छूट जाता है—जीवन्मुक्त हो जाता है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः……'

(मुण्डक० ३।२।४)

अर्थात् जो मनुष्य बलहीन (उत्साहहीन) होता है, शारीरिक और मानसिक अस्वास्थ्यके कारण वह प्रायः साधनके मार्गपर भलीभाँति अग्रसर नहीं हो पाता, वह इस आत्माको—समीप-से-समीप, अपने भीतर विराजमान आत्माको पानेमें निराश हुआ रहता है।

संयम—दीर्घ जीवनकी कुंजी

धर्ममें सर्वप्रथम संयमपर विशेष बल दिया गया है। इसलिये हमें चाहिये कि हम अशुभ पदार्थों, अभक्ष्य भोजन एवं दुष्ट विचारोंसे बचें, इन्द्रियोंको वशमें रखें, अतिसे बचें, खान-पान, आहार-विहारके आधिक्यसे बचें और आत्मसंयमद्वारा स्वास्थ्य एवं आरोग्यके मार्गपर बढ़ते रहें।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजुर्वेद ३६।२४)

हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहें, सौ वर्षोंतक सुनते रहें, सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दीन-दशाको न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे अधिक कालतक भी हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं कभी दीन न हों।

संयमके साथ ब्रह्मचर्य-पालनपर विशेष जोर दिया गया है। ब्रह्मचर्यद्वारा शारीरिक शक्तियों, यौवन और आरोग्यकी सुरक्षा होती है। कहा गया है—

ब्रह्मचारी मिताहारः सर्वभूतहिते रतः।
गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(संवर्तस्मृति २१६)

'ब्रह्मचर्य-पालन, अल्प भोजन, सब प्राणियोंके हितमें तत्पर तथा गायत्रीका एक लाख जप करनेवाला धर्मका प्रेमी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

वीर्य नष्ट होनेसे आरोग्य, तेजस्विता, बल और साहस आदिका ह्रास होने लगता है। ब्रह्मचर्यकी सुरक्षाके लिये धर्म-शास्त्रोंने आठ प्रकारके मैथुनसे अत्यन्त सावधान रहनेका संकेत किया है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

(दक्षस्मृति ७।३१-३२)

मनीषी पुरुषोंने मैथुनके ये आठ अङ्ग बतलाये हैं—स्त्रीका स्मरण करना, स्त्रीके अङ्ग-प्रत्यङ्गों एवं कार्यकलापोंका वर्णन करना, स्त्रियोंके साथ हास-परिहासयुक्त क्रीडा करना, लुक-छिपकर अथवा प्रत्यक्ष रूपमें स्त्रियोंकी ओर देखना, एकान्तमें स्त्रियोंके साथ बातचीत करना, स्त्रियोंके प्रति आसक्ति रखते हुए कामक्रीडाकी इच्छा रखना, अप्राप्य स्त्रीको पानेके लिये प्रयत्न करना और प्रत्यक्ष समागममें निरत रहना।

अच्छे स्वास्थ्य, आरोग्य, दीर्घ जीवन, धर्म आदिको प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालोंको इन आठों प्रकारके मैथुनोंसे बचना चाहिये। ये स्वास्थ्यके लिये विष-तुल्य हैं। इनमेंसे एक भी स्वास्थ्य और सौन्दर्यको चौपट करनेमें पर्याप्त है। मनको वासनासे दूर रखकर वीर्यकी रक्षा करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। अतः रोगरहित दीर्घ जीवन तथा आध्यात्मिक अभ्युदयके लिये हमें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

व्यायामका महत्त्व और आवश्यकता

धर्म-शास्त्रोंमें व्यायामको अत्यावश्यक बतलाया गया है। साधु-संन्यासी, ऋषि, साधक ही नहीं, प्रत्युत मनुष्यमात्रके लिये व्यायाम करना आवश्यक है। हमें नियमित व्यायामद्वारा रक्तशोषण करनेवाले सभी रोगोंके कीटाणुओं और बुरे विचारोंको मनसे सदा दूर रखने

तथा ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा अपनी शारीरिक शक्तियोंको दीर्घकालतक अपने शरीरमें बनाये रखनेकी भरपूर चेष्टा करनी चाहिये।

हिंदू-धर्ममें योगका अत्यधिक महत्त्व है। योगासन योगविद्याके अङ्ग हैं। योगासन सभी व्यायाम-पद्धतियोंमें उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अन्य व्यायामोंसे शरीरके कुछ ही भाग विकसित होते हैं, किंतु विभिन्न योगासन करनेपर शरीरका सर्वाङ्गपूर्ण व्यायाम हो जाता है। नियमित रूपसे योगासन करनेसे मानव-शरीर पुष्ट और सुन्दर बनता है, शक्ति और स्फूर्ति आती है तथा शरीरमें क्रियाशीलता बनी रहती है। योगासन मनुष्यके बाहरी और आन्तरिक स्वास्थ्यकी वृद्धि और सुरक्षामें हेतु हैं। इनसे चञ्चल मनोवृत्तियोंका निरोध होता है।

धर्म-शास्त्रोंने टहलना सबके लिये, विशेषत: वृद्धोंके लिये उपयोगी व्यायाम बतलाया है। याद रहे, प्रात:कालीन प्राणवायु सूर्योदयके पूर्वतक निर्दोष बनी रहती है। अत: धर्ममें रुचि रखनेवालोंको प्रात:काल जल्दी उठकर, स्नान करके टहलने जाना चाहिये—प्राणवायुका सेवन करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य और आरोग्य स्थिर रहता है।

धर्म और आहार

जैसा मनमें विचार उत्पन्न होता है, वैसा ही वाणीसे बोला जाता है और वैसा ही काम भी होता है। हमारे मनपर ही सब कुछ निर्भर है और यह मन आहार-शुद्धिपर टिका हुआ है—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।' (छान्दोग्य० ७। २६। २)

'आहारशुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है, सत्त्व-शुद्धिसे निश्चल स्मृतिकी प्राप्ति होती है और निश्चल स्मृतिसे सब बन्धनोंसे मुक्ति मिलती है।' अत: मनुष्यको समझ-बूझकर अपना आहार निश्चित करना चाहिये।

धर्माचरण करनेवाले पुरुषको ऐसा सात्त्विक आहार करना चाहिये, जो मधुर, रसयुक्त और स्वादिष्ठ अन्नसे शुद्धतापूर्वक बनाया गया हो। तीखे, कसैले, बासी भोजन और मांस आदि अभक्ष्य पदार्थोंका प्रयोग घृणित है।

हमारा आहार ऐसा हो जिससे हमारी बुद्धि, अवस्था और बलमें निरन्तर वृद्धि होती रहे। दूध, फल, मेवे, कन्दमूल (गाजर-मूली), साग, भाजी, गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, मकई, नारियल, बादाम, किशमिश, अखरोट, नाशपाती, केला, नारंगी, अंगूर एवं दही आदि शुद्ध आहार हैं। इनसे शरीरका पोषण होता है।

हमारे आहारका केवल चौथा अंश ही हमारा पोषण करता है। निषिद्ध अभक्ष्य पदार्थ खाकर मनुष्य मानो अपने दाँतोंसे अपनी 'क़ब्र' खोदता है। तामस पदार्थों (शराब, बीड़ी, सिगरेट, चाय, कहवा, मांस, तेज मिर्च-मसाले आदि)-से सावधान रहना चाहिये।

यदि अन्नको खिलानेवाला तामसी प्रवृत्तियोंका मनुष्य है तो उसका भी दूषित प्रभाव खानेवालेपर पड़ता है।

गीतामें आहारके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा गया है—'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दु:ख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह तामस पुरुषको प्रिय होता है।'*

धर्म और उपवास

अधिक भोजन करनेसे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवनका नाश होता है, अत: हमारे धर्मग्रन्थोंमें आन्तरिक शुद्धिकी दृष्टिसे प्रति पंद्रह दिनोंमें उपवासका विधान किया गया है। उपवाससे केवल शरीर ही शुद्ध नहीं होता, मनोवृत्तियाँ भी निर्मल बनती हैं।

---

* आयु: सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना: । रस्या: स्निग्धा: स्थिरा हृद्या आहारा: सात्त्विकप्रिया: ॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिन: । आहारा राजसस्येष्टा दु:खशोकामयप्रदा: ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ (१७। ८—१०)

विषय-वासनाकी निवृत्तिके लिये उपवास महत्त्वपूर्ण साधन है, अतः एकादशीको उपवासका विधान किया गया है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपवाससे ज्वर, जुकाम, हैजा, अपच, कुष्ठ, स्वप्नदोष, खाँसी, दमा, सूजन आदि शरीरकी अनेक विकृतियाँ दूर हो जाती हैं। 'कार्तिक-माहात्म्य' के अनुसार उपवाससे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है।

सूर्योपासना

सूर्योपासना हमारे स्वास्थ्यके लिये एक अत्यन्त लाभदायक कृत्य है। सूर्यसे हमें प्रसन्नता, स्वास्थ्य, सौन्दर्य और यौवन आदिकी प्राप्ति होती है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (यजुर्वेद ७। ४२)—सूर्य स्थावर-जङ्गम पदार्थोंका आत्मा है। अतः सूर्यसे हम प्रार्थना करते हैं—**'जीवेम शरदः शतम्'** (यजुर्वेद ३६। २४)—'हम सौ वर्षोंतक जीवित रहें।' सूर्यकी रश्मियाँ शक्ति और जीवन प्रदान करनेवाली हैं। सूर्य-स्नान करनेसे अनेक रोगों—टाइफॉयड, यक्ष्मा आदिके कीटाणु नष्ट होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यके शरीर और अन्तःकरणको परिष्कृत कर आत्म-तत्त्व-प्राप्तिके उद्देश्यसे हिंदू-धर्ममें स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्त्वोंका विधान उपलब्ध होता है। आत्मचेतनाको विकसित करनेके लिये यथासम्भव उपर्युक्त स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमोंका पालन करना चाहिये। इनसे बाह्य और आभ्यन्तर शौचकी प्राप्ति होती है।

'आचार-रसायन'—आयुर्वेदकी अनुपम देन

(पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)

पुरुष जिस शास्त्रसे आयुष्यके विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है, (फलस्वरूप आयुकी वृद्धि होती है) मुनिवरोंने उसे आयुर्वेद कहा है—

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः॥

(चरक)

आयुर्वेदके अतिरिक्त विश्वके किसी भी अन्य चिकित्साशास्त्रमें दीर्घ जीवन, संयम, सदाचार, रसायनद्वारा वार्धक्य तथा रोग-निवारण, अरिष्ट-विज्ञान आदिका सम्यक् विवेचन नहीं हुआ है। आयुर्वेद केवल चिकित्साशास्त्र ही नहीं, अपितु पूर्ण जीवन-विज्ञान है। आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन महर्षि चरकने इस प्रकार बताया है—

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनम्।

'स्वस्थ पुरुषके स्वास्थ्यकी रक्षा तथा रोगीके विकारका प्रशमन करना आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन है।' अति प्राचीन कालसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे पृथ्वीके मानवोंकी आयुर्वेदद्वारा सेवा होती आ रही है।

आयुर्वेदका अनादित्व

आयुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है। सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजापति ब्रह्माजीने लक्षात्मक श्लोकोंमें लोकोपकारके लिये इसकी रचना की थी, ग्रन्थमें एक हजार अध्याय थे—

इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः""श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः।

वेदके समान आयुर्वेदकी परम्परा भी नित्य, सनातन एवं अनादि है। पुराकालमें पुरुषोंकी आयु चार सौ वर्षकी होती थी। उनका शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट होता था। कालक्रमसे अधर्मका प्रादुर्भाव होनेसे आयु, आरोग्य तथा बलका ह्रास होने लगा और उसी प्रमाणमें सुख-शान्तिका ह्रास होता गया। दीर्घ आयु और चिर आरोग्यकी उपलब्धिके लिये महर्षि चरकने महत्त्वपूर्ण 'आचार-रसायन'की प्रक्रिया निर्दिष्ट की है।

यह रसायन वास्तवमें कोई पेय-ओषधि नहीं है, एक प्रकारकी नियमित आचार-प्रक्रिया है, जो रसायनसे भी अधिक कार्य करती है। यदि व्यक्ति इस आचार-रसायनके अनुसार अपनी दैनिक चर्या व्यतीत करता है तो दीर्घ आयुष्यकी प्राप्तिके साथ ही स्वस्थ एवं सुखी रहता हुआ धर्माचरणमें सर्वथा सक्षम होता है और सात्त्विक सुख एवं आनन्दका उपभोग कर सकता है।

स्वयं महर्षि चरकने आचार-रसायनकी परिभाषा इस प्रकार की है—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यतपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम्।
शास्त्राचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्॥
गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुंक्ते यो रसायनम्।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते॥

'जो व्यक्ति सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य तथा मैथुनसे निवृत्त, हिंसारहित अनायास अर्थात् (शारीरिक, मानसिक श्रमसे रहित) अति शान्त, मृदुभाषी, जप और शुद्धिमें तत्पर, धैर्यशाली, प्रतिदिन दान करनेवाला तथा तपस्वी है एवं जो देव, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु तथा वृद्धोंके अर्चन (सत्कार)-में रत है, नित्य अनृशंसता (अक्रूरता)-परायण तथा प्राणिमात्रको दयाकी दृष्टिसे देखता है, जिसका जागरण एवं निद्रा प्रकृतिके अनुकूल है, जो नित्य घृत, दुग्धका सेवन करता और जो देश, काल (परिस्थिति)-के प्रभावका ज्ञाता है, युक्तिज्ञ (कौशलसे कार्य करता) है तथा अहंकारशून्य है, जो शास्त्रोंके अनुकूल आचरण करता है, उदार प्रकृतिका है, जिसके मन, बुद्धि और विचार अध्यात्मकी ओर प्रवृत्त हैं, जो जितात्मा, आस्तिक, वृद्धोंका सेवक है, जो धर्मशास्त्रपरायण है, वह यदि रसायनके इन गुणोंका सेवन करता है तो यथोक्त फलोंको प्राप्त करता है। महर्षि चरकका ओषधिरहित यह आचार-रसायन आजके विश्वको आयुर्वेदकी अद्भुत एवं अनुपम देन है।

आज परिस्थिति कुछ ऐसी हो गयी है कि जहाँ एक ओर तो जीवनमें चिन्ता, शोक, आयास उत्पन्न करनेवाली विषम समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं, वहीं दूसरी ओर मनको शान्त करनेमें सहायक हो सके, ऐसी चर्या क्रमशः लुप्त होती जा रही है। न वह प्रात:कालीन ब्राह्म-मुहूर्तमें शय्या-त्याग रह गया है, न प्रातः शुद्ध वायुमें भ्रमण करना। न संध्या रह गयी है, न प्राणायाम रह गया है, न सूर्य-नमस्कार एवं सूर्योपासना ही रह गयी है। न व्रत, न शुद्धता, न वह भूतदया, न वृद्धों तथा अतिथियोंका सम्मान ही रह गया है। प्राय: रह गयी है केवल सतत कार्यव्यग्रता, आतुरता एवं स्वार्थपरायणता। आजके आधुनिक चिकित्सा-वैज्ञानिकोंने भी प्रबल शब्दोंमें कहा है कि इनका प्रभाव हृदय, मस्तिष्क, वृक्क, अधिवृक्क, अग्न्याशय, रस-रक्तवाहिनी धमनियों तथा पाचनयन्त्रपर पड़ता है। अनेक व्यवसायी, उद्योगपति, रात-दिन प्रैक्टिसमें पड़ा व्यवसायरत चिकित्सक, मालिकको शोषक मनोवृत्तिका शिकार सेवक, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखेकी परिस्थितिसे पिसता किसान, भारी कुटुम्बका एकमात्र पालक साधारण गृहस्थ—इन सबको आजकी विषम स्थितिका मूल्य उच्च रक्तचाप, हृदय-दौर्बल्य, यक्ष्मा, मधुमेह, यान्त्रिक शूल, मस्तिष्क-दौर्बल्य आदि रोगोंमें फँसकर अन्तमें सहसा मृत्युके रूपमें चुकाना पड़ता है। भारतीय वाङ्मयमें तथा आयुर्वेदमें मन:समाधि (मानसिक शान्ति)-का महत्त्व इसी कारण स्थान-स्थानपर वर्णित किया गया है। इसी मानसिक शान्तिको लक्ष्यकर महर्षि चरकने स्पष्ट कहा है—

प्रेत्य चेह च यच्छ्रेयः श्रेयः मोक्षे च यत्परम्।
मनःसमाधौ तत्सर्वमायत्तं सर्वदेहिनाम्॥

इस लोकमें (वर्तमान समयमें) मरणके अनन्तर—जन्मान्तरमें, इतना ही नहीं (मोक्ष) अपवर्गमें भी, प्राणिमात्रको जो कल्याण उपलब्ध होता है, वह सब मन:समाधिसे प्राप्त होता है। अत: यह मानसिक शान्ति केवल उपर्युक्त आचार-रसायनकी जीवन-चर्यामें रहनेसे प्राप्त होती है। आजके विश्व-मानवके लिये आयुर्वेदकी यह देन बड़े महत्त्वकी है। आयुर्वेदने शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुक रोगोंका मूल कारण प्रज्ञापराध माना है—'**प्रज्ञापराधः प्रधानं रोगाणाम्**' (चरक)।

स्वस्थ जीवनका आधार

(डॉ० श्रीशिवनन्दनप्रसादजी)

इधर जबसे मुझे होश हुआ है, मैं तरह-तरहकी बीमारियोंके नाम सुनता आ रहा हूँ और उनके रोगी भी प्रायः दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। शारीरिक विशेषज्ञ इस अनुसंधानमें बराबर लगे हैं और नयी-नयी ओषधियोंका आविष्कार तेजीसे कर रहे हैं, पर वही पुरानी कहावत यहाँ चरितार्थ होती है कि ***'मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।'*** अभी विशेषज्ञ अपने पहले अनुसंधानपर पूरी प्रसन्नता मना भी नहीं सके कि दूसरे रोगकी भयंकरता उनके सामने प्रकट हो गयी और फिर वे उसके अनुसंधानमें लग जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विशेषज्ञ रोग-निवारणार्थ तरह-तरहकी ओषधियोंका आविष्कार एवं रोग-उत्पत्तिके कारण ढूँढ़ रहे हैं, पर मनुष्यको नीरोग बनानेमें वे प्रायः असफल ही हो रहे हैं। वे बराबर इस बातका ढिंढोरा पीटते हैं कि संसारमें तरह-तरहके विषाक्त कीटाणुओंकी उत्पत्ति ही इसके प्रधान कारण हैं और वे उन कीटाणुओंको मारनेमें ही संलग्न हैं, पर असली कीटाणुओंको ढूँढ़ने एवं उनपर अधिकार पानेकी बात सोचते ही नहीं। परिणाम यह हो रहा है कि हम दिनोदिन विभिन्न नये रोगोंके शिकार होते जा रहे हैं। अतः यदि हम नीरोग होना चाहते हैं और आनेवाली संततिको भी प्रतिभाशाली एवं सुखी बनाना चाहते हैं तो हमें आन्तरिक कीटाणुओंका विनाश करनेकी अटल प्रतिज्ञा करनी होगी, अब आप कहेंगे कि 'आन्तरिक कीटाणु क्या हैं और उन्हें कैसे मारा जा सकता है?'

आजके वैज्ञानिक इस बातपर विश्वास रखते हैं कि रोगोत्पत्ति बाह्य कीटाणुओं, असंयम, दूषित खान-पान एवं मिश्रित खाद्य पदार्थोंके द्वारा होती है, पर यह उनका निरा भ्रम है। रोगोंकी उत्पत्तिके सहायक ये भले ही हो सकते हैं, पर मूल कारण ये नहीं हैं। रोग-उत्पत्तिके मूल कारण हैं—अन्तःकरणके कलुषित विचार एवं असत्य आचार-व्यवहार। यदि हम अपनी भावनाओंको पवित्र बनाये रखें तो रोग हमसे कोसों दूर रह सकता है। पर इतना कहनेसे आजके लोग यह माननेके लिये कदापि तैयार नहीं हैं कि ये विचार सत्य ही हैं। आजका युग भौतिक विज्ञानके पीछे दीवाना है और हर चीजको वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखता है तथा जबतक उसमें वैज्ञानिक तौरपर सत्यता नहीं पाता, वह हमारे विचारोंसे सहमत नहीं हो सकता।

यह तो सभी जानते हैं कि हमारे पूर्वज अधिक दूरदर्शी एवं विद्वान् थे और वे अपनी स्थिति पूर्णतः समझते थे। हमारे पूर्वज शरीरकी बनावट एवं उसके स्नायु-संचालनसे पूर्ण परिचित थे। आजका विज्ञान कितना भी आगे बढ़ जाय, पर वे शारीरिक ज्ञान, आजके वैज्ञानिकोंको प्राप्त नहीं हो सकते, क्योंकि ये भौतिकवादी हैं। आजके प्रमुख शरीर-विज्ञानवेत्ता यह बतानेमें पूर्ण असमर्थ हैं कि कौन-सी स्नायुमें विकार आनेसे कौन-कौन-सा रोग उत्पन्न हो सकता है? पर आज भी कुछ इने-गिने आयुर्वेदाचार्य तथा हकीम हैं, जो नाडी देखकर ही शरीर-विकारके कारण एवं उपचार बता सकते हैं, किंतु हजार डिग्री-प्राप्त आधुनिक डॉक्टर पूरे शरीरकी जाँच करनेके पश्चात् भी पूर्णरूपसे रोग और उसकी उत्पत्तिके कारण नहीं बता सकते। अतः कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे पूर्वज शारीरिक विकारोंकी उत्पत्तिके कारण एवं उसके उपचारका पूरा अनुभव रखते थे।

हम लोगोंके यहाँ कहावत प्रचलित है—***साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥*** यह पुरानी कहावत सभी जानते हैं, पर इसकी उपयोगितापर ध्यान नहीं देते। सत्य हमारे शरीर एवं परिवारके रक्षार्थ एक अमोघ यन्त्र है। यदि हम इसका मन, वचन एवं कर्मसे पालन करें तो दैहिक, भौतिक एवं दैविक प्रकोपोंसे बच सकते हैं तथा दूसरोंको भी बचा सकते हैं। सत्य वह कवच है, जिसे धारण करनेसे दुनियाकी सारी आपदाओं एवं विपत्तियोंसे मुक्ति मिल सकती है या ऐसा कहें कि वे आपके पास आनेतकसे डरेंगी।

यदि हम सत्यके विपरीत आचरण करते हैं,

अर्थात् असत्यका पालन करते हैं तो सारी विपत्तियोंका आवाहन करते हैं। असत्यद्वारा क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा, हिंसा आदि विकार उत्पन्न करनेवाले भाव मनमें उत्पन्न होंगे, जिससे हम दुःख ही भोगेंगे।

यह तो आप आये दिन देखते हैं कि बड़े लोग यानी धनी-मानी व्यक्ति सुखसे रहते हैं, पर उनका शरीर सुखी नहीं रहता। उन्हें तरह-तरहके रोग घेरे रहते हैं। शायद ही कोई ऐसा धनी व्यक्ति हो, जिसके घरमें कोई-न-कोई बड़ी बीमारी न हो और डॉक्टरोंके यहाँ अत्यधिक धन अपव्यय नहीं होता हो। धनहीनोंके घर भी बीमारियाँ आती हैं, पर कम, और आती भी हैं तो थोड़े समयके पश्चात् ही चली भी जाती हैं। यों तो बीमारी हमारे स्वभाव तथा कर्मके अनुसार ही उत्पन्न होती है। अमीरोंके घर बेईमानी तथा इसी तरहकी अनेक स्वार्थपरताके उदाहरण मिलते हैं, पर दीनोंके यहाँ उतनी बेईमानी न होकर अधिकांशतः सचाई और ईमानदारी ही होती है। ग़रीब अपने गाढ़े पसीनेकी कमाई खाता है और अमीर अपनी विलासिताका जीवन व्यतीत करता है। अब आप कहेंगे कि इससे रोग और उसकी उत्पत्तिका क्या सम्बन्ध है? सम्बन्ध है, विशेषतः महात्मा बुद्ध आदि हमारे पूर्वजोंने जो नियम अपने समाजके लिये बनाये हैं उनसे सिद्ध होता है कि झूठ, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध तथा असत्य आदि जितने भी मानस-विकार हैं—इनके सेवनसे ही शरीर, मन एवं बुद्धिमें विकार उत्पन्न होते हैं और उनसे बीमारियोंकी उत्पत्ति होती है। यदि आप कहेंगे कि नहीं, इससे बीमारी होनेका कोई कारण नहीं तो मैं थोड़ेमें इसका प्रमाण दे रहा हूँ।

मैं होमियोपैथीसे सम्बद्ध हूँ। मैंने अनुभव किया कि रोगकी उत्पत्ति एवं उसके उपचारके साधन भी न्यारे हैं। आप देखेंगे कि उसकी दवाओंका प्रयोग स्वस्थ शरीरपर होता है और स्वस्थ शरीरमें उस दवाके खानेके बाद जो-जो लक्षण पैदा होते हैं, यदि उसी लक्षणके अनुसार कोई रोगी आये तो उसकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरपर दी गयी थी। यदि कोई रोगी अधिक झूठ बोलता है, क्रोध करता है, जिद्दी है, कामी है, अस्वाभाविक जीवन-निर्वाह करता है और व्यसनी है तो उसके अनुसार ही दवा दी जायगी और उससे रोगीको स्वास्थ्य-लाभ होगा।

अब इससे सिद्ध होता है कि उपर्युक्त दुर्व्यसनोंके कारण उत्पन्न रोगकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरमें दी गयी थी तथा ऐसे ही लक्षण दिखायी दिये थे।

यदि आप यह सोचें कि इस प्रकारके दुर्व्यसनोंसे उत्पन्न दुःख केवल हमें ही भोगना पड़ेगा तो ऐसी बात भी नहीं है। आपके बाद आनेवाली संततिको भी दुःख भोगना पड़ेगा। वह कैसे?

गर्भमें संतान होनेके समय यदि उसकी माँ जिद्दी एवं क्रोधी हुई तो बच्चेको अवश्य पेटकी बीमारी होगी और इसी तरह अन्य व्यसनोंके द्वारा भी अलग-अलग रोग होते हैं। इन सबका उदाहरण देनेसे एक लम्बी कहानी बन जायगी। कभी-कभी आप देखते होंगे कि यदि कोई माँ क्रोधावस्थामें बच्चेको अपना दूध पिला देती है तो बच्चा तत्काल बीमार हो जाता है। इससे स्पष्ट दीखता है कि हमारे स्वभाव एवं विचार ही रोगोत्पत्तिके प्रधान कारण हैं। यदि हम वास्तवमें सुखी एवं नीरोग रहना चाहते हैं तो अपने विचारों, भावों एवं मनःप्रवृत्तियोंमें विशुद्धि, सत्यता एवं कोमलता लाना सीखें। इसीके द्वारा हम सुखी एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

बहुत-से लोगोंका यह विश्वास है कि सुखका साधन केवल धन ही है और इसलिये सब तरहसे धन-उपार्जन करनेमें ही वे अपना भला समझते हैं। फलस्वरूप उन्हें सुख तो मिलता नहीं, अपितु तरह-तरहके झमेले बढ़ जाते हैं और जीवन अशान्तिमय हो जाता है।

यदि मनुष्य किसी असाध्य रोगका शिकार हो गया है या नये-पुराने रोगोंसे पीडित है तो वह दवा आदिका प्रबन्ध तो करे ही, साथ-ही-साथ सत्य-सदाचारके पालन एवं असत्य-असदाचारके परित्यागका व्रत भी ले। आहार-व्यवहार एवं रहन-सहनमें सात्त्विकता लाये। यदि यह भी होना कठिन है तो केवल सत्य-पालन और शुद्ध मनसे ईश्वरका निरन्तर भजन तथा मनन ही करे। रोग कितना भी असाध्य हो, यदि वह

सत्यरूपसे ऐसा करेगा तो उसके मनमें शान्ति आयेगी और धीरे-धीरे उसे रोगसे भी मुक्ति मिलेगी। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अटल विश्वास और भक्तिपूर्वक की हुई थोड़ी-सी प्रार्थनासे ही कठिन रोगसे मुक्ति हुई है और करायी गयी है। यदि माँ-बाप या कोई सम्बन्धी किसी रोगके निवारणार्थ प्रार्थना करता है और यदि प्रार्थना सत्यरूपसे की जाती है तो वह अवश्य सुनी जाती है तथा रोगी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

दूसरोंके लिये प्रार्थना करनेकी रीति हर धर्मावलम्बियोंमें है। हम लोगोंके यहाँ महामृत्युञ्जय, चण्डीपाठ और ग्रह-दोष-निवारणार्थ जप-पाठ कराये जाते हैं, जिससे लाखोंकी संख्यामें लोग लाभ उठाते हैं। लोगोंका विश्वास मन्त्रपरसे उठता जा रहा है। इसका विशेष कारण है कि जिनके द्वारा यह जप-पाठ कराया जाता है, वे ही वास्तवमें अश्रद्धालु, दम्भी और असत्यवादी होते जा रहे हैं। अतः मन्त्रका प्रभाव ही नहीं हो पाता, यदि मनुष्य स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिये प्रार्थना करे तो उससे चिरस्थायी लाभ अवश्य होगा।

बहुधा लोग यह कहते हैं कि 'ईश्वर अन्यायी है या अमुक व्यक्तिकी प्रार्थना नहीं सुनता, अमुकके परिवारको असमय ही उठा लिया यद्यपि उसने लाखों मिन्नतें की थीं।' पर वास्तवमें उसने मिन्नतें की थीं या नहीं, उसकी प्रार्थना सत्य, सात्त्विक एवं मर्मस्पर्शी थी या नहीं, यह कोई नहीं बताता! मैं यह दावेके साथ कहता हूँ कि यदि कोई सत्य आचरण करनेवाला शुद्ध हृदयसे किसीके लिये प्रार्थना करे तो प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है। प्रार्थनाका प्रभाव प्रार्थना करनेवालेपर ही निर्भर करता है। उसे स्वयं ज्ञात हो जाता है कि उसकी प्रार्थना सुनी गयी या नहीं—बाबर और हुमायूँकी बीमारी और स्वास्थ्य-लाभकी बात तो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

एक बार मेरी छः वर्षकी बच्ची टाइफॉयडसे पीडित हुई और दो-चार दिनोंमें ही उसके मुँहसे तथा पाखानेके साथ खून आना शुरू हो गया। टाइफॉयडका यह बहुत बड़ा चिन्ताजनक लक्षण है। मैं निरन्तर उसके लिये प्रार्थना करता रहता था; पर हृदयमें भय बना रहता था। एक दिन खून नहीं आया, किंतु फिर भी मेरे मनमें काफ़ी भय बना हुआ था। प्रार्थना करने बैठा तो मन बहुत अशान्त था। मैंने मनमें धैर्य धरकर ईश्वरकी एकाग्रचित्तसे प्रार्थना की और प्रार्थनासे उठा तो मनमें शान्ति एवं साहसका अनुभव हुआ। कुछ देर बाद बच्चीने अधिक मात्रामें खूनका वमन किया। घरके लोग घबरा गये और पुनः डॉक्टरको बुलानेके लिये कहा; यद्यपि एक घंटे पूर्व ही डॉक्टर महोदय उसे देखकर गये थे। मैंने उन्हें बुलाया नहीं और शान्त तथा साहसभरे चित्तसे घरके लोगोंको भी सान्त्वना दी कि ईश्वर सब भला करेंगे। ईश्वरकी कृपा, उस रातके बाद बच्चीको खून आना बंद हो गया और दो-चार दिनोंमें ही वह स्वस्थ हो गयी।

इससे विश्वास होता है कि प्रार्थनाका प्रभाव अवश्य पड़ता है, किंतु उसमें विश्वास तथा एकाग्रता हो। संदेह, अविश्वास और परीक्षाके लिये की गयी प्रार्थना तो प्रार्थना ही नहीं होती। मेरा तो व्यक्तिगत विचार यही है कि हर व्यक्तिको ईश्वर-प्रार्थनासे किसी भी समय शान्ति प्राप्त हो सकती है।

हमारे पूर्वज हजारों वर्षोंतक स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे, जब कि हम सौ वर्ष भी नहीं जी पाते। ऐसा क्यों? इसलिये कि हमारे और उनके रहन-सहन एवं आचार-विचारमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। हम सात्त्विकतासे बहुत नीचे उतरकर तामसिक भूमिमें आ गये हैं। यदि आज भी हम पूर्ववत् आचरण करने लगें तो पुनः उतने ही समयतक जीनेका दावा कर सकते हैं।

अन्तमें हमारी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वे हमें सत्यता एवं सात्त्विकताका जीवन प्रदान करें। साथ ही सभी पाठक बन्धुओंसे भी मेरा निवेदन है कि सभी लोग सत्यता एवं शुद्धताका पालन करें तथा ईश्वर-भजनको अपने दैनिक जीवनमें स्थान दें, जिससे केवल वे ही नहीं, उनकी आनेवाली संतति भी नीरोग और सुखी जीवन व्यतीत करनेवाली हो।

प्राणायाम तथा उससे स्वास्थ्यकी सुरक्षा

(डॉ० श्रीनरेशजी झा शास्त्रचूडामणि)

मानव-जीवनकी सुरक्षा तथा आरोग्यप्राप्तिके लिये हमारे तपःपूत ऋषि-महर्षियोंने अनेक उपाय शास्त्रोंमें निर्दिष्ट किये हैं। उनमें प्राणायामकी साधना भी एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानोंके लिये ही नहीं, अपितु शरीरकी शुद्धि तथा आरोग्य-लाभपूर्वक दीर्घ जीवनकी प्राप्तिके लिये भी है। इसकी उपयोगिता तो इसीसे सिद्ध है कि इसका विश्लेषित वर्णन उपनिषदों, पातञ्जलादि योग-ग्रन्थों, चिकित्साग्रन्थों तथा प्रायः समस्त पुराणोंमें अनेकत्र चर्चित हैं। श्रौत-स्मार्त प्रत्येक कर्मकाण्डके प्रारम्भमें प्राणायाम-विधानकी आवश्यकता होती है; क्योंकि दैनिक कृत्य—संध्या-वन्दनादि तथा विविध संस्कारों, यज्ञों आदिमें प्रथमतः प्राणायामका ही विनियोग किया जाता है।

यह तो हुआ इसका आध्यात्मिक प्रयोजन, किंतु केवल इसी प्रयोजनके लिये ही यह नहीं किया जाता, अपितु इससे शरीरकी शुद्धि तथा आरोग्यपूर्वक दीर्घ जीवनकी प्राप्ति भी होती है।

अतः इस महिमामय शरीर-रक्षक प्राणायामके विषयमें जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक मानवका पुनीत कर्तव्य है।

प्राणायाम शब्द दो पदोंके योगसे बना है—प्राण और आयाम। इन दोनों पदोंमें दीर्घसन्धि करनेपर प्राणायाम शब्दकी निष्पत्ति होती है। यहाँ प्राण शब्दका अर्थ है—अपने शरीरसे उत्पन्न वायु और आयामका अर्थ है—निरोध (रोकना)। अर्थात् प्राणवायुको रोकना। जैसा कि कूर्म आदि पुराणोंमें कहा गया है कि—

प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्॥[1]

अर्थात् प्राणवायुका निरोध करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम आसनबद्ध होकर करना चाहिये। पातञ्जल-योगदर्शनमें इसका प्रामाणिक और विशिष्ट लक्षण किया गया है—

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥[2]

यहाँ आशय यह है कि पद्मासनादि सुस्थिर आसन[3] में स्थित होकर बाह्य वायुका आचमन—श्वास और कोष्ठगत वायुका निःसारण—प्रश्वास, इन दोनोंका गति-विच्छेद अर्थात् उभयाभाव प्राणायामकी सामान्य परिभाषा है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि इस लक्षणके द्वारा कुंभकमें तो दोष नहीं है, किंतु पूरक और रेचकमें आये अतिव्याप्ति दोषके निवारणार्थ स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासरूप विशिष्टाभाव यह जोड़ना चाहिये।

यह प्राणायाम इतना व्यापक है कि धर्मसूत्रों एवं पुराणोंमें इसके विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। कहीं पाँच प्राणादि वायुओंमें प्रथमका ही आयाम—निरोध निरूपित किया गया है। यहाँ यह माना जा सकता है कि पाँचों वायुओंका प्रतिनिधित्व प्रथम वायु प्राणमें ही हो। कहीं पाँचोंमें प्राथमिक दो प्राण-अपानवायुका आयाम और कहीं पाँचों वायुओंका एक स्थानमें धारण प्राणायाम माना गया है।

इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो दस प्रकारके वायुका क्रमसे अभ्यास करनेपर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। वहाँ भी प्रथम वायु प्राण दसोंका प्रभु होता है। इस प्रकार प्राणायामका विचार क्रमशः कूर्म, शिव और अग्निपुराणमें केवल प्राणके ही आयामसे निर्दिष्ट है।[4]

बौधायन धर्मसूत्र-वृत्तिमें श्वास-निरोधमात्र प्राणायाम कहा गया है।[5] इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद्, स्कन्द-मार्कण्डेय-पुराणोंमें प्राण-अपान-वायुका निरोध प्राणायाम

---

१. कूर्म०उ० ११। ३०, वायु० उत्तर० २७। २१, अग्नि० ३७२। ६।

२. पातञ्जलयोगदर्शन २। ४९।

३. पद्माख्यमासनं कृत्वा रेचकं पूरकं तथा। कुम्भकं च सुखासीनः प्राणायामं त्रिधाऽभ्यसेत्॥

(स्कन्द० माहेश्वर-खण्डमें कौमारिका खण्ड—५५। ३२)

४. कूर्म०उ० ११। ३०, शिव० वायु० उत्तर० २७। ११, अग्नि० ३७२। ६।

५. बौधायन० द्वि०प्र० ४। ६ वृत्तिमें।

कहा गया है। जैसा कि तत्तत् स्थानोंमें प्राणायामका लक्षण इस प्रकार—

प्राणापानसमायोगः प्राणायामो भवति।[1]
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः।[2]
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः।[3]

अब आइये—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—इन पाँच वायुओंके निरोधपर विचार करें। जैसा कि विश्वामित्रकल्पमें निर्दिष्ट है—

नासिकापुटमङ्गुल्या पञ्चभिर्वायुरोधनैः।
शनैः शनैस्तु निःशब्दः प्राणायामो निबोधयेत्॥[4]

अर्थात् अंगुलीसे नासिका-पुटको बंदकर पाँच-वायु (प्राणादि)-के निरोधसे धीरे-धीरे निःशब्द होनेको प्राणायाम जानना चाहिये।

इन पाँच प्रधान वायुओंके अतिरिक्त वेदव्यासजीने शिव[5] और अग्निपुराणमें शरीर-संचालन-हेतु पाँच और नवीन वायुओंका समावेश किया है, सब मिलाकर दस वायु हो जाते हैं। उपर्युक्त पाँचोंके अतिरिक्त नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक पाँच वायु शरीरमें विभिन्न कार्योंके लिये प्रवाहित होते हैं। इनमें धनञ्जय वायु शरीरमें सर्वव्यापी है। इनका क्रमसे अभ्यास करनेपर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। इसकी पुष्टि स्कन्दपुराणसे भी होती है। वहाँ कहा गया है कि—

चरतां सर्वतोऽसूनामेकदेशे तु धारणम्।
गुरूपदिष्टरीत्यैव प्राणायामः स उच्यते॥[6]

अर्थात् सब ओर विचरण करनेवाले प्राणादि वायुका गुरुके द्वारा उपदिष्ट रीतिसे जो एकदेशमें धारण किया जाय, वही प्राणायाम है। अतएव हठयोगप्रदीपिकाकारने कहा कि—

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्॥[7]

अर्थात् जबतक शरीरमें प्राणादि वायु स्थित हैं, तभीतक जीवका जीवन है। प्राणवायुके निकल जानेपर मरण सुनिश्चित है, अतः वायुका निरोध करना चाहिये।

इस सम्बन्धमें योगशास्त्रका उद्धरण देते हुए धर्म-विज्ञानमें कहा गया है कि प्राणादि वायु शरीरकी प्रधान शक्तियाँ होती हैं, वे ही संसारके रक्षक हैं, उन्हें वशमें करनेपर अन्य सब दोष स्वतः ही जीर्ण हो जाते हैं। ऐसे प्राण स्थूल और सूक्ष्म-भेदसे दो प्रकारके होते हैं। इन प्राणोंके ऊपर विजय प्राप्त करना ही प्राणायाम है।[8]

प्राणायामकी उपयोगिता तथा उससे शारीरिक स्वास्थ्य (आरोग्य)-लाभ

शरीरकी रक्षाके लिये जिस प्रकार अन्नकी उपयोगिता है, शरीरस्थ रोगनाशके लिये जैसे औषधियोंका विनियोग होता है, उसी प्रकार शरीरस्थ बाहरी और भीतरी (बाह्याभ्यन्तर) रोगोंके समूल नाशके लिये प्राणायामका प्रयोग होता है।

जैसा कि कहा भी गया है—

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥
हिक्का कासश्च श्वासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात्॥

अर्थात् समुचित प्राणायामद्वारा सभी रोगोंका नाश हो जाता है और अविधिपूर्वक प्राणायामके अभ्याससे सब रोग उत्पन्न हो सकते हैं। उनमें विशेषरूपसे हिचकी, खाँसी और श्वास (साँस)-का फूलना, सिर, कान एवं नेत्रमें वेदना आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इस आशयकी पुष्टि बृहन्नारदीय पुराणसे भी होती है। यथा—

शनैः शनैर्विजेतव्याः प्राणाः मत्तगजेन्द्रवत्।
अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयंकराः॥

आशय यह है कि मतवाले हाथीके समान प्राणायाम करते समय प्राण (वायु)-को अभ्यासद्वारा धीरे-धीरे जीतना चाहिये, अन्यथा भयंकर महारोग होनेकी सम्भावना रहती है।

योगशास्त्रानुमोदित पद्धतिसे तथा गुरुके द्वारा उपदिष्ट परम्परासे किये गये प्राणायामोंसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं और यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो रोग होना सुनिश्चित है।

---

१. शाण्डिल्योपनिषद् १।६। २. स्कन्द० माहेश्वर-खण्डमें कौमारिका खण्ड ५५।२९। ३. मार्कण्डेय० ३९।१२।
४. गायत्रीपञ्चाङ्ग—विश्वामित्रकल्प, श्लोक १५। ५. शिव० वायु० उत्तर० ३७।३५—४०। ६. स्कन्द० वैष्णव० ३०।४०।
७. हठयोगप्रदीपिका उप० २।३। ८. धर्म-विज्ञान द्वि०ख०पृ० ४६२।

अतः प्राणायाम करनेमें प्राचीन परम्पराका पालन आवश्यक है। प्राचीन परम्पराके पालनमें स्थान और काल आदिका ध्यान रखना आवश्यक है। जैसा कि कहा गया है—

आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽऽहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं ततः पश्चात् प्राणायामे च साधयेत्॥

अर्थात् प्राणायाम-साधनामें उपयुक्त स्थान, काल, परिमित आहार और नाडी-शुद्धि (वात-पित्त-कफकी) आवश्यक है।

रोग-नाशके अतिरिक्त मानसिक संतुलन रखनेमें भी प्राणायामका महान् उपयोग होता है। प्राणायामके निरन्तर अभ्याससे चित्तमें एकाग्रता आती है और इसके लिये पातञ्जलोक्त '**प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य**' अर्थात् कोष्ठगत वायुका नासिका (नाक)-के पुटोंद्वारा विशेष प्रयत्नसे प्रच्छर्दन—वमन, विधारण—विशेषरूपसे धारण करके प्राणायाम करे। मनुस्मृति, अमृतनादोपनिषद्, स्कन्द, ब्रह्म और श्रीमद्भागवतादि मान्य ग्रन्थोंमें इस सम्बन्धमें भूयसी चर्चा की गयी है।

प्राचीन कालमें प्राणायामके बलसे ही ऋषिगण दीर्घजीवी हुआ करते थे। महर्षि अत्रिने ऋक्षकुल पर्वतपर सौ वर्षतक प्राणायामके बलसे केवल वायु-पान करते हुए एक पैरपर स्थित होकर तपस्या की थी। जैसा कि श्रीमद्भागवत तथा घेरण्ड-संहितामें कहा गया है—

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः॥

× × ×

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी॥
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

अर्थात् प्राणायामसे आकाशगमनकी शक्ति आती है, प्राणायामसे समूल रोग-नाश होता है, शक्ति बढ़ती है, मानसिक संतुलन ठीक रहता है, चित्तमें आनन्दकी प्राप्ति होती है और प्राणायामी सब प्रकारसे नीरोग रहते हुए सुखी रहता है।

इतना ही नहीं, प्राणायामके सेवनसे शरीरमें फेफड़े (फुफ्फुस)-की शक्ति बढ़ती है, रुधिरकी शुद्धि होती है। समस्त नाडी-चक्रोंमें चैतन्य आता है।

ऐसे प्राणदायक प्राणायामके सेवनसे स्वस्थ एवं नीरोग रहकर पुरुषार्थचतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्तकर मानव-जीवनको सफल बनाया जा सकता है।

मानस-रोग

(पं० श्रीकृष्णगोपालजी शर्मा)

प्रभु जी रोग भयौ है भारी।
काम-वातकी उमग उठत नित, मोह-मूल दुःख झारी॥ १॥
क्रोध-पित्त कौ ताप चढ़ै तन, हो आपे ते भारी।
कफ अपार क्षण बर्ध-लोभ नित, ममता-दाद खुजारी॥ २॥
ईर्ष्या-खाज, विषाद-हर्षयुत, ग्रह (गर) गलगंड अपारी।
पर सुख जरनि, क्षयी, मन कुटिला, कुष्ठ दुष्टता भारी॥ ३॥
डमरुआ-अहं, कपट, मद, दम्भी, मान-नहरुआ चारी।
तृस्ना-उदर, बृद्धि ज्वर-मत्सर, इषना त्रिविध-तिजारी॥ ४॥
औषधि कोटि रोग नहिं नासत, पीड़हिं संतत भारी।
सदगुरु वैद्य सजीवनि दाता, शरण 'गुपाल' तुम्हारी॥ ५॥

स्वास्थ्य-रक्षामें योगासनोंका योगदान

[आरोग्य-प्राप्ति एवं स्वास्थ्य-रक्षामें योगासनोंका अभ्यास एक महत्त्वपूर्ण घटक है। यूँ तो योगका सम्बन्ध मनके स्थैर्य एवं चित्तवृत्तियोंके निरोधके माध्यमसे स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित होनेसे है, तथापि इस लक्ष्यकी प्राप्तिमें आसन-सिद्धि आवश्यक सोपान है। बिना आसन-सिद्धिके मनका स्थैर्य होना भी अत्यन्त कठिन है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मनकी अवस्थिति होती है और शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिये आसनोंका अभ्यास भी अपेक्षित है। आसनोंसे जहाँ न केवल शरीर-सौष्ठव, स्फूर्ति आदि प्राप्त होती है, वहीं श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रिया नियन्त्रित होती है, मनकी स्थिरता प्राप्त होती है, सम्यक् ध्यान लगता है, शरीरमें रक्त-संचार उचित रीतिसे होता है, शरीरकी मांसपेशियोंमें प्रसार एवं संकुचनकी प्रक्रिया तीव्र होती है, शरीरमें विद्यमान त्रिदोषों (कफ, वात, पित्त)-का संतुलन बना रहता है और रोगोंके निवारणमें सहायता मिलती है। स्वयं आचार्य चरकका कहना है कि योगासनोंके अभ्यास तथा सम्यक् व्यायामसे शरीरमें हलकापन, कार्य करनेकी शक्ति, शरीरमें स्थिरता, दुःख सहन करनेकी क्षमता, शरीरमें बढ़े हुए तथा कुपित दोषोंकी क्षीणता और शरीरकी मन्द अग्नि उद्दीप्त होती है। यथा—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं दुःखसहिष्णुता। दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥

*इसी प्रकार 'हठयोगप्रदीपिका' ने आसनोंके लाभ बताते हुए कहा कि योगासनोंसे शरीर एवं मनकी स्थिरता, आरोग्य और शरीरकी लघुता प्राप्त होती है— '**स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्।**'*

*इस प्रकार योगासनों और स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनेक रोगोंके निदानमें ये सहायक हैं। इसी दृष्टिसे यहाँ कुछ प्रमुख आसन चित्रोंके साथ दिये जा रहे हैं, इनकी सम्यक् प्रक्रियाका अवज्ञान कर लाभ उठाना चाहिये। —**सं०**]*

(क) चित लेटकर करनेके आसन

१-पादाङ्गुष्ठ-नासाग्र-स्पर्शासन—पृथिवीपर समसूत्रमें पीठके बल सीधा लेट जाय। दृष्टिको नासाग्रमें जमाकर दायें पैरके अँगूठेको पकड़कर नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करे, इसी प्रकार पुनः-पुनः करे, मस्तक,

बायाँ पैर और नितम्ब पृथिवीपर जमे रहें। इसी प्रकार दायें पैरको फैलाकर बायें पैरके अँगूठेको नासिकाके अग्रभागसे स्पर्श करे। फिर दोनों पैरोंके अँगूठोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करे। कई दिनके अभ्यासके पश्चात् अँगूठा नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करने लगेगा।

फल—कमरका दर्द, घुटनेकी पीडा, कन्द-स्थानकी शुद्धि एवं उदर-सम्बन्धी सर्वरोगोंका नाश करता है। यह आसन स्त्रियोंके लिये भी लाभदायक है।

२-पश्चिमोत्तानासन—दोनों पाँवोंको लम्बा सीधा फैलावे। दोनों हाथोंकी अँगुलियोंसे दोनों पैरोंकी अँगुलियोंको खींचकर, शरीरको झुकाकर माथेको घुटनेपर टिका दे, यथाशक्ति वहींपर टिकाये रहे। प्रारम्भमें दस-बीस बार शनैः-शनैः रेचक करते हुए मस्तकको घुटनेपर ले जाय और इसी प्रकार पूरक करते हुए ऊपर उठाता चला जाय।
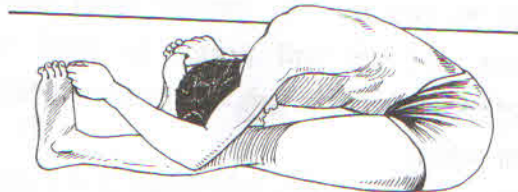
फल—पाचनशक्तिको बढ़ाना, कोष्ठबद्धता दूर करना, सब स्नायु और कमर तथा पेटकी नस-नाडियोंको शुद्ध एवं निर्मल करना, बढ़ते हुए पेटको पतला करना इत्यादि। इससे मन्दाग्नि, कृमि-विकार तथा वात-विकार आदि रोग दूर होते हैं। इस आसनको कम-से-कम दस मिनटतक करते रहनेके पश्चात् उचित लाभ प्रतीत होगा।

३-सम्प्रसारण भू-नमनासन—(विस्तृत पाद भू-नमनासन) पैरोंको लम्बा करके यथाशक्ति चौड़ा फैलावे। तत्पश्चात् दोनों पैरोंके अँगूठेको पकड़कर सिरको भूमिमें टिका दे।

फल—इससे ऊरु और जङ्घाप्रदेश तन जाते हैं। टाँग, कमर, पीठ और पेट निर्दोष होकर वीर्य स्थिर होता है।

४-जानुशिरासन—एक पाँवको सीधा फैलाकर दूसरे पाँवकी एड़ी गुदा और अण्डकोषके बीचमें लगाकर उसके पाद-तलसे फैले हुए पाँवकी रानको दबावे। पैरकी अँगुलियोंको दोनों हाथोंसे खींचकर धीरे-धीरे आगेको झुकाकर माथेको पसारे हुए घुटनेपर लगा दे। इसी प्रकार दूसरे पाँवको फैलाकर माथेको घुटनेपर लगावे।

फल—इस आसनके सब लाभ पश्चिमोत्तानासनके समान हैं। वीर्य-रक्षा तथा कुण्डलिनी जाग्रत् करनेमें सहायक होना यह इसमें विशेषता है। इसको भी वास्तविक लाभ-प्राप्तिके लिये कम-से-कम दस मिनट करना चाहिये।

५-हृदयस्तम्भासन—चित लेटकर दोनों हाथोंको सिरकी ओर तथा दोनों पैरोंको आगेकी ओर फैलावे। फिर पूरक करके जालन्धर-बन्धके साथ दोनों हाथों और दोनों पैरोंको छः-सात इंचकी ऊँचाईतक धीरे-धीरे उठावे और वहींपर यथाशक्ति ठहरावे। जब श्वास निकालना चाहे, तब पैरों और हाथोंको जमीनपर रखकर धीरे-धीरे रेचक करे।
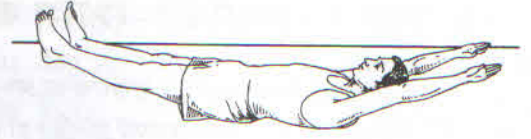
फल—छाती, हृदय एवं फेफड़ेका मजबूत और शक्तिशाली होना और पेटके सब प्रकारके रोगोंका दूर होना।

६-उत्तानपादासन—चित लेटकर शरीरके सम्पूर्ण स्नायु ढीले कर दे, पूरक करके धीरे-धीरे दोनों पैरोंको (अँगुलियोंको ऊपरकी ओर खूब ताने हुए) ऊपर उठावे, जितनी देर आरामसे रख सके रखकर पुनः धीरे-धीरे भूमिपर ले जाय और श्वासको धीरे-धीरे रेचक कर दे। प्रथम बार तीस डिग्रीतक, दूसरी बार पैंतालीस डिग्रीतक, तीसरी बार साठ डिग्रीतक पैरोंको उठावे। इस आसनके नौ भेद किये गये हैं—

(क) द्विपाद-चक्रासन—हाथोंके पंजे नितम्बके नीचे रख, चित लेट, एक पैर घुटनेमें मोड़कर घुटनेको पेटके पास लाकर तथा दूसरा पैर किंचित् ऊपर उठाकर बिलकुल सीधा रखे और इस प्रकार पैर चलावे जैसे साइकिलपर बैठकर चलाते हैं।

इससे नितम्ब, कमर, पेट और टाँगें निर्दोष होकर वीर्य शुद्ध, पुष्ट और स्थिर रहता है।

(ख) उत्थित-द्विपादासन—चित लेटकर दोनों पैर ४५ डिग्रीतक ऊपर उठाकर जमीनसे बिना लगाये धीरे-धीरे ऊपर-नीचे करे।
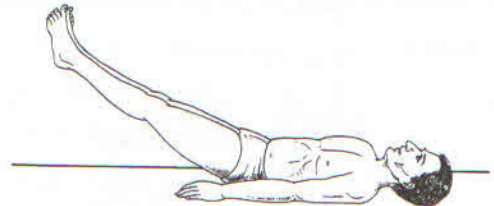
इससे पेटके स्नायु मजबूत होते हैं और मलत्याग-क्रिया ठीक होती है।

(ग) उत्थित-एकैक-पादासन—चित लेटकर, दोनों पैर (एक पैर २० डिग्रीमें और दूसरा पैर ४५ डिग्रीमें) अधरमें रखकर जमीनसे बिना लगाये हुए ऊपर-नीचे करे।
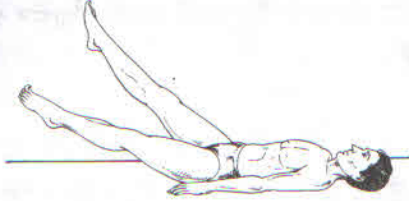
इससे कमरके स्नायु मजबूत होते हैं, मलोत्सर्ग-क्रिया ठीक होती है, वीर्य शुद्ध और स्थिर होता है।

(घ) उत्थित-हस्त-मेरुदण्डासन—हाथ-पैर एक रेखामें सीधे फैलाकर चित लेटे। दोनों हाथ उठाकर पैरोंकी ओर ले जाय। इस प्रकार पुनः-पुनः पीठके बल लेटकर पुनः-पुनः उठे।
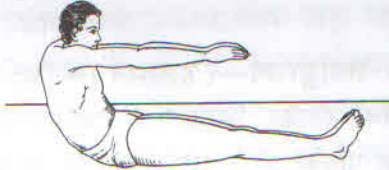
इससे कमर, छाती, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(ङ) शीर्षबद्ध-हस्त-मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठके बल लेटकर, सिरके पीछे हाथ बाँधे, बिना पैर उठाये कमरसे शरीर ऊपर उठावे।
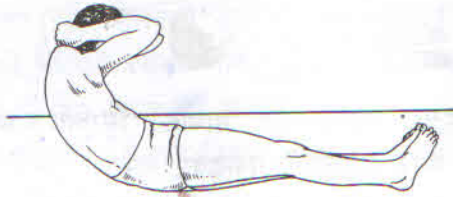
इससे पेट, छाती, गर्दन, पीठ और रीढ़के दोष दूर होते हैं।

(च) जानु-स्पृष्ट-भाल-मेरुदण्डासन—उपर्युक्त आसन करके घुटना मोड़कर बारी-बारी धीरे-धीरे माथेमें लगावे, नीचेका पैर भूमिपर टिका हुआ सीधा रहे।
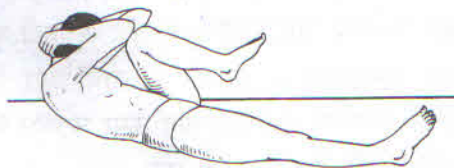
इससे यकृत् (जिगर), प्लीहा (तिल्ली), फेफड़े आदि नीरोग होकर पेट, गर्दन, कमर, रीढ़, ऊरु बलवान् और निर्विकार होते हैं।

(छ) उत्थित-हस्तपाद-मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठके बल लेटकर हाथ-पैर दोनों एक साथ ऊपर उठावे और पुनः पूर्ववत् एक रेखामें ले जाये, चार-पाँच बार ऐसा करे।

इससे पेट, छाती, कमर और ऊरु निर्दोष होते हैं।

(ज) उत्थित-पाद-मेरुदण्डासन—पैर सामनेको फैलाकर हाथोंकी कोहनियोंके बल धड़को उठावे, अनन्तर पैर ४५ डिग्रीतक ऊपर उठाकर ऊपर-नीचे करे।
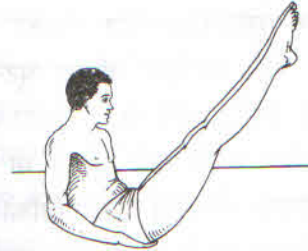
इससे कमर, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(झ) भालस्पृष्ट-द्विजानु-मेरुदण्डासन—ऊपर कहे अनुसार ही करे, किंतु इसके अतिरिक्त सिर दोनों घुटनोंमें लगा दे।

इससे पीठ, छाती, रीढ़, गर्दन और कमरके सब विकार दूर होते हैं।

७-हस्त-पादाङ्गुष्ठासन—चित लेटकर दोनों नासिकासे पूरक करके बायें हाथको कमरके निकट लगाये रखे, दूसरे दायें हाथसे दायें पैरके अँगूठेको पकड़े

और समूचे शरीरको जमीनपर सटाये रखे, दायाँ हाथ और पैर ऊपरकी ओर उठाकर तना हुआ रखे।

इसी प्रकार दायें हाथको दायीं ओर कमरसे लगाकर बायें हाथसे बायें पैरके अँगूठेको पकड़कर पूर्ववत् करना चाहिये। फिर दोनों हाथोंसे दोनों पैरोंके अँगूठे पकड़कर उपर्युक्त विधिसे करना चाहिये।

फल—सब प्रकारके पेटके रोगोंका दूर होना, हाथ-पैरोंका रक्तसंचार और बलवृद्धि।

८-पवन-मुक्तासन—चित लेटकर पहले एक पाँवको सीधा फैलाकर दूसरे पाँवको घुटनेसे मोड़कर पेटपर लगाकर दोनों हाथोंसे अच्छी प्रकार दबाये। फिर इस पाँवको सीधा करके दूसरे पाँवसे भी पेटको खूब इसी प्रकार दबावे। तत्पश्चात् दोनों पाँवोंको इसी प्रकार दोनों हाथोंसे पेटपर दबावे। पूरक करके कुम्भकके साथ करनेमें अधिक लाभ होता है।

फल—उत्तानपादासनके समान ही इसके सब लाभ हैं। वायुको बाहर निकालनेमें तथा शौचशुद्धिमें विशेषरूपसे सहायक होता है, बिस्तरपर लेटकर भी किया जा सकता है, देरतक कई मिनटतक करते रहनेसे वास्तविक लाभकी प्रतीति होगी।

९-ऊर्ध्व-सर्वाङ्गासन—भूमिपर चित लेटकर दोनों पैरोंको तानकर, धीरे-धीरे कन्धों और सिरके सहारेसे पूर्ण शरीरको ऊपर खड़ा कर दे। आरम्भमें हाथोंके सहारेसे उठावे, कमर और पैर सीधे रहें, दोनों पैरोंके अँगूठे दोनों आँखोंके सामने रहें। मस्तक कमजोर होनेके कारण जो शीर्षासन नहीं कर सकते हैं, उनको इस आसनसे लगभग वही लाभ प्राप्त हो सकते हैं। एक पाँवको आगे और दूसरेको पीछे इत्यादि करनेसे इसके कई प्रकार हो जाते हैं। इसमें ऊर्ध्व-पद्मासन भी लगा सकते हैं।

फल—रक्तशुद्धि, भूखकी वृद्धि और पेटके सब विकार दूर होते हैं। सब लाभ शीर्षासनके समान जानने चाहिये।

१०-सर्वाङ्गासन—(हलासन)—चित लेटकर दोनों पावोंको उठाकर, सिरके पीछे जमीनपर इस प्रकार लगावे कि पाँवके अँगूठे और अँगुलियाँ ही जमीनको स्पर्श करें, घुटनोंसहित पाँव सीधे समसूत्रमें रहें, हाथ पीछे भूमिपर रहे।

दूसरा प्रकार—दोनों हाथोंको सिरकी ओर ले जाकर पैरके अँगूठोंको पकड़कर ताने।

फल—कोष्ठबद्धता दूर होना, जठराग्निका बढ़ना, आँतोंका बलवान् होना, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत् तथा अन्य सब प्रकारके रोगोंकी निवृत्ति और क्षुधाकी वृद्धि।

११-चक्रासन—चित लेटकर हाथों और पैरोंके पंजे भूमिपर लगाकर कमरका भाग ऊपर उठावे। हाथ-पैरोंके पंजे जितने पास-पास आ सकें, उतने लानेका यत्न

करे। यह आसन खड़ा होकर पीछेसे हाथोंको जमीनपर रखनेसे भी होता है।

फल—कमर और पेटके स्थानको इससे अधिक लाभ पहुँचता है, जिसका पृष्ठवंश सदा आगेकी ओर झुकता है, उसका दोष इस आसनद्वारा विशुद्ध झुकाव होनेसे दूर हो जाता है।

१२-शीर्षासन—जमीनपर एक मुलायम गोल लपेटा हुआ वस्त्र रखकर अपने मस्तकको उसपर रखे। फिर दोनों हाथोंके तलोंको मस्तकके पीछे लगाकर शरीरको उलटा ऊपर उठाकर सीधा खड़ा कर दे, इसे 'शीर्षासन' कहते हैं। प्रारम्भमें किसी दीवाल आदिके सहारे करते हुए अभ्यास बढ़ाना चाहिये। इसमें सिर नीचे और पैर ऊपर होता है, अत: इसे 'विपरीतकरणी मुद्रा' भी कहते हैं। कोई-कोई शीर्षासनको 'कपाली' नामसे भी पुकारते हैं। पैरसे सिरतक सारा शरीर एक लम्बी सीधी-रेखामें होना चाहिये। इस आसनमें पैरोंकी ओरसे रक्तका प्रवाह मस्तिष्ककी ओर होने लगता है। इसलिये इस आसनको करनेके बाद शवासन करना चाहिये, जिससे रक्तकी गति सम हो जाय। पद्मासनके साथ भी इसे किया जा सकता है।

जिनका मस्तिष्क निर्बल और उष्ण रहता है, नेत्र सदा लाल रहते हैं, जिन्हें उर:क्षत, क्षय, हृदयकी गतिवृद्धि, श्वासरोगका तीक्ष्ण प्रवाह, वमन, हिक्का, उन्माद आदि रोग हों, उनके लिये यह आसन हानिकर है, अत: उन्हें नहीं करना चाहिये। भोजनके बाद या रात्रिमें इसका अभ्यास करना हानिकर होता है।

फल—इस आसनका अभ्यास करनेसे वात, पित्त और कफदोषसे उत्पन्न सब रोग, ज्वर, कास, श्वास, उदररोग, कटिवात, अर्धाङ्ग, ऊरुस्तम्भ, वृषणवृद्धि, नाडीव्रण, भगंदर, कुष्ठ, पाण्डु, कामला, प्रमेह तथा अन्त्रवृद्धि आदि रोग दूर हो जाते हैं। शारीरिक निर्बलता दूर हो जाती है और शरीर नीरोग और ऊर्जस्वी हो उठता है।

१३-शवासन (विश्रामासन)—शरीरके सब अङ्गोंको ढीला करके मुर्देके समान लेट जाय। शवके समान निश्चेष्ट लेटे रहनेसे इसे 'शवासन' कहते हैं। सब आसनोंके पश्चात् थकान दूर करने और चित्तको विश्राम देनेके लिये इस आसनको करे।

(ख) पेटके बल लेटकर करनेके आसन

१४-मस्तक-पादाङ्गुष्ठासन—पेटके बल लेटकर, सारे शरीरको मस्तक और पैरोंके अँगूठेके बलपर उठाकर कमानके सदृश शरीरको बना दे। शरीरको उठाते हुए पूरक, ठहराते हुए कुम्भक और उतारते हुए रेचक करे।
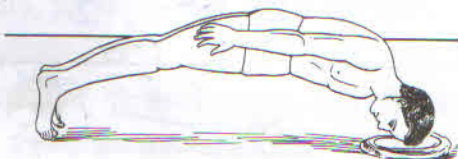
फल—मस्तक, छाती, पैर, पेटकी आँतें तथा सम्पूर्ण शरीरकी नाडियाँ शुद्ध, नीरोग और बलवान् होती हैं। पृष्ठवंश एवं मेरुदण्डके लिये विशेष लाभ पहुँचाता है।

१५-नाभ्यासन—पेटके बल समसूत्रमें लेटकर दोनों हाथोंको सिरकी ओर आगे दो हाथकी दूरीपर एक-दूसरे हाथसे अच्छी तरह फैलावे, दोनों पैरोंको भी दो हाथकी दूरीपर ले जाकर फैलावे। फिर पूरक करके

केवल नाभिपर समूचे शरीरको उठावे। पैरों और हाथोंको एक या डेढ़ हाथकी ऊँचाईपर ले जाय, सिर और छातीको आगेकी ओर उठाये रहे। जब श्वास बाहर निकलना चाहे, तब हाथों और पैरोंको जमीनपर रखकर रेचक करे।
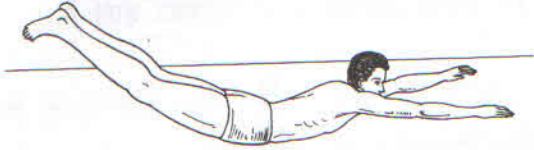
फल—नाभिकी शक्तिका विकास होना, मन्दाग्नि, अजीर्णता, वायु-गोला तथा अन्य पेटके रोगोंका तथा वीर्यदोषका दूर होना।

१६-**मयूरासन**—दोनों हाथोंको मेज अथवा भूमिपर जमाकर, दोनों हाथोंकी कोहनियाँ नाभिस्थानके दोनों पार्श्वसे लगाकर सारे शरीरको उठाये रहे। पाँव जमीनपर लगे रहनेसे हंसासन बनता है।
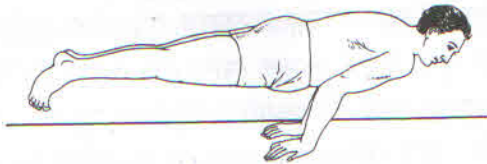
फल—जठराग्निका प्रदीप्त होना, भूख लगना, वात-पित्तादि दोषोंको तथा पेटके रोगों गुल्म-कब्जादिको दूर करना और शरीरको नीरोग रखना। वस्ति तथा एनिमाके पश्चात् इसके करनेसे पानी तथा आँव जो पेटमें रह जाते हैं, वह निकल जाते हैं, मेरुदण्ड सीधा होता है।

१७-**भुजङ्गासन (सर्पासन)**—भुजङ्गासनके निम्न तीन भेद किये गये हैं—

(क) उत्थितैकपाद-भुजङ्गासन—पेटके बल लेटकर हाथ छातीके दोनों ओरसे कोहनियोंमेंसे घुमाकर भूमिपर टिकावे, भुजङ्गके सदृश छाती ऊपरको उठाकर दृष्टि सामने रखे, एक पैर भूमिपर टिका रहे, दूसरा पैर घुटनेको बिना मोड़े जितना जा सके ऊपर उठावे। इसी प्रकार बारी-बारीसे पैरोंको नीचे-ऊपर करे।

फल—इससे कटि-दोष, यकृत्, प्लीहा आदिके विकार दूर होते हैं।

(ख) भुजङ्गासन—पैरोंके पंजे उलटी ओरसे भूमिपर टिकाकर हाथोंको भी भूमिपर किञ्चित् टेढ़े रखकर धड़को कमरसे उठाकर भुजङ्गाकार बनावे।
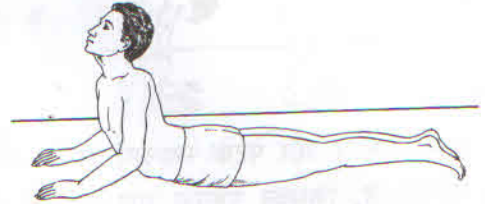
फल—पेट, छाती, कमर, ऊरु, मेरुदण्ड आदिके सब विकार दूर होते हैं।

(ग) सरलहस्त-भुजङ्गासन—हाथोंको भूमिपर सीधा रखकर पैरोंको पीछेकी ओर ले जाकर दोनों हाथोंके बीच कमर आ जाय। इस रीतिसे कमर झुकाकर छाती और गर्दनको भरसक ऊपर उठाकर सीधे आकाशकी ओर देखे। इससे पेटकी चरबी निकल जाती है।

फल—पेट, कमर और गर्दनके सब विकार दूर होते हैं।

१८-**शलभासन**—शलभ टिड्डीको कहते हैं। पेटके बल लेटकर दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको मुट्ठी बाँधकर कमरके पास लगावे, तत्पश्चात् धीरे-धीरे पूरक करके छाती तथा सिरको जमीनमें लगाये हुए हाथोंके बल एक पैरको यथाशक्ति एक-डेढ़ हाथकी ऊँचाईपर ले जाकर ठहराये रहे। जब श्वास निकलना चाहे, तब धीरे-धीरे पैरको जमीनपर रखकर शनैः-शनैः रेचक करे। इसी प्रकार दूसरे पैरको उठावे, फिर दोनों पैरोंको उठावे।
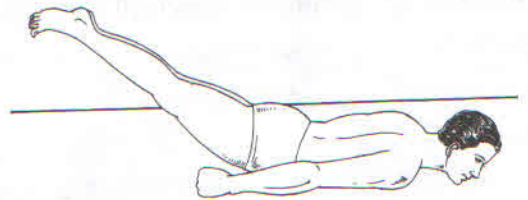
फल—जंघा, पेट, बाहु आदि भागोंको लाभ पहुँचाता है। पेटकी आँतें मजबूत होती हैं और सब प्रकारके उदर-विकार दूर होते हैं।

१९-धनुरासन—पेटके बल लेटकर दोनों हाथोंको पीठकी ओर करके दोनों पैरोंको पकड़ लेवे और शरीरको वक्र-भावसे रखे। कहीं-कहीं इस आसनको वज्रासनकी भाँति एड़ियोंपर बैठकर पीछेकी ओर झुककर करना बतलाया है।
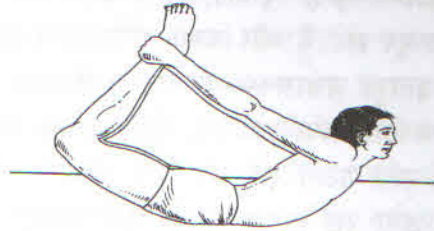
फल—कोष्ठबद्धादि उदरके सब विकारोंका दूर होना, भूख तथा जठराग्निका प्रदीप्त होना।

(ग) बैठकर करनेके आसन

२०-मत्स्येन्द्रासन—इसको पाँच भागोंमें विभक्त करनेमें सुगमता होगी—

(क) बायें पाँवका पंजा दायें पाँवके मूलमें इस प्रकार रखे कि उसकी एड़ी टूँडीमें लगे, अँगुलियाँ पाल्थीके बाहर न हों।

(ख) दायाँ पाँव बायें घुटनेके पास, पंजा भूमिपर लगाकर रखे।
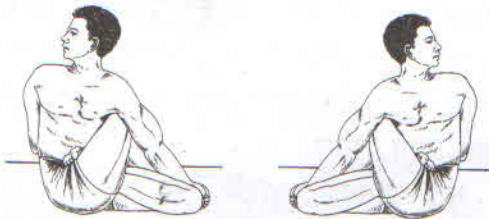
(ग) बायाँ हाथ दायें घुटनेके बाहरसे चित डालकर उसकी चुटकीमें दायें पाँवका अँगूठा पकड़े, उस दायें पाँवके पंजेको बाहर सटाकर रखे।

(घ) दायाँ हाथ पीठकी ओरसे फिराकर उससे बायें पैरकी जंघा पकड़ ले।

(ङ) मुख तथा छाती पीछेकी ओर फिराकर ताने तथा नासाग्रमें दृष्टि रखे। इसी प्रकार दूसरी ओरसे भी करे।

फल—पीठ, पेट, पाँव, गला, बाहु, कमर, नाभिके निचले भाग तथा छातीके स्नायुओंका अच्छा खिंचाव होता है। जठराग्नि प्रदीप्त और पेटके सब रोग—आमवात, परिणामशूल तथा आँतोंके सब रोग नष्ट होते हैं। अतिसार, ग्रहणी, रक्तविकार, कृमि, श्वास, कास, वातरोग आदि दूर होकर स्वास्थ्य-लाभ होता है।

२१-वृश्चिकासन—कोहनीसे पंजेतकका भाग भूमिपर रखकर उसके सहारे सब शरीरको सँभालकर दीवालके सहारे पाँवको ऊपर ले जाय, तत्पश्चात् पाँवको घुटनोंमें मोड़कर सिरके ऊपर रख दे।

दूसरे प्रकारसे केवल पंजोंके ऊपर ही सब शरीरको सँभालकर रखनेसे भी यह आसन किया जाता है।
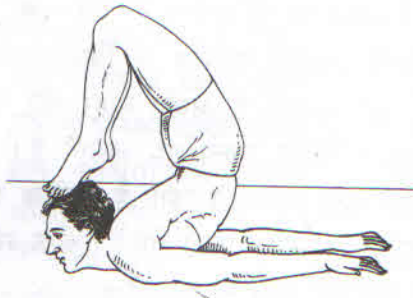
फल—हाथों और बाहोंमें बलवृद्धि, पेट तथा आँतोंका निर्दोष होना, शरीरका फुर्तीला और हलका होना, मेरुदण्डका शुद्ध और शक्तिशाली होना, तिल्ली, यकृत् एवं पाण्डु रोग आदिका दूर होना।

२२-उष्ट्रासन—वज्रासनके समान हाथोंसे एड़ियोंको पकड़कर बैठे। पश्चात् हाथोंसे पाँवोंको पकड़े हुए नितम्बोंको उठाये, सिर पीछे पीठकी ओर झुकावे और पेट भरसक आगेकी ओर निकाले।

फल—यकृत्, प्लीहा, आमवात आदि पेटके सब रोग दूर होते हैं और कण्ठ नीरोग होता है।

२३-सुप्त वज्रासन—वज्रासन करके चित लेटे, सिरको जमीनसे लगा हुआ रखे, पीठके भागको भरसक जमीनसे ऊपर उठाये रखे और दोनों हाथोंको बाँधकर छातीके ऊपर रखे अथवा सिरके नीचे रखे।

फल—पेट, छाती, गर्दन और जंघाओंके रोगोंको दूर करता है।

आरोग्यके लिये योगाभ्यास

(चक्रवर्ती श्रीरामाधीनजी चतुर्वेदी)

रोगका अभाव अरोग है और उस अरोगका भाव या धर्म आरोग्य है, जो शरीरकी अरोगता या स्वास्थ्यका बोधक है। भङ्गार्थक रुज् धातुका घञ् प्रत्ययसे योग होनेपर 'रोग' पद निष्पन्न होता है। इसके अभावके लिये नञ् समासके द्वारा नीरोगार्थक अरोग पद व्यवहृत होता है, जिसका धर्म ही आरोग्य है। तन-मनसे स्वस्थ रहना, किसी प्रकारका शैथिल्य या विकार उत्पन्न न होना ही आरोग्य-भाव है अर्थात् बाहर और भीतरसे अपने-आपको नीरोग रखना ही आरोग्य है। इसीके लिये मनुष्य सदा प्रयत्नशील रहता है, क्योंकि शरीरके नीरोग रहनेपर ही पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। चरक-संहिताके सूत्रस्थान-प्रकरणमें कहा भी गया है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।' (१।१५)

महाकवि कालिदासने भी कहा है—'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' (कुमारसम्भव ५।३३) अर्थात् धर्मका पहला साधन शरीर ही है। अतः मनुष्यको शरीरके स्वास्थ्यपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रायः शरीरमें कोई-न-कोई व्याधि रहती ही है। इसीलिये शरीरको रोगका घर कहा गया है—'**शरीरं व्याधिमन्दिरम्**' जिसके निवारणके लिये आयुर्वेद आदि शास्त्र हैं। योगाभ्यास भी व्याधि-निवारणका एक सिद्ध साधन है; क्योंकि शरीरकी व्याधिका मूल कारण मानसिक आधि है।

संसारके जितने भी अनर्थ हैं, उनमें अव्यवस्थित चित्त ही कारण माना गया है। इसीलिये चित्तके व्यापारको रोकनेके लिये 'पातञ्जलयोगसूत्र' में सर्वप्रथम '**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**' कहा गया है। क्योंकि मानसिक व्यग्रताका प्रभाव बाहरी शरीरपर पड़ता है, जिससे शरीर दुर्बल होकर अनेक व्याधियोंसे ग्रस्त हो जाता है। अतः जिनका मानसिक व्यापार मर्यादित होता है वे कभी शोक-मोह तथा शारीरिक रोगसे अभिभूत नहीं होते। यही कारण है कि योगी सदा अरोगी तथा दीर्घजीवी होता है। योगके बलसे ही वह क्षुधा-पिपासासे रहित होकर गुफा-निवासी बन जाता है। यदि साधारण मनुष्य भी मनको संयमित करके आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि योगाङ्गोंका अभ्यास करना प्रारम्भ कर दे तो वह भी थोड़े ही दिनोंमें अपने-आपको तन-मनसे स्वस्थ अनुभव करने लगेगा।

भूख-प्यासकी निवृत्तिके लिये शरीरके कण्ठकूप (छिद्र)-में संयम करनेका निर्देश पातञ्जलयोगसूत्रमें इस प्रकार है—'**कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः**' (३।३०)। भूख और प्यासको रोकना बड़ा कठिन कार्य है, किंतु इस यौगिक क्रियाके द्वारा उनको भी वशमें किया जा सकता है। इस योग-विद्याके जानकार विश्वामित्र मुनि थे, जिन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणको इसे प्रदान किया था। इसका उल्लेख श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकार है—

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥ (१।२०९।७-८)

योगाभ्यासके बलसे मनुष्य स्वस्थ, तेजस्वी तथा दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। तभी तो भगवान्‌के वाहक पक्षिराज गरुडने काकभुशुण्डिजीके दीर्घायुष्यके विषयमें प्रश्न करते हुए कहा कि—

तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।

फल—यकृत्, प्लीहा, आमवात आदि पेटके सब रोग दूर होते हैं और कण्ठ नीरोग होता है।

२३-सुप्त वज्रासन—वज्रासन करके चित लेटे, सिरको जमीनसे लगा हुआ रखे, पीठके भागको भरसक जमीनसे ऊपर उठाये रखे और दोनों हाथोंको बाँधकर छातीके ऊपर रखे अथवा सिरके नीचे रखे।

फल—पेट, छाती, गर्दन और जंघाओंके रोगोंको दूर करता है।

आरोग्यके लिये योगाभ्यास

(चक्रवर्ती श्रीरामाधीनजी चतुर्वेदी)

रोगका अभाव अरोग है और उस अरोगका भाव या धर्म आरोग्य है, जो शरीरकी अरोगता या स्वास्थ्यका बोधक है। भङ्गार्थक रुज् धातुका घञ् प्रत्ययसे योग होनेपर 'रोग' पद निष्पन्न होता है। इसके अभावके लिये नञ् समासके द्वारा नीरोगार्थक अरोग पद व्यवहृत होता है, जिसका धर्म ही आरोग्य है। तन-मनसे स्वस्थ रहना, किसी प्रकारका शैथिल्य या विकार उत्पन्न न होना ही आरोग्य-भाव है अर्थात् बाहर और भीतरसे अपने-आपको नीरोग रखना ही आरोग्य है। इसीके लिये मनुष्य सदा प्रयत्नशील रहता है, क्योंकि शरीरके नीरोग रहनेपर ही पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। चरक-संहिताके सूत्रस्थान-प्रकरणमें कहा भी गया है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।' (१।१५)

महाकवि कालिदासने भी कहा है—'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' (कुमारसम्भव ५।३३) अर्थात् धर्मका पहला साधन शरीर ही है। अतः मनुष्यको शरीरके स्वास्थ्यपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रायः शरीरमें कोई-न-कोई व्याधि रहती ही है। इसीलिये शरीरको रोगका घर कहा गया है—'**शरीरं व्याधिमन्दिरम्**' जिसके निवारणके लिये आयुर्वेद आदि शास्त्र हैं। योगाभ्यास भी व्याधि-निवारणका एक सिद्ध साधन है; क्योंकि शरीरकी व्याधिका मूल कारण मानसिक आधि है।

संसारके जितने भी अनर्थ हैं, उनमें अव्यवस्थित चित्त ही कारण माना गया है। इसीलिये चित्तके व्यापारको रोकनेके लिये 'पातञ्जलयोगसूत्र' में सर्वप्रथम '**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**' कहा गया है। क्योंकि मानसिक व्यग्रताका प्रभाव बाहरी शरीरपर पड़ता है, जिससे शरीर दुर्बल होकर अनेक व्याधियोंसे ग्रस्त हो जाता है। अतः जिनका मानसिक व्यापार मर्यादित होता है वे कभी शोक-मोह तथा शारीरिक रोगसे अभिभूत नहीं होते। यही कारण है कि योगी सदा अरोगी तथा दीर्घजीवी होता है। योगके बलसे ही वह क्षुधा-पिपासासे रहित होकर गुफा-निवासी बन जाता है। यदि साधारण मनुष्य भी मनको संयमित करके आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि योगाङ्गोंका अभ्यास करना प्रारम्भ कर दे तो वह भी थोड़े ही दिनोंमें अपने-आपको तन-मनसे स्वस्थ अनुभव करने लगेगा।

भूख-प्यासकी निवृत्तिके लिये शरीरके कण्ठकूप (छिद्र)-में संयम करनेका निर्देश पातञ्जलयोगसूत्रमें इस प्रकार है—'**कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः**' (३।३०)। भूख और प्यासको रोकना बड़ा कठिन कार्य है, किंतु इस यौगिक क्रियाके द्वारा उनको भी वशमें किया जा सकता है। इस योग-विद्याके जानकार विश्वामित्र मुनि थे, जिन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणको इसे प्रदान किया था। इसका उल्लेख श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकार है—

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥
(१।२०९।७-८)

योगाभ्यासके बलसे मनुष्य स्वस्थ, तेजस्वी तथा दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। तभी तो भगवान्‌के वाहक पक्षिराज गरुडने काकभुशुण्डिजीके दीर्घायुष्यके विषयमें प्रश्न करते हुए कहा कि—

तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।

मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥

(रा०च०मा० ७।९४ क)

इससे स्पष्ट है कि यौगिक क्रियासे प्राणी स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है।

योगाभ्यासके लिये सबसे पहले आहार-विहार, सोना-जागना आदि नित्य-कर्मोंका नियमन आवश्यक है। इनके नियन्त्रित रहनेसे योग सुलभ होकर दुःखको नष्ट कर देता है। जैसा कि योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(गीता ६।१७)

अर्थात् दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।

योगी जीवन-धारणके लिये भोजन करता है, भोजन करनेके लिये वह नहीं जीता। सामान्य लोग तो विषयोंके भोगके लिये जीवन-धारणकी कामना करते हैं, जिससे वे जीवनभर किसी-न-किसी रोगसे ग्रस्त रहते हैं। अतः हितकर और परिमित तथा पथ्य भोजन आवश्यक है। इस विषयमें प्रसिद्धि है कि एक वैद्यने किसी पक्षीके '**कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्**' शब्दको सुनकर समझा कि यह मुझसे पूछ रहा है कि कौन अरोगी है? इसके उत्तरमें उन्होंने यही कहा कि— **हितभुक्, मितभुक्** तथा **पथ्यभुक्**।

वस्तुतः भोजनपर नियन्त्रण रखनेवाला व्यक्ति कभी रोगी नहीं होता। अपथ्य तथा अनियमित भोजनसे पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है, जिससे शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा मन भी विकृत हो जाता है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि *'जैसा अन्न वैसा मन।'* अतः खान-पानके विषयमें निरन्तर सावधान रहना चाहिये। परिमित तथा नियमित आहारसे आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि योग सुलभ हो जाते हैं। इनकी सुलभता ही आरोग्य या तंदुरुस्तीका कारण है। पूरक-कुम्भक-रेचक-रूप प्राणायामसे तन-मनके रोगोंका निवारण होता है। जैसा कि 'शाण्डिल्य योगशास्त्र' (८७-८८)-में कहा गया है—

बाह्यात् प्राणं समाकृष्य पूरयित्वोदरस्थितम्।
नाभिमध्ये च नासाग्रे पादाङ्गुष्ठे च यत्नतः॥
धारयेन्मनसा प्राणं संध्याकालेषु वा सदा।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो भवेद् योगी गतक्लमः॥

इसी प्रकार सूर्यकी उपासना करनेसे भी मनुष्य स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करता है, क्योंकि सूर्य प्रजाओंका प्राण है तथा चराचर जगत्‌की आत्मा भी है, जिसके लिये श्रुतिका उद्घोष है—

सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः।
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

(प्रश्नोपनिषद् १।८)

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

(यजु० ७।४२)

अर्थात् भगवान् सूर्य चराचर विश्वकी आत्मा हैं। आकाश, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष लोकोंको अपने प्रकाशसे व्याप्त किये हुए हैं। इस प्रत्यक्ष सूर्यमें धारणा और ध्यान करनेसे मनुष्य आरोग्य प्राप्त करता है। इसीलिये सूर्यको आरोग्यका अधिष्ठाता देवता मानकर कहा गया है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ज्ञानं महेश्वरादिच्छेन्मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात्॥

अर्थात् सूर्यदेवसे आरोग्य, अग्निदेवसे धन, महादेवसे ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मुक्तिकी इच्छा करनी चाहिये।

वस्तुतः सूर्यदेवकी उपासना सुलभ है। प्रतिदिन प्रातःकालका सूर्य-नमस्कार और रविवारको लवणरहित भोजन रोग-निवारणके लिये विशेष उपयोगी होता है। यह तो प्रायः सर्वजनविदित है कि काशीपुरीके केदारखण्डमें स्थित भदैनी मुहल्लेमें जो सूर्यकुण्ड है, वह 'लोलार्ककुण्ड'के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें कुछ दिन स्नान करनेसे असाध्य कुष्ठ आदि रोग भी नष्ट हो जाते हैं तथा बाँझपन भी मिट जाता है। इसमें भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिका स्नान विशेष प्रसिद्ध है। यह तिथि 'लोलार्क-षष्ठी'के नामसे विख्यात है। अस्तु!

निष्कर्ष यह है कि रोग-निवारणके लिये आयुर्वेद आदि ग्रन्थोंमें कहे गये उपायोंके अतिरिक्त दुःसाध्य रोगोंकी निवृत्तिके लिये संयमित आहार-विहार, प्राणायाम तथा भगवान् भास्करकी उपासनाका भी विशेष अवलम्बन लेना चाहिये।

मोटापा दूर करें

(डॉ० श्रीअरुणजी भारती, डी०ए०टी०, एम०डी० (ए०एम०), एम०आई०एम०एस०)

मोटापा एक प्रकारका रोग है, इसके होनेके दो मुख्य कारण हैं, एक है—आनुवंशिक अर्थात् वंशगत। जिनके माता-पिता मोटे होते हैं, उनकी संतान प्रायः मोटी होती है। दूसरा कारण है—भूखसे अधिक खाना, शारीरिक श्रम नहीं करना, आरामतलबीका जीवन बिताना। जो लोग खाना खाकर पड़े रहते हैं, उन्हें मोटापा आ जाता है। **साधारणतः मोटापाकी पहचान यह है कि जितने इंच शरीरकी ऊँचाई हो, उतने किलो० शरीरका वजन ठीक है। इससे अधिक होनेपर 'मोटा' और कम होनेपर 'पतला' कहा जायगा।**

बचपन और किशोर अवस्थामें दौड़-भाग, खेल-कूदका प्राधान्य होता है—इस कारण शरीरमें फालतू चर्बी जमा नहीं हो पाती, खर्च हो जाती है। जो उम्रके बढ़नेपर शरीरसे मेहनत नहीं करते और कार्बोहाइड्रेट तथा अधिक कैलोरीवाला आहार करते हैं, उनके शरीरपर चर्बी जमा होने लगती है। पेट, कूल्हा, कमर, नितम्ब मोटे हो जाते हैं। चलने-फिरनेमें कष्ट होता है। खूनका दौरा धीमा पड़ जाता है। रक्तवाहिनी नसोंमें कोलेस्टेरॉल (वसा) जम जाता है। इस कारण हाई ब्लडप्रेशर और हृदयरोग हो जाते हैं। शारीरिक श्रम नहीं होनेसे क़ब्ज़ हो जाता है—अपच और डायबिटीज (मधुमेह) हो जाता है। रक्त-सञ्चार ठीक नहीं होनेसे रोग-प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है। मोटापासे शरीर बेडौल हो जाता है। मोटापा एक घातक रोग बन जाता है। अतः मोटापा शुरू होते ही इसको दूर करनेके उपाय करने चाहिये।

मोटापा दूर करने या इससे बचनेके दो मुख्य उपाय हैं, पहला है—भोजन-सुधार और दूसरा है—प्रतिदिन शारीरिक श्रम। जिन पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेट अधिक हो उनका सेवन न करें। तेल, घी, डालडासे बनी चीजें न खाये। आलू, शकरकन्द और चीनीसे बनी चीजें न खाये। दिनचर्या इस प्रकार बनायें—सबेरे जल्दी उठें और एक गिलास कुनकुने गरम पानीमें क़ागज़ी नीबू निचोड़कर उसमें दो चम्मच शुद्ध मधु मिलाकर पी जायँ तथा कुछ समय टहले। हाजत होते ही शौचके लिये चले जायँ। इसके बाद दातौन-मंजन कर टहलनेके लिये निकल जायँ। नित्य तीन-चार किलोमीटर अवश्य टहले। जो बाहर जाना नहीं चाहते वे अपने घरकी छतपर या आँगनमें टहल सकते हैं। हलके व्यायाम कर सकते हैं। नाश्तेमें रसदार फल ले या मक्खन निकला मट्ठा ले। दोपहरके भोजनमें जौके आटेकी एक-दो रोटी, उबली सब्जी, कच्चा सलाद और सूप ले। तीसरे पहर फलोंका रस ले। रातके भोजनमें हरी उबली सब्जी और एक-दो जौके आटेकी रोटी खाये। भोजनके तुरंत बाद पानी न पीये। मोटापा कम करनेके लिये भोजनमें रोटी कम खाये और सब्जी, कच्चा सलाद और सूप अधिक ले। दिनमें न सोये। मोटी महिलाओंको घरके काम यथासम्भव स्वयं करने चाहिये। इस तरह मोटापा नहीं बढ़ेगा। शरीरमें ताजगी और स्फूर्ति आयेगी। शरीर सुन्दर, स्वस्थ और कान्तिमान् बनेगा।

क्रोध, चिन्ता और शोक—ये स्वास्थ्य और सौन्दर्यका नाश करते हैं, अतः इनसे बचते रहें।

सुखका मूल—धर्माचरण

आचार्य वाग्भट बताते हैं कि संसारका कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो दुःख चाहता हो, सभी सुख चाहते हैं और उनकी चेष्टा भी सुख-प्राप्तिके निमित्त ही होती है, पर वह सुख प्राप्त होता है—धर्माचरणसे, सदाचारके अनुपालनसे। अतः कल्याणकामीको चाहिये कि वह सतत धर्माचरणमें तत्पर रहे—

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः। सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

बुढ़ापा दूर रखनेवाला संजीवनी पेय

प्रकृतिके नियमानुसार बुढ़ापा आना तो निश्चित है, पर उचित आहार-विहार और स्वास्थ्यरक्षक नियमोंका पालन करके इसे यथासम्भव दूर रखा जा सकता है। इस दिशामें एक सफल सिद्ध अनुभूत प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

शरीरशास्त्री वैज्ञानिकोंका मानना है कि जबतक शरीरके कोषाणुओं (Cells)-का पुनर्निर्माण ठीक-ठीक होता रहेगा, तबतक बुढ़ापा दूर रहेगा और शरीर युवा बना रहेगा। जब इस प्रक्रियामें विघ्न पड़ता है और कोषाणुओंके पुनर्निर्माणकी गति मन्द होने लगती है, तब शरीर बूढ़ा होने लगता है। इस वैज्ञानिक विश्लेषणसे एक निष्कर्ष यह निकला कि यदि विटामिन 'ई', विटामिन 'सी' और 'कोलीन'—ये तीन तत्त्व पर्याप्त मात्रामें प्रतिदिन शरीरको आहारके माध्यमसे मिलते रहें तो शरीरके कोषाणुओंका पुनर्निर्माण बदस्तूर ठीकसे होता रहेगा और जबतक यह प्रक्रिया ठीक-ठीक चलती रहेगी, तबतक बुढ़ापा दूर रहेगा। बुढ़ापा आयेगा जरूर, पर देरसे आयेगा।

इस निष्कर्षपर विचार करके पूनाके श्रीश्रीधर अमृत भालेरावने यह निश्चय किया कि इन तीनों तत्त्वोंको दवाओंके माध्यमसे प्राप्त करनेकी अपेक्षा प्राकृतिक ढंगसे, आहारद्वारा प्राप्त करना अधिक उत्तम और गुणकारी रहेगा। लिहाजा काफी खोजबीन और परिश्रम करके वे इस नतीजेपर पहुँचे कि विटामिन 'ई' अंकुरित गेहूँसे, विटामिन 'सी' नीबू, शहद और आँवलेसे एवं 'कोलीन' मेथीदानेसे प्राप्त किया जा सकता है। इन तीनों पदार्थोंका सेवन करनेके लिये उन्होंने यह फार्मूला बनाया—

४० ग्राम यानी ४ चम्मच [बड़े] गेहूँ और १० ग्राम मेथीदाना—दोनोंको ४-५ बार साफ पानीसे अच्छी तरह धो लें, ताकि इनपर यदि कीटनाशक दवाओंके छिड़कावका प्रभाव हो तो दूर हो जाय। धोनेके बाद आधा गिलास पानीमें डालकर चौबीस घंटेतक रखें। चौबीस घंटे बाद पानीसे निकालकर एक गीले तथा मोटे कपड़ेमें रखकर बाँध दें और चौबीस घंटेतक हवामें लटकाकर रखें। गिलासका पानी फेंकें नहीं, इस पानीमें आधा नीबू निचोड़कर दो ग्राम सोंठका चूर्ण डाल दें। इसमें २ चम्मच शहद घोलकर सुबह खाली पेट पी लें। यह पेय बहुत शक्तिवर्धक, पाचक और स्फूर्तिदायक है, इसीलिये इसका नाम श्रीभालेरावने 'संजीवनी पेय' रखा है। चौबीस घंटे पूरे होनेपर हवामें लटके कपड़ेको उतारकर खोलें और गेहूँ तथा मेथीदाना एक प्लेटमें रखकर इसपर पिसी काली मिर्च और सेंधा नमक बुरक दें। गेहूँ और मेथीदाना अंकुरित हो चुका होगा। इसे खूब चबा-चबाकर प्रातः खायें। यदि इसे मीठा करना चाहें तो काली मिर्च और नमक न डालकर गुड़ मसलकर डाल दें, शक्कर न डालें। यह मात्रा एक व्यक्तिके लिये है।

इस फार्मूलेका सेवन करनेसे ये तीनों तत्त्व तो शरीरको प्राप्त होते ही हैं, साथ ही एनजाइम्स, लाइसिन, आइसोल्यूसिन, मेथोनाइन आदि स्वास्थ्यवर्धक पौष्टिक तत्त्व भी प्राप्त होते हैं। यह फार्मूला सस्ता भी है और बनानेमें सरल भी, इसमें गजबकी शक्ति है, यह स्फूर्ति और पुष्टि देनेवाला है।

इस प्रयोगको प्रौढ़ ही नहीं वृद्ध स्त्री-पुरुष भी कर सकते हैं। यदि दाँत न हों या कमजोर हों तो वे अंकुरित अन्न चबा नहीं सकते, ऐसी स्थितिमें निम्नलिखित फार्मूलेका सेवन करना चाहिये—

प्रातःकाल एक कटोरी गेहूँ और तीन चम्मच मेथीदाना अच्छी तरह धो-साफकर चार कप पानीमें डालकर चौबीस घंटे रखें। दूसरे दिन सुबह इसका एक कप पानी लेकर नीबू तथा शहद डालकर पी लें। शेष तीन कप पानी निकालकर फ्रिजमें रख दें। यदि फ्रिज न हो तो पानी गिलासमें डालकर गिलासपर गीला कपड़ा लपेट दें और गिलास ठंडे पानीमें रख दें और ढक दें, ताकि पानी शामतक खराब न हो। इस पानीको शामतक एक-एक कप पीकर समाप्त कर दें। गेहूँ और मेथीदानेको फेंकें नहीं, बल्कि फिरसे ४ कप पानीमें डालकर रख दें। दूसरे दिन सुबह १ कप पानी और शेष पानी दिनभरमें पी लें। अब नया गेहूँ तथा मेथीदाना लें और सुबह पानीमें डालकर रख दें। दो दिनतक भिगोये हुए गेहूँ और मेथीदानेको सुखा लें और पिसानेके लिये रखे गये गेहूँमें मिला दें। इस तरह बिना दाँतके भी इस नुस्खेका सेवन कर लाभ उठा सकते हैं।

[प्रेषक—श्रीविट्ठलदासजी तोष्णीवाल]

आँवला खायें—बुढ़ापा दूर भगायें

(डॉ० श्रीश्यामसुन्दरजी भारती)

आँवला सर्वश्रेष्ठ शक्तिदायक फल है। इसका दूसरा नाम अमृत-फल है। सचमुच ही इसमें अमृतके गुण हैं। यह विटामिन 'सी' का अनन्त भण्डार है। विटामिन 'सी' का अर्थ है शक्ति और स्वास्थ्यका आवश्यक तत्त्व। एक पुष्ट ताजे आँवलेमें बीस नारंगियोंके बराबर विटामिन 'सी' रहता है। इस प्रकार यह शरीरको स्वस्थ बनानेके साथ-साथ सुन्दर भी बनाता है। इससे रक्त शुद्ध होता है और शरीरमें रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। आँवलेकी विशेषता यह है कि इसके विटामिन गरम करने या सुखानेसे भी नष्ट नहीं होते। त्रिफला-चूर्णका मुख्य घटक आँवला ही है। च्यवनप्राश इस अमृत-फलसे ही बनता है। महर्षि च्यवनने बुढ़ापा दूर भगानेके लिये अश्विनीकुमारसे उपाय पूछा था। उन्होंने च्यवन ऋषिको नित्य इस फलके सेवन करनेका निर्देश दिया था। इसीके सेवनसे च्यवन ऋषिका बुढ़ापा दूर हो गया था। इन्हींके नामपर 'च्यवनप्राश' नाम पड़ गया। ओज, बल एवं युवावस्थाको स्थिर रखने और बुढ़ापा दूर करनेका यह सर्वश्रेष्ठ आयुर्वेदिक औषध है।

आँवला सर्वरोगनाशक दिव्य अमृत-फल है। यह दाँतों-मसूढ़ोंको मजबूत बनाता है, आँखोंकी ज्योति बढ़ाता है। शरीरमें बल-वीर्यकी वृद्धि करता है। हाई ब्लडप्रेशर, हृदयरोग, कैंसर, नपुंसकता, मन्दाग्नि, स्नायुरोग, चर्मरोग, लीवर और किडनीके रोग, रक्तके रोग, पीलिया, टी०बी०, मूत्ररोग और हड्डियोंके रोगोंको दूर करनेमें इसका विशेष योगदान है।

आँवला त्रिदोषनाशक है। इसमें लवणरसको छोड़कर बाकी पाँचों रस भरे पड़े हैं। आधुनिक वैज्ञानिकोंने आँवलापर खोज की है और स्वीकार किया है कि आँवलामें पाया जानेवाला एंटी ऑक्सीडेंट इन्जाइम बुढ़ापेको रोकता है। यह खोज तो हजारों वर्ष पहले भारतके प्राचीन ऋषि-मुनियोंने कर डाली थी।

आँवला-तेल सिरके रोगों और बालोंके लिये परम हितकारी है। इसे घरमें बना लेना चाहिये। बाज़ारमें मिलनेवाले अधिकांश आँवला-तेलोंमें कृत्रिम सेंट मिला रहता है। घरमें बनाना चाहें तो तिलके तेलमें ताजे आँवलेका रस मिलाकर गरम करें। जब उसका पानी जल जाय तो उतारकर ठंडा करके बोतलमें भर लें और उपयोग करें।

आँवलेमें जितने रोग-प्रतिरोधक, रक्त-शोधक और बल-वीर्यवर्धक तत्त्व हैं, उतने संसारकी किसी वस्तु या औषधिमें नहीं हैं। इसलिये स्वास्थ्य-सुख चाहनेवालोंको अपने आहारमें आँवलेको प्रमुख स्थान देना चाहिये। लगभग बीस ग्राम च्यवनप्राश एक गिलास दूधके साथ नियमित सेवन करनेसे आप इसके चमत्कारी आशुफलप्रद गुणोंसे परिचित हो जायँगे। यह पुनर्यौवन प्रदान करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आहार है।

आरोग्य-प्राप्तिका सर्वोत्कृष्ट साधन—पञ्चगव्य

(शास्त्रार्थ पंचानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

'**धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्**' इस शास्त्रवचनके अनुसार पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति आरोग्यसम्पन्न शरीरके द्वारा ही सम्भव है और यह कितना आश्चर्यजनक तथ्य है कि विभिन्न प्रकारके रोगोंकी निवृत्तिके लिये नितान्त आवश्यक जीवन-तत्त्व (Vitamins) हम केवल पञ्चगव्य-सेवनसे अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। गायके उदरको जो जीवन-तत्त्वोंका अक्षय स्रोत कहा जाता है, वह कोई यूँ ही कहा गया अतिरञ्जनापूर्ण वाक्य नहीं है, अपितु व्यावहारिक अनुभवोंका यथार्थ निष्कर्ष है।

पूर्वजन्मकृत पाप ही कालान्तरमें रोग बनकर प्रकट होते हैं और उनके उपशमनके लिये औषधके साथ-साथ दान, जप, होम और देवाराधन—इन चार कार्योंको करनेका निर्देश भी भिषगाचार्योंने दिया है—

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥

इस वचनका सार-संक्षेप इतना ही है कि रोगोंको दूर करनेके लिये दो माध्यम हैं—देवाराधन और दवा।

इन दोनों ही माध्यमोंकी संसिद्धि पञ्चगव्यमें संनिहित है। यज्ञ-यागादि समस्त धार्मिक अनुष्ठान कर्ता और आचार्यद्वारा पञ्चगव्यपानके अनन्तर ही प्रारम्भ किये जाते हैं; क्योंकि हमारी अस्थियोंतकमें प्रविष्ट पाप-राशिको पञ्चगव्य उसी प्रकार विनष्ट कर डालता है, जैसे अग्नि ईंधनको। यथा—

यद्यदस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥

इस प्रकार आध्यात्मिक संदर्भमें तो पञ्चगव्यकी लोकोत्तर महिमा है ही, शारीरिक एवं मानसिक रोगोंको निर्मूल कर डालनेमें भी वह अनुपम है। पञ्चगव्यके घटक पदार्थ अर्थात् गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र एवं गोमयके रोगनिवारक गुणोंके वर्णनसे आयुर्वेदिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। आइये, पहले गव्य पदार्थोंके उन गुण-गणोंका संक्षिप्त सिंहावलोकन करें और देखें कि वे किन-किन रोगोंपर अचूक रामबाणकी तरह कार्य करते हैं। बादमें फिर पञ्चगव्यनिर्माणकी शास्त्रीय विधिकी चर्चा करेंगे।

गोदुग्ध—गायका दूध अत्यन्त स्वादिष्ठ, स्निग्ध, रुचिकर, बलवर्धक, मेधाजनक, नेत्रज्योतिवर्धक, तुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, कान्तिजनक एवं हृद्य रसायनके रूपमें तो स्वीकार किया ही गया है, साथ-ही-साथ वह रक्तपित्त, अतिसार, उदावर्त, जीर्ण ज्वर, मनोव्यथा, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, अर्श, पाण्डु, क्षय, हृदयरोग, गुल्म, उदरशूल किंवा दाह-जैसे घातक रोगोंके लिये भी अव्यर्थ औषधका कार्य करता है। धारोष्ण दुग्धका सेवन सर्वरोगविनाशक माना गया है। दूधकी मलाई धातुवर्धक होनेके साथ-साथ वात एवं पित्तजनित दोषोंको तथा रक्तरोगोंको समूल विनष्ट कर डालनेकी अद्भुत सामर्थ्य रखती है। '**धारोष्णममृतोपमम्**' अथवा '**क्षीरात्परं नास्ति हि जीवनीयम्**' इत्यादि वचनोंका स्वारस्य गोदुग्धके उपर्युक्त प्रभावोंके निरूपणमें ही है।

भारतीय आयुर्वेद-विज्ञानके मनीषियोंने प्रारम्भिक कालसे ही औषध एवं खाद्यकी दृष्टिसे गायके दूधकी महत्ताको पहचान लिया था। प्राचीनतम चिकित्साग्रन्थ चरकसंहितामें गोदुग्धके निम्नाङ्कित दस गुणोंका वर्णन किया गया है—

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥

(च०सू० २७। २१७)

अर्थात् गायके दूधमें दस गुण होते हैं—स्वादिष्ठ, शीत (ठंडा), कोमल, चिकना, गाढ़ा, सौम्य लसदार, भारी और बाह्य प्रभावको विलम्बसे ग्रहण करनेवाला तथा मनको प्रसन्न करनेवाला।

इतना ही नहीं, प्रातर्दोह (सूर्योदयके समय दुहा हुआ), संगव (दोपहरके लगभग दुहा हुआ) एवं सायंदोह (सायंकालके समय दुहा हुआ) गोदुग्ध पृथक्-पृथक् रूपसे प्रभाव रखता है, इस प्रकारका विश्लेषण भावप्रकाश नामक ग्रन्थमें उपलब्ध होता है। यथा—

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो
मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम्।
बाले वृद्धिकरं क्षयेऽक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं
रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं चक्षुर्हितं संस्मृतम्॥

(पू०खं० ६। १४। ३९)

दूध दोपहरके पहले वीर्यवर्धक और अग्निदीपक तथा दोपहरमें बलकारक एवं कफको विनष्ट करनेवाला, पित्तको हरनेवाला और मन्दाग्निको नष्ट करनेवाला, बालपनमें वृद्धि करनेवाला एवं वृद्धावस्थामें क्षयनाशक और शुक्रवर्धक होता है। प्रतिदिन रात्रिमें सेवन करनेसे दूध अनेक दोषोंको दूर करता है। अतः दूध सदा सेवनीय है।

आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंने भी गायके दूधमें विटामिन ए, बी, सी, डी, ई तथा अन्य शरीर-पोषक एवं दोषनिवारक तत्त्वोंका पता लगाकर '**गवां क्षीरं रसायनम्**' इस उक्तिको चरितार्थ कर दिखाया है।

गोदधि—सुश्रुतसंहितामें गायके दहीके गुण इस प्रकार वर्णित किये गये हैं—

स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम्॥
वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रदम्।

(सू० ४५। ६७-६८)

अर्थात् गायके दूधका दही स्निग्ध, परिणाममें मधुर, पाचनशक्तिवर्धक, बलवर्धक, वातहारक, पवित्र और रुचिकारक होता है।

यद्यपि गायका दही अनेक भयानक रोगोंको जड़-मूलसे विनष्ट कर डालनेवाला माना गया है तथापि वातजन्य अर्श, त्रिदोष, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, उदरशूल, सूर्यावर्त (आधासीसी) और दाह-जैसे महान् कष्टप्रद रोगोंके लिये तो यह रामबाण ही है। इतना ही नहीं, मधु, मक्खन, पीपल, सोंठ, काली मिर्च, वच और

सेंधा नमककी समान-समान मात्रा लेकर उतनी ही मात्रामें गायका दही मिलाकर तुरंत पिलानेसे सर्पका भी विष दूर हो जाता है।

गायकी छाछकी तो महिमा ही निराली है। कहा जाता है कि **'तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्'** छाछ तो देवराज इन्द्रको भी दुर्लभ है। संस्कृतकी यह लोकोक्ति रूपान्तरसे छाछके लोकोत्तर गुणोंका ही तो वर्णन कर रही है। प्रमेह, मेद, संग्रहणी, अजीर्ण, भगंदर, विषम ज्वर, मलस्तम्भ, उदरकृमि, सूजन, अरुचि, पित्त-प्रकोप-जैसे भीषण रोगोंको विनष्ट करके रोगीको स्थायी स्वास्थ्य-सम्पत्ति प्रदान करनेवाला देवदुर्लभ पदार्थ गायकी छाछ ही है। सेंधा नमक और अजवाइन मिलाकर छाछ पी लेनेसे कोष्ठबद्धता चुटकियोंमें दूर हो जाती है।

हाँ, दही-सेवनके सम्बन्धमें कुछ विधि-निषेध भी हैं। उनपर भी ध्यान देना बहुत जरूरी है। किस ऋतुमें दही खाना उपयुक्त है और किसमें नहीं, इस संदर्भमें सुश्रुतसंहिताका निर्देश इस प्रकार है—

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्॥
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते।

(सू० ४५।८०-८१)

अर्थात् शरद्, ग्रीष्म और वसन्त-ऋतुओंमें दही खाना प्रायः अच्छा नहीं होता। हेमन्त, शिशिर एवं वर्षा-ऋतुमें दही खाना ठीक होता है।

गोघृत—गायके घीके गुण तो वास्तवमें असंख्य हैं। आधुनिक चिकित्सकोंकी बात तो जाने दें, जो चालीस वर्षकी आयुके बाद घी खानेके विषयमें नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, परंतु आयुर्वेदके तत्त्वज्ञ विद्वानोंने तो **'आयुर्वै घृतम्'** कहते हुए घीको ही आयुका पर्याय माना है। घीके गुणोंके संदर्भमें इससे अधिक सटीक उक्ति और क्या हो सकती है?

चिकित्साशास्त्रोंमें घीके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम्।
चक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम्॥

(सु० सू० ४५।९७)

अर्थात् गायका घी गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ है। वह विपाकमें मधुर, शीतल, वात, पित्त और विषका नाश करनेवाला, आँखकी ज्योति एवं शरीरकी सामर्थ्यको बढ़ानेवाला है।

आँख, कान और नासिकाके रोगोंमें तथा खाँसी, कोढ़, मूर्च्छा, ज्वर, कृमि और वात, पित्त, कफजन्य विषके उपद्रवमें गायका घी महौषधिका कार्य करता है। गायका घी जितना पुराना हो जाता है, उतना ही वह गुणकारी होता है। दस वर्ष पुराना घी **'जीर्ण'**, सौसे एक हजार वर्षतक पुराना **'कौम्भ'** और ग्यारह सौ वर्षोंसे अधिक पुराना घी **'महाघृत'** कहलाता है।

हैजा, अग्निमन्दता, क्षय, आमव्याधि एवं कोष्ठबद्धतामें घृतका सेवन हानिकारक है। ज्वरमें अथवा ज्वरजनित दाहमें घी खानेसे नहीं, अपितु मालिश करनेसे लाभप्रद होता है।

गायके दूध, दही और घीके इन उत्तम गुणोंके कारण ही ये तीनों प्राचीन कालसे भारतीयोंके भोजनके अभिन्न अङ्ग बने हुए हैं। **'विना गोरसं को रसो भोजनानाम्'** (बिना गोरसके भोजनमें क्या रस है?) यह उक्ति ही इन तीनोंकी महिमाको आँकनेके लिये पर्याप्त है।

गोमूत्र—चरकसंहितामें गोमूत्रके विषयमें निम्नलिखित विवरण प्राप्त होता है—

गव्यं समधुरं किंचिद् दोषघ्नं कृमिकुष्ठनुत्।
कण्डूं च शमयेत् पीतं सम्यग्दोषोदरे हितम्॥

(सू० १।१०१)

अर्थात् गोमूत्र सेवन करनेसे कृमिरोग, कुष्ठरोग, खुजली और प्लीहारोग दूर हो जाते हैं। गोमूत्र कटु, तीखा, खारा, कसैला, आंशिक मधुर, पित्तवर्धक और मेदक होता है। इसके सेवनसे समाप्त हो जानेवाले रोगोंकी सूची बहुत लंबी है, तथापि साररूपमें यह समझ लें कि पाण्डु, कण्डु, अर्श, कुष्ठ, चित्री, भ्रम, त्वचारोग, मूत्ररोग, दमा, अतिसार-जैसे कठिन रोग केवल गोमूत्र-सेवनसे ही निर्मूल किये जा सकते हैं। गुर्देके रोगोंको तो यह जड़से मिटा डालता है। हमारे पूज्य पितृचरण (शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्री) जब गुर्देके असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गये थे और किसी भी औषधिसे लाभ नहीं पहुँच पा रहा था, तब कुरुक्षेत्रभूमिके पीयूषपाणि वैद्यराज पं० श्रीधरजीने उन्हें अपनी माँका दूध पीकर ही रहनेवाली छोटी बछियाका मूत्र इकतालीस दिनोंतक पिलाकर पूर्णतया स्वस्थ कर दिया था।

गोमय (गोबर)—रोगोंके कीटाणु और दूषित

गन्धको दूर करनेमें गोबर अद्वितीय है। प्राचीन कालमें प्रत्येक गृहस्थ न केवल घर-आँगन और रसोईमें ही गोबरसे लेप किया करता था, अपितु कोई भी माङ्गलिक कार्य प्रारम्भ करनेसे पूर्व गोबरसे भूमि-लेपन अनिवार्य माना जाता था। विधिग्रन्थोंमें पदे-पदे '**गोमयेन भूमिमुपलिप्य**' इस प्रकारके निर्देश प्राप्त होते हैं। अनेक रोगोंको दूर करनेमें भी गोबरकी उपयोगिता है। जैसे—गोबर मलकर स्नान करनेसे खुजली दूर हो जाती है तथा अत्यधिक पसीना आनेपर सूखे हुए गोबरका चूर्ण शरीरपर रगड़कर कुछ समय बाद स्नान करनेसे अधिक पसीना आना बंद हो जाता है।

गोबरकी राख भी अत्यन्त गुणकारी मानी गयी है। शीतलाका प्रकोप होनेपर निकले छाले अत्यन्त कष्टप्रद होते हैं। ऐसेमें गोबरकी राखको छानकर रोगीके नीचे बिछा देनेपर उसे आराम मिलता है। ऐसेमें यही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। बच्चोंके पेटमें छोटे-छोटे कृमि हो जानेपर छानी हुई राख दस गुना पानीमें मिलाकर दो-दो घूँट बालकको दो-चार बार पिलानेसे पेटके कीड़े विनष्ट हो जाते हैं।

पञ्चगव्य बनानेकी विधि—लौगाक्षिस्मृति अथवा पाराशरस्मृति-प्रभृति ग्रन्थोंमें पञ्चगव्य-निर्माणका विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ पाँचों गव्य-पदार्थोंका परिमाण अर्थात् दूध, दही, घी आदिकी कितनी-कितनी मात्रा ली जाय, इसका विवरण तो है ही, किस रंगकी गायसे कौन-सी वस्तु लेनी चाहिये, इस तथ्यका भी विज्ञानसंगत विश्लेषण किया गया है। '**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'—इस शास्त्रवचनके अनुसार हम सूर्यकिरणोंसे आरोग्य प्राप्त करते हैं। परंतु विभिन्न रंगोंके माध्यमसे सूर्यकी किरणोंमें सामर्थ्यकी वृद्धि होती ही है, यह प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है। आतशी शीशेद्वारा सूर्यतापसे अग्नि प्रज्वलित करते समय अन्य रंगोंकी अपेक्षा यदि काले रंगका वस्त्र प्रयोग किया जाय तो वह शीघ्र आग पकड़ लेता है। अन्य रंगोंके साथ भी ऐसे ही कारण हैं।

पञ्चगव्य-निर्माणमें भी गायोंके संदर्भमें जो रंगोंका विवरण दिया गया है, वह इन्हीं वैज्ञानिक कारणोंसे साभिप्राय है। अन्तमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि विभिन्न रंगोंकी गायें उपलब्ध न हो सकें तो पाँचों वस्तुएँ कपिला-वर्णकी यानी स्वर्ण-वर्णकी गायसे ही प्राप्त की जा सकती हैं—'**सर्वं कापिलमेव वा।**' पूर्ण विवरण इस प्रकार है—

गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्।
पयः काञ्चनवर्णाया नीलाया एव वै दधि॥
घृतं तु सर्ववर्णायाः सर्वं कापिलमेव वा।

(लौगाक्षिस्मृति)

अर्थात् लाल रंग (ताम्रवर्ण)-की गायका मूत्र और श्वेत गायका गोबर, काञ्चन वर्णकी गायका दूध तथा नीले रंगकी गायका दही, सर्ववर्ण (चितकबरी) रंगकी गायका घी अथवा पाँचों वस्तुएँ कपिला गायकी ही हो सकती हैं।

पाँचों द्रव्योंका अनुपात निम्न प्रकारसे है—

गोमूत्रभागस्तस्यार्धं शकृत् क्षीरस्य तत् त्रयम्।
द्वयं दध्नो घृतस्यैक एकश्च कुशवारिणः॥

अर्थात् पञ्चगव्यमें एक भाग घृत, एक भाग गोमूत्र तथा एक भाग कुशोदक, दो भाग दही, तीन भाग दूध (अन्य स्मृतियोंमें सात भागका भी उल्लेख मिलता है) और आधा भाग गोमय होना चाहिये।

विशेष प्रभावशाली बनानेके लिये वेदमन्त्रोंसे पाँचों द्रव्योंको अभिमन्त्रित भी किया जा सकता है। यथा—

गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥
शुक्रमसि ज्योतिरसीत्याज्यं देवस्येति कुशोदकम्॥

अर्थात् '**गायत्री**' मन्त्रद्वारा गोमूत्रको, '**गन्धद्वारां०**' आदि मन्त्रद्वारा गोमयको, '**आप्यायस्व०**' मन्त्रद्वारा गोदुग्धको, '**दधिक्राव्णो०**' इत्यादि मन्त्रसे दहीको, '**शुक्रमसि०**' और '**ज्योतिरसि०**' आदि मन्त्रोंद्वारा गोघृतको तथा '**देवस्य त्वा०**' इस मन्त्रसे कुशोदकको अभिमन्त्रित करके सम्मिलित करना चाहिये।

भारतेतर देशोंमें जहाँ गलकम्बल (सास्ना)-वाली भारतीय नस्लकी गायें उपलब्ध नहीं हैं, वहाँ पञ्चगव्य बना पाना सम्भव ही नहीं होगा। अतः वहाँ धार्मिक कृत्योंमें गङ्गाजलका ही उपयोग करना चाहिये। गाय-जैसे प्रतीत होनेवाले किसी अन्य पशुके तो वैसे उपयोगका प्रश्न ही नहीं है।

सर्वरोगहर टॉनिक—पञ्चगव्य

(स्व० पं० श्रीहिमकरजी शर्मा, वैद्य, आयुर्वेदभास्कर)

एलोपैथिक तीव्र औषधियाँ एक बीमारी हटाकर दूसरी पैदा करती हैं। अनेक औषधियाँ रिएक्शन करती हैं, परंतु पञ्चगव्य यानी गौके मूत्र, गोबर, दूध, दही तथा घीको एक सुनिश्चित अनुपातमें मिलाकर औषधिके रूपमें सेवन किया जाय तो लाभ-ही-लाभ होता है, कोई रिएक्शन नहीं होता। पञ्चगव्य एक सशक्त टॉनिक है। पञ्चगव्य बनानेकी विधि जान लें—छाना हुआ गोमूत्र ५ चम्मच, कपड़ेमें रखकर निचोड़ा गया गोमय-रस १ चम्मच, गोदुग्ध २ चम्मच, गो-दधि १ चम्मच, गोघृत १ चम्मच, शुद्ध मधु २ चम्मच—इन छहों वस्तुओंको चाँदी अथवा काँचकी कटोरीमें रखकर मिलायें। प्रातः मुखशुद्धिके पश्चात् थोड़ा जल पीकर पञ्चगव्य धीरे-धीरे पीना चाहिये। आदत लगानेसे यह जलपानकी तरह आपको सबल बनायेगा। जाड़ेमें पञ्चगव्यकी मात्रा बढ़ा देनेसे आपको जलपान करनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। पञ्चगव्य आरम्भ करनेके पूर्व एक सप्ताहतक त्रिफला, गोमूत्र अथवा गर्म दूधमें घृत डालकर पेट साफ कर लें। पञ्चगव्यका सेवन अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। गर्भवती माताओंको आप विटामिन कैप्सूल खिलाते हैं। यह कैप्सूल गर्भवतीका वजन बढ़ाता है, बच्चेको लाभ नहीं पहुँचाता। परंतु पञ्चगव्य गर्भस्थ बच्चेको पुष्ट करेगा। नॉर्मल डिलेवरी होगी। जच्चा-बच्चा दोनों स्वस्थ रहेंगे। डिलेवरीके बाद पञ्चगव्यमें घृतकी मात्रा बढ़ा दें, शरीरकी निर्बलता जल्दी हटेगी। शीतकालमें गोदुग्धमें किशमिश-खजूरको कूटकर मिला दें। पुरुषोंको शक्तिदाता तथा माताओंको पुष्टिकारक टॉनिक (विटामिन बी १२) मिलेगा।

पञ्चगव्यमें भी गोमूत्र महौषधि है। गोमूत्रमें कार्बोलिक एसिड, पोटैशियम, कैल्सियम, मैग्नेशियम, फॉस्फेट, पोटाश, अमोनिया, क्रिएटिनिन, नाइट्रोजन, लैक्टोज, हार्मोन्स (पाचक रस) तथा अनेक प्राकृतिक लवण पाये जाते हैं, जो मानव-शरीरकी शुद्धि तथा पोषण करते हैं। दन्तरोगमें गोमूत्रका कुल्ला करनेसे दाँतका दर्द ठीक होना सिद्ध करता है कि उसमें कार्बोलिक एसिड समाविष्ट है। बच्चोंके सुखंडी रोगमें गोमूत्रमें विद्यमान कैल्सियम हड्डियोंको सबल बनाता है। गोमूत्रका लैक्टोज बच्चों-बूढ़ोंको प्रोटीन प्रदान करता है। हृदयकी पेशियोंको टोन-अप करता है। वृद्धावस्थामें दिमागको कमजोर नहीं होने देता। महिलाओंके हिस्टीरियाजनित मानस-रोगोंको रोकता है। सिफलिस-गोनोरिया-जैसे यौन रोगोंको मिटाता है। खाली पेट आधा कप गोमूत्र पिलानेसे यौन रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि गोमूत्रमें अमृता (गुडूची) अथवा शारिवा (अनन्तमूल)-का रस अथवा ५ ग्राम सूखा चूर्ण मिला दिया जाय तो बीमारी शीघ्र ठीक हो जाती है। मायोसिन, साइक्लिन-जैसी शक्तिशाली दवासे ठीक हुआ यौन रोग लौटकर आ सकता है, परंतु गोमूत्रसे ठीक किया गया यौन रोग कभी नहीं लौटता।

गोमूत्रका कार्बोलिक एसिड अस्थिस्थित मज्जा एवं वीर्यको परिष्कृत कर देता है। निःसंतानको संतान देता है। अनेक रोगी इसके प्रमाण हैं। एक नवयुवक यौन रोगग्रस्त युवतीके सम्पर्कमें आ गया। दोनों मेरे पास आये। मैंने गोमूत्रमें टिंचर कार्डम् (दालचीनीका तेल) मिलाकर एक वर्षतक पिलाया, दोनोंको आशातीत लाभ हुआ। गोमूत्रमें मधु मिलाकर युवतीका उपचार किया गया। इस चिकित्सासे लाभ हुआ। डिस्टिल वाटरमें गोमूत्र मिलाकर एनिमा भी लगाया गया। दोनों ठीक हो गये। कालान्तरमें नवयुवकका विवाह हुआ, उसे स्वस्थ पुत्रकी प्राप्ति हुई। मैंने इसे गोमाताका दिया हुआ आशीर्वाद समझा।

बच्चोंकी सूत्र-कृमि (थ्रेड वर्म)—आधा औंस गोमूत्रमें २ चम्मच मधु मिलाकर पिलानेसे बच्चोंके पेटके कृमि निकल जाते हैं। शुद्ध मधु न मिले तो सुरक्ता अथवा साफी १ चम्मच मिलाकर गोमूत्र पिलायें। एक सप्ताहमें गोमूत्र पेटके कृमिको निकालकर बच्चेको स्वस्थ बना देगा। टॉनिकके रूपमें गोमूत्र तथा मधु पिलानेसे उसके सभी रोग नष्ट हो जायँगे। बच्चा सदा स्वस्थ रहेगा।

गैस्ट्रिक—पावरोटी, बिस्किट, पकौड़े, फास्टफूड खिलानेसे पेटदर्द, गैस, खट्टी डकार तथा अम्लपित्त-

जैसे रोग बहुत प्रचलित हैं। डॉक्टर गोलियाँ तथा मिक्स्चर देते हैं, परंतु रोग स्थायी हो जाता है। पक्वाशय (ड्यूडनम)-की सूजनके कारण अल्सर होनेपर ऑपरेशन होता है। यदि आरम्भमें ही गोमूत्रका सेवन कराया जाय तो पाचनतन्त्र धीरे-धीरे सबल बन जायगा और रोगमुक्ति अवश्य मिलेगी। यदि गैसपीडितको खट्टी उलटी हो तो उसे अविपत्तिकर चूर्ण मिलाकर गोमूत्रका सेवन कराना चाहिये। गोमूत्र-सार अथवा गोमूत्र-क्षार-वटी गोघृतमें मिलाकर भोजनसे पहले सेवन कराना चाहिये। गर्मीके मौसममें गोमूत्र-वटी ग्लूकोजके शरबतसे लें, जाड़ेमें मधु मिलाकर सेवन करें। पेप्टिक अल्सर हो तो आरोग्यवर्धिनी दो गोली जलसे खिलाकर आधा घंटा पश्चात् गोमूत्र पिलायें। मैंने पेटके रोगियोंको ऑपरेशनके बाद भी गोमूत्र पिलाया है। लम्बे समयतक गोमूत्रका सेवन पेटकी समस्त बीमारियोंको ठीक कर देता है।

जुकाम, सर्दी, साँस फूलना, दमा—तवेको खूब गर्म करके, फिटकरी तोड़कर गर्म तवेपर डालकर उसका जलीय अंश सुखा दें। चाकूसे खुरचकर सफेद पाउडर शीशीमें सुरक्षित रखें। इसे आयुर्वेदमें टंकण (बालसुधा) कहते हैं। आधा कप गोमूत्रमें चौथाई चम्मच बालसुधा मिलाकर खाली पेट पीनेसे पुराना जुकाम अवश्य ठीक होगा। दमाके पुराने रोगियोंको गोमूत्रमें अडूसा (वासाचूर्ण) ५ ग्राम मिलाकर पिलायें। दमाके रोगमें चावल, आलू, चीनी, उड़दकी दाल, दही, मांसाहार तथा धूम्रपान न करें। शक्ति प्रदान करनेके लिये सीतोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राश, वासावलेह मधु मिलाकर दें, परंतु गोमूत्र भी दोनों समय पिलायें। डिप्थीरिया (डब्बा रोग)-में दो ग्राम बालसुधा मिलाकर गोमूत्र एक-एक घंटेपर पिलायें। डीप्थीरियाका इंजेक्शन तभी लगायें, जब साँस तथा भोजनकी नली सिकुड़ गयी हो। गोमूत्रमें सरसोंके तेलकी दो बूँद मिलाकर नाकमें टपकावें। बंद नाक खुल जायगी। रोगी आरामसे साँस लेने लगेगा। गोमूत्रमें गोघृत तथा शुद्ध कर्पूर मिलाकर कपड़ा तर करके सीनेपर रखें। कफ पिघलकर निकल जायगा।

वातरोग—घुटने, कुहनियों, पैरकी पिण्डलियोंमें साइटिका रोग होनेपर, मांसपेशियोंमें दर्द, सूजन होनेपर, गोमूत्रसे बढ़कर दूसरी कोई औषधि नहीं है। संधिवात, हड़फूटन, रूमेटिक फीवर तथा आर्थराइटिसमें सभी दवाइयाँ फेल हो जाती हैं। अस्सी प्रकारके वातरोगोंकी एकमात्र औषधि गोमूत्र है। आधा कप गोमूत्रमें शुद्ध शिलाजीत २ ग्राम, रास्नादि क्वाथ, रास्नादि चूर्ण, सोंठ-चूर्ण, शुद्ध गुग्गुल अथवा महायोगराज गुग्गुल दो गोली मिलाकर पिलायें। कब्ज होनेपर सप्ताहमें एक दिन गोमूत्रमें शुद्ध एरंडतेल (कैस्टर ऑयल) मिलाकर पिलायें। हाथ-पैरकी अँगुलियोंमें टेढ़ापन आ जाय तो स्वर्णयुक्त महायोगराज गुग्गुल तथा स्वर्णयुक्त चन्द्रप्रभावटीके साथ गोमूत्रका सेवन करायें। चुम्बक-चिकित्सा इस रोगमें लाभकारी है। महानारायणतेल सरसोंके तेलमें अफीम गलाकर मालिश करें। धतूर, आक अथवा एरंडके पत्तोंमें तेल चुपड़कर रातमें पट्टी बाँध दें—आराम मिलेगा।

डायबिटीज—शक्कर (चीनी)-की बीमारी अनेक बार चाय तथा कॉफी पीने एवं पेनक्रियाजकी कमजोरीसे होती है। बीमारीका पता लगते ही चावल, आलू, चीनी, गुड़, मिठाई, मांसाहार बंद कर दें। सुबह खाली पेट स्वर्णयुक्त चन्द्रप्रभावटी दो गोली चबाकर गरम जल तथा एक घंटेके बाद ताजा गोमूत्र पिलायें। संध्या-कालका नाश्ता और चाय बंद करके शिलाजीत कैप्सूल खिलाकर गोमूत्र पिलायें। मेथी-चूर्ण एक चम्मच जलके साथ दें। जामुनके हरे पत्ते पाँच, नीमके पत्ते दस तथा बेलपत्र पाँच, आमके पीले या हरे पत्ते पाँच पीसकर रस निकालें, इसी रसके साथ शिलाजीत कैप्सूलका प्रयोग करें। ब्लड-शुगर अधिक बढ़ा हुआ हो तो स्वर्ण-वसंत-कुसुमाकर दोनों समय गोमूत्रके साथ दें। डायबिटीजके कारण गुर्दे, लीवर तथा हार्ट कमजोर हो जाते हैं जिन्हें केवल गोमूत्र और शिलाजीत ही ठीक कर सकेगा।

क़ब्ज़—टट्टी साफ नहीं होना सभी रोगोंको बढ़ाता है। गोमूत्र पेशाब तथा टट्टीका क़ब्ज़ दोनोंका खुलासा करता है। टट्टीकी क़ब्ज़में गोमूत्र दोनों समय पिलायें। शामको त्रिफलाचूर्ण गर्म पानीसे दें फिर गोमूत्र पिलायें। बच्चोंको टट्टी नहीं होनेपर गोमूत्रमें मधु मिलाकर पिलायें। गोमूत्रमें एरंडका तेल अथवा बादाम-रोगन दो चम्मच मिलाकर सेवन करानेसे दस्त साफ होगा। गायके गरम दूधमें एक चम्मच गायका शुद्ध घृत

मिलाकर पिलानेसे गर्भवती महिलाओंको क़ब्ज़ नहीं रहेगा।

यकृत्-रोग—मलेरियाके कारण तिल्ली (स्प्लीन) बढ़ जाती है। शराब पीने तथा मांस खानेसे यकृत् निष्क्रिय होकर जांडिस—पीलिया और अन्तमें कामला रोग हो जाता है। खूनमें हीमोग्लोबीनकी कमीसे पेशाब पीला हो जाता है तथा आँखें पीली हो जाती हैं। इस बीमारीमें खाली पेट गोमूत्र पिलायें। पुनर्नवा (साँट—रक्त पुनर्नवा)-को पीसकर पचीस ग्राम रसमें पचास ग्राम ताजा गोमूत्र मिलाकर पिलायें। पुनर्नवाका चूर्ण पाँच ग्राम रस नहीं मिलनेपर मिलायें। भोजनके बाद पुनर्नवारिष्ट पिलायें। अधिक दुर्बलतामें पुनर्नवा मंडूर पाँच ग्राम मधुमें मिलाकर चटायें। एक घंटाके पश्चात् गोमूत्र पिलायें। गोआर पाठा (घृतकुमारी)-के पचीस ग्राम रसमें पचास ग्राम गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे पाचनतन्त्रके सभी अवयव रोगमुक्त हो जाते हैं। दो ग्राम अजवायनका चूर्ण अथवा जायफल घिसकर गोमूत्रमें मिलाकर पिलानेसे पेटका दर्द, मरोड़, आँव, भूखकी कमी निश्चित दूर हो जायगी।

बवासीर—खूनी तथा बादी दोनों बवासीर (पाइल्स) गोमूत्र पीनेसे ठीक होते हैं। शामको खाली पेट गोमूत्रमें दो ग्राम कलमी शोरा घोलकर पिलायें। क़ब्ज़की स्थितिमें त्रिफला-चूर्ण मिलाकर गोमूत्र पिलायें। जलोदरमें दो ग्राम यवक्षार मिलाकर गोमूत्र पान करना चाहिये। अन्न खाना बंद कर दें। फलों तथा सब्जियोंका रस पिलायें। दूध भी दे सकते हैं।

खाज-खुजली—खुजली, एग्जिमा, सफेद दाग, कुष्ठ-रोगमें दोनों समय गोमूत्र पिलायें। गिलोय (अमृता, गुडूची)-के रसमें गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे शीघ्र लाभ होता है। चावल मोगराका तेल गोमूत्रमें मिलाकर चमड़ीपर मालिश करें।

हृदयरोग—गोमूत्र पीनेसे खूनमें थक्के नहीं जमते। हाई एवं लो ब्लडप्रेशरमें गोमूत्रका लैक्टोज असर करता है। हृदयरोगमें गोमूत्र अच्छा टॉनिक है। यह सिराओं और धमनियोंमें कोलेस्टेरॉलको जमने नहीं देता। दस ग्राम अर्जुन-छालका चूर्ण गोमूत्रमें मिलाकर पिलायें। अर्जुन-छालकी चाय बनाकर पिलानेसे भी बहुत लाभ होता है। मिठासके लिये चीनीके स्थानपर किशमिश-खजूर, सेबका रस व्यवहारमें लायें।

हाथी-पाँव (फीलपाँव)—सौ ग्राम गोमूत्रमें हल्दीचूर्ण पाँच ग्राम, मधु अथवा पुराना गुड़ मिलाकर पिलायें। फाइलेरियामें अण्डकोष, हाथकी नसोंमें सूजन आ जाती है। सुबह-शाम दोनों समय नित्यानन्दरस दो-दो गोली गरम पानीसे खिलाकर आधा घंटाके बाद गोमूत्र पिलायें। क़ब्ज़में एरंडका तेल मिलाकर गोमूत्र पिलायें। चाय, कॉफी, चॉकलेट, मांसाहार तथा धूम्रपान बंद कर दें।

गुर्दा-रोग—किडनी मानवके रक्तसे अशुद्धियोंको छानकर मूत्रद्वारा शरीरका विष निकालती है। किडनी फेल होनेपर इसका प्रत्यारोपण होता है। डायलिसिस एक महँगा इलाज है। जिनका गुर्दा कमजोर हो, रातमें बार-बार पेशाब लगे, प्रोस्टेट-ग्रन्थि बढ़ गयी हो, उन्हें नियमित गोमूत्र पीना चाहिये।

गोमूत्रसे बढ़कर कोई औषधि नहीं है। बाल्यावस्थासे वृद्धावस्थातक बिना किसी रोगके गोमूत्र पीना स्वस्थ रहनेके लिये सर्वोत्तम है। गोमूत्र पीनेके पश्चात् तुरंत जल पीनेसे गला मीठा हो जाता है।

—प्रे० श्रीसुधाकरजी ठाकुर
बस स्टैंड, बी०एम०वाई भिलाई
पिन-४९००२५ (म०प्र०)

शोथकी दवा

पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रे च केवले। दशमूलरसे वाऽपि गुग्गुलः शोथनाशनः॥

(चक्रदत्त)

पुनर्नवा, देवदारु तथा सोंठके काढ़े या केवल गोमूत्र या दशमूलके काढ़ेको गुग्गुल मिलाकर पीनेसे शोथ दूर होता है।

आहार-विवेक

(डॉ० श्रीसोहनजी सुराना)

ईश्वरने जीवमात्रको आहारका विवेक दिया है, पर मनुष्यको विशेष रूपसे प्रदान किया है। बकरी आक खा लेती है, पर भैंस नहीं खायेगी। चील मांस खा लेती है, पर कबूतर नहीं खायेगा। आहारका केवल स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ही नहीं, अनेक दृष्टिकोणोंसे विचार करना चाहिये, जैसे—भौगोलिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक। मात्र मनुष्य ही विवेकका सदुपयोग कर इनपर विचार कर सकता है।

हमें कितना खाना आवश्यक है और हमारा संतुलित भोजन कैसा होना चाहिये—इसपर विचार करें। जो लोग बुद्धिजीवी हैं, जिन्हें अधिक श्रम नहीं करना पड़ता—जैसे कार्यालयमें काम करनेवाले अथवा सेवानिवृत्त, उनको अधिक मात्रामें भोजनकी आवश्यकता नहीं है। पर आदतसे विवश होकर वे मात्राका संतुलन नहीं करते, जिससे मोटापा बढ़ता जाता है, पाचनशक्ति उचितरूपसे काम नहीं करती है और वे पेटके अनेक रोगोंसे ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति साधन-भजन भी नहीं कर सकते। पर जो लोग कारखानेमें अथवा खेतों आदिमें काम करते हैं, उनके भोजनकी मात्रा अधिक होनी चाहिये। पर प्रायः विपरीत अवस्था ही देखी जाती है, इसलिये धनी लोगोंमें रोग—मोटापा विशेष पाया जाता है। हमारी पाचन-क्रियाकी क्षमता भी सीमित है, इसलिये क़ब्ज़, गैस, अपचकी बीमारी हो जाती है।

हम उचितरूपसे भोजन करना और श्वास लेना भी नहीं जानते। जो व्यक्ति उचित ढंगसे श्वास लेता है, प्राणायाम करता है, उसकी खुराक कम होती है। इसी तरह जो खूब चबा-चबाकर भोजन करता है, उसकी पाचनशक्ति ठीक रहती है। आज भोजन करनेमें तो कम, पर बेकार बातचीत करने आदिमें समय अधिक लगाते हैं। इससे अपच होना स्वाभाविक है। बहुत गरम मसालेवाला भोजन अथवा बहुत ठंडा भोजन भी आँतोंपर घाव करता है और अनेक प्रकारके रोगोंका कारण बनता है।

अनियमित भोजन स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है। इससे पाचन-क्रियामें गड़बड़ी होती है। ठीक समयपर, ठीक स्थानपर बैठकर, चिन्तारहित होकर, शान्त वातावरणमें धीरे-धीरे चबाकर भोजन करना स्वास्थ्यवर्धक है। भोजन सात्त्विक होना चाहिये। मसालेवाली, तली हुई गरिष्ठ वस्तुएँ और अनेक प्रकारके व्यञ्जन, अधिक मिठाई, खटाई, चटपटे एवं नमकीन भोजन स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं। अधिकांश बीमारियाँ अतिभोजनके कारण होती हैं।

भोजनमें स्वादको अधिक महत्त्व दिया जाता है तथा स्वादमें प्रियता और अस्वादमें अप्रियताका भाव हमने जोड़ रखा है। चीनी, नमक और चिकनाई—ये तीनों भोजनके अनिवार्य अङ्ग बन गये हैं। बहुत चीनीका प्रयोग भी न हो। अधिक चीनीसे पेट, मोटापा और कृमि-रोग हो जाते हैं। बहुत चिकनाई लीवर, हृदय-रोग और मोटापाका कारण बनती है। अधिक नमक खानेसे हृदय-रोग, गुर्देके रोग, रक्तचाप, चर्म-रोग आदि पनपते हैं। नमक जो खनिज है, कृत्रिम है और जो नमक शाक, भाजी और फलोंमें मिलता है वह प्राकृतिक लवण है, वह लाभदायक है। शरीरकी आवश्यकताके लिये यह नमक काफी है। उच्च रक्तचाप और गुर्देकी बीमारियोंका कारण भोजनमें अधिक नमकका प्रयोग ही है। आज तो नमक नहीं हो तो स्वाद नहीं, फिर भोजन ही कैसा? भोजनमें नमकका प्रयोग कम हो तो अनेक शारीरिक बीमारियाँ कम हो जायँ। नमक छोड़ना केवल स्वास्थ्यके लिये ही नहीं, साधनाके लिये भी उपयोगी है। नमक कृत्रिम ढंगसे उत्तेजना पैदा करता है। अधिक नमकका प्रयोग साधनाके लिये विघ्न है और स्वास्थ्यके लिये भी वर्जित है। एक साथ बहुत ज्यादा वस्तुएँ खानेसे बहुत बीमारियाँ हो सकती हैं। पेटमें बहुत तरहके व्यञ्जन हानिकर हैं।

जैसे शरीरके लिये कृत्रिम नमक उपयोगी नहीं है, वैसे ही चीनी भी उपयोगी नहीं है। चीनी तो सहज ही चावल, रोटी, दूध आदिमें होती है। दूधमें चीनी होती है। जो दूधमें चीनी डालकर पीते हैं, उनको दूधके स्वादका पता नहीं लगता। बहुत चीनीके सेवनसे अधिक बीमारियाँ होती हैं तथा दाँत भी खराब हो जाते हैं।

अधिकांश लोग अनियमित आहार करते हैं—कभी कम, कभी ज्यादा। भोजन न तो अधिक मात्रामें होना चाहिये, न कम मात्रामें। अध्यशन आहारका महत्त्वपूर्ण दोष है। पहले खाया हुआ पचा नहीं और पुनः भोजन कर लेना 'अध्यशन' है। सामान्य मर्यादा तो यह है कि पाँच या कम-से-कम चार घंटा पहले फिर अन्न न लिया जाय। जल भी एक या दो घंटा पहले नहीं पीना चाहिये। प्राचीन कालमें केवल दो बार खानेकी रीति थी, पर

आजकल तो चार-पाँच बार या दिनभर कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं, यह ठीक नहीं। भोजन खड़े-खड़े, चलते-फिरते, लेटे-लेटे करना स्वास्थ्यके लिये हानिकर है।

भोजनका ऋतुओंसे भी सम्बन्ध है। ग्रीष्म-ऋतु अथवा वर्षा-ऋतुमें अग्नि मन्द रहती है, इसलिये हलका भोजन और शीतकालमें गरिष्ठ भोजन श्रेयस्कर है। इसी तरह देशके अनुसार ठंडे या गरम देशोंमें भोजनमें परिवर्तन स्वाभाविक है। शक्ति-व्ययके अनुसार ही भोजनकी मात्रा निश्चित होनी चाहिये। बार-बार चाय पीना, धूम्रपान, मसाला, पान-सुपारी, तम्बाकू आदिका सेवन शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है। आहार मस्तिष्कको अत्यधिक प्रभावित करता है। मादक वस्तुओंके प्रयोगसे मस्तिष्कका नियन्त्रण ढीला पड़ जाता है। आधुनिक युगमें मदिरा भी एक प्रकारका आहार गिना जाने लगा है और इसका प्रचलन सम्पन्न और सभ्य समाजमें भी जोरोंसे बढ़ रहा है। भूखको बढ़ानेके लिये भाँग आदि भी सेवन की जाती है। मादक द्रव्योंका परिणाम भयंकर होता है—आदत खराब हो जाती है, जिसका छूटना कठिन हो जाता है। धीरे-धीरे मस्तिष्ककी कोशिकाएँ (Cells) विकृत हो जाती हैं तथा जिगर (लीवर)-की शक्तिका नाश हो जाता है और अनेक रोग—जलंधर, पीलिया आदि हो सकते हैं। जैसा आहार वैसा रसायन, जैसा रसायन वैसी मस्तिष्क-क्रिया और जैसी मस्तिष्क-क्रिया वैसा हमारा आचार, व्यवहार, विचार और स्वभाव।

आधुनिक सभ्य समाजमें मांसाहारका भी प्रचलन बढ़ता दिखायी देता है। आधुनिक शरीरशास्त्री भी अन्वेषणोंके आधारपर मांसाहारको शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये दोषपूर्ण बताते हैं। स्थूल दृष्टिसे मांसाहारमें हिंसा और अधर्मका दोष तो विद्यमान रहता ही है।

आहारका एक पहलू है निराहार। हमारे लिये खाना जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही 'नहीं खाना' भी। स्वास्थ्यके लिये उपवास भी जरूरी है। हमारे शास्त्रोंमें उपवासका महत्त्व शारीरिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे भी है। जो लोग केवल भोजन करनेका ही महत्त्व समझते हैं, उसे छोड़नेका महत्त्व नहीं समझते, वे न केवल मोटापेकी बीमारीको, अपितु अनेक अन्य बीमारियोंको भी भोगते रहते हैं। अधिक खानेवाले कमजोर देखे जाते हैं, कारण उनको अपने अधिक वजनका भार रात-दिन ढोना पड़ता है। विवेकपूर्ण-आहारसे ही शान्त, सुखी, स्वस्थ तथा आध्यात्मिक जीवन पूर्णरूपसे व्यतीत किया जा सकता है।

जीवनका प्रथम आधार—आहार

(पं० श्रीशशिनाथजी झा, वेदाचार्य)

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' धर्मका प्रथम साधन है शरीरका नीरोग रहना। चरकसंहितामें कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिका मूल कारण शरीरका आरोग्य रहना है। पर इस आरोग्यके अपहरणकर्ता हैं रोग, जो श्रेयस्का और जीवनका भी विनाश करते हैं—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।

(चरक० सू० १। १५-१६)

कहनेका तात्पर्य यह है कि स्वस्थ शरीरके द्वारा ही मनुष्य सभी प्रकारके धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्योंका सम्पादन कर सकता है। शरीरके अस्वस्थ रहनेपर मनुष्य यदि मनसे कुछ सोचता भी है तो वह कुछ कर नहीं सकता। अतएव शास्त्रकारोंने स्वास्थ्यकी रक्षाके प्रयोजनको निर्दिष्ट करते हुए कहा है—

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

अर्थात् अन्यान्य कामोंको छोड़कर सर्वप्रथम शरीरकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शरीरका अभाव होनेपर सब कुछका अभाव हो जाता है।

वात, पित्त तथा कफ—इन तीनोंको दोष कहा जाता है, जिस पुरुषके शरीरमें ये त्रिदोष सम-अवस्थामें हों, अग्नि (जठराग्नि) सम हो अर्थात् पाचनक्रिया ठीक हो, रसादि धातुओंका ठीक-ठीक निर्माण हो रहा हो, मल-मूत्रादिका विसर्जन उचितरूपसे हो रहा हो और इन सबके फलस्वरूप आत्मा, इन्द्रिय एवं मन यदि प्रसन्नताका अनुभव कर रहे हों तो उसे स्वस्थ कहते हैं

यानी स्वस्थ व्यक्तिका यही लक्षण है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सुश्रुत सू० १५। ४१)

मनुष्य-शरीरके तीन आधार-स्तम्भ हैं—**'त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति'** (चरक सू० ११। ३५) १-आहार, २-स्वप्न (उचित सोना) और ३-ब्रह्मचर्य। प्रथम आधार—आहारकी शुद्धि शरीरकी रक्षामें विशेष अपेक्षित है। यही कारण है कि हमारे यहाँ त्रिकालज्ञ परम ज्ञान-विज्ञानविशारद ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओंने खान-पानकी, आचार-विचारकी शुद्धिपर विशेष ध्यान दिया; क्योंकि इससे धर्माचरणका प्रधान सम्बन्ध तो है ही, स्वास्थ्यका भी गहरा सम्बन्ध है।

विश्ववन्द्य वेदका निर्देश है कि मनुष्योंको प्रातः एवं सायं दो बार भोजन करना चाहिये। इसके बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये। यह भोजनकी विधि अग्निहोत्रके समान ही है। मल-मूत्र त्याग करनेके बाद, इन्द्रियोंके निर्मल तथा शरीरके हलके रहनेपर, ठीकसे डकार आने एवं मनके प्रसन्न रहनेपर, वायुका संक्रमण ठीकसे होनेपर, भूख लगनेके बाद, भोजनके प्रति रुचि उत्पन्न होनेपर, आमाशयके ढीले पड़ जानेपर भोजन करना चाहिये; क्योंकि यही भोजनका उचित अवसर है*—

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥
विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ
विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति।
तथान्नश्रद्धायां क्षुदुपगमने कुक्षौ च शिथिले
प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः॥

भोजन करनेसे पहले हाथ-मुँह और पैर अवश्य धोने चाहिये—**'आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत'**, क्योंकि कहा गया है कि **'आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्'** अर्थात् गीले पैर जो भोजन करता है, वह दीर्घायु होता है।

भोजन कब करना चाहिये, इसपर निर्देश है कि—

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्।
याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः॥

याम कहते हैं प्रहरको, यह तीन घंटेका होता है। सूर्योदयसे तीन घंटेतक भोजन न करे, दो याम यानी छः घंटेसे अधिक विलम्ब भी न करे। दो यामोंके बीचमें भोजन करनेसे अन्नरसका परिपाक भलीभाँति होता है। दो याम बिताकर भोजन करनेपर पूर्वसंचित बलका क्षय होता है। अतः सदैव समयपर ही भोजन करना चाहिये।

भोजनके समय क्या करना चाहिये, इस विषयमें बताया गया है—

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥

अर्थात् भोजनका सदैव आदर करे, प्रत्युत प्रशंसा करता हुआ उसे ग्रहण करे। भोजनकी निन्दा कभी न करे, उसे देखकर आनन्दित हो, भाँति-भाँतिसे उसका गुणगान करे। क्योंकि इस प्रकार ग्रहण किया गया भोजन प्रतिदिन बल एवं पराक्रमको देता है। बिना प्रशंसाके किये गये अन्नका भोजन करना तो दोनोंकी क्षति करता है।

भोजनकी मात्रा कितनी हो उसे बताते हुए कहा गया है—

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्धिका।
मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरूण्यपि लघून्यपि॥
गुरूणामर्धमौचित्यं लघूनां नातितृप्तता।
मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद् विजीर्यति॥

नित्य मात्राके अनुसार किया गया आहार जठराग्निको प्रदीप्त करता है। मात्राका निर्धारण गुरु एवं लघु द्रव्योंके आधारपर होता है। तदनुसार गुरु पदार्थ (तेल तथा घीमें तले हुए पदार्थ, दूध, मलाई, रबड़ी आदि)-का सेवन भूखकी मात्रासे आधा ही करना उचित है और लघु (सुपाच्य) पदार्थोंका तृप्तिपर्यन्त करना चाहिये, किंतु तृप्तिसे अधिक नहीं। जितनी मात्रामें भोजन सुखपूर्वक

---

* इसी बातको आचार्य वाग्भटने इन शब्दोंमें कहा है—

प्रसृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे विशुद्धे चोद्गारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति।
तथाऽग्नावुद्रिक्ते विशदकरणे देहे च सुलघौ प्रयुञ्जीताहारं विधिनियमितं कालः स हि मतः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० ८। ५५)

पच जाय, उतनी मात्रामें भोजन करना उचित है।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष स्वाद आदिके लोभसे बिना प्रमाणके अज्ञानी पशुओंकी भाँति भोजन करते हैं, वे रोगसमूहकी जड़—अजीर्ण रोगसे पीडित होते हैं।

भोजन करनेके नियम भिषगाचार्योंने जिस प्रकार बताये हैं उसे आहार-विधि कहा है—उष्ण, स्निग्ध, नियत मात्रामें, भोजनके पच जानेपर, वीर्याविरुद्ध अर्थात् जो आहार परस्परमें विरुद्ध वीर्यवाले न हों, अपने मनके अनुकूल स्थानपर, अनुकूल सामग्रियोंके सहित आहारको न अधिक जल्दी, न अधिक देरसे, न बोलते हुए, न हँसते हुए, अपने अगल-बगल चारों ओर भलीभाँति परीक्षणकर, आहारद्रव्यमें मन लगा करके भोजन करना चाहिये*।

दूसरेकी जूठी कोई चीज खाना या खिलाना सर्वथा हानिकारक है। जूठी चीजोंके सेवनसे विचारोंमें विकृति आती है, बुद्धि दुर्बल हो जाती है और शरीरमें बहुविध रोग उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ—डॉक्टर किसी संक्रामक रोगके रोगीकी नब्ज देखकर अथवा उसका उपचार कर सावधानीसे हाथ धोता है; क्योंकि कीटाणुओंका भय रहता है। जब छूने मात्रसे कीटाणुओंका संक्रमण होता है, तब थूक लगे जूठे पदार्थोंके भोजनमें कीटाणुओंका भय नहीं है, यह मानना ही मन्दमतिता है। आजकल एक-दूसरेकी जूठन शौकसे खायी जाती है। 'बफे पार्टी या सिस्टम' (Buffet party or system) तो पशुभोजनकी भाँति सबके जूठन खाने-खिलानेकी ही दूषित भोजनप्रणाली है। इससे शारीरिक-मानसिक रोग बढ़ते हैं और अन्ततः पतन होता है।

बिना नहाये-धोये गंदे विचारोंवाले सर्वहारा मनुष्यके अथवा कामी, क्रोधी तथा वैरभाव रखनेवाले एवं अस्वस्थ व्यक्तिके हाथका बनाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिये। यदि किया गया तो उससे मनमें अपवित्रता, गंदगी, काम-क्रोधादि कुत्सित विचार अथवा शत्रुता उत्पन्न होगी। अच्छी तरह नहाये-धोये शुद्ध शरीरवाले, सात्त्विक भोजी, सुसंस्कृत भाववाले संयमी स्वस्थ सुहृद् व्यक्तिके हाथका बनाया भोजन हमें करना चाहिये। भोजन बनानेवाले मनुष्यके स्वस्थ या अस्वस्थ शारीरिक और मानसिक विचार तथा विकारका प्रभाव भोजनपर पड़ता है तथा उन पदार्थोंका भोजन करनेवाले व्यक्तिपर भी तदनुसार ही असर होता है।

भोजनमें हिंसाजनित मांस, लहसुन-प्याज आदि तामसी पदार्थों तथा पापाचारसे प्राप्त भोजनके सेवनसे भोजन करनेवालोंके सद्विचार और सद्व्यवहार नष्ट होते हैं। इससे उनमें पापमें पुण्यबुद्धि हो जाती है। फलतः मनुष्य पाप-पथिक बनकर सर्वनाशकी दिशामें पदारूढ हो जाता है; परिणाम होता है उसका नाश, क्योंकि '**बुद्धिनाशात् प्रणश्यति**।' अतः विधिपूर्वक भोजन करनेसे पहले भक्तिभावसे भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्रसाद बन जायगा, उसकी आत्मा प्रसन्न हो जायगी—'**प्रसादस्तु प्रसन्नात्मा**'। उस प्रसादके पानेसे पानेवालेको प्रसन्नता मिलेगी, शान्ति मिलेगी, सच्ची आरोग्यता प्राप्त होगी और हमारा सात्त्विक बना शरीर एवं मन स्वतः ही भगवन्मार्गका पथिक बन जायगा।

स्नानके गुण

निद्रादाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्। हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम्॥
तन्द्रापाप्मोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम्। रक्तप्रसादनञ्चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम्॥

(सु० चि० अ० २४। ५७-५८)

स्नान निद्रा, दाह और श्रम (थकावट)-को दूर करता है, शरीरके पसीने, खुजली और तृषा (प्यास)-को मिटाता है, हृदयके लिये हितकर तथा मलनाशक है, स्नान करनेसे शरीरकी सभी (ग्यारह) इन्द्रियोंकी शुद्धि हो जाती है, स्नानसे तन्द्रा (झपकी आना) और बुरे विचार नष्ट होते हैं, शरीरकी तुष्टि होती है तथा स्नानसे पुंस्त्व (पुरुष-शक्ति)-की वृद्धि होती है, स्नान अशुद्ध रक्तको शुद्ध करता है और पाचकाग्निका दीपक है।

* इसीके विषयमें चरककी उक्ति है—

उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धमिष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितमजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीत, आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्॥ (चरक विमान० १। २४)

आहार एवं पथ्यापथ्य

(श्रीरामहर्ष सिंह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष कायचिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू वि० विद्यालय, वाराणसी)

आयुर्वेदीय साहित्यमें शरीर एवं व्याधि दोनोंको आहारसम्भव माना गया है—'**आहारसम्भवं वस्तु रोगाश्चाहारसम्भवाः**' (च०सू० २८।४५)। शरीरके उचित पोषण एवं रोगनिवारणार्थ सम्यक् आहार-विहारका होना आवश्यक है। आहारद्वारा शरीर-पोषणकी प्रक्रिया अग्निपर निर्भर है। आहार-ग्रहणके उपरान्त उसका पाचन, शोषण एवं चयापचय आदि सभी क्रियाएँ अग्नि-व्यापारके अन्तर्गत आती हैं। अतएव अग्निका सम होना आवश्यक है। हितकर आहारको 'पथ्य' एवं अहितकर आहारको 'अपथ्य' कहा गया है। यद्यपि पथ्य और अपथ्यकी मौलिक अवधारणा अत्यन्त विस्तृत है तथापि इसका प्रसंग-मात्र आहारसम्बन्धी न होकर औषधि, आहार एवं विहार इस त्रिवर्गसामान्यसे सम्बन्धित है।

वैद्यजीवनमें लोलिम्बराजने पथ्यको औषधिसे भी अधिक महत्त्व दिया है।[1] वस्तुतः आयुर्वेदीय पथ्यविज्ञानका एक विशेष सिद्धान्त है। आचार्य चरकके अनुसार पथके लिये जो अनपेत हो वही पथ्य है। इसके अतिरिक्त जो मनको प्रिय लगे वह पथ्य है और इसके विपरीतको अपथ्य कहते हैं।[2] पथका अर्थ है शरीर-मार्ग या स्रोतस् तथा अनपेतका अर्थ है अनपकारक (अपकार न करनेवाला) अर्थात् उपकार करनेवाला। चक्रपाणि[3] उक्त कथनपर टीका करते हुए कहते हैं कि शरीरके बाह्य दोष (मलादि), धातुओं आदिके निवर्तक मार्ग या स्रोतस्को पथ शब्दसे ग्रहण किया जाता है, जिससे कृत्स्न शरीर अर्थात् सर्वशरीरको ही ग्रहण किया जाता है। जो पथके लिये हितकारी हो वह पथ्य है। इस प्रकार शरीरके अनुपघाती (उपकारकारक) भाववाले आहारादि जो मनको प्रिय हों, वे पथ्य कहे जाते हैं तथा इसके विपरीत भाववाले आहारादि अपथ्य।

आचार्य चरकने आगे पथ्य और अपथ्यके संदर्भमें '**नियतं तन्न लक्षयेत्**'[4] कहा है। तात्पर्य यह है कि पथ्य और अपथ्यका उक्त लक्षण नियत या प्रत्यात्म नहीं है; क्योंकि कोई भी भाव सर्वदा पथ्य या अपथ्य नहीं होता प्रत्युत पथ्य अथवा अपथ्य होना कई घटकोंपर निर्भर करता है। इन घटकोंके प्रभावसे पथ्य आहार अपथ्य हो सकता है तथा अपथ्य आहार पथ्य।

पथ्य या अपथ्यका नियमन करनेवाले प्रधान घटक निम्नलिखित हैं[5]—

१-मात्रा (Measure)
२-काल (Time)
३-क्रिया (Mode of preparation)
४-भूमि (देश, आतुर) (Habitat)
५-देह (Constitution)
६-दोष (Morbid humours)

पथ्य अथवा अपथ्यका निर्धारण करनेके लिये उक्त तथ्योंपर विचार करना आवश्यक है। बिना विचार किये ही किसी भी वस्तुको हम निश्चित रूपसे पथ्य अथवा अपथ्य नहीं कह सकते। यद्यपि किंचित् द्रव्य स्वभावतः अपथ्य होते हैं तथापि स्वभावतः अपथ्य पदार्थोंके अतिरिक्त अन्य औषधि-अन्न-विहारादि भावोंका उक्त मात्रा-कालादिका विचार कर प्रयोग करनेसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है।[6]

स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त आहार आवश्यक है। शरीर और आहार—ये दोनों ही पाञ्चभौतिक हैं। आहारके माध्यमसे ही शरीरके अवयवोंकी सम्पुष्टि होती है। पथ्याहार ही शारीरिक विकासका कारण बनता है, जबकि अपथ्याहार व्याधिका कारण बनता है। दोष-धातु-मल एवं स्रोतस् ही शरीरके मूल हैं। पथ्य विशेषरूपसे शरीरके

१- पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः। पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥ (वैद्यजीवन, प्रथम १०)

२- पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्। यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत्॥ (च०सू० २५।४६)

३- पथः शरीरमार्गात् स्रोतोरुपादनपेतम्, अपेतमपकारकम्, अनपेतमनपकारकमित्यर्थः, पथग्रहणेन पथो बाह्यदोषा धातवश्च तथा पथो निवर्तका धातवो गृह्यन्ते, तेन कृत्स्नमेव शरीरं गृहीतं भवति। ततश्च शरीरानुपघाति पथ्यमिति भवति; मनसो हितमिति प्रियार्थः। एतेन मनः शरीरानुपघाति पथ्यमिति पथ्यलक्षणमनपवादं स्यात्॥ (चक्रपाणि च०सू० २५।४४ पर)

४- नियतं निश्चितमिदमप्रियमेव सर्वदेहमपथ्यमेवेत्येवरूपं किञ्चिन्नास्तीत्यर्थः। कुतो नास्तीत्याह—मात्रेत्यादि। (चक्रपाणि, च०सू० २५।४४ पर),

५- मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम्। प्राप्य तत्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथा तथा॥ (च०सू० २५।४७)

६- तस्मात् स्वभावो निर्दिष्टस्तथा मात्रादिराश्रयः। तदपेक्ष्योभयं कर्म प्रयोज्यं सिद्धिमिच्छता॥ (च०सू० २५।४८)

दोष एवं धातुओंको सम्पुष्ट करता हुआ उन्हें सम बनाये रखता है। अपथ्यकी इसके विपरीत स्थिति होती है।

आहारके संदर्भमें यह विशेष विचारणीय तथ्य है कि सर्वविधसम्पन्न आहारका पूर्ण लाभ तबतक नहीं लिया जा सकता, जबतक मानस क्रियाओंका उचित व्यवहार न हो; क्योंकि कुछ ऐसे निश्चित मानसिक भाव यथा—दु:ख, भय, क्रोध, चिन्ता आदि हैं जिनका आहार एवं पथ्य तथा अपथ्यपर प्रभाव पड़ता ही है। यदि पथ्य उचित मात्रामें ही लिया गया हो तो भी ये मानसिक भाव (Psychological factors) आमदोष उत्पन्न करते हैं। यही आमदोष अतिशीघ्र कुपित होकर विषूचिका, अलसक (अजीर्ण रोगका एक भेद), विलम्बिका, अतिसार, ग्रहणी आदि रोगोंको उत्पन्न करता है। कभी-कभी आमदोष जब धीरे-धीरे प्रकुपित होता है तो आमवात, ज्वर आदि दीर्घगामी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। वस्तुत: आमदोष शरीरमें कहीं भी विकृति उत्पन्न कर सकता है—जब यह सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है और कहीं भी संचित होकर स्वयंके लक्षणोंसे युक्त होकर उस अवयव-विशेषमें व्याधि-स्वरूप व्यक्त हो जाता है।

जैसा कि श्रीलोलिम्बराजने कहा है—पथ्य औषधिसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, किंतु पथ्य ही सब कुछ नहीं है। वस्तुत: पूर्णरूपसे हितकर आहारसेवी भी अस्वस्थ देखे जाते हैं। यद्यपि आहारके अतिरिक्त रोगोंके अन्य कारण भी हैं; यथा—असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग, प्रज्ञापराध एवं काल-परिणाम आदि। इसलिये हितकर आहारसेवी भी उक्त कारणोंसे अस्वस्थ हो जाते हैं। अपथ्य-सेवनकी स्थितिमें व्यक्ति स्वस्थ कैसे रहता है, इसके लिये आचार्यने तीन हेतु बताये हैं—१-अतुल्यता, २-दोष और ३-शरीर।* अपथ्य-सेवन करनेवालोंमें किन्हीं कारणोंवश अपथ्य-सेवन शीघ्र प्रभावी नहीं होता। सभी अपथ्य समान रूपसे दोषकारक नहीं होते तथा सभी दोष भी समान बलवाले नहीं होते। इसी प्रकार सभी शरीर भी रोगका सहन करनेमें समानरूपसे समर्थ नहीं होते।

कोई अपथ्य देश, काल, संयोग, वीर्य एवं मात्रा आदि भावोंके प्रभावसे और अधिक अपथ्य हो जाता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि अपथ्य आहारके समान ही उक्त देश, काल आदि भाव भी समान हों तो उस अपथ्याहारका दोषकर परिणाम अधिक शीघ्र एवं तीव्र होगा। इसके विपरीत यदि वे समान गुणवाले न हों तो अपथ्यका प्रभाव कम हो जाता है।

दोष-बल एवं शरीर-बलकी भिन्नताके कारण अपथ्य सर्वत्र समान रूपसे प्रभावी नहीं होता तथा इन्हीं कारणोंसे रोग भी मृदु, दारुण, सद्य: उत्पन्न तथा चिरकारी होता है।

'पथ्य और अपथ्य' के प्रकरणमें मात्राका विशेष महत्त्व है। आचार्योंने आहार-औषधि आदिके मात्रापरक प्रभावोंसे इस विषयको स्पष्ट किया है। पिप्पली कटु और गुरु है, यह न अधिक स्निग्ध है न अधिक उष्ण प्रत्युत विपाकमें मधुर है। यदि पिप्पलीकी सममात्रा अल्पसमयतक प्रयुक्त की जाय तो अत्यन्त हितकर होती है। इसे 'आपातभद्रा' कहा गया है, परंतु अधिक मात्रामें प्रयुक्त होनेपर यह दोष-संचय करती है, गुरु एवं क्लेदकारी होनेसे कफोत्क्लेश करती है तथा अल्प स्निग्ध होनेसे वात-शमन करनेमें असमर्थ रहती है। इसलिये इसका निरन्तर प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार क्षार उष्ण-तीक्ष्ण-लघु तथा प्रथमत: क्लेदकारक तदनन्तर शोषक होता है। यह पाचन, दाह एवं भेदनहेतु प्रयुक्त होता है। इसके अतिप्रयोगसे केश, दृष्टि एवं पुंस्त्वका नाश होने लगता है। अत: क्षारका अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये। लवण भी उष्ण, तीक्ष्ण, नातिगुरु, नातिस्निग्ध, क्लेदक एवं स्रंसक होता है। लवणका अल्पकालमें अल्पमात्रामें प्रयोग हितकर होता है, परंतु अतियोगसे दोष-संचय होता है। इसलिये पिप्पली तथा क्षार और लवण एवं इसी प्रकारके अन्य द्रव्योंको अल्पकालतक अल्पमात्रामें ही प्रयोग करना चाहिये। यदि इनका निरन्तर प्रयोग किया गया हो और ये सात्म्य हो गये हों तो इनका क्रमसे परिवर्जन करना चाहिये।

आहार एवं पथ्य तथा अपथ्यके संदर्भमें यह सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्तिको स्वयमेव निश्चित करना चाहिये कि उसके लिये उपयुक्त आहार क्या है; क्योंकि आहारका पथ्य अथवा अपथ्य होना एक तो व्यक्तिकी प्रकृतिपर निर्भर करता है, दूसरा देश, काल, मात्रा आदिपर निर्भर करता है। आहार यदि

---

* अहिताहारोपयोगिनां पुन: कारणतो न सद्यो दोषवान् भवत्यपचार:, न हि सर्वाण्यपथ्यानि तुल्यदोषाणि, न च सर्वे दोषास्तुल्यबला:, न च सर्वाणि शरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानि भवन्ति, तदेव ह्यपथ्यं देशकालसंयोगवीर्यप्रमाणातियोगाद्भूयस्तरमपथ्यं सम्पद्यते॥

(च०सू० २८।७)

जीवनीय तत्त्वोंसे भरपूर तथा उचित मात्रामें किया जाय तो शरीरमें 'व्याधिक्षमत्व' बढ़ता है। व्यक्तिको स्वाभाविक भोजन ग्रहण करते हुए अनावश्यक स्वादलोलुपतासे बचना चाहिये। सभी परिस्थितियोंमें आहार सरल, सुपाच्य एवं नियत मात्रामें होना चाहिये। जिनकी पाचनशक्ति दुर्बल हो, उन्हें कम प्रोटीनवाले आहार लेने चाहिये। भोजन ग्रहण करनेके आधे घंटे बाद जल लेना चाहिये। भोजनके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि भोजन आवश्यकतासे थोड़ा कम किया जाय। आयुर्वेदीय साहित्यमें इसका स्पष्ट निर्देश है। पूर्वाचार्योंने कहा है कि भोजन करते समय आमाशयमें लभ्य स्थानके संदर्भमें दो चौथाई ठोस आहार, एक चौथाई द्रव पदार्थ तथा एक चौथाई वायव्य पदार्थसे भरना चाहिये अर्थात् एक चौथाई भाग खाली रखना चाहिये, ताकि पाचनमें सुविधा रहे।[1] आहार सुपाच्य एवं रुचिपूर्ण हो इसके लिये आवश्यक है कि एक ही प्रकारका आहार अधिक मात्रामें न लिया जाय। आहार सर्वविध सम्पन्न एवं सभी रसोंसे युक्त होना चाहिये, जिससे शरीरको आवश्यक सभी तत्त्वोंकी पूर्ति होती रहे। इसीलिये आयुर्वेदमें 'सर्वरसाभ्यास' को आहारविज्ञानका एक प्रमुख सिद्धान्त माना गया है।

आहारविज्ञानमें मात्र आहारके भौतिक घटकोंका महत्त्व नहीं है, अपितु आहारकी संयोजना, विविध प्रकारके आहार-द्रव्योंका सम्मिलन, आहारपाक या संस्कार, आहारकी मात्रा एवं आहार-ग्रहणविधि तथा मानसिकता सभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

अष्ट आहार-विधि विशेषायतन

ऊपर आहारकी पथ्यता तथा अपथ्यताको प्रभावित करनेवाले मात्रा, क्रिया, कालादि भावोंका उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त आचार्य चरकने आहार-ग्रहणकी आठ विधियाँ बतायी हैं।[2] ये सभी एक-दूसरेके सहयोगी हैं तथा आहार पथ्य है अथवा अपथ्य, इसका निर्धारण करते हैं। ये आठ भाव शुभाशुभ फलदायक हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

१-प्रकृति (Natural quality)
२-करण (संस्कार) (Preparations)
३-संयोग (Combinations)
४-राशि (Quantum)
५-देश (Habitat and climate)
६-काल (Time factor and disease state if any)
७-उपयोग-संस्था (Rules of use)
८-उपयोक्ता (user)

स्वाभाविक गुणयुक्त द्रव्योंमें जो संस्कार किया जाता है, उसे 'करण' कहते हैं। किसी भी द्रव्यमें अतिरिक्त गुणोंका आधान ही संस्कार है—**'संस्कारो हि गुणान्तराधानम्'**—(च०वि० १। २७ की व्याख्या) यही पाकविद्याका प्रमुख उद्देश्य है।

द्रव्योंमें अतिरिक्त गुणोंका आधान जल एवं उष्माके संयोगसे शुद्धीकरण, मन्थन, स्थान-देश-काल आदिका परिवर्तन, भण्डारण अथवा भावना निवेशद्वारा करते हैं। अष्ट आहारविधि-विशेषायतनोंमें उपयोग-संस्थाका विशेष महत्त्व है। आचार्य चरकने आहार-ग्रहणके संदर्भमें दस प्रकारके नियमोंका निर्देश किया है[3]—

१-उष्ण भोजन ग्रहण करना चाहिये।
२-स्निग्ध आहार ग्रहण करना चाहिये।
३-मात्रावत् (नियत मात्रामें) आहार लेना चाहिये।
४-भोजनके पूर्ण रूपसे पच जानेपर ही भोजन करना चाहिये।
५-वीर्यविरुद्ध आहार नहीं लेना चाहिये।
६-इष्ट देशमें एवं इष्ट उपकरणों (सामग्रियों)-में ही आहार ग्रहण करना चाहिये।
७-द्रुतगतिसे भोजन नहीं करना चाहिये।
८-अधिक विलम्बतक भोजन नहीं करना चाहिये।
९-बोलते हुए नहीं अर्थात् शान्तिपूर्वक तथा बिना हँसते हुए आहार ग्रहण करना चाहिये।
१०-अपने आत्माका सम्यक् विचार कर तथा आहार-द्रव्यमें मन लगाकर और स्वयंकी समीक्षा करते हुए भोजन ग्रहण करना चाहिये।

१-द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत्। वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥ (ज्योत्स्ना टीका, ह०प्र०प्र०उ० ५८)
२-खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति। तद्यथा—प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्त्रष्टमानि भवन्ति। (च०वि० १। २५)
३-उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धमिष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितमजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीतात्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्॥ (च०वि० १। २४)

शाकाहारसे स्वास्थ्यकी सुरक्षा

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

शाकाहार एक जीवन-प्रणाली है, जिसका भारतीय संस्कृतिसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। इसीलिये आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक, अहिंसा, प्रकृति, योग एवं पर्यावरणकी दृष्टिसे यह निर्विवाद है कि शाकाहार उत्तम आहार है। परंतु सबसे बड़ी बात जो पाश्चात्त्य देशोंके लोगोंको शाकाहारकी ओर आकर्षित कर रही है, वह है शाकाहारसे स्वास्थ्यकी सुरक्षा। प्रस्तुत लेखमें वैज्ञानिक आँकड़ोंके आधारपर और विश्व-प्रसिद्ध स्वास्थ्य-विशेषज्ञोंकी रायके अनुसार यह प्रमाणित करनेका प्रयास किया जा रहा है कि स्वास्थ्यकी सुरक्षा मांसाहारकी तुलनामें शाकाहारसे अधिक है।

शाकाहारमें पर्याप्त प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं कैलोरी—कई बार कुछ मांसाहारी और विशेषकर विद्यार्थी-वर्ग एवं डॉक्टर-वर्ग बीमार व्यक्तियोंको अधिक प्रोटीन उपलब्ध करानेकी दृष्टिसे उनको अंडा या मांस खानेकी सलाह देते हैं, ताकि उन्हें पर्याप्त प्रोटीन मिले। यह बात तो सही है कि स्वास्थ्यके लिये प्रोटीन भोजनका आवश्यक तत्त्व है, परंतु हमें यह देखना चाहिये कि क्या शाकाहारसे पर्याप्त प्रोटीन मिल सकता है? निम्न तालिकाके देखनेसे यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और कैलोरीकी दृष्टिसे शाकाहार स्वास्थ्यकी सुरक्षा करनेमें ज्यादा लाभदायक सिद्ध होता है। भारत सरकारकी स्वास्थ्य-बुलेटिन संख्या २३ के द्वारा कुछ खाद्यान्नोंमें तुलनात्मक अध्ययनद्वारा प्रोटीन, ऊर्जा और कैलोरीकी दृष्टिसे विभिन्न खाद्योंकी तुलना की गयी है। कुछ खाद्यान्नोंका तुलनात्मक चार्ट नीचे दिया जा रहा है—

तुलनात्मक चार्ट (प्रति १०० ग्राम)

नाम पदार्थ	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	कैलोरी
शाकाहार खाद्य			
मूँग	२४.०	५६.६	३३४
सोयाबीन	४३.२	२०.९	४३२
मूँगफली	३१.५	१९.३	५४९
स्प्रेटा दूध पाउडर	३८.३	५१.०	३५७
मांसाहार खाद्य			
अंडा	१३.३	०	१७३
मछली	२२.६	०	९१
बकरेका मांस	१८.५	०	१९४

—इस तालिकासे स्पष्ट हो जाता है कि प्रोटीन, कैलोरी और कार्बोहाइड्रेटकी दृष्टिसे शाकाहार उत्तम आहार है। बल्कि अंडे, मछली तथा मांसमें कार्बोहाइड्रेट अर्थात् ऊर्जा, जो शरीरके लिये अत्यन्त आवश्यक है, बिलकुल नहीं होता।

फिर अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेटकी दृष्टिसे उत्तम फल शाकाहारियोंको प्राप्त हो सकते हैं, जैसे आम, केला, अंगूर, सेब आदि। इसी प्रकार विभिन्न दाल, गेहूँ, चावल, आलू आदिमें पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट उपलब्ध है। यही नहीं, विभिन्न प्रकारके विटामिन और खनिज पदार्थ भी पर्याप्त मात्रामें फलों, सब्जियों और खाद्यान्नोंमें मिलते हैं।

अंडा भी स्वास्थ्यवर्धक नहीं—आजकल प्राय: यह सुननेमें आ रहा है कि बच्चोंको अंडे आदिके सेवनसे अधिक स्वस्थ बनाया जा सकता है। यह एक भ्रान्ति है, जिसका निराकरण सन् १९८५ ई० के नोबल पुरस्कार-विजेता डॉ० माइकल एस० ब्राउन तथा डॉ० जोसेफ एल्० गोल्डस्टीन नामक दो अमेरिकन डॉक्टरोंने किया, जब उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि हृदयके रोगके कारण ही अधिकांश मौतें होती हैं। उनके अनुसार कॉलस्टेरोल नामक तत्त्वको रक्तमें जमनेसे रोकना बहुत आवश्यक है और कोलेस्टेरॉल अंडोंमें सबसे अधिक मात्रामें अर्थात् १०० ग्राम अंडेमें लगभग ५०० मि०ग्रा० पाया जाता है। यह वनस्पतियों एवं फलोंमें शून्य-सा होता है, परंतु मांस, अंडों और जानवरोंसे प्राप्त वसामें प्रचुर मात्रामें होता है। अब यह भी सिद्ध हो गया है कि अंडा सुपाच्य नहीं है, बल्कि अंडेके छिलकेपर लगभग १५,००० सूक्ष्म छिद्रोंके द्वारा कई जीवाणु उसमें प्रवेश कर जाते हैं, जो उसे खराब कर देते हैं। इस प्रकार अब वैज्ञानिकोंने यह प्रमाणित कर दिया है कि जो व्यक्ति मांस या अंडे खाते हैं, उनके शरीरमें 'रिस्पटरों' की संख्यामें कमी हो जाती है, जिससे रक्तके अंदर कोलेस्टेरॉलकी मात्रा अधिक हो जाती है, इससे हृदय-रोग आरम्भ हो जाता है। गुर्देके रोग एवं पथरी-जैसी बीमारियोंको बढ़ावा मिलता

है। यही कारण है कि 'इंटरनेशनल वेजिटेरियन यूनियन' एवं शाकाहारी संस्थाओंद्वारा शाकाहारको विदेशोंमें बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखा जा रहा है। सन् १९८५ ई० में मात्र ६० लाख अमेरिकन शाकाहारी थे, परंतु एक नवीनतम सर्वेक्षणके अनुसार अमेरिकाके दो-तिहाई घरोंमें अब शाकाहार आकर्षक हो गया है।

शाकाहार पौष्टिक आहार है—कई बार मांसाहारके पक्षमें यह तर्क दिया जाता है कि बच्चोंको अधिक शक्तिशाली बनानेकी दृष्टिसे उन्हें मांसाहार कराया जाना चाहिये, परंतु यह बात सही नहीं। उपरि निर्दिष्ट तालिकासे यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्रोटीन, कैलोरी और कार्बोहाइड्रेट आदिकी दृष्टिसे स्वास्थ्यके लिये शाकाहार ही पौष्टिक आहार है। इसके अतिरिक्त यदि हम शाकाहारी जानवरोंके उदाहरण देखें तो पायेंगे कि विशुद्ध शाकाहारी जानवर मांसाहारी जानवरोंकी तुलनामें अधिक शक्तिशाली हैं, जैसे-घोड़ा, गेंडा तथा हाथी।

खिलाड़ियोंके लिये अच्छा स्वास्थ्य शाकाहारसे सम्भव—क्रिकेटके विश्वविख्यात बहुत-से खिलाड़ी पूर्णतया शाकाहारी हैं। विश्वके कई प्रख्यात खिलाड़ी और पहलवान शाकाहारी रहे हैं, जैसे—गुरु हनुमान् तथा गामा। मास्टर चन्दगीराम, जो पूर्णतया शाकाहारी हैं, वे भी अपने समयके बहुत ही प्रख्यात पहलवान रहे हैं। ओलम्पिकमें विश्व-रिकार्ड कायम करनेवाले स्टेनप्राईस और दूर पैदल चलनेमें विशेष योग्यता रखनेवाले स्वीटगौन तथा लम्बी दौड़में बीस विश्व-रिकॉर्ड बनानेवाले नूरमी—ये सब शाकाहारी हैं। इंग्लिश चैनल नहरको तैरकर द्रुतगतिसे पार करनेवाले रिकार्ड-होल्डर बिलपिकिंग और चार सौ मीटर एवं पंद्रह सौ मीटरकी दौड़में विश्व-रिकार्ड रखनेवाले मुरेरोज भी पूर्णतया शाकाहारी हैं। अन्ताराष्ट्रिय बाडी-बिल्डिंग चैम्पियन एण्ड्रूज शिलिंग तथा पिरको वर्नोट भी शाकाहारी हैं। इतना ही नहीं, कराटेके क्षेत्रमें आठ राष्ट्रीय कराटे जीतनेवाले 'एबेल' शाकाहारी हैं। टेनिसके श्रीकमलेश मेहता और विश्वविख्यात विजयमर्चेन्ट एवं वीनु मांकड शाकाहारी रहे हैं।

रोगोंकी रोकथाममें शाकाहार अधिक लाभकारी—मांसाहारकी अपेक्षा शाकाहार विभिन्न रोगोंकी रोकथाममें अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। विश्व-स्वास्थ्यसंघने ऐसी एक सौ साठ बीमारियोंके नाम अपने समाचार-पत्रमें घोषित किये हैं, जो मांसाहारसे ही फैलती हैं। इन बीमारियोंमें मिरगी प्रमुख है। यह बीमारी मस्तिष्कमें टीनिया सोलिठम नामक कीड़ेसे उत्पन्न होती है। यह कीड़ा सूअरका मांस खानेसे उत्पन्न होता है। मानवपर सैकड़ों प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि पशुओंवाली चिकनाईसे रक्तमें 'कोलेस्टेरॉल' की मात्रा बढ़ जाती है और वनस्पतिकी चिकनाई उसे कम करती है। इस बातके लिये प्रचुर प्रमाण यह है कि 'आर्टिरियोस्कलेरोसिस' तथा 'कोरोनरी' हृदय-रोगोंमें कोलेस्टेरॉल बड़ा कारण है। लॉस एंजिल्स (अमेरिका)-के डॉ० मारिसनका कथन है कि कोलेस्टेरॉलसे अन्य कितने ही मानव-रोग उत्पन्न होते हैं, यथा—पथरी (शरीर-विज्ञान)-से सम्बन्धित प्रयोगशालाके डॉक्टर मूरने यह प्रदर्शित किया है कि मांसाहारसे हृदयका क्रिया-कलाप बढ़ जाता है। 'न्यूयार्क लाइफ इंश्योरेंस कार्पोरेशन' के डॉक्टर हंटर आर्थर इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि मांस खानेसे रक्तचाप बढ़ता है। मांसाहार शरीरमें विषाक्त पदार्थोंको प्रवेश कराता है। जब पशु मारा जाता है, उस समय त्यागने योग्य द्रव्य उसके शरीरमें रह जाते हैं, जिसके कारण मांसाहारमें उत्तेजनाका तत्त्व होता है। इन त्याज्य-पदार्थोंकी मात्रा मृत पशुमें उसके जीवित अवस्था तथा उसके वधकी अपेक्षा अधिक होती है। इसी प्रकार रक्तचाप, आर्टरीकी कठोरता और गुर्देके रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके लिये भी मांसाहार हानिकारक है।

स्वास्थ्यके प्रेमियोंके लिये स्वयंके स्वास्थ्य-हेतु यह आवश्यक है कि वे अंडे और अन्य मांस आदि अभक्ष्य वस्तुका सेवन निश्चित रूपसे कभी न करें।

आहार और आरोग्य

(डॉ० श्रीसोहनजी सुराना)

आहारका अर्थ है भीतर लेना। मुँहसे खाना-पीना, नाकसे श्वास लेना, त्वचासे वायु-धूप ग्रहण करना आदिको भी आहारके अन्तर्गत ही समझना चाहिये। जन्मके पहले माँके रक्तद्वारा बालकका पोषण होता है, जन्मके बाद माँका स्तन-पान ही उसका आहार है। आहार अथवा भोजन क्यों लिया जाता है? सर्वप्रथम तो स्वाभाविकरूपसे भूख लगती है, उसकी निवृत्तिके लिये और शरीरका पोषण करने तथा शक्ति-प्राप्तिके लिये आहार लिया जाता है। शारीरिक स्वास्थ्यके अलावा मानसिक स्वास्थ्य भी आहारपर निर्भर है। शारीरिक स्वास्थ्यका मूल आधार है—संतुलित भोजन। शारीरिक क्रिया-संचालनके लिये जो-जो तत्त्व अपेक्षित हैं, उन सबका हमारे भोजनमें होना आवश्यक है और यही संतुलित भोजन है। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज, विटामिन, क्षार तथा लौह आदि उचित मात्रामें लेनेसे शरीर स्वस्थ और क्रिया करनेमें सक्षम रहता है। उचित मात्रामें जल-सेवन भी अति आवश्यक है।

भोजनका दूसरा दृष्टिकोण मानसिक स्वास्थ्य है। भोजनका मनकी क्रियाओंपर बहुत असर पड़ता है। अनेक प्रकारकी मानसिक विकृतियोंके लिये भोजन उत्तरदायी होता है। हमें वह भोजन करना चाहिये जो जीवन-धारणके लिये अनिवार्य हो। स्वादकी दृष्टिसे भोजन नहीं करना चाहिये। मादक द्रव्य—चाय, कॉफ़ी, मदिरा आदि मानसिक स्वास्थ्यको विकृत करते हैं और आदत खराब करते हैं। आहारका सर्वाधिक महत्त्व इसलिये है कि यह हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तिका एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। भोजनका प्रभाव हमारी आन्तरिक वृत्तियोंपर और सूक्ष्म शरीरपर भी होता है। मदिरा आदि सभी मादक वस्तुएँ हमारी जागरूकताको खण्डित करती हैं, चेतनाको मूर्च्छित करती हैं और प्रमाद पैदा करती हैं। इसलिये मदिरा तथा अन्य मादक वस्तुओंके आहारका सर्वथा निषेध है।

प्राण-वायु भी हमारा आहार ही है, उसमेंसे ऑक्सीजनको हमारे फेफड़े लेते हैं और कार्बनडाई ऑक्साइडको बाहर निकालते हैं। वन, उपवन आदि प्राकृतिक स्थलोंकी शुद्ध हवामें ऑक्सीजनकी मात्रा पूरी होती है, इसीलिये वह स्वास्थ्यके लिये लाभदायक है। इसी तरह सूर्यका ताप भी हमारा श्रेष्ठ आहार है। इसलिये आवश्यक है कि हम शुद्ध वातावरणमें जीवन व्यतीत करें। जहाँपर प्रकाश, पवन, पानी, पड़ोस, पवित्रता तथा परमार्थका साधन सुलभ हो वहाँ रहना चाहिये।

भोजन हितकर एवं स्वास्थ्यके लिये लाभकारी होना चाहिये। साथ ही देश, काल, ऋतुके अनुकूल होना चाहिये। भोजन ताजा बनाया हुआ ही लाभकारी है, बासी भोजन तामसी हो जाता है और स्वास्थ्यके प्रतिकूल होता है। भोजनकी मात्रा भी उचित होनी चाहिये, न तो कम और न ज्यादा। ठूँस-ठूँसकर भोजन करना पेट और शरीरपर अत्याचार करना है। नियत समयपर भोजन करना चाहिये और एक दिनमें दो या तीन बारसे अधिक नहीं करना चाहिये। भोज्य पदार्थोंमें संयम रखना आवश्यक है। भोजन सात्त्विक होना चाहिये। चरपरी, मीठी तथा बहुत सारी चीजें एक साथ नहीं खानी चाहिये। हितभोजी वह होता है जो स्वास्थ्यके अनुकूल संतुलित भोजन करता है। भोजनकी मात्रा परिमित होनी चाहिये।

भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिये। मुँहमें दाँत हैं पर आँतोंमें एक भी दाँत नहीं है तो बेचारी आँतोंकी मुसीबत हो जाती है। आँतें कमजोर हो जाती हैं, हाज़मा खराब हो जाता है। भोजन न तो अत्यधिक गरम और न ठंडा होना चाहिये। आँत और दाँत दोनों ठंडी चीजोंसे शीघ्र खराब हो जाते हैं। जब भूख लगे तभी भोजन करना चाहिये। भोजन पकाते या बनाते समय हमारी सूक्ष्म भावनाओं या मानसिक विचारधाराओंका भी उसपर प्रभाव पड़ता है। क्रूरताकी भावनामें बनाया हुआ भोजन करनेसे कोमल भाववाले व्यक्तिमें भी क्रूरताकी भावना उत्पन्न होना सम्भव है। इसलिये भोजन बनानेवाला, पैदा करनेवाला पवित्र भावनावाला होना चाहिये। भोजन ही स्वास्थ्य देता है और भोजन ही स्वास्थ्य बिगाड़ता है। भोजन रोग भी पैदा करता है और आरोग्य भी देता है।

भोजनके प्रति विवेक अति आवश्यक इसलिये है कि हम ठीक प्रकारसे भोजन करना नहीं जानते, हम श्वासतक ठीक प्रकारसे लेना नहीं जानते। आज हमारे यहाँ भोजनका मानदण्ड है केवल स्वाद। यदि भोजन स्वादिष्ठ मिल जाय तो हम ठूँस-ठूँसकर खानेसे चूकते नहीं। इसी प्रकार भोजनकी मात्राका मापदण्ड है कि अब आगे ज्यादा खाया नहीं जा सकता। ऐसी स्थितिमें आहार-प्रणालीके दोषके कारण शरीर और मन दोनों रुग्ण हो जाते हैं। यह भी देखा जाता है कि चटपटी चीजें केवल स्वादके लिये खायी जाती हैं और काफी मात्रामें खायी जाती हैं। आहारके असंयमके कारण आज हमारे देशमें साधनसम्पन्न व्यक्ति तो शायद ही कोई बिना ओषधिके हो। भोगके पीछे रोग और रोगके पीछे भोग। किसी बड़े या छोटे शहर या गाँवमें चले जाइये तो डॉक्टरों तथा दवाकी दूकानोंकी कमी नहीं मिलेगी। अधिकांश बीमारियाँ अतिभोजनके कारण होती हैं। अपने पेटकी थैलीके दो भाग भोजनसे भरने चाहिये। एक भाग पानी और एक भाग हवाके लिये खाली रखना चाहिये। आज हमने भोजन करनेकी व्यवस्थित पद्धतिको भुला दिया है और यह भोजन-विधिका अज्ञान ही बहुत सारी समस्याओंको जन्म देता है। 'खाना' जरूरी है तो उसके साथ 'नहीं खाना' भी जरूरी है। शास्त्रोंमें व्रत, उपवास भी ज्ञान-विज्ञानपूर्वक बताये गये हैं। अनाहार अथवा उपवास भी ओषधि है। नियमित उपवाससे कमजोरी नहीं आती, वरं शक्तिका संचय होता है, जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये अति आवश्यक है। अतः आहार-विहारके सम्बन्धमें पूर्ण सावधानीकी आवश्यकता है।

उपवाससे स्वास्थ्य-लाभ

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, आयुर्वेदाचार्य)

भारतीय सनातन संस्कृतिमें व्रतोपवासका विशिष्ट स्थान है। यह हिन्दू-संस्कृतिका एक अभिन्न अङ्ग है। मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें मुख्यरूपसे मन तथा शरीरकी सर्वविध शुद्धिपूर्वक भगवत्प्राप्तिकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये उपवासकी उपयोगिता निर्दिष्ट की गयी है और इसे सनातन धार्मिक जीवनका एक आवश्यक अङ्ग बतलाया गया है। इसी दृष्टिसे एकादशी आदिके उपवासोंका विधान है। कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, चान्द्रायणादि व्रतोंमें तो उपवास-कर्म प्रायश्चित्तस्वरूप हो जाता है। वासिष्ठ धर्मशास्त्रमें उपवासको परिभाषित करते हुए कहा गया है—

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः॥

—इसका भाव यह है कि उपवासमें सभी प्रकारके तामसी एवं राजसी इन्द्रिय-भोगोंसे विरति तथा सत्कर्मपूर्वक भगवद्भजन, ध्यानादि कर्म निर्दिष्ट रहते हैं। उपवासादिके अनुष्ठानसे सभी प्रकारके पाप-तापोंका उपशमन होता है और सत्कर्मरूप अनुष्ठानसे सद्गुणोंका संचय होता है। इस प्रकार उपवास एक पुण्य अनुष्ठान है।

उपवासके दिन व्रतीको सात्त्विक एवं स्वल्प आहार-विहारका ही सेवन करना चाहिये। इससे न केवल शरीर स्वस्थ रहता है; अपितु मन भी दुर्विचारसे अलग होने लगता है। उपवासके द्वारा अनेक भीषणतम रोगोंके भी उपशमन, निदान एवं चिकित्सामें सहयोग प्राप्त होता है। आयुर्वेदादि चिकित्सा-पद्धतियोंमें ज्वरादि रोगोंको शान्त करनेके लिये प्रायः भोजन आदिका निषेध तथा पथ्यसेवनका विधान बताया गया है। इसलिये शरीरको स्वस्थ रखने तथा रोगोंके शमन करने-हेतु उपवासकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्सामें उपवासपर विशेष बल दिया गया है। उपवास पाचनतन्त्रको शक्ति प्रदान करता है। पाचन-संस्थानकी स्वस्थता ही आरोग्यकी पहली शर्त है।

शरीर एक यन्त्रकी तरह अनवरत कार्य करता रहता है। भोजनको पचाकर मलभाग बाहर फेंकना तथा सार-भागसे प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गका पोषण करना ही इसका प्रमुख कार्य है। उपवास करनेसे पाचनक्रियामें

भाग लेनेवाले अवयवों—आमाशय, आहार-नली, पित्ताशय, यकृत् तथा आँतोंको विश्राम मिलता है। अतिभोजनसे शरीरकी ऊर्जाका बहुत-सा भाग उसे पचानेमें ही व्यय हो जाता है, अतः विषाक्त द्रव्योंका पूरी तरहसे निराकरण नहीं हो पाता। यह अवस्था रोगोंको उत्पन्न करती है। बीमार होनेपर हमारी सारी शक्ति रोगकारक विष-द्रव्योंके निष्कासनमें लगी रहती है, फलतः भूख नहीं लगती। अतः रोगनिवारक सभी उपायोंमें उपवास प्राकृतिक सरल एवं श्रेष्ठ चिकित्सा है। पशु-पक्षी भी रोगग्रस्त होनेपर उपवास करते देखे जाते हैं। सभी प्राणियोंकी प्राथमिक चिकित्सा उपवास ही है।

उपवासके तीन उद्देश्य हैं—शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ। उपवाससे दमा, मोटापा, क़ब्ज़, बवासीर, अपेंडिसाइटिस, संग्रहणी, गठिया तथा यकृत्‌के रोगोंमें बहुत लाभ होता है। प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ महर्षि चरकके अनुसार उलटी, अतिसार, अजीर्ण, बुखार, शरीरका भारीपन, जी मिचलाना, अफरा, अरुचि आदि रोगोंमें उपवास परम औषध है। इससे शरीरमें रोग-प्रतिरोधक शक्ति एवं यौवनकी स्थिरता बनी रहती है। उपवाससे शरीर तथा मस्तिष्कके अवयव तरोताजा हो जाते हैं। पेट अन्नसे भरा होनेपर रक्तप्रवाह उदरकी तरफ अधिक होता है, जिससे मस्तिष्कको ऊर्जा कम मिलती है। व्रतसे शरीरके अनावश्यक भारका क्षय तथा भूखकी वृद्धि होती है। मानसिक दुर्बलता, अवसाद, चिन्ता आदि व्याधियोंका उपवाससे निराकरण होता है। इससे नवीनता, स्फूर्ति एवं आत्मोन्नति होती है। डॉ० प्यूरिंगटनने आरोग्य, जीवनका आनन्द, सौन्दर्य, स्वतन्त्रता, शान्ति तथा शक्ति चाहनेवालोंको उपवास करनेकी सलाह दी है।

व्यक्तिकी शारीरिक क्षमता तथा रोगके अनुसार एक दिनसे इक्कीस दिनतक उपवास करनेका विधान है। सिरदर्द, उदरविकार, जुकाम, गलेकी सूजन आदि रोगोंमें तीन-चार दिनके छोटे उपवाससे लाभ हो जाता है। गठिया, लीवरके रोग एवं कैंसर आदिमें लंबा उपवास किया जाता है। मांसाहारीको लंबा तथा शाकाहारीको छोटा उपवास अपेक्षित है। स्वस्थ व्यक्तिको जीवनशक्ति बढ़ाने एवं स्वास्थ्यकी रक्षा-हेतु सप्ताहमें एक दिन उपवास करना पर्याप्त है। उपवाससे बहुत-सा विषाक्त द्रव्य शरीरके मांसतन्तुओंसे निकलकर रक्तमें मिल जाता है, अतः विषका प्रभाव नष्ट करने और इसे शरीरसे बाहर निकालनेके लिये प्राकृतिक लवणोंकी आवश्यकता होती है जो फलाहारसे प्राप्त होते हैं। अधिक दिनतक उपवास करनेवालोंको केला, सेब, टमाटर, खीरा, गाजर, मूली, पालक, पत्तागोभी, शहद एवं छाछका प्रयोग करना चाहिये। साप्ताहिक उपवासमें केवल पानी या नीबूका पानी पीना पर्याप्त है। उपवासके प्रारम्भिक दिनोंमें पेटमें वायु, अनिद्रा, मुँहका बेस्वाद होना, दुर्गन्धिपूर्ण पसीना आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। धैर्यपूर्वक उपवास जारी रखनेपर इनका स्वतः ही शमन हो जाता है।

उपवास-कालमें बिस्तरपर न लेटकर, चिन्तामुक्त रहते हुए हलका कार्य करना चाहिये। धूपस्नान, मिट्टीस्नान, प्राणायाम, मौनधारण, दूबपर भ्रमण और स्नान उपवासके लाभको दुगुना कर देते हैं। बार-बार थोड़ा-थोड़ा पानी पीना भी लाभकारी है। अधिक ठंडा पेय, चाय, कॉफ़ी तथा धूम्रपानका सेवन उपवासके लाभको नष्ट कर देता है। भूखे पेट रहकर चाँदनीका सेवन स्नायुतन्त्रको मजबूत बनाता है। लंबे उपवासको फलोंका रस या शहद लेकर खोलना चाहिये। कुछ दिनतक भारी भोजन करनेके बजाय फलाहारपर रहना उत्तम है।

भारतीय धार्मिक परम्परामें समय-समयपर विभिन्न व्रतोंका समावेश उत्तम स्वास्थ्यको लक्ष्यमें रखकर ही किया गया है। एकादशीके दिन मोटापा बढ़ानेवाले चावल आदि स्टार्चयुक्त पदार्थोंका निषेध तथा प्राणशक्ति बढ़ानेवाले फलाहारका निर्देश निश्चय ही प्रशंसनीय है।

भोजनके समान उपवासकी इच्छा होनेपर ही इसे करना चाहिये। उत्साह तथा प्रसन्नतापूर्वक किया गया उपवास अधिक लाभ करता है। भूख-प्यास सहन न करनेवालों, मुखशोष, चक्कर, न्यून रक्तचापसे ग्रस्त व्यक्तियों, बालक, गर्भिणी स्त्री तथा अतिवृद्धोंको यथाशक्ति ही उपवास करना चाहिये।

धार्मिक व्रतोंसे आरोग्यकी प्राप्ति

(डॉ० श्रीकेशव रघुनाथजी कान्हेरे एम्०ए०, पी-एच्०डी०, वैद्यविशारद)

यदि आज हम भारतीय समाजकी ओर दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट-रूपसे दिखायी देती है कि हमारा समाज पाश्चात्त्य संस्कृतिसे इतना प्रभावित हो गया है—इतना ग्रस्त हो गया है कि वह अपनी-स्वयंकी पहचान ही भूल गया है। वह अपने धार्मिक व्रतोंको हेय दृष्टिसे निहारता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे लोगोंको इन्हें आचरणमें लानेकी सलाह देनेका प्रयास करता है तो वे उलटा प्रश्न करते हैं, कहते हैं कि 'धार्मिक व्रतोंके पीछे कोई वैज्ञानिक आधार या सिद्धान्त है क्या? इनके पालनसे कोई लाभ है क्या?' ऐसे न जाने कितने प्रश्नोंकी बौछार करके वे स्वयं तो भ्रमित रहते ही हैं, दुर्बल आस्थावालोंको डिगा भी देते हैं।

आजकलकी छोटी-छोटी बस्तियों, कस्बों, गाँवों, शहरों और बड़े-बड़े नगरोंमें निवास करनेवालोंकी ओर निगाह डालें तो परिणाम अपने-आप सामने आता है। जरा-सी छींक आने, थोड़ा-सा ज्वर होने तथा सर्दी-खाँसीसे पीडित होनेपर लोग डॉक्टरकी शरणमें जाते हैं। तुरंत मूत्र तथा रक्त आदिकी जाँच करानेकी सलाह मिलती है और रिपोर्ट देखकर चिकित्सक इलाज करते हैं। बड़े-बड़े शहरों-नगरोंमें नर्सिंग-होम और विशालकाय हॉस्पिटलोंकी शृंखलाएँ फैल रही हैं। आजके युगमें कैंसर, ब्लडप्रेशर, मधुमेह, गठिया आदि रोगोंसे अधिकांश व्यक्ति पीडित हैं। कुछ रोग तो ऐसे हैं जो धनके साथ-साथ शरीरका भी नाश कर डालते हैं।

सौ-दो-सौ वर्षोंके इतिहासका ही सिंहावलोकन करें तो आजकी तुलनामें तत्कालीन भारतीय समाज अधिक स्वस्थ था, नीरोग था। आजके जैसे भयंकर रोग कोसों दूर थे। सामान्य रोगोंका आक्रमण नहीं होता था ऐसी बात नहीं, परंतु वे लोग धर्मशास्त्रके अनुसार आचरण करके स्वस्थ तथा नीरोग रहनेका प्रयास अवश्य करते थे और उन्हें सफलता भी मिलती थी।

हमारे ऋषि-मुनियोंने 'मानव किस प्रकार स्वस्थ जीवन व्यतीत करे', इसकी खोज करके वैज्ञानिक एवं आयुर्वेदके आधारपर 'धार्मिक व्रतोंका अनुपालन' करनेका उपाय प्रस्तुत किया। इन व्रतोंके पालनसे अनेक सामान्य रोगोंसे मानव मुक्ति प्राप्त करके स्वस्थ जीवनका अनुभव करते-करते मानसिक तनावसे छुटकारा पाकर भगवत्प्राप्तिका सहज-सुलभ साधन भी प्राप्त कर सकता है। ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है।

भारतवर्षमें नव-वर्षारम्भसे अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे संवत्सरपर्यन्त सभी तिथियोंमें व्रतोंका विधान है। मासव्रत, वारव्रत, तिथिव्रत, नक्षत्रव्रत आदि तो प्रसिद्ध ही हैं। सभी व्रत करने सम्भव तो नहीं हैं तथापि प्रत्येक मासमें कम-से-कम एक या दो व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् नववर्षारम्भको मुख-मार्जन स्नानादिसे निवृत्त होनेके उपरान्त सर्वप्रथम कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेका विधान है। प्रतिदिन प्रात:काल कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेसे रक्त शुद्ध होकर अनेक चर्म-रोगोंसे मुक्ति मिलती है।

इसी दिनसे श्रीरामनवमीतक चैत्र नवरात्र-उत्सवका शुभारम्भ होता है। अनेक स्त्री-पुरुष इसमें उपवास रखकर भगवान् श्रीराम और भवानी माताकी उपासना करके दीर्घ शान्ति और सुख प्राप्त करनेकी कामना करते हैं।

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें 'अक्षय-तृतीया' एक अत्यन्त शुभ मुहूर्त है। इस पवित्र तिथिको उपवासपूर्वक जलसे भरा हुआ मृत्तिका-कुम्भ, फल-पंखा तथा दक्षिणासहित दान करनेका विधान है। इसी तिथिसे प्रतिदिन मिट्टीके घड़ेमें भरा हुआ जल पीना प्रारम्भ करना आरोग्यदायी माना जाता है। मिट्टीके सम्पर्कसे जल शुद्ध होता है। पञ्चतत्त्वोंमेंसे ये दो तत्त्व—जल और पृथ्वी शरीरके लिये पोषक बनते हैं। सर्दीके दिनोंमें बना हुआ तथा अग्निसम्पर्कसे पका हुआ मिट्टीका घड़ा अधिक उपयोगी माना गया है। फ्रिजमें रखे हुए जलकी अपेक्षा मटकेका पानी अधिक लाभकारी है।

श्रीपुरुषसूक्तमें एक ऋचा है—**'चन्द्रमा मनसो जात:०'**

अर्थात् परमब्रह्म परमात्माके मनसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है। चन्द्रमा शीतल है। कहते हैं कि चन्द्र-किरणोंसे अमृतकी वर्षा होती है। मानवकी सम्पूर्ण क्रिया मनसे ही होती है। चन्द्रमा और भगवान् श्रीगणेशका अद्वितीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टिसे मनकी शान्ति-हेतु और बुद्धि-प्राप्ति-हेतु श्रीगणेशचतुर्थीका उपवास फलदायी होता है। प्रत्येक मासमें दो चतुर्थी आती हैं। अधिकांश लोग कृष्णपक्षकी चतुर्थीका व्रत करते हैं। दिनभर उपवास रखकर शामको भगवान् श्रीगणेशका पूजन करके चन्द्रोदयके पश्चात् चन्द्रका दर्शन कर भोजन करना उपयुक्त है। भगवान् श्रीगणेशको तिल-गुड़का नैवेद्य या मोदक अधिक प्रिय है। चन्द्रोदयके पश्चात् भोजन करनेसे अन्नमें उत्पन्न चन्द्रमाका अमृत एवं उसकी शीतलता मनको शान्ति प्रदान करती है।

धार्मिक व्रतोंमें एकादशी, प्रदोष और शिवरात्रि, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी आदिका बड़ा महत्त्व है। वर्षभरमें चौबीस एकादशियाँ आती हैं। इनमें विष्णुशयनी, प्रबोधिनी एकादशी तथा महाशिवरात्रि-व्रतका अपने-आपमें बड़ा महत्त्व है।

यद्यपि सालभर धार्मिक व्रतोंका अपार भण्डार है तथापि चातुर्मास-व्रतोंके पालनका आरोग्यप्राप्तिकी दृष्टिसे अनोखा एवं अद्वितीय महत्त्व माना गया है। यदि हम चातुर्मासमें धार्मिक व्रतोंका सही-सही पालन करें तो आरोग्यप्राप्तिके साथ-साथ आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त कर सकेंगे।

चातुर्मासमें वात-पित्त-प्रकोपक साग-सब्जियोंका त्याग करना श्रेयस्कर होता है। साथ ही एक समय हलका भोजन करना चाहिये।

एक कहावत है—'**वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः।**' अर्थात् चिकित्सकोंके लिये शरद्-ऋतु लाभकारी है। यह एक माताकी भाँति वैद्य लोगोंकी परवरिश करती है तो वसन्त-ऋतु एक पिताकी तरह उनका पालन-पोषण करता है। दोनों ऋतुएँ अपना प्रभाव मानवके स्वास्थ्यपर डालती हैं। अधिकांश व्यक्ति इन दो ऋतुओंके आगमनके साथ-साथ ज्वर, मलेरिया, पीलिया आदि रोगोंसे पीडित होते हैं। इन रोगोंसे बचनेका घरेलू सामान्य उपाय धार्मिक व्रतोंका पालन (आचरण)-कर अपने खान-पानपर ध्यान देते हुए ईश्वरकी आराधना करना है, इससे शरीर नीरोग तो रहता ही है, आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होता है।

वर्षा-ऋतुमें अनेक सब्जियाँ सड़ती हैं, उनमें कीड़े प्रवेश करते हैं, तालाब आदिका जल दूषित हो जाता है। मच्छर, विभिन्न प्रकारके कीड़े-कीट वर्षा-ऋतु और शरद्-ऋतुमें पैदा होते हैं। इन कीड़ों-मकोड़ोंसे रोग-मुक्तिके लिये धार्मिक व्रतोंका विशेषरूपसे आयोजन होता है।

आरोग्यकी दृष्टिसे सप्ताहमें कम-से-कम एक दिन उपवास करके उस दिनसे सम्बन्धित देवताकी आराधना-पूजा-अर्चना करना पुण्यदायक है। सोमवार भगवान् शङ्करके लिये, गुरुवार भगवान् दत्तात्रेय-हेतु, शुक्रवार या मङ्गलवार माता भवानीके हेतु, शनिवार श्रीहनुमान् एवं शनिदेवकी आराधना-हेतु व्रत किया जाता है। सोमवारको शामके समय भगवान् शङ्करकी पूजा-अर्चना करके भोजन करना उपयोगी होता है। अन्य दिन—रविवार और बुधवारको मध्याह्नके पश्चात् एक समय भोजन करना चाहिये। सामान्यतः दूध, फल, साबूदाना, सिंघाड़ा, मखाना आदि सात्त्विक, सुपाच्य और हलके पदार्थोंका सेवन करना अत्यन्त लाभकारी है। सम्भव हो तो पूर्णरूपसे निराहार एवं निर्जल व्रत करना चाहिये। अधिकांश व्रतों-त्योहारोंमें दान करनेकी परम्परा है। दानका बड़ा महत्त्व है।

दान देना व्यक्तिके मानसिक विकासकी दृष्टिसे और सामाजिक कल्याणकी दृष्टिसे भी आवश्यक है। चातुर्मासके उपवास और नियम-धर्म इस दृष्टिसे भी उपयोगी होते हैं। उपवास और नियम-धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्तियोंका स्वास्थ्य तो उत्तम रहेगा ही, साथ ही उनके व्यक्तित्वका भी विकास होगा।

अतः धार्मिक व्रतोंका उचित पालन (आचरण) करनेसे शारीरिक शुद्धि होकर आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त होगी। इन व्रतोंके माध्यमसे हम ईश्वरकी भी प्राप्ति कर सकते हैं।

उपवाससे लाभ

(श्रीरवीन्द्रनाथजी वर्मा)

शरीरका पोषण अन्न-ग्रहण करनेसे होता है। खाद्य वस्तुओंको ग्रहण करनेके बाद शरीरमें पाचनतन्त्रद्वारा की गयी विभिन्न प्रक्रियाओंद्वारा उनके पोषक अंश शरीरसात्म्य पदार्थमें परिवर्तित किये जाते हैं; जिससे रस, रक्त एवं मांस आदि शारीरिक तत्त्वोंका वर्धन होता है। शरीरसात्म्य पदार्थोंको शरीरमें जमा किया जाता है और अन्नादिके जो त्याज्य पदार्थ होते हैं, वे मलरूपमें शरीरके बाहर फेंक दिये जाते हैं; जैसे—मल, मूत्र, पसीना, उच्छ्वास आदि। इससे शरीरकी क्रिया सुचारु रूपसे चलती रहती है।

प्राय: मानव लोभवश या रसकी आसक्तिसे जरूरतसे ज्यादा पदार्थ खा लेता है। इस अतिरिक्त पदार्थको पचाने तथा त्याज्य पदार्थोंको बाहर फेंकनेके लिये शरीरके पाचनतन्त्र तथा मलनिष्कासनतन्त्रको अतिरिक्त क्रिया करनी पड़ती है।

जो पदार्थ शरीरवर्धनकी क्रियाके बाद बच जाते हैं या भविष्यमें जिस पदार्थकी आवश्यकता पड़नेवाली हो, ऐसे पदार्थ शरीरमें विभिन्न जगहोंमें जमा कर लिये जाते हैं। इन्हें जरूरत पड़नेपर शरीर पुन: उपयोगमें लाता है, लेकिन थोड़ा-थोड़ा पदार्थ हमेशा जमा होते रहने और उसका ठीक उपयोग न हो पानेसे शरीर धीरे-धीरे स्थूल होता जाता है। ऐसी अवस्थामें उन पदार्थोंका सेवन वर्ज्य करने तथा संचित पदार्थोंको बाहर फेंकनेकी क्रिया करनी पड़ती है। इसीलिये उच्च रक्तचापमें नमक तथा स्निग्ध पदार्थ वर्जित किये जाते हैं और मूत्रल औषधिका प्रयोग होता है जो लवणको बाहर फेंकती है। मेद पदार्थ बाहर निकालनेके लिये व्यायाम करना या टहलना उचित होता है। इससे बाह्यत: दिखायी देनेवाली स्थूलता कम होती है और अंदरूनी रसरक्तवाही नलिकाओंकी भित्तिमें संचित पदार्थ तथा रोंध उत्पन्न करनेवाले पदार्थ भी वहाँसे हट जाते हैं।

जैसा हम अनुभव करते हैं कि एक सड़कके दोनों किनारोंपर अतिक्रमण होते-होते सड़क सँकरी हो जाती है तो आवागमनमें परेशानी होती है। वैसे ही शरीरके अंदर भी कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है, जिससे रसरक्तवहनमें रोध होता है और शरीरके पोषणमें बाधा आती है। इससे शरीरको विभिन्न प्रकारका कष्ट होता है। सड़क चौड़ी करनेके लिये जब बलप्रयोग होता है तब जिनपर बलप्रयोग होता है उन्हें क्लेश होता है। इसी प्रकार शरीरमें भी दवाका असर क्लेश उत्पन्न करता है।

यदि शरीरको सुचारु रखना है तथा क्लेश नहीं होने देना है तो कुछ नियमोंका पालन करना चाहिये। नियमोंके पालनसे शरीरमें दूषित एवं अवाञ्छनीय पदार्थोंका संचय नहीं होता।

शरीरका यह साधारण नियम है कि भूख लगनेपर ही खाना है, जितनी भूख है उतना ही खाना है और जो शरीरोपयोगी पदार्थ हैं उन्हें ही खाना है। अगर पहले खाया हुआ अन्न पच गया है तभी पुन: भोजन करना चाहिये। जब-जब मल-मूत्रका वेग हो तो शीघ्र उनका निराकरण करना चाहिये। लोभसे, जिह्वाके स्वादसे या मूढ़तासे पदार्थोंका आहरण अधिक होता है। इससे शरीरमें विजातीय पदार्थोंका संचय होता जाता है, जो विभिन्न रोगोंको आमन्त्रण देते हैं। इसके विपरीत शारीरिक श्रम, व्यायाम तथा उपवास आदिसे शरीरका संतुलन ठीक रहता है और पाचन-संस्थान सुव्यवस्थित रहता है।

रोग होनेके बाद चिकित्सा करनेसे बेहतर है—रोग न होने देना। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने अपने बुद्धिबल तथा तपोबलद्वारा शरीरकी विभिन्न क्रियाओंका सूक्ष्म अध्ययन किया था। जिसका सार उन्होंने शास्त्रोंमें प्रकट किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये नीरोगी कायाकी आवश्यकता होती है। रोगी शरीरसे न तो धर्मपालन सुचारु रूपसे होता है और न ही अर्थ आदिकी प्राप्ति ही हो सकती है।

शरीरको नीरोग रखनेके लिये जो युक्ति आयुर्वेदादि शास्त्रोंमें बतायी गयी है उसमें लंघन (उपवास)-का अत्यन्त महत्त्व है। जिस सात्त्विक उपायसे देहमें लाघव उत्पन्न होता है उसे लंघन (उपवास) कहते हैं। पिपासा (तृष्णा-निग्रहण), वायुसेवन (टहलना), धूपसेवन, उपवास, व्यायाम—ये अद्रव्यरूप लंघनक्रियाएँ हैं।

इनके अनुपालनके लिये किसी विशेष चिकित्सा या ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती। इनके अभ्याससे शरीरको नीरोग रखनेमें काफी सहायता मिलती है।

उपवाससे शरीरमें लघुता आती है। आयुर्वेदीय दृष्टिकोणसे उपवाससे शरीरके वायवीय तथा आकाशीय गुणोंमें वृद्धि होती है। इन गुणोंकी वृद्धिसे कफवृद्धिजनित तथा मांस-मेदवृद्धिजनित रोगोंका उपचार होता है। उपवाससे शरीरके स्रोतसोंमें स्थित मल नष्ट हो जाते हैं। मल, मूत्र तथा स्वेदका शोषण होता है। उपवाससे पाचनतन्त्रको आराम मिलता है जिसका प्रभाव अन्य शरीरतन्त्रोंपर अच्छा पड़ता है। रक्तमें बढ़ी हुई शर्कराकी मात्रा कम होती है। जोड़ोंका दर्द होनेका कारण है—विजातीय पदार्थोंका जोड़ोंमें जमा होना। उपवाससे ये कम होकर शिथिल हो जाते हैं तथा जकड़न दूर हो जाती है। ऐसा भी अनुभव है कि सही तरीकेसे उपवास करनेसे संक्रमणजनित बीमारियाँ ठीक करनेमें सहायता मिलती है और रोगप्रतिकारकशक्ति बढ़ती है।

शरीरके लिये उपवासका उतना ही महत्त्व है जितना कि किसी यन्त्रको ज्यादा दिनोंतक चलानेके लिये बीच-बीचमें एक निश्चित अन्तरालके बाद उसे विश्राम देना और उसकी संचालन-प्रणालीका निरीक्षण करना।

धर्मप्राप्ति करनेमें शरीरका महत्त्व जानकर ही सब धर्मोंमें उपवासका विधान बताया गया है। स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मनसे सम्यक्रूपसे धर्मप्राप्ति होती है।

विविध शारीरिक व्याधियों तथा निराशा, दुश्चिन्ता, उन्माद, अपस्मार, अतत्त्वाभिनिवेश, अवसाद इत्यादि मानसिक विकारोंकी चिकित्सामें भी उपवास अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है।

उपवासके समय जो सात्त्विक आहारका प्रयोग होता है उससे मन भी सात्त्विक हो जाता है। सत्त्वगुण बढ़नेसे वह व्यक्ति भक्तिसम्पन्न, स्मृतिमान्, कृतज्ञ, विद्वान्, पवित्र, उत्साही, दक्ष, धैर्यवान्, गम्भीर बुद्धिवाला तथा सभीके कल्याणकी भावना रखनेवाला हो जाता है।

वास्तवमें शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यमें उपवासका महत्त्व जानकर ही उसे धार्मिक आस्था-विश्वाससे जोड़ा गया है। ऋतुचर्याके अनुसार शरीरके स्वास्थ्यरक्षणके लिये विविध उपवासोंका विधान बताया गया है तथा दुग्धकल्प आदि अनेक कल्प भी बताये गये हैं। धर्मशास्त्रोंमें एकादशी आदि व्रतोंके विधानका धार्मिक महत्त्व तो है ही, आरोग्य भी इसका मुख्य हेतु है। उपवासमें लघु एवं सात्त्विक आहार सेवन करना चाहिये तथा भगवद्भावसे भावित रहना चाहिये।

औषधि-शास्त्र (भेषज-विज्ञान)-में दूधका महत्त्व

(श्रीश्रवणकुमारजी अग्रवाल)

भारतवर्षमें गायके दूधका औषधीय गुण अति प्राचीनतम कालसे जाना जाता है। चिकित्सकीय दृष्टिकोणसे दूध बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह शरीरके लिये उच्च श्रेणीका खाद्य पदार्थ है।

भोज्य पदार्थके रूपमें दूध एक महत्त्वपूर्ण आहारका विलक्षण समुच्चय है। दूध प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट्स, खनिज, वसा, इन्जाइम तथा आयरनसे युक्त होता है। दूधमें प्रोटीन और कैल्सियम तत्त्वोंका प्रसार होनेसे यह (दूधिया) अद्वितीय, अपारदर्शी होता है। मानव-जातिके लिये यह सम्पूर्ण भोजन है। चिकित्सक सभी आयु-वर्गके लिये इसे पौष्टिक भोजनके रूपमें निम्न कारणोंसे सेवन करनेका सुझाव देते हैं—

१-प्रकृतिमें उपलब्ध द्रव्यों—पदार्थोंमें केवल दूधमें शुगर लैक्टोज (दुग्ध-शर्करा) निहित होता है।

२-प्राणियोंमें नाडी-मण्डल एवं बुद्धिके विकासके लिये दुग्ध-शर्करा बहुत आवश्यक है।

३-ऊर्जस्वी गतिशील शारीरिक क्रिया-कलापोंके लिये कार्बोहाइड्रेट आवश्यक होता है।

४-शरीरमें लाल रक्त-कोशिकाके संश्लेषण (समन्वय) एवं शारीरिक शक्तिके सुधारके लिये आयरन (लौह तत्त्व) आवश्यक होता है।

५-कैल्सियम और फॉस्फोरस दाँतों और अस्थियोंको मजबूत रखनेमें सहायक होते हैं।

६-विटामिन 'ए' आँखकी रोशनी और त्वचाको

स्वस्थ रखता है एवं कम्पन-रोगको हटाता है।

७-विटामिन 'बी' नाडी-मण्डल एवं शरीरके विकासके लिये आवश्यक है।

८-विटामिन 'सी' शारीरिक रोगोंके प्रति प्रतिरोधक शक्ति पैदा करता है।

९-विटामिन 'डी' सुखण्डी-रोगसे सुरक्षा प्रदान करता है।

दूधके नियमित उपयोगकी अनुशंसा निम्न कारणोंसे भी की जाती है—

१-रात्रिमें सोनेसे पहले एक कप दूधका सेवन रक्तके नव-निर्माणमें सहायक होता है एवं विषैले पदार्थोंको निष्क्रिय करता है।

२-प्रातःकाल हलके गरम दूधका सेवन पाचन-क्रियाको संयोजित करनेमें सहायता करता है।

३-गरम दूधमें मिस्री और काली मिर्च मिलाकर लेनेसे सर्दी-जुकाम ठीक हो जाता है।

४-दूधमें सबसे कम कोलेस्ट्रॉल (१४ मि०ग्रा०/ १०० ग्रा०) होनेके कारण मधुमेहके रोगियोंको वसारहित दूध-सेवनकी सलाह दी जाती है।

५-उच्च रक्तचापसे पीडित व्यक्तिको प्रतिदिन २०० मि०ली० दूध (सिर्फ द्रव्य, पेयके रूपमें) पीनेकी सलाह दी जाती है।

६-अग्निवर्धक व्रण (Peptic Ulcer)-के रोगियोंके लिये दूध एक आदर्श आहार है। ५० मि०ली० ठंडे दूधमें एक चम्मच चनेका सत्तू दो-दो घंटेपर देनेसे अल्सरमें शीघ्र ही लाभ हो जाता है।

७-दुग्ध-सेवनसे सात्त्विक विचार, मानसिक शुद्धि एवं बौद्धिक विकास होता है।

तक्र-माहात्म्य—(योगरत्नाकरके आलोकमें)

[छाँछ या मट्ठेके गुण]

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, 'रत्नमालीय' एम०ए०, पी-एच०डी०)

आरोग्यरक्षक खाद्य-पेय पदार्थोंमें तक्रकी उपादेयता सर्वविदित है। यह स्वादु, सुपाच्य, बल, ओज एवं स्फूर्ति बढ़ानेवाला अमृत-तुल्य पेय है। उदर-रोग या विकार-विह्वल व्यक्तियोंके लिये तो यह रामबाणके समान अमोघ औषध है। 'योगरत्नाकर' नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थके प्रणेता इसकी गुणावलीपर मुग्ध होकर खुले स्वरमें घोषणा करते हैं—

कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठोभवे-
द्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः।
इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः
कुष्ठित्वं च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति॥

अर्थात् कैलासपर यदि तक्र रहता तो क्या भगवान् शिव नीलकण्ठ ही रहते? वैकुण्ठमें यदि तक्र होता तो क्या केशव (भगवान् विष्णु) साँवले ही रहते? देवलोकके राजा इन्द्र क्या दुर्भग (सौन्दर्यहीन) ही रहते? चन्द्रमा जैसे द्विजपतिको क्षयरोग होता? श्रीगणेशजीका उदर इतना बढ़ा होता? कुबेरको कुष्ठ रहता? और अग्निदेवके अंदर दाह रहता? कभी नहीं, अर्थात् तक्रके सेवनसे विष, विवर्णता, असौन्दर्य, क्षय, उदररोग, कुष्ठ और दाह आदि विविध रोग दूर होते हैं।

इसी प्रकार आगे वे कहते हैं—

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं प्रधानं तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥

तक्रका सेवन करनेवाला कभी पीडित नहीं होता है अर्थात् रोगी नहीं होता है। तक्रसे दग्ध रोग फिर कभी नहीं होते हैं। जिस प्रकार देवताओंके लिये अमृत प्रधान है, उसी प्रकार पृथ्वीपर मनुष्योंके लिये तक्र प्रधान कहा गया है।

तक्रके विविध भेद और गुण— आयुर्वेदविशारदोंकी दृष्टिमें भिन्न-भिन्न लक्षणोंके आधारपर मट्ठेका वर्गीकरण— उदश्वित्, मथित, घोल और तक्रके रूपमें चार प्रकारसे किया गया है—

उदश्विन्मथितं घोलं तक्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।
ससरं निर्जलं घोलं मथितं सरवर्जितम्।
तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्विच्चार्धवारिकम्।

योगरत्नाकरके मतसे—जिस दहीमें आधा जल देकर मथा जाय उसे 'उदश्वित्' कहते हैं। दिवोदास-प्रभृति आचार्योंके मतसे ऐसे दहीको 'तक्र' कहा

जाता है।

मथित—साढ़ी निकालकर जो दही बिना जल मिलाये मथा जाय उसे 'मथित' कहते हैं।

घोल—साढ़ीसहित, बिना जलके मथे हुए दहीको 'घोल' कहते हैं।

तक्र—जिस दहीमें चतुर्थांश जल देकर मथा जाय उसे 'तक्र' कहते हैं।

वातपित्तहरं घोलं मथितं कफपित्तनुत्।
तक्रं त्रिदोषशमनमुदश्वित्कफदं स्मृतम्॥

घोल वात और पित्तका नाशक है, मथित कफ-पित्तनाशक है, तक्र त्रिदोषनाशक है और उदश्वित् कफदायक कहा गया है।

गायके तक्रका गुण—गायका तक्र दीपन, मेधावर्धक, अर्श और त्रिदोषनाशक है तथा गुल्म, अतिसार, प्लीहा, अर्श और ग्रहणी-रोगमें हितकर है—

गव्यं तु दीपनं तक्रं मेध्यमर्शत्रिदोषनुत्।
हितं गुल्मातिसारेषु प्लीहार्शोग्रहणी गदे॥

दोषभेदसे तक्रके गुण—(क) वात-रोगमें अम्लरसयुक्त तक्र एवं सेंधा नमक मिलाकर सेवन करना हितकर है।

(ख) पित्त-रोगमें मधुर रसयुक्त एवं चीनी मिला तक्र हितकर है।

(ग) कफके दोषमें रूक्ष एवं सोंठ-पीपर-मरिच और क्षारयुक्त तक्र हितकर है।

(घ) मूत्रकृच्छ्र-रोगमें गुड़के साथ तथा पाण्डुरोगमें इसका सेवन चित्रकके साथ हितकर है।

(ङ) हींग-जीरा और सेंधा नमक मिलाया हुआ घोल वातनाशक, अर्श और अतिसारको दूर करनेवाला है।

(च) नमक मिलाकर तक्रका सेवन करनेसे यह ग्रहणी रोगमें दीपनका कार्य करता है और बिना नमकका तक्र ग्रहणी और अर्शका विनाश करनेवाला है।

(छ) शीतकालमें, अग्निमान्द्य, कफ, वातरोग, अरुचि और स्रोतोऽवरोधमें तक्रका सेवन अमृतकी तरह गुणकारी है—

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफवातामयेषु च अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतोपमम्।

(ज) यह क्षतरोग, उष्णकाल, दुर्बलता, मूर्च्छा-भ्रम-दाह और रक्तपित्तसे उत्पन्न रोगोंमें हानिकर है—

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे॥

कच्चे और गर्म किये तक्रका गुण-भेद—कच्चा तक्र कोष्ठस्थित कफका नाश करता है और कण्ठस्थित कफको बढ़ाता है। पीनस, श्वास तथा कासादिक रोगोंमें गरम किया हुआ मट्ठा हितकारी होता है।

'तक्र' के निम्नांकित अष्टगुण सर्वदा स्मरणीय हैं—

क्षुद्वर्धनं नेत्ररुजापहं च प्राणप्रदं शोणितमांसदं च।
आमाभिघातं कफवातहन्तृ त्वष्टौ गुणा वै कथिता हि तक्रे॥

अर्थात् तक्र क्षुधावर्धक, नेत्ररोगनाशक, प्राणप्रद (बलकारक), रक्त और मांसवर्धक, आम दोषको दूर करनेवाला तथा कफ और वातका नाशक है।

स्वमूत्र नहीं गोमूत्र लीजिये

(श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

वर्तमान समयमें स्वमूत्र-चिकित्साका प्रचार किया जा रहा है। परंतु धर्मकी दृष्टिसे स्वमूत्रपान पाप है, जिसकी शुद्धि प्राजापत्य-व्रत करनेसे होती है—

विण्मूत्रस्य च शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत्।

(पाराशरस्मृति १२।४)

विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत्।

(संवर्तस्मृति १८९)

यदि कोई अज्ञानवश भी स्वमूत्र पान कर ले तो वह महान् अशुद्ध हो जाता है; अतः उसका पुनः द्विजातिसंस्कार करना चाहिये—

अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतो विण्मूत्रमेव वा।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३।२५४)

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।

पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

(पाराशरस्मृति १२।२)

वास्तवमें महिमा 'गोमूत्र' की ही है। इसलिये आयुर्वेदमें गोमूत्रको ही सभी प्राणियोंके मूत्रोंसे अधिक गुणकारी बताया गया है—

सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम्।

अतोऽविशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते॥

(भावप्रकाश पू०खं० १९।६।४)

गोमूत्रमें रोग-नाशकी विलक्षण शक्ति है। गङ्गाका निवास होनेसे गोमूत्र महान् पवित्र है, जबकि स्वमूत्र महान् अपवित्र है। इसलिये स्वमूत्रका कदापि सेवन न करके गोमूत्रका ही सेवन करना चाहिये।

चाय और स्वास्थ्य

(श्रीमदनमोहनजी शर्मा)

आज चाय हमारे देशकी सभ्यताका आवश्यक अंग बन गयी है। घर आये अतिथिका स्वागत बिना चायके अधूरा-सा लगता है। जिस चायसे अधिकांश लोगोंको इतना अधिक स्नेह है, वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि चाय स्फूर्तिदायक तथा लाभप्रद पेय न होकर अनेक दुर्गुणोंसे युक्त है। वैज्ञानिकोंद्वारा खोज करनेपर पता चला है कि चायमें तीन प्रकारके प्रमुख विष पाये जाते हैं—

(१) **थीन**—चाय पीनेसे जो एक हलका-सा आनन्द प्रतीत होता है वह इसी 'थीन' नामक विषका प्रभाव है। ज्ञान-तन्तुओंके संगठनपर इसका बहुत ही विषैला प्रभाव पड़ता है।

(२) **टेनिन**—यह क़ब्ज़ करनेवाला एक तीव्र पदार्थ है। यह पाचन-शक्तिको बिलकुल नष्ट कर देता है। इसमें नींदको नष्ट करनेकी भी शक्ति होती है। शरीरपर इस विषका प्रभाव शराबसे मिलता-जुलता पड़ता है। इसकी वजहसे चाय पीनेके बाद प्रारम्भमें तो ताजगी अनुभव होती है, परंतु थोड़ी देरमें नशा उतर जानेपर खुश्की तथा थकान उत्पन्न होती है, जिसके कारण और अधिक चाय पीनेकी इच्छा होती है।

(३) **कैफीन**—यह एक महाभयंकर विष है। इसका प्रभाव शराब या तंबाकूमें पाये जानेवाले विष 'निकोटीन'- के समान होता है। यह शरीरको बहुत जल्द निर्बल करता है, शरीर खोखला हो जाता है। यह दिलकी धड़कनको बढ़ाता है और सेवनमें मात्राकी अधिकता होनेपर धड़कन एकदम बंद हो जाती है तथा व्यक्ति मौतका शिकार हो जाता है। 'कैफीन' विष ही चायका वह अंश है जिसके नशेके वशीभूत होकर व्यक्ति चायका आदी बन जाता है।

उपर्युक्त विषोंके होनेसे चायका प्रभाव अत्यधिक उत्तेजनाप्रद होता है। इनका शरीर एवं मस्तिष्कपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। आज जो हृदय तथा रक्तवाहिनियोंके रोगोंकी वृद्धि दिखायी दे रही है, उसका प्रमुख कारण चायके प्रचारमें वृद्धिका होना है। विशेषज्ञोंका मत है कि चायका नशा अंदर-ही-अंदर अपना कार्य करता है और धीरे-धीरे कुछ ही दिनोंमें शरीरको घुनकी भाँति चाट जाता है। चाय पीनेसे 'कैफीन' विषके कारण मूत्रकी मात्रामें लगभग तीन गुनी वृद्धि हो जाती है। परंतु उसके द्वारा शरीरका दूषित मल जिसका शरीरकी शुद्धिके लिये मूत्रद्वारा निकल जाना आवश्यक है, वह शरीरके अंदर ही बना रहता है, उसके फलस्वरूप गठियाका दर्द, गुर्दों तथा हृदय-सम्बन्धी रोगोंका शिकार बनना पड़ता है। सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० जॉन हारवेका कथन है कि 'जब चायका खूब सेवन किया जाता है तो उसके नशीले प्रभावकी अपेक्षा टेनिन एसिडके कारण पेटमें गड़बड़ी बहुत होती है। बादी, पेट फूलना, पेट-दर्द, क़ब्ज़, बदहजमी, हृदय-गतिका अनियमितरूपसे चलना और नींदका न आना आदि चाय पीनेवालोंके मुख्य लक्षण हैं।' इसके अतिरिक्त चाय पीनेसे दाँतों एवं नेत्रोंके विभिन्न रोग पैदा होने लगते हैं। चायके सेवनसे चेहरेकी कान्ति नष्ट हो जाती है। चायके व्यापारियोंने चायके प्रचारके लिये लाखों पैकेट मुफ्त बाँटकर तथा चायके सम्बन्धमें झूठी प्रशंसाके सेतु बाँधकर गरीबोंको भी चायका चस्का लगा दिया है और अब तो चाय गरीबों तथा अमीरों—दोनोंका ही आवश्यक पेय बन गया है। भोजन चाहे न मिले, पर चाय समयपर अवश्य मिलनी चाहिये। परंतु चायके अवगुणोंका अवलोकन करनेके पश्चात् इस विनाशकारी चायका सेवन अविलम्ब छोड़ देनेमें ही सबका हित है।

पौष्टिक पदार्थ (मेवों)-द्वारा अनेक व्याधियोंका इलाज

[डॉ० श्रीसुनील गजाननरावजी टोपरे, एम०डी० (शारीरक्रिया)]

प्रायः देखनेमें आता है कि हमारे देशमें पौष्टिक गुणयुक्त कुछ वनस्पतिज द्रव्योंका मानव अपनी आर्थिक परिस्थितिके अनुसार सेवन करता है, लेकिन पौष्टिक द्रव्य कौन-कौनसे रोगमें उपयोगी हैं, इसका ज्ञान रहना आवश्यक है। इस दृष्टिसे कुछ वानस्पतिक द्रव्योंका विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

(१) अखरोट

हमारे भारत देशमें हिमालयमें कश्मीरसे मणिपुरतक अखरोटके वृक्ष अधिकतासे होते हैं। वृक्षकी ऊँचाई ६० से ९० फुटतक होती है। अखरोटके फूल सफेद रंगके छोटे-छोटे गुच्छेके रूपमें लगते हैं और पत्ते ४ से ८ इंचतक लंबे, अंडाकार, नुकीले और तीन, दो कँगूरेवाले होते हैं। इसके पत्ते संकोचक और पौष्टिक होते हैं तथा धातु-परिवर्तक और शरीरकी क्रियाओंको ठीक करनेवाले माने जाते हैं।

फल—अखरोटके फल गोल और मैनफलके समान होते हैं। फलके भीतर बादामकी तरह मींगी निकलती है। अखरोट दो प्रकारका होता है—एकको अखरोट और दूसरेको रेखाफल कहते हैं। इसके पौधेकी लकड़ी बहुत ही मजबूत, अच्छी और भूरे रंगकी होती है।

छिलका एवं काढ़ा—इसका छिलका कृमिनाशक और विरेचक है। इसका काढ़ा गलग्रन्थियोंके लिये उपयोगी माना जाता है और कृमिनाशक है। गठियाकी बीमारीमें इसका फल धातु-परिवर्तक होता है। उपदंश, विसर्पिका, खुजली, कण्ठमाला इत्यादि रोगोंमें यह लाभकारी माना जाता है।

गुण-दोष एवं उपयोग—आयुर्वेदके मतानुसार अखरोट मधुर, किंचित् खट्टा, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्धक, गरम, रुचिदायक, कफ-पित्तकारक, भारी, प्रिय, बलवर्धक तथा वातपित्त, क्षय, वात, हृदयरोग, रक्तवात, रुधिरदोषको दूर करनेवाला है।

१. कण्ठमाला—अखरोटके पत्तोंका क्वाथ पीने और उसीसे गाँठको धोनेसे कण्ठमाला मिट जाती है।

२. नासूर—इसकी मिली हुई गिरीको मोम और मीठे तेलके साथ गलाकर लेप करनेसे नासूर नष्ट हो जाता है।

३. नारू—इसकी खलीको पानीके साथ पीसकर गरम करके सूजनपर लेपकर, पट्टी बाँधकर तपानेसे सूजन उतर जाती है। १५ से २० दिनतक करनेसे नारू गलकर नष्ट हो जाता है।

४. कृमिरोग—इस वृक्षकी छालका क्वाथ पिलानेसे आँतोंके कीड़े मर जाते हैं।

५. अर्दित (मुँहका लकवा)—इसके तेलका मर्दन करके वादी मिटानेवाली औषधियोंके क्वाथका बफारा लेनेसे इस रोगमें बड़ा लाभ होता है।

६. शोथ (सूजन)—पावभर गोमूत्रमें १ से ४ तोलेतक अखरोटका तेल मिलाकर पान करनेसे शरीरकी सूजन उतरती है, ऐसा शास्त्रकारोंका मत है।

७. विरेचन—अखरोटकी गिरीसे जो तेल खींचा जाता है, वह एक औंससे २ औंसतक देनेसे मृदु विरेचन होता है।

(२) अंजीर

अंजीर दो प्रकारका होता है। एक बोया हुआ, जिसके फल और पत्ते बड़े होते हैं और दूसरा जंगली, जिसके फल और पत्ते इससे छोटे होते हैं। यह वृक्ष ७ से ९ फुटतक ऊँचा होता है। तोड़नेसे या चिरा देनेसे इसके हर एक अंगसे दूध निकलता है। इसके पत्ते ऊपरकी ओरसे अधिक खुरदरे होते हैं और फलका आकार प्रायः गूलरके फलके समान होता है। कच्चे फलका रंग हरा और पके हुएका रंग पीला या बैगनी और अंदरसे बहुत लाल होता है। यह फल बड़ा मीठा और स्वादिष्ट होता है।

अंजीर अत्यन्त शीतल, तत्काल रक्तपित्तनाशक, सिर और खूनकी बीमारीमें तथा कुष्ठ और नकसीरमें लाभकारी है।

उपयोगिता—(१) रुधिरका जमाव— अंजीरकी लकड़ीकी राखको पानीके अंदर घोलकर

गादके नीचे बैठ जानेके बाद उसका निथरा हुआ पानी निकालकर उसमें फिर वही राख घोल देना चाहिये, ऐसा सात बार करके राख घोल-घोलकर निथरा हुआ पानी पिलानेसे रुधिरका जमाव बिखर जाता है।

(२) श्वास—अंजीर और गोरख इमलीका चूर्ण समान भाग लेकर प्रातःकाल ६ माशेकी खुराकमें खानेसे दमेके रोगमें लाभ होता है।

(३) बवासीर—दो सूखे अंजीरको शामको पानीमें भिगोना और सबेरे उसे खा लेना चाहिये। इसी प्रकार सबेरेके भिगोये हुए अंजीर संध्याको खा लेना चाहिये। इस भाँति ६ या ९ रोजतक खानेसे खूनी बवासीरके अंदर बहुत लाभ होता है।

(४) श्वेत कुष्ठ—सफेद कोढ़के आरम्भमें ही अंजीरके पत्तोंका रस लगानेसे उसका बढ़ना बंद होकर आराम होने लगता है।

(५) गाँठ और फोड़े—सूखे या हरे अंजीरको पीसकर तथा जलमें औटाकर गुनगुना लेप करनेसे गाँठों तथा फोड़ोंकी सूजन कम हो जाती है।

(६) पौरुष शक्तिवर्धक—दो सेर सूखे अंजीर लेकर गरम पानीसे दो या तीन बार धोकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर लेना चहिये, फिर बादामकी मगज एक सेर लेकर ऊपरका छिलका उतारकर उसके भी बारीक टुकड़े कर लेनेके बाद एक कलईदार कड़ाहीमें अंजीर और बादामकी मगजके टुकड़े डालकर उसमें चार सेर शक्कर तथा इलायची-२.५ तोला, केशर-१ तोला, चिरौंजी-१० तोला, पिस्ते-१० तोला, सफेद मुसली-४ तोला, अभ्रक भस्म-१.५ तोला, प्रवाल भस्म-२.५ तोला, मुगलाई बेदाना-२ तोला, शीतल चीनी-१.५ तोला—इन सब चीजोंको कूट करके थोड़ी देरतक उसे अग्निपर चढ़ा दे, जब घी अच्छी तरहसे पिघल जाय और वे सभी चीजें मिल जायँ तब उसे उतारकर चीनीकी बर्नियामें भर देना चाहिये। इस औषधिको अपनी प्रकृतिके अनुसार दोनों समय खानेसे खून और त्वचाकी गर्मी, पित्तविकार, रक्तविकार, क़ब्जियत, बवासीर और अनेक प्रकारके वीर्य-दोष नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि जीवन-शक्तिवर्धक और अत्यन्त पौष्टिक है।

अंजीरकी जड़ पौष्टिक है तथा श्वेत कुष्ठ और दादपर उपयोगी है। इसका फल मीठा, ज्वरनाशक, रेचक, विषनाशक, सूजनमें लाभदायक, अश्मरीको दूर करनेवाला और कमजोरी, लकवा, प्यास, यकृत् तथा तिल्लीकी बीमारी और सीनेके दर्दको दूर करता है। कच्चा अंजीर कान्तिकारी और सूखा अंजीर शीतोत्पादक है। जलके अंशकी कमीके कारण यह पहले दर्जेका गर्म है। इससे पतला खून उत्पन्न होता है। यह पसीना लानेवाला और गर्मीको शान्त करनेवाला होता है।

भूने हुए अंजीरका पुल्टिस सांघातिक फोड़े, बालतोड़ तथा मसूड़ेके ऊपरके फोड़ेपर बाँधा जाता है। सूखे हुए अंजीरका पुल्टिस दूधके साथमें पीबदार जख्म और नासूरकी दुर्गन्धको दूर करनेके काममें लिया जाता है। बड़े सबेरे खाली पेट इसको खानेसे अन्नप्रणालीको यह आश्चर्यजनक लाभ दिखाता है। अंजीर बादाम और पिस्तेके साथ खानेसे बुद्धिवर्धक, अखरोटके साथ खानेसे उत्तेजक तथा बादामके साथ खानेसे विषको दूर करनेका काम करता है।

अंजीर पुरानी खाँसीमें लाभ पहुँचाता है; क्योंकि यह खाँसी केवल बलगमसे ही पैदा होती है। इसका दूध तीक्ष्णताके कारण रेचक है।

पथ्यरूपमें अंजीर बहुत शीघ्र पच जानेवाला और औषधिरूपमें उपयोग करनेपर किडनी एवं वस्तिसम्बन्धी पथरियोंको तथा यकृत् और प्लीहाके रोगोंको दूर करने वाला है। गठिया और बवासीरमें यह लाभकारी है।

(३) काजू

काजूका मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिकाका उष्ण कटिबन्ध है। यह भारतवर्षमें भी सामुद्रिक किनारोंपर बहुतायतसे पैदा होता है। इसका वृक्ष छोटे कदका होता है। इसकी शाखाएँ मुलायम रहती हैं। इसके पत्ते खिरनी या कटहलके पत्तोंकी भाँति होते हैं। इसमें एक प्रकारका गोंद भी लगता है जो पीला या कुछ लालिमा लिये हुए रहता है। इसके फल मेवेके रूपमें सारे देशमें बिकते हैं।

यह मेवा गरम और तर होता है। यह शरीरको मोटा करता है, दिलको शक्ति देता है। वीर्यको बढ़ाता है, गुर्देको ताकत देता है और दिमागके लिये मुफीद

है। अगर इसको बासी मुँह खाकर थोड़ी-सी शहद चाट ले तो दिमागकी कमजोरी मिट जाती है, सर्द और तर मिजाजवालोंके लिये यह भिलावेके समान लाभदायक है।

उपयोगिता—काजूका फल कसैला, मीठा और गरम होता है। वात, कफ, अर्बुद, जलोदर, ज्वर, व्रण, धवल-रोग और अन्य चर्मरोगोंको यह दूर करता है। यह कृमिनाशक होता है। पेचिश, बवासीर और भूखकी कमजोरीमें लाभदायक है। इसके छिलकेमें धातुपरिवर्तक गुण रहते हैं, इसकी जड़ विरेचक मानी जाती है। इसका फल रक्तातिसारको दूर करनेवाला होता है। इसके छिलके और पत्ती दाँतोंकी पीडा और मसूड़ोंकी सूजनमें सेवनीय हैं। इसका फल कोढ़ और व्रणपर लगाया जाता है। यह प्रदाहको मिटानेवाला है। इसमें कारडोल और एनाकार्डिक एसिड नामके तत्त्व पाये जाते हैं।

काजूका मगज पौष्टिक, शान्तिदायक और स्निग्ध वस्तु है। यह वमनरोगसे पीडित रोगियोंको खाद्यके रूपमें दिया जाता है। इसके साथ 'एसिड हाइड्रोसिएनिक्स' भी दिया जाता है। काजूका तेल विष-प्रतिरोधक भी होता है। यह पेट और आँतोंके ऊपर जमकर विषजनित प्रदाहसे रक्षा ही नहीं करता, बल्कि उसकी तेजीको नष्ट कर देता है। यह कई प्रकारके लेप और बाह्य प्रयोगोंके लिये उत्तम वस्तु है।

१. शरीरके मस्से—शरीरपर छोटे-छोटे काले मस्से हो जाते हैं, उनको जलानेके लिये छिलकेका तेल लगाया जाता है।

२. उपदंश—उपदंशसे पैदा हुए फोड़ों या लाल चकत्तोंको मिटानेके लिये इसका तेल सेवन करने योग्य है।

३. त्वचाकी शून्यता—कोढ़से उत्पन्न त्वचाकी शून्यता भी इस तेलके लगानेसे मिटती है।

४. बिवाई—इसके छिलकेका तेल लगानेसे पैरोंके अंदर फटी हुई बिवाई मिट जाती है।

काजूके छिलकोंका तेल बहुत दाहक और फफोला उठानेवाला होता है। इसलिये इसका प्रयोग सावधानीसे करना चाहिये।

(४) बादाम

बादामके वृक्ष भारतवर्षमें पैदा नहीं होते। यह यूरोप और तुर्कीसे यहाँ आता है। कश्मीर और पंजाबके अंदर इसकी खेती की जाती है। इसका वृक्ष मध्यम कदका होता है। इसके पत्ते कुछ भूरे और फूल सफेद होते हैं। इसकी दो जाति होती है, एक मीठी और दूसरी कड़वी। बादामका फल गरम, तेलयुक्त, पचनेमें भारी, उद्दीपक, मृदु, विरेचक, वात और पित्तको नष्ट करनेवाला और गलितकुष्ठमें लाभदायक है। इसका तेल मृदु, विरेचक, उद्दीपक, मस्तकशूलको दूर करनेवाला, पित्त और वातमें लाभदायक है। शरीरकी अन्तरंग जलनको शान्त करनेवाला और धातुपतनको रोकनेवाला होता है।

बादाम भीतरी और बाहरी दोनों प्रयोगोंमें कई प्रयोजनसे उपयोगमें आता है। सिरकेके साथ इसे पीसकर उसका प्लास्टर बनाकर स्नायुशूलको दूर करनेके लिये लगाया जाता है। इसका अञ्जन बनाकर नेत्रोंकी दृष्टिको बढ़ानेके लिये उपयोगमें लिया जाता है। बादामको पीसकर उसका द्रव बनाकर पीपरमेंटके साथ कफ और खाँसीको दूर करनेके लिये उपयोगी है। यह मूत्रल और पथरीको गलानेवाला भी माना जाता है। यह यकृत् और तिल्लीकी बाधाओंको दूर करनेके लिये भी उपयोगमें लिया जाता है। सिरके जुओंको मारनेके लिये यह लगाया जाता है। इसकी बत्ती बनाकर गर्भाशयमें रखनेसे कष्टप्रद मासिक धर्म और उससे होनेवाली वेदना दूर होती है। इसका पुल्टिस दुस्साध्य फोड़े और चर्मरोगोंके ऊपर बहुमूल्य लेपका काम देता है।

बादाम सारक, गरम, भारी, कफकारक, स्निग्ध, सुस्वाद, कसैला, शुक्रजनक, वातनाशक और उष्णवीर्य होता है। कच्चा बादाम सारक, भारी, पित्तजनक तथा कफ, वात और पित्तके कोपको नष्ट करता है। पका बादाम मधुर, स्निग्ध, पौष्टिक, शुक्रल, कफकारक तथा रक्तपित्त और वातपित्तको नष्ट करता है। सूखा बादाम मधुर, धातुवर्धक, स्निग्ध, बलकारक होता है।

उपयोगिता—(१) मस्तिष्क, कामशक्ति और नेत्रोंकी दृष्टिको यह बलप्रदायक है। बादामका मगज ६ तोले भर मिस्त्रीके साथ रातको सोते समय खानेसे दिमागकी कमजोरी मिट जाती है। आँतोंकी जलनमें भी यह लाभदायक है। आमाशयमें चिकने दोषोंके इकट्ठे होनेसे जो पेचिश हो जाती है उसमें यह लाभदायक

है। इसके सेवनसे नया वीर्य पैदा होता है और पुराने वीर्यकी गरमी और दोष दूर होते हैं। गुर्देके लिये एक पौष्टिक वस्तु है। बादामको भूनकर खानेसे मेदेकी सुस्ती और ढीलापन नष्ट हो जाता है।

(२) कड़वे बादामका मगज खराब स्वादवाला, सूजनके लिये लाभदायक, जलोदर, मस्तकशूल और आँखोंकी कमजोरीमें श्रेयस्कर है। यह ब्रोंकाइटीज, पुराने व्रण, गीली खुजली और पागल कुत्तेके विषपर भी उपयोगी मानी जाती है। कड़वे बादामका तेल मृदु, विरेचक, कृमिनाशक और घावको अच्छा करनेवाला होता है। यह गुदा, यकृत् और तिल्लीकी वेदनाको दूर करता है। पुरातन प्रमेह, कर्णशूल, गलेकी वेदना और चर्मरोग तथा क़ब्ज़ियतको दूर करता है।

(३) इस पौधेकी जड़ धातुपरिवर्तक है और यह, भीतरी एवं बाहरी दोनों प्रयोगोंके काममें आती है। बादामका रस शक्करके साथ मिलाकर कफ और खाँसीको दूर करनेके लिये दिया जाता है। बादामको अंजीरके साथ मिलाकर मृदु, विरेचक और आँतोंके दर्दको दूर करनेके लिये दिया जाता है।

(४) मीठे बादामका जला हुआ छिलका दाँतोंको मजबूत करता है। इसका तेल मीठा, मृदु, विरेचक, मस्तिष्कके लिये पौष्टिक, मूर्च्छा और यकृत्की शिकायतोंके लिये लाभदायक, सूखी खाँसीको दूर करनेवाला, गलेको साफ और कॉलिक शूलको दूर करनेवाला होता है।

(५) मीठे बादामका तेल हलका होता है और दिमागमें बहुत तरी पैदा करता है। सिरदर्दको मिटाता है। संनिपात और निमोनियामें लाभदायक है। क़ब्ज़को दूर करता है। जुलाबकी औषधियोंमें इसे मिलानेसे उनका प्रतिक्रियात्मक दोष दूर हो जाता है। इसका निरन्तर उपयोग हिस्टीरियाकी बीमारीमें बहुत लाभदायक है।

(६) गर्भवती स्त्रीको ९वाँ महीना लगते ही मीठे बादामके ताजे तेलको प्रतिदिन प्रातः १ तोलेकी मात्रामें दूधके साथ या और किसी प्रकार भी देनेसे प्रसवमें बहुत सरलता हो जाती है।

(७) यह शरीरके लिये बहुत अच्छी शक्ति है। यह नया खून पैदा करता है और पुराने खूनको शुद्ध और साफ करता है। इसका शीत निर्यास शक्करके साथ सूखी खाँसीको आराम करता है। इसको देनेसे कफके साथ आनेवाला खून बंद हो जाता है। दमा और निमोनियाके लिये भी यह लाभदायक है। यह मूत्रनलीकी सूजन और सुजाकमें भी सेवनीय है। अंजीरके साथ बादाम देनेसे क़ब्ज़ियत मिट जाती है।

(८) बादामकी गोंद—मीठे बादामकी गोंद गरम, तर, काबिज और गलेके दर्द, पुरानी खाँसी तथा राजयक्ष्मामें श्रेयस्कर है। यह शरीरको मोटा करता है और कफमें खून आनेको रोकता है। पथरीमें भी इसका प्रयोग श्रेष्ठ है।

(५) पिस्ता

पिस्तेके झाड़ोंके पत्तोंपर एक प्रकारके कीड़ोंके घर बन जाते हैं, जिसको पिस्तेके फूल कहते हैं। ये एक तरफसे गुलाबी और दूसरी तरफसे पीले या सफेद होते हैं। ये कहीं अंजीरके आकारके, कहीं गोल और कहीं अंडाकृति रहते हैं। इसका फल २ सालमें एक बार आता है। पिस्तेके फलके ऊपर एक कड़ा छिलका होता है। उसको फोड़नेसे उसके अंदरसे पिस्तेका भीतरी भाग निकलता है। यह भी मेवेकी तरह खाने और मिठाइयाँ बनानेके काममें आता है।

पिस्ता भारी, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, गरम, धातुवर्धक, रक्तको शुद्ध करनेवाला, स्वादु, बलवर्धक, पित्तकारक, कड़वा, सारक, कफनाशक तथा वात, गुल्म और त्रिदोषको दूर करता है। पिस्ते स्मरणशक्ति, हृदय, मस्तिष्क और आमाशयको शक्ति देते हैं। पागलपन, वमन, मतली, मरोड़ और यकृत्की वृद्धिमें लाभ पहुँचाते हैं। बदनको मोटा करते हैं। आमाशयको ताकत देनेके लिये पिस्तेके समान कोई दूसरा पदार्थ उत्तम नहीं है। यह गुर्देकी कमजोरीको मिटाता है। पिस्तेको चबानेसे मसूड़े मजबूत होते हैं और मुँहसे सुगन्ध आने लगती है। हैजा, प्लेगके दिनोंमें इसे शक्करके साथ खाना अच्छा रहता है। पिस्तेकी छाल और पत्तोंके काढ़ेसे तर तथा सूखी खुजलीको धोनेपर बहुत लाभ होता है। इसके काढ़ेसे सिरके बाल मजबूत होते हैं और सिरमें जुएँ नहीं पड़तीं।

पिस्तेके छिलकेकी उपयोगिता—पिस्तेके ऊपर दो

छिलके होते हैं। एक सुर्ख रंगका पतला छिलका, जो पिस्तेकी मगजसे चिपका हुआ रहता है और दूसरा सफेद रंगका सख्त छिलका, जिसके अंदर पिस्तेका मगज रहता है। इनमेंसे पहला पतला छिलका समशीतोष्ण होता है। दूसरा सख्त छिलका सर्द और खुश्क होता है। पिस्तेका पतला छिलका काबिज, वमन और हिचकीको बंद करनेवाला, दाँत, मसूड़े, हृदय तथा मस्तिष्कको ताकत देनेवाला एवं तृष्णाशामक होता है। इसे खानेसे मुँहके छाले मिट जाते हैं। दूसरे छिलकेकी फक्की देनेसे अजीर्ण मिटता है और शक्करके साथ सेवन करनेसे शक्ति बढ़ती है।

फूलकी उपयोगिता—पिस्तेके फूल सर्द, खुश्क, काबिज और आनन्दवर्धक होते हैं।

तेलकी उपयोगिता—आधा-सीसीके रोगीको गरम जलका बफारा देकर अगर यह तेल नाकमें टपका दिया जाय तो आधा-सीसी मिट जाती है। यह तेल स्मरणशक्तिवर्द्धक है। खाँसीके रोगीको लाभ करता है। हृदयको ताकत देकर पागलपन, वमन और मतलीको मिटाता है। ध्यान रहे—पिस्तेके ज्यादा खानेसे पित्ती उछल आती है। अतः इन औषध द्रव्योंके सेवनकी मात्राके लिये किसी सुयोग्य अनुभवी वैद्य आदिका परामर्श लेना चाहिये।

गेहूँके पौधेमें रोगनाशक ईश्वरप्रदत्त अपूर्व गुण

(श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय, सा०भू, ए०एम०टी०आई०)

गेहूँका प्रयोग हम सभी लोग बारहों मास भोजनमें करते रहते हैं, पर उसमें क्या गुण है, इसपर लोगोंने बहुत कम विचार किया है। मोटे तौरसे हमलोग इतना ही जानते हैं कि यह एक उत्तम शक्तिदायक खाद्य-पदार्थ है। कुछ वैद्योंने यह भी पता लगाया है कि मुख्य शक्ति गेहूँके चोकरमें है, जिसे प्रायः लोग आटा छान लेनेके बाद फेंक देते हैं अथवा जानवरोंको खानेके लिये दे देते हैं; स्वयं नहीं खाते। हानिकारक महीन आटा या मैदा खाना पसंद करते हैं और लाभदायक चोकरसहित मोटा आटा खाना नहीं पसंद करते। फल यह होता है कि शक्तिवर्धक वस्तु न खाकर गेहूँके अंदरका शक्तिरहित गूदा (मैदा) खाते रहनेसे हम लोग जीवनभर अनेक प्रकारकी बीमारियोंसे पीडित रहा करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक लोग प्रायः चोकरसहित आटा खानेपर जोर देते हैं, जिससे पेटकी तमाम बीमारियाँ अच्छी हो जाती हैं। लोग यह जानते हैं कि २४ घंटे भिगोकर सबेरे गेहूँका नाश्ता करनेसे अथवा चोकरका हलवा खानेसे शक्ति आती है। फिर भी लोग झंझटसे बचनेके लिये डॉक्टरी दवाईके फेरमें अधिक रहते हैं; जिसके सेवनसे नयी-नयी बीमारियाँ दिनोदिन बढ़ती जा रही हैं, फिर भी लोग चेतते नहीं। स्त्रियाँ तो विशेषकर दवाकी भक्तिनी हो गयी हैं। घरमें रोज काममें आनेवाली और भी अनेक चीजें हैं, जिनके उचित प्रयोगसे अनेक साधारण बीमारियाँ अच्छी हो सकती हैं, जिन्हें कि हमारी बूढ़ी-बाढ़ी माताएँ अधिक जानती थीं, पर आजकलकी नयी स्त्रियाँ उनके बनानेकी झंझटसे बचनेके लिये बनी-बनायी दवाइयोंका प्रयोग ही ज्यादा पसंद करती हैं, फिर चाहे उनसे दिन-दिन स्वास्थ्य गिरता ही क्यों न जाय।

इसी उपर्युक्त गेहूँके सम्बन्धमें आज हम 'कल्याण' के पाठकोंको एक महत्त्वकी बात बताना चाहते हैं—

अमेरिकाकी एक महिला डॉक्टरने गेहूँकी शक्तिके सम्बन्धमें बहुत अनुसंधान तथा अनेकानेक प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि अनेक असाध्य रोगियोंपर गेहूँके छोटे-छोटे पौधोंका रस (Wheat Grass Juice) देकर उनके कठिन-से-कठिन रोग अच्छे किये जा सकते हैं। वे कहती हैं कि 'संसारमें ऐसा कोई रोग नहीं है, जो इस रसके सेवनसे अच्छा न हो सके।' कैंसरके बड़े-बड़े भयंकर रोगी उन्होंने अच्छे किये हैं, जिन्हें डॉक्टरोंने असाध्य समझकर जवाब दे दिया था और वे मरणप्राय-अवस्थामें अस्पतालसे निकाल दिये गये थे। ऐसी हितकर चीज यह अद्भुत Wheat Grass Juice साबित हुई है। अनेकानेक भगंदर, बवासीर, मधुमेह, गठियाबाई, पीलियाज्वर, दमा, खाँसी आदिके पुराने-

से-पुराने असाध्य रोगी उन्होंने इस साधारण-से रससे अच्छे किये हैं। बुढ़ापेकी कमजोरी दूर करनेमें तो यह रामबाण ही है। अमेरिकाके अनेक बड़े-बड़े डॉक्टरोंने इस बातका समर्थन किया है और अब बम्बई और गुजरात प्रान्तमें भी अनेक लोग इसका प्रयोग करके लाभ उठा रहे हैं। भयंकर फोड़ों और घावोंपर इसकी लुगदी बाँधनेसे जल्दी लाभ होता है।

इसके रसको लोग Green Blood की उपमा देते हैं, कहते हैं कि यह रस मनुष्यके रक्तसे ४० फीसदी मेल खाता है। ऐसी अद्भुत चीज आजतक कहीं देखने-सुननेमें नहीं आयी थी। इसके तैयार करनेकी विधि बहुत ही सरल है। प्रत्येक मनुष्य अपने घरमें इसे आसानीसे तैयार कर सकता है। कहीं इसे मोल लेने जाना नहीं पड़ता; न यह कहीं पेटेंट दवाके रूपमें बिकती है। यह तो रोज ताजी बनाकर ताजी ही सेवन करनी पड़ती है।

इस रसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—

आप १०—१२ चीड़के टूटे-फूटे बक्सोंमें अथवा मिट्टीके गमलोंमें अच्छी मिट्टी भरकर उनमें बारी-बारीसे कुछ उत्तम गेहूँके दाने बो दीजिये और छायामें अथवा कमरे या बरामदेमें रखकर यदा-कदा थोड़ा-थोड़ा पानी डालते जाइये, धूप न लगे तो अच्छा है। तीन-चार दिन बाद पेड़ उग आयेंगे और आठ-दस दिनके बाद बीता-डेढ़ बीता (७-८ इंच)-के हो जायँगे, तब आप उनमेंसे पहले दिनके बोये हुए ३०-४० पेड़ जड़सहित उखाड़कर जड़को काटकर फेंक दीजिये और बचे हुए डंठल तथा पत्तियोंको (जिसे Wheat Grass कहते हैं) धोकर साफ सिलपर थोड़े पानीके साथ पीसकर आधे गिलासके लगभग रस छानकर तैयार कर लीजिये और रोगीको तत्काल वह ताजा रस रोज सबेरे पिला दीजिये। इसी प्रकार शामको भी ताजा रस तैयार करके पिलाइये—बस आप देखेंगे कि भयंकर-से-भयंकर रोग आठ-दस या पंद्रह-बीस दिन बाद भागने लगेंगे और दो-तीन महीनेमें वह मरणप्राय प्राणी एकदम रोगमुक्त होकर पहलेके समान हट्टा-कट्टा स्वस्थ मनुष्य हो जायगा। रस छाननेमें जो फुजला निकले, उसे भी आप नमक वगैरह डालकर भोजनके साथ खा लें तो बहुत अच्छा है। रस निकालनेके झंझटसे बचना चाहें तो आप उन पौधोंको चाकूसे महीन-महीन काटकर भोजनके साथ सलादकी तरह भी सेवन कर सकते हैं, परंतु उसके साथ कोई भी फल न मिलाये जायँ। साग-सब्जी मिलाकर खूब शौकसे खाइये, आप देखियेगा कि इस ईश्वरप्रदत्त अमृतके सामने डॉक्टर-वैद्योंकी दवाइयाँ सब बेकार हो जायँगी; ऐसा उस महिला डॉक्टरका दावा है।

गेहूँके पौधे ७-८ इंचसे ज्यादा बड़े न होने पायें, तभी उन्हें काममें लाया जाय। इसी कारण १०-१२ गमले या चीड़के बक्स रखकर बारी-बारीसे (प्राय: प्रतिदिन दो-एक गमलोंमें) आपको गेहूँके दाने बोने पड़ेंगे। जैसे-जैसे गमले खाली होते जायँ, वैसे-वैसे उनमें गेहूँ बोते चले जाइये। इस प्रकार यह गेहूँ घरमें प्राय: बारहों मास उगाया जा सकता है।

उक्त महिला डॉक्टरने अपनी प्रयोगशालामें हजारों असाध्य रोगियोंपर इस Wheat Grass Juice का प्रयोग किया है और वे कहती हैं कि उनमेंसे किसी एकके विषयमें भी असफलता नहीं हुई।

रस निकालकर ज्यादा देर नहीं रखना चाहिये। ताजा ही सेवन कर लेना चाहिये। घंटा-दो-घंटा रख छोड़नेसे उसकी शक्ति घट जाती है और तीन-चार घंटे बाद तो वह बिलकुल शक्तिहीन हो जाता है। डंठल और पत्ते इतनी जल्दी खराब नहीं होते। वे एक-दो दिन हिफाजतसे रखे जायँ तो विशेष हानि नहीं पहुँचती।

इसके साथ-साथ आप एक काम और कर सकते हैं, वह यह कि आप आधा कप गेहूँ लेकर धो लीजिये और किसी पात्रमें डालकर उसमें दो कप पानी भर दीजिये, बारह घंटे बाद वह पानी निकालकर आप प्रात:-सायं पी लिया कीजिये। वह आपके रोगको निर्मूल करनेमें और अधिक सहायता करेगा। बचे हुए गेहूँ आप नमक-मिर्च डालकर वैसे भी खा सकते हैं अथवा पीसकर हलवा बनाकर सेवन कर सकते हैं या सुखाकर आटा पिसवा सकते हैं—सब प्रकार लाभ-ही-लाभ है। ऐसा उपयोगी है यह रोज काममें आनेवाला गेहूँ।

मालूम होता है हमारे ऋषि-मुनि लोग इस क्रियाको पूर्णरूपसे जानते थे। उन्होंने स्वास्थ्यकी रक्षा

करनेवाले पदार्थोंको नित्यके पूजा-विधानमें रख दिया था, जिसमें लोग उन्हें भूल न जायँ और नित्य उनका प्रयोग अवश्य करें; जैसे—तुलसीदल, बेलपत्र, चन्दन, गङ्गाजल, गोमूत्र, तिल, मधु, धूप-दीप, रुद्राक्ष आदि-आदि। इसी प्रकार अनुष्ठानोंमें जौका प्रयोग और जौ बोकर उसके पौधे उगाना ही पूजाका एक विधान रखा था, जो प्रथा आजतक किसी-न-किसी रूपमें चली आ रही है। गेहूँ और जौमें बहुत अन्तर नहीं है। बहुत सम्भव है, जौके छोटे-छोटे पौधोंमें जीवनीशक्ति अधिक हो। सम्भव है, इसीसे पूजामें जौको ही प्रधानता दी गयी है, परंतु हम लोग इन स्वास्थ्यवर्धक चीजोंको केवल पूजाकी सामग्री समझकर उनका नाममात्रका प्रयोग करते हैं—स्वास्थ्यके विचारसे यथार्थ मात्रामें उनका सेवन करना हम भूल ही गये हैं।

ऐसा है यह गेहूँके पौधोंमें भरा हुआ ईश्वरप्रदत्त अमृत! समर्थ पाठकोंको चाहिये कि वे इस अमृत-रसका सेवन कर स्वयं सुखी हों और लाभ मालूम हो तो परोपकारके विचारसे इसका यथाशक्ति प्रचार करके अन्य लोगोंका कल्याण करें और स्वयं महान् पुण्यके भागी हों।

गेहूँके चोकरका औषधीय गुण

(श्री जे० एन० सोमानी)

गेहूँका चोकर क़ब्ज़ दूर करनेमें अद्वितीय प्राकृतिक औषध है। क़ब्ज़ दूर करनेके साथ-साथ इसका सेवन करनेसे निम्नलिखित लाभ भी प्राप्त होते हैं, जैसे—

१-यह मलको सूखने नहीं देता।

२-आँतोंमें जाकर उत्तेजना पैदा नहीं करता, अपितु गुदगुदी पैदा करता है जो कि प्राकृतिक नियम है। आप पशुओंका मल निकलते देखिये तब मालूम पड़ेगा कि वे मल निकालते समय कैसा व्यवहार करते हैं। आँतोंमें गुदगुदाहट पैदा होनेसे शरीरकी स्थिति ऐसी ही होती है।

३-इससे मल पतला नहीं अपितु मुलायम तथा बँधा हुआ आता है। आँतोंमें मरोड़ पैदा नहीं होती। मल बिना जोर लगाये आसानीसे निकल जाता है। जोर लगाकर मल निकालनेसे नाडी कमजोर हो जाती है तथा शक्ति न रहना, वायु भरना, बवासीर, काँच निकलना इत्यादि रोग होनेका डर रहता है।

४-यह देखनेमें खुरदरा (Rough) है, परंतु चबाते समय मुँहकी लारसे मुलायम हो जाता है। चूँकि यह मुँहकी लारको काफी मात्रामें समेट लेता है, अतः भोजनके पचनेमें सहायता करता है।

५-चोकर हर दृष्टिसे अच्छा है। भोजनमेंसे गुणकारी चोकरको निकालकर हम शरीरके साथ अन्याय करते हैं। चोकर निकाले हुए आटेकी रोटियाँ स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं, वे सुपाच्य नहीं हैं।

६-चोकरसे शरीर पवित्र रहता है। यह पेटके अंदरका मल झाड़-बुहार कर पेटको साफ कर देता है। पेट साफ रहनेसे कोई बीमारी नहीं होती।

७-भोजनमें चोकरको प्रधानता दें। इसको आटेमें मिलाइये। सब्जी, दूध, दही, सलाद, शहदमें मिलाकर खाइये। गुड़में मिलाकर लड्डू बनाइये। इस प्रकार भोजनका आनन्द लें।

८-यह कैंसरसे दूर रखता है तथा आँतोंकी सुरक्षा करता है, आमाशयके घावको ठीक करता है। क्षयरोग भी दूर करता है, हृदय-रोगसे बचाता है, कोलेस्टेरॉलसे रक्षा करता है। चोकरसे स्नान करनेपर चर्म-रोग अच्छा होता है।

९-आपको स्वस्थ रहना है तो चोकर जरूर खाइये।

१०-चोकर खानेवालोंको एपेंडीसाइटिस नहीं होती, आँतोंकी बीमारी नहीं होती। अर्श (Piles), भगंदर, बृहदान्त्र एवं मलाशयका कैंसर नहीं होता।

११-मोटापा घटानेके लिये चोकर निरापद औषधि है; क्योंकि भोजनमें कमी करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, रोगी आसानीसे पतला हो जाता है।

१२-चोकर मधुमेह निवारणमें मदद करता है।

१३-चोकरका बिस्किट, चोकर-आलूकी रोटी, हलवा बनाकर आनन्दके साथ खाया जा सकता है।

१४-चोकरको गाजरके हलवेमें भी स्थान दें। यह मिस्सी रोटीको और भी स्वादिष्ठ बनाता है। चोकरदार बूँदीका रायता स्वादके साथ खाया जा सकता है।

१५-इडली, डोसा, कचौड़ी बनाते समय चोकरको न भूलें। सरसोंका शाक चोकरके साथ बनाइये।

१६-चोकर साफ-सुथरा, मोटा, स्वादिष्ठ ताजे आटासे निकाला हुआ एवं जर्म्स (Germs)-से मुक्त होना चाहिये।

१७-छोटी मिलका सफाईसे बना चोकर मोटा एवं अच्छा होता है।

१८-चोकर खानेवालोंका दिल-दिमाग स्वस्थ रहता है; क्योंकि चोकरसे पेट साफ हो जाता है। याद रखें क़ब्ज़ ही अधिकतर रोगोंकी जड़ है।

१९-चोकर क्षारधर्मी होनेके कारण रक्तमें रोगोंसे लड़नेकी ताकत बढ़ाता है।

२०-सभी प्रकारके अन्नके रेशोंमें गेहूँके चोकरको आदर्श स्थान मिला है अर्थात् गेहूँका चोकर आदर्श रेशा है।

२१-चोकरमें प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, केलोरीज, रेशा, कैल्सियम, सोडियम, आक्जेलिक एसिड, पोटेशियम, ताँबा, सल्फर, क्लोरीन, जिंक, थियामिन, विटामिन ए, रिवोफ्लोविन, निकोटिनिक एसिड, पायरिडोक्सिन, फोलिक एसिड, प्रेटाथेनिक एसिड एवं विटामिन K पाया जाता है।

समस्त रोगोंकी अमृत दवा—त्रिफला

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, एम्०ए० (संस्कृत), बी०एस्-सी०, एल्-एल्०बी०, पी-एच्०डी०)

आजकल मनुष्य प्रकृतिसे जितना दूर होता जा रहा है, उतना ही वह विभिन्न रोगोंसे घिरता जा रहा है। वर्तमानकी अपेक्षा पहलेके लोग ज्यादा स्वस्थ तथा सुखी होते थे, क्योंकि वे अथक परिश्रम करते, शुद्ध आहार ग्रहण करते तथा स्वच्छ रहते थे। उनका जीवन सादगीसे अनुप्राणित था। इसलिये वे स्वस्थ एवं दीर्घजीवी थे, किंतु आजके मनुष्य-जीवनमें इनका अभाव दीख रहा है।

स्वस्थ तथा दीर्घ आयुतक जीनेके लिये एक बहुश्रुत पदार्थ है—त्रिफला। यदि कोई व्यक्ति त्रिफलाका नियमित रूपसे निर्दिष्ट नियमोंके आधारपर निरन्तर बारह वर्षोंतक सेवन करता रहे तो उसका जीवन सभी तरहके रोगोंसे मुक्त रहेगा। ओज उसके जीवनमें प्रतिबिम्बित हो उठेगा। वह स्वस्थ तो रहेगा ही, दीर्घ जीवन भी प्राप्त करेगा। विभिन्न औषधियोंसे वह सर्वदाके लिये अपना पिण्ड छुड़ा लेगा, क्योंकि त्रिफला रोगोंकी एक अमृत दवा है। इसका कोई 'वाईं-इफेक्ट्स' नहीं पड़ता।

त्रिफलामें तीन पदार्थ हैं—१-आँवला, २-बहेड़ा और ३-पीली हरड़। इन तीनोंका सम्मिश्रण त्रिफला कहलाता है। आँवला, बहेड़ा और पीली हरड़से भला कौन अपरिचित है? ये तीनों पदार्थ सहजमें ही मिल जाते हैं। इन्हें प्राप्तकर घरपर ही त्रिफलाका निर्माण किया जा सकता है। त्रिफला बनानेकी विधि इस प्रकार है—

त्रिफलाके लिये इन तीनों पदार्थोंके सम्मिश्रणका एक निश्चित अनुपात है। यह इस प्रकार है—पीली हरड़का चूर्ण एक भाग, बहेड़ेके चूर्णका दो भाग और आँवलेके चूर्णका तीन भाग। इन तीनों फलोंकी गुठली निकालकर खरल आदिमें कूट-पीसकर चूर्णका मिश्रण तैयार कर लें। यह मिश्रण काँचकी बोतलमें कार्क लगाकर रख दें, ताकि बरसाती हवा इसमें न पहुँच सके। चार माहकी अवधि बीत जानेपर बना हुआ चूर्ण काममें नहीं लेना चाहिये, क्योंकि यह उतना उपयोगी नहीं रह पाता है जितना होना चाहिये।

त्रिफलाके सेवनकी विधिका भी हमें ज्ञान होना चाहिये। त्रिफला बारह वर्षतक नित्य और नियमित रूपसे विधिवत् प्रातः बिना कुछ खाये-पिये ताजे पानीके साथ एक बार लेना चाहिये। उसके बाद एक घंटेतक कुछ खाना-पीना नहीं चाहिये। कितनी मात्रामें यह लिया

जाय, इसका भी विधान है। जितनी उम्र हो उतनी ही रत्ती लेनी चाहिये। परंतु एक बात ध्यान रहे कि इस त्रिफलाके सेवनसे एक या दो पतले दस्त होंगे, किंतु इससे घबड़ाना नहीं चाहिये।

यदि यह त्रिफला प्रत्येक ऋतुमें निम्न वस्तुओंके साथ मिलाकर लिया जाय तो इसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि प्रत्येक ऋतुका अपना-अपना स्वभाव होता है। वर्षभरमें दो-दो माहकी छः ऋतुएँ होती हैं। त्रिफलाके साथ कौन-सी ऋतु या माहमें कौन-सा, कितनी मात्रामें पदार्थ लिया जाय, वह इस प्रकार है—

१-श्रावण और भाद्रपद यानी अगस्त और सितम्बरमें त्रिफलाको सेंधा नमकके साथ लेना चाहिये। जितना त्रिफलाका सेवन करे, सेंधा नमक उससे छठा हिस्सा ले।

२-आश्विन और कार्तिक यानी अक्टूबर तथा नवम्बरमें त्रिफलाको शक्कर या चीनीके साथ त्रिफलाकी खुराकसे छठा भाग मिलाकर सेवन करना चाहिये।

३-मार्गशीर्ष और पौष यानी दिसम्बर तथा जनवरीमें त्रिफलाको सोंठके चूर्णके साथ लेना चाहिये। सोंठका चूर्ण त्रिफलाकी मात्रासे छठा भाग हो।

४-माघ तथा फाल्गुन यानी फरवरी और मार्चमें त्रिफलाको लैण्डी पीपलके चूर्णके साथ सेवन करना चाहिये। यह चूर्ण त्रिफलाकी मात्राके छठे भागसे कम हो।

५-चैत्र और वैशाख यानी अप्रैल तथा मईमें त्रिफलाका सेवन त्रिफलाके छठे भाग जितना शहद मिलाकर करना चाहिये।

६-ज्येष्ठ तथा आषाढ़ यानी जून और जुलाईमें त्रिफलाको गुड़के साथ लेना चाहिये। त्रिफलाकी मात्रासे छठा भाग गुड़ होना चाहिये।

जो व्यक्ति इस क्रम और विधिसे त्रिफलाका सेवन करता है, उसे निश्चित रूपसे बहुविध लाभ होता है। उसका एक प्रकारसे काया-कल्प हो जाता है। पहले वर्षमें यह तनकी सुस्ती, आलस्य आदिको दूर करता है। दूसरे वर्षमें व्यक्ति सब प्रकारके रोगोंसे मुक्ति पा लेता है अर्थात् सारे रोग मिट जाते हैं। तीसरे वर्षमें नेत्र-ज्योति बढ़ने लगती है। चौथे वर्षमें शरीरमें सुन्दरता आने लगती है। शरीर कान्ति तथा ओजसे ओतप्रोत रहता है। पाँचवें वर्षमें बुद्धिका विशेष विकास होने लगता है। छठे वर्षमें शरीर बलशाली होने लगता है। सातवें वर्षमें केशराशि यानी बाल काले होने लगते हैं। आठवें वर्षमें शरीरकी वृद्धता तरुणाईमें बदलने लगती है। नवें वर्षमें व्यक्तिकी नेत्र-ज्योति विशेष शक्ति-सम्पन्न हो जाती है। दसवें वर्षमें व्यक्तिके कण्ठपर शारदा विराजने लगती हैं। ग्यारहवें और बारहवें वर्षमें व्यक्तिको वाक्-सिद्धिकी प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार बारह वर्षतक निरन्तर उपर्युक्त विधिसे त्रिफलाका सेवन करनेके उपरान्त व्यक्ति व्यक्ति न रहकर परम साधक बन जाता है; क्योंकि उसकी समस्त मनोवृत्तियाँ स्वस्थ तथा सात्त्विक हो जाती हैं।

अभ्यङ्ग और आरोग्य

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा। दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुः स्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्॥
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्।

(अष्टाङ्गहृदय सू० अ० २। ८-९)

अपने शरीरके विविध अङ्गोंपर प्रतिदिन तेलकी मालिश करनी चाहिये। अभ्यङ्ग करते रहनेसे जरा (बुढ़ापा), थकावट एवं विकृत (प्रकुपित) वात (रोगों)-का विनाश होता है। दृष्टिकी स्वच्छता, शरीरकी पुष्टि और आयुकी वृद्धि होती है। अभ्यङ्ग करनेसे नींद अच्छी आती है, त्वचा सुन्दर हो जाती है तथा शरीर एवं उसके सभी अङ्ग सुदृढ़ हो जाते हैं। सिर, कान तथा पाँवोंमें अधिकतर मालिश करनी चाहिये।

'हरीतकीं भुंक्ष्व राजन्!'

[हरड़के स्वास्थ्यवर्धक गुण]

(श्रीप्रकाशचन्द्रजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न)

हरड़ या हर्र एक ऐसा स्वयंसिद्ध रसायन है, जिसके अनुपानभेदसे सेवन करनेपर रोग नहीं होते। विशुद्ध नीरोग गौके मूत्रको मिट्टीके पात्रमें छानकर उसमें छोटी हरड़ प्रायः सौ ग्राम या दो सौ ग्राम डाल दे। चौबीस घंटेके बाद उसे निकालकर एक सप्ताह छायामें सुखाये। इसके बाद गोघृतमें मन्दाग्निसे उसे भूनकर काला नमक मिला दे, तदनन्तर चौड़ी शीशीमें रख ले। नित्य दोपहरमें भोजनके बाद तथा रात्रिमें सोते समय एक-एक हरड़ जलके साथ चबा लिया करे, इससे जीवनमें कभी उदरविकार—मलावरोध होगा ही नहीं; क्योंकि '**सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः**' अर्थात् सभी रोगोंकी जड़ कुपित हुआ मल ही है ऐसा कहा गया है। हारीतसंहिता जो कि आयुर्वेदका प्राचीन तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है, उसमें हारीत मुनिने शिष्यभावसे महामुनि अगस्त्यसे आरोग्यसम्बन्धी जो प्रश्न किये, उनमें सर्वाधिक गुण हरड़के बताये हैं। हरड़को शिवास्वरूप (माता पार्वती) कहा है। वैद्यशिरोमणि लोलिम्बराजने अपने वैद्यजीवन ग्रन्थमें श्वास-कासकी औषधिमें हरड़को 'शिवा' नामसे सम्बोधित किया है। यथा—

घनविश्वशिवा गुडजा गुटिका
त्रिदिनं वदनाम्बुजमध्यधृता।
हरति श्वसनं कसनं ललने
ललनेव हिमं हृदयोपगता॥

अर्थात् लोलिम्बराज अपनी प्रियतमा धर्मपत्नीसे कहते हैं कि प्रिये! **घन**—मोथा, **विश्व**—सोंठ और **शिवा**—हरड़—इनको सम मात्रामें लेकर फिर उसके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर गोली बना तीन दिन नित्य उसे चूसे तो रोगीके श्वास-कास ऐसे भाग जायँ जैसे वराङ्गनाके साहचर्यसे शीत पलायन कर जाता है। तदनुसार एक वैद्यने एक राजाको ऋतुके अनुरूप हरड़के सेवनकी विधि बतलाते हुए आशीर्वाद दिया, कहा कि—हे राजन्! आप ऋतुके अनुरूप हरड़का सेवन इस प्रकार करें, यथा—

ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघाऽवनद्धेऽम्बरे
तुल्या शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे।
पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितम्
राजन् प्राप्य हरीतकीमिव रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः॥

अर्थात् हे राजन्! जैसे ऋतुके अनुरूप—ग्रीष्म-ऋतुमें हरीतकीके बराबर गुड़के साथ और वर्षामें सेंधा नमकके साथ, शरद्-कालमें आँवलाके चूर्णके साथ, हेमन्तकालमें सोंठके साथ, शिशिरमें छोटी पीपलके साथ तथा वसन्तमें शहदके साथ हरड़का सेवन करनेसे रोगोंका नाश हो जाता है, उसी प्रकार आपके शत्रु नष्ट हो जायँ।

हारीतसंहितामें हरड़की महिमा इस प्रकार बतायी गयी है—

उन्मीलनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां
निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम्।
विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां
हरीतकी स्यात् सह भोजनेन॥

अर्थात् छोटी हरड़ भूनकर थोड़ा सेंधा या काला नमक मिलाकर चूर्ण बना ले, उसमेंसे थोड़ा-सा भोजनके साथ ले लिया करे तो वह हरड़ बुद्धि, बल एवं इन्द्रियोंमें कार्य करनेकी क्षमता उत्पन्न करती है और वात, पित्त, कफ—इन त्रिदोषोंका मूलतः शमन करती है तथा मल-मूत्र, पसीना आदि दुर्गन्धित मलोंको संशोधित करके बाहर निकालती है।

इसी प्रकार हरीतकीके माहात्म्यमें एक प्रसंग और देखें—कोई सुयोग्य वैद्य राजाको उपदेश देता है कि—

हरीतकीं भुंक्ष्व राजन् मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुपिता माता नोदरस्था हरीतकी॥

अर्थात् हे राजन्! आप अनेक कटुक कुटज कषाय आदि औषधि न खाकर केवल हरड़का ही नित्य सेवन करें, यह माता (शिवा)-के समान हितकारिणी है। माता कभी किसी कारणवश कुपित हो भी सकती है, परंतु उदरमें स्थित हरड़ कभी कुपित न होगी। हरड़ प्रत्येक स्थितिमें मनुष्यके अनेक रोग नष्ट करती है। महामुनि अगस्त्य तथा शिष्यभावको प्राप्त मुनिवर हारीतके हरड़-गुणात्मक इस प्रसंगसे मानवमात्रको आयु-आरोग्य एवं ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके लिये प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

शहद—कितना गुणकारी!

(श्रीदरवानसिंहजी नेगी)

शहद आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धतिका महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसके बिना आयुर्वेदिक औषधोपचार अधूरा माना गया है। प्रकृतिमें जो विविध पुष्प-रस भरा पड़ा है, मधुमक्खी फूलोंसे विभिन्न प्रक्रियाओंसे उसे प्रशोधनकर शहदके रूपमें तैयार करती है।

शुद्ध शहदकी पहचान—शहद आदिकालसे ही मधुर द्रव्यका प्रतिनिधि रहा है। इसके प्रयोगसे ही इसकी उपयोगिता एवं औषधीय गुणोंकी जानकारी होती है। शहदमें कई तत्त्व विद्यमान हैं। इसमें ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज पर्याप्त मात्रामें होता है। शुद्ध शहद पानीमें अपने-आप नहीं घुलता, जब कि चीनी थोड़ी ही देरमें स्वतः ही घुल जाती है। यह शहदकी सामान्य पहचान है। जो शहद जितना गाढ़ा होगा, उसमें नमीकी जितनी कमी होगी, शुद्धताकी दृष्टिसे वह उतना ही अच्छा माना जाता है। शहद ठंडमें जम जाता है और गर्मीसे स्वतः ही पिघलने लगता है।

शहदकी ऋतुविशेष, वनस्पति या पुष्पविशेषके रूपमें भी पहचान की जाती है। हिमालयका कार्तिक-मधु औषधिगुणोंसे भरपूर है। इस ऋतुका शहद जमनेपर सफेद, दानेदार तथा सुगन्धित होता है। इसको खानेसे गलेमें हलकी मिर्च-जैसा स्वाद लगता है, यह कम मिलता है। फाल्गुन-चैत्रमें तैयार होनेवाला सरसोंके फूलोंका शहद भी इसीके समान होता है। वैशाख और ज्येष्ठमासका शहद लाल रंगका होता है, जो कम जमता है। यह सुगन्धित होता है। आषाढ़ महीनेका शहद भी ज्यादातर लाल रंगका होता है। कहीं-कहीं स्वादमें कड़वा होता है। इस शहदका अधिक प्रयोग करनेसे यह शरीरमें गर्मी दिखाता है। कई बार इससे पेचिश भी लग जाती है।

शहदके औषधीय गुण—शहदकी अपनी तासीर गर्म होती है। खासकर जिस समय शहद छत्तेसे निकालते हैं, उस समय इसका प्रभाव गर्म होता है। धीरे-धीरे इसका प्रभाव सामान्य होता जाता है। शहदका विशेष गुण यह भी है कि गरम पानीमें लेनेसे गरम तथा शीतल पानीमें मिलाकर उपयोग करनेसे ठंडा होता है। प्रातः और सायं गरम पानीमें मिलाकर शहद पीनेसे शरीरकी चर्बी कम होती है। आँखोंमें एक बूँद प्रतिदिन डालनेसे आँखकी ज्योति बढ़ती है तथा आँखकी प्रतिरोधक क्षमतामें वृद्धि होती है। गर्मियोंमें शहदकी शिकंजी, जिसमें एक बड़े गिलासमें दो चम्मच शहद और एक-दो बूँद नीबूका रस मिलाकर पीनेसे शरीरको तत्काल ऊर्जा मिलती है और इससे पेशाब भी खुलकर होता है।

अदरक या तुलसीके रसको चम्मचमें गरम कर उसमें शहद मिलाकर उपयोग करनेपर यह योग खाँसी-जुकाममें रामबाण प्रमाणित होता है। केवल शहद खानेसे भी फायदा होता है। शहद मुँहमें रखते ही तत्काल घुलकर शरीरमें सीधे ऊर्जा देता है। जितना जल्दी शहद पचता है, उतना जल्दी अन्य कोई पदार्थ नहीं पचता। अनुपानके रूपमें शहदका सेवन करनेसे औषधकी शक्ति बढ़ जाती है।

शहद कटे, फोड़े-फुंसियोंपर एंटीसैप्टिक रोग-निरोधकका काम करता है। चेचकके दाग शहद और नीबूके रससे हलके किये जा सकते हैं। इन्हें मिलाकर दागपर लगाया जाता है, जिससे चेहरेकी कान्ति लौट आती है। नवजात शिशुको जन्मके तत्काल बाद शहद चटानेसे बच्चा नीरोगी होता है। केवल शहद नित्य सेवन करनेसे दिल एवं दिमागको शक्ति देता है तथा दीर्घ जीवन प्रदान करता है। इसीलिये शहदको एक अर्थमें 'अमृत' कहा जाता है। ज्यादा पुराना शहद अपना स्वाद, गुण एवं रंग खो देता है। इसलिये ताजे शहदका प्रयोग ही अधिक करना चाहिये। शहद बनानेवाली विभिन्न जातिकी मधुमक्खियाँ, सारंग, एपिस मैलिफेरा भी हैं। गुणकारी तथा सुस्वादु शहद अपनी देशी मक्खी ही बनाती है। शहदका सेवन विशेषकर बच्चों और बूढ़ोंको अधिक करना चाहिये।

महौषध—शहदकल्प

(महर्षि श्रीनीलकण्ठजी भट्ट)

शहदमें दीर्घायु रखने एवं स्वस्थ बनाये रखनेकी वैसी ही अद्भुत शक्ति है, जैसी जड़ी-बूटियोंमें। शहद मधुमक्खियोंके द्वारा अनेक वृक्षादिकोंके पुष्पोंका रस लाकर एकत्र किया जाता है। यहाँ शहदके कतिपय उपयोग दिये जा रहे हैं—

(१) थकान होनेपर शहदके सेवनसे ताजगी आती है।

(२) शहदको नारंगी, दूध, केवड़ा-रस तथा पानीमें मिलाकर पीनेसे मांसपेशियोंको तुरंत शक्ति मिलती है।

(३) काली खाँसी होनेपर शहदके साथ दो बादाम लेनेसे आराम मिलता है।

(४) बवासीरमें एक चुटकी त्रिफला शहदमें मिलाकर लेनेसे आराम होता है।

(५) शरीरके किसी भागके जलनेपर शुद्ध शहद लगानेसे जलन कम होती है और आराम मिलता है।

(६) बिच्छूके काटे हुए स्थानपर शहद, घृत और चूना बराबर मात्रामें मिलाकर लगानेसे जहर उतर जाता है।

(७) गरम पानीमें शहद मिलाकर दिनमें तीन बार लेनेसे जुकाम ठीक होता है।

(८) शहद चाटनेसे हिचकी बंद होती है।

(९) शहद नियमित सेवन करनेसे क़ब्ज़ मिटता है।

(१०) शुद्ध शहद आँखोंमें लगानेसे रोशनी बढ़ती है।

(११) शहद-सेवनसे पुराने घाव भी जल्दी भर जाते हैं।

(१२) अदरकका रस और शहद मिलाकर बराबर लेनेसे खाँसी और कफ दूर होते हैं।

(१३) प्रातः शौच जानेसे पूर्व एक गिलास ठंडे पानीमें दो चम्मच शहद मिलाकर नियमित रूपसे लेनेपर शरीरका मोटापन एवं भारीपन दूर होता है।

(१४) यदि किसी घावसे खून बंद नहीं होता हो तो उसपर शहद लगाना चाहिये।

(१५) अनिद्राकी शिकायतमें नियमित रूपसे शहद लेनेसे अच्छी नींद आती है।

(१६) सुजाक-रोगमें ठंडे जलके साथ शहद लेनेसे आराम मिलता है।

(१७) शहदको पानीके साथ पीनेसे चर्मरोग मिटता है।

(१८) रक्तचाप बढ़नेपर लहसुनके साथ शहद लेना चाहिये।

(१९) बच्चोंको नौ मास शहद देनेसे किसी प्रकारका रोग नहीं होता। शहद कीड़े एवं पायरियासे दाँतोंको बचाता है और बच्चोंको दाँत निकलनेकी पीडा भी नहीं होती।

(२०) मलेरिया बुखारमें एक गिलासमें गरम जल लेकर उसमें दो चम्मच शहद डालकर पीनेसे खूब पसीना आकर बुखार उतर जाता है।

(२१) मुँहके फोड़े तथा फुंसीमें प्रातः शुद्ध जल दो चम्मच शहद डालकर लेना चाहिये।

(२२) आँतोंकी शिकायतमें आँवलेके रसके साथ शहदका सेवन करना चाहिये।

(२३) अनारके रसमें शहद मिलाकर लेनेसे दिमागी कमजोरी, सुस्ती, निराशा तथा थकावट दूर होती है।

(२४) आधे सिरदर्दमें एक छोटे प्यालेमें गुनगुना पानी करके उसमें दो चम्मच शहद डालकर पीना चाहिये।

(२५) टांसिल बढ़नेपर सेबके रसमें शहद मिलाकर लेना चाहिये।

सर्वोत्तम आहार एवं औषधि है—शहद

(श्रीमधुसूदनजी भार्गव)

शहदमें वे सभी पोषक तत्त्व पाये जाते हैं, जो शरीरके विकास एवं पाचन-क्रियाको सुचारु रखनेके लिये आवश्यक होते हैं। यह रोगाणु-नाशक तथा उत्तम भोज्य पदार्थ है। आयुर्वेदमें बच्चोंके लिये माँके दूधके बाद शहदको ही सर्वाधिक पोषक तत्त्व बताया गया है। शीतकालमें सोते समय ठण्डे दूधके साथ उपयोग करनेपर यह शरीरको मोटा एवं सुडौल बनाता है। ठीक इसके विपरीत सुबह शौचसे पहले गिलासभर पानीके साथ पीनेपर मोटापा कम करता है। इसके अलावा शहदको हलके गर्म दूध, दही, गर्म पानी, नीबूके रस, चावल, दलिया, केला, खीर, सलाद आदिके साथ अलग-अलग समयमें उपयोग किया जाता है। यहाँ शहदके कुछ औषधीय उपयोग दिये जा रहे हैं—

१. अदरकके रसमें शहद मिलाकर चाटनेपर यह कास तथा श्वासरोग दूर करता है।

२. अडूसेके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे खाँसीमें लाभ होता है।

३. काँसकी जड़के रसमें शहद मिलाकर सूँघनेपर हिचकी चली जाती है।

४. कपूर कजरी, पुष्कर मूल तथा आँवलेका चूर्ण मिलाकर शहदके साथ चाटनेपर श्वासरोगमें लाभ होता है।

५. बैगनके भरतेमें मिलाकर शहद सेवन करनेसे तुरंत नींद आती है।

६. पके आमके रसमें शहद मिलाकर पीनेसे पीलिया रोग दूर हो जाता है।

७. गोखरूका चूर्ण शहदके साथ लेनेसे पथरीमें लाभ होता है।

८. कमजोर जिगरवाले बच्चोंके भोजनमें शहद मिलाकर देनेसे भोजन आसानीसे पच जाता है।

९. पके केलेमें शहद भरकर खानेसे प्रदर रोगमें लाभ होता है।

१०. लकवा-रोगीके लिये शहद सर्वोत्तम औषधि है।

११ बहुत छोटे बच्चोंको सीमित मात्रामें शहद चटानेपर उसके आहारकी पूर्ति होती है।

१२. सिरमें चक्कर आनेपर चार-चार घण्टेपर पानीमें थोड़ी मात्रामें शहद मिलाकर पीनेसे लाभ होता है।

१३. वमन (उल्टी) होनेपर शहद और पोदीनेके रसको मिलाकर पीनेसे लाभ होता है।

१४. एक निश्चित अनुपातमें घी, दही एवं शहदके मिश्रणको मधुपर्ककी संज्ञा दी गयी है। यह अत्यन्त बलिष्ठ, पवित्र एवं विशेष लाभकारी है।

शहदका उपयोग अलग-अलग पदार्थोंके साथ करनेसे यह विभिन्न प्रभाव दर्शाता है। अतः इसका उपयोग करनेसे पहले चिकित्सक या वैद्य आदिकी सलाह लेना उत्तम होगा।

तुलसी—एक जीवनदायक पौधा

(डॉ० श्रीकमलप्रकाशजी अग्रवाल)

तुलसीका हिंदू-संस्कृतिमें अत्यधिक धार्मिक महत्त्व है—इस रूपमें तुलसीकी पूजा की जाती है। तुलसीका हमारे ओषधिशास्त्रसे भी अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। लगभग सभी रोगोंमें अनुपान-भेद और मिश्रणके साथ इसका प्रयोग किया जा सकता है। तुलसी या मकरध्वज आयुर्वेद-जगत्में प्रत्येक रोगमें काम आनेवाली ओषधियोंमें प्रमुख है, जिसकी प्रयोग-विधि जान लेनेसे वैद्य संसारके लगभग सभी रोगोंसे लड़ सकता है। विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, देवीभागवत आदिके अनुसार तुलसीकी उत्पत्तिकी अनेक कथाएँ हैं, पर एक कथाके अनुसार समुद्र-मन्थन करते समय जब अमृत निकला तब कलशको देखकर श्रमकी सार्थकतासे अभिभूत होकर देवताओंके नेत्रोंसे अश्रुस्राव हो उठा और उन बूँदोंसे तुलसी उत्पन्न हुई। तुलसीको अन्ताराष्ट्रिय-जगत्में ओसिमम सेंक्टम् (Ocimum Sanctum)-के नामसे जाना जाता है, जिसके बाईस भेद हैं; किंतु मुख्यतया यह कृष्ण-तुलसी, श्वेत-तुलसी, गन्धा-तुलसी, राम-तुलसी, वन-तुलसी, बिल्वगन्ध-तुलसी, बर्बरी-तुलसीके नामसे जानी जाती है।

तुलसीको सर्वरोग-संहारक-प्रवृत्तिके कारण ही घरमें घरेलू वस्तुकी श्रेणीमें रखा गया है। इसकी गन्धसे मलेरियाके मच्छर दूर भाग जाते हैं। तुलसीके पौधेमें प्रबल विद्युत्-शक्ति होती है, जो पौधेके चारों ओर दो सौ गजतक रहती है। आयुर्वेदके मतसे तुलसीका कटु-तिक्त रस हृदयग्राही और पित्तनाशक है। यह कुष्ठ, पथरी, रक्तदोष, पसलियोंके दर्द, चर्मरोग, कफ और वायुजनित रोगोंका नाशक है। कृष्ण और शुक्ल दोनों तुलसीके गुण समान हैं। तुलसी-काष्ठ धारण करनेसे शरीरकी विद्युत्-शक्ति नष्ट नहीं होती, इसी कारण उसकी माला पहननेका प्रचलन है।

तुलसीके अनेक तान्त्रिक प्रयोग हैं। उनमेंसे प्रमुख ये हैं—यदि किसीने किसीपर मोहन-प्रयोग किया हो तो पीड़ित व्यक्तिको तुलसी-मञ्जरीको घी या शहदमें डुबोकर श्रीकृष्ण-मन्त्रोंसे आहुति देनी चाहिये। रविवारको पुष्य-नक्षत्रमें तुलसीकी जड़ उखाड़कर चूर्ण बनाकर रख लें, फिर एक माशातक समान मात्रामें असगंध (अश्वगंधा)-के चूर्णके साथ मिलाकर रात्रिमें दूधके साथ सेवन करें तो यह शुक्रसम्बन्धी एवं शीघ्र-पतन-जैसी बीमारियोंको समूल नष्ट कर देगा। राजवशीकरणमें भी तुलसीका प्रयोग बताया गया है।

तुलसीके पौधेकी देखभाल करनेके लिये कुछ मुख्य बातें ध्यानमें रखनी चाहिये। प्रथम यदि तुलसीदलको तोड़े तो उसकी मञ्जरी और पासके पत्ते तोड़ने चाहिये, जिससे पौधेकी बढ़ती अधिक हो। यही नहीं, मञ्जरीके तोड़नेसे पौधा खूब बढ़ता है। यदि पत्तोंमें छेद दिखायी देने लगे तो कंडोंकी राखका कीटनाशक ओषधियोंके रूपमें प्रयोग करना चाहिये। उबली चायकी पत्तीको धोकर तुलसीकी श्रेष्ठ खादके रूपमें प्रयुक्त किया जा सकता है।

जून, जुलाई, अगस्त—इन मासोंमें रोपनेसे तुलसी शीघ्र अंकुरित होती है। अरविन्द-आश्रम पांडिचेरीकी श्रीमाँका कहना है कि 'कैंसर-रोगमें तुलसीके पत्ते विषाणुओंके फैलनेमें निरोधक हैं।' जवाहरलाल-स्नातकोत्तर-आयुर्विज्ञान एवं अनुसंधान-संस्थान, नयी दिल्लीके वैज्ञानिकोंके अनुसार तुलसीके ताजे पत्तोंके निरन्तर सेवनसे गर्भ-निरोध हो सकता है। पूर्ण अनुसंधान जारी है।

तुलसी-काष्ठके टुकड़ोंकी माला पहननेसे किसी प्रकारकी संक्रामक बीमारीका भय नहीं रहता। इसके पत्ते दाँतोंसे नहीं चबाने चाहिये; क्योंकि पत्तियोंमें पारा होनेके कारण दन्तशूल हो जाता है, अतः इसे निगलना ही श्रेयस्कर है। बर्रे, भौंरा, बिच्छूके काटनेपर उस स्थानपर तुलसीके पत्तेका रस या पत्ता पीसकर पुलटिसकी भाँति बाँध देनेसे जलन नष्ट हो जाती है। सर्पदंशित व्यक्तिको तुलसीके पत्तोंका रस पिला देनेसे विष उतर सकता है। कुष्ठरोगी, वात-रक्त, मलेरियासे पीड़ित व्यक्तियोंको एकसे सात पत्तेतक निगलने चाहिये। तुलसीकी जड़ थोड़ी मात्रामें पानके साथ सेवन करनेसे वीर्य स्तम्भित होकर स्वप्नदोषकी बीमारी नष्ट हो जाती है।

हिंदू-शास्त्रोंमें लिखा है कि जिनके घरमें लहलहाता तुलसीका पौधा रहता है, उनके यहाँ वज्रपात नहीं हो सकता अर्थात् जब तुलसी अचानक प्राकृतिक रूपसे नष्ट हो जाय, तब समझना चाहिये कि घरपर कोई भारी संकट आनेवाला है। काली तुलसीका रस शरीरसे पारेका विष नष्ट कर सकता है। तुलसीकी चाय नित्य कई बार पीना स्वास्थ्य-लाभका प्रतीक है, जबकि सामान्य चाय व्यवहारमें हानि पहुँचाती है। कर्णशूल और जुकाममें पत्तेका रस निकालकर गरम करके ठण्डा होनेपर सेवन करनेसे तुरंत आराम मिलता है।

मञ्जरी (फूल)-को सुखाकर उसके बीज निकालकर बच्चोंको खाना खानेके बाद देना चाहिये, जिससे मुखशुद्धिके साथ-साथ पेटके कृमि भी मर जाते हैं। यह नपुंसकताको नष्ट कर देती है। बाजीकरणकी उत्तम ओषधि है।

मञ्जरी हारमोन्सकी वृद्धि भी करती है। इसमें प्रोटीन भारी मात्रामें है। पत्तोंके रसमें नीबूका रस मिलाकर प्रयोग करनेसे चर्मरोगोंमें अत्यधिक लाभ पहुँचता है, जो कि गुप्त-चर्मरोगोंमें विशेष तौरसे प्रयोग किया जा सकता है। तुलसीके पत्तोंमें एक प्रकारकी पीली आभा लिये हरे रंगका तेल होता है। कुछ देरतक रख देनेसे इसमें दाना बनता है। इसका नाम बेसिल कैम्फर (Besil Camphor) है, जो कि ओषधि-उपयोगकी वस्तु है, जिसे निर्मित कर और विदेशोंमें निर्यात कर विदेशी मुद्राका साधन बनाया जा सकता है।

होमियोपैथीमें तुलसी (Ocimum Sanctum) ० से २०० की मात्राका खूब प्रयोग होता है तथा यह ब्रायोनिया, बैस्टीशिया, जेलसिमियम, पल्सेटिला, रसटॉक्स, सल्फर प्रभृति दवाओंके समकक्ष है।

अब तुलसीका धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व भी जान लेना आवश्यक है। अपने घरमें तुलसीका पौधा रोपनेसे तथा उसका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पाप भी नष्ट हो जाते हैं। हजारों आम और पीपल लगानेका जो

फल है, वह एक तुलसीको रोपनेका है। कार्तिकमासमें तुलसीकी जड़में जो शामको दीपक जलाते हैं, उनके घरमें श्री और संतानकी वृद्धि होती है तथा जो तुलसीकी मञ्जरीको श्रावण-भाद्रपदमें भगवान् विष्णुको चन्दनसहित अर्पित करते हैं, वे लोग मृत्युके पश्चात् विष्णुलोकको जाते हैं। तुलसीको रोपने तथा उसे दूधसे सींचनेपर स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तुलसीकी मृत्तिकाको माथेपर लगानेसे तेजस्विता बढ़ती है। तुलसी-युक्त जलसे स्नान करते समय '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का जप करनेसे प्रेत-बाधासे मुक्ति मिलती है।

तुलसीके पत्ते एक माहतक बासी नहीं माने जाते। तुलसीके स्तोत्र, मन्त्र, कवच आदिके पठन और पूजनसे भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा समस्त इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। ऐसा 'देवीभागवतपुराण'में लिखा है। 'वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी तथा कृष्णजीवनी'—इन आठ नामोंके जपसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है।

तुलसीकी छायामें श्राद्ध करनेसे पितरोंको अक्षय तृप्ति मिलती है। तुलसीका चयन गणेश-पूजनमें, पूर्णिमा, अमावास्या, एकादशी, संक्रान्ति-काल तथा कार्तिक-द्वादशीमें निषिद्ध है। इसके सिवाय तेलकी मालिश करके बिना नहाये, संध्याके समय, रात्रिको एवं अशुद्ध अवस्थामें भी निषिद्ध है।

संक्षेपमें यह तुलसीका धार्मिक एवं ओषधिजनित महत्त्व है, इसलिये घर-घरमें तुलसीका पौधा अवश्य लगाना चाहिये।

दैनिक जीवनमें तुलसीका उपयोग और आरोग्य-विधान

(कुमारी सुमन सैनी)

तुलसी एक बहुश्रुत, उपयोगी वनस्पति है। भारतीय धर्म-संस्कृतिमें तुलसी अति पवित्र और महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक हिन्दूके घर-आँगनमें तुलसी-क्यारेका होना घरकी शोभा, घरके संस्कार, पवित्रता तथा धार्मिकताका अनिवार्य प्रतीक है। मात्र भारतमें ही नहीं, वरन् विश्वके कई अन्य देशोंमें भी तुलसीको पूजनीय तथा शुभ माना गया है। ग्रीसमें इस्टर्न चर्च नामक सम्प्रदायमें भी तुलसीकी पूजा होती थी और सेंट बेजिल-जयन्तीके दिन 'नूतन वर्ष भाग्यशाली हो'—इस भावनासे देवलमें चढ़ायी गयी तुलसीके प्रसादको स्त्रियाँ घरमें ले जाती थीं। समस्त वृक्षों-वनस्पतियोंमें सर्वाधिक धार्मिक, आध्यात्मिक, आरोग्यलक्ष्मी एवं शोभाकी दृष्टिसे तुलसीको मानव-जीवनमें महत्त्वपूर्ण, पवित्र तथा श्रद्धेय स्थान मिला है। यह भगवान् नारायणको अति प्रिय है। वृन्दा, विष्णुप्रिया, माधवी आदि भी इसके नाम हैं। धार्मिक आध्यात्मिक महत्ता तो इसकी है ही, आरोग्य प्रदान करनेमें भी इसका विशेष स्थान है। इसीलिये यह 'आरोग्यलक्ष्मी' भी कहलाती है।

प्रदूषित वायुके शुद्धिकरणमें तुलसीका विलक्षण योगदान है। यदि तुलसीवनके साथ प्राकृतिक चिकित्साकी कुछ पद्धतियाँ जोड़ दी जायँ तो प्राणघातक और दुःसाध्य रोगोंको भी निर्मूल करनेमें सफलता मिल सकती है।

तुलसी शारीरिक व्याधियोंको तो दूर करती ही है, साथ ही मनुष्यके आन्तरिक भावों और विचारोंपर भी कल्याणकारी प्रभाव डालती है। तुलसीके पौधेमें मच्छरोंको दूर भगानेका गुण है और इसकी पत्तियाँ खानेसे मलेरियाके दूषित तत्त्वोंका मूलतः नाश होता है। तुलसी और काली मिर्चका काढ़ा बनाकर पीनेके सरल प्रयोगसे ज्वर दूर किया जा सकता है।

निसर्गोपचारकोंका कहना है कि तुलसीकी पत्तियोंको दही या छाछके साथ सेवन करनेसे वजन कम होता है, शरीरकी चरबी कम होती है, अतः शरीर सुडौल बनता है। साथ ही थकान मिटती है। दिनभर स्फूर्ति बनी रहती है और रक्तकणोंमें वृद्धि होती है।

ब्लडप्रेशरके नियमन, पाचनतन्त्रके नियमन तथा रक्तकणोंकी वृद्धिके अतिरिक्त मानसिक रोगोंमें भी तुलसीके प्रयोगसे असाधारण सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं।

अथर्ववेदमें आता है; यदि त्वचा, मांस तथा अस्थिमें महारोग प्रविष्ट हो गया हो तो उसे श्यामा तुलसी नष्ट कर देती है। तुलसीके दो भेद होते हैं—१-हरे पत्तेवाली और २-श्याम (काले) पत्तेवाली। श्यामा तुलसी सौन्दर्यवर्धक है। इसके सेवनसे त्वचाके सभी रोग नष्ट हो जाते हैं और त्वचा पुनः मूल स्वरूप

धारण कर लेती है। तुलसी त्वचाके लिये अद्भुत रूपसे गुणकारी है।

तुलसी हिचकी, खाँसी, विषदोष, श्वास और पार्श्वशूलको तथा वात, कफ और मुँहकी दुर्गन्धको नष्ट करती है।

स्कन्दपुराण एवं पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें आता है कि जिस घरमें तुलसीका पौधा होता है, वह घर तीर्थके समान है। वहाँ व्याधिरूपी यमदूत प्रवेश ही नहीं कर सकते।

तुलसी किडनीकी कार्यशक्तिमें वृद्धि करती है। तुलसीके रसमें शहद मिलाकर देनेसे एक केसमें किडनीकी पथरी छः माहके निरन्तर उपचारसे बाहर निकल गयी थी।

इण्ट्राटेकिप्पल कैंसरसे पीडित एक रोगीपर ऑपरेशन तथा अन्य अनेक उपचार करनेके बाद अन्तमें आशा छोड़कर डॉक्टरोंने घोषित किया कि रोगीका यकृत् खराब हो रहा है। यक्ष्मामें भी वृद्धि हो रही है। अब यह रोग लाइलाज है। उसी समय एक वैद्यने उक्त विधानके विरुद्ध चुनौती दी। रोगीको पाँच सप्ताहतक केवल तुलसीका सेवन कराया, फलस्वरूप वह इतना स्वस्थ हो गया कि एक मीलतक पैदल चल सकता था।

हृदयरोगसे पीडित कई रोगियोंके हाई ब्लडप्रेशर तुलसीके उपचारसे सामान्य हुए हैं। हृदयकी दुर्बलता कम हो गयी है और रक्तमें चर्बीकी वृद्धि रुकी है। जिन्हें ऊँचाईवाले स्थानोंपर जानेकी मनाही थी, ऐसे अनेक रोगी तुलसीके नियमित सेवनके बाद आनन्दपूर्वक ऊँचाईवाले स्थानोंपर जानेमें समर्थ हुए हैं।

एक लड़का बचपनसे ही मन्द बुद्धिका था। सोलह वर्षोंतक उसके अनेक उपचार हुए, किंतु उसकी बौद्धिक मन्दता दूर नहीं हुई। तुलसीके नियमित सेवनसे दो ही महीनोंके भीतर उसमें बुद्धिमत्ताके लक्षण दिखायी पड़े, समय बीतनेपर वह कुछ और अधिक बुद्धिशाली हो गया।

बच्चोंको तुलसीपत्र देनेके साथ सूर्य-नमस्कार करवाने और सूर्यको अर्घ्य दिलवानेके प्रयोगसे बुद्धिमें विलक्षणता आती है।

सफेद दाग और कुष्ठके अनेक रोगियोंको तुलसीके उपचारसे अद्भुत लाभ हुआ है।

प्रतिदिन प्रातःकाल खाली पेट पानीके साथ तुलसीकी पाँच-सात पत्तियोंका सेवन करनेसे बल, तेज और स्मरणशक्ति बढ़ती है। तुलसीके काढ़ेमें थोड़ी शक्कर मिलाकर पीनेसे स्फूर्ति आती है और थकावट दूर हो जाती है। जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। इसके रसमें नमक मिलाकर उसकी बूँदें नाकमें डालनेसे मूर्च्छा दूर होती है, हिचकियाँ भी शान्त हो जाती हैं।

तुलसी ब्लड-कॉलेस्ट्रोलको बहुत तेजीके साथ सामान्य बना देती है। तुलसीके नित्य सेवनसे एसिडिटी दूर होती है। पेचिश, कोलाइटिस आदि मिट जाते हैं।

स्नायुका दर्द, जुकाम, सर्दी, मेदवृद्धि, सिरदर्द आदिमें तुलसी गुणकारी है। इसका रस, अदरकका रस एवं शहद समभागमें मिश्रित करके बच्चोंको चटानेसे उनके कुछ रोगों—विशेषकर सर्दी, दस्त, उलटी और कफमें लाभ होता है। हृदयरोग और उसकी आनुषङ्गिक निर्बलता तथा बीमारीमें तुलसीके उपयोगसे आश्चर्यजनक सुधार होता है।

वजन बढ़ाना या घटाना हो तो तुलसीका सेवन करें, इससे शरीर स्वस्थ और सुडौल बनता है। मन्दाग्नि, क़ब्जियत, गैस आदि रोगोंके लिये तुलसी रामबाण औषधि सिद्ध हुई है।

तुलसीकी क्यारीके पास प्राणायाम करनेसे सौन्दर्य, स्वास्थ्य और तेजकी अत्युत्तम वृद्धि होती है।

तुलसीकी सूखी पत्तियोंको पीसकर उसके चूर्णको पाउडरकी तरह चेहरेपर रगड़नेसे चेहरेकी कान्ति बढ़ती है और चेहरा सुन्दर दिखता है।

मुँहासोंके लिये भी तुलसी अत्यन्त उपयोगी है। ताँबेके बरतनमें नीबूके रसको चौबीस घंटेतक रख छोड़िये। फिर उसमें इतनी ही मात्रामें काली तुलसीका रस तथा काली कसौंड़ी (कसौंजी)-का रस मिलाइये। इस मिश्रणको धूपमें सुखाकर गाढ़ा कीजिये। इस लेपको चेहरेपर लगानेसे धीरे-धीरे चेहरा स्वच्छ, चमकदार, सुन्दर, तेजस्वी बनेगा तथा कान्ति बढ़ेगी।

काली मिर्च, तुलसी और गुड़का काढ़ा बनाकर उसमें नीबूका रस मिलाकर दिनमें दो-दो या तीन-तीन घंटेके अन्तरसे गर्म-गर्म पियें। फिर कम्बल ओढ़कर सो जायँ। यह काढ़ा मलेरियाको दूर करता है।

श्लेष्मक ज्वर (इनफ्लुएंजा)-के रोगीको तुलसीका बीस ग्राम रस, अदरकका चालीस ग्राम रस तथा शहद मिलाकर दें।

तुलसीकी जड़ कमरमें बाँधनेसे गर्भवती स्त्रियोंको लाभ होता है। प्रसव-वेदना कम होती है और प्रसूति भी सरलतासे हो जाती है।

तुलसीकी पत्तियोंका रस बीस ग्राम चावलके माँड़के साथ सेवन करनेसे तथा दूध-भात या घी-भातका पथ्य लेनेसे प्रदररोग दूर होता है।

तुलसीकी पत्तियोंको नीबूके रसमें पीसकर लगानेसे दाद-खाज मिट जाती है।

तुलसीका पाउडर तथा सूखे आँवलोंका पाउडर पानीमें भिगोकर रख दीजिये, प्रातःकाल छानकर उस पानीसे सिर धोनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं तथा बालोंका झड़ना रुक जाता है।

तुलसी और अदरकका रस शहदके साथ लेनेसे उलटीमें लाभ होता है।

पेटमें दर्द होनेपर तुलसीकी ताजी पत्तियोंका दस ग्राम रस पियें।

इस तरह आरोग्य-दान करनेमें तुलसी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमें चाहिये कि जगह-जगह तुलसीके पौधे लगाकर तथा तुलसीके बीज डालकर तुलसीका वृन्दावन बनायें, वातावरणको शुद्ध, पवित्र कर स्वस्थ करें तथा स्वस्थ रहें।

पुष्पोंका चिकित्सकीय उपयोग

(डॉ० श्रीकमलप्रकाशजी अग्रवाल)

पुष्प, जहाँ अपने दर्शनसे मनको आह्लादित एवं प्रफुल्लित करते हैं, वहीं वे अपनी सुगन्धिसे सम्पूर्ण परिवेशको आप्यायित कर सुवासित भी कर देते हैं। अपने आराध्यके चरणोंमें प्रेमी भक्तकी पुष्पाञ्जलि प्रेमास्पदका सहसा प्राकट्य करा देती है। पुष्पोंकी अनन्त महिमा है। पुष्पके सभी अवयव उपयोगी होते हैं। इनके यथाविधि उपयोगसे अनेक रोगोंका शमन किया जा सकता है।

फूलोंके रससे तैयार किया गया लेप बाह्य रूपसे त्वचापर लगानेसे उसकी सुगन्धि हृदय तथा नासिकातक अपना प्रभाव दिखाकर मनको आनन्दित कर देती है। सबसे अच्छी बात यह है कि पुष्प-चिकित्साके कोई दुष्प्रभाव नहीं होते।

फूलोंको शरीरपर धारण करनेसे शरीरकी शोभा, कान्ति, सौन्दर्य और श्रीकी वृद्धि होती है। उनकी सुगन्धि रोगनाशक भी है। फूलके सुगन्धित परमाणु वातावरणमें घुलकर नासिकाकी झिल्लीमें पहुँचकर अपनी सुगन्धिका अहसास कराते हैं और मस्तिष्कके अलग-अलग हिस्सोंपर अपना प्रभाव दिखाकर मधुर उत्तेजना-सा अनुभव कराते हैं। पुष्पकी सुगन्धिका मस्तिष्क, हृदय, आँख, कान तथा पाचनक्रिया आदिपर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। ये थकानको तुरंत दूर करते हैं। इनकी सुगन्धिसे की गयी उपचारप्रणालीको '**एरोमा थेरेपी**' कहा जाता है। यहाँ कुछ पुष्पोंके संक्षेपमें औषधीय प्रयोग दिये जा रहे हैं, सम्यक् जानकारी प्राप्त करके उनसे लाभ उठाया जा सकता है—

कमल—कमल और लक्ष्मीका सम्बन्ध अविभाज्य है। कमल सृष्टिकी वृद्धिका द्योतक है। इसके परागसे मधुमक्खी शहद तो बनाती ही है, इनके फूलोंसे तैयार किये गये गुलकन्दका उपयोग प्रत्येक प्रकारके रोगोंमें तथा क़ब्ज़के निवारण-हेतु किया जाता है। कमलके फूलके अंदर हरे रंगके दाने-से निकलते हैं, जिन्हें भूनकर मखाने बनाये जाते हैं, परंतु उनको कच्चा छीलकर खानेसे ओज एवं बलकी वृद्धि होती है। इसका गुण शीत है। इसका सबसे अधिक प्रयोग अञ्जनकी भाँति नेत्रोंमें ज्योति बढ़ानेके लिये शहदमें मिलाकर किया जाता है। पँखड़ियोंको पीसकर उबटनमें मिलाकर चेहरेपर मलनेसे चेहरेकी सुन्दरता बढ़ती है।

केवड़ा—इसकी गन्ध कस्तूरी-जैसी मोहक होती है। इसके पुष्प दुर्गन्धनाशक तथा उन्मादक हैं। केवड़ेका तेल उत्तेजक श्वासविकारमें लाभकारी है। इसका इत्र सिरदर्द और गठियामें उपयोगी है। इसकी मंजरीका

उपयोग पानीमें उबालकर कुष्ठ, चेचक, खुजली तथा हृदयरोगोंमें स्नान करके किया जा सकता है। इसका अर्क पानीमें डालकर पीनेसे सिरदर्द तथा थकान दूर होती है। बुखारमें एक बूँद देनेसे पसीना बाहर आता है। इसका इत्र दो बूँद कानमें डालनेसे कानका दर्द ठीक हो जाता है।

गुलाब—गुलाबका पुष्प सौन्दर्य, स्नेह एवं प्रेमका प्रतीक है। इसका गुलकंद रेचक है, जो पेट और आँतोंकी गर्मी शान्त करके हृदयको प्रसन्नता प्रदान करता है। गुलाबजलसे आँखें धोनेसे आँखोंकी लाली तथा सूजन कम होती है। गुलाबका इत्र उत्तेजक होता है तथा इसका तेल मस्तिष्कको ठंडा रखता है। गुलाबके अर्कका भी मधुर भोज्य-पदार्थोंमें प्रयोग किया जाता है। गर्मीमें इसका प्रयोग शीतवर्धक होता है।

चम्पा—चम्पाके फूलोंको पीसकर कुष्ठरोगके घावमें लगाया जा सकता है। इसका अर्क रक्त-कृमिको नष्ट करता है। इसके फूलोंको सुखाकर बनाया गया चूर्ण खुजलीमें उपयोगी है। यह ज्वरहर, उत्सर्जक, नेत्रज्योतिवर्धक तथा पुरुषोंको शक्ति एवं उत्तेजना प्रदान करता है।

सौंफ (शतपुष्पा)—सौंफ अत्यन्त गुणकारी है। सौंफके पुष्पोंको पात्रीमें डालकर उबाल ले, साथमें एक बड़ी इलायची तथा कुछ पुदीनेके पत्ते भी डाल दे। अच्छा यह रहे कि मिट्टीके बरतनमें उबाले पानीको ठंडा करके दाँत निकलनेवाले बच्चे या छोटे बच्चे जो गर्मीसे पीडित हों, उन्हें एक-एक चम्मच कई बार दे। इससे उनके पेटकी पीडा शान्त होगी तथा दाँत भी ठीक प्रकारसे निकलेंगे।

गेंदा—मलेरियाके मच्छरोंका प्रकोप दूर करनेके लिये यदि गेंदेकी खेती गंदे नालों और घरके आस-पास की जाय तो इसकी गन्धसे मच्छर दूर भाग जाते हैं। लीवरके रोगीके लीवरकी सूजन, पथरी एवं चर्मरोगोंमें इसका प्रयोग किया जा सकता है।

बेला—यह अत्यधिक सुगन्धयुक्त पुष्प है। यह गर्मीमें अधिकतासे फूलनेवाला पौधा है। बेलेके हार या पुष्पोंको अपने पास रखनेसे पसीनेमें गन्ध नहीं आती। इसकी सुगन्ध प्रदाहनाशक है। इसकी कलियोंको चबानेसे स्त्रियोंके मासिक धर्मका अवरोध दूर हो जाता है।

रातरानी—इसकी गन्ध इतनी तीव्र होती है कि यह दूर-दूरतकके स्थानोंको मुग्ध कर देती है। इसका पुष्प प्रायः सायंकालसे लेकर अर्धरात्रिके कुछ पूर्वतक सुगन्ध अधिक देता है। परंतु इसके बाद धीरे-धीरे क्षीण होने लगता है। इसकी गन्धसे मच्छर नहीं आते। इसकी गन्ध मादक और निद्रादायक है।

सूरजमुखी—इसमें विटामिन ए तथा डी होता है। यह सूर्यका प्रकाश न मिलनेके कारण होनेवाले रोगोंको रोकता है। इसका तेल हृदयरोगोंमें कोलेस्ट्रॉलको कम करता है।

चमेली—चर्मरोगों, पायरिया, दन्तशूल, घाव, नेत्ररोगों और फोड़े-फुंसियोंमें चमेलीका तेल बनाकर उपयोग किया जाता है। यह शरीरमें रक्तसंचारकी मात्रा बढ़ाकर उसे स्फूर्ति प्रदान करता है। इसके पत्ते चबानेसे मुँहके छाले तुरंत दूर हो जाते हैं। मानसिक प्रसन्नता देनेमें चमेलीका अद्भुत योगदान है।

केसर—यह मनको प्रसन्न करता तथा चेहरेको कान्तिमान् बनाता है। यह शक्तिवर्धक, वमनको रोकनेवाला तथा वात, पित्त एवं कफ (त्रिदोषों)-का नाशक है। तन्त्रिकाओंमें व्याप्त उद्विग्नता एवं तनावको केसर शान्त रखता है। इसलिये इसे प्रकृति-प्रदत्त 'ट्रैंकुलाइजर' भी कहा जाता है। दूध या पानके साथ इसका सेवन करनेसे यह अत्यन्त ओज, बल, शक्ति एवं स्फूर्तिको बढ़ाता है।

अशोक—यह मदन-वृक्ष भी कहलाता है। इसके फूल, छाल तथा पत्तियाँ स्त्रियोंके अनेक रोगोंमें औषधिके रूपमें उपयोगी हैं। इसकी छालका आसव सेवन कराकर स्त्रियोंकी अधिकांश बीमारियोंको ठीक किया जा सकता है।

ढाक (पलाश)—ढाकको अप्रतिम सौन्दर्यका प्रतीक माना जाता है; क्योंकि इसके गुच्छेदार फूल बहुत दूरसे ही आकर्षित करते हैं। इसी आकर्षणके कारण इसे वनकी ज्योति भी कहते हैं। इसका चूर्ण पेटके किसी भी प्रकारके कृमिका नाश करनेमें सहायक है। इसके पुष्पोंको पानीके साथ पीसकर लुगदी बनाकर पेडूपर रखनेसे पथरीके कारण दर्द होनेपर या मूत्र न

उतरनेपर लाभ होता है।

गुड़हल (जवा)—गुड़हलके पुष्पका सम्बन्ध गर्भाशयसे है। ऋतुकालके बाद यदि फूलको घीमें भूनकर स्त्रियाँ सेवन करें तो 'गर्भ' स्थिर होता है। गुड़हलके फूल चबानेसे मुँहके छाले दूर हो जाते हैं। इसके फूलोंको पीसकर बालोंमें लेप करनेसे बालोंका गंजापन मिटता है। यह उन्मादको दूर करनेवाला एकमात्र पुष्प है। गुड़हल शीतवर्धक, वाजीकारक तथा रक्तशोधक है। इसे सूजाकके रोगमें गुलकन्द या शर्बत बनाकर दिया जा सकता है। इसका शर्बत हृदयको फूलकी भाँति प्रफुल्लित करनेवाला तथा रुचिकर होता है।

शंखपुष्पी (विष्णुकान्ता)—शंखपुष्पी गर्मियोंमें अधिक खिलता है। यह घासकी तरह होता है। इसके फूल-पत्ते तथा डंठल तीनोंको उखाड़कर पीसकर पानीमें मिलाकर छान लेने तथा इसमें शहद या मिस्री मिलाकर पीनेसे पूरे दिन मस्तिष्कमें ताजगी रहती है। सुस्ती नहीं आती। इसका सेवन विद्यार्थियोंको अवश्य करना चाहिये।

बबूल (कीकर)—बबूलके फूलोंको पीसकर सिरमें लगानेसे सिरदर्द गायब हो जाता है। इसका लेप दाद और एग्ज़िमापर करनेसे चर्मरोग दूर होता है। इसके अर्कके सेवनसे रक्तविकार दूर हो जाता है। यह खाँसी और श्वासके रोगमें लाभकारी है। इसके कुल्ले दन्तक्षयको रोकते हैं।

नीम—इसके फूलोंको पीसकर लुगदी बनाकर फोड़े-फुंसीपर लगानेसे जलन तथा गर्मी दूर होती है। शरीरपर मलकर स्नान करनेसे दाद दूर होती है। यदि फूलोंको पीसकर पानीमें घोलकर छान ले और इसमें शहद मिलाकर पीये तो वजन कम होता है तथा रक्त साफ होता है। यह संक्रामक रोगोंसे रक्षा करनेवाला है। नीम हर प्रकारसे उपयोगी है, इसे घरका वैद्य कहा जाता है।

लौंग—यह आमाशय और आँतोंमें रहनेवाले उन सूक्ष्म कीटाणुओंको नष्ट करती है, जिनके कारण मनुष्यका पेट फूलता है। यह रक्तके श्वेत कणोंमें वृद्धि करके शरीरकी रोगप्रतिरोधक शक्तिमें वृद्धि करती है। शरीर तथा मुँहके दुर्गन्धका नाश करती है। शरीरके किसी भी हिस्सेपर इसे घिसकर लगानेसे दर्दनाशक औषधिका काम करती है। दाढ़ या दन्तशूलमें मुँहमें डालकर चूसनेसे लाभ होता है। इसका धूम्रसेवन शरीरमें उत्पन्न अनावश्यक तत्त्वोंको पसीनेद्वारा बाहर निकाल देता है।

जूही—जूहीके फूलोंका चूर्ण या गुलकन्द अम्लपित्तको नष्ट करके पेटके अल्सर तथा छालेको दूर करता है। इसके सांनिध्यमें निरन्तर रहनेसे क्षयरोग नहीं होता।

माधवी—चर्मरोगोंके निवारणके लिये इसके चूर्णका लेप किया जाता है। गठिया-रोगमें प्रातःकाल फूलोंको चबानेसे आराम मिलता है। इसके फूल श्वासरोगको भी दूर करते हैं।

हरसिंगार (पारिजात)—यह गठिया-रोगोंका नाशक है। इसका लेप चेहरेकी कान्तिको बढ़ाता है। इसकी मधुर सुगन्ध मनको प्रफुल्लित कर देती है।

आक—इसका फूल कफनाशक है, यह प्रदाहकारक भी है। यदि पीलिया-रोगमें पानमें रखकर एक या दो कली तीन दिनतक दी जाय तो काफी हदतक आराम होता है।

कदम्ब—यह मदन-वृक्ष भी कहलाता है। गौओंकी बीमारीमें फूल एवं पत्तोंवाली इसकी टहनी लेकर गोशालामें लगा देनेसे बीमारी दूर होती है। वर्षा-ऋतुमें पल्लवित होनेवाला यह गोपीप्रिय वृक्ष है।

कचनार—इसकी कली शरद्-ऋतुमें प्रस्फुटित होती है। इसकी कलियाँ बार-बार मल-त्यागकी प्रवृत्तिको रोकती हैं। कचनारकी छाल एवं फूलको जलके साथ मिलाकर तैयार की गयी पुलटिस जले घाव एवं फोड़ेके उपचारमें उपयोगी है।

शिरीष—यह तेज सुगन्धवाला जंगली वृक्ष है। इसकी सुगन्ध जब तेज हवाके साथ आती है तो मानव झूम-सा जाता है। खुजलीमें इसके फूल पीसकर लगाने चाहिये, इसके फूलोंके काढ़ेसे नेत्र धोनेपर किसी भी प्रकारके नेत्र-विकारमें लाभ होगा।

नागकेशर—यह खुजलीनाशक है और लौंग-जैसा लम्बा तथा डंठीमें लगा रहता है। इसके फूलोंका चूर्ण बनाकर मक्खनके साथ या दहीके साथ खानेसे रक्तार्शमें

लाभ होता है। इसका चूर्ण गर्भधारणमें भी सहायक है।

मौलसिरी (बकुल)—इसके फूलोंको तेलमें मिलाकर इत्र बनता है। मौलसिरीके फूलोंका चूर्ण बनाकर त्वचापर लेप करनेसे त्वचा अधिक कोमल हो जाती है। इसके फूलोंका शर्बत स्त्रियोंके बाँझपनको दूर करनेमें समर्थ है।

अमलतास—ग्रीष्म-ऋतुमें फूलनेवाला गहरे पीले रंगके गुच्छेदार पुष्पोंका यह पेड़ दूरसे देखनेमें ही आँखोंको प्रिय लगता है। इसके फूलोंका गुलकन्द बनाकर खानेसे क़ब्ज़ दूर होता है। परंतु अधिक मात्रामें सेवन करनेसे यह दस्तावर होता है, जी मिचलाता है एवं पेटमें ऐंठन उत्पन्न करता है।

अनार—शरीरमें पित्ती होनेपर अनारके फूलोंका रस मिस्री मिलाकर पीना चाहिये। मुँहके छालोंमें फूल रखकर चूसना चाहिये। आँख आनेपर कलीका रस आँखमें डालना चाहिये।

फूलोंके पौधोंकी भीतरी कोशिकाओंमें विशेष प्रकारके प्रद्रवी झिल्लियोंके आवरणवाले कण होते हैं। इन्हें लवक (प्लास्टिड्स) कहते हैं। ये कण जबतक फूलोंका रंग समाप्त न हो जाय, तबतक जीवित रहते हैं। ये लवक दो प्रकारके होते हैं—१-वर्णिक लवक और २-हरित लवक। इनमें रंगीन लवकोंको 'वर्णी लवक' कहते हैं। वर्णी लवक ही फूल-पौधोंको विभिन्न रंग प्रदान करते हैं। वर्णी लवकका आकार निश्चित नहीं होता, बल्कि लवक अलग-अलग पौधोंमें अलग-अलग रचनावाले होते हैं। पौधोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण लवक है हरित लवक (क्लोरोप्लास्ट)। हरित लवक पौधोंमें हरा रंग ही नहीं देता, बल्कि पौधोंमें भोजनका निर्माण भी करता है। हरित लवक कार्बनडाइऑक्साइड, गैस, जल और सूर्यके प्रकाशकी उपस्थितिमें ग्लूकोज-जैसे कार्बोहाइड्रेट पदार्थका निर्माण करता है।

पुष्प सूर्यके प्रकाशमें सूर्यकी किरणोंसे सम्पर्क स्थापित करके अपनी रंगीन किरणें हमारी आँखोंतक पहुँचाते हैं, जिससे शरीरको ऋणात्मक, धनात्मक तथा कुछ न्यूट्रल प्रकाशकी किरणें मिलती हैं जो शरीरके अंदर पहुँचकर विभिन्न प्रकारके रोगोंको रोकनेमें सहायता प्रदान करती हैं। इस प्रकार हम 'कलर थैरेपी' द्वारा भी चिकित्साके लाभ ले सकते हैं।

पुष्पोंके द्वारा अनेक रोगोंका घरेलू इलाज

(डॉ० श्रीसुनील गजाननराव टोपरे)

भगवान्ने मानवको स्वस्थ रखनेके लिये सृष्टिके समय ही इस संसारमें बहुत-से जंगल, वनस्पतियाँ उत्पन्न कर दीं। ईश्वरने ऐसी अनेक वनस्पतियाँ बनायी हैं कि जिन्हें पुष्प लगे बिना फल प्राप्त नहीं होते। कुछ वनस्पतियाँ ऐसी भी हैं जिनमें पुष्प आते हैं, परंतु फल नहीं आते। पुष्पोंमें प्रकृतिप्रदत्त ऐसा दिव्य गुण अन्तर्निहित रहता है कि उसके यथाविधि उपयोगसे हम अपने जीवनको सुखमय बना सकते हैं। उपासनामें जो पुष्पोंका महत्त्व है सो तो है ही, पुष्प सौन्दर्य, उल्लास और आनन्दके भी प्रतीक हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे 'पद्मपुराण'में उल्लेख आया है कि व्यक्तिको जीवनमें कौनसे पुष्प धारण करने चाहिये और इनसे किस प्रकार भगवान् प्रसन्न होते हैं—

अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः।
तृतीयकं भूतदया चतुर्थं क्षान्तिरेव च॥
शमस्तु पञ्चमं पुष्पं दमस्तु षष्ठमेव च।
सप्तमं तु ध्यानं सत्यमष्टं स्तुष्यति केशवः॥

अहिंसा, इन्द्रिय-संयम, भूतदया, क्षमा, शम, दम, ध्यान एवं सत्यरूपी पुष्पको जीवनमें उतारना चाहिये। ये भावपुष्प कहलाते हैं।

आयुर्वेदमें रोगोंके उपशमनार्थ पुष्पोंके अनेकविध औषधीय प्रयोग निर्दिष्ट हैं। इनसे सामान्य रूपसे घरेलू उपचार भी सम्पन्न किया जा सकता है, यहाँ कुछ ऐसे ही पुष्पोंकी उपयोगिता संक्षेपमें दी जा रही है—

कपास, रुई

भारत देशमें कपासकी खेती बहुत बड़े पैमानेपर होती है। इसके पौधे ३ से ५ फीटतक लम्बे होते हैं। इसके फूल पीले और लाल रंगके होते हैं। कपासकी काली और सफेद दो प्रजातियाँ होती हैं। एक नारियावाली कपास होती है, जिसके पेड़ बड़े-बड़े होते हैं और

फल-फूल १२ महीने होते हैं, इसकी रुई नरम तथा बिनौले हरे होते हैं।

गुण-दोष उपयोगिता

आयुर्वेदके मतसे कपासके फूल मीठे, शीतल, पौष्टिक और दूध बढ़ानेवाले होते हैं। ये पित्त और कफको दूर करते हैं। प्यासको बुझाते हैं तथा भ्रान्ति, चित्तकी अस्थिरता और बेहोशीको दूर करते हैं। कपासके पत्ते वातरोगको दूर करते और खूनको बढ़ाते हैं। ये मूत्र-निस्सारक और कानकी सभी प्रकारकी तकलीफोंको दूर करनेवाले होते हैं। इसके बीज अर्थात् बिनौले दूध बनानेवाले होते हैं। इस वनस्पतिके सभी हिस्से चर्मरोगोंमें, साँप और बिच्छूके जहरमें तथा गर्भाशयकी पीड़ाओंमें उपयोगी हैं।

१-श्वेत प्रदर—कपासकी जड़को चावलके पानीके साथ पीसकर पिलानेसे श्वेत प्रदरमें लाभ होता है।

२-कष्टार्तव—कपासकी जड़की छालका क्वाथ पिलानेसे मासिक धर्मके समय होनेवाला कष्ट मिट जाता है।

३-अण्डवृद्धि—बिनौलेकी मींगी और सोंठको जलके साथ पीसकर लेप करनेसे अण्डवृद्धि मिटती है।

४-पागलपन—कपासके पुष्पका शरबत पिलानेसे पागलपन मिटता है और चित्त प्रसन्न होता है।

५-दन्त-पीड़ा—बिनौलेको औटाकर उनके पानीसे कुल्ले करनेसे दाँतोंकी पीड़ा मिट जाती है।

६-कामला—५ माशे बिनौले रातको पानीमें भिगो दे। प्रातःकाल उनको पीसकर, छानकर और सैन्धव नमक मिलाकर पीनेसे कामला-रोगमें लाभ होता है।

७-मूत्रदाह—कपासकी जड़का काढ़ा पिलानेसे पेशाबके समयकी जलन और पीड़ा मिटती है।

८-आमातिसार—कपासके पत्तोंका रस पिलानेसे आमातिसारमें लाभ होता है।

९-आगसे जलना—इसकी मींगीको पीसकर लेप करनेसे आगकी जलन मिटती है।

१०-बदगाँठ—कपासके बीजोंको पीसकर टिक्रिया बनाकर बदगाँठपर बाँधनेसे बदगाँठ बिखर जाती है।

११-घाव—रुईकी भस्मको भुरभुरानेसे घाव और टाँकियामें बहुत जल्द आराम होता है।

१२-धातुदौर्बल्य—बिनौलेकी मींगीको दूधमें खीर बनाकर खिलानेसे धातुदौर्बल्य और मस्तिष्ककी कमजोरीमें बहुत लाभ पहुँचता है।

कमल

कमल पानीमें पैदा होनेवाली वनस्पति है। यह अत्यन्त नाजुक होता है। इसका प्रकाण्ड लताकी तरह फैलनेवाला होता है। इसके पत्ते गोल, बड़े-बड़े प्यालेके आकारके तथा अरवीके पत्तोंकी तरह होते हैं। इन पत्तोंपर पानीकी बूँद नहीं ठहरती। ये चौड़े-चौड़े पत्ते थालीकी तरह पानीमें तैरते हुए दिखलायी देते हैं। पत्तोंके नीचे जो डंडी होती है, उनको मृणाल अथवा कमलकी नाल कहते हैं। कमलके पुष्प अत्यन्त सुन्दर और बड़े आकारके होते हैं। इन पुष्पोंमें जो पीला जीरा होता है उसको कमल-केशर कहते हैं। इसके पत्तोंको पद्मकोष और बीजोंको कमलगट्टे कहते हैं। कमल सफेद, लाल आदि रंगभेदसे अनेक प्रकारके होते हैं।

यह शीतल और मधुर होता है तथा रक्त-विकार, विस्फोट, विसर्प और विषको दूर करनेवाला होता है।

१-नील कमल शीतल, सुस्वादु, पित्तनाशक, रुचिकारक, रसायन-कर्ममें उत्तम, देहकी जड़को दृढ़ करनेवाला और बालोंको बढ़ानेवाला होता है।

२-रक्त कमल चरपरा, कड़वा, मधुर, ठंडा, रक्तशोधक, पित्त, कफ और वातको शान्त करनेवाला तथा वीर्यवर्धक है।

३-सफेद कमल शीतल, स्वादिष्ठ, नेत्रोंको लाभदायक तथा रुधिर-विकार, सूजन, व्रण और सब प्रकारके विस्फोटकोंको दूर करनेवाला होता है।

कमलके कोमल पत्ते शीतल एवं कड़वे होते हैं। ये शरीरकी जलनको दूर करनेवाले तथा प्यास, अश्मरी, बवासीर और कुष्ठमें लाभदायक होते हैं।

कमलकी जड़—कड़वी, कफ-पित्तमें लाभदायक और प्यासको बुझानेवाली होती है। इसके केशर शीतल, वीर्यवर्धक, संकोचक और कफ, पित्त, प्यास, विष, सूजन तथा खूनी बवासीरमें लाभदायक हैं। इसके पुष्प शीतल, रक्तविकार, चर्मरोग और नेत्ररोगमें लाभदायक हैं।

कमलके बीज अर्थात् कमलगट्टे स्वादिष्ठ, रुचिकारक, पाचक, गर्भस्थापक, वीर्यवर्धक तथा पित्त, रक्तदोष,

वमन और रक्तपित्तको नाश करनेवाले होते हैं। इसका शहद अत्यन्त पौष्टिक, त्रिदोषनाशक और सब प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करनेवाला होता है।

१-बवासीर—खूनी बवासीरमें इसके केशरको शक्कर और मक्खनके साथ देनेसे लाभ होता है।

२-गुदद्वारके निगमन—कमलके कोमल पत्ते प्रात:काल शक्करके साथ लेना चाहिये।

३-गर्भ गिरनेकी शिकायत—जिन स्त्रियोंको हमेशा गर्भ गिरनेकी शिकायत हो, उनके लिये इसके बीज बहुत ही लाभकर हैं।

४-रक्तप्रदर—कमलकी केशर, मुलतानी मिट्टी और मिश्रीके चूर्णकी फंकी देनेसे रक्तप्रदर और रक्तार्शमें लाभ होता है।

५-गर्भस्त्राव—कमलकी डंडी और नागकेशरको पीसकर दूधके साथ पिलानेसे दूसरे महीनेमें होनेवाला गर्भस्राव मिट जाता है।

६-वमन—कमलगट्टेको आगपर सेंककर उसका छिलका उतारकर उसके भीतरका सफेद मगज पीसकर शहदमें चाटनेसे वमन बंद होती है।

७-सर्प-विष—कमलके मादा केशरको काली मिर्चके साथ पीसकर पीने और लगानेसे साँपके विषमें लाभ होता है।

८-दाद—कमलकी जड़को पानीमें घिसकर लेप करनेसे दाद और दूसरे त्वचा-रोग मिटते हैं।

९-हैजेकी मायूस अवस्था—कमलगट्टेके भीतर जो विषैली हरी पत्ती रहती है, उसका अर्क गुलाबकें अंदर घिसकर देनेसे हैजेकी मायूस अवस्थामें लाभ होता है।

१०-रक्तातिसारयुक्त पुराना ज्वर—रक्तातिसारयुक्त पुराने ज्वरमें उत्पल, अनारका छिलका और कमलका केशर—ये तीनों बराबर-बराबर मात्रामें लेकर पीसकर चावलके पानीके साथ लेना चाहिये।

११-चेचक—चेचककी बीमारीमें इसके पुष्पका शरबत शान्तिदायक होता है।

१२-गुदाभ्रंश—सफेद कमलके पत्ते छोटे बच्चोंके गुदाभ्रंश रोगके लिये बड़े लाभदायक होते हैं। इसके पत्तोंको सुखाकर शक्करके साथ देनेसे इस बीमारीमें आश्चर्यजनक परिणाम दृष्टिगोचर होता है।

१३-नेत्र-रोग—कमलके फूलकी पँखड़ियोंको तोड़ते समय शहदके समान एक तरहका रस निकलता है, जिसको पद्म-मधु कहते हैं, इस मधुको नेत्रमें आँजनेसे नेत्रोंके अनेक रोग मिटते हैं।

१४-गर्भाशयसे निकलनेवाला खून—नील कमल, श्वेत कमल और रक्त कमलके तन्तु २-२ तोला, मुलेठी २ तोला—इन सब चीजोंको लेकर १२७ तोला पानी और ३२ तोला घीके साथ औटाना चाहिये। औटाते-औटाते जब पानी जलकर घी-मात्र शेष रह जाय तब उतारकर छान लेना चाहिये। इस घृतको उत्पलादि घृत कहते हैं। यह घृत खूनी बवासीर, रक्त प्रदर और गर्भाशयमेंसे निकलनेवाले खूनको रोकनेके लिये बड़ा अकसीर माना जाता है। जिस स्त्रीको हमेशा गर्भपात होनेका डर रहता है, उस स्त्रीको गर्भपातके लक्षण शुरू होते ही फौरन यह घी देना चाहिये, इसके देनेसे गर्भपात रुक जाता है। इसी प्रकार इस घृतको पीनेसे और शरीरपर मालिश करनेसे विस्फोट और जलनवाले रोग मिटते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्पन्न व्यक्तिको कमलकी सुन्दरता कोमलता, प्रसन्नता, सुगन्ध, मधुरता, सरसता, तेजस्विता और अलिप्तता आदि प्राकृतिक गुणोंको जीवनमें उतारना चाहिये।

कनेर

भारतवर्षकी पुष्पवाटिकाओंमें अक्सर बोया जानेवाला पौधा कनेर है। देव-पूजामें आनेके कारण भारतमें कनेरका पुष्प बहुत प्रसिद्ध है। इसके पत्ते तीखी नोकवाले और लम्बे होते हैं। इसके फूल लाल, गुलाबी, पीले और सफेद होते हैं। कनेरकी दो प्रजातियाँ—शहरी और जंगली पायी जाती हैं। जंगली कनेरके पत्ते खुरपेकी तरह और बहुत पतले होते हैं। इसकी शाखाएँ पतली और जमीनपर बिछी हुई होती हैं। इसके पत्तेके पास काँटे होते हैं। शहरी कनेरमें काँटे नहीं होते। अश्वमारक, करवीर, हरिप्रिय तथा गौरीपुष्प आदि इसके कई नाम हैं।

१-कनेरकी जड़—इसकी जड़ कड़वी, कामोद्दीपक और पेटकी पुरानी पीड़ाओंके लिये लाभकारी होती है। जोड़ोंके दर्दमें भी यह लाभदायक है। यह बहुत विषैली है। सर्पविषको भी दूर करनेकी इसमें शक्ति है।

२-कनेरके पुष्प—इसके पुष्प स्वादमें कड़वे होते

हैं। ये प्रदाह, मज्जा और जोड़ोंके दर्द, कटिवात, सिरदर्द और खुजलीमें लाभदायक होते हैं।

खुजली और चर्म-रोग

१-कनेरके पत्ते या फूलको पानीमें धो दे। फिर इस पानीसे आधे वजनका जैतूनका तेल लेकर उसे पानीमें डाल दे और इसे गर्म करे। जब पानी जल करके केवल तेलमात्र रह जाय, तब उसमें चौथाई वजन मोम मिलाकर उतार ले। इस तेलको हर प्रकारकी खुजलीपर मालिश करनेसे लाभ होता है।

२-कनेरकी जड़को पानीमें उबालकर उसमें राईका तेल डालकर औटावे। जब पानी जलकर तेलमात्र रह जाय, तब उसको उतारकर छान ले। इस तेलको चर्म-रोगोंपर मलनेसे बड़ा लाभ होता है।

केवड़ा (केतकी)

भारतवर्षमें केवड़ेका फूल या भुट्टा प्रसिद्ध है। इसकी मनोमोहिनी खुशबू प्राचीन कालसे लोकप्रिय रही है। इसका पौधा गन्नेके पौधेकी तरह होता है। इसके पत्ते लम्बे-लम्बे होते हैं। इन पत्तोंके किनारेपर काँटे रहते हैं। इसका भुट्टा १५ से २५ सेंटीमीटरतक लम्बा रहता है। इसके पत्ते तीक्ष्ण, कटु और सुगन्धमय होते हैं। ये विषनाशक, कामोद्दीपक और पथरी तथा अर्बुदमें लाभदायक होते हैं। इसका फूल कड़वा, तीक्ष्ण और शरीरके सौन्दर्यको बढ़ानेवाला होता है। इसकी केशर फेफड़ेके ऊपरकी झिल्लीके प्रदाहमें उपयोगी होती है। इसका फल वात, कफ और मूत्राशयकी तकलीफोंमें फायदा करता है।

१-रक्तप्रदर गर्भपात—केवड़ेकी जड़ ६ माशेसे तोलाभरतक गायके दूधमें घिसकर शक्कर मिलाकर प्रतिदिन सुबह-शाम पीनेसे भयंकर रक्तप्रदर भी शान्त होता है। जिस स्त्रीको हमेशा गर्भपात होनेकी शिकायत हो, उसको भी यह औषधि गर्भ रहनेके दूसरे महीनेसे चौथे महीनेतक सेवन करानेसे गर्भपात बंद हो जाता है।

२-वायुगोलाकी दवा—केवड़ेकी सूखी जड़ोंके टुकड़े करके मिट्टीकी एक बड़ी हाँड़ीमें भरकर उस हाँड़ीपर ढक्कन लगाकर उसकी सन्धियाँ आटेसे बंद कर देनी चाहिये। जिससे उसका धुआँ बाहर न जा सके। उसके बाद उसे चूल्हेपर चढ़ाकर नीचेसे आग जलाकर राख कर लेना चाहिये। जितनी राख हो उससे चौगुना पानी लेकर उस राखको उसमें अच्छी तरहसे घोल देनी चाहिये। उसके बाद उस बर्तनको २४ घंटे स्थिर पड़ा रहने देना चाहिये। फिर जब राख नीचे बैठ जाय तब उसका पानी निखारकर आगपर चढ़ाकर उसका क्षार निकाल लेना चाहिये। यह केवड़ेका क्षार १ माशा, सोडा बायकार्ब १ माशा और कूट १ माशा—इन तीनोंको मिलाकर ४ तोले तिल्लीके तेलके साथ पीनेसे अत्यन्त भयंकर वायुगोलेका दर्द भी नष्ट हो जाता है।

केवड़ा दिलकी गर्मी, मेदे (पेट)-की गर्मी और मूर्च्छाको दूर करता है। दिल और दिमागको ताकत देता है और खूनको साफ करता है।

केवड़ेके पत्ते कुष्ठ, छोटी माता, उपदंश, खुजली और हृदय तथा मस्तिष्ककी बीमारियोंमें लाभदायक हैं। इसका केशर कानके दर्द, कुष्ठ, विस्फोटक और रक्तविकारमें फायदा करता है। इसके भुट्टोंसे निकाला हुआ तेल उत्तेजक और आक्षेप-निवारक माना जाता है।

कदम्ब-पुष्प

सुगन्धित पुष्पोंमें कदम्बका बड़ा महत्त्व है। इसका पुष्प भगवान् श्रीकृष्णको बहुत प्रिय है। कदम्ब एक प्रकारका मध्यम आकारका पेड़ होता है, इसका पुष्प सफेद और पीले रंगका होता है। इस पुष्पपर पँखड़िया नहीं होती हैं, बल्कि सफेद-सफेद सुगन्धित तन्तु इसके चारों ओर उठे हुए रहते हैं। इसका फल गोल नीबूके समान होता है। कदम्बमें राजकदम्ब, धाराकदम्ब, धूलिकदम्ब, भूमिकदम्ब इत्यादि उल्लेखनीय प्रजातियाँ हैं।

गुण, दोष एवं प्रभाव—औषधि-द्रव्यमें इसकी छाल तेज, कड़वी, मृदु और कसैली होती है। यह कामोद्दीपक, शीतल, दुष्पाच्य, दूध बढ़ानेवाला, संकोचक, विष-निवारक और घावको भरनेवाला होता है। गर्भाशयकी शिकायत, रक्त-रोग, वात, कफ, पित्त और जलनमें यह लाभदायक है। इसका फल गरम, उद्दीपक और पकनेपर पित्तकारक होता है।

१-नेत्रोंका प्रदाह—नेत्र-प्रदाहमें इसकी छालके रसका अफीम और फिटकिरीके साथ उपयोग किया जाता है।

२-ज्वर—इसकी छालका काढ़ा पिलानेसे ज्वरमें लाभ होता है।

३-मुँहके छाले—इसके पत्तोंके क्वाथसे कुल्ले करनेसे मुँहके छाले मिटते हैं।

४-कदम्बके छिलकेका ताजा रस बच्चोंके मस्तकके ऊपर ब्रह्मरन्ध्रके बैठ जानेपर मालिश करनेके काममें लिया जाता है। इसके पत्तोंका काढ़ा मुँहके छाले और मुँहकी सूजनमें कुल्ले करनेके लिये उपयोगमें लिया जाता है। इसका फल ज्वर, तृषा और रक्त-दोषोंका निवारण करनेवाला होता है, आयुर्वेदिक चिकित्सक इसका उपयोग ज्वरकी बीमारीमें करते हैं। इसकी छाल सर्पके विषमें भी लाभदायक होती है। इसमें (सिन्कोटेनिक एसिड) नामक संकोचक तत्त्व रहता है।

यूनानी मतसे इसकी कच्ची कोपलें सर्द और पचनेमें हलकी होती है। ये बदहजमीमें फायदा पहुँचाती हैं। बच्चोंके बदनपर लाल चकत्ते पड़नेकी बीमारीमें यह फायदेमन्द होती है। इसके फल गरम, चिकने, क्षुधावर्धक और वीर्य तथा कफको बढ़ानेवाले होते हैं। इसके पके हुए फूल बादी, पित्त और कफमें लाभ पहुँचाते हैं। इसके फल और पत्ते रक्तविकार और पित्तकी बीमारीमें लाभदायक होते हैं।*

आरोग्यका खजाना—नीम

(डॉ० श्रीबनवारीलालजी यादव)

नीम एक बहुत उपयोगी वृक्ष है। इसकी जड़से लेकर फूल-पत्ती और फलतक सभी अवयव औषधीय गुणोंसे भरे-पूरे हैं। भारतवर्षके गरीब लोगोंके लिये यह कल्पवृक्ष है। आइये, हम इसके गुणोंको देखकर उनसे लाभ उठायें।

जड़—नीमकी जड़को पानीमें उबालकर पीनेसे बुखार दूर होता है।

छाल—नीमकी बाहरी छाल पानीमें घिसकर फोड़े-फुंसियोंपर लगानेसे वे बहुत जल्दी ठीक होते हैं। बाहरी छालको जलाकर उसकी राखमें तुलसीके पत्तोंका रस मिलाकर लगानेसे दाद तथा अन्य चर्मरोग ठीक हो जाते हैं। छालका काढ़ा बनाकर प्रतिदिन उससे स्नान करनेसे सूखी खुजलीमें लाभ होता है।

छायामें सूखी छालकी राख बनाकर, कपड़छान करके उसमें दो गुना पीसा हुआ सेंधा नमक मिला लें। रोज इस चूर्णसे मंजन करनेसे पायरियामें लाभ होता है, मुँहकी बदबू, मसूढ़ों तथा दाँतोंका दर्द दूर होता है। छालका काढ़ा दोनों समय पीनेसे पुराना ज्वर भी ठीक हो जाता है।

दातौन—प्रतिदिन नीमकी दातौन करनेसे मुँहकी बदबू दूर होती है। दाँत और मसूढ़े मजबूत होते हैं। पायरिया, मसूढ़ोंसे खून आना तथा मसूढ़ोंकी सूजनके उपचारके लिये इसकी दातौन बहुत उपयोगी है।

पत्तियाँ—चैत्रमासमें नीमकी कोमल नयी कोंपलोंको दस-पंद्रह दिनतक नित्य प्रात:काल चबाकर खानेसे रक्त शुद्ध होता है, फोड़ा-फुंसी नहीं निकलते और मलेरिया ज्वर नहीं आता है।

दिनमें सूर्य-किरणोंकी उपस्थितिमें नीमकी पत्तियाँ ऑक्सीजन छोड़कर हवा शुद्ध करती हैं। इसलिये गर्मियोंमें नीमके पेड़की छायामें सोनेसे शीतलता मिलती है तथा शरीर नीरोग रहता है।

नीमकी पत्तियोंके चूर्णमें एक ग्राम अजवायन तथा गुड़ मिलाकर कुछ दिनतक निरन्तर पीनेसे पेटके कीड़े नष्ट हो जाते हैं। गाय, भैंसके बच्चोंके पेटमें कीड़े होनेपर नीमकी पत्तियोंको पीसकर छाछ तथा नमकमें मिलाकर चार-पाँच दिन देनेसे कीड़े मरकर बाहर निकल जाते हैं और पेट साफ हो जाता है।

पत्तियाँ पानीमें उबालकर घाव धोनेसे घाव ठीक

* उपर्युक्त औषधियुक्त द्रव्यको सेवन करनेसे पूर्व योग्य चिकित्सकसे सलाह लेकर मात्राका प्रमाण निश्चित करें। आयु, बल, आरोग्यानुसार मात्राका प्रमाण कम, ज्यादा हो सकता है।

होता है। उसके जीवाणु मरते हैं, दुर्गन्ध कम हो जाती है तथा सूजन नहीं रहती। पत्तियोंके उबले पानीसे स्नान करनेसे त्वचाकी बीमारियाँ दूर होती हैं। नीमकी पत्तियोंको पीसकर फोड़े-फुंसीपर लगानेसे आराम मिलता है।

नीमकी पत्तियोंका रस दो चम्मच, दो चम्मच शहदमें मिलाकर (प्रात:काल) लेनेसे पीलिया-रोगमें लाभ होता है। एक छोटा चम्मच नीमकी पत्तियोंका रस लेकर उसमें मिस्त्री मिलाकर पीनेसे पेचिशमें लाभ होता है। प्रमेहमें एक कप पानीमें दो-तीन ग्राम पत्तियोंको उबालकर काढ़ा बनाकर पीनेसे लाभ होता है। चेचक और खसराके रोगियोंको शीघ्र स्वस्थ करनेके लिये नीमके पत्तोंसे हवा की जाती है।

पत्तियोंके अन्य उपयोग—नीमकी पत्तियोंको संचित अनाजमें मिलाकर रखनेसे उसमें घुन, ईली तथा खपरा आदि कीड़े नहीं लगते। गर्म और सिल्कके कपड़ों, गर्म रेशमी कालीन, कम्बल, पुस्तक आदिको कसारी (कीड़ा)-से बचानेके लिये इनमें नीमकी पत्तियाँ रखनी चाहिये। नीमकी सूखी पत्तियोंके धुएँसे मच्छर भाग जाते हैं।

नीमकी पत्तीकी खाद पेड़-पौधोंको पोषक-तत्त्व प्रदान करती है तथा जमीनमें उपस्थित दीमकको भी समाप्त करती है। फसलको नुकसान पहुँचानेवाले अन्य कीटोंको भी यह मारती है।

फूल—नीमके फूल तथा निबौलियाँ खानेसे पेटके रोग नहीं होते। फूलोंको जलाकर काजलके रूपमें उपयोगमें लाया जाता है।

निबौलियाँ—निबौली नीमका फल होता है। इससे तेल निकाला जाता है। यह भी कई प्रकारके रोगाणुओंको मार डालनेमें सक्षम है। आगसे जले घावपर इसका तेल लगानेसे घाव बहुत शीघ्र भर जाता है। इस तेलसे नीमका साबुन बनाया जाता है। यह साबुन चर्मरोग, घाव तथा फोड़े-फुंसियोंके लिये बहुत लाभकारी है। तेल निकालनेके बाद बची हुई खलीका पौधोंके लिये खादके रूपमें उपयोग किया जाता है। यह पौधोंको बढ़िया खुराक प्रदान करता है। दीमक और फसलको नुकसान पहुँचानेवाले अन्य कीटोंको भी यह मार डालता है। यह फफूँदको भी नष्ट करता है।

नीमका मद या रस—कभी-कभी किसी पुराने नीमके वृक्षके तनेसे नीमकी गन्ध लिये एक तरल पदार्थ निकलता है, जिसे मद कहते हैं। रूईकी बत्ती बनाकर उसे मदमें भिगोकर छायामें कई दिनोंतक सुखाया जाता है। सूखनेके बाद एक दीपकमें सरसोंका तेल लेकर, इस बत्तीको दीपकमें रखकर दीपक जलाया जाता है। इसके ऊपर दूसरी मिट्टीकी सिराही थोड़ी टेढ़ी-उलटी रखकर बत्तीकी लौसे निकलनेवाले कार्बन (धुएँ)-को इस सिराहीमें जमने दिया जाता है। बादमें इसे उलटी रखी सिराहीसे खुरचकर किसी डिब्बीमें रख लिया जाता है। यह काजल नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी ज्योति सही रहती है। यह बहुत उपयोगी काजल है।

तना—नीमकी लकड़ीमें दीमक तथा घुन नहीं लगता, इसलिये इसके किवाड़ आदि लगवानेसे दरवाजे, खिड़कियोंमें दीमक लगनेका खतरा नहीं रहता।

सींक—नाक, कान छिदवानेके तीन-चार सप्ताह बाद आभूषण पहननेसे पहले नीमकी सींक पहननेसे जख्म जल्दी ठीक होता है और जीवाणु नहीं पड़ते।

जल जानेपर

अगर छोटा बच्चा गलतीसे आगसे झुलस जाय तो असली शहद जली हुई जगहपर लेप कर देनेसे जलन तुरंत शान्त हो जाती है।

अगर जलनेसे शरीर कहीं सफेद हो जाय तो त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा) पानीमें पीसकर उस जगहपर लगानेसे कुछ दिनमें असली रंग आ जायगा।

जल जानेके बाद अगर शरीरपर सफेद दाग पड़ जायँ तो जामुनकी पत्तियाँ पीसकर उस जगहपर लगानेसे दाग मिट जाते हैं।—लीना बड़जात्या

सर्वव्याधिनिवारक नीम

(श्रीरामप्रकाशजी गुप्त, हथनौरिया)

भारतीय वनस्पतियाँ लोक-मङ्गल एवं सर्वव्याधिनिवारक शक्तिसे युक्त होनेके कारण भारतीय समाजमें समादरणीय एवं पूजनीय मानी जाती हैं। विभिन्न समादृत वृक्षोंमें नीम भी एक है। नीम भारतीय जन-जीवनमें रचा-बसा है। यह प्रायः प्रत्येक ग्राम, नगर और गृहमें पाया जाता है। शीतल छाया, वातावरणकी शुद्धि एवं विविध जीवनोपयोगी पदार्थोंको प्रदान करनेके कारण प्रायः ग्रामीण इसे अपने घरोंके आस-पास लगाते हैं।

नीम विशुद्ध भारतीय वृक्ष है। यह प्रायः सम्पूर्ण भारतमें पाया जाता है।

कथा आती है कि कोलाहल नामक भीषण दैत्यसे घबराकर, देवता अपने सूक्ष्मरूपसे विभिन्न वृक्षोंमें निवास करने लगे थे। भगवान् सूर्यने तब नीम वृक्षपर निवास किया था। तभीसे भगवान् सूर्यकी सर्वव्याधिनिवारक शक्ति नीममें निवास करती है। नीमका धार्मिक महत्त्व ग्रन्थों एवं पुराणोंमें बहुत प्रकारसे वर्णित है।

नीम एक जीवनोपयोगी वृक्ष है। मानव-जीवनमें यह अत्यन्त उपयोगी है। नीमके प्रत्येक भागसे उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। नीमका वृक्ष द्वारपर लगानेका कारण है कि यह वायुको शुद्ध रखता है और कीटों, मच्छरों आदिको दूर भगाता है। इसकी गोंद, छाल एवं पत्ते भी बहुत उपयोगी होते हैं। नीमके पत्तोंसे लोग स्नान करते हैं और सूखे पत्ते जलाकर वातावरणको मच्छर एवं कीट-रहित रखते हैं। छाल घिसकर घावों एवं फोड़े-फुंसियोंमें लगाते हैं। नीमका तेल अनेक ओषधियोंमें प्रयुक्त होता है। नीम शीतल एवं छायादार वृक्ष है। जब सभी पेड़ गर्मियोंमें पत्ररहित हो जाते हैं तब भी यह हरा-भरा रहता है। प्राचीन समयसे ही इसे छाया आदिके लिये मार्गके किनारे लगानेकी परम्परा है।

चिकित्सामें नीमका उपयोग

नीम प्रायः सभी प्रमुख रोगोंकी चिकित्सामें उपयोगी है। त्वचाके रोगों, ज्वर, कृमिरोग, क्षयरोग, हृदयके रोग, कामला, पाण्डु, शोथ, आमवात, गठिया, खसरा, चेचक, छूतके रोग, अम्लपित्त, बवासीर, आँख-कान-दाँतके रोग एवं विषोंके नाशके लिये नीमके विभिन्न अंगोंसे लाभकारी एवं सस्ती ओषधियाँ तैयार की जाती हैं।

गुण—आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें नीमके सामान्य गुण इस प्रकार बतलाये गये हैं—'नीम स्वादमें कड़वा, विपाकमें चरपरा, वात-पित्त-कफ—तीनों दोषोंको हरनेवाला, हलका, हितकर एवं शीतल होता है।'

ज्वर—ज्वरमें इसकी छालका चूर्ण एवं काढ़ा उपयोगी ओषधि माना जाता है। पत्तोंका फाण्ट बनाया जाता है। नीम-तेलकी बूँदें भी बुखारमें दी जा सकती हैं। लोलिम्बराज बताते हैं कि नीमके पत्तोंको कूटकर इसे पानीमें डालकर हाथसे मथनेसे जो झाग पैदा होता है, उसका लेप करनेसे प्यास, जलन एवं ज्वर शान्त होता है।

हृदयके रोग—एक छटाँक ताजे पत्तोंका दस छटाँक उबलते पानीमें फाण्ट बना ले। यह अत्यन्त उपयोगी कड़वा वानस्पतिक रसायन है, जिसका हृदयपर अच्छा प्रभाव होता है।

शोथ—शोथके रोगीको नीमकी सब्जी पथ्य है। नीमको गोमूत्रमें पीसकर शोथ-रोगीके शरीरपर मलते हैं। नीमका तेल फीलपाँवमें भी प्रयुक्त होता है।

अम्लपित्त—अम्लपित्तमें नीमको विशेष उपयोगी पाया गया है। पित्त एवं कफके प्रकोपसे शूल पैदा होनेपर नीमका इस प्रकार प्रयोग करनेसे लाभ होता है—नीमके फूल, फल, पत्ती, छाल और जड़की छालको मिलाकर एक भाग लें और विधाराको दो भाग लेकर चूर्ण कर लें। दस भाग सतुएमें उसे मिलाकर शक्करसे मीठा करके रख लें। समय पड़नेपर शहद मिलाकर ठंडे पानीके साथ सेवन करें। चक्रपाणिके अनुसार नीमके पत्तों और आँवलोंको घीके साथ खानेसे अम्लपित्त शीघ्र ठीक हो जाता है।

आवाज सुरीली बनाना—विश्वास किया जाता है कि तानसेनने अपने रागोंमें जिस समस्वरताको उत्पन्न किया था, उसका कुछ अंश अब भी उनकी कब्रपर छाये हुए नीमकी पत्तियोंमें रमा है और उन पत्तियोंको खानेसे कण्ठ सुरीला हो जाता है। इसी विश्वाससे गवैये इसको अबतक खाते हैं। नीमकी पत्तियोंका चर्वण आवाज सुरीली बनानेके लिये सर्वोत्तम औषध है।

बवासीर—निबौलीकी गिरी तीस रत्ती और नीमके जड़की छाल साठ रत्तीकी गोली बनाकर प्रतिदिन लगातार सात दिनतक बवासीरको ठीक करनेके लिये दी जाती है। सुश्रुतने बवासीरको नीमके काढ़ेसे धोना लाभप्रद बताया है।

कुष्ठ—आचार्य शार्ङ्गधर नीम-फलोंके कल्कको कुष्ठमें खिलानेका निर्देश देते हैं। वृन्दमाधवने कुष्ठाधिकारमें बहुत-से रोगोंमें नीमको लिया है। पञ्चनिम्ब-चूर्णको बारह ग्रामकी मात्रामें अड़तालीस ग्राम खैर-सारके काढ़े या असनके काढ़ेके साथ या घीके साथ अथवा दूधके साथ लगातार एक महीनेतक सेवन किया जाय तो सभी प्रकारके कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

सर्पदंश—जिस व्यक्तिको सर्पने काटा हो उसे नीमके पत्ते कड़वे नहीं लगते हैं। नीमके पत्तोंका प्रतिदिन सेवन करना सर्प-विष-रोधक समझा जाता है।

त्वचाके रोग—त्वचाके रोगोंमें पत्तियोंका रस पीनेको देते हैं और छालको घिसकर लेपन करते हैं। इससे त्वचाके अधिकांश रोग नष्ट हो जाते हैं।

कृमिहर—कृमिहरके रूपमें भीतरी तथा बाहरी दोनों प्रकारसे नीमके विविध भागोंका उपयोग किया जाता है। ताजे पत्तोंका तेज काढ़ा हलका कृमिहर घोल है। कृमि-नाशके लिये तेलका बाहरी लेपके रूपमें व्यापक प्रयोग होता है।

आँखोंके रोग—नीमसे आँखोंकी खोयी हुई ज्योतिको पुनः प्राप्त किया जा सकता है। कनिष्ठा अंगुली जितनी मोटी तथा चार अंगुल लम्बी नीमकी दातौनको तेज चाकूसे छील लें, बकला (छाल) उतर जानेपर चाकूसे छील-छीलकर चिकनी सलाई कर लें। दोनों नोकोंको अधिक नुकीला बना लें। एक ताजा सफेद प्याज लें, नीमकी सलाईको प्याजमें पृथक्-पृथक् स्थानपर दोनों ओर भोंककर प्याज-रस आँखोंमें लगा लें। ऐसा दिनमें कई बार करें। प्याज या सलाई सूख जानेपर बदल लें। निश्चित रूपसे नेत्र-रोग नष्ट होकर नेत्र-ज्योति बढ़ जायगी।

इस प्रकार नीम सर्वोपयोगी, स्वास्थ्य-रक्षक एवं जीवन-दायक वृक्ष है। इसका आयुर्वेदिक महत्त्व बहुत अधिक है। नीमका औषधीय प्रयोग करके इसका भरपूर लाभ लेना चाहिये।

स्वास्थ्य-रक्षामें अड़ूसा और अर्जुनका योगदान

(वैद्य श्रीराजेशजी जेतली)

अड़ूसा, जिसे वासाके नामसे भी जाना जाता है, भारतके लगभग हर क्षेत्रमें पाया जाता है। आचार्य सुश्रुतने वासाको क्षय तथा कासनाशक माना है। उन्होंने बताया है कि 'शोथ-क्षयमें इसके पञ्चाङ्ग तथा पुष्पोंके काढ़ेसे सिद्ध किया घृत—शहदमें मिलाकर (दुगुनी मात्रामें) सेवन करनेसे यह प्रबल वेगयुक्त कास तथा श्वासको तुरंत नष्ट करता है।'

आचार्य चरक भी कहते हैं—'खाँसीके साथ कफ तथा रक्त हो तो वासा अकेली ही समर्थ औषधि है।'

आधुनिक वैज्ञानिक डॉ० चोपड़ाने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है—इसके ताजे सुखाये गये पत्तियोंके चूर्णको देनेपर श्वास-नलीके शोथ (एक्यूट ब्रोंक्राइटिस)-से ग्रस्त रोगियोंको तुरंत आराम मिला है। वे रोग-मुक्त हो गये तथा उनकी जीवनी-शक्तिमें अत्यधिक वृद्धि पायी गयी।

इसके कुछ उपयोग इस तरहसे हैं—

१-खाँसीके लिये अड़ूसाके पत्तोंका रस १० ग्राम, शहद (५ ग्राम)-के साथ मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिये। ताजे पत्र न मिलनेकी स्थितिमें छायामें सुखाये गये फूलोंका चूर्ण मधुके साथ देना चाहिये।

२-बच्चोंकी काली खाँसी जिसे कुकुर-खाँसी भी कहते हैं, वासाकी जड़का काढ़ा डेढ़-दो चम्मच दिनमें दोसे तीन बारतक दिया जाय तो निश्चित ही लाभ होता है।

३-वासाका मूल लेकर उसका शर्बत बनाकर विधिपूर्वक उसे प्रयोगमें लाया जाय तो पुरानी-से-पुरानी खाँसी और क्षय-रोगतक नष्ट हो जाते हैं।

४-अड़ूसाके फूलोंको दुगुनी मात्रामें मिस्री मिलाकर मिट्टी या काँचके पात्रमें रखनेपर गुलकन्द तैयार होता है और इसके १० ग्राम मात्रातक नित्य सेवनसे कास-श्वास, पीनस (पुराना जुकाम), रक्त-पित्त, राजयक्ष्माके रोगियोंको अवश्य ही लाभ पहुँचता है।

५-यह ज्वरनाशक तथा रक्तशोधक भी है। इसके अतिरिक्त यह रक्तस्राव रोकनेवाला है।

इसका प्रयोग सारे शरीरमें धातु-निर्माण-क्रियाको बढ़ानेके लिये कमजोरीके बाद टॉनिकके रूपमें भी होता है।

अर्जुन

नदी, नालोंके किनारे होनेके कारण इसे धवल, ककुभ तथा नदीसर्ज भी कहा जाता है।

आधुनिक प्रयोगोंसे वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि अर्जुन हृदय-रोगोंके लिये श्रेष्ठ औषधि है। अर्जुन जातिके कम-से-कम पंद्रह प्रकार हमारे देशमें पाये जाते हैं। इसी कारण पहचान जरूरी है कि कौन-सी औषधि हृदय-रक्त वाही-संस्थानपर कार्य करती है।

प्राचीन आयुर्वेद-शास्त्रियोंमें वाग्भट ऐसे वैद्य हैं, जिन्होंने पहली बार इस औषधिके हृदय-रोगमें उपयोगी होनेकी विवेचना की। इसके बाद वैद्य चक्रदत्त तथा वैद्य भावमिश्रने भी कहा कि घी, दूध तथा गुड़ आदिके साथ जो अर्जुनकी त्वचाका चूर्ण नियमित रूपसे लेता है, उसे हृदयरोग, जीर्ण ज्वर, रक्त-पित्त कभी नहीं सताते और वह चिरजीवी होता है।

अनेक निघण्टुओंमें अर्जुन-सिद्ध घृतको हृदयरोगोंकी, चाहे वे किसी भी प्रकारके हों, अचूक दवा माना है। निघण्टुरत्नाकरके अनुसार अर्जुन बलकारक है तथा अपने लवण-खनिजोंके कारण हृदयकी मांसपेशियोंको सशक्त बनाता है।

हमने इसे अपने औषधालयमें बहुत उपयोग किया है तथा शत-प्रतिशत रोगियोंको लाभ मिला है।

१-हृदयमें शिथिलता आनेपर या शोथ होनेपर अर्जुनकी छाल तथा गुड़को दूधमें मिलाकर औटाकर पिलाना चाहिये।

२-हृदयाघात, हृदय-शूलमें अर्जुनकी छालसे सिद्ध दूध अथवा ३ से ६ ग्राम छाल घी या गुड़के शर्बतके साथ देते हैं।

३-अर्जुन-घृत बनानेके लिये आधा किलो अर्जुनकी छाल जौकुट करके ४ किलो जलमें पकाया जाता है। चौथाई जल शेष रहनेपर अर्जुन कल्क ५० ग्राम तथा गायका घी एक पाव मिलाकर पाक करते हैं। ध्यान रहे, जल उड़ जाने एवं घृत शेष रहनेपर यह सिद्ध घृत बन जाता है। यह घी हृदयके समस्त रोगोंमें हितकारी है। इसकी मात्रा ६ से ११ ग्रामतक दी जाती है।

४-महिलाओंमें होनेवाले श्वेत प्रदर तथा पेशाबकी जलनको रोकना भी इसके विशेष गुणोंमें है।

५-छातीमें जलन, जीर्ण खाँसी आदिको रोकनेमें यह सक्षम है।

६-हड्डी टूटनेपर इसकी छालका स्वरस दूधके साथ देते हैं। सूजन तथा दर्दको कम करनेकी शक्ति भी इसमें निहित है।

वनौषधि-परिचय—ब्राह्मी

(श्रीधीरजकुमारजी खरया)

ब्राह्मीके सोमवल्लभी, महौषधि, स्वायम्भुवी, सुरश्रेष्ठा, सरस्वती, सोम्यलता, दिव्या, शारदा तथा सोमवल्ली आदि कई नाम हैं। यह सामान्यतया गीली एवं तर जमीनमें पैदा होती है। ब्राह्मी वनस्पति वैसे तो सारे भारतवर्षमें जलाशयोंके किनारेपर पैदा होती है; पर हरिद्वारसे लेकर बदरीनारायणके मार्गपर बहुत बड़ी तादादमें पायी जाती है। ब्राह्मीके पौधेका रस कड़वा होता है।

ब्राह्मीके गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदके मतानुसार ब्राह्मी शीतल, सारक, हलकी, कसैली, मधुर, स्वादुपाकी, आयुवर्धक, स्वरको उत्तम करनेवाली, स्मरणशक्ति बढ़ानेवाली तथा कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, रुधिर-विकार, खाँसी, विष, सूजन और ज्वर हरनेवाली है। इसके अतिरिक्त यह कण्ठशोधक, हृदयके लिये हितकारी, वात, रक्त-पित्त एवं अरुचिको भी दूर करनेवाली है।

ब्राह्मी और मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग

ब्राह्मीकी मुख्य क्रिया मस्तिष्क और मज्जा-तन्तुओंके ऊपर होती है। यह मस्तिष्कको शक्ति देती है और उसके लिये एक पौष्टिक वस्तुका काम करती है। इस गुणके कारण ब्राह्मी मस्तिष्क और मज्जा-तन्तुओंके रोगोंमें विशेष रूपसे दी जाती है। उन्माद और अपस्मारके रोगोंमें भी यही बात होती है। इसलिये इनमें भी ब्राह्मीका प्रयोग होता है। सिर्फ नवीन एवं जोरदार रोगोंमें ब्राह्मी नहीं देनी चाहिये; क्योंकि इसके अंदर कुछ उत्तेजित करनेका धर्म रहता है और तीव्र रोगोंमें उत्तेजक औषधि देनेसे रोग बढ़ जाता है। इसलिये नवीन और तीव्र उन्मादमें तीव्र रेचक वस्तु देकर उसके पश्चात् खुरासानी अजवायनके समान कोई शामक वस्तु

देनी चाहिये। उन्माद और अपस्मारके पुराने होनेपर उसमें एक ओर मस्तिष्कको पुष्ट करनेवाली औषधियोंकी जरूरत होती है और दूसरी ओर कुछ उत्तेजक औषधिको देनेकी आवश्यकता होती है। इसलिये ऐसे रोगोंमें ब्राह्मी देनेसे अच्छा लाभ होता है।

ब्राह्मीके अंदर कुछ क़ब्ज़ियत पैदा करनेका दोष भी रहता है। इसलिये इसके साथ कुछ हलकी मृदु विरेचक औषध देना उपयोगी होता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इसके साथ शंखपुष्पी देनेका विधान दिया गया है।

ब्राह्मीके अंदर एक प्रकारका उड़नशील तेल रहता है। वही इसके गुणोंका आधार है। आँचकी गर्मीसे यह तेल उड़ जाता है। इसलिये ब्राह्मीको धूपमें नहीं सुखाना चाहिये। इसका प्रयोग विशेष रूपसे बिना आँचपर तपाये करना चाहिये।

ब्रह्मवृक्ष—पलाशका स्वास्थ्यमें योगदान

(डॉ० सुश्रीलेखा वी० चित्ते, कायचिकित्सा-विभाग, जामनगर)

वेदोंमें पलाशको ब्रह्मवृक्ष कहकर उसे बहुत महत्त्व दिया गया है और मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंका पलाशके प्रति कितना आदरभाव था, उसका किञ्चित् भाव निम्न लिखित मन्त्रद्वारा प्राप्त होता है—

ब्रह्मवृक्ष पलाशस्त्वं श्रद्धां मेधां च देहि मे।
वृक्षाधिपो नमस्तेऽस्तु त्वं चात्र सन्निधो भव॥

अर्थात् हे पलाशरूपी ब्रह्मवृक्ष! आप समस्त वृक्षोंके राजा हैं, आप मुझे श्रद्धा और मेधा प्रदान करें। आपको मेरा नमस्कार है। मैं इस वृक्षमें आपका आह्वान करता हूँ, इसमें आप संनिहित हो जायँ।

पलाश एक औषधीय वृक्ष है। किंशुक, ब्रह्मवृक्ष, याज्ञिक, सुपर्ण, त्रिपर्ण, रक्तपुष्प, क्षारश्रेष्ठ, बीजस्नेह, कृमिघ्न, वक्रपुष्प, ढाक आदि इसके अनेक नाम हैं। इस वृक्षके पत्र बड़े प्रशस्त, मनोहर एवं सुन्दर होते हैं, अतः इसका नाम पलाश पड़ा। रक्त पलाश तथा श्वेत पलाश आदि इसके कई भेद हैं। इसके छाल, क्षार, बीज, काण्ड, पत्र, पुष्प तथा निर्यास आदिका उपयोग होता है।

चरकसंहिताके अनुसार पलाशके अड़तीस प्रयोग बताये गये हैं, जिनमें छालके अठारह, क्षारके बारह, बीजके छः, पुष्प और काण्डके पत्रके दो। इसी प्रकार सुश्रुतसंहितामें पलाशके छियालीस योग बताये गये हैं।

उपर्युक्त योगोंद्वारा प्रमेह, कुष्ठ, श्वित्र, शोथ, उदररोग, अर्श, ग्रहणी, हिक्का, कास, अतिसार तथा नेत्ररोग आदिका उपचार किया जाता है।

यहाँ पलाशके कुछ उपयोगी प्रयोग दिये जा रहे हैं—

(१) छोटे बच्चोंके पेटमें कृमि हों तो ऐसे बच्चोंको प्रथम एक तोलासे तीन तोलेतक गुड़ खानेको दिया जाता है। साथ ही ऊपरसे आधा तोलासे एक तोलातक पलाशमूल-अर्क पीनेको देना चाहिये। ऐसा तीन दिनतक करे और रातको एक तोलासे ढाई तोला शीत-गरम पानीके साथ दिया जाय।

पलाशके बीजोंका क्वाथ पीनेपर भी कृमियोंका नाश होता है।

(२) दन्त-शूल हो, दाँतोंसे खून आये एवं कमजोर दाँत हिलते हों तो दन्तवेष्ट (मसूढ़ों)-पर पलाश-अर्ककी कुछ बूँदें लगानेसे लाभ होता है।

(३) छोटे बच्चोंको कुकुर-खाँसीमें हलदीके साथ अर्क देनेपर लाभ होता है।

(४) कर्णपीपमें तीन-चार बूँद डालनेसे आराम मिलता है।

(५) स्नायु-रोग, श्लीपद (Filaria) एवं कालरा-जैसी व्याधियोंमें भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(६) बालकोंको दाँत आनेकी वेदनासे बचानेके लिये इसके मूल अर्कका प्रयोग हलकेसे लगाकर किया जाता है, जिससे पतले दस्तका उपद्रव भी नहीं होता।

(७) स्त्रियोंके प्रदररोगोंमें इसका अर्क दससे बीस बूँद सुबह और शाम चावलके पानीके साथ देनेसे लाभ होता है।

(८) पलाश गर्भस्राव तथा गर्भपातमें बहुत उपयोगी है। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें पलाशपत्रका उपयोग बहुत जगहपर गर्भरक्षणके लिये वर्णित है। इसका अर्क भी बहुत लाभप्रद है।

(९) पलाशका उपयोग श्रेष्ठ रसायनके रूपमें अति लाभप्रद है।

बेल (बिल्व)-की महत्ता एवं स्वास्थ्य-रक्षामें उसका उपयोग

(वैद्य पं० श्रीगोपालजी द्विवेदी)

बिल्ववृक्ष प्रायः धार्मिक स्थानों विशेषकर भगवान् शङ्करके उपासना-स्थलोंपर लगानेकी भारतमें एक प्राचीन परम्परा है। यह वृक्ष अधिक बड़ा न होकर मध्यम आकारवाला होता है। शाखाओंपर तीक्ष्ण काँटे होते हैं। पत्ते तीन-तीन या कभी-कभी पाँच-पाँचके गुच्छोंमें लगते हैं। बेलका फूल सफेद तथा सुगन्धपूर्ण होता है। फल प्रायः गोलाकार कड़े आवरणवाला, स्वादिष्ट, मधुर और हृदयको प्रिय लगनेवाली सुगन्ध लिये होता है। गूदेमें सैकड़ों बीज गोंदमें लिपटे हुए रहते हैं। वसन्त-ऋतुके अन्तमें पुराने पत्ते गिरकर नये आने लगते हैं। ग्रीष्ममें तो यह वृक्ष हरे-हरे पत्तों एवं फलोंसे भर उठता है। देशके सभी प्रान्तोंमें मिलनेवाला यह बेल कोई अपरिचित वस्तु नहीं है। बेलके सम्बन्धमें धार्मिक महत्त्वोंको निम्न अंशसे ज्ञात करें—

श्रीशिवपुराणके अन्तर्गत बिल्व-माहात्म्यका वर्णन इस प्रकारसे किया गया है—

बिल्वमूले महादेवं लिङ्गरूपिणमव्ययम्।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिञ्चति।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः॥

(श्रीशिवपुराण, श्लोक १३-१४)

अर्थात् बिल्वके मूलमें लिङ्गरूपी अविनाशी महादेवका पूजन जो पुण्यात्मा पुरुष करता है, उसे निश्चय ही कल्याणकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य शिवजीके ऊपर बिल्वमूलमें जल चढ़ाता है, उसे सब तीर्थोंमें स्नानका फल मिलकर पवित्रता प्राप्त होती है।

एतस्य बिल्वमूलस्याथालवालमनुत्तमम्।
जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम्॥

(श्लोक १५)

अर्थात् इस बिल्वमूलके सब ओर जलसे परिपूर्ण आलबालको देखकर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो जाते हैं।

इतना ही नहीं—

पूजयेद् बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिर्नरः।
शिवलोकमवाप्नोति संततिर्वर्धते सुखम्॥
बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम्।
स तत्त्वज्ञानसम्पन्नो महेशान्तर्गतो भवेत्॥
बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम्।
गृहीत्वा पूजयेद् बिल्वं स च पापैः प्रमुच्यते॥
बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तितः।
एकं वा कोटिगुणितं तस्य पुण्यं प्रजायते॥
बिल्वमूले क्षीरयुक्तमन्नमाज्येन संयुतम्।
यो दद्याच्छिवभक्ताय स दरिद्रो न जायते॥

(शिवपुराण-बिल्वमाहात्म्य, श्लोक १६—२०)

उपर्युक्त पंक्तियोंका सामान्य भावार्थ इस प्रकारसे है—'जो भक्त बिल्वमूलमें गन्ध-पुष्पादिके द्वारा पूजन करते हैं, उन्हें शिवलोककी प्राप्ति होती है तथा संतान और सुख बढ़ता है। जो शिवभक्त बिल्वमूलमें आदरपूर्वक दीपमालाकी कल्पना करते हैं, वे तत्त्वज्ञानसे परिपूर्ण हो शिवजीके अन्तर्गत होते हैं और जो बिल्वकी शाखाको लेकर उससे नवीन पत्र ग्रहणकर पूजन करते हैं, वे सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो शिवभक्तको बिल्वमूलमें भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे एक व्यक्तिको भोजन करानेमें ही करोड़ोंको भोजन करानेका फल मिलता है। जो मनुष्य बिल्वमूलमें दूधसे युक्त घृत और अन्न रखकर शिवभक्तको देता है, वह कभी दरिद्र नहीं हो पाता।'

शिवपुराणमें ही आगे लिङ्गपूजा-विधानके अन्तर्गत पुनः बिल्वकी चर्चा आयी है। यथा—

पूजयेत् परया भक्त्या शंकरं भक्तवत्सलम्।
सर्वाभावे बिल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय वै॥
बिल्वपत्रार्पणेनैव सर्वपूजा प्रसिध्यति।
ततः सुगन्धचूर्णं वै वासितं तैलमुत्तमम्॥

अर्थात् भक्तवत्सल भगवान् शिवजीका परम भक्तिपूर्वक पूजन करे। पूजनमें यदि अन्य कोई वस्तु उपलब्ध न हो तो बिल्वपत्र ही समर्पित करे। बिल्वपत्रके समर्पणसे ही सब पूजन सिद्ध हो जाता है। फिर सुगन्धित चूर्णद्वारा सुवासित किया हुआ तेल प्रसन्नतापूर्वक शिवजीको समर्पण करे।

ऋषियोंने कहा—'हे व्यासशिष्य सूतजी! अब आप बताइये कि किस-किस पुष्पके द्वारा पूजन करनेसे शिवजी क्या-क्या फल देते हैं?' सूतजीने कहा—'ऋषियो! क्रमपूर्वक वर्णन करता हूँ—तुम सुनो! यह विधि महर्षि नारदने पूछी थी तथा उत्तरमें प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उनके प्रति इस प्रकार कहा था—'कमल, बेलपत्र, शतपत्र या शङ्खपुष्पीसे शिवकी पूजा करे तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।' इससे सम्बन्धित एक सुभाषितको पढ़ें—

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषाद्
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तम्।
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ नित्यं त्यजामि

आदि।

यजुर्वेदी शिवार्चन-पद्धतिके अन्तर्गत बेलकी इस प्रकार चर्चा की गयी है—

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रिधायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम्॥
अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शंकरस्य सदा प्रियम्।
तत्ते शम्भो प्रयच्छामि बिल्वपत्रं सुरेश्वर॥
त्रिशाखैर्बिल्वपत्रैश्च अच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः।
तव पूजां करिष्यामि अर्चये परमेश्वर॥
गृहाण बिल्वपत्राणि सुपुष्पाणि महेश्वर।
सुगन्धीनि भवानीश शिव त्वं कुसुमप्रिय॥

यह तो रही धार्मिक महत्ता। अब इनके स्वास्थ्योपयोगी गुणोंको देखना चाहिये। स्वास्थ्योपयोगी गुणधर्म—

१—दस्तकी प्रारम्भिक अवस्थामें बेलगिरी, सोंठ, मोचरस, धायके फूल जलसे धोकर सुखाये। प्रत्येक १-१ तोला, धनिया २० तोले, सौंफ ४० तोले। सर्वप्रथम सोंठ, बेलगिरी और मोचरसके छोटे-छोटे टुकड़े कर हलकी अग्निपर सेंक दे। गन्ध आते ही उतार लेना चाहिये। सभीको मिलाकर चूर्ण बना दे तथा कपड़ेसे उसे छानकर सुरक्षित रख दे। एकसे तीन ग्रामकी मात्रामें मट्ठे या शर्बतके साथ दिनमें तीन बार रोगीको दे। इससे शीघ्र ही लाभ मिलेगा।

२—पीलिया, सूजन तथा क़ब्ज़ आदिमें बेलकी पत्तीका रस थोड़ी काली मिर्च मिलाकर चूर्ण बना लेवे और दिनमें तीन बार प्रयोग करे।

३—पके बेलका गूदा, इमली और मिस्री भली प्रकार जलमें मसल-छानकर शर्बत तैयार कर ले। प्रातःकालमें इसके सेवनसे शारीरिक दाह, अतिसार, मूत्रका पीलापन, मिचलाहट, स्फूर्तिका अभाव आदि दोष शान्त हो जाता है।

४—घाव कैसा भी हो, बिल्वपत्रको जलमें पकाकर उस जलसे धोनेके बाद ताजे पत्ते पीसकर बाँध दीजिये। यह पीडा एवं पूय दोनोंका शमन करके घावको शीघ्र सुखानेमें सहायक होता है।

५—हृदयकी अधिक घबराहट, निद्रा एवं मानसिक तनावपर वृक्षके भीतरकी छाल १० तोले मोटी-मोटी कूटकर आधा सेर गायके दूधमें डालिये और इच्छानुसार मीठा मिलाकर प्रातः तथा सायं कुछ समयतक नियमित प्रयोग कीजिये। वायुकारक पदार्थोंके सेवनसे वञ्चित रहनेसे अवश्य लाभ मिलेगा।

६—(क) श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर महिलाओंमें पायी जानेवाली एक प्रकारकी व्याधि है, उससे बचनेके लिये इच्छानुसार गायके दूधके साथ बेलके ताजे पत्तेको पीसकर थोड़ा जीरा मिलाकर दिनमें दो बार सेवन करनेसे लाभ मिलता है।

(ख) नेत्रोंका दुखना, लालिमा, अधिक कीचड़ आनेमें पत्तोंको पीसकर पुल्टिस बाँधना हितकारी होता है। बच्चोंके होनेवाले पीले दस्तोंमें एक चायकी चम्मच बिल्वपत्र-रस देनेसे शीघ्र लाभ मिलता है।

७—बेलका मुरब्बा अतिसार, आमातिसार और खून-मिले दस्तोंपर प्रभावशाली क्रिया दिखलाता है। आँतोंके घावोंको अच्छा करनेमें मुरब्बा बड़ा ही लाभकारी होता है। ताजे फलका गूदा, कबाबचीनीका चूर्ण एकमें मिलाकर ताजे दूधके साथ पिलानेसे पुराने उपदंशमें लाभ होता है।

८—रक्तविकारोंमें बेलका गूदा आधा पाव बराबर शक्कर मिलाकर अठन्नीभरकी मात्राके नित्य प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

९—बेलके कोमल पत्तोंको किसी नीरोगी गायके मूत्रमें पीस ले। पीसी वस्तुसे चार गुना तिलका तेल और तेलसे चार गुना बकरीका दूध सभीको मिलाकर

हलकी-हलकी अग्निपर जलीय अंश उड़नेतक पकाये। इसके बाद नीचे उतार ले, शीतल हो जानेपर सुरक्षित रख दे। यह तेल कानके अनेक रोगोंपर प्रभावकारी है। बहरापन, सायँ-सायँकी आवाज आना आदिमें अपना गुण दिखलाता है। इसे दिनमें दो-तीन बार छोड़े।

इन रोगोंके अलावा आयुर्वेदीय औषध-निर्माण करनेवाली फार्मेसियाँ और चिकित्सा-जगत्के पण्डितोंने प्रचुरतासे बिल्वको अपनी विभिन्न ओषधियोंमें स्थान देकर इसकी उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया है। आयुर्वेदिक चिकित्सक अत्यन्त श्रद्धाके साथ इसके विभिन्न अङ्गोंका उपयोग रुग्ण लोगोंपर करते हैं। भारतमें अनेक वृक्षोंके पूजन-सम्मानादिकी प्राचीन परम्परा है; क्योंकि इनके अंदर गम्भीर कल्याणकारी वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। बादीपुर (नेपाल)-में प्रति दस वर्षके बाद एक अनोखा समारोह होता है, जिसमें कन्याओंके सामूहिक विवाह बिल्वफलसे सम्पन्न करानेकी प्रथा प्राचीन कालसे चली आ रही है। नेपालियोंकी यह मान्यता है कि कुमारी कन्याओंका पवित्र बेलसे विवाह करा देनेपर वे वैधव्य-दुःखसे आजीवन बची रहती हैं।

इस प्रकार बेल वस्तुतः मानवमात्रके लिये एक कल्याणकारी प्राकृतिक वरदान है।

बिल्व और उसके विविध प्रयोग

बिल्व तथा श्रीफल नामसे प्रसिद्ध यह फल बहुत उपयोगी है। सामान्यरूपसे इसे 'बेल' नामसे जाना जाता है। आयुर्वेदके निघण्टु-ग्रन्थोंमें इसकी विशेषताओंको लेकर अनेक नाम बताये गये हैं। धन्वतरि-निघण्टुमें बिल्व, शलाटु, शाण्डिल्य, हृद्यगन्ध, शैलूष, वातसार तथा अरिभेद आदि सत्रह नाम इसके लिये आये हैं। इसी प्रकार राज-निघण्टुमें तेईस, मदनपाल-निघण्टुमें नौ, कैयटदेव- निघण्टुमें अट्ठाईस तथा भावप्रकाश-निघण्टुमें पाँच नाम आये हैं। इसका वृक्ष शिवद्रुम भी कहलाता है।

समृद्धि देनेवाला वृक्ष

बिल्वका वृक्ष उर्वरताका प्रतीक, अत्यन्त पवित्र तथा समृद्धि देनेवाला है। तीन पर्णकोंमें विभक्त हुए इसके पत्ते (बिल्वपत्र) सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणों; जाग्रत्, सुषुप्ति और स्वप्न—इन तीनों अवस्थाओं तथा भूत, वर्तमान और भविष्य—इन तीन कालोंके प्रतीक माने जाते हैं।

बेलके पत्ते शंकरजीका आहार माने गये हैं, इसलिये भक्त लोग बड़ी श्रद्धासे इन्हें महादेवके ऊपर चढ़ाते हैं। शिवकी पूजाके लिये बिल्व-पत्र आवश्यक माना जाता है। शिव-भक्तोंका विश्वास है कि पत्तोंके त्रिनेत्रस्वरूप तीनों पर्णक शिवके तीनों नेत्रोंको विशेष प्रिय हैं। इसके फलों और पके फलोंमें मीठी सुगन्ध आती है, जो हृदयको भाती है। इसलिये संस्कृतमें बिल्वको हृद्यगन्ध भी कहते हैं।

कागजी बेल

बिल्व-वृक्षमें छोटे-बड़े फल लगते हैं। कुछ फलोंका छिलका मोटा तथा कठोर होता है किंतु कुछ फलोंके छिलके इतने पतले होते हैं कि हथेलियोंके बीचमें दबानेसे टूट जाते हैं, ऐसे फलोंको कागजी बेल कहते हैं। कुछ वृक्षोंके फल मनुष्यके सिरके बराबर भी बड़े हो जाते हैं।

उपयोगी फल होनेके कारण तथा धार्मिक महत्त्वके कारण यह बगीचों और मन्दिरोंमें भारतमें सब जगह लगाया जाता है।

बाजारमें मिलनेवाले बिल्व-फलोंको दो समूहोंमें बाँटा जा सकता है। एक तो वे, जो आकारमें छोटे होते हैं और जंगलोंमें स्वयं पैदा होते हैं। दूसरे वे, जो बड़े होते हैं और जिन्हें बगीचोंमें उगाया जाता है। चिकित्सा-प्रयोजनोंमें दोनों प्रकारके फल काम आते हैं। फल जब पूर्ण विकसित हो जायँ और पकने लगें, तभी तोड़ लेने चाहिये।

बिल्वका औषधीय महत्त्व जो है सो तो है ही, इसके अन्य भी कई उपयोग हैं। इसके छालसे जो गोंद रिसती है, वह बहुत अच्छी होती है। इसके फूलोंकी चाय स्वादिष्ट होती है। श्रीलङ्कामें इस चायका बड़ा प्रचलन है। वहाँ इसके फूलोंसे बनी चायको बेलिमल

कहा जाता है। इसके पत्ते चारेके रूपमें काम आते हैं। ऊँटोंको ये खूब खिलाये जाते हैं। ऊँट-पालक चैत्रमें अपने ऊँटोंको इसके फल खिलाते हैं। इससे उनकी बीमारियाँ भी दूर हो जाती हैं।

पवित्र होनेसे इसकी लकड़ीकी उपमा चन्दनसे की जाती है। इसके फूलोंसे मधुर-गन्धयुक्त अर्क खींचा जाता है। कपड़ोंको धोनेके लिये साबुनके प्रतिनिधिके रूपमें इसका गूदा काममें लिया जाता है, क्योंकि इसमें अपक्षालक गुण होते हैं।

हमारे देशमें शीशियोंके प्रचलनसे पूर्व वैद्य, हकीम और पंसारी बेलके सूखे फलोंमें दवाएँ रखते थे। वृन्तके जिस स्थानसे फल अलग होता है, उस जगहसे छिद्र करके किसी कीलकी सहायतासे अंदरका गूदा निकालकर साफ कर लिया जाता था। वर्तमान सम्मयमें भी कुछ लोग बड़े फलोंको दो भाग करके उसका गूदा निकालकर कटोरेनुमा छिलकेको साफ करके सुखा लेते हैं और बादमें पानी पीनेके बर्तनके रूपमें उसका उपयोग करते हैं। इसे पवित्र माना जाता है।

शर्बत

पके हुए बिल्वके गूदेको पानीमें हाथसे मसलकर घोल लें। छानकर बीज और रेशे फेंक दें। यह शर्बत बन जाता है। यह आहार और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उत्तम होता है। इसमें स्वयं मिठास रहती है। कुछ लोग इसमें जरा-सी सोंठ और काली मिर्चका चूर्ण भी बुरक लेते हैं। पानीके स्थानपर अनेक लोग इसमें दूध या दही मिलाते हैं। दही मिलाकर बनाया गया शर्बत पेटके रोगियोंके लिये लाभदायक माना जाता है। ग्रीष्मकी तपनको मिटाने तथा शीतलता, ऊर्जा एवं स्निग्धता प्रदान करनेमें बेलका शर्बत बहुत ही उपयोगी है।

चिकित्साकी भारतीय पद्धतियोंमें बेलके अनेक भाग काम आते हैं। आयुर्वेदके प्रसिद्ध द्रव्य दशमूलके अङ्गके रूपमें यह बहुत विस्तृतरूपसे प्रयोग किया जाता है।

अपक्व या अधपका फल ग्राही, दीपक और पाचक होता है। यह अतिसारकी अत्युत्तम दवा है। पुराने दस्तोंमें तो यह विशेषरूपसे उपयोगी समझा जाता है। इसे खण्ड-खण्ड काटकर मुरब्बा भी बनाया जाता है। दस्त और पेचिश (प्रवाहिका)-में वैद्य इसे बहुत हितकर मानते हैं। पका फल मधुर, सुगन्धित और शीतल होता है। ताजा लिया जाय तो यह अनुलोमक होता है। पके फलका गूदा सुखा लिया जाय तो यह हलके नारंगी वर्णका बन जाता है। पानीमें इसे घोलें तो यह स्वादिष्ट नारंगी वर्णका शर्बत बन जाता है, जिसमें मृदुग्राही गुण होते हैं। पके फलका छिलका ग्राही है और चिकित्सामें काम आता है।

निघण्टुशास्त्रमें प्रतिपादित गुण—आयुर्वेदके चिकित्साग्रन्थोंमें कच्चे और पके बिल्व-फलके अलग-अलग गुणधर्म बताये गये हैं। बिल्वके अन्य भागोंके गुणोंका भी विस्तारसे वहाँ वर्णन किया गया है।

कच्चे फलके गुण—बिल्वका कच्चा फल गुणमें स्निग्ध, संग्राही, दीपन, कटु, तिक्त-कषाय, उष्ण, तीक्ष्ण एवं वात तथा कफको दूर करनेवाला है। यह मलको बाँधता है, कषैला और गर्म है। चरपरा, पाचन, चिकना और हृदयके लिये हितकर है।[1]

पके फलके गुण—बिल्वका पका फल मधुर, अनुरस, गुरु, विदारि, विष्टम्भकर, दोषहर, तिक्त-कषाय रसवाला एवं उष्णग्राही होता है। यह वीर्यवर्धक, भारी तथा देरसे पचनेवाला है। अग्निको मन्द करता है। विदाही, दुर्जर तथा ग्राही होता है। उष्णवीर्य, लघु तथा रूक्ष है।[2]

---

१. (क) बिल्वस्य तु फलं बालं स्निग्धं संग्राहि दीपनम्॥ कटुतिक्तकषायोष्णं तीक्ष्णं वातकफापहम्।
(धन्वन्तरिनिघण्टु, गुडूच्यादिवर्ग)

(ख) फलं तु कोमलं स्निग्धं गुरु संग्राहि दीपनम्। (राजनिघण्टु, आम्रादिवर्ग)

(ग) बिल्वं ग्राहि कषायोष्णं कटु दीपनपाचनम्। हृद्यं बालं लघुस्निग्धं तिक्तं वातकफापहम्॥ (मदनपालनिघण्टु, हरीतक्यादिवर्ग १। ४३)

(घ) बिल्वं कटुकषायोष्णं तिक्तं दीपनपाचनम्॥ स्निग्धं तीष्णं लघु ग्राहि हृद्यं वातकफापहम्।
(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

२. (क) विद्यात्तदेव पक्वं तु मधुरानुरसं गुरु॥ विदाहि विष्टम्भकरं दोषहृत्पूतिमारुत:।
(धन्वन्तरिनिघण्टु, गुडूच्यादिवर्ग)

बिल्वके सामान्य गुण

बिल्व मधुर, कषाय रसयुक्त, गुरु, हृदयको बल देनेवाला तथा पित्तको जीतनेवाला है। यह कफ-विकार, ज्वर तथा अतिसारका नाश करनेवाला है और रुचिकारक तथा जठराग्निदीपक है—

बिल्वस्तु मधुरो हृद्यः कषायः पित्तजिद् गुरुः।
कफज्वरातिसारघ्नो रुचिकृद्दीपनः परः॥

(राजनिघण्टु, आम्रादिवर्ग)

बिल्वमूलके गुण—बिल्वका मूल मधुर रसवाला तथा हलका है और त्रिदोषका नाश करता है। वात-रोगको दूर करता है तथा वमन, मूत्रकृच्छ्र एवं शूलको नष्ट करता है—

बिल्वमूलं त्रिदोषघ्नं मधुरं लघुवातनुत्।

(राजनिघण्टु, आम्रादिवर्ग)

जटा दोषवमीकृच्छ्रशूलघ्नी मधुरा लघुः।

(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

बिल्व-पत्रके गुण—बिल्वपत्र वातहर एवं संग्राही होता है—

...पत्रं संग्राहि वातजित्।

(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

बिल्वपेशिकाके गुण—बिल्वपेशिका (फल-मज्जा) कफवातशामक, आमपाचन, शूलहर तथा ग्राही है—

कफवातामशूलघ्नी ग्राहिणी बिल्वपेशिका।

(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

बिल्व-काण्डके गुण—बिल्वका काण्ड कासहर, आमवातनाशक, हृद्य, रुचिवर्धक तथा दीपन है—

काण्डं कासामवातघ्नं हृद्यं रुच्यग्निवर्धनम्।

(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

बिल्वपुष्पके गुण—बिल्वपुष्प अतिसार, तृषा एवं वमनमें लाभदायक होते हैं—

...पुष्पमतीसारं तृषां वमिम्।

(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

बिल्वमज्जा तैलके गुण—यह उष्ण, उत्तम तथा वातहर होता है—

बिल्वमज्जभवं तैलमुष्णं वातहरं परम्।

(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

काँजीमें रखे हुए बिल्वके गुण—यह अग्निवर्धक, हृद्य, रुचिकारक एवं आमवातको दूर करनेवाला होता है—

काञ्जिके संस्थितं बिल्वमग्निसन्दीपनं परम्॥
हृद्यं रुचिकरं प्रोक्तमामवातविनाशनम्।

(कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)

आँतोंके रोग

कच्चा हो या पका, दोनों ही रूपोंमें बेल आँतोंके रोगोंमें अद्भुत लाभ करता है। इसमें विद्यमान गोंद आँतोंकी भीतरी दीवारको चिकना करती है। जिन लोगोंकी आँतें बहुत रूक्ष रहती हैं, चिरस्थायी मलबन्ध बना रहता है और मल कठोर, रूक्ष तथा गाँठोंके रूपमें कष्टसे आता हुआ गुदाद्वारमें घर्षण करके रुधिरके साथ विसर्जित होता है, उन्हें बेलके सेवन करनेसे बहुत लाभ होता है। इसी प्रकार जिनकी आँतें शिथिल रहती हैं, शौच पतले दस्तोंके रूपमें या मरोड़ोंके साथ बार-बार आता है, उन्हें भी इसके प्रयोगसे लाभ होता है। यह आँतोंकी तरंग-गतिको नियमित करता है, पतले मलको बाँधकर और कठोर मलको मृदु करके लाता है। आँतोंके रोगियोंको प्रतिदिन एक बेलका फल लेना चाहिये। जिस मौसममें पका फल न मिले, उसमें कच्चे फलको भूभल (गरम रेत या राख)-में भूनकर खाना चाहिये। कच्चे फलकी गिरीको धूपमें सुखाकर चूर्ण बनाकर रख लेना चाहिये। जिन दिनों कच्चे या पके बेल उपलब्ध न हों, उन दिनों इस चूर्णकी फंकीको लेना चाहिये। अतिसार और पेचिश (डिसेण्ट्री)-में यह अत्यधिक लाभ प्रदान करता है।

इसके फलोंका ताजा रस कड़वा और चरपरा होता है। इसे पानीके साथ हलका गरम करके जुकाम तथा जुकामके कारण हो गये हलके बुखारमें दिया जाता

(ख) तदेव पक्वं विज्ञेयं मधुरं सरसं गुरु। कटुतिक्तकषायोष्णं संग्राहि च त्रिदोषजित्॥ (राजनिघण्टु, आम्रादिवर्ग)
(ग) वृष्यं गुरु त्रिदोषं स्याद्दुर्जरं पूतिमारुतम्। विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वह्निमान्द्यकृत्॥ (मदनपालनिघण्टु, हरीतक्यादिवर्ग)
(घ) पक्वविदाहि विष्टम्भि मधुरानुरसं गुरु। दोषलं दुर्जरं पूतिवातं ग्राह्यग्निसादनम्। (कैयदेवनिघण्टु, ओषधिवर्ग)
(ङ) श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत्। वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः॥ (भावप्रकाशनिघण्टु, गुडूच्यादिवर्ग)

है। जड़की छालका काढ़ा मनोवसाद, विषण्णता और हृदयकी धड़कनमें दिया जाता है। सविराम ज्वरमें जड़की छालका काढ़ा बनाकर पिलाया जाता है। इसके फलका छिलका केश-तेलोंको सुवासित करनेके काम आता है। शाखाएँ दातुनके रूपमें प्रयुक्त होती हैं। पत्तोंको पीसकर पुल्टिस बनायी जाती है, जो शोथयुक्त भागोंपर बाँधी जाती है। नेत्रशोथमें पत्तोंको रगड़कर बाँधते हैं। इस प्रकार बिल्वके नानाविध प्रयोग आयुर्वेदमें निर्दिष्ट हैं।

—श्रीरामेश बेदी

बेदी शोध-संस्थान
डी २८, राजौरी गार्डन,
नई दिल्ली ११००२७

पीपलका वृक्ष और उससे आरोग्यकी प्राप्ति

(डॉ० श्रीगोपालप्रसादजी 'वंशी')

भारतीय संस्कृतिमें बहुत-से ऐसे वृक्ष हैं, जो पूजनीय माने जाते हैं और उनकी पूजा बड़ी श्रद्धासे की जाती है। इन वृक्षोंमें कुछ तो संसारप्रसिद्ध एवं बहुसंख्यक व्यक्तियोंद्वारा पूजित हैं, कुछकी पूजा गौणरूपसे होती है और कुछ केवल पवित्र माने जाते हैं।

प्राचीन कालमें जब लोग वृक्षोंके नीचे रहते थे, तब वे वृक्षोंका बड़ा सम्मान करते थे और शान्तिकी प्राप्तिके लिये जैसे इन्द्र, वरुण आदि देवताओंकी प्रार्थना करते थे, वैसे उनकी भी प्रार्थना करते थे—

'वनिनो भवन्तु शं नो०।' (ऋग्वेद ७।३५।५)

अर्थात् 'वृक्ष हमारे लिये शान्तिकारक हों।' ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं उपनिषदोंमें तो पवित्र वृक्षोंके नामतक गिनाये गये हैं। यज्ञका जीवन वृक्षोंकी लकड़ीको ही माना गया है। यज्ञोंमें समिधाके निमित्त बरगद, गूलर, पीपल और पाकड़—इन्हीं वृक्षोंकी लकड़ियोंको विहित माना गया है और कहा गया है कि ये चारों वृक्ष सूर्य-रश्मियोंके घर हैं—

'एते वै गन्धर्वाप्सरसां गृहाः।' (शत० १।५।४।१)

बरगद तथा गूलर आदि प्रधान वृक्षोंके वर्णनके बाद गौण वृक्षोंकी समिधाका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि पलाश, मदार, बेल और खैरके वृक्ष भी यज्ञके योग्य हैं; इसलिये इन वृक्षोंकी भी समिधा होती है।

पालि-ग्रन्थोंमें तो स्पष्ट वर्णन है कि कुछ देवता वृक्षोंपर ही रहते हैं, इसीलिये भिक्षुओंको वृक्ष काटना मना किया गया है। पर जो भिक्षु किसी वृक्षको काटता है तो उसे 'पाचित्तिय' (प्रायश्चित्त) करना पड़ता है। 'विनयपिटक' में इस सम्बन्धमें एक कथा आयी है। एक समय भगवान् बुद्ध आलवी नगरके अग्गालव चैत्यमें विहार कर रहे थे। उस समय आलवीके एक भिक्षुने विहार बनानेके लिये एक वृक्ष काटना आरम्भ किया। उस वृक्षपर रहनेवाले देवताने भिक्षुसे कहा—'भन्ते! अपना भवन बनानेके लिये मेरे भवनको मत काटो।' भिक्षुने उसकी बात न मानकर वृक्षको काट डाला। वृक्ष काटते समय देवताके बच्चेका हाथतक कट गया, जिससे वह देवता बड़ा क्रुद्ध हुआ और भिक्षुको मार डालना चाहा, किंतु फिर सोचा कि 'मुझे ऐसा करना शोभा न देगा, क्यों न मैं चलकर भगवान् बुद्धसे कहूँ?' वह तथागतके पास गया और उनसे सारी बात कही। भगवान्ने देवताको समझाकर एक अन्य वृक्षपर रहनेके लिये कहा और भिक्षुओंके लिये नियम बनाते हुए कहा—'जो कोई भिक्षु वृक्षोंको हानि पहुँचायेगा—काटेगा, उसे 'पाचित्तिय' करना होगा।' 'समस्त पासादिका' में आचार्य बुद्ध घोषने लिखा है कि प्रत्येक पक्षमें पूर्णिमा और अमावास्याको हिमालयपर देवताओंकी सभा होती है। उसमें देवताओंसे वृक्ष-धर्मके विषयमें पूछा जाता है—'तुम वृक्ष-धर्मके अनुसार रहते हो या नहीं?' वृक्ष-धर्मका अर्थ है—'वृक्षके नष्ट होनेपर वृक्ष-देवताको खिन्नमन न होने देना।' जो देवता इस वृक्ष-धर्मके अनुसार नहीं रहते, उन्हें देव-सभामें प्रवेश नहीं करने दिया जाता। उक्त वर्णनसे स्पष्ट है कि वृक्षोंको देवताओंका निवास-स्थान माना जाता है। वृक्ष-देवताओंके विमान वृक्षोंके ऊपर ही रहते हैं। पालि-ग्रन्थोंके अनुसार भगवान् बुद्ध जिस वृक्षके नीचे बैठकर ज्ञान प्राप्त करते

हैं, वह परम पूजनीय होता है और उसे 'बोधिवृक्ष' कहा जाता है। गौतम बुद्धने पीपल-वृक्षके नीचे बैठकर ज्ञान प्राप्त किया था, इसीलिये उसे 'बोधिवृक्ष' कहा जाता है। बुद्धत्व प्राप्त करनेके पश्चात् भगवान् बुद्ध बिना पलक गिराये एक सप्ताहतक उसे देखते रहे और उसके उपकारका मनन करते रहे; इसीलिये सभी बौद्ध उस बोधिवृक्षकी पूजा करते हैं।

पीपल, आम, बरगद, आँवला, सिरस, गूलर, नीम, बेल, बाँस, देवदारु और चन्दनके वृक्ष पवित्र माने जाते हैं। इनमें पीपल सबसे पवित्र है और इसकी सर्वाधिक पूजा होती है। इसकी जड़से लेकर पत्ते-पत्तेतकमें देवताओंका वास माना जाता है। यह ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशका एकीभूत रूप समझा जाता है। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने '**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्**' कहकर पीपलको अपना स्वरूप बताया है। बौद्ध-जनता इसे 'बोधिवृक्ष' कहकर पूजती है तथा हिंदू 'वासुदेव'। इसकी शाखा ही क्या पत्तीतक नहीं तोड़ी जाती। पीपल-वृक्षके समान समादृत एवं पूजनीय अन्य एक भी वृक्ष संसारमें नहीं है। तिब्बतमें इसे 'लालचङ' कहते हैं। वहाँ जब इसके पास पहुँचा जाता है, तब सिरसे टोपी उतार दी जाती है और 'शोलो-शोलो' कहा जाता है तथा इसकी ज़ड़पर दो-चार छोटे-छोटे सफेद पत्थरके टुकड़े डाल दिये जाते हैं। इसकी जड़को लाल रंगसे रँग डालते हैं। भारतकी भाँति वहाँ भी ऐसी भावना है कि जो व्यक्ति 'लालचङ' वृक्षको काटता है या नष्ट करता है, उसे कोढ़ हो जाता है। बर्मा, श्रीलङ्का, स्याम आदि देशोंमें भी ऐसा ही माना जाता है। मुक्तिनाथ (धौलागिरि पर्वतसे ४० मील उत्तर) प्रदेशमें पीपलके वृक्षको 'शोलबो' कहा जाता है और उसकी पूजा की जाती है। नेपालमें भी 'बंगल सिमा' (पीपल-वृक्ष)-का बड़ा सम्मान किया जाता है। श्रीलङ्का, बर्मा आदि बौद्ध देशोंमें इसे 'बोधिवृक्ष' कहकर पूजा जाता है।

पीपल-वृक्ष औषधके काममें भी आता है। फोड़े-फुंसी तो इसकी छालसे अच्छे हो ही जाते हैं, पत्तियोंसे भी बड़े-बड़े घाव तेलके साथ प्रयोग करके ठीक कर दिये जाते हैं। इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता तो उस समय देखी जाती है, जब कि पीपलकी लकड़ीके द्वारा सर्पदंशसे मरता हुआ व्यक्ति जीवन-लाभ प्राप्त कर लेता है। देहातोंमें प्रायः लोग सर्पद्वारा डसे हुए व्यक्तिसे पीपलकी लकड़ीके सहारे ही बात करके सर्पके आकार, गोत्र, डँसनेका स्थान, कारण आदि सब जान लेते हैं। इसे 'पीपल-जड़ी' नामसे पुकारते हैं। 'पीपल-जड़ी' की विधि यह है—जब किसी व्यक्तिको साँप डँसे और विष सारे शरीरमें प्रवेश कर गया हो, अन्य दवाएँ काम न करती हों, तब पीपलकी चार-चार अंगुलकी दो फुनगियाँ तोड़ लानी चाहिये तथा उनके छिलकेको छुड़ा देना चाहिये। [इस कार्यको गुप्तरूपसे करना चाहिये, ताकि दूसरे लोग न जान पायें। सब लोग इसे 'जड़ी' ही समझें।] उन्हें ले जाकर रोगीके दोनों कानोंके पास बलपूर्वक पकड़कर सटाना चाहिये। यदि कानमें डाले तो और भी उत्तम है। किंतु ध्यान रहे कि रोगीके शरीरका विष उस जड़ीको अपनी ओर खींचने लगता है और जड़ी विषको। यदि जड़ीको बलपूर्वक नहीं पकड़ा जायगा तो जड़ी दोनों ओरसे विषद्वारा खींची जाकर रोगीके चमड़ोंमें या कानोंमें धँसने लगेगी। उनके स्पर्श होते ही रोगी चिल्लाने लगेगा और जड़ी विष खींचने लगेगी। उस समय रोगीसे जो कुछ पूछा जायगा, वह बताने लगेगा (बकने लगेगा)। देहातोंमें केवल बकवाकर ही जड़ी छुड़ा देते हैं और मन्त्रके प्रयोगसे विष दूर करते हैं। किंतु उचित तो यह है कि जब रोगी चिल्लाने लगे, तब वहाँसे लोगोंको हटा देना चाहिये; क्योंकि वह अपने पूर्वकृत कुकर्मोंको बकने लगता है। जब जड़ी सब विष खींच लेती है, तब उसका खिंचाव अपने-आप ही रुक जाता है। 'पीपल-जड़ी' को सुखाकर भी रखा जा सकता है और समयपर प्रयोगमें लाया जा सकता है।

पीपलकी छालसे निकाले हुए रंगको ही काषाय रंग कहते हैं, जिससे भिक्षुओंका चीवर रँगा जाता है। पीपलकी छालसे रंग बनाना प्रत्येक भिक्षु जानता है।

पीपलकी हमारे जीवनसे बड़ी निकटता है। यह एक दीर्घ आयुवाला वृक्ष माना जाता है। लोगोंका विश्वास है कि पीपलमें ब्रह्माका वास है। इसीलिये उपनयन-संस्कारके समय कहीं-कहीं इसकी पूजा की जाती है—पेड़ीपर चारों ओरसे सूत लपेटा जाता है।

उच्चवर्गीय हिंदू-नारियाँ पीपलको वासुदेवका रूप मान सोमवती अमावास्याको इसकी पूजा करती हैं। वे इसकी जड़ोंपर जल गिराती हैं, तनेपर सिन्दूरके टीके लगाती हैं और १०८ बार इसकी परिक्रमा करती हैं। वृक्षके नीचे एकत्र स्त्रियोंमें जो वृद्धा होती है, वह अन्य सबको राजा निकुंजली और उसकी पत्नीकी कहानी सुनाती है।

राजस्थानमें पीपल और वटवृक्ष—ये दोनों वैशाखके अन्तिम पक्षकी चतुर्दशीको पूजे जाते हैं। पुराणोंमें वैशाखमासमें प्रतिदिन पीपलके अभिषेकका बड़ा माहात्म्य लिखा है। स्त्रियोंका विश्वास है कि ये वृक्ष उनके सौभाग्यकी रक्षा करते हैं। जब कुलवधुएँ पीपल-वृक्षके पाससे निकलती हैं, तब उसे आदर देनेके लिये अपना घूँघट माथेसे चिबुकतक डाल लेती हैं। गर्भवती स्त्रियाँ पीपलके नीचेसे नहीं निकलतीं। दीर्घ आयुवाले पीपलको उनके द्वारा ऐसा सम्मानित किया जाता है, जैसे वह उनका कोई पुरातन पुरुष हो।

किसी हिंदूकी मृत्युके बाद पीपलकी शाखाओंमें घट बाँधनेका भी नियम है। विश्वास है कि परलोक जानेवाला आत्मा प्याससे कहीं व्याकुल न हो, इसलिये घटमें पानी रख दिया जाता है। सर मोनियर विलियम्सकी खोजसे विदित होता है कि वणिक् लोग बाजारमें पीपल-वृक्षका होना ठीक नहीं समझते। विलियम्स महोदयके अनुसार ऐसा विश्वास कदाचित् इसलिये रूढ हो गया कि इस पवित्र वृक्षके नीचे वे किसी पदार्थका मनमाना दाम बताकर किसीको ठग नहीं सकते।

पीपलमें अनेक गुण हैं। जो गुणी होता है, लोग उसका आदर करते ही हैं। तुलसीका पौधा भी गुणोंका भंडार है, लोग उसे पूजते हैं। उसका पौधा घरमें लगाते हैं। पीपलसे भी लोग सांनिध्य प्राप्त करना चाहते हैं, पर पीपलका वृक्ष विशाल होता है, उसे घरमें नहीं लगाया जा सकता। उसे खुले मैदानमें लगाते हैं। दूर होनेके कारण प्रतिदिन तो जल नहीं चढ़ाया जा सकता तथापि शनैश्चर-ग्रहादिकी शान्तिकी बात लेकर ऐसी परिपाटी चला दी गयी है कि सप्ताहमें कम-से-कम एक बार तो उसका सामीप्य प्राप्त हो ही जाय।

पीपलका कोई भी भाग निरर्थक नहीं है। वह अपनी विशालताके कारण महान् ही नहीं है, प्रत्युत अनेक पशु-पक्षियोंका निवास-स्थल भी है। चिलचिलाती धूप और मूसलधार वर्षासे उत्पीड़ित मानवका वह आश्रय-निकेतन है। इसकी हवा शुद्ध, शीतल एवं रोगनाशक होती है। पीपलकी लकड़ी, पत्तियोंके डंठल, हरे पत्ते एवं सूखी पत्तियाँ—सभी गुणकारी हैं और उनका उपयोग रोगोंके निवारणार्थ किया जा सकता है। यहाँ कुछ रोग दिये जाते हैं, जिनमें पीपल अत्यन्त लाभकारी है—

रतौंधी—बहुत-से लोगोंको रातमें दिखलायी नहीं पड़ता। सायं झुट-पुटा फैलते ही आँखोंके आगे अँधियारा-सा छा जाता है। इसकी सहज औषधि है—पीपल। पीपलकी लकड़ीका एक टुकड़ा लेकर गो-मूत्रके साथ उसे शिलापर पीसना चाहिये। इसका अञ्जन दो-चार दिन आँखोंमें लगानेसे रतौंधीमें लाभ होता है।

मलेरिया ज्वर—पीपलकी टहनीका दतुवन कई दिनोंतक करनेसे तथा उसको चूसनेसे मलेरिया बुखार उतर जाता है।

सर्प-विष—यद्यपि साँप काटनेकी 'लैक्सिन'-जैसी अद्भुत दवा ईजाद हो चुकी है, फिर भी पीपलके पत्तेके डंठलसे सर्प-विषका उपचार किया जाता है। मरीजको चित्त लिटाकर पीपलकी पत्तीका डंठल, जो ताजा हो, कानोंमें दिया जाता है। जब उसके द्वारा विषके चूसे जानेकी क्रिया शुरू होती है, तब मरीज चीत्कार करने लगता है; इसलिये उसके हाथ-पाँवको कसकर पकड़ा जाता है। दस-दस मिनटपर डंठल तबतक बदला जाता है, जबतक रोगीको आराम न हो जाय। बिच्छूके विषका भी यही इलाज है।

कान-दर्द या बहरापन—पीपलकी ताजी हरी पत्तियोंको निचोड़कर उसका रस कानमें डालनेसे कान-दर्द दूर होता है। कुछ समयतक इसके नियमित सेवनसे कानका बहरापन भी छूट जाता है।

खाँसी और दमा—पीपलके सूखे पत्तेको खूब कूटना चाहिये। जब पाउडर-सा बन जाय, तब उसे कपड़ेसे छान लेना चाहिये। लगभग अठन्नीभर चूर्णमें दोभर मधु मिलाकर एक महीना प्रातः चाटनेसे दमामें स्पष्ट फायदा होता है, खाँसीकी तो कोई बात ही नहीं है।

धातु-दौर्बल्य और वन्ध्यत्व—पीपल-वृक्षके फलमें अद्भुत गुण हैं। फलोंको सुखा करके उसे कूटकर तथा कपड़ेसे छानकर रखना चाहिये। रोज पावभर दूधमें चवन्नीभर चूर्ण मिलाकर पीनेसे धातु-दौर्बल्य दूर होता है। स्त्रीका वन्ध्यापन भी इससे नष्ट हो जाता है।

प्रदर और मासिक धर्मकी गड़बड़ी—उपर्युक्त विधिसे चूर्ण तैयार करके दूधके साथ नियमितरूपसे स्त्रियाँ प्रसवके बाद सेवन करें तो बहुत लाभ होता है। पुराना प्रदर जड़से मिट जाता है और मासिक धर्मका खुलासा न होना या समयपर न होना भी दूर हो जाता है।

सर्दी और सिरदर्द—सर्दीका सिरदर्द तो मिनटोंमें छूमंतर हो जाता है। पीपलकी केवल दो-चार कोमल पत्तियोंको चूसनेकी देर होती है। दो-तीन दिन सायं ऐसा करनेसे सर्दी जाती रहती है।

पीपलमें और भी गुण हैं। इन्हीं गुणोंके कारण पीपल वन्दनीय और सेव्य है।

भव-भूतलको भेद गगनमें उठनेवाले शाल प्रणाम।
छाया देकर पथिकोंका श्रम हरनेवाले तुम्हें प्रणाम॥

प्रकृतिकी अनुपम देन—पीपल

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

भगवान् कृष्णने श्रीमद्भगवद्गीता (१०।२६)-में कहा कि '**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्**' मैं वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष हूँ। विविध पुराणोंमें इसके माहात्म्यको प्रतिपादित किया गया है। स्कन्दपुराणके अनुसार अश्वत्थवृक्षके मूलमें विष्णु, तनेमें केशव, शाखाओंमें नारायण, पत्तोंमें भगवान् श्रीहरि और फलोंमें सब देवताओंसे युक्त अच्युत निवास करते हैं।* पीपलके गुणोंका अध्ययन करनेपर पता लगता है कि यह वृक्ष पर्यावरणको निरन्तर शुद्ध करता रहता है। प्रकृतिमें यही एकमात्र वृक्ष है जो बराबर प्राणवायु 'ऑक्सीजन' छोड़ता रहता है जबकि अन्य वृक्ष रातको कार्बन-डाइ-ऑक्साइड या नाइट्रोजन ही छोड़ते हैं। गाँवोंमें प्रत्येक घर तथा मन्दिरके पास आपको प्रायः पीपल या नीमके वृक्ष मिल जायँगे। पीपल पर्यावरणको शुद्ध करता है तथा नीम हमारा गृह-चिकित्सक है। नीमसे हमारी कितनी ही व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। आज पर्यावरणको शुद्ध रखना हमारी प्राथमिकता है।

हिन्दुओंमें पीपल, तुलसी, बेल आदि वृक्षोंकी पूजा की जाती है; कारण उनका हमारे जीवनपर अत्यधिक उपकार है। अतः उनकी पूजा करके उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञताका ज्ञापन करते हैं। हमारे जीवनमें जिन प्राकृतिक तत्त्वोंका अत्यधिक उपकार है, उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करना हमारा नैतिक दायित्व है।

भगवान् बुद्धको गयामें पीपलवृक्षके नीचे ही ज्ञान प्राप्त हुआ। इस वृक्षके नीचे एकाग्रचित्त हो बैठकर देखें तो यह अनुभव होगा कि पत्तोंके हिलनेकी मधुर ध्वनि एकाग्रचित्ततामें सहायक होती है। पीपलसे निरन्तर ऑक्सीजनका निकलना तथा पत्तोंकी मधुर आवाज हमारे चित्तको साधनामें सहायक बनाती है।

भारतीय जड़ी-बूटियाँ अपने गुणोंमें अद्भुत हैं। इनमें तथा पेड़-पौधोंमें परमात्माने दिव्य शक्तियाँ भर दी हैं। भारतीय वन-सम्पदाके गुणों और रहस्योंको जानकर विश्व आश्चर्यचकित रह जाता है। भारतीय जड़ी-बूटियोंसे मनुष्यका कायाकल्प हो सकता है, खोया हुआ स्वास्थ्य एवं यौवन पुनः लौट सकता है, भयंकर-से-भयंकर रोगोंसे छुटकारा पाया जा सकता है, आयुको लम्बा किया जा सकता है। आवश्यकता है इनके गुणोंका मनन-चिन्तनकर इनके उचित उपयोगकी। इनका पूरा लाभ लेनेके लिये इनका सेवन एवं उपयोग आवश्यक है। पीपलकी पूजा, अर्चना आदि करनेसे, थोड़ी देरके लिये पीपलके सांनिध्यमें रहनेसे, उससे निःसृत प्राणवायु (ऑक्सीजन)-के सम्पर्कमें रहनेसे लाभ मिलता है। इसीलिये हमारे धर्मशास्त्रोंमें पीपलवृक्ष

---

* मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च । नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हरिः॥
फलेऽच्युतो न संदेहः सर्वदेवैः समन्वितः। (स्कन्द० नागर० २४७।४१-४२)

काटनेका निषेध किया गया है। इस वृक्षको बिना प्रयोजनके काटना अपने पितरोंको काट देनेके समान है। ऐसा करनेसे वंशकी हानि होती है। यज्ञादि पवित्र कार्योंके उद्देश्यसे इसकी लकड़ी काटनेसे कोई दोष न होकर अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अश्वत्थवृक्षकी पूजा करनेसे समस्त देवता पूजित हो जाते हैं—

छिन्नो येन वृथाश्वत्थश्छेदिताः पितृदेवताः।
यज्ञार्थं छेदितेऽश्वत्थे ह्यक्षयं स्वर्गमाप्नुयात्॥
अश्वत्थः पूजितो यत्र पूजिताः सर्वदेवताः॥

(अश्वत्थस्तोत्रम्)

अगर कहीं काटना ही पड़ा तो उसकी अलगसे विधि बतायी गयी है। यह शास्त्रीय व्यवस्था इसलिये दी गयी कि हम इन वृक्षोंके प्रति कृतघ्न नहीं कृतज्ञ हों।

हमारा अथर्ववेद कहता है कि जहाँ पीपलका वृक्ष होता है वहाँ ज्ञानी-ध्यानी अर्थात् प्रबुद्ध लोग रहते हैं। अतः पीपल ज्ञानवान् बनानेमें भी सहायक है। पीपलमें फूल नहीं लगते, सीधे फल लगते हैं, इसीलिये इसका एक नाम 'गुह्य-पुष्पक' भी है। पीपल घनी छाँव देता है, स्वस्थ रखता है, अनेक रोगोंको दूर करता है। कोई भी प्राणी इसके नीचे आकर सुखकी श्वास ले सकता है। पीपलकी छाया और पत्तोंसे छनी हुई हवा मानसिक चेतनता तथा स्फूर्ति प्रदान करती है। पीपल केवल नीरोग ही नहीं रखता, दीर्घायु भी बनाता है। यह वृक्ष स्वतः लम्बी आयुवाला है। पक्षी इसके फल खाकर जहाँ कहीं भी जाकर बीट करते हैं, उसमें स्थित पीपलके बीज बिना किसी सहायताके वहाँ उग आते हैं। पीपलके पञ्चाङ्ग (जड़, डंठल, छाल, फल तथा शाखा)-का यथोचित सेवन अत्यन्त लाभप्रद है।

पीपलके वृक्षकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्तरिक्ष एवं पृथ्वीके बीचकी सभी विषैली गैसोंको शुद्ध करके वायुमण्डलमें ऑक्सीजन छोड़ता है। दमा एवं तपेदिकके रोगियोंको पीपलके नीचे रहनेकी सलाह दी जाती है। पीपलवृक्ष कितना ही सघन क्यों न हो जाय, सूर्यकी किरणोंको ठंडा करके धरतीतक आने देता है। पीपलके नीचे दिनमें कभी भी अँधेरा नहीं रहता।

वेदमें पीपलको अमृतमय माना गया है। '**तत्रामृतस्य चक्षणम्**' अर्थात् पीपलका विधिवत् सेवन करनेसे अमृतप्राप्ति होती है। जहाँ पीपल होता है वहाँ शिवलिङ्गकी स्थापना की जाती है, यह परम्परा सदियोंसे चली आ रही है। विद्वान् कहते हैं कि पीपल एवं शिवकी तरह सभी मनुष्योंको समाज और राष्ट्रके लिये कल्याणकारी एवं उपयोगी होना चाहिये। वेदने बताया है कि कुष्ठ (चर्मविकार और फोड़े-फुंसी)-से मुक्तिके लिये पीपलकी उपासना करनी चाहिये।

पीपल कर्मयोगकी भी शिक्षा देता है। पीपलके पत्ते तब भी हिलते रहते हैं जब अन्य पेड़ोंके पत्ते नहीं हिलते। इसी कारण पीपलका एक नाम 'चलपत्र' है अर्थात् जिसके पत्ते लगातार स्पन्दित एवं वायुसे तरंगित होते रहते हैं। पीपलके पत्तोंका रस, कोंपलें और नर्म शाखाएँ घोंट-पीसकर सेवन करनेसे वे तुरंत नीरोग करते हैं, पाचनमें हलके होते हैं एवं सब मौसममें सबके लिये अनुकूल हैं। नवजात शिशुसे लेकर वृद्धोंतकके लिये पीपल हितकारी है। श्वास, दमा, तपेदिक, ब्रोंकाइटिस और डिप्थीरियाके रोगियोंके लिये तो पीपल भगवान्‌का दिया हुआ वरदान है।

यूनानी चिकित्सा-पद्धतिने भी पीपलके महत्त्वको अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत किया है। पीपलके किस अङ्ग अर्थात् जड़, छाल, पत्ते, फल, डंठलका किस विधिसे किस रोगमें प्रयोग करें—इसका उल्लेख आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें विस्तारसे मिलता है। आयुर्वेदके अनुसार अश्वत्थ मधुर, कषाय और शीतल है। इसके फलके सेवनसे रक्त-पित्त, विषदाह, शोथ एवं अरुचि आदि दूर होते हैं। इस वृक्षकी कोमल छाल एवं पत्तेकी कली पुरातन प्रमेहरोगमें अत्यन्त लाभप्रद है। पीपलके फलका चूर्ण अत्यन्त क्षुधावर्धक है।

अश्वत्थवृक्षका रोपण करनेवाले व्यक्तिकी वंश-परम्परा कभी समाप्त नहीं होती, अपितु अक्षय रहती है। इसके आरोपणसे ऐश्वर्य एवं दीर्घायुकी प्राप्ति होती है तथा पितृगण नरकसे छूटकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं—

अश्वत्थः स्थापितो येन तत्कुलं स्थापितं ततः।
धनायुषां समृद्धिस्तु पितॄन् क्लेशात् समुद्धरेत्॥

इस प्रकार पीपल धार्मिक, आयुर्वेदिक एवं सामाजिक सभी दृष्टिकोणोंसे भारतीय जनमानसके लिये आराध्य, वन्द्य एवं सेव्य है।

सहिजन एक अमूल्य औषधि

(डॉ० श्रीविजयकुमारजी पाठक, बी०ए०एम०एस०)

सहिजन सम्पूर्ण भारतमें पाया जानेवाला एक वृक्ष- विशेष है। इसकी फली सब्जीके रूपमें प्रयुक्त होती है। इसे शोभांजन, शिग्रु, कृष्णबीज, सजिना, साजना, सुरजना, सुलजना, सेजना, सैजना, सरगनो, सरगवो, सेक्टो, शेवगा, मुआ, मरुगाई, बड़ा डिसिंग, मूँगा चेझाड़, सरागू, मुरंगाई, विद्रधिनाशन, स्त्रीचितहारी तथा इंडियन हार्स रैडिशके नामसे जाना जाता है।

आयुर्वेदके अनुसार इसका रस मधुर-कटु तथा गुण पाचक, अनुलोमक, शुक्रवर्धक, रुचिकारक, वातघ्न, नेत्रशोधक, कृमिघ्न, मेदघ्न, शोथहर, वेदनाशामक, गण्डमाला, व्रण तथा विद्रधिनाशक है।

वैसे तो इसके सभी अङ्ग उपयोगमें लिये जाते हैं, परंतु विशेषरूपसे इसकी नरम फली उदर एवं वात-रोगोंमें, पत्ती नेत्ररोग एवं रतौंधीमें, फूल उदरशूल, निर्बलता, कफवात आदिके रोगोंमें तथा मूल और छाल अन्तर्विद्रधि, गृध्रसी, दमा, सूजन, पथरी, जलोदर, यकृत्, तिल्ली (प्लीहा), शोथ, गठिया, अर्धांगवात आदिमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

सहिजनके दो विशिष्ट अनुभूत प्रयोग

१-सहिजनकी छालका स्वरस (ताजा रस) आधा छटाक (३० मि०ली०), शहद आधा चम्मच, मकरध्वज $^{1}/_{4}$ रत्ती—इन सभीको मिलाकर सायं-प्रातः खाली पेट लेनेसे अनेक वातज तथा कफज रोग एवं विद्रधि नष्ट होती है। इसका प्रयोग कम-से-कम पंद्रह दिनतक करना चाहिये।

यदि कैंसरपर इसका प्रयोग किया जाय तो लाभकी सम्भावना हो सकती है।

२-सहिजनके जड़की अन्तश्छाल आधा पाव (१०० ग्राम)-को आधा सेर जलमें एक या दो घंटे डालकर अच्छी तरह मसलकर आँचपर रख दे। आठवाँ भाग शेष बचनेपर अच्छी तरह मसलकर छान ले। उसमें अजवाइन ४ रत्ती, सोंठ ४ रत्ती, हींग १ रत्ती डालकर शीतल होनेपर पीये।

इससे गृध्रसी मात्र तीन दिनोंमें तथा गठिया वात, पक्षाघात, अर्धाङ्गवात एवं अन्य वातज रोग पंद्रह दिनोंमें नष्ट हो सकते हैं।

इसका सेवन दोनों समय (प्रातः-सायं) खाली पेट करना चाहिये।

उपर्युक्त दोनों प्रयोगोंमें पथ्य तथा अपथ्य वातरोगके अनुसार करना चाहिये।

स्वास्थ्योपयोगी मेथी

(श्रीहरीरामजी सैनी)

आहारमें हरी सब्जियोंका विशेष महत्त्व है। आधुनिक विज्ञानके मतानुसार हरे पत्तोंवाली सब्जियोंमें क्लोरोफिल नामक तत्त्व रहता है, जो कीटाणुओंका नाशक है। दाँत एवं मसूड़ोंमें सड़न उत्पन्न करनेवाले जन्तुओंको यह 'क्लोरोफिल' नष्ट करता है। इसके अलावा इनमें प्रोटीन तत्त्व भी पाया जाता है। हरी सब्जियोंमें लौह तत्त्व भी काफी मात्रामें पाया जाता है, जो पाण्डुरोग (रक्ताल्पता) तथा शारीरिक कमजोरीको नष्ट करता है। हरी सब्जियोंमें स्थित क्षार रक्तकी अम्लताको घटाकर उसका नियमन करता है।

हरी सब्जियोंमें मेथीकी भाजीका प्रयोग भारतके प्रायः सभी भागोंमें बहुलतासे होता है। इसे सुखाकर भी उपयोगमें लिया जाता है। इसके अलावा मेथी-दानोंका प्रयोग बघारके रूपमें तथा कई औषधियोंके रूपमें किया जाता है।

वैसे तो मेथी प्रायः हर समय उगायी जा सकती है, फिर भी मार्गशीर्षसे फाल्गुन महीनेतक ज्यादा उगायी जाती है। कोमल पत्तेवाली मेथी कड़वी कम होती है।

मेथीकी भाजी तीखी, कड़वी, रूक्ष, गरम, पित्तवर्धक, अग्निदीपक (भूखवर्धक), पचनेमें हलकी, मलावरोधको

दूर करनेवाली, हृदयके लिये हितकर एवं बलप्रद होती है। सूखी मेथीके बीजोंकी अपेक्षा मेथीकी भाजी कुछ ठंडी, पाचनकर्त्री, वायुकी गति ठीक रखनेवाली तथा प्रसूता स्त्रियों, वायुदोषके रोगियों एवं कफके रोगियोंके लिये अत्यन्त हितकारी है। यह बुखार, अरुचि, उलटी, खाँसी, वातरोग (गाउट), वायु, कफ, बवासीर, कृमि तथा क्षयका नाश करनेवाली है। मेथी पौष्टिक एवं रक्तको शुद्ध करनेवाली है। यह शूल, वायुगोला, सन्धिवात, कमरके दर्द, पूरे शरीरके दर्द, मधुप्रमेह एवं निम्न रक्तचापको मिटानेवाली है। मेथी माताका दूध बढ़ाती है। आमदोषको मिटाती है एवं शरीरको स्वस्थ बनाती है।

औषधिप्रयोग

(१) **क़ब्ज़ियत**—कफदोषसे उत्पन्न क़ब्ज़ियतमें मेथीकी रेशेवाली सब्जी रोज खानेसे लाभ होता है।

(२) **बवासीर**—प्रतिदिन मेथीकी सब्जीका सेवन करनेसे वायु, कफ एवं बवासीरमें लाभ होता है।

(३) **बहुमूत्रता**—जिसे एकाध घंटेमें बार-बार मूत्रत्यागके लिये जाना पड़ता हो अर्थात् बहुमूत्रताका रोग हो, उसे मेथीकी भाजीके १०० मिलीलीटर रसमें डेढ़ ग्राम कत्था तथा तीन ग्राम मिस्री मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिये। इससे लाभ होता है।

(४) **मधुप्रमेह**—प्रतिदिन सुबह मेथीकी भाजीका १०० मिलीलीटर रस पी जाय। शक्करकी मात्रा ज्यादा हो तो सुबह-शाम दो बार रस पीये। साथ ही भोजनमें रोटी-चावल एवं चिकनी (घी-तेलयुक्त) तथा मीठी चीजोंको छोड़ दे, शीघ्र लाभ होता है।

(५) **निम्न रक्तचाप**—जिन्हें निम्न रक्तचापकी तकलीफ हो, उन्हें मेथीकी भाजीमें अदरक, गरम मसाला इत्यादि डालकर सेवन करना लाभप्रद है।

(६) **कृमि**—बच्चोंके पेटमें कृमि हो जानेपर उन्हें भाजीका १-२ चम्मच रस रोज पिलानेसे लाभ होता है।

(७) **वायुका दर्द**—रोज हरी अथवा सूखी मेथीका सेवन करनेसे शरीरके ८० प्रकारके वायु-रोगोंमें लाभ होता है।

(८) **आँव होनेपर**—मेथीकी भाजीके ५० मि०ली० रसमें ६ ग्राम मिस्री डालकर पीनेसे लाभ होता है। ५ ग्राम मेथीका पाउडर १०० ग्राम दहीके साथ सेवन करनेसे भी लाभ होता है। दही खट्टा नहीं होना चाहिये।

(९) **वायुके कारण होनेवाले हाथ-पैरके दर्दमें**—मेथीके बीजोंको घीमें सेंककर उसका चूर्ण बनाये एवं उसके लड्डू बनाकर प्रतिदिन एक लड्डूका सेवन करनेसे लाभ होता है।

(१०) **गर्मीमें लू लगनेपर**—मेथीकी सूखी भाजीको ठंडे पानीमें भिगोये। अच्छी तरह भीग जानेपर मसलकर छान ले एवं उस पानीमें शहद मिलाकर एक बार पिलाये, लूमें लाभ होता है।

मेथीपाक

शीत-ऋतुमें विभिन्न रोगोंसे बचनेके लिये एवं शरीरकी पुष्टिके लिये मेथीपाकका प्रयोग किया जाता है।

विधि—मेथी एवं सोंठ ३२५-३२५ ग्रामकी मात्रामें लेकर दोनोंका कपड़छान चूर्ण कर ले। सवा पाँच लीटर दूधमें ३२५ ग्राम घी डाले। उसमें यह चूर्ण मिला दे। यह सब एकरस होकर जबतक गाढ़ा न हो जाय, तबतक उसे पकाये। उसके पश्चात् उसमें ढाई किलो शक्कर डालकर फिरसे धीमी आँचपर पकाये।

अच्छी तरह पाक तैयार हो जानेपर नीचे उतार ले, फिर उसमें लैंडीपीपर, सोंठ, पीपरामूल, चित्रक, अजवायन, जीरा, धनिया, कलौंजी, सौंफ, जायफल, दालचीनी, तेजपत्र एवं नागरमोथा—ये सभी ४०-४० ग्राम एवं काली मिर्चका ६० ग्राम चूर्ण डालकर मिला दे। शक्तिके अनुसार सुबह खाये।

यह पाक आमवात, अन्य वातरोग, विषमज्वर, पाण्डुरोग, पीलिया, उन्माद, अपस्मार (मिरगी), प्रमेह, वातरक्त, अम्लपित्त, शिरोरोग, नासिकारोग, नेत्ररोग, प्रदररोग आदि सभीमें लाभदायक है। यह शरीरके लिये पुष्टिकारक, बलकारक एवं वीर्यवर्धक भी है।

पुनर्नवा

पुनर्नवा, साटी या विषखपराके नामसे विख्यात यह वनस्पति वर्षा-ऋतुमें बहुतायतसे पायी जाती है। शरीरकी आन्तरिक एवं बाह्य सूजनको दूर करनेके लिये यह अत्यन्त उपयोगी है।

यह तीन प्रकारकी होती है—सफेद, लाल एवं काली। काली पुनर्नवा प्रायः देखनेमें नहीं आती। पुनर्नवाकी सब्जी शोथ (सूजन)-नाशक, मूत्रल तथा स्वास्थ्यवर्द्धक है।

पुनर्नवा कड़वी, उष्ण, तीखी, कसैली, रुच्य, अग्निदीपक, रूक्ष, मधुर, खारी, सारक, मूत्रल एवं हृदयके लिये लाभदायक है। यह पाण्डुरोग, विषदोष एवं शूलका भी नाश करती है।

पुनर्नवा—औषधीय प्रयोग

(१) नेत्रोंकी फूली—पुनर्नवाकी जड़को घीमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे लाभ होता है।

(२) नेत्रोंकी खुजली (अक्षिकण्डू)—पुनर्नवाकी जड़को शहद अथवा दूधमें घिसकर आँजनेसे लाभ होता है।

(३) नेत्रोंसे पानी गिरना (अक्षिस्त्राव)—पुनर्नवाकी जड़को शहदमें घिसकर आँखोंमें लगाना लाभदायक है।

(४) रतौंधी—पुनर्नवाकी जड़को कांजीमें घिसकर आँखोंमें आँजना लाभकारी है।

(५) खूनी बवासीर—पुनर्नवाकी जड़को हल्दीके काढ़ेमें देनेसे लाभ होता है।

(६) पीलिया (Jaundice)—पुनर्नवाके पञ्चाङ्गको शहद एवं मिस्रीके साथ ले अथवा उसका रस या काढ़ा पिये।

(७) मस्तक-रोग एवं ज्वर-रोग—पुनर्नवाके पञ्चाङ्गका २ ग्राम चूर्ण, १० ग्राम घी एवं २० ग्राम शहदमें प्रातः-सायं खानेसे लाभ होता है।

(८) जलोदर—पुनर्नवाकी जड़के चूर्णको शहदके साथ खानेसे लाभ होता है।

(९) सूजन—पुनर्नवाकी जड़का काढ़ा पीने एवं सूजनपर लेप करनेसे लाभ होता है।

(१०) पथरी—पुनर्नवाको दूधमें उबालकर सुबह-शाम पीना चाहिये।

(११) विष—(क) चूहेका विष—सफेद पुनर्नवा-मूलका २-२ ग्राम चूर्ण आधे ग्राम शहदके साथ दिनमें दो बार लेनेसे लाभ होता है।

(ख) पागल कुत्तेका विष—सफेद पुनर्नवाके मूलका रस २५ से ५० ग्राम, २० ग्राम घीमें मिलाकर रोज पिये।

(१२) विद्रधि (फोड़ा)—पुनर्नवाके मूलका काढ़ा पीनेसे कच्चा फोड़ा भी मिट जाता है।

(१३) अनिद्रा—पुनर्नवाके मूलका क्वाथ १०० मिलीलीटर दिनमें दो बार पीनेसे निद्रा अच्छी आती है।

(१४) संधिवात—पुनर्नवाके पत्तोंकी भाजी, सोंठ डालकर खानेसे लाभ होता है।

(१५) विलम्बित प्रसव—मूढगर्भ—थोड़ा तिलका तेल मिलाकर पुनर्नवाके मूलका रस, जननेन्द्रियमें लगानेसे रुका हुआ बच्चा तुरंत बाहर आ जाता है।

(१६) गैस—पुनर्नवाके मूलका चूर्ण २ ग्राम, हींग आधा ग्राम तथा काला नमक एक ग्राम गरम पानीसे ले।

(१७) मूत्रावरोध—पुनर्नवाका ४० मिलीलीटर रस अथवा उतना ही काढ़ा पिये। पेडूपर पुनर्नवाके पत्ते बफाकर बाँधे, १ ग्राम पुनर्नवाक्षार गरम पानीके साथ पीनेसे तुरंत फायदा होता है।

(१८) खूनी बवासीर—पुनर्नवाके मूलको पीसकर फीकी छाछ (२०० मिलीलीटर) या बकरीके दूध (२०० मिलीलीटर)-के साथ पिये।

(१९) वृषण-शोथ—पुनर्नवाका मूल दूधमें घिसकर लेप करनेसे वृषणकी सूजन मिटती है।

(२०) हृदयरोग—हृदयरोगके कारण सूजन हो जाय तो पुनर्नवाके मूलका १० ग्राम चूर्ण और अर्जुनके छालका १० ग्राम चूर्ण २०० मिलीलीटर पानीमें काढ़ा बनाकर सुबह-शाम पीना चाहिये।

(२१) श्वास (दमा)—भोंरगमूल चूर्ण १० ग्राम और पुनर्नवाचूर्ण १० ग्रामको २०० मिलीलीटर पानीमें उबालकर काढ़ा बनाये। जब ५० मिलीलीटर बचे तब उसमें आधा ग्राम शृंगभस्म डालकर सुबह-शाम पिये।

(२२) रसायनप्रयोग—हमेशा स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिये रोज सुबह पुनर्नवाके मूलका या पत्तेका दो चम्मच (१० मिलीलीटर) रस पिये। (ह० सैनी)

दुर्बलतामें उपयोगी है—विधारा

(वैद्य श्रीदिनेशकुमारजी शर्मा 'कीर्त्तनियाँ' बी०ए०, एम्०एस्०, जयपुर)

विधारा सभी स्थानोंपर स्वयं उत्पन्न होता है एवं कई व्यक्ति इसे बगीचोंमें भी लगाते हैं। इसकी बेल वृक्षोंपर चढ़ती है। इसकी जड़ एवं बीजोंका उपयोग औषधिके रूपमें आभ्यन्तर सेवनार्थ किया जाता है। इसके पत्तोंका लेप सूजन एवं घावपर किया जाता है।

आभ्यन्तररूपसे इसका उपयोग दुर्बलता (कमजोरी) और दुर्बलताके कारण होनेवाली वात-व्याधिमें किया जाता है। अश्वगन्धा, शतावरी, सोंठ और गोक्षुरके साथ विधाराका मिश्रण करनेसे वात-व्याधि एवं दुर्बलतामें आशातीत लाभ होता है। खाँसी और क्षयरोगमें वंशलोचन, मुलहठी, दालचीनी, इलायची एवं आँवलेके साथ इसका सेवन उपयोगी है। क्षयरोगमें चिकित्सकके परामर्शानुसार इसका सेवन करना चाहिये।

शुक्र-दौर्बल्य (शुक्रधातुकी कमजोरी)-में भी आँवला, अश्वगन्धा, खरैटी, गोक्षुर, तालमखाना आदिके मिश्रणके साथ इसका उपयोग लाभप्रद है। प्रमेह-रोग (मूत्र-त्याग बार-बार एवं अधिक मात्रामें होना)-में भी विधारा उपयोगी है। प्रदर (श्वेत एवं रक्त)-में पठानीलोध, चन्दन, अशोककी छाल, आँवला, जीरा और मिस्त्रीके साथ इसका सेवन उपयोगी है। स्त्रीके जननाङ्ग, गर्भाशय-शोथमें किसी विश्वसनीय चिकित्सकके परामर्शानुसार इसका सेवन करना चाहिये।

विधारा स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये उपयोगी है। यह औषधि और रसायन (टॉनिक) दोनोंके रूपमें कार्य करता है। भारतीय चिकित्सापद्धति आयुर्वेदके मतानुसार विश्लेषण करनेपर इसका रस कटु, तिक्त, कषाय तथा गुण लघु और स्निग्ध; विपाक मधुर तथा वीर्य उष्ण है। यह वात और कफ़दोषका शमन करनेवाला है।

औषधिके रूपमें इसका सेवन करनेसे पूर्व किसी विश्वसनीय चिकित्सकसे परामर्श अवश्य लेना चाहिये।

सोयाबीन

सोयाबीन एक ऐसा पुष्टिकारक अन्न है, जिसमें प्रोटीन, वसा, श्वेतसार, खनिज, लवण, लौह, विटामिन 'बी' आदि पोषक तत्त्व प्रचुर मात्रामें विद्यमान होते हैं। इसमें मिलनेवाला प्रोटीन किसी भी आमिष-निरामिष पदार्थोंमें पाये जानेवाले प्रोटीनसे उन्नत किस्मका होता है। यह प्रोटीन उच्च कोटिका होनेके साथ ही ३५—४०% तक पाया जाता है। यह बालक, वृद्ध तथा रोगी सभीके लिये हितकर है। इससे क़ब्ज़ और गैसके रोग नहीं होते तथा बालकोंका शारीरिक विकास होता है। इसमें कोलेस्ट्रॉलकी मात्रा भी कम होती है। इसके नियमित प्रयोगसे बल-वीर्यकी वृद्धि होती है। शाकाहारियोंको तो प्रकृतिके इस अनमोल भेंटका अवश्य प्रयोग करना ही चाहिये। इसमें अति गुणकारी तत्त्वोंकी अपेक्षा इसका मूल्य भी काफी सस्ता है। इसके दैनिक उपयोगकी निम्नलिखित विधियाँ हैं—

(१) सोयाबीनका आटा—पानीमें लगभग १० घंटे भिगो दे। फिर सुखाकर चक्कीमें इसका आटा पिसवा ले। इसकी अत्यन्त स्वादिष्ठ रोटी बनती है। स्वादमें गेहूँके आटेसे कुछ अलग होती है। इसके आटेसे अनेक व्यञ्जन तैयार होते हैं। गेहूँके आटेमें मिलाकर इससे रोटी, पराठा, हलवा आदि बनाते हैं। इसके आटेको अधिक दिनतक नहीं रखा जा सकता।

(२) सोयाबीनका दूध-दही—सोयाबीनको लगभग दस घंटे पानीमें भिगो दे। फिर इसे बारीक पीसकर समुचित मात्रामें पानी मिलाये ताकि यह दूध-जैसा हो जाय। इसका स्वाद ठीक करनेके लिये पीसते समय इसमें दो-तीन छोटी इलायची मिला दे तथा दूधको आधे घंटेतक उबाले। गुणकारी और पौष्टिक दूध तैयार हो गया। इस दूधमें जामन डालकर दही भी जमाया जा सकता है।

(३) सोयाबीनका तेल—सरसों तथा मूँगफलीकी तरह सोयाबीनका भी तेल निकाला जाता है। पौष्टिक

होनेके साथ ही अन्य खाद्य तेलोंसे अधिक सस्ता होता है। वनस्पति या सरसोंके तेलके स्थानपर इसका प्रयोग कर सकते हैं। इसका तेल सिरमें लगानेसे बाल काले होते हैं। सोयाबीनके तेलमें कुछ बूँद नीबूका रस मिलाकर लगानेसे मुहाँसे ठीक हो जाते हैं।

(४) सोयाबीनकी बड़ी—सोयाबीनका तेल निकालनेके बाद इसका जो छिलका बचता है, उससे निर्मित बड़ी पौष्टिक होती है। सब्जी, दाल आदिमें डालकर इसको उपयोगमें लाते हैं।

(५) सोयाबीनकी चटनी—भिगोये हुए सोयाबीनमें अनुपातसे नमक-मिर्च इत्यादि डालकर पीस ले। स्वादिष्ठ चटनीके रूपमें इसका प्रयोग कर सकते हैं।

(६) सोयाबीनकी खली—पशुओंको इसकी खली खिलानेसे दूधकी मात्रा बढ़ जाती है। बच्चोंके लिये यह दूध बहुत गुणकारी होता है।

सोयाबीन—सम्पूर्ण संतुलित भोजन

(सुश्रीपूर्णिमा शर्मा)

सोयाबीन बच्चोंके लिये विशेष उपयोगी है। बढ़ती हुई अवस्थामें संतुलित भोजनका विशेष महत्त्व है, जिसमें विभिन्न फलों, सब्जियों आदिसे प्रोटीन तथा विटामिनकी प्राप्ति होती है। इसका अर्थ हुआ हमें संतुलित भोजन प्राप्त करनेके लिये गुणोंके अनुसार अलग-अलग फल तथा सब्जियाँ लेनी होंगी, परंतु सोयाबीनमें ये सभी गुण मौजूद हैं। बच्चोंके लिये यह दूधका विकल्प भी है।

एक महत्त्वपूर्ण जानकारीके मुताबिक यदि किसी बच्चेको गायके दूधकी बजाय सोया-दूध पिलाया जाय तो एक सप्ताहके भीतर कोलेस्ट्राल घटनेका परिणाम स्पष्ट सामने आता है। सोयामें ३२ प्रतिशततक कोलेस्ट्राल घटानेकी क्षमता है। यह एक पोषक भोजन है। इसमें भरपूर विटामिन तथा प्रोटीन मौजूद हैं। साथ ही यह वसारहित भोजन है। कुपोषित भोजनके कारण ही ९० प्रतिशत रोगी गैस, अपच, तनाव, थुलथुलेपन तथा एनीमियाके शिकार देखे जाते हैं। कार्बोहाइड्रेटकी अधिकता चर्बी बढ़ाती है तथा विभिन्न तन्तुओंको नष्ट करती है। जबकि सोयामें कार्बोहाइड्रेटकी अधिकता नहीं होती। इसके विपरीत इसका प्रयोग रक्ताल्पताको दूर रखता है।

आजकल सोयाबीनका प्रयोग बढ़ रहा है। इसका प्रयोग सोयाबीन-तेल, सोया-चटनी, सोया-प्रोटीन आदिके रूपमें किया जा रहा है। इस भोजनको वसारहित भोजन कह सकते हैं।

सोयाबीन रक्तसंचारको संयत रखता है। यह रेशेदार भोजन है, जो पाचनके लिये सर्वोत्तम है। यह वजनको घटाकर शरीरको स्फूर्ति देता है। उच्च रक्तचापवाले रोगीके लिये यह उत्तम भोजन है।

सामान्य रूपसे सोयाबीनके निम्नलिखित लाभ दीखते हैं—

१-यह रक्ताल्पता दूर करता है।

२-पाचनशक्ति बढ़ाता है।

३-क़ब्ज़ दूर करता है।

४-कोलेस्ट्रालकी मात्रा घटाकर हृदयरोगोंको दूर रखता है।

५-वजन घटाकर शरीरको स्फूर्तिदायक बनाता है।

६-शरीरके विभिन्न तन्तुओंके लिये पोषक है।

७-वसारहित होनेके कारण उच्च रक्तचापके रोगियोंके लिये उत्तम है।

८-बच्चोंके दूधका विकल्प है।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते ॥

वायु, मल, मूत्र, जृम्भा, अश्रु, छींक, उद्गार, वमन, इन्द्रिय (शुक्र) इनके उपस्थित वेगोंको रोकनेसे उदावर्त्त उत्पन्न होता है।

दैनिक जीवनमें उपयोगी—'पुदीना'

(श्रीप्रबलकुमारजी सैनी)

पुदीना एक सुगन्धित एवं उपयोगी औषधि है। आयुर्वेदके मतानुसार यह स्वादिष्ठ, रुचिकर, पचनेमें हलका, तीक्ष्ण, तीखा, कड़वा, पाचनकर्ता और उल्टी मिटानेवाला, हृदयको उत्तेजित करनेवाला, विकृत कफको बाहर लानेवाला तथा गर्भाशय-संकोचक एवं चित्तको प्रसन्न करनेवाला, जख्मोंको भरनेवाला और कृमि, ज्वर, विष, अरुचि, मन्दाग्नि, अफरा, दस्त, खाँसी, श्वास, निम्न रक्तचाप, मूत्राल्पता, त्वचाके दोष, हैजा, अजीर्ण, सर्दी-जुकाम आदिको मिटानेवाला है।

पुदीनामें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। इसमें रोगप्रतिकारक शक्ति उत्पन्न करनेकी अद्भुत सामर्थ्य है एवं पाचक रसोंको उत्पन्न करनेकी भी क्षमता है। पुदीनामें अजवायनके सभी गुण पाये जाते हैं।

पुदीनाके बीजसे निकलनेवाला तेल स्थानिक ऐनेस्थेटिक, पीडानाशक एवं जन्तुनाशक होता है। इसके तेलकी सुगन्धसे मच्छर भाग जाते हैं।

विशेष—पुदीनाका ताजा रस लेनेकी मात्रा है पाँचसे बीस ग्राम तथा इसके पत्तोंके चूर्णको लेनेकी मात्रा तीनसे छः ग्राम, काढ़ा लेनेकी मात्रा दससे चालीस ग्राम और अर्क लेनेकी मात्रा दससे चालीस ग्राम तथा बीजका तेल लेनेकी मात्रा आधी बूँदसे तीन बूँद है।

औषधिके रूपमें प्रयोग

(१) **मलेरिया**—पुदीना एवं तुलसीके पत्तोंका काढ़ा बनाकर सुबह-शाम लेनेसे अथवा पुदीना एवं अदरकका रस एक-एक चम्मच सुबह-शाम लेनेसे लाभ होता है।

(२) **वायु एवं कृमि**—पुदीनाके दो चम्मच रसमें एक चुटकी काला नमक डालकर पीनेसे गैस तथा वायु एवं पेटके कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(३) **पुराना सर्दी-जुकाम एवं न्यूमोनिया**—पुदीनाके रसकी दो-तीन बूँदें नाकमें डालने एवं पुदीना तथा अदरकके एक-एक चम्मच रसमें शहद मिलाकर दिनमें दो बार पीनेसे लाभ होता है।

(४) **अनार्तव—अल्पार्तव**—मासिक धर्म न आनेपर या कम आनेपर अथवा वायु एवं कफदोषके कारण बंद हो जानेपर पुदीनाके काढ़ेमें गुड़ एवं चुटकीभर हींग डालकर पीनेसे लाभ होता है। इससे कमरकी पीडामें भी आराम होता है।

(५) **आँतका दर्द**—अपच, अजीर्ण, अरुचि, मन्दाग्नि, वायु आदि रोगोंमें पुदीनाके रसमें शहद डालकर ले अथवा पुदीनाका अर्क ले।

(६) **दाद**—पुदीनाके रसमें नीबू मिलाकर लगानेसे दाद मिट जाती है।

(७) **उल्टी-दस्त, हैजा**—पुदीनाके रसमें नीबूका रस, अदरकका रस एवं शहद मिलाकर पिलाने अथवा अर्क देनेसे ठीक हो जाता है।

(८) **बिच्छूका दंश**—पुदीनाका रस दंशवाले स्थानपर लगाये एवं उसके रसमें मिस्री मिलाकर पिलाये। यह प्रयोग तमाम जहरीले जन्तुओंके दंशके उपचारमें काम आ सकता है।

(९) **हिस्टीरिया**—रोज पुदीनाका रस निकालकर उसे थोड़ा गरम करके सुबह-शाम नियमितरूपसे देनेपर लाभ होता है।

(१०) **मुख-दुर्गन्ध**—पुदीनाके रसमें पानी मिलाकर अथवा पुदीनाके काढ़ेका घूँट मुँहमें भरकर रखे, फिर उगल दे। इससे मुख-दुर्गन्धका नाश होता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः। तस्मादारोग्यदानेन तद्दत्तं स्याच्चतुष्टयम्।

(स्कन्दपुराण)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन (चतुर्विध पुरुषार्थों)-का साधन (शरीरका) आरोग्य होनेसे आरोग्यदान करनेपर रोगीको (पुरुषार्थ-) चतुष्टयका दान होता है।

मूली—अल्पमोली, किंतु बहुगुणी

(धर्मरत्न डॉ० श्रीपुरुषोत्तमदासजी कानुगो)

मूली भोजनका एक आवश्यक घटक है। यह जितनी गुणकारी है, उतनी ही जिह्वाको रससिक्त करनेमें महत्त्वपूर्ण है। जड़से लेकर पत्तेतक मूलीका कोई भी भाग वर्ज्य नहीं है। मूली चटपटी, गरम, रुचिकारक, पाचक और हल्की है। इसके गुण त्रिदोषनाशक तो हैं ही; श्वास, कण्ठरोग, स्वररोग, नेत्ररोगमें भी यह लाभकारी है। यह कृमिनाशक, भूख प्रदीप्त करनेवाली, अरुचिहर, वातरोगनाशक तथा हृद्य है। बवासीरकी तो यह उत्तम औषधि है। इससे मूत्रविकार नष्ट होता है। इसे भोजनके साथ ही खाना अच्छा है। बड़ी मूलीके बजाय छोटी मूली ही औषधिदृष्ट्या अधिक उपयोगी है।

मूलीका रस और गायका घी दो-दो तोला मात्रामें मिलाकर चाटनेसे बवासीरमें लाभ होता है। मूलीको पीसकर इसकी लुगदीको पुलटिसकी तरह बवासीर (बादी)-के मस्सेपर रखकर कपड़ेसे कसकर बाँध ले और थोड़ी देर बाद कपड़ा गरमकर इसपर सेंके। मूलीको सलादके रूपमें खाये और मूलीके पत्तोंको शाक बनाकर खाये।

मूलीके बीज चार चम्मच मात्रामें लेकर दो कप पानीमें डालकर उबाले। जब आधा कप बचे, तब उतारकर छान ले और पी जाये। कुछ दिनतक सेवन करनेसे मूत्राशयकी पथरी गलकर निकल जाती है।

अम्लपित्त (हायपरएसिडिटी)-को दूर करनेके लिये ताजी तथा नरम मूलीके टुकड़े पीसी हुई मिस्रीके साथ खानेसे लाभ होता है। पीलिया (जॉण्डिस) और यकृत्-रोगोंमें कच्ची मूलीका नियमित सेवन करना चाहिये, इससे मूत्रद्वारा शरीरके विजातीय द्रव्य तथा विषाणु धीरे-धीरे उत्सर्ग होकर आँखोंका रंग और शरीरके त्वचाका वर्ण पूर्वरूपपर आ जाता है।

मूलीके बीज पाँच ग्राम मात्रामें खूब महीन पीसकर एक गिलास पानीमें घोलकर छान ले। इसमें दो चम्मच मूलीका ताजा रस मिलाकर पीनेसे और सुबह-दोपहर-शाम सिस्टोन नामक गोलियाँ दो-दो लेनेसे पेशाबकी जलन, रुकावट और मूत्रमार्गकी व्याधियाँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं।

अजीर्णके लिये तो मूलीका विशेष महत्त्व है। सलादमें इसका नित्य सेवन करे तो अजीर्ण होगा ही नहीं और होगा तो ठीक हो जायगा। नमकका मिश्रण करनेसे सलादकी रुचि द्विगुणित होती है। पके टमाटर, मूली तथा ककड़ीका मिश्रित सलाद स्वादिष्ठ, रुचिकर, सस्ता, पाचक और पौष्टिक होता है। अनेक प्रकारके उदरके रोग और उसके कष्टोंसे यदि छुटकारा पाना चाहते हैं तो चटपटे, जायकेदार, आकर्षक मूलीयुक्त सलादको अपनाइये। अपने देशकी मिट्टीमें उगी प्राकृतिक चीजें अपनाइये और फिर उनके चमत्कारोंका प्रभाव देखिये।

अत्यन्त गुणकारी है—मूली

(श्रीमती कमला शर्मा)

आजके युगमें मनुष्य अस्पतालों तथा अंग्रेजी दवाइयोंकी दुनियामें इतना खो गया है कि उसे अपने आसपास बहुतायतमें उपलब्ध होनेवाली उन शाक-सब्जियोंकी ओर ध्यान देनेका समय ही नहीं मिलता, जो बिना किसी हानिके हमारी अनेक बीमारियोंको निर्मूल करनेमें सक्षम हैं। प्रकृति हमारे लिये शीत-ऋतुमें इस प्रकारकी शाक-सब्जियाँ उदारतापूर्वक उत्पन्न करती है। इन्हींमें एक विशेष उपयोगी वस्तु है मूली।

मूलीमें प्रोटीन, कैल्सियम, गन्धक, आयोडीन तथा लौहतत्त्व पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होते हैं। इसमें सोडियम, फास्फोरस, क्लोरीन तथा मैग्नीशियम भी हैं। मूली विटामिन 'ए' का खजाना है। विटामिन 'बी' और 'सी' भी इसमें प्राप्त होते हैं। हम जिसे मूलीके रूपमें जानते हैं, वह धरतीके नीचे पौधेकी जड़ होती है। धरतीके ऊपर रहनेवाले पत्ते मूलीसे भी अधिक पोषक तत्त्वोंसे भरपूर होते हैं। सामान्यतः हम मूलीको खाकर

उसके पत्तोंको फेंक देते हैं, यह गलत है, ऐसा नहीं करना चाहिये। मूलीके साथ ही उसके पत्तोंका भी सेवन करना चाहिये। मूलीके पौधेमें आनेवाली फलियाँ—मोगर भी समानरूपसे उपयोगी और स्वास्थ्यवर्धक हैं। सामान्यत: लोग मोटी मूली पसंद करते हैं। कारण उसका अधिक स्वादिष्ठ होना है। परंतु स्वास्थ्य तथा उपचारकी दृष्टिसे छोटी-पतली और चरपरी मूली ही उपयोगी है। ऐसी मूली त्रिदोष (वात, पित्त और कफ)-नाशक है। इसके विपरीत मोटी और पक्की मूली त्रिदोषकारक मानी गयी है।

उपयोगिताकी दृष्टिसे मूली बेजोड़ है। अनेक छोटी-बड़ी व्याधियाँ मूलीसे ठीक की जा सकती हैं। मूलीका रंग सफेद है, परंतु यह शरीरको लालिमा प्रदान करती है। भोजनके साथ या भोजनके बाद मूली खाना विशेषरूपसे लाभदायक है। मूली और इसके पत्ते भोजनको ठीक प्रकारसे पचानेमें सहायता करते हैं। वैसे तो मूलीके पराठे, रायता, तरकारी, अचार तथा भुजिया-जैसे अनेक स्वादिष्ठ व्यञ्जन बनते हैं। परंतु सबसे अधिक लाभदायक है कच्ची मूली। भोजनके साथ प्रतिदिन एक मूली खा लेनेसे व्यक्ति अनेक बीमारियोंसे मुक्त रह सकता है।

मूली शरीरसे विषैली गैस (कार्बनडाइ आक्साइड)-को निकालकर जीवनदायी ऑक्सीजन प्रदान करती है। मूली हमारे दाँतोंको मजबूत करती है तथा हड्डियोंको शक्ति प्रदान करती है। इसके सेवनसे व्यक्तिकी थकान मिटती है और अच्छी नींद आती है। मूलीसे पेटके कीड़े नष्ट होते हैं तथा यह पेटके घावको ठीक करती है। यह उच्च रक्तचापको नियन्त्रित करती तथा बवासीर और हृदयरोगको शान्त करती है। इसका ताजा रस पीनेसे मूत्रसम्बन्धी रोगोंमें राहत मिलती है। पीलिया रोगमें भी मूली लाभ पहुँचाती है। अफरेमें मूलीके पत्तोंका रस विशेषरूपसे उपयोगी होता है।

मनुष्यका मोटापा अनेक बीमारियोंकी जड़ है। इससे बचनेके लिये मूली बहुत लाभदायक है। इसके रसमें थोड़ा नमक और नीबूका रस मिलाकर नियमित पीनेसे मोटापा कम होता है और शरीर सुडौल बन जाता है। पानीमें मूलीका रस मिलाकर सिर धोनेसे जुएँ नष्ट हो जाते हैं। विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रामें होनेसे मूलीका रस नेत्रकी ज्योति बढ़ानेमें भी सहायक होता है। मूलीका नियमित सेवन पौरुषमें वृद्धि करता है, गर्भपातकी आशंकाको समाप्त करता है और शरीरके जोड़ोंकी जकड़नको दूर करता है।

मूली सौन्दर्यवर्धक भी है। इसके प्रतिदिन सेवनसे रंग निखरता है, खुश्की दूर होती है, रक्त शुद्ध होता है और चेहरेकी झाइयाँ, कील तथा मुँहासे आदि साफ होते हैं। नीबूके रसमें मूलीका रस मिलाकर चेहरेपर लगानेसे चेहरेका सौन्दर्य निखरता है। सर्दी-जुकाम तथा कफ—खाँसीमें भी मूली फायदा पहुँचाती है। इन रोगोंमें मूलीके बीजका चूर्ण विशेष लाभदायक होता है। मूलीके बीजोंको उसके पत्तोंके रसके साथ पीसकर यदि लेप किया जाय तो अनेक चर्मरोगोंसे मुक्ति मिल सकती है। मूलीके रसमें तिल्लीका तेल मिलाकर और उसे हलका गर्म करके कानमें डालनेसे कर्णनाद, कानका दर्द तथा कानकी खुजली ठीक होती है। मूलीके पत्ते चबानेसे हिचकी बंद हो जाती है। मूलीके सेवनसे अन्य अनेक रोगोंमें भी लाभ मिलता है। जैसे—

१-मूली और इसके पत्ते तथा जिमीकंदके कुछ टुकड़े एक सप्ताहतक काँजीमें डाले रखने तथा उसके बाद उसके सेवनसे बढ़ी हुई तिल्ली ठीक होती है और बवासीरका रोग नष्ट हो जाता है। हल्दीके साथ मूली खानेसे भी बवासीरमें लाभ होता है।

२-मूलीके पत्तोंके चार तोले रसमें तीन माशा अजमोदका चूर्ण और चार रत्ती जोखार मिलाकर दिनमें दो बार नियमित एक सप्ताहतक लेनेपर गुर्देकी पथरी गल जाती है।

३-एक कप मूलीके रसमें एक चम्मच अदरकका और एक चम्मच नीबूका रस मिलाकर नियमित सेवन करनेसे भूख बढ़ती है तथा पेटसम्बन्धी सभी रोग नष्ट होते हैं।

४-मूलीके रसमें समान मात्रामें अनारका रस मिलाकर पीनेसे रक्तमें हीमोग्लोबिन बढ़ता है और रक्ताल्पताका रोग दूर हो जाता है।

५-सूखी मूलीका काढ़ा बनाकर उसमें जीरा और नमक डालकर पीनेसे खाँसी और दमामें राहत मिलती है।

गाजर

गाजरको उसके प्राकृतिक रूपमें ही अर्थात् कच्चा खानेसे ज्यादा लाभ होता है। उसके भीतरका पीला भाग नहीं खाना चाहिये; क्योंकि वह अत्यधिक गरम होता है। अत: पित्तदोष, वीर्यदोष एवं छातीमें दाह उत्पन्न करता है।

गाजर स्वादमें मधुर, कसैली, कड़वी, तीक्ष्ण, स्निग्ध, उष्णवीर्य, गरम, दस्तको बाँधनेवाली, मूत्रल, हृदयके लिये हितकर, रक्तको शुद्ध बनानेवाली, कफ निकालनेवाली, वातदोषनाशक, पुष्टिवर्धक तथा दिमाग एवं नस-नाडियोंके लिये बलप्रद है। यह अफारा, बवासीर, पेटके रोगों, सूजन, खाँसी, पथरी, मूत्रदाह, मूत्राल्पता तथा दुर्बलताका नाश करनेवाली है।

गाजरके बीज गरम होते हैं, अत: गर्भवती महिलाओंको उनका उपयोग नहीं करना चाहिये। बीज पचनेमें भारी होते हैं। कैल्सियम एवं केरोटीनकी प्रचुर मात्रा होनेके कारण छोटे बच्चोंके लिये यह एक उत्तम आहार है। गाजरमें आँतोंके हानिकारक जन्तुओंको नष्ट करनेका अद्भुत गुण है। इसमें विटामिन 'ए' भी काफी मात्रामें पाया जाता है। अत: यह नेत्ररोगमें भी लाभदायक है।

गाजर रक्त शुद्ध करनेवाली है। १०-१५ दिन केवल गाजरके रसपर रहनेसे रक्तविकार, गाँठ, सूजन एवं पाण्डुरोग-जैसे त्वचाके रोगोंमें लाभ होता है। इसमें लौहतत्त्व भी प्रचुरतामें पाया जाता है। खूब चबा-चबाकर खानेसे दाँत मजबूत, स्वच्छ एवं चमकीले होते हैं तथा मसूढ़े मजबूत होते हैं।

विशेष—गाजरके भीतरका पीला भाग खानेसे, ज्यादा गाजर खानेके बाद ३० मिनटके अंदर पानी पीनेसे खाँसी आने लगती है। अत्यधिक गाजर खानेसे पेटमें दर्द होता है। ऐसे समयमें थोड़ा गुड़ खायें। पित्तप्रकृतिके लोगोंको गाजरका सावधानीपूर्वक उपयोग करना चाहिये।

औषधिप्रयोग

दिमागी कमजोरी—गाजरके रसका नित्य सेवन करनेसे दिमागी कमजोरी दूर होती है।

दस्त—गाजरका सूप दस्त होनेपर लाभदायक होता है।

सूजन—इसके रोगीको सब आहार त्यागकर केवल गाजरका रस अथवा उबली हुई गाजरपर रहनेसे लाभ होता है।

मासिक न दिखनेपर या कष्टार्तव—मासिक कम आनेपर या समयसे न आनेपर गाजरके ५ ग्राम बीजोंका २० ग्राम गुड़के साथ काढ़ा बनाकर लेनेसे लाभ होता है।

पुराने घाव—गाजरको उबालकर उसकी पुलटिस बनाकर घावपर लगानेसे लाभ होता है।

खाज—गाजरको कद्दूकस करके अथवा बारीक पीसकर उसमें थोड़ा नमक मिला ले और गरम करके खाजपर रोज बाँधनेसे लाभ होता है।

आधासीसी—गाजरके पत्तोंपर दोनों ओर शुद्ध घी लगाकर उन्हें गरम करे। फिर उनका रस निकालकर २-३ बूँदें कान एवं नाकमें डाले। इससे आधासीसीका दर्द मिटता है।

श्वास-हिचकी—गाजरके रसकी ४-५ बूँदें दोनों नथुनोंमें डालनेसे लाभ होता है।

नेत्ररोग—दृष्टिमन्दता, रतौंधी, पढ़ते समय आँखोंमें तकलीफ होना आदि रोगोंमें कच्ची गाजर या उसके रसका सेवन लाभप्रद है। यह प्रयोग चश्मेका नंबर घटा सकता है।

पाचनसम्बन्धी गड़बड़ी—अरुचि, मन्दाग्नि, अपच आदि रोगोंमें गाजरके रसमें नमक, धनिया, जीरा, काली मिर्च, नीबूका रस डालकर पीये अथवा गाजरका सूप बनाकर पीनेसे लाभ होता है।

पेशाबकी तकलीफ—गाजरका रस पीनेसे पेशाब आता है। रक्तशर्करा भी कम होती है। गाजरका हलवा खानेसे पेशाबमें कैल्सियम, फास्फोरसका आना बंद हो जाता है।

नकसीर फूटना—ताजे गाजरका रस अथवा उसकी लुगदी सिरपर एवं ललाटपर लगानेसे लाभ होता है।

जलनेपर—जलनेसे होनेवाले दाहमें प्रभावित अङ्गपर बार-बार गाजरका रस लगानेसे लाभ होता है।

हृदयरोग—हृदयकी कमजोरी अथवा धड़कनें बढ़

जानेपर लाल गाजरको भून ले या उबाल ले। फिर उसे रातभरके लिये खुले आकाशमें रख दे, सुबह उसमें मिस्री तथा केवड़े या गुलाबका अर्क मिलाकर रोगीको देनेसे अथवा २-३ बार कच्ची गाजरका रस पिलानेसे लाभ होता है।

प्रसवपीडा—यदि प्रसवके समय स्त्रीको अत्यन्त कष्ट हो रहा हो तो गाजरके बीजोंके काढ़ेमें एक वर्षका पुराना गुड़ डालकर गरम-गरम पिलानेसे प्रसव जल्दी होता है। (ह० सैनी)

स्वास्थ्य-रक्षामें विभिन्न फलों एवं कन्द-मूलकोंका उपयोग

(श्रीरामानन्दजी जायसवाल)

१. केला (कदलीफल)— केला एक सुपरिचित उपयोगी फल है। अपक्व केला मधुर, शीतल, ग्राही, भारी, स्निग्ध, कफ-पित्त-रक्तविकार, दाह, क्षत एवं वायुनाशक है। पका हुआ केला शीतल, मधुर, विपाक-मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारक, मांसको बढ़ानेवाला, क्षुधापूर्तिकारक, प्रमेह, नेत्ररोग, तृषा, रक्तपित्त, उदररोग, हृदयशूल, प्रदररोग एवं गर्मीके रोगका नाशक है।

भोजनके पहले केला नहीं खाना चाहिये। पका केला एक अच्छा भोजन है। केलेकी जड़, स्वरस, बीज, पत्ते, फूल सभी भागोंमें विभिन्न कठिन रोगों—मूत्रविकार, प्रदर तथा अतिसाररोगोंमें आश्चर्यजनक लाभ होता है।

२. सेब—सेबका फल वात-पित्तनाशक, पौष्टिक, कफकारक, गुरु, पाक तथा रसमें मधुर, शीतल, रुचिकारक एवं वीर्यवर्द्धक होता है। यह मूत्राशय तथा वृक्कोंकी शुद्धि करता है। सेबके सेवनसे नाडियों एवं मस्तिष्कको शक्ति मिलनेके कारण यह स्मरणशक्तिकी दुर्बलता, उन्माद, बेहोशी तथा चिड़चिड़ापनमें गुणकारी है। यकृत्-विकार एवं अश्मरीमें गुणकारी पाया गया है। सेबको कच्चा खानेसे जीर्ण तथा असाध्य रोगोंमें विशेष लाभ होता है। सेबका छिलका रेचक होता है, अत: ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका प्रभृति उदर-व्याधियोंमें छिलके रहित फलके सेवनसे लाभ होता है। वायुके अनुलोमन एवं क़ब्ज़में छिलका न उतारे, दस्त आदिमें सेबका मुरब्बा गुणकारी है। सेबमें विटामिन 'सी' अधिक मात्रामें होता है।

३. आम—आम प्रसिद्ध फल है। कच्चा आम कषाय, अम्ल, वात एवं पित्तवर्धक और पका आम मधुर, स्निग्ध, बल तथा सुखदायक, गुरु, वातनाशक, शीतल, कषाय, अग्नि, कफ और वीर्यवर्धक होता है। आमकी-मंजरी (बौर) शीतल, रुचिकारक, ग्राही, वातकारक, अतिसार, कफ, पित्त, प्रदर-दुष्टि और रुधिरनाशक है।

पालमें पकाकर भी आम खाया जाता है, परंतु इसमें जीवनशक्तिकी न्यूनता होती है। आमका रस दूधके साथ पीनेसे शक्तिजनक तथा वीर्यवर्द्धक होता है। चूसकर प्रयोग किये जानेवाले आमको रसालकी संज्ञा दी जाती है। कलमी आम अत्यन्त पित्तकारक होता है। आमके अति सेवनसे मन्दाग्नि, विषम ज्वर, रक्तदोष, मलबद्धता, नेत्ररोग उत्पन्न हो सकते हैं। अत: अधिक आम नहीं खाना चाहिये। यह दोष खट्टे या अपक्व आममें देखे गये हैं। पक्व (पके) आममें विटामिन 'ए' तथा 'सी' अधिक मात्रामें होते हैं।

४. जामुन—जामुन सामान्य फल है, किंतु रोगोंमें अति लाभकारी है। जामुन कई प्रकारकी होती है। (बड़ी) जामुन स्वादिष्ठ, विष्टम्भी, रुचिकारक, गुरु और छोटी जामुन ग्राही, रूक्ष, पित्त एवं कफ-दोष तथा रक्तविकार एवं दाहनाशक है।

जामुनकी गुठली, छाल, मींगी, पत्ते तथा सिरकेका मधुमेह, दस्त, हिचकी, उदरशूल, फुंसियाँ, कृमि, कास, श्वास, मुखकी जड़ता, योनिदोष, मुखदोष, अरुचि—इन रोगोंमें प्रयोग उत्तम तथा लाभकारी है। जामुनकी मींगीका चूर्ण मधुमेहके लिये वरदानस्वरूप है।

५. अनार—अनार (दाडिम) मधुर, कषाय तथा अम्ल-रसयुक्त होता है। सामान्यरूपसे अनार मलरोधक, वातनाशक, ग्राही, अग्निको उत्पन्न करनेवाला, स्निग्ध, हृदयके लिये पौष्टिक है, हृदयरोग, कण्ठरोग एवं

मुखदुर्गन्धनाशक है।

इसमें विटामिन 'बी' और 'सी' पाया जाता है। स्नायुशूल, शीत तथा रात्रिमें अनार नहीं खाना चाहिये। अनारका रस आन्त्र, यकृत्, आमाशय तथा कण्ठरोगोंमें लाभकारी है। ज्वर, दस्त, टाइफॉयडमें पथ्यरूपमें देना लाभदायक है।

६. शहतूत—कच्चा शहतूत गुरु, रेचक, अम्ल, उष्ण, रक्त, पित्तकारक होता है। परंतु पका हुआ स्वादिष्ठ, गुरु, शीतल, रक्त-शोधक, मलरोधक, पित्त-वातनाशक कहा गया है। शहतूत वर्ण-भेदमेंसे कई प्रकारके होते हैं—काले, लाल, सफेद तथा हरे। शहतूतके पत्ते रेशमके कीड़ेको खिलाये जाते हैं। चारपाईपर शहतूतके पत्ते बिछाये जायँ तो खटमल भाग जाते हैं। शहतूतका अम्लपित्त, रक्तपित्त, मलगन्धमें प्रायः प्रयोग किया जाता है।

७. पपीता—पपीता मधुर, शीतल तथा पाचक होता है। यह सुपाच्य तथा मूत्रविकारमें लाभप्रद होता है। पपीतेके दूधको रासायनिक विधिद्वारा सुखाकर 'पपेन' प्राप्त किया जाता है।

८. नीबू—नीबूकी लगभग दस-ग्यारह प्रजातियाँ होती हैं। सामान्यतया नीबू अम्लरसयुक्त, वातनाशक, दीपक, पाचक और लघु होता है। मीठा नीबू भारी, तृषा एवं वमन, वात-पित्तनाशक और बलदायक होता है।

बिजौरा नीबू कास, श्वास, अरुचि, रक्तपित्त तथा तृषानाशक है।

चकोतरा नीबू स्वादिष्ठ, रुचिकारक, शीतल, भारी तथा रक्तपित्त, क्षय, श्वास, कास, हिचकी एवं भ्रम-नाशक है।

जम्बीरी नीबू उष्ण, गुरु, अम्ल तथा वात-कफ-दोष, मलबन्ध, शूल, खाँसी, वमन, तृषा, आमसम्बन्धी दोष, मुखकी विरसता, हृदयकी पीडा, अग्निकी मन्दता और कृमिनाशक है।

नीबू अनेक रोगोंमें सेवन कराया जाता है। नीबूके बीज, फूल, जड़ आदि भी विभिन्न गुणोंसे युक्त होते हैं।

९. फालसा—अपक्व फालसा कसैला, खट्टा, पित्तकारक एवं लघु होता है। पका हुआ फालसा मधुर, रुचिकारक, शीतल, तृप्तिकारक, पुष्टिजनक, हृदयके लिये हितकारक, किंचित् विष्टम्भकारक, विपाकी तथा तृष्णा, पित्त, दाह, रक्तविकार, क्षय, ज्वर, वात, रक्तपित्त, उपदंश, शूल, श्वास, मूत्राशयव्याधि, प्रमेह, अरुचि, मूढगर्भ, हृद्रोग आदिमें लाभ करता है।

मुँह, नाक, गलेसे खून आना, तथा मासिक धर्ममें अधिक खून निकलनेकी अवस्थामें फालसेका अर्ध चन्द्रायण कल्प करके अधिक मात्रासे कम मात्रामें दिया जाता है। क्षयमें एक मासमें दो कल्प करा देने चाहिये। इस विधिके समय दूध या जलके अतिरिक्त और कुछ नहीं देना चाहिये। इसके अतिरिक्त फालसेका रस, गुठली तथा छाल विभिन्न रोगोंमें योग बनाकर उत्तम लाभार्थ प्रयोग किये जाते हैं।

१०. सूरण—यह कषाय, कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, रूक्ष, खुजली करनेवाला, कफ एवं अर्शनाशक है। जिमीकन्द अर्शके रोगियोंके लिये पथ्य है। कन्द-शाकोंमें सूरणको श्रेष्ठ माना जाता है। यह दद्रु, कुष्ठ तथा रक्तपित्तके रोगियोंके लिये हितकारी नहीं है।

कुछ उपयोगी फल एवं शाकपदार्थ

अनन्नास (Pineapple)

अनन्नासके रसमें स्थित क्लोरीन मूत्रपिण्डको सौम्य उत्तेजन देता है और शरीरके भीतरी विषोंको बाहर निकाल देता है। पका हुआ अनन्नास मूत्रल, कृमिघ्न एवं पित्तशामक है। यह रुचिकर, पाचक और वायुहर है, पचनेमें भारी, हृदयके लिये हितकर और पेटकी तकलीफों, पीलिया एवं पाण्डुरोगमें गुणकारी है। अनन्नास भूखे पेट नहीं खाना चाहिये। अनन्नासका बाहरी छिलका और भीतरी गर्भ निकालकर, शेष भागके टुकड़े करके, उसका रस निकालकर पीना चाहिये। गर्भवती महिलाओंको कच्चा अनन्नास नहीं खाना चाहिये एवं पके हुए अनन्नासका भी अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये। अनन्नासका ताजा रस कण्ठपर शान्तिप्रद प्रभाव डालता है एवं गलेके रोगोंसे रक्षा करता है। डिप्थेरियामें और गले तथा मुँहके जीवाणुजन्य रोगोंमें यह बड़ा ही प्रभावशाली सिद्ध होता है।

अंजीर (Fig)

छोटे बच्चों और गर्भवती महिलाओंको अंजीर विशेषरूपसे खाने चाहिये। इससे उन्हें शक्ति प्राप्त होती है। ताजे अंजीर अधिक पौष्टिक होते हैं। ये कब्जको दूर करते हैं। ताजे अंजीरके रसमें स्थित लौह तत्त्व सुपाच्य होनेके कारण शरीरमें पूर्णतः आत्मसात् हो जाता है। अंजीर ठंडे, मधुर और गरिष्ठ होते हैं तथा पित्तविकार, रक्तविकार और वायुका नाश करनेवाले होते हैं। इन्हें दूधके साथ लेनेसे कब्जमें लाभ होता है। ताजे अंजीरका रस मूत्रल है। अतः इससे मूत्रसम्बन्धी शिकायतें दूर हो जाती हैं। यह यकृत्, जठर और आँतोंको कार्यक्षम रखता है। कब्ज थकान और कमजोरी दूर करता है। कफ और सूखी खाँसीमें विशेष लाभ पहुँचाता है।

अदरक (Ginger)

संस्कृतमें अदरकको विश्वौषध नाम दिया गया है। अदरक वातघ्न, दीपक, पाचक, सारक, चक्षुष्य, कण्ठ्य और पौष्टिक है। भेदक गुणोंके कारण यह कृमिका नाश करता है और उन्हें मलद्वारसे बाहर निकाल देता है। अदरक आँतोंके लिये एक उत्तम टॉनिक है। अदरकका रस निरापद एवं प्रति-प्रभावोंसे रहित है।

भोजनके समयसे आधा घंटा पूर्व यदि किंचित् सेंधा नमक और कुछ नीबूकी बूँदें मिलाकर तीन-चार चम्मच अदरकका रस पिया जाय तो भूख खुलती है। इसके रससे पेटमें पाचक रसोंका योग्य प्रमाणमें स्राव होता है। इससे पाचन भलीभाँति होता है और गैस उत्पन्न नहीं होती। यह जुकाम-सर्दीको समूल नष्ट कर देता है, हृदयके विकारोंको दूर करता है और सभी प्रकारके उदररोगोंको शान्त कर देता है। अदरकका रस सूजन, मूत्रविकार, पीलिया, अर्श, दमा, खाँसी, जलोदर आदि रोगोंमें भी लाभदायक होता है।

आयुर्वेद-विशेषज्ञोंका मत है कि अदरकके नियमित सेवनसे जीभ एवं गलेका कैंसर नहीं होता।

कालिंदक (तरबूज) (Watermelon)

ग्रीष्मकी भीषण धूपमें कालिंदकके रससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। यह शीतल, मूत्रल, बलकर, मधुर, तृप्तिकर, पुष्टिकर एवं पित्तहर है। कालिंदकका रस पेटकी तकलीफोंमें आरामदेह है और पेटकी जलनको शान्त करता है। कालिंदकमें मूत्रलगुण होनेके कारण वह मूत्रपिण्ड एवं मूत्राशयके रोगोंमें लाभप्रद है। इसका उपयोग विशेषतः तन-मनको शान्ति एवं ठंडक देनेके लिये होता है। इसके रससे शरीरमें चलनेवाली नवसर्जनकी क्रियाको गति मिलती है। इसका रस पीनेसे वजन कम होता है।

करेला (Hairy-Mordica, Bitter-gourd)

खाली पेट एक गिलास करेलेका रस पीनेसे पीलियाके रोगमें अचूक लाभ होता है। करेला कड़वा, अग्निदीपक, लघु, उष्ण, भेदक, शीतवीर्य एवं पथ्य होता है। करेला अरुचि, कफ, वायु, रक्तदोष, बुखार, कृमि, पित्त, पाण्डु और कोढ़को दूर करनेमें सहायक है।

कद्दूकसपर करेलेको घिसकर निकाला हुआ रस खाली पेट पीनेसे अच्छा लाभ होता है। सागके रूपमें खानेसे भी करेले स्वास्थ्यप्रद हैं। करेलेका रस रक्तशोधक है। इसके सेवनसे भूख खुलती है, कब्ज दूर होती है, आँतोंमें स्थित अनिष्टकर जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, साथ ही अर्शमें भी आराम मिलता है। मूत्रल होनेसे करेला मूत्रपिण्डकी जलनमें लाभकारी है तथा पथरीको भी निःशेष कर देता है। मधुप्रमेहमें करेला अत्यन्त गुणकारी है। सन्धिवात और पीलियाके रोगियोंको खाली पेट एक गिलास करेलेका रस देनेसे लाभ होता है।

खरबूजा (Musk melon)

जीर्ण खाजमें खरबूजेका रस अत्यन्त लाभप्रद है। खरबूजा शीतल एवं मूत्रल है। यह तृषाको शान्त करता है। तेज धूपमें इसकी शीतलता अतिशय शान्ति प्रदान करती है। इसमें विटामिन 'सी' पाया जाता है।

खरबूजेका अधिकांश हिस्सा पानीसे बना हुआ है और इसमें रेशेकी मात्रा नहींके बराबर है। इसलिये रसरूपमें या मूलरूपमें अर्थात् दोनों प्रकारसे इसका सेवन किया जा सकता है। अत्यन्त शीतल होनेके कारण इसके सेवनसे पेटकी जलन शान्त होती है इसमें रहनेवाले क्षार शरीरकी अम्लताको दूर करते हैं इसमें कब्ज दूर करने, कैंसर, दिलकी बीमारी, मोतियाबिन्द

हाई-ब्लडप्रेशर आदि रोगोंको दूर करनेका गुण भी पाया जाता है।

मुर्शिदाबाद (बंगाल)-के एक सिविल सर्जन डॉ० शिर्कोरके मतानुसार खरबूजेका रस शक्तिवर्धक और मूत्रल है और मूत्रपिण्डके रोगोंमें लाभदायक है। जीर्ण खाजमें भी इस फलके उपयोगसे अच्छा लाभ होता है।

जामुन (Jambul)

यकृत्के रोगोंमें जामुनका रस बहुत लाभ करता है। आयुर्वेदमें जामुनको दीपक, पित्तहर, दाहनाशक, मूत्रल, वर्ण्य एवं ग्राही बताया गया है। जामुनको तिल्ली और यकृत्के रोगोंके लिये अमोघ ओषधि माना गया है। यह यकृत्को कार्यक्षम बनाता है, पेटकी पीडा दूर करता है। जामुनका रस हृदयके लिये हितकर है, पाण्डुरोगमें लाभ करता है और मूत्रपिण्डके दाहमें आराम देता है। प्रमेह एवं मधुप्रमेहके इलाजके लिये जामुनका रस उत्तम ओषधि है। यह अपच, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, पथरी, रक्तपित्त और रक्तदोषको दूर करता है।

टमाटर (Tomato)

मधुप्रमेहके रोगियों और वजन कम करनेकी इच्छावाले लोगोंके लिये टमाटर उत्तम आहार है। आयुर्वेदके मतानुसार टमाटर लघु, स्निग्ध, उष्ण, दीपक-पाचक, सारक, कफनाशक तथा वायुहर है। टमाटरका रस जठर और आँतोंको स्वच्छ करता है तथा मूत्रपिण्डके रोगोंमें भी उपयोगी है। टमाटर अनपच, वायु और कब्जको दूर करता है तथा यकृत्के रोगोंमें आराम देता है। टमाटरमें स्थित लौह तत्त्व अत्यन्त सुपाच्य होनेसे शरीरमें पूर्णतः आत्मसात् हो जाता है। यह पाण्डुरोगमें गुणकारी है। टमाटरका सूप ज्वरमें भी लिया जा सकता है।

नारियल (Coconut)

हैजेमें हरे नारियलका पानी अनिवार्य है। हरे नारियलका पानी शीतल, आह्लादक, पोषक, मूत्रल, मूत्रका रंग सुधारनेवाला और तृषाशामक है। जब नारियल कच्चा हो और उसके भीतर गर्भ (मलाई)-का निर्माण न हुआ हो तब उसका पानी कम मीठा, कुछ खट्टा या कसैला-सा होता है, किंतु भीतरी गर्भका बनना आरम्भ होनेके बाद उसका पानी एकदम मीठा हो जाता है। नारियलके पानीकी शर्कराका शरीरमें तुरंत ही शोषण हो जाता है। नारियलका पानी जीवाणुमुक्त होनेसे अत्यन्त सुरक्षित है। कोमल और हरे नारियलके पानीमें उपर्युक्त तत्त्व और प्रजीवक होते हैं। ज्यों-ज्यों यह पककर पीला होने लगता है त्यों-त्यों इसके तत्त्वोंका ह्रास होता जाता है। इसलिये कोमल नारियलका ही पानी पीना चाहिये। नारियलके ताजे पानीका उपयोग तुरंत कर लेना चाहिये। नारियलके पानीमें प्रजीवक-सीकी कमी है, किंतु नीबूका रस मिलाकर इस कमीको दूर किया जा सकता है।

नारियल मूत्रल होनेसे मूत्रसम्बन्धी तकलीफों और पथरीमें बहुत ही प्रभावकारी होता है। यह हैजेमें भी बहुत उपयोगी है। हैजेमें दस्त और उलटीके कारण शरीरमें जलकी अल्पता तथा क्षारोंकी कमी आ जाती है, फलस्वरूप जीवनके लिये खतरा खड़ा हो सकता है। ऐसी स्थितिमें नारियलके पानीसे शरीरको आवश्यक जल और क्षार उपलब्ध हो जाते हैं।

मौसम्बी (Sweet lemon)

मौसम्बीका रस पीनेसे जीवन-शक्ति और रोगोंके प्रतिकारकी शक्ति बढ़ती है। मौसम्बी मधुर, स्वादिष्ठ, शीतल, तर्पक, तृषाहर, ताजगी देनेवाली, गुरु, वृष्य, पुष्टिकारक, धातुवर्धक एवं ग्राही है। यह वात, पित्त, कफ, वमन, रक्तरोग और अरुचिमें गुणकारी है। मौसम्बीमें क्षारतत्त्व है जो रक्तकी अम्लताको कम करता है। जब ज्वर आदिमें अन्य आहार न लिया जा सकता हो तब शक्ति बनाये रखनेके लिये तथा शरीरको पोषण देनेके लिये मौसम्बीका रस बहुत गुणकारी है। इसके रससे पेटकी अम्लता कम होती है, भूख लगती है और पाचनसम्बन्धी तकलीफें दूर होती हैं।

कच्ची हल्दी (Turmeric)

हल्दीमें यकृत्को उत्तेजित करके बलिष्ठ बनानेकी शक्ति तथा रक्तको शुद्ध करनेका गुण होता है। आयुर्वेदके मतानुसार हल्दी कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, कृमिघ्न, शोधन, कफघ्न, शोथघ्न, वायुनाशक, रूक्ष, व्रणशोधक एवं कान्तिवर्द्धक है। यह सर्दी, वायु, रक्तदोष, कुष्ठ, प्रमेह, कण्डु, व्रण, त्वग्दोष, सूजन, पाण्डुरोग, पीनस, अरुचि

आदिमें उपयोगी है।

हल्दीके ताजे रसका सेवन करनेसे अथवा गरम दूधमें हल्दीका चूर्ण डालकर पीनेसे सर्दी-जुकाम, खाँसी और दर्दमें निश्चित लाभ होता है।

हरी धनिया (Coriander)

हरी धनिया सुगन्धित, रुचिप्रद, पाचक, शीतल और पित्तनाशक होती है। हरी धनियेको बारीक काटकर दाल, साग तथा अन्य पदार्थोंमें डालनेसे पदार्थ सुगन्धित तथा रुचिकर बनते हैं। चटनी बनाकर भी इसका उपयोग किया जाता है। परंतु इसका रस पीनेसे विशेष लाभ होता है। हरी धनियेमें प्रजीवक-ए होनेसे यह पेट एवं आँखोंके लिये विशेष लाभप्रद है।

चौलाई (Amaranth)

चौलाई मधुर, शीतल, रुचिकर, अग्निदीपक, मूत्रल होती है। इसमें विपुल लौह तत्त्व उपस्थित रहते हैं। कच्चे रसको पीनेसे इसका पूरा-पूरा लाभ मिलता है।

पालक (Spinach)

पालक कुछ तीखा, मधुर, पथ्य एवं शीतल होता है। यह रक्तपित्त, कफ, श्वास तथा विषदोषका नाश करता है। इसका रस मूत्रल होता है।

(प्रेषक—श्रीगोवर्धनदासजी नोपानी 'सत्यम्')

सीताफल

अगस्तसे नवम्बरके आसपास आनेवाला सीताफल एक स्वादिष्ठ फल है।

आयुर्वेदके मतानुसार सीताफल शीतल, पित्तशामक, पौष्टिक, तृप्तिकर्ता, मांस एवं रक्तवर्धक, उल्टी बंद करनेवाला, बलवर्धक, वातदोषशामक और हृदयके लिये हितकर है।

आधुनिक विज्ञानके मतानुसार सीताफलमें कैल्सियम, लौहतत्त्व, फास्फोरस, विटामिन, थायमिन, रिवोफ्लोवीन एवं विटामिन 'सी' इत्यादि अच्छे प्रमाणमें होते हैं।

जिन लोगोंकी प्रकृति गरम अर्थात् पित्तप्रधान है, उनके लिये सीताफल अमृतके समान गुणकारी है।

जिन लोगोंका हृदय कमजोर हो, हृदयका स्पन्दन खूब ज्यादा हो, घबराहट होती हो, उच्च रक्तचाप हो, ऐसे रोगियोंके लिये भी सीताफलका नियमित सेवन हृदयको मजबूत एवं क्रियाशील बनाता है।

जिन्हें खूब भूख लगती हो, आहार लेनेके उपरान्त भी भूख शान्त न होती हो—ऐसे 'भस्मक' रोगमें भी सीताफलका सेवन लाभदायक है।

विशेष—सीताफल गुणमें अत्यधिक ठंडा होनेके कारण ज्यादा खानेसे सर्दी होती है, ठंड लगकर बुखार आने लगता है, अतः जिनकी कफ-सर्दीकी तासीर हो, ऐसे व्यक्ति सीताफलका सेवन न करें। जिनकी पाचनशक्ति मंद हो, उन्हें सीताफलका सेवन बहुत सोच-समझकर सावधानीसे करना चाहिये, अन्यथा लाभके बदले हानि होती है। (ह० सैनी)

स्वास्थ्य-रक्षामें अमरूद (जामफल, अमृतफल)-का उपयोग

अमरूद या जामफल एक सस्ता और गुणकारी फल है, जो प्रायः सारे भारतमें पाया जाता है। संस्कृतमें इसे 'अमृतफल' भी कहा जाता है।

आयुर्वेदके मतानुसार पका हुआ अमरूद स्वादमें खट्टा-मीठा, कसैला, गुणमें ठंडा, पचनेमें भारी, कफ तथा वीर्यवर्धक, रुचिकारक, पित्तदोषनाशक, वातदोषनाशक एवं हृदयके लिये हितकर है। अमरूद पागलपन, भ्रम, मूर्च्छा, कृमि, तृषा, शोष, श्रम, विषम ज्वर (मलेरिया) तथा जलनाशक है। यह शक्तिदायक, सत्त्वगुणी एवं बुद्धिवर्धक है। भोजनके एक-दो घंटेके बाद इसे खानेसे कब्ज, अफरा आदिकी शिकायतें दूर होती हैं। सुबह खाली पेट अमरूद खाना भी लाभदायक है।

विशेष—अधिक अमरूद खानेसे वायु, दस्त एवं ज्वरकी उत्पत्ति होती है तथा मन्दाग्नि एवं सर्दी भी हो

जाती है। जिनकी पाचनशक्ति कमजोर हो, उन्हें अमरूद कम खाना चाहिये।

अमरूद खाते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि इसके बीज ठीकसे चबाये बिना पेटमें न जायँ। जामफल (अमरूद)-को या तो खूब अच्छी तरह चबाकर निगले या फिर इसके बीज अलग करके केवल गूदा ही खाये। इसका साबूत बीज आन्त्रपुच्छ (अपेंडिक्स)-में चला जाय तो फिर बाहर नहीं निकल पाता, जिससे प्राय: 'अपेंडिसाइटिस' होनेकी सम्भावना होती है।

खानेके लिये पके हुए जामफलका ही प्रयोग करे। कच्चे जामफलका उपयोग सब्जीके रूपमें किया जा सकता है। दूध एवं जामफल खानेके बीच दो-तीन घंटोंका अन्तर अवश्य रखे।

अमरूद (जामफल)-का औषधरूपमें प्रयोग

(१) **सर्दी-जुकाम**—जुकाम होनेपर एक जामफलका गूदा बिना बीजके खाकर एक गिलास पानी पी ले। दिनमें ऐसा दो-तीन बार करे। पानी पीते समय नाकसे साँस न ले और न छोड़े। नाक बंद करके पानी पिये और मुँहसे ही साँस बाहर फेंके। इससे नाक बहने लगेगा। नाक बहना शुरू होते ही जामफल खाना बंद कर दे। एक-दो दिनमें जुकाम खूब झड़ जाय तब रातको सोते समय पचास ग्राम गुड़ खाकर बिना पानी पिये सिर्फ कुल्ला करके सो जाय। जुकाम ठीक हो जायगा।

(२) **खाँसी**—एक पूरा जामफल आगकी गरम राखमें दबाकर सेंक ले। दो-तीन दिनतक—प्रतिदिन इस प्रकार एक जामफल खानेसे कफ ढीला होकर निकल जाता है और खाँसीमें आराम हो जाता है। जामफलके पत्ते पानीसे धोकर साफ कर ले और फिर पानीमें उबाले। जब उबलने लगे, तब उसमें दूध और शक्कर डाल दे, फिर उसे छान ले। इसको पीनेसे खाँसीमें आराम मिलता है। इसके बीजोंको 'बहीदाना' कहते हैं। इन बीजोंको सुखाकर पीस ले और थोड़ी मात्रामें शहदके साथ सुबह-शाम चाटे। इससे खाँसी ठीक हो जायगी। इस दौरान तेल एवं खटाईका सेवन न करे।

(३) **सूखी खाँसी**—इसमें पके हुए जामफलको खूब चबा-चबाकर खानेसे लाभ होता है।

(४) **कब्ज**—पर्याप्त मात्रामें जामफल खानेसे मल सूखा और कठोर नहीं हो पाता और सरलतापूर्वक शौच हो जानेसे कब्ज नहीं रहता। जामफल काटनेके बाद उसपर सोंठ, काली मिर्च और सेंधा नमक भुरभुरा ले। फिर इसे खानेसे स्वाद बढ़ता है और पेटका अफरा, गैस तथा अपच दूर होता है। इसे सुबह निराहार (खाली पेट) खाना चाहिये या भोजनके साथ खाना चाहिये।

(५) **मुखके रोग**—इसके कोमल हरे ताजे पत्ते चबानेसे मुँहके छाले नरम पड़ते हैं। मसूढ़े तथा दाँत मजबूत होते हैं, मुँहकी दुर्गन्धका नाश होता है। पत्ते चबानेके बाद इसका रस थोड़ी देर मुँहमें रखकर इधर-उधर घुमाते रहें, फिर थूक दें। पत्तोंको उबालकर इसके पानीसे कुल्ला और गरारा करनेपर दाँतका दर्द दूर होता है एवं मसूढ़ोंकी सूजन तथा पीडा नष्ट होती है।

(६) **शिशु-सम्बन्धी रोग**—जामफलके पत्तोंको पीसकर उनकी लुगदी बनाकर बच्चोंकी गुदाके मुखपर रखकर बाँधनेसे उनका गुदभ्रंश यानी काँच निकलनेका रोग ठीक होता है। बच्चोंको पतले दस्त बार-बार लगते हों तो इसके कोमल तथा ताजे पत्तों एवं जड़की छालको उबालकर काढ़ा बना ले और दो-दो चम्मच सुबह-शाम पिलाये। इससे पुराना अतिसार भी ठीक हो जाता है। इसके पत्तोंका काढ़ा बनाकर पिलानेसे उल्टी तथा दस्त होना बंद हो जाता है।

(७) **सूर्यावर्त**—सुबह सूर्योदयसे सिरदर्द शुरू हो, दोपहरमें तीव्र पीडा हो एवं सूर्यास्त हो तब सिरदर्द मिट जाय—इस रोगको सूर्यावर्त कहते हैं। इस रोगमें रोज सुबह पके हुए जामफल खाने एवं कच्चे जामफलको पत्थरपर पानीके साथ घिसकर ललाटपर लेप करनेसे लाभ होता है।

(८) **दाह—जलन**—पके हुए जामफलपर मिस्त्री भुरभुराकर रोज सुबह एवं दोपहरमें खानेसे जलन कम होती है। यह प्रयोग वायु अथवा पित्तदोषसे उत्पन्न

शारीरिक दुर्बलतामें भी लाभदायक है।

(९) पागलपन एवं मानसिक उत्तेजना—मानसिक उत्तेजना, अतिक्रोध, पागलपन अथवा अतिविषय-वासनाके रोगमें भिगोये हुए तीन-चार पके जामफल सुबह खाली पेट खाना लाभदायक है। दोपहरके समय भी भोजनके एक घंटे बाद जामफल खाये। इससे मस्तिष्ककी उत्तेजनाका शमन होता है एवं मानसिक शान्ति मिलती है।

(१०) स्वप्नदोष—कब्जियत अथवा शरीरकी गरमीके कारण होनेवाले स्वप्नदोषमें सुबह और दोपहर जामफलका सेवन करना लाभप्रद है।

(११) खूनी दस्त (रक्तातिसार)—जामफलके मुरब्बाका, पके हुए या कच्चे जामफलकी सब्जीका सेवन खूनी दस्तमें लाभप्रद होता है।

(१२) मलेरिया ज्वर—तीसरे अथवा चौथे दिन आनेवाले विषम ज्वर (मलेरिया)-में प्रतिदिन नियमसे सीमित मात्रामें जामफलका सेवन लाभदायक है।

(प्र० सैनी)

अमृतबीज—चन्द्रशूर

(श्रीमती सीमा राव)

चन्द्रशूर—यह चंसुर, हालो, हालिम आदि नामोंसे किरानावालोंके यहाँ मिलता है। यह हरीतक्यादि वर्गका लाल-नारंगी रंगका बीज है।

माताओंके दूध बढ़ानेके लिये—दूधमें चन्द्रशूरकी खीर बनाकर सेवन करनेसे दूधकी वृद्धि होती है, कमरदर्द दूर होकर बल आ जाता है, वातपीडा दूर होती है।

आम अतिसार—चन्द्रशूरका लुआब बनाकर देनेसे अर्थात् इसे पानीमें भिगोकर पिलानेसे आम अतिसार और पेचिशमें अच्छा लाभ होता है।

कटिवात और गृध्रसी—चन्द्रशूरको पानी या दूधमें उबालकर रोज सुबह पिलानेसे कमरमें, कूल्होंमें वायुसे जो वेदना हो जाती है, उसमें लाभ होता है। यह जीर्ण आमवातमें भी लाभ करता है।

कब्ज—चन्द्रशूरको आठ गुने पानीमें भिगो दे, दो-तीन घंटे पानीमें भीग जानेपर मसलकर छानकर प्रातः और सायं रात्रिमें पीनेसे मलावरोध दूर हो जाता है।

धातुपुष्टि—शतावर २५ ग्राम, सौंफ २५ ग्राम, चन्द्रशूर २५ ग्राम। चन्द्रशूरको तवेपर भून ले तथा तीनोंको कूट-पीसकर इसमें ७५ ग्राम मिस्री या शक्कर मिलाकर शीशीमें रख दे, प्रातः-सायं १-१ चायके चम्मच बराबर दूध या पानी जो उपलब्ध हो उसके साथ ले।

मूत्रका गंदलापन—चन्द्रशूरको उबलते पानीमें डालकर ढककर रख दे, १५-२० मिनटके बाद छानकर शक्कर डालकर पी जाय। इसके कुछ दिनके प्रयोगसे लाभ होगा।

उदररोग—अजवायन, सौंफ, चन्द्रशूर, पोदीना, सोंठ, काली मिर्च, सफेद जीरा, धनिया, वायविडंग, छोटी हरड़, काला नमक, सेंधा नमक, नौसादर, खपरियोंवाला—इन सब चीजोंको समभागमें ले। छोटी हरड़को घीमें भून ले तथा नौसादरको पीसकर तवेपर भून ले, फिर सब चीजोंको कूट-पीसकर चूर्ण बना ले। इसे एक ग्रामसे तीन ग्रामतक दिनमें तीन-चार बार सेवन करे। इससे पेटके दर्द, अरुचि, कृमिरोग, यकृत्, तिल्ली, वमन, अनिद्रा, सायटिका आदिमें लाभ होता है।

चोट-मोच—चन्द्रशूर, लाजवन्ती-बीज और पिसी हुई सोंठ बराबर मात्रामें लेकर एक कटोरीमें डालकर उसमें जरूरतके अनुसार पानी डालकर फेटे। यह रबर-सरीखी हो जायगी। इसे रोटीके माफिक फैलाकर मोचकी जगह चिपका दे तथा ऊपरसे कपड़ेकी पट्टी बाँध दे। प्रतिदिन नया लेप बनाकर लगानेसे अति शीघ्र कष्ट मिट जाता है। अगर यह अपने-आप न छूटे तो उसे पानी द्वारा गलाकर निकाल ले तथा दूसरी लगा दे।

त्रपुस (खीरा)—एक उत्तम मूत्रप्रवर्तक फलशाक

(वैद्य श्रीमोहनलालजी जायसवाल, एम० डी० (आयु०) एम० आर० ए० व्ही०, रा० आयु० सं०, जयपुर)

फल एवं शाक—ये दोनों शरीरमें खनिज, लवण तथा विटामिनकी सम्पूर्तिके लिये उत्तम आहारीय स्रोत हैं। प्राचीन कालमें अरण्यप्रधान-संस्कृति होनेके कारण लोकजीवनमें कन्द और मूल यों ही अपने मूलस्वरूपमें सेवन किये जाते थे, किंतु कालान्तरमें सांस्कृतिक परिवर्तन एवं नगरीय विकासके साथ-साथ उनसे विविध शाक एवं व्यञ्जन बनने लगे। आजकल अनेक फल भी शाकरूपमें व्यवहृत होते हैं। ऐसे ही फलोंकी श्रेणीमें त्रपुस (खीरा) आता है, जो हमारे जीवनमें नित्य उपयोगी फलके साथ-साथ आहारमें शाक एवं सलादके रूपमें सेवन किया जाता है।

आयुर्वेदीय महर्षियोंने ऐसे आहारोपयोगी फल शाकके पोषक गुणोंके साथ ही इसकी विशिष्ट कार्मुकता शरीरके मूत्र-संवहनतन्त्रपर देखी, जिसके कारण इसके गुण-कर्म एवं प्रयोगको अपनी संहिताओंमें उचित स्थान प्रदान किया।

फलशाकोंमें जैसे कूष्माण्ड (पेठा)-का मानस-विकारोंमें विशेष लाभप्रद एवं कार्मुक है, उसी प्रकार त्रपुस अपने विशिष्ट मूत्रल-कर्मके कारण मूत्रसम्बन्धी विकारोंमें हितावह एवं प्रभावी है।

त्रपुसके पर्याय—कण्टकीलता, सुधावास, कटु, छर्दिपर्णी, मूत्रफला, पित्तक, हस्तिपर्णिनी—ये त्रपुस (खीरे)-के प्रमुख नाम हैं, जो इनके स्वरूप एवं गुण-कर्मका बोध कराते हैं। इसका लैटिन (Cucumis sativus) नाम है, जो कोशातकी कुल (Cucurbitaceal family)-में परिगणित है।

रासायनिक संगठनकी दृष्टिसे खीरेमें आर्द्रता ९६.४, प्रोटीन ०.४, वसा ०.१, कार्बोहाइड्रेट २.८, खनिज द्रव्य ०.३, कैल्सियम ०.०१ तथा फास्फोरस ०.०३%, लौह १.५ मिग्रा० प्रति १०० ग्राम तथा विटामिन बी१ तथा सी होते हैं। इसके बीजोंमें प्रोटीन ४२ तथा वसा ४२.५% होता है। इससे एक हलके पीत वर्णका तेल निकलता है।

चरकसंहिताके सूत्रस्थान प्रथमाध्याय (८०)-में फलिनी शीर्षकके अन्तर्गत 'त्रपुस' का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त **'मुखप्रियं च रूक्षं च मूत्रलं त्रपुसं त्वति'** (च०सू० २७।१११) सूत्रद्वारा महर्षि चरकने इस शाकीय फलको अतिमूत्रल निर्दिशित किया है।

चरकमें मूत्रकृच्छ्राश्मरी-चिकित्सामें दो-तीन स्थलोंपर इसका उल्लेख है (च०चि० २६।५८, ६२, ७१)। बस्तिशूलहर बस्तिमें त्रपुसका उल्लेख एवं उपयोग है।

आचार्य सुश्रुतने—**'बालं सुनीलं त्रपुसं तेषां पित्तहरं स्मृतम्'**। अर्थात् बाल (कोमल) खीरेको विशेषरूपसे गुणकारी एवं पित्तहर बताया है, जबकि पक्वावस्थामें किंचित् अम्लरसयुक्त होनेसे पित्तकारक एवं मूत्रप्रवर्तक उतना नहीं होता जितना कि बाल कोमल खीरा। इसलिये लोकव्यवहारमें बाल खीराके उत्तम मूत्रल एवं पित्तशामक गुणोंके कारण इसे 'बालमखीरा' नामसे पुकारा गया है।

धन्वन्तरि एवं मदनपाल निघण्टुकारने भी खीरेको—**'त्रपुसं छर्दिहृत् प्रोक्तं मूत्रबस्तिविशोधनम्'** तथा **'त्रपुसं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्ताश्मकृच्छ्रनुत्।'**—कहा है।

इन निर्दिष्ट सूत्रोंके द्वारा खीरेमें विशिष्ट मूत्रोत्पादक (Diuretics) एवं मूत्रबस्तिविशोधक (Urinary tract disinfactant and anti urolithiasis) कर्मको उद्घाटित किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि शाकीय फल खीरा एक महत्त्वपूर्ण निरापद उपयोगी वानस्पतिक द्रव्य है, इसका वर्णन संक्षेपमें इस प्रकार है—

(क) मूत्रवहसंस्थानके प्रमुख विकारोंमें उपयोगी है। जैसे मूत्रकृच्छ्र (Retension of urine—मूत्रावरोध), मूत्राश्मरी (Urinary stone—मूत्रपथकी पथरी)।

(ख) मूत्रवह स्रोतस्की शोथजन्य विकृतियों—जैसे वृक्कोणुशोथ (Nephritis), मूत्रबस्ति एवं नलिकाशोथ

(Urinary bladder & berethra inflammation)-में उपयोगी है।

(ग) मूत्ररक्तता, मूत्रविषमयता, मूत्राघात एवं मूत्रदाहमें लाभकारी।

(घ) पौरुषग्रन्थिशोथ और वृद्धिजन्य अवस्थामें लाभप्रद है।

मूत्रवहसंस्थानके इन विकारोंके अतिरिक्त खीरा उदरविकार, आध्मान, आटोप, विबन्ध, पाण्डु (रक्ताल्पता), कामला (पीलिया), यकृत्-विकार, विविध पैत्तिक विकार, हृद्रोग, शोथ एवं नेत्रदाहमें भी उत्तम पथ्य एवं औषधरूपमें व्यवहार करनेयोग्य है।

इन सब अवस्थाओंमें इसके बाल (कोमल) फल (अपक्वावस्था)-का ही उपयोग सर्वदा फलप्रद एवं हितकारक है।

प्रकृतिका दिव्य फल अंगूर

अंगूर सभी फलोंमें स्वादिष्ठ एवं उत्तम फल है। पकनेपर यह अति सुमधुर और गुणकारी हो जाता है। इसमें सर्वोत्तम प्रकारका ग्लूकोज एवं फ्रक्टोज होता है, जिससे रस पेटमें पहुँचते ही शीघ्रतासे सुपाच्य हो शरीरमें ऊर्जा तथा ताप प्रदान करके शक्तिकी वृद्धि करता है।

अंगूर बल-वीर्यवर्धक, आँखोंके लिये हितकारी और वात-पित्तकी वृद्धिको दूर करता है तथा खून भी बढ़ाता है। सभी तरहके ज्वरमें लाभकारी है।

अंगूरमें शर्करा २५ प्रतिशत होती है। लोहा पर्याप्त मात्रामें होता है, जो खूनमें हिमोग्लोबिन बढ़ा देता है। खूनकी कमीवाले रोगियोंके लिये यह वरदानस्वरूप है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। इससे आँतें तथा लीवर और किडनी (गुर्दे) अच्छी तरह काम करते हैं, कब्ज दूर होता है, मूत्र-मार्गकी बाधाएँ दूर होती हैं।

अंगूरमें पर्याप्त विटामिन 'ए' और 'सी' है। बच्चों, बूढ़ों और दुर्बल लोगोंके लिये बल देनेवाला यह अनुपम आहार है। इसमें पोटैशियम बहुत होता है, जो किडनीके रोग, हाई ब्लडप्रेशर तथा चर्मरोगमें लाभकारी होता है। भारत ही नहीं, दुनियाके अनेक देशोंमें अंगूर रोगोंको दूर करनेका माध्यम माना जाता है।

अंगूर रोगियोंके लिये उत्तम पथ्य है। कैंसर, टी०बी०, गैस्ट्रिकके घाव, बच्चोंका सूखा रोग, एपेंडिसाइटिस, जोड़ोंका दर्द, गठिया तथा हृदयके रोगियोंके लिये यह शक्तिदायक पथ्य है।

अंगूरके सेवनसे शरीरमें ताकत आती है। यह हर प्रकारकी कमजोरी दूर करके शरीरको सुन्दर और स्वस्थ बनाता है। अंगूर प्रबल क्षारीय आहार है, शरीरसे विषैले पदार्थोंको बाहर निकालता है, शरीरमें खून बढ़ाता है और उसे साफ भी करता है। टाइफॉयड बुखार हो या कोई वायरसजन्य बुखार—सभीमें अंगूर शरीरमें नयी शक्ति देनेके लिये पथ्यके रूपमें दिया जाता है।

कई लाइलाज बीमारियोंमें अंगूरका रस-कल्प अमृतके समान काम करता है। लम्बी बीमारीके बाद शरीरमें आयी कमजोरीको दूर करनेमें यह रामबाण सिद्ध हुआ है। कई आँतोंके कैंसर-रोगी अंगूर-कल्पसे स्वस्थ हुए हैं।

कच्चा अंगूर खट्टा होता है, उसे नहीं खाना चाहिये। जब भी अंगूर खाये मीठे पके अंगूर खाये। खानेके पहले अंगूरको भलीभाँति पानीसे धो ले, क्योंकि अंगूरकी खेती करनेवाले उनपर कीटनाशक दवाओंका छिड़काव करते हैं तथा उनपर मच्छर और मक्खियाँ भी बैठती हैं।

पके अंगूर सुखानेसे किशमिश बनती है, जिसे संस्कृतमें द्राक्षा कहते हैं। आयुर्वेदिक दवाएँ—द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, द्राक्षावलेह आदि इसीसे बनते हैं।

अंगूरका रस छोटे बच्चोंको ५० सी०सी० से अधिक नहीं देना चाहिये—अधिक देनेसे दस्त आने लगते हैं। वयस्क १०० सी०सी० से २०० सी०सी० तक ले सकते हैं। शरीरमें शक्तिसंचारके लिये अंगूरका रस अद्वितीय है।

(अ० भारती)

फलोंकी रानी नारंगी

आम फलोंका राजा है तो फलोंकी रानी बननेके सभी गुण नारंगीमें हैं, इसी कारण नारंगीको फलोंकी रानी कहा जाता है।

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें नारंगीका उल्लेख मिलता है—**'नारङ्गो मधुराम्लः स्याद्रोचनो वातनाशनः'** (निघंटु, मिश्रप्र० ६। ६३)। सुश्रुतसंहितामें लिखा है—

अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तिरोचनम्।
वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारङ्गस्य फलं गुरु॥

(सु०सं०सूत्र० ४६। १६१)

अर्थात् नारंगी अम्ल, मधुर, हृदयके लिये प्रिय, विशद, भोजनमें रुचिकर, वातनाशक, दुर्जर तथा गुरुपाकी (देरमें पचनेवाला) होता है।

नारंगीकी विशेषता यह है कि इसमें विद्यमान फ्रक्टोज, डेक्स्ट्रोज, खनिज एवं विटामिन—ये शरीरमें पहुँचते ही ऊर्जा देना शुरू कर देते हैं। इसका रस देरसे पचता है।

नारंगीमें प्रचुर मात्रामें विटामिन 'सी' है। पोटैशियम एवं लोहा उच्चमानका है। नारंगी-सेवनसे हृदय, स्नायु-संस्थान तथा मस्तिष्कमें नयी शक्ति आ जाती है। बच्चे-बूढ़े, रोगी और दुबले-पतले लोग अपनी निर्बलता दूर करनेके लिये इसके सेवनसे लाभ उठा सकते हैं। तेज बुखारमें इसके सेवनसे तापमान कम हो जाता है। इसका साइट्रिक एसिड मूत्ररोगों और किडनीरोगोंको दूर करता है। इससे मूत्र साफ आता है। किडनी-रोगसे बचनेके लिये नारंगीका सेवन करना चाहिये।

छोटे बच्चोंको स्वस्थ और सुपुष्ट बनानेके लिये दूधमें चौथाई भाग मीठी नारंगीका रस मिलाकर पिलाना चाहिये। यह उनके लिये एक आदर्श टॉनिक है। इससे बच्चोंमें नयी ऊर्जा, नयी शक्ति और नया उत्साह आ जाता है। दाँत निकलते समय बच्चोंको उलटी होती है तथा हरे-पीले दस्त होते हैं। इनमें नारंगी-रस देनेसे उनकी बेचैनी दूर होती है तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है। दाँतों और मसूढ़ोंके रोग भी इसके सेवनसे दूर होते हैं।

शरीरसे दुर्बल, गर्भवती महिलाओं, कब्ज, बवासीर, बेरी-बेरी, अपच, पेटमें गैस, जोड़ोंका दर्द, गठिया, ब्लडप्रेशर, चर्मरोग, यकृत्-रोगसे ग्रस्त रोगियोंके लिये नारंगीका रस परम लाभकारी है। जिन्हें दूध नहीं पचता या जो केवल दूधपर निर्भर हैं, उन्हें नारंगीका रस अवश्य सेवन करना चाहिये। दूधमें विटामिन 'बी कम्पलेक्स' नहीं के बराबर है। अतः इसकी पूर्ति नारंगीके सेवनसे हो जाती है।

मुँहासे, कील और झाँई तथा चेहरेके साँवलेपनको दूर करनेके लिये नारंगीके सुखाये छिलकोंका महीन चूर्ण गुलाब-जल या कच्चे दूधमें मिलाकर पीसकर आधा घंटातक लेप लगाये, इससे कुछ दिनोंमें चेहरा साफ, सुन्दर और कान्तिमान् हो जायगा।

नारंगी सर्वरोगनाशक और शरीरके लिये परम हितकारी फल है। खट्टी नारंगीका सेवन बच्चों-बूढ़ों, गर्भवती महिलाओं, अम्लपित्त एवं पेटमें अल्सरवालोंके लिये निषिद्ध है। (अ० भारती)

फलोंका सिरताज—अनन्नास

(सुश्री आरती जैन)

रसीले फलोंमें अनन्नास सिरताज माना गया है। खट्टा-मीठा, सोंधा और तीखे स्वादवाला यह फल अपनी तासीर और फायदोंके लिये प्रसिद्ध है। यह प्रायः गर्मियोंसे बारिशके बीच बड़ी तादादमें उपलब्ध रहता है।

अनन्नास ब्रोमीलीआ (आपनस) नामक विशाल वनस्पति-कुलका सदस्य है। इसका वानस्पतिक नाम 'एनानास कोमोसस' है। कहते हैं कि जब क्रिस्टोफर कोलम्बस अमरीकाकी अपनी द्वितीय समुद्री यात्रापर निकला तो मार्गमें वेस्टइंडीजके गवडएलअप द्वीपके लोगोंको उसने यह फल खाते देखा। देवदारु वृक्षके शंकु फलोंकी तरह दिखायी देनेके कारण उसने इस फलको 'इंडीजके देवदारु' कहा और इस तरह पहली बार शेष दुनियाको इस फलके बारेमें जानकारी मिली।

भारतमें अनन्नास सन् १५५० ई० के आसपास समुद्री यात्रा करनेवाले पुर्तगालियोंके माध्यमसे पहुँचा और जल्दी ही यहाँसे चीनसहित समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिणी प्रशान्तसागरके द्वीपोंमें भी लोकप्रिय हो गया। इसके गुणों और उपयोगिताको देखते हुए १७वीं शतीके मध्यमें यूरोपके विभिन्न भागों, विशेषत: इंग्लैण्ड और फ्रांसमें इसकी खेती व्यापक पैमानेपर प्रारम्भ हो गयी।

सुन्दर दिखनेवाला यह रसीला फल वास्तवमें सौसे दो सौतककी संख्यामें परस्पर जुड़े लघुफलों (जिन्हें इसकी आँखें भी कहा जाता है)-के संयोगसे बना होता है। प्रत्येक आँख एक पृथक् फूल और उसके आसपासके भागोंसे बनती है। अनन्नासके शिरोमणिको काटकर मिट्टीमें दबा देनेसे दूसरा पौधा तैयार किया जा सकता है। वैसे इसके पौधेके तनेपर अँखुए निकले रहते हैं, उनसे भी अन्य पौधे उगाये जाते हैं। इन पौधोंके तने छोटे-छोटे और गूदेदार होते हैं, जिनपर अनन्नास लगभग एक मीटर लम्बी आरीके-से किनारोंवाली सख्त पत्तियोंके साथ गुच्छोंसे उगता है। इस गुच्छेको उत्पन्न होनेमें प्राय: एकसे दो सालतकका समय लगता है। यह अवधि अनन्नासकी प्रजातिपर भी निर्भर करती है। परंतु सुमधुर और रसीला होनेमें इसे लगभग चार माहकी अवधि और लग जाती है। जब इसकी सतहपर बनी असंख्य आँखें खुलने-सी लगती हैं, तब इसका अर्थ होता है कि अब फल पक गया है।

कहते हैं कि अनन्नासके जितने उपयोग होते हैं, उतनी ही इसकी आँखें भी होती हैं। स्वादिष्ठ होनेके साथ-ही-साथ यह विटामिन 'ए' और 'सी' तथा कुछ हदतक विटामिन 'बी' का भी उत्तम स्रोत है। इसका रस पाचनशक्तिमें सहायक होता है तथा अम्लजनित बदहजमीमें राहत पहुँचाता है। परम्परागत घरेलू दवाके तौरपर बच्चोंके पेटमें उत्पन्न होनेवाले कृमियोंको नष्ट करनेके लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। छोटे एवं कच्चे अनन्नासमें एक विषैला तत्त्व होता है, जिसका तीव्र शुद्धिकारक तत्त्वके रूपमें प्रयोग किया जाता है।

फलके अतिरिक्त इसके पत्तोंका उपयोग भी कोई कम नहीं है। इसके पत्ते सख्त होते हैं। इनके रेशेसे महीन अर्ध पारदर्शी कपड़ा बुना जाता है। चीनमें इन रेशोंको तिनकों और बाँसके साथ मिश्रित करके कागज बनाया जाता है। जिसपर बड़ी सुन्दर चित्रकारी की जाती है। अनन्नासका छिलका भी बहुत उपयोगी है। कहीं-कहीं इस छिलकेसे सिरका बनाया जाता है, पर बहुधा इन्हें भट्ठीमें सुखाकर जानवरोंके लिये पोषक चारा तैयार किया जाता है। इसके रससे बने उपोत्पादोंका भी तरल चीनीके रूपमें या सलकोबिर्क अम्ल तथा पेय एवं चिकित्सकीय उपयोगकी दृष्टिसे सिट्रिक अम्लके तौरपर प्रयोग होता है। इसके एसेन्सका स्वाद तथा सुगन्धके लिये प्रयोग किया जाता है। इसका मुरब्बा भी बहुत स्वादिष्ठ और पौष्टिक होता है।

स्वास्थ्य-रक्षामें आमका उपयोग

(श्रीप्रशांतकुमारजी सैनी)

पका आम स्वादमें मधुर, ठंडा, बलवर्धक, धातुवर्धक, पौष्टिक, भारी, त्रिदोषनाशक, जठराग्नि-उद्दीपक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध एवं शौच साफ लानेवाला है। यह तृषा, दाह, वायु, पित्त, थकान एवं अरुचिको दूर करनेवाला है तथा शरीरमें चर्बी एवं मूत्रका प्रमाण बढ़ाता है। पका आम हृदयके लिये हितकारी, शरीरके वर्णको सुधारनेवाला एवं संग्रहणी, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, यकृत्-वृद्धि, आँतोंकी सूजन-जैसे रोग मिटाता है। अच्छा आम वृक्षपरसे उतारनेके बाद घासके बीच कृत्रिम गरमीसे पकानेपर गुणकारी बनता है। वस्तुत: पका आम गरमीके दिनोंमें टॉनिक है।

पके आमसे रक्तमें हीमोग्लोबिन (लालकण) बढ़ते हैं एवं कफदोष घटता है। दूधके साथ अच्छा पका आम खानेसे वीर्यवृद्धि होती है। आँत, पेट एवं फेफड़ोंके

अनेक रोग, कमजोरी एवं रक्तकी कमीसे उत्पन्न दर्द अवश्य दूर होते हैं। पके आमके सेवनसे बहुमूत्र एवं प्रमेह भी मिटता है।

पके आमसे सातों धातुओंकी वृद्धि होनेसे शरीरका स्वास्थ्य सुधरता है। पका आम दुर्बल, कृश लोगोंको पुष्ट बनानेके लिये सर्वोत्तम औषधि एवं खाद्य फल है।

कच्चा एवं स्वादमें खट्टा तथा तिक्त आम खानेसे लाभके बजाय हानि हो सकती है। कच्चा आम खाना हो तो उसमें गुड़, धनिया, जीरा और नमक मिलाकर खा सकते हैं। भुने हुए कच्चे आमके गूदेमें जल तथा शक्कर मिलाकर पीनेसे लू लगनेकी बीमारीमें लाभ होता है। यह 'पना' कहलाता है। कलमी आमोंसे देशी रेशेदार आम अधिक उपयोगी माना जाता है।

पके आमका रस बलवर्धक, पाचनमें थोड़ा भारी, वायु तथा पित्तदोष करनेवाला, शौच साफ लानेवाला, वीर्यवर्धक, तृप्ति एवं पुष्टि देनेवाला तथा कफ बढ़ानेवाला है। लम्बे समयतक रखा हुआ बासी रस वायुकारक, पाचनमें भारी एवं हृदयके लिये अहितकर है।

दूधके साथ कोई भी खट्टा आम नहीं खाना चाहिये; क्योंकि वह रक्तविकार करता है। डिब्बोंमें पके आमके बासी रसका सेवन हितकर नहीं है।

आधुनिक विज्ञानके अनुसार पका आम पेटको मृदु बनानेवाला, मूत्र लानेवाला, पौष्टिक, तृप्तिदायक, मृदु, विरेचक, बाह्य विषप्रकोप एवं जन्तुओंका नाश करनेवाला तथा त्वचारोगनाशक होता है।

यूनानी हकीमोंके अनुसार पका आम आलस्यको दूर करता है, मूत्र साफ लाता है। टी०बी० मिटाता है। किडनी एवं वस्तिके लिये शक्तिदाता है।

पका आम चूसकर खाना आँखके लिये हितकर है। वीर्यकी शुद्धि एवं वृद्धि करता है। शुक्र-प्रमेह आदि विकारों एवं वातादि दोषोंके कारण जिनको संतानोत्पत्ति न होती हो उनके लिये पका आम लाभकारक है।

पका आम व्रणरोपक है। इसके सेवनसे शुक्राल्पताजन्य नपुंसकता, दिमागकी कमजोरी, अल्सर आदि रोग दूर होते हैं एवं रक्तकी शुद्धि होती है। आहारमें केवल दूध एवं पके आमका रस लेनेसे कुष्ठ-रोग मिटता है। आमके बासी रसमें सोंठ एवं घी मिलाकर खानेसे वह हितकारी बनता है। आम खानेके बाद पानी नहीं पीना चाहिये।

जिस आमका छिलका पतला, गुठली छोटी हो और जिसमें रेशा न हो तथा गर्भदल अधिक हो, ऐसा आम मांस एवं धातुके लिये उत्तम पोषक होता है।

कफदोषजन्य खाँसी एवं श्वासके रोगियोंके लिये मधुके साथ आम खाना एवं दूध पीना हितकर नहीं है।

मधुके साथ पके आमके सेवनसे क्षय, प्लीहा, वायु एवं कफदोष दूर होता है। आमके रसमें घी डालकर सेवन करनेसे वह जठराग्निदीपक, बलवर्धक, जख्म भरनेवाला तथा वायु एवं पित्तदोषका नाशक बनता है।

पके आमके रसके पापड़ (अमावट या आमपापड़ा) तृषा, उल्टी एवं वायु-पित्तादि दोषोंको दूर करते हैं। यह थोड़ा रेचक, रुचिकर तथा पाचनमें हल्का होता है और शरीरमें स्थित वायुदोषका निवारण करता है। आमवृक्षके जड़से लेकर फलतक सभी अङ्ग औषधिकी दृष्टिसे उपयोगी हैं।

स्वास्थ्य-रक्षामें फालसेका योगदान

(श्रीप्रशान्तकुमारजी सैनी)

फालसा पाचनमें हल्का, स्निग्ध, मधुर, अम्ल और तिक्त है। कच्चे फलका विपाक खट्टा एवं पके फलका विपाक मधुर, शीतवीर्य, वात-पित्तशामक एवं रुचिकर होता है।

फालसाके पके फल स्वादमें मधुर, स्वादिष्ठ, रुचिकर, पाचनमें हल्के, कोष्ठबद्ध करनेवाले, तृषाशामक, उलटी मिटानेवाले, रेचनमें सहायक, हृदयके लिये हितकारी हैं। यह फालसा रक्तपित्तनाशक, वातनाशक, कफहर्ता, पेट एवं यकृत्के लिये शक्तिदायक, वीर्यवर्धक, दाहनाशक, सूजन मिटानेवाला, पौष्टिक, कामोद्दीपक, पित्तका ज्वर मिटानेवाला, हिचकी एवं श्वासकी तकलीफ, वीर्यकी कमजोरी एवं क्षय-जैसे रोगोंमें लाभकारक है। यह

रक्तविकारको दूर करके रक्तकी वृद्धि भी करता है।

आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे फालसामें विटामिन 'सी' एवं 'कैरोटिन' तत्त्व भरपूर मात्रामें होते हैं। गरमीके दिनोंमें फालसा एक उत्तम पौष्टिक फल है। फालसा शरीरको नीरोग एवं हृष्ट-पुष्ट बनाता है। फालसाका शर्बत उत्तम 'हार्टटॉनिक' है।

फालसाके अंदर बीज होता है। फालसेको बीजके साथ भी खा सकते हैं।

शरीरमें किसी भी मार्गके द्वारा होनेवाले रक्तस्रावकी तकलीफमें पके फालसेके रसका शर्बत बनाकर पीना लाभकारक है। यह शर्बत स्वादिष्ठ एवं रुचिकर होता है। गरमीके दिनोंमें शरीरमें होनेवाले दाह, जलन, पेट एवं दिमाग-जैसे महत्त्वपूर्ण अङ्गोंकी कमजोरी आदि फालसाके सेवनसे दूर होती है। फालसाका मुरब्बा भी बनाया जाता है।

पेटका शूल—सिकी हुई ३ ग्राम अजवाइनमें फालसेका रस २५ से ३० ग्राम डालकर थोड़ा-सा गरम कर पीनेसे पेटका शूल मिट जाता है।

पित्तविकार—गरमीके दोष, नेत्रदाह, मूत्रदाह, छाती या पेटमें दाह, खट्टी डकार आदिकी तकलीफमें फालसेका शर्बत पीना और अन्य सब खुराक बंद कर केवल सात्त्विक खुराक लेनेसे पित्तविकार मिट जाता है एवं अधिक तृषामें भी राहत होती है।

हृदयकी कमजोरी—फालसेका रस, नीबूका रस, सैंधव नमक, काली मिर्च योग्य प्रमाणमें लेकर उसमें मिस्री या शक्कर मिलाकर पीनेसे हृदयकी कमजोरी दूर होती है एवं उलटी, उदरशूल, उबकाई आना आदि तकलीफें दूर होती हैं। रक्तदोष भी मिट जाता है।

पेटकी कमजोरी—पके फालसेके रसमें गुलाबजल एवं शक्कर मिलाकर रोज पीनेसे पेटकी कमजोरी दूर होती है।

दिमागी कमजोरी—कुछ दिनोंतक नाश्तेके स्थानपर फालसेका रस उपयुक्त मात्रामें पीनेसे दिमागकी कमजोरी एवं सुस्ती दूर होती है, फुर्ती एवं शक्ति प्राप्त होती है।

मूढ़ या मृत गर्भमें—कई बार गर्भवती महिलाओंके गर्भाशयमें स्थित गर्भ मूढ़ या मृत हो जाता है। ऐसी अवस्थामें पिण्डको जल्दी निकालना एवं माताका प्राण बचाना आवश्यक हो जाता है। ऐसी परिस्थितिमें अन्य कोई उपाय न हो तो फालसाके मूलको पानीमें घिसकर उसका लेप गर्भवती महिलाकी नाभिके नीचे पेडू, योनि एवं कमरपर करनेसे पिण्ड जल्दी बाहर आ जायगा।

श्वास, हिचकी, कफ—कफदोषसे होनेवाले श्वास, सर्दी तथा हिचकीमें फालसेका रस थोड़ा गरम करके उसमें थोड़ा अदरकका रस एवं सैन्धव नमक डालकर पीनेसे कफ बाहर निकल जाता है तथा सर्दी, श्वासकी तकलीफ एवं हिचकी मिट जाती है।

मूत्रदाह—पके फालसे २५ ग्राम, आँवलेका चूर्ण ५ ग्राम, काली द्राक्ष १० ग्राम, खजूर १० ग्राम ले। आँवला, चन्दनचूर्ण एवं सोंठको कूटकर चूर्ण बना ले। फिर खजूर एवं द्राक्षको आधा कूट ले। फालसा भी आधा कूट ले। अब रात्रिमें यह सब पानीमें भिगोकर उसमें शक्कर २० ग्राम डालकर प्रातः अच्छी तरहसे मिश्रित करके छान लें। इसके दो भाग करके सुबह-शाम पीये। खानेमें दूध, घी, रोटी, मक्खन, फल एवं शक्करकी चीजें ले। तमाम गर्म खुराक खाना बंद कर दे। इस प्रयोगसे मूत्रकी, गुदाकी, आँखकी, योनिकी या अन्य किसी प्रकारकी जलन मिट जाती है। महिलाओंकी अतिमासिकस्राव तथा पुरुषोंका प्रमेह आदि मिटता है। दिमागकी अनावश्यक गर्मी दूर होती है।

वेगोंको धारण करे

धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च। लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनां जितेन्द्रियः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० ४। २४)

जो मानव लोक तथा परलोकमें अपने कल्याणकी इच्छा करता है, उसे चाहिये कि वह सर्वदा लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य तथा राग (आसक्ति) आदि वृत्तियोंके वेगोंको धारणकर (रोककर) जितेन्द्रिय बने।

सिंघाड़ा एक औषधि है

(श्रीसुरेन्द्रकुमारजी 'महाचन्द्र')

सिंघाड़ा आश्विन-कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर)-मासमें आनेवाला लोकप्रिय फल है। इसका पौधा बेलके रूपमें होता है। बेल प्राय: वर्षा-ऋतुमें लगायी जाती है और फल जाड़ेकी ऋतु प्रारम्भ होनेके बाद आते हैं। इसका पौधा जलीय कहलाता है।

सिंघाड़ेको लोग बड़े प्रेमसे कच्चा ही खाते हैं। कच्चे सिंघाड़ेको 'दूधिया सिंघाड़ा' भी कहते हैं। जब सिंघाड़ेकी मींगी (गिरी) कुछ कड़ी (पक्की) हो जाती है, तब इसे प्राय: उबालकर खाते हैं। मींगीको पकनेपर ही सुखाकर संग्रह किया जाता है। इन्हीं शुष्क मींगियोंको कूट-पीसकर आटा बनाकर औषधिके रूपमें अथवा व्रत (उपवास) आदिमें सेवन करनेके प्रयोगमें लाया जाता है।

प्राचीन आयुर्वेदाचार्योंके अनुसार सिंघाड़ा शीतल प्रकृतिवाला फल है। यह खानेमें स्वादिष्ठ, भारी एवं ग्राही होता है। सिंघाड़ा मलशोषक, पित्त, रक्तविकार तथा रक्त-पित्तका शमन करनेवाला होता है। यह वृष्य गुणवाला बाजीकारक, तापनिवारक, श्रमहारक, वीर्यवर्धक तथा उद्दीपक होता है। यह कुछ मात्रामें वायु और कफकी वृद्धि करनेवाला होता है, अत: वात एवं कफ-प्रकोपसे ग्रसित लोगोंको इसका सेवन नहीं करना चाहिये। यदि करना ही पड़ जाय तो अत्यल्प मात्रामें करना चाहिये। सिंघाड़ेका किसी भी रूपमें नियमित सेवन 'बल्य' (बलकारक) होता है।

रासायनिक विश्लेषण करनेसे पता चलता है कि सिंघाड़ेके १०० ग्राम खानेयोग्य भागमें लगभग ७० ग्राम क्षारजल, ५.२५ ग्राम वसा, ४.५ ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स, ३.२५ ग्राम प्रोटीन तथा समुचित मात्रामें कैल्सियम, फास्फोरस और अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण खनिज-लवण तत्त्व विद्यमान रहते हैं। सिंघाड़ेमें खनिज, क्षारकी मात्रा, गाय-भैंसके दूधकी तुलनामें बाईस प्रतिशत अधिक होती है।

यह एक अनुभवकी बात है कि सिंघाड़ेका सेवन त्रिदोष, भ्रम, मोह तथा सूजनको दूर करता है। यह दाहका शमन करता है, अवसाद, शुक्र, प्रमेह एवं स्वप्नदोष आदि रोगोंमें पर्याप्त लाभ पहुँचाता है। सिंघाड़ेका सेवन करनेसे शरीरका क्षय जल्दी ही रुक जाता है। इसके सेवनसे गुदा-मार्गसे होनेवाला रक्तस्राव भी बंद हो जाता है। पित्त-प्रकृतिवालोंको सिंघाड़ेके मौसममें इसका पर्याप्त सेवन अवश्य करना चाहिये। सिंघाड़ेमें मांसवर्द्धक गुण होता है, अत: जो दुबले-पतले और शक्तिहीन हैं; उन्हें इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

गर्भवती महिलाओंके लिये यह अच्छा खाद्य है। इसके नियमित एवं उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे गर्भस्थ शिशु स्वस्थ तथा सुन्दर बनता है। बच्चा कुपोषणका शिकार नहीं होता। प्राचीन आयुर्वेदाचार्योंने सिंघाड़ेकी प्रशंसा करते हुए यहाँतक कह दिया है कि यदि गर्भवती स्त्री सिंघाड़ेका पर्याप्त मात्रामें उचित सेवन करे तो उसका मूढ़गर्भ भी सजीव हो उठता है। इससे सिद्ध होता है कि सिंघाड़ा गर्भावस्थामें अत्यधिक लाभकारी होता है।

यदि कोई महिला गर्भाशयके दौर्बल्यकी शिकार हो, गर्भाशयकी दुर्बलताके कारण जिसे गर्भ न ठहरता हो, बार-बार गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता हो तो उसे सिंघाड़ेके आटेसे बने हलवे या लपसीका दूध एवं शक्करके साथ प्रात:-सायं प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

स्त्रियोंके श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर रोगोंमें भी यह फल लाभकारी है। श्वेतप्रदरमें स्त्रीके बलाबलके अनुसार ४० ग्रामसे ५० ग्रामतक सिंघाड़ेका हलवेके रूपमें तीनसे चार सप्ताहतक सेवन करनेसे रोगसे मुक्ति मिल जाती है। साथ ही शरीर पुष्ट होता है। रक्तप्रदरकी स्थितिमें हलवेकी अपेक्षा इसके आटेसे बनी रोटियाँ अधिक लाभ पहुँचाती हैं। इनका सेवन भी तीन-चार सप्ताहतक करना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्रता, पेशाबकी जलन, कठिनाईसे पेशाबका उतरना आदि रोग होनेपर सिंघाड़ेका मौसम हो तो ताजे सिंघाड़ेका १०० ग्रामसे २०० ग्रामतक प्रयोग करे, अन्यथा सिंघाड़ेके क्वाथका प्रयोग करे।

धातु-दौर्बल्यताकी स्थितिमें पुरुषोंको ५ ग्रामसे १० ग्रामतक सिंघाड़ेका आटा गुनगुने मिस्रीयुक्त दूधके साथ सेवन करनेपर पर्याप्त लाभ मिलता है। यदि शीतकालमें पुरुष २ ग्रामसे ५ ग्रामतक सिंघाड़ेका आटा रात्रिकालमें विशेषत: ले तो शक्तिकी वृद्धि होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है।

सिंघाड़ा रक्त एवं ज्ञान-तन्तुओंको विशेषरूपसे बल प्रदान करनेवाला होता है। यदि कोई व्यक्ति दाह, ज्वर, रक्त-पित्त या संताप-बेचैनी आदिसे पीडित हो तो उसे सिंघाड़ेके रसका प्रयोग प्रतिदिन १०-१५ ग्रामसे २०-२५ ग्रामतक शरीरके बलाबलके अनुसार अवश्य करना चाहिये। यदि सिंघाड़ेका रस न मिले तो मींगीसे क्वाथ तैयार करके प्रयोगमें लाये।

सिंघाड़ेको विद्वानोंने फलाहारमें शामिल किया है। इसके शुष्क फलोंका आटा व्रत-उपवास आदिमें प्रयोग किया जाता है। सिंघाड़ेका सेवन करते समय इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि यह और इसका आटा पाचनमें भारी होता है। अधिक मात्रामें सेवन करनेसे पेट-दर्द, मूत्रावरोध, अफारा, अजीर्ण आदि विकार होनेकी सम्भावना रहती है। अत: सिंघाड़े अथवा आटेका सेवन उचित मात्रामें ही करना चाहिये। [रंजन]

मस्तिष्कको शक्ति देता है केला

(डॉ० श्रीप्रमोदकुमारजी सोनी)

केला फल ही नहीं रोगोंसे लड़नेवाला योद्धा है। इससे मस्तिष्कको सेरोटोनिन मिलती है। मानसिक रूपसे परेशान व्यक्तियोंके मस्तिष्कमें सेरोटोनिनकी कमी होती है। केलेमें यह कमी पूरी करनेकी अद्भुत क्षमता है।

केला मोटापा नहीं बढ़ाता। केलेमें सोडियम बहुत कम होता है तथा कोलेस्ट्रोल बिलकुल नहीं होता। अत: डाइटिंग करनेवाले इसका सेवन कर सकते हैं।

केलेमें आवश्यक पोटैशियम होता है जो उच्च रक्तचापके नियन्त्रणमें तथा कई तरहके हृदय रोगोंमें फायदेमंद रहता है। केला आँतोंकी सड़न रोकता है। केलेका कैल्सियम आँतोंकी सफाई करनेमें अत्यन्त प्रभावी भूमिका निभाता है।

केलेका नियमित सेवन अनिद्रा और कब्ज दूर करके पेशाबकी जलन मिटाता है। यह अतिसार, आँत और कुष्ठ तथा हृदयरोगियोंके लिये प्राकृतिक औषधि है। यह आसानीसे पच जाता है, अत: वायु-विकार उत्पन्न नहीं करता। केला शीतल, पौष्टिक, बलवर्धक, कान्तिवर्धक, मधुर, स्निग्ध, वातपित्तनाशक और कफकारक रहता है। यह तृष्णा एवं दाह का नाश करता है।

केला पौष्टिक तत्त्वोंसे भरपूर रहता है। हरे केलेमें स्टार्च काफी मात्रा (६४ से ७४ प्रतिशत)-में तथा शर्करा कम (२ प्रतिशत) रहती है, परंतु पकनेपर स्टार्च शर्करा (७ से २५ प्रतिशततक)-में बदल जाती है।

पके केलेकी विशिष्ट खुशबू उसमें उपस्थित एमाइल एसीटेटके कारण रहती है। कच्चा केला क्लोरोफिलके कारण हरा रहता है, परंतु पकनेपर एंजाइमोंकी क्रियासे जैंथोफिल तथा केरोटिन नामक पीले रसायनोंमें बदल जाता है।

पके केलेमें ७० प्रतिशत पानी, १.२ प्रतिशत प्रोटीन, ०.२ प्रतिशत वसा, २२—२५ प्रतिशत शर्करा तथा १ प्रतिशत रेशा रहता है। इसमें कैल्सियम १७ मिलीग्राम, फास्फोरस ३६ मिलीग्राम तथा लोहा ०.९ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राममें रहता है। इसमें विटामिन 'ए' ४३० मिलीग्राम, थायमिन ०.०९ मिलीग्राम, राइबोफ्लेविन ०.०६ मिलीग्राम, नायसिन ०.६ मिलीग्राम तथा विटामिन 'सी' १० मिलीग्राम प्रति १०० ग्राममें रहता है। सौ ग्राम केला ९९ कैलोरी ऊर्जा देता है।

केलेके छिलकेके नीचे विटामिन होते हैं, जो केलेके पकनेपर उसके गूदेमें चले जाते हैं तथा छिलका पतला और चित्तीदार हो जाता है।

पका केला ठंडा, रुचिकर, मीठा, सुस्वादु, पुष्टिकारक, रक्तविकारनाशक, पथरी, रक्तपित्त दूर करनेवाला, प्रदर

एवं नेत्ररोग मिटानेवाला होता है।

केलेमें फास्फोरस ज्यादा रहता है, जो मन-मस्तिष्कको शक्ति प्रदान करता है।

केलेमें पैक्टिन नामक एक पदार्थ रहता है जो मलको मुलायम बनाकर पेटकी सफाई करता है।

केलेके छिलकेके अंदरवाला पतला मुलायम रेशा कब्ज दूर करके आँतोंको ठीक रखता है।

केला क्षारधर्मी फल होनेके कारण खूनकी अम्लताको दूर करके क्षारीयता बढ़ाता है।

केलेके सेवनसे बच्चोंका वजन जल्दी बढ़ता है। कमजोर व्यक्तियोंकी पाचनशक्ति ठीक होती है। भूख ज्यादा लगनेसे वे जल्दी हृष्ट-पुष्ट बनाते हैं।

बच्चोंको दूधके साथ केला खिलानेसे यह स्वास्थ्यवर्धक, पुष्टिकारक तथा सुपाच्य रहता है। इसमें थोड़ा शहद मिलाकर खिलाया जाय तो संक्रामकरोगसे भी बचाव होता है।

सुबह नाश्तेमें केला खाकर दूध पीना एक संतुलित तथा सम्पूर्ण आहार है। इसके सेवनसे पित्त-विकार दूर होते हैं।

केला उच्च रक्तचापके नियन्त्रणमें सहायक है। यह हृदयरोग, अतिसार और आँखोंके लिये प्राकृतिक औषधि है।

स्कर्वीरोगमें पके केलेका नित्य सेवन रामबाण औषधि है। यह अँतड़ियोंमें विजातीय पदार्थोंकी सड़न रोकता है।

दहीके साथ केलेके सेवनसे दस्त बंद हो जाते हैं। यह आँतोंके प्रवाहमें आराम दिलाता है। आँतके रोगोंको केला बिना ऑपरेशन ठीक कर देता है।

यह एकमात्र फल है जो पेटके जख्मके रोगियोंको दिया जा सकता है। यह पेटका अल्सर भी दूर करता है।

पेचिशमें केलेको दहीमें मथकर उसमें थोड़ा जीरा तथा काला नमक मिलाकर देनेसे फायदा होता है। अम्लता, पेटकी जलन और पित्तमें केला खाना लाभदायक है।

मुँहमें छाले हों तो केला खानेसे लाभ होगा।

नकसीरमें २-३ पके केलोंका गूदा, दूध तथा शक्कर मिलाकर पीनेसे आराम मिलता है।

पके केलेको मंद आँचमें पकाकर नमक, काली मिर्च मिलाकर दमाके रोगीको खिलानेसे लाभ होता है।

जिन स्त्रियोंको सफेद पानीकी शिकायत हो उन्हें कुछ रोज नियमित दो-तीन केले खानेसे फायदा हो जायगा।

बार-बार पेशाब लग रहा हो तो बार-बार केला खाना चाहिये।

टाइफायड बुखार उतरनेके बाद छोटी इलायचीके चूर्णके साथ रोगीको पका केला खिलाना चाहिये। इससे बुखारसे आयी दुर्बलता दूर हो जाती है।

पीलियारोगमें रोगीको कम-से-कम चार पके केले नित्य खाने चाहिये तथा कच्चे केलेकी सब्जी भी खानी चाहिये।

पेटमें जलन हो तो पका केला खाये।

प्रातःकाल दूधमें पका केला फेंटकर सेवन करना पुष्टिकारक एवं तृप्तिदायक आहार है। दुबले व्यक्तियोंके वजन बढ़ानेमें यह मदद करता है।

आधा कप गायके दहीमें एक केला तथा छोटी इलायचीका चूर्ण मिलाकर दिनमें दो-तीन बार चाटनेसे मुँहके छाले ठीक हो जाते हैं।

पका केला शहदके साथ प्रातःकाल खानेसे हृदय बलवान् बनता है, दिलकी धड़कन तथा दिलके दर्दमें लाभ होता है।

स्त्रियोंके प्रदररोगमें पका हुआ एक केला पाँच ग्राम घीके साथ कुछ दिन सुबह-शाम सेवन करनेसे लाभ होता है।

पके केलेके लगातार सेवनसे सूखी खाँसी, गलेकी खराश तथा गुर्दोंकी कमजोरी दूर हो जाती है।

पका केला कृमिरोगनाशक है। इसके सेवनसे रक्तकी खराबी दूर होकर त्वचाके रोग नष्ट हो जाते हैं।

दाद, खाज, खुजलीमें पके केलेमें नीबूका रस मिलाकर मरहम बनाकर लगाये।

जलनेपर पके केलेका गूदा मरहमकी तरह लगानेसे जलन शान्त होगी तथा फफोले नहीं पड़ेंगे।

पके केलेके गूदेमें आटा मिलाकर पानीके साथ गूँथ ले; इसे गरम करके सूजनवाले स्थानपर बाँधनेसे सूजन दूर हो जायगी।

चोटपर केलेका छिलका बाँधनेसे आराम मिलता है। घावपर केलेका पानी लगाकर पट्टी बाँधनेसे घाव जल्दी भर जाता है।

जो बच्चा मिट्टी खाता हो, उसे पाँच ग्राम शहदके साथ एक केला प्रतिदिन खिलाये। इससे पेटकी मिट्टी बाहर आ जायगी तथा बच्चेकी मिट्टी खानेकी आदत छूट जायगी।

बच्चा काँचकी गोली, सिक्का आदि निगल जाय तो उसे केला खिलाना चाहिये।

केलेके तनेका रस गुर्दे, लीवर तथा फेफड़ेके रोगोंमें लाभप्रद है।

खूनी दस्त तथा आँवमें दिनमें तीन बार केलेके तनेका रस दो-दो चम्मच पीनेसे लाभ होता है।

केलेकी जड़ कृमिनाशक, पौष्टिक, भूख बढ़ानेवाली, पथरी, पेचिशमें लाभकारी, मासिक धर्म-शोधक, मधुमेह तथा कुष्ठ रोगका नाश करनेवाली होती है।

सावधानियाँ

केलेको दिनमें ही खाना चाहिये, क्योंकि गरमीमें यह जल्दी पचता है। रातमें खाया केला जल्दी हजम नहीं होता।

खाली पेट केला नहीं खाना चाहिये। खानेके बाद या भोजनके साथ ही इसे खाये।

केला खाकर पानी न पिये बल्कि दूध या छोटी इलायची खानेसे केला जल्दी हजम हो जायगा।

अनेक रोगोंमें उपयोगी हैं फल

(सुश्री पद्माजी)

फल स्वादिष्ठ एवं मीठे होनेके साथ-साथ विभिन्न खनिज तत्त्वों और विटामिनोंसे भरपूर होते हैं। सभी फलोंके अपने-अपने गुण होते हैं। इनका प्रयोग करके हम अनेक कष्टोंसे छुटकारा पा सकते हैं।

गाजर

गाजर पीसकर गरम करे। उसमें हलका सेंधा नमक मिलाकर खाज, खुजली आदिपर लेप करे।

गठियामें एक गिलास गाजरके रसके साथ एक चम्मच अजमोदा चूर्ण दिनमें तीन बार कुछ दिन लगातार ले।

गाजरके टुकड़ोंको नमक, नीबू, अदरक और पुदीनेके साथ दिनमें तीन बार सेवन करनेसे अरुचि नष्ट होकर भूख लगती है।

आगसे जल जानेपर गाजरको पीसकर लेप करनेसे जलन शीघ्र शान्त हो जाती है।

मधुमेहरोगमें गाजर अमृत है। इसके एक गिलास रसमें एक कप करेलेका रस मिलाकर या एक गिलास गाजरके रसमें आधा कप आँवलेका रस मिलाकर दिनमें तीन बार लेना चाहिये।

अनार

अधिक प्यास लगने, जी मिचलाने आदिमें अनारके रसमें आधा नीबू निचोड़कर पीये।

अनारदाना, सौंफ, धनिया—तीनों बराबर मात्रामें लेकर चूर्ण बना ले, दो ग्राम चूर्णमें एक ग्राम मिस्त्री मिलाकर दिनमें चार बार सेवन करनेसे खूनी दस्त, खूनी आँवमें आराम मिलता है।

—अनारके छिलकेको उबालकर उसके पानीसे घावोंको धोनेसे घाव जल्दी भरता है।

—दाँतोंके मसूड़ोंसे खून आता हो तो अनारके फूलोंके चूर्णसे मंजन करनेसे आराम मिलता है।

—सूखा अनारदाना पानीमें भिगो दें, तीन-चार घंटे बाद इस जलको थोड़ा-थोड़ा मिस्त्री मिलाकर कई बार पिलानेसे उलटी, जलन, अधिक प्यास आदि रोग नष्ट होते हैं।

अमरूद

अमरूदको गरम रेतमें भूनकर खानेसे खाँसीमें लाभ मिलता है।

दन्त-पीड़ामें अमरूदके पत्तोंको फिटकरीके साथ मिलाकर कुल्ला करनेसे आराम मिलता है।

अमरूदके पत्तोंमें पानकी तरह कत्थालगाकर खानेसे मुँहके छाले ठीक हो जाते हैं।

अमरूदके छोटे-छोटे टुकड़े कतरकर पानीमें

डाल दे। कुछ देर बाद उस पानीको छानकर पीनेसे मधुमेह या बहुमूत्रतासे उत्पन्न प्यास दूर होती है।

अमरूदके पत्तोंको पीसकर उसके रसको पीनेसे उदरमें होनेवाला दर्द दूर हो जाता है।

केला

टाइफायड बुखारके उतरनेके बाद छोटी इलायचीके चूर्णके साथ रोगीको पका केला खिलानेसे बुखारसे आयी दुर्बलता शीघ्र दूर हो जाती है।

पेटकी जलनमें पका केला खाये।

मुँहमें छाले हो जायँ तो पका केला खाना चाहिये।

दस्त लगनेपर पका केला दहीमें मथकर खाना चाहिये।

पीलियारोगमें रोगीको कम-से-कम चार पके केले नित्य खाने चाहिये।

संतरा

संतरेके रसमें सोंठका चूर्ण मिलाकर नियमित पीनेसे भूख लगती है।

संतरेके छिलकोंको पीसकर नीबूका रस मिलाकर चेहरेपर लगानेसे चेहरेका रंग साफ होता है।

कब्ज, सूखा, दन्तरोग आदिमें संतरेका रस लाभदायक है।

नेत्रोंमें संतरेका रस काफी फायदा करता है।

औषधीय गुणोंसे युक्त है नारियल

(सुश्रीलक्ष्मी सोनी)

हमारे देशमें पाये जानेवाले फलोंमें नारियल अत्यन्त उपयोगी फल है, जो भूखके साथ-साथ प्यास भी बुझाता है। इसे 'शुभफल' तथा 'श्रीफल' भी कहते हैं। 'श्री' यानी लक्ष्मीका फल।

एक चीनी कहावतके अनुसार नारियलमें उतने गुण हैं जितने कि वर्षमें दिन। नारियलका एक पेड़ उगानेका मतलब है अपने परिवारके लिये खाना-पीना, कपड़े, मकान, बर्तन, ईंधन आदिका इंतजाम कर लेना।

भारतीय लोक-व्यवहारमें नारियलका विशेष महत्त्व है। यह माङ्गलिक फल माना जाता है। इसकी गिरी, जल, तेल, फूल, जड़ तथा छाल आदि सभीके औषधीय उपयोग हैं।

(क) नारियलकी गिरी

(१) आयुर्वेदके अनुसार नारियलकी गिरी शीतल, पुष्टिकारक, बलदायक, वात-पित्त और रक्तविकार-नाशक होती है। यह देरसे हजम होनेवाली तथा मूत्राशयशोधक मानी जाती है।

(२) नारियलकी सूखी गिरी मधुर, पौष्टिक, स्वादिष्ठ, स्निग्ध, रुचिकारक, बलवीर्यवर्धक तथा मलावरोधक होती है। नारियलमें उच्चकोटिका प्रोटीन रहता है।

(३) पकनेपर नारियलकी गिरीमें चिकनाई तथा कार्बोहाइड्रेटकी मात्रा बढ़ जाती है।

(४) नारियलकी कच्ची गिरीमें अनेक एंजाइम होते हैं जो पाचनक्रियामें मददगार होते हैं। बवासीर, मधुमेह, गैस्ट्रिक और पेप्टिक अल्सरमें यह रामबाण औषधि है। चेहरेकी झुर्रियाँ मिटानेमें यह काफी सहायक है; क्योंकि इसमें चिकनाई एवं स्टार्च होता है। नारियलकी गिरीका दूध कुपोषणके शिकार बच्चोंके लिये बहुत उपयोगी है।

(५) नारियल मूत्र साफ लाता है, पौरुषमें वृद्धि करता है, मासिक धर्म खोलता है, शरीरको मोटा बनाता है तथा मस्तिष्ककी दुर्बलताको दूर करता है।

(६) मुँहमें छाले हो जानेपर या पान खानेसे जीभ कट जानेपर सूखे नारियलकी गिरी तथा मिस्री मिलाकर खानेसे लाभ होता है।

(७) कच्चे नारियलकी २५ ग्राम गिरी महीन पीसकर अरण्डीके तेलके साथ खानेसे पेटके कीड़े निकल जाते हैं।

(८) प्रातः भूखे पेट नारियल खानेसे नकसीर आनी बंद हो जाती है।

(९) नारियलकी गिरी बादाम, अखरोट, पोस्ताके दाने मिलाकर सेवन करनेसे स्मरणशक्ति तथा शरीरकी शक्ति बढ़ती है।

(१०) नारियलकी गिरी मिस्रीके साथ खानेसे प्रसव-दर्द नहीं होता तथा संतान गौरवर्ण एवं हृष्ट-पुष्ट होती है।

(११) नारियलकी गिरी और शक्कर मिलाकर खानेसे आँखोंके सामान्य रोगोंमें लाभ होता है।

(१२) पुराने नारियलकी गिरीको पीसकर उसमें थोड़ी-सी हल्दी मिलाकर उसे गरम करके चोट-मोचपर बाँधनेसे आराम मिलता है। नारियलकी गिरी कब्ज दूर करनेमें सहायक होती है। यह आँतोंमें चिकनाहट पैदा कर देती है।

(ख) नारियलका पानी

कच्चे नारियलको 'डाभ' कहते हैं। इसमें काफी मात्रामें पानी रहता है। धीरे-धीरे इस पानीका कुछ भाग मुलायम गिरीमें बदल जाता है; फिर पानी सूखनेसे मुलायम गिरी कठोर बन जाती है, जिसे खोपरा कहते हैं।

(१) नारियलका पानी अमृतके समान उपयोगी होता है। इसे पीनेसे प्यास बुझनेके अलावा शरीरको शक्ति भी प्राप्त होती है।

(२) आयुर्वेदके अनुसार नारियलका पानी स्वादिष्ठ, शीतल, रेचक, रक्तशोधक, प्यास और पित्तको शान्त करनेवाला, मूर्च्छा तथा ज्वरनिवारक होता है। ताजे कच्चे नारियलके पानीमें माँके दूधके समान गुण रहते हैं। एक नारियलके पानीसे शरीरको दैनिक आवश्यकताके बराबरकी मात्रामें विटामिन 'सी' मिल जाता है।

(३) एक अमरीकी डॉक्टरके अनुसार नारियलका पानी ग्लूकोजके पानीकी जगह उपयोगमें लाया जा सकता है। सात माहके हरे नारियलके पानीके रासायनिक गुण रक्तके प्लैज्मा (Plasma)-के समान होते हैं। उनके अनुसार नारियलके पानीमें अधिकतम पोषक तत्त्व होते हैं। इसमें ५ प्रतिशत चीनी (फ्रैक्टोज तथा सुक्रोज)-की मात्रा रहती है।

(४) निर्जलीकरण (डिहाइड्रेशन)-को दूर करनेका यह सस्ता एवं आदर्श द्रव्य है।

(५) डाभका पानी अनिद्राकी अवस्थामें लाभकारी है।

(६) नारियलका पानी पीनेसे हिचकी दूर होती है तथा पेट-दर्दमें लाभ होता है।

(७) पेशाबकी जलनमें नारियलके पानीमें गुड़ तथा हरा धनिया मिलाकर पीनेसे लाभ होता है।

(८) नारियलका पानी पीनेसे पेट साफ रहता है तथा पथरी निकल जाती है।

(९) नारियलका पानी पीकर कच्चा नारियल खानेसे पेटके कृमि निकल जाते हैं।

(१०) नारियलका पानी पीनेसे ज्वरका ताप कम होता है, यह तेज ज्वरको कम करता है।

(११) लू लग जानेपर नारियलके पानीके साथ काला जीरा पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शान्ति मिलती है।

(ग) नारियलका तेल

करीब ६५ प्रतिशत नारियल खानेके काम आता है, शेषका तेल निकाला जाता है। एक हजार फलोंसे करीब २५० किलोग्राम खोपरा तथा करीब १०० लीटर तेल निकलता है। यह तेल २३ से २८ डिग्री सेल्सियसपर पिघलता है तथा इससे कम तापपर ठोस जमा हुआ रहता है।

(१) तेल करीब २० प्रतिशत खानेमें तथा शेष सौन्दर्यवर्धक पदार्थ बनानेके काममें लिया जाता है। इससे साबुन तथा मोमबत्ती भी बनायी जाती है।

(२) नारियलका तेल सुपाच्य होता है। यह खाने तथा तलनेके काम आता है। रासायनिक एवं भौतिक दृष्टिसे यह तेल मक्खनसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यह वात-पित्तनाशक, दन्तविकारनाशक, कृमिनाशक, केशवर्धक, श्वास, मूत्रघात एवं प्रमेहमें बहुत उपयोगी है। यह स्मरणशक्ति बढ़ाता है।

(३) नारियलके तेलमें नीबूका रस मिलाकर मालिश करनेसे खुजली मिटती है, बालोंका झड़ना तथा सफेद होना बंद हो जाता है।

(४) नारियलके तेलमें बादाम पीसकर सिरपर लगानेसे सिरदर्द मिटता है।

(५) नारियलका तेल बालोंके लिये बहुत उपयोगी तथा गुणकारी है। हलका होनेके कारण इससे बाल चिपचिपाते नहीं तथा रूसी आदिकी भी शिकायत दूर होती है।

(६) नारियलके तेलकी मालिश नाखूनोंपर करनेसे उनकी स्वाभाविक चमक और आयु बढ़ती है।

(घ) नारियलके अन्य भाग

(१) नारियलके फूल शीतल, मलावरोधक, स्तम्भक, रक्त-पित्तनाशक, प्रमेहनाशक, रक्तातिसार एवं बहुमूत्रतानिवारक होते हैं।

(२) नारियलके वृक्षकी कोमल जड़ मूत्रविरेचक, शोथ, यकृत्-विकारमें उपयोगी है।

(३) जड़को पानीके साथ पीसकर पेडूपर गाढ़ा लेप करनेसे पेशाब खुलकर आने लगता है।

(४) नारियलके कोमल पत्ते मधुर होते हैं, अतः खाये भी जाते हैं। इन्हें उबालकर स्वादिष्ठ शाक एवं रायता बनाया जाता है।

(५) नारियलकी जटा श्वाससम्बन्धी रोगोंमें बहुत उपयोगी है। यह वमननाशक तथा रक्तस्राव-निरोधक होती है।

(६) दमा और खाँसीमें नारियलकी जटाकी भस्ममें शहद मिलाकर दिनमें दो-तीन बार सेवन करनेसे लाभ होता है। यह हिचकी-रोगमें भी हितकारी है।

(७) शरीरके किसी भी भागसे बहते हुए खूनपर जटाकी भस्म लगानेसे खून बंद हो जाता है।

(८) नारियलकी जटा जला-पीसकर उसमें बूरा मिलाकर करीब १० ग्राम फाँकी पानीके साथ लेनेसे खूनी बवासीरमें लाभ होता है।

स्वास्थ्यके लिये उपयोगी है गन्नेका रस

(सुश्री वर्षाजी)

गन्नेका रस अत्यन्त शीतल पेय है। गरमियोंमें इसका सेवन विशेष लाभदायक है। आज जैसे-जैसे हमारा देश तथाकथित विकासकी ओर बढ़ रहा है, हमारा ध्यान उन विदेशी वस्तुओंकी ओर ज्यादा खिंच रहा है जिनके सेवनसे स्वास्थ्य तो खराब होता ही है, पैसे भी अधिक खर्च होते हैं। ऐसे पेयोंके सेवनसे अनेक प्रकारकी बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं। इन बहुराष्ट्रिय कम्पनियोंके शीतल पेयोंको पीनेके बजाय यदि हम अपने देशमें उत्पादित गन्नेके रसका सेवन करें तो यह हमारे लिये अधिक लाभदायक होगा। गन्नेके रसमें प्राकृतिक खनिज तथा लवणतत्त्व अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। गरमियोंमें हमारे शरीरसे पसीनेके रूपमें जो आवश्यक तत्त्व बाहर निकल जाते हैं, गन्नेके रसके सेवनसे उनकी आपूर्ति सम्भव है।

काला नमक, नीबू, पोदीनेका रस और नारियलका पानी मिला हुआ गन्नेका रस अत्यन्त स्वादिष्ठ होता है। इसे पीनेसे शरीरको ऊर्जा मिलती है, साथ ही प्यास भी बुझती है।

गन्नेके रसमें विटामिन 'ए' तथा 'बी' पर्याप्त मात्रामें पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, फास्फोरस, कैल्सियम, लोहा, सोडियम, पोटैशियम आदि पर्याप्त मात्रामें पाये जाते हैं।

गन्नेके रसके सेवनसे मनुष्यकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है और बुद्धि, बल तथा वीर्यका विकास होता है। जो व्यक्ति प्रतिदिन मौसमके अनुसार दो गिलास गन्नेके रसका सेवन करता है, उसकी पाचन-क्रिया अनुकूल रहती है। इसके सेवनसे पेटकी कई बीमारियाँ भी दूर होती हैं।

गन्नेका रस कब्ज, अल्सर, अतिसार आदिमें उपयोगी है और फेफड़ेकी गतिको भी यह सामान्य रखता है। नाकसे खून गिरनेपर इसमें आँवला एवं धनियाके पत्तोंको पीसकर उस रसको नाकमें डालनेसे खूनका गिरना बंद हो जाता है। इसकी तासीर शरीरको शीतलता प्रदान करती है और मस्तिष्कको भी ठंडक पहुँचाती है, जिससे ताजगी बनी रहती है और दिमाग भी चुस्त-दुरुस्त रहता है। यह जिगरकी कार्यक्षमताको बढ़ाता है और खूनकी कमीको पूरा करता है। पीलियाके रोगियोंके लिये यह अत्यन्त ही उपयोगी दवा है। पीलियाके रोगी जिनका शरीर खूनकी कमीके कारण पीला दिखायी पड़ता है, इसमें प्राप्त लौह तत्त्व उसके शरीरमें शक्तिका संचार करते हैं। पीलियाके रोगियोंको प्रतिदिन सुबह ताजे गन्नेके

रसका सेवन करना चाहिये। परंतु जिन्हें मधुमेह (डायबिटीज)-की बीमारी हो, उन्हें गन्नेके रसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

गन्नेका रस घरमें निकाला हुआ उत्तम है। घरमें निकाला हुआ गन्नेका रस स्वच्छ और शुद्ध होता है। रससे भी अधिक लाभकारी होता है गन्नेको दाँतोंसे चबाकर रस चूसना। इससे मसूढ़े मजबूत होते हैं और दाँतोंका व्यायाम भी हो जाता है तथा दाँतोंमें चमक आती है। मशीनसे निकाले गये गन्नेके रसकी तुलनामें मुँहसे चूसकर निकाला गया गन्नेका रस विशेष लाभकारी होता है।

स्वास्थ्यके लिये जरूरी है कुलथीका सेवन

(श्रीसन्दीपजी)

कुलथी छोटानागपुर और उड़ीसाके क्षेत्रोंमें अधिक मात्रामें पायी जानेवाली प्रमुख फसल है। यह भी एक किस्मकी दाल ही है। यह अरहरके दानेकी तरह ही चिपटी होती है। इसका वानस्पतिक नाम एताइलोसिया स्केरे बिजोइंडिस है। इसमें काफी मात्रामें प्रोटीन पाया जाता है। इसकी खेती प्रायः बरसातके मौसममें होती है। दाल बनानेपर इसका रंग मटमैला हो जाता है। खानेमें यह अत्यन्त ही स्वादिष्ठ होती है। आयुर्वेदमें इसका विस्तारसे वर्णन है। आयुर्वेदविशेषज्ञोंका कहना है कि यह प्लीहावृद्धिको दूर करनेवाली, मधुर, क्षुधावर्धक तथा चक्षुविकारनाशक है।

लोग इसकी दाल बनाकर सेवन करते हैं; स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह सुपाच्य भी है तथा इसे बीमार व्यक्ति भी खा सकते हैं, क्योंकि यह दाल काफी हलकी होती है। यह जठराग्निको प्रदीप्त करती है। कुलथीका पानी भी स्वास्थ्यकी दृष्टिसे फायदेमंद है। आयुर्वेदमें इसे स्वास्थ्यवर्द्धक बताया गया है। कुलथीमें प्रचुर मात्रामें पौष्टिक तत्त्व पाये जाते हैं। इसमें विटामिन ए, बी, फास्फोरस तथा कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रामें पाये जाते हैं। महिलाओंमें होनेवाले प्रदर रोगके लिये कुलथी अत्यन्त उपयोगी है। इसे उबालकर इसका पानी पीनेसे काफी लाभ मिलता है।

खूनी बवासीरके रोगियोंको कुलथीके आटेकी पतली कांजीका सेवन करना चाहिये। १०० ग्राम कुलथीकी दालका पानी पीनेसे मोटापेमें कमी आती है। कुलथीका आटा बदनमें मालिश करनेसे पसीनेकी शिकायत दूर होती है। वातज्वरमें ६० ग्राम कुलथी लेकर पानीमें उबाले। जब थोड़ा पानी बच जाय तो आधा चम्मच सोंठ और उसमें थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर रोगीको दे। इससे रोग दूर होता है।

अतिसाररोगके लिये भी यह काफी फायदेमंद है। इसके पत्तेको पीसकर उसमें कत्था मिलाकर अतिसारके रोगीको देनेपर राहत मिलती है।

पेटमें होनेवाली पथरीके लिये यह बहुत लाभदायक होती है। इसकी दाल बनाकर रोजाना इसके सेवनसे गुर्दे तथा मूत्राशयकी पथरी दूर हो जाती है। छोटानागपुर तथा उड़ीसाके कई क्षेत्रोंमें प्रसवके बाद माताको कई दिनोंतक कुलथीका पानी दिया जाता है। इससे पेट साफ होता है और मासिक धर्म भी साफ आता है।

गुणकारी सरसोंका तेल

(श्रीसुशीलकुमारजी श्रीवास्तव)

दैनिक जीवनमें सरसोंके तेलका प्रयोग प्रायः किया जाता है।

सब्जीके साथ ही सरसोंके तेलको बालोंमें लगाने, शरीरमें मालिश करनेमें भी काममें लाया जाता है। पाया गया है कि सरसोंके तेलमें कई औषधीय गुण होते हैं। शुद्ध सरसोंका तेल अत्यन्त लाभदायक होता है।

सरसोंके तेलकी कुछ उपयोगिताएँ इस प्रकार देखी जा सकती हैं—

१- शरीरपर मालिश करनेसे यह शक्ति प्रदान करता है और शरीरको मजबूत बनाता है। सरसोंके

तेलमें लहसुन गरम करके इसके मिश्रणसे बच्चोंके शरीरपर मालिश करनी चाहिये।

२- दाँतदर्दमें भी यह लाभ पहुँचाता है। पिसा हुआ नमक तथा सरसोंका तेल मिलाकर दाँतोंपर मलनेसे दाँत तो साफ होते ही हैं, उनका दर्द भी दूर हो जाता है। इससे मसूढ़े मजबूत होते हैं तथा पायरियासे छुटकारा मिलता है।

३- हाथ व पैरोंमें दर्द हो तो सरसोंके तेलकी मालिश करनी चाहिये। सिरदर्द होनेपर सिरपर मालिश करनेसे फायदा होता है।

४- कानमें मैल जम गयी हो तथा दर्द होता हो तो सरसोंके तेलको हलका-सा गरम करके कानमें डाले।

५- हाथ खुश्क और खुरदरे हो रहे हों तो सरसोंके तेलकी हलकी मालिश करे। इससे त्वचाकी खुश्की दूर हो जाती है और त्वचा मुलायम भी हो जाती है।

६-अत्यधिक थकान होनेपर सरसोंके तेलमें लहसुन गरम करके इसके मिश्रणसे तलुओंमें मालिश करे।

७- पैरोंकी अँगुलियाँ पानीसे सड़ गयी हों तो उनपर सरसोंका तेल लगाये। कुछ ही दिनमें सड़न दूर हो जायगी।

८- सरसोंके पत्तोंकी सब्जी भी पेटके रोगोंमें लाभ पहुँचाती है।

९- सरसों काली और पीली दो रंगोंमें होती है। इनमें भी पीली सरसों विशेष गुणकारी मानी गयी है।

१०- वर्षवृद्धि (जन्मोत्सव)-संस्कारमें कच्ची हल्दीके साथ पीली सरसोंके दानोंकी पोटलिका बनाकर उसकी प्रतिष्ठा कर हाथमें बाँधा जाता है, इससे आयुकी वृद्धि होती है तथा यह अनेक प्रकारके अरिष्टों तथा बाधाओंको दूर करता है।

अजवाइन—परिचय एवं प्रयोग

यवानी (अजवाइन) (Ajowan, Levage)

अजवाइन छोटी-बड़ी तथा जंगली—इस प्रकार कई प्रजातिकी होती है। यहाँ संक्षेपमें इसका परिचय तथा औषधीय उपयोग दिया जा रहा है—

अजवाइन भारतवर्षके लगभग हर प्रान्तमें पैदा की जाती है। अजवाइनके दानोंमें एक उड़नशील सुगन्धित तेल होता है। इसका मुख्य घटक थाइमाल ३५ से ६० प्रतिशत है तथा कुछ कार्वाक्रोल (Carvacrol) रहता है। मानक अजवाइन तेलमें ४० प्रतिशतसे कम थाइमोल नहीं होना चाहिये। तेलको ठण्डा करनेपर थाइमोल जम जाता है। जिसे अजवाइनका फूल या सत अजवाइन (यवानी सत्त्व) कहते हैं। इसे स्टिअरोप्टिन भी कहते हैं।

गुण-धर्म—अजवायन लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त रसयुक्त, विपाकमें कटु और उष्ण वीर्य है। यह पाचक, रुचिकारक, परिपाकमें लघु, अग्निदीपक, पित्तवर्धक तथा शूलनाशक है। यह वात, श्लेष्मा, उदरसम्बन्धी रोग, आनाह, गुल्म, प्लीहा तथा कृमिनाशक है। तीक्ष्ण-उष्ण होनेसे यह कफ-वातशामक और पित्तवर्धक है। यह शोथहर, कृमिघ्न, श्वासहर और विषघ्न भी है।

प्रयोग—(१) यह कफ, वातविकारोंमें प्रयुक्त होता है।

(२) अजवायनका लेप या उसके तेलका अभ्यंग शोथ तथा वेदनायुक्त विकारोंमें लाभ करता है।

(३) चर्मरोगों या बिच्छू आदिके दंशमें इसका प्रयोग किया जाता है।

(४) सत-अजवाइनको जलमें मिलाकर उससे घाव साफ किया जाता है।

(५) आध्मान होनेपर पेटपर अजवाइनका लेप करने या उसकी पोटली बनाकर सेकनेसे लाभ होता है।

(६) इसकी पुल्टिस बनाकर उदरशूल, आमवात तथा संधिशूलमें सेंकनेसे लाभ होता है।

(७) विषूचिकामें हाथ-पैर तथा श्वास-कासमें छातीको सेंकनेपर लाभ होता है।

(८) इसके पत्तोंका रस कृमियोंको मारनेके काम आता है।

(९) इसके पत्तोंको पीसकर कीड़ोंके काटे हुए स्थानोंपर लगाया जाता है।

(१०) सत-अजवायनका उपयोग अन्त्रगत अंकुश,

कृमि तथा अन्य जन्तुओंकी वृद्धिको रोकनेके लिये किया जाता है।

(११) अजवाइनके प्रयोगसे जमा हुआ बलगम आसानीसे निकलता है। कफ नष्ट होता है, कफकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और तद्‌गत जीवाणुओंकी वृद्धि रुकती है। श्वासका वेग भी कम हो जाता है।

(१२) मूत्राघात कष्टार्तव और सूतिका रोगमें यह उपयोगी है। इसके प्रयोगसे गर्भाशयका संशोधन होता है। वातका शमन होता है, अग्नि बढ़ती है तथा ज्वरादि उपद्रव शान्त होते हैं।

(१३) उदरशूल, आध्मान आदि विकारोंमें अजवाइन, सेंधा नमक, सोंचर नमक, यवाक्षार हींग और आँवलेके चूर्णको आधेसे एक माशा शहदके साथ प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

(१४) बच्चोंके रोगों तथा हैजेमें अजवाइनका अर्क उपयोगी है।

(१५) अजवाइन, चींता, सेंधा नमक, सोंठ, कालीमिर्च समान भागमें लेकर चूर्ण बनाकर खट्टे मट्ठेके साथ सेवन करनेसे बवासीर, पीलिया तथा मन्दाग्नि दूर हो जाती है।

(१६) अजवाइनका सत्, पिपरमिन्ट, सत् कपूरको मिलाकर विषूचिका (हैजा)-के प्रारम्भमें तीन-चार बूँद बतासेमें मिलाकर देनेसे दस्त रुक जाता है।

(१७) अजवाइन वैसे ही एक चम्मच फाँकनेसे पाचनक्रिया ठीक रहती है।

(१८) भोजन करनेके बाद यदि वायु बननेकी शिकायत हो, पेटमें भारीपन या गुड़गुड़ाहट प्रतीत हो अथवा उल्टी-सीधी डकारें मालूम पड़ती हों तो स्वच्छ धुली सूखी अजवाइन तीन माशे और खानेका सोडा दो माशेकी फँकी लेकर दो-चार घूँट गरम पानी पिया करे। दोनों समय भोजनके बाद ऐसा करनेसे लाभ मिलता है।

(१९) अजवाइनको अच्छी तरह धोकर सुखा लें। सूख जानेपर काँच अथवा चीनीके बर्तनमें उसे डालकर ऊपरतक नीबूका रस भर दे तथा बर्तनको धूपमें रख दे जब नीबूका रस सूख जाय तब और नीबू रस डाले, इस प्रकार सात बार करे। प्रातः-सायं गरम पानीके साथ सेवन करनेपर सब प्रकारके उदररोगोंको दूर करने तथा पुरुषत्वकी वृद्धि करनेमें यह अत्यन्त उपयोगी है।

(२०) अजवाइनमें एक प्रकारका सुगन्धयुक्त उड़नशील तेल रहता जिसे सत्त्व अजवाइन या जवहनका फल कहते हैं। इसे एक तोला पिपरमिन्ट, दो तोला देशी कपूरके साथ एक शीशीमें डालकर बंद कर दे। कुछ समयमें तीनों पिघलकर पानी-जैसा हो जायगा। यह सब प्रकारकी पीड़ा, दन्तपीड़ा उदरपीड़ा कर्णपीड़ा पार्श्वशूल, छाती और कमरपीडा मस्तिष्कपीडामें तुरंत लाभ पहुँचानेवाली औषधि है। इसे फूरेरीसे लगाइये, कुछ बूँदें पिलायें अथवा चार-छः बूदें बतासे या चीनीके साथ लें।

हैजा, दस्त, जी-मिचलाना, उलटी, श्वास, खाँसी तथा विषैले कीड़ों—बिच्छू, ततैया आदिके काटनेपर इसका निःसंकोच प्रयोग किया जा सकता है।

(२१) सूखी खाँसीपर थोड़ी अजवाइनको सादे देशी पानमें रखकर उसका रस चूसना अत्यन्त लाभदायक होता है।

(२२) छोटे बच्चोंको प्रायः हरे-पीले दस्त अथवा दूध उलट देनेकी शिकायत रहती है। इस प्रकारकी बीमारीमें स्वच्छ अजवाइनका महीन चूर्ण दोसे चार रत्ती दिनमें तीन-चार बार प्रयोग करनेसे यह व्याधि नष्ट हो जाती है, बच्चा शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

(२३) अफारेके रोगमें चार माशा अजवाइन एक माशा काले नमकके साथ गरम पानीसे देना हितकारी होता है।

(२४) दाद, खाज, कृमिवाले घावपर अजवाइनका उबाला हुआ जल प्रयोग करनेसे रोगसे शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है।

(२५) अजवाइनको स्वच्छ कर चूर्ण बनाये, इसे नसवारकी तरह सूँघनेसे जुकाम, सिरकी पीडा, नासिकामें कफका रुक जाना आदि दोष दूर हो जाते हैं तथा मस्तिष्कके कृमि भी नष्ट हो जाते हैं।

(२६) अजवाइनको जलाकर उसका कपड़छान चूर्ण करे इस चूर्णको जस्तेकी सलाईसे आँखमें फूला हो जानेके बाद प्रातः-सायं डाले तो नौ सप्ताहके प्रयोगसे फूला मिटने लगता है।

(२७) अजवाइनको जलाकर बनाये गये चूर्णको

यदि उसमें थोड़ा-सा सेंधा नमक मिलाकर मंजन किया जाय तो दाँतके लिये हितकर होता है।

(२८) महिलाओंमें मासिक-अवरोध होनेपर अजवाइनको पुराने गुड़ और जलमें पकाकर प्रात:-सायं पीनेसे गर्भाशयका मल साफ हो जाता है। यह क्वाथ तबतक पीना चाहिये जबतक आर्तव साफ न आने लगे।

जंगली अजवायन (१)

यह हिमालयके निचले भागोंमें असम, मध्य बंगालतक पायी जाती है। इसके दाने बारीक छोटे-छोटे गोल किंचित् लम्बे, फीके एवं पीले रंगके होते हैं।

प्रयोग—(१) दानोंका प्रयोग पशुओंकी औषधिके रूपमें किया जाता है।

(२) यह उत्तेजक, दीपन, पाचक, शूलघ्न तथा आँतोंके लिये हितकर होता है।

(३) इसके प्रयोगसे गोल कृमि (केंचुए) निकल जाते हैं।

(४) इसके सेवनसे अफारेमें लाभ होता है, भूख बढ़ती है।

(५) इसकी धूप जलानेसे मच्छर आदि मर जाते हैं।

जंगली अजवाइन (२) (Wild Thyme)

यह हिमालयके गरम प्रदेशोंमें कश्मीरसे कुमाऊँ एवं ईरानतक होती है। इसके दाने बारीक और चिकने होते हैं।

यह उत्तेजक, कृमिनाशक, शूलनाशक, आँतोंके लिये पौष्टिक तथा अग्निवर्धक है।

(१) यह उष्ण सड़नको दूर करनेवाली होती है।

(२) यह मूत्रजनन, उत्तेजक एवं आँखोंके लिये हितकारी है।

(३) श्वास एवं कफहर, ग्राही, कृमिघ्न, व्रणशोधक और व्रणरोपक है।

(४) सड़नको दूर करनेमें इसका बहुत योगदान रहता है।

(५) इसके स्वरसका प्रयोग सिरके और मधुके साथ पुरानी खाँसी, कुक्कुर खाँसी तथा व्रणोंमें किया जाता है।

(६) अजीर्ण, अग्निमान्द्यमें सेंधा नमकके साथ प्रयोग होता है।

(७) इसके प्रयोगसे उदरशूल दूर होता है।

(८) वस्ति-पीड़ा, वस्ति-शोथ तथा लसिकामेह (Chyleeria)-में तथा मूत्रके स्वच्छ न आनेपर इसके क्वाथका सिरकेके साथ प्रयोग होता है।

(९) यह चर्मरोग, दाद, खाजमें बहुत लाभकारी है।

(१०) आगसे जले स्थानपर इसके रसको घीके साथ लगानेसे लाभ होता है।

(११) संधिशोथमें रेंड़ीके तेलके साथ पीसकर लगाया है और क्वाथ दिया जाता है।

(१२) इसकी धूपसे वायु-मण्डल शुद्ध होता है।

अजमोदा (बड़ी जवाइन) Celery Fruit

इसके दाने सामान्य अजवाइनसे थोड़े-से बड़े होते हैं, इसलिये इसे बड़ी अजवाइन कहते हैं।

गुणधर्म—यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, रसयुक्त, विपाकमें कटु और उष्ण वीर्य है।

(१) इसका प्रयोग वातरक्त-कृमि दूर करने, मूत्राशयके रोग और नष्टार्तवमें किया जाता है।

(२) श्वास, पथरी, यकृत्-प्लीहाविकार आदिमें इसका उपयोग होता है।

(३) कटिशूल, पार्श्वशूल, संधि वात तथा चर्मरोगोंमें इसका लेप करनेसे लाभ होता है।

(४) वात-व्याधिमें इसके चूर्ण एवं क्षीरपाकका प्रयोग किया जाता है।

(५) अग्निमान्द्य, अजीर्ण, आध्मान, उदरशूल, गुल्म, अतिसार और प्रवाहिकामें इसका चूर्ण सेवन करना लाभदायक है।

(६) वातरक्त आदि रक्त-विकारोंमें इसका प्रयोग करते हैं।

(७) हिक्का श्वास और मूत्रकृच्छ्रमें भी यह परमोपयोगी है।

(८) शुक्रदौर्बल्य, कष्टार्तव एवं सूतिका-रोगोंमें इसका प्रयोग होता है।

(९) प्रसवके बाद इसका प्रयोग करनेसे बल बढ़ता है, स्तन्यकी वृद्धि होती है, गर्भाशयका संशोधन होता है तथा वायुके उपद्रव शान्त होते हैं।

(१०) डेढ़से तीन मासे अजमोदाका चूर्ण, १ तोला मूलीके पत्तेके रसके साथ चार रत्ती यवक्षार

मिलाकर पीनेसे पथरी गलकर निकल जाती है। यह प्रयोग प्रातः-सायं नियमित करना चाहिये।

(११) बालकोंको गुदामें कृमि हो जानेपर अजमोदाको अग्निमें डालकर धुआँ देना चाहिये।

(१२) यदि भोजनके बाद हिचकी आती है तो अजमोदाके दाने मुखमें रखनेसे हिचकी बन्द हो जाती है।

(१३) यदि मूत्राशयमें वायुका प्रकोप हो गया हो तो अजमोदा और नमकको स्वच्छ वस्त्रमें बाँधकर इस पोटलीसे सेक करना चाहिये, इससे वायु नष्ट हो जाती है।

(१४) पतले दस्त आनेपर अजमोदा, सोंठ, छायका फूल, मोचरस समान मात्रामें लेकर चूर्ण बनाये। इस चूर्णको वयस्कोंको ३ से ६ माशेकी मात्रामें मट्ठेके अनुपानसे देना चाहिये।

पारसीक (खुरासानी) यवानी Herbane

खुरासान, यवन आदि देशोंमें बहुतायतसे होनेके कारण इसे खुरासानी या यवानी आदि नामोंसे कहा जाता है। भारत और यूरोपमें भी यह पायी जाती है। यूनानी चिकित्सकोंके मतानुसार खुरासानी अजवाइन सफेद, काली और लाल तीन प्रकारकी होती है। इनमेंसे काली अत्यन्त विषैली होती है।

रोगोंमें प्रयोग—(१) इसका प्रयोग कफ तथा वातजन्य विकारोंमें किया जाता है।

(२) स्तनशोथ, अण्डशोथ, अर्श, संधिशूल आदि शोथ तथा वेदना-प्रधान विकारोंमें इसका लेप किया जाता है।

(३) उदरशूल, अनाह, गुल्म आदि वात-प्रधान उदर विकारोंमें इसका प्रयोग होता है।

(४) कृमिरोगों, दौर्बल्य एवं रक्तस्रावमें इसका प्रयोग लाभकर होता है।

(५) कफघ्न होनेके कारण कासमें तथा श्वासहर होनेसे श्वास रोगमें इसका प्रयोग होता है।

(६) यह वेदनाहर और निद्राकर है, इसके प्रयोगसे कब्ज नहीं होती।

(७) इसकी क्रिया वेलाडोनाके समान होती है परंतु इसके प्रयोगसे मस्तिष्क कम उत्तेजित होता है। सुषुम्णा और आन्त्रपर अवसादक क्रिया होती है।

(८) इसके प्रयोगसे अनैच्छिक मांसपेशियोंके उद्वेष्टनके कारण होनेवाले शूल जैसे—नागशूल तथा मूत्रमार्ग-प्रक्षोभसे उत्पन्न शूल दूर होते हैं।

(९) यह विरेचक औषधियोंसे पैदा होनेवाले मरोड़को नष्ट करता है।

(१०) पथरी तथा वस्तिशोथ आदिमें यवसार, पान तथा गुरुचके साथ इसका प्रयोग अत्यन्त गुणकारी है।

(११) पीडितार्तव, अनियमित आर्तवमें इसका उपयोग अच्छा होता है।

(१२) दाँतके कोटरोंमें इसके बीजोंको पीसकर रखनेसे दन्तशूल दूर होता है।

(१३) इसको अंगारोंपर जलाकर धुएँको मुँहमें जाने देनेसे दन्तशूल ठीक होता है।

(१४) दन्तपीड़ा तथा मसूढ़ोंसे रक्त आनेपर इसके उबाले जलसे कुल्ला करना चाहिये।

(१५) यकृत् पीड़ा, छातीकी पीड़ामें इसे पीसकर लगाना चाहिये।

(१६) खुरासानी अजवाइनके साथ थोड़ा गुड़ मिलाकर खाने तथा ऊपरसे बासी ठण्डा जल पीनेसे उदरकृमि नष्ट हो जाते हैं।

(१७) महिलाओंके हिस्टीरियारोगमें इस अजवाइनके अर्ककी १५ से ३० बूँदें १-१ घण्टेके अन्तरसे ढाई तोला जलमें मिलाकर देनेसे शीघ्र ही लाभ होता है।

(१८) एक पाव खुरासानी अजवाइनको १ पाव तिलके तेलमें मन्दाग्निपर पकाकर तेलको छान ले, यह तेल थोड़ा गरम कर कानमें डालनेसे कर्ण-पीड़ा, मलनेसे संधिवात, गृध्रसी, कमरकी पीड़ा आदि नष्ट हो जाती हैं।

—डॉ० डी० डी० शर्मा
एस्कोर्ट्स चैरिटेबल आयुर्वेदिक, हॉस्पिटल
नीलम चौक, फरीदाबाद—१२१००१

करना रोगको बढ़ावा देना है।

(५) गोमूत्र पीनेसे जठराग्नि दीप्त होती है।

(६) लगातार ढाई तोला गोमूत्र पीनेसे पथरी भी कट जाती है, किंतु यह प्रयोग कुछ दिन करना चाहिये।

(७) गोमूत्र पीनेवालेको सायंकाल गायका धारोष्ण दुग्ध मिस्री मिलाकर पीना चाहिये।

(८) प्रातःकाल गोमूत्रसे आँखें धोनेसे दृष्टि तेज होती है तथा धीरे-धीरे चश्मा उतर जाता है।

(९) गोमूत्रसे आँखें धोनेवालेको चाहिये कि आँखोंपर साबुन न लगने दे तथा प्रतिदिन दिनमें दो-तीन बार गायका घी आँख और नाकमें लगाता रहे।

गोदुग्ध

(१) गायका धारोष्ण दुग्ध मिस्री मिलाकर पीनेसे मेधा-शक्ति बढ़ती है।

(२) गायके दूधमें घी मिलाकर पीनेसे शरीर पुष्ट होता है।

(३) गायका दूध शक्तिवर्धक है।

(४) गायका धारोष्ण दुग्ध पीनेवालेकी आयु बढ़ती है।

(५) आयु बढ़ानेके लिये धारोष्ण दुग्ध पीनेवालेको नमक कम मात्रामें सेवन करना चाहिये।

(६) रक्त-विकारवाले रोगीके लिये गायका दूध श्रेयस्कर होता है।

(७) प्रातः धारोष्ण दुग्धपानसे मनुष्य नीरोग रहता है।

अजवायन

रक्तचापवाले रोगीको अपने लिये बननेवाली रोटीमें अजवायन डलवाकर सेवन करना चाहिये। इससे मन्द हुई उसकी जठराग्नि दीप्त हो जायगी और रक्तचापकी गति दुःखदायी नहीं होगी।

(१) रक्तचापके रोगीको भोजन चबा-चबाकर करना चाहिये।

(२) भोजन करनेमें कभी भी जल्दी नहीं करनी चाहिये।

(३) खट्टे-मीठे, तीक्ष्ण तथा विदाही अन्नका परित्याग करना चाहिये।

(४) मिर्च और खटाई रोगको बढ़ानेवाली है।

(५) भोजन सादा और सात्त्विक होना चाहिये।

(६) भोजन भूखसे कुछ कम करनेसे भी आयु-वृद्धि होती है।

(७) आलू, अरबी और मैदाकी तली हुई चीजें जैसे कचौड़ी, पकौड़ी आदि नहीं खानी चाहिये।

(८) देरसे हजम होनेवाले अन्नसे बचना चाहिये।

(९) भारी वजन कभी नहीं उठाना चाहिये।

(१०) तेजीसे कभी नहीं चलना चाहिये।

(११) सीढ़ियोंपर चढ़ना-उतरना कम-से-कम होना चाहिये।

(१२) दिमागपर ज्यादा दबाव पड़े, ऐसी बातें नहीं सुननी चाहिये।

अदरक

(१) जिसे भोजन हजम न होता हो, उसे चाहिये कि भोजन करनेसे पहले चार-पाँच टुकड़े अदरकमें नमक तथा नीबूका रस मिलाकर ले और उसके बाद भोजन करे।

(२) अदरकके टुकड़े चूसनेसे खाँसी मिट जाती है।

(३) अदरकको शाक-दालमें डालकर खानेसे पेट स्वच्छ रहता है।

(४) श्वासके रोगीको सदा अदरकका रस तथा शहद मिलाकर गुनगुना करके चाटते रहना चाहिये।

(५) केवल अदरकका रस-सेवन भी निमोनियातकमें लाभदायक होता है।

(६) अदरक अलग-अलग ऋतुओंमें अलग-अलग वस्तुओंके साथ सेवन करनेसे लाभ मिलता है, जैसे वर्षा-ऋतुमें अदरकके टुकड़ोंको नमक लगाकर खानेसे अग्नि मन्द नहीं होती।

हरड़

हरीतकी सदा पथ्या मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी॥

हरीतकी (हरड़) सदा ही पथ्यस्वरूपा है, माताके समान हित करनेवाली है। माता कभी कोप भी कर सकती है, किंतु सेवन की गयी हरीतकी कभी भी कुपित नहीं होती, सदा हित ही करती है।

(१) नमकके साथ हरड़ खानेसे रोगीका उदर

सदा शुद्ध रहता है। हरड़के चूर्णमें नमक $\frac{1}{2}$ भाग ही मिलाना चाहिये। ज्यादा नमक मिलानेपर दस्तावर हो जायगा।

(२) घीके साथ हरड़का चूर्ण चाटनेसे हृदयरोग नहीं होता।

(३) प्रतिदिन प्रातः शहदके साथ हरड़का चूर्ण चाटनेपर शक्ति बढ़ती है।

(४) सोते समय शक्कर और हरड़का चूर्ण मिलाकर दूधके साथ लेनेसे पेट साफ रहता है।

(५) हरड़के चूर्णको मक्खन-मिस्रीके साथ चाटनेसे मेधा-शक्ति बढ़ती है तथा स्मरण-शक्ति श्रेष्ठ होती है।

(६) जवाहरड़को गोमूत्रमें भिगोकर नमक लगाकर मिट्टीके तवेपर धीरे-धीरे दो-तीन घंटेतक मध्यम आँचपर सेकनेसे हरड़ हलकी हो जायगी। ठंडी होनेपर डिब्बेमें भरकर रख ले तथा दिनमें तीन बार एक-एक हरड़को चूसते रहनेसे श्वासरोग तथा खाँसी मिटती है।

(७) जिसकी आँखें कमजोर हों, उसे चाहिये कि प्रतिदिन बड़ी हरड़ घृतके साथ चाटे और ऊपरसे मिस्री-युक्त गायका दूध पीये। इससे आँखोंकी ज्योति ठीक होती है तथा मेधा-शक्ति बढ़ती है।

(८) पञ्चगव्यके साथ हरड़का चूर्ण सेवन करनेवाला दीर्घायु होता है।

दैनिक जीवनोपयोगी आयुर्वेदोक्त घरेलू औषधियाँ

(डॉ० श्रीविनोदकुमारजी जोशी, रीडर द्रव्यगुण-विभाग, का० हि० विश्वविद्यालय)

आज सम्पूर्ण विश्व वनस्पतियोंसे निर्मित औषधियोंकी ओर आकर्षित हो रहा है; क्योंकि मनुष्यको यह आभास हो गया है कि कृत्रिम औषधियाँ जहाँ एक ओर रोगको शान्त करती हैं वहीं दूसरी ओर शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें घातक प्रभाव डालकर कालान्तरमें जीवनको नष्ट करनेवाले रोगोंको भी उत्पन्न कर देती हैं। जबकि वनस्पतियोंसे निर्मित औषधियाँ रोगोंको समूल नष्टकर किसी भी प्रकारका घातक प्रभाव नहीं डालती हैं।

हमारे देशमें प्राचीन कालसे ही वनस्पतियोंका उपयोग औषधिके रूपमें चला आ रहा है। ऋषियोंने वेदोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तोंके आधारपर स्वस्थ एवं दीर्घ जीवनके प्राप्तिहेतु एक पृथक् शास्त्रका निर्माण किया, जिसे 'आयुर्वेद' (जीवनका विज्ञान=जीवविज्ञान) कहा। आयुर्वेदके अनुसार सृष्टिमें निर्मित सभी द्रव्य पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश)-से बने हुए हैं और इनकी प्राप्ति पार्थिव, जाङ्गम एवं औद्भिज्ज योनिसे होती है। पार्थिव—जो भूमिसे प्राप्त हो, यथा—स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह आदि; जाङ्गम—जो जङ्गमोंसे प्राप्त हो, यथा—गो-क्षीर, नख, मूँगा, मोती, शृंग आदि; औद्भिज्ज—जो पृथ्वीपर उत्पन्न होता हो, यथा—वृक्ष, लता, गुल्म आदि।

आयुर्वेदमें औद्भिज्ज द्रव्योंका प्रयोग पार्थिव एवं जाङ्गम द्रव्यकी अपेक्षा अधिक मिलता है। लगभग ८० प्रतिशत वनस्पतियोंके प्रयोज्याङ्ग—मूल, काण्ड, पत्र, पुष्प, कन्द, प्रकन्द, सार, निर्यास, फल, बीज आदि चिकित्सा-हेतु व्यवहृत किये जाते हैं। इनका प्रयोग प्रमुखतः दो प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये किया जाता है। जैसा कि आयुर्वेदके मूल ग्रन्थ—चरकसंहिता एवं सुश्रुतसंहितामें वर्णित किया गया है। पहला प्रयोजन है—स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा तथा दूसरा प्रयोजन है—आतुर (रोगी)-के रोगका प्रशमन।

पहला प्रयोजन इस ओर इंगित करता है कि शरीरके स्वास्थ्यकी रक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है, कारण भी स्पष्ट है; क्योंकि आरोग्यपूर्ण (स्वस्थ) शरीरसे पुरुषार्थचतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति सुलभ है। संसारमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं होगा जो स्वस्थ जीवनकी अभिलाषा न रखता हो और रोगग्रस्त होनेपर शीघ्र ही रोगसे मुक्ति न चाहता हो। यहाँपर दो प्रकारके कुछ ऐसे औषध-द्रव्योंका वर्णन किया जा रहा है। पहला है जिन्हें आप गृह-वाटिकामें उत्पन्न कर परिवारके सदस्योंको उनके प्रयोगसे स्वस्थ-जीवन प्रदान कर सकते हैं तथा दूसरे प्रकारके वे औषध-द्रव्य हैं, जो कि प्रतिदिन आहाररूपमें घरोंमें प्रयोग किये जाते हैं। ये औषधीय गुणोंसे भरपूर होते हैं।

यहाँ इन दोनों प्रकारके औषध-द्रव्योंको (क) आर्द्र औषध-द्रव्य तथा (ख) शुष्क औषध-द्रव्यके रूपमें विवेचित किया जा रहा है—

(क) आर्द्र औषध-द्रव्य—

(१) अमृता

गिलोय नामसे सामान्यतः व्यवहृत होनेवाली यह वनस्पति लता-रूपमें वृक्षोंपर चढ़ी रहती है। निम्बके पेड़पर चढ़ी हुई गिलोय सर्वश्रेष्ठ होती है। प्रायः सभी प्रान्तोंमें यह उत्पन्न होती है। इसके पत्ते हृदयके आकारके समान होते हैं। इसके पत्तेको काण्डसे पृथक् करनेपर मधुके समान स्राव निकलता है, जो स्वादमें तिक्त होता है। पेड़पर चढ़ी हुई लताके काण्डसे अनेक तन्तु निकलकर पृथ्वीकी ओर लटकते हैं, जो कालान्तरमें बढ़कर काण्डका स्वरूप ले लेते हैं।

अमृतस्वरूप गुणकारी होनेके कारण इसे अमृता कहते हैं, इसके नियमित सेवनसे कोई भी व्यक्ति नीरोग रहकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। चिकित्सा-वैज्ञानिकोंने भी इसमें व्याधि-प्रतिरोधात्मक औषधि-तत्त्वोंको पाया है। चिकित्सा-हेतु काण्डका प्रयोग प्रमुख रूपसे किया जाता है।

अमृताके स्वरस अथवा कषायको २५-५० मि० ली०की मात्रामें प्रातः पीना चाहिये। इससे किसी भी प्रकारका रोग नहीं होगा।

ज्वरमें स्वरसका प्रयोग दिनमें तीन बार मधु मिलाकर करें। शीतज्वरमें यह अधिक लाभप्रद है।

भूख न लगती हो तो इसके स्वरसमें शुण्ठी (सोंठ)-का चूर्ण २ ग्राम मिलाकर सेवन करे।

पिपासा (प्यास) अधिक लगती हो तो स्वरसमें शर्करा एक-दो चम्मच मिलाकर सेवन करे।

कामलामें शीत-कषाय बनाकर उसमें मधु मिलाकर प्रातः सेवन करना चाहिये।

शरीरमें यदि कण्डू (खुजली) हो रही हो तो कषाय (क्वाथ) या स्वरसमें हलदीका चूर्ण ५ ग्रामकी मात्रातक मिलाकर सेवन करना चाहिये।

इसके सेवनसे धी (बुद्धि), धृति (धारण) एवं स्मृति (स्मरण) शक्तिकी वृद्धि होती है।

(२) आमलकी

आँवलाके नामसे सामान्यतः आमलकीके फल व्यवहृत होते हैं। इसका वृक्ष मध्यमाकार होता है तथा इसके पत्र इमलीके पत्रोंके सदृश, किंतु छोटे होते हैं। पत्रकके पृष्ठ भागसे फल निकलते हैं। फल हरित-पीताभ वर्णके गोल होते हैं। इसके फलोंका रस अम्ल-प्रधान, कषाय, तिक्त, मधुर एवं कटु होता है। व्यवहारमें बड़े एवं छोटे दोनों प्रकारके फलोंका प्रयोग किया जाता है, छोटे फलोंमें रेशे अधिक होते हैं और गुणोंमें भी ये उत्तम होते हैं। च्यवनप्राशमें सबसे अधिक मात्रामें आमलकीके फल प्रयोगमें लाये जाते हैं। ये फल कार्तिकके मध्यसे फाल्गुनके मध्यतक मिलते हैं।

आमलकीके ताजे फलोंका रस एवं मधु समान मात्रामें मिलाकर पीना चाहिये। यह शरीरमें रोग-प्रतिरोधात्मक शक्तिकी वृद्धि करता है। इसकी मात्रा १०-२० मि० ली० रखनी चाहिये। बालकों एवं वृद्धोंको २-५ मि० ली० तक देना चाहिये। एक मासतक सतत सेवन करना चाहिये।

रक्तार्शमें आमलकीका चूर्ण २-६ ग्राम अथवा स्वरस ५-१० मि० ली० लेना चाहिये।

अम्लपित्तमें २—६ ग्राम चूर्ण एवं शर्करा समान मात्रामें मिलाकर प्रयोगमें लाना चाहिये।

हाथ-पैरोंमें दाह होनेपर गन्नेके रसमें एक चम्मच इसका चूर्ण मिलाकर प्रयोग करे।

आमलकीका चूर्ण प्रातः मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वृद्धावस्थामें नेत्र-ज्योति भी ठीक रहती है।

जिह्वामें छाले हों तो भोजनके अन्तमें आमलक-चूर्णका सेवन करे।

प्रमेहके रोगी आमलक-चूर्ण एवं हरिद्रा समान मात्रामें मिलाकर नियमित सेवन करे।

मूत्रदाह अथवा मूत्रके साथ रक्त आनेपर आमलकका स्वरस ५—१० मि० ली० प्रयोग करे।

नेत्रमें जलन होनेपर आमलकको पानीमें भिगोकर उस जलसे नेत्र धोनेसे लाभ मिलता है।

सिरके बालोंको चमकदार करनेके लिये इसके फलोंको जलमें रातभर भिगो दें, प्रातः उससे सिर धो ले।

(३) वासा

अड़ूसा नामसे व्यवहृत होनेवाली यह वनस्पति क्षुप-रूपमें प्राय: सभी प्रान्तोंमें तथा हिमालयके निचले भागोंमें विशेषरूपसे उत्पन्न होती है। इसकी विशेषता है कि यह समूहबद्ध रूपमें उत्पन्न होती है। पत्ते दोनों सिरोंपर किंचित् नोकदार होते हैं तथा काण्डकी पर्वसन्धियाँ गाँठदार होती हैं। इसके पुष्प श्वेत रंगके शेरके मुखके समान दीखते हैं। पत्तोंको मसलनेपर गन्ध आती है।

शुष्ककासमें पत्र-स्वरस ५—१० मि० ली०में दुगुने गुड़के साथ मिलाकर प्रयोग करे।

आर्द्रकासमें पत्र-स्वरस मधु मिलाकर लेना चाहिये।

श्वासके रोगी इसके पत्तोंका स्वरस शुण्ठी-चूर्ण २—५ ग्राममें मिलाकर दिनमें चार बार सेवन करें।

पत्र-स्वरसको तुलसीपत्र-स्वरसके साथ सेवन करनेसे भी श्वासके रोगियोंको लाभ मिलता है।

वासापत्र-स्वरस शर्करा एवं मधुके साथ सेवन करनेसे रक्त-स्राव बंद हो जाता है।

पत्र-स्वरसका प्रयोग वमनको रोकनेमें लाभप्रद होता है।

जिस ज्वरमें कास भी हो तो पत्र-स्वरस पिलाना लाभदायक है।

त्वचाके रोगोंमें पत्तोंको गो-मूत्रमें पीसकर लेप करे।

(४) तुलसी

तुलसी नामसे सर्वत्र विख्यात यह क्षुप जातिकी वनस्पति है, जो सभी प्रान्तोंमें उत्पन्न होती है। इसके पत्ते किंचित् अण्डाकार होते हैं, पत्तेको रगड़नेसे सुगन्ध आती है। इसकी शाखाओंमें वर्षपर्यन्त मंजरियाँ निकलती रहती हैं। तुलसी रामा और श्यामा नामसे दो प्रकारकी होती है। श्यामा तुलसीके काण्ड रामाकी अपेक्षा नील-कृष्णाभ लिये होते हैं। श्यामा तुलसी अधिक गुणकारी होती है।

तुलसीके पत्तेको चबाकर खानेसे मुखमें छाले हो जाते हैं अथवा ये आमाशयमें दाह उत्पन्न कर सकते हैं। अत: उचित यह होगा कि जलमें भिगोकर सेवन करें।

श्वासके रोगी पत्र-स्वरस २—५ मि० ली० गरम जल (१ गिलास)-में मिलाकर सेवन करें।

वासापत्र-स्वरसके साथ इसके स्वरसका प्रयोग श्वासमें शीघ्र लाभ करता है।

कासमें पत्र-स्वरसका दिनमें चार-पाँच बार सेवन गरम जलके साथ करें; विशेषरूपसे आर्द्रकासमें।

पत्र-स्वरस २—५ ग्राम शुण्ठीके साथ लेनेसे अजीर्ण (भोजनका ठीकसे न पचना)-रोगमें तुरंत लाभ मिलता है।

व्रणमें यदि कृमि हो गये हों तो श्यामा तुलसीके स्वरसको डालना चाहिये।

शिर:शूलमें पत्र-स्वरसकी एक बूँद नाकमें डालनेसे लाभ होता है।

प्रतिश्यायके रोगी पत्र-स्वरसको गरम जलमें मिलाकर दो-चार काली मरिचके साथ सेवन करें।

तुलसीको विषहर भी कहा जाता है। अत: पीनेके पानीमें तुलसी डालकर पीना चाहिये। इससे पानीके दोष नष्ट हो जाते हैं।

यह ब्राह्मी नामसे उत्तर भारतमें विशेषरूपसे व्यवहृत होती है। यह एक प्रसरणशील क्षुपरूपीय वनस्पति है। काण्ड लम्बे, प्रसरी एवं पर्व-ग्रन्थियोंपर मूलोंसे युक्त होते हैं। इसके पत्ते गोल-दन्तुर एवं वृक्काकार होते हैं।

ब्राह्मी-स्वरसका प्रयोग बुद्धिवर्धक होता है। प्रात:काल दो-से-चार चम्मच स्वरसका सेवन करना चाहिये।

इसके पत्तोंका शाक घृतमें बनाकर सेवन करनेसे निद्रा आती है।

अस्थि-संधियोंमें शोथ होनेपर प्रात:काल पाँच-दस पत्तेका सेवन करे। अनुपानके रूपमें एक चम्मच मधु जलमें घोलकर पीवे।

पुरीषके साथ रक्त आता हो तो पत्र-स्वरसको भुने हुए जीरेके साथ मिस्री मिलाकर सेवन करना चाहिये।

(ख) शुष्क औषध-द्रव्य—

(१) हरिद्रा (हलदी)

हमारे देशमें सभी लोग हलदीसे भलीभाँति परिचित

हैं। आहारके उपयोगी द्रव्योंमें इसका प्रयोग प्रमुखतासे किया जाता है।

प्रतिश्याय एवं कासमें हलदीका चूर्ण आधा चम्मच घृतमें भूनकर गुड़के साथ सेवन करे। अनुपानके रूपमें गरम दुग्धका पान करे।

शरीरमें कण्डू होनेपर आधा चम्मच हलदीचूर्ण गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये।

चोटके कारण शोथ होनेपर महीन चूर्णका लेप पानके स्वरसमें मिलाकर बाँध दे।

व्रण यदि नहीं भर रहा हो तो हलदीचूर्ण आधा चम्मच और आमलकचूर्ण एक चम्मच मिलाकर सेवन करे।

त्वचाके रोगोंमें हरिद्राका प्रयोग गोमूत्र मिलाकर करना चाहिये। इसका बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग अति लाभकर होता है।

(२) जीरक (जीरा)

बाजारमें जीरक एवं कृष्णजीरक नामसे दो प्रकारका जीरक मिलता है। कृष्णजीरक अधिक मूल्यवान् है, इसका प्रयोग औषधि-निर्माणमें ही करते हैं, जबकि जीराका प्रयोग भोजनमें ही करते हैं।

ज्वरमें यदि जाड़ा भी लगता हो तो तीन ग्राम जीरकका चूर्ण मधुसे खाना चाहिये।

अतिसारमें आधा चम्मच जीरकका चूर्ण ताजे दहीके साथ लें, शीघ्र लाभ होता है।

बालकोंको यदि वमन एवं अतिसार हो रहा हो तो मधु एवं शर्करा मिलाकर सेवन करायें।

कृष्णजीरकके चूर्णका एक-दो ग्राम गरम जलसे प्रयोग करनेपर शूल ठीक हो जाता है।

(३) मधुरिका (सौंफ)

बाजारमें दो प्रकारकी सौंफ मिलती है। छोटे प्रकारकी सौंफ जिसे बादियाण रूमी भी कहते हैं। यह भी सौंफ नामसे ही मिलती है। उत्तर-पश्चिम भारतमें इसकी खेती की जाती है। यह अधिक हरे रंगकी होती है। स्वादमें यह अधिक मधुर होती है। सौंफ नामसे प्रयोगमें आनेवाला द्रव्य छोटे सौंफकी अपेक्षा कटु रसयुक्त होती है। दोनों ही सुगन्धित होती हैं।

दोनोंका प्रयोग भोजनके पश्चात् मुख-सुगन्धिके रूपमें किया जा सकता है। सौंफ मुख-सुगन्धिके साथ-साथ आहारके पाचनमें भी सहायक होती है। भूनकर खानेसे यह अधिक लाभप्रद होती है।

मूत्र-त्याग करते समय यदि दाहका अनुभव हो तो सौंफको गरम जलमें भिगोकर छोड़ दें, कुछ समय पश्चात् ठंडा होनेपर पी लें।

सौंफका अर्क बच्चोंके पाचन-संस्थानके विकारोंको नष्ट कर देता है।

हाथमें यदि पसीना आता हो तो ५० ग्राम सौंफको भून लें और उसमें ५० ग्रामकी मात्रामें बिना भूनी सौंफ मिला दें। दिनमें तीन बार नियमित रूपसे सेवन करें।

(४) मरिच (काली मिर्च)

बाजारमें मरिच दो प्रकारकी मिलती है—काली मरिच और सफेद मरिच। काली मरिचके बाह्य आवरणको रगड़कर निकाल देते हैं, जिससे सफेद दिखती है, इसीको सफेद मरिच कहते हैं। यह काली मरिचकी अपेक्षा कम तीक्ष्ण होती है।

एक ग्रामकी मात्रामें मरिच मधुके साथ सेवन करनेसे कास ठीक होता है।

आधा ग्राम मरिच-चूर्ण दूधके साथ नियमित रूपसे सेवन करनेसे पेटके रोग नहीं होते।

मरिचका प्रयोग घीके साथ करनेसे यह भूखको बढ़ाती है।

प्रतिश्यायमें दो-चार ग्राम मरिच-चूर्ण गुड़ तथा दूधके साथ सेवन करना चाहिये।

विशेष—समान मात्रामें शुण्ठी, मरिच तथा पिप्पलीका चूर्ण बनाकर रख लें। तीनोंको मिलानेसे यह 'त्रिकटु' कहलाता है। त्रिकटु श्वास, कास, हिक्का, मन्दाग्नि एवं प्रतिश्यायकी अच्छी औषध है। पित्तके रोगी घीके साथ, वातजन्य रोगी एरण्ड (रेंड़ी)-तेलके साथ तथा कफज-रोगी मधुके साथ सेवन कर लाभ ले सकते हैं।

(५) धान्याक (धनिया)

बाजारमें दो प्रकारकी धनिया मिलती है—एक छोटी तथा दूसरी कुछ बड़ी। छोटी धनिया विशेषरूपसे पर्वतीय क्षेत्रोंमें मिलती है। जो सुगन्धयुक्त होती है और अधिक गुणकारी होती है।

मूत्रदाहमें आधा चम्मच धनियेका चूर्ण गुनगुने जलसे नियमपूर्वक सेवन करे।

अम्लपित्तके रोगी इसका चूर्ण प्रात:काल आधासे एक चम्मच जलके साथ सेवन करे अथवा अम्लपित्त होनेपर एक चम्मच चूर्णको मुखमें डालकर धीरे-धीरे चूसते हुए रसको निगल ले।

(६) यवानी (अजवाइन)

अजवाइन नामसे छोटे-छोटे गोल द्रव्यकी भारतवर्षमें सर्वत्र खेती होती है। इसमें तीव्र प्रकारकी एक गन्ध होती है, जिससे इसे आसानीसे जाना जा सकता है।

उदरशूलमें २ ग्रामसे ४ ग्रामकी मात्रामें यवानी (अजवाइन) गुनगुने जलसे लेना चाहिये।

उदर-कृमिमें यवानी-चूर्ण ३ ग्रामसे ६ ग्रामतक दुगुने गुड़के साथ लेना चाहिये।

सन्धिशूलमें यवानीकी पुल्टिस बनाकर गरम तिलके तेलमें भिगोकर सेंकना चाहिये।

बच्चोंको श्वास और खाँसी होनेपर अजवाइनको तेलमें पकाकर छातीमें लगाना चाहिये।

मद्य पीनेकी आदत छुड़ानेके लिये यवानी (अजवाइन)-को चबाना चाहिये।

दातौन ब्रशसे ज्यादा स्वास्थ्यकर

(डॉ० श्रीप्रमोदकुमारजी सोनी)

स्वास्थ्य और मुखके सौन्दर्यके लिये दाँतोंकी सफाई अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये दातौनका उपयोग प्राचीन कालसे ही होता रहा है। थोड़ेसे प्राकृतिक नियमोंका पालन करके दाँतोंको स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ रखा जा सकता है।

आयुर्वेदके अनुसार दाँतोंको दातौनसे साफ करना सर्वश्रेष्ठ रहता है; क्योंकि दातौन अनेक रोगोंमें लाभ पहुँचाते हैं। सामान्यत: कषाय, तिक्त या कटु रसवाले किसी भी हरे पेड़-पौधेके डंठल या टहनीसे दातौन बनाया जा सकता है; पर नीम, बबूल, करंज, खैर, महुआ, कीकर, अर्जुन, आक, मौलसिरी, वट, इमली तथा कनेरके दातौनका विशेष महत्त्व है।

टूथ-पेस्ट तथा टूथ-पाउडरकी अपेक्षा दातौन ज्यादा गुणकारी रहते हैं; क्योंकि दातौनसे दाँतों एवं मसूड़ोंका अत्यधिक व्यायाम हो जाता है। इससे मसूड़ोंमें खूनका दौरा तेज हो जाता है।

टूथ-ब्रशसे दाँतोंकी सफाई तो हो जाती है, किंतु उससे दाँतोंके ऊपरका चिकनापन दूर नहीं होता। लंबे समयतक ब्रश करते रहनेसे दाँत कटने शुरू हो जाते हैं। अगर ब्रश कड़ा हो तो मसूड़ोंको नुकसान पहुँचता है।

दातौन ताजे, कीटाणुरहित तथा स्वच्छ होने चाहिये। इन्हें एक दिन पानीमें भिगोकर रखना भी ठीक रहता है। दातौन बनानेके लिये वृक्षकी ताजी, साफ, छोटी तथा नरम शाखा लें, जो करीब छोटी उँगली जितनी मोटी हो। उसका एक किनारा करीब २ सेंटीमीटर लंबा, बार-बार दाँतोंसे घुमाते हुए कुचलकर नरम ब्रश-सा बना लें, ताकि दाँतोंके बीच फँसे कण उससे आसानीसे निकल सकें तथा मसूड़ोंको भी हानि न पहुँचे। फिर इसे दाँतों एवं मसूड़ोंपर हलके-हलके चलाकर दाँत साफ करें।

नीमकी दातौन—नीम एक शक्तिशाली एंटीसेप्टिक है। इसकी दातौनसे दाँत मजबूत और चमकदार बनते हैं, दाँतोंके कीटाणु नष्ट होते हैं तथा पायरिया एवं दन्त-क्षय नहीं होता। नीमके रसायन दाँतोंकी सड़न रोकते हैं तथा दाँतोंमें कीड़े नहीं लगने देते। यह मसूड़ोंकी पीप तथा घावोंमें लाभप्रद रहता है। नीमकी दातौन मधुमेह, कुष्ठ तथा त्वचा-रोगवाले व्यक्तिके लिये विशेष लाभकारी रहती है।

बबूलकी दातौन—बबूलकी दातौन मसूड़ोंको विशेष लाभ पहुँचाती है। इससे मसूड़े सिकुड़ते नहीं और वे

दाँतोंपर अपनी पकड़ मजबूत बनाये रखते हैं। मसूड़ोंसे बहनेवाला रक्त एवं पीप भी इससे रुकता है। बबूलकी दातौनका रस दातौन करते समय शरीरमें प्रवेश कर जाता है, जो शरीरके लिये लाभकारी रसायन है। इससे मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

करंजकी दातौन—करंजके वृक्ष दक्षिण भारत, मध्य-पूर्वी हिमालय तथा श्रीलङ्कामें बहुतायतसे पाये जाते हैं। करंजकी दातौन तिक्त, कटु, कषाय रसवाली, तीक्ष्ण, गुणकारी एवं उष्ण होती है। इसके दातौनसे दाँतोंके कीटाणु मर जाते हैं। कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, कृमि, मन्दाग्नि, अर्श, ग्रहणी तथा शीत-पित्तके रोगीके लिये इसकी दातौन विशेष लाभकारी रहती है।

खैरकी दातौन—खैरकी दातौन मुख-दुर्गन्ध दूर करने, दाँतोंसे खून निकलने, बार-बार मसूड़े फूलने आदि बीमारियोंमें लाभकारी रहती है। यह मसूड़ोंको मजबूत बनाकर मुँहका स्वाद ठीक कर देती है। नित्य दातौनसे दाँतोंको कीड़ा लगनेका खतरा नहीं रहता। इसकी दातौन श्वास, खाँसी, कृमि-रोग, पित्त-विकार, प्रमेह, अतिसार तथा कुष्ठ-रोगमें विशेष लाभकारी रहती है।

अर्जुनकी दातौन—यह रक्त शुद्ध करती है। मधुमेह, हृदयरोग तथा टी० बी० के रोगीके लिये यह विशेष गुणकारी है।

कीकरकी दातौन—इसमें कड़वापन रहता है। यह दुर्गन्धिनाशक एंटीसेप्टिक होती है। दाँतों तथा मसूड़ोंके लिये यह बहुत अच्छी रहती है।

आककी दातौन—आककी दातौन दाँतोंको दृढ़ करनेवाली, दाँतोंके कीटाणु नष्ट करनेवाली तथा दाँतोंकी सड़न मिटानेवाली होती है। आककी दातौन करनेसे पहले उसकी टहनी छीलकर धो लेनी चाहिये ताकि आकका दूध मुँहमें न जाने पाये। आकके दूधसे मुँहमें घाव हो जाते हैं।

महुआकी दातौन—महुआकी दातौन गरम प्रदेशोंमें बार-बार गला सूखनेपर तथा मुँहमें रहनेवाली कड़वाहट मिटानेके लिये फायदेमंद रहती है।

वटकी दातौन—वटकी दातौनसे दाँत तथा मसूड़े मजबूत बनते हैं।

मौलसिरी, इमली, कनेरकी दातौन—ये दातौनें कमजोर दाँतोंको मजबूत बना देती हैं।

[प्रेषक—डॉ० राजेन्द्ररंजन]

मुसकुराइये नहीं, ठहाका लगाइये

(डॉ० श्री एच्० एस्० गुगालिया)

'पचासके दशकमें सामान्य मानव करीब अठारह मिनटतक प्रतिदिन हँसा करता था, नब्बेके दशकमें वही हँसी सिमटकर मात्र एक तिहाई रह गयी'—यह आकलन स्विसमें आयोजित अन्तर्देशीय हँसी-समारोहमें प्रस्तुत हुआ था। आज हमारे जीवन-स्तरमें अप्रत्याशित वृद्धि हुई है, किंतु इस भाग-दौड़ एवं होड़की जीवनशैलीमें हमारी हँसी लुप्तप्राय हो गयी है, उसकी जगहपर परेशानी, हताशा, चिन्ता एवं तनावोंने हमारे जीवनको इतना घेर लिया है कि हम हँसना ही भूल गये और अनावश्यक तनावोंसे हर समय जकड़े रहने लगे हैं। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है, तो यही उत्तर प्राप्त होता है कि हँसने एवं खुशी मनानेका कोई अवसर ही प्राप्त नहीं होता। तनावों एवं हताशाओंसे जकड़ा मानव अपना सहज आनन्द, अपनी हँसी, अपना स्वास्थ्य सभी कुछ तो खो चुका है। कई लोगोंके लिये हँसना तो अतीतकी कोई कल्पना-सी बन गयी है।

'ब्रिटिश लोग सर्वाधिक प्रसन्न एवं स्वस्थ रहते हैं' —ऐसा बीस देशोंमें हुए एक सर्वेक्षणसे सिद्ध हुआ है, वे हर समय हँसने-हँसानेके अवसरकी प्रतीक्षामें रहते हैं। डॉ० विलियम जो स्टेनफोर्ड चिकित्सा विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध रहे, उनका निश्चित मत है कि हँसने-हँसानेसे परहेज करनेवाले व्यक्ति तथा गमगीन रहनेवालोंको शीघ्र गम्भीर बीमारियाँ होती हैं। हँसनेसे मनकी चिन्ताएँ दूर होकर एपीनेफ्रेन, डोपामाइन आदि हारमोन्स उत्पन्न होते हैं, जो दर्दनाशक, एलर्जी-उपचारक एवं रोगोंसे मुक्ति दिलानेवाले होते हैं। हँसना

एक ऐसा अनुपम व्यायाम है, जो शरीरकी रोगप्रतिरोधक क्षमताकी वृद्धि करके मानसिक तनावको दूर करता है एवं वातरोग, पेटके विकारोंको उपचारित करता है। स्टेराइड नामक तत्त्व शरीरमें नहीं बन पाता है, जिससे जीवनी शक्तिकी वृद्धि होती है एवं शरीर रोगोंसे बचा रहता है।

ठहाके लगाने एवं जोरसे हँसनेसे शरीरमें एडोर्फिन नामक रसायनकी वृद्धि होती है, जो दर्दनाशकका काम करने लगता है। ठहाके लगाने एवं खुलकर हँसनेसे शरीर-तन्त्रमें अन्त:स्रावी क्रिया सक्रिय होकर रोगोंका समूल नाश कर देती है। तनावसे दूर रहेंगे तो सर्दी, जुकाम, दमा, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, बेचैनी, सिर-दर्द, पेटकी तकलीफें, कमजोरी, खूनकी कमी, काममें मन नहीं लगना, स्मरणशक्तिकी कमी, शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंमें दर्द तथा चक्कर आना आदिसे छुटकारा मिलेगा। मुसकुराने, मन-ही-मन हँसने एवं हँसी दबानेसे काम नहीं चलेगा।

जोरदार ठहाके लगायें, खुलकर हँसें, फिर देखें आपके कोलेस्ट्रालमें कितनी कमी आती है और रोगप्रतिरोधक शक्ति कितनी बढ़ती है। इससे हृदय-रोगोंसे निजात मिलती है। इन्सुलिनका स्राव उचित मात्रामें होनेसे मधुमेहमें कमी आती है। रक्तचाप ठीक-ठीक रहनेसे रक्त-संचरण सामान्य रहता है। श्वासके रोग, दमा, दम घुटना आदि रोगोंसे मुक्ति मिलती है। स्नायुओंका समुचित व्यायाम हो जानेसे शरीरकी कार्यशक्ति बढ़ती है, स्मरणशक्तिकी वृद्धि होकर शरीरकी जकड़न एवं दर्द तथा मानसिक तनावोंसे मुक्ति मिलती है।

मानसिक तनाव शरीरमें स्टेराइड तत्त्व पैदा करने लगता है, जिससे जीवनी-शक्तिमें असाधारण कमी आती है। हँसनेसे सफेद रक्त-कण सक्रिय हो जाते हैं और बीमारीपर चारों ओरसे आक्रमण करके उसका समूल नाश कर देते हैं। ठहाका लगाना स्नायुओंकी उत्कृष्ट कसरत है, जिससे शारीरिक थकान एवं मानसिक तनावका तुरंत उपचार हो जाता है। डा० कर्नल चोपड़ाका विचार है कि हास्य चाहे कृत्रिम हो या स्वाभाविक, वह हमारे शरीरपर अपना पूरा असर करता है और हमारी जीवनी-शक्ति, दर्द सहनेकी क्षमता, रोगप्रतिरोधक शक्तिकी अभिवृद्धि करनेमें निर्णायक भूमिका प्रस्तुत करता है।

मनुष्यको दिनमें दोसे चार बार अट्टहास कर लेना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीर ठीक रहता है और रोगोंका आक्रमण नहीं होता। हँसनेका तात्पर्य है—प्रसन्न रहना। मानव प्रसन्न तभी रह सकता है, जब उसे किसी बातकी चिन्ता न हो, यदि वह चिन्ताकी चितामें जलता रहता है तो कमजोर होकर मृत्युकी ओर अग्रसर होता जायगा। चिन्तासे बचनेके लिये चिन्तामुक्त होना आवश्यक है, उसके लिये प्रसन्न रहना अत्यावश्यक है। प्रत्येक परिस्थितिको मङ्गलमय विधान समझकर प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्न रहेंगे तो आप हँसेंगे और हँसेंगे तो चिन्तामुक्त तो होंगे ही। इसलिये हँसना एक ऐसी सरल औषधि है जो शरीरको स्वस्थ बना देती है।

हँसनेके लिये मस्ती आवश्यक है। विनोदी जीव सदैव मस्त रहता है और दूसरोंको भी हँसाता है। अत: आप सदैव हँसमुख रहें चाहे दु:ख हो या सुख। मात्र मुसकुरानेसे काम नहीं चलेगा, खूब जोरोंसे हँसें, ठहाके-पर-ठहाके लगायें, स्वयं हँसें और दूसरोंको हँसायें। हँसी मुफ्तकी दवा है।

डॉ० रेमण्ड मूडीका कथन सार्थक है कि हँसनेसे सेहत अच्छी रहती है। अमेरिकन डॉ० विलियम फ्राईका कहना है कि ठहाके लगानेसे दर्द, विशेषरूपसे शिर:शूलमें कमी आती है। ठहाके लगानेसे पाचन-संस्थान एवं फेफड़ोंकी बहुत कारगर कसरत हो जाती है और ये अङ्ग स्वस्थ बने रहते हैं। मनोरोगोंके लिये तो ठहाके रामबाणके समान काम करते हैं।

आइये हँसिये-हँसाइये, अपने गम भुलाइये और रोगोंको भगाइये।

ताली बजाइये, स्वस्थ रहिये

(डॉ० श्रीएच०एस्० गुगालिया)

ज्यों-ज्यों भौतिक सुख-सुविधाओंका बाहुल्य होता जा रहा है, त्यों-त्यों हमारी कंचन-काया नाना प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त होती जा रही है। नये-नये अन्वेषण हो रहे हैं और नयी-नयी बीमारियोंको काय-चिकित्सक एवं वैज्ञानिक हमारे सामने प्रकट करते जा रहे हैं तथा उनकी चिकित्साके लिये औषधियाँ भी प्रस्तुत करते जा रहे हैं। चिकित्साक्षेत्रमें इतनी तथाकथित प्रगतिके होते हुए भी हम प्रतिदिन ऐसे रोगोंसे ग्रस्त होते जा रहे हैं जो असाध्य-से हो गये हैं । लगता यही है कि इस भोगवादी प्रवृत्तिका हमारी कायाको रोगग्रस्त करनेसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि इतनी अधिक चिकित्सकीय सुविधाओं, चिकित्सालयों एवं चिकित्सकोंके होनेके बावजूद हम सही अर्थोंमें स्वस्थ क्यों नहीं रह पा रहे हैं? क्या हमने शारीरिक श्रम करना त्याग दिया है? इसका भी क्या इन बढ़ती बीमारियोंसे कुछ अन्तरङ्ग सम्बन्ध है? क्या चिकित्सक सही रूपसे रोगकी पहचान एवं निदान नहीं कर रहे हैं? क्या औषधियाँ रोगोंका समूल नाश करनेमें प्रभावहीन हो गयी हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि आधुनिक इलाज एक रोगको ठीक करते हैं और कई रोगोंकी उत्पत्तिका कारण बनते हैं?

उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर यह समझमें आता है कि ये सभी कारण रोगोंके स्थायी उपचार न कर पानेके लिये उत्तरदायी हैं। शरीरको अधिक आराम देना, कोई भी शारीरिक श्रम नहीं करना, बिना विचार किये अधिक मात्रामें खाद्य-अखाद्यका सेवन करना, जानवरके समान दिनभर खाते रहना, उचित आराम न करना, खानेके लिये जीना; शराब, अफीम, तम्बाकू, गाँजा, हशीश आदि हानिकर चीजोंका सेवन करना—इत्यादि बातोंका हमने जो नियमित क्रम बना लिया है, वह हमारे रोगोंके उपचारित न होने, बढ़ने, एक रोग समाप्त न होनेके पूर्व कई रोगोंके उभर आनेका मूल कारण है। कुछ दवाइयोंकी प्रतिक्रिया भी बहुत अंशोंमें इसके लिये जिम्मेदार है। हम अपनी धात्री-प्रकृतिसे दूर होते जा रहे हैं और हमारा अप्राकृतिक रहन-सहन हमारे शरीरको अंदरसे जर्जर करता जा रहा है। अत: सावधान एवं जागरूक रहनेकी विशेष आवश्यकता है।

यदि हम स्वयंको पञ्चतत्त्वोंसे उपचारित करनेकी नैसर्गिक कला सीख लें तो पञ्चतत्त्वोंसे निर्मित इस कायाको शायद ही किसी औषधिकी आवश्यकता पड़े। प्राकृतिक आहार-विहार एवं व्यवहार रोगोंको दूर करनेका एक अनुभूत उपाय है। हमें तो मात्र इतना ही जाँचना है कि कौन-सी वस्तुका उपयोग करने अथवा उसके सम्पर्कमें आनेसे हम रोगाक्रान्त होते हैं और यह ज्ञात कर उससे स्वयंको दूर रखना रोगको दूर भगानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

इसीके साथ ही कुछ शारीरिक परिचालन-क्रियाओंको अपनाकर भी हम रोगोंको दूर रख सकते हैं। इन्हीं क्रियाओंमें ताली-बजाना भी एक स्वास्थ्यवर्धक सहज प्रक्रिया है। प्राचीन कालसे मन्दिरोंमें आरती, भजन-कीर्तन, पूजा आदिमें हमारे पूर्वज लोग समवेतरूपसे ताली बजाया करते थे। आज भले ही हम इसे महत्त्व न दें, किंतु शरीरको स्वस्थ रखनेका यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट साधन है। भारतीय साधना-पद्धतिमें ताली बजाना, एक मूलभूत जीवन-धारणकी आवश्यक सामग्री या उपस्कर रहा है। इतना वैज्ञानिक, इतना सुसाध्य, इतना सुगम और इतना प्रभावी न तो कोई व्यायाम है न योग-साधना ही। सर्वश्रेष्ठ सहज योग-साधनाका यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

'ताली बजाइये और रोगोंको दूर भगाइये।' यह एक पुरानी कहावत है। अपने इष्ट या भगवान्‌का नाम-स्मरण करते हुए, नाम-जप करते हुए, कीर्तन करते हुए, तालबद्ध ढंगसे खूब ताली बजायें, जोरोंसे ताली बजायें और रोगोंको दूर भगाते हुए इसका प्रभाव भी देखें। यह तन्मय होने एवं ध्यान लगानेका भी अत्युत्तम साधन है। ताली अपनी पूरी शक्तिसे बजायें तो अत्युत्तम, अन्यथा जितनी जोरसे आप बजा सकते हैं, जितनी तेजीसे बजा सकते हैं, बजायें। इससे कोई हानि पहुँचनेकी सम्भावना नहीं है, लाभ-ही-लाभ है। अधिक ताकतसे ताली बजाना आपको श्रान्त अवश्य कर देगा, किंतु उस प्रक्रमपर पहुँचनेके पूर्व ही ताली बजाना बंद कर दें।

ताली बजानेसे एक उत्कृष्ट प्रकारका व्यायाम हो जाता है, जिससे शरीरकी निष्क्रियता समाप्त होकर उसमें

क्रियाशीलताकी वृद्धि होती है। शरीरके किसी भागमें रक्त-संचारमें रुकावट या बाधा पड़ रही हो तो वह बाधा तुरंत समाप्त हो जाती है। इससे शरीरके अङ्ग सम्यक् रूपसे कार्य करने लगते हैं। रक्त-वाहिकाएँ ठीक रीतिसे तत्परताके साथ शुद्धिकरणहेतु रक्तको हृदयकी ओर ले जाने लगती हैं और उसको शुद्ध करनेके अनन्तर सारे शरीरमें शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं। इससे हृदय-रोग, रक्त-नलिकाओंमें रक्तका थक्का बनना समाप्त हो जाता है और भविष्यमें हृदय या धमनियोंकी शल्य-क्रिया करानेकी नौबत नहीं आने पाती। फेफड़ोंमें शुद्ध ओषजनकी पर्याप्त मात्रा होनेके कारण तथा अशुद्ध हवाका फेफड़ोंसे पूरी क्षमतासे निष्कासन होते रहनेके कारण, फेफड़ोंकी बीमारियोंकी भी समाप्ति हो जाती है। रक्तमें लाल रक्त कणोंकी वृद्धि होती है, जिससे कई रोगोंसे मुक्ति मिल जाती है। हृदय ही नहीं सारी कायामें शुद्ध रक्तका संचार सुव्यवस्थित रूपसे होते रहनेसे रोगोंका प्रभाव समाप्तप्राय हो जाता है और शरीरमें चुस्ती, फुर्ती तथा ताजगी आ जाती है।

ताली बजानेसे श्वेतरक्तकण सक्षम तथा सशक्त बन जाते हैं, जिससे शरीरकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता बहुत बढ़ जाती है। हम नीरोग होने लगते हैं। शरीरके अधिकतम एक्यूप्रेशर प्वाइन्ट पैरों एवं हाथोंमें ही होते हैं। विशेषरूपसे पैरोंके तलवे एवं हाथोंकी हथेलीमें। ताली बजानेसे हाथोंके एक्यूप्रेशर केन्द्रोंपर अच्छा दबाव पड़ता है और शरीर नीरोग होने लगता है। शुद्ध रक्त हृदयसे पैरोंतक पूरी क्षमतासे दौड़ता है और पैरोंके एक्यूप्रेशर केन्द्रोंको भी शक्तिमय बना देता है, जिससे हमारा शरीर नीरोग बना रहता है।

पूरे शरीरमें शक्ति-संचार करना, शरीरके संचालनको व्यवस्थित रखना, शरीरको रोग-मुक्त रखनेका एक विशिष्ट साधन है—ताली बजाना।

किस रोगमें कैसे ताली बजायी जाय और कितनी देरतक ताली बजायी जाय, इसका निर्धारण आपकी शारीरिक शक्ति एवं रोग जिसका उपचार किया जाना है, उसका आकलन करके ही हो सकता है। यदि आप सामान्यरूपसे स्वस्थ हैं, तो खूब जोरसे ताली बजायें और डॉक्टरों तथा दवाइयोंके चंगुलसे मुक्त रहें एवं दवाओंके साइड इफेक्ट्ससे भी बचें।

ताली बजानेके कई भेद-विभेद हैं। अपनी शरीरकी शक्तिका अनुमान लगाकर उन तालियोंको जो आपके लिये उपयुक्त हों, अपनायें। इस सहज-स्वाभाविक योगसे मात्र कुछ दिनोंमें आप रोगको दूर करके, शरीरको अधिक न थकाते हुए बिना कुछ खर्च किये स्वयंको चुस्त, दुरुस्त एवं तन्दुरुस्त बनाये रख सकते हैं।

एक बार सही परामर्श ले लें कि आपको किस प्रकार इस ताली-योग-क्रियाको करना है, कैसे करना है, कब करना है एवं कितने समयतक करना है! फिर आप इसका बिना किसी व्यवधानके प्रयोग करते रहें। मात्र एक बार इसकी सही तकनीक समझनी है, फिर तो आप तनावसे मुक्त हो, रोगसे दूर रहकर, उत्तम स्वास्थ्यद्वारा अपने जीवनका सदुपयोग कर सकेंगे। मरण भी सहज- स्वाभाविक होगा, बिना किसी तकलीफके। चाहेंगे तो ध्यान, भजन-पूजन, प्रभु-स्मरण भी आप बड़ी आसानीसे इसके साथ कर सकेंगे। तो आइये, ताली बजाइये और सुख पाइये।

मौन—अच्छे स्वास्थ्यका शक्ति-स्रोत

(सुश्रीचन्द्रप्रभाजी)

भारतीय संस्कृतिमें मौनको जीवनकी सबसे गुप्त स्थिति माना गया है। इसे गुप्तधन, शक्ति-भक्ति-मुक्तिदायक तथा मौनरूपी ईश्वर आदि संज्ञाएँ भी दी गयी हैं। आधुनिक विशेषज्ञ भी यह स्वीकार करते हैं कि यह मानसिक शक्तिको दृढ़ करके आयुमें वृद्धि करता है। इसके विपरीत कुछ लोगोंका मत है कि मौनसे शिथिलता आती है तथा वाक्-शक्ति कुंठित हो जाती है। किंतु ऐसा नहीं है; क्योंकि मौन रहना अप्रत्यक्षरूपसे शक्ति-संचयकी एक प्रक्रिया है।

हमारे ऋषि-मुनि तो मौनके ही सहारे ध्यानकी अवस्थामें लीन रहकर ईश्वरीय शक्तियोंसे साक्षात्कार करते थे। मौनका सीधा सम्बन्ध वाक्-शक्तिसे है। जैन धर्मके अनुसार बारह वर्षोंतक मौनका अभ्यास करने तथा सत्यकी उपासना करनेसे वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है। वर्तमानमें अधिक बोलनेको ही महत्त्व दिया जाता है। नि:संदेह बोलना एक कला है, किंतु इसका उचित

1592 Arogya Ank_Section_18_1_Front

तथा संयत प्रयोग करना कुछ ही लोग जानते हैं। कम बोलनेसे तो बहुत बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, अत: वाक्-शक्ति-संयमनके लिये मौनकी प्रतिष्ठा हुई। वाक्सिद्ध पुरुषकी वाणीमें ऐसा विलक्षण प्रभाव होता है, जो दूसरोंको अभिभूत कर देता है। ऋषि-मुनियों तथा महात्मा बुद्ध, गांधी, विवेकानन्द, नानक आदि असंख्य महापुरुषोंने अपनी संयत भाषाद्वारा ही अनूठे कार्य कर दिखाये।

मौनको व्रतकी संज्ञा दी गयी है और वास्तवमें यह एक व्रत ही है, जो अन्य व्रतोंकी भाँति फलदायक है। विधिपूर्वक किया गया मौन हृदयको शुद्ध तथा दृष्टिको निर्मल करता है; क्योंकि यह चेतनाकी वह अवस्था है, जहाँ सभी अनुभूतियाँ एकत्रित हो जाती हैं तथा विचारोंमें सामञ्जस्य आ जाता है। यह आत्मिक शक्ति प्रदान करके शुभ तथा सात्त्विक गुणोंका भी विकास करता है जो अच्छे स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है। यह जीवनमें सौम्यता तथा प्रफुल्लता उत्पन्न करता है। इसीलिये आयुर्वेदमें आत्मा और मनकी प्रसन्नताको अच्छे स्वास्थ्यका प्रतीक माना गया है। यदि विभिन्न प्रकारके रत्नादि तथा औषध स्वास्थ्यपर प्रभाव डाल सकते हैं तो मौन तो एक शारीरिक क्रिया है, जिसका प्रभाव शीघ्र ही प्रतिलक्षित होता है। सर्वात्मना मौनके लिये आवश्यक है कि मनकी वृत्तियोंको भी संयत रखा जाय। शास्त्रोंके अनुसार अधिक बोलनेसे शारीरिक ऊर्जा तथा शक्ति नष्ट होती है, जिससे मानसिक शान्ति भङ्ग होती है और आयुमें कमी आनेकी प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। अत: ऐसी स्थितिमें मौनरूपी नि:शुल्क उपचारका आश्रय लिया जा सकता है। मौनरूपी शक्तिद्वारा अनेक प्रकारके विवाद सुगमतासे सुलझाये जा सकते हैं, क्योंकि यदि एक पक्ष मौन धारण कर ले तो विवाद निर्विवाद होगा ही। घर या सामाजिक परिवेशमें मौन ध्वनि-प्रदूषणको नियन्त्रित करनेके एकमात्र उपायके रूपमें सार्थक सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थियोंके लिये शान्त मनका होना तो वरदान है। प्राय: अल्पभाषी तथा गम्भीर छात्र पढ़ाईमें आगे निकलते हैं। मौन उन्हें मानसिक शक्ति प्रदान करता है तथा जीवन-संघर्षके लिये भी बलका स्रोत है। मौन व्यवहारमें एकसूत्रता लाकर मानसिक संतुलन बनाये रखता है, जो अच्छे स्वास्थ्यकी नींव है।

चरक-संहितामें ईर्ष्या, राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदिका त्याग करनेके साथ भोजन करते समय मौन रहनेकी बात कही गयी है। अधिक बोलनेसे उदान-वायु निर्बल होती है, जिससे मन तथा शरीर भी दुर्बल पड़ जाते हैं। मौनद्वारा भावनाओंपर भी नियन्त्रण रखा जा सकता है। भावनाओंका सम्बन्ध आत्मा, हृदय, मस्तिष्क, पाचनक्रिया, जननाङ्गों तथा तन्त्रिका-तन्त्रसे है। भावनाओंकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हमारे शरीरको प्रभावित करती हैं, जैसे—दया, प्रेम, क्रोध, तनाव, चिन्ता, आवेश, भय, हिंसा, व्याकुलता आदि। इनके बार-बार प्रकट होनेसे मनोविकार उत्पन्न हो जाते हैं, जो स्वास्थ्यपर कुप्रभाव डालते हैं। अत: भावोंके वेगको मौन ही बाधित कर सकता है तथा हमें मानसिक रोगोंसे मुक्ति दिला सकता है। इस प्रकार शोक, हिंसा, क्रोध, चिन्ता, भय, शंका, आतुरता, घबराहट आदि दुर्गुणोंसे मौन मुक्ति दिला सकता है।

मौन केवल मुँह बंद रखनेको नहीं कहते। मौनकी इच्छित सफलताके लिये मन शान्त तथा चित्त प्रसन्न रहना चाहिये। यदि मन भटकता रहे तो कोई लाभ नहीं होता। मौन हमारे अन्त:-बाह्य सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहना चाहिये। इस विषयपर गांधीजीने कहा था, 'मौनमें अन्त:शक्तिको जगानेकी अत्यधिक क्षमता होती है। बोलना एक कला है, मौन उससे भी ऊँची कला है।' उन्होंने मौनको एक औषधि भी कहा है। समाधि भी मौनकी ही विलक्षण अवस्था है, क्योंकि जबतक शरीरपर मौनका साम्राज्य न हो तबतक सम्यक् समाधि भी नहीं लगती। मौन धारण करनेके आरम्भमें कुछ कठिनाई होती है, किंतु कुछ समय पश्चात् कठिनाईका स्थान एक अलौकिक आनन्द ले लेता है। योग-ग्रन्थोंने बताया है कि 'अधिक भोजन, अधिक परिश्रम, अधिक बोलने आदिसे योग-साधना नष्ट होती है।' अत: मौनद्वारा इन सबसे मुक्ति मिल सकती है। प्रत्येक अवस्थामें इसे धारण किया जा सकता है। सप्ताहमें एक बार कुछ घंटोंका मौन रखनेसे अपार शक्ति-संचय हो सकता है। यह एक यौगिक क्रिया होनेके कारण मानसिक एकाग्रता प्रदान करता है। मौन वास्तवमें तनाव-मुक्त जीवन जीनेकी कलाका एकमात्र उपाय है और स्वस्थ रहनेके लिये एक विश्वसनीय आवश्यक प्रक्रिया है।

अपने बच्चोंके दाँतोंकी देखभाल कैसे करें ?

(डॉ० श्रीमती जया राय)

बच्चोंके मुखमें बीस दूधके दाँत होते हैं। जब पहला दाँत दिखे तभीसे ही उनके साफ-सफाईका ध्यान रखना चाहिये। हर बार बच्चेको दूध पिलाने या कुछ खिलानेके बाद साफ गीले कपड़ेसे दाँतोंको साफ करना चाहिये, जब और दाँत भी आ जायँ तब मुलायम छोटे ब्रशसे साफ करना चाहिये।

शुरू-शुरूमें माता-पिताको अपने हाथोंसे बच्चेके दाँतोंमें ब्रश करना चाहिये।

दूधके दाँतोंका महत्त्व—दूधके दाँत भले ही बादमें गिर जाते हैं, परंतु इनका महत्त्व हमारे अपने दाँतोंसे कोई कम नहीं है—

खानेमें, साफ बोलनेमें और सुन्दर दिखनेके अलावा इनका सबसे महत्त्वपूर्ण काम है अपने दाँतोंके लिये जगह बनाये रखना। इसलिये अगर कोई दूधका दाँत समयके पहले किसी कारणवश गिर जाता है तो आनेवाले दाँत टेढ़े-मेढ़े आ सकते हैं। इसलिये दूधके दाँतोंकी देखभाल बहुत जरूरी है।

दूधके दाँतोंमें होनेवाली कुछ मुख्य परेशानियाँ

१. दाँतोंमें कीड़े लगना—जो बच्चे दूध, जूस या कोई भी मीठे पदार्थवाला बोतल मुँहमें लेकर सोते हैं, उनके दाँतोंमें सड़न हो जाती है, इसलिये जैसे ही दूध या जूस खत्म हो बोतल हटा देनी चाहिये। अगर बच्चेके दाँतोंमें सड़न हो रही हो तो दाँतोंमें बने छेदको डॉक्टरसे भरवा लें।

२. चोट लगनेसे दाँतोंका टूटना—टूटे हुए दाँतको ठण्डे दूध या पानीमें डालकर अपने डॉक्टर (डेंटल सर्जन)-के पास जल्द-से-जल्द ले जायँ (आधे घंटेके अंदर)। जो दाँत जड़से निकल जाय उसे फिरसे बच्चेके मुँहमें वापस बैठाया जा सकता है।

बच्चेको ब्रश करना कैसे सिखायें—आम तौरपर माता-पिताके लिये यह समस्या होती है कि बच्चेको ब्रश करना कैसे सिखायें—

दो-तीन सालका बच्चा आपको देखकर दातौन अथवा ब्रश करना सीखता है। पहले उसे खुद ब्रश करने दें फिर एक बार आप उसके दाँतोंको ब्रशसे साफ करें। छः सालतकके बच्चेको माता-पिता अपने सामने ब्रश करवायें, जिससे दाँत भी ठीकसे साफ हों तथा बच्चा टूथपेस्ट कम-से-कम या नहीं निगले, उसे ठीकसे थूक दे।

बच्चेको ठीकसे ब्रश करना सिखायें। ब्रशके बाद कुल्ला करायें तथा जीभ जरूर साफ करायें।

बच्चेको दिनमें दो बार ब्रश अथवा मञ्जनकी आदत डालें—सुबह नाश्तेके पहले तथा रातको खानेके बाद।

दाँतोंकी सड़नको कैसे रोकें—

१. दिनमें दो बार मञ्जनकी आदत डलवा दें।

२. खानेमें स्वस्थ यानी लाभदायक खाना दें। चीनी और कार्बोहाइड्रेटकी चीजोंको कम करें और बच्चेकी नाराजगी दूर करने या खुश करनेके लिये टॉफी देनेकी आदत कभी न डालें।

३. अपने डेंटल सर्जनसे बच्चेके दाँतोंका निरीक्षण बीच-बीचमें करा लिया करें।

माता-पिताकी बच्चोंके डेंटल डेवलपमेंटमें बहुत ही अहम् भूमिका होती है, जो एक दन्त-चिकित्सकसे भी पहले आती है; क्योंकि आपके बच्चेकी स्वस्थ ओरल हेल्थ आपसे ही शुरू होती है।

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा॥

(भैषज्यरत्नावली)

रसायन गुण चाहनेवाले मनुष्यको वर्षा-ऋतुमें सैन्धव नमक, शरद्-ऋतुमें खांड, हेमन्त-ऋतुमें सोंठके चूर्ण, शिशिर-ऋतुमें पिप्पली-चूर्ण, वसन्त-ऋतुमें शहद तथा ग्रीष्म-ऋतुमें गुड़के साथ हरीतकीके चूर्णका सेवन करना चाहिये।

मांसाहारसे रोग-ग्रस्त होनेका खतरा

(डॉ० श्रीप्रेमनारायणजी सोमानी, भू०पू० निदेशक, चिकित्सा-संस्थान, का०हि०वि०विद्यालय)

स्वस्थ और अस्वस्थ होना भोजन, वातावरण, मौसम एवं मनके ऊपर आधारित है। आज यह धारणा बहुत तेजीसे फैलायी जा रही है कि मांसाहारी, शाकाहारियोंकी अपेक्षा अधिक बलवान् होते हैं। इसका अपवाद है विश्वका सबसे शक्तिशाली प्राणी हाथी, जो पूर्णत: शाकाहारी है। अनेक शीर्षस्थ खिलाड़ी जो शान्त एवं गम्भीर स्वभावके होते हैं, शाकाहारी ही हैं। मनुष्यकी मूलभूत शारीरिक रचना भी उसे शाकाहारी सिद्ध करती है। मांसाहारियोंकी जीभ, दाँत एवं उनकी लार शाकाहारियोंसे भिन्न होती हैं। मांसाहारियोंकी छोटी आँत शाकाहारियोंकी तुलनामें छोटी होती है, जिसके कारण मांसाहार ज्यादा देरतक गरिष्ठ बना रहता है। जीव-विकासके सिद्धान्तमें भी मनुष्य शाकाहारी साबित हो चुका है। फिर सबसे दिलचस्प बात तो यह है कि सृष्टिमें मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो अपने नैसर्गिक आहारमें परिवर्तन कर सर्वभक्षी बन गया है। यही ऐसा जीव है जो स्वभाववश पेट भरे रहनेपर भी भोजनपर नियन्त्रण नहीं कर सकता। किसी पशु-पक्षीको भूख न रहनेपर खिला तो लें, सारी चेष्टाएँ बेकार ही जायँगी!

वैज्ञानिक दृष्टिसे यह सिद्ध हो चुका है कि मांसाहारमें कैलोरीज (शक्ति)-की मात्रा अधिक नहीं होती। उदाहरणार्थ १०० ग्राम अण्डेमें मात्र १७३ कैलोरी, १०० ग्राम मछलीमें ९१ तथा १०० ग्राम गोश्तमें १९४ कैलोरी होती है। जबकि १०० ग्राम अनाज अथवा दलहनमें ३००-५५० कैलोरी होती है। प्रोटीन जो शरीरके लिये अति आवश्यक तत्त्व है-के विषयमें भी ऐसी ही भ्रान्ति है। अनाजोंमें १०० ग्राम सोयाबीनमें ४३ ग्राम प्रोटीन एवं १०० ग्राम मूँगफलीमें ३३ ग्राम प्रोटीन पायी जाती है। जबकि १०० ग्राम अण्डेमें १८ ग्राम, १०० ग्राम मछलीमें २२ ग्राम एवं बकरेके गोश्तमें १८ ग्राम प्रोटीन मिलती है। अनाजों, सब्जियों एवं फलोंमें विटामिन, खनिज एवं रेशे मांसकी अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं। संक्षेपमें, मांस और अण्डोंसे वनस्पति खाद्य पदार्थोंकी अपेक्षा कम प्रोटीन एवं कैलोरी प्राप्त होती है। अण्डे तथा पशुजनित खाद्य पदार्थोंमें एक अत्यन्त हानिकारक तत्त्व कोलेस्टरोल अत्यधिक मात्रामें होता है। वनस्पति तथा खाद्य पदार्थोंमें नहींके बराबर होता है। इसी तत्त्वके जमनेसे रक्तवाहिनी धमनियोंमें अवरोध पैदा हो जाता है, जो कालान्तरमें हार्टअटैक (दिलका दौरा) एवं पक्षाघातका कारण होता है।

कच्चा या अधपका अण्डा खानेसे 'सालमोनेला'-जनित संक्रामक रोगोंका खतरा रहता है। कच्चा या अधपका मांस खानेसे ट्राइकनेसिर, मिरगी (सिस्टी सरकोसिस) एवं आँतोंमें कई प्रकारके कृमि हो जाते हैं। कोई-कोई कृमि तो दो मीटर लम्बे होते हैं (हीनिया सोलियम एवं सेजिनाटा)। अभी हालहीमें कई योरोपीय देशोंमें गो-मांसके खानेसे 'दिमागमें छिद्र'की बीमारी हो गयी। यह बात प्रकाशमें तब आयी, जब गोमांसके हेमवर्जर खानेसे सैकड़ोंकी संख्यामें बच्चे बीमार हो, अस्पतालोंमें भर्ती होने लगे। इसका भण्डाफोड़ तब हुआ, जब कई लोगोंने मांस बेचनेकी कम्पनियोंसे त्याग-पत्र दे, सच बोलनेका अभियान चलाया और इस बीमारीके कारणोंका पता लगानेके लिये शोध-कार्य किये गये। तब पता चला कि ब्रिटेनमें गायोंका वजन एवं मांसकी मात्रा बढ़ानेके लिये उन्हें जो वैज्ञानिक खुराक दी गयी, वह बीमार गायोंसे बची हुई रक्त, हड्डियाँ, भेजा आदिका मिश्रण था। इन्हीं बीमार गायोंका मांस डिब्बोंमें बंदकर विदेश भेज दिया जाता था, जिससे 'दिमागमें छिद्र'की बीमारी मनुष्योंको हुई। इसी बीमारीको समाप्त करनेके लिये जाने कितनी गायोंका वध ब्रिटेनमें किया गया।

मांसाहारमें फाइबर (रेशा) नहीं होता, जो वनस्पतियोंमें प्रचुर मात्रामें है। मांसाहारी इसीलिये क़ब्जके शिकार होते हैं। गैस, सिरदर्द, बवासीर एवं आँतोंमें अवरोध—क़ब्ज़ होनेसे ही होता है।

विश्वभरमें दीर्घजीवी मनुष्योंमें शाकाहारियोंकी संख्या मांसाहारियोंसे अधिक है। सामाजिक दृष्टिसे देखनेपर, मांसाहारियोंमें शराब पीनेकी संख्या ज्यादा होती है। मांस

खानेके साथ शराब पीनेकी लालसा जागती है और यह शराब न जाने कितने अवगुणोंकी जननी है। मांसाहार हमें इसलिये भी नुकसान करता है कि पशुओंको जल्दी मोटा करनेके लिये भोजनमें अनेक रसायन एवं दवाएँ दी जाती हैं। वे रसायन मांस-भक्षण करनेवालोंके शरीरमें पहुँचकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इसका एक अहम् पहलू यह भी है कि पशुके मरते समयके प्रकम्पन उसके मांसमें भी व्याप्त हो जाते हैं और वे खानेवालेके मनपर हिंसक एवं उत्तेजक प्रभाव डालते हैं। कालान्तरमें यही अवसादका कारण बनते हैं। पुरानी कहावत है—

'जैसा भोजन तैसा मन।'

अतएव शाकाहारी होना स्वास्थ्यके लिये सर्वदा हितकर है।

दैनिक जीवनके उपयोगमें आनेवाली महत्त्वपूर्ण औषधियाँ, उनके घटक तथा बनानेकी विधि

(१)

(डॉ० श्रीमहेशनारायणजी गुप्ता, बी० एस्-सी०, बी० ए० एम० एस०)

(१) त्रिफला-चूर्ण—

घटक—हरड़, बहेड़ा, आँवला—प्रत्येक १-१ भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके सुरक्षित रख ले।

मात्रा और अनुपान—३-६ ग्राम गरम जल, दूधके साथ।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण उत्तम रसायन एवं मृदु विरेचक है। इस चूर्णका प्रयोग करनेसे प्रमेहरोग, शोथ, पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण अग्निप्रदीपक, कफ, पित्त, कुष्ठ और वलीपलित नाशक है। इस चूर्णको रातमें गरम जल या दूधके साथ सेवन करनेसे प्रातः दस्त खुलकर होता है।

(२) हिंग्वाष्टक चूर्ण—

घटक—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, सेंधा नमक, सफेद जीरा, काला जीरा प्रत्येक १००-१०० ग्राम, हींग (घीमें भुनी हुई) १२ ग्राम लेकर महीन चूर्ण कर ले।

मात्रा और अनुपान—३ ग्राम गरम जल या घीके साथ।

गुण और उपयोग—इस चूर्णको भोजनके समय प्रथम ग्रासमें घृतमें मिलाकर खानेसे अग्नि प्रदीप्त होती है। पेटमें गैस बनना, खट्टी डकारें आना, भूख न लगना, अजीर्ण आदिकी यह उत्तम दवा है।

(३) सितोपलादि चूर्ण—

घटक—मिस्री या चीनी १६० ग्राम, वंशलोचन ८० ग्राम, पिप्पली ४० ग्राम, छोटी इलायची २० ग्राम, दालचीनी १० ग्राम—सबको कूट-छानकर चूर्ण बना ले।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ ग्राम प्रातः-सायं मधुके साथ या मधु-घीके साथ।

गुण और उपयोग—सभी प्रकारके कास, श्वास, क्षय, राजयक्ष्मा, मुँहसे खून गिरना, साथ-साथ थोड़ा ज्वर रहना, जुकाम आदिमें इस चूर्णसे बहुत लाभ होता है।

(४) मरीच्यादि चूर्ण—

घटक—काली मिर्चका महीन चूर्ण तथा बराबर मात्रामें चीनी या मिस्री पीसकर मिलाकर रख ले।

मात्रा और अनुपान—१ से २ ग्राम, सुबह-शाम मधुसे।

गुण और उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे खाँसी और श्वासरोग दूर होते हैं। जब खाँसी या श्वासका दौरा मालूम पड़े, सूखा चूर्ण ही मुखमें डालनेसे श्वासका दौरा रुक जाता है। इसके सेवनसे आवाज भी साफ और मधुर होती है।

(५) वासावलेह—

घटक—वासा (अड़ूसा)-का काढ़ा ८०० ग्राम, चीनी ४०० ग्राम, पिप्पली-चूर्ण १०० ग्राम, गोघृत १००

ग्राम, शहद ४०० ग्राम।

विधि—सर्वप्रथम अड़ूसेकी जड़ ८०० ग्रामको छोटे टुकड़े कर साढ़े तीन लीटर पानीमें पकाये। जब पानी पकते-पकते चौथाई रह जाय तो छानकर काढ़ा अलग कर इसमें चीनी मिलाकर चाशनी तैयार करे। जब चाशनी तैयार हो जाय तो पिप्पली-चूर्ण और घृत मिलाकर उतार ले। जब अवलेह ठंडा हो जाय तो शहद मिलाकर शीशीमें रख ले।

मात्रा—६ ग्रामसे १२ ग्राम सुबह-शाम।

गुण और उपयोग—यह सब तरहकी खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा आदि रोगोंको दूर करता है। पुरानी खाँसीकी यह अचूक दवा है।

(६) कल्याणावलेह—

घटक—हल्दी, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोद, मुलेठी, सेंधा नमक प्रत्येक १-१ भाग लेकर महीन चूर्ण करके सुरक्षित रख ले।

मात्रा और अनुपान—२-४ ग्राम सुबह-शाम गायके घीके साथ।

गुण और उपयोग—इसका पथ्यपूर्वक २१ दिनतक सेवन करनेसे मनुष्य श्रुतिधर (सुनकर ही बातोंका स्मरण रखनेवाला) और कोयलके समान स्वरवाला हो जाता है। आवाज साफ हो जाती है।

(७) गुलकन्द—

घटक—गुलाबकी पँखुड़ियाँ १ भाग, चीनी २ भाग।

विधि—कलईदार बरतनमें थोड़ी-थोड़ी पँखुड़ियाँ और चीनी मिलाकर हाथसे मसलकर फिर चीनी मिट्टीके बरतनमें रख देवे। कुछ दिन रखा रहनेपर गुलकन्द तैयार हो जाता है। बरतनका मुँह बंदकर एक माहके लिये रख दे।

मात्रा और अनुपान—१-२ तोला जल या दूधसे।

गुण और उपयोग—इसका प्रयोग करनेसे दाह, पित्तदोष, जलन, गर्मीसे छुटकारा मिलता है। मस्तिष्कको शीतलता देता है। गर्मीके कारण घमौरियोंमें लाभ पहुँचाता है।

(८) शिलाजित्वादि वटी—

घटक—त्रिवंग-भस्म ३० ग्राम, नीमकी पत्ती तथा गुड़मारकी पत्तीका चूर्ण १००-१०० ग्राम, शिलाजीत १५० ग्राम।

विधि—प्रथम शिलाजीतमें त्रिवंग-भस्म मिलाये, पीछे अन्य चूर्ण मिलाकर आधा-आधा ग्रामकी गोली बना ले।

मात्रा और अनुपान—२-२ गोली दिनमें तीन बार।

गुण और उपयोग—मूत्रकी अधिकता, इक्षुमेह, मधुमेह (शुगर)-में इसके प्रयोगसे अच्छा लाभ होता है।

(२)

(डॉ० श्रीशरदचन्द्रजी त्रिवेदी, ए० एम्० ओ०)

(१) लवण-भास्कर चूर्ण

आवश्यक घटक द्रव्य—सैंधव नमक, काला नमक, धनिया, पिप्पली, पिप्पलीमूल, कालाजीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अम्लवेत सभी द्रव्य २०-२० ग्राम लेवे। समुद्र नमक ३० ग्राम, साँचर नमक ५० ग्राम, काली मिर्च, जीरा और सोंठ १०-१० ग्राम, अनार दाना ५० ग्राम, दालचीनी, बड़ी इलायची ६-६ ग्राम।

उक्त सभी द्रव्य निर्दिष्ट मात्रामें लेकर आतप-शुष्क कर लेवे एवं इमामदस्ते (कुट्टकयन्त्र)-में कूटकर चूर्णको कपड़छान करके शुष्क काँचके जारमें सुरक्षित रूपसे रख दे।

मात्रा और अनुपान—एक ग्रामसे ३ ग्राम, प्रातः-सायं भोजनके बाद शीतल जल या मट्ठाके साथ लेवे।

गुण और उपयोग—इसके सेवनसे मन्दाग्नि, अजीर्ण, वात-कफज गुल्म, तिल्ली (प्लीहा), उदररोग, क्षय, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, विबंध, शूल, आमविकार आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

इसके सेवनसे क़ब्ज़ (कोष्ठबद्धता) दूर होती है, पेट-रोग होनेकी सम्भावना नहीं होती है। मन्दाग्नि दूर होकर क्षुधावृद्धि होती है। संग्रहणी रोगकी यह उत्कृष्ट दवा है। वात-पित्त-कफ—इनमेंसे कोई भी दोष प्रधान होनेके कारण मन्दाग्नि या संग्रहणी हो तो इसके सेवनसे दूर हो जाती है।

(२) ब्राह्मीघृत

आवश्यक घटक द्रव्य—मूल और पत्रसहित ताजी ब्राह्मीको पानीसे धोकर, कूट करके निकाला हुआ

स्वरस या क्वाथ ३ किलो ७१० ग्राम, मूर्च्छित गोघृत ६४० ग्राम, वचा, शंखपुष्पी एवं कूठ—तीनोंका मिला हुआ कल्क ८० ग्राम लेवे।

सर्वप्रथम गायका घृत लेकर उसे मन्दाग्निपर गर्म करके फेनरहित होनेपर, उसमें त्रिफला-चूर्ण, हल्दी और नागरमोथाका चूर्ण ३० ग्राम लेकर बिजौरा नीबूके रसमें पीसकर, कल्क बनाकर डाले और घृतके समान ६४० ग्राम जल डालकर पकावे। इससे घृत स्वच्छ, आमदोषरहित और वीर्यवान् हो जाता है। जब सम्यक् पाक हो जाय घृतमात्र शेष रह जाय, तब ब्राह्मी स्वरस एवं वचा, शंखपुष्पी तथा कूठका कल्क डालकर उस मूर्च्छित घृतमें ब्राह्मी स्वरसके साथ पाक-क्रिया प्रारम्भ करे। जब घृतमात्र शेष रह जाय तो उसे छानकर शुष्क पात्रमें सुरक्षित रख लेवे।

मात्रा एवं अनुपान—६ ग्रामसे १० ग्रामतक बराबर मिस्रीके साथ देवे ऊपरसे धारोष्ण दुग्ध पीवे।

गुण एवं उपयोग—इसके सेवनसे अपस्मार, उन्माद, बोलनेकी कमजोरी (हकलाना, तुतलाना, मिनमिनाना आदि), बुद्धिकी निर्बलता, मनोदोष, स्मरणशक्तिकी कमी, स्वरभंग (गला बैठना), दिमागकी कमजोरी, वातरक्त (Gout) तथा कुष्ठरोग दूर होते हैं।

इस घृतके एक सप्ताहतक सेवन करनेसे स्वर मधुर और सुरीला हो जाता है। दो सप्ताहके सेवनसे मुख कान्तिमान् हो जाता है। यदि नियमपूर्वक एक माहतक इसका सेवन किया जाय तो मनुष्यकी स्मरणशक्ति बहुत बढ़ जाती है।

(३) चन्द्रप्रभावटी

आवश्यक घटक द्रव्य—वचा, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पिप्पलीमूल, चित्रक मूल-छाल, धनिया, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल, छोटी पीपल, सोंठ, कपूरकचरी, काली मिर्च, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सज्जीक्षार, यवक्षार, सैंधव नमक, सौंचर नमक, सांभर लवण, छोटी इलायचीके बीज, कबाबचीनी, गोखरू और श्वेत चन्दन प्रत्येक ३-३ ग्राम, निशोथ, दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी, बड़ी इलायची, वंशलोचन प्रत्येक १०-१० ग्राम, लौहभस्म २० ग्राम, मिस्री ४० ग्राम, शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध-गुग्गुल ८०-८० ग्राम लेवे।

सर्वप्रथम गुग्गुलको साफ करके लोहेके इमामदस्तेमें कूटे। जब गुग्गुल नरम हो जाय, तब उसमें शिलाजीत और अन्य द्रव्योंका कपड़छान किया चूर्ण तथा भस्म मिलावे। तीन दिन गिलोयके स्वरसमें मर्दन करे एवं २५० मि०ग्रा०की गोलियोंका निर्माण कर रख लेवे।

मात्रा और अनुपान—एकसे दो गोली, रोगानुसार ४ गोलीतक सुबह, शाम धारोष्ण दुग्ध, गुडूचीक्वाथ, दारुहल्दीका रस, बिल्वपत्र-रस, गोखरूक्वाथ या केवल मधु (शहद)-से देवे।

गुण और उपयोग—यह वटी मूत्रवह संस्थानके लिये स्त्री एवं पुरुष दोनोंके लिये उत्तम औषध है। मूत्रवह संस्थानके रोगोंमें यथा—बहुमूत्र, अल्पमूत्र, मूत्रकृच्छ्रता, सूजाक, आतशक, वीर्यदोष, श्वेत प्रदर, गर्भाशयजन्यविकार, मूत्राघात, अण्डवृद्धि, अश्मरी, अर्श, भगन्दर, शुक्राणु या अण्डाणु-विकार, प्रमेह, कष्टार्त्तव, मासिकधर्मका अनियमित होना, अत्यधिक रज:स्राव, शीघ्रपतन आदि व्याधियोंमें श्रेष्ठ लाभदायक एवं अनुभूत है। इसके सेवनसे मनुष्यके चेहरेकी कान्ति चन्द्रमाके समान हो जाती है, अत: इसका नाम 'चन्द्रप्रभावटी' है।

(४) ब्राह्म रसायन

आवश्यक घटक द्रव्य—(१) क्वाथ द्रव्य—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, बेल-छाल, अरणी, सोनापाठा-छाल, गम्भारी-छाल, पाढल-छाल, पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, खरेंटी पञ्चाङ्ग, एरण्डमूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावर, नरकुल (शर), गन्नेकी जड़, कुश, कास, धानकी जड़ प्रत्येक १००-१०० ग्राम लेवे। हरीतकी (हरड़) १४ किलो ५०० ग्राम एवं आँवला ४३ किलो ५०० ग्राम लेवे। इन सभी शुष्क द्रव्योंको एक बड़े कड़ाहीमें १२० किलो ५०० ग्राम पानीमें डालकर क्वाथ बनाये। जब क्वाथ १२ किलो २५० ग्राम शेष रह जाय, तब उसे भाष्ट्रीसे उतारकर अलग पात्रमें सुरक्षित रख लेवे। क्वाथ बनाते समय हरीतकी एवं आँवलेको कपड़ेकी पोटली बनाकर कड़ाहीमें डालना चाहिये, जिससे वे स्विन्न होते रहें तथा शेष शुष्क द्रव्योंको यवकुट्ट करके कड़ाहीमें डालना चाहिये, जिससे उनका

पूरा सत्त्व क्वाथमें आ जाय।

(२) प्रक्षेप द्रव्य—मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), पीपल, शंखपुष्पी, नागरमोथा, वायविडंग, सफेद चन्दन, अगर, मुलहठी, हल्दी, वचा, नागकेशर, छोटी इलायचीके बीज, दालचीनी—प्रत्येक २००-२०० ग्राम लेवे। चीनी ५८ किलोग्राम, तिलका तेल ७ किलो ५०० ग्राम, गोघृत ११ किलो २०० ग्राम एवं मधु (शहद) ९ किलो ३०० ग्राम लेवे (मधुके अभावमें), चीनी या मिस्री इतनी ही मात्रामें ले।

विधि—सर्वप्रथम उपर्युक्त विधिसे क्वाथका निर्माण करे एवं तैयार क्वाथको छानकर एक पात्रमें सुरक्षित रख लेवे। फिर क्वाथसे निकाली पोटली जिसमें आँवला एवं हरीतकी डाले हुए थे, उसे खोलकर आँवला एवं हरीतकी बाहर निकाले एवं इन दोनोंकी गुठली निकाल ले। क्वाथमें उबालनेके कारण गुठली आरामसे निकल जाती है। अब इन आँवला एवं हरीतकीको काजू पीसनेवाले चक्कीमें पीसकर पीठी तैयार कर लेवे तथा इस पीठीको तिल-तेल एवं गोघृतमें बादामके रंगकी तरह सेंक ले। जब अच्छी तरहसे सिक जाय, तब इसे एक पात्रमें निकालकर सुरक्षित रख लेवे। अब पूर्वोक्त शेष क्वाथमें चीनी मिलाकर चाशनीका निर्माण कर लेवे। जब चाशनी तैयार हो जाय, तब उसमें हरीतकी एवं आँवलाकी घृतमें सिकी हुई पीठी डालकर पुनः पाक करे। जब कुछ गाढ़ा हो जाय, तब इस अवलेहको भाष्ट्रीसे नीचे उतार ले। अब पूर्वोक्त प्रक्षेप द्रव्योंका कपड़छान किया हुआ चूर्ण इस अवलेहमें धीरे-धीरे मिलावे। जब सम्यक् प्रकारसे प्रक्षेप द्रव्य मिल जायँ एवं अवलेह शीतल हो जाय, तब इसमें शहद मिलाकर घृतलिप्त डिब्बोंमें सुरक्षित स्थानपर रख देवे।

परीक्षण—अवलेहका निर्माण सम्यक् हुआ या नहीं, इसके परीक्षणके लिये तैयार अवलेहको करछी या कूँचेसे उठानेपर वह तार-सा बाँधकर उठता है। थोड़ा ठंडाकर जलमें डालनेपर पेंदेमें बैठ जाता है। अँगुलीसे दबानेपर अँगुलियोंकी रेखाके निशान बन जाते हैं। जिस द्रव्यका अवलेह बना हुआ हो उसकी सुगन्ध आने लग जाती है।

मात्रा एवं अनुपान—१० से १५ ग्राम गोदुग्धके साथ सेवन करना चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवनसे शरीरकी दुर्बलता और दिमागकी कमजोरी दूर होकर आयु, बल, कान्ति तथा स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है और नियमित सेवनसे श्वास, कास, क्षय, कोष्ठबद्धता दूर होती है। शरीरमें रोग-प्रतिरोधक शक्तिका विकास होता है। यह चरकोक्त ब्राह्म रसायन है। प्राचीन समयमें ऋषि-मुनि इन्हीं रसायनोंका उपयोग वर्षभर करते थे, जिससे वे नीरोग, मेधावी, शतायु हुआ करते थे। यह रसायन सभी रोगोंको दूर करनेवाला एवं जीवनीय शक्तिको बढ़ानेवाला है। अधिकांशतः आजकल व्यक्ति जिह्वा-स्वादके कारण रसायनोंसे दूर होता जा रहा है। अतः जिह्वाका स्वाद त्याग करके इन रसायनोंके स्वादको अपनाना चाहिये।

(५) च्यवनप्राश

आवश्यक घटक द्रव्य—बेलकी छाल, अरणी, अरलू, गम्भारी, पाटला, मुद्‌गपर्णी, माशपर्णी, पिप्पली, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, काकड़ासिंगी, भुईआँवला, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्कर मूल, अगर, गिलोय, बड़ी हरड़, बला, ऋद्धी-वृद्धी (दोनोंके अभावमें वाराहीकन्द), जीवक-ऋषभक (दोनोंके अभावमें विदारीकन्द), कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा-महामेदा (दोनोंके अभावमें शतावरी), छोटी इलायची, कमल, सफेद चन्दन, विदारीकन्द, अड़ूसेकी जड़, काकोली-क्षीरकाकोली (दोनोंके अभावमें असगन्ध) तथा काकनासा। प्रत्येक द्रव्यका यवकुट्ट चूर्ण ५०-५० ग्राम लेवे।

सम्यक् परिपक्व रस, गुण, वीर्य, विपाकसे युक्त आँवले गिनकर ५०० ले तथा १५ किलोग्राम जल एक कलईदार बरतनमें डालकर उसमें उक्त द्रव्योंका यवकुट्ट चूर्ण डालकर पाक आरम्भ करे। आँवलोंको एक पोटलीमें बाँधकर उसी बरतनमें उबालनेके लिये डाल देवे। जब चौथाई पानी रह जाय, तब पात्रको भाष्ट्रीपरसे उतारकर क्वाथको छानकर अलग दूसरे पात्रमें रख लेवे एवं पोटलीमेंसे आँवले निकालकर उनकी गुठली निकाल ले। अब गुठली निकले आँवलोंको काजू पीसनेकी चक्कीमें डालकर पिष्टी (गुद्दा) बिना रेशावाली बना लेवे या मोटे कपड़े अथवा बोरेके टाटपर रगड़-

रगड़कर बिना रेशावाला गूदा तैयार कर लेवे।

जब गूदा तैयार हो जाय तब २५० ग्राम गोघृत एवं २५० ग्राम तिल-तेलमें इसका पाक करे। मन्द-मन्द अग्निपर तबतक भूनता रहे, जबतक पानीका अंश जल न जाय। पानीका अंश जल जानेपर स्नेह पात्रमें दीखने लगता है। सम्यक् पाक होनेपर पात्रको नीचे उतार लेवे। अब जो पूर्वोक्त क्वाथ तैयार किया था, उसमें ३ किलो ५०० ग्राम चीनी या मिस्री मिलाकर चाशनी तैयार करे। चाशनी बतासेकी बनाये। जब चाशनी बन जाय तो उसमें भुने हुए आँवलेकी पिष्टी मिलावे एवं थोड़ा-सा पाक कर लेवे।

तदुपरान्त पात्रको नीचे उतारकर वंशलोचन २०० ग्राम, पिप्पली १०० ग्राम, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची और लौंग सभी द्रव्योंका चूर्ण अलग-अलग १०-१० ग्राम लेकर उस अवलेहमें मिलावे। अवलेह जब ठंडा हो जाय तब ३०० ग्राम शहद मिलाकर सुरक्षित रख लेवे।

मात्रा और अनुपात—चरकसंहिताका यह योग है, उसमें इसकी मात्रा '**योपरुन्ध्यान्न भोजनम्**' बतायी गयी है अर्थात् भोजन करते समय अग्नि मन्द न हो, उतना व्यक्ति खा सकता है। परंतु १० से २० ग्राम प्रातः-सायं गायके दूधके साथ सेवन करना श्रेष्ठ रहता है।

गुण और उपयोग—च्यवन ऋषि इसे खाकर वृद्धावस्थामें जवान हो गये थे, इसलिये इसका नाम 'च्यवनप्राश' पड़ा। एक व्यक्तिको वर्षभरमें ७ किलोग्राम च्यवनप्राश खानेसे वह रसायन एवं वाजीकरणका कार्य करता है। वृद्धावस्थाको दूर करता है। शरीरमें होनेवाले रोगोंसे लड़नेमें क्षमता पैदा करता है। यह श्वसन-संस्थानकी श्रेष्ठ औषधि है।

इसका सेवन श्वास, कास, राजयक्ष्मा (टी० बी०) वीर्यविकार, स्वप्नदोष, वात, पित्तरोग, शुक्ररोग, मूत्ररोग, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, बवासीर, शारीरिक दुर्बलता आदिको दूर कर शरीरमें स्फूर्ति, कान्ति एवं ओजकी वृद्धि करता है। इसमें प्रधान द्रव्य आँवला होनेसे यह शरीरमें विटामिन-'सी'की कमीसे होनेवाले रोगोंको दूर करता है, रक्तका वर्ण प्रसादन करता है, अम्लपित्तको दूर करता है और पाचन एवं रक्तसंवहनकी क्रिया सुचारु करके मलोंका निर्हरण सम्यक् बनाता है।

दैनिक जीवनमें प्रयोज्य कुछ वस्तुओंके गुण एवं उनसे लाभ

१. शतावर—शतावर मधुर एवं तिक्त, गुरु एवं स्निग्ध, शीत, रसायन और मेधा, अग्नि तथा पुष्टिको बढ़ानेवाली, नेत्रके लिये हितकारी, गुल्म एवं अतिसारका नाश करनेवाली, बलकारक और वात, पित्त, रक्तविकार तथा शोथकी नाशक है। बड़ी शतावर बुद्धिवर्द्धक, हृदयको शक्ति देनेवाली, अर्श, ग्रहणीरोग तथा नेत्ररोगकी नाशक है। दुग्धवर्धक होनेसे प्रसूतके समय अवश्य सेवनीय है।

२. शिलाजीत—शिलाजीत कटु, तिक्त, उष्ण, पाकमें कटु, योगवाही है और कफविकार, मेदोविकार, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वातार्श, पाण्डुरोग, अपस्मार, उन्माद, शोथ, कुष्ठ, उदररोग एवं कृमिको नष्ट करता है। सुवर्णमयी शिलाओंसे उत्पन्न शिलाजीत अड़हुलके फूल-जैसा लाल, रसमें मधुर, कटु, तिक्त, शीत एवं पाकमें कटु होता है। रजतमयी शिलाओंका शिलाजीत श्वेत, कटु, पाकमें कटु, नीला, तीक्ष्ण एवं उष्ण होता है और लोहमयी शिलाओंका शिलाजीत गिद्धके पंखके सदृश वर्णवाला, काला, तिक्त, लवणरसयुक्त, पाकमें कटु एवं शीत होता है, यह सबसे उत्तम माना गया है। शिलाजीत एक उत्तम रसायन है। जो बल, वीर्य, प्रमेह तथा सप्तधातुको पुष्ट करनेवाला तथा शक्तिवर्द्धक है।

३. धनिया—धनिया रसमें कसैला, तिक्त तथा कुछ कटु, पाकमें मधुर, वीर्यमें उष्ण, गुणमें स्निग्ध तथा लघु है। प्रभावमें मूत्रप्रवर्तक, अग्निदीपक, पाचन, ज्वरनाशक, रुचिकारक, ग्राही, त्रिदोषशामक तथा तृषा, दाह, श्वास, कास, कृशता एवं कृमिका नाशक है। ये सब गुणधर्म धनियाके सूखे बीजोंके हैं। परंतु हरी धनियाके बीज एवं पत्र मधुर एवं विशेषरूपसे पित्तनाशक हैं। विशेषतया इसे पित्तविकार-दाह, अन्तर्दाह आदिकी

शान्तिके लिये प्रयुक्त किया जाता है।

४. अजवायन—अजवायन रसमें कटु तथा तिक्त, पाकमें कटु, वीर्यमें उष्ण, गुणमें तीक्ष्ण तथा लघु है। प्रभावमें दीपक, पाचन, रुचिकारक, पित्तनाशक, शुक्रनाशक, शूलनाशक तथा वात-विकार, कफ-विकार, उदररोग, आनाह, गुल्म, प्लीहा-विकार और कृमिका नाशक है।

५. चिरायता—चिरायता रसमें तिक्त, वीर्यमें शीत, गुणमें रूक्ष एवं लघु, प्रभावमें रेचक है तथा संनिपातज्वर, श्वास, कफविकार, पित्तविकार, दाह, कास, शोथ, तृषा, रक्तविकार, कुष्ठ, ज्वर, व्रण तथा कृमिरोगका नाशक है। यह जीर्णज्वर, विषमज्वरमें क्वाथ (काढ़ा)-के रूपमें दिया जाता है।

६. सौंफ—रसमें कटु, वीर्यमें उष्ण, गुणमें लघु एवं तीक्ष्ण है। प्रभावमें पित्तवर्द्धक, अग्निदीपक तथा ज्वर, वातविकार, कफविकार, व्रण, उदरशूल और नेत्ररोगनाशक है। यह विशेष रूपसे गर्भाशयशूल, मन्दाग्नि, कृमि, कास, छर्दि, कफविकार तथा वातविकारकी नाशक है और हृदयके लिये हितकारी एवं पुरीषको बाँधनेवाली है। सौंफ मीठी होती है। पाचक, रूक्ष एवं उष्ण है। सौंफ आमातिसार, प्रवाहिका, पेचिशकी श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध औषधि है।

७. ईसबगोल—आँव, दस्त, पेचिश, मरोड़, आमातिसार, खूनके दस्त तथा पुराने आमांशके कारण पेटमें वायुका प्रकोप और गैस होनेपर इससे तत्काल फायदा होता है। ५ से १० ग्रामतक जलके साथ लेनी चाहिये। आमातिसारमें खोयेकी मिठाईके साथ देनेसे ऐंठन, मरोड़ बंद होकर अतिसार खत्म हो जाता है।

८. लौंग (Cloves)—लौंग रसमें कटु तथा तिक्त, गुणमें लघु, वीर्यमें शीत, प्रभावमें नेत्रके लिये हित, दीपक, पाचक, रुचिकर एवं कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषा, छर्दि, आध्मान, शूल, श्वास, कास, हिक्का (हिचकी) तथा क्षयका नाश करती है। इसका तेल दाँतदर्दमें और दन्तमंजनोंमें प्रयोग किया जाता है।

९. इलायची—इलायची दो प्रकारकी होती है। बड़ी इलायची और छोटी इलायची। छोटी इलायची रसमें चरपरी, गुणमें लघु, वीर्यमें शीत, प्रभावमें कफ, श्वास, कास, बवासीर, पेशाबकी जलनको ठीक करती है तथा वातरोगका नाशक है। बड़ी इलायची, मुखरोग, शिरोरोग तथा श्वास, कास और कण्डूनाशक एवं अग्निवर्द्धक होती है। शीतोपलादि चूर्ण तथा इलायचीका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे कमरदर्द तथा सूखे रोगमें लाभ होता है।

१०. दालचीनी—दालचीनी मीठी तिक्त एवं सुगन्धित होती है। यह वात-पित्तनाशक, शुक्रवर्द्धक, कान्तिकारक तथा मुखशोथ एवं तृषानाशक है। इसका प्रयोग दाल, शाक तथा औषधियोंमें किया जाता है।

११. भाँगरा—भाँगरा गुणमें कटु, तीक्ष्ण, उष्ण एवं रूक्ष है। कफ, वात, कृमि, श्वास, कास, शोथ, आमदोष, पाण्डुरोग, कुष्ठ, नेत्ररोग तथा शिरोवेदनाका नाशक है। केश तथा त्वचाके लिये हितकारक है। भाँगरासे भृंगराजतेल बनता है। पाण्डुरोग, कण्डू, आमवातमें इसका क्वाथ बनाकर दिया जाता है। मण्डूरभस्ममें भाँगरेके रसकी भावना देकर भस्म तैयार करते हैं। भाँगरेको पीसकर व्रणपर बाँधनेसे घाव बहुत जल्दी भर जाता है।

१२. कुश (डाभ)—यह त्रिदोषनाशक, मधुर, कषाय और शीत होता है। मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृषा, वस्तिपीड़ा, वृक्कशूल, प्रदर, रक्तविकारका नाशक है। कुशकी जड़ चावलके धोवनके साथ पीनेसे श्वेतप्रदरसे मुक्ति हो जाती है।

१३. गोखरू—गोखरू रसमें मधुर, वीर्यमें शीत, प्रभावमें बलवर्द्धक, दीपन, शुक्रवर्द्धक और पुष्टिकारक होता है। यह अश्मरी, प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग तथा वायुका नाशक है। गोखरू वीर्यवर्द्धक तथा गोखरूका चूर्ण पौष्टिक होता है।

१४. कण्टकारी—कण्टकारी रसमें कटु एवं तिक्त है। गुणमें लघु एवं रूक्ष, वीर्यमें उष्ण और प्रभावमें सर, दीपन तथा पाचन है। यह कास, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, पार्श्वशूल और हृद्रोगकी नाशक है। इसके फल रस एवं पाकमें कटु, तिक्त, पित्तवर्द्धक और अग्निदीपक हैं। कफ, वात, कण्डू, कास, मेदोदोष, कृमि तथा ज्वरनाशक हैं। लक्ष्मणा भी ऐसी ही है, परंतु विशेषतया वह वन्ध्यादोषनाशक है।

१५. कपूर—कपूर रसमें मधुर एवं तिक्त, गुणमें लघु, वीर्यमें शीत, प्रभावमें वृष्य, नेत्रके लिये हित, सुगन्धित और कफ, पित्त, विषदाह, तृषा, विरसता, मेदोदोष तथा शरीरकी दुर्गन्धका नाशक है।

१६. चन्दन—चन्दन दो प्रकारका होता है। श्वेत चन्दन तथा रक्त चन्दन। यह प्रभावमें आह्लादजनक तथा श्रम, शोष, विष, कफ, तृषा, पित्त, रक्तविकार तथा दाहका नाशक है। इसके सारसे तेल प्राप्त किया जाता है।

१७. गूमा (द्रोणपुष्पी)—गूमा मधुर एवं कटु, गुरु एवं रूक्ष, उष्ण, वात, पित्तकारक, तीक्ष्ण, कुछ लवणरसवाली, तथा पाकमें मधुर है। यह मलभेदक, आम, कफ, कामला, शोथ, तमक, श्वास तथा कृमिका नाशक है। इसका काढ़ा शीत ज्वर, श्वास तथा मलावरोधमें दिया जाता है।

१८. अशोक—अशोक शीतल, तिक्त, कषाय, ग्राही और कान्तिकारक है। यह वातादि दोष, अपची, तृष्णा, दाह, कृमि एवं शोष (सूखा), विष एवं रक्तविकारका नाशक है। इसकी छाल अशोकारिष्ट बनानेके लिये और (काढ़ा) रक्तप्रदर तथा श्वेतप्रदर एवं रजोवरोधके लिये दिया जाता है।

१९. परवल (पटोल) Sespadula—पटोलका फल पाचक, हृदयके लिये हित, शक्तिवर्द्धक, लघु, अग्निदीपक, स्निग्ध एवं उष्ण है। यह कास, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष एवं कृमियोंको नष्ट करता है। परवलकी जड़ सुखपूर्वक विरेचन करती है। नाल एवं लता कफनाशक है। पत्र पित्तशामक और फल त्रिदोष-विकारनाशक हैं। तिक्त रसवाले परवलका नाम पटोलिका है। वह परवलके समान गुणवाला है। इसकी सब्जी तथा जड़, पत्रका काढ़ा ज्वर तथा विरेचनके लिये दिया जाता है। परवलके फलका रस ज्वरके उतरनेके बाद दिया जाता है।

२०. कसीस (Forus Sulphate)—कसीस उष्ण, तिक्त एवं कषाय है। यह केशोंके लिये हित और वात, कफविकार, नेत्रकी खुजली, विषविकार, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी) एवं श्वेत कुष्ठका नाशक है। कसीस लौहभस्मके स्थानपर प्रयुक्त किया जाता है। दाँतों एवं मसूढ़ोंके रोगोंमें मंजन, श्वेत कुष्ठ और चर्मरोगोंमें लेपके रूपमें प्रयोग किया जाता है। रक्तवर्द्धक होनेसे रजोरोधनाशक योगोंमें खिलाया जाता है।

२१. फिटकरी (Alum)—फिटकरी कषाय (अत्यन्त कसैली) एवं उष्ण है। वात, पित्त, कफ, व्रण, सफेद कुष्ठ, विसर्पकी नाशक है। फिटकरीको तवेपर फुलाकर पीस लिया जाता है। फिटकरी तथा शृंगभस्म शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे शीतज्वर एवं पार्श्वशूलमें लाभदायक है। गुदभ्रंशमें इसके घोलसे प्रक्षालन (धोना) करना चाहिये।

२२. मकोय—त्रिदोषनाशक, स्निग्ध, उष्ण, स्वरभेदका नाशक, शुक्रवर्द्धक, तिक्त तथा कटु, रसायन है और नेत्ररोग, शोथ तथा कुष्ठ, बवासीर, ज्वर, प्रमेह, हिक्का, छर्दि एवं हृद्रोगका नाशक है। मकोयका अर्क कामला, पाण्डु और शोथमें दिया जाता है। यह रक्तवर्द्धक, शोथनाशक है। शोथमें मकोयके रसका शोथस्थानपर मालिश किया जाता है। (रा० जायसवाल)

रोग-निदान और चिकित्सामें ज्योतिषका योगदान

(पं० श्रीसीतारामजी स्वामी, ज्योतिषाचार्य)

आयुर्वेदशास्त्र और ज्योतिषका घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयुर्वेदमें आयुतत्त्वके घटकोंका विवेचन है और ज्योतिर्विद्यामें कालतत्त्व—समय-चक्रका निरूपण रहता है। दोनोंका सम्बन्ध मानवसे है। ज्योतिर्विद्याके अनुसार तारापुञ्जोंके तीन समुदाय हैं, जिनका सम्बन्ध आयुर्वेदके त्रिदोषसे है। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्तिका जन्म वात-समुदायके नक्षत्रोंमें हुआ है तो वह उन रोगोंसे अधिकतर पीडित रहेगा, जो वातजनित हैं। ठीक इसी प्रकार ग्रहों और चिह्नोंके प्रभाव भी तीनों धातुओंपर होते हैं।

जन्म-कुण्डलीका अध्ययन करके वैद्य यह निर्धारित कर सकता है कि अमुक व्यक्ति दुर्बल संकल्पवाला है,

निराशावादी है अथवा भावुक है। रोगीके बाह्य लक्षण उस आन्तरिक बीमारीके परिचायक हैं, जो स्थूल रूपमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जन्म-कुण्डली रोगकी सम्पूर्ण अवस्थाओंका उद्घाटन कर सकती है। उदाहरणार्थ जन्म-कुण्डलीमें यदि शनि तुला राशिमें हो और बुधपर उसकी दृष्टि हो तो वह गुर्देकी रक्त-कोशिकाओंमें तीव्र अकड़न पैदा कर सकती है। इसे प्रायः रासायनिक विश्लेषणके द्वारा नहीं जाना जा सकता, क्योंकि यह स्थिति कभी बनती है और कभी नहीं। डॉक्टर तो केवल रोग होनेपर ही परीक्षण करके यह बता सकता है कि इसे अमुक रोग है, जबकि सुयोग्य दैवज्ञ रोग होनेके पूर्व ही यह घोषित कर सकता है कि इसे अमुक समयमें अमुक रोग होगा और इतनी अवधितक रहेगा।

जन्म-कुण्डलीके समान ही हस्तरेखा भी रोग-निदानमें सहायक होती है। रोगी जिस समय चिकित्सकके पास आता है, उस समयकी प्रश्न-कुण्डली बनाकर भी यह जाना जा सकता है कि रोगी स्वस्थ होगा या नहीं? यदि कोई वैद्य किसी रोगीकी चिकित्सा प्रारम्भ करनेके पूर्व ही यह ज्ञात कर ले कि अमुक व्यक्तिकी आयु शेष है; अमुक ग्रह-दशामें जो रोग उत्पन्न हुआ है, वह प्रायः समाप्त है तो वह पूर्ण आत्मविश्वासके साथ चिकित्सा करके यश कमा सकता है। यदि वैद्यको चिकित्साके पूर्व ही यह ज्ञात हो जाय कि इसकी मारकेशकी दशा चल रही है तो वह दैवव्यपाश्रय चिकित्साका परामर्श दे सकता है।

जन्म-कुण्डलीके कौन-कौनसे ग्रह किन-किन रोगोंके परिचायक हैं—चन्द्रमा पृथ्वीके समीप होनेसे मानव-जीवनको सर्वाधिक प्रभावित करता है। समुद्रमें उठनेवाला लघु-ज्वार एवं बृहद्-ज्वार चन्द्र एवं सूर्यकी गतिविधियोंके कारण आता है। जब चन्द्र और सूर्य एक-दूसरेसे समकोण बनाते हैं, तब लघु-ज्वार तथा सूर्य-चन्द्र जब एक-दूसरेके आमने-सामने होते हैं तब बृहद्-ज्वार आता है। मनोविकारोंके सम्बन्धमें अनुसन्धान करनेवाले चिकित्सकोंका एक दल इस निष्कर्षपर पहुँचा कि चन्द्रमाकी कलाओं और फ्लोरिडा (सं० रा० अमेरिका)-के डेड काउण्टी क्षेत्रमें होनेवाली हत्याओंका सीधा सम्बन्ध है। मियामी विश्वविद्यालयके मेडिकल स्कूलके मनोवैज्ञानिक डॉ० आर्नल्ड एल्० लाइबरका कहना है कि मियामी क्षेत्रमें हुई हत्याओंके चार्टका समुद्री ज्वारभाटेसे विचित्र मेल बैठता है। इस दलने कम्प्यूटरकी सहायतासे सन् १९५६—७० ई० के बीच हुई लगभग १९०० हत्याओंका विश्लेषण किया। इससे पता चला कि पूर्णिमासे २४ घण्टे पूर्व हत्याकी दरमें वृद्धि हुई, पूर्णिमा जब चरम सीमापर पहुँच गयी, उसके बाद यह दर कम हो गयी। मानव-शरीरमें पानीकी मात्रा अधिक होती है, अतः चन्द्रमा मानव-शरीरको सर्वाधिक प्रभावित करता है। जलोदर आदि बीमारियाँ पूर्णिमाको अधिक बढ़ जाती हैं।

ग्रहोंका सम्बन्ध सामान्यतया निम्नाङ्कित रोगोंसे है—

१-सूर्य—सूर्यका सम्बन्ध सिर-दर्द, नेत्र-पीडा, ज्वर, पित्त और हृदय-रोगसे है। जन्मपत्रीमें सूर्यके निर्बल होनेसे हड्डियाँ कमजोर होंगी। यदि सूर्य बारहवें भावमें पापग्रहसे दृष्ट होगा तो बायीं आँख और द्वितीय भावमें होनेपर दायीं आँख कमजोर होगी।

२-चन्द्रमा—चन्द्रमाका सम्बन्ध कफसे है। इससे पीडित होनेसे जातकको क्षय, दमा, खाँसी, निमोनिया और हृदयरोग होते हैं। जलीय रोग और मानसिक रोग भी चन्द्रमा उत्पन्न करता है।

३-मंगल—मंगलका रक्त-विकार, घाव, फोड़े-फुंसी, बवासीर, चेचक, स्त्रियोंके रज-सम्बन्धी दोष, आँव-विकार और ब्लड-प्रेशर तथा चोट लगने आदिसे सम्बन्ध है।

४-बुध—बुधका सम्बन्ध वाणीसे है। इसके निर्बल होनेसे बालक गूँगा हो सकता है, हकलाता है अथवा तुतलाता है। बुध-ग्रह नपुंसकता एवं चर्मरोग भी उत्पन्न करता है।

५-गुरु—गुरुका सम्बन्ध पीलिया, हार्ट-अटैक तथा (वायुजनित) संनिपात आदिसे है।

६-शुक्र—यह वीर्य-सम्बन्धी विकार, मूत्र एवं मूत्रेन्द्रियके रोग, चीनीकी बीमारी तथा नेत्ररोग उत्पन्न करता है। पेशाबकी थैलीमें पथरीका होना भी शुक्रसे सम्बन्ध रखता है।

७-शनि—यह गैस-ट्रबल, लकवा तथा भ्रमसे उत्पन्न रोगोंसे सम्बन्ध रखता है।

८-राहु—यह फूड-पॉयजिनिंग (भोजनकी विषाक्तता), सर्प-दंश, दन्त-पीडा आदि उत्पन्न करता है।

९-केतु—केतु-ग्रह निमोनिया, भगंदर आदि रोग उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार बारह राशियाँ तथा जन्मपत्रीके बारह भाव भी कालपुरुषके विभिन्न अङ्गोंके प्रतिनिधि होते हैं। पहला भाव सिर, दूसरा मुख एवं दाहिनी आँख, तीसरा गला और बाँह, चौथा छाती, पाँचवाँ उदर, छठा पेडू, सातवाँ गुप्ताङ्ग, आठवाँ गुदा, नवाँ जाँघ, दसवाँ घुटना, ग्यारहवाँ पिण्डली तथा बारहवाँ पाँव एवं बायीं आँखका प्रतिनिधित्व करता है। यदि किसी भावमें पाप-ग्रह या नीच-ग्रह हो तथा उसका भावेश भी कमजोर हो तो उस भावेशकी दशामें उस भावसम्बन्धी अङ्गोंमें रोग होगा। जैसे यदि तीसरा भाव और भावेश कमजोर हो तो भावेश-दशामें गलेकी बीमारी, श्वास-रोग या कर्ण-रोग भी हो सकता है।

रोग-सम्बन्धी कतिपय योग

१-यदि जन्म-कुण्डलीके किसी भावमें चन्द्र-बुधकी युति हो और वे सूर्य, मंगल तथा शनिसे दृष्ट हों तो जातक मानसिक रोगी होगा।

२-छठे भावमें राहु और मंगल हों तो आँत-वृद्धि होती है।

३-चौथा भाव चतुर्थेश, कर्क राशि तथा चन्द्र पाप-ग्रहके प्रभावमें हों तथा लग्नेश एवं शुक्र छठे या बारहवें भावमें हों तो क्षय-रोग होता है।

४- यदि चन्द्र चतुर्थेश होकर छठे, आठवें या बारहवें भावमें स्थित हो और उसपर राहुकी दृष्टि हो तो मृगीरोग होता है।

५-लग्नेश बुध चन्द्रके साथ अथवा लग्नेश चन्द्र बुधके साथ हो तथा इनपर राहु एवं शनिकी पूर्ण दृष्टि हो तो कुष्ठ-रोग होता है।

रोग कब होता है?

रोगकारक ग्रहकी महादशामें तथा अन्य पीडाकारक ग्रहकी अन्तर्दशामें बीमारी आती है। दूसरे, छठे, आठवें एवं बारहवें भावोंके स्वामी अपनी महादशा एवं अन्य ग्रहोंकी अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर्दशामें बीमारी लाते हैं। दो केन्द्रोंका स्वामी शुभ ग्रह भी अपनी दशामें पीडा देता है। यदि लग्नेश छठे भावमें हो या षष्ठेश लग्नमें हो तो ऐसा व्यक्ति प्रायः बीमार रहता है। यदि लग्नेश लग्नमें हो अथवा लग्नको देखता हो या केन्द्रमें मित्र राशिमें हो तो ऐसा व्यक्ति अधिकतर स्वस्थ रहता है। इसके साथ-साथ यदि अष्टमेश स्वग्रही हो, केन्द्रमें हो या अष्टम भावमें शनि हो तो जातक दीर्घायु होता है।

इस प्रकार रोगीकी जन्मकुण्डलीमें ग्रहोंकी स्थितिको देखकर तथा वर्तमानमें चल रही महादशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा ज्ञात कर और गोचरका विचार कर ज्योतिषका ज्ञाता चिकित्सक रोगका सही निदान कर सफल चिकित्सा कर सकता है।

ज्योतिर्विज्ञानका प्रादुर्भाव भारतमें हुआ। पाराशर, जैमिनी, वाराहमिहिर आदि महान् ज्योतिर्विद् भारतमें हुए; पर खेदका विषय है कि भारतवासी ज्योतिषसे उतना लाभ नहीं उठा रहे हैं, जितना आज विदेशोंमें लोग लाभ उठा रहे हैं। इंग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि उन्नत देशोंमें चिकित्सक, पुलिस-अधिकारी एवं मनोवैज्ञानिक ज्योतिष-शास्त्रसे मार्गदर्शन ले रहे हैं।

स्वीडनके एक वैज्ञानिक सावन्ते आर हेन्थसने वैज्ञानिक खोजके आधारपर प्रमाणित किया है कि स्त्रियोंमें मासिकधर्म चन्द्रमासकी विशेष तिथियोंमें ही प्रकट होता है। वाराहमिहिरने भी यही कहा है कि स्त्रियोंका मासिक धर्म चन्द्र-मंगलसे प्रभावित होता है। स्त्रीरोग-विशेषज्ञ ओगिनो एवं नौसका कहना है कि गर्भाधानके लिये सर्वश्रेष्ठ समय मासिक धर्मसे चौदहवाँ, पंद्रहवाँ और सोलहवाँ दिन होता है। हमारा जातक-पारिजात ग्रन्थ इसी बातको बहुत पहलेसे ज्ञानमें होना बताता है। डॉक्टर एडसन एण्ड्रसने प्रमाणित किया है कि रक्तस्रावका ८२ प्रतिशत चन्द्रके पहले और तीसरे सप्ताहमें होता है।

कार्ल जंगने रोग-निदानके लिये पश्चिममें ज्योतिर्विद्याका व्यापक प्रयोग किया है। आज भारतीयोंसे भी अधिक पश्चिमी देशोंके लोग ज्योतिषमें विश्वास करते हैं।

अतः भारतीय चिकित्सकोंको भी रोग-निदान और चिकित्सामें भारतके प्राचीनतम ज्ञान—ज्योतिर्विज्ञानसे मार्गदर्शन लेकर लाभ उठाना चाहिये।

बालोपयोगी दिनचर्या

(श्रीरामलालजी पहाड़ा)

१-स्वस्थ बालक, स्वभावत: सूर्योदय होनेपर उठते और पक्षियोंके समान सूर्यास्त होनेपर सो जाते हैं, मानो वे प्रकृतिके आदेशको मानकर रहना चाहते हैं; परंतु संरक्षक अपने अनुचित व्यवहारसे उनके स्वभावको विकृत कर देते हैं।

२-बालकोंको सदा पूर्वकी ओर सिर रखकर सुलाना चाहिये। इससे सूर्यकी प्रथम किरण उनके मस्तिष्कमें प्रवेश कर उनकी मेधाको बढ़ाती है।

३-बालकोंको उठानेके समय उनके पास एक-दो मिनटतक मधुर ध्वनिसे *'हरे राम ---- हरे हरे'* किंवा अन्य इष्ट श्लोकका गायन करना उत्तम है। इससे उनमें सदाचारका विकास होता है।

४-बालकको शौच, मुखमार्जन (और यदि सम्भव हो तो स्नान भी) कराकर प्रार्थना (यज्ञोपवीत होनेपर) संध्याका नित्य अभ्यास कराना इष्ट है।

५-इसके उपरान्त बालक खेलें, पढ़ें या घरके कामोंमें भाग लें। बालकोंमें अनुकरण-बुद्धि विशेष जाग्रत् रहती है, अतएव उससे लाभ उठाकर संरक्षकजन बालकोंको उचित और सुलभ गृह-धंधोंमें लगायें। सम्भव है आरम्भमें वे कुछ बिगाड़ करें तो भी उनकी भर्त्सना न करें। भर्त्सनासे वे हताश होकर अकर्मण्य हो जाते हैं। ठीक तो यही है कि उनके बिगाड़े हुए कामको सुधारते हुए उनका अनुमोदन करे और उनमें काम करनेका उत्साह बढ़ाये।

६-बालकोंको सदैव प्रात:काल दिनमें पूर्वाभिमुख और सायंकाल रात्रिमें पश्चिमाभिमुख बिठलाकर भोजन करायें। ऐसा करनेसे सूर्य-प्रकाशका प्रत्यक्ष ओज उन्हें मिलता है। वे दीर्घायु होते हैं। भोजनके समय बालक पालथी मारकर बैठे, इससे आन्त्रभाग मुक्त होता और पाचन ठीक होता है।

७-बालक स्वभावत: शुद्ध सात्त्विक भोजन खाना चाहते हैं; किंतु संरक्षक (विशेषकर स्त्रियाँ) थोड़ा कष्ट बचानेको उन्हें अपने समान मिर्च-मसाले खानेमें लगा देते हैं।

८-दाँत निकलनेके समय बच्चोंका स्वास्थ्य बहुत मन्द हो जाता है। उनकी आँखें बिगड़ जाती तथा अँतड़ियाँ कमजोर हो जाती हैं। उनको ज्वर आता और अधिक संख्यामें दस्त होते हैं। ऐसी स्थितिमें धैर्य रखकर बच्चोंको शुद्ध मातदिल वस्तुएँ खिलायें, जिससे शरीरमें बढ़ी हुई ऊष्माका शमन हो। संरक्षकोंके प्रमादसे इन दिनों अनेक बच्चे मर जाते या सदाके लिये रोगी हो जाते हैं।

इसी तरह प्राय: सात वर्षकी आयुतक बच्चोंको शीतला, चेचक, खसरा आदि ज्वरोंके होनेकी सम्भावना रहती है। इस समय भी धैर्यसे काम करना चाहिये।

९-बच्चोंकी आवश्यकताको पूरा करना ठीक है, परंतु हठ—दुराग्रहकी प्रवृत्ति रोकनी चाहिये।

१०-बच्चोंके कपड़े सदा स्वच्छ हों और उनके शरीरके मानसे सदा कुछ ढीले रहें। बहुत चुस्त या तंग कपड़ोंसे उनके रुधिर-सञ्चारमें बाधा होती है।

११-माता-पिता या बड़े भाई-बहिन बच्चोंको अपने साथ प्रतिदिन खुले मैदानों, बगीचोंमें ले जाकर टहलायें। प्रतिदिन कुछ समय निकालकर उनके खेल-कूदमें भाग लें। ऐसा करनेसे वे दूषित संसर्गसे बचे रहते हैं।

१२-ज्वर आदि व्याधिमें बच्चोंको 'रामकवच' या अन्य 'इष्टकवच' का झाड़ा देना अमोघ उपाय है।

१३-बालकोंके मनमें यह बात भरते रहना चाहिये कि *'भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥'*

अर्थात् महावीर (अपना शुद्ध आचरण) सब भूत-प्रेतोंको दूर भगा देता है; क्योंकि स्वयं महावीर (हनुमान्)-जीने अपने शुद्ध दृढ़ आचरणके बलसे सब राक्षसोंको पराजित कर दिया था। इसलिये बालक भी प्रतिदिन व्यायाम और संध्या कर अपना बल बढ़ायें और व्यसनोंसे दूर रहकर दृढ़ आचरण रखें—*'सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई'* का अनुकरण करनेका प्रयत्न करें।

१४-बालक थोड़ा पढ़ें और उसको अभ्यासमें लाकर चरित्र सुन्दर बनानेका प्रयत्न करें। संरक्षकगण भी उनको उपदेशोंके बदले क्रियात्मक उदाहरणद्वारा सिखानेका प्रयत्न करें।

१५-बालकोंमें कौतूहल अधिक रहता है, अतएव वे जाननेके लिये प्रश्न किया करते हैं। जहाँतक हो,

उनका उचित समाधान कर देना चाहिये; इससे उनमें विचारशक्ति बढ़ती है। यदि प्रश्नका समाधान न हो सके तो मृदुतासे उनको समझाकर धीरज देना चाहिये; परंतु उनके कौतूहलको निर्दयतासे दबा देना अच्छा नहीं।

१६-बालकोंके चित्तपरसे परीक्षाका बोझ हटा देना चाहिये। आजकल शिक्षा-विज्ञानमें अधिकारिवर्गने बच्चोंपर बहुत अधिक बोझ डाल रखा है। प्रत्येक कक्षामें आवश्यकतासे अधिक पुस्तकोंकी नियुक्ति कर रखी है। पाठ्यक्रमकी रचना करनेवाले लोग पाठ्यक्रम बनाते समय बालककी उम्रका ध्यान न रखकर ऐसा पाठ्यक्रम बनाते हैं, मानो वे अपने लिये बना रहे हों। बालकोंकी आयु, बुद्धि और वित्तका बहुत कम ध्यान रखा जाता है। इससे बालकोंमें शारीरिक और नैतिक पतन बढ़ता जा रहा है।

१७-सोते समय बालकोंको पेशाब कराना चाहिये, अन्यथा वे बिछौनेको बिगाड़ देते हैं। यदि उनके हाथ-पैर भी धो दिये जायँ तो उनको ठीक नींद आती है।

१८-बालकोंको हर महीनेमें एक बार साधारण रेचक औषध (जैसे अदरक, तुलसी, नीबू) देनेसे उनकी अँतड़ियोंमें मल एकत्रित नहीं होता। उनका पाचन ठीक हो जाता और ज्वर आदि व्याधियाँ दूर रहती हैं।

१९-प्रति रविवार बालकोंको दूध, भात, रोटी, शक्कर अवश्य खिलायें। इससे उनमें सूर्य-रश्मियोंका प्रभाव ठीक पड़नेसे स्वास्थ्य और मेधाकी वृद्धि होती है।

२०-बालकोंको प्रति सप्ताह मंगलवार और शनिवारको—विशेषकर शीत-ऋतुमें तेलकी मालिश करके कुछ देर उन्हें प्रातःकाल धूपमें लिटा दें या बैठा दें। इससे उनमें अस्थिदौर्बल्य (Rickets) नहीं होता।

२१-ईर्ष्यालु स्त्रियोंके दृष्टि-दोषसे सुरक्षित रखनेके लिये बच्चोंके गलेमें राममन्त्र अथवा अन्य इष्ट मन्त्रका ताबीज बाँध दें। विशेष अवसरपर उनपर राई, नोन (नमक) निछावर कर अग्निमें डाल दें।

२२-भोजन करनेके पहले और पश्चात् दोनों बार बालकोंको हाथ, पैर, मुँह, नाक, कपाल, सिरको धोकर गीला रखनेका अभ्यास करायें। इससे उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ—विशेषकर नेत्रज्योति दीर्घायुतक सुरक्षित रहती हैं। जब बालकोंका श्वास दाहिने नथुनेसे चलता हो (सूर्यदेव चैतन्य हों), तब उन्हें खानेको देनेसे पाचन-क्रियामें विकार नहीं होता।

२३-पढ़ने-लिखनेमें बायीं ओरसे प्रकाश आनेका प्रबन्ध रहे, अन्य ओरसे आनेवाला प्रकाश बालकोंकी आँखोंको हानि पहुँचाता है। बालक रीढ़को सदा सीधी रखकर पढ़ें या लिखें। पुस्तकपर अधिक झुकनेसे फुफ्फुस खराब हो जाते हैं और कालान्तरमें क्षय होनेका डर रहता है।

२४-बालकोंको शिक्षा देनेके लिये सदा सुगम, स्थूल वस्तुओंका उदाहरण लेकर कठिन, सूक्ष्म नियमकी ओर ले जाना चाहिये। उनकी ज्ञानेन्द्रियोंका अधिक-से-अधिक उपयोग करना चाहिये। उनके सामने ऐसी स्थूल वस्तु रखें, जिन्हें वे छुएँ, सूँघें, बजायें, चखें, देखें। वे अपनी सर्वज्ञानेन्द्रियोंका उपयोग कर वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करें। शिक्षाका उत्तम ढंग यही है।

२५-बालकोंके मननार्थ कुछ सुन्दर चौपाइयाँ दी जाती हैं। मानस तो अगाध मानस है और निर्मल जलसे (सुन्दर विचारोंसे) परिपूर्ण है; किंतु यात्री अपने प्रयोजनानुसार जल ग्रहण कर तृप्त हो जाते हैं।

बालक अपने 'स्वास्थ्य' के लिये सदा इस श्लोकका मनन करते रहें। यहाँ केवल बाल-बुद्धिगम्य अर्थ लिखा जायगा—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

'मैं रघुवंशके नाथ श्रीरामको नमन करता हूँ, जिनका शरीर नीलकमलके समान श्याम और कोमल है, वाम भागमें सीताजी विराजमान हैं और हाथमें महान् बाण और सुन्दर धनुष हैं। भावार्थ—रामजी अपने रघुवंशकी रक्षा करते हैं, अपने ऐश्वर्यसे सब जीवों (रघु=जीव; वंश=समुदाय)-की रक्षा करते हैं। उनके पास सदा गृहस्थीकी सुन्दरता रहती है और उनका शरीर भी सदा स्वस्थ रहता है तथा दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये उनके हाथमें सदा धनुष-बाण रहते हैं। रामजी स्वस्थ, उत्तम गृहस्थ और नीतिज्ञ हैं; अतः मैं उनकी ओर झुकता हूँ, उनको स्वास्थ्यका उत्तम आदर्श मानकर उनका अनुचर (अनुयायी) होनेका प्रयत्न करता हूँ।'

माता एवं शिशुके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जाननेयोग्य आवश्यक बातें

(श्रीमती ज्योति दुबे)

(क) गर्भावस्थामें स्वस्थ कैसे रहें ?

नारीके जीवनका महत्त्वपूर्ण समय गर्भावस्थाका होता है। गर्भिणी स्त्री अनेक जटिलताओंका सामना करके प्रसवके समय भारी वेदना सहकर शिशुको जन्म देती है। गर्भावस्थाके समय कुछ आवश्यक बातें ध्यानमें रखकर वह स्वस्थ रह सकती है तथा स्वस्थ शिशुको जन्म दे सकती है। गर्भिणीके स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातोंका ज्ञान स्वयं गर्भिणीको तथा उसके पारिवारिक जनोंको जानना अति आवश्यक है।

गर्भावस्थाके सामान्य लक्षण—(१) माहवारीका रुक जाना, (२) उलटियाँ आना, (३) स्तनमें परिवर्तन, (४) खट्टी चीजें, चाक-मिट्टी खानेकी इच्छा होना तथा (५) बार-बार पेशाब होना।

मासिक धर्मसे प्रसूतिका अनुमान—प्रसवका अनुमानित दिन केवल अनुमानित ही होता है। यह आवश्यक नहीं कि ठीक इसी दिन प्रसव हो, यह समय कुछ आगे-पीछे हो सकता है। साधारणत: मासिक धर्म होनेके बाद प्रसूतिका समय २७० से २९० दिनके अंदर होता है, उसे जाननेके लिये निम्नरीतिसे दिनोंकी संख्या जोड़ दी जाय तो प्रसूति-समयकी कल्पना की जा सकती है—

महीना	महीनेके सामनेके दिन जोड़े जायँ		महीना	महीनेके सामनेके दिन जोड़े जायँ	
जनवरी	अक्टूबर	७ दिन	जुलाई	अप्रैल	६ दिन
फरवरी	नवम्बर	७ दिन	अगस्त	मई	७ दिन
मार्च	दिसम्बर	५ दिन	सितम्बर	जून	७ दिन
अप्रैल	जनवरी	४ दिन	अक्टूबर	जुलाई	७ दिन
मई	फरवरी	४ दिन	नवम्बर	अगस्त	७ दिन
जून	मार्च	७ दिन	दिसम्बर	सितम्बर	६ दिन

उदाहरण—यदि दस जनवरीको मासिक धर्म हुआ है तो उसमें ७ मिलानेसे १७ अक्टूबरको प्रसूति होनेका समय समझना चाहिये।

गर्भावस्थामें तनावसे बचे—गर्भवती महिला यदि किसी प्रकार मानसिक तनावमें रहती है तो इसका सीधा असर गर्भस्थ शिशुपर पड़ता है। इसलिये गर्भावस्थामें स्त्रियोंको प्रसन्न रहना चाहिये, ताकि बच्चा स्वस्थ हो। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक लेनी स्वातिने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वर्ल्ड ऑफ दी अनबोर्न'-में लिखा है कि 'मनुष्यकी जिंदगीका सबसे महत्त्वपूर्ण समय इसके जन्मसे पहलेका होता है।' गर्भमें शिशु सचेतन प्राणी होता है तथा उसका अवचेतन मस्तिष्क उस अवधिकी स्मृतियोंको भलीभाँति संजोये रहता है। माताके संवेगोंको वह जल्दी ही अपने अंदर समेट लेता है। गर्भवतीको अपने शिशुके भविष्यके लिये प्रसन्न एवं आशावादी रहना चाहिये।

गर्भवती स्त्रियोंका आहार—गर्भावस्थामें शिशु अपने पोषणके लिये माँपर निर्भर रहता है। इस दौरान माँको सामान्यकी अपेक्षा ३०० कैलोरीसे अधिक ऊर्जाका सेवन करना पड़ता है। अत: उसे विशेष ऊर्जा, शक्ति तथा पोषक तत्त्वोंकी आवश्यकता पड़ती है। इस सम्बन्धमें यहाँ एक तालिका दी जा रही है—

पोषक तत्त्व	खाद्य पदार्थ	उपयोग
कैलशियम	दूध, दूधसे बने पदार्थ, अखरोट, बादाम, पिस्ता आदि।	भ्रूणकी हड्डियों एवं दाँतोंके विकासके लिये जरूरी तत्त्व।
आयरन	सूखे फल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, ताजे फल आदि।	भ्रूणमें रक्त-कोशिकाओंके निर्माणके लिये बहुत आवश्यक।
विटामिन्स	ताजे फल, हरी सब्जियाँ, अंकुरित अनाज, सलाद आदि।	स्वस्थ प्लेसेन्टा (नाल) तथा आयरनके शोषणके लिये।
फॉलिक एसिड	हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अनाज आदि।	बच्चेके स्नायु-तन्त्रके विकासके लिये।
जिंक	अनाज, दालें इत्यादि।	बच्चेके ऊतकोंके विकासके लिये।

कैलशियम, फास्फोरस तथा विटामिन 'डी' प्राप्त करनेके लिये गर्भिणीको चाहिये कि वह सिरपर तौलिया रखकर प्रतिदिन थोड़ी देरतक धूप लेती रहे। यूरोपके डॉ० एफ० जे० ब्राउनने अपनी पुस्तक 'डाइट इन प्रेगनेन्सी'-में लिखा है कि माताके शरीरमें मात्र कैलशियमकी कमी होनेके कारण बच्चोंको सूखा रोग हो जाता है तथा उनके दाँत जीवनभर खराब रहते हैं। इसलिये गर्भवती महिलाके आहारका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

गर्भधारणके बाद प्रथम माहसे नवम माहतकका खान-पान—'चरकसंहिता'के अनुसार गर्भवती स्त्रीको गर्भके नौ महीनेके दौरान ऐसे खान-पानका सेवन करना चाहिये जो कि उसके स्वास्थ्यके अनुकूल हो। अगर गलत खान-पानकी वजहसे माँको कोई तकलीफ होती है तो उसका बुरा असर गर्भमें पल रहे शिशुके स्वास्थ्यपर भी पड़ना निश्चित है।

गर्भधारणके बाद—

प्रथम माह—पहले महीनेके दौरान गर्भवतीको सुबह-शाम मिस्री-मिला दूध पीना चाहिये। सुबह नाश्तेमें एक चम्मच मक्खन, एक चम्मच पिसी मिस्री और दो-तीन काली मिर्च मिलाकर चाट ले। उसके बाद नारियलकी सफेद गिरीके दो-तीन टुकड़े खूब चबा-चबाकर खा ले और अन्तमें पाँच-दस ग्राम सौंफ खूब चबा-चबाकर खाये।

द्वितीय माह—दूसरा महीना शुरू होनेपर रोजाना दस ग्राम शतावरका बारीक पाउडर और पिसी मिस्रीको दूधमें डालकर उबाले। जब दूध थोड़ा गर्म रहे तो इसे घूँट-घूँट करके पी ले। पूरे माह सुबह और रातमें सोनेसे पहले इसका सेवन करे।

तृतीय माह—तीसरा महीना शुरू होनेपर सुबह-शाम एक गिलास ठंडे किये गये दूधमें एक चम्मच शुद्ध घी और तीन चम्मच शहद घोलकर पीये। इसके अलावा गर्भवतीको तीसरे महीनेसे ही सोमघृतका सेवन शुरू कर देना चाहिये और आठवें महीनेतक जारी रखना चाहिये।

चतुर्थ माह—चौथे महीनेमें दूधके साथ मक्खनका सेवन करे।

पञ्चम माह—पाँचवें महीनेमें सुबह-शाम दूधके साथ एक चम्मच शुद्ध घीका सेवन करे।

षष्ठ माह—छठे महीनेमें भी शतावरका चूर्ण और पिसी मिस्री डालकर दूध उबाले, थोड़ा ठंडा करके पीये।

सप्तम माह—सातवें महीनेमें भी छठे महीनेकी तरह ही दूध पीये, साथ ही सोमघृतका सेवन बराबर करती रहे।

अष्टम माह—आठवें महीनेमें भी दूध, घी, सोमघृतका सेवन जारी रखना चाहिये। साथ ही शामको हलका भोजन करे। इस महीनेमें गर्भवतीको अक्सर क़ब्ज़ या गैसकी शिकायत रहने लगती है, इसलिये तरल पदार्थ ज्यादा ले। यदि क़ब्ज़ फिर भी रहे तो रातमें दूधके साथ एक-दो चम्मच ईसबगोल ले।

नवम माह—नवें महीनेमें खान-पानका सेवन आठवें महीनेकी तरह ही रखे। बस इस महीनेमें सोमघृतका सेवन बिलकुल बंद कर दे।

गर्भावस्थामें करने योग्य कार्य—

(१) गर्भावस्थाके दौरान गर्भवतीको अपना मन सदैव प्रसन्न रखना चाहिये।

(२) गर्भवतीको अच्छे साहित्यका अवलोकन तथा महापुरुषोंके जीवन-चरित्रके ऊँचे आदर्शोंका चिन्तन-मनन करना चाहिये।

(३) गर्भकालके दौरान सदा ढीले वस्त्र पहनना चाहिये। कसे वस्त्रोंसे बच्चेके विकलांग होनेकी सम्भावना बढ़ जाती है।

(४) गर्भवती महिलाकी दिनचर्या नियमित होनी चाहिये तथा घरेलू कार्योंको करते रहना चाहिये।

(५) ज्यादा समय खाली पेट नहीं रहना चाहिये। नियमित समयपर थोड़ी-थोड़ी मात्रामें भोजन ग्रहण करे।

(६) यदि गर्भवती महिला स्वयंको अस्वस्थ महसूस करती है तो थोड़ी मात्रामें किसी मीठी चीजका सेवन कर ले।

(७) तैलीय खाद्य पदार्थोंका सेवन न करे।

(८) गर्भावस्थाके दौरान संयम रखे, सहवास न करे।

(९) कोई भी दवा लेनेसे पूर्व चिकित्सककी सलाह ले।

(१०) गर्भवतीके स्तनोंमें कोई दोष हो तो इसका उपचार यथाशीघ्र करना चाहिये।

व्यायाम—गर्भावस्थाके दौरान अधिक थकान पैदा करनेवाले व्यायाम, मेहनतके काम, उछलना-कूदना एकदम बंद कर देना चाहिये। सुबह-शाम खुली हवामें टहलना चाहिये।

गर्भवतीका डॉक्टरी परीक्षण—गर्भधारणका पता चलनेपर गर्भवती महिलाको तुरंत स्त्री-रोग-विशेषज्ञको दिखाना चाहिये। गर्भवतीको प्रसव होनेतक लगातार बार-बार जाँच करानी चाहिये। जिसमें शुरूके छः-सात महीनोंमें महीनेमें एक बार तथा सातवें, आठवें और नवें महीनेमें दस-पंद्रह दिनमें एक बार जाँच करानी चाहिये। इन दिनोंमें ब्लडप्रेशर, खून-पेशाब आदिकी जाँच समय-समयपर वह कराती रहे। गर्भवतीको अपना वजन हर माह जाँच कराना चाहिये। गर्भकालमें आठसे दस किलो वजन बढ़ता है। यदि वजन अधिक होने लगे तो मीठा एवं चिकनाई युक्त आहार कम कर देना चाहिये।

इन नियमित जाँचोंके दौरान चौथे-पाँचवें महीनेमें पहला और पाँचवें-छठे महीनेमें दूसरा (एक माहके अन्तरसे) टिटनस/वैक्सीनका टीका अवश्य लगवा लेना चाहिये।

इस तरह शुद्ध सात्त्विक जीवन बितानेवाली माताएँ स्वस्थ-सुन्दर और श्रेष्ठ बच्चेको जन्म दे सकती हैं।

(ख) नवप्रसूताके लिये स्वास्थ्यरक्षक नुसख़े

सामान्यतः देखा जाता है कि महिलाएँ प्रसवके बाद अपना पूरा ध्यान शिशुकी तरफ लगा देती हैं। अपनी शारीरिक देखभालकी ओर उनका ध्यान नहीं रहता है, जिससे वे कमजोर और शिथिल हो जाती हैं। इस समय नवप्रसूताको उचित खान-पान तथा घरेलू उपचारसे स्वस्थ एवं सुन्दर बनाया जा सकता है।

प्रसवके समय गर्भवती स्त्रीको गर्म दूधमें ६-७ खारक (छुहारा) तथा केसर डालकर पिलाये। इससे प्रसव आसानीसे, कम कष्टमें होगा। इसके बाद ३ ग्राम हीराबोलका चूर्ण और १० ग्राम गुड़का मिश्रण बनाये, इसकी समान वजनकी छः गोली बना ले। प्रसवके पश्चात् दो गोली प्रतिदिन तीन दिनतक सेवन कराये। इससे गर्भाशयकी शुद्धि होती है।

पीनेका पानी—प्रसवके बाद प्रसूताको चालीस दिनोंतक ठंडे पानीका सेवन नहीं करना चाहिये। ठंडे पानीका किसी भी रूपमें उपयोग नहीं करना चाहिये। प्रसवके बाद पहले हफ्तेसे निम्नलिखित विधिसे पानीका सेवन करना चाहिये—

पानी पाँच लीटर, पाँच-छः गाँठ सोंठ, पाँच-सात लौंग तथा पचास ग्राम अजवाइन डालकर उबाल ले। ठंडा होनेपर, छानकर किसी बरतनमें भरकर रख दे। पहले आठ दिन इसी पानीका सेवन करना चाहिये। इसके बाद एक महीने सिर्फ गर्म पानी ठंडा करके पीये। इसके बाद ताजा पानी शुरू कर दे।

यदि हो सके तो प्रसूताको १० दिनतक तो अन्नका सेवन नहीं करना चाहिये। हरीरा और गर्म दूध देना चाहिये। मेवेका हलुवा भी दे सकते हैं। ग्यारहवें दिनसे अन्नका सेवन शुरू करे।

हरीरा बनानेके लिये सामग्री—दो सौ ग्राम अजवाइन, सौ ग्राम सोंठ, दस ग्राम पीपल, दस ग्राम पीपलामूल, सौ ग्राम बादाम, दो सौ ग्राम छुहारा, दो सौ ग्राम गोंद तथा आवश्यकतानुसार शुद्ध घी एवं गुड़ ले।

हरीरा बनानेकी विधि—अजवाइन, सोंठ, पीपल तथा पीपलामूलको कूटकर अलग रख ले। बादाम, खारक (छुहारा) तथा मेवा काटकर रख ले। समस्त सामग्रीको दस भागोंमें करके पुड़िया बना ले। एक पुड़िया प्रतिदिन उपयोगमें लाये।

सर्वप्रथम कड़ाहीमें घी डालकर बीस ग्राम गोंद तले, इसके पश्चात् पहली चारों चीजोंकी एक-एक पुड़िया डालकर भूने, उसमें अंदाजसे गुड़ डालकर चलाये। अब दो कप पानी डाले। थोड़ा गाढ़ा होनेपर पिसी गोंद और मेवा डालकर आँचसे नीचे उतारे। हरीरा गर्म दूधके साथ सेवन करे।

भोजन—भोजनमें हरी सब्जी, मूँगकी दाल और चपाती देना चाहिये। पाँच गाँठ सोंठ तथा बीस लौंग पीसकर शीशीमें रख ले, भोजन करते समय दाल-सब्जीमें यह चूर्ण डाल दे। सुबह-शाम लड्डू खिलाकर गर्म दूध पिलाना चाहिये। हरीरा या लड्डू खानेके एक घंटेतक पानीका सेवन नहीं करना चाहिये। खाना खानेके बाद भुनी हींगका सेवन करना चाहिये।

लड्डू बनानेकी विधि—सामग्री—सोंठ सौ ग्राम, पीपलामूल बीस ग्राम, पीपल बीस ग्राम, जावित्री पाँच ग्राम, जायफल एक, सफेद मूसली पचास ग्राम, असगन्धा बीस ग्राम, मिस्त्री बीस ग्राम, गोखरू बीस ग्राम, शतावर बीस ग्राम, विदारी कन्द बीस ग्राम, काली मूसली बीस ग्राम, सम्हालूके बीज बीस ग्राम, सुपारीके फूल बीस ग्राम, चिकनी सुपारी पचास ग्राम, केसर पाँच ग्राम।

आवश्यक मेवा—बादाम २५० ग्राम, खारक (छुहारा) ५०० ग्राम, पिस्ता १०० ग्राम, चिरौंजी २५० ग्राम, गोंद २५० ग्राम, खोपरा (गरीगोला) ५०० ग्राम, गुड़ २ किलो, घी १५० ग्राम।

विधि—पहले घीमें गोंद तले। फिर सब दवाइयोंका चूर्ण बनाकर घीमें भूने। फिर सभी मेवा बारीक काटकर भूने। अब गुड़ कूटकर घी-मेवा-दवाइयाँ मिलाकर लड्डू बना ले।

पान—पान इस प्रकार बनाये—एक पानमें थोड़ा सूखा कत्था, हलका चूना लगाये। जायफल दो-तीन टुकड़े, सुपारी दो-तीन टुकड़े, थोड़ी-सी जायपत्री एवं एक लौंग रखे। यह पान प्रसूताको खिलाये।

दशमूल काढ़ा—इसे सुबह-शाम दो बार सेवन करे। यह बहुत लाभकारी है।

मालिश—प्रसूताके लिये चालीस दिनतक मालिश आवश्यक है। मालिश सरसोंके तेल या पेनकिल ऑयलसे करे।

मंजन—प्रसवके बाद प्रसूताको एक चम्मच सरसोंका तेल और एक चम्मच सेंधा नमक मिलाकर मंजन करना चाहिये। इससे मसूढ़े स्वस्थ और मजबूत होते हैं।

पेट बड़ा न हो—प्रसवके बाद अधिकांश स्त्रियोंका पेट बड़ा हो जाता है, इससे बचनेके लिये प्रसवके बाद एक माहतक पेटपर कपड़ा या बाजारमें बेल्ट मिलता है—उसे बाँधना चाहिये।

व्यायाम—प्रसवके चालीस दिन बाद हलका तथा थोड़ा व्यायाम करे। धीरे-धीरे व्यायामका समय बढ़ाया जा सकता है।

प्रसवके बाद यदि वजन बढ़ रहा हो तो भूखे मत रहे, संतुलित एवं पौष्टिक भोजन ले।

उपर्युक्त उपायोंको सावधानीपूर्वक अपनाकर गर्भिणी स्त्रियाँ स्वस्थ और सुन्दर रह सकती हैं।

(ग) शिशुकी देखभाल

शिशु मानव-जातिका साररूपी धन है। यह राष्ट्रकी सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति है। इसके लालन-पालनमें बहुत सतर्क रहनेकी जरूरत है। आजके बच्चे कलके कर्णधार हैं। इन्हींपर देश, समाज, जातिकी उन्नति निर्भर है। अत: इनकी प्रसन्नता, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं विचारधारा आदिका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

जब बच्चा माँके गर्भमें रहता है तब उसके शरीरका पालन-पोषण माँके आहारसे होता है। इसलिये जो गर्भवती स्त्री पौष्टिक आहार लेती है, वह स्वस्थ, सुडौल और नीरोग शिशुको जन्म देती है। जन्मके बाद शिशु स्वस्थ, नीरोग बना रहे और शिशुका समुचित विकास हो सके—इसके लिये माताको प्रसवके बाद कम-से-कम छ: मासतक अपने खान-पान और आहारका विशेष ध्यान रखना चाहिये। पौष्टिक आहार और दूधका सेवन करना चाहिये तथा शिशुको भी पोषक आहार देनेका पूरा ध्यान रखना चाहिये।

शिशु-स्वास्थ्यका संरक्षक—स्तनपान—शिशुका आहार माँके दूधसे शुरू होता है। प्रकृतिद्वारा माँको दिया गया अमूल्य उपहार दूध है, जिसे माँ अपने शिशुको देती है। माँके दूधमें शिशुके लिये आवश्यक पोषक तत्त्व उपलब्ध रहते हैं। यह दूध हलका एवं सुपाच्य होता है। माँके दूधसे बढ़कर संसारमें बच्चेके लिये अन्य कोई खाद्य-पदार्थ नहीं है। माँके दूधकी प्रशंसामें आयुर्वेदने कहा है—

पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने।
दीर्घमायुरवाप्नोतु देवा प्राश्यामृतं तथा॥

अर्थात् हे शुभानने! जिस प्रकार देवता अमृतका सेवन करके दीर्घायु हुए, उसी प्रकार तुम्हारा अमृत समान दूध पीकर तुम्हारा बालक दीर्घायु हो।

प्रसवके बाद माताके स्तनोंसे गाढ़ा पीला दूध जिसमें कोलेस्ट्रम होता है, निकलता है। इसे शिशुको अवश्य पिलाना चाहिये। इससे शिशुकी रोग-निरोधक क्षमता बढ़ेगी और शिशु स्वस्थ रहेगा।

शिशुको कितनी बार और कितना दूध पिलाना चाहिये—कुछ माताओंकी आदत होती है कि जब-जब बच्चा रोता है, तब-तब दूध पिलाती हैं, परंतु यह तरीका गलत है। बच्चेके रोनेके कई कारण हो सकते हैं, उन कारणोंको दूर करनेका ध्यान रखना चाहिये। यहाँ स्वास्थ्य-विभागकी सिफारिशके मुताबिक 'इण्डियन रेडक्रास सोसाइटी' द्वारा प्रकाशित 'चाइल्ड वेलफेयर' नामक पुस्तिकामें दी गयी तालिकाकी नकल दी जाती है। अगर इस तालिकाके अनुसार बच्चोंको दूध पिलाया जाय तो उनके स्वास्थ्यके लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। यह नियम चाहे बच्चोंको स्तनसे दूध पिलाया जाये या बोतलसे—दोनोंमें लागू होगा—

बच्चेकी उम्र	दिनमें	रातमें	२४ घंटेमें	एक बारमें
	कितनी देर बाद दूध पिलाना चाहिये	कितनी बार दूध पिलाना चाहिये	कुल कितनी बार दूध पिलाना चाहिये	कितना दूध पिलाना चाहिये
पहले चार दिनमें	प्रति २ घंटेपर	२ बार	६ से १० बार	१ से २ औंसतक
५, ६ और ७वें दिन	प्रति २ घंटेपर	२ बार	१० बार	१ से २ औंसतक
दूसरे सप्ताहमें	प्रति २ घंटेपर	२ बार	८ बार	२ से २½ औंसतक
तीसरे सप्ताहमें	प्रति २ घंटेपर	२ बार	८ बार	२½ से ३ औंसतक
चौथेसे ८वें सप्ताहमें	प्रति २½ घंटेपर	१ बार	७ बार	३ से ४ औंसतक
तीसरे महीनेमें	प्रति २½ घंटेपर	१ बार	७ बार	४ से ५ औंसतक
चौथे महीनेमें	प्रति ३ घंटेपर	१ बार	६ बार	५ से ५½ औंसतक
पाँचवे महीनेमें	प्रति ३ घंटेपर	१ बार	६ बार	५½ से ६ औंसतक
छः से दस महीनेमें	प्रति ३ घंटेपर	—	५ बार	६ से ८ औंसतक

बच्चोंको कब और कैसे दूध छुड़ाना चाहिये—१० या १२ महीनेके बाद बच्चोंको दूध पिलाना धीरे-धीरे बंद कर देना चाहिये। माँका दूध बंद कर देनेके बाद भी बच्चेका मुख्य आहार दूध ही होना चाहिये। पाँच माह पूरे होनेके बाद ही शिशुको माँके दूधके साथ-साथ ही अन्य खाद्य-पेय पदार्थ उचित मात्रामें युक्तिके साथ खिलाना-पिलाना शुरू कर देना चाहिये। दूध-भात, दूधमें पकायी हुई सूजी भी दी जा सकती है। माँका दूध बंद करनेपर कम-से-कम तीन पाव दूध हर रोज पिलाना चाहिये। इसके अलावा पानी और फलोंका रस पिलाना भी जरूरी है।

किन-किन दशाओंमें माताको दूध नहीं पिलाना चाहिये—

१-जिन स्त्रियोंको क्षय, कैंसर, कुष्ठ आदि भयंकर रोग हों, उन्हें अपने बच्चोंको दूध नहीं पिलाना चाहिये।

२-गर्भवती स्त्रियोंद्वारा दूध पिलाना, स्त्रीके स्वास्थ्य और गर्भस्थ बालकके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे मना है।

३-यदि स्तनमें किसी खास कारणसे दर्द हो या उसमें खास तरहका नाजुकपन मालूम हो तो तब भी दूध पिलाना मना है।

बोतलसे दूध पिलाना—यदि माता किसी कारणसे बच्चेको स्तनका दूध पिलानेमें असमर्थ है या उसको दूध नहीं होता है तो गायका दूध पिलाया जा सकता है। पहली सावधानी तो यह रखनी चाहिये कि बोतलसे न पिलाकर कटोरी चम्मचसे पिलाये। बोतलकी सफाई ठीकसे नहीं हो पाती है तो बच्चोंको इन्फेक्शन होनेकी पूरी सम्भावना रहती है। बहुत जरूरी समझे तो ही बोतलसे दूध पिलाये।

नौसे बारह महीनोंके बाद बच्चोंको दिया जानेवाला भोजन और उसका तरीका—जब बच्चा नौ-दस महीनेका हो जाये तो उसको एक या दो बार सूजी, चावल या दालकी बनी पतली चीजें, दूधमें भिगोई हुई रोटी, पके केले तथा खिचड़ी आदि दिया जा

सकता है। इन सबके साथ उसे दूध भी देना चाहिये। समय-समयपर थोड़ा-थोड़ा पानी देना चाहिये। सब्जियोंका सूप भी बहुत लाभकारी होता है।

बच्चेके लिये नींदकी आवश्यकता— स्वस्थ बच्चेके लिये नींदकी आवश्यकता उसकी उम्र, पर्यावरण एवं वैयक्तिक भिन्नताके सन्दर्भमें निम्नलिखित कोष्ठकके अनुसार होती है—

महीना	स्वास्थ्य प्रतिशत	नींदकी आवश्यकता २४ घंटोंमें
एक महीना	१०० प्रतिशत	२२ घंटे
दो महीना	१०० प्रतिशत	२१.५ घंटे
तीन महीना	१०० प्रतिशत	२१ घंटे
चार महीना	१०० प्रतिशत	२० घंटे
पाँच-छः महीना	१०० प्रतिशत	१९ घंटे
सात-बारह महीना	१०० प्रतिशत	१८ घंटे
एक-दो वर्ष	१०० प्रतिशत	१६ घंटे

यदि बच्चेका स्वास्थ्य सौ प्रतिशतसे कम हो तो उसकी नींदमें कमी आयेगी। इसके लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।

शिशुके शयन-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें—

१-शिशुके सोनेका स्थान शान्त, स्वच्छ और वायुप्रवेशक हो।

२-उसे अपने ही पलंगपर सुलाना चाहिये।

३-बच्चोंका बिछौना नरम, सुखदायक होना चाहिये।

४-शिशुकी आँखोंपर प्रकाशकी किरणें नहीं पड़नी चाहिये।

५-शिशुओंको कोई वस्तु मुँहमें रखकर नहीं सोने देना चाहिये।

६-शिशुको मुँह ढककर नहीं सुलाना चाहिये। एकदम औंधा या एकदम सीधा नहीं सुलाना चाहिये।

७-सोते हुए बालकोंको सहसा नहीं जगाना चाहिये।

बच्चेके शारीरिक विकासका सीमा-चिह्न— 'हाल्ट' नामक विद्वान्‌द्वारा प्रदत्त स्वस्थ बच्चोंका वजन तथा ऊँचाई आयुके अनुसार निम्न तालिकासे जाना जा सकता है—

आयु	वजन (पौंडमें)	ऊँचाई (इंचमें)
जन्मके समय	६	२०
१ वर्ष	२१	२९
२ वर्ष	२८	३३
३ वर्ष	३३	३७
४ वर्ष	३७	४०
५ वर्ष	४१	४१
६ वर्ष	४५	४४
७ वर्ष	४९	४६
८ वर्ष	५५	४८
९ वर्ष	६१	५०
१० वर्ष	६७	५२
११ वर्ष	७३	५४
१२ वर्ष	७९	५६

शिशु-विकासके लक्षण—

१-तीन मासकी आयुमें बच्चा अपनी गरदनको सीधा रखनेकी क्रिया सीखता है।

२-छः महीनेकी उम्रमें या उससे एकाध महीने आगे-पीछे वह बैठना सीखता है।

३-नौ महीनेकी उम्रमें खड़ा होना सीखता है तथा पैरोंके बल घिसटने लगता है।

४- दस-बारह माहकी उम्रमें वह सहारा लेकर चलना सीखता है।

५-एक वर्ष या इससे एक-दो महीने अधिकको अवस्थामें वह स्वतन्त्र रूपमें चलना सीखता है तथा छोटे-छोटे शब्द जैसे—मा, पा, टा, दाका उच्चारण कर सकता है।

६-सवा वर्षका बालक सरलतासे दौड़ सकता है और छोटे-छोटे सरल शब्दोंका उच्चारण कर सकता है।

७-दो वर्षकी अवस्थामें उसे कुछ बोलना आना ही चाहिये।

८-तीन वर्षमें, बालक पूर्ण बोलना, जो कि मनुष्यका सर्वश्रेष्ठ गुण है, सीख लेता है।

९-पाँच वर्षके बाद, बच्चे विद्यारम्भ करने योग्य हो जाते हैं। ये पाँच वर्ष ही शिशु-जीवनकाल कहलाते हैं।

दाँत निकलनेका समय—बच्चोंमें करीब आठ माससे लेकर चौदह मासतक दाँत निकलना अच्छा माना जाता है। अधिकांशतः नीचेके दाँत ऊपरके दाँतके पहले निकलते हैं। दूधके दाँत ढाई वर्षतक निकलते हैं—

एक वर्षके बच्चे—लगभग छः दाँत।

डेढ़ वर्षके बच्चे—लगभग बारह दाँत।

दो वर्षके बच्चे—लगभग अठारह दाँत।

ढाई वर्षके बच्चे—लगभग बीस दाँत।

चारसे छः वर्षमें बच्चोंके दूधके दाँत धीरे-धीरे टूटने लगते हैं और नये दाँत आने लगते हैं। छठे वर्षमें प्रायः २८ दाँत होते हैं। युवावस्थामें बत्तीस दाँत होते हैं। महर्षि कश्यपने दाँतोंकी संख्या बत्तीस बतायी है, किंतु बत्तीसकी संख्या सर्वत्र निश्चित नहीं है।

बच्चोंको रोगप्रतिकारक टीके कब और कैसे दें?—बच्चोंको रोग-प्रतिरोधात्मक टीके सही समयपर डॉक्टरकी सलाह लेकर लगवाने चाहिये। यदि बच्चा ज्वर, दस्त, उलटी, एलर्जी, सर्दी आदिसे पीडित है तो टीके न लगवायें। टीके लगवाकर बच्चोंको कई जानलेवा बीमारियोंसे बचाया जा सकता है।

वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन (WHO) के द्वारा रोग-प्रतिकारकताके लिये सूचित समय-पत्रक—

१-जन्मके समय—बी०सी०जी० और पोलियो-विरोधी टीकेका पहला डोज बच्चेको दे।

२-बच्चेकी डेढ़ माहकी उम्रमें—त्रिगुणी टीकेका पहला डोज और पोलियो-विरोधी टीकेका दूसरा डोज दे।

३-बच्चेकी ढाई माहकी उम्रमें—त्रिगुणी टीकेका दूसरा डोज और पोलियो-विरोधी टीकेका तीसरा डोज दे।

४-बच्चेकी साढ़े तीन माहकी उम्रमें—त्रिगुणी टीकेका तीसरा डोज तथा पोलियो-विरोधी टीकेका चौथा डोज दे।

त्रिगुणी टीकेको ट्रिपल एण्टिजन या टेक्निकल भाषामें डी०पी०टी० (डिफ्थेरिया, परट्युसीस—कुकुर खाँसी और टिटनस) कहा जाता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकारके टीके बच्चोंको लगवाये जाते हैं जो निम्न हैं—

द्विगुणी टीके—बच्चोंको त्रिगुणी टीकेके डोज पूरे होनेके बाद डेढ़, तीन, पाँच और चौदह वर्षकी उम्रमें दिये जानेवाले बूस्टर डोजमेंसे पाँच और चौदह वर्षमें त्रिगुणीके स्थानपर द्विगुणी टीके लगाये जाते हैं।

बाल-लकवाके टीके—तीन महीनेकी उम्रके बच्चोंको चारसे छः सप्ताहके अन्तरपर तीनसे पाँच डोज पिलाने चाहिये।

खसराके टीके—नौ महीनेसे दो वर्षकी उम्रके बीच यह टीका लगाया जाता है। यह टीका एक ही बार लगता है।

एम० एम० आर० टीके—खसरा (मिजलन) **गलसुआ** (मम्प्स)-जैसे रोगोंके लिये बच्चोंको यह टीका नौ महीनेसे दो वर्षकी उम्रतक दिया जाता है।

टाइफाइडका टीका—जन्मके बाद पाँच वर्ष तकके बच्चोंको टाइफाइडके टीके लगवाये जा सकते हैं।

संक्रामक पीलियाके टीके—पीलिया एक संक्रामक रोग है। यह बीमारी फैल रही हो तो इसके संक्रमणसे बचनेके लिये 'हिपेटाइटिस-बी' नामक टीके दिये जाते हैं। एक-एक महीनेके अन्तरपर ऐसे तीन इंजेक्शन लेने चाहिये।

उपर्युक्त टीके सही समयपर बच्चोंको लगवाना आवश्यक है। टीका देनेके बाद बच्चेको छः से दस घंटेमें हलका बुखार या दाने उभर सकते हैं। ऐसी स्थितिमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है, एक-दो दिनमें स्थिति स्वतः ठीक हो जाती है। बालकोंके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यपर उनके माता-पिता, देश, राष्ट्रकी समस्त उन्नति निर्भर है। श्रेष्ठ संतानको जन्म देना और बालकोंको निर्बल या सबल रखना प्रायः माताके ऊपर निर्भर है। इसलिये सबसे पहले माता-पिता बननेके पूर्व ही शिशु-सम्बन्धी सब प्रकारका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये और उनका पालन-पोषण उचित तरीकेसे करना चाहिये।

रोग-निवारणके अनुभूत सिद्ध प्रयोग तथा सत्य घटनाएँ

[संसारमें सुखी बननेके लिये सबसे पहली आवश्यकता है कि शरीरको नीरोगी रखा जाय। शरीरको स्वस्थ रखनेकी एक प्रक्रिया है, जिससे प्राणी बिना औषधिके भी पूर्ण स्वस्थ रह सकता है, कारण शरीरकी प्रकृति स्वस्थ रहनेकी ही है, परंतु इसके बावजूद भी जीवनकी जटिलताओं, अनियमितताओं एवं ऋतु, जलवायु आदिके परिवर्तनके कारण कभी-कभी व्यक्ति सामान्यतः अस्वस्थ भी हो जाते हैं। प्राचीन कालसे ही कुछ ऐसे अनुभूत प्रयोग और घरेलू ओषधियाँ हैं, जिनका प्रयोग घरोंमें दादी माँ तथा सामान्यजन करके शीघ्र स्वस्थ करा देते हैं, इसके लिये डॉक्टर-वैद्यके पास नहीं जाना पड़ता। ये सिद्ध प्रयोग अत्यन्त कारगर होते हैं, जिनका कोई साईड इफैक्ट भी नहीं होता, व्यक्ति अत्यन्त सरलतासे रोगमुक्त भी हो जाता है। इस प्रकारकी उपयोगी सामग्री अनुभवी महानुभावोंने कृपापूर्वक भेजी है, जिसे हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं, इसके साथ ही स्वास्थ्यसे सम्बन्धित कुछ चमत्कारिक घटनाएँ भी प्राप्त हैं, उन्हें भी आगे दिया जा रहा है—सं०]

विभिन्न रोगोंके अनुभूत प्रयोग

सर्वसाधारणके लिये, वह चाहे ग्रामीण क्षेत्रका हो या शहरी क्षेत्रका, अमीर हो या गरीब सभीके लिये निरापदरूपसे प्रयोग किये जा सकनेवाले तथा आसानीसे अल्प मूल्यमें घरेलू साधनोंसे तैयार हो जानेवाले कुछ उपयोगी प्रयोग यहाँ प्रस्तुत हैं। ये प्रयोग कई बारके अनुभूत हैं। पाठकगण इन्हें प्रयोग कर लाभ उठा सकते हैं—

(१) आधासीसी—टंकण (फुलासुहागा) ३ ग्रामकी मात्रा, घी-शक्करके साथ प्रातः ५ बजे एक खुराक चटाये। इस प्रकार ३ दिनतक नित्य प्रातः एक बार चटानेसे पूर्ण आराम हो जायगा।

(२) कानका दर्द—बिना फोड़े-फुंसीके यदि कान दर्द करता है तो उसके लिये आँक (आँकड़ा)-के पके पत्तेके एक तरफ थोड़ा-सा घी लगाकर गरम कर शरीरके तापमानानुसार उसका रस कानमें डालनेसे कानका दर्द तत्काल ठीक हो जाता है।

(३) दाँतमें पानी लगना—पानी पीते समय दाँतमें टीस होने लगती है, जिससे कभी-कभी पानी पीना भी कठिन हो जाता है, उसके लिये पलास (खाँकरा)-की कोमल टहनीकी दातौन करनेसे तथा उस दाँतके पास रस पहुँचानेसे एक-दो बारके प्रयोगसे लाभ हो जाता है।

(४) रक्तप्रदर—साधारण रक्तप्रदरमें पुराने कम्बलकी ऊनकी भस्म ३-४ रत्तीकी मात्रामें दिनमें ३ बार शहदके साथ चाटनेसे एक ही दिनमें लाभ हो जाता है।

(५) रक्तार्श—(क) नीमकी सूखी १०-१२ निबोली (फल)-की गिरीको पीसकर, गोली बनाकर दूधके साथ लगभग ५-७ दिनतक दिनमें एक बार प्रयोग करनेसे लाभ हो जाता है। हलका सुपाच्य भोजन करें।

(ख) ५० ग्राम ताजे दहीके साथ ३ ग्राम रसोत-चूर्ण मिलाकर ३ से ५ दिनतक खानेसे रक्तार्शमें हमेशाके लिये लाभ हो जाता है। प्रयोग प्रातः भोजनके पूर्व दिनमें एक बार करे। सुपाच्य भोजन करे।

(६) यकृत्-रोग (लीवर)—नागफनी थूहरका कच्चा गूदा लगभग १ तोलाकी मात्रा (१० ग्राम) ३ से ५ दिनतक प्रातः नित्य खिलानेसे बच्चोंका बढ़ा हुआ लीवर ७-८ दिनमें ठीक हो जाता है। खटाई एवं गरिष्ठ पदार्थ न दे।

(७) आँवके दस्त—ठंडे-फीके दूधमें लगभग आधा नीबूका रस डालकर पीनेसे आँवके दस्त एक-दो बारके प्रयोगमें बंद हो जाते हैं। मीठा पदार्थ खानेको न दे।

(८) दाँतका दर्द—काले मरवेके पत्ते चबानेसे दाँत-दाढ़का दर्द दूर हो जाता है।

(९) मुँहके छाले—(अ) चमेलीके पत्ते चबानेसे मुँहके छाले ठीक हो जाते हैं।

(ब) बकरीके दूधकी सीड़ मुँहमें लगानेसे मुँहके छाले मिट जाते हैं।

(१०) शक्ति-वृद्धि—सफेद प्याजका* रस लगभग ६ ग्राममें समान भाग शहद मिलाकर नित्य सबेरे २१ दिनतक चाटनेसे वीर्यकी वृद्धि होती है। संयमसे रहे।

(११) रक्तशुद्धि एवं वीर्यपुष्टि—तुलसीके बीज १ ग्राम पीसकर सादे या कत्था-चूना लगे पानके साथ नित्य सुबह-शाम खाली पेट खानेसे वीर्य पुष्ट एवं रक्त शुद्ध होता है।

(१२) पेशाबकी रुकावट—पलासके फूल (टेसू) गीले या सूखे पानीके साथ थोड़ा-सा कलमी शोरा मिलाकर, पीसकर नाभिके नीचे पेड़ूपर लगानेसै ५-१० मिनटमें पेशाब खुलकर आने लगता है।

(१३) मलेरिया ज्वर—इसके आनेके एक घंटे पूर्व ही पीपलके पेड़की टहनीसे दातून करे, चाहे तो रस एक-दो बार निगल ले। परमात्माकी कृपासे ज्वर नहीं आयेगा।

(१४) अकतरा—एक दिन छोड़कर आनेवाला ज्वर—अपामार्ग (चिरचिरा)-की ताजी जड़ लाकर सफेद धागेसे एक भुजापर बाँधनेसे ज्वर नहीं आयेगा।

(१५) स्तन्य वृद्धि—कभी-कभी प्रसूता स्त्रीके स्तनमें दूधकी कमी हो जाती है या आते-आते रुक जाता है। उसके लिये सफेद जीरा, सौंफ एवं मिस्त्री—तीनोंको समान भागमें पीसकर रख ले। इसे एक चम्मचकी मात्रामें दूधके साथ दिनमें दो या तीन बार लेनेसे स्तनमें दूध खूब बढ़ता है।

(१६) जले स्थानपर—(क) जले स्थानपर ग्वारपाठे (घृतकुमारी)-का गूदा लगानेसे जलन शान्त होती है तथा फफोले (छाले) भी नहीं उठते हैं।

(ख) जले स्थानपर आलू काटकर लगानेसे भी आराम होता है।

(१७) मूत्र-सम्बन्धी विकार—पेशाबमें जलन हो, बूँद-बूँद पेशाब लगातार आता हो, हाथ-पैरोंके तलवोंमें जलन होती हो या चर्मरोग हो, सभीकी एक दवा है—देशी गीली मेंहदीके साफ पत्ते लाकर पत्थरपर पीसकर रस निचोड़े। यह रस अवस्थानुसार १०-१२ ग्रामकी मात्रामें ताजा दूधमें मिलाकर प्रातः ३-५ या ७ दिन पीनेसे लाभ हो जाता है। रोगकी अवस्थाके अनुसार १५ दिन बाद फिर दिया जा सकता है।

(१८) वातरोग (जोड़ोंका दर्द)—अरंडी-तेल (केस्टर आयल)-में लहसुनकी कली धीमी आँचपर जलाकर तेल तैयार कर ले। ठंडा करके छानकर शीशीमें भर ले। आवश्यकता होनेपर जोड़ोंके दर्दमें मालिश करनेसे दर्दमें लाभ होता है।

(१९) उपदंश (सुजाक)—कच्ची फिटकरीको पीस, समान भाग गुड़में बेर-बराबर गोली बनाकर ताजा छाछके साथ प्रातः खाली पेट दिनमें एक बार लगभग २१ दिनतक प्रयोग करनेसे उपदंशमें शर्तिया लाभ होता है। गोलीके साथ ही छाछ दे, फिर दिनभर छाछ न दे। हलका भोजन करे, तेल, मसालेवाली चीजें, मिर्च आदि न ले, गरम पदार्थ (चाय आदि) न ले।

(२०) दद्रु (दाद)—सत्यानाशीकी जड़ (पीले फूलवाली कंटकारी) प्रातः पानीके साथ घिसकर लगानेसे दद्रु नष्ट हो जाते हैं।

गर्भवती आरोग्य कैसे रहे?

शास्त्रों एवं पुराणोंके अनुसार गर्भवती महिलाओंको अपने स्वस्थ जीवनके लिये एवं होनेवाली संतानकी पुष्टता, स्वस्थता, सुन्दरता, संस्कारवान् एवं दीर्घायु-हेतु गर्भावस्थामें निम्नाङ्कित बातोंपर ध्यान देना चाहिये—

(१) गर्भवतीको हमेशा शोक, दुःख, रंज एवं क्रोधसे दूर रहकर प्रसन्नचित्त रहना चाहिये।

(२) मनमें कभी कलुषित विचार न आने दे, न किसीकी निन्दा करे, न सुने। किसीके साथ ईर्ष्यालु व्यवहार भी न करे।

* सात्त्विक आहारकी दृष्टिसे प्याज और लहसुन खानेका शास्त्रोंमें निषेध है, परंतु अनुभूत ओषधियोंमें इनके प्रयोगकी चर्चा कई जगह आती है। जिन्हें इनके प्रयोगसे परहेज नहीं है, उनके लिये औषधरूपमें निर्दिष्ट है।

(३) किसी वस्तुको चोरी-चोरी खानेकी चेष्टा न करे। न किसी वस्तुको चुरानेका भाव मनमें लाये। हमेशा सात्त्विक, धार्मिक एवं परोपकारी भाव रखे। क्योंकि इनका प्रभाव गर्भस्थ शिशुपर पड़ता है। जैसे विचार या भाव गर्भवतीके रहेंगे, वैसी ही गर्भकी प्रकृति निर्मित होगी।

(४) सड़े-गले, गंदे पदार्थ एवं रातका बचा बासी भोजन न खाये। शुद्ध सात्त्विक एवं भूखसे कम भोजन करे।

(५) भाँग, मदिरा, धूम्रपान एवं अन्य नशीले पदार्थका सेवन न करे।

(६) अश्लील गंदा साहित्य न पढ़े, न अश्लील चलचित्र (सिनेमा) आदि ही देखे। अपने शयन-कक्षमें भद्दे-गंदे चित्र न लगाये, न उनका अवलोकन करे। भगवान्के, संत-महापुरुषोंके तथा वीरसपूतोंके सुन्दर चित्र लगाये।

(७) दिनमें अधिक न सोये। रातमें अधिक देरतक जागरण न करे।

(८) हमेशा शरीरको शुद्ध, स्वस्थ बनाये रखनेका प्रयास करे। गंदी हवा एवं अशुद्ध वातावरणसे दूर रहे।

(९) सहवाससे सर्वथा दूर रहे। इससे गर्भपात होनेका डर रहता है, अथवा शिशु अल्पायु या विकृत अङ्गवाला हो सकता है, संयम-नियमसे रहे।

(१०) अधिक जोरसे हँसना, जोरसे चिल्लाना, अधिक बोलना, बार-बार चिढ़ना, हमेशा क्रोधयुक्त चेहरा बनाये रखना एवं अपशब्दोंका बार-बार प्रयोग करना गर्भवतीके लिये वर्जित है।

(११) अधिक रोना, शोक करना, अधिक चिन्ता करना भी उचित नहीं है, इसका गर्भस्थके स्वास्थ्यपर प्रभाव पड़ता है।

(१२) गर्भवती महिलाको कोयलेसे या नाखूनसे पृथ्वीपर नहीं लिखना चाहिये, न कोई आकृति बनानी चाहिये।

(१३) गर्भावस्थामें महिलाओंको बार-बार सीढ़ियाँ चढ़ना-उतरना नहीं चाहिये, न भारी वजन उठाना चाहिये तथा हाथी, घोड़ा और ऊँटकी सवारी करना भी वर्जित है।

(१४) गर्भवती महिलाको नावमें बैठकर नदी पार करना या जलाशयकी सैर करना मना है। न अकेलेमें किसी पेड़के नीचे सोना चाहिये।

(१५) कटु, तीखे, कसैले, अधिक गर्म या अधिक चटपटे मसालेदार पदार्थ नहीं खाने चाहिये।

(१६) गर्भवतीको पपीता नहीं खाना चाहिये, इससे गर्भक्षय होनेका भय रहता है।

(१७) गर्भवतीको बाल खुले रखना, सबेरे देरतक सोते रहना एवं कुक्कुटकी तरह बैठना वर्जित है।

(१८) देरतक आगके पास बैठना या अधिक ठंडे स्थानपर बैठकर कार्य करना, झाड़ू, सूप, ऊखल, हड्डी, राख या कंडेपर बैठना मना है।

(१९) गर्भवती महिलाको हमेशा उत्तम सुसंस्कृत साहित्यका अध्ययन करना, माङ्गलिक गीत एवं ईश्वर-भजन करना चाहिये।

(२०) गर्भवतीके लिये अधिक उपवास करना, गरिष्ठ भोजन करना, अवशिष्ट पदार्थका सेवन करना वर्जित है।

इस प्रकार गर्भवती महिलाके द्वारा किये गये क्रिया-कलाप, खान-पान, बोल-चाल, श्रवण-मनन आदिका गर्भपर गहरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ महाभारतकी एक कहानी याद आती है कि वीर अभिमन्यु जब माताके गर्भमें था, तब उसने अपने पिता अर्जुनके द्वारा चक्रव्यूह तोड़नेकी कथा सुनी थी, पर व्यूहसे निकलनेकी कथाके समय माताको नींद आ जानेसे पिताने आगेकी कहानी सुनानी बंद कर दी थी। इसलिये उसने चक्रव्यूह तोड़ना तो सीख लिया था, पर निकलना नहीं सीख पाया। यही कारण है कि वह व्यूहमें मारा गया। अतः गर्भावस्थाके समय महिलाओंको बहुत सावधान रहकर जीवन-यापन करना चाहिये। 'गर्भवती माताका व्यवहार ही बच्चेका व्यवहार निर्मित करता है।'

[वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्त, आयुर्वेदरत्न
द्वारा—मेसर्स उज्ज्वल किराना स्टोर्स
सुठालिया (जि० राजगढ़) (व्यावरा) (म० प्र०)]

अनुभूत चिकित्स्य प्रयोग

१. गठिया-रोगकी सफल चिकित्सा—फरवरी सन् १९९९ ई० में एक राष्ट्रिय स्तरकी वैज्ञानिक गोष्ठीमें हमलोग बकेवर (इटावा)-में सम्मिलित थे। त्रिदिवसीय इस गोष्ठीमें हमारे गुरुजी गठियासे काफी परेशान रहे; वहाँ उपस्थित भारतीय कृषि अनुसन्धान-संस्थान, नयी दिल्लीके प्रथम भू-दृश्य विज्ञानी डॉ० मिश्रजीने जब जाना कि ये गठियाके पुराने मरीज हैं, इन्हें उठने-बैठनेमें भी परेशानी होती है, तब उन्होंने एक प्राकृतिक कल्चरकी जानकारी दी और कहा कि इससे तैयार औषधिका प्रयोग करके आप रोगमुक्त हो सकते हैं, तब गुरुजीकी इच्छा जानकर मैं दिल्ली गया और उक्त कल्चर ले आया, जिससे डॉ० मिश्रजी स्वयं गठियासे मुक्त हुए और फिर कई लोगोंको निजात दिलायी; जनहितमें उक्त कल्चरकी जानकारी दी जा रही है—

जापानके खारसोगी राज्यके वैज्ञानिकोंद्वारा निर्दिष्ट इस चायके प्रयोगसे २०-३० साल पुराने गठियाके रोगी भी ठीक हो रहे हैं। यह पूर्व सोवियत गणराज्य, जापान आदिमें बहुप्रचलित है। इसे मन्चूरियन चाय/खारसोगी चाय या रसन टी भी कहते हैं। इसको तैयार करनेके लिये २.५ लीटर शुद्ध जलमें ३५० ग्राम चीनीके साथ १-२ चम्मच चायकी पत्तीको उबालकर साफ कपड़ेसे छानकर चौड़े मुँहके काँचकी बोतलमें गुनगुना होनेतक ठंडा करके, इसमें कल्चरकी २० ग्राम मात्रा मिला देते हैं। गरमियोंमें ७ दिनोंमें और जाड़ोंमें १५ दिनोंमें कल्चरका किण्वीरण हो जाता है और वह जम जाता है जिसे अलग करके साफ काँचके बरतनमें पानीमें डुबोकर रख देते हैं। यह मदर कल्चर दूसरी चाय बनानेके काम आयेगा। किण्वित कल्चरको छानकर सुबह-शाम खाली पेट एक कप पीते हैं। इसका स्वाद सेबके रसकी तरह या एपिल साइडरकी तरहका होता है।

सुबह-शाम एक-एक प्याला तीन माहतक पीनेसे असाध्य गठिया रोग भी ठीक हो जाता है। सर्वप्रथम यह पेटकी गंदगी तथा स्थायीरूपसे गैसोंको बाहर निकाल देता है, शुरूमें पेटमें कुछ हलचल होनेपर भी घबराना नहीं चाहिये। इसके पीनेसे पेशाबकी मात्रा भी बढ़ जाती है। २१ दिनोंके बाद यह जोड़ोंमें एकत्र यूरिक-एसिडको बाहर निकालकर हड्डियोंके बीच जो चिकना एवं तरल पदार्थ होता है, उसमें वृद्धि करके जोड़ोंके संचालनमें सहायक होता है। रोगीको यथासाध्य चिकने पदार्थ, चावल, दहीका प्रयोग कम करना चाहिये। यह मन्चूरियन चायका कल्चर डॉ० रामलखन मिश्र प्रथम वैज्ञानिक भू-दृश्य अनुभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा परिसर, नयी दिल्लीके पास निःशुल्क उपलब्ध है।

२. खूनी बवासीर—कई लोगोंने आजमाया है। प्रातःकाल शौचके पूर्व शुद्ध जल पी ले, फिर शौच जाय और शौचके बाद गुदा धुलनेके बाद तुरंत शुद्ध मृत्तिकाका गुदामें लेपन करे, १-२ मिनट बाद गुदा धो ले, कुछ ही दिनोंमें खूनी बवासीरसे मुक्ति मिल जायगी। प्रयुक्त मिट्टी सूर्यतापी, शुष्क एवं शुद्ध स्थानकी हो।

३. रक्त-प्रदर—कँटीली चौलाईकी जड़, रसौत, सोंठ, भारंगी तथा पिप्पली (पीपर)-को समभागसे चूर्ण बनाकर शीशीमें भर दे। इसकी तीन-तीन ग्राम मात्रा शहदसे चाटकर ऊपरसे चावलका पानी पीनेसे मात्र तीन-चार दिनोंमें ही लाभ मिल जाता है।

४. उदरशूल—अजवायन और सेंधा नमककी सममात्राका चूर्ण ८—१० ग्राम लेकर गरम जलसे ले, बहुत जल्दी उदरशूल समाप्त हो जायगा।

५. खाँसी—आजमाये गये प्रत्येक खाँसीके रोगीको इससे अवश्य लाभ हुआ। सीतोपलादि आयुर्वेदका प्रसिद्ध चूर्ण है। घरपर भी बनाया जा सकता है। इसके लिये दालचीनी-एक भाग, छोटी इलायची-दो भाग, छोटी पीपर-चार भाग, वंशलोचन-आठ भाग और मिस्री-सोलह भाग ले। सारी औषधियोंका महीन चूर्ण बनाकर शीशेके जारमें भर ले। चूर्ण बनाते समय यह ध्यान दे कि वंशलोचन खूब महीन पिस जाय और मिस्री अन्तमें पीसकर मिलाये, सारी औषधियोंका चूर्ण खूब महीन हो। रात्रिमें सोते समय और प्रातः खाली पेट शहदके साथ एक चम्मच चूर्ण चाटकर सोये। यदि जल पीना है तो रात्रिमें गरम जलका ही प्रयोग करे। दो-तीन दिनोंमें ही खाँसीसे छुटकारा मिल जायगा।

[डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, ग्राम-सेंठा, पो० दयलापुर (कप्तानगंज) (जि० बस्ती) (उ०प्र०) पिन-२७२१३१]

विभिन्न रोगोंके घरेलू उपचार

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये पथ्य-अपथ्यका पालन आवश्यक है। सैकड़ों दवाएँ खाकर भी बिना पथ्यसेवनके स्वास्थ्यलाभ नहीं उपलब्ध किया जा सकता। आयुर्वेदने अस्वस्थताको मनुष्यके गलत आहार-विहारका ही परिणाम माना है।

गलत आहार-विहारसे हर घरमें कोई-न-कोई प्राणी बीमारीसे ग्रस्त होता ही रहता है। यहाँ जनकल्याणकी भावनासे कुछ घरेलू उपचार-हेतु परीक्षित नुस्खे प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इनसे यथासम्भव लाभ उठाया जा सकता है—

नुस्खे एवं उनकी विधि निम्न प्रकार प्रस्तुत है—

(१) दाद, खाज, खुजलीका उपचार—मूलीके बीज पानीमें महीन पीसकर, आगपर खूब गरम करके दाद, खाज, खुजलीके स्थानपर लगाने चाहिये। प्रथम दिवस तो मूलीके बीज लगानेसे खूब जलन होगी और कष्ट भी होगा, परंतु ध्यान रहे कि दवा जितनी जोरोंसे लगेगी उतना अधिक लाभ होगा। द्वितीय दिवस भी यही प्रयोग करे। प्रथम दिवसकी अपेक्षा द्वितीय दिवस दवा लगानेसे कम कष्ट होगा। इसी प्रकार यह उपचार ३-४ दिन करे, इससे दाद, खाज, खुजली दूर हो जाती है।

(२) नहरुआका उपचार—नहरुआरोगको स्नायुक, नारु, गिनीवर्गवाला, स्नायुरोग आदि नामोंसे भी जाना जाता है। नहरुआ एक प्रकारका कृमि (कीड़ा) है। इसके बारीक-बारीक अण्डे दूषित जलमें रहते हैं। इस जलको पीनेसे शरीरमें दोषोंकी उत्पत्ति हो जाती है। शरीरके जिस भागमें यह कीट त्वचाको भेदकर निकलनेका प्रयास करता है, उस स्थानपर सूजन उत्पन्न होकर एक श्वेत तन्तु बाहर निकल आता है। उसी समय यह ज्ञात होता है कि यह नहरुआ है।

यह कीड़ा धीरे-धीरे चमड़ीके बाहर निकलता है। इसे धीरे-धीरे निकालनेका ही प्रयास करना चाहिये। इस तन्तुके बीचमें टूट जानेसे यह बहुत पीडादायी हो जाता है अर्थात् शरीरके अंदरका तन्तुभाग फिर दूसरे स्थानपर फोड़ा उत्पन्न करके निकलनेका प्रयास करता है। इससे महान् कष्ट होता है। यह बगैर टूटे पूरा बाहर निकल आता है तो सूजन शान्त होकर रोग भी ठीक हो जाता है। इसके उपचारहेतु निम्न दो प्रयोग प्रस्तुत हैं—

(अ) नहरुआके फूट निकलनेपर एक धतूरेके पत्तेपर थोड़ा गुड़, अफीम और रीठा—पानीमें पीसकर लुगदी बनाकर रखे तथा उक्त पत्ता नहरुआ निकलनेके स्थानपर बाँध दे। तीन दिनतक बँधा रहने दे। अन्दर-ही-अन्दर नहरुआ नष्ट हो जायगा।

(ब) सफेद कलईके चूने (जो पानमें खाया जाता है)-के बड़े-बड़े साफ टुकड़े और शुद्ध तिलका तेल (जितने तेलमें जितने टुकड़े पीसे जा सकें) दोनोंको खरलमें डालकर महीन पीस ले, जिससे वह मलहम-जैसा बन जाय। दवा जितनी अत्यधिक घोंटी जायगी, उतनी ही लाभदायक होगी।

दवा लगानेकी विधि—अकरुआ (आँकड़ा)-का एक पीला पत्ता लेकर उसपर उक्त थोड़ी-सी मलहम लगाकर, जहाँ नहरुआका मुँह हो, वहाँ भी दवा लगाकर उस पत्तेको रखकर ऊपरसे आकके १०-१२ हरे पत्ते रखकर मजबूतीसे पट्टी बाँध दे। तीन दिन बाद पट्टी खोल ले। यदि पूर्ण आराम न हो तो पुनः इसी प्रकार मलहम लगाकर पट्टी बाँधे और तीसरे दिन खोले। नहरुआपर पानी नहीं लगने दे। ईश्वरकी कृपासे लाभ हो जायगा।

(३) खूनी बवासीर (रक्तार्श)-का उपचार—रसोंत एक तोला और कलमी सोरा एक तोला दोनोंको पानीमें महीन पीसकर आठ-आठ आनेभरकी गोलियाँ बना ले। एक गोली सुबह तथा एक गोली शामके समय ठंडे जलके साथ खिला दे। यह दो दिवसकी दवा है। इससे खून बंद हो जायगा। यदि आराम न हो तो इसी प्रकार दो दिन और दवा ले। तेल, खटाई, गुड़, लाल मिर्चका सेवन न करे।

(४) हैजाका उपचार—खस (सींक या ताजी जड़) तीन माशा, तुलसी-पत्ते (ताजे पत्ते) १० नग, काली मिर्च ७ नग (यह एक खुराक है)—ये तीनों चीजें लेकर ताजे पानीमें पीसकर कपड़छान करके रोगीको पानी पिला दे। स्वादहेतु थोड़ी शक्कर तथा नमक भी मिलाया जा सकता है।

(५) दमा (श्वासरोग)-का उपचार—खानेका नमक डेढ़ तोला लेकर सुनारकी सोना गलानेकी कुठालीमें

पकवा लिया जाय। पकनेपर उसका स्वरूप भस्म-जैसा हो जायगा। उस नमकको बारीक पीस ले। रात्रिमें भोजनके उपरान्त दो मुनक्का (दाख) लेकर उसके बीज निकालकर डेढ़-डेढ़ रत्ती नमक उसमें भर ले और गोली-जैसा बना ले। फिर धीरे-धीरे चूसकर दोनों गोलियाँ खा ले। इसके बाद ४ घंटेतक पानी नहीं पिये। इसी तरह एक सप्ताहतक उपचार करते रहनेसे अवश्य लाभ होगा।

(६) आँव (आमातिसार)-का उपचार— (अ) एक तोला सौंफ लेकर उसमेंसे आधा तोला सौंफ तवेपर सेंक ले। कुछ लाल पड़नेपर उतार ले। उसमें शेष बची कच्ची सौंफ मिलाकर महीन पीसकर चार पुड़िया बराबर मात्रामें बना ले। चारों पुड़िया दिनमें चार बार खाना है। एक पुड़िया सौंफ मुँहमें रखकर चूसते रहे। जब रस पूर्ण चूस लिया जाय तो बाकी हिस्सा भी गटक ले और ऊपरसे पानी पी ले। इस चूर्णमें एक तोला शक्कर अवश्य मिला ले। इसी प्रकार २-३ दिवस उपचार करे। कैसे भी आँवके दस्त हों या साधारण दस्त हों, आराम होगा। यह उपचार गरमीसे होनेवाले दस्तोंमें कारगर सिद्ध होता है।

(ब) अगर आँव (पेचिश)-के दस्तके साथ खून भी आता हो तो सूखे आँवलेके चूर्णमें शहद मिलाकर चाटे। ऊपरसे बकरीका दूध, शक्कर मिलाकर पीये। यह उपचार दिनमें तीन बार करे। प्रतिदिवस एक सप्ताहतक करता रहे। आराम अवश्य होगा। परीक्षित प्रयोग है।

(७) आँवलेसे महौषधि बनाये— हरे आँवलोंका गूदा निकालकर महीन कूटे, फिर उसके रसको कपड़ेसे छानकर १० किलोग्रामतक एकत्रित करे। इस रसको लोहेकी कड़ाहीमें अग्निपर इतना पकाये कि हलुएके समान गाढ़ा हो जाय, फिर उसमें दो किलो घी डालकर इतना भूने कि लाल हो जाय। तत्पश्चात् अलगसे पाँच किलो दूध औंटाकर उसमें इच्छानुसार शक्कर व बादाम-गिरी (बारीक टुकड़े) डालकर इनको आँवलेके रसमें मिलाकर अग्निपर पुनः रखकर इतना भूने कि गाढ़ा होकर लड्डू बनाया जा सके। बस यह महौषधि तैयार है।

सर्दियोंमें प्रतिदिन प्रातःकाल एक तोला गरम दूधके साथ और गर्मियोंमें शीतल दूधके साथ इन लड्डुओंका सेवन करे। इनके उपयोगसे सफेद बाल काले हो जाते हैं। कमजोर शरीर पुष्ट होता है। वीर्य-सम्बन्धी सभी रोग नष्ट होकर मनुष्यका शरीर बलिष्ठ हो जाता है।

(८) शीघ्र-प्रसूति (सुप्रसव)-का उपाय— आजके वैज्ञानिक युगमें बच्चोंका जन्म अधिकांशरूपमें माताके पेटमें चीरा लगाकर कराया जाना देखा, सुना जा रहा है। यह माताके आहार-विहारका ही परिणाम है। आजकी माताएँ न तो चक्की पीसना ही पसंद करती हैं और न टहलनेका शौक रखती हैं। उन्हें तो आराम करना, मनचाहा खाना-पीना आदि कार्य ही रुचिकर लगते हैं। फलस्वरूप परिणाम प्रसवके समय सामने आ ही जाता है। अच्छी एवं सुलभ प्रसूतिके लिये विद्वान् मनीषियोंने अनेक सुझाव सुझाये हैं। उनमेंसे कुछ उपाय जो सहज एवं सरल हैं, माताओंके कल्याण-भावनार्थ प्रस्तुत हैं—

यदि प्रसव होनेमें ज्यादा विलम्ब हो तो केलेकी जड़ माताके गलेमें बाँध दे। यदि बच्चा गर्भमें ही मर गया हो तो आधा या पौन तोला गायका गोबर गर्म पानीमें घोलकर पिला देनेसे मरा हुआ बच्चा बाहर निकल आता है।

हाथमें चुम्बकपत्थर रखनेपर गर्भिणीको प्रसवपीड़ा नहीं होती। सवा तोले अमलतासके छिलकोंको पानीमें औंटाकर और शक्कर मिलाकर पिलानेसे भी प्रसवपीड़ा कम हो जाती है।

मनुष्यके बाल जलाकर उसमें गुलाब-जल मिलाकर गर्भिणीके तलवोंमें मलनेसे बड़ा लाभ होता है।

तिल और सरसोंके तेलको गरमकर गर्भिणीके पार्श्व, पीठ, पसली आदि अङ्गोंपर धीरे-धीरे मलनेसे भी प्रसव शीघ्र हो जाता है। फूल न आये हों, ऐसी इमलीके छोटे वृक्षकी जड़को प्रसूतिके सिरके सामनेके बालोंमें बाँध देनी चाहिये। ऐसा करनेसे बिना तकलीफके सहज प्रसव हो जाता है। परंतु प्रसव होनेके तुरंत बाद उन बालोंको कैंचीसे काट देना चाहिये। यह प्रयोग परीक्षित है।

(९) नवजात शिशुका आहार— नवजात शिशुका प्रारम्भिक आहार माताका दूध है। प्रकृतिने बच्चोंके लिये दूधका विधान किया है। सभी जानवर—शेर, चीता, भेड़िया आदि हिंसक पशु अपने बच्चोंको अपना ही

दूध पिलाते हैं। लेकिन मनुष्यजातिमें इस प्राकृतिक विधानका उल्लंघन होते देखा जा रहा है। सामान्यत: माताएँ अपने बच्चोंको अपना दूध पिलाकर, वे अपना बोझ धायपर छोड़कर निश्चिन्त हो जाती हैं। यह कृत्य अप्राकृतिक होकर हानिप्रद है। अपना दूध न पिलानेसे प्रसूता स्त्रीका स्वास्थ्य खराब हो जाता है, यह सही नहीं है। हाँ, यह बात नि:संकोच स्वीकार की जा सकती है कि यदि वह माता कमजोर हो, अस्वस्थ हो या उसका दूध बच्चेके पालनके लिये पर्याप्त न हो तो ऐसे बच्चोंको कोई अन्य दूध (जो पच जाता हो, जैसे गाय-बकरीका) पिलाना चाहिये। गायका दूध पानी मिलाकर, उबालकर थोड़ा गरम (कुनकुना) पिलाना चाहिये।

जो माताएँ स्वयंका दूध न पिलाना चाहती हों तो उन माताओंसे प्रार्थना है कि प्रसवके एक सप्ताहतक वे अपना दूध बच्चेको अवश्य पिलावें। जिस समय बच्चा पैदा होता है, उसकी आँतोंमें काला-काला मल एकत्रित रहता है। उस मलको निकालना आवश्यक होता है। तुरंत प्रसूता माताका दूध बच्चेको रेचक (जुलाबके माफिक) होता है। उस दूधके पीनेसे नवजात शिशुका मल साफ हो जाता है। जो माताएँ इसपर भी दूध नहीं पिलाती हैं और बच्चेका मल साफ करनेके लिये रेंड़ी (अरंडी)-का तेल पिलाती हैं। ऐसी अवस्थामें बच्चेको विरेचन (जुलाब) देना कितना नुकसानदेह है—यह उनके लिये विचारणीय है। अत: ऐसी माताओंको कम-से-कम एक सप्ताहतक तो बच्चेको अपना दूध अवश्य ही पिलाना चाहिये।

जो माताएँ अपने बच्चोंको पर्याप्त समयतक दूध पिलाती हैं, उनके अद्‍भुत गुण निम्नवत् हैं—

१. माताका दूध बच्चेके लिये अमृततुल्य है।

२. जो माता अपने बच्चेको दूध न पिलाकर अपने सौन्दर्यको स्थिर रखना चाहती है, उसे संसारमें माताके पदका अधिकारी नहीं समझना चाहिये।

३. क्रोध करके बच्चेको दूध पिलानेसे बच्चेपर जहरीला प्रभाव पड़ता है। अत: क्रोधकी दशामें बच्चेको दूध नहीं पिलाना चाहिये। क्रोध शान्त होनेपर दूध पिलाये। दूध हमेशा प्रसन्नचित्त होकर पिलाना चाहिये, जिससे बच्चा हृष्ट-पुष्ट रहता है।

४. यदि माताका दूध बच्चेके लिये पर्याप्त नहीं है तो दूध बढ़ानेका उपाय करना चाहिये।

५. जिस माताको दूध कम होता है, उसे शाली-चावल, साठी-चावल, गेहूँ, लौकी, नारियल, सिंघाड़ा, शतावरी, विदारीकन्द, लहसुन आदि पदार्थ प्रसन्नचित्त होकर सेवन करना चाहिये। कलम चावल, जिसे काश्मीरमें महातंदुल कहते हैं, इसका सेवन दूध बढ़ानेके लिये उत्तम होता है। कलम चावल दूधमें पीसकर सेवन करना चाहिये। जहाँ कलम चावल उपलब्ध न हो वहाँ शतावरी या विदारीकंदको दूधमें पीसकर पीना चाहिये। इससे दूध बढ़ जाता है। माताके आहारमें छिलकेवाली दालकी मात्रा बढ़ा देनेसे भी दूध प्राय: बढ़ जाया करता है।

आधुनिक माताओंसे विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने दिखावटी सौन्दर्यके लिये अपने हृदयके टुकड़े (मासूम बच्चे)-को अपने अमृतरूपी दूधसे वञ्चित न करें। सौन्दर्य तो समय आनेपर नष्ट ही हो जाता है, फिर उसपर गर्व कैसा?

अत: अपने मातृत्वके अधिकारसे वञ्चित न रहें और दूध न पिलानेकी स्थितिमें स्तनोंमें होनेवाले कैंसर आदि भयंकर रोगोंसे बचें।

(१०) आँवलाद्वारा स्वास्थ्य-रक्षा—आँवला प्रमेह, ज्वर, वमन, प्यास (तृषा), रक्तविकार, पित्तविकार, अरुचि और अजीर्ण आदिपर प्रयोग किया जाता है।

आँवलेके गुण संक्षेपमें प्रस्तुत हैं—

१. रसायन चूर्ण—आँवला, गिलोयसत्व और गोखरू—इन्हें समान मात्रामें लेकर चूर्ण बना ले। इस चूर्णको तीन माशेकी मात्रामें शक्करके साथ खानेसे पित्त और दाह (जलन) जाती रहती है।

२. आँवला (ताना)-का रस आँखमें टपकानेसे जाला दूर हो जाता है।

३. मेंहदी और सूखा आँवला बारीक पीसकर पानीमें गूँथकर सिरपर लगानेसे बाल काले हो जाते हैं।

४. धनिया-बीज और आँवला रातको पानीमें भिगोकर, प्रात:काल छानकर वह पानी पीनेसे पेशाबकी जलन दूर हो जाती है।

[श्रीनवलसिंहजी सिसौदिया, 'शिवसदन' राघौगढ़, (गुना) (म०प्र०)]

आकस्मिक चिकित्सा

*[कभी-कभी अनायास ऐसी आकस्मिक घटनाएँ हो जाती हैं, जो व्यक्तिको क्षणभरमें मृत्युके कगारपर पहुँचा देती हैं। उस समय तत्काल आवश्यक उपचारकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे वह व्यक्ति मृत्युके मुखसे निकलकर स्थायी उपचारके योग्य बन सके, यहाँ इसी प्रकारकी आकस्मिक चिकित्साका विवरण प्रस्तुत है—**सं०**]*

पानीमें डूबना

पानीमें डूब जाना एक सामान्य दुर्घटना है। पानीमें डूबा व्यक्ति बचनेके लिये हाथ-पैर फेंकता है, छटपटाता है जिससे नाक और मुँहके द्वारा पेटमें पानी भर जाता है। पानी भर जानेसे श्वास रुक जाती है और बेहोशी आ जानेके कारण मृत्यु हो जाती है।

प्राथमिक उपचार—(१) डूबे व्यक्तिको सुरक्षित ढंगसे पानीसे बाहर निकालकर उसके पेटके अंदर भरा हुआ पानी निकालनेका प्रयास करना चाहिये। नाकमें कीचड़ आदि लगा हो तो कपड़ेसे साफ कर दे। दाँतोंके बीच कोई कड़ी वस्तु फँसा दे ताकि दाँत-पर-दाँत बैठकर मुँह बंद न हो जाय। रोगीको पेटके बल लिटाकर उसके कमरके नीचे दोनों हाथ डालकर बार-बार ऊपर उठाये। इससे फेफड़ोंमें जमा पानी बाहर निकल आयेगा। डूबे व्यक्तिको पेटके बल अपने सिरपर रखकर एक ही स्थानपर गोलाईमें घूमनेसे भी पेटमें गया पानी निकल आयेगा।

(२) देखे कि श्वास ठीकसे चल रही है कि नहीं। नाडीकी गति है कि नहीं, हृदय धड़क रहा है कि नहीं। श्वास रुक-रुककर चल रही हो तो सुँघनी आदि कोई ऐसी वस्तु सुँघाये कि छींक आ जाय। चूनेमें नौसादर मिलाकर सुँघा सकते हैं। छींक आनेसे श्वास ठीकसे चलने लगेगी। सीनेको बार-बार दबाये एवं छोड़े। पेटके बल उलटा लिटाकर पेटके नीचे गोल तकिया रख दे। पीठको लगातार दबाये तथा छोड़े। इससे फेफड़ेकी हवा बाहर निकलेगी, छोड़नेपर हवा भीतर जायगी। यदि इससे भी पूरी तरहसे श्वास न चले तो मुँह-में-मुँह लगाकर कृत्रिम श्वसन देकर श्वास चलानेका प्रयास करें। पानीमें डूबे व्यक्तिका यह उपचार तभी सार्थक होता है जबकि डूबे व्यक्तिको बाहर निकालनेपर उसका शरीर गर्म हो और हाथ-पैर शिथिल न पड़ गये हों। सफलताके चिह्न न दिखायी पड़नेपर तत्काल निकटके चिकित्सालयमें रोगीको पहुँचाना चाहिये।

आगसे जलना

प्रायः लोग चूल्हा, स्टोव या गैस जलाते समय अग्निकी चपेटमें आ जाते हैं। असावधानीवश कपड़ेको अग्नि पकड़ लेती है। कोई जलकर आत्महत्याकी चेष्टा करते हैं। कभी-कभी मकान आदिके जल जानेपर लोग आगकी चपेटमें आ जाते हैं। यह एक संकटकालीन अवस्था होती है। जले व्यक्तिकी प्राणरक्षा करनेके लिये प्राथमिक उपचार क्या करना चाहिये, इसकी जानकारी अच्छी तरहसे होनी चाहिये—

(१) आगकी लपेटमें आ जानेपर दौड़ना-भागना नहीं चाहिये। आगसे सुरक्षित स्थानपर लेटकर इधर-उधर लुढ़कना चाहिये। इससे आग जल्दी बुझ जाती है। जलते हुए कपड़ोंको बड़ी सावधानीसे ब्लेड या चाकूसे काटकर अलग कर देना चाहिये।

(२) जलते हुए व्यक्तिपर मिट्टी, कम्बल आदि डालकर आग बुझानेका प्रयास करना चाहिये। कम्बलसे इस प्रकार ढक दे कि हवा बंद हो जाय। इससे आग तुरंत बुझ जायगी। कम्बल आदि डालकर आग बुझानेसे घावकी गहराई बढ़ जाती है और त्वचा काफी अन्दरतक झुलस जाती है। पानी डालकर बुझानेसे फफोले पड़ जाते हैं, पर घाव गहरे नहीं होते। यथाशीघ्र जो भी साधन उपलब्ध हो, उससे आग बुझाना चाहिये।

(३) जले हुए स्थानपर नारियलका तेल लगाना चाहिये। यदि गरम घी-तेल आदि गिरनेसे फफोले पड़ गये हों तो यह उपचार पर्याप्त है।

(४) यदि शरीरका अधिक भाग झुलस गया हो तो चिकित्सालयमें रोगीको ले जाना चाहिये। शरीरका अधिक भाग जल गया हो तो व्यक्तिके बचनेकी सम्भावना कम होती है।

(५) जले हुए स्थानको हलके-हलके रूईसे साफ करके नारियल या जैतूनका तेल आदि लगाना चाहिये। संक्रमण आदिसे बचानेके लिये जीवाणुनाशक घोल—जैसे सोडा-बाई-कार्बके घोलसे धोना उचित है। मलहम लगानेसे घाव देरीसे भरते हैं।

(६) खुले घावमें रूई चिपक जाती है। चिपकनेपर उसे छुड़ानेकी चेष्टा न करे, क्योंकि ऐसा करनेसे घाव बढ़ जायगा।

(७) घावको सदैव ढककर रखे जिससे मच्छर-मक्खी आदिके बैठनेसे संक्रमण न हो।

(८) फफोलोंको फोड़े नहीं। इसपर तीसी या नारियलका तेल अथवा मक्खन लगाये। भूलकर भी मिट्टीका तेल, पेट्रोल या स्प्रिट न लगाये।

(९) यदि छोटा बच्चा गलतीसे आगसे झुलस जाय तो जले हुए हिस्सेको पानीमें तबतक डुबाये रखे जबतक जलन शान्त न हो जाय। असली शहदका लेप करनेसे भी जलन शान्त हो जाती है।

(१०) रोगीको मुलायम आरामदायक बिस्तरपर लिटाये तथा पर्याप्त मात्रामें जल पिलाते रहे। पौष्टिक आहार दे तथा मानसिक रूपसे सान्त्वना देते रहे कि वह जल्द ठीक हो जायगा। शरीरमें जलका संतुलन बना रहे, इसके लिये ग्लूकोज चढ़ानेकी आवश्यकता पड़ सकती है। चिकित्सकका परामर्श लेना भी आवश्यक है।

धनुष्टंकार (टिटनस)

धनुष्टंकार (Tetanus)-में शरीर ऐंठकर धनुषके समान टेढ़ा हो जाता है, रह-रहकर आक्षेप आते हैं, मांसपेशियोंमें संकुचन और अकड़न आ जाती है। रोगका आक्रमण हो जानेपर दो दिनसे दस दिनके अंदर रोगीका जीवन समाप्त हो सकता है। बहुत कम रोगी ही इस जानलेवा संक्रमणसे बच पाते हैं। टिटनस हो जानेपर बचाव मुश्किल हो जाता है, इसलिये पहले ही सुरक्षात्मक उपाय करना चाहिये।

कारण—'क्लास्ट्रीडियम टिटेनी' नामक बैक्टीरियाके संक्रमणसे यह रोग होता है। ये जीवाणु जानवरों और उनके मलमें, धूलमें तथा गंदे स्थानोंमें निवास करते हैं तथा उबालनेपर भी नष्ट नहीं होते। जंग लगे लोहे आदिसे चोट लगनेपर, गोबरवाले स्थानपर या रास्ते आदिमें चोट लगनेपर इसका संक्रमण होनेकी सम्भावना रहती है। ये जीवाणु घाव या हलके चोटके स्थानसे भी शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं।

लक्षण—(१) रोग धीरे-धीरे शरीरपर अधिकार जमाता है। जबड़े भिंच जाते हैं, गरदन अकड़ जाती है, मुँह खोलनेमें कठिनाई होती है।

(२) कोई वस्तु खाने-पीने, निगलनेमें कष्ट होता है।

(३) पीठमें अकड़न, वह पीछेकी ओर धनुषाकार मुड़ जाती है, ऐंठनका दौरा पड़ने लगता है। पेट बहुत कड़ा पड़ जाता है।

(४) चेतना रहती है, बेहोशी नहीं आती।

(५) भौंह और मुँहका सिरा बाहरकी ओर खिंच जाता है, जिससे चेहरा विद्रूप-सा लगता है।

(६) दौरोंके पड़नेका क्रम चालू हो जाता है। रोगकी तीव्रावस्थामें दो दौरोंके बीचका समय कम होता जाता है। पेशियोंमें कड़ापन आ जाता है।

(७) रोगीको छूने, हिलाने-डुलानेसे या शोरगुलसे आक्षेपका दौरा पड़ जाता है।

(८) आँखें ऊपर चढ़ जाती हैं। हालत बिगड़नेपर दौरे जल्दी-जल्दी पड़ने लग जाते हैं।

(९) निमोनियासे, अत्यधिक ज्वरसे या हृदयाघातसे ४-५ दिनोंमें मृत्यु हो सकती है।

धनुष्टंकारके लक्षण मस्तिष्कज्वर और रेबीजके लक्षणसे भी मिलते-जुलते हैं।

उपचार—(१) कहीं भी चोट-चपेट लग जानेपर घावको हाइड्रोजन पराक्साइड या डेटॉल आदिसे धो देना चाहिये और तुरन्त टिटनसका इंजेक्शन लगवा लेना चाहिये।

(२) शीतल, शान्त, अन्धेरे कमरेमें रोगीको रखना चाहिये। समय नष्ट न करके, योग्य चिकित्सककी देख-रेखमें यथाशीघ्र उपचार प्रारम्भ कर देना चाहिये।

सिरपर आघात

सिरका आघात सांघातिक होता है। प्राय: दुर्घटना आदिमें या लड़ाई-झगड़ेमें सिरमें चोट लग जाती है। सिरपर लाठी, डण्डा, घूँसा आदिके आघातसे बेहोशी आ जाती है। चोट लगनेसे मस्तिष्कका कार्य अस्त-व्यस्त हो जाता है।

उपचार—(१) रोगीको पूर्ण विश्राम देना चाहिये।

(२) बेहोशीकी अवस्थामें मुँहपर पानीका छींटा देकर होशमें लानेका प्रयास करे।

(३) चोटको धोकर हलकी पट्टी बाँध देनी चाहिये।

(४) एक गिलास गरम दूधमें एक बड़ी चम्मच पिसी हल्दी डालकर पिलाये। इससे दर्दमें कमी होगी।

(५) गम्भीर स्थितिमें यथाशीघ्र चिकित्सालय पहुँचानेकी व्यवस्था करे। एक्स-रे करके हड्डीके टूटनेका पता चलनेपर तत्सम्बन्धी उपचार करना आवश्यक होता है। आन्तरिक रक्तस्रावको रोकने तथा भीतर रक्तके थक्के न जमने देनेके लिये एक विशेष प्रकारका इंजेक्शन तुरंत देते हैं। आवश्यकताके अनुसार उपचार अपेक्षित होता है।

आँख, कान, नाक आदिमें कोई वस्तु चले जाना

अकसर हमारे कान, नाक, आँख व गलेमें किसी अवाञ्छित वस्तुका जब प्रवेश हो जाता है तो हम परेशान हो उठते हैं। अगर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय तो इन उपायोंपर अमल किया जा सकता है—

कानमें किसी वस्तुका प्रवेश—अगर कानमें कोई कीड़ा-मकोड़ा प्रवेश कर गया हो तो—(क) कानमें टॉर्चकी रोशनी दिखाये, कीड़ा-मकोड़ा रोशनीसे आकृष्ट होकर बाहर निकल आयेगा। (ख) कानमें दो-तीन बूँद गुनगुना जल ड्रापरसे डाले। (ग) कानमें ग्लिसरीन, सरसों या जैतूनका तेल या स्प्रिटकी कुछ बूँदें डाले।

यदि यह उपाय कारगर न हो, कोई वस्तु फँस गयी हो तो—(क) वस्तुको निकालनेका प्रयास करे। (ख) यदि वस्तु फिर भी न निकले तो चिकित्सकको दिखाये। हाइड्रोजन पराक्साइड आदि कानके अंदर न डाले। इससे कानके पर्देको हानि पहुँचती है।

आँखमें किसी वस्तुका प्रवेश—(क) आँखमें कोई वस्तु पड़ जानेपर बुरी तरह मले नहीं। पलकको ऊपर उठाकर रूमालके कोनेसे या साफ रूईकी बत्ती बनाकर या ब्लाटिंग पेपर (सोख्ता)-के टुकड़ेसे निकाले। (ख) ऊपरी पलकको थोड़ा ऊपर उठाकर नीचेकी पलकको बालसहित ऊपरी पलकके नीचे कर धीरे-धीरे हाथसे मले। (ग) आँखपर पानीकी धार या पानीका छींटा डाले। (घ) आँखमें एक-दो बूँद गुलाबजल या जैतूनका तेल डाले। (ङ) यदि चूना पड़ गया हो तो पानीका छींटा दे या सिरकेका घोल डाले।

नाकमें किसी वस्तुका प्रवेश—(क) नाकके जिस छिद्रमें वस्तु अटकी हो उसके बगलवाले छिद्रको बंद करके झटकेसे श्वास बाहरकी ओर निकाले ताकि भीतरकी हवाके दबावसे वस्तु बाहर निकल आये। (ख) नौसादर या तम्बाकू सुँघाकर छींक लानेका प्रयास करे। (ग) सख्तीसे फँसी वस्तुको छोटी चिमटीसे निकालनेका प्रयास करे।

गलेमें किसी वस्तुका फँसना—(क) सिर आगेकी ओर नीचे झुकाकर गर्दनपर पीछेकी ओरसे थपकी दे। (ख) मुँहको खोलकर अपनी दोनों उँगलियोंसे वस्तुको निकालनेका प्रयास करे। (ग) यदि खाद्य पदार्थका छोटा टुकड़ा अटक गया हो तो मुँहमें रोटीका पूरा कौर लेकर झटकेसे निगलवाये। (घ) यदि कोई नुकीली वस्तु अटक गयी हो तो रोगीको केला या खीर आदि खिलाये। इससे अटकी वस्तु पेटमें चली जायगी। अटकी वस्तु न निकले तो चिकित्सकको दिखाये।

डिप्थीरिया

डिप्थीरिया बच्चोंके गलेके अग्रभागमें तथा श्वासनलिकामें होनेवाली एक गम्भीर संक्रामक व्याधि है, समय रहते उपचार न करनेपर खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह एक वर्षसे पाँच वर्षतकके बच्चोंको विशेषकर होता है। इसका संक्रमण दूसरे बच्चेको भी होनेकी सम्भावना रहती है। रोगीके गलेकी संक्रमित झिल्लीमें अनेक जीवाणु होते हैं। ये जीवाणु खाँसने, छींकने और थूकनेपर दूसरोंतक पहुँच जाते हैं।

लक्षण—(१) गलेपर लालिमायुक्त हलका बुखार, बेचैनी एवं उलटी होती है।

(२) गलेके टान्सिलमें शोथके साथ ही तालुमूलमें श्लेष्मा-जैसी पतली झिल्ली बन जाती है। इसके कारण पानी पीने या निगलनेमें कष्ट होता है। शीघ्र ही यह झिल्ली फैलने लगती है, जिससे श्वास लेनेमें कष्ट होता है।

(३) ज्वर बढ़नेके साथ ही खाँसी आने लगती है।

(४) अत्यधिक दुर्बलताके साथ तीव्र बेचैनी, नाकसे मवाद-जैसा स्राव निकलता है।

(५) रक्तचाप कम हो जाता है, रोगी प्रलाप करने लगता है, प्यास अधिक लगती है।

(६) गला फूल जाता है, कानमें दर्द होने लगता है। रोगका फैलाव नाकतक हो जाता है।

(७) अन्तिम स्थितिमें रोगका प्रसार गले, नाक और स्वरयन्त्रतक हो जाता है। शरीर नीला पड़ जाता है। रोगीके बचनेकी सम्भावना कम हो जाती है।

उपचार—रोग बड़ी तेजीसे अपनी चरमावस्थामें पहुँच जाता है। इसलिये प्रारम्भिक लक्षणोंका पता चलते ही बिना विलम्ब किये योग्य चिकित्सकको दिखाना चाहिये। देर करनेपर अनेक प्रकारके उपद्रव, जैसे—निमोनिया, श्वासावरोध, हृदयनिपात, पक्षाघात आदि भी हो सकते हैं।

शीशा निगलना

प्रायः बच्चोंको कोई भी वस्तु मुँहमें डाल लेनेकी आदत होती है। मुँहमें डालनेपर कभी-कभी अचानक वह वस्तु पेटके अन्दर चली जाती है। निगली हुई यह वस्तु काँचके बड़े या छोटे टुकड़ेके रूपमें, लोहेकी नुकीली कील या ऐसी ही कोई भी हानिप्रद वस्तु हो सकती है। कभी-कभी काँचका पिसा चूरा खा लेनेकी घटना हो जाती है। काँच पेटमें जाकर आमाशय तथा आँतोंकी दीवारोंको काट देता है जिससे गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

चिकित्सा—(१) शीशा आदि नुकीली वस्तु या शीशेका चूरा निगले जानेकी स्थितिमें ब्रेडके बीचमें मक्खन और रूईकी तह बिछाकर खिला दे। यह रूई पेटमें जाकर शीशेके टुकड़ेके चारों ओर लिपट जायगी, जिससे आँतोंके कटनेका डर कम हो जायगा।

(२) रोगीको पका केला, खिचड़ी, दलिया, साबूदाना, आलू आदि अधिक-से-अधिक खिलाये। रेड़ीका तेल पिलाये या मैगसल्फ पानीमें घोलकर पिलाये। मलके साथ काँच बाहर आ जायगा।

(३) घी हलका गरम करके पिलाये। जुलाब आदि देकर वह हरसम्भव उपाय करे जिससे वमन या दस्त हो जाय।

चोट, रक्तस्राव एवं हड्डी टूटना

हमारे शरीरमें रक्तसञ्चालन करनेवाली नसोंका जाल-सा बिछा हुआ है। ये नसें तीन प्रकारकी हैं—धमनी, शिरा और महीन केशिकाएँ। धमनीका कार्य पूरे शरीरमें शुद्ध रक्तकी आपूर्ति करना तथा शिराका कार्य शरीरसे अशुद्ध रक्त इकट्ठा करके हृदयमें वापस शुद्ध होनेहेतु भेजना है। केशिकाएँ बारीक धागे-जैसी होती हैं। ये शिरा और धमनीसे सम्बद्ध होती हैं और त्वचातक इनका प्रसार होता है। चोट लग जानेपर धमनीका रक्त शरीरके बाहर उछल-उछलकर निकलता है। इसका रंग सुर्ख चमकीला लाल होता है। शिराका रक्त गहरे रंगका होता है और समानरूपसे बाहर निकलता है। केशिकाओंका रक्त नन्हीं-नन्हीं बूँदोंके रूपमें धीरे-धीरे निकलता है।

(१) दुर्घटनामें चोट लगनेपर यदि धमनीका रक्त निकल रहा हो तो घायल अङ्गको ऊपर करके रखना चाहिये। यदि शिरासे रक्तप्रवाह हो रहा हो तो उस अङ्गको नीचे करके रखे। इससे रक्तस्राव जल्दी बंद हो जायगा।

(२) घावको ठंडे पानीसे धोकर उसपर बर्फ रखें और ठंडे पानीमें भीगे कपड़ेकी पट्टी बाँधे। इससे रक्तस्राव जल्दी बंद होगा।

(३) चोटके समीप ऊपरकी ओरसे दबाव रखनेपर भी रक्तकी कम मात्रा निकलेगी। पट्टी बँधनेतक चोटको दबाकर रक्तका बहना बंद करनेका प्रयास करे।

(४) सामान्य केशिकाओंसे रक्तस्राव हो रहा हो तो अंगुलीसे कुछ देरतक दबाकर रखे और डेटॉल या जीवाणुनाशक घोलसे साफ करके उसपर फिटकरी रखकर हलकी पट्टी बाँध दे। सामान्य चोटपर फिटकरी छिड़ककर पट्टी बाँध देनेसे रक्तस्राव रुक जाता है।

(५) यदि नाकसे रक्तस्राव हो रहा हो तो स्वच्छ हवादार स्थानमें रोगीको बैठा दे। सिरको पीछेकी ओर लटकाकर रखे। हाथोंको ऊपरकी ओर कर दे। गले और वक्षःस्थलके कपड़ोंको ढीला कर दे। नाक और गर्दनपर बर्फका ठंडा पानी रखे। मुँहको खुला रखकर श्वास ले और पैरोंको गर्म पानीमें रख दे। इससे

नासिकाका रक्तस्राव शीघ्र रुक जायगा।

प्रायः दुर्घटनाओंमें अत्यधिक चोट लग जानेसे रक्तस्राव अधिक होनेके साथ ही कभी-कभी हड्डी भी टूट जाया करती है। टूटी हड्डीके संदर्भमें कोशिश यह करनी चाहिये कि बिना छेड़छाड़ किये यथास्थितिमें घायलको शीघ्र चिकित्सालय पहुँचाये। हिलने-डुलनेसे अधिक हानि पहुँच सकती है। कभी-कभी टूटी हड्डी मांसको फाड़कर बाहर निकल आती है। ऐसी स्थितिमें अत्यन्त सावधानी रखनेकी जरूरत पड़ती है। हड्डी टूटनेकी पहचान यह है कि टूटे स्थानमें दर्द होता है, वह अङ्ग बेकाबू हो जाता है, टेढ़ा, लम्बा या छोटा हो सकता है। भीतरी रक्तस्राव एवं मांसपेशियोंके सिकुड़नेसे सूजन आ जाती है। हड्डी टूटनेपर एक्स-रे करके सही स्थितिका आकलन कर प्लास्टर आदि करना पड़ता है। हड्डी टूटनेकी स्थितिमें प्राथमिक उपचार इस प्रकार करने चाहिये—

(१) यदि जाँघ, पैर या हाथकी हड्डी टूटी हो तो बिना हिलाये-डुलाये टूटे अङ्गपर स्केल या लकड़ीकी खपच्ची दोनों ओर रखकर बाँध दे और निकटवर्ती चिकित्सालय ले जानेकी व्यवस्था करे। रक्त निकल रहा हो तो उसे रोकनेका प्रयास करना चाहिये।

(२) हड्डीका सिरा टूटकर बाहर निकल गया हो तो ऐसी स्थितिमें बिना हिलाये-डुलाये रखे और चिकित्सकको बुलाये।

(३) सिरकी हड्डी टूट गयी हो तो सिर ऊँचा करके लिटा दे, घाव पोंछकर हलकी पट्टी बाँध दे। सीने और गर्दनके वस्त्र ढीले कर दे। उसे शान्त और गरम रखनेका प्रयास करे तथा रोगीको सान्त्वना दे।

(४) यदि रीढ़ या कमरकी हड्डी टूटी हो तो पड़ा ही रहने दे, चिकित्सकको बुलाये, अन्यथा अधिक गम्भीर हानि पहुँच सकती है।

विषाक्तता

कभी-कभी जाने-अनजानेमें विषपान कर लेनेसे जीवन खतरेमें पड़ जाता है। दैनिक जीवनमें ऐसे अनेक अवसर आते हैं कि कोई-न-कोई व्यक्ति विषसे ग्रस्त हो जाता है। ऐसे अवसरपर तत्काल चिकित्सा न करके समय नष्ट करनेसे पूरे शरीरमें जहर फैल जाता है। यदि विष रससे संयुक्त होकर हृदयतक पहुँच जाय तो मृत्यु हो जाती है। विभिन्न प्रकारके विषों जैसे—सर्प-बिच्छूका दंश, कीटनाशक औषधियोंका भक्षण, मिट्टीका तेल, तारपीनका तेल, कुचला, अफीम, धतूरा, गाँजा, भाँग, मदिरा आदिमेंसे कुछ तो ऐसे हैं कि तत्काल उनका प्राथमिक उपचार निम्न प्रकारसे करना चाहिये—

(१) अधिक मात्रामें नमकका घोल पिलाकर उलटी कराये। उलटी न आनेपर साबुनका पानी पिलाये और मुँहके अंदर गलेमें दोनों अँगुली डालकर उलटी कराये। अधिक मात्रामें घी पिलानेसे भी उलटी-दस्त हो सकते हैं जिससे विष बाहर निकल जायगा और उसका प्रभाव कम होगा।

(२) रेड़ीका तेल या जैतूनका तेल अथवा मैगसल्फ पिलाकर रोगीको दस्त करानेका प्रयास करे। मिट्टी, तारपीनका तेल या पेट्रोल आदिकी स्थितिमें वमन न कराकर विरेचन कराना चाहिये।

(३) यदि रोगी होशमें हो तो उसे आश्वस्त करे कि वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगा।

(४) श्वास लेनेमें तकलीफ हो तो ऑक्सीजन सुँघाये।

(५) आस-पासके स्थानका निरीक्षण करे कि कोई विषैला पदार्थ या इसी प्रकारकी कोई शीशी आदि तो नहीं है। विषके प्रकारका निश्चय करके उपाय करे।

(६) यदि नींद आ रही हो तो सोनेसे रोकनेका उपाय करे। नींदमें जहर तेजीसे फैलता है।

विष—उनकी पहचान तथा प्राथमिक उपचार

(१) संखिया

संखिया एक घातक विष है। औषधि बनानेमें भी इसका प्रयोग करते हैं। भ्रमवश इसे खा लेनेसे विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

लक्षण—(१) गलेमें खराश तथा जलनका अनुभव।

(२) अधिक कमजोरीके साथ बेहोशी।

(३) सिर तथा पेटमें दर्द, उलटी, मुँह सूखना, बेचैनी, दस्त लगना, त्वचा ठंडी होना, कँपकँपी।

(४) नाडीकी गति धीमी होनी।

(५) रोगीकी मृत्यु ४ से ४८ घंटेके मध्य हो सकती है।

प्राथमिक उपचार—(१) वमन करानेके लिये एक लीटर पानीमें ४-५ चम्मच नमक मिलाकर पिलाये।

(२) रेड़ीका तेल पिलाये, जिससे दस्तके जरिये विषाक्त पदार्थ निकल जाये।

(३) ठंडे हवादार कमरेमें रोगीको रखे, हाथ-पैर गरम रखे, शरीरमें ऐंठन हो तो सरसोंके तेलकी मालिश करे।

(२) धतूरा

यह एक सर्वसुलभ पौधा है। इसके बीज और पत्तियाँ विषाक्त होते हैं। इससे औषधि भी बनायी जाती है। धतूरेके बीजको खा लेनेसे शरीरपर उसके विषका प्रभाव पड़ने लगता है।

लक्षण—(१) वमन होने लगता है।

(२) नाडी कमजोर हो जाती है।

(३) गला और मुँह सूखने लगता है, पेटमें जलन होती है, सिरमें चक्कर आता है और पैर लड़खड़ाने लगते हैं।

(४) नींद आने लगती है, रोगी प्रलाप करता है।

(५) बिस्तरसे उठकर भागनेकी चेष्टा करता है।

(६) कपड़ेमेंसे उसके धागोंको निकालनेका भ्रामक प्रयास करता है।

(७) बोलनेमें असमर्थता तथा चेहरा और नेत्र लाल हो जाते हैं।

प्राथमिक उपचार—(१) सिरपर ठंडा पानी डाले।

(२) नमकका घोल पिलाकर, उलटी कराकर विषाक्त पदार्थ बाहर निकाले।

(३) रेड़ीका तेल या मैगसल्फ पिलाकर दस्त कराये।

श्वास लेनेमें कष्ट होनेपर ऑक्सीजन दे। क्लोरोफॉर्म सुँघानेसे प्रलाप करना बंद हो जाता है। मुँहपर ठंडे पानीका छींटा मारनेसे आराम मिलता है। गरम दूध पीनेको दे।

(३) अफीम

अफीम भी एक घातक मादक द्रव्य है। इसे नशेके रूपमें कुछ लोग सेवन करते हैं। इससे मार्फीन भी बनती है जिसका प्रभाव अधिक घातक होता है। इसकी सामान्यसे अधिक मात्रा शरीरके अंदर चली जानेपर जीवन संकटमें पड़ जाता है।

लक्षण—(१) तेज जम्हाई आती है।

(२) आँखकी पुतली छोटी पड़ जाती है।

(३) शरीरमें पसीना, श्वाससे अफीमकी बदबू आती है। श्वास धीरे-धीरे परंतु गहरी चलती है।

(४) नाडीकेन्द्रोंमें उत्तेजनासे चेहरा लाल हो जाता है।

(५) नाडीकी गति तेज हो जाती है।

प्राथमिक उपचार—(१) नमकका घोल पिलाकर मुँहमें अँगुली डालकर उलटी कराये।

(२) मैगसल्फको पानीमें घोलकर पिलाये। एनीमा देकर विष बाहर निकाल देना चाहिये।

(३) सोने न दे। सिरपर पानी छिड़कते रहे और थपथपाते रहे। नींद आनेपर किसी भी प्रकारसे न सोने देनेका प्रयास करे। गरम चाय थोड़ी-थोड़ी देरपर देते रहे।

(४) आवश्यकता पड़नेपर श्वास चालू रखनेका प्रयास कृत्रिम श्वसन या ऑक्सीजन देकर करना चाहिये।

(५) मूत्रावरोध होनेपर कृत्रिम उपायोंसे कैथेटर लगाकर मूत्र कराये।

(६) हींगको पानीमें घोलकर पिलानेसे अधिकतर नशा उतर जाता है।

(७) रीठेका पानी पिलानेसे अफीमका नशा तत्काल उतर जाता है।

(८) पोटैशियम परमैगनेटके हलके घोल (१:१०००)-से आमाशयका प्रक्षालन करना चाहिये। इससे अफीम आक्सीकृत होकर अहानिकर हो जाती है।

(४) कुचला

यह एक घातक विष है, जो स्वादमें बहुत कड़वा होता है। इसे मात्र १ ग्राम खा लेनेपर १० से १५ मिनटमें इसके विषके लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और चिकित्सा न होनेपर एकसे पाँच घंटेमें यह विष जीवन-लीला समाप्त कर देता है।

लक्षण—(१) सुषुम्णाके प्रभावित होनेसे मांसपेशियोंमें ऐंठन और आक्षेप होने लगते हैं।

(२) मुँहका स्वाद कड़वा हो जाता है।

(३) शीघ्र ही दौरा पड़ना शुरू हो जाता है, रंग

नीला पड़ जाता है, आँखें धँस जाती हैं, पुतलियाँ फैल जाती हैं।

(४) मुँह रक्तिम झागसे भर जाता है, शरीर कभी-कभी आगे या दायीं-बायीं ओर मुड़ जाता है।

(५) हाथ-पैर कड़े पड़ जानेसे मुड़ नहीं पाते, शरीर पसीनेसे तर होकर ठंडा पड़ने लगता है।

(६) नाडीकी गति धीमी या तेज हो जाती है।

(७) प्यास अधिक लगती है, पर दौरेके भयसे रोगी पानी नहीं पीता।

(८) अन्तमें दम घुटकर मृत्यु हो जाती है या हार्टअटैक हो जाता है।

प्राथमिक उपचार—(१) पौटेशियम परमैगनेट पानीमें घोलकर जितना हो सके तुरंत पिलाये।

(२) नमकका घोल अधिक मात्रामें पिलाकर वमन कराकर पेट साफ करे अथवा वमन न होनेपर ट्यूबसे पानी पेटके अंदर डालकर आमाशय धोनेकी शीघ्र व्यवस्था करे।

(३) आक्षेप रोकनेके लिये क्लोरोफॉर्म सुँघाना चाहिये।

(४) श्वास रुकने लगे तो कृत्रिम विधिसे श्वसन कराये। यथासम्भव प्राथमिक उपचार करके तुरंत चिकित्सकको दिखाना चाहिये।

(५) मिट्टीका तेल

आत्महत्याके उद्देश्यसे या भूलसे मिट्टीका तेल, तारपीनका तेल या पेट्रोल पी लेनेपर निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं—

लक्षण—

(१) श्वासमें मिट्टीके तेल या पेट्रोलकी गन्ध।

(२) मुँह, गले तथा पेटमें तेज जलन।

(३) खूब प्यास लगना।

(४) जम्हाई आना तथा रह-रहकर बेहोशी आना।

(५) खाँसी, सीनेमें दर्द तथा श्वास लेनेमें कठिनाई होती है।

(६) शरीरमें ऐंठन, बेहोशी और अन्तमें हृदय काम करना बंद कर देता है।

(७) न्यूमोनियाका आक्रमण हो सकता है।

उपचार—

(१) बिस्तरपर आरामसे लिटा दे।

(२) इसमें वमन कराना उचित नहीं है। इसलिये दस्त लानेके लिये 'मैगसल्फ' पानीमें घोलकर पिलाये।

(३) घी या एरण्डका तेल अधिक मात्रामें पिलाये। इससे जलन कम होगी और दस्त भी हो जायगा।

(६) स्प्रिट (मेथिल अलकोहल)

शराबमें स्प्रिटकी मिलावट कर देनेपर अक्सर ऐसी दुर्घटनाएँ होती हैं। कभी-कभी आत्महत्याके उद्देश्यसे या भूलवश भी लोग स्प्रिट पी लेते हैं।

लक्षण—

(१) सिरमें चक्कर, जी मचलाना, मानसिक सन्तुलन ठीक न रहना।

(२) श्वास तेजीसे चलती है नाडीकी गति तेज हो जाती है।

(३) पेटमें दर्द, उलटी, कम दिखायी पड़ना।

उपचार—

शीघ्र उचित चिकित्सा न होनेपर मृत्यु हो सकती है। अतः यथाशीघ्र किसी चिकित्सालयमें ले जानेका उपाय करना चाहिये। प्राथमिक उपचार उतना प्रभावी नहीं है।

(७) कीटनाशक पदार्थ

साग-सब्जियोंपर छिड़कनेके प्रयोगमें लाये जानेवाले कीटनाशक, डी.डी.टी पाउडर, गेमेक्सीन, चूहे मारनेकी दवा आदि अत्यन्त विषैली होती हैं। इन्हें खा लेनेपर श्वासद्वारा या त्वचाके संयोगसे घातक प्रभाव उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण—

(१) शरीरमें हलके लकवे-जैसी स्थिति हो जाती है।

(२) पेटमें ऐंठन, मुँहसे लार बहना, झटकेके साथ श्वास चलने लगती है।

(३) आँखकी पुतली सिकुड़ने लगती है।

(४) थोड़ी-थोड़ी देर बाद आक्षेप आने लगते हैं।

उपचार—

(१) विषैली वस्तु कपड़ेपर या शरीरपर लगी हो तो अच्छी तरह धोकर कपड़ा बदल दे।

(२) सोडियम सल्फेटको जलमें घोलकर पिलाये। यथाशीघ्र चिकित्सालयमें ले जाय, जहाँ आमाशय साफ करनेकी, वमन कराकर तथा एनिमा देकर विषाक्त पदार्थ बाहर निकालनेकी व्यवस्था शीघ्र करनी चाहिये।

(८) विषाक्त भोजन

विषाक्त खाद्य पदार्थोंके सेवनसे व्यक्ति शिथिल हो जाता है, बेहोशी आ जाती है, उलटी और दस्त आने लगते हैं। फलोंको पकानेमें कीटनाशकों—कार्बाइड आदिका प्रयोग होता है, जिससे उनका विष फलोंमें आ जानेकी सम्भावना रहती है। दूषित एवं बासी खाद्य पदार्थ बिगड़ जानेपर विषाक्त प्रभाववाले हो जाते हैं। कभी-कभी भोजनमें विष आदि मिश्रित कर देनेकी घटनाएँ हुआ करती हैं।

लक्षण—

(१) जी मचलाना, उलटी होना, कमजोरी महसूस होना।

(२) शरीरपर जुलपित्ती-जैसा निकल आना।

(३) पेटमें गैस-जैसा अनुभव होना।

(४) दृष्टिभ्रम अथवा दृष्टिह्रास।

(५) मुँह और गलेका सूखना, श्वास फूलना, बेहोशी आदि आना। ऐसी स्थितिमें निम्न प्रकारसे तात्कालिक उपचार करना चाहिये।

उपचार—

(१) नमकका घोल या घी पिलाकर अथवा मुँहमें अँगुली डालकर वमन करानेका प्रयास करना चाहिये।

(२) वमनके बाद भी विषाक्त खाद्यका अंश पेटके भीतर रह गया हो तो दस्तावर औषधि एरण्डका तेल या मैगसल्फ देना चाहिये।

(३) ग्लूकोज चढ़ानेकी आवश्यकता पड़ सकती है।

(९) कार्बन मोनो-ऑक्साइड

बंद कमरेके अन्दर चूल्हा, हीटर अथवा स्टोव जलाकर सोनेसे, चूल्हा या हीटरसे सम्पर्क होनेके कारण ऑक्सीजन, कार्बन मोनो-ऑक्साइडमें बदल जाती है। इसमें श्वास लेनेके कारण दम घुट जानेका खतरा रहता है। यह गैस कुओं, तहखानोंमें भी पायी जाती है।

लक्षण—

(१) सिरमें दर्द, भारीपन तथा चक्कर आना।

(२) चेहरा पीला पड़ जाना और बेहोशी आ जाना।

(३) कानमें सनसनाहटकी आवाज, कमजोरी महसूस होना।

(४) श्वास जल्दी-जल्दी खर्राटेके साथ चलना।

(५) निद्रा, बेहोशी और चिकित्साके अभावमें मृत्यु।

उपचार—

(१) रोगीको हवादार स्थानमें रखे। शरीरको गरम रखे।

(२) बेहोशीकी दशामें कृत्रिम श्वसन कराये या ऑक्सीजन सुँघाये।

(३) श्वास-प्रश्वास ठीक होनेपर गर्म दूध अथवा चाय पिलाये।

गम्भीर स्थितिमें ऑक्सीजन लगानेकी और ग्लूकोज चढ़ानेकी जरूरत पड़ सकती है। बेहोशीकी स्थितिमें इंजेक्शन आदि भी आवश्यक होता है। यथाशीघ्र प्राथमिक उपचार करके निकटके चिकित्सालयमें ले जाना चाहिये।

(१०) तेजाबसे जलना

शरीरपर तेजाब पड़ जानेसे त्वचा झुलस जानेके कारण जीवनके लिये संकट उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी हत्या या दुश्मनीके कारण भी लोग तेजाब छिड़क देते हैं; जिससे त्वचा जल जाती है। जलनेके साथ ही शीघ्र उपचार करना चाहिये।

लक्षण—

(१) प्रभावित स्थानपर तेज जलन एवं घाव हो जाता है।

(२) त्वचा और मांस जलकर ऊपर आ जाता है एवं त्वचाका रंग बदल जाता है।

(३) बेहद दर्द होता है। त्वचापर चकत्ते पड़ जाते हैं।

(४) आँख आदिपर पड़ जानेसे वह अङ्ग सर्वदाके लिये नष्ट हो जाता है।

उपचार—

(१) बुझे चूनेके पानीको छानकर उसी पानीसे घावको धोना चाहिये।

(२) घावको शीघ्र भरनेके लिये औषधि या इंजेक्शन आदि लेना चाहिये।

(३) घावपर जीवाणुओंका संक्रमण न हो, इसका ध्यान रखे और घावको ढँककर रखे।

(११) तेजाब पी लेना

कभी-कभी तेजाब पी लेनेकी घटनाएँ हो जाया करती हैं। मुँह, भोजननली, आमाशय आदि आन्तरिक अङ्ग व्रणयुक्त हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें सामयिक उपचारकी सद्यः आवश्यकता होती है।

लक्षण—(१) मुख, कण्ठ, गले और आमाशयमें तीव्र जलन एवं दर्द होने लगता है।

(२) मुँहसे फेनयुक्त झाग निकलता है और वमन होने लगता है। वमनमें रक्त और मांसके छोटे-छोटे थक्के हो सकते हैं।

(३) बोलने और श्वास लेनेमें कठिनाई होती है तथा आवाज बिगड़ जाती है।

(४) तेज प्यास लगती है, पर पानी पीनेमें कठिनाई होती है।

(५) रक्तमिश्रित दस्त होता है और मूत्रकी मात्रा धीरे-धीरे कम हो जाती है।

(६) नाडीकी गति धीमी, अवसाद, श्वासमें अवरोध उत्पन्न होने लगता है।

उपचार—(१) आमाशय-प्रक्षालन और वमन कदापि न कराये, इससे आमाशय और भोजन-नलीको हानि होगी।

(२) तत्काल पर्याप्त मात्रामें नमकका घोल पिलानेका प्रयास करे। साबुनका हलका घोल या पानीमें चूना (पानमें खानेवाला) मिलाकर पर्याप्त मात्रामें यथाशक्ति पिलाये। क्षारीय पदार्थ पिलानेसे तेजाब निष्प्रभावी हो जायगा।

(३) इसके बाद देशी घी (कम-से-कम २५० ग्राम) या जैतूनका तेल पिला दे और चिकित्सकको दिखाये।

(१२) रैबीज

यह वायरससे होनेवाला तीव्र औपसर्गिक रोग है, जो पागल कुत्ते, बिल्ली, सियार, बंदर आदिके काटनेसे हो जाता है। वायु और कफके विकृत हो जानेसे इन जानवरोंके धातुओंमें क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। हाइड्रोफोबियासे पीडित कुत्तेके काटनेसे मनुष्यमें इसका वायरस लारके द्वारा संक्रमित हो जाता है। लारयुक्त मामूली खरोंचसे भी वायरसका संक्रमण हो सकता है। यहाँतक कि पागल कुत्तेने यदि चाट लिया हो तो भी सावधानीके लिये उपचार आवश्यक है। इसका विष तेजीसे शरीरमें फैलता है। काटनेके एक वर्ष बादतक भी रोगकी उत्पत्ति हो सकती है।

पागल कुत्तेकी पहचान यह है कि उसकी पूँछ, कन्धे और जबड़े ढीले पड़कर लटक जाते हैं। लार निकलती रहती है। वह मुँह एक ओरको टेढ़ा करके लटकाये रहता है। जो भी सामने आता है उसे काटने दौड़ता है। एक-दो दिनके बाद पिछले पैरोंमें पक्षाघात हो जाता है। बादमें गले आदिमें पक्षाघात होता है और ६-७ दिनमें वह मर जाता है। पागल कुत्तेको देखकर अन्य कुत्ते भूँकते हैं तथा उससे दूर रहते हैं।

पागल कुत्तेसे काटे गये व्यक्तिकी केवल प्रतिषेधक चिकित्सा ही होती है। लक्षण प्रकट होनेके दोसे पाँच दिनके भीतर मृत्यु भी हो सकती है।

लक्षण— (१) यदि पागल कुत्तेने कभी काटा हो और रैबीज वैक्सीनका इंजेक्शन न लगाया गया हो तो कुछ समय बाद जलसंत्रासका रोग आरम्भ हो जाता है।

(२) घावमें दर्द एवं जलन होता है। काटा हुआ स्थान सुन्न-सा हो जाता है। खुजली होती है तथा छाले पड़ जाते हैं। घावमेंसे गहरे रंगका खून निकलता है।

(३) बेचैनी, चिन्ता तथा उत्तेजना होने लगती है।

(४) रोगीकी प्रवृत्ति संघर्षपूर्ण तथा आक्रामक हो जाती है और वह अभद्र व्यवहार करने लगता है।

(५) पानी देखते ही डर लगता है, यह एक प्रधान लक्षण है।

(६) निगलनेमें कठिनाई होती है, लार बाहर गिरने लगती है।

(७) सिरदर्द होता है, नाडीकी गति तेज हो जाती है, भूख मर जाती है।

(८) मुख, गले, कण्ठकी मांसपेशियोंमें स्तम्भ उत्पन्न हो जाता है। पानी गलेसे नीचे नहीं उतरता।

(९) मस्तिष्क और सुषुम्णामें इतनी असहनशीलता हो जाती है कि वायुके हलके झोंकेसे भी दौरे पड़ने लगते हैं।

(१०) श्वासगति तीव्र हो जाती है, आवाज भद्दी और भूँकने-जैसी हो जाती है।

(११) ज्वर हो जाता है। शरीरमें आक्षेप आने लगते हैं। क्रमशः आक्षेपका दौरा जल्दी-जल्दी पड़ने लगता है।

(१२) पेशियोंमें जडता, गतिराहित्य, दौरे पड़ना, धुँधला दिखायी पड़ना—ये लक्षण उत्पन्न होनेपर बचना मुश्किल-सा हो जाता है।

उपचार—(१) कुत्तेके काटनेपर उसे मारना नहीं चाहिये। यह निश्चय करना आवश्यक है कि वह पागल

है अथवा नहीं, इसलिये उसका निरीक्षण करता रहे। पागल कुत्ता दस दिनमें स्वयं मर सकता है।

(२) कटे स्थानपर तत्काल ऊपरकी ओर रस्सीसे कसकर बाँधे।

(३) घावको अच्छी तरह पानीसे धोकर चीरा लगाये तथा पोटैशियम परमैगनेटके घोलसे धोये, इसमें कार्बोलिक एसिड या पोटैशियम परमैगनेट (लाल दवा) भर दे।

(४) जितनी जल्दी हो सके रैबीजका इंजेक्शन (एण्टीरैबिक सीरम) लगवा लेना चाहिये। साथ ही टिटेनसका भी इंजेक्शन लगवाये, चाहे कुत्ता पागल हो अथवा नहीं।

बंदर आदिके काटनेपर भी यही करे। रोगकी उत्पत्ति हो जानेपर बचाव मुश्किल हो जाता है। अत: चाहे घाव गहरा हो या नहीं, सुरक्षात्मक उपचारके रूपमें रैबीजका इंजेक्शन अवश्य लगवाना चाहिये।

(१३) सर्प-दंश

विषके अनुसार सर्प दो प्रकारके होते हैं—(१) विषहीन और (२) विषैले। अधिकांश सर्प विषहीन होते हैं। विषहीन सर्पके काटनेसे हलका-सा नशा होता है और चक्कर आने लगता है। कुछ व्यक्ति सर्पके काटनेपर दहशतके कारण मर जाते हैं। विषैले साँपोंमें नाग, गेहुँअन और करैत बड़े खतरनाक होते हैं। क्रोधित होनेपर ये फन फैलाकर खड़े हो जाते हैं। इनके ऊपरी जबड़ोंमें विषके दो पैने दाँत होते हैं, जिनके बीचकी दूरी आधे इंचसे एक इंचतक होती है। इन दाँतोंकी जड़में विषग्रन्थियाँ होती हैं। सर्प जब क्रुद्ध होता है तो उसका विष सारे शरीरसे खिंचकर विषग्रन्थियों और दाँतोंमें आ जाता है तथा काटनेपर यही विष शरीरमें प्रवेश कर जाता है। नर-सर्पके काटनेपर रोगी ऊपरकी ओर देखता है। मादा-सर्पके काटनेपर रोगी नीचेकी ओर देखता है। कई बार सर्पके काटनेके भ्रममात्रसे घबड़ाहटके कारण भी मृत्यु हो जाती है। विषहीन सर्पके काटनेपर (U)-के आकारका चिह्न पड़ता है और विषैले सर्पके काटनेपर (. .)-के आकारका चिह्न पड़ता है। सर्प जितना विषैला होगा, लक्षण भी उतने ही तीव्र और शीघ्र उत्पन्न होते हैं। विषके शरीरव्यापी लक्षण एक घंटेके अंदर-अंदर आरम्भ हो जाते हैं। ठीक उपचार न मिलनेपर बारह घंटेके अंदर मृत्यु हो सकती है।

लक्षण—(१) दंशित स्थानपर दाँत गड़नेके हलके निशान होते हैं। कभी-कभी सूजनके कारण निशान मालूम नहीं पड़ते।

(२) रोगी क्रमशः मंद, अतिमंद, उदासीन और निद्रालु होने लगता है। ऊपरकी पलक नीचे गिरती जाती है। सिर उठाना तथा पैरपर खड़े होना मुश्किल हो जाता है।

(३) जी मचलाना, मल-मूत्र अपने-आप हो जाना, पैरमें झनझनाहट, पुतलियाँ फैल जाना, दृष्टिभ्रम, श्वसनतन्त्रका पक्षाघात सर्पविषके कारण होता है।

(४) नाडियोंपर दुष्प्रभावसे बेहोशी आने लगती है, मांसपेशियाँ ऐंठने लगती हैं, चेहरे, गले और श्वसनतन्त्रपर आक्षेपसे दम घुटने लगता है, जबड़ा और जीभ शिथिल हो जाता है।

(५) वाइपर-जातिके सर्पके काटनेसे रक्तमें थक्का जमनेकी शक्ति खत्म हो जाती है। रक्तकणोंके टूटनेसे हीमोग्लोबीन प्लाज्मामें आ जाता है जो विषके उग्र प्रभावसे मुँह, नाक, कान अथवा मूत्रसे निकलने लगता है। मस्तिष्क और आँतमें रक्तस्रावसे मृत्यु हो जाती है।

नींद आनेपर किसी भी प्रकारसे रोगीको सोने नहीं देना चाहिये। विषकी उग्रताके अनुसार सर्पदंशमें पूर्वोक्त लक्षणोंमें कमी-बेशी होती है। सर्पदंश प्राणघातक होता है। अतः प्राथमिक उपचारके बाद यथाशीघ्र अनुभवी चिकित्सकसे चिकित्सा करानी चाहिये।

उपचार—(१) दंशित स्थानसे ऊपरकी ओर दो-दो इंचकी दूरीके तीन स्थानपर रबर या सूतकी पतली रस्सीसे इतनी मजबूतीसे बाँध दे कि निचला हिस्सा रक्तहीन-सा दिखने लगे।

(२) तेज चाकू या ब्लेडसे दंशित स्थानको क्रासके रूपमें चीरकर अधिकाधिक खून दबा-दबाकर निकाल दे। ब्रेस्ट पम्पसे या मुँहसे चूसकर विषैला रक्त बाहर निकाल देना चाहिये। मुँहमें कोई घाव हो या मसूढ़े स्वस्थ न हों तो दंश-स्थलको कदापि न चूसे। पासकी शिराओंको काटकर भी खून निकाला जा सकता है। चीरा लगानेसे पहले स्थानको अच्छी तरह धो दे, ताकि त्वचापर पड़ा विष हट जाय।

(३) घावको पोटैशियम परमैगनेटके घोलसे या गरम पानीसे अच्छी तरह धोये। घावमें पोटैशियम परमैगनेट भर दे। रोगीको जितनी हो सके उतनी नीमकी पत्ती चबानेको दे। विषके प्रभावसे पत्ती कड़वी नहीं मालूम पड़ेगी।

(४) दंशित अङ्गको हिलाना-डुलाना नहीं चाहिये। हिलने-डुलनेसे विष तेजीसे फैलता है। रोगीको चिकित्सा आदिके लिये ले जाना हो तो चलाकर नहीं, बल्कि स्ट्रेचर या चारपाईपर लिटाकर आहिस्ते-से ले जाना चाहिये।

(५) इतना करनेके बाद तत्काल सर्पके काटनेका एण्टीवेनम इंजेक्शन लगानेके लिये अनुभवी चिकित्सककी सहायता ले। यह इंजेक्शन लगनेसे सर्पविष निष्क्रिय हो जाता है। विषहीन सर्पके दंशमें यह इंजेक्शन देनेसे हानि हो सकती है।

(६) सर्पदंशकी अनुभूत चिकित्सा 'पीपल' का प्रयोग इस प्रकार करे—

(क) दंशित व्यक्तिको लिटाकर उसके हाथ-पैर, कमर, सिर और कन्धेको क्रमशः पाँच व्यक्ति मजबूतीसे पकड़ लें, ताकि वह हिल-डुल न पाये।

(ख) पीपलके पेड़से एक डाल तोड़ ले। उसमेंसे पत्ते तोड़कर अलग कर ले। दोनों हाथोंमें एक-एक पत्ता लेकर उसकी डंडी सावधानीपूर्वक रोगीके कानमें डाले।

(ग) ज्यों ही पत्तेकी डंडी कानके पर्देको स्पर्श करेगी, रोगी चिल्लाने लगेगा और उठने-भागनेका प्रयास करेगा। अतः उसे कसकर पकड़ रखे, हिलने-डुलने न पाये। उसके चिल्लानेपर ध्यान न दे।

(घ) कानमें डंडी लगाते समय सावधानी रखे; पत्तेको मजबूतीसे पकड़े रखे, नहीं तो कानका परदा फट सकता है। जबतक रोगी चिल्लाना बंद न कर दे, तबतक पत्ता कानमें लगाते रहना चाहिये।

(ङ) थोड़ी-थोड़ी देर बाद पत्ते बदलते रहना चाहिये। पत्तोंद्वारा सम्पूर्ण विष खिंच जानेपर रोगी अपने-आप चिल्लाना बंद कर देगा। इन पत्तोंको इधर-उधर न फेंककर जमीनमें गाड़ देना चाहिये।

यह अनेक व्यक्तियोंद्वारा परीक्षित अनुभूत प्रयोग है।

(१४) बिच्छूका दंश

डंक मारनेवाले जन्तुओंमें बिच्छू बड़ा ही भयंकर होता है। असह्य वेदना होती है और कभी-कभी प्राणान्त भी हो जाता है। इसके विषका असर दो-तीन दिनतक रहता है, उसके बाद उतर जाता है। पर इतनी असह्य वेदना होती है कि उपचार आवश्यक हो जाता है।

लक्षण—(१) दंशित स्थानपर तेज दाहयुक्त जलन एवं पीडा होती है। यदि दोसे चार घंटेतक प्रदाह और पीडा बढ़ती ही जाय तो स्थिति गम्भीर समझनी चाहिये और सर्पविषके समान यथाशीघ्र उपचार करना चाहिये।

(२) जिह्वामें सूजन, बेहोशी, ज्वर, काला रक्त निकलता है।

(३) एक-दो दिनमें विषका प्रभाव स्वतः शान्त हो जाता है।

उपचार—(१) यदि डंक भीतर रह गया हो तो दंशित स्थानको सुहागा (Borax)-के घोलसे धोये।

(२) लिकर अमोनिया फोर्टसे खूब रगड़ना चाहिये।

(३) टिंचर आयोडीन या अर्ककपूर अथवा कार्बोलिक एसिडमें रुई डुबाकर बार-बार लगाये।

(४) सत्यानाशीकी जड़ पानमें रखकर खिलाये।

(५) दंशित स्थानपर प्याजके टुकड़ेको रगड़े।

(६) राई और कपासका पत्ता पीसकर लेप करे।

(७) पानमें कपूर रखकर खिलाये।

(८) सफेद कनेरकी जड़ या अपामार्गकी जड़ पानीमें घिसकर लगाये तथा देशी घी पिलाये।

(९) गोल्ड क्लोराइड सुँघानेसे भी दंशका असर कम हो जाता है।

(१०) तुलसीकी पत्ती और काली मिर्च पीसकर लेप करे।

उपर्युक्त उपायोंमेंसे कुछको करनेसे बिच्छूका जहर शीघ्र उतर जाता है। अन्य विषैले कीड़े-मकोड़े, मधुमक्खी, बर्रे, भौंरे आदिके दंशमें भी ये उपाय लाभप्रद हैं।

नीरोग रहनेहेतु घरेलू नुस्खे

यहाँपर अनुभवके आधारपर, शरीरको नीरोग रखनेहेतु कतिपय परीक्षित घरेलू नुस्खोंका उल्लेख किया जा रहा है। इनका प्रयोग लाभदायक है—

१. कानदर्द—प्याज पीसकर उसका रस कपड़ेसे छान ले। फिर उसे गरम करके चार बूँद कानमें डालनेसे कानका दर्द समाप्त हो जाता है।

२. दाँतदर्द—हल्दी एवं सेंधा नमक महीन पीसकर, उसे शुद्ध सरसोंके तेलमें मिलाकर सुबह-शाम मंजन करनेसे दाँतोंका दर्द बंद हो जाता है।

३. दाँतोंके सुराख—कपूरको महीन पीसकर दाँतोंपर उँगलीसे लगाये और उसे मले। सुराखोंको भली प्रकार साफ कर ले। फिर सुराखोंके नीचे कपूरको कुछ समयतक दबाकर रखनेसे दाँतोंका दर्द निश्चितरूपसे समाप्त हो जाता है।

४. बच्चोंके पेटके कीड़े—छोटे बच्चोंके पेटमें कीड़े हों तो सुबह एवं शामको प्याजका रस गरम करके एक तोला पिलानेसे कीड़े अवश्य मर जाते हैं। धतूरके पत्तोंका रस निकालकर उसे गरम करके गुदापर लगानेसे चुन्ने (लघु कृमि)-से आराम हो जाता है।

५. गिल्टीका दर्द—प्याज पीसकर उसे गरम कर ले। फिर उसमें गो-मूत्र मिलाकर छोटी-सी टिकरी बना ले। उसे कपड़ेके सहारे गिल्टीपर बाँधनेसे गिल्टीका दर्द एवं गिल्टी समाप्त हो जाती है।

६. पेटके केंचुए एवं कीड़े—एक बड़ा चम्मच सेमके पत्तोंका रस एवं शहद समभाग मिलाकर प्रातः, मध्याह्न एवं सायंको पीनेसे पेटके केंचुए तथा कीड़े चार-पाँच दिनमें मरकर बाहर निकल जाते हैं।

७. छोटे बच्चों (शिशुओं)-का वमन—पके हुए अनारके फलका रस कुनकुना गरम करके प्रातः, मध्याह्न एवं सायंको एक-एक चम्मच पिलानेसे शिशु-वमन अवश्य बंद हो जाता है।

८. सरलतापूर्वक प्रसवके लिये—हींग भूनकर चूर्ण बना ले, चार माशा शुद्ध गो-घृतमें मिलाकर खिलानेसे सरलतापूर्वक प्रसव होनेमें सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त एक तोला राईके चूर्णमें भुनी हुई हींगका चूर्ण मिलाकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे मूढगर्भ (गर्भमें मरा हुआ बच्चा) आसानीसे बाहर आ जाता है।

९. कब्ज दूर करनेहेतु—एक बड़े साइजका नीबू काटकर रात्रिभर ओसमें पड़ा रहने दे। फिर प्रातःकाल एक गिलास चीनीके शरबतमें उस नीबूको निचोड़कर तथा शरबतमें नाममात्रका काला नमक डालकर पीनेसे कब्ज निश्चितरूपसे दूर हो जाता है।

१०. आगसे जल जानेपर—कच्चे आलूको पीसकर रस निकाल ले, फिर जले हुए स्थानपर उस रसको लगानेसे आराम हो जाता है। इसके अतिरिक्त इमलीकी छाल जलाकर उसका महीन चूर्ण बना ले, उस चूर्णको गो-घृतमें मिलाकर जले हुए स्थानपर लगानेसे आराम हो जाता है।

११. कानकी फुंसी—लहसुनको सरसोंके तेलमें पकाकर, उस तेलको सुबह, दोपहर और शामको कानमें दो-दो बूँद डालनेसे कानके अंदरकी फुंसी बह जाती है अथवा बैठ जाती है, दर्द समाप्त हो जाता है।

१२. कुकुर-खाँसी—फिटकरीको तवेपर भून ले और उसे महीन पीस ले। तत्पश्चात् तीन रत्ती फिटकरीके चूर्णमें समभाग चीनी मिलाकर सुबह, दोपहर और शामको सेवन करनेसे कुकुर-खाँसी ठीक हो जाती है।

१३. पेशाबकी कड़क तथा जलन—ताजे करेलेको महीन-महीन काट ले। पुनः उसे हाथोंसे भली प्रकार मल दे। करेलेका पानी स्टील या शीशेके पात्रमें इकट्ठा करे। वही पानी पचास ग्रामकी खुराक बनाकर तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) पीनेसे पेशाबकी कड़क एवं जलन ठीक हो जाती है।

१४. फोड़े—नीमकी मुलायम पत्तियोंको पीसकर गो-घृतमें उसे पकाकर (कुछ गरमरूपमें) फोड़ेपर हलके कपड़ेके सहारे बाँधनेसे भयंकर एवं पुराने तथा असाध्य फोड़े भी ठीक हो जाते हैं।

१५. सिरदर्द—सोंठको बहुत महीन पीसकर बकरीके शुद्ध दूधमें मिलाकर नाकसे बार-बार खींचनेसे सभी प्रकारके सिरदर्दमें आराम होता है।

१६. पेशाबमें चीनी (शक्कर)—जामुनकी गुठली सुखाकर महीन पीस डाले और उसे महीन कपड़ेसे छान ले। अठन्नीभर प्रतिदिन तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) ताजे जलके साथ लेनेसे पेशाबके साथ चीनी आनी बंद हो जाती है। इसके अतिरिक्त ताजे करेलेका रस दो तोला नित्य पीनेसे भी उक्त रोगमें लाभ होता है।

१७. सर्प काटनेपर—नीमका बीज, काली मिर्च एवं लाल रंगवाला सेंधा नमक सम (बराबर)-मात्रामें पीसकर एक तोलाभर लेकर शुद्ध गो-घृतके साथ लेनेसे सर्पविष निश्चितरूपसे उतर जाता है।

सर्प काटनेकी पहचान—यदि सर्पके काटनेकी आशंका हो तो उसके पहचानहेतु काटे हुए स्थानपर नीबूका रस लगा दे। यदि वह स्थान काला (साँवला) पड़ जाय तो यह समझ ले कि सर्पने काटा है, अन्यथा समझे कि सर्पने नहीं काटा है।

१८. बिच्छूके काटने (डंक मारने)-पर—

(क) शुद्ध शहदके साथ लाल मिर्च पीसकर डंकवाले स्थानपर लगानेसे बिच्छूका विष उतर जाता है।

(ख) डंक मारे गये स्थानपर खटाई एवं लहसुन पीसकर लगानेसे लाभ होता है।

(ग) शहदमें लाल मिर्च पीसकर उस स्थानपर लेप करनेसे बिच्छूका विष तुरंत उतर जाता है।

(घ) जहाँपर बिच्छूने डंक मारा हो, वहाँ मिट्टीका तेल मलनेसे जहर उतर जाता है।

१९. मस्तिष्ककी कमजोरी—मेंहदीका बीज अठन्नीभर पीसकर शुद्ध शहदके साथ प्रतिदिन तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) सेवन करनेसे मस्तिष्ककी कमजोरी दूर हो जाती है और स्मरणशक्ति ठीक होती है तथा सिरदर्दमें भी आराम हो जाता है।

२०. अधकपारीका दर्द—तीन रत्ती कपूर तथा मलयागिरि चन्दनको गुलाबजलके साथ घिसकर (गुलाबजलकी मात्रा कुछ अधिक रहे) नाकके द्वारा खींचनेसे अधकपारीका दर्द अवश्य समाप्त हो जाता है।

२१. खूनी दस्त—दो तोला जामुनकी गुठलीको ताजे पानीके साथ पीस-छानकर, चार-पाँच दिन सुबह एक गिलास पीनेसे खूनी दस्त बंद हो जाता है। इसमें चीनी या कोई अन्य पदार्थ नहीं मिलाना चाहिये।

२२. जुकाम—एक पाव गायका दूध गरम करके उसमें बारह दाना काली मिर्च एवं एक तोला मिस्त्री—इन दोनोंको पीसकर दूधमें मिलाकर सोते समय रातको पी ले। पाँच दिनमें जुकाम बिलकुल ठीक हो जायगा अथवा एक तोला मिस्त्री एवं आठ दाना काली मिर्च ताजे पानीके साथ पीसकर गरम करके चायकी तरह पीये और पाँच दिनतक स्नान न करे।

२३. मन्दाग्नि—अदरकके छोटे-छोटे टुकड़े करके नीबूके रसमें डालकर और नाममात्रका सेंधा नमक मिलाकर शीशेके बरतनमें रख दे। पाँच-सात टुकड़े नित्य भोजनके साथ सेवन करे। मन्दाग्नि दूर हो जायगी।

२४. प्रसूतके लिये—एक छटाँक नये कुशाकी जड़, चावलके धुले हुए एक गिलास पानीमें पीसकर कपड़ेसे छान ले। इस जलको सुबह, दोपहर एवं शामको पिलानेसे अवश्य लाभ हो जाता है।

२५. उदर-विकार—अजवाइन, काली मिर्च एवं सेंधा नमक—इन तीनोंको एकमें ही मिलाकर चूर्ण बना ले। ये तीनों बराबर मात्रामें होने चाहिये। इस चूर्णको प्रतिदिन नियमितरूपसे रातको सोते समय गरम जलके साथ सेवन करनेसे (मात्रा अठन्नीभर) सभी प्रकारके उदर-रोग दूर हो जाते हैं।

(२६) मोटापा दूर करना—एक नीबूका रस एक गिलास जलमें मिलाकर प्रतिदिन खालीपेट पीनेसे मोटापा दूर हो जाता है। ऐसा तीन महीनेतक निरन्तर करना चाहिये। गरमी एवं बरसातके दिनोंमें यह प्रयोग विशेष लाभदायक होता है।

(२७) पागल कुत्तेके काटनेपर—

(क) जहाँपर पागल कुत्तेने काटा हो, वहाँ इक्कीस दिनतक आक (मदार)-का दूध लगाता रहे और घावको भरने न दे। इससे कुत्तेका जहर जाता रहेगा और कुछ दिनों बाद घाव भी भर जायगा।

(ख) घावके ऊपर कुकरोंधा पीसकर लगानेसे विष प्रभावहीन हो जायगा और घाव भी ठीक हो

जायगा। ऐसा ग्यारह दिनोंतक करना आवश्यक है।

(ग) बाजरेका फूल एक माशा पीसकर गुड़में मिलाकर सात दिनोंतक लगातार, दिनमें दो बार खानेसे कुत्तेका जहर समाप्त हो जाता है।

(घ) कैथके ग्यारह हरे पत्ते और ग्यारह दाने काली मिर्च पीसकर छान ले, जो फोक बचे उसे घावके स्थानपर लगाये। सात दिनोंतक ऐसा करते रहनेपर जहरका प्रभाव पूरी तरह समाप्त हो जायगा और घाव भी ठीक हो जायगा।

(२८) छिपकलीके काटनेपर—

(क) काटी हुई जगहपर शुद्ध सरसोंके तेलमें गोबरके कंडेकी राख मिलाकर लगानेसे छिपकलीका विष पूर्णरूपेण प्रभावहीन हो जाता है।

(ख) काटी हुई जगहपर केसर और गरम जल मलनेसे अवश्य लाभ होता है।

(२९) भूलनेकी बीमारी—

(क) पाँच बादाम एवं ग्यारह दाने काली मिर्च पीसकर नाममात्र चीनी मिलाकर आधा गिलास जल एवं एक कप दूध (गाय या भैंस)-के साथ प्रतिदिन सुबह पीनेसे भूल जानेकी बीमारी दूर हो जाती है।

(ख) बासी मुँह सुबह, शामका रखा हुआ ताँबेके पात्रमें पानी पीनेसे स्मरण-शक्तिमें वृद्धि होती है।

(३०) ओठ फटना—(क) नाभि एवं ओठपर मक्खन तथा नमक मिलाकर लगानेसे ओठोंका फटना बंद हो जाता है।

(ख) घीमें मोम मिलाकर ओठोंपर लगानेसे ओठ मुलायम होते हैं और फटते नहीं हैं।

(३१) बालोंको बढ़ाना—(क) नीबूके रसमें आँवला बारीक पीसकर बालोंकी जड़ोंमें लगानेसे बाल बहुत ही जल्द बढ़ते हैं।

(ख) बेरके पत्ते एवं सीताफलके बीज जलके साथ बारीक पीसकर बालोंकी जड़ोंमें लगानेसे बाल शीघ्र बढ़ने लगते हैं।

—श्रीशिवनाथजी दूबे
ए० १/३३ शीशमहल कॉलोनी
कमच्छा, वाराणसी-२२१०१०

घरेलू दवाएँ

(१) रूसी—सिरमें रूसी (डेण्ड्रफ) हो जाती है तो प्राय: अनेक उपचारोंसे ठीक नहीं हो पाती। बालोंपर श्वेत अथवा मटमैले रंगके अत्यन्त तनु (ब्लेडकी धार-जैसे) सूक्ष्म पत्रक चिपके रहते हैं अथवा कंघीसे झड़ते रहते हैं। अनेकों उपचारोंसे यह रोग जड़से नहीं मिटता है। ऐसे रोगियोंपर निम्न चिकित्साविधि अपनायी गयी—

(क) प्रथम किसी भी प्रकारके साबुनका प्रयोग सिर, चेहरे तथा गर्दनपर बंद कर दे।

(ख) १०-१५ दिन सिरको रीठेके पानी या सत शिकाकाईसे धोना चाहिये।

(ग) इसके बाद दहीके मथितसे सिरके बालोंमें भलीभाँति अभ्यङ्ग कराया जाय। यह क्रिया १०० दिनतक करे। न हो सके तो ९० दिनतक अवश्य करे।

(घ) मस्तक, चेहरे और गर्दनको स्नानसे पूर्व ग्लिसरीन तथा गुलाबजल समभाग लेकर चुपड़कर ५ मिनट बाद धोना चाहिये। उसके बाद दहीके मथितसे सिरका अभ्यङ्ग करे। इस विधिके प्रयोग करनेसे परिणाम अच्छा आया है।

(२) कुकुरखाँसी—कुकुरखाँसीमें केलेके पत्तोंकी राख बनाकर शरद्-ऋतुमें शहदके साथ तथा ग्रीष्म-ऋतुमें नमक मिलाकर चटाये। शीघ्र लाभ होगा।

(३) पथरी—पथरीमें पपीतेकी जड़ ६ माशा, १ छटाँक जलके साथ पीसकर, छानकर प्रात: २१ दिन पीनेसे पथरी गलकर निकल जाती है।

(४) सुखंडीरोग—बच्चोंके सुखंडीरोगपर निम्न

औषधका प्रयोग करे—स्वर्णमालिनी वसन्त १/८ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, जहरमोहरा पिष्टी १ रत्ती, वंशलोचन १ रत्ती, इलायची-बीज-चूर्ण १/२ रत्ती। सुबह-शाम दोनों समय एक-एक खुराक शहदके साथ चटाये।

भोजनके बाद अरविन्दासव या कहरवासखी सायरण बराबर पानीके साथ पिलाये, (१-१ तोला) लाल तेल या शंखपुष्पी-तेलकी मालिश करे। गरम जलसे नहलाये। यह सुखंडीरोगपर परीक्षित योग है।

(५) सूखारोग—बाल-सूखारोग होनेपर—

(क) काली गौका मूत्र लेकर फिल्टर करे और एक बोतलमें डाल दे। १ तोला असली काश्मीरी केसर लेकर उसमें हल कर दे। प्रातः-सायं १ तोला बच्चेको प्रयोग कराये।

(ख) वंशलोचन, अतीस मीठा, पीपल बड़ी, छोटी इलायचीके दाने, नागरमोथा, रूमी मस्तगी १-१ तोला, मिबि ६ माशा—सभी औषधियोंका चूर्ण करके शीशीमें भर ले। २ रत्तीकी मात्रामें मधुसे दिनमें तीन बार दे, गौका दूध पीनेके लिये दे।

गुण—सूखारोग, अतिसार, वमन, अफारा, पेटकी ऐंठन, मरोड़ आदि समस्त बालरोग दूर करता है।

(६) त्रिफला कल्प—हरड़, बहेड़ा, आँवला समभाग चूर्ण त्रिफला है—

त्रिफला-चूर्ण ३ ग्राममें १ ग्राम तिल-तेल तथा ६ ग्राम मधु मिलाकर सुबह खाली पेट एवं रातको सोते समय ले, इससे पेट और धातुके समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

कायाकल्पके लिये उपर्युक्त प्रयोगको १ वर्षतक निरन्तर धैर्यपूर्वक करना चाहिये। इसके सेवनसे उदररोग, चर्मरोग, कास-श्वास, पुरानी कब्ज आदिका नाश होकर शरीर शक्तिशाली एवं कान्तिमान् होता है।

(७) दमेपर अनुभूत प्रयोग—लोग कहते हैं कि दमा दमके साथ जाता है, परंतु नीचे लिखा दमेका नुस्खा एक सफल परीक्षित प्रयोग है—

मादरका फूल १ तोला, छोटी पीपर $\frac{१}{२}$ तोला, कटेरी-पुष्प एक तोला, मुलहठी सत्त्व १ तोला।

उपर्युक्त चारों द्रव्योंको बारीक पीसकर धूपमें सुखा ले, तत्पश्चात् उचित मात्रामें शहदके साथ घोटकर गोलियाँ बना ले।

दौरेके समय दो गोली गुनगुने पानीके साथ निगल ले। कुछ ही क्षणोंमें दौरा शान्त हो जायगा।

दमेके मरीजको खट्टा, तीखा एवं कड़वा पदार्थ नहीं खाना चाहिये।

(८) ततैयाका विष—ततैयाके काटनेपर पीले कागजको पानीमें भिगोकर लगाये या नौसादर तथा चूना मिलाकर मल दे।

(९) मकड़ीविष—मकड़ीके विषपर नीबूके रसमें चूना पीसकर लगा दे।

(१०) प्रसवकष्ट—भैंसके गोबरका रस २ तोला लेकर, भैंसके पावभर दूधमें मिलाकर पिलानेसे प्रसवकष्ट तथा मूढगर्भमें सत्वर लाभ होता है।

(११) मस्सेपर—मुखमण्डल, हाथ-पैर आदि स्थानोंपर मस्से (मांसांकुर) हो जानेपर चूना तथा सफेद सज्जी बराबर मात्रामें मिलाकर साबुनके पानीमें गलाकर मस्सेके ऊपर नित्य रखे। २-३ दिनमें ही मस्से कटकर गिर जायँगे, किंतु उस स्थानपर हलका काला दाग पड़ सकता है।

(१२) टान्सिल बढ़ जानेपर, गलेमें दर्द होनेपर—गर्म पानीमें फिटकरी, नमक डालकर गरारे करनेसे शीघ्र लाभ होता है।

(१३) खाँसी—अड़ूसेके पत्तेका रस १-१ तोला प्रातः-सायं सेवनसे शीघ्र लाभ होता है।

(१४) कर्णपाक—हल्दी तथा भूनी फिटकरी समभागमें लेकर महीन पीसकर डालनेसे शीघ्र लाभ होता है।

(१५) जलके विशेष सम्पर्कसे हाथ-पैरोंकी अँगुलियाँ गलनेपर—मेहँदीपत्र १ तोला और हल्दी ६ माशा— दोनोंको पीसकर दिनमें दो बार लगानेसे ३ दिनमें पूर्ण लाभ हो जाता है।

[श्रीप्रयागनारायणजी तिवारी, ओऽम् चिकित्सालय, आर० के० रोड, सिरपुर कागजनगर, पिन-५०४२९६ (ए० पी०)]

दादी माँके गुप्त सिद्ध-प्रयोग

(१) आधासीसी-नाशक तेल

शतावरकी ताजी जड़ कूटकर उसका अर्क निचोड़ ले, फिर उसके बराबर तिलका तेल मिलाकर मंदी आँचपर पकने दे। तेल मात्र रहनेपर प्रात:समय उससे सिरमें मालिश करे और सूँघे। दो दिनके प्रयोगसे आधासीसी दूर हो जाती है। स्वानुभूत प्रयोग है।

(२) मुखकी झाँइयाँ

कुलिजल पानीमें पीसकर चार-पाँच दिन लगानेसे त्वचाके भीतरकी स्याहीको खींचकर दूर करता है। इसके बाद चावल पीसकर मुँहपर मर्दन करे ताकि त्वचाकी रंगत बराबर हो जाय। लाभदायक सरल सिद्ध प्रयोग है।

(३) सभी प्रकारके बुखार तथा मलेरियामें

फिटकरी-भस्मको पिसी हुई मिस्री या शक्करमें मिलाकर जिस समय बुखार न हो उस समय देकर फिर दूध पिला दे। ऐसा दो-तीन दिन करनेसे बुखार उतर जाता है तथा शरीर छः माहतक नीरोग हो जाता है, उसे बुखारका भय नहीं रहता है। अगर बुखारकी हालतमें यह दवा दे दी तो दवाई लेनेपर बुखार तेज हो जाता है, परंतु बुखार उतरनेपर अपना पूर्ण प्रभाव दिखाता है। इसे डॉक्टरोंने भी आजमाते हुए सराहा है।

(४) एग्ज़ीमाकी अचूक दवा

करेलेके पत्तोंका रस निकालकर गरम करे, साथ ही तेल भी उसी अनुपातमें गरम करे। फिर दोनोंको मिलाकर गरम करे। पानीकी मात्रा कम हो ज़ानेपर तेलको छानकर शीशीमें सुरक्षित रख ले। इसे एग्जीमापर लगाये, अवश्य लाभ होगा।

(५) एग्जीमाका शर्तिया इलाज

जमीनमें १ फिट गड्ढा खोदकर चूल्हा बना ले, उसमें ऊँटकी सूखी मीगनी (लेंडी) डालकर आग लगा दे, पीतलकी थालीमें पानी भरकर चूल्हेपर रखे, धीरे-धीरे थालीके पेंदेमें धुएँका काजल इकट्ठा हो जायगा। आग बुझनेपर सफाईके साथ थालीसे काजल खरोचकर इकट्ठा कर ले और साफ डिब्बीमें रख ले। उसे एग्जीमापर लगाये, इससे पुराने-से-पुराना एग्जीमा भी ठीक हो जाता है।

(६) अंगुलबेड़ा वंशाली (Unit low)-की चमत्कारी दवा

नख छोटा काटनेसे, चोट लगनेसे, जल जानेसे या विषैली वस्तुके खूनमें आ जानेसे उँगलियोंमें भयानक जलन-पीड़ा तथा सूजन हो जाती है। इसका देशी, सरल घरेलू प्रयोग इस प्रकार आजमाया हुआ है—

आक जहाँतक मिले सफेद फूलवाला या समयपर जो भी उपलब्ध हो, उसके दूधको अंगुलबेड़ापर लगा दे तथा उसके ऊपर सर्पकी केंचुली चिपका दे। लगाते ही जलन और पीड़ा शान्त हो जायगी। एक-दो बार लगानेसे बीमारी दूर हो आराम हो जायगा।

(७) हृदय-रोगके साथ दिलकी धड़कन तथा जीर्ण ज्वरके लिये अमृततुल्य चूर्ण

१-वंशलोचन १० ग्राम, २-रूमी मुस्तगी ५ ग्राम, ३-गिलोयसत १० ग्राम, ४-हरी इलायची ५ ग्राम, ५-प्रवालभस्म ५ ग्राम, ६-मिस्री ५० ग्राम—इन्हें पीसकर अच्छी तरह मिलाकर साफ शीशीमें रख ले। एक-एक चम्मच दूधके साथ लेते रहे। यह महिलाओंके लिये भी विशेष लाभप्रद है।

(८) शिरोभ्रमकी उत्तम औषधि

काली मिर्च १ तोला दरदराकर घृतमें तल ले। उतारकर निकाल ले तथा बचे हुए घीमें ५ तोला गेहूँका आटा डालकर सेक ले। सिक जानेपर नीचे उतार ले और उसमें गुड़ या शक्कर जो पसन्द हो, मिला ले। इसमें उस काली मिर्चको भी मिलाकर रख ले तथा तीन-चार दिन प्रात:काल भोजनसे पूर्व लेता रहे। लाभ होगा।

(९) हल्दीका प्रयोग

जीर्ण ज्वरमें देहमें कफकी वृद्धि हो जाती है। सभी प्रकारके कफके लिये दादी माँ यह प्रयोग करती थी—

काली मिर्च, पीपल, तुलसी-पत्र, बिल्व-पत्र, दालचीनी करीब ४-४ रत्ती पानीमें पीसकर कांस्यकी कटोरी या अभावमें पीतलकी कलईवाली कटोरीमें २ रत्ती पिसी हुई हल्दी डालकर गरम कर पिलाते रहनेसे कफ-वृद्धि रुककर ज्वरमें राहत होती है।

कु० सपना बेन महेन्द्र सिंहजी जागीरदार
४६, जयवीर नगर सोसायटी, बस स्टैण्डके पास, पाटन-३८४२६५

सफेद दागका नुस्खा

शरीरमें अचानक ही विभिन्न स्थानोंपर धीरे-धीरे सफेद चिह्न निकलते-निकलते पूरी तरहसे फैलने लगते हैं। यदि प्रारम्भमें ही उपयुक्त उपचार नहीं किया जाता है तो यह रोग शरीरके समस्त चर्मको श्वेत चिह्नोंके रूपमें परिवर्तित कर देता है। यह बहुत बुरा रोग है और जड़ पकड़नेपर इसे नियन्त्रित करना कठिन हो जाता है। इसका उपचार सरल नहीं है, बल्कि दीर्घगामी है।

रोगके कारण—(क) सामान्य रूपसे जब शरीरमें मेलिननकी कमी हो जाती है तो चमड़ी सफेद होने लगती है। **(ख)** सदा क़ब्ज़ रहने, पेचिश, संग्रहणी, हृदय निर्बल, अतड़ियाँ खराब होनेपर सफेद दाग हो जाते हैं। **(ग)** दिमागपर अधिक बोझ पड़नेपर भी यह रोग हो जाता है। **(घ)** मांसाहारियोंको यह अधिक हो सकता है।

उपचार—यह रोग अत्यन्त पेचीदा और दुष्प्रवृत्तिका है, परंतु साध्य है। नियमितरूपसे खान-पानमें पूरा नियन्त्रण रखनेसे, चिह्नोंपर दवाओंका प्रयोग करनेसे धीरे-धीरे श्वेत चिह्न समाप्त हो जाते हैं।

१. खान-पानपर नियन्त्रण—(१) भोजन, साग-सब्जी, दालों और फलों आदिके सेवन करनेमें सभी प्रकारके नमकका परित्याग करना परम आवश्यक है, तभी दवाओंका उपयोग सार्थक एवं प्रभावी हो सकेगा। नमकका प्रयोग या नमकमिश्रित पदार्थों एवं द्रव्यों—रसोंका परित्याग करना अति आवश्यक है, (२) केला (हरा), करेला, लौकी, तोरई, सेम, सोयाबीन, पालक, मेथी, चौलाई, टमाटर, गाजर, परवल, मूली, शलजम, चुकन्दर आदिको बिना नमकके प्रयोग करे, (३) दालोंमें केवल चनेकी दाल नमकरहित प्रयोग करे, (४) गाजर, पालक, मौसमी, करेलाका रस नमकरहित अधिकतर पीये। बथुएका [illegible] प्रतिदिन पीना भी लाभकारी है, (५) चनेकी रोटी [illegible]करहित) देशी घी और बूरेके साथ खाये तथा [illegible]ने हुए, उबले हुए चने नमकरहित प्रयोग करें।

[illegible] **खानेकी औषधि**—अनारके पत्तोंको छायामें सुखाकर बारीक करके पीस ले और प्रातः १० ग्राम तथा रातको सोते समय १० ग्राम प्रतिदिन ताजे पानी या गायके दूधके साथ सेवन करे। **अथवा**—बावचीके बीज भिगोकर नियमित रूपसे प्रातः-रातको इसके पानीका सेवन करे और बीज घिसकर दागोंपर लेप करें। **अथवा**—माणिक्य भस्म आधा रत्ती नियमितरूपसे प्रातः तथा सायं शहदके साथ प्रयोग करे। **अथवा**—पिगमेन्टकी दो-दो गोलियाँ प्रातः, दोपहर तथा सायंकालमें सेवनीय हैं।

३. दागोंपर लगानेकी औषधि—दो तोला बावचीके भिगोये हुए बीजोंको पीसकर प्रातः-सायं अर्थात् दो बार प्रतिदिन प्रयोग करे। **अथवा**—बथुएका रस एक गिलास और आधा गिलास तिलका तेल कड़ाहीमें गर्म करे तथा बथुएका रस जलनेपर तेलको शीशीमें रखे एवं प्रतिदिन प्रातः-सायं दागोंपर लगायें। **अथवा**—बावचीके तेल—रोगन प्रातः-सायं सफेद दागोंपर लगाये। **अथवा**—उड़दकी दालको पानीमें पीसकर या लहसुनके रसमें हरड़ घिसकर सफेद दागोंपर प्रातः-सायं लगाये। **अथवा**—हल्दी १५० ग्राम, स्प्रिट ६०० ग्राम मिलाकर धूपमें रखकर दिनमें तीन बार चिह्नोंपर लगाये। **अथवा**—तुलसीके पौधेको जड़सहित उखाड़कर पानीसे साफकर सिलपर बारीक पीस ले और इसे आधा किलो तिलके तेलमें मिलाकर कड़ाहीमें डालकर धीमी आगपर गर्म करे। जब पक जाय, तब छानकर किसी बरतनमें रखे और दिनमें तीन बार दागोंपर लेप करे। **अथवा**—बेहयाके पौधेको उखाड़नेपर निकले हुए दूधका लेप नियमितरूपसे दिनमें दो बार करे। अनार तथा नीमके पत्ते पीसकर प्रातः-सायं दागोंपर लेप करे।

विशेष—खान-पानमें चीनी, गुड़, दूध, दही, अचार, तेल, डालडा, मट्ठा, रायता, अवलेह, पाक आदिका प्रयोग भी वर्जित है।

[श्रीराजपालसिंहजी सिसौदिया,
रिटा० वित्त एवं लेखाधिकारी ४/३९ केलानगर,
सिविल लाइन्स, अलीगढ़ , (उ० प्र०) पिन-२०२००१]

अनुभूत घरेलू नुस्खे

(संकलन—श्रीराजकुमारजी माखरिया)

१. खाँसी आनेपर काली मिर्चका चूर्ण बनाकर मधुके साथ चाटनेसे बहुत लाभ होता है। कफ निकल जानेसे आराम मिलता है।

२. तेजपत्रकी छाल, छोटी पीपलका चूर्ण बनाकर मधुके साथ सेवन करनेसे खाँसीमें बहुत लाभ होता है।

३. तुलसीकी मंजरी, प्याजका रस और सोंठका चूर्ण मिलाकर मधुके साथ सेवन करनेसे खाँसी शीघ्र नष्ट होती है।

४. नीचे लिखे पदार्थोंको पीसकर चने बराबर गोली बनाकर खानेसे खाँसीमें लाभ होता है—

तुलसीका पत्ता-१० ग्राम, पिप्पली-१० ग्राम, कत्था-१० ग्राम, काली मिर्च-१० ग्राम, अनारदाना-२० ग्राम, जवाखार-५ ग्राम, गुड-१०० ग्राम।

५. सर्दी-जुकाम होनेपर एक कप दूधमें एक चम्मच हल्दी डालकर गर्म करे और शक्कर मिलाकर पीये। एक-दो दिनमें आराम हो जायगा।

६. अदरकके छोटे टुकड़ोंको एक कप पानीमें उबालकर उसमें एक चम्मच शक्कर मिलाकर पीनेसे जुकाममें आराम मिलता है।

७. गलेमें दर्द—काफी देरतक ऊँचे और तेज स्वरमें बोलने एवं गानेसे या फिर अधिक थकावटके कारण गला दुखने लगता है। इसके उपचारके लिये तुलसीका रस एक चम्मच और एक चम्मच शहद मिलाकर चाटे। अदरकके टुकड़ोंको लौंग और नमककी डलीके साथ सेवन करनेसे गलेकी आवाज खुल जाती है।

८. कब्जियतकी शिकायत हो तो रात्रिमें सोते समय आँवलेका चूर्ण शहदके साथ ले। सुबह उठकर ताँबेके बर्तनमें रखा पानी पीना चाहिये। भुने हुए चने छिलकेसहित एवं रेशेदार सब्जियाँ खाये।

९. प्रतिदिन भोजनके बाद एक लौंग मुँहमें रखकर चूसनेसे मुँहसे बदबू नहीं आती है।

१०. कानमें दर्द होनेपर अदरकके रसको कानमें एक या दो बूँद डालनेसे कानके दर्दमें आराम मिलता है।

११. मुँहमें छाले हों तो काली मिर्च और किशमिश मिलाकर धीरे-धीरे दिनमें ४-५ बार चबाये। जीरा और बड़ी इलायची बराबर मात्रामें लेकर पीसे और दिनमें दो-तीन बार एक चम्मच ले, मुँहके छाले दूर हो जायँगे। बेलका गूदा निकालकर पानीमें उबालकर थोड़ा ठंडा होनेपर कुल्ले करे। मुँहके छाले दूर हो जाते हैं।

१२. टमाटरके रसमें ताजा पानी मिलाकर कुल्ला करनेसे मुँह और जीभके छाले दूर हो जाते हैं।

१३. छोटे बच्चोंके पेटमें दर्द होनेपर पानीमें हींग पीसकर नाभिपर लगाये।

१४. यदि बच्चेके पैरमें काँटा चुभ गया हो और नहीं निकल रहा हो तो गुड़में अजवाइन मिलाकर उस स्थानपर लगा दे, काँटा अपने-आप बाहर निकल जायगा।

१५. रातको सोते समय दो चम्मच ईसबगोलकी भूसी फाँककर कुनकुना दूध पीनेसे प्रातः खुलकर शौच होगा।

१६. पेटमें मरोड़ होकर दस्त आनेपर समान मात्रामें लाल मिर्च, कपूर और हींगकी गोली बनाकर खायें, तुरंत लाभ होगा।

१७. रतौंधी—काली मिर्चको गीले कपड़ेमें रख दें। जब यह फूल जाय तो छिलका उतारकर तुलसीके रसमें महीन पीसकर छोटी-छोटी गोलियाँ बना ले। इस गोलीको सुबह-शाम घिसकर आँखमें लगाये।

१८. प्याजके रसको पैरके तलवेपर लगानेसे गरमीके मौसमका सिरदर्द दूर होता है।

१९. जलनेपर जले हुए अङ्गको तुरंत पानीमें डुबो देवे और जबतक दर्द दूर न हो जाय तबतक डुबाये रखे।

२०. गरमीके कारण छाले होनेपर एक चम्मच त्रिफला (हरड़, बहेड़ा तथा आँवला)-चूर्ण लेकर उसे एक मिट्टीके सकोरेमें डाले तथा सकोरा ताजा

पानीसे भरकर किसी कपड़ेसे ढककर रात्रिमें खुली जगह रख दे। प्रातः इसे कपड़ेसे छानकर पी ले। इसी तरह प्रातः त्रिफलाचूर्ण भिगोये, रात्रिमें सोते समय पीकर सो जाय। ऐसे प्रयोगसे दो-तीन दिनमें ही छाले मिट जायँगे।

२१. सूर्यके उदय होनेके साथ बढ़नेवाले और सूर्यके उतरनेके साथ हलका होनेवाले सिरदर्द (आधासीसी)-में सूर्य-उदयसे पहले ३-४ दिनतक प्रतिदिन गायका दही और भात खानेसे लाभ होता है।

२२. आँवके दस्त होते हों, पेटमें मरोड़ चलती हो तो केवल दही-भात खानेसे दस्तोंमें आराम होते देखा गया है। यदि दस्त और बुखार दोनों साथ हो तो दही न खाये।

२३. अगर बहुत प्यास लगती हो तो एक पुरानी ईंटको खूब धोकर साफ कर ले। आगमें तपाकर गर्म करे। जब ईंट एकदम लाल हो जाय तो उसे गायके दहीसे बुझा दे, यही दही थोड़ा-थोड़ा खाये। इस दहीसे प्यासमें आराम मिलता है।

२४. गला बैठ जाय या सूज जाय तो ताजा पानीमें नीबू निचोड़कर गरारे करनेसे लाभ होता है।

२५. जीरेको उबालकर उस पानीसे मुँह धोनेपर मुखपर निखार आ जाता है।

२६. नीबूके रसकी सिरमें मालिश करनेसे बालोंका पकना और गिरना बंद हो जाता है।

२७. सूखे आँवलेको रातमें भीगनेके लिये छोड़ दे। प्रातः इस पानीसे सिर धोये। इससे बालोंकी जड़ मजबूत होती है।

२८. विषैले जन्तु, मधुमक्खी, विषैले कीड़े, बिच्छू आदिके काट लेनेपर प्याज पीसकर लेप करनेसे लाभ होता है।

२९. मधुमेहका रोगी अगर नित्य सुबह-शाम लम्बी दौड़ लगाये तो बिना औषधिके पेशाबमें चीनी आना बंद हो सकती है।

३०. शौच करते वक्त दाँतोंसे दाँत खूब दबाकर बैठनेसे दाँत नहीं हिलते और मजबूत होते हैं।

३१. हाथ-मुँह धोते समय मुँहमें एक घूँट पानी रखकर आँखोंमें पानीके छींटे दे। इससे आँखोंकी रोशनी बढ़ती है।

३२. यदि नवजात शिशु कुछ श्यामवर्णका है तो नित्यप्रति उसे चिरौंजीका उबटन लगाये। इससे अवश्य लाभ होगा, उसका रंग-रूप निखर जायगा। रोयें भी कम हो जायँगे। उबटनमें कुछ बूँदें जैतूनके तेलकी मिलाये।

३३. यदि एग्जिमा हो गया है तो उसपर अखरोटकी गिरीका तेल सुबह-शाम लगानेसे खुजली व जलनमें आराम मिलता है। अखरोटकी गिरीका तेल किसी अच्छे पंसारी या इत्रफरोशकी दूकानमें मिल जायगा।

३४. यदि बच्चेको खाँसी आ रही हो तो उसे अखरोटकी गिरी तवेपर भूनकर खिलाइये। अधिक अखरोट खिलानेसे गलेमें खारिश हो सकती है।

३५. यदि मसूड़ेसे सम्बन्धित कोई सामान्य रोग हो तो चार-पाँच दाने पिश्ता नित्यप्रति एक सप्ताहतक खायें। शरीरको बल प्रदान करनेमें पिश्तेका कोई जवाब नहीं।

३६. कड़वे बादामका तेल लगानेसे चेहरेकी झाइयाँ और मुँहासे छूमंतर हो जाते हैं। नित्यप्रति रातको सोनेसे पूर्व चेहरेपर रूईके फाहेसे तेल चुपड़िये। बादामका तेल मस्तिष्क और वात-संस्थानको शक्ति प्रदान करता है।

३७. एक चम्मच देशी घीमें चार-पाँच दाने काली मिर्च डालकर कुछ गर्म करे तथा आवश्यकतानुसार मिस्री मिलाकर चाट ले। इसके पश्चात् कम्बल या कुछ मोटी चद्दर ओढ़कर लेट जानेसे शीतपित्त नष्ट हो जाता है।

३८. जले हुए स्थानपर शहदका लेप लगानेसे जलन शान्त होती है।

३९. घी और हल्दीका चूर्ण समान मात्रामें मिलाकर बाँधनेसे दर्दमें लाभ होता है।

४०. मुलहठी और सुहागाके चूर्णको शहदमें मिलाकर रख ले। जिन बच्चोंके दाँत निकल रहे हों उन्हें दिनमें तीन बार चटाए। दाँत बिना तकलीफके

निकलेंगे।

४१. यदि आँखोंके नीचे काले धब्बे या झुर्रियाँ पड़ जायँ तो—

(क) आँखोंके आस-पास ताजी मलाई लगाये तथा हलके-हलके मले।

(ख) शुद्ध शहद और नीबूका रस मिलाकर मले तो झुर्रियाँ दूर होंगी।

(ग) लहसुनको देशी घीमें भूनकर खाये।

(घ) काली मिर्च, गुड़ मिलाकर साथ-साथ खाये।

४२. कुलथीकी दालको उबालकर उसका पानी पीनेसे पथरीका रोग नहीं रहता। दालको खानेके प्रयोगमें लाये। सप्ताहमें एक दिन इस दालका प्रयोग करते रहनेसे पथरी होनेका डर नहीं रहता।

४३. यदि नाकसे खून गिरता (नकसीर) है तो तुलसीका रस नाकमें डालनेसे नकसीर बंद हो जाती है। आँवला बारीक पीसकर बकरीके दूधमें मिलाकर सिरपर लेप करना चाहिये। मीठी लस्सी पिये। तरबूजका प्रयोग भी लाभप्रद है। कतीरा गोंद जो पंसारीकी दूकानसे मिल जाता है, रातमें भिगोकर सुबह ठंडे पानी या दूधमें चीनी मिलाकर प्रयोग करे। इससे नकसीरका रोग दूर हो जाता है।

४४. पिसी हुई हल्दी गरम दूधमें मिलाकर सेवन करनेसे चोट, दर्द, बुखार, घाव तथा सर्दीमें लाभ होता है। घाव और चोटवाले स्थानपर सरसोंके तेलमें हल्दी मिलाकर लेप करने या पट्टी बाँध देनेसे घाव ठीक हो जाता है।

४५. प्रात:काल मूलीका प्रयोग हितकर है। दिनमें खानेसे पाचनशक्ति बढ़ती है तथा रातको खानेसे नुकसानदेह तथा जोड़ोंमें दर्द उत्पन्न करती है। मूलीके साथ जो छोटे-छोटे पत्ते लगे होते हैं, वे भी खाने चाहिये। ये मूलीको पचानेमें सहायक होते हैं।

४६. यदि त्वचामें खुश्की हो तो नीबूके रस और ग्लिसरीनको मिलाकर शरीरपर लगाये। सरसोंके तेल तथा दहीको मिलाकर लगानेसे भी त्वचाकी खुश्की दूर हो जाती है। सिरपर लगानेसे भी फायदा होता है। कुछ समय बाद सिरको साबुनसे धो डाले। इससे बालोंका गिरना और पकना बंद होकर बालोंमें निखार तथा चमकीलापन आ जाता है।

४७. यदि किसीके शरीरमें आग लग जाय तो उसे तुरंत किसी कम्बल या मोटे सूती कपड़ेसे लपेट दे अथवा भूमिपर लेटाकर लुढ़काना चाहिये। पानी डालनेसे फफोले तो अवश्य पड़ जाते हैं। पर घाव आदि गहरा नहीं होने पाता। कम्बल आदि डालनेसे फफोले तो कम पड़ते हैं पर घावकी गहराई बढ़ जाती है। लोट-पोट करा दे। कमरोंके दरवाजे, खिड़कियाँ तथा रोशनदान आदि खोल देने चाहिये।

४८. **ब्लडप्रेशर**—शिलाजीत और सर्पगन्धाका घनसत्व दोनों बराबर मात्रामें लेकर खूब घोंटकर गोलियाँ बना ले। दिनमें तीन बार दूधके साथ एक-एक गोली खानेसे लाभ होता है।

४९. **कील-मुहाँसोंके लिये**—नीबूका रस, बादामका तेल और ग्लिसरीन—तीनों समभाग लेकर शीशीमें भरकर अच्छी तरह मिलाये और प्रतिदिन प्रात:-सायं मुखपर मले। इसके निरन्तर प्रयोगसे कील, मुँहासे और झाइयाँ दूर हो जाती हैं।

५०. **बालोंका झड़ना**—कनेरकी जड़की छाल और लौकी १०-१० ग्राम प्रत्येक दूधमें पीसकर सिरपर लेप करे।

५१. **बिवाइयोंका दर्द**—१०-१० ग्राम राल और घी, तीन ग्राम मोम ले। घी गरमकर मोम मिला लें। जब दोनों एकसार हो जायँ तो राल मिला दे। रात्रिमें पैर धोकर बिवाइयोंमें इसे भर ले। कुछ दिनमें बिवाइयाँ ठीक हो जायँगी।

५२. **आँख दु:खनेपर**—५ ग्राम फिटकरी, २०० ग्राम अर्क गुलाब, फिटकरीको पीसकर अर्क गुलाबमें मिलाकर शीशी भर ले। दिनमें कई बार २-३ बूँदें आँखोंमें डालते रहे।

५३. **ओठ फटनेपर**—सेंधा नमक और घी मिलाकर दिनमें कई बार लगानेसे ओठ फटना बंद हो जायगा और कीड़े भी नष्ट हो जायँगे।

५४. **काली खाँसी**—काली खाँसी बच्चोंको बहुधा होती है। भुनी हुई फिटकरी और चीनी एक-एक रत्ती लेकर शहदमें घोलकर दिनमें दो बार चटानेसे लाभ होता है।

५५. भुनी लौंगको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे कुकुरखाँसी ठीक हो जाती है।

५६. **कब्ज**—सब्जीसे अधिक मेथी खाने या मेथीके पत्तोंकी सब्जी खानेसे कब्जसे छुटकारा मिल जाता है। पाँच-छः ग्राम सौंफका चूर्ण रात्रिमें शयनकालमें गरम जल अथवा दूधसे कुछ दिनोंतक सेवन करनेसे कब्ज दूर हो जाता है।

५७. **दाँत निकलना**—बच्चोंके दाँत निकलते समय उनके मसूड़ोंपर आँवलेका रस मलनेसे दाँत सुगमतासे निकल आते हैं। गायके दूधमें सौंफ उबालकर और छानकर बोतलमें रख लें। बच्चेको दिनमें चार-पाँच बार एक-एक चम्मच पिलानेसे दाँत सरलतासे निकल आते हैं।

५८. **कृमिरोग**—(क) दो लाल टमाटर ले। काली मिर्च, काला नमक, कलमी शोरा बारीक पीसकर कटे टमाटरपर छिड़क दे। प्रतिदिन सबेरे बासी मुँह छः दिनतक खाये। पेटके कीड़े मरकर बाहर निकल आयेंगे। आठ वर्षसे कम उम्रवाले बच्चेको आधा टमाटर ही दे।

(ख) नीमके पत्तोंका रस मधुके साथ पीनेसे उदरस्थ कृमियोंका नाश होता है।

(ग) अजवायनका तेल तीनसे सात बूँदतक देनेसे विषूचिका तथा उदर-कृमियोंका नाश हो जाता है।

(घ) पलाशके बीजोंका काढ़ा, चूर्ण या उन्हें पानीमें पीसकर गोली बना ले। सुबह १ से ३ माशा गुड़के साथ सेवन करे। एक सप्ताहके अंदर सारे कीड़े नष्ट हो जायँगे।

(ङ) एक बड़े आकारकी गाजर अथवा दो सामान्य गाजरका रस (एक छटाँक) एक हफ्तेतक पीनेसे सभी प्रकारके पेटके कीड़े मरकर बाहर निकल जायँगे। इस दौरान मीठे एवं गरम खाद्य पदार्थोंके सेवनसे परहेज रखे। उदर-कृमि तथा नासा-कृमिमें इसका नस्य प्रयोग करे।

(च) अश्वगन्धा-मूलके चूर्णकी गोली बनाकर रातको सोनेसे पहले गरम पानीके साथ खानेसे कृमिरोगसे छुटकारा पाया जा सकता है।

(छ) वायविडंगका चूर्ण २ ग्राम शहदके साथ दिनमें तीन-चार बार खानेसे कृमिरोग दूर होता है।

५९. मट्ठेके साथ गिलोय पीसकर पीनेसे बवासीरमें लाभ होता है।

६०. भोजनके बाद सौंफ और मिस्री खानेसे पाचनशक्ति और नेत्रज्योति बढ़ती है।

६१. मुलहठी चूसनेसे कफ बाहर आता है और आवाज मधुर बनती है।

६२. गाजरका रस, टमाटरका रस, संतरेका रस तथा चुकन्दरका रस मिलाकर पीनेसे कुछ महीनोंमें चेहरेकी झाँइयाँ एवं दाग दूर हो जाते हैं।

६३. सदा नीरोग रहनेके लिये प्रतिदिन रातको सोते समय एक या दो हर्रे पानीके साथ निगले। इससे क़ब्ज़ तथा उदरके अन्य रोग नहीं होंगे।

६४. अगर इंफ्लुएंजा है तो रोगीको एक चम्मच प्याजका रस और दो चम्मच शहद मिलाकर दिनमें तीन बार देनेसे आराम मिलेगा।

६५. अगर उबकाई आती है तो हींगको घीमें भूनकर अजवायन, बीजरहित मुनक्का, काला नमक तथा काली मिर्च कूट-पीसकर दो ग्रामकी मात्रामें फाँककर ताजा पानी पिये।

६६. अगर हृदय खराब है तो लाल टमाटर चाकूसे काटकर नित्य खाये। जिगरकी समस्त बीमारियाँ दूर होंगी।

६७. जो बच्चा तुतलाता है उसे बादामकी गिरी मक्खन और मिस्रीके साथ एक सप्ताहतक दे।

६८. अगर माँका दूध नहीं उतरता है तो पपीता और अंगूर खिलाये।

६९. जिस बच्चेको खसरा निकला हो उसे सारे दिन किशमिश खिलाये। यह खसरेकी चमत्कारी औषधि है।

७०. अपामार्गके बीजका चूर्ण एक भाग और चीनी एक भाग, दोनोंको मिलाकर दो-दो तोले सुबह-शाम सेवन करनेसे बवासीरसे मुक्ति मिल जाती है।

७१. गायके घीमें भुने हुए हर्रे लेकर उसमें पिप्पलीका चूर्ण और गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे दस्त तथा बवासीरमें लाभ पहुँचता है।

७२. समान मात्रामें नीबू और तुलसीका रस मिलाकर पूरे चेहरेपर लेप करे। तीन सप्ताहतक लगातार ऐसा करनेसे मुँहासे गायब हो जायँगे।

७३. तुलसीके रसमें शहद मिलाकर प्रातः-सायं सलाईसे आँखोंमें लगाये। मोतियाबिंदका जाला कच्चा होगा तो कटकर निकल जायगा और अगर पकने लगा होगा तो पकाकर काट देगा।

७४. सर्दी-जुकामकी वजहसे होनेवाले सिरदर्दसे छुटकारा पानेके लिये गुनगुने पानीमें पैर डालकर लगभग आधे घंटे बैठे रहे, दर्द दूर हो जायगा।

७५. यदि रोगी पथरीसे तड़प रहा है और दर्द दूर नहीं हो पा रहा है तो आमके ताजे पत्तोंको सुखाकर उन्हें पीसकर चूर्ण बना ले। इस चूर्णको गरम जलके साथ दिनमें तीन-चार बार फाँक ले। दर्द तो दूर होगा ही, सामान्य पथरी भी पेशाबके साथ बाहर निकल जायगी।

७६. मेहँदीके फूलोंको पीसकर लेप करनेसे शूलका दर्द दूर हो जाता है।

७७. रातको एक बड़ा चम्मच उरदकी दाल भिगो दे। सुबह इसे पीसकर दूध-मिस्री मिलाकर पीना मस्तिष्कके लिये लाभदायक है।

७८. दिनके भोजनके बाद नित्य मट्ठा पीनेसे अधिकतर रोग ठीक हो जाते हैं। गरमीके मौसममें तथा आश्विन और कार्तिकमें मट्ठा नहीं पीना चाहिये। जिस व्यक्तिका खून पित्त-कारक हो या जिसे मिरगीकी शिकायत हो, उसे मट्ठा नहीं पीना चाहिये। मट्ठा पीनेका सबसे अच्छा मौसम जाड़ेका है।

७९. शङ्खपुष्पीका रस मधुके साथ चाटनेसे सभी तरहके उन्माद-विकारमें बहुत लाभ होता है।

८०. हिस्टीरियाके दौरेमें हींग सुँघानेसे होश आ जाता है।

८१. हल्दीका चूर्ण चीनीके साथ लेनेसे श्वेतप्रदरमें लाभ होता है।

८२. बार-बार लघुशंका आती हो तो काला तिल गुड़में मिलाकर खानेसे ठीक हो जाता है।

८३. हैजेमें पोदीना, प्याज और नीबूका रस मिलाकर बार-बार रोगीको देनेसे लाभ होता है।

८४. हृदय-शूलकी दशामें अर्जुनकी छालको गायके घीमें पीसकर पीनेसे यह बीमारी समूल चली जाती है।

८५. **बवासीर**—(क) सूरनके टुकड़ोंको पहले उबाल ले और फिर सुखाकर उनका चूर्ण बना ले। यह चूर्ण ३२० ग्राम, चित्रक १६० ग्राम, सोंठ ४० ग्राम, काली मिर्च २० ग्राम एवं गुड़ १ कि० ग्रा०—इन सबको मिलाकर बेर-जैसी छोटी-छोटी गोलियाँ बना ले। इसे 'सूरनमोदक' या 'सूरनवटी' कहते हैं। प्रतिदिन प्रातः-सायं ३-३ गोलियाँ खानेसे बवासीरमें लाभ होता है।

(ख) सूरनके टुकड़ोंको भापमें पकाकर तथा तिलके तेलमें बनायी गयी सब्जीका सेवन करनेसे एवं ऊपरसे छाछ पीनेसे सभी प्रकारके बवासीरमें लाभ होता है। यह प्रयोग तीस दिनतक करे।

(ग) करैलेका रस खूनी बवासीरमें लाभदायक है।

(घ) प्याजके रसमें घी और चीनी मिलाकर खाये।

(ङ) गायके मक्खनमें काला तिल और मिस्री मिलाकर खानेसे खूनी बवासीरमें लाभ होता है।

(च) मट्ठेमें सेंधा नमक और अजवाइनका चूर्ण मिलाकर यथेच्छ पीना चाहिये।

८६. **पित्ती उछलनेपर**—पित्ती होनेपर पेट साफ करनेकी दवा उपयोगी है। इसके बाद ही अन्य औषधि ले।

(क) पित्ती हो जानेपर सरसोंके तेलकी मालिश कर गरम पानीसे स्नान करनेपर आराम मिलता है।

(ख) पिसी हुई फिटकरी आधा कप गरम पानीमें घोलकर पित्ती निकले स्थानोंपर लगाकर धोये।

(ग) एक भाग अजवाइनमें दो भाग गुड़ दो कप पानीमें उबालकर पीनेसे पित्तीमें लाभ होता है।

(घ) पित्ती हो जानेपर तीन पानका पत्ता (नागरबेल) और एक चम्मच फिटकरी पानीमें डालकर पीस ले। पित्ती निकली हुई जगहपर इसे लगाकर मालिश करनेसे पित्ती ठीक हो जायगी।

(ङ) पित्ती निकलनेपर चौथाई चम्मच तुलसीके बीज एक आँवलेके मुरब्बेके साथ प्रतिदिन दो बार खाये।

(च) एक चम्मच शहद और एक चम्मच त्रिफला मिलाकर प्रातः-सायं खानेसे पित्तीमें लाभ होता है।

कच्चे दूधकी लस्सी पीनेसे रक्तकी गरमी निकल जाती है।

(छ) पचीस ग्राम पिसी अजवाइन और इतना ही गुड़ मिलाकर दो भागोंमें बाँट ले। प्रातः एक भाग खाकर एक गिलास ताजा छाछ पिये। शामको दूसरा भाग खाकर पानी पिये। हलका भोजन करे। पित्ती ठीक हो जायगी।

८७. हिस्टीरियाके दौरेमें प्याज काटकर सुँघानेसे रोगीको होश आता है तथा लहसुनकी कलीको दूधमें औटाकर पीनेसे रोग ठीक हो जाता है। दौरेके समय हींग सुँघानेसे भी रोगी होशमें आ जाता है।

८८. बिच्छूके काटनेपर नीबूका सत् (टारटरिक एसिड), पोटैशियम परमैंगनेट मिलाकर काटे हुए स्थानपर रखे तथा उसपर नीबू या प्याजका रस छोड़े, इससे विष तुरंत उतर जाता है।

८९. **हिचकी**—(क) मोरके पंखको जलाकर उसकी राख शहदमें मिलाकर चाटनेसे हिचकी तुरंत दूर होती है।

(ख) तीन चम्मच नीबूके रसमें थोड़ा नमक मिलाकर पीनेसे हिचकी तुरंत दूर हो जाती है।

(ग) मूलीका पत्ता चबाकर खाये।

(घ) दो-तीन लौंग चबाकर थोड़ा पानी पी ले।

९०. सोंठ और गिलोयका काढ़ा बनाकर पीनेसे वातविकारमें लाभ होता है।

९१. नीबूके रसमें सरसों और हलदी पीसकर उबटन लगानेसे खुजली दूर होती है।

९२. आँवला, हर्रे तथा रसौत बराबर मात्रामें लेकर चूर्ण बनाये। ५ ग्रामकी मात्रामें दिनमें तीन-चार बार शहदके साथ खानेसे रक्तप्रदर ठीक हो जाता है।

९३. अर्जुनकी छाल और सतावरका चूर्ण ५ ग्रामकी मात्रामें दूधके साथ दिनमें तीन बार लेनेसे श्वेतप्रदर ठीक हो जाता है।

९४. जामुनकी गुठलीका चूर्ण चावलके माड़के साथ लेते रहनेपर रक्तप्रदरमें लाभ होता है।

९५. अलसी, कपड़ा धोनेके साबुनका छोटा टुकड़ा, पिसी हलदी तेलमें पकाकर बाँधनेसे फोड़ा फूट जाता है।

९६. आँवलेके चूर्णसे बालोंको धोते रहनेसे बाल गिरते नहीं और काले रहते हैं।

९७. दन्तशूलमें लौंगका तेल रुईसे दाँतोंमें लगानेपर दर्द दूर होता है।

९८. अङ्कुरित गेहूँको किशमिश या गुड़के साथ खानेसे विटामिन-ई प्रचुर मात्रामें मिलती है और गर्भपात नहीं होता।

९९. गर्भावस्थाके समय रक्तस्राव होनेपर दो-दो घंटेपर एक कप कच्चे दूधमें फिटकरी चौथाई चम्मच पीसकर मिलाये और पिये।

१००. दाँतमें पायरिया होनेपर हाइड्रोजन पराक्साइडकी १०-१५ बूँद एक कप पानीमें मिलाकर कुल्ला करे। रातको सोते समय भी इसी पानीसे अच्छी तरह कुल्ला करें।

१०१. लौंग और तुलसीकी पत्तीको खूब औटाकर पीनेसे टांसिल ठीक हो जाता है।

१०२. विष या कोई विषाक्त वस्तु खा लेनेपर तुलसीका रस निकालकर पेटभर पिलाये। आशातीत लाभ होगा।

१०३. नीबूके रसमें भुना सफेद जीरा, लौंग और काली मिर्च मिलाकर पीनेसे वमनमें लाभ होता है।

१०४. सफेद जीरा, काला जीरा, काला तिल और सरसों बराबर मात्रामें लेकर पीसकर उबटन बनाये। इसे मुँहपर लगानेसे झाँईं दूर हो जाती है।

१०५. प्याजका रस, अदरकका रस, शहद और घी समान मात्रामें मिलाकर प्रतिदिन सुबह १ तोलाकी मात्रामें खानेसे वीर्यविकार नष्ट होकर शरीर पुष्ट होता है।

१०६. गर्भवती महिलाको यदि मचली आती हो तो बारीक पिसी धनियामें उतनी ही चीनी मिलाकर चावलके माँड़के साथ पीना चाहिये।

१०७. पुत्र-प्रदायक योग इस प्रकार हैं—

(क) ग्यारह मोरपंखोंके बीचका नीला चमकता भाग काटकर निकाल ले। उसे खरलमें थोड़े-से गुड़के साथ बारीक पीस ले और गोलियाँ बना ले। इसे तीन महीनेतक प्रातः-सायं नियमितरूपसे गर्भवतीको सेवन कराये।

(ख) वटवृक्षकी वायवीय जड़को पीसकर तीन-चार महीनेतक पिलाये।

(ग) अश्वगन्धकी जड़का चूर्ण १ तोला प्रतिदिन तथा अश्वगन्धारिष्टका पान कराना चाहिये।

(घ) बिजौरे नीबूके बीजका रस बछड़ेवाली गायके दूधके साथ पिलानेसे निश्चय ही पुत्र होता है।

१०८. बच्चेके पेटमें दर्द हो और आँव पड़ता हो तो धनिया और सोंठका काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिये।

१०९. यदि बच्चेकी आवाज साफ न हो, तुतलाता हो तो—

(क) ब्राह्मी वटी या ब्राह्मी रसायन दिनमें दो बार खिलाना चाहिये।

(ख) कैलशियमका टैबलेट दो-तीन गोली प्रतिदिन खिलाये।

(ग) कैल्केरिया फास ६ × (एक्स) और फेरम फास ६ × (एक्स) कुछ महीनेतक खिलाये।

११०. गोमूत्रमें नमक मिलाकर एक तोलाकी मात्रामें कुछ दिनतक पिलानेसे बच्चोंका श्वासरोग दूर हो जाता है।

१११. गायका पुराना घी बच्चोंकी छातीपर मलनेसे कफ निकल जाता है और जुकाममें लाभ होता है।

११२. छोटी हर्रे और सौंफको पीसकर घीमें भूने। इसके चूर्णको मिस्त्रीमें मिलाकर पीनेसे पेचिशमें लाभ होता है।

११३. गोमूत्रमें रेड़ीका तेल मिलाकर पीनेसे पेटके कृमि नष्ट हो जाते हैं।

११४. गायके २५० ग्राम दहीमें सेंधा नमक १० ग्राम, भुना जीरा १० ग्राम, काली मिर्च २ ग्राम पीसकर मिलाये तथा इसमें २५० ग्राम पानी मिलाकर पी जाय। कठिन-से-कठिन अजीर्ण दूर हो जायगा।

११५. धनिया, छोटी इलायची और काली मिर्चका समान मात्रामें चूर्ण पीसकर रख ले। इसमें समान मात्रामें घी और चीनी मिलाकर खानेसे अरुचि समाप्त हो जाती है।

११६. अनारका रस हृदयके लिये बलकारक होता है।

११७. हर्रेका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे उलटी बंद हो जाती है।

११८. बिनौलेका तेल मलनेसे गठियामें आराम मिलता है।

११९. (क) कबाबचीनीके चूर्णमें मिस्त्री मिलाकर खानेसे मूत्ररोग और प्रमेहमें लाभ होता है।

(ख) केलेके वृक्षकी छालका रस एक छटाँक और घी आधा छटाँक मिलाकर पीनेसे बंद पेशाब खुल जाता है।

१२०. ब्राह्मीके पत्तोंका रस शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मिरगी-रोगमें लाभ होता है।

१२१. चैत्रके महीनेमें नीमके पत्ते खानेसे रक्त शुद्ध हो जाता है।

१२२. यदि कोई काँचका टुकड़ा खा ले तो उसे तुरंत अधिक मात्रामें गायका दही पिलाना चाहिये।

संकलन—श्रीराजकुमारजी माखरिया
४, गगन अपार्टमेन्ट, एक्जीबिशन रोड
पटना-८००००१—(बिहार)

एपेन्डीसाईटिस (आन्त्रपुच्छ)-पर सफल प्रयोग

एपेन्डीसाईटिसका डॉक्टर लोग ऑपरेशन करानेकी सलाह देते हैं, पर अब इसकी आवश्यकता नहीं। इस अनुभूत उपचारको अपनाइये, यह परीक्षित नुस्खा है। जिन्होंने इसको अपनाया है, पूर्ण लाभ उठाया है। मैंने कई रोगियोंपर इसका प्रयोग करके शत-प्रतिशत सफलता पायी है। जंगलकी एक बूटी 'बनतुलसा' है। उसको पीसकर लुगदी बनाकर किसी लोहेकी करछुल आदिपर उसे गरम करके, (भूनकर नहीं) उसपर थोड़ा-सा नमक छिड़क दे और दर्दके स्थानपर उस लुगदीकी टिकियाको रखकर ४८ घंटेमें तीन बार बदल कर बाँधे। इस बीच रोगीको आराम करना चाहिये। इस ४८ घंटेके उपचारके बाद रोग सदैवके लिये जाता रहेगा।

[—विष्णुकुमार जिन्दल,
फ्लैट नं० ३, कटोरी मिल मार्केट,
पो०—मोहननगर २०१००७ (गाजियाबाद)]

हृदय-रोगमें घीया, तुलसी और पोदीनेका रामबाण प्रयोग

(श्री के०सी० सुदर्शनजी *, सरसंघसंचालक—आर०एस०एस०)

हृदयरोग आज तेजीसे फैलता जा रहा है। खान-पानकी स्वच्छन्दता, भौतिकवादकी होड़में तरह-तरहके मांसाहारी एवं गरिष्ठ खाद्य पदार्थोंके प्रति आकर्षण, शारीरिक श्रमकी शून्यता, मानसिक तनाव आदि हृदय-रोगकी वृद्धिके कारण हैं।

हृदयकी शिराएँ जब अवरुद्ध हो जाती हैं तो हृदयाघातकी सम्भावना बन जाती है। अधिक चिकनाईयुक्त, वसायुक्त भोजन खूनमें थक्के जमाता है तथा उसीका कुपरिणाम शिराएँ अवरुद्ध होनेके रूपमें सामने आता है।

आधुनिक विज्ञानने हृदयरोगके निदानके लिये बाईपास सर्जरी, पेसमेकर-जैसी अनेक अत्यन्त खर्चीली सुविधाएँ ईजाद की हैं, किंतु इनका उपयोग साधारण रोगी नहीं कर सकता है और यह भी तथ्य सामने आये हैं कि ऑपरेशन करानेवालेको जीवनभर अनेक अन्य बीमारियोंका सामना भी करना पड़ता है।

घीया (लौकी) हृदयरोगमें रामबाण औषधि सिद्ध हुआ है। अनेक हृदयरोगियोंने इसका उपयोग किया और रोगसे छुटकारा पाया है। हृदयरोगियोंके लिये इस अनुभूत प्रयोगकी विधि इस प्रकार है—

घीयाको छिलकेसहित धोकर घीयाकशमें कस ले। कसी हुई घीयाको सिलबट्टेपर पीस लें। ग्राइंडरमें डालकर भी उसका रस निकाला जा सकता है।

घीयाको पीसते समय पोदीनाके ५-६ पत्ते तथा तुलसीके ८ पत्ते उसमें डाल दे। फिर पीसे हुए घीयाको कपड़छान करके उसका रस निकाल ले। उस रसकी मात्रा १२५—१५० ग्राम होनी चाहिये। इसमें इतना ही स्वच्छ जल मिलाये। अब यह २५० से ३०० ग्राम रस हो जायगा। इस रसमें चार काली मिर्चका चूर्ण तथा एक ग्राम सेंधा नमक मिला ले। अब इस रसको भोजन करनेके आधा या पौन घंटेके पश्चात् सुबह-दोपहर एवं रात्रिमें तीन बार ले। प्रारम्भमें ३-४ दिनतक रसकी मात्रा कम भी ली जा सकती है। रस हर बार ताजा लेना चाहिये। प्रारम्भमें यदि पेटमें कुछ गड़गड़ाहट महसूस हो तो चिन्तित न हो। घीयाका यह रस पेटमें पल रहे विकारोंको भी दूर कर देता है। तीन बार औषधि लेनेमें कठिनाई हो तो आधा-आधा किलो घीया इसी प्रकार सुबह-शाम लिया जा सकता है।

घीया पहले पाँच दिनतक लगातार लेना होगा, फिर २५ दिनका अन्तराल देकर, पाँच दिनतक लगातार ले। इसे कम-से-कम तीन महीनेतक लेना होगा। उपचारके दौरान कोई भी खट्टी वस्तु न ले। न तो खट्टे फल, न टमाटर, न नीबू। इसके साथ एक गोली एकोस्प्रिन की १५० मि.ग्रा. सुबह-शामको तथा एम्पोलिनकी गोली ले।

इस प्रयोगके सम्बन्धमें यदि किसीको विस्तारसे जानकारी लेनी हो तो मुम्बईके डॉ० मनुभाई कोठारीसे सम्पर्क किया जा सकता है। उनका पता है—

१४ बी० स्वामी विवेकानन्द मार्ग, मुम्बई-४०००५४ फोन—(०२२) ६१२८१०७।

हृदयरोगियोंको मांस, मदिरा, धूम्रपान आदिका पूरी तरह त्याग करना आवश्यक है। चार-पाँच किलोमीटर टहलना भी जरूरी है।

एक और रामबाण नुस्खा

यदि हृदय गड़बड़ करने लगे तो एक अन्य उपचार यह है—

एक चम्मच पानका रस, एक चम्मच लहसुनका रस, एक चम्मच अदरकका रस, एक चम्मच शहद—इन चारों रसोंको एक साथ मिला ले और पी जाय। इसमें पानी मिलानेकी आवश्यकता नहीं है। इसे दिनमें एक बार सुबह और एक बार शामको पिये। तनाव तथा चिन्तासे मुक्त होकर इसका प्रयोग करे। हृदयमें कोई और कठिनाई हो तो जो दवा लेते रहे उसे ले ले।

* राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सरसंघसंचालक श्रीकुरुपल्ली सीतारम्मैया सुदर्शनजीका प्राकृतिक चिकित्सामें अगाध विश्वास है। उन्होंने अपनी तथा अपने अनेक निकटके मित्रोंकी अनुभूतियोंके बाद हृदयरोगके अनेक रामबाण नुस्खे रोगियोंको सुझाये। इन नुस्खोंकी जानकारी कल्याणके पाठकोंके लिये यहाँ प्रस्तुत की जा रही है (श्रीशिवकुमारजी गोयल)।

यह नुस्खा २१ दिनका है। आगे चलकर इस दवाको यदि प्रतिदिन सबेरे एक समय लेता रहे तो हृदयरोग कभी नहीं होगा।

एक रामबाण लेप

मैं यहाँ हृदयरोगकी एक और रामबाण औषधि बताता हूँ। गुजरातके प्रसिद्ध नेता श्रीचिमन भाई पटेलकी पत्नी तथा पूर्व केन्द्रीय मन्त्री श्रीमती उर्मिला बेन एक बार हृदयरोगसे ग्रस्त हो गयीं। उन्हें बाईपास सर्जरी करानेका सुझाव दिया गया। उन्होंने नीचे बताया गया उपाय किया तथा बाईपास सर्जरीसे वे बच गयीं।

एक तोला काली साबूत उड़द रातको गरम पानीमें भिगो दे। सबेरे पानीसे उड़दके दाने निकाल ले तथा उड़दको छिलकेसमेत सिलबट्टेपर पीस ले।

उड़दकी इस पिट्ठीको एक तोला शुद्ध गुग्गुलके चूर्णमें मिला ले। इस योगको खल-बट्टेमें डालकर एक तोला अरंडीका तेल और गोदुग्धसे बना एक तोला मक्खन डालकर ढंगसे मिला ले। काफी देरतक इसे खल-बट्टेमें रगड़ते रहे। स्नान करनेके बाद शरीरको पोंछकर इस लेपको छातीसे पेटके पासतक मल ले। चार घंटेके लिये लेट जाय। उठ-बैठ भी सकते हैं। जब लेप सूख जाय तो स्नान कर ले। यह प्रयोग प्रतिदिन सुबह पाँच दिनतक करना चाहिये। एक महीनेके अन्तरालके बाद फिर पाँच दिनतक करे। हृदयरोगसे पूरी तरह मुक्ति मिल जायगी।

मिरगी एवं अनिद्रारोगके अनुभूत प्रयोग

(१) मिरगी-रोगनाशक सफल सिद्ध अवलेह और घृत

मिरगी बड़ा ही भयंकर रोग है। मिरगी क्यों और कितने प्रकारकी होती है? हम इस विस्तारमें न पड़कर केवल इतना ही निवेदन कर रहे हैं कि चिकित्सा-विज्ञान (मेडिकल साइंस)-में सर्वोच्चताका दम्भ करनेवाले अमेरिका, जर्मनी, जापान, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि देशोंमें भी मिरगीका कोई इलाज नहीं है। किंतु हमारा महान् भारत तो हजारों सालसे जगद्गुरु रहा है। आयुर्वेदमें इस रोगका परीक्षित इलाज मौजूद है। ऐसे ही सफल सिद्ध मिरगी-नाशक दो प्रयोग—सिद्ध अवलेह और घृत हम यहाँ लोक-कल्याणार्थ पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत कर रहे हैं।

इन प्रयोगोंके सेवन तथा पथ्यों और परहेजोंका एक वर्षतक पालन करनेसे कठिन-से-कठिन और पुरानी-से-पुरानी मिरगी सदाके लिये नष्ट हो जाती है। पथ्यके बिना औषधि-सेवन व्यर्थ है।

(क) सिद्ध अवलेह

घटक द्रव्य (Ingredients)—गम्भारी फल गूदेसहित, हल्दी ठोस गाँठदार, सिंघाड़ेकी सूखी एवं ठोस (घुनरहित), गिरी अर्थात् सूखे सिंघाड़े, असली ब्राह्मी बूटी, शङ्खपुष्पी (शङ्खा होली), बड़ी जातिके बेर-वृक्षके छायामें सुखाये पत्ते, अनारदाना मीठा, भारंगीका पञ्चाङ्ग, वच मीठी, खरैंटी, लाल-कमलका पञ्चाङ्ग (फूल, पत्ते, कमलगट्टे, जड़ और नाल), तालीस-पत्र, नीम और कचनारकी अन्तरछाल, गिलोयछाया, शुष्क कुटकी, नागकेशर, निशोथ, मुलहठी, पिंडखजूर गुठली निकाला हुआ, सोंठ, असली काला अगर, जायफल, मालकांगनी, त्रिफला, असगन्ध, अम्लवेत, इमलीके बीज, दारुहल्दी, मूसली-सिम्बल, नेत्रबाला, नागरमोथा, विधायरा, शतावर असली पीले रंगकी, काली मिर्च, इन्द्रायणकी जड़, रास्नाके पत्ते, अतीस (ठोस घुनरहित), मरोड़फली, कौंचके छिलके-रहित बीज, मेंहदीके ताजे पत्ते छायामें सुखाये हुए, पीली बड़ी हरड़का छिलका, मुनक्का बीज निकाले हुए, मजीठ, बथुआके छायामें सुखाये पत्ते, हरी इलायचीके बीज, दालचीनी असली, पत्रज, कूटमीठा, तगर, लाल एवं सफेद चन्दनका बुरादा असली, असली वंशलोचन नीली झाईंवाला—ये सभी द्रव्य ४०-४० ग्राम असली और नये ले ले। सभी द्रव्योंको खूब घोट-पीसकर इसका कपड़छान बारीक चूर्ण मैदाके समान बना लें। अब गोमाताका असली घी, यह न मिले तो बादाम-रोगन इतना ले लें कि इस चूर्णमें मसल-मसलकर मिलानेसे कम या अधिक न हो। अब चौड़े मुँहकी चीनीकी बर्नीमें अच्छी तरहसे

बादाम-रोगन (बादामका तेल) मिलाया हुआ उक्त चूर्ण डाल दे तथा इसी चूर्णके बराबर पिसी हुई मिस्त्री और मिस्त्रीके बराबर ही असली शहद उक्त चूर्णपर ऊपरसे डालकर किसी साफ बड़ी कलछीसे कम-से-कम एक घंटेतक सबको धीरे-धीरे घोट लीजिये। ताकि सभी द्रव्य अच्छी तरह एक-जान हो जाय, बस घोर अपस्मार (मिरगी)-नाशक अमोघ एवं स्वादिष्ट अवलेह सेवनके लिये तैयार है।

सेवन-विधि—इस अवलेहको सेवन करनेसे पहले दो दिनतक निम्नलिखित विधिके अनुसार पेटकी सफाई करे। गुलकन्द चार चम्मच, त्रिफला-चूर्ण एक चम्मच और सत ईसबगोल आधी चम्मच—सबको मिलाकर केवल रातको सोनेसे पहले खा ले और एक गिलास दूधमें 'सीरप शंखपुष्पी' ५ चम्मच ऊपरसे पी ले। सुबह एक-दो दस्त साफ होंगे और चित्त प्रसन्न होगा। ऐसा लगातार दो या तीन दिनतक करे। उदर-शुद्धि हो जायगी। चौथे दिनसे उक्त अवलेह एक चम्मच सुबह खाली पेट खिलाकर एक गिलास मीठा ठण्डा किया हुआ गोमाताका दूध रोगीको पिलाये। इसी प्रकार दूसरी खुराक शामको ५ बजे गोमाताके दूधसे पिलाये। इससे ८-१० सालकी मिरगी दो माहतक सेवन करानेसे एवं २०-२५ सालकी पुरानी और हठी तथा किसी भी टाइपकी मिरगी निरन्तर १०० दिनोंतक सेवन करानेसे सदाके लिये विदा हो जाती है। सैकड़ों असाध्य मिरगी-रोगियोंपर अनुभूत है। मिरगीके अतिरिक्त यह अवलेह घोर उन्माद (पागलपन), योषोपस्मार (हिस्टीरिया)-पर भी रामबाण है।

(ख) मिरगीनाशक सिद्ध घृत

उपर्युक्त नुस्खेकी ही सभी दवाएँ लेकर उन सबको श्लक्ष्ण (दरदरा) कूट-पीसकर इसी मिश्रणमें गन्नेकी जड़, सफेद दूब, काँस और कुशकी जड़ें ४०-४० ग्राम लेकर उन्हें भी दरदरा (मोटा-मोटा) कूटकर १६ गुने पानीमें डालकर खूब उबाल ले। जब पानी चार गुना शेष रह जाय तो आगसे उतारकर ढककर रख दे। ठंडा होनेपर मसलकर सूती कपड़ेमें छान ले। फिर इसमें समभाग अजादुग्ध (यानी चार सेर काली बकरीका दूध) और चार सेर गोमाताका शुद्ध घृत मिलाकर और मंद आँचपर रखकर तबतक पकाये, जबतक कि सारा पानी जलकर सिर्फ घी शेष न बच जाय। अब इसे ठंडा करके चीनी मिट्टीकी बर्नीमें रख ले। सफल सिद्ध घृत तैयार है।

नोटः—इस घृतको बनानेसे पहले इसमें मिस्त्री, शहद, बादाम-रोगन न मिलाये।

सेवन-विधि—पूर्वोक्त रीतिसे दो-तीन दिनोंतक हलका जुलाब देकर पेटकी सफाई करा दे और एक-एक चम्मच सुबह-शाम यह घृत खाकर ऊपरसे एक-एक गिलास कुनकुना दूध पिलाया करे। ६० दिनोंमें घोर अपस्मार (मिरगी)-रोग सदाके लिये चला जायगा।

अपनी सुविधाके अनुसार इनमेंसे कोई-सी भी एक दवा बनाकर सेवन कराये। इस घृतसे पागलपन और स्त्रियोंका हिस्टीरिया भी समूल नष्ट होता है।

विशेष—अवलेह या घृतके सेवनकालमें सप्ताहमें एक दिन दवा बंद रखकर उस रातको पूर्वोक्त जुलाब अवश्य दे। दिनमें दो समय दवा खिलाये और रातको जुलाब दे दे। अगले दिन दवा न दे। दूसरे दिनसे पुनः दवा खिलाना शुरू करे, इससे विशेष और स्थायी लाभ होता है।

परहेज—तले पदार्थ, तेल, गुड़, सभी खटाइयाँ, मट्ठा, दही, चावल, आलू, अर्वी, बैगन, ब्रेड, बिस्किट, टोस्ट, फूलगोभी, मटर, चनेका बेसन, उड़द, मसूर, मांस, मदिरा, मछली, मादक-द्रव्यादिका एक सालतक कदापि सेवन न करे। मांस-मदिरादि मादक-द्रव्योंका जीवनभर कदापि सेवन न करे। मेवा और मैदेसे बने पदार्थ न खाय।

पथ्य—मूँग और अरहरकी दालें, पालक, बथुआ, चौलाई, मेथीकी भाजी, मेथी-दानेका साग, पत्ता गोभी, परवल, टिण्डा, लौकी, तुरई, गिलकी, गेहूँकी रोटी, दलिया, दूध, घी, शक्कर, मीठे सेब, चीकू, पपीता, पेठेकी मिठाई आदिका सेवन करे। पथ्यके बिना औषधि-सेवन व्यर्थ है। औषध-सेवनकालमें ब्रह्मचर्यपालन अवश्य करे।

(२) अनिद्रा—बनाम विकृत मानस-जीवन

आजकी मानसिकतामें जीनेवाला व्यक्ति अप्राकृतिक कृत्रिम दिनचर्याका अवलम्बन लेकर मानसिक अशान्ति,

चिन्ता, तनाव आदिके शिकंजेमें पूर्णतया जकड़ चुका है। इस भौतिकवादी युगमें वह न जाने कितने प्रदूषणोंसे बुरी तरह आक्रान्त है।

ऐसी अशान्तिमें गहरी सुखद निद्रा कहाँ? किंतु आयुर्वेदमें इस अनिद्रा-रोगका भी नितान्त हानिरहित इलाज है—सर्पगंधा घनवटी २ गोली, दिमागदोषहरी २ गोली, खमीरा गावजबान अम्बरी जवाहरवाला एक चम्मच, सीरप शंखपुष्पी ४ चम्मच—यह सब एक मात्रा है। केवल रातको सोते समय पहले उक्त खमीरा खाये। फिर एक कप दूधमें ४ चम्मच सीरप शंखपुष्पी घोल ले। फिर उक्त चारों गोलियोंको उस एक कप दूधसे निगल ले। रोगन लबूब सबा—यह यूनानी दवाओंसे निर्मित एक केशतेल है। इसे केवल रातको सोते समय ही सिरके बीचमें चुपड़कर १५ मिनटतक हलके-हलके मले। तीसरे दिनसे गहरी सुखद नींद आने लगती है। २०-२५ दिनोंतक कर ले। स्थायी लाभ हो जायगा। इसके बाद इन दवाओंका उपयोग छोड़ दे। इसकी आदत नहीं पड़ती। केवल रातको ही उपयोग करे, दिनमें न करे।

[प्रेषक—वैद्य ठाकुर श्रीबनवीरसिंह 'चातक' पो० लाड़कुई, जिला-सीहोर (म० प्र०) पिन—४६६३३१]

मधुमेह-निवारण—चार अनुभूत योग

मधुमेह (डायबिटीज)-का रोग वर्तमानमें बहुत तीव्रगतिसे बढ़ रहा है। शारीरिक श्रमका अभाव तथा खान-पानमें असंतुलन इस रोगका सामान्य कारण है। शारीरिक व मानसिक श्रमका संतुलन बने रहनेपर मधुमेह नहीं सताता। भूख-प्यास बढ़ जाना, मूत्र अधिक तथा बार-बार होना, थकान बने रहना, त्वचा खुश्क एवं खुरदरी होना, चर्म-विकार—खुजली, फोड़ा-फुंसी होना, घावोंका शीघ्र न भरना, दृष्टिशक्तिकी क्षीणता, स्मृतिह्रास, मानसिक थकान, बालोंका झड़ना, लीवर खराब हो जाना आदि इसके लक्षण हैं। मधुमेहमें क्लोम ग्रन्थि (पैन्क्रीयाज)-रस (Insulin)-का श्राव कम हो जाता है, कभी-कभी यह अत्यन्त कम हो जाता है। इसके कारण पक्षाघात, हृदय-विकार, रक्तचाप, अदीठ (कारबंकल) आदि तथा पुरुषत्व-क्षीणताका लक्षण देखनेको मिलता है, इससे मधुमेहके रोगीका मनोबल गिरा रहता है। ऐसेमें मूत्र-शर्करा एवं रक्त-शर्कराका परीक्षण करा लेना चाहिये। रक्त-शर्करा (Blood Sugar Fasting) ८०—१२०mg. नार्मलरेंज तथा पी०पी० १६० तक नार्मल माना जाता है। जाँचसे यदि शर्कराकी मात्रा नार्मलसे अधिक हो तो नीचे लिखा हुआ औषधोपचार करना लाभप्रद होगा—

योग १—गुड़मारकी पत्ती ३० ग्राम, नीमकी पत्ती ३० ग्राम, तुलसीकी पत्ती ३० ग्राम, सदाबहारकी पत्ती-फूल ३० ग्राम, बेलकी पत्ती ३० ग्राम, जामुनकी गिरी ५० ग्राम, तजकलमी असली २० ग्राम, वंशलोचन असली २० ग्राम, जायफल १० ग्राम, जावित्री १० ग्राम, इलायची छोटी १० ग्राम, रूमी मस्तगी असली १० ग्राम, बिनौलाकी गिरी २० ग्राम, काली मिर्च ३० ग्राम, तेजपत्र असली ३० ग्राम, करेला-बीज २० ग्राम, मामज्जक (नाय) ३० ग्राम—इन सभीको सुखा ले और बारीक चूर्ण बनाकर रख ले।

मात्रा—इस चूर्णको ३ ग्राम प्रातः-सायं पानीसे ले। यदि गोली बनाना हो तो बबूलके गोंदके पानीसे ३ ग्रामकी बना ले। १ गोली सुबह-शाम पानीके साथ ले।

योग २—अमृता (गिलोय), तुख्महयात (पनीरडोडे), असली चिरायता कड़वा, देशी बबूलकी छाल, गूलरकी पत्ती, गोरखमुंडी, अर्जुनके पत्ते—सभीको समान भागमें लेकर अधकुटा करके आठ गुने जलमें २४ घंटे भिगो दे। फिर काढ़ा बनाये, चौथाई पानी शेष रहनेपर छानकर पुनः पकाये, गाढ़ा हो जानेपर थोड़ी-सी पिसी हुई हलदीका चूर्ण मिलाकर १ ग्रामकी गोली बना ले।

मात्रा—२ गोली प्रातः-सायं मेथीके पानीसे ले। १० ग्राम मेथी रातको आधा कप पानीमें भिगो दे, सुबह इसी पानीसे ले, शामको भी ऐसे ही ले।

योग ३— असली शिलाजीत २० ग्राम, त्रिबंगभस्म १० ग्राम, बंगभस्म १० ग्राम, लौहभस्म १० ग्राम, स्वर्णमाक्षिकभस्म १० ग्राम, मकरध्वज या रससिन्दूर १०

ग्राम, अफीम ३ ग्राम, कपूर ३ ग्राम, असली सोनेका वर्क बड़ा १० अदद, असली चाँदीका वर्क ६० अदद— सभीको खरलमें डालकर अदरकके रसकी ७ भावना दे तथा धतूरेके पत्तोंके रसकी ७ भावना दे [रसमें भिगोकर ८ घंटेतक रख दे, यही भावना है]। भलीभाँति घोटकर २४० गोली बनाकर सुखाकर रख ले।

मात्रा—२ गोली प्रातः तथा २ गोली रातको चीनीरहित दूधके साथ लें।

योग ४—नीमकी पत्ती, गूलरकी पत्ती, सदाबहारकी पत्ती, सँभालूकी पत्ती, लाल मिर्च—सबकी चटनी पीस ले। इसमें तीन बूँद अमृतबिन्दुकी मिला दे तथा इसे अंदीठव्रण (कारबंकल)-पर लगाये। यह लेप कारबंकलका विष नष्ट करता है। शोधन एवं रोपण है। शुद्ध होनेपर पञ्चगुण तैलका फाया लगाना चाहिये। अंदरसे मधुमेहनाशक प्रयोग चलाते रहना चाहिये।

(अमृतबिन्दु, पिपरमेंट, सत अजवाइन, कपूरको बराबर लेकर शीशीमें रखें तरल होगा।)

आसन-व्यायाम—मधुमेहके रोगीको प्रातः-भ्रमण बहुत लाभकारी है। ५-७ किलोमीटर घूमना अति उत्तम है। भस्त्रिकासन-हलासन एवं सर्वाङ्गासन सीखकर करना चाहिये। भस्त्रिकासन (लोहारकी धौंकनीके समान श्वास-प्रश्वास) करनेसे लाभ यह होता है कि इससे इन्शुलिन (Insulin)-का निर्माण होता है।

पथ्यापथ्य—मधुमेहमें जौ-चना-गेहूँकी रोटी, पुराना चावल, मूँग-मसूर-चना-अरहरकी दाल, पत्तियोंकी सब्जी, परवल, बैगन-करेला आदि लाभदायक है। कंद शाक, मीठे फल, चीनी-चाय-कफकारक चीजें हानिप्रद हैं। स्थूल रोगियोंको मोटापा कम करना चाहिये, भार कम करना चाहिये।

जो लोग किसी अन्य पैथीकी दवा ले रहे हों, वे उसे धीरे-धीरे कम करें, लाभ पूरा होनेपर अन्य दवा छोड़ दें। औषधि रोगमुक्त होनेतक चलानी चाहिये। उसके बाद सामान्य उपचार जारी रखना चाहिये। शास्त्रीय योगोंका अनुभवी वैद्योंके परामर्शके अनुसार ही प्रयोग करना चाहिये।

[वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी शुक्ल, आयुर्वेदालङ्कार
१२, शिवपुरी कालोनी, पिकनिक स्पाट रोड,
फरीदीनगर, लखनऊ (उ० प्र०)]

मधुमेह और उपचार

मधुमेहके रोगियोंको एक तो गोलियोंपर या इन्शुलिनपर निर्भर रहना पड़ता है। गोलियोंका असर सिर्फ कुछ दिनोंतक दिखायी देता है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, ऐलोपैथीकी गोलियाँ काम नहीं करतीं, परिणामतः रक्त-शर्कराका प्रमाण बढ़ना, आँखें कमजोर होना, हृदय-विकार होना, किडनीका कमजोर होना या काम करना बंद हो जाता है। मधुमेहियोंके लिये शरीरमें इन्शुलिन बनना बंद हो जाता है। इसलिये बाहरसे स्वयं, डॉक्टरकी सलाहसे इन्शुलिन लेना यानी पूर्णतया स्वस्थ रहना आवश्यक हो जाता है।

इन्शुलिन तथा गोलियोंपरसे निर्भरता कम करने तथा पूर्णतया स्वस्थ रहनेके लिये नीचे दिया हुआ उपाय अवश्य करें। इससे ऐलोपैथीकी दवाइयोंसे होनेवाले विपरीत-परिणामोंसे बच सकता है तथा आयुमें भी वृद्धि होती है।

अगर आप इन्शुलिन या डाओलिल, ग्लासिफेज या तत्सम गोलियाँ लेते हों तो उनको पूर्णतया बंद करनेके बाद तुरंत रक्त-शर्कराकी जाँच कराये, खाना खानेके पहले तथा डेढ़ घंटे बाद उसका रेकॉर्ड रखे।

बाजारसे अच्छी खुशबूवाला तेजपान (तमालपत्र) २५० ग्राम लाकर उसको बार-बार पीसकर जितनी बारीक हो सके उतनी गेहूँके आटे-जैसी पाउडर बना ले। उसे एक बंद डिब्बेमें रखे।

रातको सोनेसे पहले एक चम्मच पाउडर एक काँचके गिलासमें डालकर उसके ऊपर तीन चौथाई गिलास पानी धीरे-धीरे डाले तथा उसको ढक दे। सबेरे उठकर कुल्ला करनेके तुरंत बाद उस गिलासमेंसे ऊपर जमा हुआ जेली-जैसा पदार्थ चम्मचसे निकालकर बचा हुआ पानी बारीक कपड़ेसे छानकर वह पानी पी ले, उसके उपरान्त आधा-एक घंटा कुछ न ले।

दिनके खानेमें दो रोटी, सब्जी, सलाद, दाल, अङ्कुरित चना, मटरकी थोड़ी मात्रामें हरी सब्जी एवं थोड़ा-सा चावल लेना चाहिये हैं।

शामको ५ बजे थोड़ा-सा नाश्ता, जिसमें एक गेहूँकी रोटी ले ले।

रातके खानेमें डेढ़ रोटी, दाल, सब्जी, थोड़ा चावल सेवन करे।

सोते समय आधे चायके चम्मचसे भी कम हलदी-पाउडर एक कप गरम पानीमें डालकर पी लेवे, उसके उपरान्त ठंडा पानी या दूध न ले।

जैसी सुविधा हो, सुबह या शामको कम-से-कम २० से ४० मिनटतक खुली हवामें योगासन-व्यायाम करे।

हर तीन महीनेमें या जब कभी ऐसा लगे कि रक्त-शर्करा कम हो गयी है तो पैथालॉजीमें जाकर जाँच करा ले।

मेरा यह अनुभव है कि मेरी रक्त-शर्करा जहाँ २७५ से ३०० तक रहती थी एवं मुझे दो बार २०-२२ युनिट इन्शुलिन लेना पड़ता था, वहाँ अब ८-८ युनिट इन्शुलिन लेना पड़ता है एवं रक्त-शर्करा १३२ से १४० यानी सामान्य है। मेरी उम्र ५३ साल है तथा मैं यह उपाय ५ सालोंसे कर रही हूँ।

उपर्युक्त उपाय मैंने एम०डी० इन्डोक्रायनॉलॉजिस्टकी सलाहसे शुरू किया जो कि डायबिटीजके एवं मोटापा कम करनेवाले एक अच्छे सलाहकार हैं। उन्होंने बताया है कि ४-४ युनिट यानी बहुत ही कम मात्रामें इन्शुलिन चालू रखनेसे उत्साह बना रहता है।

[श्रीमती मीना पत्की, वन्दना अपार्ट्स, रामदास पेठ, नागपुर—४४००१० (महा०)]

विभिन्न रोगोंके घरेलू उपचार

यह अनुभव किया गया है कि घरमें रात-दिन उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंसे कुछ रोगोंका निश्चित-रूपसे निदान सम्भव है, अस्तु उनमेंसे कुछ प्रयोग सभीके लाभहेतु यहाँ प्रस्तुत हैं।

(१) नकसीर—जिस व्यक्तिको नकसीरकी शिकायत रहती हो, उसे प्याजका सेवन निम्नविधिसे लगभग पंद्रह दिनतक करना चाहिये। अवश्य ही लाभ होगा। इसका उपयोग मैंने स्वयं अपने ऊपर किया था और काफी आराम हुआ है।

विधि—बड़े आकारका नीबूके बराबरका प्याज लेकर उसे रातको आगपर भून ले। इस प्याजको ऊपर छतपर रातभर खुलेमें रख दे। प्रातः शौचादिसे निवृत्त होकर खाली पेट इस प्याजको छीलकर खा ले, फिर एक घंटेतक कुछ न खाये। नकसीरमें अवश्य लाभ होगा। यह प्रयोग पंद्रह दिनतक करे।

(२) वातरोग—दो सौ पचास ग्राम पानीमें एक चम्मच पिसी सोंठ डालकर खूब उबाले। जब पानी लगभग सौ ग्राम रह जाय तब छान ले, इसमें एक चम्मच एरण्डका तेल डालकर प्रातः पी ले। प्रतिदिन सुबह यह प्रयोग लगभग दो-तीन माह करनेपर वातरोगोंमें अवश्य लाभ होता है। पेट साफ होनेमें यदि परेशानी हो तो रातको दूधके साथ इसबगोलकी भूसी ले। ज्यादा परेशानी होनेपर बीच-बीचमें दो-चार दिन बंद कर सकते हैं। यह प्रयोग भी स्वयंद्वारा अनुभूत है।

(३) एग्जिमा—यह भी एक प्रकारका रोग है, इसके लिये मेरे कई परिचित व्यक्तियोंने अपने ऊपर यह नुस्खा आजमाया और लाभ पाया है। नुस्खा इस प्रकार है—कुरंजके बीज लगभग सौ ग्राम लेकर इन्हें बकरीके कच्चे दूधमें रातको भिगो दे। दूसरे दिन प्रातः बीज धो ले। पुनः ताजा कच्चा बकरीका दूध लेकर उसमें ये बीज छीलकर घिस ले। घिसनेसे चन्दनकी तरह लेप या मलहम जैसा तैयार हो जायगा। इस मलहमको ताँबेके बर्तनमें रखे। दोनों समय एग्जिमावाले स्थानपर लगाये। मलहमका रंग नीला होनेपर डरे नहीं। मलहम सूखनेपर फिरसे नया बना ले।

(४) पायरिया, दाँतका दर्द—पायरिया, दाँतदर्द, मसूढ़ोंसे खून आना आदिमें निम्न प्रयोग रामबाणकी तरह अचूक है। एकदम बारीक सेंधा नमकमें थोड़ी-सी पिसी हल्दी मिलाये। इस मिश्रणका शुद्ध सरसोंके तेलमें पेस्ट बना ले। प्रातः-सायं इस पेस्टकी मसूढ़ोंपर हलकी-सी मालिश करे। मालिश पाँच मिनटतक करे। इस बीच बननेवाली लारको न थूके न निगले। लगभग

बीस मिनटतक मुँहमें रखे, बादमें थूक दे एवं कुल्ला कर ले। दाँत एवं मसूढ़ोंमें अवश्य आराम होगा।

(५) तुलसीके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग—(क) तुलसी, काली मिर्च, अदरक और गुड़का काढ़ा बनाये। इसमें नीबूका रस मिलाकर पीनेसे मलेरिया बुखारमें आराम होता है।

(ख) सोंठ, तुलसी, मुलहठी, चार-पाँच लौंग एवं मिस्त्रीका काढ़ा अत्यन्त गुणकारी है। प्रातः-सायं सात दिनतक पीनेसे खाँसी एवं बुखारमें लाभ होता है।

(ग) तुलसीके रसमें जीरा पीसकर गायके दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंको प्रदर-रोगमें आराम मिलता है।

(घ) तुलसीकी जड़ कमरमें बाँधनेसे प्रसववेदना कम होती है तथा प्रसूति भी सरलतासे होती है।

(ङ) तुलसीका पञ्चाङ्ग, केसर, गंगेरन, श्वेत दूर्वा, पुत्रकंदा, शतावर—इन सभीको पीसकर रख ले। स्त्रीके रजस्वला होनेके बाद दस दिनतक बछड़ेवाली गायके धारोष्ण दूधके साथ इस चूर्णका सेवन करनेसे गर्भधारणकी सम्भावना बढ़ जाती है।

(च) तुलसीदलोंका कुछ दिनतक सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्रकी बीमारीमें लाभ होता है।

(छ) तुलसीके बीज, सुधा मूली, छोटी इलायचीके बीज, मूसली एवं सफेद गोखरू प्रत्येक पाँच ग्राम लेकर पीस ले। बराबर शक्कर मिलाकर प्रातः-सायं पाँच-पाँच ग्राम दूधसे लेनेपर धातुकी दुर्बलता दूर होती है।

(ज) तुलसीपत्र, काली मिर्च, सोंठ, मुलहठी बराबर मात्रामें पीसकर छोटी-छोटी गोलियाँ बना ले। दिनमें तीन-चार बार चूसनेसे खाँसीमें लाभ होता है।

[श्रीमनोहरजी शर्मा, एम्०ए०, बी०एड्०'शक्ति सदन' २५१, अलखधामनगर, सांवेरे रोड, उज्जैन-४५६०१०]

पायरिया

पायरियारोगसे ग्रस्त होनेपर दाँत ढीले होकर हिलने लग जाते हैं। मसूढ़ोंसे मवाद और रक्त निकलने लगता है। दाँतोंपर कड़ी पपड़ियाँ जम जाती हैं। मुँहसे दुर्गन्ध आने लगती है। उचित चिकित्सा न करनेपर दाँत कमजोर होकर गिर पड़ते हैं।

पायरियाका प्रारम्भ दाँतोंकी ठीक देखभाल न करने, अनियमित ढंगसे जब-तब कुछ-न-कुछ खाते रहनेके कारण तथा भोजनके ठीकसे न पचनेके कारण होता है। लीवरकी खराबीके कारण रक्तमें अम्लता बढ़ जाती है। दूषित अम्लीय रक्तके कारण दाँत पायरियासे प्रभावित हो जाते हैं। मांसादि तथा अन्य गरिष्ठ भोज्य-पदार्थोंका सेवन, पान, गुटका, तम्बाकू आदि पदार्थोंका अत्यधिक मात्रामें सेवन, नाकके बजाय मुँहसे श्वास लेनेका अभ्यास, भोजनको ठीकसे चबाकर न खाना, अजीर्ण, कब्ज आदि पायरिया होनेके प्रमुख कारण हैं।

चिकित्सा

(१) दाँतोंकी प्रतिदिन नियमितरूपसे अच्छी तरह सफाई करनी चाहिये। भोजन करनेके बाद मध्यमा अँगुलीसे अच्छे मंजनद्वारा दाँतोंको साफ करे। नीम या बबूलका दातौन खूब चबाकर उससे ब्रश बनाकर दाँत साफ करने चाहिये।

(२) सरसोंके तेलमें नमक मिलाकर अँगुलीसे दाँतोंको इस प्रकार मले कि मसूढ़ोंकी अच्छी तरह मालिश हो जाय।

(३) शौच या लघुशंकाके समय दाँतोंको अच्छी तरह भींचकर बैठे। ऐसा करनेसे दाँत सदैव स्वस्थ रहते हैं।

(४) रातको सोते समय १० ग्राम त्रिफलाचूर्ण जलके साथ तथा दिनमें दो बार अविपत्तिकर चूर्णका सेवन करे।

(५) जामुनकी छालके काढ़ेसे दिनमें कई बार कुल्ले करे।

(६) नीमका तेल मसूढ़ोंपर अँगुलीसे लगाकर कुछ मिनट रहने दे, फिर पानीसे दाँत साफ कर ले।

(७) फिटकरीको भूनकर पीस लें। इसका मंजन पायरियामें लाभप्रद है। फिटकरीके पानीका कुल्ला करे

(८) भोजनके बाद दाँतोंमें फँसे रह गये अन्नके

कणको नीम आदिकी दन्तखोदनीके द्वारा निकाल ले।

(९) सुबह-शाम पानीमें नीबूका रस निचोड़कर पिये।

(१०) पालक, गाजर और गेहूँके जवारेका रस नित्यप्रति पिये। यह अपने-आपमें स्वत: औषधिका कार्य करता है।

(११) जटामांसी-१० ग्राम, नीला थोथा-१० ग्राम, काली मिर्च-५ ग्राम, लौंग-२ ग्राम, अजवायन-२ ग्राम, अदरक सूखी-५ ग्राम, कपूर-१ ग्राम, सेंधा नमक-५ ग्राम तथा गेरू-१० ग्राम—इन वस्तुओंका समान मात्रामें महीन चूर्ण बनाकर रख ले। इससे दिनमें तीन बार अँगुलीसे रगड़-रगड़कर देरतक अच्छी तरहसे मंजन करे। यह मंजन पायरियाकी अनुभूत औषधि है।

(१२) अजीर्ण और क़ब्ज़ न हो—यह ध्यान रखते हुए हल्का सुपाच्य भोजन ले। रातको सोते समय हर्रे खाकर गरम दूध पीये। सुबह २ ग्राम सूखे आँवलेका चूर्ण पानीके साथ लें। मिर्च-मसाला, चाय-कॉफीका प्रयोग न करे।

घरेलू नुस्ख़े

(श्रीत्रिलोकीनाथजी मिश्र)

हरड़की छाल पीसकर शहदके साथ चाटनेसे छर्दिरोग नहीं होता।

पीपरी १० ग्राम, काली मिर्च २० ग्राम एवं मिस्री ६० ग्राम कूट-पीसकर एक-एक चम्मच चूर्ण प्रात:-मध्याह्न-सायं सेवन करनेसे अरुचि एवं ऋतु-परिवर्तनसे उत्पन्न विकार नष्ट हो जाते हैं।

पीपल, बहेड़ा, सेंधा नमक—ये सब समान भाग लेकर कूट-छानकर चूर्ण बनाकर रख ले। शीतल जलसे एक-एक चम्मच प्रात:-मध्याह्न-सायं इसका सेवन करनेसे स्वरभंग-रोग दूर होता है।

चित्रक, जौ, त्रिकटु (पीपल, लौंग, काली मिर्च—इनके समभागको त्रिकटु कहते हैं) अमलवेत, तिंतड़ीक, सफेद जीरा, वंशलोचन, तालीसपत्र—इन सभी औषधियोंको समभाग लेकर कूट-छानकर चूर्ण कर रखे। तज, तेजपात्र और छोटी इलायची भी समभाग चूर्ण कर ले। दोनों चूर्ण एक-एक चम्मच, चार चम्मच गुड़ मिलाकर सुपारीके बराबरकी गोली बनाकर प्रात:-सायं जलसे सेवन करे तो स्वरभंग, श्वास एवं पीनसरोग दूर हो जाते हैं।

मुनक्का, हरड़, पीपल, धवासा, काकड़ासिंगी तथा बहेड़ा—इन सब औषधियोंको समभाग लेकर चूर्ण बनाकर एक चम्मच गुनगुने पानी अथवा शहदसे सेवन करनेसे हिचकी तथा श्वासरोग दूर हो जाता है।

काकड़ासिंगी, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, भारंगी, कटाई, पुष्करमूल, सेंधा नमक, बिड़नमक—ये सब समभाग लेकर चूर्ण बनाकर एक चम्मच प्रात:-सायं गुनगुने पानीसे सेवन करनेसे हिचकी, ऊर्ध्व श्वास, क्षयरोग, खाँसी तथा पीनस आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

कुलथी, सोंठ, कटाई, अड़ूसा—ये बराबर-बराबर लेकर इनका काढ़ा बनाकर, इस काढ़ेमें पुष्करमूलका चूर्ण डालकर पीनेसे श्वास-कास तथा हिचकीरोग दूर होता है।

मिस्री, पीपल, मुनक्का—इन तीनों औषधियोंको कूट-पीसकर गोली बनाकर प्रात:-सायं एक-एक गोली खानेसे क्षयरोग, खाँसी, श्वास, स्वरभंग आदि रोग दूर हो जाते हैं।

वच ५ ग्राम, अजवायन ५ ग्राम, नाशपाल १० ग्राम, खुरासानी अजवायन ५ ग्राम—इन्हें मिलाकर चूर्ण बना ले, फिर आकफल ५ ग्राम, काली मिर्च २ ग्राम, सोंठ २-३ ग्राम, लौंग २ ग्राम, पीपल २ ग्राम कूट ले। दोनोंको एक हाँडी (मिट्टीके बर्तन)-में रखकर गजपुरसे भस्म तैयार करे फिर उसे ठंडा कर कपड़छान करके गरम पानीसे एक चम्मच चूर्ण लेनेसे क्षय, श्वास, कफ, खाँसी, प्लीहा, वायुगोला आदि रोग नष्ट होते हैं।

अश्वगन्ध, शालिपर्णी, षष्ठिपर्णी, कटाई, दोनों

गोखरू, बेलगिरि, अड़ूसा, पुष्करमूल—इन सभीको समान भागमें लेकर चूर्ण बना ले। बकरीके दूधसे यह चूर्ण खानेसे क्षय (टी.बी.)-का रोग चला जाता है। रोगीको ४१ दिनतक प्रातः-सायं यह औषधि लेनेसे निश्चित लाभ होता है।

तालीसपत्र, विलायती गोखरू—इन दोनोंको पीसकर महीन चूर्ण बनाकर बकरीके दूधसे लेनेसे भी क्षयरोगमें लाभ होता है।

पीलिया—माधवनिदानके अनुसार पाण्डुरोगमें तृषा (प्यास), भ्रम, छर्दि और अरुचि तथा मुख, नाक, नेत्र, नख एवं जीभ पीले पड़ जाते हैं एवं पेशाब भी पीला आता है। उसकी चिकित्साके लिये निम्नलिखित नुस्खा प्रस्तुत है—त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला—तीनोंका समभाग), चित्रक, नागरमोथा, वायविडंग, सोंठ, मिरच, पीपल—ये सब समभाग लेकर चूर्णकर शहदमें गोली बना ले। और गोमूत्र या मठ्ठेके साथ सेवन करे अथवा चूर्णको शहदके साथ मिलाकर हलुवा-जैसा बनाकर खानेसे पाण्डुरोग, हृदयरोग, भगन्दर, श्वास, कास, कोढ़, बवासीर, संग्रहणी, मंदाग्नि, कृमि और पेटकी पीड़ा नष्ट होती है।

लौंग, काली-मिर्च, हरड़की छाल, पीपरि, पीपरामूल, अनारदाना, अजवायन, तिंतड़ीक, सज्जीखार, जवाखार, टंकणखार, सोचर नमक, सेंधा नमक, चित्रक, धनिया, जीरा, दोनों सोंठ—ये सब समान भागमें मिलाकर चूर्णकर कपड़छान करके बिजौरानीबूके रसमें गोली बनाये। गोली सुपारीके बराबर हो। इसे प्रातः-सायं ताजे जलके साथ लेनेसे अजीर्ण नष्ट होता है तथा भूख लगती है।

श्रीत्रिलोकीनाथजी मिश्र, एम०ए०, आयुर्वेदरत्न
दामोदरपुरम् (पुरानी चाँदमारी) सुभाषनगर
(बरेली) (उ० प्र०)

स्मरण-शक्तिकी दुर्बलता

स्मृति-शक्ति मस्तिष्ककी एक प्रमुख शक्ति है। देखने-सुननेसे जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे सुरक्षित रखना और फिर समयपर प्रकट करना स्मृतिका कार्य है। ग्रहण करनेकी इस शक्तिको 'मेधा' कहते हैं।

जो आहार हम ग्रहण करते हैं वह पचकर रस बनता है। रससे रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्यका निर्माण होता है। इन धातुओंमें वीर्यकी मात्रा अत्यल्प होती है। यही वीर्य शक्तिरूप होनेपर ओज कहलाता है। इस ओजसे ही शरीर तेजवान् बनता है। ओज मस्तिष्कको पुष्ट करनेके साथ ही स्मरण-शक्तिको भी ठीक रखता है।

वीर्यका धारण ब्रह्मचर्यसे होता है। ब्रह्मचर्यके अभावमें वीर्य और ओजका क्षय होता है। ओजके क्षयसे स्मरण-शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसलिये तीव्र स्मरण-शक्तिके लिये आवश्यक है नियम-संयमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करना। ब्रह्मचर्यके लिये मनकी एकाग्रता एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। चित्तकी चञ्चलता एकाग्रतामें बाधक है। तनावपूर्ण दिनचर्या—राग-द्वेष, प्रतिस्पर्द्धा आदिके कारण चित्त उद्विग्न रहता है। दैनिक जीवनके तनावका मस्तिष्कपर बहुत प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्कके थक जानेपर स्मरण-शक्ति शनैः-शनैः कमजोर पड़ने लग जाती है। प्रखर स्मृतिके लिये आवश्यक है स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन। जिस प्रकारसे एक स्थानपर एकत्रित की हुई संकेन्द्रित सूर्यकी किरणें किसी वस्तुको जला तक सकती हैं और बिखरी हुई सूर्यकिरणोंमें यह शक्ति नहीं होती, उसी प्रकार मन है। एकाग्र मनमें अपार शक्ति निहित होती है।

उम्रके बढ़नेसे भी मस्तिष्कपर प्रभाव पड़ने लगता है, स्मरण-शक्ति भी कम होने लगती है। पर मूल बात यही है कि उम्र बढ़नेपर शरीरमें रस, रक्त, वीर्य एवं ओजका समुचित मात्रामें निर्माण नहीं हो पाता। शनैः-शनैः कम होता जाता है, जिससे मस्तिष्क और तत्सम्बन्धी क्रियाकलाप भी क्षीण होने लगते हैं। अधिक उम्रमें रक्तचाप-वृद्धि तथा धमनी-स्रोतोंके रोधको रोकनेके उपायसे स्मृति ठीक रहती है। स्मरण-शक्ति बढ़ानेके लिये सामान्यरूपसे निम्नलिखित उपाय करने चाहिये—

(१) प्रातःकाल योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि नियमितरूपसे करे। योगासनमें सर्वाङ्गासन, शीर्षासन धनुरासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन तथा हलासनका अभ्यास करे।

(२) किसी शान्त स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ जाय, चित्तको स्थिर करते हुए प्राणायाम करे। तत्पश्चात् आँखें बंद करके श्वास-प्रश्वासपर ध्यान लगाये। आँखें खोले और कुछ सेकंडतक नाककी नोकको ध्यानसे देखे। पुनः आँखें बंदकर श्वास-प्रश्वासपर ध्यान लगायें। थोड़ी देर बाद पुनः नाककी नोकको कुछ सेकंडतक एकटक देखे और आँखें खोलकर दोनों भौंहोंके बीचमें ध्यान केन्द्रित करे। यह क्रिया बार-बार दुहराये।

(३) संतुलित आहारका सेवन करे। भोजनमें पर्याप्त मात्रामें प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण, वसा आदि होने चाहिये। मौसमी-फल, साग-सब्जी, चोकरयुक्त आटेकी बनी रोटीसे शरीरकी रोगप्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है।

(४) श्वास-प्रश्वास धीमा, गहरा और लयबद्ध होना चाहिये। इनसे फेफड़ोंके द्वारा समुचित मात्रामें रक्तको ऑक्सीजन प्राप्त होता है।

(५) अपने विचारोंको सकारात्मक बनाये। सकारात्मक विचार जीवनको आशावादी बनाते हैं। इससे तनावसे मुक्ति मिलेगी।

(६) यथोचित विश्राम करे। अत्यधिक व्यस्ततापूर्ण दिनचर्याके बाद मस्तिष्कको आराम देना आवश्यक है।

(७) गरिष्ठ एवं गरम पदार्थोंका सेवन न करे। शोक, क्रोध, भय तथा चिन्ता आदि तथा अत्यधिक मानसिक चिन्तन न करे।

आयुर्वेदिक योग

(१) दिनमें दो बार ब्राह्मी रसायन दो-दो चम्मच दूधके साथ ले।

(२) अश्वगन्धा चूर्ण १० ग्राम प्रतिदिन दूधके साथ ले। यह मस्तिष्कके लिये बलकारक है।

(३) रात्रिको सोते समय त्रिफला चूर्ण १० ग्राम पानीके साथ लेना चाहिये।

(४) ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, आँवला, गिलोयका समान मात्रामें चूर्ण तैयार करके लगभग ५ ग्राम प्रतिदिन दो बार गर्म दूधके साथ ले।

(५) विद्यार्थियोंको घी-दूध आदि पौष्टिक पदार्थ अधिक मात्रामें लेने चाहिये तथा अनुशासित ढंगसे नियम-संयमपूर्वक रहना चाहिये। ब्राह्मीवटी २ गोली तथा सारस्वतारिष्ट २ चम्मच भोजनके बाद दिनमें दो बार तथा प्रातः एक आँवलेका मुरब्बा विद्यार्थियोंके लिये अति लाभप्रद है।

(६) मस्तिष्कके पोषणके लिये ग्लूकोज, दूध-घी, बादाम, अखरोट आदि उपयोगी हैं।

(७) ब्राह्मीघृत नियमित सेवन करे। ब्राह्मीघृत बनानेके लिये ब्राह्मीकी पत्तीका रस ४ किलो, देशी घी १ किलो, हल्दी, कूट, हर्रे, त्रिवृत्त, चमेलीका फूल प्रत्येक ५० ग्राम, वच, सैन्धव, खाँड़ प्रत्येक १५ ग्राम ले। घी और ब्राह्मीकी पत्तीके रसके अतिरिक्त सबका कपड़छान चूर्ण करे। घीको आगपर चढ़ाकर गर्म करे, उसमें ब्राह्मीकी पत्तीका रस और चूर्ण डालकर उबाले। जब केवल घी शेष रह जाय तो उतार ले, यह 'ब्राह्मीघृत' है।

अठारह नुस्खे

(१) चेहरेके मस्सोंके लिये काली मिर्च और फिटकरी बराबर-बराबर पीसकर चेहरेपर लेप करे तथा सींकसे मस्सोंपर लगाये।

(२) बच्चोंके पसली चलनेमें सरसोंका तेल गरम करके नमक मिलाकर ठंडा होनेपर पसलीमें मालिश करे।

(३) आधा सिरदर्दमें सोंठ पीसकर देशी घीमें भूने तथा कपड़ेमें बाँधकर सूँघे।

(४) कोमल अमरूदकी पत्ती चबानेसे मुँहके छालोंमें लाभ होता है, साथ ही चनेके सत्तूको पानीमें घोलकर पीना चाहिये।

(५) बालतोड़में दूधको फिटकरीसे फाड़कर कपड़ेमें रखकर बालतोड़पर बाँधे।

(६) सरसोंके तेलमें नमक मिलाकर मंजन करनेसे दाँतोंमें चमक तथा पायरियामें भी लाभ होता है। मुँहकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

(७) बच्चोंकी पसली एवं खाँसीमें लौंग भून-पीसकर शहदसे देनेपर लाभ होता है।

(८) कटी चोटपर तत्काल पेशाब कर देनेसे घाव पकनेकी सम्भावना समाप्त हो जाती है।

(९) कानके रोगोंमें सफेद स्प्रिट डाले।

(१०) दाँतके दर्दमें कपूरका टुकड़ा दबाये, लाभ होगा।

(११) नकसीर फूटनेपर बायें छेदसे खून बह रहा हो तो दायीं भुजाको तथा दायेंसे खून बह रहा हो तो बायीं भुजाको कसकर बाँधें, खून बंद हो जायगा। जब भुजा दर्द करने लगे तो बन्धन खोल दे।

(१२) दादपर नीबूका रस बीस दिनतक लगानेसे दाद गायब हो जायगी।

(१३) पैरकी बिवाईमें गरम पानीमें नमक मिलाकर पैर धोये तथा सरसोंका तेल गरम करके उसमें मोमको गरम करके मलहम बनाकर सोते समय लगावे।

(१४) जुओंको समाप्त करनेके लिये सर धोनेके बाद अन्तमें नीबूका रस मिले पानीसे सिर धोये, जुएँ सब मर जायँगे।

(१५) उलटीमें प्याजका अर्क दे।

(१६) सुबह बासी मुँह लहसुनके प्रयोगसे पेटके रोग, दाँत और जोड़ोंके दर्दमें लाभ होता है।

(१७) मेथीके प्रयोगसे मधुमेहमें कमी आती है।

(१८) भुनी तथा कच्ची अजवायन बराबर-बराबर पीसकर शामको फंकी मारे, पानी न पिये, खाँसीमें लाभ होगा।

[डॉ० श्री जे० बी० सिंह, आयुर्वेदरत्न
५०६, राजरूपपुर, इलाहाबाद (उ० प्र०)]

परीक्षित नुस्खे

(१) लम्बे अरसेसे चले आ रहे पेटदर्दकी दवा— पुष्य-नक्षत्रमें रविवारको प्रातः हिंगोटा वृक्षके पश्चिमकी ओर खड़ा होकर [वृक्षपर अपनी छाया न पड़े] उसकी जड़का बकला—छाल खोदकर ले आये और उसे सुखाकर महीन चूर्ण करके पुराने गुड़में समान मात्रामें मिला ले। दो-दो रत्ती [देशी चना-मटरके समान]-की गोली बनाकर प्रातः खाली पेट एक गोली जलके साथ रोगीको तीन दिनतक दे। रोग सदैवके लिये ठीक हो जायगा। यह पूर्ण परीक्षित प्रयोग है।

(२) आगसे जलनेपर— कच्ची रँहरको महीन पीसकर कपड़छान चूर्णकर कांसेकी थालीमें सरसोंके तेलमें गूँथकर मलहमकी तरह (कल्क) बना ले। उसे इक्कीस बार पानीसे धोकर मिट्टीके बरतनमें रख ले। सुबह-शाम अग्निसे जले स्थानपर लगाये। लाभ होगा। यह पूर्ण परीक्षित प्रयोग है।

(३) रूसी, चर्मरोग, खौढ़, डैन्ड्रफ, कॉनर्स, घट्टे (सारे शरीरमें), सिरमें सफेद खौंढ़ा, चकत्ते तथा सिरमें खौढ़ा-सा होकर बाल गिरने लगते हैं, खुजलाहट होती है। इस रोगकी दवा—बच्चोंको २५० ग्राम गायका घी एवं २५० ग्राम शहद पृथक्-पृथक् रखे। प्रातःकाल खाली पेट एक चम्मच घी तथा एक चम्मच शहद मिलाकर प्रतिदिन खिलाये तथा प्रतिदिन स्नान-हेतु एक बाल्टी पानीमें चना-बराबर पोटासियम परमैगनेट (कुएँ आदिमें डाली जानेवाली लाल दवा) डालकर नहलाये तथा 'महामरीच्यादि तेल'को लगाये। बड़े व्यक्तियोंके लिये पाँच सौ ग्राम गायका घी और पाँच सौ ग्राम शहद पृथक्-पृथक् रखे। प्रतिदिन प्रातः खाली पेट दो चम्मच घी और दो चम्मच शहद मिलाकर खिलाये तथा उक्त पोटाश डालकर प्रतिदिन नहलाये और जैतूनका तेल तथा नारियलका तेल समान मात्रामें लेकर शरीरपर लगाये। खाना खानेके बाद और सोते समय कैशोर गुग्गुल बारह ग्रामकी एक-एक गोली या दो-दो गोली ठंढे पानीसे ले।

परहेज— नमक, लाल मिर्च, बैंगन, आलू, उड़दकी दाल तथा कैरीका अचार नहीं खाये। यह पूर्ण परीक्षित प्रयोग है। नियमितरूपसे सेवन करनेपर लाभ होता है।

[वैद्य श्रीरामसेवकजी भाल, सन्तोष कुटीर, बामौर (मनपुरा) (जिला-शिवपुरी) (म०प्र०) पिन—४७३६७०]

* यह पंसारीकी दूकानपर मिलती है। गोंदकी तरह सफेद रंगकी होती है, यह ढोलकोंमें भी मढ़ी जाती है।

कुछ अनुभूत प्रयोग

(१) गुर्दे या पित्तकी थैलीकी पथरी

पथरीमें होमियोपैथी दवाके साथ निम्न प्रयोग करना चाहिये—

१-एक तोला कुलथीकी दाल (पंसारीके यहाँसे मिलेगी) पानीसे धोकर एक कप पानीमें भिगोकर शामको रख दे। सुबह उसे मथकर उसका पानी पी ले। उसी दालको पुनः दो कप पानीमें पका ले, थोड़ा-सा नमक-मिर्च डाल ले (दाल गलती नहीं है)। वही दाल नाश्तेके तौरपर पी ले।

२-मक्केके भुट्टे (सीजनमें बहुत मिलते हैं)-के ऊपर जो सुनहरे रंगवाले रेशे होते हैं, उनको इकट्ठा करके छायामें सुखाये, धूपमें नहीं। एक तोलेके बराबर रेशे पानीसे धोकर चायकी तरह बिना कुछ डाले पका ये और छानकर सबेरे कुल्ला करके बिना कुछ खाये-पीये पीते रहे। जबतक ताजे मिलें, लेते रहे, पीते रहे, बादमें सूखे हुए ही पकाकर पीते रहे। चार-पाँच माह पीनेसे पथरी निकल जायगी और आगे बनेगी नहीं। यह प्रयोग बहुत मरीजोंपर परीक्षित है। इन प्रयोगोंके साथ-साथ मैंने होमियोपैथी दवाएँ भी दीं। बहुत लाभ हुआ है।

(२) बालोंके सफेद होने और गिरनेसे बचाव

१-किसी भी साबुन, शैम्पू आदिका प्रयोग न करे। हमेशा रीठा या दहीसे सिर धोये और जब बाल सूख जायँ तो केवल कड़वा तेल डाले। बाल हमेशा काले रहेंगे।

२-बाल यदि गिर रहे हों तो निम्न दवाएँ खाये, लाभ हो जायगा—

(क) **एसिड फॉस क्यू**—१५-१५ बूँद आधे कप पानीमें सुबह-शाम खाना खानेके बाद।

(ख) **सीपिया २००**—१० बूँद सुबह आधे कप पानीमें बिना कुछ खाये-पीये ले।

(ग) **चाइना २००**—१० बूँद दोपहरमें आधे कप पानीमें ले।

(घ) **नक्स वोमिका २००**—१० बूँद रातमें सोते समय आधे कप पानीमें ले।

(३) कहींसे भी खून आना

खूनी बवासीरसे हो, फेफड़ेसे हो, नाकसे हो अथवा पेशाबसे हो—

पंसारीकी दूकानसे लगभग २५ ग्राम समुद्रशोष ले आये उसकी बराबर छः खुराकें बना ले। सुबह, दोपहर, शाम पानीसे निगले। ईश्वरने चाहा तो पहली खुराक ही आधा खून बंद कर देगी। पर दो दिनमें सब दवा खिला दे।

[डॉ० एस्० एस्० चौहान
पुरनिया टोला, इटावा(यू०पी०)]

दो अनुभूत योग

१. गृध्रसीहर चूर्ण

सुरंज़ानशीरी तीन तोला, नागौरी अश्वगन्ध तीन तोला, सोंठ एक तोला, सौंफ तीन तोला, काला जीरा एक तोला, सनाय एक तोला, पोदीना शुष्क एक तोला, काली मिर्च छः माशा, रूमीमस्तगी असली, एक तोला।

निर्माणविधि—सर्वप्रथम रूमीमस्तगी कूटकर अलग रख ले। फिर सभी वस्तुओंको कूटकर मिला दे और कपड़छान कर ले।

छः माशा चूर्ण प्रातः, मध्याह्न तथा सायं दूधसे सेवन कराये।

गृध्रसीको निर्मूल करनेमें अद्वितीय है। वैसे समस्त वातविकारोंमें यह औषधि प्रयोग की जा सकती है। यह एक सफल योग है। लाभ शीघ्र ही हो जायगा, पर यह दवा एक मण्डल (चालीस दिन)-तक सेवन कराये।

२. छाजनका काल

चना दो छटाँक, काली मिर्च, बावची छः-छः माशे, तवकिया हरताल छः माशा, स्वर्णक्षीरी बीज दो छटाँक।

निर्माणविधि—पातालयन्त्रसे सभीका तेल निकालकर सुरक्षित रखे। किसी मिट्टीके पात्रमें (जो कोरा न हो) सभी द्रव्य भरकर पेंदीमें एक छिद्र बनाकर पृथ्वीमें थोड़ा-सा गड्ढा खोदकर रख दे। उसके नीचे एक प्याली रख दे, जिससे तेल चूता रहे। पात्रका मुख बंद रहे। ऊपरसे आग सुलगा दे। यह क्रिया निर्वात-स्थानमें शामको करे। प्रातः गाढ़ा-गाढ़ा तेल प्यालीमें जमा हो जायगा। उसीको प्रयोगमें लाये।

प्रयोगविधि—रोगीके आक्रान्त-स्थानपर चूनेके पानीमें पीसकर मेहँदीपत्र शामको लगा दे। प्रातः उसे दूर करके इस तेलको लगाये, नित्य यही क्रम करे। शीघ्र ही छाजन नष्ट हो जाता है। कण्डू, पामा, एग्जिमा, छाजन आदि जो विभिन्न प्रकारसे कथित हैं, ये चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं और शरीर स्वच्छ-सुन्दर बन जाता है। रोग नष्ट होनेपर भी पंद्रह दिन दवा लगाते रहे। मेहँदीपत्र लगानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

[वैद्य श्रीरामसनेहीजी अवस्थी शास्त्री, धर्मार्थ धन्वन्तरि-चिकित्सालय रामनगर, शाहाबाद, जिला—हरदोई (उ० प्र०)]

फ़क़ीरी नुस्खे

(१) **मधुमक्खी काटनेकी दवा**—आक (मदार)-के दूधमें लौंग, गोल मिर्च, शुद्ध कड़ुवा तेल या सरसोंका दाना एकमें रगड़कर तेलमें फेंटकर लगाये। पीड़ा समाप्त हो जायगी।

(२) **मनुष्यके पेटमें दर्द**—आकाशबवर पीसकर थोड़ा शुद्ध घी एक चम्मच जलके साथ पिला दिया जाय, दर्द मिट जायगा।

(३) **जहर खा लेनेपर**—अकोल्हाकी छाल थोड़ा-सा पीसकर पिला दिया जाय तो कैसा भी जहर हो उसे उलटीद्वारा बाहर निकाल देता है। यह दवा रामबाण है।

(४) **वातरोग या गठिया**—हरसिंगारकी चार या पाँच पत्ती पीसकर एक गिलास पानीसे सुबह-शाम दो या तीन सप्ताह पीनेसे रोग समाप्त हो जायगा।

(५) **कानका दर्द**—पीपलके पत्तेका रस कानमें डालनेसे कानका दर्द, बहना तथा बहरापन चला जाता है।

(६) **चौथिया, जड़ैया बुखार**—कपासके पत्तोंको सूँघनेसे चौथिया या जड़ैया बुखार जड़से छूट जायगा।

(७) **सिरदर्द या सर्दी**—पीपलके चार कोमल पत्तोंका रस चूसिये। रस चूसते-चूसते दर्द या सर्दी-जुक़ाम मिट जायगा।

(८) **खाँसी, दमा**—पीपलके सूखे पत्तोंको कूटकर कपड़छान कर ले तथा एक बड़े चम्मच शुद्ध मधु ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राममें, २५ ग्राम पीपल-पत्तेका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे खाँसी, दमा दो सप्ताहमें जड़से समाप्त हो जायगा।

(९) **पीपलके फलके उपयोग**—पीपलके फलको सुखाकर कूटकर कपड़छान कर ले। २५० ग्राम रोजाना गायके दूधमें मिलाकर सेवन करनेसे वह बल-वीर्यको बढ़ाता है, ताकत पैदा करता है और स्त्रियोंके प्रसूत, प्रदर, मासिक धर्मकी गड़बड़ीको भी यह दूर कर देता है।

(१०) **हैजा**—अकवन (आक)-को कुछ लोग मदार भी कहते हैं। अकवनकी जड़ १०० मिलीग्राम इतनी ही गोल मिर्च मिलाकर पीस ले और मटरके दानेके बराबर गोली बना ले। जिसे हैजा (कॉलरा) हो गया हो, उसे एक बार दो गोली खिलाये, हैजा तुरंत बंद हो जायगा।

(११) **गैस (घटसर्प)**—सफेद अकवनके फूल सुखाकर तवेपर भून ले तथा चार फूल हथेलीपर रगड़कर शहद मिलाये। ४ या ६ बूँद उस मरीजको चटाये, जिसे गैस (घटसर्प)-की बीमारी हो, इससे ठीक हो जाता है। इस रोगमें सीनेमें उठा दर्द साँपकी आकृतिमें ऊपर उठकर कण्ठपर जाकर रुक जाता है। ऐसे रोगीको श्वास घुटने लगती है। जब कण्ठपर श्वास रुक जाती है उसी समय इसे देना चाहिये, कण्ठ खुल जायगा। पंद्रह दिन तीन समय देनेसे बिल्कुल आराम हो जाता है।

(१२) **सूज़ाक**—अकवन (मदार)-की जड़ ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम, गोल मिर्च २५ ग्राम पीसकर गोली बनाये। एक-एक गोली रोजाना सुबह खाकर पानी पी ले तो गरमी, सूज़ाक जड़से समाप्त हो जाता है।

(१३) **मलेरिया**—तुलसीके सात पत्ते और गोल मिर्च सात दाने एक साथ चबानेसे पाँच बारमें मलेरिया जड़से चला जाता है। बुखार शीघ्र उतर जाता है, आराम हो जाता है।

(१४) **आँखकी लाली**—अकवनका दूध पैरके अँगूठेके नखपर लगानेसे आँखकी लाली फौरन साफ हो जाती है, परंतु ध्यान रहे आँखमें न लगने पाये।

(१५) **तुलसीके अद्भुत गुण**—तुलसीके पत्ते और इसके बराबर गोल मिर्च मिलाकर पीस ले, मटर बराबर गोली बना ले, एक गोली दाँतपर रगड़नेसे दाँतदर्द, पायरिया आदिमें फौरन आराम होगा। दस रोजमें दाँतसे खून आना, मुखकी दुर्गन्ध इत्यादि जड़से चली जाती है। यह गोली बुखारमें खानेसे रामबाणका काम करती है। बुखार उतर जाता है और तुरंत आराम होता है।

(१६) **शक्तिवर्धन तथा भूख-प्यास लगना**—चिरचिरी (अपामार्ग)-का बीज १०० ग्राम रगड़कर साफ कर ले और गायका दूध २५० ग्राम या एक किलो लेकर उसमें मिलाकर उसे गरम करे, जब दूध गाढ़ा हो जाय तब सेवन करे। दस रोज सेवन करनेपर ताकत बढ़ेगी, भूख-प्यास भी लगेगी।

(१७) **बवासीरके अक्सीर नुस्खे**—(क) रसौत ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम, गेंदेका फूल ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम, मुनक्का ५० ग्राम—तीनोंको पीसकर सात गोली बना ले; एक गोली रोजाना सुबह पानीके साथ सेवन करे, जड़से बवासीर चली जायगी।

(ख) निरी (हरसिंगार)-का बीज ५८ ग्राम ३१६ मिलीग्राम कुकरौंधाके रसमें पीस ले। मटर बराबर नौसादर मिलाकर दस गोली बना ले। एक गोली नित्य ५८ ग्राम ३१६ मिलीग्राम गुलाबजलके साथ निगल जाय।

(ग) सूरन (जमींकन्द)-को ओल भी कहते हैं, इसे घीमें भूनकर खानेसे खूनी बवासीर दूर हो जाती है।

(घ) काले तिलका चूर्ण मक्खनमें मिलाकर खानेसे बवासीर दूर होती है।

(ङ) मदार (आक)-का पत्ता तथा सहिजनके जड़की छाल—इन दोनोंको एक साथ पीसकर लेप करनेसे खूनी बवासीर दूर हो जाती है।

(१८) **खुजली-दाद**—खुजली, दाद, घाव, एग्ज़िमा आदि चर्मरोगोंमें गेहूँको जलाकर राख बना ले। इसे कपड़छानकर तेल (सरसों पीला)-में भिगोकर लगाये तो खुजली आदिमें तुरंत आराम हो जायगा।

(१९) **बिच्छूका काटना**—(क) बिच्छूने जहाँ काटा हो, वहाँ दूधी घास रगड़ देनेसे फौरन आराम हो जाता है।

(ख) मूलीको पीसकर बिच्छूके काटे स्थानपर लगानेसे विष दूर हो जाता है।

(ग) सिन्धुवारके कोंपलको पीसकर बिच्छूके डंक मारनेवाले स्थानपर लगानेसे आराम हो जाता है।

(२०) **गठिया-दर्द**—सिन्धुवार (सैंधाकचरी)-के पत्ते एक किलो पानीमें खूब गरम कर दे। उस गरम जलसे धोनेसे गठिया, कनकनी गाँठका दर्द तथा सूजन अच्छा हो जाता है।

(२१) **बुखार**—सिन्धुवारकी जड़ हाथमें बाँधनेसे बुखार उतर जाता है।

(२२) **त्रिफलाके उपयोग**—५० ग्राम त्रिफला (आँवला, हर्रे, बहेड़ा)-का चूर्ण, शुद्ध शहद और तिलके तेलमें मिलाकर चाटनेसे खाँसी, दमा, बुखार, धातुक्षीणता, पेटके समस्त रोग जड़से समाप्त हो जाते हैं। ऋषियोंने यहाँतक कहा है कि इसे सुबह-शाम सेवन करनेसे शरीरका कायापलट हो जाता है। सूज़ाक, बवासीरमें पूरा आराम मिलता है। स्त्रियोंका प्रदररोग, प्रसूत तथा मासिककी गड़बड़ी जड़से चली जाती है।

(२३) **खाँसी-सर्दी**—बाक्स (अड़ूसा)-का रस ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम, शहद ११ ग्राम ६६४ मिलीग्रामके साथ सेवन करे तो यह खाँसी, सर्दी, पुराने बुखार आदिको जड़से समाप्त कर देता है।

(२४) **आँखकी फूली, धुँधलापन**—गदहपूरनाका रस आँखमें डालनेसे आँखकी फूली, माणी, धुँधलापन आदि रोग दूर हो जाते हैं।

(२५) **गर्भ न गिरना**—अशोकके बीजका एक दाना लेकर सिलपर घिसकर बछड़ेवाली गायके दूधमें

मिलाकर स्त्रीको देनेसे गर्भपात रुक जाता है, स्त्री पुत्रवती हो जाती है।

(२६) **स्त्रीका गर्भ न टिकता हो**—आमके वृक्षका अतरछाल, गायके घीमें पुराना गुड़ तथा एक फूल लवंग गर्भवती स्त्रीको खिला देनेसे गर्भ-धारण हो जायगा।

(२७) **दर्द**—सहिजनके जड़की छालको बिना पानीके पीसकर दर्दमें लगानेसे शीघ्र आराम हो जाता है।

(२८) **फाइलेरिया**—फाइलेरियाके रोगीको जब दर्द हो, ज्यादे सूजन हो जाय तो सहिजन और सिन्धुवार (सैंधाकचरी)-के पत्तोंको किसी कच्चे मिट्टीके बर्तनमें गरम करे, जब गरम हो जायँ तो जहाँपर फाइलेरिया हो वहाँ बाँधनेसे तुरंत आराम हो जाता है।

(२९) **टूटी हुई हड्डीको जोड़ना, गुप्त चोटमें आराम**—

(क) नागफनीका एक पूरा टुकड़ा आगमें डाल दे, भुन जानेपर काँटे छील डाले और बीचमें फाड़कर आँबाहलदी, खारी, सेंधा नमकका चूर्ण कपड़छान कर उसे दे और चोटपर बाँध दे। २४ घंटेके बाद खोले, उसी तरह फिर तैयार कर बाँधे। सात दिनमें टूटी हड्डी जुड़ जायगी।

(ख) हड़जोड़ जो पेड़ोंपर पलता है बिना जड़के, कहीं-कहीं इसे चौराहाजी कहते हैं। अगर महुआके वृक्षपरका मिल जाय तो उत्तम, न मिले तो कहीं किसी वृक्षपर हो, उसे पीसकर शुद्ध घीमें भून ले और आँबाहलदी, खारी, सेंधा नमकका चूर्ण मिलाकर बाँधने तथा हड़जोड़की पकौड़ी (माजिये) सेवन करनेसे टूटी हड्डी तथा गुप्त चोट ठीक होती है।

(३०) **दन्त-रोग तथा दर्द**—(क) मदार (आक) या थूहरके दूधको रुईमें भिगोकर दाँतोंके घावपर रखनेसे दाँतोंका दर्द दूर हो जाता है और घाव भी भर जाता है।

(ख) गुलाइची वृक्षका या छीतवनका दूध रुईमें रखकर दाँतोंपर रखनेसे दाँतका दर्द चला जाता है।

(३१) **दन्तमंजन**—बादामके छिलके तथा नीमकी डालका कोयला बना ले। डम्बरका बीज, बबूलकी छाल, काली मिर्च, सफेद इलायची, चूल्हेकी मिट्टी तथा लाहोरी नमक—इन्हें समान भाग लेकर कूट-छानकर नित्य मंजन करे। यह पायरिया तथा हिलते दाँतोंको मजबूत तथा साफ रखता है।

(३२) **पायरिया एवं दाँत हिलना**—तूतिया और फिटकरी एक किलो पानीमें पकाये। जब एक भाग जल जाय और तीन भाग बच जाय तो शीशीमें रख ले, रोज थोड़ा गरम करके कुल्ला करे तो रोग ठीक हो जायगा।

(३३) **कानका दर्द तथा बहना**—नीमकी मुलायम पत्तीका रस तथा रसके बराबर शुद्ध शहद मिलाकर कानमें डालनेसे बहता कान, कानका दर्द तथा बहरापन दूर हो जाता है। नीमकी पत्तीका रस हथेलीद्वारा निकालना चाहिये।

(३४) **खाज, गजकर्ण, अपरस, खुजलीका मरहम**—अकवनका दूध, नीला थूथाका दूध, गन्धक, फिटकरी, सोहागा, नौसादर—प्रत्येक वस्तुको ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम लेकर लोहेके बर्तनमें खरल कर खूब बारीक मरहम-जैसा बना ले। घावको नीमके पत्तेयुक्त गरम जलसे अच्छी तरह साफ कर ले। जब घावका पानी सूख जाय तो मरहमको नारियलके तेलमें मिलाकर लगाये।

(३५) **श्वेत कुष्ठ (सफेद कोढ़)**—तिलके तेलमें नौसादर मिलाकर लगानेसे सफेद कोढ़के दाग मिट जाते हैं।

(३६) **तेज ज्वर**—(क) काली मिट्टीकी पट्टी पेटपर लगानेसे आधे घंटेमें तेज ज्वर शान्त हो जाता है।

(ख) तेज ज्वरमें ठंडे पानीसे सिर धोने या ठंडे जलका कपड़ा भिगोकर सिरपर रखनेसे ज्वर कम हो जाता है।

(३७) **दमा या श्वासरोग**—(क) आमके कच्चे पत्तोंको सुखाकर चीलममें भरकर पीनेसे दमारोग नष्ट हो जाता है।

(ख) बेरके पत्तोंको पीसकर घीमें भूनकर तथा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करनेसे दमा-रोगीको आराम मिलता है।

(ग) अजवाइनको पानमें डालकर चूसनेसे खाँसी तथा श्वासरोग नष्ट हो जाते हैं।

(घ) मदारके चार-पाँच पत्तोंको आगमें राख करके उस राखको रातभर पानीमें रहने दे। सुबह छानकर पीनेसे श्वासरोग हमेशाके लिये नष्ट हो जाता है।

(३८) **आँखके रोहेका काजल**—तूतियाको गुलाबजलमें पीसकर रख ले, सरसोंके तेलके दीपकमें रुईकी बत्तीसे काजल पार ले, बादमें पीसा हुआ तूतिया-गुलाबजल मिला ले, हो सके तो पुराने गायके घीमें फेंट ले। फिर रोहेवाले आँखमें लगाये।

(३९) **प्रदररोग**—(क) शुद्ध शहदके साथ प्रतिदिन आँवलाचूर्ण चाटनेसे श्वेतप्रदर दूर होता है।

(ख) चावलके धोवनमें कपासकी जड़ पीसकर पीनेसे श्वेतप्रदर दूर होता है।

(ग) घीके साथ लाखचूर्ण खानेसे रक्तप्रदर दूर हो जाता है।

(घ) गूलरके सूखे फलका चूर्ण मिस्रीके साथ सेवन करनेसे प्रदररोग ठीक हो जाता है।

(ङ) गूलरके पके फलोंका साग बनाकर खानेसे रक्तप्रदर दूर होता है।

(४०) **हृदयकी जलन तथा पेशाबकी जलन**—गूलरके कच्चे फल खानेके उपरान्त गायका धारोष्ण दुग्ध मिस्री मिलाकर पीनेसे हृदयकी जलन, पेशाबकी जलन तथा मूत्रजनित रोग हमेशाके लिये दूर हो जाते हैं।

(४१) **बहुमूत्रता**—सिंघाड़ा-चूर्ण ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम बकरीके दूधके साथ नित्य सुबह-शाम सेवन करनेसे लाभ होता है।

(४२) **गुल्मरोग (वायुगोला)**—(क) गुग्गुलको गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे लाभ होता है।

(ख) अदरक, सहिजनकी छाल और सरसोंका तेल—इन तीनोंको मिलाकर गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे वायुगोला समाप्त हो जाता है।

(४३) **श्लीपद (हाथीपाँव)**—(क) देवदार और हलदीका चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे हाथीपाँव ठीक हो जाता है।

(ख) गुडुच (गुरुच)-का रस गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे भी हाथीपाँव ठीक होता है।

(४४) **तिल्ली**—(क) हर्रेका चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे तिल्ली (पीलही) कट जाती है।

(ख) नित्य सुबह-शाम पपीता-सेवन करनेसे तिल्ली (पीलही) कट जाती है।

(४५) **मूर्च्छारोग (दौरा)**—(क) पेठा (भतुआ)-की सब्जी शुद्ध घीमें भूनकर खानेसे मूर्च्छा दूर हो जाती है।

(ख) नौसादर तथा चूनेका पानी सुँघानेसे मूर्च्छा दूर हो जाती है।

(४६) **कृमि**—(क) गाजर खानेसे कृमिरोग दूर हो जाता है।

(ख) कृमिरोगमें पोदीनाका काढ़ा देनेसे बच्चोंको लाभ होता है।

(४७) **कण्ठमाला**—(क) त्रिफलेके जलमें अरंडी (रेंड़ी)-की जड़को पीसकर लगानेसे कण्ठमालारोग दूर हो जाता है।

(ख) गेंदेकी पत्तीको गोमूत्रमें पीसकर लगानेसे कण्ठमाला नष्ट हो जाता है।

(ग) सूरजमुखी और लहसुनकी पुटली बनाकर लगानेसे कण्ठमाला दूर हो जाता है।

(घ) गोमूत्रके साथ जलकुम्भीका भस्म सेवन करनेसे कण्ठमाला नष्ट होता है।

(४८) **पतले दस्त**—(क) अमरूद (वीही)-के जड़की छाल तथा कोमल पत्तोंको ६० ग्राम लेकर उसका काढ़ा बना ले, उसे पीनेसे पतले दस्त बंद हो जाते हैं।

(ख) अशोकके फूल ४० ग्राम पीसकर पीनेसे पतले दस्त बंद हो जाते हैं।

(ग) भुनी अजवाइनका अर्क पीनेसे पतले दस्त बंद हो जाते हैं।

(घ) गूलरका दूध बतासामें डालकर बच्चोंको देनेसे उनका आँव (मल) दस्त बंद हो जाता है।

(ङ) गायके कच्चे दूधमें कागजी नीबू निचोड़कर पीनेसे आँव (मल) दस्त चला जाता है, परंतु नीबू निचोड़कर तुरंत पी जाना चाहिये। दूध पेटमें जाकर फटना चाहिये, देर होनेपर जम जायगा।

(च) धवईके फूल मट्ठेके साथ सेवन करनेसे पतले दस्त बंद हो जाते हैं।

(४९) **पुरुषका हृष्ट-पुष्ट होना**—(क) गोखरू, कौंचका बीज, मुलहठी, शतावर, श्वेत मुसली, छोटी इलायचीके दाने, तालमखाना—इन्हें समान भाग लेकर कूटकर कपड़छान कर ले और रातमें सोते समय

गायके दूधके साथ सेवन करे। शक्ति बढ़ेगी और हृदय पुष्ट होगा।

(ख) शतावर, गोखरूके बीज, कौंचके बीज, गगेरनकी छाल, तालमखाना, कंथीकी छाल—इन्हें बराबर मात्रामें लेकर कूट-छान ले और रातमें सोते समय गायके दूधके साथ सेवन करे।

(ग) असली नागकेशर, वंशलोचन, शतगिलोय, मुलहठी, श्वेत राल, मरगमीहमी—सबको समान भाग लेकर कूटकर, कपड़छान कर प्रतिदिन गायके दूधके साथ सेवन करे।

(घ) अश्वगन्धका चूर्ण ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम, विधारा-बीज ११ ग्राम ६६४ मिलीग्राम प्रतिदिन गायके दूधके साथ सेवन करे।

(५०) **कील-मुहाँसे**—लवंग, धनिया, वर्चका लेप मुँहासोंको दूर करता है।

(५१) **कालापन**—हलदीके चूर्णको आक (मदार)-के दूधमें मिलाकर चेहरेपर लेप करनेसे मुँहका कालापन दूर हो जाता है।

(५२) **हृदयरोग**—(क) अर्जुनकी छाल रातमें एक गिलास पानीमें भिगो दे। सुबह दातौन करनेके पश्चात् छानकर पी ले। हृदयरोग जड़से चला जायगा।

(ख) विजयशालकी लकड़ीके गिलासमें पानी पीनेसे भी हृदयरोगमें आराम होता है। अगर लकड़ी हो तो उसे एक गिलास पानीमें रातको भिगो दे। फिर दूसरे दिन भी पानीमें उसी लकड़ीको डालकर पानीका प्रयोग करे।

(५३) **मधुमेह**—शहदइयाकी जड़ ११ ग्राम ५०० मिलीग्राम साफ-सुथरा कर उसमें चार-पाँच दाना काली मिर्च मिलाकर पीस ले, गायका दूध २५० या ५०० ग्राम लेकर उसीके साथ निगल जाय। दातौन करनेके पश्चात् सुबह लगातार इक्कीस दिन करना है। बीचमें नागा नहीं करना है। परंतु गरमीमें ही करना है, जाड़ेमें करनेसे गठियाकी बीमारी हो सकती है।

(५४) **बहता खून बंद करना**—काले कुकरौंधाके पत्तेका रस हाथसे निकालकर कटे हुए स्थानपर डाले, बहता हुआ खून तुरंत बंद हो जायगा।

(५५) **पेटके अंदरसे खून आता हो**—सफेद दूर्वा (दूब) लेकर पीस ले और उसे चीनी या गुड़ डालकर शर्बत बनाकर रोगीको पिला दे, खून फौरन बंद कर देगा। यह दो-तीन बार देना है।

(५६) **शरीरके अंदरसे कट-कटकर खून कहींसे आता हो**—खस (कतरा)-की जड़, कमलका फूल और दूर्वा (दूब), पुराने चावल (चावल जितना ही पुराना हो अच्छा रहेगा। कम-से-कम एक सालका पुराना अवश्य हो)-के पानीमें पीसकर रोगीको एक गिलास जलमें शर्बत बनाकर पिला दे। खून तुरंत बंद हो जायगा। इसे दो-तीन बार देना चाहिये।

(५७) **जूँएकी दवा**—शरीफा (मेवा)-की गुद्दीको निकालकर पीस डाले और उसे पानीमें घोल दे, सिरमें लगाये, सभी जूँए समाप्त हो जायँगी।

(५८) **पशुके पेटमें दर्द**—आक (मदार)-का थोड़ा छिलका, आकाशबवर और थोड़ा गुड़ शुद्ध जलके साथ खिला दे। पेटका दर्द शान्त हो जायगा।

(५९) **पशुरोग**—पशुको मूत्र, पैखाना ज्यादे हो रहा हो और पेशाब शुद्ध न आता हो तो गम्हारकी पत्ती पीसकर थोड़ा गुड़ और एक गुड़हल (अड़हुल)-का फूल पीसकर पिलानेसे वह ठीक हो जायगा।

(६०) **पशुका पेशाब रुकना**—गम्हारकी पत्ती, गुड़हल (अड़हुल)-का फूल पीसकर पिलानेसे ठीक हो जायगा।

(६१) **पशुका पेट फूल गया हो या पेटमें कोई गड़बड़ी हो**—फिटकरी और अजवाइनको पीसकर ठंडे जलसे दो ढरका (सिरेपर कलमकी तरह कटा हुआ बाँसका चोंगा, जिससे पशुओंको दवा आदि पिलायी जाती है) दे देनेसे पेट साफ हो जायगा, पशु ठीक हो जायगा।

[श्रीमधुसूदनरायजी शर्मा
ग्राम-पोस्ट—करमैनी प्रेमवलिया
जनपद—कुशीनगर (उ०प्र०) पिन कोड—२७४४०२]

तीन नुस्खे

खाँसीकी दवा

अडूसा (सेहरुवा)-के फूल सौ ग्राम, एक किलो पानीमें गरम करके उबाले। जब दो सौ ग्राम पानी शेष रह जाय, तब ठंडा करके प्रातः-सायं शहदके साथ सेवन करे।

बवासीरकी दवा

घमिराको पीसकर साफ कपड़ेमें पोटली बनाकर, असली घीको तवेमें डालकर पोटलीको तवेपर गरम करके बवासीरको सेंके, भगवत्कृपासे आराम अवश्य मिलेगा, भोजनमें दूध-दलिया ले।

रतौंधी

पीपरको घिसकर गोमयके रसके साथ आँखमें लगानेसे रतौंधी दूर हो जाती है।

[श्रीसुधीरकुमारजी]

सामान्य खाँसी, खुजली तथा श्वासपर अनुभूत प्रयोग

सामग्री—अजमा (अजवायन) १ चम्मच, हल्दी-चूर्ण २ चम्मच, गुड़चूर्ण १ $\frac{१}{२}$ चम्मच, सोंठ १ रत्ती, लौंग $\frac{१}{४}$ टुकड़ा, घृत शुद्ध १ चम्मच, दूध $\frac{१}{२}$ पाव।

तैयार करनेकी विधि—पहले घृतको कड़ाहीमें डालकर सभी चूर्णको सेंक ले, बादमें दूध डालकर हलुवेकी तरह बना ले।

मात्र १० मिनटमें नुस्खा तैयार हो जाता है। इसका सेवन प्रातः खाली पेट तथा रातमें सोते समय करनेसे सामान्य खाँसी, जुकाम, एलर्जी, श्वास आदि तीन दिनमें नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवनसे नयी शक्तिका सञ्चार होता है। इसमें कोई विशेष पथ्य या अपथ्य नहीं है।

(श्रीमती पुष्पा पाठक, एम्०ए०, बी-एड्०, आयुर्वेदरत्न)

एग्ज़िमाकी सिद्ध औषधि

गन्धक, पानकी जड़ तथा नीला थोथा—ये तीनों वस्तुएँ समभाग अर्थात् प्रत्येक १०० ग्राम लेकर तीनोंको एक साथ इमामदस्तामें कूटकर बारीक कर ले, फिर इसको बारीक कपड़े या मैदेकी छलनीसे छान ले।

इस दवाको एक ही बारमें प्रयोगमें नहीं लाना है। फुंसियोंके संख्यानुसार इसमेंसे थोड़ी मात्रामें दवा लेकर मीठा तेल (मूँगफली)-में मिलाकर मलहम बना ले। इस मलहमको फुंसियोंपर धीरे-धीरे लगाये। इससे जलन होगी। दवा लगानेके बाद धूपमें बैठ जाय। सूर्यकी किरणें फुंसियोंपर पड़नी चाहिये। जबतक जलन सहन करने योग्य हो तबतक धूपमें बैठे, इसके बाद गोबर लगाकर इस दवाको ठंडे पानीसे धो डाले। फुंसियोंपर जितनी दवा चिपक जाय उसे न निकाले, थोड़ी सूजन आ सकती है। तीन-चार दिनमें दर्द बंद हो जायगा। यदि फुंसियोंसे पानी आना बंद न हुआ हो तो दूसरी बार फिर उपर्युक्त विधिसे यह मलहम बनाकर लगाये। शेष बची हुई सूखी दवा आपके परिचित या अन्य रोगी, जो इस रोगसे ग्रस्त हों उन्हें भी दे सकते हैं, ध्यान रहे, यह एक प्रकारका मामूली विष-जैसा ही है। अतः प्रयोग आदिमें सावधानी रखनी चाहिये

[श्रीकिशोरीलाल गाँधी
१/१ निजातपुरा, महालक्ष्मी अपार्टमेन्टके
पास उज्जैन (म०प्र०)]

पेट-दर्दकी चमत्कारी दवा

कई साल पहलेकी बात है। मैं माल खरीदनेके लिये मद्रासकी ओर गया हुआ था। सेलममें मेरे पेटमें दर्द हो गया और वह स्थायी-सा बन गया। मैंने जोधपुर लौटकर लगभग नौ महीनेतक वैद्यों-डॉक्टरोंसे इलाज करवाया, पर थोड़ा भी लाभ नहीं हुआ।

डॉक्टरोंने जलोदरकी बीमारीकी आशंका कहकर रोगको खतरनाक बतलाया। पैसेकी तंगी थी, मैंने इलाज छोड़ दिया। तदनन्तर दर्द बहुत बढ़ गया। मैंने सोच लिया अब भगवान्‌के सिवा इस दर्दको दूर करनेवाला और कोई नहीं है।

एक दिन मैंने घरमें ऊपर जाकर एक घंटे नाम-जप किया। अन्तमें भगवान्‌से कातर प्रार्थना की। फिर नीचे आनेपर भगवत्प्रेरणासे मेरी इच्छा बाजार जानेकी हुई और मैं बाजारकी ओर चल दिया। मैं दर्दके मारे पेटपर हाथ फेरता जा रहा था, राह चलते एक अनजान व्यक्तिने पूछा—'सेठजी! पेटपर हाथ क्यों फेर रहे हैं?' मैंने नीचे बैठकर उसे सारी घटना सुनायी। वह बोला—'मैं दवाई बता रहा हूँ। सात दिनोंतक सेवन करोगे तो अच्छे हो जाओगे।' मैंने कहा—'मैं पैसेवाली बहुत दवाइयाँ करके हैरान हो गया हूँ।' उसने कहा—'मैं बिना पैसेकी दवा बता रहा हूँ।' मेरे फिर पूछनेपर उसने कहा—'मोठको पीसकर आटा बना लीजिये। फिर उस आटेकी एक मोटी रोटी बनाकर एक तरफसे सेंक लीजिये। रोटीकी कच्ची ओर तिलका तेल चुपड़कर पेटपर बाँधकर सो जाइये। फिर चार बजे उठकर करीब आधा पाव गो-मूत्रका सेवन कीजिये। तदनन्तर आधा सेर गेहूँ चक्कीमें पीस लीजिये। यों सात दिनोंतक करनेपर भगवत्कृपासे आप ठीक हो जायँगे।' इतना कहकर वह चल दिया।

मैंने घर आकर पत्नीसे यह बात कही। उनको भरोसा नहीं हुआ, इससे एक दिन और निकल गया। दूसरे दिन मोठ पिसवाकर उसके आटेकी मोटी रोटी बनवायी और एक ओर तिलका तेल चुपड़कर उसे बाँधकर सो गया। चार बजे उठा और घनश्यामजीके मन्दिरके समीप जाकर ताजा गो-मूत्र गिलासमें लेकर पी गया। फिर घर आकर चक्कीमें गेहूँ पीसना चाहा, पर कमजोरीके कारण अकेलेसे चक्की चल नहीं पायी। तब पत्नीको साथ बैठाकर पीसा। शामको शौचके बाद चार आने लाभ मालूम हुआ। चार दिनोंमें मेरी सारी बीमारी जाती रही और भगवान्‌की कृपासे फिर अबतक उसका कहीं कोई नाम-निशान भी नहीं है।

—गोपीकिशन

नीमसे वातरोगसे मुक्ति

मैं लक्ष्मी-नारायणमन्दिरका पुजारी हूँ। मैं कुछ समय पूर्व वातरोगसे बहुत पीडित था। मेरे दायें कूल्हेसे दायें पंजेतक चमक और दर्द रहता था। छः माह इलाज कराया पर कोई लाभ नहीं हुआ। असहनीय दर्दके मारे मैं न बैठ पाता, न खड़ा रह पाता और न लेट ही पाता था। भगवान् श्रीहरिकी कृपासे मन्दिरमें एक बुजुर्ग आते रहे, आयु लगभग ९० वर्ष रही होगी। उन बुजुर्गने मुझसे कहा कि 'पुजारीजी! दवाओंसे वातरोगमें कम आराम मिलता है। अगर आप हमारी बात मानें तो आप नीमकी नयी पत्ती (जो आषाढ़से आश्विन मासतक आती हैं) डेढ़ तोला सुबह खाली पेट चबाकर खायें और रातको सोते समय ५० ग्राम गुड़ और १ तोला शुद्ध घीका सेवन करें। पानी तुरंत न पियें तो आपको पंद्रह दिनमें वातरोगसे आराम मिल जायगा।' मैं तो सब ओरसे निराश हो ही चुका था। अतः मैंने उन बुजुर्ग सज्जनकी बात मानना ही उचित समझा। संयोगसे उस समय आषाढ़का महीना था। नीममें नयी पत्तियाँ निकल रही थीं। मैंने नित्य खाली पेट नीमकी डेढ़ तोला पत्ती खाना शुरू किया और रात्रिमें सोते समय ५० ग्राम गुड़ एवं १ तोला शुद्ध घी खाने लगा। श्रीहरिकी कृपासे कुछ ही दिनोंमें वातरोगसे मुझे मुक्ति मिल गयी। आशा है कि कल्याणके पाठक इस नुस्खेका अवश्य प्रयोग कर लाभ उठायेंगे।

[पं० श्रीवीरेन्द्रकुमारजी दुबे, पुजारी श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिर, अशोक होटल चौराहा रेलवे स्टेशन रोड, सिविल लाइन्स, झाँसी-२८४००१ (उ०प्र०)]

हृदयरोगके दो नुस्खे

[१] दो सौ पचास ग्राम घीया (लौकी) छिलकेसहित धोकर उसको कस ले। कसी हुई लौकीको या तो ग्राइंडरमें अथवा सिल-बट्टेपर पीस ले। पीसी हुई लौकीका रस ग्राइंडरसे अपने-आप बाहर आ जायगा। फिर उसे कपड़ेसे छान ले। लौकीको पीसते समय तुलसीकी सात पत्तियाँ और पोदीनेकी छ: पत्तियाँ डालना न भूले। घीयाके रसमें उतनी ही मात्रामें पानी मिला ले। पानीमें चार पीसी हुई काली मिर्च और एक ग्राम सेंधा नमक डाल ले। भोजनके आधे घंटे बाद सुबह-शाम और रातको तीन बार इसका सेवन करे। ध्यान रहे कि हर बार रस ताजा ही निकाला जाय। घीयाका रस पेटमें जो भी पाचनविकार होते हैं, उन्हें दूरकर मलद्वारसे बाहर निकाल देता है। सम्भव है कि इसके सेवनसे प्रारम्भके तीन-चार दिन पेटमें कुछ खलबली या गड़गड़ाहट-सी महसूस हो, परंतु बादमें सब बंद हो जायगा।

[२] पान, लहसुन, अदरकका एक-एक चम्मच रस और एक चम्मच शहद—इन चारोंको एक साथ मिला ले और सीधे पी जाय। इसमें पानी मिलानेकी जरूरत नहीं है। इसे दिनमें एक बार सुबह और एक बार शामको पीये; सारी चिन्ता-फ़िक्र छोड़ दे। दिलमें कोई कठिनाई महसूस हो तो जो सामान्य दवा लेता हो वह लेता रहे। प्रयत्न करें कि उसे लेना न पड़े। इस प्रयोगसे एक हफ्तेमें ही सुधार शुरू हो जायगा और इक्कीस दिन लगातार लेते रहनेसे भगवान्ने चाहा तो अवश्य आराम हो जायगा।

हमारे पड़ोसमें एक सज्जन रहते हैं। उन्होंने अपने हृदयका एक्स-रे कराया तो पता चला कि उनका बाल्व खराब हो गया है। डॉक्टरोंने ऑपरेशनकी राय दी और इसकी तिथि भी निश्चित हो गयी। उन्हीं दिनों वे ग्वालियर आये और उन्होंने अपनी हालत मुझे बतायी। मैंने पहला नुस्खा उन्हें बताया। उन्होंने उपचार भी शुरू कर दिया। उपचारसे इतना लाभ हुआ कि वे अब ऑपरेशनका नाम भी नहीं लेते। वे बराबर सालभरसे यह दवा ले रहे हैं। उन्हें पूरा आराम है। आशा है अन्यको भी यह उपचार आराम देगा। शेष भगवत्कृपा।

[श्रीभवानीशंकरजी डालमिया
लाइन नं० ३, क्वार्टर नं० १६९-१७०
पोस्ट-विरलानगर—ग्वालियर (म०प्र०)]

बवासीरका अचूक इलाज—त्रिफलाचूर्ण

मेरी उम्रके ४३ वर्ष पार कर जानेके बाद बवासीरकी बीमारीने उग्ररूप धारण कर लिया। सभी तरहकी दवाएँ और काफी इलाज कराया, पर कोई लाभ न पहुँचा। नौबत ऑपरेशनतक आ गयी। तब अकस्मात् मुझे याद आया कि पू० पिताजी कहते थे कि 'त्रिफलाचूर्ण पेटकी बीमारीके लिये अमृतस्वरूप है।' पेट (शौच)-की समस्याएँ जब गम्भीररूप धारण करती हैं तभी बवासीरकी बीमारी होती है, ऐसा सभी जानकारोंका कहना है। अतएव माँ दुर्गा भवानीका स्मरण करते हुए बाजारसे 'त्रिफलाचूर्ण'की एक शीशी ले आया और रात्रिमें सोते वक्त तीन चम्मच चूर्ण पानीके साथ ले लिया। दूसरे दिन बड़ी राहत महसूस हुई। इस प्रकार नवम्बर सन् १९९८ ई० से लेकर मई सन् १९९९ ई० तक एक भी दिनका नागा न करते हुए लगातार त्रिफलाचूर्णका सेवन किया। जिससे बवासीरकी तकलीफ जाती रही। ऐसा लगने लगा कि आँखोंकी रोशनी भी कुछ बढ़ गयी है; क्योंकि महीन टाईपका अखबार भी मैं बिना चश्मेकी सहायतासे अब पढ़ सकता हूँ। इसके अलावा उड़दकी दाल, चनेकी दाल और बैंगनके खानेपर भी तकलीफ महसूस नहीं होती। लगभग प्रतिमाह २४० ग्राम त्रिफलाचूर्ण नियमित सेवनके लिये आवश्यक है। इसके बाद आवश्यकतानुसार अब मैं कभी-कभार 'त्रिफलाचूर्ण'का सेवन करता हूँ। अतएव उपर्युक्त बीमारीसे अस्वस्थ भाई-बहनें 'त्रिफलाचूर्ण'का सेवन क्रर स्वास्थ्य-लाभ करें, यही उनसे प्रार्थना है।

[श्री एच० सी० अवस्थी, द्वारा-मे० गंगानगर मेडिकल स्टोर्स, मु० पो०-दुसर बीड (जि०-बुल्डाणा) पिन-४४३३०८ (महा०)]

खूनी एवं बादी बवासीरका अचूक नुस्खा

इस नुस्खेसे सैकड़ों मरीजोंको लाभ हुआ है। यह नुस्खा मुझे एक महापुरुषने दिया था। उन्होंने मुझसे यह वचन लिया था कि मैं इस इलाजका प्रयोग मुफ्त करूँगा एवं किसीसे किसी भी प्रकारका कोई मूल्य नहीं लूँगा।

नुस्खा—उपचार-हेतु सामग्री—रसवत, बसौंठा, कुल्फा (लोणक)-का बीज।

उपर्युक्त सामग्री बराबर-बराबर (वजनमें) लेकर बारीक़-से-बारीक कूट-छान (कपड़छान)-कर मूलीके पानीके साथ चने बराबर गोलियाँ बना ले, परंतु इन गोलियोंको धूपमें न सुखाकर छायामें सुखाये।

प्रातः मरीजको ३-४ गोलियाँ खाली पेट गायके दूधकी दहीकी लस्सीके साथ रोज दे। निश्चय ही आराम आयेगा।

परहेज—बवासीरका रोगी लाल मिर्च और गुड़का सेवन बिलकुल न करे।

[श्रीजगदीशचन्द्रजी भाटिया, ३८९ आवास-विकास, देहली रोड, ज्वालापुर, हरद्वार—२४९४०७ (उ० प्र०)]

कुछ रोगोंके अनुभूत प्रयोग

१. दारुण शिरःशूल

कुछ समय पूर्वकी बात है, शिरःशूलका एक रोगी बहुत समय तो इधर-उधर उपाय करता रहा। कोई आराम न मिलनेपर कई नामी चिकित्सकोंसे मिला तथा आतुरालयमें भी पड़ा रहा। अन्ततः आतुरालयमें जब करीब दो मास व्यतीत हो गये तब डॉक्टर साहबने कहा—द्रिमागमें रसौली (भौंहोंके पास आँखके ऊपर गिल्टी निकलनेका एक रोग-विशेष)-का दबाव नसपर है। अतः ऑपरेशनद्वारा रसौलीको निकालना पड़ेगा। रोगीकी इतनी हिम्मत नहीं पड़ी और उसके परिवारवाले भी ऑपरेशनके लिये राजी नहीं हुए। दैवयोगसे वह हमारे यहाँ पहुँचा।

बातचीतसे यह लगा कि उसके सिरमें नजलकी कोई गंदगी जमा हो गयी है। उसीसे सिरमें भीषण शूल हो रहा है। अतः शिरोविरेचनार्थ रोगीके सिरके बाल उस्तरेसे साफ कराये गये और सिरके अंदर जो दोष इकट्ठे हो रहे थे, उनको नरमकर नाकसे निकालनेके लिये दवाइयों (पञ्चगव्य)-द्वारा सिद्ध घृतमें दूधका खोवा भूनकर सुहाता-सुहाता सिरपर बँधवाया गया और रोगीको कुटी-प्रावेशिक-विधिसे गरम कमरेमें कई दिनतक रखा गया। उसके परिचारकोंको समझाया कि रोगीको हर तरह ठंडसे बचाना है। पूरा-पूरा पहरा जरूरी है। रोगीको प्रतिश्याय-सम्बन्धित गरम क्वाथ ही दिये गये या आवश्यकता होनेपर गरम पानी सेवन कराया गया। खानेमें पतला-सा शुद्ध घीका हलवा, जिसमें त्रिफला एवं सितोपलादि-चूर्ण मिला था, साधारण मात्रामें दिया गया। हलवा भी बहुत थोड़ा, दिन-रातमें केवल तीन बार। इसका यह प्रभाव हुआ कि रोगीके नाकसे पीला-पीला पानी बहना शुरू हो गया और सिरका कुछ बोझ भी हलका हुआ।

अगले दो दिनोंके बाद यानी तीसरे दिन रोगीको एक गोली शूलहर और दी गयी। परंतु उसके बाद उसे और गोली नहीं खानी पड़ी। रोगीको सात दिनतक कमरेमें रखा गया। जरूरतके समय भोजन और पानी गरम-गरम ही दिये गये। ठंडी हवाका प्रवेश बंद रखा गया। भोजन उपयुक्त मात्रामें धीरे-धीरे बढ़ाया गया और ईश्वर-कृपासे वह व्यक्ति आज चालीस वर्ष बाद भी ठीक-ठाक है।

क्वाथ—गुलवनफशा, गाजवान, मुलेठी, काली मिर्च, सौंफ, उन्नाय एवं देशी खाण्डके क्वाथसे दारुण शिरःशूलमें लाभ होता है। रोगीका बलाबल देख कर मात्रा निर्धारित करनी चाहिये।

२. नकसीर (नाकसे खून बहना)

नकसीर शुरू होते ही रोगीके सिरपर ठंडा पानी या भीगा कपड़ा डाल दे। ठंडे पानीसे उसकी नाकको मस्तकसमेत बार-बार धोये। शुद्ध ठंडे पानीमें भिगोकर

शुद्ध रूई या कपड़ेकी बत्ती बनाकर नाकमें डाले। चिकनी मिट्टीकी डलीपर पानी डालकर सुँघाये। खून बहना बंद हो जाता है।

कभी-कभी चोटसे यदि नाकमें व्रण हो गया हो, पिंकी (लाल दवाई)-का घोल बनाकर गुलाबी-गुलाबी अति गहरा नहीं, वह घोल नाकमें डाले। भीगी रूई या कपड़ेकी बत्ती नाकमें डालनेसे आराम हो जाता है।

बार-बार होनेकी हालतमें ऐसे रोगीके मस्तकपर श्वेत चन्दन, गेरू या आँवलेके ठंडे पानीसे बना पतला-पतला लेप करे। आराम देगा। सौवीर, धात्री, गुलसुर्ख, मुलेठी, सरज खटिक, ठंडे पानीसे गुलकन्द, अर्क केवड़ा, गुलाब या मुण्डी आदिके साथ विकारी, मूँगाभस्म, पेठा, कहरवा, वासावलेह आदि सेवन कराये। अवश्य आराम होगा।

३. जलोदर

जलोदर एक भयानक रोग अवश्य है, परंतु यदि चिकित्सा शुरूमें ही सिद्धान्तके अनुसार की जाय तो भयंकर स्थिति आने नहीं पाती। चिकित्सा-सूत्र इस प्रकार हैं—

१. रोगीको पानीकी जगह सौंफ या मकोयका अर्क दिया जाय, पानी देना ठीक नहीं।

२. नमक बिलकुल न दे। भोजन बिना नमक, जौकी रोटी और गायका दूध पीनेको दे। मीठा कम दें, वह भी देशी खाण्डका दे।

३. दवा या भोजन केवल अर्क या दूधके ही साथ दे। कृपया टेपिंग न करावे, रोग लम्बा पड़ जाता है।

४. पुनर्नवा मण्डूर, आरोग्यवर्धिनी यकृत्, प्लीहादिरस, रससिन्दूर, चन्द्रप्रभावटी, नवायसलौह, सिंहनाद गुग्गुल, सौवीरभस्म या पिष्टी, गोक्षुरादि गुग्गुल, पाषाणभेद, सुरभिक्षार, यवक्षार, नरसार, सरजादि-चूर्ण, मूत्रलयोग एवं बलरक्षक योग अमृततुल्य होते हैं। इंजेक्शन भी दे सकते हैं।

दूधमें गोमूत्र मिलाकर दें तो बहुत जल्दी आराम होगा। यह अनुभूत सिद्धान्त है।

४. गृध्रसी (सियाटिका)

गृध्रसी एक बड़ा दुःखदायी और भयानक रोग है। यह वातजन्य अस्सी रोगोंमेंसे एक है, पर इसकी चिकित्सा साधारण वातरोगोंकी तरह प्रायः सफल नहीं होती। अतः इसकी चिकित्सामें कुछ विशेष रीति अपनानेपर ही आराम होता है।

अक्सर कूल्हेमें गृध्रसी होनेपर दर्दके मारे रोगीका चलना-फिरना दूभर हो जाता है। न चलनेसे उसे दूसरे रोग और उपद्रव भी घेर लेते हैं। मानव घरमें बोझ बनकर बैठ जाता है। जीवन अति दुःखदायी हो जाता है। स्टेरायड्स खाते-खाते हड्डियाँ जर-जर होकर टूट जाती हैं। जीवन और भी दुःखद होकर रोगीको जीवनसे ग्लानि हो जाती है।

चिकित्सा-सूत्र—ऐसी स्थितिमें किसी तेल या घीकी मालिश न करे, इससे रोग बढ़ता है। बालूरेत, हल्दी, नमक, रेह, सज्जीखार, सोडा कोइहो सुहागा, नौशादर, थोड़ा-थोड़ा सभी मिला लें। सूखे गोबरका गोहा सबके बराबर मिलाकर बड़ी-बड़ी दो ढीली-ढीली पोटली बना ले। एक तवेपर सेंककर दर्दकी जगह रखे और दूसरी तवेपर सेंकनेके लिये रखे। इसी प्रकार सेंक करनेसे रोगीको तुरंत लाभ शुरू हो जायगा।

आराम होनेपर वही पोटली नरम कपड़ेकी तहद्वारा कपड़ेसे बाँध दे।

५. कण्डू (दाद, खाज, चम्बल)

दस ग्राम गन्धक आँवला सार, बीस ग्राम राल सफेद, दो ग्राम तूतिया (नीला थोथा), चार ग्राम फिटकिरी, आठ ग्राम सुहागा—इन सभी वस्तुओंको पीसकर बारीक कपड़छान चूर्ण तैयार करके थोड़े-से पानी, दही या लस्सीके साथ मिलाकर खारिश (खुजली)-की जगहपर धीरे-धीरे मालिश करनेसे खारिज ठीक हो जाती है। एक-दो दिन आराम होनेपर भी इसको लगाते रहे ताकि दुबारा न हो जाय।

नोट—इसके लगानेसे यदि जलन रहे तो थोड़ी-सी वेसलीन या पैराफीन लगानेसे तुरंत आराम हो जाता है।

चम्बल या एग्जिमाके लिये इस चूर्णमें दो गुना नाग (सीसा)-भस्म मिला ले और पैराफीनमें मिलाकर लगाये।

नोट—दाद, खाज या चम्बल इत्यादिपर किसी साबुनका प्रयोग न करके उसपर मुल्तानी मिट्टी, दही, दूध, गायका गोबर लगाये। धोनेके लिये साफ पानी ले।

६. गठिया (आमवात)

वास्तवमें जो अजीर्ण होनेपर भी खानेका लालच करते हैं, उनके जोड़ोंमें कच्चा रस खूनके साथ मिलकर जम जाता है। परिणाम यह होता है कि जोड़ोंके किनारे उस कच्चे रसके जमनेसे सूज जाते हैं और जोड़ोंमें दर्द रहने लग जाता है। हाथ-पैर, घुटने, कन्धे आदि धीरे-धीरे काम करना ही छोड़ देते हैं। किसी-किसीके तो जोड़ इतने उलटेसे भद्दे हो जाते हैं कि देखा नहीं जाता।

ऐसे जोड़ोंपर नमक-पानीसे सेंककर महानारायण-तेलकी मालिश करे। उसके ऊपर कोई नरम पत्ता जैसे—एरण्ड, पान अथवा धतूरे आदिका लपेटकर रखना चाहिये और खानेमें अजमोदादिवात, अश्वगन्धादि-चूर्ण लेना चाहिये। कब्ज हो तो पञ्चसकार चूर्ण, सिंहनाद गुग्गुल या योगराज गुग्गुल आदिका निरन्तर सेवन करना चाहिये। यदि रास्नादि क्वाथके साथ ले तो बहुत शीघ्र आराम हो जाता है। आमवातादि रस, कुंकुमावलेह अथवा कोई गुग्गुल, चन्द्रप्रभावटी, आरोग्यवर्द्धनी आदि भी दी जा सकती है। ठंडे, भारी तथा वातकारक पदार्थोंका सेवन न करे।

७. अजीर्णसे उत्पन्न रोग

भयंकर अजीर्णसे दारुण उदरशूल, वमन, विरेचन, बार-बार पेटमें गैससे तनाव या जीवनसंकट नजर आये तो घबराइये नहीं, एक गिलास पानीमें मधुक्षार, खानेका सोडा और कुछ कण पिंकी (लाल दवाई—पोटेशियम परमैंग्रेट), पाँच-दस बूँद, जिससे पानी गुलाबी हो जाय, घोल बनाकर थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये।

आवश्यक होनेपर एक गिलास और लिया जा सकता है। पीते ही आराम हो जायगा।

८. विश्वाचिवात (बाहुस्तम्भ)

इस रोगमें बाहुओंमें दर्द, अकड़ाव होकर बाहुओंकी गति समाप्त हो जाती है। यदि उचित चिकित्सा न की जाय तो बाहु सूख जाते हैं। यह कभी-कभी दोनों बाहुओंमें हो जाता है।

चिकित्सा—रोगीको केवल वातहरचिकित्सा दें। पर ध्यान रहे जबतक नस्य-कर्म नहीं करेंगे, उसपर किसी खाने-पीने अथवा मलने और स्वेदका कोई प्रभाव नहीं होगा। अतः सबसे पहले रोगीको किसी वातनाशक तेल, घृत या क्वाथका नस्य दे। रोगी नाकसे इनको पीये, थूके नहीं। तुरंत आराम शुरू हो जाता है, रोगीके सिरको ठंडसे विशेषरूपसे बचाये। ढककर रखे। गरम घी, तेलसे अभ्यंग दे। खानेमें भी गरम पानीके साथ तरावटवाला भोजन दे। दूध देना ठीक नहीं। आदत हो तो चाय दिया जा सकता है। माषादिक्वाथ पिलाये, शीघ्र ही आराम हो जायगा। नारायण अथवा महानारायण तेल या माषादि तेल तो इसके लिये सिद्ध हैं ही। ध्यान रहे कि बलाखरैटी, उड़द, क्रौंचके बीज ही माषादि हैं।

९. बालशोष (सूखारोग)

बालशोष प्रायः गर्भावस्थामें माताका दूषित दूध पीनेसे मोहवश अधिक दूध या भोजनके कारण हो जाता है। अतः बालकको मोहवश भोजनपान न दे और उसे हर समय गोदमें न रखे, खेलने दें।

प्रायः जिगर, तिल्ली बढ़ जाती है, बालक खेलना छोड़कर रोता रहता है, पेट बढ़ता चला जाता है, माता उसे भूखा समझकर बार-बार दूध आदि कुछ-न-कुछ खिलाती रहती है, बालकके पेटके सिवाय सभी अङ्ग सूखते जाते हैं।

चिकित्सासूत्र—दूषित भोजन, दूध बंद कर दे। शुद्ध भोजन वह भी थोड़ा-सा दे। बालक यदि सो रहा हो तो उसे जगाकर कुछ भी खिलाये-पिलाये नहीं, सोना-खेलना ही बालकको ठीक रखता है। रुग्णावस्थामें प्रायः गायका दूध, अरक मकोय या सौंफ मिलाकर दे। अरकमें थोड़ा सुरभिक्षार अवश्य मिला ले। सुरभिक्षार न मिलनेपर बछड़ीका मूत्र मिला ले या बहुत थोड़ा-सा खानेका सोडा मिला ले। इस रोगके लिये बालशोषहर बालचतुर्भद्र रस अमृतके समान होता है। बालामृत पेय, अरविन्दासव या घुट्टी, शोषहरवटी आदि चिकित्सककी अनुमतिसे अवश्य दे। जब दूधका समय हो जाय और बालक वास्तवमें भूखा हो तभी दूध, अर्क, दवाइयाँ आदि दे। भगवद्भजन सभी रोगोंकी अचूक दवा है।

१०. राजयक्ष्मा (टी.बी.—तपेदिक)

अतिभोजन, दुस्साहस अर्थात् अपनी सामर्थ्यसे अधिक परिश्रम करना, लापरवाही, कुसमय भोजन एवं श्वास, शौच, मूत्र आदिके वेगको रोकना, सदाचारहीनता,

अति वीर्यपात आदिसे शक्ति क्षीण होकर राजयक्ष्मा हो जाता है। इससे फुफ्फुसमें छेद, खाँसी, ज्वर, निर्बलता, असमर्थता आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—जीवन नियमितरूपसे निर्वाह करे। निम्नलिखित औषधियोंका किसी योग्य अनुभवी चिकित्सककी देखभालमें सेवन करे—च्यवनप्राश, लक्ष्मीविलासनारदीय, रसराज—जैसे रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, मूँगा-शृङ्गराजभस्म, मुक्ता, सुवर्ण, चाँदी, वंग, शुद्ध केसर, सितोपलादि, तालिसादि, वरीचूर्ण, अश्वगन्धचूर्ण, विदारीचूर्ण, अपामार्गचूर्ण, बला अतिबला-चूर्ण मिलाकर वासावलेह, कुंकुमावलेह, खमीरा गाजवान, जवाहिर मोहरा, अकीक आदि।

यदि वेदना हो तो शुद्ध घी, नारायणतेल, महानारायणतेल, लाक्षादितेल, वलातेल आदि शरीररक्षक योगोंका सेवन करे। वसन्तमालती-रस, वसन्तकुसुमाकर-रस, नारदीय महालक्ष्मी विलासरस, च्यवनप्राश, अवलेह, कुंकुमावलेहमें मिलाकर सेवन करे। साथमें शतावरी-सिद्ध दूधका सेवन करे।

इससे खाँसी, नजला, जुकाम, सिरदर्द अथवा छातीका दर्द, बल या सामर्थ्यहीनता, शीघ्र ही ज्वरसहित विदा हो जाते हैं।

उपर्युक्त चूर्णोंको घी, खोवा और देशी खाण्डमें मिलाकर पाक बना ले बहुत लाभ देंगे। पीनेमें अश्वगन्धारिष्ट, लोहासव, द्राक्षारिष्ट, दशमूलारिष्ट, पुनर्नवाद्यारिष्ट आदिका सेवन करे।

११. कैंसर

कैंसर एक भयानक रोग है, जो शरीरके किसी भागमें पैदा हो सकता है। यह शोथका एक भेद है, जिसका मूल कारण रक्तपित्त-प्रधानतासे है। इसमें कभी-कभी जलन, कभी शूल और कभी शूल आदि कोई अन्य परेशानी भी नहीं होती।

साधारण शोथचिकित्सासे यह प्रायः कब्जेमें नहीं आता। कुछ रोगियोंको निम्न विधियोंसे दीर्घजीवन और आराम मिला है—

चिकित्सासूत्र—शोथकी अवस्थामें—इमलीका ब्रीज पीसकर सुहागा, हल्दी, सेंधा नमक, थोड़ा-थोड़ा इमलीचूर्णमें पानी डालकर पुल्टस बनाकर सुहाता-सुहाता प्रतिदिन बाँधनेसे रोगीको आराम और शोथ कम होने लगता है। यदि व्रण हो तो भरता चला जाता है। शूल भी घट जाता है। खानेमें वराटिका, प्रवाल, अकीक, नरसार-मिश्रित चूर्ण एक ग्राम काफी है। बलाबल देख करके कुछ ज्यादा भी दे सकते हैं। ब्रेकेटके बीचके द्रव्योंका यथोचित मात्रामें चूर्ण बना ले। धूर्तबीजचूर्ण, हिरमजी, काली मिर्च, सौवीरकी चार मात्रा सुबह, दोपहर, शाम और रातके समय। पीनेके लिये वासकासव, पानीयुक्त तीन बार भोजनके साथ ले। अजीर्णवश किसी-किसी रोगीके पेटमें शूल देखा गया है। ऐसी अवस्थामें कुमार्यासव देनेसे तुरंत शूल घट गया।

किसी-किसी रोगीके गलेसे हलकमें कैंसर होनेकी अवस्थामें रक्तस्राव देखा गया है। प्रायः औषधिसेवन करते ही रक्तस्राव बंद हो गया। ऐसा देखा गया है, घबराये नहीं। ऐसे रोगीको यदि बहुत कमजोरी हो तो अनार खिलावें, उसका रस पिलायें। धीरे-धीरे बल मिलनेपर साधारण रोटी दूधमें भिगोकर खिलाये। लौकी, आलू, आँवला, अमरूद, मूली आदि ठंडे या मातदिलमिजाजकी सब्जी अथवा बहुत पतली दाल मूँग (उड़द, चना मिली हुई) दे सकते हैं। दूध सर्वश्रेष्ठ है। अमरूद, आँवला, अनार आदि फल भी स्वास्थ्यवर्धक होते हैं भगवत्कृपासे लाभ होगा।

१२. कुकुर कास एवं साधारण कास

कुकुर कास एक बड़ा दुःखदायी रोग है। यह प्रायः बालकोंमें होता है; क्योंकि वे जहाँसे जो मिले सभी कुछ अज्ञानवश खा-पी जाते हैं।

इस रोगमें बलगम प्रायः गलेमें ज्यादा चिपका रहता है, इसीलिये खाँसी उठती है। खाँसते-खाँसते दम रुकने लगता है, रोगी बहुत बेचैन रहता है। जबतक उलटी होकर बलगम निकल नहीं जाता, साँस नहीं आती।

चिकित्सासूत्र—रोगीको जो खान-पान दे, उसमें कोई लेसदार और खट्टी, तीखी, चटनी वगैरह तथा खुश्की करनेवाली खुराक या दवा न दे। हर चीज तरावट देनेवाली मीठी तथा स्वादिष्ठ हो। प्रायः जो दवाइयाँ साधारण खाँसीमें देते हों, उनमें भी बहुत थोड़ा-सा उपयुक्त मात्रामें लेसको दूर करनेवाला कोई खार—जैसे नौसादर, जौखार, अपामार्गक्षार आदि मिलाकर

दें। औषधि आराम करेगी। अजमोदादि कण्ठ, नरसार, शहद और खाँड़से या वरा सितोपलादि यवक्षार और देशी खाँड़ मिलाकर गरम पानीसे या तालीसादि चूर्ण अपामार्ग क्षार खाँड़, शहद मिलाकर या शृङ्ग्यादि चूर्णमें नरसार शहदमें मिलाकर चटायें या एलादि चूर्ण, सौभाग्यचूर्ण शहद और खाँड़में मिलाकर चटायें या वासकादि कास चूर्णमें यवक्षार और शर्वत वनकशामें मिलाकर चटायें। इसी प्रकार पीनेमें द्राक्षारिष्टमें नरसार मिलाकर भोजनके साथ या बादमें पानी मिलाकर पिलायें। इसी तरह खदिरारिष्ट या दशमूलारिष्ट या कोई और आसव अथवा अरिष्ट भी प्रयोग करें। वासकासव थोड़ा गरम पानी मिलाकर सेवन करायें। आराम होगा।

खानेमें बासी रखा हुआ, खराब हुआ भोजन कभी न दें। ताजा गरम मीठा, जायकेदार थोड़ा-थोड़ा भोजन सेवन करायें। कड़ुवा, खट्टा, कसैला, लाल मिर्चवाला, लस्सी, दही, खटाई वगैरह ठीक नहीं। हवादार तेज सर्दी या गरमीसे बचें।

१३. क़ब्ज़ (कोष्ठबद्धता)

ठीक समयपर शौच ठीक नहीं होता, पेट तना-सा ही रहता है, बार-बार शौच जाता है, शौच थोड़ा-सा होकर बंद हो जाता है, मन प्रसन्न नहीं होता। इस क़ब्ज़का मूल कारण रूक्ष भोजन, व्यायाम न करना, निठल्ला पड़ा रहना आदि है।

चिकित्सासूत्र—चोकरसमेत आटेकी रोटी खायें। दूध मीठा लें, शक्कर-गुड़ प्राय: पेट साफ रखते हैं।

सब्जियोंमें पत्तीसमेत मूली, काली तोरई, घीया, बैगन, गाजर, परवल, पपीता, टमाटर आदि। दालें छिलकेसमेत लें। पतली बनवायें।

रातको अधिक मीठा दूध जरूर लें। खूब व्यायाम करें, चलें, कूदें, खुश रहें, चिन्ता न करें। फिर भी दवाकी जरूरत हो तो थोड़ा-सा खानेका सोडा पानीमें घोलकर पी जायँ तो पेट हलका रहेगा और शौच भी।

इमलीका गुड़ डालकर मीठी चटनी सेवन करें, पेट साफ रहेगा। बैंगन बनायें, आराम देगा। भोजनके साथ टमाटर लें, नमक पेट साफ रखता है। कभी-कभी थोड़ा-सा पञ्चसकार चूर्ण भी ले लें। द्राक्षासव, सैन्धवादि चूर्ण पेट हलका रखता है। भोजनके बाद सौंफ-मिस्री चबानेसे पेट ठीक रहता है। चित्रकादि वटी खाते ही तुरंत लाभ होता है। किशमिश, त्रिफला, अभयारिष्ट बहुत अच्छे हैं, पेट हलका हो जाता है। सिंहनाद गुग्गुल दूधसे रातको ले, आराम रहेगा। भोजनके साथ कुमार्यासव, द्राक्षारिष्ट अथवा पुनर्नवाद्यारिष्ट ले। मधुके साथ रोटी खानेसे पेट साफ रहता है। घीकुमारकी सब्जी रोजाना ले तो पेट साफ रहेगा। बथुवेका रायता या साग, इमलीकी चटनी, नीबूसे रचाकर पत्तोंसमेत खाये। पेट साफ रहेगा। अमरूद, पका हुआ केला, टमाटर, बेर, परवल, बैंगन, पपीता, अंगूर, अंजीर, आलूबुखारा, मुनक्का, आड़ू, उन्नाभ आदिका सेवन करे। कब्ज दूर रहेगा।

१४. बवासीर (अर्श)

प्राय: ठीक समय अथवा शौचका वेग होनेपर शौच न जानेके कारण यह रोग पनपता है एवं रूक्ष, पेटमें खुश्की, क़ब्ज़ करनेवाला भोजन या उचित समयपर ऊटपटांग चीजें खानेसे पेट या यकृत्—जिगर खराब होनेसे यह रोग हुआ करता है।

शौचमें लापरवाही होनेसे गुदामें सूजन होकर मस्से हो जाते हैं। शौचके समय दर्द आदिसे बड़ा कष्ट होने लगता है। अत: रोगी हाजत होते हुए भी कष्टसे डरकर शौच नहीं जाता। परिणाम यह होता है कि शौचके साथ खून भी आने लगता है। रोगी कमजोर होने लगता है और बेचैन रहता है।

चिकित्सासूत्र—समयपर शौचसे निवृत्त जरूर होओ। कभी हाजत मत रोको। अजीर्ण और क़ब्ज़ करनेवाला भोजन मत करो। सारा दिन केवल बैठनेमें मत गुजारो, थोड़ा व्यायाम अवश्य करो, जिससे शरीर और खास तौरपर पेट ठीक रहे। कम-से-कम शौचादिसे निवृत्त होकर सीधे खड़े होकर बार-बार पैरोंमें जमीनपर हाथोंको लगाओ। टाँगें चौड़ी करके दायाँ हाथ बायें पैरमें एवं बायाँ हाथ दाँयें पैरपर बार-बार लगाओ। हर बार सीधे जरूर खड़े रहो, जिससे पेटमें हरकत हो। एक ही जगह खड़े-खड़े जैसे भाग रहे हो काफी समयतक दौड़ते रहो। पेट हलका रहेगा, क़ब्ज़ दूर होगी। सुबह-शाम घूमने जाओ। दौड़ लगाओ, खेलो, सुस्ती दूर करो। चाट, पकौड़ी, तली चीजें मत खाओ, इनसे रोग बढ़ता है।

शौचके समय बवासीरपर कासीसादि घृत या कासीसादि तेल जितना अंदर हो सके अवश्य लगाया करो, दर्द घटता जायगा, रोग दूर होगा।

खानेमें सैन्धवादिचूर्ण, नवायस प्राणदाचूर्ण, आरोग्यवर्धनी वटी ले। मुरब्बेकी हरड लोहभस्मके साथ ले, सिद्ध हरीतकी, मण्डूरभस्म अथवा पुनर्नवा मण्डूर चार-चार गोली दिनमें दो-तीन बार छाछके साथ सेवन करे। भोजनके साथ कुमार्यासव या अभयारिष्ट अथवा पुनर्नवाद्यारिष्ट या लोहासव, द्राक्षारिष्ट आदि थोड़ा पानी मिलाकर भोजनके बीचमें अथवा तुरंत बाद ले। बहुत जल्दी आराम होगा। शरीर बलवान् होगा।

[कविराज डॉ० जयकुमारजी पौलस्त्य
युगल फॉर्मेसी एण्ड केमिकल वर्क्स
मुमीदी-यमुनानगर-हरियाणा]

लू लगना

गरमीके दिनोंमें सूर्यके तीव्र ताप एवं गरम हवाके झोंकोंसे प्रायः लू लग जाया करती है। अति परिश्रम, खाली पेट, नंगे सिर धूपमें चलनेसे, थकान, क़ब्ज़ियत, दुर्बलता आदिके कारण लूके चपेटमें आ जानेकी सम्भावना अधिक रहती है। सिर खुला रखनेसे गरमी तथा धूपका प्रभाव मस्तिष्कपर शीघ्र होता है और तत्काल ही पूरा शरीर प्रभावित हो जाता है। गरमीके दिनोंमें पसीनेद्वारा निकाले गये जलकी पूर्ति निरन्तर होती रहनी चाहिये। यदि किन्हीं कारणवश ऐसा नहीं हो पाता है तो लू लगनेका खतरा बढ़ जाता है। शरीरमें उष्णताकी मात्रा अधिक हो जानेपर स्वेद-ग्रन्थियाँ कार्य करना बंद कर देती हैं। जिसके कारण उष्माका निष्कासन बंद हो जाता है और शरीरका तापमान बढ़ जाता है तथा शरीर तापमानको नियन्त्रित करनेकी क्षमता खो देता है। त्वचा गरम होकर सूख जाती है। शरीरमें पानीकी कमी हो जाती है। नाडी कभी तेज, कभी धीमी होने लगती है। शरीरका तापक्रम बढ़ते-बढ़ते १०६° फॉ० तक पहुँच जानेपर जीवन खतरेमें पड़ सकता है।

चिकित्सा

चिकित्सकके आनेसे पहले निम्न तात्कालिक उपचार करने चाहिये—

(१) रोगीको ठंढे, हवादार और स्वच्छ स्थानपर रखना चाहिये तथा वस्त्रोंको ढीला कर दे। बेहोशी दूर करनेवाले उपचार करनेके साथ ही शरीरका तापक्रम कम करनेका प्रयास करना चाहिये।

(२) सिर, हाथ-पैर तथा पेट आदिको बार-बार ठंढे पानीसे धोते रहे। उनपर बर्फके टुकड़ोंको रखे। मोटे तौलियेको बर्फके पानीमें भिगोकर शरीरको पोंछते रहे। यह काम तबतक करते रहना चाहिये, जबतक शरीरका तापक्रम सामान्यावस्थामें न आ जाय।

(३) वमन, दस्त, प्यास आदिकी स्थितिमें पुदीनेका अर्क, अर्ककपूर, अमृतधारा आदि पानीमें मिलाकर थोड़ी-थोड़ी देरपर चम्मचसे देते रहना चाहिये।

(४) बेहोशीकी स्थितिमें सीने और गलेपर तारपीनके तेलकी मालिश करनी चाहिये। गरम पानीमें कपड़ा भिगोकर गलेपर लपेट दे तथा सूखा कपड़ा बाँध दे, होश आ जायगा।

(५) कच्चे आमको पानीमें उबालकर उसका पना बना ले। इसमें सेंधा नमक, भुना जीरा, पुदीना तथा मिस्री आदि मिलाकर पिलाये। गरमीके दिनोंमें स्वस्थ व्यक्तिको भी इसे पीना चाहिये। यह लूकी प्रसिद्ध औषध है।

गरमीमें तरबूज और खरबूज खाना चाहिये। बाहर निकलनेसे पहले अच्छी तरह पानी पी ले। अधिक प्रोटीनयुक्त भोजन नहीं करना चाहिये। लूसे ठीक हो जानेपर भी कुछ दिनोंतक सावधानी रखे। धूपमें न निकले और खाली पेट न रहे।

अनुभूत प्रयोग

(१) जुकाम

जुकामसे बार-बार आक्रान्त होनेकी व्याधि असंख्यों नर-नारियोंमें पायी जाती है। इसका कारण है आहार-विहारका प्रदूषण, भोजनमें अम्ल और मधुर रसोंका अतिसेवन। खट्टे, नमकीन, चटपटे, गुड़, बूरा, अन्यान्य मिठाइयाँ एवं फास्ट फूड्सके अतिसेवनसे रस धातु दूषित हो जाती है अथवा इसकी अतिशय वृद्धि हो जाती है। उपद्रवस्वरूप स्नोफीलिया, रेस्पिरेटिरी, एलर्जी एवं ब्रांकियल अस्थमा-यक्ष्मामें परिणत होती है। पाश्चात्त्य चिकित्सा-पद्धति एलोपैथीमें इससे स्थायी रूपसे छुटकारा पानेके लिये अबतक कोई चिकित्सा नहीं है। यहाँ एक आयुर्वेदिक सिद्धयोग दिया जा रहा है, जिससे रोगियोंको लाभ मिलेगा—

रसमाणिक्य २ ग्राम, महालक्ष्मीविलास ५ ग्राम, अभ्रकभस्म सहस्रपुटित २ ग्राम, लघु बसन्तमालती ५ ग्राम, बृहत् शृंगाराभ्ररस १० ग्राम, प्रवालपिष्टि १० ग्राम, तालीसादि चूर्ण ५० ग्राम, पुष्करमूल चूर्ण ५० ग्राम।

इन समस्त औषधियोंको एक घंटा खरलकर चालीस पुड़िया बना ले। १-१ पुड़िया सुबह-शाम मधुसे ले। दशमूलारिष्ट और द्राक्षारिष्ट २-२ चम्मच दूना जल मिलाकर खानेके बाद ले। अगस्त्य हरीतकी १ चम्मच रातको १ गिलास उष्ण जलसे लेनेके बाद आधा किलो० गोदुग्धमें २ बड़ी पीपर उबालकर पीये। पित्त प्रकृति हो तथा उष्णता अधिक प्रतीत हो तो एक छोटी पीपर उबालकर पीवें। आवश्यकतानुसार २ से ४ मासतक इनके सेवनसे जीवनभरके लिये जुकामसे निवृत्ति हो जाती है।

(२) रक्तचापकी वृद्धि

यदि आप उच्च रक्तचापके जीर्ण रोगी हैं एवं नियमितरूपसे एलोपैथी दवाएँ लेनी पड़ती हैं तो साथमें निम्न प्रयोग भी करें। स्थायीरूपमें उच्च रक्तचापसे मुक्ति पा लेंगे—

जटामांसी ३०० ग्राम लेकर उसमें ३० हिस्से करें। रातको १० ग्राम जटामांसी १०० ग्राम पानीमें भिगो दें। प्रातः मसलकर छान लें और २ चम्मच मधु मिलाकर पीवें। पथ्यापथ्यका ध्यान रखते हुए साठ दिनके सेवनद्वारा रोगसे पूर्ण छुटकारा मिल जायगा।

(३) पेटके रोगोंके लिये दो योग

(क) वर्तमान युगमें पेटके रोगोंकी बहुतायत है। इनमें जीर्ण-प्रवाहिका (क्रानिक एमीविक डिसेन्ट्री)-के रोगियोंकी संख्या तो विश्वमें करोड़ोंमें है। इस व्याधिके निवारणार्थ एक सिद्ध प्रयोग दिया जा रहा है—

सत ईसबगोल ३ ग्राम, जीरा सफेद १ ग्राम, इलायची खुर्द आधा ग्राम, इन्द्र जौ कड़वी २ रत्ती, कुड़ासक १ ग्राम सुबह-शाम पानीसे लें। पेटमें वायु अधिक हो तो ४-४ रत्ती मस्तंगी मिला दें।

(ख) पेटकी गैस—कलईका बढ़िया सूखा चूना लेकर ग्वारपाठेके रसमें घोंटकर २-२ रत्तीकी गोली बनाकर छायामें सुखा लें। २-२ गोली दिनमें २ या ३ बार लें। साधारण दिखनेवाला यह प्रयोग गुणमें अद्वितीय है।

(४) शय्या-मूत्र

अनेक लोगोंको और प्रायः बच्चोंको शय्या-मूत्रकी आदत पड़ जाती है। रातको उड़दकी खड़ी दाल एक मुट्ठी पानीमें भिगोकर रख दें। सुबह पानी निकालकर थोड़ी शक्कर डाल दें। इसे चबा-चबाकर खायें। इससे एक महीनेमें रोगसे छुटकारा मिल जायगा।

(५) पेशाब रुकनेपर

गरमीके तीव्र आघातसे मूत्रावरोध हो जाता है। इसके लिये—शीशमकी पत्ती ५० ग्राम, सांभर नमक १० ग्राम दोनोंको पीसकर पेडूपर लेप करनेसे १०-२० मिनटमें पेशाब हो जायगा।

[वैद्य श्रीशिवकुमारजी शर्मा, आचार्य पी-एच०डी०, नाड़ी एवं जटिल रोग विशेषज्ञ श्रीपीताम्बरा बगलामुखी शक्ति अनुष्ठान पीठ एवं आयुर्वेद सिद्ध चिकित्सा आश्रम, एत्मादपुर—२८३२०२ (आगरा)]

आधासीसी (माइग्रेन)-की अनुभूत सफल चिकित्सा

माइग्रेन वर्तमान समयका तेजीसे बढ़ता हुआ एक दु:खदायी रोग है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके अनुसार रूखा भोजन करनेसे, भोजन-पर-भोजन करनेपर, बर्फ-दही आदि शीतल चीजोंका ज्यादा सेवन करनेसे, मल-मूत्रके वेगको रोकनेसे, बहुत चलनेसे, ज्यादा कसरत करनेपर और अति सहवाससे इस रोगकी उत्पत्ति होती है। इन कारणोंके साथ-साथ मेरे अनुभवसे पानी कम पीनेसे, बस आदिकी कष्टदायक यात्रासे, समयपर भोजन न करनेपर या कच्ची नींदसे जागनेपर, वंशानुक्रमसे एवं महिलाओंमें माहवारीकी गड़बड़ीसे भी यह रोग होता है। शारीरिक मेहनत और मजदूरी, खेती करनेवाले लोगोंमें यह रोग कम होता है। लिखा-पढ़ीका अधिक कार्य करनेवाले और बुद्धिजीवियोंको भी यह रोग हो सकता है।

आधासीसीमें वायु प्रधान है। कभी-कभी कफ भी मिला होता है। २५ प्रतिशत मामलोंमें इस रोगका कारण त्रिदोषज भी होता है। दोषोंकी जानकारीसे इसकी सफल चिकित्सा की जा सकती है। इस रोगका एक विशेष लक्षण है कि यदि उल्टी हो जाय या आधा-एक घंटा नींद आ जाय तो रोग तत्काल शान्त हो जाता है। एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिमें इस रोगमें दर्दको केवल महसूस नहीं होने देनेका उपाय है, पर रोग जड़से नष्ट नहीं हो पाता।

सबसे पहले रोगीसे इस सम्बन्धमें पूरी जानकारी लेनी चाहिये। जिस कारणसे माइग्रेन उत्पन्न हो, उसे दूर करना जरूरी है। बहुत-से लोगोंको दोपहरके भोजनमें देरी होनेसे या बहुत जल्दी कर लेनेपर इस प्रकारकी शिकायत हो जाती है। कुछ महिलाओंको भीड़भरी बसोंमें यात्रा करनेपर इस रोगका दौरा पड़ता है। अत: प्रथम मूल कारण दूर करना जरूरी है।

उपचारमें सर्वप्रथम रोगीको चाहे स्त्री हो या पुरुष पेट साफ करनेकी हलकी दवा देनी चाहिये। जिस दिन पेट साफकी दवा दी जाय उस दिन दोपहर एवं रात्रिके भोजनमें केवल मूँगकी खिचड़ी गायके घीके साथ एवं कढ़ी मीठे दहीकी लेनी चाहिये। खिचड़ीमें १० से २० ग्रामतक इच्छानुसार घी लिया जा सकता है। फिर उस दिन रातको सोते वक्त मधुकादि चूर्ण या स्वादिष्ट विरेचन चूर्णको ५ ग्रामकी मात्रामें ५ ग्राम ईसबगोल सतके साथ देना चाहिये। दो-एक दस्त हो सकते हैं। कोई डरकी, चिन्ताकी बात नहीं। इस चूर्णको दो गिलास गरम पानीसे ही लेना चाहिये, दूध या ठण्डे पानीसे क़ब्ज़की दवा लेना ठीक नहीं। इससे दस्त साफ नहीं लगते। इसका वास्तविक अनुपान गरम पानी है। उपर्युक्त चूर्णमें मुख्य द्रव्य मुलहठी २ तोला, सनाय १ तोला, सौंफ ६ माशा, शुद्ध आँवलासार गंधक ६ माशा और मिस्री ६ तोला है। इनको महीन पीस लेना चाहिये।

जब दो या तीन साफ दस्त हो जाय तो अगले दिनसे दवा शुरू करनी चाहिये। दस्तवाले दिन भी भोजन खिचड़ी-कढ़ीका ही करे। थोड़ा-थोड़ा निवाया पानी धीरे-धीरे कई बार पीना चाहिये। दवा केवल पथ्यादि क्वाथ है। पथ्यादि क्वाथ दो तरहके हैं। एक यकृत्-प्लीहाके लिये दूसरा शिरोरोग-हेतु। यहाँ दूसरा लेना है। बाजारमें बना-बनाया भी उपलब्ध रहता है।

इसका नुस्खा इस प्रकार है—हरड़ + बहेड़ा+आमला+ चिरायता + हल्दी + नीमकी छाल + गिलोय—इन सब औषधियोंको बराबर-बराबर मात्रामें लेकर मोटा-मोटा कूट ले। नीमकी छाल और गिलोय अगर ताजा मिल जाय तो काढ़ा ज्यादा तेज और गुणकारी बनता है। १५ ग्राम या सवा तोला तैयार उपर्युक्त चूर्णको २०० ग्राम पानीमें उबालना चाहिये। ५० ग्राम पानी शेष रहनेपर मसलकर छान लें। छाननेके बाद इस काढ़ेमें १० ग्राम गुड़ या चीनी या ५ ग्राम काला नमक मिला ले। काढ़ा बनाते समय बरतनको ढके नहीं। इस काढ़ेको प्रात: जल्दी खाली पेट और रातको सोते वक्त लेना चाहिये। काढ़ा लेनेके बाद ३० मिनट आराम करे। यदि काढ़ा लेते ही उल्टी हो जाय तो बहुत अच्छा है। उसी क्षण सिरदर्द ठीक हो जायगा। वैसे इसे गुग्गुलके साथ लेना चाहिये, पर शुद्ध गुग्गुल हर जगह नहीं मिलता। अत: इसके स्थानपर ३ गोली योगराज गुग्गुलकी दी जा सकती है। पथ्यादि क्वाथ शिरोरोगके साथ-साथ कनपटीका दर्द, सूर्यावर्त (सूरज बढ़नेके साथ-साथ जोर पकड़नेवाला दर्द), दन्तशूल, नेत्ररोग एवं नेत्रशूल तथा कान-सम्बन्धी रोगोंमें भी लाभ करता है। साधारण और नया सिरदर्द केवल एक सप्ताह या दस दिन दवा लेनेसे ठीक हो जाता है।

पुराने रोगमें बीस दिनतक या ज्यादा दिनोंतक पथ्यादि क्राथ लेना चाहिये। इस क्राथके सभी घटक शरीरके लिये उपयोगी और रसायन हैं। आजसे लगभग ३०-३५ वर्षपूर्व बम्बईके सुप्रसिद्ध वैद्य पं० शिवशर्माने मात्र इसी क्राथसे हंगरीकी एक अभिनेत्रीका इलाज किया था।

यदि रोगी सूर्यावर्तसे पीडित हो (इसमें सूर्य उगनेके साथ सिरमें दर्द बढ़ता है और दोपहरको बहुत तीव्र होकर अपराह्न या शामतक शान्त होता है) तो उसे सुबह जल्दी जगाकर (३-४ बजे) २ से ४ रत्तीतक कपर्दक भस्म (पीली कौड़ी भस्म) एक ग्रास गुड़के हलवे या पेड़ेके साथ देनी चाहिये। इस भस्मको अकेले नहीं चाटना चाहिये, जीभ फट जाती है।

यदि सिरदर्दके साथ-साथ रोगीको जुकामकी शिकायत हो, पुराना क्षयरोग हो तो सितोपलादि चूर्णके साथ गोदन्ती भस्म और गिलोय सत्त्व च्यवनप्राश या शहदसे सुबह-शाम चाटना चाहिये। भोजनके बाद द्राक्षारिष्ट तथा अश्वगन्धारिष्ट थोड़ा पानी मिलाकर पीवें। इससे माइग्रेनका दौरा विलम्बसे पड़ता है या हलका हो जाता है। पथ्यादि क्राथ भी चालू रखें।

महिलाओंमें सिरदर्दकी शिकायतमें प्रायः माहवारीकी गड़बड़ रहती है। महीना साफ नहीं आता। इसमें रजःप्रवर्तनी वटी सर्वोत्तम है। महीना आनेकी तिथिसे पाँच दिन पूर्व १-१ या २-२ वटी गर्म जलसे लें। कभी-कभी ल्यूकोरियाके कारण भी माइग्रेन आ सकता है। अशोकारिष्ट आदि औषधियोंसे पहले ल्यूकोरिया (प्रदर)-का इलाज करे या दवाके साथ ही ल्यूकोरियाकी दवा भी दे। माइग्रेनके सम्बन्धमें अन्तिम बात यह है कि अगर आँखोंकी कमजोरीके कारण या खराबीसे इसका सम्बन्ध हो तो नेत्र-चिकित्सा करवानी चाहिये।

[वैद्य पं० श्रीपरमानन्दजी शर्मा 'नन्द', एम्०ए०, आयुर्वेदरत्न, ज्योतिर्विद् एवं वास्तुशास्त्री, हनुमान गेट, लाडनूं (नागौर) (राज०) पिन-३४१३०६]

उपयोगी घरेलू उपचार

१-अफारा (Flatulence)—३ ग्राम अजवायन, १ ग्राम काला नमक, $\frac{1}{2}$ ग्राम सेंधा नमक मिलाकर गरम पानीसे दें, तुरंत आराम मिलता है। इसे आवश्यकतानुसार लगातार प्रयोग भी किया जा सकता है।

२-सर्दी, जुकाम, खाँसी—अदरक-रस २ मिली०, तुलसीरस १ मिली०, शहद ५ मिली० मिलाकर प्रत्येक ५ घंटेपर लें, ऊपरसे गुनगुना पानी लें। २४—४८ घंटेमें सर्दी-जुकाम ठीक हो जाता है अथवा देशी घी १० ग्राम, अदरक-रस २ मिली०, २$\frac{1}{2}$ नग काली मिर्च, गुड़ ५ ग्राम पकाकर खाली पेट सुबह लगातार तीन दिनोंतक लें। अन्य किसी दवाकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

३-दाँत-दर्द—आकका दूध और शहद बराबर मात्रामें मिलाकर रूईके फाहेमें लगाकर दाँतपर रखें, कैसा भी दर्द हो गायब हो जाता है।

४-दस्त—दालचीनी तथा कत्था बराबर मात्रामें (कुल १$\frac{1}{2}$ ग्राम) पीस लें, फिर १० ग्राम धानका लावा (खील) पीसकर सबको पानीमें घोल लें। चीनी तथा नमक अन्दाजसे मिलायें। दस्त शर्तिया बंद हो जायगा।

५-अनिद्रा—$\frac{1}{2}$ लीटर भैंसके दूधके साथ ५ ग्राम अश्वगन्धाका चूर्ण नियमितरूपसे लें। अनिद्राकी अचूक दवा है।

६-बच्चोंके दाँत निकलते समय होनेवाली उल्टी, हरे-पीले दस्त, दाँतकी तकलीफ सबको दूर करनेके लिये तवेपर सुहागाका खील बनायें, फिर बारीक पीसकर शहद मिलाकर दाँत निकलनेवाले मसूड़ेपर लेप करें। बच्चा अंदर चाट जायगा तथा उसकी तकलीफ दूर हो जायगी।

७-मासिक न आनेपर १० ग्राम मँगरैला (कलौंजी)-का पाउडर सुबह पानीसे लें। गर्भिणी इसका प्रयोग न करें। किसी-किसीको इससे पेटमें दर्द होता है तो थोड़ी मात्रामें हींगका प्रयोग करें।

८-ज्वरमें चिरायताका काढ़ा पिलायें, कैसा भी ज्वर हो उतर जाता है।

९-प्रवाहिका या रक्तातिसारमें दो-चार जपापुष्प पीसकर मिस्रीके साथ चावलके पानीमें घोलकर दें। बहुत फायदा होता है।

[श्रीमती प्रतिमा द्विवेदी
ग्राम-पो०-बेलहरी (जि०—बक्सर) बिहार]

गठिया

उम्र बढ़नेके साथ ही शरीरके ऊतक कमजोर पड़ने लगते हैं। शरीरके विभिन्न जोड़ घिसने लगते हैं। ऐसी स्थितिमें जोड़ोंमें दर्द रहने लगता है, भोजनके प्रति अरुचि होती है, प्यास अधिक लगती है, हाथ-पैर, जाँघ, एड़ी तथा कमर आदिके जोड़ोंमें दर्द होने लगता है, घुटनोंमें शोथ (सूजन) भी हो जाता है। रोग बढ़ जानेपर चलते-फिरते समय भयंकर कष्ट होता है। बढ़ती उम्रके कारण जो गठिया होता है उसे आस्टियो आर्थराइटिस कहते हैं, जोड़ोंमें सूजन या प्रदाहके कारण उत्पन्न गठियाको रियूमेटायड आर्थराइटिस कहते हैं। जोड़ोंमें यूरिक अम्लके जमा हो जानेके कारण उत्पन्न गठियाको गाउटी आर्थराइटिस कहते हैं। हीमोफीलियामें रक्तस्रावसे जोड़ोंमें खूनके थक्के जम जानेके कारण उत्पन्न गठियाको एक्यूट (गम्भीर) आर्थराइटिस कहते हैं। क्षयरोग और आमवातमें भी हड्डीके जोड़ प्रभावित होते हैं।

कन्धोंमें जकड़न—कन्धोंको घेरनेवाली मांसपेशियोंमें सूजन आ जाती है। कन्धे स्वाभाविक रूपसे हिल-डुल नहीं पाते। हाइड्रोकार्टिसोनका इंजेक्शन तथा अल्ट्रासॉनिक किरणोंसे सेंकनेपर दर्दमें लाभ पहुँचता है।

आस्टियो आर्थराइटिस—लगभग ५०-५५ वर्षके बाद यह शुरू होता है। घुटने, कन्धे और रीढ़की हड्डीमें दर्द होता है। जोड़ोंका कार्टिलेज घिसनेके बाद हड्डी घिसनी शुरू हो जाती है, किनारे धारदार हो जाते हैं। जोड़ हिलने-डुलनेपर चटखनेकी आवाज होती है। धीरे-धीरे दर्द बढ़ता जाता है। जोड़ोंकी गति कम होती जाती है। ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी स्थितिमें खूब चलें, हलका-सा व्यायाम करें और औषधिका सेवन नियमपूर्वक करते रहें। ठीक हो जानेके बाद भी कभी पुनः दर्द शुरू हो सकता है। उठने-बैठने, चलने-फिरनेमें कष्ट होने लगता है। घुटने पूर्णतः क्षतिग्रस्त होनेपर औषधिकी अपेक्षा शल्यक्रिया आवश्यक हो जाती है।

रियूमेटायड आर्थराइटिस—यह रोग लगभग ४० वर्षसे अधिक उम्रकी महिलाओंमें विशेषकर पाया जाता है। घुटने, टखने और हाथके जोड़ विशेषरूपसे प्रभावित होते हैं। रोगीको निरन्तर कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिये। इसके साथ ही आरामकी भी आवश्यकता होती है। कार्टिसोनके इंजेक्शनसे लाभ प्रतीत होता है। असाध्यावस्थामें शल्यक्रिया अपेक्षित होती है।

रीढ़की हड्डीकी गठिया—रोगी आगेकी ओर झुक जाता है। रीढ़की हड्डीके अतिरिक्त कूल्हे और कन्धे भी प्रभावित हो जाते हैं। यह रोग विशेषरूपसे पुरुषोंको होता है।

गाउट—घुटनेके जोड़के कार्टिलेजमें यूरिक अम्लके दाने जमा हो जानेके कारण यह अपङ्ग कर देनेवाला रोग होता है। चिकित्सामें यूरिक अम्लके दाने न जमा होने पायें इसका उपाय करते हैं। इसके लिये रक्तमें यूरिक अम्लकी मात्रा कम करनेका प्रयास करते हैं। मादक पदार्थ तथा मांसाहार इस रोगकी उत्पत्तिमें प्रमुख रूपसे सहायक हैं। इन्हें तुरंत बंद कर देना चाहिये। शाकाहार और तनावरहित दिनचर्या होनी चाहिये।

जोड़ोंकी टी०बी०—यह रोग कुपोषणसे होता है। रोगका आक्रमण जोड़ोंपर होता है। फेफड़ोंका क्षयरोग भी हड्डियोंके जोड़तक पहुँच जाता है। इसके भी लक्षण गठियासे मिलते-जुलते हैं। क्षयकी दीर्घकालीन चिकित्सासे इसका उपचार किया जाता है।

चिकित्सा—(१) प्रातः एकपुटिया लहसुन आधा किलो० दूधमें डालकर उबालें। दूधके आधा पाव रह जानेपर उसे छानकर पी लें। दूसरे दिन दो एकपुटिया लहसुन, तीसरे दिन तीन एकपुटिया लहसुन इसी प्रकार ग्यारहवें दिन ग्यारह एकपुटिया लहसुन दूधमें उबालकर उसे छानकर दूध पी जायँ। बारहवें दिनसे लहसुनकी संख्या एक-एक करके कम करते जायँ।

(२) पुनर्नवाकी जड़ १० ग्रामको १०० ग्राम पानीमें उबालें और २५ ग्राम शेष रहनेपर छानकर पी लें।

(३) योगराज गुग्गुल सुबह-शाम दो-दो गोली गरम पानीसे लें।

(४) अश्वगन्ध, चोपचीनी, पीपलामूल, सोंठ—इसका समान मात्रामें चूर्ण सुबह-शाम दूधके साथ पीयें।

(५) जोड़ोंपर सेंक करके रेड़ीके पत्तोंपर घी लगाकर बाँधें।

(६) रातको सोते समय १० ग्राम मेथीका दाना निगलकर पानी पी लें।

(७) दर्दके स्थानपर नारायण तेलकी मालिश करें।

पथ्य—गेहूँ, बाजरेकी रोटी, मेथी, चौलाई, करैला, टिंडा, सेब, पपीता, अंगूर, खजूर, लहसुन इत्यादि वस्तुओंका सेवन हितकर है।

अपथ्य—चावल, आलू, गोभी, मूली, सेम, चना, उड़दकी दाल, केला, सन्तरा, नीबू, अमरूद, टमाटर, दही तथा समस्त वायुकारक पदार्थ, दिवाशयन, अधिक परिश्रम इत्यादि रोगको बढ़ाते हैं।

दन्त-दर्द-निवारक अनुभूत प्रयोग

खड़ी सोंठको पानीमें शिला (पत्थर)-पर घिसकर लेप तैयार कर ले एवं लेपको गरम करके (सहन करने योग्य गरम) जिस दाँत या दाढ़में दर्द हो उसी तरफ गालपर लगाकर सूखनेतक रहने दे। तत्काल लाभ होगा। लेपको चार-पाँच घण्टेतक रहने दे। ध्यान रहे इस लेपका प्रयोग मुँहके अंदरकी तरफ नहीं करे। लेपका प्रयोग पूर्ण लाभके लिये तीन दिन लगातार करे।

[श्रीरामगोपालजी रुणवाल
द्वारा—अभिनव एजेन्सीज, एफ-१६,
बाबा दीप काम्प्लेक्स, ७। १ महारानी रोड,
इन्दौर—७ (म० प्र०)]

अमृतधाराके विविध प्रयोग

—अमृतधारा कई बीमारियोंमें दी जाती है, जैसे बदहजमी, हैजा और सिर-दर्द।

—थोड़ेसे पानीमें तीन-चार बूँद अमृतधाराकी डालकर पिलानेसे बदहजमी, पेट-दर्द, दस्त, उलटी ठीक हो जाती है। चक्कर आने भी ठीक हो जाते हैं।

—एक चम्मच प्याजके रसमें दो बूँद अमृतधारा डालकर पीनेसे हैजामें फायदा होता है।

—अमृतधाराकी दो बूँद ललाट और कानके आस-पास मसलनेसे सिर-दर्दमें फायदा होता है।

—मीठे तेलमें अमृतधारा मिलाकर छातीपर मालिश करनेसे छातीका दर्द ठीक हो जाता है।

—सूँघनेपर साँस खुलकर आता है तथा जुकाम ठीक हो जाता है।

—थोड़ेसे पानीमें एक-दो बूँद अमृतधारा डालकर छालोंपर लगानेसे फायदा होता है।

—दाँत-दर्दमें अमृतधाराका फाया रखकर दबाये रखनेसे राहत मिलती है।

—चार-पाँच बूँद अमृतधारा ठंडे पानीमें डालकर सुबह-शाम कुछ दिन पीनेसे श्वास, खाँसी, दमा और क्षय-रोगमें फायदा होता है।

—आँवलेके मुरब्बेमें तीन-चार बूँद अमृतधारा डालकर खिलानेसे दिलके रोगमें राहत मिलती है।

—बताशेमें दो बूँद अमृतधारा डालकर खानेसे पेटके दर्दमें आराम मिलता है।

—भोजनके बाद दोनों वक्त ठंडे पानीमें दो-तीन बूँद अमृतधारा डालकर पीनेसे मन्दाग्नि, अजीर्ण, बादी, बदहजमी एवं गैस ठीक हो जाती है।

—दस ग्राम गायके मक्खन और पाँच ग्राम शहदमें तीन बूँद अमृतधारा मिलाकर प्रतिदिन खानेसे शरीरकी कमजोरीमें फायदा होता है।

—अमृतधाराकी एक-दो बूँद जीभमें रखकर, मुँह बंद करके सूँघनेसे चार मिनटमें ही हिचकीमें फायदा होता है।

—दस ग्राम नीमके तेलमें पाँच बूँद अमृतधारा मिलाकर मालिश करनेसे, हर तरहकी खुजलीमें फायदा होता है।

—ततैया, बिच्छू, भँवरा या मधुमक्खीके काटनेकी जगहपर अमृतधारा मसलनेसे दर्दमें राहत मिलती है।

—दस ग्राम वैसलीनमें चार बूँद अमृतधारा मिलाकर, शरीरके हर तरहके दर्दपर मालिश करनेसे दर्दमें फायदा होता है। फटी बिवाई और फटे होंठोंपर लगानेसे दर्द ठीक हो जाता है तथा फटी चमड़ी जुड़ जाती है।

[प्रे०—श्रीओमप्रकाशजी धानुका]

दर्दहर लाल तेल

आजकल घुटनों, पिंडली, कमर, पीठ एवं पसली आदिमें दर्द होना आम बात हो गयी है। इसकी चिकित्साहेतु सस्ता, सरल, अचूक और अनुभूत घरेलू उपाय जनकल्याणार्थ प्रस्तुत है—

दर्दहर तेलका अनुभूत नुस्खा—सरसोंका तेल २५० ग्राम, तारपीनका तेल १०० ग्राम, लहसुनकी कलियाँ ५० ग्राम, रतनजोत २० ग्राम, पुदीनासत्त्व (आसमान तारा) १० ग्राम, अजवायनका सत्त्व १० ग्राम, कपूर देशी १० ग्राम।

तेलनिर्माण-विधि—सर्वप्रथम एक साफ बोतल लेकर उसमें पुदीनासत्त्व डाल दें। अजवायनसत्त्व और कपूरको पीसकर पुदीनासत्त्वकी बोतलमें डालकर ढक्कन लगाकर हिला दें। थोड़ी देर बाद तीनों वस्तुएँ मिलकर द्रवरूप हो जायँगी। इसे 'अमृतधारा' कहते हैं।

सरसोंका तेल किसी पतीली या कड़ाहीमें डालकर, गरम करके नीचे उतार लें। लहसुनकी कलियाँ छीलकर छोटे-छोटे टुकड़ोंमें काट लें। सरसोंका तेल ठंडा हो जानेपर उसमें लहसुनकी कलियाँ डालकर तेलको फिरसे तीव्र और मंदी आँच करते हुए गरम करें। तेलको इतना पकायें कि लहसुनकी कलियाँ जलकर काली हो जायँ। तेलके बरतनको चूल्हेपरसे नीचे रखें और उसी गरम तेलमें रतनजोत डाल दें, इससे तेलका रंग लाल हो जायगा। (रतनजोत एक वृक्षकी छाल होता है।)

तेलके ठंडा होनेपर कपड़ेसे छानकर किसी बोतलमें भर लें। अब इस पकाये हुए तेलमें अमृतधारा और तारपीनका तेल मिलाकर अच्छी तरह हिला दें। बस, मालिशके लिये दर्दहर लाल तेल तैयार है।

[श्रीरणजीतसिंहजी शाह, शिक्षक
१३, नया मोहल्ला, बुरहानपुर (म० प्र०) पिन-४५०३३१]

गोमूत्रका रोगोंपर घरेलू प्रयोग *

गायके मूत्रमें कार्बोलिक एसिड होता है, जो कीटाणुनाशक है। अतः यह शुद्धि और स्वच्छताको बढ़ाता है। प्राचीन ग्रन्थोंने गोमूत्रको अति पवित्र कहा है। आधुनिक दृष्टिसे गोमूत्रमें नाइट्रोजन, फॉस्फेट, यूरिया, यूरिक एसिड, पोटैशियम और सोडियम होता है। जिन महीनोंमें गाय दूध देती है, उनमें उसके मूत्रमें लेक्टोज रहता है, जो हृदय और मस्तिष्कके विकारोंमें बहुत हितकारी है। इसमें स्वर्णक्षार भी मौजूद रहता है, जो रसायन है।

जो गाय गोमूत्र-सेवनके लिये रखी जाती है वह नीरोगी और युवा होनी चाहिये। जंगली क्षेत्रों और चट्टानों, जहाँ गायोंके चरनेके लिये प्राकृतिक वनस्पति खाद्य-रूपमें मिल सके वहाँकी गायोंका मूत्र अधिक अच्छा है। गोमूत्रको स्वच्छ वस्त्रसे छानकर सुबहमें खाली पेट पीना चाहिये। गोमूत्र पीनेके एक घंटेतक कुछ खाना नहीं चाहिये। स्तन-पान करनेवाले बच्चोंको गोमूत्र देते समय उसकी माताको भी गोमूत्र देना चाहिये। मासिक धर्मके दौरान स्त्रियाँ यदि गोमूत्र-सेवन करें तो शान्ति और शक्ति मिलती है। सामान्यतः युवा व्यक्ति एक छटाँकसे एक पावकी मात्रामें गोमूत्र-सेवन कर सकते हैं।

गोमूत्रका उपयोग विभिन्न रोगोंमें कैसे किया जा सकता है उसे यहाँ संक्षेपमें दिया जा रहा है—

१-क़ब्ज़के रोगीको उदरकी शुद्धिके लिये गोमूत्र कई बार कपड़ेसे खूब छानकर पीना चाहिये।

२-गोमूत्रमें हरड़का चूर्ण भिगोकर धीमी आँचसे गरम करना चाहिये। जलीय भाग जल जानेपर इसका चूर्ण उपयोगमें लिया जाता है। गोमूत्रका सीधा सेवन जो नहीं कर सकता है उसे इस हरड़का सेवन करनेसे गोमूत्रका लाभ मिल सकता है।

३-जीर्ण ज्वर, पाण्डु, सूजन आदिमें किराततिक्त (चिरायता)-के पानीमें गोमूत्र मिलाकर, सात दिनतक सुबह और शाम पीना चाहिये।

* राजवैद्य श्रीरेवाशंकरजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, 'कामधेनु-चिकित्सक', रटलाई (झालावाड) राजस्थान—३२६०२४

४-खाँसी, दमा, जुकाम आदि विकारोंमें गोमूत्र सीधा ही प्रयोगमें लानेसे तुरंत ही कफ निकलकर विकार-शमन होता है।

५-पाण्डु-रोगमें हर रोज सुबह खाली पेट ताजा और स्वच्छ गोमूत्र कपड़ेसे छानकर नियमित पीनेसे एक माहमें अवश्य लाभ होता है।

६-बच्चोंको खोखली होनेपर गोमूत्रको छानकर उसमें हलदीका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये।

७-उदरके किसी भी रोगमें गोमूत्र-पानसे लाभ होता है।

८-जलोदरमें रोगीको केवल गो-दुग्ध सेवन करना चाहिये और साथ-साथ गोमूत्रमें शहद मिलाकर नियमित पीना चाहिये।

९-चरकके मतानुसार लोहेके बारीक चूर्णको गोमूत्रमें भिगोकर और उसे खूब छानकर दूधके साथ उसका सेवन करे तो पाण्डुरोगमें जल्दी लाभ होता है। सेवनसे पहले उसे खूब छानना जरूरी है।

१०-शरीरकी सूजनमें केवल दूध पीकर साथमें गोमूत्रका सेवन करना चाहिये।

११-गोमूत्रमें नमक और शक्कर समान भागमें मिलाकर सेवन करनेसे उदर-रोगका शमन होता है।

१२-गोमूत्रमें सैंधव नमक और राईका चूर्ण मिलाकर पीनेसे उदर-रोग मिटता है।

१३-आँखोंकी जलन, क़ब्ज़, शरीरमें सुस्ती और अरुचिमें गोमूत्रमें शक्कर मिलाकर लेना चाहिये।

१४-खाज, फुंसी तथा विचर्चिकामें गोमूत्रमें आँबा-हलदीका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये।

१५-प्रसूतिके बाद सुवा रोगमें स्त्रीको गोमूत्र पिलानेसे अच्छा लाभ होता है।

१६-चर्म-रोगोंमें हरताल, बाकुची तथा मालकँगनीको गोमूत्रमें मिलाकर सोगठी बनाकर इसे दूषित त्वचापर लगाना चाहिये।

१७-सफेद कुष्ठमें बावचीके बीजको गोमूत्रमें अच्छी तरह पीसकर लेप करना चाहिये।

१८-कानमें वेदना आदि विकारोंमें गोमूत्रको गरम करके इसकी बूँद डालनी चाहिये।

१९-शरीरमें खुजली होनेपर गोमूत्रकी मालिश करनी चाहिये और स्नान करना चाहिये।

२०-कृष्णजीरकको गोमूत्रमें पीसकर इसका शरीरपर मालिश और गोमूत्र-स्नानसे चर्म-रोग मिटते हैं।

२१-ईंटको खूब तपाकर गोमूत्रमें इसे बुझाने तथा इसके बाद उसे कपड़ेमें लपेटकर यकृत् और प्लीहा (तिल्ली)-की सूजनपर सेंक करनेसे लाभ होता है।

२२-कृमि-रोगमें डीकामालीका चूर्ण गोमूत्रके साथ देना चाहिये।

२३-सुवर्ण, लौह, वत्सनाभ, कुचला आदिका शोधन करनेके लिये और भस्म बनानेके लिये औषधनिर्माणमें गोमूत्रका उपयोग होता है। गोमूत्र विषैले द्रव्योंका विषप्रभाव नष्ट करता है। शिलाजीतकी शुद्धि भी गोमूत्रसे होती है।

२४-चर्मरोगोंमें उपयोगी महामरिच्यादि तेल और पञ्चगव्य घृत बनानेमें गोमूत्र उपयोगमें लाया जाता है।

२५-हाथीपाँव (फाइलेरिया)-रोग गोमूत्र सुबहमें खाली पेट लेनेसे मिट जाता है।

२६-गोमूत्रका क्षार उदर-वेदनामें, मूत्ररोधमें तथा वायुका अनुलोमन करनेमें दिया जाता है।

२७-गोमूत्र सिरमें लगाकर उसे अच्छी तरह मलकर थोड़ी देरतक रखना चाहिये। सूखनेके बाद धोनेसे बाल सुन्दर होते हैं।

२८-कामला-रोगमें गोमूत्र अतीव उपयोगी है।

२९-गोमूत्रमें पुराना गुड़ और हलदीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे दाद, कुष्ठरोग और हाथीपाँव ठीक होते हैं।

३०-गोमूत्रके साथ एरंड तेल एक मासतक पीनेसे संधिवात और अन्य वातविकार नष्ट होते हैं।

३१-बच्चोंको उदर-वेदना तथा पेट फूलनेपर एक चम्मच गोमूत्रमें थोड़ा नमक मिलाकर पिलाना चाहिये।

३२-बच्चोंको सूखा-रोग होनेपर एक मासतक सुबह और शाम गोमूत्रमें केशर मिलाकर पिलाना चाहिये।

३३-शरीरमें खाज-खुजली हो तो गोमूत्रमें नीमके पत्ते पीसकर लगाना चाहिये।

३४-गोमूत्रके नियमित सेवनसे शरीरमें स्फूर्ति रहती है, भूख बढ़ती है और रक्तका दबाव स्वाभाविक होने लगता है।

३५-क्षयरोगीके क्षय-जन्तुका नाश गोबर और गोमूत्रकी गन्धसे होता है। अत: क्षयके रोगीको गौशालामें रखना चाहिये और इसकी खाटको गोमूत्रसे बार-बार धोना चाहिये।

३६-दाद (Ring-Worm)-पर धतूरेके पत्ते गोमूत्रमें पीसकर गोमूत्रमें ही उबाले। गाढ़ा होनेपर लगावे।

३७-टाइफॉइड या किसी भी दवाईके खानेसे सिर या किसी स्थानके बाल उड़ जाते हैं तो गोमूत्रमें तंबाकूको पीसकर डाल दे। दस दिनके बाद पेस्ट-जैसा बन जानेपर अच्छी तरह रगड़कर बाल-झड़े स्थानपर लगाये तो बाल फिर आ जाते हैं। सिरमें भी लगा सकते हैं।　[प्रेषक—श्रीमनमोहनजी मुण्डेल]

गोमूत्रसे कैंसरके निदानका सफल प्रयोग

(श्रीनन्दकिशोरजी गोइनका)

गौ माताकी सेवा, गौ माताके दर्शन तथा गोदुग्ध एवं गोदधिके प्रयोगसे मानव पूर्ण नीरोग तथा सुखी-समृद्ध रह सकता है। यह मैं अपने जीवनके साठ वर्षोंकी अनुभूतियोंके आधारपर कह सकता हूँ।

हमारे गाँव सदलपुरमें मेरे पिताजी श्रीगोपीरामजी गोशालामें गायोंकी सेवा किया करते थे। स्वाधीनता सेनानी तथा परम गोभक्त लाला हरदेवसहायजी प्रत्येक वर्ष गोशालाके गोपाष्टमी-समारोहमें हमारे गाँव पधारते तथा हमारे परिवारमें ही उनका निवास हुआ करता। वे बातचीतके दौरान कहा करते थे कि 'गौ माताकी सेवासे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—चारोंकी प्राप्ति होती है।' उन्हींकी प्रेरणासे मैंने गोसेवाका संकल्प लिया। गाँवसे हमारा परिवार हिसार गया तो वहाँ भी गोसेवाका क्रम निरन्तर जारी रहा।

हमारा परिवार गायके ही दूध, दही, घीका प्रयोग करता है। मैं अब सत्तर वर्षका हो गया हूँ। गोमाताकी सेवा तथा गायके दूध-घीके उपयोगके कारण मैं आजतक बीमार नहीं हुआ और न किसी भी प्रकारकी औषधिके सेवनकी आवश्यकता ही हुई।

हमने २० एकड़का खेत गोट लिया है, उसकी फसलके लिये हम गोबर तथा गोमूत्रसे बनी खादका प्रयोग करते हैं। फसल इतनी अच्छी होती है कि आस-पासके किसान भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

कैंसरका सफल उपचार—मैंने गायके दही, मूत्र तथा तुलसीपत्रोंके योगसे असाध्य कहे जानेवाले रोग 'कैंसर'की औषधि तैयार की है—जिससे कैंसरके अनेक रोगियोंको रोगमुक्त करनेमें सफलता मिली है। वह योग निम्न प्रकारसे तैयार किया जा सकता है—

भारतीय नस्लकी गायके दूधका एक पावसे आधा किलो दही, चार चम्मच गोमूत्र, पाँचसे दस पत्ते तुलसीपत्र, कुछ शुद्ध मधु—इन चारों पदार्थोंको एक पात्रमें मिलाकर, मथकर प्रात:काल खाली पेट प्रतिदिन केवल एक बार पीनेसे तथा एक वर्षतकके इस प्रयोगसे प्रारम्भिक अवस्थाका कैंसर पूरी तरह दूर हो जाता है।

गौ माताके शरीरपर हाथ फेरनेसे, उसके श्वाससे अनेक प्रकारके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। गोबरके कंडोंकी राखसे दुर्गन्ध देखते-ही-देखते काफूर हो जाती है।

क़ब्ज़, खाँसी, दमा, जुकाम, जीर्ण ज्वर, उदररोग तथा चर्मरोग आदिमें गोमूत्र रामबाण दवाका काम करता है।

अमेरिकामें स्थित जर्सी-पशु-अनुसन्धान-केन्द्रके वैज्ञानिकोंने गोदुग्ध तथा गोमूत्रकी वैज्ञानिक जाँचके बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि गोदुग्ध तथा गोमूत्रमें अनेक रोगोंके विषाणुओंका उन्मूलन करनेकी क्षमता है। गोमूत्रमें कार्बोलिक एसिड भी होता है, जो कीटाणुनाशक है। इसमें हृदय और मस्तिष्कके विकारोंको भी दूर करनेकी अद्भुत क्षमता है।

गोमूत्रमें हरड़ (हर्रे) भिगोकर धीमी आँचपर गरम करे। जलीय भाग जल जानेपर उस हरड़का चूर्ण बना ले। यह चूर्ण अनेक रोगोंकी रामबाण दवा है।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

गोमूत्र-चिकित्सा

(श्रीमती ज्योति दूबे)

शास्त्रोंमें ऋषियों-महर्षियोंने गौकी अनन्त महिमा लिखी है। उनके दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ, मूत्र आदिसे अनेक रोग दूर होते हैं। गोमूत्र एक महौषधि है। इसमें पोटैशियम, मैग्नीशियम क्लोराइड, फास्फेट, अमोनिया, कैरोटिन, स्वर्णक्षार आदि पोषकतत्त्व विद्यमान रहते हैं, इसलिये इसे औषधीय गुणोंकी दृष्टिसे महौषधि माना गया है।

गोमूत्रका किन-किन रोगोंमें कैसे उपयोग करे

१-जोड़ोंका दर्द—(क) दर्दके स्थानपर गोमूत्रका सेक करे। (ख) सर्दीमें एक ग्राम सोंठके चूर्णके साथ गोमूत्रका सेवन करे।

२-मोटापा—आधे गिलास ताजे पानीमें चार चम्मच गोमूत्र, दो चम्मच शहद तथा एक चम्मच नीबूका रस मिलाकर नित्य सेवन करे।

३-दाँत-दर्द—दाँत-दर्द एवं पायरियामें गोमूत्रसे कुल्ला करनेसे लाभ होता है।

४-पुराना जुकाम, नजला, श्वास—गोमूत्र एक चौथाईमें एक चौथाई चम्मच फूली हुई फिटकरी मिलाकर सेवन करे।

५-हृदयरोग—चार चम्मच गोमूत्रका सुबह-शाम सेवन करे।

६-मधुमेह—बिना ब्यायी गायका गोमूत्र प्रतिदिन डेढ़ तोला सेवन करे।

७-पीलिया—२००-२५० मि०ली० गोमूत्र पंद्रह दिनतक पीये।

८-उच्च रक्तचाप—एक चौथाई प्याले गोमूत्रमें एक चौथाई चम्मच फूली हुई फिटकरी डालकर सेवन करे।

९-दमा—दमाके रोगीको छोटी बछड़ीका एक तोला गोमूत्र नियमित पीना चाहिये।

१०-यकृत्, प्लीहा बढ़ना—(क) पाँच तोला गोमूत्रमें एक चुटकी नमक मिलाकर पीये। (ख) पुनर्नवाके क्वाथको समान भाग गोमूत्र मिलाकर ले। (ग) गर्म ईंटपर उससे गोमूत्रमें कपड़ा भिगोकर लपेटे तथा प्रभावित स्थानपर हल्की-हल्की सिकाई करे।

११-क़ब्ज़, पेट फूलना—(क) तीन तोला ताजा गोमूत्र छानकर उसमें आधा चम्मच नमक मिलाकर पिलाये। (ख) बच्चेका पेट फूल जाय तो एक चम्मच गोमूत्र पिलाये।

१२-गैस—(क) प्रातःकाल आधे कप गोमूत्रमें नमक तथा नीबूका रस मिलाकर पिलाये। (ख) पुराने गैसके रोगके लिये गोमूत्रको पकाकर प्राप्त किया गया क्षार भी गुणकारी है।

१३-गलेका कैंसर—१०० मि०ली० गोमूत्र तथा सुपारीके बराबर गायका गोबर दोनोंको मिलाकर स्वच्छ बर्तनमें छान ले। सुबह नित्यकर्मसे निवृत्त होकर निराहार छः माहतक प्रयोग करे।

१४-चर्मरोग—(क) नीम गिलोय क्वाथके साथ सुबह-शाम गोमूत्रका सेवन करनेसे रक्तदोषजन्य चर्मरोग नष्ट हो जाता है। (ख) चर्मरोगपर जीरेको महीन पीसकर गोमूत्र मिलाकर लेप करे।

१५-आँखके रोग—आँखके धुंधलेपन एवं रतौंधीमें काली बछियाके मूत्रको ताँबेके बर्तनमें गर्म करे। चौथाई भाग बचनेपर छान ले और उसे काँचकी शीशीमें भर ले। उससे सुबह-शाम आँख धोये।

१६-पेटमें कृमि—आधा चम्मच अजवाइनके चूर्णके साथ चार चम्मच गोमूत्र एक सप्ताह सेवन करे।

१७-कब्ज़—हरड़के चूर्णके साथ गोमूत्र सेवन करे।

गोमूत्र-सेवनमें सावधानियाँ

१-देशी गायका गोमूत्र ही सेवन करे।

२-जंगलमें चरनेवाली गायका मूत्र सर्वोत्तम है।

३-गाय गर्भवती या रोगी न हो।

४-बिना ब्यायी गायका गोमूत्र अधिक लाभदायी है।

५-एक वर्षसे कमकी बछियाका मूत्र सर्वोत्तम है।

६-मालिशके लिये दोसे सात दिन पुराना गोमूत्र अच्छा रहता है।

७-पीनेहेतु गोमूत्रको चारसे आठ बार कपड़ेसे छानकर प्रयोग करना चाहिये।

८-बच्चोंको पाँच-पाँच ग्राम और बड़ोंको दससे बीस ग्रामकी मात्रामें सेवन करना चाहिये।

पूर्ण श्रद्धा और विश्वासके साथ ऊपर बतायी विधिके अनुसार गोमूत्रका सेवन करनेसे गोमाताकी कृपासे चमत्कारिक लाभ होगा।

गोमूत्र और गोमयसे रोग-निवारण

गायके मूत्रको 'गोमूत्र' कहते हैं। वैद्यलोग इसका औषधोंमें बहुत उपयोग करते हैं। यह सौम्य और रेचक है। क़ब्ज़ हो गया हो, पेट फूल गया हो, डकारें आती हों, मुँह मिचलाता हो तो तीन तोला स्वच्छ और ताजा गोमूत्र छानकर आधा माशा नमक मिलाकर पी जाना चाहिये। थोड़ी ही देरमें टट्टी होकर पेट उतर जाता है और आराम मालूम होता है। छोटे बच्चोंका पेट फूलनेपर उन्हें गोमूत्र पिलाया जाता है। उम्रके अनुसार साधारणतः एक वर्षके बच्चेको एक चम्मच गोमूत्र नमक मिलाकर पिला देना चाहिये। तुरंत पेट उतर जाता है। पेटके कृमियोंको मिटानेके लिये तो गोमूत्रसे बढ़कर कोई दूसरी औषधि ही नहीं है। बच्चोंके हब्बा-डब्बा रोगपर भी कुलथीके काढ़ेके साथ गोमूत्र दिया जाता है। बच्चेकी दो मुट्ठियोंमें जितनी समाये, उतनी कुलथी कूटकर और उसमें बच्चेकी हथेलीके बराबर आकका पत्ता छोड़कर आध सेर पानीमें पकाना चाहिये। जब पानी एक छटाँक रह जाय तब उसे छानकर और उसमें उतना ही गोमूत्र मिलाकर पिलाना चाहिये। तीन दिनमें ही टट्टी-पेशाब साफ होकर पेट उतरने लगता है और सात दिनमें हब्बा-डब्बा रोग अच्छा हो जाता है। [इस रोगमें बच्चेका शरीर फूल जाता है, पेट बढ़ जाता है और नाभि ऊपर आ जाती है।]

पेटकी हर-एक व्याधिपर गोमूत्र रामबाण है। यकृत् या प्लीहा बढ़ गयी हो तो पाँच तोला गोमूत्र नमक मिलाकर प्रतिदिन पिलानेसे थोड़े ही दिनोंमें आराम मालूम होता है। यकृत् या प्लीहापर गोमूत्रसे सेंक भी किया जाता है। उसकी विधि इस प्रकार है—एक अच्छी ईंट आगमें गरम कर ली जाय। फिर उसपर गोमूत्र छोड़कर गोमूत्रमें भिगोये हुए कपड़ेमें उसे लपेट लिया जाय और उससे नरम-नरम सेंका जाय। इससे यकृत् या प्लीहा घट जाती है। शरीर खुजलाता हो तो कड़ुवा जीरा गोमूत्रमें पीसकर उसका लेप किया जाय और नीमके पत्ते छोड़कर उबाले हुए पानीसे नहाया जाय इससे खुजलाहट बंद हो जायगी। गोमूत्रमें बावचीको पीसकर रातमें कोढ़के सफेद दागोंपर लेप करने और सुबह गोमूत्रसे ही धो डालनेसे कुछ दिनोंमें दाग मिट जाते हैं। पेटके फूलनेपर भी गोमूत्रका सेंक लाभकारी होता है।

यकृत् और प्लीहाके बढ़नेसे उदररोग हो गया हो तो पुनर्नवाके काढ़ेमें आधा गोमूत्र मिलाकर पिलाया जाय, इससे उदररोग अच्छा हो जायगा। इस सम्बन्धमें अक्कलकोटके डॉक्टर चाटी अपना अनुभव इस प्रकार बतलाते हैं—अपनी चालीस वर्षकी नौकरीमें मैंने कितने ही जलोदरके रोगियोंका इलाज किया। उन्हें अंग्रेजी दवाएँ पिलायीं और पेट चीरकर दो, तीन, चार बार भी पेटका पानी निकाल दिया; परंतु उनमेंसे अधिकांश रोगियोंकी मृत्यु हो गयी। मैंने सुना और आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें पढ़ा भी था कि इस रोगपर गोमूत्रका उपयोग बहुत ही लाभकारी होता है, परंतु मुझे विश्वास नहीं होता था। एक बार एक साधु महात्माने गोमूत्रके गुणोंका बहुत वर्णन करके कहा कि इसका जलोदरपर बहुत अच्छा उपयोग होता है। तदनुसार चार रोगियोंपर मैंने गोमूत्रका प्रयोग करके देखा। उनमेंसे तीन चंगे हो गये। जो चौथा मर गया, वह मुमूर्षु-अवस्थामें ही मेरे पास आया था। जो अच्छे हो गये, उनमेंसे एकका ब्योरा इस प्रकार है—सन् १९१० में जब मैं अक्कलकोट राज्यमें 'चीफ मेडिकल अफसर' था तब मुझे जुन्नर गाँवमें जरूरी कामसे बुलाया गया। वहाँ अप्पण्णा नामक एक तीस वर्षका बढ़ई जलोदरसे आसन्नमरण हो रहा था, उसीका इलाज करना था। रोगीका सब शरीर फूल गया था। न वह कुछ निगल सकता था, न हिल सकता था और बड़े कष्टसे साँस लेता था। उसके जीनेकी कोई आशा नहीं बच रही थी। उसे इंजेक्शन देकर शक्तिवर्धक औषधि खिलायी और पेट चीरकर १६ पौंड पानी निकाल दिया, जिससे वह श्वासोच्छ्वास ठीक तरहसे करने लगा। पंद्रह दिन बाद फिर ऑपरेशन कर १४ पौंड पानी उसके पेटसे निकाला। अब वह अच्छा हो गया और उसके पेटमें फिर पानी जमा नहीं हुआ। पहले दिनसे ही उसे मैं एक नीरोग और बलिष्ठ गायका मूत्र शहदके साथ दिया करता और १ पौंड गोदुग्ध पिलाया करता था।

पंद्रह दिन बाद २ पौंड दूध देने लगा। इस इलाजसे एक ही महीनेमें वह चंगा हो गया। मैंने इलाज बंद कर दिया। यद्यपि अब गोमूत्र-सेवनके लिये उससे मैंने नहीं कहा था, तथापि वह बराबर गोमूत्र पीया करता था। उसका विश्वास हो गया था कि गोमूत्रसे ही मेरे प्राण बचे हैं, इस कारण गोमूत्र-सेवनसे वह विरत नहीं हुआ और धीरे-धीरे हट्टा-कट्टा हो गया।

गोमय-माहात्म्य

अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वने वने।
तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम्॥
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च नुद गोमय सर्वदा।

—इस मन्त्रसे सिरसे पैरतक गोबर लगाकर स्नान करनेकी श्रावणीकर्ममें विधि है। पञ्चगव्य (दही, दूध, घी, गोमूत्र और गोमय)-प्राशन भी श्रावणीमें किया जाता है। आधुनिक शिक्षित लोग इस विधिको घृणित और हेय समझते हैं; परंतु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे पञ्चगव्यका कितना महत्त्व है, इसका उन्होंने कभी विचार ही नहीं किया है। इस सम्बन्धमें डॉ० रविप्रताप महाशयने 'विशाल भारत'में एक लेख लिखा था, उसमें आप लिखते हैं—'भारतमें अनादिकालसे गोबरका मानव-शरीरके लिये ओषधिकी तरह उपयोग किया जा रहा है। परंतु इस बीसवीं शताब्दीमें यह जानकर इस दिव्यौषधिका हमने त्याग कर दिया कि यह घृणित, गंदी, आरोग्य-विघातक और दुर्गन्धिमय वस्तु है। यहाँतक कि म्युनिसिपलिटियोंके अधिकारी लोगोंको हुक्म देने लगे हैं कि जमीन गोबरके बदले चूनेसे लीपा करो। आश्चर्यकी बात है कि सहज-सुलभ और निसर्गदत्त गोबर-जैसी कृमिनाशक वस्तुको त्यागकर महँगे, कृत्रिम और विदेशी जन्तुनाशक द्रव्योंका हम संग्रह कर रहे हैं।'

हिंदूधर्मके प्रायः सभी धार्मिक कार्योंमें गोबरका उपयोग किया जाता है। (**'गोमयेन प्रदक्षिणमुपलिप्य'**) इसका कारण भी यही है कि गोबरमें रोगके कीटाणुओंका नाश करनेका गुण विद्यमान है। प्राचीन ऋषि-महर्षि अपनी पर्णकुटियाँ गोबरसे लीपकर स्वच्छ रखते थे। वे वस्तुकी व्यावहारिक उपयोगिता जानकर उसे धार्मिक स्वरूप दे दिया करते थे, जिससे वह समाजमें रूढ हो जायगा।

इटलीवालोंकी खोज

इटलीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० जी०ई० बीगेंडने गोबरके अनेक प्रयोग कर सिद्ध किया है कि ताजे गोबरसे तपेदिक और मलेरियाके जन्तु तुरंत मर जाते हैं। प्रोफेसर महाशयका अनुभव है कि प्राथमिक अवस्थाके जन्तु तो गोबरकी गन्धसे ही मर जाते हैं। गोबरके इस अलौकिक गुणके कारण इटलीके अधिकांश सेनिटोरियमोंमें गोबरका ही उपयोग करते हैं। इटलीमें अब भी हैजा या अतिसारके रोगीको ताजे पानीमें ताजा गोबर घोलकर पिलाते हैं और जिस तालाबके पानीमें हैजेके जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं, उसमें गोबर डालते हैं। उनका अनुभव है कि इससे हैजेके जन्तु तुरंत मर जाते हैं। गोबरसे फोड़ा-फुंसी, घाव, दंश, चक्कर, लचक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। डॉ० मैकफर्सनने दो वर्षतक गोबरपर शोध कर उसका इतिवृत्त 'न्यूयार्क टाइम्स' में छपाया। उसमें अनेक सिद्धान्त स्थिर कर उन्होंने यह सिद्ध किया है कि गोबरसे बढ़कर कीटाणुनाशक कोई दूसरा उपयुक्त द्रव्य नहीं है। उनका कहना है कि गोबर उसी गायका होना चाहिये, जिसका आहार उत्तम हो और जो नीरोग हो। **'अग्रमग्रं चरन्तीनाम्'**—इस मन्त्रका भी यही अभिप्राय है।

गाय आरोग्य-देवता है

सतपुड़ेके गोंड, भील आदि सब कामोंमें गोबरका उपयोग करते हैं। अपस्मार, चक्कर, मस्तकविकार, मूर्च्छा आदि रोगोंपर वे गायके दूध या तिलके तेलमें गोबर घोलकर पिलाते और इसीका लेप करते हैं। तेलमें गोबर मिलाकर मालिश करनेसे मज्जातन्तु नीरोग हो जाते हैं। वैद्यलोग क्षयरोगियोंको गायोंके बाड़ेमें सुलानेको कहते हैं। क्योंकि गोमूत्र और गोबरकी गन्धसे क्षयरोगीके शरीरके क्षयजन्तु मर जाते हैं। क्षयरोगीके पलँगको प्रतिदिन गोबर और गोमूत्रके जलसे धो डालना भी लाभदायक होता है। हिंदूलोग गोबर और गोमूत्रसे प्रातःकाल घरके द्वार लीपते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों द्रव्य रोगकीट-नाशक हैं। सन् १९३४-में मद्रासप्रान्तमें हैजेका प्रकोप हुआ। उस समय जो गोबरके गारोंमें काम करते थे, उनपर हैजेका कोई प्रभाव नहीं हुआ। इस अनुभवके अनुसार

वहाँ अब वर्षाकालमें सब कामोंमें गोबरका ही उपयोग किया जाता है। वहाँके प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है कि आगसे जल जाने या चोटसे घाव होनेपर गोबरके लेपसे अच्छा हो जाता है। खुजली, चकत्ते आदि रोग तो गोमूत्र और गोबरके प्रयोगसे बात-की-बातमें अच्छे हो जाते हैं।

सार्वजनिक विषूचिका-प्रतिबन्ध

श्रावणीकर्मके पञ्चगव्य-प्राशनकी विधिमें भी यही उद्देश्य है। आषाढ़ तथा श्रावणमें जब नया पानी आ जाता है, तब इससे हैजेकी सम्भावना होती है। उसीके प्रतिबन्धके लिये पञ्चगव्य-प्राशनका प्रारम्भिक उपचार है। खाद्याखाद्य, पेयापेय, स्पृश्यास्पृश्य आदिका विचार न करनेवाले लोगोंको ही हैजा हो जानेकी अधिक सम्भावना रहती है। इसीलिये धार्मिक प्रक्रियाओं और शुद्धिसंस्कारमें पञ्चगव्य प्रायश्चित्तका विशेष महत्त्व है।

मद्रासके सुप्रसिद्ध डॉक्टर किंग कहते हैं—यह अब प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है कि गायके गोबरमें हैजेके जन्तुओंका संहार करनेकी विचित्र शक्ति है। गायके गोबरका शास्त्रीय रीतिसे पृथक्करण कर, उसका सत्त्व निकालकर उसे जहाँ-जहाँ पानीमें डालकर देखा गया, वहाँकी घनी बस्तीमें भी कहीं हैजा नहीं हुआ। डॉक्टरोंने अब सिद्ध कर दिया है कि 'रोगजन्तु-नाशके लिये गोमयका बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपयोग है।'

गोमूत्र और रोग-निदान

भारतीय आयुर्वेदको विश्वका प्राचीनतम चिकित्सा-शास्त्र कहा जाता है। आयुर्वेदमें वनस्पतियों, धात्विक एवं अधात्विक अवयवोंके साथ-ही-साथ जीवाङ्गोंके चिकित्सकीय उपयोगका पर्याप्त उल्लेख मिलता है, जीवाङ्ग-चिकित्साके अन्तर्गत अन्य जीवोंकी तुलनामें गायके सम्पूर्ण उत्पादोंको प्रधानता दी गयी है। गायके सम्पूर्णाङ्गोंको पञ्चगव्यके रूपमें वर्गीकृत किया गया है, पञ्चगव्यमें दूध, दही, घी, गोबर तथा मूत्र कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त गोरोचन भी अनेक रोगोंके उपचारमें काम आता है। ये छः पदार्थ गोषडङ्ग कहलाते हैं। इन गोषडङ्गोंमें भी गोमूत्रकी गुणवत्ता अधिक है।

रोगोपचारके रूपमें गोमूत्रका उपयोग सबसे अधिक होता है, गोमूत्रका रंग स्वर्णकी भाँति पीला चमकीला होता है। आरोग्यशास्त्रोंने गोमूत्रको स्वादमें कटु, कषैला (कड़वा), तीक्ष्ण एवं चरपरा बतलाया है। इसमें पाचन, अग्निदीपन, भेदन आदि शक्तियाँ होती हैं। इसका सेवन मेधाजनक और बुद्धिदायक है। इसमें वात, कफ, कोढ़, उदररोग, पीलिया, बवासीर, खुजली, खासी, ज्वर, त्वचारोग और कृमि एवं विषनाशक आदि गुण होते हैं। यह मुखरोग, नेत्ररोग तथा स्त्रियोंके अतिसाररोगको दूर करनेके लिये भी उपयोगमें आता है।

गोमूत्रका उपयोग सीधे तथा अन्य योगोंके साथ अनेक प्रकारके साध्य एवं असाध्य रोगोंपर किये जानेका उल्लेख आयुर्वेदमें आया है—

१. कानके दर्दमें गोमूत्र डालनेसे आराम मिलता है।

२. थोड़े पानीमें गोमूत्र मिलाकर कुछ दिन पीनेसे पेटके कीड़े (कृमि) मर जाते हैं।

३. सिरके बाल धोते समय गोमूत्र उपयोग करनेसे साबुनद्वारा होनेवाली हानि तथा सिरमें पड़नेवाली रूसी (फ्याँस)-से बचा जा सकता है।

४. पथरी तथा जिगररोगोंमें गोमूत्र पीनेसे आराम मिलता है।

५. त्वचारोग—खाज, खुजली, कोढ़ आदिपर इसका उपयोग लाभकारी रहता है।

६. योगराज गुग्गुल, पीपलामूल तथा हरड़का समभाग मिश्रण कुछ दिन गोमूत्रके साथ सुबह-शाम लेनेसे पीलियारोगमें आराम मिलता है।

७. हर तरहके कण्ठरोगमें नागरमोथा, इन्द्रयव, अतीस, दारुहल्दी तथा कुटकीसे बने काढ़ेको गोमूत्रके साथ पीनेसे आराम मिलता है।

८. हरताल एवं बाकुचीके एक तथा चार (१ : ४) अनुपातके मिश्रणको गोमूत्रमें पीसकर आगपर गर्मकर लेप बना ले, उस लेपको श्वेत दाग (कुष्ठ)-पर लगानेसे लाभ होता है।

९. हल्दी और अडूसेके कोमल पत्तोंको कच्छु (एक प्रकारकी खुजली)-रोगपर दिनमें तीन बार लगानेसे आराम मिलता है।

१०. तिलके फूल, सेंधा नमक, सरसोंका तेल और गोमूत्रके समभाग मिश्रणको लोहेके पात्रमें डालकर रगड़नेसे तैयार हुए लेपको पाँवकी फटी हुई बिवाईपर लगानेसे लाभ होता है।

११. रक्तचाप एवं ब्लड प्रेशरमें गोमूत्रको दिनमें तीन बार लगभग २० मिली० पीनेसे लाभ मिलता है।

१२. गर्भावस्थाके दौरान हिचकी, अरुचि एवं जलन महसूस होनेपर आसमानी रंगकी काँचकी शीशीमें रखे गोमूत्रकी लगभग १० मिली० मात्रा दिनमें दो बार लेनेसे लाभ होता है।

१३. अग्निदीपन तथा पेटदर्दमें तीन चम्मच गोमूत्र दिनमें तीन बार लेनेसे लाभ होता है।

श्रीमधुसूदन भार्गव
४८ शास्त्रीनगर,
शिवपुरी (म०प्र०)—४७३५५१

गव्य पदार्थोंके गुण और रोगनाशके लिये उनका उपयोग

गायका दूध

गायका दूध स्वादिष्ट, रुचिकर, स्निग्ध, बलकारक, अतिपथ्य, कान्तिप्रद; बुद्धि, प्रज्ञा, मेधा, कफ, तुष्टि, पुष्टि, वीर्य और शुक्रको बढ़ानेवाला; आयुको दृढ़ करनेवाला; हृद्य, रसायन, गुरु, पुरुषत्व प्रदान करनेवाला और नमकीन होता है। वात, पित्त, विष, वातरक्त, दाह, रक्तपित्त, अतिसार, उदावर्त, भ्रम, कास, मद, श्वास, मनोव्यथा, जीर्णज्वर, हृद्रोग, पिपासा, उदर, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, अर्श, प्रवाहिका, पाण्डु, शूल, अम्लपित्त, क्षयरोग, अतिश्रम विषमाग्नि, गर्भपात, योनिरोग और वातरोगका नाश करता है।

काली गायका दूध विशेष करके वातका नाश करता है। लाल और चितकबरी गायका दूध विशेषकर पित्तका नाश करता है। पीली गायका दूध वात-पित्तका नाश करता है। श्वेत (धौरी) गायका दूध कफकारक होता है। मरे हुए बछड़ेवाली तथा तुरंतके बछड़ेवाली गायका दूध त्रिदोषकारक होता है। बाखड़ी गायका दूध गाढ़ा, बलवर्धक, तृप्तिकारक और त्रिदोषनाशक होता है। खली और भुना हुआ दाना खानेवाली गायका दूध कफकारक होता है। बिनौला, घास, पत्ती आदि खानेवाली गायका दूध सब रोगोंके लिये हितकर है। जवान गायका दूध मधुर, रसायन और त्रिदोषनाशक है। बूढ़ी गायका दूध दुर्बल और गाभिन गायका तीन महीनेके बादका दूध पित्तकारक, खरास लिये हुए मधुर और शोषण करनेवाला होता है। पहली बार ब्यायी हुई गायका दूध निःसार और गुणहीन होता है।

नयी ब्यायी हुई गायका दूध रूखा, दाहकारक और रक्तदोषकारक तथा पित्तकारक होता है। ब्यानेके अधिक दिन बाद गायका दूध मधुर दाहकारक और खट्टा होता है। तुरंतका दुहा हुआ धारोष्ण दूध वृष्य, धातुवर्धक, निद्राकारक, कान्तिप्रद, पथ्य, स्वादिष्ट, अग्नि प्रदीप्त करनेवाला, अमृतसदृश और सर्वरोगनाशक होता है। ठंडा दूध (दुहनेके एक पहर बाद) त्रिदोषकारक होता है, गरम पित्तनाशक होता है। उबाले हुए दूधको पीनेसे कफका नाश होता है और बिना गरम किया हुआ ठंडा दूध बलवर्धक, वृष्य, दोषोत्पादक, अपाचक और मलस्तम्भक होता है। प्रातःकाल गायका दूध, शक्कर डालकर पीनेसे हितकारक होता है।

दूधकी मलाई—शीतल, स्निग्ध, वृष्य, बलकारक, शुक्रप्रद, तृप्तिकर, रुचिकर, कफवर्धक और धातुवर्धक है तथा पित्त, वायु, रक्तपित्त, दाह और रक्तरोगोंका नाश करती है।

गायके दूधका औषधिमें उपयोग

१-आधासीसीमें—गायके दूधका खोआ खाना या गायके दूधमें बादामके टुकड़े डालकर बनायी हुई खीरमें शक्कर डालकर पिलाना चाहिये।

२-धतूरा अथवा कनेरके विषपर—पावभर दूधमें एक तोला शक्कर डालकर पिलाना चाहिये।

३-संखिया, तूतिया, बछनाग, मुर्दासंख इत्यादिके विषपर—जबतक उलटी न हो जाय तबतक दूध या दूधमें शक्कर डालकर पिलाना चाहिये।

४-मैनसिलके विषपर—दूधमें मधु डालकर तीन दिन पिलाना चाहिये।

५-कोदोंके विषपर—ठंडा दूध पिलाना चाहिये।

६-काँचका चूर्ण—यह यदि अन्नके साथ पेटमें चला गया हो तो ऊपरसे दूध पिलाना चाहिये।

७-गन्धकके विषपर—दूधमें घी डालकर पिलाना चाहिये।

८-पुष्टि, बल और वीर्यकी वृद्धिके लिये—गरम किये हुए दूधमें गायका घी और शक्कर डालकर पिलाना चाहिये। इसके जैसा पथ्य, तेजोवर्धक और बलवर्धक प्रयोग दूसरा कोई नहीं है।

९-जीर्ण ज्वरपर—दूधमें गायका घी, सोंठ, छुहारा और काली दाख डालकर उसे आगपर उबालकर पिलाना चाहिये।

१०-मूत्रकृच्छ्र और मधुमेहपर—दूधमें गुड़ अथवा घी डालकर उसे थोड़ा गरम करके पिलाना अथवा गरम किया हुआ दूध घीके साथ बराबर शक्कर डालकर पिलाना चाहिये।

११-आँख उठी होनेपर या जलन होनेपर—गायके दूधमें रूईको भिगोकर और उसके ऊपर फिटकिरीका चूर्ण डालकर आँखके ऊपर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

१२-पुष्टिके लिये—गायका दूध घी और मधु मिलाकर पिलाना चाहिये।

१३-पित्त-विकारके ऊपर—सात तोला दूध लेकर उसमें आधा तोलासे एक तोलातक सोंठ उबालकर खोआ बनाये, उसमें शक्कर डालकर गोली बंना ले और रातको सोनेके पहले प्रतिदिन खिलाये। खानेके बाद पानी न पीने दे। इस प्रकार कुछ अधिक दिनोंतक इसका सेवन कराना चाहिये।

१४-चेचक अथवा छोटी माता होनेके कारण बालकके शरीरमें आनेवाले ज्वरके ऊपर—तुरंत दुहे हुए दूध और घीको मिलाकर मिस्री डालकर पिलाये।

१५-छाती तथा हृदयरोगपर—दूधमें शुद्ध भिलावेका तेल १० बूँदतक डालकर पिलाना चाहिये।

१६-रक्तपित्तके ऊपर—दूधमें पाँचगुना पानी डालकर अच्छी तरह उबाले और सारा पानी जल जानेके बाद दूध पिला दे।

१७-हड्डी टूटनेपर—प्रात:काल बाखड़ी (ब्यानेके बाद लगभग ६-७-८ महीने दूध दे चुकनेवाली) गायका दूध शक्कर डालकर गरम करे। उसमें घी और लाखका चूर्ण डालकर ठंडा होनेपर पिलाये, इससे टूटी हड्डी ठीक हो जाती है।

१८-कफपर—गर्म दूधमें मिश्री और काली मिर्चका चूर्ण डालकर पिलाना चाहिये।

१९-सिरके रक्तज और पित्तज रोगोंपर—रूईकी मोटी तह करके गायके दूधमें भिगोकर सिरके ऊपर रखे, उसके ऊपर पट्टी बाँध दे और बारंबार दूध देता रहे। इस प्रकार सबेरेसे शामतक रखे। शामको सिर धोकर मक्खन लगाये—इस प्रकार २-३ दिनोंतक करे।

२०-प्रवाहिका और रक्त-पित्तादिके ऊपर—आधा दूध और आधा पानी मिलाकर उबाले, जब पानी जल जाय तो बचे दूधका उपयोग शूल, प्रवाहिका और रक्तपित्तरोगके ऊपर करे।

२१-पाण्डुरोग, क्षय और संग्रहणीके ऊपर—लोहेके बर्तनमें गरम किया हुआ दूध सात दिन पिलाना और पथ्य सेवन कराना चाहिये।

२२-हिचकीके ऊपर—औटाया हुआ दूध पिलाना चाहिये।

२३-मूत्रावरोधसे हुए उदावर्त वायुके ऊपर—दूध और पानी एक साथ मिलाकर पिलाना चाहिये।

२४-मेहनत करके थके हुए—मनुष्यको दूध गरम करके पिलाये; इससे थकावट दूर हो जायगी और स्फूर्ति आ जायगी। थकावटके लिये यह अद्वितीय ओषधि है।

२५-सिरदर्दके ऊपर—गायके दूधमें सोंठ घिसकर सिरपर उसका लेप करे और ऊपरसे रूई बाँध दे। इस प्रकार सात-आठ घंटेमें भयंकरसे भी भयंकर सिरदर्द दूर हो जाता है।

गायका दही

गायका दही स्वादिष्ट, बलवर्धक, रुचिकर, तेजस्वी, दीपन, पौष्टिक, मीठा, ग्राह्य, ठंडा और वातजन्य अर्श (बवासीर)-का नाश करनेवाला है। दही मन्द, स्वादिष्ट, स्वाद्वम्ल, (स्वादिष्ट खट्टा), खट्टा और

अतिखट्टा—पाँच प्रकारका होता है। मन्द दही भारी, स्वादिष्ट दूधके समान मूत्रकारक, सारक, दाहक और त्रिदोषनाशक है। स्वादिष्ट दही भी भारी, मीठा, वृष्य, पाक-कालमें मधुर, अभिष्यन्दकारक, मेद, वायु और कफका नाश करनेवाला, रक्त शुद्ध करनेवाला और पित्तको शमन करनेवाला है। स्वादिष्ट (स्वाद्वम्ल) खट्टा दही भारी, मीठा, किंचित् खट्टा और तुर्श होता है। दूसरे गुण स्वादिष्ट दहीके ही समान हैं। खट्टा दही रक्त, पित्त और कफ बढ़ानेवाला और दीपन है। अत्यन्त खट्टा दही दीपन, गलेमें दाह करनेवाला, रोंगटे खड़ा करनेवाला, रक्तपित्त पैदा करनेवाला और दाँतके लिये हानिकारक है।

औंटे हुए दूधका दही शीतल, लघु विष्टम्भकारक, वातकारक, दीपन, मधुर, रुचिकर और थोड़ा पित्तकारक होता है। औंटाकर मलाई निकाले हुए दूधका दही ठंडा, लघु विष्टम्भकारक, वातकारक, ग्राह्य, दीपन, मधुर, रुचिकर और थोड़ा पित्तकारक होता है। शक्कर मिला हुआ दही खानेसे पित्त, दाह, तृषा और रक्तदोषका नाश होता है। गुड़ मिला हुआ दही तृप्तिकर, धातुवर्धक, गुरु और वातका नाश करनेवाला होता है। दहीका निचोड़ा हुआ पानी बल बढ़ानेवाला, तुर्श, पित्तकारक, सारक, गरम, रुचिकर, खट्टा, लघु, स्रोतशोधक और प्लीहोदर, तृषा, कफकी बवासीर, वायु, विष्टम्भ, पाण्डुरोग, शूल और श्वासरोगका नाश करनेवाला है। दहीके ऊपरका जल सारक, गुरु और रक्तपित्त, कफ और वीर्यको बढ़ानेवाला और जठराग्निको मन्द करनेवाला तथा वात-नाशक है। दूसरे गुण दूध-जैसे ही हैं।

गायके दहीका उपयोग

१-अजीर्णजनित विषूचिकापर—गायका दही या छाछ समान भाग पानी डालकर पिलाये।

२-यदि काँचका चूर्ण अनाजके साथ खाया गया हो तो गायका दही पिलाये।

३-तृष्णारोगके ऊपर—पुरानी ईंट साफ धोकर आगमें डाले, खूब लाल हो जाय तबतक गरम करे, फिर उसे गायके दहीमें डाल दे और उस दहीको थोड़ा-थोड़ा खिलाये।

४-कनेरके विषपर—गायका दही शक्कर डालकर पिलाये।

५-सूर्यावर्त (आधासीसी) रोगपर—सूर्योदय होनेके पहले दही और भात तीन दिनतक खिलाये।

६-तृष्णारोगपर—गायका मधुर दही १२८ भाग, शक्कर ६४ भाग, घी ५ भाग, मधु ३ भाग, काली मिर्चका चूर्ण २ भाग, सोंठका चूर्ण २ भाग, इलायची २ भाग—ये सब चीजें एक साथ कलई किये हुए बर्तनमें मिलाकर रख दे और उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा खिलाये। दूसरा प्रकार यह है कि दहीका तमाम पानी वस्त्रसे छानकर उसमें शक्कर वगैरह सब मसाले डालकर घोलकर पिलाये। इसे श्रीखण्ड कहते हैं। यह तृषा, दाह और पित्तनाशक तथा मधुर होता है।

७-सर्पके विषके ऊपर—दही, मधु और मक्खन—इन तीनोंको तीन-तीन तोला ले तथा पीपल, सोंठ, काली मिर्च, बच और सेंधा नमक समभाग लेकर बारीक चूर्ण बनाकर वस्त्रसे छान ले। यह चूर्ण तीन तोला लेकर बारह तोले मिश्रण तैयार करे। उसमेंसे चार तोला पिलाये। एक मिनटके बाद वमन और विरेचन न हो तो फिर दूसरी बार दे। जरूरत पड़े तो तीसरी बार भी पिलाये। इस प्रकार तीन मात्रा लेनेपर अवश्य ही वमन-विरेचन होकर रोगसे मुक्ति मिलेगी। काष्ठौषधि नयी होनी चाहिये। नयी वनस्पति हो तो शास्त्रकार लिखते हैं कि तक्षक, वासुकी या उससे भी बलवान् सर्पका विष इस औषधिसे दूर हो जाता है। सर्प काटनेके बाद तुरंत ही दवा देनी चाहिये।

८-सूजन, व्रणकी तीक्ष्ण पीडा और दाहके ऊपर—दहीको कपड़ेमें बाँधकर पानी निकालकर उसे दर्दवाली जगहपर बाँधनेसे दर्द दूर होता है, शूल तथा दाह मिट जाता है, निकलता हुआ फोड़ा बैठ जाता है और निकला हुआ फोड़ा फटकर भर जाता है।

गायका मक्खन

गायका मक्खन शीतल, धातुवर्धक, वृष्य, कान्ति बढ़ानेवाला, ग्राह्य, बलप्रद, बालक और वृद्धके लिये ठोस, रुचिकर, मधुर, सुखकारक, आँखकी ज्योति बढ़ानेवाला, पुष्टिकारक, वात, पित्त, कफ, अर्श, क्षय, रक्त-विकार, सर्वाङ्गशूल, थकावट और तन्द्राका नाश करता है।

ठण्डा मक्खन—बल बढ़ानेवाला, वीर्यकारक,

भारी, कफ करनेवाला, मेदाको बढ़ानेवाला, आँखोंके लिये हितकर, धातुवर्धक, अप्रिय, अनभिष्यन्दी तथा दो-तीन दिनोंका हो तो खारा, खट्टा, तीखा और वान्ति, अर्श, कोढ़—इन दोषोंके सिवा नेत्ररोग और दूसरे सब रोगोंका नाश करनेवाला होता है।

गायके मक्खनका उपयोग

१-क्षयका नाश करके शक्ति देनेके लिये—गायका मक्खन, मिश्री, मधु और सोनेका वर्क सबको एकत्र करके खिलाये।

२-आँखोंके दाहपर—मक्खन आँखोंके ऊपर चुपड़ दे।

३-शरीरमें मन्दज्वर होनेपर—मक्खन और मिश्री खिलाये।

४-शीतला अथवा छोटी माताके कारण लड़कोंके मन्दज्वरके ऊपर—गायका मक्खन और मिश्री मिलाकर उसमें जीरेका चूर्ण डाले और छोटी सुपारीके बराबर गोली बनाकर प्रतिदिन सबेरे खिलाये।

५-कानमें बहुत जलन होनेपर—गायका मक्खन थोड़ा गरम करके कानमें डाल दे।

६-भिलावा आदि उड़कर आँखमें पड़ जानेपर—गायका मक्खन लगा दे। भिलावेके कारण शरीरमें दाह उत्पन्न होता हो तो मक्खन पुष्कल परिमाणमें खिलाये।

७-कनेरके विषपर—गायका मक्खन थोड़ा उष्ण करके खिलाये।

८-रक्तातिसारपर—मक्खनमें मधु और मिश्री डालकर खिलाये।

९-अर्श-व्याधिपर—मक्खन और तिल खिलाये।

गायकी छाछ

गायकी छाछ जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाली और त्रिदोष तथा अर्शका नाश करनेवाली होती है। साधारण छाछ स्वादिष्ट, ग्राही, खट्टी, तुर्श, लघु, गरम, पाकके समय मधुर, तीखी, रूखी, अवृष्य, बलप्रद, तृप्तिकर, हृदयको विकसित करनेवाली, रुचिकारक और शरीरको कृश बनानेवाली होती है तथा प्रमेह, मेद, अर्श, पाण्डु, संग्रहणी, मलस्तम्भ, अतिसार, अरुचि, भगंदर, उदर, प्लीहा, गुल्म, सूजन, कफ, कोढ़, कृमि, पसीना, घीका अजीर्ण, वायु, त्रिदोष, विषमज्वर और शूलका नाश करती है। छाछ मधुरपाकी होती है, इससे पित्तका कोप नहीं करती। रूखी गर्म और तुर्श होती है, इसलिये कफका नाश करती है। खट्टी और मधुर होती है, इसलिये वातका नाश करती है। मधुर छाछ कफ करनेवाली और वात-पित्तनाशक होती है।

खट्टी छाछ रक्तपित्त और कृमिका नाश करती है। खट्टी छाछ मीठेके साथ पीनेसे वायुका नाश करती है। मीठी छाछ शक्करके साथ पीनेसे पित्तका नाश होता है। मीठी छाछ नमक, सोंठ, काली मिर्च और पीपलके साथ मिलाकर पीनेसे रूक्षता और कफका नाश करती है। पेटमें वायु हो तो पीपल और नमक डालकर मीठी छाछ पीनेसे वायुका नाश होता है। पित्तके रोगीको शक्कर और काली मिर्च मिलाकर मीठी छाछ दे। मक्खनवाली छाछ तन्द्रा तथा शरीरमें जडता पैदा करनेवाली और भारी होती है। मक्खन निकाली हुई छाछ लघु और पथ्य करनेवाली होती है। घोल (पानी डालकर हिलाया हुआ दहीका मट्ठा) उष्ण और त्रिदोषनाशक होता है।

गायकी छाछका उपयोग

१-कफोदरके ऊपर—त्रिकटु, अजवाइन, जीरा और सैन्धव नमक डालकर छाछ पिलाये। त्रिकटु, सैन्धव नमक जवखार वगैरह डालकर छाछको संनिपातोदरमें देना चाहिये। क्षय, दौर्बल्य, मूर्च्छा, भ्रम, दाह तथा रक्तपित्तमें कभी छाछ नहीं पिलानी चाहिये।

२-दाहके ऊपर—गायकी छाछमें कपड़ा भिगोकर उससे रोगीके शरीरका स्पर्श कराता रहे, इससे दाहका नाश हो जाता है।

३-संग्रहणी, अतिसार और अर्शके ऊपर—छाछ पिलाये; इससे शरीरका रक्त शुद्ध होकर रस, बल, पुष्टि और वर्ण सरस होता है तथा वात और कफके दोषोंका शमन होता है। छाछ-कल्प (४० दिनोंतक केवल छाछपर रहे) करानेसे कठिन-से-कठिन संग्रहणी और उदररोग मिट जाते हैं।

४-कोष्ठबद्धताके ऊपर—अजवाइन और विड नमक डालकर छाछ पिलाये।

५-अर्शके ऊपर—चित्रमूलकी छाल पीसकर उसके रसको एक बर्तनमें डाले, उसमें गायका दही या छाछ

डालकर पिलाये अथवा सोंठ, काली मिर्च, विड नमक और छोटी पीपल डालकर गायकी छाछ पिलाये।

६-संग्रहणीके ऊपर—गायकी छाछमें एक तोला सफेद मुसली पीसकर पिलाये और छाछ-भातका पथ्य दे अथवा गायकी छाछमें सोंठ और छोटी पीपलका चूर्ण डालकर पिलाये। संग्रहणी रोगके लिये छाछ दीपन, ग्राह्य और लघु होती है तथा बहुत ही लाभदायक है।

७-मूँगफली खाकर छाछ पी लेनेपर—कोई नुकसान नहीं होता तथा उससे होनेवाले अजीर्णके लिये भी छाछ लाभदायक होती है।

गायका घी

गायका घी रस और पाकमें स्वादिष्ट, शीतल, भारी, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला, स्निग्ध, सुगन्धित, रसायन, रुचिकर, नेत्रोंकी ज्योति बढ़ानेवाला, कान्तिकारक, वृष्य और मेधा, लावण्य, तेज तथा बल देनेवाला, आयुप्रद, बुद्धिवर्धक, शुक्रवर्धक, स्वरकारक, हृद्य, मनुष्यके लिये हितकारक और बाल, वृद्ध तथा क्षतक्षीणके लिये ठोस और अग्निदग्ध व्रण, शस्त्रक्षत, वात, पित्त, कफ, दम, विष तथा त्रिदोषका नाश करता है। सतत ज्वरके लिये हितकारक और आम ज्वरवालेके लिये विष-समान है। मक्खनमेंसे ताजा निकाला हुआ घी तृप्तिकारक, दुर्बल मनुष्यके लिये हितकारक और भोजनमें स्वादिष्ट होता है। नेत्ररोग, पाण्डु और कामलाके लिये प्रशस्त है।

हैजा, अग्निमान्द्य, बाल, वृद्ध, क्षयरोग, आमव्याधि, कफरोग, मदात्यय, कोष्ठबद्धता और ज्वरमें घी कम ही देना चाहिये। पुराना घी तीक्ष्ण, सारक, खट्टा, लघु, तीखा, उष्ण वीर्य, वर्णकारक, छेदक, सुननेकी शक्ति बढ़ानेवाला, अग्निदीपक, घ्राणसंशोधक, व्रणको सुखानेवाला और गुल्म, योनिरोग, मस्तकरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, सूजन, अपस्मार, मद, मूर्च्छा, ज्वर, श्वास, खाँसी, संग्रहणी, अर्श, श्लेष्म, कोढ़, उन्माद, कृमि, विष-अलक्ष्मी और त्रिदोषका नाश करता है। यह वस्तिकर्म और नस्यमें प्रशस्त है। दस वर्षका पुराना घी 'जीर्ण', एक सौ वर्षसे एक हजार वर्षका 'कौम्भ' और ग्यारह सौ वर्षके ऊपरका 'महाघृत' कहलाता है। यह जितना ही पुराना होता जाता है, उतना ही इसका गुण अधिक बढ़ता जाता है। सौ बार धोया हुआ घी घाव, दाह, मोह और ज्वरका नाश करता है। घीमें दूसरे गुण दूध-जैसे होते हैं।

गायके घीको धोये बिना फोड़े आदि चर्मरोगोंपर लगानेसे जहरके समान असर होता है, वैसे ही धोये हुए घीको खानेसे विषवत् असर होता है। यानी फोड़ेपर धोया हुआ घी लगाना चाहिये, पर धोया हुआ घी कभी खाना नहीं चाहिये। ज्वर, कोष्ठबद्धता, विषूचिका, अरुचि, मन्दाग्नि और मदात्यय रोगमें नया घी अपकारी होता है। पुराना घी यदि एक वर्षसे ऊपरका हो तो मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, उन्माद, कर्णशूल, नेत्रशूल, शोथ, अर्श, व्रण और योनिदोष इत्यादि रोगोंमें विशेष हितकारी है।

गायके घीका उपयोग

१-आधासीसीके ऊपर—गायका अच्छा घी सबेरे-शाम नाकमें डाले, इससे सात दिनमें आधासीसी बिलकुल दूर हो जायगी अथवा प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व एक तोला गायका घी और एक तोला मिस्री मिलाकर तीन दिनतक खिलाये तो निश्चय ही आराम होता है।

२-नाकसे खून गिरनेपर—गायका अच्छा घी नाकमें डाले।

३-पित्त सिरमें चढ़ जानेपर—अच्छा घी माथेपर चुपड़ दे, इससे चढ़ा हुआ पित्त तत्काल उतर जाता है।

४-हाथ-पैरमें दाह होनेपर—गायका अच्छा घी चुपड़ दे।

५-ज्वरके कारण शरीरमें अत्यन्त दाह होनेपर—घीको एक सौ या एक हजार बार धोकर शरीरपर लेप करे।

६-धतूरा अथवा रसकपूरके विषके ऊपर—गायका घी खूब पिलाये।

७-शराबका नशा उतारनेके लिये—दो तोला घी और दो तोला शक्कर मिलाकर खिलाये।

८-गर्भिणीके रक्तस्रावके ऊपर—एक सौ बार धोया हुआ घी शरीरपर लेप करे।

९-चौथिया ज्वर, उन्माद और अपस्मारपर—गायका घी, दही, दूध और गोबरका रस इनमें घीको सिद्ध करके पिलाये।

१०-जले हुए शरीरपर—गायके धोये हुए घीका लेप करे।

११-सिरदर्दके ऊपर—गायका दूध और घी इकट्ठा करके अञ्जन करे। इससे नेत्रकी शिराएँ लाल हो जाती हैं और रोग चला जाता है।

१२-बालकोंकी छातीमें कफ जम जानेपर—गायका पुराना घी छातीपर लगाकर उसे मालिश करे।

१३-शरीरमें गरमी होनेसे रक्त खराब होकर—शरीरके ऊपर ताँबेके रंगके काले चकत्ते हो जायँ और उनकी गाँठ शरीरके ऊपर निकल आये तब पहले जोंकसे रक्त निकलवा दे, पीछे पीतलके बर्तनमें गायका घी दस तोला अथवा आधा गाय और आधा बकरीका घी लेकर उसमें पानी डालकर हाथसे खूब फेंटे और वह पानी निकालकर दूसरा पानी डाले। इस प्रकार एक सौ बार पानीसे धोये। उसमें ढाई तोला फुलायी हुई फिटकिरीका चूर्ण डालकर घोंटे और उसे एक मिट्टीके बर्तनमें रखे। इसे नित्य सोते समय गाँठ बने हुए सब स्थानोंपर लेप करनेसे शरीरमें जमी हुई गरमी कम हो जाती है, कुछ ही दिनोंमें शरीरसे दाह मिट जाता है, रक्त शुद्ध हो जाता है और यह दुष्ट रोग नष्ट हो जाता है।

१४-तृष्णा-रोगके ऊपर—घी और दूध मिलाकर पिलाये।

१५-दाहके ऊपर—एक सौसे एक हजार बार धोये हुए घीको शरीरपर चुपड़े।

१६-हिचकीपर—गायका घी पिलाये।

१७-संनिपातज विसर्पके ऊपर—एक सौ बार धोये हुए घीका बारंबार लेप करे।

१८-गरमीके ऊपर—गायके घीमें सीपका भस्म डालकर उसे खरल करके लेप करे।

१९-सर्पके विषके ऊपर—पहले बीससे चालीस तोला घी पीये, उसके पंद्रह मिनटके बाद थोड़ा उष्ण जल जितना पी सके उतना पीये। इससे उलटी और दस्त होकर विषका शमन हो जाता है। जरूरत हो तो दूसरे समय भी घी और पानी पिये।

गोमूत्र

गौका मूत्र तुर्श, कड़वा, तीखा, लघु, खारा, गरम, तीक्ष्ण, पाचन, अग्निदीपन, भेदक, पित्तकारक, मेधाप्रद, किञ्चित् मधुर, सारक और बुद्धिवर्धक होता है तथा कफ, वायु, कुष्ठ, गुल्म, उदर, पाण्डु, चित्री, शूल, अर्श, कण्डु, दमा, आम, भ्रम, ज्वर, आनाह वायु, खाँसी, मलस्तम्भ, सूजन, मुखरोग, नेत्ररोग, त्वचारोग, स्त्रियोंका अतिसार और मूत्ररोग—इन सबका नाश करता है। सब मूत्रोंकी अपेक्षा गोमूत्रमें अधिक गुण होते हैं।

गोमूत्रका उपयोग

१-कफरोगपर—केवल गोमूत्र पिलाये।

२-रेचनके लिये—जितनी बार रेचन देना हो, उतनी बार गोमूत्र कपड़ेमें निचोड़कर पिलाना चाहिये।

३-उदररोग और भारपर—गोमूत्रमें शक्कर और नमक महीन पीसकर समभाग डालकर पिलाये अथवा गोमूत्रमें सेंधा नमक और राईका चूर्ण डालकर पिलाना चाहिये।

४-वराध (बच्चोंके उदररोग)-पर—गोमूत्र दो वक्त लेकर उसमें हल्दी डालकर पिलाये।

५-उदररोग और बच्चोंके पेटके आफरे या डब्बेपर—गोमूत्र चार तोला लेकर उसमें नारियलकी गिरी पैसाभर और खरवत (फल्गु)-का सूखा पत्ता पैसाभर घिस करके पिलाये, इससे पेटके सब रोग अलग होकर मलद्वारसे निकल जाते हैं। बालकोंको यह औषधि १/४ और १/८ प्रमाणमें दे।

६-पाण्डुरोगपर—प्रतिदिन सबेरे शक्तिके अनुसार गोमूत्र वस्त्रसे छानकर रोगके न्यूनाधिक जोरके अनुसार इक्कीस या बयालीस दिनतक सेवन कराये।

७-कान बहनेपर—गरम गोमूत्रसे कान धोये।

८-स्त्रियोंके प्रसूतिरोग होनेपर—किसी कारणसे गर्भाशयमें गाँठ हो गयी हो अथवा शरीरमें सूजन आ गया हो तो गोमूत्र प्रतिदिन दिनमें दो बार चार-चार तोला पिलाये।

९-जीर्णज्वर, पाण्डु तथा सूजनके ऊपर—गोमूत्र चिरायतेके फान्टमें मिलाकर सात दिनतक दिनमें दो बार पिलाये।

१०-उदररोगपर—गोमूत्रका क्षार एक मासा दिनमें दो वक्त घीके साथ दे। इससे पुराना उदररोग भी निश्चयपूर्वक दूर हो जायगा।

११-मूत्रकृच्छ्रके ऊपर—रोज सबेरे दो तोला गोमूत्र जलमें मिलाकर पिलाना चाहिये।

१२-आँखोंमें दाह, सुस्ती, क़ब्ज़ियत और अरुचिके ऊपर—गोमूत्रमें थोड़ी शक्कर मिलाकर पिलाना चाहिये।

१३-सफेद दाग और चकत्तोंके ऊपर—हरताल-पत्र, बावची तथा मालकांगनी गोमूत्रमें दिनभर भिगोकर पीछे खरल करके बटोरकर छायामें डाल दे। बादको नीबूके रसमें घिसकर लेप करे।

गोबर

गौका गोबर दुर्गन्धनाशक, शोधक, सारक, शोषक, वीर्यवर्धक, पोषक, रसयुक्त, कान्तिप्रद और लेपनके लिये स्निग्ध तथा मल वगैरहको दूर करनेवाला होता है।

गायके गोबरका उपयोग

१-मृतगर्भ बाहर निकालनेके लिये—गोबरका रस सात तोला गायके दूधमें पिलाये।

२-गुदभ्रंशके लिये—गोबर गरम करके सेंक करे।

३-पसीना बंद करनेके लिये—सुखाये हुए गोबर और नमकके पुराने बर्तन—इन दोनोंके चूर्णको शरीरपर लेप करे।

४-खुजलीके लिये—गोबर शरीरमें लगाकर गरम पानीसे स्नान करे।

गायके गोबरकी राख

यह शोधक, व्रणको दूर करनेवाली, दुर्गन्धिनाशक, धान्यवर्धक, कृमि-कीटनाशक और शीतनिवारक होती है।

गायके गोबरकी राखका उपयोग

१-शीतलासे फूट निकले छालोंपर—राखको कपड़ेसे छानकर उससे भर दे। इसपर यही उपाय मुख्यत: श्रेष्ठ है।

२-साधारण व्रणके ऊपर—घीमें राख मिलाकर लेप करे।

३-अन्नको राखमें भरकर रखनेपर—घुन आदि नहीं पड़ते।

४-पेटमें छोटे-छोटे कृमि होनेपर—गोबरकी सफेद राख दो तोला लेकर दस तोला पानीमें मिलाकर पानी कपड़ेसे छान ले। तीन दिनतक सबेरे-शाम इस पानीको पिलाये।

५-दाँतकी दुर्गन्धि, जन्तु और मसूड़ेके दर्दपर—गायके गोबरको जलाये, जब उसका धुआँ निकल जाय तब उसे पानीमें डालकर बुझा ले, फिर कोयला करे। पीछे चूर्ण करके कपड़छान करे, इस मंजनको डिब्बेमें रख दे। रोज इस मंजनसे दाँत साफ करनेसे दाँतके सब रोग नष्ट होते हैं।

दन्तमंजनका नुस्खा

एक दन्तमंजनका नुस्खा 'कल्याण'से ज्यों-का-त्यों इसलिये लिख रहा हूँ कि आरोग्य-अङ्कमें स्थान पाकर यह लोगोंके लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

नुस्खा—पीपरमेंट ५ ग्राम, तूतिया १० ग्राम, काली मिर्च और अखरोटके वृक्षकी छाल २५-२५ ग्राम, पठानी लोध, सोंठ, तुम्बल, अकरकरा प्रत्येक १००-१०० ग्राम, संगजराहट-चूर्ण ६०० ग्राम, लौंगका तेल ५० मि०ली० और सेकरिन टेबलेट २००।

विधि—तूतिया (नीला थोथा)-को धीमी आँचपर भूनकर, पीसकर, चूर्णकर अलग रखें। तूतिया चूर्णमें सेकरिन टेबलेट्स मिलाकर पीस लें। फिर खरलमें कपूर डाल दें और इसमें थोड़ा-थोड़ा लौंगका तेल डालते हुए घुटाई करें, तेल और कपूर उछलकर बिखरने न पावे। पीपरमेंट भी कपूरके साथ डाल लेनी चाहिये। जब कपूर, पीपरमेंट और लौंगका तेल घुटकर एक हो जाय तब इसमें काष्ठौषधियोंके कपड़छान चूर्णको अच्छी तरह मिला देना चाहिये। फिर इसमें तूतिया तथा सेकरिन टेबलेट्सका पाउडर (चूर्ण) भी मिला दें तथा संगजराहटका चूर्ण अच्छी तरहसे मिला देना चाहिये। इस प्रकार मंजन तैयार हो गया है। इसे साफ, मजबूत कार्कवाली शीशी या डिब्बेमें रखना चाहिये। मंजन (दायें हाथकी) मध्यमा (बीचवाली) उँगलीसे ही करना चाहिये। पहली तर्जनीसे कदापि नहीं। आवश्यक सावधानी बरतते हुए इस मंजनका प्रयोग निश्चय ही लाभदायक है।

[श्रीसुभाषचन्द्रजी शर्मा,
ग्राम-बरेली खुर्द, पो०-मूसेपुर
जिला-रेवाड़ी (हरियाणा) पिन-१२३४०१]

गुणकारी नीबूके विविध प्रयोग

पथरी—एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर सेंधा नमक मिलाकर सुबह-शाम दो बार नित्य एक महीना पीनेसे पथरी पिघलकर निकल जाती है।

पथरीका दर्द—अँगूरके साठ पत्तोंपर आधा नीबू निचोड़कर पीसकर चटनी बना लें। इसे दो चम्मच हर दो घंटेमें तीन बार खानेसे पथरीसे होनेवाला दर्द दूर हो जायगा।

नाख़ून—नाख़ूनोंपर नित्य नीबू रगड़ें, रस सूख जानेके बाद पानीसे धोयें। इससे नाख़ूनोंके रोग ठीक हो जाते हैं।

बाल गिरना, रूसी (डेनड्रफ)—(१) एक नीबूके रसमें तीन चम्मच चीनी, दो चम्मच पानी मिलाकर, घोलकर बालोंकी जड़ोंमें लगाकर एक घंटे बाद अच्छे-से सिर धोनेसे रूसी दूर हो जाती है। बाल गिरना बंद हो जाता है।

(२) सिरमें नीबूकी रसभरी फाँक रगड़कर स्नान करनेसे बाल गिरने बंद होते हैं।

गंजापन—(१) नीबूके बीजोंपर नीबू निचोड़कर एवं पीसकर बाल उड़ी हुई जगह (गंज)-पर लेप करें। चार-पाँच महीने लगातार लगानेपर बाल उग आते हैं।

(२) तीन चम्मच चनेके बेसनमें एक नीबूका रस, थोड़ा पानी डालकर गाढ़ा घोल बनाकर गंजपर लेप करें तथा सूखनेपर धोयें, फिर समान मात्रामें नारियलका तेल, नीबूका रस मिलाकर सिरमें लगायें। बाल आ जायेंगे।

सिरमें फुंसियाँ, खुजली, त्वचा सूखी और कठोर हो तो बालोंमें दही लगाकर दस मिनट बाद सिर धोयें। बाल सूख जानेपर समान मात्रामें नीबूका रस और सरसोंका तेल मिलाकर लगायें। यह प्रयोग लम्बे समयतक करें।

जुएँ—(१) समान मात्रामें नीबूका रस और अदरकका रस मिलाकर बालोंकी जड़ोंमें लगानेसे जूँ मर जाते हैं। यह रस लगाकर एक घंटे बाद सिर धोयें। सिर धोनेके बाद नीबूका रस और सरसोंका तेल समान मात्रामें मिलाकर नित्य बालोंमें लगायें।

बाल काले करना—एक नीबूका रस, दो चम्मच पानी, चार चम्मच पिसा हुआ आँवला मिला लें। यदि पेस्ट नहीं बने तो पानी और मिला लें। इसे एक घंटा भीगने दें। फिर सिरपर लेप करें। एक घंटे बाद सिर धोयें। साबुन, शैम्पू धोते समय नहीं लगायें। धोते समय पानी आँखोंमें नहीं जाय, इसका ध्यान रखें। यह प्रयोग हर चौथे दिन करें। कुछ महीनोंमें बाल काले हो जायेंगे।

हृदयकी धड़कन—नीबू ज्ञान-तन्तुओंकी उत्तेजनाको शान्त करता है। इससे हृदयकी अधिक धड़कन सामान्य हो जाती है। उच्च-रक्तचापके रोगियोंकी रक्त-वाहिनियोंको यह शक्ति देता है।

कमर-दर्द—चौथाई कप पानीमें आधा चम्मच लहसुनका रस और एक नीबूका रस मिलाकर दो बार नित्य पीयें। यह पेय कमर-दर्दमें लाभदायक है।

आमवात, गठिया, जोड़ोंके दर्दमें—नित्य प्रातः एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर पीयें। नीबूकी फाँक दर्दवाली जगहपर रगड़कर फिर स्नान करें।

गला दर्द, गला बैठना, गलेमें ललाई—होनेपर एक गिलास गरम पानीमें नमक और आधा नीबू निचोड़कर सुबह-शाम गरारे करें।

नेत्र-ज्योतिवर्धक—एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर प्रातः भूखे पेट हमेशा पीते रहें। नेत्रज्योति ठीक बनी रहेगी। इससे पेट साफ रहता है, शरीर स्वस्थ रहता है। नीरोग रहनेका यह प्राथमिक उपचार है।

अपच (Dyspepsia)—यदि भोजन नहीं पचता हो, खट्टी डकारें आती हों—

(१) पपीतेपर नीबू, काली मिर्च डालकर सात दिनोंतक प्रातः खायें।

(२) भोजनके साथ मूलीपर नमक, नीबू डालकर नित्य खायें।

(३) नीबूपर काला नमक, काली मिर्च डालकर तीन बार नित्य चूसें। अपच तथा पेटके सामान्य रोग ठीक हो जायेंगे। भूख अच्छी लगेगी।

(४) खानेसे पहले नीबूपर सेंधा नमक डालकर चूसें।

भूख—भोजन करनेके आधा घंटा पहले एक गिलास पानीमें नीबू निचोड़कर पीनेसे भूख अच्छी लगती है।

मुँहकी दुर्गन्ध—एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर दो चम्मच गुलाबजल डालकर भोजनके बाद इस पानीसे तीन कुल्ले करके बचा हुआ सारा पानी पी जायँ। मुँहसे दुर्गन्ध नहीं आयेगी।

कड़वा स्वाद—(१) रोगी प्रायः कहते हैं कि मुँहका स्वाद कड़वा रहता है, स्वाद खराब रहता है, जिससे खाना अच्छा नहीं लगता। नीबूकी फाँकपर काली मिर्च, काला नमक डालकर तवेपर सेंककर चूसनेसे मुँहमें कड़वेपनका स्वाद अच्छा हो जानेसे भोजनके प्रति रुचि बढ़ती है।

गैस—(१) एक चम्मच नीबूका रस, एक चम्मच पिसी हुई अजवाइन, आधा कप गरम पानीमें मिलाकर सुबह-शाम पीयें।

(२) एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर चौथाई चम्मच मीठा सोडा मिलाकर नित्य पीयें।

(३) आधा गिलास गरम पानीमें आधा नीबू निचोड़कर जरा-सी पिसी हुई काली मिर्चकी फक्की सुबह-शाम लें।

(४) सोंठ एक चम्मच, साबूत अजवाइन ५० ग्राम नीबूके रसमें भिगोकर छायामें सुखायें। जब भी खाना खायें, खानेके बाद इसकी एक चम्मच चबायें।

(५) नीबू काटकर इसकी फाँकोंमें नमक, काली मिर्च भरकर गरम करके चूसनेसे गैसमें लाभ होगा।

छाले (स्टोमेटाइटिस)—(१) एक गिलास गरम पानीमें आधा नीबू निचोड़कर चार बार नित्य कुल्ले करें।

(२) नित्य नीबू एवं पानीमें स्वादके लिये चीनी या नमक डालकर प्रातः भूखे पेट पीयें। रातको सोते समय एक गिलास गरम दूधमें एक चम्मच घी डालकर पीयें। लम्बे समय—दो महीनेतक प्रयोग करनेसे भविष्यमें छाले होने बंद हो जाते हैं।

हिचकी—(१) नीबूके पेड़से हरी पत्तियाँ तोड़कर चबाकर रस चूसें। हिचकी बंद हो जाती है।

(२) तेज गरम पानीमें नीबू निचोड़कर घूँट-घूँट पीनेसे हिचकी बंद हो जाती है।

(३) नीबू, सोंठ, काली मिर्च, अदरक—सब अल्पमात्रामें लेकर चटनी बनाकर चाटें।

(४) नीबूमें नमक भरकर चार बार चूसें।

(५) काला नमक, शहद और नीबूका रस मिलाकर चाटें। इन प्रयोगोंसे हिचकी बंद हो जाती है।

अम्लता (एसिडिटी)—(१) खाना खानेके बाद एक कप पानीमें आधा नीबू, जरा-सा खानेका सोडा मिलाकर प्रतिदिन दो बार पीयें।

(२) दोपहरमें भोजनसे आधा घंटा पहले नीबूकी मीठी शिकंजी दो महीनेतक पीयें। खानेके बाद न पीयें।

खट्टी डकारें—यदि खट्टी डकारें आती हों तो गरम पानीमें नीबू निचोड़कर पीयें।

पेट-दर्द—(१) पचास ग्राम पोदीनेकी चटनी पतले कपड़ेमें डालकर निचोड़कर, रस निकालकर इसमें आधा नीबू निचोड़ें। दो चम्मच शहद और चार चम्मच पानी मिलाकर पीनेसे पेटका तेज दर्द शीघ्र बंद हो जाता है।

(२) आधा कप पानी, दस पिसी हुई काली मिर्च, एक चम्मच अदरकका रस, आधे नीबूका रस—सब मिलाकर पीनेसे पेट-दर्द ठीक हो जाता है। स्वादके लिये चीनी या शहद चाहें तो मिला लें।

(३) एक नीबू, काला नमक, काली मिर्च, चौथाई चम्मच सोंठ, आधा गिलास पानीमें मिलाकर पीनेसे पेट-दर्द ठीक हो जाता है।

(४) अजवाइन, सेंधा नमकको नीबूके रसमें भिगोकर सुखा लें। पेट-दर्दमें एक चम्मच चबाकर पानी पीयें। इस प्रकार हर एक घंटेमें जबतक दर्द रहे, लें। पेटपर सेंक करें।

(५) कीड़ोंके कारण पेट-दर्द हो, पेटमें कीड़े हों तो सात दिन दो बार नित्य नीबूकी एक फाँकमें पिसा हुआ जीरा, काली मिर्च, काला नमक भरकर चूसें।

(६) मूलीपर नमक, नीबू, काली मिर्च डालकर खानेसे अपचका पेट-दर्द ठीक हो जाता है।

(७) किसी उत्सव आदिमें अधिक खाना खानेसे अपच, गैससे पेट-दर्द हो तो एक कप तेज गरम पानीमें भुना हुआ जीरा, पिसी हुई अजवाइन, नीबू और चीनी सब स्वादके अनुसार मिलाकर चार बार नित्य पीयें।

(८) आधा कप मूलीके रसमें आधा नीबू निचोड़कर नित्य दो बार पीनेसे खाना खानेके बाद होनेवाला पेट-दर्द ठीक हो जाता है।

(९) चीनी, जीरा, नमक, काली मिर्च, एक कप गरम पानी नीबू मिलाकर तीन बार नित्य पीयें।

(१०) बार-बार नीबूका पानी पीते रहनेसे पेट-दर्द, वायु-गोलेका दर्द ठीक हो जाता है।

यकृत्—नीबू, पानी एवं दस काली मिर्च मिलाकर नित्य पीते रहें। यकृत्-सम्बन्धी रोग ठीक हो जायँगे।

क़ब्ज़—(१) गरम पानी और नीबू प्रातः भूखे पेट पीयें। एक गिलास हलके गरम पानीमें एक नीबू निचोड़कर एनिमा लगायें। पेट साफ हो जायगा। कृमि भी निकल जायँगे।

(२) एक गिलास गरम पानीमें एक नीबू, दो चम्मच एरण्डीका तेल (कैस्टर ऑयल) मिलाकर रातको पीयें।

(३) एक चम्मच मोटी सौंफ तथा पाँच काली मिर्च चबायें, फिर एक गिलास गरम पानी, एक नीबू और काला नमक मिलाकर रातको नित्य पीयें।

(४) प्रातः भूखे पेट अमरूदपर नमक, काली मिर्च, नीबू डालकर प्रतिदिन खायें।

(५) प्रातः भूखे पेट नीबू-पानी तथा रातको सोते समय नीबूकी शिकंजी पीनेसे क़ब्ज़ दूर होता है। लम्बे समयतक पीते रहें। पुराना क़ब्ज़ भी दूर हो जायगा।

उलटी—(१) आधा कप पानीमें पंद्रह बूँद नीबूका रस, भुना एवं पिसा हुआ जीरा, पिसी हुई एक छोटी इलायची मिलाकर हर आधे घंटेमें पीयें। उलटी होनी बंद हो जायगी।

(२) नीबूके छिलके सुखाकर, जलाकर राख बना लें। चौथाई चम्मच राख, आधा चम्मच शहदमें मिलाकर चाटनेसे उलटी बंद हो जाती है।

(३) दो छोटी इलायची पीसकर नीबूकी फाँकमें भरकर चूसनेसे उलटी बंद हो जाती है।

(४) चौथाई कप पानीमें आधा नीबू निचोड़कर मिला लें। इसकी एक चम्मच हर पंद्रह मिनटमें पीयें। उलटी बंद हो जायगी।

(५) सेंधा नमक और हरे धनियेपर आधा नीबू निचोड़कर चटनी बना लें। जबतक उलटी हो, बार-बार आधा चम्मच चाटते रहें।

(६) नीबूकी एक फाँकमें मिस्री भरकर चूसें।

(७) जी मिचलाते ही, उलटीकी इच्छा होते ही नीबूकी फाँकमें काला नमक, काली मिर्च भरकर चूसें। उलटी नहीं होगी।

(८) यात्रामें उलटी हो तो नीबू चूसते रहें।

(९) शिशु दूध पीनेके बाद उलटी करते हों तो दूध पिलानेके कुछ देर बाद तीन बूँद नीबूका रस एक चम्मच पानीमें मिलाकर पिलायें।

गर्भावस्थाकी उलटी (मॉरनिंग सिकनेश)—(१) १०० ग्राम कच्चा जीरा, तीस ग्राम सेंधा नमक पीसकर नीबूके रसमें तर कर लें, ये रसमें डूबे रहें। इनको ऐसे ही रहने दें। प्रतिदिन एक बार स्टीलकी चम्मचसे हिला दें। सूख जानेपर आधा चम्मच प्रतिदिन तीन बार चबायें। गर्भावस्थामें होनेवाली उलटियाँ बंद हो जायँगी।

(२) ठंडे पानीमें नीबू निचोड़कर पीनेसे गर्भावस्थाकी उलटीमें लाभ होता है।

नाभि टलना—नीबू काटकर बीज निकाल दें। इसमें भुना हुआ सुहागा (यह पंसारीके यहाँ मिलता है) एक चम्मच भरकर हलका-सा गरम करके चूसें, टली हुई नाभि अपने स्थानपर आ जायगी।

दस्त—(१) एक कप ठंडे पानीमें चौथाई नीबू निचोड़कर स्वादके अनुसार नमक, चीनी मिलाकर दो-दो घंटेमें पीनेसे दस्त बंद हो जाते हैं।

(२) दस्त थोड़ा-थोड़ा, बार-बार हो तो एक चम्मच प्याजका रस, आधा नीबूका रस चौथाई कप ठंडे पानीमें मिलाकर हर तीन घंटेमें पिलायें।

एमोबायसिस (आमातिसार)-में—नित्य दिनमें तीन बार नीबूका पानी पीनेसे लाभ होता है। लगातार लेते रहनेसे आँतें साफ होकर आँव आना बंद हो जाता है।

हैजा—नीबू हैजेसे भी बचाता है। जब हैजा फैल रहा हो, किसीको हैजा हो गया हो तो सम्पर्कमें आनेवाले लोग नीबूका अधिकाधिक सेवन करें। नीबू चूसें, नीबूका अचार खायें। भोजनके बाद नीबूका पानी पीयें। हैजासे बचाव होगा। हैजेके कीटाणु खट्टी चीजोंके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं। हैजा होनेपर चार चम्मच गुलाबजल, थोड़ा-सा नीबू और मिस्री मिलाकर हर दो घंटेमें पिलायें। हैजेमें लाभ होगा।

बवासीर (पाइल्स)-में—रक्त आता हो तो नीबूकी फाँकमें सेंधा नमक भरकर चूसनेसे रक्तस्राव बंद हो जाता है।

पीलिया (जॉन्डिस)—(१) पत्तोंसहित मूलीका रस एक कपमें स्वादानुसार चीनी और नीबूका रस मिलाकर प्रातः भूखे पेट तथा रातको सोते समय दो बार प्रतिदिन पीनेसे पीलियामें लाभ होता है।

(२) प्याजके टुकड़े नीबूके रसमें डाल दें। स्वादानुसार नमक, काली मिर्च डाल दें। नित्य दो बार थोड़ा-थोड़ा यह प्याज खानेसे पीलियामें लाभ होता है।

गर्भस्राव (एबॉर्शन)—नमकीन शिकंजी (नीबू, नमक और पानी)-में विटामिन 'ई' होता है। विटामिन 'ई' स्त्रीको गर्भधारणमें सहायता करता है। गर्भकी रक्षा करता है, गर्भस्राव रोकता है। सुबह-शाम नमकीन शिकंजी पीनेसे विटामिन 'ई' की पूर्ति हो जाती है। जिनको गर्भस्राव होता हो, वे नमकीन शिकंजी पीयें तथा रातको सोते समय पावोंके नीचे तकिया रखें।

मोटापा—सुबह-शाम नीबूका पानी पीनेसे मोटापा घटता है।

उच्च रक्तचाप—से बचनेके लिये प्रातः नीबूका पानी सदा पीते रहें।

हृदय-रोग और उच्च रक्तचापके रोगी नित्य तीन बार नीबूका पानी पीते रहें। आशातीत लाभ होगा।

ज्वर—ज्वरमें प्यास अधिक लगती है, मुँह सूखता है, व्याकुलता बढ़ती है। लार बनानेवाली ग्रन्थियाँ लार बनाना बंद कर देती हैं। जिससे मुँह सूखने लगता है। अतः पानीमें नीबू, नमक, काली मिर्च डालकर पीयें। नीबूमें नमक, काली मिर्च भरकर भी चूस सकते हैं।

मलेरिया—में नीबू किसी भी रूपमें अधिकाधिक सेवन करनेसे लाभ होता है। चायमें दूधके स्थानपर नीबू डालकर पीनेसे मलेरियामें लाभ होता है। भोजन करते समय हरी मिर्चपर नीबू निचोड़कर खायें। मलेरिया आनेसे पहले नीबूमें नमक भरकर चूसें या नीबूकी शिकंजी पीयें।

फिटकरी भुनी हुई, काली मिर्च, सेंधा नमक—तीनों समान मात्रामें लेकर पीस लें। नीबूकी एक फाँकपर यह चूर्ण चौथाई चम्मच भरकर गरम करके ज्वर आनेके एक घंटे पहले आधा-आधा घंटेके अन्तरसे चूसें। मलेरिया-बुखार नहीं आयेगा। दो-तीन दिन यह प्रयोग करें।

जुकाम—(१) यदि जुकाम बार-बार लगता है तो रातको सोते समय पगतलियोंपर सरसोंके तेलकी मालिश करें। एक गिलास तेज गरम पानीमें एक नीबू निचोड़कर एक महीने पीयें।

(२) जब जुकाम लग गयी हो तो एक साबूत नीबूको धोकर, एक गिलास पानीमें उबाल लें। नीबू उबलनेपर उसे निकालकर काट लें और इसी गरम पानीको एक गिलासमें भरकर वही नीबू निचोड़ें। इसमें एक चम्मच अदरकका रस, दो चम्मच शहद मिलाकर पीयें। जुकाम ठीक हो जायगा।

(३) दो चम्मच दाना-मेथी एक गिलास पानीमें उबालें। उबलते हुए आधा पानी शेष रहनेपर पानी छानकर इसमें आधा नीबू निचोड़कर गरमागरम ही पीयें। उबली हुई मेथी भी खायें। ज्वर, फ्लू, सर्दी, श्वास, विवर-प्रदाह (साइनोसाइटिस)-में लाभ होगा। यह पेय दो बार नित्य, जबतक जुकाम ठीक नहीं हो जाय, पीते रहें।

दमा (अस्थमा)—एक कप तेज गरम पानी, आधे नीबूका रस, एक चम्मच अदरकका रस, दो चम्मच शहद—सब मिलाकर नित्य सुबह-शाम पीते रहें। दमा, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप (हाई ब्लडप्रेशर)-में लाभ होगा।

खाँसी—(१) आधे नीबूका रस और दो चम्मच शहद मिलाकर चाटनेसे तेज खाँसी, श्वास, जुकाममें लाभ होता है।

(२) नीबूमें चीनी, काला नमक, काली मिर्च भरकर गरम करके चूसनेसे लाभ होता है। खाँसीका तेज दौरा ठीक हो जाता है।

(३) पोदीनेके ३० पत्ते, आठ काली मिर्च पिसी हुई, एक गिलास पानी स्वादके अनुसार नमक मिलाकर उबालें। उबलते हुए आधा पानी शेष रहनेपर छानकर उसमें आधा नीबू निचोड़कर सुबह-शाम दो

बार पीयें। खाँसी तथा ज्वर (फीवर)-में लाभ होगा।

(४) एक नीबूको पानीमें उबालकर एक कपमें निचोड़कर दो चम्मच शहद डालकर मिला लें। इस प्रकार तैयार करके ऐसी दो मात्रा सुबह-शाम लें, खाँसीमें लाभ होगा। सीनेमें जमा हुआ बलगम पिघलकर बाहर आ जाता है।

अनिद्रा—सोते समय नीबू, शहद, पानीका एक गिलास पीनेसे नींद गहरी आती है।

सिर-दर्द—(१) नीबूके छिलके पीसकर सिरपर लेप करनेसे सिर-दर्दमें लाभ होता है।

(२) अदरकका रस आधा चम्मच, नीबूका रस आधा चम्मच, सेंधा नमक चौथाई चम्मच मिलाकर हलका-सा गरम करके इसे सूँघें। इससे छींकें आकर कफ, पानी निकलता है और सिर-दर्द ठीक हो जाता है। यह सर्दी लगनेसे हुआ सिर-दर्द, आधे सिरका दर्द (विवर-प्रदाह—साइनोसाइटिस)-में अधिक लाभकारी है।

(३) जिस ओर सिर-दर्द हो उसके विपरीत नथुनेमें (अर्थात् बायीं ओर सिर-दर्द हो तो दायें नथुनेमें) तीन बूँद नीबूका रस डालनेसे आधे सिरका दर्द (हेमीक्रेनिया) जो सूर्यके साथ घटता-बढ़ता है तथा साथ ही अन्य सिर-दर्द भी ठीक हो जाते हैं।

(४) नीबूकी फाँक गरम करके सिर-दर्दपर रगड़ें, एक बार रगड़नेके पंद्रह मिनट बाद पुनः रगड़ें। इस तरह लगाते रहनेसे सिर-दर्द शीघ्र ठीक हो जाता है। नीबूका रस रगड़नेके बाद सिरको हवा नहीं लगने दें। सिर ढक लें। नीबूके प्रयोगसे गरमीके कारण होनेवाला सिर-दर्द शीघ्र ठीक होता है।

पानीके रोग—गंदा पानी पीनेसे यकृत्, टॉइफाइड, दस्त, पेटके रोग हो जाते हैं। यदि शुद्ध पानी नहीं मिले, नदीं, तालाबका इकट्ठा किया हुआ पानी हो तो पानीमें नीबू निचोड़कर पीयें। पानीमें नीबू निचोड़कर पीनेसे पानीके रोग, गंदगी आदिसे होनेवाले रोगोंसे बचाव होता है। नीबूके छिलकोंको रगड़नेसे बदबू दूर हो जाती है।

सूखी त्वचा (ड्राई स्किन)—(१) आधा कप दहीमें एक चम्मच पिसी हुई मुलतानी मिट्टी, आधा नीबू निचोड़कर मिलाकर चेहरे, हाथ, पैरोंपर मलकर लेप कर दें और आधे घंटे बाद धोयें। त्वचाका सूखापन दूर हो जायगा।

(२) सूखी त्वचापर हलदी और नीबूका रस मिलाकर पेस्ट बना लें तथा त्वचापर लेप करके आधे घंटे बाद धोयें। त्वचाका सूखापन दूर हो जायगा।

तैलीय त्वचा (ऑयली स्किन)—चौथाई कप खीरेके रसमें चार चम्मच बेसन, चार चम्मच दही, आधा नीबू निचोड़कर अच्छी तरह मिलाकर चेहरे तथा हाथ-पैरोंपर मलकर लेपकी तरह लगाकर आधे घंटे बाद धोकर साफ कर दें।

खुजली—नहानेसे पहले नीबूकी फाँकमें पिसी हुई फिटकरी भरकर खुजलीवाली जगहपर रगड़ें। दस मिनट बाद स्नान करें। खुजलीमें लाभ होगा।

नाखूनोंके पासकी त्वचा—पकती हो तो नीबूके हरे पत्ते और नमक पीसकर लगायें। पंद्रह दिन लगानेपर आप देखेंगे कि नाखूनोंकी त्वचा पकनी बंद हो गयी है।

रक्तवर्धक—(१) एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर इसमें २५ ग्राम किशमिश डाल दें। इसे रातको खुले स्थानपर रख दें। प्रातः भीगी हुई किशमिश खाते जायँ और यह पानी पीते जायँ। इस प्रकार नीबू-पानीमें भिगी हुई किशमिश खानेसे रक्त बढ़ेगा। रक्तकी कमीके रोगोंमें लाभ होगा।

(२) मूली काटकर अदरकके टुकड़े और नीबू डालकर खायें। इससे रक्तकी कमी दूर होती है।

मुँहासे (पिम्पल्स, एक्नीज)—(१) तिलपर नीबू निचोड़कर चटनीकी तरह पीसकर चेहरेपर मलकर लेप कर दें। दो घंटे बाद धोयें। चेहरेकी त्वचा मुलायम होकर मुँहासे ठीक हो जायँगे।

(२) दालचीनी पीसकर पाउडर बना लें। चौथाई चम्मच पाउडरमें कुछ बूँद नीबूके रसको डालकर पेस्ट बनाकर चेहरेपर लगायें। एक घंटेके बाद धोयें। मुँहासे ठीक हो जायँगे।

(३) नीबू निचोड़नेके बाद जो छिलका बचता है, उसे इकट्ठा करके सुखा लें। सूखनेपर पीस लें। इसकी दो चम्मचमें एक चम्मच बेसन मिलाकर पानी

डालकर पेस्ट बनाकर चेहरेपर मलें। आधे घंटे बाद चेहरा धोयें। मुँहासे, झाइयाँ, धब्बे ठीक हो जायँगे।

(४) नहानेसे पहले चेहरेपर नीबूकी फाँक रगड़कर जब रस सूख जाय तब नहायें। इसके बाद भी बार-बार हर घंटे चेहरेपर नीबूका रस लगाते रहें।

शरीर-सौन्दर्यवर्धक—(१) चार चम्मच आटा जौ या चनेका, आठ चम्मच दूध, आधा चम्मच हलदी और दो नीबूका रस—सबको मिलाकर हाथ, मुँह, शरीरपर मलें। सूखनेपर रगड़कर बिना साबुन लगाये स्नान करें। इससे शरीर मुलायम एवं सुन्दर होगा।

(२) हलदी और मसूरकी दाल समान मात्रामें एक कप, इसमें एक नीबूका रस और पानी डालकर रातको भिगो दें। प्रातः पीसकर चेहरे, हाथ एवं गलेपर मलकर पंद्रह मिनट बाद स्नान करें। शरीरमें रूप-लावण्य झलकने-निखरने लगेगा।

(३) हरे मटरके दानोंपर नीबू निचोड़कर, थोड़ा-सा पानी डालते हुए पीस लें। इसे चेहरे एवं हाथोंपर मलकर आधे घंटे बाद धोयें। जहाँ भी लगायेंगे, वह स्थान सुन्दर लगेगा।

(४) आधा कप गाजरके रसमें आधा चम्मच शहद, चौथाई भाग नीबूका रस मिलाकर चेहरे तथा त्वचाके दाग-धब्बोंपर लगाकर आधे घंटे बाद धोयें। त्वचा कान्तिमय हो जायगी।

(५) चार चम्मच खीरेका रस, आधा नीबू, चौथाई चम्मच हलदी मिलाकर चेहरे, गर्दन, हाथों एवं बाँहोंपर लगायें। आधे घंटे बाद धोयें। इससे शरीरका श्याम रंग साफ होकर गोरापन आ जाता है। यह प्रयोग एक महीनों करें।

(६) समान मात्रामें नीबूका रस और कच्चा दूध तथा चनेका बेसन मिलाकर चेहरे, गर्दन तथा त्वचापर जहाँ सुन्दरता बढ़ानी हो, नित्य लगाते रहें। सूखनेपर रगड़-रगड़कर धोयें। रंग गोरा होगा। रूप-रंग निखरेगा, सुन्दरता बढ़ेगी।

(७) दूधमें चार चम्मच चनेकी दाल रातको भिगो दें। प्रातः दाल पीस लें। इसमें चौथाई नीबूका रस, चौथाई चम्मच हलदी मिलाकर चेहरेपर लगाकर आधे घंटे बाद या सूखनेपर धोयें। यह प्रयोग एक महीनातक, तीन दिनमें एक बार करें। चेहरा आकर्षक बन जायगा।

(८) नीबू और नारंगीके छिलके सुखाकर, मिलाकर पीस लें। चार चम्मच दूधमें इसका पेस्ट बनाकर चेहरेपर मलें। पंद्रह मिनट बाद धोयें। त्वचा सुन्दर हो जायगी।

(९) रातको सोते समय चेहरेपर नीबू रगड़कर सोयें। प्रातः धोयें। चेहरेके धब्बे साफ हो जायँगे।

(१०) हलदीपर नीबू निचोड़कर पीस लें तथा चेहरेपर लगाकर एक घंटे बाद धोनेसे चेहरेके काले दाग, झाइयाँ दूर हो जाती हैं।

(११) नीबू निचोड़ी हुई फाँकसे होठोंको रगड़ें। होठोंका कालापन दूर हो जायगा।

नकसीर (एपिसटेक्सिस)—(१) नीबूके रसकी चार बूँद, जिस नथुनेसे रक्त आ रहा हो, उसमें डालनेसे तुरंत रक्त आना बंद हो जाता है।

(२) मूलीपर नीबू निचोड़कर नित्य खाते रहनेसे बार-बार नकसीर आना बंद हो जाता है।

(३) आँवला, अंगूर, गन्ना, नीबूमेंसे किसी एकके रसकी चार बूँद नाकमें डालनेसे नकसीर आना बंद हो जाता है।

(४) पानीमें मिस्री घोलकर तीन बूँद नाकमें डालनेसे नाकसे रक्त आना बंद हो जाता है।

दाँतोंकी मजबूती—शौचालयमें जबतक मल-त्याग करें, दाँत भींचकर रखें, दाँत मजबूत रहेंगे हिलेंगे नहीं। प्रातः भूखे पेट फीका नीबू चूसें। नीबू चूसनेके एक घंटे बादतक कुछ भी न खायें। दाँत मजबूत रहेंगे और दाँत-दर्दमें भी लाभ होगा।

दाँतों, मसूढ़ोंसे रक्तस्राव—हो तो नीबूकी फाँक निचोड़कर आधा रस निकालकर, इस फाँकसे दाँत और मसूढ़े रगड़ें। मसूढ़ोंसे रक्तस्राव बंद हो जायगा। मसूढ़े ढीले पड़ गये हों तो नीबूकी मीठी शिकंजी दो बार, एक महीना पीयें।

दाँतोंकी सफाई एवं दाँतोंका पीलापन—(१) नीबूकी आधी निचोड़ी फाँकपर चार बूँद सरसोंका तेल, जरा-सा नमक डालकर दाँतोंको रगड़े। दाँतोंका पीलापन दूर होकर दाँत साफ हो जायँगे।

(२) नीबूके छिलके सुखाकर पीस लें। इसमें

थोड़ा-सा खानेका सोडा और नमक मिलाकर मंजन करें। दाँत चमकने लगेंगे, साफ रहेंगे। दाँतोंके सामान्य रोग ठीक हो जायँगे।

(३) नीबूके रसमें ब्रश डुबोकर मंजन करनेसे दाँत चमकने लगते हैं। दाँतोंको नीबूके रससे रगड़ें।

धूम्रपान—नीबू चूसें। नीबू पानी पीयें। जीभपर बार-बार नीबूके रसकी पाँच बूँद डालें और स्वाद खट्टा बनाये रखें। धूम्रपान, बीड़ी, सिगरेट, जर्दा एवं तम्बाकू खानेकी आदत छूट जायगी।

लू (सनस्ट्रॉक)—प्रतिदिन प्याज खायें, नीबूकी नमकीन शिकंजी पीयें। लूसे बचाव होगा।

पाँवोंमें पसीना—गर्म पानीके दो गिलासमें एक नीबूका रस मिलाकर पगतलियोंका सेंक करें, फिर इसी पानीसे पगतलियाँ धोयें।

चक्कर आना—प्रातः नीबूकी मीठी शिकंजी पीनेसे उठते-बैठते समय आनेवाले चक्कर ठीक हो जाते हैं।

शक्तिवर्धक—तीन छुहारे (गुठली निकालकर) टुकड़े कर लें। एक गिलास पानीमें ये छुहारे, १५ किशमिश, एक नीबूका रस डालकर रातको खुलेमें छतपर रख दें। प्रातः मंजन करके पानी पी जायँ तथा छुहारे, किशमिश खा जायँ। लगातार चार महीनेतक करें। चेहरा चमकने लगेगा।

तिल्ली (स्प्लिन)—तिल्ली बढ़नेपर पेट बढ़ जाता है, तेज चलनेपर साँस फूलती है, मलेरिया हो जाता है। दो चम्मच प्याजके रसमें आधा नीबू निचोड़कर, दो चम्मच पानी मिलाकर सुबह-शाम पीयें। नीबूका अचार भी खिलायें।

हकलाना, तुतलाना—गर्म पानीमें नीबू निचोड़कर सुबह-शाम कुल्ले करें। दस पिसी हुई काली मिर्च, एक चम्मच शुद्ध देशी घीमें मिलाकर प्रतिदिन दो बार चाटें।

[डॉ० श्रीगणेशनारायणजी चौहान, एम्० ए०, होमियोविशारद, वक्षरोग-विशेषज्ञ, ७-ड-१९, जवाहरनगर, जयपुर-३०२००४]

रोगनिवारक महौषधि—विष्णुप्रिया तुलसी

(डॉ० श्रीउपेन्द्रराय जे० सांडेसरा)

भक्तों एवं उपासकोंके लिये जितने आराध्य एवं श्रद्धेय भगवान् विष्णु हैं उतनी ही भगवती तुलसी भी श्रद्धेया, पूज्या एवं वन्दनीया हैं। वे भी श्रीदेवीके समान भगवान्‌की अनादिकालसे नित्य-सहचरी रही हैं। वे भगवान्‌के नित्यधाम—गोलोकमें उनके साथ देवीरूपमें स्थित रहती हैं। इनके कई नाम हैं, किंतु वृन्दा इनका दूसरा प्रमुख नाम रहा है और जब इन्होंने गोपीभावसे शरीरका परित्याग कर दिया तो ये पुण्य एवं पवित्र तुलसीवृक्षके रूपमें परिवर्तित हो गयीं। वैकुण्ठमें श्रीहरि तुलसीके आभूषण धारण करते हैं और उसकी सुगन्धका आदर करते हैं।

भगवान् विष्णुद्वारा विशेषरूपसे अङ्गीकृत विष्णुप्रिया तुलसी धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिसे महत्त्वकी और आदरणीय तो हैं ही, साथ-ही-साथ औषधिके रूपमें भी वह उतनी ही महत्त्वकी आदरणीय और प्रभावशाली हैं। तुलसीका रस उत्तम है, इसलिये ये 'सुरसा' तथा गाँव-गाँवमें सरलतासे प्राप्त होनेके कारण 'ग्राम्या' और 'सुलभा' कही जाती हैं। इसमें बहुत मञ्जरियाँ होती हैं, अतः इस 'बहुमञ्जरी' के दर्शनसे राक्षस-जैसी व्याधियाँ या राक्षस-जैसे भयंकर पाप भी दूर हो जाते हैं, इसलिये यह 'अपेतराक्षसी' और पेटके दर्द, गठिया आदिका दर्द नाश करनेके कारण 'शूलघ्नी' नामसे अभिहित है।

तुलसी तीखी, कड़वी, थोड़ी-सी कसैली, सुगन्धित और रुचि बढ़ानेवाली है। आयुर्वेदमें इसे वात-कफ-नाशिनी, विषघ्नी तथा रक्त-विकार, कोढ़, चर्मरोग, मूत्रकृच्छ्रादि व्याधियोंसे छुटकारा दिलानेवाली माना गया है। विविध शारीरिक एवं मानसिक रोगोंके उपचारमें तुलसीका अद्भुत चमत्कार देखा जाता है। यहाँ विविध रोगोंके उपचारमें तुलसीके प्रयोगका अपने अनुभवके आधारपर संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है।

उपचारकी पद्धति

तुलसीके पत्ते—रोगीकी प्रकृति, व्याधि और सबलता-निर्बलता तथा ऋतुके अनुसार पचीससे लेकर सौतक पत्ते लिये जायँ, जैसे शीतकालमें ज्यादा और ग्रीष्मकालमें कम। विभिन्न आयुके बच्चोंके लिये पाँचसे लेकर पचीसतक पत्तोंको बारीक पीसा जाय। पत्तोंका रस भी लिया जा सकता है। इसकी मात्रा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार आधे तोलेसे लेकर एक तोलेतक हो सकती है। मञ्जरी लेनी हो तो एक ग्रामतक साथमें ले सकते हैं। मञ्जरी शक्तिप्रद और मूत्र साफ करनेवाली है। पत्तोंको छायामें सुखाकर उसका चूर्ण बनाया हुआ हो तो वह भी चल सकता है। यह चूर्ण ताजे हरे पत्तोंकी अपेक्षा कम गुणकारी होता है।

साधारणतया तुलसी दो प्रकारकी होती है। एक काले पत्तोंकी जिसे 'श्यामा' या 'कृष्णा' तुलसी कहते हैं और दूसरी हरे पत्तेकी जिसे 'श्वेता' या 'रामा' कहते हैं। अंग्रेजीमें श्वेताको White Basil और श्यामाको Purple stalked Basil कहते हैं। इन दोनों प्रकारकी तुलसीके गुण प्राय: समान हैं।

अनुपान—मीठा दही प्रकृति और सबलता-निर्बलताके अनुसार पचास ग्रामसे लेकर तीन सौ ग्रामतक अनुपानके रूपमें लिया जा सकता है।

कदाचित् किसीको मीठा दही अनुकूल न हो या न मिले तो उपयुक्त मात्रामें शुद्ध मधु या शुद्ध गुड़ भी लिया जा सकता है। दूधके साथ किसी भी हालतमें नहीं लेना चाहिये। छोटे बच्चे दहीमें लेनेके लिये तैयार न हों तो उसमें थोड़ा-सा शुद्ध मधु मिलाकर देना चाहिये।

औषध लेनेका समय—प्रात:काल दतुवन-मंजन आदि करनेके बाद कुछ भी खाने-पीनेके पहले यह दवा ली जाय, लेकिन असह्य दर्दकी अवस्थामें दिनमें दो या तीन बार भी ली जा सकती है। रोगकी उग्र अवस्थामें जबतक उग्रताका शमन न हो जाय, तबतक प्रति दो घंटेके अन्तरसे दवा ली जानी चाहिये।

असाध्य और कष्टप्रद रोगोंके लिये यह दवा दिनमें दो या तीन बार लेना हितकारी है। तथापि सबसे अधिक लाभ प्रात:काल खाली पेट दवा लेनेसे ही होता है।

तुलसीकी उपर्युक्त उपचार-विधिसे निम्नलिखित व्याधियाँ पूर्णरूपसे ठीक हो गयीं अथवा बहुत कुछ कम होकर कष्टसे छुटकारा भी मिला है—

१-गठिया (आर्थ्राइटिस), ओस्टियो, आर्थ्राइटिस और स्नायुओंका दर्द।

२-साइनसके कारण वर्षोंसे होनेवाली तीव्र सर्दी-जुकामकी शिकायतवालेका शल्यकर्म (ऑपरेशन) करनेकी तैयारी थी, उसपर तुलसीका उपचार किया गया। पंद्रह दिनमें आराम हो जानेसे शल्यकर्मकी आवश्यकता नहीं रही।

३-गुर्देकी बीमारी या गुर्देका काम मन्द हो जानेसे जो सूजन हो जाती है या पेशाब बहुत कम हो जाता है, इससे शरीरमें बहुत दर्द रहता है, ये सब व्याधियाँ तुलसीके प्रयोगसे दूर हो जाती हैं, सूजन उतर जाती है और पेशाबकी मात्रा ठीक हो जाती है। इसमें नमकका उपयोग बिलकुल बंद करना या अतिमर्यादित करना आवश्यक है। एक रोगीके गुर्देकी पथरी छ: महीनोंके उपचारके बाद चूरा होकर निकल गयी। इसमें दहीके बजाय शुद्ध मधुका उपयोग किया गया था। रोगीको दही अनुकूल नहीं आ रहा था।

४-ल्यूकोडर्मा या सफेद दाग अथवा कोढ़के कुछ मरीज रोग-मुक्त हुए हैं। कुछके दाग कम होते गये और चमड़ी सामान्य होती गयी।

५-ब्लड कोलेस्टेरोल या खूनमें चर्बीका चढ़ना—इस रोगमें कोलेस्टेरोलकी मात्रा बहुत जल्दी कम होकर सामान्य हो जाती है।

६-मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठ, गैस-विकार दूर हो जाते हैं। वजन कम हो तो पाचनशक्ति ठीक हो जानेसे बढ़ता है।

७-अम्लता (एसिडिटी) मिट जाती है।

८-पेचिस, कोलाइटिस आदि जल्दीसे ठीक हो जाता है।

९-प्रोस्टैटकी तकलीफमें काफी लाभ होता है। वृद्धावस्थाकी दुर्बलता दूर होती है और शक्ति बढ़ती है।

१०-एर्जिक जुकाम जन्मसे होनेपर भी ठीक हो जाता है।

११-एक आदमी मोटरसे दुर्घटनाग्रस्त हो गया था, जिससे कई सालोंतक वह बायें नाकसे श्वास नहीं ले सकता था अर्थात् बायीं नाक बिलकुल बंद हो गयी थी। वह ठंडे पानीसे नहीं नहा सकता था, पंखा या एयरकंडीशनका प्रयोग नहीं कर सकता था। इसके कारण सब ऋतुओंमें अस्वस्थ रहता था। तुलसीका चार महीनोंतक सेवन करनेसे उसकी बायीं नाक खुल गयी और श्वास लिया जाने लगा। वह गरमीमें ठंडे पानीसे स्नान करने लगा। पंखा और एयरकंडीशनका व्यवहार किया गया, उसका कुछ बुरा असर नहीं हुआ। दुर्घटनाके कारण पहले नींद नहीं आती थी, जो आने लगी। वह ठीक हो गया।

१२-एक बच्चा जन्मसे मानसिक रूपमें मन्द (Mentally Retarded) था। सोलह सालका हुआ, तब तुलसीका प्रयोग किया गया। दो महीने बाद युवकमें पचीस प्रतिशत सुधार हुआ। अब वह कुछ अंशोंमें बुद्धिमत्तापूर्ण वार्तालाप करने लगा है।

१३-तुलसी सर-दर्दके लिये अक्सीर दवा है। इसके प्रयोगसे एक रोगीके पंद्रह सालका पुराना दर्द ठीक हो गया।

१४-बच्चोंके कुछ रोगोंमें—विशेषरूपसे जुकाम, नजला, उलटी-टट्टियाँ और कफके लिये—अक्सीर है। दाँत आसानीसे निकलते हैं और तकलीफ नहीं होती।

१५-एक युवकको पाँच सालसे नियमितरूपसे हर महीने एकाध सप्ताहके लिये बुखार आता था। तीन महीनेके प्रयोगके बाद बुखार आना बंद हो गया।

१६-हृदयरोग और इसके कारण होनेवाली दुर्बलता आदिमें तुलसीके प्रयोगसे आश्चर्यजनक सुधार दिखायी देता है। हृदयरोगके बाद पहाड़ी स्थानोंपर जानेकी मनाही किये हुए मरीज पहाड़ी स्थानोंपर आरामसे रह सकते हैं। उच्च रक्तचाप और निम्न रक्तचापके मरीजका चाप सामान्य हो जाता है और हृदयकी दुर्बलतामें सुधार होता है।

१७-साधारण जुकाम और बुखारमें दिनमें दो-दो या तीन-तीन घंटेके बाद सोंठ, काली मिर्च, तुलसी और गुड़का काढ़ा बनाकर चूल्हेसे उतारकर उसमें आधा नीबू निचोड़कर पीना चाहिये। काढ़ा पीनेके बाद गरम कम्बल ओढ़कर सोनेसे शीघ्र आराम होता है। काढ़ेमें दूधका प्रयोग न किया जाय। यह काढ़ा मलेरियाके लिये भी लाभदायक है।

१८-शरीरकी झुर्रियाँ ठीक हो जाती हैं। हाथ फटे और बिवाइयाँ फटी हुई कितनी भी पुरानी हों, प्रायः ठीक हो जाती हैं। तुलसीको नीबूके रसमें मिलाकर लगानेसे खाज और दाद ठीक हो जाता है, खुश्की ठीक होती है। कपालके फोड़े-फुंसी भी ठीक होते हैं।

१९-घाव जल्दी भर जाता है और टूटी हुई हड्डियाँ जल्दी जुड़ जाती हैं।

२०-एनीमिया मिटकर खूनमें रक्तकण जल्दी बढ़ने लगते हैं।

२१-कैंसरके रोगमें भी तुलसीके यथाविधि सेवनसे लाभ होता है। इंट्रा ट्रैकियल कैंसरसे पीड़ित एक साठ सालके रोगीपर शल्यकर्म और कोबाल्ट बम्बसे उपचार किये गये, लेकिन वह ठीक नहीं हो पाया। उसका रोग असाध्य घोषित कर दिया गया और उसके फेफड़ेमें टी०बी० के लक्षण दीखने लगे तथा लीवर भी खराब दीखने लगा। पाँच सप्ताह तुलसीके इलाजसे वह एक मील चलनेके योग्य हो गया।

२२-एक साठ वर्षीया महिलाके योनि (बेजाइनल) कैंसरकी चिकित्सा रेडियम और कोबाल्ट बम्बद्वारा की जानेपर भी असाध्य प्रमाणित हुई। तुलसीकी दस दिनकी चिकित्सासे रक्तस्राव बहुत कम हो गया और पीड़ा भी सह्य-जैसी हो गयी। पचास दिनोंकी चिकित्साके बाद पीड़ा पूर्णरूपसे चली गयी, रक्तस्राव और श्लेष्मा भी बंद हो गया, बहता घाव भी ठीक हो गया।

२३-श्वास-रोग (अस्थमा), सित-कोशातिवृद्धि (Leucocytoses) और स्थूलान्त्रकाय (Colitis)-का ४८ वर्षका एक रोगी जल्दीसे ठीक हो गया। उसकी आँतें भी दूषित हो गयी थीं।

२४-एक सात वर्षीया लड़कीको दवाओंकी प्रतिक्रिया होती थी, जिससे उसको नीले दाग हो जाते थे और रक्तकी कमी हो जाती थी। वह बिलकुल ठीक हो गयी।

२५-विटामिन 'ए' और 'बी' की कमी दूर हो जाती है और स्त्रीको रुद्धार्तव (रक्तस्राव रुद्ध हो जाय) या रक्तस्राव कम हो, वह ठीक हो जाता है।

२६-आँख आना या दुखनेमें लाभदायक है।

२७-जीर्ण अर्धशिर:पीडा (Chomic Migraine) दूर हो गयी।

२८-खसरा-निवारणके लिये यह बहुत अच्छी ओषधि है।

—इन उपचारोंमें खास परहेज नहीं है। लेकिन व्याधिके अनुसार आहार-विहारमें नियमितता और पथ्य-परहेज आवश्यक है। मिर्च-जैसी तेज चीज न ली जाय या बहुत कम मात्रामें ली जाय।

किसी योग्य व्यक्तिसे जानकारी प्राप्त करके योगासन, स्थूल-सूक्ष्म व्यायाम, यौगिक षट्कर्म, प्राणायाम आदि इस चिकित्सामें विशेष सहायक होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा और होम्योपैथी भी लाभदायक होती है। तुलसी कृष्णवल्लभा है। युगोंसे उसके प्रति पूज्यभाव, आदर और श्रद्धा रहती आयी है। अत: भगवान्‌को समर्पण करके उनका स्मरण करते हुए उनके प्रसादरूपमें इसका सेवन किया जाय तो इसका लाभ शीघ्र और अनेक गुना अधिक होता है।

भगवत्स्मरणपूर्वक सेवनकी बातसे किसीको वहम हो सकता है। जिसे ऐसा वहम हो, उसे 'पेनग्वीन बुक्स' (Penguin Books)-मेंसे पीटर टाम्पकीन्स (Peter Tompkins) और क्रिस्टोफर बर्ड (Christopher Bird) रचित पुस्तक 'दि सिक्रेट लाइफ आफ प्लांट्स' (The Secret life of Plants) पढ़नी चाहिये। उससे सामान्य तौरपर पता चलेगा कि वनस्पति-सृष्टि एक प्रकारसे 'देव-सृष्टि' है। वह चित्रगुप्त-जैसे सच-झूठके व्यवहारकी टिप्पणियाँ रखती है, हर्ष-शोक दर्शाती है और शुभेच्छा भी जताती है।

एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें भी 'Rx.' लिखनेके बाद ही दवाइयों आदिका विवरण लिखनेकी परम्परा है। राजा ज्युपीटरका यह प्रार्थना-चिह्न है।

इस प्रकार भगवान्‌के स्मरणसे तो सदा मङ्गल एवं सर्वविध कल्याण होता ही है, फिर ऐसे रोगादिके कष्टपूर्ण समयोंमें औषधिके सेवनसे पूर्व भगवान्‌के स्मरणमें संकोच क्यों? भारतीय सभी आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें औषधसेवनके साथ भगवान्‌के स्मरण करनेका विधान निर्दिष्ट है, जैसे—**'औषधे चिन्तयेद्विष्णुम्'** तथा **'विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं हरिम्। स्तुवन्नामसहस्रेण रोगान् सर्वान् व्यपोहति॥'** और **'अच्युतानन्तगोविन्द-नामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥'** भाव यह है कि भगवान् विष्णु तथा उनके अच्युत, अनन्त, गोविन्द आदि नामोंके उच्चारण करने अथवा नामग्रहणके साथ औषध ग्रहण करनेसे रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। यह सत्य बात है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं।

[प्रेषक—श्रीजयदयालजी डालमिया]

तुलसीसे आरोग्य प्राप्त करें

तुलसी भारतमें प्राय: सर्वत्र पायी जानेवाली औषधि है। यही सभी हिन्दुओंकी पूज्या भी है। इसी कारण घर-घरमें इसका पौधा लगाया जाता है और पूजा भी की जाती है। इसको हिन्दीमें तुलसी तथा गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, तमिलनाडु और अरबमें भी तुलसीके नामसे ही जाना जाता है। वैसे इसे हरिप्रिया, माधवी और वृन्दाके नामसे भी जाना जाता है। इसकी ६० जातियाँ होती हैं। प्राय: चार प्रकारकी तुलसी मुख्य हैं—

(१) रामा तुलसी, (२) श्यामा तुलसी, (३) वन-तुलसी (कठेरक) और (४) मार बबर्द।

हमारे यहाँ प्राय: यही जातियाँ प्राप्त होती हैं।

रासायनिक गुण—इसमें एक उड़नशील तेल पाया जाता है। जिसका औषधीय उपयोग होता है। कुछ समय रखा रहनेपर यह स्फटिककी तरह जम जाता है। इसे तुलसी-कपूर भी कहते हैं। इसमें कीनोल तथा एल्केलाइड भी पाये जाते हैं। एस्कार्बिक-एसिड और

केरोटिन भी पाया जाता है।

ओषधीय गुण—रस—कटु, तिक्त; गुण—लघु, रूक्ष; वीर्य—उष्ण; विपाक—कटु; प्रभाव—कृमिघ्न, शूलघ्न, भूतघ्न; कर्म—कफ, वात-शामक।

मलेरिया उपचारमें इसका गिलोय नीमके साथ उपयोग किया जाता है।

जहाँ तुलसीके पौधे होते हैं, वहाँ मलेरियाके कीटाणु नहीं आते। पद्मपुराण, चरक-संहिता, हारीत-संहिता, योगरत्नाकर, सुश्रुत-संहिता आदि ग्रन्थोंमें इसके गुणोंका वर्णन मिलता है।

धार्मिक महत्त्व—भगवान् शालग्राम साक्षात् नारायण-स्वरूप हैं और तुलसीके बिना उनकी कोई पूजा सम्पन्न नहीं होती। नैवेद्य आदिके अर्पणके समय मन्त्रोच्चारण और घण्टानादके साथ तुलसीदल-समर्पण भी उपासनाका मुख्य अङ्ग माना जाता है।

मृत्युके समय तुलसीदलयुक्त जल मरणासन्न व्यक्तिके मुखमें डाला जाता है, जिससे मरणासन्न व्यक्तिको सद्गति प्राप्त होती है।

दाह-संस्कारके समय तुलसीके काष्ठका उपयोग किया जाता है। इससे करोड़ों पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। तुलसीके काष्ठकी माला सिद्ध माला कहलाती है, इसी प्रकार तुलसी-मञ्जरीका भी विशेष महत्त्व है।

तुलसीका पूजन वैसे तो वर्षभर किया जाता है, पर विशेष तौरपर कार्तिकमें तुलसी-विवाहकी परम्परा है। तुलसीके समीप किया गया अनुष्ठान बहुत ही फलदायक होता है।

औषधीय उपयोग

(१) **ज्वर**—तुलसीदल और काली मिर्चका काढ़ा पीनेसे ज्वरका शमन होता है।

(२) **वातश्लेष्मिक ज्वर**—तुलसीपत्र स्वरस ६ ग्राम, निर्गुणपत्र स्वरस ६ ग्राम, पीपर-चूर्ण १ ग्राम मिलाकर पीनेसे ज्वर ठीक हो जाता है।

(३) **आन्त्रिक ज्वर**—तुलसीदल १०, जावित्री १ ग्राम शहदके साथ मिलाकर खिलाना चाहिये २१ दिनोंतक। आन्त्रिक ज्वरमें लाभ होता है।

(४) **खाँसी**—तुलसीके पत्ते और अड़ूसाके पत्ते मिलाकर बराबर मात्रामें सेवन करनेसे खाँसीमें लाभ होता है।

(५) **कर्णशूल**—तुलसीपत्र स्वरस कानमें डालनेसे कर्णशूल शान्त होता है।

सरसोंके तेलमें तुलसीपत्र औटावे। जब पत्तियाँ जल जायँ तो छानकर रख लें।

(६) **नासारोग (नाक)**—नाकके अंदर पिण्डिकामें तुलसीपत्र बाटकर सूँघनेसे आराम होता है।

(७) **नेत्ररोग**—तुलसीपत्र स्वरसमें मधु मिलाकर आँखमें लगानेसे आँखमें लाभ होगा।

(८) **केशरोग**—तुलसीपत्र स्वरस, भृंगराजपत्र स्वरस और आँवला बारीक पीसकर मिलाकर लगानेसे बाल झड़ना बंद हो जाता है, बाल काले होते हैं।

(९) **वीर्यसम्बन्धीरोग**—तुलसीकी जड़को पीसकर पानमें रखकर खानेसे वीर्य पुष्ट होता है, स्तम्भन-शक्ति बढ़ती है।

[अ] तुलसी-बीज या जड़का चूर्ण पुराने गुड़के साथ मिलाकर ३ माशा प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करनेसे पौरुष शक्तिमें वृद्धि होती है।

[ब] तुलसी-बीजका चूर्ण पानीके साथ खानेसे स्वप्नदोष ठीक हो जाता है।

(१०) **मूत्ररोग**—एक पाव पानी, एक पाव दूध मिलाकर उसमें २ तोला तुलसीपत्र स्वरस मिलाकर पीनेसे मूत्रदाह ठीक होता है।

(११) **पूयमेह**—तुलसीपत्र स्वरसमें मधु मिलाकर सेवन करना लाभदायक होता है।

(१२) **उदररोग**—तुलसी-मंजरी और काला नमक मिलाकर खानेसे अजीर्ण-रोगमें लाभ होता है।

[अ] तुलसी-पञ्चाङ्गका काढ़ा पीनेसे दाँतोंमें आराम होता है।

[ब] तुलसी एक चम्मच, अदरक स्वरस एक चम्मच मिलाकर खानेसे पेट-दर्दमें आराम होता है।

[स] तुलसी-दल २१, बायविडंगके साथ पीसकर सुबह-शाम पानीके साथ खानेसे पेटके कृमि मर जाते हैं।

(१३) **आमवात**—तुलसीपत्र स्वरसमें अजवाइन मिलाकर खाना चाहिये।

(१४) **वातरक्त**—कुछ समयतक नियमित तुलसीदल-सेवनसे लाभ होता है।

(१५) **वातरोग**—तुलसीपत्र, काली मिर्च-चूर्ण

घृतके साथ सेवन करना चाहिये।

(१६) **रक्त-विकार**—तुलसी और गिलोय ३-३ ग्रामका क्वाथ बनाकर मिस्री मिलाकर सेवन करे।

(१७) **मुख-दुर्गन्ध**—भोजनके बाद ५ तुलसी-दल खानेसे मुखसे बास नहीं आती।

(१८) **मुखपाक**—तुलसीदल और चमेलीके पत्तोंको खानेसे मुखपाकमें लाभ होता है।

(१९) **रक्त प्रदर**—तुलसी-बीजका चूर्ण अशोक-पत्र स्वरसके साथ सेवन करना चाहिये।

(२०) **कामला**—तुलसीपत्र ५ ग्राम, पुनर्नवामूल ५ ग्राम मिलाकर पीना लाभदायक होता है।

(२१) **विषरोग**—तुलसीपत्रको गोघृतमें मिलाकर पिलानेसे हर प्रकारका जहर उतर जाता है।

[अ] **सर्पविष**—मार बबर्द तुलसीके बीज २ ग्राम खाना चाहिये और बाटकर लगाना चाहिये। बेहोश होनेपर रस नाकमें डालें।

[ब] **वृश्चिक-दंश**—तुलसीपत्र स्वरस चौगुने जलमें बाटकर ५-५ मिनटपर पिलाते जायँ।

(२२) **शिरःशूल**—तुलसीदल ११, काली मिर्च ११ मिलाकर खानेसे सिरदर्द ठीक होता है। इसीका नस्य लेनेसे आधासीसीमें लाभ होता है।

(२३) **मूषकदंश**—तुलसी स्वरस अफीम मिलाकर लगानेसे लाभ होगा।

(२४) **मधुमक्खी**—तुलसीपत्र स्वरस, सेंधा नमक और घृत मिलाकर लगानेसे सूजन भी नहीं आती, दर्दमें भी आराम होता है।

(२५) **दद्रू**—दाद होनेपर तुलसीपत्र स्वरस और नीबूका रस मिलाकर लगानेसे दाद ठीक हो जाता है।

(२६) **खाज-खुजली**—खाज-खुजलीमें नीमपत्र एवं तुलसीपत्र मिलाकर खाये भी और लगाये भी।

(२७) **सफेद दाग**—गङ्गाजलके साथ तुलसीपत्रको मिलाकर लगाना चाहिये। सफेद दाग ठीक होते हैं।

(२८) **बाल-तोड़**—बाल-तोड़ होनेपर तुलसीपत्र, पीपल-पत्ती मिलाकर लगानेसे आराम होता है।

(२९) **घाव**—तुलसीपत्र स्वरस और फिटकरी बारीक पीसकर घावपर छिड़कनेसे घाव जल्द भरता है।

(३०) **कुष्ठ**—कुष्ठमें भी तुलसीपत्र स्वरस लगाने एवं खानेसे तथा सोंठ और तुलसी जड़को पानीके साथ सेवन करनेसे आराम होता है।

(३१) **अग्निदग्ध**—अग्निदग्ध होनेपर तुलसीपत्र स्वरस नारियल-तेल मिलाकर लगानेसे लाभ होता है।

(३२) **मुँहासे**—तुलसी स्वरस, नीबू स्वरस बराबर मात्रामें मिलाकर लगानेसे मुँहासे मिट जाते हैं।

(३३) **अर्श**—तुलसीपत्र स्वरसको मस्सोंपर लगानेसे वे मुरझा जाते हैं।

(३४) **मानसरोग**—अपस्मारमें तुलसीपत्र स्वरस या तुलसीदलको बाटकर शरीरमें लेप करे।

[अ] **भूतज्वर**—तुलसीपत्र स्वरसमें त्रिकूट मिलाकर सूँघनेसे लाभ होता है।

स्वानुभूत योग—दो योग सर्वसाधारण जनताके हितार्थ लिखे जा रहे हैं। ये योग वैद्योंसे प्राप्त किये गये हैं—स्व-अनुभूत हैं।

भूतोन्माद—जब आदमी भूतोन्मादसे पीडित होकर जोर-जोरसे चिल्ला रहा हो, तब तुलसीपत्र जलमें डालकर सात परिक्रमा करके जल छिड़कते जायँ। अन्तमें तुलसीपत्र खिला दे लाभ होगा। आदेश दे कि वह अच्छा हो गया है।

पशु-चिकित्सा (गाय, भैंसके कीड़ा पड़नेपर)—जब किसी गाय या भैंसको व्याधि हो गयी हो और कीड़ा हो गया हो तो नीला कपड़ा लेकर रविवारके दिन या बुधवारके दिन मार बबर्द तुलसीकी शाखा लेकर उसे मोड़कर कपड़ेमें बाँध ले और उसको सींगमें बाँध दे। तीन दिनमें कीड़े मर जायँगे और सात दिन बाद घाव भी सूख जायगा तब दवाईको सींगसे हटा ले और एक नारियल भगवान् शंकरके नामसे फोड़ दे। इससे लाभ प्राप्त होगा।

[वैद्य श्रीराकेशसिंहजी बक्सी
मु० बावली, पो०—बेदू (नरसिंहपुर) (म० प्र०)]

परम पवित्र तुलसीके औषधीय उपयोग

(श्रीभागवतजी पाण्डेय 'सुधांशु')

तुलसीका पौधा परम पवित्र है। सहस्रों वर्षोंसे हिन्दू तुलसीकी उपासना करते आ रहे हैं। तुलसीको हम मन्दिरोंके सम्मुख तो लगाते ही हैं, घरोंमें भी तुलसीका रोपण कर अपनेको धन्य समझते हैं। तुलसीमें सभी देवोंका निवास है। तुलसीसे जल पवित्र हो जाता है। तुलसीकी गन्ध विकारनाशक है।

तुलसीका औषधीय महत्त्व भी है। यह रुचिमें कड़वी होती है तथा उष्ण गुणवाली होती है। इसका सेवन करनेसे छर्दि, शोथ, कृमि आदि नष्ट होते हैं। आयुर्वेदके अनुसार यह हृदय-रोगोंके लिये हितकारिणी है तथा खाँसी, विष-विकार एवं पसलीकी पीड़ाको दूर करती है। यह दूषित कफका नाश करती है, पित्तकी वृद्धिको रोकती है तथा कुपित वायुका शमन करती है।

यहाँ तुलसीके कई औषधीय उपयोग दिये जा रहे हैं। चिकित्सकोंसे परामर्श लेकर उनसे लाभ उठाया जा सकता है—

(१) **गुर्देकी पथरी**—तुलसीदलके रसमें मधु मिलाकर सेवन करे।

(२) **गीली खाँसी, सूखी खाँसी तथा दमा**—तुलसीके पत्तेके रसमें मधु और अदरकका रस मिलाकर सेवन करे।

(३) **हिचकी**—छोटी इलायचीके दानोंको तुलसीके पत्तेके रसमें पीसकर चाटे।

(४) **रतौंधी**—श्यामा तुलसीका रस दो-तीन बूँद चौदह दिनोंतक आँखमें डाले।

(५) **ज्वर**—तुलसीकी पत्ती एक तोला तथा काली मिर्च दस-बारह दाने पीसकर मटरके बराबर गोली बनाये, छायामें सुखाकर दो-दो गोली, तीन-तीन घंटेपर जलके साथ सेवन करे।

(६) **उल्टी**—तुलसीके पत्तेका रस मधुमें मिलाकर चाटें।

(७) **अजीर्ण**—तुलसीकी सूखी पत्तियों तथा काली मिर्चके चूर्णका सेवन करे।

(८) **मन्दाग्नि**—तुलसीका पञ्चाङ्ग (सूखा) तथा काली मिर्च दोनोंके चूर्णका सेवन करे।

(९) **हैजेकी सामान्य दशा**—तुलसीकी पत्ती और काली मिर्च पीसकर सेवन करे।

(१०) **सिरदर्द**—तुलसीके बीजोंके चूर्णका मधुके साथ सेवन करे।

(११) **बच्चोंके यकृत्की गड़बड़ी**—तुलसीपत्र-रसका सेवन कराये।

(१२) **छोटा घाव**—तुलसीके बीजोंको पीसकर लगाये।

(१३) **दाँत-दर्द**—तुलसीपत्र-रस तथा कपूरको रूईके फाहेसे लगाये।

(१४) **सूजन**—तुलसीपत्र-रस लगाये।

(१५) **बच्चोंका पेट-दर्द**—तुलसीके पत्तों एवं अदरकके रसका सेवन कराये।

(१६) **बच्चोंका कान-दर्द**—तुलसीपत्र-रस (गुनगुना) कानमें डाले।

(१७) **बच्चोंका पेट फूलना**—तुलसीदल और पानके पत्तेका रस (गुनगुना) पिलाये। इससे पेट साफ होता है और अफारामें बहुत लाभ होता है।

(१८) **बच्चोंका दाँत निकलना**—तुलसीके पत्तोंका रस मधुमें मिलाकर मसूढ़ोंपर मले तथा थोड़ा चटाये। इससे दाँत आसानीसे निकलते हैं।

(१९) **लू लगनेकी दवा**—तुलसीके पत्तोंका रस चीनी मिलाकर पीये।

(२०) **अनावश्यक रज-स्राव**—तुलसीकी जड़का चूर्ण पानमें रखकर खिलानेसे लाभ होता है।

(२१) **चक्कर आना**—तुलसीके पत्तोंके रसमें चीनी मिलाकर चाटे।

(२२) **प्रसव-पीड़ा**—तुलसीके पत्तोंका रस पिलाये।

(२३) **मूत्रदाह**—मूत्रदाहमें तुलसीदल चबाये।

(२४) **मुखके छाले**—तुलसीदल और चमेलीकी पत्तियाँ चबाये।

(२५) **प्रदर**—तुलसीपत्र-रस दो तोला चावलके माँड़में मिलाकर पीये। सात दिनमें लाभ होगा। दवाके सेवनके समय दूध-भात खाये।

(२६) **शीघ्रपतन**—दो तुलसीदल और थोड़ा तुलसीबीज पानमें रखकर खाये।

(२७) **प्लेगकी दवा**—तुलसीबीज, काली मिर्च

और मिस्त्रीको मिलाकर खाये।

(२८) गर्भधारण-हेतु—स्त्री मासिक धर्मके समय तुलसीके बीजोंको चबाये।

(२९) पित्तकी शान्तिके लिये—तुलसीके पत्र, अदरक और नीबूके रसको मिलाकर सेवन करे।

(३०) पाचनशक्तिकी वृद्धिके लिये—तुलसीदलको पीसकर ताजे जलके साथ सेवन करे (भोजनोपरान्त)।

(३१) गलेकी ख़राश—तुलसीदल और अदरकका रस मधुमें मिलाकर चाटे।

(३२) जुकाम—तुलसीपत्र और मुलहठी पीसकर गुनगुने जलमें मिलाकर पीये।

(३३) चोट लगनेपर—तुलसीदल (सूखा)-का चूर्ण तथा फिटकरीका चूर्ण मिलाकर चोट लगे स्थानपर रखे।

(३४) जलना—तुलसीपत्र-रसको नारियलके तेलमें मिलाकर लगाये।

(३५) नाकके अंदर फुन्सी—शुष्क तुलसीदल-चूर्णको सूँघिये।

(३६) बाल झड़ना और असमय बालका सफेद होना—तुलसीके सूखे पत्ते एवं आँवलेके चूर्णको पानीमें भिगोये। उस पानीसे सिर धोये।

(३७) बच्चोंको पतला दस्त आना—सूखे तुलसीदल और इसबगोलका दहीके साथ सेवन करे।

(३८) अर्श—तुलसीकी जड़ और नीमके फलोंका चूर्ण छाछके साथ पीये।

(३९) पेटका मरोड़—शुष्क तुलसीपत्र, जीरा और काला नमक तीनोंको समान भागमें लेकर चूर्ण बनाये तथा दही या छाछके साथ सेवन करे।

(४०) पुरुषत्वकी कमी—तुलसीकी जड़ या बीजका चूर्ण लेकर गुड़में मिलाये तथा उसका गोदुग्धके साथ सेवन करे। इससे पुरुषत्व बढ़ता है। तुलसीकी जड़को टुकड़ा-टुकड़ा करे तथा चबाये। इससे भी पौरुष-शक्ति बढ़ती है।

(४१) जोड़ोंका दर्द—तुलसीके रसका सेवन करे।

(४२) गठिया—तुलसीके पञ्चाङ्ग (पत्ते, मञ्जरी, टहनी, बीज और जड़)-का चूर्ण गुड़में मिलाये तथा बकरीके दूधके साथ सेवन करे।

(४३) नेत्र-ज्योति-वृद्धि-हेतु—तुलसीदलका रस गुनगुने पानीमें डाले, उसमें फिटकरीका चूर्ण मिलाकर पलकें सेंके।

(४४) कानका बहना—तुलसीदलका रस (गुनगुना) कानमें डाले।

(४५) मस्तिष्ककी दुर्बलता—प्रातःकाल तुलसी-दलका पानीके साथ सेवन करे। इससे मस्तिष्ककी कमजोरी दूर होती है एवं स्मरण-शक्ति बढ़ती है।

तुलसीदल, बादाम तथा काली मिर्च—इन तीनोंको पीसकर मधुके साथ खाये। इससे दिमाग तेज होगा।

तुलसीदल तथा ब्राह्मी बूटी पीसकर छाने और मिस्री मिलाकर पीये। इससे स्मरण-शक्ति बढ़ती है, दिमाग तेज होता है।

(४६) संक्रामक रोग फैलनेपर—तुलसी तथा नीमके पत्तोंका रस प्रातः-सायं पीये। इससे संक्रामक रोगसे रक्षा होगी।

(४७) मूर्च्छा—तुलसीदलके रसमें नमक मिलाकर नाकमें एक-दो बूँद डाले। लाभ होगा।

इस तरह स्पष्ट है कि तुलसी प्राकृतिक वरदान है।

तुलसीद्वारा कुछ घरेलू उपचार

१-जो व्यक्ति प्रतिदिन तुलसीकी मात्र पाँच पत्तियोंका सेवन करता है, वह अनेकानेक बीमारियोंसे बच सकता है।

२-प्रातःकाल खाली पेट दो-तीन चम्मच तुलसीके रसका सेवन करनेसे शारीरिक बल एवं स्मरणशक्तिमें वृद्धिके साथ-साथ व्यक्तित्व भी प्रभावशाली होता है।

३-यदि तुलसीकी ग्यारह पत्तियोंका चार काली मिर्चके साथ सेवन किया जाय तो मलेरिया एवं मियादी बुखार आदि ठीक किये जा सकते हैं।

४-तुलसी रक्तमें कोलेस्ट्रॉलकी मात्राको त्वरित नियन्त्रित करनेकी क्षमता रखती है।

५-शरीरके वजनको नियन्त्रित रखनेहेतु भी तुलसी अत्यन्त गुणकारी है। तुलसीके नियमित सेवनसे

भारी व्यक्तिका वजन घटता है एवं पतले व्यक्तिका वजन बढ़ता है। तुलसी शरीरका वजन आनुपातिक रूपसे नियन्त्रित करती है।

६-तुलसीके रसकी कुछ बूँदोंमें थोड़ा-सा नमक मिलाकर बेहोश व्यक्तिकी नाकमें डालनेसे उसे शीघ्र होश आ जाता है।

७-चाय बनाते समय कुछ पत्ती तुलसीकी साथमें उबाल ली जाय तो सर्दी, बुखार एवं मांसपेशियोंके दर्दमें अत्यन्त राहत मिलती है।

८-दस ग्राम तुलसीके रसको पाँच ग्राम शहदके साथ सेवन करनेसे हिचकी एवं अस्थमाके रोगीको ठीक किया जा सकता है।

९-तुलसीके काढ़ेमें थोड़ा-सा सेंधा नमक एवं पीसी सोंठ मिलाकर सेवन करनेसे क़ब्ज़ दूर होती है।

१०-दोपहर भोजनके पश्चात् तुलसीकी पत्तियाँ चबानेसे पाचनशक्ति मजबूत होती है।

११-दस ग्राम तुलसीके रसके साथ पाँच ग्राम शहद एवं पाँच ग्राम पिसी काली मिर्चका सेवन करनेसे पाचनशक्तिकी कमजोरी समाप्त हो जाती है।

१२-दूषित पानीमें तुलसीकी कुछ ताजी पत्तियाँ डालनेसे पानीका शुद्धीकरण किया जा सकता है।

१३-प्रतिदिन सुबह पानीके साथ तुलसीकी पाँच पत्तियाँ निगलनेसे कई प्रकारकी संक्रामक बीमारियों एवं दिमागकी कमजोरीसे बचा जा सकता है और स्मरणशक्तिको मजबूत किया जा सकता है।

१४-तुलसीके रसकी हल्की गरम बूँदें कानमें डालनेसे कानके दर्दसे मुक्ति पायी जा सकती है।

१५-चार-पाँच भूनी हुई लौंगके साथ तुलसीकी पत्ती चूसनेसे सभी प्रकारकी खाँसियोंसे मुक्ति पायी जा सकती है।

१६-तुलसीके रसमें खड़ी शक्कर मिलाकर पीनेसे सीनेके दर्द एवं खाँसीसे मुक्ति पायी जा सकती है।

१७-तुलसीके रसको शरीरके चर्मरोगसे प्रभावित अङ्गोंपर मालिश करनेसे दाद, एग्जिमा एवं अन्य चर्मरोगोंसे मुक्ति पायी जा सकती है।

१८-तुलसीकी पत्तियोंको नीबूके साथ पीसकर पेस्ट बनाकर लगानेसे एग्जिमा एवं खुजलीके रोगोंसे मुक्ति पायी जा सकती है।

तुलसीकी मुख्य विशेषता यह है कि यह पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों सभीके लिये समान रूपसे प्रभावशाली है और इसका कोई अन्य दुष्प्रभाव भी नहीं होता।

—श्रीकमलजी साबू
अध्यक्ष—सांई प्रचार-मिशन
१०७९, सुदामानगर, इन्दौर—९

मानव-जीवनके लिये कल्याणकारी औषधि 'तुलसी'

हमारे घरोंमें आँगनकी शोभा मानी जानेवाली तुलसी केवल वानस्पत्य पौधा नहीं है अपितु धार्मिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टिसे मानव-जीवनके लिये सब प्रकारसे कल्याणकारी है। तुलसी-पूजनसे स्त्रियाँ अपने सौभाग्य एवं वंश-वृद्धिकी कामना करती हैं। इसके पत्ते-पत्तेमें विद्यमान कोशिकाएँ अमृत-रससे परिपूर्ण होती हैं। इसके बीज और जड़ें भी औषधीय गुणोंसे भरपूर होती हैं। भारतीय संस्कृतिकी प्रत्येक क्रियाके पीछे वैज्ञानिक कारण होते हैं। तुलसीको आँगनमें रखनेसे जहाँ वायु और वातावरण शुद्ध होता है, वहीं इसकी सहज उपलब्धता भी सुनिश्चित होती है। विभिन्न रोगोंके उपचारहेतु तुलसीके कुछ प्रयोग दिये जा रहे हैं—

अपच, गैस—तुलसीके बीजमें गुड़ एवं जीरा मिलाकर चूर्ण बना लें। ताजे पानीके साथ उपयोग करनेसे लाभ होता है। भोजनके पश्चात् तीन-चार पत्ते खानेसे पाचन ठीक रहता है।

मुँहमें छाले—तुलसीके पत्तोंको पानीमें पीसकर घोल बना लें। तीन-चार दिनतक दिनमें दो-तीन बार मुखमें लगायें। छाले समाप्त हो जायेंगे।

चक्कर आना—तुलसीके पत्ते और शक्कर पीसकर शर्बत बना लें। इसे पीनेसे लाभ होगा।

मलेरिया-सर्दी—तुलसीके पत्ते, काली मिर्च, लौंग, इलायची तथा सोंठकी चाय लाभकारी है।

हैजा—तुलसीके पत्ते काली मिर्चके साथ पीसकर सेवन करें।

मिरगी—तुलसीके हरे पत्तोंको पीसकर रोगीके शरीरपर प्रतिदिन मालिश करनेसे लाभ होता है।

बेहोशी-मूर्च्छा—तुलसीके पत्तोंको पीसकर थोड़ा नमक मिलाकर उसका रस नाकमें डालनेसे लाभ होता है।

मलेरिया—तुलसीके पत्तोंका नित्य सेवन करनेसे मलेरिया दूर रहता है।

ज्वर-खाँसी तथा श्वास-रोग—तुलसीकी पत्तियोंका रस तीन ग्राम, अदरक-रस तीन ग्राम तथा शहद पाँच ग्राम मिलाकर सुबह-शाम चाटें, लाभ मिलेगा।

बुखार (ज्वर)—तुलसीके पत्ते दस, सोंठ तीन ग्राम, पाँच लौंग, इक्कीस काली मिर्च एवं उपयुक्त चीनी मिलाकर उबाल लें तथा जब पानी आधा रह जाय तब रोगीको पिलायें, लाभ होगा।

खाँसी—(१) तुलसीके पत्तोंके साथ पाँच लौंग भूनकर चबानेसे लाभ होता है। तुलसीकी सूखी पत्तियाँ और मिस्त्री चार ग्रामकी एक मात्रा लेते रहनेसे खाँसी दूर हो जाती है।

(२) तुलसीके पत्ते और काली मिर्च समान मात्रामें लेकर पीस लें। इसकी मूँगके बराबर गोलियाँ बना लें। एक गोली दिनमें चार बार लेनेसे काली खाँसी भी समाप्त हो जाती है।

(३) तुलसीकी दस-बारह हरी पत्तियोंका काढ़ा बनाकर उसमें चीनी और गायका दूध मिलाकर पीनेसे खाँसी और छातीका दर्द दूर हो जाता है।

(४) तुलसीकी पत्तीका सूखा चूर्ण शहदके साथ लेनेसे खाँसीमें आराम मिलता है।

(५) तुलसी तथा अदरक समान मात्रामें पीसकर एक चम्मच रस निकालें। इसमें एक चम्मच शहद मिलाकर चाटनेसे खाँसी समाप्त हो जाती है।

जुकाम-खाँसी—तुलसीके आठ-दस पत्ते, चार लौंग तथा थोड़ा-सा नमक मिलाकर काढ़ा बना लें; इसका प्रयोग लाभदायक है। मंजरीका चूर्ण शहदके साथ लेनेसे खाँसी दूर हो जाती है।

जुकाम-खाँसी, फेफड़ोंमें कफ—तुलसीके सूखे पत्ते, कत्था, कपूर और इलायची बराबर मात्रामें लेकर इससे नौ गुनी शक्कर मिलाकर बारीक पीस लें। इसे चुटकीभर सुबह-शाम सेवन करनेसे लाभ मिलता है। प्रातःकाल तुलसीके ताजे पत्ते सूँघनेसे जुकाममें लाभ होता है।

निमोनिया—तुलसीके आठ-दस हरे पत्ते तथा तीन-चार काली मिर्च पीस लें। इसे पानीमें मिलाकर पीनेसे निमोनियामें लाभ होता है।

पेचिश—तुलसीकी पत्तियोंको शक्करके साथ खिलानेसे पेचिश खत्म हो जाती है।

कानका दर्द—तुलसीके पत्तोंका रस गर्म करके कानमें डालनेसे दर्द ठीक हो जाता है। कान बहता हो तो निरन्तर कुछ दिन डालते रहनेसे लाभ होता है। इस क्रियासे बहरेपनमें भी सुधारकी सम्भावना है।

बाल झड़ना—कम आयुमें बाल गिरते हों तो तुलसीके पत्ते और आँवलेका चूर्ण पानीमें मिलाकर सिरमें लगायें दस मिनट बाद पानीसे सिर धोयें। इस क्रियाके करते रहनेसे बाल गिरना बंद हो जायगा और वे काले एवं लम्बे हो जायँगे। इस क्रियासे जुएँ भी मर जाते हैं।

सर्पदंश—तुलसीके पत्ते पीसकर जलके साथ रोगीको पिलायें। लाभ होगा।

विषैले दंश—बर्रे, भौंरा, बिच्छू आदिके द्वारा काटे गये स्थानपर तुलसीके पत्तोंको नमकके साथ पीसकर लगानेसे दर्द और जलन शीघ्र दूर हो जाते हैं।

बल-वृद्धि तथा स्मरण-शक्तिकी वृद्धिके लिये—तुलसीके पाँच पत्ते प्रतिदिन पानीके साथ प्रातःकालके समय निगलनेसे स्मरण शक्तिमें वृद्धि होती है।

दस पत्ते तुलसीके, पाँच काली मिर्च, पाँच बादाम, थोड़ा-सा शहद मिलाकर ठण्डाईकी तरह पीनेसे स्मरण-शक्ति बढ़ती है।

मधुमेह—तुलसीकी पाँच ताजी पत्तियाँ, पाँच काली मिर्चके साथ खाली पेट सेवन करनेसे मधुमेहमें लाभ होता है।

आधे सिरका दर्द—तुलसीके पत्तोंका चूर्ण शहदके साथ सुबह-शाम चाटनेसे लाभ होगा।

सिर-दर्द—तुलसीके पत्ते छायामें सुखाकर रख लें। इन्हें पीसकर रोगीको सुँघायें, पीड़ा शान्त होगी। तुलसीके पत्तोंका रस और नीबूका रस समान मात्रामें पीनेसे सिर-दर्द दूर होता है।

बच्चोंके दस्त—तुलसी और पानका रस समान मात्रामें गर्म करके पिलानेसे दस्त ठीक हो जाते हैं। पेट फूलना और अफारा भी ठीक हो जाता है।

हैजा तथा दाँत-दर्द—तुलसीकी पत्ती और काली मिर्च पीसकर गोली बना लें। इसे दर्दवाले दाँतके नीचे दबा लें, दर्द शान्त हो जायगा। इसी गोलीको खानेसे हैजा ठीक हो जाता है।

पेट-दर्द—तुलसी और अदरकके रसको समभाग लेकर गर्म करके पीनेसे लाभ होता है।

दस्त—तुलसीके पत्तोंका काढ़ा पीनेसे लाभ होता है।

उलटी—तुलसीकी पत्तियोंका रस पीनेसे उलटी बंद हो जाती है।

हिचकी—तुलसी-रस बारह ग्राम, शहद छः ग्राम दोनोंको मिलाकर पीनेसे लाभ होगा।

लू लगना तथा सिर चकराना—तुलसीके पत्तोंका रस चीनीमें मिलाकर पीनेसे आराम मिल जाता है।

पेशाबमें जलन—तुलसीकी पत्ती चबानेसे लाभ होगा।

खाज, दाद, त्वचारोग—तुलसीके पत्तोंका रस और नीबूका रस समान मात्रामें मिलाकर लगानेसे रोग दूर हो जाता है। इससे चेहरेकी झाइयाँ, मुँहासे, काले धब्बे तथा त्वचाके अन्य रोग ठीक हो जाते हैं।

घाव—छायामें सूखे तुलसीके पत्तोंको बारीक पीसकर कपड़छान करें, उसे घावपर छिड़कनेसे घाव भर जायगा।

सफेद दाग (ल्यूकोडर्मा)—जड़सहित तुलसीका एक पौधा लें। इसे धोकर मिट्टी अच्छी तरह साफ कर लें। इसे कूटकर आधा किलो पानी और आधा किलो तिलका तेल मिलाकर धीमी-धीमी आँचपर पकायें। पानी जल जानेपर तेल छान लें। इस प्रकारसे बने तुलसी-तेलको त्वचापर लगानेसे लाभ होगा।

जलना, खुजली, फोड़े-फुंसी—दो सौ पचास ग्राम तुलसीके पत्तोंका रस, दो सौ पचास ग्राम नारियलका तेल—दोनोंको मिलाकर धीमी आँचपर गर्म करें। जलका अंश जल जानेपर गर्म तेलमें ही बारह ग्राम मोम डालकर हिलायें। यह मरहम तैयार है, जो इन सब रोगोंमें लाभदायक है।

इन्फ्लुएंजा—पचहत्तर ग्राम तुलसीके पत्तोंको दो सौ पचास ग्राम पानीमें उबाल लें। जब पानी चौथाई रह जाय तब थोड़ा-सा सेंधा नमक मिलाकर पीनेसे लाभ मिलता है।

मोटापा—तुलसीके पत्तोंका रस और शहद मिलाकर सेवन करनेसे कुछ दिनोंमें मोटापा कम हो जाता है।

बवासीर—तुलसीके पत्ते पीसकर लेप करें और पत्तोंका नित्य सेवन करें। लाभ होगा।

चेचक-ज्वर—तुलसीके पत्तोंके साथ अजवाइन पीसकर नित्य सेवन करनेसे चेचकका ज्वर कम रहता है।

टी.बी. और कैन्सर—मक्खनरहित देशी गौमाताके दूधका मट्ठा और पैंतीस पत्ते श्यामा तुलसीके संग चटनी बनाकर सुबह-शाम सेवन करनेसे चालीससे साठ दिनमें इन असाध्य रोगोंसे मुक्ति मिल जाती है।

पेटमें कीड़े—तुलसीकी जड़ पानीमें पीसकर सात दिनतक, दिनमें चार बार लें। लाभ होगा।

शरीरपर सूजन—सूजनवाले स्थानपर तुलसीके पत्तोंका लेप करनेसे सूजनमें आराम होगा।

बच्चोंको शक्ति—पाँच बूँद तुलसीके पत्तोंका रस नित्य पिलायें। बच्चोंकी मांसपेशियाँ और हड्डियाँ मजबूत होंगी।

नकसीर—तुलसीका रस नाकमें टपकानेसे रक्तस्राव बंद हो जाता है। नाकमें दर्द, घाव अथवा फुंसी होनेपर तुलसीके सूखे पत्ते सूँघनेसे लाभ होता है।

मुँहमें छाले—तुलसी और चमेलीके पत्ते चबानेसे लाभ होता है।

वात—तुलसीके पत्तोंको उबालते हुए इसकी भाप वातग्रस्त अङ्गोंपर देने तथा तुलसीके पत्ते काली मिर्चके साथ गायके घीमें मिलाकर सेवन करनेसे लाभ होता है।

पता—श्रीअर्जुनलालजी वंसल
रेलवे रोड, पिलखुवा (उ० प्र०)

बाल-रोगोंकी कुछ अनुभूत दवाइयाँ

(वैद्य श्रीबदरुद्दीन राणपुरी)

बालकोंके लिये यहाँ कुछ ऐसी दवाइयोंके नुस्खे लिखे जाते हैं, जिनका निर्भयरूपसे बालकोंकी बीमारीमें प्रयोग करनेसे निश्चित लाभ होता है। जहाँ डॉक्टर-वैद्य न हों, वहाँ तो इनसे काम होता ही है; साधारण रोगोंपर भी ये दवाएँ बहुत काम करनेवाली होनेके कारण डॉक्टर-वैद्योंकी आवश्यकताको कम कर देती हैं। जल्दी आराम होता है और पैसे बचते हैं। विश्वासी पंसारी और दवा बेचनेवालोंके यहाँसे दवा बनानेकी असली चीजें खरीदनी चाहिये।

(१) बच्चोंके पसली या डब्बारोग (ब्राँको न्यूमोनिया)-में—फुलाया हुआ सुहागा छः रत्ती गुनगुने पानीके साथ बीमारीकी प्रबलताके अनुसार बार-बार देनेसे भयंकर स्थितिमें पहुँचा हुआ रोग भी मिट जाता है। औषधि बिलकुल सादी है; पर लाभ बहुत अधिक।

(२) खाज तथा फोड़े-फुंसीके लिये अक्सीर मलहम—असली घी १० तोला, जिंक ऑक्साइड २॥ तोला, संगेजराहत २॥ तोला, बोरिक एसिड २॥ तोला, कपूर खूब महीन पीसा हुआ आधा तोला, हाइड्रोजरी ऑक्साइड-रुबरी छः आना भर—इन सब चीजोंको कपड़ेमें छानकर घीमें मिलाकर मलहम बना ले। नीमकी पत्तियाँ उबालकर उस पानीसे घावकी जगहको पहले धो-साफकर दवा लगानी चाहिये।

(३) मुँहमें गरमीसे घाव हो जानेपर—ग्लिसरीन ४ तोला, टेनिक एसिड १ तोला—दोनोंको खरलमें खूब घोंटकर एकरस करके शीशीमें भर ले। रूईके फाहेसे बालकके मुँहमें लगाकर उसे गोदमें उलटा सुला ले, इससे लार झर जायगी। दो-तीन दिनोंमें आराम हो जायगा। दवा दिनमें दो-तीन बार लगाये। दवा पेटमें चली जानेपर भी हानिकर नहीं है।

(४) बालकोंके दस्त-मरोड़में— तज़ १ तोला, जायफल ३ तोला, लौंग १॥ तोला, इलायची १ तोला, चीनी २५ तोला, खड़िया मिट्टी ११ तोला—सभी चीजोंको महीन कूटकर कपड़छान कर शीशीमें भर ले। मात्रा ३ से ३० रत्तीतक अवस्थानुसार पानीके साथ दिन-रातमें तीन बार।

अथवा चूनेका जल (Lime water)—कलीका चूना ४ तोला, चीनी ८ तोला, स्वच्छ जल ६० तोलेमें मिलाकर हिलाकर रख दे। जब चीनी जलमें गल जाय और चूना नीचे बैठ जाय, तब ऊपरसे निथरा हुआ जल अलग शीशीमें रख ले। मात्रा—३ महीनेके बच्चेको ५ से १० बूँद, एक वर्षतकके बालकको २० से २५ बूँद दूध या जलके साथ मिलाकर दे। इससे चाहे जैसी उलटी हो तुरंत बंद हो जाती है। दूध पचने लगता है। पेटदर्द और कब्ज भी दूर होता है।

(५) विसर्पकी सूजनके लिये— जिंक ऑक्साइड, संखजीरा (संगेजराहत), स्वर्ण गेरू और सफेद कत्था बराबर मात्रामें महीन चूर्ण करके गुलाबजलमें मिलाकर दिनमें ५ या ७ बार रूईके फाहेसे लगाये। इससे गाँठ गल जायगी और बच्चेको आराम हो जायगा।

(६) बालकोंकी अमूल्य दवा—पीपल, नागरमोथा, अतिविष, काकड़ासिंगी—इन्हें बराबर मात्रामें लेकर बारीक चूर्ण कर ले। मात्रा—१ से ३ रत्ती, दिनमें २ या ३ बार माताके दूधमें या शहदके साथ चटा दे। इससे बालकोंके बुखार, दस्त, कफ, उलटी, खाँसी, जुकाम आदि रोग मिट जाते हैं। यह दवा बालकोंके लिये बाल-वैद्यका सफल कार्य करती है।

(७) बाल-बटिका—जायफल, जावित्री, तज, लौंग, इलायची, अजमोद, सफेद मिर्च, कटभी (करही), बायबिडंग, सोया, संचल नमक, हरड़की छाल, चिरायता, सेंका हुआ करंजका बीज, अतिविष, अनारकी छाल, पीपलामूल, बाँसकपूर, हीमेज, हीराबोल, खस, लोबान और केसर—सबको बराबर लेकर महीन चूर्ण करके कपड़छान कर ले। फिर शहदमें मिलाकर मूँगके आकारकी गोली बना ले। बारह महीनेके बालकको १ से ४ गोली

दे। बड़े बालकको अधिक मात्रामें देनी चाहिये। इस **बाल-बटिकासे** बच्चोंके पतले दस्त, उलटी, अजीर्ण, वायु, मन्दाग्नि, निर्बलता और कब्ज आदि रोग दूर होते हैं। दूध ठीक पचता है, बालक नीरोग रहता है।

(८) बाल-पुष्टियोग—अभ्रक-भस्म १ तोला, माण्डूर-भस्म २॥ तोला, गिलोय-सत्त्व २॥ तोला, अतिविष, बाँसकपूर, मिर्च, सोंठ, पीपल, बायबिडंग—ये छः चीजें प्रत्येक १ तोला, मुलहठी २॥ तोला, सेंके हुए करंजके बीज आधा तोला—सभीको महीन कूटकर कपड़छान कर ले, तदनन्तर ३० तोले शहदमें मिलाकर घोंटकर शीशियोंमें भरकर रखे। मात्रा ३ से १२ रत्तीतक दिनमें दो बार देनेसे बालकोंके जीर्ण-ज्वर, पेटकी शिकायतें, रक्तहीनता आदि रोग मिटकर बालक हृष्ट-पुष्ट होता है, कान्ति बढ़ती है और हड्डियाँ मजबूत होती हैं।

(९) जलनेपर—तिलका तेल ४ तोला खूब उबाल ले, उसमें कपड़ेसे छाना हुआ रालका खूब महीन चूर्ण १ तोला डालकर चूल्हेसे नीचे उतारकर हिला दे और तुरंत कपड़ेसे छानकर एक थालीमें डालकर ठंडा होने दे। फिर उसमें थोड़ा-थोड़ा जल डालकर फेंटता जाय और जल बदलता जाय। कुछ देरमें भैंसके मक्खन-जैसी सफेद मलहम बन जायगी। तब उसे काँचके बर्तनमें रखकर पानीसे भर दे। मलहम जलमें डूबी रहनी चाहिये। पानी रोज बदल देना चाहिये। नहीं तो मलहम बिगड़ जायगी। इसको जले हुए घावपर लगाना चाहिये। यह निश्चित लाभ करती है। लगानेके साथ ही जलनको मिटा देती है और थोड़े ही समयमें जले हुएका घाव सूख जाता है।

(१०) कानकी बीमारीके लिये—एक तोला तिलके तेलमें लहसुनके टुकड़े।) आना भर तथा मरवाके पत्ते ५ से १० तक डालकर उसे खूब गरम कर ले। फिर चूल्हेसे नीचे उतारकर कपड़ेसे छान ले। इस तेलको थोड़ा गुनगुना हो तब इसकी कुछ बूँदें कानमें डालकर कानको रूईसे भर दे। बालकोंके कानका दर्द मिटानेमें यह तेल अद्भुत कार्य करता है।

बाल-रोगोंके नुस्खे

ज्वर—यदि बालकोंको ज्वर हो, दस्त आता हो, खाँसी आती हो, साँस फूल रही हो तथा उलटी होती हो तो नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकड़ासिंगी—इन चारोंको कूट-पीस और छानकर शहद (मधु)-में मिलाकर बालकोंको चटाना चाहिये।

दस्त—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धबाला और इन्द्र जौ—इन सबका काढ़ा बनाकर सुबह बच्चोंको पिलाना चाहिये।

हिचकी—कुटकीके चूर्णको शहदमें मिलाकर बच्चोंको चटानेसे उनकी हिचकियाँ दूर होती हैं।

खाँसी—धनिया और मिस्त्रीको पीसकर चावलके धोवनके साथ पिलानेसे बच्चोंकी खाँसी दूर होती है।

उलटी—सोना गेरूको महीन पीसकर, शहदमें मिलाकर बच्चोंको चटानेसे उलटी, खाँसी दूर होती है।

बालकोंका रोना और डरना—त्रिफला चूर्ण और पीपल (छोटी पीपल)-के चूर्णको मिलाकर शहदमें मिलायें और बच्चोंको चटायें। इससे रोना, डरना बंद हो जायगा।

बच्चे अगर मिट्टी खा लिये हों—पका केला शहदमें मिलाकर खिलाना चाहिये।

पेटमें कीड़े—प्याजका रस पिलानेसे पेटके कीड़े नष्ट होते हैं।

[श्रीमैथिलीप्रपन्नजी ब्रह्मचारी, श्रीदुर्गाशक्तिपीठ, शक्तिपुरम्, कुकरपल्ली (हैदराबाद) पिन—४०००६२ (आन्ध्रप्रदेश)]

बालोंके रोगोंकी घरेलू चिकित्सा

(डॉ० श्रीराजेश्वरप्रसादजी गुप्ता)

बालोंके असमय सफेद होनेको पलित रोग कहा जाता है। इसमें निम्न योग लाभ करता है—

१-आँवला नग २, छोटी हरड़ नग २, बहेड़ा नग १, लोहेका चूर्ण १ तोला तथा आमकी गुठलीकी झींगी ५ तोला—इन सबको लोहेके खरलमें डालकर महीन कूट लें। फिर थोड़ा पानी मिलाकर रातभर उसीमें पड़ा रहने दें। दूसरे दिन प्रातःकाल इसे छानकर इस पानीको बालोंमें लगाकर कुछ देर छोड़ दें, फिर धो लें। ऐसा कुछ ही दिन करनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं।

२-भांगरा, सफेद तिल, चीतेकी जड़ और मट्ठा—इन सबको मिलाकर खानेसे भी पलित रोग दूर होता है।

३-लोहेका चूर्ण, काली मिट्टी, त्रिफला एवं भांगरा—इन सबको पीसकर गन्नेके रसमें मिलाकर एक महीनेके लिये जमीनके भीतर गाड़ दें। फिर उस बर्तनको बाहर निकाल लें तथा इस मिश्रणको सफेद बालोंमें लगायें तो वे जड़सहित काले हो जाते हैं।

सिरके बालोंका गिरना या उड़ जाना खालित्य (गंजा)-रोग कहलाता है। इसमें निम्न योग हितकर है—

१-शहदमें कटेरीका रस मिलाकर गंजपर लगानेसे गंजरोग दूर होता है।

२-बकरीके दूधमें हाथीदाँतकी राख तथा रसौत मिलाकर गंजपर लेप करनेसे गंजरोग निश्चित-रूपसे दूर होता है।

३-कुटकीको कड़वे परवलके पत्तोंके रसके साथ पीसकर तीन दिनोंतक लगाते रहनेसे पुराना गंजरोग भी दूर हो जाता है।

४-घोड़े या गधेकी खुरकी राखको नारियलके तेलमें मिलाकर गंजपर मलनेसे गंजरोग नष्ट हो जाता है।

बालोंको लंबा करनेके लिये निम्न योग बहुत लाभकारी है—

१-आँवलेको नीबूके रसमें पीसकर बालोंकी जड़में मलनेसे बाल लंबे हो जाते हैं।

२-ककोड़ेकी जड़को भैंसके दहीमें पीसकर सिरपर लेप करें। फिर सिरको धोकर तेलकी मालिश करनेसे बाल खूब बढ़ जाते हैं। लेपको २१ दिनोंतक दो-तीन घंटे प्रतिदिन रखना चाहिये।

३-बेर तथा नीमके पत्तोंको पीसकर सिरमें लगायें तथा दो घंटे बाद धो लें। ३१ दिनोंमें बाल खूब लंबे हो जायेंगे।

कुछ स्त्रियोंमें पुरुषोंके समान बाल उग आते हैं। आयुर्वेदमें कुछ ऐसे अचूक नुस्खे हैं, जिनका उपयोग करके अनचाहे बालोंको भी हटाया जा सकता है—

१-हरताल एक भाग तथा शंखका चूर्ण २ भाग पीसकर लेप करनेसे अनचाहे बाल गिर जाते हैं।

२-भिलावे, कपूर, जवाखार, हरताल, शंखका चूर्ण और मैनसिल—इनमें पकाया हुआ तेल शीघ्र ही बालोंको समाप्त कर देता है।

३-कुसुम्बाके तेलकी मालिश करनेसे बाल दूर हो जाते हैं।

अनारका औषधीय गुण—घरेलू उपयोग

(डॉ० श्रीदिवाकरजी ठाकुर)

अनार तीन तरहका होता है। एक मीठा, दूसरा खट्टा-मीठा और तीसरा केवल खट्टा। इनमें बेदाना अनार सब अनारोंमें उत्तम होता है। मीठा अनार खून बढ़ाता है, साथ ही धातुओंको पुष्ट करता है। मूत्रावरोधको दूर करता है और पेटको मुलायम रखता है।

खट्टा-मीठा अनार गरमीसे उत्पन्न कै, अतिसार, खुजली तथा हिचकी-नाशक होता है तथा आमाशयको शक्तिशाली बनाता है।

अनारमें हृदयको बलशाली बनाने एवं पेटके कृमियोंको नष्ट करनेकी अपूर्व क्षमता है। विशेषकर पेटके अंदर स्फीत कृमि (टेप वोर्म)-को जड़से समाप्त करनेकी शक्ति है। अनुभवी चिकित्सकोंका मानना है

कि अनारकी जड़की छालके समान कृमियोंको नष्ट करनेवाली कोई दूसरी दवा नहीं है।

उपयोगकी विधि—१-दो किलो जलमें पचास ग्राम अनारकी जड़की छाल डालकर चौबीस घंटेतक फूलनेके लिये छोड़ दें। उसके बाद हाथसे मसलकर आगपर चढ़ाकर उबालें। जब एक किलो पानी बचे तो उसे तीन बराबर भागोंमें बाँट दें। दो-दो घंटेके अन्तरालपर एक-एक भाग रोगीको भूखे पेट पिलावें। इस दरम्यान रोगीको खानेके लिये कुछ नहीं दें। दूसरे दिन प्रात:काल एरण्ड-तेलका जुलाब दें। इस जुलाबसे दस्तके साथ सारे टेप वोर्म मृतावस्थामें बाहर निकल जाते हैं। इन कृमियोंको नष्ट करनेमें जहाँ सारी औषधियाँ निष्फल हो जाती हैं, वहाँ यह औषधि नि:शंक सफल होती है।

२-अनारकी जड़के ताजे छिलके (पचास ग्राम)-को एक किलो जलमें आगपर उबालें, आधा पानी शेष रहनेपर ठंडा होनेपर छान लें। इसमेंसे पचास ग्राम प्रात: खाली पेट रोगीको पिला दें। बाकी पानीकी चार खुराक करके हर खुराकको एक-एक घंटा बाद दें। इसके बाद एरण्ड-तेलका जुलाब दें। इससे आँत साफ होकर पेटके कीड़े मृतावस्थामें बाहर निकल जायँगे।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित रोगोंमें भी इसका उपयोग अत्यन्त गुणकारी साबित होता है—

सूखा-रोग—यह रोग प्राय: बच्चोंको ही होता है। इस रोगको ममरखा, सुखण्डी, अस्थिशोष, रिकेट्स आदि नामोंसे जाना जाता है। अनारके जड़की छालका काढ़ा बनाकर देनेसे बहुत लाभ मिलता है।

खाँसी—अनारके छिलकेको मुँहमें रखकर चूसनेसे खाँसीमें लाभ मिलता है।

खूनी अतिसार—कुटज और अनारके छालका काढ़ा बनाकर मधुके साथ देनेसे असाध्य रक्तातिसारमें लाभ होता है।

बवासीर—अनारकी छालके काढ़ेमें सोंठका चूर्ण मिलाकर देनेसे खूनी बवासीरमें आशातीत लाभ होता है।

उन्माद (हिस्टीरिया)—अनारके पत्ते दस ग्राम तथा गुलाबके ताजे फूल दस ग्रामको आधा सेर पानीमें उबालकर चौथाई भाग बचनेपर छानकर दस ग्रामकी मात्रामें गायका घी मिलाकर सुबह-शाम पिलानेसे उन्मादमें लाभ पहुँचता है।

प्रदर—अनारकी जड़की छाल दस ग्रामको एक लीटर पानीमें उबालें। आधा बाकी रहनेपर उसमें पाँच ग्राम फिटकिरी डालें, इस पानीकी पिचकारी लेनेसे स्त्रियोंके प्रदररोग, रक्तप्रदर, गर्भाशयके विकारों तथा गर्भाशयमें होनेवाले जख्ममें लाभ होता है।

सिरके बाल झड़ना—अनारके पत्तेको पानीमें पीसकर दिनमें दो बार लेप करनेसे गंज दूर होती है।

बहरापन—अनारके पत्तोंका रस ५० ग्राम, बेलके पत्तोंका रस ५० ग्राम और तिलका तेल ५० ग्रामको हल्की आँचपर पकावें। जब मात्र तेल शेष रहे तो उतारकर छान लें और शीशीमें ठंडाकर बंद कर लें। दो-दो बूँद कानमें डालें, लाभ होगा।

विषैले जीवोंके डंक—भिड़ बर्रे, ततैया, मधुमक्खी, बिच्छू आदि विषैले जीवोंके डंकपर अनारके पत्तोंको पीसकर लेप करनेसे आराम मिलता है।

गुलाबके घरेलू प्रयोग

[१]

(श्रीअविनाशकुमारजी निराला)

गुलाब सिर्फ खुशबू और खूबसूरती ही नहीं बिखेरता, बल्कि कई प्राकृतिक गुणोंको भी यह अपनेमें समेटे हुए है। यही कारण है कि इसे फूलोंका राजा कहा गया है।

यह सौन्दर्यके साथ-साथ स्वास्थ्यके लिये भी बहुत उपयोगी है।

यदि आपके शरीरसे ज्यादे मात्रामें पसीना निकलता हो और उससे दुर्गन्ध आती हो तो घबरानेकी आवश्यकता नहीं, आप गुलाबका सहारा लें। गुलाबके फूलको पीसकर जलमें घोल बनाकर पूरे शरीरमें लेप करें। पुन: आधे घंटे बाद स्नान करें। ऐसा एक सप्ताहतक करनेसे आपकी समस्याका समाधान हो सकता है।

यदि आपके मसूढ़ोंसे दुर्गन्ध एवं मवाद आता हो एवं दाँतोंकी जड़ कमजोर पड़ती जा रही हो तो गुलाबका प्रयोग करें। गुलाबके ताजे फूलोंको अच्छी

तरह कुचलकर नित्य प्रति खायें। ऐसा करनेसे मसूढ़ोंसे रक्त, मवाद एवं दुर्गन्ध नहीं आयेगी। साथ ही मसूढ़े भी मजबूत हो जायँगे।

यदि दाद-खाज या दिनायसे आप परेशान हैं तो गुलाबके अर्कमें नीबूका रस मिलाकर प्रभावित अङ्गपर इस लोशनको लगानेसे दाद-खाज एवं दिनायसे छुटकारा मिलता है।

यदि आपके मुँहमें बार-बार छाले पड़ते हों तो घबरायें नहीं। बल्कि इससे निजात पानेके लिये गुलाबको पानीमें उबालकर ठण्डा कर लें। पुनः उस पानीसे दिनभरमें तीन बार नियमित कुल्ला करें। समस्याका समाधान हो जायगा।

यदि आपका दिल बहुत धड़कने लगे अथवा ऐसी प्रक्रिया कई दिनोंतक एवं कई महीनोंतक बार-बार जारी रहे तो गुलाबके चूर्णमें बराबर मात्रामें मिस्री मिला लें। एक-एक चम्मच इस चूर्णका सुबह-शाम सेवन करें। दिल बेवजह जोरसे धड़कना बंद हो जायगा।

यदि असामयिक या रात्रिमें किसी बच्चे या आदमीका कान जोर-जोरसे दर्द कर रहा हो तो उसमें ताजे गुलाबका रस टपकायें। ऐसा करनेसे कानका दर्द समाप्त हो जाता है।

बरसातके दिनोंमें हैजेका प्रकोप काफी भयावह होता है। ऐसी स्थितिमें गुलाब काफी उपयोगी साबित होता है। इन् परिस्थितियोंमें आधा कप शुद्ध गुलाबजलमें नींबू निचोड़कर उसमें थोड़ी मात्रामें मिस्री मिला लें। अब इस घोलको हैजेसे प्रभावित रोगीको तीन-तीन घंटेपर पिलायें। काफी लाभ होगा।

स्त्रियोंके लिये प्रदर या ल्यूकोरिया एक आम बीमारी हो गयी है। कई स्त्रियोंको पेशाबमें जलन भी होती है। इससे छुटकारा पानेके लिये गुलाबके १० ग्राम पत्तोंको पीसकर समान मात्रामें दोसे तीन बार पीनेसे कठिनाई दूर होती है।

इसी प्रकार गुलाब अन्य अनेक रोगोंमें भी लाभदायक है।

[२]

(सुश्रीजया मण्डावरी)

गुलाबमें विटामिन 'सी' प्रचुरतामें पाया जाता है। गुलाबके फूल खाते रहें तो जोड़ों तथा हड्डियोंमें विशेष शक्ति लचक रहती है, जो बुढ़ापेमें सहायक होती है।

स्त्री-पुरुष जो अपनेको स्वस्थ एवं सुन्दर बनाना चाहते हैं, वे गुलाबके फूलोंको प्रातःकाल खायें। इससे मसूढ़े और दाँत भी मजबूत होंगे। दाँतोंसे निकलनेवाली दुर्गन्ध, पीप और रक्तकी बीमारियोंमें भी गुलाबका सेवन लाभप्रद होता है। यदि गुलाबका निरन्तर प्रयोग किया जाय तो लंबी उम्रतक दाँतोंकी सुरक्षा बनी रहती है।

गुलाबके फूल क्षय (ट्यूबरकुलोसिस)-रोगमें लाभदायक होते हैं। यह देखनेमें आया है कि क्षय-रोगीको जितनी ज्यादा मात्रामें गुलाबके फूल खिलाये जायँ, उतनी ही शीघ्रतासे वह रोग-मुक्त होगा।

आमाशय, आँतों और यकृत्‌की कमजोरियोंको दूर करके इनमें शक्ति-स्फूर्तिका संचार करनेमें गुलाब काफी सहायक होता है। गर्मीमें दिल धड़कनेकी बीमारीमें यदि पाँच गुलाबके फूल प्रातः खाये जायँ तो फायदा होता है।

गुलाबजलके प्रयोगसे नेत्र-रोगोंमें लाभ होता है। गुलाबजल 'रतौंधी' रोगकी रामबाण औषध है।

गुलाबको सुखाकर इसका चूर्ण चेचकके रोगीके बिस्तरपर डालनेसे दानोंके जख्म शीघ्र खत्म हो जाते हैं।

पेटकी बीमारियोंमें 'गुलाबका गुलाबकन्द' बहुत फायदेमन्द है। एक किलो गुलाबके फलोंकी पंखुड़ियोंको तीन किलो चीनीमें मथ लें। इसको किसी चीनी-मिट्टीके बर्तनमें एक माह रखें, अति स्वादिष्ट गुलकन्द तैयार हो जाता है।

(स्विट्‌जरलैंडके विख्यात सेनिटोरियम 'फॉर-न्यू' में बूढ़े तथा शिथिल व्यक्तियोंको जब पानीमें शुष्क गुलाबके फूल डालकर दस मिनट बाद यही पानी छानकर शहदसहित पिलाया गया तो आशातीत परिणाम प्रस्तुत हुए।)

स्त्रियोंके भयानक रोग प्रदर (ल्यूकोरिया)-में गुलाबके सूखे फूलोंका चूर्ण योनि-मार्गमें रखनेसे यह रोग शीघ्र ही समूल नष्ट होता है।

यदि सिरमें दर्द हो तो गुलाबको जलमें पीसकर माथेपर लेप करें, तुरंत दर्द दूर होगा।

प्रयोगकी दृष्टिसे ताजे फूलोंको ही प्रयोग करना चाहिये, यदि न मिलें तो सूखे फूलोंको भी लिया जा सकता है।

होमियोपैथीके घरेलू अनुभूत नुस्खे

(डॉ० श्रीशिवकुमारजी जोशी)

क्रम	रोगके लक्षण	दवा	पावर	लेनेकी विधि
१.	बच्चोंके कानमें अचानक तेज दर्द	१. बेलाडोना २. केमोमिला	६ ६	३-३ गोली बारी-बारीसे १०-१० मिनिटपर ८-१० बार
२.	बच्चोंके नाकसे खून आना	फेरम फॉस	६	१५-१५ मिनिटपर ८-१० बार ३-३ गोली कुछ दिनोंतक
३.	बच्चोंके पेटमें कीड़े (कृमि-वर्म), पेट-दर्द, भूख कम, कमजोरी, बिस्तर गीला करना, नाकमें खुजली, गुदामें खुजली तथा काटने-जैसा दर्द	सिना	६	रात्रिमें ४ बार १-१ घंटेपर ३-३ गोली पाँच दिनोंतक। सफेद पेट्रोलियम जेली गुदामें लगाना
४.	बच्चोंको छठे या आठवें माहमें दाँत निकलते समय तकलीफोंसे बचानेके लिये।	१-केमोमिला २-केल्केरिया फॉस	६ ६	रोज सुबह २ गोली रात्रिमें २ गोली कुछ माहतक
५.	बच्चोंको सर्दीके मौसममें सर्दी-जुकाम-खाँसी-बुखार	ऐक्नोइट	६	दिनमें ८-१० बार १-१ घंटेपर कुछ दिनोंतक
६.	तेज गर्मीके मौसममें अचानक तेज बुखार, सिर-दर्द, लू लगना, चेहरा लाल, आँखें लाल, बेचैनी	बेलाडोना	६	दिनमें ६ या ८ बार १-१ या २-२ घंटेपर
७.	रोगीको पेशाब करते समय आग-जैसी जलन, बूँद-बूँद पेशाब निकलना, बेचैनी	केन्थरिस	६	दिनमें १०-१२ बार ४-४ गोली १-१ घंटेपर कुछ दिनोंतक
८.	रोगीको खूनी-आँव, दस्त, तेज मरोड़, दर्द, बेचैनी	मर्ककार	६	दिनमें १०-१२ बार ४-४ गोली १-१ घंटेपर कुछ दिनोंतक
९.	अचानक जी मिचलाना, उल्टियाँ होना, पित्त बढ़ना, बेचैनी	इपिपाक	६	दिनमें १०-१२ बार ४-४ गोली १-१ घंटेपर कुछ दिनोंतक
१०.	बच्चोंको भूख नहीं लगना, कमजोरी, थकावट	चायना	६	दिनमें ६ बार २-२ घंटेपर ४-४ गोली कुछ दिनोंतक।
११.	रोगीको रात्रिमें या कभी भी पिंडलियोंमें खूब दर्द होना, बेचैनी	कूप्रम मेटेलिकम	६	रात्रिमें या दिनमें १५-१५ मिनिटपर ६-८ बार कुछ दिनोंतक
१२.	रोगीको खूनी बवासीर (पाईल्स-मस्से)	एस्क्यूलस-हिप	६	दिनमें ८-१० बार ४-४ गोली १-१ घंटेपर कुछ दिनोंतक
१३.	क्रब्ज रहना, बार-बार हाजत होना, बहुत देर बैठे रहना	नक्सवामिका	३०	रोज रात्रि ९ बजे और १० बजे ४-४ गोली दो माहतक
१४.	रात्रिको नींद नहीं आना, खाली करवट बदलते रहना	कॉफिया-क्रूडा	३०	रात्रिमें ३-४ बार १-१ घंटेपर कुछ दिनोंतक
१५.	बच्चोंके कानसे पीप बहना	१. पल्सेटिला २. कालीम्यूर	६ ६	रोज दिनमें ४-४ बार ४-४ गोली बारी-बारीपर १-१ घंटेपर, कुछ दिनोंतक
१६.	रोगीको अचानक चक्कर आना, सिरदर्द, जी मचलाना	१. इपिपाक २. बेलाडोना ३. कोनियम मेक्यूलिकम	६ ६ ६	तीनोंको बारी-बारीसे २०-२० मिनिटपर ४-४ गोली, दिनमें ८-१० बार कुछ दिनोंतक

सावधानियाँ—उपर्युक्त सभी होमियोपैथिक दवाइयाँ प्रामाणिक दूकानसे २-२ ड्रामकी शीशियोंमें २० नं० की गोलियाँ खरीदकर अलग बक्सेमें रखें। बारी-बारीसे ही दें। कभी भी आपसमें मिलाकर नहीं दें। लक्षणोंमें आराम मिलते ही दवा बंद कर दें। दवाको हाथ नहीं लगायें, शीशीके ढक्कनसे या सफेद कागजके टुकड़ेपर गोली डालकर सीधे मुँहमें डालें। दवा लेनेके कुछ समय पहले और कुछ समय बादतक मुँहमें कुछ भी नहीं डालें, अन्यथा दवाका पावर कम हो सकता है। बच्चोंको दो या तीन तथा बड़ोंको चार या पाँच गोली लेना चाहिये। नियमानुसार समयपर दवा लेनेपर रोगीके लक्षणोंमें तत्काल आराम मिलेगा तथा कुछ दिनोंतक दवा लेनेसे वह शिकायत (रोग-लक्षण) वापस बार-बार नहीं होगी।

होमियोपैथीकी चमत्कारी औषधियाँ

होमियोपैथीके जन्मदाता जर्मनीके सुप्रसिद्ध ऐलोपैथ डॉक्टर सेम्युअल हेनीमेन थे। होमियो शब्दका अर्थ है—समान। होमियोपैथीका सिद्धान्त है—**'समः समं शमयति।'** यदि किसीको ज्वर है तो उस प्रकारके ज्वरको पैदा करनेवाली दवाको सूक्ष्मरूपमें देना ही उसका इलाज है।

होमियोपैथीमें दो हजारके लगभग दवाएँ हैं। ये दवाएँ अनेक प्रकारकी जड़ी-बूटियों, वनौषधियों एवं खनिज द्रव्योंसे बनती हैं। होमियोपैथीकी कई विशेषताएँ हैं। इसकी दवाएँ सरल, सस्ती, निरापद और अचूक होती हैं। कुछ लोगोंको भ्रम है कि होमियोपैथिक दवाएँ सिर्फ बच्चोंके लिये लाभप्रद हैं और इसका प्रभाव धीरे-धीरे होता है, ऐसी धारणा मिथ्या है। इसकी दवाएँ आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभीके लिये उपयोगी हैं। यदि दवाका चुनाव सही ढंगसे किया जाय तो वे बिजली-जैसी त्वरित गतिसे काम करती हैं। यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि दवाका चुनाव रोगीकी प्रकृति और रोगके लक्षणके आधारपर हो। यहाँ हम कुछ ऐसी दवाओंका वर्णन कर रहें हैं, जो खास रोगोंके लिये उनके लक्षणोंके आधारपर अचूक प्रमाणित हुई हैं। होमियोपैथिक दवाओंके सेवनके कुछ नियम हैं। जैसे—इन्हें खाली पेट सेवन करना चाहिये। सेवनकालमें नशीले पदार्थों, धूम्रपान तथा गन्धवाली चीजें लहसुन-प्याज, हींग, सेंट आदिका सेवन न करें।

किसी प्रकारकी चोट—आर्निका ३०—दो-दो घंटेपर चार बार लें।

मोच—आर्निका ३० एवं रसटाक्स ३०—दो-दो घंटेपर बारी-बारीसे दिनमें चार बार।

जलना—केन्थरिस २००—दो-दो घंटेपर चार बार।

सर्दी-जुकाम—नेट्रम म्यूर ३०—दो-दो घंटेपर चार बार।

खाँसी (सूखी)—ब्रायोनिया ३०—दो-दो घंटेपर चार बार।

कफ-खाँसी—एंटिम टार्ट ३०—दो-दो घंटेपर चार बार।

कुकुर खाँसी—ड्रोसेरा ३०—केवल एक बार।

पेचिश—मर्कसोल ३० एवं कोलोसिंथ ३०—बारी-बारीसे दो-दो घंटेपर (अधिक आँव-खून नहीं)।

खूनी पेचिश—मर्ककोर ३०—एवं कोलोसिंथ—दो-दो घंटेपर चार बार, बारी-बारीसे।

हाथ-पैर काँपना—झटके आना—मैगफास ६ङ्क पाँच टिकिया गरम पानीमें घोलकर आधे-आधे घंटेपर दिनमें ४ बार दें।

पेटमें दर्द—सेंकसे आराम लगे—मैगफास ६ङ्क पाँच टिकिया दें।

नाकसे खून आना—फेरमफास ३ङ्क ४ टिकिया प्रातः-सायं दें।

मधुमेह—नेट्रमसल्फ ६ एक्स ४ टिकिया प्रातः-सायं दें।

पेटमें वायु—पूरा पेट वायुसे फूलनेपर—चायना ३० दें।

ऊपरी पेटमें वायु होनेपर— कार्बोवेज ३० दें।

निचले पेटमें वायु होनेपर—लाइकोपोडियम ३० दें।

हृदयमें दर्द—टेबेकम ३० अथवा कैक्टस मदरटिंचरकी १० बूँदें एक कप पानीमें डालकर पिलायें।

हृदयशक्तिदाता टॉनिक—क्रेटगस मदरटिंचर हृदय-

रोगियोंके लिये वरदानस्वरूप है। इसकी १० बूँदें एक कप पानीमें डालकर नित्य लेनेसे अपूर्व लाभ होगा।

पेटमें कृमि—सभी तरहके कृमियोंको नष्ट करनेमें सिना ३० अद्वितीय है।

दमा—यह कठिन जीर्ण रोग है। एमाइल नाइट्रेट मदरटिंचरकी १० बूँदें रूमालपर डालकर बार-बार सूँघें आराम मिलेगा। ब्लाटा ओरिएंट मदरटिंचरकी १५ बूँदें एक कप गरम जलमें डालकर पीयें।

उलटी बंद करनेके लिये—इपिपाक ३० शर्तिया दवा है।

दाँत-दर्द—प्लेनटेगो मेजर ३० की दो खुराकें भयंकर दाँत-दर्दको दूर करती हैं।

चोटसे खून बहनेपर—केलेन्डुला मदरटिंचरकी दो-चार बूँदें खूनको रोक देंगी। यह घाव भरनेकी उत्तम दवा है।

पित्त-पथरीका दर्द—केल्केरिया कार्ब ३० पन्द्रह-पन्द्रह मिनटपर दें।

मूत्र-पथरीका दर्द—बरबेरिस मदरटिंचर ५ बूँदें आधा कप गरम जलमें डालकर दें।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न रोगोंकी अलग-अलग दवाएँ हैं, जो लक्षणोंके आधारपर दी जाती हैं। होमियोपैथिक दवाएँ तीन तरहसे बनती हैं। एक तो जड़ी-बूटियोंका मूल अर्क है, जिसे मदरटिंचर कहते हैं। दूसरी दूध-जैसी सफेद छोटी गोलियोंमें मूल अर्ककी कुछ बूँदें डालकर हिलाकर देते हैं। तीसरी विचूर्ण रूपमें होती हैं। दवाके नामके ऊपर ६, १२, ३०, २०० या १००० लिखा हुआ रहता है। ये अङ्क उस दवाकी शक्तिके परिचायक हैं। होमियोपैथिक भाषामें इसे पोटेंसी कहते हैं। केवल दवाका नाम बोलनेपर होमियोपैथिक दवा-विक्रेता आपसे पूछेगा कि किस पोटेंसीकी दवा चाहिये, साथ ही यह भी पूछेगा कि मदरटिंचर दूँ या इसका डाइल्यूशन दूँ अथवा गोलियाँ बनाकर दूँ। उचित परामर्श करके ही यथोचित दवाका सेवन करना चाहिये। (अ० भारती)

घरेलू आयुर्वेदिक औषधियाँ

सर्वरोगहर कुचला

यद्यपि कुपीलु या कुचला एक विष है तथापि शुद्ध किया हुआ कुचला अमृत माना जाता है। यह बहुत-से रोगोंको नष्ट करता है; जैसे—पेटमें गैस बनती हो, शरीरमें ठण्ड लगती हो, मन्द-मन्द बुखार रहता हो, हिचकी आती हो, डकार आवाज करके आती हो, अपच हो, शरीरमें वात-विकार हो, उठने-बैठनेमें तकलीफ होती हो, शरीरमें कमजोरी तथा जोड़ोंमें दर्द हो, लकवा हो या अल्सर हो—इनमें शोधित कुचला लाभ करता है।

अल्सरमें २ रत्ती गुरुच सत और ४ रत्ती शक्करके चूर्णमें १ रत्ती कुचला-चूर्ण मिलाकर दूध या जलके साथ सेवन करनेसे फायदा होता है।

अम्लपित्त (एसिडिटी)-में प्रातः जलपानके पश्चात् १ रत्ती कुचला, ५ ग्राम अविपत्तिकर चूर्ण तथा १ ग्राम खानेवाला सोडा जलके साथ ले और रात्रिमें भोजनके बाद १ रत्ती कुचला, ७ ग्राम अविपत्तिकर चूर्ण और २ ग्राम खानेवाला सोडा ले।

कम ब्लडप्रेशरमें गुरुचका सत १ ग्राम मिलाकर कुचला १ रत्ती देना चाहिये; क्योंकि कम ब्लडप्रेशरमें बेचैनी होती है, शरीर कमजोर होता है, चक्कर आता है, कभी-कभी हाथ-पैर एवं शरीरमें झनझनाहट भी होती है।

समलवायु और कम्पवातमें १ रत्तीसे २ रत्तीतक कुचला गुरुच सत मिलाकर देना लाभप्रद है। इन सभी विकारोंको कुचला नष्ट करता है। जिनका ब्लडप्रेशर कम हो, उनके लिये तो कुचला रामबाणके समान है। हृदयरोगमें भी १ रत्ती कुचला आराम पहुँचाता है।

टी०बी० (क्षयरोग)-में मक्खन या घीके साथ १ रत्तीसे २ रत्तीतक कुचला लेकर ऊपरसे दूध पीनेसे आराम होता है।

हड्डी टूटे हुए व्यक्तिको भी कुचला देना चाहिये।

कैंसरके रोगमें १ रत्तीसे २ रत्ती कुचला दिया जाता है।

आँव, हाई ब्लडप्रेशर, पीलिया, बवासीर और रक्त-पित्तके रोगको छोड़कर कफ और वातके सभी रोगोंमें सोधा हुआ कुचला दिया जाता है। अन्य रोगोंमें भी ४ माशाकी खुराकसे बढ़ाते हुए कुचला देना चाहिये।

पीलियाकी अमूल्य आयुर्वेदिक औषधि

सामान्यरूपसे पीलियामें शरीर तथा आँख पीली हो जाती है और रोगीको प्रत्येक वस्तु पीली-पीली-सी दिखायी पड़ती है, उसे हमेशा प्यास बनी रहती है। भूख नहीं लगती तथा शरीरमें ज्वर, गर्मी, दुर्बलता आदिके लक्षण दिखायी देते हैं।

औषधि— एक कटोरीमें पानी भरकर उसी जलमें वण्डालका एक फूल छोड़कर खुले आकाशके नीचे रख दें। सुबह जलको एक पतले कपड़ेसे छानकर उस जलको नाकसे दो बार खींचनेसे आराम होता है। इससे कभी-कभी नाकसे पानी ज्यादा बहने लगता है पर इस सर्दी-जुकामसे घबराना नहीं चाहिये; क्योंकि इसके होते ही पीलिया-रोगमें आराम हो जाता है। वण्डालका फूल प्रायः पंसारीकी दूकानमें मिलता है। वण्डालका फूल न मिलनेपर वातरोग एवं बुखार न हो तो पीलियामें निम्न प्रयोग भी लाभकारी है—

बेलकी ५ पत्ती, पुनर्नवा १०० ग्राम, त्रिफला १०० ग्राम, शंखपुष्पी ५० ग्राम, गदहपूर्णाकी जड़ ५० ग्राम, आँवला ५० ग्राम तथा ब्राह्मी ५० ग्राम—इन सबको कूट-छानकर एक बड़े घड़ेमें भरकर रख दें और देशी शक्कर या गुड़का रस मिला दें, रोगीको १५-१५ मिनिटपर औषधि पिलाते रहें।

कमरे अथवा बरामदेमें या पेड़के नीचे अपनी सुविधानुसार स्थानपर ६ या ७ फुट लंबी, ४ फुट चौड़ी तथा ५ इंच ऊँची चिकनी मिट्टीकी परत बना ले, मिट्टीमें कंकड़-पत्थर न हो। उसके बाद मेड़ बाँध दे ताकि पानी बाहर न निकले, उसीमें पानी भर दे। जमीन-सतह बराबर हो, जमीनकी कीचड़के ऊपर चादर बिछाकर रोगीको पेटके बल उस मिट्टीकी शय्यापर सुला दे। मीठा छोड़कर चावलका माड़ पिलाये, बगलमें बैठकर रोगीको कीर्तन या कथा, कहानी सुनाता रहे। पाँच दिनतक प्रतिदिन चार-चार घण्टा इसी आसनमें सुलाये जबतक शरीरमें ठण्ड न लगे, तबतक सुलाते रहें और रोगीके स्थानपर नमी बनाये रखनेके लिये मिट्टीपर पानी छोड़ते रहें। जब रोगीको सर्दी लगती है तो २४ घण्टेमें पीलियारोगसे आराम हो जाता है।

सरसों-तेलका औषधीय गुण

शरीरमें मालिश करनेके लिये सरसोंका तेल एक महत्त्वपूर्ण औषधि है। हलके हाथसे तेल लगाकर मालिश करनेसे व्यक्ति नीरोग और स्वस्थ रहता है। धूपमें बैठकर या लेटकर प्रतिदिन हलके हाथसे मालिश करनी चाहिये। रोगी निरोगी हो जाता है। वृद्ध स्वस्थ तथा नीरोग रहता है। बालककी बुद्धि, बल, तेज, विद्या तथा स्मरणशक्ति बढ़ती है और वह नीरोग, स्वस्थ तथा मस्त रहता है।

मालिशके लिये तेल बनानेकी विधि— २०० ग्राम अजवाइन, ४ असली जायफल, १ किलो शुद्ध सरसोंका तेल।

उपर्युक्त औषधियोंको सरसोंके तेलमें पकाकर ठण्डा होनेपर कपड़ेसे छानकर काँचकी शीशीमें भरकर रख लें और इसी तेलसे मालिश करें।

प्रातः भ्रमणकी उपादेयता— वैसे तो प्रातः-भ्रमण सभीके लिये उत्तम व्यायाम है तथापि प्रायः पचास वर्षसे अधिककी अवस्थाके लोगोंको प्रातः तीन बजेके पश्चात् सड़कपर या खुले स्थानपर शनैः-शनैः २ किमी० से ५ किमी० तक अपनी शक्तिके अनुसार चलनेका अभ्यास करना चाहिये, इससे शरीर नीरोग, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहता है। किसी तीर्थमें स्नान करनेके लिये, मन्दिरोंके दर्शन करनेके उद्देश्यको भी निमित्त बनाया जा सकता है। रोगीके लिये भी यथाशक्ति प्रातः-भ्रमण लाभकारी है। वे चलेंगे तो स्वस्थ रहेंगे

[प्रेषक—दण्डी स्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती
धर्मसंघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी]

नीरोग रहनेमें सहायक कुछ सरल बातें

(वैद्य श्रीहरिशंकरजी त्रिपाठी)

(१) प्रातःकाल उठकर कुल्ला करके आधा लीटर पानी पीयें। इसे उषःपान कहते हैं। इससे क़ब्ज़ नहीं होता, पेट साफ रहता है।

(२) सप्ताहमें एक बार छोटी हर्रेका चूर्ण ३ ग्राम, ईसबगोल भूसी ३ ग्राम मिलाकर रातमें गुनगुने पानीसे लें, यह विरेचक है।

(३) ७ बादाम, ७ मुनक्का, ७ काली मिर्च और १४ बड़ी इलायचीके दाने मिलाकर पीस लें। थोड़ी-सी चीनी मिलाकर गर्मियोंमें शर्बत बनाकर तथा सर्दियोंमें चटनीके रूपमें लें। इससे शरीरको ऊर्जा मिलेगी। बादाम गिरी भिगोकर ऊपरका छिलका हटा दें और मुनक्काके बीज हटा लें।

(४) ६ ग्राम चना, ६ ग्राम मूँग, ६ ग्राम गेहूँ भिगोकर अंकुरित करके प्रतिदिन प्रातःकाल धीरे-धीरे चबाकर खायें। इसके आधा घंटा आगे-पीछे कुछ न लें। यह योग अत्यन्त शक्तिवर्धक और सरल है।

(५) आँखोंमें प्रतिदिन सुबह-शाम पीली सरसोंका तेल अंगुलीसे लगायें। इससे आँखें नीरोग रहेंगी, मोतियाबिन्द न होगा और दृष्टि साफ रहेगी।

(६) सेंधा नमकका कपड़छान चूर्ण सरसोंके तेलमें मिलाकर दाँतों एवं मसूढ़ोंमें धीरे-धीरे मलें। मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जायगी। पायरिया नहीं होगा। दाँत स्वच्छ और मजबूत होंगे।

(७) प्रतिदिन कुछ आसन, व्यायाम, सूर्यनमस्कारकी क्रियाएँ या २-३ मीलका भ्रमण अवश्य करें, इससे शरीर पुष्ट होगा, स्फूर्ति आयेगी।

(८) पंद्रह दिनमें एक दिन उपवास रखें। उपवासमें केवल जल लें। इससे पेटको विश्राम मिलेगा और उसकी कियाएँ अधिक सक्रिय होंगी।

(९) हँसना और सदा प्रसन्न रहना नीरोग रहनेकी अद्भुत औषधि है।

लोकोक्तियोंमें आयुर्वेदिक नुस्खे

प्राचीन कालमें लोक-जीवन वनस्पतिमय था। उस समय मनुष्यके योगक्षेममें वनस्पतियोंका महत्त्वपूर्ण स्थान था। यही कारण है कि वैदिक वाङ्मयमें औषधि-वनस्पतियोंकी स्तुतिमें अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेदका ओषधि-सूक्त तो अतिप्रसिद्ध है ही, अथर्ववेदमें भी कई स्थलोंपर महर्षियोंद्वारा वनस्पतियोंकी स्तुतियाँ की गयी हैं, इसके साथ ही उपनिषदोंमें भी वनस्पतियोंके महत्त्वका वर्णन मिलता है।

मानवने प्रकृतिके साहचर्यसे वनस्पतियोंका ज्ञान प्राप्त किया और जैसे-जैसे उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं, वैसे-वैसे वनस्पतियोंके प्रयोगका क्षेत्र भी बढ़ता गया। वन्य-क्षेत्रोंमें तो वनस्पतियोंका बाहुल्य था ही, ग्रामीण-क्षेत्रोंमें भी इनकी विशेष प्रतिष्ठा रही। तब अपनी दैनन्दिन आवश्यकताओंकी पूर्ति इन्हींसे होती रही। दन्तधावनसे लेकर आहारतक तथा शय्यासे लेकर वाहनादि जीवनके सभी क्षेत्रोंमें वनस्पतिका प्रयोग होता रहा। स्नान, अनुलेपन, अङ्गराग आदि प्रसाधनोंमें भी इनका उपयोग होता था। आहार एवं अन्य लौकिक उपयोगके अतिरिक्त वनस्पतियोंका औषधरूपमें प्रयोग भी महत्त्वपूर्ण था।

पृथ्वीपर प्राणियोंकी उत्पत्तिके साथ ही रोगोंका भी प्रादुर्भाव हुआ और तभीसे इनके निराकरणके लिये ओषधियोंका प्रयोग भी प्रारम्भ हुआ। आयुर्वेद-शास्त्रमें इन विषयोंको बड़े ही सुव्यवस्थित ढंगसे प्रतिपादित किया गया है। आयुर्वेदशास्त्रके अन्तर्गत स्थावर-जङ्गम, पर्वतीय, खनिज, वानस्पतिक एवं सामुद्रिक ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिसकी चर्चा औषधीय प्रयोगके रूपमें की गयी हो। वनस्पतियोंके विषयमें एक मन्त्र अथर्ववेदमें प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है—'वनस्पतियोंका पिता आकाश, माता पृथिवी है तथा इसके मूल समुद्रमें हैं'—

यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव॥ (८।७।२)

तात्पर्य है कि ऊपरकी ओर फैलनेवाले, पृथ्वीपर फैलनेवाले तथा समुद्रमें पाये जानेवाले सभी प्रकारके वनस्पतियोंका संकेत मिलता है। हमारे महर्षियों, विद्वानों तथा आचार्योंने प्राचीन कालसे ही अपने-अपने ढंगसे आयुर्वेदीय विषयोंका वर्णन करके लोकहितार्थ बहुत ही उपयोगी जानकारियोंका संग्रह किया है। इसके पीछे उनकी भावना इस प्रकार थी—

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।

अर्थात् मेरी यही अभिलाषा है कि दुःखोंसे संतप्त प्राणियोंका दुःख दूर हो।

आयुर्वेदशास्त्र अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है। युगोंसे चली आ रही इस विद्याने भारतीय जनमानसमें अच्छी पैठ बना ली है। यद्यपि आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानके प्रचार-प्रसारसे आयुर्वेद-विद्याके अध्ययन-अध्यापनमें कुछ रुझान कम हुआ है तथापि वनस्पतियोंद्वारा निरापद उपचारके प्रति लोगोंकी आस्था कम नहीं हुई अपितु बढ़ती ही जा रही है। इस दिशामें सहज सुलभ घरेलू उपचारने लोगोंका बड़ा ही उपकार किया है। उनके द्वारा छोटी-मोटी बीमारियोंका उपचार स्वतः कर लिया जाता है। जिस प्रकार मौसमकी जानकारीके लिये कवि 'घाघ'के दोहे अचूक माने जाते हैं, उसी प्रकार परम्परागत रूपसे प्रचलित कहावतोंमें आबद्ध घरेलू नुस्खे भी रोगोपचारके लिये अचूक होते हैं। बड़ी-बड़ी यान्त्रिक सुविधाओंसे सम्पन्न मौसम-विभागकी सूचना भी कभी-कभी गलत हो जाती है। किंतु वर्षों पूर्व रचे घाघके दोहे आज भी खरे उतरते हैं, इसी प्रकार सुविधापूर्वक उपलब्ध वनस्पतियों एवं गृह-सुलभ पदार्थोंद्वारा किया गया उपचार भी सर्वदा लाभकारी एवं निरापद सिद्ध होता आया है। यहाँ बुजुर्गोंसे प्राप्त—ऐसे ही कतिपय दोहों (कहावतों)-का संकलन लोकहितार्थ दिया जा रहा है—

कब्ज़ दूर करनेके लिये—

'सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः'

अर्थात् सभी रोगोंकी जड़ मलोंका कुपित होनेसे पेटमें कब्ज़का होना है। जबसे भारतमें मशीनका पीसा आटा एवं नाश्तेमें ब्रेड आदि खानेका प्रचलन हुआ है, तबसे यहाँ अधिकांश लोगोंके पेटमें कब्ज़की शिकायत रहने लगी है। कब्ज़ दूर करनेके उपायोंमें कहा गया है—

१. हर्र बहेड़ा आँवला भाग एक, दो, चार।
तीनों औषधि लीजिये, त्रिफला कहे बिचार॥

२. प्याला एक गरम पानीमें, नीबू लेय निचोड़।
पीओ नित्य कुछ दिन तो कब्ज दूर हो जाय॥

३. सनाय सौंफ मुनक्का, दस-दस ग्राम मिलाय।
गोंद बबूल संग पीसकर लीजे चूर्ण बनाय॥
प्रतिदिन रात्रिके समय दूध साथ पी जाय।
कब्ज पुराना दूर हो उदर विकार मिटाय॥

पेट-दर्द दूर करनेके लिये—

१. गुड़ तोला प्राचीन ले, चूना माशा चार।
दोऊ मिलाकर खाइये देवे दर्द मिटाय॥

२. दो माशा काला नमक, दूनी सोंठ मिलाय।
हर्रे चौगुनी डालकर लीजै चूर्ण बनाय॥
पानीमें खौलाइये, छानो वस्त्र धुलाय।
तीन बार के पियत ही पेट दर्द मिट जाय॥

भूख बढ़ाने एवं मन्दाग्नि दूर करनेके लिये—

१. त्रिफला काला नमकको पानी साथ सनाय।
सबहिं बराबर मापकर नीबू रस मिलवाय॥
झरबेरी सी गोलियाँ घोंट पीस बनवाय।
दो गोली सेवन करे भूख बहुत बढ़ जाय॥

कृमि दूर करनेके लिये—बच्चोंके पेटमें प्रायः कृमिकी शिकायत रहती है। कृमि दूर करनेके लिये यह सरल उपाय है—

१. आधा तोला वजन भर वायविडंग पिसाय।
रत्तीभर शहद संग लीजै, कीट नशाय॥

२. पत्ती पीसे नीमकी लीजै रस निकाल।
आधा तोला पीजिये पेट कीट मिट जाय॥

दाँत स्वस्थ रखनेके लिये—हमारे शरीरमें यों तो सभी अङ्गोंका अपना-अपना महत्त्व है, किंतु दाँतोंका कुछ विशेष ही महत्त्व है। स्वस्थ और सुन्दर दाँत मनुष्यके व्यक्तित्वको सर्वप्रथम प्रभावित करनेके साथ-साथ भोजनमें स्वाद भी प्रदान करते हैं। निम्नलिखित कहावतोंमें देखें कि दाँतोंको कैसे स्वस्थ रखा जा सकता है—

१. चाहो जीवन भर रहे अमर दाँत बत्तीस।
लघुशंका और शौचमें बैठा दंती पीस॥
२. त्रिफला, त्रिकूटा तूतिया नमक मिलाये पंच।
दांत वज्र सम होत है माजू फलके संग॥
पुनि छिलका बादामका दीजै खूब जलाय।
पिपरमिंट कर्पूर संग मंजन लेव बनाय॥

दाँतोंके मैल हटाने एवं दाँतोंके कीड़े भगानेके लिये—

१. नमक महीन मिलाइये अरु सरसों का तेल।
नित्य मलें कीड़ा हरै छूट जात सब मैल॥
२. नीम दतूनी जो करै भूनी अन्न चबाय।
दूरबयारी नित करै तिन घर वैद्य न जाय॥
३. लटजीरा दातून जो करे प्रतिदिन जड़ मँगवाय।
वाक्सिद्ध नर होत है स्मरण शक्ति बढ़ जाय॥

मसूढ़ोंसे खून एवं पायरियाको दूर करनेके लिये—

१. गीली छाल बबूल की लीजे छाँह सुखाय।
दस इलायची डालके काला नमक पिसाय॥
नीबू रस सो कीजिये, मंजन बारम्बार।
दर्द मसूढ़ोंका मिटे नासे दंत विकार॥
३. जो दातून बबूलकी नित्य करे मन लाय।
टीस मिटै मजबूत हों पायरिया मिट जाय॥

नेत्ररोगोंका उपचार—

१. कालीमिर्चको पीसकर घी बूरा संग खाय।
नेत्ररोग सब दूर हों गिद्ध दृष्टि हो जाय॥
२. मिट्टीके नव पात्रमें, त्रिफला रात्रिमें डाल।
रोज सबेरे धोयके नेत्ररोगको टाल॥

आँखोंकी ज्योति बढ़ानेके लिये अञ्जन—

ताम्रके एक पात्रमें घमिरा रसको निचोय।
रूई साफ भिगोय कर लीजे छाँह सुखाय॥
सरसों तेल मिलायके आगमें देहु जलाय।
ढकिये थाली फूलकी काजल लेहु बनाय॥
कालिख सरसों तेलमें घिसै उँगली डार।
ऐसे सरल उपाय सो काजल करो तैयार॥
रतौंधी धुंधी खुजली या नेत्र लाल पड़ जाय।
बढ़ै रोशनी आँखकी सारे रोग नसाय॥

आँखोंकी लाली, रतौंधी तथा फूलीका उपचार—

आँख कानके मध्यमें चूना लेप लगाय।
आई आँख अच्छी करे और ललाई जाय॥
२. भुनी (लावा) फिटकरी लीजिये जल गुलाबमें घोल।
आँखोंकी जलन मिटै ये वैद्यनके बोल॥
३. केशर शहद मिलायके नेत्रन माहि लगाय।
लाली और गरमी मिटै रोग रतौंधी जाय॥
४. बरगदके दूधमें घिस, कपूर लगाओ नैन।
फूली मिटे छोटी बड़ी, और पाओ सुख चैन॥
५. शुद्ध शहदमें लीजिये, सेंधा नमक मिलाय।
थोड़े दिन ही लगाइये, फूली देय मिटाय॥

खाँसीकी दवा—गाँवोंमें यह कहावत प्रचलित है—'हँसी लड़ाईका घर है और खाँसी सब रोगोंकी जड़ है।' अतः खाँसी होनेपर अविलम्ब उपचार करना चाहिये। देखिये, खाँसीके उपचारके लिये बुजुर्गोंने कहावतोंमें क्या कहा है—

१. कालीमिर्च महीन पिसावे, आकपुष्प और शहद मिलावे।
भोजनसे पहले जो खावे, सूखी खाँसी तुरत मिटावे॥
२. रत्ती एक वंशलोचनको, सुबह लेव पिसवाय।
शुद्ध शहदके संग चाटिये, खाँसी देय मिटाय॥

कर्ण एवं नासिकाके रोगोंका निदान—पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंमें कान, नाक तथा आँखका विशेष महत्त्व है। ये अतिसंवेदनशील अङ्ग माने गये हैं। कान-नाकके रोगोंसे मुक्ति पानेके लिये अनेक कहावतें प्रचलित हैं—

१. पीली पात मदारमें घृतको देव लगाय।
गरम-गरम रस डालिये, कर्ण रोग मिट जाय॥
२. रस सुदर्शन पात का गरम, कानमें डाल।
फोड़ा-फुंसी आदि सब मिटे दर्द तत्काल॥

कहा जाता है—'यदि सौ वर्ष श्रवण-शक्ति बनाये रखना हो तो सरसोंका तेल कानोंमें डालना चाहिये।'

१. सूखा फल ले बेलका, खूब महीन पिसाय।
गऊ मूत्रमें सानकर हलुआ समान बनाय॥
सरसों तेल मिलायके लीजै खूब मिलाय।
छान के डालो कानमें श्रवणशक्ति बढ़ जाय॥

नाकके रोगोंकी दवा—

कडुआ तेल नित नाक लगावे।
ताको नाक रोग मिट जावे॥

चर्मरोग—दाद, खाज, खुजली, फोड़े-फुंसियोंके लिये कहावतोंमें बड़े सरल तथा लाभकारी नुस्खे प्राप्त होते हैं—

१. जो ताम्रके पात्रमें पिये रोज जल छान।
चर्म रोग सब दूर हो, मनुष्य होय बलवान॥

२. आक बीज पमारके नौसादर अरु खैर।
शोरा गन्धक डालके करते दादसे बैर॥
३. अरहर दाल जलायके दधिमें देव मिलाय।
पकी खाज पर लेपिये देवे रोग मिटाय॥
४. नीमकी पत्ती तोड़कर शहद संग पिसाय।
फोड़ा ऊपर बाँध दे मवको देत बहाय॥
५. चन्दनकी तरह घिसें पकी नीमकी छाल।
फुंसी ऊपर लगाय दें ठीक करे तत्काल॥

दस्त, आँव, पेचिश, बवासीर, उलटी, अनिद्रा आदि रोगोंके लिये घरेलू उपाय—

१. हरी दूबको कुचलके रस लीजै निकाल।
आधा तोला पीजिये, आँव दस्त रुकै तत्काल॥
२. जामुन-गुठली पीसकर थोड़ा नमक मिलाय।
पानीके संग पीजिये, खूनी दस्त मिटाय॥
३. इमली पत्ती पीसकर लीजै नमक मिलाय।
मट्ठाके संग पीजिये, पेचिश देय मिटाय।
४. बिल्वपत्रको पीसकर थोड़ा नमक मिलाय।
दही साथ सेवन करे पेचिश देत मिटाय॥
५. छोटी इलायची पीसकर नीबू रसमें मिलाय।
दो-दो घंटेमें पीजिये उल्टी तुरंत बंद हो जाय॥
६. पीपलकी दस पत्तीको करेला संग पिसाय।
छानके रस हफ्ता पियें बवासीर मिट जाय॥

अनिद्राके लिये—

१. गुड़के संग मिलायके पीपरमूल जो खाय।
कहे घाघजी जानिये, गहरी निद्रा आय।

वातव्याधिके लिये—

सोंठ सुहागा सोंचर गांधी, सहिजनके रसबरिया बाँधी।
सत्तर शूल बहत्तर बाई बात मातसे तुरत नशाई॥*

(श्रीमती शैलकुमारीजी मिश्र

उपयोगी होती हैं देशी दवाइयाँ

(श्रीमती सुमन चतुर्वेदी)

वनस्पतियोंके साथ ग्रामीण जीवन पुरातनकालसे जुड़ा है। ये वनस्पतियाँ मानव-जीवनके लिये प्रकृतिद्वारा प्रदत्त अमृत हैं। इसीलिये इन वनस्पतियोंके प्रति लोक-जीवनमें कृतज्ञ भाव है, देव-भाव है। आज भले ही परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं और देशी दवाइयाँ तिरस्कृत तथा उपेक्षित हैं, पर हमें यह बात भूलनी नहीं चाहिये कि ग्रामीण क्षेत्रमें देशी नुस्खोंसे इलाजकी परम्परा बहुत प्राचीन है। उनमेंसे कुछ नुस्खे यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

नुस्खे—

खाँसी—१-खाँसीमें करोंदेके पत्ते शहदमें मिलाकर खानेसे लाभ होता है। २-पीपलके फलको कूटकर-छानकर शहदमें खानेसे भी खाँसी दूर हो जाती है। ३-कटेहरीके फूलोंके बीचमें एक पीला अङ्ग होता है, उसे खानेसे भी खाँसी दूर हो जाती है। ४-आककी जड़की छालका चूर्ण शहदमें लेनेसे भी खाँसीका उपचार किया जा सकता है। ५-भटकटैयाके फूलों और जड़ोंके सेवनसे बच्चोंकी पुरानी खाँसी अच्छी हो जाती है। ६-खाँसीमें काला नमक तथा बहेड़ेका चू[र्ण] मिलाकर लेना भी लाभप्रद होता है। ७-तंबाकू[के] लकड़ी जलाकर राख कर लें तथा काला नमक मि[ला] दें, फिर अजवाइन या पानके साथ लें, यह [भी] खाँसीकी दवा है।

बवासीर—१-बवासीरमें मूली तथा भुने च[ने] खाना लाभदायक है। २-बवासीरमें एरण्डके पत्ते[का] बफारा लेनेसे भी लाभ होता है।

वायु-वृद्धि—१-वायु बढ़नेपर आकके टेमने[को] गायके मूत्र या शुद्ध देशी घीमें मिलाकर खानेसे ला[भ] होता है। २-ज्वारके पट्टेका गूदा रोटियोंमें मिलाकर [या] लड्डू बनाकर सेवन करनेसे फायदा होता है।

मुँहके छाले—१-मुँहमें छाले होनेपर दुधी[के] पत्तोंको पानीसे धोकर चबाना चाहिये या चमेली[के] पत्तोंका काढ़ा बनाकर उससे कुल्ला करना चाहि[ये।] २-फिटकरीके टुकड़ेको मुँहमें रखकर लार टपकाने[से] भी मुँहके छाले दूर हो जाते हैं। ३-झरबेरीकी जड़ ग[रम] पानीमें औटाकर कुल्ला करना भी छालोंकी दवा है[।]

---

* सोंचर—सौवर्चल (साँभर) नमक, गांधी—हींग, बरिया-बटी।

पेट-दर्द—पेटके दर्दमें नाभिमें हींगका लेप करनेसे आराम मिलता है या आमकी गुठलीको भूनकर नमकके साथ खानेसे भी लाभ होता है।

अफारा—अफारा हो जाय तो हींग-जीरा पीसकर पेटपर लेप करना चाहिये।

नाकमें फुंसी—नाकमें फुंसी निकलनेपर तोरई, काशीफल, चमेलीका फूल सूँघना चाहिये।

जलना—जलनेसे जब फफोले पड़ जायँ तब मेंहदीके पत्ते पीसकर लगाने चाहिये।

कान-दर्द—कानके दर्दमें सुदर्शनके पत्तोंका रस गरम करके कानमें डाला जाता है।

हैजा—हैजा-रोगमें पोदीनाके पत्तोंको औटाकर उसका अर्क देनेसे मरीजको लाभ होता है।

दाद—१-गेहूँको जलाकर उसकी राखको शुद्ध सरसोंके तेलमें मिलाकर दादपर लगाना चाहिये। २-सफेद कनेरके पत्तोंको तेलमें गरम करके लगाया जाय या सेमके पत्तोंको दादपर लगाया जाय तो वह ठीक हो जाती है।

गांगन—पीपलकी किल्ली अथवा धतूरके पत्तेको तेल या घीसे चुपड़कर गांगन या छलहोरीपर बाँधनेसे ठीक हो जाती है।

फोड़ा-फुंसी—१-नीमकी किल्लीको गरम तेलमें डालकर उसे फोड़े-फुंसीपर लगानेसे लाभ होता है। फोड़ेपर नीमकी छालको भी घिसकर लगाना चाहिये। २-ककैयाके पत्तेको पीसकर लेप करनेसे या पान बाँधनेसे भी फोड़ा ठीक हो जाता है। ३-तांबेश्वरके पत्तेको उलटा बाँधनेसे फोड़ा ठीक हो जाता है तथा सीधा बाँधनेसे पक जाता है।

सिरदर्द—सांटकी जड़को घिसकर माथेपर लगाया जाय तो सिरदर्द ठीक हो जाता है।

बिच्छूका दंश—ओंधाकी जड़को पीसकर लेप करनेसे बिच्छूका काटा शान्त हो जाता है।

अजीर्ण—अजीर्ण होनेपर पानी पीना चाहिये। क़ब्जकी स्थितिमें काली मिर्चका सेवन करना चाहिये। अमरूद खानेसे दस्त साफ होता है और भूख बढ़ती है। जुलाबके रूपमें आकके दूधका भी प्रयोग किया जाता है।

रजस्राव—रजोधर्ममें कपासके बीजोंकी फक्की लगानेसे अधिक रुधिर आना बंद हो जाता है।

पेटमें कीड़े—पेटमें कीड़े पड़ जायँ तो करेलेका रस पिलाना चाहिये।

ज्वर—ज्वरमें करोंदेकी जड़का काढ़ा देनेसे लाभ होता है।

दस्त—१-इसमें आम तथा जामुनकी गुठली, सोंठ, बेलगिरि तथा कैथका गूदा दिया जाता है। २-ऐंठा दस्त हो तब अनारकी एक कली, तुलसीके पत्ते तथा काली मिर्च ठंडाईकी तरह पीसकर देनी चाहिये।

ये सभी वनस्पतियाँ गाँवोंमें प्रायः सर्वसुलभ हैं और गाँवके लोगोंमें ये आज भी बहुत प्रचलित हैं।

वनस्पतियोंका घरेलू उपयोग*

मानव युगों-युगोंसे प्रकृतिके साहचर्यमें रहता आया है। उसने वनस्पतियोंको नाना रूपोंमें अपने प्रयोगमें लाकर तत्सम्बन्धित कुछ अनुभव अर्जित किये हैं। इन वनस्पतियोंका साधारण ज्ञान लोक-जीवनमें प्रचुर मात्रामें बिखरा पड़ा है। यहाँ कुछ वनस्पतियों और उनके प्रयोगपर सामान्य प्रकाश डाला जा रहा है—

सिन्धुवार—सिन्धुवारके पत्तेको एक सेर पानीमें रखकर औटा लें। जब एक पाव पानी शेष रहे तो इस पानीसे धोनेपर गठियाके दर्द तथा सूजनमें शीघ्र ही लाभ होता है।

सिन्धुवारकी जड़ दो माशा पीसकर गायके घीमें पकाकर सुबह-शाम सेवन करनेसे यह नीरोग बनाता है, दिमागको ताकत देता है तथा शरीरमें फुर्ती लाता है।

सिन्धुवारको पीसकर लगानेसे बिच्छूका विष शीघ्र दूर हो जाता है।

पीपल—पीपलके कोमल पत्तोंके रसमें शुद्ध मधु

---

* श्रीयोगेशचन्द्र, श्रीमहेन्द्रसिंह, श्रीमणिकान्त, श्रीअम्बरीषकुमार, श्रीमलखानसिंह।

मिलाकर आँखपर लेप करनेसे आँखकी लाली, फूला जड़से दूर हो जाता है। यह आँखके अन्य रोगोंको भी समाप्त कर ज्योति बढ़ाता है (आँखके अंदर गिर जानेपर कोई नुकसान भी नहीं पहुँचाता)।

पीपलके कोमल पत्तोंके रसको कानमें डालनेसे कानदर्द, कानका बहना तथा बहरापन दूर हो जाता है।

पीपलके फलको कूटकर कपड़ेसे छानकर चार आना भर चूर्णको एक आना भर शहदके साथ मिलाकर खानेसे चन्द दिनोंमें पुरानी खाँसी दूर हो जाती है। पीपलका पत्ता घीसे चुपड़कर फोड़ेपर बाँधनेसे आराम देता है।

पीपलके फलको सुखाकर, कूटकर कपड़ेसे छानकर चार आना भर मात्रा रोज गायके ताजा दूधके साथ सेवन करनेपर धातुको गाढ़ा करता है। बल-वीर्य बढ़ाता है, ताकत पैदा करता है और स्त्रीके प्रसूतजन्य मासिक गड़बड़ी—प्रदरको शान्त करता है।

गेहूँ—गेहूँको जलाकर उसकी भस्मको शुद्ध सरसोंके तेलमें मिलाकर किसी भी प्रकारके चर्मरोग—दाद, खुजली, घाव आदिमें लगानेसे शीघ्र लाभ होता है।

बबूल—बबूलकी छालको गरम पानीमें गरम करके उसके पानीको खुरपकाग्रस्त पशुके पैरोंपर डालनेसे यह रोग ठीक हो जाता है।

सफेद कनेरके पत्ते—सफेद कनेरके पत्तोंको लेकर खूब गरम तेलमें डालकर इतनी देरतक गरम करें कि वह सूख जाय, तब उसे उतारकर बारीक पीसकर जो मरहम तैयार हो उसे दाद-खाज-खुजलीपर लगानेसे लाभ होता है।

सेमके पत्ते—सेमके पत्तोंको नित्यप्रति आठ-दस दिन लगानेसे दाद ठीक हो जाता है।

दुग्धी—इसके पत्तोंको तोड़नेपर दूध निकलता है, इसको तोड़कर पानीसे धोकर चबानेसे मुँहके छाले दूर हो जाते हैं।

कटहेरीका फूल—कटहेरीके फूलोंके बीचमें एक पीला अङ्ग होता है उसे खानेसे खाँसी दूर हो जाती है।

कटहेरी—१-जीर्ण ज्वरमें कटहेरी, मोंठ और गिलोयका काढ़ा देनेसे लाभ होता है। २-मूत्रकृच्छ्रमें कटहेरीका रस मधुके साथ पीनेसे लाभ होता है। ३-नेत्रपीड़ामें कटहेरीके पत्तोंका रस आँखोंमें डालने और पीसकर बाँधनेसे लाभ होता है।

ओंधा या उलटा चिरचिटा—इस पेड़की जड़को पीसकर लेप करनेसे बिच्छूका काटा शान्त हो जाता है।

सोंठ—सोंठकी जड़ दहीमें पीसकर पीनेसे दस्त बंद हो जाते हैं।

सोंठ पीसकर पशुकी आँखमें काजलकी तरह लगानेसे पशुका रुका हुआ मल-मूत्र होने लगता है।

औंधाके पत्ते—पशुओंमें प्राय: चिरैया विषका रोग हो जाता है, जिससे वे एकदम सूख जाते हैं। इसके लिये इन पत्तोंको पशुके माथेपर खूब मलना चाहिये पर इसकी थोड़ी-सी मात्रा खिलानेसे पशुकी सूजन दूर हो जाती है।

बाजराकी करब—इसकी करबको जलाकर तपाने तथा राखको शरीरमें मलनेसे चिरैया विष दूर हो जाता है।

भँगरा—इसके पत्तोंको तोड़कर उनके तीन हिस्से करके पहला हिस्सा पशुको खिलाना चाहिये तथा दूसरे हिस्सेको गर्दनमें बाँध देना चाहिये और तीसरे हिस्सेको गङ्गाजलमें घोलकर उसके शरीरपर छिड़कनेसे पशुकी नजर दूर हो जाती है। यह कार्य शनिवारके दिन होना चाहिये।

पर्वती गोखरू—इसके चूर्णको दूधके साथ लेनेसे प्रदररोग ठीक हो जाता है।

आकका पत्ता—१-आकके पत्तेमें नमक मिलाकर तथा उसे जलाकर वह राख खानेसे पेटका दर्द शान्त तथा हाजमा ठीक हो जाता है। २-बिच्छूके काटनेपर आकके पेड़के किसी भी अंगको पीसकर लगानेसे लाभ होता है। ३-आकके पत्ते तेलमें चुपड़कर गरम करके लकवा-रोगमें बाँधना चाहिये जिससे तुरंत आराम मिलता है। ४-चर्मरोग, फोड़ा-फुंसी आदि भीतरी अंगोंकी मोटाईपर अर्कका प्रयोग उत्तम लाभ पहुँचाता है।

सुदर्शनका पत्ता—इसके रसको गरम करके कानमें डालनेसे दर्द ठीक हो जाता है।

गेंदाकी पत्ती—इसकी लुगदी बनाकर दाढ़पर रखनेसे दाढ़का दर्द बंद हो जाता है।

काली मिर्च—काली मिर्चोंको दाँतोंसे मोटा-मोटा तोड़कर निगल जानेपर कब्जियत ठीक हो जाती है।

झरबेरी—इसकी जड़की छालको फिटकरी डालकर कुल्ला करनेसे मुँहके छाले दूर हो जाते हैं।

चमेलीके पत्ते—इन पत्तोंका काढ़ा बनाकर कुल्ला करनेसे मुँहके छाले दूर हो जाते हैं।

पीली मिट्टीको मलकर कुल्ला करके शुद्ध घी लगानेसे मुँहके छाले दूर हो जाते हैं।

फिटकरी—फिटकरीके टुकड़ेको मुँहमें रखकर बाहर थूकनेसे मुँहके छाले दूर हो जाते हैं।

नीमके पत्ते—इनके काढ़ेसे फोड़ेको धोनेसे फोड़ेका विष दूर हो जाता है।

नीम एवं अपामार (ओंगा)—इनकी दातौन करनेसे पायरिया रोग ठीक हो जाता है।

अरहर—(१) अरहरकी जड़ पीसकर फुलीपर लगानेसे फुली ठीक हो जाती है।

(२) अरहर और मसूरकी दालोंको औटा लें इसमें कपूर मिलाकर कुल्ला करनेसे जीभकी जलन ठीक हो जाती है। पत्तियोंके रसका कुल्ला करने या अरहरकी दाल पानीमें भिगोकर उसके पानीसे कुल्ला करनेसे भी लाभ होता है।

एरण्ड—(१) नासूरपर एरण्डकी छाल पीसकर मेंहदीकी तरह लगानेसे लाभ होता है।

(२) जलेपर एरण्डके पत्तोंका रस तेलमें पकाकर उसे लगानेसे शीघ्र ही लाभ होता है।

(३) नींद लानेके लिये एरण्डका काजल लगानेसे लाभ होता है।

(४) बवासीरमें एरण्डके पत्तेका बफारा देनेसे लाभ होता है।

आम—(१) कण्ठरोगमें आमके पत्तोंकी धूनी लाभदायक होती है।

(२) हैजेमें कच्चे आमके गूदेको सेककर शक्करमें मिलाकर रख दे। यथासमय खिलानेसे आराम होता है।

(३) पेटके कीड़ोंको मारनेके लिये आमकी गुठली चार माशेके करीब खानी चाहिये।

आलूबुखारा—हैजेमें आलूबुखारा, सोंठ, पोदीना, बीजरहित मुनक्का, काला-सेंधा नमक और जीरेकी चटनी देनेसे लाभ पहुँचता है।

इमली—(१) दुखते हुए बवासीरमें इमलीके फलका रस लगानेसे शीघ्र आराम होता है।

(२) पित्ती निकलनेके समय इमलीकी छालकी धूनीसे लाभ होता है।

(३) गलेकी सूजनमें इमलीके पानीका कुल्ला करनेसे लाभ होता है।

कमल—(१) काँच पेटके अंदर चले जानेपर कमलके पत्तोंको खाँडके साथ खानेसे लाभ होता है।

(२) घावपर लाल कमल और बरगदके पत्ते जलाकर, बादाम रोगनके साथ सेवन करनेसे लाभ होता है।

कपास—स्तनों (आँचल)-पर कपासके बीजका लेप करनेसे स्त्रीका दूध बढ़ता है।

करील—बरसाती फोड़ोंपर करीलका कोयला तेलमें मिलाकर लगानेसे आराम होता है।

करेला—(१) पेटके कीड़े करेलेका रस पिलानेसे बाहर निकल जाते हैं।

(२) जलन्धरमें करेलेके दो तोले रसमें शहद मिलाकर देनेसे लाभ होता है।

करोंदा—(१) ज्वरमें करोंदेकी जड़का काढ़ा देनेसे लाभ होता है।

(२) खाँसीमें करोंदेके पत्ते शहदमें मिलाकर खानेसे लाभ होता है।

चौराई—(१) नेहरुआपर चौराईकी जड़ पीसकर लगानेसे वह ठीक हो जाती है।

(२) विष और मूत्रकृच्छ्रमें चौराईकी जड़ घीके साथ देनी चाहिये।

जामुन—रूखी और संग्राही है, कफ और रुधिरविकार तथा विभिन्न प्रकारके उदरविकारोंको दूर करती है।

तरबूज—(१) सिरदर्दमें तरबूजेके बीज और मुचकन्दके फूल पानीमें पीसकर लेप करना चाहिये।

(२) ओठोंके फटनेपर लौकी, तोरई और तरबूजके बीज पीसकर यदि लेप करें तो शीघ्र आराम होता है।

[प्रे०—डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी]

घटनाएँ

(१) गोमाताकी कृपासे मैं असाध्य रोगोंसे मुक्त हुआ

(श्रीसोहनलालजी बगड़िया)

कई वर्ष पुरानी बात है। ग्रह-दशा या किसी पूर्वजन्मके संस्कारके कारण मैं शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिसे बीमारियोंके चंगुलमें फँसता चला गया, जिसके कारण अहर्निश अशान्त एवं अव्यवस्थित-चित्त रहा करता और साथ ही मेरी चिन्ता भी बढ़ती जा रही थी। चौबीसों घंटेकी इस चिन्ताने मेरे शरीरको जर्जर करके रख दिया था। भोजनके बाद सोनेका प्रयास करता, किंतु स्वप्नोंसे घिर जाता।

पूरा शरीर रोगोंका घर बन गया था। प्रायः घुटनोंमें दर्द रहने लगा। रात-दिन सिरमें पीडा रहती। पाचनशक्ति नष्टप्राय हो चुकी थी। स्मरणशक्ति भी लुप्त हो रही थी। मानसिक संतुलन बिगड़ जानेसे हर समय क्रोधका आवेश रहता, जिससे मैं अधिकाधिक चिड़चिड़ा हुआ जा रहा था। चिन्ता और चिड़चिड़ेपनसे शरीरका रंग बिलकुल काला पड़ गया था। शरीरमें खुजली होने लगी थी और पूरा शरीर अस्थिमात्रका ढाँचा बन गया था।

मैंने शरीरके अनेक अवयवोंकी डॉक्टरी जाँच करायी, किंतु कोई भी बीमारी पकड़में नहीं आयी। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होम्योपैथिक—तीनों प्रकारकी दवाएँ लीं, किंतु रोगका निवारण सम्भव नहीं हो सका। गणेशपुरी (महाराष्ट्र) जाकर गन्धकके पानीसे कई दिनोंतक स्नान किया, लेकिन चर्मरोगपर भी नियन्त्रण नहीं पाया जा सका।

जीवनसे निराश होकर मैंने '**हारेको हरिनाम**' का सहारा लिया और तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। द्वारका एवं रामेश्वरकी तीर्थयात्राके बाद बदरीनाथ, केदारनाथ, गङ्गोत्री आदिकी यात्रा करता हुआ ऋषिकेश पहुँचा। वहाँ एक ऐसे सज्जनसे भेंट हुई, जिन्होंने आश्वासनपूर्वक बड़ी ही दृढ़ताके साथ कहा—'आप गोमूत्रका प्रयोग करें, समस्त व्याधियोंसे पूरी तरह मुक्त हो जायँगे।' उन्होंने मुझे बताया कि एक कप चायके बराबर गोमूत्रका सेवन किया जाय। उसे कपड़ेकी आठ तह करके छान लेना चाहिये और धीरे-धीरे अभ्याससे इसे बढ़ाकर पाव-डेढ़, पावतक लिया जा सकता है। कुछ गोमूत्रको धूपमें रखकर अगले दिन उसे शरीरपर मालिश करनेसे विविध रोगोंसे छुटकारा मिल सकता है।

मैंने पहले दिन एक कप गोमूत्र-पान किया तो मुझे उलटी हो गयी। मैंने दृढ़ संकल्प लेकर दूसरे दिन फिर पान किया तो वह पेटमें जाकर पच गया। सूर्यकी किरणोंके सामने रखे गोमूत्रसे पूरे शरीरमें मालिश भी प्रारम्भ कर दी। इस मालिशसे शरीरकी कड़ी चमड़ी नरम होने लगी।

गोमूत्रने कुछ ही दिनोंमें अपना चमत्कार दिखाना शुरू कर दिया। शरीरसे कफ निकलना शुरू हो गया। खाँसते-खाँसते मेरा बुरा हाल हो जाता था। गोमूत्रके सेवनसे खाँसी भी कम होती गयी। मैंने पारिवारिक चिकित्सकसे जाँच करायी तो उन्होंने बताया कि आपके स्वास्थ्यमें काफी बदलाव है तथा रोगोंपर तेजीसे नियन्त्रण हो रहा है। किंतु उन्होंने कुछ दिन गोमूत्र-सेवन रोक देनेका सुझाव दिया। मैं दुविधामें पड़ गया कि क्या करूँ? ऐसी स्थितिमें मैंने '**आखिर अन्तिम राम-सहारा**' इस संतवाणीका सहारा लिया। मुझे उसी समय एक संतद्वारा गोमाताके दुग्ध तथा गोमूत्रके महत्त्वपर दिये प्रवचनकी कुछ पंक्तियोंने निरन्तर गोमूत्र-सेवन करते रहनेको प्रेरित किया। उसी प्रेरणाके वशीभूत होकर मैं प्रतिदिन गोमूत्र, गोदुग्ध तथा गायके दही-मट्ठा आदिका प्रयोग करने लगा। एक वर्षके इस निरन्तर प्रयोगसे मेरा शरीर समस्त रोगोंसे पूरी तरह मुक्त तो हो ही गया—मानसिक तनाव, क्रोध तथा अन्य मानसिक व्याधियोंसे भी गोमाताने मुझे मुक्ति दिला दी।

मैंने यह भी अनुभव किया कि देशी भारतीय गायका मूत्र विशेष गुणकारी होता है। बच्चोंकी घुट्टीमें यदि गोमूत्रकी कुछ बूँदें मिलाकर पिलायें तो बच्चा अनेक रोगों—विशेषकर पेटके विकारसे मुक्ति पा लेता है। लगातार गोमूत्रका सेवन करनेसे रक्तका दबाव

स्वाभाविक हो जाता है। गोमूत्र पेटके समस्त विकारों, लीवरकी खराबीको दूर करके शरीरमें स्फूर्ति पैदा करता है।

गोमूत्र सबेरे खाली पेट सेवन करें तथा उसके बाद एक घंटेतक कुछ न लें।

[प्रेषक—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]

(२) मन्त्र-जापसे रोग-मुक्ति

इस घोर जड़वादी युगमें अनेक शिक्षित व्यक्ति मन्त्र, उपासना एवं ईश्वर-भक्तिके चमत्कारोंपर विश्वास नहीं करते। इन्हें केवल पाखण्ड और अन्धविश्वासमात्र समझते हैं; पर विश्वमें कई बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिनके रहस्यको खोजना विज्ञानके सामर्थ्यके भी बाहर होता है।

घटना पुरानी है। उन दिनों मैं अमरसर (जिला जयपुर, राजस्थान)-में विज्ञानके प्राध्यापक-पदपर कार्य कर रहा था। मेरे पड़ोसमें एक सज्जन रहते थे। आयु होगी साठ वर्षके लगभग। पेंशन पाते थे। इससे पूर्व राजकीय सेवामें थे। प्रकृतिसे सरल, सात्त्विक एवं आस्तिक।

एक दिन अकस्मात् वातव्याधि (Rheumatism)-ने उनपर आक्रमण किया। आक्रमण भयानक था। उनकी दक्षिण भुजा आक्रान्त हो गयी। उन्होंने समझा एक-दो दिनमें दर्द कम हो जायगा, पर रोग बढ़ता ही गया। डॉक्टरों-वैद्योंका इलाज भी चला, पर विशेष लाभ न हुआ। कई तरहकी होम्योपैथिक तथा आयुर्वेदिक दवाइयाँ दी गयीं, पर लाभ किंचिन्मात्र ही हो पाया। दिनमें कुछ आराम मिलता था, पर रात्रिमें फिर दर्द बढ़ने लगता। रोग धीरे-धीरे सारे शरीरमें फैल गया।

एक दिन सायंकालको मैं उनके पास ही बैठा था। उन्हें सान्त्वना दे रहा था।

वे कहने लगे—'रोग तो बढ़ता ही जा रहा है। मैं जीवित भी रह सकूँगा या नहीं; कह नहीं सकता। ईश्वरने न जाने, मुझे पूर्वजन्मके किन पापोंका दण्ड दिया है!'

मैंने आश्वासन देते हुए कहा—'घबराइये नहीं। ईश्वर सब ठीक करेगा। ईश्वर दीनबन्धु है, करुणानिधान है। विश्वास रखिये, ईश्वरकी कृपासे आप कुछ दिनोंमें पूर्णरूपसे स्वस्थ हो जायँगे। डॉक्टर-वैद्योंका इलाज तो आप करा चुके, अब डॉक्टरोंके भी डॉक्टरका इलाज कराइये।'

उन्होंने पूछा—'वह कौन है?'

मैंने कहा—'वह है परमपिता परमेश्वर! कल मैं आपको 'कल्याण'का '**मानसाङ्क**' दूँगा। उसका आप स्वाध्याय कीजिये और एक मन्त्रका स्वयं जप करिये और कराइये। मन्त्र यह है'—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

(रा०च०मा० ७। २१। १)

दूसरे दिन मैं उन्हें '**मानसाङ्क**' दे आया। वे उसका नित्य स्वाध्याय करने लगे और उपर्युक्त मन्त्रका जाप भी।

ईश्वरका चमत्कार देखिये—'उन्हें आरोग्य-लाभ होने लगा, हाथ-पैरोंका दर्द कम होने लगा और पंद्रह दिनोंमें ही वे उठने-बैठने तथा चलने-फिरने योग्य हो गये।

कितना भयंकर और दुःसाध्य रोग मानसके स्वाध्याय एवं मन्त्र-जापसे दूर हो गया। ईश्वरकी लीला अपरम्पार है।

आज वे पूर्णरूपसे स्वस्थ हैं। अब नियमित रूपसे रामायणका पाठ करते हैं। अपने आरोग्य-लाभकी मूल ओषधि वे इसी मन्त्रको मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक दोहेके जापसे भी उन्हें काफी लाभ हुआ है। वह है—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥

विपत्तिके समय इस मन्त्रके जापसे काफी लाभ होता है।

दृढ़ विश्वास, श्रद्धा, सच्ची प्रीति तथा आस्तिक भावना धारण करनेसे ईश्वर अवश्य ही भक्तोंके कष्टोंका निवारण करते हैं।

यह छोटी-सी पर महत्त्वपूर्ण घटना नास्तिकों तथा भौतिकवादियोंको भी आस्तिकताकी ओर प्रेरित करती है। धन्य ईश्वरकी महिमा!

(प्रो०—श्रीश्याममनोहरजी व्यास, एम्०एस्-सी०)

(३) पेट-दर्दका कारण—क्रोध

मेरे एक मित्रको बहुत समयसे पेटके दर्दका रोग था। बहुत-से डॉक्टरोंकी दवा की गयी। एक दिन एक युवक वैद्यराज मिले। वैद्यराजने मेरे मित्रकी शारीरिक परीक्षा की। फिर अबतक किन-किनकी, कौन-कौन-सी दवा दी गयी, यह हमलोगोंने उनको बताया। उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार पुड़िया तथा गोलियाँ दीं। यों कुछ दिन दवा हुई। मेरे मित्रको कुछ आरामका भी अनुभव होने लगा। दवा चालू रही, किंतु कुछ ही दिनों बाद दर्द बढ़ने लगा। तब मित्रने वैद्यराजसे कहा—'वैद्यराजजी! यह दर्द तो फिर शुरू हो गया। यों तो हमने बहुत वैद्य-डॉक्टरोंकी दवा करायी है। हम तो आपके पास इसलिये आये हैं जिससे रोग पूर्णरूपसे निर्मूल हो जाय।'

वैद्यराज कुछ देर तो विचार करते रहे। फिर उन्होंने कहा कि 'आप मेरा दवाखाना बंद हो, उससे पहले वहाँ अकेले ही आइयेगा; किसीको साथ न लाइयेगा।'

मेरे मित्र रोज रातको आठ, साढ़े आठ बजेके लगभग वहाँ जाते और बड़ी रात बीतनेपर लौटते। इस प्रकार दो महीने बीतनेपर उनको पूरा आराम हो गया और रोगसे मुक्ति मिल गयी।

मुझे भी आश्चर्य हुआ। अवश्य ही इन वैद्यजीके पास कोई ऐसी वंशानुक्रमकी जड़ी-बूटी होगी, नहीं तो कैसे रोग मिटता? अच्छे-अच्छे डॉक्टर भी मेरे मित्रको रोग-मुक्त नहीं कर सके थे। मैं उन वैद्यराजजीसे मिला और जड़ी-बूटीके सम्बन्धमें उनसे जानना चाहा। उन्होंने कहा—'मेरे पास कोई भी जड़ी-बूटी नहीं है तथापि आप रोगीके मित्र हैं, इससे आपको बता देता हूँ। आपके मित्र पढ़ते हैं। वे अपने बड़े भाई तथा भाभीके साथ रहते हैं। आपके पड़ोसमें एक आदमी ऐसा है जो इन भाईको परेशान करता रहता है।'

मैंने पूछा—'सो कैसे?'

वैद्यराजजीने कहा—'वह आदमी इन्हें हैरान करनेके लिये इनके भाईके नाम टाइप किये हुए बेनामी पत्र भेजता। उस पत्र-लेखकपर इनको बड़ा ही गुस्सा आता। पत्र लिखनेवालेको ये पहचानते थे। पर उसपर कैसे क्या इलज़ाम लगाकर उसे सीधा करना, इस विचारमें ये मिथ्या क्रोध करते रहते। उन्हें उठते-बैठते हरेक क्षण यही चीज मनमें डंक मारा करती। मुझसे जब यह बात आपके मित्रने बतायी, उस समय भी इनके मुखसे 'पत्र लिखनेवालेकी हड्डी खोखली कर दूँगा'—ऐसे उग्र शब्द निकल रहे थे और बड़े जोरसे ये मेरी टेबलपर हाथ पटक रहे थे।'

मैंने पूछा—'वैद्यराजजी! पत्रकी बातका रोगके साथ क्या सम्बन्ध है?'

वैद्यराजजी बोले—'सम्बन्ध है। आपको सारी बातें पूरी जाननी हैं तो सुनिये। काम, क्रोध, लोभ और मोह—मानस-रोगोंके उत्पन्न करनेवाले माने जाते हैं। ऐसी आयुर्वेदकी मान्यता है। आयुर्वेदमें भी मानस-चिकित्साका वर्णन है। आपके मित्रके रोगका कारण 'क्रोध' था। वे पत्र-लेखकपर बार-बार काल्पनिक क्रोध किया करते। फिर मैंने उनको उलाहना देते हुए कहा—'देखो भाई! एक मनुष्य कोई नीच काम करता हो तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। आप अपने काममें मग्न रहिये। जो आदमी आपको हैरान करनेके लिये कार्य करता हो, आप उसे महत्त्व देकर व्यर्थ क्रोध करते हैं, इसीसे पेटके दर्दसे पीड़ित रहते हैं। आप दुःखी होते हैं, यह देखकर आपको हैरान करनेवाले व्यक्तिको विशेष महत्त्व मिलता है। अतएव आपका मौन आपके इस शत्रुके लिये घोर अपमान है। अपने उसे मारनेका विचार भी किसलिये करें? अपने ऐसा विचार करना तो अपनी निर्बलता है। यदि आप क्रोध करना बंद नहीं करेंगे तो आपका यह रोग नहीं मिटेगा। अतएव मेरी सलाह मानकर इस बातको भूल जाओ।'

'आपके मित्रने मेरी सलाहको मान लिया। उस बातको धीरे-धीरे वे भूलते गये और इससे उनको रोगसे छुटकारा मिला। मूल निदान क्रोध था। आयुर्वेदमें रोगके निदानके लिये 'माधवनिदान' श्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। इस 'माधवनिदान' में वात, पित्त, कफ—किन कारणोंसे बढ़ते हैं, इसपर तीन श्लोक लिखे हैं। '**क्रोधात्**' शब्द लिखकर स्पष्ट बतलाया है कि 'क्रोधसे पित्त बढ़ता है।' आपके मित्र बारंबार क्रोध करते इससे उनमें पित्तकी वृद्धि होती। पित्तका तीक्ष्ण गुण ही साथ-ही-साथ बढ़ता और इसी कारण पेटमें दर्द होता। दूसरे चिकित्सकोंने पित्तशमनके लिये ओषधियाँ दीं, परंतु निदान-परिवर्जन न होनेके कारण रोग नहीं मिटता।'

(४) प्राकृतिक चिकित्साने मुझे नया जीवन दिया

मार्च १९८५ ई० की घटना है, दिन ठीकसे याद नहीं है। हम सपरिवार दक्षिण भारत घूमनेके लिये ट्रेनसे यात्रा कर रहे थे। ट्रेनमें रातको बैठे। सुबहसे ही मुझे डायरिया हो गया। शाम होते-होते तो मेरी हालत बहुत खराब हो गयी। ट्रेनसे उतरकर सबसे पहले मुझे डॉक्टरको दिखाने ले जाया गया। मुझे वहाँ भर्ती कर लिया। तीन बोतल ग्लूकोज चढ़ी और पाँच इंजेक्शन लगे। तीन घंटेमें मैं अपनेको इतना स्वस्थ महसूस करने लगी कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं। यह है ऐलोपैथीका जादुई असर, मगर अस्थायी लाभ। दवासे मेरा रोग कुछ समयके लिये दब गया, खैर किसी तरह यात्रा सम्पन्न हुई। पंद्रह दिन हम घूमकर घर लौटे। घर आनेपर हर एक-दो महीनेमें डायरिया, दस्त, पेचिस होती रहती, दवा लेनेपर ठीक हो जाती, फिर महीने-डेढ़-महीनेमें अक्सर खूनके दस्त हो जाते। कई टेस्ट, एक्स-रे हुए, सही निदान नहीं हो पाया। आखिरमें दूरबीनकी जाँच सिग्मोडॉस्कॉपी हुई। वायोप्सी करवायी, बड़ी आँतके डिसेडिंग कॉलनमें घाव हो गये। जिसके कारण खूनके दस्त होते थे। रोगका नाम अल्सरेटिव कॉलाइटिस (बृहदान्त्र व्रण) बताया। इस रोगका कोई स्थायी इलाज नहीं बताया। उस समय मेरी उम्र मात्र पच्चीस वर्ष थी। समझमें नहीं आता था कि क्या करें।

दूसरे इलाज भी करवाये। जयपुरके जाने-माने डॉक्टरने आठ सालतक इलाज किया। दो-तीन महीने बिलकुल ठीक रहती, फिर एक-दो महीने खून-दस्त प्रतिदिन होती। डॉक्टर हर साल छः महीनेमें दूरबीनकी जाँच कॉलोनोस्कॉपी करते। सालमें आठ महीने कुछ ठीक तो चार महीने बीच-बीचमें खूनी दस्तोंका दौरा चलता रहता। हर तरहका इलाज कराती हुई जीवनयात्राका सफर तय कर रही थी। मेरे साथ परिवारवाले भी परेशान थे। अप्रैल १९९६ को डॉक्टरोंने जाँच की। रोगकी बढ़ी हुई असामान्य स्थिति देखकर जवाब दे दिया। आखिरमें स्थिति यहाँतक आ गयी कि ऊँची-से-ऊँची एलोपैथी दवाइयों तथा बड़े-बड़े डॉक्टरोंने हार मान ली, निराशा व्यक्त कर दी।

सब तरफसे दरवाजे बंद हो चुके थे। 'तन जर्जर मन हताश' चित्त निराश, भयंकर रोगसे ग्रस्त तिल-तिलकर मरनेको अभिशप्त थी। परिवारपर मानो निराशाका पहाड़ टूट पड़ा हो। सभीके दिलोंसे खुशी, उमंग, सुख मानो गायब हो गया हो, परंतु ईश्वरपर बचपनसे ही विश्वास था। मनमें ऐसे भाव बार-बार आते कि किसी जन्ममें किये हुए पापोंकी सजा बीमारीके रूपमें भुगतकर पापमुक्त हो रही हूँ। भगवान् भी पापमुक्त होनेपर, शुद्ध होनेपर ही अपनाता है। इन विचारोंसे मनमें कुछ शान्ति, रोगको सहन करनेकी शक्ति मिलती। भजनकी ये पङ्क्तियाँ बार-बार अन्तर्मनसे निकलतीं—

दुख चाहे कितने ही दे दुख सहनेकी शक्ति दे।
संकटमें भी ध्यान न छूटे भक्तिकी तू मुझे दौलत दे॥

मैंने महसूस किया कि सच्चे दिलसे निकली पुकार भगवान्के सिंहासनको भी हिला देती है। बढ़ी हुई बीमारीकी अवस्था भी मुझे सहज लगने लगी।

इसी बीच भगवदिच्छासे हमें निराश रोगियोंके तीर्थस्थल नवनीत प्राकृतिक चिकित्साधाम बस्सीके बारेमें उत्साहजनक परिणाम सुननेको मिले। घर, परिवारवालोंको तो जबतक साँस रहती है, तबतक अपने स्वजनके प्रति स्वस्थ होनेकी आशा रहती ही है, ऐसी ही आशा संजोकर मुझे निराश रोगियोंके तीर्थस्थल बस्सी लाया गया।

डॉक्टरने मुझे धैर्यपूर्वक देखा, रोग अपनी चरम सीमापर पहुँच चुका था। डॉक्टर साहबने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—धैर्यपूर्वक लम्बे समयतक इलाजकी आवश्यकता है। मुख्य बात है कि आप निराश न होकर, स्वास्थ्यके प्रति आशावादी विचार हमेशा बनाये रखें। प्राकृतिक चिकित्सामें उपचारके दौरान दवाओंद्वारा दबायी हुई बीमारी बाहर निकलती है। अतः पूर्ण धैर्य रखना होगा।

हमें सब कुछ सहर्ष स्वीकार था; क्योंकि अन्य द्वार मेरे स्वास्थ्यके लिये बंद-से हो चुके थे। सभी दवाइयाँ बंद कर दी गयीं और उपचार प्रारम्भ हुआ। मैं तो अपने जीवनसे निराश-सी हो चुकी थी, पर

डॉक्टर साहबने धैर्य बँधाते हुए कहा कि 'मेरा पूरा विश्वास है कि आप बिलकुल ठीक हो जायँगी। धैर्य एवं शीघ्र स्वस्थ होनेके आशावादी विचार ही बनायें, निराशाको मनसे बिलकुल निकाल दें। डूबतेको जैसे तिनकेका सहारा मिल जाय, वैसे ही उनके आश्वासनने मेरे मृतवत् शरीरमें संजीवनीका कार्य किया।

यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसी दिनसे मुझे धीरे-धीरे स्वास्थ्यलाभ मिलना शुरू हुआ। लगभग पूरे महीनेतक चिकित्साका क्रम चलता रहा। अब खूनी दस्त प्रायः बंद हो गये थे। कुछ ही दिनोंमें मुझे अच्छा लाभ हो गया। इधर लगभग पूरे चार वर्ष मुझे प्राकृतिक चिकित्सा लिये हो गये हैं। इन चार वर्षोंमें कोई दवाकी आवश्यकता नहीं हुई। प्राकृतिक चिकित्साके अध्ययनसे मुझे यही कहना है कि अगर आपको स्वस्थ एवं रोगमुक्त रहना है तो गलत आहार-विहार एवं गलत चिन्तनको छोड़ें। सम्यक् आहार-विहार एवं सम्यक् चिन्तनको जीवनसे जोड़ें। प्राकृतिक चिकित्सा सही जीवन जीनेकी कला सिखाती है। यह केवल तनकी ही चिकित्सा नहीं है, अपितु मनको भी स्वस्थ रखती है, विकाररहित बनाती है। मनको अनुशासित एवं संयमित रहना सिखाती है। जिन पञ्चतत्त्वोंसे शरीर बना है, उन्हीं पञ्चतत्त्वों (मिट्टी, पानी, धूप, हवा और आकाश)-का सम्यक् सेवन कर शरीरको नीरोग रखना—यही एकरूपता एवं सजातीयता प्राकृतिक चिकित्साकी मुख्य विशेषता है।

(—निर्मला सोमानी)

(५) श्रीभगवच्चरणामृतसे रोगमुक्ति

उदासीन सम्प्रदायके सुविख्यात संत स्वामी श्रीरमेशचन्द्रजी महाराजका एक बार पिलखुवामें गीता-प्रवचनका आयोजन किया गया था। उस समय स्वामीजीने मुझे श्रीभगवच्चरणामृतसे अपने रोग-मुक्त होनेकी सच्ची घटना सुनाते हुए बतलाया—

जुलाई सन् १९५२ ई० में मैं टाइफॉइड ज्वरसे ग्रस्त हो गया। मेरे परिवारके लोगोंने नगरके बड़े-बड़े डॉक्टरोंको दिखाया, उनकी दवा दिलायी किंतु रोग बढ़ता ही गया। मेरा शरीर ज्वरके कारण हलदीकी तरह पीला पड़ता गया। पूरा शरीर जर्जर होकर अस्थियोंका ढाँचा बन चुका था। मैं दो माहतक रोगसे जूझता रहा। सितम्बरके दूसरे सप्ताहमें डॉक्टरोंने मेरे रक्त, मल-मूत्र तथा फेफड़ोंकी जाँचके बाद मेरे परिवारवालोंसे कह दिया—'अब इन्हें बचाना असम्भव है।'

अन्तमें एक वयोवृद्ध आयुर्वेदाचार्य वैद्यजीको दिखाया गया। उन्होंने परामर्श दिया कि अब इन्हें—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

—के आधारपर श्रीभगवच्चरणामृतका पान कराओ। स्वतः रोगनिवारण हो जायगा तथा शरीर पूर्णरूपेण नीरोगी बन जायगा।

मैंने तमाम अंग्रेजी तथा देशी औषधियोंका त्याग करके चरणामृत ग्रहण करना शुरू कर दिया और भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहके समक्ष संकल्प किया—'यदि आपने मेरे प्राण बचाये तो इस शरीरको जीवनभर आपके गुणगान तथा गीता-प्रवचनके लिये समर्पित कर दूँगा।'

जिस दिनसे मैंने भगवान्‌का चरणामृत पीना शुरू किया उसी दिनसे चमत्कारिक ढंगसे मेरी स्थिति सुधरनी शुरू हो गयी। एक सप्ताहके अंदर मेरा ज्वर बिलकुल उतर गया। पंद्रह दिनके बाद अस्पताल जाकर डॉक्टरोंसे शरीरकी जाँच करायी गयी। डॉक्टरोंके पैनलने जाँचके बाद आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—'इन्हें तो टाइफॉइड ज्वरसे अधिक घातक माल्टा ज्वर हो गया था—फिर बिना औषधिके केवल चरणामृतसे दूर कैसे हो गया?'

लगभग एक माहमें मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। इसके उपरान्त मैंने अपने शेष जीवनको भगवान् श्रीकृष्णका कृपा-प्रसाद मानकर गीताके प्रचार-प्रसारमें समर्पित कर दिया। [प्रेषक—शिवकुमारजी गोयल]

'कल्याण' के अनुभूत प्रयोग

['कल्याण' के पुराने अङ्कोंमें समय-समयपर विभिन्न रोगोंकी चिकित्साके घरेलू अनुभूत प्रयोग प्रकाशित होते रहे हैं। ये प्रयोग अत्यन्त उपयोगी भी सिद्ध हुए हैं, इन्हें यहाँ सर्वसाधारणकी सुविधाके लिये संकलित कर प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है पाठकगण इनसे लाभान्वित होंगे—सम्पादक]

(१) बुढ़ापेके कष्टोंसे बचनेके कुछ अनुभूत उपाय

'कल्याण'के लाखों पाठकोंमें वृद्ध लोगोंकी संख्या भी पर्याप्त होगी। उनमें भी बहुत-से लोग ऐसे भी होंगे जो ६०-७० की अवस्था पार कर गये होंगे। इन वयोवृद्ध लोगोंको बुढ़ापेकी तकलीफें बहुत सता रही होंगी। इन तकलीफोंसे बचने या इन्हें कम करनेके लिये समय-समयपर विद्वान् लोगोंने अपने-अपने अनुभवके आधारपर अनेकानेक उपाय बतलाये हैं, उनमेंसे कुछका प्रयोग लेखकने भी करके देखा है और उनसे पर्याप्त लाभ उठाया है। अत: 'कल्याण'के प्रेमी वृद्ध पाठक भी उनसे लाभ उठावें—इस विचारसे उनमेंसे कुछ अनुभूत उपाय संक्षेपमें नीचे दिये जा रहे हैं। आशा है इनके प्रयोगसे उन्हें स्वास्थ्य-लाभ होगा और उनके बुढ़ापेके कष्ट बहुत-कुछ अवश्य ही कम हो जायँगे।

(१) टहलना—जो लोग चल-फिर सकते हैं, उन्हें चाहिये कि प्रतिदिन प्रात:काल उठकर सूर्योदयके पूर्व २-४ मील या जितना हो, जल्दी-जल्दी हो सके, टहल आया करें। हो सके तो शामको भी टहल आवें। इससे शरीरके रक्तका दौरा ठीक होता है और शरीरमें फुर्ती आती है। बुढ़ापेके कष्टोंसे बचनेका यह उत्तम उपाय है। यह क्रिया दीर्घायुके लिये अति उत्तम है। जो बाहर न जा सकें, वे घरमें छतपर टहल सकते हैं।

(२) चबाकर खाना—बुढ़ापेमें पेटको साफ रखना बहुत जरूरी है। दवाइयोंके सेवनसे यह काम ठीक नहीं होता। बहुत दवाइयाँ आँतोंको कमजोर कर देती हैं, जिससे पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है। इसके लिये सबसे अच्छा उपाय है—भोजनमें साग-सब्जीका अधिक प्रयोग करना और भोजनको धीरे-धीरे खूब चबा-चबाकर खाना। दाँत न हों या ढीले पड़ गये हों तो नरम भोजन करना, पर खूब कुचलना या चुभलाना न भूलें। ऐसा करनेसे आँतोंको अन्न पचानेमें सहायता मिलती है और आँतें मजबूत रहती हैं, पाखाना साफ होता है और ठीक भूख लगती है। जिनको मिल सके, देशी फलोंका और हरी साग-सब्जीका सेवन अधिक करें, पर खूब चबाकर खायँ। कलेवाकी जगह प्रात:काल फल खाना अधिक अच्छा होता है। भोजनमें भूखसे एक रोटी कम ही खानेकी कोशिश करें। भरपेट या अधिक कदापि न खायँ। इससे शरीर हलका रहेगा और आयुमें वृद्धि होगी।

(३) पेय पदार्थ धीरे-धीरे पीना—प्राय: लोग पानी अथवा दूध इत्यादि पेय पदार्थ एकदम गटगट पी जाते हैं। यदि वे प्रत्येक पेय पदार्थको धीरे-धीरे चायकी तरह पीया करें और साथ ही घूँटको मुँहमें कुछ देर चुभला लिया करें तो वह पदार्थ उन्हें अधिक हितकर होगा और नुकसान न करेगा। थोड़ा-थोड़ा करके दिनभरमें ५—७ गिलास जल अवश्य पीना चाहिये। इससे कोष्ठबद्धता न होगी और स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

(४) शरीरकी मालिश—शरीरकी मालिश कराने या तेल मलवानेसे भी काफी लाभ होता है। इससे खूनका दौड़ा ठीक होता है, शरीरमें फुर्ती आती है। रोज समयपर एक-आध घंटा इस क्रियाको करनेसे आयु बढ़ती देखी गयी है।

(५) गहरी साँस—गहरे श्वाससे मतलब है—लम्बी और गहरी साँस लेना। प्रत्येक मनुष्य प्रति मिनट १३-१४ साँस लेता है और निकालता है। कोशिश यह करनी चाहिये कि रोज अभ्यास करते-करते उसे १०-१२ साँस ही प्रति मिनट लेनेकी आदत पड़ जाय। गहरी नींदमें सोते समय जैसे धीरे-धीरे और गहरी साँस

चलती है, वैसे चलानेकी कोशिश की जाय। कहते हैं लोगोंकी आयु श्वासकी संख्यापर निर्भर रहती है, चाहे उन्हें आप धीरे-धीरे लेकर १०० वर्षमें पूरी करें या जल्दी-जल्दी लेकर ६०-७० वर्षमें ही संख्या पूरी कर लें। योगी लोग प्राणायाम या समाधिद्वारा साँस रोककर बहुत लम्बी आयु प्राप्त करते देखे गये हैं। बस, धीरे-धीरे खूब गहरी साँस गलेतक भरने और धीरे-ही-धीरे पूरी साँस (नाभितक) निकाल देनेका अभ्यास डालना चाहिये। यह काम एकदमसे नहीं हो सकता। पर जब-जब याद आवे, तब-तब ऐसा करनेका प्रयत्न करें तो साल-छः महीनेमें कुछ-न-कुछ आदत पड़ ही जायगी। यह क्रिया आयु बढ़ानेके सिवा शरीरके रक्तको ज्यादा साफ करेगी, जिससे अनेक छोटे-मोटे रोग न होने पायेंगे और पाचन-क्रिया भी प्रदीप्त होगी। दिनमें काम करते हुए अथवा कुर्सीपर बैठे-बैठे जब याद आये, १०—१५ गहरी साँसें लेनेसे थकावट मिटती है और बड़ी शान्ति मिलती है। रातमें सोनेसे पूर्व इस क्रियासे नींद जल्दी आ जाती है। इसे रोज सबेरे १५—२० मिनट करनेसे शरीरके तमाम रोग मिट जाते हैं, भाग जाते हैं और रक्त शुद्ध होकर आयु बढ़ती है। सर्दी, खाँसी, जुकाम, पेटदर्द, सिरदर्द आदि सब गायब हो जाते हैं। पर इसके साथ ब्रह्मचर्यका भी खयाल रखना अति आवश्यक है। यदि विद्यार्थी एवं अन्य युवा वर्गके लोग भी इसे करें तो उन्हें टी०बी० (राजयक्ष्मा)-की बीमारी कभी न होगी।

इसी सम्बन्धकी एक क्रिया और है जिसे 'भस्त्रिका प्राणायाम' कहते हैं। इस क्रियामें साँस गहरी तो भरी जाती है, पर तेजीके साथ नाकद्वारा भरी और निकाली जाती है। नाकद्वारा खूब तेजीसे भरना और उसे तेजीसे निकालना, कहीं रोकना नहीं। इस क्रियासे भी बहुत लाभ होता है। अनेक बड़ी-बड़ी वायुविकारकी बीमारियाँ इससे दूर हो जाती हैं। इसे महीने-दो-महीने शुरूमें केवल २-३ मिनट करना ही काफी है। थकावट मालूम होते ही रोक देना चाहिये। बहुत बीमार और हृदयके कमजोर व्यक्तिको इसे नहीं करना चाहिये। सामर्थ्य होनेपर इसे ज्यादा-से-ज्यादा ५ मिनटतक बढ़ाया जा सकता है। यदि अधिक करनेकी इच्छा हो तो शामको भी खाली पेट कर सकते हैं। यह बहुत ही लाभकारी क्रिया है। इससे अनेकानेक रोगोंका नाश होता है। शारीरिक शक्ति बढ़ती है और यह आयुवर्धक भी है। प्रत्येक पाठकको इस क्रियाको थोड़ी-थोड़ी, पर नियमित रूपसे करके लाभ उठाना चाहिये।

(६) सूर्यस्वर—जब दाहिना स्वर चलता हो, तब भोजन करनेसे वह जल्दी पच जाता है और किसी प्रकारकी हानि नहीं करता। इसलिये याद रखकर जब दाहिना स्वर चलता हो, तभी भोजन करना चाहिये और जल अथवा कोई पेय पदार्थ पीना हो तो यथासम्भव जब बायाँ स्वर चलता हो, तब पीना लाभदायक होता है। कुछ दिन याद रखकर इस क्रियाको करें तो धीरे-धीरे आदत पड़ जायगी। (आवश्यकता पड़नेपर दाहिने-बायें करवट लेकर अथवा नासाछिद्रमें रूई लगाकर इच्छानुसार साँस बदली जा सकती है।) इसी प्रकार दाहिने स्वरमें पाखाने जायँ तो शौच साफ होता है। मूत्रत्याग यथासम्भव बायें स्वरमें करना चाहिये। इस क्रियाके करनेसे पेटके विकार न होंगे, भोजनमें रुचि होगी, चित्त प्रसन्न होगा, स्वास्थ्य ठीक रहेगा। कहा भी है—

दिनको तो चंदा चले, चले रातमें सूर।
यह निश्चय कर जानिये, प्रान गमन बहु दूर॥
बायीं करवट सोइये, जल बायें स्वर पीव।
दहिने स्वर भोजन करे, सुख पावत है जीव॥

(७) आसन—आसन तो सभी अच्छे हैं, परंतु स्वास्थ्यको सुधारकर आयुको बढ़ानेवाले कई आसन गृहस्थोंके लिये बहुत ही उपयोगी हैं—जैसे सिद्धासन, पद्मासन, पश्चिमोत्तान आसन और शीर्षासन आदि। ये आसन वैसे कठिन नहीं हैं और प्रायः सब लोग इन्हें आसानीसे कर सकते हैं। प्रारम्भमें बहुत थोड़ी देर, मिनट-दो-मिनट करना चाहिये। अभ्यास परिपक्व हो जानेपर धीरे-धीरे इनका समय बढ़ाते जायँ। कोई जानकार बतलानेवाला मिल जाय तो अत्युत्तम है, अन्यथा आसनोंकी कोई अच्छी पुस्तक लेकर देख लेनी

चाहिये। बहुत बूढ़े और कमजोर तथा बीमार लोगोंको शीर्षासन नहीं करना चाहिये। योगी लोग अपनी आयु आसनों और प्राणायामोंके द्वारा बहुत बढ़ा लेते हैं। हमें तो पश्चिमोत्तान आसन बहुत सरल तथा हितकर मालूम होता है। प्रात:काल खाली पेट ५-७ मिनट रोज करते रहें तो स्वास्थ्यमें अद्भुत परिवर्तन हो जाय। इससे रीढ़की, पेटकी तथा सारे शरीरकी पूरी कसरत हो जाती है और सारे शरीरका खून तेजीसे दौड़ने लगता है।

(८) **खाद्य पदार्थ**—कतिपय ओषधियाँ और खाद्य पदार्थ भी ऐसे हैं, जो स्वास्थ्यके साथ-साथ आयु बढ़ानेमें सहायक होते हैं, परंतु उनके सेवनके साथ-साथ कुछ शारीरिक परिश्रम भी करना आवश्यक होता है। गेहूँका दलिया, भिगोकर अंकुर निकले हुए चने, गेहूँ, मूँग आदिका सेवन बहुत हितकर है। जिसकी पाचनशक्ति ठीक हो उसके लिये उर्द बहुत शक्ति देनेवाला अन्न है। फलोंमें गाजर, अमरूद, केला, सेब, अनार, संतरा, अंगूर, नीबू, सिंघाड़ा, बेल, आँवला, खजूर, हरे चनेके बूट आदि सभी स्वास्थ्य और आयुवर्धक हैं। इसी प्रकार त्रिफला, च्यवनप्राश, दूध, दही, उषापान और तरह-तरहके मेवे आदि भी बहुत लाभ करते हैं, पर साथ-साथ शारीरिक परिश्रम भी माँगते हैं, तभी शक्ति आती है। उपर्युक्त सभी विषयोंपर सामयिक पत्रोंमें अच्छे-अच्छे लेख यदा-कदा निकला करते हैं और अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। अत: विस्तृत जानकारीके लिये उनका भी अवलोकन करना चाहिये।

(९) **व्यायाम तथा विश्राम**—अधिक वृद्धावस्थामें व्यायाम तो हो नहीं सकता, परंतु उसकी बहुत कुछ पूर्ति ऐसे कार्य करते रहनेसे हो सकती है, जिनसे शरीरके अङ्गोंको कुछ श्रम पड़ जाय, विशेषकर-पेट और रीढ़को। ऐसे हलके काम करें, जिनमें थोड़ा-बहुत झुकना पड़े, हाथ-पैर चलाने पड़ें। थकावट लानेवाले काम न करें। हाँ, जिनमें कुछ शक्ति हो वे रोज सबेरे-शाम दस-बीस बार उठें-बैठें, दस-बीस कदम दौड़ें अथवा और कोई हलका व्यायाम करें। पर करें रोज, नियमसे करें, एक दिनका भी नागा न होने पाये। थकावट मालूम होते ही थोड़ी देर आराम कर लें, किसी क्रियामें अति न करें। बहुत-से लोग जवानीभर खूब मेहनत तथा व्यायाम करेंगे, पर बुढ़ापेमें एकदम बंद कर देंगे, इससे हानि पहुँचती है। धीरे-धीरे कम करते हुए थोड़ा-थोड़ा नियमित व्यायाम बुढ़ापेमें भी जारी रखें। इससे बुढ़ापा कम दु:खदायी होगा और आयु बढ़ेगी। सूर्यनमस्कारवाला व्यायाम भी बहुत लाभदायक है, परंतु बुढ़ापेकी कमजोरी आनेके पूर्व ही इसकी आदत डाल लें तो बहुत अच्छा हो।

इसीके साथ वृद्धावस्थामें विश्राम करना भी बहुत जरूरी है। रात्रिके अतिरिक्त दिनमें भी घंटे-दो-घंटे बिस्तरपर स्वस्थ, निश्चिन्त पड़कर विश्राम कर लेना चाहिये। भोजनके बाद तो अवश्य ही आधे घंटेका विश्राम जरूरी है। ज्यादा बकझक करनेसे, क्रोध करनेसे, दौड़-धूप करनेसे, अधिक पढ़ने-लिखने तथा बातचीत करनेसे शक्तिका ह्रास होता है। विश्रामसे शक्ति वापस लौट आती है। इसलिये अधिक बुढ़ापेमें अधिक विश्राम करना ही चाहिये। छोटे बच्चोंके साथ खेलनेसे मन-बहलाव हो जाता है। सदा प्रसन्न रहनेसे भी प्रचुर मात्रामें शारीरिक एवं मानसिक विश्रामके साथ-साथ स्वास्थ्य-लाभ भी होता है।

(१०) **अपक्व भोजन**—अपक्व भोजनसे मतलब है जो आगपर न पकाया गया हो—जैसे भिगोये हुए गेहूँ, चने, मूँग आदि, तरह-तरहके फल, कच्चे कंद-मूल, मूली, गाजर आदि, कच्चा ताजा दूध (शर्करारहित), हरे मटरकी फली, कच्ची ताजी साग-सब्जी, कच्ची तोरई, लौकी, टमाटर आदि सब कच्चे ही खाये जायँ, कोई चीज आगपर पकायी न जाय। कहते हैं, बिलकुल अपक्व भोजनसे शरीर स्वस्थ रहता है और आयु दीर्घ होती है। एक गाँधीभक्त आस्ट्रियनने अपनी पुस्तक 'Eternal Youth'-में लिखा था कि अपक्व भोजनसे मनुष्य दो-तीन सौ वर्षतक स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रह सकता है। १७ वर्षोंसे वह स्वयं अपक्व भोजनपर जीवन निर्वाह कर रहा है। ऐसे महात्मा लोग डेढ़-दो

सौ वर्षकी आयुके देखे गये हैं, जो केवल कन्द-मूल एवं फलादिके सिवा और कुछ नहीं खाते। कई तो केवल बेल-फलपर ही निर्वाह करते देखे गये हैं, जो सौ-डेढ़ सौ वर्षकी आयुमें भी हट्टे-कट्टे जवान बने हुए हैं। प्रत्येक युवा मनुष्य धीरे-धीरे पके अन्नकी मात्रा दिन-प्रतिदिन कम करते हुए साल-छ: महीनेमें अपक्व भोजनकी आदत डाल ले तो वह भी स्वस्थ दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है।

(११) बिस्तरपरकी कसरतें (Bed Exercises)—ऊपर बुढ़ापेमें स्वास्थ्य कायम रखने और जवानी लानेके लिये कई उपाय लिखे गये हैं, ऐसे ही और भी अनेक उपाय हैं, परंतु हम अब एक बहुत ही उत्तम उपाय लिखकर इस लेखको समाप्त करेंगे—इसे 'बिस्तरपरकी कसरतें' कहना चाहिये। एक अमेरिकनने अपनी पुस्तक (Old Age, Its Cause and Preventions)-में बहुत विस्तारके साथ इसका वर्णन किया है। वह कहता है कि ५० वर्षकी अवस्थामें वह बहुत बूढ़ा तथा कमजोर हो गया था। डॉक्टरोंने कह दिया था कि 'दो-चार वर्षमें बूढ़े होकर मर जाओगे।' उसने दवाइयाँ बहुत खायीं, पर लाभ न हुआ। अन्तमें निराश होकर उसने अपना काम-धंधा छोड़कर नीचे लिखे जा रहे एक उपायपर अमल किया तो उसे बहुत लाभ मालूम हुआ। यहाँतक कि ७२ वर्षकी अवस्थामें वह फिर जवान हो गया और उसने ८ मीलकी दौड़में बाजी मारी। उसने दवाइयोंकी बहुत निन्दा की है।

यह उपाय बहुत सरल है। इसमें कोई खर्च नहीं है, न बहुत परिश्रम ही करना पड़ता है और न समय ही बहुत लगता है। यह क्रिया या उपाय क्या है—एक प्रकारकी अँगड़ाई है, जिससे सब अङ्गोंमें खून तेजीसे दौड़ने लगता है और शरीरमें फुर्ती आ जाती है। रोज-रोज नियमित रूपसे केवल १०-१५ मिनट भी ऐसा करता रहे तो कुछ दिनोंमें जवानी-सी आने लगती है। हम इसे बराबर कर रहे हैं और लाभ उठा रहे हैं।

सबेरे सोकर उठते ही बिस्तरपर चित्त पड़े-ही-पड़े, तकिया हटाकर इन कसरतोंको करना पड़ता है। तख्त या फर्शपर और भी अच्छा है। स्वभावत: लोग सबेरे उठते ही अँगड़ाई लेते हैं, उसीका यह विशद रूप है। इसमें बिस्तरपर पड़े-ही-पड़े एक-एक करके प्रत्येक अङ्गको तानना (कसना) और २-४ सेकेंड बाद एकदम ढीला छोड़ देना पड़ता है। मुट्ठी कसकर दबाओ तो हथेलीका खून ऊपर कलाईमें दौड़ जाता है और एकदम ढील देनेपर खून तेजीसे लौट आता है। इसी प्रकार शरीरके प्रत्येक अङ्गको बारी-बारीसे अकड़ाने (तानने) और ढीला करनेपर वहाँका खून दौड़ता है। बुढ़ापेमें नसोंके अंदर मल जम जाता है और नसें कड़ी पड़ जाती हैं, इसीसे बुढ़ापा आता है। इस क्रिया (Contraction and Relaxation)-से वह मल धीरे-धीरे खूनको दौड़ानेके साथ साफ होता जाता है, हटता जाता है और नसें नरम तथा लचीली होने लगती हैं, जो जवानीकी निशानी है। उक्त अमेरिकनका कहना है कि नसोंके अंदर मल न जमने पाये तो बुढ़ापा आयेगा ही नहीं। दवाइयोंसे यह काम हो नहीं सकता, केवल परिश्रमसे तथा खूनकी दौड़ानसे यह सफाई ठीक होती है।

अत: आप भी ऊपरसे शुरू करके नीचेतक शरीरके प्रत्येक अङ्गको रोज सबेरे तानकर (अकड़ाकर) एकदम ढीला कर दीजिये तो आपका बुढ़ापा कुछ दिनोंमें भागना शुरू करेगा और धीरे-धीरे जवानी (शक्ति) आने लगेगी। हाथ, गर्दन, कंधा, कमर, पेट, पीठ, पैर आदि एकके बाद एक ताने जा सकते हैं। मुँहके जबड़े, दाढ़ी, कनपटी, हथेली, भुजाएँ, पैरकी पिंडली, पंजे आदि भी ताने जा सकते हैं। ऐसे ही और भी जो-जो अङ्ग आप तान सकें, तानिये, इधर-उधर फैलाइये, घुमाइये, करवट लीजिये। बहुत थकनेकी जरूरत नहीं है। थकावट मालूम हो तो बीच-बीचमें एक आध मिनट सुस्ता लीजिये, दम ले लीजिये, हर एक अवयवको तानना और ढीला करना यही इस क्रियाका उद्देश्य है। सम्पूर्ण क्रियामें १०-१५ मिनट लगते हैं, परंतु इससे लाभ अपूर्व होता है, प्रारम्भमें प्रत्येक अङ्गको २-४ बार तानकर ५-७ मिनटमें खतम कर दीजिये। बादमें अभ्यास परिपक्व हो जाय, तब

संख्या धीरे-धीरे बढ़ाते-बढ़ाते १०-१२ तक ले जाइये। हम तो इस क्रियाके बाद चित्त पड़े-पड़े टाँगोंको ऊपर उठाकर दस-बीस बार हवामें साइकिल-जैसी चलाते हैं। इससे पेट एवं टाँगोंकी अच्छी कसरत हो जाती है और पाखाना भी साफ होता है।

आप इन कसरतोंको एक-दो महीना करके देखिये कैसा लाभ होता है। प्रत्येक अङ्गको तानते समय यदि थोड़ी-सी साँस रोक ली जाय और ढील देते समय धीरे-धीरे निकाल दी जाय तो जल्दी लाभ होगा, इसे खुली हवामें अथवा खिड़कियाँ खोलकर करना चाहिये। बहुत ठंढके दिनोंमें कंबल ओढ़े हुए भी बहुत कुछ कर सकते हैं, पर मुँह खुला रहे। बैठकर भी ये क्रियाएँ की जा सकती हैं।

आप इस क्रियाको आलस्य त्यागकर नियमितरूपसे करते रहेंगे तो बुढ़ापेके कष्ट बहुत कुछ कम हो जायँगे। बूढ़े लोगोंके लिये यह बड़े कामकी चीज है। ५०-६० वर्षके बूढ़ोंको इसे अवश्य करके लाभ उठाना चाहिये। ७०-७५ वर्षके जर्जर बूढ़े भी धीरे-धीरे कर सकते हैं। विशेष विवरणके लिये उपर्युक्त पुस्तक देखनी चाहिये। अमेरिकन लेखकका नाम है—सेनफोर्ड बेनेट (Sanford Bennet)। पुस्तक अमेरिकाकी छपी है।

(श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय, ए०एम्०टी०आई०, साहित्यभूषण)

---

(२) रक्तचापकी दवा—एक अद्भुत बूटी

जटामासीका उपयोग निद्रा लानेवाली तथा हृदयको तात्कालिक बदलनेवाली एक अच्छी ओषधिके रूपमें किया जाता है। आयुर्वेदमें जटामासीका प्रयोग अत्यन्त प्राचीन कालसे पाया जाता है। बढ़े हुए रक्तचापको घटानेमें तथा हृदयको स्थायी बल देनेमें इसका प्रभाव अद्भुत है। यह शरीरके अङ्गोंमें उठनेवाले आक्षेपोंको दूर करती है तथा स्नायविक दौर्बल्यकी अवस्थामें शक्तिवर्द्धकके रूपमें काम करती है।

यूरोपके सबसे प्राचीन ग्रन्थ हिप्पोक्रेटके औषधविधान (फार्मकोपिया)-में भी इसका उल्लेख है। इसका ज्ञान सर्पगन्धासे भी पहले लोगोंको हुआ, ऐसा कहा जाता है। मे०जे० बॉवरद्वारा प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थोंमें इस सुगन्धित बूटीका उल्लेख है। यह हस्तलिखित ग्रन्थ वास्तवमें अत्यन्त प्राचीन है। खोतान (पूर्वी पाकिस्तान)-के कच्चा नामक स्थानमें प्रवास करते समय मेजर जेनरल एच० बॉवरको वहाँके एक निवासीने उपहारके रूपमें यह बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ दिया था, जो अबतक पृथ्वीके नीचे गड़ा पड़ा था। मेजर जेनरल बॉवरने अपनी ओरसे उसको बंगालकी 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' के तत्कालीन सभापतिको भेंट कर दिया। डॉ० हार्नल कुछ वर्षोंके कठिन परिश्रमके बाद उस हस्तलिखित ग्रन्थको पढ़नेमें सफल हुए। पीछे वह पुस्तकाकारमें प्रकाशित हुआ।

कहा जाता है कि कच्चाके पास किसी मठमें साधुओंके द्वारा समय-समयपर यह हस्तलिखित ग्रन्थ लिपिबद्ध हुआ था। उसमें ओषधि-गुण-सम्पन्न बूटियों, पासेके द्वारा भविष्य कथनकी विधि, मन्त्रोंके द्वारा सर्प-दंशकी चिकित्सा आदि विषयोंका वर्णन है। आयुर्वेदके अनुसार जटामासीके गुण इस प्रकार हैं—यह रोधक, कटु और स्वादमें मीठी होती है। यह वात, पित्त और कफ—इन तीनोंका शमन करनेवाली है। शरीरकी जलनको शान्त करती है तथा कुष्ठ, रक्तमें विष-प्रवेश एवं विसर्पको अच्छा करती है। त्वचापर चन्दनकी तरह लगानेपर यह उसको कोमल बनाती है, ज्वरका नाश करती है तथा ऊपरी चर्मरोगोंको दूर करती है।

यह सदा-बहार बूटी है। इसका पृथ्वीके नीचे रहनेवाला अंश ही ओषधिके रूपमें प्रयुक्त होता है। वह अँगुली जितना मोटा और भूरे-से रंगका होता है। वह सर्वत्र छोटे-छोटे रोमरूपी मूलोंसे भरा रहता है। इसमेंसे एक मन्द-मधुर सुगन्ध निकलती है।

हिमालय-प्रदेशमें यह प्रचुरतासे उत्पन्न होती है। पश्चिम बंगालके गङ्गातटवर्ती स्थलोंमें भी यह प्राप्त होती

है। संस्कृतमें इसे जटामासी, भूतजटा, जटिला तथा तपस्वी कहते हैं।

इसको चूर्णरूपमें १ अथवा २ चायवाले चम्मचकी मात्रामें दे सकते हैं या काढ़ेके रूपमें शहदके साथ दे सकते हैं। काढ़ा बनानेके लिये थोड़ा-सा (गिनतीमें ३-४) लेकर किसी मिट्टीके बर्तनमें एक गिलास पानीके साथ तबतक उबालना चाहिये जबतक पानी जलकर आधा न रह जाय।

सामर्थ्यसे अधिक श्रम करनेके कारण जिनको अच्छी या पूरी नींद नहीं आती, घुमटा या चक्कर आते हैं, स्नायविक दुर्बलता अनुभव होती है, उनको फिरसे शक्तिदान देनेमें यह एक आदर्श ओषधि है।

आधेसे एक तक चायकी चम्मचभर जटामासीका मधु या मिश्रीके घोलके साथ सेवन रक्तचापको ठीक करके अभीष्ट सामान्य स्तरपर बनाये रखनेमें बड़ा उत्तम कार्य करता है। इस प्रयोगसे हृदयरोगोंमें भी अच्छा लाभ होता है।

श्वेत कूष्माण्ड, शतमूली अथवा ब्राह्मीके रसके साथ जटामासीका सेवन उन्माद रोगमें अच्छा प्रभाव दिखाता है। जटामासी निश्चय ही अच्छी नींद लानेवाली ओषधि है। जटामासीका बालोंपर भी आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। —जपेशदास गुप्त

(३) मधुमेहके पाँच अनुभूत प्रयोग

(क)

मधुमेह रोग-नाशका मेरा यह अनुभूत प्रयोग है। मैं स्वयं बढ़े हुए मधुमेहका रोगी था। इस प्रयोगसे मेरा वह रोग जाता रहा। सात वर्षसे आजतक मेरे मूत्र तथा रक्तमें कोई दोष नहीं पाया गया। इसीलिये लोककल्याणार्थ यहाँ लिख रहा हूँ—

बड़े आकारके पाँच सेर करेले (हरी सब्जी) लें। उन्हें लम्बे दावसे बीचोबीच काटकर एकके दो-दो टुकड़े कर लिये जायँ। फिर, किसी कपड़ेपर उन्हें सूखनेके लिये बिछा दिया जाय। ध्यान रहे उन्हें छायामें सुखाना है। धूप बिलकुल नहीं लगने देनी चाहिये। इनमेंसे आधे सूख जायँगे और आधे सड़ जायँगे। जो अच्छी तरह सूख जायँ, उनका दानेदार छिलका चाकूसे रगड़कर-उतारकर उसे पीसकर बारीक कर लिया जाय। यह बारीक चूर्ण एक तोला प्रात:काल खाली पेट और एक तोला रात्रिको सोनेसे पहले पानीके साथ लेना चाहिये। १५ दिन या एक मास लेनेसे रोग नष्ट हो जाता है। मधुमेह रोगसे, आगे चलकर हृदयपर आघात (Heart-attack) तथा रक्तचापकी वृद्धि (Blood-pressure) रोग हो जाते हैं तथा सृजनात्मक शक्तिपर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत: इस रोगका नाश बहुत आवश्यक है।

उपर्युक्त प्रयोग करते समय प्रतिदिन कम-से-कम एक माला—**'हरे राम हरे राम'**—(षोडशनाम)-का अथवा गायत्रीमन्त्रका यथाधिकार जप करना चाहिये। जो सज्जन इस विषयमें कुछ पूछना चाहें, वे मुझे पत्र लिखकर पूछ सकते हैं।' —मनोहरलाल अग्रवाल, जे०पी० 'रामशरणम्', १८वाँ मार्ग, चेम्बूर, बम्बई-७१

(ख)

उड़हल (जशवन्ती, जाशौन)-के फूलकी कलिका मधुमेहका रोगी सबेरे खाली पेट यानी मुँह धोकर एक या दो (कलिका) चबाकर खा जाय। ऐसा एक सप्ताह या रोग अधिक पुराना हो तो एक महीना खाये। यदि अधिक दिन भी खाये तो किसी तरहकी खराबी न होगी, वरं लाभ ही होगा। पेशाबमें शर्करा आना बिलकुल बंद हो जायगा। ओषधि-सेवनके पहले पेशाबकी जाँच करा लें और ओषधि-सेवनके पश्चात् भी पेशाबकी जाँच कराकर देख लें। पेशाबमें चीनी चाहे जितनी क्यों न आती हो, इससे अवश्य लाभ होगा।

परहेज—चीनी, चावल और आलू न खायँ।

वे रोगी, जो संसारमें हर प्रकारके डॉक्टरी, वैद्यक आदि अन्य प्रकारके इलाज करवाकर निराश हो गये हों, एक बार इसका प्रयोग करें, भगवत्कृपासे निराश न होना पड़ेगा। ('धन्वन्तरि' मई १९६८)—

डॉ० रामलखन विश्वकर्मा (रजि०) बी०ए० एम्०एस० (आयुर्वेद), एम०एम०डी०एस०आई०जी० (टोकियो) पो० अम्बा, जिला गया (बिहार)

(ग)

१-जामुनके हरे पत्ते, २-हरे नीमके कड़वे पत्ते, ३-बिल्वपत्रके पत्ते तथा ८ तुलसीके पत्ते सब सुखा लेवें। अलग-अलग लेकर समभागमें सूखे पत्तोंको पीसकर मिला देवें। रोज चायकी चम्मचसे एक चम्मच पाउडर सुबह पानीसे पी लेवें। लेनेके पहले कितना शक्कर थी—दस दिन बाद शक्करकी निगह करवा लेवें—३००-४०० होगा तो १५० अन्दाज आ जाना चाहिये। इसे लेते रहनेसे चीनी शरीरमें नियन्त्रित रहती है। कइयोंको लाभ हुआ है।

—श्रीबजरंगलालजी सिंघानिया

(घ)

मधुमेहके लिये मैं अपना अनुभव 'कल्याण'के पाठकोंके समक्ष रख रहा हूँ। मधुमेहके रोगियोंको चाहिये कि किसी मिट्टीके पात्रमें पावभर शुद्ध कुआँ या गङ्गाजल रातमें रख लें। इसी जलमें पलाशपुष्प पाँच नग जो हर जगह आसानीसे मिल जाता है, डाल लें। सुबह उस फूलको उसी जलमें मलकर छान लें और कुल एक बारमें बासी मुँह पी जावें। हर हफ्ते फूलकी मात्रा एक-एक करके बढ़ाते जावें। चार सप्ताहमें रोग निर्मूल हो जायगा। अनुराधा नक्षत्रमें तोड़े हुए पुष्पोंसे और भी शीघ्र लाभ होता है। जिन लोगोंको इस विषयमें और कुछ पूछ-ताछ करनी हो, वे निम्नाङ्कित पतेपर कर सकते हैं। इस प्रयोगसे अन्य प्रकारके प्रमेहमें भी काफी लाभ होता है। मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह (सूजाक) तकके रोग भी ठीक होते देखे गये हैं। अथर्ववेदमें भी इसे उत्तम ओषधि बताया गया है।

—डॉ० पन्नालाल गर्ग, अध्यक्ष—पलाश प्रयोगशाला, पीरपुर हाउस—लखनऊ (उ०प्र०)

(ङ)

जिन भाइयों या माता-बहनोंको मधुमेह (डायबिटीज)-का रोग हो, वे सहदेई (सहदेवी) नामक पौधेको खोदकर ले आवें। फिर उसकी जड़को अलग निकालकर एक तोला एवं एक पाव जल (ताजा या बासी)-के साथ ऐसा पीस लें कि जिसमें वह जलके साथ एकदम घुल-मिलकर एक हो जाय। उसे सुबह-शाम दोनों समय पी लिया जाय। तीस दिनोंमें रोग नष्ट हो जाता है। यह अचूक औषध है। इससे पेटकी खराबियाँ, रक्तदोष, ज्वर आदि रोगोंसे छुटकारा पानेमें भी लाभ होता है।

—परसराम

(४) गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी)-की दवा

घरमें गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी)-की बीमारी हो गयी। एक्स-रे लिया तो नौ पत्थर थे। कलकत्ते-बम्बईमें बड़े-बड़े डॉक्टरोंको दिखलाया गया। सबने यही कहा कि 'ऑपरेशनके बिना रोग अच्छा नहीं होगा। कोई भी दवा काम नहीं करेगी।' तदनन्तर लगभग सालभर पहले श्रावणमें श्रीवैद्यनाथजी वैद्यसे बात हुई। उन्होंने कहा—'नारियलके फूल २१, काली मिर्च ७ के साथ पानीमें पीसकर उसे पिलाओ।' दस महीने लगातार यह दवा दोनों समय दी गयी। फिर, श्रीबद्रीनारायण-यात्रामें चले जानेसे दवा बंद रही। यात्रासे लौटनेपर बम्बईमें एक्स-रे कराया गया तब पता लगा कि 'तीन पत्थर तो बिलकुल ही नहीं हैं। दूसरे पत्थर भी घिस गये हैं।' नौ पत्थर चनेके दानेसे भी बड़े-बड़े थे। सारे शरीरमें खास करके छातीमें बड़े जोरका दर्द रहता था। बीच-बीचमें हिचकियाँ आती थीं। यह सब उपद्रव शान्त हो गये। 'एक्स-रे'का परिणाम देखकर डॉक्टरने कहा कि 'हमारे यहाँ ऐसी कोई दवा नहीं है जो इतने बड़े पत्थरोंको गला दे।' वे आश्चर्य कर रहे थे।

जहाँ नारियल होते हैं, वहाँ नारियलके बीज आसानीसे मिल जाते हैं, एक बड़ा सिट्टा-सा होता है, जो ऊपरसे बंद रहता है। तोड़कर रख देनेसे वह पाँच-सात दिनोंमें अपने-आप फट जाता है। ऐसे एक सिट्टेमें लगभग एक सेरसे अधिक फूल निकलते हैं, जो दवाके काममें लिये जाते हैं।

मैंने यह अपने अनुभवकी बात लिखी है। लोग प्रयोग करके देखें।

—ओंकारमल पोद्दार

(५) बीची (एग्जिमा)-की अनुभूत रामबाण दवा

(१)

यह रोग बड़ा कष्टदायक है, एक बार हो जानेपर प्रायः समूल नष्ट नहीं होता। वर्षा-ऋतुमें यह अधिक कष्ट दिया करता है। यह दो प्रकारका होता है। एक सूखा, जो अधिक कष्ट नहीं देता, दूसरा गीला, जो भयानक कष्टकर होता है। यह प्रायः हाथों और पैरोंमें होता है। किसी-किसीके सारे बदनमें भी हो जाया करता है। शुरूमें बड़े जोरकी खुजली चलती है, फिर फफोले-से हो जाते हैं, उनमें जलन होती है, दर्द भी होने लगता है, फफोले फूटकर उनमेंसे मवाद तथा पानी बहने लगता है। जहाँ-जहाँ मवाद लगती है, रोग फैलता जाता है। जलन और दर्दके मारे रोगीको चैन नहीं पड़ती।

इस रोगके नाशकी नीचे लिखी अनुभूत दवा है—

'करंजवा'के बीजोंको दो दिनोंतक ठंडे पानीमें भिगोकर रखिये, फिर उन्हें छील लीजिये। अंदरसे बादामकी तरहकी सफेद गुल्ली निकलेगी। उनको बकरीके दूधमें खूब महीन सीलपर पीस लीजिये और लेईकी तरह मलहम बना लीजिये। फिर उसे ताँबेके बर्तनमें रख दीजिये। एक बार बनी हुई दवा दो सप्ताह चल सकेगी। सूख जाय तो बकरीका दूध अथवा पानी मिला दीजिये।

सेवन-विधि—नीमके पत्तोंको पानीमें उबाल लीजिये। उस गरम पानीसे घावोंको धोइये और साफ कपड़ेसे पोंछ डालिये, तदनन्तर वहाँ मलहम लगा दीजिये। जब सूखकर पपड़ीकी तरह उतर जाय तो फिर लगा दीजिये। दिनमें तीन-चार बार लगाइये। रातको सोते समय भी लगाकर सोइये। इससे कपड़े खराब नहीं होंगे। आराम तो एक दिनके लगानसे ही मालूम देगा। ३-४ दिन लगानेपर तो रोग साफ ही हो जाता है।

किसी भी प्रकारका साबुन या साबुनका पानी नहीं लगाना चाहिये। रबड़के जूते, हवाई चप्पल, नाइलॉनके मोजे व्यवहारमें नहीं लाने चाहिये। खटाई, मिर्च, गरम मसालाका सेवन न करें। नमकका सेवन कम करें। 'नीम' की कच्ची पत्ती घी या नारियलके तेलमें तलकर थोड़ी मात्रामें सप्ताहमें एक-दो बार सेवन करनेसे खूनमें रह रहे रोगके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।*

—तिलकचन्द कन्दोई

(२)

मैं सात सालका था तब मुझे भयानक 'एग्जिमा' हो गया। पिताजीने बताया है कि मेरे पैरोंका चमड़ा हाथीके चमड़ेकी तरह हो गया था और घावसे बराबर पानी बहता रहता था। मेरी इस पीड़ासे मेरे माता-पिता बड़े दुःखी थे। मेरे पिताजी एक बार विन्ध्याचलकी ओर गये थे। उन्हें एक महात्मा मिले। पिताजीने मेरी पीड़ाका हाल उनको सुनाया। इसपर महात्माने दया करके नीचे लिखा नुसख़ा सेवन-विधिसहित बतलाया। मुझे इस दवासे इतना लाभ हुआ कि फिर आजतक एग्जिमा नहीं हुआ और पैरोंमें उसके निशान तो मेरे होशसे ही नहीं हैं और भी बहुत लोगोंको इससे लाभ हुआ है। एग्जिमासे परेशान लोग इससे लाभ उठा सकें तो महात्माके कथनानुसार यह एक सत्कर्म ही होगा।

दवा बनानेकी विधि और वस्तुएँ

रसकपूर चार आना भर
सफेद खैर एक भर
मुर्दाशंख एक भर
छोटी इलायचीके दाने एक भर

माजूफल पाँच दाने
चित्ती कसैली या सुपारी पाँच दाने
कइयाँ या करंज पाँच दाने
कुचिला पाँच दाने
सोरही कौड़ी पाँच दाने

* करंजके बीज सभी जगह प्रायः मिलते हैं।

दूसरे समूहकी पाँचों चीजोंको एक छोटे मिट्टीके पात्रमें रखकर उसका मुँह मिट्टीके ही ढक्कनसे बंद कर दें और आटेसे उसे साट दें। तदनन्तर गोइठों (उपलों)-की भट्ठी बनाकर उसमें रख दें। भीतरकी दवा जलकर राख हो जायगी, तब उसे निकालकर खरल करके पाउडर बना लें।

पहले समूहकी चारों चीजोंको अलगसे कूट तथा खरल करके उनका भी पाउडर बना लें। फिर, दोनों समूहकी दवाओंको कपड़छान करके एकमें मिला दें एवं उसे चमेलीके शुद्ध तेलमें मिलाकर मलहम बना लें। बस, दवा तैयार हो गयी।

घावको जलसे या कपड़ेसे पहले साफ कर लें, उसके बाद प्रतिदिन उसपर दवाका लेप करते जायँ। ध्यान रहे कि घावपर पानी नहीं पड़ना चाहिये। ईश्वर-कृपासे दो-चार दिनोंमें ही लाभ मालूम होगा।

—अखिलेश्वरप्रसाद सिन्हा, जगदीशपुर (शाहाबाद), बिहार

(३)

सुहागा, आँवलासार, गन्धक, फिटकरी और शक्कर आवश्यकतानुसार बराबर वजनमें लेकर अलग-अलग बारीक पीसकर रख लीजिये। प्रयोग करनेके समय नीबूके रसमें मिलाकर पीड़ित स्थानको साफ करके लगाइये। साथ मञ्जिष्ठादि काढ़ा भी सेवन कीजिये। शत-प्रतिशत रोगियोंको लाभ हुआ है। महात्माप्रदत्त अनुभूत योग है। इससे लाभ उठाइये।

—श्रीकृष्णदास नेमा राजगढ़ (व्यावरा)

(६) जलना (Burning)

यह एक सामान्य घटनामूलक पीड़ा है। यह किसी भी समय शरीरके किसी भी भागपर हो जाता है। कभी-कभी तो बड़े-बड़े फफोले भी उठ आते हैं, जिनको फोड़ना या फूट जाना एक लंबे समयके लिये पीड़ा मोल लेना होता है।

इस प्रयोगसे फफोले न फूटते हैं, न बढ़ते हैं, अपितु बैठ जाते हैं। सबसे बढ़कर विशेषता यह है कि फफोलोंके फूट जानेपर वहाँ किसी प्रकारका निशान भी नहीं बनता, यदि इसको निरन्तर प्रयोगमें लिया जाय।

मकान पोतनेकी कलईके टाँटे (Stone pieces) लीजिये। उन्हें एक मिट्टीके कोरे कलश (मटका)-में आवश्यकतानुसार पानी डालकर रख दीजिये। पानीमें टाँटे पिघलकर गल जायँगे। सारे टाँटे गलकर नीचे बैठ जायँगे और ऊपर पानी निथर आयगा। इस समय पानीका रंग कुछ-कुछ दूधिया हो जायगा। यदि सर्दी है तो तिल्लीका तेल और गरमी है तो सरसोंका शुद्ध तेल उतना ही लें, जितना पानी हो। कलई भिगोये पात्रमेंसे पानी निथारकर एक अलग स्वच्छ बोतलमें भर लें। इसीमें ऋतुके अनुसार तेल मिला दें। १५ मिनिट बाद बोतलको हिलाइये। पानी और तेल मिलकर कुछ पीलापन लिये घोल-सा बन जायगा।

बस, दवा तैयार है। मोरपंखसे जले हुए स्थानपर दिनमें ४-५ बार लगाइये। मोरपंख न हो तो एक सींकमें रूई लगाकर भी प्रयोग किया जा सकता है। वर्षा-ऋतुमें दोनोंमेंसे कोई भी तेल काममें लिया जा सकता है।

यह प्रयोग अनुभूत है और बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसपर रूई आदि लगाकर पट्टी लगाना निषिद्ध है।

(७) मिरगीकी तीन अनुभूत दवाएँ

(१)

एक संतने मुझको यह दवा बतलायी थी। मैंने कई रोगियोंपर इसका प्रयोग किया, सभी रोगी अच्छे हो गये। मिरगीका रोग नया या पुराना—इससे सबको लाभ होता है।

विधि—कपिला गायका दूध प्रातःकाल बासी-मुख और संध्याको जितना पी सके, ४० दिनोंतक पीना चाहिये। दूध ताजा दुहा हुआ हो। उसे न गरम किया जाय और न चीनी डाली जाय। केवल छानकर पी लिया जाय। गायके थन अवश्य काले होने चाहिये। शरीर काला हो या न हो। गाय पहले ब्यानकी न हो, दूसरे या तीसरेकी भले ही हो। ईश्वरकी कृपासे इस प्रयोगसे पूरा आराम होता है।

इसका दूसरा लाभ यह है कि कपिला गायके कच्चे दूधको एग्जिमा, दाद, खारिश आदिपर खूब मलकर गरम जलसे स्नान किया जाय तो ४० दिनोंके प्रयोगसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

—बाबूराम गुप्ता मेडिकल स्टोर, सदर बाजार, जालंधर छावनी।

(२)

निम्नलिखित नुसख़ेको आयुर्वेदमें 'सारस्वत-चूर्ण' कहा जाता है। यह छात्रोंके लिये बुद्धिवर्धक भी है।

बालबच, अश्वगन्ध, शतावर, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, गुर्चका सत्त, वेरकी गुठलीकी मींगी, पेठेका छिलका, सफेद चन्दनका बुरादा और ओदे सलीब—ये दसों चीजें तीन-तीन तोले या सम मात्रामें कम-ज्यादा न लेकर कूटकर कपड़ेसे छान लें। चूर्ण तैयार हो जायगा। एक चम्मच चूर्ण एक चम्मच ब्राह्मीघृतके साथ मिलाकर दिनमें चार बार सेवन करे। ब्राह्मीघृत आयुर्वेदिक दवाकी दूकानोंपर मिल जाता है, न मिले तो गायका घृत लिया जा सकता है। दो-तीन मासतक सेवन करनेपर मृगीका रोग पूर्णतया मिट जाता है।

रोगीका पेट साफ रहे, इसलिये ५-६ दिनपर एक बार त्रिफलाचूर्ण देकर रेचन करवा दिया जाय। यह बहुत बारकी परीक्षित ओषधि है। यह स्मरणशक्ति बढ़ानेमें, अन्य प्रकारके स्नायुरोगोंमें तथा पागलपन मिटानेमें भी उपयोगी है। —प्रेमशंकर त्रिवेदी कला-प्रवक्ता, महात्मा गांधी इ०कॉलेज, सफीपुर, उन्नाव (उ०प्र०)

(३)

मीठी बचको १ छटाँक लावे और उसको अच्छी तरहसे कूट डाले, फिर कपड़छान कर रोज चार आनाभर सुबह-शामको शुद्ध मधु (शहद)-के साथ चाटे। इसको करीब-करीब १५ दिनतक चाटना चाहिये। जहाँतक उम्मीद की जाती है कि यह रोग इतने दिनोंमें अच्छा हो जायगा। अगर नहीं अच्छा हो तो एक माहतक सेवन कराइये। इतने दिनमें मिरगी अवश्य अच्छी हो जायगी। भोजनमें सिर्फ दूध-भात खिलाना चाहिये। ज्यादा-से-ज्यादा फल खिलाया जा सकता है।

दूध गायका हो तो सर्वोत्तम है। मीठी बच पंसारीके यहाँ मिलती है तथा मीठी होती है। खुराक बड़ोंके लिये दो आनेभर सुबह तथा दो आनेभर शामको दी जाय। छोटे बच्चोंको उम्रके अनुसार एक आना या दो पैसाभर दिया जाय, शहदमें मिलाकर।

—अम्बिकेश्वरपति त्रिपाठी 'पत्रकार', अयोध्या (उ०प्र०)

(८) बच्चोंकी उलटियाँ—एक रामबाण ओषधि

प्राय: ५-६ वर्षतकके बच्चों (विशेषकर जो लंबे अर्सेतक माँके दूधपर ही रहते हैं)-को किसी भी समय अनवरतरूपसे उलटियाँ होती हैं। ज्यों ही बच्चा दूध पीता है या कुछ भी खाता-पीता है, उलट देता है। ऐसी स्थितिमें एक कुशल गृहिणीके लिये यह रामबाण ओषधि बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। बाजारमें कमलगट्टा नामसे एक ओषधि कठोर गोली-सी मिलती है। उसे स्वच्छ पत्थर या चकलेपर घिस लीजिये और एक चम्मचमें उसे उतार लीजिये। बस, बच्चेको उलटी होनेके दस-पंद्रह मिनट बाद दे दीजिये। ईश्वरकी दयासे उलटियाँ एकदम रुक जायँगी। कम-से-कम तीन बार दिनमें दीजिये। परहेज कोई नहीं।

गरमीकी ऋतुमें ठंडे पानीके साथ और सर्दीमें कुनकुने जलके साथ दी जानी चाहिये।

(९) शिशु-यकृत रोग-नाशक दवा
(Infantile Lever Cure)

बच्चोंको प्राय: लीवरकी बीमारी हो जाती है और वह बड़ी भयानक होती है। सहजमें अच्छी नहीं होती। यहाँ नीचे मैं एक नुसख़ा लिख रहा हूँ, इससे बहुत-से बच्चोंकी जान बच चुकी है। दवा यह है—

जायफल (बाजारमें पंसारीके यहाँ मिलता है)

टींटकी जड़ (यमुनाके खादरमें बहुत मिलती है)

बड़ी हर्रे, काला नमक।

जायफलको गायके दूधमें तीन-चार बार उबालकर प्रयोगमें लावें।

सेवन-विधि—इस जायफलको तथा तीनों और चीजोंको किसी साफ पत्थरपर रगड़कर एक चम्मच पानीमें सुबह तथा शामको ७-८ दिनोंतक दें। प्रभु-कृपासे लाभ होगा यह अचूक रामबाण दवा है।

—दीपचन्द अग्रवाल, सिविल लाइन्स, मथुरा

(१०) सर्दीकी दो अचूक दवाएँ

(१) २ तोला साँवाँका पुराना चावल लेकर तवेपर धीमी आँचमें भूजकर फिर थोड़ा-सा सेंधा नमक एवं एक चनेके बराबर शुद्ध घी उसमें मिलाकर प्रात: और रात्रिमें सेवन करनेसे सर्दी पूर्णरूपसे ४-५ दिनमें ठीक हो जाती है।

—शैलेन्द्रकुमार अवस्थी, १११ तुलाराम बाग, इलाहाबाद—६

(२) सुहागेको भूनकर महीन पीस लिया जाय और किसी साफ शीशीमें भरकर रख दिया जाय। सर्दी लगनेपर चार रत्तीभर वह चूर्ण गरम जल या गरम चायके साथ दिनमें तीन बार दिया जाय। दो-तीन दिनोंमें ही सर्दी ठीक हो जायगी।

—रामविलास शर्मा, विलासपुर

(११) नेत्रोपयोगी निर्दोष ओषधि

नीमके पेड़पर लगा हुआ मधु कम-से-कम दो वर्ष पुराना आधी छटाँक (यदि शुद्ध कमल मधु मिल सके तो अति उत्तम) एक शीशीमें ले लें, उसमें श्वेत पुनर्नवाका रस दस बूँद डाल दें और जस्तेकी सींकसे मिला दें। दवा तैयार है। इस दवाको प्रात: तथा रात्रिको सोनेके समय दोनों आँखोंमें हाथकी अँगुलीसे अंजन करें तथा नित्य-प्रति उपयोग करनेका नियम बना लें। नेत्र-ज्योति बढ़ेगी, चश्मा लगानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी और नेत्रोंकी सुन्दरता बढ़ेगी। अनेक लोगोंको लाभ हुआ है। —डॉ० राधेश्याम रूँगटा

(१२) मानव-चक्षु

मनुष्यको भगवान्‌ने नेत्र एक ऐसी चीज दी है कि जिसकी रक्षासे वह संसारके विविध प्रकारके सौन्दर्यको निरीक्षण कर ईश्वरकी सत्ताका अनुभव कर सकता है और संसारके वैभवका उपयोग कर आनन्द अनुभव कर सकता है।

योगिजन विविध प्रकारके योगाभ्यासके द्वारा भ्रूमध्यमें दृष्टिको स्थिर करके तेजःपुञ्जमय आत्मप्रकाशका अवलोकन करते हैं।

वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी पुरुषोंने अनेक यन्त्रोंकी सहायतासे एक इंचके दस हजारवें सूक्ष्म भागको भी चक्षु-इन्द्रियद्वारा प्रत्यक्ष कर अनेक क्रान्तिकारी आविष्कारोंको करके युग परिवर्तन कर दिया है और कर रहे हैं। ऐसे नेत्रोंकी हम अवहेलना करें, इससे अधिक चिन्तनीय क्या हो सकता है?

हमारा देश उष्ण वातावरणका है। यहाँकी तीव्र सूर्यरश्मियाँ आँखोंको अधिक हानि पहुँचानेवाली हैं। इसीलिये हमारे देशमें तिमिर (Glucoorma) आन्ध्य (Cataract) मोतियाबिंद आदि अनेक नेत्ररोग बहुतायतसे पाये जाते हैं, इसीलिये प्राचीन आर्यवैद्योंने नेत्ररक्षाके लिये अनेक प्रकारके अंजनोंका आविष्कार किया था। किंतु खेद है कि आज इस नव सभ्यताके युगमें इनका प्रचार दिनोदिन न्यूनातिन्यून होता चला जा रहा है और नेत्रक (Spectacle) लगानेका रिवाज दिनोदिन बढ़ रहा है। बेचारे छोटे-छोटे बालक भी नेत्रक (चश्मे)-के बिना देख नहीं सकते और जीवनके आरम्भकालमें ही आन्ध्यत्वका अनुभव करते हैं। इस दयनीय दशाको देखकर मैंने अपने जीवनमें अनेक अनुभव नेत्ररक्षाके लिये किये हैं जिन्हें 'कल्याण' के पाठकोंके लिये समर्पण करता हूँ। यह अनुभव बहुत सुगम और सरल है। आशा है संसारके कल्याण चाहनेवाले विज्ञ पाठक इनका वितरण कर धर्मलाभ लेंगे।

आर्यवैद्यक शास्त्रने सर्वप्रथम आँखकी रक्षाके लिये व्यायाम बताया है। इस व्यायामकी तीन विधियाँ प्रधान हैं। उसमें प्रथम दिनमें तीन बार मुखमें शीतल जल भरकर आँखमें शीतल जलके छींटे लगाना है। इस अभ्यासद्वारा अनुभवसे यह सिद्ध हुआ कि मुँहमें शीतल जलका गण्डूष भरकर आँख बंद करके हाथके चुल्लूमें पानी लेकर आँखपर जोरसे छींटे। ऐसे छींटे कम-से-कम तीस बार एक-एक आँखपर देने चाहिये और अधिक-से-अधिक एक-एक सौतक बढ़ाना चाहिये। छींटे देनेके बाद आँखें धोकर कपड़ेसे पोंछ लें और उसके बाद पंद्रह मिनटतक लिखने-पढ़ने या अग्निके पास जानेका काम न करे। अच्छा तो यह होगा कि आँखें बंदकर भगवान्‌का ध्यान करे जिससे आँखोंको इस व्यायामके बाद विश्राम मिल जाय। ऐसा त्रिकाल करनेसे आँखोंमें किसी प्रकारका विकार पैदा नहीं होता और आँखें निर्मल तथा स्वच्छ रहती हैं। इस विधिको स्मरण रखनेके लिये आचार्योंने निम्नलिखित श्लोक बना दिया है—

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यो
वारत्रयेऽपि नयनद्वितयं जलेन।
सिञ्चत्यसौ स मुदमेति कदापि नाक्षि-
रोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः॥

दूसरा व्यायाम त्राटकका है। यह विधि सरल है और प्रत्येक व्यक्तिको पाँचसे दस मिनटतक करनी चाहिये। एक सफेद कागजको एक फुट चौरस गत्तेपर चिपकाकर ठीक उसके मध्यमें काजलसे एक गहरा काला बिन्दु आध इंच परिधिका लगा दें। इस गत्तेको अपने सामने दो फुटकी दूरीपर रखकर सिद्धासन, पद्मासन या सहज आसनमें बैठकर मनको एकाग्र करके इष्टदेवका जप करते हुए इस बिन्दुको दोनों आँखोंसे देखें और पलक बिलकुल न गिरने दें। आँखोंमें पानी आनेपर अथवा थकनेपर आँखें बंद कर लें। दो-तीन मिनट बंद रखनेके बाद फिर इसका अभ्यास करें। ऐसा दो-तीन बार करके दस मिनटमें सारा अभ्यास समाप्त कर दें। इस व्यायामको करनेसे मोतियाबिंदका रोग नहीं होता और आँखोंकी रोशनी सुदृढ़ रहती है।

योगीलोग इस त्राटककी बड़ी प्रशंसा करते हैं जो पाठक इसका अभ्यास करना चाहें वे 'हठयोगप्रदीपिका' आदि योगग्रन्थोंका विशेषरूपसे अध्ययन करें।

तीसरा व्यायाम पतंग उड़ानेका है, जितनी पतंग ऊँची चढ़ेगी और उसको बायाँ-दायाँ ऊँचा-नीचा बार-बार घुमानेमें आँखोंका अच्छा व्यायाम हो जायगा, यह

व्यायाम पंद्रह मिनटसे तीस मिनटतक करना पर्याप्त है। आजकल जो पाश्चात्त्य नेत्रचिकित्सक थम्मिंग (Thumbing) या सनिंग (Sunning) आदि व्यायाम बताते हैं, उनकी अपेक्षा पतंग उड़ानेका व्यायाम निर्दोष, सरल और मनोविनोदी होता है। जो व्यक्ति ये तीनों प्रकारके व्यायाम न कर सकें, उनके लिये नीचे लिखी ओषधियोंका प्रयोग नेत्रदृष्टिको बलवान् करनेके लिये हितकर है—

१-एक छटाँक शुद्ध मधु (काश्मीरी) लेकर उसमें तीन माशा बरास कपूर (Borneo Camphor) मिलाकर खरलमें घोटकर काँचके ढकनेकी शीशीमें डालकर रखें और प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल अञ्जन करके जबतक आँखसे पानी निकलता रहे, आँख बंद करके बैठे रहें, बादमें शीतल जलसे आँखको धो डालें और दस मिनटतक लिखने-पढ़नेका काम न करें।

२-जिनको मधु मिलनेमें कठिनाई या संदेह हो वे नीचे लिखा हुआ द्रव बना लें और उसको ड्रापर (dropper) या रूईसे आँखमें पाँच-पाँच बूँद टपका लें और आँखको पाँच मिनटतक बंद रखकर लेटे रहें और बादमें आँखको धोकर अपना काम करें। जिन बच्चों या अन्य व्यक्तियोंकी आँखोंमें कीचड़ आता हो, उनके लिये इस द्रवका रातको सोते समय और सुबह उठते ही उपयोग अत्यन्त हितकर है। इस द्रवको मैंने लाखों रोगियोंपर प्रयोग किया है और प्रतिवर्ष हजारों रोगी इसका लाभ हमारे अस्पतालोंमें उठाते हैं। पुल्लिका द्रवके नामसे यह वितरित होता है। इसकी निर्माणविधि निम्नलिखित है—

उत्तम गुलाब जल	दस छटाँक (एक बोतल)
सफेद फिटकरी	एक तोला
सफेद सेंधा नमक	एक तोला
बीकानेरी मिश्री	एक तोला

—इन सबको पीसकर गुलाब जलमें भलीभाँति घुला दें और छानकर काँचके डॉटवाली बोतलमें उपयोगके लिये रख दें। इसमें कभी-कभी हवा लगनेसे जाले-से पड़ जाते हैं। उस समय इसको फिरसे एक साफ कपड़ेमें छान लेना चाहिये। इस तरह बार-बार छानकर रख लेनेसे यह वर्षोंतक काम देता है।

जिनकी आँखें उठ आयें या जिनकी आँखोंमें रोहे हो गये हों, उनकी आँखमें इस अर्कको डालकर और ऊपर इसी अर्कमें रूईका फोहा भिगोकर बाँध देनेसे जल्दी लाभ होता है। यह द्रव प्रत्येक गृहस्थको अपने घरमें बनाकर रखना चाहिये।

३-जिनकी आँखोंमें मोतियाबिंद होनेका भय हो या आँखोंकी रोशनी बहुत कम हो गयी हो, वे इस निम्नलिखित औषधिका निर्माण कर निरन्तर उपयोग करके लाभ उठायें। औषधि बनानेकी विधि इस प्रकार है—

शुद्ध सरसोंका तेल एक छटाँक
नीमकी कोपलें (हरी) एक तोला

नीमकी कोपलोंको पीसकर और टिकिया बनाकर तेलमें रखकर एक ढक्कनदार शीशीमें बंद करके खुली छतपर पंद्रह दिनतक रहने दें। इसमें सूर्य और चन्द्रके प्रभावसे विशेष गुण उत्पन्न होता है। बादमें इसको छानकर और फिर इसमें तीन माशा बरास कपूर डाल दें तथा इसका अञ्जन सलाईसे प्रतिदिन सोते समय करें।

४-जिनको मोतियाबिंद और आँखमें फूल आदिका कष्ट हो, उनको नीचे लिखा हुआ योग लाभकारक होगा। पुनर्नवा आजकल सर्वत्र मिलती है। इसको जड़समेत उखाड़कर धोकर सिलपर बारीक पीसकर कपड़ेसे निचोड़कर एक छटाँक रस निकाल लें और उस रसमें तीन माशा बरास कपूर और डेढ़ माशा पिपरमिंट मिलाकर एक सप्ताहतक रख दें। बादमें फलालैनसे छानकर काँचके डॉटकी शीशीमें भरकर रख लें और सोते समय सलाईसे इसका अञ्जन करें।

कई-एक व्यक्तियोंको आँखकी बीमारी पेटके कारण होती है। उनको किसी विज्ञ चिकित्सकसे रोगका निर्णय कराकर सप्तामृत लौह, त्रिफला या महात्रिफलाद्य घृतका सेवन करना लाभदायक है।

नेत्रोंको सदा तीक्ष्ण भास्कर तथा सूक्ष्म और भयङ्कर चीजोंको देखनेसे बचाना चाहिये। नेत्र ही मनुष्यके लिये सर्व सुख हैं। ***'मीच गयीं आँखें तो लाखें क्या कामकी।'*** सिनेमा देखनेसे भी आँखोंको बहुत हानि होती है।

—वैद्यरत्न प्रतापसिंह

(१३) अंगुलबेडा (Whitlow)-की चमत्कारी दवा

अंगुलबेडा (अंगुल हाड़ा) जिसे अंग्रेजीमें Whitlow ग्रामीण भाषामें गर्धवी (गधइया) या विषकटीके नामसे पुकारते हैं। जो प्राय: नखको खूब छोटा कटाने, चोट लगने या जल जाने किंवा विषैली वस्तुके रक्तमें प्रवेश करनेसे हो जाता है। इससे अँगुलीके आगे बड़ी जलन, दर्द और सूजन हो जाती है।

जलन और कष्टके कारण रोगीकी व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। यह बड़ी ही कठिनतासे दूर होता है।

इस रोगपर नर्मदा प्रान्तके सघन वनमें रहनेवाले एक अनुभवी गोंडसे प्राप्त एक प्रयोग है। वह यह है कि आकके दूधको अंगुलबेडापर लगाकर सर्पकी केंचुली चिपका देनेसे जलन और कड़क उसी समय शान्त हो जाती है। दिनमें दो बार, दो दिन लगानेसे आशातीत लाभ होता है।

प्राप्त योगको कई रोगियोंपर आजमाया गया। भगवान्‌की कृपासे जिन्हें डॉक्टरोंने ऑपरेशनकी राय दी थी, वे भी शीघ्र स्वस्थ हो गये।

—श्यामाचरण पाण्डेय, वैद्यशास्त्री

(१४) सर्पविषनाशक

(१)

कदली (केला)-के पेड़की छालका रस दो तोला निकाल लें, फिर काली मिर्च ७ नगका चूर्ण करके उस रसमें डालकर उसे पिला दें, जिसको सर्पने काटा है। यह दवाकी एक मात्रा है। दूसरी मात्रा एक घंटे बाद, तीसरी-चौथी मात्रा दो-दो घंटे बाद देनेसे मूर्च्छित मनुष्य अवश्य होशमें आ जायगा। इसमें संदेह नहीं है। यह निर्विवाद अनुभूत (आजमायी हुई) है। दवा पीनेवाले रोगीको दूसरी ओषधि न पिलायी जाय। इस दवाका प्रयोग पशुओंपर भी हो सकेगा; परंतु मात्र चौगुनी—आठ तोला है। (यह बड़े पशु घोड़ा, बैल, भैंस, ऊँट इत्यादिकी पूर्ण मात्रा है। छोटे पशुओंको बलाबलके अनुसार दें।)

—कामदेवप्रताप सिंह सिद्धसदन, मिटारी, पो० धनगढ़, जिला प्रतापगढ़ (उ० प्र०)

(२)

मनुष्य अथवा पशुको यदि सर्पने काट लिया हो तो इस वनौषधिसे निश्चित प्राण-रक्षा की जा सकती है। यह अनुभूत ओषधि हमारे पूर्वजोंसे प्रयुक्त होती चली आ रही है। वनस्पति गूमा, गोमा, गोमी आदि नामोंसे व्यवहृत होती है। यह वर्षा-ऋतुमें बहुधा उत्पन्न होती और हर जगह मैदानों—खेतोंमें पायी जाती है। सभी ऋतुओंमें प्राय: प्राप्य है। ग्रीष्म-ऋतुमें कुछ कठिनाईसे मिल पाती है। इसकी लंबाई लगभग ६ इंचतक होती है। पत्ते अरहरके पत्तोंके बराबर, किनारे कुछ कटावदार एवं फूलनेके समय तनेके अगले सिरेपर आँवले बराबर एक गोलाकार भाग निकल आता है। उसीमेंसे धवल रंगके छोटे-छोटे दो-चार फूल बाहर निकल आते हैं।

प्रयोग-विधि—इसकी हरी पत्तियोंको तोड़कर हाथसे मसलकर १०-१२ बूँद रस सर्पदंशसे पीड़ित प्राणीके नाकमें निचोड़ देना चाहिये। यह रस नाकसे साँसद्वारा ऊपरकी ओर खींचा जा सके, ताकि मस्तिष्क-प्रदेशतक पहुँच जाय। चेतनाशून्य (बेहोश) होनेके पूर्व इसका प्रयोग करा दिया जाय। पशुओंमें नाक ऊपर उठाकर डाल देना पर्याप्त है। २०-२५ मिनट बाद विष प्रभावहीन होने लगेगा और प्राणी शीघ्र ही विषमुक्त होकर स्वस्थ हो उठेगा। बिच्छूके डंक मारनेपर भी इसका प्रयोग लाभप्रद है।

इस ओषधिका प्रयोग नि:स्वार्थभावसे करना नितान्त आवश्यक है। अन्यथा यह ओषधि उस व्यक्तिके लिये प्रभावहीन हो जायगी। अशुद्धावस्थामें यह न तोड़ी जाय।

—सहदेवप्रसाद यादव, जिला—पशुचिकित्सालय सीधी, (म०प्र०)

(१५) सर्प-दंशके उपचार

वेदों एवं पुराणोंमें सर्पकी पर्याप्त चर्चा है। अथर्ववेदकी एक ऋचा है—

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान्। संयतं न विष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः॥

नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये। स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः॥

सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू। सं ते जिह्वाया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम्॥

(का० ६ सू० ५६ श्लोक १—३)

'हे विषशमनकर्ता देवगण! सर्प हमारी तथा हमारे पुत्र-पौत्र-भृत्यादिकी हिंसा न करने पाये। सर्पका मुख दंशके निमित्त न खुले और खुले भी तो मन्त्रशक्तिसे यथावत् रहे। सर्पादिके विषके शमनकर्ता देवताओंको नमस्कार है। तिरछे बलवाले तिरश्चिराज, कृष्णवर्ण असित और बभ्रवर्णके स्वज नामक सर्पोंको नमस्कार और इनको वशमें रखनेवाले देवताओंको भी नमस्कार है। हे सर्प! तेरी ऊपर-नीचेकी दन्त-पंक्तियोंको हिलाता-मिलाता हुआ, ठोढ़ीके ऊपर-नीचेके भागोंको सीता हूँ, तेरी जीभ-से-जीभ मिलाकर ऊपरके मुखभागको नीचेके भागसे मिलाता हूँ और अनेक साँपोंके फनोंको एक साथ बाँध देता हूँ।'

साँपका नाम सुनकर ही मनमें भय उत्पन्न हो जाता है। आँकड़ोंके अनुसार एक सौ व्यक्ति सर्प-दंशसे रोज मर जाते हैं। साँपोंकी जातियाँ, किस्में और जन्म-परम्परापर अभी भी खोज जारी है, किंतु इतना तो सही है कि साधारण सर्पोंकी अपेक्षा विषधरोंकी संख्या इस पृथ्वीपर कम है।

साँप शीतरक्तपृष्ठवंशी जन्तु है। इसके शरीर, सिर तथा पूँछ—तीन भाग होते हैं। सर्पोंके पाँव नहीं होते (पर पुराणोंमें २२० पैरोंका वर्णन मिलता है)। उसकी आँखें एक पारदर्शक झिल्लीसे आवृत रहती हैं। कान नहीं होते। सुनने और देखने—दोनोंका काम आँखें ही करती हैं। कानोंका काम भी आँखोंसे ही लेनेके कारण उसका एक नाम 'चक्षुश्रवा' भी कहा गया है। उसके तलवेमें विषकी थैली होती है। इसका बच्चा महीनोंतक हवा पीकर अपना जीवन धारण करता है। इसीसे इन्हें पवनाशनकी संज्ञा दी गयी है। ज्येष्ठ और आषाढ़मासमें साँपको मद होता है और तभी वह मैथुन करता है। वर्षा-ऋतुके ४ मास बाद सर्पिणी गर्भ धारण करती है और कार्तिकमें २४० अंडे देती है। अंडा देनेके बाद स्वतः वह अपने अंडोंको खाना प्रारम्भ कर देती है। अन्तमें दयासे कुछ छोड़ देती है। उनमेंसे जो सोनेकी तरह चमकता हो, उससे पुरुष, ककड़ीकी तरह हरी और लंबी रेखाओंसे युक्त जो अंडा हो, उससे स्त्री और शिरीषके फूलके-से रंगवाले अंडोंमें नपुंसक साँप होते हैं। अंडेसे निकलनेके बादसे ही वह बच्चा अपनी माँसे बहुत स्नेह करने लगता है। अंडेसे निकलनेके सात दिन बाद उसका रंग काला हो जाता है। सात दिनोंमें ही उसके दाढ़ें उग आती हैं। २१ दिनोंमें उसके अंदर विष हो जाता है और २५ दिनोंमें वह बच्चा प्राण लेनेमें समर्थ हो जाता है। ६ मासके बाद वह केंचुल छोड़ता है। अकालमें जन्मे साँपमें विष कम होता है। अनिश्चित समयमें जन्मे साँपकी आयु भी करीब ७० वर्षकी होती है। वैसे इनकी आयु १२० वर्ष है। इनकी मृत्यु आठ तरहसे होती है—मोर, वृश्चिक, मनुष्य, चकोर, बिल्ली, नेवले, तथा सूअरके मारनेसे और गाय-भैंसके खुरसे दब जानेपर। यदि उपर्युक्त किसी कारणसे उसकी मृत्यु नहीं हुई तो वह १२० वर्षोंतक जीता है। जिसके दाँत लाल, पीले अथवा नीले और विषका वेग मन्द हो, वह अल्पायु और डरपोक होता है। इसी प्रकार साँप आठ कारणोंसे काटता है—दब जानेसे, पूर्वके वैरसे, डरसे, मदसे, भूखसे, विषके वेगसे, संतानकी रक्षाके लिये और कालकी प्रेरणासे। साँपके १ मुँह, २ जीभें, ३२ दाँत और विषसे भरे ४ दाढ़ें होती हैं।

साँपकी दाढ़में सतत विष नहीं रहता। विषका स्थान दाहिनी आँखके समीप होता है। साँप जब क्रोधित होता है, तब विष नाड़ीद्वारा दाढ़में चला आता है। इनमें चार वर्ण होते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

विश्वमें साँपोंकी १७०० जातियाँ पायी जाती हैं। उनमेंसे भारतवर्षमें ३०० जातियोंके साँप पाये जाते हैं।

आयुर्वेदमें भोगी, मण्डली और राजिल—ये तीन प्रकारके साँप बताये गये हैं।

भविष्यपुराणमें कश्यप मुनिने गौतम ऋषिसे कालसर्पके द्वारा डँसे गये पुरुषके लक्षण इस प्रकार बताये हैं—जिसको काला सर्प डँस ले, उसकी जीभ भंग हो जाती है, हृदयमें पीड़ा होती है, आँखसे नहीं सूझता, दाँत और शरीर काले हो जाते हैं, मल-मूत्र निकल जाते हैं, गर्दन-कमर टूट जाती हैं, मुँह नीचे झुक जाता है, आँख ऊपर चढ़ जाती है, शरीरमें दाह और कम्पन होने लगता है, शस्त्रसे काटनेपर भी शरीरसे रक्त नहीं निकलता, बेंतसे मारनेपर निशान नहीं पड़ता और काटा हुआ स्थान पके जामुनकी तरह नीलवर्ण, फूला-फूला—रक्तसे भरा और कौवेके पैरकी तरह हो जाता है, हिचकी आती है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, श्वासगति बढ़ जाती है, शरीरकी चमड़ी पीली हो जाती है, पसीना अधिक आता है, साँपका डँसा हुआ व्यक्ति नाकसे बोलने लगता है, उसका ओठ लटक जाता है, हड्डीमें दर्द होता है और हृदय काँपता है, दर्पण या पानीमें प्रतिबिम्ब नहीं दीखता है, सूर्य तेजहीन लगता है, आँखें लाल हो जाती हैं और पीड़ासे सम्पूर्ण शरीर काँपता है। ऐसा व्यक्ति शायद ही बच सके। शास्त्रोंके अनुसार अष्टमी, नवमी, कृष्ण-चतुर्दशी और नागपञ्चमीके दिन साँप काट ले तो उस रोगीके बचनेमें संदेह रहता है। आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्वाती और शतभिषा नक्षत्रमें साँपके काटनेसे रोगी प्राय: नहीं बचता। पीपलके पेड़के नीचे, देवालय, श्मशान और बाँमीके पास, संध्या समय, चौराहेपर, भरणी नक्षत्रमें तथा सिर और मर्म-स्थानोंपर जिन व्यक्तियोंको साँप काट ले, उनके लिये तथा अजीर्ण, पित्त और धूपसे पीड़ित व्यक्ति, बालक, वृद्ध और क्षत अथवा क्षुधासे पीड़ित, कुष्ठी, रूक्ष तथा निर्बल व्यक्ति एवं गर्भवती स्त्रीके लिये सर्पविष असाध्य होता है।

साँप दिनमें, सर्पिणी रातमें और नपुंसक सर्प संध्याकालमें विशेष विषयुक्त होते हैं। विषके प्रथम वेगमें रोमाञ्च होता है, दूसरे वेगमें पसीना और तीसरेमें शरीर काँपने लगता है। चौथेमें स्रोतोंका अवरोध होने लगता है। पाँचवें वेगमें हिचकी चलती है, छठेमें गर्दन झुक जाती है और सातवें वेगमें रोगीका प्राण निकल जाता है।

आँखोंके सामने अँधेरा हो जाय और साँपका काटा हुआ व्यक्ति खड़ा न रह सके तो समझना चाहिये कि विष उसकी त्वचामें है। उस समय अकवनकी जड़, चिचड़ी, तगर और प्रयङ्गुको पानीमें घोटकर पिलानेसे विषका प्रकोप शान्त हो जाता है।

जब त्वचासे विष रक्तमें चला जाता है, तब शरीरमें जलन और मूर्च्छा होती है, ठंडी चीज अच्छी नहीं लगती। उस अवस्थामें उशीर, चन्दन, कूट, तगर, नीलोफर, सिनुआरकी जड़, धतूरेकी जड़, हींग और मिर्च पीसकर पिलाना चाहिये। यदि इससे भी विष शान्त न हो तो कटेरी, इन्द्रायणकी जड़, सर्पगन्धा और वृश्चिककाली—इन सबको घृतमें पीसकर दे। यदि इससे भी विष शान्त न हो तो सिनुआर और हींगका नस्य दे, वही पिलाये और उसीका अञ्जन एवं लेप करे। इस प्रयोगसे रक्तगत विष शान्त हो जाता है। रक्तसे विष पित्तमें प्रवेश करता है, तब रोगी उठकर गिर पड़ता है। शरीर पीला हो जाता है। सभी दिशाएँ एवं वस्तुएँ पीली ही नजर आती हैं। मूर्च्छा और दाह भी होते हैं। ऐसी अवस्थामें पीपल, मधु, महुआ, घृत, तूंबीकी जड़ और इन्द्रायणकी जड़—सभीको पीसकर नस्य, लेप और अञ्जन करे।

पित्तसे विष कफमें प्रवेश करता है, तब शरीर जकड़ जाता है, श्वास लेनेमें कठिनाई होती है। कण्ठमें घर्घर शब्द होने लगता है और मुँहसे लार गिरने लगती है। ऐसी स्थितिमें पीपल, मिर्च, सोंठ, लोध, तुरई और मधुसार—इन सबोंको गोमूत्रमें पीसकर नस्य दे तथा पीनेको दे तो विषका वेग शान्त हो जाता है। जब कफसे विष वातमें प्रवेश करता है, तब पेटमें अफारा हो जाता है। दृष्टि भङ्ग हो जाती है और कुछ नहीं दिखायी देता तब आलूकी जड़, खिरनी, गज-पीपल, भारंगी, देवदारु, सिनुआर, मधुसार और हींग—सभीको पीसकर गोलीके खाने, नस्यरूपमें लेने और लेप तथा अञ्जन करनेसे विष शान्त हो जाता है। जब वातसे विष मज्जामें पहुँचता है, तब दृष्टि नष्ट हो जाती है। समस्त अङ्ग बेसुध होकर मुरझा जाते हैं। ऐसी स्थितिमें घृत, खाँड़, मधु, चन्द-

और खस—सभीको पीसकर पिलाने और नस्य, लेप तथा अञ्जन करनेसे विषका वेग शान्त हो जाता है। मर्मस्थानमें विष पहुँचनेपर सभी इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। काटनेपर रक्त नहीं निकलता, बाल उखाड़नेपर भी कोई पीड़ाका अनुभव नहीं होता। इस दशामें पहुँचे हुए रोगीको मृत्युके वश हुआ समझना चाहिये। सिद्ध मन्त्र और ओषधिसे शायद जीवनकी रक्षा हो जाय।

कुछ उपचार

(१) साँपके काटे स्थानसे ४ अँगुल ऊपर डोरीसे कसकर बाँध दें और उस स्थानको दग्ध कर दें तो विषका नाश हो जाता है।

(२) आषाढ़मासमें रविवारके दिन यदि सर्पगन्धामूल हाथमें बाँधे तो साँप नहीं काटता।

(३) पुष्य नक्षत्रमें सफेद गदहपुर्नाकी जड़को १० तोला पानी या तण्डुलोदकमें घोलकर पीनेसे मनुष्य एक वर्षतक साँपके काटनेसे सुरक्षित रहता है।

(४) मेष राशिपर सूर्यके स्थित होनेपर अर्थात् वैशाखमासमें नीमके २ पत्तोंमें मसूरके १ दानेको लपेटकर जो व्यक्ति खाय, उसे एक वर्षतक सर्प काटनेकी सम्भावना नहीं रहती।

(५) नागपञ्चमीके दिन जिस घरमें विधिपूर्वक नागकी पूजा होती है, उस घरमें साँपका भय नहीं रहता।

(६) कुचिलाकी जड़को तण्डुलोदकके साथ पीसकर नस्य लेनेसे कालसर्पका काटा मनुष्य भी बच जाता है।

(७) सहिजनके बीजका चूर्ण शिरिषके फलके स्वरससे १ सप्ताहतक भावितकर खरल कर रख ले। साँप काटनेपर उसके शुष्क चूर्णका नस्य लेनेसे अथवा अञ्जन करनेसे सर्पदंशका रोगी अच्छा हो जाता है।

(८) 'रसेन्द्रसारसंग्रह' में 'विषवज्रपाती रस' नामक ओषधि लिखी गयी है। इसे १ माशा मात्रामें लेकर पुरुषमूत्रानुपानसे दिया जाय तो कालसर्पसे काटा गया मनुष्य जिंदा होता है।

(९) १ तोला नीलको १ छटाँक जलमें घोलकर पिलानेसे लाभ होता है। यदि इससे लाभ न हो तो ५ तोला पानीमें नीलको घोटकर जल्दी-जल्दी थोड़ी मात्रासे पिलाते रहना चाहिये। रोगीको सोने नहीं दे, निश्चय लाभ मिलेगा।

(१०) भविष्यपुराणमें एक सिद्ध योग है, जिसे साक्षात् रुद्र कहा गया है जो इस प्रकार है—

मयूर, नकुल तथा मार्जार—इन तीनोंका पित्त, छनालिकी जड़, केशर, भार्गवी, कूट, काशमर्दकी छाल एवं उत्पल, कुमुद और कमल—इन तीनोंकी केसरसे सभी दवाइयोंको समान भाग मिलाकर गो-मूत्रमें पीसकर नस्य दे और खानेके लिये भी दे, अञ्जन एवं लेप करे तो काल-सर्पसे भी डँसा व्यक्ति शीघ्र ही विषमुक्त हो सकता है।

कौटिल्य (चाणक्य)-ने अपने अर्थशास्त्रमें 'निशान्त-प्रणिधि' में विषैले जन्तुओंसे रक्षाके उपायमें कहा है—

गुडुच, शङ्खपुष्पी, मुस्तक, करोंदा, गाछकी बाँझी आदिको अन्त:पुरमें चारों ओर लगा देना चाहिये। सहिजनके गाछपर जमे पीपलके पत्तोंका वन्दनवार बाँधनेसे अन्त:पुरके भीतर साँप, बिच्छू, विषरूप आदि विषैले जन्तु नहीं रह सकते। बिल्ली, मयूर, नेवला और मृग भी साँपको खा जाते हैं। मैना, तोता भी अन्नमें साँपके विषकी आशङ्का होते ही शोर मचाने लगते हैं। क्रौञ्च पक्षी तो जहरके समीप पहुँचते ही विह्वल हो जाता है। कोयल विषको देखकर मर जाती है। चकोरकी आँख विषको देखकर लाल हो जाती है।

साँप स्वयं आदमीकी आहट पाकर हट जाता है। इसकी गति पवनकी तरह तीव्र होती है। अत: वर्षा अथवा अन्य मौसमोंमें रातमें चलते-फिरते समय काठकी पादुका या बोलनेवाले जूते पहन लेने चाहिये। झाड़-झंखाड़ अथवा ऊबड़-खाबड़ जमीन तथा केलेके घने बगीचोंमें अथवा अतिमादक गन्धों और कभी-कभी रेडियोके संगीतसे प्रभावित होकर साँप आस-पास दिखायी पड़ते हैं।

भारतीय धर्म-शास्त्रोंमें साँपको दूध पिलाने या उसे पूजनेका अर्थ यह भी है कि इन्हें छेड़ा न जाय। छेड़ने अथवा अनजानेमें छू जानेपर ये करारी चोट कर बैठते हैं। हर पढ़े-लिखे प्राणीको ऊपर बतायी दवाएँ तो प्रयोगमें लानी ही चाहिये, साथ ही अपने घर और आस-पासको साफ-सुथरा भी रखना चाहिये ताकि साँप आने ही न पाये।—पं० श्रीगोपालजी द्विवेदी, वैद्य

(१६) बिच्छूका विष उतारनेके दो अद्भुत योग

(१) कैसा भी बिच्छू किसी भी समयमें काटे, उसपर औंगा* की जड़ घिसकर लेप दीजिये। तुरंत लाभ होगा। औंगा बरसातमें उगनेवाली एक बूटी है। उसके पत्ते गोल तथा छितरे हुए होते हैं। उसमें १/२ फुटसे लेकर १ फुटतक लंबी बाली-(दंगी)-सी निकलती है, जिसपर दोनों तरफ कुछ भरभूँट-से चिपटे होते हैं। इसके फूल नीले रंगके बहुत छोटे-छोटे होते हैं। बरसातमें प्राय: सब जगह ही मिल सकता है। पकनेपर जब बालीमें फूल आ जायँ, तब इसे खोदकर जड़ें निकालकर रखी जा सकती हैं। उनका प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है। प्राय: एक बरसातके बाद इसका प्रभाव कम हो जाता है।

(२) चारसे पाँच रत्तीतक शुद्ध असली कपूरको पानमें रखकर चबा लिया जाय। बिच्छूका भारी जहर भी इससे उतरता देखा गया है।

(१७) बच्चोंके सूखा रोगकी अनुभूत दवा

दूध पीनेवाले छोटे बच्चोंको सूखेकी बीमारी हुआ करती है। माताका दूध हजम न होना, हरे-पीले ज्यादा दस्त होना, शरीरका खून यहाँतक सूख जाना कि जिससे चमड़ीतक चटकने लगे, शरीरका अत्यन्त कृश हो जाना, आँखें छोटी पड़कर अंदर घुसती हुई-सी दिखायी देना तथा बच्चेके रोनेकी आवाजका बहुत धीमी पड़ जाना आदि लक्षण इस बीमारीमें प्रकट होते हैं।

मेरे घरमें बहुत बच्चे हैं। उनको यह बीमारी अक्सर हो जाया करती थी। अन्तमें पंजाबके एक महात्माने एक दवा तथा उपचार बताया, उसके करनेसे बच्चोंका रोग मिट गया। तबसे मैंने इसका बहुत बार प्रयोग करके सफलता पायी है। 'कल्याण'के पाठकोंको भी इससे लाभ उठाना चाहिये। दवा और उपचार नीचे लिखे अनुसार हैं—

सफेद या पीले रंगकी गौकी साल-डेढ़ सालकी बछड़ीका गोमूत्र चीनी या काँचके बरतनमें लेकर पंद्रह-बीस मिनट बाद उसे साफ कपड़ेसे छान लिया जाय। उस छने हुए गोमूत्रमेंसे बच्चेकी माता करीब एक तोला पी ले और फिर रोगी बच्चेको उसकी आयुके अनुसार तीनसे पाँच मासेतक पिला दे। यों बिना नागा लगातार सात दिनतक माता और बच्चा दोनों पीते रहें।

जिस दिनसे यह गोमूत्र पीना शुरू किया जाय, उसी दिनसे उगते हुए सूर्यकी सुहाती हुई धूपमें माता बच्चेको लेकर बैठ जाय। बच्चेकी पीठ सूर्यकी ओर रखे और नागरबेलका पान लगा हुआ (—जिसमें सिर्फ कत्था, चूना, सुपारी हो और जिसमें चिरपोटणके २ पत्ते डाले हुए हों।—) माता मुखमें लेकर चबाती रहे और बच्चेकी पीठकी रीढ़की हड्डीपर उस पानका पीक डालती और खूब मालिश करती रहे। यह पीकका मालिश भी सात दिनोंतक करना चाहिये।

चिरपोटण बरसातके मौसममें हर कहीं उगी मिलती है। अन्य मौसमोंमें साग-सब्जीकी बाड़ियोंमें तथा बगीचोंमें मिलती है। चिरपोटणका पौधा डेढ़ या दो फुटतक बड़ा होता है। इसके नीचेकी डंठल कुछ काली झाँई-सी देती होती है, मिर्च-जैसे तीखे पत्ते होते हैं। मौसममें इसमें चिरमीके समान फलोंके झुमके लटकते रहते हैं। पक जानेपर ये लाल हो जाते हैं। इनको पंसारी दवामें बेचते हैं। यूनानी भाषामें इनको मकोय कहते हैं। जिनको चिरपोटण न मिले वे उसके बदले स्वस्थ भैंसका गोबर लेकर उसे कपड़ेमें निचोड़कर उस निचोड़े हुए पानीमें भैंसका दही अच्छी तरह मिलाकर उसको बच्चेकी रीढ़पर मालिश करें। इसे चौदह दिनोंतक मलना पड़ेगा। इससे भगवत्कृपासे बच्चा अवश्य स्वस्थ हो जायगा।

—ठाकुर श्रीहरीसिंहजी नरुका, पो० किशनगढ़ अजमेर, (राजस्थान)

---

* शायद अपामार्ग या चिचड़ाको ही औंगा या ऊँगा कहते हैं।

(१८) कुछ अनुभूत प्रयोग

(१) दाढ़ीकी फुंसियाँ

नाईकी असावधानी या अन्य किसी भी कारणसे दाढ़ीमें सफेद फुंसियाँ हो जाती हैं। दवासे एक ठीक होती है तो दूसरी निकल आती है। दाढ़ी सड़नेकी नौबत आ जाती है, इसके लिये नीचे लिखा सरल प्रयोग बहुत लाभदायक है।

प्रयोग—ताँबेके किसी चौड़े किनारदार बर्तनमें मलाईदार दही डाल दे और उसको ताँबेकी ही किसी दूसरी चीजसे या ताँबेके पुराने पाँच-सात पैसोंसे खूब रगड़े। दहीका रंग जितना हरा होगा, उतना ही जल्दी लाभ होगा। सुबह-शाम दोनों समय फुंसियोंको ग़रम जलसे धोकर तथा कपड़ेसे सुखाकर उनपर उस दहीका लेप कर ले। दही बर्तनमें उतना ही डालकर रगड़ा जाना चाहिये, जिसमेंसे आधा लेपमें लग जाय और ठीक आधा बचा रहे। दुबारा उसी बचे हुए आधे भागमें आधा नया मलाईवाला दही डालकर वैसे ही रगड़ ले। नयी बीमारी होगी तो तीन दिनोंमें, नहीं तो एक सप्ताहमें मिट जायगी। यह प्रयोग मूँछके या सिरके केश गिरते हों तो उसपर भी किया जा सकता है।

(२) फोड़ा-फुंसी

कहींपर कैसा भी फोड़ा-फुंसी हो, इस प्रयोगसे या तो वह बैठ जायगा अथवा पककर फूट जायगा और घाव जल्दी भरकर साफ हो जायगा।

प्रयोग—पाँच तोले करंजके तेलमें १ माशा डलीका असली कपूर पीसकर मिला दे और हिलाकर शीशीमें भरकर रख दे। फोड़े-फुंसीपर अँगुलीसे लगा दे और रूईपर मामूली तेल लगाकर पट्टी बाँध दे। सुबह-शाम दोनों समय गरम जलसे धोना चाहिये।

(३) खूनी बवासीर

प्रयोग—रीठेकी गुठली फोड़नेपर उसमेंसे पीले रंगकी चीज निकलेगी। उसको बारीक पीसकर देशी या विलायती शराबमें मिलाकर शीशीमें रख दे। शौचके बाद शुद्धि करके अंगुलीसे थोड़ी-सी दवा लगा दे। रातको सोते समय भी लगावे।

(४) दमा (श्वास)

प्रयोग—(क) खानेका नमक सुनारकी कुठालीमें पकाकर रख लें और उसमेंसे मकईके दानेके बराबर निकालकर बिना कत्थे-चूनेके पानमें डालकर प्रतिदिन दिनमें तीन बार खा लें। रातको सोते समय अवश्य खायँ।

(ख) रातको सोते समय आधी सुपारीके बराबर पीसा हुआ काला नमक जलके साथ खानेसे भी दमाके रोगमें लाभ होता है।

(५) हिचकी

प्रयोग—हिचकी शुरू होते ही बिना बोले सात घूँट ठंडा जल पी लेना चाहिये। बहुत जोर हिचकी हो तो सूखे नीबूको जलाकर उसे शहदके साथ धीरे-धीरे चाटना चाहिये।

(६) कानका दर्द

प्रयोग—गुलाबका असली इत्र दो बूँद कानमें डालकर हिला देना चाहिये।

(७) कानमें फुंसी

प्रयोग—बबूलके पके हुए फूल दो-चार लाकर उन्हें कानके अंदर गिराना चाहिये और उनका बुरादा फुंसीपर लगा देना चाहिये।

—चिरंजीलाल जाजोदिया, जाजोदिया-भवन,
२३६ एम०टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर-२

(१९) कुछ रोगोंके अनुभूत सहज सफल प्रयोग

१. कारबंकल फोड़ा—निरंबसी जड़ीकी जड़ गायकी बछियाके मूत्रमें घिसकर लगानेसे यह भयंकर फोड़ा मिट जाता है। जड़ बाजारसे मँगायी जाय। ताजी, जमीनसे खोदकर निकाली जाय तो अति उत्तम है। जड़ खोदते वक्त ध्यान रखा जाय कि उसकी जड़में साँप तो नहीं हैं, हो तो उससे बचना चाहिये।

२. दर्द आधा सीसी—(क) मरवाके पौधेके पत्ते निचोड़कर जिस तरफ दर्द हो, उससे दूसरी तरफके नाकमें चन्द बूँदें डालनेसे आराम हो जायगा।

(ख) सूर्योदयके पहले एक कागजी नीबूका रस गुनगुने जलमें मिलाकर पिला दें और नीबूके रसकी पाँच बूँद सूर्योदयसे पूर्व जिस तरफ सिरमें दर्द हो, उसी ओरकी नाकमें टपका दें। दर्द मिट जायगा।

३. गलसुवे (Mumps)—पानमें खानेकी एक सुपारीको पानीकी बूँदें डालकर साफ सिलपर आवश्यकतानुसार घिस ली जाय। पानमें खानेका सूखा कत्था बारीक पीसकर उसमें मिला दिया जाय। फिर दोनोंको एक मटियाले कागजपर लीपकर गलसुओंपर पूरा लगा दिया जाय। अगर गलसुवे हैं तो वह चिपक जायगा और पाँच-सात दिनोंमें आराम देकर उतर जायगा। गलसुवे नहीं हैं तो नहीं चिपकेगा। यह रोग छूतका है। इसके रोगीको अलग रखना चाहिये और आरम्भसे ही देख-भाल रखनी चाहिये, नहीं तो रोग असाध्य हो जाता है।

४. बुखार (ज्वर)—(क) ज्वरमें पीपलका दातुन, जब सूर्य सुबहको आसमानपर आधा निकला दिखायी देता हो, करनेसे ज्वर उतर जाता है।

(ख) फिटकरीका फूल एक माशा थोड़ी-सी चीनीके साथ मिलाकर जलसे ले लेनेपर भी ज्वर उतर जाता है।

५. अंजनहारी (गुहेरी)—जब आँखमें गुहेरी निकले तो पेटकी नाफ (नाभि)-पर आकके पत्तेका दूध लगानेसे आराम हो जाता है। गुहेरीपर कभी न लगावें।

६. लगड़ीका दर्द (साइटिका-गृध्रसी)—इस रोगमें लहसुन और राईका सेवन लाभदायक है। क़ब्ज़ नहीं होना चाहिये। लौकीमें राई और नमक डालकर इसके अचारका सेवन करना फायदेमन्द होता है। मूलीमें भी राई और नमक डालकर सेवन करना लाभदायक है। दर्दके स्थानपर दो छटाँक तिलके तेलमें ४ या ५ पौथी लहसुनकी और आधी छटाँक गूगल डालकर पकाकर हल्की मालिश करना उपयुक्त होगा। इसमें रसटक्स (होमियोपैथिक दवा) बहुत काम करती है।

(७) मोतियाबिन्द—छोटी मक्खीका असली शहद और हरे आँवलोंका रस बराबर-बराबर मिलाकर एक साफ शीशीमें रख लें और सोते समय लगा लें। केवल शहद लगाना भी लाभप्रद है।

(८) मधुमेह (डायबिटीज)—बबूल (कीकर)-की दो-ढाई तोला छाल डेढ़ पाव जलमें पकाकर जब एक पाव जल रह जाय तो पी ले। यह प्रतिदिन पीना चाहिये। इस प्रयोगसे बदनके फोड़े, घाव आदि भी ठीक हो जाते हैं। छालको लाकर छायामें सुखाकर रखना चाहिये।

इन विषयोंमें कोई और बात ज्ञात करनी हो तो जवाबी पत्र भेजकर मालूम कर सकते हैं।

—डॉ० त्रिभुवननाथ शर्मा,
१४, जी.टी. रोड, गाजियाबाद (उ०प्र०)

(२०) कमल-पीलिया (Jaundice) और स्वप्नदोष (Spermatorrhoea)-का अचूक इलाज

दोनों रोगोंके लिये एक ही दवा है। केवल प्रयोगमें अन्तर है। कितना ही कष्ट हो, प्राय: तीन दिनमें ठीक हो जाता है। दवाका नाम है—'भंगभस्म' अथवा 'कलईका कुश्ता।' यह प्राय: पंसारियोंके यहाँ मिल जाता है। कोई-कोई इसे 'बंगभस्म' भी कह देते हैं। पीलिया रोगमें एक रत्ती भंगभस्म लेकर एक छोटी चम्मच दूधकी मलाईपर डालकर प्रात:काल खा लें और दोपहरके बाद तीन-चार बजे थोड़ी-सी ईसबगोलकी भूसी फाँककर ऊपर एक गिलास नीबूका शर्बत पी ले। दो-तीन दिनोंमें ही पीलिया दूर हो जायगा। इसका प्रयोग केवल तीन दिनका है।

स्वप्नदोषकी निवृत्तिके लिये प्रात:काल एक रत्ती भंगभस्म, एक छोटी चम्मच मक्खनपर डालकर तीन दिन ले ले। विद्यार्थियोंमें यह रोग बहुत फैला है, अतएव वे इसका विशेषरूपसे सेवन करें। पर दवा लाभ तभी करेगी, जब आप अपनेको बुरी संगति तथा बुरे विचारोंसे दूर रखेंगे। रात्रिको सोनेसे पूर्व लघुशंका करके, ठंडे जलसे हाथ-पैर धोकर, एक-दो घूँट ठंडा पानी पीकर मन-ही-मन 'राम' नामका जप करते हुए एवं रोगनिवारणार्थ सच्चे हृदयसे प्रभुसे प्रार्थना करते हुए निद्राका आह्वान करें।

जिन लोगोंको शुद्ध 'भंगभस्म' मिलनेमें संदेह हो, वे मुझे पत्र लिखें, मैं बिना मूल्य भेज दूँगा।

—मनोहरलाल अग्रवाल, (जे०पी०)

'Ramsharanam' (रामशरणम्) A 18th Road (१८ वीं सड़क), Chembur (चेम्बूर), Bombay ७१ (बम्बई ७१)

(२१) खूनके दस्तकी दवा

किसी भाईको खूनके मरोड़े दस्त आते हों, किसी भी दवासे आराम न होता हो, उसपर इसका प्रयोग करके देखें। एक महात्माका दिया हुआ नुसख़ा है—

एक कोरी छोटी हाँड़ी या परवेमें एक पाव ताजा जल डाल दें और उसी समय छीलकर लाया हुआ जामुनके पेड़का थोड़ा गूदा उस पानीमें डाल दें। सुबहका डाला हुआ शामको और रात्रिका डाला हुआ सुबह हाथसे खूब मसलकर बिना कुछ डाले कपड़ेसे छानकर पिला दें। बरतनको बाहर खुली हवा या ओसमें रखना चाहिये। गूदा उसी समयका ताजा लाना चाहिये।

कितना ही पुराना रोग हो, दो खुराकमें ही ठीक हो जाता है। तीसरी खुराककी जरूरत प्राय: नहीं पड़ती। इस प्रयोगसे बहुत लोगोंको लाभ हो चुका है।

—श्रीमाधोराम आलूवाला, दर्शनीगेट, देहरादून, (उ०प्र०)

(२२) नासूरकी दवा

भाँगके पौधेके पत्तोंको पीसकर टिकिया बनाकर बाँधनेसे नासूर अच्छा हो जाता है। उसीके पत्तोंसे ज़ख्मको पोंछना चाहिये। खेतपर काम करनेवाले एक मुसलमान मजदूरके मुँहपर आँखके नीचे नासूर था। इस प्रयोगसे अच्छा हो गया।

—श्यामविहारीलाल पेन्शनर, तिलकनगर, बी-९९ सूर्यमार्ग, जयपुर-४ (राजस्थान)

(२३) हड्डी और मांसके नासूरकी अनुभूत दवा

शरीरके किसी हिस्सेमें पुराना घाव हो जानेपर उसकी हालत खराब हो जाती है, नासूर बन जाता है। उसके सेप्टिक हो जानेका डर रहता है। ऐसी अवस्थामें उस हिस्सेको काटकर निकाल देनेके सिवा और इलाज प्रायः नहीं बताया जाता। ऐसे ही नासूरकी यह अचूक दवा है—

गायका मक्खन (दहीको मथकर निकाला हुआ) एक छटाँक किसी काँसीकी बड़ी थालीमें रखकर उसे स्वच्छ पानीसे १०८ बार खूब धो लीजिये। (यह मक्खन विषवत् हो जाता है, इसे खाना नहीं चाहिये।) इसमें एक तोला काला सुरमा और एक तोला सफेद सुरमा अच्छी तरह खूब महीन पीसकर मिला दीजिये। बस, दवा तैयार है। इस मरहमको थालीके एक किनारे इकट्ठा करके उस किनारेके नीचे कोई चीज रखकर उसे ऊँचा कर दीजिये। दो-तीन घंटेमें सारा पानी बूँद-बूँद करके निकल जायगा।

फिर नीमके पत्ते उबालकर उस पानीसे घावको धो लें। तदनन्तर फलालेन या किसी मुलायम कपड़ेको नासूरके बराबर काटकर उसपर मरहम लगाकर नासूरपर रख दें। उसपर रूई रखकर प्लास्टिककी पट्टीसे उसे चिपका दें। नासूरको सिर्फ शुरूमें एक बार धोना है। फिर प्रतिदिन एक बार मरहम लगाकर पट्टी बदल देनी है। १५-२० दिनोंमें नासूर ठीक हो जायगा।

—हरिश्चन्द्र अग्रवाल, पो० कैमरी (हिसार)

(२४) मूत्रातिसारकी जड़ी

अधिक पेशाब आनेसे निर्बलता आ जाती है और मूल्यवान् औषध भी शीघ्र लाभ नहीं कर पाती। हिंदीमें इसे खरेटी, बरियारी; मराठीमें—चिकणा थोरला; गुजरातीमें—खपाट, बला और अंग्रेजीमें कंट्रीमेलो इत्यादि कहते हैं। इसकी जड़की छालका चूर्ण छः मासा, चीनी एक तोला, ऽ=पाव दूधके साथ पी लें। यदि जड़ न मिले तो बीज पंसारियोंके यहाँ बीजबंद नामसे मिलेंगे। उनका चूर्ण, चीनी एक तोला, दूध आध पावके साथ प्रातः-सायं दोनों समय पीनेसे तीन दिनमें अवश्य लाभ होगा। प्रातः-स्नानादि, शीत-उपचारसे परहेज रखें।

—कामदेवप्रतापसिंह, सिद्धसदन भिटारी, धनगढ़

(२५) रक्त-प्रदर तथा श्वेत-प्रदरकी दवा

पत्थर संगजरात (या घीया भाठिया) पाँच तोले गेरू (या सोना गेरू) पाँच तोले।

दोनोंको महीन पीस लें, जिस माता-बहिनको खून आता हो, उसे पाँच-पाँच माशेकी पुड़िया ५-५ घंटे बाद ताजा पानीसे दे। एक महात्माकी आशीर्वाद रूपमें बतायी हुई दवा है।

इसी दवाको श्वेतप्रदर (ल्यूकोरिया)-में दो-दो माशा ५-५ घंटे बाद २१ दिनोंतक ताजा जलके साथ दें। दवाका सेवन करते समय गुड़, तली हुई तेलवाली चीजें, लाल मिर्च तथा खटाईका सेवन न करे। नमकका भी कम प्रयोग करे तो अच्छा है।

(रक्त-प्रदरमें मुलतानी मिट्टी भी बहुत लाभ पहुँचाती है। दो तोलेसे चार तोलेतक मुलतानी मिट्टी जलमें घोलकर दिनमें एक बार तीन दिनोंतक पिला दे।)

—डॉ० बजरंगदास गोयल

(२६) श्वेतप्रदरपर अनुभूत योग

शीशमके पत्तोंको छायामें सुखा लीजिये। जब पूर्णतया सूख जायँ, उन्हें कूटकर कपड़छान कर लीजिये। जितना चूर्ण बने, उतनी ही मिश्री पीसकर रख लीजिये। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर ठंडे जल (सद्यजल)-के साथ १ तोला (आधा तोला चूर्ण और आधा तोला मिश्री पीसी हुई) लीजिये। सात दिनोंतक ऐसा करनेपर ईश्वरकी कृपासे आशातीत लाभ मिलेगा। जितने दिन ले, उतने ही दिन तेल, खटाई, गुड़, अचार, मिर्ची न खावे।

(२७) अर्श—बवासीरनाशक कुछ अनुभूत योग

(१)

मुझको यह रोग हो गया था। मैंने नीचे लिखा प्रयोग किया, उससे बहुत लाभ हुआ। बवासीर—अर्शके रोगी इसका प्रयोग करके लाभ उठावें—

नीमकी निबौलीके अन्दरकी मींगी २१ दाने तथा इसीके समान काली मिर्च २१ नग। दोनोंको पीसकर गोली बना ले और जलके साथ निगल जाय। कुछ ही दिनोंके प्रयोगसे मस्से मिट जायँगे। जलन बंद हो जायगी। रोग घटनेके साथ-साथ दवाकी मात्रा कम कर सकते हैं। तेल, खटाई, गुड़, लाल मिर्च, अरुई, भिंडी, उड़दकी दालका सेवन न करे तो अच्छा है।

—गोविन्दराव रामचन्द्रराव गर्दे, रिटायर्ड नायब तहसीलदार, देवगढ़ पो० कैलारव (मुरेना) म० प्र०

(२)

नारियलके ऊपरकी भूरी जटामेंसे रेशे जो काटकर फेंक दिये जाते हैं, उन्हें लाकर एक माचिसकी तीलीसे जला देवे—फौरन जल जायँगे, जल जानेके बाद काफी राख हो जावेगी; सो छानकर एक चम्मच (चायकी) एक प्लेट अंदाज, रातका जमाया हुआ गायके दूधका सुबह दही हो जायगा, उसमेंसे एक कटोरी अंदाज लेकर उसमें राख अच्छी तरह घोल देवे। उसमें मसाला-शक्कर कुछ न डालें, निरणावासी सुबह उठते ही बिना और कुछ पिये-खाये इसे पी जावे। एक-डेढ़ घंटा बाद चाय, दूध नाश्ता ले सकते हैं। दिनमें दो बार भी कर सकते हैं। दो-तीन खुराकमें रोग जड़से मिट जावेगा। खून बंद हो जावेगा—मस्सेकी गोलियाँ अंदरतककी सूख जावेंगी। अधिक-से-अधिक तीन—चार दिनोंमें तो रोगका नामोनिशान भी नहीं रहना चाहिये। यह अनुभूत औषधि है।

(३)

रसनामें अनावश्यक आसक्ति बढ़ानेसे बवासीरके सदृश रोगोंकी उत्पत्ति होती है। प्रायः जीर्ण कोष्ठबद्धता (क़ब्ज़)-के कारण गुदाकी त्रिवल्लियोंमें मांसांकुर उत्पन्न हो जाते हैं, जिन्हें मस्से (Piles) कहा जाता है। शौच जाते वक्त इन मस्सोंपर मलकी दबाव-प्रतिक्रिया होनेसे असहनीय दर्द होता है। बैठने-उठनेमें भी कठिनाई रहती है। प्रायः मस्सोंसे रक्त-स्राव होता है। यही बवासीरका भयंकर रूप है। ऑपरेशन करवा लेनेपर भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये फिर कभी नहीं होंगे।

अतएव यहाँ 'जनहिताय' मस्से (बवासीर)-का एक आध्यात्मिक प्रयोग लिखा जाता है। मस्सा-निवारणका एक मन्त्र है, जो (मारवाड़के) प्रसिद्ध योगी दिवंगत श्रीनवलनाथजी महाराजने स्वामी दयारामजीको प्रदान किया था। तबसे अबतक बहुत-से लोगोंको इस मन्त्रसे शत-प्रतिशत लाभ हुआ है। मन्त्र इस प्रकार है—

'ईशम ईशो ईशाम, कंकर को न करो ललिशाम् आठों अच्छर जो नित जोय मूल बवासीर होय न होय'

प्रयोग विधि—गुदा धोते समय इस मन्त्रको मन-ही-मन गुनगुनाया जाय। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक कुछ दिन ऐसा करनेसे, चाहे जैसा भी भयंकर खूनी बवासीर क्यों न हो, निश्चितरूपसे आराम होता है। इसके साथ ही खाद्य-अखाद्यका ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

—सुन्दरलाल बोहरा

(४)

कैसा ही पुराना और खूनी बवासीर हो, 'डीकामाली' (Deekamali) अथवा 'मीकामाली', जो पंसारीके यहाँ मिलती है। पीला रंग और कुछ खरा-सा स्वाद होता है। गन्ध भी आती है। एक माशा चूर्ण करके देशी नमक मिलाकर फाँक ले और ऊपरसे ठंढा जल पी ले। शामको एक ही खुराकसे सुबह लाभ होता है। यदि एक खुराकसे न ठीक हो तो दो-तीन दिन सुबह-शाम लेते रहे। इससे कोई नुकसान नहीं होता। ओषधि अनुभूत है। प्रयोगसे चूके नहीं, अवश्य लाभ होता है। विश्वास करे।—बनवारीलाल भार्गव, बी०ए०, एल्-एल्०बी०, एडवोकेट, राघौगढ़ (गुना) मध्यप्रदेश

(५)

बवासीर वादी हो या खूनी—निम्नलिखित प्रयोग दोनोंमें लाभ करता है—मोठ २५० ग्राम लेकर उसके बराबर दस भाग कर लें और प्रतिदिन सबेरे शौच-कुल्ला-दातौन करनेके बाद दस दिनोंतक लगातार एक-एक भाग अर्थात् २५ ग्राम मोठ अच्छी तरह चबाकर थोड़ा-सा ठंढा जल पी ले। उसके एक घंटे बाद दूध, चाय, नाश्ता वगैरह जो भी रोज लेते हों, सो लें। मोठ राजस्थानमें मूँग-जैसा ही (मूँगसे कुछ बड़ा) होता है। सब जानते हैं। जो लोग दाँतके दर्द या बुढ़ापेमें दाँत न होनेके कारण न चबा सकें, वे सिलपर लोढ़ासे मोठोंका चूरा करके ठंढे जलके साथ ले लें। इस प्रयोगसे बहुत लोगोंको लाभ हुआ है। किन्हींको कुछ पूछना-जानना हो तो नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

—हरिराम लडिया (सरदारशहरवाला) द्वारा श्रीसूरजमल हरमुखराय, १९२ जमुनालाल बजाज स्ट्रीट, तीसरा तल्ला, कलकत्ता-७

(६)

रसौत एक तोला और कलमी सोरा एक तोला—दोनोंको पानीमें खूब महीन पीसकर आठ-आठ आनेभरकी गोली बना ले। एक गोली प्रात:काल और एक संध्याको ठंडे जलके साथ खिला दे। यह दो दिनोंकी दवा है। इसीसे खून बंद हो जायगा। न हो तो, दो दिन इसी प्रकार और दे दे। गुड़, लाल मिर्च, खटाई, तेल कतई न खाये।

—बंसीधर अग्रवाल पयागपुर (बहराइच)

(२८) गुदभ्रंश, काँच निकलना (Prolapsus Ani)

पाखाना जाते समय गुदाका भीतरी भाग (काँच) बाहर निकल आता है। इससे रोगीको बहुत कष्ट होता है। यह रोग बच्चोंको अधिक होता है। इसमें गूँदी वृक्षकी पतली जड़ किसी भी मङ्गलवारको रोगीकी कमरमें बाँध देनेसे आशातीत लाभ हो जाता है। लाभ होनेपर हनुमान्जीको सिन्दूर चढ़ाना चाहिये और हनुमान्जीके पास अगरबत्ती लगानी चाहिये। परीक्षित है!

(२९) कुछ अनुभूत अमोघ दवाएँ

१. आधासीसी—रात्रिको सोनेसे पूर्व एक छटाँक चीनी या चीनीका बूरा पावभर पानीमें घोलकर ढककर रख दे। ऐसा ढके जिसमें चींटी आदि न लग जाय। प्रात:काल सूर्योदयसे एक घंटा पहले जलको अच्छी तरह हिलाकर पी जाय। बस, आधासीसी गयी। यह अनुभूत है।

२. तिजारी (एकान्तरा) ज्वर—ज्वर आनेके दिन दो घंटे पहले, रोगीको थोड़ा-सा गुड़ लेकर अपने पास बुला ले; फिर थोड़ी-सी भुनी हुई फिटकरी गुड़में डालकर भगवान्‌के नामका उच्चारण करते हुए उसकी गोली बनाकर रोगीको खिला दे। ऊपर थोड़ा-सा जल पिला दे। इससे एकान्तरा नष्ट हो जाता है।

३. उदररोग—प्रतिदिन प्रात:काल गाय (काली गौ, हो तो सर्वोत्तम)-का पहली दफेका मूत्र मिट्टी, काँच या चीनी मिट्टीके बरतनमें लेकर उसमेंसे छानकर केवल एक छटाँक गोमूत्र पी ले। चालीस दिनोंतक नियमित पीना चाहिये। इससे पेटके सारे रोग दूर होते हैं।

४. (क) उदरशूल—कच्ची फिटकरी दो माशा, एक तोला शुद्ध शहदमें बारीक पीसकर उसे चटा दे। १५ मिनटमें आराम हो जाता है।

(ख) नाभिके नीचेका शूल (वृक्क-शूल)—एक मुनक्का लेकर उसमेंसे बीज निकाल दे और बीजकी जगह एलुवा रखकर उसे रोगीको निगलवा दे। ऊपरसे थोड़ा-सा जल पिला दे। पाँच ही मिनटमें आराम होता है।

—श्रीराधेश्याम मौनी बाबा बंशीवाला, वंशीवट, वृन्दावन

(३०) बालकोंके मस्से

बालकोंके हाथ-पैरोंमें प्राय: मस्से पैदा होकर उन्हें कुरूप बना देते हैं। इसकी अचूक ओषधि है—'चिरायता'। चिरायता दो प्रकारका होता है—गाँठिया और बाँसिया। गाँठिया विशेष उपयोगी है। पंसारियोंके यहाँ मिलता है। वैसे तो यह कई रोगोंको दूर करता है, पर मस्से तो पाँच-सात दिनतक सेवनसे ही सूखकर, पपड़ी बनकर गिर जाते हैं। विधि यह है—आधा तोला चिरायता कूटकर, कपड़छानकर चूर्ण बना ले और शहद मिलाकर उसकी चनेके बराबर गोलियाँ बना ली जायँ। प्रात: शौचादिके बाद ४-५ गोली प्रतिदिन सेवन करा दें। बालक सरलतासे निगल सकते हैं। ओषधि-सेवनके समय तेल, लाल मिर्चका परहेज रखे। इनका प्रयोग अनेक बार शत-प्रतिशत सफल हुआ है। चिरायता शब्द 'चिरायुत्व' (लंबी आयु)-का अपभ्रंश है।

—देवीप्रसाद तिवानी, पो० सूलिया, वाया भवानी मंडी, (झालावाड़) (राजस्थान)

(३१) कानके रोगोंकी दवा

मेरे बहनोईजीके कानमें नौ वर्षसे मवाद बहता था, पास बैठनेपर दुर्गन्ध आती थी। मुझे एक संतजीने इसके नाशका एक प्रयोग बताया और उसके करनेपर उनका रोग नष्ट हो गया। उसे लोकहितार्थ यहाँ लिख रहा हूँ —

जामुनके पत्ते, आँवलाके पत्ते, चमेलीके पत्ते, महुआके पत्ते और बड़का वल्कल (अन्तरछाल)। पत्ते सबके बराबर हों। पत्तोंको बड़की छालके साथ पत्थरपर मेहँदीकी तरह पीसकर कपड़ेमें रखकर सबका रस निचोड़ ले। रसके बराबर मीठा तिल्लीका तेल मिलाकर अग्निपर चढ़ा दे। जब रस जलकर केवल तेल रह जाय, तब उसे उतारकर, छानकर शीशीमें भरकर रख ले। इस तेलको कानमें डालनेसे कानसे मवाद बहना, फुन्सी, तड़फन आदि बंद हो जाते हैं। इसे बेचे नहीं।

—जयनारायण ज्योतिषी, पो० नयी सराय, जि० गुना (म०प्र०)

(३२) शङ्ख एवं घंटा-ध्वनिसे रोगोंमें लाभ

(१) शङ्ख-ध्वनि—सन् १९२८ ई० में बर्लिन यूनिवर्सिटीने शङ्ख-ध्वनिका अनुसंधान करके यह सिद्ध किया है कि शङ्ख-ध्वनिकी शब्द-लहरें बैक्टीरिया नामक (संक्रामक रोगके) कीटाणुओंके नष्ट करनेमें उत्तम और सस्ती ओषधि है। यह प्रति सेकंड २७ घन फुट वायु-शक्तिके जोरसे बजाया हुआ शङ्ख १२०० फीट दूरीके बैक्टीरिया जन्तुओंको नष्ट कर डालता है और २६०० फीट दूरीतकके जन्तु इस ध्वनिसे मूर्च्छित हो जाते हैं। बैक्टीरियाके अतिरिक्त इससे हैजा, गर्दनतोड़ बुखार, कम्पज्वरके कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं और ध्वनि-विस्तारक स्थानके पासका स्थान निःसंदेह निर्जन्तु हो जाता है। मिरगी, मूर्च्छा, कण्ठमाला और कोढ़के रोगियोंके अंदर भी शङ्ख-ध्वनिकी प्रतिक्रिया होती है तथा यह रोगनाशक होती है। शिकागोके डॉ० डी० ब्राइनने तेरह बहरोंको शङ्ख-ध्वनिसे ठीक किया था और आजतक न जाने कितने और ठीक हुए होंगे। मेरे एक मित्र श्रीकेशरीकिशोरजीने अभी गतमास एक नवयुवकको, जिसका कान बहता था तथा बहरापन था, शङ्ख बजानेका परामर्श दिया, जिससे दस दिनोंमें उचित लाभ हुआ। प्रयोग अभी चल रहा है।

(२) घंटा-ध्वनि—अफरीकाके निवासी घंटेको ही बजाकर जहरीले साँपद्वारा काटे हुए मनुष्योंको ठीक करनेकी प्रतिक्रियाको पता नहीं, कबसे आजतक करते चले आ रहे हैं। ऐसा पता लगा है कि मास्को सैनीटोरियममें घंटेकी ध्वनिसे ही तपेदिक रोग ठीक करनेका सफल प्रयोग चल रहा है। सन् १९१६ में बकिंघममें एक मुकद्दमा चला था—एक तपेदिक रोगीने गिरजाघरमें बजनेवाले घंटेके सम्बन्धमें यह दावा अदालतमें किया था कि इसकी ध्वनिके कारण मैं बराबर स्वास्थ्यहीन होता जा रहा हूँ और मुझे काफी शारीरिक क्षति पहुँचती है। इसपर अदालतने तीन प्रमुख वैज्ञानिकोंको घंटा-ध्वनिकी जाँचके लिये नियुक्त किया। यह परीक्षण सात महीने किया गया और अन्तमें वैज्ञानिक-बोर्डने यह घोषित किया कि घंटेकी ध्वनिसे तपेदिक रोग दूर होता है और कहा जाता है कि इससे अन्य शारीरिक कष्ट कटते हैं तथा मानसिक उत्कर्ष होता है।

अभी बजा हुआ घंटा आप पानीमें धो डालिये और उस पानीको उस स्त्रीको पिला दीजिये, जिस स्त्रीको अत्यन्त प्रसव-वेदना हो रही हो और प्रसव न होता हो; फिर देखिये—एक घंटेके अंदर ही सारी आपत्तियोंको हटाकर सरलतापूर्वक प्रसव हो जाता है।

—मनमोहनलाल, एच्०एम्०डी०

(३३) दाद-खाजकी चार अनुभूत दवाएँ

(१)

मूलीका बीज पानीमें पीसकर आगपर खूब गरम कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् उसे उस स्थानपर, जहाँ दाद-खाज हो, खूब गरम-गरम लगा देना चाहिये। पहले दिन तो मूलीका बीज खूब लगेगा और मरीजको थोड़ा कष्ट भी होगा; किंतु याद रखना चाहिये कि दवा जितनी जोरोंसे लगेगी उतना ही अधिक फायदा होगा। दूसरे दिन भी यही प्रयोग करना चाहिये। दूसरे दिन पहले दिनकी अपेक्षा कम तकलीफ होगी और इसी प्रकार तीन-चार दिनोंके प्रयोगसे दाद-खाज, चाहे जैसा भी पुराना हो जड़से आराम हो जायगा। यह मेरी, अनुभूत दवा है। आशा है 'कल्याण'के पाठक एवं पाठिकाएँ इससे पूरा-पूरा लाभ उठायेंगी। —जयकान्त झा, प्रधान लिपिक हरिश्चन्द्र कॉलेज, वाराणसी।

(२)

साधारणतया बारह महीनेके दादको तो समाप्त करनेके लिये यह रामबाण तो है ही, पुराने दादोंमें भी इससे आराम अवश्य मिलता है।

गायकी शुद्ध लौनी (नवनीत)-को काँसीकी थालीमें कम-से-कम एक सौ बार मीठे पानीसे धो लीजिये। प्रत्येक बार हथेलीसे पानीमें घीको थालीमें घिसने और यह समझकर कि प्रत्येक बार ही घीके कण-कणमें पानी पहुँच गया है, पानीको फेंक दीजिये। इस प्रकार पूरे सौ बार किया जाय, इस धुले हुए घीको किसी चीनी या काँचके बरतनमें उतारकर रख लीजिये। सुबह-शाम सूर्योदय और सूर्यास्तके समय दादपर अपनी अँगुलीसे लगाकर मलिये। ईश्वरकी कृपासे अवश्य ही लाभ होगा।

यथाशक्य नमक एवं मिर्ची खानेमें कम कर दीजिये। यह कोई परहेज नहीं, परंतु दादके पीड़ाकालमें इन्हें कम खानेसे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

(३)

शनिवारके दिन सुबह उठते ही बासी मुँह थोड़ा मुँहसे थूक लेकर दादपर लगावे। सात दिनतक लगातार लगाते रहे। आपका दाद अवश्य मिट जायगा। इससे बहुतोंको लाभ हुआ है।

—नाटककार हरिप्रसाद शर्मा, छोटा मुलाखाली, थाया कैनिंग टाउन, २४ परगना

(४)

निम्नलिखित 'दाद' का बहुत उपयोगी और बहुत-से रोगियोंपर आजमाया हुआ नुसख़ा है।

१. खुरासानी अजवाइन	=१० ग्राम
२. गंधक आमलासार	=१० ग्राम
३. सोहागा	=१० ग्राम
४. राल	=१० ग्राम
५. कपूर	= ५ ग्राम
योग	=४५ ग्राम

इन सब दवाइयोंको कूट-पीसकर कपड़छान कर ले और फिर नीबू या पँवार (चकौड़)-के अर्कमें घोटकर गोली बना ले और धूपमें सुखा ले। जरूरतके समय एक गोलीको नीबूके रस या पानीमें घिसकर दादपर लगावे। तीस दिनमें दाद अच्छा हो जायगा।

—माताप्रसाद तहसीलदार (औ०प्रा० मकान नं० ५ $\frac{३}{१४}$, अर्दली बाजार, वाराणसी—२

(३४) बहुत-से रोगोंका एक इलाज—'अनुभूत रसायन तेल'

यह एक महात्माका आशीर्वाद एवं कथन है कि सेवाभावसे बनाने एवं बाँटनेपर यह सिद्ध ओषधि है—

१ सेर गोले (नारियल)-का शुद्ध तेल लेकर कड़ाहीमें गरम कर ले, २ छटाँक नीमके हरे मुलायम पत्ते तेलमें डालकर जलने दे, २ छटाँक मालेके पत्ते भी डालकर तेलमें भुनने दे, १ छटाँक फूल ढाक (केवल फूल सूखे) या ताजे फूलका मौसम हो तो २ छटाँक ताजे सिर्फ फूल तेलमें डालकर जला ले। ये तीनों चीजें जब जल जायँ तो कढ़ाई उतारकर ठंडा होनेपर तेल छानकर बोतलमें भर ले।

प्रयोग—जले, कटे, चोट, फुंसी, फोड़ा, खाज, नासूर, सिरदर्द, कानका दर्द, लू लग जाना, बिच्छू, सर्प, ततैया एवं अन्य जहरीले जानवरोंके काटनेपर ईश्वरका नाम लेकर प्रयोग करे; तुरंत अवश्य लाभ होगा।

प्रयोग-विधि—जले, कटे तथा चोटपर बारीक साफ कपड़ा तेलमें भिगोकर सिर्फ जले, कटे या चोटके

भागको ढक दे। ऊपर तेलके कपड़ेसे कुछ बड़ा पान या अन्य मुलायम पत्ता ढककर ऊपरसे रूई या रूअड़ रखकर पट्टी बाँध दे। खाज एवं अन्य दर्दोंपर मालिश, नासूरपर रूईकी सूखी बत्ती नासूरमें पास करके ऊपरसे १-२ बूँद तेल टपकाकर ऊपर लिखे ढंगसे बाँध दे। आँखमें सलाईसे लगावे। जहरीले जानवरके काटनेपर तेल गरम कर फाया रखना चाहिये एवं बिच्छू-सर्पके काटनेपर गरम फायेके अलावा कान एवं गुदामें भी १-२ बूँद तेल लगा देना चाहिये और भी कई रोगोंमें प्रयोग-विधिके अन्तरसे लाभ होगा कुछ और मालूम करना हो तो कृपया जवाबी कार्ड डालकर मालूम करे। एक बार फिर प्रार्थना है कि धन कमानेकी दृष्टिसे महात्माजीके आशीर्वादको न अजमाये। हम बीस वर्षसे इसे बनाते एवं मुफ्त बाँटते हैं। जो बाँट सकते हैं अच्छा है, नहीं तो बनाकर घरमें रखें, हर समय कामकी ओषधि है।

—महेशचन्द्र सिंघल महेश खादी वीविंग फैक्ट्री, मेरठ (उ०प्र०

(३५) मुँहके छालोंकी रामबाण दवा

पालसे निकले हुए गरम आम या अन्य किसी गरम वस्तुके खानेसे, पेटकी खराबीसे, ज्यादा तरबूज या खरबूजेको खानेसे मुँहमें छाले पड़ जाते हैं। मेरे मुँहमें भी ऐसे छाले पड़ गये थे, जो इस प्रयोगसे मिट गये। अन्य कई लोगोंने प्रयोग किया, सबको लाभ हुआ।

छालोंकी पहचान—मुँहमें छाले होनेपर मुँहमें मिठाई, मट्ठा, जलतक किसी भी वस्तुके खाने-पीनेपर जलन होती है। छालोंके कई भेद होते हैं। मुँहमें छोटे-छोटे छाले बहुधा जलनके कारण होते हैं। वे लाल रंगके भी होते हैं तथा सफेद रंगके भी। हाथ फिरानेपर खुरदरी फुंसी-सी प्रतीत होती है। इनसे बड़ी जलन होती है। बड़े छाले सफेद रंगके होते हैं, छूनेपर जलन होती है। इनको नष्ट करनेका उपाय है—

(१) छाले होठों तथा जीभपर हों तो थोड़ी-सी फिटकरीकी डली लेकर किसी अपने साथीसे छालोंपर मलवावे। छालोंपर फिटकरीकी रगड़से जो द्रव पैदा हो, उसे बाहर जमीनपर उगल दे। दिनमें २-३ बार ऐसा करनेसे छाले शर्तिया नष्ट हो जाते हैं।

(२) गलेके भीतरतक छाले हों तो फिटकरीका घोल बनाकर उसका प्रयोग करे। एक छटाँक फिटकरीमें एक पाव पानी डालकर '**ॐ भगवते नमः**' मन्त्रको बीस बार बोलते हुए घोल बना ले। इस घोलके कुल्ले करे। कुल्लाका जल बाहर पृथ्वीपर थूक दे, घोल पीये नहीं। दिनमें यह प्रयोग कई बार करे, पर घोल बनाते समय मन्त्र-जप करना न भूले। इससे छाले निश्चय ही मिट जाते हैं। —ठाकुर चन्द्रपालसिंह चौहान, पो० न्यौराई, जिला-एटा (उ०प्र०)

(३६) पेशाब खुलकर आनेके परीक्षित योग

यह योग बहुत ही उत्तम सफल सिद्ध हुआ है। प्रायः ग्रीष्म-ऋतु एवं वर्षा-ऋतुमें यह सामान्यतया देखा जाता है कि पुरुषों एवं महिलाओंको पेशाब रुक-रुककर आता है अथवा कुछ समयके लिये आता ही नहीं। यह पीड़ा विवाहित पुरुषों और महिलाओंको अधिक होती है। इसके लिये बहुत ही सस्ता और अत्यधिक आरामदायक योग है—

(क) स्थानीय पंसारीसे कलमी शोरा ले आइये। यह नमक-जैसा क्षार होता है। इसे पानीमें पीसकर पेडू (मूत्राशयके ऊपरवाला भाग जहाँतक अधोवस्त्र पहना जाता है और नाभिसे नीचे)-पर लेप करिये। ७५% तो लेप करनेसे ही पेशाब आना शुरू हो जायगा। यदि फिर

भी नहीं होता है तो एक गिलास ठंडे पानीमें आठ आनेभर (आधा तोला) कलमी शोरा घोलकर पिला दीजिये। १०-१५ मिनटमें पेशाब ठीक स्थितिमें आना शुरू हो जायगा।

यह ध्यान रखिये, शीत-ऋतुमें एवं मंथर ज्वर, चेचक आदिके समय किसी भी दशामें इसे पिलाया न जाय। लेप कर देनेसे हानि नहीं होगी।

(ख) इसबगोल एक तोला आधा सेर जलमें डालकर उसे १५ मिनटतक उबाले, फिर छानकर ठंडा कर ले। तदनन्तर उसमें एक तोला मिश्री मिलाकर दिनमें तीन बार रोगीको पिला दे। इससे भी शीघ्र ही पेशाब साफ आना शुरू हो जायगा।

—बाबूलाल अग्रवाल, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न, हिन्दी-साहित्य-सदन, जयपुर (राज०)

(३७) दाढ़ और दाँतके दर्दकी अनुभूत दवा

(१)

काकड़ासिंगी = एक तोला
छोटी पीपर = एक तोला

दोनोंको महीन पीसकर आठ आनेभर खानेका सोडा मिलाकर रख ले। जहाँ दर्द हो, वहाँ मल दे और नीचेको मुँह कर दे ताकि सब लार गिर जाय। उसके बाद गरम पानीसे कुल्ला कर डाले। दस मिनटमें दर्द मिट जायगा। यह मेरा अनुभव किया हुआ योग है। बहुत-से व्यक्तियोंको लाभ हुआ है।

—राधावल्लभ उपाध्याय, नगरा (झाँसी)

(२)

नियमित रूपसे मंजन न करने, अन्नादिका कुछ अंश अंदर रह जाने, शरीरमें खूनके अंदर 'फासफोरस' एवं 'कैल्सियम' की कमी और अधिकतर गरम-गरम खाद्य पदार्थ खाने-पीनेके तुरंत बाद ठंडा जल पीनेके फलस्वरूप दाँत-दाढ़के मसूढ़ोंमें सूजन पैदा हो जाती है, दाँत सड़ जाते हैं तथा दाढ़में सूराख भी हो जाता है, जिसको 'कानी' होना कहते हैं।

दाढ़का दर्द 'केरिज' (Caries) बड़ा ही भयानक वेदनाजनक होता है। रोगीको चैन नहीं लेने देता। इस दर्दमें रोगी न खा-पी सकता है और न नींद ही ले पाता है।

दवा-प्रयोग—इस दवाका अंग्रेजी नाम है **कैल्सियम लेक्टास**। चूने-जैसा सफेद रंगका पाउडर होता है। ऐलोपैथिक चिकित्सा-केन्द्रोंपर एवं अंग्रेजी दवा बेचनेवालोंके यहाँ मिल सकता है। सस्ता भी है। दो तोला ले आइये। ३ ग्राम करीब एक बारमें लेकर दिनमें ३ बार मंजनकी तरह जहाँ दर्द हो तथा दर्दके इर्द-गिर्द अँगुलीसे मलिये। यदि कानी (केरिज) हो तो ऐसी कोशिश कीजिये, जिसमें दवाका कुछ अंश सूराखमें चला जाय। यह मलनेकी क्रिया पाँच मिनटतक करते रहिये। दवासे सना थूक या लार गलेमें न उतारकर बाहर ही थूक देना चाहिये। भूलसे अंदर चला भी जाय तो हानि भी नहीं होती। एक दिनमें ही आराम मिल जायगा, फिर भी दूसरे दिन इस क्रियाको फिर कीजिये। मैंने बहुत-से रोगियोंपर इसका प्रयोग किया है और शत-प्रतिशत सफलता पायी है।

कोई सज्जन यह कार्य लोभ-लालचवश न करें। केवल ***'पर हित सरिस धरम नहिं भाई'*** के सिद्धान्तपर ही सेवाके भावसे करें। किसी भाईको यदि दवा कहीं न मिले तो उनके लिखनेपर मैं बिना मूल्य भेज सकूँगा।

—मदनलाल काबरा, 'सकन्धपाल' ए० एच० पो० छापड़ेल, त० कोटड़ी निवासी हमीरगढ़के जिला-भीलवाड़ा (राजस्थान)

(३८) श्वेतकुष्ठकी अनुभूत दवा

खानेकी दवा—बावची एक पाव, मेंहदीके बीज एक छटाँक, चित्रकके जड़की छाल एक तोला—उपर्युक्त तीनों चीजोंको कूटकर कपड़छान कर ले। दवा तैयार है। इसे तीन माशा प्रातःकाल और तीन माशा सायंकाल ताजे जलके साथ खाना चाहिये।

लगानेकी दवा—जायफल एक तोला, गेरू एक तोला, बावचीचूर्ण एक तोला, काली मिर्च तीन माशा—चारों चीजोंको कूट-छानकर, पानमें खानेके चूनेके निथरे हुए पानीमें तीन घंटे घोटकर बेरके समान गोली बनाकर छायामें सुखाकर रख ले। तदनन्तर बछियाके मूत्रमें सूखी गोलीको घिसकर सफेद दागोंपर लगावे प्रातःकाल स्नानके बाद और रात्रिको सोते समय लगाना चाहिये।

इसके अच्छे होनेपर कुछ दान-पुण्य अवश्य करना चाहिये। परमात्माकी दयासे इस दवाके प्रयोगसे सैकड़ों रोगियोंको लाभ हुआ है। सेवन करनेपर १५-२० दिन बाद लाभ शुरू हो जाता है। मैं उदासीन सम्प्रदायका साधु हूँ। मेरे पास ठहरनेका स्थान नहीं है। अतः कोई सज्जन आनेका कष्ट न करें।

—शिवानन्द प्रवासी, कैलास मन्दिर, नगरा (झाँसी)

(३९) खाँसी-दमाकी तीन अनुभूत दवाएँ

(१)

काली मिर्च एक तोला, पीपल दो तोला, अनारदाना ४ तोला और जवाखार आधा तोला—इन सबको पीसकर ८ तोले गुड़में मिलाकर चटनीकी तरह कर ले और छोटी चम्मचभर दिनमें तीन बार चाट ले। इससे दुःसाध्य खाँसी मिट जाती है। दमाकी प्रवृत्ति दूर हो जाती है। मेरी बार-बार आजमायी हुई दवा है। —मीतीराम जगियासी साधु, ब्लाक नं० ३३६, उल्लासनगर-२

(२)

मुझे दमा-खाँसीकी भयानक पीड़ा थी। स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें मेरे मित्र श्रीसरदारीलालजी (सियालकोट)-ने मुझे यह दवा बतायी और इसके सेवनसे मेरा दमा सदाके लिये चला गया। मैंने कई सज्जनोंको दवा बतायी, सेवन करनेपर उनको भी अतिलाभ हुआ। दवा यह है—

मजीठ ढाई तोला, हल्दी पीसी हुई एक तोला, सोहागा फुलाया हुआ एक तोला, पीपल एक तोला। मजीठ और पीपलको अलग-अलग पीसकर कपड़ेसे छान लेना चाहिये।

अदरकका रस पाँच तोला, अड़ूसा (बासा)-का रस पाँच तोला, हरे आँवलेका रस पाँच तोला, नीमके पत्तोंका रस पाँच तोला—इन चारों रसोंको खद्दरके कपड़ेसे छानकर पत्थर या काँचके बरतनमें रखे, जिससे खराब न हो जाय।

अमलतासकी फलीके गूदेका रस पाँच तोला और घीकुआँरके गूदेका रस पाँच तोला—इन दोनोंके गूदेको अलग-अलग बरतनमें डालकर आगपर रख दे, जिससे गूदा नरम हो जाय। फिर खद्दरके कपड़ेसे निचोड़कर दोनोंका रस निकाल ले।

आधा सेर चीनी आगपर चढ़ाकर उसकी चाशनी बना ले, फिर ऊपरकी सब चीजें चाशनीमें डालकर उसे हिलाते रहे, जिससे नीचे लगकर कोई चीज खराब न हो जाय। जब चटनी-सी बन जाय, तब नीचे उतारकर एक पाव असली शहद मिलाकर किसी खुले मुखवाले बरतनमें डालकर उसे पानीमें रख दे, जिससे चींटी आदि न चढ़ सकें। कपड़ेसे चाहे ढक दे। बस, दवा तैयार है। इस दवाको दिनमें तीन बार एक-एक तोला दवा जीभपर रखकर चाटना चाहिये। चाय, तेल, लाल मिर्च आदि न खाय। भगवान्की दयासे शीघ्र लाभ होगा। —सेवक लूबाराम शर्मा, सेवक आश्रममार्ग, नं० ३० ए०, देहरादून (उ०प्र०)

(३)

खानेका नमक डेढ़ तोला लेकर सुनारकी सोना गलानेकी कुठालीमें पकवा लिया जाय। पकनेपर उसका भस्मरूप हो जायगा। उस नमकको खरल कर लिया जाय। रात्रिको भोजनके बाद दो मुनक्का दाख लेकर उनका बीज निकालकर वह डेढ़-डेढ़ रत्ती नमक उनमें भरकर गोली बना ली जाय। फिर धीरे-धीरे चूसकर दोनों मुनक्काकी गोलियोंको खा ले। इसके बाद तीन-चार घंटेतक जल नहीं पीना चाहिये। इस प्रकार ५—७ दिन इस औषधका प्रयोग करनेपर दमा (श्वास) रोगमें अवश्य लाभ होता है।

—फूलचन्द जैन 'पुष्प'

(४०) दो अनुभूत योग

(क)

मुँहमें अजीर्णके कारण या अन्य किसी कारण जो छाले हो जाते हैं, जिन्हें मुखव्रण भी कहते हैं। भोजन करते समय कष्ट प्रतीत होता है। उसके लिये चमेलीके अच्छे साफ पत्ते मुँहमें लेकर धीरे-धीरे चबाये, जिससे पत्तोंका रस भलीभाँति छालोंपर लग जाय। इसी तरह ३-४ दिन करे। दिनमें केवल एक बार पत्ते चबाना पर्याप्त है। इसके लिये कोई समय निर्धारित नहीं है। अवश्य लाभ होगा, यह मेरा स्वानुभूत योग है।

(ख)

हाथकी अँगुली या अँगूठेमें जो एक कठिन शोथ हो जाता है, जिसे नौघेरा या बिस्कुटी भी कहते हैं। उसके लिये साँपकी काँचली लेकर उसे शुद्ध शहदसे एक तरफ लपेट ले, फिर उसे पीड़ित अँगुलीपर अच्छी तरह चिपका दे, तत्कालकी उठी बिस्कुटी उसी दिन शान्त हो जायगी। यदि दो-चार दिन पुरानी हो तो एक-दो दिन यही प्रयोग करे। प्रत्येक दिन नयी-नयी काँचली उसी तरह शहदमें लपेटकर लगावे। श्रीहरिकी कृपासे अवश्य लाभ होगा, अनुभूत योग है।

—वैद्य भगवतीप्रसाद शर्मा

(४१) वायु-दर्द (पेटमें गैस) दूर होनेकी दवा

एक अम्बरी सेब लेकर उसमें एक तोला लौंग टोपीवाली (पूरी लौंग) लेकर एक-एक करके सभी सेवमें गाड़ दे। (गाड़ते समय 'भगवान् विष्णु' की तथा 'श्रीबजरंगबलीकी' जय बोले।) फिर उस सेबको किसी रस्सीमें बाँधकर तीन दिनोंतक छतमें लटका दे, ताकि चीटियाँ न लग सकें। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल (कुछ भी खाने-पीनेसे पहले), दोपहरको तथा शामको—यों तीन बार एक-एक लौंग चूसते रहे। इससे सिरदर्द भी मिटता है। आजमायी हुई दवा है। खटाई, तली चीजें, आलू, चावल आदि न खायँ तो अच्छा है।

—डॉ० बजरंगदास गोयल, तोहाना मण्डी

(४५) पशुओंके खुरपका[1] (Foot and Mouth Disease) रोग-नाशके लिये यन्त्र

'कल्याण' के प्रिय पाठकोंकी सेवामें एक सिद्ध यन्त्र-प्रयोग दिया जा रहा है। इससे लाभ उठाया जायगा, ऐसी आशा है।

पशुओंके 'खुरपका' रोग-नाशके लिये यह यन्त्र मेरे स्वर्गीय पूज्य पितामह श्रीपुरुषोत्तमदासजीको एक महात्मा संतने दिया था। यन्त्र बड़ा चमत्कारी है। मेरा और मेरे पिताजीका निजी अनुभव है—आजतक हमने हजारों पशुओंपर इसका प्रयोग करके शीघ्र सफलता प्राप्त की है।

प्रयोग इस प्रकार है—भगवान् श्रीगणेशजीका नाम-स्मरण करके यन्त्रको रविवार या मंगलवारके दिन कागजपर लाल स्याहीसे लिखना चाहिये, फिर उसे खानेके तेलका धूप देकर काले कपड़ेमें लपेटकर रोगी पशुके गलेमें बाँध देना चाहिये।—ज्योतिषी महेन्द्रकुमार, र० दरजी 'भृगुदेव ज्योतिष कार्यालय' हालोल, जि० पंचमहाल (गुजरात)

॥ श्रीखुरपका रोग-नाशका यन्त्र ॥

श्रीगणेशाय नमः

	४२	४२	४२	४२	
४२	१९	१४	५	४	४२
४२	१३	८	९	१२	४२
४२	७	१८	११	६	४२
४२	३	२	१७	२०	४२
	४२	४२	४२	४२	

(४६) 'रामरक्षास्तोत्र[2]' का चमत्कारी प्रभाव

'कल्याण' के ३९ वें वर्षके विशेषाङ्कमें प्रकाशित 'रामरक्षास्तोत्र' को मैंने आश्विनके नवरात्रमें, उल्लिखित विधिके अनुसार सिद्ध किया। तदनन्तर इसका प्रयोग मैं कई अवसरोंपर कई व्यक्तियोंपर कर चुका हूँ। इसके चमत्कारी प्रभावसे मैंने अपने परिवारके सदस्योंको तो विविध रोगोंके प्रकोपसे बचाया ही है, साथ ही अपने शिक्षक-बन्धुओं तथा शिष्योंको भी विविध प्रकारके रोगोंके उपचारमें इस स्तोत्रके प्रभावसे पर्याप्त सहायता प्रदान की है। मैं दन्तपीड़ा, उदर-पीड़ा, बिच्छूका काटना, ज्वरका वेग आदिपर इसका प्रयोग कर चुका हूँ तथा प्रत्येक अवसरपर इसके प्रयोगसे पूर्ण सफलता मिली है। इसके तत्काल चमत्कारी प्रभावको देखकर सम्बन्धित व्यक्ति, जिनपर मैंने इसका प्रयोग किया है, बड़े चकित तथा प्रफुल्लित हुए हैं। मेरा 'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंसे अनुरोध है कि वे भी इस स्तोत्रसे अधिक-से-अधिक संख्यामें स्वयं लाभ उठावें तथा दूसरे दीन-दु:खी व्यक्तियोंको भी उनके कष्ट मिटानेमें समुचित सहायता प्रदान करें।

—हरीसिंह वर्मा, बी०ए०, साहित्यरत्न एस० जी० एस० जू० हा० स्कूल, मोहकमपुर (एटा)

---

१. इस रोगको गुजराती भाषामें खरवा-मोवासा [खरवालो] कहते हैं।

२. 'रामरक्षास्तोत्र' पुस्तक गीताप्रेस-गोरखपुरसे प्राप्त की जा सकती है।

चिकित्साजगत्के प्रमुख आचार्य

आरोग्यशास्त्रके प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि

भगवान् धन्वन्तरिकी हम जीवोंपर महान् कृपा है। उनका विग्रह ही कृपामय है। न केवल सांसारिक प्राणियोंपर ही आपका अनुग्रह है, अपितु देवता भी आपके ही आश्रयसे असुरोंकी विभीषिकासे मुक्त होकर स्वस्थ, निर्भीक एवं आनन्दित हो सके थे। बात उस समयकी है, जब देवगणोंसे महर्षि दुर्वासाजीका अपराध बन पड़ा था और इसके परिणामस्वरूप न केवल देवता अपितु त्रिलोक श्रीहीन हो गया था। दैवीसम्पत्के विलुप्त हो जानेसे सर्वत्र आसुरी साम्राज्य स्थापित हो चुका था। दु:खी हो देवता, ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् नारायणकी शरणमें पहुँचे और नारायणने उन्हें असुरोंको साथ लेकर समुद्र-मन्थनका परामर्श दिया और बताया कि इस मन्थनसे अमृतका कलश लेकर स्वयं मैं धन्वन्तरि नामसे प्रकट होऊँगा और फिर उसी अमृतके बलपर आप लोग सदाके लिये अमर हो जायँगे। नारायणकी ऐसी अमृतमयी वाणी सुनकर सभीको बड़ा ही आनन्द हुआ।

फिर क्या था, देवताओंके समझानेपर अज्ञानी असुर भी अमृतके लोभसे समुद्र-मन्थनके लिये राजी हो गये और फिर समुद्रका मन्थन प्रारम्भ हुआ। बिना नारायणके सहयोगके समुद्र-मन्थन हो भी कैसे सकता था? अत: स्वयं नारायणने कूर्मरूप धारण कर मन्दराचल पर्वतको नीचेसे पकड़ रखा था और दूसरे रूपसे वे ऊपरसे उसे दबाये हुए भी थे, साथ ही वे देवता-असुरका रूप बनाकर दोनों दलोंमें पहुँचकर समुद्र मथने लगे। नारायणका सम्बल पाकर समुद्रसे चौदह रत्नोंका प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें भगवान् धन्वन्तरि अमृतका कलश लेकर प्रादुर्भूत हुए।

वेदव्यासजी श्रीमद्भागवतमें यह बताते हैं कि उस समय समुद्रके मध्यसे जो दिव्य पुरुष प्रकट हुए, वे बड़े ही सुन्दर तथा मनोज्ञ थे। उन्होंने शरीरपर पीताम्बर धारण कर रखा था। सभी अङ्ग अनेक प्रकारके दिव्य आभूषणों तथा अलङ्करणोंसे अलंकृत थे। उन्होंने कानोंमें मणियोंके दिव्य कुण्डल पहिने हुए थे। उनकी तरुण अवस्था थी तथा उनका सौन्दर्य अनुपम था। शरीरका रंग बड़ा ही सुन्दर साँवला-साँवला था। चिकने और घुँघराले बाल लहराते हुए उनकी छबि बड़ी अनोखी थी।[1] उन्होंने अमृतसे पूर्ण कलश धारण कर रखा था। वे साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशांश अवतार थे और आयुर्वेदके प्रवर्तक तथा यज्ञभोक्ता धन्वन्तरिके नामसे सुप्रसिद्ध हुए—

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद् वलयभूषितः।
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः॥
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक्।[2]

(श्रीमद्भा० ८।८।३४-३५)

महर्षि वाल्मीकिने उन्हें 'आयुर्वेदमय' कहा है (वाल्मी० बाल० ४५।३१)। जिस समय वे समुद्रसे प्रकट हुए उस समय भगवान् विष्णुके नामोंका जप कर रहे थे और प्राणियोंके आरोग्यका चिन्तन कर रहे थे। उनकी बड़ी दिव्य आभा छिटक रही थी, वे नारायणके

---

१. श्रीमद्भागवत ८।८।३१—३३

२. इसी बातको अन्यत्र इस प्रकार कहा गया है—

(क) ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रवर्तकः। बिभ्रत् कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः॥ (अग्नि० ३।११)

(ख) ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बरधरस्स्वयम्। बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः॥ (विष्णुपु० १।९।९८)

(ग) धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत। श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति॥ (महा०आदि० १८।३८)

अंशसे ही अवतरित थे। उस समय भगवान् विष्णुने 'अप्' (जल)-से उत्पन्न होनेके कारण उनका 'अब्ज' यह नाम रखा और अनेक वर प्रदान करते हुए उनसे कहा—वत्स! तुम्हारा आविर्भाव तीनों लोकोंका कल्याण करनेके लिये हुआ है। इस समय असुरोंने तीनों लोकोंमें त्राहि-त्राहि मचा रखी है। वे इतने प्रभावशाली हो गये हैं कि उन्होंने देवताओंको भी भयभीत कर रखा है, बिना अमृतके वे कैसे स्वस्थ रह सकते हैं, अतः अमृतरूप अमोघ औषध-प्राप्तिके लिये ही तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। वह पूर्ण हो चुका है। इस समय तुम अब अमरावतीमें प्रतिष्ठित होओ। दूसरे जन्ममें तुम लोकमें अति प्रसिद्धि प्राप्त करोगे, वहाँ गर्भावस्थामें ही तुम्हें अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी। तुम उसी शरीरसे देवत्व प्राप्त कर लोगे और ब्राह्मण लोग चरु, मन्त्र, व्रत एवं जपनीय मन्त्रोंद्वारा तुम्हारा यजन करेंगे। तुम आयुर्वेदको प्रवर्तित कर उसे आठ अङ्गोंमें* विभाजित कर आरोग्यके अवदानसे जीवमात्रका कल्याण करोगे—

द्वितीयायां तु सम्भूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि।
अणिमादिश्च ते सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति॥
तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो।
चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः॥
अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि।

(हरिवंश०हरि० २९।१८—२०)

धन्वन्तरिको ऐसा वरदान देकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये (**इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे पुनः।**) और भगवान् धन्वन्तरि देवलोकमें अत्यन्त महिमाको प्राप्त हुए।

इस प्रकार विष्णुके अंशसे अवतरित होकर भगवान् धन्वन्तरिने अमृतरूपी औषधका सृजन कर देवताओंको भी सब प्रकारसे सदाके लिये अजर-अमर और नीरोग बना दिया। देवताओंका '**अजराः**' (वृद्धावस्थासे रहित) '**अमराः**' (मृत्युरहित) तथा '**निरामयाः**' (सब प्रकारकी आधि-व्याधि और रोग-शोकसे मुक्त) आदि नाम सार्थक हो गये और भगवान् धन्वन्तरि आयुर्वेदके प्रवर्तक तथा आरोग्यके देवतारूपमें प्रतिष्ठित हो गये।

इधर धीरे-धीरे समय परिवर्तित हुआ। दूसरा द्वापर युग आ गया। काशीमें एक महान् धर्मात्मा राजा हुए, उनका नाम था धन्व। सभी सुख होनेपर भी वे पुत्र न होनेसे दुःखी रहते थे। उन्होंने मन-ही-मन चिन्तन किया कि मैं उस देवताकी आराधना करूँ, जो मुझे पुत्र प्रदान कर सके। तब उन्हें नारायणके अवतार भगवान् धन्वन्तरि (अब्जदेव)-का स्मरण हो आया। वे उनकी दयालुताको अच्छी तरह समझते थे।

फिर क्या था, काशिराज धन्व तपस्या-आराधनामें संलग्न हो गये। सच्ची आराधना अवश्य फलवती होती है। प्रसन्न हो भगवान् धन्वन्तरिने उन्हें दर्शन दिया। दर्शन पाकर राजा धन्व कृतार्थ हो गये। भगवान्ने कहा— राजन्! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ, वर माँगो। राजा धन्वने कहा—'प्रभो! आप तो अन्तर्यामी हैं, फिर भी मेरी इच्छा है कि आप पुत्ररूपमें मेरे यहाँ अवतीर्ण हों और इसी नाम-रूपमें आपकी प्रसिद्धि भी हो।'

भगवान् तो ऐसा चाहते ही थे; क्योंकि उस समय प्रजा रोगोंसे आक्रान्त हो गयी थी, सब प्राणिजगत् बड़ा दुःखी था, अपनी प्रजाका कष्ट भगवान्से कैसे देखा जाता? अतः वे बोले—'राजन्! ऐसा ही होगा।' वर देकर वे अन्तर्धान हो गये। राजा धन्वकी तो प्रसन्नताकी सीमा न रही।

कुछ समय पश्चात् भगवान् विष्णुके अवतार भगवान् धन्वन्तरि ही काशिराज धन्वके यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए और उनका नाम भी धन्वन्तरि ही पड़ा। वे भी नारायणके ही परम्परा-प्राप्त अवतार थे, उनमें सब प्रकारके रोगोंको दूर करनेकी शक्ति प्रतिष्ठित थी—

---

* आयुर्वेदके आठ अङ्ग इस प्रकार हैं—शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरणतन्त्र। (सुश्रुतसं० सूत्र १।७)

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः॥
(हरिवंश०हरि०२९। २६)

इस बातको स्वयं धन्वन्तरिजीने भी कहा है कि देवताओंकी वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्युको दूर करनेवाला आदिदेव धन्वन्तरि मैं ही हूँ। आयुर्वेदके अन्य अङ्गोंसहित शल्यतन्त्रका उपदेश करनेके लिये फिरसे इस पृथ्वीपर आया हूँ—

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥
(सुश्रुतसं० सू० १। २१)

यद्यपि काशिराज धन्वन्तरि आयुर्वेदशास्त्रके ज्ञानसे सब प्रकारसे सम्पन्न थे, तथापि मर्यादा है कि गुरुमुखसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, अतः उन्होंने महर्षि भरद्वाजजीसे सम्पूर्ण आयुर्वेदशास्त्र और चिकित्सा-कर्मका ज्ञान प्राप्तकर आयुर्वेदको शल्य, शालाक्य आदि आठ भागोंमें विभक्त किया और अनेक शिष्य-प्रशिष्योंको आयुर्वेदकी शिक्षा प्रदान की—

आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥
(हरिवंश०हरि० २९। २७)

कृपावतार धन्वन्तरिकी अनन्त महिमा है। उन्होंने आरोग्यशास्त्रका प्रवर्तन कर जीवोंका महान् कल्याण किया। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इनके स्मरणमात्र करनेसे सब प्रकारके रोग, शोक, आधि-व्याधि दूर हो जाते हैं—'**स्मृतमात्रार्तिनाशनः**' (श्रीमद्भा० ९। १७। ४)। भागवत आदिमें इन्हें दीर्घतमाका पुत्र कहा गया है। शल्यशास्त्रके प्रमुख ग्रन्थ सुश्रुतसंहितामें यह निर्देश है कि काशिराज धन्वन्तरिसे ही महर्षि सुश्रुतने सम्पूर्ण आयुर्वेद ग्रहण किया। वहाँ धन्वन्तरिको दिवोदास धन्वन्तरि कहा गया है (सुश्रुतसं०सूत्र० १। ३—५)। इस प्रकार भगवान् नारायण पहले अब्ज धन्वन्तरिके रूपमें और पुनः काशिराज धन्वन्तरिके रूपमें अवतरित हुए। उनके समुद्रसे अवतरणकी तिथि कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी 'धन्वन्तरि-जयन्ती' के रूपमें प्रतिष्ठित है। आरोग्यके अधिष्ठातृ देवताके रूपमें इस तिथिको इनका विशेष पूजन-आराधन आदि बड़े समारोहसे किया जाता है और इनसे आरोग्यके अवदान तथा उनकी कृपाप्राप्तिकी प्रार्थना की जाती है।

दक्षिण भारतमें विशेषरूपसे केरल आदिमें तो भगवान् धन्वन्तरिके अनेक मन्दिर और विग्रह प्रतिष्ठित हैं। भक्तोंने अनेक स्वरूपोंमें उनका ध्यान किया है, जिनमें मुख्यरूपसे चतुर्भुज भगवान् नारायणके रूपमें उनकी आराधना विशेषरूपसे होती है। ऐसे वे कृपालु भगवान् धन्वन्तरि सदा हमारी रक्षा करते रहें—

'**धन्वन्तरिः स भगवानवतात् सदा नः।**'

महर्षि कश्यप और उनका ग्रन्थ—काश्यपसंहिता

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

महर्षि मरीचिके अपत्य कश्यपद्वारा प्रोक्त आयुर्वेदके एक प्राचीन ग्रन्थका नाम काश्यपसंहिता है, जिसे '**वृद्धजीवकीय तन्त्र**' भी कहते हैं। इस संहिताके आदि-प्रवर्तक स्वयम्भू ब्रह्मा हैं, जिन्होंने इसका सर्वप्रथम उपदेश दक्षप्रजापतिको किया था। दक्षने इसका ज्ञान अश्विनीकुमारोंको दिया, जिनसे इस संहिताका ज्ञान प्राप्त करके इन्द्रने कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि और भृगु—इन ऋषियोंके लिये इसके विषयोंका रहस्यके साथ प्रतिपादन किया। कश्यपसे उनके पुत्रों और शिष्योंमें क्रमशः इस आयुर्वेदसंहिताकी परम्परा आगे चलती रही।*

काश्यपसंहिता (वृद्धजीवकीय तन्त्र)-में समस्त आयुर्वेदीय विषयोंका प्रश्नोत्तररूपमें निरूपण किया गया है। शिष्योंके प्रश्नोंका उत्तर महर्षि कश्यपजी विस्तारसे देते हैं। शंका-समाधानकी शैलीमें दुःखात्मक रोग,

* काश्यपसंहिता

उनके निदान, रोगोंका परिहार और रोग-परिहारके साधन—औषध—इन चारों विषयोंका भलीभाँति इसमें प्रतिपादन किया गया है।

चरकसंहिताके आरम्भमें बतलाया गया है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥'

मानवके पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धिमें स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है। शारीरिक और मानसिक रोगोंसे सर्वथा मुक्त शरीर ही स्वस्थ कहलाता है। अत: नीरोग रहने या आरोग्य प्राप्त करनेके लिये उपर्युक्त रोग, निदान, परिहार और साधन—इन चारोंका सम्यक् प्रतिपादन मुख्यत: आयुर्वेदशास्त्रमें किया जाता है।

काश्यपसंहिता—चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेड़संहिता, भारद्वाजसंहिता आदि सभी आयुर्वेदीय संहिता-ग्रन्थोंमें प्राचीन है।

महर्षि कश्यपद्वारा प्रोक्त इस विशाल आयुर्वेद-विज्ञानका कालक्रमसे प्रचार-प्रसार जब कम होने लगा तो ऋचीक मुनिके पञ्चवर्षीय पुत्र जीवकने इस विशाल काश्यपसंहिताको संक्षिप्त करके हरद्वारके कनखलमें समवेत विद्वानोंके समक्ष प्रस्तुत किया। उपस्थित विद्वानोंने उसे बालभाषित समझकर अस्वीकार कर दिया। तब बालक जीवकने वहीं उनके सामने गङ्गाकी धारामें डुबकी लगायी। कुछ देरके बाद गङ्गाकी धारासे जीवक अतिवृद्धके रूपमें निकले। उन्हें वृद्धरूपमें देख, चकित विद्वानोंने उन्हें वृद्धजीवक नामसे अभिहित किया और उनके द्वारा प्रतिपादित उस आयुर्वेदतन्त्रको 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' के रूपमें मान्यता दी। अतएव इस काश्यपसंहिताका नाम 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' भी हो गया।[1]

वृद्धजीवकका समय बुद्ध और महावीरसे पूर्व माना जाता है। इसलिये बुद्धकालीन बिम्बसारकी भुजिष्याके गर्भसे उत्पन्न जीवक वैद्यसे वृद्धजीवक सर्वथा भिन्न हैं। जीवक वैद्य शल्य-क्रियामें अत्यन्त निष्णात थे और वृद्धजीवक कौमार-भृत्यके प्रधान आचार्य माने जाते हैं।

काल-क्रमसे यह 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' अनायास नामक यक्षको प्राप्त हुआ। उस समय उत्तराखण्डमें यक्षोंका आधिपत्य था, जो तत्कालीन इतिहाससे सिद्ध होता है। अनायास यक्षने अपने समाजमें इस तन्त्रका प्रचार-प्रसार करते हुए इसे सुरक्षित रखा। कुछ दिनोंके बाद वत्सगोत्रीय भार्गववंशीय वृद्धजीवकके ही वंशमें उत्पन्न शिव और कश्यपके भक्त परम तपस्वी वात्स्यने वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन कर अनायास यक्षके प्रसादसे वृद्धजीवकीय तन्त्रको प्राप्त किया। उसे पुन: सुसंस्कृत कर धर्म, कीर्ति तथा मानवके कल्याणार्थ आठ अङ्गोंमें विभक्त किया। यथा—१-कौमारभृत्य[2], २-शल्यक्रिया-प्रधान शल्य, ३-उत्तमाङ्ग-शल्यक्रिया-प्रधान शालाक्य, ४-बल-वीर्याभिवृद्धिप्रधान वाजीकरण, ५-वय:स्थापनादि-दीर्घ प्रयोग-प्रधान रसायन, ६-शारीरिक मानसिक चिकित्सा-प्रधान काय-चिकित्सा, ७-सर्प-वृश्चिकादि विष-प्रशमन-प्रधान अगदतन्त्र और ८-भूतग्रहादि दैविक दु:खप्रशमन-प्रधान भूतविद्या। इन्हींसे आयुर्वेद 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद' कहलाता है।[3]

पुन: इन विषयोंको प्रतिपादनके अनुसार आठ

---

१. ततो हितार्थं लोकानां कश्यपेन महर्षिणा। पितामहनियोगाच्च दृष्ट्वा च ज्ञानचक्षुषा॥
तपसा निर्मितं तन्त्रमृषय: प्रतिपेदिरे। जीवको निर्गततमा ऋचीकतनय: शुचि:॥
जगृहेऽग्रे महातन्त्रं सञ्चिक्षेप पुन: स तत्। नाभ्यनन्दन्त तत् सर्वे मुनयो बालभाषितम्॥
तत: समक्षं सर्वेषामृषीणां जीवक: शुचि:। गङ्गाह्रदे कनखले निमग्न: पञ्चवार्षिक:॥
बलीपलितविग्रस्त उन्ममज्ज मुहूर्त्तकात्। ततस्तदद्भुतं दृष्ट्वा मुनयो विस्मयं गता:॥
वृद्धजीवक इत्येव नाम चक्रु: शिशोरपि। प्रत्यगृह्णन्त तन्त्रं च भिषक्श्रेष्ठं च चक्रिरे॥ (का० सं० भूमिका)

२. कौमारभृत्यं नाम कुमार भरणं धात्री क्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानां च व्याधीनामुपशमनार्थम्।
आचार्य सुश्रुत नवजात शिशुके पोषणमें मातृ-स्तन्य या धात्री-स्तन्यके दोषोंका संशोधन तथा दूषित स्तन्यपानसे शिशुमें होनेवाले रोगोंका प्रशमन मुख्यत: जिसमें बतलाया जाता है, उसे 'कौमारभृत्य' कहते हैं।

३. तत: कलियुगे तन्त्रं नष्टमेतद् यदृच्छया। अनायासेन यक्षेण धारितं लोकभूतये॥
वृद्धजीवकवंश्येन ततो वात्स्येन धीमता। अनायासं प्रसाद्याथ लब्ध्वं तन्त्रमिदं महत्॥

स्थानोंमें विभक्त किया गया। इनमें सूत्रस्थानमें ३०, निदानस्थानमें ८, विमानस्थानमें ८, शारीरस्थानमें ८, इन्द्रियस्थानमें १२, चिकित्सास्थानमें ३०, सिद्धिस्थानमें १२ और कल्पस्थानमें १२ तथा खिलभागमें ८० अध्याय हैं। इस तरह आयुर्वेद-विज्ञान-विशारद आचार्य वात्स्यने कुल मिलाकर २०० अध्यायोंमें काश्यपसंहिता या वृद्धजीवकीय तन्त्रको सुसंस्कृत कर इस आयुर्विज्ञानका प्रसार किया था।

इसमें कौमारभृत्यका विशेष प्रतिपादन होनेके कारण तथा महर्षि कश्यपको कौमारभृत्यका प्रधान उपदेष्टा माननेके कारण इस काश्यप-संहिताको 'कौमारभृत्यसंहिता' या 'कौमारभृत्यतन्त्र' भी कहते हैं।[1]

इसका आधार मुख्यतः अथर्ववेदमें निर्दिष्ट आयुर्वेदीय तत्त्व है।

साङ्गोपाङ्ग आयुर्वेदका प्रतिपादक काश्यपसंहितारूप वृद्धजीवकीय तन्त्र चिकित्साशास्त्रका एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है।

आरोग्यमनीषी—आचार्य चरक और उनके उपदेश

आचार्य चरक और आयुर्वेद—इन दोनोंका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एकका श्रवण होनेपर दूसरेका स्वतः स्मरण हो आता है। शाश्वत एवं नित्य आयुर्वेद जो परम्पराक्रमसे ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र, भारद्वाज आदितक पहुँचा फिर वही आयुर्वेद पुनर्वसु, आत्रेय, अग्निवेशसे प्रवर्तित हो आचार्य चरकके पास आया तथा महर्षि चरकाचार्यका वह कल्याणकारी उपदेश 'चरकसंहिता' के नामसे विख्यात हो गया। यद्यपि चरकसंहिताके साथ महर्षि आत्रेय, महामेधा अग्निवेश तथा दृढबलका नाम जुड़ा है, किंतु आचार्य चरक विशेषरूपसे प्रतिष्ठित हो गये और चरकसंहिता आचार्य चरककी कृतिके रूपमें सदाके लिये स्थिर हो गयी। स्वयं चरकसंहितामें यह उल्लेख है कि जब आयुर्वेदीय संहिताओंका प्रणयन हुआ तो उन्हें देखकर तथा परमर्षियोंकी परदुःखकातरता और सर्वहितैषी लोककल्याणकारक भावको देखकर स्वर्गलोकमें देवता भी आनन्दित होकर साधु-साधु ऐसा कहने लगे। केवल इसलिये कि इन ऋषियोंने समस्त रोग-शोकोंको दूर करनेके जो उपाय प्रकाशित किये हैं, उनसे प्राणिजगत्को कष्टोंसे छुटकारा मिल जायगा। ये संहिताकार ऋषि कोई सामान्य मानव नहीं थे, अपितु ये ऋतम्भरा प्रज्ञा, सिद्धि, स्मृति, मेधा, धृति, कीर्ति, क्षमा, दयालुता तथा ज्ञानके अधिष्ठातृ देवसे सम्पन्न थे।[2] इतना ही नहीं, इनमें प्रतिपादित आयुर्वेदके सिद्धान्त न केवल इस लोक अपितु परलोकके लिये भी हितकारी हैं— **'लोकयोरुभयोर्हितम्'** (चरक सू० १।४३)। इस दृष्टिसे आचार्य चरकद्वारा निर्दिष्ट बातें न केवल शरीर-स्वास्थ्यसे सम्बद्ध हैं, अपितु इसमें आत्मकल्याण तथा चराचर जगत्के आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति और आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्तिके उपायोंको दर्शाया गया है। आचार्य चरक बताते हैं कि तमोगुण एवं रजोगुणकी निवृत्ति हो जाने और शुद्ध सत्त्वभावकी प्रतिष्ठा हो जानेपर विशुद्ध ज्ञानकी स्थितिमें सत्या बुद्धिका प्रादुर्भाव होता है, जिससे अज्ञानरूप मोहकी निवृत्ति हो जाती है और फिर प्रकृति-पुरुषका विवेक हो जानेपर परमपदकी प्राप्ति हो जाती है—

ऋग्यजुः सामवेदांस्त्रीनधीत्याङ्गानि सर्वशः। शिवकश्यपयक्षांश्च प्रसाद्य तपसा धिया॥
संस्कृतं तत् पुनस्तन्त्रं वृद्धजीवकनिर्मितम्। धर्मकीर्तिसुखार्थाय प्रजानामभिवृद्धये॥
स्थानेष्वष्टसु शाखायां यद्यन्नोक्तं प्रयोजनम्। तत्तद् भूयः प्रवक्ष्यामि खिलेषु निखिलेन ते॥ (काश्यपसंहिता)

१. यहाँ विवेचित यह काश्यपीय संहिता या वृद्धजीवकीय तन्त्र नेपालके राजकीय पुस्तकालयमें उपलब्ध तालपत्रात्मक पाण्डुलिपिपर आधृत है। उमा-महेश्वर-संवादरूप काश्यपसंहिता तथा अगदतन्त्रविषयक काश्यपसंहितासे यह भिन्न है।

२. च०सू० १।३९-४०

रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयमनन्तवान्।
ताभ्यां निराकृताभ्यां तु सत्त्ववृद्ध्या निवर्तते॥

(चरक० शारी० १।३६)

आचार्य चरक न केवल आयुर्वेदके मर्मज्ञ थे, अपितु वे सभी शास्त्रोंके अवज्ञाता थे। उनका दर्शन, विचार, सांख्यदर्शनका प्रतिनिधित्व करता है। आचार्य चरकने मुख्य उपदेश देते हुए बताया है कि सभी दुःखोंका, रोगोंका मुख्य कारण है—उपधा, उपधाका दूसरा नाम है तृष्णा। यही उपधा दुःखरूप और दुःखके आश्रयभूत शरीरकी उत्पत्तिका मूल हेतु है। अतः उपधा न रहनेपर दुःखका समूल नाश हो जाता है—

उपधा हि परो हेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः।
त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः॥

(चरक० शारी० १।९५)

इतना ही नहीं, आचार्य चरक बतलाते हैं कि यह देह वेदनाओंका अधिष्ठान—आश्रय है। योग और मोक्षमें सभी वेदनाओंका नाश हो जाता है। मोक्षमें आत्यन्तिक वेदनाओंका नाश हो जाता है और योग मोक्षको दिलानेवाला होता है—

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥

(चरक० शारी० १।१३७)

मनसे जब रज एवं तमका अभाव होता है और बलवान् कर्मोंका क्षय हो जाता है तब कर्मसंयोग अर्थात् कर्मजन्य बन्धनोंसे वियोग हो जाता है, उसे अपुनर्भव अर्थात् मोक्ष कहते हैं, जिसके हो जानेपर पुनः जन्म नहीं मिलता और परमपदकी प्राप्ति हो जाती है (**अतः परं ब्रह्मभूतो०।**)—

मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते॥

(चरक० शारी० १।१४२)

आचार्य चरक बताते हैं कि निवृत्ति-मार्गको अपवर्ग कहते हैं, वह अपवर्ग सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त शान्त, अविनाशी एवं ब्रह्मस्वरूप है, उसे मोक्ष कहते हैं। उस मोक्षके मार्गका अवलम्बन करना चाहिये; क्योंकि कारणसे उत्पन्न होनेवाले उत्पत्तिधर्मा पदार्थ दुःखदायी, तत्त्वहीन और अनित्य हैं, सभी प्रकारके प्रवृत्तिमार्गका नाम दुःख है तथा सर्वसंन्यास (सभी पदार्थोंके त्याग)-में ही यथार्थ सुख है, यह मोक्षका मार्ग है—'**सर्वप्रवृत्तिषु दुःखसंज्ञा, सर्वसंन्यासे सुखमित्यभिनिवेशः; एष मार्गोऽपवर्गाय, अतोऽन्यथा बध्यते।**'

(चरक० शारी० ५।९)

आचार्य चरकने जहाँ मोक्षप्राप्तिकी बात लिखी है, वहीं शरीरके आरोग्यको भी महान् सुखकी संज्ञा दी है और कहा है कि आरोग्यप्राप्तिसे मनुष्योंमें बल, आयु और महान् सुखकी प्राप्ति होती है। साथ ही वह मनोवाञ्छित फलोंको भी प्राप्त करता है। इस प्रकार आरोग्यसम्पन्न पुरुषको शुभ लक्षण कहा जाता है—

आरोग्याद्बलमायुश्च सुखं च लभते महत्।
इष्टांश्चाप्यपरान् भावान् पुरुषः शुभलक्षणः॥

(चरक० इन्द्रि० १२।८८)

ऐसा कहा जाता है कि आचार्य चरक न केवल संहिताग्रन्थोंके प्रणयनमें संलग्न रहते थे, अपितु वे घूम-घूमकर इधर-से-उधर विचरण कर जहाँ भी रोगी हों; वहाँ पहुँचकर उनकी चिकित्सा किया करते थे और इसी कल्याणकारी विचरणक्रियासे उनका 'चरक' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। कुछ लोग इन्हें भगवान् शेषनागका अवतार बताते हैं। जो भी हो, आचार्य चरकने लोगोंका बड़ा ही उपकार किया है। उनकी कृति 'चरकसंहिता' चिकित्साजगत्का अत्यन्त प्रामाणिक, प्रौढ़ और महान् सैद्धान्तिक ग्रन्थ है। यह सूत्र, निदान, विमान, शारीर, इन्द्रिय, चिकित्सा, कल्प तथा सिद्धि—इन आठ स्थानोंमें विभक्त है। स्थानोंके अन्तर्गत अध्याय हैं। इसपर संस्कृत आदि भाषाओंमें अनेक टीका-भाष्य हो चुके हैं। इसका स्वस्थवृत्त प्रकरण बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। जिसके अध्ययनसे पूरी जीवनशैली, आहारचर्या, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या आदिका सम्यक् परिज्ञान हो जाता है और तदनुसार व्यक्ति अनुसरण करे तो वह सदा नीरोग

रह सकता है। चरकसंहिताके उपदेश बड़े ही मार्मिक, कण्ठ करने योग्य तथा शिक्षाप्रद हैं। यहाँ केवल एक उपदेश दिया जा रहा है, जिसका भाव यह है कि व्यक्तिको यह समझना चाहिये कि वह स्वयंको प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलताका कर्ता अपने-आप ही है, कोई दूसरा नहीं है। यदि वह असत्कर्म करेगा तो फल होगा दुःख और यदि सत्कर्म करेगा तो फल होगा सुख। अतः ऐसा ठीक-ठीक समझकर उसे कल्याणकारी मार्गका—सन्मार्गका ही अवलम्बन लेना चाहिये। इस मार्गमें दृढ़तासे स्थिर रहे,किसी प्रकारसे भयभीत होने अथवा विचलित होनेकी आवश्यकता नहीं है। आचार्यके मूल वचन इस प्रकार हैं—

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्॥

(चरक० निदान० ७।२२)

आचार्य 'सुश्रुत' एवं उनकी अद्भुत 'शल्य-चिकित्सा'

(श्रीदत्तपादजी भिषगाचार्य)

आचार्य सुश्रुत प्राचीन कालके एक उच्चकोटिके आयुर्वेदाचार्य एवं शल्यतन्त्रनिष्णात शल्य-चिकित्सक थे।

सुश्रुतसंहितामें उल्लेख है कि सुश्रुत महर्षि विश्वामित्रके पुत्र थे और इन्होंने धन्वन्तरिजीसे शल्य-शास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की थी—

धन्वन्तरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो वाग्विशारदः।
विश्वामित्रसुतं शिष्यमृषिं सुश्रुतमन्वशात्॥*

(सुश्रुत० चि० २।३)

दूसरी एक परम्पराके अनुसार सुश्रुत महर्षि शालिहोत्रके सुपुत्र थे। काश्यपसंहिताकी प्रस्तावनामें हेमाद्रिकृत लक्षण-प्रकाशके अश्व-प्रकरणमें एक वचन इस प्रकार आया है—

शालिहोत्रमृषिश्रेष्ठं सुश्रुतः परिपृच्छति।
एवं पृष्टस्तु पुत्रेण शालिहोत्रोऽभ्यभाषत॥

अर्थात् शालिहोत्र नामक श्रेष्ठ ऋषिसे सुश्रुत प्रश्न करते हैं, इस प्रकार पुत्रके प्रश्न करनेसे पिता शालिहोत्र पुत्र सुश्रुतसे कहते हैं।

आचार्य सुश्रुत शल्य-शास्त्रके विशेषज्ञ थे। उन्होंने वह विद्या दिवोदास धन्वन्तरिसे प्राप्त की थी। साक्षात् धन्वन्तरिका ही अवतार होनेसे लोग दिवोदासको धन्वन्तरि ही कहते हैं। पृथ्वीपर वे ही सर्वप्रथम इस शल्यतन्त्रको लाये थे। एक बार बहुत-से जिज्ञासु शिष्यभावसे धन्वन्तरिजीके पास गये और करबद्ध प्रार्थना की कि 'आप हमें 'शल्यतन्त्र' का ज्ञान प्रदान कीजिये।' धन्वन्तरिने कहा—'तुम लोगोंके प्रतिनिधिरूपमें सुश्रुतको ही मैं 'शल्यतन्त्र' सिखाऊँगा। इस प्रकार सुश्रुतने गुरु धन्वन्तरिसे शल्यतन्त्रका ज्ञान प्राप्त किया। बादमें सुश्रुतने 'सुश्रुतसंहिता' नामक एक बृहद् ग्रन्थ लिखा, जो पाँच स्थानों—(१) सूत्रस्थान, (२) निदानस्थान, (३) शारीरस्थान, (४) चिकित्सास्थान और (५) कल्पस्थानमें विभक्त है तथा अन्तमें उत्तरतन्त्र है। इस संहितामें शस्त्रकर्मकी ही प्रधानता है—'**अस्मिंस्तु शास्त्रे शस्त्रकर्मप्राधान्यात्०**' (सुश्रु० सू० ५।४)।

मन एवं शरीरको पीडित करनेवाली वस्तुको 'शल्य' कहा जाता है और इस शल्यको निकालनेवाले साधन यन्त्र कहलाते हैं—'**तत्र मनःशरीराबाधकराणि शल्यानि, तेषामाहरणोपायो यन्त्राणि**'। (सुश्रुत सू० ७।४) आचार्य सुश्रुतने अपने ग्रन्थमें सौसे भी अधिक (**यन्त्रशतमेकोत्तरम्**) शल्य-शस्त्रोंका वर्णन किया है। जैसे—

(१) शस्त्रोंकी मूठ एवं जोड़ मजबूत होने चाहिये। (२) वे चमकीले और अति तीक्ष्ण रहने

* विश्वामित्रसुतः श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति। (सुश्रु० उत्तर० ६६।४)

चाहिये। (३) शस्त्रोंको अति स्वच्छ एवं व्यवस्थित रखना चाहिये—कोमल वस्त्रमें लपेटकर अच्छी संदूकमें अच्छी तरहसे रखना चाहिये। (४) अस्थि मिलाने (जोड़ने)-के लिये बाँसकी पट्टियाँ इस्तेमाल करनी चाहिये। (५) अस्थियाँ बाहर खींचनेके लिये एवं भीतर बैठानेके लिये बाहरसे मालिश करना आदि विभिन्न क्रियाएँ अस्थिरोगोंके विषयमें अति आवश्यक हैं। (६) व्रणोंके अनेक प्रकार होते हैं और उनकी उपचार-पद्धति भी भिन्न-भिन्न होती है। (७) मस्तक और चेहरेपर घाव (जख्म) होनेपर वहाँ सूईसे टाँके लगाने चाहिये। (८) यदि घावमें लोहा या लोहखण्ड, लोहकण घुस गये हों तो वहाँपर लोहचुम्बक (Magnet)-का उपयोग करना चाहिये। (९) सूजे हुए भागपर लेप (उबटन, मरहम) और पथ्यका प्रयोग करना चाहिये। पोटिस (पुलटिस) बाँधना, सेंक करना, शिराका वेध करना चाहिये। ग्रन्थि-छेदन करके निकालना चाहिये। (१०) जलोदर और वृषणवृद्धिपर शलाकासे छेद करना चाहिये। (११) मूतखडा (ब्लेजर-स्टोन)-को निकालनेके लिये शस्त्रक्रिया करनी चाहिये।

आचार्य सुश्रुत त्वचारोपण-तन्त्रमें भी अति निष्णात थे। आँखोंके 'मोतीबिंदु' (कटेरेक) निकालनेकी सरल कलाके वे विशेषज्ञ थे। यदि मातृ-गर्भसे शिशु योग्य मार्गसे न आता हो, तो मातृ-गर्भस्थ शिशुको निर्विघ्न बाहर निकालनेके विविध प्रकार सुश्रुत अच्छी तरह जानते थे। इसका विवरण सुश्रुतसंहितामें लिखा है।

इस शल्य-चिकित्सा-ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताका अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि धन्वन्तरि काशिराज दिवोदास शल्यप्रधान-चिकित्साके जनक हैं और सुश्रुतसंहिता शल्य-चिकित्साका आदि ग्रन्थ है।

आजकल ऑपरेशन (Surgical-Action)-के लिये जिन-जिन यन्त्रोंका उपयोग होता है, उनमेंसे अधिकांशका विवरण 'सुश्रुतसंहिता' में है।

शल्य-चिकित्साका उल्लेख आयुर्वेदसे भी पहलेके अथर्ववेदमें हुआ है, इसीलिये आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपवेद कहा जाता है।

लोककल्याणार्थ प्राचीन भारतीय आयुर्वेद एवं शल्य-चिकित्सा-शास्त्र विश्वको बड़े पुरस्कार-रूपमें प्राप्त है। आधुनिक जगत् इनका सफल उपयोग करके रोगी जीवोंको नीरोग बना सके तो कितना अच्छा होगा।

आयुर्वेद तथा शल्य-चिकित्साशास्त्रके आचार्यगणोंका जगत्पर महान् उपकार है, उनके नाम-स्मरणसे भी विशेष फलकी प्राप्ति होती है—(१) ब्रह्मा, (२) दक्षप्रजापति, (३) भगवान् भास्कर, (४) अश्विनीकुमार, (५) देवराज इन्द्र, (६) महर्षि कश्यप, (७) महर्षि अत्रि, (८) महर्षि भृगु, (९) महर्षि अंगिरा, (१०) महर्षि वसिष्ठ, (११) महर्षि अगस्त्य, (१२) महर्षि पुलस्त्य, (१३) ऋषि वामदेव, (१४) ऋषि असित, (१५) ऋषि गौतम, (१६) ऋषि भरद्वाज, (१७) आचार्य धन्वन्तरि, (१८) आचार्य पुनर्वसु-आत्रेय, (१९) आचार्य अग्निवेश, (२०) आचार्य भेल, (२१) आचार्य जतूकर्ण, (२२) आचार्य पराशर, (२३) आचार्य हारीत, (२४) आचार्य क्षारपाणि, (२५) आचार्य निमि, (२६) आचार्य भद्र शौनक, (२७) आचार्य कांकायन, (२८) आचार्य गार्ग्य, (२९) आचार्य गालव, (३०) आचार्य सात्यकि, (३१) आचार्य औपधेनव, (३२) आचार्य सौरभ्र, (३३) आचार्य पौष्कलावत, (३४) आचार्य करवीर्य, (३५) आचार्य गोपुररक्षित, (३६) आचार्य वैतरण, (३७) आचार्य भोज, (३८) आचार्य भालुकी, (३९) आचार्य दारुक, (४०) आचार्य कौमारभृत्य, (४१) आचार्य जीवक, (४२) आचार्य काश्यप, (४३) आचार्य उशना, (४४) आचार्य बृहस्पति, (४५) आचार्य पतञ्जलि, (४६) आचार्य सिद्ध-नागार्जुन आदि।

—इन आचार्योंको कोटिशः प्रणाम है।

चाहिये। (३) शस्त्रोंको अति स्वच्छ एवं व्यवस्थित रखना चाहिये—कोमल वस्त्रमें लपेटकर अच्छी संदूकमें अच्छी तरहसे रखना चाहिये। (४) अस्थि मिलाने (जोड़ने)-के लिये बाँसकी पट्टियाँ इस्तेमाल करनी चाहिये। (५) अस्थियाँ बाहर खींचनेके लिये एवं भीतर बैठानेके लिये बाहरसे मालिश करना आदि विभिन्न क्रियाएँ अस्थिरोगोंके विषयमें अति आवश्यक हैं। (६) व्रणोंके अनेक प्रकार होते हैं और उनकी उपचार-पद्धति भी भिन्न-भिन्न होती है। (७) मस्तक और चेहरेपर घाव (जख्म) होनेपर वहाँ सूईसे टाँके लगाने चाहिये। (८) यदि घावमें लोहा या लोहखण्ड, लोहकण घुस गये हों तो वहाँपर लोहचुम्बक (Magnet)-का उपयोग करना चाहिये। (९) सूजे हुए भागपर लेप (उबटन, मरहम) और पथ्यका प्रयोग करना चाहिये। पोटिस (पुलटिस) बाँधना, सेंक करना, शिराका वेध करना चाहिये। ग्रन्थि-छेदन करके निकालना चाहिये। (१०) जलोदर और वृषणवृद्धिपर शलाकासे छेद करना चाहिये। (११) मूतखडा (ब्लेजर-स्टोन)-को निकालनेके लिये शस्त्रक्रिया करनी चाहिये।

आचार्य सुश्रुत त्वचारोपण-तन्त्रमें भी अति निष्णात थे। आँखोंके 'मोतीबिंदु' (कटेरेक) निकालनेकी सरल कलाके वे विशेषज्ञ थे। यदि मातृ-गर्भसे शिशु योग्य मार्गसे न आता हो, तो मातृ-गर्भस्थ शिशुको निर्विघ्न बाहर निकालनेके विविध प्रकार सुश्रुत अच्छी तरह जानते थे। इसका विवरण सुश्रुतसंहितामें लिखा है।

इस शल्य-चिकित्सा-ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताका अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि धन्वन्तरि काशिराज दिवोदास शल्यप्रधान-चिकित्साके जनक हैं और सुश्रुतसंहिता शल्य-चिकित्साका आदि ग्रन्थ है।

आजकल ऑपरेशन (Surgical-Action)-के लिये जिन-जिन यन्त्रोंका उपयोग होता है, उनमेंसे अधिकांशका विवरण 'सुश्रुतसंहिता' में है।

शल्य-चिकित्साका उल्लेख आयुर्वेदसे भी पहलेके अथर्ववेदमें हुआ है, इसीलिये आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपवेद कहा जाता है।

लोककल्याणार्थ प्राचीन भारतीय आयुर्वेद एवं शल्य-चिकित्सा-शास्त्र विश्वको बड़े पुरस्कार-रूपमें प्राप्त है। आधुनिक जगत् इनका सफल उपयोग करके रोगी जीवोंको नीरोग बना सके तो कितना अच्छा होगा।

आयुर्वेद तथा शल्य-चिकित्साशास्त्रके आचार्यगणोंका जगत्पर महान् उपकार है, उनके नाम-स्मरणसे भी विशेष फलकी प्राप्ति होती है—(१) ब्रह्मा, (२) दक्षप्रजापति, (३) भगवान् भास्कर, (४) अश्विनीकुमार, (५) देवराज इन्द्र, (६) महर्षि कश्यप, (७) महर्षि अत्रि, (८) महर्षि भृगु, (९) महर्षि अंगिरा, (१०) महर्षि वसिष्ठ, (११) महर्षि अगस्त्य, (१२) महर्षि पुलस्त्य, (१३) ऋषि वामदेव, (१४) ऋषि असित, (१५) ऋषि गौतम, (१६) ऋषि भरद्वाज, (१७) आचार्य धन्वन्तरि, (१८) आचार्य पुनर्वसु-आत्रेय, (१९) आचार्य अग्निवेश, (२०) आचार्य भेल, (२१) आचार्य जतूकर्ण, (२२) आचार्य पराशर, (२३) आचार्य हारीत, (२४) आचार्य क्षारपाणि, (२५) आचार्य निमि, (२६) आचार्य भद्र शौनक, (२७) आचार्य कांकायन, (२८) आचार्य गार्ग्य, (२९) आचार्य गालव, (३०) आचार्य सात्यकि, (३१) आचार्य औपधेनव, (३२) आचार्य सौरभ्र, (३३) आचार्य पौष्कलावत, (३४) आचार्य करवीर्य, (३५) आचार्य गोपुररक्षित, (३६) आचार्य वैतरण, (३७) आचार्य भोज, (३८) आचार्य भालुकी, (३९) आचार्य दारुक, (४०) आचार्य कौमारभृत्य, (४१) आचार्य जीवक, (४२) आचार्य काश्यप, (४३) आचार्य उशना, (४४) आचार्य बृहस्पति, (४५) आचार्य पतञ्जलि, (४६) आचार्य सिद्ध-नागार्जुन आदि।

—इन आचार्योंको कोटिशः प्रणाम है।

आचार्य वाग्भट और अष्टाङ्गहृदय

आयुर्वेदके प्राचीन आचार्योंमें तीन आचार्योंकी गणना सर्वोपरि है—चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट। इन तीनोंके तीन ग्रन्थ बृहत्त्रयीके नामसे आयुर्वेद-जगत्में विश्रुत हैं और विशेष बात यह है कि तीनों ग्रन्थ इतने विख्यात हैं कि रचनाकारके नामसे उनका बोध हो जाता है। आचार्य चरककी चरकसंहिता, आचार्य सुश्रुतकी सुश्रुतसंहिता और वाग्भट मात्र कहनेसे 'अष्टाङ्गहृदय' का स्मरण हो आता है। आचार्य वाग्भटका ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय अथवा वाग्भट नामसे प्रसिद्ध है। आचार्य वाग्भटके पिताका नाम सिंहगुप्त था, जो वैद्यपति कहलाते हैं। कतिपय विद्वानोंका परामर्श है कि इनका जन्म सिन्धु देशमें हुआ था और इनके गुरु अवलोकितेश्वर थे तथा इनका समय लगभग छठी शतीके आसपासका है।

आचार्य वाग्भटका मुख्य ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय है। जैसा कि इसके नामसे ही स्पष्ट है कि इसमें आयुर्वेदके काय, शल्य, शालाक्य आदि आठों अङ्गोंका विवेचन हुआ है। इसकी व्युत्पत्तिमें स्वयं आचार्यका कहना है—

'हृदयमिव हृदयमेतत्सर्वायुर्वेदवाङ्मयपयोधेः।'

(अष्टा० उत्त० ४०।८९)

इसका भाव यह है कि यह ग्रन्थ समुद्ररूपी आयुर्वेदके हृदयके समान है। जैसे शरीरमें हृदयकी प्रधानता है, उसी प्रकार आयुर्वेदवाङ्मयमें यह अष्टाङ्गहृदय 'हृदय' के समान है।

यह उक्ति अत्यन्त सत्य प्रतीत होती है। अपनी विशेषताओंके कारण यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है तथा इसका प्रचार भी बहुत हुआ है। पूरा ग्रन्थ सूत्रस्थान, शारीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान तथा उत्तरस्थान आदिमें विभक्त है। इसपर जितनी टीकाएँ हुई हैं, उतनी सम्भवतः वैद्यकशास्त्रके किसी अन्य ग्रन्थपर नहीं हैं। अनेक भाषाओंमें इसके अनुवाद हैं। यह ग्रन्थ आयुर्वेदका सारसमुच्चय है।

आचार्य वाग्भटका कहना है कि इस ग्रन्थमें कोई कपोलकल्पित बात नहीं कही गयी है। पूर्वाचार्यों, विशेषतः चरक, सुश्रुत आदिके अभिमतोंका अनुसरण हुआ है, अतः मन्त्रवत् इसका प्रयोग करना चाहिये—

'मन्त्रवत्सम्प्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथञ्चन॥'

(अष्टा० उत्तर० ४०।८१)

इतना ही नहीं, आचार्य वाग्भट बड़े विश्वाससे कहते हैं कि इस ग्रन्थके पठन, मनन एवं प्रयोग करनेसे निश्चय ही दीर्घ-जीवन, आरोग्य, धर्म, अर्थ, सुख और यशकी प्राप्ति होती है—

दीर्घं जीवितमारोग्यं धर्ममर्थं सुखं यशः।
पाठावबोधानुष्ठानैरधिगच्छत्यतो ध्रुवम्॥

(अष्टा० उत्त० ४०।८२)

माधवनिदानके प्रणेता आचार्य माधव

'निदाने माधवः श्रेष्ठः' अर्थात् रोगका निदान—निश्चय करनेमें आचार्य माधवविरचित 'माधवनिदान' ग्रन्थ श्रेष्ठ है—यह उक्ति आयुर्वेदजगत्में अतिप्रसिद्ध है। आयुर्वेदशास्त्रके तीन मुख्य सूत्र हैं—प्रथम है हेतुज्ञान, द्वितीय है लिङ्गज्ञान और तृतीय है औषधज्ञान। सामान्यतया हेतुज्ञानसे तात्पर्य है कि किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है? लिङ्गज्ञानका अर्थ है कि अमुक रोगकी पहचान क्या है, रोगके क्या लक्षण हैं तथा औषधज्ञानका अभिप्राय है कि अमुक रोगमें अमुक औषध प्रयोक्तव्य है। इन तीनोंमें लिङ्गज्ञानका महत्त्व सर्वाधिक है; क्योंकि रोगके स्वरूपज्ञानके पश्चात् ही हेतु तथा औषधकी समीक्षा होती है। ठीक प्रकारसे रोगका ज्ञान हो जानेपर ही उपचार तथा चिकित्सा सफल हो सकती है। इसीलिये कहा भी गया है कि **'रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्'** अर्थात् पहले रोगकी परीक्षा करे, उसे पहचाने, तदनन्तर औषध आदिकी व्यवस्था करे।

इसी आवश्यकताका अनुभव करते हुए आचार्य माधव या माधवकरने चरक, सुश्रुत तथा महामति

वाग्भट आदि पूर्वाचार्योंके अनुभव तथा स्वमतिके अवदानसे सुगमतापूर्वक रोगोंका ज्ञान करानेके लिये (**'सुखं विज्ञातुमातङ्कम्'** माधवनिदान १।३) एक विशिष्ट ग्रन्थका प्रणयन किया और उसका 'रोगविनिश्चय' यह नाम रखा—**'निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम्'** (माधवनिदान १।२)। परंतु लोकमें यह ग्रन्थ 'माधवनिदान' के नामसे प्रसिद्ध है। इसपर मधुकोश आदि प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। आचार्य माधवने रोगज्ञानके पाँच साधन बताये हैं—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय तथा सम्प्राप्ति।

आचार्य माधवके पिताका नाम 'इन्दुकर' था—**'श्रीमाधवेन्दुकरात्मजेन'**। इतिहासक्रममें इनका समय आचार्य वाग्भटके अनन्तर अर्थात् लगभग छठीं शतीके बादका है। आचार्य माधवने अपने ग्रन्थ 'माधवनिदान'में सब रोगोंमें 'ज्वर' प्रधान है, यह बताते हुए सर्वप्रथम ज्वररोगका ही वर्णन किया है और उसे दक्षप्रजापतिद्वारा किये गये अपमानसे कुपित रुद्रके निःश्वाससे उत्पन्न बताया है तथा उसके प्रधान आठ भेद—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) वातपित्तज, (५) वातकफज, (६) पित्तकफज, (७) त्रिदोषज तथा (८) आगन्तुज—बताये हैं—

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसङ्घातागन्तुजः स्मृतः ॥

(मा०नि०ज्वर० १)

तदनन्तर अतिसार, ग्रहणी, अर्श, अग्निमान्द्य, क्रिमि, पाण्डु, कामला, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, कास, हिक्का, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि, मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा, दाह, उन्माद, अपस्मार, वातव्याधि, आमवात, शूलपरिणाम, उदावर्त, आनाह, गुल्म, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, उदर, शोथ, गलगण्ड, श्लीपद, विद्रधि, व्रण, भगन्दर, कुष्ठ, अम्लपित्त, विसर्प, मुखनासिकादि रोग, शिरोरोग, मूढगर्भ, सूतिकारोग, बालरोग तथा विषरोग आदि अनेक रोगोंकी मीमांसा की है। यह माधवनिदान ग्रन्थ अत्यन्त सुगम होनेसे वैद्यजगत्में बहुत लोकप्रिय है।

आचार्य भावमिश्र और भावप्रकाश

आयुर्वेदकी आचार्य-परम्परामें भिषग्भूषण श्रीभावमिश्रका नाम विशेष स्थान रखता है। इनकी विश्रुत कृति 'भावप्रकाश'-के नामसे प्रसिद्ध है। इनके पिताका नाम श्रीलटकन मिश्र था। आचार्य भावमिश्रका समय १६वीं सदीके आसपासका है। 'भावप्रकाश' ग्रन्थ आयुर्वेदकी लघुत्रयीमें परिगणित है। आचार्य भावमिश्रने अपने पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंसे सार-सार भाग ग्रहणकर अत्यन्त सरल भाषामें इस ग्रन्थका निर्माण किया और ग्रन्थके प्रारम्भमें ही यह बता दिया कि यह शरीर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिका मूल है और जब यह निरामय (रोगरहित) रहेगा, तभी कुछ प्राप्त कर सकता है, इसलिये शरीरको स्वस्थ बनाये रखना मुख्य कर्तव्य है—

धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम्।
तच्च सर्वार्थसंसिद्ध्यै भवेद्यदि निरामयम्॥

(भा०प्र०पू० १। ४३)

यदि शरीरमें रोग विद्यमान हैं तो फिर प्राणियोंका कल्याण कैसे हो सकता है? **'सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम्'** (भा०प्र०पू० १। ४५)। आचार्यने युक्तिव्यपाश्रय-चिकित्सामें दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, आहार-विहार तथा सदाचारके परिपालनको अत्यन्त हितकर बताया है।

आचार्यने व्याधियोंके मुख्यरूपसे दो भेद किये हैं—(१) कर्मज, (२) दोषज। कर्मज व्याधियाँ वे हैं, जो प्रबल प्राक्तन दुष्कर्मके परिणामस्वरूप फलित होती हैं और भोग अथवा प्रायश्चित्तसे उनका विनाश होता है। इसके विपरीत जो दोषज व्याधियाँ हैं, वे मिथ्या आहार-विहार करनेसे कुपित हुए वात, पित्त एवं कफसे होती हैं।*

*(क) यत् प्राक्तनं दुष्कर्मप्रबलं केवलभोगनाश्यम्, प्रायश्चित्तनाश्यं वा। (ख) मिथ्याऽऽहारविहारप्रकुपितवातपित्तकफजाः। (भा०प्र०पू० ६। १-२)

नाडीशास्त्रज्ञ आचार्य शार्ङ्गधर

नाडीज्ञानद्वारा रोग-परीक्षण आयुर्वेदशास्त्रकी एक विलक्षण विधा है। कुशल वैद्योंद्वारा नाडीमें सूत (कच्चे तागे)-के एक सिरेको बाँधकर दूसरे सिरेको पकड़कर नाडी गतिका ज्ञान करके रोग एवं रोगीके सम्बन्धमें सब कुछ सत्य-सत्य बता देनेकी घटनाएँ अति प्रसिद्ध हैं। नाडीज्ञान एवं स्पर्श-ज्ञानका प्रचलन बहुत प्राचीन है। नाडीशास्त्रके प्राचीन आचार्योंमें महर्षि कणाद आदिका नाम आता है। उसी परम्पराक्रममें आचार्य शार्ङ्गधर भी हैं जो नाडीशास्त्रज्ञ कहे गये हैं। शार्ङ्गधरके नामसे दो ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं—(१) शार्ङ्गधरसंहिता और (२) शार्ङ्गधरपद्धति। आयुर्वेदकी लघुत्रयीमें भावप्रकाश, माधवनिदानके साथ ही शार्ङ्गधरके ग्रन्थोंका भी समावेश है।

आचार्य शार्ङ्गधर न केवल चिकित्साशास्त्रके मर्मज्ञ थे, अपितु कवित्व शक्तिसे सम्पन्न तथा विविध शास्त्रोंके ज्ञाता थे। शार्ङ्गधरके पितामहका नाम राघवदेव तथा पिताका नाम दामोदर था। शार्ङ्गधरका समय १३ वीं-१४ वीं सदीके आसपास बताया जाता है।

आयुर्वेदका इतिहास पुरुष—जीवक कौमारभृत्य

(श्रीमाँगीलालजी मिश्र)

बात पुरानी लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्वकी है। मगध उस समयके विख्यात सोलह जनपदों (प्रदेशों)-में एक था। मागधोंकी राजधानी थी राजगृह, वर्तमान कालकी राजगिरि। यह स्थान बिहारमें तिलैया स्टेशनसे सोलह मील दूर है। उस समय मगधके सम्राट् बिंबिसार थे और बोधिसत्त्व प्राप्त करके गौतम सिद्धार्थ अपना धर्मचक्र प्रवर्तन करते हुए विचरण कर रहे थे।

तत्कालीन परम्पराके अनुसार राजगृहमें जनपद-कल्याणी (प्रधान गणिका)-के पदपर सालवती नामकी रूपसी थी। वह अपूर्व सुन्दरी होनेके साथ-साथ नृत्य, गीत और वाद्य-वादनमें भी अद्वितीय थी। सालवती गर्भवती हो गयी। उसने इस प्रसंगको गोपनीय रखा। अस्वस्थ होनेका बहाना बनाकर लोगोंसे मिलना बंद कर दिया। यथासमय उसने एक पुत्रको जन्म दिया और दासीके द्वारा उस नवजात शिशुको फेंकवा दिया।

संयोगकी बात कि उस समय उस रास्तेसे होकर राजकुमार अभय गुजरे। उन्होंने वहाँ पड़े सुन्दर शिशुको देखा। दयावश वे उसे उठा लाये। उनके यहाँ पालन-पोषण प्राप्तकर वह बच्चा बढ़ने लगा। राजकुमारने उसका नाम रखा 'जीवक'। '**उत्सृष्टोऽपि जीवति**' अर्थात् छोड़ दिये जानेपर भी जो जीवित रहता है—इस व्युत्पत्तिके अनुसार उसका 'जीवक' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। उसका पालन-पोषण राजकुमारने किया था, इसलिये जीवकका उपनाम 'कौमारभृत्य' हो गया।

उस समय गान्धारोंकी राजधानी तक्षशिला कला-कौशलकी तरह विद्याके क्षेत्रमें भी उन्नत थी। दूर-दूरके प्रदेशोंसे ब्राह्मण-कुमार वेदाभ्यासके लिये, क्षत्रियकुमार धनुर्विद्या एवं राज्य-शासन सीखनेके लिये और तरुण वैश्य शिल्पकला या अन्य व्यवसाय सीखनेके लिये तक्षशिला आते थे। जीवक कौमारभृत्यने आयुर्वेदका अध्ययन यहीं रहकर किया। अध्ययनकी समाप्तिपर जीवकके आचार्यने उसकी परीक्षा ली कि तक्षशिलाके पाँच-पाँच मील चारों ओर घूमकर देखो और जो वनस्पति अनुपयोगी हो, उसे ले आओ। पर जीवकको ऐसी कोई वनस्पति नहीं मिली जो अनुपयोगी हो। आचार्यने प्रसन्न मनसे शिष्यको विदा किया।

जीवक जब मगध लौट रहा था तो मार्गमें साकेत (अयोध्या)-में ठहरा। वहाँके विख्यात एक श्रेष्ठीकी

पत्नी वर्षोंसे बीमार पड़ी थी और उसकी शिरोवेदना असाध्य हो गयी थी। जीवकको पता चला तो वह उपचार करने गया। जीवकने श्रेष्ठि-पत्नीको देखा और एक घृत तैयार किया। श्रेष्ठि-पत्नीको नासिकाद्वारा वह घृत पिलाया गया। तीन दिनमें ही उसे आराम हो गया। श्रेष्ठीने प्रसन्न होकर उसे सोलह हजार कार्षापण, रथ, दास और दासी भेंटमें दिये। जीवककी यह प्रथम चिकित्सा थी।

आगे चलकर जीवकने नितान्त असाध्य रोगोंके इलाज किये। जीवकने जिनका उपचार किया, उनमें मगध-सम्राट् बिंबिसार, अवन्तीके नरेश चण्ड प्रद्योत और भगवान् गौतम बुद्धका नाम भी उल्लेखनीय है।

सम्राट् बिंबिसारको भगंदर रोग हो गया था। रक्तस्रावके कारण राजाके अन्तर्वासक खराब हो जाते। अन्तःपुरमें रानियाँ परिहास करतीं। एक तो असाध्य रोग और उसपर परिहासका अपमान। बिंबिसार हर प्रकारसे दुःखी हो गये, तनसे भी और मनसे भी। राजकुमार अभयने जीवकको चिकित्साके लिये कहा। जीवकद्वारा निर्मित औषधके एक ही लेपसे सम्राट्ने रोगसे मुक्ति पा ली। प्रसन्न होकर उसे मगधका राजवैद्य नियुक्त कर दिया और प्रभूत, अचल सम्पत्ति देकर सम्मानित किया।

राजगृहका नगरश्रेष्ठी काफी लंबे समयसे बीमार था। सुयोग्य चिकित्सकोंके उपचार भी उसे नीरोग न कर सके। किसी वैद्यने कहा—श्रेष्ठी पाँच दिन जियेंगे तो किसीने कहा सात दिन।

सम्राट् बिंबिसारने अपने नगरश्रेष्ठीकी चिकित्साके लिये युवक राजवैद्य जीवकसे कहा। जीवकने श्रेष्ठीका परीक्षण किया और पूछा—कहो श्रेष्ठिन्! यदि आपको स्वास्थ्यलाभ हो जाय तो हमारा पारिश्रमिक क्या देंगे? दुःखी और निराश श्रेष्ठीने अपने जीवनके बदले अपनी समस्त सम्पत्ति राजवैद्यको बतौर पारिश्रमिक देनेका वचन दिया।

जीवकने तब पूछा—'श्रेष्ठिन्! क्या तुम सात मासतक एक करवट लेटे रह सकोगे? श्रेष्ठीने 'हाँ' भरी। फिर सात मासतक दूसरी करवट? श्रेष्ठीने फिर 'हाँ' भरी। फिर सात मासतक चित्त पड़े रह सकते हो? श्रेष्ठीने जब फिर इसे भी स्वीकारा तो जीवकने उसे खाटपर चित्त लिटाकर बाँध दिया और खोपड़ी चीरकर दो कीड़े निकाल करके सामने रख दिये। फिर मस्तिष्कको साफ करके पुनः सी दिया और दवा लगाकर पट्टी कर दी।

श्रेष्ठीको दोनों कीड़े दिखाकर राजवैद्य बोला—'जिस वैद्यने कहा था—केवल पाँच दिन और जिओगे, वह ठीक था; क्योंकि उसे केवल बड़े कीड़ेका ही ज्ञान हो पाया था और जिसने सात दिनकी आयु शेष बतायी थी, वह भी ठीक था, क्योंकि उसे छोटे कीड़ेका ही ज्ञान हो पाया था।'

सात माहके स्थानपर सात दिनके हिसाबसे केवल इक्कीस दिनमें ही नगरश्रेष्ठी नीरोग हो गया। वायदेके अनुसार जब उसने राजवैद्यको अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देनी चाही तो जीवकने केवल एक लाख मुद्राएँ ही लीं।

जीवककी शल्यक्रियाका एक अभूतपूर्व उदाहरण और मिलता है। वाराणसीके श्रेष्ठिपुत्रके पेटमें—आँतोंमें गाँठें पड़ गयीं। बहुत उपचार कराया पर आराम न हुआ। जीवकने उसे देखा। पेटको चीरकर आँतें बाहर निकालीं, गाँठोंको काटकर फेंक दिया और आँतोंको यथावत् रखकर सी दिया। श्रेष्ठिपुत्र स्वस्थ हो गया।

इस प्रकार कौमारभृत्य जीवकका यश मगधके बाहर सभी जनपदोंमें फैलने लगा। बौद्धग्रन्थ-महावग्ग (भाग ८)-के अनुसार अवन्तीका राजा चंड प्रद्योत बीमार हो गया तो उसके निमन्त्रणसे मगधदेशका प्रसिद्ध वैद्य जीवक कौमारभृत्य उसे स्वास्थ्य प्रदान करनेके लिये उज्जैन गया। प्रद्योतके अत्यन्त क्रूर स्वभावके कारण उसके नामके साथ 'चंड' विशेषण लगाया जाता था और यह बात जीवकको अच्छी तरह मालूम थी। राजाको दवा देनेसे पहले वह जंगलमें जाकर दवाएँ लानेके बहाने भद्दवती नामकी एक हथिनीपर बैठकर वहाँसे भाग गया। इधर दवा लेते ही प्रद्योतको भयानक

कै होने लगी। इससे उसे बहुत क्रोध आया और उसने जीवकको पकड़ लानेकी आज्ञा दी। परंतु जीवक वहाँसे निकल चुका था। उसका पीछा करनेके लिये राजाने अपने काक नामक दासको भेजा। काकने कौशाम्बीतक दौड़-धूप करके जीवकको पकड़ लिया। तब जीवकने उसे एक औषधियुक्त आँवला खानेको दिया, जिससे काककी बड़ी दुर्गति हुई और फिर जीवक भद्दवतीपर बैठकर सकुशल राजगृह पहुँच गया। इधर प्रद्योत बिलकुल स्वस्थ हो गया। दास काक भी चंगा होकर उज्जैन पहुँच गया। बीमारी दूर हो जाने तथा पहलेकी तरह स्वास्थ्य-प्राप्तिसे प्रद्योत जीवकसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे देनेके लिये प्रद्योतने—सिवेयक नामक बहुमूल्य वस्त्रोंका जोड़ा राजगृह भेजा।

चिकित्साके अपने अद्भुत गुणके कारण सम्राट् बिंबिसारके बाद उसके पुत्र अजातशत्रुपर भी जीवकका प्रभाव यथावत् बना रहा। जीवकके परामर्शसे ही अजातशत्रु भगवान् बुद्धके प्रति सद्भाव बनाकर उनके दर्शनार्थ गया था। यह प्रसंग 'दीघनिकाय'के सामन्नफल सुत्तमें इस प्रकार है—

भगवान् बुद्ध राजगृहमें जीवक कौमारभृत्यके आम्रवनमें बड़े भिक्षुसंघके साथ रहते थे। उस समय कार्तिक पूर्णिमाकी रातमें अजातशत्रु अपने अमात्योंके साथ प्रासादके ऊपरी कक्षपर बैठा था। वह बोला—'कितनी सुन्दर रात है यह। क्या यहाँ कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण है, जो अपने उपदेशोंसे हमारे चित्तको प्रसन्न करेगा। उस समय पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल, अजित केसकंबल, पकुध कच्चायन, संजय वेलट्ठपुत्त और निगण्ठ नाथपुत्त—ये प्रसिद्ध श्रमण अपने-अपने संघोंके साथ राजगृहके आस-पास रहते थे। अजातशत्रुके अमात्योंने क्रमशः उनकी स्तुति करके उनसे मिलने जानेके लिये राजाको राजी करनेका प्रयत्न किया, पर अजातशत्रु कुछ उत्तर न देकर चुप रह गया।

उस समय जीवक कौमारभृत्य वहाँ था। उससे अजातशत्रु बोला—'तुम चुप क्यों हो?' इसपर जीवक बोला—'बुद्धभगवान् हमारे आम्रवनमें बड़े भिक्षुसंघके साथ रहते हैं। आज महाराज उनसे भेंट करें। इससे आपका चित्त प्रसन्न रहेगा।'

अजातशत्रुने वाहन सिद्ध करनेके लिये जीवकको आज्ञा दी। उसके अनुसार जब जीवकने सारी तैयारी की, तब अजातशत्रु राजा अपने हाथीपर बैठकर और अन्तःपुरकी स्त्रियोंको विभिन्न हथिनियोंपर बिठाकर बड़े दलबलके साथ बुद्धके दर्शनके लिये निकला।

'विनयपिटक'के महावग्गमें ऐसा उल्लेख आता है कि भगवान् बुद्ध कुछ बीमार थे और जीवक कौमारभृत्यने उन्हें विरेचक दवाओंसे स्वस्थ कर दिया।

ये कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जो जीवकके असाधारण व्यक्तित्वपर प्रकाश डालते हैं। जीवकको अपने जीवनमें अनेक इतिहास पुरुषोंका उपचार करनेका अवसर मिला— यह उसके अद्वितीय गुण और अप्रतिम योग्यताके प्रमाण हैं।

एक अनाथ जीवन लेकर ऐतिहासिक व्यक्तित्व बन जानेवाले जीवक-जैसे उदाहरण इतिहासमें अत्यल्प हैं।

आचार्य जीवकविरचित कोई संहिता-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, परंतु अपने अद्भुत चिकित्सा-कौशलसे उन्होंने अगणित मानवोंको जीवन प्रदान किया। महावग्ग नामक बौद्धग्रन्थ तथा जातक कथाओंमें उनके चिकित्सकीय जीवनका जो विलक्षण वृत्तान्त प्राप्त होता है, उससे इनके अद्भुत व्यक्तित्व, औषधिज्ञान, चिकित्साकौशल, शल्यदक्षता, मेधाविता, उदारता तथा धर्मप्रवणता आदि विशिष्ट गुणोंका किञ्चित् परिज्ञान होता है। वृद्धजीवकतन्त्र (काश्यपसंहिता)-के प्रणेता आचार्य वृद्धजीवक प्रस्तुत शल्यतन्त्रज्ञ जीवकसे भिन्न हैं।

दक्षिण-भारतमें भगवान् धन्वन्तरिकी पूजा-उपासना

(श्रीभागवतम्‌जी रामाराव)

आयुर्वेदशास्त्रज्ञ तथा सभी भारतीय धन्वन्तरिको आरोग्यप्रदाता तथा रोगविनाशक देवता मानते हैं। ये विष्णुके अवतार माने जाते हैं। धन्वन्तरिके स्तोत्रोंमें निम्न लिखित श्लोक अधिक प्रसिद्ध हैं—

नमामि धन्वन्तरिमादिदेवं सुरासुरैर्वन्दितपादपद्मम्।
लोके जरारुग्भयमृत्युनाशं दातारमीशं विविधौषधीनाम्॥
शङ्खं चक्रमुपर्यधश्च करयोर्दिव्यौषधं दक्षिणे
वामेनान्यकरेण सम्भृतसुधाकुम्भं जलौकावलिम्।
विभ्राणः करुणामयः सुखकरः सर्वामयध्वंसकः
सर्वं नो दुरितं छिनत्तु भगवान् धन्वन्तरिस्सर्वदा॥

धन्वन्तरिका वर्णन विष्णुके समान बताया गया है। वे चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, अमृतकलश तथा जलूकाको धारण करते हैं। शल्यशास्त्र-सम्प्रदायके वैद्य जलूकाको तथा कायचिकित्सा अथवा औषधिचिकित्सा-सम्प्रदायके विद्वान् औषधिको धारण करते हैं, ऐसा मानते हैं।

सुश्रुतसंहिताके अनुसार सुश्रुतको वैद्यशास्त्रका उपदेश काशिराज दिवोदास धन्वन्तरिके द्वारा हुआ। कोई भी वैद्य जो चिकित्सामें असाधारण कुशलताकी निधि हो, धन्वन्तरि कहा जाता था।

धन्वन्तरि देवताका बहुत प्रचार, प्रामुख्य रहनेपर भी धन्वन्तरिके मन्दिर देखनेमें आये नहीं हैं। उत्तर भारतमें एक भी ऐसा मन्दिर देखनेमें आया नहीं, जब कि तमिलनाडु तथा केरलमें कुछ मन्दिर देखनेमें आये हैं।

तमिलनाडुमें श्रीरंगम् हिन्दुओंका, विशेषतया विष्णुभक्तोंका पुण्यक्षेत्र है। श्रीरंगनाथस्वामीका मन्दिर बहुत विशाल है। उस मन्दिरके आवरणमें एक धन्वन्तरि-मन्दिर है। वहाँ नित्य पूजा, नैवेद्य आदिकी व्यवस्था जारी है।

तमिलनाडु प्रान्तके लोग रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये इस देवता धन्वन्तरिकी पूजा, अभिषेक आदि करवाते हैं। यह मन्दिर तथा प्रतिमा बहुत प्राचीन है। इस मन्दिरके सामने एक शिलालेख है। १२वीं शताब्दीके इस शिलालेखसे पता लगता है कि गरुडवाहन भट्टर, जो बहुत बड़े वैद्य थे, द्वारा इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा की गयी। कुछ औषधियोंसे तैयार किया हुआ कषाय तीर्थके रूपमें दिया जाता था।

इसी प्रकार काञ्चीपुरम्‌के वरदराजस्वामीके मन्दिरके आवरणमें भी एक धन्वन्तरिका छोटा-सा मन्दिर है। पहली मंजिलमें स्थित वरदराजस्वामीके पास जानेकी सीढ़ियोंके पास यह मन्दिर देखा जा सकता है। यह किस समयका है, जाननेके लिये कोई आधार प्राप्त नहीं हुए।

मन्दिरोंको छोड़कर पुरातत्त्वशाखाके संग्रहालयोंमें भी कुछ धन्वन्तरिकी मूर्तियाँ पायी गयी हैं। आन्ध्रके वरंगल (ओरुगल्लु-पुराना नाम)-के काकतीय साम्राज्यके अवशेषोंमें समुद्र-मन्थनकी एक शिलामूर्ति उपलब्ध है। इसमें समुद्र-मन्थनके समय मन्थरपर्वतके ऊपर अमृतकलशको हाथमें लिये हुए धन्वन्तरिको देखा जा सकता है। लेपाक्षीके समुदायोंमें तथा कर्नाटकके होयसलके अवशेषोंमें भी एक-एक धन्वन्तरि-मूर्ति उपलब्ध है। उत्तर भारतमें वाराणसीके संस्कृत-विश्वविद्यालयमें स्थित संग्रहालयमें भी एक धन्वन्तरिमूर्ति है।

सबसे अधिक सुन्दर, विशाल तथा प्रत्येक रूपका मन्दिर केरलके नेल्लुवायिमें है। नेल्लुवायि पालक्काड तथा त्रिशूरके बीच वडकाञ्चेरीसे १५ कि०मी० दूरपर है। इस मन्दिरके मुख्य देवता धन्वन्तरि हैं। बहुत दूरसे रोगग्रस्त लोग आकर यहाँ कुछ दिन रहकर सेवा करते हैं और रोगोंसे मुक्त होकर आनन्दसे वापस लौटते हैं। यात्रियोंके रहनेके लिये व्यवस्था है। देवताका पूजन 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' आदि विष्णुके पूजाविधियोंसे की जाती है। वैकुण्ठ एकादशीसे, दो मासतक बहुत धूमधामसे उत्सव मनाये जाते हैं। यहाँपर 'मुक्कुडि' नामक नैवेद्यका समर्पण कर प्रसादके रूपमें दिया जाता है। इसके सेवनसे उदरव्याधियोंसे मुक्ति होती है। निम्नांकित दो श्लोकोंके पाठका अधिक प्रचार है—

अच्युतानन्तगोविन्द विष्णो नारायणामृत।
रोगान् मे नाशयाशेषानाशुधन्वन्तरे हरे॥
विष्णो कृष्णजनार्दनाच्युत हरेनारायणश्रीपते
वैकुण्ठामृतरामकेशवमुकुन्दानन्द दामोदर।
शौरेमाधवपद्मनाभभगवान् गोविन्दधन्वन्तरे
रोगान् मे नितरां निवारयतु ते नामामृतं साम्प्रतम्॥

केरलमें अष्टवैद्य नामक वैद्योंके वंश प्रसिद्ध हैं। उनके वंशज अभी भी वैद्यचिकित्सासे जनताकी सेवा कर रहे हैं। इन वंशोंमें धन्वन्तरिपूजाका विशिष्ट सम्प्रदाय चला आ रहा है। कुछ वंश मकानमें ही धन्वन्तरि-मूर्तिकी पूजा करते हैं तो अन्य प्रत्येक मन्दिर बनवाकर पूजाकी व्यवस्था किये हैं। कोट्टक्कलके समीप 'पुलामन्तोल' ग्राममें एक अष्टवैद्य वंश है। वहाँपर एक मन्दिर है धन्वन्तरिका। वैद्यमडम वडकाञ्चेरीके पास है। यहाँके अष्टवैद्य मातृदत्तन् नम्बूद्रिके मकानमें पञ्चलोह धन्वन्तरि-मूर्तिकी पूजा की जाती है। त्रिशूरके 'पेरुङ्गवा' में भी एक धन्वन्तरिका बड़ा मन्दिर है। अन्य अष्टवैद्यवंश निम्न लिखित स्थानोंपर विराजमान हैं—

१. आलत्तियूर, २. कुट्टञ्चेरी, ३. तैक्काड, ४. वयस्करा, ५. वेल्लोड एवं चिराट्टामन।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि केरलमें भगवान् धन्वन्तरिका पाठ-पूजन आदिका सम्प्रदाय वैद्यवंशजोंमें निरन्तर चला आ रहा है।

वैद्यचिन्तामणिके प्रणेता वल्लभाचार्य

(वैद्य श्रीरामनिवासजी शर्मा)

दक्षिण भारतके वैद्यक ग्रन्थोंमें 'वसवराजीयम्' तथा 'वैद्यचिन्तामणि' का विशिष्ट स्थान है। ये दोनों तेलुगु लिपिमें हैं तथा आन्ध्रप्रदेशमें सबसे अधिक प्रचलित हैं। इधर 'वसवराजीयम्' का तो नागरी लिपिमें अनुवाद हो, प्रकाशन हो चुका है, किंतु 'वैद्यचिन्तामणि' पाण्डुलिपिके रूपमें ही रहता आया है।* कुछ समय पूर्व तेलुगुमें ही मद्राससे इसका प्रकाशन हुआ, किंतु अब वह उपलब्ध नहीं है। वास्तवमें ये दोनों संस्कृत भाषामें लिखित ग्रन्थ हैं। १६वीं शताब्दीके आस-पास आन्ध्र एवं कर्नाटकके सीमावर्ती क्षेत्रमें लिखे गये ये ग्रन्थ तेलुगुलिपिमें होनेके कारण शेष आयुर्वेदजगत्में न पहुँच सके। १६वीं शताब्दीके आस-पास इस लिपिको इतना महत्त्व प्राप्त नहीं था। तेलुगु, कन्नड या दक्षिणकी अन्य लिपियोंमें कई संस्कृत तथा अन्य भाषाओंके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, पर इनके रचयिताओंके सम्बन्धमें निश्चितरूपसे आज भी कुछ नहीं कहा जा सकता, यही बात प्रस्तुत ग्रन्थोंकी भी है कि 'वसवराजीयम्' और 'वैद्यचिन्तामणि' के रचयिता कौन थे और वे किस निश्चित स्थानके रहनेवाले थे। ये दोनों ग्रन्थ आन्ध्र एवं कर्नाटकके एक बड़े क्षेत्रमें आज भी आयुर्वेद-चिकित्साके मुख्य आधार हैं। इन दोनों ग्रन्थकारोंके निजी जीवन एवं इतिहासके सम्बन्धमें प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी है, पर आन्ध्र-प्रदेशके विद्वान् इन ग्रन्थोंको १६वीं शताब्दीका मानते हैं।

वैद्यचिन्तामणिकारने ग्रन्थके आरम्भमें तथा पुष्पिकामें अपने तथा अपने वंशके सम्बन्धमें जो कहा है—उससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्ताका पूरा नाम इन्द्रकण्ठ वल्लभाचार्य था। वे 'आपस्तम्ब सूत्र' के माननेवाले थे और उनका गोत्र श्रीवत्स था। उनके पिताका नाम अमरेश्वर भट्ट था तथा उनका पारिवारिक नाम इंद्रकण्ठ था। ग्रन्थके अन्तमें विष-प्रकरणके कुछ अंश तेलुगुलिपिके साथ तेलुगु भाषामें लिखे गये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वल्लभाचार्य तेलुगुभाषी थे और आन्ध्रके निवासी थे। कुछ लोग यह भी सम्भावना प्रकट करते हैं कि वल्लभ सम्प्रदायके जनक वल्लभाचार्य और

* वैद्यचिन्तामणिकी पाण्डुलिपियाँ कई स्थानोंपर उपलब्ध हैं। यथा—मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रासमें कन्नड़ तथा तेलुगुलिपिमें, ओरियण्टल लाइब्रेरी मैसूर, वी.ओ.आर.आइ. पूना, सरस्वती महल, तंजौर आदि।

वैद्यचिन्तामणिकार वल्लभ दोनों एक हो सकते हैं, पर पुष्टिमार्गके संस्थापक श्रीवल्लभाचार्यके सम्बन्धमें इस सम्प्रदायके विशेषज्ञोंका मत है कि वल्लभाचार्यके पूर्वज आन्ध्र-प्रदेशके गोदावरीके तटवर्ती ग्राम कांकरवाडके निवासी थे। वे भरद्वाज गोत्रीय तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम लक्ष्मण भट्ट और माताका नाम एलम्मा था। तथापि इतना सुनिश्चित है कि 'वैद्यचिन्तामणि'के रचयिता वल्लभाचार्य नामवाले थे।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश और शार्ङ्गधरकी तरह वैद्यचिन्तामणिमें एक चिकित्सकके लिये आवश्यक सभी विषयोंका समावेश इस प्रकार कर दिया गया है कि चिकित्सकको किसी अन्य ग्रन्थका सहारा लेनेकी आवश्यकता न पड़े। यह ग्रन्थ छब्बीस विलासोंमें विभक्त है।

मङ्गलाचरणके बाद पञ्चनिदानके साथ-साथ अष्टस्थान परीक्षाका निरूपण है, जिसमें पहले नाड़ी परीक्षा है। नाड़ीका जितने विस्तारसे वर्णन यहाँ मिलता है, उतना अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थमें शायद नहीं मिलता। हाथके साथ-साथ पाँवके मूलमें नाडी-परीक्षा, स्त्रियोंके बायें तथा पुरुषोंके दायें हाथकी नाडीकी परीक्षाका विधान बताया गया है। इसके साथ-साथ किन परिस्थितियोंमें नाडीसे सम्यक् ज्ञान नहीं होता, इसका वर्णन भी किया गया है। ग्रन्थमें यद्यपि प्रत्येक रोगकी चिकित्साके लिये चूर्ण, कषाय, वटी, अवलेह, घृत, तेल, अञ्जन तथा धूम आदिका यथास्थान उल्लेख है, पर ऐसा लगता है वल्लभाचार्यका विशेष ध्यान रस-योगोंपर था। ग्रन्थके अन्तिम भागमें रस, महारस, धातु, रत्न तथा विषोंका वर्णन तथा शोधन, मारण और प्रयोग आदिका विस्तार यह सिद्ध करता है कि यह ग्रन्थ मूलतः एक रसग्रन्थ है।

भावप्रकाशकी तरह काष्ठादि द्रव्योंका वर्णन इस ग्रन्थमें नहीं है। यह तथ्य आश्चर्यजनक लगता है कि जहाँ दक्षिणके केरल प्रान्तमें आयुर्वेदकी परम्परा केवल काष्ठादि द्रव्योंके आधारपर विकसित हुई, वहाँ दक्षिणके ही विशाल प्रान्त आन्ध्रमें रस-चिकित्साका अद्भुत विकास हुआ। रस-प्रयोगोंके सम्बन्धमें दक्षिणके नागार्जुन तो प्रसिद्ध ही हैं। इसके अतिरिक्त आजके युगमें भी परम्परागत शैलीसे आयुर्वेद-चिकित्सा करनेवाले वैद्य रस-प्रयोगोंका ही अधिक उपयोग करते हैं। तमिलनाडु और आन्ध्रके सीमावर्ती क्षेत्रोंमें आन्ध्रके रस-चिकित्सकों और तमिलनाडुके सिद्ध वैद्योंके रस योगोंमें भी बहुत-सी समानताके आधार खोजे जा सकते हैं।

वैद्यचिन्तामणि आयुर्वेदके लगभग सभी अङ्गोंको अपने-आपमें समेटे हुए एक विशाल ग्रन्थ है। अध्यायों या खण्ड या स्थानकी तरह यह ग्रन्थ विलासोंमें विभाजित है। प्रथमसे लेकर तेईसवें विलासतक विभिन्न रोगोंके लक्षण और चिकित्सा विस्तारसे बतायी गयी है।

प्रथम तेईस विलासोंमें रोगोंके वर्णन एवं चिकित्साके लिये निम्न क्रम अपनाया गया है—ज्वर, क्षय, पाण्डु, कामला, शोथ, अतिसार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, ग्रहणी, संग्रहणी, वात-व्याधि, रक्त-पित्त, अरुचि, छर्दि, काश, श्वास, हिक्का, स्वरभेद, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, शूल, आनाह, उदावर्त, गुल्म, हृदयरोग, उदररोग, वृद्धि, मेदोरोग, वात रक्त, ऊरुस्तम्भ, आमवात, शीतपित्त, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अर्श, कृमि, तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, मदात्यय, उन्माद, अपस्मार एवं कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट, मसूरिका, गलगण्ड, ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद, अन्तर्विद्रधि, व्रण, नाड़ीव्रण, भगन्दर, उपदंश, शूलरोग, क्षुद्ररोग, स्नायुक, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, शिरोरोग और नेत्ररोग। चौबीसवें विलासमें रसोंकी शुद्धि, पच्चीसवेंमें यन्त्र और मान परिभाषा तथा छब्बीसवें विलासमें विष-प्रकरण है।

वैद्यचिन्तामणिमें ज्वरोंका वर्णन जितने विस्तारसे मिलता है, उतना शायद ही और किसी प्राचीन ग्रन्थमें दिखायी दे। जैसे शीतल ज्वर, स्वेद ज्वर, कृमि ज्वर, हरिद्रा ज्वर, प्रातःज्वर, मध्याह्न ज्वर, सायं ज्वर, निशा ज्वर, व्रण ज्वर, आतप ज्वर, स्वरहीन ज्वर, अभिघात ज्वर, अग्निमान्द्य ज्वर, वमन ज्वर, हिध्मा ज्वर, हिक्का ज्वर, अनिद्रा ज्वर और काश ज्वर आदि।

प्रत्येक रोगकी चिकित्सामें परम्परागत योगोंके अतिरिक्त बहुत-से नवीन रसयोगोंका वर्णन इस ग्रन्थमें

है। कुछ रसयोग ऐसे हैं, जो सर्वथा नवीन हैं, जिनका संकलन 'रसयोगसागर' तथा 'रसरत्नाकर'में भी नहीं हुआ है।

ज्वरोंकी चिकित्सामें अनेक कषाय और चूर्ण-कल्पनाके बाद कुछ रसयोगोंके नाम निम्न प्रकार हैं। हिरण्यगर्भ रस, नारसिंह रस, शरभेश्वर रस, गरुडध्वज रस, वैष्णवी रस, जोगी रस, भूतेश्वर रस, त्रिपुरान्तक रस, भद्रकाली रस, भुवनेश्वर रस, उमामहेश्वर रस, पितामह रस, रसेन्द्र रस, विश्वम्भर रस, एकमूर्ति रस, द्विमूर्ति तथा त्रिमूर्ति रस, चण्डभानु रस, चन्द्रहास रस, विषामृतरस आदि। संनिपात ज्वरोंके लिये एक अलग प्रकरण है। इसकी चिकित्साके लिये संनिपातभैरव रस, वीरविक्रम रस, त्रिविक्रम रस तथा महेन्द्र रस-जैसे विशेष रसोंकी कल्पना है। ज्वरोंमें पथ्यापथ्यका विस्तारसे वर्णन है। ज्वरमें दिनचर्याका भी उल्लेख किया गया है।

क्षयरोगके वर्णनमें क्षयके जो कुछ विशेष भेद बताये गये हैं, वे निम्न हैं—

संताप क्षय, मूर्च्छा क्षय, शोष क्षय, वमन क्षय, ग्रहणीशूल क्षय, शुष्क क्षय, अतिसार क्षय, मन्दाग्नि क्षय, पाण्डु क्षय, उद्गार क्षय, तिक्त क्षय, अजीर्ण क्षय, तन्द्रा क्षय, हरिद्रा क्षय आदि।

क्षयकी चिकित्साका भी ग्रन्थमें बड़े विस्तारसे वर्णन है। उत्तर भारतमें प्रचलित रसयोगोंके साथ-साथ जिन विशिष्ट रसयोगोंका उल्लेख है, वे निम्न हैं—

महाकनकसुन्दर रस, नीलकण्ठ रस, पञ्चामृत रस, शङ्खेश्वर रस, नागेश्वर रस, स्वयमग्निकुमार रस, नवरत्न राजमृगाङ्क रस, हस्तिकर्णी रसायन आदि।

इसी प्रकार अन्य रोगोंके लिये भी अनेक नवीन काष्ठादि औषधियाँ, चूर्ण, कषायादि तथा रसयोगोंकी कल्पना वैद्यचिन्तामणिमें की गयी है। इनमें बहुत-से प्रयोग एक बड़े भू-भागके आयुर्वेदज्ञोंके लिये सर्वथा अपरिचित हैं। इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि इसी प्रकारके प्राचीन ग्रन्थोंके साथ ही वैद्यचिन्तामणिमें उपलब्ध सामग्रीका गहराईके साथ अध्ययन तथा प्रयोग किया जाय, जिससे कि बहुत-सी श्रेष्ठ औषधि कल्पनाएँ प्रकाशमें आ सकें।

आन्ध्र-प्रदेश एवं कर्नाटकमें 'वैद्यचिन्तामणि' की प्रसिद्धि एवं उपयोगिताको ध्यानमें रखकर अब इसे नागरी लिपिमें हिन्दी अनुवादके साथ भी प्रकाशित कर दिया गया है।

प्राकृतिक चिकित्साके प्रतिष्ठापक—लुई कूने

प्राकृतिक चिकित्सा पूर्णतः भारतीय चिकित्सा-पद्धति है। इसमें जल, वायु, मिट्टी तथा धूपके माध्यमसे रोगोंका उपचार किया जाता है। इसकी उपयोगिताको देखकर वैदेशिक विद्वानोंने इसे खूब अपनाया। यूनान, अरब, जर्मनी, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशोंमें इसे खूब सराहा गया और इसका खूब प्रचार-प्रसार भी हुआ। परंतु लुई कूनेके आविर्भावसे पूर्व प्राकृतिक चिकित्सा (जिसका प्रमुख अङ्ग जल-चिकित्सा है)-का वैज्ञानिक ढंगसे व्यवस्थित विकास नहीं हो पाया था। इस चिकित्साको पूर्णतया विज्ञानसम्मत स्वरूप देनेका श्रेय लुई कूने (Louis Kunne)-को दिया जाता है।

लुई कूनेका आविर्भाव जर्मनीके लिपजिग नगरके एक जुलाहा-परिवारमें हुआ था। लुई कूनेके प्राकृतिक चिकित्सक बननेकी कहानी बड़ी रोमाञ्चक है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—इस जुलाहा-बालकके माता-पिताकी मृत्यु इलाज करते-कराते हो गयी। स्वयं भी वे डॉक्टरोंकी दवाओंके चक्करमें फँसकर परेशान हो गये, जीवनमें निराशा छा गयी। बीस सालकी अवस्थामें ही वे बूढ़े-से दिखने लगे, उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। छाती और सिरमें भयानक दर्द रहने लगा। डॉक्टरोंके

यहाँ खूब भाग-दौड़ की, पर ठीक होना तो दूर रहा शरीर और भी गिरता गया। आगे लुई कूने अपनी कहानी स्वयं बताते हैं—'सन् १८६४ ई० की बात है, मैंने किसी समाचार-पत्रमें प्राकृतिक चिकित्साके अनुयायियोंकी बैठकका एक समाचार पढ़ा। मैं वहाँ गया। उस बैठकका दृश्य मेरे दिमागमें आज भी ताजा है। वहाँ उपस्थितोंमें एकसे मैंने धीरेसे अपनी छातीके भयंकर दर्दका उपचार पूछा। 'धीरेसे' इसलिये कि आन्तरिक पीडाके कारण बहुत लोगोंके बीच बोलनेमें मुझे घबराहट होती थी। उन सज्जनने मुझे छातीपर गीली गद्दी रखनेका सुझाव दिया। उससे मुझे तात्कालिक लाभ हुआ। फिर तो मैं बराबर उन बैठकोंमें जाने लगा।

सन् १८६८ ई० की बात है, मेरे भाई बीमार पड़े। उस समयतक प्राकृतिक चिकित्सा अपनी बाल्यावस्थामें थी, तथापि थियोडोन हान (Theodon Hann)-द्वारा प्राकृतिक चिकित्साके माध्यमसे अनेक कठिन रोगोंकी सफल चिकित्साका समाचार सुनकर मैं अपने भाईको लेकर वहाँ पहुँचा और कुछ ही हफ्तोंमें काफी सुधार हुआ, अतः हम लोग लौट आये। यह सब देख-सुनकर मैं चिकित्साके प्राकृतिक उपायोंका समर्थक बन गया। मैं स्वयं बीमार तो था ही। मेरे शरीरमें पीडा घटनेके बजाय बढ़ती जा रही थी। माता-पितासे मिली बीमारीके बीज शरीरमें बढ़ते ही जा रहे थे। डॉक्टरी इलाजने उसे और भी गम्भीर रूप दे दिया था। आमाशयमें कैंसरने भयंकर रूप ले लिया था। फेफड़ोंका कुछ भाग नष्ट हो चुका था। मस्तिष्ककी नाडियोंमें ऐसा तनाव रहता था कि घरमें बैठना कठिन था। बाहर स्वच्छ हवामें कुछ चैन मिलता था, पर यह हर समय सम्भव न था। बाहरसे दिखनेमें मैं स्वस्थ दिखता था, पर अंदर-ही-अंदर खोखला होता जा रहा था, बहुत परेशान था।

तब, उस समय प्राकृतिक चिकित्साके नामपर प्रचलित विधि-विधानोंका मैंने तन-मनसे पालन किया। स्नान, पट्टियाँ, एनिमा—सब विधियोंको अपने ऊपर आजमाया। धीरे-धीरे प्राकृतिक उपचारके अन्य तरीकोंको भी अपनाया। नया चिन्तन करता गया और अपने ही ऊपर प्रयोग करता गया। कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि दिन-पर-दिन मेरी दशा सुधरती गयी। मैंने अन्य लोगोंको भी इस चिकित्सा-विधिको अपनानेका परामर्श दिया, उन लोगोंको भी फायदा हुआ।'

इस घटना-क्रमसे लुई कूनेके मनमें बहुत उत्साह तथा उल्लास था। उन्होंने जल-चिकित्सापर विशेष जोर दिया। स्नानकी विभिन्न विधियाँ—भाप-स्नान, कटि-स्नान, मेहन-स्नान आदि—खोज निकालीं और आगे फिर इसका विस्तार होता गया।

१० अक्टूबर १८८३ ई० को लुई कूनेने अपना चिकित्सालय खोल दिया और हजारों लोगोंको अपने अनुभवका लाभ पहुँचाया। कूनेके सिद्धान्तानुसार—**'सभी रोगोंकी जड़ एक ही है और वह है—शरीरमें विजातीय तत्त्वका एकत्र होना और इससे मुक्तिका उपाय है—उस विजातीय तत्त्वका शरीरसे पूर्णतया बाहर निकल जाना। इस कार्यको हमारा शरीर स्वतः करता है, प्राकृतिक चिकित्सक उसके इस कार्यमें केवल सहयोगी बनता है।'**

लुई कूनेने अनेक प्रयोग करके अपने सिद्धान्तों, खोजों तथा प्रयोगोंको अपनी दो पुस्तकोंमें निबद्ध किया है—पहली पुस्तक है—नवीन चिकित्सा-विज्ञान (The New Science of Healing) तथा दूसरी है—मुखाकृति विज्ञान (The Science of Facial Expression)।

[प्रेषक—श्रीअरुणजी गुप्त]

होमियोपैथीके उद्भावक महात्मा हैनिमैन और उनकी चिकित्सा-पद्धति

(डॉ० श्रीबृजलालजी मनोचा)

सेबके पेड़ोंसे सेब गिरते रहे और लोग देखते रहे। कई सहस्र वर्ष बीत गये तब एक अंग्रेज वैज्ञानिक सर आईसक न्यूटन (Sir Issac Newton—जीवन-काल सन् १६४२-१७२७ ई०)-ने जब सेब गिरते देखा तो उनके मनमें आया कि यह सेब ऊपरसे नीचे क्यों गिरा? किसी और दिशामें क्यों नहीं गया? तभी न्यूटनने पृथ्वीकी केन्द्रकी ओर खींचनेवाली शक्ति और गुरुत्वाकर्षणके नियमका सिद्धान्त ढूँढ़ निकाला।

ठीक इसी प्रकार सैमुअल हैनिमैन (Samuel Hahnemann—जीवन-काल सन् १७५५-१८४३ ई०)-ने होमियोपैथिक (Homoeopathic) पद्धतिद्वारा भिन्न-भिन्न रोगियोंके उपचारोंका मूल मन्त्र खोज निकाला। जर्मनी देशके शहर ड्रैसडेन (Dresden)-में जन्मे हैनिमैनने साधारण शिक्षा रसायन-शास्त्र (Chemistry) तथा औषधि-विज्ञान (Medicine)-का अध्ययन लीपजिंग (Leipzing), अर्लेन्जन (Erlangen) तथा वियना (Vienna) विश्वविद्यालयोंमें किया।

सन् १७७९ई० में वे एक योग्य, गुणसम्पन्न तथा मर्यादायुक्त डॉक्टर बन गये। एलोपैथी (Allopathy)-के उच्चकोटिके राजकीय अस्पतालमें डॉक्टर हैनिमैन जर्मन मातृभाषाके अतिरिक्त और भी कई भाषाओंके ज्ञाता थे। कई पुस्तकोंका एक भाषासे दूसरी भाषाओंमें अनुवाद करनेमें उनकी रुचि भी थी और प्रसिद्धि भी। साथ-साथ यह आयका एक साधन भी था।

एक बार उन्होंने औषधि-सम्बन्धी एक पुस्तक* का अनुवाद करते हुए पढ़ा कि—कुनैन मलेरियाकी उत्तम औषधि 'इस कारण है कि यह कड़वी है।' अनुवादित पुस्तकमें हैनिमैनने अपनी ओरसे नीचे एक टिप्पणी लिख दी कि—'मैं इस कारण'वाली बातसे सहमत नहीं हूँ; क्योंकि कुनैनसे अधिक कड़वे और भी द्रव्य तो हैं, परंतु वे मलेरियाको ठीक नहीं कर पाते।

उपर्युक्त टिप्पणी भाव-बुद्धि-विवेक-संगत होते हुए भी लेखक डॉ० विलियमको नहीं भायी। लेखकके विरोधका कारण यह था कि अनुवाद करनेवाला व्यक्ति केवल अनुवाद कर सकता है, समीक्षा आदि टिप्पणी करना उसके अधिकार-क्षेत्रमें नहीं है। बस, एक विवाद खड़ा हो गया।

हैनिमैन हर समय यही सोचते रहते कि कुनैन मलेरियाको क्यों ठीक कर देती है। इसी सोचमें उन्होंने स्वयं स्वस्थ-शरीर होते हुए भी प्रतिदिन कुनैन खानी शुरू कर दी। कुछ दिन खाते-खाते उनमें सचमुच मलेरिया-जैसे लक्षण प्रकट हो गये। उन्होंने कुनैन लेनी बंद कर दी तो उनका ज्वर तथा ज्वर-सम्बन्धित सभी लक्षण अपने-आप ही ठीक हो गये।

कुछ दिन बीत जानेपर उन्होंने पुन: स्वस्थ-अवस्थामें प्रतिदिन कुनैन खायी। उन्हें फिर मलेरियाके लक्षण प्रकट हुए और कुनैन छोड़नेपर स्वत: लुप्त हो गये।

हैनिमैनने यह बात अपने एक मित्र डॉक्टरसे कही। वह मित्र हैरान हो गया। उसने भी हैनिमैनकी तरह कुनैन खायी। उसे भी मलेरिया-जैसे लक्षणोंने आ दबोचा और कुनैन छोड़नेपर वह भी पूर्णतया ठीक हो गया। कई और स्वस्थ मित्रोंपर भी हैनिमैनने यही प्रयोग किया और वैसा ही परिणाम पाया। बस, उन्होंने भाँप लिया कि कुनैन मलेरियाको क्यों ठीक कर देती है—क्योंकि स्वस्थ व्यक्तिमें कुनैन मलेरियाके लक्षण पैदा कर देती (सकती) है।

यह घटना सन् १७९० ई० की है। इससे लगभग २३०० वर्ष पूर्व यूनान देशके महान् विचारक हिप्पोक्रेट्स

* A Treatise on Materia Medica by Dr. William Cullen (of Scotland).

(Hippocrates जीवन-काल ४६०-३७७ बी०सी० अर्थात् ईसाके जन्मसे पूर्व)-का कुछ-कुछ ऐसा विचार तो था, परंतु परीक्षार्थ सिद्धिका श्रेय तथा गौरव केवल हैनिमैनको ही मिला। इस सिद्धान्तका नामकरण हुआ Similia Similibus Curantur। इन लैटिन (Latin) शब्दोंका हिन्दी अनुवाद है 'सदृश-विधान' अर्थात् विषकी औषधि विष ही है। यह है हैनिमैनका पहला सिद्धान्त।

हैनिमैनके सामने दूसरा प्रश्न था—औषधिकी मात्रा तथा शक्ति। उन दिनों कुनैनकी गोलियाँ बनती तो थीं फ्रांस (France)-की कम्पनियोंमें और उनमें मूलतः जो द्रव्य-पदार्थ था, वह एक प्रकारके वृक्षकी छाल थी। ब्राजील (Brazil) तथा पीरू (Peru) देशोंमें उगनेवाले वे वृक्ष कहलाते थे 'कीना-कीना' (kina-kina)। फ्रांसके लोग इसकी छालको क्विन क्विना कहने लगे। लैटिन भाषामें 'सिनकोना' (Cinchona) और एलोपैथीमें 'चायना' (China) शब्द भी उसी छालसे बननेवाली औषधिके नाम हैं। हैनिमैनने थोड़ी-सी उसी वृक्षकी छाल ली और उसको उससे ९९ गुणा शुद्ध जलमें मिला दिया। दो सप्ताहतक पानी और छालके घोलको कभी-कभी अच्छी तरह हिलाते रहे। तत्पश्चात् छालको पानीमें मसलकर छान लिया। इतने पतले घोलको भी थोड़ा-थोड़ा बार-बार पीनेपर वैसे ही मलेरियाके लक्षण प्रकट हो जाते और घोलकी बूँदें पीना बंद करनेपर हट जाते। केवल इतना ही नहीं, इसी घोलकी कुछ बूँदें पीकर मलेरियाके रोगी भी स्वस्थ हो जाते। यह एक बड़ी उपलब्धि थी। कुनैनकी अनगिनत गोलियाँ खानेके बदले घोलकी थोड़ी बूँदें ही रोगीको नीरोग कर देतीं। घोलको पतला करनेकी पहली क्रियामें द्रव्यकी मात्रा थी, केवल एक और पानीकी मात्रा ९९ अर्थात् घोलके हर अंशमें द्रव्यकी मात्रा होगी केवल एक अंशका सौवाँ भाग ($\frac{१}{१००}$)।

हैनिमैनने औषधिकी मात्रा और भी कम करनेका निश्चय किया। उन्होंने ऊपर लिखे हुए घोलसे एक चम्मच घोल लेकर उसमें ९९ गुणा पानी मिलाया और फटकार-फटकार कर हिलाते तथा मिलाते रहे। इसके प्रत्येक अंशमें द्रव्य-पदार्थकी मात्रा थी पहले घोलका भी सौवाँ भाग (अर्थात् $\frac{१}{१००} \times \frac{१}{१००}$)। इस घोलके गुण भी वैसे ही थे—स्वस्थ व्यक्तिमें मलेरिया-जैसे लक्षण ले आना और रोगियोंको नीरोग करना। वस्तुतः रोगी इससे जल्द ठीक हो जाते और उनके कुनैन खा-खाकर जो दुष्परिणाम आ चुके होते वह भी ठीक हो जाते, केवल एक या दो बूँद पीनेसे*।

हैनिमैन इस प्रकारका क्रम (पतले-से-पतला और पतला और पतला) चलाते रहे। उन्होंने इन घोलोंका नामकरण भी कर दिया—सिनकोना १, सिनकोना २ इत्यादि। सिनकोना ६ का अर्थ था कि द्रव्य सिनकोनाको ६ बार पतला, पतला-से-पतला⋯ किया गया और हर बार पतला करनेकी प्रक्रियासे द्रव्यकी सामर्थ्यता बढ़ती गयी। पतला-करणके स्थानपर नया नाम शक्तिकृत् करना (Potencialization) यथार्थ, सारभूत, आवश्यक तथा उचित ही था। इसीसे हैनिमैनने एक और खोज भी कर ली। यह तो सर्वज्ञात है कि दो तलवारें एक म्यानमें नहीं समा सकतीं। इसी प्रकार प्रकृतिका भी एक नियम है कि किसी शरीरमें दो समान व्याधियाँ नहीं रह सकतीं। जो प्रबल होगी वह दूसरी व्याधिको निकाल देगी। रोगीके अंदर तो एक प्रकारकी व्याधि विराजमान है। उसके शरीरमें समान लक्षणोंवाली परंतु अधिक शक्तिशाली औषधिके प्रवेशसे पहलेवाली व्याधि निकल जायगी; क्योंकि प्रवेशक द्रव्यका कार्यकाल सीमित तथा छोटा होता है, इसी कारणसे वह रोगी नीरोग हो जाता है। पुराने तथा कठिन रोगमें उच्चशक्ति ही काम कर सकती है। सदृश-विधानानुसार निर्वाचित द्रव्यकी उचित शक्तिकी न्यूनतम मात्रा रोगीको ठीक कर देती है। यह है हैनिमैनका दूसरा सिद्धान्त।

हैनिमैन ठहरे एलोपैथीके बहुद्रष्टा तथा अनुभवी डॉक्टर। उन्हें पता था कि मलेरिया-ज्वरमें कुनैन खाते

* पानी, एल्कोहल (alcohol) अथवा दूधकी चीनी (Milk sugar)-से भी द्रव्यको पतला कर सकते हैं।

रहनेपर भी कई रोगी रोगमुक्त नहीं होते। ऐसा क्यों? इसका उत्तर भी हैनिमैनने खोज निकाला। जब सिनकोना (अर्थात् कुनैन या कीना-कीना वृक्षकी छाल) हजारों स्वस्थ व्यक्तियोंको खिलायी गयी तो उनमेंसे किसीको भी मलेरियाके लक्षण (शीत, उत्ताप अथवा ज्वर और पसीना) रातके समय नहीं आये, केवल दिनको ही आये। प्यास केवल शीत तथा पसीनेकी अवस्थामें ही लगी, इसलिये कुनैन उन रोगियोंको ठीक नहीं कर सकती जिनको ज्वर रातमें आता है अथवा ज्वर-अवस्थामें प्यास लगती है। उन्हें लगातार कुनैन खिलानेसे यकृत् तथा प्लीहा अर्थात् तिल्ली (Spleen)-के रोग हो जाते हैं। रोगग्रस्त यकृत् तथा प्लीहा अपने-आप भी कई रोग उत्पन्न करते हैं। बस, आये दिन नया-से-नया रोग। इसी कारण हैनिमैनने कहा कि रोगका नाम (जैसे मलेरिया)-मात्रसे दवा (कुनैन)-का निश्चय कर लेना गलत है। अत: दवाका ठीक चयन तो रोगीके लक्षण ही करा सकते हैं। उन्होंने लिखा है कि 'अफीमके अतिरिक्त मुझे किसी और औषधिका पता नहीं कि जिसके अधिकाधिक और बारम्बार कुप्रयोगसे मानव-जातिके रोगियोंका इतना अपकार हुआ हो जितना कि कुनैनने किया है'।

लक्षणोंकी चर्चामें यह भी देखा गया है कि कभी-कभी मानसिक तथा शारीरिक प्रकृति बचपनसे ही विलक्षण, विचित्र अथवा सनकी होती है। 'नीचेकी ओर होनेसे डर लगना' ऐसा ही एक लक्षण है। सीढ़ियोंसे उतरते समय, कार अथवा रेलकी उतराईके समय, लिफ्ट अथवा हवाई जहाजके उतरते समय या झूलेमें बैठे उतराईके समय बच्चा डर जाता है, चीख लगाता है। बच्चा बड़ा हुआ परंतु यह लक्षण नहीं हटा। उस व्यक्तिका यह डरका लक्षण प्रबल लक्षणोंमें गिना जाता है, भले ही वह व्यक्ति इसे केवल स्वाभाविक अथवा साधारण ही माने। हैनिमैनका अनुसरण करनेवाले अमरीकाके उच्चकोटिके डॉक्टर जेम्स टाईलर कैंट (James Tyler Kent जीवन-काल—१८४९-१९१६ ई०)-ने अपनी एक पुस्तकमें लिखा है कि यदि यह डरका लक्षण स्पष्टतया विद्यमान है तो रोगका नाम कुछ भी हो जैसे अतिसार (Diarrhoea), जोड़ोंका दर्द (Rheumatic Pains), ऋतु-सम्बन्धी रोग (Menstrual troubles), बाँझपन (Sterility) इत्यादि, उसे बोरैक्स (Borax)-से बनी (शक्तिकृत्) औषधि ही ठीक करेगी। 'औषधिका निर्णय—लक्षणानुसार रोगके नामसे नहीं।' यह है हैनिमैनका तीसरा सिद्धान्त।

हैनिमैनकी कठिनाइयाँ

१-भला ऐसा भी कोई व्यक्ति हो सकता है जिसे पग-पगपर कई कठिनाइयाँ न आयी हों? हैनिमैन ठहरे दयालु, उपकारी तथा हितैषी। साथ ही एलोपैथिक और होमियोपैथिक पद्धतियाँ आपसमें मूलत: भिन्न-भिन्न हैं। एलोपैथीमें दवाका चयन रोगके लक्षणोंके विपरीत-भावके आधारपर होता है। उनकी अन्तरात्माने पद त्याग करनेको कहा और उन्होंने वैसा कर दिया।

२-कुनैन (सिनकोना)-के अतिरिक्त और द्रव्योंका परीक्षण एक लम्बा तथा कठिन कार्य था। पहली बार नये द्रव्यका परीक्षण वह अपने-आपपर ही करते थे। परंतु परीक्षण तो सैकड़ों लोगोंपर करना पड़ता है। उनमें हर आयुके नर-नारी, बच्चे-बूढ़े, काले-गोरे, भिन्न-भिन्न जलवायुमें रहनेवाले, शहरों तथा गाँवोंके लोग होने चाहिये। पूरी तरह स्वस्थ, विशेष बुद्धिवाले हर प्रकारसे विश्वसनीय और जो अपनी स्वस्थ कायाको लगभग दो मासके लिये अनजाने रोगोंके लक्षणोंसे जूझनेके लिये तैयार हों। साथ ही अपने आहार-विहारपर सामान्य अङ्कुश लगाये रखें। कितना कठिन था यह काम? हैनिमैन इन लोगोंको परीक्षार्थी (Provers) कहा करते थे।

३-प्रत्येक परीक्षार्थीके लक्षण प्राप्त हो जानेके पश्चात् उन्हें क्रमसे छाँटना, बाँटना तथा उनका ठीक मूल्याङ्कन करना अति कठिन काम था। मन, बुद्धि तथा संयमसे वह दिन-रात काम करते रहते थे। वे अपने जीवन-कालमें केवल १०० द्रव्य ही परीक्षण कर सके।

४-इनसे भी दुष्कर तथा कठिन काम था द्रव्योंका

शक्तिकरण। बारहवीं बार शक्तिकरणके पश्चात् औषधिमें द्रव्यकी जाँच नहीं हो पाती, भले ही जाँचकी मशीनें और यन्त्र अति शक्तिशाली क्यों न हों। जर्मन देशका कानून भी ऐसा था कि प्रत्येक औषधिकी सत्यता प्रयोगशालामें ही सिद्ध करनी और करवानी पड़ती थी। परंतु यह हो नहीं पाता था। इसी झमेलेमें उन्हें कई बार दोषी भी घोषित किया गया। नगर, प्रदेश तथा देश भी छोड़ना पड़ता था।

५-अनुसंधानके लिये, बाल-बच्चोंके पालन-पोषणके लिये धनकी आवश्यकता होती है। प्रभु-कृपासे परिवार बहुत बड़ा था। धनका अभाव तो था, परंतु वे इस बातसे कभी विचलित नहीं हुए। यह महात्मा लोगोंकी परीक्षाका समय होता है। कठिनाई होते हुए भी खोज, अन्वेषण तथा अनुसंधानका काम चलता रहा।

हैनिमैनके आहार-व्यवहार-सम्बन्धी विचार

हैनिमैन अपने रोगियोंसे खाने-पीनेके बारेमें और रहन-सहनके बारेमें बहुत पूछताछ करते थे। उनका विश्वास था कि कुछ रोग खाने-पीनेमें परिवर्तनसे ही ठीक हो सकते हैं अथवा कुछ-कुछ घट सकते हैं। तंबाकू, शराब, चाय तथा कॉफीपर पूरी तरह रोक लगाते थे। कॉफीके बारेमें तो उन्होंने इतनातक लिख दिया कि 'कॉफी एक ऐसी वस्तु है जो पारा (Mercury) और तीव्र निराशाको छोड़कर, दाँतोंको नष्ट करनेमें सबसे अधिक काम करती है'। खाना खाओ, परंतु पूरा पेटभर नहीं। 'मीठा या नमकीन? क्या पसंद है आपको?' यह आवश्यक प्रश्न वे सब रोगियोंसे पूछते थे; क्योंकि इससे औषधि-चयनमें लाभ होता है। ऊपर चर्चित डॉक्टर जे० टी० कैन्ट (James Tyler Kent)-ने इसी लक्षणसे एक उलझा हुआ केस सुलझा लिया था। उनके एक मित्रका बच्चा अतिसार (Diarrhoea)-से पीड़ित था। कैन्टने एकके बाद एक औषधि दे डाली, परंतु आराम न हुआ। थककर उन्होंने बच्चेकी माँसे पूछ लिया कि वह मीठा कितना खाती हैं? 'कोई अधिक नहीं' माँने उत्तर दिया। 'मैं जो एक पौंड (=४५० ग्राम) मिश्री (Candies) रोज लाता हूँ उनको कौन खाता है'? बच्चेके पिताने पूछ डाला। 'इतना खाना तो मैं यथाक्रम मानती हूँ' माँने कहा। इसी बातके आधारपर माँको दवा खिलायी गयी और बच्चा ठीक हो गया। माँ बच्चेको अपना दूध पिलाती थी।

एक्सीडैन्ट (Accident) सीढ़ियोंसे, गाड़ीसे, झूलेसे गिरनेकी बात—कई वर्ष पहलेकी भूली हुई कहानी, अधिक सर्दी या गरमी लगनेकी बात, 'प्यास कितनी लगती है?' जिनको रोगी अनावश्यक समझते थे, हैनिमैन पूछते-पूछते थकते न थे।

माता-पिता और बुजुर्गोंके रोगोंकी जानकारी (विशेषकर कठिन, जटिल रोगियोंमें)-से वे सदैव लाभान्वित होते थे।

'शारीरिक व्यायाम' को वे अत्यधिक जरूरी मानते थे, परंतु व्यायामके समय मानसिक चिन्ताओंको दूर रखकर। एक लुहार रोगीको उन्होंने सैर करनेको कहा। 'परंतु मैं तो सुबहसे शामतक लोहा कूटता रहता हूँ' लुहारने कहा। 'उस समय आपका ध्यान हथौड़ेको ठीक बिन्दुपर मारनेपर लगा होता है। व्यायाममें मानसिक तनाव-कसाव कदापि नहीं होने चाहिये' हैनिमैनने कहा।

हैनिमैनके धार्मिक विचार

कई शताब्दियोंसे एलोपैथीके डॉक्टर Vital Force अर्थात् 'जीवन-शक्ति'-जैसे शब्दोंका प्रयोग करते आये हैं। उनके लिये यह एक शारीरिक भौतिक शक्ति थी और आज भी उनकी यही मान्यता है। इस विचारके अनुसार वह शक्ति किसी भी रोगके आक्रमण अथवा फैलावटमें बाधा डालनेका काम करती है। इसी कारण वह इसे Resistance Power अर्थात् 'बाधक शक्ति' ही मानते हैं। परंतु डॉक्टर हैनिमैनने इसे एक आध्यात्मिक शक्ति मानकर एक नया आयाम दिया। यह शक्ति जीवनके उच्च लक्ष्यकी प्राप्तिमें भी सहायक होती है। उनके द्वारा 'स्वस्थ व्यक्ति' तथा 'रोगी' की निम्न परिभाषासे यह बात स्वत: स्पष्ट हो जाती है—

'स्वस्थ व्यक्तिमें जीवन-शक्ति शरीरको सचेत बनाकर प्रत्येक शारीरिक अङ्गपर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। यही जीवन-शक्ति शारीरिक रचनासे जुड़े प्रत्यक्ष अनुभवों, चेतनाओं तथा कार्योंमें पूर्ण एकता और अनुरूपता बनाये रखती है। यही जीवन-शक्ति हमारे अंदर रहनेवाली अन्तरात्मा तथा इसकी विवेक-बुद्धिको जोड़कर जीवनके उच्च लक्ष्यकी प्राप्तिमें सहायक होती है।'

'रोगीमें वह निराकार, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक (Spiritual) जीवन-शक्ति जो अपने-आपमें तो क्रियाशील है और शरीरके हर अङ्गमें स्थित है, सबसे पहले यह महसूस करती है कि कोई कारण जीवन-विरोधी प्रभाव डाल रहा है। ऐसा बोध होता है कि वही कारण शरीरसे जुड़े प्रत्यक्ष अनुभव तथा चेतनाओंको अरुचिकर तथा अप्रिय बनाकर विलक्षण कार्योंकी ओर (अर्थात् रोगकी ओर) धकेल रहा है।'*

हैनिमैनके कुछ सुखद पल

(१) १७९०—हैनिमैनने अपना पहला गुरुमन्त्र घोषित किया। वह था सदृश-विधान 'similia similibus curantur'.

(२) १७९६—हैनिमैनकी पहली पुस्तक 'A new principle for ascertaining the curative powers of durgs and some examination of previous principles' प्रकाशित हुई।

(३) १८१०—हैनिमैनने अपनी पुस्तक The Organon of Rationale Medicine को प्रकाशित किया। इसे 'होमियोपैथीकी गीता' कहा जाता है। इसके पाँच संस्करण तो उनके जीवन-कालमें ही छपकर बिक गये। छठा संस्करण जुलाई १८४३ तक तैयार हो गया था। परंतु उसका प्रकाशन उनके स्वर्गवास होनेके पश्चात् ही हो सका। इसमें द्रव्योंके शक्तिकरणमें महत्त्वपूर्ण संशोधन कर दिया गया। पहले तो द्रव्य अथवा इसके शक्तिकृत् दवाके एक भागमें ९९ भाग पानी अथवा अल्कोहल या दूधकी चीनी (Milk Sugar) मिलानेका प्रावधान था, नये संस्करणमें ९९ गुणाके स्थानपर हर बार ४९,९९९ गुणा पानी मिलानेकी सलाह दी गयी है अर्थात् पचास हजारी घोलमें केवल एक भाग दवा, फिर इसे भी पुनः-पुनः पतलेसे भी पतला (शक्तिकृत्) करना और फिर मात्रा भी केवल एक बिन्दु!

(४) १८१२—हैनिमैनको लीपजिंग विश्वविद्यालयमें होमियोपैथी पढ़ानेका अवसर मिला। किसी समय वह इसी विद्यालयके विद्यार्थी थे।

(५) १८२८—हैनिमैनकी पुस्तक Chronic Diseases, Their Nature and Cure प्रकाशित हुई।

(६) १८३१—मध्य यूरोपमें जब हैजे (Cholera)-की महामारी फैली तो हैनिमैनने अपने सदृश-विधानके अनुसार औषधिसे सैकड़ों रोगियोंकी जान बचायी। इससे उनकी लोकप्रियताको चार चाँद लग गये। एलोपैथिक डॉक्टर केवल देखते रह गये।

इतिहास लिखनेवालोंने तो लिख दिया कि हैनिमैनने १०-४-१७५५ को जन्म लिया और २-७-१८४३ को अपना स्थूल शरीर त्याग दिया। परंतु ऐसे महात्मा पुरुष सदा-सदाके लिये जीते हैं। संसारभरमें उनकी कीर्ति रहती है, यश होता है। उनके बताये हुए मन्त्रोंसे मृत्युशय्यासे भी जीवित होकर उठनेवाले रोगी कहते रहे हैं (कहते रहेंगे)—'हैनिमैन अमर रहे' **'कीर्तिर्यस्य स जीवति'**।

---

* Exposition of the Homeopathic Doctrine, or Organon of the Healing Art, Paris Edition 1845, Page 108.

वैद्य लोलिम्बराज

नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता
नारायणं भजत रे पवनेन युक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता
नारायणात् परतरं न हि किञ्चिदस्ति॥*

(वैद्यजीवन ५।२०)

यह ललित-श्लिष्ट पदावली और किसीकी नहीं कविराज लोलिम्बराजकी है। अपनी काव्यचातुरी तथा औषध-ज्ञानके विषयमें लोलिम्बराज अति प्रसिद्ध हैं। ये दक्षिणमें पुणे स्थित जुन्नर ग्रामके रहनेवाले थे। इन्होंने महाराष्ट्रमें प्रतिष्ठित सप्तशृंगी देवीकी आराधनासे अपूर्व कवित्व शक्ति तथा औषध-ज्ञानका तत्त्व प्राप्त किया था। व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, मन्त्रशास्त्र, गन्धर्वशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्र आदिपर इनका समान अधिकार था। इनके पिताका नाम दिवाकर था, जिन्हें महाराज हरिहरका राज्याश्रय प्राप्त था। लोलिम्बराजका समय १७वीं शतीका पूर्वार्ध है।

इनका विवाह रत्नकला (मुरासा) नामकी कन्यासे हुआ था। रत्नकला अत्यन्त विदुषी, अति रूपवती तथा शील-विनयसे सम्पन्न थी। लोलिम्बराज कवित्व-शक्ति-सम्पन्न थे ही, विलक्षण संयोग प्राप्त हो गया। फलतः इनकी काव्यमाधुरी प्रस्फुटित हो पड़ी और 'वैद्यजीवन'-जैसा अद्भुत आयुर्वेदीय ग्रन्थ हमें प्राप्त हुआ। वैद्य-जीवनके अतिरिक्त चमत्कार-चिन्तामणि, हरिविलास आदि काव्य ग्रन्थोंका इन्होंने प्रणयन किया। इनमेंसे वैद्यजीवन तथा चमत्कार-चिन्तामणि—ये दो वैद्यकशास्त्रके ग्रन्थ हैं।

वैद्यजीवनमें साहित्य और आयुर्वेदका चमत्कारी संगम है। चिकित्साविषयक ग्रन्थ होते हुए भी यह साहित्यिक गुणोंसे अभिमण्डित है। अपनी प्रिया रत्नकलाके सौन्दर्यके गुणगानके माध्यमसे इन्होंने आयुर्वेदीय चिकित्साका विलक्षण वर्णन किया है।

वैद्यजीवन पाँच विलासोंमें विभक्त है। इसमें ज्वर, ज्वरातिसार, ग्रहणी, कास-श्वास, आमवात, कामला, स्तन्यदुष्टि, प्रदर, क्षय, व्रण, अम्लपित्त, प्रमेह आदि रोगों तथा वाजीकरण और विविध रसायनोंका वर्णन है।

मुख्य रूपसे इसमें अष्टाङ्गसंग्रह, चक्रदत्त, योगरत्नाकर, शार्ङ्गधरसंहिता तथा भावप्रकाश आदि ग्रन्थोंके आशुकारी उत्तम चिकित्सा-योगोंका संग्रह हुआ है। ये योग बड़े ही महत्त्वके हैं। इसी कारण वैद्यजीवनका बहुत प्रचार है। इसपर अनेक टीकाएँ भी हैं। लघुकाय होनेपर भी यह ग्रन्थ वैद्योंके लिये बड़े कामका है।

वैद्य लोलिम्बराज रोगीके लिये पथ्य-सेवन अति हितकर बताते हुए कहते हैं कि रोगी यदि पथ्य-सेवनसे रहे तो उसे औषध-सेवनसे क्या प्रयोजन? और यदि वह पथ्य-सेवनसे न रहे, कुपथ्यका सेवन करे तो फिर औषध-सेवन उसके लिये निष्फल है—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

(वैद्यजीवन १।१०)

* उदर-रोगसे पीडित मनुष्यो! तुम नारायण (चूर्ण)-का सेवन् करो। वात-रोगसे पीडित मनुष्यो! तुम नारायण (तेल)-का सेवन (अभ्यङ्ग) करो। संसारके भयरूपी रोगसे व्याकुल पुरुषो! तुम भगवान् नारायणका भजन करो, क्योंकि नारायणसे अधिक श्रेष्ठ दूसरी कोई ओषधि नहीं है।

चिकित्सा-जगत्के दो प्रेरक जीवन

चिकित्साके क्षेत्रमें मानवकी पीडा हरनेके लिये शोध करनेवाले, अपने प्राणोंकी बाजी लगा देनेवाले अनेक महापुरुष हुए हैं। इनकी जीवन-कथाएँ सभीके लिये प्रेरणाप्रद हैं। हम यहाँ कुछ महापुरुषोंका स्मरण करेंगे—एक भारतीय और दूसरे कुछ अमरीकी। एक तपस्वी था तो दूसरे आत्मबलिदानी।

(१) मौन तपस्वी

मद्रास नगरमें एक गरीब क्लर्कका बड़ा बेटा मरणासन्न पड़ा है। चिकित्सक कहते हैं उसे स्प्रू (संग्रहणी) हो गया है और इसकी कोई औषधि नहीं है। छोटा भाई, बाईस वर्षीय युवक, अपने भाईको तिल-तिल करके मरते देख रहा है। लगातार दस्त हो रहे हैं, शरीर रक्तहीन हो गया है, जिह्वा सूख गयी है और जीवन-ज्योति बुझती जा रही है। कितने असहाय हैं चिकित्सक। उसने अपने प्यारे भाईके क्षीण होते शरीरको छूकर शपथ ली कि मैं ढूढ़ूँगा इसका इलाज। मेरा भाई मर गया, पर अब और लोगोंको इस हत्यारी 'स्प्रू' का भोग नहीं बनने दूँगा।

डॉ० यल्लप्रगडा सुब्बाराव (१८९६-१९४८)

धुन लगती है तो और कुछ नहीं सूझता। सन् १८९६ ई० में जन्मा यल्लप्रगडा सुब्बाराव, सन् १९१८ ई० में उस दिन मद्रास मेडिकल कॉलेजके रजिस्ट्रारके समक्ष उपस्थित हुआ और उसने कहा—मुझे भरती कर लीजिये। उसकी वाणीमें अपूर्व तेज था और चकित रजिस्ट्रारने उसे भरती कर लिया। सौभाग्यसे आर्थिक सहायता मिलती रही और वह बड़े ध्यानसे अध्ययन करके पाँच वर्षमें डॉक्टर बन गया। उसके अध्ययनका केन्द्र था—दुश्मन 'स्प्रू' का भेद जानना। डॉक्टर बनते ही वह लन्दन पहुँचा। यहाँ उसे उष्णकटिबंधके रोगोंके विशेषज्ञ डॉ० रिचार्ड स्ट्रांग मिले। अपनी मुलाकातके दौरान सुब्बारावने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी और डॉ० स्ट्रांग उससे घबरा गये। उन्होंने कहा, तुम अमेरिका आओ। डॉ० स्ट्रांगके शब्दोंमें 'उसका उत्साह पागलपनकी सीमातक पहुँच गया था।'

जेबमें छोटी-सी रकम (पचीस डालर) लिये वह अमेरिका पहुँचा। छोटी-मोटी नौकरियाँ करते हुए उसने हार्वर्डकी शोध-छात्रवृत्ति प्राप्त कर ली, रॉक-फेलरसे आर्थिक सहायता मिली। शोध चलता रहा। सफलताएँ भी मिलती रहीं। तब सहसा उसे 'परनीशियस रक्ताल्पता' पर प्रभाव करनेवाला रसायन मिला। सन् १९३० ई० से १९३८ ई० के बीच उसने हजारों रसायनोंपर प्रयोग कर डाले। अनेक आश्चर्यजनक सफलताएँ मिलती गयीं। पेलग्रा रोगकी औषधि विटामिन 'बी' का अंश निकोटिनिक एसिड मिला। पर लक्ष्य दूर था। हार्वर्डका अध्यापक-पद त्यागकर वह न्यूयार्कमें साइनामाइड-कम्पनीमें आ गया (लेडरली लेबोरेटरीज)। अब वह अनुसन्धान-निदेशक बन गया था। उसकी टोलीने क्रान्तिकारी खोजें कीं और संसारको आरियोमायसिन, टेराप्टरीन, हेट्राजान (फाइलेरियाकी दवा) प्रदान की। साथ ही पोषक तत्त्वों और यकृत्के कैंसरपर अनूठी दृष्टि भी प्रदान की।

विटामिनोंकी शोधमें 'फोलिक एसिड' मिला तो प्रयोग करनेपर उसे ज्ञात हुआ कि यही स्प्रूकी अमोघ औषधि है। सत्रह वर्षकी कठोर तपस्याने सफलता

प्रदान की। विश्वने उसे पोषण-विशेषज्ञके रूपमें स्वीकारा। उसका लक्ष्य पूरा हो चुका था, पर वह आराम नहीं करना चाहता था। प्रतिदिन अठारह घंटे काम करते हुए उसने कितने ही अनुसन्धान कर डाले। सच पूछिये तो उसे अनेक नोबेल पुरस्कार मिलने चाहिये थे, पर वह भारतीय था। गुमनाम रहकर ईश्वरका काम करता, प्रेयसे अधिक श्रेयकी कामना करता था। धन मिलता था, पर केवल जीवन-यापनार्थ आवश्यक पैसा रखकर बाकी वह दीन-दु:खी लोगोंको वितरित कर देता था। बच्चोंसे उसे अधिक प्रेम था और उनपर वह मुक्तहस्त धन लुटाता था। उसके पास दो काम थे—अध्ययन और अन्वेषण। सफलता मिलती तो श्रेय टोलीको देता था। यह कठोर श्रम स्वास्थ्यपर भारी पड़ा और भारतका यह दुलारा सन् १९४८ ई० में चिर-निद्रामें सो गया। मुम्बईके पास बुलसारमें लेडरली कम्पनीने उनकी स्मृतिमें एक प्रयोगशाला बनायी है, जिसमें उनके प्रस्तरचित्रके नीचे लिखा है—'विज्ञान जीवनकी अवधि बढ़ाता है, धर्म उसकी गहराई'। कर्मचारी उसे प्यारसे 'सुब' कहते थे, उसकी प्रशंसा होती तो कहता 'अनुसन्धानका श्रेय टोलीको होता है, एक व्यक्तिको नहीं'। वह गुमनाम रहना चाहता था (भारतीय प्रतिभाकी यही रीति है), पर आज वह बीसवीं सदीके महान् वैज्ञानिकके रूपमें अमर हो चुका है। (हाँ, यह सच है कि भारतमें हम उसे नहीं जानते।) उसका जीवन हमें भगवान्से यही माँगनेको प्रेरित करता है कि मानव-कल्याणके लिये अनेक सुब्बाराव उत्पन्न होते रहें।

(२) मानवताकी बलिवेदीपर

सौभाग्यसे हमारे देशमें 'पीतज्वर' नहीं होता, पर अमेरिकाके वेस्ट इंडीज समूहमें यह रोग होता है। सन् १९०० ई०में हवाना नगरमें भारी उपद्रव हुआ, जिसे दबानेके लिये अमेरिकी सेनाको वहाँ आना पड़ा। सैनिकोंकी गोलियोंसे जितने उपद्रवी मरे, उससे कहीं अधिक सैनिक 'पीतज्वर' से मर गये। कमाण्डर वुडके अनुरोधपर वाशिंगटनने मेजर रीडके नेतृत्वमें 'पीतज्वर-कमीशन' नियुक्त किया।

कमीशनने लोगोंकी बात सुनी। कोई कहता था कि यह गंदगीसे पैदा होता है तथा कोई बताता कि यह रेशम और साटन पहननेसे होता है। केवल एक छोटे-से कस्बेका डॉक्टर कारलास फिनले रट लगाये था कि यह मच्छरके काटनेसे होता है।

सेनाने कूड़ा-करकट साफकर स्वच्छ नगर बसाया, पर 'पीतज्वर' डटा रहा। सन् १८५१ ई० में उत्पन्न हुए मेजर रीडके दलमें तीन विशेषज्ञ थे—डॉ० जेम्स कैरोल, डॉ० जेस्सी लाजियर और डॉ० अग्रामाते। एक महीनेतक गहन खोज करनेपर भी कमीशनको रोगके जीवाणु नहीं मिले—यद्यपि उन्होंने रोगियों, मृतकों और उनके सामानोंमें गहराईसे खोज की थी। फिर उन्हें डॉ० फिनलेकी शंकाका पता चला।

वे फिनलेसे मिले और उन्हें समझमें आया कि शायद फिनलेके कथनमें सत्यता है। कहना आसान है, करना कठिन। मच्छर रोग फैलाते हैं, यह प्रमाणित कैसे हो? मच्छरसे कटवायें और 'पीतज्वर' हो जाय तो प्राण देने ही होंगे। इसके लिये कौन तैयार होगा?

लाजियर और कैरोल दोनों ही बलिपशु बननेको तैयार हो गये। पीतज्वर-पीडित रोगियोंको मच्छरसे कटवाया गया। वे रक्तपान कर चुके तो दो सप्ताह उन्हें पाला गया। इन मच्छरोंने लाजियर और कुछ स्वयं-सेवकोंको काटा, पर कुछ नहीं हुआ। लाजियरने अब एक जहरीले मच्छरको निकाला और इसने कैरोलको काटा। दो दिन बाद ही वह ज्वरग्रस्त हो गया, पर सौभाग्यसे बच गया। अब एक सिपाही विलियम डीनने अपनेको प्रस्तुत किया, उसे पीतज्वर हुआ, पर वह भी बच गया।

लाजियरको संतोष नहीं हुआ। एक दिन वह मच्छरोंको रोगियोंका रक्त पिला रहा था कि एक मच्छरने उसे काट लिया। लाजियर चौंतीस वर्षका युवक था, अमेरिकामें उसकी पत्नी और दो बच्चे थे, पर यहाँ तो हजारों लोगोंके प्राणोंकी बाजी लगी थी। दो दिन बाद लाजियरको पीतज्वर हुआ और वह शहीद हो गया।

अब दो स्वयं-सेवक आगे आये। सैनिक किसंगर और नागरिक मोरन। दोनोंकी एक ही शर्त थी—मरें या जीयें, कोई पुरस्कार नहीं लेंगे। किसंगरको पीतज्वर

हुआ और प्रभुकृपासे वह बच गया।

रीडने सिद्ध किया कि रोगीके वमन, वस्त्र, गंदगी, सीलन आदिसे यह रोग नहीं फैलता। प्रयोगके लिये एक गंदा घर बनाया गया। वहाँ वमन और वस्त्र भी थे, सीलन भी। बलिदानी जत्थेमें डॉ० कुक, सैनिक फोक और जरनेगन थे। वे मृत रोगियोंके कपड़े पहनकर उस घरमें रहे। वहाँ मच्छर नहीं थे। इन लोगोंको पीतज्वर नहीं हुआ। अब एक अति स्वच्छ घरमें मोरन और मच्छर रखे गये। नंगे बदन सो रहे मोरनको पंद्रह मच्छरोंने काटा। मोरनको पीतज्वर हुआ, पर उसे बचा लिया गया।

मच्छरमार-अभियान आरम्भ हुआ और हवाना नगर रोगमुक्त हो गया। पर कैरोलको चैन नहीं था। उसे जानना था कि पीतज्वरका कारण क्या है; क्योंकि मच्छर तो शायद संवाहक हैं। कहीं यह अदृश्य विषाणुओंका करिश्मा तो नहीं है? (उन दिनों विषाणु वाइरस-सम्बन्धी जानकारी अत्यल्प थी।) उसने पीतज्वरसे पीड़ित रोगियोंका रक्त लेकर छाना (जिससे विषाणु छन्नेमें ही रह जायँ)। छने हुए रक्तसे स्वयं-सेवकोंको पीतज्वर हो गया और प्रमाणित हो गया कि यह विषाणुजन्य रोग है। सफलताके एक वर्ष बाद रीडकी मृत्यु हो गयी और कैरोल भी अधिक वर्ष न जी सका। सैनिक किसंगर कुछ भी लेनेको तैयार नहीं था, पीतज्वरने उसे अपंग बना दिया था। बहुत आग्रह करनेपर उसने सोनेकी एक घड़ी और डेढ़ सौ डालरका पुरस्कार स्वीकार किया। उसकी पत्नी कपड़े धोकर अपने वीर पतिका पेट पालती रही। धन्य हैं ये बलिदानी।

(डॉ० श्री भा० म० वछराजानी)

मन्त्ररूप औषध

[धन्वन्तरिजी श्रीसुश्रुतसे कहते हैं—] 'ओंकार' आदि मन्त्र आयु देनेवाले तथा सब रोगोंको दूर करके आरोग्य प्रदान करनेवाले हैं। इतना ही नहीं, देह छूटनेके पश्चात् वे स्वर्गकी भी प्राप्ति करानेवाले हैं। 'ओंकार' सबसे उत्कृष्ट मन्त्र है। उसका जप करके मनुष्य अमर हो जाता है—आत्माके अमरत्वका बोध प्राप्त करता है अथवा देवतारूप हो जाता है। गायत्री भी उत्कृष्ट मन्त्र है। उसका जप करके मनुष्य भोग और मोक्षका भागी होता है। '**ॐ नमो नारायणाय**'—यह अष्टाक्षर-मन्त्र समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—यह द्वादशाक्षर-मन्त्र सब कुछ देनेवाला है। '**ॐ हूं विष्णवे नमः**'—यह मन्त्र उत्तम औषध है। इस मन्त्रका जप करनेसे देवता और असुर श्रीसम्पन्न तथा नीरोग हो गये। जगत्के समस्त प्राणियोंका उपकार तथा धर्माचरण—यह महान् औषध है। '**धर्मः, सद्धर्मकृत्, धर्मी**'—इन धर्म-सम्बन्धी नामोंके जपसे मनुष्य निर्मल (शुद्ध) हो जाता है। '**श्रीदः, श्रीशः, श्रीनिवासः, श्रीधरः, श्रीनिकेतनः, श्रियःपतिः** तथा **श्रीपरमः**'—इन श्रीपति-सम्बन्धी नामात्मक मन्त्रपदोंके जपसे मनुष्य लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति)-को पा लेता है। '**कामी, कामप्रदः, कामः, कामपालः, हरिः, आनन्दः, माधवः**'—श्रीहरिके इन नाम-मन्त्रोंके जप और कीर्तनसे समस्त कामनाओंकी पूर्ति हो जाती है। '**रामः, परशुरामः, नृसिंहः, विष्णुः, त्रिविक्रमः**'—ये श्रीहरिके नाम युद्धमें विजयकी इच्छा रखनेवाले योद्धाओंको जपने चाहिये। नित्य विद्याभ्यास करनेवाले छात्रोंको सदा '**श्रीपुरुषोत्तमः**' नामका जप करना चाहिये। '**दामोदरः**' नाम बन्धन दूर करनेवाला है। '**पुष्कराक्षः**'—यह नाम-मन्त्र नेत्र-रोगोंका निवारण करनेवाला है। '**हृषीकेशः**'—इस नामका स्मरण भयहारी है। औषध देते और लेते समय इन सब नामोंका जप करना चाहिये।

औषधकर्ममें '**अच्युत**'—इस अमृत-मन्त्रका भी जप करे। संग्राममें '**अपराजित**' का तथा जलसे पार होते समय '**श्रीनृसिंह**' का स्मरण करे। जो पूर्वादि दिशाओंकी यात्रामें क्षेत्रकी कामना रखनेवाला हो, वह क्रमशः '**चक्री**', '**गदी**', '**शार्ङ्गी**' और '**खड्गी**' का चिन्तन करे। व्यवहारों (मुकदमों)-में भक्ति-भावसे '**सर्वेश्वर अजित**' का स्मरण करे। '**नारायण**' का स्मरण हर समय करना चाहिये। भगवान् '**नृसिंह**' को याद किया जाय तो वे सम्पूर्ण भीतियोंको भगानेवाले हैं। '**गरुडध्वज**'—यह नाम विषका हरण करनेवाला है। '**वासुदेव**' नामका तो सदा ही जप करना चाहिये। धान्य आदिको घरमें रखते समय तथा शयन करते समय भी '**अनन्त**' और '**अच्युत**' का उच्चारण करे। दुःस्वप्न दीखनेपर '**नारायण**' का तथा दाह आदिके अवसरपर '**जलशायी**' का स्मरण करे। विद्यार्थी '**हयग्रीव**' का चिन्तन करे। पुत्रकी प्राप्तिके लिये '**जगत्सूति**' (जगत्-स्रष्टा)-का तथा शौर्यकी कामना हो तो '**श्रीबलभद्र**' का स्मरण करे। इनमेंसे प्रत्येक नाम अभीष्ट मनोरथको सिद्ध करनेवाला है। (अग्निपुराण अ० २८४)

विविध रोगोंकी चिकित्सा

*[वर्तमान समयमें रोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, पर कुछ ऐसे रोग हैं जिनके शिकार अधिकतर लोग हो जा रहे हैं, यदि प्रारम्भसे ही कुछ सावधानी बरती जाय और तत्काल उनकी चिकित्सा कर ली जाय तो वे रोग पनपते नहीं और ठीक भी हो जाते हैं। इस दृष्टिसे यहाँ विविध रोगोंकी सामान्य चिकित्सा प्रस्तुत की जा रही है, जो जानकार लोगोंद्वारा प्रेषित की गयी है—**सं०**]*

व्याधि और उनकी ऐकात्मिक चिकित्सा

(डॉ० श्रीबाचलविष्णुदासजी दत्तात्रय, आयुर्वेदतज्ञ)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सर्वामयविनाशाय धन्वन्तरये अमृतकलशहस्ताय त्रैलोक्यनाथमहाविष्णवे॥

जागतिक आरोग्य-संघटनाद्वारा यह मान्य किया गया है कि 'स्वास्थ्य' केवल पार्थिव शरीरपर निर्भर न होकर उसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सामाजिक समत्वकी प्राप्ति एवं निरामय-अवस्था होना—यह पूर्ण स्वास्थ्य है। भारतीय चिकित्सापद्धति (योग, आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्सा)-के अनुसार शरीरमें आध्यात्मिक स्तरपर निरामयता निहित की गयी है।

प्राचीन भारतीय चिकित्सकोंके मतानुसार शरीर तीन प्रकारका होता है—

१. स्थूल शरीर—जिसे हम पार्थिव शरीर कहते हैं।

२. सूक्ष्म शरीर—इसमें प्राण, मन तथा बुद्धिका समावेश होता है।

३. कारण शरीर—इसमें आत्माका समावेश होता है।

महर्षि पतञ्जलिने ये तीनों शरीर पञ्चकोशमें सम्मिलित किये हैं—

१. अन्नमय कोश—पार्थिव शरीर—Physical body।

२. प्राणमय कोश—प्राण शरीर—Etheric body।

३. मनोमय कोश—मानसिक शरीर—Mental body।

४. विज्ञानमय कोश—बुद्धि शरीर—Intellectual body।

५. आनन्दमय कोश—स्वानन्द आत्मा—casual body।

अन्नमय कोशमें पार्थिव शरीर यानी स्थूल शरीर आता है, जिसमें वाणी, पाणि-पाद, उपस्थ और गुदा—ये **कर्मेन्द्रिय**, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र आदि **सप्त धातुएँ** और कान, आँख, त्वचा, वाणी (रसना) और नाक आदि **पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ** आती हैं। इसके साथ ही पाचनसंस्थान, अस्थिसंस्थान, रुधिरसंस्थान, मज्जासंस्थान, श्वसनसं स्थान और उत्सर्जकसंस्थान—इनका भी समावेश होता है।

प्राणमय कोशमें स्थूलप्राण, सूक्ष्मप्राण तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पञ्चप्राण और उनके देवदत्त, धनञ्जय, नाग, कूर्म, कृकल—ये उपप्राण आते हैं। जिनके द्वारा सम्पूर्ण शरीरका व्यापार चलता है। साँस लेनेसे पूरक, साँस रोकनेसे कुम्भक और साँस छोड़नेसे रेचक होता है।

मनोमय कोशमें मनके व्यापार संकल्प, विकल्प, विचार, मनोव्यापार आदिका समावेश होता है।

विज्ञानमय कोशमें बुद्धितत्त्व (Intellegence) कार्य करता है। अच्छे-बुरे विचारके अनुसार बुद्धि कार्य करनेकी आज्ञा देती है।

आनन्दमय कोश यह अपनी स्वानन्द निरामय अवस्था है। स्वानन्दस्वरूप है, आदि-अन्तरहित है, सुखका सागर है और चित्तका साक्षी है। यही मोक्षावस्था है और इसकी प्राप्ति योगका उद्देश्य है।

जब उपर्युक्त पञ्चकोशोंमें, स्थूल, सूक्ष्म पञ्चमहाभूतोंमें, पञ्चज्ञानेन्द्रिय-पञ्चकर्मेन्द्रियोंमें विकृति पैदा हो जाती है तो व्याधिका आविर्भाव होता है।

सामान्यत: व्याधि दो प्रकारकी है—

१. आधिज व्याधि तथा २. अनाधिज व्याधि।

[१] आधिज व्याधि—इसके सार और सामान्य—ये दो प्रकार होते हैं।

सार व्याधि पिछले जन्मोंके कारण आनुवंशिक या गुरु, देव तथा पितरोंके शापके कारण उत्पन्न होती है।

इसे हम आधिदैविक व्याधि कहते हैं।

सामान्य व्याधिमें सर्वसाधारण व्याधियाँ हैं, जैसे—उच्च रक्तचाप, मधुमेह, दमा (साँसकी बीमारी), संधिवात, अल्सर-जैसी बीमारियाँ, जो मनका स्वर बिगड़ जानेसे होती हैं। इन्हें हम मन:शारीरिक बीमारियाँ (Psycaosomatic Disorder) कहते हैं। ये आध्यात्मिक व्याधियाँ भी कहलाती हैं। मनके स्वरपर चञ्चलत्व यानी विकृति निर्माण होनेपर उसका प्रभाव प्राणकोशपर होता है। फलत: उनके व्यापार अनियमित होते हैं और उसके परिणामस्वरूप व्याधि यानी शारीरिक बीमारियाँ भी पैदा होती हैं।

[२] अनाधिज व्याधि—जो बाह्य कारणोंसे यानी पञ्चमहाभूतोंके प्रकोपके कारण होती है। यानी जलना, डूबना, गिर जाना, गड़ जाना या अपघातजन्य (अभिघातज) व्याधियाँ और जीव-जन्तुके कारण उत्पन्न होनेवाली बीमारियाँ जैसे—कॉलरा, गैस्ट्रो, संग्रहणी और सभी प्रकारके ज्वर आदि बाह्य कारणोंसे होते हैं, इन्हें हम आधिभौतिक व्याधियाँ कहते हैं। इनका उपचार भी ऐकात्मिक चिकित्सा-पद्धतिद्वारा कर सकते हैं। यहाँ व्याधियोंके विविध स्वरूपों और उपचारोंको विभिन्न तालिकाओंके द्वारा दर्शाया गया है—
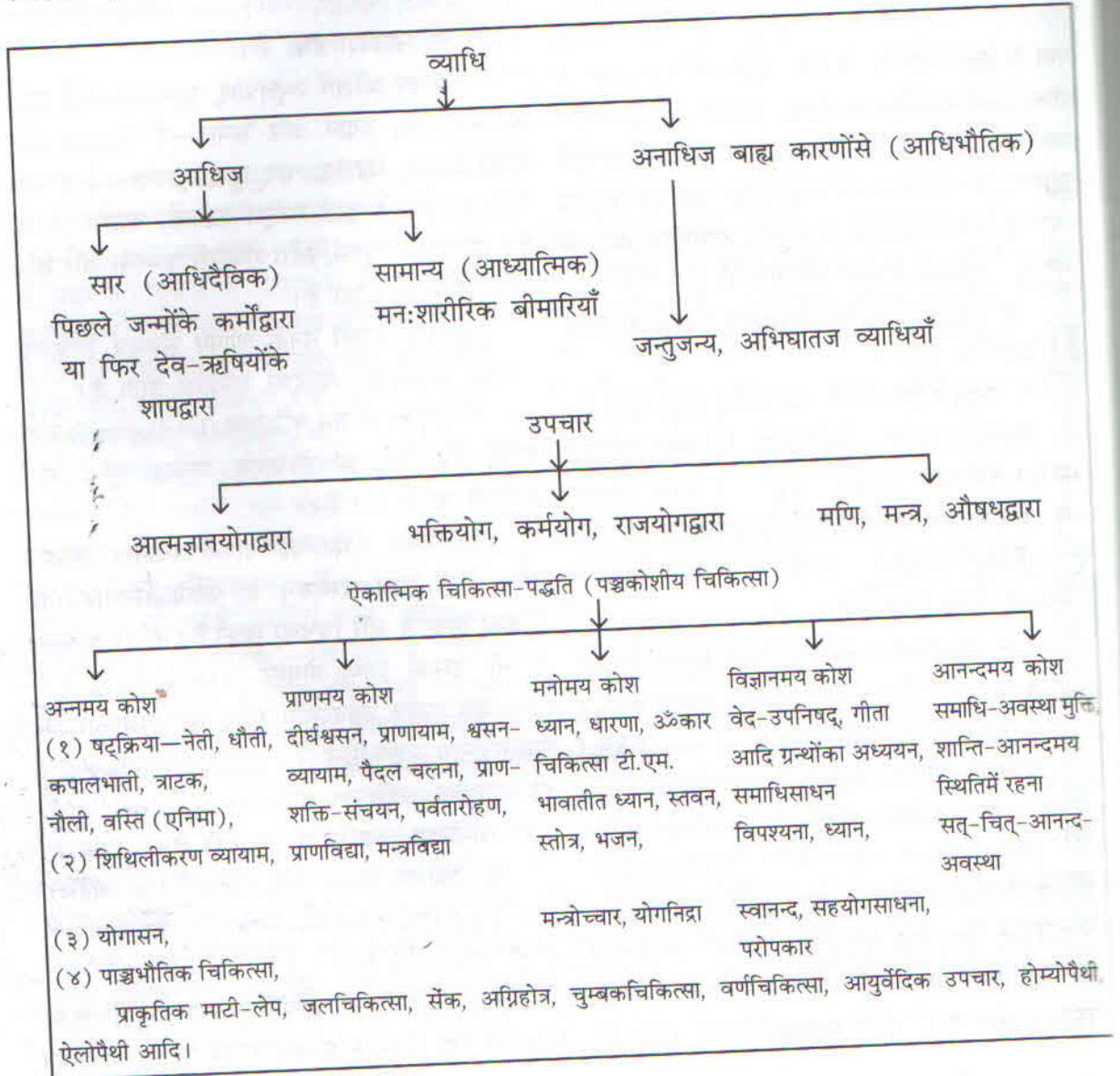
आजकलके विज्ञानयुगमें मानव भौतिक वस्तुओंके पीछे भाग रहा है, वह मानता है कि ये वस्तुएँ (टी.वी., फ्रीज, कम्प्यूटर, वाशिंग मशीन आदि-आदि) आनन्द दे सकती हैं। उन्हें जुटानेके लिये वह अधिक सम्पत्ति कमाना चाहता है। उसके लिये वह भले-बुरे मार्ग अपनाता है और उसके कारण स्पर्धा, त्रास, तनाव, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, काम, क्रोध-जैसे विकारोंका शिकार बन जाता है। साथ ही उच्च रक्तचाप, दमा, पेटका अल्सर, संधिवात, मधुमेह-जैसी मनःशारीरिक बीमारियोंका शिकार हो जाता है। सुख-आनन्द क्या है यह वह नहीं जानता, फलतः दुःख भोगता है। इस ऐकात्मिक पञ्चकोशीय चिकित्साको अपनाया जाय तो स्वस्थ आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

उदर-रोगके कारण, लक्षण एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा

(डॉ० श्री एस०पी० पाण्डेय, एम्०डी०, आयुर्वेदरत्न)

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः।
अतो वातादिशमनीः क्रियाः सर्वत्र कारयेत्॥

सम्पूर्ण उदररोग यतः त्रिदोषज होते हैं, अतः सर्वत्र वात आदि तीनों दोषोंको शान्त करनेवाली क्रियाएँ करनी चाहिये। उदरके दोषपूर्ण होनेपर अग्निमान्द्य हो जाता है, अतः इस रोगमें अग्निप्रदीपक और लघु भोजन करना चाहिये। जौ, मूँग, दूध, आसव, अरिष्ट, मधु आदिका इस रोगमें उपयोग करना उत्तम है।

दोषोंके अतिसंचयसे तथा स्रोतोंके बंद हो जानेसे उदररोग पैदा होते हैं। अतः उदररोगीको नित्य विरेचन देना चाहिये। विरेचनार्थ गोमूत्रका अथवा दूधके साथ एरण्ड-तेलका पान करना चाहिये।

उदर शब्दसे उदर-प्रदेशमें रहनेवाले क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, यकृत्, प्लीहा तथा उदरावर्णीकला आदि अङ्ग ग्रहण किये जाते हैं और इन प्रदेशोंमें होनेवाली विकृतिका नाम उदररोग माना जाता है। जठराग्निकी दुर्बलतासे मल-वातादि दोष (मूत्र-पुरीष) जब बढ़ जाते हैं, तब उनसे अलग-अलग अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। विशेषकर मलवृद्धिसे अग्निकी दुर्बलता और उदररोग उत्पन्न होते हैं। मलिन आहारोंसे अग्निके मन्द हो जानेपर जब उचितरूपसे आहारोंका पाचन नहीं हो पाता तब उदरमें दोषोंका संचय होने लगता है। यह दोष-संचय प्राणवायु और अपानवायुको विशेषरूपसे दूषित कर ऊर्ध्व तथा अधोमार्गोंको रोक देता है, उससे जब ऊपर एवं नीचेका मार्ग बंद हो जाता है तब वह दूषित मल और वातादि दोष त्वचा तथा मांसके बीचमें आकर उदरमें आध्मान उत्पन्न करते हैं और उदररोगका कारण बनते हैं—

रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात्॥

आहारका पाचन उदरमें होता है। जब पाचनकी विकृति हो जाती है तो दोषोंका संचय उदरके विभिन्न अङ्गों यकृत् तथा प्लीहा आदिमें होता है, जिससे वातादि दोष वहीं रुक जाते हैं और उदर फूल जाता है, हलकी वेदना होती है, पेटमें गुड़गुड़ाहट और अजीर्णके सभी लक्षण पाये जाते हैं; साथ ही शिरःशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, आलस्य आदिके लक्षण भी पाये जाते हैं।

उदररोग अत्यन्त उष्ण, लवण, क्षार, विदाही अन्न तथा अम्लरसके सेवनसे उत्पन्न होता है, इसके अतिरिक्त मल-मूत्रके वेगोंको रोकने, मल-मूत्रवह स्रोतोंके दूषित होने, आहारके न पचने एवं मानसिक कष्टसे होता है और दही आदि द्रव पदार्थोंके अधिक सेवनसे, अर्श या वातके कारण मलके रुक जानेसे और आन्त्रके फट जानेसे भी उदररोग उत्पन्न होता है।

क्षुधाका नाश होना, मुखका मीठा रहना, स्निग्ध

एवं गुरु अन्नका अत्यधिक देरसे पचना, खाये अन्नका विदाह होना, पैरोंपर थोड़ा सूजन होना, निरन्तर बलका ह्रास होना, थोड़े परिश्रमपर श्वासका फूलना आदि उदररोगके पूर्वरूप हैं।

पृथक् दोषसे तीन वातोदर तथा श्लेष्मोदर, सन्निपातसे एक प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और उदकोदर—ये आठ प्रकारके उदररोग होते हैं।

प्रत्येक उदररोगकी अन्तिम अवस्थामें जलोदर हो जाता है और यह उदररोगकी असाध्य अवस्था है। अतः उदररोगके प्रारम्भमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। बलवान् व्यक्तिके उदररोगमें जलका संचय न हुआ और उदररोग नूतन हुआ हो तो यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेपर वह साध्य होता है। प्रायः सभी उदररोग उत्पन्न होते ही कृच्छ्रसाध्य होते हैं। उदररोगसे पीडित रोगियोंको नित्य विरेचन-औषधि देकर विशोधन करना चाहिये। विरेचन देनेसे संचित दोष बाहर निकल जाते हैं। स्रोतोंका मुख खुल जाता है, जिससे रोग शान्त हो जाते हैं। वातजन्य उदररोगमें स्नेहसे युक्त विरेचनका ही प्रयोग करना चाहिये।

उदररोगके शमनके लिये पीपर, सोंठ, दन्तीका मूल, चित्रकका मूल तथा विडङ्ग—इन पाँचों द्रव्योंका चूर्ण समभागमें और हरड़का चूर्ण इससे दूनी मात्रामें लेकर गरम जलसे इस चूर्णका सेवन करना चाहिये।

मांस, गरिष्ठ भोजन, चावलका आटा, तिल, व्यायाम, दिनमें सोना, घोड़ा आदि सवारियोंपर चलना, उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही अन्नका त्याग करना चाहिये।

उदररोगकी चिकित्सामें अनेक योगोंका वर्णन आया है। यदि उदररोगसे पीड़ित रोगियोंके शरीरमें कफ वायु या पित्तसे आवृत्त हो जाय अथवा पित्त कफके द्वारा वायु आवृत्त हो जाय और रोगी बलवान् हो तो उदररोगनाशक औषधियोंके साथ एरण्ड-तेलका पान करना अति लाभदायक है। उदररोगमें दोषोंके अनुबन्धसे रक्षाके लिये तथा बलकी स्थिरताके लिये औषधि-प्रयोगके द्वारा शरीरके क्षीण तथा सम्पूर्ण धातुओंके क्षीण हो जानेपर गोदुग्ध अत्यन्त हितकारी होता है।

औषध-प्रयोग—(१) सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, अजवायन, सैन्धव लवण, श्वेत जीरक, काला जीरा, हींग—प्रत्येकका चूर्ण समभाग मिश्रित कर भोजनसे पूर्व तीन ग्रामकी एक मात्रा घीके साथ सेवन करनेसे अग्निवृद्धि होती है तथा वातरोग नष्ट होते हैं।

(२) अग्नितुण्डी वटी प्रातः-सायं दो-दो गोली जलसे भोजनके बाद।

(३) कुमार्यासव—चार-चार चम्मच बराबर जल मिलाकर भोजनके बाद लम्बे समयतक सेवन करना चाहिये।

(४) मट्ठेका प्रयोग—जीरा [भूनकर], काला नमक, काली मिर्चके साथ।

(५) आरोग्यवर्धिनी—दो-दो गोली तीन बार जलसे।

(६) अश्विनीनारायण चूर्ण—एक चम्मच सोते समय जलसे लेना चाहिये। यह समस्त उदररोगोंके लिये रामबाण औषधि है। इसका अद्भुत लाभ देखनेको मिला है।

यह मलको कुपित होने ही नहीं देता। प्रायः अनियमित दिनचर्याके कारण अधिकतर लोग विबन्धरोगसे ग्रसित होते हैं। परिणाम होता है वातार्श (बवासीर) और उदररोगका यहींसे प्रारम्भ होना।

उदररोगमें यकृत्‌की सुरक्षापर विशेष ध्यान—संतुलित, सुपाच्य आहारका सेवन एवं दिनचर्याका सम्यक् पालन उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायुके लिये अति आवश्यक है।

अश्विनीनारायण चूर्णकी प्रशंसामें लिखा है—

नारायणं भजत रे पवनेन युक्ता
नारायणं भजत रे जठरेण युक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता
नारायणात् परतरं न हि किंचिदस्ति॥

भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ इसका सेवन करनेसे प्रायः सभी प्रकारके रोग दूर होते हैं। मधुमेहके रोगीके लिये यह अत्यन्त लाभप्रद है। अन्य औषधियोंके साथ इसका सेवन करनेसे औषधियोंका लाभ भी शीघ्र प्राप्त होने लगता है।

मधुमेह—कारण और निवारण

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

प्रदर और प्रमेह आजके स्त्री-पुरुष-समाजमें व्याप्त वे रोगविशेष हैं, जिनसे सम्भव है कोई विरला ही अपरिचित हो। आयुर्वेदमें परिगणित बीस प्रकारके प्रमेहोंमें 'मधुमेह' सर्वाधिक भयंकर रोग है। वर्तमान युगका आरामतलबी वर्ग विशेषतः मिथ्याहार-विहारके कारण इस रोगसे ग्रस्त है। यह रोग दीर्घकालतक मानवको पीड़ित करता है और समुचित चिकित्सा न होनेपर मनुष्यको घुला-घुलाकर मारता है। माधवनिदानमें इस रोगकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है—

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि
ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च
प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्॥

(प्रमेहनिदान १)

अर्थात् सानन्द बैठे रहने, कोमल शय्यापर सोने, अधिक मात्रामें दूध-दही खाने, ग्राम्य (छाग, मेष आदि), औदक (मत्स्यादि) एवं सजल तथा भूमिजात (वराह-कच्छप आदि) जीवोंका मांस खाने तथा नया चावल, चीनी, मिस्री आदि मधुर पदार्थ और कफकारी वस्तुओंके सेवनसे 'प्रमेहरोग' होता है।

मधुमेहकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें माधवनिदानमें बताया गया है* कि समयपर उपचार न करनेसे सभी प्रमेह मधुमेहमें परिणत होकर असाध्य कोटिमें पहुँच जाते हैं। मधुमेहमें रोगी मधुके समान मूत्र त्याग करता है। यह दो प्रकारसे होता है, एक धातुक्षयसे प्रकुपित वायुसे और दूसरा पित्त या कफसे आवृत वायुके द्वारा उत्पन्न होता है। आवृत वायुसे मधुमेहमें आवरक दोष और वायुके लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं तथा अकस्मात् ये लक्षण कभी कम और कभी अधिक होते हैं। इस प्रकार क्रमशः रोग कृच्छ्रसाध्य हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि धातुक्षयसे वायु कुपित होकर मधुमेह Diabetes Mellitus उत्पन्न कर देता है अथवा पित्त और कफ जब वायुका मार्ग रोक देते हैं, तब रुद्धगति वायु ही मधुमेहका जनक बन जाता है। विशेषतः पित्त और कफद्वारा जब वायुके स्रोत रुद्ध हो जाते हैं, तब जो मधुमेह उत्पन्न होता है, उसीमें वायुके लक्षण लक्षित होते हैं और तब बिना किसी कारणके ह्रास अथवा वृद्धि पाकर रोग कष्टसाध्य हो जाता है। प्रायः सभी मेह समयपर चिकित्सा न करनेपर मधुमेहरूपमें परिणत हो जाते हैं। अतः सभी मेहोंको मधुमेह कहा जा सकता है।

चरक-संहितामें इसकी सम्प्राप्तिके सम्बन्धमें बताया गया है† कि कफकारक वस्तुओंके सेवन करनेसे बढ़ा हुआ कफ, मेद, मांस और वस्ति (मूत्राशय)-में रहनेवाले शारीरिक क्लेदको दूषित कर प्रमेहको उत्पन्न करता है। उष्ण द्रव्योंके सेवनसे बढ़ा हुआ पित्त, मेद, मांस और शारीरिक क्लेदको विकृत कर पित्तज प्रमेह उत्पन्न करता है। कफ और पित्तदोष जब वातकी

---

* सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः। मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि॥
मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा। क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा॥
आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन्। क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम्॥
मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति। सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः॥

(प्रमेहनिदान, २३—२६)

† मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतं प्रदूष्य।
करोति मेहान् समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य बस्तौ धातून् प्रमेहाननिलः करोति।
दोषो हि बस्तिं समुपेत्य मूत्रं संदूष्य मेहाञ्जनयेद्यथास्वम्॥

(चिकित्सास्थान ६।५-६)

अपेक्षा क्षीण (न्यून) रहते हैं तो बढ़ा हुआ वात धातुओं (वसा, मज्जा, ओस और लसिका)-को मूत्राशयमें खींचकर ले जाता है, तब वातज प्रमेहको उत्पन्न करता है।

इस रोगमें सर्वप्रथम हेतुओंका त्याग आवश्यक है। इसके साथ ही चिन्ता, शोक, भय आदिसे मुक्त रहना भी आवश्यक है। आयुर्वेदानुसार ऋतुचर्याका पालन, शीत, आतप आदिसे बचाव, औषध-सेवनकी अपेक्षा पथ्यपर विशेष ध्यान देना—इस रोगके रोगीके लिये अत्यावश्यक है; क्योंकि लोलिम्बराजने कहा है—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

अर्थात् रोगपीडित व्यक्तिको पथ्यपूर्वक रहनेपर औषध-सेवनसे क्या प्रयोजन और पथ्यपूर्वक नहीं रहनेपर औषध-सेवनसे क्या प्रयोजन?

मधुमेह है क्या? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि पुराने मेहरोगकी विशेषावस्था ही मधुमेह है। मधुमेह होनेसे पूर्व इसके रोगीका मेहके किसी भेदसे ग्रस्त रहना आवश्यक है। लालामेह, शुक्रमेह, मण्डमेह, उदकमेह, इक्षुमेह आदि बीस प्रकारके मेह ही पुराने होकर मधुमेहरूपमें परिणत होते हैं।

मधुमेहका प्रधान लक्षण है—बहुमूत्रता। इसके रोगीके मूत्रके साथ शरीरगत शर्करा भी निःसृत होती है। अतः ऐसे मूत्रपर मक्खी बैठती है, चींटी लगती है और मूत्रोत्सर्ग स्थलपर धब्बा भी पड़ता है।

दोषोंके प्रकुपित होनेपर यकृत्की विकृतिसे यह रोग उत्पन्न होता है। जठराग्नि विषम होकर पाचनक्रियाको विकृत कर देती है। परिणामस्वरूप शर्करा पाचनक्रियामें भली प्रकार उपयुक्त न होकर अस्वाभाविकरूपसे संचित होने लगती है और परिणाम यह होता है कि शर्करा रक्तमें अधिक परिमाणमें जा मिलती है। वृक्क भी रक्तशुद्धिके समय मूत्रमार्गद्वारा उसे निष्कासित करते हैं और इस प्रकार मधुमेहका श्रीगणेश तनुक्षरणार्थ हो जाता है।

मधुमेहके उत्पादक कारण निम्नलिखित हैं—

१. प्रमेह हो जानेपर उसकी यथासमय ठीक-ठीक चिकित्सा न होनेपर।

२. अधिक मधुर पदार्थ तथा चावल-सेवन करनेपर।

३. अनियमित तथा अत्यधिक स्त्री-प्रसंगसे।

४. परिश्रम अथवा सहवासके तत्काल पश्चात् शीतल जल पीनेसे।

५. अप्राकृत मैथुनसे।

६. अश्लील चित्र, साहित्य आदि देखने-पढ़नेसे। समष्टिरूपमें इस रोगमें अधिक बैठना, दिनमें सोना, नये धान्य, दही, मद्य, सिरका, तेल, क्षार, घी, गुड़, इमली, गन्नेका रस, आनूप-देशके प्राणियोंका मांस, विरुद्ध भोजन, दूषित जलका सेवन भूलकर नहीं करना चाहिये। साथ ही मूत्रवेगको रोकना, धूम्रपान, स्वेदन, रक्तनिर्वहण आदिसे भी बचना चाहिये।

यह रोग वस्तुतः छद्म शत्रुवत् होता है। अतः इसके प्रति पूर्ण जागरूक रहना आवश्यक है; क्योंकि यह रोग धीरे-धीरे उत्पन्न होता है और बहुत समयतक अपने-आपको प्रकट नहीं करता, परिणामतः रोगीका ध्यान बहुत समयतक इसकी ओर नहीं जा पाता; क्योंकि इस कालमें इससे आक्रान्त व्यक्तिको सामान्य-सी दुर्बलता मात्र अनुभूत होती है, जिसे रोगी सामान्य समझकर टालता जाता है, पर यह प्रमाद महँगा पड़ जाता है। जैसे ही निम्न लक्षण पूरे या अधूरे दृष्टिगोचर हों चिकित्सकसे परामर्श करना चाहिये—रात्रिमें कई बार मूत्र आना, मूत्र मधुवत् चिपचिपा होना, मूत्र मीठा तथा पीला होना, शिरोवेदना, विष्टम्भ, क्षुधाधिक्य, रूक्षता, पिपासाधिक्य आदि। मधुमेहके रोगीको बैठनेमें लेटना और सोना अधिक रुचिकर लगता है।

मूत्रमें शर्कराकी अधिकतासे दृष्टिमान्द्य, अदीठ, पीठका फोड़ा (Corbuncle) आदि हो सकते हैं। अतः शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये जिससे रोग जीर्ण न होने पाये।

मधुमेहके रोगीको कच्चे टमाटर, तीनों प्रकारकी गोभी (गाँठ, फूल, पत्ता), पत्तीकी भाजी (चौलाई

आदि) कच्ची सेमकी फली (Tender field beans)-का सेवन नियमित रूपसे करना चाहिये। तले हुए पदार्थ, आलू, पके टमाटर, भिण्डी, गाजर, चुकन्दर, काशीफल (Red pumpkin,)- कच्चा केला तथा अरहरकी दालका सेवन सर्वथा त्याग देना चाहिये। चनेका निस्सार (whole Bengal Gram extract)- का सेवन भी इस रोगमें लाभप्रद है। इस रोगके उपशमनार्थ निम्न प्रयोग भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

१. वसन्तकुसुमाकर १$\frac{१}{२}$ रत्ती, शुद्ध अहिफेन अफीम (Opium) $\frac{१}{८}$ रत्तीकी छः मात्रा बना ले तथा एक-एक मात्रा प्रातः-सायं मधु या मक्खनसे ले तथा विजयसार एक तोला काँचके गिलासमें भिगोकर बारह घंटे बाद दोनों समय (प्रातःकालका भिगोया हुआ सायंकाल, सायंकालका भिगोया प्रातःकाल) छानकर पीये।

२. शिलाजीत एक तोला, वंगभस्म छः माशे, गुड़मारचूर्ण दो तोले, जामुनकी गुठली दो तोले, बिल्वपत्र स्वरस तथा करेलेके रसमें घोंटकर आधी-आधी रत्तीकी गोली बनाये, प्रातः, मध्याह्न, सायं एक-एक गोली बिल्वरस या गोदुग्धसे ले।

३. वसन्तकुसुमाकर तीन रत्ती, त्रिबंग भस्म तीन रत्ती, शिलाजीत एक माशा, गुड़मारचूर्ण तीन माशा एकत्र कर गोली बनाये तथा तीन बार नीमके क्वाथ या गोदुग्धसे ले।

४. गुड़मारचूर्ण दस तोला, जामुनकी गुठली पाँच तोला, सोंठ पाँच तोला, घृतकुमारीके रसमें घोंटकर चार-चार रत्तीकी गोली बनाकर मधुसे तीन बार लेवे।

५. खिरैंटी, गूलर, बबूल, आँवलेके पत्ते सब बराबर लेकर चूर्ण करे—छः माशे प्रातः धारोष्ण गोदुग्धसे ले तथा जौकी रोटी, मूँगकी दाल २१ दिन सेवन करे।

६. गुड़मार सत्व एक तोला, वैक्रान्तभस्म एक तोला, गिलोय सत्व दो तोले, पाषाणभेद तीन तोले—चूर्णकर दो-दो रत्ती दोनों समय मधुसे लेना चाहिये।

७. मेहँदी, ब्राह्मी, गुलाबके फूल दो-दो तोला, कमीला छः माशे, शिलाजीत एक तोला-चूर्ण बना १$\frac{१}{२}$ माशा गर्म गोदुग्धसे सेवन करे, सब प्रमेहोंके लिये अचूक योग है।

८. वंगभस्म, नागभस्म, लौहभस्म तीनों एक-एक रत्ती मक्खन या मलाईसे लेना चाहिये।

९. सप्तरंगी एक तोला, गुड़मार दो तोला, जामुनगिरी एक तोला, सोंठ छः माशा, शिलाजीत दो तोला। पहले काष्ठौषधियोंका चूर्णकर फिर शिलाजीत मिलायें, तदनन्तर बेलफलके स्वरसके साथ घोंटकर चनेके बराबर गोली बना ले। दो-दो गोली प्रातः-सायं शीतल जलसे लेवे।

१०. सोंठ, काली मिर्च, बहेड़ेका वक्कल, सूखा आँवला, हल्दी, वंशलोचन, रूमी मस्तगी, सालम मिस्री, छोटी इलायचीके दाने, सत्वगिलोय, सत्वशिलाजीत—प्रत्येक ६-६ तोला, त्रिफला १५ छटाँक, गोघृत १ छटाँक, पहले सब औषधियोंको कूट ले, फिर त्रिफला कूटकर सायंकाल जलमें भिगो दे। प्रातः चूल्हेपर रख १० किलो जलमें डालकर पकाये और आधा रहनेपर उतार ले। फिर गिलोय-सत्व मिलाकर आगपर रखे और उसमें घी डाल दे। पकनेपर उतारकर छान ले तथा चूर्ण मिलाकर बेरके बराबर गोली बना ले। दोनों समय एक-एक गोली दूध या जलसे ले। सभी प्रकारके प्रमेह और प्रदरमें लाभप्रद है।

इसके अतिरिक्त वसन्तकुसुमाकर-रस, सोमनाथ-रस, बृहत् सोमनाथ-रस, नागभस्म, यशदभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, हेमनाथ, स्वर्णवंग, जम्ब्वासव, लोध्रासव आदि शास्त्रीय औषधियोंका प्रयोग भी चिकित्सकके परामर्शानुसार किया जा सकता है। यदि और कुछ न कर सके तो बिल्व, पीपल, जामुन तथा श्यामा तुलसीके पत्ते समान मात्रामें लेकर, अलग-अलग सुखा, चूर्णकर एक साथ मिला ले और ठंडे जलसे एक-एक चम्मच यह चूर्ण दोनों समय ले अथवा बिल्वपत्र स्वरस तथा करेला स्वरस एक-एक तोला पीनेसे लाभ होता है।

निरन्तर बढ़ती व्याधि मधुमेह—परहेज एवं उपचार

(डॉ० श्रीताराचन्द्रजी शर्मा)

भारतमें ही नहीं वरन् समूचे संसारमें इस समय बड़ी तेजीसे एक व्याधि बढ़ रही है जिसका नाम है—मधुमेह (Diabetes)। कुछ समय पूर्व इसे खाये-पीये बड़े लोगोंकी बीमारी, अमीरीकी निशानी और सम्पन्नता, बड़प्पन तथा वी०आई०पी० लोगोंमें पनपनेका प्रतीक माना जाता था, किंतु आजकल यह गरीबोंमें भी समानरूपसे फैलती हुई फैशनकी तरह आम बात होती जा रही है। अखिल भारतीय चिकित्सा-विज्ञानद्वारा झुग्गी झोंपड़ी-क्षेत्रमें सम्पन्न कराये सर्वेक्षणके आँकड़ोंके अनुसार सात प्रतिशत आदमी मधुमेहसे ग्रस्त हैं। देशमें इस समय ढाई करोड़से अधिक लोग इस बीमारीकी चपेटमें हैं। विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (WHO)-के अनुसार आगामी दो दशकोंमें यह संख्या दो गुनी हो जायगी। ये आँकड़े चौंकानेवाले हैं। भारतीय चिकित्सा-विज्ञानके कई एक डॉक्टरोंके अनुसार डायबिटीजके नियन्त्रित करनेके सारे उपाय बेकार हो चुके हैं। डायबिटिक सेल्फ-केयर फाउण्डेशनका कहना है कि एक ओर तो लोगोंके खान-पानकी आदतोंमें बदलाव आ रहा है और दूसरी ओर रोजगार ऐसा हो चला है कि शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है, जिससे डायबिटीजके मामलोंमें तेजीसे वृद्धि होनेसे बड़ी संख्यामें गरीब इंसुलिनके अभावमें मौतके मुँहमें जा रहे हैं तथा डायबिटीजको लेकर हालात बेकाबू हो रहे हैं। स्वास्थ्य-विशेषज्ञ इस बीमारीको 'डायबिटीज बम' के नामसे सम्बोधित कर चेताने लगे हैं। 'नेशनल मेडिकल एजूकेशन रिसर्च फोरम' के मतानुसार जागरूकताका अभाव और साक्षरताकी कमीके कारण यह समस्या और जटिल हो गयी है, क्योंकि इस बीमारीसे ग्रस्त अनेकों लोग इसके बारेमें जानते भी नहीं। अतः इस व्याधिको गम्भीरतासे लेते हुए जनमानसमें इसके प्रति जागरूकता फैलानी चाहिये, इस हेतु मधुमेहके कारण, लक्षण एवं उपचार-पद्धतिको प्रचारित-प्रसारित करना वाञ्छनीय है।

वर्तमान कालमें प्रगतिशीलता तथा आधुनिकताके नामपर प्रदूषित, अनुचित तथा अप्राकृतिक विधिके आहार-व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, तनाव-लगावकी मनोवृत्तिके फलस्वरूप भी मनुष्यमें मधुमेहकी व्याधि तेजीसे बढ़ रही है। इस बीमारीकी चपेटमें हर उस व्यक्तिके आनेकी सम्भावना रहती है, जो श्रमजीवी—परिश्रमी नहीं, आरामकी जिन्दगी जीता, खाता-पीता तथा मोटा-ताजा है। विकसित देशोंमें यह आम धारणा है कि ४० वर्षकी आयु होते-होते यदि पेटमें अल्सर नहीं हुआ तो क्या खाक खाया-पिया? यदि हृदयरोग या उच्च रक्तचाप नहीं हुआ तो जिन्दगीमें क्या झकमारी? इसी प्रकार डाइबिटीज बड़े आदमी होनेकी निशानी रही, क्योंकि कोई बिरला ही सौभाग्यशाली होगा जो किसी भी क्षेत्रमें बड़ा आदमी हो और उसे यह रोग न हो। यदि अत्यधिक प्यास तथा भूख, ज्यादा पेशाब आना, थकावट, अचानक वजन कम होना, जख्मका देरीसे भरना, गम्भीर हिचकी आना, पैरोंमें भड़कन-झनझनाहट रहना, अनिद्रासे तनाव, तलुओंकी जलन, चिड़चिड़ापन, नेत्रज्योति कम होना, सिर भारी रहना आदिके लक्षण हैं तो आप डायबिटिक हो सकते हैं। डायबिटीजसे कई प्रकारकी आन्तरिक विकृतियाँ गम्भीर समस्याएँ यथा—किडनी (गुर्दा)-का खराब होना, अन्धापन, हृदयघात (Heart Attack), गेस्टोपेरेसिस आदि रोगोंकी सम्भावना बढ़ जाती है। अपनी प्रारम्भिक विकृतिके साथ यदि मधुमेहकी व्याधि एक बार हो जाती है तो उम्रभर खामोशीसे साथ रहती है।

व्यापकरूपसे व्याप्त मधुमेहकी बीमारीके मामलेमें सर्वाधिक ध्यान देनेवाली बात यह है कि इसको नियन्त्रित या नष्ट करनेमें पथ्य-अपथ्यका पालन करना औषधि-सेवनकी अपेक्षा अधिक हितकर है। बिना पथ्य-अपथ्यके पालन किये केवल औषधिके सेवनसे इस बीमारीमें 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की'

की कहावत चरितार्थ होती है। सत्यत: मधुमेह ऐसा रोग है, जिसके लिये अनियमित आहार-विहार ही उत्तरदायी है। जिसमें समय रहते सुधार न करने तथा लापरवाही जारी रहनेपर यह रोग असाध्य स्थितिमें पहुँच जाता है और फिर मृत्युपर्यन्त पीछा नहीं छोड़ता। अस्तु,

इसके नियन्त्रणका सबसे सरल-सुरक्षित मार्ग है नियन्त्रित उचित आहार-विहार। नवीन शोधोंसे भी सिद्ध हो चुका है कि जिनके शरीरमें इन्सुलिनका बनना बिलकुल बंद नहीं हुआ है, उनका उपचार आहार-विहारके नियमनसे सम्भव है। मधुमेह संक्रमण (Infection)-से होनेवाला संक्रामक रोग नहीं है, परंतु वंशानुगत प्रभावसे हो सकता है। फलत: जिनके माता-पिता, दादा-दादी या नाना-नानीके यह रोग रहा हो, उन्हें बचपनसे ही आहार-विहारके मामलेमें अधिक सावधानी बरतनी चाहिये और इस रोगके प्रारम्भिक लक्षण पता चलते ही तत्काल आहार-विहारमें उचित सुधार कर लेना चाहिये ताकि दवा खाने, इलाज करानेकी नौबत न आये। इस रोगमें एक बार दवा विशेषकर इन्सुलिन लेनेके चक्करमें फँसनेपर जीवनपर्यन्त इस चक्रसे निकल नहीं पाते। अत: इस चक्करमें पड़नेसे बचने-हेतु नियन्त्रित-संतुलित आहार लेना परमावश्यक है।

ध्यान रखने योग्य बातें—मधुमेहके लक्षण मालूम होते ही मूत्र (Urine) तथा रक्त (Blood)-की जाँच कराये जिससे पता चल सके कि यदि मूत्रमें शर्करा (Sugar) आ रही है तो रक्त-शर्करा सामान्यसे अधिक तो नहीं है। प्रात: खाली पेट रक्तमें शर्कराकी मात्रा ८० से १२०mg. (प्रति १०० सी० सी० रक्त)-के मध्य होनेपर सामान्यत: मनुष्य स्वस्थ होता है। १२० से अधिक तथा १४० से कम होनेपर मधुमेहकी प्रारम्भिक अवस्था होती है। परंतु यह मात्रा १४० से अधिक होनेपर समझ ले कि मधुमेहसे ग्रस्त हैं और इसने जड़ जमा ली है। भोजन करनेके दो घंटेके बाद की गयी जाँचमें रक्त-शर्करा १२०mg. से कम होनेपर मनुष्य स्वस्थ, १४०mg. या इससे कम होनेपर मधुमेहकी प्रारम्भिक अवस्था, किंतु यह १४०mg. से अधिक पायी जानेपर इस रोगसे ग्रस्त माना जायगा। रोगकी वस्तुस्थिति जानने-हेतु ४० वर्षसे अधिक आयुवाले स्त्री-पुरुषों, विशेषकर मोटे नर-नारियोंको २-३ माहके अन्तर्गत एक बार स्वमूत्र और रक्तकी जाँच कराते रहना चाहिये, क्योंकि यह रोग धीरे-धीरे पनपता है और उग्र अवस्था धारण करनेसे पहले इसका स्पष्टरूपसे पता नहीं चलता। अतएव पेशाब तथा रक्तमें सामान्य मात्रासे अधिक मात्रामें शर्करा पायी जानेपर आहारमें तुरंत उचित सुधार कर नियन्त्रित-संतुलित आहार लेना प्रारम्भ करके आवश्यक परहेजका भी दृढ़तासे पालन करना चाहिये।

मधुमेह-रोगमें संतुलित आहार और सख्त परहेज करनेका महत्त्व तथा लाभ औषधि-सेवनसे भी अधिक है, क्योंकि उचित आहार लेने तथा परहेजका सही पालन करनेपर बिना दवाका सेवन किये भी यह रोग नियन्त्रणमें रहता है यानी एक तरहसे रोग रहता ही नहीं। इसके विपरीत असंतुलित आहारका सेवन तथा बदपरहेजी करनेपर यह रोग नहीं जा पाता। इस सम्बन्धमें आयुर्वेदका यह श्लोक द्रष्टव्य है—

विनाऽपि भेषजैर्व्याधि: पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि॥

अर्थात् सैकड़ों दवाएँ खानेपर भी पथ्यविहीन व्यक्तिका रोग नष्ट नहीं होता। मन वशमें होने, संतुलित आहार करने, उचित विहार बरतने तथा व्यायाम या योगासनका अभ्यास होनेपर मधुमेहरोगसे ग्रस्त तथा त्रस्त होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

दिनचर्या एवं पथ्य-अपथ्य—मधुमेहका रोगी प्रात: भ्रमणोपरान्त घरमें जमा हुआ दही स्वेच्छानुसार थोड़ा-सा जल, जीरा तथा नमक मिलाकर पीये। दहीके अलावा चाय-दूध कुछ न ले। इसके साथ मेथी दानेका पानी, जाम्बुलिन, मूँग-मोठ आदिका प्रयोग करे, इसके ३-४ घंटे बाद ही भोजन करे। भोजनमें जौ-चनेके आटेकी रोटी, हरी शाक-सब्जी, सलाद और छाछ-मट्ठाका सेवन करे। भोजन करते हुए छाछको घूँट-घूँट करके पीते रहे। भोजनके

पश्चात् फल लेवे। जौ-चनेकी रोटी स्वादिष्ठ, शक्तिवर्द्धक एवं स्फूर्तिदायक होनेके साथ-साथ वजन घटानेमें भी सहायक होती है। सायंकालका भोजन यथासम्भव ७ बजेतक कर ले। भोजन फुरसतके अनुसार नहीं, बल्कि ठीक निश्चित समयपर ही करे। प्रतिदिन निश्चित समयपर भोजन करनेसे रक्त-शर्कराकी मात्रा सामान्य अवस्थामें बनी रहनेमें सहायक होती है।

मधुमेहका रोगी भोजनमें मीठे पदार्थ चीनी-शक्कर, मीठे फल, मीठी चाय, मीठे पेय, मीठा दूध, चावल, आलू, सकरकंद, तले-चिकने पदार्थ, घी, मक्खन, सूखे मेवे, गरिष्ठ पदार्थ आदिका सेवन बंद कर दे। मीठा करने-हेतु चीनीके स्थानपर सेकरीनकी गोलीका प्रयोग कर सकते हैं। आहारमें बसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटयुक्त पदार्थों, उदाहरणार्थ दूध, घी, तेल, सूखे मेवे, फल, अनाज, दाल आदिका भी कम मात्रामें प्रयोग करे। मांसाहार और शराबका प्रयोग कतई न करे। रेशायुक्त खाद्य पदार्थों जैसे हरी शाक-सब्जी, सलाद, आटेका चोकर, मौसमी फल, अंकुरित अन्न, समूची दाल आदिका सेवन अधिक मात्रामें करे। इस रोगसे ग्रस्त व्यक्ति केवल उचित संतुलित आहारका ही नहीं वरन् उचित विहार, रहन-सहनको नियमित तथा नियन्त्रित करनेका भी ध्यान रखे और तदनुसार अपनी दिनचर्यामें वाञ्छित सुधार करे। दिनचर्यामें वायुसेवन-हेतु सूर्योदयसे पूर्व भ्रमणके लिये जाना, तेल-मालिश, योगासन, व्यायाम करना, दिनमें चल-फिरकर रहना हितकारी होता है। योगासनोंमें सूर्य नमस्कार, भुजङ्गासन, शलभासन, योगमुद्रा, धनुरासन, सर्वाङ्गासनादि और अन्तमें शवासन करे। योगासन-व्यायामका अभ्यास अधिक मात्रामें न करके अपनी शारीरिक क्षमताके अनुसार ही करे।

मधुमेहके लक्षण और स्वमूत्र तथा रक्तमें शर्करा होनेपर व्यक्तिको चाहिये कि वह चिन्तित एवं भयभीत न हो, बल्कि चिन्ताजनक तथा भयकारक इस समस्याका उचित समाधान सोचकर इसे नष्ट करनेका प्रयत्न करे। जो आहार-विहारकी गलतियाँ करते रहते हैं, वे जीवनपर्यन्त रोगसे ग्रस्त हो अपनी करनीका फल भोगते रहते हैं और जिन पदार्थोंको खानेमें अति की थी, उन्हींको खानेके लिये तरसा करते हैं तथा साथ ही बोनसके रूपमें अन्य बीमारियाँ भी उनके पल्ले पड़ जाती हैं, जिन्हें उन्हें भोगना ही पड़ता है। अतः रोगीको पथ्यका पालन और अपथ्यका त्याग करना अपेक्षित है।

घरेलू उपचार एवं चिकित्सा— उचित आहार-विहारका ध्यान रखते हुए मधुमेहसे ग्रस्त व्यक्ति निम्नाङ्कित घरेलू उपचारोंमेंसे किसीका प्रयोग कर इस रोगपर नियन्त्रण कर सकता है—

(१) मेथीदाना ५०० ग्राम धो-साफकर १२ घंटेतक पानीमें भिगोकर बीज फूलनेपर इन्हें पानीसे निकाल करके सुखा ले और कूट-पीसकर महीन चूर्ण कर ले। इस चूर्णको सुबह-शाम एक-एक चम्मच पानीके साथ सेवन करनेसे मधुमेहके रोगीको लाभ होता है।

(२) आधा चम्मच पिसी हल्दी और एक चम्मच आँवलाका चूर्ण सुबह-शाम पानीके साथ लेनेसे रक्त शर्करा सामान्य मात्रामें बनी रहती है, क्योंकि इसके सेवनसे अग्न्याशयको बल मिलता है, जिससे इन्सुलिन नामक हार्मोन उचित मात्रामें बनता रहता है। यदि स्वस्थ व्यक्ति इसका सेवन करे तो वह इस व्याधिसे बचा रह सकता है।

(३) ढाक (पलाश)-के फूलोंका रस आधा-आधा चम्मच सुबह-शाम पीना मधुमेहसे ग्रस्त रोगीके लिये लाभप्रद रहता है।

(४) बेलके ताजे हरे पत्तोंका रस दो-दो चम्मच सुबह-शाम पीना मधुमेहके रोगमें बहुत गुणकारी और उत्तम है।

(५) गुड़मार ८० ग्राम, बिनोलेकी मींगी ४० ग्राम, बेलके सूखे पत्ते ६० ग्राम, जामुनकी गुठली ४० ग्राम और नीमकी सूखी पत्तियाँ २० ग्रामको कूट-पीसकर मिलाकर चूर्ण बना ले और उसका सुबह-शाम आधा-आधा चम्मच प्रयोग करे। इससे अग्न्याशय और यकृत्‌को

बल मिलनेसे उनके विकार नष्ट होते हैं और मूत्र तथा रक्तकी शर्करा नियन्त्रित हो सामान्य मात्रामें रहती है।

(६) आयुर्वेदिक औषधि वसन्तकुसुमाकर रस अथवा अम्बरयुक्त शिलाजत्वादि वटी और प्रमेहगज केसरीवटी—इन दोनोंकी एक-एक गोली सुबह-शाम दूधके साथ ले। आयुर्वेदिक औषधियोंसे तैयार मिश्रणका प्रयोग मधुमेहके रोगमें विशेष लाभकारी रहता है।

(७) मिट्टीके बरतनमें रातको ५० ग्राम मेथीदाना पानीमें भिगोये और सुबह मसल-छानकर इस पानीको पीये। इसी प्रकार सुबहका भिगोया मेथीदाना शामको मसल-छानकर पिये। सुबह नाश्तेमें रातको पानीमें भिगोयी हुई मूँग और मोंठ इच्छानुसार ले और उसे खूब चबा-चबाकर खाये। इस भीगी मूँग-मोंठको सुबह तवेपर थोड़ा तेल, नमक तथा जीरा डालकर सेंक ले। इनके साथ 'जाम्बुलिन' की दो गोलियाँ मेथी-पानीके साथ निगलना विशेषरूपसे हितकारी होता है।

(८) मधुमेहमें सुबह-शाम भोजनके बाद आधे कप पानीके साथ जामुनकी गुठली और करेलेका चूर्ण ५-५ ग्राम फाँक लेना तथा दिनमें एक बार १५-२० बेलपत्र खूब चबा-चबाकर महीन करके खाना सफल घरेलू इलाज है।

(९) मधुमेहकी चिकित्सा-हेतु अंग्रेजी दवाइयोंके अतिरिक्त अनेक गुणकारी आयुर्वेदिक औषधियाँ हैं, जो रक्तगत शर्कराको सफलतापूर्वक नियन्त्रित करती हैं। कुछ प्रमुख योग हैं—मधुमेहारिचूर्ण, मधुहारी चूर्ण, मधुनाश, मधुदोषान्तक, डेबिक्स टेबलेट, मधुरीन, पिल्स तथा पाउडर, मधुमेहदमन चूर्ण आदि।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानने मधुमेहग्रस्त रोगियोंपर अनेकानेक सुदीर्घ शोधानुसन्धान किये हैं, जिससे असाध्य मधुमेहके लिये अनेक अचूक, असरदार विशिष्ट औषधियाँ विकसित हुई हैं तथा आहार-सम्बन्धी मान्यताएँ प्रभावित हुई हैं। निःसंदेह उत्तम गुणवाली औषधियाँ मूत्र तथा रक्तकी शर्कराको नियन्त्रितकर इन्सुलिनके प्राकृतिक स्रावको सक्रिय करके शरीरमें इन्सुलिनकी कमी एवं वृद्धि दोनोंको सन्तुलित रखकर प्राणघातक दुष्परिणामोंसे रोगीकी रक्षा करनेमें बेहतरीन परिणाम प्रदान करती हैं। इन औषधियोंमें गुड़मार, करेला-बीज, नीम, आंवे हल्दी, गिलोय, जामुन-गुठली, गूलर-फल, शिलाजीत, बिल्वपत्र आदिकी मिश्रित जड़ी-बूटियाँ तथा त्रिवंगभस्मादि हैं, जो मधुमेहमें पैंक्रियाजको सक्रिय करने और इन्सुलिन प्रदायको नियन्त्रित करनेमें गुणकारी तथा लाभकारी रहती हैं।

संक्षेपमें मधुमेहकी हर स्थितिमें आहार-नियन्त्रण, निदान-परिवर्जन, दिनचर्या-नियमनसे लाभान्वित होते हुए आप सम्पूर्ण जीवन निर्विघ्न जी सकते हैं। मधुमेहका रोगी किसी भी दृष्टिसे शारीरिक या मानसिक रूपसे अपंग नहीं होता है, बल्कि संयमित, नियमित एवं अनुशासित दिनचर्यासे वह जीवनके किसी भी लक्ष्यको प्राप्त करनेमें सक्षम है। प्रत्येक रोगीके लिये आहार-मात्रा, विहार-प्रक्रिया, दिनचर्या भिन्न-भिन्न हो सकती है। किंतु कुछ सामान्य बातें हैं, जिन्हें समझकर स्वविवेकसे उपयोगी आहार-विहार तय करके आप मधुमेहसे मुक्त रह सकते हैं।

विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ, विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति।
तथान्नश्रद्धायां क्लमपरिगमे कुक्षौ च शिथिले, प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः॥

(सु० उ० अ० ६४। ८४)

मल और मूत्रके उत्सर्ग हो जानेपर, इन्द्रियोंके निर्मल हो जानेपर, शरीरके हल्का प्रतीत होनेपर तथा उद्गार (डकार) शुद्ध आ जाय एवं हृदयके विशुद्ध या निर्मल अनुभूत होनेपर, अपानका निर्गमन हो गया हो तथा अन्नकी अभिलाषा प्रतीत होनेपर, थकान मिट जानेपर और पेट शिथिल हो गया हो तब आहार देना चाहिये। यही वैद्योंके द्वारा माना हुआ भोजनका उचित समय है। इन लक्षणोंके उत्पन्न होनेपर किसी भी समयमें भोजन देनेसे मानवके स्वास्थ्यमें हानि नहीं होती है।

मधुमेह

(श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा)

आजकल हमारी जीवनशैली ऐसी ही हो गयी है, जिससे उच्च रक्तचाप एवं मधुमेहके रोगी बढ़ते जा रहे हैं। मधुमेहसे बचाव किया जा सकता है। इसी दृष्टिसे यहाँ मधुमेहको उत्पन्न करनेवाले कारण, लक्षण और उसके कुछ उपचार आदि दिये जा रहे हैं—

कारण—मधुमेहका पैतृकता, मोटापा, उच्च रक्तचाप, हार्ट अटैक, आयु, तनाव तथा श्रम न करना आदिसे गहरा सम्बन्ध है।

लक्षण—खूब प्यास लगना, जबान सूखना, बार-बार पानी पीनेकी इच्छा होना, घड़ी-घड़ीमें लघुशंका होना, भूख अधिक लगना, खुराक अच्छी खानेपर भी वजन घटना, फोड़े-फुंसियाँ निकलना, घाव तथा जख्म अच्छा होनेमें काफी समय लगना, सुस्ती-आलस्य आदि।

परहेज—चावल, चीनी (मीठा), आलू, मीठे फल, शरबत तथा वनस्पति-घीसे बचें।

पथ्य—आँवला, गाजर, टमाटर, करेला, सहिजन, लौकी, मूली, शलजम, हरी धनिया, पोदीना, मेथी-पालक, चौलाई, बथुआ, अदरक, नीबू, खीरा, ककड़ी, फल, हरी सब्जियाँ, सोयाबीन, दाना मेथी, भुने चने, बेसन, जौ, जामुन, दही, छाछ, बेलपत्र, तुलसीपत्र, नीमपत्र, किशमिश आदि।

विशेष—१-नियमित प्रातः-भ्रमण अथवा व्यायामको जीवनमें उतारना जरूरी है।

२-विजयसारकी लकड़ीके बर्तन (गिलास)-में रातको पानी रखकर सुबह उठते ही इस पानीको पीनेसे कई रोगी ठीक होते देखे गये हैं, यह क्रिया मधुमेहको दूर करती है।

३-भुने हुए अनाजका सेवन मधुमेहकी रामबाण औषधि है। जबतक आप अनाज या आटेको भूनकर अर्थात् भर्जित (रोस्टेड) अनाजका प्रयोग करेंगे, तबतक मधुमेह नहीं होगा और न ही इन्सुलिनकी जरूरत पड़ेगी। उदाहरणके लिये यदि रोटी खानी है तो जौ या गेहूँके आटेको कड़ाही या तवेपर थोड़े-से घी या तेलमें भूरा-लाल होनेतक भूनकर पीपेमें भर ले। इसको गूँथकर रोटी बनानेसे रोटी स्वादिष्ट तथा पौष्टिक बनेगी। जौ-गेहूँकी बाली और चनेको भूनकर सत्तू बनानेकी भी प्रथा है। गेहूँके आटेको भूनकर पटोलिया बनाये। गेहूँ, ज्वार या बाजरेके आटेको भूनकर धूली तथा दलिया बनाकर स्वादिष्ट व्यञ्जन बनाये।

भूनकर खानेसे खाद्यका शीघ्र पाचन हो जाता है और शरीरको शीघ्र शक्ति मिल जाती है। कार्बोहाइड्रेटकी अन्तिम परिणति अवस्था पायरूव्हेट होनेके कारण इसमें चर्बी नहीं होती और न ही शरीरमें ग्लूकोजकी अधिक मात्रा बननेका डर रहता है।

यदि किसीको मधुमेह रोगने आ घेरा है तो प्राणिमात्रको स्वस्थ रखनेके लिये प्रकृतिने बहुत कुछ दिया है। अतः रोगी प्राकृतिक उपायोंद्वारा प्रदत्त वनस्पतियोंके प्रयोगसे अपनेको दीर्घकालतक स्वस्थ रख सकता है। निम्नलिखितमेंसे कोई भी सुविधाजनक घरेलू उपचार करके स्वस्थ हो सकते हैं—

१-तेजपत्रोंसे मधुमेह दूर करना—इसके प्रयोगसे निराश रोगी भी लाभान्वित हुए हैं, यह अनुभूत प्रयोग है।

विधि—तेजपत्रको कूट-छानकर शीशीमें भर ले। इस चूर्णमेंसे नित्य तीन बार, एक-एक छोटे चम्मचभर पानी या दूधके साथ ले ले, अवश्य लाभ होगा। खाने-पीनेमें पथ्य एवं हलका व्यायाम और भ्रमण जरूरी है। हाँ, ब्लड शुगर 'निल' होनेपर इस औषधको बंद कर दे। यदि बद-परहेजीके कारण मधुमेह दुबारा आता नजर आये तो एक-दो दिन चूर्ण फिर लेकर नीरोगी बन जायँ।

२-दाना मेथी—दाना मेथीका चूर्ण बनाकर शीशीमें रख ले। नित्य सुबह-शाम करीब दस-दस ग्राम चूर्ण भोजनसे पहले पानी या छाछके साथ फाँक ले। इससे मूत्र तथा खूनमें शुगर घटने लगेगी। तीन-चार सप्ताहमें सफलता दिखेगी। गर्भवती स्त्रियोंको दाना मेथीका

प्रयोग मना है। उनके लिये तेजपत्र ठीक रहेंगे।

३-सदाबहार पौधेके पत्ते—इसके चार पत्ते (फूलकी पँखड़ियाँ नहीं) स्वच्छ पानीमें साफ करके प्रातः खाली पेट चबानेसे, फिर दो घूँट पानी पीनेसे कुछ ही दिनोंमें स्थायी लाभ हो सकता है। बच्चोंको सदाबहारके पत्ते एक औंस पानीमें रगड़कर दिये जा सकते हैं।

४-बेल—बेलकी दस-पंद्रह पत्तियाँ पानीमें घोटकर (सम्भव हो तो पाँच-पाँच नीम और श्यामा तुलसीकी पत्तियाँ भी साथमें पीस लें) कपड़छान करके पीना शुरू कर दें तो मधुमेहसे छुटकारा मिल जायगा। क़ब्ज़की प्रवृत्ति तथा प्यासकी अधिकतावाले रोगीको बेलपत्र विशेष लाभकारी होते हैं।

५-गेंदाकी ताजी हरी पत्तियाँ—गेंदाकी ताजी पत्तियोंको सिलपर पीस लें, आधा गिलास रस निकालकर छानकर प्रातःकाल पी लें। इसमें शुद्ध शहद मिला दें। यह मिश्रण हाई ब्लडप्रेशर, मधुमेह, अल्सर, बवासीर और आँखोंके रोगोंमें हितकारी रहता है।

६-मधुमेहकी परीक्षित औषधि जवाफूल—अड़हुल (जवा)-के फूलकी दस कलिका रोगी सबेरे खाली पेट चबाकर खा जाय। ऐसा एक सप्ताह (या पुराना रोग हो तो एकसे डेढ़ महीना) करे। पेशाबमें शर्करा आना बंद हो जायगा।

विबन्ध या कोष्ठबद्धता

(वैद्य श्रीजगदीशप्रसादजी खन्ना)

मेरे एक अध्यापक जो वियनामें पढ़ते थे, उन्होंने बताया कि उस देशके निवासी जो मेरे सहपाठी थे, वे शौचके लिये सप्ताहमें केवल एक बार जाते थे। वे लोग मेरे साथ रातमें शयन करते थे, परंतु मेरे प्रातःकाल उठनेके घंटोंबाद उठकर भी मुझसे पहले कक्षामें पहुँच जाते थे और मुझे प्रायः विलम्ब हो जाता था; क्योंकि प्रातःकालके शौचाचारादिमें समय लग जाता था। नित्य शौच जानेपर भी मैं उन लोगों-जितना स्वस्थ भी नहीं था। यह सही है कि वियना और वाराणसीकी भौगोलिक स्थिति एक-सी नहीं है और वहाँके निवासियोंके आहार-विहार यहाँसे भिन्न हैं, परंतु क़ब्ज़के सम्बन्धमें यह भी एक विचारणीय तथ्य है। उस देशकी परम्परा ही तदनुरूप है और उसी परम्पराके अनुसार वहाँके निवासियोंमें ऐसी मानसिकता है कि सप्ताहमें केवल एक बार शौच जाना ही सर्वोत्तम स्वास्थ्यका लक्षण है। वे इसी शौचविधिमें प्रसन्नचित्त हैं, स्वस्थ हैं और कुशलपूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

भारतमें लोगोंकी मानसिकता भिन्न है। वे नित्य दो बार या तीन बार शौच जाना ही उचित मानते हैं और यदि उनका मलत्याग नियमितरूपसे सम्पन्न नहीं होता है तो वे रेचक दवाका सेवन करते हैं।

इस सम्बन्धमें जनमानसकी यह धारणा है कि यदि नित्य नियमितरूपसे दो या तीन बार मलका त्याग न होगा तो उन्हें अनेक कष्ट होंगे, भोजनमें अरुचि होगी, शरीर सुस्त रहेगा, पेट भारी रहेगा आदि-आदि। कभी-कभी तो मनुष्यमें यह विचार भी उठने लगता है कि नियमित शौच न होनेके कारण ही उन्हें अमुक रोग सता रहा है और शौच हो जानेसे उनका रोग ठीक हो जायगा, यद्यपि यह बात कुछ अंशमें ठीक है। परंतु आयुर्वेदमें एक सूत्र है कि—

मलायत्तं बलं पुंसां बलायत्तं हि जीवनम्।

अर्थात् मलके आश्रित शरीरका बल है और बलके आधारपर जीवन स्थित है। यदि मल (पुरीष, मूत्र, स्वेद)-का क्षय होगा तो जीवन (जीवित रहनेका)-का क्षय होगा। इन मुख्य तीन मलोंके धारणसे शरीर शक्तिशाली होता है और यदि इनके धारणकी शक्तिका नाश होगा तो जीवनका भी सद्यः नाश हो जायगा। यथा विषूचिका—हैजा (CHOLERA) -में सद्यः मृत्युका होना मलक्षय ही कारण है।

आयुर्वेदमें दूसरा सूत्र है कि—

मलाभावाद् बलाभावो बलाभावादसुक्षयः।

अर्थात् मलके क्षयसे बलका क्षय होगा और

बलके क्षयसे प्राणका अन्त होगा।

कारण—क़ब्ज़का कारण पित्तकी विकृति है। पित्तकी उत्पत्तिकी मात्रा अल्प होनेसे भोजनका पाचन नहीं होता और भोजनके न पचनेपर भोजनमें आमत्व उत्पन्न होता है। आमयुक्त भोजनका उत्तम विश्लेषण नहीं होता और अविश्लेषित भोजन आँतोंमें चिपकता है, ग्रहणीकी शक्तिको क्षीण करता है, आँतोंकी सामान्य गतिके अवरुद्ध हो जानेसे विबन्ध उत्पन्न होता है।

पित्तकी मात्रामें अल्पताका कारण शरीरमें आलस्य या अरामतलबी है। आप जितना शारीरिक परिश्रम करेंगे, उसी अनुपातसे पित्तकी उत्पत्ति होगी। इस हेतु परिश्रम ऐसा होना चाहिये, जिसमें भरपूर पसीना आये और श्वास-प्रश्वास तेज हो। ऐसी क्रियासे रक्तकण (R.B.C) टूटते हैं और यकृत्में छनकर पित्तको बनाते हैं। यकृत् (Lever) -में पित्तकी मात्रा अधिक होनेपर यह स्वाभाविकरूपसे यकृत्से बाहर आकर भोजनको उत्तम प्रकारसे पचाता है। साबुनके रूपमें बना यह उत्तम पदार्थ आँतोंको इस तरह निर्मल कर देता है जैसे साबुन कपड़ेको साफ करता है। अत: आँतोंके लिये पित्त ही उत्तम साबुन है। बचपनमें परिश्रमकी क्रिया अधिक होती है, अत: बचपनमें क़ब्ज़ कम होता है। यौवनावस्थामें परिश्रम कुछ शिथिल पड़ता है तो क़ब्ज़ ज्यादा होता है और वृद्धावस्थामें परिश्रम अत्यन्त शिथिल होता है अत: क़ब्ज़ बहुत अधिक होता है। जो व्यक्ति इस तथ्यको समझकर सामर्थ्यानुसार परिश्रम करते रहते हैं उनका जीवन सुखी रहता है।

परिश्रमके अतिरिक्त खट्टे भोज्य पदार्थ, सेंधा नमक और मिरचा, काली मिर्च यदि भोजनके साथ लिया जाय तो परिश्रमके गुणमें सोनेमें सुगन्ध-जैसा लाभदायक होता है। कटु, अम्ल और लवणको आग्नेय कहा गया है।

क़ब्ज़के अन्य कारणोंमें कई रोग भी हैं। ज्वरकी अवस्थामें पाचनक्रियाका ह्रास होता है, अत: आँतोंमें स्थित भोजन सूख कर क़ब्ज़ पैदा करता है। पित्ताशय और पित्तवाहिनी शोथ (Holits, Holangitis), पाण्डु (Analmia), कामला (Jaundice) आदि यकृत्के रोगोंमें उग्र प्रकारका विबन्ध होता है। आन्त्रकृमि (Worms) और रक्तचापवृद्धि (High blood presure) आदिमें भी क़ब्ज़ होता है।

पाचनसंस्थानमें मुखसे प्रारम्भ कर क्रमशः पेट, ग्रहणी, छोटी आँत, बड़ी आँत, मलाशय या गुदा आदिमें विकृतिके कारण उन अङ्गोंके स्रावमें ह्रास होता है तो भी क़ब्ज़ उत्पन्न होता है।

क़ब्ज़के लक्षण—यदि एक दिन-रात बीतनेपर मलत्यागका वेग न हो तो उसे क़ब्ज़ कहा जा सकता है। इसके साथ अन्नमें अरुचि, उदरमें भारीपन, बार-बार अपानवायुका निकलना, मूत्रत्यागका बार-बार वेग होना इत्यादि क़ब्ज़के लक्षण हैं। क़ब्ज़के कारण मनमें मलिनता रहती है। साहस तथा उत्साह नहीं होता। आलस्य होता है।

निवारण—(१) सर्वप्रथम पाचनसंस्थानके प्रत्येक अङ्गपर ध्यान देना चाहिये। मुखमें दाँत स्वस्थ हैं और भोजनकी चर्वणक्रिया सामान्य है या नहीं। भोजनके उचित चर्वणसे भोजनमें लालास्रावका पर्याप्त मिश्रण होता है तो क़ब्ज़ नहीं होता। पर्याप्त चर्वण करनेसे भोजनमें लालास्रावकी क्षारीयता भोजनको जलीय घोलमें परिणत कर देती है और भोजन फलके रसके समान स्वादिष्ठ तथा सुपाच्य हो जाता है। क़ब्ज़ दूर करनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। पुन: आमाशयपर ध्यान देना चाहिये। भोजन आमाशयमें पाँच या छ: घंटेमें पचता है। इस अवधिमें प्यास लगनेपर शुद्ध पेय जलको उबालकर गुनगुना पीना चाहिये। इसके अतिरिक्त छ: घंटेतक कोई भी वस्तु कदापि नहीं खानी चाहिये। पान, चाय आदि भी क़ब्ज़ पैदा करते हैं। उदाहरणार्थ—आपने एक पात्रमें दाल पकानेको दालमें जल मिलाकर आगपर रखा। दाल पकनेमें लगभग दो घंटे समय लगते हैं, परंतु यदि पकती हुई उस दालके पात्रमें हर १५ मिनटपर बार-बार थोड़ी-थोड़ी दाल डालते जायँगे तो पहलेकी दालके साथ मिलकर बार-बार डाली गयी दाल पहली दालको न पकने देगी और न आप पकेगी। पाक भ्रष्ट

हो जायगा। उसी प्रकार पेट भी एक पात्र है, उसमें एक बार पकनेको रखे भोजनमें पाँच या छः घंटेके बीच जलके अतिरिक्त अन्य कुछ भी डालनेसे क़ब्ज़ होगा। आमत्व उत्पन्न होगा और पाक बिगड़ जायगा। अस्तु भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिये और भोजनके बाद थोड़ी देर विश्राम करना चाहिये। लगभग छः घंटेतक उबले जलके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं लेना चाहिये। भोजनके पच जानेपर सामान्यतः सात या आठ घंटे बाद दूसरी बार भोजन करना चाहिये। भोजनके उपरान्त दिनमें शयन करना अनुचित है। इससे जुकाम-नजला होनेका डर रहता है। भोजनके बाद दिनमें आरामसे टहलते-घूमते अपना कार्य करनेवालेकी आयु लम्बी और रोगरहित होती है। रात्रिभोजन करनेके बाद प्रायः दो-तीन घण्टेतक शयन नहीं करना चाहिये। इस बीच टहलना-घूमना सर्वोत्तम है अथवा अपनी रुचिके अनुसार सद्ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये। रात्रिमें शयनकाल छः या सात घंटे होना चाहिये और प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व आसमानमें उषःकिरणोंके फैलते समय घरसे बाहर शुद्ध वायुवाले खुले मैदानमें टहलना चाहिये। ऐसी मान्यता है कि प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर सूर्योदयसे पूर्व एक घंटातक अपनी शक्तिके अनुसार तेजीसे खुली हवामें उत्तम पवित्र स्थान यथा—नदीतट, उत्तम राजमार्ग या विस्तृत उपवन आदिमें टहलनेसे विबन्ध दूर होता है।

२. क़ब्ज़में लाभके लिये उषःपान करना चाहिये। व्यक्तिकी अपनी प्रकृतिके अनुसार अनुकूल पड़े तो यह भी क़ब्ज़को दूर करता है। ताम्रपात्रमें रखा हुआ रात्रिका जल उषःकालमें इच्छानुसार शयनसे उठते ही शौचादिसे पूर्व लेनेकी विधि है।

३. विबन्धका एक बड़ा कारण अजीर्ण है। अतः खूब जोरकी भूख लगनेपर ही भोजन करना चाहिये और तृप्तिसे पूर्व ही भोजन समाप्त करना चाहिये।

४. रात्रिमें शयनके पूर्व उबला हुआ गरम पानी पीनेसे विबन्ध दूर होता है।

५. तेलरहित सूखे मेवे तथा किशमिश, मुनक्का, अंजीर, खजूर, छुहारा आदिका सेवन विबन्धनाशक है।

६. ताजे तुरंत तोड़कर मिलनेवाले सभी ऋतुफल आम, जामुन, अमरूद, सेब, अनार, सन्तरा, पपीता, मौसम्मी, नीबू, आँवला, केला, चीकू, शरीफा तथा बेल आदि फलोंको खानेसे क़ब्ज़ नष्ट होता है। हफ्तोंतक तोड़कर रखे फल उचित लाभ प्रदान नहीं करते।

७. ऋतुओंमें मिलनेवाली साग-सब्जियोंका प्रयोग करनेसे भी पाचन उत्तम होता है और क़ब्ज़ समाप्त हो जाता है।

८. कई घंटोंतक बैठकर लगातार कार्य करनेसे भी विबन्ध होता है, अतः एक घण्टा काम करनेके पश्चात् पाँच मिनटतक टहलना, घूमना और मन बहलानेसे मानसिक शक्ति बढ़ती है, क़ब्ज़ नहीं होता और अर्श, बवासीर (Piles) नहीं होते।

९. योगासन तथा प्राणायाम विबन्ध नाश करनेमें आश्चर्यजनक लाभ करते हैं। आसनोंमें सर्पासन, धनुरासन, ताडासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, चक्रासन, सर्वाङ्गासन आदि उत्तम हैं। उत्तम स्थानपर बैठकर लम्बी गहरी श्वास अंदर लेने और बाहर निकालनेसे भी लाभ होता है।

१०. तनावकी स्थिति (Stress)-में किया हुआ भोजन अजीर्ण पैदा करता है और पोषणके विपरीत कुपोषण, विषाक्तता उत्पन्न करता है। कहा भी है कि—

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन
लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानं
अन्नं न सम्यक्परिपाकमेति॥

अर्थात् ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, शोक, दैन्य, प्रद्वेष आदि मानसिक तनावकी स्थितिमें किया भोजनका सम्यक् परिपाक (पाचन) नहीं होता।

११. अन्तमें विबन्धकी दवाका प्रश्न होता है। आयुर्वेदशास्त्रमें क़ब्ज़के लिये शताधिक औषधियाँ हैं और इनके निर्माणका आधार वनस्पतियोंके दूध, जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल हैं। प्राचीन कालमें इन द्रव्योंका कषाय (काढ़ा या जोशाँदा) प्रातःकाल लिया

जाता था। आधारभूत इन छः द्रव्योंमें लवणरसको छोड़कर बाकी पाँचों रसों— मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषायका ग्रहण किया गया है। रोग और रोगीकी प्रकृतिके अनुसार इनके चार भेद किये गये हैं। सबसे मृदु प्रभाव और लाभ देनेवाले श्रेणीके द्रव्योंको अनुलोमन द्रव्य कहते हैं, इनमें उदाहरणस्वरूप हरीतकी (हरड़ या हर्रे छोटी या बड़ी)-की गणना है। तदुपरान्त द्रव्य क्रमशः तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम कहलाते हैं। यथा तीव्र द्रव्यमें अमलतास फलका गूदा, तीव्रतरमें कुटकी और तीव्रतम (Brisk purge)-में त्रिवृत (निशोथ) है। उदाहरणके लिये ऊपर प्रत्येक वर्गके एक-एक द्रव्य ही लिखे गये हैं, परंतु इन वर्गोंमेंसे प्रत्येक वर्गके द्रव्योंमें प्रायः दूध, जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल हैं। अतः रोग और रोगीकी प्रकृतिके अनुसार किसी अनुभवी विद्वान् वैद्यसे परामर्श करके उनके निरीक्षण और निर्देशनमें क़ब्ज़ नष्ट करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। प्राचीन महर्षियोंके मतसे यावत् जड़ी-बूटियोंमें दस्तावर गुण रहते हैं, परंतु चिकित्सक अपनी बुद्धि और युक्तिके अनुसार प्राप्य द्रव्यका प्रयोग कर क़ब्ज़को नष्ट कर देता है।

क़ब्ज़की उत्पत्तिका मुख्य कारण उदरमें रूक्षता (खुश्की) है और दस्तावर दवाके देनेसे प्रायः रूक्षता बढ़ती है। अस्तु, दस्तावर दवा देनेके पहले उदरको चिकना करना उचित है। आयुर्वेदके मतानुसार पुरुषको स्नेहसारवान् और उसके प्राणोंको स्नेहभूयिष्ठ कहा गया है, अतः पुरुषके सारे रोग स्नेहके द्वारा अच्छे किये जा सकते हैं, यथा—'**स्नेहसारोऽयं पुरुषः प्राणाश्च स्नेहभूयिष्ठाः स्नेहसाध्याश्च भवन्ति।**' (सु०चि० ३१। ३)

इस दृष्टिसे क़ब्ज़के रोगीको एक-दो या तीन दिनतक नित्य रात्रिमें एक (टेबल स्पून) चम्मच उत्तम एरण्डका तेल (रेड़ीका तेल) थोड़े गरम दूधमें मिलाकर शयनके पूर्व लेकर शयन करना चाहिये। रात्रिमें जब जोरकी नींद आने लगे तब पीकर सोना चाहिये और कोष्ठ शुद्ध होनेपर विरेचनका प्रयोग करना चाहिये।

एक उत्तम योग—बैतरा सोंठ, छोटी पिप्पली, हल्दी, वायविडंग, वच, छोटी हरड़ प्रत्येकका समभाग लेकर चूर्ण बना ले। चूर्णका १/६ भाग नमक और सभी छः द्रव्योंके समान उत्तम गुड़ मिलाकर गोली बनावे और एक आँवलाकी मात्रामें शयनसे पूर्व नित्य रात्रिमें तीन दिन, पाँच दिन या सात दिनतक लेना चाहिये। दिनमें उत्तम यवसे निर्मित खाद्यका भोजन (एक बार) करना चाहिये। (च०चि० १)

अथवा हरे आँवले और मूँगके साथ जल और अल्पस्नेहसे पकाये हुए बिना नमकवाले भात (चावल)-को घृत मिलाकर दिनमें एक बार भोजन करना चाहिये। (सु० चि० २७)

अन्य योग—वर्तमान समयमें अगणित दस्तावर दवाइयोंका प्रचार किया जा रहा है, परंतु बिना समझे, प्रचारके आधारपर इनका प्रयोग हानिकर पाया जा रहा है। अस्तु, किसी भी दस्तावर दवाका प्रयोग प्रचारके आधारपर कदापि नहीं करना चाहिये, प्रत्युत किसी विद्वान् एवं अनुभवी चिकित्सकके परामर्शके अनुसार करना चाहिये। कुछ निरापद द्रव्योंमें ईसबगोलकी भूसी, चैती गुलाबकी पत्ती, अमलतास वृक्षके फूल, आँवलेका मधुर पाक, घृतकुमारीका गूदा, घीमें तली छोटी हर्रे, रेड़ीके तेलमें तली छोटी हरड़े, मुनक्का, गरम पानी आदि हैं। महर्षि सुश्रुतकी निम्न उक्ति अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है—

दीप्तान्तराग्निः परिशुद्धकोष्ठः
प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः ।
दृढेन्द्रियो मन्दजरः शतायुः
स्नेहोपसेवी पुरुषो भवेत्तु॥

(सु०चि० ३१। ५६)

अर्थात् स्नेहद्रव्योंका नित्य सेवन करनेवाले पुरुषकी जठराग्नि प्रबल रहती है, कोष्ठ शुद्ध रहता है, रसादि धातु, बल, वर्ण सदा नूतन रहते हैं, इन्द्रियाँ दृढ़ रहती हैं, बुढ़ापा देरमें आता है और आयु सौ सालकी होती है।

क़ब्ज़—कारण और निवारण

(डॉ० श्रीसीतारामजी साहू)

सामान्यतः ग्रहण किये गये आहारके पाचन एवं अवशोषणके बाद अवशिष्ट पदार्थ (मल) शरीरसे बाहर निकल जाना चाहिये। यदि ऐसा नहीं हो तो अवरुद्ध मल क़ब्ज़का कारण बन जाता है।

अव्यवस्थित तथा अनियमित आहार-विहारके परिणामस्वरूप आँतोंकी स्वाभाविक शक्ति नष्ट हो जाती है। वे दुर्बल हो जाती हैं और आहारके पाचन एवं मल-विसर्जन दोनों ही कार्योंमें बाधा उत्पन्न हो जाती है। बड़ी आँतको साफ रखनेमें सहयोगी साग-सब्जी तथा फलोंका उपयोग न करना, अति अल्प उपयोग करना या विकृत करके उपयोग करना, आलू, धुली दालें, चर्बीयुक्त या मैदेके बने खाद्य पदार्थ बिस्किट, ब्रेड आदिका सेवन, पक्वान्न, मिठाई, चाय, कॉफी आदिका उपयोग, शारीरिक श्रमका अभाव, चिन्ता, भययुक्त जीवन, तिल्ली-लीवरका विकार, शौचकी प्रेरणाको रोकना, अति आहार, इन्द्रियसंयमका अभाव, पानीकी कमी, भोजनमें जल्दबाजी, देरसे सोना तथा जागना, अप्राकृतिक, संश्लेषित तथा अपरिशोधित आहार ग्रहण करना—आदि क़ब्ज़ पैदा करनेवाले मुख्य हेतु हैं।

लक्षण—मलत्यागमें कठिनाई, सिरदर्द, घबराहट, बेचैनी, पेटमें वायुका प्रकोप, अपच, भूख कम हो जाना, शरीरमें ठण्डकी अनुभूति, चक्कर आना, हमेशा थकानका अनुभव करना, सुस्ती, कमरदर्द, मुँहमें छालोंका पड़ना, कभी-कभी हृदयकी धड़कनमें अनियमितता आदि क़ब्ज़के लक्षण हैं।

क़ब्ज़के दुष्परिणाम—प्राय: अधिकांश रोगोंका कारण आँतोंमें एकत्रित सड़ा मल है। इसमें स्त्रियोंमें होनेवाले मासिक धर्म-सम्बन्धी रोग, पुरुषोंमें स्वप्नदोषसे लेकर गम्भीर तथा घातक रोग गठिया, धमनीकाठिन्य तथा कालोनीक कैंसर आदि शामिल हैं।

गलत किये गये उपचारसे हानियाँ—बड़ी आँतकी सफाईके लिये विरेचक दवाइयोंका प्रयोग लाभदायक होनेकी अपेक्षा हानिकारक अधिक है। ये विरेचक दवाइयाँ आँतकी मांसपेशियोंको कमजोर बना देती हैं तथा क़ब्ज़ पीछा नहीं छोड़ता।

चिकित्सा

१. रोगनिवारक आहार—(क) प्रात:कालीन हलके भोजनके रूपमें—मौसमी फल—जैसे अमरूद, खीरा, ककड़ी, नाशपाती, पपीता, खरबूजा इत्यादि अथवा अंकुरित मूँग तथा मौसमकी सब्जियों और सलादका सेवन करना चाहिये या बीस मुनक्का, तीन सूखी अंजीर, तीन खुरमानी रात्रिमें धोकर भिगोयी हुई प्रातः खाये और उसके पानीको नीबूरस मिलाकर पी ले।

(ख) **दोपहर-भोजन**—मोटे आटेकी रोटी तथा एक पाव उबली हरी सब्जी एवं सलाद ले।

(ग) **रात्रि-भोजन**—मोटे आटेकी रोटी तथा एक पाव उबली हुई हरी सब्जी एवं फल (यदि सम्भव हो तो) ग्रहण करे।

२-यौगिक उपचार—व्यायाम तथा योगासनोंके यथोचित प्रयोगसे भी क़ब्ज़को दूर किया जा सकता है।

३-आवश्यक सावधानियाँ तथा सुझाव—(क) शौचकी प्रेरणा या इच्छा न होनेपर भी प्रात:काल उठते ही पानी पीकर शौच अवश्य जायँ।

(ख) दिनभरमें दस-बारह गिलास पानी अवश्य पीयें। सुबह उठते ही, भोजनके आधा घंटे पहले, भोजनके दो घंटा बाद तथा शेष समयमें प्रत्येक घंटामें एक-एक गिलास पानी पीयें।

(ग) खूब अच्छी तरह चबाते हुए धीरे-धीरे शान्तिसे भोजन किया जाय। इसमें तीस-चालीस मिनट अवश्य लगना चाहिये।

(घ) आहार निर्धारित समयपर एवं उपयुक्त मात्रामें लिया जाय, जिससे अगले भोजनके समयमें स्वाभाविक भूख लगने लगे।

(ङ) क़ब्ज़के साथ ही यदि उच्च रक्तचाप हो तो यौगिक आसनोंको न करे।

(च) भोजनके लिये गेहूँके बारीक आटे (मैदा)-के बदले मोटा आटा (सूजीके आकारका) पिसवाये तथा दो-तीन घंटा पहले गुँथवाकर रोटी बनवाये। इससे रेशाकी मात्रा छः गुना, विटामिन-बी चार गुना तथा खनिज पदार्थकी मात्रा चार गुनासे भी ज्यादा मिलती है। फलस्वरूप शरीरकी सफाई एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता पैदा करनेमें सहयोग मिलता है और क़ब्ज़ नहीं होने पाता।

क़ब्ज़से बचें—सुखसे रहें

(डॉ० श्रीश्यामसुन्दरजी भारती)

कब्ज़ होना, मल या टट्टी साफ नहीं होना एक साधारण रोग है, पर यह सारे संसारमें फैला हुआ है। क़ब्ज़ सभी रोगोंका मूल कारण है। इसके प्रति लापरवाही बरतनेसे नाना प्रकारके रोग हो जाते हैं। हमारे शास्त्रोंमें इस विषयमें लिखा गया है—'**सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः**' अर्थात् सभी रोगोंका कारण मलका कुपित होना ही है।

क़ब्ज़ होनेका प्रधान कारण है—अनुचित खान-पान तथा रहन-सहन। इनके अतिरिक्त और भी कारण हैं, जैसे—शौचके वेगको रोकना, पानी कम पीना, शीघ्रतापूर्वक भोजन करना, समयपर भोजन नहीं करना, बिना पूरी तरह चबाये भोजन करना, भूखसे अधिक भोजन करना, गरिष्ठ भोजन करना, नींदकी कमी और मानसिक चिन्ता आदि।

क़ब्ज़ नहीं रहे इसके लिये पहला काम है सूर्योदयसे पहले उठकर एक-दो गिलास पानी पीना। इसे उषःपान कहते हैं। इसके बाद कुछ देर टहलना और शौच जाना, भोजन समयपर करना और खूब चबाकर करना क़ब्ज़ियत दूर रखनेके लिये आवश्यक है। दोपहरके भोजनमें चोकरसहित आटेकी रोटी, हरी सब्जी, कच्चा सलाद और मट्ठा लेने चाहिये। तली-भुनी चीजें न खायँ। मैदाकी बनी चीजें कभी न खायँ। भोजन हलका, सुपाच्य और संतुलित हो इसका ध्यान रखे। तीसरे पहर कोई मौसमी फल खाना चाहिये। रातका भोजन सोनेके कम-से-कम दो घंटे पहले अवश्य कर ले। भोजन करते समय या भोजनके तुरंत बाद पानी न पिये। सोते समय एक गिलास गरम दूध पीना चाहिये। जिन्हें दूध हजम नहीं होता या सुलभ न हो, उन्हें एक गिलास पानी पीना चाहिये। इस प्रकारकी दिनचर्यासे क़ब्ज़ नहीं होगा। क़ब्ज़ न रहना सुखी जीवनका प्रथम सोपान है।

कभी क़ब्ज़ हो जाय तो उसे दूर करनेके कुछ उपाय यहाँ प्रस्तुत हैं, उन्हें काममें लिया जा सकता है—

बेल क़ब्ज़का सबसे बड़ा शत्रु है। चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठमें पके बेल आते हैं। जो पके बेलका सेवन करते हैं, उन्हें क़ब्ज़ कभी नहीं होता। अन्य महीनोंमें कच्चे बेलका मुरब्बा खाना चाहिये। बेलका गूदा पेटमें जाते ही आगे बढ़ने लगता है और आँतोंमें चिपके मलको धकेलकर मलाशयमें पहुँचा देता है। शौच महसूस होते ही मल सरलतासे बाहर निकल जाता है।

क़ब्ज़ दूर करनेमें भुने चनेका सत्तू बहुत सहायक है। प्रातः-सायं पचास ग्राम सत्तू पानीमें घोलकर पिये। गुलाब-फूलकी पत्तियोंसे बना गुलकन्द पचीस ग्राम खाकर एक गिलास गरम दूध सोते समय पी ले—क़ब्ज़ दूर होगा।

क़ब्ज़ दूर करनेमें ईसबगोलकी भूसीकी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। एरण्डतेल (रेंड़ीका तेल)-में सेंकी हुई छोटी हर्रेको महीन पीस ले और ईसबगोलकी भूसी बराबरमात्रामें डालकर मिला ले। इस मिश्रणको एक या दो चम्मचकी मात्रामें मुँहमें डालकर ऊपरसे एक गिलास पानी पी ले। यह काम रात्रिमें सोते समय करे। प्रातः मल सुगमतासे बाहर निकल जायगा।

नित्य योगासन करे, क़ब्ज़ नहीं रहेगा। योगासनोंमें पश्चिमोत्तानासन, वज्रासन, उत्तानपादासन, जानुशिरासन और पवनमुक्तासन आदि क़ब्ज़ दूर करनेमें बड़े सहायक हैं।

रोगोंसे मुक्तिका उपाय—विपश्यना

(डॉ० श्रीप्रेमनारायणजी सोमानी भू०पू० निदेशक चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हि०वि० विद्यालय, वाराणसी)

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये तो हम शारीरिक व्यायाम करते हैं, परंतु मनको स्वस्थ रखनेके लिये कुछ नहीं करते। हमारा मन जब प्रदुष्ट होता है तो मनोरोग उत्पन्न होते हैं। मनको सर्वविध स्वस्थ और मनोविकारोंसे स्थायी रूपसे विरत रखनेकी कुंजी है—'**विपश्यना**', जिसकी जड़ें तो भारतकी हैं, पर यह विद्या विदेशोंमें पल्लवित एवं पुष्पित होती रही है।

'**विपश्यना**' ध्यान आध्यात्मिक साधनाकी एक विधि है, जो मनुष्यके आचरणको सुधारकर उसको स्वस्थ-जीवन जीनेकी कला सिखाती है। प्राचीन युगमें ऋषि-मुनियोंने आध्यात्मिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे जिस सात्त्विक जीवनपर बल दिया, वह सब कुछ विपश्यनासे सहज सुलभ है। नयी पीढ़ीमें कुछ मिथ्या धारणा बन गयी है कि ऐसी आध्यात्मिकताकी ओर केवल वे बूढ़े व्यक्ति अग्रसर होते हैं, जिन्हें समय बिताना कठिन होता है। जवानीमें ये सब बातें निरर्थक लगती हैं। अभी तो मनोरंजन, कमाई और समाजमें स्थापित होनेके दिन हैं। मृत्यु परम सत्य होते हुए भी बड़ी दूर दिखायी देती है। कोई मरना नहीं चाहता, उसके विषयमें सोचना भी नहीं चाहता। उसके विषयमें न सोचनेके तरह-तरहके उपाय खोजता है, ताकि उसे भूला रहा जा सके। फिर जब व्याधियाँ—बीमारियाँ शरीरपर दस्तक देने लगती हैं और सारी चिकित्सा-पद्धतियाँ उसे दूर करनेमें नाकामयाब रहती हैं। मृत्यु साक्षात् सिरपर खड़ी दिखायी देती है, तब जीनेकी लालसा और बढ़ती है। तब वह रहस्यमयी आध्यात्मिक शक्तियों और क्रियाओंकी खोज करता है। शायद उससे कोई राहत मिले—दवाइयोंसे छुटकारा मिले।

प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक साधना क्या रोगोंको ठीक करनेमें मदद करती है? प्राकृतिक चिकित्साकी मान्यता है कि ईर्ष्या-द्वेषके बाहुल्यसे तनाव बढ़ता है और मनुष्यमें बुढ़ापेके लक्षण कम उम्रमें ही आ जाते हैं। क्रोध तनावका कारण है और कुण्ठाका सम्बन्ध 'हार्ट-अटैक' एवं ब्लडप्रेशर या पेप्टिक अल्सर (गैस्ट्रिक)-जैसी बीमारियोंसे है। ब्लडप्रेशर कालान्तरमें फालिजका कारण बनता है। भय एवं क्रोध पाचन-क्रियाको खराब करते हैं और संग्रहणीके जनक हैं। अशान्ति और व्याकुलता मधुमेहको बढ़ाती हैं और उसके कारण भी हो सकते हैं। तनाव, बेचैनी, अशान्ति, भय, उदासी और अनिद्रा तो सर्वमान्य मनके रोग हैं ही तथा इन्हें दूर करनेके लिये मनुष्य नशेका सहारा लेने लगता है एवं उसे उससे भी बड़ा रोग नशेका लग जाता है। नशेकी लत चाहे पानमें ज़रदेकी हो, चाहे पान-मसाले, गुटका, खैनी या गुलकी हो, चाहे सिगरेट, बीड़ीकी हो, चाहे भाँग, शराब या अफीमके सेवनकी हो सब तलबपर निर्भर है और तलब शरीरमें होनेवाली संवेदनापर निर्भर करती है। नयी पीढ़ीमें अब पेथेडीन, हिरोइन, मेंड्रेक्स, कोकीन आदि नशेकी लत पड़ती जा रही है। किसी-किसीका तो इनके बगैर जीना दूभर होता दिखायी देता है। तलब हुई कि नशेकी ओर बढ़े और डूबते ही गये। इतनी भिन्न दिखनेवाली सारी बीमारियोंकी जड़ मनके विकार हैं, जिन्हें निर्मूल करनेमें कोई आध्यात्मिक साधना ही मदद कर सकती है। '**विपश्यना**' साधनासे हम विकारसे विमुक्त हो सकते हैं और अन्ततः रोगमुक्त भी। यही इसका वैज्ञानिक पहलू है। आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धतिका भी मानना है कि मानसिक विकारों—जिनमें तनाव, दब्बू व्यक्तित्व, दूसरेपर निर्भरता, हीनताकी भावना, अहंकार, क्षमतासे अधिक महत्त्वाकांक्षा, ईर्ष्या आदि प्रमुख हैं—से अनेक रोग हो सकते हैं, जिन्हें मनोजन्य शारीरिक (साइकोसोमैटिक) रोग कहा जाता है। इसमें प्रमुख हैं—

१-उदर-रोग—गैस, पेटमें जलन, अलसर आदि।

२-फेफड़ेके रोग—दमा।

३-हृदय-रोग—रक्तचाप, हार्ट-अटैक, एन्जाइना।

४-मस्तिष्क-रोग—सिरदर्द, अर्धकपारी, शरीरमें जगह-जगह दर्द।

५-चर्म-रोग—एक्ज़िमा, न्योरोडरपेटाइटिस, सोराइसिस आदि।

मनके विकार ही इन रोगोंके कारण हैं एवं वे ही इनका संवर्धन करते हैं। जब-जब इन रोगियोंके मन शान्त एवं विकाररहित होते हैं तो ये रोग घटने लगते हैं। मानसिक रोग जैसे—तनाव, उदासी, चिन्ता, अवसाद, अनिद्रा, हिस्टीरिया आदि तो मनके विकारोंसे उत्पन्न होनेवाले रोग ही हैं।

'**विपश्यना**' इन भिन्न दिखनेवाले रोगोंको मनमें निर्मलता लाकर ठीक करती है। '**विपश्यना**' में पहले साँस और मन एकाग्र करना बताया जाता है। हम जानते हैं कि मन और साँसका गहरा सम्बन्ध है। भय, क्रोध आदि विकार जागनेपर साँस तेज चलने लगती है और इनके समाप्त होनेपर फिर अपनी सरल, साधारण धीमी गतिपर वापस आ जाती है। साँसमें जब मन केन्द्रित हो जाता है तो उसी क्षण मन विकाररहित होता है। शनैः-शनैः विकार-विहीन रहनेका समय बढ़ता जाता है और इसका प्रभाव सारे शरीरपर पड़ता है। देखा गया है कि हार्ट-अटैकके रोगी यदि साँसपर ध्यान केन्द्रित करें तो उनकी धमनियोंमें जमी चर्बी कम होने लगती है और अवरोध धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है। कम दवाओंपर ही या बगैर ऑपरेशन कराये ऐसा रोगी बिना किसी तकलीफके रह सकता है। डॉक्टर डीन आर्निशने जो आजकल अमेरिकी राष्ट्रपतिके चिकित्सक हैं, इसपर काफी सफल आजमाइश की है और आज सारे संसारमें उनके नामसे हृदयरोगका प्रोग्राम चल रहा है। साँसको देखनेको (आनापानसति) उपचारसे जोड़नेसे उन्हें इतनी ख्याति मिली कि सारे संसारमें आज हार्ट-अटैकको चिकित्सामें 'डीन आर्निश प्रोग्राम' की चर्चा है।

साँसमें एकाग्रता हमारे बाह्यचित्त (Concious mind)-को शुद्ध करती है। इसके बावजूद विकारोंकी जड़ें नहीं निकल पातीं। इनकी जड़ें हमारे अन्तश्चित्त (Unconscious mind)-में हैं जो शरीरमें होनेवाली रासायनिक, विद्युतीय एवं चुम्बकीय क्रियाओंको बराबर जानती रहती हैं और अंधी प्रतिक्रिया करती हैं। समय और परिस्थितियाँ आनेपर विकार फिर सिर उठाने लगते हैं। यही हमारा स्वभाव होता है। यह अंधी प्रतिक्रया ही हमारे सारे विकारोंकी जड़ है। हम शरीरपर होनेवाली इन भिन्न जैव रासायनिक क्रियाओंको संवेदनाके माध्यमसे जानते हैं। संवेदना सदैव होती रहती है। जब भी चित्त एकाग्र होकर शरीरके किसी भागसे सम्पर्क करता है—अनुभव करता है तो संवेदनाएँ महसूस होने लगती हैं। यदि हम संवेदनाओंके प्रति सजग नहीं हैं तो अंधेरेमें ही हैं। सुखद संवेदना हो तो उसे कायम रखने अथवा बढ़ानेकी प्रतिक्रिया और यदि दुःखद संवेदना हो तो उसे तुरंत दूर करनेकी प्रतिक्रिया और यदि असुखद-अदुःखद संवेदना हो तो उससे ऊबकर उसे दूर करनेके लिये द्वेषकी और किसी सुखद संवेदनाको प्राप्त करनेके लिये रागकी प्रतिक्रिया करते हैं। जब हम यह प्रज्ञा (बुद्धि)-पूर्वक जानने लगें तो भोक्ता-भावकी जगह साक्षी-भाव जाग्रत् होगा। भोक्ता-भाव अपने-आप चला जायगा। यह देखा गया है कि जब साक्षी-भाव आ रहा है तो शरीरकी कोशिकाओंमें, आसवोंमें भी परिवर्तन होता है। इसी प्रक्रियासे विकारोंकी जड़ें निकलने लगती हैं और हमें मनोजन्य शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे छुटकारा मिलने लगता है। नशेके शिकार व्यक्तियोंमें देखा गया है कि वे नशेका सेवन इसलिये करते हैं कि शरीरमें एक प्रकारकी संवेदनाकी चाह होती है। यही 'तलब' या आवश्यकता कहलाती है। यह तलब नशेके प्रभावसे शरीरकी कोशिकाओंमें पैदा हुए द्रव्य रसायनसे होती है, जो संवेदनाके रूपमें शरीरपर प्रकट होती है। यदि 'तलब' को साक्षी-भावसे देखें और कोई प्रतिक्रिया न करें तो नशेकी आदत ही छूट जाती है। '**विपश्यना**' का प्रयोग पश्चिमी आस्ट्रेलियामें क्रेयन हाउसमें नशेसे छुटकारेके लिये बड़ी सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके सारे सलाहकार वे भूतपूर्व नशेकी आदतवाले हैं जो विपश्यनाद्वारा नशेकी आदत छोड़ चुके हैं और अब ये नशा करनेवालोंके सम्मुख स्वयं आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी आदत छुड़ानेमें उनकी मदद करते हैं।

'**विपश्यना**' द्वारा मन निर्मल और शान्त होता

है तो मनमें सकारात्मक प्रतिक्रिया ही जागती है और ये प्रवृत्तियाँ असाध्य रोगोंके प्रति साक्षी-भाव जगाती हैं, जिससे रोगोंसे होनेवाली पीड़ा कम होती है। रोगोंको बर्दाश्त करनेकी क्षमता बढ़ती है और चेहरेपर शान्ति एवं मुसकुराहट ही रहती है। रोगोंपर विजय तो इस साधनाका ब्याज ही है, असल तो भव-चक्रसे मुक्ति है। हम जिस किसी भी मानसिकतासे इसकी ओर बढ़ें, लाभ-ही-लाभ है।

विपश्यना-पद्धति

ध्यान चेतनाकी वह अवस्था है, जिसमें विचारोंका सामञ्जस्य स्थापित होकर समस्त अनुभूतियाँ एक ही अनुभूतिमें विलीन हो जाती हैं। ध्यानकी चरमावस्थामें सभी भेद समाप्त हो जाते हैं। संकुचित सीमित आत्मा परमात्मामें कुछ समयके लिये विलीन हो जाता है। ध्यानकी जितनी आवश्यकता आध्यात्मिक जीवनमें है उतनी ही लौकिक जीवनमें भी। शक्तिका प्रयोग अच्छी या बुरी किसी भी दिशामें किया जा सकता है। इसीलिये ध्यानको अध्यात्मके साथ जोड़ना अधिक सार्थक है।

यह मन विचारोंके विशद जालमें अनवरत उलझा रहता है। यहाँतक कि सोते समय स्वप्नमें भी मन विचारोंके जंजालमें भटकता रहता है। मनकी शक्ति निरर्थक विचारोंसे क्षीण होती है। अच्छे विचारोंसे मनकी शक्ति बढ़ती है तथा सुख और शान्तिकी अनुभूति बढ़ती है। आशा, निराशा, उत्तेजना, हर्ष-शोक, मोह, लोभ, राग-द्वेषके विचार सदैव चलते रहते हैं। मनकी ये सब वृत्तियाँ क्लेशकारक हैं। मनकी इन क्लेशकारक वृत्तियोंको ध्यानके द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। ध्यानके अभ्याससे हम अपनी संकुचित परिधियोंसे ऊपर उठ सकते हैं, ध्यानके अभ्याससे मनकी दुर्बलता दूर हो जाती है। परमात्मशक्तिका ध्यान शक्तिके अनन्त स्रोतकी ओर तो अग्रसर करता ही है, प्रबल मानसिक एकाग्रता भी प्राप्त होती है जिससे अनेक कठिन कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। मनके निरर्थक क्रियाकलापोंको नियन्त्रित करके नष्ट कर देना चाहिये। तामसिक, राजसिक वृत्तियोंका नियमन हो जानेपर सात्त्विक वृत्तियाँ दृढ़ होंगी। सभी व्यक्तियोंका मानसिक स्तर एक-सा नहीं होता। मानसिक स्तर तथा साधनामें लगनके अनुसार सफलता प्राप्त होती है।

ध्यानकी विविध पद्धतियोंमेंसे एक विपश्यना-पद्धति भी है। इसका मुख्य भाव है—सतत जागरूक रहकर मनकी गतिविधियोंका अवलोकन करना। अप्रमादसे अभ्यास करते रहनेपर धीरे-धीरे साधककी अन्तर्दृष्टि खुल जाती है। अपार शान्ति प्राप्त होती है। यह सद्यः फलदायक है। इसका अभ्यास करके निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। मनकी शुद्धिके लिये, दुःखों—कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिये, मनकी चञ्चलताका नियमन करके मोक्षप्राप्तिकी अनूठी पद्धति है—विपश्यना-भावनाका सतत अभ्यास।

ध्यानकी विधि

श्वास लेते समय उदरके उठने तथा गिरनेके रूपमें गति होती है। प्रारम्भमें इन गतियोंपर ध्यान देनेका अभ्यास करना चाहिये। अपना ध्यान श्वास-प्रश्वासपर ले जाय। श्वास लेनेसे पेट ऊपरकी ओर उठता है और छोड़ते समय नीचे बैठता है। यदि आरम्भमें उठने और गिरनेकी प्रक्रियाका ठीक-ठीक यथावत् आभास न मिल सके तो पेटपर एक हाथ या दोनों हाथ रखनेसे यह क्रिया स्पष्ट हो जायगी कि श्वास लेनेसे पेट उठता है और श्वास छोड़ देनेसे पेट गिरता है। अब पेटके उठने और गिरनेपर ध्यानको केन्द्रित करे। साधकके लिये ध्यानमें स्मृति, समाधि और ज्ञानको उद्बुद्ध करनेके लिये यह अत्यन्त सरल और परम सहायक क्रिया है। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, श्वास-प्रश्वासके आने-जाने अथवा पेटके उठने-गिरनेका अभ्यास सहज हो जायगा।

विपश्यनाका अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जायगा वैसे-वैसे मनके प्रत्येक भावोंको आप ठीक-ठीक पकड़ सकेंगे। आरम्भमें जबकि स्मृति और समाधि अभी अपरिपक्व है, मनके प्रत्येक भाव तत्काल-ही-तत्काल

पकड़ पाना कठिन प्रतीत होगा। आरम्भमें तो समझमें नहीं आयेगा कि इन्द्रियद्वारोंपर सजग और सावधान रहकर, अप्रमत्त रहकर भावोंको कैसे पकड़ा जाय, परंतु श्वास-प्रश्वासके आने-जानेकी क्रिया तो स्वयमेव निरन्तर चल ही रही है, उसे खोजनेके लिये कहीं बाहर भटकना नहीं है। अतएव सुस्थिर चित्तसे श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेकी प्रक्रियापर ध्यान रखे और खूब गहराईसे—ध्यानसे देखता रहे। हाँ, आने-जाने या उठने-गिरनेपर ध्यान तो रहे, परंतु इन शब्दोंको मुखसे उच्चारण करनेकी आवश्यकता नहीं है। श्वास-प्रश्वासकी या पेटके उठने और गिरनेकी क्रियाको अधिक जाग्रत् या बलवती बनानेके लिये जोर-जोरसे श्वास लेनेकी जरा भी आवश्यकता नहीं है। जोर-ज़ोरसे जल्दी-जल्दी श्वास लेनेपर तुरन्त थकावट आ जायगी। इसलिये आवश्यक है कि साधक सहजरूपमें ही श्वास-प्रश्वासकी छन्दमय गति या पेटके उठने और गिरनेपर ध्यान रखे।

इस प्रकार जब श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर अपना ध्यान जमाये हुए हैं, यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि मन सङ्कल्प, संस्कार, इच्छाएँ, विचार, कल्पनाओंकी भीड़ लगा दे। इन मानसिक क्रियाओंकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वे जैसे ही आयें तुरन्त उसी क्षण उन्हें अवलोकित कर लेना चाहिये, मन-ही-मन उन्हें देख लेना चाहिये। बस, देखनेमात्रसे वे ढह या गल जायँगी, बशर्ते कि उनमें उलझे नहीं। सतत जागरूकता और सावधानी ही इस साधनाका प्राण है। मनपर ज्यों ही ध्यान दिया जाता है, प्रायः यह लुप्त हो जाता है।

यदि आप भावनामें बैठे हुए हैं और श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान लगाये हुए हैं, उसी समय कोई 'कल्पना' आयी, तत्काल मन-ही-मन 'कल्पना आयी, कल्पना आयी' देखें, कोई 'विचार' आया तो मन-ही-मन 'विचार आया, विचार आया' ध्यान करें, यदि 'चिन्तन' आया तो मन-ही-मन ध्यान करें, 'चिन्तन आया, चिन्तन आया', कोई इच्छा जगी तो मन-ही-मन ध्यान करें, 'इच्छा जगी, इच्छा जगी', किसी प्रश्नकी गुत्थी समझमें आते ही 'समझमें आयी, समझमें आयी', मन-ही-मन अवलोकन करें, उनमें उलझें नहीं। मैं विचार कर रहा हूँ, मैं कल्पना कर रहा हूँ, मैं इच्छा कर रहा हूँ—ऐसा नहीं। उसमें अपने 'मैं' को मत सानिये। मेरी कल्पना, मेरा विचार, मेरी इच्छा, मेरी समझ—ऐसा भी नहीं। 'मैं' और 'मेरा' इस प्रक्रियामें उलझें नहीं, फँसे नहीं। तटस्थ होकर आनेवाले विचार, कल्पना, इच्छा, सङ्कल्पको देखते रहें और मन-ही-मन उनके आनेका ध्यान करते रहें। ध्यान करते ही वे या तो ढहकर या गलकर स्वयमेव गायब हो जायँगे और आप अपने साधन-पथपर निश्चिन्त निरापद बेखटके बढ़ते जायँगे। चिन्तनमें धैर्यकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई धैर्यपूर्वक अनुभूतियोंको सहन नहीं कर सकता और बार-बार अपनी मुद्राको बदलता रहता है तो समाधि-प्राप्तिकी आशा नहीं की जा सकती।

चूँकि एक ही आसनसे देरतक ध्यानमें बैठना होता है, यह सम्भव है कि शरीरमें थकानका या अङ्गोंमें 'जकड़नका अनुभव हो। ऐसी अवस्थामें जहाँ थकानका बोध हो रहा है वहाँ ध्यान ले जाकर 'थका, थका' या जकड़न, जकड़न' का ध्यान करे—स्वाभाविक रूपमें न तो बहुत धीरे-धीरे, न झटकेमें। ऐसा करते ही थकान या जकड़नका भाव स्वयं ही धीरे-धीरे गायब हो जायगा। ऐसा भी हो सकता है कि वह थकान या जकड़न बढ़ जाय। ऐसी अवस्थामें साधक चाहने लगता है कि आसन बदल दिया जाय और तब उसे मन-ही-मन अवलोकन करना चाहिये 'चाह रहा हूँ, चाह रहा हूँ' और तब अपना आसन धीरे-धीरे साथ ही प्रत्येक स्थितिका क्रमशः अवलोकन करते हुए शनैः-शनैः बदलना चाहिये। धीरे-धीरे प्रत्येक स्थितिकी बारीक-से-बारीक बातका अवलोकन करना चाहिये। जब अपना आसन बदलकर सुस्थिर बैठना हो तो पुनः श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान जमा दे। यदि शरीरमें कहीं गर्मीका बोध हो रहा हो तो उस स्थानपर 'गरम, गरम' का ध्यान करते ही गर्मी समाप्त हो जायगी। यदि शरीरके किसी भागमें खुजली उठ रही है तो उस स्थानविशेषपर मनको टिकाकर 'खुजला रहा

हूँ, खुजला रहा हूँ' का ध्यान करे, न तो बहुत धीरे-धीरे, न बहुत जल्दी-जल्दी। यदि वैसा करते खुजली अपने-आप मिट जाय तो पुनः श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर अपना ध्यान टिका दें। यदि ऐसा अनुभव हो कि खुजली जा नहीं रही है बल्कि बढ़ती ही जा रही है और असह्य हो रही है तथा वह उसे खुजलाना ही चाहता है तो उसे अपनी इस इच्छाका अवलोकन करे—'चाहता हूँ, चाहता हूँ' और बहुत धीरे-धीरे अपना हाथ उठाकर उस स्थानको खुजला ले। परंतु प्रत्येक स्थितिका सावधानीके साथ ध्यान करते हुए ही हाथ हटा लें। फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान केन्द्रित कर लें।

भावनाके समय यदि शरीरके किसी भागमें दर्दका अनुभव हो रहा हो तो मनको उस स्थानविशेषमें टिकाकर 'दर्द हो रहा है, दर्द हो रहा है, 'पीडा हो रही है, पीडा हो रही है', 'कष्ट हो रहा है, कष्ट हो रहा है', का अवलोकन करे। इसी प्रकार यदि थकानका अनुभव हो रहा है तो 'थका, थका' सिरमें चक्कर आ रहा है तो 'चक्कर आ रहा है, चक्कर आ रहा है।' ऐसा करते ही यह प्रतीत होगा कि दर्द, पीडा या थकान अथवा सिरका चक्कर सब गायब हो गया। ऐसा भी हो सकता है कि दर्द बढ़ जाय तो धैर्यके साथ उसे अवलोकन करते रहें, घबराये नहीं। यदि थोड़ी देर अपनी भावनाको बनाये रहें तो दर्द अवश्य मिट जायगा। परंतु फिर भी यदि दर्द नहीं जा रहा है और असह्य हो रहा है तो वहाँसे ध्यान हटाकर श्वास-प्रश्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जमा दे।

कभी-कभी समाधिमें थोड़ी प्रगति होनेके बाद यह अनुभव होता है कि असह्य पीडा होने लगी है या ऐसा लगता है जैसे दम घुट रहा हो या कोई छूरी चुभो रहा है या सूई चुभो रहा है या शरीरपर छोटे-छोटे कई कीड़े घूम रहे हैं। कभी-कभी जोरकी खुजलाहट होगी, घोर सर्दी या भयंकर गर्मीका बोध होगा। जैसे ही अपना ध्यान-बंद कर दें, ये अनुभव भी अपने-आप ही समाप्त हो जायँगे। परंतु फिर जैसे ही ध्यान करनेपर ऐसे बोध फिर आ जुटेंगे। सच तो यह है कि ये कष्ट-बोध न तो कुछ महत्त्वपूर्ण होते हैं और न कोई बीमारी ही है। ये तो शरीरमें पहलेसे ही विद्यमान रहते हैं। चूँकि हम कई और भी महत्त्वपूर्ण कार्योंमें संलग्न होते हैं, ये छोटे-छोटे दोष छिपे पड़े रहते हैं। ध्यानके समय ये जाग उठते हैं; क्योंकि मनकी शक्ति प्रबल हो जाती है। यदि अपने ध्यानमें संलग्न रहें तो साधक निश्चय ही इन अप्रिय बोधोंपर विजयी होगा और तब फिर ये अपना प्रभाव नहीं डाल पायँगे।

ध्यान जैसे-जैसे प्रगाढ़ होता जायगा तो कभी-कभी गुदगुदीका अनुभव होगा या रीढ़के भीतरसे अथवा सारे शरीरमें एक शीतल धाराके प्रवाहका अनुभव करेगा। यह और कुछ नहीं प्रप्रीतिका प्रवाह है, जो ध्यानकी सफल प्रगतिमें होता ही है। ध्यानमें बैठनेपर हल्की आवाजसे भी चमत्कृत हो जायगा। इसका कारण यह है कि अब स्पर्शानुभूतिका विशेष अनुभव होगा। यदि ध्यानमें शरीरकी स्थिति बदलनेकी इच्छा हो तो बदलनेकी प्रत्येक अवस्थाको मन-ही-मन देखते जायँ और धीरे-धीरे सारी प्रक्रियाके एक-एक गतिविधिका अवलोकन करता हुआ शरीरके अङ्गोंको सुविधानुसार यथारुचि बदल ले। यह बहुत ही धीरे-धीरे होना चाहिये ताकि ध्यानमें उस कारण किसी प्रकारका विघ्न या विक्षेप न आये।

यदि नींद आने लगे तो 'नींद आ रही है, नींद आ रही है'। यदि आँखें झँपकने लगे तो 'झँपक रही हैं, झँपक रही है', ध्यान करे। अपने ध्यानमें एकाग्रता सिद्ध कर लेनेपर महसूस होगा कि नींद या आँखें झँपकनेकी स्थितिका ध्यान करते ही नींद या झँपकी अपने-आप समाप्त हो जायगी और तुरंत एक विचित्र ताजगीका अनुभव होगा। फिर तुरंत श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर अपना ध्यान केन्द्रित कर लें। यदि नींद या झँपकीपर विजय नहीं प्राप्त हो पाये तो भी उसे अपने ध्यानको चालू रखना चाहिये, जबतक कि नींद न आ जाय।

नींदमें किसी प्रकारका चिन्तन या ध्यान सम्भव नहीं है। जागते ही जागनेके प्रथम क्षणसे स्मृतिका

अभ्यास शुरू कर दे—'जाग रहा हूँ, जाग रहा हूँ'। आरम्भमें स्मृतिका अभ्यास करना कठिन होगा—जिस क्षण उसे याद आ जाय तभीसे शुरू कर दे। उदाहरणके लिये जिस क्षण चिन्तनका ध्यान आये, 'चिन्तन कर रहा हूँ, चिन्तन कर रहा हूँ' और फिर वह श्वास आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका दे। आरम्भमें कई बातें छूट जायँगी, परंतु इससे विचलित नहीं होना चाहिये। अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें, अभ्यासमें पूर्णतः तत्पर रहना चाहिये। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, छूट कम होती जायगी और आगे बढ़नेपर अधिक विस्तारमें ध्यान करते रहें।

एक व्यक्ति ज्यों ही कोई ध्वनि सुनता है तो मुड़कर उस दिशामें देखता है जहाँसे ध्वनि आ रही है। यह धीर व्यक्तिके समान व्यवहार नहीं है। एक बहरा व्यक्ति शान्त ढंगसे व्यवहार करता है। वह किसी बात-चीतपर ध्यान नहीं देता; क्योंकि वह उन्हें सुनता नहीं। इसी तरह किसी भी अनावश्यक बात-चीतपर ध्यान नहीं देना चाहिये, न तो किसी बात-चीतको जानबूझकर मन लगाकर सुनना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करना ही एकमात्र कर्तव्य है। देखी-सुनी जानेवाली दूसरी वस्तुओंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनपर ध्यान नहीं देना चाहिये। जब कोई दृश्य दीख जाय तो उसे तुच्छ समझकर टाल जाना चाहिये।

ध्यानमें प्रगति

एक दिन और एक रात इस अभ्यासको कर लेनेके अनन्तर यह अनुभव होगा कि ध्यान विशेष प्रगाढ़ और सघन होता जा रहा है तथा श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान आसानीसे केन्द्रित रह सकता है। यदि बैठनेकी स्थितिमें है तो पेटके उठने-गिरने और अपने बैठनेका भी मन-ही-मन ध्यान करते रहें—उठा, गिरा, बैठा, उठा, गिरा, बैठा। यदि वह लेटे हुए है तो मन-ही-मन ध्यान करे—उठा, गिरा, सोया, उठा, गिरा, सोया। यदि वह इन तीन बिन्दुओंपर एक साथ मनको एकाग्र करनेमें कठिनाईका अनुभव करे तो श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ही ध्यान टिकाये।

जब अपने शरीरकी किसी क्रियापर ध्यान लगाये हुए हैं तो सुनने या देखनेकी क्रियामें संलग्न नहीं होना है। श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जब ध्यान है और उसी समय कहीं कोई दृश्य देखनेकी ओर दृष्टि चली गयी तो तुरंत ध्यान करना चाहिये 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ' और फिर उसे श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति दृष्टिपथमें आ जाय तो 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ', का दो-तीन बार ध्यान कर ले, फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका ले। यदि कोई ध्वनि या शब्द सुनायी दे तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ', का दो-तीन बार ध्यान कर ले और तब श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका ले। यदि जोरकी ध्वनि जैसे—कुत्तेके भौंकने, जोर-जोरसे बोलने, जोर-जोरसे गानेकी ध्वनि सुनता है तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ', दो या तीन बार ध्यान कर ले और तब अपने ध्यानको श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जमा ले। यदि उन शब्दोंको सुननेमें लग जायँगे तो सम्भव है कि उन-उन वस्तुओंमें उलझ जायँ और तब फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान न जम सके। इसी प्रकार मनको क्षुब्ध करनेवाले विकार जन्मते और बढ़ते हैं। यदि ऐसे विचार आवें तो तुरंत दो-तीन बार ध्यान करे—विचार कर रहा हूँ, विचार कर रहा हूँ और फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिकाये।

इस प्रशिक्षणमें कुछ समय लगा चुकनेपर मनमें ऐसा भाव उठ सकता है कि यथेष्ट उन्नति नहीं हो रही है और सुस्तीका भाव आ सकता है। ऐसे समय 'सुस्ती, सुस्ती' की भावना करे। इतना ही नहीं, स्मृति, समाधि और ज्ञानमें पर्याप्त उन्नति उपलब्ध करनेके पूर्व मनमें इस ध्यानप्रक्रियाकी सचाईके बारेमें भी संदेह उठ सकता है। ऐसी स्थितिमें मन-ही-मन भावना करें—'संदेहमय, संदेहमय', कभी-कभी उत्तम परिणामकी आशा-अपेक्षा भी होगी। ऐसे

समय 'आशा कर रहा हूँ, आशा कर रहा हूँ' की भावना करें। कभी-कभी साधनाकी सफलतापर हर्ष और प्रसन्नताका अनुभव होगा, ऐसे अवसरपर 'प्रसन्न, प्रसन्न' की भावना करें। अपने मनकी प्रत्येक अवस्थाको सावधानीके साथ देखते रहें और एक-एकका ध्यान करते रहें। फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका लें। प्रातः जागनेसे रातके सोनेके समयतक साधनाका समय है। इस प्रकार जबतक जागता रहे पूर्णतः सावधान और प्रमादरहित रहे। इसमें किसी प्रकारकी शिथिलता न आने पाये। साधनाके परिपक्व हो जानेपर स्वयं अनुभव होगा कि उसे अब नींदकी जरूरत नहीं है और रात-दिन लगातार साधना चलती रहेगी, अविच्छिन्न और अखण्डभावसे।

इस प्रकार रातों-दिन साधनामें लगा रहे तो ध्यान इतना जाग्रत्, प्रखर और प्रगाढ़ हो जायगा कि विपश्यना ज्ञानकी परम और चरम अवस्थाकी भी उपलब्धि हो जायगी। —श्रीअक्षयबरजी पाण्डेय

संधिवात—कारण और निवारण

(वैद्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी पारिक)

यद्यपि संधिवात एक सामान्य व्याधि समझी जाती है, परंतु इस व्याधिसे पीडित व्यक्ति ही जान सकता है कि यह व्याधि कितनी कष्टदायक है। इसके 'निदान' आदिके विषयमें संक्षिप्त विचार किया जाता है—

संधिवातके निदान—आयुर्वेदने संधिवातको वातव्याधिमें परिगणित किया है। संधिवातमें वायुका प्रकोप विशेषरूपसे होता है। प्रायः आहार-विहारके अनुचित सेवनसे यह रोग होता है। ठंडे, बासी पदार्थका अधिक सेवन, घी-तेल आदि स्निग्ध खाद्य पदार्थोंका अल्प-सेवन, रूक्ष और लघु आहारका अधिक प्रयोग, लगातार लंघन (उपवास) करना, पञ्चकर्मका अनुचित प्रयोग, अधिक रात्रि-जागरण, अति मैथुन, अधिक कूदना तथा तैरना, चलना, व्यायाम आदि चेष्टाएँ उचितरूपसे न करना, चोट लगना इत्यादि संधिवातके कारण बनते हैं। साथ ही मल-मूत्रादि तथा अधारणीय वेगोंका धारण करना, दिवास्वप्न, चिन्ता, शोक, रस-रक्त आदि धातुका क्षय होना आदि संधिवात रोगके मुख्य कारण हैं। इस रोगका सम्बन्ध उपदंश और सुजाक आदिसे भी है।

संधिवातकी सम्प्राप्ति—(१) आयुर्वेदमें बताया गया है कि अनुचित आहार-विहार आदि उपर्युक्त कारणोंसे वायु प्रकुपित होकर शरीरकी सभी संधियोंमें पहुँच कर वहाँके श्लेषक कफकी मात्राको घटा देती है, जिससे संधिवात-व्याधिके लक्षण मिलते हैं।

(२) आधुनिक विज्ञान (Modern Science)-में संधिवातकी विकृति-सम्प्राप्ति (Pathogenesis) इस प्रकार है—

संधियोंमें सायजोवियम नामक स्तरकला होती है, जो एक द्रवका स्राव करती है। यह स्राव संधियोंका स्नेहन करती है। किसी आघात, संक्रमण, प्रतिक्रिया आदिसे उत्तेजित होकर प्रतिक्रियामें सायजोवियम द्रव्य अतिरिक्त द्रवका उत्पादन करता है जो कि शोथकी ओर अग्रसर होता है। कभी-कभी विषाणु या जीवाणु भी संधियोंको प्रभावित करते हैं।

संधिवातके लक्षण—संधिवातसे पीडित आतुर शरीरकी संधियोंको स्पर्श करनेसे और आकुंचन तथा प्रसारण करानेसे वायुकी आवाज आती है। इसमें संधिशोथका लक्षण पाया जाता है। इस संधिशूलमें चलनेमें कठिनाई तथा अल्पकर्मण्यता, आकुंचन और प्रसारण-कर्मके करनेमें वेदना आदि होनेके लक्षण मिल सकते हैं।

संधिवातके रोगीको सर्वप्रथम जुलाब देकर उसकी कोष्ठ-शुद्धि कर देनी चाहिये।

जुलाबके घटक द्रव्य—१५ ग्राम सोंठ तथा जौकुटी बारह घंटे मिट्टीके कुंडेमें २५० ग्राम पानीमें भिगायी हुई बराबर दूधके साथ (समभाग) मिलाकर उबाले। इसमें गुलाबके फूल ३-४ और सनायकी ५-१० पत्ती

उबालकर शेष दूधमात्र रहनेसे कपड़ेसे छानकर रख ले तथा ३० से ४० ग्राम एरंडका तेल और शक्कर मिलाकर गुनगुना पिला दे।

इस जुलाबसे कोष्ठकी शुद्धि एवं आँवकी शुद्धि हो जाती है। इसके उपरान्त भी विबन्ध रहे तो निम्नलिखित घटक दे—

हरड़ तत्त्वक २० ग्राम, सनाय-पत्ती २० ग्राम, रेवंद चीनी ५ ग्राम, सोंठ १० ग्राम, काली मिर्च ५ ग्राम, सौवर्चल ५ ग्राम और सेंधा नमक १० ग्राम। इन सबको कूट-पीसकर चूर्ण बना ले। रात्रिमें सोते समय ३ से ५ ग्राम उष्णोदक (गरम पानी)-से ले। रोगीको क़ब्ज़ कतई न रहने दे।

उपदंश एवं फिरंगजनित संधिवातके रोगियोंके लिये

व्याधिहरण—१ रत्ती, अश्वगन्धा नागोरी —१ $\frac{1}{2}$ ग्राम, चोप चिन्यादि चूर्ण १$\frac{1}{2}$ ग्राम, शुद्ध कुचला $\frac{1}{2}$ रत्ती। ऐसी एक मात्रा प्रात:-सायं (दो मात्राएँ) शहदके साथ चटाये एवं ऊपरसे २५० ग्राम गरम दूधमें १५ ग्राम ब्राह्मी-घृत मिलाकर पिलाये।

भोजन करनेके बाद दोनों समय महारास्नादि काढ़ा १५ मि०ली०, दशमूल—१५ मि०ली० एवं बालारिष्ट १५ मि०ली० और कटेली-पञ्चाङ्ग-अर्क १५ मि०ली०/६० मि०ली० पानीके साथ और १ ग्राम त्रियोदशांश गुग्गुल मिलाकर पिलाये।

संधियोंपर सूजन तथा ललाई अधिक रहनेपर निम्न लेप करे—

शतपुष्पादि लेप—सुवादाना, देवदारु, अर्कदुग्ध, कूठ, हींग और सेंधा नमक समभाग लेकर चूर्ण बनाकर जलमें घोलकर लेप करनेसे संधिवातजन्य शोथ तीन दिनमें घटकर लाभ मिलने लगता है।

अथवा

काली मिट्टी (कुम्हारके घड़ा बनानेकी चिकनी मिट्टी)-२०० ग्राम, पुराना गुड़-५० ग्राम, मेथीदाना-५० ग्राम, आम्बा हल्दी-५० ग्राम—अच्छी तरहसे भिगोकर, पीसकर, मसलकर, हल्के हाथ धीरे-धीरे लेप करे। थोड़ा लेप सूखनेपर गर्म और ठंडी पट्टीका सेंक करे। बृहत् सैन्धवादि तेलकी मालिश करे।

द्वितीय योग—(१) शुद्ध कुचला २ तोला (२० ग्राम), (२) जायफल ३ तोला (३० ग्राम), (३) काली मिर्च ३ तोला (३० ग्राम), आँवला—१ तोला, हरड़ १ तोला, बहेड़ा १ तोला—इन सबको अच्छी तरहसे बारीक कूट-पीसकर घृतकुमारीके रसमें ३ दिनतक घोंटकर १-१ रत्तीकी गोली बना ले। सुबह-शाम १-३ गोलीतक सुषम (शीत-गरम) जलसे दे।

चोपचीनी पाक—१-२ तोला प्रात:-सायं दूधके साथ सेवन करना चाहिये।

भोजन करनेके बाद महारास्नादि १० ग्राम, बलारिष्ट १० एवं दशमूल-काढ़ा १० ग्राम—तीनों ३० ग्राम और ३० ग्राम उष्ण (गरम) जल मिलाकर कटेली-अर्क (पञ्चाङ्ग) २० ग्राम मिलाकर एक-एक ग्राम त्रियोदशा प्रयोगके साथ दे।

शतपुष्पादि-लेप (बृहद्-निघण्टुरत्नाकर)—सुवादाना, देवदारु, अर्कदुग्ध, कूठ, हींग और सेंधा नमक समभाग लेकर चूर्ण बनाकर जलमें घोंटकर लेप करनेसे संधिवातजन्य शोथ तीन दिनमें घटकर लाभ मिलने लगता है और साथमें बृहत् सैन्धवादि तेलकी अच्छी तरहसे मालिश करे। यह प्रयोग अति सरल एवं सुलभ है।

सन्धिवातारिगुटिका—हीरा बोल, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गुग्गुल तथा इसमें अश्वगन्ध-सत्त्व और महारास्नादि-सत् समभाग लेकर दूधमें घोटकर ५० मिग्रा० की गोली बनाकर २-२ गोली दिनमें तीन बार गर्म जलके साथ सेवन करनेसे संधिवातमें लाभ होता है।

उच्च रक्तचाप (हाई ब्लडप्रेशर)-का आयुर्वेदिक उपचार

(स्व० कविराज वैद्य श्रीगोपीनाथजी व्यास)

आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणालीमें 'उच्च रक्तचाप' नामका कोई रोग नहीं है—यह मानना सर्वथा भूल है। इसका वर्णन आयुर्वेदशास्त्रोंमें वातरोगोंके अन्तर्गत आता है। इसका आयुर्वेदिक नाम 'शिरागत वात' है। रक्तवाहिनियों तथा धमनियोंपर रक्तका अधिक दबाव पड़ना और उनका कठोर हो जाना ही 'शिरागत वात' है। शिरा और कोशिकाओंकी दीवारोंपर भी रक्तके अधिक दबावके कारण उच्च रक्तचाप होता है। यह दो प्रकारका होता है—

१. उच्च रक्तचाप या शिरागत वात।

२. न्यून रक्तचाप (लो ब्लडप्रेशर)।

यहाँपर केवल 'उच्च रक्तचाप' पर ही विचार किया जा रहा है।

सम्प्राप्ति—मनुष्यका हृदय लगभग सात तोला रक्त एक बारके संकोचनके समय धमनीमें फेंकता है। इससे पहले भी धमनीमें रक्त पूर्णरूपसे भरा रहता है। धमनीमें अतिरिक्त रक्तके फेंके जानेसे धमनियोंमें दबाव पड़ता है और उनकी दीवारें फैल जाती हैं। यह धमनियोंकी संकुचनशीलताके कारण सम्भव हो सकता है। इस ओर विशेष ध्यान केवल आयुर्वेदमें ही दिया गया है।

दूसरा परिणाम रक्तके कारण धमनियोंमें एक लहर पैदा होती है, जो प्रारम्भमें प्रबल होती है और धीरे-धीरे कोशिकाओंमें पहुँचनेसे पहले अदृश्य हो जाती है। धमनी जितनी कठोर होगी, लहर उतनी ही तीव्र गतिसे चलेगी। जितनी संकुचनशीलता होगी, उतनी ही धीमी गतिसे चलेगी।

उच्च रक्तचापके लक्षण

१. रोगीके सिरमें, विशेषकर सिरके पीछेकी ओर कनपटियों अर्थात् कानके पीछेके भागमें दर्द होता है। यह सिरदर्द कभी कम अथवा कभी अधिक होता है।

२. रोगीको सुबह और शामको चक्कर आने लगता है।

३. हृदयकी गति (चाल) अधिक हो जाती है। हृदयप्रदेशपर दर्द भी महसूस होता है। यह कभी भी हो सकता है।

४. रोगीका कार्य करनेमें मन नहीं लगता है। वह स्वभावसे चिड़चिड़ा हो जाता है। थोड़ा-सा कार्य करनेपर भी उसे थकान आ जाती है।

५. रोगीकी स्मरणशक्ति धीरे-धीरे कम होने लगती है।

६. रोगीको निद्रा कम आती है और आती भी है तो टूट-टूटकर आती है।

७. मन्दाग्नि हो जाती है अर्थात् भूख कम लगने लगती है और खानेमें अरुचि होने लगती है।

८. पेशाबकी मात्रा कम होने लगती है। जाँच करवानेपर पता चलता है कि पेशाबमें शक्कर अलब्यूमन अथवा यूरिक एसिड बढ़ गया है।

९. उच्च रक्तचाप होनेपर नाक और शरीरके अन्य अङ्गोंसे 'रक्तस्राव' होने लगता है।

१०. मल आदिका अनियमित त्याग और उसमें बदबू अधिक आती है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे उच्च रक्तचापके कारण

१. इसका मूल कारण शरीरमें 'वात' की अधिकता है। इससे धमनियाँ कठोर हो जाती हैं।

२. यह मनुष्यके अनियमित दिनचर्याके कारण हो सकता है। जैसे—समयपर न उठना, समयपर मल-त्याग न करना, व्यायाम न करना, शाकाहारी भोजन न करना, समयपर विश्राम न करना, अनावश्यक परिश्रम करना और समयपर न सोना।

३. स्त्रियोंमें मासिक धर्म बंद होनेके समय अनियमितताका होना।

४. अधिक शोक, मानसिक क्षोभ, चिन्ता एवं क्रोध होनेसे भी रक्तचाप बढ़ सकता है।

उच्च रक्तचाप रोगका निर्णय

आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार इस

रोगविज्ञान-हेतु शक्षिणी नाडीके विषयमें विशेष ज्ञान होना अनिवार्य है। इसमें निम्नलिखित तीन बातोंका समावेश है—

१. नाडी-स्पन्दनकी संख्याका माप।

२. स्पन्दनकी तालबद्धताका ज्ञान।

३. नाडीकी संकोचनक्षमता।

आज तो प्राय: अधिकांश परिवारोंमें स्त्री एवं पुरुषोंमें उच्च रक्तचाप-रोग देखा जाता है। यदि यह शरीरमें एक बार प्रवेश कर जाता है तो इससे स्थायी रूपसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। इसलिये एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें यह असाध्य रोगोंकी श्रेणीमें आता है और इसका इलाज रक्तचाप बढ़ जानेपर केवल लक्षणोंको दूर करनेकी ओर ही होता है, जैसे अनिद्राको दूर करना आदि।

इसके मूल कारण (१) धमनियोंकी कठोरताको दूर करना और उनमें पुनः संकुचनशीलता लाना, (२) हृदयकी गति एवं स्पन्दनकी तालमें एक-बद्धता लाना—यह केवल आयुर्वेदद्वारा ही सम्भव हो पाया है।

इसके विकारोंका उल्लेख महर्षि चरकने सूत्रस्थान अध्याय २० में ८० प्रकारका किया है। (**अशीतिर्वातविकारा:** २०। १०) इनमेंसे कुछ एलोपैथिक 'हाई ब्लडप्रेशर' के लक्षणोंके समान है। जैसे हृदयकी धड़कन, दाँतोंका टूटना, कर्णनाद, कनपटीमें भेदनके समान पीडा, अल्पश्रममें थकान आ जाना, कम्पन, नींदका न आना आदि।

यदि आयुर्वेदिक स्वस्थवृत्तका अनुपालन हो तो रोगीको अधिक लाभ औषधिके बिना ही हो सकता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

आयुर्वेद-चिकित्साके अनुसार 'वात', 'कफ' और 'पित्त' का सम होना ही स्वस्थ शरीरका लक्षण बताया गया है। सदा स्वस्थ एवं नीरोग रहनेके लिये आयुर्वेदिक 'स्वस्थवृत्त' के निम्न नियमोंका पालन करना आवश्यक है—

१. कायिक, वाचिक एवं मानसिक रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करे।

२. शारीरिक और मानसिक कार्य उतना ही करे, जिससे अधिक श्रम न पड़े।

३. नित्य प्रात: वन अथवा घने पेड़ोंवाले स्थानपर घूमने जाय। जहाँ प्रकाश एवं स्वच्छ हवाका अच्छा प्रबन्ध हो, ऐसे स्थानोंका सेवन करे।

४. नित्य तिलके तेलका अभ्यङ्ग करके कुनकुने पानीसे स्नान करे।

५. रात्रिमें सूर्यास्तसे पहले भोजन करे और निश्चित समयपर सोये।

६. सत्साहित्य पढ़ने-लिखनेकी थोड़ी-थोड़ी आदत अवश्य रखनी चाहिये। मस्तिष्कको थकान न आये, ऐसा मानसिक कार्य करे।

७. प्रात: शौचशुद्धि हो जानेकी ओर विशेष ध्यान रखे।

जड़ी-बूटियों अथवा अन्य आयुर्वेदिक क्रियाओंद्वारा निर्मित औषधियोंका प्रयोग

१. धमनियोंकी कठोरता दूर करनेके लिये सर्वप्रथम वैद्य इस रोगमें वनस्पति 'सर्पगन्धा' अर्थात् 'सरपिना' गोलियों या इसके अन्य कम्पाउण्डोंका उपयोग करते हैं।

सरपिना उष्ण प्रकृति होनेसे पित्त प्रकृतिवाले व्यक्ति जो उच्च रक्तचापके रोगी होते हैं, इसका प्रयोग करनेपर तुरंत घबराहट तथा बेचैनीका अनुभव करते हैं और इस प्रकारकी औषधिका पुन: सेवन करनेसे इन्कार करते हैं।

महर्षि चरकने संकुचनशीलता पैदा करनेके लिये 'चरकजा'का उपदेश दिया है। उन्होंने बताया है कि सूखी हुई लकड़ी भी जब 'स्नेहन' और 'स्वेदन' द्वारा मनके अनुसार मोड़ी जा सकती है तो फिर जीवित मनुष्यको तो 'स्नेहन' और 'स्वेदन' द्वारा इच्छानुसार परिवर्तित क्यों नहीं किया जा सकता है। इससे रोगीको स्थायी लाभ अवश्य मिलता है।

प्रथम रोगीको बाह्य एवं आभ्यन्तर 'स्नेहन' कराये। 'स्नेहन' के लिये 'सुरेन्द्र-तेल', 'बला-तेल' का उपयोग करे। यदि उक्त तेलका आभ्यन्तर उपयोग न किया जा सके तो 'बादामका तेल' दूधमें मिलाकर दे। पित्तका अनुबन्ध होनेपर शास्त्रानुसार घृतका उपयोग कराये।

'स्नेहन' के पश्चात् रोगीको 'स्वेदन' कराना चाहिये। शिराओंकी कठोरता दूर करनेके लिये 'मृदु स्वेदन' जरूर देना चाहिये। इसके लिये गरम जलका 'नाडी स्वेदन' अथवा अवगाहन स्वेदन देनेसे ही काम चल जायगा।

उच्च रक्तचापकी औषधि

१. बृहद् वातचिन्तामणि रस—इसमें मिलाये हुए द्रव्योंमें—

(क) 'स्वर्णभस्म'— यह मधुर, स्निग्ध और बृहद् गुणयुक्त होनेसे वातका शमन और रक्तप्रसादन कर सेन्द्रिय विषका शमन करता है। स्निग्ध और शीतल गुणसे जीव रक्तवाहिनी शिराओंकी कठोरता कम करता है। रसायन होनेसे वृद्धावस्थाकी वातबाहुल्यको नियमित करता है।

(ख) रौप्य भस्म—(चाँदीका भस्म) यह अम्लरस, शीतल, स्निग्ध और मधुर विपाकवाला होनेसे शिराओंके कोनेके कफ-अंशको बढ़ायेगा, इससे कठोरता कम होगी। यह शरीरके सेन्द्रिय विषको निकालकर आकुञ्चन, प्रसादन आदि गुणोंकी वृद्धि करेगा। शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके रोगोंकी दुर्बलता दूर होगी और हृदय शक्तिशाली बनेगा।

(ग) लौहभस्म—यह हृदयव्यथाजन्य रोग नष्ट करता है। लौहभस्मके सेवनसे शरीर शुद्ध होकर रक्ताणु बलवान् बनते हैं। रसायन होनेसे यह वृद्धावस्थाजन्य प्रवृद्ध वातका नियमन करता है। यह व्याधिको दूर करके शरीरको नीरोग बनाता है।

(घ) अभ्रक भस्म—यह स्निग्ध तथा शीतल होनेसे वायुका शमन करता है। मधुर-रसात्मक होनेसे वातका शमन करता है तथा जीवरक्तवाहिनी शिराओंमें मृदुता लाता है।

(ङ) रससिन्दूर—यह हृदयके लिये पौष्टिक, वातनाशक और विषनाशक होनेसे उच्च रक्तचापमें हितकर है।

(च) घी-क्वार—उदरस्थ अङ्गोंको व्यवस्थित कर दूषित अंशको शरीरसे बाहर करनेके कारण पक्वाशयको स्वस्थ बनाता है।

इस प्रकार 'बृहद् वातचिन्तामणि रस' उच्च रक्तचाप-रोगमें एक उपयुक्त औषधि है।

२. योगेन्द्र रस—योगेन्द्र रसमें स्वर्णका प्रमाण अपेक्षा या अधिक होनेसे सेन्द्रिय विषका नाश कर रक्तका प्रसादन करता है। रक्तका बलकारक होनेसे हृदयकी संकोचन एवं प्रसारण-प्रक्रियाको नियमित करता है। जिससे रक्तचापकी वृद्धि कम हो जाती है। यह अप्रत्यक्षरूपसे पाचनसंस्थान और मूत्रसंस्थानपर भी अपना असर करता है। इस रसायनके सेवनसे 'अजीर्ण वातविकार', 'निद्रानाश' आदि रोग भी दूर हो जाते हैं।

३. भृङ्गराजासव—इसमें पहला मूल द्रव्य भृङ्गराज है दूसरा द्रव्य हरड़ है, जो अधिक मात्रामें है। हरड़की वजहसे प्रथम प्रत्यक्ष क्रिया पक्वाशयपर होती है। यह पक्वाशयको धीरे-धीरे स्वच्छ करके बद्धकोष्ठताको दूर करता है। इससे वातदोषका निर्माण कम होता है, जो कि रक्तचापकी वृद्धिका मूल है। अत: अप्रत्यक्षरूपसे यह रक्तचापवृद्धिके लिये उपयोगी है।

अर्जुन-त्वक्—यह रक्तशोधक और विषनाशक होनेसे सेन्द्रिय विषको दूरकर रक्तको शुद्ध करता है। रक्तचापवृद्धिकी प्रारम्भिक अवस्थामें श्वास, दाह, तृष्णा आदि लक्षण हों, तब इसका प्रयोग करना चाहिये।

चन्द्रभागा—(सर्पगन्धा) यह वात और कफको दूर करती है। उष्ण होनेसे वायुका अनुलोमन करती है तथा रक्तचापवृद्धिको कम करती है और निद्रा लाती है।

जटामासी—इसके कड़वी, कसैली एवं शीतल होनेके कारण रक्तचापवृद्धि रोगके साथ मधुमेह रोग हो तो धमासा, शङ्खपुष्पीके साथ उपयोग करनेसे शक्कर कम हो जाती है। यह मस्तिष्ककी पीडा और दिलकी धड़कनको दूर करती है।

शङ्खपुष्पी—यह सारक और उष्ण होनेसे वायुका अनुलोमन करती है। यह शिराओंकी कठोरता दूर करके रोगको दूर करती है। रसायन होनेसे वृद्धावस्थाजन्य बढ़े हुए वायुका नियमन कर रोगको दूर करती है। मेध्या होनेसे मस्तिष्कको शक्ति देगी और निद्रा आने लगेगी।

धमासा-जवासा—शीतल होनेसे यह रक्तशोधक एवं रक्तरोधक है। रक्तशोधक होनेसे शुद्ध रक्तद्वारा

हृदयको शक्ति मिलती है तथा हृदयका कार्य नियमित होने लगता है। यह कषाय रस एवं लेखन गुणोंसे शिराओंकी कठोरताको कम करता है।

रोगकी विशेष अवस्थामें

१. यदि सिरदर्द अधिक हो तो कपर्दी भस्म तथा अकीक भस्म आँवलेके मुरब्बेके साथ देवें। रात्रिमें बृहद् वातचिन्तामणि रस और सर्पगन्धा चूर्ण मिलाकर दूधके साथ दें।

२. अनिद्रा हो तो सुबह-शाम सर्पगन्धा चूर्ण और बृहद् वातचिन्तामणि रस मिलाकर दूधके साथ दें। रक्त-दबाव कम करनेके लिये 'सर्पगन्धा' एलोपैथिक चिकित्सक भी प्रचुर मात्रामें उपयोगमें लाते हैं। सर्पगन्धा स्वयं उष्णवीर्य है। अतः पित्तप्रकृतिवालेको प्रवाल पिष्टी या सिता मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ होता है। नारायण तेलकी अथवा कद्दूके तेलकी सिरपर मालिश करनेसे भी लाभ होता है।

रक्तचापकी अत्यन्त बढ़ी हुई अवस्थामें पक्षाघात रोग होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये 'उच्च रक्तचापवृद्धि'-को पक्षाघातका सचेतक मान लेना चाहिये। पक्षाघात होनेसे पूर्व उच्च रक्तचापवृद्धिमें शिराओंका कठोर होना आवश्यक है।

'रक्तचापवृद्धि'-के और 'शिरावगत वातरोग'-के लक्षणमें कोई अन्तर नहीं है। अनुभवी वैद्योंसे परामर्श कर रोगीको लाभ लेना चाहिये।

कोई भी औषधि कम मात्रामें लेना रोगीके लिये कोई भी लाभ न देगी। इससे उन औषधियोंकी उपयोगिता नहीं है यह मान लेना एक भ्रम है। औषधियोंका प्रभाव शीघ्र हो, इसके लिये मात्रासे अधिक औषधि नहीं लेनी चाहिये। अधिक लेनेसे हानि हो सकती है, इसलिये प्रत्येक आयुर्वेदिक औषधिको अनुभवी शिक्षित वैद्यके मार्गदर्शनमें ही लेना चाहिये। (प्रे०—वैद्य श्रीपवनजी व्यास)

उच्च रक्तचापसे बचाव

(डॉ० श्रीजितेन्द्रपालजी चन्देल)

हृदयरोग, मधुमेह आदि बीमारियोंकी तरह उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर) भी तथाकथित आधुनिकताकी देन है। अनेक बार ऐसा भी होता है कि व्यक्तिको उच्च रक्तचाप होता है, किंतु किसी प्रकारके लक्षण न होनेके कारण वह जान ही नहीं पाता कि उसे रोगने आ घेरा है। उसको यह ज्ञान तब होता है, जब वह किसी घटनावश या किसी अन्य रोगके कारण डॉक्टरके पास जाता है। उस समयतक रोगीके दिल, दिमाग, गुर्दे तथा आँख बुरी तरह प्रभावित हो चुके होते हैं। इसलिये उच्च रक्तचापको चुपचाप मारनेवाला (साइलेंट किलर) भी कहा जाता है।

(ऊपरका रक्तचाप) ब्लड-प्रेशर दो प्रकारका होता है—सिस्टोलिक एवं डायस्टोलिक (नीचेका रक्तचाप)। जब हृदय सिकुड़ता है और रक्त शरीरमें प्रवाहित होता है, उस समय जो दबाव रक्त-धमनियोंपर पड़ता है उसे सिस्टोलिक रक्तचाप कहते हैं। जब हृदय फैलता है और हृदयमें रक्त भरता है, उस समय जो दबाव रक्त-धमनियोंपर पड़ता है उसे डायस्टोलिक रक्तचाप कहते हैं।

यदि आपका रक्तचाप १२०/८० मिलीमीटर ऑफ मर्करी है तो इसका अर्थ यह है कि आपका सिस्टोलिक ब्लड-प्रेशर १२० तथा डायस्टोलिक ब्लड-प्रेशर ८० मिलीमीटर ऑफ मर्करी है।

यदि कई बार नापनेके बाद भी रक्तचाप १४०/९० मि०मी० ऑफ मर्करीसे अधिक हो तो उसे उच्च रक्तचाप या हाई ब्लड-प्रेशर अथवा हाइपरटेंशन कहते हैं।

किसी व्यक्तिका पहली बार रक्तचाप नापा जाय और वह १४०/९० से ज्यादा हो तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह उच्च रक्तचापसे पीडित है। यदि उसी मनुष्यका विभिन्न समयोंमें तीन बार रक्तचाप नापा जाय और तीनों बार रक्तचाप अधिक पाया जाय तो हम कह सकते हैं कि उस व्यक्तिको उच्च रक्तचापकी बीमारी है।

उच्च रक्तचाप दो प्रकारका होता है—प्राथमिक और द्वितीयक।

प्राथमिक उच्च रक्तचाप—इस प्रकारके उच्च रक्तचापका कारण ज्ञात नहीं होता, इसलिये इसे प्राथमिक उच्च रक्तचाप कहते हैं। उच्च रक्तचापके ९० प्रतिशत रोगियोंको प्राथमिक उच्च रक्तचाप ही होता है।

द्वितीयक उच्च रक्तचाप—इस प्रकारका उच्च रक्तचाप शरीरके किसी अन्य अङ्गके रोगका परिणाम होता है। यदि शरीरके उस रोगको दूर कर दिया जाय तो इस प्रकारका उच्च रक्तचाप भी ठीक हो जाता है। इस प्रकारके रक्तचापके कारण गुर्देके रोग, एंड्रीनल ग्रंथियोंके रोग, महाधमनीमें रुकावट आदि हैं। स्टेरायड तथा गर्भनिरोधक गोलियोंके सेवनसे भी रक्तचाप बढ़ जाता है।

प्राथमिक उच्च रक्तचाप भी दो प्रकारका होता है—नम्र एवं उग्र।

नम्र उच्च रक्तचापमें लक्षण कम कष्टवाले होते हैं। इसकी प्रगति भी धीमी होती है और इसमें गुर्देका विकार भी नहीं पाया जाता।

उग्र या मैलिग्नेंट हाईपरटेंशनका वेग उग्र होता है और इसमें गुर्दे भी खराब हो जाते हैं। इसमें डायस्टोलिक रक्तचाप १४० मि०मी० ऑफ मर्करीसे ज्यादा हो जाता है। इस अवस्थामें रोगीको उलटी और सिरदर्द हो सकता है। उसके शरीरके किसी अङ्गमें कुछ देरके लिये फालिज मार सकता है। रोगीको दौरे पड़ सकते हैं और वह बेहोश भी हो सकता है।

उच्च रक्तचापके सामान्य लक्षण

उच्च रक्तचापके सामान्य लक्षणोंमें सिरका भारी होना, सिरदर्द, याददाश्त कमजोर होना, चक्कर आना, कानोंमें घंटियाँ-सी बजना, श्रम करनेपर थकानका अनुभव होना, चिड़चिड़ापन, हाँफनी चढ़ना, दिलकी धड़कन बढ़ जाना, छातीमें पीडा होना और पैरोंमें सूजन आना आदि प्रमुख हैं। उच्च रक्तचापके कारण सिरदर्द अधिकतर सबेरेके समय और सिरके पिछले भागमें होता है। इसके अलावा किसी-किसी रोगीकी नाकसे रक्तस्राव भी होने लगता है।

जितना अधिक रक्तचाप होगा उतना ही अधिक रोगीको खतरा होगा और रोगीका जीवन उतना ही छोटा होगा। पैंतीस वर्षकी अवस्थामें जो आदमी सामान्यतया स्वस्थ है लेकिन उसका रक्तचाप १३०/९० है तो उसकी उम्र लगभग चार वर्ष कम हो जाती है। यदि किसीका रक्तचाप १४०/९५ रहता है तो उसकी उम्र लगभग नौ वर्ष कम हो जाती है। जिसका रक्तचाप ३५ वर्षकी अवस्थामें १५०/१०० रहता है, उसका जीवनकाल सोलह वर्ष कम हो जाता है। यदि इलाज एवं परहेजसे उच्च रक्तचापपर काबू पा लिया जाता है तो इससे होनेवाले खतरोंसे बचा जा सकता है।

उच्च रक्तचापसे सर्वाधिक हानि हृदयको होती है। उच्च रक्तचापके कारण हृदय फेल हो सकता है और दिलका दौरा भी पड़ सकता है।

उच्च रक्तचापके कारण दिमागकी नस फट सकती है और मस्तिष्कमें रक्तस्राव हो सकता है। जिसे अंग्रेजीमें 'स्ट्रोक' कहते हैं। इसके कारण मरीजके आधे शरीरको लकवा मार सकता है, वह बेहोश हो सकता है।

यदि उच्च रक्तचापका इलाज नहीं कराया जाय तो गुर्दे खराब हो सकते हैं। इस रोगके कारण आँखके पर्देकी रक्त-धमनियोंमें स्राव हो सकता है और रोगीकी आँखकी रोशनी जा सकती है।

ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती है मनुष्यका रक्तचाप भी बढ़ता है। सामान्य रूपसे यह रक्तचाप नवजात शिशुमें लगभग ६५/४०, बच्चोंमें १००/६० तथा युवावस्थामें १२०/८० होता है।

उच्च रक्तचाप तथा आनुवंशिकीमें गहरा सम्बन्ध है। यदि माता-पिताका रक्तचाप सामान्य है तो बच्चोंमें उच्च रक्तचापकी सम्भावना तीन प्रतिशत होती है। यदि माँ-बापमेंसे एकको उच्च रक्तचाप हो तो बच्चोंमें इस रोगकी सम्भावना २५ प्रतिशत होती है और यदि माता-पिता दोनों उच्च रक्तचापसे पीडित हैं तो उनके बच्चोंमें इस रोगका खतरा ७५ प्रतिशत होता है। इसलिये जिनके माता-पिता उच्च रक्तचापके शिकार हों, उन्हें नमक कम खाना चाहिये।

यह माना जाता है कि जिन्हें प्राथमिक उच्च रक्तचाप होता है, उनके गुर्दे आनुवंशिक रूपसे पेशाबमें नमककी अधिक मात्रा नहीं निकाल पाते हैं; किंतु रक्तचाप बढ़नेसे पेशाबमें नमक अधिक निकलने लगता है।

मोटापे तथा उच्च रक्तचापमें गहरा सम्बन्ध है।

मानसिक श्रम करनेवालोंको उच्च रक्तचापका खतरा अधिक होता है, किंतु शारीरिक श्रम करनेसे वजन एवं रक्तचाप दोनों कम हो जाते हैं।

रोकथाम—उच्च रक्तचापका जल्दी पता लगाना भी कठिन काम है, इसलिये पैंतीस वर्षकी अवस्थाके बाद प्रत्येक मनुष्यको वर्षमें एक बार स्वास्थ्य-परीक्षण अवश्य कराना चाहिये। यदि किसीके माता-पिता उच्च रक्तचापसे पीडित हैं, तो उन्हें भी अपने रक्तचापकी नियमित जाँच कराते रहना चाहिये।

क्या खायें, क्या नहीं खायें

उच्च रक्तचापपर नियन्त्रण रखनेके लिये खानपानमें सावधानी रखना आवश्यक है। सप्ताहमें एक दिन उपवास भी उच्च रक्तचापके रोगियोंके लिये उपयोगी है, किंतु इस बातका ध्यान रहे कि उपवासवाले दिन कुछ भी खाया-पिया न जाय। नमक कम खाये। रोगीको निम्नलिखित चीजोंसे परहेज करना चाहिये—

(१) मांस, मद्य, अंडे आदि, (२) मलाई युक्त दूध, क्रीम, मक्खन, पनीर, खीर, देशी घी एवं दूधसे बनी मिठाइयाँ आदि, (३) वनस्पति घी, नारियलका तेल आदि; क्योंकि इनमें सेचुरेटेड वसा होती है, जो रक्तचाप तथा सीरम कोलेस्ट्रॉलको बढ़ाती है। (४) आइसक्रीम, चॉकलेट एवं सूखे मेवे। (५) ऐसी चीजें, जिनमें नमक तथा खानेका सोडा मिला हो; जैसे—अचार, डिब्बेबंद सब्जियाँ, केक, पेस्ट्री, ब्रेड, बंद, बिस्कुट, चिप्स, शीतल पेय एवं सोडावाटर आदि।

उच्च रक्तचापके रोगी ये चीजें खा सकते हैं—(१) उबली सब्जियाँ एवं कच्ची सब्जियाँ। (२) नीबू-पानी, कम नमकयुक्त सब्जियोंका सूप। (३) लस्सी, मलाई उतारा दूध, क्रीम निकाले दूधसे बना पनीर, दही आदि। (४) सोयाबीनका दूध। (५) सोयाबीनका दही, मूँगफलीका तेल आदि। इस प्रकार खानपानमें सावधानी रखने तथा संयमित दिनचर्या, व्यायाम एवं शारीरिक श्रमके माध्यमसे उच्च रक्तचापसे बचा जा सकता है।

निम्न रक्तचापसे कैसे बचें

(सुश्री संगीता कुमारी)

शरीरकी कार्यप्रणाली सुचारुरूपसे चले, इसके लिये रक्तचापका सामान्य होना आवश्यक है। स्वस्थ्य व्यक्तिका सामान्य रक्तचाप १२० मिलीलीटर सिस्टोलिक एवं ८० मिलीमीटर डायस्टोलिक होता है। इस स्थितिमें शरीरके विभिन्न अङ्गोंको रक्तद्वारा ऑक्सीजन एवं उचित पौष्टिक तत्त्व प्राप्त होते रहते हैं।

उच्च रक्तचापके समान ही निम्न रक्तचाप भी शरीरमें विभिन्न प्रकारकी बीमारियोंके लक्षणके रूपमें होता है। निम्न रक्तचापका स्तर देरतक रहे तो चिकित्सकका परामर्श लेना चाहिये; क्योंकि रक्तचापके काफी समयतक कम रहनेपर शरीरके मुख्य अङ्गोंकी कार्यप्रणाली बिगड़ जाती है।

कारण—निम्न रक्तचापके मुख्य कारणोंमें एक शरीरसे अत्यधिक मात्रामें रक्तका बह जाना है। चाहे ऐसा किसी दुर्घटनासे हो या पेटके घाव आदिके फटनेसे हो।

बवासीरसे या महिलाओंमें मासिक धर्मके समय अधिक मात्रामें रक्त बह जानेसे और गर्भपात होनेसे भी रक्त अधिक मात्रामें बह जानेके कारण रक्तचाप कम हो सकता है।

अत्यधिक पसीना आने, उलटी या दस्तोंके कारण पानी तथा लवण तत्त्वोंकी कमी आ जानेसे भी रक्तचाप कम हो जाता है।

किसी दवा-विशेषसे या किसी अन्य पदार्थसे

एलर्जी हो जानेसे रक्तचाप कम हो जाता है।

नींदके लिये नियमितरूपसे गोलियोंका सेवन करनेसे भी रक्तचाप कम हो जाता है।

लक्षण—निम्न रक्तचापके मरीजोंको अक्सर चक्कर आते रहते हैं, घबराहट होती रहती है। मरीज आलसी हो जाता है। कमजोरी एवं थोड़े-से परिश्रमसे थकान महसूस होती है। प्राय: सिरदर्द होता रहता है। ठंडा पसीना आनेसे बेहोशी भी आ सकती है।

निम्न रक्तचापके मरीजोंमें यदि ये लक्षण कुछ देरतक रहें तो जाँच अवश्य करायें।

बचाव—उलटी, दस्त या अन्य किसी कारणसे शरीरमें पानी एवं नमककी कमी न होने दे।

शरीरसे अधिक रक्तस्राव हो रहा हो तो प्राथमिक चिकित्साके रूपमें उसे रोकनेका प्रयास करें।

मादक तथा नशीली चीजोंका सेवन न करें।

जिन व्यक्तियोंका रक्तचाप लंबे समयतक कम रहे एवं डॉक्टरद्वारा कोई रोग न होनेका संकेत मिले तो ऐसे मरीजोंको नमककी मात्रा ज्यादा लेनी चाहिये ताकि रक्तचापमें बढ़ोत्तरी हो, विशेषकर गर्मीके दिनोंमें, जब शरीरसे पसीना अधिक निकलता हो।

दमा (श्वास)-रोग—आहार-विहार तथा ध्यान

(डॉ० श्रीजानकीशरणजी अग्रवाल, एम०डी० (आयु०))

दमा (श्वास) एक बहुत कष्टदायक रोग है। यह मनुष्यको शारीरिक तथा मानसिक रूपसे अपङ्ग बना देता है। ऐसी मान्यता है कि दमारोग मृत्युके साथ ही जाता है, परंतु रोगी अगर अपने स्वास्थ्यके प्रति सजग है, विवेकपूर्ण आहार-विहार करता है तो इस रोगसे होनेवाले शारीरिक और मानसिक कष्ट नगण्य हो जाते हैं और वह एक स्फूर्तिदायक एवं आनन्ददायक जीवन व्यतीत कर सकता है। कुछ छोटी-छोटी ध्यान देनेवाली बातें नीचे दी जा रही हैं, जो अनुभूत हैं—

सुबह उठकर शौच जानेसे पूर्व एक-डेढ़ किलो पानी अवश्य पीये। पानी अगर ताँबे अथवा चाँदीके पात्रमें रातभर रखा हो तो और अच्छा है। शौच-मंजन आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर कटिस्नान ले अथवा घुटनोंके नीचे दोनों टाँगोंको पानीसे ५ मिनटतक तर (गीला) करके रखे। इसके लिये पानीकी टोंटीके नीचे क्रमशः घुटनोंको रखकर घुटने और पिण्डलियोंको पानीसे तर करते रहे। अगर खड़े होनेमें परेशानी हो तो स्टूलपर बैठकर पानीके पाइपसे आरामसे तर कर सकते हैं। इसके बाद बिना पानी पोछे उठ जाय, जो भी धोती आदि कपड़ा पहन रखा हो, उससे अच्छी प्रकार ढक दे, जाड़ा हो तो ऊपरतक मोज़ा पहन ले, जिससे पिण्डलियोंमें रक्तसंचार बढ़े। सीने (फेफड़ों)-से रक्तसंचार होकर पैरोंकी तरफ दौड़ता है, जिससे श्वास लेनेमें आसानी होती है। कटिस्नानके लिये एक प्लास्टिककी बड़ी चिलमची लेकर उसे आधासे अधिक जलसे भर ले और उसमें थोड़े वस्त्रसहित बैठ जाय। यह ध्यान रखें कि टब इतना बड़ा हो कि पानी नाभितक आ जाय। पैरोंको टबसे बाहर रखे। अच्छा हो पैर गीले न हों। दाहिने हाथसे नाभिसे नीचे पेटको मलते रहे। यह क्रिया पहले १ मिनटसे शुरू करके धीरे-धीरे ३ मिनटतक बढ़ा ले जाय। इससे अधिक समयतक बैठनेसे नुकसान हो सकता है। इस क्रियाका भी वही महत्त्व है जो घुटने, पिंडली-पादस्नानका है। कटिस्नान क़ब्ज़, पेचिश, पेटके रोग, गद्द बढ़ना, गर्भाशय, प्रजननसम्बन्धित रोग, मूत्राशयके रोग दूर करनेमें सहायक होता है। कटिस्नान सप्ताहमें ३ बारसे अधिक न करे। एक दिनमें एक ही उपाय करे, कटिस्नान अथवा घुटना, पाद-स्नान १-१ दिन अदल-बदलकर कर सकते हैं। घुटना, पादस्नान, टाँगों, घुटनोंके दर्दमें भी बहुत लाभदायक है।

जो लोग चाय-दूध आदिके अभ्यस्त हैं, जलक्रियाके बाद ले सकते हैं, साथ ही जो नियमित दवाइयाँ हैं, वे भी उस समय १-२ बिस्कुटके साथ ले सकते हैं।

ध्यानका श्वास और हृदयरोगमें मुख्य स्थान है। जिस पद्धतिसे ध्यान जानते हों, अवश्य करे। ध्यानके लिये

सुखासनपर पलथी लगाकर बैठ जायँ। जो घुटने आदिके दर्दके कारण पलथी न लगा सकें, कुर्सीका इस्तेमाल कर सकते हैं। पहले दीर्घश्वास लें, दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिना नासाद्वार बंद करके १० बार दीर्घ श्वास लें और निकालें। फिर छोटी तथा दूसरी अनामिका अंगुलीसे बायाँ नासाद्वार बंदकर दायें नासाद्वारसे १० बार दीर्घ श्वास लें और बाहर निकालें। फिर दायाँ नासाद्वार बंद कर बाँयें नासाद्वारसे दीर्घश्वास लें, बायाँ नासाद्वार बंदकर दायें नासाद्वारसे श्वास बाहर निकालें तथा दायें नासाद्वारसे श्वास अंदर भरकर दायाँ नासाद्वार अँगूठेसे बंदकर बाँये नासाद्वारसे श्वास बाहर निकालें। यह प्रक्रिया दस-दस बार दोहरायें। दिनमें जब भी समय मिले श्वास-नि:श्वासकी यह प्रक्रिया दोहराते रहें। प्राणायामकी छोटी-सी क्रियाके बाद अपने आने-जानेवाले श्वासपर ध्यान केन्द्रित करें। अंदर जानेवाला श्वास ओठके ऊपरी भागको छूकर जा रहा है और बाहर आनेवाला श्वास भी नासिकाके नीचेवाले छोरको छूता हुआ बाहर निकल रहा है। श्वासके स्पर्शकी अनुभूतिपर ही ध्यान केन्द्रित करें। इसे आनापान-विधि कहते हैं। ध्यान निरन्तर अभ्याससे होता है। शुरू-शुरूमें तो जब आप ध्यानपर बैठेंगे तो मन बहुत विचलित होगा तथा आपको आसनसे उठा देगा। अत: ध्यान लगे न लगे, आपको आसनपर जमकर बैठना है। शुरूमें १५ मिनटकी अवधिसे लेकर बढ़ाकर धीरे-धीरे एक घंटा ले जायँ। भगवान् बुद्धद्वारा बतायी गयी विपश्यना नामक ध्यान-पद्धति इसमें बहुत कारगर सिद्ध हुई है।

ध्यानके बाद घूमना भी श्वासरोगमें बहुत हितकर है। सुबह-शाम शरीरके बलके अनुसार नियमित घूमना आवश्यक है। इससे ताजी हवा मिलनेसे चमत्कारिक लाभ मिलता है तथा आत्मविश्वास बढ़ता है, जो कि इस रोगमें बहुत जरूरी है।

घूमनेके बाद स्नानसे पूर्व नाश्ता करें। नाश्ता जितना हलका करेंगे, श्वास उतना ही ठीक रहेगा। सबसे अच्छा मौसमी फलोंका नाश्ता, आम, पपीता, सेब, केला, संतरा, नाशपाती, अमरूद जो भी मीठा फल हो, नाश्तेमें लें। कभी-कभी अंकुरित मूँगकी दाल, चने आदि ले सकते हैं। अगर जरूरत समझें तो दूध भी ले सकते हैं, इससे शरीरको ताकत मिलती है। श्वासके रोगियोंको यह डर रहता है कि दूध बलगम बनाता है, जब कि दूध सुपाच्य है। शरीरमें बलकी वृद्धि करता है और रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। अत: सुबह-शाम एक-एक पाव दूध अवश्य पीयें। डायबिटीजके मरीज नाश्तेमें खीरा, टमाटर, दही, अंकुरित मेथी अथवा मूँग ले सकते हैं।

सूखे मेवे—बादाम, काजू, किशमिश, मुनक्का, सफेद मिर्च भी श्वासरोगमें बहुत अच्छा लाभ करते हैं। ५ मुनक्का, ५ बादाम, २ सफेद मिर्चकी गोली बनाकर रख ले और सुबह-शाम मुँहमें रखकर चूसें। मुनक्काको धोकर सुखा लें। उसमेंसे बीज निकालकर सिलपर पीस लें। बादाम तथा सफेद मिर्च मिक्सीमें पीसकर पाउडर बना लें। फिर मुनक्का और बादाम, मिर्चके पाउडरको एक साथ मिला कर गोली बना लें। सुबह-शाम चूसें, इससे क़ब्ज़ियत दूर होती है। पाचन बढ़ता है, बलगम निकलता है और बलकी वृद्धि होती है।

दोपहरको तथा शामको रोटी, हरी सब्जियाँ लें। दालोंका प्रयोग कम करें। मूँग-मसूर हलकी होती हैं। अरहर, उर्द, राजमा, सोयाबीन, चना आदिकी दालोंसे परहेज करना चाहिये। चावल सप्ताहमें एक बार ले सकते हैं। खटाई, मिर्च, तेल, वैजिटेबल ऑयल, तली हुई वस्तुएँ, मैदेसे बने पदार्थ, पेटमें तेजाब बनानेवाले खाद्य पदार्थ, बर्फ अथवा फ्रीजकी अति ठंडी वस्तुओंका सेवन न करें। जो भी खायें, सतर्कतापूर्वक ध्यान रखें। जो चीज शरीरको नुकसान दे, जिह्वाके स्वादवश पुन: न खायें। अगर शरीर कृश है तो शुद्ध घीसे बना भोजन इस्तेमाल करें। डालडा, रिफाइन्ड इसमें नुकसान देते हैं।

अपराह्णमें फल ले सकते हैं। अनार बहुत फायदेमन्द है, बलगम निकालता है तथा अन्य फलोंकी तरह शक्ति और ताजगी देता है। खीरा और फलोंके अधिक सेवनसे यह फायदा है कि ये शरीरमें तेजाबकी मात्रा नहीं बढ़ने देते। श्वासके हर रोगीमें ऑक्सीजनकी कमी तथा कार्बन डाइ ऑक्साइडकी मात्रा बढ़ जाती है।

फल क्षारीय होनेकी वजहसे शरीरमें क्षार और अम्लके संतुलनको बनाये रखने तथा शरीरसे हानिकारक पदार्थोंको बाहर निकालनेमें बहुत सहायक होते हैं। रात्रिमें सोते समय दूध ले सकते हैं। रात्रिका भोजन जल्दी करें तथा जल्दी सोनेकी कोशिश करें। श्वासवालेको दिनमें सोना वर्जित है।

पानीका खूब सेवन करें। ५-६ लीटर पानी रोज पियें। गर्मियोंमें सादा तथा जाड़ोंमें गरम पानी पियें। यही सावधानी स्नानमें बरतें। अगर मौसम बदलनेसे बरसात अथवा जाड़ोंमें ठंडे पानीसे शरीरमें कँपकपी आये तो स्नानमें गरम पानीका इस्तेमाल करें। गरम पानीसे शरीरमें रक्तका संचार बढ़ता है, जिससे पसीना आता है और यह साँसमें सहायक होता है। स्नान अपने शरीरकी शक्तिके अनुसार करें। शरीरमें थकान तथा श्वासकी गति न बढ़ने पाये। चाहे तो किसीकी सहायता ले सकते हैं।

अगर पेटमें क़ब्ज़ रहता है तो त्रिफला, मुनक्का अथवा सूखे अंजीरके सेवनसे पेटको साफ रखें। श्वासवाले रोगीको यूरोपियन लेटरीनका इस्तेमाल करनेमें सुविधा रहती है।

अंग्रेजी, आयुर्वेदिक, यूनानी अथवा होम्योपैथिक कोई भी दवाई अपने चिकित्सककी सलाहसे लें। जिन्हें अधिक श्वास रहता है, उन्हें नेबुलाइजरके प्रयोगसे बहुत फायदा होता है। नेबुलाइजर तथा पम्पके इस्तेमालसे खानेवाली दवाइयोंके गलत असरसे बचा जा सकता है। शरीरमें कोई भी हरकत करनेसे पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि इससे श्वास तो नहीं फूलेगा। अगर ऐसा है—जैसे मलत्याग और स्नान आदिके लिये जानेसे पूर्व पम्पका अवश्य इस्तेमाल करें ताकि श्वासकष्ट अधिक न हो।

शक्तिके अनुसार हलका व्यायाम और प्राणायाम किसी भी अच्छे जानकारकी निगरानीमें करें। कपालभाति, ब्रहदक्षिका (गर्मीमें शीतली), नाडीशोधन, प्राणायाम तथा कोणासन, योगमुद्रा और मत्स्यासन बहुत सहायक होते हैं।

अगर वजन अधिक है तो अपने कदके अनुसार वजनको संतुलित आहार-विहारसे कम करें। नाक, कान, गलेके विशेषज्ञसे परामर्श तथा छातीका एक्स-रे, खूनकी जाँच डॉक्टरकी सलाहसे अवश्य करायें। रेकी-चिकित्सा भी इसमें काफी लाभप्रद सिद्ध हुई है।

दमा—कारण, लक्षण एवं नियन्त्रण

दमा (अस्थमा) फेफड़ोंको प्रभावित करनेवाला अत्यन्त कष्टकर श्वास-रोग है। इसमें साँसकी नलिकाएँ सकरी पड़ जाती हैं। जिससे श्वासकी सामान्य गति अवरुद्ध-सी हो जाती है और साँस फूलने लगती है।

दमाके लक्षण एवं कारण—आजकलके दूषित खान-पान, हवाकी अशुद्धि, संक्रमण, तनाव, नमी एवं ठण्डी जलवायुसे जब हमारी रोग-प्रतिरोध-क्षमता कम हो जाती है तब श्वास-प्रश्वास-तन्त्र कमजोर होने लगता है, फेफड़ोंमें वायुका पर्याप्त आवागमन नहीं हो पाता। इससे ऑक्सीजनकी कमी एवं कार्बनडाई-आक्साइडकी मात्रा बढ़ जाती है। नतीजा यह होता है कि साँस फूलने लगती है, छातीमें साँय-साँयकी आवाज होती है, आवाज साफ नहीं आती, व्यक्ति हाँफने लगता है, आँखोंके आगे अँधेरा-सा छा जाता है, लेटनेमें तकलीफ होती है तथा झुककर बैठनेमें राहत मिलती है, साँस छोड़नेमें कष्ट, बेचैनी-सी हो जाती है, छातीमें जकड़न, भारीपन रहता है, सूखी या बलगमयुक्त खाँसी होने लगती है। ऐसे ही और भी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ये लक्षण दिनमें किसी समय, आधी रात, ऋतु-परिवर्तनके समय या वर्षभर किसी भी समय हो सकते हैं।

धूलके कणों, धुएँ, ज्यादे शीतल पेय, दही-चावल आदिको अतिमात्रामें सेवन करनेसे तथा कफ बढ़ानेवाले पदार्थ लेनेसे, बिना भूखके तथा देरसे पचनेवाले भोजन

करनेसे और तले हुए खाद्य-पदार्थ, अचार एवं जैम आदिसे दमा-रोगको बढ़ावा मिलता है।

आयुर्वेदका मत—आयुर्वेदके अनुसार मिथ्या आहार-विहार ही श्वास-प्रश्वास-तन्त्रको प्रभावित करता है और दोष उत्पन्न कर श्वास-रोग पैदा करता है। वहाँ पाँच प्रकारके श्वास रोगोंका वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार हैं—

(१) महाश्वास, (२) ऊर्ध्वश्वास, (३) छिन्नश्वास, (४) क्षुद्रश्वास तथा (५) तमकश्वास।

—इन पाँच प्रकारके श्वास-रोगमें प्रथम तीन कष्टसाध्य एवं शेष दो साध्य बताये गये हैं।

दमाका नियन्त्रण—दमा-रोगके नियन्त्रणहेतु रोगी इन बातोंका ध्यान रखें—

१-रोग बढ़ानेवाले कारणों, स्थान तथा व्यवसायसे बचें।

२-पेट साफ रखें। रातको सोते समय दो बड़े चम्मच केस्टर-ऑयल ले सकते हैं।

३-सदा भूखसे कम खायें तथा सायंकालमें ही भोजन कर लें।

४-ठण्ड तथा ठण्डी चीजोंसे बचें।

५-प्रातः तथा सायं शुद्ध हवाका सेवन करें एवं योग क्रियाएँ जैसे—सूर्य नमस्कार, प्राणायाम आदि करें।

६-रात्रिजागरण न करें तथा मानसिक तनावसे बचें।

७-अपने दाँत स्वच्छ रखें, खानेके बाद भी दाँत तथा मुख साफ करें।

८-शराब, तम्बाकू तथा अन्य नशीले पदार्थोंसे दूर रहें।

९-ज्यादा क्रोध तथा घबराहटसे बचें।

१०-धूल, गर्दा, फरवाले जानवरों तथा कपड़ोंसे बचें।

११-घर तथा बिस्तर हमेशा साफ और स्वच्छ रखें।

१२-रसोईघरमें एग्जोस्ट फैनका प्रयोग करें।

१३-पंखेकी सीधी हवामें न सोयें। एयर कंडीशन, कूलर भी दमाका वेग बढ़ाते हैं। रात्रिमें हवाका आवागमन शुद्ध रखें।

१४-यदि किसी विशेष सुगन्ध, फूल, अगरबत्ती या मच्छर भगानेवाली बत्ती अथवा दवासे कष्ट हो तो प्रयोगमें न लायें। अधिक व्यायाम, थकानेवाले काम, रूक्ष अन्न, धुआँ, वमन-विरेचनका अतियोग, मल-मूत्रका धारण, अधिक पानीवाले स्थानपर रहनेसे बचें।

१५-उबले हुए पानीका प्रयोग करें।

१६-सप्ताहमें एक बार उपवास रखें।

१७-ऐसी औषधियोंसे बचें जो दमाके लक्षण उत्पन्न करती हैं, जैसे—एस्प्रीन, ब्रूफेन आदि।

१८-जो माताएँ दमेसे पीड़ित हैं, वे अपने शिशुको स्तनपान करा सकती हैं। माँके दूधसे शिशुमें रोग-प्रतिरोधी तत्त्व पहुँचते हैं।

१९-यदि स्कूली बच्चा दमा-रोगी है तो यह बात माँ-बाप स्कूलमें अध्यापकको अवश्य बतायें, जिससे वे बच्चेको दमाकारक कार्योंसे अलग रख सकें।

२०-आयुर्वेदिक दवाओंका प्रयोग करें। शरीरका शोधन कर्म विशेष लाभकारी है।

आपातकालकी स्थितिमें कुछ घरेलू उपाय—

१-सोंठ पाउडर—चौथाई चम्मच, तुलसी-पत्र—पाँच, काला नमक—चौथाई चम्मच, काली मिर्च—पाँच, हल्दी पाउडर—चौथाई चम्मच तथा छोटी पीपल—चौथाई चम्मच—इन छः द्रव्योंको पावभर पानीमें पकायें। पचास ग्राम शेष रहनेपर छानकर गर्म-गर्म पियें।

२-छातीपर तिलका तेल गर्मकर थोड़ा-सा नमक मिलाकर मलें।

३-पानीको गर्मकर उसमें सैन्धव नमक मिलाकर दोनों पैर डालकर रखें।

४-अखबारके टुकड़ेपर शोरा रखकर जलायें तथा धुआँ सूघें।

इस क्रियासे बढ़े हुए वात तथा कफका शमन होगा और दमाके दौरेमें लाभ मिलेगा।

कुछ अन्य उपाय—

१-एक चम्मच सरसोंका तेल लेकर उसमें पुराना गुड़ मिलाकर चाटें।

२-एक चम्मच शुद्ध घीमें एक ग्राम शुद्ध गन्धक मिलाकर खाली पेट खायें।

३-हल्दीकी एक गाँठ भूनकर पीस लें। सुबह खाली पेट लें, ऊपरसे दूध पी लें।

४-नौसादरका फूला दो रत्तीकी मात्रामें शहदके साथ सुबह-शाम चाटें।

५-छोटी इलायची, वंशलोचन तथा मुलेठी चूसें। इनमेंसे कोई एक उपाय नित्य प्रयोग करें।

आकस्मिक स्थिति बच्चोंमें—

१-अदरकका रस—एक चम्मच,
तुलसीका रस—एक चम्मच,
शहद—एक चम्मच और
नमक—एक चुटकी।

—इन्हें आधा कप गर्म पानीमें मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें।

२-छाती तथा पीठपर गर्म घी थोड़ा-सा नमक मिलाकर मलें।

३-नाभिपर हींगका लेप करें।

जिन बच्चोंको दमाकी बराबर शिकायत रहती हो—

१-बादाम रोगनकी पाँच बूँद दूधमें रोज दें।

२-नित्य सरसोंके तेलकी मालिश करें।

३-काकड़ाशृंगी, सोंठपाउडर, पीपली—इन्हें सममात्रामें लेकर मिश्रण बनाकर रखें। ठण्डके लक्षणके समय २५० मिलीग्राम शहदके साथ दिनमें तीन बार दें।

४-क़ब्ज न होने दें।

दमा-रोगी क्या सेवन करें—दमा-रोगी सादा तथा गर्म भोजन ले। उसे चनेका सूप, चनेका आटा, अदरक, काली मिर्च, हींग, लौंग, पीपल, तुलसीपत्र, पुदीना, लौकी, तुरई, गाजर, गाजरका रस, सलाद, मूली, पपीता, चीकू, मीठा सेब, मुन्नका, बादाम, जौ, बाजरा, गेहूँ, मूँग, मसूरकी दाल, सेंधा नमक, जीरा, शहद-जैसी चीजोंका सेवन करना चाहिये तथा शुद्ध जलवायुमें रहना चाहिये।

दमा-रोगी क्या सेवन न करें—दमा-रोगीको लोबिया, मटर, ब्रेड, उड़दकी दाल, पनीर, केला, संतरा, तरबूज, देरसे पचनेवाला आहार तथा न माफिक आनेवाली वस्तुएँ जो दमेको बढ़ाती हैं, नहीं लेनी चाहिये।

दमामें प्रयोग की जानेवाली कुछ औषधियाँ—श्वासचिन्तामणि-रस, श्वासकुठार-रस, मलसिन्दूर, रससिन्दूर, चित्रक हरीतकी, वासावलेह, कनकासव, कण्टकार्यवलेह तथा च्यवनप्राश आदि।

(डॉ० अरुण चुघ, दमानिवारण-केन्द्र) सर्राफा बाजार, ज्वालापुर, हरद्वार—२४९४०७, फोन—०१३३—४५०५६९

सन्ध्याकालमें निषिद्ध कर्म

एतानि पञ्च कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद् बुधः।
आहारं मैथुनं निद्रां सम्पाठं गतिमध्वनि॥
भोजनाज्जायते व्याधिर्मैथुनाद्गर्भवैकृतिः।
निद्रया निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गते भयम्॥

(भावप्रकाश)

विज्ञ मनुष्य आहार, स्त्री-सम्भोग, निद्रा, पठन-पाठन तथा मार्ग-चलन—ये पाँच कार्य सन्ध्यासमयमें वर्जित करे। सन्ध्यासमयमें भोजन करनेसे रोगोत्पत्ति, स्त्री-सम्भोग करनेसे गर्भधारण हो जाय तो उसमें अङ्गप्रत्यङ्गादिकी विकृति, निद्रा लेनेसे दरिद्रता, पठन-पाठन करनेसे आयुका ह्रास तथा मार्गमें चलनेसे [चौरादिका] भय रहता है।

हृदयरोग

हमारे शरीरमें स्थित मुट्ठीके आकारका हृदय एक मिनटमें ७० बार धड़कता है और एक घंटेमें ३०० लीटर रक्त शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें प्रसारित करता है। हृदयका मुख्य कार्य रक्तको शुद्ध करके शरीरके प्रत्येक हिस्सेमें रक्तकी आपूर्ति करना है। जब रक्तप्रवाहमें रुकावट आती है तो हृदयको अपना कार्य करनेमें कठिनाई होती है। रक्तप्रवाहमें अवरोध आनेके कारण कुछ मांसपेशियाँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं, जिससे तीव्र वेदना होती है और अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। स्वयं हृदयको दो छोटी-छोटी धमनियोंसे थोड़ा-सा रक्त मिलता है। यदि इन धमनियोंमें कोई रुकावट पैदा हो गयी तो खतरनाक स्थिति हो जाती है। यह रुकावट रक्तवाहिनी नलिकाओंकी दीवारोंके सिकुड़कर मोटा पड़ जाने, रक्तके थक्के बननेके कारण होता है। इस विकृतिके कारण कई प्रकारके हृदयरोग उत्पन्न हो जाते हैं—(१) हृदयाघात, (२) हृदयशूल, (३) हृदयदौर्बल्य, (४) रक्तभारवृद्धि, (५) हृदयकपाटी-रोग (६) हृदय-अन्त:शोथ (७) हृदय-अवरोध आदि। गलत खान-पान, शारीरिक परिश्रम न करना, धूम्रपान, मादक द्रव्योंका सेवन, मानसिक तनाव, मोटापा, औषधियोंका धुआँधार सेवन आदि हमारे शरीरको रुग्ण बना देते हैं। काम, क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, मोह, लोभ आदि मानसिक आवेगके समय मस्तिष्कको अत्यधिक रक्तकी आवश्यकता पड़ती है। अधिक मात्रामें गरिष्ठ भोजनसे आमाशय और आँतें कमजोर पड़ जाती हैं। क्षमतासे अधिक कार्य करनेके कारण हृदयपर प्रतिकूल असर पड़ता है। हृदयका दौरा पड़ते ही हर व्यक्ति आशंकित हो जाता है। रोगी ठीक होगा या नहीं, यदि ठीक होगा तो इसके लिये क्या करना चाहिये? दौरा पड़नेके प्रथम घंटेमें जो उपचार हो जाता है, वही जीवन बचा सकता है। इसलिये कि हृदयरोगके बारेमें आवश्यक जानकारी रखी जाय—

सुरक्षात्मक उपाय

(१) प्रात: उठकर ताँबेके बरतनमें रखा पानी पियें, भोजनके बीचमें बार-बार पानी न पियें, भोजनके आधे घंटे बाद यथेच्छ पानी पीना चाहिये। प्रतिदिन कम-से-कम तीन लीटर पानी पीनेसे शरीरके दूषित तत्त्व पसीने एवं मूत्रके द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

(२) संतुलित भोजन करें। धूम्रपान, मांसाहार तथा गरिष्ठ भोजनका पूर्णतया त्याग कर दें। शाकाहारी, पौष्टिक, सुपाच्य, वसारहित और ताजा बना हुआ भोजन शरीरके लिये हितकर है।

(३) निश्चित समयपर दिनमें तीन बार उतनी ही मात्रामें भोजन करें, जितना आवश्यक हो। अधिक भोजन करनेसे गैस बनती है, पाचनतन्त्रको अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है और शरीरको इससे लाभ कुछ नहीं होता। रातका भोजन सोनेसे लगभग दो घंटा पहले करें।

(४) प्रौढावस्था आनेके बाद वसायुक्त पदार्थ—घी, दूध, दही, तेल, मक्खन आदिका प्रयोग कम-से-कम करें। सोयाबीन, मूँगफली और सूर्यमुखीका तेल उपयोगमें लाना चाहिये।

(५) हरी सब्जी—पालक, मेथी, बथुआ, धनिया तथा मूली, लौकी, पपीता, परवल, गाजर, टमाटर, संतरा, बंदगोभी, अदरक, खीरा आदि स्वास्थ्यके लिये उत्तम हैं। इनका कच्चे रूपमें सलाद बनाकर अथवा रस निकालकर सेवन कर सकते हैं। गेहूँके पौधेका रस हृदयरोगमें बहुत गुणकारी है। रेशेदार आहारसे हृदयरोगको काफी कम किया जा सकता है।

(६) चाय, कॉफी, धूम्रपान, शराब एवं अन्य मादक द्रव्योंको विषतुल्य समझें। इनके सेवनसे हृदयरोगके साथ ही अन्य रोग भी हो जाते हैं।

(७) नमकका प्रयोग कम-से-कम करें। पापड़, चटनी, अचार, नमकीन आदिसे परहेज करें, क्योंकि इनमें भी नमककी मात्रा अधिक होती है। दालका प्रयोग भी कम करें, यह वायुकारक होती है। मूँग और चनेकी दाल छिलकेसहित प्रयोग कर सकते हैं। यदि ये

अंकुरित हों तो और अच्छा है।

(८) ताजे हरे आँवलेका अधिक-से-अधिक सेवन करें। इसकी चटनी भोजनके साथ लें। प्रातः दो आँवलेका रस शहद मिलाकर खाली पेट लें। प्रातः सूखे आँवलेका चूर्ण लेना भी उत्तम है।

(९) मलाई उतारे दूधके बने मट्ठेमें अजवाइन और काला नमक डालकर नियमितरूपसे सेवन करें।

(१०) हृदयरोगमें एक अत्यन्त गुणकारी आयुर्वेदिक योग निम्न प्रकारसे है। इसे नियमितरूपसे लेना चाहिये—

(क) प्रातः ११ एकपुटिया लहसुन २५० ग्राम दूधमें उबालें। एक छटाँक दूध बच रहे तो छान लें और लहसुन खाकर दूध पी लें।

(ख) दोपहरके भोजनके बाद दो चम्मच अर्जुनारिष्ट समान जलसे लें तथा अर्जुनके छालका चूर्ण ५ ग्राम शहदके साथ लें।

(ग) हर्रेका चूर्ण २ चम्मच रातको सोते समय लें।

(११) सप्ताहमें एक दिनका पूर्ण उपवास रखें। इस दिन केवल फलोंका रस या नीबूका पानी लें।

(१२) हृदयरोगसे बचनेके लिये सूर्यनमस्कार तथा योगासन, ध्यान और प्राणायाम बहुत उपयोगी है। प्रतिदिन कुछ समय इसमें लगानेसे सदैव स्वस्थ रहा जा सकता है। जलनेति एवं सूत्रनेतिके साथ ही वज्रासन, पवनमुक्तासन, शलभासन, मयूरासन, सर्वाङ्गासन और शवासन नियमितरूपसे करना चाहिये।

(१३) अत्यधिक गरमी एवं ठंडकसे शरीरको बचायें। सामर्थ्यसे अधिक इतना परिश्रम न करें कि दम फूलने लग जाय, शरीरको जितना सह्य हो उतना ही श्रम करें। कुछ-न-कुछ शारीरिक व्यायाम अवश्य करना चाहिये। प्रातः क्षमताके अनुसार तेज कदमसे टहलें। दो-तीन मीलतकका प्रातः-भ्रमण स्वास्थ्यके लिये अनुकूल है।

(१४) किसी भी प्रकारके मानसिक तनाव, पारिवारिक कलह और दोहरी जीवनशैलीसे बचनेका हर सम्भव प्रयास करें। यह हृदयरोगके प्रमुख कारणोंमेंसे एक है।

(१५) अधिक साहसी एवं सहनशील न बनें। थकावट होनेपर या दर्द होनेपर आराम करें। यदि घर वापस आते समय दर्द उठ जाय या अत्यधिक थकावट महसूस हो तो बैठकर आराम करनेमें न हिचकें। समय-समयपर स्वास्थ्य-परीक्षण कराते रहें। नियमित दिनचर्या रखें।

(१६) रात्रिको शयन करते समय दिनभरकी हर समस्यासे अपना ध्यान हटा लें। यह निश्चय कर लें कि इस समय मुझे और कुछ न तो करना है और न सोचना ही है। अपना ध्यान श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रियापर लगायें। कुछ मिनट बाद पैरोंपर ध्यान ले जाकर सोचें कि पैर निस्पन्द हो रहे हैं, जैसे कि शरीरसे उनका सम्बन्ध है ही नहीं। पुनः श्वास-प्रश्वासपर ध्यान ले जायँ। फिर इसी प्रकार हाथोंका चिन्तन करें। क्रमशः प्रत्येक अङ्गका चिन्तन करनेके कुछ देर बाद लगेगा कि श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। ध्यान श्वास-प्रश्वासपर केन्द्रित हो जायगा। श्वास-प्रश्वासकी गति स्वाभाविक और सूक्ष्म होती चली जायगी, मन शान्त हो जायगा और अच्छी नींद आयेगी।

(१७)यह सिद्धान्त बना लें कि जो भी करेंगे, शरीरके स्वास्थ्य-हितमें करेंगे। स्वास्थ्य-हितके विरुद्ध कुछ भी न करेंगे।

दौरा पड़नेके लक्षण

जब रक्तप्रवाहमें किसी प्रकारकी रुकावट आती है तो हृदयको अपना कार्य करनेमें कठिनाई होती है और हृदय तत्काल निम्न लक्षण उत्पन्न करके चेतावनी देता है—

(१) अचानक सीनेमें तेज असहनीय दर्द उठता है। दर्दका स्थान सीनेके बीच पसलीके जोड़पर और बायीं ओर होता है, जो अन्य हिस्सोंमें फैल जाता है।

(२) ऐसा लगता है कि किसीने सीनेपर पत्थर रख दिया हो या मजबूत रस्सीसे सीनेको चारों तरफसे कोई बुरी तरह लपेट रहा हो। कभी-कभी लगता है कि सीनेमें कोई नुकीली वस्तु चुभा दी गयी हो, कोई अंदरके अवयवोंको खींचकर काट रहा हो।

(३) बेहद घबराहट और बेचैनी होती है। श्वास लेनेमें कष्ट होने लगता है। श्वास रुकती-सी मालूम होती है।

(४) लेटने, बैठने, आराम करनेसे दर्दमें कमी नहीं होती।

(५) कभी-कभी सीनेमें दर्द न होकर चक्कर, पसीना, उलटीके साथ अत्यन्त थकावट महसूस होती है।

दौरा पड़नेपर क्या करें

(१) रोगीको भूमिपर पीठके बल इस प्रकार चित लिटा दें कि सिर और कंधे कुछ ऊँचाईपर रहें। हिलने-डुलनेसे रोकें। सिरको दायीं या बायीं ओर घुमाकर रखें।

(२) यथाशीघ्र चिकित्सकको बुलाने और निकटवर्ती चिकित्सालयमें रोगीको ले जानेकी व्यवस्थाके लिये किसी अन्य जिम्मेदार व्यक्तिको निर्देशित करें और स्वयं तत्परतापूर्वक प्राथमिक उपचारमें लग जायँ।

(३) देखें कि श्वासनली खुली है या नहीं। एक हाथसे ठोड़ीको ऊपर उठाकर दूसरे हाथसे सिरको नीचे दबायें। ऐसा करनेसे श्वासनली खुल जाती है और जीभ सीधी हो जाती है। यदि सीधी न हो तो अंगुलीसे जीभ सीधी कर दें।

(४) यदि यह आशंका हो कि श्वास नहीं चल रही है तो मुँहके पास कान सटाकर सुनें, देखें कि सीना ऊपर-नीचे हो रहा है या नहीं। यदि श्वास न चल रही हो तो कृत्रिम श्वास इस प्रकारसे दें—मुँहके भीतर देखें कि जीभ पीछे जाकर अवरोध तो नहीं उत्पन्न कर रही है। यदि ऐसा है तो जीभ सीधा कर दें। रोगीके मुँहपर हलका कपड़ा रख दें। अपने मुँहको रोगीके मुँहसे हाथके सहारे सटा दें और मुँहमें श्वास भरकर जोरसे फूँकें। पुनः श्वास खींचकर भीतर फूँकें। अपने मुँहके पास हाथ लगाये रखें और एक हाथसे नाक बंद कर दें, जिससे पूरी हवा फेफड़ेके अंदर जाय। इस प्रक्रियामें सीना नीचे-ऊपर उठता प्रतीत होगा। जबतक श्वास अच्छी तरह चालू न हो जाय, तबतक इसे करते रहें।

(५) इसके बाद तुरंत सीनेसे कान सटाकर देखें कि दिल धड़क रहा है अथवा नहीं। यदि नहीं, तो दायीं ओर घुटनेके बल बैठ जायँ। दोनों पसलीके जोड़के पास नीचे बीचोबीच सीनेपर बायीं हथेली रखकर उसके ऊपर दायीं हथेली रखें। झुककर रोगीके ऊपर इस प्रकार आ जायँ कि कंधा ठीक सीनेके ऊपर हो। दोनों हथेलियोंको कम-से-कम एक इंच नीचेतक शीघ्रतापूर्वक दबायें और छोड़ दें। हाथ वहींपर रखें। पुनः सीनेको दबायें और छोड़ दें। यही क्रिया तत्परतापूर्वक बार-बार करते रहें। यह क्रिया एक मिनटमें लगभग १८-२० बारकी गतिसे होनी चाहिये। यह ध्यान रखें कि दबाव अगल-बगलकी पसलीपर न होकर बीचमें पसलीके जोड़पर हो। १५-२० दबावके बाद मुँह-से-मुँह लगाकर श्वास दें। यह क्रम तबतक जारी रखें जबतक कि ठीकसे श्वास न चलने लगे और दिल धड़कने न लग जाय। यदि दिलकी धड़कन और श्वास-प्रश्वास बंद मालूम पड़े तो एक व्यक्तिको मुँह-से-मुँह लगाकर कृत्रिम श्वास देनेपर लगा दें और स्वयं सीनेपर दबाव देकर धड़कन चालू करनेका प्रयास करें।

(६) हृदयका गम्भीर दौरा पड़नेपर कुछ ही मिनटोंमें प्राणान्त हो सकता है। प्रारम्भिक ४-५ मिनट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। अतः यह ध्यान रखें कि एक-एक क्षण कीमती है। दौरेकी आशंका होते ही किसी अन्य व्यक्तिकी मदद लेकर चिकित्सकको बुलानेका उपक्रम और चिकित्सालय ले जानेकी व्यवस्था तुरंत की जानी चाहिये। साथ ही उपयुक्त प्राथमिक उपचार भी तत्परतासे करते रहना चाहिये। किसी प्रकारकी प्रतीक्षा करके या अन्य बातोंमें समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

(७) चिकित्सककी सलाह लेकर इस रोगसे सम्बन्धित कुछ औषधियाँ सदैव पासमें रखनी चाहिये, ताकि आवश्यकता पड़नेपर तत्काल लिया जा सके। हृदयके दौरेके बाद लंबे समयतक पूर्ण विश्रामकी आवश्यकता पड़ती है। यदि जीवित रहना है तो शेष जीवन दिनचर्यामें आमूल परिवर्तन करके अत्यन्त सावधानी तथा संयमसे बिताना चाहिये।

चिकित्सालयमें ले जानेपर रोगीको इंजेक्शन देकर

खूनके बन रहे थक्कोंको घुलाकर रक्तके प्रवाहको सामान्य बनानेकी कोशिश करते हैं। इससे हृदयकी पेशियाँ कम-से-कम क्षतिग्रस्त होती हैं। रोगीको तत्काल गहन चिकित्साकी आवश्यकता होती है, जिसमें ई०सी०जी०, रक्तचाप, श्वसनक्रिया और रक्तमें ऑक्सीजनकी मात्रा आदिकी जाँच प्रमुख है। आवश्यकतानुसार हृदयका ऑपरेशन भी करना पड़ सकता है।

प्रारम्भके कुछ घंटे जीवनके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। तत्परतापूर्वक किये गये प्राथमिक उपचारपर यह निर्भर रहता है कि कितनी कम या अधिक क्षति हुई और रोगीका जीवन बच सकता है या नहीं!

हृदयको स्वस्थ रखनेके सरल उपाय

(श्रीहिमांशुशेखरजी)

आधुनिक जीवन-शैली अत्यन्त दोषपूर्ण होनेके कारण आजका मानव अनेक संघातक बीमारियोंसे ग्रस्त है, जिनमें प्रमुख है हृदय-रोग। इस रोगसे प्रत्येक वर्ष लाखों व्यक्तियोंकी मृत्यु हो जाती है। पूरे विश्वमें हृदय-रोगसे मरनेवालोंमें भारतीयोंकी संख्या सर्वाधिक है। प्रामाणिक सर्वेक्षणके अनुसार भारतका हर पचीसवाँ व्यक्ति हृदय-रोगसे पीडित है।

हृदयकी दीवारोंपर कोलेस्ट्रॉल, कोलेजन तथा सेल्सके संचित होकर एथेरोमाके रूपमें परिवर्तित हो जानेके कारण यह रोग उत्पन्न होता है। हृदयको रक्त प्रदान करनेवाली वाहिनियोंमें जब वसाका अधिक जमाव हो जाता है तो उनका आयतन घट जाता है। रक्त-वाहिनियोंके संकुचित हो जानेके कारण रक्तके प्रवाहमें बाधा होने लगती है और हृदयकी मांसपेशियोंको जितना आक्सीजन मिलना चाहिये, उतना नहीं मिल पाता। परिणाम होता है हृदय-शूल, जिसे आंग्ल भाषामें एनजाइना कहते हैं। यही कालान्तरमें हृदयाघातका कारण बन जाता है।

हृदय-रोगके अनेक प्रकार हैं। कुछ ऐसे हृदय-रोग भी हैं, जो छोटे-छोटे बच्चोंको अपना शिकार बना लेते हैं। हृदय-रोगोंमें गठियासे उत्पन्न हृदय-रोगको सबसे अधिक खतरनाक माना जाता है। यह रोग पाँचसे पंद्रह वर्षकी उम्रमें शुरू होता है। आयुर्विज्ञानकी भाषामें स्टेपटोफोकलके संक्रमित होनेके कारण बच्चोंके संधि-क्षेत्रोंमें पीडा होती है अथवा वह अपने गलेमें ख़राशके बार-बार होनेके कारण परेशानीका अनुभव करता है। जोड़ोंमें दर्द अथवा खाँसी बच्चोंमें गठियाजन्य हृदय-रोगके लक्षण हैं। यदि पाँचसे पंद्रह वर्षकी उम्रके बच्चोंमें ये लक्षण दिखायी पड़ें तो उन्हें किसी हृदय-रोगविशेषज्ञसे दिखलाकर उनकी सम्यक् चिकित्सा करानी चाहिये अन्यथा उनका हृदय-वॉल्व क्षतिग्रस्त हो सकता है। एक सर्वेक्षणके अनुसार विदेशोंकी अपेक्षा भारतमें कम उम्रके बच्चोंमें यह रोग संक्रामक बीमारीकी तरह अधिक तेजीसे फैलता जा रहा है। इसलिये समयपर सावधान होनेकी आवश्यकता है।

यद्यपि पुरुषोंकी तुलनामें महिलाओंमें हृदय-रोग कम होता है, परंतु वे भी इससे मुक्त नहीं हैं।

रोगके लक्षण

हृदय-रोगका एक प्रमुख लक्षण है—वक्ष:स्थलके बायीं ओर दर्दका उभरकर बायीं बाँहमें फैलते हुए ग्रीवा-मण्डलतक चला जाना। कभी-कभी दर्द बायें वक्ष:स्थलसे गर्दनकी ओर यात्रा करते हुए अंगुलियोंतक फैल जाता है। छातीमें भारीपन या कड़ेपनका अनुभव, प्रदाह और घबड़ाहट भी हृदय-रोगके लक्षण हैं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्तिका हृदय रोगग्रस्त हो जाता है, परंतु इसके लक्षणोंका संज्ञान नहीं होता।

हृदय-रोग जन्मजात भी होता है। रोगग्रस्त शिशुके हृदयकी बनावट असामान्य और विकृत हो तो समझना चाहिये कि उसकी रुग्णता जन्मजात है।

हृदय-रोगके कारण

हृदय-रोगका सबसे बड़ा कारण है गलत आहार-विहार। आजका मानव शारीरिक परिश्रम करना नहीं चाहता, परंतु भोजन करता है गरिष्ठ। व्यायाम तथा कायिक श्रमके अभावमें वह अपने शरीरमें संचित होनेवाले वसाको जला नहीं पाता। अनेक लोग नित्य मांस, मलाईदार दूध, अंडे तथा तली हुई चीजें खाते हैं; परंतु चौबीस घंटोंमें २०-३० मिनट भी पैदल नहीं चलते। ऐसे व्यक्तियोंको हृदयकी बीमारी हो जाय तो क्या आश्चर्य है?

उच्च रक्तचाप भी हृदय-रोगका बहुत बड़ा कारण है। यदि रक्तचाप १४०/९० से अधिक हो तो उसे अविलम्ब नियन्त्रित करना आवश्यक है। रक्तचापके बढ़नेका मुख्य कारण है धूम्रपान। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अमेरिकामें २५ प्रतिशत महिलाएँ धूम्रपान करती हैं। पाश्चात्त्य शिक्षा और संस्कृतिके कुप्रभावके कारण अब भारतमें भी कम उम्रकी लड़कियाँ धूम्रपानकी आदतका शिकार हो रही हैं।

हृदय-रोगके पाँच प्रधान कारण हैं—१-धूम्र-पान, २-कोलेस्ट्राल, ३-उच्च रक्तचाप, ४-मधुमेह तथा ५-मानसिक तनाव।

हृदय-रोग आनुवंशिक भी होता है। जिस परिवारमें यह रोग पूर्वजोंको हो चुका हो, वहाँ विशेष सावधानी बरतनेकी आवश्यकता है।

हम जो भोजन करते हैं, उससे ऊर्जाका निर्माण होता है। इस ऊर्जाको यदि शारीरिक परिश्रमके जरिये खर्च न किया जाय तो यही ऊर्जा वसाके रूपमें परिवर्तित होकर अन्ततोगत्वा हृदय-शूल और हृदयाघातका कारण बन जाती है।

रक्षाके उपाय

एक विश्रुत लोकश्रुतिके अनुसार उपचारसे रोकथाम श्रेष्ठतर है। इसके पहले कि किसीका हृदय रुग्ण हो, उसे सम्भावित रोगोंसे बचनेका उपाय कर लेना चाहिये।

हृदय-रोगोंसे बचनेका सर्वश्रेष्ठ उपाय है आहार तथा दिनचर्यामें परिवर्तन। यह तभी सम्भव है जब हमारे विचारोंमें अपेक्षित सुधार हो। आज भोगवादका दुष्प्रचार करके सर्वत्र मानसिक प्रदूषण फैलाया जा रहा है। सबसे पहले इसे रोकना होगा, क्योंकि वैचारिक पवित्रताके बिना आहार तथा क्रियाकलापमें परिवर्तन नहीं हो सकता। अश्लील विचारोंका प्रसार करनेवाली पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, फिल्मों तथा अन्य उपकरणोंपर पूर्ण नियन्त्रण परमावश्यक है।

वसाके रक्तवाहिनियोंमें जम जानेके कारण उनका आयतन कम हो जाता है, जिसके कारण रक्तका संचार ठीकसे नहीं हो पाता। इसलिये भोजन सात्त्विक करना चाहिये, जिससे शरीरमें अनावश्यक वसाका जमाव न हो। अमेरिका और केनेडाके डॉक्टरोंका सुनिश्चित मत है कि भारतमें हृदयाघातका प्रमुख कारण दूध और दूधसे बने पदार्थोंका सेवन है। इसलिये क्रीम निकाले हुए दूधका सेवन करना चाहिये। शुद्ध घृत, वनस्पति घी, मक्खन, आइसक्रीम तथा चिकनाईवाले पदार्थोंका अमर्यादित उपयोग निषिद्ध है। आजकल पनीरका भी बहुत अधिक उपभोग किया जाता है। याद रहे, तली हुई पनीर तथा समोसे, पराठे आदि तथा तले हुए भोज्य-पदार्थ हृदयके स्वास्थ्यमें बाधक हैं।

शराब, कोल्डड्रिंक और चायका अत्यधिक सेवन भी नुकसानदेह है।

भोजन करनेके बाद टहलना या भाग-दौड़ करना ठीक नहीं, क्योंकि भोजनोपरान्त रक्त आमाशयकी ओर प्रवाहित होने लगता है और हृदयको जितने रक्तकी आपूर्ति होनी चाहिये, उतनी नहीं हो पाती। भोजनके बाद टहलने या अधिक शारीरिक परिश्रम करनेसे हृदयके ऊपर अतिरिक्त भार पड़ता है। इसीलिये हृदय-रोगविशेषज्ञ भोजनके बाद लगभग एक घंटा विश्रामकी अनुशंसा करते हैं।

भोजनमें हरी पत्तेदार तथा रेशेदार सब्जियोंका नियमित उपयोग स्वास्थ्यके लिये बहुत लाभदायक है। अङ्कुरित चना या अङ्कुरित मूँगका सेवन भी हृदयको स्वस्थ रखता है।

सबेरे उठकर भगवत्स्मरणके बाद शुद्ध जलका सेवन तथा प्राणायाम लाभकर है। खुली हवामें सुबह कम-से-कम एक घंटा नित्य टहलना चाहिये। तेजीसे

टहलनेसे अधिकाधिक हवा नासिका-मार्गसे फेफड़ोंमें पहुँचती है। इस क्रियासे हमें अपेक्षाकृत अधिक ऑक्सीजन मिल जाता है। ऑक्सीजन हमारे खूनको साफ करनेका काम करता है। इसलिये तीव्रगतिसे स्वच्छ वातावरणमें टहलना बहुत लाभदायक है। जिन लोगोंको हृदयाघात हो चुका हो, उन्हें बहुत धीरे-धीरे टहलनेका अभ्यास करना चाहिये।

हृदय-रोगसे ग्रस्त व्यक्तिके लिये क्रोध घातक है। क्रोधसे बचनेका सबसे उत्तम और अमोघ साधन है—उपेक्षाभावसे युक्त मौन।

उक्त रक्तचाप यदि प्रारम्भिक अवस्थामें हो तो डॉक्टरसे परामर्श अवश्य लें, परंतु अधिक दवाओंके चक्करमें न पड़कर अपने भोजन तथा दिनचर्यामें आमूल परिवर्तन करके तथा योगका आश्रय लेकर उससे छुटकारा प्राप्त कर लें। सत्संग, अच्छी पुस्तकोंका स्वाध्याय, नियमित प्राणायाम, शुद्ध भोजन, पवित्रता, लंघन, नियमित ध्यान तथा शुद्ध हवामें सामर्थ्यानुसार नित्य कुछ देर टहलना सम्पूर्ण रोगोंके शमनमें सहायक है।

पक्षाघातकी अनुभूत चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, आयुर्वेदरत्न)

पक्षाघातका प्रकार—पक्षाघात शरीरके किसी भी अङ्गमें हो सकता है। आँखका पक्षाघात, अंगुलियोंका पक्षाघात, जीभका पक्षाघात, सीधे हाथ एवं पैरका पक्षाघात, वामभागका पक्षाघात, निम्नाङ्ग (अर्द्धाङ्ग)-का पक्षाघात (इसमें कमरसे नीचेका अङ्ग रह जाता है)। पक्षाघातमें शरीरके अङ्ग मुड़ जाते हैं। अनेक बार मुड़ते नहीं हैं, परंतु उनकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अङ्गोंमें रक्तका सञ्चार तो रहता है, परंतु इसकी गति बहुत ही क्षीण रहती है। प्राय: रोगी पराश्रित हो जाता है, वह अपनेको अपाहिज तथा दूसरोंकी दयाका पात्र समझने लगता है। प्रत्येक रोगीको यह समझ लेना चाहिये कि यह रोग सर्वथा असाध्य नहीं है। किसी कुशल चिकित्सकके निर्देशनमें यह निन्यानबे प्रतिशत ठीक भी हो जाता है।

रोग-उत्पत्तिका कारण—कुछ ऐसे प्रधान कारण हैं जो पक्षाघातको जन्म देते हैं। यदि सामान्य रूपसे इन कारणोंसे सावधानी बरती जाय तो पक्षाघातके रोगसे बचा जा सकता है—

१-विद्युत्-करंट लगनेसे अनेक बार मृत्यु न होकर कोई अङ्गविशेष झटका लगनेसे निष्क्रिय हो जाता है। प्रत्येक शरीरधारी मनुष्यके शरीरमें बारह वोल्टकी विद्युत् प्रवाहित होती रहती है। यदि इससे दुगुनी या तिगुनी विद्युत् शरीरमें प्रवाहित हो जाय तो पक्षाघात-रोगका होना सम्भव है। अति प्रसन्नता या विषादकी स्थितिमें हृदयद्वारा रक्तका प्रवाह अधिक गतिसे होने लगता है, जिससे शरीरके किसी अङ्गविशेषमें विद्युत्का घर्षण बढ़ जाता है तथा वह अङ्ग पक्षाघात-रोगसे ग्रस्त हो जाता है। अतएव अति प्रसन्नता या विषादके अवसरोंपर अधिक भावुक नहीं होना चाहिये। यथासम्भव समभावसे विचरण करना चाहिये और अधिक संग्रह-परिग्रह तथा सम्बन्धोंमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, इससे शरीर एवं मन स्वस्थ रहता है।

२-किसी दुर्घटना या मार-पीटके कारण अङ्गविशेषमें गहरी चोट लग जानेसे भी उस अङ्गकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अतएव ऐसी स्थितिमें उस अङ्गकी चिकित्सा तुरंत करानी चाहिये। लम्बी उपेक्षा पक्षाघातको स्थायित्व दे सकती है।

३-अधिक शीत या ठंड लग जानेसे भी अङ्गोंमें संज्ञाशून्यता आ जाती है। प्राय: जो पुरुष ठंडमें खुले आकाशके नीचे शून्यसे भी कम सेल्सियस तापमानपर काम करते हैं और उनके शरीरकी उष्णता आयुके प्रमाणसे कम होती है तथा जो महिलाएँ ठंडमें कार्य करती हैं, उनको भी पक्षाघात होनेकी सम्भावना अधिक रहती है।

४-जो मनुष्य प्राय: तनावग्रस्त रहते हैं, उनको भी पक्षाघात-रोग होनेकी सम्भावना रहती है।

५-यौन-असंतुष्टि भी पक्षाघातका कारण बनती है।

६-जिन मनुष्योंके भोजनमें वात-शामक वस्तुएँ जैसे हींग तथा लहसुनका अभाव रहता है, उनको भी यह रोग सम्भावित है। हमारे धर्मग्रन्थोंमें तामसी पदार्थ होनेसे लहसुनका आन्तरिक प्रयोग वर्जित है। अतएव लहसुनका उपयोग न करके शुद्ध हींगका उपयोग किया जा सकता है। व्यक्ति यदि पचास मिलीग्राम भुनी हुई हींगको सेंधा नमकके साथ प्रतिदिन खाली पेट खाय तो उसे जीवनमें पक्षाघात होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। हींग वातका नाश करनेमें पूर्ण सक्षम है।

७-जो मनुष्य वात-उत्पादक वस्तुओंका अधिक सेवन करते हैं, उनको पक्षाघातकी सम्भावना अधिक रहती है।

पक्षाघात-चिकित्सा—संसारमें रोग-निदानकी अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जैसे—आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रचिकित्सा, सिद्धयोग, एलोपैथिक, योगासन, एक्यूप्रेशर, यूराईन थैरेपी, होलीहीलिंग, ध्यानयोग, सूर्य-ऊर्जा-जलचिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बक-चिकित्सा आदि। यह अनुभवमें आया है कि आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथी एवं मन्त्रचिकित्सासे पक्षाघात रोगको अधिकतम ठीक किया जा सकता है।

चिकित्सक तथा औषधिमें विश्वास—मनकी एकाग्रता तथा विश्वास रोगके निदानमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यदि आपके मनमें चिकित्सक तथा औषधिके प्रति उत्तम भाव नहीं है तो कोई भी औषधि रोगको ठीक नहीं कर सकती। रोगीका आत्मविश्वास, भगवत्कृपा तथा औषधिका गुण-प्रभाव और चिकित्सक एवं परिजनोंका सद्व्यवहार रोगीको शीघ्र स्वस्थ करनेमें चमत्कारी प्रभाव रखते हैं।

(क) आयुर्वेदिक चिकित्सा—एक किलो सरसोंका शुद्ध तेल, सौ ग्राम लहसुनकी मींगी (गरी या गूदा), पचीस ग्राम अजवाइन तथा दस लौंग लें। साफ कड़ाहीमें इन्हें डालकर तबतक उबालें जबतक लहसुनकी मींगी जलकर काली—एकदम काली न हो जाय। इस तेलकी मालिश रात्रिमें करें। जिस अङ्गपर पक्षाघातका प्रभाव है उस अङ्गके साथ-साथ उसके विपरीत अङ्गपर भी मालिश करें अर्थात् सीधे हाथकी ओर रोग हो तो उलटे हाथकी ओर भी मालिश करें। नब्बे दिनतक मालिश करनेसे रोगका शमन हो जायगा। साथ ही निम्न योगका भी प्रयोग करें—

स्वस्थ गाय (सींगवाली)-का गोबर एक किलो तथा दो सौ पचास ग्राम गोमूत्र—ये दोनों ही ताजा तथा भूमिपर गिरे हुए न हों। गोमूत्र तथा गोबरको ठीकसे मिलाकर रोगग्रस्त अङ्गपर हर सुबह मालिश करें।

(ख) होम्योपैथिक औषधियाँ—किसी भी प्रकारका पक्षाघात हो, होम्योपैथीकी निम्न औषधियाँ लगभग आठ दिनतक तीन-तीन घंटेके अन्तरसे प्रतिदिन दें। उसके पश्चात् सोलह दिनतक छः-छः घंटेके अन्तरसे दें, तत्पश्चात् प्रति सोमवार केवल नं० १ और नं० २ औषधि ही दें—

१-इलैप्स कोरानिलस दो सौ शक्ति, २-कोनियम दो सौ शक्ति, ३-कास्टिकम दो सौ शक्ति, ४-जेलेसियम सेम्पर दो सौ शक्ति, ५-यदि सीधे कंधेसे बाँहतक दर्द हो तो बेलडोना दो सौ शक्ति केवल दो-तीन बार।

औषधि देते समय या लेते समय रोगी इस मन्त्रका उच्चारण करे—

औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

गङ्गाजल समस्त प्रकारके विषाक्त कीटाणुओं और प्रतिकूल वातादिका शमन करनेमें समर्थ है तथा भगवान् ही एकमात्र जगत्के वैद्य और गुरु हैं। अतः उनका निरन्तर नाम-स्मरण होना ही चाहिये।

(ग) मन्त्र-चिकित्सा—मन्त्र-चिकित्सामें मुख्य रूपसे भगवन्नामजप, मन्त्रजप तथा अनुष्ठान आदिकी प्रधानता रहती है। मृत्युञ्जय-मन्त्रके प्रभावसे बड़े-बड़े अरिष्ट सहज ही दूर हो जाते हैं। भगवान्के नाममें अनन्त शक्ति संनिहित है। दिल्ली-स्थित कई बड़े अस्पतालोंमें निम्न मन्त्रका सफलतम परीक्षण किया गया है तथा अनेक रोगी इससे लाभ प्राप्त कर रहे हैं—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

अर्थात् भगवान् कृष्णके '**ॐ अच्युताय नमः**' '**ॐ अनन्ताय नमः**' तथा '**ॐ गोविन्दाय नमः**' इस

एक ही स्थानपर बैठे रहनेका कार्य करना, दिवाशयन, वात-पित्त-कफका प्रकुपित होना इत्यादि बवासीर होनेके प्रमुख कारण हैं। चरकने गर्भपात, गर्भावस्था तथा विषमप्रसूतिको भी अर्शका कारण माना है; क्योंकि इनसे भी गुदाकी शिराओंमें दबाव पड़ता है—**'स्त्रीणामामगर्भभ्रंशाद् गर्भोत्पीडनाद् विषमप्रसूतिभिश्च।'** अधिक ठंडे स्थानपर देरतक बैठे रहनेसे भी गुदाकी शिराओंके संकुचित हो जानेसे अर्श उत्पन्न हो जाता है। मद्यका अत्यधिक सेवन पित्तज अर्शकी उत्पत्ति करता है।

रोगकी साध्यता—जो बवासीर अन्तिम बाहरी आवर्तमें होती है और १ वर्षसे अधिक समयकी नहीं होती, उसकी चिकित्सा साध्य है। दूसरे आवर्तमें उत्पन्न मांसांकुर कष्टसाध्य होता है। जो बवासीर बहुत समयकी हो, वात-पित्त एवं कफ तीनों दोषोंके प्रकुपित होनेसे हो, गुदाके भीतरकी पहली सबसे भीतरके आवर्तमें उत्पन्न हो, वह प्रायः असाध्य होती है—

बाह्यतः सुखसाध्यः स्यान्मध्ये कष्टेन सिद्ध्यति।
असाध्योऽन्तर्वली जातो....................................॥

(हारीत)

अर्शकी उचित चिकित्सा नहीं करनेसे, निरन्तर अहितकर आहार-विहार करते रहनेसे मलाशयमें शोथ हो जाता है तथा फोड़ा, भगन्दर आदि महाकष्टकारी असाध्य रोग हो जाते हैं। अतः प्रारम्भमें ही इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

चिकित्सा—बवासीरकी चिकित्सामें यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्रकारसे क़ब्ज़ न रहे। क़ब्ज़के लिये निम्न योग लेना चाहिये—

(अ) प्रातः सूखे आँवलेका चूर्ण २ ग्राम।

(ब) दोपहरको ईसबगोलकी भूसी १० ग्रामकी मात्रामें नीबू-पानीके साथ।

(स) रातको सोते समय १० ग्राम त्रिफलाचूर्ण दूधके साथ लें। इसके अतिरिक्त दो हर्रे भी पानीके साथ निगल सकते हैं।

होमियोपैथी—होमियोपैथीके अनुसार अर्शकी सद्यः लाभकारी एक अनुभूत चिकित्सा इस प्रकार है—

(अ) प्रातः सल्फर-३० शक्तिकी ५-६ गोलियाँ खाली पेट लें।

(ब) एस्क्यूलस मूल अर्क ४ बूँद आधा छटाँक पानीमें डालकर प्रत्येक चार घंटेपर लें। यदि रक्तस्राव भी होता है तो हेमामेलिस मूल अर्क ४ बूँद आधा छटाँक पानीमें डालकर प्रत्येक चार घंटेपर लें।

(स) रातको सोते समय नक्सवोमिका-२०० शक्ति एक खुराक लें। ध्यान रहे कि औषधियाँ लेनेके आधे घंटे पहले या बादमें कुछ भी न खाये-पियें।

होमियोपैथी-औषधि खाली पेट लेनी चाहिये। होमियोपैथी-औषधियाँ लक्षणके अनुसार दी जाती हैं। एक ही रोगमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये लक्षणके अनुसार भिन्न औषधि चयन की जाती है। किसी एक रोगके लिये एक ही दवा नहीं होती। उक्त औषधिसे अनेक रोगियोंको सद्यःलाभ हुआ है। जो व्यक्ति अनेक औषधि करके निराश हो चुके हैं और ऑपरेशनके अतिरिक्त कोई मार्ग न बचा हो, उन्हें अवश्य इस अनुभूत औषधिका परीक्षण करना चाहिये—

आयुर्वेदिक योग—(१) (क) भोजनके बाद दो चम्मच अभयारिष्ट समान जलसे लें।

(ख) काले तिलका चूर्ण तथा भिलावेका चूर्ण समान मात्रामें लेकर मट्ठेके साथ दो-तीन बार पियें।

(ग) बेलका मुरब्बा या कच्चे बेलको भूनकर खायें।

(घ) सूरनका भरता लाभप्रद है।

(ङ) कोष्ठशुद्धिके लिये एरण्डका तेल पीना चाहिये। दर्द तथा जलनके स्थानपर भाँग अथवा अफीम बाँधनी चाहिये।

(च) गायके दूधके मट्ठेमें लवणभास्करचूर्ण मिलाकर प्रातः और दोपहरमें पियें। मट्ठेका अधिकाधिक सेवन करें।

(२) करेलेके रसमें मिस्री मिलाकर पीने

बवासीरमें लाभ पहुँचता है।

(३) रसौत ७ ग्राम, मुनक्का बीजसहित १४ ग्राम और कतीरा ७ ग्राम—इनको कूट-पीसकर महीन चूर्ण बनायें। छोटी बेरके बराबर इसकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन सुबह-शाम सेवन करें।

(४) कमलकी केशर, शहद, ताजा मक्खन, नागकेशर और चीनी एकमें मिलाकर खायें। यह रक्तार्शमें हितकर है।

(५) लाल चन्दन, चिरायता, धमासा और सोंठ समान मात्रामें लेकर काढ़ा बनाकर पियें।

(६) (क) चन्द्रप्रभावटी सुबह-शाम एक-एक गोली दूधके साथ लें।

(ख) कुमार्यासव दो चम्मच तथा दशमूलारिष्ट दो चम्मच मिलाकर समान जलसे भोजनके बाद दिनमें दो बार लें।

क्षारसूत्र-चिकित्सा—इस पद्धतिमें क्षारसूत्रद्वारा मस्सोंको बाँध देते हैं। सूत्रमें लगे क्षार अपने औषधीय गुणोंसे मस्सोंको काट देते हैं। मस्सोंमें अपामार्गक्षार, उदुम्बरक्षार, स्नूहीक्षार नियमितरूपसे लगानेपर मस्से सूखकर बाहर निकल जाते हैं। बड़े मस्सोंके लिये क्षारसूत्रका प्रयोग करते हैं। मजबूत धागेपर हलदी, क्षार एवं स्नूहीके दूधकी क्रमशः २१ परतें चढ़ाकर सुखानेके बाद क्षारसूत्र तैयार होता है। क्षारसूत्रसे मस्सेको कसकर बाँध देते हैं। जिससे बँधे स्थानपर मस्सा कटता जाता है और घाव भी स्वतः ठीक होता जाता है। प्रत्येक सप्ताह क्षारसूत्र बदल दिया जाता है। क्षारसूत्र लगवानेके घंटे-दो-घंटे बाद सामान्य रूपसे कार्य किया जा सकता है। इस समय अर्शोघ्नी वटी, शोभांजन वटी लें तथा मस्सोंपर जात्यादि तेल लगाना चाहिये। हृदयरोग, मधुमेह, मोटापा, अल्सर और टी०बी०के रोगीको क्षारसूत्र नहीं लगाना चाहिये। पहले इन रोगोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

एलोपैथी—एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें क़ब्ज़के लिये विरेचक औषधियोंको देते हैं। शौचमें कष्ट दूर करनेके लिये कुछ मलहम आदिका प्रयोग करते हैं। रोगकी तीव्रावस्थामें मस्सोंका ऑपरेशन कर देनेपर आरोग्य हो जाता है। पथ्य-परहेज इसमें भी पर्याप्त मात्रामें अपेक्षित हैं। एलोपैथीमें इसका कोई स्थायी उपचार नहीं है। यह ध्यान रखना चाहिये कि एक बार स्वस्थ होनेके बाद अपने रहन-सहन और खान-पानको ठीक रखें, अन्यथा इस कष्टदायी रोगसे पुनः ग्रस्त होनेकी सम्भावना रहती है।

पथ्य—नेनुआ, तुरई, लौकी, मूली, खीरा, पपीता (कच्चा एवं पका), भिंडी, पुराना चावल, मूँगकी दाल, कुलथीकी दाल, बथुआ, करेला, टमाटर, सूरन, मिस्री, किशमिश, इलायची, मट्ठा, गोमूत्र, चोकरयुक्त आटेकी रोटी अर्शरोगमें हितकर है।

अपथ्य—खट्टा, मिर्च-मसाला, बासी एवं गरिष्ठ भोजन, पिट्ठी, उड़द, तले-भुने पदार्थ, कोहँड़ा, बैगन, अरवी, बंडा, आलू, मल-मूत्र और अपानवायुके वेगोंको रोकना, दिवाशयन, अत्यधिक चलना-फिरना और परिश्रमसाध्य कार्य करना।

सुखी होनेके उपाय

लोभमूलानि पापानि रसमूलानि व्याधयः।
इष्टमूलानि शोकानि त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव॥

लोभके कारण पाप होते हैं, रसके कारण रोग होते हैं, इष्टके कारण शोक होते हैं, अतः तीनोंका परित्याग करके सुखी हो जाओ।

शिरावेध—एक दृष्टि

(डॉ० श्रीसुरेश्वरजी द्विवेदी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, बी०ए० एम्०एस्०)

प्राचीन कालमें आयुर्वेद अत्यन्त उन्नत अवस्थामें था। सम्पूर्ण जीवधारी इसकी छत्रच्छायामें सुखपूर्वक रहते हुए अपने जीवनयापनमें अनुरक्त थे। समय-समयपर ऋषियोंने मानवका कल्याण करते हुए आयुर्वेदका बहुमुखी विकास किया; क्योंकि रोग रोगी व्यक्तिको दुर्बल करते हुए असमयमें ही उसके शारीरिक चेष्टाओंका नाश कर देता है तथा शरीरको कष्ट देते हुए इन्द्रियोंकी शक्तिका ह्रास कर पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्तिमें बाधा उत्पन्न करके प्राणोंका हरण कर लेता है। अत: जीवोंके कष्टनिवारणार्थ जैसे आधुनिक चिकित्सा-पद्धति एक-एक रोगों तथा अङ्गोंके आधारपर अलग-अलग विभागोंमें विभक्त है, उसी प्रकार प्राचीन समयमें भी आयुर्वेद अपनी विकास-परम्परा एवं चिकित्सा-सौकर्यकी दृष्टिसे आठ अङ्गों—(१) शल्य, (२) शालाक्य, (३) काय, (४) भूतविद्या, (५) कौमारभृत्य, (६) अगदतन्त्र, (७) रसायनतन्त्र तथा (८) बाजीकरणतन्त्रमें विभक्त था।

महर्षि सुश्रुतकृत 'सुश्रुतसंहिता', आयुर्वेदीय चिकित्सकोंका हृदय है। जो वर्तमानमें हमलोगोंके सामने अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करती है। भारतीय महर्षि-परम्पराओंमें महर्षि सुश्रुत प्रधान चिकित्सक एवं शल्यकर्ता (प्लास्टिक सर्जन) माने जाते हैं। उन्होंने अपने गहन आयुर्वेदिक ज्ञानद्वारा वाराणसी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण बृहत्तर भारतको गौरवान्वित किया था। आधुनिक युगमें विकसित चिकित्सापद्धति होनेके बावजूद सुश्रुतसंहिताकी चिकित्सापद्धति अत्यन्त सशक्त एवं अद्भुत है।

आयुर्वेदका मुख्य उद्देश्य

आयुर्वेदका मुख्य उद्देश्य है—'**स्वस्थस्य स्वास्थ्य-रक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च॥**' स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा करना तथा रोगीको रोगोंसे मुक्त करना आदि। इसी शृंखलाका प्रधान अङ्ग शिराव्वेध है। सुश्रुतसंहिताके शारीरस्थानके आठवें अध्यायमें शिरावेधका विस्तृत वर्णन है, जैसे—

अथातः शिराव्यधविधि शारीरं व्याख्यास्यामः॥ यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥

शिराका वेध या वेधन शिरावेध कहा जाता है। रक्तज एवं वातादि दोषोंसे रक्तके दूषित होनेपर रोगकी शान्तिहेतु शिरावेध आवश्यक है। रोगोंके सम्बन्धमें देखा गया है कि जीर्ण ज्वर आदिमें अनेक चिकित्साओंके असफल होनेपर शिरावेधसे पूर्ण लाभ मिला। वातादिद्वारा रक्तके विकृत होनेपर शारीरिक एवं मानसिक रोग भी हो जाते हैं। अत: उन्माद, अपस्मार, मद, मोह, मूर्च्छा, हृदयके जकड़न आदि अनेक रोगोंमें उनकी शान्तिहेतु शिरावेध आवश्यक है। शिरा सम्पूर्ण शरीरका रक्त संवहन करती है, अत: शिराओंमें वेधन करनेपर रोग शान्त हो जाता है। कुष्ठरोगके प्रारम्भमें यदि बार-बार रक्त-विस्रावण कर दिया जाय तो कुष्ठ शान्त हो जाता है, शिरावेधसे अनेक लाभ देखा गया है। स्वस्थ व्यक्तिको भी कभी-कभी शिरावेध कराते रहना चाहिये, उससे चर्म-रोग, ग्रन्थि-विकार तथा रक्तज रोग नहीं होते। रक्तज रोगोंके सम्बन्धमें कहा गया है—

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्च ये गदाः।
सम्यक् साध्या न सिध्यन्ति रक्तजान् तान् विभावयेत्॥

शीत, उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष आदि औषधियोंसे चिकित्सा करनेपर सामान्य रोग भी जो ठीक नहीं होते, उन्हें रक्तज रोग समझ कर शिरावेधका स्मरण कर लेना चाहिये। गुल्म, प्लीहा आदि रोगोंमें वैद्य अपने अभ्यासके अनुसार रक्त-मोक्षण करे।

कुछ समय पूर्व एक चिकित्साशिविरमें अनेक रोगियोंकी शिरावेध-चिकित्साके आशातीत परिणाम सामने आये। सियाटिकाके अधिकाधिक रोगी तत्काल चलने-फिरने तथा आराम अनुभव करने लगे।

शिरावेधके समयके विषयमें इस प्रकारका वर्णन मिलता है—वर्षा-ऋतुमें जब आकाशमें बादल न हों, हेमन्तमें मध्याह्नमें, उष्णमें प्रातः या सायंका विधान है। अधिक दोष होनेपर थोड़ा-थोड़ा करके कई बार रक्त-मोक्षण करना चाहिये। मांसल स्थानोंमें यवके बराबर तथा अन्यत्र आधा यव वेध करना चाहिये। वेध होनेपर

वायुसे दूषित रक्त कालापन एवं लाल तथा पित्तसे दूषित नीलापन या पीला, कफसे दूषित हलका सफेद एवं लाल तथा त्रिदोषमें गोमूत्र या क्वाथके रंगका निकलता है। शिरावेध शल्यतन्त्रमें आधी चिकित्सा है, जैसे—कायमें वस्ति-चिकित्सा।

अकुशल वैद्यद्वारा अधिक रक्त-विस्रावणसे कुप्रभाव

शिरःशूल—शिरोरोग, आँखके रोग एवं अन्धापन, तिमिर, धातुक्षय, आक्षेप, लकवा, अर्दित (मुखका लकवा), एक अङ्गमें वैषम्य, तृष्णा, दाह, हिचकी, कास, श्वास, पाण्डु आदि रोगोंमें अकुशल वैद्यकी चिकित्साद्वारा कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

रक्त-विस्रावणसे अन्य लाभ

रक्ताधिक्ये रक्तमोक्षः पादे वह्नौ ललाटके।
कर्तव्यो रक्तरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः॥

यदि रक्ताधिक्य या रक्तभार हो तो रोगीके बलाबल तथा रोगको देखकर पैर-हाथ या ललाटकी वेध्य शिराओंमें मर्मस्थानको बचाते हुए शिरावेध करे। रक्तमोक्षणसे रक्ताधिक्यमें बढ़ा हुआ रक्तदाब (ब्लडप्रेशर) घटता है तथा उसका विष भी (टाक्सिन्स) बहुत कुछ कम हो जाता है।

सुश्रुतके अनुसार रोग-स्थान एवं शिरावेध

पैरमें जलन (पाद-दाह), पाद-हर्ष, चिप, विसर्प, वातरक्त, एग्जिमा (विचर्चिका) तथा बेवाई (पाददारी)—इन रोगोंमें क्षिप्र मर्मसे दो अंगुली ऊपर शिरावेध करे। क्षिप्र मर्म दोनों हाथ तथा दोनों पैर, चौथी अंगुली एवं अँगूठेके मध्य कुछ अंदर होता है। श्लीपदरोग (फीलपाँव)-में अँगूठे एवं गुल्फके ऊपर शिरावेध करे। क्रोष्टुशीर्ष खंज, पंगुल तथा वात-वेदनामें पैरमें गुल्फके चार अंगुल ऊपर शिरावेध करे। अपचीमें इन्द्र-वस्ति मर्मके दो अंगुल नीचे, गृध्रसी (सियाटिका)-में जानु-सन्धिके चार अंगुल ऊपर या नीचे, गलगण्डमें ऊरु-मूलकी शिराका वेध करे। जबकि गलगण्ड-रोग (घेघा) गलेमें होता है, पर शिरावेध घुटनेके नीचे जंघामें करनेका विधान है। शिरा सर्वाङ्गशोधिनी होती है—ऐसा महर्षि सुश्रुतका कथन है। इस तरह दोनों हाथ तथा दोनों पैरोंमें शिरावेध समझना चाहिये। प्लीहारोगमें बायीं बाँहके बीच कूर्पर-सन्धिके समीप या पहली (कनिष्ठिका) और दूसरी (अनामिका)-के मध्य शिरावेध करे। इसी प्रकार यकृत् आदि उदर-रोग तथा कास-श्वासमें दक्षिण बाहुमें, विश्वाची रोगमें सियाटिकाके समान शिरावेध करे। परिवर्तिका, उपदंश, शूक और शुक्रके रोगोंमें मेहन (शिश्न)-के मध्यमें, मूत्रवृद्धिमें वृषणोंके बगलमें तथा उदकोदरमें नाभिके नीचे सीवनीके बायीं तरफ शिरावेध करे। विद्रधि और पार्श्वशूलमें वाम कक्षा तथा स्तनके बीच, बाहुशोष और अवबाहुक रोगमें कंधेके मध्यमें शिरावेध करनेका कई आचार्योंका मत है। तृतीयक ज्वरमें त्रिक-संधिके मध्यकी शिराका, चतुर्थक ज्वरमें पार्श्वमें स्कन्धसंधिके नीचे, अपस्मार (मृगी)-में हनुसंधिके मध्यमें, उन्मादमें शंख तथा केशान्त, संधिगत, वक्षःस्थल, अपाङ्ग और ललाटमें रहनेवाली मर्मरहित वेध्यशिराओंका वेध करे। जिह्वा और दन्तके रोगोंमें जीभके नीचे रहनेवाली शिराओंका, तालुके रोगोंमें तालुमें, कर्णपीड़ा और कानके रोगोंमें कानोंके ऊपर, चारों तरफ गन्धका ग्रहण न होनेपर और नाकके रोगोंमें नाकके अग्रभागमें शिरावेध करे। तिमिररोग, अक्षि-पाक आदि रोगोंमें नाकके समीप ललाटकी या अपाङ्गकी शिराओंका वेध करे। शिरारोग, अधिमन्थ आदि रोगोंमें इन्हीं शिराओंमें वेध करे।

शिरावेधके अधिकारी

अजानता गृहीते तु शस्त्रे कायनिपातिते।
भवन्ति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः॥

(सुश्रुत० शारी० ८।२१)

शल्य-कर्ममें अज्ञ व्यक्ति—जिसे शल्यशास्त्रका पूर्ण ज्ञान नहीं है तथा जिसने विधिपूर्वक सुश्रुतसंहिताका शारीर-स्थान गुरुमुखसे पढ़ा नहीं है, वह यदि रोगीके शरीरपर शस्त्र चलाये तो पूर्वोक्त बहुत-से रोग उत्पन्न होते हैं तथा रोगीके शरीरको अत्यन्त कष्ट होता है और मृत्यु भी हो सकती है। अतः शिरावेधके ज्ञानहेतु गुरु-सांनिध्यमें शिरावेध-कर्मका अभ्यास करना आवश्यक है। प्राचीन यूनानी चिकित्सा-पद्धतिमें भी शिरावेधका संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है, यह रक्तविस्रावण-चिकित्सा अत्यन्त प्राचीन है।

कैंसर और आयुर्वेदीय दृष्टिकोण

जगत्‌में आज दिन-दिन कैंसरका विस्तार बहुत बढ़ रहा है। **'वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाईजेशन'** के एक सर्वेक्षणके अनुसार हर पाँच व्यक्तिमेंसे एक व्यक्तिको कैंसर होता है। इतने व्यापक रोगसे अनजान रहना, मानव-जीवनको खतरेमें डालने-जैसा है। प्रत्येक व्यक्तिको कैंसरका स्वरूप, पूर्वरूप, कारण और कैंसरकी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इस दृष्टिसे यहाँ कैंसरका संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है—

(१) शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें कैंसर—मस्तिष्कसे ग्रीवातक जितने भी अङ्ग हैं, उन सबमें जैसे ओष्ठ, जिह्वा, काकड़ा (टान्सिल), मुख, गला, नाक, आँख, कान, तालु, चमड़ी आदि—इन सब अङ्गोंमें कैंसर हो सकता है। इसमें पहले निम्न चिह्न दिखते हैं—

(१) किसी भी प्रकारके दर्द बिना बढ़ती हुई ग्रन्थि।

(२) कोई भी ड्रेसिंगसे हीलिंग न होवे, ऐसा अल्सर।

(३) लम्बे समयके बाद ग्रन्थि और अल्सरमें दर्द शुरू होता है और बढ़कर ग्रीवासे मस्तिष्कतक फैलता है।

(४) खुराक-निगलनेमें तकलीफ।

(५) कभी-कभी पानी और अन्य प्रवाही पदार्थ भी गलेसे नीचे नहीं उतर सकता।

(६) आवाज बदल जाती है।

(७) बधिरता भी आ सकती है।

(८) दर्दके स्थान—नाक, मुँह आदिसे खून बहता है।

(९) दर्द जबतक ठीक नहीं होता, तबतक सर्दी-खाँसी रहती है।

(२) फेफड़ेमें कैंसर—सौ वर्ष पूर्व फेफड़ेका कैंसर बहुत अल्प मात्रामें था। परंतु अब यह सबसे अधिक दिखता है और अधिकतर करके चालीससे ऊपरकी स्नायुमें अधिक देखनेको मिलता है1 इसके कुछ कारण इस प्रकार हैं—

(१) अफीम, चरस, गाँजा सेवन करनेवालोंको यह कैंसर तम्बाकू पीनेवालेसे दस गुना अधिक हानि करता है।

(२) इस कैंसरका प्रमुख कारण बीड़ी, सिगरेट, चिलम आदि रूपसे तम्बाकूका सेवन माना जाता है।

(३) स्वयं तम्बाकू-सेवन करनेवालेको तो कैंसर होता है, मगर बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू पीनेवालेके पास रहनेवालेको भी हवामेंसे साँसके साथ फेफड़ेमें पहुँचता हुआ धुआँ कैंसर उत्पन्न कर सकता है।

(४) सीमेन्ट और सीमेन्टके अन्य उद्योगोंमें काम करनेवाले मनुष्योंको यह कैंसर हो सकता है।

(५) एक्स-रे किरणोंसे भी कैंसर होता है।

(६) निकल क्रोमीयम, फ्लोरोमिथाईल, ईथर, सल्फ्यूरस स्मोक (गन्धकयुक्त धुआँ), दूषित हवा, लम्बे समयसे चलता हुआ टेलीविजन और पुरानी खाँसीसे भी कैंसर होता है।

(७) कपड़ोंकी मिलोंमें काम करते हुए लोगोंके श्वसनसे रूईके सूक्ष्म तन्तु फेफड़ेमें जाकर कैंसर उत्पन्न कर सकते हैं।

(८) पत्थरकी खानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंको भी इसी तरहका कैंसर हो सकता है।

(९) किसी भी प्रकारका कचरा लगातार फेफड़ेमें जाकर कैंसर उत्पन्न कर सकता है।

यह कैंसर एक फेफड़ेमें भी और दोनोंमें भी एक साथ हो सकता है। कभी-कभी फेफड़ेमें प्राणवायु लेकर आनेवाली नाड़ियाँ भी इसे एक जगहसे दूसरी जगह ले जाती हैं। यह कैंसर दो फेफड़ोंके बीच Pleura, Chest wall, Pericardium में भी फैल सकता है। फेफड़ेके ऊपरके भागमें बढ़कर यह मेरुदण्डमेंसे निकलती नसोंको भी दबाता है। यह छाती और गरदनके Lymph nodes में भी फैलता है। वहाँसे पसलियोंकी हड्डी, खोपड़ी और भुजाओंकी हड्डियोंमें भी फैलता है। यह कैंसर Osteolytic होता है। यह फैलकर किडनीकी ऊपरकी ग्रन्थिमें (adrenals) दिमागमें, दूसरे फेफड़ेमें, लीवरमें, किडनीमें और हार्टके ऊपर भी पहुँच सकता है।

हृदयके फेफड़ेमें कैंसरका पूर्वरूप—

(१) इस कैंसरमें पहले कोई ज्यादा शिकायत नहीं रहती, परंतु खाँसी चलती रहती है। एक्स-रे करानेसे मालूम होता है कि फेफड़ेमें कैंसर है।

(२) शरीरमें बल और वजन कम होता रहता है।

(३) लगातार खाँसीकी शिकायत रहती है।

(४) बलगम मवाद या खून संयुक्त आता है।

(५) छातीमें दर्द और भारीपन।

(६) साँस लेनेमें कष्ट।

(७) छातीमें पानी भर जाना।

(८) यह कैंसर बढ़कर अगर अन्न-नलीको दबाता है तो खाने-पीनेमें भी तकलीफ हो सकती है।

यह कैंसर फैलकर दिमागमें भी जा सकता है। इनके लक्षणमें मस्तिष्क-दर्द, वमन, नसोंका तनाव, कमजोरी, पेरालिसिसका असर भी हो सकता है। यह हड्डियोंमें और लीवरतक भी पहुँच सकता है। इसमें निम्न अन्य लक्षण भी होते हैं—

—Clubbing हाथ-पैरके नाखून Club जैसे दिखते हैं। कैंसर ठीक होनेसे ये नाखून फिर नार्मल भी हो सकते हैं।

—यह कैंसर शरीरकी लम्बी हड्डियोंके अग्र भागपर नयी हड्डीका सर्जन करता है, पर बहुत दर्द होता है।

—इस कैंसरसे शरीरकी सब प्रकारकी ग्रन्थियोंमें भी कैंसर फैल सकता है।

—इस कैंसरसे शरीर कमजोर और पीला हो जाता है।

—गरदनके ऊपर ग्रन्थियाँ हो जाती हैं। लीवर बढ़ जाता है, शरीरके जोड़ोंमें दर्द होता है। कभी-कभी पैथोलॉजिकल फ्रैक्चर (सहजमें हड्डीका टूट जाना) होता है।

—ग्रन्थिपर स्पर्श करनेसे गरम लगता है।

इस कैंसरमें औषधोपचार—कुशल वैद्यको नाड़ी-परीक्षा करके सबसे पहले प्राकृतिक दोषका शमन करना चाहिये। इस रोगमें कास्टिक और रासायनिक द्रव्योंका संयोजन अनिवार्य होता है। बलगममें खून आता है तो उसे सर्वप्रथम बंद करना आवश्यक है। इसमें सबसे सरल उपाय है—हरी वासा पत्तीका रस पच्चीस ग्राम और बकरीका दूध २५ ग्राम मिलाकर प्रातः-सायं पिलाना चाहिये। जेष्ठीमधु, उदुम्बर, वरुण, कांचनार आदिके साथ रसायन औषधमें नागभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवालपिष्टी, शृंगाभ्रक, शृंगभस्म, मुक्तापिष्टी, हीराभस्म और सुवर्णभस्मका संयोजन रोगीका बलाबल देखकर करना चाहिये। कांचनार गुग्गुल और त्रिफला गुग्गुल भी इसके साथ संयोजन करनेसे अच्छा परिणाम आता है।

छातीका कैंसर (Breast Cancer)—यह कैंसर ज्यादा करके स्त्रियोंको होता है। इस कैंसरकी ग्रन्थि वातप्रधान होती है तो सख्त, खींची हुई और काले रंगकी दिखती है। पित्तप्रधान-ग्रन्थिमें जलन होती है, स्पर्शसे गरम लगती है। लाल या पीले रंगकी होती है और बहुत कम समयमें पक जाती है। अगर कफप्रधान-ग्रन्थि होती है तो यह वेदनायुक्त, सख्त होती है और धीरे-धीरे बढ़ती है। यह कैंसर पाश्चात्त्य देशोंमें ज्यादा है। यह जिन स्त्रियोंके बच्चे नहीं होते उनको होनेकी सम्भावना ज्यादा रहती है। ४७ वर्षकी आयुके पहले जो स्त्रियाँ ओवरी और गर्भाशय निकलवा देती हैं, उनके लिये इस कैंसरकी सम्भावना कम हो जाती है। स्थूल शरीरमें एड्रीनल ग्रन्थि बढ़ती है, वह Estragen में बदल जाती है और सीनेमें जाकर कैंसरकोष उत्पन्न करनेका कारण बनती है। ज्यादा चुस्त कपड़े पहननेसे वहाँकी चर्बी मृत हो (मर) जाती है। चोट लगनेसे भी चर्बी मृत हो जाती है। यह भविष्यमें कैंसरमें बदल जाती है।

—बर्थ-कन्ट्रोल करनेवाली दवाई भी कैंसर कर सकती है।

—पुरुषोंमें छातीमें हारमोन्स असंतुलित होनेसे मसल्स बढ़ जाते हैं और वे बादमें कैंसरका रूप धारण कर सकते हैं।

—खूनमें स्टेरायड्स बढ़ जानेसे ब्रेस्ट कैंसर हो सकता है। वहाँसे यह कैंसर थाईरोईड, ओवरीज, युटेरस, कोलोरेफ्टम, मेनेन्जीस और दिमागके आवरणतक फैल सकता है। वह चमड़ी, चेस्टपोल, पसलियों,

काँख, गरदनमें, छातीके बीचमें फैल सकता है। खूनके द्वारा हड्डियोंमें, लीवर, फेफड़े और ब्रेईजमें जा सकता है।

इस कैंसरमें छः महीने पहलेसे छातीमें गाँठें निकलनी शुरू होती है। उसमें दर्द आदि कुछ नहीं होता। सूजन और सूजनवाले भागमें लाल रंग हो जाना कैंसरका चिह्न है। छातीमेंसे रक्तमिश्रित स्राव निकलनेसे कपड़ेमें दाग होते हैं। कभी-कभी घाव पक भी जाते हैं। बाहरकी ओरसे पत्थर-जैसे सख्त होते हैं। नीपल और चमड़ी अंदरकी तरफ खिंची हुई हो जाती है। समय बीतनेपर उसमें अल्सर हो जाता है। हाथमें बड़ा सूजन, काँखमें गाँठें होकर यह कैंसर एडवान्स हो जाता है। रोगीका वजन दिन-दिन कम होता रहता है। खाँसी और कफमें खून आनेकी शिकायत रहती है। साँस फूलती है, बेचैनी होती है और हड्डियोंमें दर्द होता है।

उपचार—रोगीका बलाबल देखकर उसकी प्रकृतिको ध्यानमें रखकर दवाईका संयोजन करना चाहिये। इस कैंसरकी शुरुआतमें इन्द्रपर्णीकी जड़का लेप करनेसे ग्रन्थि गल जाती है। साथ-साथ रक्तरोहित, वरुण, कांचनार, सहिजन, उदुम्बर और आपड़की जड़, रेवंची तथा निर्गुण्डीका क्वाथ साथमें कांचनार गुग्गुल देना चाहिये एवं रसायन औषधका भी प्रयोग लाभदायक है।

अन्न-नलीका कैंसर—यह कैंसर मरीजको बहुत दयनीय स्थितिमें ले जाता है। शुरूमें खाने-पीनेमें तकलीफ होती है, फिर तो बूँद-बूँदको उतारनेके लिये रोगी तरसता है। यह अधिकतर पचास साल ऊपरके लोगोंको होता है। यह कैंसर गरम-गरम खान-पानसे, मुँह-दाँतकी अच्छी तरह सफाई न होनेसे और एसीडिक पदार्थसे होता है और वह फैलकर शरीरके किसी भी भागमें जा सकता है। इस दर्दमें खायी हुई थोड़ी खुराक भी वापस आ जाती है। तब अन्न-नलीके नीचेके भागमें कैंसर होता है। कफ बढ़ता है। आवाज बदल जाती है। कफके साथ खून भी निकलता है, छातीमें दर्द रहता है। खूनकी उलटी भी हो सकती है।

जठरका कैंसर—सामाजिक और आर्थिक गरीबीसे यह कैंसर होता है। 'ए' ब्लड ग्रुपवाले मनुष्योंमें यह ज्यादा दिखता है। स्टार्च, अचार, बहुत गरम, चरपरी खुराक, प्रीजर्व की हुई खुराकें, शराब और तम्बाकू इस कैंसरके कारण होते हैं। अपच, गैस, एसीडिटी दीर्घ समय रहनेसे, विटामिन 'बी १२' कम हो जानेसे भी यह तकलीफ हो सकती है। अगर एसीडिटीकी शिकायत ज्यादा होती है तो कैंसर ठीक होनेकी शक्यता बढ़ती है। मगर एसीडिटी कम होती है तो जठर ज्यादा बिगड़ा हुआ होता है। क्रोनिक गेस्ट्रीक अल्सर भी आगे जाकर कैंसरमें बदल सकता है। जठरका कोई भी ऑपरेशन बाकीके जठरके लिये कैंसरकी सम्भावना दोसे छः गुना कर देता है। इसमें रोगीकी खुराक बहुत कम हो जाती है। यह अन्य किसी भी कैंसरकी तरह फैल सकता है। इस कैंसरसे आकस्मिक दस्त और उलटीमें खून आता है। जैसा खुराक खाया हुआ होता है, वैसा ही उलटीसे निकल जाता है। दस्तमें काला खून आता है। रोगीके शरीरमें बहुत पीलापन आ जाता है।

लीवर-कैंसर—यह कैंसर लीवर सीरोसीससे ज्यादा करके होता है। लीवर प्राईमरी कैंसर कम होते हैं। Hepatoma और Cholangio Carcinoma यह दो प्रकारके कैंसर बड़ी उम्रवालेको होता है और बच्चोंको Hepatoblastoma नामक कैंसर होता है। ये सब प्रकारके कैंसर लीवरके दाहिने भागमें होते हैं। कई बार पूरे लीवरमें छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ भी होती हैं। एक बड़ी गाँठ भी हो सकती है। मगर Filrolamellar Carcinoma ज्यादा करके लीवरके बायें भागमें होता है, इस प्रकारकी गाँठ एक किलोग्रामसे ज्यादा वजनकी भी होती है। इसकी भयानकता यह होती है कि यह लीवरको निकम्मा करके मरीजको मार डालती है। यह कैंसर फैल करके लीवरसे फेफड़ेमें तुरंत पहुँच जाता है। इसकी शुरुआतमें रोगीकी हलकी-सी शिकायत रहती है। यह शिकायतें अगर तुरंत समझमें न आ जायँ तो डेढ़ महीने जितने समयमें ही रोगीका जीवन समाप्त हो सकता है। इस कैंसरके लक्षण निम्न प्रकारके होते हैं—

(१) रोगीका वजन ५ से १० किलोग्राम कम हो जाता है।

(२) पेटमें दर्द दाहिनी ओर और बीचमें ऊपरकी तरफ होता है। आकस्मिक रूपसे कभी सख्त दर्द हो जाता है। उस समय कैंसरकी गाँठ फट सकती है। कभी रक्तवाहिनीको तोड़कर पूरे पेटमें खून भर देती है।

(३) भूखका मर जाना लीवरके कैंसरके ३३ प्रतिशत लोगोंमें देखनेको मिलता है।

(४) बुखार—इस कैंसरसे शरीरमें बुखार आता है, दो या तीन हफ्तेतक अन्य दवाईसे ठीक नहीं होता, तब जानना चाहिये कि लीवर कैंसरमें रसी हो गयी है। या फिर लीवर-कोष ही खत्म हो गये हैं।

मरीजको देखते समय लीवर बढ़ा हुआ, स्पर्शमें कठिन और खुरदरा दिखता है। नाखूनका फ्लबींग देखनेको मिलता है। इस दर्दके बढ़नेसे पीलिया हो जाता है। मरीजके पेटमें पानी भर जाता है।

पेन्क्रियास कैंसर—यह कैंसर शरीरमें आस-पासके अवयवोंमें फैल जाता है तथा फैलकर लीवर, हड्डियों, चमड़ी, फेफड़े और अन्य सब जगह पहुँच सकता है। यह दूसरे अवयवमें फैलनेके बाद ही मालूम पड़ता है। इसमें भूख मर जाती है। बड़ी उम्रवाले लोगोंमें भारी, दुर्गन्धियुक्त दस्त, खुराकमें ली गयी चर्बी पाचन हुए बिना मलके साथ निकल जाती है तो जानना चाहिये कि यह सब कारण पेन्क्रियास कैंसरका है। बड़ी उम्रमें डायबिटीज और वजनका कम होना दोनों साथमें दिखता है तो भी पेन्क्रियास कैंसर हो सकता है। इसमें दस्त या उलटीमें खून आनेकी शिकायत हो सकती है। हाथ-पैरके तलोंमें बहुत खुजली आती है। उसका लीवर और प्लीहा बढ़ जाता है। उदर और पीठमें दर्द रहता है।

यहाँ शरीरके विभिन्न अवयवोंमें देखे गये कैंसरोंका उल्लेख किया जा रहा है—

(१) ओष्ठका कैंसर, (२) नाकके पीछेके भाग—तालुका कैंसर, (३) काकडेका कैंसर, (४) लारोत्पादक पिण्डका कैंसर, (५) गरदनका कैंसर, (६) जीभका कैंसर, (७) फेफड़ेका कैंसर, (८) छातीका कैंसर, (९) अन्न-नलीका कैंसर, (१०) स्टमकका कैंसर, (११) लीवरका कैंसर, (१२) पेन्क्रियासका कैंसर, (१३) बड़े आँतका कैंसर, (१४) रेक्टमका कैंसर, (१५) गुदाका कैंसर, (१६) किडनीका कैंसर, (१७) यूरीनरी ब्लेडर कैंसर, (१८) प्रोस्टेट कैंसर, (१९) पीनाईल कैंसर, (२०) टेस्टीक्यूलर कैंसर, (२१) गर्भाशयग्रीवाका कैंसर, (२२) युटेरीन बॉडीका कैंसर, (२३) ओवरीयन कैंसर, (२४) न्यूरोलौजिक ट्यूमर्स, (२५) थाईराईड कैंसर, (२६) हड्डीका कैंसर, (२७) बच्चोंको होता हुआ कैंसर—(अ) एबीज सारफोमा, (ब) रेटीना ब्लास्टोमा, (स) नेफ्रो ब्लास्टोमा, (द) न्यूरोप्लास्टोमा, (२८) चमड़ीका कैंसर, (२९) नीवस-कैंसर, (३०) लीम्फोमा कैंसर, (३१) ब्लड कैंसर।

जिस प्रकार शरीरका अपना स्वतन्त्र रूप होता है, उसी प्रकार रोगके भी अपने स्वतन्त्र रूप होते हैं। शरीरमें कैंसर शरीरके रक्त, मांस, धातुसे पुष्ट होकर अपना रूप बना लेता है और समग्र शरीरमें जीवनीय कोषोंके पास अपने कोषको लगा देता है। फिर जीवनीय कोषोंको मारकर शरीरके किसी एक अङ्गमें दिखायी देता है। वह सूजन, गाँठ, अल्सर-जैसे रूपोंमें होता है। शनैः-शनैः शरीरके सब मर्म-भागोंमें अपना स्थान जमा देता है। वह वात, पित्त और कफको दुष्ट करके खून, मांस और धातुको बिगाड़कर फैलता जाता है। प्रथम वह चमड़ीके नीचे फैलता है, इससे निदानमें देर हो जाती है।

आयुर्वेदमें इसके निम्न प्रकार दिखते हैं—

(१) वातप्रधान, (२) पित्तप्रधान, (३) कफप्रधान, (४) त्रिदोषजन्य, (५) मेदप्रधान, (६) शिरोजन्य, (७) रुधिरजन्य, (८) मांसजन्य, (९) द्विदर (गाँठ-पर-गाँठ होना)।

याद रखें कि कैंसर आनुवंशिक और चेप फैलानेवाला नहीं है। आयुर्वेद हमेशा रोगीकी चिकित्सा नाड़ी-परीक्षाके द्वारा प्रकृति देखकर दोषशमन और रोग-शमनार्थ औषध-मिश्रण परिणाम देता है। कैंसरको काबूमें करनेके लिये प्रत्येक अवयवको ध्यानमें रखकर औषधियोंका संयोजन करना चाहिये। शरीरके

प्रत्येक अवयवको ठीक करनेकी अनुभूत औषधियाँ आयुर्वेदमें दी हुई हैं। उन औषधियोंके साथ कैंसरको ठीक करनेवाली औषधियोंका संयोजन करके मरीजको देनेसे ठोस परिणाम मिलता है। जैसे दिमाग—ब्रेनका कैंसर है तो ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी आदि औषधियोंके साथ वरुण, रक्तरोहित, भल्लातक, कस्तूरी, वज्रभस्म, सुवर्णभस्म, मुक्तापिष्टी, अभ्रकभस्मका योग्य मात्रामें मिश्रण करके साथमें कांचनार, गुग्गुल आदिका उपयोग करना चाहिये। मरीजका बलाबल देखकर बलप्रद दवाई-औषध संयोजित की जाय। इस प्रकारसे इस रोगका उपचार किया जा सकता है।

(—दिव्यज्योति आयुर्वेदिक रिसर्च फाउण्डेशन)

कैंसरकी आत्मकथा

(डॉ० श्रीबृजलालजी मानोचा)

यदि किसी रोगकी आत्मकथाका वाचक स्वयं रोग ही हो तो उसकी बतायी बात विशेष जानकारी युक्त होती है, क्योंकि उसे अपनी पूरी जानकारी होती है। इस जानकारीको 'रोगकी कहानी' 'रोगकी जबानी' कहा जा सकता है। इस सम्बन्धमें कैंसरकी आत्मकथा उसीकी जबानी इस प्रकार प्राप्त है। कैंसर बोला—

जीवन और मृत्यु; उत्पत्ति और विनाश। इस नियममें सभी इस बातसे सहमत हैं कि जिस क्षण कोई जीव जन्म लेता है, तो मृत्यु उसका पीछा करना शुरू कर देती है। शरीर अनित्य जरूर है, सभी जीव मरते हैं, परंतु मानव-जातिके पास ज्ञान और अनुभवोंका भण्डार सुरक्षित है। वहींसे चुने कुछ उपचारोंद्वारा किसी-किसी रोगी (अथवा स्वस्थ प्राणी)-के भी जीवनकालमें थोड़ी-बहुत वृद्धि और पीड़ामें कमी हो सकती है। जीवनपर विजय पानेके लिये मृत्युके पास कई साधन हैं। इन साधनोंको लोग रोग कहते हैं।

मैं भी एक रोग हूँ। मेरा नाम कैंसर है। यह नाम अति कलङ्कित, निन्दापूर्ण तथा अपमानपूर्ण हो चुका है। बदनाम हुए तो क्या नाम न होगा? बस, इसी कारण मेरा नाम बच्चों, वृद्धों, नर-नारियों—सबके मुँहपर है, भले ही वे इस रोगसे पीड़ित न भी हों। परंतु मैं कदापि इतना बुरा नहीं हूँ कि लोग मुझसे तो क्या मेरे नामसे भी थर-थर काँपते रहें। यह सत्य है कि मैं मानव-शरीरके किसी भागपर आक्रमण कर लेता हूँ। तब मेरा नाम भी उसी अङ्गके साथ जुड़ जाता है, जैसे पेटका कैंसर, स्तनका कैंसर, नाक, मुँह, गर्भाशयका कैंसर, रक्तका कैंसर आदि।

मेरी ठीक पहचान तो केवल प्रयोगशालाओंमें भिन्न-भिन्न जाँचोंद्वारा डॉक्टर ही कर सकते हैं। मोटे तौरपर मैं शरीरके किसी भागमें कोशिकाओं (टिश्यूज)-को असीम रूपसे विभाजित करके वहाँ सूजन, गाँठ या गिल्टी बना लेता हूँ और वहाँकी स्वस्थ कोशिकाओंको नष्ट कर देता हूँ। तभी प्रारम्भ होती है विषैले पदार्थकी प्राथमिक उत्पत्ति। मैं तीव्र गतिसे फैलता हूँ। एक अङ्ग या स्थानको दूषित कर दूसरे अङ्गोंपर आक्रमण कर देता हूँ। रोगीका भार (वजन) घटता चला जाता है, भूख मर जाती है, रोगग्रस्त अङ्गोंमें असह्य दर्द होता है। अन्ततः दुःखित रोगी कालके मुँहमें चला जाता है। यदि कोई रोगी सावधानीसे मेरे आक्रमणके पहले ही चरणपर उचित उपचार कर ले अथवा करा ले तो मुझे वहाँसे भागना पड़ता है। इसी कारण पाँच प्रतिशत लोग जिनपर मैं आक्रमण करता हूँ, मेरे चंगुलसे बच निकलते हैं।

दस लक्षण ऐसे हैं कि जिनमेंसे यदि एक लक्षण भी एक मानव-शरीरमें हो तो मैं समझता हूँ कि वह व्यक्ति मेरी पकड़में आ सकता है। परंतु मेरी पहुँचसे पहले ही समयपर अपना उपचार कराकर वह बच सकता है और बच भी जाता है। वे दसों लक्षण भी मेरे नामसे जुड़ गये हैं। उन्हें कहते हैं 'कैंसरसे पूर्व' के लक्षण। कई लोग इन लक्षणोंको मेरे आक्रमणकी चेतावनी और आक्रमणसे पहले ही स्वस्थ हो जानेको प्रभुकी कृपा मानते हैं। वे दस लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) पुराना सरदर्द जो दर्दनाशक गोलीसे तो हट जाता है, परंतु बार-बार अकारण ही आकर दुःखी करता रहता है। (२) अकारण अपच अर्थात् पाचन-क्रियामें

उसके वंशमें किसी नातेदार (सम्बन्धी)-की मृत्यु बहुत पहले अथवा अभी-अभी मेरे आक्रमणसे हुई है तो उस व्यक्तिपर मेरा धावा निश्चित है। जोड़ोंके दर्दकी गोली छोड़कर मेरे आक्रमणको रोकनेकी दवा अति लाभकारी रहेगी—एक पंथ दो काज, मेरे आक्रमणसे छुट्टी और जोड़ोंके दर्दकी पूरी चिकित्सा।

मानव-जातिमें प्रत्येक रोगके विस्तारसे जुड़े अनेक प्रश्न होते हैं। जैसे आहार किस प्रकारका हो, कितना हो? क्या नहीं खाना चाहिये? रोगसे बचाव कैसे हो? आरोग्य कैसे रहें? सरलतम उपाय कौन-सा है? इनके बारेमें मेरे (अर्थात् कैंसरके) उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) जिनके वंशमें मेरा चलन न हो, उनको मेरे आक्रमणसे बचनेके लिये ४०० ग्राम ताजे सब्जी एवं फल प्रतिदिन खाने चाहिये। मेरा प्रहार इस मात्रासे कम खानेवालोंपर घातक हो सकता है। इंग्लैण्डमें १७,००० व्यक्ति प्रतिवर्ष मेरे द्वारा ही मारे जाते हैं; क्योंकि वे सब्जी-फल कम खाते हैं। जिस व्यक्तिके वंशमें मेरा चलन है (या था) उसे मेरे आक्रमणसे बचनेके लिये अपने दिनभरके पूरे आहारके ८० प्रतिशतके बराबर सब्जी और फल खाने चाहिये।

मेरे द्वारा पीड़ित रोगीका खाना-पीना उसके डॉक्टरके आदेशानुसार हो।

(२) खट्टा, तीखा, चटपटा, तेज, मसालेदार भोजन, नूडल्स, फास्ट फूड्स, शराब, सिगरेट-बीड़ी, खाने-पीनेवाले व्यक्ति मुझे आक्रमणके लिये स्वयं बुलावा देते हैं। (३) मानसिक तनावसे बचें। बचनेका एक साधन है 'ध्यान' (मेडिटेशन)। आस्ट्रेलियाके मैलबोर्न नगरके निवासी डॉक्टर एन्सलाई मीयर्सने मेरे द्वारा पीड़ित (अर्थात् कैंसर ग्रस्त) रोगियोंको रोगमुक्त करनेका यही साधन अपनाया है। वह अपने सुझाव तथा अनुभव प्रकाशित कर चुके हैं। एक केस इस प्रकार—एक महिलाके पेटमें मैं ऐसे घुसा कि नामी डॉक्टर भी दवाइयाँ दे-देकर हार गये। अन्ततः उन्होंने केसको असाध्य तथा निरुपाय घोषित कर दिया। तब वह महिला डॉ० मीयर्सके पास पहुँची। उन्होंने ध्यान-योगके कुछ उपाय बताये तथा सिखाये और वह पूर्णतया ठीक हो गयी। (४) श्रीगुरुग्रन्थसाहिबकी एक पंक्तिमें एक अनमोल उपाय दर्शाया गया है—**'सर्व रोगका औखद नाम'**। अर्थात् सब रोगोंकी औषधि प्रभुका जाप है।

अन्तमें मैं (कैंसर) अपने बारेमें एक तालिका प्रस्तुत करता हूँ जिसके आँकड़े स्वयं बोलते हैं—

मेरे आक्रमणसे मरनेके कारण	कितने मरते हैं
१. आहारके नियमोंका उल्लंघन।	४८%
२. 'कैंसरसे पूर्व' के लक्षणोंकी अज्ञानता अथवा उपेक्षा।	२०%
३. शेष-वंशगत, इलाज करानेमें देरी इत्यादि।	३२%

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च॥
सृष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य तु लाघवम्। सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधनम्॥
बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्यं समाग्निता। विद्यादारोग्यलिङ्गानि विपरीते विपर्ययम्॥

(काश्यपसंहिता भोज्योपक्रमणीयाध्याय ५। ६—८)

भोजन करनेकी अभिलाषा, पूर्वमें खाये हुएका सुखपूर्वक पच जाना, विष्ठा, मूत्र और वायुका यथोचित विसर्ग (शरीरसे निर्गमन) होना, शरीरमें हल्कापन, इन्द्रियोंकी अच्छी प्रसन्नता, सुखपूर्वक सोना तथा जागना, शरीरमें बल, वर्ण (कृष्ण-गौर आदि) और आयुवृद्धिका लाभ, मनकी प्रसन्नता और पाचकाग्निकी समानता—ये आरोग्य (स्वस्थ)-के लक्षण हैं। इन लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोंका होना अस्वस्थताके लक्षण समझना चाहिये।

मानस महारोग—अतत्त्वाभिनिवेश

(डॉ० श्रीबृजकुमारजी द्विवेदी, बी०ए०एम्० एस्०, एम्०डी०)

'अतत्त्वाभिनिवेश' एक प्रकारका मानस रोग है, जिसे आचार्य चरकने 'महागद' अर्थात् महारोगकी संज्ञा दी है। यह रोग वास्तवमें महारोग है। आजकल इसके अनेक रोगी नित्य चिकित्साहेतु विभिन्न चिकित्सकोंके यहाँ मिलते हैं। अतत्त्वाभिनिवेशमें दो शब्द हैं—अतत्त्व+अभिनिवेश। अतत्त्वका अर्थ है—असत् (Non-Existant) अर्थात् वास्तवमें जिस वस्तुकी सत्ता न हो तथा अभिनिवेशका अर्थ है—मन:संयोग, एकाग्रता, मरण-भय आदि। इस प्रकार किसी अतत्त्व (Non-Existant) वस्तुमें ही मन एकाग्र हो जाय या उससे मानव भयभीत रहे, उस रोगको 'अतत्त्वाभिनिवेश' कहा जाता है। लोकभाषामें इसे 'बहमका रोग' कहा जाता है। यह बड़ा भारी मानस रोग है। इस रोगकी पहचान भी कठिनाईसे होती है, जिसके कारण रोगी एक चिकित्सकके यहाँसे दूसरे चिकित्सकके यहाँ भटकता रहता है। इस रोगमें रोगी मिथ्याको ही सत्य समझ लेता है। वह मिथ्या वस्तु उसके मनमें इस प्रकार बैठ जाती है कि रोगी या चिकित्सकके लिये उसे निकालना कठिन हो जाता है, इसी कारण इसे 'महागद' कहा गया है।

कारण—

आचार्य चरकने इस रोगके तीन प्रमुख कारण इस प्रकार बतलाये हैं[१]—

(१) मलिन आहार-सेवन— लगातार मलिन आहारका अभ्यास या सेवन करना। मलिन आहारका तात्पर्य पर्युषित (बासी आहार), सड़े-गले आहार, मलोत्पादक आहार, तामसिक आहार, अपोषक आहार आदिसे है। आजकल बने-बनाये भोजनको सुरक्षित कर हफ्तों खानेका प्रचलन हो गया है या बाजारमें गंदगीयुक्त विभिन्न प्रकारके भोजन बिकते रहते हैं, उनका लगातार सेवन करना आदि।

(२) मल-मूत्र आदि अधारणीय वेगोंका धारण— आयुर्वेदमें मल-मूत्र, छींक, उद्गार, वमन, शुक्र तथा अश्रु आदिके वेगोंको अधारणीय कहा गया है। कतिपय व्यक्ति आदत या स्थितिके अनुसार इन वेगोंको धारण कर लेते हैं। जिसके कारण अनेक शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(३) शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष गुणवाले वस्तुओंका अधिक सेवन करना या इन गुणोंमें वृद्धि करनेवाले विहारका सेवन करना— जैसे अति शीतल पानी पीना या अतिमात्रामें बर्फका सेवन या अति उष्ण आहार (कटु, अम्ल, रूक्ष)-का सेवन या रूक्ष आहारका सेवन नियमित रूपमें करना। पावरोटी, ब्रेड आदिका बिना किसी स्निग्ध वस्तुके साथ नियमित सेवन करना या अति स्निग्ध आहारका सेवन करना। जैसे प्रतिदिन तली वस्तुओं—पूड़ी आदिका सेवन करना।

सम्प्राप्ति— जब मनुष्य लगातार उपर्युक्त आहारोंका सेवन करता है तो प्रकुपित दोष हृदयस्थ होकर मनोवहा, बुद्धिवहा सिराओं (स्रोतसों)-में व्याप्त हो जाते हैं। मन रजोगुण तथा तमोगुणद्वारा आवृत हो जाता है अर्थात् रज और तम मनको ढक लेते हैं। इस प्रकार रज और तमकी वृद्धिके कारण मन, बुद्धि, मनोवाही स्रोत, बुद्धिवहा स्रोत सभी आवृत हो जाते हैं।[२]

लक्षण—

रजोगुण तथा तमोगुणकी वृद्धिके कारण व्यक्तिका हृदय व्याकुल हो जाता है। यहाँ हृदयकी व्याकुलतासे मनकी व्याकुलता ग्रहण करनी चाहिये। मन स्वभावत: चञ्चल अर्थात् सदैव गतियुक्त रहता है, परंतु तमके आवरणके कारण एवं मनोवहा एवं बुद्धिवहा स्रोतसोंके अवरुद्ध होनेके कारण मनकी स्वाभाविक गति नहीं हो

---

१. मलिनाहारशीलस्य वेगान् प्राप्तान् निगृह्णत: । शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्हेतुभिश्चातिसेवितै: ॥ (चरक चि० १०।५७)

२. हृदयं समुपाश्रित्य मनोबुद्धिवहा: सिरा: । दोषा: संदूष्य तिष्ठन्ति रजोमोहावृतात्मन: ॥
रजस्तमोभ्यां वृद्धाभ्यां बुद्धौ मनसि चावृते। (च०चि० १०।५८-५९)

पाती, इस अवस्थामें मनकी व्याकुलता बढ़ जाती है। व्यक्ति जडवत् हो जाता है। उसे समझमें नहीं आता है कि हम क्या करें और क्या न करें। उसकी चेतना-शक्ति क्षीण हो जाती है। इस स्थितिमें वह व्यक्ति नित्यको अनित्य तथा अनित्यको नित्य समझने लगता है। उसके अंदर बुद्धिवहा दृष्टिके कारण लाभदायक तथा हानिकर वस्तुओंके बारेमें निर्णय करनेकी क्षमता नहीं रह जाती। आचार्योंने इन लक्षणोंसे युक्त रोगको अतत्त्वाभिनिवेश कहा है।[1]

इस रोगको गदोद्वेग भी कहा गया है। इस रोगमें व्यक्ति बिना किसी रोगके ही शंका किये रहता है कि उसे अमुक रोग हो गया है। चिकित्साभ्यासमें इस तरहके आतुर प्रायः आते हैं, जो कहते हैं कि—मुझे हृदयरोग हो गया है, मुझे गुल्म हो गया है आदि। जब कि सम्यक् परीक्षा करनेपर उन्हें कोई रोग नहीं होता है। इस प्रकार उनके अंदर अतत्त्व (असत्य)-का अभिनिवेश हो जाता है। जो चिकित्सक कह देता है कि—'आपको कोई व्याधि नहीं है', उस चिकित्सकसे हटकर रोगी दूसरे चिकित्सकके पास चला जाता है। रोगी सदैव चिन्तायुक्त रहता है। उसे ऐसा आभास होता है कि उसके सिरपर कोई मार रहा है या पेटके अंदर कोई व्रण या गुल्म आदि हो गया है या मुझे खानेमें मिलावट करके किसीने हानिकारक पदार्थ दे दिया है आदि। रोगी अपनी व्यथा बार-बार किसी व्यक्तिसे कहता रहता है। जब यह रोग जीर्ण हो जाता है तो रोगीको तीव्र उदरशूल होता है। उदरमें व्रणके लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। हृदयकी धड़कन बढ़ने लगती है। आतुरका शरीर कमजोर और पाण्डु वर्णका होने लगता है। श्वास लेनेमें कठिनाई होने लगती है। इसके अतिरिक्त रोगी अपने अंदर अनेक प्रकारकी व्याधियोंकी कल्पना करने लगता है कि मुझे अमुक रोग हो गया है। यह रोग कठिनाईसे ठीक होनेवाला है।

चिकित्सा-सिद्धान्त[2]—

—सर्वप्रथम दोषके अनुसार द्रव्यका चयन करके रोगीको बाह्य तथा आभ्यन्तर स्नेहन कराना चाहिये। पित्तज तथा कृश रोगीका घृतादिसे; वातज तथा कफजका तैल-योगोंसे स्नेहन करना चाहिये। फिर सम्यक् स्नेहनके बाद स्वेदन कराना चाहिये, स्वेदनके बाद पित्तजमें विरेचन तथा कफजमें वमन और वातजमें वस्तिकर्मका प्रयोग करना चाहिये तथा तदुपरान्त संसर्जन-क्रम (पेया, विलेपी आदिका क्रमानुसार सेवन) कराना चाहिये। आतुरके लिये मेध्य-अन्नपानकी व्यवस्था करनी चाहिये।

औषधीय चिकित्सा—इस रोगमें निम्न औषधियाँ लाभदायक हैं—

—ब्राह्मीस्वरसका प्रयोग ब्राह्मी घृतके साथ या पञ्चगव्य घृतके साथ कराना चाहिये।

—शंखपुष्पी स्वरसका प्रयोग करना चाहिये।

—शंखपुष्पी या ब्राह्मी स्वरसका प्रयोग दूधमें मिलाकर करना उत्तम फलदायक है। ताजी वङ्गीय ब्राह्मीका २०-३० मिली० स्वरस १५० मिली० दूधमें मिलाकर प्रातःकाल देनेपर अच्छा लाभ होता है।

—शतावर या मीठा कूट या मीठा वच इनको पानीकी सहायतासे सील-बट्टे या मिक्सीमें कल्क (चटनी-जैसा) बनाकर दूधमें घोलकर पिलाना उत्तम फलदायक होता है।

—इन औषधियोंके अतिरिक्त निम्न औषधियोंका व्यवहार भी किया गया है तथा परिणाम अच्छा आया है।

—प्रातः (शीत ऋतुमें) ब्राह्मी घृत १० ग्रामका प्रयोग करे, ऊपरसे १०० मिली० दूधमें मीठा वच २ ग्राम घोलकर दे।

—सारस्वत चूर्णका १-३ ग्राम २ बार प्रयोग लाभदायक है। भोजनके बाद दोनों समय सारस्वतारिष्ट तथा अश्वगन्धारिष्ट बराबर पानी मिलाकर प्रयोगमें लाना लाभदायक है।

—कतिपय रोगियोंमें यवट्यादि चूर्णका प्रयोग

---

१. हृदये व्याकुले दौषैरथ मूढोऽल्पचेतनः॥
विषमां कुरुते बुद्धिं नित्यानित्ये हिताहिते।
अतत्त्वाभिनिवेशं तमाहुराप्ता महागदम्॥ (च०चि० १०।५९-६०)

२. स्नेहस्वेदोपपन्नं तं संशोध्य वमनादिभिः। कृतसंसर्जनं मेध्यैरन्नपानैरुपाचरेत्॥ (च०चि० १०।६१)

भी लाभदायक पाया गया है।

—कृष्णचतुर्मुख रस १२५ मिग्रा० प्रात: १० ग्राम ब्राह्मीघृतसे तथा सायं १२५ मिग्रा० दूधसे देनेपर परिणाम अच्छा देखा गया है।

—सिरका बाल छोटा कराकर विष्णुतैलका प्रयोग करना चाहिये।

मानसिक चिकित्सा *—

इस व्याधिमें मनोचिकित्सा-हेतु रोगीके मित्रवर्गकी सहायता ली जाती है। जो मित्र रोगीके अति निकटस्थ एवं धर्म तथा अर्थसे सम्बन्धित तथ्योंकी जानकारी रखते हों, उन्हें निर्देश देकर रोगीको आश्वासन देनेका कार्य सौंपना चाहिये।

(१) धैर्य—रोगीके मित्र उसके अंदर धैर्य स्थापित करनेका प्रयत्न करें। यदि रोगीके अंदर धैर्य आ जाता है तो उसके मनका नियमन होने लगता है। धैर्य-स्थापनाहेतु 'ईश्वरवाद'—आस्तिकता सर्वोत्तम है। ईश्वरकी शक्तिका तथा भक्तोंकी कथाओंका आतुरपर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जब आतुरको ईश्वरपर किञ्चित् विश्वास हो जाता है तब उसके अंदर धैर्य आ जाता है।

(२) विज्ञान—अतत्त्वाभिनिवेशमें रोगी किसी ज्ञानपर स्थिर नहीं रहता। उसके अंदर स्थिर ज्ञानहेतु विभिन्न प्रमाणों और उदाहरणोंकी सहायता लेनी चाहिये। जब आतुरमें स्वयं प्रमाण तथा उदाहरणकी क्षमता आ जाती है तो उसके मनका नियमन होने लगता है।

(३) स्मृति—आतुरकी स्मृति-वृद्धिका प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये उसे सम्बन्धित विषयोंका स्मरण कराना चाहिये। इस स्थितिमें कतिपय औषधियोंकी भी सहायता ली जा सकती है।

(४) समाधि—यह मनकी सामान्य अवस्था—एकाग्रता है। जब आतुरमें धैर्य, विज्ञान, स्मृति-स्थापन हो जाय, तब समाधिकी स्थिति-हेतु उसे आश्वासन तथा उपदेश आदि देने चाहिये। इससे धीरे-धीरे उसकी व्याधिका उन्मूलन हो जाता है और वस्तुस्थितिका सम्यक् बोध हो जानेसे उसे तत्त्वका ज्ञान हो जाता है।

मानसिक रोग एवं उसका मनोवैज्ञानिक उपचार

(डॉ० श्रीओमप्रकाशजी द्विवेदी)

जीवन एक अज्ञात यात्रा है। इस यात्रामें व्यक्तिके समक्ष दो मार्ग हैं—(१) श्रेय मार्ग और (२) प्रेय मार्ग।

(१) श्रेय मार्ग—अर्थात् सदाके लिये सब प्रकारके दु:खोंसे सर्वथा छूटकर नित्य आनन्दरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेका उपाय।

(२) प्रेय मार्ग—अर्थात् सांसारिक यश आदि इहलोककी और स्वर्गलोककी जितनी भी प्राकृत सुख-भोगकी सामग्रियाँ हैं उनकी प्राप्तिका उपाय। बुद्धिमान् पुरुष दोनों मार्गोंको भलीभाँति विचारकर पुरुषार्थके द्वारा श्रेय मार्गका वरण करता है तथा—**'तरति शोकमात्मवित्'**—सिद्धान्तके अनुसार अध्यात्म मार्गका अनुसरण करता हुआ शोक-समुद्रको गोखुरके समान सहज भावसे पार कर जाता है।

संसारमें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसे शारीरिक या मानसिक रोग न हो। वात, पित्त, कफके विषम होनेसे विकाररूपमें रोग होता है। आधुनिक सभ्यताने विश्वमें मानसिक रोगियोंकी संख्यामें वृद्धि की है। प्रसिद्ध पाश्चात्त्य मानसिक चिकित्सक डॉ० फ्रायडके अनुसार मनुष्यको मानसिक रोग उसकी प्रबल काम इच्छाके दमनके कारण होता है। यह इच्छा दो प्रकारकी होती है—(१) शारीरिक सुखकी इच्छा और (२) दूसरोंपर अपना अधिकार जमानेकी इच्छा।

अनियमित भोगेच्छा मानसिक रोगोंका मूलहेतु बन जाती है। होता यूँ है कि शारीरिक सुखकी इच्छा इन्द्रिय-भोगके कारण उत्पन्न होती है और जब समाजके भयसे अथवा नैतिक मूल्योंके कारण इस इच्छा—आकाङ्क्षाकी पूर्ति नहीं होती तो भावनाएँ भीतरी मनमें चली जाती हैं। दमित होनेके कारण ये अतृप्त विचार स्वप्नोंमें और मानसिक रोगोंमें प्रतीक रूपसे प्रकाशित होते हैं। अत: यथेच्छ कामोपभोगसे सदा

* सुहृदश्चानुकूलास्तं स्वाप्ता धर्मार्थवादिन:। संयोजयेयुर्विज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभि:॥ (च० चि० १०। ६३)

बचना चाहिये। गीतामें युक्त आहार-विहारके द्वारा दु:खोंसे छूटनेका उपाय भगवान् श्रीकृष्णकी अमोघ वाणीमें निर्दिष्ट है। हम जैसा संग करते हैं, जैसा सोचते-विचारते हैं; वैसे ही बन जाते हैं। अत: सद्ग्रन्थ हमें सत्पथपर चलनेका आदेश देते हैं; क्योंकि सत्त्व गुणका आरोग्यसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। रज, तम और गुण हमें रोग, चिन्ता तथा प्रमादकी ओर ले जाते हैं, जिससे जीवन शारीरिक रोग, जैसे—रक्तचाप, लीवर, मधुमेह, कैंसर-जैसी बीमारियोंसे ग्रस्त हो जाता है और वह दु:खमय प्रतीत होने लगता है।

सत्त्वगुणी कौन है इसके विषयमें भावप्रकाशमें कहा गया है—

आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुत्तापश्च तथ्यं वचो
मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्च करुणा ज्ञानं च निर्दम्भता।
कर्मानिन्दितमस्पृहं च विनयो धर्मः सदैवादरा-
देते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीता गुणा ज्ञानिभिः॥

(सृष्टिप्रकरण ७)

अर्थात् आस्तिक, भोजन बाँटकर (संतुलित) खानेवाला, शान्तचित्त, सत्य वचन बोलनेवाला, मेधा, बुद्धि, धृति, क्षमा तथा करुणासे युक्त, अहङ्कारशून्य, इच्छारहित, अनिन्दित कर्म करनेवाला, विनयशील पुरुष तथा सदैव धर्मका आदर करनेवाला ही सत्त्वगुण-सम्पन्न कहा जाता है। इन्हीं गुणोंके कारण ज्ञानियोंने ऐसे सत्पुरुषोंकी महिमाका वर्णन किया है।

शास्त्रोंमें सत्त्वकी उपासना दो प्रकारकी बतायी गयी है—(१) निष्काम और (२) सकाम।

निष्काम उपासनासे होनेवाला सत्त्व क्रमशः अदृष्टका संचय कराता रहता है। यह अदृश्य शक्ति प्रत्येक कार्यको सिद्ध करानेमें सहायक होती है। सकाम उपासनामें प्रादुर्भूत सत्त्व गुण इच्छित फल देनेके बाद तिरोहित हो जाता है। सत्त्वगुणीके हृदयमें आनन्द एवं ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। जिससे मानसरोग स्वत: निर्मूल हो जाते हैं।

रज, तमकी अवस्थामें चित्त चञ्चल रहता है। काम आदि विकृतियाँ आ जाती हैं। मनुष्य अनीति-पथका अनुगामी बन जाता है। सत्त्वगुणी नीतिमान् एवं धार्मिक होता है। सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणोंके पालनमें तत्पर रहता है, इसलिये वह समाजका प्रकाश-स्तम्भ बन जाता है।

पाश्चात्त्य मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि हमारा मन समुद्रमें उतराते हुए बर्फ (आइस वर्ग)-के सदृश है, जिसका एक अंश पानीके ऊपर दिखायी पड़ता है और शेष आठ भाग पानीमें अदृश्य रहता है। दीखनेवाला भाग चेतन मन है। अदृश्य भागको अचेतन मन कहा गया है।

सम्पूर्ण मानसिक स्वास्थ्यके लिये मनमें सुन्दर एवं दृढ़ कल्पना करना आवश्यक है। जो हम बनना चाहें उसकी स्पष्ट कल्पना मनमें होनी चाहिये। दृढ़ कल्पना हृदयमें आत्मविश्वास पैदा कर देती है और हम अपने कार्यमें सफल होते हैं। कल्पनाके समय चेतन मन सुप्त रहना चाहिये अन्यथा तर्क एवं मन हमारे भावको बदल सकते हैं। जैसे शान्त झीलमें चन्द्रबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार शान्त मनमें कल्पना फलित होती है।

हमारा चेतन मन जब सो जाता है तब भी हमारा अचेतन मन जागता रहता है। 'छान्दोग्योपनिषद्'के अनुसार सुषुप्ति अर्थात् प्रगाढ़ निद्रामें हम ईश्वरसे जुड़ जाते हैं। जागनेपर कभी-कभी कहते हैं कि आज अच्छी नींद आयी। मनमें परमात्माका अनुप्रवेश है। जैसे शीशा एवं जलमें मनुष्यका प्रतिबिम्ब प्रवेश करता है, वैसे ही मनमें परमात्माका प्रतिबिम्ब प्रवेश करता है। समाधिमें तथा शान्त मनकी स्थितिमें सोनेपर जीवात्मा परमात्मासे जुड़ जाता है। जागनेपर हमें नयी स्फूर्तिकी प्रतीति होती है। रोगी मनुष्यको गाढ़ी निद्रा नहीं आती है। अत: उसे कुछ व्यायाम करना आवश्यक है। व्यायाम एवं सुपथ्य मनुष्यको नीरोग बनाता है।

फ्रांसके डॉ० इमिलकुए अपने चिकित्सालयमें रोगीको शान्त भावमें लाकर सुलाते थे। सोनेके पहले वे रोगीसे मन्त्र-रूपमें कई बार कहलवाते थे कि 'मैं प्रतिदिन स्वस्थसे स्वस्थतर होता जा रहा हूँ।' यह आत्मनिर्देश सोते समय सीधा अचेतन मनमें प्रवेश कर जाता था और जागनेपर रोगीको आराम मालूम होता था। इस अभ्यासको बराबर करनेका आदेश रोगीको देते थे। वे कहते थे कि हमारे अचेतन मनमें अपार शक्ति

है, इससे जुड़नेपर चमत्कारिक कार्य करनेकी क्षमता व्यक्तिमें आ जाती है। मनुष्यका मन वासनाके कारण मलिन हो जाता है।

मन मलिन होनेपर ईर्ष्या, द्वेष, भय, शोक आदि आवेगोंका अनुभव होनेपर पाचन, प्राणन, हृदयगति आदि जीवनोपयोगी क्रियाओंपर प्रभाव पड़ता है और हम तनसे, मनसे रोगी बन जाते हैं। जबकि शान्त मन होनेपर हमारा अहं नष्ट हो जाता है। कर्ताभाव समाप्त हो जाता है। हम तब ब्रह्मानन्दके अमृत-स्रोतसे जुड़ जाते हैं। हम धर्म-मार्गके अनुकरण करनेसे जप, तप आदिके द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कारके योग्य बन जाते हैं। प्रसिद्ध मनश्चिकित्सक एवं भारतीय दर्शनके प्रेमी डॉ० चार्ल्स युंगका कथन है कि जिसने पूजा-उपासनासे चेतन मनको शान्त करने तथा अचेतनरूपसे ईश्वरीय तत्त्वसे सम्पर्क बनाना जान लिया, उसने स्वस्थ रहनेकी जीवन-कला सीख ली। वह समाजका उपयोगी व्यक्ति होगा।

आजके वैज्ञानिकोंने तरंगोंके प्रभावके अध्ययनसे यह सिद्ध कर दिया है कि जीवन एक प्रतिध्वनि है। वीतराग संत-महात्माओंके साथ सम्बन्धसे हमें आध्यात्मिक पथपर बढ़नेकी लालसा होती है। अतृप्त आत्माओंसे निर्बल मन शीघ्र जुड़ जाता है, जिससे रोग, तृष्णाकी वृद्धि होती है। अतः सत्संग एक जीवन-चिकित्सा-प्रणाली है। हमें सावधान रहना चाहिये कि किसका संग हमें अभ्युदय—निःश्रेयस्‌की ओर ले जाता है। '**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः**'—बलहीनको दिव्य आत्माका ज्ञान नहीं होता है। वह सत् आत्माको परमात्मासे जोड़नेकी कला नहीं जानता है। चिन्ता लेकर सोता है, चिन्ता लेकर जागता है। जबकि नींदमें हम परमात्मासे जुड़ते हैं, फिर नयी स्फूर्ति लेकर जागते हैं और दैनिक कृत्य शास्त्रानुकूल करनेकी शुभ प्रेरणा प्राप्त करते हैं। हम जो कुछ कहते-करते हैं, वैसा ही वातावरण चारों ओरसे हमारी ओर लौटना शुरू हो जाता है; क्योंकि जीवन एक प्रतिध्वनि है। जो हम दान देते हैं, वह कई गुना बढ़कर हमारे पास लौट आता है। पृथ्वीमें एक बीज बोते हैं तो प्रकृति सैकड़ोंमें हमें लौटाती है। प्रकृति—भूमि हमारी माता है। हम श्रद्धा-उपासनाकी दृष्टिसे भूमिको देखते हैं जबकि पाश्चात्त्य संस्कृति प्रकृतिसे संघर्ष कर उसपर विजयकी सोचती है। संघर्ष मनमें भेद पैदा करता है। अतः वे शान्ति, अध्यात्मसे दूर रहते हैं। भारतवासी प्रकृतिसे ऐकात्मक सम्बन्ध जोड़ते हैं। विराट् भूमा-सुखकी ओर बढ़ते हैं। सांसारिक सुख अल्प है, जिससे भारतीय दूर रहते हैं। इन्द्रियसुख हमें राग, द्वेष, इच्छा, आकाङ्क्षाओंसे दुर्बल बनाता है। हम संकीर्ण हो जाते हैं। रोगग्रस्त हो जाते हैं। जड-चेतनयुक्त एवं गुण-दोषमय इस संसारसे हंसके समान गुण ग्रहण करना और दोष त्याग देना चाहिये। जो व्यवहार हमें प्रिय लगता हो, वही दूसरोंके प्रति करना कर्तव्य है। यही शास्त्रोंका उपदेश है। अविद्यासे रोग, शोक, मृत्यु और भयपर विजय प्राप्त करना है और विद्यासे अमृतकी प्राप्ति करनी है।

मनुष्यका सच्चा बल इस बातपर निर्भर नहीं करता है कि उसके पास क्या है? क्या नहीं है? बल्कि इस बातपर निर्भर करता है कि उसका निश्चय कैसा है? यदि किसी व्यक्तिका निश्चय किसी कार्यको करनेमें दृढ़ है तो मानसिक तरंगें उसे निश्चय ही सफलताकी ओर ले जायँगी।

'**क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे**'—अर्थात् महापुरुषोंकी क्रिया-सिद्धि उनके तेज (उत्साह)-पर ही निर्भर करती है, साधनोंपर नहीं। निश्चयकी परिपक्वता अन्तर्मुखी चिन्तनसे आती है। बहिर्मुखी चिन्तनसे राग-द्वेष पैदा होता है। इच्छाओं, आवश्यकताओंकी पूर्ति न होनेसे दुर्गुण बढ़ते हैं, जिसका प्रभाव मनके स्वास्थ्यपर पड़ता है। हमारी शक्ति बिखर जाती है और हम उत्साहहीन होकर रोगी बन जाते हैं।

पाश्चात्त्य मानसिक चिकित्सक डॉ० विलियम ब्राउनने मानसिक चिकित्साके चार अङ्ग बताये हैं—(१) दमित भावका रेचन, (२) सम्मोहन और निर्देशन, (३) आत्मज्ञान अर्थात् अपनी पुरानी घटनाओंको साक्षी भावसे देखनेका अभ्यास कराना और (४) भावोंका स्थानान्तरण। डॉ० चार्ल्स युंग जो भारतीय योगशास्त्र एवं उपनिषदोंके प्रेमी थे, उन्होंने एक पाँचवीं विधिको और जोड़ा है—रोगीके जीवन-मूल्योंका नवनिर्माण। आजके मनोवैज्ञानिक किसी एक विधिसे उपचार एकाङ्गी मानते हैं। अतः वे सब विधियोंसे

सरल प्रक्रियाको समन्वयात्मक ढंगसे ग्रहण करनेको चिकित्साकी उत्तम विधि मानते हैं।

भारतीय मनोवैज्ञानिक चिकित्सक, योगशास्त्र एवं भगवान् बुद्धके आनापान सतियोगका सहारा लेते हैं। योगसूत्रमें मैत्री भावना एवं संतोष-भावनाका मानसिक रोगको दूर करनेमें विशेष महत्त्व है। सब समय सबके प्रति मैत्री भावना एवं जीवनमें मैत्री भावना तथा संतोषके ग्रहणसे उत्तम सुख, स्वास्थ्य और लाभकी प्राप्ति होती है। आनापान सतिकी क्रिया भी उपयोगी है। आनापान सतियोगमें रोगीको शान्तभावमें लाकर सुला दिया जाता है। चिकित्सक सोते समय शुभ निर्देश देता है। फिर श्वासपर सहज ध्यान दिलाकर रोगीको सुला दिया जाता है। जागनेपर रोगीको आराम मालूम होता है और यह क्रिया चिकित्सकके अनुसार नित्य स्वस्थ होनेतक जारी रखनी पड़ती है। ये क्रियाएँ हमारे विभाजित व्यक्तित्वमें एकता स्थापित कराकर बिखरी हुई मानसिक शक्तियोंको एकीकरणकी ओर ले जाती हैं। इस विधिमें भी दमित मानसिक भावको चेतनाके सतहपर आनेकी छूट दी जाती है। बार-बार दमित भावके स्मरणसे रोगका बल कम हो जाता है और असंतोष पैदा करनेका स्वभाव भी क्षीण हो जाता है।

मानसिक चिकित्सामें सबके प्रति मैत्री भावका सदुपदेश वेदोंमें भी प्रतिपादित है। 'अथर्ववेद' के एक मन्त्रमें मैत्रीकी व्यापकताको बताते हुए कहा गया है— **'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु'**—अर्थात् सारी दिशाएँ मेरी मित्र हों। इसी प्रकार—**'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'**—की शक्तिसम्पन्न अमृत-भावनाका हम प्रतिदिन स्मरण करते हैं। मनका एक नियम है कि वह एक समयमें एक ही बातको स्मरण करता है, चाहे रोगके बारेमें चिन्ता करे या स्वास्थ्यके मङ्गल-सूत्रोंका स्मरण करे। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम सदा शुभ संकल्प करें, मैत्री एवं संतोषकी भावनाओंका स्मरण करें। भगवान्के मङ्गलमय नामोंका अनुकीर्तन करनेसे मङ्गल-ही-मङ्गल होता है।

गोस्वामीजीका तो यही कहना है—

'राम कृपाँ नासहिं सब रोगा।' और *'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला'* मोहसे अज्ञान एवं दुःख उत्पन्न होता है।

भारतीय संस्कृति सदासे त्याग-तपस्यामय रही है एवं तपोवनमें फूली-फली है। यह हमें बताती है कि स्वार्थपूर्ण इच्छाओं एवं आवश्यकताओंकी वृद्धिसे विकृति आती है। अतः त्याग एवं वैराग्यका संकल्प लेकर निष्काम होनेकी साधना करनी चाहिये ताकि रोगोंको पनपनेका मौका ही न मिले। हमें चाहिये कि हम इस संस्कृति एवं सभ्यताके अनन्य उपासक बनें। त्यागसहित भोग करें। भरतजी व्याकुल होकर माँ कौसल्याके सम्मुख कहते हैं—

जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥
तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ.....॥

हमारे जीवनके लिये ये आदर्श वचन हैं। जिनका हमें आचरण करना है, अन्यथा वसिष्ठजीके कथनानुसार हमारी गणना अधमोंमें होगी—

सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन होई॥

कामना हमारे लिये बन्धन है। माँ त्रिवेणीसे प्रार्थना करते हुए भरतजी कहते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

इसी प्रकारकी प्रार्थना प्रह्लादजीने भगवान्के सम्मुख की है। प्रह्लादजी भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! मुझे यह वरदान दीजिये कि मेरे हृदयमें कामनाका एक भी अंकुर न उगे।

अतः हमारा परम पुनीत धर्म है कि जिस मार्गसे हमारे पिता-पितामह-प्रपितामह गये हैं, वही मार्ग हमारे लिये शुभ, निरामय एवं निरापद है। उस मार्गका अनुसरण करके हम स्वस्थ एवं सुखी रह सकते हैं।

अतः हम अपने पुण्यश्लोक पुराणपुरुषोंके द्वारा प्रदत्त सरणिको स्मरण करें। शास्त्रके अनुसार जीवन-यापन करें। श्रद्धा एवं विश्वासके साथ जीवनयात्रा पूर्ण करें और पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्न रहकर निष्कामभावसे आनन्दपूरित हृदयसे सेवारूपी व्रतको अपने जीवनमें अङ्गीकार कर लें।

मानसिक अपंगता—प्रकृति एवं उपचार

(श्रीभूपेन्द्रजी निगम)

मानसिक अपंगता एक प्रकारकी व्याधि है, जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध बौद्धिक योग्यतासे होता है। मूलत: मानसिक अपंगता कोई रोग नहीं है, बल्कि मानसिक अपंग व्यक्तियोंमें मानसिक बौद्धिक योग्यताकी कमी रहती है, जो इन्हें सामान्य व्यक्तियोंसे अलग करती है।

मानसिक अपंग व्यक्तियोंके मानसिक विकासकी गति धीमी होती है। यह विकास भी केवल एक निर्धारित सीमातक ही होना सम्भव रहता है। इसीलिये इस प्रकारके व्यक्ति अपने कार्योंको ठीक तरहसे करनेमें पूर्णत: या आंशिक रूपसे असमर्थ रहते हैं। इन्हें अपना कार्य करनेके लिये दूसरोंकी सहायता एवं मार्गदर्शनकी आवश्यकता रहती है। सम्भव है कि इस कारण इन्हें दूसरोंपर निर्भर रहना पड़ सकता है। यह निर्भरता इससे सम्बन्धित रहती है कि उनका मानसिक विकास किस सीमातक हुआ है।

जो भी व्यक्ति मानसिक या शारीरिक रूपसे अपंग हैं, वे समाजमें घृणाके पात्र नहीं हैं। हमें उनके साथ सहृदयतापूर्वक मानवताका व्यवहार करना चाहिये और उनके प्रति सद्भाव रखकर उनमें पुरुषार्थ विकसित कर उन्हें शिक्षित बनाना चाहिये।

सामान्य रूपसे कहा जा सकता है कि मानसिक अपंगता एक दशा या स्थिति है, जो व्यक्तिमें जन्मसे रहती है। माता-पिताकी जागरूकतामें कमीके कारण शुरूके कुछ महीनों, वर्षोंमें इनका उन्हें पता नहीं चलता, क्योंकि विकासात्मक सोपानों (Development Milestones)-का ज्ञान, जानकारी न होनेके कारण वे इस ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं। शालामें बालक जब अन्य बालकोंके समान चल नहीं पाता या व्यवहार-सम्बन्धी कोई समस्या उत्पन्न हो जाती है तब इस कमीका पता चलता है। सीमित बुद्धि एवं अपर्याप्त सामाजिक व्यवहार इनकी विशेषता होती है।

यदि माता-पितामें जागरूकता हो तो इनकी पहचान जन्मके पश्चात् ही अवलोकनद्वारा की जा सकती है। वर्तमान वैज्ञानिक युगमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणोंद्वारा शीघ्र ही कम आयुमें इसका पता लगाकर उनका उपचार किया जा सकता है तथा इनके लिये विभिन्न कार्यक्रम सम्पादित किये जा सकते हैं, जिससे इन्हें अत्यधिक लाभ मिल सकता है और विकासकी सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। अवलोकनके द्वारा निम्न विन्दुओंको देखा जा सकता है—

१-समान उम्र, अपनी ही उम्रके बच्चोंके समान कार्य करनेमें असमर्थता।

२-सामाजिक स्थितियोंमें समायोजनमें कठिनाई या कमी।

३-अपनी शारीरिक आयुके अनुरूप क्रियाएँ या व्यवहार न कर पाना।

४-मानसिक विकासकी कमीके कारण व्यवहार-सम्बन्धी समस्या, बाधा होना।

५-अपने कार्योंको वाञ्छित परिपक्वताके स्तरके अनुरूप करनेमें असमर्थता।

६-अपनी शारीरिक बनावटके कारण सामान्य व्यवहार करनेमें सफल न हो पाना। कुछ जटिल बीमारियोंके कारण बच्चेका शारीरिक विकास आयुके अनुरूप नहीं हो पाता, जिससे उसकी मानसिक योग्यता भी प्रभावित होती है।

७-बच्चेका अतिक्रियाशील होना। अपंगता उसकी क्रियाशीलताकी गुणवत्तापर निर्भर करती है।

मानसिक अपंगताके लक्षण

मानसिक रूपसे अपंग व्यक्तियोंमें इस प्रकारके लक्षण हो सकते हैं—

१-सीमित बौद्धिक स्तर जिसका पता कार्य करनेकी प्रवृत्तिसे चलता है।

२-सामाजिक समायोजनमें कमी, असमर्थता।

३-शीघ्र ध्यान भंग होना, स्मृति कमजोर होना, धारणा-शक्ति एवं कल्पना-शक्ति कम होना, रचनात्मकताकी कमी, चिन्तनमें असमर्थता।

४-सीखनेकी गति धीमी होना।

५-आत्मरक्षाकी भावनाका अभाव एवं खतरेका पूर्वानुमान न लगा पाना।

६-उठना, बैठना, चलना, बोलना आदि क्रियाओंमें अस्वाभाविक रूपसे देरी होना।

७-संवेगोंपर नियन्त्रण न होना तथा उन्हें प्रकट न कर पाना।

८-मूलभूत आवश्यकताओं—जैसे खाना, पीना, टट्टी, पेशाब आदिको बता न पाना।

९-असंगठित व्यक्तित्व।

१०-शारीरिक दोषोंका होना, जो मानसिक विकासको प्रभावित करते हैं।

इन लक्षणोंमेंसे कोई भी लक्षण दिखनेपर बालरोग-चिकित्सक एवं मनोवैज्ञानिकसे बच्चेकी जाँच कराना जरूरी रहता है, जिससे कि वास्तविक स्थितिका मूल्याङ्कन कर बच्चेके लिये उद्दीपन कार्यक्रम निर्धारित किया जा सके और बच्चेका अधिकतम सम्भावित विकास हो सके। इसके माध्यमसे उसे स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर बनानेकी दिशामें काम किया जा सकता है।

उपचार—न केवल विशेष प्रकारके विकलांग, बल्कि सभी प्रकारके व्यक्तियोंको परामर्श देते समय यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस व्यक्तिको अच्छी तरह समझें। बिना समझे परामर्श नहीं दिया जाना चाहिये। सामान्यरूपसे मानव-व्यवहारको दो दृष्टिकोणोंसे देखा जा सकता है—

१-बाह्य अथवा वस्तुगत एवं

२-व्यक्तिके स्वयंके दृष्टिकोणसे।

१-बाह्य अथवा वस्तुगत दृष्टिकोण—इसमें बाह्य व्यक्ति व्यवहारको देखता है। यह सही भी हो सकता है एवं गलत भी। इसमें बहुत अधिक वैयक्तिक भिन्नताएँ होती हैं। व्यक्ति एक प्रकारके उद्दीपकके प्रति विभिन्न प्रकारसे प्रतिक्रियाएँ करते हैं। व्यक्तिकी आवश्यकताएँ अहम् भूमिका निभाती हैं। घर, समाज, शालाकी महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं।

२-व्यक्तिके स्वयंके दृष्टिकोणसे—इसमें व्यक्ति अपने स्वयंका प्रत्यक्षीकरण किस प्रकारसे करता है। यह इसलिये महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि हर व्यक्ति अपनी एक दुनियामें रहता है जो बाकी दुनियासे भिन्न होती है। व्यक्तिका आत्म-प्रत्यय अर्थात् उसके अपने स्वयंके बारेमें क्या दृष्टिकोण (चित्र) है, उसके व्यवहारको समझनेके लिये आवश्यक होता है। सामान्यतः हम उसी कार्यको करते हैं, जो स्वयंके अनुरूप प्रतीत होता है। आत्म-प्रत्ययको वर्तमान सामाजिक वास्तविकताओंसे तादात्म्य रखनेवाला होना चाहिये।

व्यक्ति अपने स्वयंको समझ सके, इसके लिये आवश्यक हो जाता है कि हम मदद करें कि व्यक्तिकी क्या विशेषताएँ हैं, उसका व्यवहार अन्य लोगोंसे किस प्रकार भिन्न है एवं इन सबसे महत्त्वपूर्ण कि उसकी शक्तियों (अच्छाइयों, गुणों)-का अधिकतम एवं कमियोंका न्यूनतम उपयोग होनेवाले लक्ष्योंका चुनाव किस प्रकार हो सकता है।

मानसिक अपंगताकी पहचान हो जानेके उपरान्त बौद्धिक स्तरके अनुरूप कार्य करना आवश्यक हो जाता है। इस कार्यमें मनोवैज्ञानिकोंकी अहम् भूमिका रहती है। यह कार्य घर, समाज एवं शाला स्तरपर किये जा सकते हैं। यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक हो जाता है कि जैसे ही माता-पिताको बच्चेके सीमित बौद्धिक स्तरके बारेमें जानकारी प्राप्त हो जाय, तुरंत ही उसके सुधारकी दिशामें प्रयास शुरू कर देना चाहिये।

बुद्धि अनेक प्रकारकी योग्यताओंका मिश्रण, योग होती है। किसीमें कोई योग्यता अधिक मात्रामें रहती है तो किसी अन्यमें कोई दूसरी योग्यता। इसीलिये बौद्धिक स्तर कम होते हुए भी व्यक्ति अनेक कार्योंको करनेमें कुशलता प्राप्त कर सकता है। उसमें सम्भावनाएँ रहती हैं कुछ करनेकी, कुछ सीखनेकी। उचित प्रशिक्षण यह निर्धारित करता है कि वह कार्यको किस सीमातक कर पायेगा। यह सामान्यतः इस बातपर निर्भर करता है कि उसमें किस प्रकारकी योग्यता अपेक्षाकृत अधिक मात्रामें है।

जैसा कि पूर्वमें भी बताया गया था कि मानसिक अपंग व्यक्तियों-हेतु कार्य तीन स्तरपर हो सकते हैं। इनके बारेमें संक्षिप्त जानकारी दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

(अ) घर—मानसिक रूपसे अपंग व्यक्तिके विकासहेतु माता-पिता एवं परिवारके अन्य सदस्योंकी

भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है इसके लिये कुछ बातें जरूरी हैं—

१. माता-पिता बच्चेकी कमीको छिपायें नहीं, बल्कि उस कमीको स्वीकार करते हुए उसे दूर करनेका प्रयास करें, क्योंकि छिपानेसे कमी दूर नहीं होती।

२. माता-पिता उचित प्रशिक्षणद्वारा बच्चेमें सीखनेकी तत्परता उत्पन्न करनेकी प्रेरणा देवें। इसके लिये बहुत धैर्यकी आवश्यकता होती है, क्योंकि ऐसे बच्चोंकी सीखनेकी गति धीमी होती है और माता-पिताको घर, बाहरके अन्य कार्य भी करने होते हैं। प्रशिक्षणमें सबसे अधिक योगदान माता-पिताका ही हो सकता है।

३. सुधार, प्रशिक्षण, उद्दीपन-कार्यक्रम-हेतु प्रयास अपंगताका पता चलते ही शुरू कर देना चाहिये। विश्वमें अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें मानसिकरूपसे अपंग व्यक्तियोंने सफलताके शीर्ष स्थान प्राप्त किये हैं।

४. माता-पिताके लिये बहुत आवश्यक होता है कि वे अपने बच्चेको, वह जैसा भी है, स्वीकार करें जिससे कि वह बच्चा भावात्मक एवं संवेगात्मक रूपसे स्वयंको सुरक्षित अनुभव करे। वे उनके प्रति घृणा या दयाका भाव-जैसा दृष्टिकोण न रखें एवं उनको आत्मनिर्भर बनानेमें सहयोग प्रदान करें।

५. माता-पिता बच्चेकी कभी भी उपेक्षा न करें, न स्वयं अपनेमें ही कोई हीनताकी भावना पनपने दें कि वे इस प्रकारके बच्चेके माता-पिता हैं। यदि परिवार बच्चेको स्वीकार करता है तो समाज भी उसे स्वीकार करता है। वर्तमान समयमें इस प्रकारके बच्चोंके प्रति सकारात्मक अभिवृत्तिसे अनेक बच्चोंको लाभ मिल रहा है।

६. माता-पिताके लिये यह भी आवश्यक है कि वे अपने इस प्रकारके बच्चेकी तुलना अन्य सामान्य बच्चोंसे न करें। कोई भी व्यक्ति अपने-आपमें पूर्ण नहीं होता, उसमें अच्छाइयाँ एवं कमियाँ दोनों ही होती हैं। विवशता है कि इन बच्चोंमें कमियाँ अपेक्षाकृत अधिक होती हैं, परंतु इनमें जो अच्छाइयाँ, गुण हैं, उनका पता लगवाकर उन्हें अधिकतम सीमातक सिखानेका प्रयास किया जाना चाहिये।

(ब) समाज—समाजके दृष्टिकोणसे भी यह आवश्यक हो जाता है कि वे इन लोगों एवं इनके माता-पिताके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखें, जिससे बच्चोंको उचित सामाजिक वातावरण मिल सके और बच्चे उनकी सीमाओंके अन्तर्गत उपलब्ध योग्यताका अधिकतम उपयोग कर आत्मनिर्भर बन सकें।

इस प्रकारके बच्चोंका समाजीकरण होना अत्यन्त आवश्यक होता है। शुरूमें कठिनाइयाँ आनेकी सम्भावना रहती है, पर धीरे-धीरे वे उस वातावरणसे समायोजित हो जाते हैं। समाजके सभी सदस्य—विशेषकर पड़ोसी भी ऐसे परिवारके प्रति अच्छा दृष्टिकोण एवं अभिवृत्ति रखें, जिसमें इस प्रकारका बच्चा है।

(स) शालाएँ—वर्तमान समयमें इस प्रकारके बच्चोंके प्रशिक्षण-हेतु अनेक प्रकारकी शासकीय एवं अशासकीय संस्थाएँ कार्यरत हैं, जिनमें बच्चोंको बहुत लाभ हो रहा है। पर इन सबके बाद भी इन बच्चोंके विकासमें माता-पिता, परिवारकी अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, क्योंकि वह बच्चा उनमेंसे एक है।

चिकित्सकोंको भी चाहिये कि वे माता-पिताको अन्धकारमें न रखकर आशावादी तरीकेसे वास्तविक जानकारी दे दें। ऐसेमें चिकित्सकोंको एक अच्छे परामर्शदाताकी भूमिकाका निर्वाह करना चाहिये।

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि इस प्रकारके बच्चोंके उद्दीपन, प्रशिक्षण-कार्यक्रम, बच्चेकी वास्तविक आयु और मानसिक आयुको ध्यानमें रखकर बनाये जायें। सिखाना धीरे-धीरे सरलसे कठिनकी ओर सरल चरणोंमें होना चाहिये। ऐसा लक्ष्य निर्धारित करना चाहिये, जिसे प्राप्त करनेकी सम्भावना हो। सीखनेके लिये उन्हें संवेगात्मक सुरक्षा, स्वतन्त्रता, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और सामान्य व्यवहार (कैजुअल)-द्वारा प्रेरणा देनी चाहिये।

मानसिक अपंग व्यक्तियोंके उत्थानमें हर कदमपर चिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकोंकी अपनी भूमिका है, पर इन सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका माता-पिता एवं परिवारके सदस्योंकी है; क्योंकि वह उनका अपना बच्चा है।

मनोरोगोंकी वैदिक चिकित्सा—शिवसङ्कल्पभावनाका विस्तार

(डॉ० श्रीचन्द्रभालजी द्विवेदी, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, दर्शनाचार्य, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, का० हि० वि० विद्यालय, वाराणसी)

आजका समय अनेक प्रकारकी मानसिक दुश्चिन्ताओं, तनावों, मानसिक दबावों, सन्त्रासों, हताशाओं एवं झंझावातोंसे जर्जर मानवका भयावह स्वरूप हमारे सम्मुख उपस्थापित करता है। इस दुरवस्थाका कारण खोजना कथमपि दुष्कर कार्य नहीं है, क्योंकि कारण हम सबके सम्मुख स्वत: प्रमाणके रूपमें विद्यमान है और वह है अनादिकालसे स्वीकृत भारतीय शाश्वत जीवन-मूल्योंको छोड़कर पाश्चात्त्य जीवन-शैलीकी मृगमरीचिकाकी ओर लुब्ध भावसे देखनेवाली विचारधारा। यही इस दुरवस्थाका मूल कारण है। आज हमने जिन कृत्रिम औपचारिकताओंका सहारा ले रखा है। वे सभी व्यर्थ सिद्ध हो चुकी हैं। अत: अब हमें इन्हें छोड़कर पुन: उन्हीं प्राचीन भारतीय मूल्योंकी स्थापनाहेतु अग्रसर होना होगा। क्योंकि भारतीय जीवन-मूल्योंमें ही हमें शान्ति, सौहार्द, प्रेम, त्याग, सहृदयता, समरसता, समनस्कता, समादर, समञ्जन और विश्वबन्धुत्वका भाव उपलब्ध होता है।

उत्तम स्वास्थ्यकी जो परिभाषा हजारों वर्ष पूर्व महर्षि सुश्रुतद्वारा दी गयी थी।* वह सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सर्वजनोपयोगी है।

तदनुसार 'स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसके त्रिदोष (कफ, वात, पित्त) सम हों, जिसकी अग्नि सम हो (अर्थात् जिसकी पाचनक्रिया नियमित हो), जिसकी सप्तधातुएँ (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र) सम हों, जिसकी मल, मूत्र और स्वेद-नि:सरण-क्रियाएँ सम हों तथा जिसका सत्त्व (आत्मा), पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पञ्च कर्मेन्द्रियाँ एवं मन प्रसन्नावस्थामें हो।'

स्वास्थ्यकी यह परिभाषा हमें शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक समरसताका परिचय कराती है और उसे कैसे पाया जा सकता है ? उसके लिये आवश्यक दिशा-निर्देश भी प्रदान करती है।

किंतु आजकी स्थिति अत्यधिक भयावह है। शारीरिक रोगोंकी नित्यवर्धनशीलता एवं मानवमात्रके अस्तित्वको चुनौती देनेवाले विकट रोगोंसे भी कहीं अधिक त्रासद स्थिति है मानसिक रोगोंकी। ऐसा इसलिये है कि अधिकांश मनोरोग लगभग असाध्य हैं, कम-से-कम गम्भीर मनोरोगोंकी स्थिति तो ऐसी ही है। मनोरोगोंके वर्गीकरणके प्रयास समय-समयपर किये जाते रहे हैं, जिनमें सबसे नवीन है सन् १९९२ में विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन)-द्वारा किया गया मनोरोगोंका वर्गीकरण, जिसे इण्टरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ मेण्टल डिजीजेज-१० (या आइ०सी०डी-१०)-के नामसे जाना जाता है। इस वर्गीकरणका उपयोग करते हुए अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसियेशनने वर्ष १९९४में डाइग्नॉस्टिक एण्ड स्टैटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेण्टल डिजीजेज-४ (या डी०एस०एम०-४)-के नामसे एक बहु-अक्षीय वर्गीकरण प्रस्तुत किया। जिसका प्रयोग मनोरोगोंके याथातथ्य निदानहेतु अमेरिकामें किया जाता है।

मनोरोगोंका आयुर्वेदीय वर्गीकरण अपेक्षाकृत संक्षिप्त, सरल तथा सुगम है। 'चरकसंहिता'में शारीरिक रोगोंका कारण त्रिदोषजन्य वैषम्य तथा मनोरोगोंका मूल कारण रजस् तथा तमको बताया गया है। अष्टाङ्गहृदयने बताया है कि शरीरमें दोषोंका विषमावस्थामें रहना रोग तथा दोषोंका साम्यावस्थामें स्थित रहना ही आरोग्य है—'**रोगस्तु दोषवैषम्यं, दोषसाम्यमरोगता**।' (अष्टा०, सू० १।२०)। 'चरकसंहिता'में मनोरोगोंके कारणके रूपमें असात्मेन्द्रियार्थ संयोग (इन्द्रियोंकी अयुक्त, अतियुक्त या मिथ्यायुक्त क्रियाशीलता),

* समदोष: समाग्निश्च समधातुमलक्रिय:। प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यभिधीयते॥ (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान १५।४१)

प्रज्ञापराध (बुद्धि या मनके द्वारा किये गये अयुक्त कर्म) और परिणामके रूपमें त्रिविधरोगायतनका वर्णन किया गया है जो वस्तुतः आयुर्वेदकी मौलिक देन कही जा सकती है।

मानसिक रोगोंकी चिकित्साहेतु आधुनिक मानसोपचार विधियोंकी संख्या ढाई सौतक पहुँच गयी है और उस सूचीमें निरन्तर परिवर्धन होता जा रहा है (द्रष्टव्य आर०जे० कोर्सिनीद्वारा सम्पादित 'हैण्डबुक ऑफ इनोनेटिव साइकोथेरेपीज' १९८१, न्यूयार्क वाइली एवं करेण्ट साइकोथेरेपीज, १९८४ तृतीय संस्करण)। इतनी अधिक संख्यामें मानसोपचार विधियोंके बाद भी मानसिक रोगोंका समुचित उपचार यदि नहीं हो पा रहा है और यदि मानसोपचारके कई सत्रोंके पश्चात् भी रोगीके व्यवहारमें सार्थक परिवर्तन दृष्टिगत नहीं हो रहा हो तो कुछ अन्य कारणोंकी ओर भी मनोवैज्ञानिकोंको देखना चाहिये, जो अबतक करना सम्भव नहीं हो सका है।

यहाँ वैदिक पद्धतिसे मानसोपचारकी एक सच्ची घटनाका वर्णन प्रस्तुत है जिसका सद्यः प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। लेखकने काशी मनोविज्ञानशालाके संस्थापक स्वर्गीय प्रोफेसर लालजीराम शुक्लद्वारा प्रयुक्त मैत्रीभावनासे मानसोपचारका प्रत्यक्ष प्रदर्शन देखा है और उस मनोविज्ञानशालाके एक अनुभवका विवरण उसकी उपादेयताका परिचय करानेहेतु यहाँ वर्णित है—

घटना लगभग तीस-बत्तीस वर्ष पूर्वकी है। एक युवक जिसकी अवस्था लगभग उन्नीस वर्षकी थी, काशी मनोविज्ञानशालामें आया और उसने बताया कि उसके पड़ोसमें एक लड़की रहती है जिसे वह बिलकुल ही नहीं चाहता, बल्कि उससे वह घृणा करता है, किंतु उस लड़कीके प्रति आकर्षणका उसे प्रायः अनुभव होता रहता है। उस युवकने बताया कि प्रायः रात्रिके निभृत एकान्तमें नींदमें उठकर और अपने घरके बंद दरवाजेको खोलकर मैं उस लड़कीके घरतक चला जाया करता हूँ किंतु तन्द्रा भंग होते ही मेरा घृणाबोध जाग उठता है और मैं लौट पड़ता हूँ। उस युवकने बताया कि एक बार ऐसे ही नींदसे उठकर मानो यन्त्रवत् मैंने अपने घरके दरवाजे खोले और पड़ोसवाले उस घरकी ओर चला, जहाँ वह लड़की रहती थी। उस लड़कीके घरके दरवाजे खुले थे और वह लड़की मेरा ही एक फोटो अपने सम्मुख रखकर बड़े स्नेहसे उसे निहार रही थी। अचानक मेरी तन्द्रा भंग हुई और मनमें उस लड़कीके प्रति पहलेसे विद्यमान घृणाका बोध मुझे हुआ और मैं लौटकर पुनः सो गया। ऐसी कई घटनाएँ कई बार उस युवकद्वारा अनुभव की गयी थीं, जिनमेंसे कुछका विवरण उसने प्रोफेसर लालजीराम शुक्लको बताया था। शुक्लजीने कहा कि तुम उस लड़कीको नहीं चाहते हो, उससे घृणा करते हो, यह निषेधात्मक भाव है। इसके विपरीत वह लड़की तुम्हें चाहती है, यह सकारात्मक भाव उसके अंदर है। प्रेम घृणाको जीतनेमें सक्षम है। तुम घृणा करते हो और वह प्रेम करती है। अतः उसका प्रेम तुम्हारी घृणासे भारी पड़नेके कारण तुम उसके प्रति अचेतन मनमें आकर्षणका अनुभव करते हो। अतः तुम भी उसके प्रति सकारात्मक भाव विकसित करो। उस लड़कीका एक चित्र प्राप्त करो और उसे सामने रखकर कहो कि 'मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ। तुम मेरी बहनतुल्य हो। मैं तुम्हारा आदर करता हूँ। मैं तुम्हारा भाई-जैसा हूँ। मैं तुम्हारे प्रति बहन-जैसा भाव रखता हूँ।' इस प्रकारकी मैत्रीभावनाका विकास जब तुम्हारे अंदर उस लड़कीसे अधिक हो जायगा तो वह मोहका आकर्षण समाप्त हो जायगा। उस युवकने वैसा ही किया और कुछ महीनोंके बाद वे दोनों वास्तवमें भाई-बहन-जैसी भावनाका विकास करनेमें सफल हुए।

वास्तवमें हमारा मनोराज्य कहीं अधिक विस्तृत, व्यापक, तीव्रतर और शक्तिमान् है, जिसका हमें रंचमात्र भी आभासतक नहीं होता। वैदिक चिकित्सा-पद्धतिमें अपने मनको शिवसंकल्पयुक्त बनाने और सकारात्मक भावोंके चिन्तनके द्वारा मनोरोगोंसे मुक्त होनेकी विधि वर्णित है। चरकसंहितामें मनोरोगोंकी चिकित्साहेतु दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय तथा सत्त्वावजयकी विधियोंका वर्णन किया गया है। इन्हें त्रिविध औषध कहकर इस प्रकार बताया गया है—

त्रिविधमौषधमिति—दैवव्यपाश्रयं, युक्तिव्यपाश्रयं सत्त्वावजयश्च॥ तत्र दैवव्यपाश्रयं—मन्त्रौषधिमणिमङ्गल-होमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययन प्रणिपातगमनादि॥ युक्तिव्यपाश्रयं—पुनराहारौषधद्रव्याणां योजना॥ सत्त्वावजयः—पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः॥

(चरकसंहिता, सूत्रस्थान ११। ६९—७२)

दैवव्यपाश्रयके अन्तर्गत मन्त्र, औषधि, मणि, मङ्गल-कर्म, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपात और तीर्थयात्राकी विधियाँ वर्णित हैं। युक्तिव्यपाश्रयके अन्तर्गत आहार-विहार और औषध द्रव्योंका युक्तिपूर्वक उपयोग वर्णित है। सत्त्वावजय (जिसे आधुनिक मानसोपचार-जैसा कह सकते हैं)-के अन्तर्गत अहित कार्योंसे मनका निग्रह करना या वापस लाकर मनका नियमन करना वाञ्छित है। इस प्रकार आयुर्वेदमें मनोरोगोंके सम्यक् उपचारका वर्णन मिलता है। यहाँ एक उपचार-पद्धति उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

मनोरोगोंकी वैदिक उपचार-पद्धतिके रूपमें 'शिवसङ्कल्पसूक्त'—

यह वैदिक उपचारपद्धति केवल मनोरोगोंके उपशमनहेतु ही प्रयुक्त की जाय ऐसा नहीं है, वरन् उत्तम मानसिक स्वास्थ्यहेतु भी इसका समुचित उपयोग किया जा सकता है। इसे व्यक्ति स्वतः प्रयोगमें ला सकता है अथवा यदि रोगी ऐसी स्थितिमें नहीं हो कि वह इसका प्रयोग कर सके तो अन्य कोई अधिकारी व्यक्ति या विद्वान् चिकित्सक भी उस रोगीके कल्याणार्थ इसका प्रयोग कर सकता है।

सुखासनमें बैठ जाइये। यदि रोगी बैठ न सके तो उसे उत्तर दिशाकी ओर पैर और दक्षिण दिशाकी ओर सिर करके लिटा दें। चिकित्सक उस रोगीके बायीं ओर सुखासनमें बैठ जाय। सम्पूर्ण शरीरको ढीला कर दीजिये। तनावमुक्तिका अनुभव कीजिये। लम्बी श्वास खींचिये। तीन बार गम्भीर स्वरमें प्रणवोच्चार कीजिये। अब 'शिवसङ्कल्पसूक्त'के निम्नलिखित मन्त्रोंका अर्थबोधसहित पाठ कीजिये। पाठके समय मनमें यह भावना रखनी जरूरी है कि मेरे मनमें शुद्ध विचार भर रहे हैं और अशुभ विचार बाहर हो रहे हैं। मैं अन्तः-बहिः सभी ओर शुभ संकल्पवाला होता जा रहा हूँ। मन्त्रोंके उच्चारणमात्रसे सम्पूर्ण वातावरण शुभ विचार सम्पन्न होता जाता हूँ, यह अनुभव जितना दृढ़तर होता जायगा उतनी ही मानसिक शान्ति, प्रसन्नता एवं आह्लादका अनुभव आप करते जायँगे। शिवसङ्कल्पसूक्त 'शुक्लयजुर्वेद'-के कुछ मन्त्र हैं, जिन्हें नीचे दिया जा रहा है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

'जो जाग्रत् अवस्थामें बहुत दूरतक चला जाता है, जो आत्मद्रष्टा दैव है, सुषुप्ति-अवस्थामें जो लौटकर आ जाता है, दूर जानेवाला और सभी इन्द्रियोंका प्रकाशक, ज्योतिस्वरूप मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

'जिससे कर्मनिष्ठ, धीर, मनीषी लोग यज्ञमें तथा पूजादिमें विविध कर्म करते हैं, जो अपूर्व है अर्थात् जो सबसे पहले उत्पन्न होता है, जो पूज्य है, जो प्राणियोंके अन्तस्में रहता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

'जो सभी प्रकारके ज्ञान-प्रज्ञानका साधनभूत है, जो चित् है, जो धैर्यरूप है, जो सभी प्राणियोंमें विद्यमान अन्तस्की अमृत ज्योतिस्वरूप है, जिसके अभावमें कोई भी कार्य किया ही नहीं जा सकता, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

'जिसे अमृत मनके द्वारा इस संसारके समस्त भूत, वर्तमान एवं भविष्यत्के सभी पदार्थ ज्ञात होते हैं, जिसके द्वारा सप्तहोताओंवाला अग्निष्टोम-यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

'जैसे किसी रथचक्रकी तीलियाँ उसकी नाभिमें

प्रतिष्ठित रहती हैं, उसी प्रकार जिस मनमें ऋक्, यजु, साम प्रतिष्ठित रहते हैं, जिस चित्तमें समस्त प्राणियोंका समग्र ज्ञान निहित है, ऐसा वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

'जैसे अच्छा सारथी लगामद्वारा तेज चलनेवाले घोड़ोंको नियन्त्रणमें रखता है, उसी प्रकार जो मनुष्योंको प्रेरित करता है, जो हृदयमें स्थित है, जो वार्धक्यसे रहित है, जो अतिशय वेगवान् है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

'शिवसङ्कल्पसूक्त' के मन्त्रोंके पाठके समय जितनी तन्मयता, अर्थबोध, एकात्मता और तल्लीनता होगी, उतनी ही शीघ्रतासे मानसिक स्वास्थ्यका संवर्धन और संपोषण होगा। सम्पूर्ण चिन्तन शिव-भावनासे ओत-प्रोत हो और मन शुभसंकल्पोंसे भर जाय, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। प्रत्येक मन्त्र-पाठके साथ हुए शुभ प्रभावका बोध बढ़ता हुआ अनुभव होता रहे और मनमें प्रशान्तिका अनुभव होता रहे तो समझना चाहिये कि प्रभुकृपासे लाभ हो रहा है।

इस प्रकार शुभ संकल्पोंसे परिपूर्ण होकर साधकको सर्वत्र मैत्रीभावनाका प्रसार करना चाहिये। मैत्रीभावनाके प्रसारके समय 'अथर्ववेद' का निम्नलिखित मन्त्र-पाठ करनेके पश्चात् मैत्रीभावना कैसे प्रसृत हो रही है, इसका क्रमशः दृढतर अनुभव होता रहे यही अपेक्षित है। मैत्रीभावना बढ़ाने और भयके रोगोंसे स्वयं तथा उस रोगीको मुक्त करने-करानेके लिये यह मन्त्र अत्यन्त प्रभावी है—

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

(१९।१५।६)

'मित्रोंसे तथा उन सबसे जो मित्र नहीं हैं उनसे भी हम निर्भय हों। ज्ञात और अज्ञात पुरुषोंसे हम निर्भय हों। जो आगे हैं उनसे भी हम निर्भय हों। हम सब रात्रि और दिनमें निर्भय हों। सभी दिशाएँ मेरी मित्र हों। सभी ओर यह मैत्रीभावना वर्धित हो।'

गम्भीर स्वरसे इस अभय और मैत्रीभावनावाले मन्त्रका पाठ करनेके अनन्तर प्रणवका उच्चार करें तथा आँखें बंद करके यह भावना करें कि मेरे परिवारके सभी लोग मेरे मित्र हैं। तुम मेरे मित्र हो, हिताकांक्षी हो और मैं तुम्हारा मित्र और हिताभिलाषी हूँ। परिवारके प्रत्येक सदस्यका स्मरण करें और अपनी मैत्रीभावना, मङ्गलभावना, शुभ संकल्पभावना उसतक सम्प्रेषित करें। आप पायेंगे कि आप धीरे-धीरे तनावमुक्ति, परम शान्ति और प्रशान्ति बोध प्राप्त करते जायँगे। सबके प्रति प्रगाढ़ मैत्री-संदेश प्रसारित कीजिये। आप सद्यः फल-लाभ करेंगे।

धीरे-धीरे इस मैत्री भावनाको पारिवारिकजनोंसे उठाकर उसका विस्तार करते जायँ, यहाँतक कि उसे विश्वबन्धुत्वतक ले जायँ। शुभसंकल्प, मङ्गलभाव प्रेषित करें और प्राप्त करें। इसके सतत अभ्याससे कुछ ही समयमें अन्तःकरण अति निर्मल प्रतीत होगा और आप स्वयंको अत्यन्त आह्लादित पायेंगे। ऐसेमें मानसिक विकृति स्वयं ही दूर हो जायगी। सर्वत्र तादात्म्यभाव स्थापित हो जायगा।

जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके आप मित्र बन जायँगे, उसका कल्याण चाहेंगे और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी आपके प्रति शुभ संकल्प रखता है तो भय कैसा? और किससे? **'द्वितीयाद्वै भयं भवति'** (बृहदारण्यक-उपनिषद् १।४।२) वह अब नहीं होगा, क्योंकि कोई द्वितीय अमित्र नहीं हैं, सब मित्र हैं। यह तभी सम्भव होगा जब **'सर्वा आशा मममित्रं भवन्तु'** सभी दिशाएँ मेरी मित्र हों। ऐसा उत्कृष्ट भाव दृढ़ और दृढ़तर हो जायगा। मनोरोगोंकी चिकित्सा एवं सुन्दर-स्वस्थ मानसिक विकासहेतु यह शिवसङ्कल्प-साधना अत्यन्त उपादेय वैदिक पद्धति है जिसे 'चरकसंहिता' में वर्णित दैवव्यपाश्रय सत्त्वावजयका सम्मिलित रूप माना जा सकता है।

एलर्जी (शीतपित्त) रोगमें आयुर्वेदीय उपचार

(डॉ० सी०वी० थपलियालजी)

एलर्जी जिसे आम भाषामें पित्ती या छपाकी कहते हैं, को आयुर्वेदमें शीत-पित्त रोगके नामसे जानते हैं। यह रोग प्राय: सर्द-गर्मसे होता है, जैसे गर्म कपड़ों या बिस्तरमेंसे निकलकर एकदम ठंडमें चले जाना या रसोईमें खाना बनाकर एकदम स्नान कर लेना, आदि-आदि। पेटमें कीड़े होनेपर भी यह रोग हो जाता है। कुछ लोगोंको सिंथेटिक कपड़ोंके पहननेसे, तीव्र रासायनिक सौन्दर्य प्रसाधन सामग्रियोंके प्रयोग करनेसे तथा कुछ आहारद्रव्य या विशेष औषधद्रव्योंके प्रयोग करनेसे भी यह रोग हो जाता है। आधुनिक विज्ञानमें इसे 'एलर्जी' के नामसे जानते हैं। जब कोई शरीरकी प्रकृतिके प्रतिकूल विजातीय पदार्थ शरीरसे स्पर्श करता है या प्रवेश करता है, तो शरीरमें उसके विरुद्ध एक तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, अर्थात् फोरेन प्रोटीनके विरुद्ध शरीरकी प्रतिक्रिया या एंटीजन एंटीबॉडी रिएक्शन होता है। इस क्रियाके फलस्वरूप हिस्टेमिन नामक रसायनका निर्माण होता है, जो उस प्रदेशकी रक्तवाहिनियोंको फैला देते हैं जिसके फलस्वरूप वहाँ लाल-लाल चकत्ते उत्पन्न हो जाते हैं। फलस्वरूप रक्ताधिक्यके कारण खुजली और लालिमा हो जाती है। इस रोगके मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं—

१. त्वचामें चुभन, २. खुजली एवं ३. दाने या दाफड़ पड़ जाते हैं, खुजली बहुत होती है। फलस्वरूप घबराहट एवं बेचैनी भी हो जाती है।

विस्तृत बिचारके बाद यह वास्तवमें स्रोतस् दुष्टिजन्य विकृति है। सभी रोग मंदाग्निसे होते हैं। इस रोगमें भी मंदाग्निकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है; क्योंकि आम-विषही स्रोतसमें दुष्टि (दोष या विकार) पैदा करके कफ एवं वायुके द्वारा अनुबन्धित होकर शीत पित्त दाफड़ पैदा करता है। जिनकी जठराग्नि ठीक होती है, उन्हें इस प्रकारके रोग नहीं होते। इस एलर्जीके और भी अनेक कारण हो सकते हैं। गम्भीर होनेपर एलर्जी त्वचामें एग्जिमा-जैसी गम्भीर रोगोंको भी जन्म देती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी एलर्जी अपना कार्यक्षेत्र भी बदल लेती है, जैसे त्वचाकी एलर्जी श्वसन-तन्त्रमें भी प्रवेश कर जाती है फलस्वरूप दमा-जैसे रोग हो जाते हैं। श्वसन-तन्त्रकी एलर्जीमें अधिक छींक आना, नाकमें खुजली, नाकसे अधिक स्राव निकलना, खाँसी एवं श्वास लेनेमें कष्ट अर्थात् श्वासकष्ट-जैसे लक्षण मिलते हैं। ये लक्षण यदि अधिक दिनतक रहें तथा बार-बार एलर्जीके अटैक होते रहें तथा एलर्जीके कारण दूर न हों, उनका बार-बार शरीर-सम्पर्क होता रहे तो उसे एलर्जिक ब्रोन्काइटिस कहते हैं और तब कष्टदायक रोग श्वासरोगमें बदल जाता है। अतः एलर्जीकी घातकताको कम नहीं आँकना चाहिये।

एलर्जीसे बचनेके उपाय

इस रोगसे बचनेके लिये आहार एवं विहारपर विशेष ध्यान देना चाहिये; क्योंकि हर ऋतुमें आयुर्वेदके बताये तरीकेसे रहन-सहन करनेपर मनुष्य रोगोंसे बच सकता है—

—सर्दियोंमें रजाईसे उठकर एकदम बाहर न निकलें।

—गर्म पानीसे स्नान कर, कपड़े पहनकर, शरीर ढककर बाहर निकलें।

—गर्मियोंमें भी धूपसे आकर पसीनेसे भीगे हुए एकदम स्नान या ठंडी जगह ए०सी० आदिमें न जायँ।

—ठंडे वातावरणसे एकदम धूपमें न जायँ।

—विरुद्ध आहार, जैसे—मछली-दूध कभी सेवन न करें।

—रासायनिक द्रव्योंका, रासायनिक सौन्दर्य प्रसाधन-सामग्रियोंका सेवन सावधानीपूर्वक करें।

—सिंथेटिक कपड़ोंका प्रयोग कम करें।

यदि रोग हो जाता है तो रोगीकी मलपरीक्षा (कीड़ोंके लिये) भी करायें, कीड़े होनेपर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये; क्योंकि अनेक बार पाचन-तन्त्रके कृमि भी एलर्जीके उत्पादक होते हैं।

चिकित्सा

इस रोगकी चिकित्साके लिये सामान्यत: व्यक्ति एंटी एलर्जी अर्थात् एंडी हिस्टेमिन नामक गोलियाँ लेता रहता है, कभी-कभी तो स्टीराइड भी लेता है। इस प्रकारकी दवाइयाँ एलोपैथिक चिकित्साकी होती हैं, परंतु यह सफल चिकित्सा नहीं है। आयुर्वेदमें इसकी चिकित्साका विस्तारसे वर्णन मिलता है।

—सबसे पहले रोगीकी मंदाग्नि होनेपर जठराग्निकी चिकित्सा करें, जैसे चित्रकादि वटी या त्रिकटु चूर्ण दें।

—कृमि होनेपर कृमिघ्न चिकित्सा जैसे—कृमिकुठार, कृमिमुद्गरसका सेवन करें।

—शरीरकी प्रतिरोधकता बढ़ानेके लिये गिलोय तथा आँवलेका प्रयोग करें।

—सोना गेरूको घीमें भूनकर चार-चार रत्तीकी मात्रामें चार बार मधुसे चटायें।

—हरिद्राखंडकी एक-एक चम्मच भी दो बार दें।

—शीत पित्त मंजन भी इस रोगमें बहुत अच्छा लाभ करता है।

—आँवला और नीमपत्तोंका चूर्ण समान मात्रामें लेकर सेवन करनेसे अच्छा लाभ होता है।

—आरोग्यवर्धनी और कैशोर गुग्गुलकी गोलियाँ भी इस रोगमें अच्छा लाभ करती हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त औषध आयुर्वेदज्ञके परामर्शसे लेकर आप एलर्जी रोगके जालसे बच सकते हैं। चिकित्साके साथ-साथ पथ्य-अपथ्यपर भी जरूर ध्यान दें।

अपथ्य—चाय, दही, चावल, बर्फ, अरबी, केला, उड़दका सेवन कम करें, विदाही, क्षोभक आहारका सेवन भी न करें, सिंथेटिक आहार भी न लें, नमक भी कम लें।

पथ्य—लघु सुपाच्य आहार जैसे—खिचड़ी, दलिया, लौकी, तोरई, टिंडा, मौसमके फल, सब्जी आदिका यथोचित सेवन करें।

जिद्दी चर्मरोग—सोरायसिस

(श्रीवेणीप्रसादजी शास्त्री एम्०ए०, आयुर्वेदरत्न)

वैसे तो सभी चर्मरोग अत्यन्त हठी स्वभावके होते हैं। छोटी-मोटी चिकित्सासे सामान्य दद्रु (Ringworm) भी ठीक नहीं होता। सोरायसिस तो चर्मरोगोंका सिरमौर है। विश्वके सबसे दुर्धर्ष रोगोंमें इसका प्रमुख स्थान है।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानने सन् १८४१ ई० में हेव्रा नामक वैज्ञानिकके प्रयत्नोंसे सोरायसिस (Psoriasis)-को स्वतन्त्र रोगके रूपमें मान्यता दी है, परंतु आजसे हजारों वर्ष पूर्व लिखे गये चरकसंहिता नामक आयुर्वेदके प्रमुख ग्रन्थमें 'मण्डल-कुष्ठ' के नामसे सोरायसिसका वर्णन प्राप्त है।

सोरायसिस स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध एवं युवा—सबको समान रूपसे होता है। फिर भी अपने देशमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंको यह अधिक होता है।

सोरायसिस छूतका रोग नहीं है। शरीरके किसी अङ्ग-प्रत्यङ्गपर इसका किसी प्रकारका घातक प्रभाव नहीं है। यह तो मात्र सौन्दर्य-विनाशक रोग है। यदि इसका विकराल रूप न हो और कण्डूयन न हो तो सोरायसिसके साथ आरामसे जिया जा सकता है।

सोरायसिस होनेका कारण—सोरायसिस क्यों होता है? इस विषयमें वैज्ञानिकोंके भिन्न-भिन्न मत हैं। सोरायसिसके वंशानुगत होनेके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। न केवल माता-पिता प्रत्युत पाँच-सात पीढ़ी पहलेके पूर्व पुरुषोंका प्रभाव भी कारण हो सकता है। यद्यपि पितृपक्षमें रोग होनेकी सम्भावना अधिक है तो भी मातृपक्षसे रोगके आनेकी सम्भावनाको नकारा नहीं जा सकता।

यदि माता-पिता दोनोंमेंसे किसी एकको यह रोग हो तो संतानमें पचीस प्रतिशततक सोरायसिस होनेकी सम्भावना रहती है। यदि पति-पत्नी दोनों ही इस रोगसे ग्रस्त हों तो पचहत्तर प्रतिशततक संतानमें रोग होनेकी सम्भावना रहती है। बीस वर्षके निरीक्षण-परीक्षणके बाद हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि इस रोगका मूल कारण वंशानुगत होना ही है। वस्तुत: वंशपरम्परासे रोग

नहीं प्रत्युत रोगकी सम्भावना आती है। जहाँ उपयुक्त स्थिति और वातावरण प्राप्त होता है, वहाँ ही रोग अंकुरित हो जाता है।

अत्यन्त संवेदनशीलता, तन्त्रिका-तन्त्रकी दुर्बलता, प्रणालिविहीन ग्रन्थियोंकी विकृति, पाचनसंस्थानकी खराबी, खान-पानकी अव्यवस्था, असंयमित जीवन, संयोगविरुद्ध भोजन, मानसिक दुर्बलता, संशयशील जीवन, चिन्ता, परेशानियाँ, जीवनकी विफलताएँ तथा एलर्जी आदिमें कोई भी कारण अथवा कारण-समूह सोरायसिसको आनेके लिये प्रेरित कर सकता है।

कुछ रोग भी सोरायसिसके आगमनके कारण हो सकते हैं। चिरकालीन टान्सिल, गलशोथ, नज़ला, जुकाम, इनफ्लुएंजा, दीर्घकालीन पाचनसंस्थानकी विकृति आदि भी सोरायसिसके कारण हो सकते हैं। फिर भी विश्वके चिकित्सा-वैज्ञानिक सोरायसिसके विषयमें एकमत नहीं हो पाये हैं।

सोरायसिसके लक्षण—गहरे लाल रंग या गहरे ब्राउन रंगके मसूरके दाने-जैसे उभार शरीरपर प्रकट होते हैं। वे उभार पारदर्शी श्वेत परिधानमें लिपटे होते हैं। कभी-कभी तो उभार मात्र पिन हैड-जितना ही होता है। कोहनी, पिंडली, कटि, पृष्ठभाग तथा कानके पिछले भागपर प्रायः रोग प्रारम्भ होता है। स्थितिके अनुसार रोगका प्रसार होने लग जाता है। चकत्ते बढ़ते-बढ़ते अधिक स्थान घेर लेते हैं। कभी-कभी रोग बहुत विकराल रूप धारण कर लेता है और सम्पूर्ण शरीरपर फैल जाता है। कई बार रोग नाममात्रका ही रहता है। जीवनभर रोगीको जरा भी कष्ट नहीं देता। कई बार तो रोगीको रोगकी उपस्थितिका अनुमान भी नहीं होता। कई बार सोरायसिस एकाएक आता है और स्वयं अन्तर्धान भी हो जाता है।

अनेक रोगियोंको सोरायसिस सिरसे प्रारम्भ होता है। सोरायसिसको सिरकी रूसी (Dandruff) समझकर दृष्टिविगत कर दिया जाता है। परंतु जब वह केश-सीमाको लाँघकर मस्तककी ओर बढ़ने लगता है तो चिन्ताका कारण बन जाता और तभी इसका सही निदान भी होता है।

हमारी त्वचाके सैलकी सामान्य आयु अट्ठाइससे तीस दिन है। इस कालखण्डमें पुराने सैल मरकर झड़ जाते हैं और नवीन सैल उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। हमें इसका पता भी नहीं चलता। यह व्यवस्था पूरी तरहसे कम्प्यूटराइज्ड है। जब प्रकृतिका यह कम्प्यूटर बिगड़ जाता है तो आधे-अधूरे नवीन सैल तीव्रगतिसे उत्पन्न होने लग जाते हैं और एक-दूसरेके नीचे एकत्र होने लग जाते हैं। त्वचामें एक उभार-सा बन जाता है। शरीर उनको जीवित रखनेके लिये रक्तसंचार जारी रखता है। यह रक्तवर्णका उभार ही सोरायसिस है। जो सैल मर जाते हैं, जिनके खूनकी सप्लाई बंद हो जाती है, उनकी ही चाँदीकी चादर-जैसी पारदर्शी परत ऊपर चढ़ जाती है। इसी स्थितिको संहिताकारने '**श्वेतारुणौ**' शब्दके द्वारा वर्णित किया है। ये चकत्ते गोलाकार होते हैं। रिंगशेप्ड होते हैं। यही आयुर्वेदका '**मण्डलम् परिमण्डलम्**' के द्वारा वर्णित मण्डल-कुष्ठ है, जिसे आजकी वैज्ञानिक भाषामें सब देशोंमें सोरायसिस (Psorasis)-के नामसे जाना जाता है। रक्तसंचार कुछ समयतक चालू रहता है तो यह उभार रक्ताभ रहता है और जब शरीर रक्त प्रदान करना बंद कर देता है तब यह मरकर श्वेत वर्णके छिलकोंके रूपमें झड़ता रहता है। शरीरका कोई भी भाग ऐसा नहीं है, जहाँ सोरायसिस न होता हो। हाथ पाँव और उनके तल-भाग, कानके पीछेका भाग, कानके भीतर, नाखून, कटिका पृष्ठ-भाग, उदर, सिर, चेहरा, दाढ़ी, मूँछ, प्रजनन अङ्ग, जिह्वा कहीं भी रोगका प्रसार हो सकता है। संक्षेपमें कहें तो शरीरका कोई भी भाग सोरायसिसकी पकड़से बाहर नहीं है।

कण्डूयन (खुजली) सोरायसिसका लक्षण यद्यपि नहीं है तो भी इसमें खुजली बहुत ही कष्टप्रद रहती है। खुजलीके कारण सोरायसिसमें वृद्धि भी बहुत हो जाती है। खुजली प्रायः एलर्जीसे होती है। डिप्रेशन-चिन्ता-परेशानी आदि मानसिक कारणोंसे भी खुजलीका उपद्रव बढ़ जाता है। ऐसी दशामें खुजलीका निवारण प्रथम कर्तव्य बन जाता है। खुजली समाप्त होनेपर ही रोगसे मुक्ति मिलना सम्भव होता है।

आर्थराइटिस सोरायसिसका परम मित्र है। यह पाँच-सात वर्ष पुराना होनेपर संधिशूल हो जाता है

बहुत पीड़ादायक होता है। जबतक सोरायसिस न हटे संधिशूलके हटनेका काम ही नहीं है, सोरायसिसके हट जानेपर आर्थराइटिस शीघ्र चला जाता है।

चिकित्सा—रोगी सर्वप्रथम चिकित्साके लिये एलोपैथीके चिकित्सकके पास जाता है। वह वर्षों चिकित्सा करता है और अन्तमें यह कहकर रोगीको विदा कर देता है कि इसका कोई इलाज नहीं है। तदनन्तर वह होमियोपैथीकी शरणमें जाता है। फिर सब ओरसे निराश होकर रोगी जब थक जाता है एवं शारीरिक और मानसिक रूपसे टूट जाता है तब वह आयुर्वेदकी शरण ढूँढ़ता है। यहाँपर यह किसी चमत्कारकी खोजमें आता है। वह चाहता है कि वैद्यजी हाथके स्पर्शमात्रसे रोगको छूमंतर कर दें, क्योंकि रोगी पर्याप्त मात्रामें धन और धैर्य खो चुका होता है। आयुर्वेदशास्त्रोंमें सोरायसिसकी सफल चिकित्सा वर्णित है।

सोरायसिस किसी सीमातक मानसिक रोग है। रोगीकी मनोदशाका रोग-निवारणपर भारी प्रभाव पड़ता है। यदि रोगी दृढ़ निश्चय कर ले कि वह अवश्य ही स्वस्थ हो जायगा तो इस दृढ़ संकल्पशक्तिका परिणाम धनात्मक होता है।

प्रबल मनोबलके प्रतापसे एण्डोक्राइन सिस्टम प्रभावी हार्मोन रक्तमें छोड़ता है, उससे रोग-मुक्तिमें सहायता मिलती है।

सोरायसिसकी चिकित्सामें सूर्यकिरणोंका महत्त्वपूर्ण योगदान है **'आरोग्यम् भास्करादिच्छेत्'** प्रात:कालीन सूर्यकी शीतल धूपमें धूपस्नान करना बहुत ही लाभप्रद है। ध्यान रहे ग्यारह बजेके बाद धूपस्नान नहीं करना चाहिये। जहाँ सूर्यस्नानकी सुविधा नहीं है, वहाँ विद्युत्की शक्तिसे पराबैंगनी किरणें बनाकर उनमें सूर्यस्नानके उपकरणोंका प्रयोग किया जाता है।

यदि रोगी थोड़ा धैर्य रखे और पथ्यपालनपूर्वक चिकित्सा करे तो रोगसे सदा-सदाके लिये छुटकारा पाया जा सकता है।

पथ्य—सोरायसिसके रोगियोंको मलेरियाकी एलोपैथिक दवाइयाँ, दूध और दूधसे बने पदार्थ, हर प्रकारकी खटाइयाँ, मूली, प्याज, बैंगन, आलू, दाल, चाय, काफी, साफ्ट ड्रिंक्स आदि पदार्थ हानिकर हैं।

सोरायसिस-जैसे जटिल रोगकी चिकित्सा योग्य और विशेषज्ञ चिकित्सककी देख-रेखमें ही करनी चाहिये, यथासम्भव वही हितावह है। रोगकी कई स्थितियाँ बदलती रहती हैं। अत: समय-समयपर कई औषधियाँ बदलनी पड़ती हैं। जबतक चिकित्सक रोगके स्वभावको, उपद्रवोंके विषयमें तथा चिकित्साके विषयमें पूर्ण जानकारी न रखता हो, उसके लिये रोगसे पार पाना कठिन है। हाथ और पादतलकी त्वचा मोटी होती है। इसे ठीक करनेमें विलम्ब हो जाता है। घबड़ानेकी कोई बात नहीं है।

ध्यान रहे, सोरायसिसके उत्सेधमेंसे किसी प्रकारका भी स्राव नहीं होता। यह एक निश्चित लक्षण है। सोरायसिससे गंजापन भी नहीं होता। दुर्बलताके कारण अथवा केशभूमिमें सोरायसिसके उत्सेध होनेके कारण यदि बाल झड़ने लगें तो उनका पुनरुद्भव सम्भव है।

शीत-ऋतुमें तथा वर्षा-ऋतुमें सोरायसिस बढ़ सकता है। अत: इन दोनों ऋतुओंमें पथ्य और औषधिपर विशेष ध्यान देना हितकर रहता है। यह शाकाहारियोंकी अपेक्षा मांसाहारियोंको अधिक होता है। फलोंमें केला, सेब, पपीता, खजूर, बादाम आदि खाये जा सकते हैं। गाजर, शकरकन्द, काशीफल, तीनों प्रकारकी गोभी, पालक, लौकी, मेथी, दूधी आदि सब्जियाँ लाभप्रद हैं। सलादके रूपमें पालक, सलाद, पत्ता गोभी, गाजरको कच्चा खाना लाभदायक है। स्वादके लिये सलादपर सिरका डाला जा सकता है। अंगूर भी खाया जा सकता है, परंतु काला अंगूर अधिक लाभप्रद है। कभी-कभी यानी सप्ताहमें एक बार आधे नीबूके रसमें शहद और शीतल जल मिलाकर भी पिया जा सकता है।

चोकरवाली रोटी खायी जा सकती है। जौ, बाजरा और ज्वारकी रोटी खाना दवाईके समान है। चावल खाया जा सकता है, परंतु लाल रंगके चावल बहुत ही हितकर हैं। चाय, काफी, तम्बाकू, शराब, सोडा वाटर, हर एक वह द्रव्य जिसमें प्रिजर्वेटिव रंग और सुगन्ध पड़ी हो, अपथ्य है। उनका सेवन नहीं करना चाहिये। खरबूजा और तरबूज भी पथ्य हैं। तरबूज और काशीफलके बीज पृथक्-पृथक् रूपसे शरदाई (ठंढाई)-की तरह घोटकर पिये जा सकते हैं।

स्थौल्य (मोटापा)—कारण एवं निवारण

(वैद्य श्रीमाधव सिंह बघेल एवं डॉ० श्रीमती रेखाजी सजवाणी)

आधुनिक तथाकथित प्रगतिके साथ स्थौल्य—मेदो-रोग या मोटापा तीव्रतासे बढ़ रहा है। आज वैज्ञानिक खोजोंसे अनेक सुख-सुविधाके साधन उपलब्ध हो गये हैं। फलतः मनुष्य पहले जो भी शारीरिक कार्य करता था, वह निरन्तर कम होता चला जा रहा है एवं भोजन भी स्वादप्रधान हो जानेसे आहारमें लोगोंकी रुचि बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि वर्तमान युगमें स्थौल्य एवं तज्जनित विकारोंकी उत्पत्ति तीव्रतासे हो रही है।

स्थूलता एक शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रोग है। यह स्थौल्य स्वयंमें अधिक हानिकर एवं घातक न होते हुए भी रक्तचाप (Hypertention) मधुमेह (Diabetes Mellitus) पक्षाघात (Cerebrobascular accident) एवं संधिवात (Osteoarthritis) आदि अनेक गम्भीर एवं घातक व्याधियोंका मूल होनेके कारण अत्यन्त घातक माना जाता है।

आचार्य चरकद्वारा वर्णित अतिस्थूलताके कारणोंको मूलतः तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—

१, अतिभोजन—अत्यधिक मात्रामें भारी (गुरु), मधुर, शीत, स्निग्ध (चर्बीवाले वसातत्त्व) आदि गुणोंसे युक्त भोजनपदार्थोंका प्रयोग अतिस्थूलताके प्रधान कारणोंमें गिनाया जाता है।

२. अव्यायाम—शारीरिक कार्यकी अल्पता—व्यायाम न करना, व्यवायकी कमी, दिवास्वप्न, अत्यधिक सुख, मानसिक चिन्ताकी न्यूनता, शारीरिक श्रम न करना आदि।

३. वंशानुगत बीजदोष (Genetic defect)—माता-पिताके बीजके अनुसार स्वभावतः शरीर स्थूल हो जाता है।

साथ ही अधिक तनाव भी अतिस्थूलताका कारण हो सकता है, जैसा कि आचार्य चरकने कहा है कि चिन्ता, शोक, क्रोध, भय और दुःख-जैसी मानसिक अवस्थाओंमें मात्रापूर्वक किया गया भोजन भी आमका उत्पादक होता है, जो आगे चलकर अति स्थूलताका कारण बन सकता है। शरीरमें मेदाधातुकी अधिकता होनेसे शरीर स्थूल हो जाता है। अन्य शुक्रादि धातुएँ अल्प मात्रामें बनती हैं।

चिकित्सा—आयुर्वेदमें चिकित्सा मूलतः कारण एवं रोगप्रक्रियाको ध्यानमें रखकर की जाती है। चिकित्साके तीन अङ्ग हो सकते हैं—

१. निदानपरिवर्जन—अर्थात् उन कारणोंका परित्याग, जिनसे रोगकी उत्पत्ति हो रही है। स्थौल्य-मोटापा रोगके संदर्भमें कारणोंको उपर्युक्त आधारपर तीन हिस्सोंमें विभाजित किया जा सकता है—(अ) आहारपरक, (ब) विहारपरक एवं (स) मानसिकभाव।

२. अपकर्षण—अर्थात् जिस दोष या दूष्यकी वृद्धि हो गयी हो, उसे शरीरसे बाहर निकालना। यह क्रिया दो प्रकारसे की जा सकती है—

(अ) शोधनद्वारा तथा (ब) शमनद्वारा।

३. प्रकृतिविघात—अर्थात् शरीरमें ऐसी व्यवस्थाका सृजन करना, जिससे पुनः दूष्योंमें दोषोंका स्थानसंश्रय न हो। आगे संक्षेपमें निदान परिवर्जनका विवेचन किया जा रहा है।

निदानपरिवर्जन—स्थूलताके रोगियोंको अपने आहार-विहारपर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(अ) आहार—आयुर्वेदशास्त्रमें गुरु, मधुर, शीत एवं स्निग्ध आहारको मोटापा पैदा करनेवाला कहा गया है। मोटापा घटानेके लिये मूलस्वरूपसे आहारमें निम्न संशोधन करने चाहिये—

आहारके नियमोंका पालन—आयुर्वेदमें भोजन-सम्बन्धित दो प्रकारके नियम बताये गये हैं—

(क) भोजनचयन-निर्माणके नियम—प्रकृति, करण

संयोग, राशि, देश, काल, उपयोग संस्था तथा उपभोक्ता।

(ख) भोजन करनेके नियम—उष्ण, स्निग्ध, मात्रापूर्वक, भोजनके पच जानेपर, वीर्यके अविरुद्ध, अपने मनके अनुकूल स्थानपर, अनुकूल सामग्रियोंसहित आहारको न अधिक जल्दी, न अधिक देरसे, न बोलते हुए, न हँसते हुए, अपने आत्माका विचारकर आहारद्रव्यमें मन लगाकर भोजन करना चाहिये।

इस प्रकार आहारको निर्धारित करते समय स्थूलता रोगमें लघु, रुक्ष, उष्म, तिक्त तथा कटु द्रव्योंका सेवन अधिक मात्रामें करना चाहिये। भोजन नियमित समयमें करना चाहिये। दोनों भोजनकालके बीचमें कुछ भी नहीं लेना चाहिये। जहाँतक सम्भव हो जलको भी निश्चित समयपर ग्रहण करना चाहिये।

आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धतिके षड्विध उपक्रमोंमें लंघन सर्वाधिक प्रशंसित एवं प्रचलित विधियोंमेंसे एक है। लंघनका अर्थ मात्र भोजन न लेना ही नहीं है, अपितु आहारप्रक्रियाको इस प्रकार निर्धारित किया जाय कि शरीरको कम-से-कम आवश्यक पोषक तत्त्व मिले, जिससे अत्यधिक मात्रामें शरीरमें एकत्रित आम-मलरूप धातुका जारण (गलाने या पचानेकी क्रिया) हो सके।

(ब) विहार—स्थौल्य रोगीको अधिक-से-अधिक सम्भावित शारीरिक व्यायाम करना चाहिये। शारीरिक व्यायाममें तीव्र गतिसे पैदल चलना सर्वाधिक सुरक्षित एवं लाभकर व्यायाम माना जाता है। आयुर्वेदमें स्वस्थ व्यक्तिके लिये कम-से-कम दो-तीन बार व्यायाम करना चाहिये, जिसमें पैदल चलना, तैरना आदि शामिल हैं। फोम आदिके गद्दीदार गद्दोंकी जगहपर पतले बिछावनके साथ काष्ठपट्टी या तख्तपर सोना लाभदायक रहेगा। रोगीको कम-से-कम आवश्यक निद्रा लेनी चाहिये। रातको थोड़ा देरसे सोना और प्रातः जल्दी जगना तथा दिनमें न सोना—इस रोगमें लाभप्रद रहेगा।

(क) मानसिक—मानसिक भावोंमें बहुत ज्यादा संतुष्टि एवं सुखानुभूतिका अनुभव होनेसे स्थूलतामें वृद्धि होती है। अतः यदि सम्भव हो तो जहाँ मानसिक कष्टकी भी अनुभूति हो, ऐसे कृत्रिम वातावरणका निर्माण भी लाभप्रद हो सकता है। उसे मानसिक श्रम भी करना चाहिये।

इसके साथ ही यहाँ चिकित्सा-प्रयोग भी दिये जा रहे हैं जो सरलतासे किये जा सकते हैं—

(क) प्रातःकाल जलमें मधु मिलाकर सेवन करनेसे स्थूलताका नाश होता है।

(ख) गरम-गरम अन्न तथा चावलके माण्डका पान करनेसे मनुष्य पतले शरीरवाला हो जाता है।

(ग) त्रिकटु, चित्रक, जीरा आदि चूर्णोंको मिलाकर दहीके पानीके साथ सक्तु पान करनेसे मोटापेका नाश कर सकते हैं।

(घ) एक तोलेभर बेरके कोमल पत्तोंको पीसकर एक सेर कांजीमें डालकर पेय बनायें, इस पेयके पीनेसे मोटापा-रोग नष्ट होता है।

(ङ) अरणीकी जड़का क्वाथ बनाकर उसमें ४ रत्तीभर शुद्ध शिलाजीत मिलाकर प्रतिदिन पीनेसे स्थौल्य रोग नष्ट होता है।

(च) एक माशा एरण्डपत्रक्षारको चार रत्ती घृतभर्जित हिंगुचूर्ण मिलाकर पीनेसे मेदोवृद्धि-रोग नष्ट होता है।

चिकित्साका माहात्म्य

क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः। कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला॥

(अ० संग्रह)

कभी धर्म, कभी मित्रता, कभी धन, कभी कीर्ति और कभी अनुभव (इतने लाभ चिकित्सासे होते हैं)—इस प्रकार चिकित्सा कदापि निष्फल नहीं होती।

आयुर्वेदमें रतौंधीका सफल उपचार

(डॉ० श्रीदीनानाथ झा 'दिनकर')

नेत्ररोगोंमें 'रतौंधी' का विशेष स्थान है। इस रोगकी चपेटमें सामान्यतः गरीब तथा कम आयवाले ही आते हैं। भारतमें यह रोग तमिलनाडु, असम तथा आंध्रप्रदेशमें बहुतायतसे देखनेको मिलता है; परंतु बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा गुजरातके अनेक स्थानोंपर भी रतौंधीका प्रकोप इन दिनों अधिक मात्रामें देखनेको मिल रहा है। इस रोगमें रोगीको रातमें स्पष्ट दिखायी नहीं देता है।

रोगके कारण—आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानके मतानुसार रतौंधीका कारण शरीरमें विटामिन 'ए' की कमीका होना है। वैज्ञानिकोंका मत है कि कम आयवर्गके व्यक्ति विशेषतः कुपोषणके शिकार होते हैं, जिससे उनके शरीरमें विटामिन 'ए' की पर्याप्तमात्रा नहीं पहुँच पाती है और वे रतौंधी-ग्रस्त हो जाते हैं।

आयुर्वेदशास्त्रके मतानुसार कफदोष जब नेत्रके तृतीय पटलमें पहुँचता है, तब रतौंधी पैदा होती है। आयुर्वेदाचार्योंका मानना है कि दिनके समय सूर्यके प्रभावसे नेत्रगत कफ साफ हो जाता है, जिससे रोगीको दिनमें देखनेमें कोई असुविधा नहीं होती है, परंतु रातको पुनः कफ नेत्रपटलमें आ जाता है, जिससे रोगीको रातमें दिखायी नहीं देता है।

रोगके लक्षण—रतौंधीका रोगी दिनमें तो अच्छी तरहसे देख सकता है, किंतु रातमें वह देख पानेमें बिलकुल असमर्थ रहता है। रतौंधीके रोगीकी नेत्र-परीक्षासे पता चलता है कि इस रोगमें नेत्रका श्वेत भाग शुष्क दिखायी देने लगता है। नेत्र-गोलक धुँधला तथा गँदला-सा हो जाता है। बीचका तारा छिद्रित-सा दिखायी देता है और कार्नियाके पार्श्वमें तिकोनी-सी आकृति दिखायी देने लगती है। श्लेष्मापटलसे चिकना और सफेद रंगका स्राव होने लगता है।

कुछ परीक्षित आयुर्वेदिक योग

रतौंधीकी सबसे सस्ती और सफल चिकित्सा चौलाईका साग है। चौलाईकी सब्जी भैंसके घीमें बनाकर प्रतिदिन सूर्यास्तके बाद जितना खा सकें, खा लें। इसके साथ रोटी, भात आदि कुछ भी न खायें। प्रारम्भिक अवस्थाके रोगके लिये एक सप्ताह तथा चरम अवस्थाके रोगके लिये दो माहतक इसका सेवन करते रहना चाहिये।

करंज-बीज, कमल-केशर, नीलकमल, रसौंत तथा गैरिक—सभी ४ ग्राम लेकर चूर्ण बना ले तथा उन सभीको गोमय-रसमें भिगोकर बत्तियाँ बनाकर रख ले। अंजनकी तरह नित्य लगानेसे रतौंधीका प्रकोप कम होने लगता है।

हरीतकी १२.५ ग्राम, आमलकी ५० ग्राम, यष्टिमधु ५० ग्राम, बहेड़ा २५ ग्राम, शतावरी ५ ग्राम, दालचीनी ५ ग्राम, पीपल ५ ग्राम, सैंधव ५ ग्राम तथा शक्कर १५० ग्राम लेकर बारीक चूर्ण बनाकर कपड़छान करके रख ले। इसमेंसे प्रतिदिन ३—५ ग्रामतक घी या शहदके साथ मिलाकर ६ से ८ सप्ताहतक सेवन करनेसे यह नेत्रोंके सभी रोगोंपर रामबाणकी तरह काम करता है।

शंखनाभि, विभीतक, हरड़, पीपल, काली मिर्च, कूट, मैनसिल, खुरासानी, वच—इन सभीको ५-५ ग्रामकी मात्रामें लेकर महीन पीसकर बकरीके दूधके साथ मिलाकर बत्तियाँ बना ले। रातमें नित्यप्रति पानीमें घिसकर आँखोंमें लगानेसे नेत्ररोग—रतौंधी ठीक होने लगता है।

पथ्यापथ्य

रतौंधीका रोगी प्रतिदिन अगर ५० ग्राम कच्चे मूँगफली और २०-२५ ग्राम गुड़ खाता है तो ८-१ दिनोंके अंदर ही शरीरमें ताकत आकर बीमारी ना होने लगती है।

इसका रोगी सहिजनके पत्ते एवं फली, मेथ मूलीके पत्ते, पपीता, गाजर, लौकी, काशीफल आदि अधिकाधिक प्रयोग करे। आयुर्वेदिक पौष्टिक लड्डुओं

सेवन, अतिमुक्त, अरंड, सेफालि, निर्गुण्डी और शतावरीके पत्तोंकी सब्जी घीमें पकाकर खाना हितकर होता है। औषधि-सेवनकालमें आयुर्वेदिक लड्डूका प्रयोग रोगीका पोषण करता है, अतः इसका सेवन आवश्यक है। इसको बनानेकी विधि इस प्रकार है—

गेहूँका चोकरयुक्त आटा ५० ग्राम, बंगाली चनेकी दाल ५० ग्राम, रागीका आटा २० ग्राम, सहिजनके सूखे पत्ते २० ग्राम, गुड़ ४० ग्राम तथा तिलका तेल १० ग्राम लेकर सबको कूट-पीसकर, मिलाकर छोटे-छोटे लड्डू बनाकर रख ले। नित्यप्रति नाश्तेके समय दो लड्डू खाकर एक गिलास गायका दूध ऊपरसे पी ले। इसके सेवनसे शारीरिक शक्ति बढ़ती है तथा रतौंधीके उपचारमें काफी सहायता मिलती है।

[प्रेषक—शिवकुमारजी गोयल]

कर्मज रोग एवं औषधि

(श्रीतनसुखरामजी शर्मा, एम्० ए० प्रभाकर, आयुर्वेदरत्न)

आयुर्वेदशास्त्रानुसार रोग चार प्रकारके होते हैं—१-स्वाभाविक, २-आगन्तुक, ३-कायिक और ४-कर्मज।

कर्मज या कर्मदोषज रोगोंका स्वरूप यद्यपि उक्त तीनोंमें कोई भी हो सकता है। भेद इतना ही है कि ये रोग औषधियोंसे निवृत्त नहीं होते। इनका लक्षण ही इस प्रकार कहा गया है—

यथाशास्त्रविनिर्णीतं यो विधिवद्विचिकित्सतः।
न सदा प्रशमं याति सः खलु कर्मदोषजः॥

अर्थात् यदि किसी रोगके निदानका निर्णय शास्त्रानुसार किया गया हो तथा शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी चिकित्सा भी की गयी हो, किंतु रोग शान्त न होता हो तो वह रोग कर्मदोषज अर्थात् पूर्वजन्मके दुष्कर्मका परिणाम है।

जन्मान्तरीय दुष्कर्म—पापकर्म ही रोगरूपमें परिणत होकर सामने आते हैं। इसकी विशेष व्याख्या 'कर्मविपाक-सिद्धान्त'में प्रतिपादित है।

कर्मज रोगका निदान आसान नहीं है, क्योंकि—'**कर्मणा गहनो गतिः**'। कर्मकी गति बहुत निगूढ़ है, वह सहजगम्य नहीं है। कालकी प्रेरणासे किस कर्मका विपाक कब तथा किस स्वरूपमें हो, यह ज्ञान सामान्य बात नहीं है। किंतु योगिजन जिनकी गति इसमें है, उनके प्रमाण शास्त्रोंमें निदान एवं चिकित्सासहित जहाँ-तहाँ उपलब्ध होते हैं।

महर्षि वसिष्ठने महाराज दिलीपके निःसंतान होनेका निदान करते हुए बताया था कि कामधेनुको उनके द्वारा ठोकर लगनेसे उसके शापवश निःसंतानजन्य दुःखकी प्राप्ति उन्हें हुई है। सही निदान होनेपर उपचार भी बताया गया कि कामधेनुके शापानुग्रहके लिये उसकी पुत्री नन्दिनीकी सेवा की जाय। ऐसा ही किया गया। चिकित्सा सफल हुई और निःसंतानजन्य दुःख दूर हो गया, फलस्वरूप महाराज रघुका आविर्भाव हुआ।

वर्तमान संदर्भमें मैं एक प्रत्यक्ष घटनाको प्रस्तुत करना चाहता हूँ, जो कर्मज रोगका प्रतिनिधित्व करती है—

मेरे एक सम्बन्धी थे श्रीशर्माजी, जो राजकीय सेवामें श्रीगंगानगरमें निवास करते थे। उन्हें 'कर्णस्राव' हो गया। विशेषज्ञोंके द्वारा पूर्णरूपेण चिकित्सा की गयी। तीन बार ऑपरेशन भी किये गये। मुम्बई भी चिकित्सा करायी गयी, किंतु कर्णस्राव नहीं रुका। वे सदा जेबमें रूई रखे रहते थे तथा क्रमशः पूयसे भर जानेपर बदलते रहते थे। इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये।

सन् १९८०ई० के लगभग एक घटना हुई। शर्माजी जिला रसद अधिकारीके कार्यालयमें कार्यरत थे। सर्दियोंके दिन थे, वे अपने कमरेके बाहर कानकी रूई बदल रहे थे। स्वाभाविक रूपसे उनके पाससे जाते हुए एक ब्राह्मण-युवकने उपहासपूर्वक उनसे कहा—'क्या सारे दिन कानमें घोंचे मारते रहते हो?' श्रीशर्माने मुसकराते हुए सहज उत्तर दिया—'चाहता तो मैं भी नहीं हूँ पर क्या करूँ? तीन बार ऑपरेशन करवाये तथा अब

भी कैप्सूल खा रहा हूँ—आप कोई उपाय बताइये न?' युवक गम्भीर हो गया और बोला—यह कर्मज रोग है। अभी शीघ्रतामें हूँ—परसों यहीं मिलना। उसके स्वरमें गुरुता थी।

तीसरे दिन सोमको वही समय, वही स्थान, दोनोंका मिलन हुआ। युवकने कहा—'निदान हो गया है—चिकित्सा अत्यन्त आसान है। परसों अष्टमी बुधवार है। आप प्रातः स्नानादिसे निवृत्त होकर निराहार ही किसी गलित कुष्ठ-रोगीको श्रद्धासहित चावल बनाकर भोजन करा देना। आपके पूर्वजन्मके पापका यही प्रायश्चित्त है—इसके बाद भी यदि कान बह जाय तो मुझे कहना, मैं फिर मिलूँगा।'

युवकके कथनानुसार चिकित्सा की गयी। रेलवे फाटकके पास बहुत-से कोढ़ी-बन्धु रहते थे। शर्माजी मंगलवारकी शामको ही उनका ठिकाना देख आये थे।

बुधवारको स्नान-पूजादिसे निवृत्त हो चावल तथा मूँग—दोनों ही श्रद्धासे बनाकर शर्माजी रेलवे फाटक गये। वहाँ जितने भी कोढ़ी भाई थे, सभीको श्रद्धासे उनके पात्रोंमें ताजा चावल-मूँग वितरित कर आये। उन कोढ़ियोंने भी अत्यन्त हर्ष व्यक्त किया तथा उन्हें आशीर्वाद दिया।

अगले ही दिन वह युवक उधरसे जा रहा था, संयोगसे श्रीशर्माजी कानमेंसे रूई निकाल रहे थे। युवकने आश्चर्यसे पूछा—'क्या कानसे अभी भी पूयस्राव हो रहा है?' श्रीशर्माजीको हँसी आ गयी, वे गद्‌गद-स्वरसे बोले—'नहीं भाई! कलसे तो बिलकुल कान सूखा है; पर वर्षोंका अभ्यास होनेसे रूई कानमें डाल रखा था। मुझे आश्चर्य है कि बिना दवाके रोग कैसे ठीक हो गया।'

युवक मुसकराता हुआ यह कहकर चला गया कि 'दीन-हीनसे घृणा करके उसे अपमानित करनेका परिणाम जीव नहीं जानता। इसी कारण वह ऐसे भयंकर रोगसे ग्रस्त हो जाता है।'

श्रीशर्मा हनुमानगढ़ रहने लग गये थे—सेवानिवृत्तिके बाद भी कभी उन्हें कर्णस्राव नहीं हुआ। वे अपने जन्मान्तरीय दुष्कर्मका परिणाम समझ गये थे और उन्होंने गरीबों, दीन-दुःखियों, असहायों तथा अनाथ लोगोंकी श्रद्धाभक्तिपूर्वक सेवाको ही अपना जीवन बना लिया था। सन् १९९७ ई० में उनका निधन हो गया।

खालित्य-पलित (केशोंका गिरना और सन्देह होना) एक दुर्जेय समस्या

(श्रीखेमानन्दजी गंगवार)

आजके भौतिकवादी युगमें केशोंका गिरना (Alopecia), केशोंका असमयमें सफेद होना (Premature gray hair or canities) एक गम्भीर समस्या है, जिसका आयुर्वेदमें विस्तृत वर्णन मिलता है।

खालित्य रोगका निदान—रोमकूपों (Hair Follicle)-में रहनेवाला भ्राजक पित्त वातदोषसे मिलकर केशोंको गिरा देता है। तदुपरान्त रक्तसहित कफ-दोष रोमकूपोंको बंद कर देता है, जिससे नये रोमोंकी उत्पत्ति नहीं हो पाती है। इसे खालित्य—इन्द्रलुप्त—रूह्य (Alopecia) कहते हैं।

आचार्य विदेहके अनुसार स्त्रियोंमें रजःस्रावके कारण यह रोग कम पाया जाता है।

आचार्य वाग्भट्टके अनुसार—इन्द्रलुप्त (Alopecia areata) दाढ़ीमें, खालित्य (Simple Alopecia) सिरमें, रूह्या (Alopecia Universalis) सर्वदेहमें होता है।

चिकित्सा—(१) गोखरू, तिलके फूल तथा इन्हींके बराबर मात्रामें मधु तथा घृतका प्रलेप करनेसे सिर केशोंसे भर जाता है।

(२) हस्तिदन्त मसी रसाञ्जन मिलाकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्तके स्थानपर नये केश उग आते हैं।

(३) मुलेठी, नीलकमल, मूर्वा-तैल तथा भृङ्गराज—इन सभीको बराबर मात्रामें गोमूत्रके साथ पीसकर घृत मिलाकर लेप करनेसे शीघ्र ही नये केश उग आते हैं।

पलित रोगका निदान—क्रोध, शोक, श्रम आदिसे प्रकुपित वात-दोष (व्यान वायु) शरीरकी उष्मा सिरमें ले जाकर रोमकूप (Hair Follicle)-के भ्राजक पित्तको

दूषित कर देता है, अन्ततः कफ-दोष भी विकृत होकर केशोंको श्वेत कर देता है—

शोकश्रमक्रोधकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
केशान् सदोषः पचति पलितं संभवत्यतः॥

(अष्टा०उत्त० २३।२९)

वात, पित्त और कफ तीनों ही दोष केशोंकी शुक्लताके हेतु हैं।

चिकित्सा—(१) हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीलपत्र, लौहचूर्ण, भृङ्गराजचूर्ण समानभागमें लेकर इन सभीको भेड़के दूधके साथ पीसकर लेप करनेसे सिरके केश काले हो जाते हैं।

(२) मण्डूर-भस्म, आँवला-चूर्ण, अढ़उलके फूल—इन सभीका चूर्ण प्रतिदिन सिरपर रगड़कर स्नान करनेसे मनुष्यका पलितरोग नष्ट हो जाता है।

(३) मुलेठी पचास ग्रामके कल्कके साथ दूध तथा भृङ्गराज स्वरस दो किलोमें दो सौ पचास ग्राम तेल मिलाकर विधिवत् पकाया हुआ तेल नस्य देनेसे पलितरोग नष्ट हो जाता है।

पित्ताशयकी पथरी

पित्ताशय

उदरके दायीं ओर ऊपरकी तरफ स्थित नवीं पसलीके पास यकृत्के निचले भागसे लगा हुआ लगभग ४ इंच लम्बा गाजरके समान आकृतिका पित्ताशय होता है। इसका मुख्य कार्य यकृत्में बने पित्तके एक अंशको इकट्ठा करना है। इसमें लगभग ४५ सी०सी० पित्त जमा रहता है। जब भोजन आमाशयसे आगे बढ़ता है तो पित्ताशयके विक्षोभसे पित्त निकलकर भोजनमें मिल जाता है, जिससे भोजनके स्निग्धांश वसा और प्रोटीनका पाचन होता है। स्वस्थ पित्ताशय २४ घंटेमें दो या तीन बार खाली हो जाता है। जब भोजन नहीं किया जाता है तो पित्त पित्ताशयमें इकट्ठा होता रहता है। इसका जलीय अंश पुनः शरीरमें पच जाता है, जिससे पित्त शनैः-शनैः पाँचसे दस गुनातक गाढ़ा हो जाता है।

पित्त

पित्त सुनहरे भूरे रंगका यकृत्का स्राव है। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है। यह पाचक-रस होते हुए भी भयंकर विष है। यह लसलसा, क्षारमय, वसा और प्रोटीनका उत्तम पाचक है। आँतोंका उद्दीपक है और उन्हें क्रियाशील रखता है। पित्तमें छियासी प्रतिशत जलका अंश होता है इसमें पित्तीय लवण, पित्तीय रंजक, लेसिथिन और कोलेस्ट्रॉल होता है। यकृत्से पित्तका स्राव निरन्तर होता रहता है। भोजन करनेपर इसका उत्पादन कुछ अधिक मात्रामें होता है। पित्ताशयमें एकत्रित पित्तका कुछ अंश पाचनक्रियामें व्यय होता है, कुछ बाहर निकल जाता है और अधिकांश शरीरमें जज़्ब हो जाता है। आँतोंमें पहुँचकर यह उनका पाचन करनेके साथ ही खाद्य पदार्थको सड़ने नहीं देता। यदि पित्त भोजनमें न मिले तो आँतोंमें उपस्थित खाद्यपदार्थ जल्दी ही सड़कर गैस उत्पन्न करने लगे।

पथरी

पित्ताशयकी पथरी पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक बनती है। लगभग ४०-४५ वर्षीय, स्थूल शरीरवाली महिलाएँ जो कार्बोहाइड्रेट तथा वसायुक्त भोजन अधिक मात्रामें लेती हैं, उनमें पथरी बननेकी सम्भावना अधिक रहती है।

पथरी बालूके कण और सरसोंके दानेके आकारसे लेकर अखरोट या अंडेके बराबर आकारकी होती है। इनकी संख्या एकसे लेकर पचासोंतक हो सकती है। ताजी पथरी नम और आर्द्र होती है। ये पथरियाँ काले, हरे, सफेद, खाकी आदि कई रंगोंकी होती हैं।

कारण—पथरी बननेके निम्नकारण होते हैं—

(१) पित्ताशयमें पित्त अधिक समयतक रुका रहनेके कारण ५-१० गुना अधिक गाढ़ा होनेके बाद और भी गाढ़ा हो जाय और उसमें जीवाणुका संक्रमण हो जाय तो पथरी बन सकती है।

(२) व्यायाम न करनेसे, बैठे रहनेसे, स्थूल व्यक्तियोंमें तथा गर्भावस्थामें पित्त अधिक देरतक संचित

दूषित कर देता है, अन्ततः कफ-दोष भी विकृत होकर केशोंको श्वेत कर देता है—

शोकश्रमक्रोधकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
केशान् सदोषः पचति पलितं संभवत्यतः॥

(अष्टा०उत्त० २३।२९)

वात, पित्त और कफ तीनों ही दोष केशोंकी शुक्लताके हेतु हैं।

चिकित्सा—(१) हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीलपत्र, लौहचूर्ण, भृङ्गराजचूर्ण समानभागमें लेकर इन सभीको भेड़के दूधके साथ पीसकर लेप करनेसे सिरके केश काले हो जाते हैं।

(२) मण्डूर-भस्म, आँवला-चूर्ण, अढ़उलके फूल—इन सभीका चूर्ण प्रतिदिन सिरपर रगड़कर स्नान करनेसे मनुष्यका पलितरोग नष्ट हो जाता है।

(३) मुलेठी पचास ग्रामके कल्कके साथ दूध तथा भृङ्गराज स्वरस दो किलोमें दो सौ पचास ग्राम तेल मिलाकर विधिवत् पकाया हुआ तेल नस्य देनेसे पलितरोग नष्ट हो जाता है।

पित्ताशयकी पथरी

पित्ताशय

उदरके दायीं ओर ऊपरकी तरफ स्थित नवीं पसलीके पास यकृत्के निचले भागसे लगा हुआ लगभग ४ इंच लम्बा गाजरके समान आकृतिका पित्ताशय होता है। इसका मुख्य कार्य यकृत्में बने पित्तके एक अंशको इकट्ठा करना है। इसमें लगभग ४५ सी०सी० पित्त जमा रहता है। जब भोजन आमाशयसे आगे बढ़ता है तो पित्ताशयके विक्षोभसे पित्त निकलकर भोजनमें मिल जाता है, जिससे भोजनके स्निग्धांश वसा और प्रोटीनका पाचन होता है। स्वस्थ पित्ताशय २४ घंटेमें दो या तीन बार खाली हो जाता है। जब भोजन नहीं किया जाता है तो पित्त पित्ताशयमें इकट्ठा होता रहता है। इसका जलीय अंश पुनः शरीरमें पच जाता है, जिससे पित्त शनैः-शनैः पाँचसे दस गुनातक गाढ़ा हो जाता है।

पित्त

पित्त सुनहरे भूरे रंगका यकृत्का स्राव है। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है। यह पाचक-रस होते हुए भी भयंकर विष है। यह लसलसा, क्षारमय, वसा और प्रोटीनका उत्तम पाचक है। आँतोंका उद्दीपक है और उन्हें क्रियाशील रखता है। पित्तमें छियासी प्रतिशत जलका अंश होता है इसमें पित्तीय लवण, पित्तीय रंजक, लेसिथिन और कोलेस्ट्रॉल होता है। यकृत्से पित्तका स्राव निरन्तर होता रहता है। भोजन करनेपर इसका उत्पादन कुछ अधिक मात्रामें होता है। पित्ताशयमें एकत्रित पित्तका कुछ अंश पाचनक्रियामें व्यय होता है, कुछ बाहर निकल जाता है और अधिकांश शरीरमें जज्ब हो जाता है। आँतोंमें पहुँचकर यह उनका पाचन करनेके साथ ही खाद्य पदार्थको सड़ने नहीं देता। यदि पित्त भोजनमें न मिले तो आँतोंमें उपस्थित खाद्यपदार्थ जल्दी ही सड़कर गैस उत्पन्न करने लगे।

पथरी

पित्ताशयकी पथरी पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक बनती है। लगभग ४०-४५ वर्षीय, स्थूल शरीरवाली महिलाएँ जो कार्बोहाइड्रेट तथा वसायुक्त भोजन अधिक मात्रामें लेती हैं, उनमें पथरी बननेकी सम्भावना अधिक रहती है।

पथरी बालूके कण और सरसोंके दानेके आकारसे लेकर अखरोट या अंडेके बराबर आकारकी होती है। इनकी संख्या एकसे लेकर पचासोंतक हो सकती है। ताजी पथरी नम और आर्द्र होती है। ये पथरियाँ काले, हरे, सफेद, खाकी आदि कई रंगोंकी होती हैं।

कारण—पथरी बननेके निम्नकारण होते हैं—

(१) पित्ताशयमें पित्त अधिक समयतक रुका रहनेके कारण ५-१० गुना अधिक गाढ़ा होनेके बाद और भी गाढ़ा हो जाय और उसमें जीवाणुका संक्रमण हो जाय तो पथरी बन सकती है।

(२) व्यायाम न करनेसे, बैठे रहनेसे, स्थूल व्यक्तियोंमें तथा गर्भावस्थामें पित्त अधिक देरतक संचित

रहनेसे गाढ़ा हो जाता है। पित्ताशयकी दीवारें क्षुभित होनेसे शोथ हो जाता है और श्लेष्मस्राव होने लगता है। ये छोटे-छोटे श्लेष्मकण तह-पर-तह चढ़कर धीरे-धीरे पथरीका निर्माण कर देते हैं।

(३) यकृत्‌की विकृतिके कारण पित्तका निर्माण ठीक-ठीक न होने, पित्तमें पित्तलवणका अनुपात कम होने या कोलेस्ट्रॉलकी मात्रा अधिक हो जानेपर कोलेस्ट्रॉल पित्ताशयमें नीचे अवक्षेपके रूपमें बैठने लगता है। श्लेष्मकणोंके चतुर्दिक् इनकी तह बैठने लगती है। उसके ऊपर पुनः कैल्सियमकी तह बैठ जाती है। इस प्रकार तह-पर-तह बैठते रहनेसे छोटी-छोटी पीले रंगकी पित्ताश्मरी बन जाती है।

(४) गर्भावस्था तथा मधुमेहमें भी कोलेस्ट्रालकी वृद्धि हो जाती है, जिसके कारण पथरी निर्मित हो जाती है।

(५) असन्तुलित अप्राकृतिक आहार-विहार भी पथरी बननेका मुख्य कारण है। आक्जैलिक एसिडयुक्त भोजनकी अधिकतासे कैल्सियमके कारण पथरीका निर्माण होता है। चॉकलेट, चाय, बिस्कुट, फास्ट फूड, डबलरोटी आदिमें आक्जैलिक एसिडकी अधिकता होती है। हरी साग-सब्जी कम खाना, अधिक मात्रामें भोजन, क़ब्ज़ होना, पानी कम पीना, गरिष्ठ मांसाहारी भोजन करनेसे यह रोग अधिक होता है।

(६) अतिनिद्रा, मद्यपान, प्रदररोग, मानसिक तनाव और नाडीदौर्बल्यके कारण यकृत्‌रोगी हो जाता है। रोगी यकृत्‌में तैयार हुआ पित्त विकारयुक्त, गाढ़ा और चिपचिपा होता है, जो पित्ताशयमें जाकर प्रदाह और शोथ उत्पन्न कर देता है। दूषित पित्त और कफ सूखकर कड़े हो जाते हैं। इनपर सतह चढ़ते रहनेसे पथरी बन जाती हैं। ये पथरियाँ पित्ताशयमें पड़ी रहकर दिनोदिन बड़ी होती रहती हैं।

(७) पित्त लवण और कोलेस्ट्रॉलका सामान्य अनुपात २५:१ का होता है। यदि किसी विकृतिके कारण यह अनुपात १३:१ हो जाता है तो पित्ताशयमें कोलेस्ट्रॉलका अवक्षेप बैठने लगता है जो समयपर पथरीका आकार ले लेता है।

(८) पित्तके निकलनेके मार्ग, पित्तवाहिनीमें किसी प्रकारकी रुकावट आनेके कारण पित्ताशयमें पित्त अधिक गाढ़ा हो जाता है। उसमें संक्रमण होनेपर पूय और श्लेष्म उत्पन्न हो जाते हैं जो पथरी-उत्पत्तिके कारक हैं।

लक्षण—(१) जब पथरी पित्ताशयसे निकलकर पित्तवाहिनीमें पहुँचकर अटक जाती है तो पित्तके मार्गमें अवरोधके कारण असह्य वेदना होने लगती है। यह शूल अत्यन्त दारुण होता है। दर्द उदरके दाहिनी ओर यकृत्‌के नीचेसे पित्ताशयमें आरम्भ होता है और वहाँसे पीठके निचले भागमें कंधेतक फैल जाता है। दर्दकी लहरें कुछ अन्तरालसे उठती रहती हैं। चीखने-चिल्लानेकी स्थिति आ जाती है। ठंडा पसीना छूटने लगता है। अधिक समयतक वेदना होनेपर दर्द अपने-आप ठीक हो जाता है।

(२) अरुचि और अपच हो जाता है। भोजन करनेके बाद पेटमें भारीपन तथा आध्मान होने लगता है।

(३) आमाशयमें शोथके कारण आमाशय और उसके आस-पास दर्दकी अनुभूति होती है।

(४) उदरके दाहिने भागकी पेशियाँ कड़ी पड़ जाती हैं और उनमें स्पर्श-असह्यता उत्पन्न हो जाती है।

(५) कभी-कभी ठंड लगकर ज्वर १०२° तक हो जाता है। ऐसी स्थितिमें पीलियाके लक्षण भी प्रकट हो सकते हैं।

चिकित्सा

(क) वेदनाके समय—

आधुनिक चिकित्सामें दर्दनिवारक इंजेक्शन देते हैं। इससे तत्काल आराम मिलता है। वेदनाशामक ओषधियोंके प्रयोगसे दर्दकी अनुभूति तो नहीं होती, परंतु दर्दका कारण पथरी, अपने स्थानपर मौजूद रहती है। दर्दके कारणको दूर करनेका प्रयास करना चाहिये।

(१) गरम पानीके टबमें बैठनेसे पित्तवाहिनीमें फँसी पथरी निकल जाती है। जबतक दर्द दूर न हो जाय गरम पानीके टबमें बैठे रहें। पानीके ठंडा होनेपर उसमें थोड़ी-थोड़ी देरपर गरम पानी डालते जायँ।

(२) यदि गरम पानीके टबमें बैठना सम्भव न

हो तो गरम पानीसे भीगा तौलिया उदरपर रखें। थोड़ी-थोड़ी देरमें बदलते रहें। गरम पानीकी बोतल भी काममें लायी जा सकती है।

(३) प्रातः लगभग एक लीटर पानीमें एक चम्मच नमक और एक नीबूका रस निचोड़कर पी लें। प्रत्येक पंद्रह मिनटपर यही क्रिया दोहराते रहें जबतक कि दर्द ठीक न हो जाय। इस बीचमें कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिये।

(४) वेदना शुरू होनेका लक्षण प्रकट होते ही एनिमा तथा कटिस्नान या वाष्प-स्नान करें।

(५) स्वच्छ हवादार स्थानमें पूर्ण विश्राम करें। ठीक होनेतक उपवास करें। वमन होनेपर बर्फका टुकड़ा चूसें। पानी न पियें।

(६) गरम जल या जैतूनके तेलमें एक चम्मच नीबूका रस मिलाकर प्रत्येक घंटेपर पीते रहें।

(७) पौष्टिक सुपाच्य आहार और कुलथीकी दालका पानी पीयें।

(ख) वेदनाके बाद—

(१) आहार-विहारका असंयम और क़ब्ज़ दूर करनेका प्रयास करें।

(२) पेड़ूपर प्रतिदिन ठंडे-गरम पानीकी सेंक तथा एनिमा लेना चाहिये।

(३) वाष्प-स्नान तथा गरम पानीमें भीगा तौलिया कमरके चारों ओर लपेटे।

(४) प्रतिदिन व्यायाम, प्राणायाम, यकृत्‌की मालिश करना चाहिये।

(५) सप्ताहमें एक दिन उपवास करें। दिनमें केवल नीबूका पानी या फलोंका रस लें।

(६) दूध, मलाई, पनीर, घी आदि वसायुक्त पदार्थोंका सेवन न करें। स्नेहहीन भोजन पथरीके रोगीको लाभप्रद होता है।

(७) ताजा फल, कुलथीकी दाल, हरी साग-सब्जी, मलाईरहित मट्ठा, शहद, फलोंका सलाद, जामुन, जामुनकी गुठली पथरी रोगमें गुणकारी है।

(८) मांसाहारी भोजन, तले-भुने गरिष्ठ खाद्यपदार्थ, सूखा मेवा आदि कदापि न लें। मिर्च-मसाला, उत्तेजक खाद्यपदार्थ तथा मादक द्रव्यका स्पर्श न करें। ये पथरी रोगमें विषतुल्य हैं।

(९) खीरा, गाजर, लौकी, पपीता, मूली, नीबूका रस निकालकर पियें।

(१०) प्रातः उठकर खाली पेट पानी पियें, दोपहरमें भोजनके साथ प्रतिदिन दो बार दो चम्मच हिंग्वाष्टक चूर्ण लें तथा रात्रिको सोते समय त्रिफलाचूर्ण ५ ग्राम तथा हरीतकी २ चम्मच गरम पानीसे लें।

(११) योगासन (हलासन, धनुरासन, भुजंगासन, शलभासन, पश्चिमोत्तानासन , सर्वांगासन) तथा प्राणायाम नियमितरूपसे करें या प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्यनमस्कार (११ बार) करें।

आधुनिक चिकित्सा

उदरमें पथरीकी उपस्थिति एक विस्फोटककी तरह होती है जो किसी भी समय संकट उत्पन्न कर सकती है। अतः यह पता चलते ही कि पित्ताशयमें पथरी है, अच्छी तरह उपचार करना चाहिये। जब पित्ताशयमें पथरी बन गयी हो तो, अभीतक कोई ऐसी ओषधि नहीं बन पायी जो उसे किसी भी प्रकार गलाकर निकाल दे। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक्स-रेमें कोई पथरी दिखायी देती है। कुछ समय बाद यह पित्तवाहिनीसे होकर छोटी आँतमें स्वतः चली जाती है। यह पथरीके छोटे आकारके कारण संयोगवश ही होता है।

पित्ताशयमें पथरी उत्पन्न हो जानेपर उसका ऑपरेशन करके पथरी निकाल देना ही समुचित उपचार है। ऑपरेशन करते समय यदि कोई छोटी पथरी पित्तकी नली आदिमें रह जाती है तो भविष्यमें पुनः परेशानी हो सकती है। ऑपरेशन करके पथरी निकालनेके बाद भी रुग्ण पित्ताशय, समस्याएँ उत्पन्न करता रहता है। पित्ताशय, पथरी बननेकी एक आम जगह है। इसमें एक बार रोग हो जानेके बाद यह शरीरके लिये संवेदनशील हो जाता है। पुनः इसमें पथरी बनते रहनेकी अधिक सम्भावना रहती है।

लिथोट्रेप्सी—पित्ताशय पथरी निकालनेकी ऑपरेशनके अतिरिक्त एक अन्य पद्धति जिसे लिथोट्रेप्सी कहते हैं,

के द्वारा पथरीको सहज ही पराश्रव्य ध्वनितरंगोंद्वारा बारीक टुकड़ोंमें तोड़कर बाहर निकाल देते हैं। पित्ताशयकी पथरीके लिये 'गॉल लिथोट्रिप्टर' मशीनका प्रयोग करते हैं। इसमें न तो कोई चीरफाड़ करनी पड़ती है, न ही रोगीको बेहोश करना पड़ता है और न ही शरीरपर कोई दाग-धब्बे पड़ते हैं। मात्र आधे घंटेसे पैंतालीस मिनटतक ध्वनितरंगोंसे चिकित्सा होती है। सम्पूर्ण प्रक्रियामें मात्र ढाई-तीन घंटे लग जाते हैं। इसके बाद रोगी आरामसे घर जा सकता है। सर्वप्रथम अल्ट्रासॉनिक तरंगोंद्वारा पथरीके स्थानका पता लगाकर इन पथरियोंको लक्षित करके 'आघात तरंग प्रक्षेपक' द्वारा उच्च आवृत्तिकी ध्वनितरंगें छोड़ी जाती हैं। तरंगोंकी दिशा और आवृत्ति पथरीके आकारके अनुसार कम्प्यूटरकी मददसे सुनिश्चित की जाती है। तीससे पैंतालीस मिनटतक पराश्रव्य ध्वनितरंगोंको पथरीपर छोड़ते हैं, जिससे किसी भी आकारकी पथरी चूर-चूर हो जाती है। यह चूर्ण धीरे-धीरे आँतोंसे बाहर निकल जाता है। दर्द न हो इसके लिये स्थानीय संज्ञाशून्य करनेकी आवश्यकता होती है। इस विधिसे पुनः पथरी बननेकी सम्भावना कम रहती है।

इस रोगको पुनः न होने देनेके लिये नियमित दिनचर्या और आहार-विहार इस प्रकार रखना चाहिये कि रोग उत्पन्न ही न हो। प्रायः यह देखा गया है कि पथरी बननेके साथ ही शरीरमें स्थूलता भी आती जाती है। इसके लिये नियमित व्यायाम-योगासन-प्राणायाम आदि करते रहना चाहिये।

स्त्रीरोग 'प्रदर'—कारण एवं निवारण

(वैद्य श्रीरामरतनजी चेजारा)

महिलाओंमें होनेवाले अनियमित मासिक धर्म एवं मात्रामें कम या अधिक आनेकी अव्यवस्थाको प्रदररोगकी संज्ञा दी जाती है। जबतक मासिक धर्म नियमित रूपसे होता है, स्त्रीमें संतति-योग्यता रहती है। इसके विपरीत संतति-योग्यता नहीं रहती। मासिक धर्मकी अनियमिततासे स्त्री-शरीरमें अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है, जिनमें गर्भाशयमें अधिक मात्रामें रक्त जमा हो जाना, पेशियोंमें शिथिलता, जरायुके भीतर ट्यूमर अथवा कैंसरका हो जाना, डिम्बकोष-प्रवाह, हृदय और यकृत-सम्बन्धी रोग एवं पाण्डु-रोग आदि हैं। इनमें भी श्वेतप्रदर भीषण व्याधि है। अधिकतर महिलाएँ इससे पीड़ित रहती हैं। रोगाधिक्यमें स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। रोगके कारण चेहरा सफेद पड़ जाता है और शरीर कमजोर हो जाता है। रोगके आरम्भमें पहले कमरमें दर्द तथा पेड़ूमें भारीपन एवं कभी-कभी तनावयुक्त दर्द होता है। शरीरमें भारीपन तथा पेशाबमें रोगके लक्षण प्रकट होते हैं। उक्त लक्षणोंके बाद गर्भाशयसे योनिद्वारमें होकर एक स्राव निकलने लगता है। यह स्राव पहले पतला, स्वच्छ एवं गोंद-जैसा लसदार होता है। धीरे-धीरे यह गाढ़ा होकर मवादकी भाँति हो जाता है। रोगाधिक्यमें हरा-पीला, खूनमिश्रित पनीर-जैसा कभी गाढ़ा तो कभी पतला अर्थात् अनेक प्रकारका स्राव होता रहता है। आयुर्वेदके अनुसार प्रदररोग चार प्रकारका होता है—

१-वातज—इस प्रकारके प्रदरमें रूखा, लाल, झागदार, मांसके छोटे-छोटे कणोंसे युक्त थोड़ा-थोड़ा रक्त वेदनापूर्वक बहता रहता है। कभी-कभी साँवला एवं गहरे रंगका रक्त भी होता है, साथ ही कमर, पसली, पीठ तथा नितम्बोंमें तीक्ष्ण वेदना भी होती है।

२-पित्तज—ऐसे प्रदरमें काला, लाल, नीला तथा पीला रक्त जो प्रायः गरम प्रतीत होता है, बहता है। इसके साथ ही पित्तके कारण जलन भी रहती है और कभी-कभी प्यास, मोह, भ्रम तथा ज्वरके लक्षण भी दिखायी देते हैं।

३-कफज—इस प्रकारके प्रदरमें कफके समान सफेद रंगका हलका तथा गोंद-जैसा चिकना स्राव जननेन्द्रियसे होता रहता है। उलटी, मन्दाग्नि, श्वास-खाँसीके लक्षण भी दिखायी देते हैं।

४-संनिपातज—उपर्युक्त तीनों दोषोंके सभी लक्षण

इस प्रकारके प्रदरमें पाये जाते हैं। इसमें ज्वर लगभग हमेशा बना रहता है। ऐसा रोग अधिकतर कष्टसाध्य एवं असाध्य होता है।

कारण—वैसे तो दोषोंके अनुसार कारण भी दोषोंसे मिलते-जुलते ही होते हैं, परंतु फिर भी कई कारण ऐसे हैं, जिनसे रोग हो जाता है। जैसे—अत्यधिक मैथुन, मानसिक परेशानी, क्रोध, अत्यधिक गर्भपात, बार-बार बच्चा जनना, अनियमित मासिक, क़ब्ज़, उत्तेजक पदार्थोंका सेवन आदि। कण्ठमाला, धातुग्रस्त एवं श्लेष्मा-प्रधान महिलाओंमें अधिक आराम तलब तथा शारीरिक परिश्रमकी कमीके कारण भी यह रोग हो जाता है। जननाङ्गोंकी सफाई न रखना भी इस रोगका मुख्य कारण है।

चिकित्सा-सूत्र एवं आवश्यक बातें

रोगके वास्तविक कारणको जानकर उसे दूर करनेका प्रयत्न करें। अधिक आराम, मानसिक चिन्ता, शोक, क्रोध, ईर्ष्या, अत्यधिक मैथुन, भय आदिसे दूर रहें। अतड़ियोंकी क्रियाको तेज रखा जाय ताकि क़ब्ज़ न होने पाये। भोजन हलका और सुपाच्य करना उचित है। खाद्य वस्तुओंमें हरी शाक-सब्जी, चोकरसहित आटेकी रोटी एवं ताजा फलोंका अधिक सेवन करना चाहिये।

मांस, मछली, तेज मसालेदार तथा बासी एवं गरिष्ठ भोजन, अधिक खट्टी वस्तुएँ जैसे—अचार आदिका सर्वथा त्याग करना चाहिये। प्रदर रोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा यदि शीघ्र नहीं की जाती तो उसके शरीरसे अत्यधिक रक्त निकल जाता है। जिससे दुर्बलता, मूर्च्छा, अपस्मार आदि अनेक रोग उसे आ घेरते हैं। इसलिये चिकित्सा-सिद्धान्तानुसार रोगके कारण दूर करके ही रोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। रोगके वास्तविक कारणको दूर करनेके उपरान्त निम्नलिखित चिकित्सा की जा सकती है—

प्रदररोगकी प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सकोंके मतानुसार जिस प्रकार नाकसे जुकामका स्राव होकर भीतरी गंदगी बाहर निकलती है। उसी प्रकार नारी-शरीरमें एकत्रित भीतरी गंदगी प्रदरके रूपमें बाहर निकलती है। प्राकृतिक चिकित्सा-विधिमें इस रोगसे बचने और इसे दूर करनेका सबसे अच्छा उपाय शारीरिक परिश्रम एवं ईश्वर-उपासना है। चक्की चलाना, घरके काम, टहलना, परिश्रमके कार्य आदि इस रोगसे शीघ्र मुक्ति दिलवाते हैं। शारीरिक श्रमके साथ-साथ व्यायाम जैसे—धूप-स्नान, पानीकी गद्दीका प्रयोग तथा कटि-स्नान एवं मेहन स्नानद्वारा भी प्रदररोगसे छुटकारा मिल जाता है। इसके अलावा निम्नलिखित प्राकृतिक योगोंसे भी सफलतापूर्वक रोग दूर किया जा सकता है—

प्रदररोगोंपर देशी सफलयोग

१-बरगदके दूधमें बबूलके बीजोंकी सात भावना देकर छायामें सुखा लें। फिर कूट-पीसकर समभाग मिश्री मिलाकर तीनसे चार माशा चूर्ण दूधसे देवें। ईश्वरीय कृपासे पुराने-से-पुराना रोग भी ठीक हो जायगा। चालीस दिनतक सेवन करायें।

२-मुलहठीके चूर्णमें दुगुनी पिसी हुई मिश्री मिलाकर प्रातः उसे चार माशा दवा खाली पेट खिलायें तथा सवा सेर पानीमें दस-पन्द्रह बूँदें चूनेके पानीकी डालकर थोड़ा-थोड़ा पानी दिनभर पिलाते रहें। यह प्रदर तथा अन्य स्त्रीरोगोंमें भी सर्वोत्तम है।

प्रदररोगकी आयुर्वेदिक चिकित्सा

१-वंशलोचन, नागकेशर तथा सुगन्धवाला—इन्हें समभाग लेकर चूर्ण बना लें, इस चूर्णको छः-छः ग्रामकी मात्रामें चावलोंके धोवन (माँड)-के साथ पिलानेसे सब प्रकारका प्रदररोग नष्ट हो जाता है।

२-दारू हल्दी, रसोत, अडूसा (बांसा), नागरमोथा, चिरायता, बेलगिरी शुद्ध, भिलावा तथा कमोदिनी—इनका समभाग छः-छः ग्राम लेकर सौ ग्राम जलमें काढ़ा बनायें। शीतल होनेपर छानकर पचीस ग्राम शहद मिलाकर पीयें। यह सब प्रकारके रक्तप्रदर एवं श्वेतप्रदरको दूर करता है।

३-आमकी छाल, पीपलकी छाल, जामुनकी छाल, बरगदकी छाल, बबूलकी छाल प्रत्येक तीन-तीन तोला लेकर जौकुट करके दो सौ पचास तोले पानीमें पकाये। जब पचीस तोले पानी शेष रह जाय, तब उसे

छानकर साठ तोला मिश्री मिलाकर पुनः पकाकर एक तारकी चाशनी बना ले और ठण्डा हो जानेपर साठ तोला मुलहठी मिलाकर सुबह-शाम पचीस-पचीस ग्राम देवें। यह हर प्रकारके प्रदररोगको दूर करता है।

४-पुष्यानुगचूर्ण साठ ग्राम, प्रदरान्तक लौह दस ग्राम, चन्दनादि चूर्ण साठ ग्राम तथा चन्द्रमुखी चूर्ण साठ ग्राम मिलाकर सुबह-शाम छः-छः ग्राम दूधसे देवें। इसके साथ ही अशोकारिष्ट तीस-तीस एम्०एल्० सुबह-शाम समान जल मिलाकर देवें। इसके उपरान्त शतावरी घृत या जीरक अवलेह एक-एक चम्मच खानेको देवें। रोग जड़से नष्ट हो जायगा, फिर कभी दोबारा नहीं होगा।

५-अशोक धनसल एक तोला, लाल चन्दन छः माशा, सुपारी पुष्प एक तोलाको कूट-पीसकर त्रिवंगभस्म तीन तोला, शीतल चीनी छः माशा मिलाकर दो-दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर एक-एक गोली सुबह-शाम चावलोंके धोवन (माँड़)-के साथ देनेसे सभी प्रकारका प्रदररोग नष्ट हो जाता है।

आन्तरिक बालरोग और उनको दूर करनेके उपाय

(गोलोकवासी प्रो० डॉ० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र, भूतपूर्व वेदविभागाध्यक्ष वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय)

धर्मशास्त्रके अनुसार मानवकी प्रथम अवस्थाके शिशु, बाल और कुमार आदि भेद हैं। उनमें अन्नप्राशन-संस्कार (छठे मास)-के पूर्व शिशु, चूडाकरण-संस्कार (अर्थात् तीन या पाँच वर्ष)-के पूर्व बाल, उसके बाद उपनयनके पूर्वतक कुमार कहलाता है। इन संज्ञाओंके आधारपर शुद्धिमें भी विशेषता बतायी गयी है। शिशुकी अपवित्रता (यदि गन्ध और लेप न हुआ हो तो) जलके छींटनेसे, बालकी अपवित्रता आचमनसे एवं कुमारकी अपवित्रता स्नानसे दूर हो जाती है। जैसा कि कहा गया है—

प्राक् चूडाकरणाद् बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः।
कुमारस्तु स विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम्॥
शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम्।
रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नातव्यं तु कुमारकैः॥

(पा०गृ०हरिहरभाष्य २।१)

इससे यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि बाल-अवस्था अधिक-से-अधिक पाँच वर्षतककी है।

जन्मजात रोग और समाजका पतन

यह तो सभी जानते हैं कि माताके गर्भ और पिताके वीर्यसे बालक जन्म लेता है। माता-पिता दोनों जीव हैं। जीवमें गुण और दोषका सम्मिश्रण है। छिपे हुए दोष भी नूतन बालकमें जड़ जमाकर विकसित हो जाते हैं; क्योंकि दोष दूसरेपर अधिक प्रभाव डालनेका स्वभाव रखते हैं। माता-पिताके गर्भ और वीर्यमें ऐसे दोष हो सकते हैं, जो बालकको रोगी बनावें। ऐसे संक्रमणशील दोषोंके लिये धर्मशास्त्रमें **'एनस्'** शब्दका व्यवहार किया गया है। इस **'एनस्'** (रोगरूपी संक्रामक दोष)-की शान्ति नहीं करनेसे बालकको शारीरिक बाह्य दोषोंकी अपेक्षा आन्तरिक दोष अधिक प्राप्त हो जाते हैं, जिनका परिचय विचार-शक्तिकी क्षीणता है।

स्मरण (याद) रखनेमें अरुचि या दुर्बलता, मानवोचित गुणोंकी ओर अनाकर्षण, समाजोपयोगी मैत्री, स्नेह तथा त्याग आदि भावोंमें दम्भ, अपने उत्तराधिकारमें प्राप्त आर्ष ज्ञानका, भारतीय संस्कृति, कुलमर्यादा, पितृ-मातृसेवाके प्रति अश्रद्धा, भाई-बहन, स्त्री-संतति, सगे-सम्बन्धी, नौकर-मालिक, रक्षक-भक्षकके प्रति आवश्यक समुचित व्यवहारमें अकुशलता, योग (न मिली हुई चीजकी प्राप्ति), क्षेम (प्राप्त वस्तुका संरक्षण) करनेमें असावधानी आदिसे इन आन्तरिक दोषोंका अनुभव होता है। ये अन्तःस्थित दोष राष्ट्र-विनाशकारी रोग हैं। बीज-गर्भसम्बन्धी **'एनस्'** आन्तरिक दोषोंको विशेष रूपसे प्रकट करता है इसलिये उनके शमनका

उपाय भी जीवकी अन्तः-अवस्था (गर्भस्थिति)-से ही किया जाता है। इन उपायोंकी यह विशेषता है कि वे बीज-गर्भसे उद्भूत (उत्पन्न हुए) '**एनस्**' (हानिकारक दोषों)-के नाश करनेके साथ जीवमें कभी-कभी अनहोनी (जो बाप-दादा, कुटुम्बमें न देखी गयी) विशेषताको भी प्रकट कर देते हैं। इसी कारण '**एनस्**'-नाशक उपायोंका '**संस्कार**'—यह भारतीय नाम है।

बीज (पिताके वीर्य), गर्भ (माताके रज) एवं गर्भाशयकी स्थितिसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका शास्त्रीय विधिसे निराकरण आठ संस्कारोंसे होता है। वे आठ संस्कार इस प्रकार हैं—

१-गर्भाधान, २-पुंसवन, ३-सीमन्तोन्नयन, ४-जातकर्म, ५-नामकरण, ६-निष्क्रमण, ७-अन्नप्राशन और ८-चूडाकरण।

इनमें आदिके तीन गर्भावस्थामें और बादके पाँच जन्मसे लेकर पाँच वर्षकी अवस्थातक यथासमय होते हैं। इनसे बीज और गर्भके दोषोंकी निवृत्ति सभी धर्मशास्त्र ग्रन्थोंमें बतायी गयी है, जिनमेंसे कुछके उद्धरण दिये जाते हैं—

एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

(मनुस्मृति २। २७)

महर्षि हारीतने पिताके पाप्मा (पाप)-के अतिरिक्त पाँच संस्कारोंसे समाजकी उन्नतिके विनाशकारी पाँच पाप्मा (आन्तरिक दोषों)-के हटनेका स्पष्ट संकेत किया है। देखिये—

गर्भाधानवदुपेतो ब्रह्मगर्भं सन्दधाति, पुंसवनात्पुंसीकरोति, फलस्नपनात् पितृजं पाप्मानमपोहति, जातकर्मणा प्रथममपोहति, नामकरणेन द्वितीयम्, प्राशनेन तृतीयम्, चूडाकरणेन चतुर्थम्, स्नानेन पञ्चमम्।

(पा०गृ० हरिहरभाष्य)

इसका भाव इस प्रकार है—१-गर्भमें स्थापित जीवका यदि गर्भाधान-संस्कारके कथित होमादि शास्त्र-विधिसे सम्बन्ध कर दिया जाय, तो सात्त्विक गर्भाशय-स्थितिका आमन्त्रण होता है। २-पुंसवन-संस्कारसे जीवमें सात्त्विक साहस स्थापित होता है। ३-फलस्नपन अर्थात् सीमन्त-संस्कारसे पितासे प्राप्त होनेवाले दोषोंको दूर किया जाता है। ४-जातकर्मसे समाजविद्रोही प्रथम कोटिके दोषोंको, ५-नामकरणसे द्वितीय कोटिके दोषोंको, ६-अन्नप्राशनसे संस्कारसे तृतीय कोटिके दोषोंको, ७-चूडाकरण-संस्कारसे चतुर्थ कोटिके दोषोंको तथा ८-स्नान अर्थात् स्नान कराकर निष्क्रमण-संस्कारसे पञ्चम कोटिके दोषोंको हटाया जाता है।

हमारा देश जो १-विचारोंकी महत्ता, २-मानवोचित गुणोंके विकास, ३-मैत्री, स्नेह, त्याग आदि नैतिक गुणोंकी समृद्धिता, ४-अधिकारानुरूप व्यवहारकी स्थिरता एवं ५-योग-क्षेमके संतोषके लिये ख्याति प्राप्त था, वही आज विपरीत आचरणोंका आदी होता जा रहा है। एक-एक व्यक्तिका '**एनस्**' या '**पाप्मा**' समष्टिमें परिणत होकर राष्ट्रके बालकोंमें भयानक रोगके रूपमें हो गया है। अतः इन महाभयानक बालरोगों (बालकपनसे होनेवाले रोगों)-से भारतीय आर्य ग्रन्थोंमें प्रतिपादित 'संस्कार' नामके उपायोंका आश्रय लेकर ही हम छुटकारा पा सकते हैं और तभी '**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्॥**' इस अपने भारतीय स्वप्नको साकार कर सकते हैं। आन्तरिक बालरोगोंकी शास्त्रीय औषध बालकोंको सम्यक् संस्कृत करानेसे होती है। रज-वीर्यके दोषोंके अपाकरण तथा बाल्यावस्थाकी आरोग्य-प्राप्तिमें ही आरोग्यताकी मूल भित्ति अवस्थित रहती है।

बालग्रहाविष्ट रोग तथा उपचार

(श्रीहरिकृष्णजी नीखरा, वैद्यविशारद, आयुर्वेद धर्मरत्न)

सामान्य रूपसे शिशु, बाल, कुमार आदिका अर्थ बच्चोंसे है। बालकोंके रोगोंमें बालग्रह-रोग भी होते हैं। कुमार (कार्तिकेय)-की रक्षाके निमित्त महादेव, पार्वती, अग्नि तथा कृत्तिकाओंने इन ग्रहोंको उत्पन्न किया है। ये ग्रह रजोमय और तमोमय हैं। ये बालग्रह अणिमा, गरिमा आदि अष्टविध ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण शरीरमें प्रविष्ट होते हुए देखे नहीं जा सकते, बालकके लक्षणोंके द्वारा ही इनकी पहचान होती है। उत्पन्न होनेपर जब इन ग्रहोंने अपनी आजीविकाके निमित्त देव-सेनापति भगवान् स्कन्दसे कहा तो वे बोले कि 'तुम्हारी आजीविका बालकोंमें होगी'—'**तद्युष्माकं शुभावृत्तिर्बालेष्वेव भविष्यति**' (सुश्रुत उत्तर० ३७। १७)। साथ ही स्कन्दने बालग्रहोंसे कहा—'जिन कुलोंमें देवताओं और पितरोंके लिये यज्ञ नहीं होता, ब्राह्मण, साधु-संत, गुरु एवं अतिथियोंकी जिन घरोंमें सेवा-पूजा नहीं होती तथा आचारकी पवित्रता नष्ट हो गयी हो—ऐसे घरोंके बालकोंको तुम आक्रान्त करना, यही तुम सबकी आजीविका होगी।'

बालग्रहोंसे ग्रस्त बालकोंमें सामान्यत: इस प्रकारके लक्षण पाये जाते हैं—क्षणभरमें बालक व्याकुल हो जाता है, क्षणभरमें रोने लगता है, नख तथा दाँतोंसे अपनेको और माताको काटता है, ऊपर देखता है, दाँत चबाता है, बार-बार फेनयुक्त वमन (उलटी) करता, जँभाई लेता है, उसे रात्रिमें नींद नहीं आती है, अङ्गोंमें सूजन हो जाती है, पतले दस्त होते हैं, बोलीमें परिवर्तन हो जाता है, शरीरसे मछली तथा रक्तके समान दुर्गन्ध आती है, पूर्वकी तरह खाता-पीता नहीं है, दुर्बल तथा मलिन अङ्गोंवाला होकर बेहोश हो जाता है आदि। इन लक्षणोंकी कमी या अधिकता अवस्थानुसार पायी जा सकती है।

बालग्रहोंके नाम—संख्यामें ये ९ हैं यथा—१-स्कन्द, २-स्कन्दापस्मार, ३-शकुनी, ४-रेवती, ५-पूतना, ६-अन्धपूतना, ७-शीतपूतना, ८-मुखमण्डिका तथा ९-नैगमेष।

१. स्कन्द—स्कन्द ग्रहजुष्ट बालकोंमें अङ्ग ढीले हो जाना, शरीरमें रक्त-जैसी गन्ध होना, दूध न पीना, मुख टेढ़ा हो जाना, आँखकी एक पलक चलना, व्याकुल हो जाना, नेत्रमें आँसू भर आना, कम रोना, हाथकी मुट्ठी कसकर बँध जाना तथा मल कड़ा निकलना आदि लक्षण होते हैं।

२. स्कन्दापस्मार—ग्रहजुष्ट बालकमें बेहोश होना, फिर चैतन्य हो जाना, शरीर जकड़ जाना, नाचनेके समान हाथ-पैरोंको चलाना, मुखसे फेन छोड़ना, देरतक जँभाई लेना एवं मल-मूत्र त्याग करना आदि लक्षण होते हैं।

३. शकुनी—ग्रहजुष्ट बालकमें अङ्गोंका ढीलापन, डरा-सा रहना, शरीरमें पक्षी-जैसी दुर्गन्ध आना, स्रावयुक्त व्रणोंसे पीडित रहना, सर्वाङ्गमें जलन तथा पाकयुक्त व्रण-पीडाका होना आदि लक्षण दिखायी देते हैं।

४. रेवती—ग्रहजुष्ट बालकमें मुख लाल हो जाना, हरे रंगकी विष्ठा, शरीर अत्यन्त पीला या काला होना, मुखपाक हो जाना, शरीरमें पीड़ा होना तथा बालकद्वारा कान, नाक आदि जैसी क्रियाएँ मुख्य हैं।

५. पूतना—ग्रहजुष्ट बालकमें अङ्गोंसे बहुत-सा मल निकलना, दिन-रात न सोना, पाखाना पतला होना, शरीरसे कौवेकी तरह दुर्गन्ध आना, वमन होना, प्यास लगना एवं रोमाञ्च होना आदि लक्षण प्राप्त होते हैं।

६. अन्धपूतना—ग्रहजुष्ट बालकमें स्तनपान न करना, अतिसार, खाँसी, वमन, हिचकी, ज्वर, शरीरका रंग बिगड़ जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

७. शीतपूतना—ग्रहजुष्ट बालकमें अधिक रोना, भयभीत होना, घबड़ाया-सा रहना, पेटमें गुड़गुड़ाहट तथा पीड़ा, अङ्गोंकी शिथिलता तथा ठंड लगना लक्षण विशेष रूपसे होते हैं।

८. मुखमण्डिका—ग्रहजुष्ट बालकमें मुर्झाये-सा रहना, हाथ-पाँव, मुखसे रक्त निकलना, बहुत आहार लेना, पेटपर अनेक कलुषित रेखाएँ उभर आना और शरीरमें मूत्र-जैसी गन्ध आना आदि लक्षण पाये जाते हैं।

९. **नैगमेष**—ग्रहजुष्ट बालकके मुखसे फेनकी उलटी होना, शरीरके मध्यभागका झुक जाना, हँसना, ऊपर देखना, हमेशा कराहना, शरीरमें चर्बी-जैसी दुर्गन्ध आना आदि लक्षण पाये जाते हैं।

निदान—उपचार, उपाय, साधन तथा रक्षा—इन ग्रहोंसे रक्षाके लिये यह आवश्यक है कि तीक्ष्ण हवा, धूप, बिजलीकी चकाचौंध, डरावने वृक्ष, शून्य स्थान, बहुत ही गहरे नीचे स्थान, दीवालोंकी परछाईं तथा दुष्ट ग्रहोंसे बालकोंको दूर रखा जाय। ये भूत, प्रेत, ग्रह आदि मानव-शरीरमें इस प्रकार प्रवेश करते हैं, जिस प्रकार दर्पणमें छाया प्रवेश करती है और शीत या गर्मी बिना दिखायी दिये ही उसे शरीरमें व्याप्त हो जाती है। जिस प्रकार देहमें जीव दिखायी नहीं पड़ता, वैसे ही ये भी दिखायी नहीं पड़ते।

ग्रहजुष्ट रोगोंकी उपचार-चिकित्सा मुख्यतः दैवव्यपाश्रय कर्मपर आधारित है। देवपूजन, जप, यज्ञ, हवन, वेदोक्त नियमोंका पालन करनेसे इनकी बाधा शान्त हो जाती है। बलिकर्म, सत्याचार, दिव्य औषधियाँ तथा अगदोंका धारण, ब्राह्मण, गुरुओंकी सेवा, तप, दान, माङ्गलिक कर्म, सिद्ध औषधियों एवं मन्त्रोंसे इनकी चिकित्सा की जाती है। आचार्य सुश्रुतने उत्तरतन्त्रमें इनकी शान्तिके अनेक उपायोंको निर्दिष्ट किया है।

सामान्यतया बालग्रह-बाधामें दूर्वा, कुटकी, निम्बके पत्तोंको जलसहित पीसकर बच्चेको उबटन करे। पीपलके पत्ते, मुलहठी या उपर्युक्त द्रव्योंके जलसे स्नान कराये। राई, लाख, नीमके पत्ते, बाँसकी त्वचा, गोघृतसे तैयार धूपका प्रयोग करे। साँपकी केंचुली, लहसुन, मरोड फली, सरसों, नीमके पत्ते, बच, शहदकी धूनी देनेसे बालकके दुष्ट ग्रह दोष नष्ट हो जाते हैं। अष्ट-मङ्गल-घृतका नित्य प्रातः सेवन करना लाभकारी है। इसके साथ ज्वर, मूर्च्छा, मलावरोध, कास, कृमिरोग, कर्णपाक एवं मूत्रकृच्छ्रताका लाक्षणिक उपचार भी किया जा सकता है।

मानव-शरीरमें 'नाभि' का महत्त्व

(डॉ० श्रीविष्णुप्रकाशजी शर्मा)

मानव-शरीरमें नाभिका अत्यधिक महत्त्व है। नाभि मानव-शरीरका गुरुत्वाकर्षण-केन्द्र है। अतः स्वस्थ शरीरके लिये नाभिका अपने स्थानपर रहना आवश्यक है। झटकेसे उठने, भारी सामान उठाने या अन्य किसी कारणसे नाभि अपने स्थानसे हट सकती है। नाभिके अपने स्थानसे ऊपर, नीचे या दायें, बायें हटनेपर क़ब्ज़, दस्त या पेटदर्दकी शिकायत हो सकती है, जिनको दवाइयोंसे ठीक करना अत्यन्त कठिन है। विशेषज्ञ डॉक्टरोंको भी ऐसे रोगीकी चिकित्सामें भ्रमित होते देखा गया है। कारण है कि एलोपैथिक चिकित्सामें नाभिके महत्त्वके बारेमें नहीं बताया जाता। नाभिके अपने स्थानसे हटनेको जाननेके लिये—

१. रोगीको सीधा लिटाये। इस स्थितिमें अपने हाथकी दो अँगुलियोंपर तथा अँगूठेको नाभिपर रखकर नाभिका चलना अनुभव किया जा सकता है और पता लगाया जा सकता है कि नाभि अपने स्थानपर है या ऊपर, नीचे, दायें, बायें हट गयी है।

२. रोगीको सीधा लिटा दे। यदि रोगी पुरुष है, तब एक मोटा धागा लेकर उसका एक सिरा नाभिमें दबाकर रखे और दूसरे सिरेसे दोनों निप्पलोंकी दूरी बारी-बारी नापे। एक ही दूरी आनेपर नाभि अपनी जगहपर और अलग-अलग दूरी आनेपर हटी हुई समझनी चाहिये। जब रोगी स्त्री हो तब उसे पलंगपर सीधा लिटाये। पलंगपर हाथ सीधा, पैर सीधा, एड़ी मिली हुई और पंजा खुला हुआ तथा ढीला रखे। अब धागेका एक सिरा नाभिमें दबाकर रखे और दूसरेसे पैरके दोनों अँगूठोंकी दूरी बारी-बारी नापे। अलग-

अलग नाप आनेपर नाभिको अपने स्थानसे हटी हुई जानना चाहिये।

नाभिको अपने स्थानपर लानेकी विधियाँ

१. रोगीको दरी बिछे पलंगपर सीधा लिटा दे। हाथ सीधे रहें। अब हाथ पुट्ठोंपर लगाये और दोनों पैर मिलाकर पैरों तथा सिरको एक साथ धीरे-धीरे उठाते हुए शरीरको एक नावके रूपमें लाये, कमर पलंगसे लगी रहे। कुछ समय बाद सिर तथा पैर धीरे-धीरे नीचे लाये और हाथ पलंगपर सीधे रखे। फिर धागेसे पुनः नापकर नाभिकी स्थितिमें हुए सुधारको देख ले।

२. एक वृत्ताकार उठी हुई पेंदीका लोटा लेकर उसे पलंगपर उलटा रखे। लोटेपर मोटा तौलिया रखे। अब रोगीको इस प्रकार उलटा लिटाये कि नाभि लोटेकी वृत्ताकार पेंदीके अंदर रहे। टाँगें सीधी रखे तथा दोनों हाथ सिरके पीछे मोड़कर रखे। कुछ समय बाद सीधा लिटाये तथा नाभिकी स्थितिमें आये सुधारकी परीक्षा करे।

३. रोगीको पलंगपर सीधा लिटाये, हाथ सीधे हों। रोगी स्त्री हो तब जिस पैरका धागा छोटा हो, उस टाँगको मोड़कर पेटपर रखे और चार-पाँच बार घुटनेको पलंगपर लगानेका प्रयास करे। ध्यान रहे, जोर न लगाये, आरामसे जितना पलंगके पास आ सके, लाये। फिर नाभिकी स्थितिमें हुए सुधारको नापे।

यदि रोगी पुरुष हो तब जिस निप्पलकी तरफका धागा बड़ा हो, उस टाँगको मोड़कर ऊपरकी तरह करे।

बच्चोंके दाँत और उनकी रक्षा

(वैद्य श्रीभाऊराव हरी बराटे, वैद्य-विशारद, साहित्य-विशारद, संस्कृत-विशारद, आयुर्वेद-भास्कर)

पृष्ठभङ्गे विडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे।
दन्तोद्भवे च बालानां न हि किञ्चिन्न दूयते॥

'बिल्लीकी पीठपर चोट लगनेके समय, मोरकी चोटी उत्पन्न होनेके समय तथा बालकोंके दन्तोद्गमके समय उनके नेत्र, सिर आदि सर्वाङ्गमें अत्यधिक पीड़ा होती है।'

वास्तवमें देखा जाय तो दाँतोंका निकलना शरीरका स्वाभाविक धर्म है। शिशुरूपी शरीर माताके स्तनपानसे पुष्ट होता है, उस समय उसे कोई कड़ा पदार्थ चबाना नहीं पड़ता। केवल ओठ, जीभ और गालोंकी सहायतासे चूसनेकी क्रिया करनी पड़ती है, उस अवस्थामें दाँतोंकी उसे कोई आवश्यकता ही नहीं होती; किंतु ज्यों-ज्यों वह बढ़ता है, अपने जीवन-निर्वाहके लिये उसे कड़े एवं पुष्टिकर पदार्थोंको चबाकर खानेकी आवश्यकता होती है। इसीसे उस समय वृद्धिके अनुसार शरीरमें तमाम परिवर्तन होने लगता है। उसके जबड़े मजबूत, मुँहका फाँट बड़ा एवं मसूढ़े मोटे तथा सबल हो जाते हैं और धीरे-धीरे सब पदार्थोंको चबानेकी उसमें शक्ति आ जाती है एवं वह स्वाभाविक ही इधर-उधर हाथ-पैर फैलाकर जो कुछ मिलता है, उसीको मुखमें डालकर चबानेकी चेष्टा करता है। अतः जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, इस अवस्थामें दाँतोंका निकलना एक प्राकृतिक क्रिया है। इसमें बालकको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये तथा देखा भी गया है कि जिस बालकके आहार आदिकी व्यवस्था प्रारम्भसे ही सावधानीके साथ नियमपूर्वक की जाती है, उसे दन्तोद्गमके समय किसी प्रकारके विशेष पीड़ा या विकारसे ग्रस्त नहीं होना पड़ता।

खेद है कि आज भारतमें शिशु-रक्षणके मामूली नियमोंका भी पालन नहीं हो रहा है। हमारी माताओं और बहिनोंमें धातृशिक्षाका अभाव होनेसे प्रायः ९० प्रतिशत बालकोंको इस अवस्थामें अनेक भयङ्कर कष्टोंका सामना करना पड़ता है। शरीरका एक स्वाभाविक धर्म 'दन्तोद्गमरोग' के नामसे प्रख्यात हो गया है। किंतु सशक्त एवं स्वस्थ बच्चोंको तथा जिन बच्चोंकी माताओंको दुग्ध-सदृश पदार्थ, जिनमें चूना-क्षार अधिक रहता है, खानेको मिलता है, उन्हें दन्तोद्गमके समय कोई विशेष

कष्ट नहीं उठाना पड़ता। जिन बच्चोंकी आहार-प्रणाली एवं बाह्याभ्यन्तर शुद्धिकी ओर सावधानीके साथ ध्यान नहीं दिया जाता, उनकी जठराग्नि दन्तोद्गमकालमें विशेष मन्द पड़ जानेके कारण विकार पैदा कर देती है, जिससे उसमें नीचेके लक्षण प्रकट होने लगते हैं तथा यह कई रोगोंका कारण हो जाता है।

दन्तोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम्।
विशिष्य ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम्॥

पहली अवस्था—मुखके अंदरकी गरमी कम हो जाती है, लार अधिक बहती है, मुखसे खट्टी गन्ध आती है, रात्रिमें हलका ज्वर—कभी-कभी तीव्र ज्वर भी हो जाता है। नींद ठीक-ठीक नहीं आती, बच्चा नींदमें चौंकता, बार-बार जाग उठता है। मसूढ़ोंमें दाहयुक्त शोथ और खुजलीके कारण दूध पीते समय स्तनोंको मसूढ़ोंसे दबाता है। प्रायः हरे, पीले, सफेद तथा फटे दस्त होते हैं। दस्त दिन-रातमें ८-१० बार या इससे भी ज्यादा होते हैं। कभी-कभी उलटी भी होती है। सिर गरम रहता है। दाँत निकलनेके कुछ सप्ताह-पूर्व लार टपकने लगती है। आँखोंमें पीड़ा, पलकोंमें रोहे तथा नेत्रस्राव, कर्ण-पीड़ा, त्वचाके विकार-विसर्प आदि भी देखे जाते हैं। जुक़ाम होकर नाक बहने लगती है, छींक अधिक आती है और खाँसी भी हो जाती है।

दूसरी अवस्था—मुख और मसूढ़ोंमें दाहकी अधिकता होती है तथा मसूढ़ोंके ऊपर कुछ गुलाबी रंगका फूला हुआ-सा दाग दिखलायी देता है। उसे दबानेसे बड़ी वेदना होती है। अतः बालक इस अवस्थामें किसी वस्तुको मुखमें नहीं डालता, किसी वस्तुका मुँहमें स्पर्श होते ही वह रोने लगता है। बेचैनी होती है तथा बालक चुपचाप माताकी गोदमें पड़े रहना चाहता है, बीच-बीचमें दूध पीनेकी कोशिश करता है; किंतु पीड़ाके मारे पी नहीं पाता।

दन्तोद्गमसम्बन्धी उक्त लक्षणोंको देखकर घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कारण कि ये कष्टदायक लक्षण स्वाभाविक ही होते हैं। इनको रोकनेके लिये अधिक तीव्र उपचार हानिप्रद होते हैं। दाँतोंके सम्पूर्णतया निकल आनेपर ये कष्टदायक लक्षण स्वयमेव शान्त हो जाते हैं। परंतु दन्तोद्गमकालमें बालककी दक्षतापूर्वक देख-भालकी विशेष आवश्यकता होती है, क्योंकि इस अवस्थामें बालककी शक्ति विशेष क्षीण होनेसे थोड़ी-सी भी असावधानी अन्यान्य सांघातिक व्याधियोंको उत्पन्न कर देती है। अतः इस अवस्थामें दक्षता एवं पथ्यापथ्यको ध्यानमें रखते हुए सौम्य उपचार करनेसे दाँत बहुत सुगमतासे निकल आते हैं और बालकोंको किसी प्रकारका कष्ट भी नहीं होने पाता।

दक्षता—इस हालतमें माताका आहार-विहार पथ्यपूर्वक होना आवश्यक है। जबतक बालक माताका दूध पीता हो, तबतक माताको चाहिये कि वह गेहूँकी रोटी, मूँगकी दाल तथा दूध आदि हलके, शीघ्र पचनेवाले पदार्थ खाये; गुड़, तेल, खटाई, मिर्च आदि गरम पदार्थोंसे तथा मैथुनसे परहेज रखे एवं बालकको नियमसे दूध पिलाये। यदि बालक अन्नादि खाता हो तो उसे बहुत हलका एवं सुपाच्य आहार देना चाहिये, जो सहज ही पच जाय और दस्त साफ हो। मुरमुरोंकी खीर, साबूदाना, अंगूर, अनार, सेब आदि फलोंका रस देना ठीक है। यदि आमका मौसम हो तो पके मीठे आमोंके रसमें दूध मिलाकर देना लाभदायक है; किंतु अधिक मात्रामें नहीं, एकसे तीन चम्मच—इस प्रकार दिनमें तीन या चार बार दे सकते हैं। कोई भी आहार अधिक मात्रामें नहीं देना चाहिये। मिठाई आदि गरिष्ठ पदार्थ देना तो जहर (विष) देनेके समान है। कोई भी गरम दवा या गरमी पैदा करनेवाले पदार्थ बालकको खाने या पीने नहीं देने चाहिये। प्रायः दन्तोद्गमके समय बालकोंको दूध भी नहीं पचता, वे उलटी कर दिया करते हैं। ऐसी हालतमें दूधमें किञ्चित् चूनेका निर्मल पानी मिलाकर उसे थोड़ा-थोड़ा पिलाना चाहिये।

दन्तोद्गमके समय मसूढ़ोंमें एक प्रकारकी सनसनाहट या खुजली-सी पैदा होती है, जिसे मिटानेके लिये

बालक मिट्टी, ढेला, कंकड़ आदि जो भी उसके हाथ लग जाता है, उसीको तुरंत मुखमें डाल, मसूढ़ोंसे दबाकर चबाने लगता है। यदि बालकको यह आदत आरम्भमें ही न छुड़ा दी गयी तो आगे चलकर उसे पाण्डु आदि भयङ्कर रोगोंका सामना करना पड़ेगा। अतः दाँत निकलनेके समय बच्चोंको मिट्टी आदि खानेसे बचाते रहना चाहिये। जो बालक प्रतिदिन कई घंटेतक बाहरकी स्वच्छ वायुमें रहता है या खुले हुए और स्वच्छ वायुके आने-जानेवाले कमरेमें रहता है तथा जिसको मात्रासे अधिक भोजन नहीं कराया जाता, उस बालकको दाँत निकलते समय कोई कष्ट नहीं होता। शारीरिक अस्थियोंकी बनावटमें चूना अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। चूनेकी कमीसे दाँत एवं अन्यान्य शारीरिक हड्डियाँ परिपुष्ट नहीं हो पातीं। इसीलिये पाश्चात्य वैज्ञानिक बच्चोंके दूधमें चूनेका जल (Lime-Water) मिलाकर देनेकी योजना करते हैं। बच्चोंकी पुष्टिके लिये जितने बालामृत आदि शरबतके रूपकी दवाइयाँ बनायी जाती हैं, उनमें चूनाप्रधान द्रव्य अधिकांशमें डाला जाता है।

एक संतानके पश्चात् दूसरी संतानके मध्यमें पाँच वर्षका समय स्त्रीको मिलना चाहिये, जिससे वह अपने शरीरमें चूनेकी कमीको पूरा कर सके। जिन स्त्रियोंको बहुत शीघ्र-शीघ्र संतानें होती हैं, उनके रक्त और अस्थियोंमें चूनेकी मात्रा कम हो जानेसे, उनका शरीर निर्बल हो जाता है, अस्थियाँ कमजोर हो जाती हैं और सूतिकादि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मुक्ता, मुक्ताशुक्ति, शुक्ति, शङ्ख, कपर्दिक, गोदन्ती, प्रवाल, संगयहूद, जवाहरमोहरा, अकीक आदि सब भस्मोंमें तथा संतरा, नीबू, सेब, अनार, नाशपाती आदि फलोंमें चूनेकी ही मात्रा अधिक होती है। गर्भावस्थामें उपर्युक्त द्रव्योंका यथाविधि सेवन करते रहनेसे शरीरमें चूनेकी मात्रा बढ़ जाती है। मनुष्यसे तो मुर्गियाँ ही बुद्धिमान् हैं जो अंडे देनेसे पूर्व चूना खाकर अपने शरीरमें चूनेका संचय कर लेती हैं। दाँतोंका सुगमतासे निकलना बच्चोंके आमाशय और स्वास्थ्यपर भी आश्रित है। चूनेके जलसे बच्चोंका हाजमा अच्छा रहता है, जिगर ठीक काम करता है और रक्तमें शुद्धि होती रहती है। इसलिये भी चूना बच्चोंके दन्तोद्गममें सहायक है।

उपचारविधि

१-उत्तम पत्थरका बिना बुझा हुआ असली चूना पाँच तोले नवीन मिट्टीके पात्रमें तीन पाव जलमें रात्रिके समय भिगो दे। प्रातःकाल ऊपरका साफ निथरा हुआ स्वच्छ जल मोटे वस्त्रसे छान ले। इसी जलमें एक सेर चीनी डालकर एकतारकी चाशनी बना ले, फिर ठंडा होनेपर छानकर शीशीमें भर ले। यह उत्तम बालामृत शरबत तैयार हो गया। मात्रा—१० बूँदसे ३० बूँदतक प्रातः-सायं चटावे। दाँत निकलनेके समयके सारे कष्ट—दस्त, वमन, पेट फूलना, दूधका न पचना, खाँसी, कफ, बुखार आदि इससे दूर हो जाते हैं।

२-अतीस, काकड़ासिंगी, पीपल—इनका महीन चूर्ण करके शहदके साथ चटानेसे लाभ होता है।

३-बिना बुझा हुआ चूना एक तोला और जल एक सेर एकत्र मिलाकर नीले रंगकी शीशीमें भर काग बंद करके बारह घंटे बाद एक बार हिलाकर जब पानी निथर आये, तब सावधानीपूर्वक उस जलको मोटे वस्त्रसे छान ले और यह निर्मल स्वच्छ जल दूसरी नीली शीशीमें भरकर रखे। मात्रा—१० से १५ बूँदतक।

४-दन्तोद्भेद-गदान्तक-रस एक रत्ती जलमें घिसकर देनेसे दन्तोद्गमजन्य सब बीमारियाँ—ज्वर, अतिसार आक्षेप आदि दूर हो जाते हैं।

दन्तोद्गमजन्य प्रमुख व्याधियाँ एवं उपचार

वमन—१. सुहागेकी खील एकसे चार रत्ती, माताके दूधमें मिलाकर दे।

२. अर्क-पोदीना, अर्क-सौंफ और अर्क-इलायची समभाग मिलाकर एकसे दस बूँदतक दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिये।

३. प्रवाल और वंशलोचनको शहद या दूधके साथ देना चाहिये।

ज्वर—१. अतिविष, काकड़ासिंगी, नागरमोथा

समभाग महीन चूर्ण पीसकर एकसे तीन रत्तीतककी मात्रामें शहद या माताके दूधके साथ दिनमें तीन बार दे, इससे वमनमें भी लाभ होता है।

२. सुदर्शन घनवटी माताके दूधमें किञ्चित् घिसकर दिनमें तीन बार दे।

अतिसार—१. जायफल, अतीस, अनारका छिलका, काकड़ासिंगी और जवाहरमोहरा समभाग महीन चूर्ण कर एक रत्तीसे दो रत्तीतक शहद या दूधके साथ तीन बार दे।

२. धायपुष्प, बेलगिरी, धनिया, लोध, इन्द्रजव और बाला समभाग महीन चूर्ण कर दोसे चार रत्तीतक तुलसीरसके साथ दे।

३. तुलसीपत्रका चूर्ण दो या तीन रत्ती अनारके शरबतके साथ दे।

४. महागन्धक-रस भी परम लाभदायक है।

कोष्ठबद्धता—शुद्ध रेंड़ीका तेल डेढ़ माशासे तीन माशेतक चटावे।

आध्मान—शंखवटी मूँगके बराबर मातृदुग्धके साथ दे। पेटपर रेंड़ीका पत्ता रेंड़ीका तेल गरमा कर चुपड़े और उसपर रुई गरम कर रखे तथा कपड़ा बाँध दे।

कास-श्वास—१. मुलेठीका सत, छोटी हरड़ और सेंधा नमक समभाग घोटकर मटर-जैसी गोलियाँ बना दिनमें तीन बार मातृदुग्ध या जलमें घोलकर पिलाये।

२. मुलेठीका सत, अतीस, काकड़ासिंगी, नागरमोथा, पीपल—इनका समभाग चूर्ण कर ले; मात्रा—एक रत्तीके प्रमाणमें शहदके साथ दे।

३. चतुर्भद्रिका चूर्ण शहदके साथ दे।

सिर-दर्द—सोंठ, कपूर घृतमें घोटकर धीरे-धीरे सिरपर मलना चाहिये।

नेत्र-कष्ट—गवती चायकी पत्ती छः रत्ती एक छटाँक गरम पानीमें डालकर रख दे। जब पानीमें रंग उतर आये तब छान ले। उसमें फिटकरीका फूला दो रत्ती मिलाकर रख दे। यह उत्तम नेत्रबिन्दु है। इसकी एक-एक बूँद डाली जाय।

पथ्यापथ्य

दन्तोद्गमके समय बालकको कोई भी खट्टी या मीठी चीज खानेके लिये न दी जाय। मुरमुरोंकी खीर, साबूदाना, गेहूँकी रोटीका फूला हुआ भाग दुग्धके साथ उसे देना चाहिये। गरमीके दिनोंमें बालकका सिर शीतल जलसे कई बार धो दिया जाय तथा उसके सिरपर बादामका या तिल्लीका तेल लगाया जाय और कानोंमें बादामका तेल छोड़ते रहना चाहिये। माताको चाहिये कि यदि बालक उसका दूध पीता हो तो वह संयमसे रहे तथा मिर्च, गुड़, तेल, खटाई, गरम पदार्थ एवं मैथुनसे दूर रहे।

चूनेकी कमीको पूरा करनेके लिये मुक्ताका प्रयोग

बच्चेको एक-दो रत्ती मुक्तापिष्टि नित्य दी जा सके, जब वह घुटनोंसे सरकने या बैठने लगे, तो बहुत उत्तम है। एक वर्षकी अवस्थातक इसे देनेसे बच्चेका शरीर पुष्ट बनेगा। दाँत निकलनेके उपद्रव भी उसे तंग नहीं करेंगे, क्योंकि इससे चूनेकी कमी दूर हो जायगी। मुक्तापिष्टि न दी जा सके तो मोतीके सीपका भस्म एकसे दो माशेतक नित्य शहद या माताके दूधके साथ दिया जा सकता है; किंतु बच्चेको साधारण सीपका भस्म नहीं देना चाहिये। बच्चेको तीन माशा वंशलोचनका कपड़छान किया हुआ चूर्ण प्रातः और सायंकाल दूध या शहदसे दे दिया जाय तो भी उसके शरीरमें चूनेका अभाव पूरा हो जायगा। वंशलोचन उसे कोई हानि नहीं पहुँचायेगा; परंतु उसके चूर्णमें कण न रह जायँ, चूर्ण खूब बारीक हो, यह सावधानी रखनी चाहिये।

स्वस्थ आँखें

आँखें हमारे लिये ईश्वरकी वह अनुपम देन हैं, जो मनकी अभिव्यक्तिको मुखरित करती हैं। आँखें तन और मन दोनोंका दर्पण हैं। इनके बिना हम धूप-छाँव, सुख-दु:ख, दिन-रात, पतझड़-वसन्त किसीका भी अनुभव नहीं कर सकते। प्रकृतिने आँखोंकी सुरक्षाके लिये कई प्रबन्ध कर रखे हैं। हमें चाहिये कि इन्हें स्वस्थ और सुन्दर रखनेके लिये निम्नलिखित बातोंका सदैव ध्यान रखें—

(१) प्रतिदिन सुबह उठते ही मुँहमें पानी भरकर आँखोंको स्वच्छ और ठण्डे पानीसे छींटा मारकर धोना चाहिये। स्नान करते समय भी आँखोंमें पानीके छींटे डालकर सफाई करनी चाहिये।

(२) पैरके तलवे और पंजेमें सरसोंके तेलकी मालिश करनी चाहिये। पैरके नाखूनोंमें सरसोंका तेल अच्छी तरह चुपड़ देना चाहिये। इससे नेत्र-ज्योति ठीक रहती है।

(३) प्रातः हरी दूबपर टहलनेसे आँखें स्वस्थ रहती हैं।

(४) सिरपर गरम पानी न डालें तथा आँखोंको गरम पानीसे न धोयें।

(५) जलनेति तथा सूत्रनेति करना आँखोंके लिये लाभप्रद है। अधिक देरतक शीर्षासन करना उचित नहीं है। किसी प्रकारका चक्षुरोग हो तो शीर्षासन कदापि न करें।

(६) हरी शाक-सब्जी, घी, दूध, मक्खन तथा विटामिन 'ए' से युक्त खाद्य-पदार्थोंका अधिक सेवन करें। गेहूँके पौधेका रस नेत्र-ज्योतिके लिये अत्यन्त हितकर है।

(७) पढ़ते समय आँखोंसे एक फुटकी दूरीपर पुस्तक रखनी चाहिये। आगे झुककर नहीं पढ़ना चाहिये। पढ़ते समय रोशनी पीछे बायें कंधेकी ओरसे आनी चाहिये। बीच-बीचमें आँखोंको विश्राम देनेके लिये एक मिनट आँखें बंद रखें या दूरकी किसी वस्तुपर दृष्टि केन्द्रित करें। रोशनी न तो बहुत तेज हो और न बहुत धीमी। लेटकर न पढ़ें, इससे आँखोंमें खिंचाव पैदा होता है।

(८) यात्राके दौरान ट्रेन आदिमें यदि पत्र-पत्रिका पढ़नेमें थोड़ी भी असुविधा हो तो नहीं पढ़ना चाहिये।

(९) यदि सिरमें दर्द हो, पढ़नेपर आँखोंसे पानी निकलता हो, स्कूलमें बोर्डपर साफ नहीं दिखता हो तो चिकित्सकसे नेत्रकी जाँच करानी चाहिये।

(१०) अत्यन्त तीव्र प्रकाश, बल्ब, वेल्डिंगके कार्य, सूर्य-चन्द्रग्रहणको लगातार नहीं देखना चाहिये। किसी भी प्रकारकी एकाएक उत्पन्न चमक आँखोंके लिये हानिप्रद है।

(११) आँखोंमें तिनका, धूलका कण या कोई अन्य वस्तु पड़ जाय तो आँखोंको मलना नहीं चाहिये। ऊपरकी पलकको अंगुलीसे पकड़कर खींचें और नीचेकी पलकसे लगा दें। आँखको इधर-उधर घुमायें। पानीसे आँखोंको धोयें। गिरी हुई वस्तु निकल जायगी।

(१२) आँखोंको धूल, धूप और धुएँसे बचानेके लिये चश्मेका प्रयोग करना चाहिये।

(१३) धूम्रपान, मद्यपान तथा अन्य नशीले द्रव्योंके सेवनसे आँखोंको हानि पहुँचती है।

(१४) अस्वच्छ हाथ या रुमाल आदिसे आँखोंको न छुएँ, न ही किसी अन्यके चश्मे और कंघी आदिका प्रयोग करें।

(१५) जलन पैदा करनेवाले रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग करते समय आँखोंके प्रति सतर्क रहें।

(१६) चालीस वर्षकी अवस्थाके बाद आँखोंकी नियमित जाँच करानी चाहिये। प्रौढावस्थामें आँखोंमें कई प्रकारके रोग जैसे—मोतियाबिन्द, रतौंधी आदि होनेकी सम्भावना बढ़ जाती है। उम्रके साथ दृष्टिशक्ति कमजोर पड़ जाती है। समुचित जाँच कराकर चश्मा आदि ले लेना चाहिये।

(१७) आँखोंमें अच्छे किस्मका काजल आदि रात्रिको सोते समय लगाना चाहिये। शुद्ध शहदका

अंजन लगाना भी हितकर है।

(१८) त्रिफलाचूर्ण १०० ग्राम, सप्तामृत लौह १० ग्राम, कासीसभस्म ५ ग्राम अच्छी तरह मिलाकर रख लें। रातको सोते समय १० ग्रामकी मात्रामें गरम पानी या दूधसे नियमित रूपसे लें। नेत्र-ज्योतिके लिये यह अनुभूत औषधि है।

(१९) किसी भी प्रकारका आँखोंका संक्रमण अथवा अन्य कोई रोग हो तो अच्छे चिकित्सककी राय लेकर ही औषधि-प्रयोग करना चाहिये।

(प्रेषक—श्रीराजकुमारजी माखरिया)

आँखोंकी देखभाल कैसे करें

आँखें प्रकृतिकी एक अनमोल देन हैं जिन्हें कुछ सामान्य-सी बातोंको ध्यानमें रखकर सदा स्वस्थ रखा जा सकता है—

—प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थोंका उपयोग उचित मात्रामें करें।

—तेज धूपसे बचावके लिये चश्मेका प्रयोग करें। लेकिन छायामें धूपका चश्मा न लगायें। निम्न श्रेणीके सस्ते रंगीन चश्मोंका प्रयोग हानिकारक हो सकता है।

—किसी दूसरे व्यक्तिके चश्मेका प्रयोग न करें। लगातार तीव्र प्रकाश जैसे—सूर्य, बल्ब इत्यादिकी तरफ न देखें।

—किसी भी प्रकारके रासायनिक पदार्थका प्रयोग करते समय आँखोंको बचाकर रखें।

—यदि आँखोंमें कुछ गिर गया हो तो पीड़ित आँखको कभी न रगड़ें, अपितु स्वच्छ जलसे भरी बाल्टीमें आँखको बार-बार खोलें और बंद करें।

—आँधी, तेज हवा, उड़ती हुई रेत या धूलके समय आँखोंपर चश्मा लगायें।

—दुपहिया वाहन चलाते समय भी चश्मा लगायें।

—बिना योग्य डॉक्टरकी सलाहके किसी प्रकारकी दवाईका प्रयोग न करें।

—पंखे, कूलरके सामने आँखें खोलकर न बैठें।

—गरम पानीसे आँखोंको न धोयें।

—सिरपर अधिक गर्म पानी न डालें।

—खट्टी वस्तुओं एवं गरम मसालोंका प्रयोग कम करें।

—रात्रिमें पढ़ते समय प्रकाश उचित मात्रामें तथा दाईं ओरसे आना चाहिये।

—पढ़ते समय आँख तथा पुस्तकके बीचकी दूरी ३० सेंटीमीटरसे अधिक होनी चाहिये।

—लगातार काम करते रहनेपर जब आँखें थक जायँ तो कुछ देरके लिये आँखें बंद करके अपनी हथेलियाँ उनके ऊपर रखें, इससे थकान मिट जाती है।

—चाँदनी रातमें चाँदकी तरफ देखनेसे भी आँखोंको लाभ मिलता है।

—यदि शुद्ध शहद मिले तो प्रतिदिन सोते समय आँखोंमें डालें।

—सस्ते काजल, सुरमा या आँखोंके सौन्दर्य बढ़ानेवाले अन्य सौंदर्य प्रसाधन लाभके स्थानपर हानि पहुँचा सकते हैं। अत: इनसे बचें।

—किसी भी प्रकारकी एकाएक उत्पन्न चमक आँखोंके लिये हानिकारक होती है।

—गर्भवती स्त्रीको उचित मात्रामें विटामिन 'ए' युक्त खुराक दें।

—हरियाली देखना आँखोंके लिये लाभप्रद है।

—जल-नेति करनेसे आँखोंकी रोशनीमें वृद्धि होती है।

—भोजनोपरान्त हाथ धोकर, आँखोंपर हाथ फेरें।

—लेटकर अथवा चलते हुए या गतिमान् वाहनमें न पढ़ें।

—कच्चा चावल खानेसे भी नेत्रज्योतिमें लाभ होता है।

—सिरपर हेयरड्रायरका प्रयोग आँखोंके लिये हानिकारक होता है।

—उगते सूर्यको देखना भी आँखोंके लिये हानिकारक होता है।

—गन्दे हाथ, रूमाल या तौलियेके प्रयोगसे आँखोंको बचायें।

—अधिक देरतक शीर्षासन न करें।

—आँखोंके संक्रामक रोगोंसे स्वयंको तथा दूसरोंको बचानेका प्रयास करें।

—कोई रोग होनेपर चाहे वह आनुवंशिक हो या संक्रमणसे आया हो अथवा आपकी दृष्टिमें अधिक बड़ा न हो, तुरंत आँखोंके विशेषज्ञ डॉक्टरसे सम्पर्क करें। निश्चित समयके अन्तरालपर आँखोंकी जाँच करायें तभी आँखें आपका आजीवन साथ निभा पायेंगी।

देखनेकी कला सीखिये, चश्मा छोड़िये

(श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा)

नेत्र प्राणीका सर्वश्रेष्ठ अनमोल अङ्ग है। आँखोंकी चमक-दमक उत्तम स्वास्थ्यका परिचायक है। परंतु आजकल छोटी-छोटी आयुके किशोर बालक-बालिकाओंको चश्मे लगाते देखकर हृदय दु:खी होता है। चश्मेका उपयोग नेत्र-रोगकी चिकित्सा नहीं है, बल्कि इसके प्रयोगसे आँखोंकी स्वाभाविक शक्ति क्षीण होने लगती है, जिससे मनुष्य सदाके लिये चश्मेका गुलाम बन जाता है। यदि हम अपने आहार-विहारको प्रकृति एवं ऋतुके अनुकूल ठीक रखें तथा नेत्र-रक्षाके निम्न सरल साधनोंका सावधानीपूर्वक नियमत: पालन करें तो हमारे नेत्र आजीवन स्वस्थ रह सकते हैं तथा चश्मेसे छुटकारा मिल सकता है।

नेत्र-स्नान—आँखोंको स्वच्छ, शीतल और नीरोग रखनेके लिये अनेक बार क्रमशः प्रात: बिस्तरसे उठकर, भोजनके बाद एवं सोते समय मुँहमें पानी भरकर आँखोंपर स्वच्छ शीतल जलके छींटे मारनेसे नेत्रोंकी दृष्टि-शक्ति बढ़ती है। इसके अतिरिक्त यदि पढ़ाई-लिखाई, सिलाई-कढ़ाई करते समय कभी आँखोंमें जरा भी थकान मालूम पड़े तो इसी प्रकार ठंडे जलसे आँखोंको तरोताजा करना चाहिये। यह अनुभूत प्रयोग है।

पानीमें आँखें खोलिये—स्नान करते समय किसी चौड़े बर्तनमें स्वच्छ ताजा पानी भरकर उसमें आँखें डुबो-डुबोकर खोलें और बंद करें। यह क्रिया किसी नदी या सरोवरके शुद्ध जलमें डुबकी लगाकर की जाय तो बहुत लाभप्रद रहती है। नेत्र-स्नानसे अनेक प्रकारके नेत्र-विकार दूर हो जाते हैं। कभी-कभी त्रिफलाके चूर्णको पानीमें भिगोकर १२ घंटे बाद पानी छानकर उससे आँखें धोना आरोग्यप्रद रहता है।

हम रात-दिन आँखोंका उपयोग करते रहते हैं, पर उनको आराम देनेकी ओर लापरवाही करते हैं। आँखोंको आराम देनेके लिये बीच-बीचमें सुविधानुसार आँख बंदकर, मनको शिथिल एवं शान्त रखकर, अपनी दोनों हथेलियोंसे आँखोंको इस प्रकारसे ढके कि तनिक भी प्रकाश और हथेलीका बोझ पलकोंपर न पड़ने पाये।

साथ ही अन्धकारका ऐसा ध्यान करें जैसे कि आप अँधेरे कमरेमें बैठे हुए हैं। इससे आँखोंको पूर्ण विश्राम मिलता है तथा मन भी शान्त होता है और मस्तिष्कको भी आराम मिलता है।
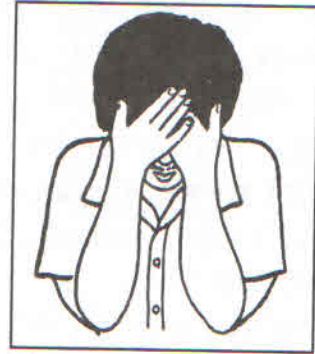
नेत्र-रोगोंके निवारण करनेवाली इस ध्यान-विधिको 'पामिंग' कहते हैं। इसे रोगी-नीरोगी, युवा-वृद्ध सबको नित्य कई बार करना चाहिये। यह क्रिया नेत्रोंको नीरोग रखनेमें रामबाण समझी जाती है।

आँखोंको गतिशील रखिये—गति ही जीवन है। इस सिद्धान्तके अनुसार हर अङ्ग-प्रत्यङ्गको स्वस्थ एवं सक्रिय रखनेके लिये उसमें हरकत होते रहना भी आवश्यक है। पलक मारना आँखकी सामान्य गति है। बच्चोंकी आँखोंमें निरन्तर गति सहजरूपसे होती है।

पलक मारकर देखनेसे आँखोंकी हरकत और सफाई हो जाती है। इसके विपरीत ताककर देखनेकी आदत आँखोंका गलत उपयोग है, इससे नेत्रोंमें थकान एवं जड़ता आ जाती है। परिणाम-स्वरूप ठीक देखनेके लिये मददगारके रूपमें चश्मा लगाना पड़ता है। अतः हमें पलकोंको झपकानेकी आदत बना लेनी चाहिये। इससे नेत्रोंको पल-दर-पल आराम मिलता है। प्राकृतिक रूपसे पलक झपकाते रहना नेत्र-रक्षाका नैसर्गिक उपाय है।

सूर्य रश्मियोंका सेवन—अरुणोदयके समय सूर्यकी लाल किरणें आँखोंके स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त गुणकारी हैं। इसलिये उगते सूर्यकी लाल किरणोंको खुली

आँखोंसे देखना चाहिये। इसी दृष्टिसे प्रातः सूर्योदयके समय पूर्व दिशाकी ओर मुख करते हुए बैठकर संध्या एवं सूर्योदयसे, कुछ देर बाद सूर्यकी सफेद किरणें बंद आँखोंपर लेनी चाहिये। नित्य प्रातः (समय हो तो सायंको भी) सूर्यके सामने आँखें बंद करके

आरामसे इस तरह बैठें कि किरणें सीधी बंद पलकोंपर पड़ें। बैठे-बैठे धीरे-धीरे गर्दनको क्रमशः दायीं तथा बायीं ओर कंधोंकी सीधमें एवं आगे-पीछे तथा दायीं और बायीं ओरसे चक्राकार गोलाईमें घुमायें। दस मिनट ऐसा करके बंद आँखोंको दोनों हथेलियोंसे ढककर दो मिनट पामिंग कीजिये, ऐसा प्रतीत हो कि मानो अँधेरा छा गया है। अन्तमें धीरे-धीरे आँखें खोलकर उनपर ठंडे पानीके छपके मारें। यह नेत्रोंके लिये अत्यन्त हितकारी एवं चश्मा छुड़ानेके लिये प्राकृतिक साधन है।

झूमनेकी क्रिया—आँखोंके दोषोंको दूर करनेमें झूमनेका सरल व्यायाम बहुत उपयोगी होता है।
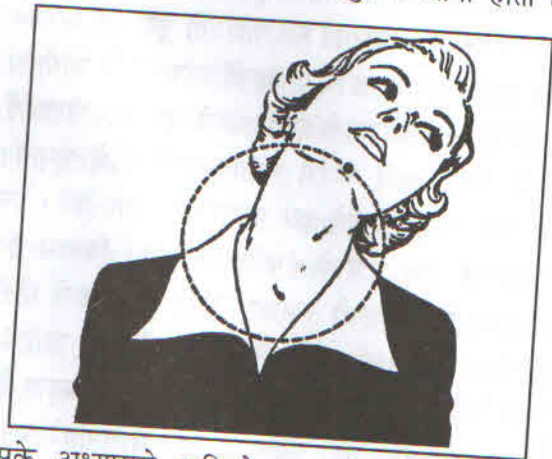
इसके अभ्याससे अक्षिगोलक एवं उनके समीपस्थ भागकी नस-नाडियाँ ढीली, मुलायम एवं तनावरहित हो जाती हैं। विधि इस प्रकार है—खिड़कीके सामने सीधे खड़े होकर शरीरको ढीला छोड़ दें। पैरोंमें एक फुटकी दूरी रखते हुए, हाथोंको दोनों ओर लटकते हुए रखें। तदुपरान्त दायीं-बायीं ओर झूमना या हिलना आरम्भ करें। इस प्रकार हिलें जैसे घड़ीका पेंडुलम (लटकन) हिलता है। इस क्रियाके साथ पैरोंकी एड़ियोंको बारी-बारीसे उठाते रहें, किंतु पंजोंको दृढ़तापूर्वक धरतीपर जमाये रखें। खुले नेत्रोंसे आप ज्यों-ज्यों झूमेंगे त्यों-त्यों खिड़की भी आपसे विपरीत दिशामें घूमती या हिलती दिखायी देगी। अब आप कुछ क्षण आँखोंको बंद करके झूमते रहें। फिर आँखोंको खोलकर दुबारा-तिबारा अभ्यासको दोहरायें। नेत्रोंके स्नायु-जालको तनावरहित करनेमें इसका बड़ा महत्त्व है। अतः स्वास्थ्य-प्रेमियोंको इसे नित्य करना चाहिये।

आँखोंकी पेशियोंके व्यायाम—लेटे-लेटे या बैठकर आँखोंकी पुतलियोंको क्रमशः ऊपरकी ओर ले जाकर फिर नीचेकी ओर ले जायँ। ऊपर-नीचे ले जानेका तरीका सिर्फ यह है कि ऊपरको देखनेका प्रयत्न करना, नीचेकी ओर देखनेका प्रयत्न करना। इस प्रयत्नमें गरदन तो सीधी रहनी चाहिये, गरदनको ऊपर-नीचे नहीं झुकाना चाहिये, गरदन सीधी रखते हुए बार-बार ऊपर-नीचे देखनेका यत्न करना चाहिये। इसके बाद गरदन फिराये बिना पुतलियोंको बायीं तथा दायीं ओर बार-बार ले जाना चाहिये। इसी प्रकार पुतलियोंको तिरछे दायीं-बायीं ओर और तिरछे ही बायीं-दायीं ओर ले जाना चाहिये। तिरछे दायीं-बायीं ओर देखनेका यत्न करेंगे तो पुतलियाँ अपने-आप दायीं-बायीं तथा बायीं-दायीं तरफ चली जायँगी। अन्तमें पुतलियोंको पहले दायीं ओरसे चक्राकार गोलाईमें घुमायें, फिर बायीं ओरसे चक्राकार गोलाईमें घुमायें। गरदनको बिना हिलाये इस प्रकार कई बार करें। इन क्रियाओंके बाद नेत्रोंको (पामिंगके द्वारा) विश्राम दें। आँखोंकी पेशियोंके ये व्यायाम करते हुए शुरूमें दोनों कनपटियोंको हाथकी हथेलियोंसे थपथपाते रहना चाहिये। इससे नेत्रोंकी सम्बद्ध पेशियोंमें रक्तका संचार बढ़ता है, जिससे पेशियोंका बल बढ़ता है और वे नेत्रोंको प्रभूत पोषक-तत्त्व पहुँचा सकती हैं।

आँखोंकी सामान्य कसरतें—(१) पलकोंको तेजीसे खोलने तथा बंद करनेका अभ्यास करें। प्रातः-सायं आधा-एक मिनट करें। (२) आँखोंको जोरसे बंद करें और दस सेकंड बाद तुरंत खोल दें। चार-पाँच बार दोहरायें। (३) आँखोंको खोलने-बंद करनेकी कसरत जोर देकर क्रमशः करें। अर्थात् जब एक आँख खुली रखें, उस समय दूसरी आँख बंद रखें। आधा मिनट करना काफी है। (४)नेत्रोंके पर्दोंपर हाथोंकी अँगुलियोंसे (नाककी ओरसे कानकी ओर ले जाते हुए) हलकी-हलकी मालिश करें। जब भी अँगुलियाँ पलकोंसे हटें, आँखें खोल लें और पुनः पलकोंपर अँगुलियाँ लाते समय पलकोंको बंद कर दें। यह साधारण व्यायाम भी आँखोंकी नस-नाडियोंका तनाव दूर करनेमें बहुत लाभदायक है। कुछ सेकंड इसके नियमित अभ्याससे नेत्रोंके अनेक विकार शीघ्र ही दूर हो जाते हैं तथा आँखोंको आराम मिलता है। (५) दूर-दृष्टि-व्यायामके लिये रातको खुली जगहमें लेट जाइये। अब दूर-सुदूर आकाश, चाँद तथा तारोंके सामने टकटकी लगाकर (आँखोंमें आँसू भर जाय तबतक) देखनेका प्रयास करें। इतना याद रखें कि यह प्रयोग धूप अथवा तेज रोशनीवाले विद्युत्-गोलेके सामने हरगिज न करें। केवल रात्रिके समय आकाश तथा चाँद-तारोंकी ओर देखते हुए यह प्रयोग करना है। कुछ लोगोंकी दृष्टि दूरवर्ती पदार्थोंको देख नहीं सकती, उन लोगोंको बाह्य त्राटक करना चाहिये और चन्द्र, तारे, नक्षत्र, हरे-भरे पर्वत-शिखर या अन्य किसी दूरस्थ लक्ष्यपर दृष्टि स्थिर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इससे आँखोंकी क्षति दूर हो जाती है और कालान्तरमें आँखें पूर्ववत् हो जाती हैं।

अन्य विधि—किसी दरवाजे या खिड़कीमें फूलोंका कोई गमला अथवा अन्य कोई हरी-भरी वस्तु रखिये और उससे तीन मीटरकी दूरीपर खड़े होकर उस वस्तुकी ओर दृष्टि कीजिये। अब किसी एक हाथकी तर्जनी (अँगूठेके पासवाली) अँगुलीको दोनों आँखोंके सामने लाकर २५ सेंटीमीटरकी दूरीपर खड़ी कीजिये और अब अँगुलीको देखते हुए खिड़कीमें रखे हुए उस गमले आदिपर दृष्टि डालनी चाहिये। यह क्रिया एक-एक सेकंडमें विश्रामपर क्रमशः पाँच बार करनी चाहिये। इस क्रियाको आप जब चाहें तभी कर सकते हैं। इससे नेत्र-ज्योति बढ़ती है। यदि इस क्रियाके पहले और बादमें पामिंग भी कर लें तो अच्छा है। वृद्धोंके लिये तो
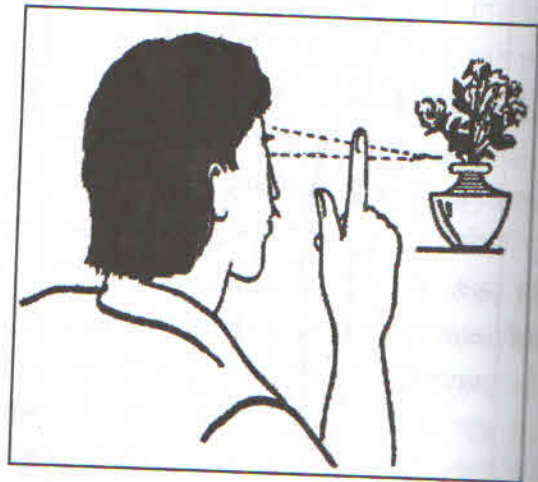
यह रामबाण है। इससे नेत्रोंपर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

सही ढंगसे पढ़ें या देखें—(१) चकाचौंध करनेवाले अति तीव्र प्रकाशमें देखना अथवा सूर्य-ग्रहणमें सूर्य या चन्द्र-ग्रहणमें चन्द्रमाको देखना सर्वथा हानिकारक है। इसी प्रकार मध्यम प्रकाशमें अथवा लेटे-लेटे पढ़ना भी हानिकारक है। पढ़ते समय पुस्तक नीचेकी ओर हो इसका भी ध्यान रखें। (२) बिलकुल अँधेरेमें या अधिक रोशनीमें पढ़ने-लिखने, सीने-पिरोने आदिसे नेत्रोंपर जोर पड़ता है, जिससे दृष्टि कमजोर पड़ जाती है।

नेत्रोंका शरीर-यन्त्रसे सम्बन्ध—नेत्रोंकी सुरक्षाका सम्बन्ध पेट तथा हमारे आहारसे भी है। शरीरमें विकार उत्पन्न करनेमें क़ब्ज़ एक प्रमुख कारण है। यदि पेट साफ रहे तथा क़ब्ज़ न होने दिया जाय तो नेत्र-दोषसे भी बहुत कुछ बचा जा सकता है। इसके लिये संतुलित तथा हलका आहार लेना चाहिये। अधिक नमक, मिर्च, मसाले, खटाई और तले हुए पदार्थोंसे यथासम्भव बचना चाहिये। नेत्र-व्याधियोंमें विटामिनोंकी कमीका भी बहुत हाथ है। उदाहरणके लिये 'विटामिन ए' की कमीसे नेत्रोंकी ज्योति कम हो जाती है तथा प्राणी रतौंधीका शिकार हो जाता है। 'विटामिन बी' की कमीसे आँखें लाल हो जाती हैं और उनमें जलन होकर पानी बहने लगता है। इसी प्रकार 'विटामिन सी' की कमीसे आँखोंमें भारीपन महसूस होना, उनका जल्दी थक जाना आदि विकार हो जाते हैं तथा नेत्रके लेंसको हानि पहुँचती है, उसमें मोतियाबिंदतक हो जाता है। नेत्रों और शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये सलाद, हरी सब्जियाँ प्रचुर मात्रामें लेते रहना चाहिये। 'विटामिन डी' सूर्यकी किरणोंसे एवं दूध-दही, मक्खन आदिसे प्राप्त होता है। इस विटामिनका भी असर आँखोंपर अच्छा होता है। इससे ज्ञान-तन्तुओंका पोषण होता है।

योग भगाये रोग—योग-क्रियाओंमें आसनोंका अत्यधिक महत्त्व है। वैसे सर्वाङ्गासन नेत्र-विकारोंको दूर करने एवं ज्योति बढ़ानेमें सर्वोत्तम हानिरहित आसन है। इसके अलावा योग-मुद्रासन, सिंहासन, भुजंगासन आदि आसन नेत्र-हितकारी रहते हैं।

प्राण-मुद्रा—हमारे शरीरकी प्रत्येक क्रिया एक विशेष ऊर्जासे सम्पन्न की जाती है, जिसे 'प्राण-ऊर्जा' कहते हैं। प्राण-ऊर्जाकी जरा-सी भी कमी व्याधियोंको शरीरपर आक्रमण करनेका अवसर प्रदान कर देती है। अत: शरीरमें प्राण-ऊर्जाका पर्याप्त मात्रामें निरन्तर उत्पन्न होना अति आवश्यक है।

प्राण-ऊर्जाका प्रमुख स्रोत है प्राण-मुद्रा। सबसे छोटी (कनिष्ठिका) अँगुली तथा इसके पासवाली (अनामिका) अँगुलीके शीर्षों (अग्र-भागों) को अँगूठेके शीर्षपर मिलाकर यह मुद्रा बनती है। यह मुद्रा स्वस्थ तथा अस्वस्थ दोनों ही प्रकारके मनुष्यद्वारा व्यवहारमें लायी जा सकती है। इस मुद्राको सम्पन्न करने-हेतु कोई निश्चित सीमा भी नहीं है। कोई भी व्यक्ति इसे वाञ्छित समयतक कर सकता है। यह पूर्ण निरापद है और इसे ३० मिनटसे अधिक समयके लिये रोजाना सम्पन्न करनेवालेके नेत्र-विकार दूर होते हैं तथा नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है।

नेत्र-ज्योतिके लिये 'जल-नेति' करें—भारतीय योग-शास्त्रमें इसका विशेष स्थान है। इससे जुकाम तथा नेत्र-रोगोंमें आशातीत सफलता मिली है। **विधि**—एक टोंटीदार बर्तनमें थोड़ा-सा नमक मिलाकर कुनकुना जल भर लें। टोंटीको नाकके छिद्रमें लगाकर सिरको थोड़ा-सा दूसरी ओर झुकाकर बर्तनको ऊपर उठायें ताकि पानी नाकमें जा सके, उस समय श्वास मुँहसे ही लें। पानी एक नासिकामेंसे जाकर दूसरी नासिकासे बाहर निकलेगा। इसी प्रकार दूसरी नासिकाको ऊपर करके उसमेंसे पानी डालकर पहली नासिकासे निकालें। इसमें ध्यान रखें कि नाकसे श्वास बिलकुल नहीं लें, अन्यथा पानी मुँहमें चला जायगा। ध्यान रखनेकी दूसरी बात यह है कि 'जल-नेति' करके धौंकनीकी तरह तेज श्वासद्वारा नाकका पानी बाहर अवश्य निकाल देना चाहिये। जल-नेतिसे प्रभावित होकर अब तो अमेरिकाके 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एलर्जी एंड इंफेक्शन' ने भी (नेसल वाशिंग) नासिका-मार्जनकी सिफारिश की है। यथाविधि जल-नेति करनेवालेका चश्मा छूट जाता है। इस अनुभूत प्रयोगको करके देखिये, चमत्कारी लाभ होगा।

बच्चोंमें डायरिया—कारण और उपचार

(डॉ० श्रीएस० पी० श्रीवास्तव)

आज एड्स-रोग चर्चाका विषय बना हुआ है। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ इसके बारेमें सुनने और पढ़नेको मिलता है। किंतु डायरिया रोगकी भयङ्करता एड्ससे इस मामलेमें ज्यादा है कि दो दिनोंमें डायरियासे मरनेवालोंकी संख्या दो वर्षोंमें एड्ससे मरनेवालोंसे कहीं अधिक है। टीकाकरण आदिके द्वारा इसकी मृत्युदरको कम किया जा सकता है।

डायरिया खतरनाक क्यों है?

बार-बार अधिक मात्रामें पतले दस्तको डायरिया कहते हैं यह खतरनाक है; क्योंकि इसके परिणामस्वरूप मृत्यु हो सकती है। बच्चोंमें पानीके साथ-साथ लवणकी भी कमी हो जाती है, जो शरीरकी कार्यप्रणालीके लिये अत्यावश्यक है। लवणकी कमी विभिन्न प्रकारकी समस्याएँ प्रस्तुत करती है। जैसे—ऐसिलोसिस्, एलकलोसिस्, हाइपोकैलेमिया इत्यादि। यदि डायरिया गम्भीर है तो पानीकी कमी तथा मृत्यु हो सकती है, परंतु यदि डायरिया बहुत दिनोंसे है तो पोषक तत्त्वोंकी कमीसे आँतोंमें परिवर्तन होता है, जिसके कारण भोजन सुचारु ढंगसे पच नहीं पाता है। इससे ग्रस्त बच्चोंमें खानेकी अभिरुचि खत्म हो जाती है।

डायरियाके कारण

डायरियाके कारण दो प्रकारके होते हैं—

(क) जिस कारणकी जानकारी हमें होती है और (ख) जिस कारणका हमें पता नहीं होता है।

दूसरे कारणमें साठ-सत्तर डायरियाकारक तत्त्व पाये जाते हैं, जिनमें वाइरल कारण सम्मिलित हैं। पहले कारणमें बैक्टीरियासे होनेवाले—जैसे सालमनेला, शिगेला, स्ट्रैप्टो, स्टाफिलोकोकल सम्मिलित हैं। न जानकारीवाले कारकमें ओटिटिसमिडिया, पालिटिस्, ओस्टेमाइलिटिस्, निमोनिया इत्यादि। कभी-कभी एलर्जी, अपच आदिसे भी डायरिया होती है। यदि बच्चोंको डायरियाके समय पूर्ण पोषक तत्त्व दिया जाय तो १०से १५ प्रतिशत डायरियासे होनेवाली मृत्युको रोका जा सकता है। अतः स्वास्थ्यसे सम्बन्धित व्यक्ति अगर डायरियासे सम्बन्धित घोल (जीवन रक्षक घोल) और पोषक तत्त्वोंके बारेमें जानकारी प्राप्त कराये तो यह महान् कार्य होगा। समाजमें मुख्यतः घरकी औरतें, बच्चे तथा दूसरे व्यक्तियोंको अगर जानकारी पहुँचायी जाय तो डायरियाकी रोकथाममें काफी मदद मिल सकती है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओंकी तरफ ध्यान देना चाहिये—

(क) डायरियासे होनेवाली पानीकी कमीकी रोकथाम, (ख) डायरियासे होनेवाली पानीकी कमीकी पहचान, (ग) डायरिया एवं पानीकी कमीका उपचार, (घ) कुपोषणकी रोकथाम और (ङ) अन्य जानकारियाँ।

(क) पानीकी कमीकी रोकथाम—जैसे ही बच्चोंको डायरिया हो, उसे घरमें उपलब्ध तरल पदार्थ तुरंत देना चाहिये, जैसे चावलका माँड़, शर्बत-शिकंजी (चीनी, पानी, नीबूसे बना घोल), दहीसे बनी नमकवाली लस्सी, दालका पानी तथा नारियल-पानी। माँका दूध एवं भोजन नहीं रोकना चाहिये।

(ख) पानीकी कमीकी पहचान—पानीकी कमीकी पहचान प्यास, पेशाब, आँसू, आँखें, मुँह, जीभ, त्वचा, नाड़ी, तालू, साँस तथा तापमानसे की जा सकती है। इसकी जानकारीके लिये कुछ चीजें पूछी, कुछ देखी और कुछ महसूस की जा सकती हैं। अगर पेशाबमें थोड़ी कमी हो, प्यास थोड़ी ज्यादा लगे तो मध्यम श्रेणीका डायरिया हो सकता है। परंतु प्यास अगर बहुत ज्यादा लगे, पेशाब बहुत कम लगे, तो गम्भीर श्रेणीका डायरिया है। देखनेपर यदि बच्चा चिड़चिड़ा लगे, रोनेपर आँसू न निकले, आँखें धँसी हों, मुँह एवं जीभ सूखे हों तो मध्यम श्रेणीकी पानीकी कमी है। परंतु अगर बच्चा शान्त हो, आँखें बहुत ज्यादा धँसी हों, जीभ तथा मुँह ज्यादा सूखे हों तो गम्भीर श्रेणीकी पहचान है। इसी तरह अगर महसूस किया जाय कि त्वचाको खींचनेपर वह धीरे-धीरे अपनी स्थितिमें पुनः वापस आये, नाड़ीकी चाल तेज हो, तो मध्यम श्रेणीकी पानीकी

कमी है। यदि खींचनेपर त्वचा बहुत ही धीरेसे अपनी स्थितिमें वापस आये, नाड़ीकी चाल बहुत ही तेज हो, तो यह गम्भीर पानीकी कमीके लक्षण हैं।

(ग) डायरिया एवं पानीकी कमीकी रोकथाम—पूर्वोक्त संकेतोंके अनुसार समाजमें जीवनरक्षक घोलकी उपलब्धि एवं महत्ताके बारेमें बताया जा सकता है कि किस तरह और कितनी मात्रामें जीवनरक्षक घोल देकर बच्चोंकी जानें बचायी जा सकती हैं।

जीवनरक्षकघोलका पैकेट १ लीटर स्वच्छ पानीमें घोल दिया जाता है और इसे पाँच गिलास बनाया जा सकता है। घोल तैयार होनेके बाद अवस्थाके अनुसार बच्चोंको पिलाते रहना चाहिये। जैसे—छः महीनेतक एक-दो कप (बड़ा), सात महीनेसे बारह महीनेतक दो-तीन कप (बड़ा) और एक सालसे पाँच सालतक तीन-चार कप (बड़ा) यह घोल दिया जा सकता है। गम्भीर रूपसे पानीकी कमीका उपचार नसके द्वारा पानी चढ़ाकर किया जाता है। घोल पिलानेके बाद उलटी हो जाती है और माताएँ डर जाती हैं, परंतु इस हालतमें माँको चम्मचद्वारा धीरे-धीरे घोल पिलाना चाहिये।

(घ) कुपोषणकी रोकथाम—बच्चोंको डायरियाके समय उचित भोजन कराना चाहिये। डायरियाके बावजूद भोजन अच्छी तरह पच जाता है। अतः लगातार भोजन जरूरी है। कुपोषणके विकासकी रोकथामके लिये उत्तम भोजन वह है जो तुरंत पच जाय (जैसे पका चावल, दाल, बीन्स, आलू, हरा पपीता आदि) और जिसमें पोटैशियमकी मात्रा हो (जैसे—नीबू, केला, अनन्नास, नारियल-पानी आदि)। बच्चेको उतना ही खिलाना चाहिये, जितना वह चाहे। भोजन दिनमें पाँच-सात बार देना चाहिये।

अन्य जानकारियाँ—अधिकतर डायरियाके समय और गम्भीर डायरियामें भी कुपोषित बच्चोंको विटामिन 'ए' देना चाहिये। हालके एक अध्ययनके द्वारा 'ए सोमर' ने जानकारी दी है कि उन गाँवोंमें मृत्यु-दर ३४ प्रतिशत कम है जहाँ विटामिन 'ए' उपलब्ध करायी जाती है। अतः यह निश्चित है कि विटामिन 'ए' डायरियाकी रोकथाम एवं उपचारमें अहम् भूमिका निभाता है।

डायरियाकी रोकथाम—समाजमें मीडिया, चिकित्सक, स्वास्थ्य-सेवक, स्वयंसेवी संस्थाएँ आदि डायरियाकी रोकथाममें प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। इसके लिये उन्हें निम्नलिखित तथ्योंकी जानकारी होनी चाहिये—

(क) भोजन और खान-पान, (ख) पानी, (ग) सफाई तथा (घ) टीकाकरण।

(क) भोजन और खान-पान—माँका दूध छोटे बच्चोंके लिये उत्तम भोजन है। यदि माँका दूध सम्भव न हो तो दूसरा दूध देना चाहिये, लेकिन बोतलसे नहीं बल्कि कटोरी एवं चम्मचसे। चार महीनेसे ऊपरके बच्चोंको अन्य भोजन भी खिलाना चाहिये। मुलायम तथा मसला हुआ भोजन उत्तम है। भोजन अच्छी प्रकारसे तैयार करना चाहिये। बर्तन साफ धुले होने चाहिये।

(ख) पानी—पीनेका पानी जहाँतक हो सके, साफ जगहोंसे लेना चाहिये। यह निश्चित कर लेना चाहिये कि पानी पीनेके लायक है, नहीं तो उसे उबालकर ही काममें लाना चाहिये। पानीको साफ तथा ढके हुए बर्तनमें रखना चाहिये।

(ग) सफाई—यह कीटाणुओंको शरीरमें प्रवेश करनेसे रोकनेमें प्रमुख भूमिका निभाती है। प्रत्येक व्यक्तिको सफाईका ध्यान रखना चाहिये। बच्चोंके नाखून एवं हाथोंकी सफाई तथा गृहिणियोंको हाथों और कपड़ोंकी सफाई अवश्य रखनी चाहिये। खाने-पीनेकी चीजोंको गंदगीसे दूर रखना चाहिये। मक्खी सबसे गंदा कीट है। इसे कभी भी खाद्य पदार्थोंपर बैठने नहीं देना चाहिये। बासी भोजन बच्चोंको नहीं देना चाहिये।

(घ) टीकाकरण—खसराका परिणाम भयावह रूपसे डायरियामें बदल जाता है। अतः खसरेका टीका लगवाकर इस बीमारीसे बचा जा सकता है।

समाजके प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्तव्य होता है कि बच्चोंमें व्याप्त डायरिया रोग एवं डायरियासे होनेवाली मृत्युको रोकनेमें अपना सहयोग प्रदान करें ताकि बच्चे स्वस्थ एवं सानन्द रहें।

निर्जलीकरण

मनुष्यके शरीरका लगभग अस्सी प्रतिशत भाग जल है। शरीरके लिये जिस प्रकार प्रोटीन, खनिज-लवण, कैल्सियम, विटामिन आदि आवश्यक हैं, उसी प्रकार जल भी अत्यन्त आवश्यक है। शरीरके तापमानको नियन्त्रित रखने, भोजनके पाचन तथा चयापचयन (Metabolism)-के लिये जलकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। निर्जलीकरणका अर्थ है शरीरमें पानीकी कमी। अतिसार (दस्त) और उलटी अधिक मात्रामें होनेपर शरीरमें पानीकी कमी हो जाती है। शरीरसे पानीके साथ-साथ आवश्यक पोषक तत्त्व, खनिज-लवण भी निकल जाते हैं। यह रोग बच्चोंको अधिकतर गरमीके दिनोंमें होता है। पतले दस्त अधिक संख्यामें होनेपर शरीरमें पानीकी कमी न होने पाये, इसके लिये तुरंत आवश्यक उपचार करने चाहिये।

लक्षण—(१) बच्चेकी बेचैनी बढ़ जाती है, पानी पिलानेपर कुछ शान्ति मिलती है।

(२) सिरका तालू कुछ नीचे दब जाता है।

(३) ओठ और जीभ सूख जाते हैं, प्यास अधिक लगती है, मूत्र कम होता है।

(४) कुछ दिनतक दस्त या उलटी होते रहनेपर पानीकी अत्यधिक कमीके कारण चमड़ीको थोड़ा खींचकर छोड़ देनेपर तुरंत मूलरूपमें वापस नहीं आती है।

उपचार—शरीरमें जलका उचित संतुलन बनाये रखनेके लिये एकमात्र तात्कालिक उपाय है शरीरमें पानीकी पूर्ति। इसके द्वारा रोगकी प्रारम्भिक स्थितिमें ही काबू पाया जा सकता है।

ओ.आर.एस घोल—साधारण नमक १ चम्मच, ग्लूकोज ४ चम्मच, चीनी ८ चम्मच एक लीटर पानीमें डालकर घोल दें। यह मिश्रण अधिक-से-अधिक जितना हो सके थोड़ी-थोड़ी देरपर चम्मचद्वारा पिलाते रहें, जबतक कि हालतमें सुधार न हो जाय। समय-समयपर नारियलका पानी, दालका पानी, फलोंका रस आदि तरल पेय बच्चेकी उम्रके अनुसार देते रहें। पका केला, दही, मट्ठा आदि खानेके लिये दें। गम्भीर स्थितिमें शरीरमें ग्लूकोज चढ़ाना आवश्यक होता है। यदि चौबीस घंटेके अंदर सुधार न हो तो तत्काल अच्छे चिकित्सकको दिखाना चाहिये। निम्नलिखित स्थितियोंमें विशेष सावधानी रखनी चाहिये—

(१) यदि बच्चेकी अवस्था एक वर्षसे कम हो या अत्यन्त कमजोर हो।

(२) उलटी और दस्त रुक न रहे हों।

(३) दस्तमें आँव निकलता हो।

(४) खुलकर पेशाब न होता हो।

(५) शिशुका तालू बैठ गया हो।

(६) शिशु सुस्त और निष्क्रिय पड़ गया हो।

यह रोग ५ वर्षसे कम उम्रके बच्चोंको विशेष रूपसे होता है। निर्जलीकरण एक खतरनाक अवस्था है। अतिसार और वमन ही इसका मुख्य कारक है, जिसके कारण शरीरमें पानीकी कमी हो जाती है।

अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौ पानेनैकं प्रपूरयेत्। आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत्॥
आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत्। भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन् सुखावहान्॥
अगस्त्यं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम्। आहारपचनार्थाय स्मरेद् भीमं च पञ्चमम्॥

भोक्ता मनुष्य उदरके दो भागोंको अन्नसे पूरित करे तथा एक भाग (तीसरे भाग)-को पेय पदार्थोंके द्वारा पूर्ण करे तथा उदरके चौथे भागको वात-पित्तादि दोषोंके सञ्चरणार्थ खाली रखे। वाग्भटाचार्यने इस तरह उदरको चार भागोंमें विभक्त किया है। भोजनके अन्तमें आचमन करनेके पश्चात् अपने गीले हाथोंको दोनों नेत्रोंपर फेरने चाहिये। ऐसा करनेसे भोजनकी जो ऊष्मा मस्तिष्क तथा नेत्रोंमें पहुँची हुई होती है वह शान्त हो जाती है तथा मस्तिष्क और नेत्रोंको अत्यन्त आनन्ददायी शीतलता एवं शान्तिका अनुभव होता है। भोजनके पश्चात् सुखपाचनार्थ अगस्त्य आदिका स्मरण करे। भोजन करनेके पश्चात् अपना दक्षिण हस्त पेटपर फेरते हुए अगस्त्य, कुम्भकर्ण, शनि, बड़वानलका स्मरण करनेसे आहारका ठीक पाचन हो जाता है। इसी तरह पाँचवें भीमसेनका भी स्मरण करना चाहिये।

लू (अंशुघात ज्वर)—कारण, बचाव और उपचार

(श्रीमधुसूदनजी भार्गव)

ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी किरणें सीधी पड़ती हैं, जिसके कारण पृथ्वी तथा उसके सम्पर्ककी वायु अत्यधिक गर्म हो जाती है। ऐसेमें साँस लेनेपर गर्म वायु शरीरमें प्रवेश करती है और शरीरके तापमें अप्रत्याशित वृद्धि करती है, जिसके कारण शरीरमें जमा जलांशका वाष्पन होने लगता है। परिणामस्वरूप जलके साथ-साथ लवणांश (नमक आदि) पसीनेके रूपमें बाहर आने लगते हैं और एक सीमाके बाद जलके वाष्पन एवं लवणके बाहर निकलनेकी क्रिया रुक जाती है तथा शरीरमें निरन्तर जमा होती ऊष्मा अपना प्रभाव मनुष्य एवं जीव-जन्तुओंमें डालने लगती है। तीव्र ऊष्णताका यह आघात ही अंशुघात ज्वर (Thermic Fever) या लू-लगना कहलाता है।

लूके लगते ही तेज प्यास, ज्वर-वृद्धि, शरीरमें टूटन, हाथ-पैरोंमें जकड़न, हथेली तथा पैरोंके तलवोंके साथ-साथ आँखोंमें तीव्र जलन होने लगती है, आँखें अंदरको धसने लगती हैं, असहनीय बैचेनी होती है। कई बार अधिक लूके प्रभावके कारण श्वासावरोध (Asphyxia) हो मृत्यु भी हो जाती है अथवा स्मरण एवं विचारकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है।

लूके शिकार अधिकांशतः लगभग चालीस वर्षकी अवस्थावाले, शीतल एवं छायादार स्थानोंपर अधिकांश समय व्यतीत करनेवाले अथवा ठण्डे स्थानोंसे गर्म स्थानोंपर आनेवाले कमजोर प्रकृतिके लोग होते हैं। कभी-कभी इसके शिकार हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति भी हो जाते हैं।

गर्मीके मौसममें खुले शरीर, नंगे सिर और नंगे पाँव चलनेसे व्यक्ति लूकी चपेटमें जल्दी आता है। ऐसा व्यक्ति जो हालहीमें बीमारीसे उठा हो, खाली पेट या प्यासा घरसे निकला हो उसे भी लू लगनेकी सम्भावना रहती है। इसी प्रकार कूलर या वातानुकूलित स्थानसे निकलकर धूपमें आ जानेसे भी लू लग जाती है। परिश्रमके तुरंत बाद पानी पीनेसे, गर्म एवं निर्वायु स्थानपर धूपमें बैठने या काम करने आदिसे भी लूकी चपेटमें आनेका खतरा रहता है।

लू (अंशुघात)-के प्रकार

१- अतिशय क्लान्ति—(Heat Exhusation)

२- ज्वरातिशय—(Heat Hyperpyrexia)

३- श्वासावरोध—(Asphyxial Type)

४- सूर्यके सामान्य तापका आघात—(Sun Traumatism)

५- पचनेन्द्रिय संस्थानगत विकृति—(Gastro Intestinal Symtoms)

६- गर्मीका आघात—(Srokers Cramp)

बचाव—लूके ऊष्मीय प्रभावसे बचनेके लिये गर्मीमें बाहर निकलनेसे पहले पर्याप्त पानी पीना चाहिये। गर्मीके मौसममें सूती एवं हलके रंगोंके कपड़े पहनने चाहिये ताकि ऊष्मा आसानीसे पार-गमन कर ले। चेहरा तथा सिर ढककर निकलना चाहिये। छाते आदिका उपयोग भी हितकर होता है। उमसवाले स्थानसे यथा सम्भव बचना चाहिये। इन दिनों घरेलू, शर्बत, ठंडाई, मट्ठा (मही), शिकंजीके अलावा खानेमें नीबू, जीरा, पोदीना, काला नमक आदि पाचक खाद्य पदार्थोंका उपयोग करना चाहिये।

उपचार—अपनायी गयी असुरक्षा अथवा अन्य हुई असावधानीके कारण यदि कोई व्यक्ति लूकी चपेटमें आ ही जाता है तो सर्वप्रथम हमें उसे किसी छायादार शीतल स्थानपर लिटाकर उसके सिर एवं शरीरपर ठण्डे पानीमें भिगोकर सूती कपड़ेकी पट्टी रखनी चाहिये। पंखे आदिकी हवामें उसे लिटाना चाहिये। हाथ-पैरोंमें प्याजके रस तथा तेलकी मालिश करनी चाहिये। तत्पश्चात् निम्नलिखित आयुर्वेदिक औषधियोंको भी उपयोगमें लाया जा सकता है—

१- आमकी कच्ची केरीको सेंककर (भूनकर) उसका गूदा निकाल लिया जाता है। फिर निकले गूदेको मिश्री या शक्करमें घोलकर शर्बत बना लिया जाता है।

इस शर्बतको अधिक स्वादिष्ठ बनानेके लिये इसमें काला नमक भुना जीरा पीसकर मिलाया जा सकता है।

२-चनेकी सूखी भाजीको पानीमें गलाकर उसके निकले क्षारमें सूती कपड़ेकी पट्टी भिगोकर लगानेसे आराम मिलता है।

३-एरण्डकी जड़ तथा मुचकुन्दके फूलको मही (मट्ठे)-में पीसकर सिरपर लगानेसे हो रही बेचैनीसे राहत मिलती है।

४-अधिक पसीना निकल जानेपर लक्ष्मीविलास तथा प्रवालपिष्टी या ब्राह्मीवटी और प्रवालपिष्टी शहदमें मिलाकर देनेसे आराम मिलता है।

५-इमलीके रसको मिश्री या शक्करके साथ उबालकर ठंडा होनेपर शीशीमें रख ले। तीन-तीन घण्टेके अन्तरालसे रोगीको देनेपर राहत मिलती है।

६-बहुफली तथा वनतुलसीके बीजोंको गलाकर शक्करके साथ मथकर शर्बत बना लेना चाहिये। फिर इसे छानकर पीड़ित व्यक्तिको पिलानेसे आराम मिलता है।

७-साँस लेनेमें परेशानी होनेपर अभ्रकभस्म, रससिन्दूर तथा मौक्तिक पिष्टीको शहदमें मिलाकर देनेसे आराम मिलता है।

चूँकि लूके कई प्रकार हैं, इसलिये इसके उपचारसे पूर्व वैद्य अथवा चिकित्सकसे सलाह अवश्य ले लेनी चाहिये ताकि उचित उपचार प्राप्त हो सके।

जब आये हिचकी

(श्रीअभिसारजी जैन)

भारतीय समाजमें हिचकीका सम्बन्ध इस बातसे लगाया जाता है कि हमारे किसी प्रियजन, परिचित या संबंधीद्वारा हमें याद किया जा रहा है।

हिचकी आनेके मुख्य कारण हैं—तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन, उत्तेजक दवा, आवश्यकतासे अधिक भोजन करने, मिर्च मसालेदार, देरसे पचनेवाले एवं रूखे भोजन, धूल, धुआँ, व्रत, उपवासके कारण भी हिचकियाँ आने लगती हैं।

प्राय: छोटे-छोटे बच्चोंको भी कई बार हिचकियाँ आने लगती हैं। उसका कारण यह है कि बच्चोंको दूध पिलानेसे जो गैस बनती है वह डायफ्रामसे टकराकर फ्रेकि नामक नसमें खिंचाव पैदा करती है इस कारण भी बच्चोंको हिचकियाँ आने लगती हैं—रोगकी दृष्टिसे हिचकी स्वयं तो कोई गम्भीर रोग नहीं है, परन्तु यह किसी अन्य गम्भीर रोगका संकेत देती है तथा रुग्ण व्यक्तिको इससे कष्ट भी होता है। अत: इसे मिटाना आवश्यक है।

हिचकी दूर करनेके उपाय—

पश्चिमी जर्मनीके एक वैज्ञानिकका मत है कि यदि हिचकियाँ आनेका क्रम जारी हो जाय तो कुछ दाने शक्करके निगल लो।

ताली मूलीके पत्तेका रस चूसते रहें, इससे भी हिचकी आना बंद हो जाती है।

अजवाइनके दाने मुँहमें दबाकर उसका रस चूसते रहें।

नारियलके बुरादेमें मिस्री डालकर सेवन करें।

कागजी नीबूका रस चूसते रहें।

पिसी काली मिर्च और पिसी मिस्री आधा-आधा चम्मच मात्रामें मिलाकर पानीके साथ फाँकनेसे हिचकी बंद हो जाती है।

हर घंटेके अंतरालपर एक-एक चम्मच शुद्ध शहद चाटनेसे हिचकीमें आराम मिलता है।

पोदीनेके पत्ते मुँहमें रखकर चूसें या पोदीनेके साथ शक्कर मिलाकर चबायें।

गायके दूधमें मिस्री डालकर पीयें।

एक छोटा चम्मच तुलसीका रस, आधा चम्मच शहद एक साथ मिलाकर सुबह शाम लें।

मुलहठीका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे हिचकी आनी बंद हो जाती है।

चार छोटी इलायची छिलकासहित कूट लें, उसे आधा लीटर पानीमें उबालें। जब पानी आधेसे कम रह जाय तो उतारकर छान लें एवं रोगीको कुनकुना पिला दें। हिचकी बंद हो जायगी।

गलेके रोगोंमें इलाजसे ज्यादा बचाव जरूरी है

(सुश्री अनुजी जैन)

ऐसा देखा गया है कि आजसे लगभग २० साल पहलेतक केवल चार-पाँच प्रतिशत लोगोंको एलर्जीके कारण गलेके रोग होते थे, लेकिन आज लगभग २०—२२ प्रतिशत लोग किसी-न-किसी प्रकारकी एलर्जीके कारण गलेके रोगोंके शिकार हैं। गलेसे सम्बन्धित आज कई प्रकारकी बीमारियाँ हैं, जो बहुत तेजीसे बढ़ रही हैं। गलेमें इन्फेक्शनसे रोगोंका होना, धूल, पानी, सूखी हवा तथा धूएँसे एलर्जी, गलेमें किसी चीजका फँसना, फ्रेक्चर होना तथा टांसिलका बढ़ जाना अब आम बात हो गयी है। इसके अलावा गलेका कैंसर, गलेमें पथरी हो जाना, वोकल कॉर्डका बढ़ना, डिप्थीरिया, खर्राटे लेना आदि कुछ ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनका यदि समयपर इलाज न हो तो ये जानलेवा हो सकती हैं। कान-नाक-गला-रोगके एक विशेषज्ञ अनुसार गलेके बहुत-से रोग ऐसे हैं, जिन्हें हम अपने खान-पान, रहन-सहनके तरीकोंमें थोड़ी सावधानी और सफाई बरतकर दूर कर सकते हैं।

कम लोग इस बातको जानते हैं कि दाँतोंमें किसी प्रकारका इनफेक्शन गलेके लिये घातक होता है, साथ ही गम्स खराब है या पायरिया है अथवा मुँहमें अल्सर है तो गलेमें तुरंत इन्फेक्शन फैल जाता है। इसलिये दाँतोंको स्वस्थ रखनेका मतलब है गलेको बीमारीसे दूर रखना। प्रदूषणके कारण भी गलेकी बीमारियाँ बढ़ रही हैं। हवा और पानीमें मौजूद बैक्टीरिया गलेमें इन्फेक्शन काफी तेजीसे फैलाते हैं। गर्मियोंमें ज्यादातर लोगोंको गलेकी बीमारियाँ रेहड़ी तथा प्याऊका पानी पीनेसे होती हैं, जिसका अंदाजा पीड़ितोंको नहीं हो पाता। गिलासके जरिये अथवा गंदे पानीके जरिये कब उनके गलेको इन्फेक्शन पकड़ लेता है, उन्हें पता ही नहीं चलता। इसके अलावा बाजारोंमें बिकनेवाली मसालेदार खुली चाट-पकौड़ी गलेकी बीमारियोंको बढ़ाती हैं। सिगरेट, तम्बाकूसे बने विभिन्न पदार्थ न केवल गलेकी विभिन्न बीमारियोंको जन्म देते हैं अपितु ये गलेके कैंसरके मुख्य कारण भी हैं। गलेमें कैंसर होनेके कई अन्य कारण भी हैं। चायकी पत्तीको बार-बार इस्तेमाल करनेसे भी गलेका कैंसर होनेकी सम्भावना रहती है। गंदे तौलियों एवं बच्चेके दूधकी बोतलोंको सफाईसे न धोनेसे भी गलेकी बीमारियाँ होती हैं। कई लोगोंद्वारा प्रयुक्त तौलियेके द्वारा भी नाक या मुँहका इन्फेक्शन गलेतक पहुँच जाता है। वायरल इन्फेक्शन हो तो भी गलेमें इन्फेक्शन पहुँच जाता है।

बच्चोंमें डिप्थीरिया नामक बीमारी काफी पायी जाती है। इसमें गलेमें मेम्ब्रेन (सफेद झिल्ली) बन जाती है। इससे बच्चेको बहुत तेज बुखार हो जाता है, जो बहुत बार जानलेवा साबित होता है। बच्चोंको शुरूमें डी०पी०टी० एवं टिटनेसके टीके न लगवानेके कारण गलेकी यह बीमारी होती है। 'बीटा हीमोलिटिक स्ट्रैप्टोकोकस' नामक बैक्टीरिया गलेमें इन्फेक्शन फैलाता है। यदि इस बैक्टीरियाके कारण गलेकी बीमारी होती है तो गलेके साथ हृदयसम्बन्धी बीमारी, तेज बुखार होना तथा किडनीके रोगोंकी भी सम्भावना बढ़ जाती है। यह बैक्टीरिया मुख्यत: गंदे पानीसे गलेमें पहुँचता है।

इन्फेक्शनके द्वारा गलेकी बीमारियाँ तेजीसे फैलती हैं। किंतु यदि उपर्युक्त सावधानियाँ बरती जायँ तो इन्फेक्शनको फैलनेसे रोका जा सकता है। यह देखनेमें आया है कि इन्फेक्शन होते ही लोग एंटीबायोटिक दवाएँ लेना शुरू कर देते हैं, जिस रोगसे शरीरको लड़ना चाहिये, उससे एंटीबायोटिक लड़ती है और इसी कारण धीरे-धीरे शरीरकी बीमारियोंसे लड़नेकी क्षमता खत्म हो जाती है। शरीर एंटीबायोटिक दवाओंका अभ्यस्त हो जाता है और धीरे-धीरे वह दवा भी अपना असर करना छोड़ देती है। इसलिये गलेमें मामूली इन्फेक्शन होनेपर एंटीबायोटिक न खायँ तो अच्छा है। वायरल इन्फेक्शन ठीक होनेमें चार-पाँच दिन लगते हैं। इस दौरान गरारा करें तथा हर बातमें सफाईका ध्यान रखें। शरीरको स्वस्थ रखें, पौष्टिक आहार खायँ तथा आइसक्रीम, चाकलेट आदिसे परहेज करें। मानसिक तनावके कारण भी गलेके रोग ठीक नहीं हो पाते हैं। इसलिये प्रसन्न

रहना भी गलेके रोगोंको दूर भगानेकी कुंजी है।

यदि सालमें चार बार टांसिल पक रहे हैं या उनमें सूजन आ रही है तो समझ लेना चाहिये कि इन्फेक्शन टांसिलमें अंदरतक चला गया है। इस स्थितिमें सर्जरीके जरिये टांसिलको निकाल दिया जाता है। गलेमें बार-बार पस पड़ना भी बहुत खतरनाक है इससे गलेमें पत्थर बन जाता है। इसलिये इस प्रकारकी शिकायत होनेपर तुरंत डॉक्टरसे सलाह लेनी चाहिये। नींदमें खर्राटे लेनेकी आदतकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। नाककी हड्डी बढ़ने, नाकमें रसौली होने, टांसिलके बढ़ जानेसे यह बीमारी होती है, जिसे 'इस्लेटिंग' कहते हैं। इसमें सर्जरीके द्वारा इलाज किया जाता है। इसके अलावा बच्चोंमें विकासके दौरान एक बात प्रायः देखनेको मिलती है कि वे नाककी बजाय मुँहसे साँस लेते हैं, इसकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। नाकसे हवा छनकर गलेतक जाती है। लेकिन मुँहमें ऐसा कोई माध्यम नहीं है। इसलिये किसी भी तरहका इन्फेक्शन मुँहके जरिये साँसकी नलीमें पहुँचता है।

अब तो लेजरके द्वारा गलेके अनेक प्रकारके रोगोंका इलाज सम्भव है। लेजरके काफी फायदे हैं। बिना खून बहे, बिना दर्दके सर्जरी होती है। सर्जरीमें जहाँ चाकूका इस्तेमाल होता था, वही काम अब लेजरकी किरणोंसे पूरा किया जाता है। लेजरकी किरणें काटनेके काम आती हैं। लेकिन इससे इलाज काफी महँगा होता है। ज्यादा बोलनेवाले लोगोंकी वोकल कॉर्ड बहुत बार मोटी हो जाती है। लेजरकी सहायतासे उसे बड़े आरामसे पतला कर दिया जाता है। इसी प्रकार बोलनेकी नलीमें पानीके दाने बन जाते हैं, जिसका इलाज भी लेजरसे हो सकता है। यदि कोई चाहे तो बड़े आरामसे सर्जरीके बदले लेजर इस्तेमाल कर सकता है। इसके लिये योग्य एवं अनुभवी चिकित्सकोंसे परामर्श लेना चाहिये।

गृध्रसी-रोग (सियाटिका)

(श्रीरामनारायणजी मिश्र, वैद्य)

परिचय—वातजनित रोगोंमें गृध्रसी एक प्रधान व्याधि है। इस रोगको हिन्दीमें गृध्रसी, अंग्रेजीमें (SCIATICA) स्रियाटिका एवं उर्दूमें अर्कुन्निसा कहते हैं। सियाटिका नर्वपर दबाव पड़नेसे इसका नाम सियाटिका नर्वाइटिस पड़ा। आधुनिक चिकित्सा-पद्धतिमें वर्णित १२० आईटिसमेंसे एक यह भी कष्टसाध्य आईटिस है। इसमें रोगी गिद्धके समान झुककर कभी सीधे एवं कभी उचककर चलता है। इसीसे इस रोगको गृध्रसी कहा गया है। इसका कारण यह होता है कि इसमें रीढ़की हड्डीके नीचेके भागसे लेकर पैरकी एड़ीतक तरंगयुक्त वेदना होती है। रोगकी गम्भीरतामें यह वेदना बिजलीके करेंट मारने-जैसी होती है। यह रोग प्रायः एक टाँगमें ही होता है। इसका रोगी आरामसे नहीं सो सकता, उठने-बैठने एवं चलनेमें भी वेदना होती है। रोगी हर समय बेचैन रहता है। दर्द-निवारक दवाओंसे भी आराम नहीं मिलता।

रोगके कारण—लगभग ६० प्रतिशत रोगियोंमें यह एकदम भारी वजन उठाने अथवा चोट लगनेके कारण रीढ़की हड्डी असामान्य अवस्थामें हो जानेसे पञ्चम कटि कशेरुकाओंके मध्य अवस्थित वासर टाइपकी कार्टिलेजकी बनी गद्दी (डिस्क) फिसलकर पीछे अथवा बराबरमें निकल जाने अथवा फट जानेसे नर्वपर दबाव पड़ता है जिससे कमरमें दर्द प्रारम्भ हो जाता है। ऐसी स्थितिमें कभी-कभी दर्द-निवारक दवाओंसे क्षणिक लाभकी अवस्थामें रोगी एवं चिकित्सक लापरवाही कर जाते हैं। फलस्वरूप कुछ समय बाद रोगीके उठने-बैठने आदि क्रियाकलापोंके कारण यह दबाव बढ़ते जानेसे नर्वपर शोथ हो जाता है, जिसके कारण वेदना नीचे टाँग तथा पैरमें चली जाती है। लगभग ४० प्रतिशत रोगियोंमें चायके अधिक सेवन, रूक्ष, गरिष्ठ, शीतल भोजन करने, अत्यधिक मैथुन, रात्रि-जागरण, ट्रैक्टर, साइकिल, रिक्शा आदि अधिक चलाने, ऊँटकी सवारी अधिक करने

धातुक्षयजनित निर्बलता, कुनैनके इंजेक्शनों आदिसे शरीरमें आमरसकी उपस्थिति हो जानेसे प्रकुपित हुआ वात रिक्त स्रोतोंका अवरोध कर देता है फलतः यह रोग हो जाता है।

इस रोगमें शिरावेध-चिकित्सा लाभदायक रहती है। शिराका वेध या वेधन शिरावेध कहा जाता है, रक्तज एवं वातादि दोषोंसे रक्तके दूषित होनेपर रोगकी शान्तिके लिये शिरावेध किया जाता है। यह दूषित रक्तके प्रस्रावणकी प्रक्रिया है।

पूर्वकर्म—रोगीका एक दिन पूर्व साधारण अरण्ड-स्नेह देकर विरेचन कराना चाहिये। शिरावेधसे पूर्व दुग्धपान अथवा स्वल्पाहार करा लेना चाहिये।

मध्यकर्म—जिस पैरमें शिरावेध कराना हो तो उसे गर्म पानीसे धोकर पोछ लेना चाहिये। यह क्रिया ऐसे स्थान एवं समयपर करें जब न तो अधिक गर्मी हो, न अधिक सर्दी हो और न ही अधिक वर्षा हो। ऐसे खुले हुए स्थानपर रोगीको साधारण अधोवस्त्रोंमें कुर्सीकी पीठके सिराहनेवाले हिस्सेको पकड़कर सीधा खड़ा करे। तब कनिष्ठिका अंगुली प्रमाणकी मोटी सूतकी रस्सीसे पञ्चम कटि कशेरुकासे गोल चक्करमें हलका कसकर पूरा त्रिक-प्रदेश कस दें। इसके बाद दूसरी रस्सी इस रस्सीमें जोड़कर जाँघसे घुटनेतक पहलेकी अपेक्षा कुछ ज्यादा कस दें। इसके बाद तीसरी रस्सीसे घुटनेसे लगाकर एड़ीके ४ इञ्च ऊपरतक कुछ और अधिक कसकर बाँध दे। इससे टखनेके ऊपरकी शिरा जो कि गृध्रसी नाड़ीका पोषण करती है, नीले रंगको लिये हुए उभर आती है। अब इस पैरको उठाकर एक ईंटके ऊपर रखवाकर टखने एवं आसपासके स्थानको स्प्रिटसे साफ करके ५ मि० ली० १८-१९ नं० की डिस्पोजल सिरिञ्ज नीडेलद्वारा एक नीले रंगकी शिरामें वेध करके रोगीका पैर ईंटसे नीचे उतार लें और रोगीसे इसी पैरपर पूरा वजन रखनेको कहें। इस नीडिलके द्वारा काला-काला बदबूदार रक्तका स्राव प्रचुरमात्रामें होता है।

पश्चात् कर्म—इस रक्त निकालनेकी क्रियाके तुरंत बाद नीचेकी ही ओरसे रस्सी खोलना शुरू करें और तीनों रस्सियाँ खोलकर रोगीके शरीरसे अलग कर लें। यह समस्त क्रिया-कलाप रोगीके आत्मीय जनोंके बीच खुशीके वातावरणमें ही सम्पन्न करें। कमजोर हृदयवालोंको रोगीसे दूर हटा दें। अब जैसे ही नीडिलसे साफ लाल रंगका रक्त आना शुरू हो जाय एवं रस्सी भी न खुल पायी हो तो वैसे ही शिरासे नीडिल अलग कर लें। जबतक दूषित रक्तका प्रवाह जारी रहे तबतक रक्त निकालते रहना चाहिये। इसी बीच रोगीसे बार-बार पूछते रहें कि चक्कर, बेचैनी या और कोई लक्षण तो नहीं है। यदि कोई परेशानी हो तो तुरंत शिरासे नीडिल हटाकर रक्तरंजित पैरको गर्म पानीसे धोकर शिरावेधित स्थानपर स्प्रिट लगाकर रोगीको लिटा दें। दूध पिलायें। प्यास लगनेपर ताजा स्वच्छ जल पिला दें। इसके बाद औषधकी व्यवस्था करें।

औषध-व्यवस्था—

१-शुद्ध कुचलामें समभाग सोंठ मिलाकर दो ग्रामकी गोली पानीसे बना लें। सुबह-शाम गर्म दूधसे दें।

२-चोप चीनी ५० ग्राम, अश्वगंधा २५० ग्राम, सोंठ ५० ग्राम इन्हें महीन पीसकर १० ग्राम दवाको घी-गुड़से खाये। १५ वें दिन आशातीत लाभ होगा।

३-शामको ५ ग्राम सनाह शहदसे हर दूसरे दिन लेना चाहिये ताकि शौच साफ होता रहे। इस रोगमें आँवका होना जरूरी है। सनाहसे पुरानी आँव निकल जाता है और नया नहीं बनता।

४-कायफल (कैफरा)-को महीन पीस, कड़वे तेलमें पकावे, पक जानेपर तेल छान ले उसीकी मालिश करे और कैफरा जो बचा है उसीकी पोटली बनाकर गर्म करके सेंक करे।

अपथ्य—दही, चावल, बर्फ, शीतल जल, खाली पेट पानी-चीनीका शरबत, ओसमें लेटना, अधिक साइकिलकी सवारी एवं वजनदार कोई चीज नहीं उठानी चाहिये।

पथ्य—अरहरकी दाल विशेष लाभदायक है। गायका घी अवश्य खायँ। जिस टाँगमें दर्द होता है उसे

शामको किसी कपड़ेसे सहता-सहता बाँध दिया करें।

सावधानी—अकुशल वैद्यके द्वारा अधिक रक्तविस्रावणसे अनेक प्रकारके रोग भी हो जाते हैं। शल्यकर्ममें अज्ञ व्यक्तिके द्वारा यह चिकित्सा नहीं करानी चाहिये। ऐसेमें कभी-कभी रोगीको अत्यधिक कष्ट हो जाता है और मृत्यु भी हो सकती है। इसलिये कुशल एवं अभ्यस्त चिकित्सकद्वारा ही शिरावेध-चिकित्सा सम्पन्न करानी चाहिये।

—श्रीरामनारायण मिश्र, वैद्य, ग्राम—अछरौड़ा, पोस्ट—गुठना, जिला फर्रुखाबाद (उ० प्र०)

नासास्राव (नकसीर) कारण और बचाव

(श्रीमधुसूदन भार्गव)

नकसीरको आयुर्वेदिक चिकित्सामें नासारक्त-स्राव कहते हैं। ग्रीष्मकालमें शरीरमें अधिक ऊष्मा संचयके कारण रक्तवाहिनियोंमें रक्तका तीव्र संचार होने लगता है। दबाव असहनीय होनेपर यही रक्त नाकके माध्यमसे बाहर निकल आता है। यही क्रिया नकसीर अथवा नासारक्त-स्राव कहलाती है।

सामान्यतः नकसीरके शिकार गर्म प्रकृतिके लोग होते हैं। जो धूप अथवा गर्म प्रकृतिके खाद्य-पदार्थोंके उपयोगके कारण नकसीरका शिकार बनते हैं। कई बार अनियमित मासिक-धर्मकी शिकार स्त्रियोंमें मासिक स्राव नाकके माध्यमसे होता है, क्योंकि मासिक धर्मके समय स्राव होनेवाले रक्तकी प्रकृति (तासीर) गर्म होती है।

नकसीरसे बचनेके लिये जितना सम्भव हो सके तेज धूप और गर्म हवाकी चपेटसे बचना चाहिये। गर्मीके मौसममें अधिक चाय, काफी, शराब, सिगरेट अथवा तैलीय खाद्य पदार्थों, गुड़, रात्रि-जागरण और शुष्क भोजनका त्याग करना चाहिये।

ग्रीष्म-ऋतुमें ब्रह्मचर्य ठण्डई, फालसा, मौसमी, संतरा, अंगूर, शर्बत, इमली तथा केरी (कच्चा आम)-पना, दलिया, खिचड़ी, दहीकी लस्सी आदिका उपयोग करना चाहिये। इसके अलावा इस मौसममें लौकी, ककड़ी, तोरई, पालक, पोदीना, नीबू आदिका उपयोग अधिक करना चाहिये।

सावधानी—नासिकासे रक्त-स्राव होता है तो उसे शीघ्र रोका नहीं जाना चाहिये अन्यथा यह निकलनेवाला रक्त तन्त्रिका-तन्त्रके अन्य भागोंपर अपना प्रभाव डालेगा, जिससे अधिक स्वास्थ्य-हानि होनेकी सम्भावना रहती है।

उपचार—आयुर्वेदिक चिकित्साके अन्तर्गत नकसीरके अनेक उपचार मिलते हैं। नाकसे रक्त गिरनेपर सबसे पहले सिरपर पानी डालकर रोगीको लिटा देना चाहिये।

१. गूलर (Ficus glomerata)-का उपयोग करनेसे नासास्राव अथवा देहके अन्य भागसे गिरनेवाला रक्त गिरना बंद हो जाता है।

२. फालसा (Grewie asiatica)-के रसमें मिश्री या शक्कर मिलाकर पीनेसे रक्तकी ऊष्मा और पित्तका नाश होता है तथा नकसीर आनी बंद हो जाती है।

३. आम (Mongitera Indica)-की गुठलीकी गिरीको घिसकर बनाये रसको नासिकामें डालनेपर नकसीर बंद हो जाती है।

४. मिट्टीके ढेलेपर पानी डालकर सुँघानेसे लाभ होता है।

५. गन्ने (Sugarcane)-के रसको नाकमें डालनेपर तेज धूप, अधिक मिर्च-सेवन करने आदिके कारण आनेवाला रक्त रुक जाता है।

६. अनार (Punica granatum) दानेके रस दस तोलेमें दो-तीन तोले मिश्री मिलाकर पीनेसे ग्रीष्मकालमें नाकसे आनेवाले रक्तको रोका जा सकता है।

७. आँवले (Phyllantus emsbica)-का रस पिलाने अथवा आँवला चूर्ण और घीमें सिके आँवलेको मही (मट्ठा)-के साथ लेनेसे रक्त-स्राव रुक जाता है।

८. काली मिर्च (Piper nigrum)-को दही और पुराने गुड़के साथ खानेसे नकसीर बंद हो जाती है।

९. केला (Plantain)-आँवलेका चूर्ण तथा शक्करको मिलाकर खानेसे नाकसे गिरनेवाला रक्त रुक जाता है।

१०. मुँह, नाक, कफ तथा पेशाबसे आनेवाले रक्तको पाँच-सात रत्ती फिटकिरी (Alum) शहद या मिश्रीके साथ लेनेपर गिरनेवाला रक्त रुक जाता है।

कानकी वैज्ञानिक देखभाल

कहते हैं बड़े कान पुरुषोंके लिये भाग्यशाली होते हैं और छोटे कान स्त्रियोंकी सुन्दरतामें चार चाँद लगा देते हैं। पशुओंकी खोपड़ीके बाहरी बाजूके स्नायु ऐच्छिक होनेके कारण उनके कानोंमें एक विशेषता यह होती है कि पशु अपने कान जहाँसे आवाज आती है, उस दिशामें मोड़ लेते हैं, परंतु मनुष्यके स्नायु अनैच्छिक होनेके कारण बाहरी कानका उपयोग आवाजकी लहरोंको एकत्र कर उन्हें कर्णनलिका (आडीटरी)-की ओर भेजनेमें ही होता है।

हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियोंमेंसे कान भी एक कोमल इन्द्रिय है, इसलिये इसकी विशेष सावधानीसे रक्षा करनी चाहिये। कानसे खिलवाड़ नहीं करना चाहिये अन्यथा यह छेड़-छाड़ जीवनभरके लिये बहरा बना सकती है। जिसे हम कान कहते हैं वह तो केवल सुननेवाले यन्त्रका बाहरी भाग है। इसमें कई पर्त और घुमाव होते हैं। बाहरी कानसे एक नली अंदर (मध्य कानमें) जाती है। हो सकता है इसी मार्गसे दिनभरमें अनेक प्रकारकी गंदगी और हानिकारक कीटाणु जमा हो जायँ। यदि यह गंदगी (जिसे कानका मैल भी कहते हैं) निरन्तर कुछ दिनोंतक जमा होती रहे और साफ न की जाय तो यह कड़ी होकर रोग बन जाती है, जिससे कानमें दर्द, फुंसियाँ, यहाँतक कि बहरापन भी हो सकता है। कानकी नलीके अन्तमें एक झिल्ली होती है जिसे कानका पर्दा कहते हैं। कनपटीपर जोरसे तमाचा मारनेसे पर्देपर आघात पहुँचता है, क्योंकि यह झिल्ली बहुत ही कोमल होती है, अतः कानका मैल निकालनेके लिये कानमें पिन, पेंसिल या कोई नुकीली वस्तु कभी भी नहीं डालनी चाहिये। बल्कि, कानमें कुछ दिनोंतक सरसों, तिल्ली, नारियल या जैतून किसी भी उपलब्ध तेलकी मामूली गर्म एक-एक बूँद डालनेसे कानका कड़ा मैल मुलायम पड़कर ऊपर आ जायगा। अब इसे स्वच्छ रूईकी फुरेरीसे बड़ी सरलतासे निकाला जा सकता है। यदि रोगीके कान तथा नलीमें सूजन हो तो उसे भीगनेसे बचाना चाहिये; जैसे पानीमें तैरते समय वैसलीन या तेलसे भिगोई हुई रूई कानोंमें खोंस लेनी चाहिये। हमेशा ही स्नानके बाद कानोंको अच्छी तरह पोंछ कर सुखा लेना चाहिये।

जुकामसे सावधान रहिये—साधारण जुकाममें गला खराब हो जानेपर नमकीन पानीके गरारे दिनमें कई बार करने चाहिये, ताकि यह रोग आगे नाक-कानतक न फैलने पाये। अक्सर जुकाम बिगड़कर हमारे कोमल कानोंको भी पीड़ित कर देता है, क्योंकि कानके अंदरका हिस्सा गलेके बाहरके हिस्सेके साथ जुड़ा हुआ है। सामान्यतः निगलनेकी क्रिया करते समय प्रत्येक बार वायुका आना-जाना बना रहता है, जिससे कर्णपटके दोनों ओर समान दबाव बना रहकर स्वरकी ध्वनि कम्पनके लिये सुग्रहीता बनी रहती है और जब जुकामके कारण हमारा गला भी पीड़ित हो तो दाब-क्रिया-विधिमें गड़बड़ होनेसे कानमें दर्द हो
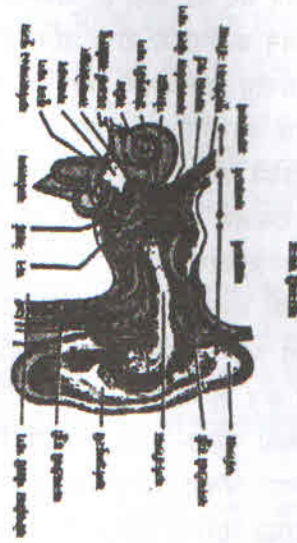
जाना स्वाभाविक है। यदि आपको जुकाम हो तो बहुत जोरसे नाक कभी न छिनकें। ऐसा करनेसे रोगके कीटाणु मध्य कानतक पहुँच सकते हैं। मध्य कानमें दो नालियाँ जाती हैं—एक पीछेकी तरफ और दूसरी नाक तथा गलेकी ओर। जुकाम होनेपर इसके कीटाणु नाक और गलेसे इस दूसरी नलीमें पहुँच जाते हैं, जिससे वहाँ सूजन होनेपर पीड़ा होने लगती है एवं लापरवाही करनेपर यह फोड़ा बन जाता है, जिसकी पीड़ाके कारण रातको ठीकसे नींद भी नहीं आ पाती और रोगी बेचैन पड़ा रहता है। कानमें प्रदाह होने, उसके बढ़ जाने और पूति दूषित (सेप्टिक) हो जानेसे

कानका मार्ग बंद हो सकता है, जिससे उसमेंसे होकर वायुका आगमन बंद हो जाता है, जबकि इस प्रकारकी वायुका आगमन कर्णपटके दोनों ओर बाह्य कर्ण तथा मध्य कर्णमें समान दाब बनाये रखनेके लिये आवश्यक होता है। इससे बहरापन आ जाता है। मध्य कर्णमें पूति दूषित उत्पन्न होनेसे जब उसे निकलनेका मार्ग नहीं मिलता है तो उसके दबावसे कोमल झिल्ली फट जाती है और इस प्रकार कानसे जीर्ण स्राव उत्पन्न हो जाता है। मध्य कानमें मवादका बनना और इकट्ठा होना यदि शीघ्र न रोका जाय तो वह कानके पीछेकी हड्डीतक पहुँचकर एक फोड़ेका रूप ले लेता है। इसमें यदि असावधानी की गयी अथवा गलत-सलत उपचार किया गया तो इससे मस्तिष्कमें मवाद बनना प्रारम्भ हो जाता है। हो सकता है सिरका भारीपन और चकराना कानकी भीतरी खराबीसे हो, क्योंकि बारह नाड़ी-तन्तुओंकी जोड़ियाँ मस्तिष्कमेंसे निकलती हैं, उनमेंसे आठवाँ कानका संवेदवाहक नाड़ी-तन्तु है। मलेरिया बुखारमें लगातार कुनैन-जैसी ओषधि लेनेसे भी चक्कर आना, कम सुनायी पड़ना आदि रोग घर कर जाते हैं। इसी तरह इनफ्लुएंजा और खसरा-जैसे छूतके रोगोंके साथ-साथ कानमें भी सूजन-जलन हो जाती है, जिससे कानमें असहनीय पीड़ा होने लगती है। बच्चोंके दाँतमें कष्ट होने या नया दाँत निकलते समय भी कानमें दर्द हो जाता है, बिना परीक्षा किये यह पता लगाना कठिन है कि कानकी पीड़ा सूजन और जलनकी अधिकताके कारण है या दाँतमें कष्ट होनेके कारण। बच्चेके कानमें पीड़ा होनेपर किसी योग्य चिकित्सकका परामर्श लेना चाहिये। बच्चों अथवा बड़ोंके कान-सम्बन्धी दोषोंको उत्पन्न न होने देना ही समस्याका सम्यक् समाधान है, क्योंकि एक बार कर्णप्रणालीके क्षतिग्रस्त होनेसे उसे फिरसे कार्यक्षम बना सकना अत्यन्त कठिन सिद्ध होता है। अतः सरल घरेलू एवं प्राकृतिक उपचारका सहारा लेकर स्वस्थ रहना चाहिये।

(क) सरल प्राकृतिक चिकित्सा

(१) मुँहको पूरा खोलने और बंद करनेकी प्रक्रियाको नित्य १५-२० बार प्रातः-सायं दोहरायें। इससे कानोंकी मांसपेशियोंमें लचीलापन आयेगा और कान स्वस्थ रहेंगे।

(२) भोजन करते समय चबा-चबाकर खायँ। जिससे मुखकी मांसपेशियोंके साथ-साथ कानकी नसोंका भी व्यायाम हो जाय।

(३) गर्दनको दायें-बायें, आगे-पीछे तथा घड़ीके पेंडुलमकी तरह और चक्राकार घुमानेसे कानों एवं नेत्रोंकी नसोंमें लचीलापन आता है और यह क्रिया उनमें स्वस्थ रखनेकी क्षमता बनाये रखती है। यह व्यायाम नित्य दस मिनट मेरुदण्डको सीधा रखकर अवश्य करना चाहिये।

(४) कानके दर्दमें गर्म पानीकी थैलीको सूखे तौलियेमें लपेटकर तकियेकी तरह रखकर जिस कानमें दर्द, सूजन हो उसी कानको उसपर रखकर १५-२० मिनटतक लेटे रहें। यदि दोनों कानोंमें पीड़ा हो तो बारी-बारीसे इसी प्रकार दोनों ओर करना चाहिये। उस समय कानमें रूई खोंस लें।

(५) मध्य कानसे पीप आनेकी अवस्था (Both infection and inflammation)-में गर्म और ठंडे

पानीकी अलग-अलग थैली कानके पृष्ठ-भाग (जबड़ेकी रेखाके पीछे)-के पास रखकर बारी-बारीसे गर्म और ठंडा सेंक दे सकते हैं।

(ख) कुछ घरेलू उपचार

चिकित्सकोंके अनुसार निम्नलिखित उपचार भी लाभदायक रहे हैं—

(१) बच्चे (शिशु)-के कानमें दर्द हो तो माताका दूध कानमें टपकानेसे लाभ होता है।

(२) दूधकी भापसे कानको सेंकनेसे कानकी सूजन और दर्दमें आराम मिलता है।

(३) नीमके पत्तोंको पानीमें औटाकर उनका बफारा कानमें देनेसे कानका घाव और दर्द दूर होते हैं।

(४) लहसुनका रस २५ मि०ली० और सरसोंका शुद्ध तेल ५ मि०ली० दोनों मिलाकर पका लें। जब तेल मात्र शेष रह जाय तब ठंडा होनेपर छान लें तथा रातको सोते समय एक-एक बूँद कानमें डालें। इससे कानका दर्द, बहरापन आदि दोष दूर होते हैं।

(५) गोमूत्रको छानकर निथार लें और शीशीमें भर लें। नित्य चम्मचमें कुछ बूँदें जरा-सा गर्म कर लें, फिर कानको साफ करके सुहाती-सुहाती दो-एक बूँदें दोनों कानोंमें डालते रहें। कानका दर्द अथवा बहरापन निश्चित ठीक होगा।

(६) मदारका पीला पत्ता तोड़कर उसपर देशी घी चुपड़कर पत्तेको आगपर गरमाकर उसका सुहाता-सुहाता गुनगुना रस कानमें टपका दें। अनुभूत प्रयोग है—दर्दमें लाभ होगा। इसपर एक लोकोक्ति भी है—

पीले पात मदारके, घृतका लेप लगाय।
गरम गरम रस डालिये, कर्ण-दर्द मिट जाय॥

(ग) यौगिक क्रियाएँ

(१) छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभीको 'नेति-क्रिया' की विधि समझकर नित्य करनी चाहिये। इससे जुकाम तो भागता ही है, कानका बहना भी बंद हो जाता है और बचपनतकका बहरापन तथा सायँ-सायँकी आवाज भी ठीक हो जाती है।

(२) हमारा स्वास्थ्य-कन्ट्रोल-केन्द्र हमारे भीतर ही है, ऐक्युप्रेशरका जानकार सही स्विच दबाकर रोगीका रोग दूर करता है। कानका रोग दूर करनेके लिये दिनमें नित्य ४५ मिनट, दोनों हाथोंद्वारा शून्य मुद्रा करनी चाहिये। अन्य उपचारके साथ-साथ भी यदि इसे विश्वासके साथ किया जाय तो यह मुद्रा हितकारी सिद्ध होगी।

विधि—चित्रमें बताये अनुसार, बीचकी मध्यमा

अंगुलीको अँगूठेकी गद्दीपर लगाकर, ऊपरसे इसे अँगूठेसे हलका दबानेसे शून्य-मुद्रा बनती है। इसे दायें और बायें हाथों, दोनोंहीसे कम-से-कम ४५ मिनट नित्य करनेसे कानका बहना, कम सुनना आदि दोष ठीक हो जाते हैं। ठीक होनेपर इसका अभ्यास बंद कर देना चाहिये। यह मुद्रा इच्छानुसार कभी भी कर सकते हैं।

(घ) निषेध

कानके रोगीको निम्नलिखित आहार-विहारका सेवन हानिकारक है—

(१) ठंडा स्नान, ठंडी हवा, पंखेकी सीधी हवा आदि।

(२) तैराकी और सिरको भिगोकर स्नान।

(३) अधिक जागरण तथा अधिक वाचालता।

(४) कोलाहलपूर्ण वातावरण—यन्त्रोंका शोर-शराबा आदि।

(५) अत्यधिक शीतलता प्रदान करनेवाले बर्फ आदिसे प्रयोगयुक्त पदार्थ, चिकनाईवाले व्यञ्जन, बासी भोजन, अधिक खट्टे एवं मिर्च-मसालोंसे तले हुए खाद्य पदार्थ आदि।

(६) वातानुकूलित वातावरण।

उपसंहार

बचपनसे ही प्रतिदिन कानोंमें एक-एक बूँद तेल डालते रहनेसे कान सदा नीरोग रहते हैं। श्रवणशक्तिको सदाके लिये सशक्त बनाये रखनेके हेतु नित्य प्रातः धूप-सेवन करें ताकि कानोंपर भी सूर्यका सुहाता-सुहाता प्राकृतिक सेंक होता रहे। दोषपूर्ण आहार-विहारसे बचें और स्वस्थ बने रहें। —(अरोड़ा)

मिरगी—कारण और बचाव

(श्रीश्यामसुन्दरजी सराफ)

मिरगी मस्तिष्कके असंतुलनका प्रतिफल है। शरीरमें स्थित विजातीय द्रव्य जब मस्तिष्कमें पहुँचकर उसके कोशोंपर दबाव डालते हैं, तब मिरगी-रोगका दौरा पड़ता है। वस्तुतः यह स्वयंमें कोई रोग न होकर रोगका एक लक्षण है। केन्द्रीय स्नायु-संस्थानसे सम्बन्धित यह रोग मस्तिष्कमें कोशिकाओंकी खराबी, आनुवंशिक कारणों, पाचन-संस्थानकी अनियमितता, मानसिक तनाव, सिरमें चोट लगने, अप्राकृतिक जीवन-शैली एवं अनिद्रा या मद्यपानके कारण होता है।

मिरगी—कुछ तथ्य

(१) यह आवश्यक नहीं है कि मिरगीके मरीजके मस्तिष्कमें स्थायी रूपसे कोई विकृति आयी हो। मस्तिष्ककी तरङ्गोंमें क्षणिक व्यवधानके कारण भी दौरोंकी स्थिति हो जाती है।

(२) यह आवश्यक नहीं है कि मिरगीके मरीज मानसिक रूपसे कमजोर हों।

(३) यह आवश्यक नहीं है कि मिरगीके मरीज सदैव उग्र स्वभावके हों।

(४) यह आवश्यक नहीं है कि दौरोंके कारण मस्तिष्कमें स्थायीरूपसे विकृति आनेकी सम्भावना बढ़ जाय। यद्यपि कुछ लोगोंकी स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है परंतु यह दौरोंका प्रतिप्रभाव है न कि मस्तिष्ककी खराबी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि मिरगीका रोग सदैव आनुवंशिक रूपमें ही प्राप्त हो। यद्यपि मिरगी-रोगके कुछ प्रकार, जो बादमें औषधियोंके प्रयोगसे ठीक हो जाते हैं, आनुवंशिक कारणोंसे भी होते हैं।

(६) यह आवश्यक नहीं है कि मिरगीका रोग जल्दी ठीक ही न होता हो। इस रोगसे ग्रस्त अनेक मरीज ठीक होते हुए तथा सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए देखे जाते हैं।

सामान्यतः बेहोशीके दौरे अनेक कारणोंसे पड़ सकते हैं। अनेक शारीरिक व्याधियोंके कारण पड़नेवाले दौरे जैसे—मधुमेह, लीवर या गुर्देके काम न करनेके कारण, सिरमें चोटकी वजहसे, मस्तिष्क या उसकी झिल्लीमें इन्फेक्शन यथा—मैनेन्जाइटिस या इन्सेफेलाइटिसका संक्रमण। खूनकी नलियोंकी बीमारी एवं ट्यूमरके कारण भी बेहोशीके दौरे पड़ सकते हैं। मिरगीकी बीमारी स्वयंमें दौरोंकी एक प्रमुख वजह है।

मिरगीके दौरे कई रूपमें हो सकते हैं—

(क) पेटिटमाल एपिलेप्सी—कई बार थोड़ी देरके लिये केवल शून्यमें ताकते रह जाना—इस प्रकारके दौरोंका एक रूप है। ऐसा विशेषतः छोटे बच्चोंमें पाया जाता है। इस श्रेणीमें पड़नेवाले दौरोंको 'एवसेंस सीजर्स' भी कहा जाता है।

(ख) ग्रैण्डमाल एपिलेप्सी—कई बार पूरे शरीरमें झटके पड़ना, बेहोशी आ जाना, मुँहसे झाग आना या इस दौरान मल-मूत्रका विसर्जन हो जाना आदि लक्षण दिखते हैं। इस श्रेणीकी मिरगीमें पड़नेवाले दौरोंको 'टोनिक-क्लोनिक सीजर्स' भी कहा जाता है।

(ग) फोकल एपिलेप्सी—शरीरके किसी हिस्सेमें कुछ देरके लिये फड़कन होना तथा बादमें दूसरे स्नायुयोंमें फैलना।

(घ) टेम्पोरल लोव एपिलेप्सी—कई बार मस्तिष्कके टेम्पोरल लोव या कानसे सटे मस्तिष्कके भागपर जब दौरेका केन्द्र या घाव होता है तो ऐसी हालतमें दौरेके समय व्यक्ति अप्रत्याशित रूपसे व्यवहार करने लगता है। यथा—सभीके सामने कपड़े उतार देना या अन्य उलटी-सीधी हरकतें करने लगना। इस स्थितिमें कुछ लोगोंको उलटे-सीधे दृश्य दिखायी देते हैं। इस श्रेणीकी मिरगीके मरीजोंको अजीब-सी महक जैसे—जले चमड़े या रबड़की महकका भी आभास होता है।

स्थितियाँ—जो दौरोंको बढ़ाती हैं

कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं, जो मिरगीके मरीजके दौरोंको बढ़ाती हैं। यथा—

(१) नींदकी कमी या अनिद्रा।

(२) अल्कोहलका अधिक सेवन या काफी दिनोंतक अत्यधिक अल्कोहलके सेवनके बाद

अल्कोहलके सेवनमें सहसा कमी करनेका प्रयास।

(३) कुछ औषधियोंके प्रयोग भी दौरोंको बढ़ानेमें जिम्मेदार हैं—

(क) कोकीनका सेवन दौरोंका कारण बन सकता है।

(ख) एम्फेटामिन्सका अधिक सेवन हृदयाघातके साथ ही 'टोनिक-क्लोनिक सीजर्स'का भी कारण बन सकता है।

(ग) हेरोइन एवं नारकाटिक्सका दुरुपयोग मस्तिष्कमें ऑक्सीजनकी कमीका कारण बन सकता है और इसका नतीजा मिरगीके दौरोंमें वृद्धि हो सकता है।

(घ) निकोटिन (तम्बाकूमें) तथा कैफीन (कॉफ़ी, चाय, चॉकलेट आदिमें)-का अधिक सेवन भी मिरगीके दौरोंमें वृद्धि कर सकता है।

(ङ) मिरगीके मरीजोंके लिये धूम्रपान भी घातक है। इससे दौरोंमें वृद्धि हो सकती है।

कुछ अन्य दर्द-निवारक औषधियाँ या सर्दी, जुकाम, अनिद्रा तथा एलर्जीके संदर्भमें ली गयी दवाएँ भी यदा-कदा दौरोंको बढ़ाती हैं। अत: इन दवाओंके सेवनसे मरीजोंको सतर्क रहनेकी आवश्यकता है।

(४) मिरगीकी मरीज महिलाओंको उनके मासिकके समय दौरोंके बढ़नेकी आशंका रहती है।

(५) मानसिक तनाव मिरगीके मरीजोंमें दौरोंकी अभिवृद्धिका प्रमुख कारण है। तनाव मस्तिष्ककी कार्य-प्रणालीको अनेक रूपोंसे प्रभावित करता है। तनावके कारण चिन्ता, भय, क्रोध, अवसाद तथा निराशामें अभिवृद्धि होती है, नींद प्रभावित होती है तथा साँसकी गति बढ़ती है। नतीजा होता है दौरोंकी वृद्धि।

(६) खान-पान एवं आहार-विहार भी मिरगीके मरीजोंमें दौरेपर नियन्त्रण या अभिवृद्धिका कारण हो सकता है। संयमित खान-पान, भोजनमें कच्ची सब्जियों एवं फलोंका अधिक प्रयोग तथा तले हुए एवं उत्तेजक खाद्य पदार्थोंका त्याग भी मिरगीके रोगीको लाभ दे सकते हैं। विटामिन 'बी' की कमीसे कभी-कभी नवजात शिशुओंको दौरे पड़ने लगते। भोजनमें खनिज तत्त्वोंकी कमी, विशेषत: सोडियम, कैल्सियम तथा मैग्नेसियमका अल्प स्तर मस्तिष्ककी विद्युतीय तरंगोंको प्रभावित कर सकता है तथा दौरे पड़ सकते हैं।

(७) चन्द्रमाकी स्थिति भी मिरगीके दौरोंके संदर्भमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। चन्द्रमा मानव-मस्तिष्कको प्रभावित करता है। पूर्णिमाके आस-पास पूर्णचन्द्रकी स्थितिमें शरीरमें कफका बाहुल्य होता है तथा मिरगीके मरीज, जिनकी प्रवृत्ति कफकी होती है, उन्हें पूर्णचन्द्रकी स्थितिमें दौरे आनेकी अधिक गुंजाइश होती है।

अमावास्याके आस-पास बाल चन्द्रकी स्थितिमें सूर्यकी ऊर्जा अधिक होनेके कारण पित्तका बाहुल्य होता है तथा मिरगीके वे मरीज जिनकी प्रवृत्ति पित्तकी होती है उन्हें इस समय दौरे आनेकी अधिक सम्भावना होती है।

यही कारण है कि मिरगीके मरीजोंको अमावास्या तथा पूर्णिमाके दिनोंमें अधिक सतर्कता बरतनेका परामर्श दिया जाता है।

मिरगीके मरीजोंको शरीरके निम्नलिखित आवेगोंको कभी नहीं रोकना चाहिये—

(क) भूख, (ख) प्यास, (ग) निद्रा, (घ) विश्राम, (ङ) शौच तथा (च) मूत्र-त्याग।

(८) क़ब्ज़ अनेक रोगोंकी उत्पत्तिका मूल कारण है, मिरगीके मरीज भी इसके अपवाद नहीं हैं।

(९) मिरगीके मरीजका नाभिचक्र संतुलित रहे, यह अत्यन्त आवश्यक है। मिरगीके कई मरीजोंको केवल नाभिचक्रको ठीक रखकर आराम पहुँचा है।

(१०) सोने, चाँदी तथा ताँबेका जल भी मिरगीके दौरोंको नियन्त्रित करनेमें लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसे बनानेका तरीका इस प्रकार है—

१५ ग्राम सोना (सोनेका कोई जेवर भी जिसमें मीना न लगा हो, काममें लिया जा सकता है), ३० ग्राम चाँदी तथा ६० ग्राम ताँबा, ४ गिलास पानीमें डालकर उबालें तथा दो गिलास पानी बचनेपर उस जलका दिनभरमें सेवन कर लें। यह जल नित्य बनाना है। खट्टी चीजोंका सेवन वर्जित है।

सामान्यत: दौरेकी स्थितिमें बेहोशीके कारण मरीज

अपनी स्थितिसे पूर्णरूपसे अवगत नहीं हो पाता तथा बादमें किसी प्रत्यक्षदर्शीके बतानेपर या दौरेके पश्चात् कष्ट या कमजोरीके आधारपर ही उसे यह अनुभूति हो पाती है। प्राय: चिकित्सक भी अपने मरीजके दौरेको नहीं देख पाते; क्योंकि इसका समय निश्चित नहीं है।

मरीजके दौरेका विवरण—एक चिकित्सकको अपने मरीजके संदर्भमें निम्नलिखित सूचना अवश्य एकत्र करनी चाहिये—यह सूचना किसी प्रत्यक्षदर्शीके माध्यमसे ही मिल सकती है।

(१) दौरेसे पहले—

(क) क्या किसी कारणसे नींदकी कमी थी या कोई अप्रत्याशित मानसिक तनाव था?

(ख) क्या मरीजको कोई अन्य बीमारी हुई थी?

(ग) क्या मरीजने किसी विशेष औषधि, अल्कोहल या किसी नशेकी दवाका सेवन किया था?

(घ) दौरेके तुरंत पहले मरीज किस स्थितिमें था—सोया हुआ, बैठा हुआ, खड़ा हुआ या तुरंत व्यायाम किया हुआ आदि।

(२) दौरेके मध्य—

(क) दौरा कैसे शुरू हुआ?

(ख) क्या दौरेकी कोई पूर्व अनुभूति हुई?

(ग) क्या इस दौरान आँख, मुँह, चेहरे, सिर या हाथ-पैरमें कोई असंतुलन दृष्टिगत हुआ?

(घ) क्या दौरेके समय मरीज बोलने या उत्तर देनेमें सक्षम था?

(ङ) क्या दौरेके समय मल-मूत्रका अनजानेमें विसर्जन हो गया था?

(च) क्या दौरेके कारण जीभ या अंदरका गालोंका भाग कट गया था?

(छ) दौरेकी स्थिति कितनी देरतक रही।

(३) दौरेके बाद—

(क) क्या मरीज चकित एवं थका हुआ लग रहा था?

(ख) क्या आवाज असंतुलित थी?

(ग) क्या सिरमें दर्दकी शिकायत कर रहा था?

चूँकि मिरगीका रोग एक दिनमें ठीक नहीं होता, अत: इसके मरीजका पूर्ण विवरण, रोग एवं पारिवारिक वातावरणके विषयमें जानकारी रखना आवश्यक है। इससे चिकित्सकोंको तो मार्गदर्शन मिलता ही है, मरीजका आत्मविश्वास बढ़ता है एवं उसमें सुरक्षाकी भावना भी बढ़ती है।

मिरगीके मरीजके प्रति दायित्व

चूँकि मिरगीका मरीज दौरेके समय बेहोशीके कारण अपनी रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमताका उपयोग अपने बचावके लिये नहीं कर पाता, अत: इन मरीजोंके प्रति लोगोंका गम्भीर उत्तरदायित्व है। दौरेकी स्थितिमें—

(१) मरीजको करवटके बल लिटा दें।

(२) कपड़े तंग हों तो ढीले कर दें। यदि चश्मा लगा हो तो उतार दें।

(३) ध्यान रखें बेहोशीकी हालतमें मरीज बिस्तरसे गिर न जाय या उसे किसी अन्य प्रकारसे शारीरिक चोट न आ जाय।

(४) यदि सम्भव हो तो एक रूमाल लपेटकर सावधानीसे मरीजके दाँतोंके बीच फँसा दें—इससे दाँतोंके नीचे उसकी जीभ पड़कर कट जानेका खतरा नहीं रहता। ऐसा करते समय यह ध्यान रखें कि किसी भी हालतमें आप अपनी उँगलियाँ मरीजके मुँहमें न डालें; क्योंकि इन दौरोंके समय मरीज अपने होशमें नहीं रहता तथा आपकी उँगलियाँ उसके दाँतोंके बीच फँसकर जख्मी हो सकती हैं या कट सकती हैं।

ध्यान रखें मरीजके मुँह या दाँतोंके बीच कोई कड़ी चीज यथा चम्मच आदि न फँसावें।

(५) दौरेके पश्चात् यदि मरीजको नींद आ रही हो तो उसे सोने दें।

(६) मरीजके चारों तरफ अनावश्यक भीड़-भाड़ नहीं होनी चाहिये। खिड़कियाँ, दरवाजे खोलकर ठंडी हवा आने दें।

(७) दौरेके समय मरीजके शरीरको दबाना, मुँहपर पानीके छींटे डालना, मुँह या नाकको बंद करना, लेटे हुए मुँहमें पानी डालना या कुछ खानेको देना वर्जित है। इससे मरीजको नुकसान पहुँच सकता है।

(८) दौरेके मध्य कोई दवा आदि देना उचित नहीं है जबतक कि मरीज पूर्ण रूपसे चैतन्य न हो जाय।

(९) प्रयास करें कि दौरेसे उबरनेके बाद मरीजके पास अधिक भीड़ न रहे। होशमें आनेपर अपने सामने अप्रत्याशित भीड़ देखकर मरीजका तनाव बढ़ता है।

(१०) कभी-कभी दौरे एकके बाद एक आने लगते हैं तथा मरीजको साँस लेनेमें भी तकलीफ होने लगती है।

(११) दौरेके बाद ज्वर बढ़ सकता है—अधिकांशत: दौरेमें स्नायुओंकी गतिविधि बढ़नेके कारण ऐसा होता है। यदि यह ज्वर तीन घंटेसे अधिक रहे तो किसी चिकित्सककी सलाह लें।

(१२) मरीजके परिवार-जनों, मित्रों एवं आस-पासके लोगोंको यथासम्भव मरीजके संदर्भमें पूर्ण जानकारी होनी चाहिये।

(१३) दौरेके उपरान्त मरीजको होशमें लानेके लिये मानव-शरीरमें तीन एक्यूप्रेशर विन्दु है, जिनपर उपचार देनेसे बेहोश व्यक्ति होशमें आ जाता है तथा इसका कोई प्रतिप्रभाव भी नहीं है।

(क) नाकके नीचे गड्ढेपर।

(ख) पैरोंके तलुवोंपर बीचवाली अँगुलीकी सीधमें।

(ग) कानोंकी लटकनपर दबाव दें।

इस विधिको प्रत्येक व्यक्तिको जानना चाहिये; क्योंकि इसके माध्यमसे आप मिरगीके मरीजको महान् कष्टसे बचा सकते हैं।

(१४) दौरेकी स्थितिसे मरीजको उबारनेके लिये किसी अशोभनीय तरीकेका प्रयोग न करें—यथा जूते सुँघाना आदि।

यद्यपि जीवनमें प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी रूपमें अवसादसे ग्रस्त होता है, तथापि सामान्य व्यक्तियोंकी तुलनामें मिरगीके मरीज अवसादके अपेक्षाकृत अधिक शिकार होते हैं। अवसादकी अंतिम परिणति होती है आत्महत्याका प्रयास तथा मिरगीके मरीज यह प्रयास करते हुए अधिक पाये जाते हैं।

यदि दौरे नियन्त्रित न हो रहे हों तो यथासम्भव मरीजको कोई भी वाहन न चलाना चाहिये, नदीमें स्नान या स्वीमिंपुलमें तैरने आदिसे भी बचाना चाहिये तथा जहाँतक हो सके अधिक भीड़-भाड़वाले स्थानोंपर न जाना चाहिये। इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तिके जीवनसे तनाव या घुटनको निकालनेका प्रयास करना हम सभीका दायित्व है। तनाव एवं घुटनरहित वातावरणमें इस रोगसे ग्रस्त व्यक्ति एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सकता है।
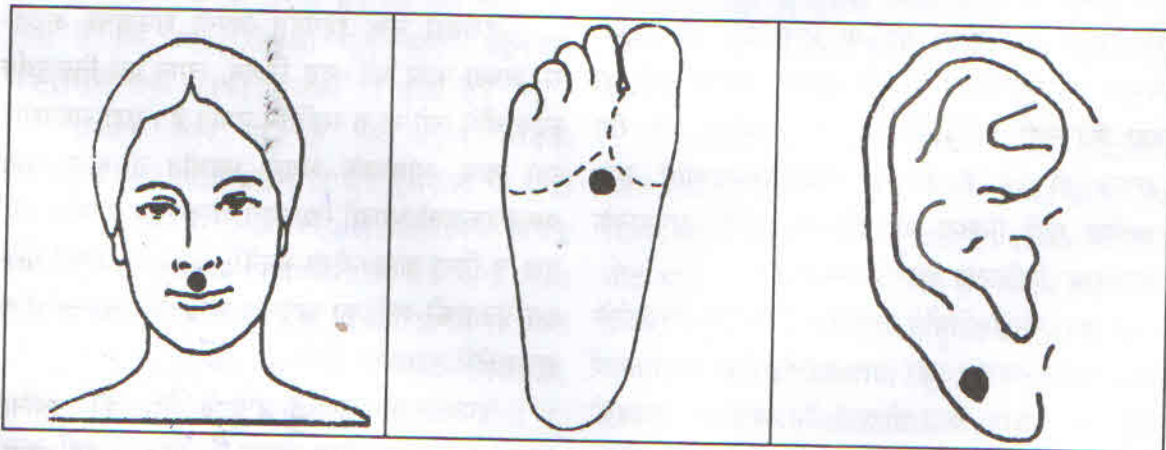
तनाव—कारण एवं निवारण

(श्रीनरेन्द्रजी उबाना)

आजके युगमें अपच और कुपोषणके कारण उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे अधिक विपत्ति तनावजन्य रोगोंसे है। साधनहीन लोग जहाँ अभावजन्य कठिनाइयोंसे सम्बन्धित रोगोंके शिकार होते हैं, वहाँ साधनसम्पन्न लोग सम्पन्नताका दुरुपयोग करनेके कारण मानसिक विक्षोभसे तनावग्रस्त होते चले जाते हैं। नशेबाजी, विलासिता, स्वार्थपरता तथा सुखोपभोग-जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ न केवल व्यवहारपर वरन् चिन्तनपर भी छा जाती हैं। फलस्वरूप शरीर और मनपर छायी रहनेवाली उत्तेजना शक्तियोंके अपव्ययके कारण विचित्र रोगोंके रूपमें फूटती है।

यह व्यथा भोगवादियोंको अधिक घेरती है। आर्थिक और बौद्धिक आधारपर पनपते हुए वर्गभेदने अब रुग्णताके क्षेत्रमें भी अपनी विभाजन-रेखा खींचनी आरम्भ कर दी है।

हमारे पूर्वज सादगीपूर्ण सच्ची जिन्दगी जीनेके अभ्यस्त थे, इसी कारण वे चिन्ताओं, भ्रान्तियों एवं कुण्ठाओंसे उतने नहीं घिरे रहते थे, जितने कि आजके तथाकथित सभ्य, सुशिक्षित और सम्पन्न मनुष्य। आज विकासकी एक सीढ़ी यह भी मानी जा रही है कि मनुष्य उच्छृङ्खलताकी दिशामें तेजीसे भागता चला जा रहा है। नयी परिस्थितियोंमें नये किस्मके ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं जिनका चिकित्सा-ग्रन्थोंमें स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता और चिकित्सकोंको अनुमानके आधारपर चिकित्सा करनी पड़ती है।

इन परिस्थितियोंमें तनावजन्य रोगोंसे निबटनेके लिये ध्यान, धारणा और प्रत्याहारकी विविध प्रक्रियाएँ बहुत ही कारगर सिद्ध हो रही हैं। मानसिक तनावको ध्यानद्वारा और शारीरिक तनावको शवासन, प्राणाकर्षण-जैसी यौगिक क्रियाओंसे नियन्त्रित किया जा सकता है।

वर्तमान समयमें ५०% से अधिक रोगी तनावग्रस्त पाये जाते हैं। लगातार सिर-दर्द, चक्कर आना, आँखोंमें सुर्खी, काममें मन न लगना तथा लकवा आदि जैसे रोगोंका आक्रमण अत्यधिक तनावका दुष्परिणाम है। अधिक तनाव शरीर तथा मन—दोनोंके लिये हानिकारक है। स्नायु-दौर्बल्य, अनिद्रा, चिन्ता, खिन्नता आदि अनेक रोग तनावके फलस्वरूप ही पैदा होते हैं। निषेधात्मक, निराशावादी, संशयात्मक चिन्तन—दृष्टिकोण तनावकी सृष्टिमें प्रधान हेतु हैं। साथ ही निराशा, असफलता, द्विविधाकी स्थिति एवं चिन्ता आदि तनावको जन्म देते हैं।

सामान्य घरोंमें तनावका कारण दाम्पत्य-जीवनमें पारस्परिक असामञ्जस्य तथा वैचारिक भिन्नता होती है। माता-पिताके सम्बन्धोंमें बिखराव देख बच्चे भी तनावसे आक्रान्त हो जाते हैं। कालान्तरमें यह स्थिति अत्यन्त भयावह भी हो सकती है। इससे त्राण पानेका रास्ता एक ही है कि परस्पर सहिष्णुताका भाव रखा जाय। प्रेम, आत्मीयता, सहयोग, सद्भावना आदिसे पारिवारिक जीवन सुख-शान्तिमय बन जाता है। संयमित जीवन जीनेसे, सेवाकी भावना रखनेसे, परस्पर स्नेह-सद्भावसे एवं आस्तिकताकी दृढ़ निष्ठासे तनावकी बीमारियोंसे सहज ही मुक्ति मिल जाती है।

तनावसे मुक्त रहनेहेतु अपनी क्षमताभर अच्छे-से-अच्छा काम करें। दृढ़ निश्चय, लगन एवं निष्ठापूर्वक सत्कार्योंमें लगे रहना सर्वोत्तम उपाय है। सदा सहनशील रहा जाय, भविष्यके भयसे भयभीत न हुआ जाय, वास्तविकताको ध्यानमें रखा जाय, काल्पनिक आशंकाओंको तूल न दिया जाय। ऐसा करनेसे स्वयं ही अपने भीतर इस प्रकारकी शक्तिका अनुभव होगा, जो समस्याओंको सुलझानेमें सहायक होगी।

हृदयरोगका मूल कारण है कि लोग अधिक आरामका जीवन जीना चाहते हैं, परिश्रम नहीं करना चाहते। स्वयं अपनी आवश्यकता बढ़ाकर और उसके पूरा न कर पानेपर चिन्ताओंके मकड़जालमें फँस जाते हैं। यह अज्ञात भय, चिन्ता तथा विषाद भी हृदयरोगका कारण बन जाता है। इस तनावकी

स्थितिमें मनुष्यकी स्वाभाविक खुशी प्रफुल्लता छिन जाती है। फलतः रक्तवाहिनी नसें थक जाती हैं, कभी-कभी मस्तिष्कमें लकवा भी हो जाता है। अधिक दुःखमें रक्तका दौरा बढ़ जाता है। शक्कर देनेवाली क्लोम ग्रन्थियाँ भी खाली हो जाती हैं। ये ग्रन्थियाँ प्रसन्नताके अभावमें कार्य करना बंद कर देती हैं। जिससे क्लोन रस शरीरको नहीं मिलता और शर्करा स्वतन्त्र हो जाती है तथा मूत्रके साथ बहने लगती है। इसीको मधुमेह कहते हैं। मधुमेह रोग पछताने और शोक करनेसे भी हो जाता है।

जब व्यक्तिका आहार, आचरण एवं व्यवहार दूषित तत्त्वोंसे भर जाता है, उसका जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। वह तम्बाकू, शराब तथा नशीली वस्तुओंके चंगुलमें अपनेको फँसा लेता है तो कैंसर-जैसे रोगोंका शिकार हो जाता है। असफलता, पराजय, निराशा, भय, परेशानी, असंतोष, चिन्ता एवं वासना आदिसे ग्रस्त व्यक्ति बहुत शीघ्र कैंसरसे आक्रान्त हो जाता है। मानसिक तनाव भी कैंसर-जैसे रोगका कारण है। इससे त्राण पानेके लिये सर्वोत्तम उपाय रोगीकी आत्मशक्तिका संवर्धन ही है। रोगकी आरम्भिक अवस्थामें आहार-विहार सम्बन्धी सुधार किये जायँ। बुरी आदतोंको ठीक किया जाय, प्रेम, सुख व शान्तिकी वृद्धि की जाय तो कैंसरसे मुक्ति पायी जा सकती है। यह बात मानी जाने लगी है कि ७५% रोगोंका मूल कारण उद्वेगजन्य मनःस्थिति तथा मनकी कुण्ठाएँ ही होती हैं।

सनातन सत्य यही है कि मनुष्य स्वयंको तनावमुक्त रखे। सदैव प्रसन्न रहे एवं दूसरोंको भी सुखी एवं प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करे। शिथिलीकरण-साधना तनावमुक्तिमें सर्वाधिक सहायक होती है। किसी शान्त स्थानमें लेट जाना, मनको पूर्ण विश्राम क्रममें ले आना शिथिलीकरण कहलाता है। विश्रामसे थकान मिटती है, नवीन शक्ति प्राप्त होती है तथा स्फूर्ति प्राप्त होती है। कुछ समय शवासन (पूर्ण विश्राम)-से शरीर तथा मस्तिष्क, अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें नवीन चेतनाका अनुभव होता है। इससे रक्तचापमें भी कमी होती है। शिथिलीकरण प्रक्रियासे स्वचालित स्नायु-प्रणाली एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंपर पड़नेवाले प्रभावोंको संतुलित-नियन्त्रित करनेकी क्षमता आती है। प्राणशक्तिका संचय होनेके फलस्वरूप नवीन शक्तिके उदयका अनुभव होता है। यह सभीके लिये सरल तथा साधारण प्रक्रिया है। इसके अभ्याससे शरीर तथा मन-मस्तिष्कको स्वस्थ, सशक्त और स्फूर्तिमय रखा जा सकता है।

अविद्या-अज्ञानसे मुक्त होने एवं अपने अन्तरको देखनेकी क्रियाको अध्यात्म कहा जाता है। वास्तविकताको जाननेका पथ अध्यात्म है। ऋषियों, संत-महात्माओंने बताया है कि अपने आत्मस्वरूपको पहचानो, आत्मबोध करो, वास्तविक रूपको समझो। मनुष्य अपना उद्धार अपने आत्मस्वरूपसे करे, अपनी आत्माको अधोगतिमें न पहुँचाये, आत्मस्वरूपको जाननेका, अपने अंदर देखनेकी प्रक्रियाका मूल 'ध्यान' है। यह चेतनाके उच्च स्तरतक पहुँचनेका मार्ग है और आत्मविकासका मुख्य सोपान। ध्यानमें व्यक्ति आत्मचिन्तन करता है। अपने व्यावहारिक जीवनमें आदर्श एवं सिद्धान्तोंका समावेश करके आत्मोन्नतिकी ओर अग्रसर हो जाता है। इस हेतु वासना, तृष्णा और अहंकारके बोझको हलका करना होता है।

ध्यानकी गहराईसे शारीरिक और मानसिक हलचलोंमें शिथिलता आती है। फलतः शान्तिमय विश्रामका लाभ मिलता है। यह विश्राम थकान दूर करता है। रोगरोधक क्षमता और जीवन-शक्ति बढ़ाता है। ध्यान करनेवालोंको शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे अधिक स्वस्थ एवं समर्थ बननेका अवसर मिलता है। फलतः तनावग्रस्त नहीं होना पड़ता।

शारीरिक एवं मानसिक तनावोंमें मनुष्यकी असाधारण क्षति होती है। कहते हैं कि एक घण्टेका क्रोध एक दिनके बुखार जितनी क्षति पहुँचाता है। शोकके प्रसंगोंपर नींद-भूख सभी समाप्त हो जाते हैं। तनाव किसी भी प्रकार, किसी भी कारण उत्पन्न हुआ क्यों न हो, उससे सामयिक कष्टोंके अतिरिक्त दूरगामी दुष्परिणाम भी उत्पन्न होते हैं। इन हानियोंको समझते हुए यथासम्भव उपचार भी किये जाते हैं। शामक औषधियाँ ली जाती हैं। नींदकी गोलियोंसे मस्तिष्कके भारको हलका करनेका प्रयत्न होता है। नासमझ इस हेतु नशेबाजीपर उतर आते हैं। फिर भी अभीष्ट एवं स्थायी समाधान नहीं हो पाता। आजके समयमें तनावकी व्यथा अन्य शारीरिक एवं

मानसिक रोगोंकी तुलनामें अधिक ही होती है।

तनावको दूर करनेका एक सहज एवं प्रभावशाली उपचारके रूपमें पूर्वोक्त शिथिलीकरण मुद्राको अपनाया जा सकता है। मनका शासन पूरे शरीर तन्त्रपर होता है। यदि मनको श्रान्त, शिथिल एवं समाधिकी स्थितिमें पहुँचाया जा सके तो उसका प्रभाव न केवल मस्तिष्कपर बल्कि शरीरके समूचे नाड़ी संस्थानपर पड़ता है। इससे तनावसे छुटकारा पानेमें पूर्ण सहायता मिलती है।

बालकोंकी कूकरखाँसी

(डॉ० श्रीगोपीकृष्णजी शर्मा, एल्०एम्०एस्० [होमियो])

बच्चोंके लिये यह बड़ी भयंकर बीमारी है। संक्रामक रोग होनेके कारण यदि इस रोगसे ग्रस्त बच्चोंके साथ स्वस्थ बच्चे खेलें तो उन्हें भी यह बीमारी हो जाती है। रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें बच्चोंको सर्दी और खाँसी होती है तथा खाँसते समय कुत्तेके भूँकने-जैसी आवाज होती है। इसीलिये बहुधा लोग इसे 'कूकरखाँसी' कहते हैं। पहले खाँसीकी संख्या दिनमें चार-पाँच बार ही रहती है तथा खाँसते-खाँसते कभी-कभी उलटी भी हो जाती है। यदि प्रारम्भमें ठीक उपचार न किया जाय तो रोग जटिल रूप धारण कर लेता है। खाँसते-खाँसते उलटी, दस्त तथा कभी-कभी मुँह, नाक और फेफड़ोंसे रक्तस्राव भी हो जाता है। इस रोगमें जीवनीशक्तिका ह्रास क्रमशः होता जाता है। अन्तमें मृत्युतक हो जाती है। इस प्राणघातक बीमारीसे हजारों बच्चोंके प्राण प्रतिवर्ष जाते हैं।

ऐलोपैथिक-चिकित्सामें इसके लिये पर्टुसिनका प्रयोग करते हैं तथा पर्टुसस वेक्सीन (Pertussus Vaccine)-का इंजेक्शन देते हैं। उनकी धारणाके अनुसार यह एक मियादी खाँसी है, जिसकी चिकित्साके लिये कम-से-कम तीन महीनेकी आवश्यकता है। हमारे देशकी गरीब जनताके लिये इतना महँगा और लम्बा इलाज उपयुक्त नहीं हो सकता। इसकी चिकित्सा सदृश-विधान-चिकित्सा (Homeopathy)-से अल्प समयमें तथा कौड़ियोंमें सफलतापूर्वक की जा सकती है।

यह निदान होनेपर कि बच्चेको कूकरखाँसी है, उसे सुबह खाली पेट ड्रसेरा (Drosera) ३० शक्तिकी २ गोलियाँ आधा औंस चुआये हुए पानी (Distilled water)-में गलाकर पिला दीजिये तथा चार दिनतक दूसरी कोई दवा न दीजिये। आप इसीसे देखेंगे कि रोग बहुत अंशोंमें घट गया।

यदि बच्चा खाँसते-खाँसते दस्त, उलटी कर देता है तो 'इपिकाक' (Ipecac) ६ शक्तिकी ८ गोलियाँ २ औंस चुआये हुए पानीमें गलाकर दिनमें चार बार दीजिये इसीसे बच्चा आरोग्य हो जायगा।

यदि खाँसीका बार-बार तेज दौरा हो, मुँह या नाकसे खून निकले, चेहरा नीला पड़ जाय तो कोरेलियम रुब्रम (Coraleium Rubrum) ३ शक्ति २ बूँद ४ औंस चुआये हुए पानीमें, जबतक खाँसीका दौरा न घटे, २-२ घंटेसे एक-एक चम्मच देते रहें।

यदि गलेमें घर-घर आवाज हो, हिलने-डोलनेसे खाँसी बढ़े, बच्चा दाँत कड़कड़ाये तो सिना (Cina) ३० शक्तिकी ८ गोलियाँ ४ औंस चुआये हुए पानीमें गलाकर दिनमें चार बार दें।

यदि खाँसी आधी रातके बाद बढ़े, गलेमें दर्द रहे तो बेलेडोना (Balladona) ३० शक्तिकी ४ गोलियाँ २ औंस चुआये हुए पानीमें गलाकर चार बार दें।

इसके अतिरिक्त कूप्रम मेट, ब्रोमियम, नेप्थेलिन आदि दवाएँ भी इस खाँसीमें फायदा करती हैं।

दवा लेते समय चर्बीयुक्त पदार्थ, घी या तेलमें तली चीजें, सड़े-गले फल, गरिष्ठ पदार्थ, आइसक्रीम, पिपरमिंटकी गोलियाँ आदि न देनी चाहिये। यदि बच्चा माताका दूध पीता हो तो उसकी माताको भी उपर्युक्त पथ्यसे रहना चाहिये। खुशबूदार तेल, सेंट, क्रीम, पाउडर आदिका व्यवहार बिलकुल बंद कर देना चाहिये। जिन बच्चोंको यह बीमारी हो उनके माता-

पिताका परम कर्तव्य है कि वे अपने बच्चोंको स्वस्थ बच्चोंमें न खेलने दें, जिससे कि रोग दूसरोंको न फैल सके। बच्चा स्कूल जाता हो तो उसे स्कूल न जाने दें।

यदि उपर्युक्त बातोंका पूर्णरूपेण पालन किया गया तो निश्चय ही इस भयंकर बीमारीसे छुटकारा मिल सकता है। विशेषकर रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें होमियोपैथिक पद्धतिसे उपचार किया गया तो आठ-दस दिनमें रोगी अच्छा हो जायगा।

पेटके कीड़ोंका उपचार

(डॉ० श्रीराजेश्वरप्रसादजी गुप्त)

कुपथ्यवश मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारके कृमि (कीड़े) पड़ जाते हैं, जिनके कारण अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं, उन्हींको कृमि-रोग कहा जाता है। आयुर्वेदमें इनके ९ भेद कहे गये हैं तथापि मुख्य भेद दो ही होते हैं—(१) बाहरी कृमि तथा (२) भीतरी कृमि। अजीर्णमें भोजन, सड़ा-गला-बासी भोजन, कुपथ्य भोजन, दिनमें सोना, दूध और मछली, दूध तथा दही, दूध और केला आदि नित्य मीठा तथा खट्टा भोजन एवं गरिष्ठ पदार्थोंका सेवन आदि इस रोगके प्रमुख कारण हैं।

लक्षण—शरीरके भीतर कृमि उत्पन्न हो जानेपर ज्वर, पेटमें शूल, हृदयमें दुःख, जी-मिचलाना, वमनेच्छा, चक्कर आना, दस्त, भोजनमें अरुचि एवं त्वचाका रंग बदल जाना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। बाहरी कृमि शरीरमें खाज, खुजली, दाद, कोढ़, गाँठ, गलगण्ड आदि उत्पन्न करते हैं।

यहाँ भीतरी कृमियोंकी चिकित्साका उल्लेख किया जा रहा है। छोटे बच्चोंके पेटमें भीतरी कीड़े अधिक होते हैं। ये कीड़े आकारमें अत्यन्त छोटे, सफेद रंगके तथा ३६ इंचतक लम्बे केंचुएके आकारवाले भी होते हैं। पाश्चात्त्य-चिकित्साके मतसे ये कीड़े सात किस्मोंके होते हैं, जिनमें तीन प्रकारके कीड़े अधिक पाये जाते हैं—

(१) चुरने या पिब वर्म या थ्रेड वर्म—ये सूत जैसे पतले तथा आधा अंगुल लम्बे होते हैं। ये बड़ी आँतमें रहते हैं तथा रेंगकर गुदापर आ जाते हैं, जिसके कारण गुदास्थानपर खुजली होती है। इनकी अधिकता हो जानेपर अनिद्रा, मिरगी, कम्प, काँच निकलना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। छोटे बच्चे नींदसे चौंक पड़ते, रोते-चिल्लाते, वमन तथा पतले दस्त करते एवं पेशाब करके बिस्तर भिगो देते हैं। ये कीड़े जब बड़ी आयुवाले स्त्री-पुरुषोंको भी हो जाते हैं तो पुरुषोंमें प्रमेह, स्वप्नदोष तथा स्त्रियोंमें योनिसे श्वेत पदार्थका स्राव आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

(२) कद्दू दाने अथवा 'टेप वर्म' नामक कीड़े विभिन्न आकारोंके एकसे दो इंच लम्बे तथा बड़े कीड़े पाँचसे आठ इंच लम्बे होते हैं। ये कीड़े अधिकतर मांसाहारियोंके शरीरमें होते हैं। इनके कारण जठराग्नि मंद पड़ जाती है, भूख कम लगती है, त्वचा रूखी हो जाती है, पेटमें दर्द तथा ऐंठन एवं पतले दस्त आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

(३) केंचुए अथवा 'राउण्ड वर्म' नामक कीड़े कुछ पीले-मटमैले रंगके ५ से १४ इंचतक लम्बे होते हैं। ये प्रायः छोटी आँतमें रहते हैं, परंतु कभी-कभी आमाशय, जिगर, फेफड़े आदिमें भी प्रवेश कर जाते हैं। इनके कारण पेटमें दर्द-सा होता रहता है, पेट बढ़ जाता है, भूख तथा नींद कम लगती है, चेहरा पीला पड़ जाता है, दस्तमें आँव आती है, प्यास अधिक लगती है तथा मुँहसे खून आना, खाँसी, यकृतशोथ, पीलिया, मूर्च्छा आदि लक्षण भी प्रकट होते हैं।

कृमिरोगमें निम्नलिखित आयुर्वेदिक योग देनेसे लाभ होता है—

(१) जैतूनके कच्चे तेलको गुदामें तीन दिन लगानेसे बच्चोंके कृमि मर जाते हैं।

(२) एक माशा कमीलाको आधी छटाँक पानीमें औटायें, आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तो उतारकर छान

लें तथा बालकको पिला दें, इससे थ्रेड वर्म गिर जाते हैं।

(३) बच्चोंको ६ ग्राम नारियलका तेल पिलानेसे उदर-कृमि निकल जाते हैं।

(४) छोटी दुद्धीका चूर्ण खानेसे बच्चोंके उदर-कृमियोंका नाश हो जाता है।

(५) नीमके पत्तोंका रस शहद मिलाकर चाटनेसे पेटके कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(६) बथुएका अर्क निकालकर पीनेसे भी पेटके कीड़े मर जाते हैं।

(७) मट्ठेमें ३ माशा अजवायनका चूर्ण मिलाकर पीनेसे पेटके कीड़े मरकर बाहर निकल जाते हैं।

(८) नारियलका खोपरा खानेसे उदरके चपटे कृमियोंका नाश होता है।

(९) एक सप्ताहतक कच्ची गाजर खाते रहनेसे कृमि मर जाते हैं।

(१०) पपीतेके ५-७ बीज ताजे पानीके साथ खानेसे ५ दिनमें पेटके कीड़े मर जाते हैं।

(११) सूरजमुखीके साढ़े तीन माशा बीजोंको पीसकर खानेसे पेटके कीड़े मर जाते हैं और दर्द भी ठीक हो जाता है।

दिलकी बीमारियोंमें उपयोगी है योगाभ्यास एवं शाकाहार

(श्रीमती वीणाजी श्रीवास्तव)

दिलकी बीमारियाँ दिन-पर-दिन अपना जाल फैलाती जा रही हैं। तथाकथित आधुनिकताके अनुसरणके साथ-साथ लोग शारीरिक विशेषरूपसे दिलसे सम्बन्धित रोगोंसे ग्रस्त हो कष्ट पा रहे हैं। आजका अनियमित और अनियन्त्रित भोजन भी इसमें नुकसान पहुँचाता है। इस क्षेत्रमें किये गये अनेक अनुसंधानोंसे पता चलता है कि शाकाहारी भोजन, नियमित योगाभ्यास तथा संयमित दिनचर्या दिलकी बीमारियोंसे बचाये रख सकते हैं। इतना ही नहीं, यह भी पाया गया है कि आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियाँ दिलके रोगीके लिये फायदेमंद होती हैं।

ओहियो विश्वविद्यालय अमेरिकामें शोधरत भारतीय मूलके वैज्ञानिक डॉ० शर्मा आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों एवं भारतीय शाकाहारी भोजनपर अनुसंधान कर रहे हैं। अपने शोधोंके आधारपर ही उन्होंने उपर्युक्त निष्कर्ष निकाले हैं। डॉ० शर्माका कहना है कि आयुर्वेदरसायन खून और रक्तवाहिनियोंमें विद्यमान लिपिड नामक रसायनका आक्सीकरण रोकते हैं। लिपिडके आक्सीकरणसे ही धमनियाँ कड़ी होती हैं, इसीसे खूनमें थक्का बननेकी प्रक्रिया तेज होती है और दिलका दौरा पड़ता है।

डॉ० शर्माका कहना है कि लिपिड नामक रसायनके आक्सीकरणकी रफ्तार तेज करनेमें धूम्रपान, मद्यपानके साथ ही तनावकी सबसे बड़ी भूमिका रहती है। उन्होंने बताया कि योगकी सुगम शैली भावातीत ध्यानके अभ्याससे मानसिक और अन्य तनाव दूर होते हैं। अपने शोधोंसे प्राप्त निष्कर्षका विवरण देते हुए वे कहते हैं कि भावातीत ध्यान करनेवाले लोगोंमें लिपिड नामक रसायनके आक्सीकरणकी गति बारह प्रतिशततक कम हो जाती है।

शाकाहार एवं मांसाहारकी तुलनासे सम्बन्धित शोधमें वे बताते हैं कि मांसाहारसे शरीरको प्राप्त होनेवाली चर्बी और वसाअम्ल शरीरके खूनमें थक्का बननेकी प्रक्रिया और कोलेस्ट्रॉलको बढ़ानेवाली होती है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि मांसके वसा अम्ल लम्बी कार्बन-शृंखलावाले होते हैं।

यह रोचक तथा कटु सत्य है कि जैसे-जैसे शुद्ध घीके विकल्पोंको अपनानेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है वैसे-वैसे हृदयरोग भी बढ़ रहे हैं। इसलिये डॉक्टरोंकी यही सलाह है कि भोजन शाकाहारी लिया जाय और नियमित योगाभ्यास किया जाय तो दिलकी बीमारियोंको दूर किया जा सकता है।

कायाकल्प

(आचार्य श्रीगङ्गारामजी शास्त्री)

श्रीमद्भगवद्गीता (२।२२)-में कहा गया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

'जिस प्रकार मनुष्य पुराना वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार देह जिसका अधिष्ठानमात्र है, वह देही नया देह ग्रहण कर लेता है।' इस नवीन देह-धारणको पुनर्जन्म कहा जाता है। यदि इसी शरीरको नया कर लिया जा सके तो उसे 'कायाकल्प' कहा जाता है।

'कायाकल्प' अथवा चोला बदलनेकी एक विधि परकायप्रवेशका वर्णन भी शास्त्रोंमें आता है। भगवान् शङ्कराचार्यजीका परकायप्रवेशका आख्यान मिलता है। पॉल ब्रण्टनने लिखा है कि एक बार जब वह आसामकी ओर जा रहा था तब मार्गमें उसे एक वृद्ध योगी मिला। आगे एक शव पड़ा हुआ था। उसने आश्चर्यके साथ देखा कि योगी वहीं गिरकर मर गया और वह शव उठकर चलने लगा। इन्दौरके प्रसिद्ध संत श्रीबर्फानी दादाकी आयु दो सौ वर्षसे अधिक बतायी जाती है। उन्होंने सन् १९३० में कायाकल्प किया था। वे कायाकल्पकी विधिके ज्ञाता भी कहे जाते हैं। नीम करौलीवाले बाबाका नाम, अनेक साधक जानते हैं, उन्होंने सन् १९७५ में परकायप्रवेशके द्वारा कायाकल्प किया था। परकायप्रवेशकी यह विधि केवल सिद्ध योगियोंकी जानकारीका विषय है। यहाँ केवल उस विधिपर विचार किया जा रहा है, जिसके द्वारा इसी शरीरको नया किया जा सकता है और वृद्धावस्थाके चिह्न जैसे—केश श्वेत होना, दाँत गिर जाना और त्वचापर झुर्रियाँ पड़ जाना आदि दूर होकर यह शरीररूपी पुराना वस्त्र फिरसे नवीन-जैसा हो जाता है।

प्रायः देखनेमें आता है कि अनेक बालकोंके बाल किशोरावस्थाको प्राप्त होते-होते सफेद होने लगते हैं। साथ ही विशेष औषधिके प्रयोगसे पुनः जड़के केश काले निकलने लगते हैं। कुछ औषधियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनके सेवनसे ढलती वयमें आनेवाली शारीरिक शिथिलता रुक जाती है, शरीरमें नवीन स्फूर्तिका सञ्चार होने लगता है। ऐसी औषधियोंको वाजीकरण और रसायनके नामसे जाना जाता है। रसायनसंज्ञक औषधियोंके सेवनसे शरीरमें नया रक्त-सञ्चार होकर बल, वीर्यकी वृद्धि होती है तथा कमजोर होती हुई स्मरणशक्ति ठीक होने लगती है।

गुडूची या गिलोयको 'अमृता' कहा जाता है। इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें प्रसिद्धि है कि लङ्कामें युद्धकी समाप्तिपर श्रीरामके मृत सेनानायकोंको जीवित करनेके लिये इन्द्रने अमृतवर्षा की थी, जिससे रीछ और वानर जीवित हो गये थे। उसी अमृतकी बूँदोंसे जो लता उत्पन्न हुई, उसे गुडूची या गिलोय कहा जाता है। अमृत-बिन्दुओंसे उत्पन्न होनेके कारण उसमें तदनुकूल गुण भी पाये जाते हैं। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें कहा गया है—

गुडूच्या स्वरसः पेयो मधुना सह मेहजित्।

गुडूचीका स्वरस शहदके साथ पीनेसे प्रमेह नष्ट हो जाता है। यह मात्र प्रमेहनाशक ही नहीं है। इसके स्वरसके साथ यदि 'वसन्त कुसुमाकर' की एक गोली मिलाकर मधुके साथ चालीस दिन सेवन किया जाय तो शरीरकी कान्ति बढ़ती है, गलेके रोग दूर होकर स्वर अत्यन्त मधुर हो जाता है, बल-वीर्यकी वृद्धि होती है। शरीरमें नवीन रक्त-सञ्चार होता है। परंतु औषधिसेवनके समय सात्त्विक भोजन और ब्रह्मचर्यका पालन करना अनिवार्य है।

कायाकल्पके लिये भृङ्गराज महौषधि है। इसे कहीं-कहीं घमरा और भँगरा भी कहा जाता है। केश काले करनेके लिये बाजारमें 'भृङ्गराज-तेल' मिलता है। इसके सम्बन्धमें कहा गया है—

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति
दिने दिने भृङ्गरजः समुत्थम्।
क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः
समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति॥

जो लोग एक महीनेतक प्रतिदिन भृङ्गराजका स्वरस पान करते और भोजनमें केवल गायका दुग्ध लेते हैं, वे बलिष्ठ तथा कान्तियुक्त होकर सौ वर्षतक जीवित रहते हैं। जहाँ नील पुष्पवाला, कासनी रंगके तनेवाला घमरा उत्पन्न होता है, उसका ही स्वरस पीनेका विधान किया गया है।

केशोंको काला रखनेमें काले तिल भी लाभदायक होते हैं। इसके लिये कहा गया है—

असिततिलविमिश्रान्पल्लवान्भक्षयेद्यः
सतत सुपय आशी भृङ्गराजस्य मासम्।
भवति च चिरजीवी व्याधिभिर्विप्रमुक्तो
भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः॥

जो व्यक्ति एक मासतक भृङ्गराजके कोमल पत्तोंको काले तिलोंके साथ मिलाकर भक्षण करता है, वह सर्वरोगरहित होकर चिरजीवी हो जाता है। उसके केश भौंरेके समान काले हो जाते हैं। उसे औषधि-सेवनकालमें केवल गोदुग्धका पान करना चाहिये।

आँवला भी बल-वीर्यवर्द्धक और व्याधिनाशक रसायन है। इसलिये उक्त योगके साथ आँवला मिलानेसे वह अधिक गुणकारी हो जाता है। कहा गया है—

धात्रीतिलान्भृङ्गरसे विमिश्रान्ये
भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च
निर्व्याधयोऽप्यामरणाद्भवेयुः ॥

आँवलेका चूर्ण, काले तिलमें मिलाकर जो घमराके रसके साथ सेवन करते है, उनके बाल काले ही रहते हैं, उनकी इन्द्रियाँ विमल रहती हैं अर्थात् उनकी दृष्टि, श्रवणशक्ति ठीक काम करती है, त्वचा, घ्राण और वाणीके विकार नहीं होते, वे आजीवन रोगरहित रहते हैं, उन्हें कोई भी व्याधि नहीं सताती।

भृङ्गराजके कोमल पत्ते और उसका रस सदा सुलभ नहीं रहता। अतः एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकके अनुसार आँवला, काला तिल और भृङ्गराजके पञ्चाङ्गसे कायाकल्प करनेकी जो औषधि दी गयी है, उसका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

घमरा बीस तोला, काला तिल बीस तोला तथा आँवला दस तोला ले। फिर सबको पृथक्-पृथक् पीस-छानकर उनमें चालीस तोला पुराना गुड़ अथवा शक्कर मिलाकर प्रतिदिन प्रातः एक तोलाकी मात्रासे सेवन करे तो सर्वरोग दूर हो जाते हैं। अगर एक वर्ष खाये तो अंधा देखने और गूँगा बोलने तथा बहरा सुनने लगता है। सफेद बाल काले हो जाते हैं। जिसके दाँत गिर गये हैं, उसको फिरसे दाँत आ जाते हैं एवं आयु दीर्घ होती है। बल, वीर्य और बुद्धि बढ़ती है। उक्त प्रयोग परीक्षित है। इसके सेवनकालमें यद्यपि केवल दुग्धपानका विधान है, पर जिन्होंने इसका प्रयोग किया उन्होंने केवल दूध-भातका ही सेवन किया था। इस प्रयोगसे शरीरकी झुर्रियाँ मिट जाती हैं। श्वेत केश जड़से काले निकलने लगते हैं, श्रवणशक्ति ठीकसे काम करने लगती है। वाणी-विकार दूर होते हैं। स्मरणशक्ति अद्भुत हो जाती है, नेत्र-ज्योति भी बढ़ने लगती है। (तोलेकी तौलको लगभग दस ग्रामके बराबर मान लेना चाहिये।)

परीक्षणार्थ भी इसका प्रयोग आसानीसे किया जा सकता है। एक महीना सेवन करनेके पश्चात् लाभ होने लगता है। सभी प्रकारके उदरामय ठीक हो जाते हैं। तीन महीने सेवन करनेसे वाणी अत्यन्त मधुर हो जाती है। स्मरण-शक्ति बढ़ने लगती है। शारीरिक पीड़ा, जोड़ोंका दर्द, अनिद्रा और चिड़चिड़ापन मिट जाता है।

इसी प्रकार कायाकल्पका एक सरल प्रयोग और दिया जा रहा है, इसे एक वर्षतक सेवन कराके परीक्षण तो नहीं कराया गया, परंतु जिन्होंने सेवन किया, उन्हें उस समयावधिमें प्राप्य लाभ अवश्य मिल सका है। इसे सिद्धमोदक कहा गया है—

हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल—प्रत्येक बारह तोला; गिलोय, वायविडंग, पीपरामूल गाँठवाला, गठौना, लाल चितावरकी जड़—प्रत्येक आठ-आठ तोला तथा देशी अश्वगन्ध बीस तोला ले। बहेड़ा और आँवलेसे बीज निकाल दे, अश्वगन्धका केवल श्वेत भाग लें जड़से ऊपरके भागको अलग कर दे। सभी औषधियोंको कूट, पीस और कपड़छान करके उसमें दो सौ तोला पुराना गुड़ मिलावे। इस औषधिकी ३६० गोलियाँ बना ले। नित्य प्रातःकाल एक-एक गोली एक

वर्षतक सेवन करनेसे अच्छी वाणी, बल, वर्ण, खाँसी, कफ, दमाके रोग दूर होना, वीर्यवान् होना, सफेद बाल काले होना, झुर्रियाँ मिट जाना, सर्वाङ्ग सुन्दर होना, अत्यन्त बल बढ़ना, शतायु होना आदि फल दिखते हैं।

इसके सेवनकालमें पथ्यापथ्यका विशेष विचार नहीं किया जाता। भूख स्वयं ही बढ़ने लगती है और जो भी खाया जाय उसका ठीकसे पाचन होता है। अम्लपित्त और दाह शान्त हो जाते हैं। इसकी एक गोली दस ग्रामके स्थानपर पाँच ग्रामकी लेनेपर भी उतना ही लाभ होता है। एक तोलाकी मात्रा तो पूर्ण बलिष्ठ पुरुषके लिये है।

दमा, खाँसी और यक्ष्माके रोगियोंको इसका सेवन उपयोगी नहीं पाया गया, अतः उनके लिये दूसरा प्रयोग दिया जा रहा है। इस रोगवालोंको प्रायः 'सीतोपलादि चूर्ण' अथवा 'तालीसादि चूर्ण' के अनुपानके साथ औषधि दी जाती है। एक वयोवृद्ध वैद्यसे यह नुसख़ा मिला है, जिसे सितोतालीसा कहा जा सकता है। यह प्रयोग अनेक रोगियोंपर सुपरीक्षित है—

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, वंशलोचन, काकड़ासिंगी, छोटी इलायची, दालचीनी, नागरमोथा, तालीसपत्र, कमलगट्टा—ये दस औषधियाँ समभाग लेकर कूटकर कपड़छान कर ले। उसमें समभाग मिस्री मिलाये। बाजारमें सोंठके नामपर केवल सुखाया हुआ अदरक मिलता है, अतः सतुवा सोंठ ले। वंशलोचन तो असली अप्राप्य ही है, अतः अच्छे-से-अच्छा जो भी उपलब्ध हो उसे ले। तालीसपत्र भी दो प्रकारका आता है, इमलीकी पत्ती-सा सुगन्धित ही ले, कमलगट्टाका काला छिलका निकाल दे, भीतरका हरा भाग भी निकालकर तौल करे। इस चूर्णके साथ अर्जुन-छालका चूर्ण और मुक्ता पञ्चामृत मिलाकर मधुके साथ सेवन करनेसे यक्ष्माके रोगी ठीक हो जाते हैं। खाँसी और दमाके रोग भी इसके सेवनसे ठीक हो जाते हैं।

हरिनामस्मरण तापत्रयका नाशक है

आधयोर्व्याधयोर्यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात्। तदेव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम्॥
अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् । नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥
सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्। शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
न साम्ब व्याधिजं दुःखं हेयं नान्यौषधिरपि। हरिनामौषधं पीत्वा व्याधिस्त्याज्यो न संशयः॥
आत्यन्तिकं व्याधिहरं जनानां चिकित्सितं वेदविदो वदन्ति। संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

जिसके स्मरणसे तथा नाम-संकीर्तनसे मानसिक और शारीरिक बाधाएँ तत्काल विनष्ट हो जाती हैं उस अनन्तको मैं प्रणाम करता हूँ।

अच्युत, अनन्त, गोविन्द इनके नामोच्चारणरूप भेषजसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मेरा वचन सत्य है, सत्य है।

हरिनाम-संकीर्तन सब रोगोंका उपशमन करनेवाला, सब उपद्रवोंका नाश करनेवाला और सब अरिष्टोंकी शान्ति करनेवाला है।

हे साम्ब! व्याधियोंसे उत्पन्न दुःख अन्य औषधियोंसे दूर होनेवाला नहीं है। हरिनामरूपी-औषधि पीकर ही वह दूर होता है इसमें संदेह नहीं है।

वेदवेत्ताओंका कहना है कि गोविन्द, दामोदर और माधव—यह भगवन्नाम मनुष्योंके अत्यन्त घातक रोगोंका हरण करनेवाला भेषज और संसारके (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन) त्रिविध तापोंका नाश करनेवाला बीजमन्त्र है।

भावरोगका संक्षिप्त विवेचन

(आयुर्वेदचक्रवर्ती श्रीताराशंकरजी वैद्य)

एक अमेरिकनने लिखा है कि 'यदि भावरोग समूल नष्ट न हो सका तो उत्तम स्वास्थ्यकी क्या उपयोगिता है? यह जन्म और मृत्युका रोग है तथा समस्त बीमारियोंकी जड़ है।'

प्रश्न मार्मिक है। इसपर संक्षेपमें यहाँ विचार किया जा रहा है।

भव-(ईश या शक्तिमान्)-के भावको 'भाव' कहते हैं और उसके पर्यायवाची शब्द ये हैं—सत्ता, स्वभाव, अभिप्राय, चेष्टा, आत्मा, जन्म, क्रिया, लीला, पदार्थ, बुध, जन्तु और विभूति एवं रति आदि।[1]

उपर्युक्त सभी शब्दोंके पृथक्-पृथक् अर्थ हैं। मूल भाव शब्द विद्वान् या ज्ञानवान्के अर्थमें प्रयुक्त है। तात्पर्य है कि शक्ति, सत्ता, विभूति और ज्ञान (भाव)-के रोगको 'भावरोग' कहते हैं। यहाँ गीताका आधार लेकर आयुर्वेददृष्ट्या उसका संक्षिप्त वर्णन उपस्थित है।

निदान

भावरोगके मुख्य कारण ये हैं—

अहंकार—किसीकी परिस्थितिपर विचार न करना, सभी कामोंका कर्ता अपनेको समझना, अधिकार जमाना, कठोर एवं क्रोधयुक्त वचन बोलना आदि कार्य अहंकारके कारण पुरुष करता है।[2]

नास्तिक्य—'परलोक है', 'ईश्वर एवं गुरुजन श्रेष्ठ हैं' ऐसा न समझनेसे समर्पण-बुद्धि समाप्त हो जाती है। परिणामत: उच्छृङ्खलता आ जाती है, जो सर्वपातकोंकी मूल है।[3]

प्रज्ञापराध—अहंकारी मात्र अपनेको ही श्रेय देता है। असफलताका दोष अन्योंपर मढ़ता है। तब उसका अहंकार बढ़ने लगता है। दूसरी ओर कटुता भी बढ़ती है। तथाकथित कर्ताकी बुद्धि मारी जाती है। बुद्धिका अपराध (प्रज्ञापराध) इसीको कहा गया है। इसके तीन भेद हैं—धी-विभ्रंश (बुद्धिनाश), धृति-विभ्रंश (धैर्यनाश) और स्मृति-विभ्रंश।[4]

ध्यान रहे कि अहंकार, नास्तिक्य एवं प्रज्ञापराधका परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है। ये परस्पर जनक और पूरक हैं। प्रज्ञापराधके तीनों भेदोंकी भी यही स्थिति है। प्रज्ञापराधी अपनेको सर्वथा सर्वश्रेष्ठ समझता है। वह बड़ा दुराग्रही भी होता है।

प्रज्ञापराधके कारणोंके निम्नलिखित कारण भी आते हैं—

दुस्साहस एवं नारियोंका अतिसेवन, ठीक समयको खो देना, कर्मोंका मिथ्यारम्भ, सदाचारका लोप, पूज्योंका अपमान, जान-बूझकर अहितकर कार्य करना, अनवसर और अदेशमें गमन, पतितोंसे मित्रता, सद्वृत्तका पालन न करना एवं दूसरोंको मना करना, ईर्ष्या-मान-भय-क्रोध-लोभ-मोह-मद-भ्रम और इनसे उत्पन्न मानसिक-शारीरिक कठिन कर्म करना।

सम्प्राप्ति

उपर्युक्त कारणों एवं विषयोंका ज्ञानेन्द्रियों और मनसे स्पर्श होता है। ये स्पर्श सभी दु:खोंके प्रवर्तक होते हैं। सुख-दु:खसे इच्छा-द्वेषात्मिका तृष्णा उत्पन्न होती है, जो सुखों एवं दु:खोंका कारण भी कही गयी है[5]—

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

(गीता २।६२-६३)

अर्थात्—उपर्युक्त कारणों एवं विषयोंकी ओर बराबर ध्यान रहनेसे उनमें संग या लगाव उत्पन्न होता है। संगसे कामना या तृष्णा होती है। कामनापूर्ति न होनेपर क्रोध होता है। क्रोधसे सम्मोह और सम्मोहसे स्मृतिविभ्रम

१-'अमरकोश', प्रथम काण्ड, नाट्यवर्ग (रामाश्रमी)। २- गीता एवं चरक। ३- चरक सू०अ० ११।१५।
४- चरक शारीर० अ० १। ५- चरक शारीर अ० १।१३३-१३४

हो जाता है। परिणामत: वह अपनेको, अपने कुल, जाति, समाज, देश और मान-मर्यादा आदिको भूल जाता है, तत्त्वज्ञानकी याद समाप्त हो जाती है, उसे अतत्त्वाभिनिवेश (महागद-चरक चि०अ० १०) हो जाता है। स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिका नाश हो जाता है और अन्तत: प्रणाश—अच्छी तरह नाशकारी भावरोग हो जाता है।

सामान्य लक्षण

भावरोगी अपनेको बड़ा शक्तिशाली मानता है। आसुरी सम्पत्तिके लक्षण एवं चरक-शारीर-स्थान अध्याय एकमें प्रज्ञापराधके लक्षण भावरोगके सामान्य लक्षण हैं। भावरोगीकी एक विशेषता यह है कि वह देखनेमें स्वस्थ होगा, परंतु स्वयं बेचैन रहेगा और समाजको भी बेचैन किये रहेगा। दुराग्रही और दृढ़-निश्चयी होता है। अल्पश्रमसे फल भरपूर चाहता है। अन्तत: लक्ष्यसिद्धि या प्रतिकारके लिये अवाञ्छनीय कर्म करता है। कर्मका विपाक होने या अतिशय होनेपर फँस जाता है, तब प्रणाशको प्राप्त होता है। भावरोगी समझता है कि दूसरे न कुछ जानते हैं और न कुछ कर सकते हैं।

चिकित्सा

भावरोगके चिकित्सककी प्रज्ञाका प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। सच्चे अर्थमें संन्यासी भावरोगकी उत्तम चिकित्सा कर सकते हैं; पर उनका मिलना कठिन है। यथासम्भव आप्त-शिष्ट चिकित्सकोंको भावरोगकी चिकित्सामें लगाना चाहिये। आप्त रजोगुण एवं तमोगुणरहित होता है, सर्वदा सत्य और संदेहरहित वाक्य बोलता है। भावरोगकी चिकित्सा सत्त्वविजय (मनपर विजय)-प्रधान होती है। सरल चिकित्सा-सूत्र और साधन ये हैं—

(१) निदान-परिवर्जन, (२) विचार-परिवर्जन, (३) विचार-विरेचन, (४) समर्पण, (५) परिणाम-ज्ञापन और (६) युक्त्याश्रयण।

याद रखें, कोई भी चिकित्सा (दण्ड-व्यवस्थाके अतिरिक्त) होनेपर भावरोगीको यह अनुभव न हो कि उसके भावरोगकी चिकित्सा हो रही है। यह कार्य बड़े कौशलसे होना चाहिये।

(१) निदान-परिवर्जन—भावरोगकी सूक्ष्मताको जानकर मनोवैज्ञानिक ढंगसे उसे कारणोंसे विरत करना चाहिये। स्थान-परिवर्तन अच्छा काम करता है। रोगीका अनादर, अवहेलना और अति आदर नहीं होना चाहिये। रोगीके संरक्षकका अकस्मात् अपंग या मानसरोगी हो जाना अथवा मर जाना स्वत: निदान-परिवर्जन कर देता है। परनारी-सेवनकी भावना, अपनी बहू-बेटीसे हुई तथा कथित व्यभिचार (बलात्कार नहीं)-के समाचारसे नष्ट हो जाती है। कतिपय आकण्ठलिप्त कामाचारी (मैनियाक) शरीर-रचनादोषसे ग्रस्त होते हैं। उनपर इसी दृष्टिसे विचार होना चाहिये।

(२) विचार-परिवर्जन—तमोगुणक रजोगुण, रजोगुणको सत्त्वगुण एवं तमोगुण तथा रजोगुण दोनोंको सत्त्वगुणसे जीतना चाहिये। यहाँ गुणसे तात्पर्य गुणोत्पन्न विचारसे है। मेरा हित किसमें है? इस प्रश्नके उत्तरमें विचार करना आवश्यक है। तमोगुणके अन्धकारसे रजोगुणमें आनेपर रोगीको मानसिक झटका लगता है कि मैं क्या हूँ? तब सत्त्वगुणात्मक विचार-परिवर्जन होता है।

आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।
और,
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥
—का अनुकरण करता है।

(३) विचार-विरेचन—परिवर्तित विचार पुन: उभड़कर भावरोग उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिये उनका विरेचन प्रायश्चित्त, दण्ड और विशेष सत्त्वगुणके उद्रेकसे करना चाहिये। अहितकर या भावरोगोत्पादक विचारोंके स्थानपर संन्यास (काम्य कर्मोंका त्याग) और स्वास्थ्यकर विचार काम करने लगते हैं। प्रायश्चित्तमें पछतावा एवं धार्मिक अनुष्ठान, दण्डमें शासकीय सामाजिक-आर्थिक दण्ड आदि परिगणित होते हैं। किस प्रकारसे विचार-विरेचन होगा—यह परिस्थितियोंपर निर्भर है।

(४) समर्पण—विवेकपूर्वक किसी देव, व्यक्ति, समष्टि और उद्देश्य (संकल्प)-के प्रति समर्पित भावना तथा उसका चिन्तन भावरोगको नष्ट करता है। याद रखें, समर्पणका परिणाम भावरोग-नाश तो है ही, पर इससे आत्मोदय और आत्मनाश दोनों हो सकता है। सब कुछ समर्पणके क्रम, प्रकार और परिस्थितिपर निर्भर है। याद रखें, यहाँ आस्तिकता या जी-हुजूरी होती है। भारतने ब्रहुत सोच-समझकर आस्तिकताको पुण्य और नास्तिकताको पातक माना है।

(५) परिणाम-ज्ञापन—'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' के अनुसार कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है। यह भावना रोगीके हृदयमें आ जाय तो भावरोग दूर हो जाता है। परिणाम-ज्ञापनका प्रभाव उसके क्रम, प्रकार एवं कालपर निर्भर करता है। त्रुटि होनेसे रोग तो बढ़ता ही है, चिकित्सा और चिकित्सकके प्रति उपेक्षा और क्रोध उत्पन्न हो जाता है। इसलिये परिणाम-ज्ञापनमें शीघ्रता नहीं होनी चाहिये। रोगीके पुत्र या पत्नी आदिपर घटित अप्रिय घटनाओंका कारण उसके कर्मोंपर नम्रतापूर्वक थोपनेसे लाभ होता है। भारतमें रावण और दुर्योधन तथा विदेशोंमें हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन आदि प्रसिद्ध उदाहरण रखने योग्य हैं। बड़े-से-बड़े डाकूका अन्त दुःखद होता है। भावरोगीके कर्मोंका परिणाम उसे और उसके प्रिय परिवारको अवश्य भुगतना पड़ेगा—यह विवेकपूर्वक ज्ञापित कर देना चाहिये।

(६) युक्त्याश्रयण—ऊपर भावरोगकी दैवबल व्यपाश्रय एवं सत्वावजय-चिकित्सा बतायी गयी है। अब आयुर्वेददृष्ट्या युक्ति-व्यपाश्रय-चिकित्सा वर्णित होगी। यह ध्यान रहे कि भावरोग मूलतः मानस-व्याधि है। उसमें ज्ञान-विज्ञान-धैर्य-स्मृति-समाधिसे सत्वावजय-चिकित्सा प्रभावकारी होगी। यह भी ध्यातव्य है कि कामसे वायु कुपित होता है। कफसे लोभ होता है और क्रोधसे पित्त कुपित होता है, तब खून खौलने लगता है। दिमाग गरम हो जाता है। आँखें लाल हो जाती हैं। काम और भयमें मांसपेशियोंके संकोचसे रोमाञ्च होता है। कुल मिलाकर मानस-दोषसे शारीरिक दोष एवं दृश्य प्रभावित होते हैं। अतः युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा भी करें। अतत्त्वाभिनिवेश और अपस्मारमें कही गयी चिकित्सा वमन-विरेचनको छोड़कर भावरोगमें लाभदायी होती है। यथासम्भव सौम्य और बुद्धिवर्धक प्रयोग करना चाहिये।

ओषधियाँ—पञ्चगव्य या महापञ्चगव्यघृतमेंसे किसी एकको ५ ग्रामसे लेकर १० ग्रामकी मात्रातक प्रातः ८ बजे और अपराह्न ४ बजे ब्राह्मीस्वरस २० ग्राम या शंखपुष्पी स्वरस २० ग्रामके अनुपानसे देनेसे लाभ होता है। केवल मीठा बच या मीठा कूटका चूर्ण १ ग्रामकी मात्रासे प्रातः-सायं उपर्युक्त अनुपानोंसे प्रयोग करनेसे भी लाभ होता है।

उत्तम कपूर बरास (अभावमें देशी ढोंकावाला कपूर) लोभ-काम-क्रोध (कफ, वात, पित्त)-में लाभदायी है। १२५ मि० ग्रा०से लेकर २५० मि०ग्रा० तककी मात्रा दिन-रातमें एक बार या दो बार पर्याप्त है। चीनी या पेड़ाके भीतर अथवा कैप्स्यूलमें डालकर सादा जल या उपर्युक्त किसी स्वरस १० ग्रामसे लेना चाहिये। ऊपरसे एक घण्टातक दूध नहीं पीना चाहिये। तीन दिनसे अधिक लगातार प्रयोग करनेसे नपुंसकता होगी, जो छोड़ देनेसे ठीक हो जायगी।

पथ्य—सादा सात्त्विक आहार, गोदुग्ध, घी, दही, छेना मधुर पदार्थ विशेष हितकारी हैं। सौम्य, नमकीन पदार्थ, दाल-भात, रोटी-तरकारी आदि भी पथ्य हैं। सद्वृत्तका अनुपालन, राग-द्वेषरहित विचार पथ्य है।

अपथ्य—राजस और तामस आहार, उष्ण, कटु, तीक्ष्ण, चरपरा, बासी, अपवित्र आहार, मांस-मदिरा अपथ्य हैं। एकान्तमें विपरीत लिंगी अपथ्य हैं। बुरे और अपराधी प्रवृत्तिके लोगोंसे बचना चाहिये।

साध्यासाध्य—नम्रता, आस्तिकता, समर्पण-भावना आदि लक्षणोंका उदय और चिकित्सा-सुलक्षण साध्य लक्षण हैं। इनके विपरीत और चिकित्साका उलटा परिणाम क्रूरता आदि दुर्गुणोंमें वृद्धि, मद्य, आमिषमें अधिक प्रवृत्ति असाध्य लक्षण हैं।

आरोग्य-लक्षण

सत्त्वलक्षणसंयोगो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु।
साध्यत्वं न च निर्वेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम्॥[1]

और भी—

आरोग्याद् बलमायुश्च सुखं च लभते महत्।
इष्टांश्चाप्यपरान् भावान् पुरुषः शुभलक्षणः॥[2]

याद रखें कि निर्वेदका तात्पर्य अनुत्साह और आत्मामें अनवज्ञासे है। भावरोगसे बचने और निकलनेके ये उपाय सम-सामयिक युगमें नितान्त आवश्यक हैं। मनुष्यका कल्याण भावरोगसे निर्मुक्त होकर वास्तविक स्वास्थ्यसे ही सम्भव है।

१-चरक० इन्द्रियस्थान १२।८७; २-चरक० इन्द्रियस्थान १२।८८।

'एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि'

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री सा०र०, रामायणी)

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें अनेक प्रकारके रोग होते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरमें भी अनेक प्रकारके रोग होते हैं। श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें श्रीगरुड़जी श्रीकाकभुशुण्डिजीसे कहते हैं—

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥

इसपर श्रीभुशुण्डिजी कहते हैं—

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥

मानसरोगोंका परिचय देते हुए सर्वप्रथम समस्त मानसरोगोंका मूल मोहको सिद्ध करते हुए वे कहते हैं—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।

अर्थात् समस्त व्याधियोंका मूल—आदि कारण मोह ही है और इसीसे सभी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। वास्तवमें अविवेकताका मूल कारण देहाभिमान—अज्ञान ही है। शोक अज्ञानसे होता है। शरीरादिमें अहंबुद्धि मात्र अज्ञानसे ही होती है—

'यदा नाहं तदा मोक्षो यदाऽहं बन्धनं तदा'।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥

जन्म-मरण-रूप संसार हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा आदि सभी मिथ्या अहंकार-भावके कारण ही होते हैं।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

जिस प्रकार स्थूल शरीर वात, पित्त तथा कफके आधारपर आधारित है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर भी कामरूपी वात, क्रोधरूपी पित्त तथा लोभरूपी कफके आधारपर स्थित है। इन्हीं तीनोंकी प्रधानतासे ही स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरकी समस्त व्यवस्था चलती है। इनकी समस्त क्रियाओं एवं व्यवस्थाओंका वर्णन मानसमें काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीके सम्मुख किया है। इनका क्रमशः परिचय दिया जा रहा है। सर्वप्रथम समस्त व्याधियोंका मूल मोहका वर्णन किया गया है तथा मोहसे अनेक प्रकारके उत्पन्न होनेवाले शूलोंका भी स्पष्टीकरण हुआ है। यथा—

तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

जिस प्रकार आयुर्वेदमें रोगोंका मूल कारण कुपित मलको बताया गया है—'**सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।**'

वैसे ही व्याधियों एवं मनोविकारोंका मूलहेतु मोह बताया गया है—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।

मोह अविवेकको कहते हैं, जिससे प्राणी अपने यथार्थ स्वरूपको भूलकर इस शरीरको ही आत्मा मानता है। अविवेकताका मूल कारण देहाभिमान ही है। देहाभिमानसे ही अज्ञान उत्पन्न होता है। जन्म, मृत्यु, जरा आदि अवस्थाएँ अज्ञानसे ही होती हैं। इसी कारण मोहको समस्त व्याधियोंका मूल कहा गया है।

दैहिक (बाह्य) रोग एवं उनके नाम—वात, पित्त, कफ, संनिपात, दाद-खुजली, क्षय, कुष्ठ, डमरुआ (गाँठका रोग), नहरुआ (नसोंका रोग), जलोदर, तिजारी, वातज्वर, शीतज्वर आदि।

एक साथ ही दैहिक तथा मानसिक रोगोंका लक्षण एवं प्रभाव—कामको वातरोग, लोभको कफरोग तथा क्रोधको पित्तरोग कहा गया है—

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

कामकी उपमा वातसे दी गयी है—यह कफ और पित्तको जहाँ ले जाता है, वहीं जाकर मेघकी भाँति वर्षा करता है। आयुर्वेदमें यही वर्णन किया गया है—

पित्तः पंगुः कफः पंगुः पंगवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्॥

काम-बात—कामका एक अर्थ है काम। इसे स्मर, मनसिज, मनोज आदि नामोंसे जाना जाता है। दूसरा अर्थ है कामना। इस लोकमें इसकी प्रसिद्धि अभिलाषा, मनोरथ, इच्छा, आशा आदि नामोंसे है।

प्रथम कामका अर्थ है स्मर। इसकी जगत्‌में बड़ी महिमा है। इसके बिना सृष्टिका कार्य ही नहीं चल

सकता। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥

शास्त्रीय परम्परानुसार इसका निर्वाह करनेसे लोक-परलोक दोनों ही बनते हैं। अमर्यादित रूपसे इसकी सर्वत्र निन्दा भी की गयी है।

काम (कामना)-का दूसरा अर्थ—विषयी प्राणीको रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श-सम्बन्धी नाना-प्रकारके मनोरथोंका होते रहना। उनकी पूर्ति आजतक संसारमें किसीको सर्वांशमें नहीं हो पायी। फिर भी प्रायः सभीको अहर्निश मनोरथ-चाहना सभी प्रकारसे होती चली आ रही है। गीताके द्वितीय अध्यायमें इसकी विशद व्याख्या की गयी है। विषयोंका चिन्तन करते-करते विषयोंमें आसक्ति हो जाती है। उससे उस विषय-प्राप्तिकी कामना, कामना न सिद्ध होनेपर क्रोध, क्रोधसे कर्तव्याकर्तव्यके विवेकका अभाव, उससे सत्कर्तव्य करनेकी स्मृतिका नाश, पश्चात् इन्द्रिय-विजयका विवेक नष्ट होनेसे आत्मज्ञान प्राप्त करानेवाली दृढ़ बुद्धिका नाश और अन्तमें बुद्धिनाश होनेपर विषयी संसार-सागरमें ही डूब जाता है।

वासना जिसके जीवनमें होती है, उसे दुःख देती है। एककी पूर्तिसे ही दूसरीका जन्म होता है। विषयी प्राणी सोचता है, हमने भोगोंको भोग लिया। वास्तवमें बात उलटी ही होती है। विषयोंने विषयी प्राणीको भोग लिया—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।

परम प्रतापी चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज ययातिने अपने जीवनका अनुभव गम्भीर रूपसे इस प्रकार वर्णन किया है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

अर्थात् विषयोंके उपभोगसे कामनाओंकी शान्ति नहीं होती, अपितु जलती हुई अग्निमें घी डालनेकी भाँति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। गोस्वामी तुलसीदास भी इसी बातको कहते हैं—

बुझै कि काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते।

इसकी शान्तिका एकमात्र उपाय है संतोष—

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

'कफ लोभ अपारा'—जैसे स्थूल शरीरमें कफका पार नहीं, वैसे ही मानसिक शरीरमें लोभका भी पार नहीं। विषय-प्राप्तिकी प्यासको ही तृष्णा कहते हैं। यह प्यास कभी भी मिटती नहीं। जितनी भी मिलती जाय उत्तरोत्तर उतनी ही बढ़ती जाती है। समस्त अङ्ग ही वृद्धावस्थामें शिथिल हो जाते हैं, किंतु तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है—

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येत तृष्णैका तरुणायते॥
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।

वास्तवमें सर्वगुणसम्पन्न होनेपर भी थोड़ेसे भी लोभके कारण प्राणीकी शोभा उसी प्रकार शिथिल हो जाती है, जैसे सुन्दर शरीरमें श्वेत कुष्ठ हो जाय—

स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्।

गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

'क्रोध पित्त नित छाती जारा'—मानसिक शरीरमें क्रोधको पित्त कहा गया है। क्रोध अग्नि है। यह जिस शरीरमें रहता है, सर्वप्रथम उसीको जलाता है। फिर जिस-जिसका स्पर्श करता है वह भी बिना जले नहीं रह सकता। गर्म लोहेकी छड़से प्रहार करनेपर प्रथम अपना हाथ जलेगा फिर स्पर्श जिसका होगा उससे वह भी जलेगा ही। क्रोधरूपी पित्तरोग सदा छातीको जलाता रहता है। क्रोधको शान्तिसे ही जीता जा सकता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

जैसे दैहिक रोग कफ, वात और पित्त—तीनों प्रधान हैं, वैसे ही मानसिक शरीरमें कामरूपी वात, कफरूपी लोभ और पित्तरूपी क्रोध—ये तीनों प्रधान हैं। वैसे तो ये अकेले भी मानस-शरीरको पर्याप्त हानि पहुँचानेमें समर्थ हैं और यदि तीनों एक साथ हो जायँ तो अत्यन्त दुःख देनेवाला संनिपात रोग उत्पन्न कर देते हैं। जैसे त्रिदोषजन्य संनिपातमें प्राणी विमोहको प्राप्तकर अज्ञानी हो जाता है और रोम-रोममें सहस्त्रों सूई चुभानेके समान कष्ट होता है, वैसे ही काम, लोभ तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यामोहमें प्राणीकी वाणी भी अव्यवस्थित—अविचारपूर्वक निकलती है।

सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा॥

'ममता दादु कंडु इरषाई'—अर्थात् ममतारूपी दाद और ईर्ष्यारूपी खुजली—ये दोनों मानस-रोग हैं। ममतारूपी दाद जो खुजलानेमें हर्ष और बादमें दर्द होता है। शरीरसे उत्पन्न बाल-बच्चों तथा सम्बन्धियोंमें तथा इस जगत्के प्रति ममता होती है।

ममता केहि कर जस न नसावा॥

ईर्ष्या खुजली रोग है। जैसे छोटी-छोटी फुंसियाँ खुजलीमें होती हैं और उनके खुजलानेमें सुख बादमें दाह होता है, वैसे ही ममता और ईर्ष्यामें अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें सुख और अप्राप्तिमें दाह होता है। इसी प्रकारसे हर्ष-विषाद अनेक प्रकारके ग्रह भी हैं।

'पर सुख देखि जरनि सोइ छई'—पराये सुखको देखकर जलना यह क्षयी रोग है। यह रोग खलोंकी गणनामें आता है—

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥

संसारमें किसीकी उन्नति देखकर खलोंके हृदयमें सदा जलन होती रहती है, वह जाती नहीं। ऐसे ही क्षयी रोग भी शीघ्रतासे जाता नहीं, असाध्य होता है। खल किसीके भी सुखको देखकर सदा जलते रहते हैं।

'कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई'—दुष्टता—मनकी कुटिलता यह कुष्ठरोग है। कुष्ठरोग सब रोगोंकी अपेक्षा सब प्रकारसे घृणित माना जाता है। इससे शरीर बिगड़ जाता है, शरीरसे दुर्गन्ध आती है। कोई कुष्ठीको अपने पास बैठने नहीं देता। इसी प्रकार कुटिल व्यक्ति भी समाजमें निन्दित हो जाता है। उससे सम्पर्क कोई भी नहीं करना चाहता। उसके संसर्गसे दूसरे भी कुटिलता सीख जाते हैं, इसलिये कुटिलताको कुष्ठरोग कहा गया। यह भी परम कष्टसाध्य रोग है।

'अहंकार अति दुखद डमरुआ'—अहंकार ही अत्यन्त दु:ख देनेवाला डमरुआ (गलगण्ड) रोग है। गलेमें बँधा हुआ शोथ जो गलेकी सीमासे आगे बढ़कर गलेमें लटकता है। उसे ही गलगंड (घेघा)-रोग कहते हैं। गलगंडके रोगीको गलेमें सूई चुभनेकी-सी असह्य पीडा होती है। रोग बढ़ जानेसे श्वास लेनेमें भी कष्ट होता है। गला ऊँचा-ऊँचा करके परम अभिमानीकी भाँति विवश होकर चलना पड़ता है। इसीलिये गोस्वामीजी कहते हैं—

संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥

इसके हो जानेसे अहंभाव-सा दिखायी देता है।

'दंभ कपट मद मान नेहरुआ'—दम्भ, कपट, मद, तथा मान—ये सब नहरुआ रोग हैं। ये स्नायुज रोग हैं। नहरुआरोग रोगीके अस्थिगत होकर वेदना करते हुए सूत्राकार कीटके रूपमें पाँवसे निकलते हैं। दम्भ, कपट, मद तथा मान आदि मनोमय कोशमें रहकर प्राणीको महान् कष्ट देते हैं। इसी कारण भगवान् भी कहते हैं—

मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

'तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी'—विषय-प्राप्तिकी कामनाको तृष्णा—प्यास कहते हैं। यह प्यास कभी मिटती नहीं, दिनोदिन बढ़ती ही जाती है। शरीरके अन्य अवयव घटते जाते हैं। केवल उदर ही बढ़ता जाता है। इसे ही उदर-वृद्धि (जलोदर)-रोग कहा जाता है। आहार-विहारके अव्यवस्थित हो जानेसे मेदा बढ़ जाता है। पेट भी फूलकर ढोलकके समान हो जाता है। अन्तर-कोषसे सम्बद्ध होनेके कारण बड़ी वेदना होती है। इसी प्रकार तृष्णाद्वारा वृद्धि उत्तरोत्तर होनेसे प्राणीको सब प्रकारसे महान् कष्ट झेलना पड़ता है। उसका मूल कारण जलोदर (उदर-वृद्धि) तृष्णा ही है। सुन्दरदासजीने इसका विशद वर्णन इस प्रकार किया है—

जो दस बीस पचास भये सत, होइ हजार तु लाख मँगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, पृथ्वीपति होन की चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल को राज करौ, तृस्ना अधिकी अति आग लगैगी।
सुंदर एक सँतोष बिना सठ, तेरी तो भूख कबौं न भगैगी॥

'त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी'— सुत, वित्त और लोकमान्यता यही त्रिविध एषणा कही जाती है। इन तीनोंसे ही सारा संसार ग्रसित है। इन्हीं तीनों एषणाओंको तरुण तिजारीसे उपमा दी गयी है, क्योंकि तरुण तिजारीरोग बड़े वेगसे जाड़ा देकर आता है। इसी प्रकार त्रिविध एषणाओंमें भी रह-रहकर बड़ी जडता उत्पन्न हो जाती है और अति कठिनतासे छूट पाती है। यह परम कष्टसाध्य रोग है।

'जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका'—मत्सर तथा अविवेक दोनों ज्वर हैं। देह, इन्द्रिय एवं मनको परम

ताप पहुँचानेवाले सभी रोगोंके शिरोमणि और बलवान् रोग ज्वर हैं। प्रथम जो शंकरके कोपसे उत्पन्न हुआ माहेश्वर-ज्वर—आम-ज्वर (मलेरिया) उसके आठ भेद हैं। उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान्‌के कोपसे जो उत्पन्न हुआ वह विषम-ज्वर, वैष्णव-ज्वर (टाइफॉयड) शीतज्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें आम-ज्वर एवं विषम-ज्वर होता है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरमें अविवेक एवं मात्सर्यरूपी ज्वर हैं। दोनों ही देहेन्द्रिय-मनस्तापी हैं। इसी कारण दोनों आम तथा विषम-ज्वरसे उपमित किये गये हैं।

मानस-रोगमें राग, द्वेष, हर्ष, विषाद, सुख, दुःख, संयोग, वियोग, भय, प्रीति, ईर्ष्या, ग्लानि, मत्सर, अविवेक आदि सब मानस-रोग हैं और—

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

एक व्याधिके हो जानेपर रक्षा होनी कठिन हो जाती है, फिर यहाँ तो एक-एक असाध्य अनेक व्याधियाँ हैं और सभी सबको हैं, फिर जीव किस प्रकारसे इन रोगोंसे छुटकारा पाये—इस प्रकार समझाते हुए रोगोपचारके विषयमें कहते हैं—

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—ये नियम हैं। श्रुति-स्मृति-सदाचारानुकूल आचरण ही आचार है, स्वधर्मानुष्ठान तप है, समदर्शित्व ज्ञान है, देवताओंके प्रीत्यर्थ द्रव्य-दान यज्ञ है, मन्त्रका बार-बार पाठ जप है, अपना स्वत्व हटाकर दूसरोंके स्वत्वका स्थापन करना दान है, इनका पालन करना धर्म है। ये सभी मानस-रोगोंकी औषधि हैं।

पथ्यापथ्य-विचार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, कपट-पाखंडादि समस्त विषयोंसे शास्त्रके अनुशासनके अनुसार ज्ञानके सेवन तथा बचावका उपाय ही करना पथ्यापथ्य है। मानस-रोगके लिये ये विषय ही कुपथ्य हैं। ये मुनियोंके हृदयमें भी थोड़ा-सा अवसर पाकर क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं, फिर सामान्य जनोंकी तो बात ही क्या?

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

उत्तम वैद्य—***'सदगुर बैद बचन बिस्वासा'***—जिस प्रकार वैद्य रोगीकी नाडी देखकर रोगको पहचानकर रोगीकी अवस्था और व्यवस्थाके अनुसार औषधिका विधान करता है, उसी प्रकार मानसरोगोंको पहचानकर उपचार करनेवाले सद्गुरु देव ही हैं। वे स्वयं ही अपने शिष्यरूपी रोगीके मानसिक रोगोंका तारतम्य सम्यक् प्रकारसे समझ कर '**भवरोगवैद्यम्**' के नाते—

अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

अमृतमयी संजीवनी मूलका सुन्दर चूर्ण देते हैं जिससे—

दैहिक, दैविक, भौतिक ताप—त्रितापका सपरिवार नाश करके रोगीको अनुपानपूर्वक स्वस्थ करते हैं। किंतु रोगीको भी यह ध्यान रखना परमावश्यक होगा कि वह सद्गुरु वैद्यके बताये वचनपर—

संजम यह न बिषय कै आसा।

संयमका पूर्ण पालन कर सके। जिस भाँति रोगीको कुपथ्यसे बचना आवश्यक है, उसी भाँति साधकको भी विषयकी आशाका परम परित्याग सब प्रकारसे परमावश्यक है।

उत्तम संजीवनी बूटी तथा अनुपान—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

भगवान्‌की भक्ति ही संजीवनी बूटी है और अति सुन्दर श्रद्धा ही अनुपान है। इस सुव्यवस्थाके द्वारा ही रोग नष्ट हो सकते हैं, अन्यथा करोड़ों यत्नोंसे भी नहीं होंगे।

जिस प्रकार असाध्य रोगोंकी शान्ति संजीवनी बूटीसे ही हो पाती है, उसी प्रकार मानसरोगोंको निर्मूल करनेमें भगवदाराधन ही परमावश्यक है। यह वेद-पुराणरूपी परम पावन पर्वतसे ही प्राप्त हो पाती है। वैद्यरूपी सद्गुरु ही इसे जानते हैं कि किस साधक (रोगी)-को इस बूटीका कितनी मात्रामें और किस अनुपानके साथ दिया जाय।

उत्तमोत्तम संजीवनी बूटीका प्रभाव एवं प्रमाण— यह उत्तम संजीवनी बूटी भगवान्‌की भक्तिके अन्तर्गत—***'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा'*** के रूपमें ही है।

निरामयं रामरसायनं पिब,
श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजसंजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः॥

इस राम-नामरूपी संजीवनीका पान करके ही शङ्करभगवान्‌ने हालाहल विषका पान कर लिया और निर्भयरूपसे उसे भी महत्त्व दिया—

हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम्।

प्रभाव क्या था—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

भक्त प्रह्लाद, भक्तिमती मीरा, तुलसी, कबीर आदिके जीवनका सर्वस्व-सार-स्वरूप यही था। विशेष क्या भगवान् धन्वन्तरि जब समुद्र-मन्थनसे प्रकट हुए और समस्त ऋषि-देवताओंको औषधि, रोग-निदान, उपचारादिका सब वर्णन करनेके पश्चात् एक ही महौषधि समस्त ही रोगोंपर समान और सफल रूपमें कार्य करनेवाली कौन है? इसपर कहा—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।

स्वस्थताके लक्षण—

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें उत्तम स्वस्थताका लक्षण निरोगी होकर भूँखका लगना है, उसी प्रकार मानस-शरीरकी स्वस्थताका भी लक्षण रोग-निवृत्त हो जानेपर तीव्र भूख लगना है। यहाँ तीव्र भूख क्या है? सुमतिरूपी क्षुधा। संजीवनी-भक्तिसे कुमतिका नाश होकर हृदयमें विराग-बल बढ़ता है, तब सुमतिरूपी भूख तीव्रतासे बढ़ती है। परिणामतः सांसारिक प्रपञ्चोंसे विराग और भगवच्चरणानुराग दोनों ही एक साथ बढ़ते हैं और फिर साधक कृतकृत्य हो जाता है सुमति भूख प्राप्तकर। क्योंकि—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।

यही रोग-विनिर्मुक्त मनका वास्तविक लक्षण है।

रोग-विनिर्मुक्त-स्नान—

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥

साधक (रोगी) विशुद्ध ज्ञान-जलसे जब स्नान करता है तभी श्रीरामभक्ति उसके हृदयमें छा जाती है। प्राणी जब पूर्ण स्वस्थ हो जाता है तो गर्मजलसे स्नान करता है। साधकको आरोग्यताका लक्षण प्रबल वैराग्य है। सुमतिरूपी भूख लगी, उसका सेवन निरन्तर करते हुए, आशा-तृष्णाका त्याग करते हुए, प्रबल वैराग्य बढ़ाते हुए, विमल ज्ञान-जलसे स्नान करते हुए, श्रीरामभक्तिसे हृदय सराबोर करते हुए, भगवत्प्राप्ति करके जीवन कृतकृत्य हो जाता है—

तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥

आगे फिर—

निरामयं रामरसायनं पिब।

—की कोटिमें धन्य होकर लक्ष्य-सिद्धि कर लेना है।

वैद्यका सद्वृत्त

सर्वत्र मैत्री करुणाऽऽतुरेषु निरामदेहेषु नृषु प्रमोदः। मनस्युपेक्षापकृतिं व्रजत्सु वैद्यस्य सद्वृत्तमलं तनोति॥
रोगपङ्कार्णवे मग्नं यः समुद्धरते नरम्। कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति॥

मनुष्यमात्रके प्रति सुहृद्‌वृत्ति, रोगियोंके प्रति करुणावृत्ति, स्वस्थ मनुष्यों [-को देखकर उन]-के प्रति प्रसन्नवृत्ति और म्रियमाणोंके प्रति उपेक्षावृत्ति—यह वैद्यका सद्वृत्त उसके यशको दूरतक फैलाता है। जो रोगरूप कीचड़के महासागरमें फँसे हुए मनुष्यका उद्धार करता है, उससे कौन-सा पुण्यकर्म नहीं होता और वह किस पूजाके लिये अयोग्य होता है।

भगवन्नाम-स्मरणसे रोग-निवारण

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा)

आजकल मानव-जीवनमें दिन-प्रतिदिन रोगोंका प्रकोप बढ़ता जा रहा है। नयी-नयी औषधियाँ भी आविष्कृत हो रही हैं और साथ-ही-साथ रोग भी बढ़ते ही जा रहे हैं। नये-नये रोग उत्पन्न होकर लोगोंको संत्रस्त कर रहे हैं। कैंसरकी समुचित चिकित्सा अभी भी जहाँ सम्भव नहीं हो पायी कि एड्स-जैसा भयंकर रोग संसारमें फैलता दिखायी दे रहा है। उच्च-निम्न रक्तचाप, हार्ट-अटैक, मधुमेह और पक्षाघात आदि न जाने कितने प्रकारके रोग आज मानव-जातिको पीड़ित किये हुए हैं। प्रतिदिन विश्वमें हजारों लोग इन भयंकर रोगोंसे मृत्युका ग्रास बन रहे हैं, परंतु चिकित्सा-विज्ञान आजतक इनके निवारणकी समुचित व्यवस्था नहीं कर पाया है। कारण स्पष्ट है कि आज संसारमें नास्तिकताका प्रभाव बढ़ता जा रहा है और ईश्वर, धर्म एवं शास्त्रसे विश्वास उठता जा रहा है। सनातन धर्ममें भगवन्नाम-स्मरणको सब प्रकारके रोगोंके निवारणका सरलतम तथा श्रेष्ठतम उपाय बताया गया है। यह वचन इस सम्बन्धमें उल्लेखनीय है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

अर्थात् औषधिके रूपमें अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द —इन नामोंका उच्चारण करनेसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।

नाम-जप

पुरीपीठके ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी निरंजनदेवतीर्थजी महाराज तथा इसी पीठके वर्तमान जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराजके अनुसार उक्त श्लोकमें भगवान्के तीन नामों— अच्युत, अनन्त और गोविन्दका उल्लेख है। इन तीन नामोंका स्मरण (जप) इस प्रकार करना चाहिये—**अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः।** इन नाम-मन्त्रोंका जप उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते सभी अवस्थामें करते रहनेसे सभी प्रकारके रोगोंसे तथा शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंसे मनुष्यको मुक्ति मिल जाती है। इतना ही नहीं, इनका जप करते रहनेसे अनेक लौकिक कार्योंमें भी सफलता मिलती है। भगवान् धन्वन्तरिके आदेशसे भगवान्के इन तीनों नाम-मन्त्रोंके जपसे सब प्रकारकी सफलता प्राप्त होती है और अकाल मृत्यु भी टल जाती है। यह अमोघ मन्त्र है। आबाल, वृद्ध, नर-नारी सभीको आधि-व्याधिसे मुक्त रहनेके लिये इन नाम-मन्त्रोंका यथाशक्ति जप करते रहना चाहिये।

कर्मसिद्धान्त

भगवन्नाम-स्मरणसे रोग-निवृत्ति होनेके रहस्यको जाननेके लिये हमें शास्त्र-प्रतिपादित कर्मसिद्धान्तको समझना आवश्यक है। शास्त्रोंकी यह मान्यता है कि पूर्व जन्मके शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही हमें जीवनमें सुख-दुःख, रोग-शोक तथा दारिद्र्य आदि प्राप्त होते हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने इसीलिये कहा है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

अर्थात् ईश्वरने संसारमें कर्मकी प्रधानता रखी है। अतः जो व्यक्ति जैसा (शुभाशुभ) कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। शुभ कर्मका शुभ फल और अशुभ कर्मका अशुभ फल होता है। हमारे शरीरमें जो भी रोग होते हैं, उनका कारण हमारे पूर्व जन्ममें अथवा इस जन्ममें किये हुए पापकर्म ही होते हैं। भगवन्नाम-स्मरण करनेसे पाप नष्ट होने लगते हैं और उसीके फलस्वरूप पापजन्य रोग भी निवृत्त होने लगते हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें नित्यप्रति नियमितरूपसे भगवन्नाम-स्मरण करते रहनेको कहा गया है। वस्तुतः हरिनामके स्मरण करने अथवा जप करनेमें पाप-क्षयकी अपार शक्ति है। यही कारण है कि संत लोग सदा हरिनाम-स्मरण करते रहते हैं।

भगवच्छरणागति

श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रोंमें भगवच्छरणागतिका बार-बार उपदेश भी इसीलिये दिया गया है कि जिससे व्यक्तिद्वारा जाने-अनजाने किये हुए पापकर्मोंका क्षय

होता रहे और व्यक्ति निष्पाप बना रहे, उसे रोग आदि पीड़ित न कर सकें। गीतामें भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८।६६)

अर्थात् समस्त कर्तव्य कर्मोंका त्याग करके तुम मुझ एक परमात्माकी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो। भगवन्नाम-स्मरणका भी यही फल है। इसीलिये सभी शास्त्रोंमें विभिन्न देवी-देवताओंके स्तोत्रोंका पाठ करनेका फल पाप-मुक्ति बताया गया है। 'श्रीदुर्गासप्तशती' (१२।२१-२२)-में माँ भगवती दुर्गा स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहती हैं कि 'उत्तम सामग्रियोंद्वारा पूजन करनेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे, होम करनेसे, प्रतिदिन अभिषेक करनेसे, नाना प्रकारके अन्य भोगोंका अर्पण करनेसे तथा दान देने आदिसे एक वर्षतक जो मेरी आराधना की जाती है, उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्रका एक बार श्रवण करनेमात्रसे हो जाती है। श्रवण किया हुआ यह माहात्म्य पापोंका हरण करता है और आरोग्य प्रदान करता है'—

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या॥
प्रीतिर्मे क्रियते साऽस्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति॥

'श्रीराम जय राम जय जय राम'

—इस मन्त्रका जप एवं स्मरण करनेसे मनुष्यको सब प्रकारकी सुख-शान्ति प्राप्त होती है। उसके पापोंका क्षय होता है और उसे रोगनिवृत्तिका सुख प्राप्त होता है। एक बार ज्योतिष्पीठके ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजने लेखकको बताया था कि यह अमोघ मन्त्र है। इसका जप करते रहनेसे व्यक्तिको रोगादि पीड़ित नहीं कर पाते हैं। अतः कल्याणकामीको सदैव इस मन्त्रको जपते रहना चाहिये। 'श्रीरामरक्षास्तोत्र'-में लिखा है—

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥
भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥

वस्तुतः 'रामनाम' में पाप-हरण करनेकी असीम शक्ति है। जिस प्रकार अग्नि स्पर्श होते ही जला देती है, उसी प्रकार रामनाम-स्मरण करते ही पापोंका क्षय होने लगता है और साथ ही पापजन्य रोग भी शान्त होने लगते हैं। महर्षि वाल्मीकि तो अपने जीवनके पूर्वार्धमें सप्तर्षियोंके उपदेश करनेपर भी 'राम' शब्दका उच्चारण नहीं कर पाये थे और उन्होंने 'राम' शब्दके स्थानपर 'मरा-मरा' जपा, उसीसे वे विशुद्ध-चित्त हो अलौकिक शक्तियोंसे सम्पन्न हो गये, व्याधियोंसे मुक्त हो गये तथा रामायण महाकाव्यके रचयिता हुए। गोस्वामी तुलसीदासजी 'रामचरितमानस' में लिखते हैं—

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

नासै रोग

'हरि' शब्दका सामान्य अर्थ है हरण करनेवाला अर्थात् जो मनुष्योंके पापोंका, दुःखोंका तथा कष्टोंका हरण करता है, वह हरि है। इसी कारण जब-जब भक्तोंपर संकट आये, तब-तब भगवान् हरिने उनका निवारण किया। भगवान् हनुमान् रुद्रावतार हैं। कल्याण करनेके कारण ही उन्हें शिव-शङ्कर कहा जाता है। उन्हींने हनुमान्के रूपमें अवतार लेकर भगवान् श्रीरामकी लीलाओंमें महत्त्वपूर्ण भूमिकाका निर्वाह किया। 'श्रीहनुमानचालीसा' की यह पंक्ति सदैव जपने एवं स्मरण करने योग्य है—

नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥

अर्थात् जो भक्त वीर हनुमान्के नामका निरन्तर जप करते रहते हैं, उनके रोगोंका तो नाश होता ही है, साथ ही सब पीडा भी दूर हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि यदि हम श्रद्धापूर्वक भक्तिके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे भगवान्के पावन नामका स्मरण करते हैं तो निश्चय ही पाप दग्ध हो जाते हैं और रोगोंकी निवृत्ति हो जाती है तथा भगवत्कृपाका अनुभव भी हो जाता है।

रामनाम—सब रोगोंका अचूक इलाज

(महात्मा गाँधी)

प्राकृतिक उपचारके इलाजोंमें सबसे समर्थ इलाज रामनाम है, इसमें अचम्भेकी कोई बात नहीं। एक मशहूर वैद्यने अभी उस दिन मुझसे कहा था—'मैंने अपनी सारी ज़िंदगी मेरे पास आनेवाले बीमारोंको तरह-तरहकी दवाकी पुड़िया देनेमें बितायी है, लेकिन जब आपने शरीरके रोगोंको मिटानेके लिये रामनामकी दवा बतायी, तब मुझे याद पड़ा कि चरक और वाग्भट-जैसे हमारे पुराने धन्वन्तरियोंके वचनोंसे भी आपकी बातको पुष्टि मिलती है।' आध्यात्मिक रोगोंको (आधियोंको) मिटानेके लिये रामनामके जपका इलाज बहुत पुराने जमानेसे हमारे यहाँ होता आया है। लेकिन चूँकि बड़ी चीजमें छोटी चीज भी समा जाती है, इसलिये मेरा यह दावा है कि हमारे शरीरकी बीमारियोंको दूर करनेके लिये भी रामनामका जप सब इलाजोंका इलाज है। प्राकृतिक उपचारक अपने बीमारसे यह नहीं कहेगा कि 'तुम मुझे बुलाओ तो मैं तुम्हारी सारी बीमारी दूर कर दूँ।' वह तो बीमारको सिर्फ यह बतायेगा कि प्राणिमात्रमें रहनेवाला और सब बीमारियोंको मिटानेवाला तत्त्व कौन-सा है? किस तरह उस तत्त्वको जाग्रत् किया जा सकता है और कैसे उसको अपने जीवनकी प्रेरक शक्ति बनाकर उसकी मददसे अपनी बीमारियोंको दूर किया जा सकता है? अगर हिन्दुस्तान इस तत्त्वकी ताकतको समझ जाय, तो आज हमारा जो देश बीमारियों और कमजोर तबीयतवालोंका घर बन बैठा है, वह तन्दुरुस्त और ताकतवर शरीरवाले लोगोंका देश बन जाय।

रामनामकी शक्तिकी अपनी कुछ मर्यादा है और उसके कारगर होनेके लिये कुछ शर्तोंका पूरा होना जरूरी है। रामनाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं। जो लोग खा-खाकर खूब मोटे हो गये हैं और जो अपने मोटापेकी और उसके साथ बढ़नेवाली बादीकी आफतसे बच जानेके बाद फिर तरह-तरहके पकवानोंका मजा चखनेके लिये इलाजकी तलाशमें रहते हैं, उनके लिये रामनाम किसी कामका नहीं। रामनामका उपयोग तो अच्छे कामके लिये होता है। बुरे कामके लिये हो सकता होता, तो चोर और डाकू सबसे बड़े भक्त बन जाते। रामनाम उनके लिये है, जो दिलके साफ हैं और जो दिलकी सफाई करके हमेशा साफ-पाक रहना चाहते हैं। भोग-विलासकी शक्ति या सुविधा पानेके लिये रामनाम कभी साधन नहीं बन सकता। बादीका इलाज प्रार्थना नहीं, उपवास है। उपवासका काम पूरा होनेपर ही प्रार्थनाका काम शुरू होता है, गोकि यह सच है कि प्रार्थनासे उपवासका काम आसान और हलका बन जाता है। इसी तरह एक तरफसे आप अपने शरीरमें दवाकी बोतलें उड़ेला करें और दूसरी तरफ मुँहसे रामनाम लिया करें, तो वह बेमतलब मजाक ही होगा। जो डॉक्टर बीमारकी बुराइयोंको बनाये रखनेमें या उन्हें सहेजनेमें अपनी होशियारीका उपयोग करता है, वह खुद गिरता है और अपने बीमारको भी नीचे गिराता है। अपने शरीरको अपने सिरजनहारकी पूजाके लिये मिला हुआ एक साधन समझनेके बदले उसीकी पूजा करने और उसको किसी भी तरह बनाये रखनेके लिये पानीकी तरह पैसा बहानेसे बढ़कर बुरी गति और क्या हो सकती है? इसके खिलाफ रामनाम रोगको मिटानेके साथ-ही-साथ आदमीको भी शुद्ध बनाता है और इस तरह उसको ऊँचा उठाता है। यही रामनामका उपयोग है और यही उसकी मर्यादा।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमार गोयल]

सभी व्याधियोंकी सर्वोपरि महौषधि है—ईश्वरकी भक्ति

(स्वामी अच्युतानन्द)

संसारमें विविध प्रकारके रोग हैं, जिनमें तीन रोग प्रधान हैं। वे हैं—दैहिक, दैविक और भौतिक। दैहिक रोगोंमें कुछ ऐसे असाध्य रोग हैं, जिनकी चिकित्सा पूर्णत: सम्भव नहीं है। अभी संसारमें कैंसर और एड्सकी समुचित चिकित्सा नहीं होनेके कारण कितने लोग कालकवलित हो गये हैं और हो रहे हैं।

भौतिक तापोंमें आता है—सर्प-दंश, बिच्छूका डंक आदि। इससे भी बहुत लोग मृत पाये जाते हैं। दैविक तापोंमें आता है—वज्रपात, भूकम्प, तूफान आदि। भौतिक विज्ञानकी विशेष उन्नति होनेपर भी इन तापोंसे बचनेका अभीतक कोई खास निदान प्राप्त नहीं हो पाया है। इन त्रितापोंसे संसार तापित है।

यद्यपि मनुष्यकी बुद्धि बहुत विकसित हो चुकी है। बुद्धिबलसे स्थल और जलको कौन कहे, वे गगनगामी हो चुके हैं, लेकिन त्रितापोंसे लोग सदाके लिये मुक्त हो जायँ, उसके लिये कोई ऐसी औषधिका आविष्कार हुआ हो, ज्ञात नहीं है। इन त्रितापोंके सम्बन्धमें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने लिखा है—*'तुलसी यह तन तवा है, तपत सदा त्रैताप।'* अर्थात् यह शरीर तीनों तापोंसे तवाके समान सदा जलता रहता है। इन त्रितापोंसे और विशेष भयंकर और घोर कष्टदायक है—'मानस रोग'। जिसके सम्बन्धमें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने लिखा है—*'जिन्ह के बस सब जीव दुखारी'* रामचरितमानसमें मानस रोगोंका विशद वर्णन मिलता है। मानस रोगोंमें सर्वप्रथम मोहका नाम आया है। कौन ऐसे हैं जो मोह और कामसे पीड़ित नहीं होते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज बड़े जोरदार शब्दोंमें पूछते हैं—

'नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतमबादी॥
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥

जो मोह यानी अज्ञानसे ग्रसित होते हैं, उनको काम नचानेके लिये नहीं छोड़ता है। सारे दु:खों यानी भवरोगोंकी जड़ है—मोह। मोहसे ही सारे क्लेश उत्पन्न होते हैं। इसीलिये कहा—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

मोहरूपी अज्ञानकी रात्रिमें सभी सोये हैं और अनेक प्रकारके जागतिक स्वप्न देखते हैं। माया-मोहमें पड़कर संसारचक्रमें उलझ जाते हैं और मोहवश जो-जो कर्म करते हैं, उसमें वे बँध जाते हैं। गुरुनानक देवजी महाराजने बड़ा ही अच्छा कहा है—

भूलेउ मन माइआ उरझाइउ
जो जो करम कीउ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइउ॥

लालचमें तृष्णा बढ़ती है। तृष्णाने किसको पागल नहीं बनाया। इसीलिये कहा गया—*'तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा।'*

इसी तरह मनोविकारमें क्रोध भी कम नहीं है। क्रोधके वशमें कौन ऐसे हैं जो अबोध नहीं हो जाते। क्रोधियोंका हृदय तप्त हो जाता है। यहाँतक कहा जाता है कि क्रोध आनेपर शरीरका रक्त भी जल जाता है। इसीलिये कहा—

केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।

वाचक ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर कवि और गुणवान्में किसकी फजीहत लोभने नहीं की। इसीलिये संत कबीर साहबने कहा—

कामी तरै क्रोधी तरै, पापी तरै अनन्त।
लोभी जियरा न तरै, कहै कबीर बिरतन्त॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार॥

गुणवान् होनेकी ऐंठ-अकड़रूपी त्रिदोष—सन्निपात रोग किसको नहीं हुआ है? अभिमान और मदको कोई नहीं छोड़ सके। रामचरितमानसमें है—

गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥

फिर कहा गया है—

जो बन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥

अर्थात् जवानीरूपी ज्वरने किसको नहीं खौला

(उबाल) दिया और ममताने किसके यशको नष्ट नहीं कर दिया।

मत्सर (डाह)-ने किसको कलंक नहीं लगाया? शोकरूप पवनने किसको नहीं डुला दिया? चिन्तारूपी सर्पिणीने किसको नहीं काट खाया? संसारमें ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो? इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥

ऐसा कौन धैर्यवान् है, जिसके शरीररूपी काठमें कीड़ा (घुन) न लगा हो? पुत्र, धन और लोक-बड़ाई—इन तीनोंकी इच्छाके लिये किसकी बुद्धि मलिन नहीं हुई? यथा—

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥

इसी प्रकार रामचरितमानसके दूसरे स्थलमें भी मानस रोगोंका वर्णन किया गया है। जैसे—

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

अर्थात् कामरूपवात रोग है, लोभरूप अपार कफ है और क्रोधरूप पित्त है, जो सदा हृदय जलाता है। हे भाई! जब ये तीनों प्रीति करते हैं, तब दुःखदायी सन्निपात (त्रिदोष ज्वर) उत्पन्न होता है। इसी तरह आगे और वर्णनमें आया है—

बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कंडु दुरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥

अर्थात् अनेक प्रकारकी विषयोंकी जो दुर्गम अभिलाषाएँ हैं। वे ही सब तरहकी पीड़ाएँ हैं, उनका नाम कौन जान सकता है? ममता दिनायके समान, ईर्ष्या खुजलीके समान और हर्ष-विषाद ग्रहोंकी अधिकताके समान हैं। दूसरोंका सुख देखकर जलना, क्षय रोग है। दुष्टता और मनकी कुटिलता कोढ़ रोग है।

मानस रोगमें अहंकार अत्यन्त दुःखदायी गठिया रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान—ये सब नहरुआ रोग हैं। यथा—

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥

इतना ही नहीं, तृष्णा पेट बढ़नेके समान अत्यन्त भारी रोग है। लोकमें प्रसिद्धि, धन और पुत्र पानेकी इच्छा—ये तीन प्रकारकी इच्छाएँ, तेहैया ज्वर हैं। डाह और अविचार—दोनों काला ज्वर हैं। कहाँतक कहा जाय, ये अनेक प्रकारके मानस रोग हैं—

तृष्णा उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौ कुरोग अनेका॥

ये सभी मानस रोग एक-से-एक अति प्रबल हैं। मनुष्य तो एक ही रोगके वशमें पड़कर मर जाते हैं, परंतु ये बहुत-से असाध्य रोग हैं, जो जीवको सतत दुःख दिया करते हैं। इस दशामें जीव कैसे सुख पा सकता है? इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने रामचरितमानसमें स्पष्ट लिखा है—

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

त्रितापों और मानस रोगोंसे बचनेके लिये एकमात्र सर्वोपरि महौषधि है—ईश्वरकी भक्ति, जो अत्यन्त सुलभ और सुखकारी है। विनय-पत्रिकामें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज लिखते हैं—

रघुपति-भगति सुलभ, सुखकारी। सो त्रयताप-सोक-भय-हारी॥

दूसरे स्थलमें लिखते हैं कि संसारमें तीन व्याधियाँ महाप्रबल हैं, लेकिन उनकी दवा सिर्फ भक्ति ही है, जो भक्तों, संतोंके द्वारा उपलब्ध होती है—

प्रबल भव-जनित त्रैव्याधि-भैषज भगति, भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी॥

संत कबीर साहब भी भक्तिकी उत्कृष्टता बताते हुए कहते हैं—

मुक्ति निसैनी भक्ति की, सन्त चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय॥
भक्ती बिनु नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय।
शब्द सनेही ह्वै रहे, घर को पहुँचते सोय॥
भक्ति बीज पलटै नहिं, जौं जुग जाय अनन्त।
ऊँच नीच घर जन्म लै, तऊ सन्त को सन्त॥

संतमतके महान् आचार्य ब्रह्मलीन पूज्यपाद महर्षि मैंहीँ परमहंसजी महाराजकी पदावलीमें भक्तिके लिये प्रार्थनाके रूपमें पाते हैं—

अपनी भगतिया सतगुरु साहब, मोहि कृपा करि देहु हो।
जुगन-जुगन भव भटकत बीते, अब भव बाहर लेहु हो॥
पशु-पक्षी आदिक योनिन में भरमेउ बहु बार हो।
नर तन अबहिं कृपा करि दीन्हों, अब प्रभु करो उबार हो॥

दूसरे पदमें भी आया है—

मोहि दे दो भगती दान, सतगुरु हो दाता जी॥
दस दिशि विषय जाल से हूँ घेरो, टरत नहीं अज्ञान॥
गाढ़ अविद्या प्रबल धार में, भये हूँ बहि हैरान॥
(महर्षि मैंहीं-पदावली)

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

श्रीकागभुशुण्डिजी गरुड़जीको और गोस्वामी तुलसीदासजी सर्वसाधारणको भक्तिकी पराकाष्ठाका विश्वास दिला रहे हैं—

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

अर्थात् भगवान् शंकर, ब्रह्मा, शुकदेव मुनि, सनकादिक और नारद मुनि जो ब्रह्म विचारमें प्रवीण हैं; सबोंका यही विचार है कि श्रीरामके चरणोंमें प्रेम करें अर्थात् उनकी भक्ति करें।

ऐसा वेद, पुराण और सब ग्रन्थ (सद्ग्रन्थ) कहते हैं कि रामकी भक्तिके बिना कभी सुख नहीं प्राप्त हो सकता है। यथा—

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

चाहे आकाशमें बहु-प्रकारके फूल खिल जायँ, मृग-तृष्णाके जलसे प्यास दूर हो जाय, बल्कि अंधकार सूर्यका नाश कर दे वा पानीके मथनेसे घी निकल आवे और बालूके पेरनेसे तेल निकल आवे; ये सभी असम्भव सम्भव हो जायँ, लेकिन बिना ईश्वरकी भक्ति किये संसार सागरके सारे संतापोंसे छूट जायँ, यह कभी सम्भव नहीं है। यह सिद्धान्त अकाट्य है। गोस्वामी तुलसीदासजीने इसका वर्णन बहुत ही उत्तम ढंगसे किया है—

फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
तृषा जाय बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥
अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥
बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

रामचरितमानसमें आया है—

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका॥

प्रबल प्रतापरूप सूर्य जब भक्तोंके हृदयमें उदित होता है, तो बहुतोंको सुख और बहुतोंको शोक हो जाता है। सबसे पहले अज्ञानरूपी रात्रिका नाश हो जाता है। पापरूपी उल्लू जहाँ-तहाँ छिप जाते हैं और काम, क्रोधादि सकुचा जाते हैं। विविध प्रकारके कर्म, त्रैगुण, काल और स्वभाव नहीं रह पाते हैं। डाह, प्रतिष्ठाकी भूख, मोहरूप अज्ञानान्धकार और अहंकार; इन सबोंकी कला नहीं चलती; यथा—

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥

इन सबोंके हट जानेके बाद धर्मरूपी तालाबमें ज्ञान और विज्ञान रूप अनेक प्रकारके कमल खिल जाते हैं और सुख, सन्तोष, विराग तथा विवेककी प्राप्ति होती है। ये सब तभी होते हैं, जब भक्तोंके हृदयमें प्रकाश हो जाता है। प्रकाश प्राप्त हो जानेपर पहले कहे गये—पाप, काम, क्रोध, लोभ, विविध कर्म, गुण, स्वभाव और अज्ञानका नाश हो जाता है तथा ज्ञान-विज्ञान, सुख-सन्तोष, विराग, विवेक बढ़ जाते हैं—

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥
यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास॥

जिस प्रकाशसे ये लाभ हों, उसको प्राप्त करनेके यत्नको भक्ति कहते हैं। वह भक्ति अपने अन्दरमें होनी चाहिये। इसका विशद वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने रामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें बड़े ही मार्मिक ढंगसे किया है। भक्तिको चिन्तामणि कहा गया है, जिससे सारी कामनाएँ भक्तोंकी पूर्ण हो जाती हैं। यथा—

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥

लाभ क्या होगा, तो कहते हैं—

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥

प्रकाशके उदय होते ही मोह जो सारे दुःखोंकी जड़ है, वह निकट नहीं आ सकती। लोभरूपी पवन उसे बुझा नहीं सकता। प्रबल अविद्यारूपी अंधकारका नाश हो जाता है। मदादिक हार जाते हैं। काम-क्रोधादि पास नहीं जा सकते। हाँ, जब हृदयमें भक्तिरूपी चिन्तामणि बस जाती है तथा विष अमृत बन जाता है, दुश्मन मित्र बन जाता है और मानसरोग कभी उनको व्याप नहीं सकता; यथा—

मोह दरिद्र निकट नहीं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्हके बस सब जीव दुखारी॥

अतः स्पष्ट हो जाता है कि एकमात्र ईश्वरकी भक्ति ही ऐसी महौषधि है, जो सारे व्याधियोंका नाश कर जीवोंको महासुखी बना सकती है। इसीलिये कहा—

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥

इस तरहके भक्ति करनेवाले साधारण नहीं होते, वे संसारमें भक्तिके प्रतापसे चतुर और सर्वश्रेष्ठ हो जाते हैं। यथा—

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

इस भक्तिकी संतोंने ब्रह्मका मन्थन कर निकाला है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने इसकी बड़ी अच्छी व्याख्या की है—

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हि भगति मधुरता जाहिं॥

अर्थात् ब्रह्म क्षीरसमुद्र है और उसको ज्ञानरूप मन्दराचलसे संतरूप देवता मथकर कथारूप अमृत निकाल लेते हैं, जिसमें भक्तिरूपी मिठास है। इसपर हमारे गुरुदेव पूज्यपाद महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराजने अपना विचार इस तरह व्यक्त किया है—*'ब्रह्म पयोनिधि'* त्रिकुटी है, जो साधकोंके अन्तरमें भक्ति करनेपर प्राप्त होती है। कथा-सुधा—सार शब्द अर्थात् ब्रह्मनाद है। जो अभ्यासी भक्त तीसरे तिल अर्थात् विन्दुको प्राप्तकर सहस्रदल कमलके विविध ज्योतिमण्डलोंके पार होते हुए त्रिकुटीके महान् ज्योतिमण्डलोंको भी पार कर जाते हैं, वे ही ब्रह्मपयोनिधिको मथ डालते हैं और कथा-सुधा अर्थात् सार-शब्दको प्राप्त करके भक्तिके अत्यन्त मीठे रसमें निमग्न हो जाते हैं। (रामचरितमानस सार सटीक, उत्तरकाण्ड)

अतः सबोंको चाहिये कि संसारके सारे क्लेशों, त्रितापों और मानसरोगोंसे मुक्त होनेके लिये ईश्वरकी भक्ति करें और शान्ति वा मोक्ष—निर्वाणका लाभ प्राप्त करें। इसीलिये कहा गया कि—

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥

(रामचरितमानस)

मानस-रोग एवं उनके उपचार

('मानस-मराल' डॉ० श्रीजगेशनारायणजी शर्मा)

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें मानस-रोगोंका वर्णन पूज्यपाद गोस्वामीजीने विस्तारके साथ किया है। संशयग्रस्त गरुडजी रामकथा-श्रवणके पश्चात् कृतार्थताका अनुभव करते हैं। पुनः भुशुण्डिजी महाराजके चरणोंमें प्रणाम कर सात प्रश्न निवेदित करते हैं—

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥
संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥

(७। १२१। ३—७)

मानस-रोग श्रीगरुडजीद्वारा पूछे गये प्रश्नोंमें अन्तिम और सातवाँ प्रश्न है। अन्य प्रश्नोंका उत्तर भुशुण्डिजीने संक्षेपमें दिया है, लेकिन मानस-रोगोंका उत्तर विस्तारके साथ दिया है—

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥

(७।१२१।२८—३२)

गरुडजीके इन सात प्रश्नोंको सुनकर मनमें कौतूहल होता है कि इतनी मधुर अमृततुल्य रामकथा-श्रवणके उपरान्त भी उनकी जिज्ञासा पूर्णरूपसे शान्त नहीं हुई तथा उन्होंने भुशुण्डिजीके समक्ष सात प्रश्न रख दिये—*'सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।'*

होना तो यह चाहिये था कि रामकथाकी समाप्ति मधुररससे होती—**'मधुरेण समापयेत्'** पर वैसा न होकर मानस-रोगोंके उपचारसे गोस्वामीजी समापन करते हैं, क्योंकि प्रश्नकर्ता गरुडजी स्वयं मानस-रोगसे ग्रस्त हैं। गरुडजी ज्ञानी हैं, भक्त हैं और भगवान्‌के नित्य पार्षद हैं। जब वे मोह-मायासे ग्रस्त हो सकते हैं तो सामान्य मनुष्यकी क्या बिसात है—

ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान॥

(७।६२ (क))

महाकविने रामकथाका समापन मानस-रोगोंकी चर्चासे की, इसके पीछे उनका गूढ रहस्य छिपा हुआ है। रामकथा केवल मनोरंजन और श्रवण-सुखद ही नहीं है, अपितु समस्त भवरोगोंकी दुर्लभ औषधि भी है—

बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥

लेकिन इससे ऊपर उठकर वे घोषणा करते हैं—

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

× × ×

त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥

(१।३५।६—१०)

रामकथा श्रवण-सुखद और मनको अतिरञ्जित करनेवाली तो है ही, लेकिन यह विमल कथा मङ्गलकरनी और कलिमलहरनी भी है—

मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की॥

(१।१० (छं०))

ऐसे तो मानसिक रोगोंकी लम्बी सूची गोस्वामीजीने प्रस्तुत की है लेकिन उनकी दृष्टिमें तीन रोग अति प्रबल है—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

(३।३८ (क))

तीनों रोगोंकी व्याख्या करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

(७।१२१।३०-३१)

यों तो मानसिक रोगोंकी संख्या अपार है, लेकिन उनमें तीन ही प्रधान हैं। भगवान्‌ने गीतामें इनको रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाला कहा है—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।'

(गीता ३।३७)

गोस्वामीजीने कामको वातरोग, लोभको कफजनित रोग तथा क्रोधको पित्तजनित रोग कहा है। शरीरकी संरचनामें वात, कफ और पित्तका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये सम अवस्थामें रहते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है, लेकिन इनके विषम होते ही शरीर रोगोंका डेरा बन जाता है।

मानसिक रोगोंकी भी यही दशा है। काम, क्रोध और लोभ यदि मर्यादामें रहें तो जीवात्माको कोई खतरा नहीं। लेकिन जब तीनों कुपित होकर विषम हो जाते हैं तो सन्निपातका होना अनिवार्य है—

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

एक ही रोग मृत्युके लिये पर्याप्त है, फिर ये अनन्त व्याधियाँ भला जीवको कहाँ शान्तिसे रहने देंगी? मानस-रोगोंसे ग्रस्त पुरुष भला समाधिको कैसे प्राप्त करेगा—

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

(७।१२१ (क))

समाधिकी बात तो बहुत दूर है, मानसिक रोगी कभी सामान्य सुख-शान्तिका अनुभव भी नहीं कर सकता है। वह त्रितापोंकी ज्वालामें निरन्तर जलता ही रहता है।

मानसिक रोगीकी एक विलक्षण विशेषता यह है कि वह स्वयंको रोगी न मानकर सामनेवालोंको रोगी मानता है। अतः जबतक रोगीको अपने रोगका ज्ञान नहीं होगा तबतक वह उसका उपचार भी नहीं करायेगा।

रोगका ज्ञान होनेपर वह निदानके लिये तत्पर होता है, लेकिन ये रोग इतने प्रबल हैं कि क्षीण तो हो जाते हैं, परंतु समूल नष्ट नहीं होते—

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥

(७।१२२।३)

बल्कि कुपथ्यका जल पाकर पुनः अङ्कुरित हो जाते हैं—

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

(७।१२२।४)

मानसिक रोगोंसे सारा संसार ही ग्रस्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभीके हृदयमें कुण्डली मारे बैठे हैं। इनका विस्फोट कब हो जायगा इसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है। जब बड़े-बड़े मुनियोंके मनको ये मथित कर देते हैं तो फिर बेचारे सामान्य मानवकी क्या बात है?

वेदशास्त्रोंमें मानसिक रोगोंसे मुक्त होनेके अनेक उपाय बतलाये गये हैं, अनेक औषधियोंका वर्णन है लेकिन ये जटिल रोग जाते नहीं—

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

(७।१२१ (ख))

मानस-रोगोंसे मुक्तिके दो सुगम उपाय हैं—

(१) भगवान्‌की कृपा तथा

(२) सद्‌गुरुद्वारा बतलाये गये उपायोंका दृढ़तापूर्वक पालन करना—

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

(७।१२२।५—८)

ईश्वरकी कृपा भी मिल गयी, सद्‌गुरुके वचनोंपर विश्वास भी हो गया, किंतु अभी औषधि तो मिली ही नहीं। मात्र रोगके ज्ञान होने और निदान होनेसे रोग नष्ट नहीं होते। उसके लिये औषधि अनिवार्य है। मानस-रोगोंकी एकमात्र औषधि भगवान्‌की भक्ति है—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

(७।१२२।७-८)

रोग नष्ट हुआ कि नहीं इसकी पहचान क्या है? तो जब संसारका आकर्षण छूट जाय और हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय तब समझना चाहिये कि रोगी मानस-रोगोंसे मुक्त हो गया—

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥

(७।१२२।९)

लेकिन मात्र वाणीका वैराग्य नहीं, श्मशान घाटका वैराग्य नहीं अथवा क्षणिक वैराग्य नहीं, बल्कि जब हृदयमें प्रबल वैराग्य हो जाय, तब मानना चाहिये कि हम रोगमुक्त हो गये। किंतु यह प्रभुकृपाके बिना सम्भव नहीं।

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ! यह समुझ सबेरो॥
बिछुरे ससि-रबि मन-नैननितें, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति संदेहु निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहु रामको चेरो॥

(विनय-पत्रिका ८७)

भवरोगसे मुक्तिका उपाय—तत्त्वज्ञान

(आचार्य डॉ० श्रीउमाकान्तजी 'कपिध्वज')

स्वरूपकी विस्मृति होनेके कारण वासनाके वशीभूत हुआ जीव भीषण असाध्य रोगोंका क्रीडास्थल बना हुआ है। सद्वैद्यके अभावमें वह दैहिक, दैविक एवं भौतिक रोगोंसे मुक्ति नहीं पाता। स्वयंके अविचारसे वह दुःखी है। आचार्य शंकरके शब्दोंमें —'बिना विचार किये जिस-किसी साधनको पकड़ लेनेका फल मुक्तिसे वञ्चित रहना और अनर्थकी प्राप्ति है।[१] अतएव वास्तविक सुखकी प्राप्ति-हेतु उत्तम साधनकी खोज करनी चाहिये और वह साधन है 'तत्त्वज्ञान'।[२] योगवासिष्ठमें वसिष्ठजी पथभ्रष्ट जीवका मार्गदर्शन करते हुए तत्त्वज्ञानको ही उत्तम साधन बताते हुए कहते हैं—'तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा सबके लिये अत्यन्त आवश्यक है, जिससे फिर कभी जन्म-मरण आदि दुःखोंकी प्राप्ति न हो।'[३] क्योंकि वासनाका क्षय, परमात्माका यथार्थ ज्ञान और मनोनाश—इन तीनोंका एक साथ दीर्घकालतक प्रयत्नपूर्वक अभ्यास किया जाय तो ये परमपदरूप फल देते हैं।[४]

श्रीवसिष्ठजी दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि 'अध्यात्म-विद्याकी प्राप्ति, साधुसंगति, वासनाका सर्वथा परित्याग और प्राण-स्पन्दनका निरोध—ये युक्तियाँ चित्तरूपी संसारपर विजय पाने एवं सुखी होनेके लिये निश्चित दृढ़ उपाय हैं।'[५] जिस पुरुषकी बुद्धि संसारवासनावश देह और इन्द्रियके द्वारा भोगने योग्य अयोग्य वस्तु—विषयभोगमें आसक्त होती है तथा जिसके मनमें कभी मोक्षकी आकाङ्क्षा नहीं जाग्रत् होती, वह मन्दबुद्धि मनुष्य मनुष्य नहीं प्रत्युत कुजा अथवा कीड़ा है।[६] अतः सत्पुरुषोंके साथ शास्त्र-चिन्तन करनेसे जिसका देहाभिमान नष्ट हो गया है, उसे तत्त्वका बोध हो जानेसे सर्वव्यापक आत्माका स्वरूप विदित हो जाता है। वह समझ जाता है कि भवरोगसे छुटकारा पानेके लिये आत्मज्ञान (तत्त्वज्ञान) ही यथेष्ट औषधि है; क्योंकि आत्माके ज्ञानसे भव-बन्धन नष्ट हो जाते हैं[७] और विज्ञ पुरुष परम विद्यारूपी नौकासे भयजनक—प्रखर वेगवाहिनी सांसारिक दुर्वासना-निचयादिरूप नदियोंको पार कर लेता है।[८] आत्मज्ञानी शोक-सागरसे पार हो जाता है।[९] उस परमात्माको जानकर ही मृत्युका उल्लंघन किया जा सकता है, मुक्ति-प्राप्तिका अन्य मार्ग नहीं है।[१०] क्योंकि निर्मल आत्मस्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर जो लौकिक दुःख और सुखसे रहित अक्षय परमानन्दरूपता होती है वही मोक्ष है। परमानन्दरूपता शरीरके रहने या न रहनेपर भी समानरूपसे उपलब्ध होती है।

वास्तवमें सृष्टि नामसे कुछ भी नहीं है, शास्त्रोंमें जो कुछ सृष्टिका वर्णन आया है वह अद्वैत-तत्त्वको बोधगम्य करानेके लिये ही है।[११] जिस नाम-रूपात्मक विचित्र संसारको हम देखते हैं, वह परमात्माका विलासस्वरूप है। विष्णुपुराण (२।१६।३३) एवं श्रीमद्भागवत (११।२।४१)- में भी इसीकी पुष्टि की गयी है। उस चैतन्यस्वरूप परमात्माने अपनेको अनेक रूपोंमें देखनेकी इच्छा की इसीसे जगत्की

१. अविचार्य यत्किञ्चित् प्रतिपद्यमानो निःश्रेयसात् प्रतिहन्येतानर्थं चेयात्। (शारीरकभाष्य १।२।२)

२. तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जानेसे जाग्रत्-कालमें जो राग और वासनासे रहित सुषुप्ति-अवस्था प्राप्त होती है, उसे तत्त्वज्ञ पुरुष 'स्वभाव' कहते हैं तथा उसमें परिनिष्ठित हो जाना 'मुक्ति' कहलाती है। ऐसी निष्ठा प्राप्त हो जानेपर तत्त्वज्ञानी (ब्रह्मज्ञानी)-को कर्ता, कर्म और करणसे हीन द्रष्टा, दृश्य और दर्शनसे शून्य तथा बाह्य और आभ्यन्तर-विषयोंसे रहित ब्रह्म जगत्-रूपसे स्थित जान पड़ता है अर्थात् जगत् ब्रह्म-स्वरूप ही प्रतीत होता है। इस कारण उसके समस्त भवरोग नष्ट हो जाते हैं।

३. योगवासिष्ठ नि०उ० २१।१०

४. वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते । समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मुने॥ (योगवा०उप० ९२।१७)

५. योगवा० उ० ९२।३५-३६

६. योगवा० नि०प्र०उ० ९५।२६ (क्योंकि वह भोगरूपी गंदी चीजको पसंद करता है, मनुष्य तो वही है जो मोक्षके लिये प्रयत्नशील है।

७. ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः। (श्वेता० १।११)

८. ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि। (श्वेता० २।८)

९. 'तरति शोकमात्मवित्' (छान्दोग्य ७।२।३)

१०. 'तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः' (अथर्ववेद १०।८।४४, ऋक्० १।१६७।२२)
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। (यजुर्वेद ३१।१८)

११. 'अद्वैततत्त्वबोधाय सृष्टिः सर्वत्र कथ्यते' (अनुभूतिप्रकाश ९।४५) छान्दोग्योपनिषद् (६।८।४)

उत्पत्ति हुई।[१]

जिस प्रकार समुद्रमें जलराशिका स्फुरण होनेपर ही उसमें भँवर उठते हैं, उसी प्रकार विशुद्ध चिदाकाशका अपने सत्य-संकल्पके अनुसार जो स्फुरण है, वही जगत् है।

प्रभुके संकल्पसे ही इस जगत्का निर्माण हुआ है[२] तथा संकल्प-शून्यतासे ही इसे नष्ट किया जा सकता है। परमात्म-चैतन्यमें, समुद्रमें जलराशिकी भाँति वस्तुतः चिदात्मक जगद्भावोंका जो अकस्मात् भान होता है उसे मनीषी संकल्प कहते हैं। अहम्-भावना (आत्माको देह मान लेना) ही कल्पना है तथा आत्माको आकाशके समान अपरिमित, अनन्त और व्यापक जानकर परमात्माके वास्तविक स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना तत्त्वज्ञ पुरुषोंके मतमें कल्पना या संकल्पका त्याग कहलाता है।

श्रीमद्भागवतमें नारदजीने धर्मराजको बताया है कि 'संकल्पोंके परित्यागसे कामको, कामनाओंके त्यागसे क्रोधको, संसारी लोग जिसे 'अर्थ' कहते हैं उसे अनर्थ समझकर लोभको और तत्त्वके विचारसे भयको जीत लेना चाहिये।'[३] संकल्पके क्षय हो जानेपर जब चित्त गलित हो जाता है तब संसारकी भ्रान्तिभावना नष्ट हो जाती है।[४] अर्थात् देह, इन्द्रिय और प्राणोंके साथ जो आत्मभ्रान्ति है, जिससे जगत् सत्य प्रतीत होता है वह नष्ट हो जाती है।

भगवान् शंकराचार्यजी महाराज मनको ही सारे अनर्थोंकी जड़ मानते हुए कहते हैं—'जगत्को किसने जीता? जिसने मनको जीता।'[५] तभी तो कहा गया है कि हाथोंसे हाथोंको मसलकर और दाँतोंसे दाँतोंको पीसकर अङ्गोंके पराक्रमद्वारा मनको जीतना चाहिये। मनको जीतकर ही संसारपर विजय प्राप्त की जा सकती है।[६] क्योंकि मन ही बन्धन और मोक्षका हेतु है।[७] अतः मनसे ही मनका पाशरूप बन्धन काटकर संसारसे आत्माको तारा जा सकता है और किसीके द्वारा वह तारा नहीं जा सकता।[८]

'दृश्य-प्रपञ्च है ही नहीं'—इस भावनासे चित्त जब सर्वथा क्षीण हो जाता है, तब उस समान-स्वरूप चैतन्यकी सबमें समान-भावसे व्यापक स्वतःसिद्ध सत्ता ही सत्ता-सामान्य-अवस्था होती है। ब्रह्ममें मन स्वाभाविक ही रहता है, पर जैसे तरङ्गमें तरङ्ग-बुद्धि करनेसे वह तरङ्ग-भावमें प्रतीत होती है और तरङ्गमें जल-बुद्धि करनेसे उसमें सामान्य जल-बुद्धि होती है; ऐसा पुरुष जल और तरङ्गके भेदसे विमुक्त निर्विकल्प कहा जाता है; वैसे ही मनकी मन-भावना करनेसे वह मन-रूपमें परिणत हो संसारके निर्माण और दुःखका कारण होता है, पर मनकी ब्रह्म-भावना करनेसे वह सर्वत्र ब्रह्म-दर्शनकी क्षमता प्रदान करता है और ऐसा पुरुष निर्विकल्प हो जाता है।

सब भूतोंमें एक ही आत्मा है। वह ज्ञानीको एक रूपमें तथा अज्ञानीको जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी भाँति अनेक रूपोंमें दिखायी देता है। इस प्रकार एक ही आत्मा अस्ति-भाति-प्रियरूप सच्चिदानन्दके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वही पिण्डोपाधिसे रहित होनेसे आत्मा तथा ब्रह्माण्डोपाधिसे रहित होनेसे 'ब्रह्म' शब्दसे व्यवहृत है। जिस प्रकार घटाकाश और महाकाशमें घटकी उपाधि ही रुकावट है और उपाधिके नष्ट होनेपर घटाकाश तथा महाकाशकी एकता हो जाती है, उसी प्रकार सर्वात्मभावकी जागृति होनेपर सब कुछ ब्रह्म ही हो जाता है। इससे साधकको सदा, सर्वत्र, सब नाम-रूपोंमें भगवद्दर्शन या आत्मदर्शन होने लगते हैं।

सम्प्रति, तरल होनेके कारण जिस प्रकार जल ही अपनेमें आवर्त-रूपसे प्रतीत होता है, उसी प्रकार चित्तरूप होनेके कारण आत्मा ही जगत्-सा प्रतीत होता है। जगत् इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। समस्त एषणाओंकी शान्ति हो जानेपर विशुद्ध चित्-पुरुषकी जो स्थिति है, उसीको सत्य आत्म-तत्त्व कहा गया है और उसीको निर्मल चैतन्य कहते हैं। विशुद्ध तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जानेपर इस सम्पूर्ण विश्वका अपने-आपमें और अपने-आपका सारे विश्वमें अनुभव करना सुलभ हो जाता है तथा भव-रोगोंसे सुगमतापूर्वक छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

---

१. 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' (छान्दोग्य० ६। २। ३) 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

२. 'संकल्पमात्रकलनेन जगत्समग्रम्' (वराहोप० २। ४५)

३. असंकल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्। अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्॥ (श्रीमद्भा० ७। १५। २२)

४. संकल्पसंक्षयवशाद्गलिते तु चित्ते, संसारमोहमिहिका गलिता भवन्ति। (योगवा०उत्पत्ति०महो० ५। ५३)

५. 'जितं जगत् केन मनो हि येन'। (प्रश्नोत्तरी ११)

६. हस्तं हस्तेन सम्पीड्य दन्तैर्दन्तान् विचूर्ण्य च। अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः॥ (मुक्तिकोप० २। ४२)

७. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धनं विषयासक्तं मुक्त्यै विनिर्विषयं मनः॥ (त्रिपुरातापिन्यु० ५। ३)

८. मनसैव मनश्छित्त्वा पाशं परमबन्धनम्। भवादुत्तारयात्मानं नासावन्येन तार्यते॥ (महोप० ४। १०७)

आरोग्याङ्क वनौषधि-नामानुक्रमणिका

वनौषधि-नाम — पृ० सं०

* चिह्न अंकित पृष्ठपर विशेष विवरण दिया गया है।

कल्याण आरोग्याङ्क रोगानुक्रमणिका

रोग-नाम	पृ० सं०

य

र

स्त्रीरोगानुक्रमणिका

नोट— केशसम्बन्धी रोग, सौन्दर्य-उपाय, चेहरेकी झाइयाँ, कील-मुहाँसे आदिहेतु सर्वोपयोगी सामान्य रोगानुक्रमणिकाका ही अवलोकन करें।

बालरोगानुक्रमणिका

विषदंश एवं विष आदि अभक्ष्य पदार्थभक्षणानुक्रमणिका

पशुरोगानुक्रमणिका

* चिह्न अंकित पृष्ठपर विशेष विवरण दिया गया है।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषांक

1184	श्रीकृष्णांक	1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अंक
749	ईश्वरांक	572	परलोक-पुनर्जन्मांक
635	शिवांक	517	गर्ग-संहिता
41	शक्ति-अंक	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद
616	योगांक	1362	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)
627	संत-अंक	1432	वामनपुराण
604	साधनांक	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)
1104	भागवतांक	657	श्रीगणेश-अंक
1002	सं० वाल्मीकीय रामायणांक	42	हनुमान-अंक
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	1361	सं० श्रीवाराहपुराण
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	791	सूर्यांक
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	584	सं० भविष्यपुराण
43	नारी-अंक	586	शिवोपासनांक
659	उपनिषद्-अंक	628	रामभक्ति-अंक
518	हिन्दू-संस्कृति-अंक	653	गोसेवा-अंक
279	सं० स्कन्दपुराणांक	1131	कूर्मपुराण
40	भक्त-चरितांक	448	भगवल्लीला-अंक
573	बालक-अंक	1044	वेद-कथांक
1183	सं० नारदपुराण	1189	सं० गरुडपुराण
667	संतवाणी-अंक	1592	आरोग्य अंक (परिवर्धित संस्करण)
587	सत्कथा-अंक	1472	नीतिसार-अंक
636	तीर्थांक	1467	भगवत्प्रेम-अंक
660	भक्ति-अंक	1548	व्रतपर्वोत्सव-अंक
1133	सं० देवीभागवत-मोटा टाइप	1610	देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठांक
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	1667	संस्कार-अंक
789	सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप)		
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण		

ISBN 81-293-1299-9

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१, फैक्स : २३३६९९७

GPPN 1592